GYANODAYA FEB-OCT 1966 G.K.U.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078058

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RT 065

Acc. NO
078058

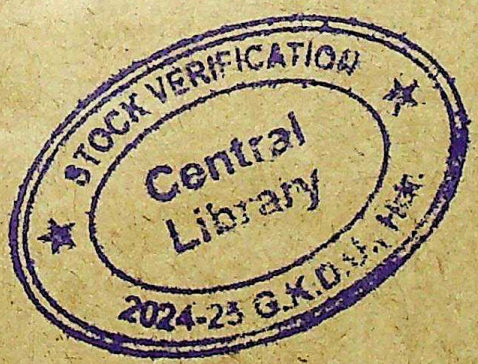

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7/2/66

उषुल फाल्गुन

ज्ञानोदय

फरवरी १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक विकास-उन्नयन
सांस्कृतिक अनुसन्धान-प्रकाशन
राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी

साधिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

[स्थापित सन् १९४४]

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

फ़रवरी १९६६ ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि
प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्रीको
कि वे देशकी शक्ति और सामर्थ्यके
प्रतीक थे···

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी

राष्ट्रीय एकता का इससे सुन्दर चित्र और क्या मिल सकता है, जो आज देश के सम्मुख प्रस्तुत है। हम एक बन कर रहें, अनुशासन हमारा मंत्र हो। देश कठिन परिस्थितियों को पार कर रहा है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हम न्याय के पथ पर हैं। इस पथ पर चलने के लिये हमें दृढ़ और सबल बने यही मेरी कामना है।

—लालबहादुर शास्त्री
२० अक्तूबर, १९६५

VERIFICATION
Central Library
2024-25 G.K.D.U. HD

शुभकामनाएँ
प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धीको
कि देशकी शक्ति और सामर्थ्य
उनके साथ है···

078058

ज्ञानोदय

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालबहादुर शास्त्री | लक्ष्मीचन्द्र जैन

मई १९६४ में जब जवाहरलाल नेहरूका निधन हुआ तो राष्ट्र स्तब्ध और किंकर्तव्य-विमूढ़ रह गया था, इसलिए कि नेहरूका नेतृत्व हमारा बहुत बड़ा सहारा था—एक मात्र सहारा ! आश्चर्य तो यह है कि जिस दमकते शौर्यकी शिखा हमारे देखते-देखते क्षीण होती जा रही थी और जिस अन्धकार-की आशंकासे त्रस्त होकर हम वर्षोंसे प्रश्न करते आ रहे थे : 'नेहरूके बाद कौन ?'—उसका उत्तर खोजनेसे हम अन्ततक कतराते रहे। क्योंकि इस एक प्रश्नमें-से सैकड़ों ऐसे प्रश्न पैदा होते नज़र आते थे जिनके सामने हम असहाय-सा अनुभव करते थे। इसलिए हमने त्राण इसीमें समझा था कि शुतुरमुर्गकी तरह रेतमें सिर दुबकाकर बैठे रहें। और हम बैठे रहे····और हमारे रत्नदीपका प्रकाश हमारे चारों ओरसे सिमटता रहा····और एक दिन उस केन्द्रपर आकर विलीन हो गया जहाँ स्वयं दीपाधार अपने पादमूलमें सुरक्षित तमसे आत्मतुष्ट था—क्योंकि वास्तवमें प्रत्येक अकेले दिव्य दीपककी यही नियति होती है।

अन्धकारमें घिरे-घिरे हमें एक दिन अचानक यह बोध हुआ कि रत्नदीप भी अमर नहीं होते !

जिस दिन लालबहादुर शास्त्रीने पण्डित नेहरूका उत्तराधिकार सँभाला था, काश उस दिनकी डायरी उन्होंने लिखी होती ! और, यदि लिखी भी होगी तो क्या उसमें उस आकुलताका शतांश भी आ पाया होगा जो उस क्षण उन्होंने भोगी ? राष्ट्रके नाम उन्होंने जो पहला सन्देश ब्रॉडकास्ट किया उसमें हमारी शंकालु बुद्धिने नेहरूकी वाणीकी ओजस्विता देखनी चाही, किन्तु उसकी जगह एक हलकी-सी नक़लको हमने उनके भाषणमें आरोपित कर लिया। बहुतोंको पहली बार पता लगा कि लालबहादुरजी अँगरेज़ी बोल लेते हैं····पर सन्देह बना रहा कि क्या वह विदेशी राजनयिक खुर्राटोंके आगे हकला न जायेंगे ?

दायित्व सँभालनेके बाद लगा कि लाल-बहादुरजी टटोलवाँ चल रहे हैं। हमारी आँखें अभ्यस्त थीं राष्ट्रनायक नेहरूकी निःशंक वेगवती चाल देखने की। हमने सोचा, लाल-बहादुरजी अगर इस तरह चले तो देशकी मंज़िलमें और उनमें फ़ासला बढ़ता ही जायेगा।

आज सोचकर लज्जा आती है कि उनके प्रधान मन्त्रित्वके प्रारम्भिक कालको देखने-वालोंने, लालबहादुरजीकी भलमनसाहत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्टताको दब्बूपन समझा, दूसरोंकी मूर्खतापूर्ण बातोंको भी चुपचाप सुन लेने और उत्तरमें संकेतात्मक बात कहनेकी कलाको उनकी रीढ़-हीनता माना, नेहरूके सांस्कृतिक व्यक्तित्वसे प्रसूत वाणीके उदात्त स्फुलिंगोंकी जगह शास्त्री-जीके वक्तव्यों और भाषणोंकी निर्व्याज सादगीको निष्प्रभ व्यक्तित्वकी अभिव्यक्ति जाना।

मानो कि लालबहादुरके व्यक्तित्वकी लघुताको रेखांकित करनेके लिए पण्डित नेहरूके दीर्घाकार व्यक्तित्वका सन्दर्भ नाकाफ़ी था; अतः समान-से व्यक्तित्वोंका एक गुट 'सिण्डीकेट' को संज्ञा लेकर राजनीतिके क्षेत्रमें उतरा और पण्डित नेहरूकी याद ही नहीं, उनके व्यक्तित्वकी छाया तक इस नये गुटके उभरते प्रकाशमें धूमिल होने लगी। किन्तु लालबहादुर उसी प्रकार लघुकाय लघु-आकार दिखाई देते रहे।

विशालकाय बरगदके धराशायी हो जानेके उपरान्त केन्द्रीय मण्डलके प्रमुख मन्त्री, राज्योंके मुख्य मन्त्री, काँग्रेसके अध्यक्ष, विरोधी दलोंके नेता—सबको आकाश-भर फैलने-फूलनेका नया और मुक्त अवसर मिला। केन्द्रीय शासनपर दक्षिण ओर पूर्वकी ओरसे पहला कूटनीतिक आक्रमण हुआ—भाषा-विवादकी ओटमें। हिन्दीके हृदयमें जिस नंगी तलवारकी नोकको घुपाया गया, वह वास्तवमें राष्ट्रके किस मर्मस्थलको भेदनेका प्रयत्न था उसकी चर्चा करना आज उचित नहीं। लालबहादुरजीने जिस धीरज, दूरदर्शिता और राजनैतिक सूझ-बूझसे उस स्थितिका मुक़ाबला किया और विरोधके ज्वारको उसके अपने ही फेनोंमें टकराकर मथ जाने, शान्त होने दिया, वह उनकी पहली विजय-पताका थी जो दिल्लीके शासनालयमें फहरी। किसने किसका उपयोग किया—सिण्डीकेटने शास्त्रीजीका या शास्त्रीजीने सिण्डीकेटका—यह कहना आज कठिन है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि यदि सिण्डीकेटको अपने अस्तित्वकी सार्थकता मिली तो शास्त्रीजीको विजय!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

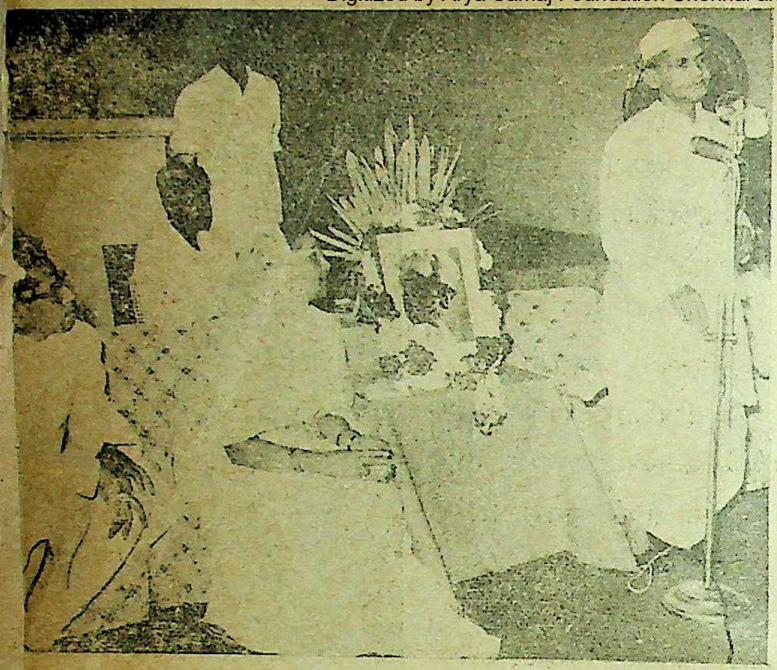

विषपायी जनमके'-प्रकाशन-अवसरपर भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयो-
नवीन-स्मृति-समारोहमें श्रीलालबहादुर शास्त्री और श्रीमती रमा जैन।

कलतक लालबहादुरजीके प्रधान-मन्त्रित्वकालकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी—राष्ट्रको युद्धकी अग्नि-परीक्षामें दीक्षित करके पश्चिमी सीमाओंसे आनेवाले आक्रमणकारी आततायियोंको सदाके लिए नखहीन और दन्तहीन कर देना और देशके प्रत्येक नागरिकको नये-दीप्त आत्मदर्पसे ओतप्रोत करना। और आज जब ताशकन्दपर अचानक विषादका तुषारपात हो गया, जब वहाँके गली-कूचोंमें सर्द हवा सिर धुनती फिर रही है, जब लालबहादुरजीकी अरथीको कोसिजिन और अय्यूब कन्धा दे रहे हैं और रूसवासियोंके गालोंपर ढुलकनेवाले आँसुओंमें भारतके जन-जनकी विषण्ण मुखछवि प्रतिबिम्बित हो रही है, तो हम अपने शास्त्रीजीको याद कर रहे हैं—एक ऐसे महान् महिमामय नेताके रूपमें जो युद्धमें हमें विजय दिलाकर स्वयं शान्तिके लिए अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर गया।

लालबहादुरजी राष्ट्रको वह दे गये जो पिछली कई शताब्दियोंमें कोई नहीं दे पाया था—और वह भी स्वयं बड़ा बनकर नहीं हम सबको बड़ा बनाकर।

भारतके इतिहासने नयी करवट ली है। अब हमारे राष्ट्रको ज़रूरत नहीं ऐसे भव्य विशाल बटवृक्षकी जिसकी छाया ही हम सबका मूलधन हो। अब हमें आत्मतुष्ट रत्नदीपोंके प्रकाशमें मिचमिचाती आँखों चलनेकी आवश्यकता नहीं। अब हममें-से प्रत्येक एक सजीव अंकुर है जो सशक्त वृक्ष बनकर फूल-फल सकता है, अब हममें-से प्रत्येक एक जाज्वल्यमान दीप है जो अपनी ज्योतिसे नयी ज्योतियोंको पुष्पित करेगा लेकिन अपनी उद्दाम शिखासे किसीकी निर्मल कोमल ज्योतिको पराभूत नहीं करेगा।

लालबहादुर शास्त्री हमें वरदान-स्वरूप मिले थे। वह चले गये कि अब हम अपना पथ अपनी ज्योतिसे आलोकित करें, यही वह हमें सिखा गये हैं। हम कृतज्ञ हैं।

नेहरूजीके निधनसे लगभग २० दिन पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब श्री लालबहादुर शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-की चौथी पुण्यतिथिके अवसरपर होनेवाले समारोहमें 'हम विषपायी जनमके' काव्य-संकलनका ग्रन्थि-विमोचन करने पधारे तो अपने अध्यक्षीय भाषणमें वह नवीनजीकी स्मृतियोंमें डूबते-खोते चले गये। उन्होंने कहा—उनके ही शब्द टेपपर-से उद्धृत कर रहा हूँ—"शर्माजी में बड़ी भावुकता थी, प्यारकी भावुकता जो दिलकी सचाई और सफ़ाई प्रकट करती है। मैं तो उसे इसी रूपमें देखता हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ कि लोग मुझे थोड़ा-बहुत सीधा-सादा मानते हैं, मगर मैं कहीं ज़्यादा चालाक हूँ। क्योंकि वह भावुकता, वह इमोशनलिज़्म मेरे अन्दर बहुत कम है। और जहाँ इमोशन कम हो वहाँ ज़रूर ही चालाकी ज़्यादा होगी। तो इस दृष्टिसे मैं जब बालकृष्ण शर्माकी पैमाइश और उनकी जाँच-पड़ताल करता हूँ तो उन्हें मैं बहुत ऊँचा व्यक्ति मानता हूँ।....वैसे मुझे लगता है कि दुनिया कोई खत्म तो होती नहीं—

ख़ुदा जाने ये किसकी
जल्वागाहे नाज़ है दुनिया
हज़ारों जा चुके लेकिन
वही रंगत है महफ़िल की!

यह दुनिया तो नहीं बदलती, रंगत कुछ बदलती जाती है। मैं कभी-कभी आजकल महसूस करता हूँ कि ऐसे लोग जो जाते हैं उनकी जगह हम भर नहीं पाते। जो भावनाएँ, जो बातें, उनमें थीं—एक सुन्दरता थी एक भेद था और जीवनमें थोड़ा-सा एक दूसरे ढंगका रस था, वह जैसे फीका-सा पड़ता नज़र आता है।"

लालबहादुरजीने ये शब्द २९ अप्रैल १९६४ को उक्त समारोहमें कहे थे। उसके लगभग २० दिन बाद नेहरूजी नहीं रहे और उसके २० महीने बाद आज वे स्वयं नहीं रहे!

बेशक इस जल्वागाहे नाज़में फिर कोई प्रधानमन्त्री बनेगा, फिर महफ़िलें भरेंगी, लेकिन हम जो अपने गान्धीको वापिस न ला पाये जिसने राष्ट्रीयताको जन्म दिया, जो अपने नेहरूको वापिस न ला पाये जिसने राष्ट्र को दिशा दी तो हम अपने लालबहादुरजीको कहाँसे ला पायेंगे जो हमारे राष्ट्रके साधारण व्यक्तिको भी असाधारण व्यक्तित्व दे गये, उसे आत्मसम्मानसे सिर ऊँचा उठाकर चलनेकी शान दे गये!

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ज्ञानोदयका 'युद्ध-विशेषांक'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक ज्ञानोदयके नवम्बर १९६५ में प्रकाशित 'युद्ध-विशेषांक' की प्रतियाँ भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे सीमापर तैनात जवानोंके लिए विजय-अभिनन्दन-सहित ९-११-'६५ को स्वर्गीय प्रधान-मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्रीको (बायें चित्रमें) और १०-११-'६५को सूचनामन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धीको उसके निवासस्थान पर अर्पित की गयी थीं। इसी प्रकार २९-११-'६५ को 'युद्ध-विशेषांक' की प्रतियाँ रक्षामन्त्री श्री यशवन्त राव बलवन्त राव चह्वाणको उनके कार्यालयमें भेंट की गयीं। भारतीय जवानोंने ज्ञानोदयके 'युद्ध-विशेषांक' को सबसे महत्त्वपूर्ण भेंटके रूपमें स्वीकार किया है।

आप चाहें ता अब भी प्राप्त कर सकते हैं : ज्ञानोदयके ये महत्त्वपूर्ण विशेषांक—

- दाम्पत्य विशेषांक : १-दिसम्बर १९६५ : मूल्य : २.००
  दाम्पत्य विशेषांक : २-जनवरी १९६६ : मूल्य : १.००
- समकालीन भारतीय कहानी विशेषांक : १-नवम्बर ६४ : २.००
  समकालीन भारतीय कहानी विशेषांक : २-दिसम्बर ६४ : १.००

ज्ञानोदय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

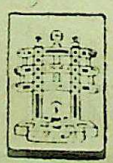

आधुनिक भावबोध कला-संचेतना और नवीनताका प्रतिनिधि

सम्पादकीय कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
वितरण-कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बेनेट कोलमन एण्ड क० लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि शंकर 'कुरुप' की बाँसुरी सम्मानित

एक लाख रुपयेके ज्ञानपीठ-पुरस्कार द्वारा

कवित्व, कृतित्व और भाषाका अभिनन्दन

(ज्ञानपीठ-समाचार)

दिल्ली : २९ दिसम्बर १९६५ :: चौदह भारतीय भाषाओंकी हर विधाकी सृजनात्मक कृतित्वकी पुस्तकोंमें-से सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृतित्वपर प्रतिवर्ष दिया जानेवाला एक लाख रुपयेका भारतीय ज्ञानपीठ-पुरस्कार मलयाली महाकवि श्री जि० शंकर कुरुपके काव्य संकलन 'ओटक्कुषल' (बाँसुरी) को दिया गया। सन् १९२२ से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय साहित्यमें-से शंकर कुरुपकी 'बाँसुरी' ज्ञानपीठ-पुरस्कारके योग्य चुनी गयी। भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने दिल्लीमें प्रवर परिषद्की बैठकके बाद इस पुरस्कारकी घोषणा की। देश-भरमें ज्ञानपीठ-पुरस्कारके निष्पक्ष निर्णय, साहित्य-सम्मानके गौरव-अनुष्ठान और कृतित्व-व्यक्तित्व तथा भारतीय भाषाओंके प्रति निवेदित निश्छल सेवाभावकी प्रशंसा की गयी। कवि शंकर कुरुपने इस सम्मानको स्वीकार करते हुए अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनको लिखा : "द न्यूज़ केम टु मी ऐज़ ए प्लेजेण्ट सरप्राइज़। इट इज़ द ऑनर टु माई रायटिंग एण्ड टु माई लेंग्वेज।" सहज विनम्र कवि कुरुपको एरणाकुलम्में अभिनन्दकोंने घेर लिया। वहाँ आसान् नगरमें हो रहे पाँचवे अखिल भारतीय लेखक सम्मेलनमें, अन्तिम दिनकी विदा-गोष्ठीसे पहले, महाकविका अभिनन्दन किया गया। सायंकाल एरणाकुलम्में यही कार्यक्रम 'तिलकम्' द्वारा फिर दुहराया गया। सभी भाषाओंके प्रतिनिधियोंने महाकविको बधाई दी। श्री शंकर कुरुपने अभिनन्दनके प्रति आभार जताते रविबाबूकी एक पंक्ति दुहरायी : 'आमार माथा नत करे दाओ तोमार चरण धुलाय।'

कवि कुरुपका परिचय :

१९५६ में दिल्लीमें भारतीय कवियोंकी पहली संगोष्ठीमें केरलसे कवि-प्रतिनिधिके रूपमें शंकर कुरुपने भाग लिया था और श्रोताओंपर उनकी कविताओंने विशेष प्रभाव छोड़ा था। केरल पेरियार नदीके निकटवर्ती ग्राम बायताड्के एक कृषक-परिवारमें ३ जून १९०१ को इस प्रभावशाली व्यक्तिका जन्म हुआ। बचपन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जि० शंकर कुरुप
'भद्रालयम्' मानेस्ट्री रोड
एरणाकुलम्-१ (केरल)

में ही पिताका वियोग सहा। जिस माँको देख-रेखमें पले-पनपे, उनकी मृत्यु हाल ही कुछ महीने पहले हुई है। ज्योतिष, संस्कृत और अध्ययनमें रुचि परिवारकी देन है। 'हायर' पास करनेके बाद अध्यापन सँभाला। १९२१ में 'तिरुविलवामला' हाई स्कूलमें गये, जहाँ अँगरेज़ी और विश्व-साहित्य पढ़नेका मौक़ा मिला। फिर मद्रास-विश्वविद्यालयकी 'विद्वान्' परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। कुछ समय बाद वे एरणाकुलम् राजकीय महाविद्यालयमें व्याख्याता नियुक्त हुए। १९५६ में प्राध्यापकके पदसे सेवा-निवृत्त हुए तो आकाशवाणीमें प्रोड्यूसरके पदपर नियुक्त किये गये। पत्नी सुभद्रम्मा, पुत्र रवि, पुत्री राधासे भरा-पूरा परिवार और कवि शंकरकी साहित्य-सेवासे निवासस्थान 'भद्रालयम्' स्वयंख्यात हो गया है। आपने केरल-साहित्य-परिषद्-पत्रिका के सम्पादकके रूपमें क़रीब पन्द्रह साल सफलतापूर्वक सेवा की है। आजकल केरल-साहित्य-समितिके अध्यक्ष हैं और 'तिलकम्' मासिक पत्रिकाके सम्पादक भी। कोचीनके महाराजाकी ओरसे उनको १९४४ में 'साहित्य निपुण विरुद' तथा स्वर्ण-पदक प्राप्त हुए हैं। आप पी० ई० एन० के ऑनरेरी सदस्य होनेके अतिरिक्त केरल साहित्य अकादमी और संगीत-नाट्य अकादमीकी विविध समितियोंके भी सदस्य हैं।

कवि कुरुपकी साहित्य-सेवा :

श्री शंकर कुरुपने विद्यार्थी-जीवनमें ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया था। प्रारम्भमें प्रकृति और देश-प्रेमकी ओर उनकी नज़र गयी। इसी बीच उमर ख़ैयामकी अलंकार-कल्पना और बिम्ब-विधानने उनको आकृष्ट किया किन्तु यह प्रभाव अस्थायी था। बादको महाकवि रवीन्द्रनाथकी कविताओंका स्थायी असर उनपर पड़ा। कविताकी विशेषताओंके कारण वे मलयालम् साहित्यमें प्रतीकवादी माने गये किन्तु उनके प्रतीक भारतीय हैं, यूरोपीय प्रतीकवादियोंसे उनका कोई नाता नहीं। चराचर जगत्‌को किसी अज्ञात विराट हृदयकी महान् अभिव्यक्तिके रूपमें देखनेकी प्रवृत्तिके कारण कुछ लोग उन्हें रहस्यवादी मानते हैं किन्तु उनकी कविता सन्त कवियोंकी रहस्यवादी कवितासे सर्वथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न है। १९३१ में ही शंकर कुरुपने 'नाले'-जैसी प्रगतिशील विचारधाराकी कविताएँ लिखी थीं मगर जीवनमें वे गान्धीवादी हैं। उनकी प्रगतिशील कविताओंमें मार्क्सको उतना स्थान नहीं जितना कि मानवतावादको है। १९२३ में उनकी कविताओंका प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ। प्रमुख रचनाएँ ये हैं—काव्य : साहित्य कौतुक (चार भाग), सूर्य-कान्ति, नवातिथि, पूजा पुष्प, निमिष चेंक-तिरुवल्, मुन्तुकल्, वन गायन्, इतकुकल, पलिकण्टेपाट्टु, अन्तिच्छाँह, वैछिल्पखकल्, ओट-क्कुषल, विश्वदर्शन, जीवन-संगीत, मून्तरुवियं, औरुपुषयुं, इलं चुण्टुकल् आदि। अनुवाद : विलास लहरी, मेघछाया, मध्यमाव्यायोग, गीतांजलि, एकोत्तरशती, इरुट्टिनुमुन्यु। नाटक : सन्ध्या। गद्य : गद्योपहार, लेखमाला। निबन्ध-संग्रह : मुन्तुं चिफियुं।

भारतीय ज्ञानपीठकी दिशाएँ :

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गवेषणा तथा श्रीवृद्धिका व्रत लेकर १४ फ़रवरी १९४४ में जब साहू श्री शान्तिप्रसाद जैनने इस संस्थाकी स्थापना की थी तब भी उनके समक्ष संकल्प-रूपमें जो था वह यही कि ज्ञानपीठ ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य-का निर्माण करेगी। राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला, लोकोदय ग्रन्थमाला, 'ज्ञानोदय', 'ज्ञानपीठ पत्रिका', भारतीय ज्ञानपीठके विकास-चरण हैं। सांस्कृतिक क्षेत्रमें भारतकी भावनात्मक एकताको सुदृढ़ करनेमें भी भारतीय ज्ञानपीठ निरन्तर जागरूक रहा है।

ज्ञानपीठ पुरस्कारका स्वरूप :

पुरस्कारके प्रसंगमें यह स्पष्ट कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि यों तो अलग-अलग भारतीय भाषाकी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए अलग-अलग प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार थे ही, किन्तु ऐसा कोई पुरस्कार नहीं था

ज्ञानपीठ-पुरस्कार-द्वारा भारतीय प्रतिमानोंकी प्रतिष्ठा

एरणाकुलम्। मलयालम पत्र 'तिलकम्'-द्वारा आयोजित कुरुप-अभिनन्दन-समारोहमें अज्ञेय-जीने कहा : 'ज्ञानपीठ-पुरस्कारका महत्त्व इस बातमें है कि वह केवल कृति साहित्यपर दिया जायेगा, शोध अथवा ज्ञानके साहित्यपर नहीं। दूसरे वह इसलिए भी महत्त्वका है कि वह सभी भारतीय भाषाओंको एक समान साहित्यिक मानदण्डसे मापनेका प्रयत्न करता है, अलग-अलग भाषाओंको अलग-अलग प्रकारकी रियायतें नहीं देता। ज्ञानपीठ मुख्यतया हिन्दीकी और हिन्दी-क्षेत्रकी संस्था है इसलिए उसके-द्वारा दिया गया यह पुरस्कार उस दायित्वके निर्वाहमें पूर्णतया योग देता है जो इतिहासने हिन्दीको सौंपा है। मध्य देशकी भाषा हिन्दी भारतीय संस्कृतिकी सभी धाराओंकी वाहिका रही है और सभी अंचलोंकी प्रवृत्तियाँ हिन्दीमें-से छनकर दूसरे अंचलोंमें पहुँचती रही हैं। सभी भारतीय भाषाओंको एक ही मंचपर लाने और इस प्रकार भारतीय प्रतिमानोंकी प्रतिष्ठा करने-का काम हिन्दीके द्वारा सम्पन्न हो, यह सर्वथा उचित है। अन्य भाषाओंकी उन्नतिमें हिन्दीका यह योग हिन्दीको भी सम्पन्नतर बनायेगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जि०' : एक नदी....

"जि० शंकर कुरुप विकास और प्रगतिके कवि हैं। वे तालाबकी तरह कभी एक जगह नहीं ठहरे, बल्कि नदीकी तरह नये-नये मैदानोंमें बहते रहे। ऐसी नदीकी तरह जो हर मैदानमें अपनी चौड़ाई तथा गहराई बढ़ाती चलती है। कुछ लोग तो उन्हें 'कवियोंका कवि' भी कहते हैं। असलमें उन्हें 'मनुष्यका कवि' कहना उचित होगा, लेकिन वे पूर्व पाषाण-कालके मनुष्य नहीं वरन् बीसवीं सदीके मनुष्यके कवि हैं, जिसने अपनी कहानी सभी क्षेत्रोंमें फिरसे लिखी है और जो अन्तरिक्ष-युगमें पदार्पण कर चुका है।"

—वेन्नी वासु पिल्लई

जो देशकी सारी भाषाओंकी कृतियोंमें-से चुनी हुई किसी एक श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतिके लिए हो। ऐसे पुरस्कारकी स्थापनाको एक राष्ट्रीय आवश्यकताके रूपमें भी अनुभव कर ज्ञानपीठके संस्थापकोंने यह योजना प्रवर्तित की। साथ ही इसमें यह भी ध्यानमें रखा गया कि पुरस्कारकी राशि राष्ट्रीय गौरव तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डोंके अनुरूप भी हो। पुरस्कारकी प्रक्रिया यह है कि प्रतिवर्ष देश-भरके अधिकारी विद्वानों, समीक्षकों और प्रबुद्ध पाठकोंके पास प्रस्ताव-पत्र भेजकर श्रेष्ठ पुस्तकोंके विषयमें प्रस्ताव आमन्त्रित किये जाते हैं, तदुपरान्त प्रत्येक भाषाके लिए गठित परामर्श-समितिके समक्ष ये प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। ये ही समितियाँ प्राप्त प्रस्तावोंका आकलन, निरीक्षण एवं मूल्यांकन करके तथा स्वतन्त्र रूपसे विचार करके सर्वोत्तम तथा सर्वोपरि केवल एक पुस्तकका समर्थन सर्वसम्मति अथवा सदस्योंके दो-तिहाई बहुमतसे करती हैं और सुविचारित मूल्यांकनके उपरान्त एक-एक भाषा-वर्गसे एक-एक कृति चुन लेती है। इस प्रकार जो पाँच या छह पुस्तकें छनकर ऊपर आती हैं उनका पारस्परिक मूल्यांकन समीक्षकों-द्वारा होता है। इसके उपरान्त प्रवर-परिषद् विभिन्न परामर्श-समितियोंसे प्राप्त प्रस्तावोंका निरीक्षण तथा मूल्यांकन करती है और आवश्यक होनेपर उनके प्रतिनिधियोंका साक्ष्य लेकर प्रस्तुत व्याख्याओंपर विचार करती है।

प्रथम पुरस्कारकी अन्तिम बैठक :

प्रथम पुरस्कारके सम्बन्धमें हुई परिषद्-की अन्तिम बैठकमें जिन प्रतिनिधियों तथा अनुवादकोंके साक्ष्य लिये गये उनके नाम हैं—डॉ० सुकुमार सेन, (बँगला परामर्श-समितिके संयोजक), श्री हंसकुमार तिवारी (काजी नजरुल इस्लामकी बंगला काव्यकृति 'अग्नि-वीणा'के अनुवादक), प्रिंसिपल सीतारमैया (कन्नड़ परामर्श-समितिके संयोजकके प्रतिनिधि) डॉ० सरोजिनी महिषी (डी० वी० गुण्डप्पाकी कन्नड़ काव्यकृति 'मंकु तिम्मन कग्ग' की हिन्दी अनुवादिका) श्री एन० वी० कृष्णवारियर (मलयालम् परामर्श-समितिके संयोजक), कुमारी जॉन (जि० शंकर कुरुप-की मलयाली काव्यकृति 'ओटक्कुष़ल'की सह-अनुवादिका) तथा प्रो० के० लक्ष्मीरंजनम् (तेलुगु परामर्श-समितिके संयोजक)। इस

[शेष पृष्ठ १९६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ अञ्जलि :
● लालबहादुर शास्त्री : लक्ष्मीचन्द्र जैन २
■ ज्ञानपीठ-समाचार :
● कवि शंकर कुरुपकी 'बाँसुरी' सम्मानित ७

फ़रवरी
१९६६
अंक : ८
वर्ष : १७

■ कथा-मंच :
● सातवाँ दशक : ठीक-ठीक मूल्यांकन : रमेश बक्षी
■ कहानियाँ :
● बड़ा कौन : वृन्दावनलाल वर्मा १७
● जंक्शन : गजानन माधव मुक्तिबोध २०
● एक ठहरा हुआ चाक़ू : मोहन राकेश २९
● मुक्ति : शैलेश मटियानी ३३
● उद्घाटन गोष्ठी : शरद् जोशी ४५
● दिलचस्पी : ज्ञानरंजन ५१
● बेतरतीब कहानी : ममता कालिया ६१
● कलसे पहले : गंगाप्रसाद विमल ६५
● चरित्रहीन : सुधा अरोड़ा ७१
■ कथा-समारोह
● पहली गोष्ठी : सवाल जीवनदृष्टिका है··· : अध्यक्ष : जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, कमलेश्वर। वक्ता : सीताराम सेकसरिया, जगमोहनदास मूँधड़ा, लक्ष्मीचन्द्र जैन ८३
● दूसरी गोष्ठी : समकालीन बोधमें-से जन्मी जीवनदृष्टि··· ? : अध्यक्ष : अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिशंकर परसाई। वक्ता : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, गंगाप्रसाद विमल, श्रीकान्त वर्मा ९२
● तीसरी गोष्ठी : उपलब्धियाँ, उभरती दिशाएँ और आधुनिकताके सन्दर्भ··· : अध्यक्ष : डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा, डॉ० देवीशंकर अवस्थी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह। वक्ता : धनंजय वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह १०१
● चौथी गोष्ठी : समकालीन बोध और दायित्व : कथा-चिन्तनकी मज़बूत ज़मीन··· : अध्यक्ष : मोहन राकेश, भीष्म साहनी, विमल मित्र। वक्ता : शरद जोशी, रमेश बक्षी, राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर, श्रीकान्त वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, दूधनाथ सिंह, जैनेन्द्रकुमार १२२

मुखपृष्ठ :
सन्तुदास गुप्त

प्रथम पृष्ठ :
स्व० लालबहादुर शास्त्रीकी
हस्तलिपि—'दिनमान'
के सौजन्यसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- पाँचवीं गोष्ठी : कथा-शिल्प : प्रयोगकी प्रक्रियाका प्रयोग···· : अध्यक्ष : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव, श्रीकान्त वर्मा । वक्ता : शैलेश मटियानी, भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन चोपड़ा, ममता कालिया, शरद जोशी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, धनंजय वर्मा, रमेश बक्षी, हरिशंकर परसाई, गंगाप्रसाद विमल १५५
- छठी गोष्ठी : कथाकार और पाठक : जिज्ञासाएँ एवं अपेक्षाएँ—छोटे-छोटे कटघरे···· : अध्यक्ष : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिशंकर परसाई, श्रीमती मन्नू भण्डारी । सप्रश्न वक्ता : डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, कुन्था जैन, कृष्णाचार्य, किरण जैन, चन्द्रदेव सिंह आदि । उत्तर : कमलेश्वर, रमेश बक्षी, शैलेश मटियानी, रवीन्द्र कालिया, शिवप्रसाद सिंह, श्रीकान्त वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, शरद जोशी, ममता कालिया, जैनेन्द्रकुमार १६७
- सातवीं गोष्ठी : समापन : जीवन्त मंचकी प्रतिष्ठा···· : अध्यक्ष : भँवरमल सिंघी, कल्याणमल लोढ़ा, लक्ष्मीचन्द्र जैन । वक्ता : वृन्दावनलाल वर्मा, विष्णुकान्त शास्त्री, अक्षयचन्द्र शर्मा, रमेश बक्षी, चन्द्रदेव सिंह, भीमसेन त्यागी, परमानन्द चूड़ीवाल, सीताराम सेकसरिया १७२
- स्मृति : डॉ० देवीशंकर अवस्थी १८१
- कथा-समारोह : कुछ और बिन्दु : १८३
- नारी : खण्डित होती कथा-मूर्ति : (प्रस्तुति: कुन्था जैन) १८५
- कथा-समारोह : इम्प्रेशन्स परसाईके १८७
- अनुक्रमणिका : (प्रस्तोता : रंगनाथ राकेश) १९१

■ छाया-चित्र :

कथा-समारोह ८२, जैनेन्द्रकुमार ८५, भगवतीचरण वर्मा ८५, वृन्दावनलाल वर्मा ८८, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ८८, विमल मित्र ९४, अमृतलाल नागर ९४, श्रीकान्त वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह १०२, मोहन राकेश १०७, राजेन्द्र यादव १०७, गंगाप्रसाद विमल, धनंजय वर्मा ११३, लक्ष्मीनारायण लाल, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र अवस्थी ११७, कमलेश्वर १२३, श्रीकान्त वर्मा १२३, भीष्म साहनी १२६, शरद जोशी १२९, रमेश बक्षी १३४, दूधनाथ सिंह १३४, रवीन्द्र कालिया १४१, ममता कालिया १४१, कथा-समारोह-के विशेष श्रोता १६७, सीताराम सेकसरिया, जगमोहनदास सूँधड़ा, परमानन्द चूड़ीवाल, भँवरमल सिंघी १७३, धनंजय वर्मा, हरिशंकर परसाई, भीष्म साहनी, लक्ष्मीनारायण लाल, कमलेश्वर १८७

ज्ञानोदयका यह 'कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट' नयी पीढ़ीके सुलझे हुए समीक्षक स्वर्गीय डॉ० देवीशंकर अवस्थीकी ताज़ी स्मृति और समर्थ आवाज़से भीगा हुआ है (पृष्ठ १८१)। भारतीय ज्ञानपीठ और हिन्दीके सारे कथा-कारोंकी ओरसे उन्हें श्रद्धांजलि इस मंचके रूपमें ।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-मंच

सातवाँ दशक : ठीक-ठीक मूल्यांकन

■

....इस सन्दर्भमें किसीका नाम लेनेकी ज़रूरत नहीं रह गयी है।....

यह स्पष्ट है कि व्यक्तिके मर जानेसे कहानी नहीं मरती है। यह प्रश्न शाश्वत साहित्यका नहीं है, बदलते हुए समयकी धुरीपर उसके साथ-साथ किसी दर्शनके टिक पाने और चलते हुए चक्रपर-से असामर्थ्यके कारण हठात् उसके फिंक जानेका है। यदि कहानी अपने अक्षांश-देशान्तरपर गुज़र रहे मौसमको नकारती है और छतपर घूमते पंखेकी स्पीडके अनुसार चलती है या कमरेमें जीवित रह पानेकी सम्भावनाओंके बजाय कमरेकी नाप-जोख देनेमें लगी रहती है या अनायासतासे भागकर किसी-न-किसी कोटिकी आत्यन्तिकतामें सिर ढँक लेती है—तब वह अपने पिताके जीवित रहते भी मर जाती है। फिर कहानी लिखी नहीं जाती, ढोयी जाती है। यहीं दो तरहकी बातें अलग हो जाती हैं: जीवित रहने और जीवित बने रहनेका संघर्ष तथा कहानीको ढोते हुए स्वयंको जीवित सिद्ध करनेका आग्रह। आजका सही कथाकार इस बातसे चिन्तित नहीं है कि वह क्लासिक साहित्यकारोंकी तरह अजर-अमर कैसे हो जाये, इस प्रश्नमें एक ख़ास क़िस्मकी मानसिकतावाले लोग उलझ सकते हैं। इसमें उलझनेसे कुछ फ़ार्मूले ही हाथ लगते हैं; जिनके आधारपर कथाका छठा तत्त्व 'उद्देश्य' बना है। व्यक्तिके मर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर भी जो कहानी ज़िन्दा रहती है वह जीवनदृष्टिसे अधिक जीवदर्शनके कारण ज़िन्दा रहती है जिसके बलपर व्यक्ति अपने अस्तित्वके संकट झेलता है। अस्तित्व-संकट झेलनेके लिए जो जीवनदर्शन उभरता है वह कई स्वीकृतियों-अस्वीकृतियों, रुचियों-अरुचियोंकी पकड़-छोड़से शक्ल पाता है। वह दिन-भरकी मज़दूरीके बाद मिले वेतनकी तरह महत्त्वपूर्ण होता है। आया हुआ अस्तित्व-संकट किसी भी रूपका हो सकता है, यह व्यक्तिपर निर्भर करता है कि वह उसे कैसे झेलता है? यह संकट हमेशा हर व्यक्तिके सामने आता है, हज़ार साल पहले भी आता था और आज भी आता है। लेकिन इस संकटसे खटने, इससे बच निकलने, इससे भिड़ जाने, इसे बनाये रखने और इसका गला घोंट देनेके साम-दाम-दण्ड-भेद ये ही तरीक़े नहीं हैं, हज़ार और तरीक़े हैं। जो व्यक्ति जैसा तरीक़ा अपनायेगा वह उसी रूपमें एक्सपोज़ होगा। हाँ, उतरी हुई तसवीरको ओवर-डेवलप करवाया जा सकता है या रिटॅच भी हो सकती है वह····, लेकिन यह प्रक्रिया उसे दुबारा एक्सपोज़ करेगी—यानी तसवीर बिगड़ ही नहीं सकती, हाथसे चली भी जा सकती है। एक अति प्रचलित सामाजिकता यह है कि आदमी कैरियरिस्ट बनता चला जाये, इसके बहुत आसान और लाभप्रद तरीक़े होते हैं। इसमें सीढ़ियोंसे चढ़ना नहीं होता, चाहे जितनी ऊँचाई तक लिफ़्टसे पहुँचा जा सकता है। इस व्यावसायिक व्यवस्था-पद्धतिको साहित्यमें भी अपनाकर लाभ उठाया जा सकता है, इससे आदमीका हाथ पारस हो जाता है, जिसे छू दे वही कंचन हो जाये—लेकिन अपने व्यक्तित्वको अनिवार्य रूपसे इसमें खो देना पड़ता है, एक 'सफलता'के पीछे। यह इस तरह निर्मित जीवन-दर्शन ढालकी तरह होता है। पीठ इतनी सख़्त हो जाती है इससे कि आप अपने हाथ-पैर-मुँहको सिकोड़कर उस ढालके अन्दर ही आरामसे गहरी नींद सो सकते हैं। यहाँतक होता है कि आदमी मर जाता है, पीठ ज़िन्दा रह जाती है। लेकिन जिसे पीठसे अधिक अपनी छाती प्रिय है उसके लिए यही जीवनदर्शन शस्त्र हो जाता है। नगर, नौकरी, सिद्धान्त, स्वार्थ, प्रेम, पैसा···हर युद्धको वह अपने ईमानदार शस्त्रसे निबटाता चलता है। जब ढाल टूटती है तो आदमी निढाल होकर भिद जाता है और जब शस्त्र टूटता है तो आदमी सारी शक्ति-सहित भिड़ जाता है, फिर भले ही उसे रथके टूटे हुए पहियेसे ही क्यों न लड़ना पड़े····या लड़ते-लड़ते दम ही क्यों न तोड़ देना पड़े। संघर्षमें आकण्ठ डूबा यही व्यक्ति अगर कथाकार है तो उसका संकट बोलेगा, वह क़लमपर चढ़ आयेगा····।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अगर प्रतिबद्ध है तो तूफ़ानवाले रास्तेपर खड़ा रहनेके लिए और प्रतिश्रुत है तो अपने अस्तित्व-संकटके प्रति।....यूँ भी लिखनेकी विधियाँ, जीनेकी विधियोंमें-से ही निकलती हैं, सोचनेकी विधियोंमें-से नहीं।....इस सृजेताकी शक्लपर समकालीन क्षणोंकी बिन्दु-बिन्दु शिकन बनी है और उसे अलग देखा जा सकता है। यहाँ वस्त्रोंपर पड़ी सिलवटों और चेहरोंपर उलझती शिकनोंका अन्तर साफ़ हो जाता है।

गुज़रते हुए इन कथाकारोंको एक-एक दशकके अन्तरालमें देखें तो यह लगेगा कि कुछ व्यक्तिगत कारणोंसे समयके साथ नहीं चल पा रहे हैं, कुछ खेमे बनाकर बातें करनेमें लग गये हैं, कुछ अपनी विशेष तरहकी आत्मकेन्द्रित चालके कारण लगातार चलकर भी एक ही जगहको नाप रहे हैं, कुछ रास्तेमें ही जमकर बैठ गये हैं...लेकिन कुछ हैं; जिन्हें केवल चलना है—वे भागे हुए हैं और चल रहे हैं तो चल रहे हैं और कहीं उन्हें पहुँचना है इसलिए चल रहे हैं तो भी चल रहे हैं। हर कालमें नये लोग तारीख़ोंको रौंदते हुए चलते हैं लेकिन इस समय नयी पीढ़ीके साथ एक ग्रहयोग और जुड़ गया है। वह है : हर तरहके संक्रमणका योग—वह नैतिक है, सामाजिक है, राजनैतिक है, पारिवारिक है....। इस संक्रमणके कारण मार दुहरी हो गयी है और अस्तित्वका संकट-बोध सानपर चढ़ गया है। यही नहीं, रास्ता या तो खण्डहरोंके बीचसे बना हुआ है या फिर रूढ़ हो गया है। अनेक लोग गुज़रे तो एक बिन्दु तक पगडण्डी पुख़्ता होती जाती है फिर एक ऐसा बिन्दु आता है जहाँसे वही पुराना रास्ता उखड़ने लगता है....। ईंटोंकी तरह पके हुए कथानक, मोज़ेककी तरह ख़ूबसूरत चरित, शटलकॉककी तरह लपकते हुए वार्तालाप, पेस्ट्रीकी तरह चित्रायित शैली, टीकोज़ीसे ढँका हुआ वातावरण.... देखें तो लगेगा—ऊबसे या एकरसतासे या अनावश्यकतासे इन सबके प्रति विरक्ति जनमी है। जहाँ किंकर्तव्य-विमूढ़ हो सकते थे, वहाँ यह भाव आ गया है कि क्या नहीं कर गुज़रे ?....इसीसे नये रास्ते खोजे जाने लगे....और सारी कहानी अन्वेषणधर्मा हो गयी। एक बार फिर वह अनुष्टुपकी विकलताको छूने लगी।.... अभिव्यक्तिकी इस छटपटाहटने बहुत तोड़-फोड़ की है—अलंकार, अनुप्रास, भाषायी रूमान सब ऐसे टूटे कि शैलीकी बात करना भारी लगने लगा। अबतक खड़ी बोली ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणोंके चमत्कार ही प्राप्त करती रही थी, गद्यकी सही भाषाका आविष्कार यहीं कहीं शुरू हुआ है।....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बिन्दुपर, सातवें दशकके पुलपर, खड़ी हुई हिन्दी कहानीने सारा 'कहानीपन' खो दिया है। उससे मनोरंजन नहीं होता, उससे समय नहीं कटता,···उसे पढ़ना पड़ता है····वह आम पाठकसे दूर होती जा रही है, उसमें न कथावस्तु है, न पात्र-पात्री, न···। वह बे-तरतीब और चरित्रहीन हो गयी है, उसमें दिलचस्पी कोई ले तो कैसे ? वह टूटी हुई, खण्डित, बदशक्ल होती जा रही है लेकिन विकासकी सार्थक प्रक्रियामें-से गुज़रनेके कारण यदि वह टूटी है तो यह उसके टूटनेकी शुरूआत है। और इस शुरूआतपर सापेक्ष मनःस्थितिवाले कुछ कथाकार खड़े हैं···।

यहीं, पीढ़ी और पुराने-नयेकी बहस बेमानी हो जाती है, शास्त्रीय-अशास्त्रीय झगड़े अलग रखे रह जाते हैं और ऐसा लग सकता है कि वाक़ई कथा-चर्चा हो रही है। ऐतिहासिकताका आग्रह भी एक तरहसे एक समूची पीढ़ीको नकारनेकी जगह टाल देना होगा—आग्रह निकषका हो, खुले निकषका, कि किस जीवन-दर्शनके परिप्रेक्ष्यमें किसने-कैसे अस्तित्वके संकटको झेला है और किस विधि-निषेध-को लेकर वह संक्रमणमें-से गुज़र रहा है, किस अनास्था और निराशामें उसकी भाषा जम गयी है और संघर्षके किस हेमरेजसे वह पिघल उठा है, यह भी कि उसकी आधुनिकता समकालीनताको साथ लेकर चलती है या वह समकालीन होनेके कारण आधुनिक भी है····?

कुछ पुराने नाम, कुछ उनके बादके नाम, कुछ और बादके नाम और कुछ ताज़े नाम उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं····।

लेकिन तलाश-निकषकी थी और इस सन्दर्भमें किसीका नाम लेनेकी ज़रूरत नहीं रह गयी है।

—रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा कौन ?

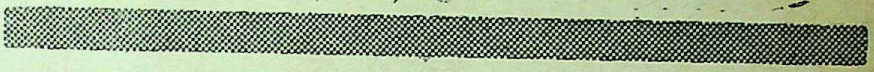

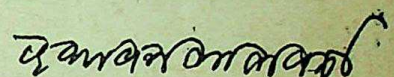

[वृन्दावनलाल वर्मा
पहली रचना : १९०५]

■

मूलस्थान (मुलतान) से काफ़ी दूर एक घने जंगलमें छोटा-सा खुला मैदान भी था। एक वृक्षके नीचे लँगोटी लगाये एक जटाजूटधारी—साधू-सन्त—आँखें मूँदे, आसन लगाये, समकाय, ध्यान-मग्न थे।

थोड़ी दूरीसे घोड़ोंकी टापोंकी ध्वनि आयी, परन्तु उन्होंने आँखें नहीं खोलीं। एक व्यक्ति धीरे-धीरे टहलता उनके पास आकर खड़ा हो गया।

ईसासे लगभग तीन सौ इक्कीस वर्ष पहलेकी बात होगी, आगन्तुक उस समयकी भाषाके टूटे-फूटे शब्दोंमें बोला—"मैं आया हूँ।"

साधूने आँखें खोलीं। आँखोंमें बड़ा तेज! आगन्तुक उनके सफ़ेद जटा-जूटोंसे अनुमान लगा रहा था कि आँखें भी कुछ यों ही-सी होंगी।

साधूने प्रश्न किया—"कौन हो?"

"मैं सिकन्दरका सेनानायक हूँ। उन्होंने आपके पास भेजा है।"

सेनानायक यूनानी युद्ध-वेशभूषामें था, टोप लगाये था।

"क्यों? क्या बात है?" साधू बोले।

यूनानी सेनानायकने कहा—"जानते हो न हमारे सिकन्दर महानको?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने सारे राज्योंको जीत लिया है। आपसे भेंट करना चाहते हैं। आपको बुलाया है। आपका नाम कण्व* है न ?"

"ह ! ह ! ह ! हाँ। नाम मेरा यही है। अपने सिकन्दरसे कहना कि संसार बहुत बड़ा है, और अभी उसने सामना भारतके यौधेयों और मालवोंसे नहीं किया है। हमारे देशके ये गणतन्त्री तुम्हारे सिकन्दरके छक्के छुड़ा देंगे। जाओ यहाँसे। मैं तो यहीं अचल रहता हूँ।"

ग्रीक सेनानायक आश्चर्यमें डूबा-सा वहाँसे चला गया।

■

जाड़ेकी ऋतु आ गयी थी। उसी जंगलके उस खुले मैदानके वृक्षके नीचे वही साधू—कण्व—आँखें मूँदे ध्यान-मग्न थे। सबेरेका समय था। सूर्यकी कोमल रश्मियाँ उनके चेहरेको दमका रही थीं, आसन लगाये समकाय बैठे थे। दूरसे घोड़ोंकी टापोंका स्वर सुनाई पड़ा, परन्तु उन्होंने आँखें नहीं खोलीं। फिर कुछ दूरीपर टापोंका स्वर बन्द हो गया और दो व्यक्ति साधूके पास आकर खड़े हो गये। एक उनके सामने और दूसरा बग़लमें। सामनेवाला था तो ग्रीक योधाके वेशमें, परन्तु वस्त्र ज़रतारीके थे, रवि-रश्मियोंमें चमक रहे थे।

बग़लवालेने कहा—"कण्वजी, हमारे राजाधिराज, प्रधान सेनापति सिकन्दर महान पधारे हैं। बात करिए।"

जो व्यक्ति सामने खड़ा था, वह सिकन्दर था, बाद का 'अलेक्ज़ेण्डर दि ग्रेट'।

कण्वने आँखें खोलीं, सिकन्दरकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि की।

सिकन्दरने प्रसन्नता प्रकट की—"मैं कोरा योधा ही नहीं हूँ, सब तरहके लोगोंके सम्पर्कमें आता रहा हूँ। तुमसे ख़ुश हूँ, इसीलिए खुद चला आया। माँगो, क्या चाहते हो ? जो माँगोगे दूँगा, मेरे पास सब कुछ है।"

कण्व मुसकराये और बोले—"तुमसे मुझे केवल इतना ही चाहिए कि तुम मेरी धूप छोड़कर हट जाओ।"

सिकन्दर हट गया तो कण्वने आँखें मूँद लीं। सिकन्दर का साथी सेनानायक कुछ क्षुब्ध हुआ, परन्तु सिकन्दरने संकेतसे उसे वर्जित कर दिया। वे दोनों, और सब, अचरजमें डूबते-उतराते चले गये। सिकन्दर सोच रहा था कि यह भारत अजीब देश है—यह एक ऐसा है जिसे दुनियासे कोई वास्ता नहीं, फिर भी अपने देशके बारेमें हमारे सेनानायकसे कहता था—"हमारे यौधेयों और मालवोंका सामना तो करके देखो !"

■

यौधेयोंके जो सिक्के प्राप्त हुए हैं उनपर ये शब्द अंकित हैं—'जयमन्त्रधारी यौधेयाः' —यौधेय अजेय हैं। और मालवोंके जो सिक्के मिले हैं उनपर अंकित है—'मालवानामजयः'। सिकन्दर इनसे टक्कर नहीं ले सका और मुलतान होकर लौट पड़ा। मुलतानकी लड़ाईमें घायल हो गया था। यूनानको भूमि-मार्गसे जानेका संकल्प उसने त्याग दिया, दस हज़ार

* ग्रीक-इतिहासमें नाम Kannes लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नावें तैयार करवायीं और सिन्ध नदी होकर बाबुल (बेबीलोन) जानेकी योजना बनायी। नावोंसे यात्रा करते-करते सिन्धके शिवियोंसे मुठभेड़ हो गयी। यूनानी इतिहासकारोंने लिखा है कि शिबि (ये भी गणतन्त्रवाले थे) सिकन्दरसे हार गये। परन्तु जो कुछ हुआ उससे निष्कर्ष यह निकलता है कि शिवि जीते थे।

सिकन्दरने शिवियोंके मुखियोंका स्वागत-समारोह किया था, उन्हें बढ़िया कुरसियोंपर बिठलाया और हार पहनाये थे। सिकन्दरने वहीं यह विनय की—"आप लोग जो कुछ चाहें मैं अवश्य भेंट करूँगा।"

मुखियोंने सिकन्दरसे कहा—"आपने दस ब्राह्मण क़ैद कर रखे हैं, इन्हें छोड़ दीजिए, हमें और कुछ नहीं चाहिए।"

इन दस क़ैदियोंमें एक विष्णुगुप्त चाणक्य भी थे। इन्होंने और चन्द्रगुप्तने पेशावर (पहलेका पुष्पपुर) के निकट सिकन्दरका सामना करनेके लिए वहाँकी जनताको संगठित किया था, जब सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया। सिकन्दरकी सेना बहुत बड़ी थी और स्वतन्त्रता-संग्रामके ये योद्धा अल्पसंख्यक, सिकन्दरके बढ़ावको न रोक सके। सिकन्दरने इनके नेताओंको पकड़कर क़ैद कर लिया—केवल चन्द्रगुप्त क़ैदसे निकल भागा। बाक़ी जो क़ैदमें पड़ गये वे ये दस ब्राह्मण थे जिनमें एक विष्णुगुप्त चाणक्य। सिकन्दरने शिवियोंके मुखियोंकी माँग स्वीकार कर ली, परन्तु एक शर्त लगा दी—'मेरे दस प्रश्नोंका उत्तर दे दें ये लोग तो इन्हें अवश्य छोड़ दूँगा।"

सिकन्दरने प्रश्न किये, क़ैदियोंके अग्रणीने—सम्भवतः चाणक्यने—उत्तर दिया। उन दस प्रश्नोंमें तीन बहुत महत्त्वके हैं। पहला था—"मरे हुओंकी संख्या अधिक या जीवितोंकी ?"

उत्तर—"जीवितोंकी, क्योंकि संसारके मरोंकी गिनती हो ही नहीं सकती।"

दूसरा—"जीवन बड़ा या मृत्यु ?"

उत्तर—"जब गौरवके साथ मनुष्य रह सके तबतक जीवन बड़ा, गौरवके साथ न रह सके तब मौत अच्छी।"

अन्तिम प्रश्न—"तुम लोगोंने हमारे ख़िलाफ़ विद्रोहका संगठन क्यों किया ?"

उत्तर—"क्योंकि हम अपने देशकी भूमिपर परदेशी आक्रमणकारीका पैर नहीं देख सकते।"

सिकन्दरने उन दसोंको छोड़ दिया। उस समय जो कुछ कहा गया था, उसका विवरण प्लुटार्ककी विख्यात पुस्तक 'लाइव्स ऑव रोमन्स एण्ड ग्रीक्स' में है, जो ७८वीं ईसवीमें—आजसे लगभग १९०० वर्ष पहले लिखी गयी थी। जो कुछ तब कहा गया था वह आजके युगके लिए भी लागू है—जबतक गौरवके साथ रहें तबतक जीवन बड़ा अन्यथा मौत बड़ी, और, हम अपने देशकी भूमिपर परदेशी आक्रमणकारीका पैर नहीं देख सकते।

ऐसी स्थितिमें हथियारका उठाना, चलाना और शत्रुका विध्वंस करना अनिवार्य है, अपरिहार्य है, हमारा कर्त्तव्य और धर्म है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जं
क्श
न

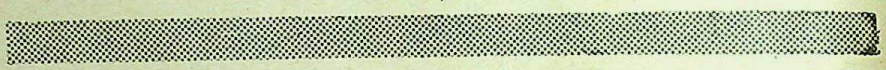

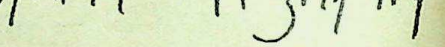

[गजानन माधव मुक्तिबोध
पहली रचना : १९४०]

रेलवे स्टेशन, लम्बा और सूना ! कड़ाकेकी सर्दी ! मैं ओवरकोट पहने हुए इत-मीनानसे सिगरेट पीता हुआ घूम रहा हूँ।

मुझे इस स्टेशनपर अभी पाँच घण्टे रुकना है ! गाड़ी रातके साढ़े बारह बजे आयेगी।

रुकना, रुकना, रुकना ! रुकते-रुकते चलना ! अजीब मनहूसियत है !

प्लेटफ़ॉर्मके पाससे गुज़रनेवाली लोहेकी पटरियाँ सूनी हैं। शण्टिंग भी नहीं है। पटरियोंके उसपार, थोड़ी ही दूरीपर रेलवेका अहाता है, अहातेके उस पार सड़क है। शामके छह बजे ही सड़कपर और उससे लगे हुए मकानोंमें बिजलियाँ झिलमिलाने लगी हैं !

उदास और मटमैली शाम। एक बार टी-स्टॉलपर जाकर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ। शहरमें जाकर भोजन कर आऊँ ? लेकिन, यहाँ सामान कौन देखेगा ? आस-पास बैठे हुए मुसाफ़िर फटी चादरों और धोतियोंको ओढ़े हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे हैं। इनके भरोसे सामान कैसे लगाया जाये ! कोई भी उसमें-से कुछ उठाकर चम्पत हो सकता है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
078058

टी-स्टॉलकी तरफ़ नज़र डालता हूँ। इक्के-दुक्के मुसाफ़िर घुटने छातीसे चिपकाये बैठे हुए दिखाई दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहनकर चलनेवाला सिर्फ़ मैं हूँ, मैं।

अगर कोई भी मुझे उस वक़्त देखता तो पाता कि मैं कितने इतमीनान और आत्म-विश्वासके साथ क़दम बढ़ा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस नहीं हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनाँदगाँवसे जबलपुर जाते समय एक मित्रने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसमें सन्देह नहीं कि समाजमें अगर अच्छे आदमी न रहें, तो वह एक क्षण न चले।

सिगरेट पीते हुए मैं मुसाफ़िरखानेकी तरफ़ देखता हूँ। वहाँ आदमी नहीं, आदमी-नुमा गन्दा सामान इधर-उधर बिखेर दिया गया है। उनकी तुलनामें सचमुच मैं कितना शानदार हूँ।

अनजाने ही अकड़कर चलने लगता हूँ, और किसीको ताव बतानेकी, किसीपर रोब झाड़नेकी तबियत होती है। इन सब टूटे हुए अक्षर (प्रेस टाइप)-जैसे लोगोंके बीच गुज़र कर अपनेको काफ़ी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ, इस समय मेरे पास पैसे भी हैं। अगर कोई भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता। लेकिन, भिखारी बेवकूफ़ थोड़े ही था, जो वहाँ आये; वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रंक खोलकर सामान निकालकर कुछ ज़रूरी चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नेताको इसी प्रकार समयका सदुपयोग करते देखा था। अभी उजाला काफ़ी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगड़ी जा सकती थीं। ट्रंकके पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लेकिन, क़लम उठानेके बजाय, मैंने पीतलका एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोलकर, मैंने उसमें से एक 'गाकर लड्डू' निकाला और मुँह में भर लिया। बहुत स्वादिष्ट था वह। उसमें गुड़ और डालडा घी मिला हुआ था···कि इसी बीच मुझे घरके बच्चोंकी याद आयी। और मैंने दूसरा लड्डू मुँहमें डालनेकी प्रवृत्ति पर पाबन्दी लगा दी।

तभी मुझे गान्धीजीकी याद आयी। क्या सिखाया उन्होंने ? परदुःख-कातरता। इन्द्रिय-संयम। यह मैं क्या कर रहा हूँ ! यद्यपि लड्डू मेरे लिए ही दिये गये हैं, और मैं पूर्णतया उन्हें खानेका नैतिक अधिकार भी रखता हूँ, लेकिन क्या यह सच नहीं कि बच्चोंको सिर्फ़ आधा-आधा ही दिया गया है ! फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीनेके लिए निकलता हूँ। मुसाफ़िर वैसे-ही ठिठुरे-ठिठुरे, सिमटे-सिमटे बैठे हैं। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपड़े भी नहीं हैं। उनमें-से कुछ बीड़ी पी रहे हैं। किसीके पास गरमकोट नहीं है, सिवाय मेरे। मैं अकड़ता हुआ स्टॉलपर, पानीकी तलाशमें, जाता हूँ।

मैं पूर्ण आत्मसन्तोषका आनन्द-लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रमके बाद कौन-सा महान कार्य करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरसे देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कमसे कम चार घण्टे यहीं पड़े रहना है। एक पोर्टरसे बात करते हुए कुछ समय और गुज़ार देता हूँ।

और फिर होल्डाल निकालकर बिस्तर बिछा देता हूँ। सुन्दर गुलाबी अलवान और खुशनुमाँ कम्बल निकल पड़ता है। मैं अपने को वाक़ई भला आदमी समझने लगता हूँ, यद्यपि यह सच है कि दोनों चीज़ोंमें-से एक भी मेरी अपनी नहीं है।

ओवरकोट-समेत मैं बिस्तरपर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तरके नीचे सिर के पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हई है। कोई उसे मार ले तो! तब पता चलेगा!

गुलाबी अलवान ओढ़कर पड़ रहता हूँ। अभी स्टेशनपर कपड़ोंके मामलेमें मुझे चुनौती देनेवाला कोई नहीं आया। (शायद यह इलाक़ा बहुत ग़रीब है!) कहीं भी, एक भी खुशहाल सुन्दर, परिपुष्ट आकृति नहीं दिखाई दी।

कैसा मनहूस प्लेटफ़ॉर्म है!

मेरे बिस्तरके पास एक सीमेण्टकी बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई हैं। सोचता हूँ, उसपर अपना ट्रंक क्यों न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी डल सकती हैं। ट्रंक उनसे उम्दा चीज है, उसे साफ़-सुथरी बेंचपर होना चाहिए।

लेकिन, उठनेकी हिम्मत नहीं होती। कड़ाकेका जाड़ा है। अलवानके बाहर मुँह निकालनेकी तबियत नहीं हो रही है। लेकिन, नींद भी तो आँखोंसे दूर है।

विचित्र समस्या है। खुद ही अकेलेमें, अपनेको अकेले ही शानदार समझते रहने—इसमें क्या धरा है! शानका सम्बन्ध अपनेसे ज़्यादा दूसरोंसे है। यह अब मालूम हुआ! लेकिन, किस मुश्किलमें।

इसी बीच, एकाएक, न मालूम कहाँसे, चार फ़ुटका एक गोरा-चिट्टा लड़का सामने आ जाता है। वह टेरीलीनका कुरता पहने हुए है। खाकी चड्डी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरेपर भवोंकी धुँधली लकीर दिखाई देती है। या उनका भी रंग गोरा है।

वह सामने खड़े-ही-खड़े एक चमड़ेके छोटे-से बैगकी ओर इशारा करते हुए कहता है, "साब, ज़रा ध्यान रखियेगा। मैं अभी आया!"

एकाएक इस तरह किसीका आकर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा। उसकी आवाज़ कमज़ोर है। लेकिन, उस आवाज़में भले घरकी झलक है। उसके साफ़-सुथरे कपड़ोंसे भी यही बात झलकी है।

मैं 'हाँ' कह ही रहा था कि उसके पहले लड़का चला गया। मैं उसके बारेमें सोचता रहा, न जाने क्या!

आधे घण्टे बाद वह फिर आया। और चुपचाप चमड़ेके बैगके पास जाकर बैठ गया। सर्दीके मारे, उसने अपनी हथेलियाँ खाकी चड्डीकी जेबमें डाल रखी थीं। मैंने गुलाबी अलवानके नीचेसे मुँह उठाकर उसे देखा।

भले ही वह टेरीलीनका बुश्शर्ट पहने हो, वह खूब ठिठुर रहा था। बुश्शर्टके नीचे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अण्डरवीयर था। बस। उसके पास ओढ़ने-बिछानेके भी कपड़े नहीं थे।

कुछ कुतूहल और कुछ चिन्तासे मैंने पूछा, "तुम ओढ़नेके कपड़े लेकर क्यों नहीं आये! कितना जाड़ा है! ऐसे कैसे आये!"

उसने जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था कि यहाँसे क़रीब पचास मील दूर शहर बालाघाटमें एक बारात उतरी थी। उसमें वह, उसके घरवाले और दूसरे रिश्तेदार भी थे। एक रिश्तेदार वहाँसे आज ही नागपुर चल दिया, लेकिन अपना चमड़ेका बैग भूल गया। चूँकि वहाँवालोंको मालूम था कि गाड़ी नागपुरवाली उस स्टेशनसे बहुत देरसे छूटती है, इसीलिए, उन्होंने इस लड़केके साथ यह बैग भेज दिया।

लेकिन, अब यह लड़का कह रहा है कि, रिश्तेदार कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वह दो बार प्लेटफ़ॉर्मका चक्कर काट आया। शायद वे सम्बन्धी महोदय बससे नागपुर रवाना हो गये। और, अब चमड़ेका बैग सम्भाले हुए यह लड़का सर्दीमें ठिठुरता हुआ यहाँ बैठा है। वह भी मेरी साढ़े बारह बजेवाली गाड़ीसे बालाघाट पहुँच जायेगा। यह गाड़ी वहाँ रात के डेढ़ बजे पहुँचती है।

कड़ाकेका जाड़ा और रातके डेढ़। मैंने कल्पनाकी कि इसकी माँ फूहड़ है, या वह उसकी सौतेली माँ है। आख़िर, उसने क्या सोचकर अपने लड़केको इस भयानक सर्दीमें, बिना खास इन्तज़ामके एक ज़िम्मेदारी देकर, रवाना कर दिया!

मैं बिस्तरसे उठ पड़ा। ट्रंक खोली। उसमें-से डबलरोटीके दो टुकड़े निकाले। फिर सोचा, एक लड्डू भी निकाल लूँ। किन्तु, यह विचार आया कि लड़का टेरीलीनका बुश्शर्ट पहने है, फिर लड्डू गुड़के हैं, वह उसका अनादर कर सकता है।

उसके हाथमें, डबलरोटीके दो टुकड़े और चायवालेसे लिया हुआ एक चायका कप देते हुए कहा, "तुमने अभी कुछ नहीं खाया है। लो, इसे लो।"

"नहीं-नहीं, मैंने भुजिये खाये हैं।" और लड़केके नन्हें हाथोंने तुरन्त ही लपककर उसे ले लिया। उसको खाते-पीते देखकर मेरी आत्मा तृप्त हो रही थी।

मैंने पूछा, "बालाघाटसे कब चले थे?"

"तीन बजे।"

"तीन बजेसे तुमने कुछ नहीं खाया?"

"नहीं तो, दो आनेके भुजिये खाये थे। चाय पी थी।"

मेरा ध्यान फिर उसके माता-पिताकी ओर गया और मैं मन-ही-मन उन्हें गाली देने लगा।

मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने लड़केसे कहा, "आओ, बिस्तरपर चले आओ। साढ़े दस बजे उठा दूँगा।"

लड़केने तुरन्त ही चमड़ेके अपने क़ीमती जूतेके बन्द खोले, मोज़े निकाले। सिरहाने रख दिया। और बिस्तरके भीतर पड़ गया।

मैं ट्रंकके पास बैठा हुआ था। लड़का मेरे बिस्तरे पर। मैं खुद जाड़ेमें। वह गरमी महसूस करता हुआ।

किन्तु, मेरा ध्यान उस लड़केकी तरफ़ था। कितना भोला विश्वास है उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे पर।

और, मैं सोचने लगा कि मनुष्यता इसी भोले विश्वासपर चलती है। और इस भोले विश्वासके वातावरणमें ही कपट और छल करनेवाले पनपते हैं।

मेरे बदनपर ओवरकोट था, लेकिन अब वह कोई गरमी नहीं दे रहा था।

मैं फिरसे टी-स्टॉलपर गया। फिर एक कप चाय पी। और, मनुष्यके भाग्यके बारेमें सोचने लगा। मान लीजिए, इस लड़केके पिताने दूसरी शादी कर ली है! इस लड़केकी माँ मर गयी है, और जो है, वह सौतेली है! अगर अभीसे वह लड़केको इतनी उपेक्षा करती है तो हो चुकी अच्छी तालीम! क्या पता, इस लड़केका भाग्य क्या हो!

लड़केने मेरी दी हुई हर चीज़ लपक कर ली थी। मुझ पर ख़ूब गहरा विश्वास कर लिया था। क्या यह इसका सबूत नहीं है कि लड़केके दिलमें कहीं कोई जगह है जो कुछ माँगती है, कुछ चाहती है! ईश्वर करे, उसका भविष्य अच्छा बने!

इन्हीं ख़यालोंमें डूबता-उतराता मैं अपने बच्चोंको देखने लगा, जो घरमें दरवाज़े बन्द करके भी तेज़ सर्दी महसूस कर रहे होंगे। उनके पास रज़ाई भी नहीं है। तरह-तरहके कपड़े जोड़-जाड़कर जाड़ा निकालते हैं। इस समय, घर सूना होगा, और वे मेरी याद करते बैठे होंगे। बच्चे! बच्चे! और उनकी वह माँ, जो सिर्फ़ भात खाकर, मोटी हुई जा रही है, लेकिन चेहरे पर पीलापन है!

मैंने बच्चेको सिखा दिया है कि बेटे, कभी इच्छामय दृष्टिसे दुनियाको मत देखना। हम मामूलीसे मामूली इच्छा भी पूरी नहीं कर सकते। और चाहे जो करो, मौक़ा पड़नेपर झूठ बोल सकते हो, लेकिन यह मत भूलना कि तुम्हारे ग़रीब माँ-बाप थे। तुम्हारी जन्मभूमि ज़मीन और धूल और पत्थरसे बनी यह भारतकी धरती ही नहीं है। वह है — ग़रीबी। तुम कटे-पिटे दाग़दार चेहरेवालोंकी सन्तान हो! उनसे द्रोह मत करो। अपने इन लोगोंको मत त्यागना। प्रगतिवाद तो मैंने अपने घरसे शुरू कर दिया था। मेरे बड़े बच्चेको यह कविता रटा दी थी :

ज़िन्दगीकी कोखमें जन्मा
नया इस्पात
दिलके ख़ूनके रंग कर!
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर
अरे चक्कर लगा घर-घर, सभी से
कह रहे हैं
....सामना करना मुसीबत का,
बहुत तन कर
खुद को हाथमें रख कर!
उपेक्षित काल—पीड़ित सत्य—गो के दूध
उदासी से भरे गम्भीर,
मटमैले गऊ चेहरे।
उन्हींको देखकर जीना
कि करुणा करनी की माँ है।
बाक़ी सब कुहासा है, धुँआ-सा है।

लेकिन, यह थोड़े ही है कि लड़का मेरी बात मान ही जायेगा। मनुष्यमें कैसे-कैसे परिवर्तन होते हैं! सम्भव है, वह थानेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन जाये और डण्डे चलाये। कौन जानता है।

मैं अपनी ही कविताका मज़ा लेता हुआ और भीतर झूमता हुआ वापिस लौटता हूँ। उस वक़्त सर्दी मुझे कम महसूस होने लगती है। बिस्तरके पास जाकर खड़ा हो जाता हूँ। और गुलाबी अलवान और नरम कम्बलके नीचे सोये हुए उस बालककी शान्त निद्रित मुद्राको मग्न अवस्थामें देखने लगता हूँ। और मेरे हृदयमें प्रसन्न ज्योति जलने लगती है।

कि इसी बीच मुझे बैठ जानेकी तबियत होती है। पासवाली सीमेण्टकी बेंचपर ज़रा टिक जाता हूँ। और बायीं ओर रेलवे-अहाते-के पार देखने लगता हूँ।

बायीं ओर बेंचपर रखी गठरियोंके पास बैठे हुए दूसरी आकृतिकी ओर ध्यान जाता है।

हरी धारीवाला एक सफ़ेद शर्ट पहने वह बालक है, जो घुटनोंको छातीसे चिपकाये बैठा है। बाँहोंसे उसने अपने घुटनोंको छातीसे जकड़ लिया है, और ऊपरवाली बीचकी पोली जगहमें उसने अपना मुँह फँसा दिया है। मुझे उसका मुँह नहीं दीखता, सिर्फ़ उसका सिर और बाल दीखते हैं। वह न मालूम कबसे वैसा बैठा है। और ठिठुरा-ठिठुरा (गठ-रियोंके बीच) वह खुद गठरी बनकर लुप्त-सा हो गया है।

अगर मैं अपने लड़केको आज रातको सफ़र कराता तो शायद वह भी इसी तरह बैठता। क्यों बैठता। मैं तो उसका इन्तज़ाम करके भेजता; किसी भी तरह, क्योंकि मेरे कनेक्शन्स (सम्बन्ध) अच्छे हैं। इस बेचारे ग़रीब देहातीके लड़केके सम्बन्ध क्या हो सकते हैं!

मैं उस लड़केको पुनः एकाग्रचित्तसे देखने लगता हूँ। उसका मुँह अभी तक घुटनोंके बीच फँसा है। अपने अस्तित्वको नगण्य और शून्य बनाकर वह किसी निःसंग अन्धकारमें विलीन होना चाह रहा है।

मैं उसके पास जाकर खड़ा हो जाता हूँ, ताकि उसकी हलचल, अगर है, तो दिखाई दे। लेकिन नहीं, उसने तो अपने और मेरे बीच एक फ़ासला मुख्य कर लिया है।

लेकिन, क्या यह सच नहीं है कि मैं उसे उठा सकता हूँ, मैं उसे कुछ-न-कुछ दे सकता हूँ। मैं उसे भी डबलरोटीका एक टुकड़ा और एक कप चाय देकर उसके भीतर गरमी पैदा कर सकता हूँ।

लेकिन, मैं वहाँसे हट जाता हूँ। फिर बेंचके किनारेपर बैठ जाता हूँ और, फिर प्लेटफ़ॉर्मकी सूनी बत्तियोंको देखने लगता हूँ। मेरा मन एकाएक स्तब्ध हो जाता है।

मेरे बिस्तरपर सोनेवाला बालक ठीक समयपर अपने आप ही जाग उठा। तुरन्त मोज़े पहने, चमड़ेका क़ीमती जूता पहना, बन्द बाँधे। अपने टेरीलीनके बुशशर्टको ठीक किया। नेकरकी जेबमें-से कंघी निकालकर बालोंको सँवारा।

और, बिस्तरसे बाहर आकर खड़ा हो गया, चुस्त और मुस्तैद। और, फिर, अपनी उसी कमज़ोर पतली आवाज़में कहा, "टिकट-घर खुल गया होगा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमलेश्वर :

• खोयी हुई दिशाएँ

कमलेश्वरकी चुनी-चुनी ग्यारह नयी कहानियाँ जो बिना सन्देह एक बदली हुई मनोभूमि प्रस्तुत करती हैं—वह मनोभूमि जो लेखककी ही नहीं, समूचे समाजकी है। कहानियोंमें जीवनका अध्ययन है मात्र सर्वेक्षण नहीं। २.५०

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

शिवप्रसाद सिंह :

• कर्मनाशाकी हार

सोलह कहानियाँ : समाजके ऐसे अंगों और जीवनके ऐसे पहलुओंसे साक्षात्कार कराती हैं जो अभी तक भूले-बिसरे रहे। सभी कहानियोंकी सहज निरायास अभिव्यक्ति मनको अभिभूत करेगी। ३.००

कहानी संग्रह

मोहन राकेश :

• नये बादल

राकेशकी चुनी हुई अनूठी कहानियोंका संग्रह। हर कहानीमें जीवनके प्रति लेखककी ईमानदारीका आग्रह स्पष्ट है। मानवीय अन्तर्द्वन्द्वों, उसकी घृणा और संवेदना बड़ी मार्मिकतासे इन कहानियोंमें विश्लेषित हुई है। २.५०

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने पूछा, "टिकटके लिए पैसे हैं, या दूँ ?"

"नहीं-नहीं, वह सब मेरे पास हैं।" यह उसने इस तरह कहा जैसे वह अपनी देखभाल अच्छी तरह कर सकता हो !

वह चला गया। मुझे लगा कि टेरीलीनके बुश्शर्टवाले इस बालकको दूसरोंकी सहायताका अच्छा अनुभव है। और वह स्वयं, एक सीमा तक, छल और निश्छलताका विवेक कर सकता है।

मेरा बिस्तर खाली हो गया, और मैं चाहूँ तो बेंचके दूसरे छोरपर घुटनोंमें मुँह ढांपे इस दूसरे बालकको आरामकी सुविधा दे सकता हूँ।

और मैं अपने मनके निःसंग अन्धकारमें कहता हूँ, "उठो, उठो, उस बालकको बिस्तर दो !"

लेकिन मैं जड़ हो गया हूँ। और, मेरे अँधेरेके भीतर एक नाराज़ और सख़्त आवाज़ सुनाई देती है,—"मेरा बिस्तर क्या इसीलिए है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति बने। शीः ! ऐसे न मालूम कितने ही बालक हैं जो सड़कों-पर घूमते रहते हैं !"

मैं बेंचके किनारेपर-से उठ पड़ता हूँ और टी-स्टॉलपर जाकर एक कप चाय और पीता हूँ। सर्दी मेरे बदनमें कुछ कम होती है। और फिर मैं अपने सामानकी तरफ़ रवाना होता हूँ।

सीमेण्टकी ठण्डी बेंचके किनारेपर, घुटनोंमें मुँह ढाँपे हुए उस बालककी आकृति मुझे दूर ही से दिखाई देती है। क्या वह सर्दी-में ठिठुरकर मर तो नहीं गया !

लेकिन, पास पहुँचकर भी मैं उसे हिलाता-डुलाता नहीं, उसे जगानेकी कोशिश नहीं करता, न उसके चारों ओर, चुपचाप, अलवान डालनेकी कोशिश करता हूँ। सोचता हूँ, करना चाहिए; लेकिन, नहीं करता।

आश्चर्य है कि मैं भीतरसे इतना जड़ क्यों हो गया हूँ, कौन-सी वह भीतरी पकड़ है जो मुझे वैसा करनेसे रोकती है।

मैं टिकट ख़रीदने गये टेरीलीनवाले लड़केकी राह देखता हूँ। वह अब तक क्यों नहीं आया ?

कि एकाएक यह ख़याल पूरे ज़ोरके साथ कौंध उठता है—अगर मैं ठण्डमें सिकुड़ते इस लड़केको बिस्तर दूँ तो मेरी (दूसरोंकी ली हुई ही क्यों न सही) यह क़ीमती अलवान और नरम कम्बल, यह दूधिया चादर ख़राब हो जायेगी, मैली हो जायेगी। क्योंकि, जैसा कि साफ़ दिखाई देता है कि यह लड़का अच्छे-खासे, साफ़-सुथरे बढ़िया कपड़े पहने हुए थोड़े है। मुद्दा है। हाँ, मुद्दा यह है कि वह दूसरे और निचले क़िस्मके, निचले तबक़े-के लोगोंकी पैदावार है।

मैं अपने भीतर ही नंगा हो जाता हूँ। और अपने नंगेपनको ढाँपनेकी कोशिश भी नहीं करता।

उस वक़्त घड़ी ठीक बारह बजा रही थी और गाड़ी आनेमें अभी आधे घण्टेकी देर थी।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ

अनु०—डॉ० धर्मवीर भारती

(२.५०)

●

मोतियोंवाले

कर्तारसिंह दुग्गल

(२.५०)

●

प्यारके बन्धन

रावी

(३.२५)

●

आकाशके तारे : धरतीके फूल

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

(२.००)

●

अपराजिता

भगवतीशरण सिंह

(२.५०)

●

बोस्ताँ

शेख़ सादी

(२. ५०)

●

एक परछाईं : दो दायरे

गुलाबदास ब्रोकर

(३.००)

● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ● ●

ये कहानी - संग्रह अपने निकटके श्रेष्ठ पुस्तक-विक्रेता-से प्राप्त करें। न मिलनेपर इन पतोंपर कहीं लिखें :

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रा
क
ठहरा हुआ चाकू

मोहन राकेश

[मोहन राकेश :
पहली कहानी : १९४७]

■

अजीब बात थी कि ख़ुद कमरेमें होते हुए भी बाशीको कमरा ख़ाली लग रहा था।

उसे काफ़ी देर हो गयी थी कमरेमें आये हुए—या शायद उतनी देर नहीं हुई थी जितनी कि उसे लग रही थी। वक़्त उसके लिए दो तरहसे बीत रहा था—जल्दी भी और आहिस्ता भी····उसे, दरअसल, वक़्तका ठीक अहसास हो नहीं रहा था।

कमरेमें कुछ-एक कुरसियाँ थीं—लकड़ीकी। वैसी ही जैसी सब पुलिस-स्टेशनोंपर होती हैं। कुरसियोंके बीचोबीच एक मेज़नुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फ़ुट और आठ फ़ुटका वह कमरा इनसे पूरा घिरा हुआ था। टूटे पलस्तरकी दीवारें कुरसियोंसे लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरेमें दरवाज़ेके अलावा एक खिड़की भी थी।

बाहर अहातेमें बार-बार चरमराते जूतोंकी आवाज़ सुनाई देती थी—यही वह सब-इन्स्पेक्टर था जो उसे कमरेके अन्दर छोड़ गया था। उस आदमीका चेहरा आँखोंसे दूर होते ही भूल जाता था, पर सामने आनेपर फिर एकाएक याद हो आता था। कलसे आजतक वह कमसे कम बीस बार उसे भूल चुका था।

उसने सुलगानेके लिए सिगरेट जेबसे निकाला, पर यह देखकर कि उसके पैरोंके पास पहले ही काफ़ी टुकड़े जमा हो चुके हैं, उसे वापस जेबमें रख लिया। कमरेमें एक एश-ट्रे का न होना उसे शुरूसे ही अखर रहा था। इस वजहसे वह एक भी सिगरेट आरामसे नहीं पी सका था। पहला सिगरेट पीते हुए उसने सोचा था कि पीकर टुकड़ा खिड़की से बाहर फेंक देगा। पर उधर जाकर देखा कि खिड़कीके ठीक नीचे एक चारपाई बिछी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसपर लेटे या बैठे हुए दो-एक कान्स्टेबल अपना आरामका वक़्त बिता रहे हैं। उसके बाद फिर दूसरी बार वह खिड़कीके नज़दीक नहीं गया।

अकेले कमरेमें वक़्त बितानेके लिए सिगरेट पीनेके अलावा भी जो कुछ किया जा सकता था, वह कर चुका था। जितनी कुरसियाँ थीं, उनमें-से प्रायः हर-एकपर एक-एक बार बैठ चुका था। उनके इर्द-गिर्द चहलक़दमी कर चुका था। दीवारोंका पलस्तर दो-एक जगहसे उखाड़ चुका था। मेज़ पर एक बार पेंसिलसे और न जाने कितनी बार उँगलीसे अपना नाम लिख चुका था। एक ही काम था जो उसने नहीं किया था—वह था दीवारपर लगी क्वीन विक्टोरियाकी तसवीर को थोड़ा तिरछा कर देना। बाहर अहातेसे लगातार जूतेकी चरमर सुनाई न दे रही होती, तो उसने अबतक यह भी कर दिया होता।

उसने अपनी नब्ज़पर हाथ रखकर देखा कि वह बहुत तेज़ तो नहीं चल रही। फिर एकाएक हाथ हटा लिया—जैसे कि किसीने उसे ऐसा करते देख लिया हो।

उसे लग रहा था कि वह थक गया है और उसे नींद आ रही है। रातको उसे ठीक से नींद नहीं आयी थी। ठीकसे क्या, शायद बिलकुल ही नहीं आयी थी। या शायद नींद में भी उसे लगता रहा था कि वह जाग रहा है। उसने बहुत कोशिश की थी कि जागनेकी बात भूलकर किसी तरह सो सके—पर इस कोशिश में ही पूरी रात निकल गयी थी।

उसने जेबसे पेंसिल निकाल ली और बायें हाथपर अपना नाम लिखने लगा—बाशी, बाशी, बाशी। सुभाष, सुभाष, सुभाष।

आज सुबह यह नाम प्रायः सभी अख़बारोंमें था। रोज़के अख़बारके अलावा उसने तीन-चार अख़बार और भी ख़रीदे थे। किसी अख़बारमें दो इंचमें ख़बर दी गयी थी, किसी में दो कॉलममें। दो कॉलममें ख़बर देनेवाला रिपोर्टर उसका परिचित था। वह अगर उसका परिचित न होता, तो शायद····

वह अब अपनी हथेलीपर दूसरा नाम लिखने लगा—वह नाम जो उसके नामके साथ-अख़बारोंमें छपा था—नत्था सिंह, नत्था सिंह, नत्था सिंह।

यह नाम लिखते हुए उसकी हथेलीपर पसीना आ गया। उसने पेंसिल रखकर हथेली को मेज़से पोंछ लिया।

जूतेकी चरमर दरवाज़ेके पास आ गयी। सब-इन्स्पेक्टरने एक बार अन्दर झाँककर पूछ लिया, "आपको किसी चीज़की ज़रूरत तो नहीं?"

"नहीं," उसने सिर हिला दिया। उसे तब ऐश-ट्रे का ध्यान नहीं आया।

"पानी-आनेकी ज़रूरत हो, तो माँग लीजियेगा।"

उसने फिर सिर हिला दिया—कि ज़रूरत होगी, तो माँग लूँगा। साथ पूछ लिया, "अभी और कितनी देर लगेगी?"

"अब ज़्यादा देर नहीं लगेगी," सब-इन्स्पेक्टरने दरवाज़ेके पाससे हटते हुए कहा, "बस पन्द्रह-बीस मिनटमें ही उसे ले आयेंगे।"

इतना ही वक़्त उसे तब भी बताया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था जब उसे उस कमरेमें लाया गया था। तब से अबतक क्या वक़्त बीता ही नहीं था ?

जूतेके अन्दर, दायें पैरके तलवेमें खुजली हो रही थी। जूता खोलकर एक बार अच्छी तरह खुजला लेनेकी बात वह कितनी ही बार मनमें सोच चुका था। पर हाथ दो-एक बार नीचे झुकाकर भी उससे तस्मा खोलते नहीं बना था। उस पैरको दूसरे पैरसे दबाये वह सिर्फ़ जूतेको ज़मीनपर रगड़कर रह गया था।

उसके हाथकी पेंसिल फिर चल रही थी। उसने अपनी हथेलीको देखा। दोनों नामोंके ऊपर उसने बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिख दिया था—अगर।

अगर....।

अगर कल सुबह वह स्कूटरकी बजाय बससे आया होता····।

अगर बर्फ़ ख़रीदनेके लिए उसने स्कूटर-को दायरेके पास न रोका होता····।

अगर····।

उसने जूतेको फिर ज़मीनपर रगड़ लिया। उसकी आँखोंके सामने मिन्नीका चेहरा आने लगा। अगर कल वह मिन्नीसे न मिला होता····।

वह, जो कभी सुबह नौ बजेसे पहले नहीं उठता था, सिर्फ़ मिन्नीकी वजहसे ही तो उन दिनों सुबह छह बजे तैयार होकर घरसे निकल जाता था। मिन्नीने मिलनेकी जगह भी क्या तय की थी—अजमेरी गेटके अन्दर हलवाईकी एक दुकान ! जिस प्राइवेट कॉलेजमें वह पढ़ने आती थी, उसके आसपास बैठने लायक़ और कोई जगह थी भी नहीं। एक दिन वह उसे जामा मस्जिद ले गया था—कि वहाँके किसी होटलमें बैठेंगे। पर उतनी सुबह किसी होटल-का दरवाज़ा नहीं खुला था। आख़िर मेहतरोंकी उड़ायी धूलसे सिर-मुँह बचाते वे उसी दूकानपर लौट आये थे। दुकानके अन्दर पन्द्रह-बीस मेज़ें लगी रहती थीं। सुबह-सुबह ही लस्सी-पूरीका नाश्ता करनेवाले लोग वहाँ जमा हो जाते थे। उनमें-से बहुत-से तो उन्हें पहचानने भी लगे थे—कि रोज़ वे कोनेकी मेज़ लेकर वहाँ घण्टा-घण्टा-भर बैठे रहते हैं। मिन्नी अपने लिए सिर्फ़ कोकाकोलाकी बोतल मँगवाकर सामने रख लेती थी—पीती वह भी नहीं थी। लस्सी-पूरीका आर्डर उसे अपने लिए देना पड़ता था। जल्दी खानेकी आदतके कारण सामनेका पत्ता दो मिनटमें ही साफ़ हो जाता था। मिन्नी कई बार दो-दो पीरियड गोल कर देती थी, इसलिए वहाँ बैठनेके लिए उसे और-और पूरी मँगवाकर खाते रहना पड़ता था। उससे सुबह-सुबह उतना नहीं खाया जाता था, पर चुपचाप कौर निगलते जानेके सिवा कोई चारा भी नहीं रहता था। मिन्नी जब देखती कि खा-खाकर उसकी हालत ख़स्ता हो रही है, तो कहती कि कुछ देर पासकी गलियोंमें घूम लिया जाये। सड़क-पर वे नहीं घूम सकते थे क्योंकि कॉलेजकी दूसरी लड़कियाँ वहाँ आती-जाती रहती थीं। हलवाईकी दुकानके साथ ही गली अन्दरकी मुड़ती थी—उससे आगे गलियोंकी लम्बी भूल-भुलैया थी जिसमें वे किसी भी तरफ़को निकल जाते थे। जब चलते-चलते सामने सड़कका मुहाना नज़र आ जाता, तो वहींसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लौट पड़ते थे।

"इस इतवारको कोई देखने आनेवाला है," उस दिन मिन्नीने कहा था।

"कौन आनेवाला है ?"

"कोई है—खाटमण्डूसे आया है। दस दिनमें ही शादी करके लौट जाना चाहता है।"

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं। आयेगा, तो मैं उससे सब साफ़-साफ़ कह दूँगी।"

"क्या कह दोगी ?"

"यह तुम क्यों पूछते हो ? तुम्हें पूछनेकी ज़रूरत नहीं।"

"अगर उस वक़्त तुम्हारी ज़बान न खुल सकी, तो ?"

"तो समझ लेना कि ऐसे ही बेकारकी एक लड़की थी····जो इस लायक़ थी ही नहीं कि तुम उससे किसी तरहकी रास्त रखते।"

"पर तुमने पहले ही घरमें क्यों नहीं कह दिया ?"

"यह तुम जानते हो कि मैंने नहीं कहा ?" कहते हुए मिन्नीने उसकी उँगलियाँ अपनी उँगलियोंमें ले ली थीं। "अभी तो तुम दूसरेके घरमें रहते हो। जब तुम अपना घर ले लोगे, तो मैं····तब तक ग्रेजुएट भी हो जाऊँगी।"

एक बहते नलका पानी गलीमें यहाँसे वहाँ तक फैला था। बचनेकी कोशिश करने पर भी दोनोंके जूते कीचड़से लथपथ हो गये थे। एक जगह उसका पाँव फिसला, तो मिन्नीने उसे बाँहसे पकड़कर सँभाल लिया। कहा, "ठीकसे देखकर नहीं चलते न, पता नहीं, अकेले रहकर कैसे अपनी देखभाल करते हो ?"

अगर····।

अगर मिन्नीने यह न कहा होता, तो वह उतना ख़ुश-ख़ुश न लौटता। उस हालतमें ज़रूर स्कूटरके पैसे बचाकर बससे आया होता।

अगर घरके पासके दायरेमें पहुँचने तक उसे प्यास न लग आयी होती····।

उसने स्कूटरको वहाँ रोक लिया था—कि दस पैसेकी बर्फ़ ख़रीद ले। महीना जुलाई-का था, फिर भी उसे दिन-भर प्यास लगती रहती थी। दिनमें कई-कई बार वह बर्फ़ ख़रीदने वहाँ आता था। दुकानदार उसे दूरसे देखकर ही पेटी खोल लेता था और बर्फ़ तोड़ने लगता था।

पर तबतक बर्फ़की दुकान अभी खुली नहीं थी।

बर्फ़ ख़रीदनेके लिए उसने जो पैसे जेबसे निकाले थे, उन्हें हाँथमें लिये वह स्कूटरके पास लौटकर आया, तो एक और आदमी उसमें बैठ चुका था। वह पास पहुँचा, तो स्कूटरवालेने उसकी तरफ़ हाथ बढ़ा दिया—जैसे कि वह वहाँ उतरकर स्कूटर ख़ाली कर चुका हो।

"स्कूटर अभी ख़ाली नहीं है," उसने स्कूटरवालेसे न कहकर अन्दर बैठे आदमीसे कहा।

"ख़ाली नहींसे मतलब ?" उस आदमी-का चेहरा सहसा तमतमा उठा। वह एक लम्बा-तगड़ा सरदार था—लुंगी और मलमल-का कुरता पहने। लम्बा शायद उतना नहीं

[शेष पृष्ठ १९६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मु
क्ति

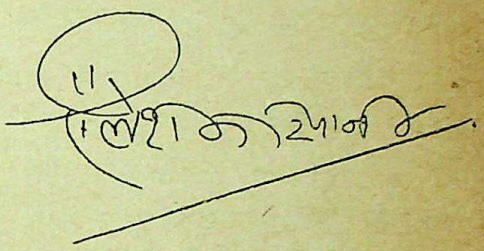

[शैलेश मटियानी :
पहली रचना : १९५५]

■

दोपहर हो गयी थी, मगर मृतक-कोण* का दीपक अनवरत रूपसे जल रहा था। रात बीतते-बीतते, जिस समय श्यामसिंह माँके शव-दाहसे वापस लौटा था, इस जलते हुए दीपकको देखकर, एक बार ठीक वैसी ही अनुभूति उसे हुई थी, जैसी माँकी मृत्युके समय। माँकी मृत्युके समय वह उसके सिर-को पीछेसे अपनी हथेलीके सहारे उठाये हुए था और एकाएक माँके चेहरेकी त्वचा ऐसे खिच गयी थी, जैसे गरम तवेपर रख दिये गये हरे पत्तेके रेशे सिकुड़ जाते हैं।

श्यामसिंहने अनुभव किया था, उसकी हथेलीपर कुछ अतिरिक्त बोझ-सा आ पड़ा था। उसने देखा था, कि ठीक उसी क्षण माँकी आँखें थोड़ी-सी उघड़ी थीं, ऐसे, जैसे किसी मरणासन्न चिड़ियाकी चोंच खोली जा रही हो, दो बूँद जल डालनेके लिए। अपने चेहरेके प्रतिबिम्बको श्यामसिंहने उस एक क्षणमें ऐसे घूमता हुआ-सा महसूस किया था, जैसे वह खुद तो स्थिर किसी तालाबके किनारे सिर झुकाये खड़ा हो और स्वयं जल ही उसके प्रतिबिम्बको बहुत तेज़ीसे हिला रहा हो।

---

* घरके जिस कोनेमें माँकी मृत्यु हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधानजीने गंगाजल मुँहमें डालते हुए कहा था, "लगता है, सिर्फ़ बेटेका मुँह देखने-को ही प्राण रुके हुए थे भागवानके ! हरे राम।"

बीमारीमें जालन्धर तार पहुँचा था। और श्यामसिंहके घर लौटनेके कई दिनों बाद माँकी मृत्यु हुई थी। मगर श्यामसिंहने अनुभव किया था, कि माँने उसके चेहरेको मृत्युके क्षण जिस मर्मवेधी दृष्टिसे देखा था, वैसी पारदर्शी एकाग्रतासे, शायद, सिर्फ़ एक बार तब देखा होगा जब उसका जन्म हुआ होगा। और उसका मुँह माँने पहली बार देखा होगा। माँको मृत्युके समय, श्यामसिंह-ने अनुभव किया था, किसीने उसकी आकृति-को बिजलीकी-सी तेज़ीसे पकड़कर अपनी ओर खींच लिया है।....

अब दोपहर हो चुकी है।

मृतक-कोणमें दीपक अनवरत रूपसे मद्धिम-मद्धिम जल रहा है।

श्यामसिंह नहीं निश्चित कर पा रहा है कि वह अपनी इस अजीब-सी अनुभूतिको किसी औरसे कहे या नहीं। कभी-कभी मनुष्य इतनी अमूर्त्त अनुभूतियोंसे गुज़रता है, कि न तो उन्हें व्यक्त किया जा सकता है, न अपने ही अन्दर निःशेष किया जा सकता है। ऐसी अनुभूतियोंमें जीनेके क्षणोंमें और दोप-हरको दीपककी लौको देखनेके क्षणोंमें एक अजीब-सा साम्य होता है। अपने अन्दर-ही-अन्दर ऐसी तमाम अनुभूतियाँ सिमटती-सिमटता एक लौ बन जाती हैं और ऐसा लगने लगता है, इनसे मुक्तिके लिए उस मृत्युका पुनर्भोग आवश्यक है, जिसमें-से ये अमूर्त्त-सी अभूतियाँ जन्म लेती हैं। माँको मरते हुए देख चुकनेके बाद, न जाने क्यों किसी औरको भी—या अपनेको ही—मरते हुए देखनेकी उद्दाम तृष्णा बार-बार हो आती है। माँको मृत्युके समय जो एक अपनी आकृतिको खींचता हुआ-सा मृत्यु-क्षण जीनेको मिला था, लगता है, उसमें भयसे कहीं बहुत अधिक जिज्ञासाका आकर्षण था। लगता है, वह क्षण एक ऐसी जिज्ञासा शेष छोड़ गया है, जो दोपहरको जलते दीपककी तरह अन्दर-ही-अन्दर रोशनीकी एक लकीर खींच रही है। एक लकीर, जो मनुष्यके समग्र आन्तरिक अस्तित्व—उसकी प्रश्नाहत अन्तश्चेतना—को दो हिस्सोंमें बाँटकर, एक ओर लोहेकी तरह छोड़ देती है, दूसरी ओर चुम्बककी तरह।....और ऐसे क्षणोंमें लगने लगता है, कि ज़िन्दगी और मृत्युके बीच सिर्फ़ एक इसी लकीरका व्यवधान मात्र है।

दोपहरमें जलते हुए दीपककी रोशनीमें श्यामसिंहको अपना घुटा हुआ सिर अजीब-सा लग रहा है और उसे बार-बार याद आ रहा है कि माँके शव-दाहके समय उसे कुछ ऐसी अनुभूति हुई थी, जैसे किसी गर्भवती औरतका शव-दाह हो रहा हो। तो क्या माँने मरते समय अपने उस अंशको श्यामसिंहमें-से खींच लिया था, जो जन्मके समय दिया था? अपने उस अंशको, जिसे माँ अपने बच्चेको अपने गर्भमें नहीं, बल्कि अपनी पहली-पहली दृष्टिमें देती है? तो क्या प्रत्येक माँ अपने बेटेको मृत्युके समय इसीलिए अपनी आँखोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने रखना चाहती है, कि अपनी मृत्युके क्षणमें वह उसमें प्रक्षिप्त अपने अंशको ठीक वैसे ही वापस खींच सके, जिस तरह कैमरेका 'लेन्स' चित्र खींच लेता है ?

शायद, इसीलिए वह माँ ज़्यादा निःस्पृह रूपसे देहको त्याग पाती हो, जिसे मृत्युके क्षण अपना सबसे प्रिय पुत्र सुलभ हो या पति। माँकी सद्गति ठीकसे करनेका अवसर मिल गया है, श्यामसिंहको इस बातका सन्तोष है।

दोपहरका दीपक उसी नैरन्तर्यके साथ जल रहा है। उसकी लौ वैसे ही मध्यस्थ-रेखाकी तरह काँप रही है। श्यामसिंह अनुभव कर रहा है, यह रोशनीकी लकीर सिर्फ़ ज़िन्दगी और मृत्युके ही नहीं, बल्कि इनसे सम्बद्ध सारे प्रश्नों और परिवेशके बीचकी विभाजक रेखा भी है। एक ऐसी विभाजक रेखा, जिसके एक ओर अपनी तृष्णाओंका परिवेश पड़ा रहता है और दूसरी ओर प्रश्नाहत अन्तश्चेतना। एक ओर चार बच्चोंवाली पत्नी कमला पड़ी रहती है, दूसरी ओर जालन्धरमें अपने पहले पतिके पास ही अपने पहले बच्चेको छोड़कर, उसके साथ चली आयी इन्दिरा !

रोशनी दोनों ओर बराबर पड़ती है।

मनुष्य ज़िन्दगी और मृत्यु, दोनोंसे सम्बद्ध प्रश्नोंसे आहत होनेको बाध्य होता है। माँकी मृत्युको झेलनेके बाद भी, माँकी इस शंकाको झेलना शेष ही रह जाता है, कि—"बेटे, कमी कमलामें ही क्यों, तेरी दृष्टिमें भी तो हो सकती है ? घरवाली सिर्फ़ मांससे ही तो नहीं तोली जाती है। घरवालीका वज़न करना हो, तो पलड़ेपर उसके बच्चोंको भी बिठाकर करना चाहिए।"

श्यामसिंहको लगता है, एक जो इतर शरीरके भोगका आकर्षण होता है, वह तो पंजाबसे यहाँतक-की यात्रामें ही रीत गया था। अब तो इन्दिरा भी पत्नी ही हो चुकी है। पूर्व पतिको उसे वापस पाना होता तो कभीका पुलिसमें शिकायत कर चुका होता।.... और अब निबाहनेको शेष रह गयी है एक ऐसी स्थिति, जिसमें दो औरतोंमें भी सिर्फ़ एक पत्नीका बोध ही मुख्य रह जाता है, मगर जीना पड़ता है दोमुँही स्थितियों और मनः-स्थितियोंमें।

आज सबेरे-सबेरे कमलाको देखकर, एक क्षणको ऐसा लगा था, जैसे माँ ही श्मशानसे वापस लौट आयी है। इन पिछले बीस-बाईस दिनोंमें ही, लगता है, यह औरत सिर्फ़ अपने बच्चोंकी माँ रह गयी है—किसी पुरुषकी पत्नी नहीं।

हो सकता है, धीरे-धीरे दोनोंमें समझौतों-से भरी ज़िन्दगी जीनेकी क्षमता आ जाये, एक-दूसरेके प्रति आत्मीयता हो जाये, मगर फ़िलहाल तो ऐसा लगता है, कि दो औरतोंके बीचमें एक ही सम्बन्ध लेकर जीनेकी स्थिति, दोनों आँखोंसे दो विपरीत दिशाओंकी ओर एक साथ देखते हुए जीनेकी स्थिति होती है।

मृतक-कोणमें दोपहरका दीपक सिरहाने जल रहा है।

श्यामसिंह इस समय अकेला लेटा हुआ है। संवेदना प्रकट करनेवाले आकर, जा चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। फिर आयेंगे। इस बीचका एकान्त है। कमला दूसरे कमरेमें बच्चोंको सुला रही है। इन्दिरा, शायद, कहीं पड़ौसमें गयी है।

श्यामसिंह सोच रहा है, बच्चे तो चारों पिछले साल तक ही हो चुके थे, मगर, इसके बावजूद, जब भी वह छेड़ता था तो कमला उसकी बातों और उसके स्पर्शोंसे ठीक वैसे ही आन्दोलित हो उठती थी, जैसे कोई भी औरत हो सकती है। इस वर्ष इन्दिराको साथ ले आनेके बाद भी, आधे मनसे ही सही, श्यामसिंहने उसे कई बार प्यार करनेकी चेष्टा की थी, मगर हर बार यही लगा था कि उसके स्पर्शोंका सारा सुख कमलाके लिए मर चुका है।

श्यामसिंह जानता है, ऐसा इसलिए नहीं हुआ है कि कमलामें अब यौवन शेष नहीं रह गया है, बल्कि इसलिए कि शायद उसने अनुभव कर लिया है कि अपनी शारीरिकतामें वह पतिके लिए व्यर्थ पड़ चुकी है। यानी वह श्यामसिंहको उस दृष्टिका आत्मसाक्षात्कार कर चुकी है, जिससे पुरुष औरतोंको शारीरिकताके आधारपर तोलनेकी चेष्टा करता है।

कलकी रात तो माँकी मृत्युकी रात थी!

और दिनों कमला सीधे अपने अलग कमरेमें चली जाती थी और श्यामसिंहको ऐसा लगता था, जैसे वह अपने बच्चोंको बिछाकर सोती है। चारों ओर चार बच्चे। चारों ओरसे किसी भी औरके लिए निषेध।

श्यामसिंहको लगने लगा है, दो विपरीत शारीरिक स्थितियोंवाली औरतोंको किसी एक पुरुषके साथ एक ही सम्बन्धको जीना पड़े, तो दो विपरीत मनःस्थितियोंमें भी जीनेकी अनिवार्यता उनके साथ अपने-आप जुड़ जाती है।

श्यामसिंह नहीं चाहता, माँके 'मृतक-कोण'के अन्दर वह यों औरतोंके बारेमें सोचे। मगर सोचनेकी स्थितियोंसे बच सकना कहीं भी, किसी भी स्थितिमें, मनुष्यके लिए सम्भव नहीं हो पाता है।

श्यामसिंह इन्दिरासे यह आग्रह नहीं करता, कि वह गोबरकी बाड़के अन्दर आये, उसे स्पर्श करे।....मगर श्यामसिंह इन्दिराके बारेमें सोचनेसे अपनेको रोकनेमें असमर्थ है।

इन्दिराके बारेमें बार-बार यह ध्यान आने लगता है कि जितने बनाव-शृंगार और जितनी उन्मुक्तताके साथ रहनेकी वह अभ्यस्त है, उसका यों ही बना रहना कमला और उसके बीच सौमनस्य स्थापित होने नहीं देगा कभी।....और अब जालन्धर वापस लौटना नहीं है। अब तो दोनोंके साथ एक व्यवस्थित गृहस्थ जीवनको जीनेकी चेष्टा करना ही एक मात्र समाधान रह गया है। कमलाके प्रति निरन्तर जो आत्मग्लानि बनी रहने लगी है, इससे मुक्त होना है।

कुछ देर श्यामसिंह यों ही पड़ रहा, फिर उसने बड़े बच्चेको पुकार लिया—"घनश्याम ....जो, घना....आँ ...!"

लगा, जैसे कमलाको ही पुकारा है। कमला ही बोली थी—"घना, उठ तो, रे! तेरे बाबू आवाज़ लगा रहे हैं। जा तो, कहीं पानी तो नहीं माँग रहे?"

श्यामसिंहके कान उधर ही लगे हुए थे, कि इन्दिराकी आवाज़ भी सुनाई दी, "की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए, जी ?''

श्यामसिंहने देखा, इन्दिराने जूड़ा ऐसे बाँध रखा था, जैसे अभी-अभी नहाकर आ रही है। इन्दिरा पहले भी यों ही जूड़ा बाँधती रही है। सलवार-कुरता पहननेकी ही वह अभ्यस्त है और, देह सांसल होनेसे, दुपट्टा डाला हुआ नहीं हो, तो वक्ष अधखुला-सा रह जाता है। इन्दिरा श्यामसिंहके सामने दुपट्टा डालनेकी ज़रूरत, शायद, कभी भी महसूस नहीं करती है।

मगर श्यामसिंह महसूस करता है। एक पुरुष जिसने कभी भी सही, खुद औरतोंको ग़ौरसे देखनेकी कोशिशें की हों, वह महसूस करता है कि उसकी पत्नी या बहू-बेटी दूसरोंके द्वारा वैसे न देखी जाये। एक पुरुष दूसरे पुरुषोंकी प्रवृत्तियोंका सहभोक्ता होता है। वह अपने घरकी औरतोंका अधउघड़ापन भी बरदाश्त कर लेता है, मगर उसी मनःस्थितिमें, जहाँ ऐसा होना उसके लिए आत्मदंशका कारण न बने। ऐसी मनःस्थितियोंमें जीनेके लिए पुरुष एक पूरी संस्कृति या सभ्यताको ओढ़नेमें भी संकोच नहीं करता।

श्यामसिंह संस्कृतिको कवच बनाकर जीनेवाले लोगोंमें नहीं, बल्कि अपनी परम्परागत बन्दिशोंके लिए स्वयंको बाँधकर जीनेवाले लोगोंमें-से है।....और अपनी दृष्टिको बाँधकर जीनेमें पुरुष सिर्फ़ तभी समर्थ हो पाता है, जब वह अपने सम्बन्धोंको बाँधकर जीनेमें समर्थ हो सके। और चूँकि पुरुषके सारे सम्बन्धोंके केन्द्रमें सिर्फ़ औरत ही प्रमुख है, इसलिए वह उसे ही बाँधने—सामाजिक अर्थमें मर्यादित करने—की चेष्टा करता है। करता ऐसा सब-कुछ व्यक्ति सिर्फ़ अपने स्वार्थके लिए है, मगर हरेकका निजी स्वार्थ अन्ततः सामाजिक मर्यादा और संस्कृतिका रूप ले लेता है।

श्यामसिंह—या कोई भी पुरुष—इन सब व्याख्याओंमें न सही, मगर इनके संसर्गमें जरूर जीता है।

''तुसीने कुछ बतलाया नहीं, जी ?''—इन्दिरा प्रश्न करती है।

श्यामसिंह अनुभव करता है, कि वह इस समय एक ऐसी अजीब मनःस्थितिमें जी रहा है, जो किसी भी व्यक्तिको उसकी औसत अनुभूतिशीलता और व्यावहारिकतासे कहीं अलग या ऊपर उठा देती है। एक ऐसी मनःस्थितिमें, जिसमें व्यक्ति बहुत-कुछ ऐसा कहनेकी आवश्यकता अनुभव करने लगता है, जिसे वह कहना नहीं चाहता। और बहुत-कुछ ऐसा कह बैठता है, जो उसकी आन्तरिकतामें-से सीधे बाहर फूट आता है, विवेक और व्यावहारिकताकी छलनियोंमें छन नहीं पाता। ऐसी स्थितिमें, जो-कुछ कहना चाहिए था, जो-कुछ सिर्फ़ सोचा जाना चाहिए था, कहा नहीं जाना चाहिए था—यह सब एक साथ अभिव्यक्ति पाने लगता है....और मनुष्य ऐसेमें अपनेको दर्शन और पागलपनके बीचकी स्थितिमें-से गुज़रता हुआ अनुभव करने लगता है। उसे अपने सोच सकनेके अहम् और अपने बोल बैठनेके असंयमकी एक साथ अनुभूति होने लगती है।

ऐसी मनःस्थितिमें व्यक्ति कुछ कहनेसे पहले ही यह महसूस करने लग जाता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह बहुत-कुछ कह चुका है।

इन्दिरा अभीतक जैसे प्रश्नका उत्तर पानेकी प्रतीक्षामें ही खड़ी है, मगर श्यामसिंह ऐसा महसूस कर रहा है, कि इन्दिराको अब कोई दूसरा प्रश्न पूछना चाहिए। वह महसूस करता है, कि उसके मौन रह जानेका अर्थ सिर्फ़ यही हो सकता है, कि उसे पानी, चाय या दियासलाई-जैसी किसी भी चीज़की ज़रूरत नहीं है। ऐसी छोटी-छोटी आवश्यकताओंके लिए व्यक्ति उतनी ही आसानीसे कह भी लेता है। श्यामसिंह इन्दिराको समझाना चाहता है, कि जब कोई व्यक्ति बार-बार पूछनेपर भी किसी चीज़की आवश्यकता प्रकट न करे, तो इसका अर्थ सिर्फ़ यही हो सकता है कि वह किसी अनिर्णयकी स्थितिमें-से गुज़र रहा है।....और अनिर्णयकी स्थितिमें से गुज़रता हुआ व्यक्ति अपनेको आत्मप्रलाप करता हुआ-सा अनुभव करता है। उसे लगता है कि जो कुछ वह सोच रहा है, वह दूसरोंको सुनाई दे रहा है।

इन्दिराको भी श्यामसिंहका यह आत्मप्रलाप सुनाई देना चाहिए था, जो ख़ुद उसके लिए भी शब्दहीन ही है, मगर जिसका अर्थ यह सब कहनेकी ज़रूरत महसूस करता होता है, कि—'जालन्धर-टी-हाउस' में बैठा-बैठा मैं तुझे घूरा करता था और तू बच्चेके लिए दूध लेनेको आती थी, तो मैं तुझसे ज़मीनपर रखा हुआ गिलास उठानेको कहता था, ताकि तुझे मैं तेरे पूरे नारीत्वमें देख सकूँ। एक ऐसे निरावरण-नारीत्वमें, जिसमें झुकी हुई औरतको देखनेपर ऐसा लगने लगता है कि सृष्टिके प्रारम्भमें मनुष्य असलमें पशुओंकी तरह चलता होगा, दोनों हाथ ज़मीनपर टिकाये हुए। सच मान, इन्दर, कि बन्दरीके चलनेमें जो एक ख़ास आकर्षण होता है, वह औरतमें भी सिर्फ़ तभी आता है, जब वह दोनों हाथ नीचे झुका लेती है।....क्यों, चौकनेकी इसमें क्या बात है? सोचनेके समय हर व्यक्ति निरावरण होता है, अपनी पाशविकता और प्रज्ञा दोनोंमें एकदम अनावृत्त। सिर्फ़ कहनेके लिए मनुष्य अपनी अनुभूतियोंको तरह-तरहके आवरणोंमें लपेटता है। महसूस करनेके लिए मनुष्यको कोई आवरण नहीं चाहिए, सिर्फ़ सुननेके लिए वह आवरणोंकी ज़रूरत महसूस करता है।....और अन्दर-ही-अन्दर बिलकुल निरावरण होकर जीना और बाहर-बाहर आवरणोंकी आवश्यकतासे आक्रान्त रहना—यह स्थिति आदमीको उसकी आदिम और पाशविक सामर्थ्यसे तो विच्छिन्न कर देती है, मगर पाशविक या आदिम प्रवृत्तियोंका निराकरण नहीं करती।.... मेरी हालत भी यही है। मैंने तुझे ख़ुद अपनी पूरी पाशविकताके साथ देखा है, मगर मैं नहीं चाहता कि कोई और भी तुझे जानवरोंकी तरह देखनेकी ज़रूरत महसूस करे।.... और, शायद, हरेक व्यक्ति अपनी पूरी पाशविकता—अपनी आदिम प्रवृत्तियों—के साथ भी वैसे ही जीना चाहता है, जैसे अपनी समग्र तात्कालिक प्रज्ञाके साथ।....और चूँकि मनुष्यके लिए अपनी पूरी पाशविकताके साथ अकेले-अकेले जी पाना सम्भव नहीं हो पाता है—उसमें पशुओंकी-सी समलैंगिकता अवश्य होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, मगर समऐन्द्रिकता नहीं होती—इसलिए वह किसी औरके द्वारा भी वैसे जिया जाना बरदाश्त नहीं कर सकता। मनुष्य जानवरोंकी तरह जीनेसे बचनेमें समर्थ, शायद, सिर्फ़ इसीलिए नहीं हुआ है कि और दूसरे लोग मनुष्योंकी—पाशविक और आदिम प्रवृत्तियोंसे मुक्त या कि इनके आत्मदमनमें समर्थ मनुष्योंकी—तरह जी सकें।....बल्कि किसी हद तक इसलिए भी कि कहीं और लोग भी जानवरोंकी तरह जीनेकी कोशिशें न करने लगें।....और चूँकि मनुष्य कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी ख़ुद अपनी ही पाशविक और आदिम प्रवृत्तियोंको अपने लिए अप्रिय और असुविधाजनक अनुभव करने लगता है—कभी अपनी भौतिक-असमर्थता तथा कभी अपनी आध्यात्मिक प्रज्ञाके कारण—इसीलिए वह दूसरोंकी पाशविकताके ख़तरोंसे भी सावधान रहनेकी ज़रूरत महसूस करता है।

प्रत्यक्षतः श्यामसिंह कुछ कह नहीं पा रहा है, मगर ऐसा-कुछ कहनेकी ज़रूरत महसूस कर रहा है, कि—सुन इन्दर, जबसे तूने मेरे संग चलनेकी बात मान ली और पहले बसे-बसाये घरको छोड़ भी आयी, तबसे मैं तुझे दूसरी ही नज़रसे देखने लग गया हूँ। अब मैं नहीं समझता कि तुझे फिरसे उसी रूपमें देखूँ, जिसमें तू ज़मीनपर-से गिलास उठाते समय जान-बूझकर दुपट्टा नीचे गिर जाने देती थी।....अरे, इन्दर, इतना हर पुरुष जानता है, कि अपनेको सँभाल सकनेमें औरत हमेशा पुरुषोंसे ज़्यादा समर्थ होती है!....अब तू जान, कह नहीं पाता हूँ कि तेरा दिल दुखेगा, तू मुझे शक्का और कमनियत समझने लगेगी!....मगर यह सोचनेसे तो मैं अपनेको रोक नहीं पाता हूँ कि जितनी आसानीसे तू मेरे साथ चली आयी थी, कहीं उतनी ही आसानीसे किसी दूसरेके साथ भी तो नहीं चली जायेगी? जिस समय तू मुझे मेरे पीठ-पीछे खड़ी होके नहलाती है ना,....और वह स्साला नरोत्तम बैठा होता है, अपने घरके चबूतरेपर, मेरा सारा ध्यान नहानेपर-से हटकर, उसीमें चला जाता है और मैं तेरे आगेको गिरे हुए दुपट्टेको बार-बार हाथ साधकर, पीछेको डालता हूँ। तू मेरे कन्धोंपर-का मैल निकालने लगती है, दुपट्टा फिर-फिर आगेको गिर जाता है।....और उस समय मैं नहाते-नहाते अपनी छाल—अपनी आदमीयतके आवरण—को उतरता हुआ-सा महसूस करता हूँ और नरोत्तम स्सालेको ठीक वैसे ही घूरनेकी इच्छा होती है, जैसे कोई साँड़ दूसरे साँड़को घूर सकता है।....अरे, भाई, मैं स्वीकार करता हूँ, कि अपने हाथोंसे नहला देनेके लिए तुझसे ज़िद मैंने ही की थी, मगर वह ज़िद मैंने इसलिए की थी, कि स्साले गाँववाले और ज़्यादा कुढ़ें। मगर तू न जाने मुझे कैसे नहलाती है, मुझे यही लगने लगता है, कि शायद, मुझसे ज़्यादा आनन्द तो देखनेवालोंको आ रहा है!....और मैं बरदाश्त नहीं कर पाता हूँ।....अरे, तुझे मालूम नहीं है, वह स्साला नरोत्तम, जबसे तू आयी है, तभीसे बड़ा बेचैन-सा दिखाई देने लगा है। माँकी अर्थी उठते समय भी तुझे घूर रहा था। मैं उसी समय स्सालेकी गरदन खींच देना चाहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, मगर समाज ज़्यादा बदनाम मुझे ही करता, कि मेरा भी ध्यान माँकी मृत्युपर नहीं, बल्कि तुझपर ही लगा हुआ है ! मैं समझता हूँ कि तुझ-जैसी जवान औरतको बिना कपड़े ठीकसे ओढ़े ही ज़ोर-ज़ोरसे हिचकियाँ भरते हुए नहीं रोना चाहिए।....हर जवान पुरुष स्साला ज़िन्दगी और मौत, आसक्ति और वैराग्य, दोनोंको एक साथ ही जी सकनेकी सामर्थ्य रखता है। नरोत्तम स्साला श्मशानमें भी बेचैन ही दिखाई दे रहा था। आज सबेरेसे ही ग़ायब है। उसकी औरत कई बार ढूँढ़ने-पूछने आयी थी। वह बेचारी अपनेको बहुत ढाँककर रखती है। पिछली बार सिर्फ़ एक धोती ही पहने हुई थी, मगर मजाल है, जो मुझे उसकी छातियाँ दिखाई दे जायें !....नहीं-नहीं, इस मृतक-कोणमें बैठे-बैठे ये सब बातें सोचना अच्छा नहीं है।.... और अब तो चूँकि मैं चाहता हूँ कि तू भी ज़रा शरीर ठीकसे ढाँकनेकी आदत डाल ले, इसलिए मेरा यह फ़र्ज़ भी हो जाता है, कि दूसरोंको ढँगसे शरीर ढाँके हुए देखकर ख़ुद किसी तरहका मलाल महसूस न करूँ !

श्यामसिंह इतना-कुछ कहना चाहता था।

श्यामसिंह कह बैठता है—"तुम ज़रा छातियाँ तो ठीकसे ढाँक लिया करो। अब रोज़-रोज़ मुझे दिखानेकी क्या ज़रूरत है।"

किसी छोटी-सी प्रतीक्षामें खड़ी इन्दिरा, इस आकस्मिक आक्षेपसे हतप्रभ हो उठती है। इधर-उधर देखकर, आक्रोशके साथ किसी छोटे बच्चेका पायजामा खींच लेती है और उसे दुपट्टेकी तरह गलेमें डाल लेती है। फिर पूछती है, "तुसीं बतायां नहीं, जी ? कुछ चा-वा बनानी है क्या ?"

श्यामसिंह एकाएक चमक-सा उठता है। अपनी उतनी बड़ी अपेक्षाके समानान्तर, इन्दिराका इतना छोटा प्रश्न ? एक पुरुषके पूरे पाशविक और सामाजिक चिन्तनके आगे इतनी छोटी जिज्ञासा ? श्यामसिंह कहनेको होता है, "अरे, तेरी तुसी-मुसी गयी भाड़में ! कितनी बड़ी बात तो मैं कहना चाहता हूँ, और भैंस, कितनी छोटी अक्लसे काम ले रही है।"

मगर श्यामसिंह कह बैठता है—"नहीं-नहीं, कोई चीज़ नहीं चाहिए मुझे।"

"तो मैनू क्यों आवाज़ लगायी थी, जी ?"

हत्त तेरीकी !—श्यामसिंह ग़ुस्सेसे फट पड़नेको हो आता है—आवाज़ लगायी घन-श्यामको, चली आयी ससुरी ख़ुद।....और फिर ज़बरदस्ती कहती है, मुझे क्यों आवाज़ लगायी थी ? अरे, लगायी थी आवाज़, तेरी....

श्यामसिंह अपनेको सोचनेसे रोकनेकी कोशिश करता है, तो कह बैठता है, "अच्छा, जा, बना ला फिर जो कुछ तेरे जीमें आता हो।...."

इन्दिरा खिसियायी-सी चली जाती है।

श्यामसिंह महसूस करता है कि यह औरत जाते समय कुछ इस तरहसे गयी है, जैसे उसपर व्यंग्य कर रही हो। कहीं अन्दर-ही-अन्दर वह भी तो कुछ ऐसा नहीं सोच रही होगी, कि—क्यों, अब जी-भर चुका क्या ? पहले तो यों कहा करते थे तुसी ही, कि ऊँचे गलेका कुरता नहीं फबता मेरेको ? और,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्जी, मेरा पहरावा ऐसा ही रहा है, मेरा चलना-फिरना ऐसा ही रहा है, कोई मैं जान-बूझके थोड़ी ना फिरती हूँ, कि कोई टुकुर-टुकुर देखे ?····ये तो, ज्जी, कहनेकी ही बातें है। तुसी क्या ऐसी गल्ल सोचते हो, कि हम जनानियोंमें अपनेको देखने-दिखानेका शौक़ नहीं होना चाहिए था ?····और ज्जी, उमरपर तो जो कुछ होता है, अपने-आप होता है ? कल तक तो तुसी ऐस्सी कोई बात नहीं कहते थे, ज्जी ? एक ही रातमें बुढ़ापा आ लिया क्या ? होर, ज्जी, आगे क्या बोलूँ, मर्दकी नज़र बदलते तो····

अरे, हाँ, हाँ····कोई देर नहीं लगती !—श्यामसिंह अपने घुटे हुए सिरपर हाथ फेरता है, तो फिर आत्मप्रलाप करनेकी इच्छा हो आती है। श्यामसिंह सोचता चला जाता है यानी इन्दिराको सुनाता चला जाता है, कि—यह मत पूछ, कि एक-एक पलमें आदमीकी नज़रमें कितना फ़र्क़ पड़ जाता है ? तूने कभी यह भी देखनेकी कोशिश की है, कि एक-एक पलमें आदमीकी ज़िन्दगी कितने अलग-अलग तूफ़ानोंमें-से गुज़र जाती है ? अब तू ही सोच, कल सवेरे तूने मुझे स्नान कराया था, यों तो माँकी बीमारीसे अन्दर-ही-अन्दर मैं बहुत दुःखी था, मगर उस नरोत्तम स्सालेको देर तक मुँह धोनेके बहाने मेरे नहाने-नहाने—या कि तेरे मुझको नहलाने-नहलाने—तक बैठा हुआ देखकर, स्साला एकदम गुस्सा उमड़ता रहा मेरे अन्दर।····और खाना खा चुकनेके बाद, अब दोपहरको ज़रा लेटा, तो तूने भी मना नहीं किया।····और फिर तूने देखा ही होगा, कुछ ही घण्टों बाद म मृत्युसे दुःखी होकर मुझे विलाप करते हुए जिन बालोंको दोपहरको तू अँगुलियोंसे रहा था उनका उस्तरेसे साधे नीचे ज़ा गिरते हुए ?

श्यामसिंह शब्द नहीं खोज पा रहा है, मगर ऐसा कुछ कहनेकी आवश्यकता अवश्य अनुभव करता जा रहा है, कि—शायद, तू नहीं समझ सकेगी, कि जब कुछ ही क्षण पहले एक औरतसे शारीरिक आसक्तिकी पराकाष्ठापर पहुँचा हुआ पुरुष, कुछ ही समय बाद, एक औरतकी मृत्युको भोगता है और शारीरिक-नश्वरताके बोध—अपनी सारी वासनाओंकी व्यर्थताके बोध—को पराकाष्ठाओं-में जीने लगता है, तब उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है ? जिस हथेलीसे एक औरतमें अपनी वासनाकी परितृप्ति खोजता फिरता है, उसी हथेलीमें दूसरी औरतकी मृत्युके विद्युत्-प्रवाहको जब पुरुष झेलता है····अरे, भाई, सवाल पत्नी और माँका नहीं, एक औरत दूसरी औरतका नहीं, सिर्फ़ अपनी वासना-क्रान्त शारीरिकता और प्रश्नाहत-अन्तश्चेतनाका होता है, ज़िन्दगीकी उद्दामताके सामनेवाले पलड़ेपर ही नीचेको झूलते हुए मौतके सन्नाटेका होता है····और, हो सकता है, तुझे भी उस समय कुछ ऐसी ही कल्पना हो रही हो, कि जिस पुरुषके साथ तू कुछ ही घण्टे पहले सुध-बुध खोकर सोयी हुई थी, कहीं वही मर गया होता, यों अचानक और उसीका शव तेरे सामने पड़ा होता तो तब तू कैसा अनुभव करती ? मुझे क्षमा करना, मैंने ऐसी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना की थी, कि अगर माँकी जगह तेरी मृत्यु हो गयी होती, तो मैं कैसा महसूस करता ?····यह जो ज़िन्दगी और मृत्युकी संगतिमें एक साथ जीने, शारीरिकता और मानसिकताको एक साथ भोगनेका समय मनुष्य-के जीवनमें आता है ना, यही उसकी दृष्टिको बदल देता है।

श्यामसिंह जब सोचनेके लिए शब्द नहीं खोज पाता है, तब कहनेके लिए खोज लेता है—अरे, इन्दर, तू नज़र बदलनेकी बात कह रही है ? कल रात-भर चिता जलती देखी थी—आज दिन-भर इस दीपकको जलता हुआ देख रहा हूँ—एक अजीब श्मशान-वैराग्य मुझे घेर रहा है। अभी तू मेरी तरफ़-को झुकी हुई थी, तो गोबरकी बाड़से इधर तक मैं तेरी छायाको महसूस कर रहा था।···· मगर साथ-ही-साथ ऐसा भी लग रहा था, जैसे मेरे लिए अपने घुटे हुए सिर और किसी भी मांस-पिण्डमें कोई फ़र्क़ नहीं रह गया है।

कुछ कह लेनेके बाद, फिर सोचनेकी स्थिति घेरने लगती है, तो फिर शब्द नहीं मिलते हैं। सिर्फ़ एक अर्थ अनुभव होता है, अपनी शब्द ढूँढ़नेकी असमर्थताके बीच, कि—शायद, तू नहीं जानती होगी, कि पुरुषके लिए मूल्य उसकी आसक्तिके होने, न होने, सामर्थ्यके होने, न होनेका ही मुख्य होता है। उसकी दृष्टि चूँकि उसकी सामर्थ्यपर निर्भर होती है, इसलिए उसके सारे स्पर्श और भोग भी उसकी दृष्टिसे ही निर्दिष्ट होते हैं।····जिस समय तेरे सामने मैंने अपने घुटे हुए सिरपर हाथ फेरा था, उस समय मेरी दृष्टि ज़रूर बदली हुई थी····और निश्चित है, कि उस समय अगर मैं तेरे स्तनोंको भी छूता, तो मुझे कोई अतिरिक्त अनुभूति नहीं होती।···· क्योंकि मनुष्यकी मनःस्थिति, उसकी दृष्टि और अनुभूतिशीलता उसकी परिस्थितिपर निर्भर होती है, इसलिए श्मशान-वैराग्यकी मनः-स्थितिमें वह किसी औरतकी निरावरण देहको देखकर, ठीक वैसी ही अनुभूतिमें-से गुज़रता है, जैसी अनुभूति उसे ख़ुद अपने या किसीके भी निरावरण हो पड़नेपर हो सकती हो।···· यानी ऐसी मनःस्थितिमें एक घुटे हुए सिरके निरावरण होने या किसी औरतके निरावरण होनेमें कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं रह जाता।···· यानी ऐसी मनःस्थितिमें मनुष्य मांस और मांसके बीचके फ़र्क़को महसूस नहीं करना चाहता है।····और जब सिर्फ़ एक श्मशान-वैराग्यकी मनःस्थितिमें मनुष्यका यह हाल हो जाता है, तो एक साथ ही—एक ही क्षणमें—ज़िन्दगी और मृत्युसे जुड़ी हुई अनेक मनः-स्थितियोंमें जीनेवालेको कितनी आन्तरिक दुर्दशा भोगनी पड़ती होगी ? अपनी वैयक्ति-कता और सामाजिकता, अपनी शारीरिकता और अपनी मानसिकता—अपनी आदिम प्रवृ-त्तियों और सांस्कृतिक प्रज्ञा—इन सारी मनः-स्थितियोंमें एक साथ जीनेके क्षणोंमें मनुष्य क्या हो आता होगा ? दार्शनिक या पागल ? चिन्तनीय या हास्यास्पद ?

श्यामसिंहको लग रहा है, कि दोपहरकी सारी उदासी और बेचैनी उसे बुरी तरह घेर रही है। वह कमला और इन्दिराको एक साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ लगाना चाहता है। वह कहना चाहता है, कि—'सुनो, चारों दिशाओंको जानेवाले रास्तोंपर कोई भी आदमी एक साथ नहीं चल सकता—मगर जिस चौराहेपर-से ये सारे रास्ते फूटते हैं, वहाँ ज़रूर खड़ा रहा जा सकता है। दो विपरीत दिशाओंमें चलती हुई औरतों-को लेकर निरापद और निश्चिन्त रहकर जी सकना किसीके लिए भी सम्भव नहीं है, मगर ऐसी मनःस्थितिको जी सकना सम्भव ही नहीं, दुर्निवार है, जिसमें आदमी ऐसा महसूस कर सके। ऐसा, यानी दो विपरीत दिशाओंमें एक साथ देखनेकी चेष्टा।

श्यामसिंह कहनेकी आवश्यकता अनुभव करता है, कि—जैसे चौराहेपर ज़िन्दगी-भर नहीं रहा जा सकता, वैसे ही अनेक परस्पर-विरोधी मनःस्थितियोंसे घिरी एक स्थितिमें भी सिर्फ़ कुछ क्षणोंको ही रहा जा सकता है, पूरे समय-भरको नहीं।

श्यामसिंह इन्दिराको आवाज़ देना चाहता है, कि—सुनो, दसवें दिन इस मृतक-क्रोड़से मैं बाहर निकल आऊँगा और तेरहवों-को यह दोपहरको जलता हुआ दीपक बुझा दिया जायेगा। बहुत सम्भव है, तबतक माँ-की मृत्युके दुःख और अपनी आत्मग्लानियों-में-से मैं भी कुछ बाहर निकल आऊँ? और तब मुझे चौराहेपर खड़े व्यक्तिकी नहीं, कोई एक रास्ता चुनकर चल पड़नेवाले यात्री-की भूमिका निबाहनी होगी। सामाजिकता-का सबसे बड़ा लाभ यही है, कि वह इस तरहकी सुविधा देती है। एक ऐसे समयको छाँटनेकी सुविधा, जिसमें मनुष्य एक निरापद ज़िन्दगीको जीनेकी कोशिश कर सके!....मैं भी यही चाहता हूँ।....मैं सोचता हूँ, कि जो औरत कभी मेरी माँकी तरह ही प्राण त्याग कर, अपने सामने खड़े पुरुषको एक नितान्त लघु आकृतिके रूपमें खींच ले जा सकती है.... और जो औरत मेरी छोटी बच्ची मुन्नीकी तरह एक पुरुषको पिताके रूपमें इतना बड़ा बना सकती है, कि वह उसे ठीक वैसे ही देखता रह जाये, जैसे कोई हाथी अपनी पीठ-पर बैठी हुई छोटी-सी चिड़ियाको देखता है.... ऐसी औरतको उसके सिर्फ़ एक ही रूपमें देखना ठीक नहीं है।....तुम्हारी दीदी कमला-ने मुझे पत्नी, माँ और बच्चीके तीनों रूप दिखा दिये हैं—तुममें भी यही रूप देखने हैं।...यानी साफ़ बात है, भाई, मैं इन दार्शनिक और पागलोंकी-सी तमाम मानसिक दिग्भ्रान्तियोंसे मुक्त होकर एक साधारण गृहस्थकी ज़िन्दगी चुनना चाहता हूँ।....

इन्दिरा चाय बनाकर ले आयी है।

सौतेले बेटे घनश्यामका पायजामा उसके पीठकी ओर ज्यों-का-त्यों लटका हुआ है।

श्यामसिंहको लगता है, उसे कुछ कहना चाहिए। वह कहना चाहता है, कि—'तुमने जो उम्र-वुम्रकी बात कही थी ना, वही ज़्यादा ठीक है। तुम्हारी दीदी कमला है ना, कल नरोत्तमके चबूतरेपर बैठी छाती उघाड़े हुए छोटी बच्चीको दूध पिला रही थी, मगर बुरा नहीं लगता था। कोई आशंका नहीं व्यापती थी। दरअसल, मनुष्यके लिए मूल्य प्रतिक्रियाओंका ही ज़्यादा होता है और वह अपने ऊपर हुई प्रतिक्रियाओंसे ही दूसरोंपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेवाली प्रतिक्रियाओंका लेखा-जोखा लगा लेता है।....अरे, भाई, दो-चार सालमें तुम भी इसी तरह खुलेमें बच्चोंको दूध पिलाने लग जाओगी, तो औरोंकी आँखोंको उदासीन देखकर, मैं भी निःशंक रहने लग जाऊँगा।

इन्दिरा बोली—"जी, तुसी कुछ नाराज़ दिखते हो आज ?"

"अरे, नहीं-नहीं !"—श्यामसिंह हँसने-की चेष्टा करता हुआ बोला—"तुझ-जैसी समझदार औरतसे भला कोई नाराज़ हो सकता है ? जा, तेरी कमला दीदी उधर सोयी हुई है, उसे भी चाय दे आ। छोटी मुन्नीको इधर ले आना। मेरे सामने बिठाकर, उसे थोड़ी 'हट्टा-घोड़ी' करा देना।....आज जी बहुत उदास लग रहा है। तूने चाय पी ली, या नहीं ?"

Gram : MATACANTOS
CALCUTTA.

Telephone :
OFFICE : 22–3226
RESI : 55–2620

Asutosh Mookerjee & Co. Private Ltd.

**12, RAJA WOODMUNT STREET,
CALCUTTA–1.**

Importers & Manufacturers of :
WIRE ROPES, CHAINS LIFTING ACCESSORIES,
WAGON FITTINGS & MARINE STORES ETC.

Agents for :
LIFTING ACCESSORIES
S. TURTON & CO., LTD., BIRMINGHAM.

Workshop :
22, RAMLAL MOOKERJEE LANE,
SALKIA, HOWRAH.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'होटल निव । जाब' का—

उद्घाटन-संगोष्ठी

शरद जोशी

(शरद जोशी : पहली रचना—१९५३)

■

श्री छाया-द्वारा विषय-प्रवर्तन

श्री छाया : मैं नहीं मानता कि कोई होटल पंजाब हो सकता है, या वह 'निव' या नया भी हो सकता है। होटल सिर्फ़ होटल होता है। इसे 'निव पंजाब होटल' कहना ग़लत होगा। अपने ऐतिहासिक सन्दर्भके कारण होटल अब एक ठिठका हुआ, ठहरा हुआ-सा शब्द बन गया है। 'निव' शब्दसे उसमें गति नहीं आती, वह होटल ही रहता है। जिस नगरमें यह होटल स्थित है उसके अपने प्रभाव हैं और चूँकि यह नगर पंजाबमें नहीं है अतः वे प्रभाव भी बड़ी हदतक ग़ैर-पंजाबी अथवा एण्टी-पंजाब या अपंजाब हैं। यह भ्रम व्यर्थ है कि नगरके अपने सांस्कृतिक प्रभावोंको नकारते हुए इस होटलको पंजाब किया जा सकता है। 'निव' अथवा 'नव' शब्दके जो अर्थ हैं इससे पंजाबका कोई सम्बन्ध नहीं। आज सब इकाइयाँ एक दूसरेसे जुड़ गयी हैं। पंजाब शब्द सिर्फ़ सुविधाके लिए है पर वह एक असुविधा भी उत्पन्न करता है। महानगरके आधुनिक एवं समसामायिक परिवेशमें ऐसे शब्द अर्थकारी नहीं होते।

श्री शुकुल : मेरे मित्र श्री छायाने 'निव पंजाब होटल' के सम्बन्धमें जो बात कही उससे मैं असहमत हूँ। नाम सिर्फ़ नाम होते हैं इसके अतिरिक्त वे कुछ नहीं होते। वे धीरे-धीरे एक सार्थकता ग्रहण कर लेते हैं या कहिए, वे अधिक अर्थवान् हो जाते हैं। होटल एक विशिष्ट सुविधाका पर्याय है, 'पंजाब' से उसकी गरिमा बढ़ जाती है। पंजाब शब्द एक ओर गौरववाची है तथा साथ ही भोजनके एक विशिष्ट प्रकारसे, जिसका पंजाबसे सम्बन्ध है, अपनेको बाँधता है। नामकी निरर्थकता समझते हुए भी मैं यह मानता हूँ कि इस बार 'पंजाब' का होटलके साथ जुड़ना स्वयंमें महत्त्वपूर्ण है। 'निव' द्वारा होटलने आधुनिकताकी आत्मा ग्रहण की है। पंजाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनेके बावजूद 'निव' होना होटलकी नियति है। इस युगमें जो निव नहीं है वह टिक नहीं सकता। मनुष्य बदल रहा है, होटल बदल रहे हैं, हमारे सारे मूल्य बदल रहे हैं। हर होटल 'निव' होनेके लिए अभिशप्त है। 'निव' होना एक अनिवार्यता है क्योंकि ग्राहक भी 'निव' हो रहा है। मैं इस नाममें एक आत्मा देख रहा हूँ।

श्री आज़ाद : मुझे कहनेमें सख्त अफ़सोस आता है कि बातको शुरूसे ग़लत समझा जा रहा है। 'निव' जो शब्द है, वह जो एक शब्द है 'निव', सो शुकुलजी मुझे माफ़ करें, मैं तो जो समझता हूँ वही कहूँगा, कि जो शब्द है 'निव', वह होटलके लिए नहीं है। वह तो जी, पंजाबके लिए है। आज़ादी आयी मुल्कमें तो पंजाबके दो हिस्से हो गये सो आपको मालूम ही होगा। तो साहब, अब जो पंजाब है जो नया बन रहा है वो ही अब असली पंजाब है। जिसमें भाखरा-नांगल हैं और कई-कई चीजें हैं। तो यह जो होटल है 'निव पंजाब होटल', मैं दीनानाथजीकी तारीफ़ करूँगा कि वे इस होटलको तैयार करनेमें बड़ी मेहनत की, बड़ा खर्चा भी किया और बड़ा 'शो' दिया इसको, तो यह जो 'निव पंजाब होटल' है यह तो नये पंजाबका होटल है, पुराने पंजाबका नहीं। यही मेरा ख़याल है और अगर मैंने कोई ग़लत बात कही हो तो आप मुझे माफ़ करेंगे। बस मेरा यही कहना है।

श्री प्रदीप : श्री आज़ादने बहुत सहज रूपसे कह दी है पर वे अनजाने ही संगोष्ठीको नयी दिशा दे गये हैं। 'निव' शब्दको लेकर आज बड़ा हल्ला है। पंजाबके आगे 'नया' शब्द लगना तो समझा जा सकता है पर होटलके आगे 'नया', या कविता या कहानीके सामने यह शब्द बेमानी है।

अध्यक्ष (टोकते हुए) : आप विषयपर ही रहें तो उचित होगा। कहानी या कविता बीचमें न लायें।

श्री प्रदीप : मैं विषयपर ही हूँ जी! तो मैं कह रहा था कि आज 'नये' का बड़ा हल्ला है। हर चीज़ चाहे वह कितनी ही पुरानी हो अपनेको नयी कहलवाना चाहती है। मेरा एक प्रश्न है कि क्या नगरमें जो दूसरे होटल हैं वे नये नहीं हैं? इस दशकमें जो होटल खुले हैं उनके अलावा जो पूर्वके हैं वे किन अर्थोंमें पुराने हैं। वह भी इतने ही नये हैं जितना कि 'निव पंजाब होटल'। क्या सिर्फ़ कुछ वर्ष पूर्व खुलनेके कारण वे पुराने हो गये हैं? या क्या यह 'निव पंजाब होटल' कुछ वर्ष बाद अपनेको ओल्ड पंजाब कहाना स्वीकार करेगा? मेरा यह प्रश्न है। वास्तविकता यह है कि अपने-अपने समयमें सब होटल 'नये' थे। 'राम भरोसे हिन्दू होटल' अपने समयमें नया था। समयके साथ ही हर नयी बात इतिहास हो जाती है।

श्री ईश्वरदास : देख रहा हूँ बहसमें काफ़ी गरमी आ गयी है। यह प्रसन्नताकी बात है कि हम विषयके प्रति गम्भीर दृष्टिकोण अपना रहे हैं। हमारी पीढ़ी मन्दिरों, घाटों या अपने परिवारोंतक सीमित रहनेवाली पीढ़ी नहीं है। हमारी पीढ़ी फ़ुटपाथों और होटलों और कॉफ़ी-हाउसोंमें विकसित होती पीढ़ी है। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नवीन केण्टीन परम्पराका निर्माण कर रहे हैं जो हमारे समयकी आर्थिक और सामाजिक वास्तविकताओंकी उपज है। हम अपने जीवनको 'होटल-भोग' कह सकते हैं। निव पंजाब होटलके पुराना होनेका प्रश्न नहीं उठता। होटलोंकी अपनी परम्परासे सम्बन्ध रखकर, उसकी आत्माको स्वीकारते हुए, बदलते समयके अनुरूप, निरन्तर गतिशील रहकर ईमानदारीके साथ यह होटल सदैव 'निव' रह सकता है। अपने 'पंजाब' को सुरक्षित रखते हुए भी यह नये युगमें खुदकी 'निव'ताका निर्वाह कर सकता है। यह 'निव' होनेके लिए कमिटेड है। यह 'निव' होनेके लिए उतना ही कमिटेड है जितना पंजाब होनेके लिए। एक बात और कहूँगा कि अभी किसीने कहा कि पंजाब इसमें एक गौरववाची शब्द है। गौरववाची शब्द अवश्य है पर उन संकीर्ण अर्थोंमें नहीं। पंजाब शब्द एक विशिष्ट भूभाग, एक संस्कृति, एक भोजन-प्रणालीका प्रतीकभर है पर वह अन्य भूभाग, अन्य संस्कृति या भोजन-प्रणालीका विरोधी नहीं वरन् सहयोगी है। इसे संकीर्ण अर्थोंमें लेना अनुचित है।

श्री जीवनजी : जहाँतक नयेकी बातका सवाल है वह उठ रही है। सिर्फ़ होटलोंके क्षेत्रमें ही नहीं अन्य क्षेत्रोंमें भी उठ रही है। भारतमें ही नहीं अन्य देशोंमें भी उठ रही है। प्रश्न यह है कि इससे डरना क्या। जो पुराना है वह तो खत्म होता ही है और जो नया है वह आगे आता है। यह तो सनातन नियम है, चला आता है। आज नहीं पहले भी था। पर आज कुछ लोग नयेका बिल्ला लगाये घूमते हैं। कुछ उनका विरोध करते हैं। क्या वजह हैं। मैं जहाँतक समझा हूँ इसका कारण व्यवसायकी टक्कर है। एक होटल है तो साहब, दूसरेने यह तख्ती लगा दी कि जी, यह नया होटल है। ग्राहकको तो खाना चाहिए और ऐसा खाना कि जिसमें पेट भी भरे, मज़ा भी आये। जिसे जहाँकी चाट लग जाती है वहीं जाता है। अब कुछ ऐसे हैं जिनके पास अच्छा खाना नहीं है तो वे ऊपरी टीमटामपर ज़ोर देते हैं ताकि लोग खिंचकर आयें। उसीके अन्तर्गत वे अपने नामके आगे 'नया' या 'निव' लगा देते हैं। मेरे खयालसे यह सिर्फ़ व्यावसायिकता है और कुछ नहीं। मैं 'नये'में कोई सिद्धान्त नहीं देखता।

गोष्ठीका समापन करते हुए **श्री दीपनारायण नारंगने** कहा : जीवनजी वयोवृद्ध हैं और हम उनका आदर करते हैं। इस शहरमें रामजीकी होटल सबसे पहले खुली और शहरके जवान लोगोंने पहली बार हिम्मत कर वहाँ जाना शुरू किया। बादमें जब होटल खूब चली तो रामजीने भोजन भी देना शुरू किया। उसके बाद रामजीसे ही हिम्मत पाकर शहरमें तीन होटल और खुले जिनमें एक हमारे जीवनजीका था। शहरकी ज़िन्दगीमें रामजीकी होटल बन्द होनेके बाद इन तीनों होटलोंका बड़ा हल्ला था। जीवनजीकी होटल हमेशा शाकाहारी रही और शहरके सब काँग्रेसवालोंका अड्डा बन गयी। उसी वक़्त जो बाक़ी दो होटल थीं उसमें एक कम्युनिस्टोंका अड्डा बन गयी और तीसरीपर कॉलेजके लड़के-लड़की जाते, जिनको किसीसे लेना न देना। जीवनजी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की होटल खूब चली और आज भी चल रही है। मगर अब चर्चा चल ही गयी है तो मैं कहूँगा कि आजसे दस-पन्द्रह बरस पहले जीवनजीकी होटलमें जो खाना मिलता था, अब नहीं मिलता। अब सिर्फ़ नाम और प्रचार रह गया है। जीवनजी किसी तरह होटल खींच रहे हैं। अब जब कोई नया होटल खुलता है तो जीवनजी-जैसे लोगोंको बुरा लगता है। मैं कहता हूँ इसमें बुरा लगनेकी क्या बात है। जब जीवनजीने होटल खोला था तब रामजीने बुरा नहीं माना था पर आशीर्वाद दिया था। अब जब नये होटल खुल रहे हैं तो जीवनजी-को भी बुरा नहीं मानना चाहिए। दिनपर दिन शहर बढ़ रहा है। बाहरसे लोग आते हैं और कहते हैं, भई, शहरमें आपके कोई होटल भी नहीं है जिसमें ठीक खाना मिले। शहरकी नाक कटती है। दीनानाथजीने होटल खोलकर शहरकी शान बढ़ायी है। जिन साहबानको पसन्द न हो वे अपने घर रहें। यह होटल 'निव' है और 'निव' रहेगा। अभी ईश्वरदासजीने ठीक कहा कि अगर दीनानाथ-जी चाहें तो इस होटलको हमेशा 'निव' रख सकते हैं। मैं दीनानाथजीसे कहूँगा कि वे इस होटलको अपनी मेहनतसे और अक़्लसे काम लेकर हमेशा 'निव' बनाये रख। देखें कोई क्या बिगाड़ लेता है। ज़माना बदल गया और अब पुराने हलवाइयोंकी दाल नहीं गलनेकी। बस। जीवनजीको बुरा लगा हो मुझे क्षमा करें।

अध्यक्ष : बड़ा आनन्द रहा। काफ़ी बातें हो गयीं। समय बहुत हो चुका और अभी दीनानाथजीकी तरफ़से उद्घाटनके इस अव-सरपर कुछ चाय-नाश्तेका भी इन्तज़ाम है। मैं आपकी राहमें क्यों रोड़ा बनूँ। (हँसी) एक बात फिर भी कहना चाहूँगा कि भैया 'नया' हो या पुराना होटल—सवाल यह है कि कौन अपनी जगह ठीक रहा है। छोटा-सा होटल हो पुराना या नया हो, मॉडर्न हो, सवाल यही है कि आप कैसा माल बना रहे हैं और ग्राहकको क्या दे रहे हैं? जो आजसे पच्चीस साल पहले सड़ा आटा और नक़ली घी खिलाते थे वे कितने ही प्रतिष्ठित हो जायें और अपनेको अनुभवी कहें, उसका कोई मतलब नहीं। और अगर आप मॉडर्न होटल खोले हैं और आपके इरादे नेक नहीं हैं, माल ख़राब है, सर्विस ख़राब है तो आपका फ़र्नीचर बेकार है। गुज़र गये वे ज़माने जब कहते थे कि सब अपनी क़िस्मतका खाते हैं। अब तो कहते हैं कि सब अपनी मेहनतका खाते हैं। जिनकी मशहूरी है, नाम बड़ा है वे अगर सिर्फ़ इसी वजहसे मेहनत नहीं करते तो भैया, उनकी दुकान ज़्यादा नहीं चलेगी। यह बात मैं सबको कहना चाहूँगा। और आजकी बहस अच्छी हुई—बातमें बात निकली और खूब निकली। अब दीनानाथजी आभार-प्रदर्शन करेंगे और 'निव पंजाब होटल' के उद्घाटनकी यह संगोष्ठी हम समाप्त कर रहे हैं।

श्री दीनानाथजी : आप सब लोगोंने यहाँ आनेकी तकलीफ़ की उसके लिए मैं आभारी हूँ। अभीकी बात सुनकर मुझे यह समझ आया कि कुछ लोग होटलका नाम 'निव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब होटल' से बदलकर कुछ और करना चाहते हैं। मेरा निवेदन है कि इसमें मेरा बड़ा सरफ़ा हो चुका है, मैंने नामकी पब्लिसिटी भी करा ली है तो अब नाम तो बदलना मेरे लिए मुश्किल होगा। बोर्ड बन गया है और अब नया रँगवाना कठिन है। और दूसरी गुज़ारिश यह थी कि अभी कोई सज्जन कह रहे थे कि होटल बदल रहे हैं तो मूल्य भी बदल रहे हैं, तो मेरा निवेदन है कि मूल्य नहीं बदल रहे, जो रेट सब होटलोंके हैं वे ही मेरी होटलके हैं। मूल्य क्यों बदलेंगे साहब ? वही मूल्य रहेंगे। बस मैं आप सबका फिरसे आभार मानता हूँ कि आपने कष्ट किया। आप भविष्यमें भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे। धन्यवाद !

■ ■

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवप्रसाद सिंह
की नयी कहानियों का
नवीनतम संग्रह

मुरदा सराय

शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियोंसे बिलकुल नयी बारह कहानियाँ। पढ़नेके बाद प्रत्येक कहानी मनपर एक सार्थक प्रभाव भी छोड़ेगी।

मूल्य : ४.००

इसी मास प्रकाशित

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलचस्पी

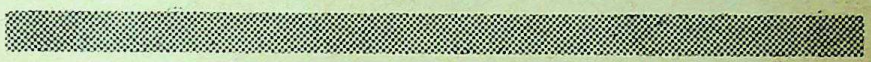

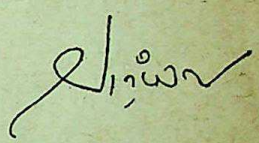

[ज्ञानरंजन : पहली
रचना : १९५६]

■

बिलकुल तड़का है। बगीचेकी तरफ़ खुलनेवाली खिड़कीके शीशोंको रातकी ठण्डक ओस बनकर धुँधला कर चुकी है। धुँधला नहीं, अन्धा। वह बहुत जल्दी जाग गया है जब कि सब अभी सोये हैं। उसने एक बार फिर सोचा और इस सच्चाईको अन्दर ताज़ा किया कि वह हमेशा देरसे सोकर उठनेवाला होकर भी कमसे कम उस पहले दिन, केवल पहले दिन, ज़रूर तड़के उठ जाया करता है, जब कभी किसी बिलकुल नये शहरमें जाता है अथवा लम्बा समय गुज़र जानेके बाद छुट्टियोंमें घरवाले शहरमें आना होता है।

दरवाज़ा खोल सर्दीसे अपनेको सिकोड़ती और शरीरसे अधिक दोनों भुजाओंको आपसमें वक्षपर दबोचती हुई जीजी आयीं और आश्चर्य प्रकट करने लगीं—"ओहो, भैय्याजी हैं। इतनी जल्दी कबसे उठने लगे हैं आप जनाब ?"

वह मुसकराने लगा। उसने पाया, जीजी विवाहके बाद तुला हुआ और शैलीयुक्त बोलने लगी हैं। वर्षों इस घरमें रहीं, कोई ख़ास लहजा नहीं था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें, साधारण थीं। इधर थोड़े-से अरसेमें ही अकेले पतिने उन्हें कितनी स्टाइल दे दी। तब तक माँ, नमिता, प्रकाश सब आ गये।

सामने एक साफ़-सुथरी पगडण्डी है, जैसी अकसर बरसातोंमें बन जाया करती है और फिर जाड़ों-भर बनी रहती है। बँगलेके अन्दर पगडण्डी। किसी बहुत बड़े शहरमें त्वरित गतिसे चलनेवाले लोगोंसे भरी सड़कपर एक धीमा बिसातखानेका ठेला देखकर जो लग सकता है, वैसा उसे लगा। दोनों तरफ़ मोटी हरी घास थी और विभिन्न क़िस्मके उठते हुए पेड़।

उसने सामबहादुर और क्वार्टरमें जो नये लोग आ गये हैं उनकी बाबत उत्सुकता प्रकट की। माँकी उम्र बहुत है फिर भी वही पहले बोल पड़ीं—"सामबहादुर फ़ौजमें चला गया है मुकुल, और अब घरमें कामकाजकी बहुत दिक़्क़त हो गयी है। और हाँ, तुम नहीं जानते होगे, सामनेके घोष बाबू बेचारे गुज़र गये। बड़े भले आदमी थे, राम-राम।" थोड़ा-सा अफ़सोस प्रकट करता हुआ अन्तराल, फिर—"काली बाबूका मकान सिन्धियोंने ख़रीद लिया और सामबहादुरका क्वार्टर भी थोड़ी मरम्मतके बाद मकान-मालिकने उठा दिया है। ये नये किरायेदार बड़े अच्छे लोग हैं बेटे! बस, प्याज़-लहसुन बहुत खाते हैं।" इस बातपर सब बुरी तरह हँस पड़े।

माँने बताया, वे लोग उसे देखनेको बहुत उत्सुक हैं। श्रीमती जोशी कहती थीं, आपके सब बच्चे देख लिये, बस मुकुलको नहीं देखा। इसके बाद माँने अपने सामनेके बच्चोंको फिरसे देखा। एक आवश्यकतासे भरी दृष्टि-में—"कई बार पूछ चुकी हैं, छुट्टियाँ कबसे हैं? वन्दना तो दिन-भर यहीं पड़ी रहती है! इस समय चाय तुम्हारी उन्हींके घरपर है।" वह चायके लिए हिचकता-हिचकता पहुँचा। अब यह सामबहादुरका क्वार्टर नहीं है। वह खिड़कीकी तरफ़ आईनेमें चेहरा देख रही थी। एकदम घबरा-सी गयी। उसने आईना तुरत पासके बिस्तरेपर फेंक दिया। घबड़ाहट-के स्थानपर अब झेंप उसके मुखड़ेपर थी। उसने उसे चले आनेके लिए कहते हुए अन्दर-ही-अन्दर हिम्मत बाँधी होगी। बैठते हुए वह सोचने लगा, वन्दना तो शीशा देखते हुए पकड़ी जानेपर सकुच, घबरा गयी—यह बहुत कॉमन है। अकसर लोगोंको शीशा देखते हुए पकड़े जानेपर, एक अपराधका-सा अनुभव होता है। उसके ही घरमें शृंगारदान केवल शो-पीस है। घरके लोग खुलकर सजते हुए कभी नहीं मिलते। सजते हुए मुक्त लोग उसने केवल ग्रीन-रूममें देखे हैं।

अन्दर काँचके बरतनोंके बजनेसे चायकी तैयारीका आभास मिलता है। अकेले बैठा दिये गये अतिथिको ये आवाज़ प्रमुख होकर सुनाई पड़ती हैं। वह कमरेको देखने लगा। अन्दर शायद किसीने फुसफुसाते हुए ढकेला तो श्रीयुत जोशी कमरेमें आकर उनके सामने बैठ गये और महज़ परस्पर अभिवादनके बाद अन्दरसे साथ लाये अख़बारमें मशगूल हो गये। वह सोचने लगा, सुबह बच्चों और औरतोंके सूखते कपड़े देख, इस क्वार्टरको एक आसान-सा परिस्तान कल्पित करके मज़ाक़िया तौरपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही वह जो खुश हुआ था उसपर अब हँसा जा सकता है।

अन्दरको व्यर्थ और समाप्त कर देती हुई चाय आयी और उसके साथ पूरे घरकी एक छोटी-सी दबी भीड़। अभी वह अकेला था और अब बेपनाह घिर गया है। मधुर-मधुर गृहिणी, आग्रहयुक्त। शुरूमें ज़रा परेशान-सा हुआ। अब सोचने लगा, कभी वह गुजरात ज़रूर जायेगा, वहाँ भी लोग ऐसे ही होते हैं क्या? यद्यपि यह निश्चित है, गुजरात-वुजरात क्या जायेगा और कभी गया भी तो उस समय इस तरह नहीं सोच सकेगा।

श्रीमती जोशीकी छोटी-सी प्यारी बच्ची-जो सम्भवतः उनकी आखिरी सन्तान लगती थी और जिसके बारेमें उसने पता नहीं क्यों सोचा कि ईश्वर, यह उनकी आखिरी सन्तान ही रहे—उसके ऊपर लगभग चढ़-सी आयी। बोली, "आप पहाड़पर रहते हैं न अंकल? आपको बर्फ़में सर्दी नहीं लगती क्या?" उसे लगा, यहाँ सब उसके बारेमें जानते हैं। और शायद नहीं भी जानते। जैसा उत्साहपूर्ण आदर-सत्कार उसका है, उससे यही पता चलता है।

श्रीयुत जोशीका चेहरा गुमसुम है। और साफ़ पता लगता है, उनका यह गुमसुमपन स्थायी और स्वाभाविक है। वे केवल इतना कहकर चुप हो रहे कि "इस बार बरफ़ जल्दी पड़ेगी, अख़बारमें आया है।" लगता था, उनके सब बच्चे चाहते हैं कि वे और बोलें ताकि वातावरणमें उनके कम बोलनेसे जो बुजुर्गी अधिक छा गयी है वह कम हो सके। उन लोगोंको भी बोलनेकी ताक़त मिल सके। अधिक मज़ा तब रहे जब वे मुकुल भाईसे पहाड़-की ही बात करें जिसमें क़िस्सेका-सा मज़ा आये।

"तो मैं क्या कर सकता हूँ, बर्फ़ जल्दी गिरनेका ताल्लुक़ मौसमसे है, मुझसे नहीं," वह कहना चाहता था। लेकिन उसने कहा इसके बिलकुल विपरीत, "जी हाँ, पहाड़पर भी लोग ऐसा ही कह रहे थे।"

चाय पीते समय इसके बाद और कुछ बातचीत नहीं हो रही है। सिवाय ठूँस-ठूँस-कर खिलानेके आग्रहके। लोग उसे घेरे हुए हैं, घूर लेते हैं और चुप रहनेके कारण अन्दर-अन्दर, लगता है, टँगे हैं। वह बुरी तरह फँसा महसूस करता रहा और खीझता रहा, पहाड़पर क्या, गोया जन्नतमें रहता हूँ!

आते वक़्त श्रीमती जोशीकी छोटी बच्ची एक हलकी गरिमा-भरी मचलनमें बोली, "अंकल, आपने पहाड़ोंपर बर्फ़में रहनेवाली परियोंकी कहानी हमें नहीं सुनायी? कब सुनायेंगे?"

प्रश्नका उत्तर टालनेके लिए उसने पूछा, "अच्छा बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?"

"नहीं-नहीं, आप पहाड़की परियोंकी कहानी सुनायें तभी हम नाम बतायेंगे!" इस बार उसकी मचलनमें थोड़ी ज़िद भी शामिल थी।

लौटकर उसने छुपके अपनेको शीशेमें देखा कि वह वन्दनाको, श्रीमती जोशी और सबको थोड़ी देर पहले कैसा लगता रहा होगा! उसने कई बार कई जगह विभिन्न कोणसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने चेहरेका प्रतिबिम्ब आँका। वह थोड़ा असन्तुष्ट रहा। उसे लगा, वह चेहरा जो थोड़ी देर पहले वह श्रीयुत जोशीके घर लेकर गया था फ़िलहाल गुम गया है।

"आप कितने भाग्यशाली हैं मुकुल भाई, पहाड़ोंपर रहनेको मिला है!" वन्दना अपने-आपको निराश करती हुई चुप हो गयी। यह मुकुलके प्रति उसका पहला सीधा और नज़दीकी वाक्य है। साफ़ पता लगता है, वह मुकुल भाईके उच्चारणमें ज़रा भी हिली नहीं। इसके बाद और भी कई वाक्य थे, लगभग इसी प्रकृतिके। अभी उसने ख़ुदको सुनाते हुए-सा कहा, "हम लोग तो सिविल लाइन जानते हैं और चौक, बस। एक बार जब छोटे-से थे तो सुना करते हैं, कानपुर गये थे।"

नवम्बर जो प्रायः बहुत स्फूर्तिदायक और चटख होता है, काफ़ी गीला और ठण्डा है। सिहरन पैदा करनेवाले सफ़ेद डबडबाये बादल आकाशपर जमने लगे हैं। दरअसल, नवम्बर दिसम्बर सरीखा तेज़ हो गया है। उसने पिछली लू-लपट-भरी कठोर और गरम दुपहरोंको सरपट ढंगसे अनुभव किया और अभी-अभी पहाड़ोंके सम्बन्धमें अन्दर पैदा हो गये चिड़चिड़ेपनको उचित माना।

वन्दनाने किसी फ़िल्मका नाम लिया और बताया, जहाँ वह रहता है उसके चारों तरफ़के पहाड़ोंमें ही कहीं उसके अनेक दृश्योंकी शूटिंग की गयी है—"आपने वह सब देखा होगा, कुछ भी छोड़ा नहीं होगा। आपके तो मजे हैं और फिर आप शौक़ीन भी तो हैं," वह साथ, बोलती और मुसकराती रही।

वह उसे इस तरह देखती रही ज्यों वह एक सामान्य आदमी नहीं, दृश्य है—ऐसा पहाड़ी दृश्य जिसकी पृष्ठभूमिमें फ़िल्मकी शूटिंग हो रही है। उसे, वन्दनाके देखनेके इस तरीक़ेमें हलकी व्यर्थता महसूस हुई। कई दिन वन्दनाने उसे देखा लेकिन उसकी दृष्टिका अभिनन्दन-पूर्ण उत्साह चुका नहीं। बड़ा भयानक है यह!

उसके दिमाग़में आतंकित करनेवाले शोर-को उगलते प्रपात, निर्जन भयावह अरण्य और हू-हू करता सन्नाटा और शाम यक-ब-यक ताज़ा हो गयी। पत्थर केवल पत्थर और चारों ओर एक क्रूर सूनापन। लेकिन उसने पहली बार पहाड़ जाकर लौटे, अपने बढ़े हुए ज्ञानपर गर्व करनेवाले लोगोंकी तरह वन्दना, जीजी, नमिता, सबको सेवके बगीचों, झील-जलकी छातियोंको चीरते यॉटों, धूप-छाँहमें बदलते पहाड़ी रंगों, घाटीसे घूँघर-घूँघर उठते कुहरे, ढलानोंपर फूल और बर्फ़ और असंख्य पर्वतीय ध्वनियोंकी ही बढ़ी-चढ़ी बातें सुनायीं।

बातचीत, ठीक अर्थोंमें बातचीत क्या बल्कि वे सूचनाएँ जो वह अभी देता रहा था, ख़तम-सी लगती है। लोग चुप हैं लेकिन उदास नहीं। धूपने बादलोंको फाड़कर दुबला कर दिया है। घरवाले उसको विशिष्ट या चार लोगोंके बीच घरकी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाला लड़का समझकर अपने अन्दर अभिमानकी फुरहरी महसूस कर रहे हैं। विशिष्ट इसलिए कि उनका मुकुल एक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थानपर नौकरी कर रहा है जब कि दूसरे परिचितों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मुहल्लेवालोंके लड़के इसी टुटपुँजिया शहरमें बरसोंसे बने हुए हैं या ज़्यादा हुआ तो चालीस-पचास मील इधर-उधर छोटे क़स्बोंमें नौकरी करके मामूली माने जाते हैं। यही कारण है, उनको अभीकी चुप्पी भी स्वादिष्ट लगी। जीजी युवा और अर्धशिक्षित लड़कियोंकी तरह वन्दना और उसकी माँकी तरफ़ रूमानी लहजेमें देखती रहीं। 'देख लिया' वाला लहजा। इत्तफ़ाक़ कि कुछ बोल नहीं पड़ीं। जीजी अब बहुत अधिक ऐसी हो गयी हैं। जीजा उनके लिए बत्तीस-बत्तीस रूपयों तककी लिपस्टिक लाते हैं जो इलाहाबाद-सरीखे शहरोंमें भी नहीं मिल सकती। ऐसी चीज़ोंका आयात बन्द है। इस बातकी उन्हें ख़ुशी है, राष्ट्रीय ख़ुशी नहीं कि जीजाने उनके लिए और भी अनेक तस्कर वस्तुएँ इकट्ठी की हैं। जीजी यह सब बताते हुए मुग्ध हो उठती हैं। इठलाती हैं, लोग सामने बैठे हुए होते हैं नहीं तो उनकी तमन्ना तो उस वक़्त यह होती है कि वे पंजोंके बल खड़ी होकर पतिको तत्परतासे कुछ चुम्बन दे दें और आँखों-आँखोंमें कहें, तुम कित्ते अच्छे हो! लेकिन ऐसा मनमें ही खिलके रह जाता है और फिर जीजी अधिकसे अधिक कोशिशसे पैदा हुई विसलिंगके साथ, लस्त-लस्त चालमें दूसरे कमरे या किचनमें चली जाती हैं।

वन्दनाकी माँ श्रीमती जोशी सुन्दर हैं, दबकर बोलती हैं और तभी बोलना शुरू करती हैं जब आश्वस्त हो जाती हैं कि उनका बोलना, दूसरे, विशेषतः किसी पुरुषके साथ, अकस्मात् नहीं लड़ जायेगा। शायद अपनी सात्त्विकताके लिए उन्हें यह भी ज़रूरी हो। अकसर पुरुष-औरतकी बातका लड़ जाना लगभग शरीरके लड़ जानेकी तरह बुरा समझा जाता है। पर वे बुरी नहीं हैं। वन्दनाके लिए बोलीं, "मैं तो इनके पितासे हमेशा कहा करती हूँ, इसकी शादी पहाड़पर ही करेंगे।" चूँकि वे काफ़ी देर बाद, पहाड़के प्रसंगके लगभग समाप्त हो जानेके बाद बोलीं, इसलिए लगता है, श्रीमती जोशी छोटी-छोटी काल्पनिक और स्वप्निल बातोंमें जीती रहकर ख़ुश रहती हैं।

"पहाड़पर ही करेंगे," वन्दना अपनी माँके जुमलेकी पुनरावृत्ति वर्तुल ढंगसे करके, उठ नहीं गयी जैसा कि आम तौरपर लड़कियोंके लिए ज़रूरी होता है।

उसने पहले तो यह सोचा, वन्दना कच्ची है इसलिए शरमायी नहीं। फिर सोचने लगा, भला लगता है कि लड़कियाँ आजकल उठकर कम जाती हैं, अब तो बंगाली फ़िल्मोंमें भी अपनी शादीकी बात सुनकर वे भाग नहीं जातीं।

वन्दनाकी माँने नाककी सुनहली कील घुमाकर छोटे-से छिद्रको शायद बेवजह खुजाया और हँसती रहीं। मुकुलको, जो लॉनसे सूखी पत्तियाँ बीनने लगा था, आकर्षित करती हुई बोलीं, "आपके यहाँकी पत्रिकाओंमें-से काट-काटकर न मालूम कितने पहाड़ी चित्र इसने अलबममें इकट्ठे कर रखे हैं।"

बादमें एक दिन अपनी किताबकी अलमारियोंमें बमुश्किल इकट्ठा किये गये नेशनल ज्याग्रफ़िकके पुराने अंकोंमें अनेक पृष्ठोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लेडसे कटा पा उसे बड़ी कोफ़्त हुई। मनमें उबलकर भी उसने अपने नुक़सान और वन्दना तथा नमिताकी हरकतको चुपचाप पी लिया।

■

खास तौरपर आज, यूनिवर्सिटीमें लोगोंसे मिल-जुलकर वह घर लौटनेके सम्बन्धमें काफ़ी जल्दबाज़ हो गया है। वन्दना घरसे जो कपड़े पहनकर गयी थी वे साधारण और ढीले थे। हमेशा ही वह ऐसे कपड़े पहनती है। शायद पहनना पड़ता है। आज उसके कपड़े बिलकुल भिन्न थे। वे आकर्षक, बेहद चुस्त और आश्चर्यपूर्ण लगते थे। सुबह घरसे युनिवर्सिटी जाते समय पहने हुए कपड़ोंका वहाँ कोई परिचय नहीं था।

रास्तेमें दोस्त लोग कुछ और बातें कर रहे हैं। छूटे समयकी वे बातें जिन्हें मुकुलको बतानेके लिए उन्होंने भुलाया नहीं है। छोटी-छोटी बातोंको, ज़िन्दा रखनेके लिए, स्कॅण्डल्स-में तबदील करके उन्होंने पाल-पोस रखा है। सड़कपर सब साइकिल एक क़तारमें नहीं चल सकतीं। ट्रक और कार उन्हें आगे-पीछे कर जाती हैं। सब फिर जुड़ जानेकी कोशिश करते हुए एक दूसरेकी साइकिलोंके समानान्तर होने लगते हैं और शहरकी लोकप्रिय महिलाओंकी शादियों, बरबादियोंके टूटे क्रमको जोड़नेमें शामिल होकर मज़ा लेने लगते हैं।

वह चलते हुए मित्रोंमें भी है और वन्दना-के साथ भी। उसे दोनों जगह रहनेके लिए नाटक करना पड़ रहा है और एक साधारण मेहनत। वन्दनाका क्या होगा, वह व्यर्थकी बातें सोचनेवाला एक मूर्ख मनुष्य है। वह अपनी मूर्खताको नष्ट करनेको फ़िलहाल तैयार हो गया। सोचने लगा, अधिकसे अधिक यह होगा कि कुछ समय बाद वह एक नयी और सरल भाषा बोलने लगेगी, आधुनिकाओंकी भाषा·····"देखिए जी, आप कुछ नहीं देखते, बेबीने बाथरूम कर दिया है! बताइए, मैं क्या करूँ, आया भी तो नहीं है।"

"बेबीने बाथरूम कर दिया है!" कितना मज़ेदार मुहावरा है, इस तरहसे वह पूरा मित्रोंमें शामिल हो गया। अभी आधा ही था। मित्रोंने अभी-अभी कोई रिक्शा देखा है और ध्यान आकर्षित करते हुए वे लगभग चिल्ला-से रहे हैं कि "उसमें बैठा हुआ कोई बिलकुल चक्कू-सा गया है!"

घरपर उसे जीजीने बताया, "हाँ, वह ऐसा करती है। कुछ कपड़े बनवाकर उसने सहेलियोंके पास हॉस्टलमें रख छोड़े हैं, वहीं बदल लेती है, घरमें किसीको पता नहीं। पता लग जाये तो ईश्वर जाने क्या हो। तुम किसी-से कहना मत।" वह पुनः मानवीय हो गया। जीजी उसको पहचानती हुई बोलीं, "क्या करे बेचारी वन्दना भी, बड़े ओल्ड फ़ैशण्ड लोग हैं इसके घरवाले।" उसे याद आया, जब वह युनिवर्सिटीमें पढ़ता था तो एक ताँगेमें आने-वाली सभी मुसलमान लड़कियाँ अपने बुरक़े कम्पनी गार्डेनकी किसी हेजमें छुपा दिया करतीं या कोचवानको सुपुर्द कर देती थीं, जिसे उन्होंने मिला लिया रहा होगा। फिर बेपर्द होकर युनिवर्सिटी आती थीं। लौटते समय बाज़ारोंसे बुरक़ा पहनकर गुज़रतीं और अपने घरवालोंकी पवित्र लड़कियाँ हो जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। उनका निश्चित रूपसे कभी कुछ नहीं हुआ होगा। हाँ, दुःखी रहनेवाले और अफ़सोसग्रस्त लोग वैसेके वैसे ही रह गये होंगे। यह सोचकर वह और गम्भीर हो गया। उसे लगा, वह एक दुःखी व्यक्ति है और यह पूरी तरहसे प्रकट हो चुका है। भयकी बात थी।

जीजी, उसकी, कोई बुज़ुर्ग नहीं हैं, ने प्यार-भरी हथेलियाँ उसके गालोंपर घुमायीं उसके सरके छोटे-छोटे बालोंको उँगलियोंसे पल-भर मसाज-सा किया, फिर सर्वथा लड़ियाते हुए पूछने लगीं, "मुकुल, तू हमेशा सैड-सैड-सा क्यों रहता है? इस उम्रमें तो लड़के ख़ूब स्मार्ट होते हैं! तू गोपालसे कभी नहीं मिला, उसकी और तेरी उम्र लगभग एक ही होगी लेकिन वह बेहद यंग और स्मार्ट है। सुबहसे रात उसके जूते हमेशा खट-खट बोलते रहते हैं।"

वह चुप रह गया और चेहरेपर फीका होता हुआ हँसने लगा। जब जीजी उसे उदास मान ही चुकी हैं और दायित्वका निर्वाह कर लेनेवाले व्यक्तिकी तरह सन्तुष्ट और सुखी हो गयी हैं तो वह कैसे उनकी बातको अस्वीकृत कर दे। सोचा, अपनी बहनके आगे वह खासा पिछड़ गया है।

जाड़ोंमें शाम जल्दी आनी चाहिए लेकिन वह देरसे आयी। इधर अँधियारा छुप जानेसे ही शाम नहीं हो जाती। यहाँ तो आकाशवाणी-टाईम-सिगनल्स, पासके संगीत-विद्यालयसे रम्भाती हुई गायिका-लड़कियोंके स्वरों और स्टोवमें मिट्टीका तेल भरते समय उड़ आने और परेशान करनेवाली बास, शामका अधिक स्पष्ट पता बताती हैं। हरमुनियमवाला संगीत रास्तों, छतों, चारदीवारियोंको लाँघ घरमें घुसने लगता है और ढूँढ़ना पड़ता है कि घरमें अब किस वजहसे रुका जाये जब कि संगीत बाक़ायदा खदेड़ और हड़का रहा है।

वह ड्राइंग रूममें घुसा। वन्दना और नमिता दोनों रेकॅर्ड सुननेकी तैयारी कर रही हैं। मुकुल भाई इस समय यहाँ भी आ सकते हैं—यह बात उन दोनोंको किंचित् आश्चर्यजनक लगी लेकिन कुल मिलाकर यह हुआ कि वे संक्षिप्त तौरपर ख़ुश होकर पगला-सी गयीं। उसने अप्रभावित रहनेकी कोशिश करते हुए वन्दनाकी तरफ़ देखा लेकिन उसे उसकी आकृतिमें कोई फ़र्क़ नहीं मिला। सामान्य, उसका अपनावाला प्रफुल्ल और शुद्ध जनानापन जिसमें सुबह युनिवर्सिटीवाली चतुर वन्दना आभासहीन थी।

नमिताने मुकुलसे, जो अभीतक खड़ा था, बैठनेको कहा—"माई डियर भाई साहब, तशरीफ़ रखिए, देखिए हम अपनी फ्रेण्डके यहाँसे वेस्टर्न म्यूज़िकका एक रेकॅर्ड लाये हैं, कृपया इसको सुनिए और हमारी तारीफ़ करिए।"

कोलम्बियाका तवा रेकॅर्ड-प्लेटपर चकराने लगा। जीजी, वन्दना, नमिता सबने इस नये रेकॅर्डको सुननेके लिए मुकुलसे अलग हो बाजेको घेर रखा है। गोया वे जितना पास होंगी उतना ज़्यादा रेकॅर्डका मज़ा उठा सकेंगी।

ऐसा लगता था, वे सब कोई फ़िल्म देखकर आयी हैं जिसमें नायकने नायिकाके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी हिल-स्टेशनपर मुहब्बत-भरे माहौलमें कोई कर्णप्रिय गीत गाया होगा और घर आते ही एक बर्फ़ीला गाना सुननेकी ज़रूरत इन्होंने महसूस की हो—यह सोचता हुआ वह अपने अन्दरकी मुसकुराहटको ओठोंपर काट रहा है। यह मुसकुराहट प्रकट करने लायक़ नहीं है।

संगीत उन्हें पहाड़ोंपर होनेवाले विण्टर फ़ेस्टिवलके चारों तरफ़ हितकर और सुखद वहशियाने तरीक़ेसे घुमा रहा है। इस सम्बन्धमें वह, पता नहीं क्यों, बड़ा ही रूढ़ि-ग्रस्त और कट्टर होकर महसूस करता रहा है कि बर्फ़का सम्बन्ध कहीं-न-कहीं मौतसे है। लेकिन वस्तुतः वह संसारके ख़ुश और चालाक लोगोंको ग़ैर-ज़िम्मेदार मानता हुआ फिरसे दुःखी हो गया है।

हियर इज़ स्नो,

देयर इज़ स्नो,

ह्वेयर इज़ स्नो ?....

वही रेकॅर्ड, दोबारा था, तिबारा लगा दिया गया है। वन्दना अब टाफ़ेटाके नीले और उस भद्दे-से लगनेवाले टुकड़ेपर कुछ काढ़नेका काम करती हुई पूछती है, "मुकुल भाई, आपने स्केटिंग सीखी है कि नहीं पहाड़पर ?"

"नहीं।"

"और ट्विस्ट ?"

"नहीं।"

"नलिनी पोहनकर कितना उम्दा ट्विस्ट करती थी," वन्दनाने नमिताकी तरफ़ मुड़कर उसके समर्थनकी उम्मीदमें ताका, फिर बिना परवाह किये उसने टाफ़ेटाका नीला टुकड़ा पलंगपर लापरवाहीसे फेंक दिया और उत्साह-में खड़ी हो गयी—"मुकुल भाई, आपको कैसे बतायें, कितनी ग़ज़बकी उसकी ट्विस्टिंग थी। उसने ऊटीमें कहीं सीखी थी। उसके फ़ादर...."

"हट, उसने माउण्ट आबूमें सीखी थी, ऊटीमें नहीं मैंना (वन्दनाका घरू नाम)!" नमिताने तत्परतासे उसे काटा।

"मेरा मतलब है, कहीं पहाड़से ही वह सीखके यहाँ आयी थी, कोई इधर थोड़े ही उसने सीखी है," वन्दनामें अपनेको काट जानेका एक बहुत ही कमनीय और संक्षिप्त तैश था।

नमिता, लगता है, इधर-उधर होना चाहती है। वन्दनामें किसी दूसरे कामकी तैयारी नहीं है, इसलिए वह सुविधासे बैठी है। उसके अन्दर कोई हिचक नहीं है—"मुकुल भाई, हमें तो ट्विस्ट बड़ा मुश्किल लगता है, हमारा तो शेक सीखनेका मन है।"

"शेकमें क्या है, उसे सीखनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती," उसने मज़ाक़िया तरहसे कहा।

"आप शेक जानते हैं ?" वह अपनी जगहपर खड़ी-खड़ी ही उछली।

"मैंने कहा न, उसमें सीखनेको कुछ नहीं है।"

"हय, आप तो कितनी चीज़ें जानते हैं, कितने इण्टेलिजेण्ट हैं!" फिर—"हम लोग कितने अभागे हैं, यहाँ कुछ भी नहीं है।" एकदम ख़ुश होनेके बाद उसपर ज्यों उदासी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का झोंका लद गया हो, "हिल्सपर तो सीखने-का मौक़ा भी मिलता है, यहाँ क्या मुरदा-मुरदा ज़िन्दगी है।"

"नहीं, तुम इधर भी सीख सकती हो। नाचके लिए पहाड़ ज़रूरी नहीं है।" ऊबके बावजूद वह वार्तालाप चला रहा था। शायद यह उसकी भूख रही हो या उम्मीद।

"अपना सर सीखेंगे!" उसका दूसरा जुमला वन्दनाने सुननेकी ज़रूरत नहीं समझी—"दो एक सालमें शादी-वादी हो जायेगी, फिर सब फ़िनिश्ड। मुकुल भाई, रियली यू आर व्हेरी लकी, आपने पूर्वजन्ममें खूब पुण्य किये होंगे, तभी पहाड़पर नौकरी मिली है।" वह खुश हो गयी, ज्यों अभी सब कुछ फ़िनिश नहीं हुआ है या जैसे उसे भी पहाड़पर नौकरी मिल गयी हो।

रेकॅर्डमें रिगरस म्यूज़िकका अन्तिम हिस्सा बजकर अभी-अभी ही ख़तम हुआ है और स्नोकी कमरेमें भरी हुई चीख़ धीरे-धीरे गुम हो गयी है। केवल करेण्टकी हलकी आवाज़ है जो कभी भी बन्द की जा सकती है। मन तो उसका यह हुआ कि लड़कियोंसे कहे, वह ताण्डव भी काफ़ी अच्छी तरह जानता है लेकिन वह चुप रहा। अपने बारेमें निर्मित होती संजीदगीको तोड़कर विनोद करनेका खेल उसने नहीं किया।

उसने अखबार उठाकर खोल लिया। चेहरा छिप जानेपर सोचने लगा, अब क्या करना चाहिए? ज़रा-सा कलाई घुमाकर, घड़ी देखी। बहुत देर नहीं हुई है, अभी वह बाहर निकल सकता है और शायद खुश भी हो सकता है। चित्तकी प्रसन्नता अभी उसके पास बची है। अख़बारके दूसरी तरफ़ वन्दना और नमिता बात किये जा रही हैं। स्लैक्स और जीन्स, पहाड़ोंपर सैर-सपाटेके रोमांच, कुछ नाम-अनाम सहेलियाँ, फ़िल्म्स आदि। कभी कानाफूसी और कभी उत्साहप्रद स्वर-तेज़ी। पहाड़ोंपर स्लैक्ससे बहुत सुविधा होती है, इस सम्बन्धमें दोनोंके बीच कोई विवाद नहीं है। लेकिन वन्दनाके घरवालोंको स्लैक्स असह्य है। उसने आवाज़को निहायत धीमा करके एक छोटा-सा षड़यन्त्रपूर्ण आग्रह नमितासे किया, "तू एक स्लैक्स बनवा न ले। तेरे यहाँ तो कोई कुछ कहेगा भी नहीं, उसे ही हम लोग बदल-बदलकर पहन लिया करेंगे, जब कभी भी हिल्स जायेंगे...."

बीचमें छाये अख़बारकी परवाह न करते हुए अब वह उससे कह रही है, "अबकी अप्रैलमें हम लोगोंको उधर ज़रूर बुलाइए, मुकुल भाई! तबतक हमारे 'एक्जाम्स' भी ख़तम हो जायेंगे। आपके पास तो मकान भी है, आपको क्या दिक़्क़त है?" "हाँ भइया," नमिताने जोड़ा, "वहाँ राइडिंग करेंगे, जीजीके गितारपर तुम्हारी पोयम्स पढ़ेंगे और सन्ध्या मुखर्जीके गाने गायेंगे। फूलोंके गुलदस्ते बनाना सीखेंगे, फ़ोटो खींचेंगे और डान्स..." लय-कारीसे टाटा-टी-टर-टाटाटी करती हुई चुट-कियोंके वज़नपर दो-तीन बार उसने अपनी टाँगें आगे-पीछे फेंकीं और नितम्ब हिलाने लगी। वन्दनाने भी रगोंमें एक उछाल अनु-भव की और मुकुल भाई तथा सहेलीको गहरी नरम नज़रसे देखने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कुछ जबाब नहीं दिया। सिर्फ़ अखबारके दो छोर, जो अभीतक उँगलियोंमें हलके-से लटके थे, मुट्ठियोंमें भिच गये। शामको अखबार कूड़ा हो जाता है यह समझ उसने उसे फ़र्शपर हाथके धक्केसे उड़ा दिया। लड़कियोंके क्रेज़पर उसे कुढ़न हुई। उसने चाहा कि वह कोशिश करके इन स्थितियोंको मौजमें ले सके लेकिन तत्काल यह मुमकिन नहीं हुआ।

वह चिढ़ा रहा। उसे वन्दनाके चेहरेपर बोरियत दिखाई पड़ने लगी और नमिता, अपनी बहनके, चेहरेपर भी। जीजी नहीं थीं अन्यथा उनका चेहरा भी वैसा ही लगता। उसने पाया, वह इन लोगोंसे काफ़ी ऊब रहा है। उसका भविष्य बिगड़ता जा रहा है और अगर वह कोई दिलचस्पी इन लोगोंमें नहीं ढूँढ़ सकता तो कमसे कम फ़िलहाल उसे बाहर ही निकल जाना चाहिए।

एक बार उसने वन्दना और नमिताके चेहरोंकी तरफ़ पुनः देखा, इस लापरवाह उम्मीदमें कि थोड़ा समय बीतनेपर शायद वे अच्छे लगें। वे वैसे ही हलके-फुलके और बोर थे। उसने एक मज़ेदार बात सोची। उसके सामने प्रेमपात्रके चुनावका प्रश्न आये अथवा मनमें प्रेमकी धोखाधड़ीकी बात, तो वन्दनाके स्थानपर उसकी माँसे प्रेम करनेकी कल्पना निश्चित रूपसे उसे अधिक उत्साहित करेगी। ऐसा सोच उसने अपनी ऊबके साथ एक खिलाड़ी व्यक्तिकी तरह व्यवहार किया।

"अच्छा भाई हम चलते हैं!" वह उठ पड़ा।

"कहाँ? वहीं!"

एकाएक वह समझा नहीं। भाइयोंको ज़बरदस्ती कहीं मुहब्बतमें गिरफ़्तार मानकर चलनेवाली फ़ैशनेबुल और दोस्त बहनोंकी तरह वे दोनों मुसकराने लगीं, जिसमें मध्यम-वर्गीय संस्कारोंवाली मुसकराहट भी थोड़ा बहुत चिथड़ा होकर अटकी मालूम होती है।

रूखे ढंगसे एक कड़वा और झूठा हाँ कहते-कहते, रुककर उसने व्यंग्यात्मक मुसकराहटकी एक बहुत छोटी लहर अपने अन्दर महसूस की। वह नामालूम-सी प्रदर्शित हुई। मुकुल बाहर आ गया। वे दोनों उसे 'सी ऑफ़' करने-सरीखी मुद्रामें पीछे-पीछे आयीं। चाहा होगा, लेकिन 'गुड लक' कहनेकी हिम्मत उनकी नहीं हुई। अभी वे कच्ची, बनती हुई आधुनिकाएँ हैं। बहुत-से शब्दोंमें उन्हें झिझक होती होगी। फिर मुकुल भाईका कोई मामला-वामला है, इसका उन्हें पक्का पता नहीं, इसलिए 'गुड लक' नहीं हुआ। बाहर म्यूज़िक-स्कूलमें हरमुनियमवाला संगीत ज़ोरोंपर है। लगा, पहलवान लड़कियाँ सरगमपर आरोह-अवरोहवाली कोई कसरत अपनी तन्दुरुस्तीके लिए कर रही हैं।

वन्दना और नमिता अभी भी पहले-सी थम-थमके मुसकरा रही हैं और दरवाज़ेपर खड़ी उसको भाँप रही हैं।

वह बाहर आ गया।

इन लड़कियोंकी मुसकराहट बहुत चालाक और समझौता करनेके उद्देश्यसे भरी हुई है। उसे लगा, दोनों कहीं प्रेम करना शुरू कर चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेतरतीब

कहानी

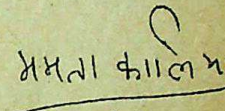

[ममता कालिया
पहली रचना : १९५७]

■

उन्हें बहुत बुरा लगा था। अचानक मूड खराब हो गया और उठ दिये। आकर बैठे तबसे वे उसके अभिनयकी तारीफ़ कर रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देरमें वे याद करते—"और ग़ुस्सेसे काँपनेवाले सीनमें तो कमाल कर दिया तुमने!", "पता है, उस वाले सीनमें तुम्हारे लगातार हँसनेपर पास बैठी लड़कीके आँसू निकल आये!" वह संयत मुसकानके साथ हर बार 'ओ' 'ज़्यादा कुछ नहीं' आदि कहता रहा। वे देर तक इन्तज़ार करते रहे थे, फिर खूब असन्तुष्ट हो चले गये। उनके मुड़ते ही आनन्द पिघल गया। मन हुआ, उन्हें पुकार कर वह एक साँसमें वह सब कह दे जो सुननेके लिए वे इतनी तामझाम कर रहे थे। पर उसने उन्हें जाने दिया। लोग तारीफ़ दूसरोंकी तरफ़ ऐसे फेंकते हैं जैसे शटलकॉक। प्रतीक्षा करते रहते हैं उसके वापस आनेकी। अगर आप उसी अनुपातमें नहीं देते तो आप उसकी रायमें हमेशाके लिए एक ख़ास सन्दिग्ध जीव बन जाते हैं। वह चाहता तो दो-चार रवायती शब्द कहकर काफ़ी दिनोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें अनुकूल बना सकता था; कॉफ़ी-हाउसमें अगले हफ़्ते कॉफ़ीके पैसे बच जाते, सिगरेटें भी मिल ही जातीं। हो सकता है, एक-दो बार बसकी टिकिट भी। वह अपने फ़ायदे ख़ुद काटता जाता है। छह महीने पहले वह मकान-मालिकसे ज़ीनेकी सफ़ाईपर न लड़ा होता तो उसे पहलीको दौड़-धूप न कर पाँच-सात तारीख़ तक किराया देनेकी सुविधा रही आती। जब पहलीको तनखा नहीं मिल पाती है या छुट्टी पड़ जाती है तो उसे अब उधार लाकर देना पड़ता है। ऐसी बातोंको देखते हुए आनन्द बड़ा असफल आदमी है। जब हम अपने प्रति ईमानदार रहना शुरू करते हैं, हम सिर्फ़ अपने तक ही रह पाते हैं, हमारा सारा सफ़र हमसे शुरू होकर हमीं तक ख़त्म हो जाता है। यहाँतक कि कभी-कभी महसूस होने लगता है कि दूसरेकी क़ीमतपर अपने प्रति ईमानदार रह सके हैं। कभी-कभी उसे ख़ुशी होती है, उसने अबतक शादी नहीं की। घरमें माँ-बापने बहुत बार आदर्श मौक़ोंपर—सब्ज़ी काटते, अख़बार पढ़ते—उससे कहा कि अब उसकी शादी हो जानी चाहिए। इस बातसे वह भी सहमत था पर उसने अभीतक यह निश्चय नहीं किया था कि शादी करनी चाहिए या होनी चाहिए। 'होनेवाली शादीसे' उसके शरीरके कुछ हिस्सोंकी ज़रूरतें पूरी हो सकती थीं पर दिल और दिमाग़के हिस्सोंकी ज़रूरतें पूरी होतीं इसमें उसे शक था। जिस दिन शरीरके कुछ हिस्से उसे अधिक परेशान करते वह सोचता, दिल और दिमाग़को बिना बाँटे जिया जा सकता है, शादी 'हो' जानी चाहिए। पर फिर वह दिमाग़ी कसरतके क्षणोंमें इस बातको नकार देता और अपने प्रति ईमानदार बना आता।

उनके जानेके बाद वह देर तक बिस्तरपर पड़ा रहा। खिड़कीसे सटी गलीसे एक ख़ास समपर, बराबर, रस्सीके टपनेकी आवाज़ आ रही थी। उसे पता था, वही आठ-दस सालकी लड़कियाँ रस्सी कूद रही थीं जिनमें उसे कोई रुचि नहीं। इससे बड़ी लड़कियाँ खुलकर नहीं कूदतीं और उनमें उसे रुचि हो सकती है। वह लेटा-लेटा अनुमान लगाता रहा, कितनी लड़कियाँ खेल रही हैं। जो अकेला रहता है उसे मन बहलानेके साधन स्वयं जुटाने पड़ते हैं। रस्सीका सम चार बार टूटा तो उसने सोच लिया, चार लड़कियाँ हैं!

प्यास लग रही थी पर उसने पानी नहीं पिया। देखता रहा, कितनी देर बिना पिये रहा जा सकता है। पानी पिये बिना इतनी देर भी रहा जा सकता है, यह अनुभव करते, ऊबकर वह पानी पी आया।

उसे शाम, कला-केन्द्रमें जाना था। आयका कुछ हिस्सा 'सर' कलाकारोंमें बाटेंगे। वह जानता है, फिर सन्तोष नहीं आयेगा और 'सर' उसका हिस्सा आनन्दके हाथपर रख देंगे। वह इस स्थितिसे बचना चाहता आया है पर सन्तोषने 'सर'से इतनी सहजतासे कह रखा है, 'सर', आप इन्हें दे देते, मुझे सहीसलामत मिल जाता है।' यह याद आते ही आनन्दको ढेर थकान आ गयी। फिर वही खींचतान, घण्टों बेमतलब बहस और वही उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीन-रूममें उसकी गोदमें लगभग लेटते हुए कहना—'अरे ठीक है आनन्द !' वह आनन्द-से पैसे नहीं लेती—यह बात कोई और नहीं जानता। शायद जान ले तो चालाक माने उसे, कि वकील साहबकी सारी जायदाद उसकी हो सकती है, पर वह थककर ऐसा करता है। वह सन्तोषसे ऐसी बहस नहीं कर सकता कि वह चॉकलेट खाती चिपचिपी आवाज़में कहती जाये—'आनन्द ! प्लीज़, अपना तो यह कॉमन-पूल है, चार दिन कॉफ़ी पिला देना तुम, बस हिसाब साफ़।' आनन्दको लगता है, सन्तोष उसे धागेका बेतरतीब ढेर समझती है, हर बात-में उँगलीपर एक गज़ ढील और लपेट लेती है। आनन्दने 'सर' से पिछले साल कहा था, 'सर, यह पंजाबी उच्चारण स्टेजपर चल नहीं पायेगा।' सर बोले, 'भई, इसके फ़ादर केन्द्र-को ग्राण्ट देनी बन्द कर देंगे। छोटे-मोटे रोल दे दिया करेंगे किसी तरह।' इन फ़ादर साहब-ने लड़कीको मुक्त छोड़ रखा है ठौर ढूँढ़नेके लिए। पहले कुछ साल स्वयं मेहनत की, फिर जैसा सब पिता करते हैं, गुपचुप 'एक्स्क्यूज़ मो' की मुद्रामें परे हट गये। सन्तोषजी एक तो इतनी मोटी, ऊपरसे उम्र, पुराने इला-स्टिक-सी बढ़कर लटकनेवाली। केन्द्रके हर छात्रपर उसकी मेहरबानी रह चुकी। आनन्द-से उसकी एक शिकायत—'आनन्दजी, आप घर नहीं आये कभी ?' या प्रश्न—'क्यों, प्लाज़ामें क्या चल रहा है इस हफ़्ते ?' या गिला—'तुम बड़े पैसिव हो आनन्द !' आनन्द-की तीव्र इच्छा होती, कह दे—'आप फिर इतना ऍक्टिव क्यों हैं सन्तोष बहनजी ?'

लेटे-लेटे आनन्द हज़ारों बेतरतीब बातें सोचता रहा। मान लो, कलसे वह रोज़ मकानदारको आगे-पीछे निकलते हर बार 'सतश्री अकाल' करना शुरू कर दे, तो स्थिति कितनी भिन्न हो जाये। फिर वह पहलीको किराया लेकर जाये तो वह दाढ़ी सहलाते बोले, 'कोई गल नहीं जी, फिर आ जाता।' तारीफ़को शटलकॉककी तरह उछालनेपर वह संवाददाता अख़बारमें कहीं बीचमें डाल देता—'श्री आनन्द अपने भावपूर्ण अभिनयके कारण सफलतम रहे।' और मोटी सन्तोषको वह हँसीमें भी छू दे तो वह उसे उसी वक़्त टैक्सी-में भरकर अपने बेडरूममें डलवा ले और उसके आवास-प्रवास-सहवासकी निःशुल्क व्यवस्था हो जाये।

आनन्द तैयार होकर बाहर निकला। बहुत देर तक स्टॉपपर खड़ा रहा, बस नहीं आयी। उसे खुशी हुई कि बस नहीं आयी क्योंकि अब वह स्कूटर ले सकेगा। स्कूटरकी बदहवास गति उसे प्रिय है। स्कूटरमें उसे महसूस होता है—उसकी सामर्थ्य बढ़ गयी है। उस शहरमें निरुद्देश्य नहीं घूमा जा सकता। घरसे निकलते ही एक उद्देश्य सामने होता है—सवारी मिलनेका।

वह बहुत देर तक 'विस्टा' पर टहलता रहा। वहाँ उसकी तरह निरुद्देश्य घूमनेवाले कम ही थे। कुछ जवान लड़कियाँ सिर्फ़-चॉक-बार खानेके इरादेसे आयी थीं, उन्हें पानीमें डूबी मर्करी रोशनी, नाइलॉनके तारों-सी नरम घास, किनारे औंधी पड़ी नन्हीं-नन्हीं नावें—कुछ नज़र नहीं आ रहा था। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग वहाँ प्रेम करनेके खयालसे आये थे और आँख बचाकर गाहे-बगाहे अपनी प्रेमिकाको कहीं सहला देते। आनन्द देर तक यों ही अनमनाया उनकी प्रेमिकाओंके चेहरोंपर आती मुसकराहटें नोट करता रहा, हरेकके प्रेमकी मियाद मापता रहा। काफ़ी थक लेनेपर वह कृषि-भवन तक पैदल आया। उसे कला-केन्द्र पहुँचनेके लिए यहाँसे सीधी बस मिल जानी थी। बस-स्टॉपपर भीड़ थोड़ी थी। उनमें-से कुछेकके हाथोंमें तीन-तीन किताबें थीं जिससे ज़ाहिर था वे ब्रिटिश-काउन्सिल-लाइब्रेरीसे आ रहे थे; कुछ हाथोंमें दफ़्तरके मोटे बैग लटकाये थे। दूरसे भ्रम हो सकता था ये किसी महत्त्वपूर्ण पदका भार घर ढोकर ले जा रहे हैं पर, दरअसल, वे खानेके खाली डब्बे और दफ़्तरकी स्टेशनरी ले जा रहे थे।

वह बीस पैसेकी टिकिटको मोड़ता-तोड़ता बसमें बैठा रहा। केन्द्रका स्टॉप आनेपर उठता-उठता वह बैठ गया। उसे आलस आ रहा था। सोचता रहा, अगर रास्तेमें चेकर नहीं आया तो इन्हीं बीस पैसोंमें वह चालीस पैसोंकी दूरी, घर तक, नाप सकेगा।

■ ■

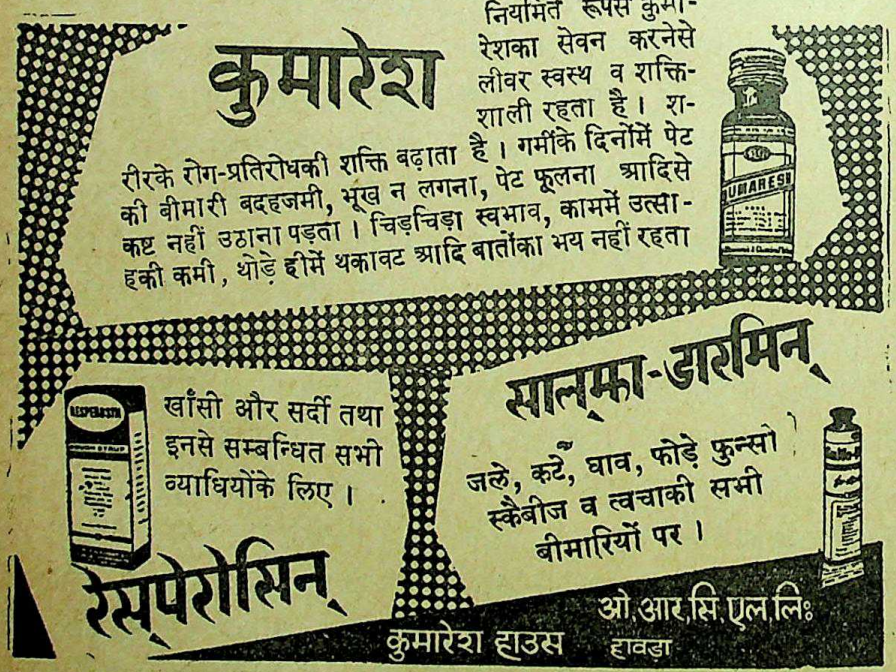

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क ल से पहले

गंगाप्रसाद विमल

[गंगाप्रसाद विमल
पहली रचना : १९५८]

वहाँ सामने मंचपर तीन कुरसियोंके बीच घिरा एक आदमी बैठा है। मैं उसे जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि अब, जब कार्य-क्रम आरम्भ हो चुका है, चाहे मैं थोड़ी देरसे पहुँचा हूँ, वे लोग उस आदमीके ही बारेमें कहेंगे। उस आदमीके बारेमें वह सब भी कहेंगे जो उन्हें स्वयं पता नहीं है।

इस कार्य-क्रममें आनेकी मेरी इच्छा नहीं थी। इधर जबसे मैंने अपने मनोरंजनकी और तरकीबें निकाल ली थीं तबसे मैं ऐसे आयोजनोंमें जानेके लिए अपनेको तैयार नहीं कर पाता। परन्तु वे लोग मेरे पास आये थे, जो इसका आयोजन कर रहे हैं, और बिना मेरी रुचिका ध्यान रखे उन्होंने मुझे विवश किया था कि मैं अवश्य चलूँ। इसे सिर्फ़ विवशता कह देनेसे काम नहीं चलेगा। विवशताके साथ-साथ यह सब कुछ, यहाँतक कि उन्हें मुझे चलनेके लिए कहना भी इतना बेहूदा था कि सिवाय उनकी बात मान लेनेके मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था। आप अपनी सुविधाके लिए इस प्रसंगमें यह मान लें कि मैं कोई ताक़तवर आदमी नहीं हूँ। मेरी बाँहें सूखे बाँसोंकी तरह लम्बी जरूर हैं लेकिन मैंने कभी इस ओर ध्यान देकर वर्जिश नहीं की और मेरी आवाज़में मिलट्रीके आदेशोंकी तरह सख्ती भी नहीं है। आप यह मान लें कि वे मुझे इसी वजहसे ले जानेमें समर्थ हुए तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि दुनियामें ये ही बातें अब आश्चर्यकी रह गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उस आदमीको जानता हूँ, जिसके बारेमें यह आयोजन किया गया है। उन्होंने मुझे कहा था कि शहरके सम्भ्रान्त नागरिक उस आदमीका अभिनन्दन कर रहे हैं और सभी सम्भ्रान्त नागरिकोंकी उपस्थिति अनिवार्य है। उनके दो बार सम्भ्रान्त शब्द कहनेपर मैं अचकचा गया था और जीवन-में पहली बार मैंने एक शब्दसे अपनेको परास्त पाया, या यों कहूँ कि अच्छे शब्दोंसे अपनी संगति नहीं पायी। मेरी स्थिति स्वयंके लिए विचित्र हो गयी थी और मैं निर्णय नहीं कर पाया था। मैंने सोचा, ऐसे विशेषणोंसे लड़ना कितना मुश्किल है!

जब मैं बड़े कमरेमें पहुँचा था तो सामने-के मंचपर वह घिरा हुआ बैठा था और कार्य-क्रम शुरू हो चुका था। मैंने ग़ौरसे देखा तो पाया कि तीन कुरसियोंके पीछे कुरसियों-की एक पंक्ति और है जिसमें कोनेकी एक कुरसीपर उसकी पत्नी बैठी हुई है। उसकी पत्नी बूढ़ी ज़रूर हो गयी है पर वह कुरूप नहीं थी। वह एक ओर झुककर बैठी हुई थी। इससे उसे देख पानेमें कोई दिक़्क़त मुझे नहीं हुई थी। 'वह' भी कुछ सिकुड़ा हुआ बैठा था और मैंने अनुमान लगाया कि वह भी अवश्य इस विचित्र स्थितिमें बैठकर कुछ महसूस कर रहा होगा। मुझे इस बात-का क़तई आश्चर्य नहीं है कि लोग उसका अभिनन्दन कर रहे हैं और वे उसकी सराहना कर रहे हैं, यह इतनी साधारण बात थी कि मैंने मान लिया था कि आयोजकों और सम्भ्रान्त नागरिकोंके पास करनेके लिए और कोई ठोस काम नहीं था। मैं कल्पना कर लेता हूँ कि जब उस आदमीको उन्होंने कहा होगा कि हम आपका अभिनन्दन करना चाहते हैं तो वह कितना हँसा होगा। ये बातें उसके लिए निश्चित ही अर्थहीन थीं किन्तु अब वह वृद्ध हो गया था और उसमें शायद एक तरहकी सम-दृष्टि आ गयी होगी या कुछ भी हो सकता है।

मेरी बग़लमें जो आदमी बैठा था वह उसके बारेमें जाननेको बेहद उत्सुक था, किन्तु अभीतक जो लोग मंचपर आकर भाषण दे रहे थे वे उसके बारेमें कुछ ऐसी बातें नहीं कह रहे थे जिनसे जिज्ञासु आदमी तृप्त हो सकें। वे उसी तरहसे औपचारिक शब्दोंकी शृंखलाएँ बाँधे जा रहे थे जिन्हें थोड़ा बदल कर आप किसीकी मृत्युके अवसरपर भी कह सकते हैं।

मैंने उस आदमीको कहा कि मैं मंचपर बैठे हुए, उस सिकुड़े हुए बूढ़ेका परिचित हूँ और हम एक अरसेसे एक-दूसरेको जानते हैं। मेरे यह कहते ही वह प्रसन्न हुआ और कुछ पूछनेके लिए पूरी तरहसे तैयार हो गया। मैंने उसे बताया कि हम लोग ऐसी जगह बैठे हैं जहाँ हमें बातें नहीं करनी चाहिए।

थोड़ी देर हम भाषण सुनते रहे। बादमें उस आदमीने मेरे कन्धेपर हाथ धरकर कहा कि यदि मुझे कोई ऐतराज़ न हो तो हम लोग पीछेकी सीटपर बैठ चलें। मैं जानता था वह मुझसे कुछ पूछना चाहता था। और कोई अवसर होता तो मैं उसे कहता कि पीछे जाना ठीक नहीं किन्तु मैं उस आयोजनसे इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घबरा गया था कि थोड़ी देर बाद मैं ज़ोर-ज़ोरसे चीखने लगूँ, ऐसा भी हो सकता था।

हमलोग चुपचाप पीछेकी सीटोंपर आ गये। वहाँतक भाषण देनेवालोंके शब्द उतने तीखे और साफ़ नहीं आ रहे थे और वहाँपर हम लोगोंसे घिरे हुए भी महसूस नहीं कर रहे थे।

मैंने सोचा, इस आदमीने अगर मुझसे पूछना शुरू किया तो कहीं यह न हो कि अवसर देखकर यह भी अपना भाषण देना आरम्भ कर दे। इसलिए मैंने उसे स्वयं ही बातें बतानी आरम्भ कीं। वह इस तरह चुप बैठा हुआ था जैसे उसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण यही हो और मेरे लिए आश्चर्य तथा क्षोभका प्रश्न था कि आखिर यह आदमी क्यों दूसरोंमें दिलचस्पी ले रहा था। लेकिन, जैसा मैंने आपको बताया, उस आदमीसे बातें करते हुए मुझे नहीं लग रहा था कि मैं किसी आदमीसे बात कर रहा हूँ अपितु मुझे एक मज़ेदार अनुभूति हो रही थी कि जीवनमें इस क्षण मैं दीवाल और जड़-वस्तुओंसे भी बात कर सकता हूँ।

मैंने उसे उस आदमीके बारेमें थोड़ी-थोड़ी परिचयात्मक जानकारी दी। बादमें मैंने सोचा, यह कोई सहज आदमी लगता है और निश्चय ही यह उन प्रसंगोंमें दिलचस्पी लेगा जो इसके लिए विचित्र थे। यह बात सच भी थी किन्तु सहज ही इसको सच माननेके लिए कोई तैयार नहीं भी हो सकता है।

"आप शायद नहीं जानते कि उसकी बीवी, जो पीछे बैठी हुई है, इससे पहले एक ऐसे आदमीकी बीवी रह चुकी है जो आजकल जेलमें सज़ा भुगत रहा है।"

उसके चेहरेमें आश्चर्यका भाव आया और उसीके साथ जाननेकी इच्छा लिए एक तरलता भी तैर आयी।

"उन दिनों मैं नया-नया यहाँ आया था और मेरा उससे नया परिचय हुआ था। हम लोग एक छोटे शहरमें अचानक परिचित हो गये थे और अकसर एक-दूसरेके घरमें ही अधिकतर वक़्त बिताते थे। वह एक अख़बार-में काम करता था और मैं अपना पुराना शहर छोड़ यहाँ आया था। एक दिन जब हम लोग दोपहरको गप्पें लगा रहे थे कि एक महिला कमरेके दरवाज़ेपर खड़ी दिखाई दी। उसने पहले मुझे बुलाया और कहा कि उसके पतिको सुबह-सुबह पुलीस पकड़कर ले गयी है और इस शहरमें उसका पतिके अलावा कोई और आदमी नहीं है।....वह महिला पर्याप्त सुन्दर थी और उसके कहनेमें एक दय-नीयताका भाव था। मैंने उसे कहा था कि मैं तो सहायता नहीं कर पाऊँगा लेकिन मेरा एक दोस्त अख़बारमें काम करता है, शायद वह इस मामलेमें कुछ सहायता करे। उस दिन शाम तक हम लोगोंने काफ़ी प्रयत्न किया किन्तु उसके पतिको छुड़ा नहीं सके। वह अपराधोंकी एक लम्बी शृंखलासे सम्बद्ध था और पुलीस उसे छोड़कर कोई ख़तरा नहीं उठाना चाहती थी। बादमें बहुत सामान्य तरीक़ेसे वह अपना घर छोड़कर हमारे साथ रहने लग गयी थी। हम दोनोंने उसके आ जानेके बाद एक ही जगह रहनेका निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और वह एक तरहसे हम लोगोंके परिवारके घेरेमें आ गयी थी।

"उसके पतिपर मुक़दमा चल रहा था और हम लोग अक्सर उसके पतिकी सहायता करते रहते थे किन्तु अन्तमें उसे तीन वर्षकी कड़ी सज़ा हो गयी थी और हमने उसे तथा उसकी पत्नीको तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करनेकी सलाह दी थी।

"शहर बहुत छोटा था, उन दिनों तो आप जानते हैं यहाँ कोई अच्छा होटल और क्लब भी नहीं था। हम लोग जल्दी ही बदनाम भी हो गये थे। परन्तु इससे कोई फ़र्क़ हम लोगोंपर नहीं पड़ा। मेरे दोस्तकी अखबारकी नौकरी ज़रूर छूट गयी थी लेकिन तबतक वह इतना अच्छा लेखक बन गया था कि उसके सामने कोई समस्या नहीं रह गयी थी। हम लोग बहुत ही नीरस जीवन जी रहे थे। दो वक़्त खाना खाना और दो वक़्त घूमना, इसके अलावा हमारे पास कोई और क्षेत्र नहीं था। हम बदनाम इतने थे कि शहरका कोई भी व्यक्ति हमसे नहीं मिलता था। यह नीरस जीवन हम जीते रहते तो कोई बात नहीं थी। हम लोग ऐसे भी अभ्यस्त हो गये थे। पर अचानक एक दिन एक घटना घट गयी थी, हमारे साथ रहनेवाली महिलाके साथ किसी ऊँचे अधिकारीने बलात्कार किया····। वह रात मैं कभी नहीं भूलूँगा! आप जानते हैं, ऐसी भयानक स्थितिमें हम लोग कर भी क्या सकते थे। रातको जब वह महिला लौटी थी तो उसके कपड़े फटे हुए थे और चेहरेपर जगह-जगह काट खाने जैसे दाग़ थे। वह रात-भर रोती रही, हम लोग कुछ नहीं कर सकते थे, सिवाय इसके कि हमने उसे यही कहा कि उसे यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए और उस अधिकारीके खिलाफ़ रिपोर्ट कर देनी चाहिए। आपको आश्चर्य होगा, सुबह हम उसकी रिपोर्ट करने जा ही रहे थे कि हमारे दरवाज़ेपर शहरके बहुत सारे लोग खड़े थे। वे हमें पीटना चाहते थे और हमें शहर छोड़नेके लिए कह रहे थे। जहाँतक मेरा खयाल है, यह सारी तजवीज़ उन अधिकारी महोदयकी थी जिन्होंने यह घृणित कार्य किया था। उस महिलाने हमें बचाया था, यह हम नहीं भूलेंगे। उसने सारे लोगोंके सामने सच्ची बात बतायी थी। वे अधिकारी साफ़ बच निकले थे और हम उस नीरस जीवनमें कुछ घटनाएँ अपने साथ लिये जी रहे थे। इसी बीच मँहगाई और आर्थिक विषमताने हम लोगोंको काफ़ी परेशान किया था लेकिन ये बातें बराबर हमें आसानीसे नीरस जीवन जीते रहनेका बल देती थीं।

"इसी बीच मुझे एक बार कुछ दिनोंके लिए बाहर रहना पड़ा था और जब मैं लौटा था तो मेरा मित्र और वह महिला परस्पर पति-पत्नीके रूपमें मेरे सामने आये थे। मुझे इस बातकी ख़ुशी हुई थी, और जानते हैं, इस ख़ुशीमें उनके न चाहते हुए भी मैंने घर बदल लिया था।····

"क्या आपको इन बातोंसे रुचि मिल रही है?" मैंने बीचमें पूछा।

उसने अत्यन्त तृप्त भावसे स्वीकारमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर हिलाया।

"मैं आपको यह बताना तो भूल ही गया कि जब हम उस महिला और उसकी शादीके प्रसंगकी सूचना देने महिलाके पतिके पास जेल गये थे तो उस दिन वह बीमार था। फिर भी हमने उसे वह सूचना दी थी, और उदास और बीमार होनेके बावजूद उसने पितृ-स्नेहसे उन दोनोंको आशीष दिया था। बादमें उसके छूटने तक हम जब-जब उसे जेलमें मिले हैं तो उसने अत्यन्त सहज भावसे यह स्वीकारा था। वह सिर्फ़ इतना कहता था कि उसका भाग्य प्रबल नहीं है। मैं नहीं जानता कि वह भाग्यकी इतनी बात क्यों करता है। उन लोगोंकी शादीके तीन महीने बाद ही उसे जेलसे छुट्टी मिल गयी थी क्योंकि जेलमें उसका व्यवहार सदैव अच्छा रहा था।....वह जब जेलसे छूटकर आया तो सीधे मेरे पास आया था। उसने एक तरहसे मेरे पास ही रहना शुरू कर दिया था। और हम लोग दोस्तोंकी तरह रहते थे। अचानक एक दिन वह फिर गिरफ़्तार हो गया था। यह तो मुझे बादमें पता चला कि वह उस अधिकारीकी हत्याके अभियोगमें गिरफ़्तार हुआ है। बादमें पुलीस-अधिकारियोंने हमें भी उसमें लपेट लिया था लेकिन हमारे खिलाफ़ कोई सबूत नहीं था।"

"क्या, ये जो बातें आप कह रहे हैं, ये सब सच हैं?"

मुझे उसके इस प्रश्नपर आनन्द आया। मैंने सोचा, इसके लिए ये सब बातें आश्चर्य-जनक और अविश्वसनीय हैं।

"क्या अब हम लोग भाषण नहीं सुनेंगे?'

उससे बात करते काफ़ी देर हो गयी थी, इसलिए मैंने स्वीकार कर लिया। मैं चाह रहा था कि यह आयोजन कितनी जल्दी खत्म हो और मैं अपने घर जाऊँ।

सामने मंचपर मैंने उसकी ओर देखा। वह अब काफ़ी बूढ़ा लगने लगा था। अब वह बूढ़ा ही नहीं, कुछ-कुछ कुरूप हो गया था और यह एक अच्छी बात थी कि इस शहरके लोग एक बूढ़े और कुरूपका अभिनन्दन कर रहे हैं।

जो वक्ता भाषण दे रहे थे वे इतने मूर्ख लग रहे थे कि मुझे लगा था, कहीं वह वृद्ध उठकर उन्हें पकड़ न ले, पर मैं जानता था, अब उस वृद्धमें इतना ज़ोर कहाँ है?

"आप काफ़ी दिलचस्प आदमी लगते हैं!" बग़लमें बैठे हुएने कहा।

मैंने देखा वह अविश्वासकी दृष्टिसे मुझे देख रहा था।

आयोजन खत्म हो जानेके बाद बाहर वह वृद्ध मुझे मिला और उसने सिर्फ़ इतना कहा कि "कभी-कभी अपमान करानेमें भी मज़ा आता है।" तभी मैंने देखा कि जो आदमी मेरी बग़लमें बैठा हुआ था वह अपने एक साथीको मेरी ओर इशारा कर कुछ बता रहा था।

मुझे यह सब नाटकीय लग रहा था। परन्तु उस आदमीके अविश्वाससे भरी आँखें जब भी सामने आती हैं मुझे लगता है कि आजकी शाम कलसे बेहतर रही है।

मैं धीरे-धीरे घरकी ओर आने लगा। शाम हो गयी थी और मुझे हलकी-सी खुशी हुई कि कल तारीख दूसरी होगी। ■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी कथा-साहित्यकी
प्रामाणिक और
महत्त्वपूर्ण
उपलब्धियाँ

सत्रह उपन्यास

- अपने-अपने अजनबी : 'अज्ञेय'
- शतरंजके मोहरे : अमृतलाल नागर
- जुलूस : फणीश्वरनाथ रेणु
- ग्यारह सपनोंका देश : सं०-लक्ष्मीचन्द्र जै
- सूरजका सातवाँ घोड़ा : धर्मवीर भारती
- शह और मात : राजेन्द्र यादव
- अठारह सूरजके पौधे : रमेश बक्षी
- पीले गुलाबकी आत्मा : विश्वम्भर 'मा
- जो : डॉ० प्रभाकर माचवे
- महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सु
मि

- तीसरा नेत्र : आनन्दप्रकाश जैन
- रक्त-राग : देवेशदास
- राजसी : देवेशदास
- संस्कारोंकी राह : राधाकृष्ण प्रसाद
- मुक्तिदूत : वीरेन्द्रकुमार जैन
- पलासीका युद्ध : तपनमोहन चट्टोपाध्याय
- गुनाहोंका देवता : धर्मवीर भारती

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, क
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराण

विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

देशके
सभी अच्छे
पुस्तक-विक्रेताओं-
से प्राप्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्रहीन

सुधा अरोड़ा

[सुधा अरोड़ा
पहली रचना : १९६५]

■

संगमरमरी फ़र्श-सीढ़ियाँ। खुला-बड़ा हॉल—इतना कि अपने अतिरिक्त छोटे होनेका एहसास हो आया था और मैं फ़र्श-देखते चलने लगी थी। या तो चुप बहुत थी या मैं चप्पलें घसीटकर चल रही थी कि मेरे चलनेकी आवाज मुझे सुनाई दे रही थी।

मैंने देखा नहीं था, पर मुझे मालूम था कि दायें-बायें गोल टेबल-कुर-सियाँ हैं, क्योंकि वे हमेशा वहाँ होती थीं और नहीं होतीं तो मेरा ध्यान उस ओर जाता ही।

मैंने अपनी साड़ीकी ओर देखा था।
इसने पूछा था—"यह पहले कभी तो नहीं पहनी तुमने ?"
"हुँ ऽ ऽ ऽ, शायद नहीं—शायद क्या, नहीं ही पहनी।"
"तो ठीक है।"
"क्यों ?"
"यानी वह आज पहली बार तुम्हें इस साड़ीमें देखेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे लगा था किसीकी आँखें मुझपर हैं। कोई लगातार हमारी ओर देखता हो तो उस ओर न भी देखो तो पता लग जाता है। और एक हाथ उठा था। परिचित। बुलाता-सा। मैं झेंप गयी थी। उस-तक जानेमें पाँच बार चप्पलोंकी आवाज़ होती।

बायीं ओरकी कुरसीमें वह अकेला।

इसने फिर कहा था—"वह तुम्हें बहुत पहलेसे देख रहा था।"

"यानी जब मैं दरवाज़ेसे घुसी ?"

"हाँ।"

"मैं न जाने क्या-क्या सोचते आ रही थी और उस सोचनेमें कैसे-कैसे चेहरे बने होंगे, और मेरी चाल····चप्पलें घसीटकर चल रही थी मैं। उसने इतनी देरमें ज़रूर सोच लिया होगा कि कैसी मूर्ख प्रेमिका है—चलना भी नहीं आता।"

"सोचा होगा।"

"और इतनी देरमें उसने मेरी अतिरिक्त दुबलाई देखी होगी।"

"देखी होगी।"

मैं उसके सामने थी। उसके हाथकी मैगज़ीन वैसी ही खुली। उसने जैसे भी कपड़े पहने हों पर वह उम्रसे छोटा लग रहा था।

कुछ बोलना ज़रूरी था—जो भी वाक्य बना—लड़खड़ाती जबानसे कह दिया—"बहुत देर हो गयी तुम्हें आये ?"

"दस मिनिट हुए होंगे।"

"ओ'। मैंने सोचा—इतनी जल्दी तुम नहीं आओगे।"

"यह देखो, काफ़्काका ३८ पन्नोंका लम्बा ख़त····"

(अपनी प्रेमिकाके नाम ?)

"मैं उसे कह आती हूँ कि तुम्हारे साथ जा रही हूँ।"

"किसे ?"

"उस····'स-खी' को !"

"जाओ।"

अन्दर जाकर ज़बरदस्ती पाँच मिनिट लगा दिये थे। लौटी तो उसके साथ ही कोई 'साथ पढ़ती लड़की' मैगज़ीन देख रही थी।

"नमस्कार !" मैंने उससे ही कहा था पर उस तथाकथित लड़कीको दिखानेके लिए किया था। वह चौंका था।

" ? " उसने मुँह पोंछकर नमस्कार उतार दिया।

"चलो।" शब्द गलेसे नीचे ही रह गये थे।

हम बाहर थे। और अधिक खुलापन। हम दो थे इसलिए दो अतिरिक्त छोटी ऊँचाइयोंका एहसास नहीं हुआ था।

खूब हरा-भीगा लॉन। दूर कमलके फूलोंवाला छोटा-सा पोखर।

किनारे लगे इतने सारे गुलाबके लाल-सफ़ेद-गुलाबी, खिले-झड़े फूल। कमलके फूलोंके ऊपरवाला पुल।

मैंने आदतके अनुसार ललचायी आँखोंसे गुलाबके फूलोंको देखा था।

इसने कहा था—"अभी वह पूछेगा कि तुम बीसवीं सदीमें आकर भी गन्धों और फूलोंका मोह नहीं छोड़ पायी ?"

"पूछने दो, कह दूँगी मैं—मुझे फूल बेहद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसन्द हैं। यहाँ माली न होते तो···"

मैंने उसे प्रकटमें कहा था—"सुनो, यहाँ माली न होता तो ये गुलाबके फूल तोड़ लेती मैं।"

"और यहाँ ये आँखोंवाले लोग न होते तो मैं तुम्हारा मुँह गुलाबके फूलोंसे भर देता।"—उससे यह शरारती वाक्य बना था।

"क्या मतलब ?"—मैं बन रही थी।

"सांकेतिक भाषा दुहरायी नहीं जाती।"

(मैं चाहती भी नहीं थी कि वह दुबारा बोले।)

"....."

"यह हिन्दोऽऽस्तान है न, यहाँ गुलाब के फूलोंपर पहरे रहते हैं, हर ख़ूबसूरत चीज़ पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं।"

"ख़ूबसूरत हरकतोंपर भी···"

"इन्वर्टेड कॉमावाले प्यार पर भी तो।"

यह सोच रही थी—कभी वह ख़तमें ज़रूर लिखेगी कि छठी इन्द्रिय तो क़रार हो ही चुकी है, प्रेम करनेवाली सातवीं इन्द्रिय अगर ईजाद हो जाये तो माँ-बाप या तो किसी सर्जनसे उस इन्द्रियका ऑपरेशन करवा डालें या उसमें ताले डलवा दें।

वही पोखर। वही घास। वही···

"उस दिन इस पोखरमें कमलके फूल थे, आज हैं क्या ?"

"हुँऽऽऽ" मैंने झाँकते देखा था, "ना, आज नहीं हैं।"

वह आगे पुलपर चला गया था। पीछेसे मैंने आवाज़ दी थी···

"रुक जाओ ना !" कोई एक सस्ता-सा फ़िल्मी गीत याद आ रहा था। शुरू यहींसे होता था···रुक जाओ ना जी···

वह वहीं रुक गया था। मैं उसके पास पहुँची तबतक वह नीचे झाँकने लगा था।

"ऐसा ही एक पुल ज़ूमें है न ?"

"हाँ।"

"देखो, व्वो हमारी परछाईं हिल रही है।"

"हमारा सही रूप है वह !"

'कैसे ?"

"हम ऊपरसे जितने स्थिर दिखते हैं, अन्दर कहीं ऐसे ही कई-कई परछाइयाँ हिलती रहती हैं।"

वह अभी पाश्चात्य विद्वानोंके उद्धरण देने लगेगा, इस डरसे मैं पुलके तख़्तोंके बीच-की जगहसे दिखते धुँधले हिलते पानीकी लकीरें देखने लगी थी।

"कलसे जो नया साल आनेवाला है वह साल भी तो हमारे लिए पुल है।"

उसने हथेली थाम ली थी और मैं सोच रही थी—उसने नये सालकी डायरीमें पहली पंक्ति यही लिखी है—"····यह साल हम दोनोंको जोड़नेवाला पुल है। आ, पाँव जमा-जमा कर चलें।"

दूसरी पंक्ति थी—"सूरज यार है, भविष्य ग़ुलाम।"

.....

और पुल छोड़ते मैंने एक नज़र उस 'यार'पर डाली थी। चमक रहा था (हमारी आँखोंकी तरह)···ग़ुलाम मुझे नज़र नहीं आया था। और हम चुप थे। चुप। चुप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुप····उसने पूछा था—"घर लौटनेकी जल्दी तो नहीं ?"

"है। आधे घण्टेमें लौट जाऊँगी।" मैं रुक गयी थी।

रुकी रह गयी थी और फूलोंको देख रही थी।

"आजकी ज़िन्दगी यहीं गुज़ार देनी है ?" हँसी। "चलो।"

उसने गेट खोला था और हम सड़कपर थे। सामने कलकत्ता था, लॉन नहीं था; परिचित-अपरिचित लोग थे, हथेलियाँ नहीं थीं; रेंगती-अरेंगती कारें थीं, कमलके फूलों वाले पोखर नहीं थे। हम चल रहे थे जैसे चलना एकमात्र उद्देश्य हो—चुप हमारे साथ चल रही थी।

"कहाँ जा रहे हैं हमलोग ?"

उसने जवाब नहीं दिया था····

मैं बोलती बहुत हूँ—यह लग आया था। ऊपरसे चुप भी रहूँ तो अन्दर-ही-अन्दर वार्तालाप होते रहते हैं। चाहकर भी यह आदत छूटती नहीं।

इसने समझाया था—"फ़ुटपाथ चलनेके लिए होते हैं, बातें करनेके लिए नहीं।"

"हुँह !"

बोल ही पड़ी थी मैं—"भई, कहाँ जाना है हमें ?"

"उस अपनी 'इन्वेण्टेड प्लेस'में चलते हैं।"

"वह 'पॉकेट-एडीशन' बोटैनिकल ?"

"नहीं, वह हमारा अपना·····" और उसने अपने नामके आगे बोटैनिकल जोड़ दिया था।

फिर वह आगे। मैं पीछे।

थोड़ी देर बाद उसने पीछे मुड़कर देखा और रुक गया था।

"इस तरह हमें पीछे छोड़कर खुद आगे निकल जाओगे तो कैसे कटेगी ?" बोली थी मैं।

"तुम ही साथ नहीं चल पा रही हो, चीटियों-सी चाल है तुम्हारी।"

"और लोगोंको तो पत्नियोंके साथ चलने में शर्म आती है, तुम्हें प्रेमिकाके साथ चलने में ही····"

उसने फिर कहा था—"उसने लिखा था न तुम्हें, कि मैं तो तेज़ीके साथ आगे बढ़ता हुआ सूर्य हूँ, रुकना मत—नहीं तो पीछे रह जाओगी।"

हमारी बग़लसे कितनी ही कारें गुज़र गयी थीं। हर कार अपनी और हर व्यक्ति परिचित लग रहा था, तो मैं जान-बूझकर उससे पीछे चलने लगी थी।

"उफ़, आज क्या हो गया है तुम्हें ?"

"तुम आगे ही चलो। कोई परिचित मिल गया तो ?"

"तुम भविष्यकी इस-उस आशंकासे इतनी कॉन्शस हो जाती हो कि वर्तमानको भी ठीक से जी नहीं पाती।"

हम अपनी खोजके सामने थे। उस पार्क के मेन गेटपर ताला।

अन्दर काम करता कोई माली। पार्कमें के झूले झूलते वहाँ काम करनेवालोंके बच्चे।

"आज बन्द क्यों है ?"

"पूछ लो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालीने बताया, सालका आखिरी दिन है इसलिए बन्द है।

हम थोड़ी देर वैसे ही खड़े रहे।

"अब ?" हम दोनोंके चेहरोंपर लिखा एक ही प्रश्न।

मैंने मज़ाक़ किया—" 'नो-एण्ट्री' के साईनबोर्ड तो यूँ भी जीवनमें आने ही हैं फिर पहलेसे इनके अनुभव क्यों न हों ?"

"हाँ बन्धु, अपनी राहोंमें तो जगह-बेजगह 'नो-एण्ट्री' के बोर्ड लगा दिये गये हैं।"

"मैं घर जाती हूँ।"

ढीलापन।

"वो····टैक्सी ऽ ऽ ····"

"अरे ?"

टैक्सी। मीटर डाउन।

"किधर जाना है ?"

"चलिए, यही····सीधे····मैदान तक।"

मेरी हथेली उसके पास।

"इधर देखो !"

"ऊँ-हुँ...."

ड्राइवरकी नज़रें सामने वाले मिररसे मुझ तक।

"देखो ना····!"

"क्यों ऽऽ····? नहीं देखते।"

उसने मेरा 'पेट-नेम' पुकारा।

.....

"बस्स ऽ ऽ····"

टैक्सीके झटकेसे रुकनेकी चिरियाहट।

"यह कहाँ उतर गये ?"

"रुपये हैं तुम्हारे पास ?"

"अँ-अँ····होंगे।"

मीटर अप—'फ़ॉर हायर'। टैक्सी-ड्राइवर की पीछा करती निगाहें।

उँगली पकड़कर रोड-क्रॉस।

"यह क्रॉस करते वक़्त हाथ क्यों पकड़ लेते हो ?"

"डर लगता है, कहीं ऐक्सीडेण्ट न हो जाये तुम्हारा !"

"हो जाये तो अच्छा हो, पाप कटे।"

"हुँ।" इस सन्दर्भ पर फ़ुलस्टॉप।

"अच्छा, मान लो, सचमुच हो ही जाये तो ऽ ऽ ?" फ़ुलस्टॉपपर यह वाक्य।

"तो मैं तुम्हें यहीं छोड़ जाता।"

"कैसे ?"

"कहता—कोई लड़की थी, किसीकी यादमें मग्न जा रही थी, मैं नहीं जानता—कौन है।"

"....."

"बस, यहाँ बैठ जायें ?"

"इस गन्दी घासपर ?"

"जनाब, हम तो फ़ुटपाथों पर सोये हैं, आपको इस अच्छी-ख़ासी घासपर बैठनेमें ही संकोच हो रहा है ?"

"यह मैदान घिरा हुआ नहीं है, और फिर कैसे-कैसे लोग यहाँ बैठे हैं !"

"काश, कि हम 'कैसे-कैसे लोग' ही होते। सभ्यताने हमें इन घासोंपर-से भी उठा दिया है।"

"आगे कहीं बैठते हैं····"

आगे। आगे। आगे। खुला-सपाट मैदान। रेसकोर्स पार कर हेंस्टिंग्सकी ओर जानेवाला चौराहा—दूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हर वाक्य लयमें बोलने लगा था—

"अ ऽ ब कहाँ ऽ ऽ ऽ जायें ऽ ऽ ?"

"यह क्या गाने लगे तुम ?"

"गाना गुनाह है ?"

"नहीं, पर सड़कपर गाना तो गुनाह है ही !"

"यह नयी फ़िलॉसफ़ी है। ज़बान है तो गायेंगे ऽ ऽ ऽ ही।"

"हे भगवान !"

"यह ईश्वर-अल्लाह, खुदा—भगवानको हमारे सामने मत याद करो।"

"....."

लगातार चलना और चलना।

"देखो तो, मेरी चप्पलें और तुम्हारे जूतोंमें धूल जमी जा रही है।"

"धूल तो हमारी क़िस्मतपर ही जमी है। फिर जूतों-चप्पलोंमें तो क्यों नहीं जमेगी ?"

"उफ़ ! इतना बड़ा शहर और कोई ऐसी एकान्त जगह नहीं कि ठीकसे चल-बैठ सको।"

"टैक्सी कर लें ?"

"क्यों ?"

"किसी बेहतर जगह चलते हैं।"

"नहीं अब देर हो रही है।"

"चुप्प ! अभी नहीं जाना।"

"जाना है।"

"ज़िद करोगी तो घरसे निकाल देंगे।"

"ऐसा ?"

"पर पहले आ तो जाओ, निकालनेकी इजाज़त मांसे ले लेंगे।"

"वो रही टैक्सी।"

"गैरेज लगा रखा है।"

"रोको तो।"

उसने रोकी और टैक्सी रुक गयी। बोर्ड-बदल।

"हमारे कामों और वर्तमानके रास्तोंमें जो गैरेज और रास्ता बन्द लगे हैं उन्हें भी कोई इस तरह बदल...."

"कित्थे जाना है ?" टैक्सी-ड्राइवर सरदार था।

"आज तुआडी मरजी सरदार जी, कहीं भी ले चलो।"—उसने पंजाबी बोलनेकी कोशिश की थी।

"वाटर गेट ले चलें, पास है।"

"हाँ ऽ ऽ !"

"बड़े मज़ेसे हाँ-आँ-आँ कर दिया, हमें देर हो रही है।"

"आओ....!" शरारती आँखें।

"हमने फ़ुटपाथोंकी संवेदनाएँ भोगी न भोगी हों, टैक्सीकी संवेदनाएँ ज़रूर भोगी हैं।"

"टैक्सी तो माध्यम है, साधन है मंज़िल तक पहुँचनेका। साध्य थोड़े ही है !"

"यह एक पोस्टकार्ड पढ़ो।"

"अरे, यही महाशय कह रहे थे कि उस लड़कीको आता क्या है....और तुम्हें 'प्रशंसामय' पत्र लिखते हैं।"

"छोड़ो, इन...."

"वो हुगली...."

वा—

ट—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र—

गे—

ट—

लोहेके रेलिंगके बीचसे झुककर निकल आये हम लोग। सामने एक बेंच—हरे रंग की। छींटोंवाली। पत्थरकी। सामने ढलान। उससे नीचे हुगली। स्टीमर-बड़े-छोटे। खूब सारी जेटियाँ। दुपहरी रौनक़।

वह चुप था—शायद हुगलीके कारण चुप था।

इसने कहा—"कभी इस हरे छींटके रंग-की साड़ी पहनी जाये तो?

"क्या हो!"

मैंने उससे कहा—"यह जगह तुम्हें पसन्द है न!"

"हाँ····, बुरी मनस्थितियोंमें ये ज्वार-भाटे ही उनके समानान्तर पड़ते हैं तो हुगलीके किनारे आ जाते हैं।"

"वह····उसे क्या कहते हैं?"

(उसने कहा—'क्या मूर्खतापूर्ण सवाल पूछ रही हो।')

"वही तो है, तख़्ता पुल और वह स्टीमर। सामान इसीके सहारे बाहर लाया जाता है और जानती हो, जब ज्वार आता है तो यह पुल यूँ ऽ ऽ ऽ ऊपर उठ जाता है। पूनमकी रातको बारह बजे सबसे ऊँची लाट आती है····" वह जैसे किसी बच्चेको हाथ हिला-हिलाकर समझा रहा हो।

"और?"

"और तुम सुनाओ—अपने अड़ोसी-पड़ोसी की।"

"ये अड़ोसी-पड़ोसी, टीचर-प्रोफ़ेसर सब इस-इस तरहसे देखते हैं मुझे कि मैं बरदाश्त नहीं कर पाती। एक वो प्रोफ़ेसर हैं न—ऐसे कटे-कटे रहते हैं मुझसे और ऐसे देखेंगे जैसे कोई सज़ा काटकर आयी हूँ। कभी मुझे इनके कारण आत्महत्या करनी पड़ी तो?"

"वे तुम्हारे कारण आत्महत्या भले कर लें, तुम क्यों करो।"

"तुम अपने जीवन-जगतकी सुनाओ। मैं तो अपने भूत-भविष्यके बारेमें सोच ही नहीं पाती।"

"छोड़ो। चलो। 'अभी' को जीयें।"

"उस तख़्ता-पुल पर चलें?"

"क-म!"

सीढ़ियाँ—संगमरमरी और सीमेण्ट-गारे-की बनी नहीं, काठकी। लकड़ीके तख़्तोंसे बना पुल। हुगलीमें डूबे-उभरे झाँकते लोग।

रेलिंगसे, एक-दूसरेसे सटे हम।

"चाय पीओगी?"

"नहीं।"

"पी लो।"

"न।"

"मैं तो पीऊँगा!"

"ले लो।"

"एक चाय देना।"

"इस कुल्हड़से कैसे चाय पी लेते हो?"

कुल्हड़में चाय। सात नये पैसे।

"लाओ, मैं पीकर देखूँ।"

कुल्हड़ मेरे हाथमें। चाय गरम-तीती।····

"छिः, यह तो अदरकवाली चाय है। यह अदरक-कुल्हड़ मुझे पसन्द नहीं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह कुल्हड़ ही तो हमारा नसीब है।"

"फेंको—इस नसीब को!"

"चाय तो पी लें, भाई।"

"ज़बान अभी तक ख़राब हो रही है।"

"हुँ····चलो, फेंका।"

पानीमें हिचकियाँ भरता कुल्हड़, पानी भरकर तहमें।

"पानी-पासकी सीढ़ी पर चलें?"

"चलो।" हम आमने-सामने।

"मेरे पास आओ।" हम अगल-बग़ल।

"चलो, डूब जायें।"

"पहले मुझे डुबा दो।"

"तुम कोई कुल्हड़ हो?"

"नहीं हूँ?"

"न!"

"मैं तुम्हारी नसीब नहीं हूँ?"

"हाँ, वह तो हो।"

"सच्ची?"

"तुम न होती तो हमारा नसीब नसीब थोड़े होता।"

"फिर क्या होता?"

"न-सी-बा होता।" और नसीबा कहतेमें उसके ओठोंकी बनी प्यारी शक्ल····

हुगलीपर तैरती जेटियाँ नहीं, हँसी। शुद्ध हँसी।

"कहो, कौन पहले डूबेगा?"

"मैं। पर मैं जूते उतार जाता हूँ—ख़याल रखना।"

दुहरी हँसी।

"वह लतीफ़ा सुना है तुमने कि एक आदमी ट्रेनसे मरने गया। ट्रेन लेट थी तो वह साथ टिफ़िन कैरियर ले गया था कि खाना खा लेगा····"

"हाँ, तुम्हारा टिफ़िन कैरियर मैं जो हूँ।"

"तुम तो यार, खाना हो।"

जेटियोंसे टकराती दुहरी-तिहरी हँसी।

"वो जेटियाँ देख रही हो?"

"हुँ····"

"उनमें रहनेवालोंका पूरा-पूरा परिवार यहीं रहता है। यहीं खाना-पीना-सोना।"

"ये उनका घर है? आश्चर्य!"

"हाँ, उनके तो बच्चे भी यहीं पैदा होते हैं।"

"वेरी-गुड।"

"और कभी हमें कोई एक छोटी-सी जेटी दिलवा दे तो यह नौकरी-औकरी छोड़कर सुखसे रहें।"

"तुम्हारा क्या है? तुम तो जूकी झाड़ियों में, ईडन गार्डेनके उस पाँच हाथके कोनेमें, उस कुँएके पासवाले कमरेमें, फ़र्स्ट क्लासके एक छोटे-से कूपेमें भी रह सकते हो।"

"तुम्हारी आँखोंमें भी रह सकते हैं, यह नहीं कहा।"

"·····अच्छा?"

"पर तुम साथ रहो तब!"

"मैं तो साथ हूँ ही तुम्हारे।"

"और पास आओ।"

पास।

"तुम पास होती हो तो एक गन्ध आती है।"

"कैसी गन्ध?"

"तुम्हारी गन्ध!"

"मुझे भी आयी थी उस दिन जब····"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम उस गन्धको रैलिश करती हो या टॉलरेट करते हो ?"

"मैं तो टॉलरेट करती हूँ !"

"मगर मैं रैलिश करता हूँ ! टॉलरेट मैं कर ही नहीं सकता !"

"गन्ध भी कोई रैलिश करनेकी चीज़ है ?"

"नहीं है ?" जब वह प्रश्नका उत्तर प्रश्नसे देता है तो बड़ा अच्छा लगता है ।

पास खड़ा एक स्टीमर ।

"नाम पढ़ सकती हो ?"

"....." चश्मा मैंने पहना नहीं था और उसे यह दिखाना बताना नहीं चाहती थी कि मेरी आँखें कमज़ोर हैं ।

"देखो, लिखा है—ओग्निजोय !"

"हाँ, ए-जी-एन-आई-जे-ओ-वाइ ।"

"घर चलो ।"

"आजकी भरी दुपहर अच्छी बीती—मैं प्रसन्न हूँ !"

"ऐसे कहो—आजका ३६५वाँ दिन अच्छा बीता ।"

"तीन-छह-चार-आधा ।"

खिलखिलाहट । एक व्यक्तिका घूमकर देखना-घूरना ।

"उस तरफ़ चलो, टैक्सी मिल जायेगी ।"

"नहीं, इधर चलो ।"

"उधर ।"

एक टैक्सी पाससे गुज़रती । धीमे ।

"लोग टैक्सियाँ रोकते हैं, यहाँ टैक्सियाँ खुद हमारे लिए रुकती हैं ।"

मैंने देखी । तुम तो मिस करते अभी ।"

"कैसे मिस करते । हमने अपनी ज़िन्दगी में कभी कोई चीज़, कभी कोई क्षण मिस नहीं किया फिर...."

"कभी कोई लड़की भी मिस नहीं की होगी ।"

"इयो....र ।"

हम टैक्सीमें ।

'वो हमारे मास्टर साहब लग रहे हैं...."

"होंगे भा ऽ ऽ ई, हमें देखेंगे तो अपना वक़्त याद कर लेंगे ।"

इन राम-कृष्णकी परम्पराके लोगोंके भी वक़्त होते हैं क्या ?"

"सब होते हैं, बनते हैं ये लोग ।"

"....."

"छोड़ो—इनकी बातें बोर करती हैं मुझे । ये हम लोगोंको बरदाश्त कर ही नहीं सकते ।"

"ऐसे मत कहो ।"

"हाँ, तुम्हारे आदरणीय गुरुजी जो हैं ।"

चौरंगी स्क्वायर ।

"यह तुम्हारे हाथमें क्या है ?"

"कुछ नहीं—वह शीलाजीने मेरी चित्रों-की सूची बनायी है ।"

"कितने ?"

"यही तीन-चार ।"

"मैंने तो सोचा जिन लड़कोंसे तुम्हारे सम्बन्ध रहे हैं—उनकी सूची है ।"

"क्या कहा ?" सायास और तीखी आवाज़ ।

मेरा मुँह दूसरी ओर । सीटके बैकपर सिर टिकाये । ढीली ।

"तुनक गयीं ?"

"....."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

टॉप कर गया हूँ न उनसे।"

"....."

"बोलोगी नहीं!"

"....."

"इतनी दूर बैठी हो, पास आओ।"

और मैं शिथिल हो गयी थी।

"न, यहीं ठीक है।"

"मुझे लूज़ मत करना—यार!"

कन्धेपर उसका हाथ।

"बोलो भई।"

"....."

"मौन-व्रत है क्या?"

"न-हीं!"

"नहीं बोलोगी तो तुम्हारा शहर छोड़-कर चले जायेंगे!"

"शहर ही क्यों, मुझे छोड़ जाना।"

"तुम तो सच नाराज़ हो गयीं।"

"आनेवाला है घर तेरा।"

"....."

"अपने आदरणीय बाऊजीको प्रणाम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और माँको?"

"चरण-स्पर्श!"

उसने हाथ दबाया था—"कल नया साल है, सुबह उठते मुझे याद करना।"

मैं बिना कुछ कहे उतर गयी थी। उसकी ओर देखा भी नहीं था। उसने एक काग़ज़ थमाया था। टैक्सी चल पड़ी थी। मन हुआ था मुड़कर न देखूँ। पर देख लिया था। वह पीछे देख रहा था। उसने हाथ हिलाया था। ओंठ भी हिले थे—"बाऽऽई" मेरा केवल हाथ हिला था। वह काग़ज़ देखा, लिखा था—"१ जनवरी '६६ को—सूरजकी ओर मुँह घुमाकर बैठ। आनेवाले दिनोंकी कल्पना करनी है न!"

मोड़ लिया था वह काग़ज़। लगा था—टैक्सीमें कुछ छोड़ आयी हूँ। अकसर ऐसा लगता है। साथ थी शिथिलता और ढीलापन। हथेलीमें मुड़ा-तुड़ा काग़ज़ और आँखोंके सामने कमरों, दीवारों, फ़र्शों, छतों, खिड़कियों और परदोंवाला घ-र। ■ ■

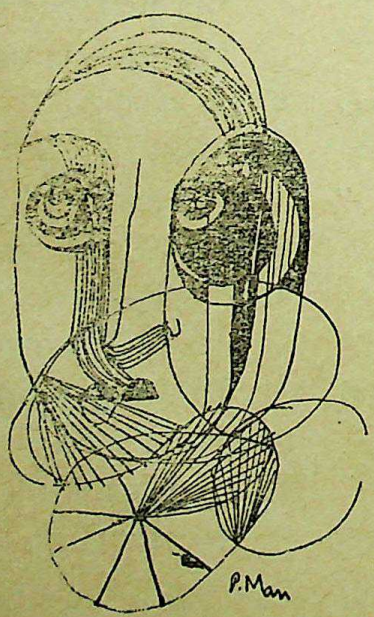

ज्ञानोदय के मार्च तथा अप्रैल अंकों में

गजानन माधव मुक्तिबोध

की

लम्बी कहानी

वि पा त्र

विशेष टिप्पणी सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६५
में
'भारतीय
संस्कृति-संसद्'
कलकत्ता द्वारा
प्रवर्तित
तथा
२४, २५, २६ दिसम्बरको
सम्पन्न

अधिकृत ध्वनिलिपि से तैयार किया गया वह शब्दशः सविशेष विवरण, जो केवल ज्ञानोदय में ही पहली बार प्रकाशित किया जा रहा है।

कथा-मंच :

वृन्दावनलाल वर्मा।
जैनेन्द्रकुमार। विमल मित्र।
भगवतीचरण वर्मा। अमृतलाल नागर।
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार। मोहन राकेश।
देवीशंकर अवस्थी। राजेन्द्र यादव।
भीष्म साहनी। लक्ष्मीनारायण लाल।
शिवप्रसाद सिंह। कमलेश्वर। कृष्ण बलदेव वैद।
हरिशंकर परसाई। रजनी पनिकर। मन्नू भण्डारी।
शरद जोशी। धनंजय वर्मा। राजेन्द्र अवस्थी।
श्रीकान्त वर्मा। शैलेश मटियानी। रमेश बक्षी।
दूधनाथ सिंह। रवीन्द्र कालिया। ममता कालिया।
सुदर्शन चोपड़ा। गंगाप्रसाद विमल।
सीताराम सेकसरिया। लक्ष्मीचन्द्र जैन।
मँवरमल सिंघी। प्रतिभा अग्रवाल। कृष्णाचार्य।
कल्याणमल लोढ़ा। विष्णुकान्त शास्त्री।
कुन्था जैन। किरण जैन। चन्द्रदेव सिंह।
अक्षयचन्द्र शर्मा। भीमसेन त्यागी।
जगमोहनदास मूँधड़ा।
परमानन्द चूड़ीवाल।

सवाल जीवनदृष्टिका है •
समकालीन बोधमें-से जनमी जीवनदृष्टि •
उपलब्धियाँ, उभरती दिशाएँ और आधुनिकताके सन्दर्भ •
समकालीन बोध और दायित्व : कथाचिन्तन की मज़बूत ज़मीन •
कथाशिल्प : प्रयोगकी प्रक्रियाका प्रयोग •
कथाकार और पाठक : जिज्ञासाएँ एवं अपेक्षाएँ—छोटे-छोटे कठघरे •
समापन : जीवन्त मंचकी प्रतिष्ठा •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

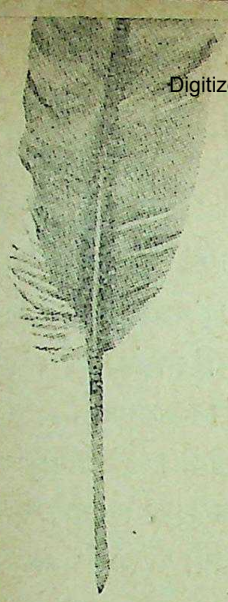

कलत्ताका बहुचर्चित कथा-समारोह कई दृष्टियोंसे हिन्दी कथा-साहित्यकी एक दिशान्तर घटना है कि इसने पीढ़ियोंके संघर्षके बीच जीवनदृष्टिकी चर्चापर ध्यान बँटाया, कि इसने नयी कहानीके स्वरूपको और स्पष्ट करते नयी पीढ़ीके स्वरोंको रेखांकित किया, कि इसने समकालीन बोध और शिल्पकी प्रक्रियाका विश्लेषण करते स्पष्ट कर दिया : कथा-रूढ़ियाँ कैसे और क्यों टूटती जा रही हैं तथा क्यों अभी भी फ़ार्मूलेकी नींवपर सायास कथा-महल बनाकर मनोरंजनका सृजन और पाठकोंकी वाहवाहीका अर्जन किया जा रहा है।

इस समारोहमें सर्वश्री यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती, गंगाधर गाडगील, राजेन्द्रसिंह बेदी, भैरवप्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, अमरकान्त, शानी, ज्ञानरंजन, मनहर चौहान किन्हीं कारणोंसे न आ सके फिर भी उपस्थित कथाकारोंके द्वारा बदलती दृष्टि, उम्र, समय, बोध और चिन्तनका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व हुआ। सातों गोष्ठियोंका अधिकांश विवरण शब्दशः और कुछका अंशतः अगले पृष्ठोंमें प्रस्तुत है। हमने कैंचीसे नहीं, क़लमसे सम्पादन किया है इसलिए हिन्दीके समकालीन कथा-मंचकी दूध-धोयी तसवीर सामने उभरती दिखाई दे सकती है क्योंकि कथा-समारोहकी प्रेरणा अवसरीय नहीं, समकालीन थी — हिन्दी कथा-साहित्यको समझने-समझानेकी भूमिका इच्छाके रूपमें कार्य नहीं कर रही थी—एक अनिवार्यताके रूपमें उत्प्रेरित कर रही थी····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'...सुनते हैं गरमागरमीमें मंचपर कुरसियाँ भी उछलती हैं लेकिन...'
कथा-मंचपर समारोहकी परिकल्पना बतलाते श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन।

१ सवाल जीवनदृष्टिका है....

२४ दिसम्बर १९६५। शाम ५ बजे। अध्यक्ष : जैनेन्द्रकुमार, भगवतीचरण वर्मा, कमलेश्वर। वक्ता : सीताराम सेकसरिया, जगमोहनदास मूँधड़ा, लक्ष्मीचन्द्र जैन। शिक्षायतनके सभागारमें आगत कथाकारोंका संस्कृत स्वागत। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने कथा-समारोहपर संसद्की दृष्टि सामने रखी : कलकत्तेमें कवि-सम्मेलन, मुशायरे, नाट्य-समारोह कितने-कितने आयोजन हुए हैं, सबके मूलमें साहित्यके प्रति जिज्ञासा रही है। कथा-व्यापक चर्चाके लिए यह आयोजन उसी इच्छाकी एक कड़ी है। यह ज्ञान था कि बहुत-बहुत बातें होती हैं, कई-कई दल हैं, उग्र प्रतिबद्धताएँ हैं। सुनते हैं, गरमागरमीमें मंचपर कुरसियाँ भी उछलती हैं लेकिन हमारे परिपत्रों और प्रारूपोंमें विषयको महत्त्व दिया गया है और उनपर विवाद भी नहीं है। मंच इसलिए है कि आपकी बात हम समझ सकें और मंच इसलिए भी है कि कथाकार एक-दूसरेसे अपनी बात कह सकें। आप सोचें और बता सकें कहानी लिखते समय आपकी जीवनदृष्टि क्या थी, क्या उपलब्धियाँ हैं, कौन-सी बात आप कहना चाहते थे, आपको आत्मसन्तोष मिला या नहीं, यदि असन्तोष भी मिला तो इसका स्वरूप क्या है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● कहानीका जानना कुछ होता नहीं है···

जैनेन्द्रकुमार : यह कथा-समारोह तनिक विशिष्ट है कि सभी तरहके कथाकार यहाँ हैं। कुरसी उछलना मैंने भारतमें नहीं देखा है। यह लंकामें देखा है और जिसके पास उछालनेके लिए शब्द हैं वह कुरसी क्यों उछालेगा? जितना जो कुछ लक्ष्मीचन्द्रजीने कहा पहले तो उससे मनमें आतंक छा गया और उसके बाद जो अपेक्षाएँ उन्होंने रखीं हम सबसे, उससे कुछ घबराहट चढ़ गयी। मैंने ज़िन्दगीमें केवल एक इम्तहान दिया है, वह काफ़ी है। बार-बार इम्तहानमें पड़ूँ इसी डरसे मैं आता नहीं था। कहानी लिखते तो मैं लिख जाता हूँ पर कहानीके बारेमें पूछ-ताछ होगी और परीक्षा होगी अगर आजसे मुझे ऐसा पता लग जाये तो शायद अबसे लिखना बन्द कर दूँ क्योंकि मेरा अपना अनुभव यह है कि जानना जब काफ़ी नहीं होता है, उससे मन नहीं भरता है, तब कहानी शुरू होती है और कहानीकी भाषा जीनेकी भाषा है, जाननेकी भाषा नहीं। जाननेकी भाषा जो कहानीपर लादते हैं और अपेक्षा करते हैं कि कहानीकारसे कुछ जानकारी भी हासिल करें, कहानीके सम्बन्धमें, वे शायद ज़्यादती करते हैं। मैंने कहानी लिखी, किस जीवनदृष्टिसे लिखो····'जीवनदृष्टि' शब्द कुछ ऐसा लम्बा भारी भरकम शब्द है कि जीवनदृष्टि शब्द उस समय मेरे कानपर आ जाता तो शायद कहानी लिखी नहीं जा सकती थी। कहानी लिख गये लेकिन जीवनदृष्टिका, वक्तव्यका पता नहीं है, वह अब तक निर्मित नहीं हुई क्योंकि जब भी दृष्टि कोई बनती है; जीवनमें ऐसी कुछ घटनाएँ देखनेमें आ जाती हैं, कि वह दृष्टि फिर लिप-पुतकर साफ़ हो जाती है। ऐसा मालूम होता है कि दृष्टि न बन पाये तभी कहानीकारके लिए ख़ैरियत है। जहाँ जम गयी दृष्टि, फिर आप कुछ तत्त्ववाद लिखिए, कुछ और लिखिए, कुछ उपदेश दीजिए, कुछ प्रवचन दीजिए और बहुत-से काम हैं····जिसके पास जीवनदृष्टि प्राप्त हो गयी, वह तो सिद्ध हो गया। फिर उसको कहानी लिखनेकी आवश्यकताका ख़याल रहना ही नहीं चाहिए। मैंने तो कमसे कम कहानी दृष्टि प्राप्त करनेके लिए लिखी, दृष्टिदानके लिए नहीं। मुझे लगता है कि जीवन, कितना गूढ़ अनन्त, विलक्षण और रहस्यमय तत्त्व है कि नहीं लगता, कोई दृष्टि ऐसी हो सकती है जो यहाँसे वहाँ तक घेरेमें उसे बाँध ले! होते होंगे कोई सिद्ध लोग, पहुँचे हुए लोग जो घेर लेते होंगे जीवनको! लेकिन मालूम नहीं कि वे अपनेको कितना घेर लेते हैं। शायद जीवनके नामपर वे अपनेको घेर लेते होंगे। जीवन तो क्या घिरता होगा क्योंकि जीवन तो अनन्त है। अनन्त काल है लेकिन अनन्त काल भी जीवनकी अनन्तताको समाप्त नहीं करता है, चुकाता नहीं है। दिमाग़ है, हर एकके पास है, और क़रीब-क़रीब हर आदमी यह सोचता है कि जो उसके पास है और जितना है वह दूसरेके पास नहीं है, एक उसके पास है और आधामें सारी दुनिया है। अक़्ल चीज ही ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

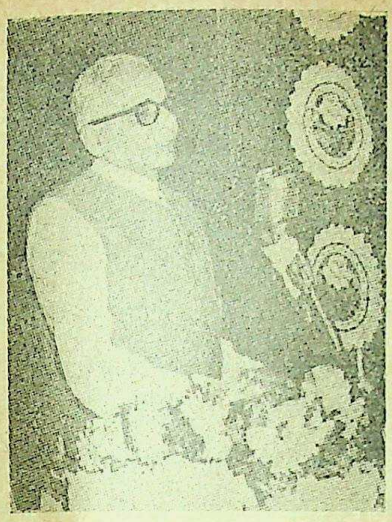

जैनेन्द्रकुमार : '...तबसे कहानीका लिखना मेरा चलता रहा है लेकिन मेरे मनमें बात बँध गयी कि कहानीका जानना कुछ होता नहीं है।'

कहानीका इष्ट

भगवतीचरण वर्मा : 'भावनात्मक अभिव्यक्ति केवल मनोरंजन-द्वारा होती है। भावना उस समय आती है जब हमारा मनोरंजन होता जाये।'

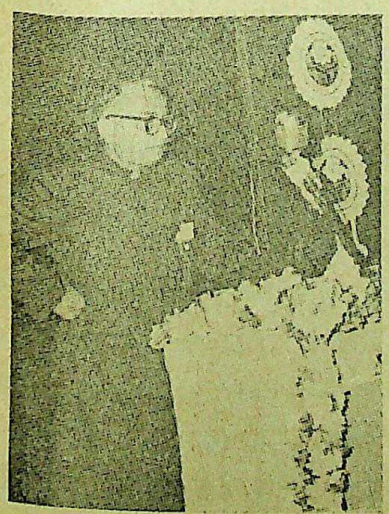

है। दूसरेका धन बड़ा लग सकता है लेकिन दूसरेकी अक़्ल कभी बड़ी नहीं लग सकती। तो मेरे मनमें शुरूसे इस अक़्ल नामकी चीज़का अविश्वास रहा। और मैंने जब लिखना शुरू किया तो मुझे ऐसा लगा कि प्रश्न और संशय शुरूसे ही आ गया है। लिखने लगा तो लगा, संशय हुआ कि क्या यही ठीक है, इतना ही ठीक है? ये जितने भी हमारे मत हैं, मान्यताएँ हैं कि हम जमकर बैठ जाते हैं, जिसके लिए अक़्लको हम मौक़ा देते हैं कि वह फ़ैसला करे, मुन्सिफ़ बने। यदि दुनियाको खण्डित कर दें, वर्गोंमें बाँट दे तो यह अपनेपनके मोहसे होता होगा। इसका मूल्य सन्दिग्ध है। यह काम बड़े लोगोंके लिए ही छोड़ देना चाहिए। मेरे लिए तो जिज्ञासा ही काफ़ी है। ज्ञानी बनने की अभिलाषा मेरे बसकी है नहीं। मेरे लिखनेका कारण जिज्ञासुता और सप्रश्नता है। जिसको कहानी लिखना है उसको विज्ञतासे घबराना चाहिए और अज्ञताको कभी छोड़ना नहीं चाहिए। जो ज्ञान सत्य है, टिकनेवाला है उसका रूप सत्यका है, मतवादिताका नहीं है। ज्ञान वह है जो जीवनको समर्थ कर सकता है। जाननेकी इच्छा ही बुद्धिमत्ता का लक्षण है—जो जान गया कि वह जानता है, जान चुका है, वही है जो नहीं जानता है। और जो यह जानता है वह इच्छुक रहता है। अगर कोई विचार है तो उसे आचारमें परिणत करें। दूसरोंसे टकरानेके लिए वह उसे नहीं फेंकता। वे लोग जीवनमें परास्त हो गये हैं, टूट गये हैं, बिखर गये हैं जिन्होंने जीवनमें केवल जाना ही जाना है। दो के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद जिन्होंने तीन-चार एम० ए० किये हैं उनकी गति आप देख लीजिए कि क्या हो गयी है ? जीवनमें-से जो उपलब्ध होता जाता है और फिर जीवनपर घटित होता जाता है वह तो ज्ञान है। मैं तो इसीमें खैरियत देखता हूँ कि किनारेसे निकल जाऊँ। हमारे कहानी-लेखक बिरादरीमें-से कोई इसका जवाब देगा। इस समारोहकी निष्पत्ति क्या होगी मैं कह नहीं सकता। कथाकी गतिमें वेग आयेगा, आये तो बहुत अच्छा है। लेकिन अधिक सम्भव यह भी है कि अवरोध आयेगा। क्योंकि कहानी लिखी जाने और पढ़ी जानेसे, चर्ची जानेकी चीज़ हो जाये तो समझ लीजिए कि वेग आयेगा कि अवरोध ? कहानी एक ऐसी चीज़ है कि लिखनेवाले और पढ़नेवालेके बीच किसी बिचौलियेकी आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर और मनुष्यके बीच पुजारी इत्यादि इतने लोग होते हैं कि ईश्वर गूढ़ होता चला जा रहा है। मैं मानता हूँ कि कहानी भी ऐसी ही सीधी-सादी चीज़ है कि उसमें एक हमारा बिचौलिया हो जो लेखक और पाठकके बीच कहानीकी व्याख्याएँ करे तो मैं मानता हूँ कि कहानी जब-जब पाठक और लेखकके बीच पढ़ी जाती है समझी नहीं जाती। यह सम्भव है कि इस व्यवधानके कारण पाठक भी प्रभावित हो कि कितनी ऊँची चीज है जो हमारी समझमें नहीं आयी। और लेखक भी समझें कि पढ़नेवाले चमत्कृत रह जाते हैं— इससे बड़ी चीज़ क्या है ? आम तौरपर जो चीज़ समझ ली जाती है उसका क्या मूल्य है, वह तो बहुत सस्ती चीज़ है। ऐसी चीज़ होनी चाहिए जिसे समझनेमें दिमाग़ पर ज़ोर पड़े। इस व्यवधानसे आलोचक, प्राध्यापक, समीक्षक, कथा-ज्ञानी आदिका समावेश हो जाता है तो मैं मानता हूँ कि कहानीकी प्रतिष्ठा उससे बढ़ती ही है। एक और चीज है जिसके बारेमें चर्चा चलती रहती है कि यह जो समय है, युग है, समाज है, वर्तमान है इसके साथ कहानी और साहित्य का सम्बन्ध क्या है ? कहते हैं कि साहित्य दर्पण है समयका, युगका। दर्पण ही हो तो साहित्यसे जो अपेक्षाएँ हैं वे पूरी नहीं हो सकेंगी। अगर केवल मात्र प्रतिबिम्बन हो तो वह काम पूरा हो नहीं सकेगा। इसलिए मुझे लगता है कि जो वस्तुगत तथ्य है, जो समय पर प्रतिफलित दीखता है, उसको ज्योंका त्यों हम कहानीमें बारीकीके साथ चित्रण कर देते हैं तो मेरे खयालमें इतने मात्रसे कहानी सफल नहीं हो जाती। वह सदा साहित्य नहीं बन जाती है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह जो पैसा बढ़ रहा है इससे हमारी बुद्धि पैनी और प्रखर हो गयी है। इससे जो कुछ भी हम देखते हैं, उसको खण्ड-खण्ड, अणु-अणु छितराकर देख लेना चाहते हैं, विश्लेषक बुद्धिसे। वह इतना विश्लेषण करती है, इतना विश्लेषण करती है कि संश्लिष्ट तत्त्व लगभग रह नहीं जाता। जिसे रस कहते हैं, प्रेरणा कहते हैं वह संश्लिष्ट प्रभाव है। विश्लेषक बुद्धि केवल बारीकीमें उतर सकती है। किन्तु रस और प्रभावकी अन्विति उसमें कम हो जायेगी। जीवनके साथ कहानीका क्या सम्बन्ध है इसपर जब विचार करता हूँ तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होता है कि वैज्ञानिक सम्बन्ध नहीं हैं। कहानीका सम्बन्ध अवश्य जीवनके साथ रोमेण्टिक सम्बन्ध है और रोमेण्टिक सम्बन्ध-के माने ये कि हम प्रयत्नपूर्वक अन्तर रखते हैं। अन्तर नहीं रखते हैं तो आदर समाप्त हो जाता है, मूल्य समाप्त हो जाता है, मर्यादा समाप्त हो जाती है। अन्तर रखते हैं तो भावनाका अवकाश रहता है। अगर विज्ञान वह है जो सेण्टीमेण्टके लिए अवकाश नहीं छोड़ता है तो वह विज्ञान एटम बम बनायेगा और एटम बमको सिर्फ़ रखे रहनेसे सन्तुष्ट नहीं हो जायेगा, आगे भी चलेगा। कोई चीज़ है कि जिसके कारण विज्ञान अपनी मर्यादामें रहता है। जीवनके बारेमें मेरा दृष्टिकोण बना है कि आदर आवश्यक है—जीवनमात्रका, जैसा श्वाइत्ज़र कहते थे। आदर रख सकना जीवनके लिए आसान काम नहीं होता। क्योंकि हर चीज़में अपूर्णता दिखाई देती है और आदर तिरोहित हो जाता है। हर कोई अपनेको मानता है और किसी-को नहीं मानता है। इस प्रकार समाज चलता नहीं, चल सकता नहीं, लेकिन मैं अपनेसे दूसरेको मानूँ और अपनेसे अधिक मानूँ यदि ऐसा हो सके तो मैं समझता हूँ कि हमारे जीवनमें-से विष समाप्त हो जायेगा और अमृत पैदा होगा। जीवन उस विज्ञान-को स्पर्श दे जो ब्रह्माण्ड तक व्याप्त है और जिसे मैंने रोमांस कहा। विराट्के प्रति जो विस्मयका भाव है वह विज्ञान है। साहित्यकी यदि कोई उपलब्धि है या उपादेयता है तो वह आदमी और आदमीके बीचमें अहंताके सम्बन्धको अनिवार्य नहीं समझता बल्कि दूसरे प्रकारका सम्बन्ध मानता है—सहानुभूतिका। इससे आगे प्रेमका सम्बन्ध है। जब मैं किसी के निकट झुकता हूँ, उसके प्रति कृतार्थता अनुभव करता हूँ उसे प्रथम और अपनेको दोयम मानता हूँ तो वह प्रेम है। इसीका बढ़ा हुआ रूप भक्ति है। साहित्यमें जब भक्तिका तत्त्व रहता है तो वह चरमोत्कर्षपर रहता है। और जितना उसमें तिक्त, अहंताका भाव रहता है, वह अपने प्रयोजनसे च्युत होता है। कहानीके बारेमें मुझे लगता है कि साहित्यमें कोई विधा नहीं है जो कहानीके अभावमें टिक सके। कहानी ही थी, उसका रूप, बनावट, पहनावा कविताका था। वे हमारे पुराण हैं जिन्होंने हमारी संस्कृतिकी एकताको क़ायम रखा। उसके मध्यमें कहानी ज़रूर रही है। जो कविता हमें प्रभावित करती है उसके मध्यमें कहानीकी सिचुएशन ज़रूर रहती है। तो भी कुछ मुक्तक हैं जिनमें कथाका सन्दर्भ नहीं है। कथाकी इतनी प्रधानता केवल इसलिए है कि जीवनके सम्बन्धमें हमारी मान्यता स्थिर और बँधकर रह जाये, दिमाग़ उस वक़्त चला करता है। कहानी संस्कार देती है। उसका संशोधन करती है। चलता हुआ जो जीवन-व्यवहार है उसके द्वारा सत्यकी झाँकी कहानी देती है और वह टिक जाता है। जो शब्दमें, सूत्रमें, बँध गया वह तो स्टेटस-को का समर्थन करने-वाला होता है, जीवनको आगे नहीं बढ़ाता है। उपनिषद्को जब परमगुह्य बात कहनी हुई तो उसके पास कथाके अलावा कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्दावनलाल वर्मा : 'छोटी-सी बात थोड़े-सेमें प्रभावके साथ कही जाये, मनोरंजन करे, प्रेरणा दे, स्फूर्ति दे···'

कहानीकी परिभाषा

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : 'कई रचनाएँ जीवनको बदल देती हैं, वे सम्पूर्ण चिन्तनको भी बदल सकती हैं।···'

सहारा नहीं था। कथा-साहित्यका वही साफल्य है, कहानीसे वह बात यदि हमें मालूम हो जाये जिसे मालूम होना चाहिए, कि जितने भी वाद हैं जितनी मान्यताएँ हैं, उनका सापेक्ष्य मूल्य है, मनुष्य उसके मध्यमें है, जो निरपेक्ष मानवसे व्यवहारमें अलग जाकर, मानव-व्यवहारसे अलग जाकर, कोई मन्तव्य, कोई सूत्र अपने आपमें सत्य हो नहीं सकता है····। मानव व्यवहारकी कसौटीपर जो टिकता है वह सही है तो मैं मानता हूँ कि ऐसा हमारा मनोभाव बन जाये तो साहित्यमें, कथा-साहित्यमें, अपना काम बहुत कुछ पूरा किया। मैंने कहानियाँ लिखी हैं और जब एकाध कहानियाँ छप गयी थीं, तो मैं बहुत उत्सुक रहा कि मैं यह जानूँ कि कहानी है क्या चीज़ ? इधर-उधर जाता था कि कहानी क्या होती है, मुझे बताइए ! एका-एक जब कुछ कहानियाँ छपीं तो किसीने कहा—छपा हुआ मिल गया पढ़नेको, जब मैं घूमता-फिरता था दिल्लीमें और आदत यह थी, कि जीवनसे परास्त हो चुका था, यहाँ कलकत्तेमें आया था, इस आशासे कि दस-पन्द्रह रुपयेकी कहीं नौकरी मिल जाये तो रह जाऊँगा। माँका सामना नहीं होता था···। यह मेरी हालत थी और मैं जानना चाहता था कि कहानी क्या होती है तो उसी समय पढ़नेको छपा हुआ मिल गया कि कहानीका जानकार जैनेन्द्र है। तबसे कहानीका लिखना मेरा चलता रहा है उसमें कोई खास दिक्कत नहीं हुई है लेकिन यह बात मेरे मनमें बँध गयी है कि कहानीका जानना कुछ होता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो कहानीके बारेमें इतना जानकार था और वह जगह-जगह जाकर पूछता था कि कहानी क्या होती है, बताओ! और उसीके सम्बन्धमें यह छपा मिल जाता है कि उसके समान जानकार कोई नहीं है तो सिवा इसके क्या साबित होता है कि कहानी जाननेकी कोई चीज नहीं है। और उसकी भाषा जब जानकारीकी भाषा बतायी जाती है और लिखी जाती है तो मैं मानता हूँ कि कहानीपर कुछ अवलेप आ जाता है। और जब कहानी जानकारीकी भाषासे मुक्त होकर जीनेकी भाषा अपनाकर चलती है तो सरल हो जाती है, सबके लिए सुलभ हो जाती है। पण्डितके लिए इसी कारण वह शायद गूढ़ हो जाती है। मैं मानता हूँ कि कहानीके सम्बन्धमें परिचर्चाका जो बीड़ा आपने उठाया है वह साहसका काम ज़रूर है लेकिन मेरी प्रार्थना और भावना यह है कि कहानी-लेखनकी दृष्टिसे भी यह समारोह उपयोगी और लाभकारी हुआ तो मैं अपनेको, आप सबको और समारोहको सफल समझूँगा—जिसकी कि सम्भावना मुझे कम दिखती है।

• साहित्यका उद्देश्य है मनोरंजन···

भगवतीचरण वर्मा : कुछ थोड़ी-सी उलझन पैदा हो गयी—इधर हालमें एक बौद्धिक विद्वत्तापूर्ण भाषण सुननेके बाद। मैं बौद्धिक रहा नहीं, यह शायद मेरी कमज़ोरी रही है और शायद यह मेरी सबसे बड़ी ताक़त भी रही है कि मैंने बौद्धिकताके आदान-प्रदानमें विश्वास नहीं किया। मैंने हमेशा भावनात्मकताके आदान-प्रदानमें विश्वास किया। ऐसी बात नहीं है कि बुद्धिकी मुझमें कोई कमी है। जहाँतक बौद्धिकताका प्रश्न है उस समय अगर कोई आ जाये तो बातचीत कर सकता हूँ। अन्दरसे प्रेरणा केवल एक क्षेत्रसे थी, वह भावनात्मकताके आदान-प्रदानके क्षेत्रकी। बुद्धि मानवके विकासकी चीज़ है, भावना मानवका अस्तित्व है। और मैं अस्तित्वको नज़रअन्दाज नहीं कर सकता। जहाँतक विकासका प्रश्न है, वहाँतक समस्त मानव-समाज इस विकासमें लगा हुआ है। लेकिन इस विकासके क्रममें हम क़ायम रह सकेंगे? और यह क़ायम रहनेका प्रश्न भावनाका प्रश्न है, बुद्धिका नहीं। विकास उसी समय हो सकता है जब हम क़ायम रहें। मैंने वह रास्ता अपनाया जो मेरे लिए सुलभ था। मैंने कविकी हैसियतसे अपना जीवन शुरू किया और मुझे याद है, मुझे कविताके क्षेत्रमें सफलता भी मिली। लेकिन बादमें अनायास ही किसी कारणसे मैं कहानी-उपन्यासके क्षेत्रमें आ गया। बहुत दिनों तक आलोचकोंने कहानीको साहित्यका उत्कृष्ट भाव माननेसे इनकार किया, आज भी सम्भवतः वे इनकार करते हैं। प्राचीन साहित्यमें कहानीको कलाके रूपमें नहीं माना गया। कहानीको दृष्टान्तके रूपमें माना गया। कहानी धर्मशास्त्रका एक अंग रही है, कहानी स्वयंमें कहानीका क्षेत्र नहीं माना गया है। कादम्बरी अपनी कवित्वमय शैलीके कारण काव्यग्रन्थ कहलाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, कहानीके कारण काव्यग्रन्थ नहीं कहलाता। कहानीको माध्यम-भर माना गया। पाश्चात्त्य आलोचकोंने कहानीको अन्य क्षेत्रोंसे तोड़कर शुद्ध रूपमें भावनात्मक क्षेत्रसे बाँध दिया। यह सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीकी बात है। लेकिन कहानीका कौन-सा ऐसा अंग है जो उसे साहित्य और कलाकी कोटिमें रखता है? पाठक केवल पढ़नेकी चीज़ पढ़ता है लेकिन यह बौद्धिक युग है और हर व्यक्ति युग-निर्माता बनना चाहे तो उसे रोका नहीं जा सकता। मैंने कभी भी साहित्यकारोंको युग-निर्माताके रूपमे देखा नहीं। युग-निर्माता किसी भी सिद्धान्तको दे सकता है। लेकिन वह सिद्धान्त मौलिक नहीं हो सकता। बुद्धिको साहित्यका क्षेत्र नहीं मानता, वह भावनात्मक अभिव्यक्ति है, साहित्यका उद्देश्य है मनो-रंजन—क्योंकि भावनात्मक अभिव्यक्ति केवल मनोरंजन-द्वारा होती है। भावना उस समय आती है जब हमारा मनोरंजन होता जाये। साहित्य सशब्द कला है, बाक़ी सब निःशब्द कला है। भावनात्मक अभिव्यक्तिका माध्यम गति है, शब्द नहीं। गतिका स्पष्ट रूप है लय। उपकरणके साथ-साथ आधार बदलते जाते हैं और कलाओंके नाम भी। कहानीमें भी एक गति है—चरित्रोंके क्रिया-कलापोंकी गति। कहानीके तत्त्वमें नाटकीयता होती है, वह ऐसी चीज़ है जो कहानीको गति दे सके, जो मनुष्यको पकड़ सके, मैं उसको महत्त्व देता हूँ। बौद्धिक और सामाजिक प्राणी होनेके नाते हम उन चीज़ोंको स्वीकार करते हैं जो हमें ऊपर उठायें, जो हमें कल्याण-की तरफ़ ले जायें। उत्कृष्ट कला वह है जिसमें भावनाका उदात्तीकरण हो। बौद्धिक मानवने कभी विकृत वस्तुको सामाजिक स्थान नहीं दिया। जहाँतक शिल्पकी बातें हैं, युगके साथ शिल्प बदलते रहते हैं। एक उपन्यास-कारके चार उपन्यास पढ़नेको दे दिये जायें तो उनसे मोनोटोनी आ जायेगी। जहाँतक नयी धाराओंका प्रश्न है वह तो आयेंगी ही, उनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और उनका हमें स्वागत करना है—लेकिन उसके पीछे दूसरोंका सिर फोड़ना, दूसरोंसे मतभेद रखना यह मेरी समझमें नहीं आता। क्योंकि लिखनेकी सफलता आलोचकोंपर नहीं, पाठकों-पर निर्भर करती है। वही साहित्य जीवित रहेगा जिसमें मनुष्यको उदात्त बनानेकी भावना होगी। इससे अधिक कहनेसे फिर वही मोनोटोनी आ जायेगी।

● अपने समयके यथार्थको अपने भीतर समझ सकनेकी प्रक्रिया···

कमलेश्वर : यह विशेष अवसर है जब-कि सभी पीढ़ियोंके कथाकार यहाँ उपस्थित हैं। यह जो जीवनदृष्टिका सवाल उठता है, या यह जो क्षणकी अभिव्यक्तिका सवाल उठता है, या सामाजिकता या वैयक्तिकताका सवाल उठता है, बौद्धिकता और भावनात्म-कताका सवाल उठता है, इन प्रश्नोंके ऊपर नया कथाकार क्या सोचता है और किस तरह सोचता है—यह बात महत्त्वपूर्ण है। एक बात के लिए क्षमा करेंगे कि यदि किसी व्यक्तिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम आये तो वह किसीके प्रति असम्मानके भावसे नहीं, वह केवल अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिए है। एक पिछली दृष्टि थी—पुरानी नहीं, पुरानी कहनेमें झगड़ा बढ़ता है—कि जीवनदृष्टि होती नहीं, प्राप्त की जाती है, लेखनके माध्यमसे उपलब्ध होती है। दो दृष्टियाँ हैं, एक यह कि हत्यारे मुजरिमकी पैरवी करके, सारे तर्क देकर यह सिद्ध किया जाये कि उसने हत्या नहीं की और दूसरी यह कि मुजरिम हत्यारा है और यह कहा जाये कि मैं उसकी पैरवी नहीं करूँगा। जीवनदृष्टि-का भेद यहाँपर है, वह अपनेमें कोई सम्प्राप्ति नहीं है। यह निरन्तर विकसित होती हुई प्रक्रिया है कि आप एक सही बातके लिए पैरवी करते हुए अपनेको पाते हैं—साहसके साथ उस बातके प्रति अपनेको समर्पित पाते हैं। यही बात साहित्यकी अभिव्यक्तियोंमें माध्यम पाती है। यह नहीं है कि वह लेखनके अन्तमें प्राप्त हो और आदमी ज्ञानदान करने लगे। यह ज्ञानदानकी प्रक्रिया नहीं है, यह ज्ञानको और सत्यको और अपने समयके यथार्थ-को अपने भीतर समझ सकनेकी, बराबर उस बदलती हुई और उसको छाँटती हुई, उसको सुधारती और कतरती हुई एक प्रक्रिया है, जिसमें-से कि कहीं-न-कहीं आप अधिकतम रूप-से सत्यके, यथार्थके निकट पहुँचनेकी कोशिश करते हैं। अगर यह दृष्टि नहीं है तो बहुत अच्छी कहानियाँ लिखी जा सकती होंगी, सार्थक कहानियाँ नहीं, या उदात्त—जैसा कि भगवती बाबूने कहा। एक क्षण है जिसमें-से परत-दर-परत चीज़ें खुलती चली जाती हैं। ऐसा लगता है कि आपसमें टकराते हुए दो संघर्ष-शील मतवाद सामने हैं। एक उदाहरण है : एक मज़दूर है जो जेल चला जाता है, उसकी माँको उसके साथी कुछ गेहूँ लाकर देते हैं। माँ पूछती है—यह गेहूँ अमरीकाका है या रूसका ? एक भौंडी क़िस्मकी राजनीतिका यह उदाहरण है। दूसरा उदाहरण एक प्रेमी-प्रेमिकाका है। पिता उनके प्रेमको अस्वीकार करता है। उनको एक कमरेमें बन्द कर दिया जाता है। फिर वे कमरेसे निकलकर कहते हैं कि हम दोनों भाई-बहन हैं। एक यह उदाहरण है जो सत्यसे कितना दूर है, जो संश्लिष्ट सच्चाइयोंसे दूर है। कई तसवीरें सारे कथा-साहित्यको देखते सामने आती हैं। एक लड़की, जिसके केश हुआ करते थे, बाल नहीं, ललाटपर एक बिन्दी होती थी या नहीं भी होती थी, बड़ी-बड़ी आँखें होती थीं और वे डबडबायी रहती थीं····मैं इसे इक्ज़ागरेट कर रहा हूँ, इसमें कोई शक़ नहीं। सारे सम्बन्धोंको देखते हुए पिता हो, पुत्र हो, ननद हो या और कोई भी—ऐसा लगता था जैसे हमारा लेखक वैयक्तिक और सामाजिक दोनों तरहकी सच्चाइयोंसे कहीं टकरा रहा है। यह इसलिए मुमकिन हो सका क्योंकि हमलोगोंके सामने जो रास्ता था वह शायद साहित्यसे जीवनकी ओर था। नयी पीढ़ीने यह रास्ता बदलनेकी कोशिश की और यह रास्ता जीवनसे साहित्यकी ओर शुरू हुआ। यह एक काशंस डिपार्चर था कि जीवन-में जो कुछ दिखाई पड़ता है उसे बग़ैर किसी लाग-लपेटके, बग़ैर फुलकारी किये हुए, बग़ैर प्रतीक और बिम्बोंके, डायरेक्टली जितना कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सके उसे कहनेकी कोशिश की जाये और अपनी सच्चाईको कहा जाये। उसे शिल्पकी वजिश न करायी जाये। यही क्षण हमारी कहानीका कटा हुआ क्षण था, एक सीमित क्षण। वह अपनेमें एक सम्पूर्ण क्षण था। उस क्षणकी कार्य और कारणकी कोई परम्परा हमारे सामने नहीं थी। बादके साहित्यमें किसी भी बातको अन्तिम रूपसे न कह सकनेका साहस सबसे बड़ा साहस है। यदि हम अन्तिम निर्णय नहीं ले पाते तो इसका मतलब यह नहीं है कि हम आरोपित दर्शनका बोझ लादकर एक बात जबरदस्ती कहें। पहले वैयक्तिकता इतनी क्रूर होती चली गयी थी कि समष्टिकी सारी संवेदनाको एक तरहसे नकारना शुरू कर दिया था। इस वैयक्तिकताको सामाजिक सन्दर्भसे जोड़ देनेका काम शुरू हुआ। जहाँ व्यक्ति-सत्यको सामाजिक पूर्णताने दबोच लिया था और उसको बोलने नहीं देता था वहाँ ऐसा हुआ कि उस व्यक्तिको उभरनेका एक अवसर प्रदान किया गया। वर्माजीने जिसे भावनात्मक आदान-प्रदानकी बात कही है उसे नये लोगोंने संवेदनात्मक संश्लेषण कहा। प्रेमचन्द या शायद भारतेन्दु बाबूकी रचनामें नयी कहानीके बदलते हुए स्वरूपकी एक हलकी-सी झलक नज़र आती है। इसलिए उस परम्परामें जो सार्थक जीवनदृष्टिसे सम्पन्न सम्पृक्त क्षणकी कथा है उसका एक स्वरूप प्रेमचन्द, यशपालमें है। भाषा और शैलीके क्षेत्रमें एक नया प्रयाण हुआ। एक झूठे आदमीकी भाषा अपना अर्थ खो देती है। इसी जिदसे भाषा बदली है। हमारे अग्रज बन्धुओंमें भी ज़िद है, और हममें भी है, और होगी। सन् ४७ के बाद कहानी बदली है। वह एक बँधी हुई विधा नहीं है। वह सामाजिक सन्दर्भसे जुड़े हुए यथार्थको कहनेकी कोशिश करती रही। वह बनावट नहीं है—ज्योंका त्यों प्रस्तुत करनेकी कोशिश है। इसीलिए विभिन्न कथांचलोंमें जो कहानी गयी, उसमें जितनी विविधता आयी है, यह विविधता नये कथा-साहित्यकी उपलब्धि है। कहानी एक फ़र्मा नहीं है, उसमें बदली हुई सच्चाइयाँ उभरी हैं। इनमें लेखकोंकी अपनी वैयक्तिक कमज़ोरी, मजबूरी या सीमाएँ भी हैं। वह उम्रमें बढ़ी हुई पीढ़ियोंका संघर्ष नहीं है, यह सीधे-सीधे वैचारिक स्तरपर दो तरहकी सोचनेवाली पीढ़ियोंमें अपने-आपको अच्छे और बहुत अच्छे वातावरणमें स्पष्ट कर सकनेका प्रयत्न है। यहाँके निष्कर्ष हमें सचेत कर सकेंगे, इसलिए वैचारिक आदान-प्रदान बहुत अच्छे होते हैं। यही कथा-समाराहकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

❷ समकालीन बोधमें-से जन्मी जीवनदृष्टि....?

वही दिन। रात आठ बजे। विषय : समकालीन कथा-साहित्यमें बदलती जीवन-दृष्टि। अध्यक्ष : अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिशंकर परसाई। वक्ता : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल। डॉ० शिवप्रसाद सिंह। गंगाप्रसाद विमल। श्री कान्त वर्मा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• नयी कहानीने, जो जीवनसे टूटा था, उसे जीवनसे जोड़ दिया···

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : जीवनदृष्टि-के सम्बन्धमें दो विचार आपके सामने आये हैं : एक श्री जैनेन्द्रजीका विचार, पुरानी पीढ़ीका विचार और दूसरा कमलेश्वरजीका विचार, जिसे तथाकथित नयी पीढ़ीका विचार कहेंगे। जीवनदृष्टि स्वाभाविक है, जीवनसे प्राप्त होती है और यह भी सच है कि जीवन-दृष्टिको लेकर कहानी लिखी जाती है या नहीं इसपर दो बहुत बड़े दल बने हैं। अगर इति-हासके परिप्रेक्ष्यमें देखें तो बात बहुत स्पष्ट है। जैनेन्द्रका जो काल था वह किन्हीं आदर्शों-का था जिन्हें हम आरोपित आदर्श कह सकते हैं, उसको लेकर जीवनदृष्टि चली थी और इसी नाते उसमें अस्पष्टता थी। दूसरे कालमें भी किन्हीं सिद्धान्तोंको लेकर ही कहानियाँ लिखनी शुरू की गयीं। इसमें जैनेन्द्रके काल-को अन्तर्मनका काल कह सकते हैं, भावनाके साहित्यका काल कह सकते हैं। वह भी ठीक जीवनसे नहीं आया था। ठीक दूसरे सिरेपर प्रगतिवादमें बहुत बड़ी दुर्घटना हुई थी कि जीवनसे पूराका पूरा साहित्य कट गया था। नयी कहानीकी जो सबसे बड़ी भूमिका है, सबसे बड़ा जो कार्य है वह कार्य यही है कि जीवनका जो सूत्र प्रेमचन्दने उठाया था पहले, जो जीवनसे टूटा था, उसे जीवनसे जोड़ दिया—यही सबसे बड़ा कार्य नयी कहानियोंने किया है। नयी कहानी : एक है १९५० तककी नयी कहानी, उसके बाद १९५८ तककी नयी कहानी या नयी कहानी जहाँ अपने स्पर्शसे हट गयी है उसकी चर्चा कर देनी आवश्यक है। नयी कहानी जीवनको जीवनमें-से और यथार्थमें-से तलाशनेकी प्रवृत्ति थी, यह स्वर विशेषकर आंचलिक कहानियोंमें-से आया था। मनुष्यके जीवनको इसने तलाशा था, उसी परि-वेशमें, बग़ैर किसी आदर्शके। इसी प्रवृत्तिने नयी कहानीके चित्र उपस्थित किये हैं जैसे 'हंसा जाय अकेला', 'दोपहरका भोजन', 'कोसी-का घटवार' और अनेक ऐसी कहानियोंके नाम दिये जा सकते हैं। तब ईमानदारी और यथार्थ-का चित्र सामने आया। इस यथार्थकी अभि-व्यक्ति हमने कैसे की ? स्वतन्त्रताके बाद '५८ या '५० में यथार्थ पकड़ा गया था जैसे इन कहानीकारों-द्वारा। जीवनका जो भोग्य है उसके बीचसे सारी चीज़ पकड़ी गयी थी। लेकिन उसके बाद जीवनका जो यथार्थ था वह कहानीकारोंकी पकड़से बाहर हो गया। यहीं-से नये कथाकारोंकी एक बहुत बड़ी पीढ़ी या प्रतिभाने अकहानी या किसी सम्बोधनको लेकर उन्हीं यथार्थ-खण्डोंको पकड़ना शुरू किया—इस बातको समझना चाहिए। उल्लेखनीय कहानी-कारोंने जिस यथार्थको लिखा वह कैसे हाथसे छूट गया और क्यों वे विवश हो गये, मनः-स्थितिकी कहानी लिखनेके लिए, क्यों विवश हो गये कुण्ठा और पश्चिमी ओढ़े गये सिद्धान्त-को लेकर कहानी लिखनेके लिए—जिसका शिकार हुआ था प्रगतिवाद और छायावादका कहानीकार ? समाजशास्त्रके अनुसार सामनेकी शक्तियोंको जब हम समझते हैं तो यथार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमल मित्र : 'नया आदमी सोचता है कि रॉशनकी कमीमें ये बूढ़े लोग ज़िन्दा क्यों हैं ?'

अपनी बात

अमृतलाल नागर : 'मैं बीचका हूँ, न पुराना, न नया। लेकिन बीचकी स्थिति रहती नहीं, आदमी आगे बढ़ जाता है।'

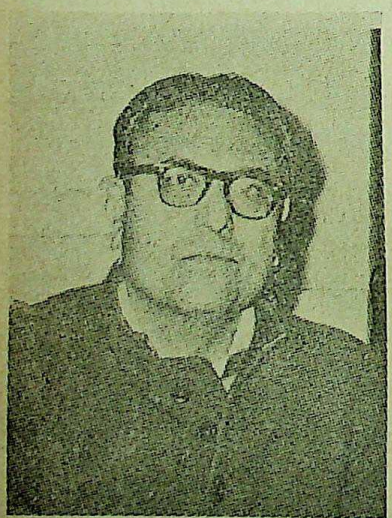

स्पष्ट होता है और जब उन्हें नहीं समझते तो उन शक्तियोंके प्रति भय उत्पन्न होता है और जब भय उत्पन्न होता है तो मनुष्य अस्पष्टता-की ओर लौटता है—प्रयोगकी ओर, ओढ़े गये सिद्धान्तकी ओर। १९५० और ५८ के बाद जो नयी सामाजिकता सामने आयी वह थी—काँग्रेस-द्वारा दिया गया समाजवादका नारा, दूसरी ओर एटानामी····वे सारे सिद्धान्त जिनके ऊपर बीसवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध टिका हुआ था, इन सारे विश्वासोंका ध्वस्त हो जाना····। हर सत्य परिवर्तनशील है, यह सिद्धान्त नये कहानीकारोंको क्लेशकर लगा और यथार्थकी पकड़ यहींसे छूटी है। यहींसे वह मनःस्थिति और सेल्फ़ जस्टीफ़िकेशनकी बात कहने लगा। यथार्थकी पकड़वाले कथाकार नकारे गये। यह बदलती हुई स्थिति बड़ी संश्लिष्ट थी और है। इस बदलती हुई स्थितिको ग्रहण करना कुछ सरल बात नहीं है। डॉ० अवस्थीके अनुसार जब सारेके सारे विश्वास असिद्ध हो जाते हैं तो फिर एक ही विश्वास शेष रह जाता है—आत्मानुभूतिका। यथार्थको पकड़नेके लिए यही आत्मानुभूति सबसे बड़ा सहारा रह जाती है। यह आत्मानुभूति क्या है ? सिर्फ़ अपनी भोगी हुई अनुभूति या दूसरेके भोगे हुए सत्यसे लगाव। यह भी बदलती हुई जीवनदृष्टिको समझनेके लिए आवश्यक है। नयी कहानीके एक अग्र समर्थक पिछले दिनों तक यह कहा करते थे कि नयी कहानीकी परम्परा बिलकुल नयी है, उसका कोई सम्बन्ध ही परम्परासे नहीं है। आज दूसरा व्यक्ति कहता है कि यह परम्परा तो भारतेन्दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जुड़ी हुई है, लगता है कुछ दिनों बाद यह परम्परा रीतिकालसे जुड़ जायेगी। यह बदलती हुई जीवनदृष्टिका बहुत बड़ा उदाहरण है कि जब यथार्थको व्यक्ति नहीं पकड़ पाता तो अतीतमें जाता है। ऐसा क्यों हुआ है इसपर विचार करें।

● प्रभाव उतनी ही मात्रामें लिये जा सकते हैं जो क्रियेशनका हिस्सा बन सकें···

डॉ० शिवप्रसाद सिंह : पहली गोष्ठीके वक्ताओंमें एक ऐतिहासिक क्रम था कि कमलेश्वरको अपने पूर्वके वक्ताओंपर भी विचार करनेका अवसर मिला और वैसे भी पुराने अपने-आप हमारे लिए विवेच्य हो जाते हैं लेकिन आवश्यक तटस्थता मिले तो बहस रुकेगी नहीं। यदि पहले जन्मे लोगोंको ही ले लें, तो विचारमें एक दोष आयेगा। प्रश्न यह नहीं है कि पहले क्या था क्योंकि सब साँचेमें ढले हुए हैं। आदर्शवाद हो या यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद—भारतीय जीवनमें ऐसा बहुत कुछ है और था जो यदि ध्वस्त नहीं होता है तो कहीं भी कोई रास्ता हमें नहीं मिलेगा। परिवर्तन आवश्यक है। जो परिवर्तनके विरुद्ध बात करते हैं वे एक प्रकारका अवरोध खड़ा करते हैं। लेकिन यथार्थ भी साँचा बन गया था। वह भी सच्चा बोध नहीं देता था। अब ऐसे यथार्थकी सम्पृक्ति होनी चाहिए जो हमें रास्ता दे सके। अब ऐसा नज़र नहीं आता कि कहीं कोई सहज रास्ता है जब कि हमारी सारी समकालीन चेतना ऐसी छटपटाहटमें-से गुज़र रही है कि कोई रास्ता मिले। पाश्चात्त्य संस्कृतिसे हमने बहुत कुछ सीखा है, यह अगर न आयी होती तो आज भी हम मध्ययुगीन परम्परामें ही पड़े होते। अँगरेज़ोंकी जीवित संस्कृतिने हमें दिया है। ऐसा कोई भी तत्कालीन बौद्धिक नहीं है जिसने पाश्चात्त्य ज्ञान-विज्ञानकी तारीफ़ न की हो। कुछ समय पुनर्जागरणका काल रहा, फिर स्वतन्त्रताके बाद सारे जनसमुदायकी आकांक्षाओंका बाधित होना आया, इससे एक हीनताका भाव आया है। स्वतन्त्रताके बाद असेम्बलींग पीरियड आया। यह जुड़ाईका युग कोई नयी प्रतिभा या उपलब्धि नहीं दे सकता। परिणामस्वरूप हम पाश्चात्त्य संस्कृतिके प्रति आश्रित होते गये। कोई भी विश्व चेतनासे कटकर नहीं रह सकता। लेकिन प्रभाव उतनी ही मात्रामें लिये जा सकते हैं जो क्रियेशनका हिस्सा बन सकें। जैसे रेलगाड़ीका विरोध कूपमण्डूकता होती है, लेकिन अब रेलगाड़ी हमारे सृजनका हिस्सा है। अजीब बात है कि हर विकास-योजनामें विदेशी बातें आती हैं लेकिन साहित्यमें उसपर प्रतिबन्ध लगानेकी बात चलती है। वह आये लेकिन हमारे सृजनका अंग बनकर। उससे वह भारतीय हो जाये। दर्द भुलवानेके लिए जो चीज़ खायी जाती है वह सृजनका अंग नहीं बन सकती है। बीटनिक परम्परा या तंग मोहरीके पायजामे या खास आकार-प्रकारकी चीज़ें—यह कहीं भी भारतीय चेतनाके सृजनका हिस्सा नहीं बनती हैं। हम उन्हीं चीज़ोंको ले सकते हैं जो हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनाको शक्ति देती हैं। इसी कारण आधुनिक साहित्यमें सारी स्थिति दिशाहीन-सी है। साहित्यकार एक सचेतन प्राणी है वह अपना उत्तरदायित्व स्वयं निबाहे। आज जो बदली हुई स्थिति दिखाई पड़ती है वह थकन या स्टेगनेशन या स्थिरताके आयाममें आ गयी है। उसे अगर सही दिशा न दी गयी तो कुछ अन्देशा है कि उससे गतिरोध या स्थैर्य आता जा रहा है।

● आघातोंके विरुद्ध निर्णय लेनेकी क्षमता ही जीवनदृष्टि है···

गंगाप्रसाद विमल : आरम्भमें जैनेन्द्रजी बोल गये हैं और वे सदैव रहस्यवाद बोलते हैं और यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस बोलीको हम समझते नहीं हैं। जिस प्रकार रहस्यवाद पुरातनवाद है वैसे ही जैनेन्द्रजीकी कहानियाँ निबन्धात्मक रचनाएँ हैं। समकालीन वे हैं जो विशेष काल-खण्डमें जीवित हैं। लेकिन समकालीन जीवनदृष्टि आधुनिकताको संवहित करती है। जैनेन्द्रजीने जो कहा वह हम समझ नहीं पाये। समकालीन जीवनदृष्टि वह है जो न समझी जानेवाली चीज़ोंको अस्वीकार करती है क्योंकि न समझी जानेवाली चीज़ोंको अस्वीकार करना हमारा धर्म हो जाता है। पीढ़ियोंका अन्तर महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि कोई वृद्ध महाशय नये जीवनको समझ लेते हैं तो वे समकालीन हुए। जो नये बोधको स्वीकार नहीं करता वह समकालीन नहीं है। रचनात्मक समकालीन दृष्टि अलग है। जो अभिशाप हमें मिला है उसे स्वीकार करनेके लिए हम अभिशापित हैं। जब हम यथार्थके साथ उसे देखते हैं तो आधुनिक जीवनदृष्टि शुरू हो जाती है। जीवनके साहचर्य-विधानमें मिलनेवाले शॉक्स-धक्कोंमें-से जब आप स्थिर होकर निर्णय ले पाते हैं तब एक दृष्टिबोध आपमें आ जाता है। जहाँ दृष्टि जड़ हो जाती है वहीं रहस्यवादकी भाषाको स्वीकारने लगते हैं। शॉक्स या आघातोंके विरुद्ध निर्णय लेनेकी क्षमता ही जीवनदृष्टि है। वस्त्रों या फ़ैशनसे अन्तर नहीं आता, मानस-जगत् ही निर्णायक होता है। भगवती बाबूने कहा, साहित्यकार चरित्र-निर्माण करता है लेकिन किसी पाठकके चरित्र-निर्माण करनेसे बड़ा दूसरा कोई झूठ नहीं हो सकता। पिछली कहानियोंमें मोटी-मोटी बातें होती थीं जिनका विश्लेषण कोई भी कर सकता है। बीचकी पीढ़ीके बारेमें कोई भ्रम नहीं है जब कि उनमें भी गलदश्रु भावुकतावाले लेखक हैं। मलवेका मालिक, दिल्लीमें एक मौत, मेरा दुश्मन, लन्दनकी एक रातमें एक सामाजिक स्थिति है या दिये गये जीवनको भोगनेकी नीति उनमें है। इसमें एक बोधकी बात है। पचासके बादका परिवर्तन इनमें देख सकते हैं। साठके बादकी चार कहानियाँ, शव यात्रा, नौ साल छोटी पत्नी, प्रतिशोध तथा पिता या फ्रेंसके इधर-उधर। इन कहानियोंमें घिसे-पिटे स्वरूपको स्वीकार नहीं किया गया है। जीवनकी नयी थीम इनमें हैं। भोगको भोगनेवाला व्यक्ति उसकी यन्त्रणाकी बात कह सकता है। क्या सम्बन्ध,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्ककी क्रियाएँ या उसका बोध महत्त्वपूर्ण हैं ? शिवप्रसादजी और डॉ० लालने जिस डरावनी भाषामें बात की है उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। सोचना यह है कि क्या सम्बन्ध बदलते हैं या व्यक्ति बदलता है या जीवनदृष्टिका रूप बदलता है ? जीवनका भोग कटु है। जो मनुष्य भोगता है वह पीड़ित है और पीड़ित मनुष्य कहानियोंके माध्यमसे अपनी बात कहता है। जीवनदृष्टिका बदलाव है तो वह स्वयं स्पष्ट हो जाता है। यह समझना ज़रूरी है कि कौन-सा रूप बदलता है और उन रूपोंकी क्या दिशाएँ हैं ?

• हर नया दिन नयी पीढ़ीको मिलता है···

अमृतलाल नागर : जीवनदृष्टि हर पीढ़ीकी आधुनिक होती है। वह दो तरीक़ोंसे प्राप्त की जाती है : एक उपदेशोंसे, मजबूरीसे, वातावरणसे और दूसरी वह जो स्वयं अर्जित की जाती है। महावीरप्रसाद द्विवेदीने भी गुप्तजीको लिखा था कि 'मैं नयी कविता चाहता हूँ।' मेरे पास सन् १९०१ की एक फ़ाइल है, जिसकी एक कहानी न नाटक है, न कहानी है, न कुछ। उसमें नयापन झलका है। उसमें हाय होटल, हाय बोटल है। पुराना था तो होटल-बोटलसे लड़ रहा था, अब नया होटलमें आ गया है। यह नयेपनकी मिसाल है। मैं पचासका हूँ—न नया, न पुराना, बीचकी स्थिति। लेकिन बीचकी स्थिति रहती नहीं क्योंकि आदमी आगे बढ़ जाता है। मैं मानता हूँ, साहित्य समाजका प्रतिबिम्ब है। जब जीवनसे कुछ पाते हैं तभी उसे कुछ दे सकते हैं। पहलेका नयापन तो यह था कि विमल बी० ए० पास, बाबू श्यामसुन्दरदास। यही क्यों, लोकगीतोंमें औरतें गाती थीं—'सइयाँ हमारे मिडिल पास, अँगरेजी बिगुल बजायें।' पुराने ज़मानेमें श्रीधर पाठक और बाबू बालमुकुन्द गुप्त भी नये ज़मानेकी बात करते थे। हम कई संस्कृतियोंमें-से गुज़रे हैं—आदि संस्कृति, मुग़ल संस्कृति, बाबू संस्कृति। पहले जातीय समाचार-पत्र निकाले गये। १८८५ में देवनागरीमें समाचार-पत्र निकला था। वे हिन्दीमें समाचार-पत्र निकालते थे और खिड़कियाँ खोलकर अँगरेज़ी बोलते थे। सबसे अधिक अँगरेज़ी उत्तर प्रदेश और तमिलनाडमें बोली जाती है। वह चलन है। विद्रोह हर पीढ़ीने किया है। सरस्वतीमें महावीरप्रसाद द्विवेदीने नया लिखवाया है, किशोरीलाल गोस्वामीको टेम्पेस्ट सुनवायी गयी थी कि वे इन्दुमति लिखें। लाला पार्वतीनन्दनने कई अनुवाद किये हैं। सन् १९०८ में बंग महिलाकी जो कहानी छपी थी वह सबसे अधिक आधुनिक थी। कलाकी अपनी दृष्टि होती है जो तर्कसे परे होती है और सूझ तथा अनुभूतिसे जन्म लेती है। गुलेरीजीकी कहानीने एक कायापलट कर दिया था। आश्चर्य होता है कि वह इतनी नयी थी। नयी उपलब्धि सादर स्वीकार करते यह नहीं कह सकता कि पुरानी पीढ़ीने रास्ता नहीं दिया। क़ानूनी खानापूर्त्ति न करें तो अच्छा है। हमारे पुरखोंने बड़ी-बड़ी बातें कही हैं। पन्तजीने रीतिकाल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बड़ी आलोचना की थी। हरिऔधजीको भी बड़ी समीक्षा हुई है। किस पीढ़ीने विद्रोह और विरोध नहीं किया? प्रश्न आजकी जीवनदृष्टिका है कि पहला इसी रूपमें उसे कैसे ग्रहण करेगा। पहले दावतोंमें जाते थे तो घरसे खिलाकर भेजते थे और वहाँ जाकर भरी थाल छोड़ आते थे। उन लोगोंकी आँखें खुली हैं जिन लोगोंने लालटेनके प्रकाशमें देखा है, अब उनके सामनेके बल्बके प्रकाशमें देखते हैं। लड़ाई न करके जीवनदृष्टिको आधुनिक कालके परिवेशमें देखें और वकालत न करें। नये शब्दसे हर नयी पीढ़ीको मोह होता है और वह आपको मुबारक हो। हर नया दिन नयी पीढ़ीको मिलता है और वह पुरानेको नसीब नहीं होता है। अन्तर्विरोधोंसे कालको दृष्टि नहीं पायेंगे, जिसे पाना ज़रूरी है।

● आत्मानुभूति + पढ़ना-लिखना = जीवनदृष्टि

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : जावनदृष्टि केवल साहित्यिक विषय ही नहीं है। इसमें राजनीति, सोशालाजी सब हैं, इसका मनुष्य मात्रसे सम्बन्ध है। मैं पूछना चाहता हूँ कि किसी भी साहित्यकारके बारेमें कोई भी यह कह सकता है कि उसकी दृष्टि बदली नहीं है। साहित्यकारके मनका, समय, परिस्थिति, पढ़ने-लिखने, आत्मानुभूति सभीका प्रभाव पड़ता है। कोई भी पूरी दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। साहित्यकारने इस बातको कण्ट्रोडिक्ट किया है। जीवनदृष्टिमें आत्मानुभूति और स्वयंका पढ़ना-लिखना दोनोंका योग होता है। किसीकी कोई एक जीवनदृष्टि नहीं हो सकती। भारतीय दर्शनको लें तो पहले वेदको मानकर चला जाता था। वेद परम प्रामाणिक थे। इसका प्रभाव यह पड़ा कि जीवन बँधा रहा लेकिन जीवनके लिए किसी आधारकी आवश्यकता होती है। जो दृष्टि मिलती है वह आधारसे प्रभावित होती है। सत्य और प्रभाव आंशिक हो जाता है। संस्कार, बचपनके प्रभाव आदि सभी इसमें होते हैं। पहले वक्ताओंने दृष्टिकी बातको ओवरइनसिस्ट किया है। कई रचनाएँ जीवनको बदल देती हैं, सम्पूर्ण चिन्तनको बदल सकती हैं। साहित्यकार विचारोंको भी बदल सकता है और दिशा भी दे सकता है।

● भीतरसे अवसरवाद बोलता है और हम समझते हैं—आत्मा बोल रही है···

हरिशंकर परसाई : मैं चाहता था कुछ और लोग बोलें क्योंकि मामला ठण्डा चल रहा था। नागरजीने जिस तरहका सबको मरहम लगाया उससे तो स्नेह-वात्सल्य आदि भाव पैदा होने लगे हैं। डॉ० लालने ऐतिहासिक भूमिका प्रस्तुत की लेकिन एक भूल की, क्योंकि प्रगतिवादने सारे जीवन और दृष्टिको बदलनेकी कोशिश की है। आन्दोलनोंमें कई बातें हुईं लेकिन ऐतिहासिक तथ्योंको भुलाया नहीं जा सकता। पीढ़ियोंकी बात महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि बीस-इक्कीस सालका कथाकार भी रूमानी कहानियाँ लिखता है—प्रेमिकाको टी० बी० करवा देता है या आत्महत्या करवा देता है। पापुलर उपन्यासकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर, जिनका उपन्यास चौरंगी है—अजीब बात है उसमें जितनी अच्छी स्त्रियाँ है सब मर जाती हैं। मेरा ख़याल है, पचास-साठ साल पहले अच्छी स्त्रियाँ मरती थीं, अब अच्छी स्त्रियाँ नहीं मरतीं। अच्छी स्त्रियाँ बुरी स्त्रियोंको मार भी डालती हैं। गंगाप्रसाद विमलने जीवनको भोगनेकी बात कही। मैं नहीं मानता कि भावनाके आदान-प्रदानवाली ऐसी बातें भी होती हैं। हम इसे नहीं मानते। गान्धीवादकी हृदय-परिवर्तनवाली बातपर भी यह डिस्कवरी हो गयी कि हृदय ही नहीं होते तो बदलेंगे कैसे? इसके बाद रसात्मक दीदीवाद वाली बात आयी, वह भी ग़लत है। विमलने जीवनको जैसेका तैसा भोगनेकी जो बात कही उसमें भी बहुत धोखा है। इससे पहले आत्मानुभूतिकी बात कही गयी थी, वह भी बड़ी फ्रॉड है। बहुत बार ऐसा होता है कि भीतरसे अवसरवाद बोलता है और हम समझते हैं कि आत्मा बोल रही है। कई बार दर्द बोलता है और हमें मालूम होता है कि आत्मा ही बोल रही है। आत्मा कोई मशीन नहीं है वह हमारे घात-प्रतिघातसे सम्बद्ध है। भोगनेका मतलब सफरिंग नहीं है, सारे सुख-दुःखको बरदाश्त करना है और अकेले ही नहीं, सबके साथ मिलकर बरदाश्त करना है। कुछ लोग कहते हैं कि नयी पीढ़ी बीटनिक होती जा रही है लेकिन मैं कहता हूँ कि वह बीटनिक नहीं है क्योंकि बीटनिक आइजन होवरपर, क्रेस्ट्रोपर, विएतनामपर कविता लिखते हैं और उन्हें दिखाते हैं और गोली खाते हैं। उन्हें कुण्ठा और अनास्थाका प्रतीक मान लिया गया है। ज़रूरत है विद्रोह करनेकी ताक़तकी। पाश्चात्य नक़लसे कोई डर नहीं है। नयी पीढ़ीको जो कहते हैं कि इसमें कुण्ठा और अनास्था है, वह परिस्थितिके कारण है। उसके पास पैसा नहीं है, उसकी बहन सूख रही है, कॉलेजमें प्रोफ़ेसर उसे दुत्कार देते हैं, पिता एक्सपोज़्ड हैं, नेताका राज़ उसे मालूम है, टीचर्सको वह जानता है, अब बम्बई-कलकत्ताका वह लड़का काँच न तोड़ दे और पत्थरने फेंके तो मैं कहता हूँ वह मर जायेगा। समाजमें स्थिति यह है कि उसे असर्ट करना पड़ता है। नक़लवाला आरोप दूर हो जाता है जब हम सारे समाजका एनलॅसिस करते हैं।

• आजके लेखकके पास कोई जीवनदृष्टि नहीं है—और वह इसे हिम्मतके साथ स्वीकारता है···

श्रीकान्त वर्मा : कोई भी बहस न पीढ़ी तक सीमित रह सकी है न देश-विदेश तक क्योंकि दुनिया बहुत बड़ी हो गयी है। आजके लेखककी विशेषता है कि वह किसी एक दुनियामें नहीं रहता, पचास हज़ार दुनियामें रहता है और किसी एक कालमें नहीं रहता, हर समयमें रहता है। वह जो कुछ लिख रहा है उसके हर शब्दमें पहलेका शब्द मिला हुआ है। जो कुछ आज वह लिख रहा है आनेवाले उसे ग्रहण करेंगे। इसलिए परम्पराके सवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेमानी हैं। मैं नहीं मानता कि आजके लेखकने कोई ऐसी जीवनदृष्टि प्राप्त कर ली है कि उसका साहित्य विशिष्ट हो गया है। आजका लेखन यदि विशिष्ट है तो उसी अर्थमें ही कि आजके लेखकके पास कोई जीवनदृष्टि नहीं है और लेखक उसे हिम्मतके साथ स्वीकारता है। लेखक पैग़म्बर नहीं है और कभी भी लेखक पैग़म्बर नहीं रहा। जो लोग पैग़म्बर या मसीहा होनेका दावा करते हैं और जीवनदृष्टि पाकर लिखते हैं वे भी जीवन जीनेकी और साहित्य-रचनाकी प्रक्रियामें-से दृष्टि पानेकी कोशिश करते हैं। हम यह कैसे कह सकते हैं कि हमारी जीवनदृष्टि अलग है, और हमी संघर्ष कर रहे हैं? बाल्मीकिने क्या संघर्ष नहीं किया? क्रौंचवध उस अन्तर्संघर्षका प्रतीक है जिससे कविता पैदा हुई। इस अन्तर्संघर्षके बग़ैर रामायणकी रचना नहीं होती। जिसमें अन्तर्संघर्ष नहीं है, उसे हज़ारों किताबोंसे जीवनदृष्टि नहीं मिल सकती क्योंकि वह बनी हुई चीज़ नहीं है। हर व्यक्ति और लेखक अपनी दृष्टि खुद प्राप्त करता है। बाहरी संघर्ष भी महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन जब तक वे अन्तर्संघर्षसे जुड़े हुए नहीं होते जब तक वे कुछ देते नहीं। दुनियामें लाखों लोग लिख रहे हैं लेकिन सभी लेखक नहीं हैं। लेखक केवल थोड़े-से लोग हैं, बाक़ी लिखनेवाले हैं। लिखनेवालोंके लिए यह सवाल फ़िज़ूल है, केवल लेखकके लिए ही यह सवाल है कि वह जीवनदृष्टि कैसे प्राप्त करें। आजके लेखनकी विशेषता यह है कि उसे एहसास हुआ है कि उसके पुरखे, पूर्वज, उसके पहलेके लोग, पासके लोग, दूरके लोग कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सकते, कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सके और नहीं कर सकेंगे। यह एहसास ही अपनेमें बहुत बड़ा है। लेखकको लगा है कि वह अकेला है और उसे सारे इतिहासको तय करना है, और सारे इतिहाससे लड़ना है। कुछ लोग अन्तर्संघर्षमें भटकते हैं और अपनेसे पहलेके इतिहासको झुठलानेकी कोशिश करते हैं। मुझे ऐसा लगा है कई बार कि पहलेका इतिहास झूठा है। यह भी लगा है कि मेरेसे पहलेका इतिहास सही था लेकिन उसके सही हो जानेसे मैं सही नहीं हो सकता। इसलिए आजका साहित्य तमाम साहित्यसे जुड़ा हुआ है। यह कहना कि प्रेमचन्द या यशपालकी कहानीका आजकी कहानीपर प्रभाव है बहुत सीमित दृष्टिका परिचय देना है। इसीकी खोज करनी है तो इसे लम्बी परम्परासे खोजना होगा। हो सकता है, आजकी कहानीमें पंचतन्त्रका प्रभाव हो क्योंकि बचपनमें सुनी कहानियाँ आपके मनमें गूँज रही हैं। इस विशाल दृष्टिसे देखनेपर ही परम्पराकी खोज हो सकती है। पाश्चात्यमें भी इसी विशाल दृष्टिसे परम्पराकी खोज की गयी है। शिवप्रसाद सिंहने कहा कि पाश्चात्यका अन्धानुकरण हो रहा है। नक़ल प्रेमचन्दकी हो या काफ़्काकी, वह नक़ल है। सवाल प्रभावोंका है। प्रभाव कहींसे भी छन कर आ सकता है। ईमानदारीसे कहूँ तो मुझे प्रेमचन्दकी कहानियोंसे अधिक अच्छी कई पाश्चात्य कहानियाँ लगती हैं क्योंकि आदमीका बड़ी तेज़ीसे अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे आंचलिकतामें समेटकर नहीं रखा जा सकता, अन्तर्राष्ट्रीयता भीतर-भीतर बदलती हुई दुनिया है। कहीं भी रहकर किसी भी जगहके आदमीसे जुड़ा हुआ रहा जा सकता है। पहले आंचलिकता एक रंगीनता पैदा करती थी। अब कहानियाँ बदली हैं, वे दो-तीन वर्षोंसे नहीं लिखी जा रही हैं, पिछले दस-पन्द्रह वर्षोंसे लिखी जा रही हैं। वह उस आदमीकी कहानी है जो अपने क़ैदखानेसे मुक्त होकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। इसीलिए आजकी कहानीसे नाम उड़ते जा रहे हैं। नाम रख देनेसे कहानी झूठी मालूम होगी। नामों का कहानियोंसे ग़ायब होना पिछले पाँच-सात सालोंमें सबसे बड़ी घटना लगती है। यह अन्तर्राष्ट्रीयता विश्वमानव होनेकी एक प्रक्रिया है, यह पूरी तरह आदमी हो जानेकी प्रक्रिया है। एजरा पाउण्डने टैगोरकी कविताओंको अस्वीकार किया तो इसका यह आशय था कि वे कविताएँ होते हुए भी आंचलिक कविताएँ थीं। बंगलामें ही वे कविताएँ हैं। अनुवादमें खत्म हो जाती हैं। उसके दर्शनसे उद्‌भूत हो सकते हैं लेकिन वह दर्शनसे उद्‌भूत होना है, कवितासे नहीं। आजकी कविता और कहानीका अनुवाद होनेपर वह वैसी ही लगती है क्योंकि आज दुनिया एक हो गयी है। पश्चिममें कभी बीट कवियोंसे यह नहीं पूछा गया कि तुम कबीरदासका अध्ययन करनेके लिए बनारस क्यों जाते हो? लेकिन हमारे यहाँ यह सवाल उठता है, क्योंकि हमें भय है कि पश्चिम हमें खा जायेगा। लेकिन अगर हम खा जानेके लायक़ हैं तो हमें खा जाया जाना चाहिए। और अगर इस लायक़ नहीं हैं तो हमें कोई नहीं खा सकता। इसलिए प्रभाव पड़ेगा ही, आप चाहें या न चाहें। साहित्यको खानोंमें बाँटकर बहस नहीं कर सकते। कोई ज़रूरत नहीं कि बहसमें प्रेमचन्दको ही स्मरण किया जाये, बाहरके लेखकों को भी स्मरण किया जा सकता है। क्योंकि वे भी उतने ही लेखक हैं।

३ उपलब्धियाँ, उभरती दिशाएँ और आधुनिकताके सन्दर्भ....

२५ दिसम्बर। सुबह ९ बजे। विषय : हिन्दी कथा-साहित्य : उपलब्धियाँ, उभरती दिशाएँ और आधुनिकताके सन्दर्भमें अपेक्षाएँ। अध्यक्ष : डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा, डॉ० देवीशंकर अवस्थी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह। वक्ता : धनंजय वर्मा, श्रीकान्त वर्मा, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह।

• नयी पीढ़ी : छोटी, लेकिन अधिक प्रामाणिक दुनिया...

डॉ० देवीशंकर अवस्थी : आधुनिकता लेकिन उसको व्यापक चर्चा न कर केवल एक नितान्त अपरिभाषित रपटीला शब्द है। इतना ही कहना है कि आधुनिकता एक साहि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

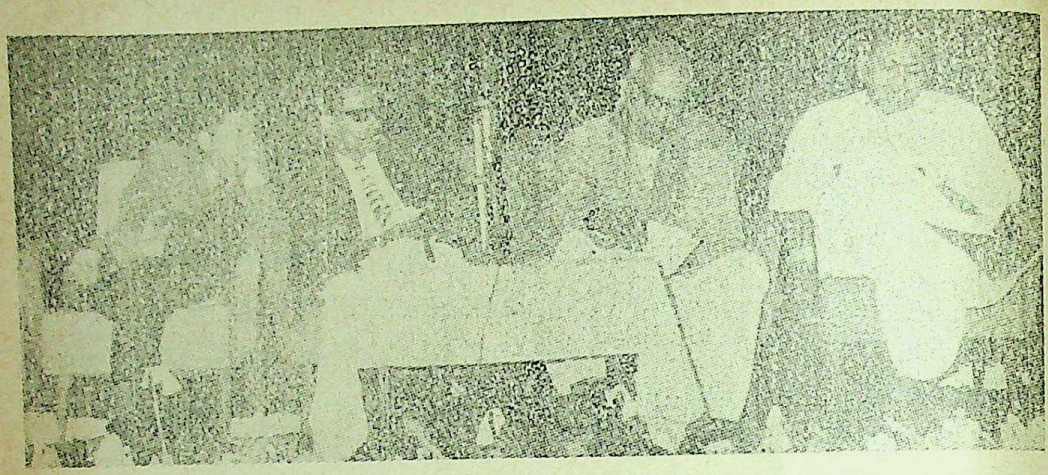

[चित्रमें : श्रीकान्त वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह ।]

त्यिक प्रक्रिया है। इसके पीछे विज्ञान, यन्त्र एवं अन्य तथ्य हैं। लेकिन इस प्रक्रियाके साथ-साथ दृष्टि बदलती गयी है चीज़ोंको देखनेकी। दृष्टिका सन्दर्भ केवल इतना है कि अपने यथार्थको व्यक्ति किस रूपमें देखता है। इसी-को लेकर तमाम नयी-पुरानी पीढ़ियोंके झगड़े या नये-पुरानेके द्वन्द्व खड़े होते हैं। मैं ऐसा समन्वयवादी नहीं हूँ कि हर चीज़में मरहम लगाकर मान लूँ कि नये और पुरानेमें कोई द्वन्द्व नहीं है। मैं मानता हूँ कि नये और पुरानेका द्वन्द्व रचनात्मकताका अनिवार्य सन्दर्भ होता है। शायद एमर्सनने यह कहा था कि हर युगको अपना नया ग्रन्थ लिखना होता है, पुरानी किताबोंसे काम नहीं चलता है, इससे यह मालूम होता है कि वह हर चीज़को नये सिरेसे देखने लगता है। यथार्थ जो उसके चारों तरफ़ है वह क्या है ? क्योंकि यथार्थ सारा संसार है। उस पूरे संसारसे हम कुछ चीज़ोंको अपने लिए चुनते हैं। साहित्यके सन्दर्भमें उतना ही प्रासंगिक होता है। इस चुननेमें, अपना दृष्टिकोण कहें, जीवनदृष्टि कह लीजिए, जीवनदर्शन कह लीजिए या आपकी अपनी आधुनिकताकी पहचान होती है तो यह एक केन्द्रपर खड़े होकर देखा जाये तो पुराने लोग अपने द्वन्द्वकी कहानियाँ लिख चुके हैं। जिस समय प्रेमचन्दके बाद जैनेन्द्रजीने, भगवती बाबूने या चन्द्रगुप्त विद्यालंकारने कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं वे उनके अपने जीवनकी, अन्तर्द्वन्द्वकी कहानियाँ थीं और ऐतिहासिक दृष्टिसे उनका महत्त्व है। लेकिन जब वे लेखक अब कहानियाँ लिखते हैं तो सवाल यह देखने-का उठता है कि वे किस यथार्थको व्यक्त कर रहे हैं। बाहरी संसारमें फैली हुई छवियोंको चुननेमें, उनसे सम्पर्क स्थापित करनेमें, उनके सन्दर्भोंको जोड़नेमें वे किस तरहके जीवनकी तलाश कर रहे हैं ? मैं कहूँगा कि जिन कहा-नियोंको पुराने लेखकोंने लिखा है, इस बीचमें आकर वहाँपर घटनाएँ नहीं हैं, जो आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं उनकी बाहरी वेश-भूषा नहीं है, उनके सम्बन्ध झूठे हैं इसलिए वे कहानियाँ झूठी हैं। और इसके पीछे वह नया संघर्ष था पूरे राष्ट्र-का, पूरे देशका, जिसकी तलाशकी बात उचित थी। एक अपने पूरे-पूरे देशकी आइडेण्टीटीका एक नया दौर था। आप सभी इस बातको स्वीकार करेंगे कि स्वतन्त्रताके बाद देशके व्यक्तित्वकी एक नयी पहचान सामने आनेकी आवश्यकता थी क्योंकि देश नया हो रहा था, समाज नया हो रहा था और उसके लिए एक नयी पहचानकी आवश्यकता थी। उस समाज-की जो आइडेण्टीटी है, उसे बननेकी आवश्य-कता थी। छोटे-बड़े लेखक इस बातको अपने-अपने परस्पेक्टिवमें देख लेते हैं। बिलकुल ऐसा ही हुआ है कि नयी कहानी जब आयी है तब कथाकारने इन चीज़ोंको फिरसे तला-शनेकी कोशिश की है। समकालीन कहानीके साथ आधुनिकताका स्वर जुड़ा हुआ है लेकिन मुझे लगता है कि एक नयी पीढ़ी पुनः आ गयी है। यह नयी पीढ़ी अपने लिए एक नयी पहचानकी तलाश कर रही है। नयी कहानीमें भी यह स्वर उभर रहा है। नयी कहानीके क्षेत्रमें भी नया स्वर उभर रहा है। वे नयी पीढ़ीके कथाकार हैं। मैं साठकी कोई रेखा नहीं खींचना चाहता। लेकिन यह स्पष्ट है कि पुनः दृष्टिका बदलाव हो रहा है। इन कहानियोंको लेकर देखा जा सकता है। रवीन्द्र कालियाकी 'एक प्रामाणिक झूठ', 'विकथा' या श्रीकान्तकी 'शव-यात्रा', दूध-नाथकी 'प्रतिशोध', ज्ञानरंजनकी 'फेंसके इधर-उधर' इन कहानियोंको पिछले दशककी कहा-नियोंसे मिलाकर देखिए। एक भिन्न प्रकारकी स्थिति दिखाई पड़ती है। नयी कहानीके लेखकों-की कहानियोंको पढ़ जाइए तो लगता है कि जो कुछ ये कह रहे हैं उसका उन्हें पूरा ज्ञान है। कहानी, उसके सारे डिटेल्स उन्हें हस्तामलक हैं। इसीलिए कहानीमें आनेवाली समीक्षा-स्थितियोंके मध्य लॉजिकल कनेक्शन्स बराबर विद्यमान दिखते हैं। इसीके साथ पहले गिनायी गयी कहानियाँ देख जाइए, उभरी दुनिया लेखकके लिए भी अपरिचित मालूम पड़ती है। लगता है कि उसके बग़ैर, इस संसारका नक़शा समझे बग़ैर इस दुनियाके सम्बन्धोंकी प्रामाणिकता, कारण-सम्बन्धोंकी जाँच किये बग़ैर कहानी लिखना शुरू कर दिया गया है। ज्ञान प्राप्त करके कहानी लिखनेकी बजाय लिखनेके दौरान ज्ञान खोजता जाता है या कभी-कभी पता चलता है—प्रयाग शुक्लकी 'साँसें'। कहना न होगा कि मैंने सृजन-प्रक्रियाके अन्तरकी ओर आपका ध्यान खींचना चाहा है और यह अन्तर सृजन-प्रक्रियाका ही नहीं है—यह यथार्थके प्रति अलग-अलग रुखोंका भी है।

थर्टीज़-फ़ोर्टीज़के लेखक यथार्थका सृजन करते थे तो पचासके लेखक यथार्थको अभि-व्यक्त करते थे, पर एकदम नया समकालीन कहानीकार यथार्थको खोजता है। पिछली पीढ़ीके लेखक जानते थे कि यथार्थ बिखरा हुआ पड़ा है, अपेक्षित है, कहीं-कहीं ढँका भी है और उन्हें अभिव्यक्त या उद्घोषित करने-की ज़रूरत है। इस चेष्टामें ये लोग शहरकी गलियोंसे आदिवासियोंके घोटुल तक चक्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा आते थे। विभाजनका यथार्थ, उपेक्षित अंचलोंका यथार्थ, उपेक्षित पात्रोंका यथार्थ, उपेक्षित गलियोंका यथार्थ—इन्हें नये कहानीकार व्यक्त कर सके हैं। 'रस-प्रिया' हो या 'गुलकी बन्नो', 'प्रतीक्षा' हो या 'राजा निरबंसिया' मिथिलाका अंचल हो या बस्तीका या गोंडवानेका—मूल दृष्टि यही बनी रही। फिर इस यथार्थके नामसे छौंक-लोभी रही सामाजिकताकी, मानवताकी, समस्याओंकी यानी कि रूप बदले प्रगतिवादकी। यों इस क्षेत्रमें योगदान भी प्रगतिशीलोंका ही है। आश्चर्य न होना चाहिए कि कहानीकारसे अधिक सफल कहानी-समीक्षक मार्कण्डेय कहानीकारसे एक स्पष्ट सामाजिक दृष्टिकी माँग करते हैं और कमलेश्वर या यादव भी बार-बार सामाजिकताकी माँग दोहराते हैं। इनकी स्पष्ट सामाजिक दृष्टिका तनिक भी विश्लेषण स्पष्ट कर देगा कि एक प्रकारका भविष्यवाद इनके साथ जुड़ा हुआ है। पर नया लेखक इनको अस्वीकार करता है। अपनी इस दृष्टिके कारण इन लोगोंने काफ़ी समस्या-प्रधान कहानियाँ भी लिखीं और प्रकृतिवादी भी। इन लोगोंके दिमाग़में कहीं यह बाक़ी था कि साहित्य समाजको बदलनेका एक साधन है, साहित्यको आस्थावादी होना चाहिए। ये लोग काफ़ी-काफ़ी दूर खोजते चले गये या यों कहें कि ज्यों-ज्यों बसत जात प्रिय पास भूरि दूरि-दूरि त्यों धँसत जात मन मुकुर हमारे में। कहना न होगा कि साहित्यिक मूल्यांकनके समय आस्थावादी स्वर सबसे अधिक अप्रामाणिक ठहरते हैं—चाहे वे अन्धा युगमें हों या आत्मजयीके नचिकेतामें या उखड़े लोग, नीरांजना, मलवेका मालिक और आद्रामें। साहित्य इन रचनाओंमें भी वहीं उभरता है जहाँ पराजय है, हताशा है, डिप्रेस्ड है।

एक और तथ्य की याद दिलाना चाहूँगा—पिछले दशकमें यह बात बार-बार दोहरायी गयी कि पुराने मूल्य टूट गये और नये मूल्य बन नहीं पाये। पर एक विचित्र बात है कि इन कहानीकारों या साहित्यकारोंके कृतित्वका विश्लेषण बताता है कि पुराने मूल्योंके प्रति इनके मनमें बेहद ममत्व था। पुरानी पीढ़ी और उसके मूल्योंकी चर्चा करते समय ये उन्हें टूटता दिखाते हैं, पर ऐसा लगता है कि चाहते यही हैं कि वहीं बने रहते। वे पुराने लोग भी बालिके समान इन कहानीकारोंकी आधीसे अधिक शक्ति ले लेते हैं। चाहे 'गुलराके बाबा', 'चीफ़की दावत' हो—यही दृष्टि बार-बार उभरती है। वस्तुतः कहानी ये लोग इसी ममत्वसे पैदा करते हैं। इसी ममत्वसे कहानी पैदा होती थी—कथा-मूल्यसे। उनके सामने अपनी वयवाली नयी पीढ़ी हतदर्प दिखती है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि यही इनकी अपनी संवेदनाकी असफलता है—ग़ैर ईमानदारी नहीं। ईमानदारीसे घटनाओं, पात्रों, परिस्थितियों, सम्बन्धोंको चुना जाता है, कहानीको अधिकसे अधिक सफल बनाया जाता है पर घूम-फिरकर संवेदना आधुनिकताके भारको सह नहीं पाती और अन्ततः एक 'नोस्टोलिजिया' बार-बार उभरता दिखता है। अपनी पीढ़ीकी आइडेण्टीटी इन्हें नहीं मिलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जब अपनी ही पीढ़ीकी बात करते हैं तो उसके ऊपर वाल्व-पैटर्न पुरानी पीढ़ीको आरोपित करते हैं।

पर प्राकृतिक तथ्यों, बाह्य वस्तु-वर्णनोंके ज्ञानको स्वीकारनेवाली यथार्थ दृष्टिको जब नयी पीढ़ीने अस्वीकार किया है तो उसके साथ ही लिपटी तमाम विचार-दृष्टियोंको भी अस्वीकार कर दिया है। क्यों लिखते हो? साहित्यका क्या प्रयोजन है? साहित्यकी क्या शक्ति है? आजके सन्दर्भमें ये प्रश्न उसके लिए व्यर्थ हो गये हैं। वह जानता है कि साहित्य समाज नहीं बदल सकता, उसके पढ़नेवाले उसके माध्यमसे सामाजिक सम्बन्धों या भावनाओं-कल्पनाओंको अधिक संयोजित रूपसे देख सकता है, पर इससे अधिक नहीं। साहित्य आनन्द देता है, यह तो तभी खण्डित हो जाता है जब आनन्दवादी खोमोंको अस्वीकार कर दिया जाता है। और क्यों लिखता है इसका उत्तर हो सकता है कि अलेन रोब्ब ग्रिएके साथ है कि यही जाननेके लिए लिखता हूँ कि मैं क्यों लिखना चाहता हूँ? परिणाम है कि सामाजिक समस्याओंपर कहानी लिखना उसका मिशन नहीं रहा। उसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी कहानियोंमें समाज या सामाजिक सम्बन्ध नहीं रहे। बल्कि यों कहें कि समस्याओंका चुनाव व्यर्थ हो गया—क्यों यह समस्या इस प्रकारकी है इसका कोई दो टूक निश्चित उत्तर नहीं रहा। यों महेन्द्र भल्लाकी कहानी 'एक पतिके नोट्स'का विश्लेषण करते हुए मैंने दिखलाना चाहा है कि सामाजिक सम्बन्धोंका वैयक्तिक स्तरपर स्वीकार और अस्वीकार किस प्रकारका भयावहताकी सृष्टि करता है। 'फेंसके इधर-उधर', 'आदमी', 'बड़े शहरका आदमी', 'इन्तज़ार' आदिके संसार हमारी सामाजिक सचाइयोंको एक भिन्न प्रकारके तीखेपनके साथ व्यक्त करते हैं—तथाकथित सामाजिक कहानियोंके।

इस पीढ़ीकी पृष्ठभूमिमें अब वे लोग भी नहीं है जिन्होंने त्याग किये थे, बलिदान किये थे, टूट गये थे, पर झुके नहीं थे। वे भी नहीं जिन्होंने, अपने त्यागको धीरे-धीरे विलासमें डुबोया था। इनके पीछे तो अपनी ही पीढ़ी थी। और परिणामस्वरूप ये अपनी कहानियाँ कहते हैं, अपनी पीढ़ीकी। ये अपनी नज़रसे बूढ़ोंकी कहानियाँ नहीं कहते बल्कि अपनी नज़रसे अपनी कहानियाँ कहते हैं। इनके यहाँ गंगाप्रसाद विमलकी कहानीके समान 'पिता' यदि आता भी है तो पिताके मूल्य नहीं, पुत्रके मूल्य (या मूल्यहीनता-)। पवित्रताबोध साहित्य आनन्दमंजित होते हैं। कहना न होगा कि पहले वर्षोंमें इन कहानियोंमें बूढ़ोंकी संख्या लगातार कम होती गयी है। सामाजिकता या मानवता-जैसे वाक्य इस पीढ़ीके लेखकोंके लिए या तो ॲब्स्ट्रक्शन हैं या एकदम अप्रासंगिक। यह स्थिति लोगोंको भयावह लग सकती है, हो सकता है कि इन्हींमें-से कुछ लोग इन बातोंका विरोध करें—पर कहानियों और वक्तव्यों दोनोंके विश्लेषणसे मैं अपनी बात पुष्ट कर सकता हूँ। इनकी कहानियोंमें पात्रोंके नाम तक ग़ायब हो गये हैं—उनकी हुलिया, पेशा, हॉबो या कार्यकलापोंको तो बहुत दूर जाने दीजिए। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्रोंके नाम—यदि सचमुच ही ये पात्र हैं तो। इसीलिए पढ़नेके बाद कहानी या शीर्षक या घटना नहीं याद रहती—ज़्यादासे ज़्यादा यह कि सम्बन्ध क्या थे या फिर वह पात्र दिमाग़में रह जाता है जो अनुपस्थित है। रोज़मर्राका यथार्थ इनकी कहानियोंमें ज्यों-का-त्यों नहीं आता, विरूपित हो जाता है, ज़्यादातर उसका बेयरमिनिमम ही होता है, ये कहानियाँ कभी-कभी एलिगॅरी मालूम पड़ने लगती हैं और अकसर मात्र चुटकुलेबाज़ी। इनके आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव संसारोंमें फ़र्क़ नहीं रह गया है। निजी संसार और बाहरी संसार की टेरेनी एक साथ मिली हुई है।

वस्तुतः जो बातें नयी कहानीमें वैचारिक स्तरपर कही जाती रही हैं—वे ही इन कहानियोंमें अनुभव बिम्बोंमें व्यक्त हुई हैं। इन कहानियोंकी दुनिया छोटी भले हो पर अधिक प्रामाणिक है।

• नयी कहानी परिवर्तित सन्दर्भोंमें नये भावबोधकी उपज है···

धनंजय वर्मा : उपलब्धियाँ विकासयात्रा-की स्मृति-चिह्न हो सकती हैं लेकिन निकष नहीं, पर सारा विवाद उसी समय खड़ा होता है जब एक उपलब्धि निकष बननेका दम्भ करती है। हम सब हिन्दी कथा-साहित्यकी ऐतिहासिक उपलब्धियों-व्यक्तियों और रच-नाओंको स्वीकार करते हैं, प्रेमचन्द और प्रसादसे लेकर, अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, अश्क, भगवतीचरण वर्मा, नागर आदिके महत्त्वको स्वीकार करते हैं लेकिन उन्हें निकष नहीं मानते। जब नवलेखनकी उपलब्धियोंका सामंजस्य, ऐतिहासिक उप-लब्धियोंसे नहीं बैठ पाता, तब उनके प्रतिकूल या उनसे विकसित होनेके कारण ही उनका विरोध होता है; इसीलिए हिन्दी नवलेखन, विशेषकर कथा-साहित्यके सन्दर्भमें पीढ़ियोंका सारा संघर्ष अधिकांशतः वैयक्तिक स्तरपर ही रहा। मूल्य, दृष्टि, प्रतिमान और बोधके धरातलपर उठ ही नहीं पाया, या इस धरातल-पर उसे देखनेकी फ़िक्र लोगोंको कम ही रही। नयी या पुरानी पीढ़ी केवल आयु और काल-क्रमके अनुसार विभाजित नहीं होती, जीवनकी गति और इतिहासकी प्रक्रियाको भी वे व्यक्त करती हैं। इनका संघर्ष मूल्य, दृष्टि, प्रतिमान और भावबोधके परिवर्तनके कारण होता है।

प्रत्येक नयी परिस्थितिमें सामाजिक सन्दर्भ और सम्बन्ध परिवर्तित होते हैं और नये जीवनमूल्योंकी चेतना जाग्रत होती है। ऐसी नयी परिस्थितिमें रचनाके संस्कार और प्रेरणा भी बदलते हैं। यदि जीवनकी गति अधिक सत्वर हुई (जो कि है) तो कभी-कभी पूरा स्वरूप बदल जाता है, तब यह परिवर्तन इतना क्रान्तिकारी होता है कि (नया) विकास न होकर एक स्वतन्त्र उद्-भावना अधिक लगता है। यह नयी उद्-भावना (नयी पीढ़ी) केवल समय अवधिके धरातल पर ही पुरानी पीढ़ीसे पृथक् नहीं होती वरन् जीवनदृष्टि, वैचारिक स्तर रचना-की अन्तर्प्रेरणा और शैलीमें भी पृथक् होती है। यह तो सम्भव है कि समय अवधिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिसे पुरानी पीढ़ी वर्तमान रहे लेकिन निश्चय ही वह नये जीवन और नयी मानव-वास्तविकतासे कट जाती है—अपनी निर्मित दृष्टि, स्तर, प्रेरणा, अनुभूति और प्रक्रिया करनेके निश्चित संस्कार और स्वभावके कारण वह नयी जीवन-धारासे संगति नहीं बैठा पाती। यह किसी एक पीढ़ीकी ही नहीं हम सबकी विवशता है। जीवनकी धारा होती ही इतनी निर्मल और वेगवती है कि व्यक्तियोंकी कौन कहे बड़ीसे बड़ी उपलब्धि और मूल्यको भी छोड़कर आगे बढ़ जाती है। उसके आगे कोई भी समझ और शक्ति काम नहीं देती, क्योंकि प्रश्न समझदारी, शक्ति और जागरूकतासे आगे बढ़कर मानसिक बनावट, अनुभूति और संवेदनाके धरातल, जीवनकी पद्धति और दृष्टिका होता है और नयी पीढ़ी पुरानीसे, इन्हीं दिशाओंमें पृथक् होती है। नये कथा-साहित्यमें यह मानसिक संघटन, भाव-बोध, संस्कार, परिस्थितियाँ, जीवनकी पद्धति और प्रतिक्रिया करनेका स्वभाव और दृष्टि परिवर्तित है और समकालीन सन्दर्भमें जहाँसे, जिसमें यह परिवर्तन हुआ और हो रहा है वही नयी पीढ़ीका है। यहाँ न तो उम्रका कोई बन्धन है, न कालका, और निश्चय ही एक नयी पीढ़ीका—मैं फिर कहता हूँ। पीढ़ीसे मतलब व्यक्ति या व्यक्ति समूहसे ही नहीं, मूल्य, दृष्टि, प्रतिमान और भाव-बोधसे है—अस्तित्वसे है। यहाँ 'नया' सापेक्षिक शब्द और विशेषण मात्र ही नहीं है, वह एक मूल्य और चेतना भी है। यदि वह सापेक्ष्य है तो भी काल-सापेक्ष्य नहीं,

मोहन राकेश : 'हमारे साहित्यकारका कर्तव्य बदलते समाज और इनसानके साथ तादात्म्य स्थापित करते चलना है।'

अपने-अपने दायित्व

राजेन्द्र यादव : 'रचनाका प्रणेता केवल कलाकार ही नहीं होता, उसके बाहर और भीतर एक कोई और भी है ··।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि-सापेक्ष्य है। दिक्कालकी सीमाके निकष-पर ही उसकी परीक्षा नहीं होगी—एप्रोच, निर्वाह और दृष्टि ही उसके निर्णायक बिन्दु होंगे। संवेदनाके धरातल और भाव-बोधसे ही उसकी पहचान होगी। जिसे हम नयी कहानी या नया उपन्यास कहते हैं, वह परिवर्तित सन्दर्भोंमें नये भाव-बोधकी ही उपज है।

नया कथा-साहित्य एक ऐतिहासिक सन्दर्भकी उपज है—वह परम्परासे नैरन्तर्यके धरातलपर संयुक्त है और परम्परासे पृथक् एक स्वतन्त्र विकास भी, एप्रोच, निर्वाह और दृष्टिके धरातलपर। उसने युगके अनुभूत वास्तवके सारे अन्तर्विरोध, प्रवंचना और असंगतिको भोगा और अभिव्यक्त किया है। वह एक साथ ही मूल्य-भंग और मूल्य-निर्माणका साहित्य है। उसकी तात्कालिक परम्परामें जिन उपलब्ध सत्यों और तथ्योंको स्वयंसिद्ध मानकर विवरण और वर्णनसे सजा दिया गया था या जिन्हें कटे-छँटे विचार-विश्लेषण और निष्कर्षवादका जामा पहनाया गया था उन्हें (उपलब्ध सत्यों और तथ्योंको) नये कथा-साहित्यने अधिक गहराईमें जाकर अधिक व्यापकता और विस्तारके साथ संयमित, स्वस्थ और तटस्थ दृष्टिसे देखा और उनकी प्रक्रिया को है ताकि उस प्रक्रियासे होता हुआ पाठक भी उनतक, अनुभव और अनुभूतिके धरातलपर पहुँच सके। पहले एक स्तरपर अनुभवकी खोज और दूसरेपर उसे उसके सजीव अंगसे पृथक् कर अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न हुआ लेकिन अब एक जीवित सम्पूर्णताके रूपमें ही उसकी खोज और अभिव्यक्ति होती है। नये कथा-साहित्यने समकालीन चेतनाको किसी बौद्धिक ज्ञान या बाहरी माध्यमके सहारे नहीं, अनुभूतिके स्तरपर ग्रहण किया है। अकसर यह सवाल पूछा जाता है कि नया कथा-साहित्य वैयक्तिक और सामाजिक यथार्थको जो अभिव्यक्त कर रहा है, क्या वह पहले अभिव्यक्त नहीं हुआ? हम स्वीकार करते हैं कि ऐसा हुआ है लेकिन उसका रूप क्या था। पहले यह यथार्थ अभिव्यक्ति इतनी प्रत्यक्ष और सपाट थी कि कला, बोधकी जीवन्तता-को क्षति झेलनी पड़ी थी, कि फिर यथार्थ और जीवनका रूप भी तो बदला है। समकालीन चेतनाके संक्रमण और संक्रान्तिके साथ उस व्यतीत अभिव्यक्तिका सम्बन्ध कहाँतक है यह भी देखना होगा। फिर प्रश्न यह भी है कि मूल्योंके विघटन और आधुनिक संक्रान्तिसे सम्पृक्ति और उसके संकटों और प्रश्नोंको उनकी रचनाएँ कहाँतक अभिव्यक्त कर पायी हैं? जिन्होंने हिन्दी कथा-साहित्यको मनोवैज्ञानिकता और दार्शनिकता दी उन्होंने ही उसे उसकी परम्परित सहजतासे भी विच्छिन्न किया, जिन्होंने उसे आत्मपरक और विद्रोहात्मक व्यक्तिगत स्वर दिया, उन्होंने उसके व्यापक दृष्टिकोणको भी संकुचित किया है। नया कथा-साहित्य उनकी उपलब्धियों और सीमाओं, दोनोंसे परिचित था। इसीलिए उसने उपलब्धिका विकास और सीमाका अतिक्रमण किया है। व्यतीत सामाजिक जागरूकता जहाँ एक विचार-पद्धति या प्रणाली या एक 'कन्डीशण्ड' मस्तिष्कका परिणाम थी, वहाँ अब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यक्तिकी सम्पृक्त चेतना और निरन्तर भोगते हुए 'सेल्फ़' का परिणाम और प्रक्रिया है, इसीलिए जहाँ वह पहले आरोपित लगती थी वहाँ अब वह हमारी चेतना, संवेदनशीलता और अनुभूतिका अविभाज्य अंग बनकर आती है। उसे अनुभवकी प्रामाणिकताका योग है।

यह सब कहनेकी आवश्यकता इसलिए हुई कि नये कथा-साहित्यमें रचनात्मक मूल्योंका जितना और जैसा विकास हुआ उसके समानान्तर आस्वादका धरातल और मूल्यांकनका विवेक जाग्रत नहीं हो पाया, इसीलिए उसके अस्तित्व या मूल्यपर शंका करनेवाले, पुरानी पीढ़ीमें ही नहीं, नयी पीढ़ीमें भी मिलते हैं। (कुछने तो इसीलिए अपनी अलग-अलग क्यू भी बना ली है। परिणाम यह हुआ है कि किसी-किसी क्यूमें कोई अकेला ही खड़ा है और अपने अकेलेपनकी पीड़ामें ही त्रस्त हो रहा है!) उसपर की गयी चर्चाओंकी पक्षधरताके कारण व्यक्तिगत या वर्गीय सिद्धान्तोंके कुहासेमें एक पूरीकी पूरी उपलब्धिके बारेमें भ्रम फैला हुआ है। इसका एक और भी कारण है। दरअसल पिछले एक-दो दशकोंमें ही उसने इतनी विविध और विभिन्न तथा विरोधी दिशाओंका एक साथ संस्पर्श किया है, विकासकी एक साथ इतनी मंज़िल पार की है कि एक-ब-एक उसकी सम्पूर्ण अन्वित धारणा नहीं बन पायी। 'नयी' या 'पुरानी', 'अच्छी' या 'बुरी' घूम-फिरकर चर्चाएँ यहीं केन्द्रित रही आयीं और न चाहते हुए भी खाने खिचने लगे, वर्ग बनते गये। इससे छुट्टी मिली तो आलोचनाकी नयी भाषा ईजाद करनेके लिए चर्चा बिम्ब, संकेत, शिल्प, प्रतीक और संगीतमें सीमित हो गयी और नये कथा-साहित्य सम्बन्धी मूल्यांकनकी कौन कहे आस्वादका भी कोई धरातल निश्चित नहीं हो पाया—क्योंकि कथा-साहित्यके आलोचक थे ही नहीं, जो थे वे कविताकी बात करते-करते कथा-साहित्यकी ओर टहलते-टहलते आ गये थे। रचनात्मक धरातलपर एक जीवित और जीवन्त विधाके रूपमें कहानी या उपन्यासके मूल्यांकनमें इसीलिए आज भी अव्यवस्था है। कुछ इस स्थितिके कारण और कुछ अपने ही 'स्टैण्ड' को 'जस्टीफ़ाई' करनेके लिए नये कविकी तरह, नये कथाकारोंने आलोचनाको आपद्धर्मके रूपमें स्वीकार किया। इसीका परिणाम है कि एक प्रवृत्ति-और धारा दूसरीके प्रति संशयालु है। मैं फिर कहता हूँ, नया कथा-साहित्य कोई प्रवृत्ति विशेष और धाराविशेष ही नहीं है, वह आजकी परिस्थितियोंमें-से उद्भूत मानवीय वास्तविकताकी समग्र संवेदना, संचेतना और भाव-बोधका कथा-साहित्य है। यहाँ जिन उपलब्धियों, प्रवृत्तियों, रचनाओं और व्यक्तियोंकी बात कर रहा हूँ वह नये कथा-साहित्यपर मात्र एक विहंगम दृष्टि है अतः इसकी जो भी सीमा है, वह मेरी अपनी है, नये कथा-साहित्यकी नहीं। इस सीमाके बाहर भी उसका अस्तित्व है इस बातसे मैं इनकार नहीं करता। मेरी एक और भी सीमा है, उपलब्धियोंको मैं रचनाओंसे पृथक् नहीं देख पाता, और रचनाओंको रचनाकारोंसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम्परा-बोध और कला-संचेतनाकी दृष्टिसे राजेन्द्र यादवकी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। अपने आपको पुरानी परम्परासे पृथक् करने और उसका विकास करनेकी एक सायास और जागरूक चेतना उनमें है। पिछली परम्पराकी व्यापक सामाजिक जागरूकताने जहाँ यादवकी रचनाओंको एक प्रगतिशील स्वभाव प्रदान किया है वहीं उसमें आधुनिक बोध और परिष्कृत एवं सूक्ष्म संवेदनाके साथ एक कलात्मक उत्कर्ष भी यादवने संयुक्त किया है। इसके विपरीत युग और व्यक्तिकी सापेक्षिक अभिव्यक्ति कर पानेके लिए निरन्तर एक पुनर्गठनकी प्रक्रिया मिलती है। परिवर्तनकी बलवती आकांक्षा, वर्तमानमें जीनेका दर्शन, समकालीनताके प्रति पूरी प्रतिबद्धता और साहित्यकी कम, समाजकी अधिक जीर्ण-शीर्ण परम्पराको तोड़नेकी, उनसे मुक्तिकी प्यास उनके पहले संग्रहसे ही मिलने लगती है।

और बदली और बदलती हुई मनःस्थितियोंका आलेख कमलेश्वरकी रचनाएँ हैं। उनके यहाँ हिन्दी कथाकी पूरी यात्राके लगभग हर मोड़की प्रतिनिधि रचना मिल सकती है और परम्परासे अन्तर ही नहीं उससे विकासकी दृष्टिसे भी वे महत्त्वपूण हैं। इस लिहाज़से हिन्दी कथाकी परम्पराको उन्होंने आत्मसात् किया और अलग-अलग भोगा है।

हिन्दी कथा-साहित्यमें नवांचलोंकी तलाशके लिहाजसे फणीश्वरनाथ 'रेणु' का आगमन एक धूमकेतुकी तरह हुआ। आते ही उन्होंने महत्त्वके शिखरोंका स्पर्श किया, नये अंचल केवल वस्तुके क्षेत्रमें ही नहीं, भाषा और संवेदनाके क्षेत्रमें भी।

इस नये सम्भावनाशील क्षेत्रकी ओर एक स्वाभाविक आकर्षण मार्कण्डेयकी ग्राम-कथाओंमें भी है और उनमें ग्रामीण जीवनकी वास्तविकताको समझनेका जागरूक प्रयत्न भी है।

जब कहानीमें काव्यधर्मा बिम्ब-संकेत और संगीतके रागोंकी तलाश हो रही थी तब अमरकान्तकी रचनाओंने इनमें-से किसीकी भी फ़िक्र किये बिना अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था।

अस्तित्वके ऐसे ही दैनन्दिन संघर्षकी कहानियाँ शानीकी हैं। उनमें भी सामाजिक और आर्थिक पक्षकी प्रधानता है। वैसे हिन्दी कहानीकी मूल जातीय धारा यथार्थको है लेकिन शानीका यथार्थ उससे संयुक्त होकर भी पृथक् है।

इस धारा और प्रवृत्तिके साथ हिन्दी कथा-साहित्यमें एक प्रवृत्ति और धारा वह भी है जिसने अज्ञेय और जैनेन्द्रके व्यक्ति-चिन्तन, यथार्थ और सत्यको अपनाया और उसका विकास किया। इस क्षेत्रके शीर्षस्थ और विशिष्ट कथाकार निर्मल वर्मा हैं। उन्होंने कथा-निर्वाहको एक विशिष्ट भंगिमा और कलात्मक संस्कार दिया।

औपन्यासिक प्रयोगोंकी दृष्टिसे धर्मवीर भारतीका 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' का आज भी महत्त्व है। प्रयोगोंके प्रति यही रुझान रमेश बक्षीमें भी मिलती है। उनकी रचनाएँ प्रयोगधर्मा अधिक हैं। प्रयोगकी यह प्रवृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथार्थ या नयी वास्तविकताके किसी दबावके एहसाससे अधिक नये शिल्पके प्रति जागरूकता और नयेसे नये प्रतीकका अन्वेषण कर उसे कथामें बुनने और समकालीन बोधसे जोड़नेकी ओर उन्मुख है। 'गूगली', 'कमरेमें कैक्टस' और 'एक आत्महत्या' से लेकर 'अठारह सूरजके पौधे' तक उनमें 'क्रैफ़्ट' का अधिकाधिक मँजाव मिलता है जिसके द्वारा दृश्य, विचार, घटना या चरित्र नहीं, कुछ प्रभाव और प्रभाव-क्षणोंको बाँधा गया है। इसकी सार्थकता यही है कि बहुत ही काम्प्लेक्स संवेदना, बिना अपनी तात्कालिकता नष्ट किये, ज्यों की त्यों कैसे प्रभावित करे।

प्रभावकी बात आ ही गयी है तो नयी कथाके प्रभाव पर भी एक टिप्पणी : उसकी यात्रा, घटनाओं या संयोगोंमें-से न होकर प्रसंगोंकी आन्तरिक प्रतिक्रियाओंके बीच होती है और संवेदनाके सूक्ष्म तन्तुओंपर धीरे-धीरे आघात करती हुई वह एक सम्पूर्ण अनुभवसे गुज़र जाती है इसलिए वह कथा-यात्रा नहीं, पाठकके उस अनुभवसे स्वयंकी यात्रा हो जाती है। नयी कथाकी यही आन्तरिक उपलब्धि है कि वह अनुभवके धरातलपर सार्थक होती है, नैरेशन या कहानीके धरातलपर नहीं। उसमें कोई भी जीवन-सत्य, आईडिया, विचार, निष्पत्ति या निष्कर्ष, निर्मित, निर्देशित और आरोपित नहीं होता; अनुभवों और अनुभूतियों, संवेदना और चेतनाको सम्पूर्ण प्रक्रियासे गुज़रता हुआ पाठक स्वयं उस बोधपर अनायास पहुँच जाता है। वह किसी एकके व्यक्तिगत अनुभव, निरीक्षण या दर्शनसे निर्मित नहीं है। इसीलिए अपने निरीक्षण और दर्शन, जीवन-सत्य या बोधको, पाठक तक केवल पहुँचाती नहीं उसमें स्वयं पाठकके 'पार्टीसिपेशन'के माध्यमसे वही अनुभूति और बोध जागृत करती है। रचनाके धरातलपर एक तटस्थ और वस्तुपरक दृष्टिकोण यही है और यही वह जीवनदृष्टि है जहाँ व्यक्तिका, उसकी अनुभूति, संवेदना और बोधका असम्पृक्त, स्वयंसिद्ध कोई महत्त्व नहीं होता। वह पूरे परिवेश और सामाजिक सन्दर्भ और समकालीनतासे सम्बद्ध होता है। यहीं आकर वैयक्तिक अनुभूति वास्तवमें पूरे युग-बोध और मूल्योंसे सम्पृक्त होकर उनकी 'शिफ़्ट'को व्यक्त करता है।

और इस 'शिफ़्ट'को, समकालीन संवेदनाको हर कथाकार अपने सन्दर्भमें अपने ढंगसे व्यक्त कर रहा है। इस सारी विचित्रता, सही विकासकी मंज़िलोंकी नयी उभरती दिशाओंका एक समाहित चित्र बनता है। और हिन्दी कथा-साहित्यकी इस समृद्ध और विकासशील परम्परामें नये और समर्थ हस्ताक्षरोंके रूपमें, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, ममता अग्रवाल, ज्ञानरंजन, सुशीलकुमार, प्रयाग शुक्ल, अवधनारायण सिंह आदि ने उसे और भी नये क्षितिज और नयी दिशाएँ दी हैं।

इस सन्दर्भमें अपेक्षाओंका रूप क्या हो? मैं समझता हूँ कि अपेक्षाओंका अधिकार समीक्षकोंको शायद कभी रहा हो, अब उन्हें इस अधिकारको स्वेच्छासे त्याग देना चाहिए। अपेक्षाओंको लेकर चलनेसे ही समीक्षाको इतनी लांछना मिली है। वह रचनाकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता, उसके आस्वाद और मूल्यांकनपर भी ऐसा प्रतिबन्ध है जिसे रचनाकारने कभी स्वीकार नहीं किया। समीक्षा तो रचनाकार-का सहयोगी और सहयात्री है और नयी रचनाको आस्वादका एक धरातल या अधिकसे अधिक उसके मूल्यांकनका एक विवेक जागृत करने तक ही उसे अपनी सीमा रखनी चाहिए।

● कहानीके सारे मानदण्ड टूट चुके हैं...

श्रीकान्त वर्मा : मैंने पहली बार यह देखा कि कोई आदमी एक घण्टेतक ग़लत बात कैसे कह सकता है। प्राध्यापक मेरी निगाहमें बड़े निरीह व्यक्ति होते हैं। उनके प्रति कोई आक्रोश मेरे मनमें नहीं है। उनके भाषणसे यह असर पड़ा कि वे वफ़ादार आलोचक हैं। उनकी दृष्टिमें सब अच्छे लेखक हैं। मैं तो चाहता था कि मेरा आलोचक यह कहता कि इन लेखकोंमें-से कई लेखक नहीं हैं। जो बातें उन्होंने कभी शानीके बारेमें लिखी होंगी या कही होंगी वही बात राजेन्द्र यादवके बारेमें कह दीं। कलसे कामूके बारेमें भी वही बातें कह सकते हैं। उनकी बातें विवादास्पद हो सकती हैं लेकिन विवादयोग्य नहीं हैं। धनंजय वर्माने सब दोस्तोंको प्रमाणपत्र दिये इससे मुझे ख़ुशी हुई लेकिन मुझे पता नहीं इन दोस्तोंके मनमें क्या असर हुआ होगा जब धनंजय वर्मासे उन्हें प्रमाणपत्र मिले। मैं कवि हूँ, कहानीकार तो मैं केवल इसलिए हूँ कि कहानी लिख सकता हूँ और बड़ी आसानीसे लिख सकता हूँ। लेकिन मैं वास्तवमें एक कवि हूँ। और कवि होनेमें या कहनेमें गर्व करता हूँ। साहित्यको ख़ानोंमें नहीं बाँटा जा सकता। दुनियाकी सारी कलाएँ एक हो रही हैं। कविताका असर कहानीपर पड़ रहा है, कहानीका उपन्यासपर। इसीलिए उपन्यास विरल और सतही होता गया है। यह कहना बड़ा सीमित दृष्टिकोणका है कि कविताके क्षेत्र-के व्यक्तिका कोई दख़ल कहानीपर नहीं हो सकता। क़ाफ़्काकी कहानी है, चूहे और बिल्लीवाली, जिसमें बिल्ली चूहेको निगल जाती है। आलोचनाको अगर ज़िन्दा रहना है तो उसको व्यापक दृष्टिकोण लेकर चलना होगा। कविताका कोई भी शब्द कहानीमें मिल सकता है। वैसे भी नयी कविताके आन्दोलनके बाद ही नयी कहानीका आन्दोलन चला। कवितामें समसामयिकता-आधुनिकताके सभी सवाल उठाये गये थे। यह एक संयोग है कि कवितामें ये सवाल पहले उठाये गये थे। इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता। यह पीढ़ी एक ही थी जो पचाससे पैंसठके बीच सामने आयी थी। रचनाकार इतिहासको तोड़ता है और उसे बनाता है। शुरूमें नयी कहानीने यही काम किया था। नयी कहानीका जबतक नामकरण नहीं हुआ था तबतक बड़ी तेज़ीके साथ वह आगे बढ़ी, सन् ५६–५७ तक, जब तक नयी कहानीका नाम नहीं था वह तमाम मार्ग ढूँढ़ रही थी। जब नाम उसके साथ जुड़ा तो वह रुक गयी। बहसोंसे कहानीको कोई लाभ नहीं होता। वही लेखक जो ५६–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५७ तक बहुत अच्छी कहानियाँ लिखता था नयी कहानियाँ नामकरण हो जानेपर उनके कथा-कौशलका ह्रास होता गया। क्योंकि वे फ़ार्मूलोंमें क़ैद होते गये, उन्होंने खुद कुछ चौखटे बना लिये। लेकिन इस भ्रमसे सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। हिन्दी लेखकको ज़रूरतसे ज्यादा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी है और वह उसके लिए घातक है। पिछले पाँच-छह वर्षोंमें जो नाम आये हैं इन्होंने सामाजिक भ्रमोंको तोड़नेकी कोशिश की है। नये लेखकोंने कोई प्रौढ़ कहानियाँ नहीं लिखीं, उनका कोई ऐसा दावा भी नहीं है। वे अपने आस-पासके जीवनको, समाजको सब चीज़को पहचानना चाहते हैं क्योंकि सब चीजें झूठी लगती हैं, अप्रामाणिक लगती हैं। सभी जगहकी नयी पीढ़ियाँ इस दौरसे गुज़र रही हैं कि कहीं कुछ टूटा है। यह अन्तर्द्वन्द्व सामने आया है। चाहे वे बीट कवि हों या एंगरी यंग मैन, या रूसका एवतुशेंको, सबमें एक ही बात है—असन्तोष, घुटन, संशय और सही-ग़लतकी निर्णयहीनता। उन्हें लगा है कि किसी चीज़का कोई चौखटा नहीं है। कहानीके सारे मानदण्ड टूट चुके हैं। नये लेखक जो कह रहे हैं उनसे आप जो पहचानते हैं वे ही यह कह सकते हैं कि आजका समाज कहाँ जा रहा है। जब तक आप २०-२५ वर्ष तकके नवयुवकोंको नहीं जानते तब तक आप नहीं कह सकते कि आप समाजको पहचानते हैं। कोई भी लेखक इसके बाद सड़ने लगता है, उसकी विघटनकी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। ३० सालके बाद आदमीके अन्तका शुरू होता है। असल शुरूआत २० से ३० सालके बीच होती है। नवयुवकोंने सारे ढाँचे तोड़ डाले हैं और आलोचकोंके लिए समस्या पैदा कर दी है। उन्होंने सारे फ़ॉर्मको तोड़ डाला है, जिसका अर्थ है सारी व्यवस्थाको तोड़ना। हर नौजवान अपनी जवानीमें व्यवस्थाको तोड़ता है, जो नहीं तोड़ता वह जवान नहीं। हिन्दीमें जिस ऐण्टी-स्टोरीकी, अकथा या प्रतिकथाकी चर्चा हो रही है उसने ढाँचेको तोड़ दिया है, सिद्धान्तोंको तोड़ दिया है।

दो आलोचक : मुखर चिन्तन

गंगाप्रसाद विमल : 'सारी नयी पीढ़ीके सामने एक नया सौन्दर्यबोध उभरता आ रहा है।'

धनंजय वर्मा : 'नया कथा-साहित्य एक ऐतिहासिक सन्दर्भकी उपज है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरी तौरसे यह नहीं लगता कि यह वही विषय है। उसका टूटना ही उसकी इमारत बनने की प्रक्रिया है। फ्रांसमें एण्टी नावेलकी चरचा हुई क्योंकि शिल्पके क्षेत्रमें उसने क्रान्ति करनी चाही। उसे लगा कि सारी विधाएँ अपने आपमें जकड़ गयी हैं और उस जकड़े हुए रूपमें कोई अभिव्यक्त नहीं हो सकता। सारी अभिव्यक्ति एक जगह जाकर गूँगी हो जायेगी। इसलिए यह ज़रूरी हो गया कि सारे फ़ॉर्मको ताड़ दिया जाये। इस टूटनेमें-से ही ऐण्टी नावेल बनी है। हर भाषामें इस तरहकी स्थिति है कि यदि कुछ भी न कहा जाये तो सब कुछ कह देनेकी स्थिति बन गयी है। जैनेन्द्रजी इस बातको पकड़ सकते हैं। फ़ॉर्मके पहले समाज टूटा है। समाजका कोई ढाँचा नहीं बना है। समाजमें सबसे अधिक सभ्य अगर कुछ है तो वह है साहित्य और कला। भारतीय समाज नितान्त असभ्य और असांस्कृतिक हो चुका है। नये लेखक यह पहचानते हैं या पहचाननेकी कोशिश करते हैं कि हमारे पास ऐसा कुछ नहीं है जिसपर हम गर्व कर सकें। कोई भी चीज़ प्रामाणिक नहीं है। न इतिहास, न भविष्य, न आस-पास की चीज़ें। कुछ भी प्रामाणिक है तो अपना अनुभव। तालस्ताय महान् लेखक हैं तो इसलिए नहीं कि पचास लोगोंने कह दिया। इसलिए महान् लेखक हैं कि मुझे लगता है। तुर्गनेव थर्ड क्लास लेखक लगता है। आपका विवेक और अनुभव पर आधारित विवेक ही सबसे बड़ा सत्य है, उसके सन्दर्भमें ही सब चीज़ें सत्य हैं। हमारे अनुभवके सन्दर्भमें ही सारी दुनिया सच होती है।

• पूरी कहानीको एक चीज़ मानकर पुनर्मूल्यांकन कीजिए···

डॉ० शिवप्रसाद सिंह : दो घण्टेसे यह गोष्ठी हो रही है। शुरू-शुरूमें तो लगा कि हम कोई कॉटेज इण्डस्ट्रीज़की फ़िल्म देख रहे हैं लेकिन श्रीकान्तजीके आ जानेसे ऐसा मज़ा आया कि जैसे वह ऐतिहासिक फ़िल्म हो। धनंजय वर्मा, जो कहानी-सुन्दरीको लेकर भाग रहे थे—खलनायक बनकर, उनपर ऐसा खींच कर बल्लम मारा कि वह नायिका अब फिर आप पाठकोंके बीच आ गयी है। सारे संसारमें कहानीका इतिहास अल्पकालीन है। भारतमें तो कुल पचास-साठ वर्षोंका ही इतिहास है। ऐसी दृष्टिमे कहानीके सभी पहलुओंपर अच्छे-ढंगसे विचार नहीं किया गया है। जो कुछ विचार किया गया है, वह प्राध्यापकों-द्वारा।

कहानी नयी और कम प्रचलित विधा है इसलिए इसपर सारे विश्वमें बहुत कम सामग्री उपलब्ध है; अतः लेखक, पाठक और समीक्षक सबको मिलकर विचार करना होगा। हिन्दीमें तीन तरहकी आलोचना कहानीको लेकर चल रही है : एक स्वयं कथाकार-द्वारा, दूसरी शुद्ध आलोचकों-द्वारा, तीसरी प्राध्यापकीय आलोचना। मुख्य विचारणीय कथाकारों-द्वारा लिखी आलोचना और शुद्ध आलोचकों-द्वारा लिखी गयी आलोचना है। कथाकारकी आलोचना पूर्वग्रहवाली होती है लेकिन शुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचकोंसे बड़ी आशाएँ थीं। कथाकारोंके बीच तीन पीढ़ियाँ चल रही हैं – हिन्दी कहानी-में। झगड़ा तीन पीढ़ियोंका है–एक है आदर-णीय बुजुर्ग कथाकारोंकी, दूसरी पचासके आस-पास जो कथाकार आये और तीसरी पीढी साठके बाद आये कथाकारोंकी है, जो अपनेको न केवल बुजुर्गोंसे बल्कि बिचली पीढ़ीसे भी कटा हुआ मानती है। इस तिहरे कोणका झगड़ा हिन्दीमें चल रहा है। अवस्थी जीने जो बात कही कि पहली पीढ़ीमें यथार्थका सृजन, दूसरीमें अभिव्यक्ति और तीसरीमें खोज है—यह बातको आगे बढ़ानेके लिए था। श्रीकान्तजीने बड़े सांकेतिक ढंगसे कहा कि कविताका प्रभाव कहानीपर और कहानीका प्रभाव उपन्यासपर पड़ा, परिणामतः उपन्यास सतही होते जा रहे हैं। मेरा ख़याल है कि सारा दोष कविताका है क्योंकि कविताने कहानीको और कहानीने उपन्यासको सतही कर दिया। साहित्यको ख़ानोंमें बाँटकर अध्ययन करनेकी आवश्यकता नहीं। तीनों पीढ़ियोंकी कशमकशका गन्दा परिणाम पिछले तीन-चार वर्षोंमें सामने आ रहा है। बीचको पीढ़ी उखड़े हुए लोगकी पीढ़ी कही जा सकती थी लेकिन अब वे खासे जमे हुए हैं और इन्हें उखाड़नेवाले लोगोंकी पीढ़ी कहा जा सकता है। क्योंकि इनका ध्येय जैनेन्द्रवाली पीढ़ी है, क्योंकि वह विज्ञापित है और सशक्त है तथा दूसरा ध्येय आनेवाली पीढ़ी है कि वह शक्ति-शाली न होने पाये। इसका नतीजा यह होता है लेखकोंका दल अपने आलोचक पालता है। ये जेबी आलोचक हैं जिनके बारेमें बहुत अमर्षकी भावनाकी ज़रूरत नहीं है क्योंकि यह विज्ञापनका ढंग है। जेबी आलोचक जब अपने गुटके लोगोंका नाम देता है तो जैनेन्द्र जीको डर लगता है कि न तो बिचली पीढ़ी हमारे साथ है, न अन्तिम पीढ़ी, तब वे चौथी पीढ़ीके किसी आदमीको तरजीह देने लगते हैं जिसमें ऐसे-ऐसे नाम हैं जो किसी पीढ़ीमें न हों। यह चीज़ कई रूपोंमें हिन्दीमें चल रही है। मेरा आग्रह है कि पूरी कहानी-को एक चीज़ मानकर उसका पुनर्मूल्यांकन कीजिए। और उसकी जो समस्याएँ हैं उन्हें ध्यानमें रखकर ही काम किया जा सकता है। क्योंकि कमलेश्वरको जैनेन्द्रजीके विरुद्ध कहनेका जितना हक़ है उतना ही हक़ दूधनाथ सिंहको कमलेश्वरके ख़िलाफ़ कहनेका है, इसलिए कमलेश्वरको अपनी पुरानी और आनेवाली पीढ़ीके प्रति तटस्थ होना ही पड़ेगा, तभी हम अपने सही उत्तरदायित्वको निबाह पायेंगे नहीं तो तबतक श्रीकान्त वर्माका कथन ही जारी रहेगा कि कहानी बड़ी वाहियात क़िस्म-की विधा है। पारस्परिक समझौतेका मतलब समझौता नहीं बल्कि एक तटस्थ और निष्पक्ष मूल्यांकनका है। प्रभाव हमेशा आयेंगे। लेकिन जिस आधुनिकताके साथ आप चल रहे हैं उसकी स्पष्ट परिभाषा अबतक नहीं बनी, इसलिए यह आन्दोलन जहाँसे चला था वहीं मर गया। स्पेण्डरने 'आधुनिकता मर चुकी है' अपनी पुस्तकमें एक तर्क दिया। टी० एस० इलियटने यह कहा था कि आजके मनुष्यकी इन्द्रियबोधक विशेषताएँ बदल गयी हैं। शहरमें रहनेवाला व्यक्ति पेट्रोलकी गन्धका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदी हो गया हैं। आधुनिकतामें जो लोग आये वे लोग नौकरीकी तलाशमें थे लेकिन नौकरी मिल जानेपर वे आधुनिक नहीं रहे। आधुनिकता एक मात्र दृष्टिकोण था। हिन्दुस्तानमें यह बात कई रूपोंमें मिल-जुलकर आयी है। इन सबका एक गड्डमड्ड रूप हमारे सामने आज उपस्थित है। मैं स्पष्ट मानता हूँ कि '६०के बादकी पीढ़ीकी संवेदना पहलेवाली पीढ़ीसे पृथक् है। यह संवेदना कैसे बदली है इसपर विचार होना चाहिए। साठके बाद हमारी सम्पूर्ण चेतना बदल गयी है। पहले हम इतने वीभत्स यानी कि कर्तव्यविमूढ़ या श्लथ, परेशान, ऊबे हुए नहीं थे जितने आज हैं। लिहाज़ा जो बोध दूधनाथ, विमल या श्रीकान्तके मनमें है दूसरोंमें नहीं है। जो विवशता है वह ऐतिहासिक नीतिजन्य है। प्रश्न यह है कि नयी पीढ़ी जो चीज़ सामने ले आ रही है वह क्या है? इसमें कोई शक नहीं कि बादके लोग अपने ढंगका यथार्थ खोज रहे हैं लेकिन यह खोज उनकी बौद्धिक जागरूकता और वैयक्तिकतासे निश्चित ही अनुशासित होगी, इसमें सन्देह नहीं। '५० में जो पीढ़ी आयी थी उसने अधिकसे अधिक यह समझाया था कि वह पुरानी पीढ़ीसे किस तरह भिन्न है। नयी पीढ़ीका यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी मान्यताओं और उपलब्धियोंको इस ढंगसे प्रस्तुत करे कि उसपर निष्पक्ष ढंगसे विचार किया जाये। मैं तीन प्रश्न सामने रखता हूँ: क्या वे गिरती हुई, ह्रासशील, ऊब या उकताहट या संत्रासको अभीष्ट या अपरिवर्तनीय मानते हैं?—यानी क्या आप यह मानते हैं कि जो स्थिति इस समय है, ह्रासशीलता है कोई रास्ता नहीं है, जो संत्रास है या जीवन टूटा हुआ है—यह स्थिति अपरिवर्तनीय है? यदि आप रास्ता नहीं पाते तो पाठकोंसे या जनतासे यह तो कह सकते हैं कि रास्ता नहीं मिलता। बाधाओंको पार करनेकी छटपटाहट है, वह भी विवशतामें बदलती जा रही है। सिचुएशन बहुत इम्पार्टेण्ट है। मानव परिस्थितियाँ साहित्यका केन्द्र हो गयी हैं। लेकिन क्या ये परिस्थितियाँ खण्डशः ही जीवन हैं या इन खण्डोंको जोड़नेवाली कोई समग्र चेतना आधुनिक कथाकारोंके पास है—जो अपने समानान्तर जीनेवाले पाठकोंको न सही दिशादान लेकिन साहससे जीनेकी प्रेरणा तो देती है? साठके बादकी पीढ़ीके लोगोंमें लगता है कि वह अपने पाठकोंको अपना विटनेस नहीं मानती? एक और प्रश्न है—हमारे साथ देश-कालका परिवेश होता है जो हमें बाँधता है। कहानी-उपन्यास तो जीवनसे जुड़ा हुआ है। हेनरी जेम्सकी परिभाषा इण्टेरेस्ट बिहाइण्ड इण्टेरेस्ट यानी दिलचस्पीके पीछे दिलचस्पी होती है। क्या यह दिलचस्पी है?

• जीवन और रचनाकी भागीदारी ही महत्त्वपूर्ण है···

दूधनाथ सिंह : यहाँ इतनी तरहकी हास्यास्पद बातें कही गयी हैं कि मैं अपनी पीढ़ीकी किस तरह गवाही दूँ? विश्लेषण करके किसी बात को समझाना मेरे लिए कठिन है। इसलिए मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

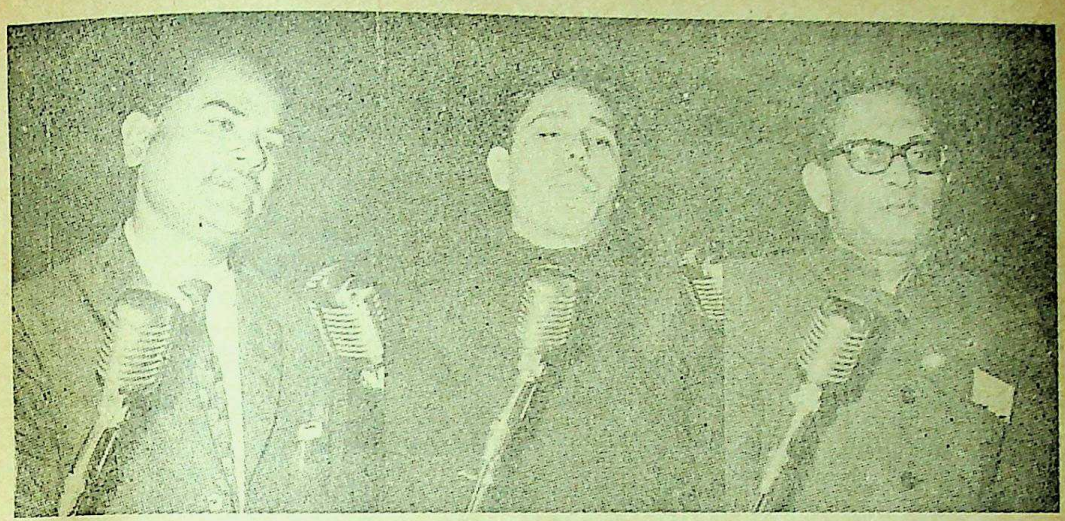

तीन अंचल : अलग-अलग

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : 'जैसे क्लासिकल संगीत आपके पल्ले नहीं पड़ता और क्लासिकल टेस्टवाले उसे सुनकर झूम उठते हैं वही बात नयी कहानीके साथ है।' शैलेश मटियानी : 'कहानी लिखनेकी असमर्थता एण्टी-स्टोरीके मूलमें है।' राजेन्द्र अवस्थी : 'रेसकोर्सके मदानमें गड़बड़ी की है जॉकीने···।'

जो भी कहूँगा वह एक लिखनेवालेकी बात होगी। उन भिन्नताओंको सामने रखूँगा जिनके कारण मेरा या मेरे समकालीन लेखकोंका नाम बार-बार आपके सामने रखा जाता है। पीढ़ी एक बहुत बड़ा क्रूड शब्द है जिससे भ्रम पैदा होता है। इसकी जगह दो संवेदनाओंकी, विकसनशील दो दिशाओंकी बात करें तो ज़्यादा अच्छा होगा। मैं यह मानता हूँ कि स्वतन्त्रताके पहले, उसके पहले जो लिख रहे हैं, उनकी संवेदनाका धरातल निश्चय ही एक अलग धरातल था या है। वे हमारी बात, चाहे जितना भी समझाके कहें, वे समझ नहीं सकते। उनमें समझनेकी आदत ही नहीं है चाहे वे जैनेन्द्रजी हों, भगवतीचरण वर्मा हों या फणीश्वरनाथ रेणु हों। वे हमारे लिए सभी एक ही कैटेगरीमें हैं। कारण उसका यह नहीं है कि उनकी बुद्धि हमारे लिए अपरिपक्व है लेकिन उन्होंने ऐसी-ऐसी बातें कही हैं जिन्हें हम ग्रहण नहीं कर सकते, न अपनी बात उनको दे सकते हैं। इसलिए हम जैनेन्द्रजीकी कोई भी बात सुननेको या मानने को तैयार नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि यदि मैं सुननेको तैयार नहीं हूँ तो कथा-साहित्यके दूसरे सचेतन कहानीकार जैनेन्द्रजीके पास जायेंगे और उन्हें वे सुनाकर हम तक पहुँचा देंगे। एक छोटी-सी भूमिका आपलोगों-के सामने प्रस्तुत करनेके बाद बहुत ही सीधे शब्दोंमें अपनी बात कहना चाहता हूँ। पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह कि आधुनिकताके सन्दर्भमें हमसे कोई अपेक्षा करना ही ठीक नहीं है क्योंकि यदि अपेक्षा करते हैं तो सिवा निराशाके कुछ हाथ लगनेको नहीं। आपको हमसे कोई अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, कारण यह कि स्वतन्त्रतासे पहलेसे जो लोग लिख रहे हैं उनके सामने लड़नेकी या संघर्ष करनेकी एक चीज़ थी, एक लक्ष्य था जिसके लिए बड़े-बड़े लोग लड रहे थे। आप उसे कोई भी शब्दावली दे सकते हैं—आन्दोलन, नैतिकता, आदर्शवाद, दर्शन, भाषाकी क्लिष्टता। स्वतन्त्रताके बाद हमारे सामने कोई लक्ष्य नहीं रह गया जिसके लिए हम सब एक मत होकर फ़ाईट कर सकें। ऐसी स्थितिमें हमारा सारा संघर्ष इण्टर्नल हो गया। मैं इसलिए यह बात कह रहा हूँ कि जब दबाव बाहरी होता है तो सारी लड़ाई दिखाई पड़ती है और जब वह आन्तरिक हो जाता है तो फिर लड़ाई दिखाई नहीं देती। जब अपनोंसे लड़ाई शुरू होती है तो सिवा चुप रहनेके कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। अब हुआ क्या, इन सारे मामलोंमें किस प्रकारके ह्रासकी बात है। स्वतन्त्रताके बाद जिस तरहकी आशाएँ थीं उसके विपरीत हिपोक्रेसीज़ डेवलप हुई हैं। उससे सिवाय इसके कि एक नये ढंगकी विश्वासहीनताकी ओर हम बढ़ते जायें और सारी चीज़ोंको अपने ढंगसे सहज रूपमें छोड़नेकी कोशिश करें, उसमें हम परिवर्तनीय या अपरिवर्तनीय इस तरहका दृष्टिकोण स्थापित करें—यह हमारी मन्शा नहीं है। जब यह बात शिवप्रसादजी कहते हैं तो उसी तरहकी पाज़िटिविटीज़की बातें करते हैं। हमारे सामने जब पाज़िटिविटीजका धरातल ही नहीं है तो कोई परिवर्तनीय है या अपरिवर्तनीय है इस तरहकी बात कैसे कर सकते हैं। बात यह है कि पहलेके लेखक जैनेन्द्रजी कहानी बनाते थे, इनके लिए बड़ा सहज था कि कहानी लिख लें और किसी पाठकके सामने रख सकें। हम कहानी बना नहीं सकते क्योंकि हम कहानीके लिए किसी दूसरी स्थितियोंमें जानेकी अपेक्षा नहीं रखते। हमारी दृष्टि तटस्थताकी दृष्टि हो सकती है लेकिन हम इतने अभागे हैं कि हम इनवाल्वमेण्ट नहीं कर सकते। जैनेन्द्रजी इतने भाग्यशाली थे और उनके बादके लेखक भी भाग्यशाली हो सकते हैं कि उन्होंने अपनेको तटस्थ रखा। जैसे-जैसे हमपर राजनीतिज्ञोंकी धूर्तताका और सामाजिक धूर्तताका प्रभाव पड़ता जाता है वैसे-वैसे हमे यह विश्वास होता जाता है कि हम अपनेको इन्वाल्वकी स्थितिमें पाते हैं। ऐसी स्थितिमें हमारे लिए कहानी बनाना बड़ा ही मुश्किल है। हम सिर्फ़ यह दिखा सकते हैं एक फ़ार्ममें या पूरी उस रचनामें हम भागीदारकी हैसियतसे उपस्थित हैं। हमारा भागीदार होना या उपस्थित होना, न होना भी हो सकता है लेकिन हम एक भागीदारकी हैसियतसे उपस्थित हैं। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि जो उपलब्धि है या जो दिशाएँ हैं उसे आलोचक या पाठक या हमारे पूर्ववर्ती कहानीकार अगर समझनेकी कोशिश करें तो हमारा विश्वास है कि वे हमारे बारेमें, इस नये लेखन या नयी पीढ़ीके बारेमें पूरा न्याय कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। क्योंकि ये हमारी जो स्थिति है यह बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण है। जब मैं दुर्भाग्यपूर्ण कहता हूँ तो उसके साथ एक सम्भावना जुड़ी है जैसे श्रीकान्त जोने एक बात कही कि दुनिया बहुत बड़ी हो गयी है। अगर फ्रांसका एक कहानीकार लिखता है या यहाँका कोई लेखक लिखता है तो वह इसलिए नहीं कि वह भारत-की कहानी है बल्कि विश्वमानवकी कहानी है—मैं इस बातसे टोटली एग्री नहीं करता। यह एकरूपताकी बात श्रीकान्तजी कहते हैं। मैं अपनी परिस्थितिमें ही सच हूँ। अगर परि-स्थितिमें नहीं हूँ तो सिवा फ़ार्मूलाबाज़ीके कुछ नहीं है। इसलिए मैं नहीं जानता कि विश्व-मानवकी वह कौन-सी कैटेगरी उपस्थित करते हैं। एक तरफ़ तो हमारी वह बैकवर्डनेस है जिसपर शताब्दियोंका दबाव पड़ा हुआ है, वह अमेरिकाकी तरह फ्री नहीं है। हमारे ऊपर तो जैनेन्द्रजी लदे हुए हैं; उससे पहले पंचतन्त्र लदा हुआ है और वह इतना हास्यास्पद है कि हम क्या करें? या तो हम उसे फेंक दें और फेंककर नंगे हो जायें लेकिन यह सम्भव कैसे है कि हमारी इतनी बड़ी जो भारतीय परम्परा है उसे हम फेंक दें? इसीलिए हम कहते हैं कि हम दुर्भाग्यपूर्ण हैं। एक तरफ़ हमारे ऊपर शताब्दियोंका बोझ है और दूसरी तरफ़ सारी आधुनिकताके पंजे भी, मतलब साइन्सके, टेकनॉलॉजीके। उसको आप कहिए कि विदेशी चीज़ है पर आप छूटके नहीं जा सकते। आप जा ही नहीं सकते। यह बात दूसरी है कि आप उसे महसूस न करें। लेकिन एक अतिरिक्त संवेदनशील जो लेखक है वह इन दोनों बातोंको जो अजीब-सी विवशता है उसे महसूस करता है। ऐसेमें शिवप्रसादजी यदि यह पूछते हैं कि क्या यह अपरिवर्तनीय है तो मैं कहता हूँ कि फिर आप क्यों पाज़िटिविटीकी माँग करते हैं? क्या हम इस तरहकी बातोंके उत्तर दे सकते हैं? क्या यह बहुत बड़ी बात नहीं है कि हम इतनी बड़ी सचाई, बड़ी लगनको और सचाईके साथ झेलने और सहनेकी ताक़तको क़ायम रखते हैं? हममें जो इतनी बड़ी टूटन और दबाव है वह हमें तोड़ता नहीं बल्कि हमें और संघर्ष करनेकी शक्ति देता है। हिन्दी भाषाके जो ट्रेण्ड हैं उसे प्रसादजीसे लेकर जैनेन्द्रजीने बिगाड़ दिया। भाषाका विकास प्रेमचन्दजीने जो हमारे सामने रखा, उसे इन लोगोंने अपनी विशेषता क़ायम रखनेके लिए हमसे छीन लिया। अगर यह भाषा २०-२५ वर्षों तक और विकसित हुई होती तो शायद हमें यह कहनेकी गुंजाइश हुई होती कि हम अपने मौनको भी (जैनेन्द्रजी के शब्दोंमें) ज़रा और सही ढंगसे व्यक्त कर सकते। लेकिन परिस्थितियाँ अजीब ढंगसे डेवलप हो गयी हैं। अब उसमें कुल स्थिति यह है कि सिवाय पार्टीसिपेशनके और कुछ नहीं है कि हम अपनेको व्यक्त कर सकें। दूसरा प्रश्न है शिवप्रसादजीका—क्या ये परि-स्थितियाँ समग्र जीवन हैं या खण्डशः? मेरा खयाल है कि हम लोग राजनीतिज्ञोंकी धूर्तता-पर भविष्यवाणी कैसे कर सकते हैं? जिनके हाथमें सत्ताएँ हैं, क्या वे हमारी भविष्य-वाणियोंसे रास्ते बदल देंगे? स्थितियाँ वास्त-विक रूपमें जटिल हैं। यह आपको अतिश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ति लग सकती है कि नया लेखक हमेशा अतिशयोक्तिमें बात करता है लेकिन बात ऐसी नहीं है। रवीन्द्र कालियाकी अकथा या दूसरी ऐसी ही कहानियोंको पढ़कर लग सकता है कि ऊलजलूल बातें कही जा रही हैं और हमारा आक्रोश बनाया हुआ है। मेरा पूर्ववर्तियोंसे निवेदन है कि हमारी विश्वसनीयता यदि उन्हें अविश्वसनीय लगती है तो वे अपने अन्दरकी अविश्वसनीयताको पहले निकाल दें। हम अविश्वसनीय तरीक़ेसे विश्वसनीय बात कहनेके लिए विश्वासहीनतामें-से गुज़रते हैं।

एक और बात कही गयी कि जीवनकी दिलचस्पी है या नहीं? जब सारा संघर्ष ही जीवन है, इतने सारे दर्शन, फ़ार्मूले, धूर्तताएँ हमारे सामने हैं तो कोई और बात है नहीं जिसमें दिलचस्पी हो। हम अगर जैनेन्द्रकी पीठपर खड़े हैं तो यह मानना चाहिए कि हम अधिकसे अधिक आधुनिक ढंगसे देखने लगे हैं। हमें प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तो भी फ़ायदा ही होगा। जीवन और रचनाकी जो भागीदारी है, वही महत्त्वपूर्ण है।

• महत्त्वपूर्ण है कथा-रूढ़ियोंको तोड़ते जाना.....

रवीन्द्र कालिया : हम बिलकुल नये लोग हैं और ऐसा लगता है कि हमें अभीसे सेनामें भरती करनेकी कोशिश की जा रही है, नक़्शा बनाकर पेश कर दिया गया है कि पोढ़ियोंकी स्थिति क्या है और दुश्मन कहाँ है। लेकिन नये लोगोंके लिए लड़ाई कहाँ तक अपेक्षित है यह मैं नहीं जानता। एक भाषा है जो निरन्तर मरती जा रही है, उस भाषामें लड़ाई नहीं की जा सकती। सामाजिकता, संचेतना, बोध आदि शब्द कोई अर्थ नहीं देते। भाषा इसी तरह मरती रही तो प्रेमिकाको बुलायेंगे और बिल्ली चली आयेगी। भाषा तेज़ीसे अर्थ खो रही है और नये लोग उसे सम्पन्न बना रहे हैं। यह दशककी सबसे बड़ी उपलब्धि है। आलोचकोंकी बातें मुझे समझमें नहीं आतीं। शिवप्रसादजीके प्रश्न अध्यापकीय हैं और उनका 'यस' और 'नो' में उत्तर दिया जा सकता है लेकिन फिर भी वे महत्त्वपूर्ण हैं। प्रश्न था कि क्या छटपटाहट और अनास्थाके स्वर अपरिवर्तनीय हैं? जो नेता कर सकता है, मेरा उत्तर है, वह साहित्यिक नहीं कर सकता। गान्धी, वाल्तेयरका प्रभाव साहित्यिककी वजहसे नहीं, और वजहसे है। इसलिए स्वरके ही बदलने-न बदलनेका प्रश्न नहीं है। दूसरे प्रश्नका उत्तर है कि शायद रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है। प्रश्न यह है कि सामने कई रास्ते हैं, कौन-सा रास्ता लें। हम अपना रास्ता डिस्कवर नहीं कर पाते। रास्ता ढूँढ़नेकी कोशिश भी नहीं दिखाई पड़ती। जो संत्रास मृत्यु आदि कहानीमें दिखाई पड़ती है वह चुन्नू-मुन्नू या अड़ोसी-पड़ोसीकी कहानी नहीं है। पहले लेखककी कहानीसे, पड़ोसी या दोस्तका रिश्ता रहता था लेकिन अब वह जीवनसे आगे बढ़कर अस्तित्वकी ओर भी बढ़ा है। मृत्यु पहले केवल धर्मका ही विषय थी। आजका कथाकार हर स्थितिको तीव्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगता है। जीवनमें दिलचस्पी सबकी होती है और मेरी तो गहरी दिलचस्पी है। आधुनिक कथा-साहित्यमें प्रेमचन्दके बाद यथार्थको सर्कसकी तरह देखा गया था। अपने-आपको इनवाल्व किये बिना कुशलतासे रिपोर्टिंग की जाती थी। पाश्चात्त्य प्रभाव तो सहज हैं। किसी भी देशकी समसामयिक विचारधारासे अलग रहना असम्भव है। यों कोई भी अध्यापक किसी भी प्रभावकी निन्दा कर सकता है। देशकालका परिवेश कोई महत्त्व नहीं रखता। कौशिकजीकी कहानीसे काफ़्काकी डायरी अधिक अच्छी लगती है क्योंकि मनः-स्थिति महत्त्वपूर्ण है। उसकी झलकसे भी तादात्म्य हो जाता है। विश्वमानववाली बात फ़ैशनेबल है लेकिन गलत नहीं, सारा विश्व हमें इन्वाल्व लगता है। नये लोग नया अधिक पढ़ रहे हैं। और ऐसी स्थितिके निकट हैं जो विश्वमें कहीं भी हो सकती है। इधरकी कहानियोंमें देखा जा सकता है कि एक पीढ़ी शिफ़्ट हुई है। यह नहीं कि '६० के बाद सब नये हैं और उससे पहलेके सब पुराने। अकथा तत्त्व पहलेकी कहानियोंमें भी मिल जायेंगे—जैसे राकेशजीकी कहानी 'फटा हुआ जूता'। प्रेमचन्दकी कहानियोंमें जो कमी थी, बादके कथाकार पूरा करते रहे और चुस्त-दुरुस्त कहानियाँ लिखते रहे। अब कथा-रूढ़ियोंको भंग करना ज़रूरी है। कहानी इसीसे ज़िन्दा रहती है—राकेशकी 'ज़ख़्म' या रमेश बक्षीकी 'मातम'। अब बक्षीकी कहानियाँ सहज हो गयी हैं, इसीसे जो कथा-रूढ़ियोंको तोड़ रहे हैं वे हमारे निकट हैं, जो नहीं तोड़ते उनसे हम अपनेको सम्बद्ध नहीं पाते। पहलेकी सांकेतिकतापर-से विश्वास उठ गया है। वह बड़ी स्ट्रैण लगती है। अब तो सहज और सीधेपनकी कहानी बढ़ रही है। वर्गीकरण अर्थहीन हो गया है। शायद राजेन्द्र यादवने बात उठायी थी कि कहानीमें पात्रोंके नाम क्यों नहीं होते? शायद यह इसलिए कि उनके पात्रोंके नाम सरनेम सहित आते हैं। अब न नाम महत्त्वपूर्ण है, न घटना, न चरित्र। महत्त्वपूर्ण है संवेदना। एक इण्टेन्स मोमेण्ट क्लाइमेक्ससे अधिक महत्त्वपूर्ण है। आजकी कहानी आस-पासके घेरोंको छोड़ती हुई आगे बढ़ रही है।

• कहानी : 'वाटर सा दि लॉर्ड एण्ड ब्लश्ड'...

डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा : भाई जैनेन्द्रजीका नाम ११ दफ़े लिया गया लेकिन मुझे लगा कि मैं तो किसी पीढ़ीमें नहीं हूँ क्योंकि १९०५ में जैनेन्द्रजीका जन्म हुआ था और मैंने तब ही लिखना शुरू किया था। शुक्लजीका कहना था : कहानीमें कहानीपन हो, नवीनता, परि-पाक, घटना हो। पात्र बहुत-से हों तो वह उपन्यास हो जाता है। छोटी-सी बात थोड़े-से-में प्रभावके साथ कही जाये, मनोरंजन करे, प्रेरणा दे, स्फूर्ति दे—यह परिभाषा थी। अब जीवनपर बोझ बढ़ गया है इसलिए बड़ी बात थोड़े-से-में कहें तो अच्छा है। जैसे लेक ऑफ़ गेलेली जब खूनसे भर गयी थी तो उसपर एक कविता-प्रतियोगिता हुई थी। कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानीमें क्या अन्तर है—एक तुकी, एक बेतुकी। उस प्रतियोगितामें सबसे अच्छी कविता कमसे कम शब्दोंमें यह थी—वाटर सा दि लॉर्ड एण्ड ब्लश्ड। जैसे तुलसी बाबाने कहा है—'जाकी रही भावना जैसी' उसीके अनुसार लिखा जा सकता है। आलोचक यदि निश्चित कर ले कि लेखकको गधा कहना है और उसकी मरम्मत करना है तो लेखक गधा न हो तो भी वह मरम्मत किये बिना नहीं रहेगा। महत्त्वपूर्ण है संस्कृतिकी बात, कि रचना सत्यं शिवं सुन्दरम् हो। इतिहास को वर्षोंमें नहीं बाँटा जा सकता, वह तो धारा है और विकासकी धारापर ध्यान दिया जाना चाहिए।

४ समकालीन बोध और दायित्व : कथा-चिन्तनकी मज़बूत ज़मीन

२५ दिसम्बरकी दुपहर। विषय : समकालीन बोध और दायित्व। अध्यक्ष : मोहन राकेश, भीष्म साहनी, विमल मित्र। वक्ता: शरद जोशी, रमेश बक्षी, राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर, श्रीकान्त वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, दूधनाथ सिंह, जैनेन्द्रकुमार।

• सामाजिकताका अर्थ है समाजसे एक विशेष तरहसे जुड़े होना···

मोहन राकेश : इस आयोजनमें आनेके बाद यह एहसास मुझे बार-बार हुआ है और वह यह कि शायद किताबें पढ़ते-पढ़ते और किताबों-के माहौलमें जीते-जीते हमें बातें करनेका कुछ ऐसा अभ्यास हो गया है कि जिन बातोंके विपक्षमें हम बात करते हैं, जिन बातोंका हम विरोध करते हैं उन्हीं संस्कारोंमें जीते चलते हैं। जीवनके यथार्थ और उस किताबसे जुड़ी हुई सब चीजोंके बारेमें चर्चा करनेवाले हम सब जीवन और यथार्थके सम्बन्धमें न बात करके अधिकांश जीवन और यथार्थके सम्बन्ध-में लिखी जानेवाली बातें करते हैं। हमलोग जिस तरह साहित्य-सम्बन्धी समीक्षासे आक्रान्त हैं, वह अपने देशकी हो या बाहरकी, हम इसलिए आक्रान्त हैं कि बातोंसे लेकर, उठायी जानेवाली बातोंसे एक साहित्यकार, एक सर्जकके रूपमें जीवनका महत्त्व जो हमारे लिए होना चाहिए, जीवनसे जो हमारा जुड़ाव होना चाहिए, जीवनकी सीधी प्रति-क्रियाओंके सम्बन्धमें हमें जिस अन्वेषणात्मक रूपसे सोचना चाहिए, उसकी बात शायद हमारे ध्यानमें आती नहीं। नयी और पुरानी पीढ़ीका झगड़ा, सामाजिकता और असामाजि-कताकी बात कुछ ऐसे धरातलपर की जाती है कि लगता है कि बहुत कुछ सतही और किताबी है। मुझे खेद है, मेरा स्वर कुछ ऊँचा जान पड़ता है परन्तु मुझे इस गोष्ठीमें भाग लेनेके बाद लगा था कि सतही और किताबी ढंगपर जो बातें हुई हैं उनसे हटकर एक ऐसे वातावरणमें हमलोग इकट्ठे हो रहे हैं जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तनके नये धरातल खोजनेके लिए हम एक अन्वेषणात्मक दृष्टिकी बात करेंगे। हमलोग वास्तवमें जीवन और यथार्थकी बात करेंगे। हमलोग सचमुचमें खोजनेकी बात करेंगे। परन्तु छोटे-छोटे दावे, छोटी-छोटी आन्तरिक अपेक्षाएँ हमारे सारे कार्य-व्यापारको, सारे बोल-चालको चालित किये हैं। लगता है कि एक सर्जक साहित्यकार या कि वास्तविक साहित्यकार आन्तरिक स्थितियोंमें दिलचस्पी लेनेवाले और उनकी खोजबीन करनेवाले आलोचककी दृष्टिसे बात न करनेवाले हमलोग प्रोफ़ेशनल हैं, केवल प्रोफ़ेशनल दृष्टिसे बात कर रहे हैं। अपनेको जमाना, अपनी दृष्टिको जमाना, अपने लोगोंको जमाना, कुछ लोगोंके सम्बन्धमें उलटी-सीधी बातें कहकर लोगोंको लोटपोट कर देना, चुटकुले सुनाना! दूसरोंको केवल दो धरातलोंपर बातें सुननेको मिलीं—एक धरातल ऐकेडेमिक है जिसमें कुछ बड़े-बड़े शब्दोंका रूप स्मरण न कर सकनेके कारण उन्हींको स्वीकार करते हुए या अस्वीकार करते हुए उन शब्दोंके माहौलमें बात हुई और दूसरी ओर कुछ पैराडाक्सेज़, कुछ चुटकुले, कुछ मनोरंजक बातें····जिनसे कि लगता है थोड़े समयके लिए वह मंचपर छा गया सबके ऊपर। सुननेवालेको सन्तोष होता है कि अमुकने अमुकको उखाड़कर रख दिया परन्तु शायद जिस जिज्ञासाके धरातलपर हमलोग आपसमें मिले हैं····पाठकके रूपमें यहाँ उपस्थित समुदायमें अधिकोंकी जिज्ञासा हो सकती है और पाठकों तक ही सीमित यह जिज्ञासा नहीं, जो जिज्ञासा सर्जक

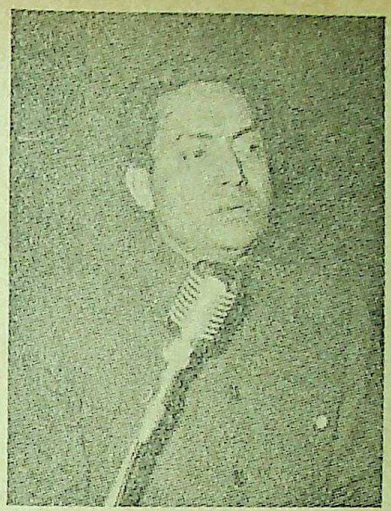

कमलेश्वर : 'हम अपने लिखनेमें समाज, समय और दायित्वके प्रति प्रतिबद्ध हैं···।'

प्रतिबद्धताका प्रश्न

श्रीकान्त वर्मा : 'प्रतिबद्धता असाधारण चीज़ है लेकिन उसका साहित्यसे कुछ लेना-देना नहीं···।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकारोंके रूपमें हमलोगोंकी है, जिस जिज्ञासाको लेकर, फ़तवेबाज़ीको लेकर नहीं, हमें इकट्ठे होना चाहिए था और जहाँसे हमें आरम्भ करना चाहिए था, मुझे अपने सीमित ज्ञानके आधारपर लगा कि इसमें कुछ नहीं हो रहा है, दिखावेकी कोशिश बहुत है। हर ओरसे दिखावेकी कोशिश बहुत है और गम्भीर स्तरसे लगा कि कुछ लगावके स्तरपर जिस संवेदनाकी बात की जाती है उस संवेदनाके स्तरपर, जीवनके प्रति कुछ लगावके स्तरपर किसी बातको समझनेकी कोशिश शायद हम लोग अपनेसे नहीं कर रहे हैं। मुझे इस बातकी शिकायत अपनेसे भी हो सकती है। आवश्यकता और अपेक्षा अधिक इस बातकी थी कि हमारे अग्रज बहुत-से साहित्यकार इस अवसरपर उपस्थित हुए, साथ ही हमारी समकालीन पीढ़ीके बहुत-से दोस्त यहाँ इकट्ठे हुए, हमारे अनुज साहित्यकार यहाँ बहुत-से आये, शायद अन्वेषणका एक धरातल हमलोग सब मिलकर आपके सद्भावकी भूमिसे खोजनेका प्रयत्न करते। परन्तु जिन बड़ोंसे सबसे पहले अपेक्षा होनी चाहिए, इस तरहके वातावरणमें कि उनका सहयोग मिलेगा, सबसे पहले निराशा उन्हींसे हुई और उसके बाद निराशा निरन्तर बढ़ती गयी। क्या हमारा साहित्यके साथ सम्बन्ध या कथा-साहित्यके साथ सम्बन्ध केवल इतना ही है कि हम उन शब्दोंके माहौलमें उनकी रचनाओंकी श्रेष्ठता और अश्रेष्ठताको प्रमाणित करें?—जिन शब्दोंके साथ हमारा व्यवहार स्कूल और कॉलेजोंसे लेकर उसके बाद तक होता है, वह उस बिम्ब, क्रिया-प्रतिक्रिया, जीवनकी दृष्टि, बदलती जीवन-दृष्टि·····विषय आप कुछ भी रख लीजिए! बात एक ही तरहकी हो जायेगी, कुल मिलाकर सब एक ही विषय है और वह है पीढ़ियोंका सवाल। मुझे यहाँ एक अलग विषयपर बोलनेके लिए कहा गया है पर लेकिन शायद मुझसे भी यही अपेक्षा की जाती है कि मैं पीढ़ियोंके विषयमें बोलूँगा—और कहूँगा कि अमुक पीढ़ीने अबतक जो काम किया था उसे दूसरी पीढ़ीने यह किया और तीसरीने यह किया। मेरी इस सम्बन्धमें इस तरहकी बात करनेकी दृष्टि नहीं है। हमें अन्वेषणके धरातलकी किस तरह खोज करनी है, किस तरह हमें विषयको समझना है, कहानियाँ क्या लिखी जा रही हैं, क्या कहानियाँ लिखी जा चुकी हैं, उनका क्या नाम होना चाहिए, उनको आप नयी कहानी कहें या अकथा कहेंगे या सचेतन कहानी कहें या क्या कहेंगे—इस तरहसे पचड़ेमें न पड़कर शायद एक बहुत बड़ा सवाल हमारे सामने था कि साहित्यकारके रूपमें हमारा जीवनके साथ, यथार्थके साथ क्या सम्बन्ध है? हम किस तरह जुड़े हैं, हमारा समय—देखिए समय और समयकी राजनीति, समय और समयकी सामाजिकता, समय और समयका व्यक्तिबोध—इन सबमें हमें एक रेखा खींच लेनी होगी। जब हम समयकी, परिस्थितियोंकी बात करते हैं, हमारे समकालीन बोध—अपने-आपमें यह शब्द कुछ अधूरा-सा लगता है मगर फ़िलहाल मैं इस शब्दके ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या करनेमें नहीं पड़ूँगा, अध्यापक मैं भी रहा हूँ कभी, मगर इस समय अध्यापकी वृत्तिका रूप नहीं चाहिए हमें—समय-बोध या समयका लगाव अलग न करनेसे हमलोगोंका क्या लाभ हो सकता है, एक यह भी समयकी दृष्टि है। यह समयबोध है कि राजनीतिके माध्यमसे हम जीवनसे जुड़े हुए हैं या राजनीतिक पार्टियोंके माध्यमसे साहित्यसे जुड़े हैं और इस तरहकी प्रणाली या प्रथा हमारे यहाँ बहुत पहलेसे रही····। दूसरा कि हम राजनीति या राजनीतिक पार्टियोंके उथल-पुथलसे हटकर सामाजिक स्तरपर अर्थात् उस सामाजिक स्तरपर, जिसको हम बहुत घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं—मेरे नये मित्र कुछ बहुत चिड़चिड़ाकर सामाजिकतासे एकदम हड़बड़ाकर भागते हैं और हमारे कुछ आलोचक भी सामाजिकता और उद्‌बोध और आस्था-जैसे दकियानूसी घिसे-पिटे शब्द कहकर अपनेको एक नया साबित करनेकी बहुत बड़ी कोशिश करते हैं—उन शब्दोंने आपका क्या बिगाड़ा है? आप उनके अर्थकी ओर जाइए। और उस अर्थके साथ हमारे जीवनकी जो खोज है उस खोजकी ओर जाइए कि हममें-से कौन कितने लोग उस खोजमें लगे हैं, नहीं लगे हैं, और उस सम्बन्धमें आगे हमारे साहित्यमें क्या प्रयोग हैं, उस सम्बन्धमें हमारी क्या दृष्टि होनी चाहिए। शब्दोंसे भड़कनेकी क्या बात है—जैसे दस-दस सालमें हर शब्द पिट जाते हैं और कहा भी जाता है कि कुछ शब्द पिट गये, उन्होंने अपने अर्थ खो दिये और नये शब्दोंकी खोज जारी है, परन्तु इनसान नहीं बदल गया है, इनसानकी संवेदना निरन्तर बदलती रहती है—यह मैं मानता हूँ। यह भी मैं मानता हूँ कि इनसानका वह प्राचीन शाश्वत रूप नहीं है, जिसे कुछ हमारे ब्रह्मज्ञानी लोग मानते हैं कि अनादि कालसे मानव एक ही रूपमें चला आ रहा है। इनसान निरन्तर बदल रहा है, रोज बदल रहा है। उस बदलते इनसानकी बदलती मनस्थितियोंको समझनेके लिए, उन मनस्थितियोंमें पैठनेके लिए हमारे साहित्यकारका जो प्रयत्न है वह भी निरन्तर उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करते हुए चलता है। उस प्रयत्नमें, इनसानका स्वरूप नहीं बदल गया है, हम जिस सामाजिक ढाँचे-में जीते हैं, हम अकेलेपनको बात करते हैं, इसलिए नहीं कि हमलोगोंने समाजसे हटकर फिरसे गुहाओंमें रहना प्रारम्भ कर दिया है, इसलिए नहीं कि जो अनास्थावादी और असा-माजिक दृष्टिसे बात करनेवाले लोग हैं, उन्होंने अपने-अपने गन्दे घरौंदे बसा लिये हैं और उन घरौंदोंमें रहकर ही अपनी जिन्दगीको जीना शुरू कर दिया है। नहीं, अगर वास्तवमें सामाजिक जीवनको लेकर या सामाजिक पक्षको लेकर कुण्ठा, वितृष्णा, या हताशा पैदा हो तो क्या है उसका कारण—जब कि समाजके अन्दर जीना है, समाजके साथ जुड़े हुए रहना है। जैसे कि घृणा अपने-आपमें एक लगावकी विपरीत स्थिति है इसी तरह वितृष्णा, अनास्था, आशंका, समाजके साथ जुड़े होने और समाजके साथ बने रहनेकी प्रक्रियाके भाव हैं और इसलिए समाजमें····इसका कुछ कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन जाती हैं समाजकी विसंगतियाँ, समाजका संगठन, समाजकी बुनावट, उनके बीच घुटती हुई मनुष्यकी चेतना अकेलेमें आकाशके नीचे और पर्वत-शिखरपर बैठकर नहीं घुटती। इसीलिए बहुत-से लोग जो समाजकी बातसे घबराते हैं—जैसे आज आत्महत्याकी बात करनेवाले हमें सुनाई देने लगे हैं, जैसे आज अनास्थाका दर्शन लेकर आनेवाले····जिन्होंने अनास्थाको केवल शब्दके रूपमें समझा है। मुझे तो बहुत शक होता है कि वास्तवमें अनास्थाका अर्थ भी वे जानते हैं ? केवल पढ़ी-पढ़ाई किताबोंके आधारपर शब्द उठाकर, शब्दोंको एक झण्डेपर लगाकर और झण्डेको उठाकर चलने लगना—यह साहित्यकारकी दृष्टि नहीं है। अनास्था आदि जितने भी शब्द हैं, उन शब्दोंके अर्थ तक हम जायें तो हम शुरू कहाँसे करते हैं—अनास्था कहाँसे पैदा होती है ? हमारे सामाजिक जीवनकी कुछ विसंगतियोंके कारण अनास्थाका कुपरिणाम सामने है ? आज जहाँ आत्महत्याकी बात की जाती थी—पहले बात की जाती थी कि—'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे'। इस तरह हम वहाँ पहुँचे 'जिसमें जनमे सागर लहरी अम्बरके कानोंमें गहरी, निश्चित प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहलकी अवनी रे।' कोलाहलकी अवनीसे भागकर पहले उसके पर्वतोंकी छायामें, पेड़ोंकी छायामें, निर्झरियोंके किनारे अपना एकान्त स्थान बना लेनेकी बात साहित्यकार करता था और आज भी जब कि वह भी पलायन शायद उसके लिए नहीं रह गया है, शायद प्रकृतिके साथ उसका लगाव नहीं रह गया है, कि प्रकृतिके आकर्षणसे खिंच सके, वह बात करता है आत्महत्याकी। आत्महत्याकी बात करना और आत्महत्या कर लेना दो अलग-अलग बातें हैं, उसी तरह जैसे दुःख झेलना और दुःखकी बात करना दो अलग-अलग बातें हैं। एक उपन्यास है जिसमें लिखा है कि 'दुःख सबको माँजता है।' दुःख किसको माँजता है, किस रूपमें माँजता है, बात करनेवाले दुःखी मनकी बात नहीं जानते, दुःखकी बात करनेवालेकी बात जानते हैं। दुःखके दर्शन ओढ़कर जीना, दुःखकी लम्बी-लम्बी चर्चाएँ कर सकना, दुःख क्या है यह नायक नायिकाको बताये और नायिका नायकको बताये तो उसके सम्बन्धमें वे वाद-विवाद कर सकें—यह अलग बात है और दुःखकी स्थितिमें जीना, दुःखको ओढ़ना, दुःखको झेलना और दुःखके बीच जीना तथा उस दुःखके परिणामोंमें अपने अन्तर्मनकी बात कर सकना एक अलग स्थिति है, ऐसी मनःस्थितिको समझ सकना एक अलग स्थिति है। हमलोग बौद्धिकताकी बातें करते हैं और संवेदनाका ज़िक्र भी बौद्धिक रूपसे करते हैं। बौद्धिक रसके साथ-साथ बौद्धिक संवेदनाकी स्थिति भी हमने स्वीकार कर ली है। बौद्धिक संवेदना है—जिसकी बात की जाती है, जिसकी केवल चर्चा की जाती है। हम कहते हैं कि हम संवेदनाके धरातलपर ज़िन्दगीसे जुड़े हुए हैं। परन्तु उस संवेदनाकी चाल और आपकी रचनामें उस रचनाकी अभिव्यक्ति जबतक नहीं है तबतक संवेदनाकी बात या संवेदनासे हटकर जीवनकी वितृष्णाकी बात, वितृष्णाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलावा कुण्ठाकी बात या अनास्थाकी बात, आत्महत्याकी बात, यह सब केवल प्रोफ़ेशनल शब्द लगते हैं, इन शब्दोंके माध्यमसे हम एक किसी झण्डेपर उन शब्दोंको लिखकर एक बैनर लेकर, एक्सेन्सीव शब्द बोलते हुए आगे बढ़ते जाना चाहते हैं। मैं व्यक्तिगत रूपसे यह कह सकता हूँ कि समयबोधकी बात करनेवाले साहित्यकार अलग नहीं हैं, जो पुरानी प्रगतिशीलताको ओढ़े थे। राजनीतिक और सामयिक स्टेटेजीके अनुसार बात करते थे, वे अलग थे। समाज यह नहीं है कि हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े हैं। सामाजिकताका अर्थ है कि समाजसे एक विशेष तरहसे जुड़े होना। जो अलगावकी बात करते हैं वे जुड़े हुए होनेके कारण ही अलगावका अनुभव करते हैं। बातें जो हुई वे ऐसे थीं जैसे समीक्षाकी पारिभाषिक शब्दावलीसे घर भरना था और यह सिद्ध करना था कि हम अन्यतम हैं—वितृष्णा और अलगावकी बात करके एक प्रोफ़ेशनल ढंगसे अपने-आपको प्रस्तुत करना है। जब बात दृष्टिसे उद्भूत होती है तब लेखक उसी स्तरपर जीता भी है। उनके जीवनकी परिस्थिति और ढंगको देखकर लगता है कि वे प्रोफ़ेशनल ढंगसे गोष्ठियोंमें उपस्थित रहते हैं और झूठ बोलते हैं। वस्तुतः हम जीवनकी इस ढंगसे कैसे खोज कर पायेंगे? नहीं कर पायेंगे। दो तरहके घोंघे हैं—एक तो वह जो शीशेके टावरमें लटक गया है और उसमें घूमते हुए कहता है कि सारे जीवनको देख लिया है, जान लिया है। काँचके घेरेको न जानकर काँचकी पारदर्शिताके बारेमें ही सब जानता है और वह वैसे जीवनके सार्वजनिक और शाश्वत सत्योंके बारेमें बात करता है। एक नया दल है जिसे टावर तो नहीं मिला लेकिन जो रेतके बाहर झाँकता है और फिर रेतमें छिप जाता है। उनका कहना है—जीवन बीभत्स है, बुरा है, गर्हणीय है, व्यक्तिगत परोक्ष रूपमें इससे नाता-रिश्ता नहीं है। वे अकेले हैं और इस बिन्दुसे रेतमें डूबे हुए घोंघेकी तरह जीवनके सम्बन्धमें फ़तवे दिये जाते हैं। मुझे खेद है कि जीवन और यथार्थके सम्बन्धमें बात ठीक बिन्दुसे शुरू नहीं हुई। लोग इस तरह या उस तरहकी घोषणाएँ करते रहे हैं। समकालीन दायित्व कोई ओढ़ा हुआ परचम नहीं है। वह जीवनका बिन्दु है। विषयको अन्वेषणके धरातलपर लिया जाना चाहिए।

• आधुनिकताको परिवर्तित जीवनके सन्दर्भमें देखना चाहिए···

शरद जोशी : राकेशजी जिनसे क्रोध कर रहे थे वे क्रोधके नहीं दयाके पात्र हैं। किसी कविसे जो कविताको बड़ी विधा और कहानीको छोटी विधा मानता हो और यों ही किसी कारणसे कहानी लिखता हो उससे घबरानेकी या उसके बारेमें बहुत ज़्यादा सोचनेकी आवश्यकता नहीं है। प्राध्यापक नहीं होनेके कारण मैं लम्बा भाषण नहीं दूँगा। प्राध्यापककी आत्मामें तो एक घड़ी बन जाती है और वह घड़ी ४५ मिनिट बाद अलार्म क्लाककी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह घण्टी बजा देती है और जैसे ही वह घण्टी बजती है उसे खयाल आता है कि पीरियड खतम हो गया और वह अपनी जगह जाकर बैठ जाता है। मुझमें घण्टी नहीं है इसलिए कुछ समयमें ही मैं चला जाऊँगा क्योंकि मैं उस पीढ़ीका प्रतिनिधि हूँ जो पीरिएड अवाइड करती रही। कलकत्तामें मैंने भाषणके ज़ोरदार और लम्बे होनेके लिए दो बातें सीखी हैं। एक यह कि वक्ताका कन्फ़्यूज़्ड होना ज़रूरी है। जो कन्फ़्यूज़्ड आदमी होता है वह दिमाग़-पर ऊबड़-खाबड़ ढंगसे चलता है और गुद-गुदी पैदा करता है। वह कन्फ़्यूज़्ड आदमी किसी भी पीढ़ीका हो। मैं जैनेन्द्रजीके विषयमें कुछ नहीं कहूँगा जब कि उनकी हार्दिक इच्छा है कि उनके विषयमें कुछ कहा जाता रहे। उनके कन्फ़्यूज़नको समझनेके लिए निवेदन है कि उनका साहित्य पढ़ें। जैसा कि श्रीकान्तजीने कहा, समस्यापर बहस नहीं होती है और नाम चले आते हैं। इसके बाद उन्होंने कुछ नाम गिना दिये। धनंजय वर्माके बारेमें उन्होंने कहा कि उन्होंने काफ़ी लम्बा कैनवैस लिया, यह उनकी शिकायत थी लेकिन अन्तमें वे खूब बोले कि उनका दृष्टिकोण व्यापक होना था। इस व्यापकतासे उनका आशय किस संकीर्णतासे था पता नहीं। नयी कहानीके बारेमें उन्होंने कहा कि जबसे नामकरण हुआ वह बिगड़ गयी। नयी कविता-का नाम भी उन्होंने लिया लेकिन जानेसे पूर्व वे 'अकथा'का नाम दे गये, जो हिन्दीमें प्रारम्भ भी नहीं हुई है और उसका नामकरण वे कर गये। यही कनफ़्यूज़न है जिससे भाषण ज़ोर-दार बनता है। उपलब्धिकी बात हिन्दीमें होती है। मैं कथा-साहित्यकी दो उपलब्धि मानता हूँ। एक डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल और एक श्री निर्मल वर्मा। बाक़ी सब तो सहज हैं। वह तो होता ही है, लोग अपने अच्छा लिखते ही हैं परन्तु उपलब्धि दो ही हैं। निर्मल वर्मा इस छोरपर, लक्ष्मीनारायण-लाल उस छोरपर। लक्ष्मीनारायण लाल रीतिकालीन कथाकार, इस छोरके ऊपर और निर्मल वर्मा जो लन्दनसे चले आये हैं, प्रागसे चले आये हैं, दूसरे छोरपर। बाक़ी जो बीच-का रास्ता है वह सहज चला गया है। इन दोनों छोरोंके कारण हिन्दी कहानी फैल गयी है। श्री लाल भाभी नहीं लिखेंगे, वे लिखेंगे भौजी, इसलिए कि भौजी लिखकर वे चमत्कार पैदा कर देते हैं और श्री निर्मल वर्मा यह नहीं लिखेंगे कि हम बरामदेसे रसोईघरमें गये और रसोईघरसे बरामदेमें गये फिर बरामदेसे सड़कपर गये, सड़कके सामनेके शराबघरमें गये। वे कहेंगे—कीचनसे कैरीडोरमें गया, कैरीडोरसे स्ट्रीटमें, स्ट्रीटसे पबमें गये, पबमें ड्रिंक करने बैठे। इसलिए जहाँ यहाँ उप-लब्धियोंकी चर्चा है हम, न राकेश, न कम-लेश्वर, कोई उपलब्धि नहीं हैं। उपलब्धि ये दो व्यक्ति हैं क्योंकि बड़े-बड़े शहरोंमें कुछ ज़रूरतें पैदा हो गयी हैं। यहाँकी व्यस्तताम ज़िन्दगी देखनेको नहीं मिलती, इन्हें चम्मचोंसे संस्कृति पिलायी जाती है। दिल्लीके लोगोंको थोड़ा-सा आन्ध्रप्रदेश पिलाया जाता है, फिर बंगालका अध्ययन कराया जाता है। यह संस्कृति, जो घूँट और टैबलेटके रूपमें ले रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, इससे दो छोरपर वे कथाकार उपस्थित हो गये। एक आदमी सिरपर टोकरी रखकर आता है कि लीजिए, यह शुद्ध गाँव है। एक कहता है कि फ़ौरन करेन्सीकी तकलीफ़के बावजूद भी इतने कथानक और इतने आईडियाज़ लेकर आया हूँ, इनको आप ख़रीद लीजिए। कल कमलेश्वर कह रहे थे—जीवन-दृष्टि दो होती है, एक अन्यायके पक्षमें, एक अन्यायीके विपक्षमें। लेकिन जीवनदृष्टि दो ही हैं हिन्दुस्तानमें—एक प्राइवेट-सेक्टरकी, एक पब्लिक-सेक्टरकी। एक फ़ासिज़्मकी एक डेमोक्रेसीकी। एक सनातनी लोगोंकी है, एक नये लोगोंकी है। यही साहित्यमें व्यक्ति होता है, लेकिन जो नयी पीढ़ीका है, जो ईमानदार है, जो अपना यश मिटाकर भी, अपनी ज़िन्दगीको मिटाकर भी ईमानदार रहना चाहता है उसको इन सब शक्तियोंके साथमें संघर्ष करना पड़ेगा। इसमें राकेशजी नाराज होकर संघर्ष करें तो संघर्ष करना पड़ेगा और हरिशंकर परसाई खुश होकर, मस्त रहकर संघर्ष करें तो करना पड़ेगा। मुक्तिबोधको जो संघर्ष कवितामें करना पड़ा वह और लोगोंको कहानीमें करना पड़ेगा। इस तीन दिनकी गोष्ठीको तीस दिन चलाकर देख लीजिए, जो जैसा आया है वह वैसा ही लौटेगा। पुरानी पीढ़ीके कथाकार सामन्तवादी सौन्दर्यबोधसे ग्रसित थे, वे भाषणमें कुछ भी कहें लेकिन जब जीवनमें रहते थे तो बहुएँ लम्बा घूँघट निकाल लेती थीं। पिता आग़ा हश्रके ड्रामोंके फ़ादर-जैसा पेण्ट होता था, प्रेमिकाको खास ढंगसे, पतिको खास ढंगसे—एक ही ढर्रा स्टाक

भीष्म साहनी : 'अब तो चरित्रहीन और घटनाहीन कहानियाँ लिखी जाती हैं लेकिन पहले भी श्रेष्ठ कहानियाँ कहाँ लिखी गयीं ?'

अवान्तर बातें....

शरद जोशी : 'अध्यापकके दिलमें एक घण्टी फ़िट होती है, वह ४५ मिनिट बाद बजती है।'

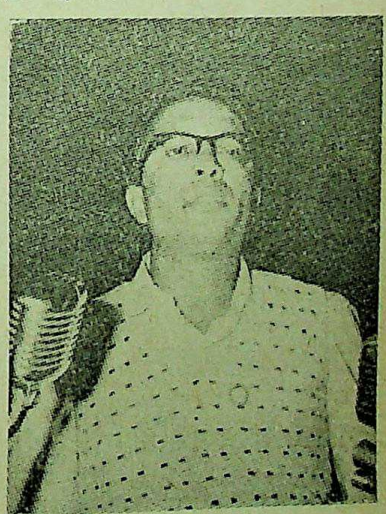

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेक्टरका था। ढर्रेकी कहानी, ढर्रेका करेक्टर। दो लड़का एक लड़की, एक लड़की दो लड़के। उसके कुछ परमेण्टेशन काम्बिनेशन, उसके बादमें अजीब ज्यामेट्रीके साथ कहानी खतम। कहानीकी पुरानी परिभाषा ऐसी थी जैसे ह्वीलर स्टालवालेकी दी हुई हो। वे इसी पुराने ढाँचे और साँचेसे नयी पीढ़ीके लोगको समझाने आते हैं कि कहानी ऐसी-ऐसी होती है, उसे ऐसे-ऐसे बनाओ। दूधनाथ सिंहने कहा कि परम्परा बोझकी तरह है, यह हालत उसी प्राणी-जैसी है जो बोझको बोझ समझता है, यदि इसे बोझ समझते हो तो भइया, इसे उठाकर फेंक दो, नहीं तो उस प्राणीमें और तुममें कोई अन्तर नहीं रह जायेगा····। रहस्यवादमें कुछ ईश्वरके एक्सपर्ट पैदा हो गये थे। प्रगतिवादमें भी एक्सपर्ट पैदा हो गये थे, अगर आधुनिकतापर ज़ोर दिया तो आधुनिकताके एक्सपर्ट तैयार हो जायेंगे। हिन्दीका कथाकार, जो मध्यम वर्गका जीवन जी रहा हो, वह आधुनिकताका एक्सपर्ट नहीं हो पायेगा और उसे उन एक्सपर्टोंकी बात माननी पड़ेगी जो आधुनिकताको समझते हैं कि कौन-सी धुनके साथ कौन नाच होता है, कौन-सी शराबके साथ कौन-सी शराब पी जाती है, किसका कैसे कॉकटेल बनाया जाता है। उसका स्पेशलाइजेशन हो जायेगा। आधुनिकताको परिवर्तित जीवनके सन्दर्भोंमें समझना चाहिए। बाह्य रूपमें उसे पकड़नेसे कहानी हाथमें नहीं आयेगी—थोथा जीवन आपके हाथमें आयेगा। जैसे ओढ़े हुए दुःखका निर्वाह होता है, वैसे ओढ़ी हुई आधुनिकताका भी लोग निर्वाह करने लगेंगे। किसी आलोचकको कहानीकी समीक्षा लिखाने बैठाइए और कोई महाकाव्य प्रकाशित होते ही वह उधर भाग जायेगा। आलोचककी प्रवृत्ति कविताकी समीक्षाकी होती है, महाकाव्यकी समीक्षाकी होती है और इच्छा यह भी कि धीरे-धीरे हेड ऑफ़ दि डिपार्टमेण्ट हो जाऊँ। आन्तरिक जीवन भी उनका अलग क़िस्मका होता है। इसलिए उनसे हमारा मेल नहीं। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता है कि आनन्द कीजिए, जो तबीयत आये, बढ़िया-सी कहानी लिखिए, हथौड़ेकी तरह लिखिए, सिर पर पटकिए और कहिए कि आप हमको गाली दीजिए। पत्रिका छापें तो उसमें हमारी रचना न दें, प्रकाशनमें हमारी किताब न दें, लेखमें हमारी चर्चा न करें, परन्तु हम कहानी लिख रहे हैं और दमके साथ कहानी लिखेंगे। यदि कोई प्रकाशन शुरू करते समय मुक्तिबोधकी रचना नहीं छापता या यदि वह सारिका प्रकाशित करते समय मेरी कहानी नहीं छापता तो इसमें बुरा नहीं मानना चाहिए। यदि मुझे ईमानदार रहना है, लिखना है, तो जीवनकी ये सारी तकलीफ़ें, मुसीबतें सहन करनी पड़ेंगी।

• ऊँचाईकी तलाश सीधे-सीधे जीवनको जीना है···

रमेश बक्षी : राकेशजीने जिस समकालीन बोधकी बात कही है उसके बारेमें इस गोष्ठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इससे पहलेकी गोष्ठीमें और इससे पहले भी कई बार सोचा है कि बात होनी चाहिए गम्भीरतासे। हर गोष्ठीमें यही माहौल हुआ कि कोई बात उधरसे आयी, कोई बात इधरसे, कहीं पैराडॉक्स, कहीं कुछ, कहीं कुछ और जो गम्भीर बात होनी थी वह बचके चली गयी। राकेशजीका संकेत बड़ा वाजिब था। इससे पहलेवाली गोष्ठी रोचकता और मनोरंजनकी दृष्टिसे सफल रही। समीक्षावाली गोष्ठीसे बड़ी अपेक्षाएँ थीं। इससे पहली चर्चा जीवनदृष्टिपर केन्द्रित थी। लेकिन वही दृश्य जो कभी इलाहाबादकी गंगाके किनारे उपस्थित हुआ था, वही यहाँ उपस्थित हुआ। मनमें यह बात भी थी पहले कि कुम्भी न करवा पायें तो एक अर्द्धकुम्भी ज़रूर करवा दें और जो कुछ भी तर्पण किया जा सके कर दें लेकिन लिखते-लिखते मनका यह उत्साह कहीं टूटता रहा है। कई बार लगा है कि गोष्ठीमें चर्चा करना और झगड़नेकी बजाय गम्भीरतासे बैठकर लिखना ज़्यादा ज़रूरी है। इसका कारण यह है कि हम लोग जीवनके जितने गहरेमें डूबते जा रहे हैं, जिस बोधको देते हैं और जिसके बीचमें-से गुज़रते जा रहे हैं और उसे इतनी गम्भीरतासे लेते जा रहे हैं—हर क़दमपर हमारी ईमानदारीकी परीक्षा होती जा रही है। बाज़ वक़्त झल्लाकर और चिल्लाकर भी बोल देना पड़ता है कि मैं ईमानदार आदमी हूँ जब कि ईमानदार आदमीको यह बोलनेकी ज़रूरत नहीं है। यह लगातार लगा है कि हिन्दीका साहित्य जिस ढंगसे लिखा जाता रहा है और विश्वविद्यालयमें जैसी पढ़ाई होती रही है और मुझे या मेरी पीढ़ीके समझदार लोगोंको सेंसरने जिस तरह रोका है कि हम कोई भी ठीक काम नहीं कर पाते हैं.... इसके लिए बड़े विरोधसे कुछ करना ज़रूरी है। हर बार यही देखनेमें आता है कि कहीं शुक्ल-जीने कोई बात कही है और बहुत सारे लोगोंको दिग्भ्रमित कर दिया है। भारत यदि कृषिप्रधान देश था तो आज भी कृषि-प्रधान देश है। साहित्य अगर समाजका दर्पण था तो आज भी बेचारा दर्पणका दर्पण बना हुआ है। यह सब देखकर ऐसा लगता है कि हम इतनी सारी बकवास बातोंको भुना-भुनाकर अपनी नौकरियाँ कैसे पक्की कर सकते हैं? और पेन्शनको निश्चित कैसे कर सकते हैं? जो प्राध्यापक हैं, मैं यह नहीं कहना चाहता कि वे दयाके पात्र हैं अथवा कुछ और हैं, और जीवनमें अगर यह भी समझते हैं कि साहित्यमें कहीं कोई गरिमा है तो उसके बारे-में वे गम्भीरतासे सोच सकते हैं। प्रमुख बात जिसकी ओर संकेत करना चाहता हूँ वह है काल-विभाजनकी बात। एक ग़लत समयमें ग़लत ढंगसे काल-विभाजन हो गया कि इतने-से इतने समय तक वीरगाथा-काल और उसके बाद भक्ति-काल, फिर रीति-काल....। साहित्य-के समझदार लोगोंके मनपर यह बात चढ़ी हुई है कि काल-विभाजन उतरता ही नहीं। जैसे स्वतन्त्रताके बादकी कहानी या '६० के बादकी कहानी। इससे ठीक ढंगसे चर्चा नहीं हो पाती। जो लोग जहाँ कुरसियोंपर बैठे हुए हैं उसे बचाना भी ज़रूरी है। लेकिन कुरसी-की एक टाँग टूटी हुई है तो उसपर बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तुलित ढंगसे बैठना पड़ता है। इससे बड़ा दिग्भ्रम पैदा होता है। नयी पीढ़ीका जो भेद हम लोगोंके सामने आया कि मैं नहीं समझता कि कहीं एक नाम उछाल दिया गया था या किसी एक नामको इन्वर्टेड कॉमामें कर दिया था इसलिए वह चीज़ कटकर अलग हो गयी····। इस तरहकी बात जो लोग करते हैं वह उनके खासे अज्ञानका परिचय है। बात असलमें यह हुई थी कि जीवनके संघर्षमें खपते और चलते हुए कहीं यह लगा था कि हमसे पहलेके लिखनेवाले लोग साहित्यको बिलकुल साहित्यकी तरह लेते हैं। मैं नहीं समझता कि जिस व्यक्तिने इस मेज़को बनाया था, उसमें एक खास क़िस्मका सौन्दर्य-बोधथा या कुछ और था। उसे एक लकड़ी चाहिए थी, कील चाहिए थी, उसके मनमें एक तरतीब थी और उसने इसे गढ़कर रख दिया है। जिनको मेज़ बनाना है उनको कहीं दिक़्क़त नहीं, वे बड़ी आसानीसे बना सकते हैं। दूसरी एक चीज़ होती है कि जो लोग मेच्योर नहीं होते हैं वे किसी एक बिन्दुपर रुक जाते हैं और जीवन-भर अच्छीसे अच्छी कहानियाँ लिख पाते हैं। जो ऐसा कर पाते हैं, हमेशा सतत रूपसे मनोरंजन भी दे पाते हैं। लेकिन इस मेरी पीढ़ीके साथ सबसे बड़ी दिक़्क़त अगर कुछ है तो मेच्योर होते रहनेकी दिक़्क़त है। हर बार हर साल अपनी मेज़ साफ़ करके लिखते समय मुझे लगा है कि पिछले सालके लिखे हुएका कोई मानी नहीं है। एक सालकी यात्रा कहीं मुझे इतना दूर, इतना आगे ले जाती है कि पीछेकी तरफ़ मुँह फिराकर देखनेकी तबीयत नहीं होती। जब भी उसकी तरफ़ देखना पड़ता है मनको यही लगता है कि इसमें कोई दम नहीं, कोई मूल्य नहीं, कोई बात नहीं। यही नयी पीढ़ी का विभाजन हुआ और यह जो कटकर अलग आयी है, निश्चित ही। मैंने ख़ुद बहुत सारे पहलेवाले कहानीकारोंकी कहानियाँ पढ़ी हैं और मुझे लगा है कि इस तरहकी कम्पीटीशन की भावना मेरे मनमें आयी है कि फ़लाँ व्यक्तिकी तरह मैं भी कहानी लिख पाऊँ। लेकिन जब मैं वैसा नहीं लिख पाया, वैसा नहीं कर पाया और जब मुझे ऐसा लगा कि कहानी की इतनी बड़ी भीड़में सचमुच कहीं एक अलग क्यू करनी है तो मुझे ऐसा ज़रूर हुआ है कि अलग हटकर भी बात की जा सकती है। और बात है तो बात बोलेगी ही—यह भी कहीं मनमें बराबर लगता रहा है। जिस काल विभाजनकी बात मैंने कही उसका हल इस प्रकार है कि हम लोग एक-एक दशकमें टुकड़े करके कहानीकी चर्चा करें तो कहीं ज़्यादा सुविधा होगी बनिस्बत इस बातके कि यह है आज़ादीके बादका साहित्य, यह है जैनेन्द्र जीके पहलेका साहित्य और जैनेन्द्र जीके पीछेका साहित्य यह है। मैं समझता हूँ कि इस तरहका विभाजन हिन्दी साहित्यके कुछ इतिहासकार करें और हों भी तो उन्हें फाड़कर फेंक देना चाहिए। उससे हटकर अगर किसी पीढ़ीको चर्चा में गयी तो इस पीढ़ीका ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जा सकता है, ठीक-ठीक समीक्षा की जा सकती है। हालाँ कि किसी भी मूल्यांकन किसी भी समीक्षाके प्रति किसी भी लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह मैं केवल इसलिए कह देना चाहता हूँ कि जो मेरे पाठक और पाठिका हैं उनसे जो मेरा सीधा-सीधा सम्बन्ध है उनसे मैं अपने विचारों-को कहूँ। उन नये लोगोंको जितना बिगाड़ सकता हूँ, यह ठीक उस करप्ट शब्दका अनु-वाद ही है, उतना करनेमें कहीं मुझे दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। मैं निश्चित जानता हूँ कि मेरे विचार इतने अधिक संक्रमणशील हैं कि कहीं बैठकर मैं दस वाक्य बोलूँगा तो कमसे कम दो वाक्य आपसमें टकरायेंगे जिनसे दस वाक्य फिर बनेंगे, क्योंकि यह बात मैं दावे और दम्भके साथ कहता हूँ कि सीधे-सीधे जीवनमें-से गुज़रकर, अनुभूतिको पकड़-कर अपनेसे जिसने भी व्यक्त किया है वह बहुत ज़्यादा ईमानदार है। उसके लिए कहीं प्रयत्न नहीं किया है। यहीं जाकर कहानीके आप सीधे-सीधे दो भेद कर सकते हैं: एक सायास कहानी और दूसरी अनायास कहानी। सायास कहानी इतनी ज़्यादा लिखी गयी है, कि उसके तन्त्र, उसके शिल्पके सारे भेदोपभेद इतने ज़्यादा हैं कि कोई भी व्यक्ति उनमें-से कहीं भी आँख मूँदकर उँगली रख दे और जो भी नुस्ख़ा मिल जाये उस नुस्ख़ेको पकड़कर लिखना शुरू कर दे, तो मैं आपसे कहता हूँ, कि वह छह महीनेमें सफल हो सकता है। लेकिन जिसे अनायास रहना है और निश्चित ही कोई प्लान बनाकर, कोई एक तरतीब बनाकर, आगे नहीं बढ़ना है, तो वह अनायास होकर ही जियेगा और अनायास होकर ही अपने-आपको व्यक्त करेगा। मैं कई बार यह भी कह चुका हूँ कि जो प्रयोग, शिल्प, जिसकी बात साल-भर पहले भी ऐसी लगती थी कि इसपर बहुत ज़्यादा काम किया जा सकता है, इसमें बहुत दम है, अब मुझे लगने लगा है कि शिल्प-तन्त्र आदिकी बात सब झूठी है। इनके बारेमें हमें बात भी नहीं करनी चाहिए। मुझे नहीं लगता कि हम लोग जिस सीधे-सीधे अन्वेषणमें-से गुज़र रहे हैं वह अन्वेषण कोई गम्भीर बात नहीं दे पाता। ऐसा मुझे कहीं भी नहीं लगता है। इसके मूलमें-से ही बात पैदा होती है सम-कालीन बोधवाली और समय-बोधवाली। यह बात कहीं अलग नहीं हैं। एक संकेत मित्रवर राकेशजी ने किया था अनास्थाके सम्बन्धमें और कुछ उस विद्रोहके सम्बन्धमें जो कि ओढ़ा हुआ है या अनायास आ गया है या दूसरी चीज़ें हैं।....यह बात दूसरी है कि जहाँ दस आदमी हों और वहाँ एक आदमी अजीब ढंगके कपड़े पहनकर आ जाये तो वह बहुत ज़्यादा लोगोंका ध्यान हटा लेता है और ध्यान बँटा लिया करता है लेकिन मुझे यह लगता है कि हमारे जीवनमें-से जो बात आ रही है या जो विद्रोह या जो अनास्था या घुटन....जो वास्तवमें घुटन है....ये सारी चीज़ें कमरेमें बैठनेपर उमसकी तरह सताती हैं और उस उमसके कारण हम दरवाज़े खोल देना चाहते हैं। या कहीं बिलकुल ठीक जगह चले जाते हैं या कहीं हवाकी तलाश करने लगते हैं या कहीं ऊँचाईकी तलाश करते हैं तो मैं समझता हूँ कि यह सीधे-सीधे जीवन-को जीना है। समकालीन शब्दके साथ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेश बक्षी : 'ईमानदारी हर स्थितिमें कि प्रत्येक शर्त उससे ठीक-ठीक पूरी उतरे।'

नयी पीढ़ी : स्वर

धनाथ सिह : 'मैं अभागा हूँ कि धूर्तताओंकी हिपोक्रेसीज़के बीच जीना पड़ रहा है।'

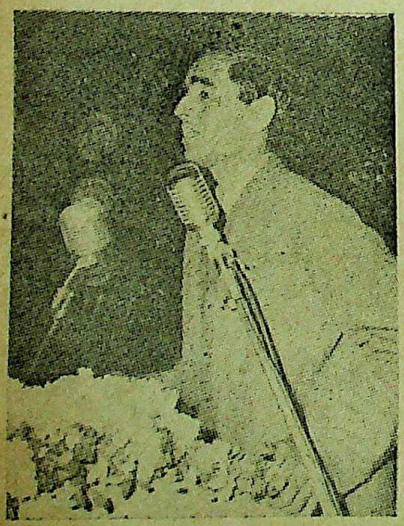

साथ बहुत सारी बातें आती हैं। मैं समकालीनताको बंगाल या मध्य प्रदेश, कहीं भी क़ैद करके रखना नहीं चाहता। ऐसे बहुत सारे मित्र हैं जो ग्रिनविच विलेजमें हैं, जो पेरिसमें हैं, बहुत दूर हैं और उनसे संयोगसे कई बार मुलाक़ात हो जाती है और कई बार नहीं होती है—तो भी मैंने यह महसूस किया है कि जो हज़ारों मील मुझसे दूर रह रहा है वह व्यक्ति जब कहीं शामको मिलता है तो ऐसा कई बार लगने लगता है कि ऐसी कोई रिलेटिविटी है, सापेक्षता है, जो सारे मण्डलको एक साथ बाँधे हुए है। जहाँ इस तरह सोचना हम शुरू करते हैं तो मनमें बराबर यह लगने लगता है कि हम लोग, जिस समाजकी बात बार-बार की जाती थी, या जिस यथार्थकी बात बार-बार कही जाता थी—उससे कहीं अलग हो रहे हैं क्या? मैं यह कहना चाहता हूँ कि सिद्धान्त बनाकर या यह देखकर कि बहुत सारी औरतें घूँघट काढ़ती हैं इसलिए कोई आन्दोलन किया जाये, प्रयत्नशील होकर कोई काम किया जाये, ऐसी बात नहीं है। स्थिति यह है कि घूँघटमें किसीका दम घुट रहा है और वह घूँघट हटा दे। आन्दोलन अन्दरकी घुटनका है। अन्दर-ही-अन्दर जो चीज़ जमा हो गयी है वह उमड़कर बाहर आती है। साराका सारा क्रोध अनास्था और परम्पराके बोझके प्रति है, वह सब कहीं है, लगातार समाजकी परम्परासे दबते हुए, लगातार यह महसूस करते हुए कि शरीरका बढ़ने और खिलनेवाला हिस्सा दबाया जा रहा है, उससे आउट्-ग्रो करनेकी कोशिश सारी पीढ़ीमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और वह अनायास प्रकट होती है। यहाँ बड़े-बड़े विभाजन नहीं करना चाहता कि वह कहानीमें है या नहीं, कवितामें है या नहीं, मैं एक पूरीकी पूरी पीढ़ीकी चर्चा करना चाहता हूँ। सौभाग्यसे गुजराती, बंगाली, मराठी, पंजाबी और दूसरी भाषाओंके भी बिलकुल नयी पीढ़ीके लोग ऐसे हैं जो मेरे बड़े निकट मित्र हैं। उनसे बात करते लगा है कि प्रान्त-विशेषकी चीज़ें कुछ ऐसी होती हैं कि पीढ़ीको व्यवहार थोड़ा-सा बदलना पड़ा है। उदाहरणके लिए बंगालकी भूखी पीढ़ी, उनका सारा आन्दोलन बुजुर्गोंके तिरस्कारके ख़िलाफ़ है। किसी चीज़को उछालनेकी बात उनके मनमें रही है क्योंकि कुरसियाँ और शब्द ही नहीं उछाले जाते, टोपियाँ और जूते भी उछाले जा सकते हैं। लेकिन सारा विरोध ऐसा है कि जैसे हम मिलकर बैठे हैं, परेशान हैं और विरोध-विद्रोह पैदा हुआ है। लेकिन यह देखना है कि वह कहाँ संयत है और असंयत है? जब भी कोट पहनें तब कोटकी बटन लगी हुई हो, यह मैनरिज़्म है लेकिन गरमी ज़्यादा हो तो कोटके बटन खोल देना मैनरिज़्मसे ज़्यादा ज़रूरतकी चीज़ है। इस तरह जो लोग जीवनके प्रति सीधा-सीधा दृष्टिकोण रखते हैं वे केवल दिखावेके लिए विद्रोह नहीं करते। दूधनाथके अनुसार अभागे लोग बहुत सारे इकट्ठे हो गये हैं जो कहीं घरकी दीवारसे दबे हुए हैं, कहीं छतसे दबे हुए हैं, बहुत सारी चीज़ोंसे समझौता करना पड़ता हैं, शहरपर शहर छोड़ना पड़ता है, नौकरीके बाद नौकरी छोड़नी पड़ती हैं। यह नहीं है कि यह सब शौक़िया या शग़लिया हो। इससे कोई इण्टावसी केशन नहीं मिलता। जीवनको सहज होकर लेना समकालीन बोध और सापेक्षबोध-से देखना महत्त्वपूर्ण है। समकालीन लोगोंमें-से कुछने पहले भूमि हमारे सामने रखी और हमें दिखाई दिया कि हम यहाँसे आगे बढ़ सकते हैं लेकिन इसमें तान्त्रिकताको कहीं समय नहीं था। जीवनको सीधे-सीधे लेना और अनायास होकर देखना सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात बन जाती है। मैं समझता हूँ कि नयी कहानी-का जो उभरता हुआ स्वरूप आज है और जो भी नयी पीढ़ीके आठ-दस नाम हमारे सामने हैं वे लोग समकालीनताके साथ-साथ सापेक्ष होकर जी सकते हैं और हम लोग, जो अभागे भी हैं, वे लोग लगातार मेच्योर होते रहते हैं। जिनकी उम्र आज सत्ताइस साल एक दिन है, उनको उम्र कल सत्ताइस साल दो दिन हो जायेगी। यह दुर्भाग्य जिन लोगोंके साथ चलता है वे लोग लगातार प्रगतिशील हैं। वे चाहे जितना कण्ट्रेडिक्शन अपने कहनेमें और सोचने में पैदा कर दें, यह भी हो सकता है कि पिछले साल जो बात कहें और उसके ख़िलाफ़ भी कह दें, तो यह प्रतिक्रिया भी प्रगति-वादी है और इससे एक ज़मीन टूटती जाती है और वे लगातार आगे बढ़ते जाते हैं। जो चीज़ अन्दरसे पैदा हुई है, जो अनायास है, अनायास रूपमें ग्रहण की गयी है, जिसे अना-यास रूपमें अभिव्यक्त किया गया है, वहाँ किसी कोशिशकी ज़रूरत नहीं है। और जो सायास क़िस्मकी कहानियाँ हैं, वे बहुत पहले-की कहानियाँ हों या बाद की या कमर्शियल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें बसे किसीके बारेमें मुझे कुछ कहना नहीं है। छोरके निश्चित हो जानेसे हमारी सहजता निश्चित नहीं होती। मैं तो यह समझता हूँ कि कुछ लोगोंको प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए ताकि हम लोग जो काम करते हैं वे लगातार अप्रतिष्ठित रहें, लगातार संघर्ष झेलें और लगातार सही और ईमानदार बातें कह सकें और सुननेवाले लोग हों तो ठीक और सुननेवाले न मिलें, तो भी कहानी लिखकर अपनी बातको ठीक-ठीक जगह पहुँचा सकेंगे।

• सूर्य पूर्वसे निकलता था और पूर्वसे ही निकलेगा···

विमल मित्र : दो सौ साल पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी यहाँ आयी थी और वह राजा बन गयी। मैं भी बन्धुओंसे मिलने आया था और आकर राजा (अध्यक्ष) बन गया। यहाँ जो कुछ बात होती रही, मैं सुनता रहा और कुछ-कुछ समझता भी रहा। हिन्दी मेरी वोक है और वंगलामें भी आज वक्ता नहीं हूँ। होता तो पॉलीटीशियन बन जाता। बंगलाकी मीटिंगोंमें भी मैं आबसेण्ट रहा हूँ। मैंने तो सोचा था कि यहाँ कोई नहीं पहचानेगा, पर लोगोंने पहचान लिया। राकेशजी, जोशीजी और बक्षीजीने जो कहा उसे समझा लेकिन झगड़ेमें मेरा कुछ पार्ट नहीं है। हम तो इस वर्ल्डमें स्वीट्ज़रलैण्ड बन गया। इसका एडवाण्टेज इन्ज्वाय करता हूँ। नया-पुरानाका झगड़ा चल रहा है। नया आदमी सोचता है कि राशनकी कमीमें ये बूढ़े आदमी ज़िन्दा क्यों है? लेकिन जिस देशमें बूढ़े लोग कम होते हैं, टैगोरने कहा है, वहाँ विसडम भी कम ही होती है। वैदिक युगमें सूर्य पूर्वसे निकलता था और १९६५ में भी पूर्वसे ही निकलता है, १९८५ में भी पूर्वसे ही निकलेगा और पश्चिममें ही अस्त होगा। यह तो फ़ण्डामेण्टल बात है। मेरे पिता मुझे प्यार करते थे, मैं अपने लड़केको प्यार करता हूँ। प्यारका फ़ॉर्म बदल सकता है लेकिन वह रहेगा। हिन्दी लिटरेचरसे मुझे बहुत प्यार है। मेरी एक किताबका हिन्दीमें बुरा रिव्यू हो गया। मैं अच्छा लेखक नहीं हूँ तो बुरा रिव्यू होगा ही। मेरा विचार है कि हिन्दी तथा दूसरी प्रान्तीय भाषाओंकी रचनाओंको बंगाली भाषामें अनूदित करवाकर प्रकाशित करवाना चाहता हूँ ताकि बंगाली लोगोंको उसे पढ़नेका अवसर मिले।

• कहानीका उद्देश्य मनोरंजन क़त्तई नहीं है···

राजेन्द्र अवस्थी : समयकी बात बहुत महत्त्वपूर्ण है और कहानीकी दृष्टिसे मैं उसे और भी महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। होता यह है कि सुबहसे हम अपनी ज़िन्दगी शुरू करते हैं, सारे दिन वह चलती रहती है और शामको फिर एक नये तरीक़े-से ज़िन्दगी चलकर चलती ही जाती है। वह अनन्त है, कभी खत्म नहीं होती। ज़िन्दगीका यों चलता रहना और कभी खत्म न होना, मेरा खयाल है कि कहानीका चलता रहना है क्योंकि कहानीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध ज़िन्दगीसे है। जबसे मैंने लिखना शुरू किया, तबसे जब मैं एक नज़र डालता हूँ तो मुझे लगता है कि अपने समयसे वह चली और चलती गयी है और बदलती हुई परिस्थितियोंको उसने अपनेमें समेटा और उनके साथ वह आगे बढ़ती है। इसलिए जब परम्पराकी बात की जाती है तो यह बात ध्यानमें रखना ज़रूरी है कि किस समयकी वह बात है और कितना आगे बढ़ी है। हम जब पुरानी पीढ़ीकी ओर देखते हैं और दोष देते हैं तो मेरा ख़याल है कि ग़लती करते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी दृष्टिका सवाल था, उनकी दृष्टिमें वे अपने समयके साथ थे। मुश्किल उस समय हो जाती है जब वे अपनी उसी दृष्टिको बनाये रखते हैं और कहते हैं कि वे उसके साथ हैं। हमारा झगड़ा यहींसे शुरू होता है। यदि इस हठको छोड़ दें और इस बातको स्वीकार कर लें कि जिस समयमें वे चल रहे थे उस समयमें वे सही थे और जिस समयमें हम चल रहे हैं हम सही हैं तो किसी तरहके झगड़ेकी बात खड़ी नहीं होगी। आज़ादीके बाद, जैसा कि अनुभव किया है, मैंने अनुभव किया है, आपने भी अनुभव किया होगा, कि हमारी ज़िन्दगीमें एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया। राजनैतिक परिवर्तनके साथ ही हम अपने-आपमें बदल गये हैं और हमें आज़ादी मिल गयी है और वह है हमें सब कुछ बोलनेकी, सब कुछ करनेकी, सब कुछ सहनेकी, देखने और परखनेकी। इस आज़ादीका फल यह हुआ है कि हमने अपने मूल्योंको भी समझा है और उन्हें बदला है और बदलकर स्थापित करनेकी कोशिश की है। इस दिशामें नयी पीढ़ीने बहुत बड़ा काम किया। उस समय तक जब नयी कहानी शुरू हुई, हम एक दासतासे छटपटा रहे थे, हम एक घिसे-पिटे आवेगसे छटपटा रहे थे, तो हमने उसे एक नयी दृष्टिमें डालनेकी कोशिश की और वह दृष्टि हमें देहातोंसे मिली, जिसे आंचलिक कहानीके नाम दिया गया था और वही आगे बढ़ती रही, इसके बाद नगर और महानगरोंकी ओर हम उतरे और इस सम्बन्धमें समस्याएँ बड़ी जटिल हुईं और उन जटिल समस्याओंमें-से न जाने कितनी और जटिल समस्याएँ पैदा हुईं किन्तु जटिल स्थितियोंमें गड़बड़ी कहीं ज़रूर हो गयी है ऐसा मुझे लगता है। और वह गड़बड़ी हुई है रेसकोर्सके मैदानमें। रेसकोर्सके मैदानमें गड़बड़ी की है जाँकीने। कहीं उसने बेईमानी की, कहीं घूस खायी, और घोड़ेको खींच दिया, आगे नहीं बढ़ पाया। दूसरी बेईमानी की उन लोगोंने जो परीक्षक थे, जिन्होंने ग़लत एंगिलसे केमरा रखा और फ़ोटो ली। और उसके बाद यह विवाद खड़ा हुआ। यदि यह दृष्टि न होती तो बड़ी ग़लती सामने नहीं आती। जाँकी और निरीक्षणकी बात आलोचकोंपर लागू होती है, जिन्होंने बड़ी अराजकतासे हिन्दीमें काम लिया। इसमें भी हमारी पुरानी पीढ़ियोंके आलोचक भी, हमारे सामने थे और उन्होंने रस-सिद्धान्त और उसी तरहकी घिसी-पिटी समीक्षाओंसे साहित्यको परखना शुरू किया। कुछ नये आलोचक भी आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और नये आलोचकोंने जो काम किया वह आपने सुबहकी मीटिंगमें देखा है। मेरे मित्र अवस्थीजी अपने रास्तेसे कट गये और उन्होंने कहा कि जो आगे आ रहे हैं वे ही हमारे इष्ट हैं और उन्हींसे हमारा काम चलेगा। दूसरे हमारे मित्र थे धनंजय वर्मा, जो अच्छा होता आलोचनामें छपा हुआ पूरा लेख पढ़ देते और हम लोगोंको बता देते कि यह लेख आलोचना-में छपा है तो हम लोगोंका समय बरबाद न होता। मुश्किल तब होती है जब नयी पीढ़ी ही या नयी पीढ़ीके साथ चलनेवाले आलोचक भी साथ बराबर नहीं दे पाते। प्रश्न मूल्यांकन-का होता है। मेरे सामने रहा है और हर आदमीके सामने रहता है कि हम जो कुछ लिखते हैं उसकी परख हमेशा होनी चाहिए। और इस परख करनेका काम लेखकका नहीं होता। जब इस परखका काम दूसरे नहीं करते तो लेखक स्वयं करने लगता है। और वह काम हमने किया है और उसका परिणाम यह हुआ कि हम सभी कहने लगे कि हमसे अच्छा कोई नहीं लिखता। अभी राकेशजी ने भी इस बातके प्रति हमारा ध्यान खींचा था। और यह बताया था कि एक कोई गड़बड़ी है। जब यह गोष्ठा हुई है और हम सब मिले हुए हैं तो हमारे सामने दो प्रश्न हैं इस समय। एक तो हमारे पाठकोंका है, जो इस समय हमारे साथ चलते हैं और दूसरा लेखकोंका है जो हमारे साथ चल रहे हैं और आगे भी जिनके साथ हमें चलना है। इन दोनों दृष्टियोंसे हमें चीज़ोंको सोचना है। अगर हम पाठकोंका खयाल करने लगें तो हमें फिर तिलस्मी और जासूसी उपन्यासोंकी ओर लौटना पड़ेगा—जिससे मनोरंजन हो सके। कुछ लोगोंने कहा था कि कहानीका उद्देश्य मनोरंजन है। मैं इसे नहीं मानता। कहानीका उद्देश्य मनोरंजन क़त्तई नहीं है। हम अपनी कहानी कहते हैं और उसे आपको पढ़ाकर आपकी कहानी उसमें बताना चाहते हैं। जब कहानी प्रकाशित होती है तो लेखक और पाठकके बीचमें समझौता होता है। और वह समझौता यह है कि जब आप उसे पढ़ें तो उसमें कहीं-न-कहीं आपकी या आपके पड़ोसकी छाप देखें। कहीं-न-कहीं उसके साथ आपका सम्बन्ध हो। जीवनके हर क्षणमें निराशा, कुण्ठा, बेबसी या आशा-उल्लास जितने भी क्षण आते हैं उनका समन्वय कहाँ हो सकता है उसको समन्वित करनेकी कोशिश करना है। ये सब बातें उन सब पाठकोंकी हैं जो कहानियाँ पढ़ते हैं। कहानी पढ़नेके लिए दो जातें है, रेलका सफ़र पार करनेके लि नहीं। इसके लिए दूसरी पत्रिकाएँ हैं कहानीमें हमने कुछ तत्त्व देनेकी कोशि की है या बतानेकी कोशिश की है—कि आप पढ़ें, समझें कि जीवन कहाँ है औ हम उसके साथ कहाँतक चल रहे हैं समयके पहचाननेकी आवश्यकता कहानी बहुत ज़रूरी है और एक कहानीकारके लि तो और भी ज़रूरी है। नगरों और म नगरोंकी उलझनसे जो समस्याएँ खड़ी हुई उन समस्याओंको पहचाननेकी अपेक्ष पाठकोंसे करने लगें कि वे भी हमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता करें। आलोचकोंने सहायता नहीं की, हम आलोचक अपनी ओरसे खड़ा कर दें और हम जो चाहें वह कह दें—यह ग़लत है। वे जो सही समझें कहें। उससे हमें और हमारे साहित्यको एक नयी दिशा मिलेगी। जैसा कि राकेशजी ने कहा था, हम वैचारिक स्तरपर बातचीत इस गोष्ठीमें करेंगे, समयके साथ चलनेकी इच्छा हर कहानीकारमें रही है यह मैं कहना चाहता हूँ। यदि समयको छोड़कर चलनेके प्रयत्न करेंगे तो हमारी स्थिति कहानीके क्षेत्रमें अच्छी नहीं होगी। किसी-न-किसी तरहसे हर कहानीकार अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करनेकी कोशिश करता है। यह बात सही है कि यह संघर्ष हमारी पीढ़ीका है। आपसी मित्रोंका संघर्ष है जिसे हम आपसमें सुलझाकर हल निकाल सकते हैं। हम जो लिखते हैं वह पाठकोंके लिए कहाँतक ग्राह्य है, कहाँतक वे समझ रहे हैं यह हम देखें। हमने जो कुछ पिछले दस वर्षोंमें लिखा है उसपर हमें विचार करना चाहिए कि वह कितना गहरा है और हमें आगे क्या करना चाहिए क्योंकि जबतक हम यथार्थको अपनी पकड़में नहीं रखेंगे तबतक हम आगे नहीं चल सकेंगे और न ही साहित्यके साथ न्याय कर सकेंगे। यथार्थकी पकड़को हमें समूची नयी दृष्टिसे देखना है, जिस दृष्टिसे हमने अठारह साल पहले आज़ादीके समय साहित्यको देखा था। मेरा ख़याल है कि मेरे साहित्यकार मित्र इसपर ग़ौर करेंगे।

• नये और पुरानेका संघर्ष सृजनशील साहित्यकारका संघर्ष है…

कमलेश्वर : यह गोष्ठी विशेष रूपसे एक विशिष्ट विषयको लेकर चली जिसमें समकालीन कथा-साहित्यमें बोध और दायित्वपर हमें विचार करना था। जहाँतक बातोंका प्रश्न है बातें बहुत उलझी हुई भी की जा सकती हैं, ऐसी भी की जा सकती हैं जो आपको निरन्तर गुदगुदाती रहें और कहीं न पहुँचायें। कुछ बातें ऐसी भी की जा सकती हैं कि आपको लगे कि बहुत गम्भीरतासे कही गयी हैं लेकिन उनका कोई तात्त्विक या व्यावहारिक हल न निकले, इसलिए समकालीन कथाकारके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनेको, अपने सारे परिवेशमें खोजता हुआ ईमानदारीसे भरे हुए अन्वेषणको आपके सामने प्रस्तुत करे तो सम्भव है कि उसकी अच्छाइयों और उसकी बुराइयोंका एक हलका-सा स्वर बन सके। मैं केवल उस अन्वेषणके कोणसे बात आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। कथा-साहित्यके सम्बन्धमें बोधका और दायित्वका जो है उसके साथ समकालीन शब्द लगा हुआ था। यह समकालीन है क्या? यह समकालीन कौन-सी स्थिति है? ये खिड़कियाँ, ये दरवाज़े, हम और आप, यहाँ बैठे हुए लोग और इस समय बात-चीत करते हुए लोग ये केवल एक स्थिति मात्र हैं। समकालीनताका बोध तभी होता है जब लेखक अपने अन्दरकी सारी कुण्ठाओंको परखते हुए अपने समयके साथ तादात्म्य करनेकी कोशिश करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जीवनके मूल्यको खोजता है। जीवनमें कौन-सी स्थितियाँ हैं जिनके प्रति वह प्रतिबद्ध हो सकता है, जिनके प्रति वह अपनी आस्था समर्पित कर सकता है ?....और ऐसी कौन-सी स्थितियाँ और मूल्य हैं जिन्हें वह अपनी आस्था नहीं दे सकता ? लेखक केवल अच्छा कहनेका आदी नहीं होता वह बुरा भी कहता है। वह इस कोशिशमें रहता है कि वह अपने समयकी प्रामाणिक सच्चाईको या यथार्थको अधिक और अधिकांश रूपमें पेश करनेकी कोशिश कर सके। इसमें कहानियाँ कहाँतक सफल होती हैं यह एक दीगर बात है। समकालीन कथा-साहित्यके बारेमें जब हम लेखनकी बात उठाते हैं तो एक बहुत ही दुःखद स्थिति सामने आती है और वहयह है कि हमारा आलोचक-वर्ग बहुत सफ़ाईसे अपनेको एक दूसरी ही स्थितिमें रखकर अपनी कमज़ोरोंको छिपा ले जाता है, जिसका आरोप वह अपने समयके कथाकारपर करता है ये कि पीढ़ियाँ बनाते और विवाद खड़ा करते हैं, ये यश प्राप्त करनेके लिए अपनी स्थितिको मज़बूत बनानेकी कोशिश करते हैं। शायद उस आलोचकमें, जो नितान्त उपजीवी साहित्यिक प्राणी है, उसमें यह भावना हमेशा छिपी रहती है कि वह अपना गुट किस तरहसे बनाये। यह पीढ़ियोंका संघर्ष आलोचकोंकी उपज है और नये और पुरानेका संघर्ष सृजनशील साहित्यकारकी उपज है। पीढ़ियोंका संघर्ष उस रूपमें नहीं....यह सीधा-सीधा संघर्ष जीवनदृष्टिका और साहित्यिक मूल्योंका संघर्ष है। यह नये और पुरानेका संघर्ष केवल पीढ़ियोंका नहीं, जिसे हमारे आलोचक बड़ी आसानीसे पचास-के बाद, साठके बाद, एकसठके बाद बाँट देते हैं। जैसे कुछ लेखकोंको परेशानी होती है कि वे जेबी आलोचक पैदा करते हैं। वे लेखक जिनकी कोई आस्था नहीं जिनके सामने अपने जीवनका कोई मूल्य नहीं, जिनके सामने बदलती हुई परिस्थितियोंमें-से निःसृत होते हुए यथार्थका कोई स्वरूप नहीं, इस तरहके भटकते हुए लेखक प्लेटफ़ॉर्मपर खड़े आलोचकोंकी गाड़ियोंमें चढ़नेके लिए तैयार रहते हैं और आलोचक एक नितान्त तीसरे उपजीवीके रूपमें हमारे सामने आता है जिसका लेखक और पाठकके बीचमें किसी तरहके समकालीन बोधके स्तरपर कोई सम्बन्ध नहीं होता। आलोचक जिस रूपमें अपना कार्य करता है, यदि वह अपने समयको सृजनात्मक शक्तियोंको नहीं समझ पाता, यदि वह अपने समयके यथार्थके साथ अपनेको सही चलता हुआ नहीं पाता, अपनेको समर्पित नहीं महसूस करता तो कोई स्थिति नहीं है जो आवश्यक रूपसे उन कृतियोंकी या अपने समयकी सृजनात्मक कृतियोंकी समीक्षा करे ही। शुरूआत करनेमें बड़ा अच्छा लगता है। मैं भी एक कहानीसे शुरूआत यहाँसे कर सकता हूँ, इतनी क्षमता मुझमें भी है। अभी एक नारा दे सकता हूँ और उसके साथ पाँच लेखक और दो आलोचक भी मेरे साथ होंगे। इसलिए हम मिलके एक सम्मिलित प्रयास करें। एक अन्वेषणकी प्रक्रिया है, जिसमें-से आलोचक खतियानेकी कोशिश करते हैं और उस यथार्थके रूपको खण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं जिस यथार्थके प्रति प्रतिबद्ध लेखक अपनेको उत्तरदायी महसूस करता है। मैं जब प्रतिबद्धताकी बात करता हूँ तो मेरे सामने निश्चित रूपसे एक प्रक्रिया आती है जो समाजसे सीधी जुड़ी हुई है। मैं सामाजिकतासे कतरानेका दम्भ नहीं करता। मैं उन कहानीकारोंकी तरह अपनी बात घुमा-फिराकर उसी छोरपर लानेकी कोशिश नहीं करता, जहाँ उनका कोई अर्थ नहीं निकलता। क्योंकि जो दबाव, जिस तरहकी पीढ़ियोंका दबाव, जिस तरहके संस्कारोंका दबाव, जिस तरहके आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और दूसरे तरहके संकट आजके लेखकके सामने उसके दिमाग़पर दबाव डालते हैं, उससे जो उत्पन्न होते हैं, उनसे उद्भूत जो हमारा अपना नितान्त भारतीय सन्दर्भ है—भारतीयसे मेरा मतलब केवल सीमाओंसे जुड़ा हुआ नहीं किसी एक प्रदेश, किसी एक गाँव, किसी एक क़स्बे, किसी एक शहरसे जुड़ा हुआ नहीं है,—भारतीयताका जो सन्दर्भ है, वह अपनेमें हमें उन स्थितियोंसे जोड़ता है जो हमें कहीं-न-कहीं कहानी लिखनेके लिए मजबूर करती हैं। कहानी लिखना कोई व्यावसायिक पेशा नहीं है। हमारे ऊपर भी आक्षेप लगाये जाते हैं कि व्यावसायिकता आजके लेखनमें बहुत है। व्यावसायिकताका वह पक्ष एक दूसरा हो सकता है। व्यवसायिकताका जो काम था उसे पत्रकारिताने बहुत अच्छे स्तरपर सँभाल लिया है और पत्रकारिताने बड़े समयसे स्तरीयता प्राप्त करके साहित्यको एक बहुत बड़े संकटसे मुक्त कर दिया। यह

रवीन्द्र कालिया : 'न घटना, न नाम, न बुनावट—किसीकी ज़रूरत नहीं···बस एक इण्टेन्स मोमेण्ट···।'

अकथा···विकथा

ममता कालिया : 'कहानी मर रही है, उसका कहानीपन मर रहा है, हम एक शिल्पहीनता-की तरफ़ बढ़ रहे हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मुक्ति है जो हमें प्राप्त हुई है और इसलिए यह एक ऐसा समय है जब कि हम अपने साहित्यके मूल्यों और बदलती हुई परिस्थितियोंसे उद्भूत यथार्थको, अपने नितान्त भारतीय परिवेशको, अपने आन्तरिक मनको कुण्ठाओंको, सुख-दुःखको, आस्थाको, निराशाको, ईमानदारीसे और एक बहुत शुभ और प्रतिबद्ध तरीक़ेसे लिपिबद्ध कर सकते हैं। यह कौन-सी चीज़ है जो हमें इस बातके लिए मजबूर करती है कि हम मूल्योंके प्रति प्रतिबद्ध हों। हमारी पुरानी पीढ़ी या हमारे पुराने लेखक—शायद कहानीके प्रति उनका जो दृष्टिकोण था वह दृष्टिकोण उस तरहकी प्रतिबद्धताका नहीं था। भगवतीबाबूने कहा कि 'कहानी मनोरंजन करती है।' जैनेन्द्रजीका कहना है कि 'हम अपने-आपसे कुछ खोजते चलते हैं, उनमें-से कुछ मिल जाता है, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिलता है बहुत अच्छी बात है।' लेकिन हम केवल दिमाग़ी ऐयाशीके लिए नहीं लिखते। हमारे साथ ज़िन्दगीमें करनेके लिए और काम थे। यह नितान्त ऐसे व्यक्तियोंकी पीढ़ी नहीं है जो सोचती हो कि उसके पास दूसरा कोई रास्ता नहीं था। तमाम हज़ार रास्ते थे। जिन रास्तोंपर कोई भी जा सकता था, वे सारे रास्ते खुले हुए थे। लेकिन इस तरफ़ जानेका इस पूरी पीढ़ीमें जितने भी समर्थ और वास्तविक जेन्युइन राइटर्स हैं, वे इस तरफ़ क्यों आते हैं—उसका एक मूल कारण है, क्योंकि वे समझते हैं कि उनकी अपने जीवनके प्रति प्रतिबद्धता है और जिन मूल्योंका संकट उनके लिए चाहे नैतिक रूपसे खड़ा हो या आध्यात्मिक रूपसे या आर्थिक रूपसे या सामाजिक रूपसे या वैयक्तिक रूपसे, वे इस संकटको झेलनेके लिए, भोगनेके लिए और उसमेंसे एक मुक्तिका आभास पानेके लिए वे इस कोशिशमें लगे हुए हैं। यह एक बहुत बड़ी प्रक्रिया है, केवल इसे छोटी-छोटी बातोंमें या छोटे-छोटे या बड़े धीमेसे बातको स्तरपर उठाकर—आलोचकोंके द्वारा वह उठायी जाये या लेखकोंके द्वारा उठायी जाये—तो उस स्तरपर उठाकर हम उस सारी गम्भीरताको नष्ट करते हैं जिस गम्भीरतासे हम जीवनको लेते हैं और जीवनमें समाये हुए मूल्योंको लेते हैं। यह नहीं है कि जो अलगसे गुट बनेंगे उनके लिए पत्रिकाएँ अलगसे निकलेंगी और पत्रिकाओंसे पारिश्रमिक बहुत अधिक मिलेगा। यह इसका सवाल नहीं, यह सवाल जीवनका है कि हम आखिर दे क्या रहे हैं, हम पेश क्या करना चाहते हैं, क्यों करना चाहते हैं और ऐसी स्थितिमें जो सबसे बड़ी बात सृजनशील लेखकके सामने आती है वह यह कि किसी विषयको उठाते समय वह सोचता है कि मैं इसे क्यों उठाता हूँ? क्यों लिख रहा हूँ, किस रूपमें लिखूँगा और आखिर इसका सारा सन्दर्भ क्या है .और इस सन्दर्भका अर्थ क्या है? ऐसा नहीं हैं कि उन्होंने एक अन्त बना लिया है और उस अन्तपर पहुँचकर कहानी खतम होगी। ये साँचे ही नयोंने तोड़े थे। नये साहित्यने उन साँचोंको ही तोड़नेकी कोशिश की थी। शुरूमें पहले उसने भाषाके स्तरपर तोड़ा था और उसके बाद उसीको उसको कथ्यके स्तरपर तोड़ा था। सबसे पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाका जो बनावटी कवच चारों तरफ़ था उस कवचसे अपनेको मुक्त करनेके बादमें कहानीको नये तथ्यसे जोड़ा था। यह तथ्य हमारा नितान्त भारतीय सन्दर्भ था जिसके प्रति हमारी आस्थावान् दृष्टि थी। कहानियाँ दिमाग़ी विलासके लिए नहीं लिखी गयी हैं। अगर उससे किसीको नींद नहीं आती है तो डॉक्टर मौजूद हैं। हमें कोई अफ़सोस नहीं है कि आपने हमारी कहानी पढ़ी। जो संक्रमण हुआ है वह मूल्योंका संक्रमण है। इन बदली हुई परिस्थितियोंमें बहुत सारे हमारे कलाकारोंने कहानियाँ ग्रामांचलोंसे जो उठायीं उनके प्रति एक दृष्टि थी, वह शौक़ नहीं था। प्रेमचन्दकी कहानीपर-से भी इम्फ़ेसिस उठता जा रहा है। 'बड़े घरकी बेटी' की जगह 'क़फ़न' या 'पूसकी रात'की चर्चा होती है। कहना यह है कि जो यथार्थके प्रति एक दृष्टि अपनाता है, वह सार्थक रूपसे लिखना शुरू करता है। हम अपने समयका यथार्थ भोगते हैं। पुराने समयमें एक मोटे परदेके पारसे अपने पतिको बिदा देती हुई नारी और आज स्टेशनपर लिपस्टिक लगाये रूमाल हिलाकर बिदा देनेवाली लड़कीकी संवेदनामें कोई अन्तर नहीं है। यह लड़की नार्मल तरीक़ेसे सभी बातोंको सहती है। हमारे बीच भी जो पुरानी दृष्टिके लोग हैं वे इस बातको नहीं समझ पाते हैं कि स्थिति कैसे बदली है। समाज और सामाजिक परम्पराओंके प्रति बदलाव आया है और वह महत्त्वपूर्ण है। कहानी मनोरंजनके लिए ही अगर होती तो हम किसी सर्कसमें होते और आपका मनोरंजन करते। प्रतिबद्ध होनेकी हमारी मजबूरी है, नयी कहानी कोई सम्पूर्ण और टिकी हुई चीज़ नहीं है वह तो नयी होती हुई एक परम्पराका शुभारम्भ था। यह नहीं कि कमलेश्वर, रमेश बक्षी, राकेश, शरद जोशी, मन्नू भण्डारी और उषा प्रियंवदाकी कहानियाँ ही नयी हैं—नाम कोई भी हो सकते हैं। नये बोधके प्रति जो लगाव पैदा हुआ है वह नयी पीढ़ीमें भी दिखाई देता है—वह है प्रतिबद्धताके प्रति लगाव। जो अलग-अलग रेखाएँ खींचते हैं वे ग़लत हैं क्योंकि नये और सच्चे जो हैं वे हैं। महेन्द्र भल्ला, दूधनाथ सिंह, श्रीकान्त, पानू खोलिया, सुदर्शन चोपड़ा, प्रयाग शुक्ल, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, अनीता औलक आदि में बदली हुई स्थितियोंको देखा जा सकता है। कुण्ठा, अकेलापन, संत्रास, जो है ये सब सामाजिक स्थितियोंमें-से आये हैं। ये व्यक्तिगत तकलीफ़ें हैं, क्राइसिस हैं, ढोंग नहीं हैं। इस सारे संकटोंका केन्द्र-बिन्दु आधुनिक स्थितियाँ हैं। नयी कहानी प्रतिबद्ध लेखकके दृष्टिकोणसे लिखी गयी है जिन्होंने बदलते हुए मूल्योंको समझा है।

• जो सही-ग़लतका भेद नहीं कर पाता वह लेखक है…जो कर पाता है वह…

श्रीकान्त वर्मा : जो कुछ बातें कही गयी हैं उसपर पाँच मिनिटसे अधिक नहीं बोला जा सकता। कमलेश्वरकी गम्भीरतासे मैं सहम गया। मैं उस अर्थमें कहानीकार नहीं हूँ जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थमें निर्मल वर्मा, राकेश और कमलेश्वर हैं। मैं शौक़के लिए लिखता हूँ। जब मजबूरी लगती है तो लिखता हूँ। मेरे मनमें उस तरहका चिन्तन नहीं चलता जैसा राकेशजीके मनमें चलता है। राकेशजीके गुस्सेके बारेमें मैं सोचता रहा। बादमें मुझे लगा कि वह गुस्सा सामाजिक दशाके प्रति गुस्सा है। लेकिन साहित्यिक विवाद होते ही हैं। उनका कुछ सामाजिक उपयोग नहीं होता। कोई भी व्यक्ति क्रोध या दयाका पात्र नहीं होता—वह केवल पात्र होता है। कमलेश्वरने कहा जो प्रतिबद्ध कथाकार हैं, वे सच्चे अर्थोंमें कहानीकार हैं। इसपर कई विश्वास भी करते हैं। लेकिन इसके राजनीतिक अर्थ भी होते हैं। अच्छी और बुरी चीज़की करोड़ों क़िस्में हैं, उनमें-से किसी एकको चुनना सरल नहीं। लेखक संवेदनशील व्यक्ति होता है, वह इतनी जल्दी सही-ग़लतका भेद नहीं कर पाता। जो सही-ग़लतका भेद नहीं कर पाता वह लेखक है और जो भेद कर पाता है वह नेता है। नेताओंके लिए फ़तवे दे देना सरल है। प्रतिबद्धताका सवाल असाधारण है। वह साहित्यकी कसौटी नहीं बन सकता। प्रश्न यह है कि कौन क्या सवाल उठाता है। काफ़्काने इतने सवाल उठाये, उसे क्या उत्तर मिल गया? मिली केवल असफलता। बुद्धको ही लें। वे क्या तय कर पाये? संशय ही आदमीको असाधारण बनाता है। जिसके मनमें संशय उठता है वही असली लेखक है। जैनेन्द्रजीके बारेमें मुझे सहानुभूति हो गयी है। जैनेन्द्र हिन्दीके पहले लेखक हैं जिन्होंने व्यक्तिके मनमें उठनेवाले संशयको लिखा है। इसलिए वे पहले माडर्न और आधुनिक लेखक हैं। यह काम प्रेमचन्दने नहीं किया था इसलिए वे अलग हैं। समकालीन और आधुनिकका अन्तर मानकर चलना चाहिए। वाल्मीकिमें आधुनिक स्थितियाँ हैं और शेक्सपीयर भी उन्हींके कारण आज तक आधुनिक बने हुए हैं। शाश्वतता रस-सिद्धान्तसे बँधी हुई नहीं है। जो हर युगमें नया है वही शाश्वत हो सकता है। प्रेमचन्दजीकी दृष्टि आधुनिक नहीं थी। व्यक्तिका संघर्ष ही महत्त्वपूर्ण है। समकालीन दृष्टि नहीं, प्रवृत्ति है। जैनेन्द्रकी पुरानी कहानियाँ भी आधुनिक हैं लेकिन उनकी आजकी कहानी समकालीन नहीं है क्योंकि व्यक्ति समकालीन नहीं है, चालीस साल पुराना है।

● खींची हुई लकीर वर्टीकल है, हॉरीज़ेण्टल नहीं···

डॉ० देवीशंकर अवस्थी : यहाँ आलोचक और अध्यापक दोनों ही कण्डेम्ड किये जा रहे हैं। वह पहचान नहीं करता है तो यह कहा जायेगा कि वह आन्दोलनको जानता नहीं और पहचान करता है तो यह कहा जायेगा कि ग़लत काल-विभाजन कर रहा है। मैं तो चाहता था कि राकेश, शरद जोशी, या रमेश बक्षी बतलाते कि वे क्या सोचते हैं? कौन-सा यथार्थ है जिसे जीते हैं और उसके किस अंशके प्रति प्रतिबद्ध हैं और प्रतिबद्धता कहाँतक है? लेकिन वे नहीं बतला रहे हैं। आक्रोश किस बातपर है आखिर? मैं जैनेन्द्रके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक दायित्वको कैसे नकार सकता हूँ। मैंने जो लकीर खींची थी, वह वर्टीकल नहीं, हॉरिज़ेण्टल थी। मैंने रेखांकन किया था। आजके ही दो वक्ताओंको देख लीजिए। दोनों सहभोगी हैं लेकिन एक नाराज़ होता है और एक अपनी बात कहता जाता है। मैंने तो उभरते हुए स्वरको अण्डरलाइन किया था। अभी कहा गया कि नयी पीढ़ी पिछली पीढ़ीका एक्सटेन्शन है। आधुनिकताकी हिस्टोरिकल कैटेगरा होती है। हर बार उसका रूप अलग होता है और वह विकसित होती जाती है। व्यंग्यकार सबसे दुःखी प्राणी होता है तभी तो वह व्यंग्य कर सकता है। विडम्बनामें-से ही व्यंग्य उत्पन्न होता है। व्यावसायिकता और अव्यावसायिकताका निर्णय शरद जोशीके कथनके अनुसार नहीं हो सकता।

• ईमानदारी निबाहनेका अर्थ है : हम प्रतिबद्ध हैं...

दूधनाथ सिंह : मुझे लगा कि राकेशजीको कुछ दूसरी तरहकी ग़लतफ़हमी हो गयी है। उनके क्रोधमें वार्म्थ है और मैं उसे प्यार करता हूँ। उनका आक्रोश सहज और सुन्दर लगा। उनको दो शिकायतें हैं : एक कि छींटाकशी और चुटकुलेबाज़ीसे बात नहीं होती। लेकिन भाषणमें-से विवेचनका आधार खड़ा हो सकता है। यह मुश्किल लगता है क्योंकि सबका बोलनेका अपना ढंग होता है। उन्होंने एक और बात कही—अनास्थावाले शुतुर्मुर्ग़की तरह रेतमें सिर गाड़ लेते हैं। मैंने साठके बादकी लाईन नहीं खींची। मैंने खुद कह दिया था कि पीढ़ी शब्द बड़ा क्रूड है। सामाजिक परिस्थितिमें यदि बदलाव दिखाई पड़ता है तो जैसे कमलेश्वर सामाजिक प्रतिबद्धताकी बात करते हैं वैसी ही प्रतिबद्धताके बारेमें नये ढंगसे सोचनेका हमें यहाँ समय दिया जाये कि हम उसे आग्रहपूर्वक ईमानदारीसे कह सकें। प्रश्न शब्दोंका नहीं अन्दरकी ईमानदारीका है। मैं जिस सत्यको आस्था या विश्वासहीनताके साथ देखता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं कि मैं पलायन करता हूँ। स्थितियाँ कुछ इस तरहसे बदल गयी हैं कि उसे अपने ढंगसे झेलने और कहनेकी हम ईमानदारी निभायें। जब ईमानदारी निभाते हैं तो इसका सीधा अर्थ है कि हम प्रतिबद्ध हैं। सारी स्थितियोंको विगलित करके नहीं देखा जा रहा है। परिस्थितियोंको देखने और उससे संघर्ष करनेकी स्थितिमें होना भी एक दुर्भाग्य है। यह भी मेरी प्रतिबद्धता है। हमारे सामने चीज़ें दूसरी तरहसे प्रतिबिम्बित होती हैं। मैं कहीं कोई विभाजन नहीं देखता। राकेशजीका जो आस्थावान् स्वर साहित्यमें है उसके प्रति मेरे मनमें आदर है। मैं अपनेको उनके आदरके प्रति अकेला पाता हूँ। हर व्यक्तिको, परिस्थितिको अपने ढंगसे देखनेका अधिकार है। अगर मेरी तरफ़से कोई ग़लतफ़हमी राकेशजीको हुई हो तो मैं उनसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● पीढ़ीकी ओट लेकर सामने आऊँ तो पर्दा मैं खुद नहीं बन सकता सामने ?...

जैनेन्द्र : मुझमें लिखास और बुलास कम जागती है लेकिन श्रीकान्तजीने जो अभियोग लगा दिया कि मैं मॉडर्न हूँ तो बोलना पड़ा। मैं आधुनिक हो नहीं सकता। जैनेन्द्रको जो कुछ जानता हूँ, वह कहूँगा। कभी-कभी पूछता हूँ जैनेन्द्रसे कि तुमने सिगरेट पी है, शराब पी है, तुम्हारा जीवन रंगारंग रहा है? नहीं। बिलकुल सपाट रहा है। तो ऐसे सपाट—जिसके जीवनमें सिगरेट-शराब नहीं है, उसे आप कैसे नहीं मानेंगे, वह आधुनिक नहीं है—बहुत बड़े अनुभूतिके क्षेत्रसे वह वंचित है। जीवनका भोग, जीवनकी अनुभूति, नये-नये जीवनके रस, विचित्र-विचित्र, विलक्षण-विलक्षण इत्यादिसे जो वंचित है ऐसा, जीवनबोधसे वंचित आदमी आधुनिक लेखक बन सकता है यह सम्भव नहीं। यदि मैं आधुनिक लेखक हूँ तो इसी शर्तपर हो सकता हूँ कि मैं पुरातन लेखक न रहूँ और पुरातन फिर उसी शर्तपर हो सकता हूँ कि आधुनिक न रहूँ। इसलिए मैं यह मानता हूँ कि आधुनिक, नया, पुरातन—जिनके हाथोंमें ये शब्द हैं—जज लोग हैं, जैसा चाहें लगा दें, श्रीकान्त बाबू नया कह दें लेकिन इतना मैं कह सकता हूँ कि लेखक तो मैं बना। कमलेश्वरजी कहते थे हम समर्थ व्यक्ति थे, बहुत कुछ बन सकते थे, प्रतिबद्ध होकर लेखक बने। लेकिन मेरी हालत तो बिलकुल उलटी है; प्रतिबद्ध लेखक बन नहीं सका। कलकत्तेमें पन्द्रह रुपयेकी नौकरीके लिए भटक रहा था। मेरे पास कोई रास्ता ही नहीं था। लेखक बन गया सो भी प्रतिबद्धताके नाते नहीं। रपट पड़े सो हर गंगा! यह बात हो गयी। चलते-चलते कुछ था नहीं, लिख गया, छप गया और लेखक बन गया—शुद्ध असमर्थताके कारण। तो आधुनिक लेखक जिसे ज्ञानवान् होना चाहिए, समर्थ और सक्षम होना चाहिए वह मैं कैसे हो सकता हूँ! हो ही नहीं सकता। अब मैं लिख गया, जिसके बारेमें चर्चा होती है तो कहानी लिखनेके सम्बन्धमें ही कुछ प्रश्न पैदा होते हैं। यह जीवनको झेलना-भोगना अनुभव करना यह सब प्रत्यक्ष था, मेरे जीवनमें जैनेन्द्रके जीवनमें—बहुत कुछ दिखाई नहीं देता। फिर ऐसा होनेमें कैसे आया कि '३०-'३५ के बीच जो कहानियाँ लिखी गयीं और आज '६५ में आज भी पढ़ी जा सकती हैं और मॉडर्न हो सकती हैं? '३०-'३५ में लिखा हुआ आधुनिक हो सकता है यानी '६५ में पठनीय हो सकता है लेकिन जो '६५ में लिखा है वह '३०-'३५ से भी पुराना है। मालूम नहीं हो सकता है कुछ भी। हो सकता है यही सन् '९५ में अच्छी हो जाये। समकालीनता नामकी चीज़पर-से मेरा भरोसा उठता जा रहा है। यह समकालीन शब्द उस चीज़को जो कालसे भिन्न नहीं है, कालातीत है, काल-के कटघरेमें बन्द करके देखना है। और मैं समझता हूँ कि साहित्यके पठन-पाठनके लिए शायद यह आवश्यक हो जाता है कि जो आजकल एक चल पड़ा है तरीक़ा, पश्चिमसे आया है, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखा जाये सब चीज़को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखा जाये। कोई-सी भी चीज़ बचे नहीं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यको भी देखा जाये। शुवलजी हुए तो उन्होंने काल-विभाजन कर दिया और कालके नाम भी दे दिये। चीज़को बाँट-बाँटकर देखनेमें सुविधा होती है। यह तरीक़ा चल पड़ा है। लेकिन यह जो बुद्धिको समझना और समझाना है, वह पद्धतिकी दृष्टिसे तो ठीक है लेकिन जिसको बाँटा जाता है वह मेरे खयालमें अखण्ड है। लेकिन अखण्डको खण्डित मानकर आपसमें लड़ाई करने लगें तो इसमें खण्डत्वकी प्रतिष्ठा है और अखण्ड तत्त्वकी अवज्ञा है। गोष्ठीके प्रति संशय मेरे मनमें इसलिए था कि इससे लेखनमें कोई तीव्रता नहीं आयेगी, गरमा-गरमी आयेगी, वातावरण बनेगा, शायद वह टेढ़े-सीधेसे लेखनमें भी काम आ जाये लेकिन कुछ उपयोगी नहीं होगा। कुछ भाई हैं जिन्होंने कहा कि निराशा है। मुझे तो सच कहता हूँ, मज़ा आया। निराशाका प्रश्न ही नहीं ऐसा! लोग तबीयत भरके बोले। ऐसा अवसर पैदा करना जिससे तबीयत भरके बोलनेका अवसर मिले तो खटास वग़ैरह दूर हो जाती है। मुझे तो मज़ा आया कि राजनीतिक मंचपर जो जीवन और जागृति दिखाई देती है, मुझको वैसा ही यहाँ भी लगा। मंच पोलिटिक्सको ही चीज़ नहीं, लोगोंको प्रकाश मिलेगा कि वह साहित्यकी भी चीज़ है। और साहित्यकार कम गरमा-गरम नहीं बोल सकते हैं, काफ़ी तीखा बोल सकते हैं। उनमें भी अगर प्रकाश है तो हम लोगोंमें भी कुछ हैं—जिनके पास प्रकाश है, प्रतिबद्धता है, मालूम नहीं किस बातके प्रति प्रतिबद्धता? लेकिन कुछ है जिसके प्रति प्रतिबद्धता है। मैं समझता हूँ अपने स्वरके प्रति प्रतिबद्धता हो सकती है, किसी समाज या नामकी धारणा हो उसके प्रति प्रतिबद्धता हो सकती है। लेकिन जो मुक्केसे दिखाई जा सके ऐसी प्रतिबद्धता। जब राजनीतिक क्षेत्रमें बोलबाला हो तो यह खुशीकी बात है कि वह साहित्यके क्षेत्रमें भी है। और शायद कुछ चुनौती आगे-पीछे मिल सके। ये जो संस्कार साहित्यमें ले आये हैं वे, सम्भव है, राजनीतिक ट्रेनिंगसे ले आये हों। जैसे तुलसीदासजी हैं, शादी तो उनकी हुई थी, लेकिन उनकी गृहस्थी कैसे चली, कबतक चली, पता नहीं। मान लीजिए कि गृहस्थी ऐसे चलती कि एक शादी होती, फिर टूटती, फिर दूसरी होती, फिर तीसरी होती, चौथी भी हो जाती तो कितना गहन और सम्पन्न अनुभव उनको हो जाता। और मैं निश्चित कह सकता हूँ कि अगर ऐसा तुलसीदासजीके जीवनमें घटित हुआ होता तो सीता उनके लिए माता नहीं हो सकती थीं। सीता स्त्री भी नहीं हो सकती थीं, वह मादा हो जातीं। आजकलकी यथार्थ दृष्टि है, यथार्थ है, स्त्री मादा बन जाती है, मैं इसको अयथार्थ और असत्य मानता हूँ। जहाँ स्त्री देवी होनेकी तरफ़ बढ़े तो मानता हूँ कि दृष्टिकी सत्यता है, यथार्थता भी है। लेकिन जहाँ स्त्री स्त्री होनेसे घटते-घटते मादा हो जाये; सो कहेंगे बढ़ते-बढ़ते। ऐसे भी लोग हैं, कहेंगे, हमारे मनमें कोई रोमांस नहीं है, यह यथार्थ है और स्त्री मादा है। यह यथार्थ उनको प्राप्त होता तो रामायण प्राप्त नहीं होती। अत्यन्त अनुभवसिद्ध हो गये होते। कविके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपमें हमने कभी याद नहीं किया होता। जिनकी अनुभूति और अनुभव अत्यन्त व्यापक है····मुझे याद आ रही है एक मित्रकी। खैरियत है कि वे जीवित नहीं हैं, गर चुके। और यह कोई २० वर्षकी बात है। वह आये और, मैं समझता हूँ, ३५ वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हो गया, मेरा उनका कोई निकटका परिचय नहीं था, बातों-बातोंमें हो बोले—आजका नम्बर २१८। मालूम हुआ कि उनके जीवनमें घनिष्ट सम्पर्क उनको प्राप्त होते रहे हैं और २१८वाँ का नम्बर है जो कल रात प्राप्त हुआ। उस वर्ष पूरे तीस वर्षके नहीं रहे होंगे। आप समझिए कि कितना गहन भावबोध होगा, २१८ नम्बर प्राप्त हो गया। २८ वर्षकी अवस्थामें अगर वह कहीं लिखने बैठते तो बताइए, कौन आधुनिक लेखक उनके सामने ठहर सकता! लेकिन मैं यह मानता हूँ कि जीवनकी प्रतिबद्धता, जीवनके भोगनेकी प्रतिबद्धता उनमें थी कि वे लेखक हो ही नहीं सकते थे। जीवनको भोगेंगे तो लिखनेका समय कब पायेंगे? मैं यह मानता हूँ कि शब्द तो ठीक हैं बहुत-बहुत आते हैं लेकिन अपनी आपबीतीमें-से थोड़ा-सा सोचकर यह नहीं कि लोगों-पर कहना है, लोगोंसे कहना है अपने भीतर जो कुछ बीता है उसको टटोलकर कहना है, तो अगर उस रूपमें सोचकर कहें तो यह जो अनुभवकी पूँजी है, भोगकी पूँजी है यह आखिर कितनी बढ़ेगी? 'स्व' तक ही सीमित रहनेवाली है। 'स्व' तक सीमित रहनेवाली जो चीज़ है उसके आधारपर कुछ साहित्य पैदा होगा, बड़ा साहित्य, महान् साहित्य पैदा होगा; व्यापक साहित्य पैदा होगा, यह सोचनेकी बात है। स्वत्वको लेकर और 'स्व' को लेकर अहम्-भुक्तको लेकर अपनी आपबीतीको लेकर जो हम पैदा करेंगे वह हमारे अहंकारका ही तो क्षेपण होगा। इसलिए हमारे एक भाईने कहा कि विज्ञान-कहानी जो जैनेन्द्रकी है, उसका आदमी जो है, वह झूठा है। मुझे तो यह भी समझमें नहीं आता कि मेरी किसी भी कहानी-का आदमी सच्चा कैसे है? मेरी कोई भी कहानी ऐसी नहीं है जिसका आदमी गढ़ा हुआ नहीं है। यह कैसी यथार्थ-दृष्टि है कि एक तो उनको झूठा दिख गया, बाक़ी सब सही। उपन्यास और कहानी झूठके माध्यमका उप-योग करके सत्यकी अनुभूतिको दूसरों तक पहुँचाती है। माध्यम कभी सत्य होता ही नहीं है। इस बातको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जब-जब हम माध्यमको यानी कपड़ों-को हम इतना सच बनायेंगे तो हम खुद झूठे बन जायेंगे। बहुत-से डैण्डी, जिनको कहते हैं छलिया लोग, इतना ज़्यादा कपड़ाको सच बनाते हैं कि खुद झूठे बन जाते हैं तो यह जो हम लोगोंका आग्रह बन गया है कि जो माध्यम है, जिस उपकरणके द्वारा हम सच्ची अनुभूति पाठक तक पहुँचाना चाहते हैं उस उपकरणको ही सच्चा बना देंगे, तो जैसा कि आजकल चलता है कि डिब्बा बहुत सुन्दर है और अन्दर जैसा भी जो भी माल है चल रहा है। आजकलका यह जो सिगरेट है इसमें यह है कि पैकिंग खूब सुन्दर आनी चाहिए और किताबका जो जैकेट है वह यदि रंग-विरंगा हो तो फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर जो कुछ है सो चलेगा। यह जो चीज़ चल गयी हैं वे साहित्यके लिए बेहद खतरनाक हैं। हम अपनेमें अपनेको पूँजी मालकर सीधे चल पड़ते हैं तो हर दूसरा जो है हमारे लिए योजनीय व्यक्ति बन जाता है, हमारा माध्यम बन जाता है, हमारा शिकार बन जाता है और हमारे पंजे उस शिकारको दबोचनेके लिए खुल जाते हैं। अपनी बातको दूसरेके मनपर उतार ही दें और साबित कर दें या प्रतिपादित कर दें और वाहवाही लूट ले जायें। इसके लिए दुनिया खुली पड़ी है। यह साहित्य ही इस प्रकारकी चीज़ होनी चाहिए थी कि जहाँ इस प्रकारकी प्रवृत्ति है अहन्ताकी, जहांपर एक आदमी अपनेको दूसरेपर आरोपित करता है उस प्रवृत्तिके लिए सारी दुनिया खुली है, मार्केट खुला है, राजनीति खुली है, मंच खुला है, साहित्यके क्षेत्रमें भी यदि वह आये तो फिर कौन-सी दुनिया बच जायेगी जहाँसे यह बवाल दूर हो सकेगा। अनुभूति और भोगकी बात तो ठीक है लेकिन सच्चा भोग जिसको कि मैं कह चुका हूँ कि मैं मॉडर्न हो नहीं सकता क्योंकि मॉडर्न होनेके लिए अन-मॉडर्न बनना पड़ता हैं। अन-मॉडर्नके कटघरेसे निकलनेके लिए मॉडर्नके कटघरेमें आऊँ यह मुझसे नहीं हो सकता। अबतक तो मैं यह मानता रहा या अब भी मानता हूँ कि जो मैंने लिखा, यानी जैनेन्द्रने लिखा, जैनेन्द्रकी पीढ़ीने नहीं लिखा—जैनेन्द्रके बराबर हम उम्रका दूसरा कोई आदमी हो तो वह कोई जीवनदृष्टिसे, दूसरे तरीक़ेसे, दूसरे ढंगसे, दूसरेके शिल्पसे, क्यों नहीं लिख सकता। यह क्या क़सूर है उसका, उम्र हमारी और उसकी यानी दोनोंकी बराबर है तो सब कुछ एक हो जायेगा? पीढ़ी भी लिखती है यह मेरी समझमें नहीं आता। जब हमारे दो भाई 'क' और 'ख' आपसमें मिलते होंगे, आपके सामने नहीं, तो मालूम होता है दोनोंमें जीवनदृष्टिका भोग है, दोनोंमें जीवनबोधका भेद है सब कुछ अलग-अलग है लेकिन सामने जब आ जायेंगे तो वे दोनों एक युग्मके तौरपर हैं। 'स्व'को खोकर गुट बनाकर जब आते हैं तो मैं मानता हूँ कि दिग्दर्शन मिलता है। राजनीतिमें व्यक्तिको नहीं स्वीकार किया जाता, दलको स्वीकार किया जाता है। राजनीति अपनी जगहपर ग़लत नहीं है क्योंकि व्यक्ति कर क्या लेगा? दल बाँधके आयेगा तो दबाव डाल देगा। दलको स्वीकार किया जाता है लेकिन दल कभी लिखता ही नहीं। गुट कभी नहीं लिखता है। पीढ़ी कभी नहीं लिखती है, पीढ़ीके नामपर जब आदमी सामने आता है तो लगता है कि अपने बलबूते क्यों नहीं आना चाहता है? इतने हीनभावकी क्या आवश्यकता है? पीढ़ीकी ओट लेकर यदि मैं सामने आऊँ तो क्या मैं खुद सामने नहीं आ सकता हूँ अपने नामपर? ऐसा लगता है कि 'स्व' को खोकर गुटको पानेमें क्या सचमुच कोई लाभ है? आत्मलाभ है या साहित्यिक लाभ है इसमें? इसलिए इस प्रकारकी जो भाषा है, वह समूहवाचक होती है, समुदायवाचक होती है—जो 'मैं'को एकाएक अधिकार दे देती है कि हम। मुझे मालूम नहीं कि हम कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते हैं ? दो आदमी हाथ बाँधके लिखें तो कैसे लिखेंगे। 'हम' कभी लिखता ही नहीं, सदा 'मैं' लिखता है। और 'मैं' लिखने-को 'हम' के नामपर ज्वायण्ट स्टाक कम्पनीके रूपमें लिखे हुए को जो पखत है उसमें-से निकालती है, शेषमें लिखनेवाला जो है वह व्यक्ति होता है। इसलिए, व्यक्तिसे तोड़-कर, व्यक्तिके सन्दर्भसे तोड़कर उससे जोड़ देना एक साहित्यकी प्राप्ति है। मैं लिखता हूँ और व्याख्या करता हूँ। कहानी लिखी तो कहानीने मुझको कहा, लेकिन कहानीने मुझको कहासे सन्तुष्ट न होकर मैं कुछ और कहता हूँ कि कहानीने क्या कहा, यह तो व्याख्या है। इसकी आवश्यकता क्यों पड़ती है ? मैं खुद समझना चाहता हूँ कि वह क्या चीज़ है कि कहानी लिखनेके बाद लोगोंको जतलाना कि कहानीमें क्या-क्या खूबियाँ हैं, क्या-क्या अर्थ हैं, यह आवश्यकता क्यों पड़ती है ? मैं कहानी लिखता हूँ लेकिन इस ढंगकी कहानी लिखना मेरे लिए कठिन होगा जहाँ-पर पत्नीके सौन्दर्यका प्रदर्शनकार और विज्ञा-पनकार कोई पति हो तो उसको मैं चित्रणमें नहीं ला सकता हूँ। लेकिन जब पति ही ऐसा हो कि अपनी पत्नीके सौन्दर्यका प्रदर्शनकार बनता हो विज्ञापनकार बनता हो तो प्रश्न उठता है कि फिर इस पत्नी और पतिका जो सम्बन्ध है इसमें आत्मीयताका आधार शायद कम है। एक सीधी-सी चीज़ है कि साहि-त्यिकताका आधार हो सकता है लेकिन उससे भी आगे एक चीज़ है कि दूसरा भी आधार हो सकता है, नपुंसकताका आधार हो सकता है। जब हम अपनी ही रचनाको, जिसके साथ हमारा अत्यन्त घनिष्ट निजी और आत्मीय सम्बन्ध है, रचनाके रूपमें नहीं रख देते हैं बल्कि विज्ञापित करते हैं, सपोर्ट करते हैं, डिफ़ेन्स करते हैं, संगठन करते हैं तो हमारी और हमारी रचनाका सम्बन्ध सन्दिग्ध तो नहीं है ? नपुंसकता है या व्यावसायिकता से कोई सम्बन्ध है तो ज़रूर। यह मैं निश्चित नहीं कर सकता क्योंकि मैं जज तो नहीं, पर ज़रूर मालूम होता है, वह घनिष्ट आत्मीयता का सम्बन्ध है, उसमें अन्तर ज़रूर है, उसमें कुछ कमी रही है। अत्यन्त संलग्नताका सम्बन्ध। मैं यह मानता हूँ कि लेखक अपनी रचनाके बारेमें कुछ संकोची रहे, नम्र रहे वहाँतक तो बात समझमें आती है। मॉडर्निटीकी बात तो नहीं जानता हूँ लेकिन यह जो पत्नीत्व और पतित्वकी संस्था है। उसमें भी अधिकांश यही रहता है। मोडर्निज़्मकी बात मैं नहीं जानता हूँ लेकिन मुझे सर्टिफ़िकेट दिया गया है। लेकिन मैं मानता हूँ कि अगर ऐसा होता होगा तो निश्चय है कि उसके मूलमें पति-पत्नीकी जो पवित्रता है उसमें कमी आ गयी है। मैं फिर इस बातको जोर कहना चाहता हूँ कि वह यथार्थता जो निकटकी आँखोंसे देखी जाती है और जिस सारा सौन्दर्य समाप्त हो जाता है और जहाँ पर कि स्त्री-पुरुष नर-मादा बन जाते हैं, स्त्री पुरुष नहीं रहते जहाँपर आवरण रहता नहीं ऐसा यदि कहीं है तो आप कभी मत मानि कि इसके पीछे कुण्ठाहीन अथवा ग्रन्थिमु मनःस्थिति है। ऐसा हो नहीं सकता। जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि स्त्रीको मादा रूपमें देखो और दिखाओ। जाता है निश्चित है कि वहाँ ग्रन्थिग्रस्तता है। कुण्ठाग्रस्तता। कुण्ठामें लिप्त है, व्यक्ति तब ऐसा कर रहा है। इसलिए यथार्थका ये जो वाद है अत्यन्त भयंकर चीज़ है। राजनीतिक चीज़ है। राजनीतिमें अच्छी चीज़ है लेकिन आवश्यक है कि हम सत्य या सुन्दरको रहने देना चाहते हैं तो अन्तर भी रखें। अन्तर बल्कि पैदा करें। मेरी कहानियाँ 'विज्ञान' आदि हैं, इसमें मैंने यही कहा है कि प्रेम, विश्वासपूर्ण प्रेम, विश्वस्त प्रेम इच्छासे दूरी पैदा करता है। हमारे मॉडर्न भाई—हमारे कमलेश्वरजी बहुत मॉडर्न हैं—इसको नहीं समझ सकते। लेकिन मॉर्डनिज़्म अगर बढ़ेगा तो इसको समझेगा। इन्होंने कहा कि माता-पिताने दो लोगोंको अन्दर दरवाज़ोंमें बन्द कर दिया और बाहर निकले तो उन्होंने कहा कि भाई-बहन हैं। इनको ऐसा मालूम होता है कि····वाह-वाह इनको मौक़ा नहीं मिला। ये क्या गड़बड़ है बाहरसे दरवाज़ा बन्द है। अरे, कमलेश्वरकी आँखोंसे देखो, हो ही नहीं सकता। मैं कहता हूँ कि कमलेश्वरकी आँखें कच्ची हैं, कमज़ोर हैं। अगर कमलेश्वरके जीवनमें सच्चा प्रेम आया होगा तो मध्यवाला प्रेम नहीं। मैं मानता हूँ, उसमें उस प्रेममें ही दूरी जान-बूझकर इच्छापूर्वक पैदा की होगी। आप इसको रोमांसके नामपर छोड़ दें, क्या कर दें, कह दें कि लव है लेकिन मैं कहता हूँ कि इसी सत्यपर सारी इनसानियत और संस्कृति टिकी हुई है। साहित्य किसी सत्यकी प्रतिष्ठा करता है। आप भोगके नामपर भोगलिप्तताको यथार्थ दृष्टि कहना चाहते हैं, यह अत्यन्त यथार्थ सीमित स्वरत दृष्टि है, वह जो कि इसको यथार्थ कहते हैं। मुझमें जो है यथार्थ और रहनेवाला है यथार्थ, उसका नाम सत्य यथार्थ है और सत्य हमेशा गवेषणाकी, सन्धानकी चीज़ रहती है। कहानियोंके बारेमें दावेदारी और मुक्केबाज़ी कुछ कम हो तो थोड़ा टटोल शुरू हो। जैनेन्द्रको आप जैनेन्द्रके नामपर छोड़ दीजिए। छोड़ दीजिए—यानी उस पीढ़ीको बदनाम न कीजिए। जैनेन्द्रको बदनामी और श्रेय पीढ़ीको क्यों मिले? बदनामी है, मुझे दे दीजिए। श्रेय है तो मुझे दे दीजिए, मैं उसे पीढ़ीके साथमें नहीं बाँटना चाहता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि मेरे ज़मानेमें लोग लिखते थे और सब अपने-अपने तरीक़ेसे लिखते थे, अपना-अपना तरीक़ा आदमीसे छूटता ही नहीं है। यह पीढ़ीवाला जो तरीक़ा है वह मालूम होता है कि अपना-अपना तरीक़ा शायद आता नहीं है। मैं तो केवल इसलिए आया कि मुझसे बिना पूछे-ताछे एक भयंकर अक्षम्य अभियोग लगा दिया गया। एक श्रीकान्तकी जगह सौ श्रीकान्त आ जायें, लोग भरोसा नहीं करेंगे कि मैं मॉडर्न हूँ। अगर साठ वर्षका आदमी मॉडर्न हो सकता है तो सत्ताइस वर्षका आदमी झक मारेगा। साहित्यके नाम जीवनदृष्टि होनी चाहिए लेकिन वह तो दर्शकोंमें बँट रहा है। वर्माजीने कहा, इतिहास सतत प्रवाह है तो होता होगा इतिहास। इतिहासकी ऐसी-तैसी। हम जो कहते हैं वह तो दशकोंमें बँटेगा और दशकोंके बाद मॉर्डनिज़्म जो है वह पाँच-पाँच वर्षोंमें बँट जायेगा। हर पाँच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षके बाद उनकी दृष्टि बदलेगी, बदलनी पड़ेगी क्योंकि पाँच वर्ष हो चुके। आज पैंसठ है, सत्तरपर बदलनी पड़ेगी। अब जो तीससे पैंतीस वर्षके आ जायेंगे और वह कहेंगे कि जीवनदृष्टि इतनी जल्दी नहीं बदलती। पाँच-दस वर्षवाली तरीक़ा कुछ लाभका नहीं है। यह मिलाता नहीं है हमको बाँध देता है। मैं तो केवल अभियुक्तके नामपर यहाँ आया हि यह अभियोग सच्चा नहीं है।

○ दायित्वका श्रीगणेश—सहभोक्ताके रूपमें...

मोहन राकेश : मैंने शब्द 'अन्वेषण' का उपयोग किया था वह जैनेन्द्रजी तक आते-जाते 'टटोल' हो गया। मगर इस बातकी मुझे खुशी है कि शब्द बदल जानेपर भी, उस बातपर कि वस्तुतः हम अपनी जीवनदृष्टि और अपना समग्र समझ सकते हैं—शास्त्रीय शब्दावलीमें इन सब बातोंको समझाया जाना ज़रूरी नहीं। जैनेन्द्रजीको यह सफ़ाई नहीं देनी थी क्योंकि अभियोग लगानेवाला व्यक्ति अकेला ही है और सब उससे सहमत नहीं। नयी पीढ़ीके लोगोंपर जो समयबोधकी बात, दायित्वकी बात, सामाजिकताकी बात, चाहे किसी राजनीतिक बात या दलबन्दीकी बात करते हैं और इसी बीच जैनेन्द्रजी ने नर और मादाकी भूख लेखक और उसके लेखनसे जोड़ते हुए कहीं नपुंसकत्वकी बात और उसके साथ व्यवसायिकताकी बात की, वह शायद कहीं एक ही प्रतीक है नर और मादाके साथ होनेका, जो जैनेन्द्रजीके मनमें बार-बार आता और सारे साहित्यके दृष्टिकोणको निर्धारित करता है। मुझे इस बातका भी अफ़सोस नहीं है, बल्कि खुशी है कि जिस तरह पहली पंक्तिमें बैठकर बच्चे दूसरेपर कीचड़ उछाला करते हैं और फ़ब्तियाँ कसते रहते हैं यह कार्य हमारे अंग्रेज-साहित्यकार करत अपना फ़र्ज़ समझते हैं। लेकिन जब बोल रहे थे तो हमने ऐसा नहीं किया। जैनेन्द्रजीके दो बातें आक्रान्त किये हैं : एक जैनेन्द्र औ दूसरे भोग। नयी पीढ़ीके लेखनके सम्बन्ध उन्होंने बार-बार नर-मादाके भोगकी बा उठायी। उससे हमें एक बात स्पष्ट लगी, नव पीढ़ीकी रचनाएँ वे पढ़ते नहीं। नवलेख क्या है? आजकी कहानी क्या है? आज क्या लिखा जा रहा है? किन सम्बन्धोंक निर्वाह किया जा रहा है? इस सम्बन्धमें स्वयं कुछ सोचकर कहानियाँ लिख लेते हैं पढ़ लेते हैं और पढ़कर समझते हैं कि आज यह लिखा जा रहा है और उसी दृष्टिसे उनकी आलोचना करने लगते हैं। पर नर और मादा सम्बन्धोंको लेकर स्त्री और पुरुषके सम्बन्ध के अयथार्थको लेकर स्त्री और पुरुषके सम्बन्ध की पवित्रताको किसी और धरातलपर ले जाकर इस तरहकी कहानियोंके कुछ अच्छे उदाहरण हमें दिये होते तो, अगर नये कहानी कारोंकी कुछ रचनाओंका हवाला दिया होत कुछ ऐसे संकेत किये होते, कुछ ऐसी रचनाओं का परिचय दिया होता, जो नया कहानीक जब जैनेन्द्रजीकी बात करता है तो कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हवाला देकर करती है, उसने उन्हें पढ़ा है। अन्वेषणकी प्रक्रियामें बातका कोई अन्तिम निर्णय नहीं कि जो हम कर रहे हैं वही सच है। विचारोंका आदान-प्रदान किसलिए है। अभियोग हमपर लगाये गये हैं। मुक्का हिलानेकी बात हमारी ओरसे कही गयी लेकिन जिस व्यक्तिने मुक्का हिलाया है उसे आपने देखा है। दूसरोंको सामनेवाले व्यक्तिने अपनी कल्पनामें जिस रूपमें देखा है उसे वह वैसा ही दिखता है। नयी कहानीके किसी व्यक्तिने अपनी सफ़ाई देनेकी कोशिश नहीं की। यह कोशिश केवल पुराने कहानीकारकी ओरसे हुई, जिनका नाम है जैनेन्द्र। साथ ही नये साहित्यबोधको जो भोगकी कसौटीपर उतारा, शायद उन्हें ग़लतफ़हमी हुई है। हम 'भोग' शब्दका उपयोग करते हैं लेकिन उसका अर्थ है जीवनको भोगनेका। लेकिन उनके खयालमें भोगनेका एक ही अर्थ होता है। और उसीके अनुसार उन्होंने आलोचना की। यदि नयी समकालीनता और असमकालीनता, प्रतिबद्धता और अप्रतिबद्धताकी बात पुराने कथाकार करते हैं तो उन्हें नये लोगोंके नाम सुन लेनेके अलावा उनकी रचनाएँ भी पढ़ लेना चाहिए। बात करते हैं तो किसी आधारपर की जानी चाहिए। वे एक कहानीका उदाहरण बतला दें कि 'भोग' का उस रूपमें उपयोग हुआ है जिस रूपमें भोगका उल्लेख उन्होंने किया है। मैं यह नहीं कहता कि नये कहानीकारकी दृष्टिको, जिस ढंगसे आलोचना की है उसे मैं बुहारे दे रहा हूँ। जैनेन्द्रजीका एक बहुत व्यक्तिवादी दर्शन है, उस व्यक्तिवादी दर्शनमें केवल व्यक्ति प्रधान होता है इसलिए उनकी निगाहमें केवल अपना अप्रधान हो जाये। ये उस व्यक्तिवादी दर्शनकी पराकाष्ठा ही नहीं, स्वाभाविक परिणति है परन्तु जब नया कहानीकार अपने समकालीन कथा-साहित्यकी, जीवनकी और जीवनके सन्दर्भोंकी बात करता है तो उसे व्यावसायिक बताते हैं। वह व्यावसायिक है और उसका समयबोध जो कि दशकोंमें नहीं बँट सकता, पंचकोंमें नहीं बँट सकता, क्यों नहीं बँट सकता वह, इसलिए कि उनके खयालमें शाश्वत एक समय है—मैं यह कहूँगा कि साहित्य और कला, सब कला और साहित्य डेटेड हैं। जब आज बाल्मीकि-रामायणकी बात करते हैं तो उसको डेटेड कहनेका यह अर्थ नहीं है कि श्रेष्ठता समाप्त हो गयी। सूर अगर अपनी शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं तो उसका अर्थ यह नहीं कि उनकी श्रेष्ठता समाप्त हो गयी परन्तु उसके साथ हम जानते हैं कि हर समयका एक आधुनिक सन्दर्भ है और उन वाल्मीकिने, सूरदासने, अपने समयके सन्दर्भमें रचना की है, अपने मनके भावों, घात-प्रतिघातोंको स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है। अनायास अभिव्यक्ति दी है इसीलिए आज उनके साहित्य श्रेष्ठ हैं। परन्तु आज वैसे साहित्य लिखनेवाले व्यक्ति, आज बिहारी सतसईकी-सी रचना करनेवाले व्यक्ति, कवित्त और सवैयेके माध्यमसे रचना करनेवाले व्यक्ति मौजूद हैं। उस समयके लिए वह एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी, आजके लिए वह सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति नहीं। इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह साहित्य शाश्वत रहते हुए भी कला शाश्वत रहते हुए भी हमेशा डेटेड होती है। आप कहते हैं कि फ़ोरटीन्थ सेन्चुरीकी पेण्टिंग— कहनेके साथ आप एक सेन्चुरीका, एक समयका सम्बन्ध जोड़ देते हैं, उसे संकुचित बना देते हैं मगर इसका यह मतलब नहीं कि फ़ोरटीन्थ सेन्चुरीका होनेके नाते वह आज रचनीय नहीं। परन्तु आज अगर आप उस समयकी पेण्टिंगको सामने देखकर मातम तिथियाँ मनाने लगेंगे, तो वे अवश्य रचनीय नहीं होंगी क्योंकि उनको प्रेरणा जो है वह उनके समयसे, उनके सम्बन्धसे अभिभूत नहीं है। साहित्य-कलामें दोनों परिस्थितियाँ बराबर रहती हैं। कलामें दोनों परिस्थितियाँ बराबर रहती हैं, वह शाश्वत भी है और समय-अपेक्षित भी। हम जब समय सापेक्षता-की बात करते हैं तो शाश्वतताके विरोधमें नहीं। एक अखण्डताके विरोधमें खण्डकी बात नहीं करते। बल्कि इन दोनों अपेक्षाओंके निर्वाहकी दृष्टिसे, बल्कि यूँ कहें कि कला अपने समय-सन्दर्भमें ही, अपने समयके पूरी-पूरी कार्य-कारण शृंखलामें बनता हुआ जो व्यक्ति-मन है, अपना स्व, जिस 'स्व'की ओर जैनेन्द्र-जीने संकेत किया था, वह है, किसी अलग द्वीपमें अकेला बैठा हुआ कोई व्यक्ति नहीं जो सबसे कटा हुआ है। वह स्व नहीं। वह अपनी परिस्थितियोंसे बनता और बदलता हुआ एक चेतन तत्त्व है। अगर आज भी वह स्व मंचपर आकर अपनी व्याख्या देने लगता है तो जो परिस्थितियाँ उसके लिए उत्तरदायित्व हैं, तो स्व किन्हीं प्रभावों किन्हीं परिस्थितियों-द्वारा संचालित होता हुआ अपने रूपको ग्रह करता है। यह किसने कहा है कि सब लोग एक सी रचनाएँ लिखने लगेंगे बल्कि नयी कहानी की विविधताकी बात करते हुए हममें-से व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे बिलकुल अलग लेखनकी प्रक्रियामें-गुज़रता है। इसलिए नयी कहानी एक रूपात्मकताके दर्शन नहीं होते। यह न नयी कहानीकी ही नहीं है, किसी भी साहित्य सृष्टिकी हो सकती है। जबतक रचना महत्त्व पूर्ण नहीं बनती तबतक रचनाका मूल्य नहीं बनता। इस बननेकी एक प्रक्रिया है व स्व किन्हीं परिस्थितिमें-से बनता है, उसको राजनीतिकके रूपमें झुठला देना ठीक नहीं बल्कि हम राजनीतिक पार्टियों प्रभावसे आनेवाले प्रभावोंसे अस्वीकार कर हैं क्योंकि इनसे हम साहित्य-सृष्टिके मार्ग नहीं पा सकते। जितने पात्र होते हैं उन सबके भी अपने छोटे-छोटे स्व हैं, वे लेखककी ओर आते हैं क्योंकि उनके पीछे पूरा परिवेश होता है, उस माहौलसे बनती यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण है। भोगे हुएका अर्थ वह नहीं जो जैनेन्द्रजी लेते हैं वह स्व-अनुभूति है। वह उसे इस रूपमें नहीं भोगते। किसी कुम्हार द्वारा अपना काम करना, किसी क्लर्क-द्वारा अपनी फ़ाइलोंको देखना और किन्हीं अन्य व्यक्तियों-द्वारा अपने-अपने काम करना हमारा आशय है सहनेका, जीवनको भोगनेका इसका मतलब यह नहीं कि नम्बर २१८ जैसा हमारे अग्रज बन्धुको लगता है। इस बातकी ख़ुशी हुई कि जैनेन्द्रजी बहुत अच्छे अभिनेता भी हैं। उन्होंने वाणीके जिस उत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़ावमें अपनी बातका निर्वाह किया उसको मैं बहुत क़द्र करता हूँ किन्तु अभिनय कर सकना और विश्वासकी परिणतिको साबित कर सकना ये दो अलग-अलग बातें हैं। मैं जहाँ-पर उनके अभिनयकी क़द्र करता हूँ वहाँ मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि एक बिन्दु-पर चक्कर लगाते रहनेसे यह सिद्धि नहीं होगी। वे शिखरसे उतरकर अपने आस-पासके लोगोंसे अगर तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, वे दरियागंजके ही लोग क्यों न हों, उतने ही लोगोंके साथ अपनेको सहभोक्ताके रूपमें रखते हों तो मैं समझता हूँ कि शायद उस साहित्यिक दृष्टिमें थोड़ा-बहुत अन्तर आने लगेगा। जो आस-पासके परिवेशको देखता हुआ उसकी परिस्थितियोंसे गुज़रता हुआ विशेष और विशिष्ट दोनोंके साथ सहभोक्ताके रूपमें जीते हुए रचना करने लगेगा तो यह उसके दायित्वका श्रीगणेश है।

• उत्कृष्ट और सुन्दर कहानी : जीवनदृष्टि चाहे जो हो···

भीष्म साहनी : कहानीकी ओर तो बहुत ध्यान दिया गया लेकिन कहानीके कला-पक्षकी ओर बहुत कम। कहानी कलाकी कसौटीपर परखी जाती है। मेरी रुचि उत्कृष्ट सुन्दर कहानीमें है। चाहे वह किसी भी जीवनदृष्टिसे लिखी गयी हो। विश्वसाहित्यमें कई ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने वृद्धावस्थामें सुन्दर रचनाएँ रची हैं जैसे टॉलस्टाय हैं। सृजन-प्रक्रियाका बहुत बारीकीके साथ काल-विभाजन करना हमें भ्रान्तियोंमें डाल देता है। जिस जीवनदृष्टिपर हम तर्क करते हैं कहानियोंमें कई बार उसकी झलक नहीं पाते। कई बार ऐसी कहानियाँ पढ़नेको मिलती हैं, जिसमें लेखकके विश्वासके विपरीत झलक मिलती है। विचार-पक्ष ज़रूरी है, समयबोध बहुत ज़रूरी है। लिखनेका ढंग बदलता है, रुचियाँ बदलती हैं। विचार-पक्षके साथ-साथ कला-पक्षकी ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाना ज़रूरी है। हम इतने विचार करते हैं कि हमारी उपलब्धियाँ ऐसी नहीं हैं कि उनके बारेमें बहुत ही दम्भके साथ विचार कर सकें। आज तो चरित्रहीन और गठनहीन कहानीकी चर्चा की जाती है। लेकिन जब चरित्र और गठनवाली कहानी लिखी जाती थी तब भी हमने महान् कृतियोंकी रचना नहीं की। हम एक दूसरेसे समझकर यह सोचें कि क्या कारण है कि जो हमारा साहित्य विश्व-साहित्यके स्तरपर आनेसे रुका हुआ है?

५ कथा-शिल्प: प्रयोगकी प्रक्रियाका प्रयोग····

२६ दिसम्बर। सुबह ९ बजे। विषय : कथा-शिल्प प्रयोगकी प्रक्रिया। अध्यक्ष : डॉ० लक्ष्मी-नारायण लाल, राजेन्द्र यादव, श्रीकान्त वर्मा। वक्ता : शैलेश मटियानी, भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन चोपड़ा, ममता कालिया, शरद जोशी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, धनंजय वर्मा, रमेश बक्षी, हरिशंकर परसाई, गंगाप्रसाद विमल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● प्रयोग लेखक सामर्थ्यमें-से पैदा होता है···

शैलेश मटियानी : मैं अपनी सुविधाके लिए प्रयोगकी प्रक्रियाको तीन भागोंमें बाँटना चाहूँगा : प्रयोग, प्रवृत्ति, परम्परा। आस्था और अनास्था। संकट-बोध और उपलब्धि। जो प्रयोग मनुष्यकी अपनी सामर्थ्य-में-से आता है, वह पुष्ट होता है। जहाँ प्रयोग ऊपरी सतहसे उभरता है, जहाँ वह मात्र चौंकता है, वहाँ वह महज़ तमाशा है। मुझे एक हज्जामके लड़केकी कहानी याद आती है। उसे दाढ़ी बनाना आता ही नहीं था और वह लोगोंके गालोंपर खरोंच लगा दिया करता। फलतः उसके ग्राहक कम होते गये। इस ठहरावको तोड़नेके लिए उसने बाल-सफ़ा साबुनकी एक टिक्की ख़रीद ली। यह भी एक प्रयोग ही था। कहानी आज कई कैम्पोंमें बँट गयी है : नयी कहानी, अकहानी और न जाने क्या-क्या ? जैसे कम्युनिस्ट, जनसंघ, सोशलिस्ट, कांग्रेस आदि पार्टियाँ हो चुकी हैं वही हाल आज साहित्यका भी है। साहित्य राजनीतिका पिछलग्गू बन गया है। पार्टीकी ज़रूरत है झण्डा। झण्डेके बिना पार्टीका अस्तित्व ही नहीं होता, और झण्डेके लिए ज़रूरी होता है डण्डा। डण्डोंकी नियति भी टकराहट ही है। डण्डेसे सरफुड़ौवल की जाये या रास रचाया जाये—दोनोंकी ही नियति है टकराव। जैसे राजनीतिमें दुहरे व्यक्तित्ववाले व्यक्ति आ गये हैं वैसे ही साहित्यमें भी आते जा रहे हैं। राजेन्द्र अवस्थीने घुड़दौड़के जॉकी का उदाहरण दिया था। मैं उस बातसे सह मत हूँ और मुझे लगता है कि बिना वास्तविक घुड़दौड़ शुरू हुए ही लेखक-जॉकियोंकी श्रेणियाँ घोषित कर दी गयी हैं। यह काम कुछ तो प्रकाशकोंने किया है, कुछ सम्पादकोंने और कुछ जेबी आलोचकोंने। कहानी लिखनेकी असमर्थता ही 'ऐण्टी स्टोरी' के मूलमें है। मैं अपनी बातको पुनः दुहराना चाहूँगा : प्रयोग जो लेखककी सामर्थ्यमें-से पैदा होता है वह लेखकको आगे बढ़ाता है। दिल्ली, इलाहाबाद भोपाल, इन्दौर और बम्बईके साहित्य-पड़ाव आज साहित्यकारको दिग्भ्रमित कर रहे हैं। सहकारिताके नामपर जो प्रचार हो रहा है उसे देखकर काँग्रेस-सरकारके कृषि-सहकारिता की याद आ रही है। प्रवृत्तिको समूहके साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। सामूहिकताकी वृत्ति सहकारिता नहीं है। आश्चर्य तो तब होता है जब अनास्थाका हल्ला मचाया जाता है जिसकी जेबमें पैसे ही न हों, उसकी जेब काटने का सवाल ही नहीं पैदा होता। 'मूल्य' हवा हैं ही नहीं तो उनका विघटन कैसे हुआ अनास्थाके लिए आस्थाका होना ज़रूरी है साहित्यके नामपर 'ठगविद्या' आज पन रही है। रास्तेके जिस टुकड़ेपर नये कहानी कार चहलक़दमी कर रहे हैं वहाँ ठहरा है। चहलक़दमी आगे बढ़ना नहीं है।

● बिना व्यक्तिगत स्पर्शके नया कुछ नहीं है···

राजेन्द्र यादव : आज मेरा मन बहुत उदास है, कुछ भी करनेको जी नहीं चाहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता है, यह नहीं मालूम···सब मिलकर गयी···और कुछ न समझेंगे लोग तो यही बहुत-से कारण हो सकते हैं, लेकिन इस समय तो इस उदासीका कोई कारण भी समझमें नहीं आ रहा····अभी-अभी सिगरेट जलायी, तो देखा, माचिस जल ही नहीं रही है····अचानक सचेत होकर पाया कि दियासलाईकी तीली मुँहमें लगाकर मैं सिगरेटको माचिसपर घिस रहा हूँ····पेनमें स्याही भरी थी, फिर भी हर समय लगता था कि कल स्याही खत्म हो गयी है, पेन भरना है····कुछ भी करता हूँ, निरर्थक लगता है, कुछ चाहता हूँ कुछ हो जाता है। और कुछ भी नहीं करना चाहता, लेकिन कुछ अभ्याससे कुछ अपने-आप होता जाता है और बोझ है कि मनपर गहरा होता जाता है····

यों यही कभी-कभी साहित्यमें भी होता है। भीतरकी अनाम बेचैनी और अनबूझा दबाव स्थितियों और परिस्थितियोंके साथ अपने सम्बन्धकी समझ, कन्फ़्यूजन, मूल्योंका संक्रमण हमारे व्यवहारों यानी अपने लिखे हुएके रूपको अनजाने ही बदलने लगता है···· हम चुस्त-दुरुस्त कहानी लिखना चाहते हैं, साफ़-सुथरी तसवीर बनाना चाहते हैं लेकिन पाते हैं कि तसवीरकी जगह कुछ उलटी-सीधी रेखाएँ हैं, तसवीर उनमें बड़ी मुश्किलसे पहचानी जाती है, कहानीकी जगह आत्मस्वीकृति, संस्मरण या यों ही मुखर चिन्तन-जैसा, पता नहीं क्या कुछ बन गया है और कहानीकी जगह कहानीपना उसमें विरल हो गया है···· सन्तोष कर लेते हैं कि कहानी न बनी, न सही चित्र बना तो कोई बात नहीं, शिल्पीको मनःस्थितिका दस्तावेज़ तो यह रचना हो ही

और कुछ न समझेंगे लोग तो यही मान लेंगे कि चलो, एक प्रयोग ही है कि उस समयका कलाकार ऐसी उलझी मानसिकतामें जीता था····। यह प्रयोगकी प्रारम्भिक स्थिति है····कलाकार और कृतिके सन्दर्भमें स्थिति···· लेकिन रचनाका प्रणेता केवल कलाकार ही नहीं होता, उसके भीतर और बाहर एक और भी है जो उसका रंगरूप निर्धारित करता है, द्रष्टा, पाठक या सहभोक्ता—उसे जो कुछ भी नाम दे लीजिए। और यह जब रचना टूटकर या हटकर—अथवा टूटने-हटनेकी स्थितिमें जब वह इसे देखता-सँवारता है तो उसकी नोंकें, कोने और घुमाव रिटॅच करके अपने लिए और दूसरोंके लिए अर्थ दे देता है···· प्रयोग सार्थकता ग्रहण करने लगता है, सम्प्रेषणीय हो उठता है····इस प्रक्रियामें रचनाकार पाता है कि बात साफ़ नहीं हो गयी है। इस स्थितिके बाद बातको प्रभावशाली और उस प्रभावको गहन बनानेके प्रयत्न और प्रयोग अनेक स्तरोंपर चलते हैं और तब कलाकार सहसा अपनेको परम्परा या आस-पाससे अलग पाने लगता है। इसे और भी सही ढंगसे कहनवालोंकी परम्परामें आ जाता है। सब मिलकर विधाके विकासकी अपनी अलग परम्परा स्थापित करता है। प्रक्रियाका दूसरा पहलू भी है। यह परम्परा कुछ समय बाद ही स्वयं कलाकारका परिपाटी यानी मैनरिज़्म बनने लगती है, उसके कलाकार-व्यक्तित्वका निर्धारण करने लगती है। अब यह खुद उसकी मेधा और प्रतिभापर निर्भर करता है कि वह कहाँतक उस परिपाटीका निर्वाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे, स्वयं उसका ग़ुलाम बने।

लेकिन उसका यह आत्मसंघर्ष, उससे प्राप्त उपलब्धियाँ और प्रभाव औरोंके लिए प्रलोभनीय बन उठते हैं। तब वह देखता है कि आस-पास या आगे-पीछे कुछ और भी है जो ठीक उसी तरह उसी अन्दाज़े-बयाँसे अपनी बात कहनेकी कोशिश कर रहे हैं जैसा वह खुद चाहता रहा है। अब चूँकि यह अन्दाज़े-बयाँ स्वयं उनके भीतरी दबावसे उद्भूत, आन्तरिक और अनुभूत आवश्यकता नहीं होती इसलिए उनके हाथ सिर्फ़ अन्दाज़ पड़ता है बयाँ या तो ग़ायब हो जाती है या उसके लिए दूसरोंकी ही पूँजीका मुँह देखना पड़ता है। पिरादेलोका नाटक 'लेखककी तलाशमें छह पात्र' या लागरविस्टकी कहानी 'नरक ले जानेवाली लिफ़्ट'के प्रयोग-चमत्कारसे आकर्षित होकर जब मैं वैसा ही कुछ लिखना चाहूँगा तो उसके लिए सामग्रीकी खोजमें भी मुझे आकाश-पातालमें टकराना होगा—और इस खोजमें कोई ज़रूरी नहीं है कि अनुभूतिकी प्रामाणिकता और व्यक्तिगत स्पर्श भी हो, जो आजकी कहानीकी बहुत बड़ी विशेषता है। कथनभंगीके चमत्कारके प्रति दुर्निवार आकर्षणका एक दूसरा पहलू भी है। हमेशा ही ऐसा होता है, यह ज़रूरी नहीं है। कभी किसीके तर्ज़े-बयाँसे खिंचकर, कलाकारको सचमुच खुद भी भीतरसे लगता है कि शायद उसकी अपनी बात भी इसी अन्दाज़, इसी तर्ज़में अधिक प्रभविष्णु हो सकती है। अभिव्यक्तिके जिस कोणकी तलाशमें वह परेशान था वह अचानक दूसरोंकी चीज़ देखकर अपने सामने भी कौंध जाती है। मुझे नहीं मालूम 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' कथ्यकी माँगसे उपजा प्रयोग-चमत्कार है या नहीं लेकिन 'चाँदनीके खण्डहर'का कथ्य निश्चय ही 'यूलिसीज़'के शिल्पमें खप गया है—जब कि यही शिल्प 'डूबते मस्तूल'में एक दूसरेके विरोधी दिशाओं में पड़ जाते हैं।

हम सब लोगोंके लिखनेकी प्रक्रिया यही रही है। कभी हम कहानीके किसी विशेष रूप, विशेष प्रयोगसे आकर्षित हुए हैं और उस प्रयोगमें अपनी बात ढालनेकी कोशिशमें अनजाने ही उसे समृद्ध करते रहे हैं और कभी यह रूपका प्रयोग अपने भीतरी दबावको अभिव्यक्त करनेकी मजबूरीमें हमसे हो गया है। हम सबने अलग-अलग अपने यथार्थको अपनी तरह भोगा और उसे वाणी दी है। इसलिए अभिव्यक्ति-प्रयोगमें कभी एक दूसरेके बहुत पास आ गये हैं, कभी एकदम उलटी दिशाकी ओर चले गये हैं—लेकिन इस विविधताके पीछे अनुभूतिकी प्रामाणिकता और उसके प्रति निर्वैयक्तिक, तटस्थ दृष्टि शायद सभीकी समान रही है क्योंकि यहीं तो वह धरती है जहाँ नयी कहानी पुरानीसे अलग होती है। अँगरेज़ीमें इसे कह लीजिए—युनिटी इन डाइवर्सिटीज़....

अनुभूति हो या अभिव्यक्ति नितान्त और आधारभूत मौलिकताका दावा कोई नहीं कर सकता, किसी भी स्तरपर नहीं कर सकता। हाँ, इन्हें ईमानदारीसे अपने व्यक्तित्वके साथ अनुस्यूत कर लेनेकी बात ज़रूर कही जा सकती है। हम लोगोंकी परिस्थितियाँ, परिवेश, पर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्पराएँ और संस्कार प्रायः इतने समान हैं कि मेरी अनुभूति समग्रतः मेरी अपनी है ही नहीं। न जाने कितनी संवेदनाएँ और प्रतिक्रियाएँ हमें दूसरोंने दी हैं, और कहीं-न-कहीं हम उन अनुभूतियों-रूढ़ियोंको स्वीकार करनेको बाध्य हैं। स्थितिकी सारी 'एवेयरनेस'के बावजूद हम कुछ रूढ़ प्रतिक्रियाओंके लिए 'कण्डी-शण्ड' हैं, आधुनिक भाषामें 'कण्डेम्ड' हैं.... केवल 'पर्सनल टॅच' देकर ही हम उन्हें अपना बना सकते हैं—वह टॅच स्वीकृतिका हो सकता है, अस्वीकृतिका हो सकता है, उपहास-का हो सकता है, विश्लेषणका हो सकता है। वरना प्रेमकी स्थितियाँ लें, या ग़मे-ज़िन्दगीके विभिन्न रूप, बरसोंसे छूटे मित्रका बसमें अचानक मिल जाना लें या शुभ-सूचनाकी खुशी—स्थितियाँ तो सभी समान हैं और हममें-से हरेककी ज़िन्दगीमें घटित होती रहती हैं—बिना इस व्यक्तिगत स्पर्शके नया कहाँ क्या है ?

कहीं कुछ भी नया नहीं है, इसकी एवेयर-नेस अभिव्यक्तिके स्तरपर शायद सबसे अधिक ठोस रूपमें सामने आती हैं: भाषा, शब्दोंके अर्थ, संकेत, व्याकरण, मुहावरे और स्थिति-सन्दर्भ—इन सबमें परिवर्तन इतनी देरसे और सूक्ष्म स्तरोंपर होता है कि इनके चित्रण हर क़दमपर हाथ बाँध लेते हैं। तब अकसर झुँझलाहट होने लगती है कि आखिर यह सब क्यों होता है ऐसा ?

कुछ 'कवि इन्फ़िल्ट्रेटर' भी कथा-साहित्य-के दायरेमें घुस आये हैं। नामवर सिंह-जैसे समीक्षक भी काव्य-गुणोंकी इसी चकाचौंध और चकमेमें आ ही गये। 'सा' और 'की'-तरहवाली उपमाएँ मेरी समझमें ग़लत हैं। मनःस्थितियों-को वस्तुओंसे उपमित करना मुझे ठीक नहीं जँचता। कहानीमें आज भी 'छायावाद-स्मगल' होता जा रहा है। मानसिक स्थितियोंका अनुवाद वस्तुओंमें हो ही नहीं सकता। भाषा, संकेत, मुहावरे, प्रतीक और उन प्रतीकोंके परम्पराबद्ध अर्थ काफ़ी अनगढ़ होते हैं।

कहानीकी सांकेतिकताके लिए जिस पार-दर्शी और सपाट भाषाकी ज़रूरत होती है वह भाषा ही हैमिंग्वेकी। आत्यन्तरिक कथ्यके दबावसे उत्पन्न ढाँचा और सचेतन प्रवाहसे प्रभावित शिल्प-प्रक्रियाको मैं उपलब्धि तो मानता हूँ पर वह सब कुछ नहीं है कहानीमें। नयी कविताके शिल्पमें नयी कहानी-की शब्दावली मिल सकती है। नयी कवितासे नयी कहानीको खतरा है, जैसे सिनेमासे नाटकको खतरा है। कवितापर समीक्षा करनेवाले टहलते-टहलते कहानीकी ओर आ गुज़रे हैं।

अभी भी हमारे कथाकारोंमें 'इन्फ़िरिय-रिटी कॉम्पलेक्स' है। हमारे यहाँ कुरते-पाजामेसे कोट-पैण्टको आधुनिक माना जाता है, गाँवकी अपेक्षा शहरको, शहरकी अपेक्षा राजधानीको और राजधानीकी अपेक्षा विदेशको यहाँ आधुनिक समझा जाता है। आधुनिकताकी यह शृंखला सीधे पेरिस या न्यूयॉर्कसे यहाँ चली आ रही है। विदेशोंपर लिखनेवाले रामकुमार और ऊषा प्रियंवदा भी मुझे अच्छे लगते हैं और ठेठ गाँवोंपर लिखनेवाले शैलेश मटियानी और पानू खोलिया भी। कमलेश्वरकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी 'दुःखोंके रास्ते' भीतरके दबावपर लिखी वाक़ई कहानी है—उसपर प्रतीकवादी चित्र या मूर्तिकलाके सिद्धान्त उढ़ाये नहीं गये हैं। रमेश बक्षीमें 'आइडिया' पर लिखनेवालोंका-सा चमत्कार है। 'राजा निरबंसिया' का दुहरा शिल्प मुझे दो युगसन्धियोंका शिल्प लगता है। शिवप्रसाद सिंहकी 'अन्नकूट', राजेन्द्र सिंह बेदीकी 'टर्मिनस', अज्ञेयकी 'हीलीबोनकी बत्तखें' अपनी अनुभूतिमें प्रामाणिक हैं। अकथामें कहानीकी कोई सार्थकता भी नहीं है। यह 'नयेपनका नया आवेश' है। दरअसल यह 'अकहानी' फ़ॉर्मका नया आन्दोलन मात्र है। यह बात ज़रूर है कि सन् '६० के बादकी पीढ़ी साठ निगाहोंसे कहानीको प्रस्तुत कर रही है। अगर नयी नेतागीरीके मोहाग्रहसे यह उबर सके 'भोगने' और 'जीने' की वास्तविक स्थितिसे गुज़रकर कुछ दे सके तो कुछ उपलब्धि अवश्य होगी।

• 'एक नाज़ुक अकेली आवाज़'वाला स्प्रिंग-बोर्ड···

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : आधुनिक कहानीपर बात करते ही मुझे चेख़वकी एक कहानी याद आती है—'ग्रीफ़' : दुःख। दिन-भरका थका-हारा कोचवान अपने घोड़ेसे ही अपनी वेदना-पीड़ा और टीसका इज़हार करता है। यह अपने-आपमें 'एक नाज़ुक अकेली आवाज़' है। वही 'नाज़ुक अकेली आवाज़' जब गिरोहोंमें बाँधी जाती है तो उसका रूप विकृत हो उठता है। पुरानी पीढ़ीका वही 'लोच', वही 'डेलीकेसी' जो अज्ञेय और जैनेन्द्रमें थी—नयी पीढ़ीमें भी है। नयी पीढ़ीका कथाकार 'अकेली आवाज़' को नहीं पहचान पा रहा है, उसी 'अकेली आवाज़' के पुराने स्प्रिंग बोर्डपर यह नयी पीड़ी उछलकर आ खड़ी हुई है। युयुत्सु मुझे बार-बार याद आता है—जिसने आत्मग्लानिमें आत्महत्या कर ली थी। यह आत्महत्या भी युद्धकी पृष्ठभूमिसे आयी है। यह नयी पीढ़ी सचमुच अभागी है जो अपने माथेपर लगे परम्पराके तिलकको नहीं चीन्ह पाती। श्रीकान्त वर्माकी तरह बाबरने भी कहा होगा—यह कैसा मुल्क है! यहाँ तो गरम पानीके चश्मे नहीं हैं, इस मुल्कवाले कैसे ग़ुसल करते होंगे? श्रीकान्त वर्माको यह देश आज भी असभ्य लगता है। यह पीढ़ी सचमुच अभागी है कि वह एक ओर जैनेन्द्रजी, भगवतीचरण वर्मा और नागरजीके पैर छूती है दूसरी ओर उनपर कीचड़ उछालती है।

• नयी कहानी तो नये ढाँचेकी नयी व्यवस्था है···

श्रीकान्त वर्मा : मैं राजेन्द्र यादवके विचारोंसे सहमत नहीं हूँ फिर भी उनके निबन्धकी शिष्टता और गम्भीरताने मुझे प्रभावित किया है। कहानीके क्षेत्रमें राजेन्द्र यादव जिन्हें घुसपैठिया मान रहे हैं उन्हीं कवियोंके उद्धरण उन्होंने अपने एक उपन्यासमें हर दसवें पृष्ठके बाद बदस्तूर पेश किये हैं। हर प्रतिभाशाली लेखकको एक खास वक़्तके बा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्य बेज़ुबान और गूँगा लगने लगता है : तब कविताकी ही शरण वह लेता है। मैं जानता हूँ कि किसी भी कविने कहानीकी पाँतोंको कवितामें नहीं 'स्मगल' किया है जब कि कहानीकारोंने कविताकी पाँतें बहुत 'स्मगल' की हैं। राजेन्द्र यादवमें शिल्पकी सफलताएँ और विफलताएँ बहुत तीक्ष्ण और साफ़ उभरी हैं, मुझे तब आश्चर्य होता है जब राजेन्द्र यादव शिल्पको कथ्यसे अलग मानते हैं। यानी 'कहनेके लिए' बात है, फिर उसी बातको कहनेके लिए शिल्प। यानी 'बुनियाद' कुछ और है और 'स्ट्रक्चर' कुछ और। यानी राजेन्द्र यादव कहानी सोचते हैं तब उसे बादमें लिखते हैं। आजकल तो अब कहानियाँ चर्चा जाने लगी हैं। यह सारा मकड़ीजाल—यानी मकड़ी, लेखककी अनुभूति है और जाल है उसका लेखकीय शिल्प। राजेन्द्र यादवमें बस 'अन्दाज़ ही अन्दाज़' है। नरेश मेहताके 'वर्णन-की कमज़ोरी'का जो ज़िक्र राजेन्द्र यादवने किया था वही कमज़ोरी राजेन्द्र यादवमें भी है लेकिन धूप-बादल-चिड़िया आदिसे निर्मल वर्मा कुछ अलग ही अर्थ दे देते हैं। फ्रान्सकी आधुनिक चित्रकलाने कवितामें सुर-रियलिज़्म पैदा कर दिया, 'जॉज़' म्यूज़िकने पूरीकी पूरी एक 'बीट' पीढ़ीको अमेरिकामें जन्म दे दिया। विधा कोई मकान नहीं है कि दूसरे मकानमें घुस जायें। मुझे नहीं पता कि कविता कैसे कहानीमें घुस जाती है। होता यह है कि मकान घुल जाता है और उस घुले हुए मकान-पर दूसरा मकान खड़ा हो जाता है। मैं तो कहना चाहूँगा कि राजेन्द्र यादवकी कहानियों-का कोई नया अर्थ मेरे लिए नहीं है बल्कि जैनेन्द्रजीकी कहानियोंका नया अर्थ देती हैं राजेन्द्रकी कहानियाँ। हर लेखकको यह सोच-कर चलना होगा कि वह कहाँ भिन्न है? भिन्नता निहायत ज़रूरी है लेखकके लिए। पुराने ढाँचेकी नयी व्यवस्था नयी कहानी नहीं है। नयी कहानी तो नये ढाँचेकी नयी व्यवस्था है।....राजेन्द्र यादवने खुद ही यह साबित कर दिया कि कहानी और निबन्धमें कोई फ़र्क़ नहीं है हालाँ कि ऐसा भी हो सकता है कि आजकी लिखी कहानियाँ बादमें निबन्ध क़रार दी जायें। मैं राजेन्द्र यादवकी उस बातसे सहमत हूँ जहाँ उन्होंने 'बेचैनी'का ज़िक्र किया था। वह बेचैनी ठीक वैसी ही होती है जैसे एक संगीतज्ञकी बेचैनी—जिस बेचैनीसे वह एक लय ढूँढ़ता है या कवि जिस बेचैनीसे 'इमेजेज़' ढूँढ़ता है। कथाकार भी उसी बेचैनीसे अपनी कहानी ढूँढ़ता है, चरित्र ढूँढ़ता है पर मुझे लगता है कि राजेन्द्र यादव अपनी कहानीके बारेमें मान्यताओंको ढूँढते हैं।

• दंगल, पेशा और भावनात्मक आदान-प्रदान...

भगवतीचरण वर्मा : सुना था कि लखनऊमें तीतर-बटेर लड़ते हैं। यहाँ देखता हूँ कि कहानीकारोंका दंगल हो रहा है। कला अन्दरकी प्रवृत्ति है। मैं साहित्य-रचनाकी तीन कोटियाँ मानता हूँ। जीनियस, पेशेवर और शौक़िया। जीनियस तो ख़ैर शताब्दियोंमें एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा होता है। ऐसे साहित्यकार अपवाद स्वरूप ही मिलते हैं। पेशेको बुरा नहीं मानता। पेशेसे हटना समाज-शोषणकी प्रवृत्ति है। पता नहीं क्यों, पेशे शब्दसे साहित्यकारोंको आपत्ति है? वैसे अराजकता आजका नियम बन गयी है। मैं साहित्यको 'भावनात्मक आदान-प्रदान'का माध्यम मानता हूँ। भावनात्मक अभिव्यक्तिमें शिल्पका महत्त्व बहुत ज़्यादा है। भावनाको वहन करनेकी शक्ति शिल्पमें है, शब्दमें नहीं। आक्रोश और घृणा, अनास्था और घुटन सम्पूर्ण साहित्यका सृजन नहीं कर सकते, साहित्य पूर्ण सृजनका नाम है। परिस्थितियों और प्रवृत्तियोंका योग कर्मपर पड़ता है पर इससे उबरकर ही हम 'उदात्त साहित्य' दे सकते हैं। आक्रोश हमें मनुष्यसे नहीं, उन परिस्थितियोंपर करना होगा, जो सामाजिक व्यवस्थाकी देन हैं। 'अपनेपन'में उलझकर हम साहित्यका सत्यानाश करनेपर तुले हुए हैं।

• ओढ़ी हुई आस्था और कथ्यकी आन्तरिकता···

सुदर्शन चोपड़ा : मैं कोई संस्करणात्मक जीनियस नहीं हूँ। भगवती बाबूकी बातसे मैंने जो कुछ समझा है वह यह कि जिसके जितने ज़्यादा संस्करण निकलें वह उतना ज़्यादा जीनियस। भिन्न होना हमारी अनिवार्यता है। मैं उस अभागी पीढ़ीका सदस्य हूँ जो अपनेमें हर दूसरेसे भिन्न है। भिन्नता चूँकि हमारी अनिवार्यता है इसलिए हम भिन्नता सहते, भोगते और झेलते हैं। ज़िन्दगीके निःसृत ज़हरको हम पचाते हैं। भिन्न होना हमारी मजबूरी है। हम कथा ढूँढ़ें—इसकी ज़रूरत हमें नहीं है। कहानीको हम पेशा नहीं मानते। कथा और साहित्यको मैं अलग-अलग नहीं मानता हूँ। अभिव्यक्ति ही अपनेमें महत्त्वपूर्ण है चाहे वह किसी भी विधामें हो। आज भी लोगोंको मुग़ालता है कि वे हिन्दी साहित्यकी सेवा कर रहे हैं। 'ठेठ हिन्दीका ठाठ' लिखकर जिन लोगोंने साहित्य-सेवा की है : उनका हश्र आपके सामने है।

जहाँ ओढ़ी हुई आस्था होगी, वहाँ निश्चयतः कथ्यकी आन्तरिकता कम होगी। व्यर्थता-बोधका एहसास मुझे बराबर होता रहा है। भाषा, मुहावरे, शब्द सभी कुछ बेकार-से लगते रहे हैं। जो अभिव्यक्ति बाहर आनेको 'हाण्ट' करती है उसे 'ग्रामर'के नियमोंसे मिलाकर नहीं अभिव्यक्त किया जा सकता। हम तो उस मजबूरीको टालते रहते हैं—और जब वह टल नहीं पाती तो उसे ज्योंका त्यों अभिव्यक्त कर देते हैं। यहीं हमारा आत्मसंघर्ष शुरू हो जाता है—इस संघर्षको बहुत कम लोगोंने महसूस किया है। यहींसे हमारा 'आइडेण्टिटी क्राइसिस' भी शुरू हो उठता है। इसीके साथ-साथ 'लैंग्वेज क्राइसिस' भी। अपनी बात मुझे कहकर किन्हीं लोगों तक पहुँचानी है—इसलिए मैं नहीं लिखता बल्कि इसलिए लिखता हूँ कि कहकर-फिककर मैं हलका हो लेता हूँ। पाठक और आलोचकका न मेरे लिए कोई अस्तित्व है और न मैं उन्हें महत्त्व ही देता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• कहानीका 'वह' रूप मर गया है...

ममता कालिया : डॉनने कहा था कि लिखते समय लेखकका लहू उँगलियोंके पोरपर आ जाता है। ऐसी ही 'इण्टेन्सिटी' और तन्मयताके क्षणमें सृजन होता है। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर और मोहन राकेश—नयी पीढ़ीके ये तीन नाम हैं : जिन्होंने 'नये' और ताज़े 'प्रयोग' शिल्पकी दृष्टिसे भी किये और कथ्यकी दृष्टिसे भी। अब कहानीका 'वह' रूप मर गया है जिसमें एक अच्छी-सी भूमिका होती थी, चरित्र होते थे, घात-प्रतिघात गढ़े जाते थे, एक 'साल्यूशन' होता था और अच्छा-सा अन्त होता था। कहानी शब्द अपने-आपमें मर गया है, नयी कहानी भी मर चुकी है। हो सकता है 'अकहानी' भी अपने आपमें कुछ समय बाद मर जाये। निर्मल वर्माको विदेशी धूपके टुकड़े, कहवाघर, चायघरकी पृष्ठभूमिसे मोह है, यही पृष्ठभूमिका मोह उन्हें पीछे लौटाता रहा है। हम लोग लगातार एक शिलाहीनताकी ओर बढ़ते जा रहे हैं।

० यथार्थपर मोमवाली पच्चीकारीका ख़तरा...

शरद जोशी : शिल्प कोई 'कृत्रिम प्रॉसेस' नहीं है, वह तो 'आन्तरिक सहज प्रक्रिया' है। शिल्प कोई फूल-जैसी चीज़ नहीं है जिसे ऊपरसे रख दिया जाये। कहानी ज़िन्दगीकी कतरन होती है। कतरनका हर रेशा, हर रंग उस पूरे वस्त्रका एक अंग होता है। शिल्प कोई अलगसे बुनावट नहीं है। प्रयोगकी कृत्रिमताका मैं विरोध करता हूँ, करता आ रहा हूँ। शिल्प तो एक 'लिविंग प्रॉसेस' है। यदि वह 'लिविंग प्रॉसेस'—वह विकसनशील प्रक्रिया—अपने-आपमें कहीं रुक जाये तो शिल्प मुर्दा हो जाये। मुझे एक चित्र याद आ रहा है 'दे हाउस ऑफ़ वैक्स'—जिसमें आदमीपर पिघली मोम डालकर उस आदमीकी मूर्त्ति तैयार कर ली जाती थी। लेकिन उस मूर्त्तिमें प्राण नहीं आ सकता था। निर्मल वर्मा भी यथार्थपर पिघली मोम डालकर हमें देते आये हैं। इस 'लिविंग प्रॉसेस' को जो बन्द कर दे उसपर हत्याका आरोप मढ़ा जाना चाहिए। यथार्थपर मोम डालकर जो पच्चीकारी हमारे सामने पेश की जा रही है उससे कहानीको ख़तरा है। यह जो ठहराव है, 'ठिठकन' है, जहाँ ऊपरी सतहपर काई जमी हुई है उसके नीचे बहाव जारी है। यह 'स्टेगनेन्सी', यह 'ठिठकन' भी ठिठकन नहीं है। काई काई नहीं रहती। उसको आकर कोई चीज़ जीत जाती है। धूपका तिकोना भी तिकोना ही नहीं रह पाता। निर्मल वर्माको 'ठहराव' और 'ठिठकन' से प्यार है तो हो पर कहानीके लिए, हमारे लिए यह मौत होगी। निर्मल वर्माको कैफ़े या रेस्त्राँका अँधेरा कोना चाहिए, ठण्डी बेंचें चाहिए, खामोश पार्क चाहिए, चर्च चाहिए, औरत उनके संग हो तो वह खामोश होना चाहिए। वह अगर खामोश नहीं हो तो निर्मल वर्मा खामोश होंगे पर मैंने इस 'ठहराव'का सदैव विरोध किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• चुन्नट और सलवट : एक आंचलिक, दूसरी विदेशी···

डॉ० शिवप्रसाद सिंह : रचनाकार सचेतन स्थितिमें शिल्पकी व्याख्या कर हो नहीं सकता है। 'भीतरके दबाव'के दबावपर जो अभिव्यक्ति बाहर आती है, अभिव्यक्त होनेके बाद उसकी भीतरी दाह-शक्ति खत्म हो जाती है। भीतरकी दाहशक्ति शब्दोंमें बँधते ही कुछ अजब रूप धारण कर लेती है। आंचलिक चुन्नट और सलवटके प्रयोग 'रेणु'ने किये थे—उसी तर्ज़की विदेशी चुन्नट और सलवट निर्मल वर्मा भाषामें दे रहे हैं। लोग प्रतीक पहले चुन लेते हैं और भाषाको उसपर थोप देते हैं। यह प्रक्रिया ही ग़लत है। शब्द खुद-ब-खुद प्रतीक हैं। घ और ट में कोई ऐसा भाव-बोध नहीं है जो घड़ेका बोध करा सके। जब रमेश बक्षी 'सिम्बॅल' चुनते हैं तब उनकी वह विवशता होती है। 'कथ्यकी उलझनकी विवशता'से कथाकार प्रभावित होता है। कहानी और कविताकी विधाको अलग-अलग काट देना ज़रा कठिन काम है। कविताका असर कहानीपर पड़ता है यह मैं भी मानता हूँ।

• शिल्प दिमाग़ी ऐय्याशी नहीं है···

धनंजय वर्मा : चमत्कार पैदा करनेके लिए 'कॉन्स्पिक्यूअस' होनेकी ज़रूरत है। जो लिख नहीं सकता, वह चमत्कार पैदा करता है। जो लिख सकता है वह केवल लिखता है। शिल्प कोई बक्स तो नहीं है जिसमें वस्तुएँ या घटनाएँ रख दी जायें। कभी-कभी शिल्प पहले आता है और कथा-वस्तु बादमें। फ़ील्डिंगकी कहानीको आप जेम्स ज्वाएसके शिल्पसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते और न जेम्स ज्वाएसकी कहानीको फ़ील्डिंगके शिल्पसे। शेक्सपीयरको नाट्यवस्तुको इब्सनके नाट्यरूपसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। निश्चित पैटर्नके अभावमें कथावस्तुके लिए इधर-उधर भटकना पड़ता है। शिल्प दिमाग़ी ऐय्याशी नहीं है। यथार्थसे भोगी हुई चीज़ोंकी सम्बद्धताका प्रश्न लेखकके जीवनसे जुड़ा हुआ है और लेखकका जीवन शिल्पके सामर्थ्य और असामर्थ्यसे।

• अपनी बातको ठीक-ठीक अभिव्यक्त करनेकी अनायासता···

रमेश बक्षी : मैं दो चीज़ोंके लिए बदनाम रहा हूँ—एक शिल्पके लिए, दूसरे बुश्शर्टके लिए। 'भद्रता'को मैं पारम्परिक अर्थोंमें 'तमीज़' नहीं मानता हूँ। यह जो 'इनवर्टेड कॉमाज़'वाली भद्रता है, उससे मेरा विरोध है। राजेन्द्र यादवने जिस बेचैनीका ज़िक्र किया था वह बेचैनी निश्चित ही अभिव्यक्तिके पक्षमें होती है। किसी चीज़को अगर 'गढ़ने'की बात हो तो हम बता भी सकते है कि अमुक चीज़ कैसे 'गढ़ी' गयी, पर यहाँ तो गढ़नेका कोई सवाल ही नहीं है। 'ठीक-ठीक अभिव्यक्त' करनेकी स्थिति हमें बाध्य कर देती है कि हम बहुत-कुछ पुराना कूड़ा-कचरा छोड़ दें अपनी बातको ठीक-ठीक अभिव्यक्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकनेकी अनायासता हो तो शिल्प है। हो सकता है उसमें शिल्पहीनता हो—लेकिन यह शिल्पहीनता यदि एक 'रूढ़ शिल्प' बन जाये तो यह अपने-आपमें ख़तरा है। चूँकि ठीक-ठीक अभिव्यक्त करनेकी कोशिशके बीचसे यह शिल्पहीनता आयी है, अतः उसे 'रूढ़ शिल्प' नहीं कहा जा सकता है। राजेन्द्र यादवमें शिल्पमयताके सारे प्रयोग हैं, काफ़ी कुछ चमत्कारी है। 'ठीक-ठीक' अभिव्यक्ति देनेकी इस बेचैनीके पीछे अन्दरकी ईमानदारी है। यह ईमानदारी अपने-आपमें एक नयी चीज़ है। वह 'अनायास' आयी है। यह अनायासता बहुत बड़ा अन्वेषण है। निश्चित किसी एक बातके लिए बदनाम व्यक्तिको उस चीज़के फ़ायदेसे दूर नहीं किया जा सकता।

• अंशतः इन्वाल्व होना ईमानदारी नहीं है···

हरिशंकर परसाई : श्रीकान्त वर्माको मैं यह विश्वास दिला सकता हूँ कि दलहीनताका भी एक दल होता है। यह जो 'हॉरर', 'फ़्रस्ट्रेशॅन', 'मृत्यु-बोध' और 'संकट' की बातें हो रही हैं, क्या वाक़ई ये सब अपरिवर्तनीय हैं? संकट मुझे भी है, मृत्यु-बोध मुझे भी होता है, घाव मुझे भी लगते हैं, पीड़ा भी होती है पर 'मृत्यु' की कामना मुझे नहीं होती। मुर्देपर अगर कफ़न डाल दिया जाये तो समझमें आता है कि वह मर गया है पर ज़िन्दा आदमी अगर कफ़न ओढ़ ले तो लगता है कि यह चन्दा इकट्ठा करनेकी साज़िश है! प्रमोशनके लिए दरख्वास्त देनेमें कोई चूक नहीं होती, छपनेमें कोई चूक नहीं होती, प्रचार करनेमें कोई चूक नहीं होती, बच्चोंको अच्छे कपड़े पहनानेमें, कॉन्वेण्ट भेजनेमें कोई चूक नहीं होती, शृंगार करनेमें कोई चूक नहीं होती, शामको चौराहेपर घूमनेमें कोई चूक नहीं होती, लड़कियोंके ऑटोग्राफ़-बुकपर दस्तख़त देनेमें कोई चूक नहीं होती। फिर यह मृत्यु-बोध है कैसा? ऐसा लगता है कि कुछ लोग मैदानमें खेल रहे हैं और कुछ उनके इर्द-गिर्द बैठे देख रहे तमाशबीन हैं। अनायास अगर किसी तमाशबीनके सिरपर-से गेंद गुज़र जाये या उसको लग जाये तो वह तमाशबीन खिलाड़ी नहीं हो जायेगा। यह पीड़ा-बोध, मृत्यु-बोध तमाशबीनोंका-सा लगता है। इसे मैं 'डिस् इल्यूज़नमेण्ट' की स्थिति मानता हूँ—यह 'डिस् इल्यूज़नमेण्ट' सन् ५३–५४ से ही हिन्दी में आ गया है। न पूरी तरह 'पार्टिसिपेट' करते हैं और न हम पूरी तरह 'इन्वॉल्व्ड' हैं उन परिस्थितियोंसे। अंशतः 'इन्वॉल्ब' होना 'सम्पूर्ण सन्दर्भ' के प्रति ईमानदारी तो नहीं है। साधारण मज़दूर और क्लर्क भी संघर्ष करते हैं पर वे जीवनसे हटते नहीं, जीवनसे कटते नहीं, जीवनसे वे जूझते हैं। दैनन्दिन जीवनका संघर्ष उन्हें बल देता है। अपना 'फ़्रस्ट्रेशॅन' हम ग़लत ढंगसे 'प्रोजेक्ट' कर रहे हैं। पुराने प्रगतिवादियोंमें यह ग़लतफ़हमी थी कि हर किसीके हाथमें तलवार दे देनेसे क्रान्ति पैदा हो जायेगी। लेकिन यह ग़लत सिद्ध हुआ है। आप 'टॉवर' के ऊपर रोते हैं और रोनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही एक रस्सीमें बंधा थैला भी नीचे लटका देते हैं कि आने-जानेवाले आपके थैलेमें रोटीका टुकड़ा डाल दें—आप रोते हुए उसे खा भी लेते हैं। इस रोनेपनसे तो 'मृत्यु-बोध' ही आयेगा। राशनकी क्यूमें खड़े रहकर भी आप अपनेको क्यूसे अलग विशिष्ट व्यक्ति मानते हैं और क्यूसे बाहर आते ही क्यूमें खड़े लोगोंको कीड़े-मकोड़ोंसे भी बदतर समझते हैं। अहंकारके घोंघेसे आप बाहर आइए और अपनेको व्यापक संघर्षसे जोड़ दीजिए।

• क्यूमें खड़े रहनेवालोंका दर्द : तीव्र संवेदना···

गंगाप्रसाद विमल : जिस पीढ़ीका हम उल्लेख कर रहे हैं : वह अपने प्रयोगोंके कारण कहाँ तक सफल हो चुकी है, यदि हम उसे समझ लें तो कुछ भी समझने की ज़रूरत नहीं रह जाती। मैं डॉ० अवस्थीके 'ऐतिहासिक' बोध-का समर्थन करता हूँ। यदि आप हमारे दर्दको साधारणीकृत कर लें तो वह दर्द आपको अपना निजी दर्द लगेगा। समकालीन कथा-कार यथार्थको खोजता है, मैं कहता हूँ वह भोगता है। जहाँतक 'पार्टिसिपेशन' और 'इन्वॉल्वमेण्ट'की बात है, यह आवश्यक नहीं है कि आप 'राशनके क्यू'में खड़े ही हों बल्कि ज़रूरत इस बातकी है कि आपमें तीव्र संवे-दना हो, लाइनमें खड़े रहनेवालोंका दर्द आप तीव्रतासे महसूस कर सकें। फिर लाइनमें खड़े रहनेवालोंका दर्द आपमें रूपाय हो उठेगा। हमारे देहाती कहानीका राजेन्द्र अवस्थी और शैलेश मटियानी समझते हैं कि उन्होंने जो कुछ दिया वही कहानी है। भीष्म साहनी शायद सहकारिता-आन्दोलन जागृत करना चाहते हैं। वे यह चाहते हैं कि हम महान् रचना दें। 'महानता'का ढोंग हमारे जीवनसे समाप्त हो गया है। हम सामान्य जीवनसे 'पाते' हैं 'खोजते' हैं। जिस तरह ईश्वर हमारे जीवन मर चुका है, वैसे ही कहानीका प्लॉट भी रमेश बक्षीकी कहानियाँ समकालीन जीवनके निकट हैं, इसीसे वे हर साल बदलती रहती हैं। यह बदलना ही जीवनको देखना है।

• नयी बात : 'कोठरीकी बात' और 'एक रात'···

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : मूर्तिको गिरा देना बड़ा आसान है पर उसे बना पाना बहुत कठिन। आधुनिकता हमें यह सिखाती रही है कि जो कुछ परम्परासे प्राप्त है, उसे ग़लत सिद्ध कर दो बस आधुनिक बन जाओगे। यह वाक़ई हमारी पीढ़ीका अभाग्य है। नया कहानीकार अपने प्रयोगोंमे कथानक या चरित्र के स्वरसे नया 'भाव-बोध' तलाशता रहा है। यह 'तलाशने'की स्थिति रेस्त्राँके कोने, कैफ़े कॉर्नर या जॉज़की गति या 'सिम्फ़नी'के टुकड़े में भी देखी जा सकती है। आप 'प्रिजु-ड्यूज़्ड' हैं तो जॉज़ भले ही न आपको पर अगर अपने सारंगीके श्रवण-बोधको 'ट्रेण्ड' कर लें तो वाक़ई 'जॉज़' आपको आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-समारोहके कुछ विशेष श्रोता : साहू शान्तिप्रसाद जैन, श्रीमती रमा जैन, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, दूधनाथ सिंह, अशोक जैन, श्रीमती इन्दु जैन आदि।

देगा। जैसे 'क्लॉसिकल संगीत' आपके पल्ले नहीं पड़ता और क्लासिकल टेस्टवाले उसे सुनकर झूम उठते हैं; वही बात नयी कहानी-के समझनेके संस्कारमें भी है। यह संस्कार आपमें परिष्कृत हो जाये तो निर्मल वर्मा आपको बहुत सहज लगने लगेगा।

अज्ञेयकी कुख्यात कहानी 'कोठरीकी बात' और जैनेन्द्रकी कुख्यात कहानी 'एक रात' आज भी नयी है। इन दोनोंमें कोई चीज़ तलाशी जा रही थी। मुझे लेनिनके शब्द याद आ रहे हैं : 'पूँजीवादी व्यवस्थाकी देन है कि यथार्थसे ध्यानको काट दो, बस सारा समाज पंगुवत् हो जायेगा।' पूँजीवादी व्यवस्था, टेलिविज़न, अखबार, सिनेमा आदि हमें यथार्थसे काट देते है। नक़ली ज़मीन पर लड़ने लगते हैं। परसाईने असली व्यापक संघर्षका उल्लेख किया था। दिन भरमें ढेरों सिगरेट पी जाते हैं, आप पचासों कप कॉफ़ी पी जाते हैं, पहननेको दर्जनों सूट हैं फिर भी आप 'मृत्यु-बोध'की नक़ली बात करते हैं। मृत्यु, वाक़ई, जो मज़दूरका भोग्य है—आप उसे छीन ले रहें हैं उससे, यह अन्याय है।

६ कथाकार और पाठक : जिज्ञासाएँ एवं अपेक्षाएँ—छोटे-छोटे कटघरे

२६ दिसम्बर। दुपहर। आते हुए प्रश्न तथा जिज्ञासाएँ—कथाकारों द्वारा समाधानकी कोशिश। अध्यक्ष : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हरिशंकर परसाई, श्रीमती मन्नू भण्डारी। कुछ सप्रश्न वक्ता : डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, कुन्था जैन, कृष्णाचार्य, किरण जैन, चन्द्रदेव सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। उत्तर : कमलेश्वर, रमेश बक्षी, शैलेश मटियानी, रवीन्द्र कालिया, शिवप्रसाद सिंह, श्रीकान्त वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, शरद जोशी, ममता कालिया, जैनेन्द्र कुमार।

• कुछ प्रश्न : उत्तरकी तलाशमें—

डॉ० प्रतिभा अग्रवाल : क्यों आजका साहित्यकार, जो जीवनदृष्टिका सत्य है, इस सत्यको झुठलानेका प्रयत्न कर रहा है कि उसकी अपनी भी जीवनदृष्टि है ? जब वह कह रहा है कि हम आजके यथार्थको जी रहे, भोग रहे हैं और उस जीने और भोगनेके क्षणमें, जो कहनेकी मजबूरी है, उसे अपने माध्यमसे प्रस्तुत कर रहें हैं—तो क्या यही जीवनदृष्टि नहीं है ? क्या इससे बचनेके लिए वह कतरा रहा है—कि हम कोई आदर्श लेकर नहीं चलते, कोई उद्देश्य लेकर नहीं चलते। हमने समाजको रास्ता दिखानेका कोई ठेका नहीं ले रखा है। विकासकी स्थिति तो स्वतः सिद्ध है लेकिन विकासके इस बिन्दुपर होकर क्या आप उसका केवल चित्रण कर रहे हैं या जागरूकता पैदा कर देना चाहते हैं ? नये लोग कहते हैं कि उनकी अनुभूति तो आजकी ईमानदार अनुभूति है और बाक़ी सब जैसे बेईमान हैं। पहलेके लिखनेवालोंमें ईमानदारी नहीं है ? उस मुखौटेको उतारकर फेंक दिया है ?

कुन्था जैन : एक पाठिकाके नाते मैं पाठक और पाठिकाके महत्त्वको समझती हूँ। अतः मैं यह पूछना चाहती हूँ कि अति आधुनिक लेखकोंको हमारे प्रति इतनी निरपेक्षता क्यों है ? अति आधुनिक लेखक अपने उत्तरदायित्वसे किनारे क्यों होना चाहता है, विशेषकर इस सन्दर्भमें कि वह जो कुछ लिखता है वह भावना-विकृति, कुण्ठा, निराशा आदिसे भरा है तो उसे उतनेपर ही छोड़ देनेसे उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता ?

किरण जैन : आजके वैयक्तिक बोधमें सामाजिक दायित्व कहाँतक है ? रचना-प्रक्रियाकी डायरीके पन्ने अभीतक पूरे भरे नहीं गये है—इसकी प्रेरणा लेखकको कहाँसे मिली ? कहानी पर जो विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है उसको देखते हुए उपन्यास पर प्रकाश क्यों नहीं डाला गया ?

कृष्णाचार्य : मेरी जिज्ञासा तीन रूपमें है: प्रबुद्ध पाठकके रूपमें, श्रोताके रूपमें और पाठकोंके पाठकके रूपमें : १—बहुसंख्यक हिन्दी भाषी प्रान्तके लेखक ऐसा क्यों नहीं लिखते जैसा कि दूसरे देशोंमें लिखा जाता है ? व्यक्ति लिखता है, सबके हाथ नहीं लिखते। हिन्दी भाषामें अभीतक समर्थ लेखक क्यों नहीं पैदा हो सके ? २—साहित्य रूपमें और युगोंमें लिखा जाता है, साहित्य कालमें लिखा जाता है, मैं यही भ्रममें हूँ। यदि साहित्य रूपमें लिखा जाता है तो उसकी उपलब्धि क्या है ? आदर्शवाद और प्रगतिवादकी चर्चा होती है और लेखक कहते हैं कि हममें जो वाद है वह दूसरेमें नहीं है। जो यथार्थवादी हैं वे अपनेको किसी वादका रचयिता नहीं कहते, क्या यह उचित है ? ३—बहुतसे उपन्यास लिखे जाते हैं। उनमें-से अच्छोंकी सूची बनायें तो उसकी कसौटी क्या है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रदेव सिंह : यह जिज्ञासा नहीं भ्रम है, ऐसा महसूस होता है। अनायास कहानी जैनेन्द्रजी की परिभाषासे कहाँ भिन्न है? रमेशजीने अनायास कहानी लिखी है या नहीं? यदि आप किसी भी चीज़के लिए प्रतिबद्ध न भी हों पर जीनेके लिए तो प्रतिबद्ध हैं। क्या आप जो लिखते हैं उसपर विश्वास करते हैं? कहानी आ जाये तो क्या बस छोड़कर कहानी लिखने लगें।

अनाम : नयी पीढ़ी अनिवार्य रूपसे बदतमीज़ है इसका तात्पर्य क्या हम यही समझें कि आप सब अपनेको बदतमीज़ समझते हैं? नयी कहानीमें क्या बदतमीज़ीके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता? 'नयी पीढ़ी राजपथ-से जाते किसी भी व्यक्तिपर ढेला फेंकना चाहती है'—इससे आपका क्या तात्पर्य है?

• कुछ उत्तर : स्पष्ट और दो टूक—

मन्नू भण्डारी : अध्यापिकाका कार्य उत्तम है, पर इसने हमारी प्रगतिका दरवाज़ा बन्द कर दिया है। कॉलेजका रिज़ल्ट, उद्देश्य केवल विद्यार्थियोंको पास कराना ही रह गया है। प्रतिभाजी ने कहा कि हमने जीवनदृष्टि को नकारनेकी कोशिश की है किन्तु जीवन-दृष्टि प्राप्त की जाती है। वह बनानेकी चीज़ नहीं है। जीवनदृष्टि गतिमान है। यह बनी-बनायी वस्तु नहीं है, अन्तर बदलनेवाली प्रक्रिया है।

जीवन है तो जीवनदृष्टि भी है। निर-न्तर अनुभवों तथा भोगमें भी वह बनती है, वह सतत् गतिवान होती है। कला बड़ी दुरूह हो गयी है। नयी कलाको समझनेमें हम असमर्थ हो गये हैं। कला ही आगे बढ़ गयी है। इन नयी कलाकृतियोंको समझनेके लिए हमें अपनी दृष्टिको परिष्कृत करना होगा। नयी कलाकृतियोंको समझनेके लिए हमें अपनी रुचिको बदलना होगा। हमें अपने संस्कारोंको बदलना होगा तभी हम नयी कलाकृतियोंको समझ पायेंगे—क्या कला दुरूह होती जा रही है या हम उन्हें समझ जाते हैं? हमें अपनी रुचि परिष्कृत करनी होगी।

हरिशंकर परसाई : नये लेखकोंकी बातें समझमें नहीं आती हैं तो वे पाठक जीवनको भी नहीं समझते, हम जो पत्रिका खरीदते हैं यह समझकर कि हमारा कुछ मनोरंजन हो, साथ ही हमें कुछ प्राप्त भी हो। साहित्य व्यापारकी चीज़ नहीं है। जो नये लेखनको नहीं समझ सकता वह जीवनको भी नहीं समझ सकता। जिनको यह साहित्य समझमें नहीं आता, वास्तवमें उन्हें जीवन ही समझ में नहीं आता। यदि जीवनमें सत्य है और हमारी चेतना जाग्रत है तो उसे स्वीकार करना चाहिए। यदि कोई यह सोचे कि यह सोनेके लिए है, ग़लती है। पाठकको सम-कालीन लेखक समझमें नहीं आता।

गंगाप्रसाद विमल : हम सदा पाँचवें पाठककी तलाश करते हैं। तीन कुशवाहा कान्तको पढ़ते हैं, चौथा पुराने साहित्यको, पाँचवाँ जो समकालीन जीवनकी समग्रताओंको समझनेकी चेष्टा करता है। यदि लोग पुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कित होनेके लिए साहित्य पढ़ते हैं तो उन्हें पुराना साहित्य पढ़ना चाहिए।

जीवनकी जो यातनाएँ हैं उन्हें हम नये साँचेमें ढालते हैं, सदा पाँचवें पाठककी खोज करते हैं।....कोई चीज़ त्रास देती है तो वह नये सन्दर्भ-शास्त्रको जन्म देती है।

दूधनाथ सिंह : जीवनमें हम इनवाल्ड हैं, उसमें हमारा पार्टिशिपेशन है। यदि हममें लेखकीय और रचनात्मक समझ है तो हमपर यही असर पड़ा है कि व्यक्तिके सुख-कल्याण में अनेक प्रकारकी बाधाएँ हैं। हमारे सामने भी चुनावकी समस्या है, कि अपना सुख महत्त्वपूर्ण है या समाजमें जिस तरहकी चीजें हैं वह। हमारे चुनावमें ग़लती हो सकती है कि वह पाठकोंको पसन्द न आये लेकिन वे ज़िम्मेदार हैं कि उन्होंने महत्त्वपूर्ण परिस्थितियोंको चुना है। ईमानदार व्यक्तिके लिए भी सफ़रिंगके रास्ते बनाती है। सफ़रिंगके लिए कोई शर्त नहीं, उसी तरह रचनाके लिए नहीं। उद्देश्यहीनता हमारा लक्ष्य नहीं है। उद्देश्यहीनताका तात्पर्य यही है कि पुराने लेखक जिस ढंगसे उद्देश्यको प्रेषित करते थे वैसा हम नहीं करते। हम परिस्थितिको आपके सामने रख देते हैं। हम पाठकोंके जागरूक होनेका विश्वास करते हैं। प्रत्यक्ष युद्ध नहीं देखनेसे बहुत सारी विडम्बनाएँ बढ़ीं। हमारी कुण्ठाएँ और निराशाएँ युद्धवाले देशों से अलग हैं। हमलोग तो दबावसे सैण्डविच बने हुए हैं। रोटी-रोज़ी-कपड़ा हिन्दुस्तानके लिए छोटी समस्या नहीं है।

जैनेन्द्रकुमार : जितने यहाँ आये थे सब कला-गुरु थे, स्नातक थे। प्रश्न उससे किया जाता है जो जानकार माना जाता है। उम्रके बढ़नेके साथ जानकारी तो नहीं बढ़ती जाती है। कहानी लिखी हैं, कहानी जानता नहीं। जो कहानीको जान जाते हैं वे कहानीको इतना झुका देते हैं कि वह दब जाती है। जहाँतक दृष्टिका प्रश्न है वहाँ मैसकुलीन और फ़ेमनीनका समावेश होता है, वहीं सृष्टि होती है। आजकी शैलीमें ग्रियनेश ऐसी आती जा रही है कि कुछ कहने को नहीं रहा। विद्वता सृष्टिकी दृष्टिसे बहुत भयंकर है। अनादार—आदरसे अलग रहनेका मार्ग है, उससे सृष्टि नहीं हो सकती। मैं—मैं को लेकर नहीं जी सकता। अपनेपनके पहरे पर जो रहता है वह ग़लत है। परम्पराको यदि आप छोड़ दें तो सारी सम्प्रेषण-शक्ति समाप्त हो जायेगी। हमारे जितने प्रशंसक हैं वे हमें एक-दूसरेके सम्पर्कमें लाते हैं। जहाँ हम इच्छाको ही कहें कि मैं हूँ तो यहाँ मालूम पड़ता है कि अपनी सार्थकता दूसरेकी सार्थकता ढूँढ़ने-उद्देश्यमें ही रह जाता हूँ।

मैंने भाषा, प्लॉट, क्लाइमेक्सके सम्बन्ध में जाननेके लिए समय बरबाद नहीं किया। मैं अपनी कहानीमें अनावश्यक कुछ नहीं लाना चाहता। इण्डिसीप्लीनमें-से ही अगाध सत्ताकी भावना उत्पन्न होती है।

रमेश बक्षी : मुखौटा नयी पीढ़ीके लेखकोंने उतार लिया है या समाजने जो मुखौटा लगाये थे उसे उतार दिया है। नयी पीढ़ीका कोई भी लेखक कभी मुखौटा पहनकर नहीं आया, उसे इसकी आवश्यकता भी कभी नहीं हुई है। ऐसा ज़रूर लगा है कि जिस वातावरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम फँसे हुए हैं उस वातावरणसे मुक्त पानेके लिए कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। कभी सर उठाना पड़ता है, कभी परिश्रम उठाना पड़ता है, यह अलग बात है। यह एक अलग बात है कि पैर हिलायें, वह किसी दूसरेको लग जाये लेकिन यह कोई इण्टेन्सनली किया जा रहा हो ऐसा बात नहीं है, यह मैं समझता हूँ। एक बात ईमानदारीकी है। मुझे खुद ज़रा अजीब लगता है जब कई बार अभियोगी की तरह खड़े होकर यह कहना पड़ता है कि मैं ईमानदार हूँ, तब यह बात निश्चित लगती है कि लोग मुझे इतना अण्डरस्टैण्ड नहीं कर रहे हैं। इससे ज़्यादा मिस-अण्डरस्टैण्ड कर रहे हैं। दूसरे लोगोंके मनमें जो मिस-अण्डरस्टैंडिग है उसकी परवाह किये बिना ही अपनी पीढ़ीकी ओरसे मैं बोलता हूँ कि मैं ईमानदार हूँ।

दूसरे, ईमानदारीकी बात कई सतहों और परतोंवाली हुआ करती है। किसी एक कुरसी पर बैठते हैं तब एक तरह की, और चलते हैं तो दूसरी तरहकी ईमानदारी होती है। और मैं समझता हूँ कि ईमानदारी कई तरहकी होती है। कोई अधिकारी है और उसे अपनी प्रतिबद्धताके अनुसार बेईमानी करनी पड़ती है। और उस बेईमानीको अगर वह ईमानदारीके साथ निभा देता है तो वह अधिकारी ईमानदार है बेईमान नहीं। कई बार कई स्थितिमें रहते हुए वैसा करना पड़ता है। साधारणतः जिस पारिवारिक और सामाजिक ढर्रेमें रहते हैं, कहीं किसी शान्त होटलमें चले जाते हैं, अच्छा नहीं लगता। वहाँ अगर कोई रहता है तो वह वातावरण अपना हो जाता है। वहाँ कुछ गड़बड़ हो जाये तो उस होटलमें हम बड़ी व्यवस्थिति अनुभव करते हैं और ऐसा लगता है कि यह कहीं हमारी मनःस्थितिके अनुकूल है। ऐसी अनुकूलता भी कहीं ज़रूरी होती है, यदि अव्यवस्था है, शौक़िया नहीं है। इस वातावरणसे जनमी हुई है। ऐसा मुझे लगता है। लगातार विकसित और मेच्योर होते रहना बड़ी भारी चीज़ है। एक बार परेशानीसे भागकर डायरीमें एक पंक्ति लिखी थी कि मेरा दर्द मेच्योर हो गया है, अब मैं बेहतर लिख सकता हूँ। यह मेरी ईमानदारी है कि मृत्युको मैंने ढोंगके रूपमें सहा है लेकिन वह इतनी अधिक नज़दीक ही लगी कि कई बार ऐसा लगता है कि आत्महत्याके मैं दायें-बायें हूँ। इतनी नज़दीक है कि ज़रा-सा मैं अपनी जगहसे डिगा कि आत्महत्या करनी पड़ेगी। ईमानदारीसे कई बार पलायन बहुत बुरा लगता है। लेकिन ऐसा भी होता है कि अगर हम पलायन न करें तो वह सबसे बड़ा पलायन होगा। जिस जगहको हम बर्दाश्त नहीं कर सकते उस जगहसे हम अगर पलायन नहीं करते, भागते नहीं हैं और भागते हुए नहीं रहते हैं तो एक जहगसे दूसरी जगह नहीं भागते हैं, और उस भागनेको अनवरत सहते रहते हैं तो शायद वह सबसे बड़ा पलायन है। इसलिए भागते रहना पलायन नहीं है। हर चीज़को वैसाका वैसा भोगनेमें एक सहजता होती है। वह विद्रोहवाली हो या घृणावाली हो या नाराज़ीवाली हो। किसी घुमाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरावकी जरूरत नहीं ? पीढ़ीकी जीवनदृष्टिको समझा जा सकता है, कोई चाहे तो पन्द्रह या पचीस रुपयेका स्टाम्प-पेपर ले आये, उसपर लिखकर यह बात दी जा सकती है। अनायासतासे आशय मेरा था कि उसमें प्रयत्न नहीं है, कहीं सबेरे उठकर चहलक़दमी की और वह सारीकी सारी लिख दिया। वह सहज और अनायास होती है। जहाँ प्रयत्न होता है वहाँ शिल्प और तन्त्रकी बोधवाली चीज़ें आ जाती हैं।

जहाँ तक बदतमीज़ीका सवाल है, मैं स्वीकार करता हूँ कि हूँ और इस बदतमीज़ीकी एक परिभाषा है, वह यह है : तमीज़ नामकी वह चीज़ जिसे इनवर्टेड कामामें लिखते हैं और ज़बरदस्तीके मैनरनिज़्म और औपचारिकताका नाम देते हैं, यह तमीज़ जिसकी बहुत अच्छी ... होती है, वह कहीं नहीं है। बदतमीज़ीमें तात्पर्य उन पुराने दायरोंको ताड़नेसे है और वे दायरे टूटते हैं तो हम अनायास-रूपसे सामने आ सकते हैं।

ढेले फेंकनेसे तात्पर्य है जिस राजपथपर नये और बेहतर क़िस्मके लोग चल सकते हैं उनपर अगर कोई बहुत ही पुराना व्यक्ति चलकर राजपथको ख़राब करता है तो उस व्यक्तिको हटानेकी बात मनमें आती है। और ढेला फेंकनेकी बातसे तात्पर्य किसीका सिर तोड़नेसे नहीं, मेरा आशय तो केवल इतना है कि उस आदमीको चौंका दिया जाये। उसको डिस्टर्ब करनेसे तात्पर्य है। उन्हें सिर्फ़ डिस्टर्ब कर देनेके मेरा और कोई आशय नहीं है। और मैं ऐसा करना भी नहीं चाहता।

७ समापन : जीवन्त मंचकी प्रतिष्ठा

२६ दिसम्बर। शाम सात बजे। समापन-समारोह। अध्यक्ष : भँवरमल सिंघी, कल्याणमल लोढ़ा, लक्ष्मीचन्द्र जैन। वक्ता : वृन्दावनलाल वर्मा, विष्णुकान्त शास्त्री, अक्षयचन्द्र शर्मा, रमेश बक्षी, चन्द्रदेव सिंह, भीमसेन त्यागी, परमानन्द चूड़ीवाल, सीताराम सेकसरिया।

• कहानी हज़ार वर्षों तक जीवित रहेगी....

वृन्दावनलाल वर्मा : आदर्श क्या है, उद्देश्य क्या है तथा शिल्प क्या है ? कहानीके बारेमें कई बार कहा गया कि कहानी मर गयी, पर कहानी हज़ारों वर्षोंतक जीवित रहेगी और चलेगी। कहानी किसी-न-किसी उद्देश्यसे लिखी जाती है। बृहस्पति-सूत्रमें एक आदर्श है : शिल्पी पहले हथौड़ा ले और काफ़ी सोच-विचार ले कि किस प्रकार हम अपनी कलामें सफल होंगे तब हथियार उठाये। फ़ारसीमें कहा गया है कि बिना खुदाकी मरज़ीके कुछ नहीं हो सकता। कुछ ऐसा पूछा गया है कि आदर्श क्या है ? मेरा विश्वास है कि बिना आदर्श और उद्देश्यके कहानी नहीं लिखी जा सकती लेकिन उद्देश्य शासन करता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना उद्देश्यके कुछ नहीं हो सकता। कहनेको जब हम खड़े होते हैं तो सभी बातें कह जाते हैं। देखना यह चाहिए कि उसमें उद्देश्य तथा शिल्प क्या है। ये बातें कहानीकारके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। आलोचक लेखकोंकी कमर तोड़ देता है। बीस साल, चालीस साल और साठ सालमें इतिहास नहीं लिखा जा सकता। आदमी पैदा हुआ, ज़िन्दा रहा और मर गया—यही इतिहास है। लोगोंने जो मानव-विकासकी चीज़ें लिखी हैं वही सच्चा साहित्य है। जो मानव-विकासको गिराये, वह ग़लत है। कोई भी काम बिना उद्देश्यके नहीं होता। हमारी संस्कृति 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' से आयी है। इनमें-से दो चीज़ें तो ध्यानमें आती हैं परन्तु तीसरी चीज़, मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलो, समझमें नहीं आती।

समारोहके संयोजक और सहायक। भारतीय संस्कृति संसद्के अध्यक्ष—सीताराम सेकसरिया। कर्मसचिव जगमोहनदास मूँधड़ा। परमानन्द चूड़ीवाल। भँवरमल सिंघी।

• बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा…

विष्णुकान्त शास्त्री : बड़े मनीषियोंकी बातोंसे बड़ी उपलब्धि होती है। उन्हें छोटे रूपमें एक बारमें समेट लेना जादूगरी होगी और मैं अपनेको इसमें समर्थ नहीं पाता। कुछ बातें स्पष्ट मैं ज़रूर करूँगा कि कहाँतक उनकी उपलब्धियाँ मानी जायें। उद्घाटन गोष्ठीमें शीलकी भावना रही है और इसमें दूसरोंको ठेस पहुँचानेकी चेष्टा नहीं की गयी है। जैनेन्द्रजीने अपनी बात स्पष्ट करते हुए यह बताया कि कहानी चर्चा करनेका विषय ही नहीं है। उसको जाननेका जितना प्रयास किया जायेगा उतनी ही अनजान बनती जायेगी—यह सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नवरत्न' का लोकप्रिय साहित्य

अभिनव सोपान	१५·००	मरकत द्वीप का स्वर (प्रेस में)		बंगाल का काल	२·००
दो चट्टानें	७·००	मिलन-यामिनी	३·५०	मैकबेथ	३·००
चार खंभे चौंसठ खूंटे	४·००	सतरंगिनी	३·००	अंधेरी	३·५०
त्रिभंगिमा	४·००	एकांत संगीत	२·५०	६४ रूसी कविताएं	३·००
आरती और अंगारे	४·००	हलाहल	२·५०	जन गीता	२·००
धार के इधर-उधर	२·२५	बुद्ध और नाचघर	३·००	खैयाम की मधुशाला	२·५०
सूत की माला	३·००	निशा-निमंत्रण	२·५०	सुमित्रानंदन पंत	२·००
खादी के फूल	३·००	मधुबाला	२·००	कवियों में सौम्य संत	५·००
आकुल अंतर	२·५०	मधुशाला	२·००	नये-पुराने झरोखे	४·५०
प्रणय-पत्रिका	२·५०	मधुकलश	२·००		

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें अच्छी बातें हैं और इसीके कारण यह बात उनको ठेस पहुँचाती है। पेशेवर टकराहट शुरू हुई। जीवनदृष्टिको नये कहानीकार स्वीकार नहीं करते। संश्लिष्टिकी बात करना ग़लत है। यह संश्लिष्टनिष्ठा क्या जीवनदृष्टि नहीं है। कहानीके बारेमें कुछ जानना नहीं चाहते। भगवतीचरण वर्मा भावनात्मक आदान-प्रदान पर बात करते हैं और उनके लिए यही मुख्य बात है। वास्तवमें जो बड़े विचारक हैं उनकी दृष्टि, जो अपनी दृष्टिमें सिमट पाये, उसे ही महत्त्व देते हैं। कहानीकी गति ही कहानीको बनाती है। मनोरंजन भी कहानीको अच्छा बनाता है। कहानी मनोरंजन करे या साहित्य मनोरंजन करे और उसके द्वारा साहित्यकारोंको ठेस लगे साहित्यकार जब इसे पेशेके रूपमें अपनाये तो उसे मनोरंजनका ध्यान अवश्य रखना चाहिए। नये कवियोंने युग-निर्माताकी ख्वाहिशको स्वतन्त्र नहीं किया है। कहानी कथाकी माँग-का एक तत्त्व है। कमलेश्वरने कहा कि नये साहित्यकार जीवनदृष्टिसे साहित्यकी ओर जाते हैं और यह वास्तवमें अभिनन्दनीय है। नयी कहानी एक विकास है और इसका रूप हम प्रेमचन्दमें भी पाते हैं। आलोचकों और अध्या-पकोंके प्रति नयी पीढ़ी द्वारा उपेक्षाकी भावना व्यक्त करना ठीक ही है क्योंकि आलोचकोंको, स्रष्टाका रूप नहीं मिल सकता, क्योंकि बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा····।

• आधुनिकता, अनास्था और नयी कहानी···

अक्षयचन्द्र शर्मा : कथाकारोंने जो कुछ कहा, कुछ पढ़े हुए शब्दोंमें और कुछ अपने मनसे। मैं अपनी मन:स्थितिके लिए कुछ कहूँगा तो ज़रूर, कथाकार मुझे माफ़ करेंगे। समकालीन शब्दकी व्याख्या नहीं हो पायी। वर्तमान एक शब्द है और समकालीन दूसरा। जब हम किसानसे बदलकर शहरमें आये तो कहने लगे कि हम आधुनिक हैं। जैनेन्द्रजीने कहा कि जो व्यक्ति आगे बढ़े वह नया बन जाता है और आगे चलकर अकेला हो जाता है तथा वही समकालीन कथाका व्यक्ति होता है। आधु-निक कथाबोधको समझनेके लिए हम सबसे हटकर एकाकीपनसे चलते हैं। हम व्यक्तिमें समाज देखना चाहते हैं यह दूसरी बात है। नयी कथाकी व्याख्या नहीं हो पायी है। 'नया' शब्द दिशाका कालबोध भी नहीं करता। मन की स्थितिको लेकर यह 'नया' शब्द चलता है। आधुनिकताके लिए यह ज़रूरी है कि उसमें आस्था न हो। आजकी कहानीमें उच्छेदवाद है। आजका कहानीकार अनास्थाके स्वरमें भी लिखते हैं, यह उनकी आस्थाका प्रमाण है। आधुनिक कथाबोध अपनेको नये-नये रूपोंमें भोग रहा है। आप स्वयं अपना परिवेश बनाते हैं। नयी कहानीकी विशेषता है विघ-टन—विश्लेषण आदि सभी बन्धनोंको तोड़ देना। आपने किसी चीज़को एक रूपमें कहा, हमने उसीको दूसरे रूपमें। दो पीढ़ियोंकी भाषा है साठ और तीन बीस। दूरतक टूटते हुए क्षणोंमें जो शृंखला बैठी है वही इसे अपनी जगहपर पहुँचाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्त्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातम दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : : जगदीश

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ६ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• समीक्षा-समस्या अपने आपमें समस्या...

रमेश बक्षी : विश्वविद्यालयोंमें जो पढ़ाई होती है उसमें समीक्षा स्पष्ट नहीं होती। समीक्षाकी जगह हमें अलग दिखाई देती है। परन्तु हम सीमा-रेखाके कारण बोल नहीं पाते। यह कथा-समारोह अखाड़ा नहीं था, स्वर अगर उग्र हुए तो कोई बात नहीं। डॉ० देवीशंकर अवस्थीने पहले कहा। यह बात पहले दशक के बारेमें भी होनी चाहिए थी। तीस-चालीस के दशकमें क्या बात रही और यथार्थकी खोज किन-किन बातोंमें हुई। यथार्थके सन्दर्भके लिए एक बातकी भूमि अवस्थीजीने दी थी। श्रीकान्तके भाषणसे कुछ गरमी आयी। इन्होंने कहा कि इतिहास पीढ़ी बनाती है और पीढ़ी ही तोड़ती है। यह क्रम चलता रहता है।

कथाके कौशलमें ह्रास होता जा रहा ऐसा उन्होंने कहा। केवल कुछ संकेत देना चाहते हैं ताकि बातोंको आगे बढ़ाया जा सकता है। उखड़ने और उखाड़नेकी बात देखी जायेगी। जेबी आलोचकोंका जवाब कमलेश्वरने दिया है। वृन्दावनलाल वर्माने कहा कि कहानीको कैसा होना चाहिए। सभी बातें इससे सामने आयीं परन्तु स्पष्ट नहीं हुईं। समीक्षाके इतिहासमें बड़ी गड़बड़ी व्याप्त है। नया प्रोफ़ेसर नयी चीज़ें प्रस्तुत नहीं कर सकता है। नयी पीढ़ीके जो अप्रकाशित संग्रह हैं यदि वे सामने आयें तो समीक्षाके लिए कुछ चीज़ सामने आये।

• समकालीनता, ईमानदारी और प्रश्नचिन्ह...

चन्द्रदेव सिंह : समकालीनबोध-गोष्ठी काफ़ी सफल रही। नये लेखकोंकी बातें हमें काफ़ी ठीक लगीं। जब हम उस दानीके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं, और उसकी बुराई करते हैं तो यही नयी बातें हैं। आज हम जो कुछ कहते हैं उसके प्रति ईमानदार नहीं है।

यदि आधुनिक जीवनको जीते हुए कुण्ठाओंका बोध होता है तो ग़लत है। हम विश्वके स्तरपर सोचते हैं तो हम उससे सम्प्रति नहीं रह सकते—दुनिया आज छोटी है। पुरानी पीढ़ीके विरोधमें जो बात कही, वह ठीक नहीं थी, क्योंकि वह समकालीन नहीं थी, इसलिए हम उसे समकालीन नहीं कह सकते। अपनेसे भय करनेकी भावना आपको किसने दी? आपके अन्दर वह शक्ति नहीं तो आप लड़ेंगे क्या, आप किस बूतेपर अपनेको आधुनिक होनेका दावा करेंगे?

• गोष्ठीका रूप अवान्तर...

भीमसेन त्यागी : शैलेश मटियानीने समयकी परम्पराको तोड़कर जो शुरूआतकी वह ग़लत थी। राजेन्द्र यादवने जो आधार-भूमि दी उसी के आधारपर उसकी बात कही गयी। यदि श्रीकान्त सभी लेखकोंपर विषयको बनाये रखते तो गोष्ठी बनी रहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमकीन बनाने के लिए

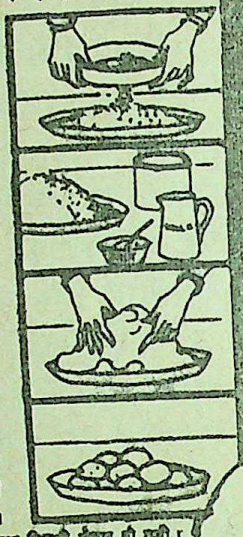

आटा छान लीजिए

नमक और डोकी वनस्पति मिलाकर इसे दूध के साथ सान लीजिए।

इसे अच्छी तरह गूंधिए।

छोटी-छोटी पेड़ियां बनाकर उन्हें बेल लीजिए और फिर गर्म वनस्पति में तल लीजिए।

लीजिए स्वादिष्ट और जायकेदार नमकीन तैयार हो गयी।

उत्तम एवम् स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए हनुमान वनस्पति पर भरोसा रखें।

भोजन बनाने का श्रेष्ठ चिकनाई माध्यम

हनुमान

वनस्पति

निर्माता :

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमियानगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• कथा-समारोह : एक उपलब्धि···

लक्ष्मीचन्द्र जैन : सिंह हो तो अवलोकन करे। बड़े-बड़े सिंह अवलोकन कर चुके हैं। सारे कथा-समारोहकी उपलब्धिके बारेमें मैं कुछ कहूँगा। कलकत्तेको यह अनुभव हुआ है कि साहित्यमें जिस तरह कहानीने उपलब्धि प्राप्त की है, यह कथा-समारोह भी उसकी एक विशिष्ट उपलब्धिकी तरह है। नयी पीढ़ीके व्यक्ति और आदि व्यंजनाओंके व्यक्ति भी कथा लिख रहे हैं। और उन्होंने इस सम्बन्धमें जो कुछ कहा है वह अच्छा कहा है। यह कलकत्तेवालोंकी नयी उपलब्धि है कि हमने अपने प्रेमी साहित्यकारोंके दर्शन किये और उनकी बातें सुनीं। जिन साहित्यकारोंकी पुस्तकें हम पढ़ते हैं उनके बारेमें यह सोचते भी हैं कि वह साहित्यकार कैसा है? जो कथाकार यहाँ उपस्थित हुए हैं उन कथाकारोंका साहित्य भी यदि हम यहाँ रखते, कि उन्होंने क्या-क्या लिखा है और उसमें क्या है तो इन साहित्यकारोंको भी मालूम होता कि उनके साहित्यकी कितनी माँग है। इस कथा-समारोहके आयोजनमें सफल हुए और इसमें आपने हमें जो सहयोग दिया उसके लिए हार्दिक धन्यवाद।

• पुरानी ज़मीन और नया कथाकार···

भँवरमल सिंघी : पहले लोग कहते थे कि पाँच तोला कहानी चूर्ण मिलानेसे ही कहानी बन जाती है।

जीवन्त मंचकी प्रतिष्ठा हुई कि विचारोंका आदान-प्रदान हो सके। हमने कहानीकारोंकी कहानियाँ सुनी हैं, जो कहानी लिखते हैं। जितने महारथी यहाँ आये हैं उनका टकराना स्वाभाविक ही है। जो लोग कहते हैं कि यह तीतर-बटेरकी लड़ाई है या केवल एक नाटक है, यह ग़लत है। पहले भी लोग लड़ते थे। पुरानी पीढ़ीको मरना है और नयी पीढ़ीको जन्म लेना है। पुराने साहित्यकारोंने हमें चिन्तन दिया है, उन्हें नये साहित्य कुचल रहे हैं। संघर्ष और समन्वय सदासे चलते आये हैं। समन्वयसे इतिहास बढ़ता नहीं। संघर्षसे बढ़ता है। जीवनके जो उपकरण बदले हैं उन्हें नया साहित्यकार अपनी भाषामें बोलता है। सड़ी हुई मिट्टीमें नया कहानीकार दबना नहीं चाहता। वह अपने लिए पुरानी ज़मीन तोड़कर नयी ज़मीनका निर्माण करना चाहता है और कर रहा है। नये कहानीकारोंमें जीवनका सच्चा रूप झलकता है। नये कहानीकारोंने हमें जीवनकी नयी दृष्टि दी है। जीवनमें वह जो कुछ देखता है उसे ही चित्रित करता है। उसकी रचनाओंमें यथार्थकी झलक हमें मिलती है। समारोह लड़ाई या नाटक नहीं था, यह यथार्थ था।

• नये कहानीकारकी सामर्थ्य : परिपक्वता···

कल्याणमल लोढ़ा : आजके कहानीकार यह सोचते हैं कि हम उनके अवरोधमें हैं, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़लत है। इतिहास हमारे सामने दो रूपोंमें आता है। आजका युग १९१४ का युग नहीं है, आजके कहानीकारको बढ़ावा देते हैं। युग बदलती हुई परिस्थितियोंका होता है, मनुष्यका नहीं। कोई कथाकार समकालीन रुचिकी अवहेलना नहीं कर सकता। यथार्थ शब्द गुमराह है। आजके यथार्थमें और पहलेके यथार्थमें अन्तर है। कहानी मस्तिष्ककी उपज है, ऐसा कहा गया है। आज व्यक्तिमें समाज है। समाजमें व्यक्ति होनेकी परम्परा खत्म हो गयी है। आजके नये कहानीकारकी समर्थता परिपक्वताकी बहुत बड़ी देन है। इस समारोहमें व्यक्ति सामने आनेपर सिद्धान्त गौण हो गये।

● नये सत्यको आप रोक नहीं सकते हैं...

सीताराम सेकसरिया : समारोहकी सारी व्यवस्था आपने देखी। संघर्षोंके अन्दर यह समापन हो सका। जिन चेहरोंको आप यहाँ देख रहे हैं वे जहाँसे आये हैं वहाँ चले जायेंगे। पर बहुत-से चेहरे, जो यहाँ नहीं आये हैं, उन्होंने भी बहुत सहयोग दिया है। समाजमें एक नया विकास लानेके लिए संसद् सदा एक नयी चेष्टा कर रही है। वह कहाँ तक अपने उद्देश्यमें सफल हो रही है यह आप जानें। हमारा उद्देश्य हिन्दी-भवन बनानेका है। हमारा हिन्दी-भवन बन जाये तो हम आपको वहाँ ठहरायें और आपका स्वागत अब दूसरी बार उसीमें करें, ऐसी मेरी अभिलाषा है। आप लोग यहाँ आये, इसके लिए हम आपके आभारी हैं। आप लोगोंने जो विचार दिये हैं उन्हें सुननेकी हमारी इच्छा थी। इसमें आपकी और आपके विचारोंकी सफलता है। जीवित साहित्यमें नया और पुराना क्या? जो व्यक्ति बैलगाड़ीपर चढ़ा था वह अब हवाई जहाज़में चढ़ता है, इसे हम नया नहीं कहते। जो नया सत्य प्रकट हो रहा है उसे आप रोक नहीं सकते। सब लोग बदले हैं, रंग बदला है, समाज बदला है, आजकी सभी चीज़ें बदल रही हैं, इसे हमें स्वीकार करना पड़ेगा। समुद्रमें लहरें उठती हैं और हर आनेवाली लहर पुरानी मानी जाती है। पत्ते गिरते हैं और फिर नये पत्ते आते हैं पर यह सब क्षणिक नयापन है। जहाँ क्षणमें प्लॉट बदलते हैं वहाँ नया और पुराना क्या? तुलसीदास जीता है क्योंकि उसका साहित्य अमर है। समय बदलता है साहित्य नहीं। हम नये साहित्यका स्वागत करते हैं परन्तु पुराने साहित्यका अपमान करनेका अधिकार हमें नहीं। शरीर हमारा वही रहेगा, कपड़े बदलेंगे। नये कथाकारका मूड होटलमें बनता है ड्राइंग-रूममें नहीं। पुराना आदर्श खत्म हो गया है। अब वे पुरानी बातें नहीं रहीं। हमें जो अच्छा लगे वह नया है और जो अच्छा न लगे वही पुराना है। जहाँ दो-चार वर्षमें ही अन्तर होता है वहाँ किसे नया और किसे पुराना कहा जाये। अन्तमें मैं आपको संसद्की ओरसे और अपनी ओरसे धन्यवाद देता हूँ कि आपने अपना अमूल्य समय देकर हमें कुछ दिया और कुछ अपने लिए भी सँजोया।

[समारोहकी ध्वनि-लिपि विट्ठलदास मूँधड़ाके सौजन्यसे प्राप्त हुई और इसे शब्दशः प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया रंगनाथ राकेश, कृपाशंकर सिंह तथा आद्याप्रसाद त्रिपाठीने—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११ जनवरीको हिन्दीके समर्थ आलोचक डॉ० देवीशंकर अवस्थी दुर्घटना-ग्रस्त हो गये थे और दुर्भाग्य कि १३ जनवरीको प्रातः उनका निधन हो गया। अवस्थीजीने नयी पीढ़ीको सबसे अधिक समझा था..... यह अब समझमें आ रहा है.....

डॉ० देवीशंकर अवस्थी

(१९३०–१९६६)

२५ दिसम्बर १९६५, प्रातः ९ बजे : (ऊपर बायें) कलकत्ता कथा-समारोहकी समीक्षा-गोष्ठी : 'सारी कथा-प्रगतिको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखना होगा तभी ठीक-ठीक समीक्षा की जा सकेगी। कहानीका बादका स्वर जो उभर रहा है, वह बदला हुआ है।'

वही दिन, दोपहर ५ बजे : (ऊपर दायें) 'समकालीन बोध और दायित्व' का सन्दर्भ : 'मैंने नयी पीढ़ीके लिए, उभरते हुए स्वरके लिए जो रेखा खींची थी, वह हॉरीज़ेण्टल थी, वर्टीकल नहीं। मैंने उभरते हुए स्वरको रेखांकित करनेका प्रयास किया था, उसे काटकर अलग करने-का नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

की

गौरवपूर्ण परम्परामें
नयी कड़ी

मई १९६६ को
प्रकाशित हो रहा है

अपनी प्रति आज ही
सुरक्षित करा लें

केरल विशेषांक

उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु : भावात्मक एकताका प्रतीक

केरलकी समसामयिक काव्यधारा, कथा-साहित्य, नाटच-विधा, लोक-संस्कृति, शिल्प और कला, केरलीय समाज-परम्परा और प्रचलन; केरलकी सन्तधारा; केरलीय संस्कृत साहित्यकारोंकी देन; केरलमें इस्लाम तथा यहूदी धर्म; केरलीय दर्शन, ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र तथा मलयालम भाषा और लिपिके परिचयके साथ मलयालम कविताओं, कहानियों तथा अन्य विधाओंसे सुसज्जित।

इस **केरल विशेषांक** के कुछ प्रमुख लेखक

सर्वश्री ए० चन्द्रहासन, पी० नारायण, अब्राहम जेकब, एस० वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर, विश्वनाथ अय्यर, किलिमानूर एन० विश्वम्भरन्, टी० भास्करन्, ए० श्रीधर मेनन, के० नारायणन्, एम० चन्द्रशेखरन नायर, वी० ए० केशवन नंपूतिरि, आर० रामन नंपूतिरि, एन० पुरुषोत्तम मल्लय्या, रवि वर्मा, रामचन्द्र देव, जी० शंकर कुरुप, पी० कुंजुरामन नायर, वेलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, अक्कित्तम् अच्युतन नंपूतिरि, तकाषी शिवशंकर पिल्ला और श्रीमती बालामणि अम्मा तथा सुगत कुमारी।

केरलीय साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शनका यह सन्दर्भ-ग्रन्थ
अवश्य पठनीय और संग्रहणीय है

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक १०.००; इस विशेषांकका २.५०

३१ मार्च १९६६ के पूर्वके वार्षिक ग्राहकोंको इस विशेषांकका
पृथक् मूल्य न देना होगा।

पो० बा० नं० ६० इलाहाबाद	सम्पादकीय **माध्यम** सम्पर्क-सूत्र व्यवस्थापकीय	हिन्दी साहित्य सम्मे लन, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-समारोह

: कुछ और बिन्दु

कनुसे कनुप्रिया :
'मन्त्र पढ़े बाण से
छूट गये तुम तो कनु,
शेष रही मैं केवल
काँपती प्रत्यंचा सी···'

• **कनुप्रिया :** कथा-समारोहके अवसरपर २५ दिसम्बर १९६५ को रात्रि डॉ० धर्मवीर भारती लिखित कनुप्रियाका नृत्य-नाट्य प्रस्तुत किया। शिक्षायतनकी छात्राओं-द्वारा प्रस्तुत 'कनुप्रिया' की प्रशंसाका श्रेय उसके भावमय अभिनय और प्रभावोत्पादक प्रस्तुतिको है। वियोगिनी राधाके रूपमें प्रतिभा शर्माके अभिनयकी विशेष सराहना की गयी।

• **स्मारिका :** कथा-समारोहके अवसरपर भारतीय संस्कृति संसद्-द्वारा एक पुस्तिका भी प्रकाशित की गयी थी। उसके 'कथा-सूत्र' में यह अपेक्षा ज़ाहिर की गयी है कि इस समारोहमें 'कथा-सर्जक, समीक्षक व पाठक तीनों ही एक मंचपर साथ बैठकर चर्चा करें और विचारोंका आदान-प्रदान करें। हमारे आयोजनकी सार्थकता तो इसी बातमें है कि इन सबपर विचार हो, जिससे कथा-प्रवाह कुछ और गति, कुछ निश्चित दिशा पा सके।' इस पुस्तिकामें भारतीय संस्कृति संसद्की गतिविधियोंका ब्यौरा भी दिया गया है और 'कथा की कहानी : अकहानी तक' शीर्षक लेखमें श्री अक्षयचन्द्र शर्माने कहा है : 'आजकी कहानी जीवनकी जटिलताओं व संकुलताओंसे जूझ रही है। भावबोध और सौन्दर्य-बोधके नये स्तरोंको पानेके लिए अधीर है। कथ्य बदले हैं अतः कथनके ढंग बदले हैं।'

• **सहायता :** भारतीय संस्कृति संसद्के अध्यक्ष श्री सीताराम सेकसरियाने यह घोषणा की कि अपनी बीमारीसे जूझते हुए रुग्ण तथा ज़रूरतमन्द साहित्यकारोंको संसद्की ओरसे छह हज़ार रुपये प्रतिवर्ष, आगामी पाँच वर्षों तक, दिये जायेंगे। ये तीस हज़ार रुपये साहित्यके प्रति संसद्की सहज सद्भावना हैं।

• **आभार :** समारोहके अन्तमें अभ्यागतों-द्वारा श्री जैनेन्द्रकुमार और डॉ० देवीशंकर अवस्थी-ने संसद्को उनके आतिथ्य और आदरके लिए धन्यवाद दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

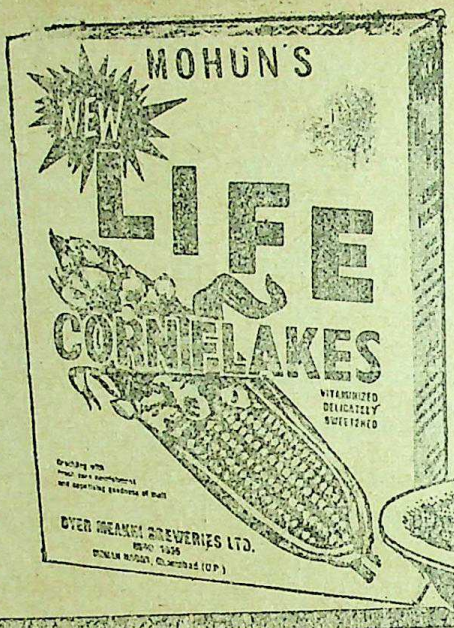

सनशाइन
नाश्ता
बच्चों के
पालन पोषण
के लिये
उत्तम

मोहन्ज़
न्यू लाइफ
कार्न फ्लेक्स

जब आप अपने बच्चों को मोहन्ज न्यू "लाइफ कार्न फलेक्स" का नाश्ता कराते हैं तो आप उन्हें विटामिन से भरपूर उनका मनपसन्द हल्का नाश्ता देते हैं और माता पिता का स्नेह ही उनके जीवन के विकास के लिये आवश्यक है।

शताब्दी पुराना अनुभव विश्वास की गारन्टी है

ओवर सीकिन ब्रुअरीज़ लिमिटेड
स्थापित १८५५
मोहन नगर, गाजियाबाद (यू० पी०)

IP—716

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी : खण्डित होती कथा-मूर्ति....

कथा-समारोहकी अन्तिम कड़ी : महिला कथाकार और पाठिका-गोष्ठी। २७ दिसम्बर दुपहर ३ से ५॥ बजे तक। स्थान : मनीषा, भारतीय संस्कृति संसद्। परिचर्चाके विषय : अपनी समस्या और कथा-साहित्यमें नारीके इर्द-गिर्द घूमते प्रश्न। उपस्थिति : रजनी पनिकर, मन्नू भण्डारी, कविता सिन्हा, अनामिका, सुभद्रा हक्सर, आरती सेन, डॉ० प्रतिभा अग्रवाल, कुन्था जैन, उर्मिला माथुर, किरण जैन, ज्ञानवती लाठ, रविप्रभा वर्मन आदि।

अपने लेखनमें नारी-चित्रण और नारीसे सम्बन्धित समस्याओंके अंकनमें हमारी कथा-लेखिकाओंका क्या दृष्टिकोण रहता है—नारी होनेके नाते नारी-चरित्रोंकी रचनामें क्या वे अधिक यथार्थ भूमिपर उतरकर सच्ची संवेदनासे लिखती हैं या कि इस ओर अपने उत्तरदायित्वके प्रति अधिक सचेत और सतर्क हैं.... आदि कई प्रश्न सामने रखकर परिचर्चा हुई तथा श्रीमती रजनी पनिकर, मन्नू भण्डारी तथा कविता सिन्हाने अपने-अपने विचार प्रकट किये। मन्नू भण्डारीने बड़े सुन्दर, सुलझे ढंगसे बताया कि अबतककी कहानियों और उपन्यासोंकी नायिका-नारियाँ अधिकतर किसी-न-किसी पुरुषके व्यक्तित्वपर केन्द्रित होकर उसकी स्वीकृति या अस्वीकृतिसे प्रतिक्रियान्वित होकर या कहा जाये कि पुरुषकी 'विशफुल थिंकिंग'के अनुरूप श्रद्धामयी, करुणामयी, आज्ञापालिनी, त्याग और तपस्याकी मूर्त्ति गढ़ी जाती रहीं। यह अस्तित्व पुरुषके आधारपर ही खड़ा किया जाता था। नारीका वह चित्रण उसकी वास्तविक समग्रताको व्यक्त करनेमें असमर्थ था किन्तु आजके कथाकारने इस मनगढ़न्त मूर्त्तिको खण्डित कर उसे उसके वास्तविक यथार्थमें स्थापित किया है। आजकी कहानीमें नारीके बहुमुखी प्रेम-सम्बन्धोंकी चर्चा है, नैतिकता और अश्लीलताके परिवर्तित बोध अंकित हैं और नारी अपनी समग्रता और विविधतामें चित्रित है।

श्रीमती रजनी पनिकरने मन्नू भण्डारीसे सहमति प्रकट की। उन्होंने इस बातपर ज़ोर दिया कि हमें कहानियोंके सबल माध्यमसे ऐसी महिला-नायिकाओंकी रचना करनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए जो जीवनकी मौलिक और व्यावहारिक समस्याओंके समसामयिक समाधानोंको अपनाती हैं और नारीके समर्थ-सबल पक्षका समर्थन करती हैं। उदाहरणार्थ : नारीके परिवर्तित अधिकार, जैसे—विवाह-विच्छेद, पितासे उत्तराधिकारमें प्राप्त धन-जायदादका हक़ आदि जो केवल सैद्धान्तिक रूपसे स्वीकृत हैं, वे अनुकूल परिस्थितियों और कलाओंके परिप्रेक्ष्यमें कहानी-द्वारा प्रतिपादित हों। ...

मन्नू भण्डारीने कहा था कि कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा आदि ने नारीको परिवर्तित सन्दर्भोंमें चित्रित किया है।....इसकी ओर लक्ष्य करते हुए रजनी पनिकरने कहा कि यह गौरव और सन्तोषका विषय है कि आजकल बहुत-सी समर्थ नारी लेखिकाएँ क़लमकी धनी हैं। कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, उषा प्रियम्बदा, शशिप्रभा शास्त्री, शिवानी, चन्द्रा औलक, सोमा वीरा, ममता अग्रवाल आदि अनेकों प्रतिष्ठित तथा उगती हुई कथाकार हैं, जिन्हें नारी-जीवनके चित्रणके उत्तरदायित्वको विशेष रूपसे सँभालना है। हमें पुरुष-कथाकारोंके प्रभुत्व-प्रभावसे (चाहे वे पुराने हों या नये) विलग होकर अपनी बात स्वयं कहनी है क्योंकि तभी वह कहानी यथार्थ और सच्ची अनुभूतिके अधिक निकट होगी। मन्नू भण्डारीको पुराने कथाकारोंसे शिकायत थी कि उनकी नायिकाओंके आकर्षण, प्रेमके केन्द्र क्रान्तिकारी नेता आदि होते थे और रजनी पनिकरको यह कि आजकलके नायक या तो कलाकार हैं या लेखक, और कवि....उनका सुझाव था कि नायक सब वर्गके होने चाहिए....इंजीनियर, वैज्ञानिक, डॉक्टर, फ़िटर, मज़दूर, दुकानदार आदि। देशकी प्रगतिसूचक योजनाएँ—जैसे पंचायत-घर, नये प्रोजेक्टस, सिंचाई-बुआईके नये साधन, वैज्ञानिक अनुसन्धान, नये क़ानून, और समसामयिक घटनाओंका भी कहानियोंमें समावेश होना चाहिए।

श्रीमती कविता सिन्हाकी मुख्य शिकायत थी कि कथा-साहित्यने इस बातको वास्तविकतासे अधिक महत्त्व दिया है कि नारीकी सफलता-विफलता, आकर्षण-विकर्षणमें सेक्स भावना प्रधान है। इस सन्दर्भमें फ्रायडके सिद्धान्तोंका भी जिक्र हुआ। कुछका मत था कि फ्रायडका सिद्धान्त मान्य है और कुछने कहा कि वह अब आउट-डेटेड है।

पाठिकाओंकी ओरसे उठे प्रश्नोंमें-से एक यह भी था कि लेखकोंने सदैव नारीके अंग-प्रत्यंग, उसकी वेष-भूषा व शृंगार आदिके वर्णनको साहित्यमें प्रधानता दी है....क्या इस पक्षका इतना सूक्ष्म और स्पष्ट विवेचन साहित्यकार और पाठककी सुरुचिके प्रतिकूल नहीं है? प्रतिभा अग्रवालने लेखिकाओंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि ईमानदारी और स्पष्टवादिताके चक्करमें नैतिकता और व्यवहार-गत जीवनके मूल्योंका विवेचन करते समय अपने वक्तव्यों व कहानियोंके माध्यमसे वे उस सीमाको न उलाँघ जाये जो साधारण स्तरपर भारतीय गृहस्थको सुखी व सन्तुलित बनाये है। सुभद्रा हक्सरने कहा कि वे समझती हैं कि कहानीकी विधाकी विशेषता यह होनी चाहिए कि वह पाठकके अवकाशके

[शेष पृष्ठ १९० पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपते-छपते

कथा-समारोह

: इम्प्रेशन्स

हरिशंकर परसाईके

कलकत्तामें कथा-समारोह हो गया। लौटकर इधर आया, तो लोग पूछते हैं कि वहाँ क्या हुआ।

मैं याद करता हूँ कि वहाँ क्या हुआ। तीन दिनोंमें सात गोष्ठियाँ हुईं—गोष्ठियाँ नहीं, सार्वजनिक सभाएँ हुईं; क्योंकि शिक्षायतन कॉलेजका हॉल श्रोताओंसे भरा रहता था और ये श्रोता लेखकोंसे अपना हक़ माँगते थे—यानी यह कि तुम्हारा विचार-विनिमय तो ठीक है, पर हमारे लिए क्या है? लेखक कितना ही पाठक और श्रोताको नकारे, उसकी माँगकी अवहेलना नहीं कर सकता। इसलिए हर लेखकने इन श्रोताओंको बिठाये रखनेका खयाल रखा और हरएकने कमोबेश उन्हें प्रसन्न रखनेकी कोशिश की। अँगरेज़ीमें जिसे 'प्लेइंग अप टु दि गेलरी' कहते हैं, वह कुछ-न-कुछ सबने किया। निन्दा की, उन्होंने भी निन्दामें गरमी भरकर कुछ अंशोंमें यही किया। निहायत मनहूस लेखक मज़ाक़ कर रहे थे। और व्यंग्यके पात्र व्यंग्य बोलकर हमारे धन्धेपर चोट कर रहे थे। लेखकोंको अपने विषयसे हराना हो, तो उनके सामने बहुत-से श्रोता बिठा देना चाहिए। लेकिन इन श्रोताओंकी तारीफ़ करनी होगी, ये तीन-चार घण्टों तक होनेवाली बहसोंमें लगातार बैठे रहते थे और सही प्रतिक्रिया करते थे। इतनी बड़ी संख्यामें, इतने समझदार श्रोता एक जगह मिलना कलियुगके इस चौथे चरणमें दुर्लभ है।

'इस बीच कहीं कोई प्रतिष्ठित तो नहीं हो गया?'—परसाई।

चित्रमें—धनंजय वर्मा। हरिशंकर परसाई। भीष्म साहनी। लक्ष्मीनारायण लाल। कमलेश्वर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन दिनों तक परस्पर टकराहट हुई, जिसका मज़ा श्रोताओंने भी ख़ूब लिया। तीखी आलोचना हुई, उपहास हुआ और टोपियाँ भी उछाली गयीं। कुछ लोग सद्भाव-वश परेशान भी थे—कि यह क्या हो रहा है! एक निहायत भले आदमीने मुझसे कहा—क्यों साहब, यह जो हो रहा है, उसे देखकर लोग क्या सोचते होंगे! बंगला लेखकोंके गढ़ कलकत्तामें यह जो हो रहा है तो बंगलावाले हिन्दी लेखकोंके बारेमें क्या कहते होंगे? मैंने उनसे कहा—बंगलावाले कहते होंगे कि हिन्दी लेखक भेड़-बकरी नहीं हैं जो एक-से स्वरमें मिमियायें और एक ही झुण्डमें चलें। उनकी अपनी-अपनी आवाज़ है। वे विचार-वान् प्राणी हैं इसलिए टकराते हैं। अपने विश्वासोंसे वे आक्रोशके साथ चिपके हैं, इसलिए शोर भी होता है। बंगला लेखकोंमें सिर्फ़ विमल मित्र बोले, मगर उन्हें इसी बात-का दुःख था कि उनके सोलह सौ पेजी उपन्यासकी हिन्दीमें कटु आलोचना क्यों हो गयी!

तीन दिनों तक बहसें सुनकर और उनमें भाग लेकर यह निष्कर्ष निकला कि एक सम्मे-लन या संगोष्ठीकी लड़ाई दूसरे सम्मेलन तक ले जायी जाती है। यह लड़ाई इन मुद्दोंपर होती है :

१ : अगर जैनेन्द्रकुमार हाज़िर हों तो पीढ़ियोंकी लड़ाई—बल्कि जैनेन्द्रकुमारसे सारी पीढ़ियोंकी लड़ाई।

२ : अगर नामवर सिंह और श्रीकान्त हों और उधर राजेन्द्र यादव भी हों तो निर्मल वर्माको लेकर लड़ाई।

३ : अगर कोई अध्यापक बोले तो समस्त अध्यापक-वर्गसे समस्त नये लेखकोंकी लड़ाई। जैनेन्द्रकी पीढ़ीकी अध्यापकोंसे लड़ाई नहीं क्योंकि वे पाठ्यपुस्तकोंमें आ चुके हैं। और बक़ौल श्रीकान्तके, अध्यापिकाओंसे कोई लड़ाई नहीं।

४ : अगर राकेश-यादव-कमलेश्वर हों तो अपनेको 'सचेतन' कहनेवाले लेखकोंकी उनसे लड़ाई। इन तीनोंसे ऊपरकी पीढ़ीवालों-की भी इनसे लड़ाई।

५ : अगर अति नवीन लेखक हों, तो उनकी जैनेन्द्रसे लड़ाई और अपनेसे ऊपरकी पीढ़ीसे इनकार।

इस तरह हर सम्मेलनमें इन प्रश्नोंपर ही विचार होता है :

१. जैनेन्द्रकुमार आधुनिक हैं या नहीं?

२. उनके बादके लेखक पतित हैं या नहीं?

३. निर्मल वर्मा और राजेन्द्र यादवमें किसका शिल्प सार्थक है?

४. कमलेश्वर गुटबन्दी करते हैं या नहीं?

५. ग्रामीण कथावालोंका दल फिर सिमटा या नहीं?

६. क्या अकहानी आगेकी कहानी है?

७. क्या कॉलेजमें पढ़ाये जानेवाले कहानी-संग्रहोंकी भूमिकामें 'इत्यादि'के पहले कुछ और नाम जुड़े हैं? यदि नहीं, तो इसके लिए लेखकोंको क्या करना चाहिए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. पिछले सम्मेलनके समय जो बातें मुद्दे में थे, उससे अभी भी बँधे हैं या नहीं ? यदि कुछकी 'लायलटी' खत्म हो गयी, तो क्यों खत्म हो गयी ?

९. पत्रिकाओंके सम्पादकोंमें इस वक़्त क्या हेर-फेर हो रहा है ?

१०. इस बीच कहीं कोई प्रतिष्ठित तो नहीं हो गया ?

इन और इन-जैसे सवालोंको ही हर सम्मेलनमें हल किया जाता है और वे कभी हल नहीं होते।

मुझे एक-दो बातें बड़ी विचित्र, मगर आँखें खोलनेवाली लगीं। जो हाज़िर नहीं थे, वे साहित्यसे भी ग़ैर-हाज़िर मान लिये गये। अश्कको, जिन्होंने इलाहाबाद सम्मेलनमें तूफ़ान उठाया था, जानकर न जाने कैसा लगेगा कि उनका नाम किसीने एक बार भी नहीं लिया। और कहानी-विवादके एक प्रमुख प्रेरक डॉ० नामवरसिंहका नाम सिर्फ़ राजेन्द्र यादवने एक बार लिया। बहसकी पद्धति ऐसी थी कि उसमें सिर्फ़ उपस्थितोंका ही खयाल रहता था। अपनेसे पहले जो बोल गया है, उसे एक चपत लगाकर भाषण प्रारम्भ होता था और फिर जो दिख जाता उसपर प्रहार होते या उसका समर्थन होता। इसीलिए वे सब इस बार नाकामयाब हुए जो बहसके केन्द्र बन जाते हैं। बहसका केन्द्र कोई नहीं था और कुछ नहीं था। कुछ लोगों-ने बहुत कोशिश की कि चर्चाको सामाजिक दायित्व, प्रतिबद्धता, नये जीवन और कला-बोधकी तरफ़ खींचा जाये, पर वे खींच नहीं सके। श्रोतामें बैठे लेखक 'कुछ भी न मानने' की स्थितिको लेकर मंचपर आते और यह बताकर बैठते कि कुछ भी मानने योग्य नहीं है। एक-दूसरेसे सहमतिके मुद्दे तो साफ़ होते ही नहीं थे, असहमति भी स्पष्ट नहीं होती थी। कई बार ऐसा लगा कि यह लेखक उन लेखकोंसे असहमत है या सहमत—यही समझमें नहीं आता। इतने तूफ़ानी अन्दाज़में वक्तव्य दिये जाते थे और घोषणाएँ की जाती थीं कि विषय एक तरफ़ रह जाता और घात-प्रतिघात प्रमुख हो जाते। भले आदमी बेचारे सकुचाते खड़े रहते थे। मैंने मन्नू भण्डारीसे कहा कि आपका नाम वक्ताओंमें है, आप बोलती क्यों नहीं ? उन्होंने कहा—बताइए भला, ऐसेमें हम कैसे बोलें ?

इन सम्मेलनोंसे मैंने एक बात यह सीखी थी कि अपना 'प्राइवेट' आलोचक हमेशा साथ

हिन्दीका सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास

स्व० लाला श्रीनिवासदास

कृत

परीक्षा गुरू

मूल्य ६.२५

•

सब प्रकारकी हिन्दी पुस्तकोंके विक्रेता,

ज्ञान प्रकाशन

२१ दरियागंज, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले जाना चाहिए। जिनकी हैसियत है वे अपना व्यक्तिगत डॉक्टर रखते ही हैं। यह आलोचक दूसरोंको उखाड़े और हमें जमाये। मगर इस सम्मेलनमें देखा कि इसमें भी धोखा हो जाता है। धनंजय वर्मा बक्षीके घर ठहरे, उनकी सेवा ग्रहण की, मगर तीसरे दिन उपलब्धियोंवाली गोष्ठीमें यादवकी सबसे ज़्यादा तारीफ़ की और यादव, गोष्ठीके बाद, धनंजयको भगा ले गये। बेचारे बक्षीने अपनी रूमानी उदारतामें इसे हँसकर टाल दिया। मैं हँसकर नहीं टाल सकता था। ऐसा आलोचक या तो आलोचक न रहता या ज़िन्दा न रहता।

हिन्दी आलोचनाकी दुर्गतिकी बात भी बहुत हुई। मेरा खयाल है, दुर्गतिका मुख्य कारण यह है कि आलोचक भी साहित्य प्रतिष्ठित होनेकी कोशिश करता है। आल चकको साहित्यमें प्रतिष्ठित होनेकी कोशि नहीं करनी चाहिए क्योंकि आलोचना साहि तर कार्य है। जब वह प्रतिष्ठित होनेके लि सृजनशील साहित्यकारका सहारा लेता तब लेखक उसपर हावी होने लगता है फिर परस्पर कुछ ऐसे सम्बन्ध बन जाते हैं, बड़ा गोलमाल पैदा होता है।

कथा-समारोहकी यह रिपोर्ट नहीं वह अलग छपी है जिससे मालूम होगा बहुत उपयोगी चर्चाएँ इन गोष्ठियोंमें हुई ये मेरे छिटपुट इम्प्रेशन्स हैं, पूरे समारोह सम्बन्धमें निष्कर्ष नहीं।

[पृष्ठ १८६ का शेष : नारी : खण्डित होती कथा-मूर्ति]

क्षणोंको सहज मनोरंजन दे सके, जीवनके गम्भीर पहलूको समझनेमें दर्शन और धर्मका साहित्य सहायक होता है।

कुन्था जैनने कहा कि लेखिकाओं और पाठकोंके पारस्परिक विचार-विनिमयके द्वारा बहुत-सी मनमें बैठी बातें खुलीं और सामने आयीं। साहित्य, भले ही वह कथा-साहित्य हो या काव्यत्मक या गद्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, समाज-शास्त्र, प्रकृति और संस्कृति—सबके समन्वयसे यह उद्भूत होता है। और उसकी रचना-प्रक्रियामें सब समाहित होते हैं। इसलिए जीवन जीनेके लिए साहित्यसे बढ़कर कोई उपादान नहीं और साहित्य यदि गुमराह करनेके इरादे ही नहीं लिखा गया है (और जो साहित्य कोटिमें आता भी नहीं) तो वह व्यक्ति दृष्टिकी व्यापकता, संवेदनाओंकी प्रसारता बुद्धिकी विकासशीलता देकर जीवनको सु रूपमें जीना सिखाता है। आधुनिक क लेखनने जिस ईमानदारी और साहसके सा अनकन्वेन्शनल होकर जीवनके विविध पहलु का चित्रण किया है, वह सराहनीय है देखना यही है कि खरे साहित्यिक सिक्के साथ-साथ निकम्मे और खोटे सिक्के न निकलें····वरना साहित्यिक पूँजी खोखली असमृद्ध हो जायेगी और साथ-ही-सा जीवन भी !····

(प्रस्तुति : कुन्था जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा | संग्रह समीक्षा सम्पादन — अनुक्रमणिका

कथा-संग्रह :

अंचल, रामेश्वर शुक्ल : तारे, ये वे बहुतेरे

अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन : विपथगा, कोठरीकी बात, परम्परा, शरणार्थी

अश्क, उपेन्द्रनाथ : सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ, पिंजरा, काले साहब, जुदाईकी शामका गीत, बैंगनका पौधा, कहानी लेखिका और जेहलमके सात पुल, छीटे, पलंग, दो धारा, फ़ितने

अमरकान्त : पराई डालका पंछी, ज़िन्दगी और जोंक

अवस्थी, राजेन्द्र : मकड़ीके जाले, महुआ आमके जंगल, गंगाकी लहरें, एक प्यास पहेली

इस्सर, देवेन्द्र : फूल बच्चा और ज़िन्दगी

उग्र, पाण्डेय बेचन शर्मा : रेशमी, घण्टा, जब सारा आलम सोता है, मुक्ता

उपाध्याय, भगवतशरण : सबेरा, संघर्ष, गर्जन, विलासिनी, लाशपर

उपाध्याय, रामनारायण : अनजाने, जाने पहिचाने, जब अफ़सरने गाय खरीदी, रोज़-की कहानी

ओंकार शरद् : कच्ची नींद, झपकियाँ

कमलेश्वर : राजा निरबंसिया, खोई हुई दिशाएँ, कमलेश्वरकी श्रेष्ठ कहानियाँ, नीली झील और अन्य कहानियाँ

किशोर, गिरिराज : नीमके फूल, चार मोती बेआब

किशोर, राजेन्द्र : ओ मत्स्यगन्धा : सूरज-मुखीके फूल ।

खरे, इन्द्रबहादुर : रेवा

गंगाधर, मधुकर : तीन रंग : तेरह चित्र, हिरनाकी आँखें, केंचुल और गन्ध

गुप्त, छेदीलाल : फन्दा, एक डब्बा प्यार

गुप्त, भैरव प्रसाद : बिगड़े हुए दिमाग़, महफ़िल, सपनेका अन्त, आँखोंका सवाल, सितारके तार, मंज़िल, मुहब्बतकी राहें, परिश्ता, दो चरित्र और बारह कहानियाँ

गुप्त, मन्मथनाथ : आँखें, मेरी प्रिय कहानियाँ, नवयात्रा, रक्तके बीज

गोयलीय, अ० प्र० : गहरे पानी पैठ, कुछ मोती : कुछ सीप, जिन खोजा तिन पाइयाँ, लो, कहानी सुनो !

चन्द्र, यादवेन्द्र शर्मा : एक इन्सानकी मौत : एक इन्सानका जन्म, विश्वामित्रकी खोज, नेत्रदान, बरफ़ समाधि, रामकी हत्या ।

चोपड़ा, सुदर्शन : हल्दीके दाग़

चौधरी, कमलादेवी : (श्रीमती) : उन्माद, यात्रा, पिकनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौहान, मनहर : बीस सुबहोंके बाद

चौहान, विजय (श्रीमती) : एक बुतशिकनका जन्म

जगोत्ता, राजेन्द्र : देखना मना है, गिलहरी और कँटीले तार

जैन, आनन्दप्रकाश : अतीतके कम्पन, चार आँखें

जैनेन्द्रकुमार : फाँसी, उद्भ्रान्त, नील देशकी राजकन्या, बीते दिन, पाज़ेब, एक रात, जय-सन्धि, दो चिड़ियाँ, वातायन, कथामाला, जैनेन्द्रकी कहानियाँ १–८

जैन, वीरेन्द्रकुमार : शेषदान, आत्मपरिणय

जोशी, इलाचन्द्र : दीवाली और होली, आहुति, डायरीके नीरस पृष्ठ, खण्डहरकी आत्माएँ, रोमाण्टिक छाया

जोशी, कमल : ब्रह्म और माया, माटीकी गन्ध, चारके चार, पत्थरकी आँख, फूलों-की माला

जोशी, सूर्यकुमार : सत्यानाशीके फूल

जोशी, हिमांशु : अन्ततः

टण्डन, प्रतापनारायण : बदलते इरादे, शून्य-की पूर्ति।

नागर, अमृतलाल : अवशेष, वटिका, पीपल-की परी, एक दिल हज़ार दास्ताँ, एटम बम, तुलाराम शास्त्री, नवाबी मसनद

नागार्जुन : चेहरे : नये पुराने।

नारायण, ब्रजकिशोर : आजका प्रेम, पत्नीका कन्यादान, देखनमें छोटे लगैं, बावन हाथ

निर्गुण, द्विजेन्द्रनाथ मिश्र : प्यारके भूखे, जिन्दगी, टूटे सपने, पूर्ति, बहूजी, टीला, कच्चा धागा, छाया, खोज, दो किनारे

नौटियाल, विद्यासागर : भैंसका कट्या

नौटियाल, सन्तोषनारायण : चवन्नीवा तराज़ू और बट्टे, साँझ हुई पंछी घर आ

प्रभाकर, विष्णु : संघर्षके बाद, धरती भी घूम रही है, खण्डित पूजा, साँचे कला, सफ़रके साथी

भाकर, कन्हैयालाल मिश्र : आकाशके धरतीके फूल

प्रियम्बदा, उषा : ज़िन्दगी और गुलाबके फू कोई एक दूसरा तथा अन्य कहानियाँ

परदेशी : चम्पाके फूल, सन्देहका शिकृ देवता हो तो पाषाण बने रहो

परसाई, हरिशंकर : तबकी बात और ब जैसे उनके दिन फिरे

पाठक, जितेन्द्रनाथ : कनेरके फूल और क टट्टर

भण्डारी, मन्नू : मैं हार गयी, तीन निगाहोंकी एक तस्वीर, यही सच है, मन्नू भण्डारीकी श्रेष्ठ कहानियाँ

भ्रमर, रामकुमार : ड्यूटी मुस्कानेंगे गिरस्तिन

भारती, धर्मवीर : मुर्दोंका गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग।

भिक्खु : मृत्युकी मीनार, काला पत्थर

बक्षी, रमेश : मेज़पर टिकी हुई कुहनि दुहरी ज़िन्दगी

बख्शी, स्वरूपकुमारी : कौड़ियोंका नाच

बेनीपुरी, रामवृक्ष : चिताके फूल, फूलों गुच्छा, लाल तारा, झोपड़ीका रुदन, नारी

बेद, कृष्ण बलदेव : बीचका दरवाज़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मटियानी, शैलेश : मेरी तैंतीस कहानियाँ, धर्मयात्राकी सुबह
मदारिया, मनमोहन : एक वासन्ती रात
मल्लिक, सत्यवती (श्रीमती) : नारी हृदय की साध
मल्होत्रा, सुरेन्द्रकुमार : पुराना दीया : नयी रोशनी
महेन्द्रनाथ : चाँदीके तार
मार्कण्डेय : पान-फूल, महुएका पेड़
माचवे, प्रभाकर (डॉ०) : संगीनोंके साये, ये विदेशिनियाँ
मिश्र, केशवप्रसाद : समुहुत, और तुलसी लग गयी, जलकुम्भीके फूल
मिश्र, गंगाप्रसाद : नयी राहें, काँटोंका ताज, आदर्श और यथार्थ
मुक्त, प्रफुल्लचन्द्र ओझा : आहुति
मेहता, नरेश : तथापि
मेहरोत्रा, शान्ति : सुर्खाबके पर
मेंहदीरत्ता, वीरेन्द्र : शिमलेकी क्रीम, पुरानी मिट्टी : नये ढाँचे
यशपाल : अभिशप्त, फूलोंका कुरता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा कि मैं सुन्दर हूँ, उत्तमीकी माँ, उत्तराधिकारी, चित्रका शीर्षक, भस्मावृत चिनगारी, वो दुनिया, ज्ञानदान, खच्चर और आदमी, नशे-नशेकी बात, सच बोलनेकी भूल, तर्कका तूफ़ान, ओ भैरवी
यादव, राजेन्द्र : देवताओंकी मूर्त्तियाँ, जहाँ लक्ष्मी क़ैद है, अभिमन्युकी आत्महत्या, किनारेसे किनारे तक, प्रतीक्षा, छोटे-छोटे ताजमहल, खेल-खिलौने, टूटना और अन्य कहानियाँ, राजेन्द्र यादवकी श्रेष्ठ कहानियाँ
राकेश, मोहन : एक और ज़िन्दगी, नये बादल, जानवर और जानवर, फ़ौलादका आकाश ।
राय, अमृत : इतिहास, जीवनके पहलू, चित्रफलक, कठघरे, लाल धरती, गीली मिट्टी, क़स्बेका एक दिन, भोरसे पहले
राय, कृष्णदास : अनाख्या, सुधांशु, आँखोंकी थाह
राय, बैजनाथ : मुक्ताहार, हीरक हार
रावी : पहला कहानीकार, मेरे कथागुरुका कहना है, प्यारके बन्धन
रेणु, फणीश्वरनाथ : ठुमरी
रैना, विमला : हम तुम और वे, बुझे दीप ।
लाल, लक्ष्मीनारायण : (डॉ०) सूने अँगन रस बरसै, एक बूँद जल, एक और कहानी, नये स्वर : नयी रेखाएँ
व्यास, विनोदशंकर : नवपल्लव, धूप-दीप
वर्मा, निर्मल : जलती झाड़ी, परिन्दे
वर्मा, भगवतीचरण : अंगारे, इंस्टालमेण्ट, तीन वर्ष
वर्मा, महादेवी : स्मृतिकी रेखाएँ
वर्मा, श्रीकान्त : झाड़ी
वाजपेयी, भगवतीप्रसाद : पुष्करिणी, खाली बोतल, मीठी चुटकी, मेरे सपने, अष्टदल, ज्वार-भाटा, मधुपर्क
विद्यालंकार, चन्द्रगुप्त : चन्द्रकला, भयका राज्य
शरत्, सत्येन्द्र : नील कमल, कुहासा और किरण, नया सफ़र
शर्मा, श्रीराम : बोलती प्रतिमा, विषाद
शानी : बबूलकी छाँव, डाली नहीं फूलती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे घेरेका विद्रोह

शिवानी : लाल हवेली

शुक्ल, प्रयाग : अकेली आकृतियाँ, कितना कुछ

शेवड़े, अनन्त गोपाल : भग्न मन्दिर, निशा-गीत, अधूरा सपना।

श्रीवास्तव, जी० पी० : दो रास्ते, दिल ही तो है, दिलकी आग उर्फ़ दिलजलेकी आह, गंगा-जमुना उर्फ़ प्रेम-रहस्य, लम्बी दाढ़ी।

श्रीवास्तव, हिमांशु : लोहेके पंख, कलाकार-की आँखें, मेजरकी पत्नी, नया इन्सान।

संगर, सत्यप्रकाश : अवगुण्ठन, नया मार्ग, लम्बे दिन जलती रातें, कितना ऊँचा : कितना नीचा, मुझे टिकट दो, हमदमें देरीनाका मिलना।

सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल : पागल कुत्तोंका मसीहा

सत्यार्थी, देवेन्द्र : चट्टानोंसे पूछ लो, चायका रंग, क्या गोरी क्या साँवरी, नये घानसे पहले, सड़क नहीं बन्दूक़

सब्बरवाल, कंचनलता : भूख, प्यासी धरती सूखे ताल, धुँधली रेखाएँ

सरल, मनमोहन : प्यास एक : रूप दो

सहाय, रघुवीर : सीढ़ियोंपर धूपमें

साहनी, भीष्म : भाग्यरेखा, पहला पाठ, भट-कती राख

साहू, किशोर : टेसूके फूल

सिंह, अवधनारायण : एक बिन्दु : अनेक कोण

सिंह, आरसीप्रसाद : आँधीके पत्ते, एक प्याला चाय

सिंह, उदयराज : अधूरी नारी, भागते किनारे, नवतारा

सिंह, ठाकुरप्रसाद : चौथी पीढ़ी

सिंह, बच्चन (डॉ०) : तीरोंके व्यूह

सिंह, भगवतीशरण : अपराजिता

सिंह, महीप : उजालेके उल्लू, सुबहके फूल

सिंह, राजा राधिकारमण प्रसाद : गाँधी टोपी, सावनी समाँ, नवजीवन, कुसुमांजलि, बिखरे मोती, अबला क्या ऐसी सबला ?

सिंह, राजेश्वर प्रसाद : अभिनय, आदर्श और जिन्दगी, खेल, कलाकारका प्रेम, जारज, दीपदान, सुलगती आग

सिंह, शमशेर बहादुर : प्लाटका मोर्चा

सिंह, शिवप्रसाद : आरपारकी माला, कर्म-नाशाकी हार, इन्हें भी इन्तज़ार है, सूरदासराय

सेंगर, मोहनसिंह : अँधियारे तारे, चिताकी चिनगारियाँ, डूबता सूरज, जीवनका सत्य, खूनके धब्बे, मुर्देकी मौत, नरकका न्याय

सुदर्शन : तीर्थयात्रा, सुप्रभात, झरोखे, पनघट, नगीने, परिवर्तन

सोमा वीरा : धरतीकी बेटी, परछाइयोंके प्रश्न

■ कथा-समीक्षा :

अवस्थी, देवीशंकर : (डॉ०) : नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, विवेकके रंग

अश्क, उपेन्द्रनाथ : हिन्दी कहानियाँ और फ़ैशन, हिन्दी कहानी : उपलब्धियाँ : दिशाएँ

उपाध्याय, देवराज : आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान।

भारती, धर्मवीर : (डॉ०) : मानवमूल्य और साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल, लक्ष्मीनारायण : (डॉ०) : हिन्दी कहानियोंकी शिल्पविधिका विकास

वर्मा, धनंजय : नयी कहानीकी उपलब्धियाँ

वार्ष्णेय, कुसुम : हिन्दी कथा-साहित्यमें नायककी परिकल्पना

श्रीवास्तव, परमानन्द : हिन्दी कहानीकी रचना-प्रक्रिया

शर्मा, जगन्नाथ : कहानीकी रचना-प्रक्रिया

शर्मा, ब्रह्मदत्त : हिन्दी कहानियोंका विवेचनात्मक अध्ययन

हांडा, सीता (श्रीमती) : आधुनिक हिन्दी साहित्यमें आख्यायिकाके विकासका विवेचनात्मक अध्ययन

सिन्हा, सुरेश (डॉ०) : नयी कहानीकी मूल संवेदना

■ **सम्पादन :**

अंचल, रामेश्वर शुक्ल : कथा-कौमुदी

किशोर, गिरिराज : लहू पुकारेगा

गुप्त, भैरव प्रसाद : मित्तो और अन्य कहानियाँ, भारतकी आधुनिक श्रेष्ठ कहानियाँ, हिन्दीकी आधुनिक श्रेष्ठ कहानियाँ

टण्डन, प्रतापनारायण (डॉ०) : नयी कहानी—संकलन १९५६

चन्द्र, यादवेन्द्र शर्मा : ये कथा-रूप, राजस्थानके कहानीकार भाग—१

देवड़ा, शरद : कथान्तर (अनुवाद)

प्रभाकर, विष्णु : सप्तदशी

पण्डित, राजनाथ : पूर्णिमा

मदान, इन्द्रनाथ (डॉ०) : कहानी और कहानी

यादव, राजेन्द्र : एक दुनिया समानान्तर

लाल, श्रीकृष्ण (डॉ०) : इक्कीस कहानियाँ

व्यास, विनोदशंकर : मधुकरी (चार भाग)

वाजपेयी, नन्ददुलारे : हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानियाँ

श्रीकृष्ण : प्रतिनिधि कहानी लेखिकाएँ

शरत्, सत्येन्द्र : नये चित्र, सरिता

सरल, मनमोहन : प्रतिनिधि हास्य कहानियाँ, प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ

[यदि कुछ प्रकाशित संग्रह हमारे अनजाने छूटे हों तो कृपया सूचना दें ताकि पूरक-सूचीमें उन्हें सम्मिलित किया जा सके ।—सं०]

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ १० का शेष : कवि शंकर कुरुपकी 'बाँसुरी' सम्मानित]

तेलुगु उपन्यास 'वेयी पडगुलु' (सहस्रफण) के अनुवादक आन्ध्र प्रदेशके विधिमन्त्री श्री नरसिंह राव थे। प्रवर-परिषद्के जिन सदस्योंने बैठकमें भाग लिया उनके नाम हैं : डॉ० सम्पूर्णानन्द, (अध्यक्ष), श्रीमती रमा जैन, डॉ० कर्णसिंह, डॉ० गोपाल रेड्डी, डॉ० आर० आर० दिवाकर, डॉ० निहाररंजन रे, काकासाहब कालेलकर तथा श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन। पुरस्कार भले ही 'ओटक्कुषल' पर घोषित हुआ है परन्तु उपर्युक्त चारों पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित किये जा रहे हैं। साथ ही प्रथम पुरस्कार पुस्तिका भी प्रकाशनाधीन है, जिसमें प्रवर-परिषद् तथा समितियोंके सदस्यों, अनुवादकों तथा समीक्षकोंके सचित्र परिचय तो होंगे ही, भारतीय ज्ञानपीठकी प्रवृत्तियों तथा पुरस्कार-योजनाकी पृष्ठभूमि आदिका भी परिचय होगा। पुरस्कार-वितरण समारोह दिल्लीमें इसी फ़रवरी या मार्चमें सम्पन्न होगा।

ज्ञानपीठ पुरस्कारके अगले चरण :

प्रथम पुरस्कारके साथ-ही-साथ द्वितीय पुरस्कार (१९६६) का कार्य भी बराबर चल रहा है। इस सम्बन्धमें चौदहों भाषाओं की परामर्श-समितियोंकी बैठकें हो चुकी हैं तथा उनके-द्वारा अनुशंसित पुस्तकें प्राप्त हो गयी हैं। अब ये पुस्तकें भाषा-वर्ग-सम्बन्धी समितियोंके समक्ष प्रस्तुतकी जायेंगी। तृतीय पुरस्कार (१९६७) की प्रगति-स्थिति यह है कि प्रस्ताव-पत्र दो महीने पूर्व ही सबको भेजे जा चुके हैं। धीरे-धीरे प्रस्ताव-पत्र प्राप्त होते जा रहे हैं। प्रस्ताव-पत्र भरकर भेजनेकी अन्तिम तारीख अब ३१ जनवरी कर दी गयी है।

[पृष्ठ ३२ का शेष : एक ठहरा हुआ चाकू]

था, पर तगड़ा होनेसे लम्बा भी लग रहा था।

"मतलब कि मैंने अभी इसे खाली नहीं किया है।"

"खाली नहीं किया, तो मैं अभी कराऊँ तुझसे खाली ?" कहते हुए सरदारने दाँत भींच लिये। "जल्दीसे उसके पैसे दे, और अपना रास्ता देख, वरना....।"

"वरना क्या होगा ?"

"बताऊँ तुझे क्या होगा ?" कहते हुए सरदारने उसे कॉलरसे पकड़कर अपनी तरफ़ खींच लिया और उसके मुँह पर एक झाँपड़ दे मारा—"यह होगा। अब आया समझमें दे जल्दीसे उसके पैसे और दफ़ा हो यहाँसे।"

उसका खून खौल गया—कि एक आदमी जिसे कि वह जानता तक नहीं, भरे बाज़ारमें उसके मुँह पर थप्पड़ मारकर उससे दफ़ा होनेको कह रहा है ! उसका चश्मा नीचे गिर गया था। उसे ढूँढते हुए उसने कहा "सरदार, ज़रा ज़बान सँभालकर बात कर।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या कहा ? ज़बान सँभालकर बात करूँ ? हरामज़ादे, तुझे पता हैं मैं कौन हूँ ?" जब तक उसने आँखों पर चश्मा लगाया, सरदार स्कूटरसे नीचे उतर आया था। उसका एक हाथ कुरतेकी जेबमें था।

"तू जो भी है, इस तरहकी बदतमीज़ी करनेका तुझे कोई हक़ नहीं," कहते-न-कहते उसने देखा कि सरदारकी जेबसे निकलकर एक चाक़ू उसके सामने खुल गया है। "तू अगर समझता है कि····" यह वाक्य वह पूरा नहीं कर पाया। खुले चाक़ूकी चमकसे उसकी ज़बान और छाती सहसा जकड़ गयी। उसके हाथके पैसे वहीं गिर गये और वह वहाँसे भाग खड़ा हुआ।

"ठहर मादर····अब जा कहाँ रहा है ?" उसने पीछेसे सुना।

"पैसे साहब !" यह आवाज़ स्कूटर वालेकी थी।

उसने जेबमें हाथ डाला और जितने सिक्के हाथमें आये निकालकर सड़क पर फेंक दिये। पीछे मुड़कर नहीं देखा। घरकी गली बिलकुल सामने थी, पर उस तरफ़ न जाकर वह जाने किस तरफ़को मुड़ गया। कहाँ तक और कितनी देर तक भागता रहा, इसका उसे होश नहीं रहा। जब होश हुआ, तो वह एक अपरिचित मकानके ज़ीनेमें खड़ा हाँफ रहा था····।

उसने पेंसिल हाथसे रख दी और हथेली पर बने शब्दोंको अँगूठेसे मल दिया। तब तक न जाने कितने शब्द और वहाँ लिखे गये थे जो पढ़े भी नहीं जा रहे थे। सब मिलाकर आड़ी-तिरछी लकीरोंका एक गुंझल था जो मल दिये जानेपर भी पूरी तरह मिटा नहीं। हथेली सामने किये वह कुछ देर उस अधबुझे गुंझलको देखता रहा। हर लकीरका नोक-नुक्ता कहींसे बाक़ी था। उसने सोचा कि वहाँ कहीं एक वाश-बेसिन होता, तो वह दोनों हाथोंको अच्छी तरह मलकर धो लेता।

"हलो....!"

उसने सिर उठाकर देखा। महेन्द्र, जिसके यहाँ वह रहता था, और वह रिपोर्टर जिसने दो कॉलममें ख़बर दी थी, उसके सामने खड़े थे। सब-इन्स्पेक्टरके जूतेकी चरमर दरवाज़े से दूर चली गयी थी।

"तुम इस तरह बुझे-से क्यों बैठे हो ?" महेन्द्रने पूछा।

"नहीं तो," उसने कहा और मुसकराने की कोशिश की।

"ये लोग उसे लॉक-अबसे यहाँ ले आये हैं। अभी थोड़ी देरमें उसे शनाख़्तके लिए इधर लायेंगे।"

उसने सिर हिलाया। वह अब भी वाश-बेसिनकी बात सोच रहा था।

"थानेदार बता रहा था कि सुबह-सुबह इन्होंने उसके घर जाकर उसे पकड़ा है। ये लोग कबसे उसके पीछे थे—पर पकड़नेका कोई मौक़ा ही इन्हें नहीं मिल रहा था। कोई भला आदमी उसकी रिपोर्ट ही नहीं करता था।"

उसने अब सिर भी नहीं हिलाया और फिर मुसकरानेकी कोशिश की। पेंसिल उसने मेज़से उठाकर जेबमें डाल ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं आज फिर अखबारमें खबर दूँगा," रिपोर्टर बोला—"जबतक इस आदमीको सज़ा नहीं हो जाती, हम इसका पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

उसे लगा कि उसके कान गरम होते जा रहें हैं। उसने हलके-से एक कानको सहला लिया।

"तय हुआ है," महेन्द्रने कहा, "कि उसे साथ लिये हुए चार सिपाही अहातेमें दायीं तरफ़से आयेंगे और बायीं तरफ़से निकल जायेंगे। उसे यह पता नहीं चलने दिया जायेगा, कि तुम यहाँ हो। तुम यहाँ बैठे-बैठे उसे देख लेना और बादमें बता देना कि हाँ, ठीक यही आदमी है जिसने तुमपर चाक़ू चलाना चाहा था। वह थानेदारके सामने इतना तो मान गया है कि कल उसने स्कूटर को लेकर झगड़ा किया था, पर चाक़ू निकालनेकी बात अभी नहीं माना। कहता है कि चाक़ू-आकू तो उसके पास होता ही नहीं—उसके दुश्मनोंने खामखाह उसे फँसानेके लिए रिपोर्ट लिखवा दी है। यह भी कह रहा था कि वह तो अब इस इलाक़ेमें रहना ही नहीं चाहता—दो-एक चल रहे मुक़दमोंका फ़ैसला हो जाये, तो वह इस इलाक़ेको छोड़कर चला जायेगा।"

वह कुछ देर क्वीन विक्टोरियाकी तसवीर की तरफ़ देखता रहा। फिर अपनी उँगलियों को मसलता हुआ आहिस्तासे बोला, "मेरे खयालमें हमें रिपोर्ट नहीं लिखवानी चाहिए थी।"

"यह तुम फिर वही बुज़दिलोकी बात करने लगे ?" महेन्द्र थोड़ा तेज़ हुआ, "चाहते हो कि ऐसे आदमीको गुण्डागर्दीकी छूट मिली रहे ?"

उसकी आँखें तसवीरसे हटकर पल महेन्द्रके चेहरेपर टिकी रहीं। उसे लगा जो बात वह कहना चाहता है, वह शब्द नहीं कही जा सकती।

"आपको डर लग रहा है ?" रिपोर्ट पूछा।

"बात डरकी नहीं....।"

"तो और क्या बात है ?" महेन्द्र बोल उठा, "तुम कल भी रिपोर्ट लिख में आना-कानी कर रहे थे....।"

"मैंने यह बात भी आज अखबारमें दी है," रिपोर्टरने कहा और इतमीनान सिगरेट सुलगा लिया।

"खैर रिपोर्ट तो अब हो ही गयी है वह आदमी गिरफ़्तार भी हो गया है," बोला, "तुम्हें डरनेकी ज़रूरत नहीं। लोग तुम्हारे साथ हैं।"

"मैं तो समझता हूँ कि गुण्डागर्द रोकनेमें आदमीकी जान भी चली जाये, उसे परवाह नहीं करनी चाहिए," रिपोर्ट कश खींचते हुए कहा, "इन लोगोंके हौ इतने बढ़ते जा रहे हैं, कि ये किसीको समझते ही नहीं। पिछले दो सालमें ही गुण्डागर्दीकी घटनाएँ पहलेसे पौने तीन गुना गयी हैं—यानी एक सौ पचहत्तर फ़ीसदी ज़्यादा। अगर अब भी इनकी रोकथाम न गयी, तो पाँच सालमें आदमीके लिए बैठना मुश्किल हो जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपोर्टरके सिगरेटकी राख उसके घुटनेपर आ गिरी। उसने हलकेसे उसे झाड़ दिया और बाहरकी तरफ़ देखने लगा।

"ये लोग अब उसके घर चाक़ू तलाश करने गये हैं," महेन्द्र दोनों जेबोंमें हाथ डाले चलनेके लिए तैयार होकर बोला, "हो सकता है, तुमसे चाक़ूकी शनाख़्तके लिए भी कहा जाये।"

"चाक़ूकी शनाख़्त कैसे होगी?" उसने उसी आहिस्ता स्वरमें पूछ लिया।

"कैसे होगी?" महेन्द्र फिर उत्तेजित हो उठा—"देखकर कह देना होगा कि हाँ, यही चाक़ू है—और शनाख़्त कैसे होती है?"

"पर मैंने तो चाक़ू ठीकसे देखा भी नहीं था।"

"नहीं देखा था, तो अब देख लेना। हम थोड़ी देरमें फ़ोन करके यहाँसे पता कर लेंगे। तुम यहाँसे निकलकर सीधे घर चले जाना और रातको मेरे लौटने तक घरपर ही रहना।"

वे लोग चले गये, तो कमरा उसे फिर खाली लगने लगा—बिलकुल खाली—जिसमें कि वह खुद भी जैसे नहीं था। सिर्फ़ कुरसियाँ और दीवारें थीं और एक खुला दरवाज़ा···· बाहर जूतेकी चरमर अब सुनायी नहीं दे रही थी।

"सुनो····," उसे लगा जैसे उसने मिन्नीकी आवाज़ सुनी हो। उसने आसपास देखा। पर मिन्नी या और कोई भी वहाँ नहीं था। सिर्फ़ सिरके ऊपर घूमता हुआ पंखा आवाज़ कर रहा था। उसे हैरानी हुई कि अबतक उसे इस आवाज़का अहसास क्यों नहीं हुआ। उसे तो यह भी पता नहीं चला कि कमरेमें पंखा भी है।

सिर कुरसीकी पीठसे टिकाकर वह पंखेकी तरफ़ देखने लगा—उस तेज़ रफ़्तारमें अलग-अलग परोंको पहचाननेकी कोशिश करता हुआ। उसे ख़याल आया कि उसके बाल बुरी तरह उलझ रहे हैं और वह सुबहसे नहाया नहीं है। सुबहसे ही नहीं, कल सुबहसे····।

कल दिन-भर वे लोग स्कूटरों और टैक्सियोंमें घूमते रहे थे। वह और महेन्द्र। घर पहुँचकर उसने महेन्द्रको उस घटनाके विषयमें बतलाया, तो वह तुरन्त ही उस सम्बन्धमें 'कुछ करने'को उतावला हो उठा। पहले उन्होंने दायरेके पास जाकर पूछताछ की। वहाँ कोई भी कुछ बतलानेको तैयार नहीं था। जो मोची दायरेके पास बैठा था, वह सिर झुकाये चुपचाप हाथके जूतेको सीता रहा। उसने कहा कि वह घटनाके समय वहाँ था ही नहीं—नलपर पानी पीने गया था। और भी जिस-जिससे पूछा, उसने सिर हिलाकर मना कर दिया कि वह उस आदमीके बारेमें कुछ नहीं जानता। सिर्फ़ मेडिकल स्टोरके इंचार्जने दबी आवाज़में कहा, "नत्थासिंहको यहाँ कौन नहीं जानता? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियोंने पिछली गलीमें एक पानवालेका क़त्ल किया था। वे तीन-चार भाई हैं और इस इलाक़ेके माने हुए गुण्डे हैं। ख़ैरियत समझिए कि आपकी जान बच गयी, वरना हममें-से तो किसीको इसकी उम्मीद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय
ज्ञानपीठ
द्वारा
प्रस्तुत

चार
कथा-संग्रह
चार
कथा-दिशाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता • वाराणसी

विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष
मार्ग, दिल्ली ६

श्रीकान्त वर्म

• • झाड़ी

संग्रहकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम कहानियाँ हैं। लेकि
प्रचलित अर्थोंमें नहीं। संशय, अनिर्णय और अमूर्त
आजकी प्रतीक मनःस्थितियाँ हैं और इसे इन कहानियों
बड़ी तीव्रताके साथ प्रस्तुत किया गया है। ३.०

राजेन्द्र याद

• • खेल-खिलौने

राजेन्द्र यादवकी मर्मस्पर्शी कहानियोंका संग्रह। संग्रह
हर कहानी गम्भीरतम भावोंके दर्पणका प्रतिबिम्ब है
आधुनिक मानव-जीवनके अनेक पक्षोंका सरल-सरस
मार्मिक विवेचन। २.०

डॉ० लक्ष्मीनारायण ल

• • सूने अँगन रस बरस

ये कहानियाँ हिन्दीकी उत्कृष्टतम पत्रिकाओंमें प्रकाशि
हुई हैं और अपनी विशेषताओंके कारण सुधी पाठ
और मूर्द्धन्य समीक्षकोंसे बहुप्रशंसित और बहुचर्चि
हुई है। ३.०

विष्णु प्रभाक

• • संघर्षके बा

संग्रहकी सभी कहानियोंमें मानव-मनकी गहराईमें
भीतर तक पैठनेकी विष्णुजीने सार्थक प्रयत्न किया है
सरल और मुहावरेदार भाषामें लिखी ये कहानियाँ पाठ
मनको सहज ही बाँधेंगी। ३.०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रही थी। अब बेहतरी इसीमें है कि आप इस चीज़को चुपचाप पी जायें और बातको ज़्यादा बिखरने न दें। यहाँ आपको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा, जो उसके ख़िलाफ़ गवाही देनेको तैयार हो। अगर आप पुलीसमें रिपोर्ट करें और पुलीस यहाँ तहक़ीक़ातके लिए आये, तो सब लोग साफ़ मुकर जायेंगे और कहेंगे कि यहाँपर ऐसा कुछ हुआ ही नहीं।"

पर महेन्द्रका कहना था कि रिपोर्ट हम ज़रूर करेंगे—ऐसे आदमीको सज़ा दिलवाये बग़ैर नहीं छोड़ा जा सकता।

थानेमें रिपोर्ट लिखवाते समय थानेदारने कहा, "हाँ-हाँ, रिपोर्ट आपको ज़रूर लिखवानी चाहिए। इन गुण्डोंसे मत्था लेनेमें यूँ थोड़ा-बहुत ख़तरा तो रहता ही है—अगर और कुछ न करें, तो आपपर एसिड-वेसिड डालनेकी कोशिश कर सकते हैं—ऐसा उन्होंने दो-एक बार किया भी है। पर हम आपकी हिफ़ाज़तके लिए हैं, आपको डरना नहीं चाहिए। एक अच्छे शहरी होनेके नाते आपका फ़र्ज़ बनता है कि आप इसकी रिपोर्ट ज़रूर लिखवायें। हम लोगोंको भी तो इनके ख़िलाफ़ कार्यवाही करनेका मौक़ा इसी तरह मिल सकता है।"

रिपोर्ट लिखवानेके बाद वे लोग अख़बारोंके दफ़्तरोंमें गये—एस्० पी० और डी० एस्० पी० से मिले। उस दौरान कई बातोंका पता चला—कि उस आदमीका मुख्य धन्धा लड़कियोंकी दलाली करना है—कि ऊँचे सरकारी हलक़ेके अमुक-अमुक लोगोंके यहाँ वह लड़कियाँ सप्लाई करता है—कि उसकी कितनी भी रिपोर्टें की जायें, कभी उसके ख़िलाफ़ कार्यवाही नहीं की जाती—कि नीचेसे अमुक-अमुक लोग उससे पैसे खाते हैं—कि नीचेसे कार्यवाही कर भी दी जाये, तो ऊपरसे अमुक-अमुकका फ़ोन आ जाता है जिससे कार्यवाही वापस ले ली जाती है....।

"वह तो बेचारा सिर्फ़ दलाली करता है," डी० एस्० पी० ने ज़रूरी फ़ाइलोंपर दस्तख़त करते हुए कहा, "क़त्ल-अत्ल करनेका उसका हौसला नहीं पड़ सकता। हम उसके ख़िलाफ़ कार्यवाही करेंगे—आपको डरना बिलकुल नहीं चाहिए।"

अख़बारोंके चीफ़-क्राइम रिपोर्टरने तीस हज़ारी कैण्टीनकी ठण्डी चायके लिए छोकरेकी डाँट-फटकार करते हुए सलाह दी, "आप पहला काम यही कीजिए कि जाकर अपनी रिपोर्ट वापस ले लीजिए। थानेदार मेरा वाक़िफ़ है, आप चाहें तो उससे मेरा नाम ले सकते हैं—कि पण्डित माधोप्रसादने यह राय दी है। वह अकेला आदमी नहीं है, एक बहुत बड़ा गिरोह उसके साथ है। हम लोग इनसे जूझ लेते हैं क्योंकि एक तो हम इन सबको पहचानते हैं और दूसरे हिफ़ाज़तके लिए रिवॉल्वर-आल्वर अपने साथ रखते हैं। ये लोग भी जानते हैं कि जितने बड़े गुण्डे ये दूसरोंके लिए हैं, उतने ही बड़े गुण्डे हम इनके लिए हैं। इसलिए हमसे डरते भी हैं। पर आप-जैसे आदमीको तो ये एक दिनमें साफ़ कर देंगे—आपको इनसे बचकर ही रहना चाहिए....।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी अनेक राजनीतिक व्यस्तताओंसे समय निकालकर उस विभागके मन्त्रीने भी अपने लॉनमें चहलक़दमी करते हुए शामको एक मिनिट उनसे बात की। छूटते ही पूछा, "किस चीज़की अदावत थी तुम लोगोंमें ?"

"अदावतका तो कोई सवाल ही नहीं था," वह जल्दी-जल्दी कहने लगा, "मैं सुबह स्कूटरमें घरकी तरफ़ आ रहा था....।"

"तुम अपनी शिकायत एक काग़जपर लिखकर सेक्रेटरीको दे दो," उन्होंने बीचमें ही कहा, "उसपर जो कार्यवाही करनी होगी; कर दी जायेगी।" और लॉनमें खड़े दूसरे ग्रूप-की तरफ़ मुड़ गये।

रातको घर लौटने तक उसे अपने हाथ-पैर ठण्डे लग रहे थे, पर महेन्द्रका उत्साह कम नहीं हुआ था। वह आधी राततक इधर-उधर फ़ोन करके तरह-तरहके आँकड़े जमा करता रहा। "उसे कमसे कम तीन सालकी सज़ा होनी चाहिए," उसने सोने तक आँकड़ोंके आधारपर निष्कर्ष निकाल लिया।

महेन्द्रके सो जानेके बाद वह काफ़ी देर साथके कमरेसे आती साँसोंकी आवाज़ सुनता रहा था—उस आवाज़में उतना सुरक्षाका अहसास उसे पहले कभी नहीं हुआ था। वह आवाज़--एक जीवित आवाज़--उसके बहुत पास थी और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज़ थी, उतना ही जीवित था उसे सुन सकना—चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिशके, अपने कानोंसे सुन सकना। गरमी और उमसके बावजूद रात ठण्डी थी--कुछ देर पहलेसे हलकी-हलकी बूँदें पड़ने लगी थीं। कभी-कभी उसे सन्देह होता कि जो आवाज़ वह सुन रहा है, वह रातकी ही तो आवाज़ नहीं--सिर्फ़ पत्तोंके हिलने और बूँदोंके गिरनेकी आवाज़। कि सुनना भी कहीं सुनना न होकर अपनेसे बाहरका कोरा शब्द ही तो नहीं। तब वह करवट बदलकर अपने हाथ-पैरोंका 'होना' महसूस करता और फिरसे साँसोंका शब्द सुनने लगता....।

खिड़कीसे कभी-कभी हवाका झोंका आ जाता जिससे रोंगटे सिहर जाते थे। उस सिहरनमें हवाके स्पर्शके अतिरिक्त भी कुछ महसूस होता—शायद रोंगटोंमें अपने अस्तित्वकी अनुभूति। एक झोंकेके बीत जानेपर वह दूसरे झोंकेकी प्रतीक्षा करता, जिससे कि फिरसे उस स्पर्श और सिहरनको अपनेमें महसूस कर सके। उस सिहरनके बाद, उसे अपना हाथ ख़ाली-ख़ाली-सा लगता। मन होता कि हाथमें कसनेके लिए एक और हाथ उसके पास हो—मिन्नीका पतली और चुभती-सी उँगलियोंवाला हाथ। कि हाथके अलावा मिन्नीका पूरा शरीर भी वहीं पासमें हो—इकहरा, पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक एक हिस्सेसे अपने सिर और होठोंको रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान-गालोंसे उसकी साँसोंका शब्द ही नहीं, उतार-चढ़ाव भी महसूस कर सके। पर मिन्नी वहाँ नहीं थी—और उसके हाथ ही नहीं, पूरा अपना-आप ख़ाली था। उसकी आँखें दर्द कर रही थीं और कनपटियोंकी नसें फड़क रही थीं। और वह रात, रात न होकर सुबह होती—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन पहलेकी सुबह····वह अभी मिन्नीसे बात करके उससे अलग न हुआ होता और स्टैण्ड-पर आकर अभी स्कूटरमें न बैठा होता····!

कोई चीज़ हलक़में चुभ रही थी--एक नोक-सी। वह बार-बार थूक निगलकर उस चुभनको मिटा लेना चाहता, पर वह मिट न पाती। कभी-कभी उसे लगता कि किसी हाथने उसका गला दबोच रखा है और यह चुभन गलेपर कसते नाखूनोंकी चुभन है। तब वह जैसे अपनेको उन हाथोंसे छुड़ानेके लिए छटपटाने लगता। उसे अपने अन्दरसे एक हौलनाक-सी आवाज़ सुनाई देती--अपनी तेज़ चलती साँसोंकी आवाज़। रात तब दिनमें और कमरा सड़कमें घुल-मिल जाता और वह अपनेको फूली साँस और अकड़ी पिण्डलियोंसे बेतहाशा सड़कपर भागते पाता। सड़क है--सिर्फ़ सलेटी सड़क—जिसका कोलतार जहाँ-तहाँसे उभर आया है। उसपर, जैसे उससे आगे-आगे, दो पैर हैं—उसके अपने ही पैर। जूतेके फ़ीते खुले हैं। पतलूनके पायँचे जूतेमें अटक जाना चाहते हैं। पर वह सरपट भाग रहा है—जैसे कि जूते और पायँचोंके ऊपर-ऊपरसे। आगे एक-दूसरेमें गममड हुए मकान, हैं, नालियाँ हैं, लोग हैं। सब उसके रास्तेमें हैं—पर कोई भी, कुछ भी, उसके रास्तेमें नहीं। सिर्फ़ सड़क है, वह है, और भागना है····।

आँख खुल जाती, तो बाहर बिजली चमकती दिखाई देती। आँख फिर मुँद जाती, तो कोई चीज़ अन्दरसे कौंधने लगती····एक ज़ीनेकी सीढ़ियोंने उसे रस्सियोंकी तरह लपेट रखा है। एक तेज़ धारका चाक़ू उन रस्सियों-को काटता आ रहा है। चाक़ूके पास आनेसे पहले ही उसकी धारकी चमक जैसे शरीरमें खुभने लगती है। यह उसकी पीठ है····पीठ नहीं छाती है। चाक़ूकी नोक सीधी उसकी छातीकी तरफ़····नहीं, गलेकी तरफ़····आ रही है। वह उस नोकसे बचनेके लिए अपना सिर पीछे हटा रहा है····पर पीछे आसमान नहीं, दीवार है। वह कोशिश कर रहा है कि उसका सिर दीवारमें गड़ जाये····दीवारके अन्दर खो जाये। पर दीवार दीवार नहीं, रस्सियोंका जाल है, और जालके उस तरफ़···· वही चाक़ूकी नोक है। जाल टूट रहा है। सीढ़ियाँ उसके पैरोंके नीचेसे फिसल रही हैं। क्या वह किसी तरह सीढ़ियोंमें—रस्सियोंमें—उलझकर अपनेको नहीं बचा सकता?

आँख फिर खुल जाती, तो उसे गलेमें तीखी प्यास महसूस होती। पर जबतक वह उठने और पानी पीनेकी बात सोचता, तबतक आँख फिर लग जाती।

चाप् चाप् चाप्····।

जूतेकी आवाज़ फिर दरवाज़ेके पास आ गयी। वह कुरसीपर सीधा हो गया।

"आप तैयार हैं?" सब-इन्स्पेक्टरने अन्दर आकर पूछा।

उसने सिर हिलाया। उसे लग रहा था कि रातसे अबतक उसने पानी नहीं पिया।

"तो अपनी कुरसी ज़रा तिरछी कर लीजिए और बाहरकी तरफ़ देखते रहिए। हम अभी उसे लेकर आ रहे हैं," कहकर सब-इन्स्पेक्टर चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक कहानियाँ 'इतिहास' नहीं होतीं। वे तत्कालीन सांस्कृतिक और सामाजिक जीवनका मर्मस्पर्शी जीवन्त चित्र हमारी आँखों आगे प्रस्तुत करती हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रस्तुत
ऐतिहासिक
कहानियों
के
चार
कथा-संग्रह

- **कालके पंख**
  आनन्दप्रकाश जैन — ३.००
- **दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ**
  डॉ० जगदीशचन्द्र जैन — ३.००
- **अतीतके कम्पन**
  आनन्दप्रकाश जैन — ३.००
- **हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ**
  राजाराम शास्त्री — २.५०

पठनीय
एवं
संग्रहणीय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाप् चाप् चाप्···।

उसे लगा कि उसके हाथोंकी उँगलियाँ काँप रही हैं—ऐसे जैसे कि वे हाथोंसे ठीकसे जुड़ी न हों।

साथके कमरेमें एक आदमी रो रहा था—उससे धौल-धप्पेसे कोई चीज़ क़बूल करवायी जा रही थी।

क्वीन विक्टोरियाकी तसवीर जैसे दीवार-से थोड़ा अलग हट आयी थी—उसके और ज़मीनके बीचका फ़ासला भी अब पहले जितना नहीं लग रहा था।

चाप् चाप् चाप्—अब यह कई पैरोंकी मिल-जुली आवाज़ थी। साथके कमरेमें पिटाई उसी तरह चल रही थी: "बोल हरामज़ादे, किस रास्तेसे तू घुसा था घरके अन्दर?" और इसके जवाबमें आती आवाज़: "नहीं, मैं नहीं घुसा था। मैं तो उस घरकी तरफ़ गया भी नहीं था···।"

वे लोग कमरेके बाहर आ गये थे, और उनके बीचमें वही सरदार—उसी तरह लुंगी लगाये और मलमलका लम्बा कुरता पहने। उसके हाथ हथकड़ीके बावजूद बँधे हुए नहीं लग रहे थे।

उसे पल-भरके लिए लगा जैसे उसे उस आदमीका नाम भूल गया हो। कल दिनमें कितनी ही बार, कितने लोगोंके मुँहसे, वह नाम सुना था। जिस किसीसे बात हुई थी, वह उस आदमीको पहलेसे ही जानता था। अभी कुछ देर पहले वह नाम उसने अपनी हथेलीपर लिखा था। क्या नाम था वह?

दरवाज़ेके पास आकर वे लोग रुक गये थे—जैसे किसी चीज़का पता करनेके लिए। थानेदार और सब-इन्स्पेक्टरमें-से कोई उनके साथ नहीं था।

"कहाँ चलना है? इस तरफ़?" कहता हुआ सरदार उसी दरवाज़ेकी तरफ़ बढ़ आया। अब वे दोनों आमने-सामने थे। चारों सिपाही पीछे चुपचाप खड़े थे।

उसे अचानक नाम याद हो आया। नत्था सिंह। सुबह प्रायः सभी अख़बारोंमें उसने वह नाम पढ़ा था। तब उसे उसकी सूरत याद नहीं आ रही थी। सोच रहा था कि वह उसे देखकर पहचान भी पायेगा या नहीं। पर अब वह सामने था, तो उसकी सूरत बहुत पहचानी हुई लग रही थी। जैसे कि वह उसे एक मुद्दतसे जानता हो।

वह आदमी सीधी नज़रसे उसकी तरफ़ देख रहा था—जैसे कि उसका चेहरा आँखोंमें बिठा लेना चाहता हो। पर वह अपनी आँखें हटाकर दूसरी तरफ़ देखनेकी कोशिश कर रहा था—खिड़कीकी तरफ़। खिड़कीके बाहर एक पेड़के पत्ते हिल रहे थे। पेड़की डालपर एक कौआ पंख फड़फड़ा रहा था।

वह एक लम्बा वक़्फ़ा था—ख़ामोश वक़्फ़ा—जिसमें कि उसके कान ही नहीं, गाल भी जैसे दहकने लगे। पैरमें तेज़ खुजली उठ रही थी, फिर भी उसने उसे दूसरे पैरसे दबाया नहीं। उसकी आँखें खिड़कीसे हटकर ज़मीनमें धँस गयीं और तबतक धँसी रहीं जबतक कि वक़्फ़ा गुज़र नहीं गया। उन लोगोंके चले जानेके कई क्षण बाद उसने आँखें दरवाज़ेकी तरफ़ मोड़ीं। तब थानेदार अहातेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ा सब-इन्स्पेक्टरको डाँट रहा था, "मैंने तुमसे कहा नहीं था कि उसे यहाँ रोकना नहीं है, चुपचाप दरवाज़ेके पाससे निकालकर ले जाना है ?"

सब-इन्स्पेक्टर अपनी सफ़ाई दे रहा था कि क़सूर उसका नहीं, सिपाहियोंका है--उन लोगोंने, लगता है, बात ठीकसे समझी नहीं।

थानेदार माफ़ी माँगता हुआ उसके पास आया, और आश्वासन देकर कि उसे फिर भी डरना नहीं चाहिए, वे लोग उसकी हिफ़ाज़त करेंगे, बोला, "उसे पहचान लिया है न आपने ? यही आदमी था न जिसने आपपर चाक़ू चलाना चाहा था ?"

वह कुरसीसे उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसे लगा कि उसके घुटनोंमें ख़ून जम गया है। उसे जैसे सवाल ठीकसे समझ नहीं आया था--वे जैसे अलग-अलग शब्द थे जिन्हें मिलाकर उसके दिमाग़में पूरा वाक्य नहीं बना था।

"यह वही आदमी था न ?"

उसके पैरोंमें पसीना आ रहा था। बग़लोंमें भी। साथके कमरेमें ठुकाई करते हुए पूछा जा रहा था, "तू नहीं था, तो कौन था कुत्तेके बीज ? सीधेसे बता दे--क्यों अपनी पसलियाँ तुड़वाता है ?" जवाबमें मार खाने-वाला न जाने क्या कहनेकी कोशिश कर रहा था।

अबतक वाक्य उसके दिमाग़में स्पष्ट हो गया था। जो सवाल पूछा गया था, उसका जवाब उसे 'हाँ' में देना था। यह बात पहलेसे ही तय थी--तबसे ही जब कि उसने उस कमरेमें क़दम रखा था। वह आदमी वही है यह सब जानते थे--वह भी, थानेदार भी और दूसरे लोग भी। फिर भी उसके 'हाँ' कहनेपर ही सब कुछ निर्भर करता था।

उसने क़मीज़के निचले हिस्सेसे बग़लोंका पसीना पोंछ लिया। उसे फिर खयाल आया कि वह दो दिनसे नहाया नहीं, और कि मिन्नी हमेशा उसे सुबह नहाकर न आनेपर ताना देती है। आज सुबह मिन्नी ठीक वक़्तपर वहाँ पहुँची होगी। उसके न मिलनेसे उसने जाने क्या सोचा होगा !

उसे यह भी लग रहा था कि वह जाने कोट-टाई पहनकर वहाँ क्यों आया है--उसे क्या वहाँ नौकरीके लिए दरख़ास्त देनी थी?

"आप क्या सोच रहे हैं ?" थानेदारने पूछा, "आपने उस आदमीको पहचाना नहीं ?"

यह एक नया विचार था। अगर सच-मुच उसने उस आदमीको न पहचाना होता ?....और पहचाननेके बाद भी इस वक़्त अगर वह कह दे कि उसने नहीं पहचाना ?

पर इस विचारके दिमाग़में ठीकसे बनने-के पहले ही, पहलेकी तय की हुई बात उसके मुँहसे निकल गयी, "हाँ, वही आदमी था यह।"

जवाब सुनते ही थानेदार व्यस्ततापूर्वक वहाँसे हट गया। सब-इन्स्पेक्टर पल-भर उसकी तरफ़ देखता रहा। फिर यह कहकर कि 'अब आप घर जा सकते हैं। चाक़ू शनाख्तके लिए, आपके पास वहीं भेज दिया जायेगा,' वह भी वहाँसे चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उलझा हुआ थानेसे बाहर आया। बाहरकी तेज़-खुली धूपमें उसे अपना-आप बहुत असुरक्षित और नंगा-सा लगा। लगा जैसे वह अपना बहुत कुछ उस कमरेके अन्दर छोड़ आया हो—कल तकका सारा संघर्ष, मिन्नीका चेहरा और आगेकी सब योजनाएँ। फ़ुटपाथ, सड़क, और खम्भे पहले कभी उसे इतने सपाट और नंगे नहीं लगे थे। सामने जो पहली इमारत नज़र आ रही थी, और जिसकी ओटमें जाकर वह अपनेको कुछ ढका हुआ महसूस कर सकता था—वह भी सौ ग़ज़से कम फ़ासलेपर नहीं थी। खुलेमें, चारों तरफ़से सबको दिखाई देते हुए, उतना फ़ासला तय कर पाना उसे असम्भव लग रहा था। "अब मैं उस इलाक़ेमें नहीं रह पाऊँगा," उसने सोचा। "और वह घर छोड़ देना पड़ा, तो और कहाँ रहूँगा? नौकरी तो अबतक मिली नहीं····।"

उसने एक असहाय-सी नज़र चारों तरफ़ डाली। एक ख़ाली टैक्सी पीछेसे आ रही थी। उसने जेबके पैसे गिने और हाथ देकर टैक्सीको रोक लिया। फिर चोर नज़रसे आसपास देखकर उसमें बैठ गया। टैक्सीवाले-को घरका पता देकर वह नीचेको झुक गया जिससे खिड़कीके बाहरसे सिवाय सिरके, जिस्मका और कोई हिस्सा दिखाई न दे।

पैरमें खुजली बहुत बढ़ गयी थी। वह झुके-झुके काँपती उँगलियोंसे जूतेका फ़ीता खोलने लगा।

■ ■

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ● सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएँ तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

कलकत्ता
दिल्ली
वाराणसी

जयदोल

'अज्ञेय'

'जयदोल'की कहानियोंमें लेखकने जीवनकी अनेक समस्याओंको स्वर दिया है। आसामकी पहाड़ियों-का चित्रण, नागा प्रान्तके धार्मिक और सांस्कृतिक जीवनका वर्णन पाठकके हृदयको भावविभोर करेंगे।

३.००

ज़िन्दगी और गुलाबके फूल

उषा प्रियम्वदा

अपनी सहज और तोषक अभिव्यक्ति-द्वारा ये कहानियाँ पाठकको शैली-शिल्पके गोरखधन्धोंसे मुक्त रखती हैं। विश्वास तो यह है कि उषा प्रियम्वदाकी ये कहानियाँ कथा-प्रेमी पाठक-पाठि-काओंको रुचेंगी।

२.५०

मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ

रमेश बक्षी

रमेश बक्षीकी ये कहानियाँ कभी तो चित्रकलाके सभी सहज सिद्धान्तोंको उरेहती हैं और कभी मनकी बेहद गहरेसे ध्वनित स्वर-सज्जाको उघारती हैं। पढ़ते समय लग सकता है कि ये कहानियाँ नहीं हैं और यह भी कि ये ही तो कहानियाँ हैं।

३.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...AND NOW STEEL CASTINGS—ONE MORE IMPORTANT ADDITION RECENTLY MADE TO OUR DIVERSIFIED ACTIVITIES. PLENTY OF CAPACITY. QUICK DELIVERY. WEIGHT 10 KG. TO 2,500 KG PER PIECE UNDERTAKEN—ALL TO CUSTOMERS' SPECIFICATIONS.

THE BRITANNIA ENGINEERING COMPANY LIMITED.

(Mg. Agents : McLEOD & CO. LIMITED) 3, Netaji Subhas Road, Calcutta 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Price Annual Re. 10/- per copy Rs. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re 1

GYANODAY Feb 19

11 FEB 1966
18 FEB 1966
28 FEB 1966
26 FEB 1966

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage REGD. No. L-2036

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा (रेयन ग्रेड)	सोडा ऐश
हाइड्रोक्लोरिक एसिड	सोडा बाईकार्ब
ब्लीच लिकर साहपुरम् में डाकखाना : अरुमुगनेरी (तिन्नेवेली जिला)	कैल्सियम क्लोराइड
	नमक धांगध्रा में (गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल

फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०, तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

मार्च १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, सांहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पुरस्कार

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय
ज्ञान ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च
१९६६
वर्ष : १७
अंक : ९

सम्पादकीय कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७
फ़ोन : ४५-४४३२, ४५-६६२०
तार : ज्ञानोदय

ज्ञानोदय

इस अंकमें

कोलिन विलसन, आरथर काउरट डो गोबिन्यु, हरिभाऊ उपाध्याय, बच्चन, अंचल, अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, स्व० गजानन मुक्तिबोध, कर्तार सिंह दुग्गल, कैलाश वाजपेयी, रामदरश मिश्र, सतीश कुमार, पानू खोलिया, हिमांशु जोशी, मुनि सुखलाल, निर्मला वर्मा, नीलम सिंह घनश्याम मधुप, एन० खन्ना, वीरेन्द्र अग्रवाल, रणजीत, ऋतुराज, देवदत्त, अविनाश सरमण्डल, बटरोही।

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन,
रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र आपके

अक्तूबर १९६५ :

अक्तूबर अंकमें 'चौरंगी' पर शंकरसे इण्टरव्यू पढ़ा। मैं चाहता हूँ कि ऐसी चीज़ें आयें बंगाली साहित्यके बारेमें। मेरे दृष्टिकोणके बारेमें शंकरको और विस्तारसे बतलाया जा सकता था।....

दिल्ली] —राजेन्द्र यादव

●

इस अंकमें शंकरवाला इण्टरव्यू बहुत अच्छा लगा। सुदर्शनको और तुम्हें और शंकरको बधाई। खासा घेर लिया तुम लोगोंने उसको।

नयी दिल्ली] —कमलेश्वर

●

इस अंकमें एक कविता मुझे कुछ अन्य कवियोंकी उसके काफ़ी पूर्व प्रकाशित कविताओंसे बहुत हद तक प्रभावित मालूम दी। कविता है श्री दूधनाथ सिंहकी 'तैमूरलंग' इस कवितामें जिन भावनाओंका प्रतिपादन किया गया है उन्हींके 'मूड्स'की अभिव्यक्ति विभिन्न स्थानोंपर कैलाश वाजपेयी, श्रीकान्त वर्मा, जगदीश चतुर्वेदी और राजकमल चौधरीकी कविताओंमें बिलकुल इसी 'ऐटीच्यूड'के साथ पायी जाती है। संसद् भवनोंमें डाइनामाइट, कायर चीत्कार, कैन्सर और सिफ़लिस और सन्निपातके कीटाणु, मांसकी थिगलियाँ, मरा इतिहास—ये तमाम शब्द कैलाश और जगदीश आदिकी कविताओंसे हू-ब-हू दे दिये गये हैं।

नयी दिल्ली] —के० खोसा

●

दूधनाथ सिंहकी 'तैमूरलंग' कविता भाववाही, प्रासादिक एवं बिलकुल समयानुकूल है। कविकी इन पंक्तियोंमें इतिहासके साथ सत्यका कांचनमणि योग सभीको प्रोत्साहित ही नहीं, आनन्दित भी करता है।

आगरा] —नटवरलाल व्यास

●

श्री कैलाश वाजपेयी तथा उनके पक्ष-पंक्तिके विचारकोंसे मेरा यही निवेदन है कि उन परिस्थितियों और संकटोंकी मुग़ालते-भरी परिकल्पना मत करिए जिनमें-से यह देश—जिसे भारत कहते हैं—नहीं गुज़रा है। जिसके सांस्कृतिक संस्कार उस संयम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा परितोषको अपने साथ जोड़े हुए हैं जिसके कारण न आशा मरती है, न आस्था-की मात्रा घटती है, न वह 'नथिंगनेस' मरती है जिसकी महत् भय-ग्रस्तासे हम अपनेको समूल उच्छेदित पाते हों।

—राजानन्द

बीकानेर]

०

सापेक्ष डायरीके अन्तर्गत श्री कैलाश वाजपेयीके 'नास्तित्वकी खोखल और युगीन आशंका' सम्बन्धी विचार बहुत अच्छे लगे। श्री ओमप्रकाश निर्मलकी कहानी 'अपना अपना दर्द' अन्वितिके जिस बिन्दुपर छोड़ गयी, मुझे लगता है कि आजका हर बुद्धिजीवी चौराहेके उसी बिन्दुपर खड़ा है।

—धनंजय

इलाहाबाद]

०

श्वाइत्ज़रकी मृत्युपर लिखा गया लक्ष्मीचन्द्र जैनका लेख अंककी सर्वश्रेष्ठ रचना लगी। वास्तवमें इस लेख-द्वारा अलबर्ट श्वाइत्ज़रके व्यक्तित्वकी अखण्ड सत्ताका और उनके इर्द-गिर्द छाये दर्शन-चिन्तनका सही मायनोंमें बोध होता है। इसी अंकमें प्रकाशित दूधनाथ सिंहकी लम्बी कवितासे महसूस होता है कि उनकी काव्य-कला अब सहज अनुभूतिकी ओर आकृष्ट होने लगी है। 'गीतके पक्षमें' वीरेन्द्र मिश्रका लेख। क्या आवश्यक है उससे सहमत हुआ ही जाये। इस लेखपर और अधिक चर्चाकी आवश्यकता है ताकि वे प्रश्न जो इसमें उठ खड़े हुए हैं उनका समाधान हो सके।

—अशोक अग्रवाल

मेरठ]

०

'गीतके पक्षमें.....' नवगीतका उद्घोषक पत्र भविष्यमें श्री वीरेन्द्र मिश्रके एक स्थायी चिन्तनके रूपमें मुखरित होगा। डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी-द्वारा आलोचित 'रस सिद्धान्त' डॉ० नगेन्द्रका केवल शुक्ल पक्ष ही है। कृष्णपक्षपर कुछ प्रकाश ही नहीं पड़ा। यह स्पष्ट है कि साधारणीकरणके परिप्रेक्ष्यमें डॉ० नगेन्द्रने जो चिन्तन और विश्लेषण किये हैं वे प्रकाश-स्तम्भ हैं। डॉ० नगेन्द्रने अभिनवगुप्त और पण्डितराज जगन्नाथकी दार्शनिक स्थापनाओंको विशदता एवं स्पष्टता प्रदान की है। यह सर्व-विदित है कि जीवनकी दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिकताके मूल्य-बोधकी धूप-छाँहमें रसका पारस्परिक सम्बन्ध निरूपित करना डॉ० नगेन्द्रकी मौलिक उद्भावना है। डॉ० श्वाइत्ज़रकी मृत्युपर श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनकी भावभीनी श्रद्धांजलि डॉ० श्वा-इत्ज़रके दर्शन-चिन्तनयुक्त व्यक्तित्वका प्रकाशक है।

—शरदिन्दु भूषण कुमार

आरा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●

अक्तूबरके अंकमें छपी रजनी पनिकर-द्वारा लिखित कहानीकी नायिका चेतनासे मैं यह कहना चाहता हूँ कि उसके और उसकी सहेलियोंके लिए ऐसे विवाहित और अविवाहित नवयुवकोंकी कोई कमी नहीं जो छुट्टीके दिन लड़कियोंको घुमाने-फिराने-को तैयार हों और इसके लिए लड़कियोंसे साथके सिवा और कुछ न चाहते हों। परन्तु आज ज़रूरत इस बातकी है कि ऐसे रास्ते पैदा किये जा सकें जिनसे यह आपसमें मिल सकें और एक दूसरेकी कमियाँ (अकेले छूट जानेकी) दूर कर सकें। समाजको भी अपनी राय ऐसी बातोंके लिए बदलनी चाहिए।

दिल्ली] —वीरेन्द्रकुमार नागपाल

●

अक्तूबरका अंक देखा। शरद जोशीका 'गुलाब खानेकी आदत' बहुत पसन्द आया। रमेशदत्त शर्माकी रचना 'आदमीसे बड़ा कैक्टस' आधुनिकतापर अच्छा व्यंग्य है। रजनी पनिकरकी कहानी 'छुट्टीका दिन' की नायिका बहुत पसन्द आयी।

जबलपुर] —हरिशंकर सोनी

● नवम्बर १९६५ :

ज्ञानोदयका युद्धांक परम्पराके अनुरूप ही है। न केवल आधुनिक युद्धसे सम्बन्धित अधिकृत सामग्री ही इसमें आ गयी है, 'युद्ध'के सम्बन्धमें चिन्तनकी सामग्री भी यथेष्ट है। थोड़े-से समयमें ऐसा सुन्दर अंक निकालनेके लिए सचमुच ही आप प्रशंसाके पात्र हैं। अंक वास्तवमें संग्रहणीय हो गया है।

दिल्ली] —विष्णु प्रभाकर

●

युद्ध-विशेषांक जिस जल्दीमें प्रस्तुत हुआ है, उसे देखते हुए यह सम्पादनका एक चमत्कार ही माना जायेगा। साधारण जनताके लिए साथ ही सुधी पाठकके लिए यह एक संग्रहणीय अंक है। मेरी बधाई स्वीकारें।

दिल्ली] —मन्मथनाथ गुप्त

●

युद्ध-विशेषांक अच्छा निकाला है। द्वितीय महायुद्ध और भारत-पाक युद्धकी पृष्ठभूमि बहुत जानकारीसे पूर्ण और उपयोगी है। तुम्हारा रिपोर्ताज़ भी अच्छा है।

जबलपुर] —हरिशंकर परसाई

(शेष पृष्ठ १३४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

अ । नु । क्र । म

■ **नये स्तम्भ :**

● समय-बोध : मैं बहिर्देशी : कोलिन विल्सन ७

● मुक्त-चिन्तन : संवाद साइकेल एंजलो : साये बढ़ रहे है : आरथर काउण्ट डी गौबिन्यु (अनुवाद : किशोरीलाल वैद्य) १३

● ताज़े सन्दर्भ : पुराने परिप्रेक्ष्य : ग्रीक दृष्टि : बौद्ध भारत : अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १९

● साहित्य-भूमि : मलियाली वंशी स्वर : कवि कुरुपकी तीन कविताएँ २५

● नयी कला : अन्तर्राष्ट्रीय रामझरोखा : एन० खन्ना २९

● विविध : सरकारी उद्योग क्षेत्रका सुधार कैसे हो ? : वीरेन्द्र अग्रवाल ८९

● गोष्ठी : सोवियत कविके घर एक शाम : सतीश कुमार ९३

नयी पीढ़ीके मंचपर मुक्तिबोध : घनश्याम मधुप ९६

साहित्यके आँगनके पार प्रेरणाके द्वार : मुनि सुखलाल ९९

● समीक्षा : घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश : श्याम परमार १०३ : आत्मजयी : प्रतिक्रिया : सावित्री सिन्हा ११९

● प्रश्नान्तक : एक पत्र नये-नयोंको : हरिभाऊ उपाध्याय १२३

● तारीखें : सुमेश भौतिक १२५

■ **कहानियाँ :**

● विपात्र : स्व० गजानन माधव मुक्तिबोध ३३

● ज़यारत : कर्त्तारसिंह दुग्गल ५१

● रात, दीवार और दीवार : पानू खोलिया ५५

● झुका हुआ आकाश : हिमांशु जोशी ७३

● अप्रत्याशितकी मौत : बटरोही ७९

■ **आत्मकथ्य :**

● कैकेयीका आत्मनिवेदन : अविनाश सरमण्डल ६३

■ **मुखपृष्ठ**

मदन सरकार

● रेखाचित्र (पृ० १३,१४)

ओमचन्द हाण्डा

■ **कविताएँ :**

● वसन्त : कुछ व्यभिचारी भाव रणजीत, निर्मला वर्मा, देवेन्द्र नीलम सिंह, ऋतुराज ६ ।

● विपरीत ऋतु : चार कविता बच्चन, रामदरश मिश्र, अंच कैलाश वाजपेयी ८३

■ **पत्र आपके :**

राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, के० खं नटवरलाल व्यास, राजानन्द, घनं अशोक अग्रवाल, शरदिन्दु कुमार, वीरेन्द्रकुमार नागपाल, शंकर सोनी, विष्णु प्रभाकर, म नाथ गुप्त, हरिशंकर परसाई, दीश चतुर्वेदी, दिनकर सोनवल देवेन्द्र बिसुनपुरी, जवाहर महावीर प्रसाद अग्रवाल, गोविन्द राजहंस, हर्ष ना बनारसी दास चतुर्वेदी, गो गोपेश, सुरेश चतुर्वेदी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रपत्र : चार

(नियम ८ के अन्तर्गत)

१. प्रकाशन-स्थल	: भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी – ५
२. प्रकाशन-आवृत्ति	: मासिक
३. मुद्रकका नाम	: जगदीश अग्रवाल
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी – ५
४. प्रकाशकका नाम	: जगदीश अग्रवाल
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी – ५
५. सम्पादकका नाम	: लक्ष्मीचन्द्र जैन और रमेश बक्षी
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता – २७
६. स्वत्वाधिकारी	: भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता – २७

मैं, जगदीश अग्रबाल, घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार सही हैं।

दिनांक २५ फरवरी, १९६६

जगदीश अग्रवाल
(हस्ताक्षर), प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय-बोध

मैं : बहिर्देशी

मैं कौन हूँ ?—किसी भी बहिर्देशी (आउटसाइडर) की यही आखिरी समस्या है। सोचा भी जा सकता है कि आखिर वह है कौन ? आदमी तो एक बुर्जुआ समझौतेका प्रतीक है—जैसे उसका घर आधी दूरीपर हो। घर बाधी दूर है तो, लेकिन किस ओर ? उसी सुपरमैनकी तरफ़ ? हम यह जानते हैं कि सुपरमैन नीत्शेके अपपगलेपनकी कोई महिमान्वित तसवीर नहीं है, वह एक काल्पनिक जायज़ मान्यता है और वैसे ही जनमी है जैसे किसी सन्त या आध्यात्मिक सुधारक-के मनमें कोई बात जनमती है। लेकिन 'कोई भी महान् आदमी अपने आदर्शोंका अभिनेता होता है' और वह तबतक बेहतर अभिनय नहीं कर सकता जबतक कि अपने नाटक-अंशका उसको ठीक-ठीक अनुमान नहीं हो। इसलिए जब, टाल-स्टायका पागल अपनी गाड़ीमें दहशतका दुखद स्वप्न देख जाग उठता है और पूछता है कि "मैं कौन हूँ ?" तब सुपरमनकी तरफ़ बढ़नेवाला रास्ता या सन्त या जीनियस कलाकार कुछ समयके लिए सलाखोंमें क़ैद हो जाता है। आजके अस्तित्वका प्रश्न तब सामने मुँह बाये खड़ा होता है।

एक रोचक बिन्दु यह भी है : अस्तित्व, किसके लिए ? ये लोग जो ऐन-भिनसारे अपने शहरोंकी ओर यात्राएँ कर रहे हैं, जो अख़बार पढ़ रहे हैं, जो विज्ञापनोंकी ओर घूर रहे हैं, उन्हें सन्देह नहीं है कि वे कौन हैं ? इलियटकी ये पंक्तियाँ कार्न-प्लास्टरके विज्ञापनकी जगह उत्कीर्ण की जा सकती हैं : 'हम खोखले लोग हैं—धँसे-ठुँसे-आश्रित परस्पर····' और फिर ये लोग जिस दिल-चस्पीसे इस पंक्तिको भी पढ़ेंगे, जिस रुचिसे पढ़ते हैं रेज़र ब्लेडके छन्दबद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विज्ञापन कि अगले वर्ष तक इस दुनियामें निर्माण कहाँ जा पहुँचेगा···? कुछ लोग अपने साथ अपने परिचय-पत्र भी ढोते रहते हैं—यह उनकी आदत हो गयी है—और संक्षिप्तमें उस परिचय-पत्रके द्वारा आप यह जान सकते हैं कि वे हैं कौन।

इन लोगोंके पास उनके अपने उद्देश्य भी होते हैं, कुछके पास तो बड़े दूरागत उद्देश्य होते हैं : एक नयी कार तीन वर्षोंमें, पाँच वर्ष बाद सर-बिटनमें मकान—लेकिन उद्देश्य आदर्श नहीं कहे जा सकते।···वे लोग अभिनेता नहीं हैं। वे प्रतिदिन क़मीज़ बदलते हैं लेकिन उनके जीवनके सिद्धान्त हमेशा अनबदले रहते हैं। न्यूमैन ('अपोलॉजिया' में) ने इस बातकी आत्मस्वीकृति दी है कि उसने जब भी दुनियाकी तरफ़ देखा है, उसे ईश्वरके अस्तित्वका लेश-मात्र भी कहीं नज़र नहीं आया है लेकिन हम लोगोंमें-से सम्भव है कुछने वस्लाव निजिन्स्कीकी प्रवृत्तिधर्मा भावनाके अनुसार—जैसे संगीत सुनते समय होता है—यह महसूस किया हो कि ईश्वरका 'विचार' गतिके साथ जुड़ा है। 'भौतिक किनारोंपर टूटती हुई आत्मा'····इसके माध्यमसे न्यूमैनको समझा जा सकता है गतिहीन व्यक्तियोंके इस समुद्रकी ओर देखते हुए कि आख़िर उसका अभिप्राय क्या रहा होगा।····

ये लोग सलाखोंमें क़ैद हैं—यह अभिमत है बहिर्देशीका। यह भी कि ये लोग इस क़ैदमें सन्तुष्ट हैं—बन्द जानवरोंकी तरह हैं ये जो आज़ादीका अर्थ नहीं जानते। जो हो, है यह सरासर क़ैदख़ाना ही। और ख़ुद बहिर्देशी ? वह ख़ुद भी क़ैदमें है, हर एक बहिर्देशी अलग-अलग भाषामें यह कहता भी है लेकिन वह अपनी क़ैदको 'जानकर' यह कहता है। उसकी इच्छा है कि वह सलाख़ें तोड़ दे लेकिन सलाख़ोंका टूटना इतना सरल नहीं, अपनी सलाख़ोंके बारेमें आपको सब कुछ जानना होगा, अन्यथा आपको वर्षों लग जायेंगे सुरंग खोदनेमें—'द काउण्ट आव माण्ट क्रिस्टो' के एबेकी तरह जो हर सुरंगके बाद क़ैदख़ानेके अगले कमरेमें, स्वयंको अगली सलाख़ोंमें बन्द पाता था।

—कॉलिन विल्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ भौतिक रहस्यवाद

प्रकृति में प्रतिबिम्बित किसी परोक्ष सत्ता में मेरा विश्वास नहीं
पर मेरे भीतर बसा हुआ यह प्रकृति का अंश :
इसका मैं क्या करूँ ?

हिलोरें लेने लगता है मेरे भीतर का पानी
जब भी देखता हूँ समन्दर की अदम्य लहरों को उठते और
गिरते हुए।
उमड़-उमड़ उठती है मेरे रक्त में बसी हुई वह आदिम आग
कुहरीले सवेरों में पूरब से निकलते हुए सूरज के साथ-साथ।
और जब-जब देखता हूँ
चाँदनी रातों में नदी के चमकते हुए कछार
लोट-पोट हो जाना चाहती है उनमें
मेरे भीतर की पृथ्वी।
उमग-उमग आता है मेरे अन्तस् का आकाश
सितम्बर की शामों के रंग-बिरंगे बादल-चित्रों से सजे हुए
आसमान को देखते-देखते
जाग उठती हैं मेरे भीतर सोयी हुई हवाएँ
वासन्ती हवाओं की पहली सरसराहट में।

रणजीत
निर्मला वर्मा
देवदत्त
नीलम सिंह
ऋतुराज

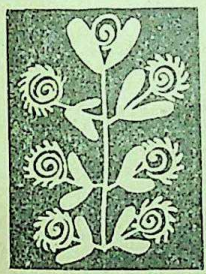

और जब देखता हूँ
लोगों के एक समूह को एक साथ आन्दोलित होते हुए
एक क़तार में क़वायद करते हुए

एक लय में कुदालें चलाते हुए
और एक स्वर में भुजाएँ उठाते हुए
तो मचल-मचल पड़ता है मेरा दिल
उनमें घुल-मिल जाने के लिए
जैसे बहुत देर से बिछड़ा हुआ कोई बच्चा
अपनी माँ को देखकर उसकी गोद में जाने को मचलता है।

इस संसार में अभिव्यक्त किसी अज्ञात चेतना में मेरा विश्वास नहीं
पर इस संसार के एक-एक अंग के साथ
मैं जो कोई गहरी आन्तरिक एकता महसूस करता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका मैं क्या करूँ ?
मेरे भीतर की इस आग और तरलता का :
अपनी आँखों के आकाश और अपने हृदय की मनुष्यता का :
इनका मैं क्या करूँ ?

—रणजीत

▪ वात्सल्य

सुबह के आकाश का सारा गुंजान
नन्हीं-सी आँखों में सिमटा, फैला।

चाँदनी की झिलमिली, रिमझिम बारिश....
प्रवहमान झरने का कोमल संगीत

घण्टियों की टुनटुन....
टटके हरसिंगार की झरन।

भोर में टप-टप् ओस की टपकन
हवा का इधर से उधर बहना...बहना।

साँसों में, बाँहों में, रोमावलि की थिरकन में
हर कहीं, हर कहीं गति,...हर कहीं जीवन
चारों ओर, कण्ठ में खिलखिल
खिलखिल....

—निर्मला वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ यह उदासी.....

वसन्त की आखिरी साँझ में
नागस्वरम् पर मध्यमा की डूबती नीलाइयाँ
वह उतरना
वह धीमे-धीमे
चुप.....रोते हुए चला जाना.....
उपमाओं की लताएँ कुहासों में खो गयी थीं।
झील—अथाह
पीली वनस्पतियाँ
धीरे-से लहरों का दबाव
हलकी-सी ऐंठन
एक पर एक टकराती हुई
दूर चली जाती हुई प्रतिध्वनियाँ....
मन के बहावों की भटकन पर
झुकी हुई छाँव
मंज़िल से लौटी हुई दृष्टि-सी—
केवल बिखराहटें.....
हवा में उँगुलियों से बनायी गयी सबीहें
हथेलियों को घेर कर सिसक उठती हैं।
सैलाब की आखिरी अँजुरी
धीमा-सा आकाश
और वसन्त की कल्पना में
यह उदासी.....चुप रोते हुए सो जाना
उपमाओं की लताएँ कुहासों में खो गयी थीं।

—देवदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकेली गुलमुहर

ठहर जा।
दर्द मेरे
तू ही ठहर जा।
अकेली गुलमुहर
चमेली के फूलों का भार
झेला नहीं जाता
हमसे।
क्योंकि यह सुख भी अपना नहीं।
ठहर।
जबतक तुम्हारे कन्धे न टूट जायें
बोलों की मिठास न घुल जाये
तबतक निर्द्वन्द्व; निर्मुक्त
आकाशी भावनाओं में
उड़ने के बदले
अच्छा लगता है टिके रहना
ऊसर भूमि पर।
मुझे तुमसे कोई भी भय नहीं
जबतक मैं सीमित रहूँ
केवल तुम्हीं तक!

—नीलम सिंह

प्रेम

सारे शहर में एक नेत्रहीन किसे
ढूँढ रहा है, उसके हाथों में साँप की
तरह मुड़ा हुआ एक वाक्य है, उसकी
पीठ पर महुए के फूलों की तरह लाल
रूमाल लदे हैं, उसके सिर में मोर की तरह
शीशे के टुकड़े जड़े हैं, वह किसे ढूँढ़ रहा है।
शहर का चेहरा सख्त हो गया है और
आँखें मिच गयी हैं, कहीं भी प्रकाश नहीं है
जिसे वह ढूँढ़ रहा है, क्या वह शहर में नहीं
है, क्या यह वह शहर नहीं है?

—ऋतुराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

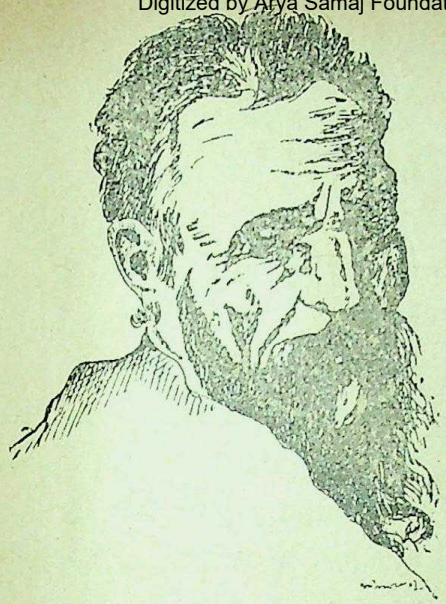

माइकेल एंजलो : १४७५–१५६४

मु । क्त । चि । न्त । न

संवाद-माइकेल एंजलो : साये बढ़ रहे हैं....

• आरथर काउरट डी गौबिन्यु

[एक ठण्डा, अन्धकारमय और एकान्त स्थान। अँधेरी रात। निर्माणावस्थामें एक मूर्ति जिसपर कलाकारके नौकर-द्वारा पकड़े हुए पीतलके लैम्पकी रोशनी पड़ रही है।]

माइकेल एंजलो : बहुत दिनोंसे मैं खुश नहीं हूँ। आजकी यह अँधेरी रात और इस छोटे-से लैम्पकी रोशनीमें मुझे खयालोंकी दुनिया दिखाई दे रही है—जाने क्या वक़्त हो गया ?

अरबिनो : मेरा खयाल है, आधी रातसे अधिक नहीं गुज़री। आपको अब सोना ही चाहिए।

माइकेल एंजलो : बारिश चल रही है। छतपर वर्षाका शोर सुनाई पड़ रहा है, आँगनके पत्थरोंसे टकराता हुआ पानी एक उमड़ती हुई नदी-सा आभास दे रहा है। एक भयानक तूफ़ान और बिजली खिड़कियोंके शीशोंपर, अँधेरेको चीरती हुई, जगमग कर रही है। लेकिन इस इतने शोर-शराबेके पीछे कितनी शान्ति है। दूरसे आ रही मेघोंकी गरज अपने प्रभावमें कितनी गौरवशाली है....लेकिन कहीं भी मानव-स्वर नहीं....मुझे उद्विग्न करनेवाली कोई भी धोखेबाज़, झूठी, चिढ़ानेवाली, उद्धत, मूर्खतापूर्ण या अहंकारयुक्त आवाज़ नहीं।....मुझे सर्जनाका एहसास है....मेरी आत्मा स्वतन्त्र है....मैं प्रसन्न हूँ....मेरी तमाम निष्ठाके अनुरूप जो कुछ है मैं वह सब कुछ कर सकता हूँ, उस संगमरमरका पथरीला सीना खुल चुका है....एक सजीव सिर निकल रहा है....सफ़ेद-सफ़ेद; यह छेनीके नीचे जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धड़क रहा है उससे इसके अंग-प्रत्यंग स्वतन्त्र हो रहे हैं····इस सामग्रीसे यह सर्जना हो रही है····वे बोलने लगे हैं····अरबिनो !

अरबिनो : मालिक !

माइकेल एंजलो : तुम्हें अपने फ़ुटस्टूलपर नींद आ रही है, इसलिए बेहतर है तुम अपने बिस्तरपर चले जाओ ।

अरबिनो : यह नहीं होगा । जब आप सोयेंगे, तभी मैं सोऊँगा– उससे पहले नहीं ।

माइकेल एंजलो : अजीब हठ है !

अरबिनो : ठीक है, मैं अब छोटा नहीं रहा, और इन्तज़ारमें मैं थक जाता हूँ लेकिन बेगम-ने मुझसे कहा था : 'जबतक तुम्हारे मालिक आराम नहीं करते, तुम्हें भी आराम नहीं करना है और हम देखेंगे कि वह अपने बूढ़े नौकरकी ताक़तको चुनौती देता है या नहीं ।'

माइकेल एंजलो : मुझे कुछ एक मिनिट और दो; केवल एक चीज़ पूरी करनी बाक़ी है ।

अरबिनो : कुछ एक मिनिट, लेकिन उससे ज़्यादा नहीं । बेगमने यह साफ़ तौरपर चाहा है····

माइकेल एंजलो : अच्छा तो यही सही···· मुझे जागते रहनेके लिए कोई कहानी सुनाओ ।

अरबिनो : मैं आज तुम्हारे तसदीक़ कुनिन्दा-के पास गया था ।

माइकेल एंजलो : उसके बारेमें हम बात नहीं करेंगे ।

अरबिनो : वह कहता है कि जिन दो लड़-कियोंको आप दहेज दे रहे हैं वे कुछ इज़्ज़त-दार हैं ।

माइकेल एंजलो : अरबिनो, मुझे इस बातकी ख़ुशी है । मैं उनको ख़ुशीकी कामना करता हूँ; वे प्यारे बच्चे हैं यद्यपि बहुत बदसूरत भी ।

अरबिनो : मुझे आपका भतीजा भी मिला। जब आप बाहर गये थे तब वह आया था ।

माइकेल एंजलो : अच्छा····यदि वह वापस आये, उसे बताना कि वह मुझे शान्तिसे रहने दे और अपना काम करे ।

अरबिनो : वह सोचता है, और ठीक भी है, कि इतना अमीर न होकर भी आपने जो तीन हज़ार क्राउन उसे दिये हैं उसके लिए आपको धन्यवाद देना वह अपना बहुत बड़ा फ़र्ज़ सम-झता है ।

माइकेल एंजलो : वह जानता है कि मैं उसे प्यार करता हूँ; उसे मुझे धन्यवाद देनेकी कोई ज़रूरत नहीं ।

अरबिनो : मालिक, घड़ीने घण्टे बजाये– मध्यरात्रिसे एक घण्टा ऊपर हो गया है ।

माइकेल एंजलो : मैंने काम तो ख़त्म कर लिया है लेकिन मैं भूखसे मर रहा हूँ । क्या तुम्हारे पास खानेके लिए यहाँ कुछ भी नहीं ? भोजनके पीपेमें कुछ देखो तो ।

अरबिनो : मैं जाऊँ और देखूँ····वाह ! आपके घरकी हालत सचमुच पतली है । ज्यों ही आपके पास पैसा आता है, उसे आप अपने पास आनेवाले पहले व्यक्तिको दे देते हैं ।

माइकेल एंजलो : मनुष्यको आवश्यकता पड़ती है लेकिन अपने शरीरका गुज़ारा तो बहुत कमसे हो जाता है । लेकिन उसकी सभी शक्ति उसकी आत्माके उन्नयनके लिए पर्याप्त नहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरबिनो : थोड़ी-सी रोटी यहाँ पड़ी है····बहुत सूख गयी है—और पनीरका एक टुकड़ा है और बोतलमें भी कुछ थोड़ा-बहुत है।

माइकेल एंजलो : बहुत खूब ! यह सब कुछ ले आओ।

[अपनी दफ़्ती टोपी उतारता है, लैम्पको बेंचपर रखता है और खाना शुरू करता है। खाते-खाते उठ खड़ा होता है और अपनी मूर्तिकी ओर देखता रहता है। तभी दरवाज़ेपर दस्तक पड़ती है।]

अरबिनो : कौन ?

एक आवाज़ : मैं हूँ—ऐण्टोनियो मिनी···· गुरुजी, दरवाजा खोलिए !····मैं हूँ आपका शिष्य। आपके लिए एक ज़रूरी खबर लाया हूँ।

माइकेल एंजलो : मेरा शिष्य, ऐण्टोनियो मिनी? खोल दो! क्या कोई बुरा समाचार है?

ऐण्टोनियो मिनी : (प्रवेश करते हुए) ओह गुरुजी, बहुत बड़ी दुर्घटना हो गयी !

माइकेल एंजलो : क्या बात है ? तुम्हारा तो रंग उड़ा हुआ है ?

मिनी : रफ़ेल जा रहा है ! अबतक तो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो गया होगा।

माइकेल एंजलो : रफ़ेल ! हे स्वर्गमें बैठे ईश्वर !

रफ़ेल सेंजियो : १४८३–१५२०

मिनी : मैं उनके स्टूडियोंमें ही था, साथमें उनके दो शिष्य टिमोटिओ विटी और इल गरोफ़लो भी थे। तीन बजेके क़रीब वक़्त था। नौकरने आकर बताया कि गुरुजी बीमार हैं। उन्हें कल शामसे बुखार था।

माइकेल एंजलो : कलसे ? मुझे हैरानी नहीं। वह बड़े नाज़ुक स्वभाववाला मनुष्य था—आधा औरत और आधा बच्चा। वह बहुत अधिक समय कार्यव्यस्त रहता और उससे भी अधिक समय अपने व्यक्तिगत सुखोंमें बिताता। चार दिन पूर्व जब मैं उससे मिला तो वह कैम्पोवैक्सिनोंमें खोज कर रहा था और मुझे याद है, मैंने उसे चेतावनी दी थी कि सालके इस मौसममें वह खबरदार रहे। और तुम कहते हो कि उसकी हालत बिगड़ गयी है ?

मिनी : यदि उसका अबतक देहान्त नहीं हो चुका तो भी वह कल भोर होते तक नहीं बच सकेगा। वह स्वयं ही अपने स्टूडियो तक घिसट गया था, और मैंने उसे देखा, हाँ, मैंने देखा कि वह क़फ़न-जैसा सफ़ेद पड़ चुका है, अर्द्ध-मूर्च्छित है और उसकी निगाहें 'ट्रान्सफ़िगरेशन' की उसकी तसवीरपर गड़ी हुई हैं—बिस्तरके नज़दीक, जो जल्दीमें उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिछाया गया था, उसके दोस्त, कौडिनल (कैथोलिक धर्मके अध्यक्ष) बिब्बियना, साडोलेटो और बैम्बो और अन्य महाशय जिन्हें मैं नहीं जानता था खड़े थे—सिरहानेके पास हॉली फ़ादर थे जो फूट-फूटकर रो रहे थे और आँखें पोंछते जाते थे।

माइकेल एंजलो : अरबिनो, मुझे मेरी टोपी और अँगरखा दो। मुझे वहाँ जाना है। रफ़ेल····रफ़ेल····मृत्यु-शय्यापर! मेरे भगवान्, क्या यह सम्भव है?—जल्दी करो, चलो, चलें!

मिनी : वहाँ डाक्टरोंकी कमी नहीं थी! वहाँ तो हॉली फ़ादरके ब्रेशियावाले श्री जैकोपो थे और गीटानो मैरिनी तथा दूसरे भी थे। सब उदास नज़र आते थे और सिर हिला रहे थे। उनकी आँखोंसे स्पष्ट था कि उनका विज्ञान कुछ भी मदद नहीं कर सकेगा।

माइकेल एंजलो : आओ, अरबिनो, तैयार हो न?

अरबिनो : आइए स्वामी!

माइकेल एंजलो : सामने चलो, जल्दी करो।

[वे गलीमें निकल पड़ते हैं जहाँ बहुत अँधेरा है, लेकिन अब वर्षा नहीं; बादल जो एक-दूसरेपर तहें बनाये हुए थे उन्हें हवाने छितरा दिया है। गोल चाँदका कुछ भाग दिखाई दे रहा है जिससे मकानों और सड़कपर हलकी-सी चाँदनी पड़ी है। क़दमोंका तेज़ शोर सुनाई पड़ रहा है।]

माइकेल एंजलो : यह शोर कैसा है?

अरबिनो : इस गलीके उस नुक्कड़पर पहुँचनेपर पता चलेगा।

मिनी : आगे! सुरंग देखना, वह गड्ढा-सा है पानीका। (वह माइकेल एंजलोको बाँहसे सहारा देता है।)

[जल्दी-जल्दी और हड़बड़ाहटमें वहाँसे अनेक अफ़सर, सैनिक, नौकर और मशाल उठाये लोग गुज़रते हैं जिसकी लाल रोशनी मकानोंपर पड़ती है। इस जुलूसके बीचमें एक पालकी जा रही है जिसपर परदे पड़े हैं]

माइकेल एंजलो : (किसी बड़े राज्याधिकारीसे) : श्रीमान् जी, यह क्या है?

राज्याधिकारी : हॉली फादर बैटिकान लौट रहे हैं।

माइकेल एंजलो : क्या रफ़ेल····?

एक आवाज़ : रफ़ेल मर चुका है, और माइकेल एंजलो इटलीमें अकेला रह गया है!

[जुलूस आगे बढ़ जाता है; माइकेल एंजलो एक पत्थरकी बेंचपर झुक जाता है। बादल बिदा ले चुके हैं और चाँद साफ़ आसमानपर चमक रहा है।]

माइकेल एंजलो : मैं बचा रह गया, यह सच है—मैं अकेला बचा रह गया। पिछले वर्ष लिओनार्डो गया और अब रफ़ेल, और वे सब जिन्हें हम तीनोंने जाना या सुना, बहुत देरसे निकल चुके हैं। यह सच है, केवल मैं अकेला रह गया। एक वक़्त था जब मैंने एक मात्र रहना चाहा था—अनुपम, बेजोड़, सर्जक ईश्वरके रहस्योंको सबसे अधिक समझनेवाला! मैंने यह कल्पना की थी कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वके बीच सूर्यकी समानता कर सकूँ—मेरे बराबर कोई न हो, मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई न हो ताकि आनन्दकी सबसे अधिक प्रतिस्पर्द्धायुक्त स्थितिको मैं ही प्राप्त करूँ···· वर्षों तक मैं लियोनार्डोको पसन्द नहीं कर सका···मैंने रफ़ेलको अपने हृदयमें सबसे निम्नतम स्थान दिया है···मैं यह अपने दिलमें दोहराता रहा ताकि मैं आश्वस्त हो जाऊँ कि मैं उन्हें तुच्छ समझता हूँ···हाँ, ऐसे भी दिन थे, माइकेल एंजलो, तुम एक मामूली जीव थे—छोटी-सी निगाहोंवाले और परिमित दृष्टिवाले और उन सभीको दोषी ठहराने और ग़लत समझनेवाले जिनसे तुम्हारे विचार मेल न खायें, और, मैं तुम्हें बताऊँ, क्योंकि यह सच है—वह सब कुछ भी तुम्हारी ही तरह अच्छा था और शायद तुमसे बेहतर भी। अब मेरे पास वह है जिसे मेरा दिल चाहता था। आसमानसे सितारे छिप चुके हैं और मैं ही अकेला यहाँ हूँ—बिलकुल अकेला···और अपने ही अलगावमें घुटा हुआ!···अब भी टिटियन बचा है···वह अपूर्व-बुद्धि है···एक एण्ड्रिया डेल सारटो है···एक···लेकिन, दुःख है, इतना बड़ा नहीं जितने वे हैं, वे लियोनार्डो-से कुलीन पुरुष नहीं और न ही उसके-से जो वहाँ पड़ा है···आह, रफ़ेल!···उसका सौन्दर्य, उसकी सूक्ष्मता, उसकी मधुरता, उसकी शोभा, और उसकी बातें उसकी आकृतिकी ही तरह अलौकिक मधुमय थीं!···वह सभी कुछ जो मेरे पास नहीं···जिसे मैं न पा सका···जो मैं नहीं हूँ! वह जिसे सभीने प्यार दिया और जो स्वयं इतने प्यारके योग्य था···मेरे परमात्मा, मेरे प्रभु, यह क्या है जो मेरे ऊपर छा गया है? मेरे भीतर कौन-सी वस्तु हिंडोले ले रही है, जो मेरी उन आँखोंसे, जिन्होंने कभी रोनेका प्रयत्न नहीं किया, आँसू निकाल रही है? मैं किसके बारेमें सोच रहा हूँ? समझा, मेरी छातीमें दुःखका दरिया उमड़ रहा है; मेरी पलकोंसे आँसू बह रहे हैं और मेरे गालोंसे होकर उसपर गिर रहे हैं···जिसे मैं गालियाँ देता था और जिसे मैं दूर रखता था, और जो ईश्वरको मुझसे अधिक और अच्छी तरह प्यारा था। उसने मुझे ऐसा बताया, वह···विट्टोरिया···वह मुझे हमेशा ही ऐसा बताया करती थी, लेकिन मैं ही नहीं मानता था···लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कहीं गहराईमें मैं यह समझता था और अब, जब मृत्युका वज्र मेरे और उसके बीचमें-से गुज़र गया है, जब मैं यहाँ अकेला छूट गया हूँ, मेरे पाँव दुनियाकी कीचड़में फँसे हैं तब उसका वह नेक आकर्षक देवशक्ति-युक्त चेहरा मुझे ईश्वरकी छातीमें नज़र आता है···मैं देखता हूँ, मैं कितना बेईमान और तुच्छ रहा हूँ! नहीं-नहीं, टिटियन और अन्य लोग, वे कितने ही प्रशंसनीय क्यों न हों, इन दो विलग होनेवालोंके समान नहीं। इनमें और अपनेमें, जो रह गये हैं, प्रकाश धीमा पड़ रहा है और हट रहा है, साये बढ़ रहे हैं···हाँ, मैं अकेला यहाँ हूँ, और खुल रही क़ब्रकी बर्फ़ीली साँस मेरे चेहरेसे टकरा रही है। कलाओंका क्या बनेगा?···और हम, जिन्हें इतनी आशा रही,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी आकांक्षा रही, जिन्होंने इतनी कल्पना-की और इतना कार्य किया, क्या कुछ मिल पाया; आनेवाली पौढ़ीको कौन-सी विरासत सौंपें ? जितना हमें करना चाहिए था, उसका एक चौथाई भी नहीं कर पाये। (अपने हाथोंमें अपना मुँह छिपा लेता है।)

अरबिनो : मालिक, आइए, आपको ठण्ड लग जायेगी !

मिनी : मुझे अपना हाथ दीजिए और घर वापस चल चलिए।

माइकेल एंजलो : अच्छा, हमें अपनी सामर्थ्य को सुरक्षित रखना होगा और तबतक काम करना होगा जबतक ज़िन्दगीकी ज़ंजीर हमें घोंट न डाले।

(अनुवाद : किशोरीलाल वैद्य

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीक दृष्टि : बौद्ध भारत

■

● भवनान्द्रकमार विद्यालंकार

भारतपर सिकन्दरका आक्रमण होनेसे पहले भी ग्रीक-यात्री भारत आये थे। यह अब भारतके अनेक भागोंमें प्राप्त ग्रीक-सिक्कोंसे प्रमाणित हो गया है। ग्रीक नाविकका एक भित्ती-लेख मिला है : 'पूर्वी पवन, तुझे बहुत-बहुत धन्यवाद। उषाकालमें तेरा आगमन हुआ। तेरे कारण मेरी समुद्र-यात्रा सकुशल समाप्त हुई।' २४ परगनामें प्राप्त यह लेख बताता है कि अत्यन्त प्राचीन कालमें ग्रीक भारतसे व्यापार करने आते थे। ईसासे तीन हज़ार साल पहले भी गंगानगर और ताम्रलिपि, इन दो बन्दरगाहोंके द्वारा भारतका ग्रीस-रोमसे व्यापार होता था।

महाभारतकारने ग्रीकोंको यवन नामसे सम्बोधित किया है। उनकी भाषाका विधिवत् अध्ययन किया जाता था। महाराज युधिष्ठिर और साधु विदुर इस भाषाको जानते थे। वारणावत जाते हुए लाक्षागृह बनाये जानेकी सूचना विदुरने युधिष्ठिरको यवन-भाषा-द्वारा ही दी थी। परन्तु हमारी पाठ्य-पुस्तकोंमें किसी ग्रीक-यात्रीका वर्णन नहीं मिलता। सैलानी होने और भारतके प्रति श्रद्धा होनेके कारण भारतसे आर्थिक लाभ उठानेकी ग़रज़से न आये किसी ग्रीक-यात्रीका नाम साधारणतः हमारा इतिहास-लेखक नहीं लेता। परन्तु पर्यटन-उद्योग प्राचीन कालमें भी था और पर्यटक विश्व-भरमें भ्रमण करते थे। इनमें एक ग्रीक-पर्यटक एप्पोल्लोनियस था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एप्पोल्लोनियस टियानाका निवासी था ?

वह ज्ञान-लालसासे प्रेरित होकर भारत आया था। वह पंजाबमें रहा, गंगाका मैदान उसने देखा, नर्मदा नदी उसने पार की और समुद्र मार्गसे ग्रीस वापस लौट गया।

पैथागोरस (५०० ई० पू०) के बारेमें यह प्रसिद्ध है, कि वह भारत आया था। यह ग्रीक-दार्शनिक कर्मफलके सिद्धान्त और पुनर्जन्ममें विश्वास करता था। एप्पोल्लोनियस इस पैथागोरसका अनुयायी था। एक समय वह जीवनमें दरबारी था। दूसरे एक अन्य समय योद्धा था। एप्पोल्लोनियस कर्म-सिद्धान्तमें विश्वास करता था। वह जानता था कि भारतीयोंमें यह सिद्धान्त बहुत वर्षोंसे प्रचलित है। वह इसका सूक्ष्म अध्ययन करना चाहता था।

एप्पोल्लोनियसने यद्यपि संन्यास आश्रमकी दीक्षा नहीं ली थी, पर जीवन और कर्मसे संन्यासी था। वह शराब नहीं पीता था, वह माँस नहीं खाता था। वह कुमार और अविवाहित जीवन व्यतीत करता था। उसने क्षौर-कर्म भी त्याग दिया था। दाढ़ी बढ़ा ली थी। मुद्राका स्पर्श तक न करता था। एक आश्रमवासीका या एक फ़क़ीरका जीवन व्यतीत करता था। पश्चिमी एशियाके लोगोंकी दृष्टिमें वह ईसाके समान पूज्य और आदरणीय था। पैलेस्टाइनमें उसके सम्मानमें एक मन्दिर बनवाया गया था। उसकी भारत-यात्राका वर्णन रोमसम्राट् सेप्टीमियस सेवेरस फ़िलास्ट्रेटसकी पत्नी जूलिया डोम्नाने प्रकाशित किया था।

एप्पोल्लोनियसके साथ-साथ बैबीलोनिया-का एक निवासी डेमिस भी आया था। इसने ही ग्रीक-यात्रीके भारत-यात्राके वर्णन और अनुभवको सुरक्षित रखा। यह बादमें रोमके सम्राट्की पत्नीने प्रकाशित कराया। रोम सम्राट् फ़िलासट्रेटस स्वतः एक विद्वान् व्यक्ति था। इसने भी एप्पोल्लोनियसकी एक जीवनी लिखी। इस जीवनीमें ग्रीक-पर्यटककी भारत-यात्रा और भारत-यात्राके अनुभवोंका विशद वर्णन है। एप्पोल्लोनियस सरल-जीवन व्यतीत करनेवाला एक व्यक्ति था। सम्पूर्ण भारत-यात्रामें उसने वाहनका उपयोग नहीं किया। अतः जहाँ उसका परिचय महलों-दरबारोंसे हुआ वहाँ वह गड़ेरियों और चरवाहोंके सम्पर्कमें भी आया। वह सदा आश्रममें ठहरा। झोपड़ियोंमें रहा। एथेन्स और मिस्रमें इसने भारतीय संन्यासियोंके विषयमें सुना था। उसको ज्ञात था कि ग्रीसमें आनेके बाद दो भारतीय संन्यासियोंने भारत वापस जाने-की सुविधा न मिलनेपर अपनेको होम दिया, पर ग्रीक-सरकारके लगाये प्रतिबन्धको नहीं माना। आत्माहुतिकी यह कहानी ग्रीसमें सर्वत्र फैल गयी थी। एप्पोल्लोनियसने भी आत्म-त्याग और उत्कट देश-भक्तिकी इस कहानी-को सुना था। इसके कारण उसके मनमें भारतके वीतरागी संन्यासियोंको जाननेकी तीव्र इच्छा हुई। इसी कारण उसने उनके-जैसा जीवन-यापन करनेका निश्चय किया।

श्रमणकराज नामक ब्राह्मणने एथेन्समें अपनेको आगमें भस्म कर दिया था। प्रज्व-लित चिताके मध्य शान्त श्रमणकराजको बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए एप्पोल्लोनियसने देखा था। श्रमणकराज बरगोसा बन्दरगाहकी राह एथेन्स पहुँचा था। एथेन्स पहुँचकर वह बीमार हो गया। बीमारी लम्बी हो गयी। जीवित रहनेकी आशा क्षीण हो गयी। इस समय उसने अनुभव किया कि उसका वहाँ वैदिक विधिसे अन्त्येष्टि संस्कार करनेवाला कोई नहीं है। अतः उसने अपनी चिता स्वतः चुनी। उसको आग लगायी, इसके बाद प्रज्वलित चितामें वह चुपचाप जाकर बैठ गया। यह एक वैदिक संन्यासीकी स्वेच्छावरण मृत्यु थी। श्रमणकराज जहाँ चिता बनाकर जला था, वहाँ श्रद्धालु एथीनियनोंने समाधि बनायी। इसपर निम्नाशयका लेख लिखा गया :

'बारगोसाका भारतीय ज़ार मानोचेगाज यहाँ सोया पड़ा है, जिसने भारतकी प्राचीन परम्परा और रिवाजके अनुसार अपनेको अमर बना लिया।'

इस ब्राह्मणके उत्कट विश्वास और श्रद्धासे एप्पोल्लोनियस बहुत अधिक प्रभावित हुआ। ब्राह्मणोंको समझनेके लिए उनके साथ रहना जरूरी है, यह बुद्धि उपजनेपर उसने भारतकी यात्रा करनेकी योजना बनायी। वह जानना चाहता था कि वह क्या कारण है, जिससे भारतीय ब्राह्मण मृत्युसे नहीं डरता। अपने विश्वासों और अपनी परम्पराओंके प्रति उसकी दृढ़ श्रद्धाका क्या कारण है ?

भारत आनेसे पहले एप्पोल्लोनियस एण्टीयोक और बेबीलोनिया गया। बेबीलोनिया इस समय व्यापारका अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र था। बेबीलोनियामें नरेश बारडेंसने उसको परिचय-पत्र दिया था। इसमें राजा बारडेंसने लिखा था :

"मैं आपके पास एक दिव्य पुरुष भेज रहा हूँ। इसके प्रति उदारता प्रदर्शन करनेमें अन्य नरेशोंका अनुकरण करो। यह वह सम्मान पानेका पात्र है।"

राजा बारडेंसने ही डेमिसको एप्पोल्लोनियसके साथ भारत भेजा। डेमिस इससे पहले बहुत बार भारत आया था। इससे एक बात स्पष्ट है कि एप्पोल्लोनियस असाधारण व्यक्ति था और पश्चिमी एशियामें केवल विख्यात ही नहीं, सम्मानित और पूज्य व्यक्ति था। ऐसे नेताका भारतमें श्रद्धासे आना प्रकट करता है कि मनुने जो यह लिखा था, वह अकारण नहीं लिखा था :

'एतत् देशप्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः॥'

भारतीय ब्राह्मणके इसी महान् चरित्रने एप्पोल्लोनियसको भारत आनेकी प्रेरणा दी थी। एप्पोल्लोनियसने भारत पहुँचनेपर सर्वप्रथम जो अनुभव किया और जिस बातकी उसके मनपर छाप पड़ी, वह यह थी कि भारतीय अत्यन्त शान्तिप्रिय हैं। उन्होंने अबतक कभी किसी देशपर स्वतः आक्रमण नहीं किया, सदा आत्मरक्षा ही की है। वे अपना देश छोड़कर दूसरे देशोंमें भी नहीं गये। अतः उनकी जनसंख्या बराबर बढ़ती गयी। भारतमें उस समय अनेक बड़े-बड़े शहर थे। वे योजनापूर्ण-पद्धतिसे बसाये गये थे। सड़कें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर थीं। सड़कोंके दोनों ओर दूकानें थीं। इन दूकानोंमें हरेक चीज़ सदा विद्यमान रहती थी। सौदागरीकी चीज़ोंसे वे सदा भरी-पूरी थीं। नदी-घाटी-प्रदेशमें सिचाईकी उत्तम व्यवस्था थी। एप्पोल्लोनियस ने देखा कि मैदान नहरों-द्वारा सब दिशाओंमें विभक्त हैं। नदियोंमें संचारकी व्यवस्था भी उसने उत्तम पायी। उसने भारतकी फ़सलोंकी मिस्रकी फ़सलोंसे तुलना की और इस निष्कर्षपर पहुँचा कि मिस्रकी तुलनामें भारतका गेहूँ तो 'रीड़' के समान है। बीन-फलियोंसे तीन गुणा बड़ी हैं। ज्वार-बाजराके दाने असाधारण रूपसे सुन्दर हैं। गिरिया आकारके कारण उल्लेख योग्य थीं। इसका ग्रीसके मन्दिरोंको निर्यात किया जाता था।

एप्पोल्लोनियसने भारतको पशुओंकी दृष्टिसे समृद्ध पाया। गड़ेरियोंके चेहरोंको उसने आकर्षक, स्वस्थ और प्रसन्न पाया। वे भेड़से लेकर हाथियों तकके मालिक थे। एप्पोल्लोनियसको सर्वाधिक प्रभावित करने-वाली बात यह थी कि समाजके अन्य सब वर्ग अपने-अपने ही कार्यकी चिन्ता करते थे, अपना-अपना ही उद्योग देखते थे। पशुओंको पालने और खेती करनेपर उनका विशेष ध्यान था। वे निरन्तर सूर्यकी पूजा करते थे। उनके अन्य आराध्य देव थे : चन्द्र, अग्नि। उनकी प्रार्थनाका सार होता था। भारतके सुख, मंगल और समाज व वर्गोंके हित-चिन्तनमें वे निरत थे। वे सब उद्योगोंसे सम्बन्धित थे। उनका अपना कोई ख़ास उद्योग और व्यापार न था। वे समाज़के थे और समाज उनका था।

एप्पोल्लोनियसने बड़े-बड़े शहरोंमें विशाल इमारतें देखीं। ये दो-मंज़िली होती थीं। इनके नीचे तहख़ाना होता था। वह स्टोर-भण्डारका काम करता था। गरमियोंमें यह शीतागारका काम करता था। सरदारों, सामन्तों और नरेशोंके भवन शहरोंके मकानोंसे ज़रा कुछ भिन्न प्रकारके होते थे। भारतीय अधिकतर सूती वस्त्र पहनते थे। साधारणतः ये सिले नहीं होते थे। पाँवोंमें खड़ाऊँ पहनते थे। वे शायद ही कभी शराब पीते हों। वे पर्याप्त मात्रामें धन बचाते थे। उनका जीवन साधारण था और उनकी आवश्यकताएँ अल्प थीं। भारत समृद्ध है, क्योंकि लोगोंका जीवन सरल और सीधा है। एप्पोल्लोनियसको यह भी अनुभव हुआ कि भारतीयोंको अपने मन्दिरोंके प्रति बहुत अधिक अभिमान है। ये साधारणतः शहरकी चारदिवारीसे बाहर होते हैं जिससे सब लोग उसके दर्शन करने जा सकें। इन मन्दिरोंके स्तम्भ इनको अपूर्व शोभा प्रदान करते हैं। मन्दिरोंको अलंकृत करने और प्रतिमा बनानेकी कला और उसमें धातुओंके मिश्रणके विषयमें भी उसने विवेचन किया है।

सब राजधानियोंमें उसने देखा कि राजा स्वतः न्यायदान करते थे। नरेशोंका जीवन कठोर और परिश्रमी था। वे कड़ी मेहनत करते थे। उनको भारत और बाहरके देशोंके बारेमें पूरी-पूरी जानकारी रहती थी। भारतके महात्माओंको भी दुनियाका यथार्थ और पूर्ण ज्ञान रहता था। भारतीय दर्शन और संस्कृतिकी चर्चा करते हुए तक्षशिला नरेशने ग्रीक-पर्यटकसे कहा था, राष्ट्र ज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य राष्ट्रोंको विजय करनेको उद्यत होते हैं, तो उनका दर्शन भी लूट व डाकेज़नीका हो जाता है। परन्तु भारतमें तत्त्वज्ञान व दर्शनको उच्च सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। कोई छात्र इसका अध्ययन करनेको प्रवृत्त हो, उससे पहले उसको इसकी पात्रता अपने चरित्र और वंशसे सिद्ध करनी चाहिए।

भारतके उस समयके सब विश्वविद्यालयोंके पास एक रजिस्टर रहता था जिसमें इस बातका विवरण रहता था कि उस विश्व-विद्यालयके छात्र कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं। प्रत्येक शहरकी नगरपालिकामें एक रिकॅर्ड रखा जाता था। विश्वविद्यालयोंमें प्रवेश पानेवाले छात्रको इस रिकॅर्डका प्रमाण-पत्र देना होता था। इसके बिना वह विश्व-विद्यालयमें प्रवेश नहीं पा सकता था।

एप्पोल्लोनियस जब भारत आया, उस समय भारतकी सामान्य राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। भारतमें उस समय हिन्दू-धर्म, बौद्ध-धर्म और ब्राह्मण-धर्म प्रचलित थे। ये तीनों अपना सब काम संस्कृत-द्वारा करते थे। धर्म-ग्रन्थ और विश्वविद्यालयोंकी पाठ्य-पुस्तकें भी संस्कृतमें थीं। समाजमें ब्राह्मणोंका बहुत सम्मान था और उनको उच्च स्थान प्राप्त था। देश-भरमें आश्रम थे। इन आश्रमों और विश्वविद्यालयोंके छात्रावासोंमें जीवन एक-जैसा ही था। जीवनकी न्यूनतम आवश्य-कताओंको ही पूरा करनेमें ये आत्मसन्तोष मानते थे। ग्रीक-पर्यटक बहुत दिनों तक तीर्थ-यात्राके धार्मिक स्थानों और विद्याके केन्द्रोंमें कोई भेद ही नहीं कर सका। क्योंकि तीर्थ-स्थान भी उस समय विद्यादानके पुण्य केन्द्र थे। धर्मगुरु लम्बा चोग़ा पहनते थे—जैसे आजकल पादरी पहनते हैं—पर नंगे पैर रहते थे। वे पर्वतोंपर या नदियोंके तटपर रहते थे। सम्भवतः वे वेदकी इस ऋचामें दृढ़ भक्ति रखते थे :

"उपगह्वरे गिरिणां
संगमे च नदीनां
धिया विप्रो अजायत।"

इनका समाजपर राजाओंसे भी अधिक प्रभाव था। ग्रीक पर्यटकने इस सत्यको अनुभव किया :

"विद्वत्वं च नृपत्वं च
नैव तुल्यं कदाचन
स्वदेशे पूज्यते राजा
विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।"

हाँ, अनेक संन्यासी राजाओंके मन्त्री भी थे। प्रशासनपर उन वीतरागी संन्यासियोंका राजासे भी अधिक प्रभाव था।

विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंका जीवन कठोर था। रात दो बजे वे उठा दिये जाते थे। प्रार्थनाके साथ उनके दैनिक कार्यका प्रारम्भ होता था। फिर वे स्नान करते थे। शिक्षकों-की योग्यता बहुत ऊँचे दरजेकी थी। योग्य शिक्षक ही नियुक्त किये जाते थे। ठीक योग्यताका व्यक्ति न मिलने तक वह पद खाली रखा जाता था। अनेक बार प्रोफ़ेसरों-की संख्या घटते-घटते एकपर पहुँच जाती थी। परन्तु इसी कारण शिक्षाका स्थिर उच्च प्रतिमान नहीं घटाया जाता था।

मिस्री विश्वविद्यालयोंने एक बार विद्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठमें एकमात्र चार साल तक एकाकी रहे आचार्यको बधाईका सन्देश भेजा था। इस बधाईके उत्तरमें उस एकाकी आचार्यने मिस्रियों-को लिखा : 'मिस्री भारतको कभी इस बातके लिए दोष न देंगे कि बुद्धिमान् मनुष्योंकी संख्या थोड़ी है। हम भारतमें विश्वविद्यालयों-के वास्ते विहित प्रतिमानसे नीचेका कोई उपाध्याय कभी नहीं नियुक्त कर सकते।'

एप्पोल्लोनियसने एक और विचित्र बात लिखी है, उसने किसी व्यक्तिको भारतमें कभी भी दास नहीं पाया। यूरॅपियन ऐति-हासिकों और उनके शिष्योंको इससे भारी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। क्योंकि वे मानते हैं कि प्राचीन भारतमें दास होते थे। यदि भारतमें दास न थे, तो वर्गहीन समाज-की स्थापनाका एक पाया ही जाता रहेगा।

तक्षशिलाके राजाने एप्पोल्लोनियससे कहा था : यदि दास मालिकको छोड़कर नहीं भागते, तो मालिकको चाहिए कि वह दासों-को छोड़कर भाग जाये। आत्म-मुक्तिके लिए सतत प्रयत्न करनेवाले देशका ही एक राजा यह बात कह सकता था। ग्रीक-पर्यटकके वास्ते यह बात अद्‌भुत और सर्वथा विस्मय-जनक थी। क्योंकि ग्रीसकी समृद्धि और सभ्यताका आधार ही दास थे। एथेन्स तकमें दासोंकी संख्या नागरिकोंसे कहीं अधिक थी। भारतमें इससे भिन्न अवस्था देखकर ग्रीक-पर्यटक यदि चकित रह गया हो, तो क्या आश्चर्य। लेकिन एक बात है। ग्रीक-विद्वान् पर्यटकके भारत-दर्शनमें कहीं अवश्य त्रुटि रह है। क्योंकि आचार्य चाणक्यने कहा है, 'नार्य दासमर्हति'—आर्यको दास नहीं बनाया जा सकता। इसका अर्थ है कि सिकन्दरके आक्र मणके बाद भारतमें भी ग्रीकोंकी देखा-देखी दास-विक्रय होने लगा था। इसको रोकनेके वास्ते आचार्य चाणक्यको यह नियम विहित करना पड़ा कि किसी भी अवस्थामें आर्य दास नहीं हो सकता।

एप्पोल्लोनियस भारतसे जब बिदा हुआ तो भारतका स्नेह लेकर गया। भारतके प्रति उसके हृदयमें केवल श्रद्धा ही नहीं, कृतज्ञता भी थी। भारतसे बिदा होते हुए उसने पोटाला (बम्बईके समीप) के आश्रमवासियों को धन्यवाद देते हुए पत्र भेजा था। उसका आशय था : 'मैं आप लोगोंके पास स्थल-मार्गसे आया था। आपकी सहायतासे मैं समुद्र-द्वारा अपने देश लौट रहा हूँ। यदि मैं चाहता तो आकाश-मार्गसे भी ग्रीस लौट सकता था क्योंकि आपने मुझे ऐसा ज्ञान प्रदान किया है। ग्रीस लौटनेपर ग्रीकोंके मध्य रहते हुए भी इन बातोंको मैं कभी न भूलूँगा। आप लोगोंके साथ बराबर पत्र-व्यव-हार रखूँगा। बिदा, भारतके सर्वश्रेष्ठ दार्श-निको ! बिदा, बिदा।' भारत और ग्रीसके बीच क्या सम्बन्ध था, उसका यह पत्र एक उत्कृष्ट नमूना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

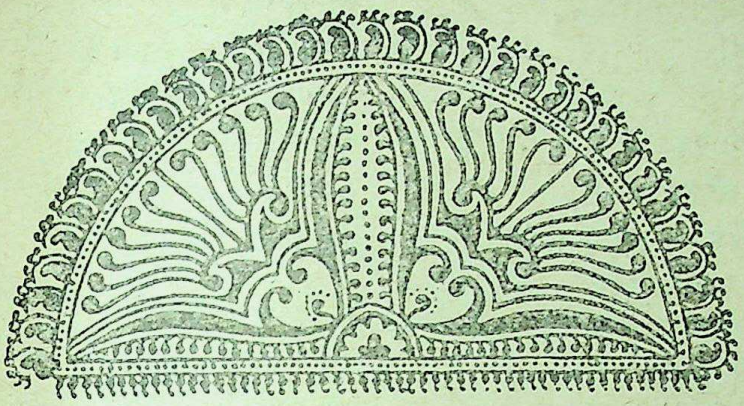

मलयाली वंशी-स्वर

कवि कुरुपकी तीन कविताएँ

[ज्ञानपीठ-पुरस्कारसे सम्मानित जि० शंकर कुरुपकी विशेष रूपसे चुनी हुई ये तीन कविताएँ ज्ञानोदयकी ओरसे पहली बार प्रामाणिक रूपमें हिन्दीमें प्रकाशित की जा रही हैं। कुरुपके पुरस्कृत संग्रह 'ओटक्कुषल' (बाँसुरी) में इन कविताओंका अपने भाव-स्वरके कारण विशेष महत्त्व है। इनका अनुवाद एरणाकुलम् जाकर कवि कुरुपके सान्निध्यमें उनके एक-एक शब्द और भावको समझनेके उपरान्त प्रस्तुत किया गया है। गीतांजलिके अनुवादकी प्रक्रिया भी यही थी। कविके भावोंकी सहजता और अनुवाद-भाषाके प्रवाह दोनोंकी रक्षा गीतांजलिके अँगरेज़ी अनुवादमें तब आ सकी जब अपने अनुवादको रवि बाबूने अँगरेज़ी भाषाविद्की सहायतासे अन्तिम रूप दिया था। हम प्रयत्न करेंगे कि ओटक्कुषल-से कुछ और कविताएँ ज्ञानोदयमें प्रकाशित कर सकें।—लक्ष्मीचन्द्र जैन]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्याम सुन्दर,
अनादि अनन्त,
हे आकाश !
तेरे विश्वव्यापी हृदय में-से, चू पड़ी है
स्नेह की एक शीतल ओस-बूँद
जिसने बना दिया है मुझ पुष्प को
पुलकित और पूर्ण-काम !

जो हाथ सागर को भरते हैं
वे भला इस तुच्छ सीपी को
नितान्त भरा-पूरा बनाने में
क्यों कोई अभाव अनुभव करेंगे ?

किन्तु, मेरा यह मृदुल दल-सम्पुट
आपके दिये गन्ध-आमोद के भार से
पहले ही विनम्र है,
फिर, भगवन् ! आपकी कृपा का यह
चंचल-सीकर
मैं किस प्रकार वहन करूँ ?

समेट लो इस बूँद को, दया करके
हे तेजोराशि !
यह कहीं गिर न जाये सूखी धरती पर
मेरे दौर्बल्य के कारण ।

अपनी अंग-श्री-द्वारा तूने
हरा-भरा बनाया है इस टीले की तराई को
मैंने यहाँ जीवन-भर लूटा है स्वातन्त्र्य-सुख
तेरी प्रेरणा से मैंने सदा ही भोगा है विकास
का उल्लास
तूने मुझे बनाया है नितान्त धन्य !

जो पहनते हैं
मन्दार वृक्षोंके पल्लवों का
स्वर्णजटित रेशमी छत्र
उन देवताओं के उद्यान में
रत्न-शैल के प्रान्तर-प्रदेश में
नहीं खिलना चाहता हूँ मैं ।

मैं चाहता हूँ खिलना
उस भूमि में जहाँ
तेज गरमी की आँच से झुलस गयी है
दूब; सिर धुन रहे हैं सूखी घास के झुण्ड !

मेरी स्वतन्त्रता के स्वच्छ मुख पर
स्वर्ग के उन महान पेड़ों की छाया की
कालिमा न पड़े,
यही है मेरी प्रार्थना !

परतन्त्रता के रत्नों से जगमगाते महल
की अपेक्षा
मेरे लिए सुखकर और सन्तोषदायिनी है
स्वतन्त्रता की घास में उगी-बनी
मेरी छोटी-सी मलिन झोपड़ी !

मुझे डर है, कहीं इन कल्पवृक्षों की
कमीनी छाया
तुम्हारे प्रियदर्शी मुख को
मेरी आँखों से ओझल न कर दे !

कहीं ऐसा तो नहीं कि
स्वर्ण-शैलों की पीली कान्ति की
झिलमिलाहट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे कोमल अंगों की नाज़ुक मालिमा
तिरोहित हो जाये ?

कहीं ऐसा तो नहीं कि
भौंरों की लोभग्रस्त चाटुकारिता के गीतों
की गुनगुनाहट में
मैं तुम्हारे मंगलमय मौन-गान को
भुला बैठूँ ?

ऊँचा है रत्नगिरि का शिखर
किन्तु उससे भी ऊँचा है वह स्थान
जहाँ से जगमगाता है भोर का तारा ।
प्रभात के उस तारे की तरह ही इस
वनपुष्प को भी
सदा सुन्दर और समुत्फुल्ल बनाते हो तुम,
धन्य है तुम्हारी समदर्शिता ।

जब अपनी लाल-श्रोणित जिह्वा से चाट-
चाटकर
घने अन्धकार को भी तुम लील जाते हो
ताकि संसार का परित्राण हो तमान्ध कारा से
तो बाल-पवन पास आकर मुझे झकझोरता है
मैं चौंककर एक अनोखे विस्मय के साथ
जाग जाता हूँ ।

मेरी कामना है, मैं खड़ा होऊँ
नव चेतना से भरी इस भूमि के आनन्द में
मात्र सहभागी बनने के लिए, बिना किसी
अन्य आशा के ।

बेशक़, न फैले मेरी सुरभि
न हो मेरे भाग्य में महान् तारिकाओं की
दृष्टि का आतिथ्य—
स्नेहसिक्त, आदर-भरा !

मैं विनम्र और लज्जाशील,
कानन-पुष्प
सदा तुम्हारे पावन प्रवर्द्धित लावण्य का
आशीष लिये,
प्रेम-प्रमुदित और निःशोक झर जाऊँ
मातृभूमि के पवित्र वक्ष पर—
यही है मेरी कामना !

० ० बाँसुरी

लीला-भाव से जीवित गीतों को गानेवाले
दिशा और काल की सीमाओं से निर्बन्ध,
हे महामहिमामय !
मैं जन्मा था अज्ञात अपरिचित
किसी मिट्टी में पड़े-पड़े नष्ट हो जाने के लिए ।
किन्तु तेरी वैभवशालिनी दया ने मुझे
चराचर को आनन्दित करनेवाली बाँसुरी
बना दिया ।

तूने अपनी साँस की फूँक से
इस निःसार खोखली नली में
प्राणों की सिहरन उत्पन्न कर दी !

मन को मगन कर देनेवाले
अखिल विश्व के अनोखे गायक !
तू ही तो है जो मेरे अन्दर गीत बनकर बसा है—
अन्यथा क्या साहस था इस तुच्छ जड़-वस्तु का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि हर्षोल्लास से भरकर यह किंचित् भी
राग आलाप कर सकती !

मन्द-हास का मनोरम नवल-धवल फेन
प्रेम-प्रवाह की कलकल मन्द्र ध्वनि,
मानव-अहंकार की उद्दाम लहरोंका उछाल,
अश्रुसिक्त नेत्रोंके नीले कमल,
दैन्य-दारिद्र्य के वर्षाकालीन मेघों की
काली छाया,
सांसारिक पापों के भँवर-जाल
—इन सबको साथ लिये-लिये बहती रहे
मेरे अन्दर की संगीत-कल्लोलिनी यह सरिता,
हे प्रभु !

हो सकता है कि कल यह वंशी,
मूक होकर काल की लम्बी कूड़ेदानी में गिर जाये
या यह दीमकों का आहार बन जाये
मात्र एक चुटकी राख के रूप में परिवर्तित
हो जाये
तब कुछ लोग होंगे जो शोक-निःश्वास लेकर
गुणों की चर्चा करेंगे;
लेकिन लोग तो बुराइयों के ही गीत गायेंगे-
जो भी हो, मेरा जीवन तो तेरे हाथों में
समर्पित होकर
सदा के लिए आनन्द-लहरियों में तरंगित
हो गया—
धन्य हो गया ।

० ० ० माँ कहाँ है ?

"कहाँ है, कहाँ है माँ ?
पिता जी, आपकी आँखों से
क्यों बहे जा रही है आँसुओं की धार
क्यों आप गालों को धो रहे हैं बार-बार ?"
—पूछ रहा है मुन्ना, इस तरह रो-रोकर
कि वज्र भी पिघल जाये !
लाल प्रवाल-जैसे उसके होठ प्रश्नाकुल हैं !

अस्त सागर के छोर पर पहुँचने के लिए
अत्यन्त उल्लास-विकल सूर्य-शिशु
आह्लाद की किलकारियाँ भरता हुआ
निर्मल सन्ध्या के मनोरम आँचल को
बार-बार घसीटे जा रहा है !

दिनान्त हो गया है,
एक छोटा सितारा अम्बर की ऊपरी मंजिल पर
खड़ा है अत्यन्त विपन्न और पीत-वर्ण
क्योंकि नहीं दिखाई दे रही है कहीं भी उसे
अपनी माँ रात्रि !

वात्सल्य से विकल होकर, गोद में उठा लेने के लि
जब आती है रात्रि बाल-चन्द्र के साथ
तो सागर आनन्द-विह्वल होकर
लोट-पोट हो जाता है,
सिकताओं की प्रभापूर्ण शय्या पर !
भूमि और सागर के इन सभी प्रदेशों में
सदा ही माँ को खोजनेवाला बाल-पवन
निराशा से पराभूत और नितान्त दीन—
बिलख-बिलख कर रो रहा है
"कहाँ है : कहाँ है, माँ ?"

प्यारे मुन्ने !
तूने शोकाकुल होकर जिस देवी को पुकारा है
वह तो स्वर्ग में निवास कर रही है,
देख तो, वहाँ उसे कितने सारे नक्षत्रों को
निरन्तर पालना-पोसना है, अपना प्यार देना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्राष्ट्रीय राम-झरोखा

• एन० खन्ना

मस्तिष्कके बलपर जब जंगली-जीवनसे उठकर मनुष्य मनुष्य बना और उससे भी पहले जब उसने मनुष्य बनना प्रारम्भ ही किया था, उसमें चित्र बनानेकी प्रवृत्ति जागृत हो चुकी थी। धीरे-धीरे युगोंके प्रवाहके साथ-ही-साथ कला विविध तथ्योंको लेकर आगे बढ़ते-बढ़ते आज उस मंज़िलपर पहुँच गयी है जहाँ एक छोटे-से काले धब्बेको भी अमेरिका-जैसा प्रगति-पसन्द राष्ट्र कला-प्रगतिका बहुत बड़ा प्रतीक बताने लगा है। बात अजीब-सी ज़रूर है पर सच है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें अखिल भारतीय ललित कला समितिकी ओरसे दिल्लीमें आयोजित ५वीं अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक चित्रोंकी प्रदर्शनीमें देखनेको मिलता था। इस प्रदर्शनीमें १९ राष्ट्रोंने अपनी श्रेष्ठ कृतियोंका मेला लगाया, जिसका उद्घाटन १९ दिसम्बर १९६५ को केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री श्री छागला-द्वारा किया गया। इसी प्रदर्शनीका कलकत्ता, हैदराबाद, चण्डीगढ़, अमृतसर, जयपुर, अहमदाबाद तथा बम्बईमें भी आयोजन किया जायेगा और जुलाई १९६६ को दिल्लीमें पुनः इन्हीं चित्रोंका प्रदर्शन किया जायेगा। एक बात तो बिलकुल ही स्पष्ट है कि ब्राजिलमें होनेवाली सा पालो या वेनिसमें होनेवाली प्रदर्शनियोंकी तरह यहाँ तमाम राष्ट्रोंका सहयोग नहीं दिखता है, साथ ही आधुनिक कलाके अगुआ फ्रान्स-जैसे राष्ट्रोंने भी केवल पुराने पुनर्निर्मित चित्रोंको ही प्रदर्शनके लिए भेजा है। ठीक है, इटलीसे ही कलाका दान प्राप्त होते हुए भी आधुनिकताके क्षेत्रमें इनकी अपनी मौलिकता है, यही नहीं इनकी सक्रियताका एक और भी प्रमाण है कि सन् १९०५ में जब यहाँके कलाकारोंने सर्वप्रथम प्रयोगवादी कृतियोंका प्रदर्शन किया तब उनका खुलकर विरोध हुआ और आलोचकों-द्वारा प्रदर्शनीको जंगली जानवरका पिंजड़ा

मदाम जेडका पोर्ट्रेट : पिकासो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(केज ऑफ़ वाहल्ड एनीमल) के नामसे सम्बोधित किया गया, फिर भी इनमें शिथिलता नहीं आयी जिसके परिणामस्वरूप इन्हें आधुनिकताका अगुआ भी कहा जाता है। फिर भी छपे हुए चित्र भेजनेके कारण ये निन्दाके पात्र हैं क्योंकि प्रदर्शनीमें केवल उन चित्रोंकी आवश्यकता थी जिनसे वर्तमान गति-विधियोंका स्पष्टीकरण हो सके।

अमेरिकाके विषयमें यहाँ ज़्यादा कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि काले धब्बे तककी बात लिख ही चुका हूँ; दूसरी बात संक्षेपमें इतनी ही है कि इनकी कला कुछ दिनों पहले तक ऑप-पॉप तक आयी थी और अब निरन्तर शिल्पगत विविधताओंकी ओर बढ़ती जा रही है जिसमें आजकल सेरियोग्राफ़को ही एकमात्र प्रधानता मिल रही है। अब युद्धकी बिभीषिकाके बाद अपनी कलात्मक प्रवृत्तियोंमें प्रगति लानेवाले जर्मनकी ओर देखें। एक समय था जब यहाँ कलाकार मज़दूर या पेशेवर ही समझा जाता था और उसकी भावनाओंको यथार्थवाद तक ही सीमित रखनेका प्रयास किया जाता था, पर वेस्ट जर्मनके चित्रकार नयी परिपाटीके प्रभावसे बच न सके, जिस कारण प्रतिनिधि कलाकार होते हुए आज अपनी प्रवृत्तियोंको अतिप्रभाववाद तक ला चुके हैं। माइकेल एंजलो (इसी अंकमें आपने मुक्त चिन्तन पढ़ा है।—सं०) और फ़ान्सके वर्तमान चित्रकार राऊल्टका इनपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा, जैसा कि क्रमशः प्रो० विली सिट्टीके 'फ़ुटबालके खिलाड़ी' एवं प्रो० वर्ट हेलरकी 'जुटा हाफ़मन की मुखाकृति' नामक प्रदर्शित चित्रोंसे दिखता है। पूर्वी जर्मनीपर मिली-जुली शैलियोंका प्रभाव पड़ रहा है। अभीतक इनकी अपनी कोई भी निर्धारित दिशा नहीं है।

नारवे और हंगरी दोनों ही यथार्थ आकृतियोंको चित्रावलेखनीय (ग्राफ़िक्स) शैलियोंके माध्यमसे अभिव्यक्त करनेमें ही विश्वास रखते हैं। हंगरीके चित्रोंमें तो यथार्थ ही नहीं बल्कि छाया-चित्रों (फोटोग्राफ़िक्स) के प्रभावके संयोजनोंका भी प्रदर्शन देखनेको मिलता है। नारवेमें निःसन्देह कुछ नये सन्दर्भोंकी खोज है। ट्रांग बोटमनकी स्वाइहिरोइक नं० १ में कलाकार रुबेन्सकीभावनाओंका प्रभाव होते हुए भी टेकनीककविशिष्टताके अन्तर्गत छाया एवं प्रकाशप्रतीकोंकी पारदर्शिता एवं अभिव्यक्तीकरणसरल सुगढ़ता दिखती है।

आस्ट्रेलिया जहाँ कि सभ्यताको पनअभी बहुत समय भी नहीं हुआ है फिर भइन्होंने थोड़े-से समयमें जो कुछ भी किया अपने स्थानपर महत्त्वपूर्ण है—इनपर अथोड़ा-बहुत पाल गोगाँका प्रभाव बना हुआ हैयहाँके क्विलफ़टन रौ नयेपनको लानेके लिसबसे आगे चल रहे हैं। इनके पड़ोसी राज्यन्यूज़ीलैण्डके चित्रोंको तो देखकर ऐसा लगहै कि ये धारामें बहकर एकदम अमूर्तनफाँदनेका असफल प्रयास कर रहे हैं।

रुमानियाके कलाकारोंकी इस दृष्टिसराहना की जा सकती है कि इनपर अपरम्पराका काफ़ी प्रभाव होते हुए भी प्रतीकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर :
'वसन्त' : लक्ष्मण पै

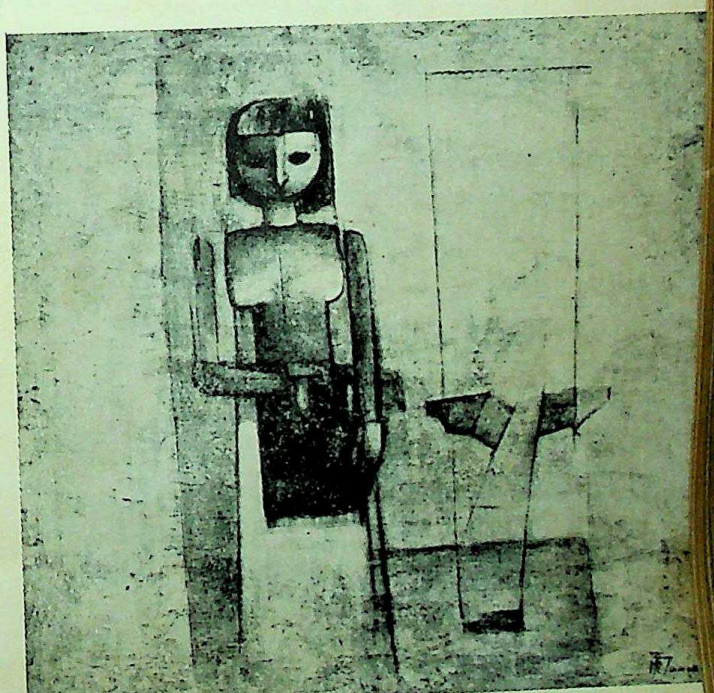

दाँये :
'स्टेट-२' : ट्रेत्ज़ जैन्स्त्स्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

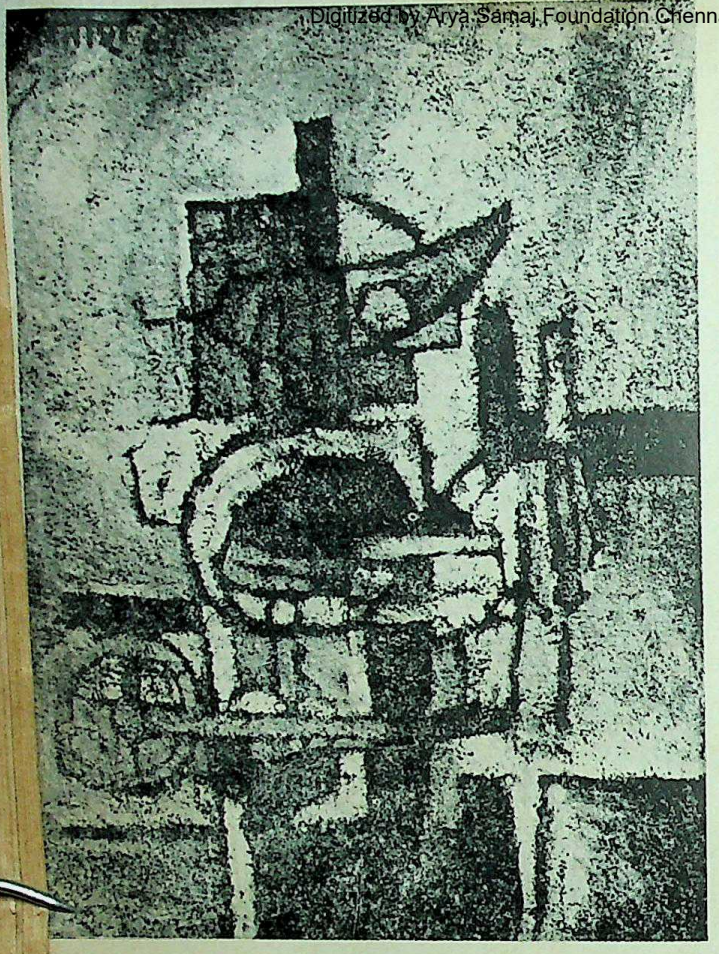

बाँये :
'आदमी और मशीन'
—सतीश गुजराल

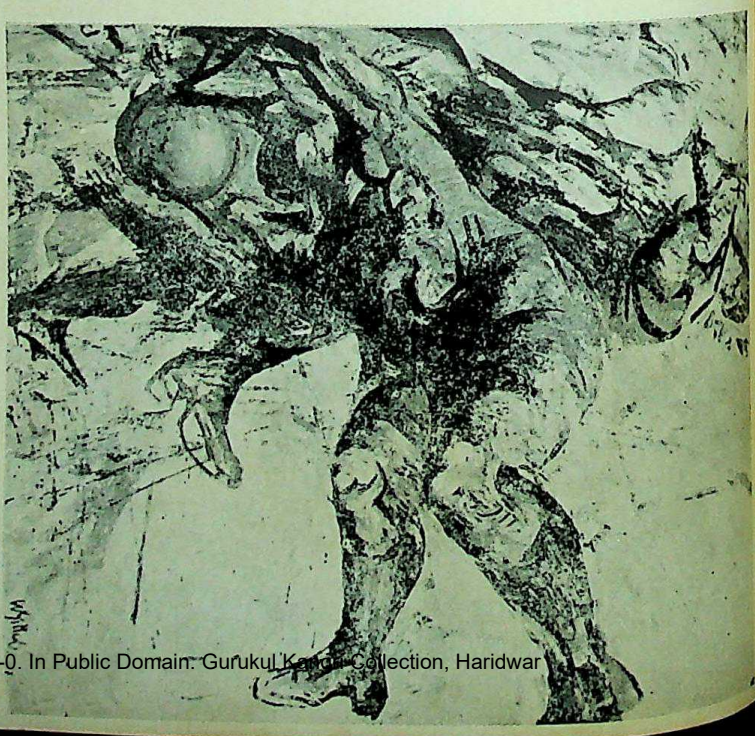

दाँये :
'फुटबालके खिलाड़ी'
—कार्ल एरिकमूलर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यमसे आगे बढ़नेका प्रयास कर रहे हैं। युगोस्लाविआके चित्रोंमें बीते हुए समयका चित्रण एवं भविष्यकी आशाओं और भयानकताओंके चित्रणको देखकर इसे पूर्वी युरॅपका सबसे अधिक प्रगतिवाला राष्ट्र ही कहना ठीक होगा। चेकोस्लोवाकियामें किसी तरहकी प्रगति नहीं दिखती। स्विटज़रलैण्डके कलाकारोंने अधिकतर प्रकृति चित्रणोंकी ही रचना की है जिनमें प्राइमरी रंगोंका ही प्रयोग दिखता था।

नीदरलैण्डमें मेर्थी रोलिंगके चित्रमें फ़ोटोग्राफ़िक प्रभाव, ई० वी० हैमलके चित्रमें ऑपपॉपका प्रभाव तथा जे० के० वेन देन ब्रोयकके चित्रमें इंग्लैण्डके राबर्ट मेलबिलीका जो प्रभाव दिखता है इससे यह स्पष्ट है कि यहाँके कलाकर अभीतक निश्चित धाराका निर्धारण नहीं कर पाये हैं। ब्राज़िलमें—जो कि प्रमुख कला-प्रदर्शनियोंका अड्डा है—एक ओर तो अमेरिकाका प्रभाव दिखता है दूसरी ओर १५वीं शतीसे भी कुछ पहलेकी मूर्तियोंपर बने टेक्चरके आधारपर अमूर्त संयोजनोंके लिए धरातलका प्रयोग।

एशियाकी स्थिति देखें। यहाँके कलाकार अपनी परम्परा या राष्ट्रवादिता तथा नवप्रचलित आधुनिकताके बीचका रास्ता निकालनेका प्रयास कर रहे हैं पर दुःख तो यह है कि भारतके, जहाँ कि इस प्रदर्शनीका आयोजन किया गया—हुसेन, लक्ष्मण आदिकी पुरानी कृतियोंके नमूने ही देखनेको मिले। समझमें नहीं आता कि आख़िर ऐसा क्यों हुआ? ख़ैर, बात कुछ भी हो, फिर भी

हम १० : एक घोषणा

पिछले नवम्बर, कलकत्तामें 'प्रोग्रसिव पेण्टर्स' (अंजलि चौधरी, अरुण दत्ता, चिन्ता चौधरी, दिलीप कुण्डु, गोपा चटर्जी, कनक चाकी, सुबेन्दु नन्दी, उज्जल दास आदि) की ओरसे एक छोटी-सी प्रदर्शनी आयोजित की गयी थी। उस अवसरपर प्रकाशित उनके घोषणा-पत्रमें कहा गया है: "हम तसवीरें और मूर्तियाँ बनाते हैं लेकिन कोई नया वाद प्रारम्भ नहीं करना चाहते। हम सृजन करते हैं क्योंकि सृजन करनेसे हमें प्रेम है। जहाँतक शिल्पका प्रश्न है हम इस दिशामें अभी बेहद नये हैं कि किसी-बातका दावा कर सकें। हाँ, हम इस बातके विश्वासी हैं कि कलाकार पुनःसृजन तो करता है, नक़ल नहीं करता और इसीलिए हम ऐसा कुछ चित्रित करना चाहते हैं जिसपर प्रकृतिकी नक़ल करनेका आरोप न लगाया जा सके।....हम संख्यामें दस हैं और १९६५ में गवर्नमेण्ट आर्ट ऐण्ड क्राफ़्ट कॉलेजकी अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं। यह हमारी पहली प्रदर्शनी है।"

भारतीय कलाकारोंको ऐसा नहीं करना चाहिए था। बीरेन डे एवं सुब्रह्मण्यम् जहाँ पहले थे वहाँ आज भी हैं। ज्योतिष भट्टाचार्या सुदृढ़ रंगोंका सहारा लेकर अमूर्तताके पास तक लगभग पहुँच ही चुके हैं। गुजराल मानव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनकी मानसिक वेदनाओंको लेकर अभिव्यक्ति प्रतीकात्मकताके सहारे अतिप्रभाववाद या अमूर्तताके पास तक जानेका प्रयास कर रहे हैं।

भारतके समीपके राष्ट्रोंमें सीलोनपर भारतका प्रभाव है फिर भी सफल चितेरोंमें जार्जकीट एवं गर्मुनु फ़रनेनडोका ही केवल नाम लिया जा सकता है। ईरानके काज़ेमी होसेनपर युगोस्लोवाकियाका प्रभाव पड़ रहा है। सोहराब सपेहरी इस देशमें कुछ नये सन्दर्भ लानेका प्रयास कर रहे हैं। मलेशियापर कुछ चीनका प्रभाव दिखता है, अस्पष्ट अमूर्त-वादिताका। मंगोलियनोंमें कुछ-कुछ परसियन प्रभाव होते हुए भी बहुत-कुछ अपनापन है।

इस प्रदर्शनीको देखनेके बाद एक बात स्पष्ट होती है—अमेरिकी कलाकार अपने आन्दोलनके बहावमें प्रत्येक राष्ट्रको ही बहाना चाहते हैं, परिणामस्वरूप कुछ इनके पिछलग्गू बन भी चुके हैं और कुछ अपनेको भुलावेमें डालकर बननेका प्रयास भी कर रहे हैं, जिस कारण कला अपनी प्रवृत्तियों तक सीमित न रहकर शिल्पगत ही होती जा रही है। मैं तो समझता हूँ कि प्रगतिके लिए युगके प्रवाहके साथ अवश्य ही चलना चाहिए पर अपनापन खोकर नहीं। ■■

(लेखके साथ प्रकाशित चित्रोंके छायानुकरण लेखकके द्वारा।)

Gram : MATACANTOS
CALCUTTA.

Telephone :
OFFICE : 22–3226
RESI : 55–2620

Asutosh Mookerjee & Co. Private Ltd.
12, RAJA WOODMUNT STREET,
CALCUTTA–1.

Importers & Manufacturers of :
WIRE ROPES, CHAINS LIFTING ACCESSORIES,
WAGON FITTINGS & MARINE STORES ETC.
Agents for :
LIFTING ACCESSORIES
S. TURTON & CO., LTD., BIRMINGHAM.
Workshop :
22, RAMLAL MOOKERJEE LANE,
SALKIA, HOWRAH.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

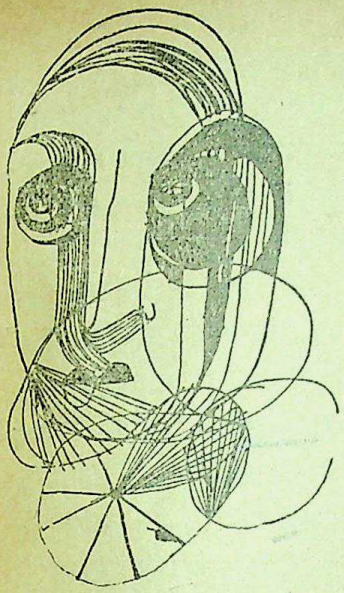

विपात्र

• स्व० गजानन माधव मुक्तिबोध

[स्व० मुक्तिबोधका एक कथा-संग्रह प्रकाश्य है : काठका सपना । इस संग्रहकी ११ कहानियोंमें-से एक अप्रकाशित लम्बी कहानी प्रस्तुत है : वि पा त्र । अकथा-की चर्चाके बीच 'विपात्र' का प्रकाशन वस्तुके विकथा-रूपसे हटकर चरित्रोंके विपात्रीकरणकी ओर निश्चित ही कुछ गहरे संकेत देगा ।—सं०]

लम्बे-लम्बे पत्तोंवाली घनी बड़ी इलायचीकी झाड़ीके पास जब हम खड़े हो गये तो पीछेसे हँसीका ठहाका सुनाई दिया । हमने परवाह नहीं की, यद्यपि उस हँसीमें एक हलका उपहास भी था । हम बड़ी इलायचीके सफ़ेद-पीले, कुछ लम्बे पँखुरियोंवाले फूलोंको मुग्ध होकर देखते रहे । मैंने एक पँखुरी तोड़ी और मुँहमें डाल ली । उसमें बड़ी इलायचीका स्वाद था । मैं खुश हो गया । बड़ी इलायचीकी झाड़ीकी पाँतमें हींग-की घनी-हरी झाड़ी भी थी और उसके आगे, उसी पाँतमें, पारिजात खिल रहा था । मेरा साथी, बड़ी ही गम्भीरतासे प्रत्येक पेड़के बौटे निकाल नाम समझाता जा रहा था । लेकिन, मेरा दिमाग़ अपनी मस्तीमें कहीं और भटक रहा था ।

सभी तरफ़ हरियाला अँधेरा और हरियाला उजाला छाया हुआ था और बीच-बीचमें सुनहली चादरें बिछी हुई थीं । एक अजीब लहरें मेरे मनमें दौड़ रही थीं ।

मैं अपने साथीको पीछे छोड़ते हुए, एक क्यारी पार कर, कटहलके पेड़की छाया-के नीचे आ गया और मुग्ध भावसे उसके उभरे रेशेवाले पत्तोंपर हाथ फेरने लगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर कुछ लोग, सीधे-सीधे ऊँचे-उठे बूढ़े छरहरे बादामके पेड़के नीचे गिरे हुए कच्चे बादामोंको हाथसे उठा-उठाकर टटोलते जा रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। जेबमें-से दियासलाई निकालकर बीड़ी सुलगायी, उनके बारेमें सोचने ही वाला था कि इतनेमें मुझे दूरसे एक मोटे सज्जन आते दिखाई दिये। उनके हाथमें फूलोंके कई गुच्छे थे—वे विलायती फूल थे, अलग डिज़ाइनोंके, अलग रूप-रंगके,—गुजराती स्त्रियोंकी सादी किन्तु साफ़-सफ़ेद साड़ियोंकी किनारियोंकी याद दिलाते थे। जाने क्यों मुझे लगा कि वे फूल उनके हाथोंमें शोभा नहीं देते क्योंकि वे हाथ उन फूलोंके योग्य नहीं हैं।

मैंने अपनी परीक्षा करनी चाही। आख़िर मैं उनके बारेमें ऐसा क्यों सोचता हूँ? एक ख़याल तैर आया कि वे सज्जन किसी दूसरेकी, किसी दूसरे बड़ेकी हूबहू नक़ल कर रहे हैं इसलिए कि उन्होंने अपने जाने-अनजाने किसी बड़े आदमीके रास्तेपर चलना मंज़ूर किया है। उनके हाथमें फूल इसलिए नहीं हैं कि उन्हें वे प्यारे हैं बल्कि इसलिए कि उनका आराध्य व्यक्ति बाग़बानीका शौक़ीन है और दूर अहातेके पास कहीं वह ख़ुद भी फूलोंको डण्ठलों-सहित चुन रहा है।

वे सज्जन मेरे पास आ जाते हैं। मुझे फूलोंका एक गुच्छा देते हैं, कहते हैं, "कितना ख़ूबसूरत है।"

मैं उनके चेहरेकी तरफ़ देखता रह जाता हूँ। तानपूरेपर गानेवाले किसी नौजवान शास्त्रीय संगीतकारकी मुझे याद आ जाती है। हाँ, वैसा ही उसका रियाज़ है। लेकिन, काहे का? आराध्यकी उपासनाका!

अपने ख़यालपर मैं मुसकरा उठता हूँ और उनके कन्धेपर हाथ रखकर कहता हूँ, "यार, इन फूलोंमें मज़ा नहीं आता। एक कप चाय पिलवाओ।"

चायकी बात सुनकर, वे ठठाकर हँस पड़ते हैं। बहुत सरगरमीसे, और प्यार भरा कर वे अपने सफ़ेद-झक कुरतेमें-से एक रुपये का नोट निकालकर मुझे दे देते हैं, "जाइए सिंग साहबके साथ। पी आइए।"

मैं ख़ुशीसे उछल पड़ता हूँ। वे आगे बढ़ जाते हैं। मैं पीछेसे चिल्लाकर कहता हूँ, "राव साहबकी जय हो!"

मैं सोचता था कि मेरी आवाज़ बगीचे दूर-दूर तक जायेगी। लेकिन लोग अपने डूबे हुए थे। सिर्फ़ सिंग साहब हींगकी झाड़ का एक पत्ता मुझे लाकर दे रहा था।

मैंने कहा, "सिंग साहब, तुम्हारा हेमिंग्वे मर गया!"

वह स्तब्ध हो गया। वह कुछ नहीं कह सका। उसने सिर्फ़ इतना ही पूछा, "कब पढ़ा? कब मरा?"

मैंने उसे हेमिंग्वेकी मृत्युकी पूरी परिस्थिति समझायी। समझाते-समझाते मुझे दुःख होने लगा। मैंने कहा, "यह जान-बूझकर उसने किया।"

जगतसिंहने, जिसे हम सिंग साहब कहते थे, पूछा, "बन्दूक़ उसने ख़ुद अपने-आप चला ली?"

मैंने कहा, "नहीं, वह चल गयी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी। मृत्यु आकस्मिक हुई।"

जगतसिंहने कहा, "अजीब बात है।"

मैं आगे चलने लगा। मेरे मुँहसे बात झरने लगी—हेमिंग्वे कई दिनोंसे चुप और उदास था, सम्भव है, अपनी आत्महत्याके बारेमें सोचता रहा हो, यद्यपि उसकी मृत्यु हुई आकस्मिक कारणोंसे ही।

मेरे सामने एक लेखक-कलाकारकी संवेदनाओंके, उसके जीवनके स्वकल्पित चित्र तैरते जा रहे थे। इतनेमें मैंने देखा कि बगीचेके अहातेके पश्चिमी छोरपर खड़े हुए टूटे फव्वारेके पासवाली क्यारीके पाससे राव साहब गुजर रहे हैं। उनकी सफ़ेद धोती शरद्के आतपमें झलमला रही है····कि इतनेमें वहाँसे घबरायी हुई लेकिन संयमित आवाज़ आती है, "साँप, साँप!"

मैं और जगत सिंह ठिठक जाते हैं। मुझे लगता है कि जैसे अपशकुन हुआ हो। सब लोग एक उत्तजनामें उधर निकल पड़ते हैं। आमके पेड़ोंके जमघटमें खड़े एक बूढ़े युकलिप्टसके पेड़की ओटमें हाथ-भरका मोटा साँप लहराता हुआ भागा जा रहा था।

मैं स्तब्ध रह गया। क्या मस्त लहराती हुई चाल है! बिलकुल काला लेकिन साँवली पीली डिज़ाइनोंवाला। नौजवान माली हाथमें डण्डा लेकर खड़ा था। उसपर वार नहीं कर रहा था। सबने कहा, "मारो, मारो।" लेकिन वह खड़ा रहा।

"मैं नहीं मारूँगा साहब! वह यहाँका देवता है।"

इतनेमें हमारे बीच खड़े हुए एक नौजवानने उसके हाथसे डण्डा छीन लिया। लेकिन तबतक वह साँप झाँड़ियोंमें ग़ायब हो चुका था।

एक विफलता और प्रतिक्रियाहीनताका भाव हम सबमें छा गया। साँपके क़िस्से चलने लगे। वह क्रेट था, या कोब्रा! वह पनियल साँप था या अजगर! हमारे यहाँका जुआलांजिस्ट ज़्यादा नहीं जानता था। लेकिन हमारे डाइरेक्टर साहब लगातार बताते जा रहे थे। आश्चर्यकी बात है कि साँप सर्दीके मौसममें निकला। ज़्यादातर वे बरसात और गरमीके मौसममें निकलते हैं। मैं और जगतसिंह उस भीड़से हट गये और क्यारियोंके बीच बनी हुई पगडण्डियोंपर चलने लगे। मैंने जगतसिंहसे कहा, "सब लोग बातोंमें लगे हैं। जल्दी निकल चलो; नहीं तो वे जाने नहीं देंगे।"

हमको मालूम नहीं था कि हमारे पीछे, ज़रा दूरीपर, राव साहब चल रहे हैं। उन्होंने वहींसे कहा, "जल्दी निकल जाओ नहीं तो लोग अटका देंगे।" यह कहकर वे हँस पड़े। उनकी हँसीमें भी हमने हलके-से व्यंग्यकी गूँज सुनी।

अब वे हमारे बराबर-बराबर आये और कहने लगे, "साँपके बारेमें तो सब लोग बात कर रहे हैं। कोई मुझसे नहीं पूछता कि आखिर मैंने उसे देखा कैसे, वह कैसे निकला, कैसे भागा!" यह कहकर वे अपनेपर ही हँसने लगे।

मैंने कहा, "शायद मालीने उसे पहले-पहल देखा था। क्या यह सच है कि नाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँकी रखवाली करता है ?"

"कहते हैं कि इस बगीचेमें कहीं धन गड़ा हुआ है और आजके मालिकके परदादेकी आत्मा नाग बनकर उस धनकी रखवाली करने यहाँ घूमा करती है। इसलिए, मालीने उसे मारा नहीं।"

जगतने कहा, "अजीब अन्धविश्वास है !"

इस बीच हम गुलाबकी फूलों-लदी बेलसे छाये हुए कुंज-द्वारसे निकलकर, लुकाटके पेड़के पास आ गये। उधर, अमरकका घना पेड़ खड़ा हुआ था। बगीचा सचमुच महक रहा था। फूलोंसे लदा था। बहारमें आया था। एक आमके नीचे डायरेक्टर साहबके आस-पास बहुत-से लोग खड़े हुए थे जिनके सिरपर आमकी डालियाँ छाया कर रही थीं। सब ओर रोमाण्टिक वातावरण छाया हुआ था।

मैंने अपने-आपसे कहा, "क्या फूल-पेड़ महक रहे है ! बगीचा लहक उठा है।"

बीच ही में राव साहब बोल पड़े, "कुत्ते मारकर डाले हैं पेड़ोंकी जड़ोंमें।"

मैं विस्मित हो उठा। जगत स्तब्ध हो गया।

मेरे मुँहसे सिर्फ़ इतना फूट पड़ा, "ऐसा !"

लेकिन, जगतने कहा, "नागको छोड़ देते हो और कुत्तोंको मार डालते हो।"

राव साहबने हँसते हुए कहा, "कुत्ते 'जनता' हैं। नाग देवता है, अधिकारी है।" यह कहकर राव साहबने मुझे देखा। लेकिन, मेरा मुँह पीला पड़ चुका था। असलमें उस आशयके मेरे शब्द थे जिसका प्रयोग किसी दिन मैंने किया था। उनका सन्दर्भ जगत [illegible] समझ सका।

मैं तेज़ीसे क़दम बढ़ाकर फाटककी [illegible] जाने लगा। मैंने जगतसे कहा, "एक [illegible] मुझे 'बॉस'पर गुस्सा आ गया था। [illegible] तुम भी तो थे उस वक़्त ! जब दरबार [illegible] खास्त हुआ तब बॉसकी आलोचना करते [illegible] मैंने कहा कि ये लोग जनताको कुत्ता समझ [illegible] हैं। राव साहब मेरे उस वाक्यकी ओर इशारा [illegible] कर रहे थे।"

जगत मेरे दुःखको समझ नहीं सका लेकिन, मेरे रुखको और बॉसके रुखको बहुत-से मामलोंमें जैसा कि दिखाई दिया करता था, खूब समझता था। उसने सिर्फ़ कहा "राव साहबसे बचकर रहना। वह कहीं तुम्हें गड्ढेमें न गिरा दें।"

■

जगतके मनमें राव साहबके सम्बन्धमें जो गुत्थी थी उसे मैं खूब समझता था। दोनों आदमी दुनियाके दो सिरोंपर खड़े होकर एक-दूसरेको टोकते नज़र आ रहे थे। दोनों एक-दूसरेको अगर बुरा नहीं तो सिरफिरा ज़रूर समझते थे। अगर मन-ही-मन दी जानेवाली गालियोंकी छानबीन की जाये तो पता चलेगा कि राव साहब जगतको आधा पागल या दिमाग़ी फ़ितूर रखनेवाला ख़ब्ती ज़रूर समझते थे। इसकी एवज़में जगत राव साहबको कुंजी रटकर एम० ए० पास करनेवाला कोई गँवार मिडिलची मानता था। राव साहब जगतको हेमिंग्वे, फ़ॉकनर और फ़र्राटेदार अँगरेज़ीको अच्छी नज़रोंसे नहीं देखता था और उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत राव साहबकी गम्भीरता, अनुशासन-प्रियता, श्रम करनेकी अपूर्व शक्ति और धैर्यके सामने पराजित हो गया था। राव साहब जब देखते कि विभिन्न नगरोंसे हर माह आने-वाले पुस्तकोंके बण्डलको उठाते वक़्त जगतका चेहरा बाग़-बाग़ हो रहा है तो वे खुद अपने ऑफ़िसकी टेबिलसे उठकर दो गिल्लैरियाँ गुँहमें डालते हुए इस तरह मुसकरा उठते मानो उन्होंने किसी बेवक़ूफ़को कृपापूर्वक क्षमा कर दिया है। तब वे व्यंग्य-स्मित-द्वारा अपने हृदयका समाधान कर लिया करते। और, जब 'स्पैन' या 'न्यूज़वीक'के अंक जगतके नामसे आते तो वे केवल इस अप्रिय तथ्यको अपने लिए मूल्यहीन समझ उन्हें अपने टेबलके दूसरी ओर फेंक देते। यह नहीं कि उन्हें अमरीकासे किसी भी प्रकारको कोई दुश्मनी थी, वरन् यह कि वे इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं थे कि 'नेस्फ़ील्ड ग्रामर' और 'मेयर ऑफ़ कैस्टरब्रिज' से आगे कोई और चीज़ भी हो सकती है।

ज्ञान उनके लेखे जब मोक्षका साधन नहीं है, मुक्तिका सोपान नहीं है तो निःसन्देह वह किसी भौतिक लक्ष्यकी पूर्तिका एक साधन है—उसी प्रकार जैसे लकड़ीसे कुत्तेको मार भगाया जा सकता है, या सँड़ासीसे जलती सिगड़ीपर-से तवा नीचे उतारा जा सकता है। संक्षेपमें, जो व्यक्ति ज्ञानकी उपलब्धिका सौभाग्य प्राप्त करके भी यदि अपने जीवनमें असफल रहा आया, अर्थात् कीर्ति, प्रतिष्ठा और ऊँचा पद न प्राप्त कर सका तो उस व्यक्तिको सिरफिरा या दिमाग़ी फ़ितूर-वाला नहीं तो और क्या कहा जायेगा। अधिक-से अधिक वह तिरस्करणीय और कमसे कम वह दयनीय है—उपेक्षणीय भले ही न हो।

राव साहब इस वक़्त जिस सीढ़ीपर हैं उसकी अगली सीढ़ीका नक़्शा बराबर ध्यानमें रखते थे। उस अगली सीढ़ीपर चढ़नेकी तर-कीबें भी जानते थे और फिर अपना मुँह हमेशा उसी तरफ़ रखते। वह सिर्फ़ मौजूदा ज़रूरतके लायक़ पढ़ लिया करते। सामाजिक वार्तालापमें पिछड़ जानेके भयपर विजय प्राप्त करनेके लिए, वे दो-चार अख़बार भी रोज देख लिया करते।

वे चुप रहते, ख़ूब मेहनत करते। महा-काव्यके धीरोदात्त नायककी भाँति ही वे धर्म, बुद्धि, कर्त्तव्यपरायणता और दयाशीलताकी सुशिल्पित मूर्ति थे। लेकिन, काम पड़नेपर, अवसरके अनुसार पवित्र नियमोंसे इधर-उधर हटकर अपना मतलब भी साध लेते।

इसलिए उनके लेखे जगत मूर्ख था। वह ख़ूब पढ़ता। अकेले अँधेरेमें पड़ा रहता। बाहर कम निकलता। बाहरकी दुनियामें वह अजनबीपन महसूस करता। मानसिक रूपसे वह कैलिफ़ोर्निया या हार्वर्ड यूनिवर्सिटियोंके इलाक़ोंमें घूमता। अमरीकी साहित्यमें वह सचमुच रम चुका था, उसी तरह जैसे शक्कर-में गुलाबकी पंखुरियाँ, जिनसे गुलकन्द बनता है। यह कोई ग़लत बात नहीं थी। काल सैण्डबर्ग इत्यादि प्रसिद्ध लेखकोंके साहित्यने उसे जीवन-स्वप्न प्रदान किये थे। वह एक भावुक स्वप्नशील व्यक्तिकी भाँति उन बातोंके अनुसार आचरण और जीवन बनाता जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था; किन्तु वह यह भूल जाता था कि उन बातोंने, जो साहित्यमें प्रकट हुईं, उनके कर्त्ताओंको कुछ नहीं दिया। जिसने दिया, वह थी उनकी रचना, न कि उस रचनाका सत्य। जगत विद्वान् था, लेकिन लेखक नहीं था। सिर्फ़ सचाई आदमीको कुछ नहीं दे पाती, सचाईको सामने लानेके लिए भी ज़ोर और ताक़तकी ज़रूरत होती है। ऐसी सचाई जो आदमीमें ज़ोर पैदा नहीं कर पाती, वह सिर्फ़ जानकारी बनकर रह जाती है। जगत-को सचाई सिर्फ़ सपना दे जाती थी और लेखक न होनेके कारण तथा कार्यकर्त्ता न होनेके कारण या क्रियाशक्ति न होनेके कारण, वह उन सपनोंमें डूबकर निःसंग अन्तर्मुख जीवन व्यतीत करता था। कमसे कम आज तो जगतकी यही हालत है। यह हो सकता है कि चन्द रोज़ बाद वह सुधर जाये जिसकी कि पूरी सम्भावना है।

उसके इस एकान्तप्रिय जीवनसे हमारे यहाँ कोई ख़ुश नहीं था। लोग समझते हैं कि वह बन रहा है, कि अपनेको दूसरोंसे बड़ा समझनेकी उसकी आदत है, कि हम सब देहाती हैं और वह ख़ास हार्वर्ड या ऑक्स-फ़ोर्डसे डॉक्टरेट लेकर यहाँ चला आया है। पहले-पहल लोग उसकी स्वच्छ, अस्खलित, अँगरेज़ी भाषा-प्रवाहसे दबते और घबराते। किन्तु बाक़ीके लोग जो ख़ुद बड़ी डिग्रीवाले थे, उसकी अँगरेज़ीके कारण उसे तावबाज़, या देश-काल स्थितिको ध्यानमें न रखकर बात करनेवाला बेवक़ूफ़ समझते। कुछ लोग, जैसे राव साहब, अभी भी आतंकित ही रहते। अगर वह सचमुच अमरीकासे ऊँची डि लेकर लौट आता तो सम्भव है लोग उ रौबमें रहते; लेकिन वह तो जा ही नहीं रहा था। उसके सामने अमरीका जाने थाली भी परसी गयी थी, लेकिन अ माता-पिता (जो धनी तो थे, किन्तु थे अ अव्यावहारिक) के कहनेसे और (उस दुर्भाग्यपूर्ण विवाह भी हो चुका था) क कई झमेलोंके आड़े आनेसे वह नहीं जा स था। वह ग़रीब नहीं था। ऑक्सफ़ोर्ड हार्वर्ड ख़ुद अपने पैसोंसे जा सकता था। वहाँ जाने और बस जानेकी इच्छा क था; किन्तु उस इच्छाकी पूर्तिके पूर्व घ झमेलोंसे निपटनेकी कला उसके पास न थी। असलमें, वह बच्चा था, ज़िन्दगी उसके पास तजुर्बा नहीं था। दुर्भाग्यकी ब यह थी कि रूढ़िवादी घरानेमें विवाहित हो झमेलोंकी एक लम्बी दास्तानने उस ज़िन्दगीका रस निचोड़ लिया था। इस प्र अपनी नौजवानीमें ही उसके चेहरेपर अ फलताकी राख और विरक्तिकी धूलका ल लगा हुआ था। किन्तु इसके विपरीत व मानसिक लीलामें डूबा रहता····वह सं सिसकोंके किसी कॉलेजमें वॉल्ट ह्विटमैन भाषण दे रहा है। सारे हॉलमें श्रोताओं झुण्ड-ही-झुण्ड दिखाई देते हैं। उनमें एक संवेदनशील, स्वप्नशील लड़की भी जो कि दूसरी या तीसरी बेंचपर बैठी है, वह उसकी ओर खिच रही है। भाषण समाप्त। परि चय। वैचारिक आदान-प्रदान, फिर 'ब्लू मून रेस्तराँ। दोनों एक-दूसरेकी सूरत देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं। आँखें चुराकर अहीं वह मरीना सम्बन्धमें पूछती है। वह झेंपते हुए, और बादमें खुलकर, अपना ज्ञान पहले प्रदर्शित और फिर समर्पित करता है। दोनोंका प्रेम हो जाता है। वे विवाहित होते हैं। दोनों अध्यापक हैं अथवा इनमें-से कोई एक पत्रकार है। वे सरल, स्वच्छन्द, उत्साहपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। फिर वह अपनी स्त्रीको भारत लाता है। उसका नाम रख लीजिए—इरीना। इरीना और वह दोनों ताज़ी-ताज़ी हवा खाते हुए मद्रास जाते हैं। वहाँसे ट्रेन पकड़कर वे कोडाईकानाल पहुँच जाते हैं। अहाता, दरवाज़ा, घर, कमरा, साँवला सूनापन! दो आकृतियाँ। माता-पिता। दोनों आगन्तुक आँसू बरसाते हुए उनके पैर छूते हैं····स्वप्न टूट जाता है और जगतके मनमें अचानक सवाल पैदा होता है कि इरीना उसके माता-पिताके पैर छुएगी कि नहीं!

राव साहब इन सब बातोंको नहीं जानते हैं। अगर जगत अपनी विशाल ज्ञान-राशिके द्वारा कोई ठोस और बड़ी चीज़ हासिल करता जिससे उसे चारों ओर सम्मान और ऊँची स्थिति तथा धन प्राप्त होता तो वे निःसन्देह उसकी सफलतापर श्रद्धांजलि चढ़ाते। लेकिन, ज़िन्दगीमें ऊँची सीढ़ी प्राप्त न करनेके कारण, उससे जुड़े हुए दूसरे कारणोंसे मनुष्यकी जो एक दुर्दशाग्रस्त स्थिति प्राप्त होती है, वह उसकी कमज़ोर नस है। सभ्यता और शीलके कारण अपने व्यक्तित्वके झूठे प्रतिबिम्ब गिराते हुए लोग उसे दुर्दशाग्रस्त स्थितिसे सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं। राव साहब छोटे पदसे बड़े पदपर आये। किन्तु उनकी प्रगतिमें निर्णायक योग उनकी प्रतिभाका नहीं था वरन् उन संयोगोंका था जो परिस्थितियोंके बनते और बढ़ते हुए ताने-बानोंके अनुकूल परिणामके रूपमें प्रस्तुत हो जाते हैं।

मेरे व्यक्तिगत इतिहासका यह एक सबसे विचित्र रहस्य है कि मुझे अपने जीवनमें ऐसे ही लोग प्राप्त हुए जो किसी-न-किसी प्रकारसे आहत थे। इन आहतोंको पहचाननेमें मुझे भी तकलीफ़ होती। आहतोंका भी अपना एक अहंकार होता है जिसे मैं खूब पहचानता था और वह अहंकार बहुत और दृढ़ होता है। वह उस मुण्ड-हीन कबन्धके समान है, जो पराजयके बावजूद रणक्षेत्रमें खूनके फव्वारे छोड़ते हुए लड़ता रहता है। उसमें मात्र आवेग और गति होती है जो कि सिर न होनेके सबब शून्यमें चारों ओर तलवार चलाता रहता है। क्या जगत वैसा है? मेरे ख़यालसे वह ऐसा हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है।

दूसरी ओर, राव साहब किसी विश्व-विख्यात, विश्वपूजित स्तूपके चपटे तलपर, हाँ, किसी प्राचीन गौरव-स्तूपपर, कोई चाय-पार्टी जमा रहे थे—अभिमान-सहित, शालीनतापूर्वक, नम्रता और गौरवके साथ। लोगोंका अभिवादन करते हुए वह एक-एक टुकड़ा और सैण्डविच खानेका अनुरोध कर रहे हैं। उनके गदबदे और पृथुल शरीरके श्यामल मुखमण्डलपर प्राचीन गौरवकी सम्मानपूर्ण आभाके साथ ही स्वयंके प्रति गहरा सन्तोष व्यक्त हो रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं इन दोनोंको इसी रूपमें अपने सामने पाता हूँ। जगत निःसन्देह बेवक़ूफ़ था। लेकिन वह इसलिए बेवक़ूफ़ नहीं था कि उसके पास युरॅपीय साहित्यका ज्ञान था। यह सच है कि न हम, न हमारा शहर, न हमारा प्रान्त, उसके ज्ञानका उपयोग कर पाता था, न उसका मूल्य समझता था। लेकिन, इसमें जगतका स्वयंका दोष नहीं था। यदि वह ऐसा ज्ञान रखता है और उस ज्ञानमें रमा रहता है जिसका हम मूल्य नहीं समझते या जिसे प्राप्त करनेकी हममें इच्छा नहीं है तो हमारे लेखे वह ज्ञान जो निरर्थक है, उसीसे निर्मित और विकसित व्यक्तित्वको हम यदि आदर प्रदान न करें, उपेक्षा ही करें, मगर उसपर दया तो न करें। सच बात तो यह है कि उनके लेखे जगतकी बड़ी भारी भूल यह थी कि वह उनके समान नहीं था, उनके ढाँचेमें जमता नहीं था और ऐसे निरर्थक ज्ञानमें व्यर्थ ही डूबा रहता था जिससे फ़िज़ूल ही वक़्त बरबाद होता, ऊँचा ओहदा न मिल पाता और उनके लेखे ज़िन्दगी अकारथ होकर बरबाद हो जाती।

जगत बेवक़ूफ़ इसलिए था कि यद्यपि वह कैरियर नहीं बना सकता था (थालीमें परसे लड्डूको उठानेकी भाँति भले ही वह ऑक्सफ़ोर्ड या हॉर्वर्डसे डिग्री ले आये) लेकिन उसके बारेमें सोचा करता था। उसमें सामाजिक क्षेत्रमें घुसने और पैठनेकी शक्ति बिलकुल नहीं थी। उसे विभिन्न प्रकारके, विभिन्न स्वभाव और विभिन्न व्यक्तिगत इतिहास रखनेवाले लोगोंका अनुभव नहीं था। वह साल्की थी। उसके दिल और दिमाग़ चमड़ा अभी मज़बूत नहीं था। वह अ मनुष्यताका सहज विश्वास कर जाता था और उसे मालूम ही नहीं हो पाता था कि आखि लोग उसपर क्यों हँस रहे हैं!

जगतमें बड़ी-बड़ी खामियाँ थीं जिनमें एक यह थी कि उसके अन्तःकरणमें नफ़ी लेकिन सादे और क़ीमती पोशाक पहननेवाले उन गम्भीर मुद्राओंके प्रोफ़ेसरों और अध्य पकोंकी कॉलरमें उच्चतर ज्ञानके हीरे-मोत लगे हुए थे जो यूनिवर्सिटी और कॉलेजोंकी बड़ी बिल्डिंगोंके 'कॉरिडरों' और कमरों घूमते रहते हैं। यह बिलकुल सही है कि हमारे यहाँ धन वह सुविधा उत्पन्न करत है जिसके आधारपर लोग ऊँचा ज्ञान प्राप्त करते हैं और बड़ी सफ़ाईके साथ ऊँची बात-चीत करते हैं। लेकिन ज्ञानके आलोकको धनके आलोकमें मिला करके और फिर ज्ञान की उद्दीप्त मनोमूर्ति खड़ी करके देखनेसे अपनी बौनी परिस्थितियोंसे और उन परिस्थितियोंमें घूमनेवाले लोगोंसे अजीब फ़ासले पैदा हो जाते हैं।

जगत अपने बचपनमें ईसाई कनवेण्ट स्कूलोंमें पढ़ा था। इसीलिए, उसकी अँगरेज़ी बड़ी सरल और स्वाभाविक हो गयी थी। उसने ईसाइयतके उत्तमोत्तम नैतिक गुणोंको आत्मसात् करना चाहा था और साथ ही उन्हें अपनी निजकी भारतीय संस्कृतिसे मिला लिया था। 'सर्मन ऑफ़ दि माउण्ट' से लेकर 'पृथ्वी सूक्त' तकमें वह रस लेता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत बेवक़ूफ़ इसलिए भी था कि अमरीकी जनताकी महान् उपलब्धियोंको अमरीकी सरकार और उसकी विदेश-नीतिसे मिलाकर देखता। परिणामतः, जब डलेस कोई ग़लती करता या ऑइज़नहॉवर कुछ गड़बड़ कर जाता तो उसे अपार दुःख होता! उसके पास कोई राजनैतिक दृष्टिकोण नहीं था और उस अभावके रिक्त स्थानपर अमेरिका और युरॅप तथा भारतके भयानक दक्षिणपन्थी राजनीतिज्ञ उसके हृदयमें आसन जमाये बैठे थे। यहाँतक कि बम्बई-चुनावमें मेननकी जीत भी उसे अच्छी लगी नहीं। उसका ख़याल था कि बम्बईमें अमेरिकाके भारतीय दोस्तोंने जितना काम किया वह काम आधे दिलसे किया होगा। वह साम्यवादसे और रूस-चीनसे भयानक दुश्मनी रखता था और वह इस सम्भावनासे डरता रहता था कि कहीं ऐसा न हो कि अमेरिकासे पहले रूस चाँदपर पहुँच जाये।

हमारे बॉस जगतके इस राजनैतिक रुखसे बहुत ख़ुश थे। लेकिन वे जनतासे डरते थे क्योंकि अमेरिका-परस्ती जनतामें न केवल लोकप्रिय नहीं थी वरन् सामनेका पानवाला और उसके आस-पासवाले गन्दी और बौनी होटलमें बैठे हुए मैले-कुचैले लोग भी अमेरिकाको गाली देते थे। अमेरिकापर किसीका विश्वास नहीं था।

इस भावनाको जगत भी जानता था। इसलिए उड़ते-उड़ते ही वह मुझसे राजनैतिक बात-चीत करता और उस बात-चीतके दौरानमें भारतीय अखबारोंमें प्रकाशित समाचारोंका एक ढाँचा बनाते हुए लेकिन कोई आलोचना न करते हुए, मैं उसकी बातका खण्डन कर देता, किसी विरोधी तथ्यपर उसका ध्यान खींचता। यही कारण है कि क्रमशः उसकी ज्ञान-ग्राही बुद्धि मेरी अवहेलना न कर सकी और मेरी ओर खिंचती चली गयी। इसका श्रेय मैं अवश्य लूँगा कि मैंने उसे किसी भी देशके शासक और जनता—इन दोके बीचकी एकता और मित्रता पहचाननेकी युक्तियाँ सिखलायीं।

यह निश्चित था कि मैं और वह दोनों आपसमें टकरा जाते।

व्यक्तियोंकी टकराहट बहुत बुरी होती है, ज़हर पचनेसे फैलता है, कीचड़ उछालनेसे उछालनेवालेके और झेलनेवालेके—दोनोंके चेहरे बदसूरत हो जाते हैं। मैं हमेशा दो प्रकारके परस्पर-विरोधोंमें भेद करता आया हूँ। एक वे जो सही हैं, जहाँ वे तेज़ होते रहने चाहिए; और एक वे जो ग़लत हैं, जहाँ वे होने ही नहीं चाहिए। जैसे राजनीतिमें वैसे ही मानव-सम्बन्धोंके क्षेत्रमें भी हमें सही विरोधोंको, उनके सही-सही अनुपातमें, सही-सही जगह, और सही-सही ढंगसे, ज़रूर बनाये रखना चाहिए—यहाँ तक कि तेज़ करना चाहिए। यहाँ झुकनेकी ज़रूरत नहीं है। लेकिन, कुछ ऐसे परस्पर-विरोध होते हैं, जो हम हमारी नासमझी, कमसमझी, अथवा क्षुद्र अहंमूलक स्वार्थसे उत्पन्न होते हैं। मानव-सम्बन्ध उलझ इसीलिए जाते हैं कि हम ग़लत जगह झगड़ा कर लेते हैं और ग़लत जगह झुक जाते हैं।

अगर कोई दूसरा शहर होता तो शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगतका और मेरा यदि परिचय भी होता तो भी पट नहीं सकता था, जम नहीं सकता था। लेकिन, परिस्थिति दोनोंको एक साथ ले आयी। मैं लोगोंमें उठता-बैठता। उनसे फ़िज़ूल टकरानेकी कोई कोशिश न करता और सारे समाजमें रहकर भी एक अत्यन्त तीव्र निःसंगता और अजनबीपन महसूस करता। लगभग दो वर्षोंके क्रमशः बढ़ते हुए प्रारम्भिक परिचयके अनन्तर मैंने जगतकी आपेक्षिक निकटता प्राप्त की। और ज्यों ही हमने एक-दूसरेसे सामीप्य अनुभव किया और साथ रहने लगे, त्यों ही लोगोंकी नज़रोंमें आ गये और अखरने लगे। इस तरह कि मानो हममें-से कोई-न-कोई व्यक्ति आपत्ति-जनक हो और दूसरेको अपनी सुहबतसे बिगाड़ रहा हो।

एक बात साफ़ है कि हमें उस महफ़िलमें मज़ा नहीं आता था जिसमें विविध प्रकारके भोजनीय पदार्थोंसे लेकर कैन्सर और ल्यूकी-मिया तक तथा भूतोंसे लेकर कम्यूनिस्टों तक चर्चा होती। ये महफ़िलें जो शामके पाँच बजेसे लेकर रातके बारह-एक तक चलती रहतीं, उस अभावका परिणाम थीं जिसे अकेला-पन कहते हैं। हम जो यहाँ बीस थे, वे, चाहे, परिवारमें ही क्यों न रहें, अपनेको अकेला, किसी शाखासे कटा हुआ और अधूरा महसूस करते थे। और अपने अकेलेपनकी वेदनासे भागनेके लिए, वक़्त काटनेकी एक तरकीबके तौर पर, सामूहिक भोजन, सामूहिक पार्टी, गपबाज़ी, महफ़िलबाज़ीका आसरा लिया करते।

लोग भले ही उसका मज़ा लिया करें, मैं ऐसे बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल सोसाइटीमें रहकर बड़ी ही घुटन महसूस करता। यही हाल जगतका भी था। फ़र्क़ यही था कि मुझे इस तरह अकेलेपनसे भागने और वक़्त काटनेकी इच्छा नहीं रहती थी, न जगतमें ही रहती थी, इसलिए, हम लोग 'अनसोशल' कहलाते थे। क्लबकी ज़िन्दगी अगर सामाजिकताका लक्षण है तो मैं ऐसी सामाजिकतासे बाज़ आया।

लोगोंको ताज्जुब होता कि आख़िर हम अपना वक़्त कैसे काटते हैं! और, जब उन्होंने यह देखा कि ब्रिज, साँपों और भूतों की चर्चा, एक दूसरेकी टाँग खींचनेकी होड़ और राजनैतिक गपकी बजाय हम घूम निकल जाते हैं और कभी हैमिंग्वे या डिकेन्स अथवा एड्ना विन्सेण्ट मिलेकी चर्चा करते हैं तो उन्होंने अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। एक बार जब हम तरह-तरहकी चर्चाओं में विलीन रातके आठ बजे घर लौटनेके बजाय साढ़े नौके क़रीब लौटे तो उनमें-से एकने कहा, "क्यों भई! जानते नहीं, भले आदमी रातमें नहीं घूमा करते!"

और, हम ताज्जुब करने लगे कि आख़िर ये ऊँची डिग्रियोंवाले लोग, जिन्होंने बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इतने जड़ और मूढ़ क्यों हैं!

■

दुबले, ऊँचे, इकहरे बादामके पेड़के नीचे हरे साथियोंको झुका हुआ देखकर मैं समझ गया कि उनकी आँखें हरे कच्चे बादामोंको ढूँढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं जो या तो आसपासकी क्यारियोंकी काली मिट्टीमें जम गये हैं या क्यारियोंके बीचोबीच जानेवाली खुशनुमा पगडण्डीपर गिरे पड़े हैं। बादामके पेड़के आगे पूरब-दक्षिणकी तरफ़ बड़ी और ऊँची भूरी-भूरी दीवार दिखाई दे रही है, उसके इस तरफ़ और बादामके पेड़के उस तरफ़ मटर और टमाटरकी हरियाली फैली हुई है और मैंने देखा कि कुछ लोग वहाँ भी पहुँच गये हैं। उधर, बगीचेके दक्षिणकी तरफ़ जो सुँडेर है उसके नीचे लाल कन्हेरकी झाड़ियोंके आगे दूर तक तालाब लहरा रहा है जिसकी मट-मैली नीली लहरें सूरजकी किरनोंको वापिस फेंक रही हैं और इस तरह चाँदी और काँच-के चमचमाते टुकड़ोंकी धारदार चमक पैदा कर रही हैं। तालाबके उस पार, आमके दरख्तोंके नीचे कोई साइकिलपर तेज़ चला जा रहा है। एक मन हुआ कि आखिर हम अपने साथियोंके पास बादामके पेड़के नीचे क्यों न पहुँच जायें और कुछ मटर जेबमें भर लें। लेकिन, फिर सोचा कि फिर वे लोग हमारा पिण्ड नहीं छोड़ेंगे। यह खयाल मेरे और जगतके मनमें एक साथ आया। मैंने उससे कहा, "चलो, जल्दी चलो, नहीं तो अटक जायेंगे!"

यह बात हमारे मुँहसे निकली ही थी कि पीछेसे एक और आवाज़ आयी—"ऐसी भी क्या जल्दी है, हम भी तो चल रहे हैं!"

तबीयत तो यह हुई कि पीछे घूमकर न देखें लेकिन हम जानते थे कि मोटे तल्लोंके बूट हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। बोगनविलाके फूलोंसे लदी हुई मेहराबवाले बगीचेके फाटक तक पहुँचते ही उसने हमें पकड़ लिया और जगतकी पीठपर धप पड़ गयी और एक गोरा सुनहरा चेहरा, हमें चिढ़ाता हुआ, बोल उठा, "बॉस तुम्हें बुला रहे हैं।"

शायद उस नवागन्तुकने मेरी आँखोंमें क्रोध और घृणाकी चिनगारी देखी होगी। तभी उसने एक साँसमें कह डाला, "मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हें चाय पिलाना चाहता हूँ!"

हम लोग चुपचाप बाहर निकल गये। और, पता नहीं क्यों हममें एक चुप्पी, एक फ़ासला और साथ-ही-साथ अपना-अपना घिराव बढ़ता गया। मशीनके पहियोंकी भाँति हमारे पैर दाहिनी ओर मुड़ गये जहाँसे रास्ता, तालाबके किनारे-किनारे, आमके दरख्तोंके नीचेसे चला जा रहा था।

ज्यों ही हम बीस गज़ आगे बढ़ गये होंगे, हमारे सुनहरे चेहरेवाले साथीने कहा, "यार, नीचे उतरके चलें।"

मैंने एकदम ठहरकर, स्तब्ध होकर, पूछा, "क्यों?"

उसने कहा, "यह नया रास्ता है!"

मैंने जगतकी ओर देखा। वह कटी डाल-सा, निजत्वहीन और शिथिल दिख रहा था। मैंने कहा, "चलो।"

जिस रास्तेपर अब तक हम चल रहे थे, वह तालाबके बाँधपर बना हुआ था। बाँधके बहुत नीचे एक छोटा-सा नाला बह रहा था और इधर-उधर घने-घने पेड़ तितर-बितर दिखाई दे रहे थे। हम अपनेको सँभालते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे उतर गये और नाला फाँदकर उस ओर जा पहुँचे जहाँसे एक पगडण्डी शहरकी ओर जा रही थी। फाँद करके मैं नालेकी ओर क्षण-भर देखता रहा। वहाँ छोटी-छोटी मछलियाँ आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर रही थीं। ऐसा लगता था कि उनकी क्रीड़ाको घण्टों तक देखा जा सकता है।

पगडण्डीपर दो ही क़दम आगे बढ़ा हूँगा कि सामने लाखों और करोड़ों लाल-लाल दियोंवाला गुलमुहरका महान् वृक्ष मेरे सामने हो लिया। उसके तलमें अधसूखे, मुरझाये और सँवलाये फूल बिखरे हुए थे। और दो-चार फटी चड्डियोंवाले मैले-कुचैले लड़के वहाँ न मालूम क्या-क्या बीन रहे थे!

मैंने शहरका यह हिस्सा देखा ही नहीं था। बायीं ओर अस्पतालकी पीली दीवार चली गयी, जिसके खतम होते ही छोटे-छोटे मकान, छोटे-छोटे घर, मिट्टीके घर, चले गये थे। निःसन्देह अस्पतालके पिछवाड़ेकी यह गली थी। दाहिनी ओर खुला मैदान था, जिसमें इमली और नीमके पेड़ोंके अलावा छोटे-छोटे खेत थे। एक खेतके बाद दूसरा खेत। ये तरकारियोंके खेत थे। छोटी-छोटी मेढ़ें बनी हुई थीं। उन खेतोंपर खूब मेहनत की गयी थी। ऐसा लगता था कि ये खेत नहीं वरन् कल्पनाशील चित्रकार-द्वारा निकाले गये मानवके हाथके चित्र हों। सब कुछ चित्रात्मक था। ये छोटे-छोटे खेत! वो इमलीके दरख़्त, जिसके नीचे गायें चर रही थीं और वे नीमके पेड़ जिसके तले एक चट्टानपर कोई बेघर-बेमकान आवारा अपनी मैली-कुचैली गठरी खोल रहा था। उसने हमारी ओर देखा, हमने उसकी तरफ़। उसका चेहरा साँवला अण्डाकार था, उसपर भोलेपनसे पुती हुई एक अजीब मुर्दनी छायी हुई थी। इसने मेरी कल्पनाओंको उकसा दिया। वह कौन था? किसी ग़रीब खेतिहरका लड़का, जो फटसे भाग गया था और जो, शहरमें चाय न मिलनेसे, थका-हारा यहाँ बैठा था अब खेत खतम हो गये। एक नये सड़क पुलिया दूरसे दिखाई देने लगी। बायीं तरफ़ घर गाँवके ग़रीबोंके थे। बाहर खाटें पेड़ोंकी सायामें साएँ लेटी हुई थीं। कुछ लो उधम कर रहे थे। लेकिन मेरी आँखें जगह जाकर ठिठक गयीं। एक मैली-कुचै खाटपर एक बूढ़ेकी ज़िन्दा ठठरी पड़ी हुई और उस ठठरीके दुबले चेहरेकी आँखोंमें ज्योति थी। ऐसी ज्योति जो ममतापूर्वक बालकको देख रही थी।

वह दो सालके शिशुकी ठठरी थी, जि सारे बदनपर सलवटें पड़ी हुई थीं और सलवट-भरे बाल-मुखपर वेदनाकी चीख शब्द होकर जड़ हो उठी थी। वह ठठरी अपने हड़ियल हाथोंसे शिशु-ठठरी खिला रही थी, प्यार करती-सी दिखायी रही थी और वह शिशु इस अनजानी दुनि को अपनी त्रस्त आँखोंसे देख रहा था। शिशुका चेहरा बिलकुल मैला था मूलतः उसकी त्वचा गोरी रही होगी।

मेरे अवचेतनमें-से अपने अनजानेमें एक ज़बर्दस्त हाय निकली—ऐसी कि सु चेहरेवाला साथी मुझे थोड़े विस्मयसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। उसने कहा, "क्या हुआ ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं।"

फिर मैं अपने खयालोंमें डूब गया। इतने-में गलीको पार करती हुई एक गटर दिखाई दी, जो ठीक बीचमें आकर फैलकर फूल गयी थी। उसमें-का कालापन भयानक था। उसके कीचड़में एक दुबली मुर्गी फँस गयी थी, और पंख फड़फड़ाकर निकलनेकी कोशिश कर रही थी।

सुनहरे चेहरेवालेने मुझसे कहा, "अगर बॉसने देखा कि हम इस गलीमें-से जा रहे हैं तो समझ जाइए कि मौत आ गयी !"

मैंने कहा, "क्यों ?"

उसने कहा, "इस गलीमें कमीन लोग रहते हैं और सभ्य लोगोंको यहाँसे गुज़रना नहीं चाहिए।"

मैंने कहा, "क्यों ?"

लेकिन, यह कहते-कहते मेरी भवें तन गयीं, शरीरमें एक उत्तेजना समाने लगी, शायद मेरी आँखोंमें भी तेज़ी आ गयी होगी।

सुनहरे चेहरेने फिर कहा, "बॉसके अनुसार, न सिर्फ़ यहाँ कमीन लोग रहते हैं, वरन् ऐसे घर भी हैं जहाँ...."

मैं समझ गया। उसका मतलब था कि यहाँ व्यभिचार होता है। मैंने कहा, "खुलकर कहो न ! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यह वेश्याओंका मुहल्ला है ?"

मेरे इस कथनसे सुनहरे चेहरेवालेको एक धक्का लगा। उसने कहा, "कौन कहता है !"

मैंने उलटकर पूछा, "तो फिर क्या ?"

उसने जवाब दिया, "यहाँ खुले व्यभिचार होता है।"

"होगा ! हमसे क्या ?"

"हमसे क्यों नहीं। हम इस विशाल सांस्कृतिक केन्द्रके सदस्य हैं और अगर हम इस गन्दी और कुप्रसिद्ध गलियोंमें पाये गये तो हमारा और हमारे केन्द्रका नाम बदनाम होगा !"

"तुम्हारी और तुम्हारे बॉसकी ऐसी-तैसी !" यह कहकर मैं चुप हो गया।

मैं आगे कहता गया, "तुम्हारे बॉसका चाल-चलन भी तो बहुत प्रसिद्ध है !"

सुनहरे चेहरेवाला नवयुवक बड़ी षड्यन्त्र-भरी मुसकान प्रकट करने लगा। जगतने उसकी पीठपर धप्प जड़ दी और वह बोल उठा, "क्यों मार रहे हो भाई !"

बात असलमें यह थी कि हमारे बॉस, जो इस सांस्कृतिक केन्द्रके सर्वेसर्वा हैं, बड़ी फ़िक्रके साथ हम लोगोंकी देखभाल करते हैं। हमें खूब सहायता देते हैं। इस केन्द्रके वे प्रमुख हैं, एवज़में उससे एक पैसा नहीं लेते। न केवल इस केन्द्रको वरन् उसके कर्मचारियोंको भी यथाशक्ति सहायता देते रहते हैं, वे हम सबसे प्रेम रखते हैं, चाहते हैं कि हम अच्छे ढंगसे रहें और यहाँके सर्वोच्च वर्गमें गिने जायें। इसलिए वे हमारी चाल-ढाल, कपड़े-लत्ते, यहाँ तक कि हमारी गति-विधिपर भी नज़र रखते हैं। शहरमें उनके बारेमें यह कहा जाता है कि वे अपने पुराने पापोंको धो रहे हैं।

वे 'पाप' क्या हैं ! हम लोग नहीं जानते। क़िस्सा मुख़्तसर यह है कि वे यहाँकी सूती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलके असिस्टेण्ट मैनेजर थे। यह सूती मिल एक प्रसिद्ध अँगरेज़ कम्पनीकी थी। इन अँगरेज़ोंमें-से बहुतेरोंके अपने परिवार न थे। वे अँगरेज़ अफ़सर नीची जातिकी स्थानीय औरतोंसे प्रेम करते। नौकरानियोंके रूपमें वे उनके घरमें रहतीं। मज़ा यह है कि (जैसे कि मुझे कई लोगोंने बताया) वे नौकरानियाँ, जो उनके यहाँ पहुँच जातीं, इस बातका अभिमान रखती थीं कि वे बड़ोंके 'घर' में हैं। स्वाधीनताके बाद, यह मिल जब हिन्दुस्तानियोंको बेच दी गयी तो कई अँगरेज़ोंने अपनी 'प्यारी' नौकरानियोंके लिए बड़े-बड़े घर-मकान बना दिये और उनकी एक जायदाद खड़ी कर दी।

यह क़िस्सा है। मनुष्यका चरित्र उसकी संगतसे पहचाना जाता है। सम्भव है, हमारे बॉसकी भी इसी तरहकी प्रेमिकाएँ रही हों। कौन नहीं जानता कि एक प्रदेशके एक मन्त्री—जिनका नाम मैं यहाँ लेना नहीं चाहता—की एक रखैल यहाँ आलीशान मकानमें रहती है, जिसे शहरके बाहरके एक मुहल्लेमें बनाया गया है। शहरमें किसीसे भी पूछ लीजिए, उसके मकानका अता-पता आपको मिल जायेगा।

बॉसके विरुद्ध तिरस्कारके कई कारण थे, जिनमें-से एक यह भी था कि वे स्थानीय नरेशके एटर्नी रहे। वहाँ ख़ूब आना-जाना रहा। और उसीकी (वह अब मर गया है) सहायतासे उसने परिश्रम करके यह विद्याकेन्द्र खोला। वे एक बड़ी-सी ज़मीनके मालिक हैं और कई छोटे-मोटे धन्धोंमें उनका पैसा लगा हुआ है। लेकिन, चूँकि वे एक प्रसिद्ध विलायती मि असिस्टेण्ट मैनेजर रह आये तो इसलिए उन्हें यहाँके बहुत-से सेठ-साहूकारोंपर उपक किया। वे उपकार करनेकी शक्ति रखते लोगोंपर अहसान करके उन्हें अपनी कठपु बनानेमें बड़ा मज़ा आता था। यों कहिए लोगोंको उनकी कठपुतली बननेमें मज़ा था। बात दोनों ओरसे थी। महत्त्वकी यह है कि वे क़ायदेके पाबन्द थे क़ानूनके अनुसार काम करनेमें हिचकि नहीं थे। यूनियनोंमें संगठित मज़दूर-वर्ग कभी ख़ुश नहीं रह सकता था, क्योंकि अँगरेज़ोंके वफ़ादार नौकर थे; और इसी उनकी चलती भी थी। स्वाधीनताके बाद कुछ दिनों तक वे मिलके असिस्टेण्ट मैने रहे। लेकिन नये मालिकसे उनकी नहीं पटी उन्होंने नौकरी छोड़ दी। उधर, भू मुख्यमन्त्री (जो अब मर गये है)—क उनकी ख़ूब पटती थी इसलिए अधिकारी पर भी उनका अच्छा-ख़ासा असर संक्षेपमें, वे इस शहरके बहुत प्रभावशा और शक्तिशाली लोगोंमें-से थे। और सामाजिक सन्दर्भको देखते हुए उनके सम्ब में बहुत-से लोगोंकी धारणाएँ बुरी हैं स्वाभाविक ही था।

यह एक तथ्य है। फिर भी दूसरा त यह भी है कि विद्याकेन्द्र खोलनेके साथ साथ उनका स्वभाव बदलने लगा।

पहले वे बहुत तेज़ मिज़ाजके, ज़िद न्याय-प्रिय (प्रचलित न्यायके सीमित अर्थ लेकिन अपनी करके छोड़नेवाले लोगोंमें-से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी स्त्री बहुत जल्दी मर गयी थी, इसलिए दो बच्चोंके पिता होते हुए भी वे अकेले थे। अब जबसे उन्होंने यह विद्याकेन्द्र खोला, उनमें एक अजीब नरमी आ गयी। उनकी संवेदनशीलता इतनी बनी हुई थी कि वे, जो पहले आदमीको सूँघकर उसकी पहचान बता देते थे, अब केवल उसकी मुखमुद्राको देखकर और उसके चेहरेकी शिकन देखकर उसके दिलकी ताड़ जाते, स्वभाव जान जाते। वे बहुत ज़्यादा अकेले थे और उनके सामने यह समस्या बनी रहती थी कि वक़्त कैसे काटें। इसलिए वे विद्याकेन्द्रके कर्मचारियोंमें बैठकर अपना समय व्यतीत करते थे।

बस इसी स्थान पर छुपे हुए संघर्षकी वह पृष्ठभूमि थी, जिसके बिना यह क़िस्सा समझमें नहीं आ सकता। यह उनकी संवेदनशील मनुष्यता थी, जिससे प्रेरित होकर वे अपने साथियोंकी सहायताके लिए दौड़ पड़ते, और अपने नुक़सानकी परवाह नहीं करते थे। वे राजा आदमी थे। वे प्रेम करते थे। और, प्रेमकी तानाशाही भी उनमें थी जो शासक-वर्गकी तानाशाही मनोवृत्तिसे घुल-मिलकर इतनी एकप्राण हो गयी थी कि यह कहना कठिन था कि वह शासकवर्गकी तानाशाही है या प्रेमका अधिनायकत्व है। उनके हाथसे जितनी अधिक सेवा और सहायता होती जाती उनकी मनोवैज्ञानिक रचनामें परिवर्त्तन होता जाता। प्रेम-भाव बढ़ता जाता और प्रेमकी तानाशाही बढ़ती जाती। उनका भोलापन भी बढ़ता जाता। उनकी ख़ुशामद कर, उन्हें विश्वासमें लेकर धोखा देना बड़ा ही सरल था। यद्यपि ऐसी कोई वारदात अभी तक हुई नहीं। लेकिन, सबको यह बात साफ़ नज़र आ रही थी। लिहाज़ा, कुछ लोग इसीमें जुटे रहते। इतना अच्छा था कि वे इस रहस्यको ख़ूब अच्छी तरह समझते थे, क्योंकि अपने जीवन-कालमें उन्हें ऐसोंका ख़ूब तजुर्बा मिल चुका था।

और, जैसा कि होता है, वे प्रेमके अधिकारका प्रयोग करते, बहुत निःस्वार्थ भावसे। लेकिन, यहीं गड़बड़ थी; क्योंकि अब उन्हें अपने प्रेमके अधिकारसे दूसरोंका जीवन-निर्माण करनेमें बड़ा मज़ा आ रहा था।

लोग इस बातके लिए तैयार नहीं थे कि उनके ढाँचेमें अपनी ज़िन्दगी फ़िट करें। उनका ख़याल था कि ख़ूब अच्छी ज़िन्दगी बितायी जाये—पैसा हो, ठाठ हो, समाजपर असर हो, और हो सके तो हाथसे अच्छी चीज़ बन जाये। उनके इस ख़यालसे हमारे यहाँ लगभग सभी एकमत थे। लेकिन जीवन-के विभिन्न विषयोंपर लोगोंके अलग-अलग आचार-विचार थे। एक तरहसे देखा जाये तो अपनी ख़ुदकी ज़िन्दगीसे वे रिटायर हो चुके थे। ज़िन्दगीमें ठाठसे मतलब क्या! घर, ज़मीन, जायदाद, ऐश! और महफ़िल या दरबारमें मसालेदार गपबाज़ी। सब लोग तो वैसा करनेसे रहे, क्योंकि उन्हें उतनी तनख़ाह ही नहीं मिलती थी। सिर्फ़ महफ़िलमें बैठकर मसालेदार गपबाज़ी ही बच रही थी। सो लोग करते ही थे। और घर, ज़मीन, ज़ायदादका मोह, उन्नतिका मोह सबको था, बशर्ते कि वह पूरा हो!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और, फिर भी, आदमीकी पसन्दगी-नापसन्दगी, रहन-सहन आदिके तरीक़े अलग-अलग होते हैं ! किसी दूसरे आदमीके ढाँचेमें वे फ़िट नहीं किये जा सकते। अपनी-अपनी उन्नतिकी कल्पना भी अलग-अलग होती है !

जो हो, एक ओर उनके अहसान और दूसरी ओर उनके प्रेमसे दबकर, हम लोग उन्हें अपना 'साथ' प्रदान करते, कि वे अपना वक़्त काट सकें। अपना साथ उन्हें प्रदान करना एक तरहसे अनिवार्य कर्त्तव्य हो गया था। दूसरे वे भी आज चायके बहाने, कल पार्टीके बहाने, परसों आउटिंगके बहाने, उसके अगले सिनेमा-फ़िल्मसके प्रदर्शनके बहाने सब लोगोंको बुलाकर अपना दरबार लगा ही लिया करते। धीरे-धीरे लोगोंको उनके दरबारमें जानेकी आदत पड़ गयी। जो कर्मचारी उनके दरबारमें न बैठता वह अपनेको असुरक्षित अनुभव करता; जिन कर्मचारियोंको कार्यवश वहाँ जानेको नहीं मिलता, उनके मनमें एक गुत्थी पैदा हो जाती कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी अनुपस्थितिमें कुछका कुछ हो जाये।

इस तरह, लोगोंमें एक अजीब दो-रुखी पैदा हो गयी थी। एक ओर तो वे दरबारको छोड़कर जानेमें अचकचाते थे, दूसरी ओर वे चाहते थे कि दरबार न हो और उन्हें घूमने-फिरनेकी खूब स्वतन्त्रता रहे। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं ! इस प्रकार कभी-कभी वे अपने ही पर झुँझला उठते, कभी नपुंसक क्रोधसे भर जाते। लेकिन, वे प्रकट रूपसे यह न कहते कि हमें दरबार अच्छा नहीं लगता। उधर, लगभग रोज़ [illegible] डिनर, पार्टी, फ़िल्म-शो आदि-आदि [illegible] करते और चूँकि सभी लोग निमन्त्रित [illegible] तो ऐसा निमन्त्रण अस्वीकार करना [illegible] मुश्किल होता। ये लंच या डिनर कभी [illegible] व्यक्ति देता तो कभी दूसरा व्यक्ति, [illegible] (अधिकांश वे ही) बाँस ! हफ़्तेमें [illegible] कम चार-पाँच बार इसी तरह खाना-पी[illegible] होता। यदि कोई हाज़िर न हो तो निमन्त्र[illegible] देनेवाला ख़ुद बुरा मानता। मतलब यह[illegible] कुल मिलाकर यह हालत थी कि कोई[illegible] जान-बूझकर दरबारमें जाना टाल [illegible] सकता, भले ही वह इस लम्बे वक़्तसे तंग [illegible] कर, बादमें, पीठ पीछे चिड़चिड़ाये [illegible] कुछ करे !

मज़ा यह है कि हर आदमी किसी-[illegible] किसी तरहसे, बॉसमें अपने समान कोई-[illegible] कोई गुण देख, और भले ही वह उसे [illegible] या न कहे, इस बातपर वह ख़ुद फ़िदा [illegible] जाता था। और हर एकको लगता कि [illegible] उसपर व्यक्तिगत रूपसे प्रसन्न हैं। शायद इस धारणाको बॉस ख़ुद अपने कर्मचारियों [illegible] बढ़ाते थे। वे अहसान, प्रेम और संगठ[illegible] दूसरोंकी गतिविधियोंपर शासन कर अप[illegible] प्रभुत्व-लोभ पूरा करते थे; ऐसी मेरी अप[illegible] कल्पना है।

दूसरी तरफ़ उस दरबारका [illegible] सदस्य दूसरे सदस्यसे सिर्फ़ ऊपरी तौ[illegible] मिलता था, क्योंकि ज़्यादातर [illegible] बेढंगे, बेजोड़ और बेमेल आदमी [illegible] ज़िन्दगी कैसे जीयी जाये, सब लोगोंके अल[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग खयाल थे। सब एक-दूसरेसे अलग थे और हर एकमें ऐसा गहरा अकेलापन था, जिसे काटनेके लिए मसालेदार गपबाज़ीके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। महफ़िलबाजीके बावजूद, उनके अकेलेपनकी गहराइयाँ बड़ी ही अँधेरी और निजी थीं। इस माहौलमें सब लोग यदि एक-दूसरेकी सहायता भी करते तो भी काटनेके लिए दौड़ते। एक-दूसरेकी टाँग खींचना एक मामूली बात थी। एक अजीब क़ैद थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको विफल अनुभव कर रहा था।

और, फिर भी किसीमें यह साहस नहीं था कि इस उलझी गुत्थीको तोड़े। क्योंकि यह सम्भव था कि यदि कोई उसे तोड़नेकी कोशिश करे तो दूसरा आदमी उसके विरुद्ध और अपने हितमें नाजायज़ फ़ायदा उठा लेता। और लोग अपना-अपना हित उसी प्रकार देखते थे, जैसे चींटी गुड़को।

इस विद्याकेन्द्रमें किसीको भी विद्यानुराग नहीं था। यहाँ तक कि पढ़ानेका जो काम है उससे सम्बन्धित बातोंको छोड़कर जो व्यक्ति इधर-उधर किताबें टटोलता या अपने विषयमें रस लेने लगता और उस विषयमें रसमग्न होकर बात-चीत करता तो लोग बुरा मान जाते। समझते कि वह पढ़ाकू हो रहा है। हमारे यहाँसे जो लोग पी-एच० डी० या डी० एस-सी० होने गये, वे अपने आँकड़े समझा कर गये थे। वे सिर्फ़ पी-एच० डी० चाहते थे, जिससे कि वे अगली सीढ़ीपर चढ़ सकें। यही क्यों, हमारे यहाँका जो सब-डिविज़नल ऑफ़िसर था, वह ख़ुद डी० एस-सी० था, जब कि वह पढ़ा-पढ़ाया सब-कुछ भूल चुका था। इस प्रकार, चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति करना एक प्राकृतिक नियमका उच्च और अनिवार्य पद प्राप्त कर चुका था। इन तथ्योंको मैं कण-भर भी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रहा हूँ। विज्ञानवालोंको यह मालूम नहीं था कि हाल ही में कौन-कौन-से महत्त्वपूर्ण आविष्कार हो रहे हैं और हिन्दीवालोंको यह ज्ञान नहीं था कि आजकल इस क्षेत्रमें क्या चल रहा है। और जो मालूम भी था, वह केवल सुना-सुनाया था, अस्पष्ट था, धुँधला और उलझा हुआ था। और, इस बीच हमारे यहाँके एक 'विद्वान्'ने अपने विषयके और दूसरे विषयके अपने विश्वविद्यालयके और दूसरे विश्वविद्यालयके तरह-तरहके 'गेस-पेपर्स' निकालकर एक प्रकाशकसे आठ-एक सौ रुपये कमा भी लिये थे।

वैसे हम सब नौजवान थे, कई उपाधियोंसे विभूषित थे, अपने विषयके आचार्य माने जाते। एक तरहसे हम भोले थे, सरल हृदय भी थे, हम किसीके दुःखसे पिघल सकते थे, सहायता भी करते। लेकिन, हममें सामाजिक अन्तरात्मा नहीं थी, सामाजिक चेतना नहीं थी क्योंकि असलमें हम सब लोग हरामख़ोर थे। और मज़ा यह है कि वैसे व्यक्तिशः हम बुरे भी नहीं थे; भलेमानस कहलाते थे, अच्छे आदमी थे। अच्छा आदमी वह होता है जिसकी बुराई ढँकी रह जाती है चाहे आप-ही-आप, चाहे किये-कराये से। हम ऐसे भलेमानस थे। ■■

(शेष अगले अंकमें)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमकी बनाने के लिए
आटा छान लीजिए
नमक और थोड़ी वनस्पति मिलाकर इसे दूध के साथ सान लीजिए।
अब इसे अच्छी तरह गूंथिए।
छोटी-छोटी पेड़ियां बनाकर उन्हें बेल लीजिए और फिर गर्म वनस्पति में तल लीजिए।
लीजिए, स्वादिष्ट और जायकेदार निमकी तैयार हो गयी।
उत्तम एवम् स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए हनुमान वनस्पति पर ही भरोसा रखें।
भोजन बनाने का श्रेष्ठ चिकनाई माध्यम
हनुमान
वनस्पति

निर्माता :
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
बालमियानगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

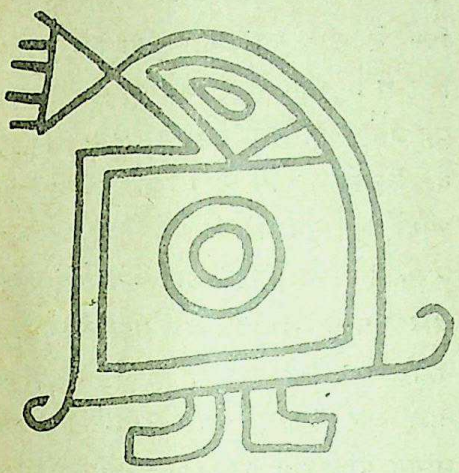

ज़ियारत

• कर्तार सिंह दुग्गल

उनके बच्चा नहीं होता था। मिस्टर और मिसेज़ शेख परेशान थे। शादीके बाद, पहले तो कुछ देर वे एहतियात बरतते रहे। फ़ैशनेबल जोड़ा! इतनी जल्दी वे बच्चोंकी ज़िम्मेदारियोंमें उलझना नहीं चाहते थे। लेकिन अब कई वर्ष बीत गये थे उनको हाथ फैलाते, कई वर्ष हो गये थे उनको हर उपाय करते, पर कोई कामयाबी नहीं हुई थी।

मिस्टर शेख डॉक्टरोंके यहाँ दौड़ता रहता, मिसेज़ शेख़ ज़नाना-अस्पतालोंके चक्कर काटती रहती। दाइयाँ, हकीम, वैद्य, कुछ भी उन्होंने छोड़ा नहीं था; जहाँ कहीं भी उन्हें किसी सयानेकी खबर मिलती, वे उसे दिखानेके लिए चल पड़ते। अच्छा खाते, अच्छा पीते, अच्छी तरह रहते, फिर उनके यहाँ बच्चा क्यों नहीं होता था, उनकी समझमें यह नहीं आता था।

कभी-कभी मिस्टर शेख सोचता, खराबी मिसेज़ शेखमें थी। उसमें खराबी बिलकुल नहीं थी। एक बार····हाँ-हाँ, इसमें शर्मकी कौन-सी बात है····एक बार गरमीकी छुट्टियोंमें वह अपने गाँव गया। एक दोपहर, अकेला वह एक बेरीके नीचे पढ़ रहा था कि एक चरवाहिन उसके पास आ बैठी। साँवला रंग, पतली, लम्बी। एकटक उसकी ओर देखे जा रही थी। कजरायी आँखें, दूध-से सफ़ेद दाँत, दँदासे-से रंगे हुए होंठ। और उसे गुदगुदी-सी होने लगी। चार क़दम दूर बैठी एक औरत उसे देखे जा रही थी, देखे जा रही थी। और उसने किताब बन्द करके उसकी ओर निहारा। वह खिलखिला कर हँस दी। और फिर बिना एक शब्द बोले, उसे उँगलीसे लगाये, सामने सिर-सिर तक ऊँचे मक्कीके खेतमें ले गयी। तोबा, तोबा, किस तरहकी औरत थी! उसके मुँहको, माथेको, कन्धोंको, टाँगोंको, पाँवको, पंजोंको प्यार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही थी। प्यार कर रही थी और मछली-का तरह तड़प रही थी। और मक्कीके खेतमें उनको शाम हो गयी। उस दिन वह एक नशे-नशेमें मदहोश पड़ा रहा। और अगली सुबह वह शहर लौट गया। उसको उस बेरीसे, उस खेतसे, उस गाँवसे जैसे डर लगने लगा था। एक साल बाद, गरमीकी छुट्टियोंमें वह फिर गाँव आया। गाँवमें उसने क़दम ही रखा था कि गलीमें उसकी उससे मुलाक़ात हो गयी। उसको गोदमें चाँद-जैसा एक बच्चा था। "बाबू, तुम्हारी निशानी है।" धीरे-से उसके कानमें उसने कहा, और एक चंचल हँसी हँसती हुई आगे बढ़ गयी। उसके पाँवके नीचेसे जैसे ज़मीन निकल गयी हो। अगले ही दिन, किसी बहाने, वह शहर लौट गया। और फिर उस गाँवमें उसने कभी पाँव नहीं रखा। मिस्टर शेख सोचता, ख़राबी मिसेज़ शेखमें ही थी। उसमें ख़राबी बिलकुल नहीं थी।

जाड़ेकी हलकी-हलकी धूपमें, अकेली, अपने आँगनमे बैठी जब वह पड़ोसियोंके घर खेल रहे बच्चोंका शोर सुनती, मिसेज़ शेखकी आँखोंमें आँसू छलक आते। उसका सूना आँगन उसे काटनेको दौड़ता। और बार-बार मिसेज़ शेखका मन कहता, उसमें क़सूर कोई नहीं था। जो कुछ ख़राबी थी, मिस्टर शेखमें थी। वह तो···हाँ, हाँ, इसमें शर्मकी कौन-सी बात है····वह तो एक बच्चेकी माँ बननेवाली थी। अगर उसकी भाभी दखल न देती तो वह आज स्कूल पढ़ रहे बच्चेकी माँ होती। तोबा, तोबा! किस तरहका दीवानापन उसपर सवार हुआ था उन दिनों। वह तो उसका मास्टर था। हिन्दू-मास्टर उसे अलजबरा पढ़ाने आया करता था। दिन, ढेर-रात गये तक पढ़ाता रहा। जाड़े दिन थे। आगे-पीछे, सब सो चुके थे। वह जाने लगा, पता नहीं क्या हुआ, कैसे हुआ वह उसकी बाँहोंमें थी। और जब उन्हें होश आया, मुर्ग़े सुबहकी बाँगें दे रहे थे। मुसलमान लड़की! किसी हिन्दूके साथ कैसे ब्याह करेंगे और उसकी भाभीने, उस साल सैरके बहाने पहाड़पर उसे ले जाकर, हिन्दू-मास्टरका नाश कर दिया। सात-परदोंमें रहनेवाली मासूम मुसलमान लड़कीको उसने ख़राब किया था।····जो कुछ भी था, मिसेज़ शेख सोचती वह माँ तो बनी थी। उसमें कोई ख़राबी नहीं थी। अगर कोई ख़राबी थी तो उस शौहरमें थी, मिस्टर शेखमें। उसे यक़ीन था

और मिसेज़ शेखको यह बात ज़हर लगती थी कि उसका घरवाला उसे कहींका न दौड़ाता रहता। और आजकल एक ऐसे पागलपन उसपर सवार था। कभी उसे कोई जादू बताता, तो उसे जादू करनेके लिए कहता रहता। कभी उसे कोई टोना बताता, तो उसे टोना करनेके लिए उकसाता रहता।

लेकिन उस साल गरमियोंमें जब वे कश्मीर गये, मिसेज़ शेखने हार मान ली। उसे लगता, जैसे जो कुछ उसका दीवाना कहता था, शायद वही ठीक था और वह ग़लत थी। ढेर-सारा जो कुछ उसने पढ़ा था शायद सब कुछ झूठ था।

बात यूँ हुई, गरमियोंमें वे हर साल श्रीनगर आया करते थे। हर साल एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाऊस-बोटमें ठहरते। हाऊस-बोटका मालिक अली जू हाजी इन्हें बहुत पसन्द था। अली जू और उसकी बीवी नूराँ। मिस्टर और मिसेज़ शेखकी तरह उनके यहाँ भी कोई बच्चा नहीं था। मियाँ-बीवी साफ़-सुथरे रहते। हाऊस-बोटको शीशेकी तरह चमका कर रखते। लेकिन इस साल जब वह कश्मीर आये, नूराँकी गोदमें बच्चा था। चाँद-जैसा प्यारा। मिसेज़ शेखको नूराँके बच्चेको देख-कर भूख न मिटती। कभी उसके लिए कुछ बना रही होती, कभी उसके लिए कुछ बाज़ार-से लाती रहती। और फिर बातों-बातोंमें अली जूने बताया, इतने दिनों बाद उनके यहाँ बच्चा एक पीरके मज़ारपर ज़यारतका सदक़ा था। अली जू और उसकी बीवी, कई मील दूर पैदल ज़यारत करने गये थे। तीन रातें बीचमें पड़ती थीं। न वहाँ मोटर जाती थी, न लॉरी। और जब वे लौटे, नूराँकी गोद हरी हो गयी। करामात थी, बिलकुल करामात। आगे-पीछे जो कोई भी सुनता, किसीको विश्वास न होता, लेकिन महीने पूरे हुए और नूराँ माँ बन गयी।

जबसे उन्होंने यह बात सुनी, उठते-बैठते मिस्टर शेख़ अपनी बीवीको चिढ़ाता रहता। उठते-बैठते मिसेज़ शेख़ हारी-हारी महसूस करती रहती।

और मिस्टर शेखने, मिसेज़ शेखको मनवा लिया कि वे भी ज़यारतपर जायेंगे। श्रीनगर-से आठ मील दूर वे पैदल जायेंगे। और मिस्टर शेखको यक़ीन था, उनके घर भी बच्चा हो जायेगा। मिसेज़ शेखको लगता, जो

> इस 'ज़यारत' के लेखक श्री कर्त्तार सिंह दुग्गलको उनके पंजाबी कथा-संग्रहपर इस वर्षका साहित्य-अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। अन्य भाषाओंके लेखकों में-से यह पुरस्कार जिन्हें दिया गया है उनमें-से ज्ञानोदयके कुछ लेखक ये हैं: डॉ० नगेन्द्र, राजेन्द्र सिंह बेदी, काका गाडगिल, देशपाण्डे, विष्णु दे। इस वर्ष मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्के पुरस्कार मिले हैं—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, वीरेन्द्र मिश्र, राजेन्द्र अवस्थी, मनमोहन मदारिया, हरिकृष्ण देवसरे आदिको···बधाई।

कुछ उसका शौहर कहता है, शायद ठीक ही हो। शायद यूँही होगा। और फिर वह भी तैयार हो गयी। नीली कंबलीवाले पीरके मज़ारपर वह हाथ फैलाकर दुआ माँगेगी और उसकी झोली भर जायेगी, उसके दिलकी मुराद पूरी हो जायेगी। मिसेज़ शेख़ सोचती, बस नूराँके बच्चे-जैसा एक लाल उसे मिल जाये, और उसे कुछ नहीं चाहिए। कुछ भी नहीं। अल्लाहने और सब कुछ उसे दिया है।

और फिर एक दिन सुबह नाश्तेपर उन्होंने अली जू और नूराँको बताया कि मिस्टर और मिसेज़ शेख भी ज़यारत करना चाहते हैं। अली जू तो, जबसे इस साल वे आये, कई बार मिस्टर शेखको यह राय दे चुका था, उनके फ़ैसलेको सुनकर जैसे वह खिल-सा गया। कहता, मैं भी आपके साथ चलूँगा। नूराँको भी ले चलेंगे। अकेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चा बड़ा होकर उदास-उदास रहने लगता है। एक बच्चा और होना चाहिए। चाहे भाई कि बहन।

अगली सुबह उन्हें जाना था। शामको अली जू आया। कहने लगा, नूराँकी तबीयत ठीक नहीं, वह नहीं जा सकेगी। पर अली जू ख़ुद तैयार था। वह ज़रूर उनके साथ जायेगा। नूराँ नहीं जा रही थी; मिस्टर और मिसेज़ शेख इसमें ख़ुश थे कि सफ़रमें छोटे-से बच्चेकी ज़िम्मेदारी टल गयी।

"नूराँ नहीं जा रही, यह तो ठीक ही हुआ।" एकसे अधिक बार मिस्टर शेख कह चुका था। "नूरा नहीं जा रही, यह तो ठीक ही हुआ।" एकसे अधिक बार मिसेज़ शेखके मुँहसे यह बोल निकले।

सारी तैयारी पूरी हो चुकी थी। उस रात खानेके बाद मिस्टर शेख, हाऊस-बोटकी छतपर बैठा सिगरेट पी रहा था कि हलकी-हलकी चाँदनीमें उसने देखा, नूरा सीढ़ियाँ चढ़ उसकी ओर आ रही थी। यूँ परायी औरतका हाऊस-बोटकी छतपर, देर-रात गये उससे मिलने आना····मिस्टर शेखका दिल धक-धक करने लगा।

और फिर अगले क्षण नूराँका सिर मिस्टर शेखके पाँवपर था।

"साहब! बेगमको ज़यारतपर न ले जाना। उस मज़ारकी ज़यारत करनेसे बच्चा होता है, यह झूठ है, कोरा झूठ!"

"क्या मतलब?" मिस्टर शेखने हैरान होकर पूछा।

और फिर नूराँने उसे अपनी सारी बीती सुनायी।

ज़यारतके लिए जा रहे रास्तेमें उन्हें एक जगह पड़ाव किया। कई यात्री थे। और औरतें। हिन्दू और मुसलमान। किसीको औलादकी चाह थी। यह दूसरा पड़ाव था उनका। एक छप्परके तले ये थे। छप्परके नीचे जगह कम थी और यात्री ज़्यादा। यात्रीके साथ यात्री सटकर सो हुआ था। और उस रात उसकी आँख खुली तो उसने देखा, कोई पराया मर्द उस फिरणके अन्दर साँपकी तरह फुँकारता हुआ बढ़ता आ रहा था। न इधरकी, न उधरकी नूराँने लाख कोशिश की, उसके मुँहसे आवाज़ न निकली। अगली सुबह, नूराँकी आँख घरवालेकी तरफ़ निगाह नहीं उठती थी। उसका जी चाहता, धरती जगह दे और वह उसमें समा जाये। वह पानी-पानी हो रही थी कि उसके साथ ज़यारत कर रही एक और औरतने चुपके-से उसे कहा, "कोई बात नहीं, इससे पहले पड़ावपर मेरे साथ भी यूँही हुआ है, बिलकुल ऐसे ही।" हज की रास्तेमें बनी इस सहेलीने रातको नूराँके साथ हुई वारदात अपनी आँखों देखी थी।

मिस्टर शेखने सुना और उसके पाँव तलेसे ज़मीन निकल गयी। आधी रात हो गयी थी कि वह छतसे नीचे उतरा। उसकी बीवी अभीतक अगली सुबह ज़यारतकी तैयारी कर रही थी। मुँह अँधेरे ही तो उन्होंने चल देना था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दीवार....

रात, दीवार

• पानू खोलिया

"दुनियाकी कोई भी ताक़त मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकती, अमर ! हम जनम-जनमको दो तन-एक मन होकर रहेंगे। हम इस दुनियासे दूर, बहुत दूर अपनी अलग दुनिया बसाकर रहेंगे··· अलग दुनिया····" फ़िल्म चल रही है। हीरोइन हीरोके गलबहियाँ डाले बेहोशीमें डूबती जा रही है।

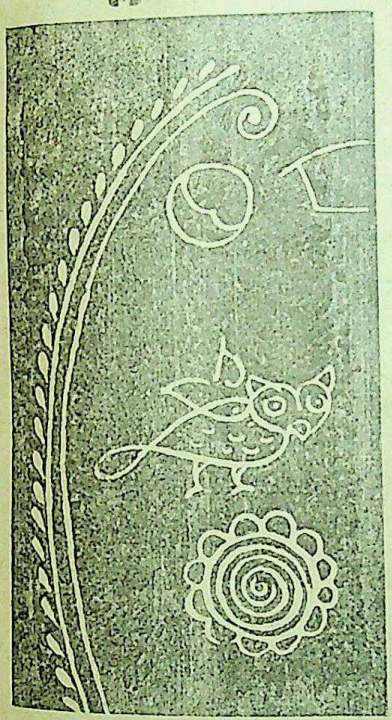

श्रीनाथने शकुनको कन्धेसे भींच लिया है, हौलेसे।

जब भी पिक्चर देखनी होती है, श्रीनाथ बॉक्स-का ही टिकिट खरीदता है।

मगर इस वक़्त जो उसने शकुनको भींचा, वह बिलकुल ठण्डे दिलसे, और कुछ सोचकर। खयाल आ गया था, इसलिए। शकुनको अच्छा लगता है, इसलिए। वरना उसे तो ग्लानि ही हुई, जैसे वह शकुनपर कोई अत्याचार कर बैठा हो····अबोध शकुन !

और शकुन 'नटखट !' के भाव-से मुसकराती हुई उसकी ओर देखे, तबतक श्रीनाथने चेहरेपर उतरे उस ग्लानिके बुझावको दबा लिया और शकुन-की ओर देखकर शरारतसे मुसकरा दिया।

पिक्चरमें श्रीनाथका कोई मन थोड़े ही लग रहा है। वह तो सुबह खाना खाते वक़्त औचक ही उसके मुँहसे निकल पड़ा था, "अगर आज पिक्चर देखने चला जाये, तो कैसा रहे ?"····और फिर शकुन 'ना' कहनेवाली थी ?

फ़िल्म नहीं चल रही, श्रीनाथके आगे अर्थहीन चलचित्रोंका, आवाज़ोंका, गानोंका सिलसिला चल रहा है कोई। अन्यथा उसके लिए जो फ़िल्म चल रही है इस वक़्त, उसमें एक शकुन है, जो बिस्तर ठीक कर रही है भीतर, और एक श्रीनाथ है, लैट्रिनकी तरफ़ जाते-जाते कुछ चौंककर रुक गया है जो, शकुनको आवाज़ देते-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते चुप गया है जो, और गुलदाउदीके गमलेसे मिट्टी निकालकर बरामदेके किनारे पड़े उस बलग़मको चुपचाप ढक दिया है जिसने।.... और फिर एक डॉ० कर्नाटक हैं, कुछ अर्थ-पूर्ण दृष्टिसे श्रीनाथकी ओर देखकर अब शकुन-से कह रहे हैं, "कोई ख़ास घबरानेकी बात नहीं है। बुख़ार है पुराना। उसीसे कमज़ोरी भी है। ठीक हो जायेगा।" और 'नमस्कार' कर जब वे दोनों चलने लगते हैं, शकुन बरा-मदेमें पहुँच जाती है, तो दरवाज़ेके पास श्रीनाथके कन्धेपर हाथ धरकर धीरे-से कहते हैं, "सुबह नौपर मिलिए।" ....और अब वह सारी फ़िल्म, सिलसिलेवार चल रहे वे सारे चित्र, सारी आवाज़ें गड्डमड्ड हो गयी हैं। अब कुछ भी साफ़ नहीं दीख रहा, कुछ भी साफ़ नहीं सुन-समझ पड़ रहा।

पता नहीं, कितनी रीलें और बाक़ी होंगी अभी। वह कब घर पहुँचेगा? कब रात होगी?

परदेपर कोई हँसोड़ पात्र आ पहुँचा है। श्रीनाथ हँस पड़ा है। थोड़ा तो इसलिए, कि उसने कोई मज़ेदार बात कही है, और ज़्यादा इसलिए, कि सारे लोग हँस पड़े हैं, शकुन हँस पड़ी है....

■

शकुनसे बालोंकी कटिंग करवा लानेकी बात कहकर श्रीनाथ सुबह आठपर ही घरसे निकल गया था। यद्यपि उसे मालूम था, कि चूँकि कर्नाटक साहबने नौ बजेका वक़्त दिया है, इसलिए उनके साढ़े आठ-पौने नौपर, या आठ-पचपनपर भी मिल सकनेका सवाल नहीं उठता। ठीक नौपर। न पाँच मिनिट ज़्या न पाँच मिनिट देरसे। आठका चला वह आठ तक उनकी कोठीपर पहुँच जायेगा, फिर आध घण्टा निठल्ला इन्तज़ार करेगा बाहर खड़े-खड़े, वह यह भी जानता था। भी, व्यग्रता कुछ इतनी अधिक थी, कि आ बाद उससे रुका नहीं गया घरमें। यह तक भी वह इसलिए रुक गया, कि आज देरसे आनेके कारण चाय वक़्तपर नहीं सकी थी।

उत्कण्ठाकी चींटियाँ उसकी पिंड रातको भी जाने कितनी लम्बी बना दें अगर उसे समयपर नींद न आ गयी हो प्रायः ज़रा भी उत्कण्ठित होनेपर उसकी उचट जाती है, मगर कल रात न मा कैसे....नींद कहाँ आयी, बीयाबान जगहों भुतहा मकानोंके, साँपों, चोरों, शेर-भेड़ियों जाने कैसे-कैसे डरावने सपनोंसे घिरा रहा पूरी रात। सुबह नींद खुली तो मन और दिनोंकी तरह हलका थोड़े ही था आज भारी-भारी, उदास-उदास हो रहा था कमरेकी हर चीज़ उदासी-डूबी लग रही उससे और दिनोंकी तरह आज चटपट भी नहीं गया था। देर तक बीमार-सा सुस्त पड़ा रहा था। जाने कितनी देर और छायी रहती यह मनहूस उदासी, शकुन उसकी ओर देखकर कहती नहीं, "आप सुस्त-से क्यों पड़े हैं?"

सुनकर वह सकपका गया था। सँभल हुआ बोला था, "नहीं तो! सुस्त कहाँ हूँ"

"हैं तो," शकुनने दोहराया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं सहम उठा था। झटपट बोल दिया था, "सुस्ती तो, दरअसल, तुमने फैला रखी है। रेडियो महाशय अभीतक आराम फ़रमा रहे हैं।" और लपककर उसने रेडियो चालू कर दिया था। और फिर पड़ा-पड़ा, वह देर तक रातके वे अजीब-अजीब सपने, अपनी मसख़री-से रंग देता हुआ, शकुनको सुनाता रहा था। अखबार आ गया, तो राजनैतिक समाचारों-की जगह आज उसने छुटपुट चुटकुलेनुमा समाचार पढ़े और शकुनको सुनाये। फिर उसने विज्ञापनोंवाला पृष्ठ खोला। उसमें देर तक वह बिकाऊ या किरायेपर उपलब्ध चीज़ोंके विज्ञापन देखता रहा और शकुनको ड्रॉइंग-रूम वग़ैरह 'डेवलप' करनेकी अपनी योजनाएँ बतलाता रहा, पूरी रुचिके साथ। और फिर 'मेट्रीमोनियल' के कॉलम और उसकी शरारतें। शकुन ख़ूब हँसती-बहलती रही उसकी वे शरारत-भरी बातें सुन-सुनकर।

तो भी श्रीनाथको एक-एक मिनिट भारी लग रहा था। तो भी मन भारी ही बना था और डॉ० कर्नाटकके यहाँ पहुँचनेकी व्यग्रता बदस्तूर थी। मगर यह सब चेहरेके नीचे ही दबा रहा। बाहर आ झलकनेका मौक़ा नहीं दे रहा था इसे वह।

■

और जब डॉ० कर्नाटकके यहाँसे लौटकर घर पहुँचा था श्रीनाथ, शकुन खाना लगाये तैयार बैठी थी। बोली, "आपने तो ग़ज़ब देर कर दी! देखिए, सवा दस हो चले हैं। कॉलेजका ध्यान नहीं रहा?"

"आज कॉलेज कहाँ जाना है।" उसके इस सवालके लिए श्रीनाथ रास्तेसे ही तैयार होकर आया था, इसलिए उसने बड़े आरामसे कह दिया। सुतलीसे बँधा पैकेट उसे थमाता हुआ, अपनी बातको अधिक विश्वसनीय बनाने-की ग़रजसे बोला, "कल कहा नहीं था तुमसे, कि आज छुट्टी है!"

"कब कहा....?"

"ओ' सॉरी!" अपनी झूठको कितनी सहजताके साथ सँभाल गया वह! और फिर, बालकी खाल खींचनेवाली शकुनका इस विषय-से ध्यान ही दूसरी ओरको पलटा देनेका यह नायाब तरीक़ा—"वो तुमसे नहीं कहा था, मिस तनेजासे कहा था वो तो।" मिस तनेजा उसकी 'कलीग' थी। उसे लेकर श्रीनाथ शकुनको अकसर चिढ़ाता रहता था। बोला, "कॉलेजसे लौटते वक़्त ऊपर मकानसे लड़का भेजकर कॉफ़ी पीने बुला लिया था उसने, तब कहा था। अब याद आ गया।"

"हुँ! कॉफ़ी पीने बुला लिया था, इन्हें! और मिस तनेजाने! हाँ, कोई तीमारदारी करवाने ज़रूर बुला लिया होगा, यह हो सकता है।....वह तो एक मूरख शकुन निकल गयी, कि लिफ़्ट दे दी। तनेजा लिफ़्ट देगी इन्हें....हुँ!" शकुन गम्भीरताका स्वाँग रचे, पैकेटकी सुतली खोल रही थी और सोफ़ेपर तिरछा पसर गया श्रीनाथ कभी सामने लटके टैगोरवाले कलेण्डरकी ओर और कभी झुके-झुके सुतलीकी गाँठ खोल रही शकुनकी ओर देख ले रहा था। होठ खिंच आये थे। बोला, "तुम यही सोचा करो, तभी हमारी भी भलाई है। सच जो मान लो, तो मुसीबत न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाये हम लोगोंकी !····वैसे, फ़ॉर योर काइण्ड इन्फ़ॉर्मेशन, लड़की वह बड़ी स्वीट है। मतलब, मेरे ही लिए नहीं, तुम्हारे लिए भी····"

"अच्छा, खैर होगी। मगर यह क्या ले आये तुम इसमें····इत्ती दवाइयाँ !"

"अरे यार !" लेटेसे उठ रहा था श्रीनाथ। "सुबह-सुबह हजामत बनवाने क्या भेज दिया तुमने, पक्की हजामत बन गयी। तभी तो प्रार्थना कर लिया करता था हर रोज़—या मेरे मौला ! वकील-डॉक्टरोंके फन्देमें कभी न डालना !····कर्नाटक साहब मिल पड़े रास्तेमें, अभी फिर। ज़बरन गाड़ीमें लाद ले गये। कुछ बात न चीत, बस सौ रुपयेका तमाचा मार दिया सुबह-सुबह। बोले, इससे उनका स्वास्थ्य स्टीलका बन जायेगा। गारण्टी हमारी, अगर फिर कभी जुकाम भी हो गया उन्हें···! हमने भी कहा, ऐसी ही बात है, तो लाओ, दो। अपनी गाँठ-का क्या जा रहा है, जबतक सरकारके साथ दामादगिरी अपनी बरक़रार है····। बस, अब तुम आजसे ही स्वास्थ्य-आन्दोलन शुरू कर दो अपना। शुभस्य शीघ्रम्।····और जिस रोज़ स्टीलकी बन जाओ, मुझे बता देना। जाके हमेशाके लिए टा-टा' कर आऊँगा मिस तनेजाको।" और फ़ौरन जूतेके तस्मे खोलने-के लिए झुक गया, क्योंकि इस 'जिस रोज़ स्टीलकी बन जाओ' वाले मज़ाक़से कहीं कोई घाव छिल गया था अचानक।

"अरे····! अच्छा····!" शकुनने उसके मज़ाक़पर ध्यान नहीं दिया, बस दवाइयोंके पैकेटको और श्रीनाथको ताकती रह गयी।

"और आप आज भी कटिंग नहीं ब लाये ?"

"ओफ़्फो···!" गोया अबतक भूला हो वह। ठोड़ीपर हाथ रखते हुए बो "अब याद आ रहा····मैं तो कटिंग कर गया था ! धत्तेरेकी ! चलो, अब कल क लेंगे। एक कटिंग होनी थी आज, वह हो गयी।" और बरबस हँस दिया।

"अच्छा, अब हम अपना स्नान लेंगे यह बनकर बोलना भी उसके मौजमें हो पहचान है। "खाना क्यों लगा दिया क तुमने ? कुच्छ नहीं यार, तुम भी ! छुट्टी या कॉलेज हो, तुम्हारी आढ़तमें तो बस धान बाईस पसेरी····"

मगर शकुनको क्या पता था, कि उ आजकी छुट्टी है; उसने तो समझा था कॉलेज जाना होगा····खाना समेटते हुए शकु ने कहा भी।

श्रीनाथ तौलिया लपेटकर कपड़े ल रहा था और शकुनका तर्क सुन रहा था कॉलेज जाना होगा। खाक कॉलेज जा अब श्रीनाथ ! बस, जितना जाना था, लिया····! चेहरा वापस बुझने लगा था उस इसलिए झटककर बोला, "ज़रा रेडियोके तो उमेठ देतीं, देवीजी ! बड़ा सुनसान रहा है। आफ़्टर ऑल, छुट्टी है, मजाक नहीं है कोई ! तब तो कहता हूँ, कि ज़रूरी बातोंका ध्यान रखनेवाली मिस····"

और, शकुन पलटकर देखे, इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बात अधूरी छोड़कर वह बाथ-रूममें घुस गया।

बाथ-रूमकी दीवारोंसे घिरी हुई वह तंग कोठरी!

श्रीनाथको अब अपनी बाक़ी ज़िन्दगी इसी कोठरीमें गुज़ार देनेकी छूट मिल जाती···· काश! उसे शाहजहाँके अन्तिम दिनोंकी याद हो आयी थी इस वक़्त। गोया शाहजहाँ उसका कोई अज़ीज़ दोस्त रहा होगा। आगरा-क़िलेकी एक तंग कोठरी। बूढ़े शाहजहाँके उतने विराट् व्यक्तित्वकी अन्तिम नियति, वह कोठरी! ताजकी दिशाको खुलनेवाली उसकी एक खिड़की····न, श्रीनाथको किसी खिड़की-विड़कीकी भी आवश्यकता नहीं····।

नलके सहारे अधढहा श्रीनाथ। चेहरेकी सारी रंगत, गोया दहकते अंगारको अभी-अभी पानीमें डुबा दिया गया हो। अथाह उदासी और विषादमें डूबा वह चेहरा। होठ काट रहे दाँत। आँखें डबडबा आयी थीं, और अश्रुपूर्ण दृष्टि नीचे फ़र्शके कोनेमें पड़ी हुई मुँगरीपर टिकी हुई थी।····बस, श्रीनाथको अपनी बाक़ी ज़िन्दगी ऐसे ही गुज़ार देनेकी छूट मिल जाये। और उसे देखनेवाला कोई न हो···न, शकुन तो न ही!

सबसे बड़ा डर श्रीनाथको शकुनका हो चला है आज। उस शकुनका, जिसने ब्राह्मण-कन्या होकर भी माँ-बाप, भाई-बहन, टोला-मुहल्ला, किसीकी भी परवाह नहीं की थी कभी, और एक कायस्थ-युवक श्रीनाथको अपना सर्वस्व स्वीकार लिया था····और अब भी स्वीकार है जो।

और यह सर्वस्व बनना-स्वीकारना भी जैसे एक मजबूरी थी: बीचमें दुराव-अलगाव-की दीवार खड़ी कर न जी सकनेकी मजबूरी, एक-दूसरेके प्रति परायापन ओढ़कर न चल पानेकी मजबूरी।

ऐसी स्थितिमें, विवाहके बाद किसी दुराव-अलगावकी बात सोची भी कैसे जा सकती है! जहाँतक याद आता है, श्रीनाथने कोई भी बात, कोई भी दुःख-सुख अकेले नहीं जीया, आज तक कभी। बड़ेसे बड़ा पाप-भाव तक नहीं। उस बार शरदोत्सवमें एक बेहद ख़ूबसूरत लड़की दीख गयी थी। तीन-चार दिन तक नित आमना-सामना होता रहा था उससे श्रीनाथका। एक ख़ुमार-सा छा गया था उसपर। वह 'पाप' तक उसने ख़ुद ही शकुनको कन्फ़ेस कर दिया। और ले टप्-टप्-टप् आँसू। बिलकुल बच्चोंकी तरह।

यही वजह है, कि वह अकसर इस-उस लड़कीको लेकर शकुनको खिजाता रहता है। यहाँतक कि किस लड़कीकी भौंहें कितनी पतली हैं, किसकी नाकमें कौन-से रंगका लौंग खुँसा रहता है, किसके होठोंपर लिपस्टिक फबता है, किसे कौन-सा रंग अधिक खिलता है, कौन साड़ीके भीतर कैसा पेटीकोट पहने थी, ब्लाउज़के अन्दर कौन-सी चोली पहने थी····सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातें तक वह शकुनको चिढ़ानेके उद्देश्यसे खोल-खोलकर बतलाता रहता है। मगर शकुन बाहरसे चिढ़नेका अभिनय भले ही करे, भीतर कहीं यह सब उसे अच्छा लगता है। शायद इसलिए, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुराव-अलगावके, भूले-भटके नज़र आ जाने-वाले आसार दूर हो जाते हैं तब-तब; श्रीनाथ-पर अपने स्वत्वका अहसास होता रहता है; और उसकी यह आश्वस्ति दृढ़से दृढ़तर हो-हो जाती है, कि कोई ख़याल या अनुभव गहरे पैठ जाये, और वह बिना शकुनको बताये उसे अकेला ही ढो ले जाये, यह श्रीनाथके लिए नामुमकिन है····

यह श्रीनाथके लिए मुमकिन है ! आज सब कुछ मुमकिन हो चला है । जड़ें कट चुकी हैं, तब भी शाख़-पत्तियाँ मुरझा नहीं रहीं । जीवन-रसका सोता सूख चुका है, तब भी श्रीनाथका मसख़रापन ज़िन्दा है ।

■

"अब छोड़ो भी, भई ! चमड़ीपर कुछ तो रहम करो अब । या बाथरूममें ही बस जानेका ख़याल है ! अच्छी छुट्टी हुई यह, बोर करनेको···"

"एक दिन तो बड़ी मुश्किलसे मिल पाता है, ज़रा तसल्लीसे स्नान करके लोगोंको वशीकृत करनेका, और तुम उसमें भी···" श्रीनाथ बाथरूमसे निकल आया था । शकुन बरामदेमें खम्भेसे लगकर खड़ी अख़बार देख रही थी । बोली, "कर लिया वशीकृत ! इस बुढ़ापेमें भी वशीकृत करनेके ही ख्वाब आ रहे हैं !"

"बुढ़ापा ? कैसी रसहीन बात करती हो जी तुम !" श्रीनाथने अँगोछेसे सिर रगड़ना रोककर कहा । और फिरसे अँगोछा चलाता हुआ बोला, "ज़रा तबीयतसे नहा-धो, पहन-पुहनकर निकल जाऊँ कभी, तो न ज़रूरत पड़ जाये तुम्हारी म्युनिसिपल्टीको पीछे दो ठो एम्बुलैंस भेजनेकी, तब कहना ! मज़ समझ लिया है !" और फिसफिसाकर गया था ।

"अच्छा, अब ज़रा जल्दी करो । खा फिरसे ठण्डा पड़ जायेगा ।"

"अरे वाह ! आज तो तुमने पूरा त्योह मना दिया है !" खानेको बैठते वक़्त श्रीना के मुँहसे अनायास निकल पड़ा था । फिर खाते-खाते एक बेहूदी हूक, कि बस, 'त्योहार' भी श्रीनाथको इतना ही नसी होना होगा····! और फिर जाने वह खो गया ।

"आप एकाएक सीरियस क्यों हो गये

शकुनके प्रश्नने श्रीनाथको चौंका दि "अरे ओ····मैं सोच रहा था····" जैसे ओरसे घेरा पड़ गया हो सहसा । अख़बार फ़िल्मोंवाला पृष्ठ खुला पड़ा था सामने । दिया, "सोच रहा था, कि आज छुट्टी है, इंज्वॉय कैसे किया जाये । अगर शाम पिक्चर देखने चला जाये, तो कैसा रहे ?"

पिक्चर और शकुन ! महीने-भ बीमार हो वह, पिक्चरके नामपर फ़ौरन कर खड़ी हो जाये ।

सहसा घिर जानेके कारण मनमें दहलाहट हो आयी थी, वह अभी बनी इसलिए उसे बिसार देनेकी ग़रजसे कथनमें एक जोड़ लगा दिया, "और तुम घरमें ही आराम करो, तो चोखा। भी पिक्चर-विक्चर देखनेकी उम्र तुम्हारी····"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों नहीं ! पिक्चर देखनेकी हमारी उम्र नहीं रही, और तुम्हारी है । ज़रूर ! तुम्हारे तो अभी दूधके दाँत भी नहीं गिरे हैं !"

"अब, तुम समझोगी नहीं····"जैसे कोई बड़ा भारी भेद छिपा रहा होगा वह ।

"मैं सब समझ गयी हूँ । सफ़ाई देनेकी ज़रूरत नहीं है । मगर मेरा कहना मानो, अपने बारेमें अब किसी क़िस्मकी ग़लतफ़हमी मत पालो । नाउ यू आर टू ओल्ड टु इंज्वॉय दैट टाइप ऑफ़ कम्पनी····" कहकर शकुनने प्रतिक्रिया जाननेके लिए उसकी ओर देखा और ठठाकर हँस पड़ी ।

जिस प्रयोजनसे श्रीनाथने मज़ाक़ शुरू किया था, वह सध गया । शकुन भूल गयी थी, कि श्रीनाथ अभी-अभी सीरियस भी हो उठा था । वरना वह शकुन ! अबकी गम्भीरताकी बात उसे सुबह जगते वक़्तकी श्रीनाथकी सुस्तीका तुरत ध्यान दिला देती ।

"

कर्नाटक साहबकी भेजी नर्स आकर, शकुनको इंजेक्शन देकर चली गयी थी ।

मगर अभी सिर्फ़ एक बजा था, दोपहरका । और श्रीनाथ थकने लग गया था । जब कि उसे अभी पूरे नौ-दस घण्टे इसी तरह और गुज़ारने हैं ! नौ-दस घण्टोंका ख़याल कुछ इस तरह आया जैसे वह नौ-दस वर्षोंकी बात सोच रहा हो ।····स्कूल-कॉलेजके दिनों नाटक खेला करते थे वे लोग । एक पन्द्रह-बीस मिनिटके अभिनयमें ही कितने थक जाते थे ! कि स्टेजसे लौटकर किसी कुरसीपर, बेंच-तख़्तेपर, ज़मीनपर बिछी दरी वग़ैरहपर ही सही, ढह जाते थे चित । और देर तक सुन्न । आँखें उघारनेकी ताक़त भी निचुड़ गयी हो जैसे ।····मगर तब अभिनय अपना सफल रहा तो एक उछाह तो रहता था मनमें । एक गहरा सन्तोष तो होता था । जब कि आप-अपने अभिनयकी सफलताका अहसास अपनेको ही लांछन भेजने लगता है । शकुनका उसकी उन मसख़रापन-भरी बातोंपर कुहक-कर, ठठाकर हँस पड़ना कहीं कचोट उठता है मनमें—अबोध शकुन ! भोली शकुन ! और उस शकुनको श्रीनाथ छल रहा है, विश्वास-घात कर रहा है उसके साथ ।

"आप फिरसे ग़लत चल गये !"

"ओ, सॉरी !" झटकके साथ श्रीनाथने अपना बिखरा जा रहा ध्यान चेसपर समेट लिया ।····साला यह भटकाव मरवायेगा आज ! "पता नहीं, ये सारेके सारे कबाड़ी गाने आज ही के लिए रख छोड़े थे इन रेडियोवालोंने !'····

शकुनको एक ही बाज़ीमें थकान हो आयी थी । लेट गयी ।

'ज़रा देर अपन भी सो लें । अभी तो काफ़ी वक़्त है ।' श्रीनाथ कहनेको था, लेकिन उसे याद आ गया, कि वह तो कभी भी दिनमें नहीं सोता । आज सोनेके मानी····! 'आप सुबह भी सुस्त लग रहे थे, खानेके वक़्त भी गम्भीर हो चले थे, चेसमें भी आप खोये-खोये-से थे, और जूनके महीने भी दोपहरमें नहीं सोनेवाले आप, आज दिनमें सोना भी चाह रहे हैं····बताइए न, आज आप इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदले-बदले क्यों हैं। क्या परेशानी है आखिर ? बताइए।' शकुनने यदि पूछ डाला तो खाक बतला सकेगा फिर श्रीनाथ ! और जहाँ ज़रा भी बहलाने-टालनेकी कोशिश की उसने, फ़ौरन शकुनकी आँखोंमें आँसू ! 'ठीक है ! आप भी कटिए हमसे ! माँ-बाप, भाई-बहन सब तो कट लिये। हम सबके पराये....' और बीचमें आ लगी अलगावके बोधकी एक दीवार, जिसे लाख चाहनेपर भी श्रीनाथ फिर नहीं हटा सकता। और ताबे ज़िन्दगी अलगावके बोधकी उस दीवारको ढो ले चलना श्रीनाथके बिरतेके बाहरकी बात है, शकुनके भी ! अलगावके इस बोधको ढो सकनेकी इसी असमर्थताने उन्हें जातीय दूरियोंके बावजूद एक हो रहनेको मजबूर किया था।

....रात हो गयी है। मतलब, पिक्चर छूट चुकी है, भोजन कर लिया है, बिस्तरे बिछ गये हैं और श्रीनाथ चित लेट गया है। माथेकी नस तड़क रही है, सिर बुरी तरह भन्ना रहा है। सारे बदनमें, रग-रगमें टूटन बसी हुई है।....क्यों ? श्रीनाथने आज कौन-सी भागम-भाग की ? कौन-सा भारी अध्ययन-कार्य किया ? दिन-भर तो हँसता-छेड़ता रहा शकुनको। रेडियो सुनता, चेस खेलता रहा। और इस वक़्त पिक्चर देखकर लौटा है। आज तो थकनेका कोई सवाल ही नहीं उठता।

खैर....रात हो गयी है, इसपर भी कोई सवाल नहीं उठ सकता। और यह पूरीकी पूरी रात श्रीनाथकी अपनी है, इस बातमें भी कोई सवाल नहीं उठ सकता। बत्ती बुझाकर शकुन सो जायेगी अब। और उसे नींद आयी नहीं, कि श्रीनाथका यह घण्टों लम्बा कठिन अभिनय समाप्त हुआ। मुक्त....पूर्ण मुक्त। फिर कोई खटका नहीं, शकुनका कोई भय नहीं। और फिर चाहे जितनी देर तक वह कलपता रहे, तड़पता रहे, किसी दीवारके उठ आनेका भय नहीं।....दिन पराया तो क्या हुआ, रात इस शाहजहाँकी अपनी है।

"आज तो आप ऊँघने भी लगे, इधर जल्दी !" खिड़की-दरवाज़े बन्द कर आ पहुँची है शकुन।

"नहीं...हाँ..." श्रीनाथने अँगड़ाई ली है, "बस यों ही..." थकान होनेका बहाना नहीं कर सकता वह।

"कोई 'स्तर' की बात सूझ रही होगी क्यों ? पिक्चर देखकर जो लौटे हैं।"

"नहीं। कोई खास नहीं।" श्रीनाथ शरारतमें आ चला है अब, "बस ज़रा-सा। खैर, तुम सो जाओ। डोण्ट बी डिस्टर्ब्ड !"

शकुनने उसे 'नटखट !' के भावसे छू लिया है और बत्ती बुझा दी है।

अरे ! शकुन आज पासमें ही लेट गयी है।

....ओफ़्फ़ो ! धकसे रह गया है श्रीनाथ। सच, कितना बुद्धू हो चला है आजकल वह। आज तो पिक्चर देखकर आये हैं वे लोग।

एक डूबती हुई दीवार वापस....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कौन ? मन्थरा ? आओ बहन बैठो !

"हृदय हाहाकार कर रहा है। ऐसेमें अपना कोई मिल जाये तो दुःख-सुखकी दो बातें कहकर जी हलका कर लेती हूँ। अन्यथा यह उपेक्षित एकाकी हृदय दुःखका पहाड़ ढोते-ढोते थककर चूर हो चुका है, जीवनके प्रति घोर निराशा और विरक्तिसे भर चुका है। अब तो 'बुलावे' की प्रतीक्षा ही जीवनका दूसरा नाम है।

"तुम तो बचपनसे ही मेरी प्रिय सखी हो, इसी कारण तुम्हें कैकय देश छोड़कर, अपने-परायोंसे मुख मोड़कर, मेरे साथ साकेत आना पड़ा। यहाँ आकर भी तुम्हें क्या सुख मिला ? मेरी स्नेहभाजन होनेके कारण राजकुलके सभी सदस्योंकी ईर्ष्या और कोप-दृष्टिका शिकार होना पड़ा। मेरी विश्वासपात्री होनेके कारण ही तुम्हें अपयश, अपमान और लोकापवादका वह कालकूट पीना पड़ा जिसे महादेवके सिवा अन्य कोई भी ओठोंसे न लगा सका। जिस लोकापवादके एक हलके-से झोंकेसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक लड़खड़ा गये, वही, जनहितके नामपर, कुटिल राजनीतिज्ञोंने तुम्हें और मुझे झेलनेपर बाध्य किया। और अब देखती हूँ कि अपने 'बलिदान' से भी इस जनपदका अकल्याण ही हुआ।

"पिताजीने कितने उत्साह और चावसे मुझे योग्य शिक्षकोंसे शस्त्र-शास्त्रकी शिक्षा दिलवायी। कितनी आशाएँ थीं उनको मुझसे। वे अकसर कहा करते थे, मैं नागोंकी 'पुत्रिका'-परम्पराका अनुसरण करूँगा। बेटे नहीं हुए तो क्या, मेरा वंश मेरी बेटी ही चलायेगी ! परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है। उनके सारे सपने सपने ही रहे। यहाँसे विवाह-प्रस्ताव आनेपर अपनी पुत्रीको पुराण-प्रसिद्ध जगविख्यात रघुवंशकी राजमहिषी बनते देखनेका लोभ संवरण न कर सके।

पुरुष चाहे पिता हो, पति हो, या पुत्र हो पहले पुरुष ही है। वह नारीके प्रति न्याय कब कर पाया है ? इसलिए विवाह-प्रस्ताव स्वीकार करते समय पिताजीने जो भूल की उसके लिए

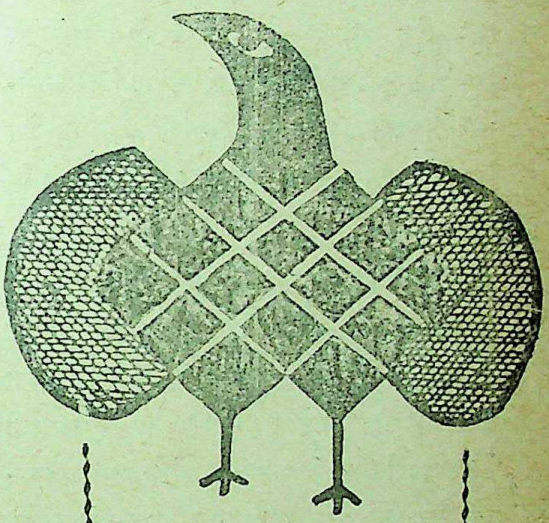

कैकेयी का आत्म-निवेदन

अविनाश सरमण्डल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकेले उन्हें ही नहीं, समस्त पुरुष-जातिके दूषित दृष्टिकोणको दोष दिया जाना चाहिए। इस विवाहके समय स्वर्गीय महाराज जीवनके पंचम दशकमें प्रवेश कर चुके थे, दो विवाह कर चुके थे और दोनों पत्नियाँ जीवित थीं। आज इस दुःखमें भी मेरे साथ ही हैं। तब केवल सन्तान-प्राप्तिके लिए क्या उनका यह तीसरा विवाह उचित था? पिताजीकी आँखों में तो कैकय-साकेतके राजकुलोंका सम्मिलन, कैकेयीका राजमहिषी पद और दौहित्रके रघु-कुलके सिंहासनपर आसीन होनेके स्वर्णिम स्वप्न तैर रहे थे। इस प्रकार अनायास ही रघुवंशके कुशल-क्षेमका भार मेरे दुर्बल कन्धों-पर आ पड़ा। और ईश्वर साक्षी है, मैंने पूर्ण निष्ठासे अपने इस दायित्वका यथाशक्ति निर्वाह किया।

"यहाँ आनेपर कौशल्या और सुमित्रा बहन-से जो मुझे सहज निश्छल स्नेह प्राप्त हुआ वह बिरली भाग्यवान् स्त्रियोंको ही उपलब्ध होता है। कौशल्या बहन स्वभावसे ही भाग्यवादी एवं आदर्शवादी हैं। उन्हें मुझसे किसी प्रकार-का राग-द्वेष न था, इसके अलावा पतिको प्रत्येक प्रयत्न-द्वारा प्रसन्न रखनेके आदर्शकी वे अनन्य उपासिका हैं। जहाँतक सुमित्रा बहनका प्रश्न है, उनकी स्थिति कुछ भिन्न है। कर्तव्यनिष्ठा, कठोर आत्मोत्सर्ग तथा सेवा-परायणता उनकी प्रकृतिकी कुछ ऐसी विशेष-ताएँ हैं जिनके कारण राजकुलमें अपने अधि-कारों एवं अस्तित्वके सम्बन्धमें उनका दृष्टि-कोण सदासे विरक्तिपूर्ण एवं निष्क्रिय रहा है। अतः मुझे उनसे सहज स्नेह एवं सौजन्य तो मिला परन्तु मेरे प्रति भी वे अधिकांशतः उदासीन ही रही हैं। इस उदासीनताके लिए मैं उन्हें दोष नहीं दे सकती। क्योंकि अपने आपके प्रति भी उनकी उदासीनता उतनी ही, बल्कि कुछ अधिक मात्रामें, रही है। उनकी इस उदासीन प्रवृत्तिके कारण उनसे 'पुत्रेष्टि यज्ञ' के अनुष्ठानकी दीक्षा ग्रहण करनेकी सहम-मति प्राप्त करनेमें मुझे बहुत यत्न करना पड़ा था।

"कहनेका तात्पर्य यह कि यहाँ आकर मुझे सपत्नियोंके ईर्ष्या-द्वेषका शिकार नहीं होना पड़ा। बल्कि उनसे स्नेह ही मिला। यद्यपि इसमें उन दोनोंके स्नेह, सौजन्य एवं उदार हृदयकी महत्ता भी है तथापि हमारे बीच स्नेह-सूत्र दृढ़ होनेका सबसे बड़ा कारण यह था कि हम तीनों सुख-सुहागमें प्रतिद्वन्द्वी नहीं बल्कि एक पीड़ापूर्ण-पन्थकी सहया-त्रिनियाँ थीं।

"मेरे प्रति महाराजकी अनुरक्ति बहुत समय तक यहाँ चर्चाका विषय बनी रही है। उसे लेकर महाराजपर लम्पटताका आरोप लगाया जाता है। परन्तु अधिकांश लोग इस विषयमें अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्योंको या तो भुला दिया या उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की है। यद्यपि इस अनुरागकी तहमें किसी सीमा तक ढलती आयुकी विषयासक्ति भी थी, इस सत्यसे मैं इनकार तो नहीं करती, परन्तु फिर भी, कुल मिलाकर, इसमें आसक्तिकी अपेक्षा गुणग्राहिताकी मात्रा ही अधिक थी। कौशल्या बहनकी धर्मपरायणता और सुमित्रा बहनकी सेवा-परायणताने महाराजको प्रभावित अवश्य किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वे उन्हें जीत न सकीं। आर्योंका पत्नीत्व-का आदर्श बहुत ऊँचा है। एक पत्नीको स्नेह-में सखा सदृश, सेवामें दासी सदृश, परामर्श-में मन्त्री सदृश और सेजपर अप्सराके सदृश होना चाहिए। 'पराई बेटी' से इतनी ऊँची आशाएँ रखनेवाले आर्योंमें ऐसे कितने पिता हैं जो अपनी पुत्रियोंके शारीरिक एवं मानसिक विकासका समुचित ध्यान रख पाते हैं? तात्पर्य यह कि शारीरिक सौष्ठवमें श्रेष्ठ एवं अनेक दुर्लभ गुणोंसे विभूषित होनेपर भी कौशल्या और सुमित्रा बहनके व्यक्तित्वमें अनेक न्यूनताएँ थीं, जिनके लिए पुत्रीकी उपेक्षा करनेवाला हमारा सम्पूर्ण समाज ही उत्तरदायी है। मुझमें उन्होंने स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यके साथ-साथ साहस, सूझ-बूझ और शास्त्र-ज्ञान भी पाया। इसीलिए मुझपर उनका असीम विश्वास और अनुराग रहा। एक बार बहुत अनुनय-विनय कर मैं युद्धक्षेत्रमें भी गयी। वहाँ मेरे असामान्य साहस, शस्त्र-ज्ञान एवं रणकौशल-पर वे मुग्ध हो गये। फिर कई युद्धोंमें मैं उनके साथ रही। युद्ध-क्षेत्रमें एक अवसरपर मेरी प्रत्युत्पन्न मतिसे महाराजकी प्राण-रक्षा हुई। तबसे तो मुझपर उनका विश्वास इतना बढ़ गया कि मैं उनके व्यक्तित्वका एक अविभाज्य अंग बन गयी। महाराजकी मुझपर कृपा दृष्टि देखकर राजकुलके मन्त्रियोंको, यहाँतक कि राजगुरु वशिष्ठ तकको, ईर्ष्या होने लगी। और उन्होंने मेरे विरुद्ध ऐसा भयंकर षड्यन्त्र रचा कि कैकेयी, रघुवंशके इतिहासका स्वर्णिम पृष्ठ न बनकर एक काला धब्बा बनकर रह गयी!

हो। ली। के। कु। म। कु। मे

ज़हन-ए-चीन

'टाइफ़ाइड से एक बैल मर गया
हर आदमी पागलख़ाने में बन्द है
चील के बच्चे पैदल जा रहे हैं
अरब सागर के किनारे चीन है
पाकिस्तान की औरत दुनिया की माँ है'
आधी रात गये मुझे उठे भाव—
अचानक शंका हुई
मैं माओ-त्से-तुंग तो नहीं हूँ?

अब की कथा

पुजारी ने सत-नराइन की कथा में पढ़ा—
'राम था रावण से बरसों बड़ा
उर्वशी का चित्र कौआ ले उड़ा
अरस्तू वन में मिला था पड़ा
कौरवों के सामने क्लाइव खड़ा
रूस में धन राह में मिलता गड़ा
कृष्ण ने हनुमान् को चाँटा जड़ा'
अन्त में झल्ला के फिर वह चीख़ उट्ठा,
'ओ भले यजमान, अब तो चार पैसे चढ़ा!'

—विमल दूबे

"विवाहके कुछ ही वर्ष बाद यह स्पष्ट हो गया कि राजवंशके उत्तराधिकारीकी आशा मुझसे भी करना व्यर्थ था। बात कुछ कटु तो है परन्तु दूसरे शब्दोंमें यह तथ्य सामने आ चुका था कि कौशल्या और सुमित्रा बहनकी तरह महाराजने मेरे मातृत्वको भी निराश ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। अपनी कुख्यात स्पष्टवादिताके अनुसार मैंने महाराजका ध्यान जब इस तथ्यकी ओर आकर्षित किया तो मन्त्रियों एवं राजगुरुके परामर्शसे उन्होंने 'पुत्रेष्टि यज्ञ' करनेका निश्चय किया। (अब तुम्हें मैं कैसे बताऊँ कि मनु महाराजने अपनी 'स्मृति' में जिस नियोग-प्रथाकी तीव्र भर्त्सना की है, जिसे उन्होंने 'वेन-प्रणीत कुव्यवस्था' कहा है, वही नियोग-प्रथा अनुष्ठानोंके आडम्बरयुक्त आवरणमें 'पुत्रेष्टि यज्ञ' के नामसे आर्योंमें सम्माननीय व्यवस्था मानी गयी है। इस यज्ञमें नियोगके लिए प्रयुक्त व्यक्तिको 'अश्व' कहा जाता था और जिसकी, गोपनीयताकी रक्षाके लिए, हत्या कर दी जाती थी। अतः इसे कहीं-कहीं 'अश्व-मेध यज्ञ' भी कहा जाता था। परन्तु आगे चलकर 'अश्व-मेध यज्ञ' राजसूय यज्ञका पर्यायवाची बन गया।) उस समय सपत्नियोंको उनका अधिकार (मातृत्व-सुख) दिलानेके लिए मुझे कितना संघर्ष करना पड़ा यह जाननेवाले व्यक्ति ही जब मेरे विरुद्ध यह प्रचार करने लगे कि स्वयं राजमाता बननेके लिए मैंने रामको निष्कासित किया है तो फिर अन्य लोगोंका कहना ही क्या है। सबसे अधिक कठिनाई मुझे सुमित्रा बहनको राज़ी करनेमें आयी जो दीक्षा लेनेपर तो किसी तरह राज़ी हो गयीं परन्तु मुख्य संस्कारके समय इतनी विचलित हो गयीं कि उन्हें उसमें सम्मिलित करना एक बड़ी जटिल समस्या बन गयी। सभी ऋत्विज हार गये तब मुझे ही यह कार्य सौंपा गया। सुमित्रा बहनका इनकार अकारण न था। एक तो वे स्वभावसे ही उदासीन होनेके कारण राजमाता बननेकी इस प्रतिद्वन्द्वितामें सम्मिलित नहीं होना चाहती थीं, दूसरे इस यज्ञके संस्कार उनकी सतीत्व-सम्बन्धी भावनाओंके प्रतिकूल थे। और तीसरे, उनके मनमें उस युवक-अश्वके प्रति दयाभावका उदय हो रहा था जो इस संस्कारके लिए नियुक्त था और संस्कारके बाद जिसकी मृत्यु अपरिहार्य थी। इन कारणोंको दृष्टिगत रखते हुए कठोर शब्दोंमें मुझे कहना पड़ा—वह बेचारी मेरे अनुरोधको टालनेका साहस कहाँसे लाती। परिणामस्वरूप उन्होंने एक साथ दो चन्द्रमाओंको जन्म देकर रघुकुलकी शोभामें चार चाँद लगा दिये।

"पुत्रेष्टि यज्ञके पश्चात्, पुत्र-प्राप्तिसे, परिवार स्नेहके सौम्य सलिलसे परिपूरित रहा। ये बारह-चौदह वर्ष ही वास्तवमें जीवन कहलानेके योग्य हैं; अन्यथा शेष समय सुख-लालसाकी अनन्त मृगतृष्णाके सिवा कुछ भी नहीं। हम तीनोंमें प्रेम, चारों भाईयोंमें अटूट स्नेह-बन्धन, तथा सभी स्वजनोंमें स्नेह-सौख्य था। इस स्वर्गोपम कालखण्डमें महाराजके मुखारविन्दपर सदा एक अलौकिक शान्ति विराजती थी। सुख-शान्तिका वह युग कब निकल गया कुछ पता नहीं, केवल उसके अस्तित्वकी सुखद स्मृति ही शेष रह गयी।

"एक दिन अचानक महाराजके ललाटपर चिन्ताकी रेखाएँ खिंची देखकर मैं चकित रह गयी। अनेक वर्षों तक रघुकुलसे दूर रहनेके उपरान्त उस दिन राजर्षि विश्वामित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आगमन हुआ था। शुनःशेप प्रकरणमें रुष्ट होकर विश्वामित्र रघुकुलके राजगुरु पदका त्याग कर चले गये थे। उनके जानेके बाद वशिष्ठ कुलगुरु हुए और उन्होंने विश्वामित्रके प्रभावको कम करनेके लिए अनेक कथाएँ प्रचलित कीं। विश्वामित्रके तप-तेजको एक निर्विवाद सत्यके रूपमें स्वीकार किया जा चुका था परन्तु वशिष्ठने अपनी कथाओंमें विश्वामित्रको क्रोधी, कामुक और प्रतिहिंसा-प्रिय व्यक्ति चित्रित करके अपने-आपको शान्त, सौम्य एवं क्षमाशील महात्मा सिद्ध करनेका प्रयास किया। विश्वामित्रकी महाराज त्रिशंकुके समयकी कीर्ति-कथाएँ छिपा ली गयीं। महाराज चण्ड (सत्यवादी हरिश्चन्द्र)-द्वारा किये गये कुविचारपूर्ण वरुण-यज्ञ (महाराज चण्डको जलोदर कष्टसे परित्राणके लिए सुझाया गया उपाय) और उसमें निर्दोष असहाय बालक शुनःशेपकी बलिके विरोध-स्वरूप विश्वामित्रके पदत्यागपर परदा डालकर, वशिष्ठने चण्डके स्वप्नमें सर्वस्व-दानकी कल्पित कथा प्रचलित करके रघुवंश और विश्वामित्रके बीच एक स्थायी अवरोध उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार अपने पदको स्थायी रूपसे अपने वंशके लिए सुरक्षित कर लिया था। अब उनके अनायास आ टपकनेसे वशिष्ठ चिन्तित हो उठे।

"राजर्षिकी आसक्ति परित्यक्त पदकी ओर कदापि न थी। राक्षसोंकी बढ़ती हुई शक्तिसे आर्य जातिके लिए उत्पन्न संकटको ध्यानमें रखकर समस्त आर्य नरेशोंका संगठन ही उन्हें अभीष्ट था। रामके शील, धैर्य, औदार्य, विनय आदि दुर्लभ गुणोंमें उन्हें एक चक्रवर्तीके लक्षण दिखाई दे रहे थे, जिसके नेतृत्वमें आर्य जाति राक्षसोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा कर सकती थी। इसी उद्देश्यसे वे, शुद्ध-निष्काम भावसे, रामको धनुर्वेदकी आधुनिकतम शिक्षा देना चाहते थे। महाराज (दशरथ) उनके इस उदार प्रस्तावको अस्वीकार कैसे कर सकते थे? परन्तु वशिष्ठका संकीर्ण, सशंक, पदलोलुप मन सहमति न दे सका। महाराज दुविधाग्रस्त थे। एक ओर औचित्य-विचार तथा विश्वामित्रका कोप-भय, और दूसरी ओर अपना पुत्र-मोह-ग्रसित-मन तथा कुलगुरुके आदेशकी मर्यादाका प्रश्न। अनेक अवसरोंकी तरह इस बार भी, मेरा बल पाकर ही महाराज रामको (साथ ही लक्ष्मणको भी) विश्वामित्रके साथ भेजनेका महत्त्वपूर्ण निर्णय करनेमें समर्थ हुए। तब मैं यह न जानती थी कि यह छोटी-सी घटना राम-लक्ष्मणका सम्पूर्ण जीवन-पथ कण्टकाकीर्ण बना देगी।

"इतने समय राम-लक्ष्मणका कौशिकसे, यज्ञ-रक्षाके नामपर, शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करना और फिर पूर्वानुमतिके बिना राजा जनक-द्वारा आयोजित सीता-स्वयंवरमें भाग लेना आदि घटनाएँ ऐसी थीं जिनसे वशिष्ठकी अहंमन्यताको चोट पहुँची। जिस दिन सीता राजवधूके रूपमें साकेत आयी उसी दिनसे वशिष्ठने सोच लिया था कि राम उनके प्रतिद्वन्द्वियों (जनक और कौशिक) के प्रभाव-क्षेत्रमें आ चुके थे। अतः रामका सिंहासनारूढ़ होना उनके हितमें ठीक नहीं था। उसी दिनसे वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामको राज्यच्युत करनेका षड्यन्त्र रचते रहे। अन्तमें अपने इस उद्देश्यकी पूर्तिका साधन उन्होंने मुझे बनाया।

"जिस तरह हमारे विरोधियोंका यह प्रचार निराधार है कि मन्थराके पट्टी पढ़ानेसे मैंने रामको निर्वासित करनेका निश्चय किया उसी प्रकार यदि मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहूँ कि वशिष्ठने बहकाकर मुझसे यह कार्य करवा लिया तो यह भी उचित न होगा। वास्तविकता यह है कि मेरी देश-भक्तिकी भावनाको उभारकर मुझसे एक ऐसा बलिदान करवाया गया जो अन्ततः राष्ट्रहितमें अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ।

"रामके राज्याभिषेककी घोषणा की जा चुकी थी। यह कार्य मेरी पूर्ण सहमतिसे हुआ था, असहमतिका कोई कारण भी न था। तब राजगुरु वशिष्ठने गुप्त मन्त्रणाके लिए मुझे बुलवाया। एक लम्बी चौड़ी भूमिकाके बाद उन्होंने जो कुछ कहा उसका आशय यह था कि स्वयंवरमें रामने सीताको जीत लिया यह तो हमारे लिए गर्वकी बात है, परन्तु इस घटनासे स्वयंवरमें आमन्त्रित अनेक राजाओंका अपमान हुआ था! राजगुरुको विश्वस्त गुप्तचरोंसे सूचना मिली थी कि उनमें-से अनेक राजा सम्मिलित रूपसे साकेतपर आक्रमणकी योजना बना रहे थे। (बादमें ज्ञात हुआ कि उपरोक्त सूचनाकी बात असत्य एवं निराधार थी और उसका प्रयोग केवल एक कूटनीतिक शस्त्रके रूपमें किया गया था।) उन सबका सम्भावित सम्मिलित आक्रमण जनपदको नष्ट कर सकता था। यदि

परिशिष्ट-क्रमणिका :

टूटी साइकिल और बनारसी साड़ी

सर्वप्रथम कथा-संग्रह 'मुर्दोंका गाँव' (१९४६) किताब महलसे। वही सर्व-प्रथम प्रकाशन है मेरा। बंगालके अकाल-पर लिखी कथाएँ। दूसरा संस्करण कभी नहीं हुआ। मूल्य लगभग १) था, ठीकसे याद नहीं। पूरे संस्करणकी समूची रायल्टी लगभग ७२) मिली थी। बादमें मोटीसे मोटी रायल्टीकी रक़म पाकर वह ख़ुशी नहीं हुई जो उन ७२) रुपयोंसे हुई थी। उनसे एक टूटी साइकिल ख़रीदी थी। कहानियोंका दूसरा संग्रह श्री वाचस्पति पाठककी सिफ़ारिशसे बनारसके एक सज्जनने छापा था। नाम 'स्वर्ग और पृथ्वी'। दाम याद नहीं। बराबर तक़ादा करनेपर भी पूरी रायल्टी कभी नहीं मिली। प्रकाशक महोदय बनारसी रेशमके बड़े व्यापारी थे। एक बार पता लगा तो बनारस उनकी आढ़तपर पहुँचा। उन्होंने दुःखी होकर बताया कि उन्हें बड़ा घाटा लग गया है। रायल्टी तो नहीं दे सकते, हाँ, मैं चाहूँ तो बनारसी साड़ी ले जा सकता हूँ। सारा घर खादी पहनता था अतः उस उपलब्धिसे भी वंचित रहना पड़ा। ज़ाहिर है कि दूसरे संस्करणकी नौबत नहीं आयी।....

—धर्मवीर भारतीकी एक टिप्पणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण पराजय न भी हो तो भी जन-धनकी अपार क्षति होनेकी आशंका थी। राज्यको इस विपत्तिसे बचानेका एकमात्र उपाय था—रामका निर्वासन। क्योंकि राजाओंका अपमान हुआ था।

मन्तव्य यह हुआ कि निर्वासनके वास्तविक उद्देश्यको किसीपर भी प्रकट न होने दिया जाये। क्योंकि वह सबको ज्ञात हो जानेपर राज्यकी दुर्बलता प्रकट होती। परिणामस्वरूप जनतामें असुरक्षाकी भावना फैलनेकी आशंका थी। इतनेपर भी मैंने वास्तविक कारण राम और महाराजको स्पष्ट समझा दिया था। राम तो अपनी परोपकारी प्रवृत्तिके कारण राज्य-मोहसे सहज ही मुक्त हो गया परन्तु महाराज पुत्रमोहका त्याग न कर सके। उन्हें अपने बाहुबल एवं सैन्यबलपर बहुत विश्वास था। रामकी रक्षाके लिए वे बड़ेसे बड़े संकटका सामना करनेको तैयार थे। बाह्य आक्रमणके भयसे अपना निर्णय बदलना उन्हें पसन्द न था। परन्तु परिस्थितियोंका जो भयावह चित्र मेरे सामने अंकित किया गया था उसके आधारपर मैं 'भावुकतावश' निरीह प्रजाके जीवन एवं समस्त आर्यजातिकी एकताको संकटमें पड़ने देना नहीं चाहती थी। एक ओर राजहठ और दूसरी ओर स्त्रीहठ था। दोनों ओरसे तर्क-वितर्क एवं आरोप-प्रत्यारोप होने लगे। रात बीत गयी। राजतिलकके लिए निर्धारित दिनका सूर्योदय हुआ तबतक महाराजका निर्णय रामके ही पक्षमें था। वे मन्त्रणागृहसे बाहर जानेको उद्यत हुए। तभी मुझे कुछ याद आया और मैंने अपने अन्तिम अस्त्रका अत्यन्त अनिच्छापूर्वक प्रयोग किया।

"अपनी इस कूटनीतिक विजयके आनन्दसे मैं तुरन्त ही वंचित हो गयी। त्याग और महानताका सेहरा रामके सिर बँधा और उसी दिनसे कैकेयी कलंकके अन्धकूपकी अथाह गहराइयोंमें डूब गयी। व्यक्ति बलिदान करते समय समस्त असह्य पीड़ाएँ सहज ही सह लेता है क्योंकि लोकमें उसके इस त्याग-बलिदानको सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। सामाजिक सहानुभूति एवं सम्मान एक बहुत बड़ा मरहम है परन्तु किसी बलिदानको यदि समाज दुष्टता, स्वार्थपरता, पाखण्ड और राष्ट्र-द्रोह मानता हो तो उस बलिदानीकी पीड़ा कितनी असह्य होती है, यह कोई मुझसे पूछे। उस समय मैंने अपने-आपको इतना एकाकी इतना असहाय, इतना व्यथित पाया कि मृत्यु मुझे उस व्यथासे छुटकारा दिला सकेगी—इतना भी विश्वास न रहा। ऐसा लगता था कि मेरी व्यथित आत्मा मरणोपरान्त भी इस दुसह दुःखका बोझ उठाये-उठाये युग-युग इसी संसारमें भटकती रहेगी। उस समय केवल तेरी सहानुभूतिका ही सम्बल था। और आज भी तू ही मुझे समझ सकती है। इसीलिए आज फिर तेरे ही सामने अपना दुखड़ा रोने बैठी हूँ।

"महाराज न रहे, राम न रहा और भरत भी राजा न हुआ। राजसत्ता प्रतिक्रियावादी कूटनीतिज्ञोंके हाथकी कठपुतली बन गयी। वशिष्ठपर विश्वास करनेकी अपनी भयंकर भूलका आभास मुझे तब हुआ जब सीता-हरणके परिणामस्वरूप राम-लक्ष्मणने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंकाकी ओर प्रस्थान किया और यहाँसे उन्हें सैन्य शस्त्रास्त्रकी कोई सहायता न दी गयी। क्या राम कोई सामान्य निर्वासित नागरिक था? क्या पुत्रवधूके अपहरणसे रघुवंशका अपमान नहीं हुआ था? जिस आर्यजातिकी एकताको सर्वोपरि मानकर समस्त साकेतकी सुख-शान्तिकी होली जलवायी गयी थी, उसी आर्यजातिके हितके लिए राक्षसोंके विरुद्ध युद्धमें रामकी सहायता करना क्या आवश्यक नहीं था? जिन राजपुत्रोंने राष्ट्रहितके लिए समस्त राजसुखों एवं मरणासन्न पिताकी ओरसे मुख मोड़कर अपने जीवनको अनेक आपदाओंमें झोंक दिया था उनके प्रति क्या राजा (भरत) या राजगुरुका कोई कर्तव्य नहीं था? ये सब प्रश्न इस एकाकी मनमें घुमड़-घुमड़कर व्यथित करते रहे। परन्तु राज्य-विरत राजा भरत तो कुटिल राजगुरुकी आँखोंसे ही तथ्य देखनेका आदी हो चुका था। मैं तो केवल एक 'जीवित प्रेत' थी जिसकी छायासे भी सब कतराते थे।

"वास्तवमें राम-लक्ष्मण और सीताके प्रति राजगुरुका मन असीम आक्रोश एवं वितृष्णासे भरा हुआ था। जिसका कारण व्यक्तिगत द्वेषके अतिरिक्त कुछ नहीं था। विश्वामित्रके शिष्यों तथा विदेहराजकी दुहिताके प्रति उनके मनमें कोई स्नेह-सहानुभूति न थी। उनकी अनुमतिके बिना, कौशिककी प्रेरणासे किये गये इस सम्बन्धके प्रति उनका मन अनन्त तिक्ततासे भरा हुआ था। राक्षसोंके विरुद्ध राम-लक्ष्मणको सहायता देनेके मार्गमें राजगुरु ही सबसे बड़ी बाधा बने। मैं भलीभाँति जान चुकी थी कि इस राजकुल का भविष्य सुरक्षित नहीं था। परन्तु मेरे जाननेन-जाननेसे होता ही क्या है? काश मैं कौशल्या-सुमित्राके समान राजनीतिसे अनभि होती और अपने-आपको इन निरर्थक दुश्चि न्ताओंसे मुक्त रख पाती।

"शस्त्रास्त्र-विहीन, प्रशिक्षण-विहीन असभ्य वानरोंकी सहायतासे रामके अद्भुत शौर्यने जब विश्वकी सबसे बड़ी आर्य-विरोधी शक्तिका अन्त कर दिया तो साकेतमें उनका स्वागत करनेवाले 'साक्षात पाखण्ड' को देख कर मेरा मन असीम वितृष्णासे भर उठा था। रामका राजतिलक अपरिहार्य था। उनकी सत्ताको स्वीकार करना अनिवार्य था। परन्तु रामकी सुख-शान्तिमें ज़हर घोलनेके गुप्त षड्यन्त्र चलते ही रहे। राजगुरुके प्रश्रय पाकर ही धोबी राजमहिषीपर आरोप लगानेका दुस्साहस कर सका। इस प्रसंगको लेकर राजगुरु और उनके अनुयायी मन्त्रियोंने रामको इतना अधिक क्लेश दिया कि गौतम पत्नीके जग-जाहिर कलंकका परिमार्जन कर सकनेमें समर्थ राम अपनी निर्दोष, पतिव्रता गर्भवती पत्नीका अकारण परित्याग करनेमें विवश हो गया। सीताके निर्वासनपर ही बात समाप्त नहीं हुई, राजवंशकी रक्षाके नामपर फिर 'अश्वमेध' की दीक्षा लेनेपर रामको विवश किया गया। सीताको कोई सूचना नहीं मिली थी। उसकी सन्तानके बारेमें भी कोई सूचना न थी। अतः रामने, यह मानकर कि सीता तथा उसकी सन्तान जीवित हैं पुनर्विवाहके प्रस्तावको दृढ़तासे ठुकरा दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजमहलोंके रहस्य दुरूह होते हैं। जनसाधारण भला क्या जाने कि अश्वमेधका अश्व केवल राज्य-विस्तार ही नहीं बल्कि सीताकी खोजके उद्देश्यसे भी छोड़ा गया था। उसका उद्देश्य सीता और लव-कुशके अस्तित्वको प्रकाशमें लाकर इस अश्वमेधकी वैधताको चुनौती देना था। इस अवसरपर महर्षि वाल्मीकिके सत्प्रयत्नोंसे ही सीता अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकी, परन्तु उसका दुःख जर्जर-हृदय प्रियतमके पुनर्मिलनका आनन्दातिरेक न सह सका और वह वहीं सदा-सर्वदाके लिए धरतीमाताकी गोदमें सो गयी।

"राजगुरुके नेतृत्वमें ब्राह्मणोंने समाजमें अपनी सत्ता बढ़ानेके लिए अनेक प्रपंच-पाखण्डोंकी सृष्टि की। ब्राह्मण-पुत्रकी अकाल मृत्युका वितण्डावाद खड़ाकर रामके हाथों एक तपरत शूद्रकी हत्या करवा दी गयी। आश्चर्य है कि रामने जब शबरीके जूठे बेर खाकर वर्णगत श्रेष्ठताका खण्डन किया था तब धर्मकी मर्यादा नहीं टूटी थी। परन्तु एक शूद्रके तप करनेसे (तप अधर्म या असामाजिक कृत्य नहीं) धर्मकी मर्यादा टूटने लगी। ऐसा क्यों? शायद इसलिए कि शबरीके बेर खानेवाला राम केवल एक व्यक्ति था, एक स्वतन्त्र विवेकशील व्यक्ति; परन्तु शूद्रका वध करनेवाला राम एक राजा था जो ब्राह्मणोंकी कुटिल नीतिके नागपाशमें बँधकर अपने ही विचार, विवेक और आदर्शोंके विरुद्ध कार्य करनेको विवश था।

"रामकी विवशता और वशिष्ठकी कुटिलताका कहानीका अन्तिम अध्याय सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है। एक दिन रामके पास एक ब्राह्मण आया और उसने किसी अत्यन्त गोपनीय मन्त्रणाके लिए समय चाहा। लक्ष्मणको प्रहरी बनाकर रामने आदेश दिया कि जो व्यक्ति मन्त्रणागृहमें प्रवेश करेगा उसे प्राणदण्ड दिया जायेगा। इसी समय एक अन्य ब्राह्मण (सम्भवतः वशिष्ठ-द्वारा ही नियुक्त) आकर किसी आवश्यक कार्यसे रामसे उसी समय मिलनेका हठ करने लगा। अन्ततः विवश होकर लक्ष्मणको मन्त्रणागृहमें प्रवेशकर रामको सूचित करना पड़ा। पूर्व-घोषित आदेशके अनुसार लक्ष्मणको प्राणदण्ड तो नहीं दिया गया परन्तु निर्वासित कर दिया गया। जीवन-भर सच्ची लगनसे रामकी सेवा करनेका यही पुरस्कार मिला उसे। इस सार्वजनिक अपमानसे प्रताड़ित एवं भ्रातृ-वियोगके असह्य दुःखको सह सकनेमें असमर्थ लक्ष्मणने सरयूमें कूदकर आत्महत्या कर ली। यह दारुण दुःख राम भी न सह सके और उन्होंने भी सरयूमें जल-समाधि ली। भरत-शत्रुघ्नने भी उनका ही अनुसरण किया। इस प्रकार साकेतका सौभाग्य-सूर्य सदा-सर्वदाके लिए अस्ताचलके अंचलमें खो गया।

"आओ बहन! चलकर कौशल्या और सुमित्रा बहनके शोक-सन्तप्त हृदयको सान्त्वना देनेका उपक्रम करें। सारी गाथा विधिकी विचित्र विडम्बना मात्र प्रतीत होती है। और मैं इसी विडम्बनाके क्रूरतम उपहासका जीवित प्रतीक मात्र बनकर रह गयी हूँ!"

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जबल

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पाक प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश

पता नहीं क्या हो गया है उसे !

शामको जब भी ऑफ़िससे घर लौटता हूँ—मुँडेरपर काठके-से दो लम्बे टुकड़े नीचेकी ओर हवामें झूलते दिखलाई देते हैं। मैं दूरसे ही समझ जाता हूँ, वह बब्बूको गोदीमें उठाये, सड़ककी ओर पीठ किये, बन्दर-की तरह बैठा होगा।····कितनी बार मृण्मयीसे कह चुका हूँ, उसे बच्चोंसे यों न खेलने दो ! पर वह सुने तब न !····

छुट्टेकी न जाने क्या आदत हो गयी है इधर !····बब्बू-को कन्धेपर उठाये सारा दिन आवारा भटकता रहता है। कभी बस-स्टॉपके 'बाई रिक्वेस्ट' के नीचे अकारण घण्टों तक धूपमें खड़ा रहेगा, कभी डिपो या विनय नगर रेलवे-स्टेशन-की भगदड़में निकल जायेगा। कभी किंचित् और आगे झुग्गियोंकी तरफ़ चला जायेगा।

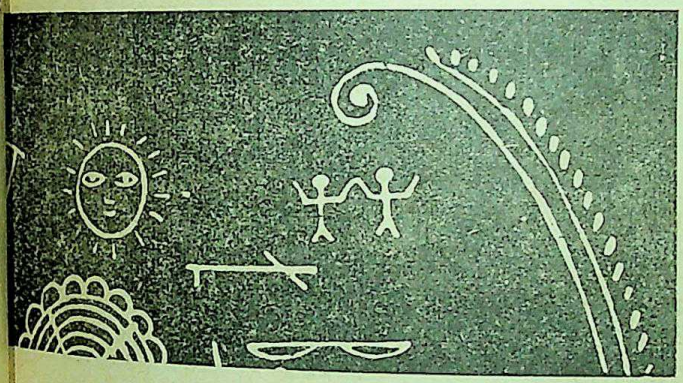

····रातको देर तक न लौटनेपर घरके लोग परेशान होकर सारी बस्ती ढूँढ़ते रहें, उसे चिन्ता नहीं। अन्तमें हो-हल्ला मचाता हुआ, अहिरावणकी तरह बब्बूको कन्धेपर चढ़ाये प्रकट होगा। किन्तु सीढ़ियोंपर मुझे खड़ा देखते ही सहसा सहमकर सिकुड़ जायेगा।····

झुका हुआ

"फल कहाँसे आये ?" बब्बूके हाथोंमें सड़े-गले फलोंके टुकड़े देखकर पूछता हूँ तो वह अजनबीकी भाँति मेरा मुँह ताकने लगता है। फिर अबोध भावसे कहता है—"मण्डी····से।····"

"पईसे····थे ?"

"ना !"

"तो····?"

"माँगकर लाया····।" वह चुप हो जाता है, अ-जाने ही ढेला फेंककर। किन्तु कहीं ब्लेडका-सा टूटा टुकड़ा छीलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ पार हो जाता है। कितनी अजीब बात है! लोग देखते होंगे तो क्या कहते होंगे! भले ही हम अधिक अर्जित नहीं कर पाते! परन्तु इतना तो कमा ही लेते हैं कि रूखा-सूखा खाकर स्वाभिमानसे जी सकें।....

किन्तु कभी अक़्ल आयेगी छुट्टेको! मुझे नहीं सूझता।....व्याह हो जाता तो अब-तक एक-दो बच्चोंका बाप बन गया होता।.... इसकी उमरके लड़के कबके बी० ए०-एम० ए० कर चुके हैं।....अच्छे-अच्छे कम्पटीशनों-में आकर, घर-गिरस्ती बसाकर सुख-चैनसे रहते हैं।....लेकिन, एक यह चीड़के दरख़्तकी तरह....

अनायास तब....मेरी निगाहें उसके सूखे शरीरपर अटक आती हैं—बाल बिखरे, ओठ फटे, जिनसे कभी-कभी लहू टपक आता है। ....पर, वह उधर देखता तक नहीं।....

वही कॉलेजके ज़मानेकी धारीदार पैण्ट, कत्थई-कलरकी नॉइलोनके सफ़ेद बटनोंवाली फटी-सी शर्ट अबतक चली आ रही है। पिछली फ़रवरीसे, बिना फीतेका फटा जूता घसीटता रहता है।....नये कपड़े सिलाये, छुए तक नहीं।....

मृण्मयी अबोध बच्चेकी तरह कभी उसे पुचकारती है। मनाती है, तब कहीं सिर धोने देता है। पिछले चार-पाँच महीनेसे बाल नहीं बनाये। नाई आता है। कंघी-क़ैंचीकी दुकान फैलाता है और खिसियाता हुआ, समेटकर चला जाता है। ज़िन्दगी-भर भी बाल घोंसले-की तरह उलझे रहें, उसे चिन्ता नहीं।....

कभी-कभी मैं सोचता हूँ—उससे बोलूँ। बातें करूँ। पर वह न जाने क्यों मुझसे इतना कतराता है। मैं पढ़ने बैठता हूँ तो वह कमरे-में झाँकता तक नहीं। किनारे-किनारे दोपहर-की छायाकी तरह सिमटा, सहमा-सा आता है और छतपर निकल जाता है।

मेरे प्रतिवेशियोंको, आत्मभावी सुहृद्-स्वजनोंको, सम्बन्धी शुभ-चिन्तकोंको मुझसे अधिक उसका क्लेश है। मुझे हज़ार बार, हज़ार तरहसे कर्त्तव्यका बोध दिलाते रहते हैं—'छुट्टेको राँची या आगरा भेज दो! मेण्टल-हॉस्पिटलमें कुछ दिन रहेगा तो ठीक हो जायेगा।....और....!' मृण्मयी भी कुछ-कुछ ऐसा ही सोचती है, मैं नहीं जानता। किन्तु इतर कहीं भेजनेपर वह अच्छा होगा-मेरा अन्तःकरण नहीं कहता। इतना संकोची, संवेदनशील, भावुक वहाँ एक दिन भी जी सकेगा?....

पर इधर मुझे अहसास होता है, मेरे कांशमें अँकुए-से निकल आये हैं। छुट्टे कुछ-कुछ समझदारोंकी-सी बातें कर लिया करता है कभी। आधी रातको हो-हल्ला मचाता हुआ—'उठो, उठो, सवेरा हो गया!'-कहता अब घरके लोगोंको नहीं जगाता। न दूधकी बोतलें थामे अँधेरेमें ही मिल्क-डिपो-की ओर निकल पड़ता है। बस, आँखें खुल जाती हैं तो वैसा ही छतकी ओर देखता पड़ा रहता है।....रोज़ सुबह पेपर खोलकर देखता है। 'वाण्टेड' के हर कॉलमको अण्डर-लाइन करता है। उसकी भाभी जब शैतान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेपर बब्बूको मारने लगती है तो हाथ पकड़ लेता है····फ़िलॉसफ़ीकी अपनी पुस्तकमें-से 'ह्वाट-इज़—इज़' वाला अध्याय आद्योपान्त पढ़कर सुनाता है। फिर गम्भीर होकर कुछ सोचता है। माथेकी सिलवटोंको दबाता हुआ कुछ पूछता है—कुछ-कुछ ऐसा ही कि दद्दा अम्माँको रेगुलर ख़र्चा भेज पाते हैं या नहीं? ····बब्बू अब बड़ा हो गया। इन खोमचे-जैसे स्कूलोंमें बिगड़ जायेगा।····दद्दाकी ज़िन्दगी इस गृहस्थीके जंजालमें उलझकर बेकार हो गयी····।

■

मृण्मयी उसकी हर बातपर हाँ-में-हाँ मिलाती है। उसकी दृष्टिमें इतना बड़ा होनेके बावजूद वह बब्बूसे बड़ा नहीं। यदा-कदा समझाती रहती है वह—'सड़कपर बीड़ीकी डण्ठियाँ क्यों ढूँढ़ते हो? पीना है तो सिगरेट पी लिया करो।' उसके जेब-खर्चके लिए वह रोज़ पैसे देती है तो वह छूता तक नहीं। लेकिन उसके बहुत ज़िद करनेपर असमंजससे, सारे पैसे मुट्ठीमें भीचे रहता है। फिर गाँठ बाँधकर सिरहाने धर लेता है। कहता है, इस तरह ढेर सारे पैसे जुटाकर वह अगली पढ़ाईके लिए यू० के० जायेगा।····

'यों फटे-हाल नंग-धड़ंग आवारा घूमनेसे बदनामी होती है।' मृण्मयी समझाती है तो वह विस्मयसे उसकी ओर देखता है। फिर उलटा उसीको उपदेश देना शुरू कर देता है—"घूमने-फिरनेसे एबिलिटी बढ़ती है भाभी! यू डोण्ट····" कहकर अन्तिम शब्द 'नो' सिर हिलाकर, बिना कहे ही पूरा कर देता है।

"पास-पड़ोसके लोग काना-फूसी करते हैं। दिन-भर नंगे-अधनंगे बच्चोंकी तरह मुँडेरपर बैठा रहना आपको अच्छा लगता है! औरत, बहुएँ होती हैं, सबके घरोंमें।····"

इस बार वह कुछ न कहकर निराधार शून्यमें ताकता है। फिर गूँगा-सा कुछ टटोलता हुआ उठता है और चला जाता है।····

बॉलकनी या सीढ़ियोंमें जहाँ भी रंचमात्र ठौर मिली नहीं, गमछा बिछाये बैठ जाता है। काग़ज़ोंको फाड़-फाड़कर आयताकार दो-तीन गड्डियाँ बनाता है। पत्थरके पेपरवेटसे बड़े जतनसे दबाता है। एक चौड़े-से टुकड़ेपर पहले मेरा नाम लिखता है, फिर अपना और फिर उसके नीचे एक बड़ा-सा पीपलका पत्ता बनाता है। लिखता है—पुराण-पुरुषका जन्म इसीमें हुआ था।····

पढ़ने-लिखने, घूमने-फिरनेसे जब थक जाता है, तो किसी खम्भेके सहारे, बग़लमें बाँहें मोड़े तनकर खड़ा हो जाता है। स्वामी विवेकानन्दके-से गाम्भीर्य-भावसे आसमानकी ओर देखने लगता है।····तपती-भरी दुपहरी-में, छतपर अकेला बैठा, आकाशमें उड़ती इक्की-दुक्की चीलों या हवामें तैरते ग्लाइडरोंको गिना करता है।····मेरे मेहमान आते हैं तो कमरेसे चुपचाप उठकर बाहर चला जाता है।····चाहे कितनी भी भूख क्यों न लगी हो, कभी शिकायत नहीं करता।····बीड़ी पीता है तो मुझे देखते ही हथेलीमें मसल-मसलकर बुझा देता है।····

कभी-कभी एकान्तमें बैठा अपनी घुटनोंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास फटी-मैली पैण्टको अपलक देखता है तो एक विचित्र-सा ताटस्थ्य-भाव उसकी आबूनसी आँखोंपर बिखर जाता है। लगता है, पानीमें बहुत देर तक कुछ टटोलनेके पश्चात् अपने रीते हाथोंको देख रहा हो।

"तुम्हारी पैण्ट इतनी फट गयी! पता नहीं कैसे पहनते हो!....'

वह कुछ नहीं कहता।

"कल गाँवसे बुआ आनेवाली हैं। कुछ मेहमान और भी। क्या सोचेंगे!....नये कपड़े पहन लोगे, हाँ....।"

वह 'हाँ' का उत्तर नहीं दे पाता।

"तुम बाहरसे आये मेहमानोंकी तरह क्यों रहते हो? जिस चीज़की ज़रूरत अनुभव करते हो, अपनी भाभीसे माँग क्यों नहीं लेते?...."

उसका मौन टूटता नहीं। मेरे बार-बार पूछनेपर केवल इतना ही कहता है कि उसे ज़रूरत अनुभव ही नहीं होती कभी।

"मुझे लगता है, अब तुम धीरे-धीरे ठीक हो जाओगे। अगली जुलाईसे फिर तुम्हें यूनिवर्सिटीमें एडमिशन दिला देंगे—हाँ?...."

वह मेरी ओर देखता है।

"तुम्हारे कारण सब परेशान हैं। अम्माँको हम इस उमरमें आकर भी सुख नहीं दे पाते। कैसी ट्रैजडी है!...."

छुट्टेकी आकृति वैसी ही भावना-विहीन! मुझे अहसास होता है, सम्भवतः वह समझ नहीं पाता—ठीक-ठीक।

मैं पूछता हूँ, "पिताजीका कल गाँवसे लेटर आया। तुमने पढ़ा? शायद अगले हफ़्ते यहाँ पहुँचेंगे।"

इस बार भी वह पहले तो वैसा ही स्थिर रहता है। हौले-से उठता है। अविश्वासभरी मेरी ओर घूरकर देखता है—"नहीं! वे तो लास्ट इयर ही गुज़र गये। इम्पासिबल!....उँऽऽ...." उठकर चला जाता है।

मैं अब कुछ भी कह सकनेकी सामर्थ्य जुटा नहीं पाता।....

■

दिन-भरका थका, पता नहीं कब किताबोंपर खिंची अंकोंकी अनचीन्हीं आकृतियोंके बीच माथा टिकाये गहरी निद्रामें डूब जाता हूँ।....

रातको अजीब-से बहके-बहके सपनोंके साथ एकाएक नींद टूटती है। कुहनीपर मुड़ा, गरदनके भारसे दबा हाथ 'सो' जाता है। देखता हूँ, घड़ीकी छोटी सुई दो या तीन अंक छूनेवाली है। मृण्मयीकी गरम-गरम साँसें मेरी नंगी पीठ झुलसा रही हैं।....बुत उलटे मेंढककी तरह लेटा, नींदमें ही ओठ हल तरहसे हिलाता है, जैसे माँका दूध चूस रहा हो।... पेट फूला है। या तो ज़रूरतसे ज़्यादा भरा अथवा वह पेशाब करने ही वाला है।

मैं स्लीपर घसीटे बाथरूम जाने लगता हूँ। खुले बरामदेसे गुज़रता हुआ देखता हूँ—छुट्टेका बिस्तरा रीता। पलंगपर पानी-सा ढुलका। चादर बिखरी, तकिया दूर गिरा हुआ।....

मुँडेर, ग़ुसलखाने या आस-पास कहीं भी वह दीखता नहीं। मैं नीचे उतरता हूँ। गलियारेपर सोये फिरवा कुत्ते एक साथ भौंकते हुए दुम हिलाकर पीछे-पीछे चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगते हैं। मैं गुस्सेसे दो-चार ढेले फेंकता मेन रोडपर निकल जाता हूँ।....

लगता है, आने-जानेवाले सारे लोग अब मर गये हैं। अपने-अपने घरोंकी चहारदीवारी-के अन्दर भिंचे कितने ही मशानके शवकी तरह पड़े हैं।....

थोड़ा आगे। धुँधली अँधेरी सड़कपर हर क़दम बच-बचकर इस तरह रखता हूँ, जैसे चौड़े पाटकी नदी पार कर रहा हूँ। तभी दूर पालमकी ओरसे गुज़रता कोई 'बोईंग' मेरे सिरके ऊपरसे एक बहुत भारी परत तराशता निकल जाता है।

उसके गुज़रनेके पश्चात् तराशी जगहके बीच पड़ी चौड़ी खाई फिर भर जाती है। मैं चिन्तित-सा, उदास-सा कुछ क़दम और चलता हूँ। इधर-उधर सशंकित देखता हूँ—सूने चौराहेके पास 'बाइ रिक्वेस्ट'के नीचे, गठरी-सी थामे, कोई खूँटेकी तरह खड़ा है।

मैं लपककर पास पहुँचता हूँ।....

"छुट्टे ऽऽ...!"

छुट्टे वैसा ही खड़ा। अचकचाता नहीं—जैसे उसने देखा हो न हो।

"कहाँ जा रहे हो, इस आधी रातमें ?"

उसकी पलकें कहीं निराधार टिकी हैं।

"माँसे झगड़ा हुआ....?"

"नाँ...."

"तो—!"

वह कुछ नहीं बोलता। मैं भी चुप रहता हूँ—उसके अधनंगे-शरीरपर टँगे, तार-तार चीथड़ोंको देखता हूँ। सेवारकी तरह उलझे बालोंको।....

"छुट्टे, क्या हो गया ?".....बड़ी मुश्किल-से कह पाता हूँ।

"सचमुच मैं पगला गया।...." अपने सूखे होठोंको जीभसे भिगोता हुआ छुट्टे मेरी ओर देखता है—"आप लोगोंको अधिक दुःख दूँ, अच्छा नहीं लगता। कहीं दूर अकेलेमें जाकर मर जाना चाहता हूँ दद्दा !....अब सहा नहीं जाता !....छुट्टेकी आवाज़ लड़खड़ाकर सूख जाती है। पहलेके-जैसा होता तो वह रोता। उसका गला गदरा जाता, लेकिन लगता है, वह इस सबसे परे पहुँच चुका है !

"तुम्हारे यों मर जानेसे हमें सुख मिल जायेगा—छुट्टेऽऽ ?"

छुट्टे दाँतोंके बीच होठ काटे मेरी ओर देखता है। फिर अँधियारेकी ओर। और फिर आँखें मिचमिचाता पता नहीं कब चीथड़ों-की पोटली उठाता है। मेरे पीछे-पीछे आता है। और हौलेसे पहलेकी तरह चारपाईपर बिखर पड़ता है।...

रात कुछ और आगे सरक गयी होगी—जो स्वाभाविक है। वह करवटपर करवट बदलता रहता है। और फिर पता नहीं क्या सोचकर धीरेसे उठता है। अँधेरी छतकी मुँडेरपर घुटनोंपर ठोढ़ी टिकाये बैठ जाता है। और दूर कहीं स्टेशनरी-डिपोकी टिम-टिमाती पीली बत्तियाँ गिनने लगता है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

THE BIGGEST IRON FOUNDRY IN INDIA

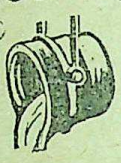

MANUFACTURERS OF :

Signalling and interlocking Components Counter Welghts; Signal bases, Distance blocks, Heel blocks, Straining Screws, Lightning Spikes; C. I. Posts & Telegraphs Components including—Sockets ; Sole Plates ; Saddles ; Brackets ; Anchors. C. I. Track Supply & P. W. Materials including: Sleeper Plates ; Bearing Plates ; Chairs etc.

EXPORTERS TO :

U.S.A., Africa, Burma, Middle East Countries, Hong Kong, Malaya, Thailand, West Indies, New Zealand etc.

TDS

THAKURDASS SUREKA IRON FOUNDRY LTD.

ESTD. 1913

172, J. N. MUKHERJEE ROAD, SALKIA, HOWRAH

PRESSMAN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

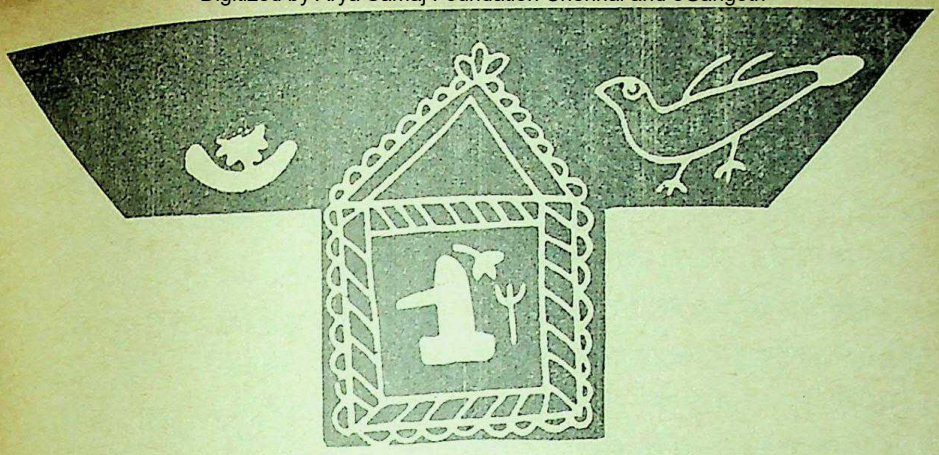

अप्रत्याशितकी मौत

बटरोही

बात वह कोई अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं थी। सुबहके क़रीब सात बजे मेरी छोटी बहन कमलासे दरवाज़ेका शीशा टूट गया था। हुआ यह कि तड़के ही जब कमला उठी तो वह दौड़कर बाहर निकलनेकी चेष्टामें शीशेसे टकरा गयी थी। टकराते समय उसका हाथ शीशेपर था, और बजाय इसके कि वह पीछे हटती, वह इस झटकेसे उसमें पड़ी थी कि शीशा टूट गया था और उसका हाथ भी कट गया था। आप कहेंगे—तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात? शीशा टूटना था, टूट गया। शामको बढ़ई बुलाकर नया शीशा जुड़ा लेना था और कमलाके हाथमें माइक्रोक्रोम या टिंचर आयोडीनका लेप कर लेना था।

लेकिन यह कहानी इतनी ही नहीं है। मैं भी कहता हूँ कि यह कोई महत्त्व-पूर्ण घटना नहीं थी। न इसके बारेमें मैंने सोचा ही था। आपने जो समाधान सोचा था, वैसा ही मैं आगे करनेकी सोच रहा हूँ। वैसा नहीं करूँगा तो आप मुझपर आदमी न होनेका आरोप लगायेंगे। मेरे दोस्त और मेरे सभी हितैषी आपकी इस बातका समर्थन करेंगे।

सुबह जब मैं उठा था तो मेरी दृष्टि उस टूटे शीशेपर पड़ी थी। मैंने देखा था कि उस छेदसे मुझे सामने चीड़के पेड़पर बैठा एक कौवा घूर रहा था और ज़ोर-ज़ोर-से काँव-काँव कर रहा था। उसे देखकर मेरे मनमें कुछ बुरा-सा भाव जागा था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन-ही-मन मेरे मुँहसे दो-चार गालियाँ भी निकली थीं। बचपनमें मेरी चाची मुझसे कहा करती थी कि सुबह उठते ही कौवे, बिल्ली, विधवा और मेहतरका मुँह देखनेसे सारा दिन बरबाद जाता है। उस वक़्त मुझे अपनी चाचीकी याद नहीं आयी थी और न वह बात ही। मुझे ग़ुस्सा केवल इस बातपर आया था कि मेरी एक विशेष आदतको चुनौती दी गयी थी। यह मेरी विशेष आदत थी कि सुबह उठते ही मैं किसी पेड़, पक्षी या फूलोंको देखनेके बजाय एक सिगरेट या चायके कपका मुँह देखना ज़्यादा पसन्द करता हूँ।

दिन-भरकी घटनाओंका स्मरण मुझे पूरी तरह तो नहीं है पर इतना तो याद ही है कि दिनमें जब धूप बढ़ी थी तो कमरेमें दरवाज़ेकी छायाके बीच एक छितराया हुआ-सा प्रकाश आ टपका था जिसे देखकर मुझे थोड़ा नयेपनका आभास हुआ था। रोज़की एक नियमिततामें ऐसे दृश्य मुझे अच्छे लगते हैं। लेकिन दो-एक बार देखनेके बाद कुछ ऊब-सी महसूस हुई थी।

■

मेरी माँ बचपनमें ही चल बसी थी। जिससे मुझमें एक विशेष भयकी स्थितिका समावेश हो आया था। बचपनसे ही मैं सोचता-सा रहा हूँ कि भय नामकी कोई चीज़ अवश्य होती है और वह माँके न होनेपर हमें महसूस होने लगती है। माँको ही तब मैं एक ऐसी इकाई समझता था, जो इस भयकी स्थितिसे छुटकारा दिला सकती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि शीशेके उस छेदको देखकर मुझमें एक भयकी स्थिति जागी थी और मुझे अपनी माँकी याद आ गयी थी। माँकी याद आनेपर मुझे दुःख नहीं होता, वरन् एक अकेलेपन या त्रासकी स्थितिकी अनुभूति होती है जो कि कई सालोंसे मुझे होती आ रही है।

वह दिन छुट्टीका दिन था। घरमें सब लोग एक प्रकारसे ख़ुश-से ही थे। ख़ुश न कोई नहीं था तो वह थी चाची—जिसके सिरपर आज थोड़ा ज़्यादा भार-सा पड़ा था। कमला उस दिन ख़ुश इसलिए थी कि वह दिन भर स्कूलके बन्धनसे मुक्त होकर कई लड़कियोंके साथ गुल्ली-डण्डा खेल सकेगी। इसीलिए वह बाहरकी ओर इतनी तेज़ीसे दौड़ी थी; इसीलिए उसका हाथ कटा था और इसीलिए दरवाज़ेका शीशा टूटा था। मैं समझता हूँ, शीशेका टूटना इतनी भयाक्रान्त स्थितिको सामने नहीं लाता जितना उसके आकारका प्रतिबिम्ब कहीं देखने पर। मैं उस दिन चारपाईपर बैठा यदा-कदा उस छेदको देख लेता था और सोच रहा था कि आपके समाधानकी पूर्ति की जाये। किन्हीं कारणोंसे मैं यह सब काम नहीं कर पाया था।

कमलासे एक ग़लती हो गयी थी। (इस दुनियावी शब्दोंमें ग़लती ही कहा जायेगा। यह ग़लती किस स्थितिमें हुई थी, इसपर थोड़ा-सा प्रकाश मैं डाल चुका हूँ। मैं समझता हूँ, हम सब ग़लतियाँ करते हैं और संसारका हर काम ग़लत करते हैं। सबसे बड़ी ग़लती मैं, अपनी ही, यह स्वीकारता हूँ कि दो वर्षकी आयुमें मेरी माँका देहान्त हो गया और तबसे अबतक मैंने अपने मुँहसे 'दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द नहीं सुना था। बचपनमें जब मैं अपने दोस्तोंके मुँहसे यह शब्द सुनता था तो मुझे बड़ी कोफ़्त होती थी और कभी-कभी बड़ी हँसी भी आती थी। मेरी माँने मुझसे कभी नहीं कहा था कि सुबह उठनेसे पहले कौवे, बिल्ली, विधवा या मेहतरका मुँह देखनेपर दिन-भर कुछ अशुभ घटनाएँ घटती हैं। मुझे इस बातपर माँकी तरह पूर्ण विश्वास भी था क्योंकि जिस दिन माँकी मृत्यु हुई थी, मैंने उपर्युक्त चार प्राणियोंमें एकका भी मुँह नहीं देखा था।

हाँ साहब, शीशा टूट गया था, मुझे इस बातका दुःख नहीं था, न मुझे कमलापर ही गुस्सा आता था। दुःख इस बातका था कि सुबह उठते ही मेरी एक विशेष आदतको चुनौती दी गयी थी। यह चुनौती 'शीशेके टूटने' के कारण दी गयी थी। कमलाका इसमें कोई भी भाग नहीं था। शामको मैं बाज़ार घूमनेके बाद जब फिर अपनी चारपाईपर आया था तो मुझे फिर वही छेद दिखाई दिया था और मैंने निर्णय कर लिया था कि मेरी यह त्रासकी स्थिति आज उस कौवेको देखकर उत्पन्न नहीं हुई थी, वरन् यह एक 'थोपी' गयी स्थिति थी, जिसे मैंने मन-ही-मन स्वीकार लिया था।

शामको मैंने वहींपर बैठे-बैठे दो-एक पॉकेट-बुक्स पढ़ डाले थे। पॉकेट-बुक्स किन्हीं नये लोगोंके उपन्यास थे। और जब कभी उनका नायक अकेलेपन या भयकी स्थितिमें आ जाता था, मेरी दृष्टि टूटे शीशेपर जा पड़ती थी और मैं भी अपनेको अकेला अनुभव करने लगता था। यह कहना नासमझी होगी कि मैं कमरेमें अकेला था। कमरेमें मेरी पुस्तकें थीं, जिनमें कई महापुरुषोंकी जीवनियाँ भी थीं और पुराने क्लासिक्स भी। अबतक मैंने सुना था कि ये महापुरुष अवतार होते हैं, अवतार ईश्वर माने जाते हैं और ईश्वरके होनेसे कोई भयकी स्थिति पैदा नहीं हो सकती। लेकिन उन किताबोंपर धूल जम गयी थी और वह धूल कभी न चाचीने साफ़ की थी और न मैंने। चाची पुस्तकोंकी धूल झाड़नेके बजाय बरतनोंकी धूल झाड़ना, ज़्यादा पसन्द करती थी और मैं उन पुस्तकोंको दुबारा उलटनेके बजाय थोड़ा घूमना। आज जब उन अवतारों-के कमरेमें रहते हुए मैं अपनेको भयकी स्थितिमें पा रहा था तो मैंने उन अवतारोंको 'ईश्वर' कहनेके बजाय 'सुपरमैन' कहना ज़्यादा सार्थक समझा क्योंकि मैंने सोचा, अपने युगमें ये 'सुपरमैन' अवश्य नीत्शे रहे होंगे!

■

रात काफ़ी घिर आयी थी। उस शीशेके छेदको देखनेपर ऐसा ही लगता था। रातके होनेका आभास मुझे बाहर देखनेपर ही हुआ करता था। मैं बाहरकी ओर देख ही रहा था कि उस छेदपर मुझे दो चमकती हुई पोली आँखें-सी दिखायी दीं, जो चमकनेके साथ-साथ थोड़ा-बहुत इधर-उधर हिल भी रही थीं। मैं एकाएक यह निश्चय करनेमें असमर्थ-सा था कि वे दोनों आँखें हैं या कुछ और? किन्तु यह असमर्थता तब ज़ाहिर हो गयी थी, जब मैंने देखा कि उस छेदसे कूदकर एक बिल्ली अन्दर आ गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्ली एकाएक मेरी ओर मुड़ी और उसने फिर अपनी चमकती आँखोंसे मुझे घूरा। मैं भी उसे देखता रहा। पर इससे पहले कि मैं कुछ निर्णय ले पाता, वह भागती हुई अन्दरके कमरेमें चली गयी—जहाँ चाची खाना बनाती थी। शायद चाची और कमला सो गयी थीं क्योंकि बिल्ली या चाची, किसी-के मुँहसे कोई भी शब्द सुननेको नहीं मिला।

बिल्ली भाग गयी और टूटा हुआ शीशा अब मुझे एकटक घूर रहा था। मैंने सोचा, जाकर रामायण, महाभारत या बाइबिलके पट्टेकी जिल्दको फाड़कर उस छेदको बन्द कर आऊँ, क्योंकि और कोई पट्टा मेरे पास नहीं था, पर डर इस बातका ज़्यादा था कि जब सुबह चाची इस कामको देखेगी तो वह बहुत बिगड़ेगी। केवल यह ख़याल मुझे वहींपर बैठाये था। मैंने यह भी सोचा कि ऐसा करनेसे एक 'सुपरमैन' का अपमान होगा।

भीतर थोड़ी-सी खड़खड़ाहट सुनाई पड़ रही थी। वह खड़खड़ाहट मेरी परिचित थी। 'परिचित' तथा 'भय' दोनों परस्पराश्रित चीज़ें हैं—यह सोचकर मैंने उस ओर ध्यान ज़्यादा नहीं दिया। मैं अपने-अपने अजनबियों-के बारेमें सोच ही रहा था कि बिल्ली फिर उसी स्थानपर आ खड़ी हुई, जहाँपर-से वह मुझे पहले घूर रही थी। उसकी चमकती हुई आँखें अब भी मुझे घूर रही थीं। इस समय उसकी आँखोंमें एक विशेष प्रकारकी विनयशीलता चिह्न था। मैं उसकी ओर देखना ही चाहता था कि मेरी दृष्टि बीच ही में रुक गयी। इस बार उसके मुँहपर एक चूहा बिलबिला रहा था।

फिर थोड़ी देरतक मुझे देखती रही और फिर एक भारी जम्पके साथ वह छेदसे बाहर""

मैं अब छेदकी ओर नहीं देख पा रहा था। केवल इतना ही अहसास अब मुझे हो पा रहा था कि कमरेमें मैं भी अकेला हूँ!

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ● सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएँ तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएं, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार कविताएँ

बच्चन
रामदरश मिश्र
'अंचल'
कैलाश वाजपेयी

विपरीत-रति

१६ । १ । १६६६ ।

लाल घाँघरा,
काली कुर्ती,
काले सालू,
मोटे जूतों में
बाँगड़ की
मेहनतकश, मज़बूत औरतें
सड़क बनातीं,
गिट्टी ढोतीं,
कोलतार के ड्रम गरमातीं,
कोलतार-भीगी गिट्टी को गरम—
फावड़ों से फैलातीं।
कोलातर से काले
उनके हाथ हुए हैं,
कोई काली रेख घाँघरे के ऊपर भी,
चेहरे पर भी।
बँधा हुआ मैले कपड़े में
पेड़-तले रातिब रक्खा है,
जहाँ पड़े हैं
उनके बच्चे
धूप-छाँह में
जिन्हें उन्होंने
थोड़ी-सी अफ़ीम देकर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुला दिया है,
काम कर सकें वे फ़ुरसत से ।

खून-पसीने की रोटी
खानेवाली ये,
एड़ी से लेकर चोटी तक
मर-मेहनत में,
मार-थकावट में डूबी ये
नहीं जानतीं
इसके भी अतिरिक्त कहीं कुछ
दुनिया में होता जाता है ।

साधारण दिन आज नहीं है ।
इनसे मैंने रुककर पूछा,
"क्या तुमको मालूम,
अचानक,
भारत के प्रधान मन्त्री की
मृत्यु हो गयी ताशकन्द में ?"
"हाँ मालूम—लगो थो मेलो ।"
"क्या तुमको मालूम
कि मन्त्री नया चुना जानेवाला है ?—
ठीक उस समय, लोग हज़ारों
घेरे संसद्-भवन खड़े हैं,
घर-बैठे रेडियो लगाये,
बाहरवाले ट्रांज़िस्टर लटकाये, खोले,
घिरे हुए दस-पाँच जनों से
जगह-जगह पर—
लोग कान-ही-कान हो रहे,
मन्त्री होते हैं मुरार जी
या कि इन्दिरा गान्धी होतीं ?—
बदल रहा मन्त्रित्व देश का;
और तुम्हें कुछ खबर नहीं है ।
और न तुममें इसे जानने की
उत्सुकता !
तुम भी क्या हो !"
"सा'ब, हमारो
ठेकेदार नयी बदलो है !"
"सा'ब, बड़ो जालम हाकम है !"
"सा'ब, उसे बदलो तो जानें !"

खड़ा रहा मैं
किन ख्यालों में खोया-खोया !—
चली गयीं वे इतना कहकर,
ड्रम लुढ़काने,
गिट्टी लाने,
सड़क बनाने,
कल का रातिब आज कमाने ।

—अज्ञेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परकटी धूप

सामने फैली है एक लम्बी तलहटी
जिसके अन्धे जल में
चारों ओर के रास्ते आकर डूब गये हैं
ऊपर टँगा है काले जाल-सा आकाश
जिसमें उलझ कर
भटकी हुई हवाएँ चिल्लाती हैं
और खोजती हैं दिशाओं को
पेड़-पेड़ किसी आसन्न आशंका से
काँप रहा है
सूर्यमुखी की पंखड़ियों में बन्द हैं
सहमी हुई शामें
आकृतियाँ आकृतियों से घबराती हैं
और उभरती हैं कैक्टसों की छायाएँ
खिड़कियों के रंगीन शीशों से—
साँप-से लोटते हैं

भीगा हुआ दिन
गीले लबादे-सा चिपका है
समय के ज्वराक्रान्त तन पर
....इतने दिनों बाद
कहीं से छूट कर
गिर पड़ी है एक मुट्ठी धूप
परकटे पंछी-सी चुपचाप
मेरी दीवार के ऊपर
और वहीं पड़ी-पड़ी तड़प रही है।

—रामदरश मिश्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ यही···

•

कुछ यही प्रति स्वप्न के शवदाह पर होता रहा।

दूर के हर मोड़ पर आकर प्रतीक्षाकुल झुका
सब दिशाओं के सटे-सहमे अँधेरे में रुका
व्यर्थता के किस समर्पित ऊगते आयाम में
डूबती चौराह के सन्ध्या क्षितिज-सा अधझुका
कौन बेपहचान बेमौसम अचिह्नित छाँह में
बीतते पतझार-जैसा टूटता रोता रहा।

'अब न कुछ होगा'—हवा निःशब्द धीरे से बही
रह गयीं नेपथ्य की ध्वनियाँ अबोली-अनकही
कुछ न बदला—रह गयी प्रत्यक्षता प्राचीर की
लग चली सारी समूची वंचनाएँ बेसही।
कौन कुहराच्छन्न कर्मों की नदी के पार तक,
अधबने जल-बिन्दुओं की यातना ढोता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमुक्त शती के लोगों से

गाली देना हम पर थूकना
कि पशु-परिस्थितियों के बीच भी
हमने उम्र काट दी,
हत्या किये बिना !
कि एक दम बेमानी था हम सबका कविता में चीख़ना !
क्षमा नहीं करना जब ज्ञात हो
कि हम सभी भीतर से तीन थे
जी भी न सकते थे बिना मशीन के
फिर भी ग़मगीन थे।
अपनी कमज़ोरियाँ पुर्ज़ों पर थोपकर
लौट-लौट जाते थे किसी चरागाह में,
कि हम सब उच्छिष्ट थे 'मज्झिम निकाय' के।
कभी उपराम नहीं हो सके
हँसना : कि हम सब बेहद गँवार थे
अधुना समझते रहे अपने-आपको
जब कि हम सिर्फ़ सभ्यता की फिहास थे।
पूरे विश्वास से
हम नहीं कूदे नीतीतरता के गढ़े में
वरना क्या अन्तर था ईश्वर या टूटे घड़े में।

दरअसल हम बहुत बड़े ढोंगी थे अपने ज़माने के
नफ़रत भी करते थे सत्ता से
क़ायल थे पूँछ भी हिलाने के
यों बुद्धिजीवी थे घायल थे।

—कैलाश वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

की

गौरवपूर्ण परम्परामें नयी कड़ी

मई १९६६ को प्रकाशित हो रहा है

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करा लें

केरल विशेषांक

उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु : भावात्मक एकताका प्रतीक

केरलकी समसामयिक काव्यधारा, कथा-साहित्य, नाट्य-विधा, लोक-संस्कृति, शिल्प और कला, केरलीय समाज-परम्परा और प्रचलन; केरलकी सन्तधारा; केरलीय संस्कृत साहित्यकारोंकी देन; केरलमें इस्लाम तथा यहूदी धर्म; केरलीय दर्शन, ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र तथा मलयालम भाषा और लिपिके परिचयके साथ मलयालम कविताओं, कहानियों तथा अन्य विधाओंसे सुसज्जित।

इस **करल विशेषांक** के कुछ प्रमुख लेखक

सर्वश्री ए० चन्द्रहासन, पी० नारायण, अब्राहम जेकब एस० वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर, विश्वनाथ अय्यर, किलिमानूर एन० विश्वम्भरन्, टी० भास्करन्, ए० श्रीधर मेनन, के० नारायणन्, एम० चन्द्रशेखरन नायर, वी० ए० केशवन नंपूतिरि, आर० रामन नंपूतिरि, एन० पुरुषोत्तम मल्लय्या, रवि वर्मा, रामचन्द्र देव, जी० शंकर कुरुप, पी० कुंजुरामन नायर, वेलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, अक्कित्तम् अच्युतन नंपूतिरि, तकाषी शिवशंकर पिल्ला और श्रीमती बालामणि अम्मा तथा सुगत कुमारी।

केरलीय साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शनका यह सन्दर्भ-ग्रन्थ अवश्य पठनीय और संग्रहणीय है

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक १०.००; इस विशेषांकका २.५०

३१ मार्च १९६६ के पूर्वके वार्षिक ग्राहकोंको इस विशेषांकका पृथक् मूल्य न देना होगा।

पो० बा० नं० ६० इलाहाबाद | सम्पादकीय | माध्यम सम्पर्क-सूत्र | व्यवस्थापकीय | हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

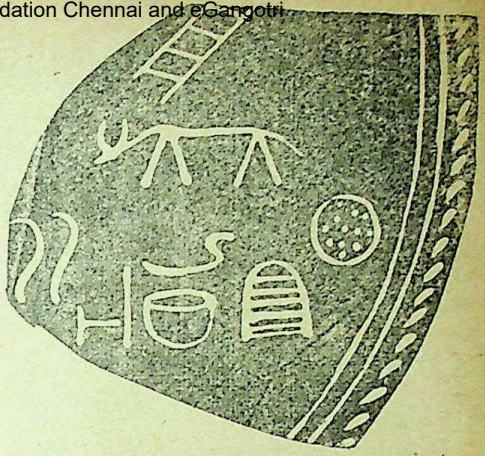

वि। वि। ध

• वीरेन्द्र अग्रवाल

सरकारी उद्योग-क्षेत्रका सुधार कैसे हो ?

सभी जानते हैं कि बढ़ते हुए रक्षा-सम्बन्धी व्यय, अमरीकासे योजनाके लिए अतिरिक्त सहायताका अभाव, औद्योगिक उत्पादनमें कमी, केन्द्र तथा राज्योंके राजस्वमें कमी, तथा ख़रीफ़की फ़सलमें अनाजकी पैदावार कम होनेके कारण आर्थिक विकासका कार्य इतना अस्त-व्यस्त हो गया है कि योजना बनानेवालोंके मनमें भी यह भय पैदा हो गया है कि चालू वर्षमें आर्थिक हालत बहुत ख़राब रहेगी। यह भी सही है कि परियोजनाओंकी अधूरी आयोजना और उसके फलस्वरूप ग़लत प्राक्कलन तैयार करनेके कारण ही निर्माणमें विलम्ब हुआ है, विशेषकर जबकि सरकारी क्षेत्रकी परियोजनाओंके लिए तैयार किये गये प्राक्कलनोंमें अनुमानित राशियोंकी तुलनामें लागत बहुत बढ़ गयी। सरकारी क्षेत्रकी परियोजनाओंमें ऐसे भी उदाहरण देखनेमें आये हैं जिनमें अधिष्ठापित क्षमताका पूर्ण उपयोग नहीं किया गया, प्रबन्ध ख़राब रहा और उसके-द्वारा तैयार की जानेवाली वस्तुओंकी माँग और सम्भरणका सही विश्लेषण नहीं किया गया। सबसे बड़ी बात यह है कि लगायी गयी पूँजीपर पर्याप्त मुनाफ़ा नहीं हुआ जिससे कि औद्योगिक गतिविधियोंका और विस्तार किया जा सकता। जैसे-जैसे विदेशी मालकी कमी होती जाती है निर्माताओंको और कोई उपाय दिखाई नहीं देता, सिवाय इसके कि वे उत्पादन कम करें। सितम्बर १९६५ में उत्पादन (आधार वर्ष १९५६) तीसरी बार १८२.१ तक गिर गया जबकि अगस्तमें १८३.० और जुलाईमें १८६.० तक गिरा था। जूनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अंक १८९.१ तक पहुँच गया था और उसके बाद यह लगभग सात बिन्दु गिर गया है।

पूर्व प्रधान मन्त्री शास्त्रीजीने ठीक ही कहा था कि जवाहरलाल नेहरूने योजनाओं-का यह आकार इस उद्देश्यसे बनाया था कि धनका संचय कुछ एक लोगोंके पास न हो सके, और उद्देश्यको पूरा करनेकी मुख्य ज़िम्मेदारी सरकारी क्षेत्रपर डाली गयी। सामान्य धारणा यह कि आर्थिक शक्तिका संचय केवल सरकारी क्षेत्रमें हो सकता है। इसके लिए यह दलील दी जाती है कि सर-कारी क्षेत्रके प्रत्येक एककी मालिक जनता है और जनताका स्वामित्व 'एकाधिकार' नहीं कहला सकता। एकाधिकार जाँच-आयोगने (मोनोपली इन्क्वायरी कमीशन) पहली बार यह निर्णय दिया है कि एकाधिकार चाहे सरकारके हाथमें हो या जनताके हाथमें परन्तु दोनों ही हालतोंमें वह एक बुराई है इसलिए संविहित आयोगका अधिकार-क्षेत्र सरकारी क्षेत्रपर भी लागू होना चाहिए। इसकी सम्भावना कम नहीं कि सरकारी क्षेत्रके एकाधिकार भी अनुचित मूल्य प्राप्त करें और ग़ैर-सरकारी एकाधिकारियोंकी अपेक्षा घटिया वस्तुएँ तथा सेवाएँ उपलब्ध करें। मूल उद्देश्य यह होना चाहिए कि जो भी कोई जनसाधा-रणको सस्ती और अच्छी वस्तुएँ उपलब्ध करा सकता है, उसको इस प्रकार करनेका अधि-कार प्राप्त हो, और यह तभी सम्भव हो सकता है जब सरकारी और ग़ैर-सरकारी क्षेत्रमें लगातार प्रतियोगिता होती रहे।

अगर लोकतन्त्रात्मक समाजमें सामाजिक न्यायको यथार्थ रूप देना है तो उस समाज-वादको रहन-सहनका एक मात्र ढंग नहीं बनाया जा सकता जिसमें शासकीय एका-धिकार एक आवश्यक अंग है। भारतके लोगोंको समाजवादका अर्थ यह समझाया जाना है कि वह एक मिली-जुली अर्थ-व्यवस्था है जिसमें सरकारी और ग़ैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों-का विस्तार होता है और एकाधिकारकी सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं जिससे जनसाधा-रणको बड़ा फ़ायदा होता है।

सभी जानते हैं कि अर्थ-व्यवस्थाके अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा राष्ट्रीयकृत उद्योगोंमें पूँजीकी वृद्धिकी रफ़्तार अधिक रही है। केन्द्रीय सर-कारके औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उपक्रमोंमें १९६१-६२ में ११७० करोड़ रुपये पूँजी लगी हुई थी जो १९६२-६३ में बढ़कर १३७० करोड़ रुपये हो गयी। वार्षिक प्रतिवेदनके अनुसार ३१ मार्च, १९६४ को जिन सरकारी क्षेत्रके परियोजनाओंका निर्माण चल रहा था उनपर ३९७ करोड़ रुपयेकी पूँजी लगायी जा चुकी थी और वर्तमान प्राक्कलनोंके अनुसार उन्हें पूरा करनेके लिए ९०० करोड़ रुपयेकी अतिरिक्त पूँजीकी ज़रूरत होगी। तृतीय योजना-कालमें सिर्फ़ इस्पात संयन्त्रोंके विस्तार-पर ३८० करोड़ रुपयेकी पूँजी लगनेका अनुमान था। १९७५-७६ तक पूँजी-विनियोजनकी स्थिति यह हो जायेगी कि देशकी पूँजीका आधे से अधिक अंश सिर्फ़ राष्ट्रीयकृत उद्योगोंमें ही लग जायेगा। अगर पूँजी और रक्षित धन-साथ तुलना की जाये तो मुनाफ़ेकी दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५८-५९ में ३.२ प्रतिशत, १९५९-६० में ३ प्रतिशत और १९६०-६१ में ३.८ प्रतिशत है जो कि उस ब्याजसे भी कम है जो प्राप्त किये गये पूँजी-ऋणोंपर देना होता है। लगभग आधे उपक्रमोंपर और आधीसे अधिक पूँजीपर ३ प्रतिशत मुनाफ़ा होता है। यद्यपि मुनाफ़ा शब्द ज़रा अप्रिय है परन्तु इसीके आधारपर किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रमकी दक्षता आँकी जा सकती है। इसके अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है। राष्ट्रीयकृत उद्योगोंमें मुनाफ़ा कम होनेका यह कारण नहीं कि मूल्य कम है बल्कि यह है कि ऊपरका खर्च अधिक और उत्पादनकी रफ़्तार सुस्त है।

शासन-द्वारा स्थापित किये गये बहुत-से औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उपक्रमोंको यही मालूम नहीं कि उनका उद्देश्य क्या है, इसी-लिए सरकारी उपक्रमों-सम्बन्धी संसदीय समितिने यह सिफ़ारिश की है कि सरकारी उपक्रमकी स्थापना करते समय सरकार उसकी स्थापनाका उद्देश्य भी स्पष्ट रूपमें बताये और साथ ही उसके लक्ष्य, जो उसे प्राप्त करने हैं, की पूर्तिका समय तथा अनुमित लागत भी बताये। ठीक है कि कई बार प्रारम्भमें ही इन सबका विस्तार बताना सम्भव न होगा लेकिन मोटे तौरपर कुछ बातें स्पष्ट की जा सकती हैं और जैसे-जैसे परियोजनामें प्रगति हो, अग्रेतर हिदायतें दी जा सकती हैं। इस बातपर भी जोर दिया गया है कि केन्द्रीय सरकारको चाहिए कि वह उन आँकड़ोंकी पूरी तरह छानबीन करे जिनके आधारपर परियोजना आरम्भ की जा रही है। सरकार-का एक ऐसी एजेन्सीको भी स्थापना करनी चाहिए जो निरन्तर विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रोंके अध्ययन-प्रतिवेदन तैयार करती रहे और संसाधनोंके उपलब्ध होनेपर उनमें-से अधिक उपयोगी क्षेत्रोंके विस्तृत परियोजना-प्रति-वेदन तैयार कर लिये जायें। योजना-आयोगने बड़े उत्साहसे यह सिफ़ारिश की कि सरकारी क्षेत्रके विस्तारके लिए चौथी योजनाके अन्त-र्गत १२००० करोड़ रुपये और मंजूर किये जायें जब कि वह पहले लगायी जा चुकी पूँजी-पर न तो मुनाफ़ा कमा रहा है और न ही उचित मूल्यपर उपभोग-वस्तुएँ उपलब्ध कर रहा है। इस समय ज़रूरत इस बातकी है कि सरकारी क्षेत्रमें प्रत्येक स्तरपर प्रबन्धोंको इतना अच्छा बनाया जाये कि मातृभूमिके भाग्यको बदलकर रख देनेके लिए समाजवाद-की नींव पक्की की जा सके। इसमें कोई शक नहीं कि अगर राष्ट्रको सामूहिक रूपमें अपना विकास करना है तो योजनाओंके अनुसार कार्य करना होगा लेकिन इसके लिए विदेशी सहायता मिलना भी आवश्यक है जो कि इस समय सन्दिग्ध है। हमारे लिए इसके सिवा और कोई चारा नहीं कि हम दूसरे साधनोंसे सहायता प्राप्त करनेकी कोशिश करें जिसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी प्राथमि-कताओंमें आमूल परिवर्तन करें ताकि वांछित फल प्राप्त हो सके।

इस बातकी तो सभी प्रशंसा करते हैं कि भारतीय अर्थ-व्यवस्थामें सरकारी क्षेत्रका विस्तार किया गया और इसे अर्थ-व्यवस्थाका अभिन्न अंग माना गया परन्तु इसके लिए यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी तो ज़रूरी है कि इनका प्रबन्ध ठीक तरह-से चलानेके लिए उपयुक्त व्यक्ति लगाये जायें। अनुभवने साबित कर दिया है कि भारतीय सिविल सेवा तथा भारतीय प्रशासन-सेवाके व्यक्ति, उनके स्वभाव और प्रशिक्षणको देखते हुए, सरकारी उपक्रमोंका प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं चला सकते क्योंकि ये वाणिज्यिक उपक्रम हैं। कई बार सुझाव दिया जा चुका है कि प्रबन्धकोंकी नियुक्ति करनेके लिए पूरी खोज की जानी चाहिए। प्राक्कलन-समितिने इस बातपर ध्यान दिया कि ५४ सरकारी उपक्रमोंमें ८०० उच्च पदोंमें १९०से अधिक पदोंपर केन्द्रीय सरकारके सेवा-निवृत्त अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। इसके अतिरिक्त राज्य-सरकारोंके कुछ पदाधिकारी डेपुटेशन-पर लिये गये हैं जिनकी संख्या प्राक्कलन-समितिको ज्ञात नहीं थी। केन्द्रीय सरकारके ३९ सरकारी उपक्रमोंमें १९६०-६१ में २३० व्यक्तियोंने निर्देशकके २७५ पद ग्रहण कर रखे थे, इनमें १५८ कर्मचारियोंने १९९ पद ग्रहण कर रखे थे और ७२ ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों (नाम निर्देशित) ने शेष ७६ पद ग्रहण कर रखे थे। अकसर यह दलील दी जाती है कि निगमित क्षेत्रसे अनुभवी लोगोंको आकर्षित करना सम्भव नहीं था इसलिए उच्चतम पदोंपर नियुक्तिके लिए सिविल सेवामें-से नियुक्तियाँ करनी पड़ीं। इस समय भी २०० से अधिक पदोंपर भारतीय प्रशासन सेवा तथा अन्य केन्द्रीय सेवाओंके व्यक्ति नियुक्त हैं, जिनके स्थानपर आसानीसे दूसरे लोग नियुक्त किये जा सकते थे। अधिकतर ये लोग सिविल सेवाके पुराने तरीक़ोंसे काम लेते हैं। इस सन्दर्भमें कई बार ऐसे व्यक्तियों-द्वारा, जिनका उपक्रमोंके साथ निकट सम्बन्ध नहीं है, यह सुझाव दिया गया है कि अन्य केन्द्रीय अथवा अखिल भारतीय सेवाकी भी स्थापना की जाये। यह बताया जाता है कि औद्योगिक प्रबन्ध संवर्गके लिए २०० की संख्या नियत की गयी थी और प्रति वर्ष इसमें ५ प्रतिशतकी वृद्धि की जानी थी जिसके हिसाबसे इस समय इसकी संख्या ३०० होनी चाहिए थी परन्तु अभीतक केवल १३० अधिकारी नियुक्त किये गये हैं। इस बातकी भी बड़ी ज़रूरत है कि सरकारी क्षेत्रके उपक्रमोंमें प्रभारी अधिकारियोंके अधिकारोंमें वृद्धि की जानी चाहिए। इस समय बहुत-से नियम बनाकर, जिनमें-से कुछ एक तो काल्पनिक हैं, उनपर कड़े प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। सभी महसूस करते हैं कि वे लोग प्रशासनमें प्रवीण होने चाहिए जो तात्कालिक निर्णय ले सकें, राजनीतिक एवं शासकीय प्रवृत्तिको भाँप सकें, अपने अधीन काम करनेवालोंको प्रेरणा दे सकें ताकि वे अपनी पूर्ण क्षमता और योग्यताके साथ काम को पूरा करें और अपनत्व महसूस करें और अपने कार्यमें गर्व महसूस करें। इनमें ऐसे प्रभावी नेताओंकी ज़रूर होती है जो मानवीय दृष्टिकोणसे समस्याओंको हल करके इन उपक्रमोंका प्रबन्ध ऐसे अच्छे तरीक़ेसे चलायें कि लोग उन्हें लोकतन्त्रात्मक मान्यताओं का सामाजिक न्यायका दूत मानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

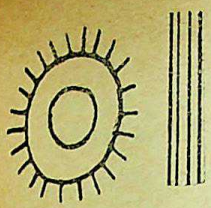

गोष्ठी
(तीन शामें)

सोवियत कविके घर एक शाम •

सोवियत-संघमें मैंने चार महीने तक पैदल-यात्रा की है। सोवियत-संघकी यात्रा करनेका यह अवसर मेरे लिए एक विशेष महत्त्वका अवसर था। जो देश लौह आवरणके पीछे माना जाता है उस देशमें गाँव-गाँवमें पैदल चलकर जाने, उनके अन्तरंग जीवनको निकटसे देखने और आम लोगोंसे खुलकर बातचीत करनेका मौक़ा मिलना कोई साधारण बात नहीं थी। इसलिए सोवियत-संघमें अपने-आपको पाकर मैं विशेष प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। ख़ासतौरसे आरमेनियाके सुप्रसिद्ध साहित्यकार और कवि केबोर्क आमोन दमीजियान-जैसे लोगोंके साथ मिलकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई।

आरमेनिया सोवियत संघका एक महत्त्वपूर्ण गणराज्य है। एक तरफ़ अरारोट पर्वत तथा दूसरी ओर कॉकेसस पर्वत। इन दोनोंके बीच बसा है यह सुन्दर प्रान्त। हम आरमेनियाकी राजधानी येरेवानमें पाँच दिन रहे।

एक शाम भोजनके लिए श्री दमीजियानने हमें आमन्त्रित किया था। उनके घरपर जानेके लिए जिस सड़कसे जाना पड़ता है उस सड़कका नाम है : 'प्रेमियोंका मार्ग'। जब प्रेमियोंके मार्गसे हम गुज़र रहे थे तो सचमुच हमें ऐसा लगा कि यह सड़क यथा नाम तथा गुण है। अनेक युवक-युवतियोंके जोड़े जगह-जगह हमें दिखाई पड़ रहे थे। आरमेनियाके लोगोंकी सुन्दरता तो अनिर्वचनीय है। जब मैं ईरानमें था तो मुझे लगा कि शायद ईरानके लोग सबसे ज़्यादा सुन्दर होते हैं, परन्तु आरमेनियामें आकर मुझे अपनी धारणा बदलनी पड़ी। अब तो सारी दुनियाकी यात्रा कर चुका हूँ और लगता है कि अगर मैंने विश्वकी उत्कृष्ट सुन्दरियोंके कहीं दर्शन किये हैं तो आरमेनियामें ही किये। आरमेनियाकी स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी आँखोंवाली और लम्बे चेहरेवाली होती हैं। उनको आँखोंमें काजल लगानेकी ज़रूरत ही नहीं रहती। श्री दमीजियानके घर जाते हुए एक ऐसी युवती दीख पड़ी जैसी मैंने अपने जीवनमें शायद ही कभी देखी हो। उसके अनुपम सौन्दर्यपर मैं इतना मुग्ध हो उठा कि श्री दमीजियानकी बातोंमें मेरा कोई ध्यान ही नहीं रह पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन सुन्दरता देखने और सराहनेके लिए है, ऐसा सोचकर मैंने अपने मनको सन्तोष दिया। मैं जानता था कि वह सुन्दरता मुझे प्राप्त नहीं हो सकती। उस युवती-जैसा ही सुन्दर एक युवक उसके हाथको थामे हुए खड़ा था। मैंने उन दोनोंके चिरस्थायी प्रेमके लिए मन-ही-मन कामना की।

हम श्री दमीजियानके घर पहुँचे। आर-मेनियाके इस सुप्रसिद्ध कविका घर भी कविता-मय था। हर चीज़ इतने करीनेसे और ढंगसे सजी हुई थी कि ये सारी चीज़ें ही मिलकर एक कविता बन रही थीं। घरकी सजावटमें एक प्रकारका लय था। मेरी नज़र पड़ी उनकी किताबोंकी आलमारीपर। मैंने देखा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी किताबोंका एक पूरा सेट वहाँपर सुशोभित था। जब मेरी आँखें वहाँ अटको रह गयीं तब श्री दमीजियान बोले कि "रवीन्द्रनाथ मेरे प्रिय कवियोंमें-से हैं। मैंने रूसी भाषामें उपलब्ध उनकी हर किताब पढ़ी है।" मेरी नज़र आलमारीसे दूर हटी और शो-केसकी तरफ़ गयी। वहाँ बुद्धकी काँसेकी एक मूर्त्ति दिखाई पड़ी। मुझे आश्चर्य हुआ इस कविकी रुचिपर। कितनी विविधता है उसमें! कवि स्वयं ही बोले, "बुद्धको मैंने अपने यहाँ किसी धार्मिक श्रद्धाके कारण नहीं रखा है, बल्कि उन्होंने अपने जीवनमें शान्तिका तथा मानवताका जो विचार प्रकट किया उसके प्रति मेरा विशेष आकर्षण है। मुझे लगता है कि साहित्य और विज्ञान दोनोंकी रक्षा तभी हो सकती है जब दुनियामें युद्ध न हो। बुद्धने शान्तिके प्रति अपनी जीवन-निष्ठा लगायी—यही मेरे लि आकर्षणकी बात है।"

हम लोग भोजनकी टेबलपर बैठे। श्री दमीजियानको यह ज्ञात ही था कि हम शाक हारी हैं, इसलिए पूरे परिवारके लिए शाकाहा भोजन बनाया गया था। सोवियत संघ हमारे लिए यह प्रथम अवसर था जब कि हम किसी परिवारमें भोजन कर रहे हों। वह एक मनस्वी कविके घरपर। श्री दमीजियान को अगर नमूना मानकर देखें तो ऐसा लग है कि रूसमें कवियों और साहित्यकारोंकी स्थिति बहुत अच्छी है। क्योंकि श्री दमीजियान पूरी तरहसे अपनी रचनाओंपर ही आज विकाके लिए निर्भर हैं। मैंने इस सम्बन्ध उनसे पूछताछ भी की तो वे बोले, "निस्स ही सोवियत संघमें लेखकों और कलाकारोंकी स्थिति बहुत अच्छी है। हमारे यहाँ साहित्य कार और कलाकार काफ़ी आदरकी दृष्टि देखे जाते हैं। किताबोंपर रायल्टी भी अच्छ मिलती है और अगर व्यापक पैमानेपर किता बिके तो सहज ही ज़्यादा आर्थिक लाभ होत है। सभी प्रकाशन संस्थाएँ सरकारी हैं किताबोंपर मुनाफ़ा कमानेवाला कोई व्यापा नहीं, इसलिए हिसाब-किताबमें कोई गड़बड़ पैदा नहीं होती! लेखकका शोषण करके बचाने-जैसी बात हम सोच भी नहीं सकते। श्री दमीजियानकी यह बात सुनकर हिन्दुस्तानके साहित्यकारकी भी-याद आ उसे व्यवसायी प्रकाशकोंके शोषणका किस त शिकार होना पड़ा है!

"सोवियत साहित्यकारोंमें आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक कौन है ?" मैंने पूछा।

"निश्चय ही शोलोखोव।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मुझे आंचलिक और प्राकृतिक जीवनसे बड़ा लगाव है। शोलोखोवने अपनी रचनाओंमें आंचलिकताका जो उत्कृष्ट दर्शन कराया है, उसपर मैं विभोर हो उठता हूँ।"

"आपके यहाँ लेखन और वाणीपर बन्धन तो नहीं ?"

"है। पर लेखन और वाणीकी उद्दण्डता-पर प्रतिबन्ध है, स्वतन्त्रतापर नहीं। मुझे कभी किसी प्रतिबन्धका सामना नहीं करना पड़ा। साहित्य-सर्जन और लेखनमें हमलोग नयेसे नये प्रयोग करते हैं। मैं इतना जानता हूँ कि हमारे बारेमें बाहर काफ़ी भ्रान्तियाँ फैलायी जाती हैं, क्योंकि सोवियत-सरकारने अश्लील, अभद्र, उत्तेजनापूर्ण साहित्यपर प्रतिबन्ध लगाया है। जिस तरहका साहित्य आप पेरिस, लन्दन, बम्बई आदि शहरोंकी फुटपाथोंपर पायेंगे, वैसा साहित्य हमारे यहाँ नहीं मिलेगा।"

श्री दमीजियानके इस कथनपर मैंने पूछा, "राजनैतिक साहित्यके बारेमें यह स्वातन्त्र्य किस सीमा तक है ?"

"अन्य देशोंमें एक लेखक राजनीतिमें जिस तरह पड़ता है उस तरह हम नहीं पड़ते। यहाँ एक लेखक साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं रचनात्मक दृष्टिसे सोचता-लिखता है। कुछ देशोंमें लेखक राजनीतिज्ञ पहले है और लेखक बादमें। हम इस तरह नहीं चलते। हम राजनीतिको इतना महत्त्व क्यों दें कि हर क्षेत्रके लोग उसमें दखल दें। जनतामें एक मिनिस्टरसे ज़्यादा कवि और साहित्यकारका सम्मान होना चाहिए। पर यह भी मैं आपको बता दूँ कि सोवियत-साहित्यकार राजनैतिक सुधार और संशोधनके लिए भी क़लम उठाते हैं।"

श्री दमीजियानकी पत्नी भी बड़ी स्नेह-शील थीं। उनका पुत्र स्कूलमें पढ़ता है। अपने पुत्रके बारेमें चर्चा करते हुए कवि महो-दयने बताया, "हमें बच्चोंको पढ़ाने-लिखानेकी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। पहली कक्षासे लेकर ऊँचीसे ऊँची पढ़ाई हमारे यहाँ मुफ़्त होती है। हाई स्कूल पास करनेके बाद तो प्रत्येक विद्यार्थीको सरकारकी तरफ़से इतनी छात्रवृत्ति मिलती है कि वह अपना खर्च अच्छी तरह चला सके। ज़्यादातर विद्यार्थी हाई स्कूलके बाद अपने माँ-बापके साथ नहीं रहते। कॉलेजके होस्टलमें रहते हैं। अगर अपने ही शहरमें पढ़ते हों तब भी वे होस्टलमें रहना ही ज़्यादा पसन्द करते हैं और रविवारके दिन माँ-बापसे मिलने घर चले जाते हैं। हमें बच्चोंकी चिन्तासे सरकारने मुक्त कर दिया है।" उसके बाद श्री दमीजियानने अपने वृद्ध माता-पितासे भी परिचय कराया। "हमारे देशमें पचपन सालके बाद प्रत्येक स्त्रीको और साठ सालके बाद प्रत्येक पुरुषको सरकार बुढ़ापेका पेन्शन देती है।" श्री दमीजियानने कहा, "मेरी पत्नी भी काम करती है। रूसमें लगभग ८० प्रतिशत स्त्रियाँ काम करती हैं। वे घर आकर चौके, चूल्हेको भी सँभालती हैं। इस तरह मेरा घर पूरी तरह स्वावलम्बी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर कभी किसी साल मेरी पुस्तक कम भी बिके तो भी मुझे दिक़्क़त आनेवाली नहीं है।" श्री दमीजियानका यह वर्णन सुनकर मैं आश्चर्य करने लगा। एक नयी समाज-व्यवस्थाका नमूना देखनेको मिला। इस तरह परिवार केवल स्नेहके आधारपर इकाई क हुआ है। आर्थिक सम्बन्धोंका महत्त्व ज्या नहीं है।

—सतीश कुमा

नयी पीढ़ीके मंचपर मुक्तिबोध

"मुक्तिबोधकी ट्रैजडीको लेकर हमारे मनमें आक्रोश है, जो उचित एवं अनिवार्य है क्योंकि वह एक विशेष समाज-व्यवस्थाके प्रति है। तार सप्तकके कवि नेमिचन्द्र जैन मुक्तिबोध-समारोहमें बोल रहे थे, "मुक्तिबोध जीवनको गहराईसे प्यार करते थे। उनके मनमें निवृत्तिकी भावना नहीं थी।" नेमिचन्द्र जैन मुक्तिबोधके प्राचीनतम घनिष्ठोंमें हैं, शायद इसीलिए वे उनकी ट्रैजडीके प्रति अपनी सफ़ाई-सी देते लग रहे थे। उन्होंने मुक्तिबोधको एक मठ बनाये जानेका विरोध किया। उनके अनुसार मुक्तिबोधने नयी कविताको रूपबन्धों, अर्थों तथा भाषाको नयी दिशा प्रदान की है। मुक्तिबोधका काव्य आजकी उपलब्धि है लेकिन कलका मार्गदर्शक काव्य नहीं है।

और इस बातसे सहमति प्रकट की श्रीकान्त वर्माने—"मुक्तिबोधकी सम्पूर्ण कविता नहीं जियेगी। उनके कुछ बिम्बोंपर महाकाव्य रचे जा सकते हैं और सैकड़ों काव्य-बिम्बोंपर शोध भी होंगे। साथ ही जो लोग इनके काव्यको दुरूह या ग़ैर-रूमानी बताते हैं वे उचित नहीं कहते। रूमानियतका अर्थ गिरजाकुमार माथुरकी कविताएँ नहीं होतीं 'दुरूहता' के स्थानपर उनके काव्यके लि 'जटिलता' का उपयोग अधिक संगत होगा मुक्तिबोध एक आत्मनिर्वासित कवि थे उनकी कविता उनके जीवन और मृत्युसे जु है।" इससे पूर्व धनंजय वर्माने मुक्तिबोध काव्यको दुरूह बताया था।

"मुक्तिबोधकी कविता मृत्युकी कवि नहीं है," हरिशंकर परसाईने श्रीकान्तजी बातको स्पष्ट किया, "उनकी कविता मृत्यु लड़कर परास्त करनेकी कविता है। 'अँधेरे उनकी लम्बी कविता इसी संघर्षकी ओ संकेत करती है। सच तो यह है कि मुक्ति बोधके जीवनका हर क्षण सृजन और ईमा दारीका क्षण था।"

पाँच वर्ष पूर्व भोपालके इसी सदर मंजि में साहित्यकार-समारोह हुआ था। मुक्ति बोधसे यहाँकी जनताका प्रथम और प परिचय। और आज वहीं मेहराबोंसे घि हॉलके नीले परदेसे टिका, बीचमें उ चित्र और देशके लगभग २५ तरुण साहि कारों तथा साहित्यप्रेमियोंकी यह सभा"

मुक्तिबोधके व्यक्तित्वको चन्द्रकान्त दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताले और प्रमोद वर्माने अपने-अपने ढंगसे प्रस्तुत किया।

"अहम्के केन्द्रके चारों ओर बिखरी अराजकता और अराजकताके चारों ओर विचारोंका फ़ैंसिंग....." चन्द्रकान्त देवतालेने मुक्तिबोधका काव्य-व्यक्तित्व प्रकट किया। और प्रमोद वर्माने त्रिकोणात्मक व्यक्तित्वकी व्याख्या इस प्रकार की—"साहित्य उनकी आधार-भुजा थी तथा राजनीति और विज्ञान उनकी वे भुजाएँ थीं जो एक शीर्षपर जाकर मिल जाती हैं।"

धनंजय वर्माने मुक्तिबोधके काव्यकी आलोचनाके लिए आजकी भाषाको सतही बताया मुक्तिबोधने स्वयं, उनके अनुसार, अभिव्यक्तिके सारे खतरे उठाये हैं। उनका काव्य जटिल है लेकिन जीवनके समानान्तर चलनेवाली कविता विकासके साथ-साथ जटिलता भी पायेगी।

राजनांदगाँवके एक युवा अँगरेज़ी-व्याख्याता श्रीपार्थसारथीने कहा—"कौलरीज़ कविके साथ योग्य समीक्षक भी था क्योंकि वह रचना-प्रकियाको समझता था। इसी प्रकार मुक्तिबोधके सौन्दर्य शास्त्रका इसलिए महत्त्व है क्योंकि वह एक सिद्धहस्त कविके-द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इनके-द्वारा अनुभव, अनुभवका फ़ैन्टैसीमें रूपान्तरण तथा शब्दोंमें अभिव्यंजना—इन तीनों स्तरोंके प्रत्यक्ष रूपसे वे परिचित थे।"

शायद समारोहमें कुछ लोग आना नहीं चाहते थे और कुछ लोग चाहकर भी आ नहीं सके। ऐसे ही साहित्यकारोंमें-से एक

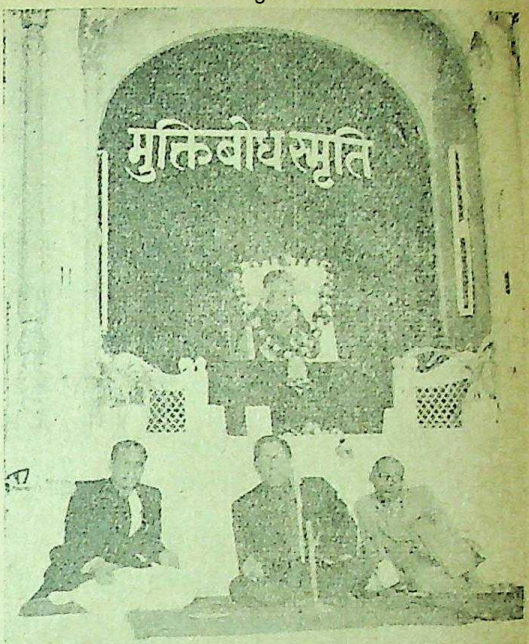

रामकृष्ण श्रीवास्तवकी अनुपस्थितिमें उनका लेख भगवत रावतने पढ़ा। उनके अनुसार: "मुक्तिबोधका काव्य आज अचानक नयी पीढ़ीके सामने धर्मग्रन्थके समान हो उठा है। उधर कुछ पुराने हस्ताक्षर हैं जो कानाफूसी कर रहे हैं कि मुक्तिबोध महज़ एक शोर है, एक हल्ला है।" लेखमें आगे कहा गया था कि मुक्तिबोधकी कविताएँ न तो आत्मपरक हैं—जैसा श्रीकान्त वर्माने कहा है—और न प्रयोगपरक—जैसा शमशेर बहादुर सिंह कहते हैं—उनकी कविता यथार्थपरक ही हैं।

डॉ० प्रेमशंकरने मुक्तिबोधकी प्रसिद्ध 'नयी कविताका आत्मसंघर्ष' पुस्तकको मार्क्सवादी सौन्दर्य-शास्त्रकी भूमिका बताया। उनके अनुसार मुक्तिबोधके काव्यसे पूर्व उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैचारिक पीठिका जानना महत्त्वपूर्ण है।

नयी कविताकी उपलब्धि और सम्भावनाएँ—अन्तिम और तीसरी गोष्ठी सन्ध्या ५-३०पर प्रारम्भ हुई। दुष्यन्तकुमारने अपने पहले निबन्धसे ही सारी गोष्ठीको अपने चारों ओर लपेट लिया : "नयी कविता उपलब्धिसे अधिक सम्भावनाका काव्य है, परिस्थितियोंकी अजीबो-ग़रीब परम्परा इस काव्यको मिली है। सन् ५० के पास जो कुछ प्राप्त हुआ वही इस कविताकी उपलब्धि है और अब तो मात्र सम्भावनाएँ ही शेष रह गयी हैं।" शायद यह निबन्ध-लेखकका अपने बारेमें भी मत था।

जगदीश चतुर्वेदीको 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' नयी कविताकी उपलब्धि प्रतीत हुई और सम्भावनाओंमें प्रयाग शुक्ल और विनोद शुक्ल-जैसे अनेक कवि। मुक्तिबोधके बारेमें चतुर्वेदीने कहा कि वे आगेके कवि हैं।

प्रयाग शुक्लने मुक्तिबोधको अधीरात्माका कवि कहा था। नयी कविताकी उपलब्धि बताते हुए उन्होंने कहा कि अब नयी कविताको 'क्षण' या 'लघु मानव'-जैसी चमत्कारिक बातोंसे मुक्ति मिल गयी है और भविष्यकी सम्भावनाएँ स्पष्ट हो गयी हैं। धनंजय वर्माने कहा कि श्रीकान्त वर्माके अनुसार जिस साहित्यिक विधाका नामकरण हो जाता है वह मर जाती है अतः नयी कविता मर गयी है, उसकी सम्भावनाओंका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। श्रीकान्त वर्मा शायद इससे सहमत नहीं थे, क्योंकि हर मरी हुई साहित्यिक विधा विश्वविद्यालयोंमें पहुँच जाती है। गंगाप्रसाद विमलने मुक्तिबोधको भीतरी संसारमें जीनेवाला बताया। यही भीतरी संसार उनकी कविताओंमें अपनी भयानक विद्रूपताओं और भयानकताओंमें प्रकट हुआ है। नव गीतपर दुष्यन्तकुमारके प्रहारको चुनौती मानकर ओमप्रभाकरने कहा कि हर नयेके सामने प्रश्नचिह्न लगाये जाते हैं। उन्हें नकारा जाता है। नई कविताकी उपलब्धि कोई एक कवि या पुस्तक नहीं हो सकती और सम्भावनाओंका विस्तार अनन्त है। ऐसे ही कुछ विचार नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी, नईम, ओमप्रभाकरने प्रस्तुत किये।

मुक्तिबोधके व्यक्तित्वपर प्रभागचन्द्र शर्मा एक ऊँचाईसे बोल रहे थे। मुक्तिबोधके जीवन की ग़रीबी, कटुता और संघर्षको उन्होंने मिथ वत् देखा था। तार सप्तककी प्रारम्भिक योजनामें वे उनके साथ रहे थे। जिस ग़रीब घर और वातावरणमें उन्होंने जीवन बिताया था उसके लिए वे दुःखी हुए लेकिन शरद जोशीने उनकी इस बातका विरोध किया। मुक्तिबोध जीवन-भर ग़लीज़ घर और गन्दी ज़िन्दगीमें नहीं जिये। जीवनलाल वर्मा विद्रोही नागपुरके साथी और मित्रने उन्हें बीड़ी छो बताया। लगे हाथ ऐसे आयोजनोंपर छींट भी मार दिया। 'मुक्तिबोध एक नाम है, जप सको तो जपो' कविता पढ़ी। शरद कोठारी और हनुमान वर्माने मुक्तिबोधकी पोड़ाको सामने रखा। घनश्याम मधुपने विद्रोहीके आरोपका खण्डन करते हुए कहा, "मुक्तिबोध के ट्रैजडीके उत्तरदायी हम यानी नयी पीढ़ी वाले नहीं उनके साथी हैं, जिन्होंने उनको उ हालतमें देखा और चुप रहे! हमारे सा उनका काव्य है जो वास्तविक रूपसे श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम उसके आधारपर ऐसे आयोजन मना रहे हैं।" श्री अक्षयकुमारने मुक्तिबोधकी एक पुस्तकपर लगाये गये सरकारी प्रतिबन्ध उठा लेनेका सुझाव दिया। और श्रीकान्त वर्माने मुक्तिबोधके व्यक्तित्वका सांस्कृतिक धरातल बताते हुए उन्हें आत्मनिर्वासित व्यक्ति कहा।

सम्पूर्ण समारोहमें दो प्रकारकी ध्वनियाँ तैरती रहीं। एक, वह जो अपनेको मुक्तिबोध-की ट्रैजडीसे जुड़ा पाती थी लेकिन अब उनके यश-कीर्तिसे चकित थी। दूसरी, वह जो मुक्तिबोधकी ट्रैजडीके प्रति आक्रोशसे भरी और उनके काव्यके उचित मूल्यांकनकी माँगसे भरी थी।

—घनश्याम मधुप

साहित्यके आँगनके पार प्रेरणाके द्वार • • •

रात धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। हम-लोग प्रतिक्रमण कर आचार्य श्री तुलसीके उप-पादमें बैठे थे। साहू-परिवारके सदस्य भी बैठे थे। बात चल रही थी नैतिक शिक्षणके विषय-पर। इतनेमें दिनकरजी, लक्ष्मीचन्द्र जैन और अक्षयकुमार जैन भी वहाँ आये। महिलाओंमें भी श्रीमती रमा जैन, श्रीमती इन्दु जैन, श्रीमती कुन्था जैन आदि थीं। और इस उप-स्थितिने देखते-देखते एक अनायोजित परि-चर्चाका रूप ले लिया। दिनकरजीने चर्चाका प्रारम्भ करते हुए कहा, "साहित्यका मूल स्रोत क्या होना चाहिए? कुछ लोग इसे बुद्धि-द्वारा प्रेरित मानते हैं। उनके विचारसे इस प्रवाहमें यदि संस्कृति, समाज, धर्म और पर-म्परा टूटती है तो उसकी परवाह नहीं करना चाहिए। मैं समझता हूँ, इसी विचारने आज साहित्यको इतना नीरस और लक्ष्यहीन बना दिया है कि अब वह निष्प्राण-सा होता जा रहा है। कुछ भारतीय साहित्यकार भी अब वही स्वर अलापने लगे हैं। पर मैं समझता हूँ, यह गति निश्चय ही मृत्युकी ओर है। इस स्थितिमें, प्रश्न पैदा होता है, आखिर साहित्य-को प्रेरणा कहाँसे मिलनी चाहिए?"

मुनिश्री नथमलजीने इसका समाधान देते हुए कहा, "साहित्यकी मूल प्रेरणा है—आत्म-दर्शन। बिना आत्मदर्शनके व्यक्ति जो कुछ लिखता है, वह एक प्रकारसे निरर्थक है। आज भी जो साहित्य दीर्घजीवी है, वह प्राय: ऐसे ही व्यक्तियों-द्वारा लिखा हुआ है, जो ऋषि—द्रष्टा थे। इसीलिए उन्होंने ज्ञानको भी योग कहा है।

बीचके कुछ कालसे दर्शनको बुद्धिका पर्याय माना जाने लगा है। पर वास्तवमें यह अर्थ भ्रामक है। दर्शनका अर्थ है, प्रत्यक्ष अनु-भूति। अनुभूति और बुद्धिमें बड़ा अन्तर है। बुद्धि इन्द्रिय और मनपर-से होकर चलती है। इसीलिए जो ज्ञान शब्दसे पैदा है, वह सन्दिग्ध तथा भ्रामक भी हो सकता है।

ज्ञानके कई प्रकार हैं। कुछ ज्ञान इन्द्रियों-से पैदा होता है। कुछ ज्ञान श्रुतके द्वारा पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है पर उन्हें निर्दोष नहीं माना जा सकता है। निर्दोष ज्ञान तो केवल ज्ञान ही है। वह आत्मदर्शनसे प्राप्त होता है। उसके प्राप्त होने-पर मति, श्रुत तो स्वयं ही लब्ध हो जाते हैं। इसीलिए इन्द्रिय या श्रुतसे पैदा होनेवाले ज्ञान-को मैं परिपूर्ण नहीं मानता। यद्यपि कुछ लोगोंकी शब्दमें बहुत बड़ी आस्था है। मेरी भी शब्दमें आस्था है। पर अनुभूतिके बिना शब्द अर्थ-शून्य है। प्राचीन साहित्यमें एक पद्य आता है :

अन्तः शून्यो बहिः शून्यः, शून्यकुम्भ इवाम्बरे।
अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः, पूर्ण कुम्भ इवार्णवे॥

आकाशमें स्थित कुम्भ यद्यपि कुम्भ तो है पर वह अन्दरसे भी शून्य है तथा बाहरसे भी शून्य है। इसीलिए उसे शून्य कुम्भ कहा जाता है। समुद्रमें स्थित कुम्भ अन्दरसे भी भरा हुआ होता है तथा बाहरसे भी भरा हुआ होता है, इसीलिए उसे परिपूर्ण घट कहा जाता है।

इसी प्रकार जो शब्द अनुभूतिसे रिक्त होता है, वह रिक्त घटके समान अपने-आपमें ही शून्य है।

साहित्य हमारे विचारोंका प्रतिबिम्ब है। क्योंकि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाये तो हमारे विचार भी आकार ग्रहण करते हैं। इसीलिए जब हम विचार करते हैं तो विचारके साथ-साथ हमारी जिह्वामें भी तदनुकूल स्पन्दन होता रहता है। क्योंकि विचार शब्दात्मक ही होते हैं। दर्शन-शास्त्रमें दो शब्द आते हैं—एक अन्तर्जल्प तथा दूसरा बहिर्जल्प। बहिर्जल्प अर्थात् वाणी। अन्तर्जल्पमें यद्यपि वाणी तो हमारे साथ नहीं होती फिर भी हमारी जिह्वा-में स्पन्दन होता रहता है। इसीलिए विचार-शून्य अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए योगी लोग बहिर्जल्पके निरोधके साथ-साथ अन्तर्जल्पके निरोधका भी अभ्यास करते हैं। वे अपनी जिह्वाको तालुपर ले जाकर बाँध देते हैं। इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं। वह आत्मदर्शनकी [illegible] अवस्था है।"

इन्दु जैनने पूछा—"उस अवस्थामें जब विचार-शून्यता प्राप्त हो जाती है, तब उस साहित्यका कर्म कैसे पैदा हो सकता है?"

मुनिश्रीने उत्तर दिया—"यद्यपि [illegible] अवस्थामें बाह्य रूपसे हम शून्य हो जाते पर आन्तरिक रूपसे हमारा चैतन्य इतना प्रखर हो जाता है कि उस अवस्थामें होनेवाले अनुभव अपने-आपमें अत्यन्त संवेदनशील हो जाते हैं। उसीको प्रातिभ ज्ञान कहते हैं। आचार्य यशोविजयजीने उस अवस्थाको इस प्रकार व्यक्त किया है :

योगजा दृष्टिजनितः स तु प्रातिभ संज्ञितः।
संध्येव दिनरात्रिभ्याम् केवलश्रुतयोः पृथक्॥

दूसरे शब्दोंमें हम इसे योगि-ज्ञान [illegible] सकते हैं। वह शब्द-ज्ञानसे भिन्न है। किसी कहा है—श्वो मे भ्राता आगमिष्यति। मेरा भाई आयेगा। उससे पूछा गया—तुम्हें [illegible] उसका संवाद मिला है? वह—नहीं, [illegible] तो नहीं मिला है पर मुझे ऐसा प्रतिभान हो है। यह ज्ञान प्रातिभ ज्ञान है। वह आत्मदर्शन से ही प्राप्त हो सकता है। आजका मनोविज्ञान भी तो मनकी तीन अवस्थाएँ मानता है—चेतन मन, अचेतन मन तथा अतिचेतन मन। जिन कार्योंको हम जान-बूझकर करते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतन मनकी देन है। हमारे अवचेतन मनकी देन हैं। पर इससे भी ऊपर अतिचेतन—शून्यावस्थामें हमारे मनमें जो विचार पैदा होते हैं, वे वास्तविक अनुभूतिजन्य विचार हैं। अतः अतिचेतन मनको जागृत करना साहित्यकारका प्रथम धर्म होना चाहिए। उसी अवस्थामें वह साहित्यकार हो सकता है।"

लक्ष्मीचन्द्र जैनने पूछा, "पर उस अवस्थामें अभिव्यक्तिकी अपेक्षा क्यों रह जाती है?"

मुनिश्रीने कहा, "जबतक देह है, तबतक उसके धर्मोंसे विमुख नहीं हुआ जा सकता। अवचेतन मनकी चरम सीमा विदेह-स्वरूप है। पर जबतक उसे प्राप्त नहीं कर लिया जाता, तबतक देह धारण करना ही पड़ता है। कुछ लोग अन्तःपूर्ण तो होते हैं पर बहिःपूर्ण नहीं होते। अर्थात् उनके पास शब्द नहीं होते। इसीलिए वे अपनी अनुभूतिको व्यक्त नहीं कर पाते। मैं शब्दका विरोधी नहीं हूँ पर मेरे विचारसे अनुभूति-शून्य शब्द निष्प्राण हैं। अतः जिन द्रष्टाओंके पास अन्तःपूर्णता और शब्द दोनों होते हैं, उनके मनमें साहित्यकी प्रेरणा स्वतः जागृत होती है और वही साहित्य वास्तवमें उत्कृष्ट कोटिका साहित्य होता है।"

—मुनि सुखलाल

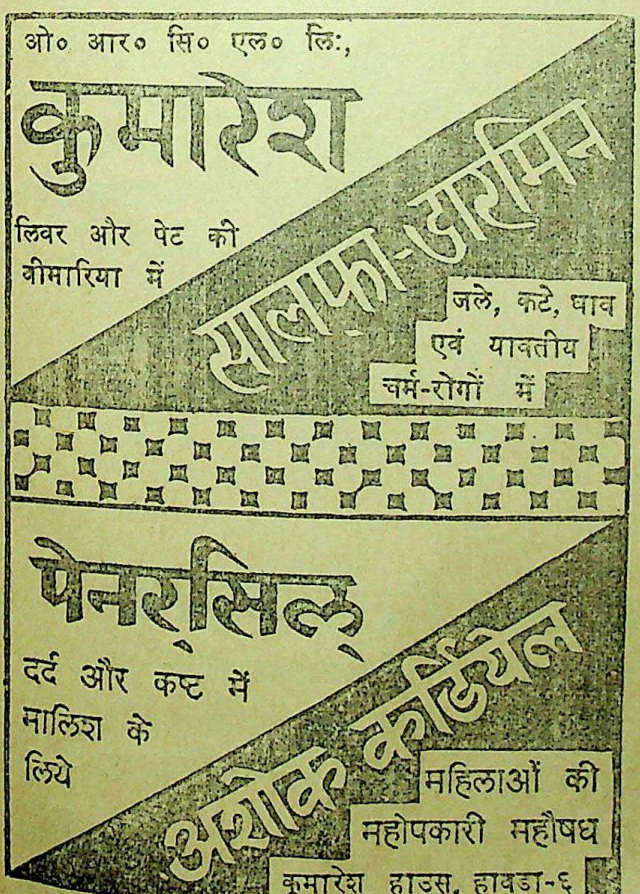

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा हिन्दीके
समीक्षा-साहित्यमें अद्वितीय और
महत्त्वपूर्ण नयी प्रस्तुति

विवेक के रंग

स्व० डॉ० देवीशंकर अवस्थी

द्वारा

संकलित-सम्पादित

• •

'विवेकके रंग' अर्थात् महत्त्वपूर्ण समकालीन कृति साहित्यपर प्रकाशित
गणनीय समीक्षाओंका संकलन। हिन्दीमें अपने प्रकारकी पहली कृति
प्रौढ़ और प्रभावपूर्ण। इसमें जिन हिन्दी पुस्तकोंकी समीक्षाएँ
संकलित की गयी हैं वे गत १५ वर्षोंके लेखनका प्रतिनिधित्व करती
हैं, और समीक्षाएँ तो, एक पुस्तकपर एक, चुनी वही गयी हैं जो
पुस्तककी आन्तरिक सत्ताका उद्घाटन करती हों या फिर समीक्षा
सिद्धान्त या पद्धतिकी दृष्टिसे कोई नयी बात प्रस्तुत करें। प्रारम्भमें
देवीशंकरजीकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी सम्मिलित है। साहित्यके
अध्येताओं और प्रत्येक पुस्तकालयके लिए अनिवार्य सन्दर्भ-ग्रन्थ।

मूल्य सात रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

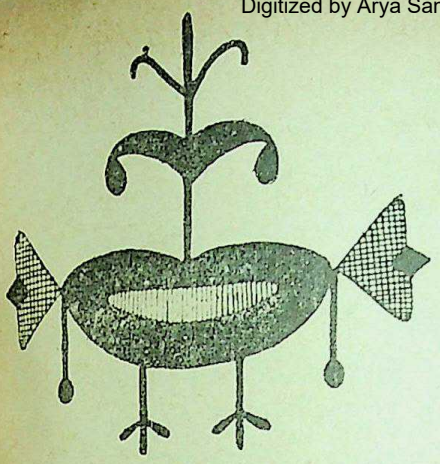

घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश

स । मी । क्षा

० ० ०

१९६५ की समाप्तिपर जब कि 'अज्ञेय' अपने बाईस वर्ष पूर्व 'तार-सप्तक' में प्रकाशित वक्तव्यमें-से कुछ भी वापस लेना आवश्यक नहीं समझते तथा उसे काव्यका चिरन्तन प्रश्न माने बैठे हैं (ज्ञानपीठ-पत्रिका, दिसम्बर, ६५), और जब कि स्थितियाँ पूर्ववत् नहीं रही हैं, तब कविताके विघटित मूल्योंपर बुद्धि-जीवियों द्वारा आधुनिकताके सन्दर्भमें पर्याप्त दायित्वपूर्ण चर्चाएँ अवश्य कुछ मानी रखती हैं। 'तार-सप्तक' के ही एक विशिष्ट कवि नेमिचन्द्र जैन 'सप्तकों' के पुनर्मूल्यांकनके प्रश्नपर जब कि स्वयं 'अज्ञेय' को एक प्रकाशकसे अधिक हैसियत नहीं देते (ज्ञानपीठ पत्रिका, नवम्बर, ६५) तथा 'नयी कविता' के ६०-६१ वाले अंकमें डॉ० जगदीश गुप्त-द्वारा नकारी गयी 'अज्ञेय' के 'चरण-चिह्नोंकी अनुवर्तिनी' को 'प्रारम्भ' में आकर पुनः एक अर्थवत्ता दी गयी है, तब बाईस वर्ष पूर्वकी मान्यताओंके दुराग्रहमें अर्थवान शब्द-संवेदनाओंकी क्या सार्थकता रह जाती है ? इसी वर्ष नयी कवितासे आगेकी स्थितियोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया तथा 'महानके गम्भीरकी अपेक्षा लघुकी अगम्भीर गम्भीरताको अधिक श्रेयकर माननेका आग्रह' सामने आया। इसी सिलसिलेमें 'ताजी कविता' के अर्थमें 'इन्वालव्ड क्रियाशील उदासीनता' तथा 'आजकी संवेदनामें शरारतपूर्ण सह-संयोजनकी आवश्यकता' एवं शब्द और अर्थ दोनोंके विलुप्त होनेकी स्थितिमें कविताके लिए भाषाके रूढ़ आभा-मण्डलसे इतर 'नंगी भाषा' की उपादेयताके प्रश्न पर्याप्त उचित ढंगसे उठाये गये हैं, (देखिए लक्ष्मीकान्त वर्माका लेख, क–ख–ग, जुलाई, ६५)। प्रकट है, वर्तमान परिस्थितियोंके द्वन्द्वमय सम्बन्धोंमें आजका कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयंको निराधृत एवं अपनी अन्तरंग अनुभूतियों और जिज्ञासाओंके समाधानके लिए विज्ञानके वृत्त भी अपर्याप्त महसूस करता है। उसकी काव्याभिव्यक्ति ऊँचाईसे फेंके गये जल की तरह विकेन्द्रित हो जाती है। ज़ोरसे मारे गये मिट्टीके ढेलेकी तरह बिखरकर वह एक ऐसी अपरूपता ग्रहण कर लेती है कि यकायक उसका समूचा बाह्य 'एब्सर्ड' लगता है। लेकिन यह एक सचाई होती है और इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि ऐसी मनःस्थिति एक प्रकारका जटिलताओंसे किया जानेवाला युद्ध है। कविता इस संघर्षमें, वस्तुतः नये आयामोंकी तलाशमें, शब्दोंकी महत्त्वपूर्ण सत्तासे परे चली जाती है। तब निश्चय ही एककी अर्थवत्ता दूसरेके लिए निरर्थक होती है; क्योंकि युग-सम्पृक्त प्रश्न और उत्तर उसका आकाश छूनेमें असमर्थ होते हैं। कविता यहाँ नयी दिशाओंमें विघटित आधारोंकी खोजमें अत्यधिक व्यक्तिनिष्ठ हो उठती है। विकृतिके सम्मोहनमें उसका भटक जाना भी सम्भाव्य है। भटकावकी यह स्थिति इस वर्षकी कुछ कविताओंमें यत्र-तत्र देखी भी गयी—भूखी पीढ़ीकी औघढ़ अनुकृतिमें अथवा वाद स्थापित करनेकी यशेष्णामें, नकेनवादकी भूमिसे सम्प्रेषित, 'लिंग-वादलमोतवाद'की घोषणामें। संयत प्रयत्नोंके अन्तर्गत अकविताका आग्रह भी इसी वर्ष उन दिनों प्रखर हुआ जब कि हिन्दीके वरेण्य कवियोंने युयुत्सु-काव्यकी आवश्यकताको समवेत् स्वरमें उद्घोषित किया और शीघ्र ही अपनी घोषणामें अन्धादर्शोंको नये कवियोंके हाथों परास्त होते हुए भी देखा। भाषा, शिल्प और वस्तु तीनोंकी घायल दिशाओंमें व्याप्त आकाक्षा की बुद्धि-संगत शोध एवं परिवर्तित जीवन-मूल्योंके मध्य लक्षित गत्यात्मक आस्थाओंके प्रति तर्कपूर्ण चर्चाओंके इस सन्धिवर्षके समाप्त होते-होते मेरे बुकशेल्फ़में लगभग चौदह कविता-संग्रह तथा उनचालीस कवियोंका एक छोटा संकलन—'लय-१' एकत्र हो गये। समीक्षाकी दृष्टिसे (गीत-संग्रहोंको छोड़कर) इन संग्रहोंकी कविताएँ कुछ प्रवृत्तियों, आत्म-प्रवंचनाओं और कुण्ठाओंके विवेचनार्थ अपर्याप्त नहीं लगतीं।

पौराणिक आस्था एवं मृत्यु-भयसे उबरनेकी व्याकुलता :

मृत्युको बन्दी बनानेवाले यूनानी दन्तकथाओंके सिसिफ़सको कामूने दो दशक पूर्व एक नया सन्दर्भ दिया था। पौराणिक प्रतीकोंको अति-निकताकी रौमें मध्ययुगीन वृत्तिसे सम्बद्ध माननेवालोंके लिए यह एक करारी चोट थी, क्योंकि कामूने 'दि एब्सर्ड हीरो'के रूपमें सिसिफ़सको बीसवीं शताब्दीकी अनास्थाओंके बीच निरर्थकताके द्योतक नायकके रूपमें प्रतिष्ठित किया, सिसिफ़सकी यन्त्रणा वर्तमान व्यक्ति-संघर्षका प्रतीक समझी गयी। इसीलिए वह निरर्थकताके सन्दर्भमें उभरकर आयी थी। इसलिए सार्थकताके ख़यालसे कवि 'बच्चन' की नज़रमें एक भारतीय प्रतीक अर्थवान् हो उठा—हनुमानके रूपमें, जिसमें कि उन्हें [illegible] ओजका अनुभव हुआ। दोनों प्रतीकोंमें [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र चट्टान उठानेका है जिसे सिसिफ़स और हनुमान दोनों उठाते हैं। एक उसे निरन्तर ढोता है और दूसरा उसे उठाकर सार्थकताको अर्थ प्रदान करता है। दोनों प्रतीकोंके निमित्त 'दो चट्टानें तथा अन्य कविताएँ' संकलनमें (राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली) 'सिसिफ़स बरक्स हनुमान' शीर्षक लम्बी कवितामें 'बच्चन' अपनेको 'विचारोंकी प्रच्छन्न धारा—जो पूर्व-पश्चिम सबको लगभग एक ही तरह भिगोती है'—से प्रभावित पाते हैं। लेकिन, जैसा कि 'बच्चन'जीके साथ अकसर होता है, आधुनिक अभिव्यंजनाओंमें उनके 'अवचेतन अवस्थामें पड़े संस्कार प्रबल हो उठते हैं' और कवितामें पुराने रंग भरने लगते हैं। यह कविता अवश्य ही एक अच्छी रचना साबित होती यदि संस्कारोंकी जकड़से 'बच्चन' मुक्त रह पाते। वर्णनको विस्तार न देकर मात्र वैचारिक सम्पुंजनको काव्यपरक केन्द्रीय-संवेग दिया गया होता तो प्रतीकोंकी शक्तिमें अधिक गहराई आ जाती (मुझे इस सम्बन्धमें, संयोग-वश, कुमार विकलकी 'सिसिफ़ससे' शीर्षक कविताका स्मरण हो आता है)। आवश्यक नहीं था, कवितामें यह बताया जाना कि सिसिफ़स कहाँ पैदा हुआ, उसका पिता अथवा चचिया ससुर कौन था अथवा यह बताया जाना कि उसकी सगाई एटलसकी कन्यासे हुई थी। मुख्य प्रश्न था, सिसिफ़सके सम्मुख, मृत्युका :

मृत्यु सबसे बड़ा छल है
और सबसे बड़ी छलना
क्या न उसके जाल से सम्भव निकलना ?
(दो चट्टानें : पृ० १८६)

सिसिफ़सने इसी मृत्युको बन्दी बनाकर एक समस्या खड़ी कर दी। मरणमें रसका आभास पानेवालोंको जीवनके सहज और स्वस्थ नैरन्तर्यमें अखरनेवाला व्यतिक्रम अनुभव हुआ। रुकी हुई ज़िन्दगीकी यन्त्रणा कष्ट-साध्य लगी। इसी हरकतके कारण सिसिफ़सको प्लूटो-द्वारा दण्डका भागी बनना पड़ा—'संगमरमरकी बड़ी चट्टानको वह ठेलकर ले जाये गिरिके शृंग धुरपर/और जब पहुँचे वहाँ-पर लुढ़कती नीचे गिरे वह/सिसिफ़स फिर उसे ले जाये ऊपर' (पृ० १९१)। उसकी इस सतत यन्त्रणाकी व्यर्थताको 'बच्चन'ने हनुमान-के प्रतीकमें ठीक उल्था पाया। कविताकी समन्विति इन शब्दोंमें की गयी :

अपने युग में
अहं जगा, फूला, फैला
हमने कम देखा ?
काश उसे संयत कर सकती
हनूमान के आत्मदमन की
लक्ष्मणरेखा। (पृ० २१४)

इस उपसंहारको 'बच्चन' इसलिए पा सके कि उनके संस्कारी विश्वासोंमें भक्ति सर्वोपरि रही (जैसी हनुमानके हृदयमें रामके प्रति थी)। सम्पूर्ण कविता डिमाई साइज़के चौवन पृष्ठोंमें फैली है, और 'आत्मजयी' (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन)-जैसे संयत कृतित्वका स्पर्श सम्भव होता तो उसे उत्कृष्ट काव्यके रूपमें उपयुक्त विस्तार भी दिया जा सकता था। तब शायद कामूके 'एब्सर्ड हीरो'-को पछाड़ कर 'बच्चन' हनुमानके प्रतीकके साथ उचित न्याय कर सकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्थकताका प्रश्न बहुत कुछ उपलब्धियोंके नैरन्तर्यसे सम्बद्ध है। इस अर्थमें कि उन्हें कालातीत प्रतिष्ठा मिलती रहे। लेकिन मूल्योंकी टूटनमें आस्थाएँ खण्डित हो जाती हैं, और तब मृत्यु-भय कविकी सृजन-क्षमताको ग्रसने लगता है :

देह जर्जर है
सांसी ज़ोर पर है;
कभी उसने, कभी मैंने
नारायण का नाम लिया
कभी मैंने, कभी उसने
समय को कोसा

(दो रात : पृ० ११८)

अब किसी से या किसी भी तरह की
सच, है नहीं मुझको शिकायत

(आभास, पृ० १२३)

इस प्रश्नपर काव्योचित चिन्तन कुँवर-नारायणकी कृति 'आत्मजयी' है। दर्शनसे हटकर भी जो दर्शनसे मुक्त नहीं, काव्यपरक होकर भी जो चिन्तनसे शून्य नहीं है। समयोचित सन्दर्भोंको एक सीमा तक यह कृति अपेक्षित ऊँचाई देती है। इस कारण 'आत्मजयी' इस वर्षके संग्रहोंमें ही नहीं, बल्कि पिछले दो-तीन वर्षोंके संकलनोंमें अपने ढंगकी कृति है। विशिष्ट है, इसलिए कि इसका सौन्दर्य विघटित और दमित नहीं—पुराकथासे प्रेरित होकर भी पौराणिक दिव्यतासे ग्रस्त नहीं है। 'आत्मजयी', जैसा कि स्पष्ट किया है, कठोपनिषद्के नचिकेताके 'अस्थिबोध'-की समस्याका काव्यदर्शनपरक चिन्तन है : उसकी समस्या है सार्वकालीन जीवनकी—किसी अमर अर्थमें जीनेकी। वास्तवमें यह समस्या सृजनके सार्थक नैरन्तर्यकी है, जहाँ रचयिता अपने अवचेतनमें मृत्युसे परे अनश्वरताकी उपलब्धियोंके लिए प्रयत्नशील होता है। 'मृत्युके चिन्तनसे जीवनके प्रति निराशा ही पैदा हो, ऐसा आवश्यक नहीं—कोई नितान्त मौलिक दृष्टिकोण भी जन्म पा सकता है। मृत्युकी गहरी अनुभूतिने जीवनको असमर्थ कर दिया हो, इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण ऐसे उदाहरण मिलेंगे जहाँ चिन्तककी दृष्टि कुछ इस तरह पैनी हुई कि वह मृत्युसे भी अधिक शक्तिशाली कुछ दे जानेके प्रयत्नमें जीवनको असाधारण कोई निधि दे गया। बृहदारण्यकमें 'अभयं वै ब्रह्म' में विश्वास करनेवाले याज्ञवल्क्य ज्ञानके जिस आदर्शको प्रतिष्ठित कर गये वह मृत्युसे परेकी चीज़ है।....शंकराचार्य, कबीर आदि दर्जनों ऐसे उदाहरण मिलेंगे जिनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि मृत्युकी तीव्र अनुभूतिके कारण उत्तेजित हुई। मृत्युके प्रति निरपेक्ष भी रहा जा सकता है, जैसे जीवनके बहुत-से तथ्योंके प्रति निरपेक्ष रहते हुए भी एक कामचलाऊ जीवन-दर्शन बनाया जा सकता है। लेकिन मैं इस भयको निराधार मानता हूँ कि मृत्युका चिन्तन भी जीवनके लिए उसी प्रकार घातक होगा जैसे मृत्यु स्वयं। मृत्युको सोचनेका यही परिणाम नहीं कि आदमी उसके सामने घुटने टेक दे और हताश होकर बैठ रहे। मृत्युका सामना करना, उसपर विजयी होनेकी कामना भी बिलकुल स्वाभाविक है। वह ऐसा कुछ करना चाह सकता है जिसे मृत्यु कभी, या आसानी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, नष्ट न कर सके। (आत्मजयी : भूमिका पृ० ५) मनुष्यकी यह कोशिश चिरन्तन वेदनासे निसृत होती है, और उसे वह मौतसे परे ले जाती है। तब वह अपने अस्तित्वको कालातीत कर सकनेका आत्मविश्वास पा जाता है, और जीवनके नैराश्यको झटककर उसमें नया अर्थ अनुभव करता है। इस प्रकार नचिकेताका चिन्तन सृजनात्मक सम्भावनाओं-की आस्थामें विश्वास प्राप्त करनेका प्रयत्न सिद्ध होता है :

जीवन कोई सान्त्वना नहीं।
वह जोना मरने से बदतर
जिसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं—कल्पना नहीं।

(सारथी बुद्धि : पृ० ७७)

यह वैशिष्ट्यपूर्ण जीवन ऐसे मूल्यके लिए उत्प्रेरित है जो शाश्वत है—स्रष्टाकी व्याकुलतासे प्रतिबद्ध है :

तुझमें अब कृतित्व का कारण—
कारण को आकाश चाहिए
तुझसे सृष्टा की व्याकुलता,
उसको एक विकास चाहिए....

(सृजक-दृष्टि : ८०)

'खोया हुआ प्रभा-मण्डल' (नीलाभ प्रकाशन) में 'अश्क' भी 'लोहेका गोला' लुढ़कता हुआ महसूस करने लगे हैं। इस प्रतीकको विवेकानन्दने भी प्रयुक्त किया है। अपने एक भाषणमें उन्होंने किसी एक शापित-देवताका उल्लेख किया जो सिसिफ़सकी तरह निरर्थकताके अर्थमें एक लोहेका गोला ढोकर पहाड़के शिखर तक ले जाता है), और उसके भीतरी भयसे उबरनेके लिए स्रष्टाकी व्याकुलताको सृजनात्मक उपलब्धियोंके दार्शनिक आवरण-द्वारा प्रतिहत करना चाहते हैं।

तभी शब्द के बीज बो दिये मैंने अगणित
ताकि मुझे जब रौंद चला जाये
लोहे का गोला
बीज कोख में धरती की
बैंगिनती पनपें
मेरा ही प्रतिरूप विटप फिर-फिर लहराये
झुलसाये लोहे का गोला

(खोआ हुआ प्रभा-मण्डल : पृ० ५६)

अतः प्रश्न जीवनके सारभूत होनेका है। उसके सार्थक होनेके चिन्तनमें 'आत्मजयी'-का नचिकेता अस्तित्वके प्रश्नकी ओर झुकता है। भारतीय दर्शनके इस प्रसंगपर कठोप-निषद्के नचिकेताका आश्रय न भी लिया गया होता तो कुँवरनारायणकी यह कृति कमज़ोर साबित नहीं होती। स्पष्ट है, नचिकेताका प्रसंग 'आत्मजयी' में विशुद्ध समसामयिक वृत्तियोंसे बद्ध है। सिसिफ़सकी निरर्थकताको 'आत्मजयी' का नचिकेता भी महसूस करता है : 'कहाँ जाऊँ ? हर दिशामें मृत्युसे भी बहुत आगेकी अपरिमित दूरियाँ हैं।' उसके सभी प्रश्न बिना हल हुए धरे रह जाते हैं। समाधानकी खोज वस्तुतः इस कृतिमें बिखरे व्यक्तिका चिन्तन नहीं लगती, अपितु समय-सापेक्षताकी स्थितिमें कुँवरनारायण उसे दर्शन-के उलझे प्रसंगोंसे बचाते हुए नयी और पुरानी पीढ़ीके संघर्षको प्रतीकात्मक रूपसे एक मान-वीय आरोप भी दे सकनेमें सफल होते हैं। यह उपलब्धि पुरा-कथाओंपर चढ़े धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जीवन अपने लिए
और सबके लिए'

यह वाक्य—
जीवन को सफल
प्रतिष्ठा
और
समस्त विश्व की
शान्ति,
प्रगति तथा
सम्पन्नता
के हित में.....

●

गनी कमर्सियल कम्पनी
हैसियन तथा बारदाना
के
प्रमुख व्यापारी तथा वितरक
६, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१
फ़ोन : २२-५३६६
२२-८१३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवरणको विच्छिन्न कर सामयिक काव्य को नूतन मूल्योंको नयी अर्थवत्ता देती है। गत्यात्मक विकासक्रमकी दृष्टिसे यह अर्थवत्ता महाभारतकी पृष्ठभूमिपर आधृत 'अन्धायुग' अथवा राधाके प्रतीकात्मक संस्करण 'कनुप्रिया' को भी प्राप्त है। इस दिशामें उपलब्धियोंके नामपर छुटपुट कविताओंमें प्रयुक्त जटायू, तक्षक, अभिमन्यु, विश्वामित्र आदि प्रतीक व्यंग्य–विपर्यय मात्र होकर रह जाते हैं। नचिकेताके प्रसंगपर पहले भी कुछ लिखा गया है, यथा मलयजकी कविता 'नचिकेता' (नयी कविता ४, पृ० ५२) अथवा रवीन्द्रनाथ त्यागीके इस वर्ष प्रकाशित संकलन 'कल्पवृक्ष' (राजकमल प्रकाशन) में प्राप्त 'कठोपनिषद्' कविता। ज़ाहिर है कि ये बिखरी रचनाएँ 'आत्मजयी' के विस्तृत कैनवासके समक्ष साधारण साहित्यक उपलब्धियाँ हैं, अधिक नहीं।

पिछले पाँच-छह वर्षोंमें छायावादोत्तर प्रवृत्तियों एवं नयी कविताके आरम्भसे सम्बद्ध कुछ कवियोंमें अतीत–आस्थाका प्रगाढ़ मोह बार-बार प्रकट हुआ। यह मोह इस हदतक बढ़ा कि अनेक कविताओंका कथ्य स्पष्टतः ययाति-वृत्तिसे बोझिल हो उठा। नये कवियोंमें अभिव्यंजित व्यापक परिवेशकी समग्रता और 'शलाका पुरुष' के चिह्नोंकी अनुवर्तिनी संवेदनाओंसे मुक्त रचनाओंने प्रतिक्रिया स्वरूप एक गहरे दर्दको जन्म दिया। 'अज्ञेय' नयी पीढ़ीको 'गतानुगामी' कहकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, बल्कि 'नये कविके प्रति' शीर्षक कवितामें उसे 'दर्पस्फीत जयी' बताकर अपने शालीन रोषको भी नहीं रोक पाये :

हाँ, आ
मेरे पैरों की छाप पर रखता पैर
मिटाता उसे
मुझे मुँह भर-भर गाली देता–
आ, तू आ

इस वर्षके तीन संग्रहोंमें इस स्तरका दर्द तनिक दूसरे अन्दाज़में व्यक्त हुआ। कुछ तो अतीत आस्थासे अनुरंजित होकर और कुछ अपने अस्तित्वको नयी पीढ़ीकी पीठपर ययातिपरक मोहसे भाराक्रान्त करके। इस प्रकारके मोहका होना 'बच्चन,' 'अज्ञेय' और भारत भूषणके संग्रहोंमें अप्रत्याशित नहीं था। 'पूर्ववर्ती बायवीयतासे विद्रोह' का दावा करनेवाले भारत भूषणके स्वरोंमें 'एक युग पहलेकी बातें' और पुराने गीतोंके प्रति विकलता 'अज्ञेय' से कहीं अधिक लगी, जबकि 'बच्चन' का दर्द चमगादड़ोंके चामको कुछ लोगों-द्वारा दमामेपर चढ़ानेका दर्द है (युग और युग, पृ० ६२)। यह दर्द इस सीमातक चटका कि वे छोटोंको चुनौती देने लगे। मुझे धर्मवीर भारतीकी 'सम्पाती' शीर्षक कविता (कल्पना १५१ में प्रकाशित) स्मरण हो आती है। लगता है, दर्दकी ध्वनि सम्पातीके उसी दम्भकी शक्लमें सामने आयी, जिसके बड़प्पनकी अदा नये मूल्योंको हिक़ारतसे देखती है :

हम अब भी कुछ कर सकने का साहस रखते
हम सरोष, त्यक्ताश
आज कुछ कर गुज़रेंगे।
हट जायें हम बहुत गरम हैं।

(दो चट्टानें : पृ० ६७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर क्षण टूट पड़ने को उद्यत कगार
चट्टानोंका हठ क्या समझे ?

(खोया हुआ प्रभा-मण्डल : पृ० २९)

हिन हिनाने वालो ?
सुनो ।
यह तक्षक पलट कर तुम्हीं को डँसेगा ।

(वही, पृ० ३८)

'बच्चन'जीने इस मनःस्थितिमें नये-पुरानेके प्रश्नको विस्मृत नहीं किया । नये और पुरानेकी व्याख्या उनके शब्दोंमें :

प्याज़ का
जो सबसे पहला छिलका
उतरा था
वह उसका सबसे नया रूप था,
जो सबसे बाद को उतरेगा
वह उसका सबसे पुराना रूप होगा ।

अर्थात् छिलका अभी और उतरेगा । क्योंकि उनका तर्क है—'उद्घाटन नयेसे पुरानेका होता है, सृजन पुरानेसे नयेका होता है ? (पृ० १६१) । आत्मसन्तुष्टिके हितमें यह भी स्वीकार किया जा सकता है; क्योंकि इससे नयेके क्रममें कहीं व्यवधान सम्भव नहीं है । लेकिन चैलेंजका स्वर, निश्चय ही नयी पीढ़ीको इसलिए ठेस पहुँचाता है कि अग्रगण्यों-की कूटोक्तियोंसे उसकी श्रद्धा घायल होने लगती है । उसे कहा जाता है कि वह पूर्वजोंके खज़ानेपर कुण्डली मारकर आ बैठा है, नव-प्रभातके मुर्ग़ेसे उसकी तुलना की जाती है 'कि सवेरा होनेपर मुर्ग़े बोलते हैं । मुर्ग़ेके बोलनेसे सवेरा नहीं होता, उसे गत्यारोधका 'घुग्घू' बताया जाता है, और मूल्योंके विघटनकी कल्पना करते हुए 'बच्चन' उसे शृगालाक्रान्त कवितामें शेरोंके आसनपर तदबीरोंसे जा बैठा स्यार तक कह डालते हैं । महाभारतके आदिपर्व—२१२–८ से प्रेरित इस साहसिक कल्पनामें दर्द यों खिलता है कि स्यार आसन को प्राप्त करनेके लिए वह सब करता है, जो असली शेर नहीं करता । इसी कविताके अन्तमें एक पाद-टिप्पणी दी गयी है : 'हमारे इलाहाबादकी तरफ़ एक कहावत कही जाती है—खड़ा खेल फ़र्रुख़ाबादी····।' समीक्षाके सही स्तरपर 'दो चट्टानें'में कुछ कविताओंका विषय – प्रतिपादन दैनिक अख़बारोंके सम्पा-दकीयकी तरह व्यंजित हुआ है । आरम्भकी छह कविताएँ चीनी-आक्रमणकी प्रतिक्रियात्मक अभि-व्यक्ति, सात कविताएँ पण्डित नेहरूके अवसान से सम्बद्ध गुलाबकी 'इमेज़' पर आधृत रचनाएँ (सिवा एक कल्पनिकाके—"विक्रमादित्यका सिंहासन') तथा शिवपूजन सहाय, लुमुम्बा, मुक्तिबोध और गान्धीजीकी स्मृतिमें एक-एक कविता । सभी कविताएँ बासठ और चौंसठके बीचकी रची हुई हैं । यह सच है कि उत्तर-छायावादी विघटनको 'बच्चन'ने अपनी अनुभूतियोंकी आँचसे अस्तव्यस्त विचारोंके होते हुए भी, वैविध्य दिया और सादगी इस दर्ज़े तक कविताको दी कि कहीं-कहीं काव्य-गत प्रेषणीयता गद्यपरक हो जाती है । इस सन्दर्भमें डॉ० नगेन्द्र-जैसे प्रौढ़ आलोचकके शब्द यहाँ उद्धृत करना असंगत न होगा—"बच्चनका स्थान हमारी पीढ़ीके कवियोंमें बहुत ऊँचा है—यद्यपि इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि गुण और परिमाण दोनोंमें बच्चनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक खोखली कविताएँ भी किसी समय कविने नहीं लिखीं।" (कविताकी मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ९६)।

लेकिन जिस दर्दका ज़िक्र मैंने किया उसके एक स्वस्थ पक्षकी गरिमा हमें केदारनाथ अग्रवालके नये संकलन 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद) में मिलती हैं। कुण्ठाओंसे मुक्त मनका यह रंग ययाति – वृत्ति और सम्पाती – दुराग्रहसे कितना अलग है। निश्चय ही हमारे श्रद्धास्पद अग्रजोंमें बहुतोंको यह अप्राप्य है।

हम जिये न जिये दोस्त
तुम जिओ एक नौजवान की तरह
खेत में झूम रहे धान की तरह
मौत को मार रहे बान तरह
(फूल नहीं रंग बोलते हैं)

खण्डित आईनेका अनर्गल प्रलाप :

आखिर परिपक्वताकी स्थितिमें आत्मालाप किसलिए? क्या अनुभूतियोंकी व्यंजनामें कहीं रिक्तताका बोध होनेपर ऐसा होने लगता है या रचयितामें कहीं ऐसा भय क्रमशः उत्पन्न होने लगता है कि वह अपनेको एक कल्पित ऊँचाईपर प्रतिष्ठित कर उपदेश दिये बिना सन्तुष्टि नहीं पाता? यह मजबूरी कुछ अंशमें 'अश्क' में है, भारतभूषणमें है और 'बच्चन'-में भी है। इस मजबूरी, या कमज़ोरीका दूसरा पक्ष—व्यंग्य है, जिसे मैं आधुनिक मनःस्थिति-के संघर्षमें आन्तरिक क्षोभसे मुक्त होनेकी कुछ-कुछ प्रक्रिया मानता हूँ। 'बच्चन'ने 'गैंडेकी गवेषणा' 'काठका आदमी' और 'मांस-का फ़र्निचर'-जैसी अच्छी व्यंग्य-कविताएँ भी इधर दी हैं, और भारतभूषणने इसी सन्दर्भमें 'अनुपस्थित लोग' (लोकभारती प्रकाशन) में 'ओरी ओ', 'ओ मन भावन', 'धन्य अरी', 'आया रे',—'भाया रे' जैसे रूढ़ सम्बोधन वाक्य-पदोंकी पुनरावृत्तियोंके बावजूद कुछ अच्छे, सटीक व्यंग्य और तुक्तकी अभिवृत्तिकी रचनाएँ इधर दी हैं, जो दरअसल उनका उपयुक्त क्षेत्र है। यद्यपि इस नाते उनकी अधिकांश कविताएँ सम्मेलनीय स्तरकी बरबस लगती हैं, लेकिन समग्र व्यंग्यात्मकता पूर्ण प्रभावके 'विदेह', 'मैं और मेरा पिट्टू' तथा 'गमलेका पौधा' पूरी सचाईसे उत्कृष्ट कविताओं-का आभास देती हैं। लगता है मानो उन्हें भारतके दूसरे व्यक्तित्वने सृजा हो। कुण्ठाएँ और आत्मप्रवंचनाएँ सचमुच एक अच्छे कवि-को खत्म कर देती हैं। किन्तु जो कविताको गम्भीरतासे नहीं लेता, वह अपने व्यंग्यसे एक अलग 'डायमेन्शन' पा लेता है। विघटनकी पीड़ाओंके होते हुए भी उसका सीधा और सपाटपन व्यक्तिमूलक सहजताकी स्थिति स्वीकार कर लेता है। 'अश्क'ने कविता लिखनेका आरम्भ पंजाबीसे किया। फिर उर्दूमें ग़ज़लें भी लिखीं। इतनी सशक्त भूमिका यकायक किसीसे छूटती नहीं। 'अश्क'-से छूट गयी, सिवा छायावादी भाषाके। उससे ज़रा भी उत्कट लगाव उनमें प्रकट नहीं हुआ। पता नहीं ऐसा व्यक्ति जो रूढ़िको सहज छोड़ सकता है, युवा पीढ़ीसे क्यों खिजा रहता है? स्पष्ट है, उसका सन्ताप और आक्रोश यकायक 'एक चेतावनी' बनकर बौद्धिक दुरूहतासे भरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन नये
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

•• मुरदा सराय

शिवप्रसाद सिंह

शिवप्रसाद सिंहकी चुनी हुई बारह नयी कहानियोंका संग्रह। शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियोंसे अप्रतिमये कहानियाँ पढ़ने के बाद मनपर एक सार्थक प्रभाव भी छोड़ेंगी।

मूल्य ४.००

•• कुछ निबन्ध

अक्षयकुमार जैन

अक्षयकुमार जैनके लघु-ललित निबन्धोंका संग्रह। इन निबन्धोंका उद्देश्य केवल मनोरंजन देना नहीं, विचारोंके आलोक प्रस्तुत करना भी है।

मूल्य २.५०

•• अपभ्रंश भाषा और साहित्य

डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

यह एक बहु-प्रतीक्षित शोध-प्रबन्ध : अपने विषय-क्षेत्रका सर्वथा मौलिक और विशिष्ट विवेचन। प्रत्येक पुस्तकालयके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय सन्दर्भ-ग्रन्थ।

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७।

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५।

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-

ज्ञानोदय : मार्च १९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिरियाकारियोंके विरुद्ध उठ खड़ा होता है। लेकिन, कभी-कभी वह असंयत क्यों हो जाता है? इसलिए कि 'यादका आकाश' गहरा होता जा रहा है? इसलिए कि 'लकड़बग्घे' अँधेरेमें टामकटोये कर रहे हैं? इसलिए कि खण्डित आईनेमें आकृतियाँ विद्रूप हो उठी हैं?

खुले आकाशमें पके धानकी गन्ध :

प्रकृति-चित्रोंकी विविधरूपा, निश्छल, सहज और व्यक्तिनिष्ठ अभिव्यक्ति इधरके दो संग्रहोंकी कविताओंमें विशेषतया उपलब्ध हुई। यथार्थकी अनगढ़ शोभाको व्यक्तिरंगोंमें केदारनाथ अग्रवालकी अनेक कविताएँ संयोजित किये हैं। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' में पिछले आठ वर्षोंमें लिखी उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ प्रथम बार संकलित होकर आयीं। प्रथम बार इसलिए कि केदारनाथ अग्रवालके पूर्व प्रकाशित तीन कविता-संग्रह अब उपलब्ध नहीं हैं।

इस दशकमें आकर काव्य-मूल्य अन्तर्द्वन्द्वोंके खुरदुरे कगारोंपर आ खड़े हुए। नगर-बोधके वैविध्यमें कथ्य इस क़दर उलझता गया कि समूचा आंचलिक वैभव कविताके लिए पिछड़ा विषय प्रतीत होने लगा। लेकिन अनुभूतिकी श्वास भौगोलिक घेरोंमें कभी रुद्ध नहीं होती। मानवीय संवेदनाओं और विश्वासों-के संस्पर्श कुण्ठामुक्त व्यक्तिको खुली सुबहों, पके खेतों, उन्मादी मौसमों, वासन्ती गन्धों, पक्षियों, पत्थरों, नदियों और धूपकी गरमाईमें न मिले यह असम्भव है :

धूप नहीं यह
बैठा है ख़रगोश पलंग पर
उजला
रोयेंदार, मुलायम—
इसको छू कर
ज्ञान हो गया है जीने का
फिर से मुझको।

(फूल नहीं रंग बोलते हैं : पृ० ५०)

प्रकृतिपरक यह मानवीय आस्था केदारनाथ अग्रवालकी विशेषता है। लिजलिजे दुहराव करुणा और नैराश्य उन्हें अपना शिकार नहीं बना सके—कदाचित् इसलिए कि उन्हें अपने व्यक्तित्वसे विदेह होनेकी क्षमता प्राप्त है—तटस्थ दृष्टि उपलब्ध है। अग्रवालजीकी रौमैण्टिकता फ़ैशनपरस्त नहीं है, सहज क़स्बाई है। मांसल और ताज़ी है। केक्टसी नहीं। बरबस ओढ़ी हुई नहीं। क्योंकि हर अनुभूति धरतीके धूल-पानीसे निसृत और भोगी हुई है। ज़िन्दगीके इतने गहरे लगावने उन्हें बल्लमी और सन्तप्त बनाया (प्रगतिवादी रचनाओंमें), पर समयके 'वादी' दौरमें उनका कवि भीतरसे बहुत कम 'गढ़े यथार्थ'-की ओर लपका। जो कुछ उनकी संवेदनाओं-ने ग्रहण किया वह गहरेमें जाकर पकता रहा। वास्तविकताओंने सम्भावनाओंके द्वार बन्द नहीं होने दिये; उनके पलड़े मानवीय आस्थाओं और प्रकृतिपरक सौन्दर्यको ओर ही अधिक खुले। संग्रहमें उपलब्ध बादकी कविताएँ इस दृष्टिसे मुझे काफ़ी ईमानदार लगीं :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी म्यान से खिची एक तलवार है
जो मैदान में लगातार चलती है
(पृ० १२२)

बादल ने मार दी
बरछो
गाँव को,
और फिर चला गया
लेकिन कुछ हुआ नहीं
चमकी थी बिजली
सावन की रेत में ।
(पृ० १५०)

आत्मपरक उपलब्धियोंके प्रति सतत असन्तुष्टिका दर्द जिन कुण्ठाओंको उत्तर छायावादियोंमें मथता रहा है, वह केदारनाथ अग्रवालमें पैदा नहीं हुआ। यही वजह है कि उनके कवि-व्यक्तित्वको यह वैशिष्ट्य एक ऊँचाईपर ले जाकर प्रतिष्ठित करता है :

न बुलाओ तुम मुझे इस समय अपने पास
खोदता है अभी मुझे
आसपास उग आयी बेकार विचारों की घास
तोड़ना है मुझे अभी
भाव की भूमि की कुण्ठा के बाँस
(पृ० १६३)

रवीन्द्रनाथ त्यागीका संकलन (कल्पवृक्ष) कृतित्वमें 'पेस्टोरल' जिज्ञासासे अनुरंजित है। प्रकृत सादगीके अलावा पहाड़ी मौसम, छायाएँ, चाँद और चाँदनीका मोह एवं सोन-धूपका 'नास्टेल्जिया' कविताओंमें बार-बार लौटकर आता है। लौट आनेके आग्रहमें भी व्यंजनाएँ काफ़ी ताज़ी हैं (ताज़ी कविताके अर्थमें नहीं) : 'झंझावातसे चाँद नभकी डाल-से टूट गया', 'मैंने साँसोंके सिक्के खोये अथवा
बूँदों की हज़ारों चिड़ियाँ
टीन की छत पर फुदकने लगीं
(स्टेशन पर वर्षा, पृ० २०)
चाँद की फैली बाँहों में
दिशाओं के आँगन में रात बँधी है
(बरसों पहले, पृ० ६१)

लेकिन निसर्गकी आस्थामें एक भय है जो कभी-कभी कविको रोमैण्टिकताके उस लेबल तक खींच ले आती है जिसका द्वार अधुनातन व्यंजनाके ठीक विपरीत दिशामें खुलता है। इस द्वारके आगे आँगनमें लोक-गीतोंका मध्ययुगीन भावालोक है। त्यागीका कवि इस आँगनमें आकर विमोहित हुए बिना नहीं रहा, और उसका परिणाम है संग्रहकी दो कविताएँ—'एक थी हिरनी' (एक लोक-गीतका रूपान्तर) तथा 'दो हंसोंकी कथा'। आश्चर्य है, केदारनाथ अग्रवाल बाँदामें रहकर भी इस मनःस्थितिके शिकार नहीं हुए, लेकिन संग्रहकी प्रथम और अन्तिम, दो कविताएँ निश्चय ही त्यागीको इस आँगनके बाहर खड़ा कर देती हैं। चाँदने त्यागीको बुरी तरह परास्त किया। चाँद उसे जंगलों घिघियाता, घायल, युद्धके बन्दी-सा, सलाम करता हुआ, गेसके हण्डे-सा, नंगा, पीड़ित माँगके सिन्दूर-सा, डूबता हुआ और न जाने कैसा-कैसा नज़र आया। लेकिन भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित मुनि रूपचन्द्र 'अन्धा चाँद' शीर्षक तक ही अटपटी कल्पना साबित हुआ। 'अन्धा चाँद' की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथ्यमें न नयी कविता हैं, न शिल्पमें उल्लेखनीय उपलब्धि। अधिकतर सनातनवृत्तिकी श्रद्धापरक, उपदेशात्मक, अबोध, विनयात्मक, प्रभु-स्वभावी रुझानोंसे आवृत सपाट रचनाएँ हैं। अपवाद है इस कोटिमें महेन्द्र कार्तिकेयका 'क्षितिजोंके काँपते अधर' (चितरंजन प्रकाशन, बम्बई)। पैंतालिस कविताओंके इस संग्रहकी अन्तर्दृष्टि परिवेश-बद्ध होकर भी बौद्धिक संवेदनाओंसे संश्लिष्ट और सम्भावनात्मक है।

नियो-रोमैण्टिसिज़्म :

रोमैण्टिक विश्वासोंका इधर एक संकलन 'कृष्णपक्ष' (राजकमल प्रकाशन) उल्लेखनीय है। 'सफ़ेद चिड़ियाँ' और 'लाल फूलोंकी टहनी' संकलनोंके बाद 'कृष्णपक्ष' में आकर विनोदचन्द्र पाण्डेयकी रोमैण्टिक वृत्तिमें एक क़िस्मका मुक्त बिखराव आया लगता है। पाण्डेयकी पेशकारी कुछ इस तरह की है, उसे प्रचलित रोमानी कविताओंके साथ नहीं रखा जा सकता। उनका रचाव अत्यधिक व्यक्तिवादी और भाषाका मुहावरा अपरिचित लगता है। इन्हीं कारणोंसे पाण्डेय समीक्षकोंके रूढ़ मनको आकृष्ट नहीं कर सके। 'कृष्णपक्ष' में कई बिम्ब सम्पुंजित हैं। कुछ बिम्ब साफ़ हैं, कुछ अस्पष्ट, कुछ अधूरे, कुछ तरल रंगोंमें गुम्फित, कुछ आत्मरत्यात्मक अनुपलब्धियोंके देशसे संस्पर्शित तथा कुछ ऐसे कि कविको शब्दोंकी अर्थवत्तामें वे आयाम नहीं मिलते जिनमें वह पूरी तरह अपना कथ्य व्यक्त कर सके :

तुम से मिलने के पूर्व
घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश
जब मिलने की इच्छा से मिला

(समर्पित, पृ० ४१)

उमर डूबती है
मेरे ख़याल की

(दूर, पृ० १०)

अतीत है विश्व का भाग
मेरापन जड़ हुआ

(अतीत, पृ० ४०)

यह स्थिति कहीं-कहीं मनके उलझे रहस्योंमें भटक जाती है। लगता है, पाण्डेय यदि रिम्बोकी तरह स्वरोंका ही आश्रय लेकर कोई आयाम पकड़ ले तो आश्चर्य नहीं, लेकिन ऐसा होता नहीं है। कुछ कविताएँ इस कठनाईके कारण कविता नहीं लगतीं। यक्षिणी हरियाली (हरित)से विशेष प्रभावित पाण्डेयका काव्य-वृत्त कई प्रभावोंसे आच्छादित है। लगता है, अस्पष्ट बिम्बों और विघटित शैली-रूपोंमें उसके कविको परितोष इसलिए मिलता है कि एक गहरे असन्तोषकी नदी दर्शन, कला, इतिहास और स्मृतियोंकी गीली रेतसे निकलकर सम्पूर्ण कृतित्वमें बहती है। 'मेरी युवावस्था, अँधेरेमें अग्नि, अकेले ही जली।' सब कुछ अलीक-सा लगती है—पाण्डेयके अव्यक्त, व्यक्तित्वके कारण इसलिए कुछ अभावोंके होते हुए भी 'कृष्णपक्ष'की कविताएँ नव-बोधके अधिक निकट हैं।

कच्चे रोमांसकी लपटें :

काव्यहीन रोमैण्टिकता अथवा कैशोर्य स्तरकी प्रेमपरक कविताओंकी दृष्टिसे तीन अन्य संग्रहोंका ज़िक्र-भर किया जा सकता है। चन्द्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरका 'और एक फूल खिला' (विनोद प्रकाशन, पटना) अत्यन्त साधारण है, लेकिन तनिक सम्भावना भूषण बनमालीके संग्रह 'मैं और तुम' (नयी सदी प्रकाशन, दिल्ली) को देखकर होती है, जब कि इसकी ज़्यादातर कविताएँ जिस्म, रूह, और यौन-सम्बन्धोंके कच्चे खयालातोंके इर्द-गिर्द हैं। अँगरेज़ी शब्दों-की अक्षम्य भूलें और भौंडे पद-विन्यास इस संकलनकी प्रमुख कमज़ोरियाँ हैं। कुछ अधिक सम्भावना दाऊजी गुप्तके 'झील बोली' (विवेक प्रकाशन, लखनऊ)को पढ़कर लगती है। कविताका स्तर संयत और बौद्धिक है। लेकिन घोर बचकाना एवं साहित्यिक अहम् और आडम्बरकी व्यर्थ, काव्यहीन बकवासका उदाहरण रामप्रसाद मिश्रका संकलन **'देश, दिल्ली और अहम्'** (अनिल प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली) किसी तरह भी, किसी भी मानेमें उपलब्धि नहीं है।

लिंग्वादलमोतवाद :

वर्षों पूर्व प्रपद्यवादी (नकेन) कवियोंने घोषणा की थी कि उनकी कविताओंमें प्रत्येक शब्द और छन्दका निर्माता स्वयं उनका कवि है। 'पस्पशा' अर्थात् भूमिकाके अन्तर्गत उन्होंने प्रपद्यवादकी द्वादशसूत्री घोषणा की थी। लेकिन उसी संकलनके प्रपद्योंको पढ़नेपर उस घोषणा और कृतित्वमें संगति प्रतीत नहीं हुई। उस समय लिखी जानेवाली कविताओं और नकेनकी रचनाओंमें विशेष मौलिक पार्थक्य सम्भव नहीं हुआ। वर्षों पूर्वकी यह घोषणा व्यर्थ सिद्ध हुई। उसी नकेनके 'के' अर्थात् केसरीकुमारने अभिज्ञान प्रकाशन राँचीसे प्रकाशित संग्रह **'कविताएँ शिवचन्द्र शर्माकी'** के आरम्भमें टिप्पणी देते हुए लिखा है : "हिन्दीके नये काव्यमें 'कूटार्थ कथा' पुनर्निर्मित नहीं, पुनरुक्त हो रही है....वह मूल्योंका काव्य हो चला है, मनोविज्ञानका नहीं।" इस सन्दर्भमें उन्होंने शिवचन्द्र शर्मा-की कविताओंको 'नासूर कविता' बताया है : "जिन्हें पढ़नेमें भीतरकी जेल-यात्राका एक ऐसा अनुभव होगा जो खतरनाक भी होगा और मुक्तिके लिए अनिवार्य भी।" (लेकिन मैं इस अनुभवसे वंचित रहा)। इन कविताओंके रचयिता—'ब्रह्मा'को केसरीकुमारने "लिंग्वादलमोतवादका अवधूत, फ़ास्तोंके रंगवादका गोमयोपलेपक, लयका तान्त्रिक, अलयका सिद्ध साहित्यिक, अगस्त्य, ओघड़, प्रपाती और हिन्दीका अपांक्तेय व्यक्तित्व" कहा। शिवचन्द्र शर्माकी कविताओंकी विशेषताएँ उनके शब्दोंमें इस प्रकार हैं : "नये और पुरानेकी अकविता-कविताका पारदर्शी नवीन अर्थ, नंगी-भंगी भली शिरोरेखा, अन्विति, वाक्पदीयता, व्यंजनातीत स्वाद, चिन्तंगांचार, उभयपदकी अकथा, पूपन्थका विस्वाद, अश्वेत स्वच्छता, पण्याङ्गनाका सत्य, अलकोहलका कौतूहल, कविताकी नयी परिभाषा—वन्ध्य, वन्ध्य, कथ्याकथ्य, ढक्काहत काव्य; संक्षेपमें हर कविता 'प्रबन्ध शतायतं।"

'कूटार्थ कथा' की इस भाषाको समझना ज़रूरी नहीं है, और उसी तरह अधिकांश कविताओंको भी समझना आवश्यक नहीं लगता। क्योंकि प्रपद्यवादके द्वादशसूत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GRAM : "CENTUBECO"

PHONES : Office : 22-8710
: 22-3707
Shop : 22-0515

The Central Tube Co.

Stockists & Dealers in :

ALL KINDS OF G. I. AND BLACK PIPES, PIPE-FITTINGS,
SEAMLESS AND ERW TUBES, BRASS FITTINGS,
G. M. VALVES AND COCKS, STRAINERS AND PUMPS etc.,

OFFICE :
85, Netaji Subhas Road,
CALCUTTA-1.

SHOP :
40, Strand Road,
CALCUTTA-1.

Phone : Uttarpara-1198

Gram : "DASUDYOG" BALLY.

Abrasives and Castings Limited.

Regd. Office & Factory :
66, Dewangazi Road, P. O. Bally,
Dist. Howrah (W. Bengal)

City Office :
22, Canning Street,
Calcutta-1

Branch Office :
25, Dalal Street, Fort,
Bombay-1

Manufacturers of :—

SHOTS & GRITS : For Shot Blasting, Drilling, Marble Cutting, Polishing etc.

GRINDING MEDIA (BALIS & CYLPEBS) : For Cement Mills

And

ALL KINDS OF QUALITY CASTINGS FERROUS AND NON-FERROUS.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति लिंग्वादलमोतवादके पाँच सूत्र हैं, जिनकी व्याख्या स्वयं उनका स्रष्टा ही कर सकता है। फिर भी कहना असंगत न होगा कि सूत्र और कविताएँ दो अलग वृत्तोंमें स्थित हैं। कविताएँ न अकविता हैं न कविता। इनका विधायक-सम्पुंजन अथवा शब्दगत इकाई या अन्वित वाक्पदीय विन्यास उनके 'ब्रह्म'-के लिए चाहे निज काव्यमोहके कारण कूटार्थ संचित हों, चाहे उनकी तात्त्विकता महत्त्वपूर्ण अनुभूतिकी वाहक हो, पर प्रबुद्ध पाठकके लिए उनका कथ्य बहुत ही कम साधारणीकृत उपलब्धि है। ऐसी कविता उसकी नज़रमें महज़ साहित्यिक औघड़तासे अधिक नहीं। शायद यही शिवचन्द्र शर्माका अभीष्ट भी है।

पर क्या इस प्रकारके असंयत बखेड़े किसी नयी सम्भावनाओंको जन्म नहीं दे सकते? बुद्धिकी कसौटीपर शब्द अपनेमें निहित अर्थको अव्यक्त विस्तार दे सकनेका सामर्थ्य तो रखते ही हैं। इस दृष्टिसे 'एब्सर्ड' कविता और लक्ष्मीकान्त वर्माकी ताज़ी कविताका तर्क दोनों एक नया आकाश तो खोज ही सकता है। शायद कुछ कवि सामाजिकताको दुत्कार कर अलग खड़े हो सकते हैं। उनकी अवज्ञा समूची संस्कृतिके खिलाफ़ हो सकती है। प्रचलित विश्वास और काव्य-रूपोंके विरुद्ध ऐसे व्यक्तिका सृजन आजके पाठकके लिए 'कूटार्थ' मात्र ही साबित हो तो आश्चर्य नहीं। उसे इस बातकी चिन्ता न होगी कि उसकी कविता कोई समझे ही, क्योंकि वह समझनेवालोंका खयाल रखकर लिखेगा ही क्यों? यह स्थिति 'विटनिक' काव्यसे काफ़ी आगेकी होगी। तब कविताके रूढ़ प्रतिमान और संयत रचावसे इतर अति-वैयक्तिक, स्वच्छन्द तथा अपांक्तेय अहम्को अनावृत्त करती एक अलग कविता जन्म लेगी। इस सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता।

इस वर्षके संकलनों और अनेक फुटकर कविताओंको देखकर यह सम्भावना अप्रत्याशित नहीं लगती। नयी कविता और उसके बादकी कविताके बीच एक बड़ी खाई बन गयी है। सृजन-प्रक्रियाके साथ भाषा और काव्यरूपोंकी दिशाएँ टूट गयी हैं। दो दशककी दूरियाँ रुचियोंमें निश्चय ही गहरी दरारें डाल दी हैं। अनास्थाओं, असंगतियों, निरर्थकताओं और ग़ैर-रोमानी अभिवृत्तियोंमें काव्य मूल्योंकी नयी भूमिका उघड़ चुकी है। प्रतिष्ठाका भाषाके गीतजयी मुहावरे कवितासे उठने लगे हैं। नवगीतकी प्रतिक्रिया उसीका परिणाम है। सन् ६५ में, प्रकाशित काव्य-संग्रहोंके बावजूद, कविताने नये आयामोंकी तलाश आरम्भ कर दी है। तलाशके इस सन्धिकालमें दिशाओंकी तुड़ी-मुड़ी भुजाओंमें टिका हुआ आकाश खण्डित हो चुका है और उसे एक सब स्वीकार्य नहीं जिसे 'सम्पातीका दर्द' सहेजना चाहता है। उसकी अन्तश्चेतनामें वृत्त निश्चय ही अलग होता जा रहा है। उसे नयी कविताके दायित्वहीन अनुकरण बाहर निकलकर अपनी बात कहनेमें वर्ष अधिक आसानी अनुभव हुई।

—श्याम परमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मजयी : प्रतिक्रिया

आत्मजयी उन प्रबन्ध कृतियोंकी परम्परामें एक नयी और महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जिनमें पात्र और आख्यान किसी विचार-बिन्दुके विवेचन-विश्लेषणके साधक और माध्यम मात्र होते हैं। कृतिका कथानक कठोपनिषद्से लिया गया है और कोशिश की गयी है कि मूलकथाको बिना बिगाड़े ही उसे आधुनिक दृष्टिकोणसे देखा जाये। नचिकेता-आख्यानके दो बिन्दुओंपर कविकी दृष्टि विशेष रूपसे केन्द्रित है। पहला, आत्महत्याका बिन्दु, जिसपर नचिकेता पहुँचता है, दूसरा मृत्यु-चिन्तन और यम-द्वारा मृत्युके रहस्योद्घाटनका बिन्दु, एक तीसरे बिन्दुको भी सयत्न उभारनेकी चेष्टा की गयी है, वह है नचिकेता और बाजश्रवाकी असहमतिमें नयी और पुरानी पीढ़ीके संघर्षकी स्थापना, लेकिन यह तीसरी बात तो समस्याका केवल ऊपरी पहलू है। ऐसा ज्ञात होता है मृत्युबोध और मृत्यु-चिन्तनके प्रति नयी पीढ़ीके झुकावका स्पष्टीकरण इस कृतिके प्रमुख ध्येयोंमें-से एक है।

हिन्दीके अनेक नये कवि अस्तित्ववाद, निहिलिज़्म और सुररियलिज़्मके नामपर अनेक विचित्रताएँ कवितामें भरते रहे हैं तथा इन विचार-पद्धतियोंके कच्चे-पक्के अननुभूत काल्पनिक ज्ञानके आधारपर अतिवादी भयंकरताओं और विभीषिकाओंके कीचड़में लोट-लोटकर विक्षोभ और कुण्ठाओंसे झूठी आशिक़ी करते रहे हैं। वे अपनी वैयक्तिक, सामाजिक और आर्थिक विवशताओंके बीच, दयनीय और हास्यास्पद बनकर ही रह जाते हैं, उनसे उबारनेवाली बौद्धिक सम्भावनाएँ नहीं खोज पाते। इसके विपरीत आत्मजयीके कविने मृत्यु-चिन्तनमें-से एक स्वस्थ और अपराजेय दृष्टिके आविर्भावकी कोशिश की है। अस्तित्ववाद उसके लिए किसी उत्तेजनावर्द्धक दवाकी खूराक नहीं है जिसके तात्कालिक और कृत्रिम प्रभावका परिणाम मृत्यु अथवा कुण्ठाजनित अवसादमें होता है। 'आत्मजयी' नाम ही एक सबल, स्वस्थ दृष्टिका द्योतक है। कामू और सार्त्रके विचारोंकी पृष्ठभूमिमें आत्ममन्थन करनेवाले शायद कुँवरनारायण पहले कवि-विचारक हैं जिन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि "निराशापूर्ण स्थितियोंमें भी आजका मनुष्य अपनेको साहसी और अपराजित देखना चाहता है, हताश और दीन नहीं।"

इस अभीष्टकी प्राप्तिके लिए कविने बौद्ध-दर्शन, उपनिषद् और अस्तित्ववादको एक पंक्तिमें रखकर एक ही दृष्टिसे देखा है, और इस निष्कर्षपर पहुँचा है, कि भय अथवा उत्कण्ठाका परिणाम हमेशा निराशावादी ही होगा, ऐसा मानना भारतीय दर्शनके एक महत्त्वपूर्ण स्थिति-निरूपणको ही ग़लत समझना होगा। मृत्यु-चिन्तनसे कोई नितान्त मौलिक दृष्टिकोण भी जन्म पा सकता है, याज्ञवल्क्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीस कविता-संग्रह

ये कविता-संग्रह हिन्दी काव्यकी नयी प्रखरता, क्षमता और युग-बोधकी सचेष्टताके ही प्रयोग नहीं, नयी उपलब्धियोंके भी मानक हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

देशके सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं-से प्राप्त करें।

* आँगनके पार द्वार : 'अज्ञेय'
* चाँदका मुँह टेढ़ा है : मुक्तिबोध
* आत्मजयी : कुँवर नारायण
* इतिहास-पुरुष : देवराज
* हम विषपायी जनमके : 'नवीन'
* कनुप्रिया : धर्मवीर भारती
* हिम-विद्ध : जगदीश गुप्त
* अर्द्धशती : बालकृष्ण राव
* संक्रान्त : कैलाश वाजपेयी
* चौंसठ कविताएँ : इन्दु जैन
* बीजुरी काजल आँज रही : माखनलाल चतु
* धूपके धान : गिरिजाकुमार माथुर
* वाणी : सुमित्रानन्दन पन्त
* सात गीत वर्ष : धर्मवीर भारती
* अनुक्षण : प्रभाकर माचवे
* अरी ओ करुणा प्रभामय : 'अज्ञेय'
* सौवर्ण : सुमित्रानन्दन पन्त
* रूपाम्बरा : सं०-धर्मवीर भारती
* देशान्तर : सं०-धर्मवीर भारती
* लेखनी-बेला : वीरेन्द्र मिश्र

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, क
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर इन सभीकी अन्तर्दृष्टि मृत्युकी तीव्र अनुभूतिके कारण उत्तेजित हुई। इस प्रकार आत्मजयीमें आधुनिक संवेदना और परम्पराको जोड़नेका प्रयास किया गया है। नचिकेता इस नयी पीढ़ीके अन्तर्मुक्त आक्रोशसे पूर्ण वह विवेकशील व्यक्ति है जिसे बाह्य जीवनके अनेक विरोधी दबावों और तनावोंको चुप होकर झेलना पड़ता है, जो वैयक्तिक मूल्योंकी अति और प्रधानताके कारण सामाजिक स्तरकी क्रान्तिको तथा वर्तमानमें जीनेकी भावनाके कारण परम्परागत मूल्योंको तिलांजलि दे देता है। वह जटिल और उलझी हुई संवेदनाओं और अव्यवस्थित मूल्योंका शिकार है···जिसके सामने हैं :

एक घर
जिस में न दरवाज़े
न बाहर निकलने के रास्ते
केवल दीवारें,
पेंचदार अन्धे गलियारे
और एक सहमी आवाज़ का
दबे पाँव पीछा करते
हत्यारे।

आत्मजयीके कविने अन्तर्मनकी इन अँधेरी, सहमी और चौकन्नी स्थितियोंकी उद्विग्नता और पीड़ाका विश्लेषण करनेके लिए परम्पराको बिलकुल नये रूपमें ग्रहण किया है। आधिदैविक और आध्यात्मिक समाधानोंकी गोदमें सिर छिपानेमें असमर्थ आजके साहित्यकारका अन्तर्मन सम्भावित आंकाक्षाओं और नैराश्यकी मानसिक स्थितियोंके तनावको झेल रहा है। परन्तु निष्काम कर्म और जीवनके प्रति तटस्थ उदासीनताकी प्रेरणा उसकी छटपटाहटका समाधान नहीं बन सकतीं। साथ ही, जीवनकी विकृतियोंको भी विवश अनिवार्यता मानकर चलनेमें उसके अहंकी हार होती है। दार्शनिक उपेक्षा और पलायन भी उसके वशकी बात नहीं है, बाह्य जीवनकी इतनी विरोधी स्थितियों और खींचातानियोंके साथ अन्तर्मनके समंजनकी समस्या आजके पहलेके साहित्यकारके सामने वर्तमान रूपमें कभी नहीं आयी। अनेकमुखी विरोधी दबावोंकी प्रतिक्रियाएँ युवक कवियोंमें चीख, पुकार, छटपटाहट और तनावोंके रूपमें हो रही हैं। 'आत्मजयी' के कविने इनसे उबरनेकी कोशिशमें परम्पराका सूत्र पकड़ा है, जो केवल सूत्र है। वह, न तो मंज़िल है और न उसके तीव्र द्वन्द्वको शान्त करनेवाला कोई क्रोड़, जहाँ उसके माथेकी शिकनें और आँखोंको सूनी गहराइयाँ शिथिल हो सकें। अपने सूक्ष्म मानसिक भोगों और गहरे आत्मनिरीक्षणको रूपायित करनेके लिए आत्मजयीके कविने परम्पराको जिस रूपमें ग्रहण किया है, उससे उसपर परम्परावादिताका ठप्पा नहीं लग जाता, वह तो उसकी दृष्टिके आयामोंको उभारनेका माध्यम-बिन्दु मात्र है। परम्परा उनके लिए अकाट्य और अपरीक्षणीय संहिता-मात्र नहीं है, परन्तु परम्परा और आधुनिकताके बोधका यह समंजन मानवीय अनुभवोंको आधार मानकर चलनेपर भी बौद्धिक और वैचारिक ही अधिक है। तादात्म्यमूलक संवेदनाकी स्थितियाँ प्रायः नहीं बन सकी हैं। नयी कवितामें तादात्म्यकी इस स्थितिको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षित और अनिवार्य नहीं माना जाता। परन्तु यहाँ तो परम्परा-गृहीत और आधुनिक, दोनों ही प्रकारके भाव-बोध बौद्धिक हैं। कबीर, बुद्ध और शंकराचार्यके अध्यात्म-चिन्तनसे प्रेरित मृत्यु-चिन्तन और पश्चिमकी सामाजिक मनोभूमिमें प्रादुर्भूत मृत्यु-चिन्तन कविकी वैचारिक धारणाएँ हो हैं, अनुभूत सत्य नहीं। नयी पीढीका मृत्युबोध न तो कबीरके सत्यके समान है, और न सार्त्रके और आत्मजयीके कविका यह बोध भी अर्जित ही है, भुक्त नहीं। एकमें मानसिक भूमिका पार्थक्य है, तो दूसरेमें समयजन्य दूरी।

कविके इस वैचारिक धरातल और दोनों दर्शनोंकी भिन्न भावभूमियोंके कारण कहीं-कहीं अस्तित्ववादमें उपनिषद्का पैबन्द काफ़ी उभर आता है। लेकिन मृत्यु-चिन्तनमें-से सार्वजनिक और सार्वकालिक अमर जीवन-मूल्योंको उभारनेका उद्देश्य यदि पूरा हो सका तो निश्चय ही यह कृति नयी कविताकी मानसिक रुग्णतापर उसकी शक्तिकी विजय रूपमें स्वीकार की जायेगी, और उसका महत्त्व होगा, क्योंकि रोग, खासकर मानसिक रोग, न बहुत दिनों तक पाला जा सकता है, न अपने-आप टिक सकता है :

यदि पीना ही हो ज़हर
उसे दो तरह पिया जा सकता है
डरते-डरते
मरने से पहले ही मर कर
या उसी चरम भय से कोई अन्धा बल पा
जीवन से भी ऊपर उठ कर....

—सावित्री सिन्हा

Roller Chains AND Sprockets

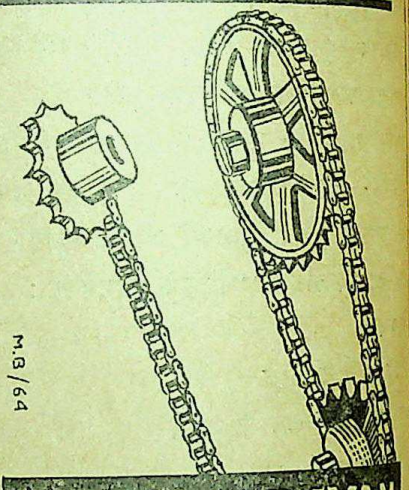

M.B./64

JAGATNARAYAN BHAGAWANDASS
71/A, NETAJI SUBHAS RD. CAL-1
ROOM NO. D/S 12

PHONE { 22-4704 / 22-0795

Importers & Stockists of :

Steel Roller Chains, Sprockets of
"Renold" Kabo Diamond, Anchor
Morse & General Order Suppliers

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

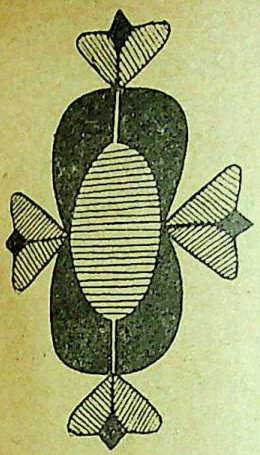

प्र । श्ना । न्त । क

एक पत्र नये-नयों को···

—हरिभाऊ उपाध्याय

मैं अपनी लम्बी बीमारी—बल्कि बीमारीके लम्बे इलाजसे उठकर हाल ही मण्डल (सस्ता साहित्य मण्डल) के कामसे दिल्ली आया तो अपने कुछ साहित्यकार मित्र या बन्धु मिलने आ गये। यद्यपि मैं एक लेखक माना जाता हूँ फिर भी कोई पन्द्रह वर्षोंसे प्रत्यक्ष क्षेत्रसे दूर जा पड़ा था। हाँ, बीच-बीचमें साहित्यिक विचार-धाराओं, नव-साहित्यके विचार-प्रवाहोंको टटोल लिया करता था। अब दूसरे कामोंसे अधिक छुट्टी पानेपर, मैंने सोचा ज़रा गहराईमें ग़ोता लगा लूँ। अन्दरसे भी कुछ समझ लूँ। मैं नवीन, मुक्त, निर्बन्ध, स्वतन्त्र, नग्न-जैसे शब्दोंसे घबराता नहीं हूँ। नित्य नवीन होना, चाहना, अधिकसे अधिक स्वतन्त्र होना, स्वतन्त्रता चाहना, मुक्त अनुभव करना जीवनका एक महान्, मूलभूत लक्षण है। संसार यदि नित्य नवीन नहीं है तो क्या है? संसार शब्द ही प्रतिक्षण नवीन होनेका नाम है। सृष्टि बनती है, बिगड़ती है, रहती भी है—रहनेमें भी प्रतिक्षण बदलती है—यह नवीनता नहीं तो क्या है? इसलिए मुझे आश्चर्य होता था कि पुरानी पीढ़ीके कहे जानेवाले साहित्य या समाजके नेता इन नवीन लेखकों, कलाकारों, कवियोंको आख़िर आलोचना क्यों करते हैं—ऐसी खिल्ली क्यों उड़ाते हैं? वे भी तो अपने ज़मानेमें नवीन रहे हैं, उसे क्यों भूल जाते हैं? परन्तु चूँकि वे पुराने हैं, और पुराना आदमी कुछ ज़िम्मेदार अधिक हो जाता है, इसलिए एकाएक उन्हें 'ऊल-जलूल' कहने या माननेको भी मन नहीं होता था। परन्तु फिर भी मेरी सहानुभूति नव-साहित्यकार, नव-कलाकार, नव-सर्जकोंके साथ ही रही, आज भी है। पुरानोंके प्रति आदर भी कम नहीं हुआ है।

इस मनःस्थितिमें मैंने उन साहित्यिक मित्रोंसे पूछा— मैं साहित्यिक चिन्तन-धाराओंमें पिछड़ गया हूँ, ज़रा बताइए तो हमारे नवीनतम साहित्यकार (इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकार और कवि भी शामिल हैं) अपने बारेमें कहते क्या हैं ? चाहते क्या हैं ? अलबत्ते ये मित्र स्वयं नवीनतम साहित्यकार-कक्षामें नहीं आते हैं, तो भी हम उन्हें इन नवीन या नवीनतमके गुरु, दादागुरु, कह सकते हैं। उन्होंने मुझे बताया कि वे (नवीनतम) प्यारको स्वच्छन्द रहने देना चाहते हैं। अपने विचारों, भावनाओं, कल्पनाओं, उर्मियों, में मुक्त रहना चाहते हैं—सर्वतः सर्वथा, मुक्त, निर्बन्ध, अभिव्यक्तिको सर्वोत्तम कला मानते हैं और इसकी दाद चाहते हैं। वे सचाईको मानते हैं, परन्तु निरावरण सत्यको वे वास्तविक सत्य कहते हैं। उनकी रायमें शेष सब पाखण्ड है, धोखा है, सीमित है, अल्प है, संकुचित है। वे व्यापक, विशाल, त्रिकालाबाधित देश-काल-पात्रकी सीमाओंसे रहित, बल्कि परे, व्यक्तित्वको सही और आदर्श मानते हैं। वे मनोविज्ञानके उपासक हैं—मन जिधर जाना चाहे बेरोक-टोक जाता रहे, देखता रहे, सुनता रहे, कहता रहे, करता रहे—ऐसी व्यवस्था चाहते हैं, आदि।

मुझे पता नहीं, उन्होंने जिस भाषामें यह सब समझाया, वह नवीनतम साहित्यकारके साथ न्याय कर सकी है, या नहीं, और इसके द्वारा मैं भी उनकी हार्दिक और वास्तविक स्थितिको ठीक तरहसे समझ पाया हूँ या नहीं, ग्रहण कर सका हूँ या नहीं। मैं दिलसे पसन्द करूँगा यदि कोई नवीनतम साहित्यकार ऐसा मिल जाये जो स्वयं ही मुझे अपने मुखसे अपनी बात समझा दे। इस दृष्टिसे मैंने आधुनिकतम कहानी, कविता, चित्र आदिको देखना भी शुरू किया है। जो-कुछ थोड़ा-बहुत देखा-समझा, उसी आधारपर कुछ अधिक कहना न्यायोचित न होगा, हो सकता है मेरे समझने-में भूल हुई हो। यदि ऐसा हो तो मैं चाहता हूँ कि वह दुरुस्त हो जाये। इस दृष्टिसे जो प्रश्न मेरे मनमें उठे हैं वे यहाँ रख देना चाहता हूँ—

(१) अपनी अनुभूतियों, अभिव्यक्तियों-में वे किसीसे कोई रिश्ता मानते हैं या नहीं ? रिश्ता जीवनसे, निजसे, परिवारसे, समाजसे, राष्ट्रसे, मानव जातिसे, जगत्से, या जगत्के परे किसी अव्यक्त, अदृश्यसे ?

(२) अच्छाई या बुराई-जैसी कोई चीज़ उनके गले उतरती है या नहीं ?

(३) वे उपभोगका ही अधिकार मानते हैं या कर्तव्यको भी कोई स्थान देते हैं ? उसकी भी कोई ज़िम्मेवारी मानते हैं ?

(४) केवल भावना, प्रेरणा, स्फुरण, स्पन्दन, प्रवाह, वेग, गतिको ही महत्त्व देते हैं या विचार, विवेक-जैसी किसी शक्तिके भी अस्तित्वको स्वीकार करते हैं या उसकी आवश्यकता मानते हैं ?

(५) आखिर वे मनुष्यको, समाजको कहाँ और किधर ले जाना चाहते हैं—कहीं ले जाने-जैसी भाषा भी उनके समुदायमें स्वीकृत है या नहीं है ?

(६) अस्तित्वकी रक्षा, विकास-वैसे कुछ मानते हैं या नहीं ? प्रश्न तो और भी कई उठते हैं, पर वे सब प्रायः इन्हींमें समा सकते हैं, इनके शाखा-पल्लव ही हो सकते हैं।

[शेष पृष्ठ १३३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

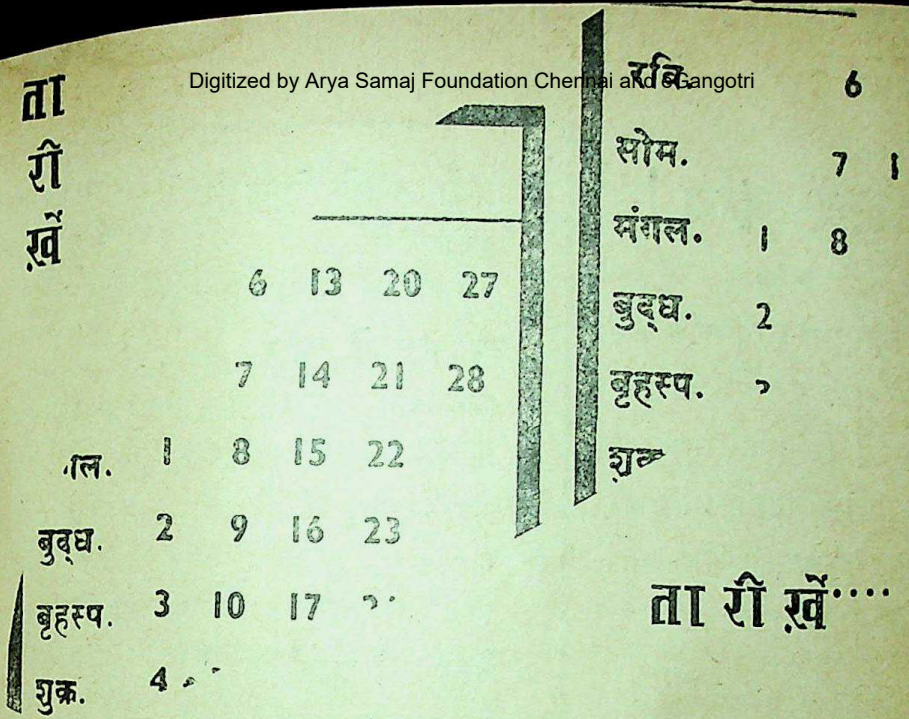

राष्ट्रीय भस्मासुर

केरलके एक शहरमें सड़कपर खड़ी हुई एक कारके पहियोंसे दो आदमियोंने मिलकर हवा निकाल दी। पुलिसने पूछा तुमने ऐसा क्यों किया? बोले वे—'हमें भूख लगी है।' पिछले दिनों कलकत्तामें हावड़ा ब्रिजपर एक भीड़ने दो बसें जला दीं। भीड़से पूछा गया कि ऐसा अराजक काम वे क्यों कर रहे हैं। भीड़के प्रतिनिधिने जवाब दिया—'खानेको चावल तो मिलता नहीं और तुम कहते हो कि ऐसा क्यों किया, हम ऐसा ही करेंगे।....' हंग्री केरलने नाराज़ होकर हंगरकी जगह एंगरकी साख सामने रखी है। पिछले महीने कलकत्तामें अस्सी दिनमें नब्बे जुलूस निकले हैं, कलकत्ता अब जुलूसधर्मी शहर हो गया है। कहनेवाले कहते हैं—सन्देशको रोका : जुलूस निकालो, ट्रामका किराया बढ़ा : जुलूस निकालो, राशन नहीं : जुलूस निकालो, मछली ग़ायब : जुलूस निकालो, मौसम बदला : जुलूस निकालो, प्यार हो गया : जुलूस निकालो...। जुलूस यानी रेणुकी यह भूमि नहीं कि यह जुलूस कहाँ जा रहा है, ये लोग कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं.....जुलूसका मतलब तो बहुत साफ़ है। नेता इस बातकी तलाशमें लगातार रहते हैं कि कुछ हो तो कुछ करें। शायद जुलूस निकालने-के सर्वश्रेष्ठ आइडियापर पुरस्कार भी दिया जाता हो। जुलूसके झण्डे-लग्गियाँ सब किरायेपर मिल जाते हैं, यहाँतक कि शामिल होनेवाले लोग भी। जैसे कोर्टमें किरायेपर गवाह मिलते हैं वैसे ही जुलूसिया भी मिल जाते हैं, ये लोग ठेकेपर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्य-व्यंग्य !

हिन्दीमें हास्य-साहित्य कम है, व्यंग्य-साहित्य और भी कम। ये कृतियाँ हिन्दीके हास्य-व्यंग्य साहित्यमें अनूठी हैं : कि भरपूर गुदगुदायें भी और मौक़े-बेमौक़े गहरी चोट भी करें।

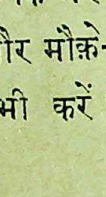

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली-६

- **जैसे उनके दिन फिरे**
  हरिशंकर परसाई
  परसाईजीकी विशिष्ट हास्य-व्यंग्य कथाएँ।
- **काग़ज़ के फूल**
  शब्द : भारतभूषण अग्रवाल, चित्र : प्रभाकर माचवे
  हिन्दीमें नयी चीज़—'तुक्तक' ! मीठे और पैने।
- **मुर्ग़-छाप हीरो**
  केशवचन्द्र वर्मा
  हँसाने और गुदगुदानेवाले शब्द-चित्र, कहानियाँ।
- **तेल की पकौड़ियाँ**
  डॉ० प्रभाकर माचवे
  कविताएँ और निबन्ध : आपके लिए !
- **सिकन्दरनामा**
  सलमा सिद्दीक़ी
  हमारे-आपके बीचके एक नये सिकन्दरका बयान।
- **बक रहा हूँ जुनून में**
  प्रकाश पण्डित
  तीखे व्यंग्य-निबन्धोंका संग्रह।
- **अंगद का पाँव**
  श्रीलाल शुक्ल
  लेखककी बहुचर्चित हास्य-व्यंग्य रचनाएँ
- **चाय पार्टियाँ**
  सन्तोषनारायण नौटियाल
  हास्य-व्यंग्य नाटक।
- **हास्य मन्दाकिनी**
  नारायणप्रसाद जैन
  संसारके शिष्ट हास्य-व्यंग्योंका संग्रह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम करते हैं और फुटकर भी। तर्क यह है कि हम तो गान्धीवादी हैं—गान्धीने हमें सत्याग्रह सिखाया है····बस जलाई थोड़े है यह तो सत्याग्रह है, एक सप्ताहके लिए काम बन्द थोड़े ही किया है यह सत्याग्रह है, उस भीड़पर गोली चलनेसे दस लोग मरे कहाँ वह तो सत्याग्रह है।····इस सत्याग्रहके हज़ार तरीक़े हैं—इण्डियन एअर लाइन्सके कर्मचारियोंने चुप्पी साधकर नाराज़ी दिखाई और कहा हमारे काम करनेके दो तरीक़े हैं : वर्क टु द ट्रेड और वर्क टु द रूल। दोनों ही तरीक़े हैं काम करनेके--आपको दिल्ली जाना है और हवाई जहाज़ नहीं है तो वह वर्क टु द रूल हुआ और यदि हवाई ज़हाज नौ घण्टे लेट जा रहा है तो वह वर्क टु द ट्रेड हुआ। आपके केबिनमें होस्टेस चेहरेपर गुस्सा पहनकर लेमनचूस देती है तो वह वर्क टु द रूल हुआ और यदि पायलेटसे रामजाने किस कारण नाराज़ होकर सारे हवाई जहाज़ोंको नारी-विहीन करवा देती है तो वह वर्क टु द ट्रेड हुआ।····वर्क वर्क है, कोई कामपर नहीं आये तो वह भी वर्क है। अब तो यह भी हालत है कि नेताओंके दल ऑफ़िस-ऑफ़िस जाकर यह पूछते रहते हैं कहीं कोई गड़बड़ हो तो वे सहायताके लिए प्रस्तुत हैं और दुर्भाग्यसे अगर कहीं कोई गड़बड़ नहीं है तो भी वे प्रस्तुत हैं, अरे साहब गड़बड़ तो हाथका मैल है, भगवान् चाहेंगे तो कल सवेरे ही आपके यहाँ कोई-न-कोई गड़बड़ हो जायेगी····। सचमुच गान्धीजीने सत्याग्रह सिखाया था। भस्मासुरको शंकरने वर दिया था कि तू जिस किसीके सिरपर हाथ रखेगा वही भस्म हो जायेगा पर उन्हें भोलाशंकरको यह मालूम ही नहीं था कि यह भस्मासुर मेरे ही सिरपर हाथ रखने आ जायेगा। लेकिन सत्याग्रह तो जन्मसिद्ध अधिकार है उससे कोई किसीको कैसे रोक सकता है····? वह तो आदमी माँके पेटसे सीखकर आता है। जबतक आदमी ज़िन्दा है वह सत्याग्रह करेगा, आप उसे फाँसीकी सज़ा दे सकते हैं लेकिन उसे सत्याग्रह करनेसे नहीं रोक सकते। शंकरकी पोस्ट हमेशा खाली रहती है, जो भी आयेगा उसे ही गरलपान करना होगा।

बहती गंगा :

हर साल कलकत्तामें फ़रवरी-मार्चके महीनेमें यह भावना आ ही जाती है कि मौसमकी बहती गंगामें हाथ धो लो। बादको तो सारा मौसम उमस और चिलचिली गरमीसे खराब हो जायेगा। यू० ए० आर० का फ़िल्म फेस्टीवल पूरा हुआ ही था कि बिमल रॉयकी फ़िल्मोंका हिन्दुस्तानी समारोह भी हो लिया—भीड़ हर जगह, वैसे महानगरोंमें भीड़ बनानेमें एक विशेष सुख मिलता है। यहाँके लड़के और लड़कियाँ भी सालके अधिक समय चन्दा वसूल करनेमें लगे रहते हैं। आप ऑफ़िससे घर पहुँचे नहीं कि चन्दा देनेके लिए तैयार रहिए। दुर्गापूजाका चन्दा, लक्खीपूजाका चन्दा, कालीपूजाका चन्दा, सरसुती पूजाका चन्दा, शिवपूजाका चन्दा·····किसी दिन कोई आकर कहेगा—'चन्दा दीजिए।' पूछेंगे—'किस बातका?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जवाब देगा—'मेरी शादी है।' जैसे पानीमें रहकर मगरसे बैर नहीं किया जाता है वैसे ही मोहल्लेमें रहकर चन्दा-परस्तोंसे बैर नहीं लिया जा सकता। बचनेका कोई तरीक़ा है भी तो यह कि आप खुद चन्दा माँगने निकल जाइए। इसीलिए लोग कार्निवाल करते हैं। आई० टी० एफ० के जिगर-मैदान-में अभी-अभी लायन्स क्लबने जवानोंके लिए चन्दा माँगनेकी ग़रज़से बड़ी धूम-धाम करवा दी—रात-भर खुले बार, जिन्हें बुक-पोस्ट बार कहते हैं जिनका मोटो है : जो पीये उसका भला जो न पीये उसका भला····· रात-भर मचलती धुनपर थिरकते पैर जो नाचे उसका भला जो न नाचे उसका भला···· रात-भर कैबरे और दिगम्बर रोशनियाँ····· रातकी बाँहोंमें कलकत्ता कुछ और ही होता है, राजेन्द्र यादवने रातके पैरोंपर कलकत्ता-को देखा था, पैर काँप सकते हैं, डगमगा सकते हैं और बाँहें·····छोड़िए आपकी तबी-यत खराब हो जायेगी। सी० आई० सी० में सी० के० रे की एक प्रदर्शनीने यह सिद्ध कर दिया कि नाचना नहीं जाननेसे आँगन टेढ़ा नहीं होता। न चित्र बनाना सीखा और न ही लकीरें खींचना लेकिन ऐसे चित्र बनाये हैं जो दिमाग़से सीधे उतरे हैं, उनमें केवल एक्सप्रेशन है, खालिस अभिव्यक्ति। ऐसे पेशाविहीन चित्रोंको कलकत्तामें 'सण्डे पेण्टिग' कहते हैं इसका मतलब यही है कि जिन लोगोंको चित्र बनानेके लिए केवल सण्डे मिलता है····या यह भी कि वे सण्डे जैसी फ़ुरसतमें तसवीरें बनाते हैं। लेकिन दो बीटनीकोंने कलकत्ताको परेशान कर [illegible] है इन दिनों। दोनों दिखनेमें भाई-भाई [illegible] हैं लेकिन ग़ौरसे देखनेपर लगता है कि [illegible] भाई-भाई नहीं, भाई-बहन हैं। अस्त-[illegible] बाल बढ़े हुए, फटी हुई जीन्स, हाथमें [illegible] पोर्टकी पार्टेबल बोतल, तीन पीढ़ियोंसे [illegible] नशा····चले जा रहे हैं। कॉफ़ी हाउ[illegible] परसों क़ै कर दी, उसके एक दिन पहले [illegible] स्ट्रीटमें ट्विस्ट किया। उनसे पूछा—'आ[illegible] क्या तकलीफ़ है?' बोले वे—'हम ना[illegible] हैं।'—नाराज़ तो राजा राम भी थे। [illegible] फिर पूछा—'आप किस बातसे नाराज़ [illegible] उन्होंने साफ़-साफ़ उत्तर दिया—'यह [illegible] नहीं मालूम कि हम किस बातसे नाराज़ [illegible] हम हिन्दुस्तान भी इसीलिए आये हैं कि [illegible] नाराज़ीका कारण मालूम कर सकें। [illegible] दिन नाराज़ीका कारण मालूम हो [illegible] उस दिन हमारी सर्च पूरी हो जायेगी।'····· और कलकत्ताके यूनिवर्सिटीके न्यू होस्[illegible] आये रशियन विद्यार्थियोंका आग्रह था [illegible] उनसे हिन्दीमें ही बात की जाये। उनके [illegible] से हिन्दी सुनकर हिन्दीवालोंको भी [illegible] सीखनेकी इच्छा हो·····।

इक तेरा सहारा :

रेस कोर्सके मैदानमें बात हो [illegible] थी—लगा दे 'इक तेरा सहारा' पर। [illegible] दोस्त था कि 'रूठ चले बालम' पर [illegible] रुपया लगाना चाहता था।·····[illegible] लिए जिनके पास रुपया हैं वे मोरारजी [illegible] पर भी लगाते हैं। १९ जनवरीको [illegible] रुपया लोगोंने खोया-पाया। सुबह-शा[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़ते-उतरते रहे। मोरारजीके पक्षवाले एक सटोरियेने बड़ा बाज़ारमें चुनाव समाचार सुननेके बाद चुप रहकर लोगोंको आश्चर्य-में डाल दिया। इन्दिराजीके प्रति आदर व्यक्त करते हुए अच्छे खिलाड़ीके अन्दाज़में उसने कहा—'मैं इस बार मोरारजीपर हारा लेकिन मुझे इस बातका दुःख नहीं है क्योंकि मैं बड़ा आशावादी रेसकोर्सर हूँ। मैं पाँच बार 'सोफिया लारेन' पर रुपया लगाकर हारा हूँ लेकिन छठीं बार उसीके कारण मुझे तीन लाख रुपया मिला। मेरा निश्चय है कि जब-जब भी मोरारजी चुनावमें खड़े होंगे मैं उन्हीं-के नामपर सट्टा खेलता रहूँगा। 'कभी न कभी तो मेरी जीत होगी ही।'.....आप नोट कर लें 'सोफिया लारेन' एक घोड़ेका नाम है। कलकत्ताके एक सट्टेबाज़ परिवारका क़िस्सा आपने सुना ही होगा। उस व्यक्ति-की पत्नी बीमार पड़ी—हालत ऐसी कि अब मरी तब मरी। उसने सट्टा लगा लिया कि वह मर जायेगी लेकिन उसके दोस्तने कहा वह नहीं मरेगी। पासा पलट गया और दुर्भाग्यसे वह बच गयी। सुनते हैं वह व्यक्ति फूट-फूटकर उसके बच जानेपर रोया और बोला कि मैं तो आशावादी आदमी हूँ, वह आज बच गयी तो क्या हुआ, कल तो मरेगी ही।.....लेकिन इन दिनों सट्टाबाज़ार अमे-रिकामें गरम है—ल्यूना : ९ ने सबको परेशान कर दिया है। लोग चाँदपर आदमी-के उतरनेकी प्रतीक्षामें लगे हुए हैं। सुनते हैं ल्यूना : ९ के करिश्मे ज़ाहिर होनेके बाद-से बिरला प्लानितोरियममें बड़ी भीड़ रहने लगी है। कॉलेज यूनिवर्सिटीसे लड़के-लड़की भाग-भागकर वहाँ जाने लगे हैं। कुछ दिनों बाद वहाँ एक स्लाइड शो के पहले दिखाया जायेगा : किसिंग प्राहिबिटेड—आई० पी० सी० २९४। ऋत्विक् घटककी बाँगला बोई 'सुवर्न रेखा' के बादसे वैसे भी रेसकोर्समें भीड़ बढ़ने लगी है।

कैक्टस शो :

११से१३ तक हार्टीकल्चर गार्डनमें फ़्लावर शो था—हर सालका सबसे रोमैण्टिक शो। एक रुपयेके टिकिटमें दस रुपये वसूल होते हैं। हर तरहके फूलोंकी नुमाइश देखकर भी वहाँ फूलोंपर निगाह नहीं ठहरती थी। एस्टर, मेरीगोल्ड, डेल्हिया, ग़ज़बके थे लेकिन सारे बाग़को कैक्टसने घेर रखा था। प्रथम पुर-स्कार-विजेता एस्० के० भादुरी बड़े मज़ेमें अपना बखान करते जा रहे थे—इतनी तरहके कैक्टस और ऐसे कि भगवान्की लीलापर सन्देह होने लगे। कैक्टसकी आकृतियोंके सामने सारा एब्सट्रेक्ट शिल्प पानी भर रहा था। दूसरा पुरस्कार ए० पी० जैनको मिला। देखनेवालोंमें हर व्यक्ति यह सोचता पाया गया कि वहाँसे एक-दो कैक्टस कैसे चुराये जा सकते हैं। यहाँतक कि पुरस्कार-विजेताओंमें भी वही भावना थी। फूलोंकी तरफ़ किसीका आकर्षण नहीं था। बदलते हुए इस सौन्दर्य-बोधसे यह आशा बनती है कि अब केवल कैक्टस शो होने लगेंगे, वहाँ चोरीका माल भी पकड़ा जा सकेगा। जो हो, वैसे भी स्टोलन चीज़ें बड़ी मधुर होती हैं।

तारीखें : सुमेश भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बच्चन' का लोकप्रिय साहित्य

अभिनव सोपान	१५·००	मरकत द्वीप का स्वर (प्रेस में)			
दो चट्टानें	७·००	मिलन-यामिनी	३·५०	बंगाल का काल	२·००
चार खेमे चौंसठ खूँटे	४·००	सतरंगिनी	३·००	मैकबेथ	३·००
त्रिभंगिमा	४·००	एकांत संगीत	२·५०	ओथेलो	३·५०
आरती और अंगारे	४·००	हलाहल	२·५०	६४ रूसी कविताएं	३·००
धार के इधर-उधर	२·२५	बुद्ध और नाचघर	३·००	जन गीता	२·००
सूत की माला	३·००	निशा-निमंत्रण	२·५०	खैयाम की मधुशाला	२·५०
खादी के फूल	३·००	मधुबाला	२·००	सुमित्रानंदन पंत	२·००
आकुल अंतर	२·५०	मधुशाला	२·००	कवियों में सौम्य संत	५·००
प्रणय-पत्रिका	२·५०	मधुकलश	२·००	नये-पुराने झरोखे	४·५०

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाने-पीनेकी बातें :

जयपुरके काँग्रेस अधिवेशनका शोर गुल हो गया। कई सारे नेता चावल नहीं खानेकी क़सम खाकर अपने-अपने घर लौट आये। एक पत्रकारने बतलाया : इस बार लग रहा था अधिवेशनमें आनेवाले चुनावका डर दिखाई देगा क्योंकि चुनावसे पहलेका वह समय आ गया है जब विरोधी सरकारकी टाँग खींचने लगते हैं और सरकार तेज़ीसे दौड़ लगाकर अपने दौड़नेकी धाक जमाने लगती है। लेकिन इस बार सारी बातें खाने-पीनेपर ही चलती रहीं। कामराज, श्रीमती गान्धी और सुब्रह्मण्यम् समस्या यानी खानेकी समस्यापर चर्चा करते रहे। उधर म० प्र० के मुख्य मन्त्री और मोरारजी पीनेकी समस्यापर विचार करते रहे। मोरारजीने कहा—'पहले केवल राक्षस ही पीते थे और यह काम बेहद घटिया माना जाता था।' इसका द्वारकाप्रसाद मिश्रने उत्तर दिया—'पहले देवता ही सोमपान करते थे और यह काम कभी साधारण नहीं माना जाता रहा।....' कुछ लोग यह कहते पाये गये कि सरकारको प्रारम्भिक शिक्षाकी तरह खाना भी अनिवार्य कर देना चाहिए और अँगरेज़ीकी तरह पीनेको ऐच्छिक दर्जा दिया जाना चाहिए। ये लोग शिक्षा विभागसे रिश्ता रखनेवाले थे और दुखी थे कि शिक्षापर कोई चर्चा नहीं हो रही है। किसीने जवाब दिया था कि शिक्षा ज्वलन्त समस्या नहीं है। जिसने यह कहा था वह परिवार-नियोजन विभागसे सम्बद्ध था।

हाऊ टु विन...

एक पुस्तक विक्रेता इस बातसे बहुत परेशान था कि आजकल "हाऊ टु विन नोबल प्राईज़" शीर्षक पुस्तक बहुत बिकने लगी है। साहित्य-अकादमी पुरस्कार घोषित हो गया यह सुनकर एक असाहित्यिकने पूछा—'इस बार किसने जीता हिन्दीका पुरस्कार ?' इस शब्दावलीमें 'जीता' शब्द जनमतको बतलाता है। उत्तर प्रदेशके पुरस्कारके बारेमें कहा जाता है—'इस बार किसने लूटा पुरस्कार ?' मध्यप्रदेशके बारेमें कहा जाता है—'इस बार किसने मारा पुरस्कार ?' भोपालकी नगरपालिका साहित्यकारोंको प्रतिवर्ष पुरस्कार देती है। उस पुरस्कारके बारेमें आप यह सुन सकते हैं—'इस बार किसने कबाड़ लिया भाई पुरस्कार ?' विदेश तो हमसे हज़ार मील आगे है। रायटर्स डायजेस्टने एक कहानी प्रतियोगिता आयोजित की है। उसमें कई-सौ पुरस्कार हैं। विश्वास मानिए आप उसमें तीन पुरस्कार ये भी हैं—'एक सप्ताहके लिए ख़ूबसूरत स्टेनो, जो आपसे कहानियोंका डिक्टेशन लेकर उन्हें टाइप कर देगी ....ढलक नाईटकी चार बड़ी बोतलें....सम्पादकके साथ किसी शाम बढ़िया फुल कोर्स डिनर।'

कॉफ़ी-हाऊस :

प्रेमी—तुम मूर्ख हो।

प्रेमिका—मूर्ख तुम हो।

प्रेमी—लेकिन उतना मूर्ख नहीं हूँ जितना तुम हो।

प्रेमिका—मैं भी मूर्ख तो हो सकती हूँ लेकिन तुमसे कम ही।

वेटर बिल लिये खड़ा था। इस वार्तालापसे बोर होकर कहा उसने—आप बिल चुकानेके लिए नाहक ही झगड़ रहे हैं। इसमें कम ज़्यादाका कोई सवाल नहीं। पैसा चुकानेका अधिकार तो हर तरहके आदमीको है।

—सुमेश भौतिक

तारीखें : सुमेश भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

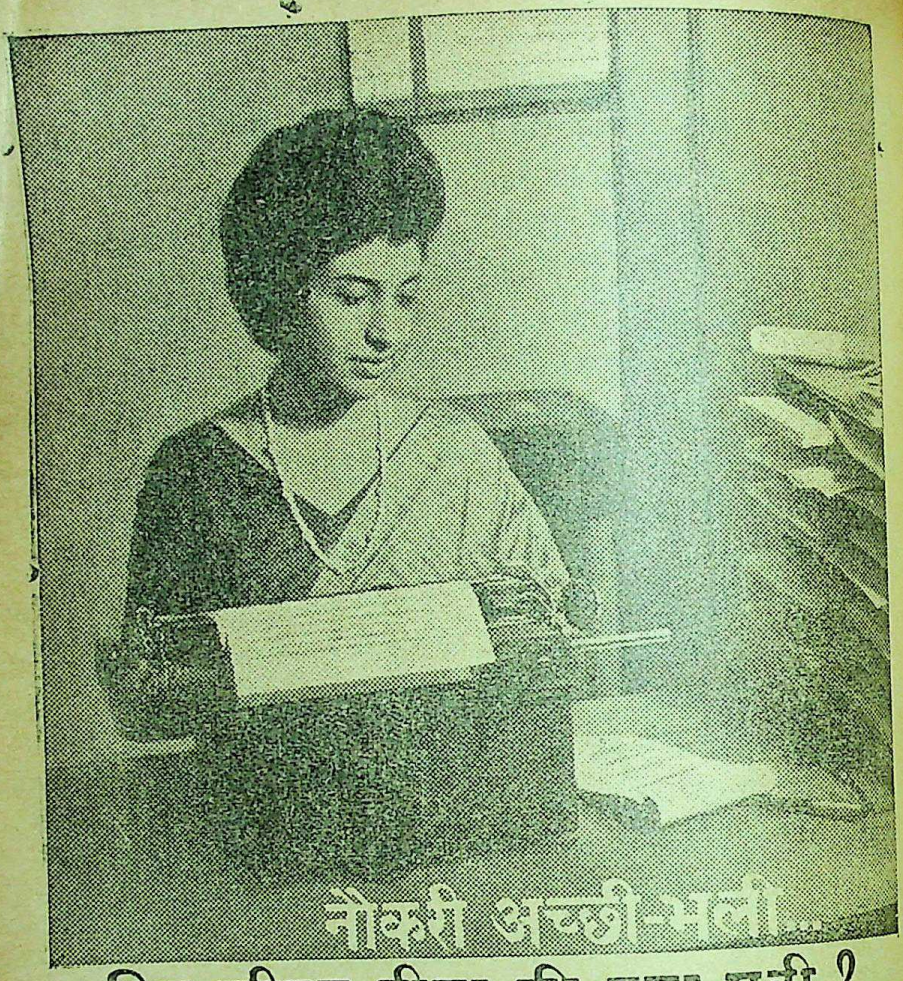

फिर जीवन बीमा की क्या पड़ी ?

मुझे अपने काम से अच्छी तनख्वाह मिलती है। मैं खूब पढ़ी-लिखी हूँ। मैं अपने माँ-बाप के साथ रहती हूँ और मेरी सेहत भी अच्छी है। एक-न-एक दिन मेरा विवाह होगा। और जैसे दूसरी शादीशुदा लड़कियाँ नौकरी करती हैं वैसे मैं भी यह काम करती रहूँगी। ....सच है, श्रीमतीजी ! आपका जीवन बड़ा मज़ेदार है। और इसीलिए अब आपको भविष्य के सुख का प्रबन्ध करना है। आप बीमे की छोटी-छोटी किश्तें आसानी से दे सकती हैं।– बचत का यह बेहतरीन तरीका है। और यह बचत आपके बच्चों के काम आएगी, क्यों ठीक है न?

जीवन बीमा

सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

CAS/LIC-40 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा | संग्रह समीक्षा सम्पादन — पूरक अनुक्रमणिका

अज्ञेय, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन : जयदोल
अस्थाना, गिरीश : क्षितिज
जायसवाल हरीश : ठण्डी चाय, मेरी डार्लिंग
जोशी कमल : शीराजी
('माटीकी गन्ध' कहानी संग्रह नहीं है, रद्द समझें)
देवासे, मुन्ना लाल : काठका हाथी
पनिकर, रजनी (श्रीमती) : सिगरेटके टुकड़े, प्रेम चुनरिया बहुरंगी
सम्पादन : अवस्थी देवीशंकर (डॉ०) : कहानी : विविधा
सिंह मधुकर, विजयमोहन सिंह : १९६० के बादकी कहानियाँ

[पृष्ठ १२४ का शेषांश, प्रश्नान्तक : एक पत्र नये-नयोंको···]

यदि इनका उत्तर, 'हाँ' में आता है, तो एक तरहकी स्थिति बनती है. 'ना' में आता है तो दूसरी स्थिति पैदा होती है। कोई तीसरा ही जवाब हो तो, या उनको अपनी भाषामें ही समझाना चाहें तो, दोनोंसे भिन्न स्थिति सामने आ सकती है। अतः उनके साथ न्याय करनेकी दृष्टिसे मैं उचित समझता हूँ कि कोई नवमतवादी नेता या अनुयायी या कोई व्यक्ति इसपर प्रकाश डालनेकी कृपा करें। उसके बाद ही मैं अपने विचार या जिज्ञासा पाठकोंपर प्रकट करूँ तो अच्छा होगा। यदि इनका उत्तर, या इनपर प्रकाश किसी सामयिक पत्र-पत्रिकामें डाला जाय तो वे कृपया एक प्रति मुझे भेजने-भिजवानेका कष्ट करें या मुझे ही एक पत्र या लेख-द्वारा लिख भेजनेकी कृपा करें। यदि कोई लिखित या छापित साहित्य इस विषयपर निकला हो तो उसके मिलनेसे मुझे और भी सुविधा रहेगी।

[**इन प्रश्नोंके कुछ महत्त्वपूर्ण उत्तर अगले अंकमें**]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
[पृष्ठ ४ का शेषांश]

युद्ध विशेषांक मिला। इतने कम समयमें इतनी अच्छी सामग्री जुटायी है कि बधाई देना आवश्यक समझ रहा हूँ। आप लोगोंके अध्यवसायसे ही यह इतना वैविध्यपूर्ण और किन्हीं रूपोंमें युद्धके सन्दर्भ-ग्रन्थका रूप ले गया है जो सम्पादकीय सूझ-बूझका परिचायक है।

—जगदीश चतुर्वेदी

नयी दिल्ली]

●

पत्रकारिताके इतिहासमें सचमुच बेजोड़ प्रयोग। युद्ध-सन्दर्भमें हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें जो कुछ अबतक आया है उसमें श्रेष्ठतम। इससे बेहतर शायद कुछ दिया भी नहीं जा सकता। और जब यह सोचता हूँ कि यह सारी सामग्री ज्ञानपीठसे सम्बद्ध व्यक्तियों-द्वारा ही तैयार की गयी है और वो भी सीमित अवधिमें तो लगता है कि ज्ञानपीठके पास एकसे एक बढ़कर शैलीकार मौजूद हैं जो कठिनसे कठिन दायित्व निभा सकते हैं। सभी चीज़ें स्तरीय हैं और परिश्रम तथा सतर्कतासे लिखी गयी है। विशेष बात ये कि उनमें भावुकताका अनावश्यक आवेश अथवा आक्रोश नहीं है। सबसे मौलिक सूझ जिसके लिए मैं आपको हार्दिक बधाइयाँ देना चाहूँगा वह है चित्रोंके साथ निरालाकी शक्तिपूजाके उद्धरण। विद्रोही रचनाकारकी ओजपूर्ण पंक्तियोंसे समूचे विशेषांकने विराट् व्यक्तित्व पा लिया है।

—दिनकर सोनवलकर

रतलाम]

●

ज्ञानोदयका युद्ध विशेषांक एक दस्तावेज़के रूपमें तैयार करनेके लिए बधाई। इस दस्तावेज़का मसविदा समयके विचारसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु इसमें गवाहों सैनिकों और शहीदोंके हस्ताक्षरोंका अलगसे न होना खटक जाता है। गवाह ही किसी भी दस्तावेज़की सार्थकता सिद्ध करते हैं। प्रस्तुत रचनाओंमें विश्वयुद्ध १, २, ३, युद्ध-भूमिपर घूमता हुआ रथ : आजके युद्धका शब्दकोश : युद्ध नदके किनारे और संकलनके अन्तर्गत युद्धान्तर सशक्त है। दो रुपये पूरे वसूल हो गये।

—देवेन्द्र बिसुनपुरी

पटना]

●

ज्ञानोदय सर्वदा युगके अगले क़दमके साथ रहा है और यह विशेषांक उसी स्वस्थ परम्पराकी एक कड़ी है। 'अँधेरेमें चलते हुए शहर' खूब अच्छा लगा। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनकी रचना इतिहास और राजनीति शास्त्रके विद्यार्थियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। 'युद्ध-भूमिपर घूमता हुआ रथ', (कुन्था जैन) तो ललित इतिहास है और ऐतिहासिक साहित्य। सर्वथा संग्रहणीय रचना है। युद्ध-चिन्तनमें प्रभाकरजी अधिक

आगके प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इम्प्रेस कर सके। अधिकांश रचनाएँ पठनीय हैं लेकिन वर्तमान युद्धके सन्दर्भमें कोई भी कहानी न देखकर बड़ी निराशा हुई।

इम्फाल] —जवाहरसिंह

●

अल्प समयमें ही इतनी सुपाठ्य सामग्री जुटा पाना शायद ज्ञानोदयके लिए ही सम्भव था। आवरण पृष्ठका आकर्षण लेखोंकी उपयोगिता सभी तो इसके चार चाँद लगा रहे हैं। और····हजारों पाठकोंको विशेषांकसे वंचित करके आपने ठीक तो नहीं किया। आप अपने व्यवस्थापकीय विभागसे कहिए कि वे उत्सुक पाठकोंसे न्याय करें दूसरा संस्करण निकलवा दें।

बावल] —महावीरप्रसाद अग्रवाल

●

जब किसी पत्रिकाका अंक इतना महत्त्वपूर्ण बन जाये कि पाठक उसे पुस्तककी भाँति सहेजकर रखना चाहे तो समझिए कि सम्पादकीय परिश्रमकी सार्थक पूर्णाहुति हुई। ज्ञानोदयके युद्ध विशेषांकके बारेमें निस्संकोच ऐसा कहा जा सकता है। र० ब० का एक लेख काव्यका मज़ा देता हुआ राष्ट्रके लिए ठोस धरातल तैयार करता है। लेख विश्वयुद्ध : एक, दो, तीन····एक समग्र इतिहासका सुलभ प्रस्तुतीकरण है। परसाईजीने दो टूक बात कही है तो जैनेन्द्र जीने आशाके विपरीत बिना भटकाये सत्यानुसन्धान किया है। युद्ध-सम्बन्धी कविता प्रतिक्रियाओंकी ताज़गी प्रभावित करती है।

जावरा] —श्यामगोविन्द राजहंस

●

युद्ध विशेषांक आजके विशेषांकोंकी गौरवपूर्ण परम्पराके सर्वथा अनुरूप लग रहा है। इस बार आवरण पृष्ठमें पूर्वगामी अंकोंके आवरण पृष्ठोंकी-सी कठिनाई नहीं है अतः वह अंकके कलेवरका साथ अधिक काल तक देगा। आवरण पृष्ठकी रूप-रेखा भी मज़ेकी है।

लखनऊ] —हर्षनारायण

●

दिसम्बर १९६५ :

दाम्पत्य विशेषांककी प्रति मिली। निस्सन्देह एक अत्यन्त आवश्यक विषयपर आपने यह अंक निकाला है। मैं इसके कुछ लेखोंको अवश्य पढ़ लेना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच अपनी समझ-बूझके लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। हरिशंकर परसाईका व्यंग्य कहीं-कहीं सीमाको पार कर गया है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

फिरोजाबाद]

●

ज्ञानोदयका दाम्पत्य अंक मिला। देखा। क्या कहने हैं! अंक न केवल आद्यन्त पठनीय है वरन् सहेजकर रखनेकी वस्तु भी है। क्या चुनाव और क्या विन्यास: अद्‌भुत है। बड़ी विविधता है। काका तो हर रंगमें फबते ही हैं श्री गोपाल प्रसाद व्यासकी भी कविता ख़ासी है।

—गोपीकृष्ण गोपेश

इलाहाबाद]

●

ईमानकी बात कहूँगा, यह ठीकसे निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि जितना पढ़ा है उसमें किसे सर्वश्रेष्ठ मानूँ। वैसे परसाईकी 'अपनी ही परिक्रमा', सोमा वीरा-की डायरीके 'स्वर' शशिप्रभा शास्त्रीकी 'कुलवधूका जमा खर्च' और सुधा अरोड़ा का 'अविवाहित पृष्ठ' बहुत अच्छे लगे हैं। शेष सामग्री भी बड़ी आकर्षक और मनोरंजक है।

—सुरेश चतुर्वेदी

लखनऊ]

[फरवरी अंक 'कथा-मंच' पर प्रतिक्रिया अगले अंकमें]

Gram : "ARBE TRADE"

Phone : 22-9055

R. B. TRADING CO.

71-A, Netaji Subhas Rd.
(Room No. D/S 11),
CALCUTTA-1.

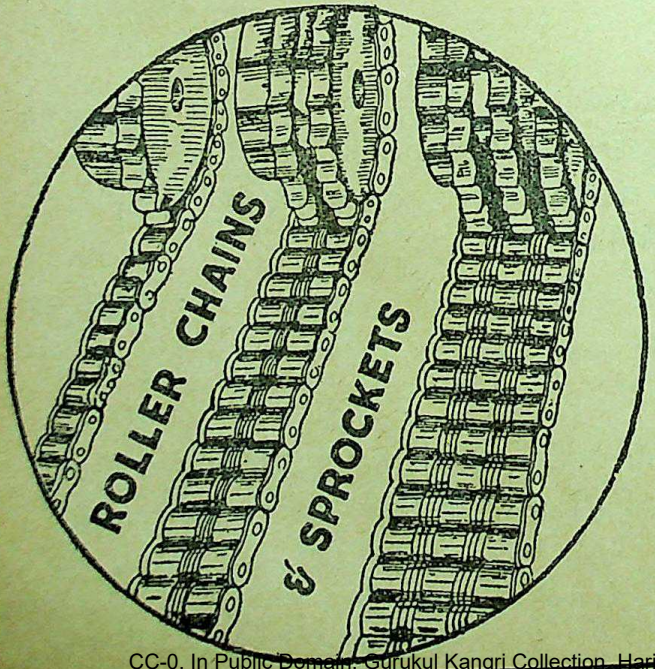

House for (All Types of Chain for Power, Load & Conveyor) Power Transmission Roller Chains, Connecting Links. M. S. & C. I. Sprocket Wheels & Pinions B. B. Malleable Iron Link Chain for Elevators, Inverted Tooth Chains, M. S. Balance Chains, M. S. Electrically Welded Short Link Chain (Confirming to B. S. 590 of 1949) M. S. Twisted Chains & Locking Chains etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

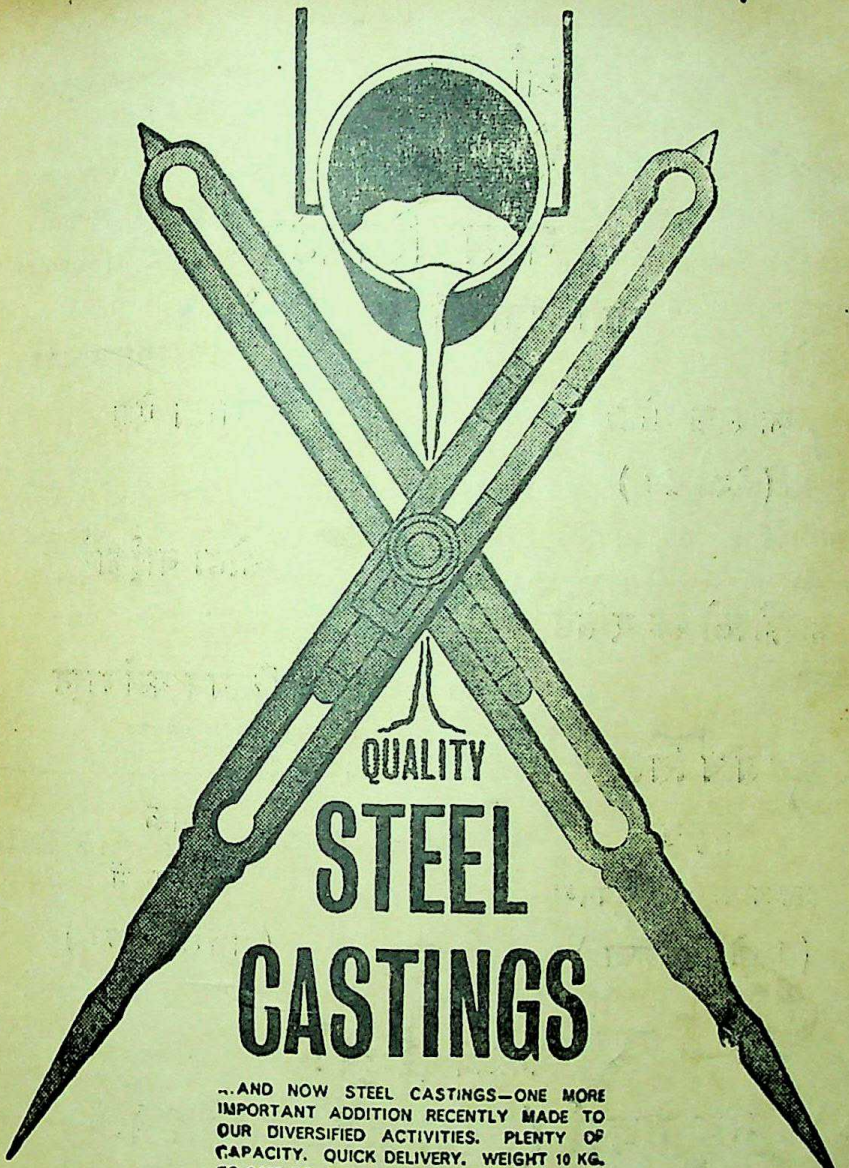

...AND NOW STEEL CASTINGS—ONE MORE IMPORTANT ADDITION RECENTLY MADE TO OUR DIVERSIFIED ACTIVITIES. PLENTY OF CAPACITY. QUICK DELIVERY. WEIGHT 10 KG. TO 2,500 KG PER PIECE UNDERTAKEN—ALL TO CUSTOMERS' SPECIFICATIONS.

THE BRITANNIA ENGINEERING COMPANY LIMITED.

(Mg. Agents : McLEOD & CO. LIMITED) 3, Netaji Subhas Road, Calcutta 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 15nP. This Copy Re. 1/-

License No 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०, तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

अप्रैल, १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़े ही खर्च में

शाही शान शौकत

टाइगर ब्रान्ड

पाट के गलीचे

से अपना घर सजाइये

अनेकों आकर्षक डिजाइन में प्राप्त

प्रस्तुत कारक—**श्री हनुमान जूट मिल्स**

८, डलहौसी स्क्वायर, कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

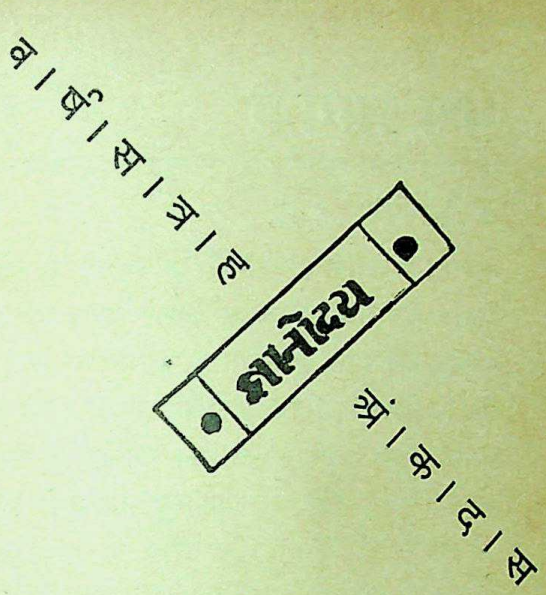

कुछ शीर्षक : निर्णयके अन्तरंग क्षण। कंगालमहल। दिगम्बर पीढ़ी। नये-नयोंके उत्तर। विपात्र। उतरती सीढ़ियाँ। चढ़ती सीढ़ियाँ। प्लेटोका दर्पण और कविताका सत्य। घर तकका रास्ता। भूख मर जाती तो····। रादनोतीकी युद्ध-कविताएँ।

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

सम्पादकीय कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस,
कलकत्ता-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र आपके

• दिसम्बर १९६५

दाम्पत्य विशेषांक सामग्री और विषयचयनकी दृष्टिसे सम्पादककी विशिष्ट प्रतिभाका द्योतक है। जीवनके प्रत्येक क्षणके साथ सम्बद्ध आधार-प्रश्नोंके सम्बन्धमें चर्चा करनेसे बचे रहना विशेषतः साहित्यिकके लिए दायित्व-निर्वाहसे बचते रहना है। ऐसे विषयपर विशेषांक प्रकाशित करनेपर भी हरिशंकर परसाई भले ही 'प्रकट रूपसे या सबके सामने' आपका अहसान न मानें किन्तु सभी पाठक और लेखक, मन-ही-मन परसाई भी, इसकी उपादेयताको स्वीकार करेंगे।

भोपाल] —अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

•

ज्ञानोदयके दाम्पत्य विशेषांकके पृष्ठ ११२ पर श्रीमन्मथनाथ गुप्तने लिखा है कि स्वामी रामतीर्थने विवाह नहीं किया। यह ग़लत है। उन्हें भवन जरनलकी आर० एस० शर्मा-द्वारा लिखित पुस्तक 'स्वामी रामतीर्थ' देखनी चाहिए। उसमें लिखा है कि स्वामीजी दस वर्षके थे जब उनका विवाह हो गया था। सो अविवाहितोंके लिस्टमें स्वामी रामतीर्थका नाम नहीं आना चाहिए।

मेरठ] —मनोहरलाल तिखा

•

सभी तारीखोंके साथ सन् '५५ दिया गया है (पृष्ठ १६१)। समझमें नहीं आया, यह आपने या स्वयं लेखिकाने किस दृष्टिसे किया है जब कि १-८-५५ के नीचे लिखा है—मुक्तिबोधकी मृत्यु और उनके संग्रह 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' के प्रकाशनके बारेमें। तथ्योंकी दृष्टिसे यह सब बड़ा अटपटा लगता है। क्या मैं ५५ के बजाय ६५ पढ़ूँ और यदि ऐसा करता हूँ तब कई और प्रश्न उभरने लगते हैं!

नयी दिल्ली] —वीरेन्द्र सक्सेना

•

दाम्पत्य विशेषांकके लिए बधाई। मनको मसोसकर रख देनेवाली रचना है सुधा अरोड़ाकी 'अविवाहित पृष्ठ'। भाषा जैसे बहती है और डर लगता है, कोई अविवाहित होकर भी इतना बोल्ड कैसे हो सकता है—ऐसे दक़ियानूस देशमें।

कालीकट] —माधवि पंकज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• जनवरी १९६६

जनवरी अंककी प्रति भी मिल गयी थी। बहुत सुन्दर सलोना अंक है। दाम्पत्य-विषयक सुरुचिसम्पन्न और मनोरंजक सामग्री है। 'रति रीति' को बरकाते हुए भी यत्र-तत्र इसकी छौंकन है। अच्छा ही है। मैं सती-प्रथा लेख पढ़नेको उत्सुक था। लेखकने इतना साधिकार कहा है कि इसका जन्म भारतमें नहीं हुआ था। परन्तु उन्होंने सती-प्रथाके आरम्भके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा है। प्रियजनों-को जलानेकी प्रथा ही आर्येतर भारतमें और बर्बर अफ्रीकामें शत्रुओंको जलानेकी रही है। स्वयं आर्य भारतमें आनेके पूर्व (मैं इसमें विश्वास रखता हूँ) अपने मृतकोंको तो गाड़ते थे। खैर। मुझे 'मॉम' विषयक आपकी टिप्पणी बहुत रुची। सचमुच उसका एक जीवनदर्शन था जिसमें गौतम बुद्ध, चार्वाक तथा अद्वैत-वादियोंका कॉकटेल है।

सागर] —राजनाथ पाण्डेय

•

ज्ञानोदयका दाम्पत्य विशेषांक १-२ पढ़ गया। दोनों ही अंक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु दाम्पत्य विशेषांक–२ अपनी कतिपय विशेषताओंके कारण अधिक पसन्द आया। उक्त अंककी रचनाएँ विषय, शैली एवं सहज अभिव्यक्तिके कारण अधिक सुष्ठु प्रतीत हुईं। दाम्पत्यके विविध पक्षोंको अपने विशिष्ट कोणोंसे देखनेके प्रयासमें अधिकांश लेखकोंको स्तुत्य सफलता मिली है, साथ ही उनके सौन्दर्य-सृजनमें डिठौनाका काम करनेवाली एक-दो रचानाएँ भी हैं।

कलकत्ता] —लालबहादुर सिंह

• फ़रवरी १९६६

सबको पढ़ा है, सबको समझनेकी कोशिश भी की है। राय देनेसे कतरा तो नहीं रहा, डर अवश्य रहा हूँ। मुझे लगता है कि आज जितनी आलोचना होने लगी है, उतनी रचना नहीं हो रही है। आलोचनाका धन्धा पहले पढ़ने-पढ़ानेवाले अधिक किया करते थे, जो रचना करनेमें असफल रह जाते थे। आज यह पेशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाकारोंके हाथोंमें चला गया जान पड़ता है। मुझे भी ऐन वक़्तपर इस मंचपर उतरनेके लिए बुलाया गया था। शामिल नहीं हो सका—अब इसका खेद नहीं है।

चण्डीगढ़] —इन्द्रनाथ मदान

●

कथा-समारोहवाला विशेषांक बहुत अच्छा निकला है। उसमें किसीको भी शिकायतका मौक़ा नहीं है। तुम्हारी जड़ी हुई टिप्पणियाँ बहुत अच्छी लगीं। परसाईका व्यंग्य-लेख तो और भी मज़ा देता है और कैप्शन्स तो बहुत मज़ेदार और पैने हैं!

नयी दिल्ली] —कमलेश्वर

●

सच यह अंक पिछले अंकोंसे बहुत आगे है और लैण्डमार्क बनाता है। कहानीकी गोष्ठीका सारा विवरण इसमें पढ़ा—इससे पूर्व कालियाकी बातें पढ़ी थीं। नयी कहानियाँको बढ़कर जो कुछ करना चाहिए था, वे नहीं कर पाये हैं। जिस तरहकी रिपोर्टिंग कहानी-पत्रिकाको देनी चाहिए थी उसमें न तो वे सफल रहे हैं न ही सारिकावाले—सम्पादकीय बहुत ही सन्तुलित है और जिस गहराईसे बातें रखी हैं, तटस्थ होकर, वह बहुत अच्छी लगीं। यह कथा-समारोह वाक़ई केवल चर्चा कर ही समाप्त नहीं हो गया बल्कि जो बातें गुपचुप-गुपचुप होती थीं वह सामने आयी हैं, खुलकर, इस लिए इसका ठोस ऐतिहासिक महत्त्व है।

बम्बई] —प्रेमकपूर

● मार्च १९६६

इस अंकमें रामदरश मिश्र, अंचल, कैलाश वाजपेयी, निर्मला, नीलम सिंह और ऋतुराजकी कविताएँ बहुत-बहुत भायीं : कहानियोंमें हिमांशु जोशी, मुक्तिबोध, पानू खोलियाकी कहानियाँ झकझोर गयीं। वैसे बटराही भी ख़ूब रंग लाते हैं।

मुज़फ़्फ़रपुर] —दीनेन्दु भारती

●

'अकेली गुलमुहर' पढ़कर लगा, नीलम सिंह अपनेको अपनी अनुभूतियोंकी ओर पहलेसे कुछ और ज़्यादा खोली हैं। और कविताएँ भी अच्छी लगीं। कर्त्तार सिंह दुग्गलकी 'ज़यारत' ने जहाँ ऊब भर दी, बटरोहीकी 'अप्रत्याशितकी मौत' वहीं

[शेष पृष्ठ १६७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

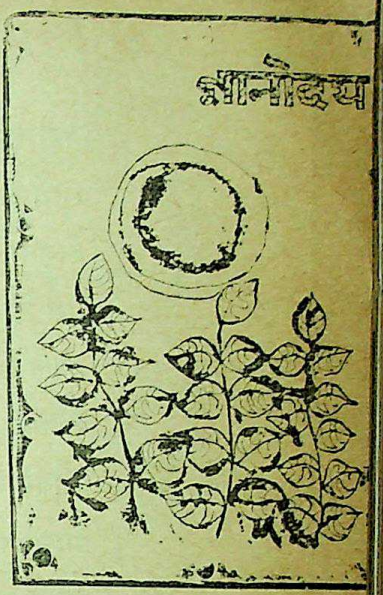

अनुक्रम

● मुखपृष्ठ : मदन सरकार

● अंक-सज्जा चित्र : माऊसमर्थ

■ कविताएँ :

● उतरती सीढ़ियाँ : गिरिजाकुमार माथुर, शकुन्त माथुर, वीरेन्द्र मिश्र, कन्हैयालाल नन्दन, चन्द्रकान्त देवताले २५

● चढ़ती सीढ़ियाँ : सत्यदेव राजहंस, भगवत रावत, ललितकुमार श्रीवास्तव, सविता बनर्जी, गोपालकृष्ण सराफ १२१

■ पत्र आपके

अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव, मनोहर लाल तिर्खा, वीरेन्द्र सक्सेना, माधवि पंकज, राजनाथ पाण्डेय, लालबहादुर सिंह, इन्द्रनाथ मदान, कमलेश्वर, प्रेमकपूर, दीनेन्दु भारती, वीरेन्द्र मिश्र, नन्दकिशोर मालवीय

■ नये स्तम्भ :

● समयबोध : आइन रैण्डसे एक भेंटपर आधारित—सृजनशील प्रयोजन : प्रस्तोता : कुन्था जैन ७

● साहित्यभूमि : दिगम्बर पीढ़ी : तेलुगुकी नयी कविता : दण्डमूडि महीधर ९

● मुक्त चिन्तन : प्लेटोका दर्पण और कविताका सत्य : निर्मला जैन १५

● ताज़े सन्दर्भ : रादनोतीकी युद्ध-कविताएँ : श्रीकान्त वर्मा २१

● विज्ञान : जिसे हम सिद्धान्त कहते हैं : कुमार काश्यप ५१

● नयी कला : शिल्पकलाका आधुनिकीकरण : जोशे द' क्रीफ़्ट (अनु०—कुँवरजी अग्रवाल) ५७

● व्यंग्य : भूख मर जाती तो....? : ब्रजकिशोर नारायण ६५

● प्रतिक्रिया : कथा-मंच : मन्मथनाथ गुप्त, शैलेश मटियानी, सकलदीप सिंह,, ओंकार ठाकुर १२९

● प्रश्नान्तक : उत्तर नये-नयोंकी ओरसे : कैलाश वाजपेयी, सुदर्शन चोपड़ा, वीरेन्द्रकुमार जैन, मदन केवलिया १३९

● समीक्षा : कुछ और कविता-संग्रह : कृष्णदेव शर्मा, विजयेन्द्र स्नातक, सावित्री सिन्हा १४७

....और समीक्षा : घायल दिशाओंमें : उपेन्द्रनाथ 'अश्क' १५७

● पूरक अनुक्रमणिका : कथा-संग्रह : प्रस्तोता-रंगनाथ राकेश १५८

● धर्म-स्मरण : तीर्थंकर महावीर : गोकुलचन्द्र जैन १५९

● तारीख़ें : सुमेश भौतिक १६३

■ कहानियाँ :

● निर्णयके अन्तरंग क्षण : दूधनाथ सिंह ३३

● कंगालमहल : शेख तसद्दुक़ हुसेन (प्रस्तोता : अयोध्या प्रसाद गोयलीय) ४३

● बस : गिरीश अस्थाना ६९

● घर तकका रास्ता : अमरजीत सिंह ७७

● एक अपरिचित दायरा : सुरेश सिनहा ८१

● शमशेर : भीमसेन त्यागी ९७

● विपात्र : स्व० गजानन माधव मुक्तिबोध १०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि

"नहीं नहीं, और नहीं, और नहीं, और नहीं,
सद्यो मर्म कृन्तन-सी यातना निरन्तर ।
तोड़ना ही होगा मुझे बन्धन कठिन यह
प्रेम का, विनय का, विवेक का, विषाद का ।
आज निर्णीत कर डालना है सभी कुछ—
मैं नहीं रुकूँगा यदि अग्रज भी क्रुद्ध हों ।
माँगने से भीख मर जाना है श्रेयस्कर,
प्रलय पयोधि कहाँ तक चुप हो रहे,
आज बज्र दारुण दशा से पार होना ही—
होगा हमें, चाहें विघ्न आ पड़ें अनन्त ही ।
रोषवेश रोकना है सिन्धु के प्रवाह-सा
प्रलय जलद में जो तट काट बढ़ता ।
आओ हम पाँचों ही नूतन प्रलय कर
पामर प्रचण्ड दुष्ट कौरवों को दण्ड दें ?"

उदयशंकर भट्ट

जन्म : ३ अगस्त १९९८] [मृत्यु : २८ फ़रवरी १९६६

कुछ प्रतियाँ आप अब भी प्राप्त कर सकते हैं

१. **कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट—फ़रवरी १९६६**
२. **समकालीन भारतीय कहानी विशेषांक १ और २—नवम्बर, दिसम्बर १९६४**

लिखें : ज्ञानोदय, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइन रैण्डसे एक भेंटपर
आधारित

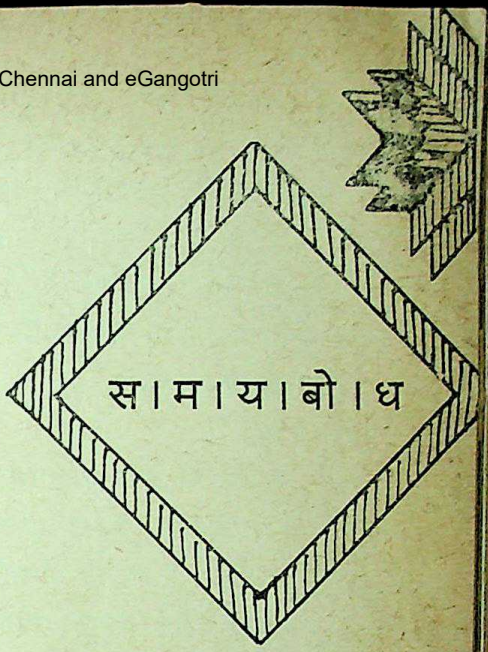

सृजनशील प्रयोजन

प्रश्नकर्ता : आपके शब्दोंमें 'ऐटलस श्रग्ड' की नायिका डैगनी, मूलतः अपराध-भावनाकी प्रतीति करनेमें असमर्थ थी। —क्या बिना अपराधके कोई भी नैतिक व्यवस्था सम्भव है ?

रैण्ड : जिस कथ्यका आप ज़िक्र कर रहे हैं, उसमें मुख्य शब्द 'मूलतः' है। मूलतः अपराध-भावनाका यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति अपने कियेका अच्छा-बुरा न पहचान सके और ग़लत किये कामपर पश्चात्ताप न करे। मूलतः अपराध-भावनाका अर्थ है कि मनुष्य दोषपूर्ण है और प्रकृतिसे ही सदोष जन्मा है।

प्रश्न : आपका आशय जन्मजात पाप-भावनासे है ?

रैण्ड : बिलकुल ठीक कहा आपने। इस जन्मजात अपराधकी भावनाका विचार ही मैं, मेरी नायिका या कोई भी वस्तुवादी दर्शनका अनुयायी स्वीकार करनेमें असमर्थ है और न ही उसकी भावनात्मक अनुभूति करते हैं। जन्मजात पाप-अवस्थाका विचार ही नैतिकताका निषेध है। यदि मनुष्य, प्रकृतिसे ही पापमय है तो, वह उसकी विवशता हो जाती है—कोई दूसरा चुनाव उसके वशकी बात ही नहीं रहती और यदि वह चुनाव करनेमें असहाय है, तो यह स्थिति ही नैतिकताके क्षेत्रसे बाहर चली जाती है। नैतिकताका प्रश्न केवल मनुष्यकी स्वतन्त्र इच्छा-वृत्तिसे सम्बन्धित है, जहाँ वह अपना कार्यकलाप वरण करनेमें स्वतन्त्र है। प्रकृत्या मनुष्यको अपराधी मानना, स्पष्ट ही विरोधार्थी कथन है। मेरी नायिका किसी कर्म-विशेषके प्रति स्वयम्को अपराधी अनुभूत कर सकती है क्योंकि वह नैतिकता और आत्ममूल्यांकनमें वरिष्ठ होगी, इसलिए वह इस बातका ध्यान रखेगी कि अपने किसी कार्य-द्वारा अपराधकी भावना अर्जित न कर ले। वह पूर्णतया नैतिक आचरण करेगी, अतः वह कोई भी अनर्जित अपराध-भावना नहीं स्वीकारेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न : 'ऐटलस श्रग्ड' में मुख्य चार चरित्रोंमें-से एकसे पूछा जाता है—'सर्वाधिक पतित मानव कौन है ?' उसका उत्तर आश्चर्यजनक है। न तो वह क्रूरका नाम लेता है, न वधिकका, न काम-लिप्सारत व्यक्तिका, न किसी अधिनायकका। वह कहता है : 'सर्वाधिक पतित व्यक्ति वह है जिसका जीवन प्रयोजनहीन है।' किन्तु देखनेमें तो यह आता है कि दुनियामें अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं जो बिना किसी स्पष्ट उद्देश्यके जीवन व्यतीत करते हैं। क्या आप उन्हें पतित समझती हैं ?

रैण्ड : हाँ, बहुत सीमा तक।

प्रश्न : क्यों ?

रैण्ड : क्योंकि चरित्रका यही पक्ष, उन व्यक्तियोंके दुष्कर्मोंके मूलमें होता है, जिनका नाम आपने अभी लिया था।—दुष्कर्म यथार्थसे भागनेकी चेष्टाके फलस्वरूप घटित होते हैं। व्यक्ति सोचता नहीं। वह अपनी यदा-कदा उठती आकस्मिक भावनाओं और अबूझ संवेगोंके बहावमें बहता है और धिकलता है। उसकी स्थिति ऐसी होती है कि वह कोई भी दुष्कार्य कर सकता है क्योंकि उसका जीवन पूर्ण रूपसे उसके वशसे बाहर है। अपने जीवनको वशमें रखनेके लिए निश्चित प्रयोजन होना ही चाहिए—'सृजनशील प्रयोजन'।

प्रश्न : यदि व्यक्ति अपने जीवनको केवल एक ही स्पष्ट रेखांकित लक्ष्यपर केन्द्रित कर ले तो क्या उसके क्षितिजके अत्यन्त संकुचित हो जानेका भय नहीं है ?

रैण्ड : फल इसके विपरीत होगा। व्यक्तिके जीवनके समस्त सोच-विचार मुख्य प्रयोजनसे एकीकृत हो जायेंगे। एक उच्चोच्च-परम्परा स्थापित हो जायेगी या कि उसे अपने जीवन-मूल्योंकी सापेक्ष महत्ता स्पष्ट हो जायेगी। इस प्रकार व्यक्ति निरर्थक, अन्तःसंघर्षसे बचेगा, और उसके लिए यह सम्भव हो जायेगा कि वह जीवनके आनन्दका रस बृहत्तर पैमानेपर भोग सके और वह उस आनन्दकी रसानुभूति अपने मनमें खुले अनेक क्षेत्रों तक ले जा सकता है; जब कि प्रयोजनहीन व्यक्ति अव्यवस्थाके गोलमालमें खो जाता है। वह यह नहीं जानता कि उसके जीवन-मूल्य क्या हैं। उसे यह नहीं पता कि विवेकपूर्ण मूल्यांकन कैसे किया जाता है। वह इससे भी अधिक अनभिज्ञ है कि उसके लिए क्या महत्त्वपूर्ण है, अतः वह सम्भावित भावना-संवेगोंकी धारामें बेबस बहता रहता है। उसे किसी भी बातमें आनन्द नहीं आता। उसका सारा जीवन किसी मूल्यकी खोजमें बीत जाता है, जो कभी उसके हाथ नहीं लग सकता।

प्रश्न : क्या जीवनमें-से क्षणिक आवेगोंका नितान्त बहिष्कार और पूर्णतया तर्क-संगत

[शेष पृष्ठ १६७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेलुगुकी नयी कविता

दण्डमूडि महीधर

इधर कुछ समयसे तेलुगु कवितामें विविध नवीनतम प्रवृत्तियों-के दर्शन होने लगे हैं। ये प्रवृत्तियाँ नित्य नये बदलते हुए रूपोंको लेकर सामने आती रही हैं। आजके कवि पहलेकी काव्य-परम्पराओंसे विद्रोह करके भाषा, भाव, छन्द, अभि-व्यंजना और प्रतीकोंमें नये प्रयोगोंको अपने कृतित्वमें प्रश्रय देते आ रहे हैं।

वैसे तेलुगु कवितामें एक क्रान्तिकारी मोड़ 'श्री श्री' के साथ आया। श्री श्री तेलुगुकी नयी कविताके प्रवर्तक कवि हैं और उन्होंने नयी धाराका सूत्रपात किया है अपने काव्य-संकलन 'महा-प्रस्थानम्' के माध्यमसे। 'महा-प्रस्थानम्' की सारी कविताएँ सभी दृष्टियोंसे नयी कविताका, नयी अभि-व्यक्तिका प्रतिनिधित्व करती हैं।

श्री श्रीके कविता-मार्गपर चलते हुए कुछेक कवियोंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन रचना-प्रक्रियाकी विभिन्न प्रणालियाँ, काव्य-अभिव्यक्तिकी विभिन्न शैलियाँ अपनाकर नये मोड़का परिचय दिया है। उनमें श्री अनिसेट्टि सुब्बाराव, श्री कुन्दुर्ति आंजनेयुलु, श्री बेल्लम्कोंडा रामदास, श्री एल्चूरि सुब्रह्मण्यम्, श्री सोमसुन्दर, श्री बाल गंगाधर तिलक, श्री बैरागी, श्री सी० नारायण रेड्डी, श्री दाशरथी, श्री आरुद्र, श्री रमणा रेड्डी, श्री अजन्ता प्रमुख हैं।

इसके बाद नयी पीढ़ीकी एक बड़ी बिरादरीने तेलुगुकी नयी कविताकी धाराको एक नये धरातलपर प्रवाहित करनेका प्रयत्न किया है—पूर्व परम्पराओंसे असम्पृक्त रहकर, नये काव्यके अन्तर्निहित सत्यको प्रतिभासित करनेका निश्चय किया है। विभिन्न मनःस्थितियों और परिस्थितियोंके लिए नये उपमान, नयी उद्भावनाएँ इस ढंगसे प्रस्तुत करनेका निश्चय किया, इस ढंगसे प्रयोग करनेका संकल्प कर लिया कि नया कथ्य सामने आ जाये।

नयी पीढ़ीकी इस बिरादरीमें अपनेको सम्मिलित कर जिन कवियोंने आधुनिक तेलुगु कविताकी नयी दिशाको ग्रहण कर नय सृजन-परम्परा क़ायम करनी चाही, उनके नाम हैं: सर्वश्री गोपाल चक्रवर्ती, सुप्रसन्न, सम्पतकुमार, मादिराजु रंगाराव, अरिपिराल विश्वम्, वरवरराव, केशवराव, यादव रेड्डी, मनमोहन सहाय, बद्दम् भास्कर रेड्डी, राघवाचारी, कम्मिसेट्टि वेंकटेश्वरराव।

इन कवियोंमें-से अन्तिम छह कवि १. केशवराव, २. यादव रेड्डी, ३. मनमोहन सहाय, ४. वद्दम् भास्कर रेड्डी, ५. राघवाचारी, ६. कम्मिसेट्टि वेंकटेश्वरराव—अपनी बिरादरीसे पृथक् होकर 'कुछ और नयी राहों' का अन्वेषण करते हुए आगे निकल गये और इन्होंने 'दिगम्बर पीढ़ी' के नामसे एक नया आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इन्होंने हमउम्र समझौतावादी, परम्परावादी और रोमाण्टिक स्वभाववाले कवि-बन्धुओंको चेतावनी देते हुए उनके विरुद्ध एक आवाज़ उठायी और तेलुगु कवितामें एक अत्याधुनिक धाराको प्रवाहित करनेका निश्चय कर लिया। अपने इस निश्चयके अनुसार इन्होंने अपनी कविताको 'दिगम्बर कविता' की संज्ञा दी और इक्कीस कविताओंका एक काव्य-संकलन 'दिगम्बर कवुलु' के नामसे प्रकाशित भी कर दिया।

'दिगम्बर कवुलु' का प्रकाशन तेलुगु कवितामें एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस संकलनमें सर्वश्री केशवराव, यादव रेड्डी, राघवाचारी, भास्कर रेड्डी, मनमोहन सहाय और कम्मिसेट्टि वेंकटेश्वररावकी कविताएँ हैं। इन छह कवियोंने अपने नाम क्रमशः यों बदल लिये: १. नग्नमुनि, २. निखिलेश्वर, ३. ज्वालामुखी, ४. चेरबण्डराजु, ५. भैरव[illegible] और ६. महास्वप्न।

इस काव्य-संकलनका उद्घाटन १९[illegible] मई ६ की रातके ठीक बारह बजे नाम[illegible] पाण्डु नामक एक रिक्शावालेके हाथों [illegible] गया था। 'दिगम्बर कवुलु' के अपने काव्य-संकलनकी भूमिकामें इन्होंने लिखा: "[illegible] दिगम्बर पीढ़ीमें छह वर्ष होंगे। और ये [illegible] नाम हमारे नामोंसे प्रचलित होंगे। हमने [illegible] ऋतु माने हैं, और ये हैं: आशा ऋतु, [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु, अश्रु ऋतु, मदिरा ऋतु, विरह ऋतु, और विषाद ऋतु। दिन होंगे : स्नेहवार, विशृंखलवार, क्रान्तिवार, सृजनवार, विकासवार, और अनन्तवार।

"साँस लेनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके अस्तित्वको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए, उसके अन्दर दबी हुई बेचैनी और असन्तोषको अभिव्यक्त करके, नयी उम्मीदोंको उभारना ही हमारा लक्ष्य है। मानवको अश्लीलताओं, कुण्ठाओं, अपराधों, विकृतियोंसे पृथक् करना ही हमारा ध्येय है।

"....हम उन लोगोंसे कुछ कहना चाहते हैं, जो नयी राहोंपर अग्रसर होनेवाले कवियोंको देखकर नाक-भौंहें सिकोड़ते हैं। हम उन लोगोंसे कुछ कहना चाहते हैं, जो पुरानी परम्पराओंसे चिपके रहते हैं, और नयी पीढ़ीको भर्त्सनाकी दृष्टिसे देखते हैं। हम उन लोगोंसे कुछ कहना चाहते हैं, जो पुरानी ही चीजोंको प्रकाशित करनेवाले पत्र-पत्रिकाओंके साथ समझौता करके, उनकी चापलूसी करते हैं। हम अपने उन वयोवृद्ध अंगरेजोंसे कुछ कहना चाहते हैं, जो पुरानी लीकपर चलते हुए घिसे-पिटे, निस्तेज उपमानों, समासों, छन्दों आदिके बन्धनोंमें बँधे रहना चाहते हैं।

"हम इन लोगोंसे यही कहना चाहते हैं कि समयकी गति बदल चुकी है, तेलुगु कविताकी गति बदल चुकी है, नयी भावनाओंके साथ नये मानदण्ड स्थापित हो रहे हैं, नये जीवन-बोधके मूल्यांकनके लिए नयी पीढ़ीका आगमन हो चुका है।

हम दिगम्बर कवि हैं। हम आच्छादनको पसन्द नहीं करते, हम अपने सच्चे रूप लेकर प्रकट होना चाहते हैं। हमारे पास कोई दुराव-छिपाव नहीं। हम अपने चारों ओरके साथियोंसे भी यही कहेंगे कि वे बिना कपटके प्रकट हो जायें। अपने चेहरेपर-से नक़ाब उतार फेंक दें। अपने निजी स्वरूप लेकर संसारके सामने आ जायें। सत्यका यथार्थ रूप खुलकर प्रकट हो जाये। हम कोरी बातें बताना नहीं चाहते। जीवनकी सभी उपलब्ध अनुभूतियोंके सहारे हम अपनेको प्रकट करना चाहते हैं। अपने अस्तित्वको उद्घाटित करना चाहते हैं। उद्धरणोंसे हमें ऊब है। हम यह नहीं कहना चाहते कि शंकराचार्यने यों कहा, अथवा ज्याँ पाल सार्त्रने यह बात कही। हम अपनी निजी धारणाओं, संवेदनाओंसे अपनेको ठीक रूपसे देखने तथा दिखानेका प्रयत्न करेंगे। अपने दिगम्बर कण्ठसे जो कुछ भी कहना चाहेंगे, धैर्यपूर्वक कहेंगे।"

इस काव्य-संकलनकी प्रथम कविताका शीर्षक है 'आत्म-योनि' जिसे निखिलेश्वरने लिखा है। इसमें हम कविको परम्पराप्राप्त कविताका विरोध करते हुए देखते हैं। ये पुरानी कविताको ठण्डी चपाती कहते हैं। प्राचीनतासे इन्हें चिढ़ है। उसे ये ज़मीनके अन्दर गाड़ना चाहते हैं। आपका यह भी कहना है कि सारे पुराने काव्य ध्वंस हो जायें और ध्वंस हुए उसके अवशेषोंमें-से खुलकर साँस लेनेवाला एक नये मानवका जन्म होनेवाला है—एक दिगम्बर कविका जन्म होनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अपनी एक और कविता 'जो कुछ तुमने कहा था, वह झूठ नहीं' में आजकी आर्थिक असमानताका चित्र खींचते हुए अन्तमें कहते हैं—'भगवान्‌के मन्दिरके लिए, राजाओंकी समाधिके लिए सोनेकी ईंटोंसे दीवारें खड़ी कर दी जाती हैं, मगर मिट्टीकी दीवारोंकी गाथाएँ सुनेगा कौन ?'

ज्वालामुखी ज्वाला बनकर इस समाजको जला डालना चाहते हैं। अपनी कविता 'सूर्य-स्नान' में आप दिगम्बरका जयजयकार करते हैं और अपनेको कहते हैं—पैग़म्बर। जागृतिके लिए ध्वंस-रचना करना चाहते हैं। राजनीतिक नेताओं, धार्मिक सनातनों, कवि-कामुकोंको भरे बाज़ारमें खड़ा करना चाहते हैं और हरेकके गालपर थप्पड़ मारना चाहते हैं। वे यह भी चाहते हैं कि सारा संसार दिगम्बर हो जाये और जन्म-मरणरहित, व्याधि-वार्धक्यरहित अणु-अमृतके कासारमें सारे मानवोंका एक बार 'सूर्य-स्नान' हो जाये। अपनी एक और कविता 'अवलोकन' में कहते हैं कि हम सब छल-कपटके आगार हैं, मानवताका विस्मरण करनेवाले अवयव-यन्त्र मात्र हैं।

'दिगम्बर कविता क्या है ?' इसका उत्तर दिया है भैरवय्याने अपनी कविता 'दिगम्बर' में। आप कहते हैं : 'दिगम्बरताके मायने कपड़े उतारकर बीच सड़कपर नाचना नहीं। न शब्दोंके सहारे, सारे महीन कपड़े उतारना ही, बल्कि इसके मायने मानवके अन्तरकी मलिनतासे मनीषीको उबारना है। स्वच्छ स्वरको प्रतिध्वनित कराना है। नेत्रोंकी ओटमें छिपे हुए निर्मल आँसूको बहाना है। यह भावनाओंको मज़बूतीसे थामना है। होठोंपर मृदु मधुर मुसकानोंको उगाना है। सचाईसे, नग्नरूपसे कहलाना है।'

चेरबण्डराजुका कहना है कि यह सारा संसार उन्हें एक नग्न-शिला-सदृश दीख रहा है। भगवान्‌का असली नाम ये 'नग्नजित' रखना चाहते हैं। आनेवाले युगोंके लिए हम सबको स्वयं चिता बनाकर अपनेको आहुति देनेका आदेश देते हैं अपनी एक कविता 'चिता बना लें' में।

महास्वप्नकी अपनी कविता 'ग्लानिर्भवति भारत' कवि-मनकी आस्था तथा विश्वासकी वाणी देती है। कवि कहता है—'वृक्षोंको चलनेके लिए मजबूर करूँगा। गड़े हुए पत्थरोंमें वाणीको जन्म दूँगा। समाधिस्थ शवोंमें प्राण फूँक दूँगा। विकृत शिलाओंको सुन्दर आकार बना दूँगा। मृत भगवान्‌को ज़िन्दा करनेके लिए मैं दिगम्बर कवि आ रहा हूँ।' अपनी एक और कवितामें कहते हैं—'मैं जन्म ले रहा हूँ, बार-बार जन्म ले रहा हूँ।'

नग्नमुनिको आधुनिक समाजके प्रति आक्रोश है। आजके मानवके कृत्रिम जीवनसे आपको चिढ़ है। नक़ली चेहरोंसे नफ़रत है। इसलिए आप अपनी कविता 'सुख-रोगी' में कहते हैं : 'तू अपनी नक़ाब हटा ले। अपने दुर्गन्धपूर्ण वस्त्र उतार फेंक दे। अपने आत्माके सम्मुख खड़े हो अपने-आपको देख ले।'

दिगम्बर पीढ़ी-द्वारा प्रकाशित काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकलन 'दिगम्बर कवुलु' के आद्योपान्त पढ़ जानेपर एक क्रमबद्ध भावनाका परिचय मिलता है, जो नयी करवट लेनेके लिए उफनती-सी जान पड़ती है और यही इसके पीछेकी मूल प्रेरणा है। ये कविताएँ इस बातके प्रति आश्वस्त करती हैं कि आजकी बौद्धिकताके खोखलेपन तथा समाज-व्यवस्थाके प्रति उदासीनताकी भावना दिगम्बर पीढ़ीको कितनी कुरेद रही है। संकलनकी सारी कविताएँ पढ़ जानेके बाद इस बातकी भी पुष्टि मिल जाती है कि दिगम्बर पीढ़ीके ये कवि नवीन मूल्योंकी सर्जनामें, नवीन धाराकी स्थापनामें कितने सजग हैं। यह भी आशा बँधती है कि इनके आगेके काव्य-संकलनोंसे तेलुगुकी इस नयी पीढ़ीके सही मूल्यांकनका अवसर मिल जायेगा।

[अगले अंकमें 'दिगम्बर पीढ़ी' की छह दिगम्बर कविताएँ]

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्त्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन : : जगदी

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—निर्मला जैन

सु । क्त । चि । न्त । न

प्लेटोका दर्पण और कविताका सत्य

आचार्य प्लेटोका आविर्भाव, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रकी एक ऐतिहासिक घटना है। प्लेटोके समसामयिक जीवन और मनीषापर धर्म, दर्शन, राजनीति, एवं आचार-शास्त्रका इतना गहरा आतंक था कि इससे इतर मूल्योंकी प्रतिष्ठा या विषयोंका मूल्यांकन इन्हींके आलोकमें किया जाता था। विशुद्ध दार्शनिक एवं आचारवादी दृष्टि प्रायः कलाके सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यनमें बाधक ही होती है। उक्त कसौटियोंपर कलाका अवमूल्यन कर, उसे जीवनकी निकृष्ट उपलब्धि मान लिया गया था, अतः उसे गम्भीरतासे ग्रहण कर विचार एवं विवेचनकी आवश्यकता भी उस समयके विद्वानोंको प्रतीत नहीं हुई। कलाको राजनीति और धर्म आदिकी दासतासे मुक्त करानेका गौरव, परम्परा आचार्य अरस्तूको प्रदान करती रही तथा इस क्षेत्रमें प्लेटोका योगदान—अरस्तूके लिए पृष्ठभूमि-निर्माणका कार्य भी, प्रायः उपेक्षित ही रहा।

अरस्तूसे पूर्व, काव्य और दर्शनके बीच जो विरोध, या झगड़ा यूनानी जीवनमें प्रचलित था, आचार्य प्लेटोने पहली बार उसपर गम्भीरतासे विचार कर उन कारणोंका विवेचन किया जो काव्यकी महत्त्व-स्वीकृतिमें बाधक थे, यद्यपि उनका दृष्टिकोण पक्षधारी है। नैतिकता, दर्शन, धर्म, आचार—जीवनके उपयोगी मूल्योंके प्रति समर्पित उनका मन, सौन्दर्यवादी मूल्योंकी प्रतिष्ठा कर, उनके पक्षमें अपना मतदान न कर सका। किन्तु निषेधात्मक रूपमें पृष्ठभूमि तैयार कर अरस्तूको मार्ग दिखानेका श्रेय उन्हींको है।

प्लेटोके काव्य-विवेचनको समझनेके लिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको ऐतिहासिक पृष्ठभूमिकी उपेक्षा करना भूल होगी। ऐतिहासिक पृष्ठाधारसे निकालकर किसी भी विद्वान्‌की चिन्ताधाराका मूल्यांकन करना, उसके प्रति अन्याय है। प्लेटोके समयमें होमर हिसोंइद आदि कवि यूनानी समाजमें विशेष समादृत थे, और जनता उनकी रचनाओंमें उत्तम-अनुत्तमका भेद करना भी आवश्यक नहीं समझती थी। स्वभावतः प्लेटो उनकी आलोचनासे अपना विवेचन आरम्भ करते हैं। वे काव्यको तत्कालीन युवा मस्तिष्कका पोषक आहार मानते थे। 'एषोलोंजी' में उन्होंने कहा है कि उनका उद्देश्य काव्य-रचना नहीं, नगरकी स्थापना है, अतः उनका कर्त्तव्य, कवियोंके लिए नियम-विधान है। प्लेटोने काव्यके प्रभावोंको, वस्तु-तथ्यको दृष्टिमें रखते हुए उनके कारणोंका अनुसन्धान व विश्लेषण दर्शनाक्रान्त दृष्टिसे किया। काव्य उनकी दृष्टिमें गर्हित एवं त्याज्य, और उनकी अधिकांश आलोचना, निषेधात्मक हो गयी।

काव्यके तिरस्कारका सबसे प्रबल कारण, प्लेटोकी दृष्टिमें, सत्यसे दूरी था। उनके मतमें सत्य और सौन्दर्य अभिन्न नहीं हो सकते, और काव्यमें दोनोंकी सिद्धि सम्भव नहीं। जीवनका परम उद्देश्य सत्यका अभिज्ञान एवं उपलब्धि ही हो सकती है, अतः इसी दृष्टिसे वे काव्यकी ग्राह्यता व अग्राह्यतापर विचार करते हैं। काव्य और सत्यके सम्बन्धमें उनकी विचारधाराका परिचय; काव्यसे सम्बद्ध उनकी समग्र मान्यताको हृदयंगम करनेके लिए अनिवार्य है।

गणतन्त्रके दसवें अध्यायमें प्लेटोने काव्य के माध्यमसे व्यक्त सत्यके स्वरूपका स्पष्टीकरण किया। उन्होंने मूल सत्यका कर्ता ईश्वर को, उस सत्यकी अनुकृति सृष्टिको, और सृष्टि अनुकृतिका अनुकरण काव्यको माना। इस प्रकार काव्य मूल सत्यसे तिगुना दूर हो गया।

काव्यके माध्यमसे सत्यका द्वित्व अथवा अंशाभिव्यक्ति भी उन्हें स्वीकार्य नहीं। इन प्रबल शब्दोंमें उन्होंने उक्त प्रसंगमें सत्यकी एकमात्र अखण्ड सत्ताकी प्रतिष्ठा की है। सृष्टिमें सत्यके किसी प्रकारके अंशांशी सम्बन्धको भी वे मान्यता नहीं देते। अपने मन्तव्यको उन्होंने एक पलंगका उदाहरण देकर स्पष्ट किया। जिस प्रकार एक पलंगका मूल कर्ता (उनका आशय प्रकृत अमूर्त, विचार-रूप था) ईश्वर, बढ़ई उसका अनुकर्ता, एवं चित्रकार इस अनुकरणका अनुकर्ता होता है। ठीक इसी प्रकार वह कलाकार जिसकी कृति प्रकृतिसे तिगुना दूर हो, अनुकर्त्ता कहा जायेगा। अतः यदि त्रासदीकार अनुकर्त्ता है तो वह तथा अन्य सभी अनुकर्त्ता भी परम सत्ता एवं सत्यसे तिगुने दूर हैं। अतः

१. मूल सत्य एक है, अखण्ड है, एवं ईश्वर उसका कर्त्ता है।
२. यह वस्तु-जगत् उस परम सत्यका अंश नहीं, अनुकरण है।
३. कलाकार उस अनुकरणका भी अनुकर्त्ता है, अतः सत्यसे तिगुना दूर है।
४. अन्ततः सभी कलाकारोंकी भाँति त्रासदीकार भी अनुकर्त्ता अतएव सत्यसे तिगुना दूर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न उठता है कि यदि काव्य, सत्यका अभिव्यक्ति न होकर केवल सत्यके अनुकरणका अनुकरणमात्र है, तो भी इस अनुकरणके निमित्त क्या विषयके सत्य रूपका, या वास्तविक रूपका ज्ञान अनुकर्त्ताके लिए अनिवार्य नहीं है ? और इस प्रकार होमर आदि त्रासदीकारोंको उन समस्त विषयोंका ज्ञाता न माना जाये जिनका वे अपने काव्यके माध्यमसे अनुकरण करते हैं ? दूसरे शब्दोंमें, कवि सत्यका सर्जक नहीं अनुकर्त्ता, परन्तु अनुकरणके निमित्त ज्ञाता है अथवा नहीं ? यवनाचार्यने इस प्रश्नका भी नकारात्मक उत्तर दिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि हम कुछ व्यक्तियोंको ऐसा कहते सुनते हैं कि ये कवि (होमर आदि) सब कलाओंके ज्ञाता होते हैं, समस्त मानवीय गुण-दोषों एवं अलौकिक विषयोंके भी ज्ञाता होते हैं क्योंकि श्रेष्ठ कवि विषय-ज्ञानके अभावमें सुन्दर रचना नहीं कर सकता, और इस ज्ञानके बिना कविकी सत्ता असम्भव है।

प्लेटोके अनुसार यह मान्यता ऐसे व्यक्तियोंकी है जो इन अनुकर्त्ताओंके सम्पर्कमें आकर भी इनसे छले गये हैं। इनकी कृतियोंका अवलोकन करते समय उन्होंने विस्मरण कर दिया कि वे सत्यसे तिगुनी दूर हैं तथा उनका प्रणयन सत्यके वास्तविक ज्ञानके अभावमें भी सम्भव है, क्योंकि वे सत्यका आभास मात्र हैं।

अपनी बातको तर्कके द्वारा प्रमाणित करनेके लिए प्लेटोने उदाहरण दिया उस चित्रकारका जो चित्रके विषयका तत्समान चित्रांकन प्रस्तुत करता है, परन्तु चित्रांकित विषयोंको स्वयं ज्ञाता नहीं होता। चर्मकारका चित्र बनानेवाला चित्रकार स्वयं इस कलामें विज्ञ एवं उसमें व्यवहार-सिद्ध नहीं होता, फिर भी उसकी रचना, उन दर्शकोंके सामने भी, जो स्वयं इस चित्रकारके समान अज्ञानी होते हैं, वास्तविकताका भ्रम उत्पन्न कर देती है। कारण—उनके निर्णयका आधार रूप-रंगकी समानता ही होती है। ठीक उसी प्रकार होमर आदि सभी कवि जो सत् एवं अन्य विषयोंका अपने काव्यमें छायानुकरण करते हैं, केवल अनुकर्त्ता होते हैं, सत्यसे उनका सम्पर्क नहीं होता। प्लेटोके मतानुसार कलाकार, मानो प्रकृतिके सामने दर्पण रख देता है। इससे अधिक उसकी सिद्धि कुछ नहीं; और दर्पणमें प्रकृतिके बाह्य या दृश्यमान रूपसे अधिक प्रतिबिम्बित हो ही क्या सकता है ?

कवि, शब्दों और वाक्यांशोंसे विषयको रूप-रंग देता है, किन्तु विषयके प्रकृत रूपका उसे केवल उतना ही ज्ञान होता है जितना अनुकरणके लिए आवश्यक है। अन्य व्यक्ति जो उसीके समान अज्ञानी होते हैं और उसके शब्दोंसे ही निर्णय करते हैं—कल्पना कर लेते हैं कि वह चाहे सैन्य-नीतिकी बात कर रहा हो, अथवा चर्मकारकी, अथवा किसी भी अन्य विषयकी, यदि उसका वर्णन लालित्य-पूर्ण, लयात्मक एवं छन्दोबद्ध है, तो अत्यन्त श्रेष्ठ है। लय और लालित्यका प्रभाव स्वभावतः ऐसा ही मधुर होता है। उक्त मन्तव्यकी पुष्टिके लिए आचार्य प्लेटोने तर्क उपस्थित किया कि कला-द्वारा प्रदत्त रंगमयता एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपाकर्षणके अनावरणसे, सामान्य गद्यमें रूपान्तरित कवि-कृतियाँ कितनी रूप-निर्धन प्रतीत होंगी, यह सर्वविदित है। वे उन गत-यौवन कान्तिहीन मुखोंके समान हैं जो वस्तुतः कभी सुन्दर नहीं थे केवल यौवनावस्थाकी प्रभासे दीप्त थे।

निष्कर्ष रूपमें—अनुकर्त्ता अथवा छायानुकृतियोंका निर्माता केवल बाह्य रूपका ज्ञाता होता है, विषयोंके सत्य-रूप अथवा स्थितिका नहीं।

विषयके अन्तरंग-ज्ञान, अर्थात् उसके सत्य-स्वरूपके अभिज्ञानको अनुकर्त्ताके लिए आचार्य प्लेटोने सर्वथा अनावश्यक माना है। प्रश्न उठता है कि क्या वह असत्यका अनुकरण करता है? यदि नहीं, तो विषयके वास्तविक रूप या सत्य रूपसे सर्वथा अनभिज्ञ रहकर उसकी अभिव्यक्ति या अनुकरण काव्यमें कैसे सम्भव हो सकता है? इसका उत्तर देते हुए आचार्य प्लेटोने कहा कि कवि किसी भी विषयके गुण-दोषोंके निमित्त कारणोंसे अनभिज्ञ रहकर भी अनुकरण करता रहता है, अतः उससे अज्ञ जन-सामान्यको सत् भासित या प्रतीत होनेवाले विषयोंके अनुकरणकी ही आशा करनी चाहिए।

यदि कवि वास्तविक सत्यसे अनभिज्ञ, स्वयं तथा जन-सामान्यको सत्य प्रतीत होनेवाले विषयोंका अनुकर्त्ता है, तो उसकी कृतिकी व्याख्या किन शब्दोंमें की जाये? यवनाचार्य सत्य भासित होनेवाले इन विषयोंके अनुकरणको केवल कवि-क्रीड़ा मानते थे।

उक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि आचार्य प्लेटो-

की काव्य-सृजन-सम्बन्धी स्थापनाओंका मूल उनकी वही आधारभूत मान्यता है कि काव्य भौतिक सृष्टि परम सत्यका, और काव्य वस्तु-जगत्का अनुकरण है। दोनों ही आध्यात्मिकतासे दूर, जिसमें काव्य अपेक्षाकृत और भी दूर है। उनकी इस मान्यताके ग्रहणमें शंकाका अवसर तब आता है जब वे सत्यके अनुकरणके लिए, सत्यका वास्तविक ज्ञान या आत्मसाक्षात्कार भी आवश्यक नहीं मानते। उक्त स्थापनाका पोषण इसी विश्वाससे हुआ है कि यह वस्तु-जगत् सत्यकी अनुकृति है अंश नहीं, और काव्यमें दृश्यमान जगत्का ही चित्रण होता है। स्पष्ट है, आचार्य प्लेटोके सिद्धान्त-निरूपणका आधार इतिवृत्तात्मक, वस्तुपरक रचनाएँ ही नहीं, जिनका स्वरूप घटना-प्रधान था, अन्यथा वे यह नहीं कहते कि विषयके रूपाकारका बाह्य ज्ञान ही अनुकरणके लिए पर्याप्त है। जहाँ अनुकरणका विषय स्थूल, साकार एवं मूर्त है, वहाँ तो कुछ सीमा तक यह मान्यता स्वीकार्य हो सकती है, किन्तु जहाँ काव्यका विषय मानव-मनकी सूक्ष्म, अमूर्त, अनुभूतियाँ हैं, वहाँ बाह्य-रूपका ऊपरी ज्ञान या दृश्य-ज्ञान, पुनःसृजनके लिए पर्याप्त कैसे हो सकता है? पात्रोंके व्यवहार, कार्य-व्यापारका, अनुभूतियोंका, अन्तःप्रकृतिका एक शब्दमें समग्र चारित्र्यका अंकन करनेके लिए कवि केवल कल्पना और अनुभूतिके सहारे उनके साथ तादात्म्य ही नहीं करता, उन्हीं क्षणोंमें, परिस्थितियोंमें स्वयं जीता है। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो वह वास्तविकताका भ्रम उत्पन्न करनेमें भी समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो सकता। वस्तुके बाह्य रूपाकारका वर्णन करनेके लिए ऊपरी दृश्य-ज्ञान पर्याप्त हो सकता है, अन्तर्मनकी सूक्ष्म विवृतियोंके लिए नहीं। भ्रम हो सकता है कि प्लेटो विषयसे तादात्म्य, काव्य-सृजनके लिए अनिवार्य नहीं मानते, परन्तु उन्होंने अन्यत्र (इओनमें) स्पष्ट किया है कि काव्य-विषयसे तादात्म्य केवल कविके लिए ही नहीं, वाचक चारण-वृन्दके लिए भी अनिवार्य है अन्यथा वह श्रोताओंपर अभीष्ट प्रभाव डालनेमें सफल नहीं हो सकता।

अतएव, इस प्रसंगमें आचार्य प्लेटोका आशय कदाचित् विषयके तादात्म्यसे नहीं, सत्यके अभिज्ञानसे है। उनका अभिप्राय यही है कि मूल सत्य इस दृश्यमान जगत्से परेकी वस्तु है। जो दृश्य-रूप है, वह सत्य तो नहीं, उसका दिखावा मात्र है और काव्यका विषय यही दृश्यमान सृष्टि है जो स्वयं सत्यका अनुकरण मात्र है। कवि बाह्य रूपोंके आकर्षणसे बँधा हुआ उन्हींका अनुकरण काव्यमें करता है। इस अनुकरणके लिए मूल सत्यका नहीं दृश्यमान जगत्का, जो सत्यका दिखावा मात्र है, ज्ञान ही पर्याप्त है। प्लेटोने इस धारणाको सिद्ध करनेके लिए जो व्यावहारिक तर्क दिया उसमें निश्चय ही बल है। जिस प्रकार चर्मकारका चित्र बनानेके लिए जूते बनानेकी कलामें पारंगत होना अनिवार्य नहीं है, ठीक उसी प्रकार किसी भी विषयका वर्णन करनेके लिए उसके दृश्यमान रूपका निरीक्षण-परीक्षण ही पर्याप्त है, अतः वस्तु-जगत्का चित्रण करनेके लिए उसके मूलभूत निर्मापक तत्त्वों, उसमें अनुकृत मूल सत्यका ज्ञान अभीष्ट नहीं है।

वस्तुतः प्लेटोके काव्य-सिद्धान्त उनकी दार्शनिक मान्यताओंपर आधृत हैं। पश्चिममें कलाको जन-कल्याण, हित एवं सत्यसे असम्पृक्त रूपमें देखनेकी प्रवृत्तिका बीजारोपण प्लेटोके सिद्धान्तसे ही हुआ। भारतीय मनीषाने काव्यको कला नहीं विद्या माना, एवं उसके उद्देश्य आनन्दोपलब्धिसे, सौन्दर्य-व्यंजनासे, सत् और लोक-कल्याणकी भावनाको बहिष्कृत कभी नहीं किया। इसके अतिरिक्त भारतीय वाङ्मयका विपुलांश—धर्म, दर्शन एवं अध्यात्मसे प्रेरित है। ऐसे काव्यमें सत्यकी अभिव्यक्ति अथवा सत्योपलब्धिके प्रयासको अस्वीकार करना, उसके महत्त्व एवं सदुद्देश्यका अवमूल्यन करना है। प्लेटो इस आशंकाके प्रति असावधान न थे। इसीलिए उन्होंने काव्य और कविका बहिष्कार करनेपर भी, ऐसे काव्यको स्वीकार कर लिया है जिसमें ईश्वर-स्तुति या धर्म-प्रवचन हो।

इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीय आस्तिक दर्शनोंमें जगत् और जीवमें सत्यका अंश बिम्ब-प्रतिबिम्ब अथवा अंश-अंशी सम्बन्धसे स्वीकार किया गया है। अतः इस दृष्टिकोणसे भी काव्यमें सत्यका अनुकरण है, अथवा सत्यके अनुकरणका अनुकरण है? यह विवादका विषय हो सकता है। उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि प्लेटोका यह सिद्धान्त जहाँ एक ओर भारतीय आस्तिक और नास्तिक दर्शनोंके विरुद्ध पड़ता है वहाँ दूसरी ओर समाजवादके भी, जिसमें पदार्थको एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र सत्य स्वीकार किया जाता है, तथा जिसे प्लेटोने मूल रूप या मूल सत्य कहा, उसकी सत्ता—अमूर्त व मानसिक धारणा-मात्र रूपमें स्वीकार की जाती है। जो प्लेटोके मतमें सत्य-का अनुकरण है वही द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके अनुसार, भौतिक पदार्थ, मूल सत्य है। यदि दोनों दृष्टियोंका प्रवाह कहीं समानान्तर दिखाई पड़ता है तो वह केवल काव्य-प्रयोजनके प्रसंग-में। काव्यका प्रयोजन जिस प्रकार प्लेटो जन-कल्याण या लोक-हित मानते थे उसी प्रकार समाजवादी चिन्तकोंने कालान्तरमें उसी कला-को मान्यता दी जो अधिकसे अधिक व्यक्तियों-के अधिकसे अधिक हित-साधनमें समर्थ हो। प्लेटोकी भाँति उन्होंने भी सौन्दर्यका अर्थ जीवनका स्वास्थ्य किया। दृष्टिका तात्त्विक भेद सत्यकी व्याख्यासे सम्बद्ध है। प्लेटो जहाँ सत्यको इस जगत्से भिन्न अमूर्त सत्ता–विचार रूप मानते थे, वहाँ भौतिकवादी सत्यकी स्थिति पदार्थ–रूप, स्थूल, गोचर स्वीकार करते हुए किसी प्रकारके आध्यात्मिक विश्वासकी सत्ता वायवी, भ्रान्तिपूर्ण और मिथ्या मानते हैं।

प्लेटोके दार्शनिक सिद्धान्तोंके यदि कहीं आंशिक वैचारिक समानान्तरण दृष्टिगोचर होता है तो वह वेदान्तसे। वेदान्तकी ही भाँति प्लेटोने मूल सत्यको एक, अखण्ड व अगोचर माना है। वेदान्ती उसे भी ब्रह्मका पर्याय घोषित करते हैं। सृष्टि-विस्तार ब्रह्मकी 'एकोऽहं बहु स्याम' इच्छाका परिणाम है। और प्लेटोका जगत् अरूपका सरूपान्तरण, निर्माता वहाँ भी ईश्वर है। वेदान्ती केवल जीवको सत्य और जगत्को मिथ्या मानता है। प्लेटोने जीवपर पृथक् रूपसे विचार नहीं किया, परन्तु जगत्को वे भी एक अर्थमें मिथ्या ही घोषित करते हैं। जीवको ब्रह्मका ही प्रतिबिम्ब या प्रतिच्छाया स्वीकार करने-जैसी कोई धारणा प्लेटोके मनमें न थी। व्यावहारिक धरातलपर आत्मनिग्रह या संयमपर दोनोंने अत्यधिक बल दिया। वेदान्तियोंका आत्मनिग्रह आत्मसाक्षात्कारके निमित्त अत. अधिक आध्यात्मिक था। प्लेटोका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत व्यावहारिक एवं सांसारिक था जिसमें आत्मसंयमका सम्बन्ध सामाजिक धरा-तलपर नैतिक आचरणसे है।

उनकी मान्यतामें बल इतना ही है कि उन्होंने काव्यके वस्तुपरक आधारकी स्थापना और स्वीकृति की है। अतः, निष्कर्ष रूपमें, प्लेटोके अनुसार :

- काव्य-विषयका अन्तरंग या तात्त्विक ज्ञान अनुकर्त्ता कविके लिए अनिवार्य नहीं।
- विषयके चित्रांकन या वर्णनमें बाह्य रूप-रंगकी समानता वास्तविकताका भ्रम उत्पन्न करती है।
- कला-कृतियोंमें निबद्ध आकर्षण सत्याभि-व्यक्तिका नहीं, बाह्य रूप-रंगका होता है, जिसके अभावमें वे सर्वथा रूप-निर्धन प्रतीत होती हैं।
- कवि केवल छायानुकृतियोंका निर्माता, एवं बाह्यगोचर रूपका ज्ञाता होता है, अत. उसका कविकर्म, क्रीड़ा मात्र है।
- विषयके तात्त्विक रूपसे अंज्ञताका तात्पर्य तादात्म्यका अभाव नहीं, सत्यसे अन-भिज्ञता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

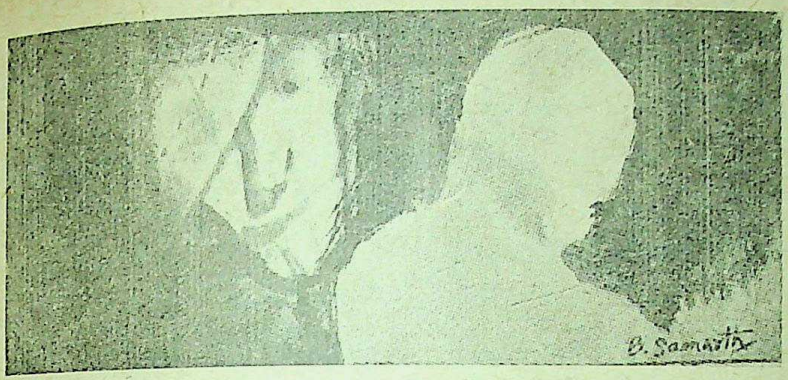

— ताज़े सन्दर्भ —

रादनोतीकी युद्ध-कविताएँ

[हंगरीके असाधारण प्रतिभाशाली कवि मिकलोस रादनोतीकी, जिन्हें पश्चिमी हंगरीके एक यातना शिविरमें नवम्बर १९४४ में जर्मन नात्सियोंने गोलीसे उड़ा दिया था, इन कविताओंको युद्ध-कविता कहा जाये या प्रेम-कविता, निर्णय कर पाना कठिन है। निजी अनुभूतिको छोड़कर सामूहिक नारेबाज़ीको अपना स्वर माननेवाले कवियोंसे बिलकुल भिन्न रादनोतीकी ये कविताएँ उस कविकी कविताएँ हैं जिसने स्वयं युद्धके परिणामोंको झेला है।

मिकलोस रादनोतीको, जिनकी असमय मृत्यु ३५ वर्षकी अवस्थामें हुई, नात्सियोंने उनके साथियों-सहित मार्च १९४४ में गिरफ़्तार कर यातना-शिविरमें रख दिया था। अपनी ज़िन्दगीके आख़िरी नौ महीने रादनोतीने काग़ज़के छोटे-छोटे टुकड़ोंपर कविताएँ लिखते हुए यातना-शिविरमें बिताये। अपनी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ रादनोतीने यातना-शिविरमें ही लिखी हैं, जो उनकी मृत्युके बाद शिविरमें शवोंके ढेरसे ढूँढकर निकाली गयीं। 'पिक्चर पोस्टकार्ड' के चार अलग-अलग टुकड़े अलग-अलग समयपर लिखे गये थे और वे चार अलग मनःस्थितियोंके प्रतीक हैं। चौथा टुकड़ा उन्होंने अपनी मृत्युके केवल एक हफ़्ते पहले लिखा था और अपनी बग़लके व्यक्तिको 'गरदनपर गोली' मारकर ख़त्म किये जानेकी कल्पना कर जैसे उन्होंने स्वयं अपनी मृत्युकी पूर्व-कल्पना की थी। एक हफ़्ते बाद उनकी भी 'गरदनपर गोली' मारकर उन्हें मौतके घाट उतार दिया गया।—श्रीकान्त वर्मा]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• पिक्चर पोस्टकार्ड :

बुल्गारिया से आती हैं ज़बरदस्त बर्बर
बन्दूक़ों की गोलियाँ—
शिखरों से टकरा कर, भटक कर, फिसल कर
हो जाती हैं गुम—
घिरता है आदमी, डंगर, बैगन और ख़याल
रस्ता हिनहिनाकर
हट जाता है पीछे
अपने अयाल उड़ाता हुआ
भागा जाता है आकाश !

सब कुछ तितर-बितर हो रहा है !
ऐसे में तुम ! मेरे अन्दर वहीं रहो
जहाँ थीं, हिलो नहीं
मेरे भीतर की गहराइयों में
मौन और हमेशा चमको
जैसे सर्वनाश पर विस्मित कोई
फ़रिश्ता या सड़े हुए पेड़ में
खोह बनाता कोई कीड़ा !

दूर नौ कोस पर जला रहे हैं वे
मड़ैये और घर
और यहाँ खेतों की मेड़ पर विस्मित किसान
धुआँ उड़ाते हुए बैठे चुपचाप !
बजती है जल पर तालाब के
चरवाहा-लड़की के पैरों की
छाप !
सन्नाटा तोड़ती, भेड़ें जल-झुकी हुई
पीती हैं मेघ ।

बहती है बैलों के मुँह से रक्त-मिली लार
काला हो गया है लहू से
आदमी का पेशाब;
पीप-भरे वहशी समूह से घिरा हुआ
खड़ा है
गुलाब !

मैं उस के बाद था ! गरदन पर गोली
और उसका शरीर लुढ़क गया
एक नुची हुई माला के दाने-सा !
'तू भी मारा जायेगा ऐसे' मैंने
अपने से कहा, 'सो जा चुपचाप।'
अब केवल धैर्य बदल सकता है
मृत्यु को
धूल में । 'दियर स्प्रिंग नोख
ऑफ़' आवाज़ें आते-आते-आते
आयीं नज़दीक
रक्त-घुला कीचड़ सूख गया
मेरे कानों में ।

• कविता के अनुकूल घर :

घिरता है धुँधलका, तिरता है बर्बर तारों से
घिरा हुआ घेरा बलूत का, उठी हुई झोपड़ी—
सब के सब—छुपने को अभी
अन्धकार में
हौले-हौले सबको चीर कर क़ैदी का स्वप्न
लाँघ जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहशी दीवार को····गो तब भी
भूल नहीं पाता वह
दूर-दूर तक फैले तार को !

ओ मेरी प्रियतमा ! बेलगाम स्वप्न ही
हमको दे सकता है चैन वह
जो टूटे डैनों और रौंदे शरीर को
फिर से करता है आज़ाद; ढीली
करता है ज़ंजीरें और शिविरों में लोग
तैयारी करते हैं
अपने घर बार की—
घोर अन्धकार की
गलियों में भागते हैं, खर्राटे भरते हुए
सर्बिया के शिखरों से लौटे हुए
चिथड़े शरीर और मुँड़े सिर
बन्दी—
सब के सब भागते हैं
घोर अन्धकार मे
दूर मातृभूमि में
बाँहें उठती हैं हर द्वार में ।

सब के शिशु-स्वप्न में बाँहें उठाये हुए
खड़ा है घर ।
क्या सचमुच साबित है—
अपना शहर ?
क्या अब तक पड़ा नहीं बम ?
हम उनसे कह कर आये थे—
तुम्हें देना है जवाब !
मेरे दाँयें जो कराहता है,
मेरे बाँयें जो
घर जाना चाहता है—
उससे क्या कहूँ ? कह दूँ
घर जाय ?
क्या अब भी साबित है
घर—मेरी कविता के
अनुकूल ?

मौन, टोहता हुआ लिखता हूँ एक कविता के तले
दूसरे की पंक्ति;
जीता हूँ घिरा हुआ अपने अवसाद में,
लिखता हूँ, रेंगता, हकलाता, गिलबिल कर
काग़ज़ पर राह बनाता जैसे कीड़ा !
छीन ली गयी हैं मशालें और पुस्तकें;
दुश्मन के सन्तरी छीन ले गये सब कुछ,
चिट्ठी भी बन्द; केवल कुहरा, केवल
धुन्ध-ढँकी झोपड़ी !
पोल और फ्रेंच, यहूदी और बकबक करनेवाले
सतही इटैलियन,
बाग़ी सर्ब—सब के जीवन में,
यहाँ इन पहाड़ों में,
बची रह गयी हैं बस जूँएँ और अफ़वाहें
फूट गये हैं सबके घुटने
टूट गयी हैं सब की बाँहें—
सब केवल 'एक जीवन' जी रहे हैं
प्रतीक्षा कर रहे हैं—
आती हो शायद खुशख़बरी, आते हों
शायद सन्देशे
सुन्दरियों के,
स्वाधीन लोगों के !
प्रतीक्षा है कुहरे में छिपे हुए अन्त की
प्रतीक्षा कर रहे हैं
लोग चमत्कार की !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काठ के तख़्तों की सेज है; मैं एक
पिंजरे में बन्द पशु, जोंकें लहू पी रही हैं;
मैंने सुना था अँधेरे में मक्खियाँ
नहीं होतीं—मेरे अन्धकार में
हैं हमलावर मक्खियाँ।
होती है शाम और क़ैदी का एक
दिन और गुज़र जाता है। छोटी है
ज़िन्दगी। सोया है शिविर। चन्द्र की
कलाएँ खिली हुई हैं प्रदेश पर—घेरे के
तार और भी चमकते हैं—
शिविर के मौन में पगध्वनि के साथ
साफ़-साफ़ नज़र आती है
काली दीवार पर
सन्तरी की छाया।

ओ मेरी प्रियतमा। क्या तुझे पता है—
सब कुछ सोया है, स्वप्न
हमें छोड़ चले गये हैं,
क्षण-भर को नींद टूटती है
और चाँदनी में चेहरा
चमकता है
मगर दूसरे क्षण फिर
नींद-भरा अन्धकार!
केवल मैं जागता हूँ—
मुँह में है स्वाद, तुम्हारे चुम्बनों का नहीं,
बुझी सिगरेट का!
मैं जानता हूँ नींद
मेरी नियति नहीं थी,
मेरी नियति हो तुम—
मैं मरूँगा नहीं तुमसे असंग
तुम्हारे बिना भूल रहा हूँ
जीने का ढंग।

■ ■

(अनुवाद : श्रीकान्त व

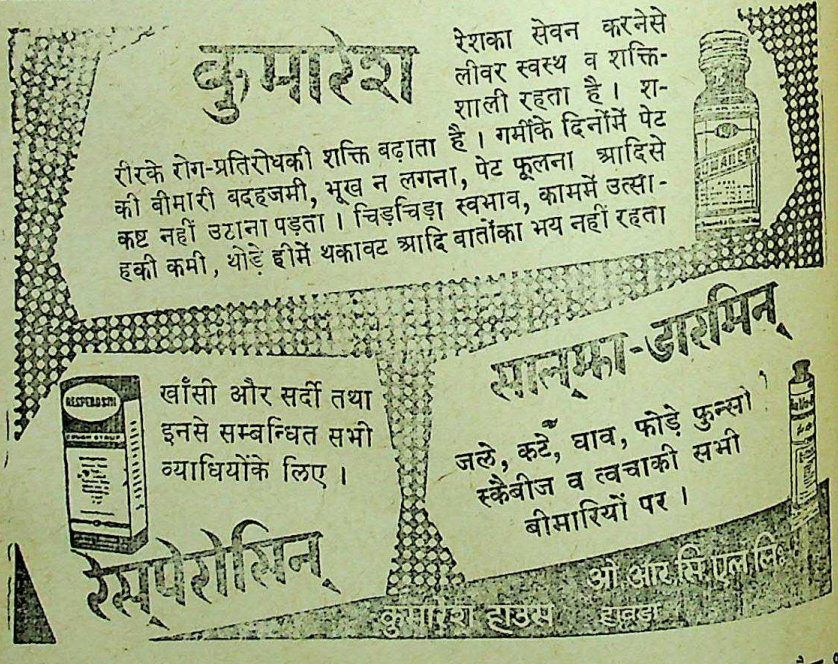

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ त र ती सी ढ़ि याँ

• अ-नया वर्ष

—फिर एक मन्द बुद्धि नर
किसी मादा का पालतू बनेगा
खीसें निपोरेगा
.खुश होगा—

—फिर कोई नौजवान मूर्खा
गृहिणी बनकर लज्जा से हुलसेगी
हर रोज़ विधिवत्
क्रमशः निर्लज्ज होगी
रोटी-सी बिलेगी
पसरेगी—

—फिर कोई दो अधकचरे भावुक
प्रेम के स्वांग में
दुनिया से विद्रोह करने का दम भरेंगे
फ़िल्मी गीतों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साँस भरेंगे
तारे गिनेंगे
फिर अलग अलग शादी करेंगे—

—फिर अधेड़ औरतें और अधपके बूढ़े
उम्र-भर की सारी चोरियाँ भूलेंगे
नयी पीढ़ी को कोसेंगे
ख़ुद जो न कर पाये
उसे गाली देकर, रस लेंगे—

—फिर कोई सिरफिरे
किसी भी बहाने से
आपस में लड़ेंगे
अपने-अपने पक्ष को
सौ फ़ी सदी सच्चा कहेंगे—

—फिर बचे-खुचे ईमानदार
यानी निरीह बुद्धू
सच्चाई के कारण ही
लांछित हो जायेंगे
दुष्ट सम्मानित होंगे
निर्दोष
कालिख-परेडों में घुमाये जायेंगे
मूढ़
दर्शकों की कुर्सियों से तालियाँ बजायेंगे

—गिरिजाकुमार माथुर

• ठहराव

आज न सही
किसी कल में
इस बहुत बड़ी दुनिया में
इस बहुत बड़ी उम्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज इस आवेश के बहाव में न सही
फिर कहीं
किसी ठहराव में ।

तुम्हें देखेंगे बहुत देर तक
फिर पास में बैठेंगे बहुत देर तक
आज इस तैरते नशे में न सही
फिर कभी सही
बहुत दिनों की सुनायेंगे
कहानी में
बीती बात
आज इस बहकते क्षणों में न सही
आज न सही
किसी कल में ।

—शकुन्त माथुर

• उपचेतन

अन्ध घाटियाँ

पर्वत पर
आलोक चेतना
नीचे हैं
ठण्डी समाधियाँ
अन्ध घाटियाँ

उपचेतन की
पर्त-पर्त पर
अन्दर घिर-घुमड़े
विवर्त पर
मँडराती हैं
नयी व्याधियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती हुई
धूप को गाली
धरा गर्भ में
झुकती डाली
शव-सी हैं निश्चेष्ट,
वादियाँ

जल में लीन
तिमिर प्रान्तों को
मूर्च्छित गूँगे
एकान्तों को
खींच रहीं
माझिन प्रभातियाँ

—वीरेन्द्र मिश्र

• निशीथ

बाहर
आधी रात पहरुआ बोले
ठक्-ठक् बाँग लगाये
डण्डा मारे
सड़क जगाये

भीतर
तकिये ऊपर सोयी गन्धलताएँ
अँगड़ाई ले-ले शरमायें
खिड़की का पल्ला खुल-खुल कर
फिर झँप जाये
रातरानियाँ झोंके भर-भर
मार तानां
अर्द्धरात्रि का ताना-बाना

—कन्हैयालाल नन्दन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु

सुबह से शाम तक
कुछ स्याह प्रश्नों के
टूटे-थके डैने कँपाता
एक शंकित मन
भीतर के गहरे आकाश
थकता है

वह सत्य जो घायल पड़ा है
किसी अज्ञात कक्षा के
किसी अनजान कोने में
वह सत्य
अपना शायद हो नहीं सकता

बुद्धिसम्मत चेतना के भी बहुत आगे
शायद कहीं कुछ है
शायद वहीं कुछ है
जिसके बिना
बौनों की अजूबा संस्कृति के
इस अविचारी व्यर्थ नाटक का
परदा गिर नहीं सकता

स्थिर हो गया है
आत्महत्या का एक वह ही दृश्य
कब से प्रेक्षकों की आँख में चुभ कर
अँधेरा
तभी से जख़्मी बना कर रोशनी को
सिर्फ़ धीमे से सहमता है
और सब लथपथ अँधेरे में
स्थिर आत्महत्या-दृश्य की
रक्त-निष्पत्ति भोगते
चुपचाप बैठे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराजय की अँधेरी सीढ़ियों के
बीच ही से लौटते हैं चरण
अपनी ज्योति खोये नयन···
फिर से अजायबघर
सतह की शायद यही नियति···
इतिहास का शव-परीक्षण
कर रहा है एक नंगा प्रेत
जिसके नाख़ूनों का चमकता स्पात
तीखा धारदार स्पात
अस्तित्व के भीतरी कपाटों को
कँपाता है
कभी भड़भड़ाता है

वह आत्मघाती दृश्य
आँखों में किसी की
बर्फ़ के चाकू धसाये है
आह ! यह नाटक
अधबीच टूटेगा
समाप्ति-पूर्व की यह मृत्यु
अनहोनी नहीं होगी
रात गहरी हो रही है
वारदात शायद अब नहीं होगी
आँखें नहीं होंगी
मगर फिर भी
संशय के द्वार के उस पार
समय तो होगा
सीढ़ियाँ होंगी
चरण चाहे हों न हों

और घायल सत्य
आती और बीच ही से लौट जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदचाप से आक्रान्त हो
यदि विक्षिप्त हो जाये
.....
.....

तंग आकर
इस अधूरे नाटक को
यहीं पर छोड़ दूँगा मैं
....

विक्षिप्त सत्य को ढोना
कष्टप्रद ज्यादह
बात बूते की नहीं मेरी
अन्धे अँधेरे कूप में
अस्तित्व के दम तोड़ दूँगा मैं

अधूरे त्रास को
सफलता की सीढ़ियाँ ले जा नहीं पाऊँ
तो क्यों लजाऊँ मैं
चरितार्थ कर दूँ ज़िन्दगी में
डूब जाऊँ मैं
.....
.....

अधूरे नाटक के
आत्मघाती दृश्य में
कब तक धँसे रहना
(आख़िर क्यूँ धँसे रहना)
जिसमें होना तक नहीं अपना
जिसमें मरना तक नहीं अपना

—चन्द्रकान्त देवताले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकौन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ ब्या
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती

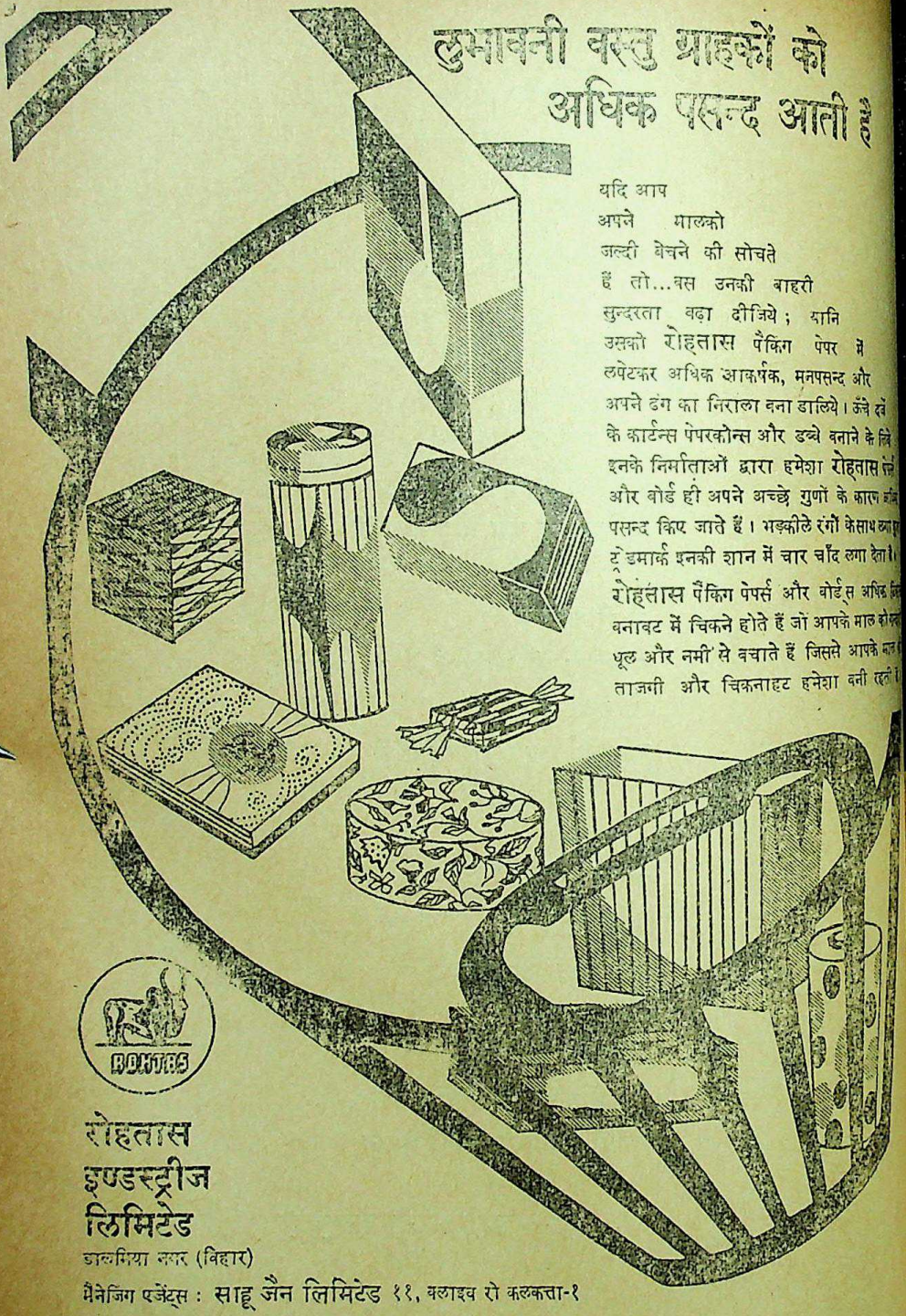

BOARDS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
मैनेजिंग एजेंट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ये मेरी डायरीके कुछ पृष्ठ हैं। अलग-अलग तारीख़ोंमें लिखे गये पन्नोंको मैंने यहाँ एक विशेष दृष्टिकोणसे चुनकर एकत्र कर दिया है जिससे एक विचार-क्रम और रचनामें संलग्न मनस्थितिका क्रमबद्ध परिचय मिल सके। इसीलिए तारीख़ों और महीनोंकी सूचना देनी ज़रूरी नहीं समझी गयी है।]

कैसे क्षण आते हैं! कैसी लहरोंमें सारा अस्तित्व झंकृत होता है! कल्पनाके अजीब-से पंख और अन्तर्कथाएँ। चारों ओर अनन्य चेहरे और उनमें कैसी-कैसी आँखें। उन आँखों-में कितनी अन्तर्कथाएँ। फिर शब्द। फिर मूक अभिव्यक्ति। जैसे कुछ न कहकर सब कुछ कहना। या कि खुद न समझ पाना कि मन किन कथाओंमें भटक रहा है!····कौन-सी कहानी अन्दर-ही-अन्दर बन रही थी और एकाएक सब कुछ बदल गया। फिर केवल क्षोभ। केवल उदासीनता—जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। बल्कि उसकी जगह और गहन····गहनतम संस्मरण। बनती हुई कहानीके नष्ट होनेकी यादगार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जीवन शुरू हो जाता है और कैसे उसके इर्द-गिर्दकी सारी सम्भावनाएँ कट जाती हैं। दुनिया कितनी छोटी हो जाती है। कल्पना और अनभिव्यक्तिके अन्तरालमें कई-कई चेहरे प्रकट होकर अपने-आपको नष्ट करते रहते हैं।....ओह। अगर एक बार अभिव्यक्तिका अवसर मिल जाता! और यह दुनिया न होती और ये भय न होते और ये लोग और सम्बन्ध और ज्ञान और नीति-अनीतिके बन्धन न होते—तो वह कहानी अन्ततः बन जाती। और उसके बन जानेका अप्राप्य सुख! उसकी अप्राप्यताका ज़रा-सा अहसास ही मनको किस तरह पुलकसे भर देता है!

मनका एक सूक्ष्म तार किस तरह अनभिव्यक्तिसे सदाके लिए जुड़ा रहता है! वह महाकाव्य कितना असम्भव है जो अनजानमें ही छूट जाता है! वह पुलक, वे अंग-प्रत्यंग, वह सौन्दर्य, वह रस और सुडौलपन....वे मसृण नितम्ब....वह आँखोंकी लज्जा—वह सब कुछ अन्दर-ही-अन्दर लिखा जाकर नष्ट हो जाता है। उस कविताका साक्षी सर्वनाश है। (क्या उसे लिखना ही होगा? उस रचनामें टूट जाना ही अन्तिम परिणति है।)....यह सब कितना अनकहा है। स्वयं मुझसे भी किस तरह ये सारेके सारे तार हाथोंसे फिसल जाते हैं। यह अनदेखापन कितना साकार है! वह प्रेम नहीं है। वह अप्राप्यता है। वह असम्भावना है। वह अनहोनी है। वह आभास है। वह अहसास है। वह अनन्यता है। वह अनस्पर्श है। वह ध्वनिहीनता है। वह एक समूचा परायापन है। वह।

वह परायापन कितना सालता है! किस क़दर विक्षोभकारी है। यह असम्भाव्य कितना तोड़ता है! कितना अमानवीय कर है! किस तरह क्षण और वर्षोंको समतल करती है। किस तरह मैं केवल अभिव्यक्त मौनमें ही विश्वास करने लगता हूँ किस तरह मैं जीवनको घेरकर बैठ जाता और अपनेको निजसे काट देता हूँ—निज को तीखी छुरीसे स्वयंको ज़िबह कर कितना हास्यास्पद है! क्या इसे कोई समझेगा? फिर एक अकेलापन—फिर-फिर अनभिव्यक्तिकी, असम्भाव्यकी लहरें ले लेती हैं।

वह कौन-सी प्रतीति है जो मुझे वीरान दायरेमें भटका देती है। मैं केवल निराकार अंगोंका स्पर्श करता हूँ और फिर साकार होते-होते मिट जाते हैं। इस तरह सन्नाहटा मेरे मनको कितना सुकून देता है कितनी उत्तेजनासे भर देता है! कहाँ लौट चलता है! उस अवर्णनीय स्वप्नकी ओर एक अन्धकार है कोमलताका। झूठ; वह विकार मेरे मनमें है। बाहर कहीं कुछ नहीं लेकिन यह विकार कितना पवित्र है! कि एकाकी! कितना अपना। इस तरहका स्थापित सम्बन्ध, जिसकी असम्भावनामें मेरी कल्पना मुखर हो उठती है!

इसे मेरे सिवा कौन जानता है—ईश्वर कि मैं कितना पवित्र हूँ; कितना अकेला और एक ही साथ कितनी शताब्दियोंमें रहा हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी आँखोंमें यह कौन-सा भाव है। यन्त्रणाके असह्य क्षणोंमें इतनी उज्ज्वलता—इतनी अपरूपता! काश! इसका कोई अर्थ होता! काश! इससे बड़ा भी कोई अनर्थ होता! इतना सुख! काश यह झूठ होता! और इसके पीछेकी लहरें और अन्धकार—फिर-फिर प्रत्यावर्तन। आँखोंके आगे एक उदासीनताका कमलवत् चरणोंसे टहलना।....भाषाकी असम्भवताको मैंने अनेक बार जाना है। लेकिन वह मौन, वह असम्भाव्यता इतनी सुखद कभी नहीं थी। पहले हमेशा, भाषाके मौनपर मैंने उसे टटोला है। उसे तोड़नेकी कोशिश की है, और सच, मैंने तोड़कर ही दम लिया है। मेरी अभिव्यक्तिपर जितना ही मौनने छानेकी कोशिश की है, उतनी ही त्वरा, उतने ही आक्रोश और साहससे मैंने उसे भेद दिया है।

अब नहीं। अब मैं भाषाके मौनके उस महत्त्वको पहचानता हूँ। अब केवल मेरी अभिव्यक्तिका साधन मेरी आँखें हैं जो कुछ भी नहीं व्यक्त करतीं। अब यह उपहासास्पद लगता है। अब मैं केवल इच्छाहीनताको व्यक्त करता हूँ। यह कितना कठिन है। असम्भवके निकट। मैं हड्डियोंको जलाता हूँ तो शब्द निकलते हैं। वह ध्वनि कितनी अनोखी और अपने निकट है। एक ही साथ कविता आकार भी लेती है और स्रष्टाको नष्ट भी करती चलती है।....यह केवल एक मृत्युमुखी आनन्द है। यही परिणति है....एक वृत्तर अभिव्यक्तिकी समग्र परिणति।.... यह सब कितना असहनीय है! जब मेरी आँखोंके आगे चिनगारियाँ छूटती हैं। और उसके बावजूद मैं इस दुनियाको उन्हीं आँखोंसे देखता हूँ। जब मेरी सारी प्रिय वस्तुओंपर-से मेरा विश्वास उठ जाता है और सहसा एक शोरो-गुलसे भरे लम्बे अकेलेपनमें मैं छूट जाता हूँ। फिर भी वह चीज़—वह एक चीज़—मेरे हाथोंसे नहीं छूट पाती गो कि सारे प्रमाण उसके छूट जानेके लिए काफ़ी हैं। मैं उसे अपनेसे चिपकाये भागता फिरता हूँ और सारे आकाशमें मेरे भागनेकी एक उदास गूँज रह जाती है।....अब मैं उस लयको, उस सत्यको पहचानता हूँ जिसे मैंने लोगोंके बीच खो दिया था। अब उस आक्रोशमें अपनी पवित्रताकी झलक मुझे मिल जाती है।....यह एकान्त सचमें, एकान्त है....

ॐ

'गो मैं रहा रहीने-सितम हाय-रोज़गार।
लेकिन तेरे ख़याल से ग़ाफ़िल नहीं रहा॥'....

एक दीवार-सी है। एक कवच-सा...या कुछ जो हर क्षण महसूस होता चलता है। महसूस भी नहीं—यह लगता है कि वह चीज़ है। सर्वत्र, हरक्षण। उससे मुक्ति नहीं है। वह छोड़कर जा नहीं सकती। हर वक़्त घेरे रहती है। और तुम निश्चिन्त अपना काम करते चल रहे हो। तुम उसके बारेमें सोच भी नहीं रहे। वर्षोंमें शायद कभी, किसी रात अचानक नींद खुल जाती है और उसका अहसास छा जाता है। उस मरी हुई चीज़का। एक भय-सा लगता है और फिर निश्चिन्तता, विश्रान्ति—एक मरी हुई विश्रान्ति। फिर कोलाहल और सन्नद्धता....। फिर तैयारी.... तैयारी—कि अचानक लगता है—एक क्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है—एक ही क्षण—कि बुझ जाना है—मृत्यु। और तब पता नहीं कितनी अँधेरी, भूली हुई, वीरान, अनपहचानी राहोंको फोड़कर सहसा वही दीवार सामने खड़ी दीख जाती है। फिर सब कुछ सहज हो जाता है। जब लिखने बैठते हैं तो दूसरी ही चीज़ होती है। महीनों बाद एकाएक पढ़नेपर असलियतका पता लगता है····यह तो वह है। यह तो····इसका स्रोत तो वहाँ है····उस खोये हुए-भावमें। उस गहनतम अन्धकारमें। रचनाका वह अन्तरंग लोक····वह अण्डरवर्ल्ड····। लोग चिलमका दम लगाये घूमते हैं। जुए खेल रहे हैं। सारी ज़िन्दगी इस जुएमें हार चुके हैं। फिर भी यहाँ आते हैं और दाँवपर बैठ जाते हैं। मैं एक कोनेमें खड़ा इन अनधिकारियोंको देखता हूँ। अब मैं इन्हें बखूबी पहचानने लगा हूँ। लेकिन क्या हो सकता है! क्या मैं किसीको समझा सकता हूँ। या यह समझानेकी बात भी है।

बहुधा रातके गहनतम अन्धकारमें भेंट हो जाती है। सहसा मैं पहचान नहीं पाता। वह आकृति चुपचाप दरवाज़ेके बाहर बैठी है। वह आकृति मेरा इन्तज़ार करती है। मैं सुन्न-सा खड़ा देखता रह जाता हूँ। सामने एक हौज़ बना है। सीमेण्टका। उसकी गरदनसे हौज़तक एक मोटी रबरकी नली लगी है। हौज़ ख़ूनसे लबालब भरा है। आकृति मुसकराती हुई मेरा स्वागत करती है····। उसकी हथेलियोंमें हरी-हरी पिनोंकी झालर उगी हुई है। वह उठती है और प्यारसे अपनी हथेलियाँ मेरे सारे बदनपर फेरने लगती है। खरोंच-खरोंच····खरोंच····पूरे बदनसे ख़ू छलछला आता है। यह मैं होता हूँ····रचना में लीन। शायद यह अपना ही उपहास कर है····। ठीक है। किसी भी चीज़का निर्ण इतनी जल्दी नहीं होता। निर्णय शायद कभ नहीं होता। सज़ाएँ मिलती हैं।

निर्वासन····अकेलापन····अन्ततः।

■

क्या वह चीज़ ख़त्म हो गयी है? वह आलो या वह जागरण या वह आरम्भकी प्रतीक्षा वह अभिसन्धि? नहीं, शायद वह सब कुछ चल रहा है। अपने-आपमें अनवरत। अन्त नरकमें प्रवेश। कलाके नारकीय सन्दर्भ आस्था। वह चीज़ क्या देती है?

नरक। लेकिन क्या वह सप्रमाण है? निर्णय अन्ततः क्यों लिये गये? किसने क था आपसे। हिप्पोक्रेट्सने? नहीं। वह अ कोई निजी विवशता नहीं थी। वह अ कोई व्यक्तिगत बाध्यता नहीं थी। वह समग्रताकी हत्याका साक्षात् दर्शन था। अनाचार····। उसीने ऐसे निर्णय लेनेको बा किये। क्या मैं इन यन्त्रणाओंसे तब भी परि नहीं था? नहीं, उनका आभास मुझे तब था। लेकिन क्या मैं उस निर्णयको अस्वी कर सकता था? मैंने नहीं किया। तभी सर्व-साधारणसे पृथक हो गया। तभी मैं दुःखोंसे हट गया; अपने अकेलेपन और दुर्दशाओंको त्याज्य समझ किन्हीं और लो तिरोहित हो गया। मैंने अपना लिया तभीसे मैं व्यस्त हूँ। यह एक दुर्बोध-सी है। ऊपरसे देखनेपर कुछ भी नहीं लग

क्या मैं कुछ
कि मेरे चेहे
मैं अभी भी
दीख रहा
जुआरियों
नहीं आता
सब कुछ बद
के तौरपर
एक कार्यर
अन्धश्रम····
एक-एक दि
श्रम····और
कोनेमें लौट
न कोई है,
सब-कुछ अ
होता है—
जाता है।
कितना नि
हर तरहसे
उद्यत होते
वह सब-कु
के लिए नह
णीय इसीलि
अकेले
लेकिन अके
उतनी ही
गत रूपमें
अब पूरी
रही है।
एक वृहद्
एक प्रारम
निर्णयके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मैं कुछ भिन्न हो गया हूँ ? (सिवा इसके कि मेरे चेहरेपर खराशें पड़ गयी हैं····) क्या मैं अभी भी उन्हीं छल-छद्मोंमें नहीं रेंगता दीख रहा हूँ। क्या अभी भी हिप्पोक्रेट्स, जुआरियों और शराबियोंके बीच मुझे मजा नहीं आता ? ये सारी बातें हैं लेकिन अन्दरसे सब कुछ बदल गया है। फिर भी इसे सफ़ाई-के तौरपर पेश नहीं किया जा सकता। बस एक कार्यरतता····सिर्फ़ श्रम····श्रम····श्रम, अन्धश्रम····अनिवार, अनथक श्रम····मिशन। एक-एक दिन, एक एक पल····श्रम—अनाहूत श्रम····और टूटना, तटस्थ होना और अपने कोनेमें लौट आना। वहीं, जहाँ न कोई था, न कोई है, न कोई होगा। उससे क्या होगा ? सब-कुछ अर्थहीन—एक दूसरे अर्थमें—एक दिन होता है—जब सम्पूर्ण जीवन अपने-आप खुल जाता है। कोई वहम नहीं रहता। तब आदमी कितना निश्चिन्त हो जाता है। यह 'जानना' हर तरहसे यन्त्रणादायी होता है। तब हम उद्यत होते हैं—एक निजी पूर्णताकी ओर।···· वह सब-कुछ अपने लिए होता है। अपने सुख-के लिए नहीं—अपनी मृत्युके लिए। सारा कर-णीय इसीलिए सार्थक है कि मुझे मर जाना है।

अकेलेपनकी बात रूढ़ होती जा रही है लेकिन अकेलापन रूढ़ नहीं हो सका है। वह उतनी ही अनिवार्यतासे विद्यमान है। व्यक्ति-गत रूपमें शायद वह पहले भी रहा होगा। अब पूरी दुनिया समूचे रूपसे अकेली होती जा रही है। हमारे युगका तथाकथित अकेलापन एक वृहद् अकेलेपनकी भूमिका मात्र है। यह एक प्रारम्भ है। क्या हम अपने घरके एकान्त कोनेमें जब बिलकुल अकेले होते हैं तो पूर्णतः सुखी नहीं होते ? क्योंकि तभी हम सच्चे अर्थोंमें अकेले नहीं होते। लेकिन ज्योंही हम किसीसे टकरा जाते हैं हम अकेला होना शुरू कर देते हैं। हम अपनेको खोना शुरू कर देते हैं। फिर हम सड़कपर आते हैं, फिर ट्राम-बसमें, रेलमें, मेलेमें, कनाटप्लेस या चौरंगीमें। हमारी आँखें खुली रह जाती हैं। भाषा लुप्त हो जाती है। हम एक भीषण अर्थहीन शोरके अंग हो जाते हैं। यह निश्चित है कि नागर-सभ्यताके विकासके साथ-साथ यह अर्थहीन शोर—यह शून्यवत् व्यवहार बढ़ता ही जायेगा। और कलाकी प्रवृत्तिमें अराजकता और अमू-र्तता बढ़ती जायेगी। क्षणोंके अन्तरालमें ही एक पूरीकी पूरी संस्कृति और कला-पद्धति बासी पड़ जायेगी। यह भयावहता—इस भयावहता-में कौन होगा वह ? कोई असाधारण शक्तिका व्यक्ति-कलाकार ही कलात्मक व्यवस्था और उच्चतम निश्चिन्तताओंको उपलब्ध कर पायेगा। अन्यथा कला-रचना एक समूह-प्रयत्न-के रूपमें ही प्रतिफलित होगी। उतनी बड़ी महत्त्वाकांक्षाके लिए उतना बड़ा अकेलापन झेलना कितना महत् होगा। यन्त्रणाकी प्रखरतम स्थितिमें ही प्रखरतम विश्वास पैदा होगा।

□

एक रचनाकारके रूपमें हमारी नियति क्या है ? किसी भी प्रकाशमें छूटनेकी नियति नहीं है····। मेरी कोई नियति नहीं सिवा एक लम्बे दुर्भाग्यके। भारतीय रचनाकार (सच्चा रचना-कार) की स्थिति अत्यन्त करुण है। कई मायनोंमें हमारा दुर्भाग्य बड़ा है। हमने युद्धों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तथाकथित गलित बिभीषिका नहीं भोगी। लेकिन हमारे खतरे कम नहीं हैं। हम अपनी बाँहोंमें एक ओर सारे पिछड़ेपनको बाँधे हुए हैं तो दूसरी ओर उस समस्त वैज्ञानिक-साधनोंसे उपलब्ध आधुनिक भयको भी। एक तरफ़ हम सारी दुनियाके साझीदार हैं तो दूसरी ओर अपनी आन्तरिक विगर्हणाओंसे भी आक्रान्त हैं। ऊपरसे हमारे सिरोंपर शताब्दियोंकी तथाकथित सांस्कृतिक, कलात्मक और काव्योपलब्धियोंका बोझ लदा हुआ है। हम भयावह रूपसे आक्रान्त हैं। पश्चिमके सारे देशोंके रचनाकारोंसे हमारा दुर्भाग्य बड़ा है। हमारे आगे-पीछे छायाएँ चलती हैं। हम भार मुक्त होनेकी स्थितिमें अचानक समाप्त भी हो सकते हैं····। इसीलिए हमारी सम्भावनाएँ भी महत् हैं। यह दुर्भाग्य जितना ही बड़ा है, सम्भावनाएँ भी उतनी ही बड़ी हैं। इस बातको पश्चिमके तो क्या, अपने यहाँके रचनाकार भी कितना समझ सके हैं। यह शताब्दियोंका बोझ, यह विच्छिन्नता, यह भयावह दुर्भाग्य और क्षण-क्षण बदलते हुए अस्थिर मूल्य····! क्या मैं जानता हूँ कि क्या होगा ? क्या रचनामें मेरा विश्वास मूलतः व्यर्थ नहीं है ? वह क्या है ? वह ? आकार लेता हुआ और धीरे-धीरे बढ़कर मुझे निगल लेता हुआ—वह क्या है ?

वही वर्षाका स्वर है; बिलकुल वैसा ही। केलेके पत्तों, अमरूदके बागानों, बेगनबेलियाके कुंजों और टिन और खपरैलकी छतोंपर गिरता हुआ—वही एक स्वर। अन्धकारमें एक रूप और आकार लेता हुआ—अनाहत, अन्तर्निहित····सुन्न···· झाँय-झाँय, झिम्म-झिम्म··· कलतक चौंधियाते हुए दिन थे। आज वर्षा है···बहुत दिन बाद।

ऐसे ही में एक खत—नामहीन····· अन्धकारमें रूप और आकार लेता हुआ··· एक स्वर। अनाहत, अन्तर्निहित, एकमुश्त फिर यह कविताकी शुरूआत। जो बन नहीं रही है। अनुभवके अन्तरालमें कुछ छूट गया है। या तो यह कविता है ही नहीं पैटर्न दूसरा है और मैं उसे अपने निजी पैटर्न खींच रहा हूँ।''''इसी वक़्त अचानक लक्ष्मीकान्त वर्माकी याद आती है। पहले हँसी आती है फिर उसका सन्दर्भ ढूँढ़नेपर मिल जाता है। लक्ष्मीकान्त नयी कविताकी काव्य रूढ़िसे बहुत ऊबे हुए हैं। (शायद हर सचेत आदमी—कवि—ऊबा हुआ है।) उस काव्य पैटर्नको छोड़कर वह कुछ बिलकुल ताज़ा लिखना चाहते हैं। इस (स-) प्रयत्नमें वे कूड़ा इकट्ठा कर रहे हैं। उनकी रुचि ऐसे पैटर्न या ऐसी वस्तुओंको या उन नीरसताओं को चुनती है जो वास्तवमें व्यर्थ और महत्त्वहीन हैं। कवितामें किसी भी वस्तु या विषय या अनुभव-क्षणको अंकित किया जा सकता है। उसकी कोई सीमा-रेखा नहीं है। किन्तु 'गहरे' और 'महत्त्वपूर्ण' अनुभवका अंकन सापेक्षतः काव्योपलब्धिके रूपमें भी 'गहरा' और 'महत्त्वपूर्ण' ही होगा बनिस्बत उसके जिसमें 'छिछले', 'साधारण' और 'महत्त्वहीन' (एक व्यापक सन्दर्भमें) अनुभवोंका अंकन किया गया हो। स्वाद बदलनेके लिए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी-सी 'रीलिफ़' देनेके लिए 'जोकर' बनना या मसखरेपनका या हलकी वस्तुओं (अनुभवों) का चित्रण करना उचित तो है लेकिन वह ग्रहणीय हो, महत्त्वपूर्ण माना जाये, उसे उपलब्धिके रूपमें ग्रहण किया जाये या उसे कोई नया प्रारम्भ माना जाये, ऐसा कुछ भी नहीं है। यह ऊब एक घबराहट और आन्तरिक रचनात्मक कमजोरी और ह्रासको परिलक्षित करती है। इसे कोई सैद्धान्तिक रूप देना एक नये ढंगका पक्षपात शुरू करनेके अलावा कुछ भी नहीं है। असलमें जो इस सम्बन्धमें गम्भीरता पूर्वक सोचते हैं वे और अधिक अकेले पड़ते जा रहे हैं और आधुनिक काव्य-रचना उनके लिए किसी बाह्य-परिवर्तनकी सूचना न देकर एक 'आन्तरिक खोज' के रूपमें परिणत हो जाती है। वह अधिक शक्ति व्याकुलता और गहरी यन्त्रणाको जन्म देती चल रही है। वास्तवमें कविताकी शक्ति और यन्त्रणाकी उस माँगको जो भी स्वीकार नहीं करता वह इसी तरहके बाहरी प्रक्षेपोंको ताज़गी और 'रिलीफ़' के रूपमें अपनाकर शायद शान्ति महसूस करेगा और खुश हो लेगा। क्या यह एक नये ढंगका पलायन नहीं है, जिसे 'तर्क' का आधुनिकतम लिबास पहनाकर सामने उपस्थित किया जाता है। वास्तवमें पलायनकी ज़रूरत नहीं है। आधुनिकतम रूपमें काव्य-रचना बहुत कुछ 'शक्ति' और 'यन्त्रणा' की माँगके अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गयी है। तभी कविताके कुछ देनेका सवाल उठता है। वरना वह अन्य बाज़ारू माध्यमोंसे बेहतर कैसे हो सकती है या वह एक नैतिक दुस्साहस कैसे है? यह 'शक्ति' और 'यन्त्रणा' की माँग अन्ततः आजके कविको 'नीरस' बनाती है। यह असली 'नीरसता' ही वह तटस्थ काव्य-मर्म है····! बहरहाल।

····एक बाँध····वही शाश्वत अपमान। शाश्वत चुनौती। लेकिन क्या उसे सहना मामूली बात है। वही शाश्वत चकाचौंध····। यह असम्भव है। तब कला और लेखनके और गहरे स्रोत खोजने होंगे। खोजने ही पड़ेंगे। ····मुझे कभी-कभी प्रार्थना करनी चाहिए और विश्वासहीनताकी ओर बढ़ना चाहिए—सिर्फ़ अपने प्रति····। तब मुझे दूसरों-द्वारा किये गये अपमानकी चिन्ता न होगी। तब मैं मुक्त हो सकूँगा।····ऐसा अधिकांशतः होता है। क्योंकि तुम असत्यके, अनीतिके, दुराचारके, धोखबाज़ी, फ़रेब, जाल और हिप्पोक्रेसीके खिलाफ़ साधारण अर्थोंमें कुछ आशा रखते हो। तुम्हें अपने प्रति विश्वासहीन होना ही चाहिए और सचको सचकी तरह लेना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए। कभी-कभी यदि कुछ विपरीत होता है और तुम्हें लगता है कि विश्वास करना चाहिए तो तुम मुसकरा दो और विश्वासहीनताकी प्रतीक्षा करो····उस स्थितिकी प्रतीक्षा करो जिसे सहनेके लिए तुमसे अ-साधारण शक्तिकी माँग की जाये। तुम एक शैतान हो जिसे कोई ईश्वर नहीं मिलेगा, जिससे तुम लड़ सको। तुम्हें स्वयंसे जूझना है। तुम्हें स्वयंको खा-खाकर जीवित रहना है।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे उस संकटका आतंक कम हो चला है। उस अनिश्चितताका··· उस अनिर्णयका ····उस सान्त्वनाहीनताका····और अपनेको नष्ट होते देखते चलनेका। (सम्भव है ऐसा सोचना भी एक भ्रम ही हो और कोई भयावहतर विनाश कहीं अँधेरेमे मुँह खोले खड़ा हो।) अब उसकी जगह कुछ दीखता है। बहुत-सी चीज़ें साफ़-साफ़ दीखती हैं। एक शुष्कता, तापहीनता, नीरसता दिन-ब-दिन पास आती जा रही है। एक झेल सकनेकी ठण्डी क्षमता। एक हास्यहीन हँसी; एक अन्दरकी सचाई। एक नया चेहरा है यह। अपनेको किन्हीं विशालतर प्रवाहोंमें धोता हुआ। एक दूसरी मनस्थिति है····एक अनिवार क्रियाशीलताकी तैयारी है। एक सहज, दुस्तर, ठण्डी सहिष्णुता है। दूसरोंके बारेमें ····अपने ही सम्बन्धोंके बारेमें एक दूसरा आसमान है—स्वच्छ, नीला, धूप-धुला और बादलोंसे रहित। अब जो अधिकारी हैं उनकी बात समझमें आती है। अब अनधिकारियोंका शोर मुझे नहीं सुनाई पड़ता। गो कि वे मुझे अब भी घेरे हुए हैं लेकिन अन्दरसे मैंने उन्हें काट दिया है। और मैं मुक्त हूँ और बाहर निकल आया हूँ। केवल मैंने अपनी इस शक्ति और अपने इस निर्णयको अपनी ओरसे उनपर जाहिर नहीं किया है—अपने पुराने संकोचके वश। अपने निर्णयको समझनेकी ज़िम्मेदारी मैंने उन्हींपर छोड़ दी है।

लेकिन यह सब किसी नार्मल, साधारण नागरिकताकी ओर बढ़नेका प्रयास नहीं है। मैं अपनी शक्तिको पुनः संयोजित करके एक बृहत्तर विश्वासहीनताको प्राप्त करनेकी दिशामें उन्मुख हूँ। वह कहाँ है? वह विश्वासहीनता किस अर्थमे संयोजित होगी? उसकी माँग कितनी भयावह और कितनी बड़ी होगी—इसे कौन जाने। लेकिन मैं अपनी सुरक्षामें व्यस्त हूँ जिससे मैं उस औसत दर्जेकी निष्क्रिय सक्रियता और साधारण आस्था और व्यवहारबुद्धि और सम्बन्धोंका परित्याग कर सकूँ—कहूँ कि मुक्त हो सकूँ और प्राप्त कर सकूँ—उस सम्बन्धहीनताको, तटस्थ, आन्तरिक, निजी उदासीनताको, जो मुझे सबसे जोड़ सके। मैं अपनी आन्तरिक विसंगतिको बाहरी विसंगतिकी बृहत्ता मिला रहा हूँ। मैं राहपर हूँ····। अन्ततः वही मेरा लक्ष्य है—वही। जो मुझसे परे यन्त्रणा भोग रहा है और जीवित है। वह जो मृत्युमें जाता हुआ मृत्युको काटकर फेंक देता है····वही मेरा मूल्य है····रचनाकारके नाते। अपनेसे छूटकर दूसरोंमें समाहित होना और फिर अन्ततः सबसे पृथक् हो जाना—उस निर्वासनको, इच्छाहीनताको सम्पूर्णतः स्वीकार कर लेना। निःसंग,····अपनेमें तिरोहित, आत्महन्त····विश्वासहीन····। इसीलिए मैं कहता हूँ, मेरे सामने बहुत कुछ साफ़ है। समग्र रूपसे एकदम साफ़····धूप-धुला आसमानकी तरह।

इसीलिए साधारण अर्थोंमें लेखन मेरे लिए निरर्थक है। यही निरर्थकता मुझे उसके प्रति प्रतिश्रुत बनाती है। क्योंकि तब मैं सचको सचकी तरह झेल सकता हूँ। अपने मुझमें या किसी भी रचनाकारमें यह बुनियाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईमानदारी नहीं है तो रचनाकी 'सार्थकता'-का उसके लिए कोई अर्थ नहीं होगा। वह सच्चे अर्थोंमें पेशेवर लेखक होगा और सफल होगा—किन्तु रचनाकार नहीं। ज़ाहिर है कि किसी भी 'रचनाकार' के लिए पेशेवर लेखक बन सकना उतना ही असम्भव है जितना कि 'पेशेवर' लेखकके लिए रचनाकार बन सकना। दोनों दो विपरीत दिशाएँ हैं।

इस निरर्थकताके भीतरसे ही मैं अपनेको समझ सकता हूँ। तभी मैं उपयोगी हो सकता हूँ। तभी मैं उस सचाईको छू सकता हूँ जो समयानुसार सबकी है। वास्तवमें यह किसीकी सदिच्छापर निर्भर करता है कि वह किस माध्यमसे क्या उपलब्ध करना चाहता है। यदि हम दो व्यक्ति एक ही साधनसे दो विभिन्न लक्ष्य उपलब्ध करना चाहते हैं तो प्रयोगके स्तरपर हम अलग होंगे। फिर तो साधनोंके आधारपर उपलब्धिकी तुलना ही व्यर्थ है। मैं जो चाहता हूँ वह सहज नहीं है (पेशेवर लेखकके लिए मेरी चाहका कोई अर्थ नहीं है।) लेकिन मेरी महत्त्वाकांक्षा उस नयी यातनाको झेलनेके लिए अपनेको तैयार कर रही है।....वह नयी यातना, जो अपनेको विश्वासहीन क़रार देनेसे मुझे दी जायेगी। उन लोहेके छड़ोंमें कितनी अग्नि है, इसका मुझे पता है। उन आँखोंमें कितनी घृणाकी तूफ़ानी आग है, यह मुझे मालूम है। मेरी देहपर—मेरी रचनापर—निश्चय ही ये दूसरे क़िस्मके निशान बहुत जल्द ही पड़ने शुरू हो जायेंगे—क्योंकि वह अपराध मैं करने जा ही रहा हूँ....।

■ ■

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ● सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएँ तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

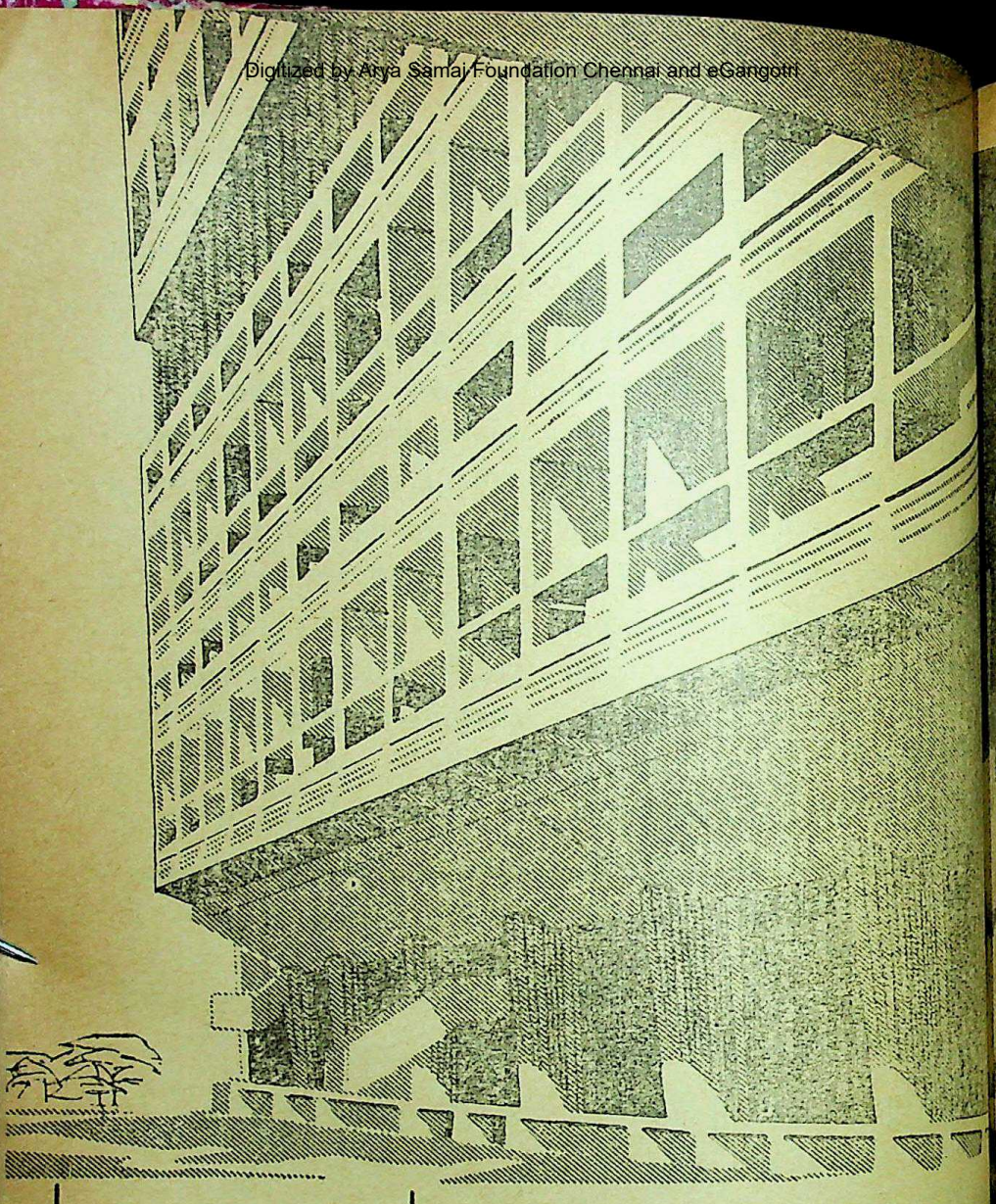

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

ASHOKA — रोहतास इन्डस्ट्रीज लि

BAHOL — अशोका सीमेन्ट लि

ROHTAS — सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंगालमहल

शेख़ तसद्दुक़ हुसेन

प्रस्तोता : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[रंगमहल रातों रात कंगालमहल' क्यों बना ? शाहे-अवधकी रंगीन एवं तुनक-मिज़ाजीकी दिलचस्प कहानी । जिसे कई ग्रन्थोंका मन्थन करके शेख़ तसद्दुक़ हुसेन साहबने लखनऊसे प्रकाशित जून १९४६ ई० के 'निगार' में मुद्रित करवाया था ।]

अवधके नवाब सुलेमान जाह नसीरुद्दीन हैदर अपनी बेगम—नवाब क़ुदसिया महलको बेहद चाहते थे । २१वीं अगस्त १८३४ ई० को जब क़ुदसिया बेगमने आत्महत्या कर ली तो उनको बहुत अधिक व्यथा पहुँची । मानसिक सन्ताप दूर करनेके लिए फ़रहबख़्शका निवास त्याग कर वे कभी आसफ़ी दौलतख़ानेमें कभी दिलकुशा कोठीमें रहने-सहनेके लिए चले जाते, परन्तु कहीं भी चित्तको शान्ति नहीं मिलती । हर समय बेचैन और शोक-सन्तप्त रहते थे । शुरू-शुरूमें राज्याधिकारियों एवं इष्ट-मित्रोंने बहुत प्रयास किया कि कोई युवती क़ुदसिया बेगमकी हम शक्ल-सी मिल जाये तो नवाबका शोक शनैः-शनैः कपूरकी मानिन्द उड़ जायेगा । किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त न हुई ।

क़ुदसिया बेगमकी छोटी बहन—नाज़ुकअदा—की शक्लो-सीरत अपनी बड़ी बहनसे बहुत कुछ मिलती-जुलती थी, किन्तु उसका रिश्ता नवाब दूल्हासे निश्चित हो चुका था । नवाब नसीरुद्दीन और उसके हितैषियोंने नाज़ुक अदाको समझाने-बुझानेके अनेक प्रयत्न किये, किन्तु उसने अपने निर्धन प्रेमीके प्रेममें अवधकी मलिका बननेसे स्पष्ट असहमति प्रकट कर दी, न वह लालचसे पिघली और न भयसे झुकी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह प्रेम-दीवानी अपने महबूबके साथ बेवफ़ाई करनेको किसी भी क़ीमतपर जब तैयार न हुई तो उसके प्रेमी दूल्हाको लखनऊसे हटाकर मियाँगंजमें बन्दी बना दिया गया। उधर नाज़ुक अदाको एक मकानमें नज़रबन्द करके पहरा बिठा दिया गया।

दोनोंको समझाने-फुसलानेके लिए एक-से एक बढ़कर इस फ़नके माहिर भेजे गये, परन्तु—मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।

अतः एक दिन अवसर पाकर बुलबुल क़फ़ससे उड़ गयी—और कानपुरमें अपने प्रेमीसे जा मिली। अभीतक तो नवाब नसीरुद्दीन दुःख-शोकसे ही सन्तप्त थे, इस घटनासे अपमान भी महसूस करने लगे। उन्होंने लखनऊका एक-एक कोना ढुँढ़वाया, किन्तु नाज़ुक अदाकी परछाँई तक नसीब न हुई। दरबारे-अवधके लेखकके कथनानुसार दूल्हाकी जेलसे रिहाई और नाज़ुक अदाकी फ़रारीमें अवधके वज़ीरे-आज़म रौशनुद्दौलाका हाथ था, किन्तु इस षड्यन्त्रका आभास नवाब साहबको न हो सका।

उक्त घटनाके बाद फिर उपयुक्त कुँवारियोंकी खोज प्रारम्भ हुई। बहुत-सी लड़कियाँ बादशाहको मुलाहिज़ा करायीं गयीं, लेकिन उनमें-से एक भी मनको न भायी। बक़ौले-मीर :

किसूसे दिल नहीं मिलता है या रब !
हुआ था किस घड़ी उनसे जुदा मैं ॥

यदि किसीका रूप-लावण्य बादशाहको आकर्षित करता था तो उसकी सादगीसे मन फिर जाता था और यदि किसीके चांचल्य और हाव-भाव मनको भाते थे तो उसकी बेनमकीनीसे दिल भाग खड़ा होता था। आख़िर एक दिन अवसर पाकर रौशनुद्दौलाने बातों-बातोंमें अपने एक सम्बन्धीकी लड़कीका ज़िक्र बादशाहसे किया। और एक रोज़ दावतके बहानेसे बादशाहको अपने मकानपर बुलवाया और अपने बहनोई मिर्ज़ा बाकर अली खाँ (भूतपूर्व सूबेदार रुहेलखण्ड) की लड़की यानी अपनी सगी भानजी क़मर तलअ़त बेगम बादशाहको दिखा दी। इस लड़कीका रंग सुर्ख़ी-सुफ़ेद, जिल्द बारीक, आँखें बड़ी-बड़ी, होंठ पतले और चेहरा चौदहवीं रातके चाँदकी तरह रौशन था। बादशाह तुरन्त उसकी ओर आकर्षित हो गया। और उन्होंने उसकी प्राप्तिकी इच्छा व्यक्त की। रौशनुद्दौलाने विनीत भावसे कहा—"यह लड़की बड़ी आली खानदान है, अगर तबीयत मुबारक दूसरी तरफ़ रुजूअ (आकर्षित) है तो इसके बापको शुरफ़ाके तरीक़े (कुलीन व्यक्तियों-जैसे ढंग) से राजी करना चाहिए और जिस तरह आपसे पहले बादशाह अपने जाँ निसारोंके साथ पेश आते थे, उसी तरह अक़्दे-शरई (मुस्लिम मज़हबके अनुसार विवाह) करके खिदमते-मुबारकमें सरफ़राज़ी बख़्शी (अपनी सेवामें रहनेका सम्मान प्रदान) किया जाये। यह सूरत उसके वालिदैन (क़मर तलअ़त बेगमके माता-पिता) की इज़्ज़तकी मूजिब होगी और शादीमें कर्च उनकी तरफ़से उज्रकी गुंजाइश भी न रहेगी।" बादशाहने वज़ीरकी शर्त मंजूर करते हुए शादी की स्वीकृति दे दी।

बादशाहसे स्वीकृति मिलनेपर वज़ीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़मने अपने बहनोईसे कहा—"किसीने आपकी बेटीका ज़िक्र हज़रत तक पहुँचाया है, वे इससे शादीके ख़्वाहाँ (अभिलाषी) हैं। अगर मंज़ूर हो तो इस कोर-ख़ैरमें कोई मुज़ायक़ा (शुभ काममें कोई बाधा) नहीं।" उन्होंने जवाब दिया—"मैं ग़रीब आदमी हूँ, अहले दुनिया यही कहेंगे कि यह काम लालचसे किया गया है। अलावा इसके बादशाहके सैकड़ों महल (बीवियाँ) हैं। तीन रोज़ रग़बत (प्रेम) करके ख़वासपुर (शाही महलकी दासियों-रखैलों) में दाख़िल कर देंगे। मेरी तमाम उम्र रुसवाई होती रहेगी और लड़की अलग कहेगी कि अब्बाजानने जान-बूझकर मुझे डुबो दिया। तीसरे यह कि मैं मुफ़लिस और वो बादशाह। छोटे घर बड़े समधियानेवाली मिसल हो जायेगी। भला उनके मुक़ाबिलेमें मुझसे क्या हो सकेगा ? अगर सब कुछ बेच-बाचकर कुछ इन्तज़ाम कर भी लूँ तो यही हुक्म होगा कि कोई वकील निकाहके लिए चला जाये।[1] इस सूरतमें तमाम उम्र बदनामी रहेगी कि बाक़र अलीने अपनी बेटी बग़ैर निकाह किये दे दी और मेरी बेटीकी फिर कभी इज़्ज़त और क़द्र नहीं होगी।"

रौशनुद्दौलाने बाक़र अलीको किसी तरह राज़ी कर लिया तो फिर बादशाहके हुज़ूरमें अर्ज़ किया—"लड़कीका बाप तो राज़ी है, मगर वे इस मेहरबानीके उम्मीदवार हैं कि हज़रत सरपर सेहरा बाँधकर (दूल्हा बनकर) नवाबों, रईसों और आला अफ़सरोंके साथ (बारात लेकर) उनके मकानपर तशरीफ़ ले जायें। मुझे यह रिश्ता मंज़ूर करानेमें काफ़ी दिक़्क़त तो महसूस हुई, मगर मैंने भी वोह चाल चली कि मिर्ज़ा मात खा गये। मैंने उनसे कहा—क्या मुज़ाइक़ा हज़रत ! वे बहुत ख़ुशी-ख़ुशी तशरीफ़ लायेंगे, मगर उनकी शानके मुआफ़िक़ जहेज़ भी होना चाहिए। वे समझ गये कि जहेज़में कम-से-कम दस-बारह लाख ख़र्च होंगे, आख़िर मजबूर होकर ख़ामोश हो गये। उनके बाक़ी सवालात मैंने क़ुबूल कर लिये और जहेज़का बार अपने सर ले लिया। अब उस लड़कीको अपने मकानपर माँझे बिठाऊँगा और शादीकी सब रस्में भी ख़ुद अदा कराऊँगा। हज़रत कोई तारीख़े-सईद देकर और सेहरा बाँधकर—रेज़ीडेण्ट और तमाम अमीरों-रिश्तेदारोंको साथ लेकर नौबत और नक़्क़ारे (गाजे-बाजे) के साथ तशरीफ़ लायें, यह मकान भी हुज़ूरका ही मकान है।"

बादशाहने स्वीकृति देनेके बाद दुलहनके वास्ते ज़ेवरात—पोशाक वग़ैरह सब तैयार कराये। 'दरबारे-अवध'के लेखकने माँझे[1] के जुलूसका चित्र इस प्रकार चित्रित किया है—

"दो घड़ी दिन रहे दरे-दौलत (आसफ़ुद्दौलाके महल) से—रौशनुद्दौलाकी कोठी तक लाखों आदमियोंका मजमा था। मकानों-

१. जैसे राजा लोग साधारण परिवारकी कन्यासे विवाह करने स्वयं न जाकर अपनी तलवार और कमरबन्द भेजकर दुलहन बना लेते थे। इसी तरह मुसलिम शासक वकील भेजकर निकाह कर लेते थे या महलोंमें बुलाकर बेगमका ख़िताब दे देते थे।

१. दूल्हाके वे कपड़े जो दुलहनवालोंके यहाँसे शादीसे दो-चार रोज़ पहले दूल्हाके यहाँ भेजे जाते हैं। उसे माँझेकी रस्म कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की छतें और कमरे मरदों और औरतोंसे भरे हुए थे। बादशाही महलपर भी रियासतके कर्मचारियोंका बहुत बड़ा मजमा ज़र्क़-बर्क़ लिबास पहने हुए इन्तज़ाममें व्यस्त था। जनानी ड्योढ़ीपर हज़ारों पालकियोंसे सवारियाँ उतर रही थीं। कहारियाँ और ख्वाजा-सरा (ज़नखे) दौड़-दौड़कर सवारियोंको उतार रहे थे। क़रीब शाम माँझेके आनेकी इत्तिला हुई। बादशाहने दरे-दौलतसे—बरामद होकर फाटकके बालाई कमरेमें माँझेके जुलूस देखनेके लिए—क़याम किया। बालाई खाना बहुत ऊँचा था और वहाँसे दूर-दूरकी चीज़ें नज़र आती थीं। बादशाहके बैठनेके थोड़ी देर बाद निशानका हाथी नज़र आया। इस हाथीपर महावतके इलावा एक और शख्स बैठा था। उसके हाथमें निशान था। उसका पटका निहायत बेशक़ीमत कारचोबी और जड़ाऊ कामका था, और अलम (झण्डे) की जगह एक आफ़ताबनुमा गेंद सोनेका लगा हुआ था।[1] इस हाथीके बाद दो-ढाई सौ हाथियोंकी क़तार थी। जिनमें-से पहले चन्द हाथियोंपर माही मरातिब था,[2] जो शहन्शाहे-दिल्लीने नवाब अवधको बतौर इज़्ज़तके बख्शा था। बाक़ी हाथियोंपर लोग सवार थे। हर हाथीपर गंगा-जमनी हौदे कसे हुए थे। इन हाथियोंके बाद कन्धारियोंका रिसाला, उसके पीछे दो देशी रिसाले थे। रिसालोंके बाद अख्तरी-नादिरी पलटनें थीं। उनके पीछे तिलंगों (गोरों) की पलटनें थीं। हर पलटनके साथ उनका जंगी बाजा बजता जाता था। पलटनोंके पीछे बहुतसे तख्त थे। जिनपर शहरकी मशहूर तवाइफ़ें नाच-गा रही थीं। उनके बाद अनेक तरहके सजे हुए हज़ारों तख्त थे। उनके बाद बहुतसी क़िस्मोंके बाजे थे। जिनके शोरसे कान पड़ी आवाज़ न सुनाई देती थी। जब यह हुल्लड़ भी खत्म हुआ तो तमाम शहरके स्वांगियोंके तख्त गुज़रने शुरू हुए। किसी तख्तपर लैला-मजनूँ, किसीपर शीरीं-फ़रहाद और किसीपर वामिक-उज़राका स्वांग था। किसीपर बेमिस्र की लाश और किसीपर थालीमें रखा हुआ सर, बातें करता जा रहा था। बहुतसे स्वांगिये तमाम जिस्मपर सफ़ेदा मले मूढ़ोंपर बैठे हुए तलवारें निगलते थे। कोई मुँहसे इतना बड़ा गोला उगलता जो मुँह अच्छी तरह खोलनेपर भी दाँतोंमें अटकता था। कोई दाँतसे पकड़कर देग़ उठाता था, जिसमें एक आदमी खड़ा होता था। कोई समूची बोतलें चबाता चला जाता था। अलग़रज़ इन तख्तोंके साथ तमाशाइयोंका बहुत बड़ा हुजूम था। इन तख्तोंके बाद एक सुनहरी चौकीपर जिसपर निहायत आला क़िस्मकी सुर्ख मख़मल मढ़ी हुई थी और निहायत बेशक़ीमत काम बना हुआ था—एक सोनेका लोटा और कटोरा रखा हुआ था और वह तारोंसे चौकीके साथ बँधे हुए थे। चौकीके चारों तरफ़ सैकड़ों चोबदार सुनहरे-रूपहले आसा बल्लम लिये हुए बानातकी बर्दियाँ पहने हु

१. शायद आफ़ताबकी वजहसे लेखकने गेंदको पुल्लिंग लिखा होगा।

२. मछली आदिके आकारके वे निशानात जो बादशाहोंकी सवारीके आगे हाथियोंपर रखे होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल रहे थे। चोबदारोंके पीछे पाँच हज़ार थाल जिनमें मेवे-मिठाइयाँ और फल वग़ैरह थे—मज़दूरोंके सरोंपर थे। उनके बाद दुलहनवालोंकी तरफ़की औरतोंकी हज़ारों पालकियाँ थीं—जिनके साथ बाँकी महरियाँ रेशमी लँहगे, तेल-पानीसे दुरुस्त पालकीका एक-एक कोना पकड़े हुए साथ-साथ दौड़ी चली जाती थीं।

बादशाहने रस्मो-रिवाज़के ख़िलाफ़ शादी-में बहुत जल्दी की। माँझा आनेके एक दिन बाद ही इधरसे सचक[1] गयी। फिर उसके दूसरे दिन उधरसे मेहदी आयी, जिसके दूसरे दिन बादशाह ब्याहने गये। बादशाहका दिली जोश तो इन झगड़ोंमें पड़नेकी बिलकुल इजाजत न देता था। (वह तो जल्दसे जल्द दुलहनको अपने पहलूमें देखना चाहता था) लेकिन उनके वज़ीरे-आज़म दुलहनके सगे मामू थे। इसलिए वे चाहते थे कि किसी बातमें हेठी न होने पाये।"

इस शादीपर जो व्यय हुआ उसके सम्बन्धमें दरबारे-अवधके लेखकने लिखा है—"अवधके रंगीले बादशाहकी शादीने लखनऊ-में एक अजीब धूम-धाम पैदा कर दी। नवाब सआदत अली खाँने जिस इन्तज़ामसे खज़ाना भरा था। उनके जाँ नशीनोंने वैसे ही फ़िज़ूल और बेहूदा कामोंमें उसे उड़ाना शुरू करा दिया। इस शाही शादीमें फ़िज़ूल-खर्चीका कोई काम बाक़ी नहीं रहा। यह बात मशहूर थी कि मौजूदा शाहे-अवधकी शादी जिस शानो-शौकत अज़ीमुश्शान ढंगसे हुई है। किसी अगले बादशाहको ऐसी शादी नसीब न हुई।"

१३ रजब १२५० हि० सन्के अनुसार २४वीं अप्रैल १८३५ ई० को शाहे-अवधका ब्याह हुआ। बारातमें—बादशाहके कुटुम्बियों, रिश्तेदारों, इष्ट-मित्रोंके अतिरिक्त राज्यके आला अफ़सरों, नवाबों, अमीरों, उच्चवर्गीय अँगरेज़ स्त्री-पुरुषोंका बहुत बड़ा समूह था। अवधके रेज़ीडेण्ट जनरल लू साहबने बहुत चाव और हर्षपूर्वक बादशाहके सरपर सोने और फूलोंके सेहरे बाँधे। बादशाहने अपने दस्ते-मुबारकसे सोनेकी वरक़ लगी हुई गिलौरी तश्तरीमें रखकर उन्हें इनायत फ़रमायी। इस बारातका साज़ो-सामान और जुलूस माँझेके जुलूससे भी बाज़ी ले गया था।

अक़्दे-निकाहके बाद बादशाह सेहरा बाँधे हुए महलसरामें दाखिल हुए। दुलहनके पास बैठे। शादीकी रस्में पूरी करायी गयीं। इस शादीमें ऐसी रस्में भी अदा की गयीं जो बादशाहकी किसी भी शादीमें अदा न हुई थीं। प्रातःकाल दुलहनको बिदा कराके बादशाह अपने महलमें लाये तो स्वागतमें तोपोंकी सलामी दी गयी। दुलहनको 'बादशाह जहाँ मुमताजुल्दहर' खिताब और कई लाख रुपयेके ज़ेवर दिये गये। दुलहन अपने साथ चौदह लाख रुपयेका जहेज़ लायी थी। इस जहेज़ और शादीका बार दुलहनके मामा रौशनुद्दौला-वज़ीरे-आज़म अवधने उठाया था।

चौथे चालेकी रस्मके बाद बादशाहने हुक्म

१. ब्याहसे एक दिन पहलेकी रस्म, जिसमें वर-पक्षकी तरफ़से वरीका सामान, मेहदी सुहाग-पुड़ा, तेल-इत्र, मेवा, मिसरी आदि कुछ आदमियोंके साथ दुलहनके घर जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया कि हमारी तमाम बेगमात नयी दुलहनको नज़र गुज़ारें। क्योंकि हमारी जो पहले शादी हुई थी, वह वालिदैनकी मर्ज़ीसे हुई थी और यह शादी हमने खुद अपनी पसन्दसे की है।"[1] इस रिश्तेके फलस्वरूप नव-वधूके पिता बाक़र अलीकी बहुत उन्नति हुई। इस बेगमके महल-की ड्योढ़ीके समस्त प्रबन्ध उन्हें हस्तगत हो गये। उनके बेटे अलीमुहम्मद खाँने जो वज़ीरे-आज़मका भानजा और दामाद भी था—सिराजुद्दौलाका खिताब और मुहम्मदी इलाक़े-की सूबेदारी पायी। दोनों बाप-बेटोंके सरकार-से काफ़ी अच्छे वेतन नियत कर दिये गये। शुरू-शुरूमें इस नवीन बेगमको बादशाह इतना अधिक प्यार करते थे कि कोठी फ़रह बख़्शसे दौलत खानए-आसफ़ी तक आठ घोड़ोंकी गाड़ी-पर बादशाहके हमपहलू सवार होती थीं; परन्तु थोड़े ही दिन पश्चात्—चार दिनोंकी चाँदनी फिर वही अँधेरी रातके अनुसार—बादशाहका दिल उनसे खट्टा हो गया।

दिल खट्टा हो जानेका कारण यह था कि बादशाह केवल रूपसुधासे ही तृप्त होने-वाला भँवरा न था। वह निर्लज्जता, चंचलता एवं हाव-भावका भूका था; परन्तु ये करिश्मे सद्गृहस्थकी बहू-बेटियाँ कहाँ सीखें? और सीखें भी तो उन्हें आयें क्यों कर?

---

१. पहली बेगमातके सौतिया डाहमें वृद्धि करने-के साथ-साथ नवीन छोकरीके समक्ष उनसे नज़रें दिलवाना और अपने जन्नत नशीन माता-पिताकी कृपाओंको इस प्रकार उपालम्भ देना—यह भी एक बादशाही शान है—

जो बात की ख़ुदा की क़सम लाजवाब की

एक रोज़ रातको बादशाह पलँगपर [illegible] हुआ नवीन बेगमकी प्रतीक्षा कर रहा [illegible] वह नयी नवेली शर्मो-हयाकी पुतली [illegible] बुलाये बादशाहके पर्यंक तक कैसे पहुँचे? वह लाजवश सकुची बैठी हुई थी कि [illegible] बादशाहके पलँग तक ले जाये तो जाने दुलहनकी इस शर्मो-हयाका आनन्द उठाने एवज़ विलासी बादशाह क्रुद्ध होकर [illegible] महरीसे बोला—"मैं बहुत अर्सेसे बैठकर [illegible] ज़ार कर रहा हूँ, और यह अपनी [illegible] हिलती नहीं।" धनियाने अर्ज़ किया—"[illegible] नयी-नवेली हैं, इसलिए शर्म करती [illegible] इस जवाबसे और अधिक क्रुद्ध होकर [illegible] बेगमसे मिली हुई है, इसलिए बातें बना [illegible] है," कहता हुआ बादशाह उठ खड़ा हुआ। धनिया समझी कि इस वक़्त बादशाह बेगम [illegible] बुरी तरह ख़बर लेंगे। इसलिए उसने दौड़कर बादशाहकी कमर पकड़ ली। जब बादशाह [illegible] ख़ूब ज़ोर किया तो धनिया ज़मीनपर [illegible] पड़ी। बादशाहने उसके सीनेपर चढ़कर [illegible] इतना मारा कि वह चिल्लाकर बोली-"बेगम साहब शर्मो-हयाको इस वक़्त ताक़ [illegible] रखिए और यहाँ आकर मेरी जान बचाइए।" चिल्लाहट सुनकर बेगमने दौड़कर बादशाह [illegible] हाथ पकड़ा और उसे अन्दर कमरेमें ले गयीं। धनियाकी किसी तरह जान बची।

नयी बेगमकी अम्माजान भी [illegible] सरायें-सुलतानीमें अपनी बेटीके साथ ही [illegible] थी। इसका स्वभाव अपने भाई रौशनुद्दौ [illegible] क़तई विपरीत था। हालाँ कि दोनों [illegible] बहन एक ही माँ-बापसे पैदा हुए थे, [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनोंके स्वभावोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर था। भाई आवश्यकतासे अधिक शाह ख़र्च और बहन कंजूसोंकी चौधराइन। पैसे-पैसेपर वह जान देती थी। सुहागरातके समय बादशाहने महलोंके नौकर-चाकरोंको इनाम बाँटनेके लिए दो हज़ार रुपये दिये थे, वे उसने किसीको न देकर अपने पास रख लिये। भोजनालयमें जो रोटियाँ बच जाती थीं, उन्हें धूपमें सुखाकर जमा करती जाती थी। एक रोज़ बादशाहने मिठाई खानेकी अभिलाषा व्यक्त की तो उसने दो रुपयेकी मिठाई बाज़ारसे मँगवाकर बादशाहके सामने रख दी। जिसको बादशाहने हाथ भी न लगाया।

इस तरहकी हरकतें बादशाहको बहुत नागवार मालूम होती थीं। वह इन बातोंको शाही शानके खिलाफ़ समझता था। आख़िर एक नया गुल खिला। जिसके कारण नयी बेगम मुमताजुल्दहर बादशाहकी नज़रोंसे हमेशाको गिर गयी। विवाहोत्सवके अवसरपर बादशाहने कई लाख रुपये और ४५ बदरियाँ (सोने-चाँदीके नक़्क़ाशीवाले जश्तके थाल) नयी बेगमको उपहारस्वरूप यह कहते हुए भेंट किये थे कि—"तुम बादशाहकी बेगम हुई हो, अपने अज़ीज़ों और रिश्तेदारोंको तक़सीम कर दो, ताकि वे लोग भी याद करें कि उनकी किसी अज़ीज़की शादी बादशाहके साथ हुई थी।[1]" उक्त ४५ थाल—दुशालों, रूमालों, जामावारों, और गरमियोंकी पोशाकोंसे परिपूर्ण थे।

नयी दुलहन रंगरेलियोंमें मस्त थी। उसकी अम्मीजान ही महलकी पूरी देख-रेख रखती थी। उसीकी हुकूमत थी। बेगम भी अपनी अक़्लके बदले अम्मीजानकी अक़्लपर निर्भर रहती थी। अम्मीजानने उक्त रुपयों और सामानसे भरे थाल वितरण करनेके एवज़ अपने ही पास रख लिये। प्रातःकाल जगनेपर बादशाहने विवरण जानना चाहा तो अम्मीजानने जवाब दिया—"आख़िर इस फ़िज़ूलख़र्चीसे क्या फ़ायदा? हम तुम्हारा घर बनाने आये हैं या लुटानेको?"

जवाब सुनते ही बादशाहकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और बाहर चलनेको उद्यत हुए, बेगमने दामन पकड़कर रोका तो फ़र्माया—"तू कँगली है, तू क्या किसीको देगी?"

उसी वक़्त बादशाह महलके बाहर चला आया और दीवाने-आमके प्रबन्धक राजा ग़ालिब जंगसे फ़र्माया—"राजा! हमने इस नये महलको कंगालमहल खिताब दिया।" राजाने चोबदारको बा-आवाज़ बुलन्द हुक्म दिया—जाओ कँगले महलसे हज़रतका ताज ले आओ।" उसी वक़्तसे नयी बेगम कँगले महलके खिताबसे मशहूर हो गयी और चार दिनकी चाँदनी उनकी भी ख़त्म हो गयी। इस दुखिया बेगमकी १८७७ ई० में मृत्यु हुई और वह करबलाये मुअल्लामें दफ़्न कर दी गयी।

---

१. उस ज़मानेमें रिवाज़ था कि जिस महलमें बादशाहका ताज रखा हुआ होता था, वह कुल महलोंका सरताज समझा जाता था। अतः जिस दिनसे मुमताजुल्दहर ब्याह कर आयी थीं, उसी दिनसे शाही ताज उन्हींके महलमें रख दिया गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

की

मई १९६६ को प्रकाशित हो रहा है

गौरवपूर्ण परम्परामें नयी कड़ी

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करा लें

केरल विशेषांक

उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु : भावात्मक एकताका प्रती

केरलकी समसामयिक काव्यधारा, कथा-साहित्य, नाट्य-विधा, लोक-संस्कृति, शिल्प और कला, केरलीय समाज-परम्परा और प्रचलन; केरलकी सन्तधारा; केरलीय संस्कृ साहित्यकारोंकी देन; केरलमें इस्लाम तथा यहूदी धर्म; केरलीय दर्शन, ज्योतिष, तन्त्र मन्त्र तथा मलयालम भाषा और लिपिके परिचयके साथ मलयालम कविताओं, कहा नियों तथा अन्य विधाओंसे सुसज्जित।

इस **केरल विशेषांक** के कुछ प्रमुख लेखक

सर्वश्री ए० चन्द्रहासन, पी० नारायण, अब्राहम जेकब एस० वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर, विश्वनाथ अय्यर, किलिमानूर एन० विश्वम्भरन्, टी० भास्करन्, ए० श्रीध मेनन, के० नारायणन्, एम० चन्द्रशेखरन नायर, वी० ए० केशवन नंपूतिरि, अम्म रामन नंपूतिरि, एन० पुरुषोत्तम मलस्य्या, रवि वर्मा, रामचन्द्र देव, जी० शंक कुरुप, पी० कुंजुरामन नायर, वेलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, अक्कित्तम् अच्युतन नंपूतिरि तकाषी शिवशंकर पिल्ला और श्रीमती बालामणि अम्मा तथा सुगत कुमारी।

केरलीय साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शनका यह सन्दर्भ-ग्रन्थ अवश्य पठनीय और संग्रहणीय है

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक १०.००; इस विशेषांकका २.५०

३१ मार्च १९६६ के पूर्वके वार्षिक ग्राहकोंको इस विशेषांकका पृथक् मूल्य न देना होगा।

पा० बा० नं० ६० इलाहाबाद | सम्पादकीय | **माध्यम** सम्पर्क-सूत्र | व्यवस्थापकीय | हिन्दी साहित्य स लन, इलाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो हज़ार चार सौ वर्ष पूर्व यूनानी दार्शनिक अरस्तूने यह सिद्धान्त निर्धारित किया था कि वस्तुकी समान गतिको बनाये रखनेके लिए उसकी गतिदिशामें निरन्तर और समान बलप्रयोग आवश्यक है।

इस सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए प्रत्यक्ष प्रमाणोंकी कमी न थी। घोड़ोंके बिना रथ नहीं चल सकता था, रथके बम टूट जायें और घोड़े छूटकर निकल जायें तो रथ रुक जाता था। इससे सिद्ध हुआ कि गति केवल निरन्तर बलप्रयोगका ही परिणाम है।

फिर यह देखा गया कि दो की अपेक्षा चार घोड़े रथको ज़्यादा तेज़ीसे ले जाते थे। अतः सिद्ध हुआ कि गतिको बढ़ानेके लिए ज़्यादा मात्रामें बलप्रयोगकी आवश्यकता है, और निरन्तर बढ़ाते रहनेके लिए निरन्तर बढ़ते हुए बल-प्रयोगकी। ये सब प्रत्यक्ष अनुभवकी बातें थीं, इसलिए इनकी सचाईमें सन्देहकी गुंजाइश ही न थी।

वि। ज्ञा। न

जिसे हम सिद्धान्त कहते हैं!

कुमार काश्यप

लेकिन सन्देह करना ही विज्ञानका धर्म है। और सन्देह करनेवालोंमें सबसे प्रतिभाशाली था मध्ययुगीन युरॅपका विचारक व वैज्ञानिक गैलिलियो गैलीली। कोरे शब्दोंमें उसकी आस्था न थी, उसका विश्वास था केवल प्रयोगमें। अतः उसने शीघ्र ही इस आश्चर्यजनक तथ्यका प्रयोगात्मक प्रमाण उपस्थित कर दिया कि आकाशसे सीधी पृथ्वी-की ओर गिरनेवाली वस्तुकी गति निरन्तर बढ़ती जाती है, जिसका मतलब यह हुआ कि एक स्थायी बल—वस्तुका भार—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर बढ़ती हुई गति उत्पन्न करता है। इससे दो हज़ार वर्ष पुराना अरस्तूका यह सिद्धान्त कि निरन्तर बढ़ती हुई गतिके लिए निरन्तर बढ़ता हुआ बलप्रयोग अपेक्षित है डावाँडोल हो गया!

लेकिन गैलिलियो सिर्फ़ इसीपर सन्तुष्ट होनेवाला व्यक्ति नहीं था। उसने थोड़ा और आगे बढ़कर एक ऐसा निष्कर्ष निकाला, जो उस कालमें वस्तुतः क्रान्तिकारी था! गैलिलियोने प्रत्यक्ष प्रयोगों-द्वारा सिद्ध किया कि यदि हवा आदिका प्रतिरोध निकाल दिया जाये (अर्थात् शून्यमें) तो सभी वस्तुएँ, चाहे वे किसी भी भारकी हों, समान ऊँचाईसे गिरते समय समान ही दरसे बढ़ती हुई गतिसे गिरेंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि विभिन्न बल अर्थात् वस्तुओंके विभिन्न भार समान गतिवृद्धि उत्पन्न करते हैं। इससे अरस्तूके 'सिद्धान्त'की रही-सही साख भी समाप्त हो गयी।

गैलिलियोकी खोजके सम्बन्धमें दो बातें याद रखनेकी हैं: एक यह कि उसे वस्तुओंके भारके रहस्य, अर्थात् गुरुत्वाकर्षणके नियमका ज्ञान न था, और दूसरे, वह 'बल'की सही परिभाषासे अपरिचित था। वह नहीं जानता था कि पृथ्वी असमान भारवाली विभिन्न वस्तुओंके गिरनेकी गतिदरको समान रूपसे क्यों बढ़ाती है।

लेकिन गिरती हुई वस्तुओंका अध्ययन करते हुए उसने स्वभावतः ऐसी वस्तुओंका भी अध्ययन किया, जो पृथ्वीतलके समानान्तर चल रही हैं। और इस क्षेत्रमें उसने किसी प्रत्यक्ष प्रयोगसे नहीं, बल्कि केवल अपनी प्रतिभा बलपर यह असाधारण निष्कर्ष निकाला यदि वस्तुके गतिमार्गसे हर प्रकारका प्रतिरोध दूर कर दिया जाये, तो वह एक निश्चित दिशामें एक बार गतिमान होनेके बाद उसी दिशामें उसी गतिसे निरन्तर चलती रहेगी।

इस प्रस्थापनासे गति-सम्बन्धी प्राचीन सिद्धान्त बिलकुल ही उलट गया। कहाँ यह विश्वास था कि समान गतिको बनाये रखनेके लिए एक निरन्तर और समान बल-प्रयोग आवश्यक है, और कहाँ अब यह सिद्धान्त निर्धारित हुआ कि वस्तुकी समान गति तभी बनी रह सकती है, जब उसपर किसी भी प्रकारका बलप्रयोग न हो।

गैलिलियोके बाद न्यूटन आया। उसकी प्रणाली गैलिलियोसे केवल इन अर्थोंमें भिन्न थी कि जहाँ गैलिलियो सिर्फ़ प्रक्रियाओंके यथार्थ स्वरूपका वर्णन करके ही सन्तुष्ट हो गया, वहाँ न्यूटनने एक ही तरहकी कई प्रक्रियाओंका अध्ययन कर कुछ ऐसे सामान्य नियम या सूत्र निकाले, जो उन सभी प्रक्रियाओंपर समान रूपसे लागू होते थे। इन नियमों या सूत्रोंके रहस्यकी खोज न्यूटनने नहीं की। ऐसी खोजकी कोई आवश्यकता हो सकती है, यह बात तक उसके दिमाग़में नहीं आयी,—न उस कालके किसी वैज्ञानिकके दिमाग़में आ सकती थी!

न्यूटनकी खोज-प्रणालीके परिचायक एक उत्तम उदाहरण है उसका गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त। वह हमें एक सूत्र दे गया, जिसके आधारपर हम दो पदार्थ-पिण्डोंके बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षण-शक्तिका परिमाण निकालते हैं।

लेकिन गुरुत्वाकर्षणका यह नियम आखिर है क्यों? इसके विपरीत क्यों नहीं? इन प्रश्नोंका कोई उत्तर न्यूटनके पास नहीं था। कोई उत्तर हो सकता है अथवा ऐसे प्रश्न भी किये जा सकते हैं, उसे तो इस बात तकका आभास न था!

एक प्राकृतिक प्रक्रिया—भारयुक्त वस्तुओं-का पृथ्वीकी ओर गिरना—हज़ारों वर्षोंसे मनुष्यके देखनेमें आ रही थी। न्यूटनने सिर्फ़ इतना किया कि उस प्रत्यक्ष तथ्यको एक अन्य अप्रत्यक्ष तथ्य (गुरुत्वाकर्षण) का परिणाम बताया, और उस आधारपर गतिसम्बन्धी कुछ ऐसे नियम ढूँढ़ निकाले, जो आज तक हमारे काम आ रहे हैं। इन नियमोंकी सहायतासे हमने ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिविधियोंकी व्याख्या की, नये ग्रहोंका पता लगाया, और आधुनिक युगकी सारी इंजीनियरिंग व मशीन-निर्माणकी कलाका सूत्रपात किया।

लेकिन क्या न्यूटनके सिद्धान्त वस्तुतः इतने ही स्वयंसिद्ध थे कि उनसे आगे कुछ कहने-सुननेकी गुंजाइश ही न रही थी? अपने नियमोंमें उसने कितनी ही ऐसी कल्पनाओंका प्रयोग किया, जिनकी कोई स्पष्ट परिभाषा उसके पास नहीं थी। उदाहरणके लिए 'बल'-को ले लीजिए। वह बलकी जो परिभाषा देता है, वह कोई परिभाषा नहीं, केवल गति-सम्बन्धी उसके पहले नियमका रूपान्तर है।

न्यूटनके तीन प्रसिद्ध गति-नियमोंमें-से पहला है: "हर पदार्थपिण्ड अपनी स्थिरता अथवा सरल रेखागत गतिमानतामें स्थायित्व रखता है, जबतक कि उस स्थितिको बल-द्वारा बदला न जाये।" और 'बल' की परिभाषा वह यों देता है: "बल वह क्रिया है, जो किसी पदार्थपिण्डपर उसकी स्थिरता अथवा सरल रेखागत गतिमानताकी स्थितिको बद-लनेके लिए की जाये।"

सवाल यह है कि 'क्रिया' कैसे की गयी? ज़ाहिर है, बलसे। और बल क्या है? ज़ाहिर है, वह क्रिया, जो पदार्थपिण्डपर की गयी। तो मतलब यह हुआ कि बल क्रिया है और क्रिया बल! लेकिन इस तरह तो कुछ भी पल्ले न पड़ा!

अतः इससे पहले कि हम न्यूटनके सिद्धान्तोंको समझें, हमें यह मालूम होना चाहिए कि स्वयं गति किस प्रक्रियाका नाम है? वस्तुके स्थिति-परिवर्तनका क्या मतलब है? पदार्थमात्रा किस चीज़को कहते हैं? दूरीका क्या अर्थ है? और सबसे बड़ी बात यह कि गति और गतिवृद्धि जिस माध्यममें घटित होती है, वह वास्तवमें है क्या?

इन प्रश्नोंपर वर्तमान शतीकी महान् विभूति आइंस्टाइनने ध्यान केन्द्रित किया और सापेक्षवादके अपने विशिष्ट सिद्धान्तके अन्तर्गत उन्होंने निम्न बातें सिद्ध कीं:

न्यूटनकी निरपेक्ष गतिका कोई अस्तित्व नहीं है। स्थिरता और गतिमानताकी स्थितियों-में मूलतः कुछ भी अन्तर नहीं है। न्यूटनके निरपेक्ष देश (दूरी) और निरपेक्ष काल (समयावधि) का भी कोई अस्तित्व नहीं है 'इस जगह' का कोई अर्थ नहीं, हम एक साथ कई तरहकी जगहोंमें हो सकते हैं, न 'इस क्षण'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कोई अर्थ है, यह क्षण अलग-अलग जगहोंमें अलग-अलग हो सकता है। पदार्थमात्रा अपरिवर्तनीय नहीं है, 'बल' कोई चीज़ नहीं है। पदार्थ और शक्ति एक ही चीज हैं, आदि-आदि।

ये सारी बातें आजकी साधारण बुद्धिके लिए उसी तरह अकल्पनीय व अविश्वसनीय हैं, जिस तरहकी सोलहवीं शतीके अन्तमें गैलिलियो व बुनो आदिकी यह स्थापना कि पृथ्वी गतिशील है और सूर्य स्थिर है। (अवश्य अब हम जानते हैं कि वे और उनके उत्पीड़क, दोनों पक्ष समानरूपसे सत्यपर थे !)

लेकिन यहाँ देखनेकी बात सिर्फ़ यह है कि न्यूटनके जो नियम हर प्रकारकी सामान्य गतिशीलता व यन्त्रविज्ञानके क्षेत्रमें अटल सत्य सिद्ध होते आये हैं, वे प्रकाश व अन्य विकिरण (रेडिएशन) के गतिक्षेत्रमें अपर्याप्त व निष्फल पाये गये। प्रकाशकी गतिशीलतापर न्यूटनका गति-सम्बन्धी एक भी नियम कारगर न हुआ।

विकिरण प्रक्रियाओंके अध्ययनमें न्यूटनके सिद्धान्तोंके साथ प्रायः वही कुछ घटा, जो पृथ्वीकी सतहपर यूक्लिडकी ज्योमेट्रीके साथ घटा था। सब जानते हैं कि साधारण ज्योमेट्रीके सभी सिद्धान्त (थ्योरेम) छोटी जगहोंपर तो बिलकुल ठीक बैठते हैं, लेकिन जब काफ़ी बड़ी जगह, जैसे भूमध्य रेखासे ध्रुव तककी जगह, ले ली जाये, तो उनमें-से एक भी सही सिद्ध नहीं होता। यही बात गणितमे घटित हुई। निश्चित संख्याओंकी सीमाओंके भीतर तो गणितके सारे नियम बिलकुल खरे उतरते हैं, लेकिन जैसे ही हम इन सीमाओंको पार कर अनन्त संख्याओंके क्षेत्रमें, [illegible] रखते हैं, हमारे परम्परागत गणितके [illegible] सिद्धान्त सिरपर पाँव रखकर भाग खड़े होते हैं।

अब सवाल यह है कि क्या आइंस्टाइन जो कुछ बता गये हैं, वही अन्तिम सत्य है? क्या आइंस्टाइनके सिद्धान्त ही अन्तिम सिद्धान्त हैं ? यदि हम कहें कि हाँ, ऐसा ही है, तो हमारे पास ऐसा मान लेनेका क्या आधार है ? हम तो यह देख रहे हैं कि उनके निधनसे पहले ही, और बादके इन दश वर्षोंमें विशेष कर, उनकी आधारभूत मान्यताओंको चुनौती दी जाने लगी है।

आइंस्टाइन ब्रह्माण्डको चार आयामोंमें स्थित एक 'संयुक्त निरन्तरता'की संज्ञा दे गये हैं। उनके अनुसार यह एक निश्चित आयतन (वोल्यूम) बाली सान्त (स-अन्त) पर सीमा-विहीन इकाई है—अर्थात् तीन आयामोंमें कोई ऐसी जगह, जैसी कि दो आयामोंमें गोलेकी बाहरी सतह होती है। गोलेकी बाहरी सतह का एक निश्चित क्षेत्रफल होता है, पर उसपर कहीं भी कोई सीमा नहीं होती। इसी तरह ब्रह्माण्डका एक निश्चित आयतन तो है, पर कहीं कोई सीमा नहीं है।

लेकिन इन कई वर्षोंमें (आइंस्टाइनके जीते जी ही) जो नये अनुसन्धान हुए, उनसे ब्रह्माण्डका स्वरूप किसी दृष्टिसे भी एक निश्चित आयतनवाली इकाई-जैसा सिद्ध न हुआ, बल्कि वह एक ऐसे बुलबुलेकी तरह प्रतीत हुआ, जिसका आयतन निरन्तर वृद्धि पा रहा है, अथवा ज़्यादा ठीक तौरपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना चाहिए कि करोड़ों-वर्ष पूर्व निरन्तर वृद्धि पा रहा था !

ठीक इस समय (यदि सापेक्षवादके बावजूद 'इस समय' का कोई अस्तित्व है !) क्या प्रक्रिया घट रही है, कहना कठिन है, क्योंकि 'इस समय' की प्रक्रियाका ज्ञान तो हमें करोड़ों वर्ष बाद ही जाकर हो सकता है !

शायद ठीक इस समय ब्रह्माण्ड अपने अन्तिम छोर' तक पहुँचनेके बाद फिरसे संकुचित हो रहा है। अथवा प्रसारण व संकोचनकी ये दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ ही घट रही हैं। या फिर प्रसारण व संकोचनके बीच मूलत: कुछ भी अन्तर नहीं है। शायद अन्तत: कुछ भी नहीं घट रहा है, ब्रह्माण्ड बस 'है !'

इन विविध धारणाओंमें कोई अन्तर्निहित विरोधाभास नहीं है। एक साधारण गोलेकी बाहरी सतहपर भी हम प्राय: इसी तरहकी प्रक्रियाओंको एक साथ घटित होते देख सकते हैं, यद्यपि हमारे पास ऐसा माननेका कोई आधार नहीं कि ब्रह्माण्डका स्वरूप गोलेकी बाहरी सतहके साथ कुछ सादृश्य रखता है।

गोलेकी बाहरी सतहपर दो बिन्दुओंके बीच जो अधिकतम दूरी सम्भव हो सकती है, उसे यदि वास्तविक अधिकतम तक पहुँचा दिया जाये, तो वह न्यूनतममें शून्य हो जाती है, अर्थात् दोनों बिन्दु एक-दूसरेपर आ जाते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्माण्डमें भी, इसका स्वरूप चाहे कुछ हो, यह अनिवार्य-सा प्रतीत होता है कि इसमें दो स्थानोंके बीच अधिकतम सम्भव दूरी अन्तत: शून्यमें परिवर्तित हो जाये—इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। दूसरे शब्दोंमें अनन्त और शून्य एक ही स्थितिके दो पक्ष हैं, इनमें मूलत: कुछ भी अन्तर नहीं है।

ब्रह्माण्डमें जो कुछ होता है, वह शायद सिर्फ़ इसलिए कि जहाँतक हमारा सम्बन्ध है, इसका स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि ये सब हो ! इसके सिवा कोई चारा नहीं है, कोई विकल्प नहीं है ! अत: यहाँ किसी बलप्रयोग, किसी रहस्यमयी आकर्षण-शक्ति या किसी पूर्वनिर्धारित विशिष्ट लक्ष्य आदिके अनुगमनका सवाल ही पैदा नहीं होता।

प्रकृतिमें हम जितने भी नियम या सिद्धान्त देखते हैं, वे सब इसलिए हैं कि हम हर प्रक्रियाको एक विशिष्ट कालानुक्रमसे देखनेके अभ्यस्त हो चुके हैं। यदि हम किसी पूरी प्रक्रियाको एक साथ देख सकें तो हमें उसमें कुछ भी नियम नज़र नहीं आयेगा, क्योंकि तब हमें शायद कोई प्रक्रिया हो नज़र नहीं आयेगी ! वास्तवमें हमने अपनी सीमाओं और अभ्यस्तताओंका नाम ही नियम और सिद्धान्त रख छोड़ा है, अन्यथा प्रकृतिमें कोई मूलभूत नियम नहीं, कोई नियम हो नहीं सकता !

तो फिर सिद्धान्त नामके किसी 'अन्तिम कारण' की यह अन्तविहीन खोज क्यों ? यह तो अँधेरे कमरेमें उस काली बिल्लीकी तलाशके समान है जो वहाँ है नहीं !

■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

उन गोलियों को बेसन, नमक' लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म बनस्पति में तल दें ।

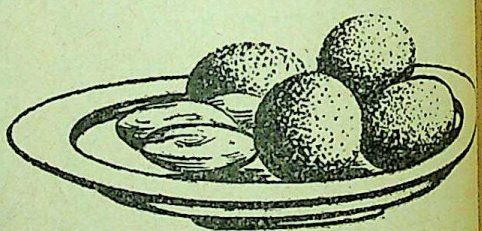

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किए

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । यो । क । ला

शिल्पकलाका आधुनिकीकरण

मूल : जोशे द' क्रीफ़्ट

अनु० : कुँवरजी अग्रवाल

आप जितनी भी चीज़ोंके बारेमें बहस करते हैं उनमें-से प्रत्येकको एक सिर और एक पूँछ होती है। कुछ लोग सिर पकड़ते हैं और कुछ पूँछ। अधिकांश लोग शरीरको तो भूल ही जाते हैं। कलाके बारेमें बातें करते समय भी यही घटना घटती है। कलाकी व्याख्या नहीं की जा सकती। कैसे की जा सकती है जब कि यह मनुष्योंमें अव्याख्येय भावनाएँ जगाती है। आप अपने विचारोंके बारेमें बहस कर सकते हैं, अपने तरीक़ोंके बारेमें बहस कर सकते हैं, अपनी पहुँचके बारेमें बहस कर सकते हैं लेकिन जिस कलाकी आप सृष्टि करते हैं उसे तो बस देखा जा सकता है। कला अपने लिए स्वयं बोलती है।

शिल्प मेरे लिए क्या है ?

यह मेरी प्रीति, मेरे दर्शन, और मेरे विचारोंकी सामग्रीमें अभिव्यक्ति है। मैं प्लास्टिक रूपोंका उपयोग उसी प्रकार करता हूँ जिस प्रकार लेखक शब्दोंका करता है। छेनी और हथौड़ेसे निर्मित रूपमें मेरी भावनाएँ मुक्ति पाती हैं। मैं किसी कलाकृतिके निर्माणकी भावना लेकर कार्यारम्भ नहीं करता, हालाँकि मुझे आन्तरिक आशा और पूरा विश्वास रहता है कि इसे कलात्मक मूल्य प्राप्त होगा। मैं सामग्रीपर इसलिए कार्य करता हूँ कि उसका सर्वोत्तम प्राप्त कर सकूँ।

शिल्पी बननेके लिए आदमीमें सामग्री और शारीरिक श्रमके प्रति प्रेम होना चाहिए। आप सामग्रीके साथ जितना अधिक काम करते हैं आपकी मित्रता उसके साथ उतनी ही बढ़ती है। यदि आप पत्थरोंको पसन्द करते हैं और उन्हें गढ़ते हैं तो किसी भी पत्थरमें आपको रूपोंकी असीम सम्भावनाएँ नज़र आयेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पीके लिए पत्थर मोहक होते हैं। पत्थर जितने अधिक ऊबड़-खाबड़ और टेढ़े-मेढ़े होते हैं उनकी मोहकता उतनी ही अधिक होती है। किसी पत्थरके गोदाममें पड़ा हुआ आयताकार पत्थरका टुकड़ा आपसे कुछ नहीं कहेगा। हाँ यदि आपके मनमें कोई स्थिर, पूर्व-निश्चित, विचार है जिसे व्यक्त करनेके लिए किसी खास क़िस्मके संगमर्मर या ग्रेनाइटकी ज़रूरत हो तो बात दूसरी है। लेकिन मेरे साथ यह बात बहुत कम होती है। मैं जिस धारणाको लेकर काम शुरू करता हूँ वह कभी कठोर या अनमनीय नहीं होती। मैं पत्थरके किसी टुकड़ेको देखता हूँ और मेरे मनमें उसे गढ़नेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है, जैसे-जैसे मैं काम करता जाता हूँ वैसे-वैसे मेरे विचारों-का विकास होता जाता है; और जबतक सामग्री है तबतक परिवर्तन करनेकी गुंजाइश भी है। मैं न तो पत्थरका ग़ुलाम हूँ और न मैक्विटीका उपयोग करता हूँ।

मैक्विटी किसी प्रतिमाको अभिप्रेत बड़े आकारमें अन्तिम रूपसे तैयार करनेके पूर्व वस्तु अथवा व्यक्तिका लघु प्रतिमाके रूपमें अध्ययन है। इसका प्रयोग असन्दिग्ध रूपसे उतना ही प्राचीन है जितनी स्वयं शिल्पकला। फिर भी सम्भवतः संसारकी अधिकांश निम्न-कोटिकी शिल्प-कृतियोंके लिए यही उत्तरदायी है। यदि आप प्रत्येक शब्द या तूलिका स्पर्श-को उसके लघु आकारसे बड़े आकारमें दुहराते चलें तो निश्चय ही कहीं-न-कहीं आवश्यक संवेगोंको आप खो बैठेंगे। इस प्रकार आप अन्तिम कला-कृतिपर एक ऐसा बाह्य आकार लाद देते हैं जिसका जन्म उसके स्वाभाविक गुणोंसे नहीं हुआ है लेकिन यदि आप मैक्विटी-का प्रयोग केवल सामान्य आधारके रूपमें करें और अपने वास्तविक निर्माणमें पूरी स्वतन्त्रता-से काम लें तो बात दूसरी है। अन्यथा आप कारीगर मात्र बनकर रह जायेंगे जिसका काम दिन-भर परिश्रम करना है। इस प्रकारके कामका कैसा परिणाम हो सकता है इसकी हम आसानीसे कल्पना कर सकते हैं।

सामग्रीके सीधे उपयोगके प्रति दिनों-दिन रुचि बढ़ती जा रही है। इस सिद्धान्तका समर्थन और प्रयोगमें पिछले पचास वर्षोंसे, जबसे मैंने गढ़नेका काम शुरू किया, करता आ रहा हूँ। जब मैंने अपना काम आरम्भ किया था तब लोगोंमें ऐसी प्रवृत्ति नहींके बराबर थी। उन दिनों हर चीज़का मॉडल मिट्टी या प्लास्टिसिनसे बनाया जाता था और फिर कारीगरों-द्वारा चलाये जानेवाले व्यापारिक स्टूडियोमें पत्थर या काँसेमें ढाल दिया जाता था। मैंने स्वयं कुछ वर्ष मैसन ग्रेवर नामक पेरिस स्थित एक ऐसे ही स्टूडियोमें गुज़ारे हैं। वहाँ मैं केवल प्रक्रिया सीखनेके उद्देश्यसे गया था। किन्तु सीधे गढ़नेमें मेरी रुचि जो मेरा विश्वास इससे भी पुराना है। जब मैं सोलह वर्षका था तो मैड्रिडके निकट एक्कीस लोगोंके एक जत्थेने अपना तम्बू गाड़ा। उनकी प्रदर्शनीमें मैंने गढ़नेवालोंका एक समूह देखा जो हाथीदाँतकी मूर्तियाँ और अलंकरण बना रहे थे। उस समय मुझे भी गढ़नेका थोड़ा-सा अनुभव था क्योंकि तेरह वर्षकी अवस्थामें मैं अपना कुछ समय स्पेनके चर्चके लिए धार्मि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमाएँ बनानेवाले एक मूर्तिकारके शागिर्दके रूपमें गुज़ारा था। यह अनुभव मेरे लिए असन्तोषजनक था क्योंकि इन प्रतिमाओंमें कल्पनाका उपयोग बहुत कम होता था और ज़्यादातर ये सत्रहवीं शताब्दीकी प्रतिकृतियाँ हुआ करती थीं। किन्तु इन एस्कीमो लोगोंने अपनी सादगी और सीधी अभिव्यक्तिसे मुझे बहुत प्रभावित किया। हाथीदाँतके छोटे-छोटे तुच्छ टुकड़ोंसे ये स्मरणीय महान् शिल्प-कृतियोंका निर्माण करते थे। यद्यपि ये शिल्प-कृतियाँ काफ़ी छोटी होती थीं फिर भी इनमें शक्ति, बल, और शान्ति होती थी। उस समयसे हमेशाके लिए मेरी रुचि ऐसी शिल्प-कृतियोंमें हो गयी जिनका निर्माण इसी प्रकार सीधे ढंगसे होता था।

बादमें, उन्नीस वर्षकी अवस्थामें जब मैं अपनी कला सीखने पेरिस गया तो मैंने देखा कि वहाँ हरेक आदमी मिट्टी या प्लास्टिसिनमें काम कर रहा है। मुझे तो ये पदार्थ हमेशासे मूलतः मृत प्रतीत होते रहे हैं। मिट्टीकी अपनी कोई इच्छा नहीं, कोई अवरोध नहीं। यह एक ऐसे आदमीकी तरह है जो हमेशा हाँ हाँ कहता है। इसमें पराजित करनेको कुछ भी नहीं रहता। मिट्टी कोमल होती है और आपकी इच्छानुसार बहुत जल्दी मुड़ जाती है। मिट्टीका काम करते समय आप इतनी शीघ्रता-से सृजन करते हैं कि अपने विचारको पूर्णता प्रदान करनेके पूर्व ही आपको अपना संवेग समाप्त कर देना पड़ता है। मिट्टीमें पत्थर धातु या लकड़ीकी भाँति आन्तरिक साहस नहीं है। मॉडलकृत रूपमें यदि कोई सजीव चीज़ है तो वह उसका आर्मेचर है जिसे आप तैयार करते हैं। विद्यालयोंमें मॉडल बनानेके अभ्यास-से एक लाभ यह होता है कि इससे विद्या-थियोंमें प्रकृतिके रूपोंके प्रति अधिक सजगता-का विकास होता है। लेकिन इस बातको हमेशा याद रखना चाहिए कि मॉडल बनाने-की प्रक्रिया गढ़नेकी प्रक्रियासे बिलकुल उलटी है।

व्युत्पत्तिशास्त्रके दृष्टिकोणसे स्कल्पचरका अर्थ है—मनुष्यके हाथों-द्वारा गढ़ी गयी कोई चीज़। आज इस शब्दका प्रयोग ढीले-ढाले रूपसे तमाम चीज़ोंके लिए किया जाता है जो स्थानगत रूपोंमें कलाकारकी अभिव्यक्तिका प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसी बहुत-सी चीज़ों-के लिए 'शिल्पकृति' शब्दका प्रयोग किया जाता है जिन्हें मैं इस नामके उपयुक्त नहीं समझता। लेकिन ऐसी दूसरी चीज़ें हैं जिन्हें हमें इस शब्दकी सीमामें स्वीकार करना पड़ेगा।

किसी भी स्थितिमें प्रश्न यह है कि इसे कौन कर रहा है? यदि आप संगीतज्ञ नहीं हैं फिर भी कैसी रोल्स तथा लकड़ीकी खपा-चियोंसे संगीत उत्पन्न करनेकी कोशिश करते हैं तो आप केवल शोर-गुलकी अर्थहीन ध्वनियाँ ही उत्पन्न कर पायेंगे। वास्तविक संगीतज्ञ इन्हीं उपकरणोंसे आनन्ददायक ध्वनियाँ उत्पन्न कर सकता है। एक पुरानी कहावत है कि सच्चा शिल्पी केवल छेनी और हथौड़ी मात्रसे उत्कृष्ट कलाकृतियोंका निर्माण कर सकता है। आधुनिक शिल्पीके सामने सैकड़ों प्रकारकी सामग्रियाँ हैं और इन्हें सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झने तथा इनसे प्रेम करनेवाले आदमीके लिए इनमें-से प्रत्येक अपनी खास विशिष्टता और सौन्दर्यसे युक्त हैं। वास्तवमें महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि सामग्री क्या है; महत्त्वपूर्ण आपकी अभिव्यंजना है। किन्तु शिल्पकारिताके दृष्टि-कोणसे किसी सामग्रीके प्रति घनिष्ठ परिचय और प्रेमके बिना कला-सर्जन सम्भव नहीं।

आजके शिल्पीके लिए जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और कठिन निर्णय करना है वह यह कि अपने व्यक्तित्व और विचारोंके अनु-रूप ढल सकनेवाली सामग्रीका चुनाव वह कैसे करे। वह एक सामग्रीका प्रयोग कर सकता है या कईको एकमें मिला सकता है। वह सोलोकी सर्जना कर सकता है अथवा सिम्फ़नीकी। सभी द्वार उन्मुक्त हैं—यह व्यक्तिके ऊपर निर्भर है।

यद्यपि मैंने अपनी अधिकांश कृतियोंका निर्माण पत्थर या लकड़ीको प्रत्यक्ष रूपसे गढ़-कर किया है फिर भी मैंने प्रायः अन्य सभी उपलब्ध सामग्रियोंका उपयोग और उनके साथ प्रयोग भी किया है विशेष रूपसे पीटे गये शीशे, ताँबे और टिन और धातुकी बनी हुई सामग्रियोंका। उदाहरणार्थ सन् १९२५ में स्टोवकी पाइपों, तेलके डब्बों, सायकिलकी ट्यूबों, इनसुलेशन किये गये तारके टुकड़ों तथा और भी अनेक तरहकी अजीबो-ग़रीब चीज़ोंका उपयोग मैंने अपनी पिकाडोर नामक कला-कृतिके निर्माणमें किया था। इस कृतिका निर्माण साँड़ोंके अखाड़ेके उन जेण्डर्मियोंके अभिमानको व्यक्त करनेके लिए किया गया था जो अर्धमृत बलिदानी घोड़ोंपर शानसे दौड़ते थे। सवार अपने हाथमें परदेके छड़का भाला लिये था और सींगोंसे फटे हुए घोड़े पेटमें-से ट्यूब और तार निकल पड़े थे। इस पिकाडोरको जब पेरिसमें प्रदर्शित किया गया तब इसपर काफ़ी आलोचनाएँ हुईं। अधिकांश आलोचनाका विषय इसकी रचनाओंमें प्रयुक्त सामग्रीकी वैधता थी। किन्तु पिकाडोरकी रचना तो अपनी सामग्रीसे अभिन्न थी। इस सामग्रीके अभावमें तो इस कृतिका निर्माण ही सम्भव न था। अपने उत्साहमें मैंने इस प्रकारकी और भी कई कृतियोंका निर्माण किया जिनमें मातृत्व और आस्ट्रिय नामक कृतियाँ भी हैं। यह एक प्रकारकी आतिशबाज़ीका प्रदर्शन था जिसके-द्वारा अर्थोंकी अभिव्यक्ति की गयी थी।

मैंने इस दिशामें अपना प्रयास जारी रखा होता यदि माजोर्का द्वीपकी एक गढ़ीके लिए दो सौ कलाकृतियोंके गढ़नेका आमन्त्रण मैंने स्वीकार न कर लिया होता। वहाँ देशी पत्थरोंको सीधे गढ़ते हुए इस काममें अठारह महीने मैंने गुज़ारे उनमें मेरी यह धारणा और भी पक्की हुई कि सामग्रीका सीधे काम करना ही वास्तविक सर्जनात्मक कला है और पत्थर तथा लकड़ी ही ऐसी सामग्री है जो मुझे स्थायित्व और स्मारकता की वे सम्भावनाएँ प्रदान कर सकती हैं जिन्हें मैं हमेशा खोजता रहा हूँ। मैं प्रयोग करता हूँ लेकिन हमेशा लौटकर इन्हीं दो सामग्रियों के पास आना पड़ता है जो बिना मैक्विटी सीधे गढ़नकी अपेक्षा रखती हैं—सम्भवतः अपनी प्राकृतिकता, सादगी और उस आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

... तेरे रूप अनेक :

नारी–१
जोशे द' क्रीफ्ट

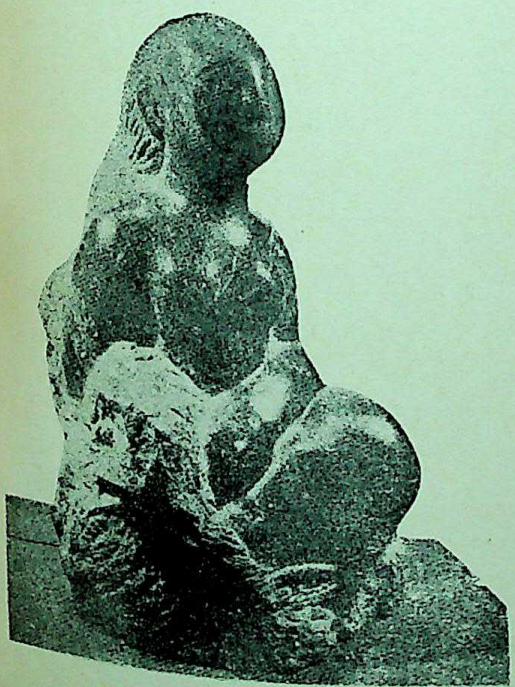

नारी–२
जोशे द' क्रीफ्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी--३
हेनरी मूर

नारी–४
जेकस लिपशिज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिक शक्तिके कारण जिसकी मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूँ।

मेरा यह इरादा क़तई नहीं है कि मैं शिल्पीकी सामग्रियोंको सीमित कर दूँ, लेकिन फिर भी मैं एक बात बतला देना चाहता हूँ कि मेरी निगाहमें वह एक अजीब क़िस्मका कलाकार होगा जो अपने बारेमें, अपनी ज़िन्दगी, अपनी कलाके बारेमें इतने तुच्छ ख़याल रखे कि वह ऐसी सामग्रियोंको लेकर रचना करे जिनमें वास्तविक स्थायित्वकी ज़रा भी आशा नहीं। प्रयोग ठीक है—लेकिन इसका उद्देश्य भी तो कुछ ऐसी चीज़ पाना है जो पानेके योग्य हो, रखने लायक़ हो।

शिल्पकलाकी सर्जना, स्थायी सामग्रियोंमें करनेमें समय लगता है और सामग्रीके उपयुक्त दक्षता प्राप्त करनेके लिए वर्षोंके अनुभव और साधनाकी ज़रूरत पड़ती है। स्थायित्व तक पहुँचनेका कोई संक्षिप्त रास्ता नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे समन्वय एकताकी जगह कोई दूसरी चीज़ नहीं ले सकती। मात्रामें बहुत अधिक रचनेकी लालसा ख़तरनाक है क्योंकि इससे आप उस आनन्दसे वंचित हो जाते हैं जो अपने विचारों और सामग्रियोंके प्रति मैत्री रखनेसे आपको प्राप्त होता है। सामग्रियोंमें ऐसे गुण होते हैं जो बोलते हैं। आप उन्हें सुन सकते हैं यदि सुननेकी परवाह करें।

मुझे महसूस होता है कि पत्थरपर वायु-हथौड़ेके उपयोगसे मेरी विचारधारा बाधित होती है। एक बार जब मैं एक म्यूज़ियममें शिल्प-निर्माणका प्रदर्शन कर रहा था तो मुझपर आरोप किया गया कि मैं आदिम कालीन औज़ारोंका उपयोग करता हूँ। उस समय मैंने अपने आलोचकको समझाया कि मशीनका उपयोग करनेपर मशीनकी गति और उसका शोर मेरे और पत्थरके बीच दीवार बन जाता है। मैं अपने विचारोंको सुनना चाहता हूँ और यह भी सुनना चाहता हूँ कि पत्थर मुझसे क्या कहता है। इससे भी बढ़कर मैं पत्थरको चाहता हूँ नहीं तो मैं उसे गढ़ता ही क्यों? मशीनका आविष्कार समय और श्रमकी मितव्ययिताके लिए हुआ है। कलाकारको धीरे-धीरे ही चलने दें, वह समय और श्रम बिना परवाहके ख़र्च करे।

शिल्पकलाका सृजन त्रिआयामात्मक रूपमें स्थानमें होता है। मेरे विचारसे इस उद्देश्य तक पहुँचनेके लिए सबसे आधारभूत सिद्धान्त पिण्डाकार और सतह किनारों (कांट्यूर) का उपयोग करना है। मैं इस बातपर विश्वास नहीं कर सकता कि शिल्प कोई यान्त्रिक खिलौना है, इंजिनियरिंगका कोई कौशल है, अथवा किसी सामग्रीमें स्थानोंका एक क्रम है। यह वह रूप है जिसे स्वयं सामग्रीको ही आपने प्रदान किया है।

मेरे इस तर्क-क्रमको उलटनेकी कोशिश भी की जाती है। स्थानात्मक रूपोंको सामग्री-द्वारा व्यक्त करनेकी कोशिश की जाती है। मैं उन प्रयोगोंके विरुद्ध नहीं हूँ जो शिल्पकलाके क्षेत्रको विस्तृत कर सकते हैं। फिर भी मैं यह महसूस करता हूँ कि कलाको अपने रूपों-द्वारा हीं संवेगात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करना चाहिए। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि स्थान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भावना संवेगात्मक होनेके बजाय बौद्धिक अधिक है। रीता स्थान हमेशा वही रहता है किन्तु सामग्रियाँ, जिनका अस्तित्व किसी-न-किसी रूपमें ही रहता है, असीम रूपसे परिवर्तन शील हैं आकार और सतहकिनारेमें, कठोरता या कोमलतामें, प्रकाश ग्रहण करनेके तरीक़ोंमें, रंगोंमें, उन सारी चीज़ोंमें जो हमें संवेगात्मक और संवेदनात्मक रूपसे अपने प्रति सजग करती हैं। रीता स्थान ऊब पैदा करनेवाला होता है किन्तु जैसा कि मैं एक सच्ची शिल्पकृतिके सम्बन्धमें अनुभव करता हूँ, सामग्रीको दुलराया जा सकता है, उसे महसूस किया जा सकता है और उसे प्यार किया जा सकता है। स्थानको रूपायित करनेके प्रयत्नोंमें भी यह सामग्री ही है जो हमारा ध्यान अपनी ओर खींचती है और जिसे हम उसके अपने गुणोंके कारण पसन्द करते हैं।

क्या मुझे दोहरानेकी इजाज़त है कि शिल्पकृति वह रूप है जिसे आप सामग्रीको प्रदान करते हैं, वह एक ऐसी वस्तु है जिसे हर ओरसे प्रत्येक परिप्रेक्ष्यसे देखा, छुआ, और समझा जा सकता है। अपने समन्वित रूपमें शिल्पकृतिका आधार ऐसा होना चाहिए कि उससे कुण्डलाकार गति पैदा हो सके, कि सतह-घुमावोंके द्वारा ऐसा सातत्य व्यंजित हो जो निरन्तर अन्तर्धान और व्यक्त होता रहे, जिससे दर्शक यह अनुभव कर सके कि शिल्पकृति पूर्णरूपसे स्थानमें अवस्थित है। जब यह सतह-घुमाव सफल होता है (सम्भवतः इसका अस्तित्व केवल आकारके सन्दर्भमें ही रह सकता है) तभी दर्शक चाहे जिस कोणसे देखे यह अनुभव कर सकेगा कि इस कृतिका अस्तित्व गोलाईमें है, स्थानके सभी ओर है। आकारोंके रूपमें पिण्डोंकी अर्थवत्ता, स्थान उनकी सजीवता तथा एकत्वकी भावना व्यक्ति करनेके तरीक़ोंपर निर्भर है।

सीधे गढ़नेका अर्थ है कि सामग्रीमें छिपे हुए जिन रूपोंको कलाकारने देखा है उन्हें मुक्ति प्रदान कर सृजन करे। बल्कि यह कहना ज़्यादा अच्छा होगा कि जिन रूपोंकी सृष्टि उसने अपने मनमें की है उन्हें सामग्रीमें प्रक्षेपित करे। दोनों ही स्थितियोंमें गढ़नेका अर्थ है—उस अतिरिक्त सामग्रीको हटाना जो रूपोंको आच्छादित किये है।

जब मैं गढ़ता हूँ तब हमेशा एक प्रकारका पारस्परिक सम्बन्ध होता है। मेरे और सामग्रीके मध्य एक तरल और लयपूर्ण आदान-प्रदान होता है। यह आदान-प्रदान रुकता नहीं बल्कि जब रुकता है तब कृति पूर्ण हो जाती है अथवा कमसे कम उतनी दूर तक पहुँच जाती है जितनी दूर तक मैं उसे एक बारमें पहुँचा सकता हूँ। माइकेलेंजेलोने एक बार कहा था, शिल्पकृति कभी पूर्ण नहीं होती ; आप तब रुक जाते हैं जब छेनी हथौड़ी मेज़पर रख देते हैं। इन्हें आप तब तक नहीं रखते जबतक वे संवेग चिह्न कारण आपने आरम्भ किया था, चुक न जाते। संवेग चुक जानेपर भी अगर आप काम आप जारी रखते हैं तो आपकी कृति बारीकियोंके अतिरेकमें डूब जायेगी।

जैसा मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं किस तरह अपनी शिल्पकृतिको रूपायित करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है बिलकुल व्यक्तिगत बात है—साधन और ढंग।

कलाके सभी पहलुओंमें यही बात है। सच्चा कलाकार कोई विशेषज्ञ नहीं होता जो अभिव्यक्तिके एक ही ढंगसे बँधा रहे। वह कभी कलाको त्यागता नहीं, उसका सम्पूर्ण जीवन उससे ओतप्रोत रहता है। मुहब्बतकी ही तरह यह भी एक आवेग है जो उसपर अधिकार जमा लेता है चूँकि उसकी कला एकमात्र उसीपर निर्भर होती है वह अहम्वादी हो उठता है और क्योंकि वह सर्जक होनेका प्रयत्न करता है जो अपने-आपमें मानवताकी आकांक्षाओंका प्रतीक है, उसे अपने आपको स्वीकार करना और कलामें अपनेको प्रतिष्ठित करना सीखना चाहिए। यह उसकी प्रौढ़ताका वास्तविक चिह्न है।

कोई भी कलाकार सिद्ध होकर पैदा नहीं होता। वह केवल कलाकारकी आत्मा लेकर पैदा होता है। उसका विकास पिरामिडकी भाँति होना चाहिए—विस्तृत आधारपर ठोस।

मैं अपने विद्यार्थियोंको सीधे गढ़नेको प्रोत्साहित करता रहता हूँ क्योंकि इससे उन्हें वह शक्ति प्राप्त होती है जो इसके लिए आवश्यक अनुशासनसे उत्पन्न होती है। क्योंकि इससे उन्हें चुनौतीका उत्तर देनेका सन्तोष प्राप्त होता है। चुनौती श्रीगणेशको ठोस बनाती है। पत्थरमें आदमी खुद ढूँढ़ता है।

मैं आजकलके उन शिल्पियोंके मनकी अशान्तिको पहचानता और समझता हूँ, जो मुझसे भिन्न मार्ग अपनाना चाहते हैं। मैं कलाके किसी आन्दोलन या प्रवृत्तिका विरोध नहीं करता। वृक्षकी सभी डालें और टहनियाँ तनेका ही विकास है। प्रायः कुछ काटछाँटकी ज़रूरत तो पड़ती है लेकिन समय पाकर कमज़ोर टहनियाँ स्वयं सूखकर गिर पड़ती हैं।

कमज़ोर टहनियोंमें-से एक है जिसे आदिम कला कहा जाता है। आज आदिम कला असम्भाव्य है। प्रत्येक व्यक्ति सभ्य नागरिक हो चुका है और सभ्यतामें इतना डूब चुका है कि इस कलाकी आधारभूत अचेतन प्रवृत्तियोंको पुनः नहीं पा सकता। नागरिक अजानपन और अभिरुचिहीनता तो अप्रौढ़ता ही है—मूर्खता। प्रत्येक व्यक्तिकी उसकी वास्तविक उम्रसे भिन्न कलाकी उम्र होती है जो उसकी कल्पनाके अनुसार रूपोंको सर्जित करनेकी समर्थता या असमर्थतापर निर्भर रहती है।

सामान्य जनता हमेशा ही उन रूपोंके बजाय, जिन्हें कला व्यक्त करना चाहती है, कारीगरीमें ज़्यादा दिलचस्पी लेती है। वृक्षकी एक और कमज़ोर डाल है वह शिल्पकृति जिसका निर्माण प्रभावोंके प्रति इस दिलचस्पीके निमित्त होता है—उलटफेरके लिए ही, सतही उलटफेर, जान-बूझकर उत्पन्न की गयी पूर्व-युगीनता और विनष्टता (पुरानी मूर्तियाँ बेचने-वालोंका धोखा) और सामग्रीका सामान्य दुरुपयोग। यह तो स्वभावतः ठीक है कि कलाकारको अपनी कारीगरी जाननी ही चाहिए।

दूसरी ओर एक नया अंगविज्ञान है जिसने उन मूल्योंकी तलाश की है जो स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपोंमें निहित हैं। एक अधिक व्यापक विचार यह है कि प्रकृतिकी अनुकृति करनेके बजाय यदि आप उसे संशोधित-समायोजित करते हैं तो प्रकृतिके अधिक निकट आ सकते हैं। सामग्रीके प्रत्यक्ष उपयोगके प्रति अधिक अभिरुचि हो रही है और नितान्त नवीन सामग्रियोंकी उपस्थिति अपने प्रयोगकी नवीन तकनीकोंकी माँग कर रही है और फिर भी ऐसा लगता है कि हम मानो स्पष्ट कोलाहलके युगमें रह रहे हैं। कलाओंमें इतनी भिन्नताएँ पहले कभी नहीं देखी गयीं। यह आधुनिक मनुष्यकी ही अस्थिरताकी ओर संकेत करती-सी प्रतीत होती है।

सम्भवतः वैज्ञानिक विकास-चक्रकी गति हमारे युगके मनुष्योंके मनसे स्थायित्वकी भावना ही निकाले दे रही है क्योंकि इस गतिशील युगमें मनुष्य स्वयं अपना सन्तुलन क़ायम रखनेका असफल संघर्ष कर रहा है। आजका आदमी भँवरमें पड़े हुए बोतलके कागकी तरह हो गया है। वह समझता है कि वह आगे बढ़ रहा है जब वस्तुस्थिति यह है कि वह विस्मृतिके चतुर्दिक् चक्कर काट रहा है। धारा जितनी तीव्र होती जाती है उतना ही वह केन्द्रके समीप पहुँचता जा रहा है। दिन-प्रतिदिन उसका विलयन समीपतर आता जा रहा है।

सदासे ही कलाकारका उद्देश्य जीवनके विषयमें अपने विश्वास और अपनी भावनाओंकी अभिव्यक्ति करना रहा है। वह मानवकी सृजनात्मक आकांक्षाओंकी अभिव्यक्ति कर मानव-जातिको ऊपर उठाता रहा है। वह अपने स्वप्नों और अपने निरीक्षणों, [illegible] की अभिव्यक्ति करता रहा है। मैं यह [illegible] कहता कि कलाकार आवश्यक रूपसे प्रकृति [illegible] सतही अनुकरण मात्र करे, हाँलाकि [illegible] प्रकृतिके रूपोंसे दूर जा ही नहीं सकता, क्योंकि यदि आप देखनेकी कोशिश करें [illegible] सब उनमें मिल जायेंगे। कलाकारके [illegible] मानव भी प्रकृतिका ही एक टुकड़ा है, [illegible] भले ही उसकी कलाकृति कितनी ही दुरूह [illegible] पृथक् क्यों न प्रतीत हो।

वर्षों पहले कलाके सम्बन्धमें मेरा [illegible] रूढ़िवादी दृष्टिकोण था, किन्तु समयके [illegible] साथ मेरे विचार भी बदलते गये। मैं [illegible] नतीजेपर पहुँचा हूँ कि आज कलाके नाम [illegible] जो कुछ किया जा रहा है वह सबका [illegible] भले ही प्रभावोत्पादक न हो, फिर भी [illegible] अच्छे भविष्यका संकेत देता है। मैं समझ [illegible] हूँ कि दीर्घकालसे जोती हुई किन्तु बिना [illegible] हुई ज़मीनपर यह भ्रूणीय आरम्भ है। [illegible] शिल्पकलाके भविष्यकी पूरी और [illegible] तसवीर तो नहीं खींच सकता, लेकिन मैं [illegible] देख रहा हूँ कि शिल्पकलाकी सीमाएँ [illegible] हो गयी हैं और इसमें नवीनताके कई [illegible] आ गये हैं। उनमें-से हम किसे स्वीकार [illegible] अस्वीकार करें यह हमारी समझ और [illegible] कारकी प्रौढ़ताके ऊपर निर्भर है।

स्वयं अपने काममें मैं पहलेसे कहीं अ[illegible] स्वतन्त्रताका अनुभव करता हूँ और दिन-[illegible] दिन यह स्वतन्त्रता बढ़ती जाती है। मैं [illegible] चाहता कि यह द्वार मेरे लिए भी बन्द [illegible]

[शेष पृष्ठ ६८ [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख मर जाती तो···?

ब्रजकिशोर 'नारायण'

यह कल्पना करते ही कि, अगर भूख मर जाती तो आदमी क्या करता, दिलोदिमाग़में एक अजीबोग़रीब गुदगुदी पैदा होने लगती है। औरोंकी तरह, मेरे मस्तिष्कमें भी यह समस्या-भरा सवाल सैकड़ों बार पैदा हुआ है।

इसी सवालको अगर आप डॉक्टरों, वैद्यों, और हकीमोंके आगे परोस दें तो वे नुस्खोंपर उतर आयेंगे और मिक्सचर, चूरन तथा गोलियोंके गले पड़ जायेंगे! और, इस प्रश्नकी पूँछमें मशाल भी बाँध देंगे। मगर, यह प्रश्न न तो एक रोगके लिए है और न एक रोगीके लिए!! यह सम्पूर्ण मानव-समाजको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला प्रश्न है, जिसका उत्तर देनेके लिए हर किसीको उद्विग्नता होगी। मुझे भी किसी ज़मानेमें इस उद्विग्नताने बेतरह सताया था और मैं घण्टों इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करता रह गया था।

भूख मर जानेकी कल्पना किसी एक खोपड़ीकी उपज नहीं है, इसीलिए इसका उत्तर किसी एक दिमाग़से आयेगा भी नहीं। अगर आये तो उसे एक मात्र, सर्वोपरि और अन्यतम भी नहीं मान लेना चाहिए!

हाँ, तो मेरे दिमाग़में जब यह कल्पना आयी और मुझे कल्पनाओंकी तरंगोंपर तरंगायित करने लगी तो मैं क्रमशः निरुत्तर ही होता चला गया! बहुत माथा-पच्ची करनेके बाद मैंने बेहतर यही समझा कि यह सवाल अपनेसे हटाकर पंचोंके सुपुर्द कर दिया जाये!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचोंमें सबसे तेज़ तर्रार पंच, जो भोजन-भट्टता-महाविद्यालयके प्राचार्य हैं, इस कल्पनाके आगे आते ही बोले, "बन्धु ! अगर मेरे शरीरसे भगवान्‌ने भूख छीन ली तो मैं उसी दिन इस नश्वर शरीरको छोड़कर और इस सारहीन सृष्टिको नमस्कार देकर सीधे स्वर्ग चल दूँगा। तुम लोगोंके लाख रोकनेपर भी तरस नहीं खाऊँगा और न अपनी यात्रा ही स्थगित करूँगा। भला बताइए, परमपिता परमात्माने, न जाने किस हिक़मतसे यह लाजवाब देह बनायी। उसमें ज़बरदस्त मुँहकी जगह खोली ! मुँहमें दाँत दिये ! जीभ रखी ! गला दिया ! उसके नीचे गणेशजीकी तरह कमालका पेट दिया। मैं पूछता हूँ, अगर भूख-जैसी स्वादलेवी चीज़को इस जिस्मसे हटा ही लेना था तो इत्ती सारी नियामतें बख्शी ही क्यों !! मैं कहता हूँ भाई मेरे ! यह ख़याल ही अहमकाना ख़याल है ! और, अगर इसमें कहीं राई-रत्ती-भरकी सम्भावना भी दिखाई पड़ी तो यह निश्चय जानिए कि यह बन्दा, इस दुनियाका सबसे पहला आदमी होगा कि जो यहाँके बोदे बन्दोंको, बन्दगी बोलकर जन्नतकी तरफ़, फ़ौरनसे पेश्तर रवाना हो जायेगा। और, हज़ार ख़ुशामदें पाकर भी, इस कनीज़ कूचेको अपनी फूटी आँखों भी न देखेगा।"

यह दोस्त कुम्भकर्ण और वाजिदअली शाहके सन्तुलित समन्वय हैं, यह जानकर मैंने उनकी बातोंमें बड़ा तथ्य पाया और उत्साहित होकर यही कल्पना वहीं बठे दूसरे पंचजीके दिमाग़में डाल दी। यह पेशेसे तो पत्रकार हैं मगर इस प्रश्नके सामने आते ही अकल्पित गोरखधन्धेमें पड़ गये। बहुत तक तो नहीं, मगर एक मिनिट तक तो बोलती बन्द हो गयी। कुछ प्रकृतिस्थ जानेके बाद वे बोले, "मित्रवर ! है तो बड़ा पेचीदा प्रश्न, मगर मैं एकदम अपनी कहता हूँ। मुझे आप जानते ही हैं। एक दर्जन भारतवासियोंका पूज्य पिता वेतन भी सुभानअल्लाह ही है। अगर घरसे यह डाइन भूख मार भगायी गयी मुझे तो इसी धरतीपर स्वर्ग मिल जायेगा मैं ललितजीकी तरह काल्पनिक स्वर्गकी जानेकी बात हरगिज़ नहीं सोचूँगा। हाँ, बातपर अलबत्ता, मुझे ज़रूर सोचना कि पेट भरनेके लिए जो समय मुझे पड़ता था, उस समयको मैं किस उपयोग लाऊँ ! मैं अब सोच रहा हूँ कि वह मैं ईश्वर-भजन और पूजा-पाठमें लगाकर मोक्षका मुँह खोल दूँ।"

पत्रकार मित्रकी बात सुनकर कुरसीपर इतमीनानसे टाँग फैलाये हुए बाबू ठठाकर हँस पड़े और बोले, "सतीरह गये आप पूरे हनुमान्‌चालीसा ही ! भले आदमी ! कल्पना भी की होती तो सनसनीखेज़ ! कोई मज़ेदार !! कुछ वाव !!! यह क्या सोचा कि तवेसे चूल्हेमें जा गिरे ! अगर आप मेरी राय चाहें तो मैं बताऊँ कि भूखकी भीषणके समाप्त होते ही मैं उसी रात एक महाविद्यालयकी स्थापना कर दूँगा। मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत-कला और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्य-कलाके अतिरिक्त काव्य-कलाकी शिक्षा-दीक्षा भी दी जायेगी। बारहों महीने, तीसों दिन, चौबीसों घण्टे, बस--कविता, कूची, छेनी, मृदंग और पायल ! साधना और सरसता ! अभिनय और आलाप ! शिव और पार्वती !! राधा और कृष्ण !!! यूँ समझिए कि जीवनका एक-एक कण रसके सागरमें आकण्ठ निमज्जित ! ज़माना भी याद रखेगा कि अगर यहाँसे डाइन भूख भागी तो कैसी-कैसी देवियाँ तशरीफ़ ले आयीं !''

बीरेन बाबूने अपना भावाकुल उद्‌गार खत्म ही किया था कि साथ सटे हुए रामदास भगतने जम्हाई ली और मुसकराते हुए फ़रमाया, "यह तो बहुत दूरकी कौड़ी ले आये आप बीरेन बाबू ! अरे महाराज ! इस कल्पनाको साकार करनेके बाद सबसे पहली समस्या तो यह आयेगी कि उन खेतोंमें क्या रोपा जाये जिनमें धान, गेहूँ, मकई, चना और रहर-मसूर रोपा जाता रहा है ! तरकारियाँ उगायी जाती रही हैं ! बीरेनबाबू ! आपको ही नहीं, इन सभी भाइयों और इनकी मार्फ़त, सारी दुनियाको यह जानकर बेहिसाब खुशी होगी कि मैं उन खेतोंमें अन्न-सब्ज़ीकी जगह गुलाब, जूही, बेली और चमेलीकी खेती करूँगा। यह देश बेहद बदबूदार बन गया है। इसे रातोंरात खुशबूके समुन्दरमें डुबोके रख दूँगा ! यह खबर पाकर एक बार पेरिसवाले भी कलेजापर मुक्का मारकर रह जायेंगे कि हमारा जन्म रामदास भगतके राम-राज्यमें क्यों नहीं हुआ।''

रामदास भगतकी इस बातपर पूरीकी पूरी मण्डली क़हक़हा लगाकर हँस पड़ी मगर रामदासजी ज़रा भी 'नर्वस' नहीं हुए और दुहरी जम्हाई लेकर दुबारा सो गये !

उन्हें सोनेका बहाना बनाते देखकर सामनेकी चौकीपर बैठे साइंसके प्राध्यापक प्रशान्तकुमारजीको तैश आ गया। वे तड़ाकसे उठ खड़े हुए और बोले, "रामदासजी ! सोनेकी नक़ल न कीजिए। सोना ही है तो यह जवाब सुनकर सोइए। आपकी गुलाबी कल्पना है तो बहुत लुत्फ़वाली, मगर यह किसी सनकी दिमाग़की ऊटपटाँग उपज मालूम पड़ती है ! आप ख़ुद सोचिए कि इस आइन्सटीनी युगमें ऐसी शेख़चिलिया कल्पना कभी कारगर हो सकती है ? अरे भगतजी महाराज ! उन खेतोंपर फूलोंके वज्रपातके बजाय, अगर आप वहाँ चाँद या अन्य ग्रहोंको उतारें तो एक बात भी हो ! यह क्या पागलपनकी कल्पना कि इत्रके लिए बेकारके फूल पैदा किये जायें और पूरे मुल्कको ऐय्याश बनाके रख दिया जाये ! रामदास भगतजी ! इस वैज्ञानिक युगमें मुग़लिया तख़्युलको तिलांजलि दीजिए और कुछ अक़्लकी बात सोचिए।''

प्रो० प्रशान्तकुमारका उत्तर रामदासजीने देना चाहा कि अगर इस छोटी-सी धरतीपर सारे ग्रह-उपग्रह उतार दिये जायें तो इसका क्या रूप होगा, मगर वे ऐसे लेटे रहे कि भोले शंकर भगवान् भी मात ! मगर, उनकी मुसकी-भरी मुद्रा यह ज़रूर कहती रही कि—'मियाँ साइंटिस्ट ! अभी नादान बच्चे हो ! जो बकना चाहो, बक लो ! आख़िर एक दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे रसायनोंपर मेरे रसोंकी ही जय होकर रहेगी।'

■

मूखके मरनेकी कल्पनामें सिर्फ़ पाँच पंचोंकी, पाँच तरहकी ही बातोंको लेकर मेरा माथा कुम्हारके चाककी तरह नाचने लगा। मैं बहुत घबराया और सोचने लगा कि अगर इन्हीं पाँचोंके विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करा दिया जाये तो इस धरतीका क्या रंग-रूप हो! और, अगर इसी तरह संसारके हर देशके कल्पनाशील व्यक्ति अलग-अलग ऐसी-ऐसी ही कल्पनाएँ करें और उन्हें लागू कर देनेका कोई उपाय ढूँढ़ निकालें तो यह सृष्टि किस जायेगी! इस विचारको आगे बढ़ाते-बढ़ाते मैं विचारशून्य और संज्ञाहीन होने लगा उसी वक़्त भूतभावन भगवान्से प्रार्थना कि—"हे दीनानाथ! इस मानव-समाज सभी कुछ छीन लेना तो छीन लेना, भूखको हरगिज़ न छीनना! वरना, आदमियोंकी दुनिया या तो शैतानका कारख़ाना बन जायेगी या एक खौफ़नाक पागलखाना!

■

[पृष्ठ ६४ का शेष : शिल्पकलाका आधुनिकीकरण]

कलाके लम्बे इतिहासमें मेरे लिए यह सबसे अधिक उत्तेजनापूर्ण युग है। सन् १९०० ई० से हम सभीने अभूतपूर्व परिवर्तनों और बोजारोपणोंका अनुभव किया है। शिल्पकला उन्नीसवीं शताब्दीकी ग़ुलामीसे मुक्त हो गयी है। पैण्टोग्राफ़, कम्पास, प्वाइंटिंग मशीन, और मॉडलोंकी रूखी अनुकृति, सबसे मुक्ति मिल गयी है। ज़ंजीरें तोड़ दी गयी हैं, परदे फाड़ दिये गये हैं। ठोस विचारोंपर आधारित नयी स्वतन्त्रताएँ पुनरुज्जीवित हो उठी हैं। वह कला जो एक दिन मरणोन्मुख थी आज ताज़ी हवामें साँसें ले रही है।

मेरा विश्वास है कि भविष्यमें शिल्पात्मक अभिव्यक्तिके मुख्य आधार प्रस्तर और धातु ही होंगे और इनका उपयोग प्रत्यक्ष रूपसे किया जायेगा। गढ़नेके लिए आवश्यक कलात्मक समन्वयके साथ उनका बढ़ता हुआ उपयोग स्थिरताकी वह भावना वापस लाने सहायता पहुँचा सकता है जिसकी कामना इतने दिनोंसे करते आ रहे हैं।

मैं आशा करता हूँ कि युवा शिल्पी सेतुओंकी रक्षा करेंगे जो उन्हें प्राचीन शिल्पियोंसे जोड़ती हैं, कि भविष्यमें जो मार्ग वे बनायेंगे वह अपने मूलोद्गमसे रहेगा। आदिम होनेके लिए नहीं, सच्चा होनेके लिए, और इन युगातीत सहारे आधुनिक और सार्वभौम विचार प्रेषित करनेके लिए।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरीश अस्थाना

आफ़िस टाइमकी हड़बड़ी। बसमें चढ़नेकी समस्या! कलकत्तेकी दमघोट गरमी। बाहरसे शरीर नहीं झुलसता, पर भीतर-ही-भीतर जैसे मद्धिम आँचमें हड्डियाँ सुलग रही हैं! दिल डूब रहा है। दस क़दम चलनेपर ही आदमी हाँफने लगता है। जैसे मानव-शरीर न हों गरम पानीसे भरे पीपे हों। पसीनेसे हालत खराब!

उन दिनों खिदिरपुरसे डलहौज़ीके रास्ते-पर प्राइवेट बसें चला करती थीं। ड्राइवर, कण्डक्टर अधिकतर सिख होते थे! चौड़ी धारीका पाजामा, मैली चोकट खाकी या सफ़ेद क़मीज़, बग़लमें झूलता चमड़ेका थैला: मिष्टभाषी बंगालियोंके बीच कण्डक्टरका कर्कश स्वर गूँजता रहता, "बाँधेगा",.... "खोलेगा"! बस न हुई भैंस हो गयी! "बाँधेगा", "खोलेगा"....ड्राइवरको आदेश

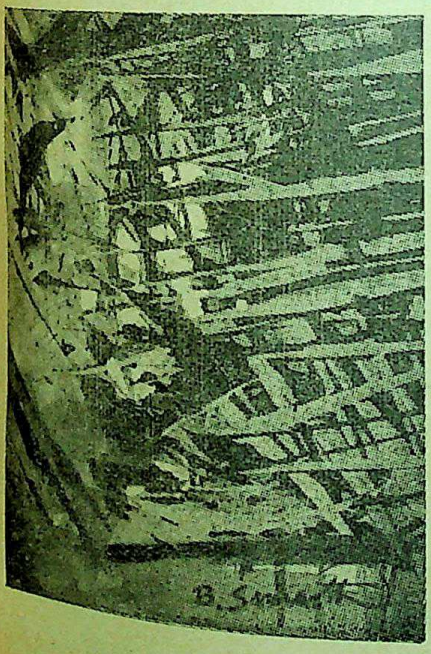

कि बस रोको या चलाओ! बीच-बीचमें कण्डक्टर ज़ोरसे चिल्ला पड़ता, "जानाना, जानाना....आस्ते!" —यानी ज़नानी सवारी उतरेगी या चढ़ेगी, बस धीमी करो!

पंजाबी कण्डक्टर और ड्राइवर, पहले-पहल उतर-चढ़ने, रोकने और चलानेके पर्याय-वाची यही दो-चार बँगला शब्द सीखते और उनका बिगड़ा हुआ हिन्दीकरण कर लेते, काम चल निकलता!

रमेश उसी बससे दफ़्तर जाता। बसके भीतर लगता मानो 'हॉट हाउस' में बैठे हैं! हर स्टॉपपर दो-तीन सवारियाँ उतरतीं तो दस-बारह कूदकर चढ़ ही जातीं। भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवारियोंपर दबाव और बढ़ जाता। भीड़ बस-में समाती ही जाती है। शरीरोंकी स्थूलता मानो तरलतामें परिवर्तित हो गयी है! यह तरल पदार्थ बसनुमा टैंकमें सहजतासे भरता जाता, राई-रत्ती जगह घेरकर। यात्रियोंकी संख्यापर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, हो नहीं सकता!

लोग सोचते-से, ऊँघते-से, बैठे हैं या खड़े हैं, ('लटके है' अधिक संगत शब्द है) सौ-में से नब्बे डलहौज़ी जायेंगे। सवारियाँ चढ़नेकी रेलमपेल चौरंगी रोडके शुरू होने तक जारी रहेगी! उसके बाद जब विशाल हरियाले मैदानमें बस फ़र्राटेके साथ दौड़ेगी और खिड़-कियोंसे ताज़ी हवाके झोंके आयेंगे तब कुछ राहत मिलेगी!

रोज़ साथ जानेवाली सवारियाँ, कुछ-एक अपवादोंको छोड़कर, एक-दूसरेको नहीं जानतीं, कुछ विशिष्ट चेहरे अलबत्ता पहचाने हुए हैं। इतना अन्दाज़ रहता है कि अमुक स्टॉपसे अमुक-अमुक आकृतियाँ चढ़ेंगी। जैसे उस नौ बजे खिदिरपुरसे छूटनेवाली बसमें दो दुबली-पतली साँवली लड़कियाँ चढ़ती थीं जिनकी जवानीको, लगता था, असमय घुन लग गया है। बेरौनक़, सूखे, पिचके-से चेहरे, पीली-पीली आँखें, जैसे पीलिया रोग होकर चुका हो, अनीमिया तो अवश्य दोनोंको था। दोनों बहनें भी हो सकती थीं, मगर सम्भावना कम थी। क्वाँरी होंगी, क्योंकि माँगें सिन्दूररहित थीं, ब्याही भी हो सकती थीं, अगर ईसाई हों। उनमें एक चश्मा लगाती थी। इतना तो निश्चित था कि दोनों किसी दफ़्तरमें नौकर थीं। और सर्विस करनेवाली लड़कियोंके विवाहका रास्ता आसान हो जाता है, विशेष-कर इस मँहगाईके ज़मानेमें। लेकिन दफ़्तरोंमें काम करनेवाली क्लर्क टाइप लड़कियाँ इतनी जल्दी ढल क्यों जाती हैं?—उस जोड़ीका नाम रमेशने अपनी सुविधाके लिए 'सड़ी-बुसी' रख लिया था।

मोमिनपुरके स्टॉपपर एक और आकृति-गामी महिला जोड़ी सवार होती थी। बंगाली हिन्दू, ब्याहता, शक्ल-सूरत मिलती-जुलती, दोनों गोरी, एक इकहरे बदनकी दूसरी कुछ भारी, लेकिन दोनोंकी नाक जैसे चढ़ी रहती, भौहें कुछ सिकुड़ी-सी रहतीं, जैसे सारी दुनिया-से नाराज़ हो। रमेशने उनका नाम रख लिया—'जली-भुनी'! कभी-कभी उनमेंसे एक ग़ायब हो जाती। रमेश सोचता, शरीर 'भालो' नहीं होगा। शरीर अच्छा न होनेके माने? बुख़ार भी हो सकता है, मासिक छुट्टी भी हो सकती है, या यूँ ही कामपर जानेका मूड न बना हो, लड़कियोंकी भली चलायी!

अजब संयोग है, वह सोचता, 'सड़ी-बुसी' और 'जली-भुनी' इसी बसमें सवार होनेको रह गयी हैं!—मगर आगे चलकर तबीयत भी ख़ुश होती। अलीपुरसे एक युवती चढ़ती। हलकी-सी पीत आभा लिये गोरा रंग, साँचे-ढला बदन, बड़ी-बड़ी काजल-काली हँसती-सी आँखें, हँसता मुख! साड़ी और ब्लाउज़ कलापूर्ण रुचिके परिचायक। उसके हाथमें दो-चार किताबें-कापियाँ रहतीं। यूनिवर्सिटीकी छात्रा होगी! कभी वह आधुनिक ढंगका जूड़ा बाँधे होती, कभी मोटी-सी काली वेणी कमर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूलती रहती !—जब वह बसमें घुसती तो विचारनिमग्न, ऊँघते-से लोगोंकी आँखें हठात् खुल जातीं। इसीलिए रमेशने इस लावण्यमयी प्रतिमाका नाम रखा—'आई ओपनर' ! 'सड़ी बुसी' ईर्ष्यासे उसे देखतीं। 'जली-भुनी' की भौंहें और सिकुड़ जातीं !

हाज़रा रोडके चौराहेपर तो (बक़ौल गोर्की) भीड़का 'हायड्रा हेडेड मॉन्स्टर' बस-पर धावा बोलनेको आतुर रहता ! बसके स्टॉप तक पहुँचनेके पहले ही इसके असंख्य सिरोंमें हरकत शुरू हो जाती ! घुसो, घुसो, जैसे भी हो ठेलते-ठालते भीतर घुस जाओ ! ऑफ़िस-टाइम !

हाज़रा मोड़पर दो व्यक्ति ऐसे सवार होते जिनपर रमेशकी दृष्टि फ़ोकस होती ! एक जर्जर शरीर, फटा काला कोट पहने और बदरंग नेकटाई बाँधे, झुकी कमरवाले वकील साहब और एक चिकने गालों और चमकीली आँखोंवाला, मुँहमें पान रचाये, सजग और चैतन्य, पतलून-क़मीज़धारी व्यक्ति जो कचहरीका कोई अलहमद लगता था, जिसे न गरमी-सर्दी व्यापती है, न मँहगाई !

वह बूढ़े वकील, लगता था, ज़रा-सा धक्का लगनेपर धराशायी हो जायेंगे ! प्रायः कोई-न-कोई उनपर दया करके बैठनेके लिए उन्हें अपनी सीट दे देता ! न जाने क्यों रमेशको लगता कि यह वकीलसाहब एक दिन चलती बसमें ही ठण्डे हो जायेंगे !

समय बदला। कलकत्तेकी मुख्य सड़कोंसे हटकर प्राइवेट बसें नगरके बाहरी भागोंमें चलने लगीं। धारीदार पाजामा पहने सिख कण्डक्टर और ड्राइवर भी गये। उनकी जगह मिष्टभाषी कण्डक्टर आ गये। जो शोर मचाने-के बजाय घण्टी बजाकर काम चलाते थे। खिदिरपुरसे डलहौज़ीवाले रास्तेपर भी सरकारी बसें दौड़ने लगीं, पहले एक तल्ला, फिर दो तल्ला—'डबल डैकर' ! एक तल्ला बसें लम्बूतरी-सी, सलेटी रंगकी, और दो तल्ला गहरे नीले रंगकी।

उन्हीं दिनों एक नये सज्जन नौ बजेवाली बसपर फ्रेज़रगंजसे चढ़ने लगे। पहले दिन वह रमेशकी बग़लवाली सीटपर ही बैठे थे ! आते ही अपने नामकी घोषणा उन्होंने स्वयं कर दी—"मैं गोविन्दोकुमार राखाल हूँ। सचिवालयमें गोबिन्दो बाबूके नामसे विख्यात हूँ, आप किसीसे भी पूछ लीजिए ! पेन्शन होनेमें एक वर्ष बाक़ी है, फिन् (फिर) एक्स्टेन्शनके लिए कोशिश करूँगा। आप नस्यका सेवन तो नहीं करते ?"—उन्होंने कुरतेकी जेबसे सुँघनीकी शीशी निकालते हुए पूछा।

"जी नहीं, मैं सुँघनी नहीं सूँघता।"

"आप तो 'अपकण्ट्री' के हैं महाशय ! यू० पी० या बिहारके लगते हैं ?"

"मैं यू० पी०का रहनेवाला हूँ।"

"तो मैंने ठीक अनुमान लगाया, कहिए लगाया न ठीक अनुमान ?"

"जी हाँ, बिलकुल ठीक।"

"आपने पहले मुझे इस बसमें नहीं देखा होगा। मैं ट्रामसे जाता था। 'मन्थली' था मेरे पास। मगर अब एक नया साहब आया है हमारा ! दस मिनिटसे ज़्यादा लेट पहुँचो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हाज़िरीमें लाल निशान ! और तीन लाल निशानका मतलब एक दिनकी 'पे' हज़म ! ....अब आप ही बताइए, ये जुलुम नहीं है सरासर ?....देखते हैं आप जो हालत होती है हम बसके यात्रियोंकी ! वह देखिए....'' गोबिन्दो बाबू सहसा ऊँचे स्वरमें बोले, ''सड़कपर दौड़ती वह बन्द पुलिस गाड़ी देख रहे हैं ? उसके अन्दर बैठे क़ैदी हम लोगोंसे कहीं अधिक आरामें हैं ! कुछ ठिकाना है हमारे कष्टका ? पहुँचते-पहुँचते ही आदमी अधमरा हो जाता है ! और पहुँचते साहब कहेंगे, ये काम करो, वह काम करो, ...जान तो बसमें उतरने-चढ़नेमें ही निकल जाती है ! बताइए कैसे करें काम ? साहब लोग आदमीको आदमी थोड़े ही समझते हैं।....तो महाशय,, मजबूरीमें मुझे बुढ़ापेमें बसका सफ़र करना पड़ रहा है ! वैसे ट्राम, आप जानते हैं, आरामदेह सवारी है, पंखा भी होता है उसमें। लेकिन चलती ज़रूर ज़रा धीरे है।''

ट्रामके पंखेका ख़याल आते ही गोबिन्दो बाबूको ज़ोरकी गरमी लगने लगी ! उन्होंने कुरतेकी जेबमें फँसायी हुई धोतीकी चुन्नट निकाली और अपने हवा करने लगे— ''बाबा ! की गोरोम !'' (कितनी गरमी है !)

बस चली तो उनके चेहरेपर चमकती पसीनेकी बूँदें सूखने लगीं। उनका चित्त ठिकाने आया। झुककर चुटकी-भर नसवार 'सुड़क-सुड़क'की आवाज़के साथ उन्होंने पहले दाँयें और फिर बाँयें नथुनेमें भर ली ! फिर बसके अन्दर-बाहर नज़र दौड़ायी। बराबरमें सड़कपर जाती एक सिंगल डैक बसको देख बोले, ''पहले मैं डार्विनकी थ्योरीमें विश्वास नहीं रखता था ! लेकिन अब कलकत्ताकी बसोंको देखकर मान गया हूँ कि डार्विन ठीक ही कहता था ! ज़रा दाहिने बाजू देखिए, खिड़कीमें-से, लोग बाग कैसे उस बसमें झूल रहे हैं, बाहर बसकी बॉडीसे चिपके हैं हैं कि नहीं बिलकुल बन्दर ! मरनेका कि कुल भय नहीं इन्हें, दो-चार तो रोज़ गिरकर मरते होंगे''और अपनी बसको पीछे यही हालत होगी, हाथी अपनी पूँछ नहीं देख सकता ?....''

चलती बसके साथ-साथ गोबिन्दोबाबूकी कमेण्ट्री चल रही थी ! लोग हँस रहे शुरू-शुरूमें तो कुछ अटपटा लगा था ! चौंककर उनकी तरफ़ देखने लगे थे। कोट-पतलूनधारी सज्जनने तो दबी आवाज़ बग़लमें बैठे व्यक्तिसे कहा भी कि यह महाशय पब्लिक बसको अपना बैठकखाना समझते जैसे हम सब भाषण सुननेके लिए उनके आये हुए हैं ! फिर धीरे-धीरे सब उनकी मौजूदगीके अभ्यस्त हो गये ! कोई उनकी बातका बुरा न मानता क्योंकि उनकी बातमें कुछ-न-कुछ सार तो रहता ही था। कम-से-कम वह लोगोंको हँसाते तो थे ही। और कौन सोच सकते हैं कि इस मुसीबतके ज़मानेमें जब कि लोगोंके चेहरोंपर मुर्दनी छायी रहती है, हँस-हँसा सकना कितनी बड़ी बात है !

रेडियो-वार्तासे कहीं अधिक रोचक कमेण्ट्री गोबिन्दो बाबूकी होती है। रेडियो-प्रवक्ता तो एक ही विषयपर बोलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, गोबिन्दो बाबू खिदिरपुरसे डलहौज़ी तक की पैंतालीस मिनिटकी यात्रामें अनेक विषयों पर बोल सकते हैं। बातमें-से बात निकालना उनका बाँयें हाथका खेल है।

गोबिन्दो बाबू बंगाली भद्रपुरुषोंकी तेज़ी से लुप्त होती हुई पीढ़ीके नुमाइन्दे हैं। अगली पीढ़ीके बूढ़े लोग उनसे बहुत भिन्न होंगे! उनकी वेषभूषाको ही लें। पटलदार धोती और कुरता, हाथमें छतरी! अपनी थुलथुल देह लिये वह बसपर सवार होते, मुँहसे कहते जाते—"बाबा! की गोरोम!" और रूमाल-से गरदन और चेहरेका पसीना पोंछते जाते, बचते-बचाते चलते कि किसीको उनकी छतरी न लग जाये। पैर न छू जाये! रमेशने उनका नाम रख लिया था—'प्रोटोटाइप'!

"हमारे ज़मानेमें (माने पच्चीस-तीस वर्ष पहले) ऑफ़िस-टाइममें," गोबिन्दो बाबू कह रहे थे, "सबेरे-शाम विराट्काय काला जुलूस डलहौज़ीकी सड़कोंपर चलता था।.... नहीं समझे मोशाय? मेरा मतलब है, सबके हाथमें तने हुए छाते रहते थे। यह काला जलूस डलहौज़ी और एस्प्लेनेडकी गलियों-सड़कोंमें घुसकर ऑफ़िसोंमें समा जाता था। और अँगरेज़ी साहबोंको छोड़कर सब धोती-कुरता पहनते थे। कुरता क्या, ओछी-सी कमीज़ ही समझिए, ताकि धोतीकी पटली ऊपर तक दिखाई देती रहे!....आजकल कितने लोग छाता लेकर चलते हैं? डलहौज़ी-की सड़कोंपर-से धोती-कुरता ग़ायब हो गया है। मेरा लड़का तो महाशय, बरसातमें भी छाता लगानेसे इनकार करता है। बीड़ी खाने (पीने) में लज्जा आती है उसे। सस्ती सिगरेट खायेगा (पीयेगा) क्योंकि मँहगी ख़रीद नहीं सकता, चाहे उसमें घोड़ेकी लीद ही भरी हो!"

भवानीपुरसे बस गुज़री तो गोबिन्दो बाबू बोले, "देख लीजिए! पहले राशन, कपड़ा, मछली और सरसोंके तेलके लिए लाइन लगती थी, अब सन्देश और रोसोगोल्ला ख़रीदनेके लिए भी लाइन लगानी पड़ रही है। और भाव जानते हैं? दस रुपया किलो! देख लीजिए, कितनी बड़ी लाइन है, कोई कह सकता है कि हमारा देश दरिद्र है?....दुकान-दार कहते हैं कि छेना बनानेवालोंने दाम बहुत बढ़ा दिया है और उन्हें चीनी ब्लैकमें ख़रीदनी पड़ रही है क्योंकि बहुत-सी चीनी दुर्गापुर-काँग्रेसके इजलासमें भेज दी गयी है।....कुछ दिनोंमें आप ज़हर ख़रीदना चाहेंगे तो उसके लिए भी लाइन लगानी होगी, और उस ज़हर-को खाकर मरना चाहेंगे तो उसके लिए भी लाइन लगानी पड़ेगी। कहेंगे, ठहरो, अभी मत मरो, लाइन लगाकर अपनी बारीसे मरो!"

आस-पास बैठे लोग हँस पड़े!

थोड़ी देर रुककर गोबिन्दो बाबूने रमेशसे पूछा, "सन्देश आपको अच्छा लगता है?"

"जी, लगता तो अच्छा है, लेकिन गलेमें ज़रा फँसता है। रसगुल्ला ज़्यादा अच्छा लगता है!"

"रोसोगोल्ला!" वह बोले, "रोसोगोल्ला भी अच्छा है, लेकिन सन्देश अधिक लाभदायक है। आप एक काम कीजिए, सन्देशको दहीमें मिलाकर खाइए।"

"ज़रूर खाऊँगा!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोबिन्दो बाबूकी निरीक्षण-शक्ति भी अपूर्व थी। एक दिन कानके पास फुसफुसाये, "देखते हैं, मोशाय, प्रेमेर व्यापार चोल छे! जूलियट सामने बैठी है।" उनका इशारा 'आई-ओपनर' की ओर था। "और वह तुम्हारे पीछे तीसरी सीटपर जो युवक बैठा है न," उन्होंने आवाज़को और भी धीमा करके कहा, "वह रोमियो है!"

"अच्छा!"

"होता यह रहा है कि लड़की अलीपुरसे बसमें सवार होती है। वह कोशिश करके बाँयीं ओरवाली ज़नानी सीटपर बैठती है ताकि खिड़कीमें से ही अपने रोमियोको झाँक सके। लड़का गोपालपुरवाले अगले स्टॉपसे बसमें उठता है। दोनों साथ-साथ न चढ़ते हैं, न उतरते हैं, लेकिन पूर्वनिश्चित स्थानपर मिलते ज़रूर हैं। आजकल लड़कियोंको पहरेमें रखना तो सम्भव नहीं, अब भला कौन इन्हें मिलनेसे रोक सकता है। मैं तो भगवान्‌से यही प्रार्थना करता हूँ कि लड़कीका कुछ अनिष्ट न हो! लड़की सुन्दर है, है न?"

"जी, बहुत सुन्दर है!"

"बंगालकी लड़कियाँ मछली खाती हैं, सन्देश खाती हैं, तभी इनकी आँखोंमें मछली-की आँखोंकी-सी चमक होती है, स्वरमें मिठास और चेहरेपर कोमलता और लुनाई!"

"तब तो नमक भी काफ़ी खाती होंगी!" रमेश बोला।

"मिर्च भी ख़ूब खाती हैं।" गोबिन्दो बाबू बरबस हँस पड़े, "ख़ूब तिक्त होती हैं!"

इन्हीं दिलचस्प बातोंके कारण गोबिन्दो बाबूकी अनुपस्थिति उस बसके यात्रियों अखरने लगती। लोग सोचने लगे कि कारणवश शायद वह उस दिन आ नहीं हैं। मगर थोड़ी देर बाद ही उस डबल-डेक की सीढ़ीमें डॉयलाग सुनाई दिया—"ओह आप तो ऐसे तनकर चले आ रहे हैं, मोशाय जैसे आपके लिए बसकी सीढ़ीमें रेडकार्पेट बिछा है। ज़रा कमरको कष्ट दीजिए, वरना तिरछा करके उतरिए ताकि हम साधारण लोगोंको धक्का तो न लगे।"

गोबिन्दो बाबूकी आवाज़ पहचानकर लोगोंके होठोंपर मुसकराहट फैल गयी। गोबिन्दो बाबू बड़बड़ाये जा रहे थे—"नहीं कलकत्तेमें आये जान पड़ते हैं! मेरी बात बुरा न मानिएगा, यहाँकी बसोंमें चढ़ना और उतरना भी एक कला है, पाँव ज़रा सँभालकर रखना पड़ता है, थोड़ा 'ट्विस्ट' करना पड़ता है घुसने-घुसानेके लिए।"

खिसियाये-से वह सज्जन उतरने लगे। गोबिन्दो बाबूने आखिरी तीर छोड़ा—"हम टायरकी चप्पल पिचती सो पिचती, अगर क़ीमती जूतेकी 'टो' पर किसीका बूट पड़ जाता तो बैगनभाजा बन जाता उसका।"

आखिरी वाक्य सुनते-सुनते लोगोंके हँसी रोकना मुश्किल हो गया।

ऊपरली मंज़िलसे किसीने आवाज़ दी। "गोबिन्दो बाबू! ऊपर आ जाइए! कष्टमें जान पड़ते हैं। अभी-अभी एक खाली हुई है, मैंने रोक ली है, आपके लिए।"

"माँ काली तुम्हारा भला करें!" हुए गोबिन्दो बाबू बूढ़े शरीरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए एक-एक सीढ़ी सरककर ऊपर पहुँच गये और खाली सीटपर जा बिराजे। हालाँकि उनसे आगे भी लोग खड़े थे, पर किसीने उन्हें रोका नहीं।

सीटपर बैठे-बैठे थोड़ी देर बाद वह चिल्ला उठे, "गिरा, गिरा, मोशाय, गिरा!"

लोगोंने चौंककर देखा कि कौन गिरा तो वह अपनी सीटपर झुके, बार पकड़े आधे लटके-से एक व्यक्तिसे बोले, "अब भी नहीं आया आपकी समझमें? मुझे क्या घूर रहे है? जनाब, आपकी नासिकापर बड़ी-सी पसीनेकी बूँद फिसल रही है, जो सीधी मेरे मुँहमें गिरेगी, इसे पोंछिए जल्दीसे।"

खड़े हुए महाशय रूमालसे अपनी नाक रगड़ने लगे। आस-पास बैठे लोग मुँहमें कपड़ा ठूँस रहे थे।

आखिरी चुटकुला जो गोबिन्दो बाबूने सुनाया था वह सुँघनीके बारेमें ही था, जो उन्हें बहुत प्रिय थी। कहने लगे, "इसमें कोई शककी गुंजाइश नहीं कि समय बहुत बदल गया है। अब देखिए न, इस भरी-पूरी गाड़ीमें मुश्किलसे दो-चार जन ही सुँघनीका व्यवहार करते होंगे। हमारे ज़मानेमें तो बसों-ट्रामोंमें रास्ते-भर 'सुड़क-सुड़क' हुआ करती थी। अब तो जेबसे नस्यकी शीशी निकालते डर लगता है, बड़ी सावधानीसे व्यवहार करनी पड़ती है। अभी उसी दिन बसकी आगेकी सीटपर बैठे मेरे किसी समानधर्माने डिबिया-मेंसे चुटकी जो भरी तो हवाके झोंकेसे थोड़ी-सी नसवार उड़ गयी! अब तो गाड़ी-भरमें आगेसे पीछे तक 'हक्छीं-हक्छीं' होने लगी। एक सज्जनको तो अचानक ऐसी ज़ोर-की छींक आयी कि उनकी नाकसे गिलगिला पदार्थ निकलकर अगली सीटपर बैठे दूसरे सज्जनकी गरदनके पिछले भागपर चिपक गया। अब तो साहब, लड़ाई ठन गयी! प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ कि असली अपराधी कौन है? वह भद्रपुरुष जिससे अनजानेमें नस्य हवामें बिखर गयी थी या वह जिन्होंने (अनजानेमें ही) अपनी नाक दूसरेकी गरदन-पर छिनक ली थी? सब एक-दूसरेको दोष दे रहे थे। तो जानते हैं, नस्यवाले महाशयने क्या कहा? उन्होंने कहा कि क़सूर तो दरअसल हवाका है।"

गोबिन्दो बाबूकी बात सुनकर, जैसा कि हमेशा होता था, लोग हँस दिये थे। उनकी बात सुननेके लिए कण्डक्टर भी टिकिट बाँटते-बाँटते थोड़ी देरको रुक जाता था। 'जली-भुनी' और 'सड़ी-बुसी' के अधरोंपर भी क्षीण मुसकान खेल जाती।

दमघोट उदासी, मनहूसियत और बेबसी इस 'डबल-डेकर'में फिर लौट आयी है क्योंकि एक दिन सहसा गोबिन्दो बाबू लोप हो गये।

महीनोंसे वह दिखाई नहीं दिये हैं। हो सकता है, उनका वह सख्त अफ़सर बदल गया हो और उन्होंने फिर ट्रामका पास बनवा लिया हो। यह भी हो सकता है कि उन्हें एक्स्टेन्शन न मिला हो और वह रिटायर कर दिये गये हों, और यह भी तो हो सकता है कि, भगवान् न करे·····आखिर ज़िन्दगी-का क्या भरोसा? ■ ■

बस : गिरीश अस्थाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत
हिन्दीका सर्वथा मौलिक
नयनाभिराम कलात्मक प्रकाशन

शैशवांकन

अर्थात्
'बेबी-बुक' हिन्दीमें

अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय

'शैशवांकन' में जन्मोत्सवसे सम्बन्धित अवसरों तथा शिशुकी उत्तरोत्तर प्रगतिका लेखा आयोजित है। 'शैशवांकन' मधुर स्मृतियों एवं उपयोगी तथ्योंके संरक्षणके लिए सर्वथा नया और प्रीतिकर उपहार है। अपने शिशुके लिए स्वयं बरतें और जो आपके अपने हैं उन्हें भेंट करें। हिन्दीमें एक अनूठा प्रकाशन।

मूल्य १२.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

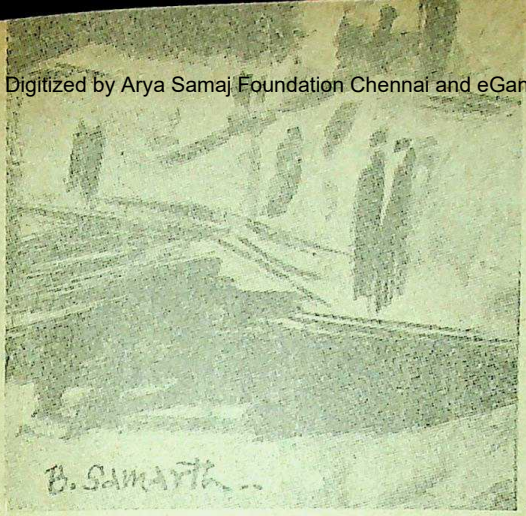

पं । जा । बी । क । हा । नी

घर तकका रास्ता

अमरजीत सिंह

करौलबागसे अपने घर तकका रास्ता उसे पहाड़-सा प्रतीत हो रहा था। मद्रास-होटलमें दोस्तोंसे गप-शप करनेमें ही दस बज गये थे। इन दोस्तोंसे आज वह पूरे एक मास पश्चात् मिला था। गत मास परीक्षामें व्यस्त होनेके कारण वह किसीसे भी न मिल सका था। कॉफ़ीके टेबलपर बातें होती रहीं—राजनीतिकी, साहित्यकी, इण्टरनेशनल फ़िल्म फ़ेस्टीवलकी और दूसरी इधर-उधरकी। मोना लिजाकी मुसकान बातचीतका विषय बनी रही। माडर्न आर्टकी बातें होती रहीं। मित्र उससे उसके पेपरोंके बारेमें पूछते रहे।

दोस्तोंसे बिछुड़कर जब वह बस-स्टापपर आया तो उसने देखा बस-स्टापपर थोड़े ही आदमी खड़े हुए थे। सड़कपर बहुत कम लोग आ-जा रहे थे। कभी-कभी कोई स्कूटर या टैक्सी पाससे भारी आवाज़ पैदा करती हुई गुज़र जाती थी। दिन-भरके थके-हारे शामका अख़बार बेचनेवाले छोकरे दूकानोंके चबूतरोंपर सो रहे थे। गरमीका मौसम आ चुका था। वातावरणमें घुटन थी पर कभी-कभी वायुका एकाध झोंका इस घुटनको चीर जाता था।

वह बस-स्टॉपपर खड़े नव-विवाहित जोड़ेके बारेमें सोचने लगा। औरतने मेंहदी रंगकी साड़ी बाँध रखी थी और उसकी कलाइयाँ चूड़ियोंसे भरी हुई थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पतिसे बातें कर रही उस नव-यौवनाकी कोई-कोई बात उसके कानोंमें भी पड़ रही थी।

ये इस समय कहाँसे आये होंगे? वह मन-ही-मन सोचने लगा।

फिर उसे थोड़ी देर पहले मद्रास-होटलमें बैठे अपने मित्र राजका ध्यान आ गया। वह राजके आलस्यपूर्ण स्वभावके बारेमें सोचने लगा। उसे गत तीन वर्षसे नौकरी नहीं मिली थी। घरपर ही थोड़ा-बहुत काम करके निर्वाह कर रहा था। पिछले तीन वर्ष उसने कठोर संघर्षमें गुज़ारे थे। पहले वह पंजाबके किसी शहरमें रहता था और अब पिछले तीन वर्षसे दिल्लीमें था। उसने कितने सुन्दर चित्र बनाये थे। पर उसके उस चित्रकी—जिसमें भुखमरीका शिकार एक स्त्री अपने बच्चेको अपनी आँखोंके सामने मरता देख रही है—दोस्तोंने बहुत प्रशंसा की थी। भूखके कारण सूख रहे उस स्त्रीके चेहरेका चित्रण करनेमें उसने जिन रंगोंका प्रयोग किया था उनकी हर कोई दाद देता था। राज बहुत ही खुले स्वभावका व्यक्ति था। नौकरी करके वह स्वयंको बन्द-बन्द-सा अनुभव कर रहा था।

दूर चौराहेपर आ रही बसकी लाइट देख उसने प्रसन्नताका-सा अनुभव किया। पर कुछ देर पश्चात् बस बिना रुके ही पाससे निकल गयी। उसे बड़ी मायूसी हुई। बस मुसाफ़िरोंसे ठसाठस भरी हुई थी। बस-स्टॉपपर इधर-उधर घूमते हुए वह बसोंके गन्दे प्रबन्धके बारेमें सोचने लगा। कहीं भी जाना हो, कमसे कम एक घण्टा तो बसकी प्रतीक्षा करना आवश्यक है। और फिर चढ़नेवालोंमें जब तो नहीं है। हर कोई अपना हित रखता है।

अगर वह चाहता तो देवनगरमें रहनेवाले अपने मित्रके पास भी जा सकता था। इतनी रात गये उसके घर जाना उसने न समझा।

उसने घड़ीकी ओर देखा, साढ़े दस गये थे। इतनेमें एक बस आकर रुकी। बहुत भरी हुई नहीं थी। यह बस शादीपुर तक ही जा रही थी, पर उसे मोतीनगर था। 'शायद इसके पश्चात् कोई दूसरी मिले, शादीपुरसे आगे पैदल चला जाऊँगा' ऐसा सोच वह बसमें चढ़ गया। शादीपुर आगेकी बस्ती मोतीनगर थी जहाँ जाना था।

बसमें कई सीटें खाली पड़ी थीं। सीटपर एक बूढ़ा आदमी बैठा ऊँघ रहा ऊँघ रहे आदमीको देख उसे घरकी याद आयी—घर भी कितना अच्छा स्थान है दिन-भरका थका-हारा आदमी जा शरण है। घर, घर ही होता है! चाहे वह काँच सिरकीका हो चाहे टीनकी छतका और ईंटोंकी दीवारोंवाला। वह अपनी सीट बैठा सोचने लगा।

एक सीटपर एक सुन्दर लड़की बैठी थी जिसने स्कर्ट पहन रखी थी। खिड़की खुले शीशेसे भीतर आ रही हवासे माथेपर-से कटे हुए बालोंकी एक मोटी-सी चेहरेपर झूल आयी थी। वह हाथमें अंग्रेज़ी का कोई उपन्यास लिये हुई थी। इस लड़की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर देखते हुए उसे रेशमाकी याद आने लगी। रेशमाँ उसकी बचपनकी मित्र थी। रेशमाँ उस समय उससे मिली जब वह प्यारके बारेमें नितान्त अनभिज्ञ था। रेशमाँने कई बार उसके प्रति अपने प्यारकी अभिव्यक्ति की थी। पर वह उस समय प्यारके बारेमें कुछ नहीं जानता था। उस लड़कीकी ओर देखते हुए रेशमाँके बारेमें सोचना उसे बहुत प्यारा लगा और थोड़ा विचित्र भी।

बस पटेलनगर रुकी। कुछ सवारियाँ उतरीं और कुछ चढ़ीं। मुसाफ़िरोंको टिकिटोंके लिए कहता हुआ कण्डक्टर बसमें घूम रहा था। सड़क सुनसान और रात काफ़ी होनेके कारण ड्राइवर बस काफ़ी तेज़ चला रहा था। उसने जेब टटोली। दस-दसके दो सिक्के मिल गये। बीस पैसे उसने कण्डक्टरको देकर टिकिट ले लिया और खिड़कीसे बाहर झाँकने लगा। ईस्ट पटेलनगरकी कोठियोंके परदोंके पीछे प्रकाश दीख रहा था—वही कोठियाँ जिन्हें वह कई बार देख चुका था, जिन्हें वह प्रतिदिन देखता था। प्रतिदिन इनके पाससे निकलता था और प्रतिदिन इनके बारेमें सोचता था।

एक झटकेसे बस रुकी, शादीपुर आ गया था। वह बससे उतरा और पैदल चलने लगा। ड्राइवर बस घुमाकर शेडकी ओर ले जा रहा था। कण्डक्टर बसके पीछेसे शादीपुरकी प्लेट उतार उसे बसकी आखिरी सीटके नीचे रख रहा था।

यहाँसे उसके घरका रास्ता चाहे पाँच मिनिटका ही था, पर उसे यह रास्ता तय करना पहाड़ पार करने-जैसा प्रतीत हो रहा था। दिन-भरकी दौड़-धूप और थकावट उसके समूचे अस्तित्वपर पूर्ण रूपसे छायी हुई थी। अगर जेबमें पैसे होते तो वह अवश्य ही स्कूटर-द्वारा घर पहुँचता। पर उसके पास तो कुछ सिक्के ही शेष थे।

शादीपुरका रेलवे-क्रासिंग पार कर वह कुछ ही आगे गया होगा कि नज़फ़गढ़के बस-स्टॉपपर उसे एक आदमी खड़ा दिखाई दिया।

"सरदारजी!" उस आदमीने उसे पाससे गुज़रते हुए देख आवाज़ लगायी।

"हाँ!" उसने रुकते हुए कहा।

"तिलकनगरको कौन-सा रास्ता जाता है?"

"तिलकनगर काफ़ी दूर है। यहाँसे बस-द्वारा चले जाओ।" उसने कहा।

कार्पोरेशनके दूधिया प्रकाशमें उसने उसे ध्यानसे देखा। वह पाँवसे नंगा था, सफ़ेद क़मीज़ व धारीदार पाजामा पहने हुए था। उसके मुँहसे शराबकी गन्ध आ रही थी। आँखोंमें नींद चमक रही थी। डबडबायी आँखोंसे कभी वह उसकी ओर देखता और कभी वातावरणकी ओर।

"शराब पी है?" उसने पूछा।

"हाँ, सरदार साहब! देखिए, झूठ नहीं बोलूँगा। शराब तो अवश्य पी है।" उस आदमीने जवाब दिया।

"इस समय कहाँसे आ रहे हो?"

"बंगाली मार्केटसे।"

"यहाँ कैसे खड़े हो?"

"बसवाला यहाँ उतार गया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जूता कहाँ है ?"

"मालूम नहीं कहाँ है ?"

वह शराबके नशेमें बोल रहा था। 'यह कहाँ इस समय खड़ा रहेगा। अभी बस आयेगी तो इसे चढ़ाकर ही आगे जाऊँगा,' उसने सोचा और ऐसा सोचकर वह बसकी प्रतीक्षा करने लगा।

■

न जाने क्यों वह इस आदमीमें रुचि ले रहा था। न ही उसे शीघ्र घर पहुँचनेकी बात अखर रही थी।

■

कार्पोरेशनके दूधिया प्रकाशमें उसने एक बार फिर उसे डबडबायी आँखोंसे देखा। उसकी नींदसे बोझिल आँखोंमें झाँका, आँखोंमें तरलता-का आभास था।

तिलकनगरको जानेवाली बस आती हुई दिखाई दी। बसको देख उसने बस रोकनेके लिए हाथ उठाया। यह सोचा कि कहीं रातके समय और बस-स्टॉपपर कम सवारियाँ होनेके कारण बस बिना रुके ही पाससे निकल न जाये।

बस रुकी, उसने शराबीको पकड़ बसमें चढ़ानेका प्रयास किया। पर (शराबके) नशेमें होनेके कारण लड़ख गया था। इतनेमें कण्डक्टरको उसके होनेके बारेमें पता लग चुका था। कण्डक्ट उसे बसमें चढ़ानेसे इनकार कर दिया।

"चढ़ा लो भाई, चढ़ा लो।" कहा।

"नहीं सरदार साहब, शराबी है। ज़िम्मेदारी कौन लेगा ?" कण्डक्टरने पूछा।

"रातके साढ़े ग्यारह बज चुके हैं। कहाँ पड़ा रहेगा बेचारा। आगे करके दो, तिलकनगर थोड़ा ध्यानसे उतार देना।

पर्याप्त वाद-विवादके पश्चात् वह बसमें चढ़ानेमें सफल हो गया। जाती बसकी पीठकी ओर देखते हुए वह सड़कपर चलने लगा।

■

जब वह घर पहुँचा तो अपने घरकी सीढ़ी चढ़ते हुए उसने अनुभव किया कि घर का रास्ता, जो उसे पहाड़-जैसा प्रतीत हो था, उसने न जाने कब तय कर लिया था।

■

हिम-विद्ध

डॉ० जगदीश गुप्त

मर्मस्पर्शी नयी कविताओंका संग्रह

मूल्य ३.००

प्राप्ति-स्थान

भारतीय ज्ञानपीठ

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग,

दिल्ली-६

राष्ट्रीय संकटकी घड़ीमें जिन्हें बार-बार याद किया उस लौह-पुरुषकी प्रथम प्रामाणिक जीवनी

राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल

कपड़ेकी जिल्द एवं असंख्य चित्रों सहित

मूल्य १०.००

वितरक :—

ज्ञान प्रकाशन

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

२१, दरियागंज, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अपरिचित दायरा

सुरेश सिन्हा

दोनों झोले चबूतरेपर रखकर माधव बाबू ज़ोर-ज़ोरसे खाँसने लगते हैं। वे पुराने दमेके मरीज़ हैं और उनसे अब बिलकुल चला-फिरा नहीं जाता, पर चलना पड़ता है। खाँसीका दौरा थोड़ा थम जानेपर वे अपनी दोनों हथेलियोंको सहलाते हैं, फिर दरवाज़ेका चुल्ला खड़खड़ा देते हैं। कमरेकी खिड़कियाँ खुली हैं और उसमें भरा हुआ गहरा अँधेरा सहमा-सहमा झाँक रहा है। वे खिड़कीकी सलाखें पकड़े झुके-झुके इस तरह अन्दर झाँक रहे हैं, जैसे अभी मदनकी माँ आकर दरवाज़ा खोलेंगी और उन्हें पता भी नहीं चलेगा।

अचानक ही उन्हें खाँसीका दौरा फिर पड़ जाता है और ढेर सारा काम आ जानेके कारण वे चबूतरेके कोनेपर जाकर नालीमें थूक देते हैं। उनका सारा शरीर काँप रहा है और साँस ज़ोर-ज़ोरसे फूल रही है। ऑफ़िससे लौटकर अपने कमरेमें लेटनेके सिवाय वे दूसरा कोई काम नहीं करना चाहते, पर ऐसा कभी नहीं हो पाता और अपने कमरेमें आठ बजेके पहले शायद ही कभी वे पहुँच पाते हैं। फिर आज तो सुबह-ही-सुबह दो-एक मेहमान आ गये थे और उन्होंने ऑफ़िससे उठनेके पूर्व ही सोच लिया था कि घर चलते ही बाज़ार चलना पड़ेगा।

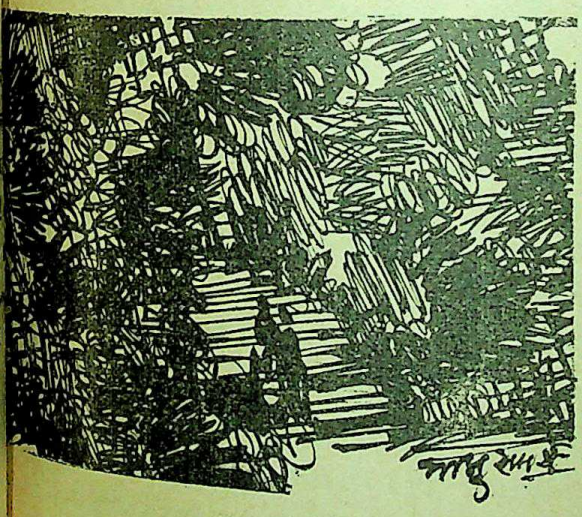

दरवाज़ा अभी नहीं खुला है और वे दुबारा दरवाज़ेका चुल्ला खड़खड़ाते हुए सोचते हैं, मदन होगा नहीं और उसकी माँ मेहमानोंमें व्यस्त होगी। बिना किसी सन्दर्भके उन्हें लगता है कि मदनकी माँ ही अच्छी है, जो आस-पड़ोसमें आ-जाकर, बातचीत कर कुछ क्षणोंको व्यस्तता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो प्राप्त कर लेती है। वे तो यह भी नहीं कर सकते। घरसे ऑफ़िस या बाज़ार और वहाँसे फिर घर, इसके सिवाय रखा ही क्या है? किससे वे कुछ कहें और क्या कहें—अकसर यह सोचते-सोचते वे अनुभव करते हैं, कही जानेवाली बातका क्षण व्यतीत हो चुका है और उसके स्थानपर जो नया क्षण आ गया है, उसके सन्दर्भ बिलकुल बदल गये हैं।

गलीमें अजीब-सा सन्नाटा व्याप्त है। अभी सात बजे हैं, पर ऐसा लगता है, जैसे रातके दस बज चुके हैं। ऊपर हल्लेका शोर है और माधव बाबू इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे खड़े होते हैं, जैसे वे ऊपर मचे शोरको अभी भेद लेंगे और वह दरवाज़ा अभी किसी क्षण खुल जायेगा। दरवाज़ेको फिर खड़खड़ानेकी दृष्टिसे जब वे फिर आगे आते हैं, तो उनकी आँखें दरवाज़ेके ऊपरी हिस्सेपर टिक जाती हैं। उसमें काफ़ी घुन लग गया है, जिसमें सफ़ेदा भर देनेके बाद भी कीड़ोंने काट दिया है। चर्र····चर्र····की ध्वनि उन्हें खींच लेती है। अब कीड़े किस हिस्सेमें अपना करिश्मा दिखा रहे हैं, यह जाननेके लिए वे बड़े ध्यानसे कान लगाकर ध्वनिकी दिशा पहचाननेका प्रयास करने लगते हैं। सहसा उन्हें लगता है कि चर्र-चर्रकी ध्वनि उनके मस्तिष्कके भी किसी कोनेमें उत्पन्न हो रही है और उन्हें चक्कर-सा आ रहा है।

यह चक्कर उन्हें हर क्षण आता है और उन्हें निरन्तर प्रतीत होता है, जैसे इस चक्करके साथ वे भी जड़ हो गये हैं। अकसर वे सोचते हैं, नौकरी छोड़कर वे शकुन्तलाके साथ गाँव वापस चले जायें। पम्मी यानी प्रमिलाका विवाह कर देनेके पश्चात् सहजता और निश्चिन्तताकी जो साँस लेनी उन्होंने शुरू की थी, वह धीरे-धीरे उस समय समाप्त होने लगी थी, जब महीनेमें बीस दिन पम्मी और उसके पतिने यहीं रहना शुरू कर दिया था और मदन····अकसर ऐसा क्षण आनेपर वे अपने कन्धोंको ज़ोरसे झटक देते हैं, जैसे वहाँ घुन जम गयी है और ऐसा करनेसे साफ़ हो जायेगी। उन्हें प्रायः अपने ऊपर ही क्रोध उमड़ता है कि वे क्यों इतने भावुक हो जाते हैं और यह समझनेकी कोशिश क्यों नहीं करते कि मदनका चेहरा बहुत बदल गया है, जिसकी यथार्थता वे भावुकताके चश्मेसे कभी नहीं पहचान सकेंगे, कभी नहीं····

वे याद करनेकी कोशिश करते हैं कि मदनसे बातें किये उन्हें कितने दिन हो गये हैं पर याद नहीं आता। याद आता है, तो मात्र वह अन्धकार, जिसमें उन्हें किसीके दीवालसे टकरानेकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। वे समझ जाते हैं, यह शकुन्तला है, जो दो कमरे बाद की सीढ़ियोंसे अँधेरेमें किसी तरह धीरे-धीरे उतर रही है। अचानक ही वे बहुत व्यथित हो जाते हैं और अपनी दोनों मुट्ठियोंसे कसकर इस तरह खिड़कीकी सलाखोंको पकड़ लेते हैं जैसे अभी वे विवशताकी सारी ज़ंजीरोंको तोड़कर शकुन्तलाकी कमज़ोर आँखोंका चश्मा तथा हफ़्तों पूर्व फ़्यूज़ हुए कमरेका बल्ब तो देंगे और अँधेरेमें दीवालसे टकरानेकी ध्वनि उन्हें फिर इस प्रकार नहीं मथ जायेगी। भावुकताका मोहासक्त धुँधलका जब मिट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तो वे देखते हैं कि दरवाज़ा किसी हिंस्र पशुके जबड़ेकी तरह खुला हुआ है और शकुन्तला दोनों झोले लेकर जा चुकी है। उनका मुँह बस खुलाका खुला ही रह जाता है। उन्हें इस बातपर खेद होता है कि वे यह भी नहीं पूछ सके कि कहीं चोट तो नहीं लगी। अचानक दर्द-सी कसमसाहट उभरती है और क्षण-भरके लिए वे बहुत बेचैन हो जाते हैं। इसके बाद सब कुछ जैसे फिर शान्त हो जाता है।

कमरेमें आकर वे बिना बिजली जलाये तख्तपर बैठ जाते हैं। गत कई वर्षोंमें उन्होंने कई बार सोचा है कि एक दिन वे फूट-फूटकर रोयेंगे या किसीसे बहुत कुछ कहेंगे, पर न तो वे कभी खुलकर रो सके हैं और न किसीसे कुछ कह सके हैं। परिस्थितियोंकी विवशता और कालके क्रूर चक्रने उन्हें इतना असमर्थ बना दिया है कि अकसर उन्हें विश्वास भी नहीं होता कि वे साँस ले रहे हैं या चल-फिर रहे हैं। बस एक मृगतृष्णा-सा भ्रम है, जिसके सहारे वे जी रहे हैं और किसी बेजान मशीनकी तरह व्यवहार कर रहे हैं। नियतिकी कठोरता और उम्मीदोंकी असफलतासे जब सारे सूत्र कट जाते हैं, तो जाने कैसा तनाव और कटुता आसपासके परिवेशमें भर जाती है, जिसका पता भी नहीं चलता और जिसकी बोझिलतामें आदमी ऐसा दबाव महसूस करता है कि प्रत्येक क्षण उसे अपना दम निकलता प्रतीत होता है। और वह विश्वास भी नहीं कर पाता कि उसके पास प्रकट करनेको कुछ अनुभूतियाँ हैं; कहनेको कुछ शब्द हैं।

रात्रिके बढ़ते अन्धकार और रिक्तताकी भयंकरतापर माधव बाबूका कोई वश नहीं है। उनके कमरेकी दीवालोंपर प्लास्टर तो क्या, बिजलीका बल्ब भी नहीं है। पर अँधेरेमें उनकी आँखें सब कुछ देखनेकी अभ्यस्त हो गयी हैं। प्रायः वे सोचते हैं, उन्होंने समूचा युग इसी अँधेरेमें जीया है और एक दिन यह युग समाप्त हो जायेगा, पर अँधेरा शायद तब भी बना रहेगा। जब वे दीवालसे सटे हुए तख्तपर खिड़कीके नीचे बैठते हैं, तो उस अँधेरेमें भी उन्हें लगता है, क्रमहीन ढंगसे गारेमें जुड़ी हुई ईंटोंमें वे ज़िन्दा चुनवा दिये गये हैं और अब वे कुछ नहीं बस एक इतिहास हैं। इतिहास भी नहीं उसके सारे पृष्ठोंको एकमें समेटनेवाली जिल्द-भर हैं। अकसर उनके मनमें उठता है कि यहाँ सब कुछ अनलिखा है, फिर भी कुछ नहीं लिखा है। बिना पुती हुई ऊबड़-खाबड़ ईंटोंको वे देखते हैं, तो जाने क्यों उन्हें अनुभव होता है कि उन्हें अपना संस्पर्श नहीं दिया जा सकता क्योंकि वे गहरे ज़ख्म हैं और उन्हें छूने मात्रसे ही एक चीख़ उत्पन्न हो जायेगी, जिसमें सारा कृत्रिम ताम-झाम मिटकर एक बिन्दु-भर शेष रह जायेगा !···

····पम्मी बहुत आहिस्तासे थाली रख जाती है। वह तेज़ हवामें अपनी साड़ीकी सरसराहट भी बचाना चाहती है कि कहीं बाबूजीको आहट न लग जाये और वे कुछ पूछ न बैठें। चाहे-अनचाहे सबके अपने-अपने दायरे बन गये हैं और उनके लिए कहीं कोई चुनौती न उत्पन्न हो जाये, इसलिए लोग कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछनेसे भी भय खाते हैं। ऊपर मेहमानोंको शकुन्तला समझाती है—जबसे दमेका दौरा पड़ने लगा है और साँस ज़ोर-ज़ोरसे फूलने लगी है, वे आदमी ही नहीं रह गये हैं····न किसीसे बोलते हैं, न चालते हैं, न कभी ऊपर चढ़ते हैं····खाना भी नाममात्रका ही है, बस सूखा साग और रोटी, कुछ हज़म ही नहीं कर पाते। और शकुन्तलाके मनमें ऐसी ऐंठ उत्पन्न हो जाती है, जैसे अन्दर-ही-अन्दर किसीने उसकी सारी शिराओंको एक जगह कसकर बाँध दिया हो।

माधव बाबू बहुत अज़ीब ढंगसे मुसकराते हैं। वे एक बार इस सत्यताका आभास पा लेना चाहते हैं कि वे हैं, यह कमरा है और सामने स्टूलपर उनका खाना रखा हुआ है। दूसरे ही क्षण वे फिर मुसकराते हैं, हालाँ कि इस बार सन्देह नितान्त रूपसे भिन्न होता है और उन्हें सन्देह होता है कि कहीं वे पागल तो नहीं हो गये हैं। स्टूल सामने खींचकर रोटीका गस्सा सागमें लपेटकर मुँहमें डालकर इस प्रकार हिलाने लगते हैं, जैसे जुगाली कर रहे हों। पम्मीने जाते समय आँगनकी बिजली जला दी थी और खिड़कीकी सलाखों-पर प्रकाश इस प्रकार पड़ रहा था, जैसे वह कोई दर्शक हो और खिड़कीपर बैठा अन्दरका दृश्य देख रहा हो। माधव बाबू एक बार उधर देखकर दूसरी तरफ़ दीवालकी ओर देखने लगते हैं। दीवालपर उनकी परछाईं भी जुगाली कर रही थी। वे अचानक ही मुँह चलाना बन्द कर देते हैं; परछाईं भी मुँह बिसूरकर रुक जाती है। उन्हें यह बड़ा बेतुका लगता है और फिर वे थालीकी तरफ़ पहले वाली दृष्टिसे देखने लगते हैं। हठात् उन्हें मनमें आता है, बासमतीका चावल तो आधा किलो लाये थे। सुना है, वे बनानेमें काफ़ी फूल जाते हैं। क्या सचमुच उसमें ऐसी सोंधी-सोंधी महक निकलती है कि कोदों मिले दालसे खानेमें भूख दूनी-तिगुनी हो जाती है····वे अधिक सोच नहीं पाते हैं। पानीके एक घूँटसे रोटीके गस्सेको गलेके नीचे उतारते हुए दूसरा गस्सा तोड़ने लगते हैं····

कोई दस बजे मदन आता है। माधव बाबू काफ़ी पहलेसे ही बाहरवाले कमरेमें आहट ले रहे होते हैं। मदनको दरवाज़ा खुलनेमें एक क्षणकी भी देरी खलती है। वह ठिठककर एक बार बाबूजीको कनखियोंसे देखता है, फिर ऊपर चला जाता है। थोड़ी देरके लिए बस शून्य-स्तब्ध वातावरणमें सीढ़ियोंपर जूतोंकी खट्-खट् मात्र ही गूँजता रह जाता है! प्रत्येक रात्रिका यह दृश्य माधव बाबूके लिए बहुत कठोर होता है, पर सब कुछ जानते-बूझते हुए भी उन्हें सहन करना पड़ता है। वे प्रत्येक दिन ऑफ़िसमें बैठे-बैठे सोचते हैं कि आज रात वे मदनसे बस इतना पूछेंगे, क्या वह सब कुछ समझता नहीं है? इससे अधिक वे कर ही क्या सकते हैं? किस कठिनाईसे वे सबको इस छतके नीचे ले आये हैं, यह क्या वह जानता नहीं? आजसे पच्चीस वर्ष पहले भी मैं क्लर्क था, आज भी हूँ। तब भी बनिएके यहाँ जाता था, आज भी जाता हूँ। इन्हीं आँखोंसे मैंने समयका रथ-चक्र सरकते हुए देखा है। उसने इस रथ-चक्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति न देखी हो, पर क्या वह इसकी यथार्थता भी नहीं सोचता ? कल्पनाओंका स्वरूप निर्मित करना दूसरी बात होती है और ज़िन्दगी जी लेना दूसरी बात। अब तो हर बातके लिए कॅलकुलेशन करना पड़ता है, यहाँतक कि साँस लेनेमें भी, पर धैर्यसे एक दिन सब कुछ ठीक हो जाता है....

लेकिन यह उनका सोचना मात्र होता है—वे कभी कुछ कह नहीं पाते। पौने दस बजेका एक साँयरन उनके मनमें बजता है और तभीसे वे आकर बाहरवाले कमरेमें टहलने लगते हैं। कभी-कभी तो वह ग्यारह-बारह बजे तक प्रतीक्षारत रह जाते हैं, पर वे कुछ कहते नहीं। उन्हें लगता है—वह क्षण, वह बिन्दु व्यतीत हो चुका है, जहाँ कहना कुछ अर्थ रखता है। वे बड़ी निर्ममतासे शब्दोंका मोह त्याग देते हैं और वैसे ही तटस्थ एवं निर्विकार भावसे टहलते रहते हैं। जैसे प्रत्येक परिस्थिति अब उनके लिए जड़ हो गयी हो। बस बहुत आहिस्ते-से दरवाज़ेपर दस्तक होती है और वे शीघ्रतासे दरवाज़ा खोलकर मूर्तिवत् किनारे खड़े हो जाते हैं। अँधेरेमें एक दीया जलता है, फिर दूसरे ही क्षण बुझ जाता है। दो छायाएँ अन्धकारमें भी टकराती हैं और कुछ क्षण पश्चात् अचानक तूफ़ानके बाद समुद्रकी फेनिल लहरें शान्त हो जाती हैं। एक क्षणके लिए उन्हें लगता है कि वे मृत्युके अन्तिम बिन्दुपर पहुँच गये हैं, अब जीनेके सारे सूत्र टूटकर बिखर गये हैं और वे अवश, बेसहारे स्वयं अपनी ही अन्तिम परिणति असहनीय व्यथा एवं घुटनसे देख रहे हैं।

किन्तु दूसरे ही क्षण वे अत्यन्त धीर और गम्भीर होकर गीताकी पंक्तियाँ दुहराने लगते हैं! हालाँकि इस प्रशान्त एकान्तिकतामें अपने ही शब्द उन्हें पाषाणकी तरह भेद जाते हैं और कुछ पानेकी आशंकामें वे इस तरह अपनी दृष्टि दरवाज़ेपर टिका देते हैं, जैसे अभी बीता युग प्रवेशेगा और सारी विवशताएँ तथा असमर्थताएँ मिटकर सहजता एवं पारस्परिक सौहार्दताका परिवार उनकी दृष्टिमें फिर उभरेगा!

वे आँगनमें आकर आहट लेते हैं, पर कहीं चूहोंकी खटपट भी उन्हें सुनाई नहीं पड़ती, केवल श्यामजीकी नाकसे निकलनेवाली घर्र-घर्रकी आवाज़ नीचे पहुँचती है। वे एक निश्चिन्तताकी साँस लेकर कोनेसे मैला अँगोछा निकालकर लपेट लेते हैं और बिछौने-के नीचेसे साबुनकी बट्टी निकालकर नलके पास पहुँच जाते हैं। कुरते-धोतीमें वे बहुत धीमे-धीमे साबुन लगाते हैं, ताकि ज़रा-सा भी आवाज़ ऊपर न पहुँच सके और मेहमान जाग न जायें। कोई दूसरी धोती या कुरता उनके पास है नहीं और आँफ़िसमें गन्दे कपड़े पहन-कर जाते हुए उन्हें संकोच होता है। वे जब भी रात्रिके ख़ामोश सन्नाटेमें चुपचाप नलके पास बैठे अपने कुरते-धोतीमें साबुन लगा रहे होते हैं, तो उनके मनमें एक टीस अन-चाहे उत्पन्न हो जाती है। जब वे बीस रुपयेपर अँगरेज़ीके ज़मानेमें नौकर हुए थे, तो भी उनके पास एक ही धोती-कुरता था और आज जब वे स्वाधीनताके ज़मानेमें दो सौ रुपये पा रहे हैं, तो भी वही एक धोती-कुरता पहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। स्वाधीनता····वे अकसर सोचकर अजीब ढंगसे मुसकराते हैं, पर दूसरे ही क्षण कान्शश हो जाते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि वे सोचते ही रह जायें और साबुनकी टिकिया ज़्यादा घिस जाये, तो फिर क्या होगा ? तब-का दो पैसेका साबुन और अबकी यह आठ आनेकी टिकिया···आख़िर शकुन्तला, मदन, पम्मी वग़ैरह यह सब सोचते क्यों नहीं—कहीं तनाव या कटुतासे वक़्तका एलबम बदल जाता है, बल्कि उससे तो घुटन और बढ़ती ही है !

ऊपर दो ही कमरे हैं और सामने बरा-मदा है। कोनेवाला कमरा कहने-भरको मदनका है, उसमें पम्मी और श्यामजी ही अकसर रहते हैं। मदन पहले कुछ दिनों तक कमरेको सजाने और आधुनिक स्वरूप देनेका प्रयत्न करता था, पर जब महीनेमें उसे मुश्किलसे आठ-दस दिन रहनेको मिलता, तो उसने वह भी छोड़ दिया। वह जब भी किसी मित्रका आधुनिक कमरा देखकर आता है, तो उस दिन खानेकी थाली ज़रूर पटक देगा, किसी भी बातपर—दालमें नमक ज़्यादा क्यों है, रोटीपर बाल क्यों चिपका हुआ है या इतना लाल और लेबद्दा-जैसा चावल तो उससे नहीं खाया जाता ! फिर बात-बातपर झिड़क देता है और लाख मना करनेपर भी ठण्डी खुली हवामें छतपर सो जाता है। उसकी शिकायत और रूठना सब अनकहे समझ जाते हैं; आख़िर अकेला लड़का है, उसके लिए क्या अपना एक कमरा भी नहीं हो सकता ? कहाँ वह अपने मित्रोंको बिठाये या चाय पिलाये ?

फिर वह क्रोधमें उबलते हुए अपनी निर्धन व्यवस्था बना लेनेकी धमकीके साथ अपनी आर्थिक व्यवस्थाको कृत्रिम सिद्ध करते हुए एक छोटा-मोटा भाषण दे डालता है। [illegible] बराबर सुनाता है—कोई उसे महत्त्व नहीं देता है, नहीं तो चार-पाँच हज़ार ईंटें मँगाकर [illegible] कमरेकी दीवालें क्या नहीं खड़ी की जा सकतीं ? जब महीनेमें बीस दिन पम्मी और श्यामजीको मेहमानोंकी तरह रखनेके लिए सारी बातें की जाती हैं, भले ही बाध्यतासे ही सही, तो उसके लिए क्यों नहीं कुछ किया जा सकता ? उसे नौकरी नहीं मिल रही है तो वह क्या करे ? ऊँचीसे ऊँची शिक्षा ली, उसने अच्छी श्रेणियोंमें पास की, पर [illegible] कंगलोंको भी नौकरी मिलती है ? न किसीका ज़ोर है, न सिफ़ारिश—योग्यताको इस [illegible] भतीजावादवाली डेमोक्रेसीमें कौन पूछता भला ! फिर वह रुआँसे स्वरमें कहता है—[illegible] के लोग ही नहीं उसका ईश्वर भी मर [illegible] है, नहीं तो क्या उसे इस नियतिको [illegible] पड़ता ? जब एकको वे कूछ दिनों तक [illegible] कर नहीं खिला सकते हैं, तो ठीक है, [illegible] घर छोड़कर चला जायेगा, पर अपने अस्तित्व को खण्डित नहीं होने देगा। इस बड़े [illegible] वह अपना विलय नहीं होने देगा—[illegible] स्वत्व अर्थ रखता है····

एक बार वह सचमुच चला गया और पन्द्रह दिन तक नहीं लौटा था; माधव बाबूको पहली बार लगा था कि [illegible] समझमें कोई खोट है और कालके क्रूर तथा वर्तमानकी निष्ठुरताको पहचानने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी क्षमता सन्दिग्ध है। उसके बादसे वे बहुत भयभीत रहने लगे हैं, बल्कि शकुन्तला से भी ज़्यादा। यह मदन कैसी-कैसी बातें करता है, वे कभी समझ नहीं पाते। वे बस आगतको आशंकासे सन्त्रस्त रहते हैं कि कहीं सचमुच वह चला न जाये! हरदम कोनेमें बैठा जाने क्या-क्या सोचा करता है और अपनी सुध-बुध भूलकर इस तरह गम्भीर बना रहता है कि पच्चीसकी उम्रमें ही चालीसका आभास देने लगा है। अब अन्तिम दिनोंके लिए कोई आशा शेष नहीं है। कभी-कभी भावुक होनेपर सारी विकृतियों एवं विषमताओंसे संघर्ष करनेके मदनके संकल्पपर उन्हें किंचिन्मात्र भी विश्वास नहीं है, फिर भी वे चौकन्ने रहते हैं। शकुन्तला अपने गहनोंको देखने-सहेजनेके दायित्वसे कभीकी मुक्त हो चुकी है, प्राविडेण्ट फ़ण्डमें एक पैसा भी शेष नहीं है, कहीं दूसरी जगहसे उधार मिलनेकी सम्भावना मर चुकी है फिर भी ऑफ़िससे लौटकर माधव बाबू अपने कमरेकी गहन एकान्तिकतामें, अँधेरेसे घिरे, योजनाएँ बनाते रहते हैं कि शीघ्रसे शीघ्र मदनको एक 'आधुनिक' कमरा बनवा दें। हालाँ कि वे सब जानते-बूझते हैं कि अब वे उस बिन्दु तक पहुँच गये हैं, या युगकी यथार्थता और कुछ 'जेल गये देशभक्तों' की कुत्सित स्वार्थपरताके कारण पहुँचा दिये गये हैं कि वे ऐसे ही योजनाएँ बनाते रहेंगे और एक दिन यहाँसे चलाचलीका क्षण बहुत पास सरक आयेगा, जिसे पूरी सामर्थ्य होनेपर भी वे पार नहीं कर सकेंगे, पर मोहासक्त भावुकताने उन्हें निर्लज्जता की उस निम्नतम सीमा तक पहुँचा दिया है कि वे किसीको भी असली शक्लको पहचानना नहीं चाहते, उन्हें भय प्रतीत होता है। तब उनका मुँह खुलाका खुला रह जाता है, जैसे वे अपनी सक्षमताकी पहचान करने लगते हैं कि कमरेकी रिक्तता और अँधेरेको वे पी सकते हैं या नहीं····

पम्मीके पास टेरेलीनकी साड़ियाँ हैं और श्यामजीके पास डेकोरानके सूट हैं। वे दोनों पहनकर जब सिविल-लाइन्स या यूनिवर्सिटी जाते हैं तो शकुन्तला और मदन काले अँधेरेके शिलालेख बन जाते हैं, जिन्हें पढ़ा नहीं जा सकता और जिन्हें भेदकर कुछ प्राप्त किया जा सकता। तब दरवाज़ा ओढ़काकर माधव-बाबू कमरेमें जल्दी-जल्दी इस तरह टहलने लगते हैं, जैसे समय अब अधिक शेष नहीं है और अभी बहुत-सी मंज़िलें बाक़ी हैं, जिन्हें पार करके किसी एक विशेष बिन्दु तक शीघ्रसे शीघ्र उन्हें पहुँच जाना है। शकुन्तला जब पम्मीसे पूछती है—'ट्रेलीनकी साड़ियाँ तो काफ़ी दिन तक चलती हैं न? फटनेका नाम ही नहीं लेतीं. 'यह अच्छी हैं?' तो माधव बाबूको लगता है कि उनका वर्तमान एक काला नाग बन गया है, जो उन्हें प्रत्येक क्षण डस रहा है और अन्दर विष फैलता जा रहा है। तब उन्हें एक दृश्य याद आता है, पम्मी और श्यामजी फ़िल्म गये हैं, मदन कहीं सिविल लाइन्समें सड़कोंकी खाक छानता फिर रहा होगा या कोई नौकरी पानेकी आशामें किसीके यहाँ बैठा हाज़िरी दे रहा होगा और धुएँ-भरी छोटी-सी रसोईमें शकुन्तला आँखोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँसू-भरे रोटियाँ पाथ रही होगी—छोटी-छोटी फुल्के-जैसी रोटियाँ दामादके लिए! वे कितनी ही बार समझा चुके हैं, यह सब दिखावा करनेकी क्या आवश्यकता है? जैसा है वैसा ही घटित होने दो। यह हमारी दुर्बलता है—कोई कभी कुछ नहीं कहता, हम केवल डरते मात्र हैं, इसीलिए असत्य भ्रम पालते हैं!—पर शकुन्तला इसे नहीं स्वीकारती। अब जो हो गया है, उसका क्या हो? पम्मी तो ख़ुश है, श्यामजीको अपने नियन्त्रणमें रखती है; हम्हीं थोड़ा सहन कर लेंगे, तो क्या बिगड़ जायेगा?

और माधव बाबू बड़े विचित्र ढंगसे मुसकरा देते हैं, जिसका अर्थ वे स्वयं भी नहीं जानते और वह मुसकराहट उन्हें भेद जाती है। वे जानते हैं, पम्मी सन्तुष्ट नहीं हैं। वह सुनानेकी ग़रज़से आँगनमें आकर कहती है, "हम तो अम्मा-बाबूजीका ख़याल करके ही यहाँ आते हैं और उसपर-से हम लोगोंका रहना सबको भारी लगता है। कोई 'उनसे' ठीकसे बात तक नहीं करता।" अम्मा-बाबूजीका ख़याल करनेवाली बात उन्हें बड़ी कौतुकपूर्ण लगती है और वे चुपचाप सुन लेते हैं, कुछ कहते नहीं। बस वही भेद जानेवाली मुसकराहट फैल जाती है और वे गीता पढ़ने लगते हैं!

■

सुबह पाँच बजे ही शकुन्तला उन्हें जगा देती है और वे शीघ्रतासे नित्यके क्रिया-कर्मसे निवृत्त होकर डारेपर-से धोती-कुरता उतारकर पहन लेते हैं। शकुन्तला तख़्तसे रज़ाईको मोड़कर टुटली कुरसीपर सँभालकर रख देती है और झोलेमें बोरियाँ भरते हुए कहती है, "सुना है, कुम्भ मेलेके कारण इस बार राशन और चीनी दूनी मिलेगी। अभी जाकर कण्ट्रोलकी दुकानपर लाइन लगा दो, जिससे सबके सोकर उठनेके पहले लौट आओ। देर हो जानेपर राशन भी तो नहीं देता है। उस मुएका क्या, कह देगा आज कोटा ख़त्म।" माधव बाबूकी साँस ज़ोर-ज़ोर फूल रही होती है, वे अचानक कुछ नहीं कह पाते हैं। वे बहुत दबाकर खाँसते हैं, ताकि मेहमानोंकी नींद न टूट जाये। खाँसी थोड़ी कम होनेपर वे कहते हैं, "अब आज तो मैं नहीं जाऊँगा। मेरी तबीयत बिलकुल ठीक नहीं है। यह अच्छा है भई, दो टुकड़ा रोटी खाओ और सुबहसे शाम तक कोल्हूके बैल-की तरह जुते रहो।"

शकुन्तला चुपचाप झिड़की पी जाती है। वह बहुत आशंकित हो जाती है कि कहीं कुछ कहा नहीं कि बमक जायेंगे और झूठको मेहमानोंके सामने बनी-बनायी बात बिगड़ जायेगी। वह झोलेमें बोरियाँ भरकर और रुपया तख़्तपर रखकर चली जाती है। अब माधव बाबू आखिर क्या कहें और किससे कहें? कहना अकसर उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता, इसलिए वे भुनभुनाते रहते हैं, जिसकी परिधिमें समयका अँधेर और भ्रष्ट विडम्बनासे लेकर वर्तमान राजनीतिक अवस्था तक सिमट आती है। वे तख़्तपर रखे हुए रुपयेको इस तरह देखते रहते हैं, जैसे वह बिच्छू हो और अभी डंक मार देगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बड़े व्यथित और भरे मनसे उठकर आलमारीपर-से च्यवनप्राशका डिब्बा उतारते हैं। वे जानते हैं, डिब्बा कभीका खाली हो चुका है, पर वे अँगुलियोंसे काँछकर चाट लेते हैं। शायद साँसका फूलना कुछ कम हो सके और उन्हें आराम मिल सके। वे एक क्षण बड़े विचित्र ढंगसे जीभको आगे बढ़ाकर दाँतोंपर फिराते हैं, जिससे चप्-चप्की ध्वनि निकलती है, जैसे सचमुच उन्होंने च्यवनप्राश खाया हो—फिर झोला हाथमें लेकर वे दरवाज़ा ओढ़का देते हैं और कण्ट्रोलकी दूकानकी ओर चल देते हैं।

अभी सवेरा नहीं हुआ है और चारों तरफ़ कुहरेका समुद्र फैला हुआ है। सड़कपर विचित्र-सी निर्जीविता फैली हुई है और दिशाओंमें रिक्तताके तीर चुभे हुए हैं। माधव बाबू मफ़लरको कसकर गलेसे लपेट लेते हैं और बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। अचानक ही उन्हें अहसास होता है, जैसे उनके साथ कोई आ रहा है। वे रुककर पीछे देखते हैं, तो कुछ नहीं, धुँधलका होता है, जो उनसे सटा-सटा चल रहा होता है। एक बार वे ऊपरकी ओर देखते हैं, तो आसमानका कोई टुकड़ा उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। ताँबेके तार खम्भोंमें बँधे फैले हुए होते हैं, जिनपर भोरकी किरणें आकर बैठी हुई होती हैं। माधव बाबूको जोर-जोर खाँसी आने लगती है और मुँहपर मुट्ठीका सहारा दिये जब वे खाँसने लगते हैं, तो धुँधलका काँपने लगता है। उनका मन होता कि एक क्षणके लिए वे पुलियापर बैठकर साँस ले लें, पर उनके पास समय नहीं होता है। ज़ोर-ज़ोरसे साँस लेते हुए जब वे कण्ट्रोलकी दूकानपर पहुँचते हैं, तो आशाके विपरीत पहले आदमी नहीं होते हैं। आठ-दस आदमी पहलेसे ही वहाँ पंक्तिबद्ध खड़े होते हैं। वे सबसे पहले आदमीको बड़ी विवशता-भरी दृष्टिसे देखते हैं, जैसे वे थोड़ी देर पहले और आये होते, तो वहाँ होते और कमसे कम साढ़े छह बजे दूकान खुलते तक उसके पटरेपर बैठकर ठीकसे साँस तो ले सकते। अब यहाँ दो घण्टे धक्कम-धुक्कामें खड़े रहनेकी कल्पना मात्रसे ही वे भयानक रूपसे सन्त्रस्त हो जाते हैं और चारों तरफ़ चकर-पकर देखने लगते हैं कि मुहल्लेका कोई दूसरा व्यक्ति आया है या नहीं। निगम बाबूको देखकर उन्हें जाने क्यों बड़ा आत्म-विश्वास-सा होता है, जैसे उन्हें भय हो कि शायद दो घण्टे खड़े-खड़े न व्यतीत हो सकें और उन्हें कुछ अप्रत्याशित हो जाये, तो उन्हें घर पहुँचा दिया जायेगा····आख़िर दमेके मरीज़का क्या ठिकाना!

माधव बाबूने आते ही शकुन्तलाको झिड़क दिया है। अब सफ़ेद गेहूँ नहीं मिला, तो वे क्या करें? अधिकसे अधिक मेहमान जान ही तो जायेंगे न कि हम राशनका गेहूँ खाते हैं? चार घण्टे लाइनमें खड़ा होकर आ रहा हूँ। हारी-बीमारीको पूछनेको कौन कहे, बस सुबह-से शाम तक यही सुनो! जीमें आता है, कुछ खा-पी लूँ। सारा झंझट ही खत्म हो जाये····! शकुन्तला बेचारी ठिठकी विस्मयसे माधव बाबूको देखती ही रह जाती है। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ बोलती नहीं। एक बार आँगनसे ऊपर मुरैलीपर देखती है, फिर निश्चिन्तताकी एक साँस लेती है कि जो परदा वह बड़े जतनसे टाँगें हुए हैं, उसे माधव बाबूके पाषाण-से शब्द भेद नहीं पाये हैं। वह एक बार बस काँपकर ही रह गया। अप्रत्याशित रूपसे अनिवार्य समझकर वह चुपचाप ऊपर जाकर, महुआ पीसकर उसका पानी छानकर उबालती है और लाकर माधव बाबूको देती है। वे अब सुस्थिर हो गये हैं और आत्मग्लानिका अँधेरा उनके चेहरेपर अंकित हो गया है। वे कुछ बोलते नहीं और चुपचाप पानी पीने लगते हैं। शकुन्तला उनकी पीठ सहलाने लगती है। जब भी माधव बाबू ऐसी बातें करते हैं, वह बहुत डर जाती है। विगत उसके लिए अत्यन्त भयानक रहा है। गत चालीस वर्षोंमें उसके देखते-ही-देखते सभी अर्थ और सन्दर्भ परिवर्तित हो गये हैं, इसलिए अब उसे किसीपर विश्वास नहीं रहा है। वह प्रायः सोचती है, कहीं उन्होंने सचमुच ही कुछ खा-पी लिया, तो क्या होगा? अभी तो यात्रा लम्बी है और पथ उनके रहते ही सुझाई नहीं देता, तो···इसके आगे वह कभी कुछ नहीं सोच पाती। सोचना उसे किसी मरे हुएको देख लेनेके समान लगता है।

आज भी माधव बाबू ऑफ़िस नहीं जा सके हैं, जैसा कि राशन लानेवाले दिन अकसर ही होता है। खाना खाकर वे अखबार पढ़ रहे हैं और बड़ी गम्भीरतासे ताशकन्दमें शास्त्री-अय्यूब-वार्ताके सम्बन्धमें सोचने लगते हैं। यदि कोसिगिनके प्रयास सफल न हुए, तो क्या होगा? इसके बाद यदि चीन और पाकिस्तान मिलकर आक्रमण कर देंगे, तो क्या सचमुच विश्व-युद्धकी चिनगारी भड़क उठेगी? और तब अगर दो सौ रुपयेका मूल्य घटकर पचास रुपये ही हो जायेगा, तब तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी। कच्छके रनमें युद्धकी स्थिति बच जाने और २३ सितम्बरको अपेक्षित युद्धके पश्चात् युद्ध-विराम हो जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। वे नहीं चाहते कि कश्मीरको लेकर भारत और पाकिस्तानमें दोबारा युद्ध छिड़ जाये। यह इसलिए नहीं कि अचानक वे गौतम बुद्ध हो गये हैं, या शान्तिके देवदूत बन गये हैं—उन्हें कोई चिन्ता नहीं है कि कच्छका रन या कश्मीर भारतके हाथमें रहता है या नहीं—उन्हें चिन्ता है, युद्ध न हो, नहीं तो रुपयेका मूल्य घट जायेगा और देशके पथको अब वे जिस कृत्रिम सहजतासे तय कर लेना चाहते हैं, वह असम्भाव्य बन जायेगा।

धूप-भरा आकाश खिड़कीकी सलाखोंमें दिखाई पड़ता है। नीचे आँगनकी दीवालोंपर हलकी धूपकी कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ इस तरह अंकित हो गयी हैं, जैसे किसीने बड़ी असावधानीसे सफ़ेद दीवालपर पीले रंगमें डुबोकर ब्रश चला दिये हों। ऊपर सामनेकी छतपर लोग इकट्ठे हो गये हैं। वहाँ बच्चे कचर-पचर मच जाती है। अब दो दिनके लिए मेहमान आये हैं, तो उनके सामने कैसे जा सकता है, नहीं तो सर्दियोंसे भरी हुई दोपहरीका आलस सबपर छाया रहता है। वहाँ बातोंको कोई लगाम नहीं है और चर्चाकी कोई सीमा नहीं है। अपने कमरेमें रजाई ओढ़कर मुँहको अखबारसे ढँके लेटे माधव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचते हैं, लोग कितने खोखले हो गये हैं। खोखला मन, खोखली बातें, लेकिन कुशल अभिनय। उनकी समझमें नहीं आता। मृत्यु-का यह कौन-सा रूप है? पहले तो शहरमें एक ही श्मशान-घाट हुआ करता था, पर अब तो जैसे सारा शहर ही श्मशान-घाट बन गया है। हम सब मरे हुए लोग····अन्दरसे सन्त्रस्त, आशंकित और अस्वस्थ और ऊपरसे ज़िन्दगी ढोये चले जानेकी विवशताको सहजतासे झुठलानेकी प्रवृत्ति···! सारे जीवन-भर वर्तमानको कठोरताको आगतको मधुरताकी आशा-में वे विषकी भाँति पीते-पीते इस बिन्दु तक पहुँच गये हैं, फिर भी उन्हें जैसे विश्वास है कि 'जेल गये देशभक्तों' की बात कदाचित् एक दिन सच निकलेगी; और वे आगतके लिए प्रतीक्षारत हैं!

वे आँगनमें आकर यों ही खड़े हो जाते हैं, जैसे आगत इस धूपको छाँव है और जैसे-जैसे यह वर्तमानकी धूप सरकती-सरकती पिछवाड़े विरमती जायेगी, आगतको तसवीर स्पष्ट होती जायेगी। एक बार उनके मनमें आता है कि धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे चढ़कर ऊपर चलें और क्षण-भरके लिए धूपमें बैठें। यह सोचकर वे सीढ़ियोंपर चढ़ने लगते हैं, पर आधी सीढ़ी चढ़नेके साथ ही एक तेज़ महक उन्हें अनायास ही छू जाती है और वे क्षण-भरके लिए दबे पाँव ठिठके खड़े रह जाते हैं, जैसे कोई महत्त्व-पूर्ण रहस्य है, जिसके सारे सूत्र अभी उनके सामने स्पष्ट हो जायेंगे। वे वहींसे ज़रा तिरछे होकर देखते हैं—पम्मो एक मेहमानको छोटी शीशीसे आँवलेका तेल लगा रही होती है। वह छोटी शीशी मदनसे मँगायी गयी होगी—वे सोचते हैं। ऐसी चीज़ें वह ला देता है, इसमें उसकी प्रेस्टिज़ लूज़ नहीं होती। प्रेस्टिज़····हुँह! वे इस तरह मुँह बिचका लेते हैं, जैसे प्रेस्टिज कोई स्त्री हो, जिसे घर-के सभी लोग पवित्र तथा गरिमामयी समझ-कर उसके सतीत्वकी रक्षाके लिए प्रत्येक क्षण सजग रहते हैं और जिसे वे स्वयं एक वेश्याके अतिरिक्त कुछ और नहीं समझते; जिसपर थूकनेके सिवाय किया ही क्या जा सकता है? वेश्या तो वही न रख सकते हैं, जो साधन-सम्पन्न····कंगलों और वेश्याका क्या सम्बन्ध भला!

कदाचित् मेहमानका सिर दर्द कर रहा है। शकुन्तला पूछती है, "अब कुछ आराम मिला? आँवलेका तेल सिर-दर्दको तो जादूकी तरह हर लेता है। पहले मैं सिर्फ़ आँवलेका तेल ही लगाया करती थी, पर अब सरसोंका तेल लगाती हूँ····" शकुन्तला एक क्षणको रुक जाती है। जैसे अन्दर-ही-अन्दर ऐंठन उत्पन्न हो गयी हो, फिर अनिवार्य समझकर शीघ्रता-से वाक्य पूरा करते हुए कहती है, "मेरे बाल झड़ते हैं। वैद्यने बताया है, सरसोंके तेलसे बालोंका झड़ना बन्द हो जायेगा····अब कैसा आता है आँवलेका तेल? कुछ असर करता है या दूसरी चीज़ोंकी तरह उसमें भी मिलावट होने लगी है?" माधव बाबूका बूढ़ा मन हाहाकार करने लगता है। वे ऊपर नहीं चढ़ पाते। नीचे उतर आकर आँगनमें फिर टहलने लगते हैं। उनमें अचानक बड़ी उत्तेजना आ जाती है और वे आवेशमें सोचते हैं, कुछ करें और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उनकी कुछ समझमें नहीं आता, तो वे बाँसमें चिथड़ा लपेटकर आँगनके कोनोंमें लटके काले-काले जालेको साफ़ करने लगते हैं। अकसर अपने दरवाज़ेकी डयोढ़ीपर बैठकर जब वे व्याकुलतासे रातके व्यतीत होनेकी प्रतीक्षा करते हैं तो ये जाले उन्हें चमगादड़ोंका आभास देते हैं और उन्हें प्रायः लगता है जैसे वे स्वयं भी एक चमगादड़ हैं, जो लटके हुए हैं, जाने क्यों ?

■

दोपहरकी डाकसे पोस्टमैन पत्र दे जाता है और माधव बाबू भड़क उठते हैं। वे वहींसे मदनकी माँको ज़ोरसे पुकारते हैं और सामनेकी छतपर चर्चाओंकी चर्खी बन्द हो जाती है। एक क्षणके लिए चेहमेगोइयाँ होने लगती हैं और फिर ऐसी स्तब्ध नीरवता अनायास छा जाती है, जैसे हवाई हमलेका सायरन बज गया हो और लोग भयानक रूपसे सन्त्रस्त होकर आशंकित हों कि शत्रुके विमानोंसे अब बम गिरा, तब गिरा और एक क्रूर तबाहीका कठोर दृश्य घूम जायेगा। शकुन्तला सहमी-सहमी नीचे भागी आती है और माधव बाबूके क्रोधमें तमतमाये चेहरे और काँपते ओठोंको देखकर चुपचाप पीठ सहलाने लगती है। वह कुछ पूछती नहीं, बस प्रश्न-भरी दृष्टिसे उनको देखती ही रह जाती है।

माधव बाबू एक बार पत्रकी ओर देखते हैं, फिर शकुन्तलाकी ओर। उनकी भृकुटियाँ तन जाती हैं और माथेपर बल पड़ जाते हैं। वे एकदमसे गरजते हैं, "लो सुनो लायक़ सपूतकी करतूत !" शकुन्तला बिना कुछ कहे ही सन्नाटेमें आ जाती है और एक विचित्र आशंकासे त्रस्त हो जाती है। वह उनके कानमें फुसफुसाते हुए कहती है, "कितनी बार कह चुकी हूँ, धीरे बोलनेसे क्या कुछ बिगड़ जायेगा ? ग़ुस्सा करके क्यों अपना कलेजा जलाते हो ? पहलेके ही दुःख क्या कम हैं ? आख़िर बात क्या है ?" माधव बाबू अचानक ही कुछ उत्तर नहीं दे पाते हैं। बड़ी कठिनाईसे अपनेको संयत और सहज बनानेकी कोशिश करते हुए कहते हैं, "बाबू ज्ञानशंकरकी चिट्ठी आयी है। मदनने सुधासे विवाह करनेके लिए लिखा था। उन्होंने इनकार करते हुए अबाही तबाही लिखकर भेज दी है।" शकुन्तला उनकी तरफ़ देखती ही रह जाती है, जैसे माधव बाबू बहुत अजनबी हों और उनका चेहरा उसके लिए नितान्त अपरिचित हो। यहाँ देखते-ही-देखते माधव बाबूका चेहरा धुँधला होकर मिट जाता है और एक अत्यन्त धँसी हुई आँखोंवाला करुण-प्रशान्त साँवले रंगका चेहरा उभर आता है, जो मदनका होता है। वह हतप्रभ उस चेहरेको पहचाननेकी कोशिश करने लगती है। इस चेहरेको तो उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसे विश्वास भी नहीं होता कि इसी चेहरेवाला उसका मदन ऐसा लिख सकता है। माँ अपनी करुणा और स्नेहशीलताकी विराटतामें उस चेहरेको छिपा लेती है, जो एक बिन्दु बनकर उसके मनमें उतर आता है। उसे प्रतीत होता है जैसे वह कमरा कोई कठघरा है, जिसमें वह क़ैद कर लिये गये हैं और अब उसे छूटनेकी कोई सम्भावना ही शेष नहीं रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—जहाँ मृत्यु ही अन्तिम नियति है, जो एक विडम्बना है!

जाने कैसे मदनको ऊपर खबर लग जाती है। वह आकर टुटली कुरसीपर बैठकर दीवालमें धँस जाता है। उसकी शेव दो दिनकी बढ़ी हुई होती है और रूखे बाल माथे-पर बिखरे हुए होते हैं। सफ़ेद बुश्शर्टके सामनेकी दो बटनें टूटी हुई होती हैं, जिनपर स्वेटर नहीं होता। वह अपनी दोनों बाँहोंसे सीनेको जकड़कर बैठा हुआ होता है। वह कुछ पूछता नहीं। दृश्यकी कठोरता ही जैसे उसे यथार्थताका बोध करा देती है और वह दूसरी बातोंकी तरह अबाही-तबाही नहीं सुनाता, बस अपराधियोंकी भाँति मौन बना रहता है।

माधव बाबू कनखियोंसे उसे देखकर बहुत विचलित हो जाते हैं। उन्हें बातोंका सूत्र नहीं मिलता। वे हाथोंसे अपने बालोंको सँवारनेका प्रयत्न करते हैं। शकुन्तला थोड़ा आगे खिसक आती है। वह बड़ी भयभीत दृष्टिसे माधव बाबू-की ओर देखती है। वह नहीं जानती, अगले क्षण क्या हो जायेगा, पर उसकी सीधी-सादी समझ जैसे इसका आभास देती है कि कुछ अप्रत्याशित घटित होनेवाला है और वह रहेगी, तो मदन अरक्षित नहीं रहेगा। एक अव्यक्त-सी नीरवता और अभिव्यक्तिकी असमर्थता उन सभीको इस प्रकार डस लेती है, जैसे वे सभी अभी श्मशान-घाटसे किसी प्रियजनकी लाशका दाह-संस्कार करके लौटे हैं और उससे सम्बन्धित विगतकी स्मृतियाँ अलग-अलग सतहोंपर उन्हें मथ रही हैं।

उस अजनबी सन्नाटेको कोई तोड़ना नहीं चाहता। सभी मौन हैं और दिशाएँ खोज रहे हैं। कुछ भी तो नहीं कहा गया है, फिर भी वे अनुभव करते हैं—कोई अव्यक्त शक्ति उन्हें अलग-अलग खींच रही है, जिससे एक-दूसरेसे वे और भी दूर होते जा रहे हैं और एक नक़ली ढंगका वातावरण उभरता जा रहा है। माधव बाबूसे रहा नहीं जाता और वे चुपचाप ज्ञानशंकर बाबूका पत्र काँपते हाथोंसे मदनको पकड़ा देते हैं। शकुन्तला कहती है, "बेटा, तुम तो ज्ञानशंकरको जानते ही हो, किस दिमाग़के आदमी हैं। सुधाके बारेमें भी तो तुम सब कुछ जानते ही हो। वह पूरे बनारसमें बस्साती है और घर-घर उसका क़िस्सा जानता है। वह इतनी आवारा और भ्रष्ट लड़की है कि गुण्डोंने उसके घरके सामनेवाली सड़कका नाम सुधा रोड रख दिया है। विजयके साथ उसने जो किया है, वह भी तुम जानते ही हो; और फिर कहीं सगी बहनोंके बेटे-बेटियोंमें शादी हो सकती है भला? हमें दुनिया-जहानमें भी रहना है कि नहीं....''

मदन कोई उत्तर नहीं देता है। माधव बाबू बहुत व्यथित हो जाते हैं। उनकी सारी उत्तेजना और आवेश सावनकी धूपकी तरह ही होता है और अब वे समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या करें? कहीं बात बिगड़ गयी तो मदन कुछ कर न ले—यह सोचकर वे बहुत भय-भीत हो जाते हैं। यहाँ वे अपने युगके अनुभव और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिका ही आश्रय लेते हैं। उन्होंने जीवनमें दसियों ऐसे केस देखे हैं कि हँसते-खेलते परिवार नष्ट हो गये फिर मदन जैसा भावुक आदमी—उनका बूढ़ा मन बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी शेष आशाके भी काँप जाता है और अचानक ही उन्हें लगता है, जैसे वे बहुत अकेले और निराश्रित हो गये हैं; किसी अव्यक्त शक्तिने इन्हें डयोढ़ीके बाहर कर दिया है और अब डयोढ़ी पार कर फिर अन्दर जानेमें वे असमर्थ और विवश हैं। वे जानना चाहते हैं, आख़िर वह अव्यक्त शक्ति कौन है, जिसने उन्हें इतना पंगु बना दिया है। अपनी असमर्थता और दीनावस्थापर उन्हें आन्तरिक क्षोभ होता है। उन्हें अनुभव होता है, वे सब मेहमानोंसे अधिक कुछ और नहीं हैं और एक अपरिचित दायरेसे घिरे 'सराय' में अनजान दिशाओंसे आकर कुछ कालके लिए एकत्रित हो गये हैं। उन्हें एक-दूसरेके व्यक्तिगत सम्बन्धोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है क्योंकि दूरियोंके अजगर उन सभीके बीचमें मुँह बाये पड़े हुए हैं, जिन्हें लाँघा नहीं जा सकता····वे इस ढंगसे सोचते हैं, जैसे इस ऐकान्तिकता, तनाव और अपरिचित परिवेश-का अनुभव उन्हें पहली बार हो रहा हो !

शकुन्तलाकी ऐसी स्थितियोंमें कठिनाई हो जाती है। वह बहुत चाहते हुए भी कभी वर्त-मानको समझ नहीं पाती। वर्तमान और मदन-को समझनेमें उसकी स्थिति अजन्ता और एलोराकी पाषाण-प्रतिमाओंके सम्मुख खड़े उस दर्शककी भाँति होती है, जो ऐतिहासिक सन्दर्भों एवं सांस्कृतिक विरासतोंसे नितान्त अपरिचित उन्हें मात्र पाषाण-प्रतिमा ही सम-झती हो। शकुन्तलाको नहीं मालूम, उसे क्या कहना चाहिए ? वह इतना जानती है, मदन रहस्यमय हो गया है। उसमें वह अपने उस छोटे-से शिशुको खोजनेका प्रयत्न निर· करती है, जिसे वह दुलारती थी, अँकवा· थी, लोरियाँ गा-गाकर सुलाती थी। पर· क्षण उसे यही प्रतीत होता है अब कि· किसने उससे उस नन्हें शिशुको छीन लि· और उसकी जगह एक अपरिचित आ ग· जिसका नाम मदन है। वह जानती है, उ· कहना नक़ली है, फिर भी वह कहती· "तुम आख़िर दूध क्यों नहीं लेते ? देखो· तुम्हारी हड्डी-हड्डी दिखाई पड़ रही है"· छोड़ो, इसमें इतना सोचनेकी क्या बात· तुम्हारे लिए क्या वह आवारा-बदचल· रह गयी है ! कुछ हो जाओ, तो हम तु· लिए परी लायेंगे परी···"

मदन यह सब नहीं सुनता। वह· संजीदगीसे कहता है, "बाबूजी, आप· शॉक्ड हुए होंगे, जानता हूँ। मुझे उन क· शन्स और संकल्पोंकी याद भर आती है· समझ नहीं पाता हूँ। यह तमाशा क· सुधाको क्या आवश्यकता थी। वह पिछले· वर्षोंसे मुझे फ़िज़ूल-फ़िज़ूल पत्र लिखती· पर, वह अभी सिर्फ़ बच्ची है"···मुझे ही· समझना चाहिए था"···उसकी बातोंपर वि· कर मुझे यह बचपना नहीं करना चाहि· पर जाने क्या हो गया था मुझे···" वह· क्षण रुकता है। उसकी आवाज़ काँपती है· चेहरेपर न समझ आनेवाली प्रशान्तता· आती है। आँखें मिचमिचाकर वह कह· "देखिए न, कभी-कभी हम अनजाने ही· ग़लतियाँ कर बैठते हैं कि बहुत चाहने· उनमें सुधार नहीं कर पाते। मैं आ·

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उसकी सच्चाई क्या है, फिर भी····मैं कहता हूँ, मुझे सब कुछ समझना चाहिए था और ज्ञान मौसाको वह पत्र नहीं लिखना चाहिए था····"

वह उठकर चला जाता है। थोड़ी देरमें शकुन्तला भी उठकर चली जाती है। उसे भय है, अधिक देरकी 'कान्फ्रेन्स' से मेहमान जाने क्या सोचने लगें! अब माधव बाबू बड़े अकेले रह गये हैं। जाने क्यों उन्हें लगता है, उनका मिथ्या दम्भ टूट-टूटकर बह गया है और जो कुछ परिवर्तित हुआ है उसे निरन्तर झुठलानेका अंजाम भयंकर बन गया है। अपनी असफलताएँ उन्हें चुनौती लगती हैं और स्थिति-को कठोरता घुटनकी विवशता बन जाती है।

■

खिड़की और दरवाज़ेसे शामका धुँधलका चुपचाप आकर कमरेमें फैलने लगा, तो अचानक ही माधव बाबूको शाम होनेका अहसास होता है। घरमें मौत-सा सन्नाटा है और बाहर विचित्र-सी स्तब्धता है। वे अनुमान लगाते हैं, शायद मेहमान चले गये हैं। वे आये होंगे और उन्हें सोता देखकर वापस चले गये होंगे। उन्हें विस्मय होता है, क्या वे सचमुच सो गये थे। वे चुपचाप उठकर बैठ जाते हैं और चकर-चकर चारों तरफ़ इस प्रकार देखने लगते हैं, जैसे वे किसी नयी अजनबी जगह आये हों, जहाँकी प्रत्येक चीज़ उन्हें अपरिचित लग रही हो। उनकी दृष्टि सामने दीवारपर गड़ जाती है। कहीं ऊबड़-खाबड़ ईंटें मुँह बाये लगती हैं और कहीं बाहर निकलकर जम आये गारे-की आकृति ऐसी प्रतीत होती है जैसे ईंटोंने मुँह पिचका लिया हो। उन्हें आभास होता है, इन अलग-अलग ईंटोंपर कोई इतिहास अंकित नहीं है। अगर कभी था भी, तो उसे परिस्थितियोंकी वक्रता, अनमापी विपन्नता और कालकी क्रूरताने मिटा दिया है। उन्हें यह सोचना भी विचित्र-सा प्रतीत होता है कि जो युग उन्होंने जीया है, उसका कोई इतिहास भी हो सकता है। यह सोचकर वे निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं कि दरअसल कोई इतिहास लिखनेकी सामर्थ्य उनमें थी ही नहीं; इतिहास तो दूसरे लोग लिखेंगे। उन्हें जिज्ञासा होती है, जाने कैसा होगा वह नया इतिहास, जो इन ईंटोंपर अंकित किया जायेगा!····

वे जाने कबतक यों ही सोचते रहते कि शकुन्तला आकर उन्हें झँझोड़ देती है। वह झोला देते हुए कहती है, "जैसे भी हो, कुछ अच्छे क़िस्मका चावल और देशी घी लेते आओ। बैगन पतले-पतले मिल जायें, तो वह भी ले लेना।" माधव बाबू आश्चर्यसे कहते हैं, "क्या दूसरे मेहमान आनेवाले हैं? भई, उधार बहुत चढ़ चुका है।" शकुन्तला इस कटु सत्यताके समुद्रके सामने अनुत्तरा नहीं होती; वह दार्शनिकोंकी भाँति कहती है, "उधारकी तो हमारी ज़िन्दगी ही हो गयी है, उसका क्या करें? मेहमान नहीं आनेवाले हैं, पर हमें पम्मी, श्यामजी और मदनका भी तो कुछ सोचना चाहिए न? अब इस तरह बहुत दिनों तक नहीं चल सकता।"

शकुन्तला जल्दी ही चली जाती है। वह रसोई छोड़कर आयी थी। माधव बाबू कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़बड़ाते नहीं हैं और न आवेशमें आते हैं। वे बहुत थके-हारे-से दीया जलनेका समय व्यतीत हो जानेकी प्रतीक्षा करते हैं, ताकि बनियेको उधार देनेमें कोई आपत्ति न हो। शब्द'''शब्द''''शब्द''''उन्हें आभास होता है, उनके चारों तरफ़ शब्द-ही-शब्द बिखर गये हैं, जिनका अपने-आपमें कोई अर्थ नहीं है और वे उन शब्दोंको लिखी जानेवाली काली स्याही हैं, जो बिलकुल महत्त्वहीन बन गयी है।

■

सर्दी बहुत बढ़ गयी है और कुहरेकी झील तैर गयी है। दूकानोंके स्लाइड्स और नियॉन लाइट्स अँधेरेके जुगनुओंकी भाँति उस धुँधलकेमें जलते-बुझते रहते हैं। सड़कोंपर कोई कोलाहल नहीं है, केवल स्प्रिंगदार खिलौनोंकी भाँति कुछ थोड़े-से लोग हाथ-पाँव हिलाते या चलते-फिरते माधव बाबूको दिखाई पड़ते हैं। वे झोला हाथमें लिये बहुत आहिस्ता-आहिस्ता चल रहे हैं। सिन्धी बनियेकी दूकान अभी दूर है और खयालोंकी विक्षिप्तियाँ उन्हें पूरी तरह घेर लेती हैं। उन्हें लगता है, कालके त्वरित प्रवाहमें शेष वे मात्र ध्वंसावशेष हैं, जिसका सम्बन्ध वर्तमानसे उतना नहीं है, जितना इतिहाससे। वे अनुभव करते हैं, समय किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता, वे ही समयके साथ नहीं चल पा रहे हैं। वे रोज़ निश्चय करते हैं, अब वे ओवरटाइम करेंगे, ताकि जिस छतके नीचे बड़ी कठिनाईसे सबको लाये हैं, वह टूटे नहीं। पर अपनी अस्वस्थताके कारण पराजित हो जाते हैं। पराजय-भरी घुटनमें उन्हें लगता है, इस अलगाव, दबाव कटुताका सारा दायित्व उनपर ही है। असमर्थता और अस्वस्थताको ही है—वे किसी दूसरेको शामिल नहीं करना चाहते किसीको भी नहीं''''किन्तु दूसरे ही उन्हें आशंका अपने ऊपर ही है। वे विश्वास दृढ़ करनेकी कोशिश हैं कि वे माधव बाबू ही हैं, कोई नहीं और इसी सड़कपर झोला लेकर चलते उन्होंने इस ज़िन्दगीके अड़तीस गुज़ार दिये हैं, तब इन दूकानोंमें पता नहीं था और जो थीं, उनमें यह नहीं थी''''अचानक ही सूँऽऽऽऽकी आ होती है और दो लोग उन्हें खींचकर किनारे कर देते हैं''''एक रोल्स गाड़ीसे वे बिलकुल दबते बच गये थे, ड्रायवर आग्नेय नेत्रोंसे माधव बाबूको घूरता हुआ चला जाता है''' पल-छिनके कुछ लोग तमाशाइयोंकी भाँति दिशाओंसे आकर इकट्ठे हो गये थे, फिर जाते हैं। रह जाते हैं अकेले माधव एक क्षणके लिए तो उनकी समझमें ही आता कि आख़िर क्या हो गया है सड़कके बीचमें कैसे पहुँच गये थे''''! वे रॉयसकी चमचमाती गाड़ीको सीधी धुँधलकेमें डूबते हुए देखते रहते हैं फिर धीरे वह एक बिन्दु बन जाती है और हो जाती है। पर माधव बाबूको लगता वह नयी गाड़ी वापस आकर उनके तेज़ीसे दौड़ रही है, दौड़ रही है'''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

श म शे र

भीमसेन त्यागी

"ओहो ! भई क्या हो रहा है ! आरामसे सोने भी नहीं दोगी !" घनश्याम बड़बड़ाया और उसने करवट लेकर फिर लिहाफ़में मुँह छिपा लिया।

"यह चाय ठण्डी हुई जा रही है," सिरहाने खड़ी सन्तोष बोली, "तुमने ही तो कहा था—जल्दी उठा देना, शमशेरके यहाँ जाना है।"

घनश्यामने कुछ नहीं सुना और गडमड हुआ बिस्तरमें लेटा रहा।

सन्तोषने चायकी प्याली स्टूलपर रख दी और लिहाफ़ हटाकर घनश्यामके बालोंमें उँगलियोंकी कंघी करने लगी, "मैंने का जो, चाय !"

"चाय ? अच्छा-अच्छा....." शब्द चाशनीके तारकी तरह लटकते रह गये।

सन्तोषने उसे हाथके सहारेसे उठाया और चायकी प्याली पकड़ाकर रसोईमें चली गयी। घनश्यामकी आँखोंमें फिर नींदका कीड़ा रेंगने लगा।

कुछ देर बाद घनश्याम बिस्तरपर हाथ फेरते हुए बड़बड़ाया, "भई, गुड्डोको रात फिर मेरे पास सुला दिया ?"

"नहीं तो। वह तो मेरे पास थी।" रसोईसे आवाज़ आयी।

"तो फिर यह बिस्तर कैसे भीग गया ?"

"बिस्तर ?" सन्तोष हाथमें अधकटा बैंगन लिये ही उठ आयी, "अरे ! यह क्या तमाशा कर लिया ! खुद अपने ही साथ होली खेल ली !"

"ऐं !" घनश्याम हड़बड़ाकर उठा, "क्या हुआ ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"होता क्या, देख लो !"

घनश्यामने उठकर देखा कि प्याली लिहाफ़के पर्वतकी घाटीमें लुढ़की पड़ी है और प्लेट ऊपर चोटीपर रखी है। चाय लिहाफ़पर मॉडर्न पेण्टिंग बनाती हुई नीचे बेडशीट तक बह आयी है।

"अरे-रे-रे !" घनश्याम उछलकर बिस्तर-से बाहर आ गया, जैसे उसमें मरा हुआ चूहा पड़ा हो।

"बड़ी ठण्ड है," उसने दोनों बग़लोंके नीचे हाथ दबाकर ठण्डको भगानेकी कोशिश की और कम्बल लपेटकर मूढ़ेपर बैठते हुए पूछा, "भई, टाइम क्या हो गया ?"

"बस, यूँ फूंकते रहा करो मुझे !" सन्तोषने मूढ़ेके ठीक पीछे कॉरनिसपर रखी घड़ी उठाकर उसके सामने कर दी।

"साढ़े सात !" घनश्याम चौंका, "भई, मुझे पहले क्यों नहीं उठाया ! शमशेरके यहाँ नौ बजे मुण्डन है। अभी तैयार होना है और घण्टा-भर तो बस ही खा जायेगी ! यहाँ रखा है रामकृष्णपुरम् ! रात कहा नहीं था कि सुबह जल्दी उठा दीजो !"

"उठाती किसे ? तीन-चार बार तो आवाज़ दी।"

"वाह ! पकड़कर उठा देती।"

"पकड़कर उठाया तभी तो यह तमाशा हुआ।" सन्तोष दुबारा चाय बनानेके लिए फिर रसोईमें जाने लगी।

"सुनो तो !"

"जी !"

"ज़रा सिगरेट तो दे जाओ।"

"फिर वहीं, रखे तो हैं।" सन्तोष कर वापस आयी और उसने पलंगके सिरहाने से पैकेट उठाकर घनश्यामको पकड़ा दिया वह सिगरेट निकालकर पैकेटपर ठोंकने लगा सन्तोषने माचिस खींचकर सिगरेटके होंठों लिपस्टिक लगा दी और डिब्बीको खड़खड़ा रसोईकी तरफ़ चली गयी।

घनश्यामने कश खींचकर अँगड़ाई ली।

"सन्तोष !"

"जी !"

"भई, अख़बार आया ?"

घनश्यामने आगे झुककर पायताने बारह पैसेवाला अख़बार उठा लिया···· शमशेर दिन-भर अख़बार बग़लमें फिरता है····सोलह पैसेवाला ख़रीदता है बेकार ! ख़बरें तो सब इसमें भी होती हैं

अख़बारमें कोई ख़ास ख़बर नहीं बैनर-लाइन किसी मन्त्रीके भाषणका टुकड़ा थी। पॉकेट-कार्टूनपर नज़र उसमें भी दम नहीं था। घनश्यामने पन्ना पलट दिया····अरे ! आज तो मैट्रिमोनियलमें मज़ा आयेगा····वह साथ पढ़ने लगा : दो बच्चोंके पिता, वर्षके विधुरके लिए वधूकी आवश्यकता अबे ! आवश्यकता वधूकी है या आयाकी

····आवश्यकता है—जुड़वाँ बहनोंकी जुड़वाँ भाइयोंकी····उल्लूके पट्ठे !··· खोलनेका इरादा है ? कुछ नहीं जी, बकवास है····हमने जल्दी शादी करके ख़राब कर ली····अब शादी करते तो आता····उसने भी तो की है शादी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोकरी मारी है····

"सन्तोष !"

"जी !"

"भई, ऐसा करो, तुम जल्दी-जल्दी सब काम निबटाकर तैयार हो जाओ। गुड्डीको भी फ़्राक-व्राक पहना दो। देर तो हो ही गयी पर····"

"मैं तो हो जाऊँगी तैयार लेकिन तुम ?"

"मेरी फ़िक्र मत करो। पाँच मिनिट लगेंगे।"

सन्तोष अन्दर जाने लगी····

"अरे हाँ, ज़रा शेवका सामान तो दे दो।"

"बस ! यूँ तो हो ली मैं तैयार शाम तक।"

"चख-चख करती रहोगी, यह नहीं कि शेवका सामान ला दो !"

"ठहरो, पहले चाय नहीं पीयोगे ?"

"चाय ? अच्छा····"

चायकी पहली चुस्की लेते ही घनश्यामने ऐसा मुँह बनाया जैसे अचानक शमशेर सामने पड़ गया हो····

"सन्तोष !"

"जी !"

"चाय साबुनके पानीमें बनायी है क्या ?"

"क्यों ?" सन्तोष सामने आ खड़ी हुई, "अच्छी नहीं है ?"

"अच्छी ?" घनश्यामने चायका एक और घूँट भरा, "ठीक कहा है किसीने—अच्छी बीवी और अच्छी चाय मुक़द्दरसे ही मिलती है। शमशेरकी बीवी भी तो है···· कैसा फ़्लेवर है उसके हाथकी चायमें ! गये नहीं थे उस दिन····"

"अच्छा-अच्छा !" सन्तोष फिर अन्दर जाने लगी।

"भई, सुनो तो।"

"हूँ !"

"वह शेवका सामान ?"

सन्तोष आलमारीकी तरफ़ बढ़ी। टॉफ़ीके डिब्बेमें बन्द शेवका सामान स्टूलपर रखकर प्लास्टिककी कटोरीपर एक नये फ़िल्मी गानेकी ताल देती अन्दर चली गयी।

घनश्यामने डिब्बा खोलकर उसमें पड़े तीन-चार नंगे ब्लेड देखे—कौन-सा सबसे नया है ? पता नहीं, सब एक-से लगते हैं···· वह साला रोज़ शेव करता है····पता नहीं, क्या समझता है अपनेको····कहता है, मिस कपूर उसके सिवा किसीकी तरफ़ नज़र तक नहीं उठाती। बाँसको तो वह चुगद समझती है····और साले तुझे ? तेरे जैसे न जाने कितने शमशेर उसके पर्समें पड़े रहते हैं····वैसे है साला बोल्ड····उस दिन शामको कपूरकी टेबलपर जा खड़ा हुआ····है वह भी फ़ितनी, ····मशीन रोककर उँगलियाँ चटखाती हुई उसकी तरफ़ ऐसे देखने लगी जैसे ईदका चाँद देख रही हो····'दिन-भर टिप-टिप करते उँगलियाँ दुखने लगती होंगी,' शमशेरने कहा और कपूरका हाथ अपने हाथमें लेकर धीरे-धीरे उसकी उँगलियाँ सहलाने लगा····कपूर भी तो आयेगी आज मुण्डनमें····

"लो जी, पानी !" सन्तोष कमरेमें दाख़िल हुई। उसने प्लास्टिककी कटोरीको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी सावधानीसे पकड़ रखा था जैसे उसमें पानी नहीं घी हो।

··· कैसी बौड़म औरत है····इसे देखकर क्या सोचेंगे यार लोग····

"सन्तोष !" घनश्यामने माथा ठोंकते हुए धीमे स्वरमें कहा।

"जी !"

"....."

"कुछ कह रहे थे ?"

"नहीं तो····हाँ, ऐसा करो····"

'क्या ?"

"कुछ नहीं, मैं सोच रहा था कि ठण्ड बहुत पड़ रही है। गुड्डीका साथ है। तुम क्या करोगी जाकर, मैं हो आता हूँ !"

"तो हो आओ।"

घनश्यामको लगा—सन्तोष बुरा मान गयी है। बोला, "तो ऐसा करो····"

लेकिन तबतक सन्तोष फिर रसोईमें जा चुकी थी।

घनश्याम ब्रुश उठाकर तेज़ीसे शेविंग राउण्डपर रगड़ने लगा····कुछ नहीं जी, कैसी निकम्मी औरत पल्ले पड़ी है····ज़रा-ज़रा-सी बातपर मुँह फुला लेती है····भला कोई बात हुई····ठीक कहा है किसीने····

"भई, सुनती हो !"

"जी !"

"तो ऐसा करो कि हो जाओ तुम भी तैयार !"

"क्यों ? तुम तो अकेले जानेके लिए कह रहे थे ?"

"देख लो !"

"देखना क्या है, तुम फटाफट तैयार हो जाओ।" सन्तोषने निर्णय दिया, "नौ बजे उनके यहाँ मुण्डन है, सवा आठ बजने आये। पहुँचनेमें भी तो समय लगेगा।"

घनश्यामको लगा—वह ग़लतीपर था। सन्तोषने बुरा नहीं माना है····कुछ नहीं जी यह औरत बाक़ई बौड़म है····हर बातमें हाँ हाँ मिलाती रहती है, जैसे इसकी अपनी कोई राय ही न हो····

घनश्याम तेज़ीसे शेविंग राउण्डमें ब्रश घुमा रहा है, ज़रूरतसे ज़्यादा झाग उभर इकट्ठे हो गये हैं और साबुनके बड़े-बड़े छोटे गिरकर फूटने लगे हैं····यह क्या बेहूदगी है···· साला कोई काम है शेव करना····वह न जाने कैसे रोज़ शेव कर लेता है····कहता है—कभी पार्टी-शार्टीमें जाना हो तो दिनमें दो बार भी करता है····आलस नहीं आता ?

घनश्यामने हाथको घुमाव देकर झटकेसे ब्रश उठाया और इसे ठुड्डीपर रगड़ने लगा। उसकी गरदन सिक्वेराकी पेंटिंगके मुक्त मानव की तरह ऊपर उठ गयी और साबुनका एक बड़ा-सा छाला क़मीज़के कॉलरपर गिरकर फूट गया····

हत्तेरेकी ! ब्रश स्टूलपर रखकर उसने कालरसे छाला पोंछा तो वह एक बार फिर मुक्त मानवसे साधारण मानव बन गया।

"सन्तोष !"

"जी !"

"भई, थोड़ा पानी गरम रख दो। मालिश करके नहाऊँगा।"

"मालिश !" आश्चर्यका तिलक सन्तोषके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माथे चढ़ गया, "क्यों मुण्डनमें नहीं जाना है ?"

"बस। बहस करवा लो इससे तो। अरे भई, एक बार कह दिया तो रख दो पानी।"

सन्तोष चुपचाप अन्दर चली गयी।

····वैसे सन्तोष कहती तो ठीक है····देर हो जायेगी····यूँ भी क्या फ़ायदा मालिशसे···· बिलावजह कपड़े चिकने होते हैं····ठण्ड वैसे ही पड़ रही है····सुना है, महात्मा गान्धी रोज़ मालिश करवाते थे····हूँअ !

"भई, सुनो तो !"

"जो !"

"रहने दो, मैं नहीं करता मालिश-वालिश।"

"क्यों, क्या बात हुई ?"

"बात क्या, मार डालनेका इरादा है ? देखती नहीं, कितनी ठण्ड पड़ रही है !"

"तुम्हीं तो कह रहे थे····"

"मैं तो कहूँ····कुएँमें गिरूँगा। तुम गिरने दोगी ?"

सन्तोष चुप खड़ी रही।

मुँहपर काफ़ी साबुन थोपकर घनश्यामने सेफ़्टी-रेज़र उठाया—खचर-खच-खचर····

····ब्लेड पुराना ही है····लगता है, तीन शेव बना चुका····कुछ नहीं जी, यह सब चक्कर-बाज़ी है—चार-चार शेव बनाते रहो एक ब्लेडसे····अब हर शेव नये ब्लेडसे बनाया करूँगा····वह भी तो बनाता ही है····पता नहीं साला कहाँसे लाता है इतना पैसा ! तनख़्वाह तो हमें भी इतनी ही मिलती है····अजी, उसकी औरत सलीक़ेवाली है····और एक अपनी यह····

खच-खच। खचर····

····ब्लेड वाक़ई पुराना है, आख़िर कहाँ-तक चलेगा····देशी है··· ये हिन्दुस्तानी भी तरक़्क़ी नहीं कर सकते····कोई ढंगकी चीज़ बनायी है आज तक ? वह कौन-से ब्लेडसे शेव बनाता है ? एक बात ज़रूर है, पर्सनेलिटी है सालेकी···सुनते हैं, असिस्टेण्टका चांस है···· बॉस हर मामलेमें उसीकी राय लेता है····ले क्यों नहीं, एल-टी मारता होगा····और भी चक्कर करता होगा····तभी तो कपूर इतनी दिलचस्पी लेती है····

घनश्यामने सेफ़्टी-रेज़र पानीकी कटोरीमें पोसाकी मीनारकी तरह टिका दिया और गालों-पर हाथ फेरने लगा····बनी तो कुछ बात···· साला जल मरेगा····

"सन्तोष !"

"जी !"

"भई, ऐसा करो—तुम पानी गरम कर ही दो। हफ़्तेमें एक तो छुट्टीका दिन आता है। आज भी नहीं नहायेंगे तो कब नहायेंगे।"

"मेरी तो समझमें आता नहीं—कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ····"

"अच्छा, बक-बक बन्द करो। हमने कह दिया तो रख दो पानी।" घनश्यामने अख़बार फिर उठा लिया और शीर्षकोंको नज़रमें क़ैद करने लगा।

"भई, सुनो हो !"

"जी !"

"ज़रा पॉलिशका सामान तो दो। जब-तक पानी गरम हो, मैं पॉलिश ही कर लूँ।"

"अच्छा जी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अख़बारके छठे पृष्ठपर एक तलाक़के मुक़दमेकी रिपोर्ट थी। घनश्याम उसमें खो गया। सन्तोष पॉलिशकी डिब्बी और ब्रश स्टूलपर रखकर चली गयी।

घनश्याम अदालतके कमरेमें खड़ा तलाक़ देनेवाली पत्नीका बयान सुनता रहा....

"पानी गरम हो गया जी!" अन्दरसे सन्तोषकी आवाज़ आयी।

"अच्छा।"

कुछ देर बाद सन्तोष कमरेमें आयी तो उसने देखा—पॉलिशका सामान ज्योंका त्यों स्टूलपर रखा है और घनश्याम उसी तरह अख़बारको घूर रहा है....

"मैं....मैंने का, जी!"

"हूँ?"

"मुण्डनका टाइम तो होता आ रहा है। उठो न!"

"उठते हैं, अभी उठते हैं!" घनश्यामने सामने रखे स्टूलपर पैर फैला दिये और अख़बारको ऊँचा करके फिर अदालतके कमरेमें जा खड़ा हुआ....

"अब उठो भी!" सन्तोषने दोनों हाथोंसे घनश्यामका हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "पौने नौ बन गये और लाटसाहब अभी अख़बार ही पढ़े जा रहे हैं! जाना नहीं है?"

"नहीं, भई, नहीं! जाना तो है ही! नहीं तो वह साला जान खा जायेगा।"

"तो फिर उठो!"

"बस, एक मिनिट ...एक मिनिट और..." घनश्याम टूटी हुई ख़बरका सिलसिला जोड़नेके लिए अख़बारके तलमें बैठी बारीक लाइनोंपर निगाह फेरने लगा।

सन्तोष अन्दर चली गयी।

कुछ देर बाद तलाक़ी पत्नीने अपना बयान ख़त्म किया तो घनश्याम अख़बार पटककर उठा और लम्बे-लम्बे डग भरकर रसोईके सामने जा खड़ा हुआ।

"लो भई, सन्तोष, अब मैं फटाफट तैयार हो जाता हूँ—दो मिनिटमें!" वह कम्बल ओढ़े-ओढ़े ही बाथ-रूममें घुसने लगा।

"सुनो!"

"हूँ!"

"कम्बलको भी नहलाओगे क्या?"

"अरे! यह तो याद ही नहीं रहा था!" बरामदेमें खड़ी चारपायीपर कम्बल पटककर वह फिर बाथ-रूममें घुस गया।

दरवाज़ा भड़ाकसे बन्द हुआ और [illegible] खनीके ऊपर चढ़नेकी आवाज़ आयी। [illegible] नलसे पानीकी धार गिरनेकी आवाज़....कुछ देर बाद फिर दरवाज़ेका पल्ला खुला और उसके पीछे छिपे घनश्यामका सर कछुएकी तरह बाहर निकला—"सन्तोष!"

"जी!"

"भई, पानी तो थोड़ा है।"

"नहानेकी जीमें नहीं है? चलो, मैं [illegible] गरम कर देती हूँ।"

दरवाज़ा धीमेसे बन्द हो गया।

"माड्डाला! माड्डाला!" घनश्याम [illegible] शरीरके बीचका एक तिहाई भाग तौलिएमें लपेटे बाथ-रूमसे निकला तो उसका पूरा शरीर कँपकँपा रहा था। बाहर आते ही उसने कम्बल फिर लपेट लिया और सहमते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खटोलेपर सिकुड़कर बैठ गया। भींग हुए बालोंकी लटें चारों तरफ़ बिखरकर सरसे चिपक गयी थीं और उनके छोरोंपर पारेकी बूँदें चमचमा रही थीं।

"बड़ी ठण्ड है, भई सन्तोष !"

"हाँ है !" नलके पास खड़ी सन्तोषने गिलासमें चूना फेरते हुए कहा, "लेकिन तुम फटाफट तैयारी करो। नौ तो यहीं बजा दिये !"

"क्या ? नौ बज गये ?"

"और तुम क्या समझ रहे हो ?"

"खैर, हिन्दुस्तानी टाइम है, नौके दस तो बजेंगे ही। फिर भी अब तुम जल्दी करो !"

"मैं क्या जल्दी करूँ ?"

"तुम····अच्छा, कंघा ले आओ !"

"कंघा तो आ जायेगा पर तुम यहाँ क्यों बैठे हो ठण्डमें ! चलो अन्दर !"

घनश्याम उठकर अन्दर कमरेमें पहुँचा और कॉर्निसपर रखे धुँधले शीशेके सामने खड़ा होकर आधे कंघेसे बाल काढ़ने लगा···· वह साला कैसे बाल काढ़ता है—शोहदोंकी तरह····

घनश्यामने कंघा कॉर्निसपर पटक दिया। वापस मुड़ा तो स्टूलपर रखे पॉलिशके ब्रश और डिबियाने उसकी निगाह खींच ली····लो, बूटपर पॉलिश लगा देता हूँ····जबतक कपड़े पहनूँगा तबतक खुश्क हो जायेगी····फिर चार ब्रश मारे और फुर्र····

उसने झुककर पलंगके नीचेसे बूट खींच लिया····दुनिया-भरकी गर्द बूटोंपर जम जाती है····ब्रशसे गर्द साफ़ करनेके बाद उसने डिबिया खोली····उसके जूते कैसे चमचमाते हैं····साला कनॉट-प्लेसमें कराता है पॉलिश···· क्रीम पॉलिश····न जाने क्या जादू है छोकड़ों-के हाथोंमें····हमारा जूता कभी नहीं चमकता इस तरह····खैर, चमके या न चमके, उसके-से अच्छा है····साला लौंग-टो पहनता है····अबे, तू दफ़्तरका बाबू है या कॉलेजका छोकरा····!

घनश्यामने दोनों बूट धीरेसे उठाकर एक तरफ़ रख दिये जैसे वे काले खरगोशके बच्चे हों !

"सन्तोष !"

"जी !"

"भई, क़मीज़ निकाल दो !"

"रखी तो है ट्रंकपर।"

घनश्यामने सस्ती पॉपलिनकी नीली क़मीज़ उठायी और उसे ऐसे देखने लगा जैसे नवजात शिशुको देख रहा हो····ठीक तो है···· उसका क्या, वह तो साला टेरिलीन पह-नता है····

पट्टूकी काली पैण्ट और खादीका भूरा कोट पहनकर घनश्याम शीशेके सामने जा खड़ा हुआ····बात कुछ बनी नहीं····लेकिन अच्छा है····उसके टैरिवूलके सूटकी तरह बच-काना तो नहीं····

घनश्यामने मूढ़ेपर बैठकर खरगोशके बच्चे-पर चार-चार ब्रुश मारे, सन्तोषके हाथके बुने मोज़े पैरोंपर चढ़ाये और बूट पहनकर खड़ा हो गया। मुड़कर एक बार फिर धुँधले शीशे-में चेहरा देखा। आधा कंघा उठाकर बाल ठीक किये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सन्तोष !" घिसा हुआ रिकार्ड फिर बज उठा।

"जी !"

"कैसा लग रहा हूँ ?"

"बड़े अच्छे ! दूसरी शादी कराने जा रहे हो क्या ?"

"तुम भी एक ही शैतान हो ! अच्छा, तो मैं चला।"

"कबतक लौटोगे ?"

"आ जाऊँगा दो बजे तक।" घनश्याम घरसे बाहर हो गया।

दो मिनिट भी नहीं बीते होंगे कि वह फिर वापस आता दिखाई दिया।

"क्यों, क्या बात हुई ?" सन्तोषके प्रश्न-का कंचुआ आग सरका।

"घड़ी तो यहीं भूल गया।"

"लो बाबा, घड़ी भी लो !" सन्तोष ने पलंगके सिरहानेसे घड़ी उठाकर उसे थमा दी।

"अरे ! साढ़े नौ बज गये ?"

"और तुम क्या समझ रहे हो ?"

"साढ़े नौ और घण्टा-भर बसका। ठीक साढ़े दस बजे पहुँच पाऊँगा ! अब क्या तुम्हें जानेमें ?"

"मुझे तो पहले ही पता था !" कहती सन्तोष अन्दर चली गयी।

घनश्याम मूढ़ेपर बैठकर जूतेके फीते बाँधने लगा।

Gram : 'CHAINPULLY' Phone : 22-5241

B. P. TRADING COMPANY

Importers, Stockists & Govt. Order Suppliers of :—

Power Transmission Steel Roller Chains Sprockets of 'RENOLD' KOBO, DIAMOND, ANCHOR, MORSE, WIPPER MANN, CHAIN PULLY BLOCKS & GENERAL ORDER SUPPLIERS.

*

71/A, Netaji Subhas Road, (Room No. D/S-8D)
Post-Box No. 809, CALCUTTA-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

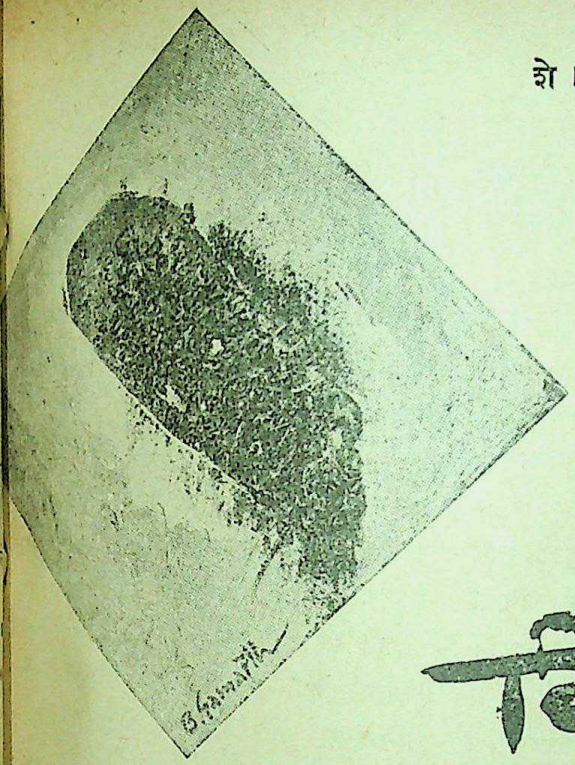

शे । ष । ल । म्बो । क । हा । नी

• स्व० गजानन माधव
मुक्तिबोध

चिपके

हमने उस गलीके बीचमें-से गटर पार की ही थी कि एक साँवली औरत दिखाई दी, जिसका नाक-नक्श संगमूसाकी चट्टानमें-से काटा गया दिखाई देता था। वह इतनी मज़बूत थी, उसका स्नायु-संस्थान इतना दृढ़ था, कि लगता था, उसका चेहरा भी, जिसकी रेखाकृति सरल और निर्दोष थी, उसी शक्ति और दृढ़ताका परिचायक है। कोई भी कह देता कि उसके श्यामल मुखमण्डलपर एक गौरवपूर्ण अभियान, एक मज़बूत गुस्सा और एक थमी हुई रफ़्तार है। मुझपर उसके सौन्दर्यका (यदि वह सौन्दर्य कहा जाये तो) एक हलका-सा आघात हुआ। और मुझे गोर्कीकी कहानियोंके पात्र याद आने लगे। गुलमोहरके पेड़के नीचे जाने क्या बीनते हुए फटेहाल लड़के—पेड़के नीचे पत्थरपर बैठा हुआ आवारा चेहरा, और अब यह स्त्री-मूर्ति जो मानो संगमूसाकी चट्टान काट करके बनायी गयी हो।

सुनहरे चेहरेवालेने कहा, "यह धोबिन है, मेहनतसे उसका शरीर बना है।"

मेरे मुँहसे निकल गया, "चण्डीदासकी प्रेमिका।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगतने मुझे सुधारा, 'शो :, चण्डीदासकी प्रेमिकाके चेहरेपर इतने कठोर भाव नहीं हो सकते !"

मैंने तुरन्त ही अपने-आपको सुधारकर कहा, "वह चण्डीदासकी प्रेमिकाकी बहन तो हो ही सकती है। नहीं-नहीं ! वह तो गोर्कीकी कोई पात्रा है !"

सुनहरे चेहरेवाला समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री था। उसने कहा, "यह मिक्स्ड ब्लड (वर्णसंकर) है, मेस्टिज़ो (दक्षिण अमरीकाके वर्णसंकरके समान) है।" और मुझे देखकर वह हँस पड़ा।

मैं उसका भाव समझ गया। इस शहरकी समाजशास्त्रीय लोक-प्रक्रियाकी ओर उसका इशारा था। यहाँके, इस क्षेत्रके इस प्रदेशके मूल देशवासियोंने शायद ही कभी राज्य किया हो। साधारण जनता मूलतः किसान थी। वह निचली जातियोंसे बनी थी। राजस्थानके और पश्चिम उत्तर प्रदेशके, आन्ध्रके और महाराष्ट्रके लोगोंने आकर यहाँ ज़मीन-ज़ायदाद बनायी। यहाँका मध्यवर्ग इन्हीं लोगोंसे बना। और पुराने ज़मानेसे इन ज़मीन-जायदाद बढ़ाते हुए यहाँकी निम्न-वर्गीय स्त्रियोंको अपने घरमें रखा और उससे जो वर्णसंकर सन्तानें पैदा हुईं वे भी अन्ततः उसी निचली जनतामें मिल गयीं। निःसन्देह, इस जनतामें भीतर-ही-भीतर उच्चवर्गीय हिन्दुओंके प्रति असन्तोष और विरोधका भाव पैदा होता गया, और राजनीतिके अभावमें उसने पुराने ज़मानेमें ही सामुदायिक रूप ग्रहण कर लिया। नतीजा यह हुआ कि निचली जातियोंमें, सुदूर अतीतमें ही, [illegible] नामियों और कबीर-पन्थियोंका ज़ोर [illegible] और प्रभाव बढ़ा, और आधुनिक [illegible] ईसाई मिशनरियोंका और, अब तो [illegible] नव-बौद्ध भी हो गये। फिर भी उस [illegible] जनतामें जो सनातनधर्मी बने रहे, [illegible] अपना सांस्कृतीकरण करते हुए जनेऊ [illegible] शुरू कर दिया और अपने-अपने [illegible] आधुनिक प्रकारकी शिक्षा-दीक्षा दिला[illegible] प्रयास करने लगे।

उनकी दुनिया ही अलग थी। वह [illegible] अलग ही राष्ट्र था। वह श्यामल जन-[illegible] अपने ढंगसे सोचता था। और [illegible] मुहल्लोंमें और गाँव-गाँवमें उनके अपने [illegible] लीडर पैदा हो रहे थे। वे लीडर [illegible] दिखाई नहीं देते थे। राजनीतिमें [illegible] दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन राज[illegible] पार्टियाँ, वोटोंके लिए, उन्हीं मुहि[illegible] पास जाती थीं और फिर उस श्यामल [illegible] समुदायको बड़े ठाठसे भूल जाया करती [illegible]

सुनहरे चेहरेवाला हमारा साथी [illegible] मज़ेदार आदमी था। वह था तो मारवा[illegible] बच्चा, जिसके कई मकान बीकानेर [illegible] लेकिन उसका घर इसी शहरसे बहुत [illegible] दूर एक गाँवमें था। वह बड़ा ही [illegible] था। उसे एक जगह चैन नहीं पड़ती [illegible] अपने आचार-विचारमें समाजके [illegible] समाजके बड़ोंमें भेद नहीं करता था। [illegible] निरीक्षण-शक्ति अद्भुत थी। वह इस [illegible] जनतासे घुला-मिला था, और यहाँकी [illegible] भाषामें ही उनसे बातचीत करता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कठिन भी नहीं था, क्योंकि बाहरसे आया हुआ यहाँका सारा मध्यवर्ग निचली जातिसे व्यवहार करते समय, उसी लोकभाषा-का प्रयोग करते। बहुत-से मध्यवर्गीय परिवारों-की वह मातृभाषा भी हो गयी थी। सुनहरे चेहरावाला हमारा साथी इस जनताको खूब अच्छी तरह जानता था। उनकी गन्दी और घुएँधार होटलोंमें चाय पीनेमें उसे मज़ा आता। बहुत ही अपनेपनसे उनसे पेश आता।

अब मुझे समझमें आया कि वह मुझे कहाँ ले जा रहा है। वह हमें इसी प्रकारकी एक होटलमें ले जा रहा था।

सुनहरे चेहरेवालेने मुझसे कहा, "अब आप हेमिंग्वे भूल जाइए, मैं आपको गन्दी जगहमें बहुत अच्छी चाय पिलाने ले जा रहा हूँ।"

अब सड़क आ गयी थी। होटल सड़कपर ही थी। पानवालोंकी लगभग तीन दूकानें वहाँ थीं।

हम ज्यों ही होटलमें घुसे, जगतने अपनी फ़र्राटेदार अँगरेज़ीमें कहा, "अगर बॉसने देख लिया तो वह तुरन्त ही हमें इन्स्टीट्यूशन (संस्था) से निकाल बाहर करेगा। मैं तो मिस्टर भचावतको आगे कर दूँगा। कहूँगा कि यह मुझे वहाँ ले गया था, मैं तो भोला-भाला आदमी हूँ, मैं क्या जानूँ कि वह मुझे किस डिसरेप्यूटेबल (बदनाम) जगह ले जाता है..."

यह कहकर जगत ज़ोरसे हँस पड़ा।

सुनहरे चेहरेवालेने उसकी ओर आँखें गड़ाते हुए और गन्दी गाली देते हुए कहा, "ज़बान बन्द करो। डिसरेप्यूटेबल तुम हो। साले, तुम्हारे—डिसरेप्यूटेबल है, और तुम्हारा बॉस डिसरेप्यूटेबल है और तुम्हारी जेब डिस-रेप्यूटेबल है।"

जगतने इन गालियोंको, प्यारके फूलोंकी बरसातके रूपमें ग्रहण कर सुनहरे चेहरेवालेकी पीठ थपथपाते हुए कहा, "मेरे उपन्यासका नया अध्याय तुम्हारे चरित्रसे और होटलसे शुरू होगा मिस्टर भचावत।"

■

मिस्टर भचावत एक अजीब शख़्सियत रखता था। बॉसने सबसे ज़्यादा अहसान उसीपर किये थे, और आज इस 'गन्दी होटलकी अच्छी चाय' पीते हुए, वह बॉसकी कठोर निन्दा कर रहा था। मुझे यह कुछ अच्छा नहीं लगा। मज़ेदार बात है कि मैं खुद उनकी आलोचना कर जाता था। तब मुझे बुरा नहीं लगता था। लेकिन उसके मुँहसे उनकी बुराई सुन, मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ। मैंने गम्भीर होकर, चायकी चुस्की लेते हुए उससे पूछा, "क्यों यार, तुम्हारा क़ानून क्या कहता है। जो व्यक्ति तुम्हारी सहायता करता है, उसकी आलोचना की जाये या नहीं।"

मिस्टर भचावतको मेरे वाक्यकी नोंक गड़ गयी। उन्होंने भजियेका कौर मुँहमें डालते हुए कहा, 'देखो भाई, अपनी भूमिका साफ़ है। अपना बाप भी अच्छाईके साथ बहुत-सी बुराइयोंका मालिक है। हम बापकी बुराइयों-की यानी बापकी आलोचना अवश्य करेंगे। आखिर क्यों न करें। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि बापसे प्यार नहीं करते। उसके लिए दौड़ जायेंगे। लेकिन उसकी बहुत-सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातोंको देखकर आग-बबूला भी हो जायेंगे, भले ही शाइस्तगीके नाते हम उससे कुछ न कहें।"

मैं मुसकरा उठा। मिस्टर भचावतके पिता, जो एक दूकानपर मुनीम थे, लड़केके हाथमें तराज़ू पकड़वाना चाहते थे। उन्होंने अपने बेटेको तिज़ारतके सब गुर बता दिये थे। लेकिन लड़केने बग़ावत कर दी। अपने पैरों-पर खड़े होकर राजनीति-शास्त्रमें एम० ए० किया और लोवर डिविज़न क्लर्क हो गया। और इस समय वह यहाँ हमारा साथी अध्या-पक है।

उसकी बात समझमें आने लायक़ थी। लेकिन उत्सुकतावश मैंने उससे पूछा, 'मान लीजिए कि बॉसको पता चल जाये कि तुम उस गलीमें बैठे-बैठे उन्हें गाली दे रहे थे।"

उसने मुझसे कहा, "कोई मेरा दुश्मन ही वैसा करेगा।"

मैंने कहा, "लेकिन, तुम उस व्यक्तिकी आलोचना करना बुरा नहीं समझते, जिसने तुमपर बहुत उपकार किये हैं?"

उसने साफ़-साफ़ कहा, "बिलबुल बुरा नहीं समझता। आखिर तुम्हीं बतलाओ मिस्टर जगत, किसी दूसरेमें जो बुराइयाँ हमें महसूस होती रहती हैं और काँटे-सी खटकती हैं उनकी आलोचना क्यों न की जाये।"

मैंने जवाब दिया, "मनुष्यता यह कहती है कि उपकारका बदला अपकारसे न दिया जाये।" भचावतने ज़िद करके कहा, "लेकिन, आलोचना यदि ग़लत हो तो अपकारका ही एक रूप क्यों न समझा जाये।"

मैंने बात और आगे बढ़ायी, "लेकिन, [illegible] तो वैसा नहीं समझता; दुनिया तो वैसा [illegible] समझती; लोग तो वैसा नहीं समझते!"

भचावतने अब ज़िद पकड़ ली। [illegible] कहा, "देखो भाई, यह साफ़-साफ़ बात [illegible] यह हमारे-तुम्हारे बीचकी बात है। [illegible] हो न कि हमारे बॉस साहब कौन हैं? [illegible] शहरके नामी-गिरामी शैतान हैं। [illegible] ज़मानेमें मज़दूरोंपर कितनी बार लाठी-[illegible] नहीं हुआ, या गोलियाँ नहीं चलायी [illegible] रियासतके ज़मानेमें अँगरेज़ पोलिटिकल ए[illegible] के कहनेसे कितने ही काँग्रेसी जेलमें सड़ [illegible] गये और मार डाले गये। यह सब पु[illegible] क़िस्सा है। लेकिन इस क़िस्सेका एक [illegible] पात्र कौन है—किसके ज़रिये यह सब [illegible] जाता रहा? हमारे बॉसके ज़रिये!..... आज भी देखो न! बगीचेमें-से आँवले [illegible] कर ले जानेवाले लड़कोंको उस शख़्सने, [illegible] दो क़दम चलनेमें भी तकलीफ़ होती है, [illegible] नहीं पीटा! और हमारे दरबारके [illegible] ताकते रह गये। रिश्वत देना, रिश्वत [illegible] तो बुराई है न! उसका प्रयोग करने [illegible] कितने काम नहीं किये-कराये जाते। [illegible] चोरी, और वह भी खाने-पीनेकी चीज़ [illegible] ज़मीन, जायदादकी, उसके लेखे, [illegible] अपराध हैं। सामनेके तालाबमें फटेहाल [illegible] मछली चुराने आते हैं। उन्हें किस तरह [illegible] पीटा जाता है! क्यों? इसलिए कि वे [illegible] हैं, एकदम ग़रीब हैं। और उसके [illegible] फटेहाल हैं उनके लड़के चोर और आव[illegible] ही जाते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे उसके दिमाग़का ऑपरेशन करके भी नहीं निकाल सकते। यही देखो न! मैं चाय पीने यहाँ कभी-कभी आता हूँ! मैं यहाँ इसलिए आता हूँ कि मुझे यहाँकी चाय बहुत पसन्द है। लेकिन यहाँ इस गन्दी होटलमें ये सब लोग आ-जा रहे हैं, वे उसके लेखे कमीन हैं! और कमीन लोग गुण्डे होते ही हैं—यह सब उसकी मान्यताएँ हैं! इसलिए, उसने अवन्ती-लालका मेरे साथ यहाँ आना बन्द करवा दिया! और अब वह तुम्हारे भी पीछे पड़ा है! उसके विद्या-केन्द्रका व्यक्ति यहाँ आकर चाय पीये! राम-राम! यह तो उस विद्या-केन्द्रकी बदनामी है। लेकिन, जानते हो, मैंने इस होटलका क्या नाम रखा है—'काफ़े-द-मजदूर'! क्या बुरा नाम है यह! मैं मारवाड़ीका बच्चा हूँ और इन्हीं लोगोंसे ब्याज़-बट्टा करके उनकी ज़मीन कुर्क कराके हमने अपने घर भरे हैं—मैं साफ़ कहता हूँ कि इस बुरे काममें हमारा भी हाथ है। हम शैतानके बच्चे हैं! और अब इस समय मैं शैतानका नौकर हूँ। शैतान इसीलिए दूसरेपर मेहरबानी करता है कि वह भी शैतानीके ढाँचेमें फ़िट हो! मैं उस ढाँचेमें फ़िट होनेसे इनकार कर देता हूँ!"

मैंने उसके लम्बे व्याख्यानपर एक गहरी साँस लेते हुए कहा, "लेकिन जब बॉसके सामने हो जाते हो तब तो तुम अपनेको तुच्छ समझते हुए उसे महान् मानकर काम करते हो!"

मिस्टर भचावतने निर्लज्ज होकर जवाब दिया, "बिला शक! मुझे वैसा करना ही चाहिए!"

मैं अवाक् हो उठा, "भई, कैसे, क्यों, किस तरह!"

वह क्षण-भर चुप रहा। फिर उसने कहा, "कहा जाता है कि हममें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य है। लेकिन यह मान्यता झूठ है। हमें खरीदने और बेचनेकी, खरीदे जानेकी और बेचे जानेकी आज़ादी है! हमने अपना व्यक्ति-स्वातन्त्र्य बेच दिया है, एक हद तक तो इसलिए....."

जगत झल्ला गया। उसने कहा, "मैं इस बातसे इनकार करता हूँ कि हमने अपनी स्वतन्त्रता बेच दी है।"

भचावत एक अजीब हँसी हँसा, जिसे देखकर मुझे किसी अघोर-पन्थी साधुकी याद आ गयी।

उसने कहा, "तुम क्या समझते हो और क्या नहीं समझते—इसका सवाल नहीं है! सवाल यह है कि क्या उस मजलिसमें अपने दिमाग़में उठनेवाले या पहलेसे उठे हुए खयालोंको ज्यों-का त्यों ज़ाहिर करनेकी आज़ादी है!"

यह कहकर भचावत जगतकी तरफ़ आँख गड़ाकर देखने लगा। तो मैंने इस बातका जवाब दिया, "आखिर किसीने आपको अपनी मनकी बात कहनेसे रोका तो नहीं है!"

भचावतने चाय पीनेकी समाप्तिका कार्य-क्रम पान खानेसे शुरू किया। पान खाते-खाते वह कहने लगा, "तो तुम क्या यह सोचते हो कि अपने मनकी बातें साफ़-साफ़ कहनेसे आपकी नौकरी टिक जायेगी? अजी, दो दिनमें लात मारकर निकाल दिये जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनाब यह मेरी चौदहवीं नौकरी है। ज़्यादा खतरा अब मैं नहीं उठा सकता। सच कहता हूँ इसलिए बदमाश कहा जाता हूँ, क्योंकि मैं अबतक व्यक्ति, स्थिति और परिस्थितिको न देखकर बात करता था। मैं बदमाश था। अब मैं सोच-समझकर, अपनेको भीतर छुपाकर, मौक़ा देख करके बात करता हूँ, इसलिए लोग मुझे अच्छा समझते हैं। सवाल लिखित क़ानूनका नहीं है। लिखित नियम तो यह है कि व्यक्ति स्वतन्त्र है। किन्तु, वास्तविकता यह है कि व्यक्तिको खरीदने और बेचनेकी, खरीदे जाने और बेचे जानेकी, दूसरोंकी स्वतन्त्रताको खरीदनेकी या अपनी स्वतन्त्रताको बेचनेकी आज़ादी है। लिखित नियम और चीज है, वास्तविकता दूसरी बात है। खानेके दाँत एक होते हैं, दिखानेके दाँत दूसरे। पूरे यथार्थको मिलाकर देखिए। मैं तो मारवाड़ीका बच्चा हूँ। आप कवि लोग हैं। सच्ची आज़ादी उन्हें है, जिनके पास पैसा है। वे पैसोंके बलपर दूसरोंकी स्वतन्त्रता खरीद सकते हैं·····मैं खुद खरीदता था।"

मिस्टर भचावतके वक्तव्यसे हमारा समाधान नहीं हुआ। अगर मैं वही बात कहता तो दूसरे ढंगसे कहता। ढंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। सच है कि हम श्रम बेचकर पैसा कमाते हैं। लेकिन श्रमके साथ-ही-साथ, हम न केवल श्रमके घण्टोंमें वरन् उसके बाद भी अपना संघर्ष-स्वातन्त्र्य, विचार-स्वातन्त्र्य और लिखित अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्यको भी बेच देते हैं। और यदि हम अपने इस स्वातन्त्र्यका प्रयोग करते-कराते हैं तो पेटपर लात मार दी जाती है। यह यथार्थ है। इस यथार्थके नियमोंको ध्यानमें रखकर ही, पेट पाला जा सकता है, अपना और बाल-बच्चोंका।

तो क्या भचावत सचमुच ठीक कहता है? क्या मेरी अपनी उन्नतिके लिए, समाजमें मेरी बढ़तीके लिए मुझे भी उसी तरह अपनी पूँछ हिलानी पड़ेगी? वास्तविकता यह है कि अलग-अलग लोग अलग-अलग ढंगसे पूँछ हिलाते हैं। मेरा भी पूँछ हिलानेका अलग तरीक़ा है। मैं पहले अपने पैसे मालिककी गोदमें रख दूँगा। और फिर दाँत निकालकर मालिकके मुँहकी तरफ़ देखते हुए पूँछ हिलाऊँगा। दूसरे कुत्ते दरवाजेमें खड़े होकर पूँछ हिलाते हैं। कुछ कुत्ते पास आनेकी सलाह बताते हुए बीच-बीचमें भौंकते हैं, गुर्राते हैं और पूँछ हिलाते रहते हैं। मतलब यह कि स्थिति-भेद और स्वभाव-भेदके अनुसार, पूँछ हिलानेकी अलग-अलग शैलियाँ हैं।

तो मैं यह नहीं कह सकता कि मैं पूँछ नहीं हिलाता। लेकिन यह जरूर है कि मैं अपने मालिकके प्रति समर्पित नहीं होता—जिस प्रकार राव साहब हैं—न अपनेको उनके सामने तुच्छ देखता हूँ। होना तो यह चाहिए कि साफ़-साफ़ कहूँ। लेकिन, सवाल यह है कि झगड़ा कौन मोल ले, हमें क्या मतलब हमसे क्या काम है!

लेकिन भचावत? भचावत बदमाश है। वह यह धोखा खड़ा करना चाहता है कि वह उनका है, लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता।

और फिर भी भचावतने जो बातें कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें बहुत-कुछ सार दिखाई दिया।

हम ज्यों ही पान खाकर रास्तेपर चलने लगे, मैंने भचावतसे कहा, "मिस्टर हम ज़रा घूमते हुए आयेंगे, तुम इधरसे निकल जाओ।"

उसने जवाब दिया, "क्यों इण्टरनेशनल बात करनी है! ख़ैर जाओ। लेकिन वो लोग मुझे क्या कहेंगे। ख़ैर जाओ! मैं कह दूँगा कि वे इण्टरनेशनल बात करने निकल गये हैं।"

भचावत डग बढ़ाता हुआ निकल गया, और मैं वहीं दो-चार क़दम इधर-उधर हुआ। मैंने कहा, "जगत, किधर चलें!" जगत स्तब्ध खड़ा रहा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। मैं ताड़ गया कि वह दरबारमें जल्दी-से जल्दी हाज़िर होना चाहता है जिससे कि वह फ़िज़ूलकी बातचीतका विषय न बने।

■

भचावत जब आगेके चौराहेपर पहुँच गया होगा, तब हम बिजलीके चारखम्भेके पीछे धीरे-धीरे पैर बढ़ा रहे थे। मैं बहुत उदास हो गया था, दिल भारी हो उठा था। लगता था कि पैर आगे नहीं उठ रहे हैं। अगर वहीं कहीं कोई बैठनेकी जगह होती तो मैं अवश्य बैठ जाता। एक ग़मग़ीन सूनापन दिलमें घिर रहा था; दिमाग़में अँधेरेके पंख भन्ना रहे थे; भयानक व्यर्थताका भाव रह-रहकर उमड़ उठता था और अपनी असमर्थताका भान घुटनोंमें दर्द और दिलमें कलोर पैदा करता था। और मुझे ग़ालिबका शेर याद आया,

'कोई उम्मीद बर नहीं आती
कोई सूरत नज़र नहीं आती
मौत का एक दिन मुअय्यन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती!'

अपने बचपन और नौजवानीमें ऐसे ही किन्हीं क्षणोंमें मुझे मृत्युके अँधेरेमें चिरकालके लिए समा जानेकी इच्छा होती थी। लेकिन अब मैं इस प्रकारके कल्पना-विलासकी सुविधा भी नहीं उठा सकता। मुझे इन जलते रेगिस्तानोंपर पैर रखते हुए ही चलना है।

....लेकिन मुझे अब आगे चलना भी दूभर हो गया। सामने अँधेरेमें एक सिन्धीकी चायकी दूकान पड़ती थी। उसके भीतरके कमरेमें एकान्त था। उस एकान्तके लिए मैं तड़प उठा। एकान्त मेरा रक्षक है। वह मुझे प्राण देता है, और बहते हुए ख़ूनको अपने फावेसे पोंछ देता है। जगत मेरी इच्छा समझ गया। अँधेरे-भरे एकान्त कमरेमें, जिसके ऊपर एक रोशनदानसे धुँधला प्रकाश आ रहा था, हम दोनों जाकर धपसे बैठ गये। और लगभग दस मिनिट तक चुपचाप बैठे रहे। पानी पिया और उसके बाद एक-एक कप चाय।

मैंने जगतसे कहा, "हम कितने अकेले हैं! जीवनमें कहीं कोई मीनिंग, कोई अर्थ चाहते हैं, और वह भी दिल नहीं पाता।"

जगतने अँगरेज़ीमें कहा, "यह इसलिए है कि हममें संकल्प-शक्ति नहीं है। अगर हम इन्हें धुतकार दें तो ये हमारा क्या कर लेंगे।"

मैं पल-भर चुप रहा। फिर कहा, धुतकारना आसान है। मेरी भी यह पन्द्रहवीं नौकरी है। लेकिन पेट पालना बहुत मुश्किल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मेरे घरमें सारे दुर्भाग्य मौजूद हैं—लम्बे-लम्बे रोग, भारी क़र्ज़, कलह और मानसिक अशान्ति, ये बीसियों सालसे घर किये बैठे हैं, उन्होंने मुझे ही चुना है। बाल-बच्चोंको सड़कपर फेंककर, भले ही मैं कुछ कर जाऊँ। लेकिन मैं इतना कठोर नहीं हो पाता, कोई भी नहीं हो सकता!...'' मैंने जगतसे कहा, ''हमें अपने वर्गमें रहनेका मोह है, निचले वर्गमें जानेसे डर लगता है। लेकिन क्रमशः हमारी स्थिति गिरते-गिरते उन-जैसी ही होती जाती है तो वहाँ सहर्ष ही क्यों न पहुँच जायें! लेकिन वहाँ भी मुक्ति नहीं है, क्योंकि उस स्थानपर भी घोरतर उत्पीड़न है।''

''और फ़ासले? कितने फ़ासले हैं, हमारे और तुम्हारे बीचमें। तुम्हारे और भचावतके बीचमें, भचावतके और किसीके बीचमें, ये दिल मिलने नहीं देते।''

और ठीक इसी क्षणमें जगत न मालूम किस स्फूर्तिसे चल-विचल हो गया। वह बीचमें कूद पड़ा। उसने मेरे आत्मनिवेदनमें हस्तक्षेप किया और कहने लगा, ''अमरीकी लेखकोंने भी इसी तरहकी परिस्थितियोंका सामना किया है। यह कोई नयी परिस्थिति नहीं है।''

मैं सिर्फ़ हँस दिया, यद्यपि जगतकी बातमें सार-तत्त्व था।

और, फिर हम मशीनकी भाँति वहाँसे उठ खड़े हुए। कोई निश्चय—अस्पष्ट और अधूरा—मेरे दिमाग़में चल-विचल होने लगा।

मैंने मुँह लटकाकर रास्तेमें जगतसे कहा, ''आदमी-आदमीके बीचके फ़ासले दूर कैसे होंगे?''

जगतने एक गहरी साँस ली। उसने कहा, ''इनको बातचीतसे दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि वहाँ तरह-तरहके भेदोंकी दलदल है।''

तब मैंने मानो ज़ोरसे चीखकर कहा, ''हाँ, हमें इस दलदलको सुखाना होगा। लेकिन, उसके लिए तो किसी ज्वालामुखीकी ही आग चाहिए।''

बातचीत और भी थकाये डाल रही थी। एक अबूझा दर्द भर रहा था। लगता था कि हम किसी अँधेरी सुरंगमें भटकते-भटकते अब यहाँ पहुँचकर एक दीवारका सामना कर रहे हैं जिसके आगे रास्ता नहीं है।

■

ज्यों ही हम बगीचेमें वापस पहुँचे हमें दूरसे दिखाई दिया कि दरबार लगा हुआ है। एक गहरी झेंप हमारे चेहरेपर छानेका प्रयत्न करने लगी। केन्द्रमें हमारे बॉस बैठे हुए थे।

बॉस एक ठिगने क़दके और चौरस पेटके व्यक्ति थे जिनके गोल चेहरेपर तिकोनाकार था। एक छोटी संवेदनशील नाक थी और छोटी ठुड्डी! आँखें बड़ी-बड़ी और गोल थीं। एक क्षण-भरमें वे क्रोधमें उत्तेजित हो उठते थे और दूसरे ही क्षण ठण्डे होकर मुसकराने। कोई मज़ेदार क़िस्सा सुना सकते थे। उन्हें देखकर मेरे हृदयमें अनायास प्यार उमड़ा। उनके व्यक्तित्वमें एक चमत्कार अवश्य था। वैसे वह बहुत बुलन्द आदमी थे और किसी आगे झुकना उनसे न हो पाता, यद्यपि भावावेशमें आकर वे नम्रहृदय भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे! इस समय उनके चेहरेपर एक मुसकराता प्रेम-भाव और आँखोंमें आर्द्र तल्लीन दृष्टि थी, जो यह बताती थी कि उनसे सुकुमार काँपते चित्र उत्तेजित होकर नये-नये कोमल भाव तरंगित करते रहते हैं।

उनके पास श्री भचावत बैठे हुए थे। ऐसा लगता था कि उन्होंने अपना बोलना अभी ही बन्द कर दिया है और उनके मस्तिष्क-में अभी भी वाक्य-चित्र उभरते जा रहे हैं। जब ऐसा होता है तब ये साधारणतः अपनी एक जाँघपर दूसरा पैर रखकर, धड़को आगे करके किसी उत्तेजित, गम्भीर, भाव-प्रवण मुद्रामें सामने झुके हुए दिखाई देते हैं। इस समयकी उनकी मुद्रा भी उसी प्रकारकी है।

उनके पास अपनेको अस्तित्वहीन बना-कर, निःशेष बनाकर, एक नामहीन छाया बैठी हुई है, जो इतनी पीली है कि ऐसा लगता है, मरघटमें-से, चितापर-से अभी उठ-कर चली आयी है। ये सज्जन गणित-शास्त्री हैं। उनके बग़लमें एक महोदय बैठे हुए हैं, जिनकी बैलकी-सी मोटी गरदनपर एक नीला रूमाल लिपटा हुआ है। ये महोदय ठिगने और चौड़े तो हैं ही, उनके चेहरेपर जड़ी हुई आँखें बहुत बारीक हैं और एक आँख कानी है। उनके माथेका ढाल ऊपरसे नीचेकी ओर जा रहा है। माथा एकदम छोटा, तंग है; उसकी चौड़ाई तीन अंगुलसे शायद ही बड़ी हो। सिर लगभग चपटा है और पीछेकी तरफ़ एकदम समाप्त होता है जिससे यह लगता है कि गरदन ही सिरपर चढ़ गयी है। चेहरा खूब भरा हुआ गोल और छोटा है। नाक छोटी, तीखी और संवेदनशील है और छोटे-छोटे होठ हैं। कुल मिलाकर, लोग उनकी तरफ़ एकदम आकर्षित होते हैं, किन्तु उनपर उस व्यक्तित्वका प्रभाव बुरा पड़ता है।

इस समय उनके मुँहमें चॉकलेटकी गोलियाँ भरी हुई हैं—जेबमें तो वे उन्हें हमेशा रखते ही हैं। उनके पास, कुरसीपर एकदम दुर्बलकाय ऊँची लड़की बैठी हुई है, जिसके लम्बे चेहरेपर चश्मा लगा हुआ है। सारा चेहरा चार लम्बी सलवटोंमें बाँटा जा सकता है और वह ऐसा बिगड़ा हुआ-सा लगता है मानो उन्होंने कोई निहायत कड़ुई दवा अभी-अभी खायी हो और उसकी डकार ऊपर आ रही हो और आ न पाती हो। वे रसायनशास्त्री हैं। उनके बग़लमें एक भीम-काय व्यक्ति बैठे हुए हैं जिनको पीठ कमसे कम ढाई फ़ुट ऊँची होगी और ख़ूब चौड़ी। वे जब हँसते हैं तो ऐसा लगता है कि प्रति-ध्वनिको लहरोंसे कहीं दरख़्त ही न टूट जायँ। उनका चेहरा ऐसा भूरा-सफ़ेद है जैसे बैलका पुट्ठा हो। वह ऊपरसे गोल, मांसल और पुष्ट हैं, नीचेसे एकदम तिकोना! वे भी चश्मा पहने हुए हैं और ऐसा लगता है जैसे वे हर चीज़को घूरकर देख रहे हों। वे भूरी नेहरू जैकेट पहने हुए हैं, और इस समय हाथमें रखे अपने डण्डेको हिला-डुला रहे हैं। वे संस्कृतके विद्या-वारिधि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति-पर एक शोध-ग्रन्थ भी लिखा है। वे यहाँ काफ़ी प्रतिष्ठित माने जाते हैं। सिर्फ़ मिस्टर भचावत उन्हें छेड़ते रहते हैं।

उनके बग़लमें कुरसीपर दो दुबले-पतले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जन सिमटे-सिमटे बैठे हैं मानो उन्हें यह नज़ारा भयभीत कर रहा हो! दोनों सूट-बूटसे लैस हैं और लगता है कि उनमें-से हर-एकका सूट कमसे कम ढाई सौ रुपयोंका तो होगा ही। उनमें-से एककी नेकटाई लाल और दूसरेकी नीली है और सिर्फ़ इस डरमें हैं कि कहीं उनके सम्बन्धमें चर्चा न छिड़ जाये। उनके बग़लमें, बड़ी ही गौरव-भावना और शालीनताके साथ कंजी आँखोंवाला एक गोरा नवयुवक बैठा हुआ है, जिसके बारेमें यह कहा जाता था कि कॉलेजके ज़मानेमें उसपर कई लड़कियाँ मरती थीं। वह इस समय सादे पोशाकमें अपने प्रभावशाली व्यक्तित्वमें खोया हुआ है। मुसकरा रहा है। वे दर्शनशास्त्री हैं। उनके पास कुरसीके एक हिस्सेपर झुककर और तिरछे होकर राव साहब बैठे हुए हैं, जिनके मुखमण्डलपर श्रमकी थकानके साथ-ही-साथ सन्तोषकी निस्तब्धता भी विराजमान है। उनके बाजूमें चार-पाँच कुरसियाँ खाली पड़ी हैं।

इस सब मण्डलीपर मौलसिरीके ऊँचे-पूरे, भरे-भरे वृक्षोंका सघन छाया-प्रकाश गिर रहा है।

हमने बाँसको नमस्कार किया और चुप-चाप अपनी कुरसियोंपर जाकर बैठ गये। तीन-चार मिनिटमें हमने नये वातावरणसे अपने-आपको जमा लिया और अपेक्षाके भाव-से चारों ओर देखने लग गये। किन्तु, वातावरण पूर्ण प्रशान्त था। और मुझे समझमें नहीं आया कि ऐसा क्यों है।

इतनेमें राव साहबके पास बैठे हुए चमक-दार दर्शनशास्त्रीने कहा, "साहब, पैरासाइ-कॉलॉजीमें यही पढ़ाया जाता है।"

मैं समझ चुका कि कोई बात पहले ही चुकी है। इसलिए चुप रहा कि संस्कृतके विद्वा-वारिधि महोदय अपनी गड़गड़ाती आवाज़ में पैरासायकॉलॉजीका एक पुराना उदाहरण बताने लगे जो उन्हें किसी जगह पढ़नेको मिल था। असलमें, वह पिशाच-बोधका उदाहरण था। लोगोंने उनकी कहानीका अच्छा-खासा रस लिया, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी। पता नहीं कैसे, उनकी कहानीके सिलसिलेमें ही अपराधोंकी चर्चा चल पड़ी, जो 'ब्लिट्ज़' नामक पत्रमें निकला करती थी। अपराधोंसे होती हुई वह धारा महाराजा तुकोजीराव होलकर तक गयी और वहाँसे बहती हुई वेश्याओं तक आयी। फिर संस्कृतके विद्वा-वारिधिने गणिका और वेश्याका भेद बताया और फिर उन शहरोंपर चर्चा चल पड़ी, जहाँ वेश्याओंके प्रसिद्ध मुहल्ले हैं। फिर उन शहरों की अन्य विशेषताओंपर दृष्टि जाते ही बम्बई सिटियोंके प्रशासनपर चर्चा चल पड़ी और फिर विद्यार्थियोंकी अनुशासनहीनताकी घाटीमें से बहती हुई वह धारा राजनीतिज्ञोंपर आयी और वहाँसे बहती हुई चुनाव तक आ पहुँची बम्बईके चुनाव तक!

कृष्णमेननके चेहरेपर भी चर्चा चली और वहाँसे वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका किनारा छूती हुई, राजनीतिज्ञों-द्वारा दी जानेवाली पार्टियों तक पहुँची। और उन पार्टियोंसे बहती हुई वह शराबकी क़िस्मों तक आयी, और फिर वहाँसे अँगरेज़ोंके खान-पानसे होती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह महाराष्ट्रीय 'वरण' और 'पूरणपोड़ी' तक पहुँची और फिर वहाँसे एक विस्फोटकी भाँति मोटी गरदनवाले अर्थशास्त्रीसे प्रश्न पूछा गया, (पूछनेवाले स्वयं बॉस थे)—"बताओ, तुम कितने रसगुल्ले खा सकते हो ?"

मिस्टर राजभोजने कहा, "यही लगभग दो सेर।"

बॉसने कहा, "तीन सेर खाओगे ?"

राजभोजने कहा, "नहीं, इतना नहीं खा सकते !"

"अच्छा तुम्हें पाँच रुपये दूँगा, अगर तुम इतना खा जाओ तो !"

"नहीं सा'ब, इतनी कम क़ीमतमें इतनी तकलीफ़ नहीं उठायी जा सकती।"

"अच्छा, दस रुपये दूँगा।"

मोटी गरदनवाले महोदय एकदम उठ खड़े हुए और कहने लगे, "एकदम तैयार हूँ; इतनी मिठाई तो मैं बचपनमें खा जाता था।" और ठहाका मारकर हँसने लगे।

मिस्टर राजभोजके लिए तीन सेर, हम सब लोगोंके लिए दो सेर मिठाईका ऑर्डर दिया गया।

यद्यपि लोग उकताये हुए थे (क्योंकि इसी तरहकी बातें ज़रा-से उलट-फेरके साथ रोज़ चलती थीं,) पर मिठाईकी प्रतीक्षामें बैठे रहे और उठ पड़नेके ज़बरदस्त मोहको दबा गये।

कि इतनेमें····

दूरसे, एक चमकदार आदमी और उसके साथ दो-तीन आदमी और आते दिखाई दिये। वे अभी बोगनविलासे लदे फाटकके पास ही थे। चमकदार आदमी काला महीन ऊनी पैण्ट और सफ़ेद बुशकोट पहना हुआ ऊँचा गोरा-चिट्टा व्यक्ति था। उसका चेहरा लम्बा था, जिसपर कुलीन आभिजात्यकी आभा फैली हुई थी, जो उसकी आत्म-विश्वासपूर्ण चाल-ढाल, मज़ाक़-भरी मुसकराहट और उँगलियोंमें फँसी सिगरेटकी राख झिड़कनेकी तरकीबोंसे प्रकट हो रही थी। काली फ़्रेमके चश्मेके ऊपर, दो-चार रेखाओंवाले माथेके नीचे घनी-घनी भौहें थीं और कानके ऊपर दो-चार लम्बे बाल ऊँचे उठे थे। वह इस तरह चल रहा था, जैसे यहाँका सारा इलाक़ा उसीका है।

वह लम्बी आसान डगें उठाता हुआ चला आ रहा था। उसके पीछे एक छोटे क़दका, गोरे रंगका पचास-साला आदमी चल रहा था, जिसके आगेके दाँत टूटे हुए थे। उसका छोटा लम्बा चेहरा पानकी पीकसे भरा था। वह खद्दरकी पोशाकसे लैस यहाँका काँग्रेसी लगता था। उसकी चाल-ढाल ऐसी थी कि लोगोंको यह भय था कि कहीं फिरसे यहाँका चुनाव न हो। उसके पीछे एक लम्बा काला पहाड़ी क़दका आदमी चल रहा था, जिसका हर अंग सुडौल, मज़बूत और भरा-पूरा था। उसके चेहरेपर चिकने पत्थरकी कठोर निस्तब्धता थी। साथ ही, उसका मुखमण्डल चमचमा रहा था, यद्यपि वह मुँहपर तेल नहीं लगाता था लेकिन चेहरा तेलिया दीखता था। वह पैण्ट और बुशकोट पहने हुए था। उसकी पोशाक गन्दी थी। वह ईसाई मोटर-ड्राइवर था। नये आगन्तुकोंको देखकर, हममें-से कुछ लोग बेचैन होने लगे, कुछ अपनी सीट छोड़कर बेचैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहने लगे।

मोटी गरदनने इधर-उधर ताकना शुरू किया। मैं सबसे पहले उठकर मीटिंग भंग करनेको चहलक़दमी करते हुए एक पेड़की छायामें चहलक़दमी करने लगा। धीरे-धीरे इधर-उधर देखकर किसी-न-किसी गुन्ताड़े या बहानेसे लोगोंने उठना शुरू किया।

मेरे पास जगत भचावत और राव साहब आकर खड़े हो गये। राव साहबकी चाँदीकी डिबिया खुल गयी। पानकी लूट मची। हर आदमीने दो-दो गिल्लोरियाँ मुँहमें जमायीं—यहाँतक कि जगतने भी। डिब्बा ख़ाली होते देख हम सब प्रसन्न होकर हँसने लगे।

मुझे राव साहबका लाड़ आ गया। मैंने उन्हें एकाएक छातीसे चिपका लिया और उनके सामने उनका दिया एक रुपया वापस करते हुए कहा, "भचावतने चाय पिला दी थी। मेरे पास भी चिल्लर थी। यह लीजिए, आपका एक रुपया वापस।"

"रखो न भई, रखो न भई। अभी तो बहुत ज़रूरत पड़ेगी।"

मिस्टर भचावतने उद्दण्डतापूर्वक उसे छीनना चाहा और कहा, "समझते नहीं हो। अभी तो भोजन भी नहीं हुआ है। इस समय साढ़े बारह बजे हैं। महफ़िल चलेगी रातके कमसे कम दस बजे तक। रुपया तो अपनेको लगेगा। घूमने-घामनेके लिए।"

राव साहब पान चबाते हुए प्रेमपूर्वक भचावतके चिबल्लेपनको देख रहे थे। उसकी नोंक उन्हें कई बार गड़ चुकी थी। लेकिन वे अब उसका आनन्द भी लेते थे।

असल चीज़ यह है कि मिस्टर भचावत लोगोंके ऐब देखनेमें बहुत होशियार हैं। क्या सिर्फ़ ऐबोंको देखते रहते तब भी कोई बात नहीं थी, वे उन कमज़ोरियोंको अपनी ओछे व्यवहारका विषय बनाते। यह बड़ी ख़तरनाक बात थी। ऐसे लोग दुश्मन पैदा कर लेते हैं और अगर यहाँ उनके कोई शत्रु नहीं हुए तो इसका कारण यही था कि यहाँके लोग अत्यन्त सदाशय थे और किसीकी चार बातें सह लेना जानते थे।

भचावतने बताया, "यह जो बाँसके पास बैठे हुए सुनहरे और ऊँचे-पूरे व्यक्ति हैं, जो बुशकोट पहने हुए हैं और बड़ी अदासे अन्दाज़के साथ सिगरेट पी रहे हैं वे एक रईस हैं। अपने शहरके पासके ज़मींदार (विधवा स्त्री है वह) के दीवानके लड़के हैं। उनकी अपनी कोई कमाई नहीं। उनकी अपनी कोई मेहनत नहीं है। उन्होंने सिर्फ़ विधवा ज़मींदारिनके साथ नत की है, (हम सब लोग हँसते हैं) उसी शुभ परिणाम वे भोग रहे हैं। शहरमें लीजिए, उनके अपने घरवालोंसे पूछ लीजिए, वे सब यही कहानी बतायेंगे, क्यों साहब ?"

राव साहबको काटो तो ख़ून नहीं। स्तब्ध हो उठे। और कुछ नहीं बोले। भचावत आगे कहता गया, "यहाँके कई रईस बिगाड़ने और धूलमें मिला देनेका काम उन्होंने सफल करके दिखाया। कई रईस सुहबतमें प्रसिद्ध शराबी और रण्डीबाज चौपट हो गये! अब वो अपने बाँसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिज़नेस करना चाह रहे हैं। हर तीसरे साल अपनी कार बदलते हैं और हर दूसरे साल अपनी प्रेमिका।"

राव साहबने खँखारनेकी, गला साफ़ करनेकी चेष्टा की। नाकमें-से स्वरका एक विस्फोट किया; और कहा, "अपने बाँस उनके चक्कर-में नहीं आ सकते।"

भचावतने कहा, "लेकिन, बिज़नेस तो कर ही रहे हैं!"

राव साहब बोले, "वो बाँसके सामने टिक नहीं सकते। बिज़नेस बिज़नेस है।"

मुझे इस बातचीतसे वितृष्णा हो उठी। मुझे बिज़नेस नहीं दीखता था, वरन् मानव-समुदाय दीखते थे जो विशेष-विशेष स्वार्थों और हितोंकी दिशामें कार्यशील थे। मुझे मानव-समुदायोंमें-के खास व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व, उनके परस्पर सम्बन्ध और उनकी जीवन-प्रणाली दीखती थी। मेरे मनमें उत्पन्न वितृष्णाजनक जीवन-चित्रोंसे मुक्ति पानेके लिए मैं वहाँसे हट गया, और दूर फ़व्वारेकी तरफ़ देखने लगा, जिसके कुण्डमें सिर्फ़ गीली मिट्टी और सड़ा हुआ पानी था, जिसके भीतर पत्थरकी सीढ़ियोंपर हाँफते हुए मेंढक अपनी भद्दी, लुजलुजी, चमकीली बटननुमा आँखोंसे दुनियाको देखते थे। मैंने कई बार कहा था कि इस फ़व्वारेको चालू कर दिया जाये और उसकी टोंटी सुधार दी जाये, और कुण्ड साफ़ किया जाये, लेकिन किसीने मेरी बात नहीं सुनी।

फ़व्वारेके कुण्डसे हटकर खुश्नुमा मेहराब-पर चढ़ी गुलाबकी बेलके नीचेसे गुज़रता हुआ मैं बुड्ढे युकलिप्टसके उस पेड़की ओर जाने लगा जिसका तना—सिर्फ़ तना—आमके दरख्तोंसे ऊपर निकल आया था और जिसकी शाखाएँ आकाशोन्मुख होती हुई फैल गयी थीं। वहीं हरी चम्पा (मदनमस्त) के छोटे पेड़ थे, जिनकी घनी टहनियाँ प्रसन्न और शान्त दिखाई दे रही थीं।

इस आशासे कि मैं उसका एकाध फूल तोड़ सकूँगा, वहाँ पहुँचा ही था कि उस पेड़के पीछेसे टेरीलीनका पैण्ट और बुशकोट पहने हुए गठियल, ठिगने, कंजी आँखवाले दर्शन-शास्त्रीका चमकीला चेहरा सामने आया जिस-पर उदासी और उकताहटकी मटमैली आभा फैली हुई थी। मुझे देखकर, अपने शरीरको ढील देकर वे एक पैरपर ज़ोर देकर खड़े हो गये और चिन्ताशील आँखोंसे मुझे देखने लगे।

मैंने उनसे हाथ मिलाया। और उस हाथ मिलानेमें ही मुझे मालूम हो गया कि पल-भरके लिए ही क्यों न सही, दिल मिल गया है। मैं क्षण-भरके लिए उन उदास, शिथिल, कंजी आँखोंके कत्थई सितारे देखने लगा कि इतनेमें उसने अँगरेज़ीमें कहा, "मान लीजिए कि यहाँ एक हत्या हो गयी है।"

चौंकते हुए मैंने जवाब दिया, "कितना बुरा विचार है।"

उसने कहा, "लेकिन कितना मौजूँ है।"

"हम तो साँब, खयालोंकी मौजूनियत देखते हैं।"

मैं मुसकरा उठा। किसीकी हत्या हो या न हो, हमारी तो हो ही रही थी। यह साफ़ था। और मुझे देवकीनन्दन खत्रीके उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलिस्मकी याद आयी, जिसमें-से बाहर निकलना असम्भव था, लेकिन जिसके भीतरके प्रांगणोंमें बगीचे भी थे, तहख़ाने भी थे और जिसमें कई नवयुवतियाँ और किशोरियाँ गिरफ़्तार रहती थीं। वे घूम-फिर सकती थीं, तिलिस्मी पेड़ोंके फल खा सकती थीं, लेकिन अपनी हदके बाहर नहीं निकल सकती थीं। ये हदें वो दीवारें थीं जो पहलेसे ही बनी हुई थीं और जिनको तोड़ पाना लगभग असम्भव था अथवा जिन्हें तोड़नेके लिए अपरिसीम साहस, कष्ट सहन करनेकी अपार शक्ति और धैर्य तथा वीरताके अतिरिक्त, विशेष कार्य-कौशल और गहरे चातुर्यकी ज़रूरत थी। मेरी आँखोंमें उस गहरे अँधेरे तिलिस्मके तहख़ानों और कोठरियोंके बाहरके मैदानोंमें घूमती हुई लाल-पीली और नीली साड़ियाँ अभी भी दीख रही हैं। उनके मुरझाये, गोरे कपोल और ढीली बँधी वेणियोंकी लहराती लटें अभी भी दीख रही हैं और मन-ही-मनमें मैं कल्पना कर रहा हूँ कि क्या यहाँ फँसे हुए बहुत-से लोगोंकी आत्माएँ इसी प्रकारकी तो नहीं हो गयी हैं।.....लेकिन, प्रश्न तो यह है कि इस तिलिस्मको कैसे तोड़ा जाये!

मुझे अपनेमें खोया जान दर्शनशास्त्रीने पूछा, "कहाँ गुम हो गये थे? लो, यह फूल लो।"

मदनमस्तका फूल सचमुच ख़ूब महक रहा था। लेकिन उसकी मीठी-मीठी महक दिलकी राखपर फैल तो गयी लेकिन ज़हरीली हो गयी और उस ज़हरको मैं धीरे-धीरे सूँघता रहा।

दर्शनशास्त्री मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया और मेरा हाथ पकड़ बगीचेकी उस ओर जाने लगा जहाँ हमारे मकानोंके बाड़ेमें लगे हुए केलेके लम्बे-लम्बे हरे पत्तोंवाले झाड़ झूल रहे थे। उसने अपने विश्वासमें लेते हुए कहा, "मुझे जल्दी ही यहाँसे चला जाऊँगा।"

"सचमुच?"

"हाँ।"

मैं एकदम चुप हो गया। अपने अकेलेपनका दुःख मुझे गड़ उठा। मुझे अभीकी स्थितिकी याद आने लगी जब वह चला जायेगा और मैं निःसंग रह जाऊँगा। (हालाँकि मैं उसके साथके बावजूद अकेला था।)

मैंने दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रासे कहा, "तुम जवान हो, तुम्हें तो ज़िन्दगीमें साहस करना चाहिए। और नयी तरह जाना चाहिए। लेकिन..... .....मैं? मैं जाऊँगा। मेरे सात बच्चे हैं और माताकी भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। रोग, कर्ज़ तरह-तरहकी उलझनें मुझपर हैं।"

और मैं उसाँस लेकर चुप हो गया।

दर्शनशास्त्री कुछ नहीं बोला। घरकी हालत जानता था। और मेरे अब यह सवाल था कि मैं कहीं अगले टूट तो नहीं जाऊँगा। क्योंकि अब मेरा भी साथ नहीं देता। तो क्या अब मैं बैठा रहूँ?

और, मेरे सामने, आज काले भयानक अँधेरे-भरे चित्र आने लगे, वह आदमी याद आने लगा, जो सालोंसे बीमार रहा आया, लेकिन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हड्डियोंसे सिर्फ़ अपनी लाश उठवानेके लिए, अन्तिम क्षणमें उनके स्पर्शके लिए तरसता हुआ वह देश आ गया और फिर उसी कुटुरमें रहने लगा जहाँ वह पहले रहता था और अपने कुटुर-वासके दो दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। मैं आजसे दस साल पहले अपने दफ़्तर जाते वक़्त उस रास्तेसे गुज़रता जिसपर उस मिट्टीके अँधेरे कुटुरका दरवाज़ा खुलता था और मेरी आँखें उस व्यक्तिकी ओर आकर्षित हो चुकी थीं क्योंकि वह एकदम पीला पड़ गया था और पाँव पसारे हाथके बल चलता था। कहीं ऐसी दशा मेरी भी न हो ! हाय !

कि इतनेमें किसी पेड़से एक पत्ता गिरकर मेरे शरीरपर गिरा। मैंने अनजाने ही उसे उठाकर देखा और उसके घने हरे रंगमें टहलती हुई नसोंको देखने लगा। उसमें जवानी थी। नया रक्त था। मुझे उस पत्तेको चूमनेकी और अपने गालोंपर उसे लगा लेनेकी तबीयत हुई गोकि संकोचवश मैंने वैसा नहीं किया।

इतनेमें, जगत पीछेसे दौड़ता हुआ आया और उसने हाँफते हुए समाचार दिया, "रूसने एक और आदमी आसमानमें छोड़ दिया। टिटोव। वह अबतक अठारह बार प्रदक्षिणा कर चुका है।"

दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा और जगतकी होड़ लगा करती थी। मिश्राने पूछा, "तो तुम्हें तो बहुत बुरा लगा होगा, जगत ! साला रूस क्यों आसमानमें पहुँच रहा है। उसे तो नष्ट होना चाहिए था !"

मिश्राने जगतपर भद्दा 'अटैक' किया था। वि क्या कर सकता था। जगत चुप रहा।

मिश्रा कहता गया, "लुमुम्बाकी कविता जगतने नहीं पढ़ी, पढ़ नहीं सका; उसके दोस्तोंके विरुद्ध जाती थी। लोग कम्युनिस्टोंको गालियाँ देते हैं कि वे रूस-चीनकी ओर देखते हैं। लेकिन ये साले, न सिर्फ़ ब्रिटेन-अमेरिकाकी तरफ़ देखते हैं, उनके बैंकोंमें अपने रुपये रखते हैं। क्यों बे साले, ऑक्सफ़र्ड या हार्वर्ड जा रहा था न ! तेरे पास इतना फ़ॉरेन एक्सचेंज कहाँसे आया। तेरा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद साला यहाँसे लेकर तो अमेरिका तक एक ज़ंजीरमें बाँधे हुए हैं, पैसोंकी ज़ंजीरसे !"

बेचारा जगत ! भूला-भटका जगत ! आज ग़ुस्सेसे लाल हो उठा। उसे महसूस हुआ कि उसपर झूठा आरोप लगाया जा रहा है। वह तो अमरीकी साहित्यका प्रेमी है !

अकस्मात् जगतने मिश्रापर बुरी तरह 'अटैक' कर दिया था। पीछेसे उसकी मोटी कमर पकड़कर, उसके सन्तुलनको बिगाड़ते हुए, उसे नीचे गिरा दिया कि इतनेमें मिश्राने उसे अपने आलिंगनमें जकड़ लिया, इतनी ज़ोरसे उसे कसा और इतनी ज़ोरसे हँस पड़ा कि जगत हक्का-बक्का रहा गया।

मिश्राने कहा, "हमारे-तुम्हारे बीच कोई झगड़ा नहीं है, जगत ! तुम्हारा-हमारा प्राकृतिक सह-अस्तित्व है क्योंकि हम दोनों एबीलार्ड्स हैं।"

एबीलार्ड ! दिमाग़में एक बिजली कौंध उठी। एकाएक मुझपर वज्र-सा गिर पड़ा।

एबीलार्ड ! सन्त ! जिसने अपनी जननेन्द्रियको चाक़ूसे काट दिया था। सन्त बने रहनेके लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन
नये प्रकाशन

• मुरदा सराय
शिवप्रसाद सिंह

चुनी हुई बारह नयी कहानियोंका नवीनतम संग्रह। शिल्प कथ्य दोनोंमें ये कहानियाँ अप्रतिम और प्रभावपूर्ण हैं। बड़ा यह कि इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनः कथित नहीं, पुनरुक्त है—पुनर्भुक्त है। ४.

• कुछ निबन्ध
अक्षयकुमार जैन

अक्षयजीके लघु-ललित निबन्धोंका नवीनतम संग्रह। समय-समय पर लिखे ये निबन्ध पाठकको मनोरंजन तो देंगे ही, कुछ और सोचनेके लिए विवश करेंगे। २.

• अपभ्रंश भाषा और साहित्य
डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

यह एक बहु-प्रतीक्षित शोध-प्रबन्ध है—अपने विषय-क्षेत्रका मौलिक विश्लेषण। भाषा एवं साहित्यके पाठकों तथा पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय। १०.

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च - ढ़ - ती सी ढ़ि याँ

आवेश

एक आवेग ऐसा होता है,
जब पंख अपने - आप
....पसर जाते हैं।
एक बिन्दु ऐसा आता है,
जब साँप केंचुली से
....रूठ जाते हैं।
एक श्वास ऐसा खिंचता है,
जब अस्तित्व के तार
....टूट जाते हैं।
एक स्पर्श ऐसा लगता है,
जब घिसे पत्थर, उपास्य
....बन जाते हैं।
एक क्षण ऐसा गुज़रता है,
जब हाथों से हाथ भी
....छूट जाते हैं।

—सत्यदेव राजहंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक मेरे बाजू में

जब उससे परिचय हुआ
आकर्षक लगा था बहुत ।

आत्मीय साफ़ चेहरा
मिलनसार खुली आँखें
मिलता-जुलता क़द
लिये हुए

धीरे-धीरे, मुझमें
समाता चला गया
एक बहुत
मीठे नशे की तरह ।

पर,
पूरी तरह छा जाने के बाद
उसने
बदल दिये तेवर !

अब वह
अध-खुली पैनी आँखों
और खिंचे हुए चेहरे से
घूरता हुआ,
झुककर
मेरी बाँह पकड़
घसीटता ले जाता है
कई-कई
अनजानी पगडण्डियों पर
जहाँ से
वह मुझे
कई रास्ते बताता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब मैं
उसमें खोजने लगता हूँ
आत्मीय चेहरा····
मिलनसार आँखें····
मिलता-जुलता क़द····।

रहने लगा है
अब
अधिकतर
मेरे साथ।

मेरे कन्धे पर
अपना वज़न रखे हुए
अकसर
मेरे क़दमों को
धीमा कर देता है

और कान में
धीमे-धीमे फुसफुसा कर
कितने ही
रहस्यमय काग़ज़ों पर
हस्ताक्षर कराने की चेष्टा में
मेरी
रीढ़ की हड्डी
सहलाता है।

जब मैं उसे
नफ़रत से देखने की कोशिश में
मुँह का थूक
अन्दर-ही-अन्दर,
गटक कर
रह जाता हूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब,
वह
ज़ोर-ज़ोर से हँसता हुआ
मुझे,
भयभीत करता
चला जाता है।

जब कभी
वह साथ नहीं होता
उस बीच
मैं
अपने चेहरे की रेखाओं को

उँगलियों से छूता हुआ
अपने-आपको
अपनी उम्र का अन्दाज़
करता हुआ पाता हूँ।
और
उसका स्मरण आते ही
जब मेरा मुँह
कड़ुवाहट से भर जाता है
तभी
होठों पर
वक्र मुसकान लिये
उसे!
ठीक अपने बाज़ू में
खड़ा हुआ पाता हूँ।

उससे जब परिचय हुआ था
आकर्षक लगा था.....।

—भगवत रावत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ नीली झील

एक निर्मल पवित्र
नीली झील :
प्यार की लम्बी-सी ढील--,
जैसे अचानक टोना-सा कर दिया
किसी ने ।
तभी मैं कूद पड़ा
उसमें बहने लगा;
कुछ ही देर में मुझे लगा
कि झील तो थम गयी है
केवल मैं ही बह रहा हूँ ।
पर मैं तो उसमें डूब-डूब जाना चाहता था,
गहरे पैठना चाहता था;
लेकिन ऐसा न कर सका –
हाथ-पैर फरफराते रहे
अपने बचाव के लिए
तिनके का सहारा ढूँढ़ते रहे ।
और तभी मुझे प्रतीत हुआ
कि झील नहीं,
मैं ही उथला हूँ....

—ललितकुमार श्रीवास्तव

■ सबके लिए हूँ....

कह पा रही हूँ
जितना-भर
बस उतना-भर
अधिकार है ।
जितना-भर
'अनकहा' है
लगता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनकेअलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज ... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देख बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही हमें आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, कलाइव रो, चढ़ती

IPC-RJ : 383 HIN. (A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बस उतना-भर
तुमसे प्यार है।
स्पर्शमुक्त हूँ जितना
बस उतनी-भर
'मैं' तुममें हूँ।
अचीन्ही हूँ तुमसे
मैं जितना,
मेरा परिचय है
बस उतना,
शेष-भर मैं
सबके लिए हूँ।

—सविता बनर्जी

■ सम्पूर्णता

अब मुझे मृत्यु-भय नहीं है—
मैंने सब कुछ कर लिया !
आबादी बढ़ाने में योग दिया—
जनसेवा की वाहवाही भी ली—
पैसे कमाये–खर्चे और बचाये।
मित्रों की लम्बी सूची तैयार की—
कविताएँ लिखीं
गोष्ठियों में बैठ !
और काग़ज़ों के ढेर में
दो-चार काग़ज़ भी डाले !!
लोगों की आँखों से बचकर रोमान्स किया !!!
कंचन-कामिनी और कीर्ति तीनों ही मिले—
याद नहीं अब और क्या करना शेष रहा ?
कोई भी काम अधूरा नहीं रहेगा
अब मृत्यु से
(किसी की भी मृत्यु से कोई काम अधूरा नहीं रहा)
युगानुकूल जैसा जीना था, जी लिया—
इससे अधिक जीने को
संसार में साफ़ हवा भी तो नहीं है !

—गोपालकृष्ण सराफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• नये प्रतिमान : पुराने नि

लक्ष्मीकान्त वर्मा
(आलोचना)

• अस्तंगता

कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु'
(उपन्यास)

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा शीघ्र ही प्रकाश्य पाँच कृतियां

• शहर अब भी सम्भावना है

अशोक वाजपेयी
(कविता-संग्रह)

• हिन्दीके आदि मुद्रित ग्र

कृष्णाचार्य
(अनुसन्धान)

• सवेरा-संघर्ष-गर्जन

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
(कहानियाँ)

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा मंच

- मन्मथनाथ गुप्त
- शैलेश मटियानी
- सकलद्वीप सिंह
- ओंकार ठाकुर

ये हैं कुछ प्रतिक्रियाएँ 'कुछ और' प्रतिक्रियाओंसे पहले—

•

मन्मथनाथ गुप्त : अभी-अभी कलकत्तामें जो हिन्दी कथा-समारोह हुआ था, उसमें भाग लेनेवाले कथाकारों तथा आलोचकोंके वक्तव्योंमें इतनी ऐश्वर्यशाली सामग्री आयी है कि उसपर मनन और चिन्तन करनेके लिए काफ़ी समय लगेगा। प्रत्येक व्यक्तिने कोई-न-कोई महत्वपूर्ण बात कही है। मैं समझता हूँ कि इस सामग्रीको गहराईके साथ अध्ययन करनेके बाद उसपर एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है, पर थोड़ेमें जो बात सबसे अधिक उभरकर मेरे सामने आ रही है वह यह है कि भाग लेनेवाले कथाकार अकसर दो आवाजोंमें बोलते हैं, कभी-कभी उससे भी अधिक। जीवनदृष्टि और समाजके प्रति प्रतिबद्धताकी बात भी कही जाती है और साथ-साथ साफ़ तरहसे मुक्त होकर साहित्यके क्षेत्रमें लगभग नंगा नाच, अपनी कुण्ठाओं तथा दमित इच्छाओंका, करानेकी बात एक साँसमें कही गयी, जो मेरी समझमें नहीं आता।

मैंने जहाँतक समझा है और अध्ययन किया है, मैं समझता हूँ कि ये दो स्थितियाँ एक साथ नहीं चल सकतीं। कथा-समारोहके कुछ लेखक, जिन्हें हम उनके नेता ही कहेंगे अकसर जीवनदृष्टिकी क़समें खाते पाये गये हैं। जीवनदृष्टि दर्शनका दूसरा नाम है या

तारातिक्क चित्रित प्रतिक्रिया
ज्ञानोदय फ़रवरी अंक देखनेपर

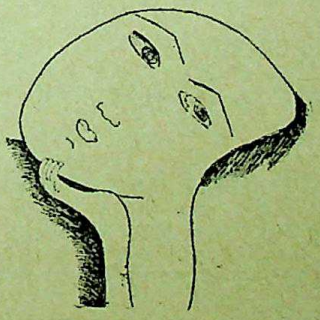

कथाजीवी···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि इस शब्दसे परहेज़ हो तो इसे विश्वदृष्टि (जर्मन भाषामें वेल्टानशाउंग) कहा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्तिका एक दर्शन, विश्वदृष्टि या जीवनदृष्टि होती है। इसके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि उसने कणाद, चार्वाक-से लेकर भगवानदास, राधाकृष्णन् तक या अफ़लातूनसे लेकर सार्त्र तक लोगोंको पढ़ा हो। जीवनदर्शन या जीवनदृष्टिका यही अर्थ है कि एक विशेष प्रश्न या स्थितिके सामने व्यक्ति किस प्रकारसे प्रतिक्रिया करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक ही स्थितिके सम्मुख अलग-अलग तरीक़ेसे प्रतिक्रिया करता है और यही उसकी जीवनदृष्टि है। दूसरे शब्दोंमें यह हुआ कि जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही जीवनदृष्टियाँ हैं। ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो मुँहसे कुछ और कहते हैं और कार्यरूपमें कुछ और करते हैं, ऐसे लोगोंके जीवनदर्शनके सम्बन्धमें हम यही कहेंगे कि जो कुछ वह करते हैं वही हमारे लिए उनका जीवनदर्शन है, न कि जो वह कहते हैं। साहित्यमें भी इसी प्रकार कौन लेखक सैद्धान्तिक रूपसे क्या सोचता है, यह उसका जीवनदर्शन नहीं है, बल्कि जीवन और साहित्यमें वह किस मतको प्रेषित-प्रतिपादित करता है, किस मतसे बचता-कतराता, तरह देता है, वही उसका जीवनदर्शन है। ढोंगके जीवनदर्शनका केवल इतना ही मतलब है कि आदमी किसी कारणसे लबादा ओढ़कर अपनी कोढ़ग्रस्त नग्नताको छिपाना चाहता है।

मुझे संक्षेपमें अपनी प्रतिक्रिया लिखनेको कहा गया है, इसलिए मैं इतना ही कहकर चुप हो जाऊँगा कि चाहे दुनियामें कुछ भी चले, पर यह नहीं चल सकता कि आप [illegible] के प्रति प्रतिबद्धताका नारा भी दें और [illegible] साथ उसकी शाश्वत जड़ोंको काटकर फेंक दें। अवश्य समाज कोई ठहरा हुआ पानी नहीं वह निरन्तर बदल रहा है, गेटेके शब्दोंमें, एक नदीको दूसरी बार नहीं देख सकते उसी प्रकार हम एक समाजको उसी स्थिति नहीं देख सकते। समाजकी भलाई भी है कि वह पूर्व स्थितिमें न सड़े, वह और साँस ले।

जहाँतक भारतीय समाजका सम्बन्ध उसे बड़ी तेज़ीसे बल्कि कुछ हद तक निर्मम से बदलनेकी आवश्यकता है। जब मैं सुनता हूँ कि कुम्भमें ३० लाख लोग नहाये या [illegible] १० लाख लोग केवल कुरुक्षेत्रमें नहाये थे मैं अब भी दिल्लीमें स्त्रियोंको बुर्क़ा देखता हूँ, तो मुझे ख़ुशी नहीं होती मैं यह महसूस करता हूँ कि किसी-[illegible] रूपमें ऐसा कुछ होना चाहिए, कहींसे पहाड़ टूटकर गिरना चाहिए, ज्वालामुखी जानी चाहिए या ऐसा कुछ होना चाहिए जिससे हमारी यह आरामदेह वज्रमूर्ख [illegible] बदले। ग्रहण क्यों होता है क़रीब-क़रीब सब जानते हैं, फिर यह नहाना [illegible] साहित्यका कार्य है, इस स्थितिको [illegible] होनेमें हाथ बटाये और ज़रूरत पड़े तो [illegible] लिए जो भी पुरुषार्थ हो यहाँतक कि [illegible] क्रिया करे। यदि मामूली ढंगसे कहा [illegible] तो कहना पड़ेगा कि समाजके प्रति [illegible] बद्धताके नारे देना और साथ ही दो या [illegible] अधिक स्त्रियोंका एक साथ भोग करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस तरहकी वृत्तिको साहित्यके अन्तिम सत्यके रूपमें मानने, उसपर पैग़म्बरी छाप लगा देनेकी प्रवृत्ति नहीं चल सकती। कुण्ठा सत्य है, पर माताका प्रेम भी सत्य है और बहुत-से सत्य हैं जिनकी तरफ़से हम आँख क्यों मूँद लें? मुझे इस मतका प्रतिपादन करते हुए कोई लज्जा नहीं आती क्योंकि संसारके आधेसे अधिक लोग समाजके प्रति प्रतिबद्धतावाले मतको मानते हैं और जो नहीं मानते उनको देर या सवेरमें इसी तरफ़ आना पड़ेगा। हमारे कुछ कथाकार यह जो कॉकटेल बनानेकी कोशिश कर रहे हैं कि समाजके प्रति प्रतिबद्धताका नारा देकर क्रान्तिका झण्डा उठायें और साथ ही स्त्रियोंका शोषण करें और उन समस्याओंको चीमटेसे भी न छूएँ जो शासकवर्गको अप्रिय हैं, यह नहीं चलेगा। तो मेरा कथन है कि यह फ़रेब न हिन्दीमें चल सकता है और न कहीं और चल सकता है।

■

शैलेश मटियानी : 'कथा-समारोह'पर इतनी सामग्री देकर आपने सभी जिज्ञासुओंके लिए सराहनीय कार्य कर दिया है। मेरा वक्तव्य बहुत काट-छाँट कर दिया गया है। यों यही क्या कम है कि दिया गया है। (लोग—अन्दरसे असभ्य लोग भी—सभ्य समाजमें सभ्य और मर्यादाशील बन जाते हैं। जो व्यक्ति ऐसे सभ्य-समाजके बीच भी अपने जंगलीपनको न छिपा सके उसे क्षमा कर दिया जाना ही बहुत बड़ी बात है।)

आपका सम्पादकीय बहुत सारगर्भित है।.... मगर एक बातसे मैं सहमत नहीं हूँ। लिखने-

की विधियाँ सिर्फ़ जीनेमें-से कदापि नहीं निकल सकती हैं। सिर्फ़ 'जिया हुआ' हमेशा अधूरा होता है। 'जिये हुए' का 'सोचने' के द्वारा पुनर्भोग और पुनर्वाचन करते चले जानेपर ही 'जिये हुए' में-से व्यर्थ और अनपेक्षित छाँटा जा सकता है। जीनेकी प्रक्रिया अनुभूतियों (कच्चे माल) के अर्जनकी है, 'सोचने' (चिन्तन) की प्रक्रिया उसमें-से 'सर्जन' के लिए उपयुक्तको छाँटनेकी (रिफ़ाँयनरीकी) होती है। जिस तरह अपनी पूरी शक्तिके साथ जी सकनेके लिए (अनुभूतियों या कि अनुभवोंको अर्जित कर सकनेके लिए) अपनी सिर्फ़ सोचनेकी स्थितियोंसे कटकर जूझना ज़रूरी है, वैसे ही पूरी क्षमताके साथ लिखनेके क्षणोंमें जीनेके बाहरी संघर्षोंसे कटकर सिर्फ़ अपने अहंस्संघर्षों-के पुनर्भोग—'सोचने' के माध्यमसे 'जिये हुए' का पुनर्भोग—आवश्यक है। लिखनेकी विधियाँ नहीं, लिखी जा सकनेके अनुकूल सामग्रियाँ 'जीने'से प्राप्त की जा सकती हैं—लिख सकने-की सारी स्थितियाँ तो 'सोचने' में-से ही जन्म लेती हैं। जिया हुआ अनुभव बार-बारके चिन्तनके बाद अन्ततः शेष रह जाता है, मात्र उतनेको ही 'जेन्युईन' माना जा सकता है।

आपने यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण लिखी है, कि 'सफल' दिखने और होनेके चक्रव्यूहमें फँसकर अकसर लेखक अपने लेखनमें असफल हो जाता है। 'दूसरोंकी दृष्टि'में सफल दिखने-के लिए व्यक्ति अन्दरसे असफल पा असमर्थ और 'दूसरोंकी दृष्टि' में सभ्य दिखनेके चक्करमें अन्दरसे असभ्य होता जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक लेखन मैं उसे ही मानता हूँ। जो सारे बाहरी दबावोंको झेलनेके बावजूद, उनसे ऊपर उठकर किया जा सके। हिन्दीमें 'विशुद्ध साहित्य'वाले अनास्था और त्रास-वादियोंकी ठीक वैसी ही 'कैरियरिस्ट' विभूतियाँ सामने आ रही हैं, जैसी 'प्रगतिशील लेखक-सम्मेलनों' के दौरान आयी थीं। यह आज़माकर ही देखनेकी चीज़ हो सकती है, कि कलको अगर 'ज्ञानपीठ' आदि सारे महत्त्वपूर्ण और समृद्ध साहित्य-संस्थानों-द्वारा सिर्फ़ आस्थापरक और आदर्शवादी साहित्य ही छापे जानेका निर्णय ले लिया जाये तो फिर कितने तथाकथित त्रास और अनास्था-वादी जीनियस अपने नये साहित्यिक-मूल्योंके लिए 'स्टैण्ड' करेंगे।

मेरे कहनेका अर्थ यही है, कि बाहरी प्रलोभनों और आतंकोंसे दबकर प्रगतिशील लेखकका नारा लगाना जितना असाहित्यिक है, उतना ही यह कृत्रिम विशुद्ध साहित्यवादी लेखनका। हिन्दीमें आज अधिकांशतया व्यावसायिक लेखन हो रहा है। विशुद्ध साहित्यवादी 'अज्ञेय'जीकी पूरी बटालियन भी वैसे ही साहित्यका सृजन कर रही है, जिसे 'प्रश्रय' दिया जा रहा है।....और वास्तविक साहित्य 'अप्रश्रयजीवी' नहीं होता, वह मनुष्यकी आत्माको कमज़ोर करने, उसका नैतिक-पतन करनेवाले 'आश्रयों' को तोड़ता है।

चारों तरफ़ धूर्त्तताओं और बेईमानियोंकी बात लेखकको ऐसे नहीं करनी चाहिए, जैसे साधु-महात्मा 'सारे भवसागरमें पाप और भ्रष्टाचार' की बातें करते हैं। चारों तरफ़की धूर्त्तताओं और बेईमानियोंके बीच अगर लेखक जी रहा है और सुविधाओंके साथ जी रहा है तो निश्चित है कि बीचमें वह 'खुद पापोंसे परे साधु' नहीं है, बल्कि कहीं-न-कहीं खुद बेईमान, धूर्त्त और झूठा है। मैं व्यक्तिगत रूपसे यह जानता हूँ, कि अगर मुझमें बेईमानी कर सकने, झूठ बोल सकने और धूर्त्तता कर सकनेकी 'शक्ति' नहीं होती, तो मैं कदापि जी नहीं सकता था। लेखक होनेके लिए 'पवित्र' होना और 'ईमानदार' होना ज़रूरी है, तो अपनी बेईमानियों और धूर्त्ताओंकी सहज स्वीकृति भी अनिवार्य है।

लेखक ईमानदार रह सकने और बन सकनेके लिए ज़िन्दगी-भर जूझता रहे—यह बहुत बड़ी बात है। आज लेखक ईमानदार हो और जी सके यह असम्भव है। आज ही नहीं, किसी भी युगमें कोई पूरी तौरपर ईमानदार लेखक जीवित नहीं रहने दिया जा सका। उसकी पूरी ईमानदारीके विस्फोटको सह सकना उसके आस-पासके लोगोंके लिए सम्भव नहीं हो सकता।

इस दृष्टिसे आपकी यह बात मुझे अच्छी लगी, कि 'लेखक बन चुके' हुए लोगोंकी नियति और रचना-प्रक्रिया वही होगी ही, जो लेखक बननेके प्रयत्नमें हुए हैं। यह ध्रुव-सत्य है, कि हर लेखक पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ीसे आगे बढ़ता है, मगर मुझे एक ही शंका है, ईमानदार बन सकनेकी यन्त्रणाओंको ठुकराकर ईमानदार होनेका दावा करनेकी बात कहीं आत्मवंचना न कर दे। आप जब ईमानदार होनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, तो उसका सीधा अर्थ मैं यही लगाना चाहूँगा, कि आप उन सत्योंको स्वीकार कर सकनेमें समर्थ होंगे, जिन्हें दूसरों-की दृष्टिमें 'ग़लत' माना जाता या जा सकता है। कुल मिलाकर, फ़िलहाल मुझे यही लगता है, कि आज़ादी प्राप्त करनेके बादसे जैसे दासताके दिनोंसे भी ज़्यादा दयनीय मानसिक दासताओंके साथ जीनेके बावजूद, हमें 'स्वतन्त्र' कहला सकनेकी सुविधा है--ठीक ऐसे ही, साहित्यकार न होनेके बावजूद साहित्यकार होनेका मिथ्या भास पैदा करनेकी सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। मगर समझता हूँ, कि मानसिक दासतासे आक्रान्त लेखकोंके लिए यह बात कोई अहमियत नहीं रख सकती, कि हम अँगरेज़ोंके दास थे, या हिन्दुस्तानियोंके दास हैं! जो लेखक अपनी ही मानसिक दासताओं और नपुंसकताओंसे मुक्त न हो, वह किसी भी स्थितिमें स्वतन्त्र नहीं रह सकता।....लिखनेके लिए बाहरी नहीं आन्तरिक दासताओंसे स्वतन्त्र होना अनिवार्य होता है।

■

सकलदीपसिंह : फ़रवरी '६६ के ज्ञानोदयमें रमेश बक्षीका सम्पादकीय 'सातवाँ दशक : ठीक-ठीक मूल्यांकन' देखा और मुझमें कई तरहकी प्रतिक्रियाएँ हुईं। सोचने लगा कि बिचली पीढ़ीके सामने कौन-सी कठिनाइयाँ हैं जो संक्रान्त पीढ़ीका सही मूल्यांकन करनेमें बाधक हैं। मोहन राकेश या यादवके सामने उपस्थित होनेवाली बाधाएँ तो स्पष्ट हैं किन्तु जब बिचली पीढ़ीका एक ऐसा कथाकार जो संक्रान्त पीढ़ीके समानान्तर चलनेमें सक्षम दीखता है, संक्रान्त पीढ़ीके सम्बन्धमें अस्पष्ट या हिचक-भरा कुहरिल ख़याल रखता है तब संक्रान्त पीढ़ीकी ओरसे पीढ़ीगत सीमाओं या विभाजनोंके बारेमें स्पष्टीकरण रखना आवश्यक हो जाता है। रमेश बक्षीका सम्पादकीय मुझे मजबूर करता है कि मैं कुछ अपनी बात रखूँ। ऐसा तो नहीं है कि वह कथाकार अपनी पीढ़ीगत सीमाओंको तोड़ सकनेमें ख़ुद कमज़ोर-सा अनुभव करता है या मूल्यांकन-हीन युगके सन्त्रासको सह सकनेसे कतराता है?

रमेश बक्षी-द्वारा दिये गये 'ठीक-ठीक मूल्यांकन'से संक्रान्त पीढ़ीकी अलग बनी हुई या बनती हुई सीमा-रेखा स्पष्ट नहीं होती। संक्रान्त पीढ़ी अपनी पहचान अलगसे, बिलकुल अलग, देना चाहती है। वास्तवमें संक्रान्त पीढ़ी एक अलगकी पीढ़ी है, जो ६० के बाद उभरी है। इस पीढ़ीका हर लेखक, हर कवि, हर कहानीकार अपनी पहचान बोधके स्तरपर अलगसे देना चाहता है। अपनी-अपनी सीमाओं-संस्कारोंके अनुसार वह अपनी झेली हुई या भोगी हुई पीड़ाको शब्द देना चाहता है।

अगर इस पीढ़ीके लेखकोंमें कहीं कोई समानता है तो वह है उनका परम्परा-विरोधी रुख। क्रममें वे विकसित होना नहीं चाहते क्योंकि क्रूर ज़िन्दगी आज अपनी सीधी व्यंजना माँग रही है। इसलिए आजकी यह पीढ़ी आस्था, संघर्ष, या स्वप्नकी कृत्रिम मुद्राओंमें नहीं जीती। अनास्था, थकान और यथार्थकी कठोरतामें जीती है जहाँ कोई लय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगति नहीं होती।

बक्षीजी शायद नयी पीढ़ीमें राकेश-यादव-पीढ़ीके सभी कथाकारोंको ले लेते हैं। इसी-लिए वे कहते हैं, 'कुछ पुराने नाम, कुछ उनके बादके नाम, कुछ और बादके नाम, कुछ और ताज़े नाम उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं....।' इससे पता चलता है कि बक्षीजी संक्रान्त पीढ़ी-की अलग बननेवाली सीमा या परिभाषाके प्रति अरुचि रखते हैं। यह क्यों—इसका उत्तर उनका पीढ़ीगत बोध दे सकता है। कहीं-कहीं खुले 'निकष' या जीवनदर्शनकी माँग भी करते हैं किन्तु सम्भवतः यह साफ़ है कि संक्रान्त पीढ़ी न कोई एक प्रतिमान देती है, न लेती है, न कोई जीवनदर्शन ओढ़ती है, न किसीपर लादती है। बिचली पीढ़ी जिससे गुज़रकर रमेश बक्षी, जो संक्रान्त पीढ़ीके साथ हो ले रहे हैं या हो लेनेको स्वभावतः कोशिश कर रहे हैं, के सामने कोई-न-कोई निकष था। उस पीढ़ीके सभी कथाकार रोमाण्टिक या सामाजिक हुए रहनेकी मजबूरीमें जीते रहे और लिखते रहे। पर ६० के बाद आकर यह स्पष्ट हुआ कि उनकी संवेदना या अनुभूति या वैयक्तिक सामाजिकता झूठी थी और तभी उनकी पीढ़ीको रमेश बक्षी नयी पीढ़ीके रूपमें ले लेते हैं, और संक्रान्त पीढ़ीके हुए डिपार्टरपर ध्यान नहीं देना चाहते। राकेश-यादवकी नयी पीढ़ी एक ठहराव (स्टैण्डस्टिल)में आकर जक-थक हो गयी। इस ठहरावके मूल-में प्रच्छन्न भावुकता थी जो जीवनको जीवनके रूपमें भौतिक स्तरपर नहीं ग्रहण करती। इसीलिए वह पीढ़ी व्यवसाय हो गयी। ठीक जिस प्रकार प्रयोगवादी कविता और नयी कविता छायावादी रोमान्स या प्रगतिशील रोमान्स अलग नहीं हट सकी उसी प्रकार कथाकारोंकी बिचली पीढ़ी भी पिछली पीढ़ीसे शक्ति ग्रहण रही, उससे अलग नहीं हो सकी। भगवती चरण वर्मा, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्रके प्रश्नोंको सुलझानेमें यह पीढ़ी पूरे दशक झती रह गयी। स्व० देवीशंकर अवस्थी संकेत किया ही था कि इनके सामने गढ़नेकी बात, इनके सामने सौन्दर्य, जिकता, वैयक्तिकता, मूल्यांकन तथा के प्रति एक मोह था जो अब बदल गया है। वे कहानियाँ ही लिख हैं—अच्छी कहानियाँ, अकहानियाँ नहीं सकते, चूँकि अकहानियोंमें ही देखा जा सकता है। सच्चाइयाँ राजा नहीं होतीं, पगडण्डियोंमें होती हैं। अलग हटते जाना, अपनेसे लड़ते जाना, को काटते जाना सच्चे (genuine) का रुख होता है। यह ताज़ी पीढ़ी इस नितान्त भिन्न या विपरीत है। संक्रान्त (मेरे संक्रान्त पीढ़ीका नाम बार-बार कारण नयी पीढ़ीसे इसे अलगाना है या कर इसके सही दिशाबोधको दिखलाना 'अपने' लेखक-से लगनेवाले कई लेखक अलग कर देती है। यह पीढ़ी वर्माकी तरह बिचली पीढ़ीसे हलकी भर नहीं करती, मुद्राराक्षसकी भाँति बोधहीनताके स्तरपर तिरस्कार कर बैठ जानेकी कोशिश नहीं करती, भाँति बिचली पीढ़ीके स्तरपर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैयक्तिकता (जो अब पुरानी हो चुकी) की चीख नहीं चिल्लाती, राजकमल चौधरीकी भाँति सेक्स-सम्बन्धी एकांगी दुस्साहसिकता नहीं लेती, (जो पूरे व्यक्तित्वको झँझोड़ सकने में असमर्थ है) सम्भवतः इसीलिए राजकमल भी कहानियाँ ही लिख सकते हैं अकहानियाँ नहीं। इनकी रचनाएँ जीवनकी .खूँखारताको नहीं वहन करतीं। इनका 'हारर' भी एक पुराने संस्कारमें जाकर जुड़ जाता है। यह अवश्य है कि इन लोगोंने संक्रान्त पीढ़ीका अपना अलग अस्तित्व बन जाने देनेमें काफ़ी सहयोग दिया। यह पीढ़ी किसी आन्तरिक तार्किकसंगतिको नहीं खोजती, किसी गम्भीरताको नहीं खोजती या ओढ़ती चाहे वह अगम्भीर गम्भीरता ही क्यों न हो। वह किसी 'अद्रिठीयता' का शिकार भी नहीं बनना चाहती। वह सामान्य स्तरपर सामान्य जीवनको सामान्य भाषामें कहना चाहती है। इतना सामान्य कि उसे नफ़रत करनेकी शक्ति भी अलगसे नहीं रह गयी लगती है किन्तु सच्चाई और अलगाव यहाँ है कि वह शक्तिहीनता किसी 'action' का विरोधी नहीं है। विरोध-विद्रोहसे जन्मी यह पीढ़ी अपना सही नाम माँगती है।

बक्षीजी संकट झेलनेकी बात करते हैं पर हर युगका झेलना न हमारा झेलना होगा न हर युगका संकट हमारा संकट होगा। हर पीढ़ी विद्रोहके रूपमें आती है और अन्तमें शक्तिशाली होकर सुविधापरस्त और व्यवसायी हो जाती है! इसलिए सुविधाविहीन नयी उभरनेवाली अस्थापित पीढ़ी ही प्रामाणिक हो सकती है। संक्रान्त पीढ़ी समसामयिकताके स्तरपर ईमानदार और सच्ची है।

इसलिए रमेश बक्षीसे मैं यहाँ असहमत होते हुए कहना चाहूँगा कि आजके समकालीन सन्दर्भमें नाम लेनेकी ज़रूरत है, चाहे आप कथाकारोंका नाम लें या उनकी रचनाओंका, इसकी आवश्यकता पीढ़ीगत भेदको समझनेके लिए होती है। अगर ऐसा न हो तो बदली या बदलनेवाली पीढ़ीको व्यवसाय खाता रहेगा। न भेद करनेकी स्थितिमें नवलेखनको रखना अनावश्यक जोखिम उठाना है। अभेदकी स्थितिको बनाये रखनेकी कोशिश हर पुराना व्यवसायी लेखक करेगा! उसे भी तो अस्तित्व-संकट है!

बक्षीजी ठीक सोचते हैं कि 'लिखनेकी विधियाँ, जीनेकी विधियोंमें-से ही निकलती हैं, सोचनेकी विधियोंमें-से नहीं।' किन्तु स्पष्टताके लिए इतना ही काफ़ी नहीं है! जीनेकी विधियोंको सबने अपनाया। सभी ज़िन्दगीकी बात करते हैं। किन्तु कौन-सी बात ज़िन्दगीकी सही बात है? कौन-सा लेखक ज़िन्दगीको सही रूपमें, अनारोपित होकर जी रहा है? कौन-सी रचना इस सही जीनेकी विधिको कह पा रही है? ये सारी बातें ध्यानमें रखनेपर स्पष्ट हो जायेगा कि संक्रान्त पीढ़ी अपनी अलग खोज की जानेवाली दिशाएँ निर्धारित करती है। सम्भवतः बक्षीजी 'अनायास रचनात्मकता' का सम्बन्ध इसी सही 'जीने' और उसे सही 'अभिव्यक्ति' देनेसे रखते हैं। अगर मैं ग़लत नहीं हूँ तो इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारपर बक्षोजीको सही जीने और झेलनेवाली आजकी एक मात्र पीढ़ी संक्रान्त पीढ़ीके लिए अलग बनते दायरेकी ओर भी संकेत करना चाहिए। शैलीकी बात भारी जिस पीढ़ीको लग रही है वह पीढ़ी नितान्त अलग है, अपारम्परिक है, विरोधी है, नयी ज़मीन तोड़कर अपनी पहचान देना चाहती है। क्योंकि यह पीढ़ी सच्ची है, प्रामाणिक है। बिचली पीढ़ी विसंगतियोंमें जीती हुई भी संगतिकी बात करती थी, इसलिए वह झूठी थी। आजकी पीढ़ी विसंगतियोंमें जीती हुई साहस और निर्भीकताके साथ विसंगतियोंकी ही बात करती है अतः सच्ची है। यह प्रक्रियाशील पीढ़ी है। राकेशकी नयी कहानी बाज़ार बनाकर बैठ गयी। यह चल रही पीढ़ी इस बाज़ार बन जानेकी विडम्बित स्थितिके विरुद्ध एक क्षोभको लेकर चलनेवाली है। 'स्थापित'के मोहकी, जिससे पुरानी मर्यादा या 'महिमामण्डित परम्परा' जुड़ी है, लाशपर यह संक्रान्त पीढ़ी खड़ी हुई है। आत्महत्या न कर सकनेकी मजबूरीमें आतंकित इस पीढ़ीको समझ या झेल सकनेकी ताक़त बस इसी-इसी पीढ़ीका लेखक रख सकता है शायद।

अगर रवीन्द्र कालियाकी 'त्रास' दूधनाथकी 'रक्तपात' अवधनारायण सिंहकी 'यन्त्रणा' ज्ञानरंजनकी 'पिता' काशीनाथ सिंहकी 'लोग बिस्तरेपर'-जैसी कुछ कहानियोंको समसामयिक बोधके स्तरपर सही पाठ-प्रक्रियासे पढ़ा जाये तो अवश्य ही संक्रान्त पीढ़ीकी एक भिन्न अस्तित्व-दिशा दीखेगी।

ओंकार ठाकुर : कथा-समारोहके साथ [illegible] जिन नये कथाकारोंकी कहानियाँ प्रस्तुत [illegible] में दी हैं उनमें कई तो निहायत अपरिचित 'लेखक' हैं। विमल, सुधा अरोड़ाको छोड़ [illegible] किसीकी कहानी पूरी तक नहीं पढ़ पाया। यह मेरा एक प्रयोग कह लीजिए। पूरा [illegible] अपने एक साथीको पढ़ने दिया जिसको [illegible] केवल पढ़नेमें है। किसकी कहानी है, उसे [illegible] सोचनेकी ज़रूरत ही नहीं रहती। कहानी पढ़कर उसने बस एक नाम और जोड़ दिया शैलेशका। यह महज एक प्रयोग था मेरा।

कथा-समारोह—जैसा आपने प्रश्न किया है—पढ़कर लगा कि भाग लेनेवालों [illegible] ध्यान केवल इसी ओर केन्द्रित था कि [illegible] नहीं शेष लोग मेरी बात सुन रहे हैं या नहीं सभी यही सोचते होंगे। क्योंकि मोहनने 'नई कहानी' को लेकर पिछले सालोंमें कुछ [illegible] और इतना लिखा है कि इस कथा-समारोह [illegible] मोहन राकेशने या किसीने कुछ [illegible] नहीं कहा है। आपने भी। आप प्रश्न [illegible] सफ़ाईसे टाल गये हैं या साफ़ मोड़पर [illegible] हो गये हैं। जो भी हो।

चौथी गोष्ठीकी चर्चा यहाँ मैं [illegible] चाहूँगा—'समकालीन बोध और दार्शनिक कथा-चिन्तनकी मज़बूत ज़मीन'। [illegible] लिखनेवालोंके सामने यह सवाल पैदा होता [illegible] है कि जो लिख रहा है, वह क्यों और [illegible] लिख रहा है या लिख ही क्यों रहा [illegible] जीवनको सहज रूपमें जिया जाये [illegible] बनावटी क़रार देकर। यह बात बड़े [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अनुभव तो यह कहता है कि कोई भी कहानीकार, आजका, अपने प्रति ईमानदार नहीं है, न होना चाहता है। आज हम किसी-से कहते हैं कि तुम्हारे घर जाकर तुम्हारी बीमार पत्नीको देखने आयेंगे और परसों जब मिलते हैं तो कहानीके अन्दाज़में अपने घरकी बीमारीका कहानी बना देते हैं। जहाँ पैसा मिलनेकी उम्मीद हो वहाँके लिए कहानी एक दिनमें भेज देंगे और जहाँ फ़ाकामस्ती हो वहाँ अंगूठा बताकर यहाँ-वहाँ कहते फिरते हैं। इसे हम क्या कहें? आजका साहित्यकार यह ज़िन्दगी जी रहा है। और ईमानदारीकी लगातार बात किये जाता है। कैसी ईमानदारी और किसके लिए। यही लोग घुटन, अनास्था आदि बातें करते हैं। ये बातें सायास हैं। बार-बार मुझे लगा है। रमेश बक्षी कुछ कहता है तो उसका अर्थ है और राकेश कहता है तो उसका अर्थ है और ओंकार ठाकुर कल कुछ कहेगा तो उसका और कुछ अर्थ रहेगा। यह तो होना ही है। इसीलिए मैं आपकी बातसे सहमत हूँ कि यह जो समय-सापेक्ष-वाली बात है, वह दरअसल ईमानदारीकी बात है। समसामयिकताको मैं नकारता हूँ। वह भ्रम और खोखली चीज़ है। फिर पीढ़ीवाली बात। सवाल उपलब्धिका है। उपलब्धिको हम चार नाम लेकर नहीं बता सकते। चार क्या पचीस नाम लेकर। 'मेरी' उपलब्धि कोई कहे तो समझ आता है। 'मेरी पीढ़ी' की चर्चा बेतुकी लगती है।

आज ज़्यादा संघर्ष करनेकी ज़रूरत है कमर्शियल लेखनसे। अधिकांश लेखक कमर्शियल लेखनके लिए इतना कूड़ा लिख रहे हैं और उसको उपयोगिता प्रतिपादित कर रहे हैं कि लगता है, यह कितना बड़ा पाखण्ड हम पाल रहे हैं। कहाँ हैं हमारी सामाजिक दृष्टि और कहाँ हैं हमारी भारी-भरकम साहित्यकी चर्चाएँ। सब बकवास है।

जीवन जितना सहज है और जिस रंगमें रंगा हुआ है, हम उसको स्वीकार करें और व्यक्त करें। गोष्ठियोंमें हम जो और जितना बोलते है वह हम जीते नहीं और हमें बार-बार एक राग अलापनेकी बीमारी हो गयी है। उसका कोई इलाज हम करना चाहते ही नहीं।

हुआ कुछ यह भी कि कुण्ठाकी चर्चा सुनते-सुनते हर नया छोकरा अपना चेहरा कुण्ठित दिखानेका प्रयास करने लगा है—चाहे वह किसी व्यापारीका एकमात्र पुत्र हो या किसी मिनिस्टरका।

हम संशयमें जी रहे हैं, यही हमारी उपलब्धि है। सतत प्रवाह एक होता है हमारे सामने पर उसको और भी छोटी-छोटी धाराएँ होती हैं जिनसे हम उलझे रहते हैं। कोई लहरोंको देखता रहता है तो कोई बुलबुलों-को और कोई उठाकर एक कंकड़ फेंककर बुलबुले पैदा करनेमें विश्वास रखता है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीमें पहली बार

डा० राधाकृष्णन्‌का विश्वविख्यात ग्रन्थ

भारतीय दर्शन

वैदिक युगसे बौद्धकाल तक

मूल्य : २०.००

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके दार्शनिक और विचारक राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्‌के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इंडियन फ़िलॉसफ़ी'का प्रामाणिक अनुवाद। इसमें विद्वान लेखकने भारतीय दर्शनके आरम्भिक कालसे बौद्धकाल तकके ऐतिहासिक विकासका विवेचन करते हुए भारतीय दर्शनकी प्रमुख धाराओं, विभिन्न धर्म-परम्पराओं और भारतीय आध्यात्मिक जगत्‌के युग-निर्माता चिन्तकोंके दार्शनिक विचारोंकी विस्तृत व्याख्या की है, तथा स्थान-स्थानपर पाश्चात्य दर्शनके सन्दर्भमें तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। भारतीय दर्शनके विद्यार्थियों और जिज्ञासु पाठकोंके लिए यह अपने विषयका अद्वितीय ग्रन्थ है। अनुवादक हैं स्वर्गीय श्री नन्दकिशोर गोभिल विद्यालंकार।

डा० राधाकृष्णन्‌की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ

- **भगवद्गीता** (गीताकी विश्वविख्यात टीका) मूल्य : १२.००
- **धर्म और समाज** ('रिलिजन ऐण्ड सोसायटी') मूल्य : ८.००
- **सत्यकी ओर** ('रिकवरी ऑव फ़ेथ') मूल्य : ६.००
- **धर्म : तुलनात्मक दृष्टिमें** ('ईस्ट ऐण्ड वेस्ट इन रिलिजन') मूल्य : ५.००
- **पूर्व और पश्चिम : कुछ विचार** ('ईस्ट ऐण्ड वेस्ट : सम रिफ़्लेक्शन्स') मूल्य : ५.००

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

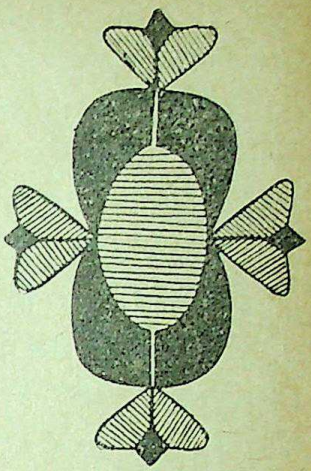

प्र । श्ना । न्त । क

उत्तर नये-नयोंकी ओरसे...

■

कैलाश वाजपेयी
सुदर्शन चोपड़ा
वीरेन्द्रकुमार जैन
मदन केवलिया

■

[सन्दर्भ : फ़रवरी अंकका यही प्रश्नान्तक स्तम्भ]

● उपाध्यायजीका पत्र पढ़कर मुझे उन ढेरों प्रश्नावलियोंका स्मरण आता है जो विभिन्न विदेशी पत्रिकाओंमें प्रायः छपा करती हैं, कुछेक प्रश्न पूछकर प्रत्येक 'हाँ-ना' के लिए अंक निर्धारित कर दिये जाते हैं और अन्तमें जिसके उत्तर पूर्णांकके जितने निकट आते हैं वह उतना ही गम्भीर या लम्पट, विद्वान् या मूर्ख मान लिया जाता है ।

उपाध्यायजीने यह पत्र यद्यपि सहज जिज्ञासाके कारण ही लिखा है किन्तु एक तो उनके प्रश्न पूछनेका ढंग ही 'ईश्वर है या नहीं है' ? जैसे आदिम प्रश्नोंका-सा है, दूसरे यह कि वे ऐसा मानकर चले हैं कि आजके अधिकांश कृतिकारोंने पहले कोई योजना बनायी होगी, सिद्धान्त निर्धारित किये होंगे तब कविता लिखनी प्रारम्भ की होगी । जब कि तथ्य यह है कि अनेक राजनीतिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक, प्रत्यक्ष और परोक्ष कारणोंसे तथाकथित नयी कविताका जन्म हुआ है । दरअसल यह एक दुमुँही स्थिति है जिसके बारेमें यह निर्णय करना कठिन है कि किन बाह्य परिवर्तनोंने कौन-से भीतरी परिवर्तन किये जिसके परिणामस्वरूप अमुक ढंगकी रचनाएँ सामने आयीं और यों भी यह ज़िम्मेदारी कवि नहीं आलोचककी है कि वह आजकी कविताके स्वरूपको समझकर उसके अनुरूप पाठकोंकी सुविधाके लिए प्रतिमान गढ़ता । किन्तु क्योंकि आजका आलोचक इन कृतिकारोंकी मूल संवेदनाको ठीक-ठीक ढंगपर पकड़ नहीं पाया इसलिए यह काम आंशिक रूपसे स्वयं आजके कवियोंको करना पड़ा है और क्योंकि स्वयं रचनाकारों-द्वारा दिये गये इस ढंगके वक्तव्य बहुत कुछ अंशोंमें वैयक्तिक स्पष्टोक्तियाँ-भर हैं अतः इनके वक्तव्योंके आधारपर सिद्धान्त गढ़ना (जैसा कि हो रहा है) भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल होगी, इस सन्दर्भमें मैं उपाध्यायजीसे यही निवेदन करूँगा कि वे समय निकालकर सब न सही तो कमसे कम आजके प्रतिनिधि कवियोंको अवश्य पढ़ें, उन्हें अपने बहुत-से प्रश्नोंके उत्तर इन कृतिकारोंकी रचनाओंमें मिल जायेंगे। यदि ये तमाम रचनाएँ उपाध्याय-जीके प्रश्नोंका उत्तर नहीं देतीं तो निश्चय ही वे पठनीयताकी श्रेणीमें नहीं आतीं। देशकी जो हालत है उससे उपाध्यायजी अपरिचित नहीं हैं। हर स्तरपर जो विघटन है उसीकी चीख-पुकार इन कविताओंमें उन्हें मिलेगी। मानसिक विलास एक आदमीमें पाया जा सकता है पर पूरीकी पूरी पीढ़ी छद्मरूप धारण कर ले ऐसा शायद उपाध्यायजी स्वयं भी न मानते होंगे, इसीलिए मैंने निवेदन किया है कि उन्हें स्वयं सारी रचनाएँ पढ़नी होंगी। और क्योंकि सारी लड़ाई संवेदनाके स्तरकी है इसलिए उपाध्यायजीको सूत्र भी पाने होंगे जिन्होंने आजके कृतिकारमें आक्रोश, खीझ, उकताहट, हताशा-जैसे तत्त्वोंको जगा दिया है। मोहमग्न, विवश और हारा हुआ आदमी सांसारिक क्या, स्वयं अपनी देह और चेतनाके सम्बन्धको ही झुठलाने लगता है, (हालाँकि एक प्रकारके दर्शनके अनुसार वह लाख प्रयत्न करे अपने इतिहाससे भाग नहीं सकता। एक बार जन्म ले लेनेके बाद कौन अपने पितासे जुड़ गये सम्बन्धको तोड़ सकता है? इसी तरह बाक़ी सम्बन्ध भी हैं।) इसलिए उपाध्यायजीका पहला प्रश्न अपने-आप उत्तर पा जाता है। अनुभूति और अभिव्यक्तिवाला प्रश्न अगर शिल्पसे सम्बन्धित है तब वह बड़ा सतही है, उसपर फिरसे चर्चा छेड़ना अर्थ किन्तु यदि उनका तात्पर्य प्रेषणीयताके तब निश्चय ही उसके उत्तरमें उलझो स्थिति या संवेदनाको रखना होगा।

अच्छाई-बुराईवाले प्रश्नपर यही कह सकता है कि आजकी कवितामें यह चीख-चिल्लाहट है ही इस बातका सबूत युगीन विकृतियाँ आजके कविके गले उतरतीं, इसीलिए वह लिखकर विक्षोभ करता है।

उपाध्यायजीका अगला प्रश्न, क्षमा घोर छायावादी है। यह प्रश्न उस युगकी जब साहित्यमें 'कला जीवनके लिए' या कलाके लिए'-जैसे प्रश्न पूछे जाते थे, कविको 'देवदूत' 'पैग़म्बर' आदि विशे युक्त कर उसे किसी अन्य लोकका प्राणी जाता था, जब उसके आसपास लोगोंके प्रभामण्डल दीख पड़ता था। शायद कविता भी 'उज्ज्वल एवं पवित्र क्षणोंकी कहलाती थी। उस युगमें शायद यह भी रहा हो (सामाजिक परिवेशके कार पर आजका कवि जिसे ज़िन्दा बने रहने कवि भी बने रहनेके लिए हर क्षण जूझ गुज़रना होता है, उसके विषयमें उपाध्या को यह शंका ही कैसे हुई कि वह उपभोक्ता है। पता नहीं किसने उन्हें ग़लत सूचना दी हैं। उपाध्यायजी अगर आँकड़े एक कर सकें तो पायेंगे कि पिछले युगोंकी तु आजके युगमें स्वान्तःसुखाय कविता वाले कवियोंकी संख्या नके बराबर है वाद तक यह सम्भव था कि कवि-अर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर काम चलाया जा सकता था पर आज इस घोर मँहगाईके युगमें मुश्किलसे नये लिखनेवालोंमें एक ही दो कवि ऐसे होंगे जो केवल कविका जीवन जीते हों, (वे भी बेरोज़गारीके कारण होंगे!) वरना आजका कवि बसके कण्डक्टरसे लेकर इस्पातके कारख़ानों तकमें काम करता मिल जायेगा। और जो रोटी कमाने, परिवार पालनेकी चिन्तामें आठ घण्टे सर झुकाकर काम करता है उसके उपभोगवादी होनेमें कमसे कम मुझे, सन्देह है।

बाक़ी सारे प्रश्न भी अपनी ओरसे कुछ मानकर पूछे गये हैं और ऐसा लगता है, किसीने उपाध्यायजीको आजके कविकी एक बड़ी भ्रमात्मक तसवीर दे दी है जिसके आधारपर उन्होंने सहज ही आपको यह पत्र लिख दिया है। अपनी ओरसे मैं इतना-भर और कहूँगा कि आजका कवि एक निहायत साधारण प्राणी है जो स्वतन्त्र देशमें साँस तो ले रहा है पर जिसे स्वतन्त्रताका एक भी लक्षण अपने आसपास दीख नहीं पड़ता। जो अपने सब तरफ़ फैले हर कुचक्र या यों कहें दुश्चक्रको समझता है। आर्थिकसे लेकर मानसिक तक जिसे हर संकट झेलना पड़ रहा है, जो विकृतिसे समझौता नहीं कर पा रहा और साथ ही अन्य लोगोंकी तरह जड़ भी नहीं हो पा रहा, इसलिए वह वर्तमान स्थितिपर झल्लाकर, शोक प्रकट करके उसका मज़ाक़ उड़ाकर अपनेको व्यक्त कर रहा है। जहाँ वह अभीष्ट अर्थको व्यक्त करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है वहाँ वह भाषाके नियमोंको तोड़कर, प्रतीक गढ़कर, बिम्ब खड़ाकर अपने भीतरको खलबलाहटको बाहर लाता है। उसके इस प्रयत्नमें उसकी अपने-आपको समझानेकी खोज भी जारी है।

जब मैं यह कहता हूँ कि आजका कवि सन्तप्त है तो इसका अर्थ यह नहीं कि बाक़ी लोग मज़ेसे जी रहे हैं और सारी यातना केवल कविको दी जा रही है। नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है। स्थिति यह है कि हर आदमी इस रोगका शिकार है, किसीको सत्ताके कारण नींद नहीं आती तो किसीको बेरोज़गारके कारण। छोटेसे लेकर बड़े तक सभी वर्तमान दुर्व्यवस्थासे पीड़ित हैं। कवि भी उन्हींमें है। उन्हींके साथ वह भी जी रहा है किन्तु कवि और उसके सहयोगीमें अन्तर यह है कि उसके पास एक है अपनेको व्यक्त करनेका। जो कुछ उसे समाजसे कच्चे मालके रूपमें प्राप्त होता है उसीको वह रचनामें ढालता है अतः ऐसी स्थितिमें कवि या रचनाकारोंसे प्रश्न पूछनेके स्थानपर ज़्यादा अच्छा हो कि हम यह प्रश्न उनसे पूछें जो इस बीमारीका मूल कारण हैं।

नयी दिल्ली] —कैलाश वाजपेयी

■

●● नवीनतम साहित्यकारसे कुछ प्रश्न किये गये हैं। पन्द्रह बरस तक साहित्यसे परे रहकर, यानी आप ही के शब्दोंमें 'दूसरे कामोंसे छुट्टी पा लेनेके बाद' आपने यह जानना चाहा तो कि इस डेढ़ दशकमें साहित्य कहाँसे कहाँ आ पहुँचा है! वरना आपके ज़मानेके अदीबोंमें तो जाननेकी ख़ाहिश ही ख़त्म हो गयी है।

आप 'नवीन', 'मुक्त', 'निर्बन्ध', 'स्वतन्त्र' और 'नग्न'-जैसे शब्दोंसे घबराते नहीं, लिहाज़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रा ऐसा ही कुछ होकर मैं आपके सवालोंके जवाब दूँ तो, ज़ाहिर है, आपको ग़ैर-माक़ूल न लगेगा।

पुरानों (यानी—गये-बीतों?)के तईं आपके दिलमें आदर कम नहीं हुआ, और नयोंको आप सहानुभूतिके पात्र समझते हैं, यह जानकर मुझे अच्छा लगता तो अस्वाभाविक होता। हालाँकि इन पन्द्रह बरसोंमें ही वे नये भी अब मात्र 'आदरणीय' हो रहे हैं, और उनके बाद और भी नये आ चुके हैं—न सिर्फ़ हिन्दीमें, बल्कि दुनिया-भरमें, कारण, ज़िन्दगी इस बीच इस क़दर थिरक-थिरककर बदली है कि ताल देकर कोई भी पुराना ठेका उसका सम पकड़ नहीं पाया। मरोड़े खा-खाकर बदले इस रूपको स्वीकार कर लेनेकी ताब भी बहुत ही चन्द लोगोंमें है।

ख़ैर, तो मैं सिर्फ़ नवीनतम चिन्तनकी बात करूँ। पुराने खेवेने आपको बताया कि नये लोग प्यारको स्वच्छन्द रहने देना चाहते हैं, मगर हक़ीक़त यह है कि हम उन नयोंसे भी एक क़दम आगे आकर यहाँतक मानने लगे हैं कि प्यारसे बड़ा झूठ आजतक बोला ही नहीं गया।

पहला सवाल आपने रिश्तोंका उठाया है। रिश्तोंके रेशे तो हर युगमें नयी-नयी बुनावटमें ही नमूदार होते रहे हैं! तो फिर इस नवीनतम बुनावटके ये रेशे अगर पिछली बुनावट (या बनावट!) से मेल नहीं खाते तो इसमें हमारे-द्वारा रिश्तोंके ही नकारकी बात क्यों उठ आयी? सर्वस्वीकृत रिश्तोंके बेमानीपनको अगर हमने वाक़ई महसूस करके पूरी-पूरी ईमानदारीके साथ उजागर किया तो बेजा क्या किया है?

उत्तर नम्बर दो। अच्छाई-बुराईकी चीज़ हमारे गले तो उतरती है, मगर दिल नहीं धँसती, क्योंकि हमने दूधको गले में ही फट जाता महसूसना शुरू कर दिया (हालाँकि फटता यह पहले भी रहा है) तो गलेसे ऊपर और गलेसे नीचे की सच्चाईमें जो फ़र्क़ है, कुछ उसी नसलका हमारी अच्छाई-बुराईकी तमीज़में है, हम ऊपरवाले दूधको सत्य मानें कि नीचेवाले चुके कुछको, इसका फ़ैसला करनेमें काम लेनेको दिमाग़ नहीं मानता, बस।

उत्तर तीन। अधिकार और कर्त्तव्य जुदा-जुदा पिजन-होल बनाकर हम दि नहीं जीते, फिर हमपर ही यह इलज़ाम उपभोगका अधिकार तो लेते हैं, परन्तु निभाना ज़रूरी नहीं समझते! मिसालके पर सिर्फ़ एक ही प्वाइंण्ट लेता हूँ लोग नारीको भोग्या समझते थे (कई भी समझते हैं) और उसके प्रति कर्त्तव्य थे, उसे अपने पाँवकी जूती बनाये तो क्या हमसे भी वैसे ही कर्त्तव्य-अपेक्षा है? हमने आज यदि नारीं पुरुषके समकक्ष और सामर्थ्यवती है तो क्या मानवीय कर्त्तव्य नहीं यही स्थिति हर क्षेत्रमें है, क्योंकि कार ओढ़ने नहीं पड़ते, इसीलिए लिए भी अलगसे प्रयत्नशील होनेकी नहीं पड़ती। जो, जिस रूपमें, और जितनी मात्रामें ग्राह्य तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसे उसी स्वाभाविक रूपमें ही ले-दे लेना हम पर्याप्त समझते हैं।

उत्तर चार। इस प्रश्नमें आपने एक खानेमें रखा है—भावना, प्रेरणा, स्फुरण, स्पन्दन, प्रवाह, वेग और गतिको, तथा दूसरेमें (विरोधी ग्रुपमें) डाल दिया—विचार और विवेकको। अतः मात्र एक प्रतिप्रश्न पर्याप्त होगा कि क्या विचारहीन व्यक्ति कभी गतिशील हो सकता है या ऐसा व्यक्ति वेग, प्रवाह, स्पन्दन, स्फुरण, प्रेरणा, भावनामें से किसीसे भी सम्बद्ध हो सकता है ?

प्रश्न नम्बर पाँच, कि आखिर हम नवीनतम लेखक मनुष्यको, समाजको कहाँ और किधर ले जाना चाहते हैं, या कहीं ले जाने-जैसी भाषा भी हममें स्वीकृत है कि कहीं ? उत्तर नम्बर शून्य, कि लेखक जो किसीको कहीं ले जाने-भरके लिए लिखता है, उसको गाड़ीवानकी मशक़्क़त जितना मान तो दिया जा सकता है, सृजन नहीं माना जा सकता। सृजेता भारवाहक बननेके लिए सृजन करने नहीं बैठता, बल्कि भाव-मुक्त होनेकी मजबूरी ही उसे जकड़कर बैठाती है, उससे उगलवाती है, यही उगलन उसे हलकाती है, आज़ाद करती है, और यही यदि किसी और या किन्हीं औरोंके लिए भी मुक्त हो लेनेका साधन बन आये तो भले बन आये, और इस अर्थमें मुक्त हो लेनेकी ओर 'ले जाने'वाला मानें तो बात दिगर है।

अन्तिम प्रश्न आपने उठाया है अस्तित्व-की रक्षाका और उसके विकास का। और कुछ इस टोनमें गोया हम अस्तित्वकी रक्षाके प्रति सचेत नहीं। जबकि अस्तित्वपर आया संकट ही आज हमारी सबसे बड़ी परेशानी बनी हुई है, और इसी संकटमोचनका प्रयास ही हम प्रतिपल कर रहे हैं, आइडेण्टिटी क्राइसिसका खुलकर एहसास पहली बार हमें ही हुआ है। यही हमारा संघर्ष है। इसीमें हम जीनेको लाचार हैं। यही लाचारी हमसे लिखवाती है।

एक बात और कि हम जीवन जीने और सृजन करनेकी प्रक्रियाको अलग मानकर नहीं चल पाते। जो कुछ भी सहते, भोगते-झेलते हैं, उसीको बोलते, उरेहते और लिखते हैं, लिखते समय कोई मुखौटा ओढ़ना हमारी आदत नहीं।

अभिव्यक्ति तो मुक्तिका माध्यम है, प्रकृतिने भी मुक्त होना चाहा तो भी निजको प्रकृत रूपमें अभिव्यक्त करके ही !

हमारी गरदन तो हमेशा 'है' की गिरफ़्तमें ही रही है, और 'चाहिए'की नब्ज़पर आपका हाथ। चुनावका हमारे सामने कोई सवाल नहीं, हम तो 'आप' या कोई भी और बन ही नहीं सकते थे, इसीलिए यह हुए, तो फिर किसीको यानी समाजको हम अपनी मरज़ीके साँचेमें कैसे ढाल सकते हैं !

और सच पूछें तो हमें आज ये सा-आ-री-की सारी बातें जड़से ही निरर्थक लगने लगी हैं, अतः इस दुनियाको कोई भी अर्थ देनेका प्रयास बेकार जान पड़ता है, क्योंकि साफ़-साफ़ दिखना शुरू हो गया है कि आदमीको अपनी सल्तनत अब किसी और मखलूकके हाथों सौंप देनी पड़ेगी ही, कारण अब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पस्त हो चुका है; वजूदके तक़ाज़े पूरे नहीं कर पा रहा।

कलकत्ता] —सुदर्शन चोपड़ा

◒ ◒ "बे-नियाज़ी हद से गुज़री,
बन्दापरवर, कब तलक,
हम कहेंगे हाले-दिल,
और आप फ़रमायेंगे—'क्या'?"

सचाई यह है कि नया जो कुछ लिखा जा रहा है वह बीते हुए कल या गुज़रे हुए ज़मानेकी नहीं वर्तमान और भविष्यको समर्पित है। नयोंके सभी वक्तव्य, सभी मान्यताएँ, सभी निष्ठाएँ नये मानवीय परिवेशसे सम्बद्ध हैं। हम उस आगका अहसास तो दे सकते हैं जिसमें हम तप रहे हैं, मगर उसकी वकालत नहीं कर सकते! पाठककी मन-चेतनापर साग्रह कुछ लादना क्या लेखकीय अपराध नहीं? (पहले ऐसा होता था। अब रिवाज़ बदल गये हैं।) जो वृद्ध शक्लें मज़बूत जुज़बन्दीकी सिलाईयुक्त ज़िल्दोंवाली किताबोंमें सैकड़ों पृष्ठोंका रक़बा घेरकर ज़मींदाराना पोज़में निश्चल बैठी हुई हैं उनकी नाराज़गीका ध्यान रखनेकी उपलब्धि क्या है? उनके तन और मनमें समय-मकड़ीने जो जाले तान लिये हैं कौन कितने काटेगा? चाहे जितनी अगरबत्तियाँ सुलगा लें वह सायँ-सायँकी आवाज़, ख़ौफ़नाक, मरेगी नहीं, जीते जी! ओम् तत्सत्!

लगा तो ऐसा जैसे वे कुछ सिर्फ़ जिज्ञासावश ही नहीं पूछ रहे, बल्कि 'नयों' पर एहसान भी करना चाहते हैं! अन्दाज़ अपना-अपना। ऐसा भी हो सकता है १५ वर्षकी लम्बी बीमारीसे उठनेके बाद लोगोंने इन्हें नये सृजनकी इत्तला दी, कुछ मुग़ालते पहले ही इन्हें सौंप दिये।

(१) रिश्तेदारी मानने या न मान सम्बन्धमें इन्होंने जो शंका 'नयों' से वह नये सृजनको समझनेके लिए उनकी उतनी सहायता नहीं कर सकें अलबत्ता वे 'नयोंको पारिवारिक ज़िन्दगी के मुतल्लिक़ कुछ जानना चाहते हैं बात दूसरी है। (२) अच्छा या बुरा? एक फ़ालतू-सी बहस हो सकती है। किसी अच्छाईसे ही जन्म नहीं लेती? चार सच्चे ही सिद्ध करते हैं कि कुछ भी हैं। बेईमानी ही सबूत है कि ईमान भी कोई चीज़ है। दिखे चाहे नहीं, अँधेरेमें रोशनीकी एक किरण भी क्या अस्तित्वका पर्याप्त प्रमाण नहीं? जो मानता है, वह पहले बुराई अपने मानता है। इसलिए अच्छाई भी, बुराई (३) आदमियों और जानवरोंके लिए ताल खुलवा देना, कुएँ खुदवा देना, शालाएँ बनवा देना, सड़कोंके किनारे दार दरख्त लगवा देना—राजाओंके हैं। 'नयों'में बेशक यह बुराई है कि साहित्य तो रचते हैं मगर इनमें-से काम नहीं करते। बुराई नम्बर दो यह वे 'मसीहाई' के ख्वाब नहीं देखते, अपना कर्त्तव्य नहीं मानते। बापू, नेहरू महान् पुरुषोंको (अपने ही देशमें)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर प्रोड्यूस करनेमें रुचि नहीं लेते। इसीलिए चन्द लोगोंको उनका होना, जीना, लिखना बड़ा बेमानी-सा लगता है। (४) 'भावना, प्रेरणा स्फुरण, स्पन्दन, प्रवाह, वेग-गति' (शब्द श्री भाऊजीके) सभी विचारके अंग नहीं ? विचार और कोई अलग चीज है ? विवेक निष्ठासे सम्बन्धित है। लेखकधर्मा व्यक्ति लेखकधर्मा व्यक्तिसे यह पूछे कि वह 'विचार विवेक-जैसी किसी शक्तिके भी अस्तित्वको स्वीकार' करता है या नहीं, यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे किसी किसानसे यह पूछना कि वह फ़सलें उगानेके लिए बीजके महत्त्वको स्वीकार करता है या नहीं। (५) वही उत्तर जो क्रमांक तीनके अन्तर्गत निवेदित है। (६) यह शंका कुछ और स्पष्ट करें तो कृपा होगी। चलते-चलते या जुदा होते समय 'राम-राम' करनेकी शैलीमें अगर उन्होंने फ़रमाया है तो उन्हें भी 'राम-राम पहुँचे।

साथ ही अपने नये सम-मन-धर्मा भाइयों-से (बहनोंसे भी) एक बात कह देना चाहता हूँ। वक्तव्यबाज़ी (त्रिकोणबाज़ीका भी) कुछ रिवाज़-सा चल पड़ा है। कुछ मज़ा भी आता है, और, वह यह कि लिखने-करनेकी बजाय इस तरहकी 'आपबीतियों, तेरी-दीतियों' से नाम चार लोगोंकी नज़रोंमें जल्दी आ जाता है। इसके पीछे सम्पादकीय प्रोत्साहन-आग्रहका भी हाथ है। क्योंकि वे लोग झख्खे गाड़ने' की फ़िक्रमें मुब्तिला हैं, पत्र-कारिता-क्षेत्रमें। लेखकको क्रियेटिव शक्तियाँ क्षीण हों तो हों, चार-छह झगड़े खड़े कर दिये हैं नयों-पुरानोंके बीच। मजमा जोड़ दिया है। लोग क़लम-दवात भूलके आ खड़े हैं। सैलाब आया है, गुज़र जायेगा। नया लिखा जा रहा है, लिखा गया है, लेकिन शायद अभी वह नया नहीं आया जो नया है। वही 'नया' बदले हुए परिवेश और नयी चेतनाका प्रतीक होगा।

अमृतसर] —वीरेन्द्रकुमार जैन

● ● श्री हरिभाऊजीका पत्र आजकी भटकी वस्तुस्थितिको सामने लाता है। नये और पुरानोंमें एक खाई-सी जान पड़ती है जिसको पाटनेकी बहुत कम चेष्टा की गयी है। अनेक गोष्ठियोंमें भी मैंने देखा कि एक दूसरेको समझने-समझानेकी अपेक्षा एक नया विवाद खड़ा कर देनेकी चेष्टा अधिक की जाती है। अभी हाल ही में बीकानेरमें हुई एक गोष्ठी (आधुनिक काव्यबोध) में भी उपाध्यायजीने ऐसे ही कुछ प्रश्न रखे थे। गोष्ठीके मुख्य अतिथि 'अज्ञेय'जी थे, जिन्होंने संकेत किया भी था कि आजका कवि उस नौकाका काम कर सकता है जो दो किनारोंको मिलाती है। दो किनारे नये-पुराने मत-मतान्तर समझ लीजिए। पर इतना अवश्य है कि आजका लेखक अपनी मनःस्थितिपर अधिक विचार करता है—समाजको लेता है पर अधिक निकटतासे नहीं। विचार और विवेक-जैसी शक्ति (प्रश्न ४) से परे तो वह नहीं, पर हाँ, स्पन्दन, प्रवाह गति आदिको भी वह आत्मसात् किये हुए है। मतलब यह है कि आजका लेखक बीचकी स्थितिमें है—टूटन और आस्थाकी।

बीकानेर] —मदन केवलिया

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

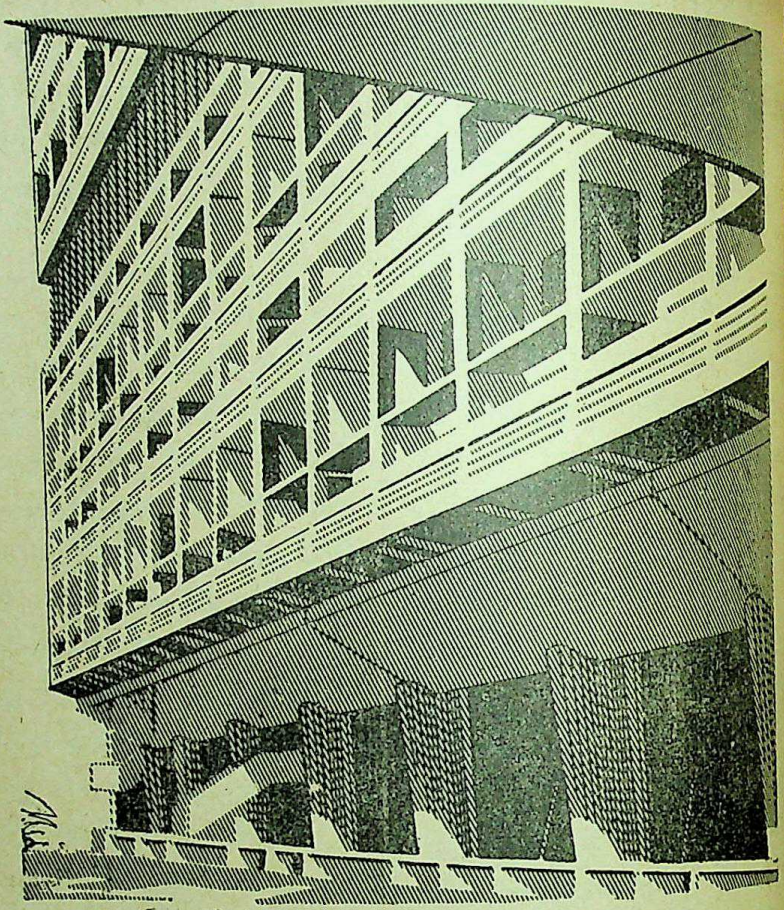

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

IPC/SC:152 HIN(A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ और कविता-संग्रह

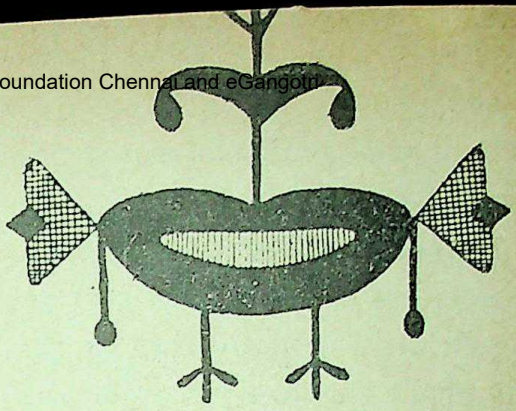

स । मी । क्षा

• 'वेणु लो गूँजे धरा' । माखनलाल चतुर्वेदी

'वेणु लो, गूँजे धरा' श्री माखनलाल चतुर्वेदीकी ऐसी ७२ मुक्तक कविताओंका संग्रह है जो कवि-हृदयमें गहनतम अनुभूतिसे उत्थित उद्वेलनका परिणाम होती हैं। प्रस्तुत काव्य-संग्रहका नामकरण जहाँ एक ओर कविकी जीवनदृष्टिका परिचायक है, वहीं दूसरी ओर उसकी रसवादिताका भी। इस काव्य-संकलनकी ७०वीं कवितामें कवि अपने वंशीधरसे वेणु ग्रहण कर, उसके स्वरसे धराको निनादित कर देनेकी मनुहार करता है। यह एक ऐसा प्रतीक-चित्र है जो इस संग्रहकी लगभग आठ-दस कविताओंमें चलता है। कविने 'भूमिका' में स्वयं ही अपने हृदयकी भावनाओंको व्यक्त करते हुए लिख दिया है, "मेरे निकट तो 'श्यामसुन्दर' मीठा, आकर्षणशील परम सत्य है। जब वायु ज़ोरसे चलती है, मुझे लगता है उसने वेणु ले ली है, और जब अन्धड़का सन्नाटा सुनता हूँ तो लगता है धरा गूँजने लगी है।"

किन्तु इस प्रतीकके बावजूद भी कविताओंके स्वरोंमें वैविध्य है। यदि कुछ कविताएँ भक्तिपरक हैं तो कुछ कविके देशानुरागकी व्यंजक, कुछ प्रणयी हृदयका उच्छ्वास हैं तो कुछ प्रकृतिके लोभनीय रूपको दर्शनके झीने पटपर अंकित करनेवाली। कविने भूमिकामें स्वयं इस ओर इंगित करते हुए लिखा है, "जो तुकबन्दियाँ इस संग्रहमें दी गयी हैं उनकी संख्या भले ही कितनी हो किन्तु उनके स्वरकी विविधताका ही ध्यान रखना होगा।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस संग्रहमें केवल कुछ ही कविताएँ ऐसी हैं जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुगत हैं अन्यथा अधिकांश कविताएँ ऐसी ही हैं जो कविके हृदयसे निर्गत उच्छ्वास हैं। जो कविताएँ वस्तुगत हैं, उनका वर्ण्य विषय डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल 'तरुण' के शब्दोंमें इस प्रकार रखा जा सकता है: "इस ग्रन्थ ('वेणु लो, गूँजे धरा') में धूलका महत्त्व, लघु, हीन और पतितके प्रति ममत्व, जगत्के बन्धनोंकी मौलिकता, कलाकारके स्वरका मूल्य और उसके दायित्वकी गरिमा, उच्च साहित्यके सृजनकी प्रेरणा, निम्न जीवन-मूल्योंका तिरस्कार, जीवनकी सहज अनुरक्ति आदिसे सम्बन्धित विचारों और भावनाओंका सुन्दर निरूपण हुआ है। युवकोचित प्रेरणा, देशाभिमान, ऐक्य व संगठन, देशका भौगोलिक व प्राकृतिक सौन्दर्य, सांस्कृतिक गौरव, नवीन रक्तके बलिदान, बलिपन्थोंकी बाधाएँ व उनकी मुसकानयुक्त अतिक्रमण आदिसे सम्बन्धित भावनाएँ तो मानो कविके रक्तकी रसीली लालिमा ही है*।"

उच्छ्वसित कविताओंमें अधिकतर ऐसी हैं जिनमें कविका भक्त हृदय फूटकर बह निकला है, किन्तु इन भक्तिपरक रचनाओंमें रहस्यवादकी अनुगूँज है—'कब मिलोगे, सासकी पहिचान की कड़ुई कुरेदन ?' कविता तो लिखी ही कबीरके 'अविनाशी दुलहा कब मिलिहो' से प्रेरित होकर गयी है। इसमें कविकी अपने प्रभुसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा व्यंजित है। इसी प्रकार 'सूर्य किरनें, चन्द्र किरनें एक हैं, अनबन कहाँ है' में अभेद-दर्शनकी आकांक्षा, 'कहो कि इतनी चाँदी [illegible] बो उस चाँदी बोनेवाले से' में प्रभुकी [illegible] दानशीलता, 'तड़ितकी तह में समायी मूर्ति [illegible] झपका उठी है' में श्यामसुन्दर-दर्शन, 'यह [illegible] आँखमिचौनी है, किसने मूँदी, क्यों खेल [illegible] में रहस्यको जाननेकी अभिलाषा, 'गुपचुप [illegible] संवादों जैसे, लौट गये वे कौन ?' में [illegible] 'कौन बोलता है अमृत स्वर, उठ-[illegible] भीतर ही भीतर' में आत्म-खोज [illegible] हैं। इस प्रकारकी कविताएँ निस्सन्देह [illegible] भावोंकी गम्भीरताकी परिचायक हैं।

कुछ कविताओंमें प्रकृतिकी बाँकी [illegible] प्रस्तुत की गयी है। प्रकृतिको कविने [illegible] जिज्ञासुके रूपमें आश्चर्यचकित होकर [illegible] है। और उसके द्वारा उसने अनेकों [illegible] विचारोंको अभिव्यक्ति प्रदान की है। [illegible] ज्योत्स्नाको चाँदी समझकर कविने उसे [illegible] मुग्धकी नाईं देखा है, पावसमें उठनेवाले [illegible] उसे उसके प्रभुका सन्देश ला रहे हैं, [illegible] जाल उसे जीवन और मृत्युकी एकरस [illegible] प्रतीक जान पड़ रहा है, वह उगते और [illegible] होते हुए सूर्यको बड़े ही उत्सुक नेत्रोंसे [illegible] है।

इस काव्य-संग्रहकी कुछ कविताएँ [illegible] हैं जिनमें कविने अपने जीवन-दर्शनको [illegible] व्यक्ति प्रदान की है; ३२वीं कविता [illegible] प्रकारकी है। इसमें वह बताता है कि [illegible] नवीन एवं चिर-तरुण जगतकी मौलिक [illegible] प्रतिपल पहचानना पड़ेगा तभी जीवनके [illegible] और प्रलयकी गतिके स्वादको जान [illegible] सकता है।

* 'वेणु लो, गूँजे धरा', 'हिन्दी वार्षिकी' १९६०, प्रधान सम्पादक : डॉ० नगेन्द्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु और शैलीका सुन्दर समंजन इस संग्रहका प्रमुख वैशिष्ट्य है। इस प्रसंगमें डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल 'तरुण' के ये शब्द स्मरणीय हैं : "आदिसे अन्त तक जीवन्त और उदात्त अनुभूतियाँ, जो शाश्वत और सामयिक जीवनकी तत्त्व चिन्ताके पुष्ट स्नायुजालपर खड़ी हैं, निरूपित हुई हैं। स्थूल विचार और तथ्य भी, काव्यकी प्रक्रियासे, गलकर रस और भाव-रूपमें परिणत हुए हैं। भावुकता और चिन्तनशीलताके योगसे काव्य-वस्तु छन्दोंमें बिछाये जानेसे पूर्व खूब फेंटी गयी है। उच्छृंखलता और फेनिल उबालका प्रश्न नहीं। भाव या विचार कवि-मनके द्वारा अच्छी तरह जिये जा चुके हैं अतः उनमें प्रौढ़ता और गाम्भीर्य है। वे सीधे जीवनसे उतरे हैं।"*

भाषा सर्वत्र ही कविके भावोंकी अनुगामिनी रही है। आवश्यकता पड़नेपर कवि उर्दू शब्दोंका प्रयोग करनेसे किंचित्मात्र भी नहीं हिचकिचाता है—ताक़िस, आशिक़ी फ़क़त, शोकीन, ज़ालिम, फ़रियादें, नज़र, गुनाह आदि शब्द इस कथनके प्रमाण हैं। भावोंके अनुरूप प्रज्ञा, दिग्वसना, पतनोन्मुखी-जैसे संस्कृत-शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कुछ नये शब्दोंका भी प्रयोग है; जैसे, पंखड़ियाँ, उजाड़ियाँ आदि। बैरिन, गदराये, कूता-जैसे देशज शब्द भी यहाँ मिल जायेंगे। आँखियाँ, लाँबी, बरज, बहिना आदि ग्रामीण शब्द भी यत्र-तत्र दृष्टिगत हो जाते हैं।

छन्द भी कविभावोंके साधक बनकर ही प्रयुक्त हुए हैं। कविने जहाँ जैसा चाहा है, वहाँ उन्हें वैसा तोड़ा-मरोड़ा है—यदि छन्दमें कहीं विस्तार देखनेको मिलेगा तो कहीं संकोच।

इन समस्त गुणोंके रहते हुए भी अन्तमें यह कह देना अनुचित न होगा कि 'वेणु लो गूँजे धरा'में कवि दुरूहताके दोषसे भी नहीं बच सका है। यह बात दूसरी है कि कविकी यह दुरूहता उसकी अनुभूति-सघनताके कारण है।

—कृष्णदेव शर्मा

• 'प्रत्यूषकी भटकी किरण यायावरी'। 'अंचल'

'प्रत्यूषकी भटकी किरण यायावरी' एक काव्यकृति है जिसके रचयिता हैं हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'। हिन्दीकी स्वच्छन्दतावादी रोमानी कविताके अग्रदूतोंमें कवि अंचलका प्रमुख स्थान रहा है। प्रणय-गीतोंकी सुन्दर, सरस रचनाका श्रेय उन्हें अपने काव्य-सृजनके प्रथम प्रहरमें प्राप्त हो गया था। 'प्रत्यूषकी भटकी किरण यायावरी'के गीत रोमानी भित्तिपर प्रणय और विरहकी भव्य झाँकी प्रस्तुत करते हैं। ५८ गीतोंमें अधिकांश प्रणयकी विह्वलता, कातरता, उत्सुकता और व्यथासे द्रवित होकर लिखे गये हैं। कुछ गीतोंमें उपालम्भ और प्रणय-मान भी व्यक्त हुआ है किन्तु आवेश-

* वेणु लो, गूँजे धरा', 'हिन्दी वार्षिकी', १९६०, सम्पादक, डॉ० नगेन्द्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रोश या ढिठाई कहीं नहीं है। इन प्रेम-गीतोंमें कविने इतने सुकुमार और अछूते शीर्षक चुने हैं कि उनके पढ़ते ही मन विभोर हो उठता है। पुस्तकका नाम गीतकी जिस कड़ीपर आधारित है वह प्रभात-वेलाकी उस किरणका स्मरण करा देती है जो भटककर यायावरकी भाँति चक्कर काटनेमें निरत है। गीतका शीर्षक है : 'चुप रहो' :

चुप रहो ! सौन्दर्य की बहती विजन
गन्धी हवा

चुप रहो ! सन्दर्भ से टूटे सृजन की शर्बरी
दूर अनजाने अनिद्रित कूल की भीगी हुई
चुप रहो ! प्रत्यूष की भटकी किरण
यायावरी।

अंचलके इन नवीन गीतोंमें एक विराट् परिवर्तन लक्षित होता है। वह परिवर्तन कथ्य या विषयसे उतना सम्बन्ध नहीं रखता जितना अभिव्यंजना-शिल्पसे। अभिव्यंजना-शिल्पमें कविने नयी कविताके प्रतीक, अप्रस्तुत विधान और शब्दावलीको बड़े सहज रूपसे सँवार दिया है। कदाचित् कविके अन्तर्मनमें यह तथ्य निरन्तर जीवित रहा है कि गीतकी प्रचलित शैलीको जीवन्त रखनेके लिए अभिव्यक्ति एवं अलंकरणके मानक भी बदलने होंगे। उन पुराने प्रतीकों और उपमानोंपर गीत नहीं चल सकता जो घिस-पिटकर अर्थ-बोधकी शक्ति त्याग चुके हैं। कुण्ठित शस्त्रसे जिस प्रकार सफल प्रहार नहीं हो सकता वैसे ही कुण्ठित अभिव्यक्ति भी सम्प्रेषणमें समर्थ नहीं होती। कविने बड़ी जागरूकतासे नयी कविताके कृती कवियोंको पढ़ा है और अपनी पुस्तकका समर्पण भी उन्हींके नाम लिखा है। गीतके सम्बन्धमें यह विचार बद्धमूल हो लगा है कि वह केवल संगीत, लय, ताल आश्रय जीवित रहता है। उसमें कथ्यकी प्रखरता या गम्भीरता नहीं होती। एक जैसी मनःस्थितिको गीतकार शब्द-परिवेश साथ व्यक्त करते हैं। उनका अर्थबोध सीमित भावबोध कुण्ठित और सौन्दर्यबोध तुष्ट रहता है। उनकी अनुभूतिमें वह तीव्रता ईमानदारी नहीं रह गयी जो किसी भी कृति मूल्यवान् बनाती है, गीतोंका संवेदना लुप्त है। 'अंचल'के प्रस्तुत गीतोंमें इन पोंका उत्तर सहज ही में मिल जाता है। गीतोंमें आँसू, कसक, वेदना, पीड़ा कराहका स्तर वैसा नहीं है जैसा कि सम्मेलनके गायक कवियोंके गीतोंमें है। सहपीड़ा और सहवेदनाको करनेवाले 'अंचल'के ये गीत स्वयं पहले गीतोंसे अभिव्यक्तिमें बहुत कुछ हो गये हैं। इनमें सहजताको नयी जनासे संयुक्त करनेका प्रयास तो है ही, भावभूमिको समेटने और सँवारनेकी भी है। 'अनकही अनुगूँज' शीर्षक कवितामें तथ्य स्पष्ट देखा जा सकता है :

हाथ तुमने कब दिया मेरे सृजन के
साथ तुमने कब दिया मेरी किसी
व्यक्ति
कब दिया आशय किसी मेरे
सत्य
अर्थ बनने भी दिया कब
अनुरक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा को थान शब्दों में कहा जाना बदा,
बन न पाया गात भी श्रुति की अजन्मी
शक्ति का।'

नयी अभिव्यक्तिके बावजूद भी रोमानी श्वासोच्छ्वाससे कवि अपनेको बचा नहीं पाया है। प्रेम और विरहकी तीव्रानुभूतिको चित्रित करते समय उसकी अभिव्यक्ति प्रायः उसी चरमबिन्दुपर पहुँच जाती है जिस बिन्दु-पर छायावाद-कालके या छायावादोत्तर स्वच्छन्दतावादी कवि टिके रहते थे। फिर तुम्हारे द्वारपर कब तलक; मनका डर, मुझसे कितना प्यार तुम्हें है, मेरे अन्तर्मनके मालिक, चन्दनके हैं पंख तुम्हारे आदि गीत मेरे इस कथनके पुष्ट प्रमाण हैं। गीतकार कवियोंमें लोकधुन-पर आधारित गीत लिखनेका चलन इधर कुछ दिनोंसे ज़ोर पकड़ रहा है। 'अंचल'ने भी 'आना जाना ज़रूर पन्थी साँवरिया' और 'रसके बूँदी परे' गीतोंमें लोकधुनका आश्रय लिया है। अंचलके पास लय, तालके अनुरूप असीम शब्द-भण्डार है। यदि वे लोकधुनके आधारपर गीत-रचना करें तो उन्हें बहुत सफलता मिल सकती है।

संक्षेपमें, 'प्रत्यूषकी भटकी किरण यायावरी' के गीतोंको पढ़कर इतना विश्वास तो जमता है कि गीत-अगीतके संघर्ष-बीच गीत हारा नहीं है। बौद्धिकताके इस वैज्ञानिक युगमें भी गीतमें इतना सामर्थ्य है कि वह पाठकके हृदयको झंकृत कर सके—तुष्ट और रसतृप्त कर सके। 'अंचल'के ये सरस, सुकुमार सलोने प्रणयगीत मेरे इस कथनके निदर्शन हैं।

—विजयेन्द्र स्नातक

• 'इतिहास पुरुष'। डॉ० देवराज

नयी कविताके नामपर लिखी गयी किसी भी कृतिकी समीक्षाके मानदण्डोंको लेकर सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि उसकी विवेचना-के लिए आधुनिक कविता-सम्बन्धी किन मानकोंको स्वीकार किया जाये और किन्हें छोड़ा जाये क्योंकि कोई भी तटस्थ समीक्षक न तो यातनावादी और मृत्युबोधी साहित्यको ही आधुनिकताका प्रतिनिधि मानकर रूमान-संस्पर्शित द्वन्द्वपरक चेतना तथा बिम्बवादी अभिव्यक्तिके काव्यको पुराना ठहरा सकता है और न अस्तित्ववादी कवि-दृष्टिको पूर्ण रूपसे निराधार और भ्रामक मान सकता है। अनिश्चित और अव्यवस्थित समीक्षात्मक मूल्योंकी इस उलझन-भरी स्थितिसे निस्तारकी एक उचित सम्भावना अवश्य है। वह यह कि आलोच्य कृतिपर व्यक्तिगत मान्यताओं और विचारोंको लादनेके स्थानपर उसे कृतीकी दृष्टिमें-से देखनेकी कोशिश की जाये। मेरा मतलब कृतिको कृतीकी आँखोंसे देखनेसे नहीं बल्कि उसकी प्रक्रियाके बीचसे गुज़रनेसे है। रचना-प्रक्रियाका परीक्षण कुछ सामान्य प्रश्नोंके आधारपर किया जा सकता है।

०परम्परागत दृष्टिको वह नयी और आधुनिक अर्थवत्ता देनेमें कहाँतक सफल हुआ है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

० पुराने दार्शनिक वैचारिक और सांस्कृतिक धरातलोंको वह वर्तमान यथार्थ-भूमिपर कहाँतक उतार सका है ?

० उसकी संवेदनाएँ कितनी मुक्त और देशज हैं और कितनी अर्जित-बौद्धिक तथा अर्जित संवेदनाओंको वह अपने व्यक्तित्व, परिवेश और समाजमें कहाँतक ढाल सका है ?

० शैल्पिक उपकरणों और विधाओंकी उपलब्धियाँ क्या हैं ? उनके उपयोग और प्रयोगमें लेखककी दृष्टि किन नये बिन्दुओंको ग्रहण करनेमें समर्थ हुई है ?

डॉ० देवराजकी अभिनव काव्यकृति 'इतिहास पुरुष'को लेकर समीक्षाके मानकोंका यह प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वे स्वयं एक आधुनिकचेता आलोचक हैं। प्रकाशककी ओरसे दी गयी विज्ञप्तिमें इसे 'लघुमानवकी कुण्ठाग्रस्त चेतनामें यथार्थ जीवन-बोधका ज्वार उठानेमें समर्थ काव्य' घोषित किया गया है। यथार्थ जीवन-बोध क्या है ? 'इतिहास पुरुष'का जीवन-बोध निश्चय ही द्वन्द्वसाध्य, क्षणवादी, आक्रोश, कुण्ठा और मृत्यु-साध्य भी नहीं है। दोहरी चेतनाकी टक्कर और संघर्षसे ही उसका उदय नहीं हुआ। इतिहास पुरुषके कविने वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही स्तरोंपर एक समानुपाती सांस्कृतिक चेतनाके आविर्भावका प्रयत्न किया है। लघुमानवकी सम्भावित बर्बरता और विकृतिमूलक शक्तिके ऊपर उन्होंने सांस्कृतिक मूल्योंके निकषपर-से आविर्भूत नये मानवकी प्रतिष्ठा की है। अनास्था, भय, अविश्वासके कीचड़में लोट लगानेवाले मानवके स्थानपर उन्होंने भूकी, आक्षितिज जमी जड़ताकी कीच शतदलके समान निकले हुए मानवकी प्रति की है जिसकी वासना भँवरियोंसे उसकी क्रिया श्वेत कलुष है, जो 'महाशूकर' हो पर कुण्ठाओंसे पागल होकर कीचड़में डालनेवाला नहीं, भूतलका प्राणभार ढोनेवा इतिहास पुरुष नामक कविता तीन खण्ड विभक्त है। ये खण्ड हैं—(१) परिचय (२) द्वन्द्व-बोध (३) प्रज्ञापारमिता। प्रथम खण्ड मानव व्यक्तित्वके प्रति प्रगाढ़ आस्था, उसकी असीम सामर्थ्य और जीवनके प्रति मानव स्वीकारात्मक दृष्टि व्यक्त है। यहाँपर प्र उठ सकता है कि लोकायतन अथवा कुरुक्षे जैसी कृतियोंमें व्यक्त अन्तश्चैतन्य और स्तरोंके सामंजस्यपर आधृत सांस्कृतिक य से इतिहास पुरुषका सांस्कृतिक यथार्थ प्रकार भिन्न है कि उसे नयी कविताका काव्य मान लिया जाये जैसा कि कृतिके मू लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्तने माना इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि पूर्ववर्ती क की दृष्टि-प्रक्रियामें आध्यात्मिक और सां उपकरण आदर्शोंके निमित्त और प्रयु कर प्रयुक्त होते थे। यहाँ भौतिक और दृष्टिके दमन अथवा उन्नयनके द्वारा त्मक अथवा स्वीकारात्मक जीवनदृष्टि जाती थी, जब कि इतिहास पुरुषके स्वीकारात्मक दृष्टि जीवनके विरोधी द्वन्द्वमें-से आविर्भूत होती है—सह सहस्रबाहु, महाशूकर-जैसे पौराणिक सांस्कृतिक प्रतीक श्वेत-कलुषके द्वन्द्वकी णतिके ही द्योतक हैं, इतिहास पुरुषका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमूर्त अव्यक्त ब्रह्मकी नहीं स्वयंकृती स्वराट् और व्यापक विराट्की कल्पना करता है। इस प्रकार इतिहास पुरुषके कविने परम्परागत संस्कारोंको नया बोध और अर्थ दिया है। वह आस्थावान् होते हुए भी क़रीब-क़रीब नास्तिक है। भावना, चेतना-अवचेतना, प्रज्ञा-क्रिया और स्वयं अपना नियामक वह खुद है। इस प्रकार डॉ० देवराजका नया मानव पुराना होते हुए भी नया है। परिचय खण्डकी सात कविताएँ संकलनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ हैं जिनमें मानव-जीवनके अनेक छोटे-बड़े, सीमित-विस्तृत और ऊँचे-नीचे, आयामोंका संश्लिष्ट संग्रथन है। रागमुक्त संवेदनाओंकी तीव्र द्वन्द्वात्मक गतिशीलता, विवेकपरक, स्थिरता दार्शनिक गहराइयाँ, कल्पनापरक ऊँचाइयाँ, आध्यात्मिक अमूर्तता, भावनापरक रूमानियत और सांस्कृतिक ऐतिहासिक आभिजात्य इन सबके संश्लिष्ट जीवन्त मूर्त विधानोंपर सचमुच ही आश्चर्य होता है। इतने असम धरातलोंको एक दृष्टिमें समेट सकनेका श्रेय उनके सांस्कृतिक प्रतीकों और प्रतिमानों शब्द-चयन तथा उनके प्रयोग-सामर्थ्यको है।

दूसरे खण्डका 'द्वन्द्वबोध' निश्चय ही वह नहीं है जिसके फलस्वरूप अकविताके लेखक स्नायुविकार और अनेक प्रकारकी ग्रन्थियोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके असम्बद्ध अभिव्यक्ति और उलटे-सीधे अनुमानों और कल्पनाओंसे भी आगे बढ़कर क़रीब-क़रीब पागलोंका-सा प्रलाप करने लगे हैं जिसके एक-एक अक्षर और उनके उच्चारणकी छानबीन करते-करते पाठकको किसी मानसिक रोगीके परीक्षक-चिकित्सक होनेकी-सी अनुभूति होने लगती है। (मेरा मतलब खासकर मुद्राराक्षसकी ताज़ी छपी कविताओं और वक्तव्योंसे है।) डॉ० देवराज परम्परावादी आलोचक नहीं हैं और न रूढ़-परम्परावादी कवि परन्तु आजकी प्रचलित कसौटीपर वे आधुनिक भी नहीं कहे जायेंगे। न उनकी अनुभूतियाँ खण्डित और उलझी हुई हैं और न खण्डित बिम्ब और दुर्बोध प्रतीकों-द्वारा वे उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। आक्रोश और क्षोभमें अपने-आपपर दाँत पीसनेवाले और आत्महत्या करनेपर उतारू होनेवाले कवियोंकी कसौटीपर वे निरा पिछड़े हुए माने जायेंगे क्योंकि उनकी रूमानी चेतना द्वन्द्वमयी होते हुए भी सांस्कृतिक, परम्परित, और भारतीय परिवेशमें प्रश्रय ढूँढ़ना चाहती है। उनकी दृष्टिमें आस्था, विश्वास और जीवनके प्रति प्रवृत्तिमूलक आकर्षण है, उनके उपमान वे ही हैं जिनको काफ़ी पहले 'घिसे हुए बासन' घोषित किया जा चुका है। कहीं-कहीं तो यदि सतही दृष्टिसे देखें तो पूरीकी पूरी कविता रीतियुगीन-सी मालूम पड़ने लगती है परन्तु, रीतिकालीन कविकी दृष्टि जहाँ स्थूल अनुभवों और चेष्टाओं तक सीमित व्यक्तित्व-हीन-शृंगार तक ही पहुँच सकी है—आलोच्य कविने उसके अमूर्त द्वन्द्वको मूर्त करके उसमें व्यक्तित्व भर दिया है, इस प्रकार परम्परागत आच्छादनकी मोहकताके बावजूद उनकी रूमानी चेतना सस्ती भावुकता और हाव-भावोंसे बची रही है। एक उदाहरण लीजिए :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मोहक प्रेयसी
गहन चषक-आँखों में सुरा अमृत साथ भरे
गूढ़ अलस ताकती
नजरों से नयी-नयी बेसुधियाँ, नये बोध
अन्तस् में आँकती,
लाज-चाव सम्भ्रम में गोपन कथाओं के
नये पृष्ठ खोलती।
नयी-नयी हँसियों में स्नेह-समझ-धैर्यवती
श्वेत जुही-सी खिलती
मोहिनि वह प्रेयसी।

रसलीनके 'अमिय हलाहल मदभरी'से इन पंक्तियोंके साम्यका निषेध नहीं किया जा सकता। रसलीनकी दृष्टि जहाँ चमत्कार-पूर्ण प्रभावोत्पादनपर रही है इस कवितामें भावात्मक और बौद्धिक प्रतिक्रियाओंकी संश्लिष्ट अमूर्तताको रूपायित किया गया है। इस प्रकार यह समानता उसी अर्थमें है जिसके अनुसार ईलियटने होमरसे लेकर आज तकके साहित्यको समकालिक माना है। इस खण्ड-में कविकी दृष्टि विमर्शात्मक कम भौतिक यथार्थवादी अधिक है। इसके अन्तर्गत कवि-ताओंका प्रतिपाद्य जीवनके विभिन्न और विविध क्षेत्रोंसे लिया गया है, सिनेमा-कलाकार और वैज्ञानिक, मन्त्री, डिप्लोमेंट, राजदूत, सार्त्र, इलियटके अन्ध भक्त तथ्यबँधे वस्तु-कामी, सभीके मानसिक खोखलेपन और विकृ-तियोंकी ओर उनका ध्यान गया है परन्तु द्वन्द्व उनका साध्य नहीं है। यथार्थ वस्तुस्थिति तो यह है कि थोड़े-बहुत अन्तरके साथ हर युगकी चेतना, द्वन्द्वग्रस्त होती है। समष्टि स्तरपर सामाजिक-आर्थिक वैषम्य, नैतिक भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक चेतनाका ह्रास, अनुपात और क्रम के अन्तरके साथ प्रायः हर युगमें यह द्वन्द्व चेतना विद्यमान रहती है। द्रष्टा साहित्यकार यथार्थके उस अन्धकारसे उबरनेकी कोशिश करता रहा है। आज भी अनास्था और द्वन्द्व में जीनेकी घोषणा करनेवाले अग्रणी साहित्यकारके द्वन्द्वबोधकी परिणति बहुत कुछ जाने-अनजाने सार्वभौम मानवीय संवेदनाके सांकेतिक ध्वनिमें होती है। वैयक्तिक स्तरपर द्वन्द्वका आधारभूत कारण कामतत्त्व है। इस बोध खण्डकी कई कविताओंमें वासनाके सत्यको बिना किसी ग्रन्थि और हिचक स्वीकार किया गया है। परन्तु वासनाके उद्वेलन और उसकी हड़कन सांस्कृतिक संस्पर्शोंके कारण सौम्य और गम्भीर हो गई है, ठीक वैसे ही जैसे संस्कारगत अभिजात व्यक्तिके अनियन्त्रित उद्दीप्त क्षणोंकी आकुलता को भीतर ढकेलकर उसे ऊपरसे मौन और गम्भीर बना देता है। नैतिक-अनैतिक प्रश्नसे परे इतिहास पुरुषका कवि केवल भावनात्मक रूमानियतकी ही नहीं वासनाकी उष्णताकी सांस्कृतिक परिपुष्टि करता है:

तेरी ये वासनाएँ
सोमपायी देवों के भीम-कर्ण हलधर के
लहू में प्रवेगवान
उगी-पलीं, मत उनसे लज्जित हो,
उन्हें हरगिज़ अपूत मान,
वह तेरी प्रेयसी की तिरछी सराग दृष्टि
अंगों के दृढ़ उभार
दमयन्ती-द्रौपदी-शकुन्तला सुभद्रा की
स्मृतियों के ज्योति द्वार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास पुरुषके माध्यमसे नयी पीढ़ीके युवकोंका एकाध बार प्रबोधन और उद्‌बोधन भी किया गया है जिसे ये युवक 'बुजुर्गियत'का दम्भ और पिष्टपेषण मान सकते हैं। आखिर यह पीढ़ीकी पीढ़ी जिस अकेलेपन और ऊबकी बात कर रही है वह बिलकुल बेबुनियाद है ऐसा तो नहीं है। अतीतके जय-आख्यान, और इतिहासकी अमराइयोंका आकर्षण उसे भुला सकता अथवा इसमें मुँह छिपानेको वह अपनी हार न समझता, वीरोंके कीर्तिवृत्त यदि उसे प्रेरणा दे सकते तो फिर समस्या क्या थी? कठिनाई तो यही है कि वह परम्पराकी चादर तानकर वर्तमानमें नहीं सो सकता? उसे अपनी उलझनोंका समाधान बँधे-बँधाये प्रतिमानोंमें नहीं अपने व्यक्तित्व और परिवेशसे उत्पन्न यथार्थमें चाहिए। किसी भी आधुनिक कविकी सांस्कृतिक चेतनाकी सार्थकता आधुनिक संवेदनाको सम्पुष्ट करनेमें ही हो सकती है, उसके लिए पलायन-क्षेत्र प्रस्तुत करनेमें नहीं। इतिहास पुरुषका कवि कभी-कभी इस दृष्टिसे बहुत पुराना हो गया है।

प्रज्ञापारमिता खण्डमें सूक्ष्म मानसिक स्थितियोंसे लेकर विराट् विश्वतलके अनेक परस्परविरोधी तत्त्वोंको प्रतिपाद्यके रूपमें लिया गया है। प्रायः सर्वत्र ही उनका कवि, तटस्थ दार्शनिकके पीछे-पीछे चला है। इन अंशोंमें रागयुक्त संवेदना अथवा 'प्रतिबद्धता' कम रागसम्पृष्ट निरपेक्ष तटस्थता अधिक है परन्तु यह दार्शनिकता कोरा-कोरा बुद्धिवाद नहीं है। बौद्धिकताके मूर्त तत्त्व चित्तद्रव्यमें घुलकर रश्मिचेता बन गये हैं। यहाँ भी यह रश्मि-चेतना सांस्कृतिक और पौराणिक तत्त्वोंके द्वारा आभिजात्य संस्पर्शित हो गयी है। बौद्धिक उपकरणोंको रसत्वका घातक या बाधक माना जाता है, परन्तु प्रज्ञापारमिता खण्डकी रचना इस बातका प्रमाण है कि दार्शनिक और सांस्कृतिक उपमूल्योंके सन्तुलित और दूरदर्शी प्रयोग और समीकरणकी सामर्थ्यसे कविताकी प्राण-शक्ति तीव्र, आर्द्रता अभिजात और उदात्त हो जाती है, और बौद्धिक और सांस्कृतिक चेतना राग-तत्त्वमें तादात्म्यके द्वारा आनुषंगिक और पृथक् न रहकर राग-चेतनाका ही अंग बन जाती है।

संकलनमें तीन आख्यानात्मक कविताएँ हैं 'ऋष्यश्रृंग', 'क्लियोपैट्राका पत्र सीताके नाम' और 'नूरजहाँ'। ऐतिहासिक-पौराणिक पात्रों और घटनाओंके प्रति कविका दृष्टिकोण पुराना ही है। इन कविताओंको अन्धायुग कनुप्रिया संशयकी एक रात अथवा आत्मजयी-जैसी रचनाओंके साथ नहीं रखा जा सकता जिनमें आख्यान और पात्र किन्हीं प्रश्नों और समस्याओं और विचारोंके विवेचन-विश्लेषण अथवा समाधानके माध्यम होते हैं। उनका उद्धार, प्रतिष्ठा अथवा आधुनिकीकरण लेखकका ध्येय नहीं होता। 'ऋष्य-श्रृंग' अत्यन्त साधारण कविता है और 'क्लियोपैट्राका पत्र' में भी कविकी दृष्टि उसके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा और नये सन्दर्भके अनुकूल उसका नवीनीकरण है। परन्तु जहाँतक चेतनाका प्रश्न है सीता और क्लियोपैट्रा 'उर्वशी'की औशीनरी और उर्वशी अथवा 'सुहागके नूपुर'की कन्नगी और माधवी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भिन्न नहीं है। जीवन्तता और त्यागकी दृष्टिसे तो ये दोनों पात्र पूर्ववर्ती पात्रोंकी अपेक्षा कमज़ोर हैं ही। नूरजहाँकी रचनाका उद्देश्य भी उसके व्यक्तित्वकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए हुई है, परन्तु यह प्रतिष्ठा निश्चय ही विस्मयमुग्ध कर लेनेवाली है। राजनीतिक षड्यन्त्रों और युद्धोंके शस्त्रोंकी झनकारके बीच नूरजहाँका व्यक्तित्व काँटोंसे घिरे गुलाबकी तरह उभारा गया है। उसके जीवन वृत्त और परिवेशके वैभिन्न और विरोधको लघुखण्डोंकी नाटकीयताके उतारों और चढ़ावों-द्वारा रूप दिया गया है। नाटकीय तत्त्वका यह विन्यास फ्रान्सीसी कवि वैलेरीकी 'लाज़्यून पार्क' के रचना-शिल्पसे प्रभावित है। कविताकी समस्त घटनाएँ ऐतिहासिक रूपमें प्रामाणिक हैं, उन्हें कहीं भी तोड़ा-मोड़ा नहीं गया है। नूरजहाँके समर्थ-बौद्धिक व्यक्तित्वके मानसिक तन्तुओंको उधेड़नेमें लेखक बहुत सफल रहा है। नूरजहाँ केवल प्रवृत्तियोंकी गठरी मात्र नहीं है, उसकी सभी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, चाहे वे मानसिक-बौद्धिक हों अथवा कर्मप्रेरित, उसके समग्र व्यक्तित्वका परिचय देती हैं। ज़िन्दगीकी समस्त सिद्धियोंके बावजूद उसके अवसाद-भरे शैथिल्य और अपराजेयताके विश्लेषणमें कवि दार्शनिकसे ज़्यादा मनः-शास्त्री हो गया है—

शायद ज़िन्दगी एक अँधेरी दिलचस्प
भूलभुलैया है।
और प्रेम एक ख़ूबसूरत ख़्वाब,
और लैला-मजनूका वृत्तान्त एक दिल-
पसन्द अफ़साना,
या फिर यह कि शहनशाह जहाँगीर की
मलिका नूरज
प्रेम के अमृत आवेश को ठीक-ठीक
जाना
सच यह कि तुमने मुझसे नहीं मेरे
और यौवन
शराबसे प्यार किया,
और मैंने तुम्हारी आड़ से इतिहास
अल्हड़ प्रवाह
लहरों से जी खोलकर खेल-विलास
लिए

इन आख्यानक गीतियोंके अतिरिक्त
अन्य कविताएँ भी हैं जिनमें अनेक
चमकीले-कोमल-मधुर-आर्द्र-गीले क्षणों
मनःस्थितियोंको बाँधा गया है। 'यह
हर-दीप भी ले लो' 'इतिहास पुरुष'को
यह गीत-दीप जवाहरपर लिखी गयी
श्रेष्ठ कविताओंमें-से एक है।

जहाँतक काव्यभाषाके रूप और
व्यंजना-शैलीका प्रश्न है किसी प्रौढ़ लेख
भाषा और व्यंजनाके गुण-दोषोंका विश्लेष
अधिक अर्थ रखता है और न महता, पर
प्रकार अपनी पूर्ववर्ती कृति 'उर्वशीने
रूमानी संवेदनासे इतिहास पुरुषकी
अलग है उसी प्रकार काव्यभाषा और
क्षेत्रमें भी 'इतिहास पुरुष' का कवि नयी
पर उतरा है। उनके बिम्बों और भाव
घनीभूत एकता है। उनके उपमान और
सचेष्ट कला-चेतनाकी सृष्टि नहीं लगते।
कतर इन चित्रोंमें विचार और
पुनर्रचना और वस्तुओंके आन्तरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्षीकरण है; पर, उनकी परिपक्व कल्पना-का प्रमाण उन बिम्बोंमें मिलता है जहाँ उन्होंने दो विरोधी संवेदनाओंके घात-प्रतिघातों, और विकल्पोंकी सूक्ष्म गहराइयोंको संश्लिष्ट और समीकृत रूप दिया है। जैसे :

स्मृति तेरी कोमल ज्यों पंखुड़ी गुलाब की
ओसकण-छाँह पाली
और यह अटूट बिन्दु-क्षणों वाले काल की
नदी अथाह, काली
बूँद-जैसा मन, जहाँ सिन्धु-सी अहंता में
ज्वार-दृप्त भाव।

यों तो इधरकी आलोचनाके मानदण्डोंपर हर कृति या तो पुरानी संवेदनाकी वाहक होनेके कारण समयसे पिछड़ी हुई होती है अथवा अत्यन्त नवीनताके कारण एक नये मोड़की द्योतक होती है। इतिहास पुरुषमें अनास्था, अविश्वास क्षोभ, कुण्ठा, पागलपन आक्रोश, ज़हर, दुर्बोधता कुछ भी नहीं है। जो कुछ है इन सबका उलटा है जिसे नये आलोचक पुराना करार दे चुके हैं, इतिहास पुरुषको नयी कवितामें कहाँ स्थान मिलता है, यह देखनेकी प्रतीक्षा है।

—सावित्री सिनहा

···। औ। र। स। मी। क्षा

'घायल दिशाओंमें···'

मार्च अंकमें 'समीक्षा'के अन्तर्गत श्री श्याम परमारका लेख—'घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश' पढ़ा। उन्होंने अपने लेखमें दो-एक जगह मेरे नये काव्य संग्रह 'खोया हुआ प्रभामण्डल'का उल्लेख किया है और मेरी कविताओंसे खासी धाँधलीसे पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए इस बातपर आश्चर्य प्रकट किया है कि मैं क्यों नयी पीढ़ीसे खिजा रहता हूँ? 'अकविता'के पहले अंकमें भी पुस्तककी समालोचना करते हुए उन्होंने कुछ ऐसी ही बात कही है।

मेरे पास इतना समय नहीं कि मैं लेख-की समस्त मिथ्या धारणाओं और धाँधलियों-का खण्डन अथवा प्रतिकार करूँ। अपने काव्यके सम्बन्धमें भी पाँच-सात वर्ष बाद ही कुछ लिखनेका भी प्रोग्राम है। यहाँ केवल सूचनार्थ दो बातें निवेदित हैं :

(१) मैं नयी पीढ़ीसे कतअन नाराज़ नहीं हूँ, बल्कि मैं तो उससे प्रेरणा पाता हूँ और जो लोग मेरे निकट सम्पर्कमें रहते हैं, यह बात वे भली-भाँति जानते हैं। सारे काव्य-संग्रहमें केवल एक कविता, 'प्रमथ्युके वंशजोंसे' नयी पीढ़ी अथवा यों कहा जाये कि उसके एक वर्गका सम्बोधित है, यद्यपि उसमें भी आक्रोशकी अपेक्षा दर्द ही ज़्यादा है। काव्य-संग्रहमें जो आक्रोश है, वह नयी पीढ़ीके प्रति नहीं है। श्याम परमार यदि 'खोया हुआ प्रभामण्डल'की कविताएँ ध्यानसे पढ़ेंगे तो वे जान लेंगे कि वह आक्रोश किस वर्ग अथवा किन लोगोंके प्रति है। यों उनके अपने ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सब कुछ हो जिसके प्रति मैंने अपनी कविता 'लकड़बग्घे'में आक्रोश व्यक्त किया है और उन्हें लगा हो कि मैंने कविताएँ नयी पीढ़ीके बारेमें लिखी हैं, तो बात दूसरी है। नयी पीढ़ी हमेशा विद्रोहियों और शेरोंकी पीढ़ी होती है सियारों और लकड़बग्घोंकी नहीं।

(२) स्वामी विवेकानन्दके भाषणोंकी जो पुस्तकें मेरे पास हैं, उसमें सोनेके गोलेका उल्लेख है, लोहेके गोलेका नहीं—शापग्रस्त देवता सोनेके गोलेको सारे दिनके श्रमसे पहाड़की चोटीपर ले जाता है, पर शामको वह फिर लुढ़ककर वहीं आ जाता है। सिसिफ़स भी चट्टानको ऐसे ही ढोता है और ये दोनों प्रतीक ज़िन्दगीके दैनन्दिन-श्रम और उसकी व्यर्थताके प्रतीक हैं—सिसिफ़सकी चट्टानवाले प्रतीकसे सोनेके गोलेका प्रती[क] बेहतर है, क्योंकि वह सूरजका भी प्रतीक है। लेकिन मैंने लोहेके गोलेका प्रतीक इन अर्थ[ों] प्रयुक्त नहीं किया। वह स्पष्टतः मृत्युका प्रती[क] है तभी सोनेके बदले उसे लोहेका कहा है। जीवन-सा व्यापक, जुड़वाँ जीवनका और तत्[व] अवि—कहा है।....यों ही जोड़-तोड़कर अ[र्थ] अनर्थ करना अच्छे आलोचकको शोभा न[हीं] देता! श्याम परमार गत पन्द्रह वर्षोंमें [कई] तरहके पापड़ बेल चुके हैं, यदि उन्हें आलो[चना] चनाके क्षेत्रमें जमना है तो उन्हें ज़्यादा [श्रम] और दयानतदारीसे काम लेना होगा। [हिन्दी] ज़िम्मेदार आलोचकोंकी हिन्दीमें पहले [से] कमी नहीं।

—उपेन्द्रनाथ अश्[क]

पूरक अनुक्रमणिका

(प्रस्तोता : रंगनाथ राठे[र]

कथा-संग्रह :

कपिल : सूरतें और सीरतें
गौड़ सरयु पण्डा : कोर्टशिप, लेखककी बीवी
तिवारी, नन्दकिशोर : पद्मराग
राधाकृष्ण : रामलीला, देवता, कटे पंख।
राधाकृष्णप्रसाद : समानान्तर रेखाएँ, अन्तरकी बात
लक्ष्मीनारायण सुधांशु : रसरंग, गुलाबकी कलियाँ
वियोगी, मोहनलाल महतो : रेखा, रजकण, प्रतिमा, बन्दनवार
शास्त्री, जानकीबल्लभ : कानन

संकलन :

एक कथा-दशक : डॉ० माहेश्वर

[पूरक अनुक्रमणिकामें शेष पुस्तकोंके नाम सम्मिलित किये जा सकेंगे।—सं०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थंकर महावीर

गोकुलचन्द्र जैन

महावीरको जन-साधारण जैन-धर्मके संस्थापकके रूपमें जानता है। जैन उन्हें इस युगका अन्तिम अर्थात् चौबीसवाँ तीर्थंकर मानते हैं। इतिहासकी दृष्टिमें वे एक महा-मानव थे।

जिस युगमें महावीर पैदा हुए वह युग केवल भारतवर्षके लिए ही नहीं सम्पूर्ण विश्वके लिए महान् बौद्धिक क्रान्तिका युग था। भारतमें जिस समय महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर-जैसे क्रान्तिकारी पैदा हुए उसी समय ग्रीसमें महात्मा सुकरात, पारसमें महात्मा जरथुस्त्र तथा चीनमें लाओत्से और कन्फ़्यूशियसने विचार-क्षेत्रमें क्रान्ति पैदा कर दी थी।

महावीरके उदय होनेके कई शताब्दियों पूर्वसे भारतीय विचारधारामें क्रान्ति आरम्भ हो चुकी थी। धर्मके नामपर बढ़ते हुए पाखण्ड और अन्यायने एक ओर धार्मिक क्रान्तिके बीज बो दिये थे, दूसरी ओर क्रियाकाण्डमें धर्म बतलानेवाले तथा-कथित तत्त्वचिन्तकोंने दार्शनिक क्रान्तिके। इस तरह एक ओर क्रान्तिके बीज पनप रहे थे दूसरी ओर पाखण्ड और अन्याय। महावीरके उदय होने तक दोनों अपनी चरम सीमापर पहुँच चुके थे। इस प्रकार धार्मिक तथा दार्शनिक वातावरणसे क्षुब्ध युगमें महावीरका उदय हुआ।

महावीरका जन्म आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व वैशाली गणतन्त्रके राजा सिद्धार्थके यहाँ माता त्रिशलाके गर्भसे हुआ था। उस दिन चैत्र मासकी शुक्ल त्रयो-दशी थी। उसीकी स्मृतिमें महावीर-जयन्ती मनायी जाती है।

महावीरका बाल्यावस्थाका नाम वर्धमान था। सर्पको वश करनेकी एक विशेष घटनाके कारण वे महावीर कहलाने लगे। जैन-साहित्यमें उनके वीर, अतिवीर और सन्मतिवीर नाम भी आते हैं। महावीर प्रव्रजित होनेके बाद पार्श्वनाथकी निर्ग्रन्थ परम्परामें दीक्षित हुए थे। इसलिए बौद्ध साहित्यमें उन्हें निर्ग्रन्थ (पाली-निग्गण्ठ) नामसे ही सम्बोधित किया गया है। वहाँपर उन्हें ज्ञातपुत्र (पाली-नाटपुत्त) भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा गया है, क्योंकि वे ज्ञातृवंशीय थे। विहार-की जथरिया जाति अब भी अपने-आपको महावीरका वंशज मानती है।

महावीर जन्मसे ही चिन्तनशील प्रकृतिके थे। उस समयकी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियोंने उन्हें और भी चिन्तनशील बना दिया। धर्म और राजनीतिने समाजको छिन्न-भिन्न कर दिया था। परलोकके नामपर यज्ञ और धर्मानुष्ठानोंमें धनके बेतहाशा नष्ट होनेसे आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो गयी थी। महावीरने तीस वर्ष तक घरमें रहकर इस स्थितिका खूब अनुशीलन किया, पर जब वे समाधान न पा सके तो एकान्त चिन्तनके लिए उन्होंने प्रव्रज्या ले ली।

बारह वर्षकी कठोर साधनाके बाद महावीरने समाधान पा लिया। जैन-परिभाषामें उसे केवलज्ञान कहते हैं। बयालिस वर्षके इस चिन्तनको जब उन्होंने समाजके सामने रखा तो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी शृंखलाएँ एक साथ झनझना उठीं। महावीरने हर क्षेत्रमें अपनी नयी दृष्टि दी। जीवनका एक भी अंग अछूता नहीं छोड़ा।

सामाजिक व्यवस्थामें वर्ण-भेदके कारण जो कटुता उत्पन्न हो गयी थी उसका एक ही उपाय था कि वर्ण-भेदके सामाजिक मूल्य बदले जायें। समाजके चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें पारस्परिक ऊँच-नीच और घृणाका भाव न रहे। किसीका कार्य हीन-दृष्टिसे न देखा जाये। किसी विशिष्ट परिवारमें जन्म लेनेसे कोई प्रतिभा कुण्ठित न हो। इसलिए महावीरने कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का सन्देश दिया। उन्होंने कहा—गुणों पूजा होनी चाहिए, जन्मकी नहीं। क्षत्रिय कुमारमें यदि क्षात्र-तेज नहीं तो वह क्षत्रिय कहलानेका भी अधिकारी नहीं, और शूद्रका पुत्र ब्रह्मनिष्ठ है तो उसे ब्राह्मणत्व ही प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा :

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ उ कम्मुणा
(उत्तराध्ययन २५।३३)

अर्थात् कर्म (आचरण) से मनुष्य ब्राह्मण होता है, कर्मसे ही क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है।

महावीरके इस सन्देशका विरोध हुआ किन्तु इससे जन-साधारणमें जो चेतना आयी उससे समाजकी टूटी कड़ियोंको जोड़नेका काम अनायास ही प्रारम्भ हो गया। शूद्र और दलित वर्गको अपने अस्तित्वका भान होने लगा और उसके मनमें भी सामाजिक समता विषयमें निष्ठा पैदा हो गयी।

महावीरने पशुबलि और यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानोंका घोर विरोध किया। इस विरोधकी वास्तविक पृष्ठभूमि क्या इस विषयमें लोगोंने बहुत ही कम सोचा या कहना चाहिए नहीं ही सोचा। वास्तवमें महावीरकी इस धार्मिक क्रान्ति एक बहुत बड़ी आर्थिक पृष्ठभूमि है। धन और पशुओंका बहुभाग नष्ट किया घी, दूध, चीनी, जो, तिल इत्यादि सामग्रियाँ समाजके व्यक्तियोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध न हों पर यज्ञमें उनका उपयोग अवश्य ही होता था। इसी प्रकार राजे-महाराजे और शक्तिशाली ब्राह्मण यज्ञके लिए जबरदस्ती गरीबोंके पशु छीन लाते थे। महावीरने यज्ञका विरोध किया, प्राणि-वधको रोकनेके लिए ही नहीं प्रत्युत इस आर्थिक अपव्यय और सामाजिक विशृंखलनको रोकनेके लिए भी। महावीरने अहिंसापर जितना जोर दिया उतना ही जोर अचौर्यपर भी दिया। अचौर्यकी व्याख्या जैनागमोंमें 'अदत्त ग्रहण न करना' की गयी है। अदत्तका सीधा-सादा अर्थ है—बिना दिये।

देखना यह है कि अचौर्यकी यह मर्यादा क्यों बाँधी गयी। धर्मानन्द कौशाम्बीने इस विषयमें 'पार्श्वनाथका चातुर्याम धर्म' में विशेष लिखा है। यज्ञके लिए गरीबोंके श्रेष्ठ पशु बिना उनकी अनुमतिके भी शक्तिशाली लोग ले लेते थे। खेतमें चलते हुए हलका हृष्ट-पुष्ट बैल यदि राजाको अपने यज्ञके लिए आवश्यक हुआ तो खेत अनजुता भले रह ले, यज्ञके लिए बैल हलसे खोल लिया जाता।

ऐसी परिस्थितिमें महावीरके अदत्त ग्रहण निषेधने जन-साधारणको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसे महावीरके सिद्धान्तोंमें सान्त्वना उपलब्ध होती दिखी। और इस तरह आर्थिक पृष्ठभूमिपर महावीरने धार्मिक क्रान्ति और सामाजिक जीवनको बदलनेके कामको आगे बढ़ाया। महावीरसे ढाई सौ वर्ष पूर्व पार्श्वनाथने जिस कार्यको प्रारम्भ किया था उसमें महावीरने नयी उपलब्धियाँ जोड़ीं।

महावीरसे ढाई सौ वर्ष पूर्व पार्श्वनाथने चातुर्याम-धर्मका उपदेश दिया था। इस विषयके अनेक साक्ष्य जैन और बौद्ध आगमोंमें मिलते हैं। भगवती, सूत्रकृतांग और उत्तराध्ययनमें पार्श्वापत्यकोंका वर्णन है।

सामंजफल सुत्तमें जहाँ निर्ग्रन्थोंका वर्णन है वहाँ उन्हें 'चातुर्यामसंवरसंवुत्तो' कहा गया है। पार्श्वनाथके चातुर्याममें अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह आते हैं। स्थानांग सूत्र (२६६) में चातुर्याम-धर्मका वर्णन इस प्रकार आया है :

१—सव्वातो पाणातिवायाओ वेरमणं।
—सभी प्रकारके प्राणघातसे विरति।
(अहिंसा)

२—एवं (सव्वातो) मुसावायाओ वेरमणं।
—सभी प्रकारके असत्यसे विरति। (सत्य)

३—सव्वातो अदिन्नादाणाओ वेरमणं।
—सभी प्रकारके अदत्तादानसे विरति।
(अचौर्य)

४—सव्वातो बहिद्धादाणाओ वेरमणं।
—सब प्रकारके बहिर्धा-आदान (परिग्रह) से विरति (अपरिग्रह)

महावीर पार्श्वनाथकी परम्परामें दीक्षित हुए थे। इसलिए उन्हें यह सब विरासतके रूपमें मिला। उन्होंने पार्श्वनाथके चिन्तनको और आगे बढ़ाया। जनरुचिका महावीरकी ओर आकर्षित होना महावीरकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

महावीर राजकुमार थे। राजकुमारका इस तरह जननेता बनना एक बड़ी बात थी। कदाचित् जो उपलब्धि महावीरको राज्य-संचालनमें न होती वह उन्हें सामाजिक क्षेत्रमें प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई। और उनकी इस उपलब्धिने राजे और राजनीतिज्ञोंको भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। राजों और राजनीतिज्ञोंका महावीरके चिन्तनकी ओर यह आकर्षण राजनीतिमें भी एक नयी क्रान्ति लाया। और शासन-सूत्र भी अधिक मृदु, अधिक सहज और अधिक व्यावहारिक हो गये।

महावीरके इस स्वरूपको पहचाननेका प्रयत्न नहीं हुआ। यदि हुआ भी तो न के बराबर। महावीरको भगवान्‌के रूपमें ही अधिक माना गया। साधारण मानवके रूपमें कम, या कहना चाहिए बिलकुल नहीं। और इस तरह मानवसे अतिमानवकी पृष्ठभूमिमें पहुँचे महावीरका वास्तविक जीवन जन-सामान्यके लिए एक गूढ़ पहेली बन गया।

भारतीय जन-मानस जिस व्यक्तिको बहुत अधिक आदर प्रदान करता है, उसे मानवकी कोटिसे उठाकर देवता या भगवान् बना देता है। सभी महापुरुषोंके साथ यही हुआ। राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर सब भगवान् बन गये। भगवान् बननेके बाद उनके जीवनको वे ही घटनाएँ याद रखी जा सकीं, जो उन्हें भगवान् बनाती थीं। मानवीय घटनाओंको भूल जाना पड़ा। क्योंकि उनसे भगवान् भगवान् नहीं रह जाता, साधारण मानव जाता। इसी तरह उनके जीवनके साथ ऐसे प्रसंग जोड़ दिये, जिनसे उनके रूपमें कोई कमी न आये, प्रत्युत वृद्धि हो।

भगवान् बना देनेकी इस प्रक्रियासे बहुत बड़ी हानि यह हुई कि हम अपने पुरुषोंका जीवनवृत्त इतिहासमें सुरक्षित रख सके और इस कारण उनसे जो प्रेरणा प्राप्त होती, उसकी परिसमाप्ति-सी हो गई। केवल श्रद्धा-भक्ति और आदर ही आज लिए अवशेष रहे। साहित्यकारने भी पुरुषोंके उसी अतिरंजित स्वरूपका चित्र अधिक किया है, मानवीय रूपका कम। स्थितिमें भगवान्‌का जामा उतारकर मानव धरातलपर लाना और इतिहासके सँजोकर उनको प्रस्तुत करना बड़ा ही कार्य है।

साहित्य और इतिहासको पूर्वक देखनेसे महावीरका मानव-रूप भगवत्-स्वरूपसे कहीं अधिक शिव, सत्य, और सुन्दर प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

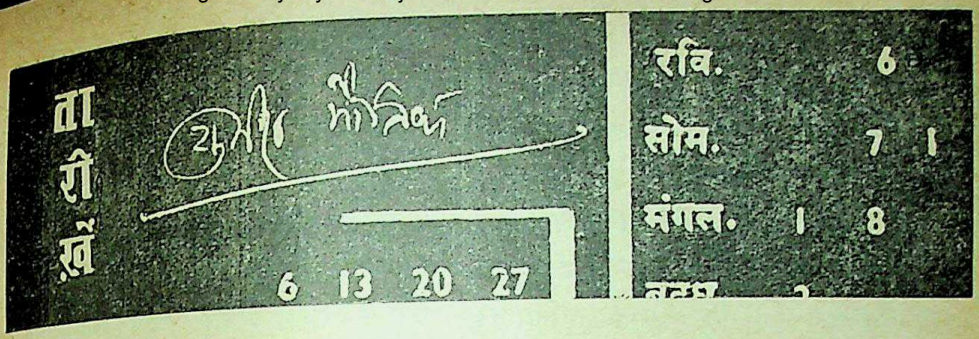

● बंगाल बन्द :

बंगालके स्नायुमण्डलमें हड़ताल नामकी चीज़ ख़ूनके साथ-साथ चलती रहती है, वह जहाँ रुक जाती है वहीं बंगाल 'बन्द' हो जाता है। इस बार यही एक कारण नहीं था कि पूरे २४ घण्टेकी हड़तालने उठना-बैठना हराम कर दिया, कारण एक और था—या तो वह भूख-प्यासके कारण जनताके मनमें घुमड़ रहा असन्तोष था या केवल भूख ही है कि जो भूखे पेट भी भजन करवा रही है। दुनियाका इतना बड़ा शहर, ऐसा रंगोन मिज़ाज माहौल···और १० मार्चको हालत यह कि जैसे कोई मर गया हो। ट्राम-बस अन्देशेसे ही बन्द हो गयी थीं, चलती रेलें रुक गयीं, पटरियाँ उखाड़ दी गयीं, जगह-जगह आग लगा दी गयी, आये हुए दमकल-पर ऐसे पत्थर फेंके गये कि वह चित्तरंजन एवेन्यूपर अबाउट-टर्न भी नहीं हो पाया और उसे उलटे-उलटे ही लौटना पड़ा। बेहालामें गोली चली। हिन्द-मोटर्सके सामने रेलकी बोगियाँ जला दी गयीं। कहते हैं, हड़ताल आग होती है, लग जाये तो लग ही जाती है। वैसे कलकत्ता जुलूस-प्रधान और हड़तालप्रिय समस्यामूलक शहर है, यहाँ गण्डोगोल होते देर नहीं लगती। लोग सरकार और सरकारकी खाद्यनीतिके अलावा उसकी धौंसबाज़ीसे नाराज़ थे। चौरंगीमें एक मज़ाक़ यह सुना गया—"आकाशबाणी कोलिकाता। एखुन शुनबेन स्थानीय गण्डोगोल। पोड़छि प्रफुल्लचन्द्र सेन।"····और कलकत्तामें अधिकांश जगह कर्फ़्यू लगा। लोगोंने, आर्मी-को चहलक़दमी देखी। इस सबपर राजनीतिक स्टण्टका आरोप लगाया जा सकता है, लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि लोग सच ही भूखे ही हैं—अगर कोई मजबूरीमें कच्चा केला और केलेके गाँछसे लगा अल्लमगल्लम चोड़ाचुड़ी (मिक्स्ड वेजीटेबल) तक खाता है तो क्या उसे अच्छे चावल खानेका अधिकार नहीं है? शायद मूल नाराज़ी यही थी। याद करें १९४२ को जब सारे देशने हंगामा मचा दिया था—'भूखा है बंगाल रे साथी।' उस समय अँगरेज़ोंकी तानाशाहीने हमें कुचलकर रख दिया था, हममें शक्ति नहीं थी कि हम अनाजोंसे भरे गोदामों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को लूट लेते। आज स्थिति दूसरी है, अनाजके सारे गोदाम खाली हैं और हम किसी भी चीज़को लूट लेनेके लिए तैयार हैं। कृपलानीने आरोप लगाया है—'शासनने जनताकी हत्या की है।' डॉ० लोहियाने लिखा है—'अब तो बात खुल गयी। सब कोई जानते हैं कि भारत दुनियाका सबसे भूखा और भिखमंगा देश है।....' लेकिन इससे समस्या कहाँ सुलझी? १३ मार्चको कलकत्तामें जिसने जुलूस देखा है—सुना है, सेण्टरके अतिथियोंने भी देखा है—उसने जाना है कि जैसे भी हो खानेकी समस्या सुलझनी ही चाहिए, खाना अनिवार्य होना चाहिए, ऐच्छिक नहीं। इस विराट् जुलूसमें कौन लोग नहीं थे, लोगोंको बड़ा उत्साह मिला कि सत्यजित रे भी साथ-साथ थे, वे कुछ शूट करने नहीं आये थे, अपनी आवाज़ देने आये थे। और आवाज़से सरकार भी इनकार नहीं कर रही है—इनकार है हर मोहल्लेके उस हल्लेसे जो प्रतीक नहीं है, योजनाबद्ध है और इतना योजनाबद्ध है कि पिछले एक सप्ताहमें कलकत्ताके लिए रवाना हुई माल गाड़ियोंको केरल चला जाना पड़ा। कलकत्ता दोबारा शान्त हो गया है लेकिन भूख वहीं है जहाँ थी। कारण यह भी है कि लोकसभामें भिखारीकी परिभाषा निश्चित करनेके लिए भी समय दिया जाने लगा है। २५ फ़रवरीको श्री बड़ेने कहा—'देशमें दो तरहके भिखारी हैं, एक राजनीतिक भिखारी और दूसरे सड़कछाप भिखारी।' स्पीकरने सबकी तरफ़से स्वीकारा कि हम सभी राजनीतिक भिखारी हैं। श्री बनर्जीने तुर्रा कसा—'हाँ, जिस तरह हमारे खाद्यमन्त्री विदेशोंसे अनाज माँगते फिरते हैं उससे भिखारियोंको सबक़ ही मिलता है....'

● बरजात्री :

दस मार्चको जब सारा बंगाल बन्द था, कलकत्ताके सबसे अधिक क्वाँरे लोगोंके नसीब खुले थे। इस दिन जितनी शादियाँ हुईं उतनी इस वर्ष कभी नहीं हुईं। मज़ा यह रहा—वाहन न मिलनेके डरसे दूल्हे एक दिन पहले ही ससुराल जा पहुँचे। यह तय था कि शादीके दिन सबको सन्देश खाने मिले। सन्देश उस दिन खुल गया था लेकिन अब सन्देशका नाम था: चोरीका सन्देश। हड़तालके दिन आक्रामक भीड़ हर चौराहे पर खड़ी थी, और थी गुज़रनेवाली कारोंपर टूट पड़नेके लिए तैयार। केवल सुविधा मिली थी—'प्रेस', 'मिल्क', 'एम्बुलेन्स', 'पोलिस' को। मुश्किलसे 'डॉक्टर'को लेकिन जिन कारों पर 'बरजात्री' लिखा था उन्हें खुली छूट दी। लोग दया करते थे—सालेकी शादी है, छोड़ दो। रासबिहारीपर ठाट-बाटसे कहीं जाती एक दलको लोगोंने घेर लिया। पूछा तो बोले—'हम भूखे हैं।' उनसे कहा गया—'भूखे हो तो हड़ताल करो, कहीं जानेकी क्या ज़रूरत है?' उनमें-से एकने जवाब दिया—'हड़ताल ही करते लेकिन आपने हमें निमन्त्रण मिल गया है क्योंकि एक दोस्तकी शादी है।....' यह समस्याका हल तो है कमसे कम उस परिवारके लिए। डेल्टामें एक महीनेमें एक क़स्बेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादियाँ हुईं इस डरसे कि सरकार जनसंख्या कम करनेके लिए शादियोंपर बैन लगा रही है। वैसे सब कुछ होता डरसे ही है। अमेरिकामें अगर तलाक़ बन्द होनेकी अफ़वाह फैल जाये तो सारा अमेरिका एक दिनमें ही तलाक़ दे देगा।

• फिर पंजाब :

पंजाबपर-से ध्यान हटे जुम्मा-जुम्मा आठ दिन हुए थे कि फिर पंजाब समस्या बनकर सामने आ खड़ा हुआ। भाषावार-प्रान्त-रचनाकी यह अन्तिम कड़ी है (हालाँ कि इसे अन्तिम कहना खतरेसे खाली नहीं है—इस देशमें तो भाषाएँ भी जन्म लेती हैं, किसी भाषामें साहित्य बादमें रचा जाता है झगड़ा पहले होता है!) तो पंजाब और दिल्ली दोनोंमें आन्दोलनने आग पकड़ी है और सरकार ऊँटकी करवट देख रही है लेकिन ऊँट पत्तियाँ खानेमें व्यस्त है उसे बैठनेकी फ़ुरसत ही नहीं है।

• तलाश सुइयोंकी····

कलकत्तामें चार सुइयाँ खो गयीं। आस-पासका सारा क्षेत्र और कादापाड़ाका सारा घूरा छान डाला गया कि सुइयाँ मिल जायें। फिर ट्राम्बेसे एक विशेष दल भी आया और उसने तीन सुइयाँ खोज निकालीं। एक शायद टूट गयी है और शायद उसकी अब भी तलाश है। घोड़बीबी लेनके एक आदमीने सरकारकी देखादेखी खुद ही उस कचरेको उलटना शुरू किया। उसने बताया, उसे दो आनेके पुराने सिक्के मिले हैं। सुइयाँ आर० जी० कर मेडिकल हास्पिटलकी हैं, रेडियमकी।

• 'बापनो घर' यानो ले चाबी सम्भाल····

बम्बईके लोटस ट्रस्टने एक लाख रुपया दिया, उससे पहले अखिल भारतीय महिला सम्मेलन-ने ढाई लाख रुपयोंसे दिल्लीमें ज़मीन खरीदी। अब उस भवनकी संस्थान-शिला रखी जा चुकी है जिसका नाम होगा : 'बापनो घर' यानी जो महिलाएँ परिवारके जंजालसे त्रस्त होकर कुछ सीखना चाहती हैं, कुछ करना चाहती हैं वे इस पिताके घरमें जाकर अपने-आपको क़ाबिल बना सकती हैं। पतिके पैरोंपर खड़ा रहनेके बजाय वे चाहें तो अपने पैरोंपर खड़ी हो सकती हैं। अभी इस घरमें सोलह स्त्रियोंके रहने-की व्यवस्था होगी, बादको बत्तीसके लिए यही सुविधा दी जायेगी। पत्नी अब अधिक समर्थ आवाज़में पतिदेवताको छोड़ अपने पिताके घर चले जानेकी धमकी दे सकती है। कुछ लोग यह जानना चाहते हैं कि अगर उनकी पत्नी वहाँ चली जाये तो वे 'बापनो घर' को अपना ससुराल समझनेके अधिकारी रहेंगे अथवा नहीं।····बात होलीके दिन कही गयी थी लेकिन है क़ाबिले-ग़ौर।

• पाँच रुपयेमें तीन पोज़ :

कॉलेज-विश्वविद्यालयोंवाले हर शहरमें एक दिन शहर-भरके फ़ोटोग्राफ़र पाँच रुपयेमें तीन पोज़ उतारते हैं। कलकत्तामें पिछले महीने दीक्षान्त-समारोहके बाद तीन पोज़वाला मौसम आ चुका है। स्टेट्समैनने याद दिलायी है : ६ फ़रवरी १९३२ की, जब कान्वोकेशन-के लेक-मैदानवाले आलीशान पण्डालमें बंगाल-के गवर्नर सर स्टेनली जैक्सनपर एक बंगाली ग्रेजुएट लड़की बीना दासने अपने रिवाल्वरसे

तारीखें : सुमेश भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच फ़ायर किये थे। गवनर बच गये थे। लेकिन उस लड़कीके तीन पोज़ ३४ साल बाद भी ऐसे ताज़े हैं जैसे कल हो उसने बी० ए० पास किया हो। और अब····? अब इन तीन पोज़वाली लड़कियोंकी हालत बदल गयी है—एक पोज़ माँ-बापके लिए, दूसरा तथा-कथित प्रेमीके लिए, तीसरा उसके लिए जो शायद इस पोज़को पास कर दे।····

● कबूतर रेस :

कलकत्तामें आधी रात भी यह गूँजती हुई आवाज़ आप सुन सकते हैं—रेस····बम्बे····। आप एक रुपयेमें किताब खरीदिए और सबेरे दौड़ते घोड़ोंपर रुपया दौड़ाइए। रेस कलकत्ताकी जान है और १३ फ़रवरीको हुई कबूतर-रेस उससे भी जानदार रही। श्री पी० यापके कबूतर 'ब्यूटी क्वीन'ने कानपुरसे कलकत्ताको १००८ किलोमीटरकी रेस जीत ली। इस रेसमें ४३ कबूतरोंने भाग लिया। कानपुरसे ये पंछी शनिवारकी सुबह सात बजे उड़े और पहला पंछी रविवारकी सुबह ११·४५ पर निर्धारित स्थानपर पहुँच गया। पहले दस कबूतरोंके नाम इस प्रकार हैं : ब्यूटी क्वीन, लिटिल डैडो, डैम्सल, ब्लैक ट्यूलेप, ब्रेवो, ललिता, मोना लिज़ा, हनी, फेअर मैडन, इन्द्राणी।

● जय हिन्दी :

सुनते हैं, कलकत्ता विश्वविद्यालयमें सबसे पहले हिन्दीका शिक्षण प्रारम्भ हुआ था और शायद इसीलिए वहाँके पोस्ट ऑफ़िसमें नाम-पट्टी हिन्दीमें है। जो भी है, उसे पढ़नेसे बंगाली हिज्जेका ज्ञान ज़रूर बढ़ेगा : कालिकाता इउ-निभारसिटी डाक तार घर।

● वह रात :

हड़तालके दिनके बाद हड़तालवाली रात कर्फ़्यूसे कुछ पहले कुछ लड़के हाथमें फ़िल्मके बैनर लिये हुए थे—'यह रात फिर न आयेगी।' बैनरपर इठलाती टैगोरको देखकर किसीने पूछा—'यह फ़िल्म कहाँ चल रही है?' जवाब दिया गया—'आज यह फ़िल्म कहीं नहीं चल रही है। आज की रात तो इसकी शूटिंग है।' यह कहने के साथ ही उस लड़केने एक पत्थर उठाया और पाससे गुज़रते दमकलपर फेंक दिया।

● क़ॉफ़ी हाउस :

कॉलेज स्ट्रीट कॉफ़ी-हाउसका एक दृश्य समय—जब पीरियड अवाइड किया जा तीन बंगाली लड़कियाँ बैठी हैं, हाथमें कि का ढेर और वे बेयराको तीन बार है कि किसीका इन्तज़ार है, वह आ ऑर्डर दें। एक बोली—वह पाँच मिनि आयेगा। दूसरीने कहा—मैं अधिकारि कह सकती हूँ कि वह दस मिनिट बाद कहा तीसरीने—जो तुम दोनोंके लि वाला है वह भले पाँच और दस मिनि आये लेकिन जो मेरे लिए आयेगा मिनिट बाद ही आयेगा।

बेयरा खड़ा सुनता रहा और लड़का आकर उनके पास बैठ गया ऑर्डरके लिए झुकते कहा—'बे दो जायें तब आऊँ या अभी ऑर्डर देंगी लड़कियोंने एक साथ जवाब दिया— एकके ही बारेमें बात कर रही थीं। का बिल एक लड़का नहीं चुका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ ४ का शेष : पत्र आपके]

कहानीके प्रति ताज़ एहसास भर गयी। यह मेरा अपना वैयक्तिक विचार है कि 'विपात्र' जितनी आशाओंको लेकर जन्मा है भविष्य वैसा नहीं दीखता।

अन्तमें कहूँगा कि ज्ञानोदय नये लेखकोंको दिशाएँ देता है और पाठकोंको ज्ञान।

मुज़फ़्फ़रपुर] —वीरेन्द्र मिश्र

०

प्रस्तुत अंकमें जहाँ अविनाश सरमण्डलकी रचना 'कैकेयीका आत्मनिवेदन'ने पौराणिक साहित्यको नये प्रकाशमें देखनेकी प्रेरणा दी है वहीं एक असन्तोष भी है—वह यह कि वशिष्ठका नया चरित्र-चित्रण प्रमाणसम्मत नहीं है। बच्चनजीकी कविता मनको अत्यधिक भायी।

जबलपुर] ——नन्दकिशोर मालवीय

■ ■

[पृष्ठ ८ का शेष : समयबोध]

बुद्धिसे कार्य-कलाप करनेका प्रयत्न अस्तित्वको नीरस एवं आनन्दविहीन बनानेकी ओर अग्रसर नहीं करवा देगा ?

रैण्ड : मैं सच कहूँ कि मैं नहीं समझी कि आप क्या कह रहे हैं। हम अपने शब्दोंकी परिभाषा समझ लें। युक्तिसंगत बुद्धि या तर्कणा मनुष्यको ज्ञान देनेका साधन है। इस शक्ति-क्षमता-द्वारा यथार्थका बोध होता है। युक्ति-युक्त आचरणका अर्थ है : यथार्थ तथ्यकी भिज्ञताके अनुकूल कार्य करना। संवेग-भावना-द्वारा संज्ञान-प्राप्ति नहीं होती। अनुभूति यथार्थका ज्ञान नहीं देती। उसके द्वारा तो व्यक्ति यही जान पाता है कि यथार्थ तथ्योंके प्रति उसकी वैयक्तिक मूल्य-दृष्टि क्या है। भावना मनुष्यके निजी मूल्यांकन-फलपर निर्भर है। इन भावनाओंका उद्गम-स्रोत मनुष्यकी चेतन व अचेतन रूपसे सही या ग़लत मान्यताप्राप्त आधार-भूत पूर्व-धारणाएँ हैं। मानसिक आवेग एक ऐसा भावना-संवेग है जिसका कारण न तो व्यक्ति जानता है और न खोजनेकी कोशिश करता है। देखें कि मानसिक आवेग-द्वारा क्रियाशील होनेके अर्थ क्या हैं। इसके अर्थ हुए कि व्यक्ति बिना यह जाने कि वह किस वस्तुके निकट है, क्या प्राप्त करना चाहता है या कि किस उद्देश्यसे प्रेरित हुआ है, प्रमत्तकी तरह व्यवहार करता है या वह अस्थायी उन्मादकी स्थितिमें कार्य-रत है। क्या इसी जीवनको आप रसमय और रंगीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं ? मेरे विचारमें तो ऐसी परिस्थितिसे सिवाय रक्तके और कोई रस प्राप्त नहीं हो सकता। यथार्थ तथ्योंसे आँखें फेरकर कार्य करनेका फल विनाशके अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता।

प्रश्न : तो क्या भावनाओंको पूर्ण रूपसे उपेक्षित रहने देना चाहिए ? क्या उनका जीवनमें कोई स्थान नहीं है ?

रैण्ड : नहीं, यह नहीं। केवल उन्हें उनके उपयुक्त स्थानपर रखना चाहिए। भावना-संवेग स्व-संचालित प्रक्रिया है; या पूर्व धारणायुक्त प्रवृत्तियोंका सहज स्वाभाविक प्रभाव····? यह मात्र प्रभाव है, कारण नहीं। यदि व्यक्ति, युक्ति-युक्त बुद्धि और भावना-संवेगोंका पारस्परिक सम्बन्ध उचित रूपसे स्थापित कर ले तो दोनोंमें संघर्ष या द्वैतकी स्थिति उत्पन्न न हो। यौक्तिक बुद्धिमान् जानता है या जान लेनेका प्रयत्न कर लेता है कि उसके भावना-संवेगोंका स्रोत कहाँ है और वे पूर्व-धारणायुक्त प्रवृत्तियाँ क्या हैं। यदि वे पूर्वधारित प्रवृत्तियाँ अनुचित प्रकार की हैं तो वह उन्हें सुधारता है। वह ऐसी भावनाओंसे प्रेरित होकर कोई काम नहीं करता, जिनके प्रति वह उत्तरदायी न हो सके या कि जिनका अर्थ उसकी समझसे बाहर है। किसी परिस्थितिका आकलन करते समय, वह यह जानता है कि उसकी प्रक्रिया अमुक रूपमें क्यों हुई और वह परिस्थिति ग़लत है या सही। उसके मनमें अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता—उसका मस्तिष्क और भावनाएँ समरस होती हैं, और उसकी चेतना पूर्ण रूपसे सामंजस्य-युक्त। उसकी भावनाएँ उसकी विद्वेषी न होकर आनन्ददायिनी बन जाती हैं। किन्तु वे उसकी पथ-प्रदर्शक नहीं होतीं। मार्ग-दर्शनका कार्य मस्तिष्क करता है। इस पारस्परिक सम्बन्धमें उलट-फेर नहीं हो सकता। यदि व्यक्ति भावनाओंका 'कारण' समझने लगे और मन पर उन भावनाओंका क्रियाविहीन प्रभाव स्वीकार करने लगे, यदि उसका पथ-प्रदर्शन भावनाएँ करने लगें और मस्तिष्कका काम केवल उन भावनाओंको न्याय-संगत सिद्ध करनेमें ही रह जाये तो आचरण अनैतिक हो जायेगा। ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने पैरपर कुल्हाड़ी मारकर पीड़ा, असफलता और हारके दलदलमें फँसता है। विनाशके अतिरिक्त उसके हाथ कुछ नहीं आता—सबका विनाश और अपना सर्वनाश।

[कुन्था जैन-द्वारा प्रस्तुत]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re.

16 MAY 1966
28 May

License No 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी ग्रंथ मालाके
चन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान-कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी, लि० बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

मई १९६६ । वर्ष : १७ । अंक : ११

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

इस अंकमें :

सीमन 'द ब्वाउवा, कर्णसिंह, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतभूषण अग्रवाल, शक्ति चट्टोपाध्याय, रमेशकुन्तल मेघ, निदा फ़ाज़ली, गिरिराजकिशोर, शशिबन्धुभ, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, कृष्णशंकर व्यास, सुमेश भौतिक, धनंजय वर्मा, अशोक महाजन, ओम प्रभाकर प्रेमलता वर्मा, दण्डमूडि महीधर, श्रीराम वर्मा, किशोरीलाल गुप्त, शशिप्रभा शास्त्री, अमरेन्द्र 'अमर', स्नेहमयी चौधरी, विनीता पंकज।

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदयका अप्रैल अंक मिला। चमक-दमक बौद्धिक और सामग्रीसम्बन्धी। छुट्टियाँ होनेके कारण कई लेख पढ़ गया। काफ़ी गुदगुदी पैदा करनेवाली चीज़ें हैं।

नयी दिल्ली] —मन्मथनाथ गुप्त

●

'समय-बोध'के अन्तर्गत आपने श्रीमती कुन्था जैन-द्वारा प्रस्तुत (आइनरैण्डकी भेंट) प्रकाशित करके मेरी अनेकानेक समस्याओंका हल दिया है। सत्य तो यह है कि 'एटलस श्रग्ड'में निहित दर्शन और वैयक्तिक मान्यताओंपर मैं लगातार सोचता रहा था। खुद मुझे उसमें निहित यथार्थके प्रति प्रारम्भसे एक अजीब-सी जिज्ञासा थी। मेरी धारणा तो अब भी है कि सर्वाधिक पतित मानव वह है जिसके कार्य मानवताके हितोंके प्रतिकूल हों, न कि ऐसा व्यक्ति जिसका जीवन लक्ष्यहीन हो। क्योंकि हमारे जीवनका कोई-न-कोई उद्देश्य तो रहता ही है फिर चाहे हमें उसका ज्ञान न हो। हमारे अन्तर्मनमें निरन्तर एक ऐसा द्वन्द्व बना रहता है कि क्या मेरे जीवनका कोई लक्ष्य नहीं है। और तब कोई भी आदमी या तो ख्याति या धन या धर्म-के पीछे हो लेता है। और यह अस्पष्ट लक्ष्य उसके जीवनमें आनन्द और कर्मठता ला देता है। तब वह क्षणिक आवेगोंका शिकार नहीं रहता और न अपने-आपको झुठलाता ही है।

'एटलस श्रग्ड' के चरित्र अमानव-से क्या नहीं प्रतीत होते? अनजाने ही हमारी भावनाएँ मन और बुद्धिका अन्तर स्पष्ट किये चलती हैं और भावनाओं और बुद्धिमें एक प्रकारका सामंजस्य हो जाता है। हमारी बुद्धि सदैव हमपर हावी नहीं रहती। हम तर्क भी तो करते हैं।

बहरहाल, भेंट बहुत अच्छी बन गयी है। श्रीमती कुन्था जैनको 'ज्ञानोदय' के माध्यमसे बधाई दें। 'प्रश्नान्तक' एक उपयोगी कॉलम है। भाई सुदर्शन और कैलाशजीकी स्पष्टोक्तियाँ मनपर असर कर गयीं। कैलाशने ठीक ही कहा है कि आजका कवि विकृतिसे समझौता नहीं कर पा रहा है। उसकी मजबूरी कही जाये यह या कि उसकी सजगता। सजगता शायद ठीक है। और यहीं सुदर्शनकी बात कि अभिव्यक्ति हमें मुक्त करती है। मुक्तिका माध्यम है वह।

—ओंकार ठाकुर

जबलपुर]

●

डायरीके सन्दर्भमें—महज़ संकोचमें नाम और जगह और तारीखें बदल दी थीं। नामों और जगहोंकी तो शिकायतें नहीं हुईं, हाँ तारीखोंका 'मडॅल' प्रकाशित रचना पढ़ते समय मुझे स्वयं पता चला था।

—ममता कालिया

बम्बई]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

•

अभी-अभी मार्च, १९६६ का अंक देखा है। मुक्तिबोध-की कहानी 'विपात्र' अकथाकी चर्चाके बीच भी निश्चय ही पसन्द की जायेगी। वर्ण्य विषयको इतनी प्रांजल अभिव्यक्ति यदाकदा ही परिलक्षित होती है। मुक्तिबोधकी सूक्ष्म दृष्टि कहीं-कहीं चौंकानेवाली है। यों पूरी तरह राय तो कहानी-को सम्पूर्ण पढ़कर ही देना सम्भव होगा, पर जितनी पढ़ी है वह असाधारण है। शेष कहानियाँ, नये हस्ताक्षरोंकी होकर भी, प्रभावहीन हैं। यही हाल कमोबेश रूपमें कविताओं-का भी है। केवल आंशिक रूपमें ऋतुराज और रणजीतकी कविताएँ सफल कही जा सकती हैं। किन्तु इस अंककी उपलब्धि है डॉ० श्याम परमारका लेख 'घायल दिशाओंमें टूटे हुए आकाशकी तलाश'। काफ़ी अध्यवसायसे लिखे इस लेखके सूक्ष्म पर्यवेक्षण तथा प्रतिपादनकी प्रशंसा करना आव-श्यक समझता हूँ।

नयी दिल्ली] —जगदीश चतुर्वेदी

•

'ज्ञानोदय' के अप्रैल अंकमें प्रकाशित श्रीमती कुन्था जैन-द्वारा प्रस्तुत 'आइनरैण्डसे इण्टरव्यू—सृजनशील प्रयोजन' वस्तुतः ही महत्त्वपूर्ण लेख है। नये-नये लिखनेवालोंको यह लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। इससे उन्हें रोशनी मिलेगी और वे नया साहित्यके नामपर घृणित, कुत्सित और बे-सिरपैरकी रचनाएँ गढ़नेसे बाज़ आ जायेंगे, यदि वे प्रयत्न करें : क्योंकि बुरी आदत छुटती ज़रा मुश्किलसे है। इधर नयी कहानी, अचेतन, अवचेतन, ऊल-जलूल, अकहानी आदिके नामपर जो 'वैनवाशिंग' की जा रही है इसका असर कुल मिलाकर नव-लेखनपर बुरा पड़ रहा है। नयी शैलीके साथ-साथ मुख्य समस्या विषयके 'चुनाव' की है, यहाँ भावनासे अधिक बुद्धि ही मदद कर सकती है।

लखनऊ] —गिरीश अस्थाना

•

मार्च-अप्रैलमें सुमेश भौतिककी तारीखें पढ़ीं। शायद ये बँगाली सज्जन हैं लेकिन उनकी क़लमसे ऐसी सुन्दर सामयिकी-पढ़कर विशेष अच्छा लगा।

पटना] —वृजराज सिंह

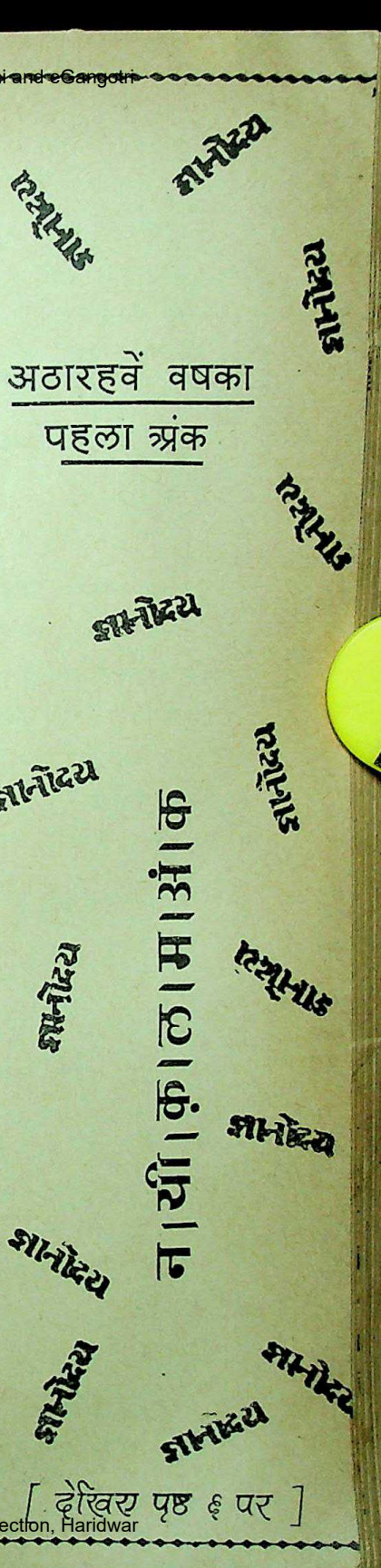

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय ज्ञानोदयका मुखपृष्ठ रुचिकर लगा तथा अन्तरंग सज्जा आनन्ददायी। भाऊ समर्थके चित्र पसन्द आये। अभिव्यक्तिका सुन्दर रूप परिलक्षित होता है। एक बातका खेद भी है। भाऊ समर्थको 'अँगरेजी'की सहीसे अपेक्षाकृत अधिक स्नेह एवं दुलार है। केवल एक चित्रपर 'मराठी' या 'हिन्दी' में सही है। मेरा विश्वास है, भाऊ समर्थके देशकी भाषाएँ जीवित हैं। अधिक क्या लिखूँ! 'उतरती सीढ़ियाँ' और 'चढ़ती सीढ़ियाँ' की कविताओंमें सम्प्रेषणीयता है। सबकी सब जीवन्त हैं, रूढ़ नहीं। विपात्रके दोनों खण्ड पढ़कर सन्तोष हुआ, साथ ही मुक्तिबोधकी प्रतिभाका क्रायल भी। कुमार काश्यपका लेख विचारोत्तेजक लगा।

अज्ञात] —घनश्याम व्यास

●

अप्रैल अंकमें प्रकाशित स्व० श्री मुक्तिबोधकी कहानी 'विपात्र' बहुत-बहुत अच्छी लगी। वैसे श्री दूधनाथसिंह एवं अमरजीतसिंहकी कहानियाँ भी अच्छी हैं। कविताओंमें सर्वश्री गिरिजाकुमार माथुर, वीरेन्द्र मिश्र, चन्द्रकान्त देवताले, ललित-कुमार श्रीवास्तव और सविता बनर्जीकी रचनाएँ प्रशंस्य हैं। 'आइनरैण्डसे एक भेंट' और 'प्लेटोका दर्पण और कविताका सत्य'-जैसे लेख भी काफ़ी ज्ञानवर्द्धक हैं।

मुज़फ़्फ़रपुर] —नन्दकिशोर 'नन्दन'

●

पहली नज़रमें तो मैं 'ज्ञानोदय' को पहचान ही नहीं पाया। एकदम बदला हुआ रूप, लेकिन कितना आकर्षक, मनमोहक। इतनी कलात्मक साज-सज्जा तथा श्रेष्ठ प्रस्तुतीकरणके लिए रमेश बक्षीको तथा आवरण-चित्रके लिए मदन सरकारको मेरी हार्दिक बधाई। १७ वर्षोंके बावजूद 'ज्ञानोदय' बिलकुल नया, ताजा और युवक-सा प्रतीत होता है, इसीलिए मुझे कभी यह पुराना या बासी नहीं लगा।... 'रादनोतीकी युद्ध-कविताएँ' मनको बेध गयीं। कितना सन्त्रास तथा असहायपन है उनमें। श्रीकान्त वर्माकी प्रशंसा की जानी चाहिए इतने सुन्दर-सुघड़ अनुवादके लिए। सत्यदेव राजहंस तथा ललितकुमार श्रीवास्तव ('चढ़ती सीढ़ियाँ') की कविताएँ बड़ी प्यारी लगीं, मनको छू गयीं वे। भीमसेन त्यागीकी कहानी 'शमशेर' नये बिम्ब, प्रतीक तथा उपमानके कारण ही कुछ दम-खम रखती है, अन्यथा उसमें कुछ भी नहीं। मेरी समझमें नहीं आया, दूधनाथ सिंहकी रचना 'निर्णयके अन्तरंग क्षण' किस विधाके अन्तर्गत आती है? यदि वह 'कहानी' है (जैसा कि सूचीमें लिखा है), तो फिर कहानीको नयी परिभाषा गढ़नी होगी, नये आन्दोलनोंका सूत्रपात करना होगा। अपने अंक-सज्जा चित्रोंपर भाऊ समर्थ क्या हिन्दीमें हस्ताक्षर नहीं कर सकते?

इलाहाबाद] —कुँवर अजयसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ । नु । क्र । म

वर्ष १७ : : अंक ११

■ मुखपृष्ठ :
मदन सरकार

■ कविताएँ :
● धूप : पंचबाण : स्नेहमयी चौधरी, निदा फ़ाज़ली, प्रेमलता वर्मा, रमेशकुन्तल मेघ, विनीता पंकज ९
● दो कविताएँ : भारतभूषण अग्रवाल, ओम् प्रभाकर ९१

■ पत्र आपके :
मन्मथनाथ गुप्त, ओंकार ठाकुर ममता कालिया, गिरीश अस्थाना, बृजराज सिंह, घनश्याम व्यास, नन्दकिशोर नन्दन, कुँवर अजयसिंह ।

■ नये स्तम्भ :
● समयबोध : एक नारी-प्रश्न : सीमन 'द ब्वाउआ ७
● मुक्तचिन्तन : 'अराजकताकी राखवाला अस्तित्ववाद' : महेन्द्र कुलश्रेष्ठ १३
● यौवन झूलता रोमांस : डुग्गरके लोकगीत : डॉ० कर्णसिंह २५
● ताज़े सन्दर्भ : दिल्लीके शाही महलसे तुंगतोंगके बन्दी-गृह तक : अशोक महाजन २९
● साहित्य-भूमि : तेलुगुकी ६ दिगम्बर कविताएँ : दण्डमूडि महीधर ३३
● नयी कला : बसौली : कुछ ताज़े सन्दर्भ : महेन्द्र वर्मा ३९
● धर्म-स्मरण : तथागतकी यादमें—२९वाँ वसन्त : कृष्ण-शंकर व्यास ९७
● प्रश्नान्तक : किशोरीलाल गुप्त १०३
● समीक्षा : सरहदोंपर लड़ाई या बोध-दृष्टि : धनंजय वर्मा ११३
● गोष्ठी : नाट्य समारोह : ४ दिन : प्रस्तोता : श्रीराम वर्मा १२७
● प्रतिक्रिया : कथा-मंच : गंगाप्रसाद विमल, प्रभातकुमार त्रिपाठी १४१
● तारीख़ें : सुमेश भौतिक १४९

■ व्यंग्य :
● जब-जब मैंने मुँहकी खायी : भदन्त आनन्द कौसल्यायन १९

■ कहानियाँ :
● शरीरके भीतर : शक्ति चट्टोपाध्याय ४३
● गड़गड़ाते बादलोंमें मिटते-बनते पुल : शशिप्रभा शास्त्री ४९
● एक सुबहका सफ़र : अमरेन्द्र 'अमर' ५७
● चूहे : शशिबन्धुभ ६९
● चूहे : गिरिराजकिशोर ८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

न । यी । क़ । ल । म । अं । क

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५०० रुपयेके पुरस्कार

वर्ष : १८ :: अंक = १ :: जुलाई १९६६

पृष्ठ : १५० :: मूल्य : १·००

१—हिन्दीकी उन नयी क़लमोंको ज्ञानोदयकी ओरसे सस्नेह निमन्त्रण है अठारहवें वर्षके पहले अंकके लिए रचनाएँ भेजनेका, जिनकी रचनाएँ किसी साहित्यिक और प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकामें प्रकाशित नहीं हो पायी हैं या जिन्होंने लिखना शुरू ही किया है। वे रचनाकार भी रचनाएँ भेज सकते हैं जिनकी एक या कुछ रचनाएँ सामान्य महत्त्वकी पत्र-पत्रिकाओंमें छप चुकी हों। रचनाकारकी उम्र १५ वर्षसे अधिक या शैक्षणिक योग्यता हायर सेकेण्डरी-इण्टरमीडिएट होना अनिवार्य है। ज्ञानोदयका यह प्रयास नयी पीढ़ीके प्रतिभाशाली लेखक-लेखिकाओंके अन्वेषणके साथ ही नयी क़लमको प्रतिष्ठा, दिशा और सहयोग भी देना है। प्राप्त हुई सामग्रीमें-से चुनी हुई रचनाएं **'नयी क़लम अंक'** में प्रकाशित की जायेंगी।

२—जुलाई अंकमें (जो २५ जूनको प्रकाश्य है) प्रकाशित रचनाओंमें-से पाठकों-द्वारा विशेष प्रशंसित तथा सम्पादकीय निर्णयसे मान्य पाँच सर्वश्रेष्ठ रचनाओंपर पारिश्रमिकके अतिरिक्त ५०० रुपयेके पुरस्कार दिये जायेंगे —

१—कहानी : १५०-००　　२—लेख : १२५-००

३—अन्य गद्य विधा : १००-००　　४—एकांकी : ७५-००

५—कविता : ५०-००

(यह राशि पुरस्कार-विजेता-द्वारा चुनी हुई भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित पुस्तकोंके रूपमें दी जायेगी।)

३—एक लेखक-लेखिका-द्वारा अपनी कई मौलिक रचनाएँ (किसी भी साहित्य-विधाकी) एक ही लिफ़ाफ़ेमें भेजी जा सकती हैं। **रचनाएँ कार्यालयमें पहुँचनेकी अन्तिम तिथि २० मई १९६६ है।** रचनाओंके साथ रचनाकार अपना पूरा नाम, पता, जन्म-तिथि, शैक्षणिक योग्यता, रुचि, प्रकाशित रचनाओंकी सूची, संलग्न रचनाके मौलिक होनेका प्रमाण, नगरके किसी प्राध्यापक अथवा साहित्यकारका नाम-पते सहित सन्दर्भ भी साथ ही भेजें जिससे आवश्यकतानुसार सम्पुष्टि भी प्राप्त की जा सके। जिन जीवित साहित्यकारोंसे लेखक प्रभावित है या जिनसे वह मार्ग-दर्शन प्राप्त करना चाहता है उनके नाम भी भेजें तो ज्ञानोदय सम्पर्क-सूत्रके रूपमें भी सहयोग दे सकेगा। लिफ़ाफ़ेपर पता यह हो :

सम्पादक : ज्ञानोदय : 'नयी क़लम अंक',
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स।म।य।बो।ध

एक नारी-प्रश्न :
हमारे भविष्यका क्या होगा ?

—सीमन 'द ब्वाउआ

आत्मनिर्भर नारीमें एडवेञ्चरके लिए रुचि या 'अनुभव अनुभवके लिए'वाली प्रवृत्ति बड़ी मुश्किलसे दिखाई देती है। वह एक कोई कैरियर ढूँढ़ना चाहती है जब कि अन्य नारियाँ अपने सुखोंके नीड़ बनाया करती हैं। वह हमेशा अधिकारग्रस्त रहकर दबी रहती है, पुरुष-जगत् उसपर हावी रहता है, सीमाएँ तोड़ डालनेकी उसमें सामर्थ्य नहीं होती है। वह अपनी सारी ख्वाहिशों-सहित अपने जीवनके उद्देश्योंमें अपने स्वयं-को खो नहीं देती। वह अपने जीवनको एक अन्दरकी वस्तु समझती है, उसका ध्यान किसी उद्देश्य तक पहुँचनेपर नहीं होता। वह इन-उन उद्देश्योंके माध्यमसे अपनी व्यक्तिगत सफलतामें विश्वास रखती है। जीवनके प्रति यह उसका एक उजागर दृष्टि-कोण है। उदाहरण लें अमेरिकन नारीका—वे नौकरी करना चाहती हैं। यह भी कि वे उस काममें दक्ष हैं यह भी सिद्ध करना चाहती हैं, लेकिन वे अपने कामोंको संचित उत्साहसहित करनेमें विश्वास नहीं रखतीं। साधारणतः नारी छुटकी असफल-ताओं और खूबसूरत सफलताओंको ज़रूरतसे ज़्यादा महत्त्व दे लेती हैं। परिणामस्वरूप वह या तो क़दम-क़दमपर निराश होती जाती हैं या वह वेनिटीसे ग्रस्त हो जाती हैं। जब एक सफलता निश्चित हो जाती है तो नारी उसे बहुत साधारण रूपमें ले लेती है और जब असफलता दिखाई देने लगती है तो एक उन्मादी विजय-भावना उसमें आ जाती है। तब अपनी आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए आगे बढ़नेवाली नारी कोई एक्स्क्यूज ढूँढ़ने लगती है। वह हमेशा पीछेकी ओर देखती है कि वह कितना आगे आ गयी है और यह उनकी प्रगतिके लिए बाधा है। वे इस विधिसे आदरणीय ढंगसे कैरियर तो बना सकती हैं लेकिन 'बड़े काम' नहीं कर सकतीं। पुरुष भी इन तरीक़ोंसे मिडिया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर किस्मके कैरियर बना लेते हैं। कुछको छोड़ दीजिए, नहीं तो सभी नारियाँ इस मानेमें पिछड़ी हुई हैं। मेरे दिये कारण विश्लेषण-भर हैं, वे भविष्यको नष्ट करनेवाले नहीं हैं। आज बड़े कामोंको करनेमें नारीमें जो कमी पायी जाती है वह है—अपने आपको भूलना। लेकिन स्वयंको भुला देनेके लिए सबसे पहले इस बातका पूर्णतः निश्चित हो जाना अनिवार्य है कि वह अपने 'स्वयं' को भविष्यमें खोजनेमें बुरी तरह व्यस्त है। लेकिन एक विशेष क़िस्मकी नारीके लिए ये बातें सही नहीं हैं। वे जिनके कैरियर (नारीत्वकी सारी सज्जा सहित भी) साहस-शक्ति देते हैं। ये वे नारियाँ हैं जो अपने विशेषत्वको कलात्मक अभिव्यक्तिके माध्यमसे प्रकट करती हैं, जैसे—अभिनेत्रियाँ, नर्तकियाँ, गायिकाएँ···। तीन शताब्दियोंसे इन नारियोंने समाजके बीच ठोस स्वतन्त्रताको बनाये रखा है और आज भी उनका अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले अभिनेत्रियाँ चर्चके द्वारा वर्ज्य थीं और इस कुटिलताने उन्हें अन्यतम स्वतन्त्रता भोगनेका अवसर दिया था। वे अबके क्षेत्रोंको छूती हैं, नगरबधूकी तरह अपना अधिक-से-अधिक समय पुरुषोंके सान्निध्यमें बिताती हैं लेकिन अपनी जीविका कमाकर और अपने काममें अपने जीवनकी सार्थकता देखते हुए ये पुरुषके जुएसे मुक्त रह पाती हैं। उनकी यह पेशागत सफलता पुरुषोंकी तरह ही उनमें आत्मपरिचय, मानवके रूपमें उनकी स्वीकृति, अपने नारी-रूपमें आत्मतोष देती हैं। वे विवादास्पद महत्त्वाकांक्षाओंमें भटकती नहीं हैं यहाँ तक कि उन्हें अपने पेशेमें आत्मरतिकी भावना दिखाई देती है। वेश-भूषा, सौन्दर्य-प्रसाधन, कोमलता उनके पेशागत कर्त्तव्य हो जाते हैं। अपनी ही प्रतिमापर मुग्ध किसी भी नारीको अपने-आपका प्रदर्शन महत्त्वपूर्ण लगता है। वैसा सुन्दर दिखनेके लिए बड़ा प्रयत्न भी करना पड़ता है जो कि जार्ज लेबनंकके शब्दोंमें क्रियाका स्थानापन्न होता है। बड़ी अभिनेत्री और भी आगे जाती है, वह सुलभ साधनोंसे आगे जाकर स्वयंको अभिव्यक्त करती है। वह सच ही कलाकार और सृजेता होती है जो अपने जीवनको अर्थवान् बनाती है, सारी दुनियाको अर्थ देते हुए।····

लेकिन यह अनावश्यक प्रदर्शन मुश्किलमें भी डालता है। उसकी आत्मरति और कलात्मक जीवनकी शरीर-स्वतन्त्रताके बीच तालमेल नहीं बैठ पाता। अभिनेत्रियाँ साधारणतः आत्मतोष अनुभव करने लगती हैं। मैंने उन बनावटी अभिनेत्रियोंकी चर्चा की है जो मूवी या थियेटरमें काम करती हैं और इसलिए धन प्राप्त करना चाहती हैं कि किसी पुरुषकी बाँहोंमें आश्रय पा सकें। यह सही है; पुरुष-आश्रयकी सुविधाएँ अपने कैरियरके लिए खतरा मोल लेनेसे अधिक लाभ की है।···लेकिन उसके भविष्यका क्या होगा? ■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूप : पंचबाण

स्नेहमयी चौधरी •
निदा फ़ाज़ली •
प्रेमलता वर्मा •
रमेशकुन्तल मेघ •
विनीता पंकज •

१. ···गड़ती धूप

नहीं, किसी का इन्तज़ार नहीं,
ऐसा समय है,
जिसमें मुझे
करने हैं बहुत काम,
छोटे और बड़े;
कामों की धुन्ध में
दबा देती हूँ मैं वह आवाज़
जिसका नाता पीड़ा से होता है।

भयंकर बढ़े हुए नाख़ून
तेज़ दाँतों वाले पशु
युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार करते
मेरे पीछे दौड़ते हैं,
दोनों हाथों से आँख बन्द कर
अन्दर और बाहर की बेचैनी से घबरा
मैं आत्महत्या नहीं कर पाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल्की उदास ठण्ड
चादर-सी ओढ़
उम्र के शीतल क्षणों को भोगती हूँ,
दूर तक फैली चिटकी हुई सड़क,
आँखों में गड़ती धूप,
बस मेरे साथ रहती है।

—स्नेहमयी चौधरी

२. पिघला सूरज

आटे के कनस्तर में
पिघलता हुआ सूरज
चारपाई की अदवाइन में
जकड़ा हुआ महताब
तारों की सलीबों पर
सिसकता हुआ हर ख़्वाब
लहराती हुई पिण्डलियाँ,
बजती हुई रानें,
फटती हुई साड़ी में,
गठानों–पे–गठानें....

—निदा फ़ाज़ली

३. तपती चट्टान...

निकली थी
सूरज की खोज में
मैं
तपती चट्टान पे
जा पड़ी
.....

शुभोदय। मई १९६१ धूप : पं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुलबुल-सी
सिसकती
मेरी आत्मा
गिनगिन फोड़ती
अनगिन फफोले
इन्तज़ार में ।

—प्रेमलता वर्मा

४. हिमालय : धूप में

चम्बा की सलोनी कामदार चप्पलें पहने
ग्रीष्म-सुन्दरी आयी !
जंगली बुरूशों की नेलपॉलिश
औ' देवदारु के अंगराग-चर्चित वह
गुलाबी शीत की कसी जीन्स पहने
हिमालय–शहरों में आयी ।
पीछे छोड़ आयी है पांगी औ' कुल्लू की बर्फ़ीली डोलियाँ
संग-संग लायी है वर्षा के बांसोली-स्कार्फ़;
औ' दीयापंखियों के चिकन–कढ़े 'फ़र' ।
सूर्य तक प्रिथिला का चन्द्रमा हो गया है ;
चन्द्र तो फिसलता रेशम का कोया हो गया है !!
वर्षा के खनखनाते पर्स, और शीत के फुरफुराते चेस्टर
झुलाती
वह डलहौज़ी आयी !
तिब्बती औ' हिमाचली शिशुओं औ' मेरी बच्चियोंके लिए वह
लायी
हिमालयी बर्फ़ की आइसक्रीम;
बनमुर्गों को उड़ाती हुई
गाँवों को टाफ़ी-ढेरों-सा
रखती
पर्वती जेबों में ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ीसाज़ों को ऋतुओं और घण्टों के क्रम से
भुलाती वह
गद्दिन वर्षा को, गूज्जरी शिशिर को सखी बना लायी है।
आगे-पीछे जाज़-संगीतज्ञ कौवों की सांस्कृतिक मण्डली भी लायी है!!
हिमालय ग्रीष्मसुन्दरी आत्मरति गर्विता है।
बड़ी नाज़ुकबदन ऊर्वशी आधुनिका है।।

—रमेश कुन्तल मेघ

(कालिदासकृत शरद्-वर्णनसे साभार अनुप्रेरित)

५. एक गरमफ़हमी

अन्तराल एक वर्ष का,
यह एहसास भी,
नहीं रहने देता,
कि—
कि तुम मेरे प्रति अब ईमानदार रहोगे।
बहुत आश्चर्य लगता है
(यूँ ग़ैर-ईमानदारी असामान्य-सी बात नहीं)
कि सच ये भी ख़ुशफ़हमी ही थी
कि तुम अब ईमानदार रहोगे
मेरे लिए।
क्या आज भी इसका अर्थ पूछोगे ?
पूछो—
हम आज भी यही कहेंगे, हँसकर—
'ख़ुशफ़हमी उस ग़लतफ़हमी का नाम है
जो मन को अच्छी लगती है।'

—विनीता पंकज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अराजकताकी 'रख' वाला अस्तित्ववाद

हरमान ब्रोख जर्मनीके उन गिने-चुने सर्वोत्कृष्ट लेखकोंमें-से हैं जिन्होंने आधुनिक युरॅप, विशेषकर जर्मनीके नाजीवाद और उसके आतंकोंका, अपने उपन्यासोंमें युक्तियुक्त दार्शनिक विवेचन किया। इसने न केवल अत्युत्तम उपन्यास लिखे, विपुल दार्शनिक साहित्यकी भी रचना की, जिसमें युगकी मानसिक और आध्यात्मिक समस्याको हल करनेका प्रयत्न किया गया,

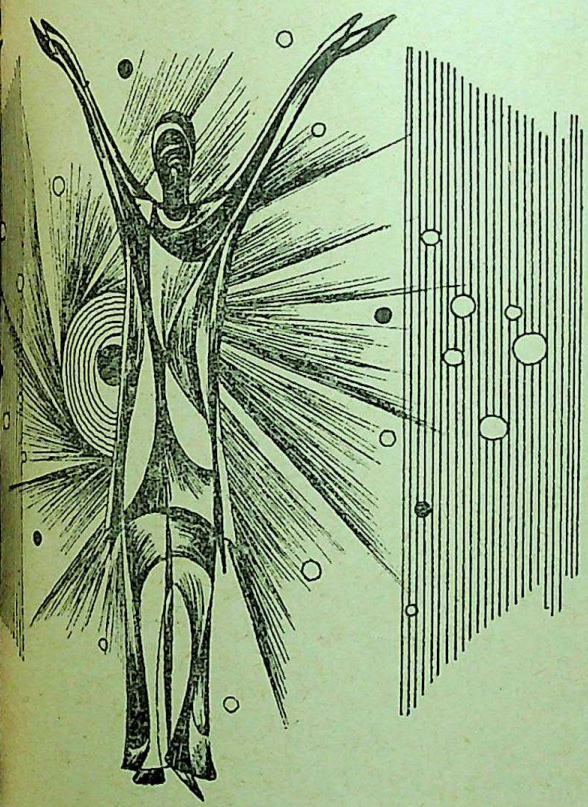

परन्तु इसका दुर्भाग्य कि अभी-तक संसार इसके नामसे भी परिचित नहीं हुआ है। अनेक आलोचकोंकी रायमें यह अपने जर्मन समकालीन थॉमस मानसे कहीं ऊँचा है, और कुछ रच-नाओंमें इसकी लेखन-शैली जेम्स ज्वायसकी 'चेतना-प्रवाह' शैलीका भी अगला क़दम है। इसकी कृतियाँ युगके अत्याचारों-के विरुद्ध अपनी नैतिक प्रख-रतामें बहुत महत्त्वपूर्ण और सबल हैं। अभी कुछ समय पूर्व जर्मनमें इसके समग्र कृतित्व-का संग्रह दस खण्डोंमें प्रका-शित हुआ, जिसकी कुल पृष्ठ-संख्या साढ़े चार हज़ारके लग-भग है। इसके दर्शनपर भी जर्मन-भाषामें एरिख काहलर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

ब्रोख जन्मसे यहूदी था, विवाहके पश्चात् रोमन कैथलिक हो गया, पर अन्तिम समय फिर अपने पुराने धर्मकी ओर वापस आ गया। इसका जन्म १८८६ में हुआ था। विश्वविद्यालयमें इसने दर्शन और गणितका अध्ययन किया परन्तु शीघ्र ही इसका ध्यान जर्मनीके तत्कालीन मूल्यगत पतनकी ओर गया और उसके फलस्वरूप इसने तीन खण्डोंमें अपना पहला बृहत् उपन्यास 'डाई स्लाफ़ वैण्डलर' (दि स्लीप वाकर्स) लिख डाला। इसमें १८८८ से १९१८ की क्रान्ति तक जर्मनीके आध्यात्मिक ह्रास और संकटका प्रभावशाली चित्रण है। इस उपन्यासके प्रकाशनके समय उसकी अवस्था ४५ के लगभग थी।

इसी समय हिटलरका आतंक देशपर छाने लगा और यहूदी होनेके कारण इसे अनेक अत्याचार सहने पड़े। १९३८ में इसे जेलमें डाल दिया गया। युद्धके बाद यह अमेरिका चला आया और छह वर्ष पश्चात् अपनी मृत्यु तक लेखन तथा शोधकी अनेक योजनाओंमें, स्वास्थ्य बहुत खराब होते हुए भी, लगा रहा। कहते हैं, इन योजनाओंकी संख्या सात-आठ थी, जिनमें-से एक थी 'मास हिस्टीरियाका अध्ययन' जो निस्सन्देह उसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। दूसरी योजना थी मार्क्सवादके उत्तरमें एक उतने ही पूर्ण और पुष्ट राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक दर्शनका निर्माण जो मार्क्सवादका स्थान लेकर उसके अत्याचारोंसे संसारको मुक्ति दिला सके। परन्तु, खेद है, उसकी यह योजना मनमें ही रह गयी।

इस समय उसके जो उपन्यास प्रकाशित हुए, उनमें 'डेर टौड डेस वर्जिल' (दि डेथ ऑव वर्जिल) सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी गणना विश्वके क्लैसिक्समें की जा सकती है। इसकी तुलना काफ़्काके उपन्यासोंसे या फ़िर गेन्स्टाइनके 'ट्रैक्टेटस' से की जाती है। चेतना-प्रवाहकी तीव्रता तथा स्वप्न-जीवनके चित्रणमें इसकी शैली ज्वाइससे श्रेष्ठ बतायी जाती है। ५०० पृष्ठोंके इस उपन्यासका अँगरेजी अनुवाद करनेमें पाँच वर्षसे अधिक लगे। दरअसल इसके लिए कोई अनुवादक मिलता ही नहीं था। ब्रोखके अपने अनुवादक एडविन और विल्ला-म्योरने शैलीकी कठिनताके कारण इसका अनु-वाद करनेसे इनकार कर दिया था। फिर ब्रोखने एक दूसरे अनुवादक जीन विण्टरमेयर-से विनती की कि इसके पच्चीस पृष्ठ अनुवाद कर दे। एक प्रकाशक अनुवाद देखनेके लिए तैयार था। विण्टरमेयरने बड़ी कठिनतासे पच्चीस पृष्ठोंका अनुवाद किया। पर तबतक प्रकाशकने इनकार कर दिया। लेकिन इस कार्यमें अनुवादकको इतना हार्दिक सन्तोष मिला कि प्रकाशनकी सम्भावनाके बिना ही वह इस कार्यमें जी-जानसे जुट गया। वह कहता है, "जब नेपोलियन युरॅपपर तबाही मचा रहा था, तब दो प्रतिभाएँ चुपचाप अपने काममें जुटी थीं। अब नेपोलियनका आदर कम हो गया है, परन्तु गोयथे और बीथोवेन-की कृतियाँ अमर हो गयी हैं। मुझे विश्वास है कि हिटलरके ध्वंसमें पले ब्रोखको भी भविष्य इसी प्रकार याद करेगा।" फिर यह अनुवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगरेजीमें प्रकाशित होकर बिक भी गया और अब उसके दूसरे संस्करणकी माँग की जाती है।

ब्रोखके दूसरे उपन्यास हैं—'एँश ओडेर डाइ एनार्की' (अराजकताकी राख), ह्यूजेनौ ओडेर डाइ सैखलिखकाइट' (यथार्थकी तस-वीर), 'डेर वरसुखेर' (लुभाने वाला) और 'डाइ शुल्डलोसेन' (निर्दोष)। इनमें अन्तिम, डाई शुल्डलोसेन कुछ कहा-नियों और कविताओंको जोड़कर प्रकाशककी माँगपर तैयार किया गया उपन्यास है, और इससे पहला, 'डेर वरसुखेर' हिटलरके कृत्यों-पर आधारित है। ब्रोख इसे पूरा नहीं कर सका। पर इसे थामस मानके 'डॉक्टर फ़ास्टस'-से अधिक मार्मिक और प्रभावशाली माना जाता है।

हरमान ब्रोख अपनेको मूलतः दार्शनिक मानता है। साहित्य-रचनाकी ओर उसकी प्रवृत्ति होनेका कारण उसके अपने ही शब्दोंमें यह है कि पाठकपर साहित्यका 'तत्काल नैतिक प्रभाव' पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि वह अपने उपन्यासोंके द्वारा जनताकी जड़ताको हिलाना चाहता था और उन्हें कुछ नया सोचनेको विवश करना चाहता था। उसका उद्देश्य था—समाजके समस्त भय और आतंकों और नाजी-वाद, साम्यवाद आदि अत्याचारी राजनीतिक वादोंके विरुद्ध घृणा तथा अन्ततः उनके आमूल उन्मूलनका भाव उत्पन्न करना। इसलिए वह अपने उपन्यासोंको 'मात्र साहित्य' न रहने देकर उन्हें उद्देश्यपूर्ण बनानेकी दिशामें सर्वदा प्रवृत्त रहता था। वह यह अनुभव करता था कि विविध अत्याचारी मतवादोंके प्रभावसे लम्बे समय तक ग्रस्त रहकर सामान्य जनता, तथा विशेषकर बुद्धिजीवी जन, मानव-जीवनकी समग्रता और एकताका अनुभव खो बैठे हैं। यह वस्तुतः तत्कालीन मानव-मनके टूटे बिखरे-पनका ही बोध है जिसे कहीं भी, आशाकी कोई किरण नहीं दिखाई देती।

यही तत्कालीन तथा परवर्ती लेखकोंका अस्तित्ववादी बोध है। इस दृष्टिसे ब्रोखको भी अस्तित्ववादी कहा जा सकता है, यद्यपि उसके चिन्तनमें कहीं इस शब्दका प्रयोग नहीं मिलता है। वह कहता था कि जीवनका केन्द्र खो गया है और उसे फिरसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए। अमेरिका आकर उसने इस विचारका बहुत प्रचार किया। यहाँ उसे प्रोत्साहन भी मिला, इसमें सन्देह नहीं। उसका मानना था कि काफ़्काके कृतित्वमें, यद्यपि वह अतिशय भयाक्रान्त है, केन्द्रका यह बोध टूटा नहीं है, वह पूरी तरह विद्यमान और जीवित है; इसी कारण उसकी रचनाएँ इतनी सशक्त हैं और सोचनेको बाध्य कर देती हैं। ब्रोखके लेखनपर काफ़्काका प्रभाव भी उसे अस्तित्ववादके समीप लाकर खड़ा कर देता है।

मानव-जातिके इस सर्वग्रासी संकटको दूर करनेके लिए ब्रोख एक 'नये आध्यात्मिक समन्वय'की कल्पना करता था। उसका कहना था कि यदि ऐसा न हुआ तो सभ्यता नष्ट हो जायेगी और मनुष्य पशुमें परिवर्तित हो जायेगा। इन विषयोंपर लिखते समय वह बड़ा रुग्ण था और उसके पास पैसेकी भी बड़ी कमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। दरअसल अमेरिकामें उसे सदा ही आर्थिक संकट रहा। अपनी स्थिति मज़बूत करनेके लिए वह चाहता था कि कोई विश्वविद्यालय उसे ऑनरेरी डिग्री ही दे दे, जिससे वह डटकर काम कर सके। उसका नाम नोबुल पुरस्कारके लिए भी प्रस्तुत किया गया, परन्तु उसके भाग्यने कहीं भी उसका साथ नहीं दिया। पर वह लगातार अपने काममें लगा रहा। सोता वह सिर्फ़ पाँच घण्टे था। उसे डर था कि कहीं उसका समय ख़त्म न हो जाये। उसका पत्र-व्यवहार बहुत अधिक था और लोगोंको अच्छी तरह समझानेके लिए वह उत्तर बड़े विस्तारसे देता था। उसके कृतित्वके दस खण्डीय संग्रहके ये पत्र एक महत्त्वपूर्ण अंश हैं। इससे उसकी भावनाकी तीव्रता तथा व्यवहारकी सहजतापर प्रकाश पड़ता है। परन्तु नियतिने उसके साथ दया नहीं की। अन्तिम दिनोंमें वह बिलकुल अकेला था और एक ठण्डे सीलन-भरे फ़्लैटमें बड़े कष्टसे उसकी मृत्यु हुई।

ब्रोख कहानी कहनेके लिए उपन्यास नहीं लिखता था। कहानीके पीछे निहित यथार्थको सामने लाना उसका उद्देश्य था। 'डाइ श्लाफ़-वैण्डलर'के तीनों खण्ड परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी अपने आपमें स्वतन्त्र हैं। पहलेमें प्रशाके जंकर नामक सामाजिक वर्गके आध्यात्मिक पतनका चित्रण है। इसकी शैली बड़ी सरल परन्तु आन्तरिक दुःखसे अनुस्यूत है। इसमें यह चेतना बड़ी ख़ूबीसे व्यक्त है कि मनुष्य-जीवनके सुख और उत्कर्ष चिरस्थायी नहीं हैं, वे नाशवान और भंगुर हैं। उपन्यास पाठककी आस्थाओंको हिलानेमें सफल होता है और उसे कहीं आहत भी कर जाता है, विशेषतः उसके अन्तिम भागमें जहाँ नायक लेफ़्टिनेण्ट पैसोनोव सुहागरातके दिन ही अपनी पत्नीसे सहवास करनेसे बचनेका प्रयत्न करता है।

दूसरे उपन्यासकी शैली पहलीसे बिलकुल भिन्न है; इसपर ज़्वायसका प्रभाव है। दरअसल शैली तीसरे उपन्यासकी भी नितान्त भिन्न है, जिससे भाषा और रचना-शैलीके प्रकारोंपर उसका अबाध अधिकार व्यक्त होता है। इन दोनों उपन्यासोंमें चिन्तन और विचारोंकी भरमार है। संवाद तथा वर्णन बहुत ही चुभते हुए हैं। कुछ लोगोंका मत यह हो सकता है कि विचारोंके अतिरेकके कारण इनका साहित्यिक मूल्य कम हुआ है, परन्तु यहाँ स्मरणीय यह है कि ब्रोख़ ख़ुद उपन्यास-का नवीनीकरण करके उसे 'ज्ञानप्रधान' बनाना चाहता था। उसे मनोवैज्ञानिक उप-न्यास भी निम्न कोटिके प्रतीत होते थे। इन उपन्यासोंके कुछ अध्याय संग्रहके निबन्ध-खण्डमें भी स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशित किये गये हैं।

'डेर टौड डेस वर्जिल' (दि डेथ आफ़ वर्जिल) में प्रतीकात्मक रूपसे सभ्यताकी सम्भावित मृत्युका चित्रण किया गया है। इसमें आगस्टसके साथ अथेन्ससे ब्रिण्डसी वापस लौटनेपर वर्जिलके जीवनके आखिरी दिनका वर्णन है। मृत्युको इतनी गहराई तथा विस्तार-से शायद ही किसी लेखकने देखा होगा। इसकी भाषा बड़ी काव्यात्मक तथा चेतना-प्रवाह और स्वप्न-वर्णन शैलीमें है। स्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रोखको अपनी इस कृतिसे बड़ा प्यार था। स्टाइनरके शब्दोंमें : "यह रचना ब्रोखकी सर्वोत्तम उपलब्धि है। इसमें कलाकारकी प्रतिभाके साथ मानवकी कुलीनता बड़े चमत्कारपूर्ण ढंगसे व्यक्त हुई है। वर्जिलके मृत्युमें प्रवेशकी घटनाका वर्णन वाणीको उसकी सीमा, शान्ति, तक ले जाता प्रतीत होता है। जीवनकी अपूर्णताओंके सम्बन्धमें वर्जिलका चिन्तन आधुनिक युगके कलाकारकी केन्द्रीय समस्याको व्यक्त करता है।"

'डेर वरसुखेर' में हिटलरके समान एक व्यक्ति टिरोल नामक एक पहाड़ी गाँवमें आकर जनताको अपने जादुई प्रभावमें लानेका प्रयत्न करता है। दरअसल इस उपन्यासको भी ब्रोख तीन भागोंमें लिखना चाहता था, पर इस योजनाको वह क्रियान्वित नहीं कर सका। जैसी बड़ी ही सरल होते हुए भी इसके मनोवैज्ञानिक वर्णन बड़े चमत्कारपूर्ण हैं और प्रकृतिके वर्णन करते समय तो लेखक मानो अध्यात्ममें प्रवेश कर जाता है। इसमें उपमा और प्रतीकोंका विपुल प्रयोग है और मदर गिसन नामक जड़ी-बूटी इकट्ठी करनेवाली एक स्त्री न केवल प्रकृति-माताका प्रतिनिधित्व ही करती है, वह हर नयी परिस्थितिपर बड़ी मार्मिक टिप्पणियाँ भी करती जाती है—इनमें लेखक खुद बोलता प्रतीत होता है। एक आलोचकके शब्दोंमें : "यह उपन्यास अपूर्ण होते हुए भी बीसवीं सदीके महत्त्वपूर्ण उपन्यासोंमें एक है। इसमें प्रकृति-वर्णन तथा मानवीय प्रेमके विविध प्रकारोंका चित्रण निश्चय ही अद्वितीय है।"

हरमान ब्रोख व्यक्तिगत जीवनमें बहुत ही सरल और ईमानदार व्यक्ति था। ऊँचेसे ऊँचे दार्शनिक विचार व्यक्त करनेपर भी उसमें अहम्का ज़रा भी अंश नहीं था, जो लेखकोंका सामान्य अवगुण है। एक बार किसी आलोचकने ज्वायसके साथ इसका भी उल्लेख कर दिया। उसपर यह बहुत बिगड़ा और कहने लगा—"ज्वायस महान् लेखक है। उसके साथ मेरा नाम जोड़ना उचित नहीं।"

उसमें न्याय और सन्तुलनका भाव भी बड़ा प्रबल था। महायुद्धके पश्चात् ध्वस्त जर्मनीकी सहायताके लिए जब अमेरिकाने उसे विविध वस्तुएँ भेजनी आरम्भ कीं, तब उसने कहा कि यदि एक डिब्बा जर्मनी भेजा जाता है तो दूसरा डिब्बा जर्मनी-द्वारा गुलाम बनाये गये किसी देशको भेजा जाना चाहिए।

इसी प्रकार न्यूयार्कके जर्मन मुहल्लेमें दीवारोंपर बनाये गये स्वस्तिक चिह्नोंकी जाँचके पश्चात् उसने कहा—"इससे यहाँके निवासियोंकी भावनाएँ निश्चित रूपसे नाज़ी सिद्ध नहीं होतीं। यह मात्र उनकी भावुकता है, परन्तु परिणाम इसका भी वैसा ही भयंकर हो सकता है।"

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्त्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जाल

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब-जब मैं ने मुँह की खा यी

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

आदमी की परिभाषा की गयी है कि वह सोच-विचारकर काम करनेवाला प्राणी है। किन्तु लगता ऐसा है कि भले ही यह परिभाषा सोच-समझकर गढ़ी गयी हो, किन्तु आदमी सोच-विचारकर काम करनेवाला प्राणी नहीं ही है। वह जो कुछ भी करता है, उसके मूलमें होती हैं उसकी भावनाएँ, उसके संकल्प-विकल्प। बुद्धिसे तो वह अपने कृत्योंका समर्थन-भर करता है।

या यह भी सही हो सकता है कि कभी उसकी बुद्धि उसके संकल्पों-विकल्पों-के अधीन हो जाती हो और कभी-कभी वह उसके संकल्पों-विकल्पोंपर अंकुशका काम भी कर ले सकती हो।

जो हो, बुद्धिके विकासपर जितना ज़ोर दिया गया है, भावनाओंपर, संकल्पों-विकल्पोंपर उससे भी अधिक ध्यान दिये जानेकी आवश्यकता है। भगवान् बुद्धके आर्य अष्टांगिक-मार्गमें सम्यक् संकल्पोंको बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

मेरा एक विद्यार्थी है। उसे सिग्रेट पीनेका अभ्यास है। वह चाहता है कि वह सिग्रेट पीना छोड़ दे। विशेषरूपसे इसलिए, क्योंकि वह जानता है कि मुझे उसका सिग्रेट पीना पसन्द नहीं। इसलिए वह सिग्रेट न पीनेके निर्णय या निश्चय बराबर करता रहता है। लेकिन उसका सिग्रेट पीना नहीं छूटता। कारण? कारण, इतना ही है कि वह निर्णय या निश्चय तो सिग्रेट न पीनेके करता है, किन्तु अपने संगी-साथियोंके कारण संकल्प-विकल्प सिग्रेट पीनेके ही करता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिग्रेटका जो अभ्यासी सिग्रेटके धुएँसे बननेवाले घुँघराले बालोंके समान गोल-गोल चक्करोंके दिवा-स्वप्न देखता रहेगा, वह कभी सिग्रेटके चक्करसे नहीं छूट सकता। उसके संकल्प-विकल्प उसके निर्णयोंपर बाज़ी मार ही ले जायेंगे।

यदि बुद्धिकी उपमा हम जीवनरूपी इंजन-में लगे हुए ब्रेकसे दे सकते हैं तो भावनाएँ या संकल्प-विकल्प वह भाप हैं, वह स्टीम हैं, जिसके बिना इंजन एक भी क़दम आगे नहीं चल सकता।

मुझे याद आ रहा है कि, जब मैं अभी आठवें या नौवें दरजेका एक विद्यार्थी ही था, तभी मैंने अपने बोर्डिंग-हाउसके एक नौकरके मुँहपर ज़ोरका चाँटा जमा दिया था। आप कहेंगे कि उसका कुछ क़सूर होगा। बेचारेका क़सूर इतना ही था कि मैं बैठा पढ़ रहा था और उसने पीछेसे आकर मेरे कन्धेपर हाथ रखकर मुझे ज़रा झकझोरते हुए कह दिया था कि तुम्हें सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बुला रहे हैं। बस इतनी ही बातपर? हाँ, बस इतनी ही बातपर मैंने उसे ज़ोरका चाँटा मार दिया था। क्यों? क्योंकि मैं उस समय अपनी मूर्खतावश समझता था कि विद्यार्थी जिस वर्गके जीव होते हैं, नौकर उससे कहीं निम्न स्तरके प्राणी होते हैं। एक नौकर की क्या मजाल कि एक विद्यार्थीके कन्धेपर हाथ रखकर उसे पीछेसे आकर झकझोर दे! ख़ास तौरपर उस समय जब वह पढ़ रहा हो। मैं निश्चयात्मक रूपसे समझता हूँ कि मैंने उसे सोच-विचारकर चाँटा नहीं मारा था। सोचने-विचारनेसे तो मैं समझता हूँ, कोई भी हो, चाँटा मार नहीं सकता, चाँटा मारते-मारते रुक जाये ही जाये।

मुझे अपनी भयानक ग़लती तब मालूम हुई, जब सुपरिण्टेण्डेण्टने मुझे बुलाकर समझाया कि ज़रा सोचो, तुम्हारा क्या हाल हुआ होता, यदि उस नौकरने भी तुम्हारे मुँहपर वैसे ही ज़ोरका एक पंजा जमा दिया होता! मैं इतना विवेकहीन न था कि उस समय भी अपनी ग़लती न समझता, किन्तु अब समझकर भी क्या हो सकता था। समझनेका इतना ही परिणाम हो सकता था कि भविष्यमें सावधान रहूँ।

संकल्पों-विकल्पोंकी बाढ़के सामने किसी भी सावधानीकी एक भी नहीं चलती। सावधान रहनेकी आवश्यकता है, किन्तु उससे संकल्पों-विकल्पोंको आर्य संकल्पों-विकल्पोंमें सम्यक् संकल्पों-विकल्पोंमें परिणत करनेकी उससे भी अधिक।

अवसर तो शायद और भी अधिक आये हों, थप्पड़ मारनेके ही नहीं, थप्पड़ खानेके भी, लेकिन चाँटा मारनेका जो दूसरा अवसर याद आ रहा है, वह कलकत्तेकी बात है। स्वर्गीय स्वामी सत्यदेव परिव्राजकके निजी सहायकके तौरपर मैं उनके साथ रहता था। स्वामीजी सोलह आने सूरदास थे। कहीं आने-जानेके मामलेमें वह पराधीन थे, अन्यथा उन-जैसा कर्मठ व्यक्तित्व बिरला ही होगा। वह चक्षु-विहीन होनेके बावजूद चूल्हेमें आग जला सकते थे, अपना दूध स्वयं गरम कर सकते थे, और सम्भवतः आवश्यकता पड़नेपर तवेपर अपनी रोटी भी स्वयं सेक ले सकते थे। उस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शामको उनका कहीं व्याख्यान था। सदाकी भाँति मैं उनके साथ था। व्याख्यान समाप्त हो चुका था, व्याख्यानसे उत्पन्न हुई गरमी घुलग रही थी। मेरी उपस्थितिमें, किसी सिर-फिरे आदमीने स्वामीजीको कोई 'अपशब्द' कह दिया; उनका अपमान कर दिया। स्वामीजी तो चक्षु-विहीन थे। क्या जानें, किसने क्या कहा? मुझसे न रहा गया। मैंने स्वामीजीका अपमान करनेवाले आदमीको एक ज़ोरका चाँटा मारा और वहाँसे नौ-दो ग्यारह हो गया।

मैं जानता था कि स्वामीजीको वापस घर लानेके लिए मुझे उनके साथ-साथ रहनेकी ज़रूरत है। लेकिन साथ ही यह भी जानता था कि मेरे साथ न रहनेपर भी कोई-न-कोई उनको घर पहुँचा ही देगा। फिर 'खाके लेट जाओ, मारके भाग जाओ' के आप्तोपदेशके अनुसार भी तो आचरण करना लाज़मी था।

मेरे घर पहुँचनेके थोड़ी ही देर बाद स्वामीजी भी घर लौट आये। उन्हें मालूम हो गया था कि उनका 'छोहरा' उनका अपमान करनेवाले आदमीको चपतियाकर भाग आया है। उन्होंने घर पहुँचकर, मुझे शाबाशी दी। बोले—"अच्छा किया, उसे एक लगायी। यह कैसे हो सकता था कि तेरे स्वामीजीको कोई कुछ कहे और तू खड़ा-खड़ा देखता रहे। इससे इतना पता लग गया कि तू डरपोक नहीं है।" मैं नहीं मानता कि मैं डर-विहीन था। डर-विहीन होता, तो वहाँसे भाग ही क्यों आता? बदलेमें मार खानेका डर तो निश्चित रूपसे था ही। आप ज़्यादासे ज़्यादा यही कह सकते हैं कि उस घड़ी वहाँसे भाग आना मेरी रणनीतिका एक आवश्यक अंग था।

अब मैं चाहे उसका जैसा विश्लेषण करूँ, लेकिन मैं समझता हूँ कि न मैंने उसे सोच-समझकर मारा था और न मैं सोच-समझकर भागा ही था। मारा था अपनी ग़लत या सही पूर्व-धारणाओंके वशीभूत होकर और भागा था अपनी नैसर्गिक प्राण-रक्षाकी प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर।

'डरने और भागने'का कुछ ऐसा अविभाज्य सम्बन्ध है कि यह कह सकना सचमुच कठिन है कि आदमी डरता है, और इसीलिए भागता है अथवा आदमी भागता है, और इसीलिए उसे डर लगता है।

इसी नैसर्गिक चेतनाको 'धम्मपद' ने इन शब्दोंमें चित्रित किया है :

सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बे भायन्ति मच्चुनो,
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य, न घातये॥

[सभीको दण्डसे डर लगता है, सभी मृत्युसे भयभीत होते हैं। इसीलिए सभीको अपने समान जानकर न किसीको चोट पहुँचाये और न किसीका हनन करे।]

एक और अवसर। जो बचपनमें ही माता-पिता-विहीन हो जाते हैं, और जो किन्हीं कारणोंवश गृहस्थ-जीवन भी स्वीकार नहीं करते हैं, उनमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाका बलवती हो उठना स्वाभाविक है। मैं कालिम्पोंगके विहारमें ठहरा हुआ था। एक विद्यार्थी भी जो हमेशा 'आपका ही' लिखकर पत्रके नीचे अपने हस्ताक्षर किया करता था, वहीं ठहरा था। नाम न लिखनेका कारण कुछ नामका विस्मरण होना नहीं है, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि इधर पिछले दस-बारह वर्षोंने उसे स्वयं अपने क्षेत्रमें एक प्रतिष्ठित लेखक बना दिया है, इसलिए नामोल्लेखके साथ इस संस्मरणको रेखांकित करना बड़ा दुरूह कार्य लग रहा है। बिना नामोल्लेखके भी बड़े ही संकोचके साथ लिख रहा हूँ।

एक सुबहकी बात है। दिन चढ़ गया था। धूप निकल आयी थी। वह अभी भी अपने कमरेमें पड़ा सो रहा था। मैं देखने गया, तो रातकी बत्ती भी बराबर जल रही थी। मुझे उसके इतनी देर तक सोते रहनेपर क्रोध आया और उससे भी अधिक क्रोध आया जलती बत्तीको जलता छोड़कर सो जानेपर। यह ज़रा-सी बिजलीके खर्चका प्रश्न नहीं था। यह 'विहार'की बिजलीके व्यर्थ खर्चका प्रश्न था। बिजलीके खर्चका पैसा म्यूनिसिपैलटीको 'विहार' चुकाता था। मैंने हज़रत खलीफ़ा उमरके बारेमें कहीं सुना या पढ़ा था कि उन्होंने खिलाफ़तकी 'शमा'की रोशनीमें घरके बाल-बच्चोंकी खैरियत बतानेसे इनकार कर दिया था। 'विहार'की बत्ती जलती रहे और वह किसी भी विद्यार्थीके पढ़नेमें सहायक हो यह तो 'विहार'की बत्तीका, मेरी दृष्टिमें, सबसे अच्छा सदुपयोग था, लेकिन विद्यार्थी सोता रहे और बत्ती जलती रहे, यह मेरी दृष्टिमें दुरुपयोगसे भी बढ़कर एक अपराध था। मैंने 'विद्यार्थी' को सोते-से उठानेकी कोशिश की। वह उठ नहीं रहा था। 'जाग-जागकर सो जाते'की साकार मूर्ति बना हुआ था। मुझे अपनी समझमें 'उचित क्रोध' आ गया। मैं समझता हूँ कि हर क्रुद्ध होनेवाला आदमी अपने क्रोधको 'उचित' ही मानता है, यदि 'अनुचित' माने तब तो उसे क्रोध ही नहीं। यह दूसरी बात है कि क्रोधका अभ्यास हो जानेपर आदमीका क्रोध-अकोप विवेक एकदम जाता रहता है। मैंने 'उचित-क्रोध'में उस समयके उस विद्यार्थी और आजके अपने ही-जैसे एक 'भावी प्रतिष्ठित' लेखकको एक ज़ोरकी जमा दी, इतने ज़ोर की कि मेरी अपनी अँगुलियाँ भी दुखने लगीं।

वह भी दुःखी हुआ और उससे अधिक स्वयं। बादमें उसने बताया कि वह रातके तीन बजे तक बराबर पढ़ता रहा था। तीन बजे बिजली स्वयं 'ऑफ़' हो जानेपर, वह मजबूरीसे सो गया था। उसके सोते रहने फिर बिजली 'ऑन' हो गयी। उसके देर तक सोते रहनेका कारण उसका रातके तीन बजे तक पढ़ते रहना था, और उसके बिजली जलता छोड़ सो जानेका कारण बिजली स्वयं 'ऑफ़' और 'ऑन' हो जाना था। मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई। दुःखी हुआ। सिवाय और क्या कर सकता था। अपने मनको हलका करनेके लिए मैंने अपने उस 'विद्यार्थी' से क्षमा माँगी।

यह चाँटा भी क्या मैंने सोच-समझकर लगाया था? मैं समझता हूँ—नहीं हो। भी मेरे कुछ ग़लत-सही, अचेतन मन हिस्सा बने हुए संस्कारोंका परिणाम आदमीका चेतन मन उसके अचेतन निर्माता होता हुआ भी, उसके व्यक्ति एक बड़ा छोटा हिस्सा है। आदमीका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार तो उसका अचेतन मन ही है।

एक और अवसर। और बस। एकदम ताज़ी घटना। कदाचित् इसी ताज़ी घटनाने इन पूर्व-स्मृतियोंको झंकृत कर दिया है। इधर कुछ दिनोंसे सिंहलके तीनों विश्वविद्यालयोंमें हड़तालोंकी धूम मची रही है—हड़तालोंकी ही नहीं, संघर्षोंकी भी। विद्यार्थियोंका अपने अधिकारों या अधिक सुविधाओं के लिए संघर्ष। विद्यार्थियों-विद्यार्थियोंमें राजनीतिक संघर्ष। विद्यार्थियोंका अपने अधिकारियोंके साथ आर्थिक संघर्ष।

इसी बीच श्री लंकाकी विधान-सभामें एक बड़ा ही विवादग्रस्त प्रस्ताव उपस्थित हुआ। सिंहल भाषा और तमिल भाषाके बीचके सम्बन्धको लेकर। जनमत आन्दोलित हो उठा। ८ जनवरीको जिस दिन यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया, बहुत-से लोगोंने उस दिनको 'शोक-दिवस' मनाया। विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंने भी उस एक दिन पढ़ाई बन्द रखी। लेकिन खाली विद्यार्थी क्या करते? वे सड़कपर बाहर निकल आये और सिंहलके पक्षमें तथा तमिलके विरोधमें जो कुछ भी वे कर सकते थे, करने लगे। और ज्यादा तो क्या, सरकारी बसोंपर जहाँ उन्हें 'तमिल' अक्षर दिखाई देते थे, उनपर तार-कोल पोतने लगे।

बात बढ़ते-बढ़ते बढ़ गयी। विद्यालंकार विश्वविद्यालय वाम-पक्षी भिक्षुओंका और विद्यार्थियोंका गढ़ माना जाता है। सरकारी पुलिसको मौक़ा मिल गया। वह अपनी सीमाका उल्लंघन कर विश्वविद्यालयकी सीमामें घुस गयी। उसने अश्रु-गैस ही नहीं छोड़ी, हमारे कई विद्यार्थियोंको ज़ख़्मी तक कर छोड़ा।

विद्यार्थियोंका राजनीतिक मत-भेद थोड़ा और उग्र हो गया। इन पंक्तियोंका लेखक विश्वविद्यालयका हिन्दी-अध्यापक है। उसे अपने विद्यार्थियोंकी राजनीतिक विचार-धाराओंसे कुछ लेना-देना नहीं। विद्यार्थी, विद्यार्थी हैं—सभी एक समान 'दूर' या 'समीप'।

किन्तु जिस दिन विद्यार्थियोंकी पुलिससे मुठभेड़ हुई थी, उसीके ठीक दूसरे दिन दो विद्यार्थी आपसमें बुरी तरह उलझ गये। सामान्य विद्यार्थी ही नहीं दोनों पीत वस्त्र-धारी शिक्षार्थी। सामान्य शिक्षार्थी ही नहीं, दोनों हिन्दीके भी शिक्षार्थी—और ऐसे शिक्षार्थी जिनका काफ़ी समय 'हिन्दी अंश' या 'हिन्दी विभाग' में ही गुज़रता है।

उन दोनोंका आपसमें उलझना हर दृष्टिसे अनुचित था।

एक भिक्षु-विद्यार्थी मुझसे बातचीत कर रहा था। मुझे अन्दाज़ा था कि कुछ अनहोनी घट सकती है। ज्यों ही दूसरा विद्यार्थी मुझसे ही मिलने आया, दोनोंमें दो वाक्योंका आदान-प्रदान हुआ और पहलेसे ही तैयार पहले विद्यार्थीने दूसरेपर हमला बोल दिया।

किसी 'आचार्य' के दो विद्यार्थी उसकी आँखोंके सामने ही आपसमें लड़ें और वह सिनेमाका दर्शक बना तमाशा देखता रहे, तो मैं समझता हूँ कि वह किसी विश्वविद्यालयका 'प्रोफ़ेसर' भले ही कहला सके, 'आचार्य'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं ही कहला सकता।

मैंने आव देखा न ताव। हमला बोलनेवाले भिक्षु विद्यार्थीको पीछेसे घसीटा और एक जमा दी। उसे क्या, किसीको भी, इसकी कल्पना भी न हो सकती थी। वह भौंचक्का-सा होकर पीछे गिर पड़ा। गुत्थी उलझते-उलझते रह गयी। इसी बीच दूसरे लोगोंने दोनोंको एक दूसरेसे दूर हटा दिया।

मैं नहीं समझता कि मेरे एक चपत मारनेभरसे उस समय दोनोंका गुत्थमगुत्था होना रुक गया। इसे मैं उनकी शालीनता ही मानता हूँ कि पहले वार करनेवाले हिन्दी-विद्यार्थीमें भी कोई भद्दी प्रतिक्रिया नहीं हुई!

मैं अपने उस हिन्दी-विद्यार्थीको समझाना चाहता था कि किसीपर भी हाथ उठाना दुर्बलताका ही चिह्न है। हर किसीमें अपनी बातको अपने तर्क-बलसे विरोधीके गले उतारनेका सामर्थ्य होना चाहिए।

लेकिन तब कोई पूछे—तो आपने ही क्यों हाथ उठाया?

इसका एक उत्तर तो यही है कि इसका कोई उत्तर नहीं है।

इसका दूसरा उत्तर यह है कि कभी-कभी काँटेसे काँटा निकालना आवश्यक हो जाता है!

इसका तीसरा और सही उत्तर यह है कि बहुत-सी बातें अचेतन मनकी प्रक्रिया करती हैं, जिनकी चेतन मन वकालत भले ही कर सके, व्याख्या नहीं कर सकता।

इस अचेतन मनको प्रभावित करना, परिवर्तित कर सकना ही किसी भी मनुष्यके लिए बड़ीसे बड़ी और सर्वाधिक कल्याणकारी साधना है।

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डुग्गरके लोकगीत

डॉ० कर्णसिंह

समाज-द्वारा स्थापित मूल्य-स्तम्भोंकी नैतिक परिधि नर-नारीके परम पुनीत सम्बन्धोंको स्वाभाविक गतिसे बहनेकी अनुमति नहीं देती। उसकी अपनी विवशताएँ हैं जिनकी सीमा-रेखाओंमें बँधकर अजनबी गीत उपजते हैं। इन गीतोंकी लय जानी-पहचानी होती है। जन-मानस इन्हें दुलारता-पुचकारता है। न समय ही इनके प्रभावको कम कर पाता है और न सभ्यताओं और संस्कृतियोंका नयापन। जो स्थायी है, मनसे निकला है वह सदा ही हवाके पंखोंपर उड़ता रहेगा।

लोकगीत परम्पराओंके बन्धनोंसे परे मानव-मनकी निष्कपट सरलताओंके गीत गाते हैं। इनका उड़ता आँचल अपनेमें अजानी, अदेखी अनुभूतियाँ समेटे लिये चलता है। बल शब्दोंपर नहीं—प्रधान तो उनमें निहित वेदनाका ताप होता है, बिल्लौरी काँच-सा मोहक आदर्श होता है।

मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अप्राप्य सदा ही लालायित करता है। अर्द्धनारीश्वर जिस शाश्वत तृप्तिका आस्वादन करनेके लिए कामना करता है वह मृग-तृषा होकर ही रह जाती है। ऐसी अनबुझ प्यासकी कहानियाँ सतरंगी अनथके स्वरोंमें कभी कौमार्यके सुकुमार सपने, कभी विवाहिताका विछोह-पीड़ित हृदय, तो कभी वैधव्यकी लम्बी सूनी राते दोहराया करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डुग्गरकी धरतीसे लिपटे वायुमण्डलमें न जाने कितनी रमणियोंके खिलखिलाते तराने, सिसकते अरमान आज भी गूँज रहे हैं। डुग्गर-का जीवन प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियोंके विरुद्ध एक लगातार संघर्ष है। बंजर भूमि और सूखे कण्डी प्रदेशकी अधिकताके कारण प्रेमी-पति अपनी प्रेमिकाओं-पत्नियोंको जुदाई-की काली रातोंमें तड़पनेके लिए छोड़कर सेना या सरकारी सेवामें जानेको बाध्य हो जाते हैं। जीविका-उपार्जनकी इस निर्दयी चक्कीमें फँसी विरहिनी ललनाएँ अपने मनकी व्यथाको लोक-गीतोंमें शरीर प्रदान करती हैं।

कलियोंने अभी खिलना शुरू किया है, यौवन मन्द-मन्द मुसकाने लगा है, सपने धीरे-धीरे अँगड़ाई लेने लगे हैं। तन डोलता तो है पर लाजसे कुछ कहा नहीं जाता। वहें तो क्या कहें? किसे कहें? अकस्मात् पहेली सुलझ जाती है। मक्कीकी फ़सल भी तो अब लहलहाने लगी है, क्यों न इसका बहाना लेकर बात करें? अप्रत्यक्ष रूपसे ही सही, बात तो माँ-बाप तक पहुँच जाये :

गोडिया लग्गी दियाँ।
पुछदियाँ धियाँ माए!
वीर साढ़ा कदूँ घर औग?
मक्काँ लक लक आइयाँ,
इन्दी कियाँ राखी होग?
....
मक्काँ गल गल आइयाँ

"औ प्यारी माँ, मक्कीके पौधे तो अब कमर तक आ पहुँचे हैं। इनकी रक्षा कौन करेगा? अरे लो, वे तो अब गले तक आ गये।"—प्रतीकात्मक शैलीकी आड़ लेकर दोनों बहनें जिस सुन्दर ढंगसे अपनी विवाह-योग्य आयुकी ओर माँका ध्यान दिलाती हैं बस बूझते ही बनता है।

अलसाई पलकें····गदराया शरीर····सामा-जिक स्वीकृतिकी प्रतीक्षा असह्य है। नयन ढूँढ़ते हैं, जिसे मन चाहता है। गोरीकी तलाश-का अन्त हुआ। जन्म-जन्मान्तरकी साध पूर्ण हुई। मनका मीत मिल गया। अब प्रेमकी मंज़िलें तय होंगी। रूठने-मनानेका सिलसिला शुरू होगा। रातोंको तारे गिने जायेंगे। होता भी यही है। पर तभी एक दिन समाज इसे अवैध घोषित कर देता है और कोई नया ही मेंहदी-लगे हाथोंको थामने आ पहुँचता है। अभी जो प्रेमिका थी, अब पत्नी है। हृदयकी सारी पीर आँखोंकी राह बह निकलती है:

कपड़े धोआँ कन्ने रोआँ कुञ्जुआ!
मुक्खों बोल जबानी ओ, मेरे कुञ्जुआ,
मुक्खों बोल जबानी ओ!
काली अक्खियाँ अम्बे दियाँ फाड़ाँ
बिच अत्थरू नशानी ओ, मेरे कुञ्जुआ!
बिच अत्थरू नशानी ओ!

"ओ मेरे कुञ्जु! मेरी कारी-कारी अँखियाँ तो तुम्हें बड़ी पसन्द थीं। इन रत-नारी पलकोंमें आज आँसू झिलमिल-झिलमिल कर रहे हैं। हमारे असफल प्रेमकी ये निशा-नियाँ देखकर ही सही, मुझ रोती अभागिनसे अपनी चंचलोसे—कुछ तो बोलो।" दुलहिन जीवनके रंगीन पक्षको देखनेसे पहले ही बिखर गयी, टूट गयी। अभी तो उमंगोंपर परवान चढ़ा ही नहीं, फिर यह दुर्घटना कैसी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-धीरे कच्चे मनके घाव समयकी मरहमसे भर जाते हैं और कलकी अल्हड़ युवती गृहस्थीके चूल्हे-चक्कीमें बीती बातें भूल जाती है। सुहाग ही अब उसका सब कुछ है। मनमें केवल एक ही मूर्ति है—पतिकी। और याद करे भी किसे ? परदेसी प्रियतमकी याद गीतोंके बोल बन फूट पड़ती है :

की डोलदा मेरी जान, मेरा चित्त की डोलदा ?

जित बेल्लै अम्बें गी खौर औंदा
गुन गुन करदा जदुँ भौर औंदा
की मिक्की लगदे न बान,
मेरा चित्त की डोलदा—की डोलदा मेरी जान !

मेरा चित्त की डोलदा !

मन डोलता है, तन डोलता है। क्यों ? "सुनो मेरे सजना ! तुम्हारा ध्यान आते ही मैं उदास हो जाती हूँ। जब रसिक भौंरे निखरी कलियोंका रसपान करने गुनगुनाते हुए चले आते हैं तो तुम्हारे वियोगमें घायल मेरा हृदय तड़प-तड़प उठता है। भला क्यों ?" परदेसी बिचारा इस प्रश्नका क्या उत्तर दे ?

फागुनकी साँझ ढली आ रही है फिर भी उसका कोई पता-ठिकाना नहीं। मिलन व्याकुल गोरी डगर-डगर ढूँढ़ती पुकार रही है। और दो आँसू बह रहे हैं। सब सूना-सूना है। मनभावनके बिना बहारका क्या मूल्य ?

सैंझाँ होइयाँ पक्खरू पखेरू घर आये
कैन्त परदेसिया, तूँ डेरे कुत्थें लाये ?
.....

डँगुए खड़ोती तुकी सौ-सौ आले मारनीं,
घड़ें बहें अक्खियें चा अत्थरूँ बगाये,
.....

फौगने दा म्हीना, फुल्लें दी ऐ ब्हार,
तेरे बिना सुन्नी आज इक-इक धार,
कियाँ चन्ना ! अज अस मनै थों भुलाये
कैन्त परदेसिया.....

परदेसी प्रियतमकी तलाशमें हर पगडण्डी नापती सुनयना ऊँचो पहाड़ी चढ़ जाती है। माथेपर हाथका साया रख दूर-दूर नज़र दौड़ाती है। कहीं कुछ भी तो नज़र नहीं आता। कोमल नंगे पैर लहू-लुहान हैं पर विरहमें जलती उदासी कुछ नहीं मानती :

तेरा लगदा मन्दा वो गद्दिया !
तेरा लगदा मन्दा जी ओ
.....

नंगे-नंगे पैरें मैं पहाड़ चढ़ी जन्नियाँ
पैरेंगी चुब्बी जन्दा कण्डा जो गद्दिया
तेरा लगदा मन्दा जी ओ ..

अब धैर्यका अन्त हो चुका है। सहनशीलताकी भी कोई सीमा होती है। शिकायत कबतक नहीं को जाये ? होठ कबतक सिले रहें ? कबतक अरमानोंकी चिता यूँ ही सुलगती रहे ?

दिक्खी छोड़े धरम तुसाड़े।
आपुँ ते टुरी गये नौकरी, खोजुआ !
मन्दे हाल नीं साढ़े !

आकुल हृदयकी करुण पुकार ही सम्भवतः परदेसीको घर ले आती है। प्रतीक्षारत गोरी झूम-झूम उठती है। यौवनकी रंगीली अदाएँ चरम छू लेती हैं। मन-प्राण ठगे-से रह जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। शीघ्र ही छुट्टी समाप्त हो जाती है और पति एक बार फिर लौटनेको तैयार होने लगता है :

बिद भर बेई जायाँ, दूर जाने आलेआ !
अज्जै दी ए घड़ी जाने फिरी कदूँ औनी ऐ
जिन्दूदा भरोसा के ? ए पलें दी परौनी ऐ।
पैर तेरे बन्दनियाँ, दूर जाने आलेआ !
....
....
इकली गी छोड़ी मिक्की दूर नईं जायाँ तूँ,
बछोड़े आली फाई मेरे गल नईं पायाँ तूँ,
छन्दे तेरे करनियाँ, दूर जाने आलेआ !
बिन्द भर.....

"अभी तुम कल ही तो आये हो, मेरे चन्दा ! और आज फिर मुझे विछोहकी आगमें जलनेके लिए छोड़े जा रहे हो। मिलनके ये सुनहरे क्षण न जाने फिर कब आयें ? कौन जाने यह नश्वर शरीर तबतक रहे, न रहे ! न मैं अभी अपना मन ही खोल पायी और न तुम्हें जी-भर देख ही पायी। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। मेरे मनका कहा मानकर रुक जाओ !"

एक माँकी दो बेटियाँ। दोनोंने मक्कीकी फ़सलकी ओर इशारा कर माँको अपनी महकती यौवनावस्थाका इशारा किया था। एकको परदेसी प्रियतमकी दूरी साल रही है, और दूसरी ?....आइए, उसे भी ढूँढ़ें....लोजिए, वह भी मिल गयी। जगमगाते सौन्दर्यकी रूपराशि लिये कुएँपर कुछ सोचती-सी, उदास-उदास। पास खड़े पथिकने कारण जानना चाहा :

खुए खड़ोतिये बाँकिये गोरिये !
कैंत होइएँ दिलगीर ओ ?
.....
आप बड्डी वर छोटड़ा बीबा,
मापेयाँ ने लड़ आई ओ !

"नहीं....नहीं....मेरी सास कर्कशा नहीं और न मेरे माँ-बाप ही विदेश गये हैं। मेरा वर अभी बालक है, छोटा है। बस इतनी-सी बात है।" कैसा सुन्दर कटाक्ष है समाजकी अजीब-अजीब रीतोंपर ? किसीको बालक, किसीको बूढ़ा। न्याय-अन्याय, औचित्य-अनौचित्यका समाजके लिए कोई महत्त्व नहीं। वह तो बस लकीरका फ़कीर है। केवल मनमानी करता है।

डोगरी लोकगीतोंकी मालामें मक्कीके खेतकी ही दो बहनोंके उलाहने, सिसकियाँ, मिलन और विरहकी कहानियाँ भिन्न-भिन्न रंगोंमें पिरोयी हैं। विवशताओंके मरुथलमें नारीके अपनेपनका हरण जिस निर्दयतासे होता आया है उसका सजीव, सम्मोहक, हृदयस्पर्शी वर्णन इन लोकगीतोंकी अपनी ही विशेषता है। यौवनके मदमस्त झूलेमें चलती रोमान्स बयारसे डुग्गरके लोकगीत सदा गमकते रहेंगे।

(अनुवाद : राजेन्द्रमोहन कौशिक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता । ज़े । स । न्द । र्भ

दिल्लीके शाही महलसे तुंगतोंगके बन्दीगृह तक

अशोक महाजन

सन् १८५७ की एक सर्द रातको एक बूढ़ा पीर दिल्लीके शाही महलमें दाखिल हुआ। शहन्शाहे हिन्दुस्तान बहादुरशाह ज़फ़रके पास पहुँचकर उसने कहा, "जहाँपनाह ! मैंने रुहानी ख्वाब देखा है कि फिरंगी मार डाले जायेंगे, ग़ुलामीकी ज़ंजीरें टूटेंगी और आलीजाह दुबारा शानो-शौकतसे अपनी सल्तनतकी हुकूमत करेंगे।—लाइलाह इल्लल्लाह !"

बादशाहका सिर अक़ीदतके साथ झुक गया और कमज़ोर-मन उन्होंने इस्तजा की, "ओ परवरदिगार ! तू हमारे लिए एक छुपी हुई रहमत है, जैसे अँधेरेमें उजाला। तेरी ही हम्दो-सनापर यह कुरुए-दुनिया ज़िन्दा है।"

वह बूढ़ा पीर जब चला गया तो बहादुरशाह ज़फ़रका एकबारगी सारा बदन ज़ोरसे सिहर उठा जैसे रुईके ढेरमें किसीने चिनगारी डाल दी हो। उनकी नस-नसमें बिजलियाँ दौड़ गयीं।

पीरकी बातपर ख़याल करते-करते आधी रात हो गयी। पर बादशाह बेचैन थे, दिल-बहलावके लिए ग़ज़लके मिसरे मौजूँ करने लगे। तभी पास ही दूसरी मसनदपर सोयी-अधसोयी हिन्दुस्तानकी मलका ज़ीनतमहल उठ बैठीं। शररअंगेज़ आवाज़में बोलीं, "पीरो मुर्शिद, ख़याललअन्दाज़ी मुआफ़ फ़रमायें। हर वक़्त ग़ज़लगोई या शेर-ओ सुख़नमें ही डूबे रहते हैं आप। यह तो आराम करनेका वक़्त है जहाँपनाह !"

"बेगम ! आराम तो हराम हो गया है हम लोगोंके लिए। हमें कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचना चाहिए।"

"क्या मतलब ?"

'बुरा शगुन है। दिल्लीका हाल दिगरगूँ (बहुत खराब) है। फिरंगियोंने ऐसे ज़ुल्म ढाये हैं कि हर तरफ़ कुहराम मचा हुआ है, और हुकूमते मुग़लियाकी क़िस्मत ? जो भी हो, मंज़ूरे खुदा। मगर सारे हिन्दुस्तानकी निगाहें दिल्लीकी ओर लगी हैं....."

"आप बजा फ़रमाते हैं जहाँपनाह ! खानदाने मुग़लियाका खून हिन्दको गुलाम नहीं होने देगा, जंगे-आज़ादीमें हम अपनी जानें निसार करके अल्लाहके क़दम-नशीन हो जायेंगे, पर इन निकम्मे फिरंगियोंके आगे सिर नहीं झुकायेंगे।"

"बहादुर ज़ीनत !" जल-भरे मेघकी सी ध्वनि हुई।

"आलमपनाह !" बेगमकी आवाज़से कमरेकी छत गूँज उठी—"मैं हिन्दुस्तानकी बेटी हूँ। उसकी आज़ादीकी लड़ाईमें अगर कुछ कर सकी तो मुझे फ़ख्र होगा।"

और, सन् १८५७के जनवरी महीनेसे दिल्लीके दीवाने-खासमें क्रान्तिके शोले भड़कने लगे। इनक़लाब-सम्बन्धी बहसें होने लगीं। शाही महलके दरवाज़ोंपर विशेष फ़ौजी नियुक्त किये गये। बेगमें, शहज़ादियाँ और शहज़ादे, जो पहले इश्क़ और विलासितामें डूबे रहते थे, अब खुले आम षड्यन्त्रोंकी तैयारीमें जुट गये। फ़्लेमिंग नामक अँगरेज़ सार्जेण्टका बेटा शहज़ादे महबूब अलीका गहरा दोस्त था। ७ फ़रवरीको जब वह अँगरेज़ नौजवान उसके मकानपर घुड़सवारीके लिए पहुँचा तो महबूब अली उसपर बि की तरह कड़का—"तू बदज़ात है दुश्मन है ! कान खोलकर सुन ले कि सूरत तक देखना पसन्द नहीं करता, नज़रके सामनेसे दूर हट जा !"

अकबरकी तरह बहादुरशाह समयमें भी हिन्दुस्तानके हिन्दुओं और मानोंमें आपसी बैर-भाव नहीं था। घोषणाएँ शाही महल-द्वारा की जा उनमें भी एकताकी भावनाको ही व्यक्त जाता था। प्रमाणके तौरपर यह प्रस्तुत है : "नगर अथवा देहातमें रहने हर आदमी चाहे वह सिक्ख हो, या मु नेपाली हो या पूर्वीय, हिन्दू हो या मुस उसका फ़र्ज़ है कि वह अपने आज़ाद करानेके लिए फिरंगियोंके जिहाद करे। हमारी हुकूमतमें हर बराबर है।"

दिल्ली शहर आहिस्ता-आहिस्ता की आगमें तप रहा था परन्तु जनतामें बग़ावतका साहस न था क्योंकि आम ख़याल था कि अँगरेज़ सेनाके बादशाह बहादुरशाहके पास फ़ौज नहीं

अप्रैलके महीनेमें एक दिन जामा पर शाहे-ईरानकी ओरसे एक नोटि काया गया जिसके दाहिनी ओर तख्त बायीं ओर ढालकी शक्ल बनी थी। लिखा था—"शाह ईरान जल्द ही आयेंगे और फिरंगियोंसे हिन्दुस्तानको करायेंगे। ये काफ़िर बड़े अत्याचा इनका एक होकर क़त्ल करो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बीच दिल्लीके आसपास स्थित गाँवोंमें रोटियाँ बाँटी गयीं—जिनका आशय क्रान्तिकी भावनाको जनव्यापी बनाना और आपसमें जोश फैलाना था। परन्तु अँगरेज़ोंको इन रोटियोंका रहस्य समझमें नहीं आया। अन्ततः पुलिस इन्स्पेक्टर मुइनुद्दीन हुसेनखाँने बताया : "हाँ तो बहुधा जुमारातको ग़रीबों और फ़क़ीरोंको चपातियाँ या रोटियाँ बाँटा करते हैं, परन्तु आजकल रोटियोंके बाँटनेका क्या कारण हो सकता है, ठीक-ठीक नहीं बता सकता। मैंने अपने बाल्यकालमें अपने दादासे सुना था कि मराठोंके पतनकालमें मकईके भुने और रोटीके टुकड़े गाँव-गाँव बाँटे गये थे। हो सकता है कि इन रोटियोंके पीछे भी क्रान्तिका कोई पैग़ाम हो।"

उल्लेखनीय है कि ग़दरके दिनोंमें फ़क़ीरों और संन्यासियोंके वेशमें क्रान्तिकारी लोग अँगरेज़ोंके अधीन हिन्दुस्तानी लोगोंकी फ़ौजोंमें उपदेश देनेके बहानेसे चले जाते थे। जब वे अँगरेज़ोंके ज़ुल्मोंकी दर्दनाक गाथा सुनाते और अवधकी बेगमों और शहज़ादियोंके साथ किये दुराचारोंका बयान करते तो बहादुर सिपाहियोंकी आँखोंमें आँसू भर आते। और फिर वे अंजलीमें पानी भरकर या क़ुरान उठाकर संकल्प करते कि हम अँगरेज़ी साम्राज्यका एक क़तरीपर अस्तित्व नहीं रहने देंगे।

मई महीनेमें देशी सिपाही लोग भड़के हुए थे क्योंकि कारतूसोंमें गाय और सुअरकी चरबी मिलायी गयी थी। १० मईको मेरठमें ग़दरका सूत्रपात होनेके बाद सेनाएँ दिल्लीकी ओर बढ़ीं। ११ मईको दिल्लीमें तूफ़ान-सा आ गया—लूटपाट और मारकाट। दिल्लीकी सड़कोंपर फिरंगियोंकी लाशोंका ढेर लगा चुकनेके बाद सेनाएँ लाल क़िलेमें आकर शोर मचाने लगीं कि बादशाह बहादुरशाह उनका नेतृत्व करें। बादशाह बहादुरशाहने पहले तो आनाकानी की परन्तु बादमें उन्होंने सेनाओंका आह्वान स्वीकार कर लिया। बहादुरशाह, एक बार फिर, मुग़ल शहन्शाहके रूपमें नहीं बल्कि अखण्ड भारतकी आत्मिक एकताके प्रतिनिधिके रूपमें, भारत-सम्राट्के रूपमें दिल्लीके सिंहासनपर बैठे। क्रान्तिके रक्त-तर्पणकी उस विकराल घड़ीमें, उनके भीतर हिन्दू-मुसलमान एकाकार हो गये।

परन्तु १४ सितम्बर सन् १८५७ को पासा पलट गया। मेजर हडसन और बिलसनने दिल्लीमें घेरा डाल दिया। क्रान्तिकारियों एवं शाही सेनाओंने मोर्चे लिये, परन्तु सब व्यर्थ। दिल्लीका पतन हो गया। बादशाह बहादुरशाह, ज़ीनतमहल और शाहज़ादोंको भागकर हुमायूँके मक़बरेमें पनाह लेनी पड़ी। सितम्बरको दिल्लीमें फिरंगियोंने क़त्लेआम किया। बड़ा अजीब हाल हो गया दिल्लीका। एक तरफ़ लाखों बेज़ुबान लोग, ख़ूनके सैलाब, विधवाओंके आँसू, अनाथोंकी चीख़ें और ज़ुल्मसे रौंदी हुई ज़मीनके एक-एक ज़र्रेकी फ़रियादें और दूसरी तरफ़, दौलतके ख़ज़ाने, बन्दूकें, गोलियाँ और फ़ौजोंकी क़तारें।

२१ सितम्बरको हडसनने हुमायूँके मक़बरेपर पहुँचकर देशद्रोहके आरोपमें बादशाह और बेगमको गिरफ़्तार कर लिया। बादशाह, बेगम और एक शाहज़ादा पालकीमें बैठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकले। हडसनने बादशाहको आदेश दिया कि बादशाह अपनी तलवार उसके हवाले कर दें।

बादशाहने कहा, "अपनी ज़ुबानसे फिर दोहराओ, कि मेरी जानकी हिफ़ाज़त होगी।"

हडसनने वादा किया और भरोसा दिलाया बादशाहने तलवार दे दी।

परन्तु हडसनने तलवार लेनेके बाद ऐलान किया—"यदि किसी आदमी या दलने शाही वन्दीको छुड़ानेकी कोशिश की तो बूढ़े बादशाह-को कुत्तेकी मौत मार दिया जायेगा।"

बादशाहकी सवारी रवाना हुई तो हुमायूँ-के मकबरे और आसपासकी बस्तियोंमें कोहराम मच गया। हर किसीका खयाल था कि यह ज़िन्दा जनाज़ा है क्योंकि पिछले सभी वादोंकी तरह यह वादा भी निश्चित रूपसे तोड़ दिया जायेगा। बादशाहको लाल क़िलेमें नज़रबन्द किया गया। शामके वक़्त मेजर हडसन अपने साथ कुछ गोरे सिपाहियोंको लेकर बाद-शाहके पास हाज़िर हुआ। सिपाही अपने हाथोंमें रेशमी कपड़ोंसे ढँके थाल उठाये हुए थे। हडसन नक़ली सलाम करते हुए बोला, "लीजिए बादशाह सलामत! कम्पनीने आपसे दोस्तीका इज़हार करनेके लिए आपकी ख़िद-मतमें यह तोहफ़ा नज़र किया है।"

थाल आगे बढ़ा दिये गये, हडसनने थालों-पर-से कपड़े हटा दिये। इन थालोंमें तीन शाह-ज़ादोंके सिर रखे थे!

बहादुरशाहने मुँह फेर लिया। उनके मुँहसे सिर्फ़ ये लफ़्ज़ निकले—"अलहम्दो लिल्लाह! तैमूरकी औलाद ऐसे ही सुर्ख़रू हो-कर बापके सामने आया करती थी।"

बादशाहकी उम्र अस्सी सालसे ज़्यादा चुकी थी। परन्तु विश्वासघाती और अत्याचा अँगरेज़ोंने ज़रा भी दया न दिखायी। चालीस दिनकी सुनवाईके बाद २७ जन सन् १८५८ को उन्हें अपराधी घोषित कर निर्वासनका फ़ैसला दे दिया।

और, एक दिन दिल्लीके भूतपूर्व बादशा को एक क़ैदीकी हैसियतसे रंगून ले ज गया। सित्यांग नदीके तटपर तुंगतोंके क गृहमें उन्हें रखा गया। उनकी हालत गिर गयी। उन्हींके शब्दोंमें:

मेरा रंग-रूप बिगड़ गया,
मेरा यार मुझसे बिगड़ गया,
जो चमन ख़िज़ाँसे उजड़ गया,
मैं उसीकी फ़स्ले-बहार हूँ।
न तो मैं किसी का हबीब हूँ
न तो मैं किसी का रक़ीब हूँ
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ
जो उजड़ गया वह दयार हूँ।

और, ७ नवम्बर सन् १८६२ को बहादुरशाहको मौतने लील लिया। जिस्मको मख़मलके कपड़ेमें लपेटकर बंजर मैदानमें दफ़ना दिया गया। एक मुल्ला ही उस वक़्त वहाँ उपस्थि परन्तु उसे क़ुरानकी आयतें पढ़नेकी नहीं दी गयी। वह सिर झुकाये जब लौट रहा था तो उसने मन-ही-मन "काश! ईसाई मज़हबको माननेवाले लोग ईसाके करुणामय जीवनसे पाते।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिचयके लिए
ज्ञानोदयका अप्रैल
अंक देखिए—

दिगम्बर पीढ़ी

तेलुगुकी ६ दिगम्बर कविताएँ

•

प्रस्तोता : दुराडमूडि महीधर

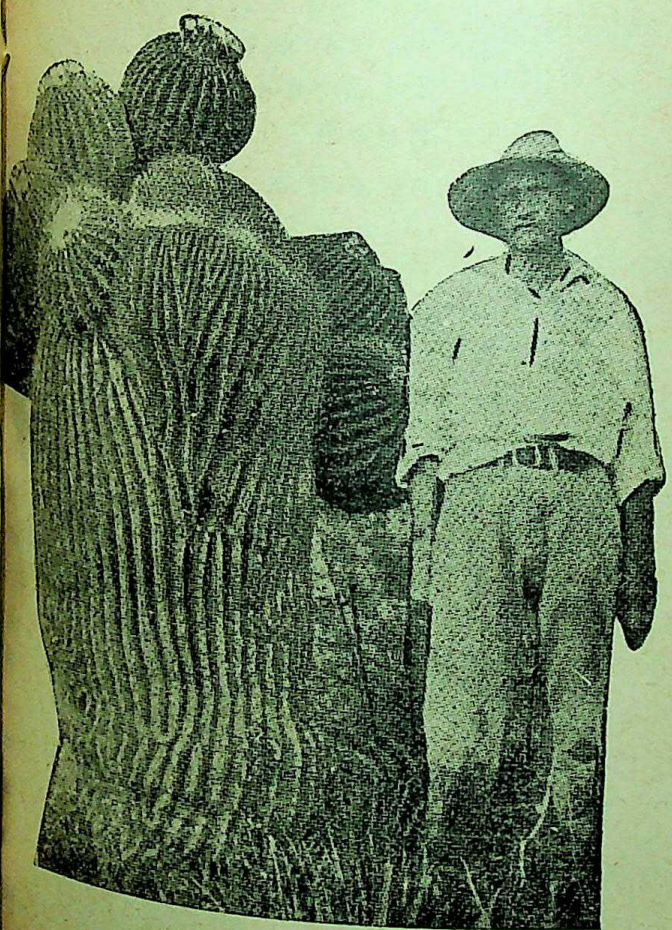

१. नग्नमुनि

जन्म : १९३९। 'दिगम्बर पीढ़ी' के अग्रणी कवि। कविताएँ शक्ति और नावीन्य-से पूर्ण। कुछ कहानियाँ भी लिखीं। पत्र-पत्रिकाओंमें अनेक रचनाएँ प्रकाशित। 'उदयिचनि उदयालु' में आपकी कविताएँ संगृहीत हैं।

• दिगम्बर नृत्य

लुढ़क-लुढ़ककर
पर्वत की तराइयों में लुढ़कव
अपनी नीग्रो संगिनी को
आलिंगन कर आराम करूँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ख़ुशी में अपनी हड्डियों के सपने
मुस्करा उठते हैं
तभी मेरी दमघोटू ज़िन्दगी ख़तम हुई
आकाश से तारों की वर्षा हुई
मोह-सीपी में उसे समेटकर
अपने कुरते के बटन सिला लिये
कमरे में कपड़े उतारकर
थोड़ी देर के लिए विगत का गला घोंटकर
दिगम्बर-नृत्य में दिशाओं को छूकर
एक सत्य को मैंने जाना :
आज तक सभ्यता-डेड्इनेज के पाँव
बूट के दण्डकारण्य
आँख की पलकों के नीचे लुकी-छिपी सर्प-कृपणता
झूठ है
ज़िन्दगी झूठ है
इस ज़िन्दगी का नाटक झूठ है
अगर मैं कुरता-जाँघिया उतार दूँ
लाज-शरम पी जाऊँ
ता बता माँ !
तेरे स्तन का पिया दूध असत्य है
मेरी वमन की हुई भाषा के अर्थ असत्य हैं
मगर एक बात सत्य है
एक क्षण सत्य है
अपने समाज के कपड़ों की गन्दगी के पीछे
लाज-शरम से कुढ़-कुढ़कर
रोता हुआ 'मैं' सत्य हूँ
उस रात पर्वत की तराई में
अपनी नीग्रो संगिनी के आलिंगन के समय
जो चन्द्रोदय हुआ
वह सत्य है
मेरी रग-रग का दर्द सत्य है
मेरा अस्तित्व सत्य है, मेरा संकल्प सत्य है
मैं सत्य हूँ
सब सत्यों के पीछे मेरी साँसों के ऊपर खड़े हो
ठहाका मार कर हँसने लगी
मेरी नीग्रो संगिनी की भूख।

२. निखिलेश्वर

२५ वर्षीय कवि। कहानीकार। 'दिगम्बर कविता' लिखनेके पूर्व पत्र-पत्रिकाओंमें कई रचनाएँ प्रकाशित। एम० ए० फ़िलासफ़ी कर रहे हैं। साथ-ही-साथ एक तेलुगु दैनिक पत्रमें पार्ट-टाइम सह-सम्पादकत्व।

• आत्म-योनि

सोने दो नन्नय[1] को
नरेन्द्र[2] की समाधि में ही
उसे मत जगाओ
वह तुझे भी गड्ढे में घसीट लेगा
प्रबन्ध नारियों की जाँघ ताड़ के लट्ठ हैं
अगर छुएँ तो टाँग तोड़ दे,
पर्वताग्र सम कुच हैं

१. तेलुगुके आदि कवि। २. राज राज नरेन्द्र, जिसके दरबारमें नन्नय राजकवि था)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टकराओ तो सर चकरा जाये
हे पण्डित ! रिकार्ड की तरह रटो नहीं,
नवसृष्टि को ठुकराओ नहीं,
परम्परावादी कवियों की नपुंसक भावनाओं को
हम चुनौती दे रहे हैं
हे प्रगतिशील कवि ! तू तो कभी के सो गये
अफ़ीम खाकर
नियागरा[1] के जलप्रपात में
तुम कूद नहीं सके
गुड बाई तुम सबको
सलाम्-अलेकुम्

तू ने न गद्य लिखा, न पद्य
तेरी कविता, अब ठण्डी पड़ गयी चपाती है
तूने 'विग् बेन के अग्नि-पर्वत पर अधिरोहित
किया है
अब आग भड़केगी
सब कुछ ध्वंस हो जाये, हो जाने दे
....बस तू मर जा !
खुलकर साँस लेनेवाला
एक दिगम्बर कवि जन्म ले रहा है
आत्म-योनि-से !

३. ज्वालामुखी

२६ वर्षीय। कवि। 'दिगम्बर टोली' का तीसरा सदस्य। अनेक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित। 'मनिषि' आपकी अप्रकाशित काव्य-कृति है।

• सूर्य-स्नान

यह सुनने की
मेरी बड़ी चाह है
कि
एक दिन सुबह होते-होते
यह ख़बर सर्वत्र फैल जाये
कि
यह सारा संसार
'नूडिस्ट कॉलोनी' में
परिणत हो गया।
रातों रात
रूप-रंग की ममता तज
जाति-धर्म का अभिमान त्याग
'काम-दहन' हो गया।
....सारे मानव
टोलियों मे बँटकर
सदा के लिए
नगर छोड़कर
गंगा-सिन्धु नदियों के तीर
वोल्गा-नील नदियों के पार
डाले हुए हैं अपने पड़ाव।

....फिर सब के सब
बँट गये हैं नये परिवारों में
उनके विद्रोही नेता हैं
'दिगम्बर देव'
जिसने रातों रात
क़ायम कर दिया :
'नूतन दिगम्बर युग'।

१. तेलुगुका एक संकलन (प्रगतिशील)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. चेरबंडराजु

२७ वर्षीय। कवि। कहानीकार तथा एकांकी लेखक। तेलुगुकी अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें रच[illegible] प्रकाशित। उर्दू भी जानते हैं।

• मुझे चढ़ने दो अदालत के कटघरे में–

जो कपड़ा तू पहनता है रात में
वह काम नहीं आता है दिन में
तेरी औरत पगली है
फटी-पुरानी साड़ी पहने
रसोईघर में बैठे हमेशा
कुछ सोचती दिन गुज़ारती है
तेरे वादे झूठे हैं
तेरे बच्चे 'शो केस' के
कृत्रिम सभ्यता के मॉडेल हैं
तू कौन है ?
हँसता क्यों है ?
तेरा दिल
पहाड़ की बन्द गुफ़ा है
एक दिन में तय होनेवाला
नहीं है यह मामला
मुझे चढ़ने दो
अदालत के कटघरे में—

यह मानव है ख़ून का एक ढेर
हर देश में शिशु का जन्म होता है
एक-जैसा
शयन-कक्ष का लक्ष्य भी होता है
एक-जैसा
यह सारा संसार
एक नग्न शिला है
भगवान् का नाम है : 'नग्न प्रिय'
मैं यही कहता आ रहा हूँ,
यही कहूँगा भी
इसीलिए मुझे चढ़ने दो
यही कहने के लिए
अदालत के कटघरे में।

५. भैरवय्या

जन्म : ८ दिसम्बर १९४२। आन्ध्रके निवासी, मगर नामसे भ्रम उत्पन्न हो सकता है। [illegible] नाम है : मनमोहन सहाय। कवि, कहानीकार, तथा उपन्यास-लेखक। एक उपन्यास, [illegible] 'अणु यज्ञ' नामक काव्यकृति प्रकाशित हैं। 'नवता' नामक त्रैमासिक पत्रके सम्पादक रह चुके

• दिगम्बर

न होगा
दिगम्बर कविता में
कामुकता से सड़े हुए
युवती के पयोधर पर पड़े हुए
नाख़ूनों के चिह्नोंका वर्णन—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होगा
आसमान के तारों का
धूमकेतु का
साहित्य-सरस्वती के
मोतियों के हारों का
रत्नजटित आभूषणों का वर्णन—

इसमें होगा
उस यथार्थता का वर्णन
जो सदा ज्वलित होती रहे
प्रसूता की पीड़ा की भाँति
बीन बाल्जीन की
भूख की ज्वाला की भाँति—
इसमें होगा
उस माँ की वेदना का वर्णन
जिसका कमाऊ पुत्र
अकस्मात् मौत के मुँह में
चला गया हो—
ऐसे सत्यों का
नग्न सत्यों का
उन्हें पसन्द न आयें
जो बड़े घमण्डी हैं
अहंकारी हैं
शब्दों के आडम्बर को ही
समझते हैं सब कुछ
सदा पारायण करते हैं
प्रबन्ध और पुराणों का ही—
भागते हैं
वास्तविकता से बहुत दूर
नाक-भौंहें सिकोड़ते हैं
नवीनता के नाम से ही
कान बन्द कर लेते हैं
प्रगति का नाम सुनकर
चेतनता की चाह नहीं करते
जागने का नाम नहीं लेते
ढिंढोरा पीटते हैं
अपने-आप को लेकर
अपने को ही मानते हैं
युग-प्रवर्तक
महान् साहित्यिक—

एक साहित्य-नग्न-विराट्
स्वरूप अब प्रकट हो गया
जिसके दर्शन के लिए
तपने दो अपना दिल
बहने दो नया ख़ून
भर दो मस्तिष्क में फ़ौलाद
तोड़ दो सारी दीवारों को
छूत की बीमारी-जैसी
अजगर-जैसी
पुरानी भावनाओं को
पुरानी परिपाटी को
भस्म कर दो—
दर्शन करो
विश्व-रूप धारण किये हुए
सत्य का।

६. महास्वप्न

२६ वर्षीय। कवि। अनेक पत्रोंमें कविताएँ प्रकाशित होती रहती हैं। सद्यः प्रकाशित आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य-कृतिका नाम है : 'अग्नि-शिखलु-माय जड़ुलु'। आपका ख़याल है, यह संसार एक पागल-ख़ाना है और हमेशा यह ढूँढ़ते नज़र आते हैं कि आख़िर उसका दरवाज़ा कहाँ लगा हुआ है।

• ग्लानिर्भवति भारत

मैं आ रहा हूँ
दिगम्बर कवि—
कलियुग के रेडियोग्राम में
बीसवीं सदी की रेकार्ड पर
घूमनेवाली सुई बनकर

मानवता की आँखें
जब अन्धी हो जायें
तो मैं तीसरी आँख बनकर
काल के बायलिन पर
कमान बनकर
इतिहास के सुप्त समुद्र पर
तूफ़ान बनकर
आ रहा हूँ
दिगम्बर कवि
मैं आ रहा हूँ
रात में उगनेवाला
सूरज बनकर
जब—
रंग फीके पड़ जायें
संवाद बीच में छूट जायें
स्वगतों से दिशाएँ गूँज उठें
मंच पर अस्थि-पंजर नाच उठे
जगन्नाटक के मिट्टी के पात्र
टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायें
निर्देशक ही अदृश्य हो जायें
तब—
मानिषाद शोकमें-से
वेदना के वल्मीक से
मैं आ रहा हूँ
दिगम्बर कवि
रात में उगनेवाला
सूरज बनकर !

वृक्षों में—
गति लाने के लिए
गड़े हुए पत्थरों में
जान डालने के लिए
समाधिस्थ शवों में
प्राण फूँकने के लिए
विकृत शिलाओं में
सौन्दर्य भरने के लिए
मृत भगवान को
जीवन-दान देने के लिए
मैं आ रहा हूँ
दिगम्बर कवि
रात में उगनेवाला
सूरज बनकर
कलियुग के रेडियोग्राम में
बीसवीं सदी की रेकार्ड पर
घूमनेवाली सुई बनकर
मैं आ रहा हूँ
दिगम्बर कवि !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । यी । क । ला

बसौली : कुछ सन्दर्भ

• महेन्द्र वर्मा

चित्रकलाके इतिहासके पृष्ठोंको जब उलटकर देखा जाता है, तो सर्वप्रथम अजन्ता, मुग़ल और राजपूत या काँगड़ा चित्रकलाकी ओर ही ध्यान आकर्षित हो जाता है। पर बसौलीकी चित्रकलाका जब सूक्ष्मात्मक दृष्टिसे अध्ययन किया जाये, तो निस्सन्देह, लगता है, वह भी चित्रकलाके इतिहासमें ग्वालियर ज़िलेकी बाघ एवं लंकाकी सिगरिया चित्रकलाकी भाँति अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

बसौलीकी राजधानी बालौर और बल्लपुरमें थी, जो आजकल जम्मू राज्यमें कथुवा या कटुवा नामक ज़िलेके अन्तर्गत है। बालौर राजधानीकी स्थापना इतिहास-विशारदोंके मतानुसार आठवीं शताब्दीके आसपास हुई और इसका अस्तित्व दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी तक एक स्वतन्त्र रियासतके रूपमें रहा। इस समय इसकी स्थिति एक सामान्य ग्रामके रूपमें है, लेकिन इसका वह काल गौरवपूर्ण काल था। चित्रकलाकी दृष्टिसे एक विशिष्ट स्थान रखे हुए था, जिसके जीते-जागते ज्वलन्त उदाहरण आज भी भग्नावशेषोंके रूपमें यत्र-तत्र देखनेको मिल जाते हैं।

बसौली शैलीपर किस कलाकी छाप थी—इस सम्बन्धमें कला-विशारदोंकी विभिन्न रायें हैं। श्री वाचस्पति गैरोलाने बताया है कि "उस समय १८वीं शताब्दीमें, बसौलीके चित्रोंकी रंग-परम्परा काश्मीरके चित्रोंसे प्रभावित है। बसौलीके चित्रोंकी शैलीका, जिसमें निजत्व वर्तमान है, आधार काश्मीर शैलीकी संवैधानिक दृष्टि ही रही है—और मुकुट, दुपट्टेकी फहरान, एवं वास्तुभूमिमें काश्मीरी प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है।"

कुछ लोगोंने इसको जम्मू-शैलीके नामसे सम्बोधित किया है, क्योंकि आधुनिक बसौली जम्मू राज्यके कथुवा या कटुवा नामक ज़िलेके अन्तर्गत है और सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें जम्मू-शैलीकी अपनी अलग ही विशिष्टता थी। इस मतके अनुयायियोंमें प्रसिद्ध कला-विशारद डॉ० आनन्दकुमार स्वामी विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने इसके कुछ चित्र अपनी 'राजपूत-पेंटिंग' नामक पुस्तकमें जम्मू-शैलीके नामसे प्रकाशित भी किये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आज अजित घोषने डॉ० आनन्दकुमार स्वामीके इस मतका खण्डन किया है। उनका कहना है कि इन चित्रोंको आचार्य कुमार स्वामी एवं उनके समर्थकोंने जो जम्मू-शैलीसे प्रभावित बताया है—यह निर्मूल है। वस्तुतः वे बसौली-शैलीके ही हैं, क्योंकि खास जम्मूमें कोई चित्र-परम्परा उस समय विद्यमान नहीं थी। बसौली उस समयकी चित्रकलाका एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें स्वयंका अपना बहुत कुछ है।

बसौली-शैलीके कुछ चित्र ऐसे हैं जिनको 'तिब्बती' या 'नैपाली' बताया गया है। वंशीवादन करते हुए भगवान् कृष्णका एक चित्र है, जिसमें उन्हें बाल-गोपालोंके साथ जंगलमें गाय चराते हुए दिखाया गया है। इस चित्रको 'तिब्बती' बताया गया है। इस मतकी पुष्टि करते हुए प्रसिद्ध कला-पारखी एवं कला-विशारद श्री नानामल चमनलाल मेहताने लिखा है : "पंजाबमें दो प्रकारके चित्र मिलते हैं। एक तो काँगड़ा क़लमके नामसे प्रचलित हैं। दूसरे प्रकारके चित्रोंको बेचनेवाले उन्हें कभी-कभी चित्र कहा करते हैं। ये चित्र पहाड़ी क़लमसे सर्वथा भिन्न हैं।" कुछ लोगोंने इस बसौली-शैलीका सम्बन्ध राजस्थानीसे बताया है क्योंकि उस समय राजस्थानी-शैलीका एक केन्द्र जम्मू भी था। इस मतके माननेवालोंमें राय कृष्णदास प्रमुख हैं। उनकी दृष्टिमें इस राजस्थानी-शैलीपर जहाँगीरकालीन मुग़ल-शैलीकी परम्पराको बसौलीके चित्रकारोंने भली भाँति निभाया है। चम्बा शैलीके प्राप्त अवशेषोंके आधारपर यह निष्कर्ष निकलता है कि काँगड़ा-शैलीके रिक्थको लेकर बसौली-शैलीके चित्रकारोंने इस बसौली-शैलीका निर्माण किया।

इन सब तथ्यों एवं तर्कोंके अध्ययनके पश्चात् यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये, तो यह सत्य है कि बसौली-शैलीमें प्रतिबिम्बित अवश्य ही सब शैलियोंका कुछ-न-कुछ अंश रहा है, पर स्वयंके अस्तित्व व रूपके कारण वह इतनी परिमार्जित एवं मौलिक हो गयी है, कि वह स्वयं एक विशिष्ट शैली हो गयी और अपने युगकी (१७ एवं १८ शताब्दी) सबसे अधिक प्रभावशाली एवं लोकप्रिय शैली सिद्ध हुई। सम्पूर्ण पंजाब, गढ़वाल और तिब्बत तकमें इस शैलीका प्रचार था।

भावव्यंजना, मौलिकता, सजीवताकी दृष्टिसे हिन्दू-चित्रकलाकी सभी प्रवृत्तियाँ बसौली-शैलीके चित्रोंमें देखनेको मिलती हैं। इनके मुख्यतः विषय 'गीत-गोविन्द', 'भागवत', 'रागमाला', 'महाभारत', 'रसिक-प्रिया' थे। बसौली-शैलीके कुशल चित्रकारोंने सहस्रोंकी संख्यामें इनसे उद्धृत चित्र बनाये। इन चित्रोंके सम्बन्धमें एक विशेषता यह और थी कि इन भव्य और आकर्षक चित्रोंके साथ चित्रकारोंने जिस लिपिका प्रयोग किया, वह भी बड़ा ही मनमोहक एवं कलापूर्ण था।

कांगड़ा, गढ़वाल और गुलेरकी पहाड़ी रियासतोंके चित्रकारोंने तो रागमालाओं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती-जुलती क़लम

यात्रा-पथ पर तुम ···

··· मिले कि बिछुड़े ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोउ काहू की कानि न मानत,
ग्वाल फिरै मद छाके-छाके।

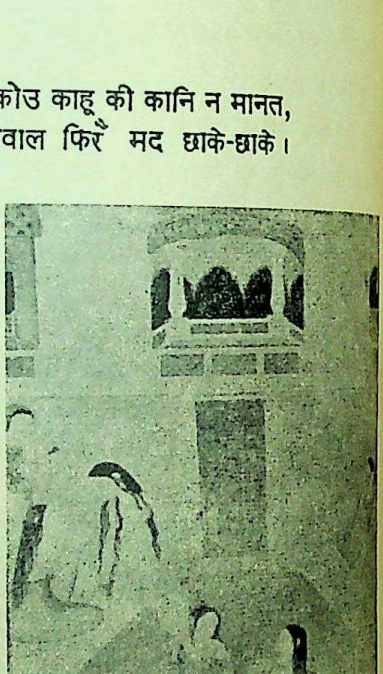

आनन्दघन सों
उघारि मिलौंगी.

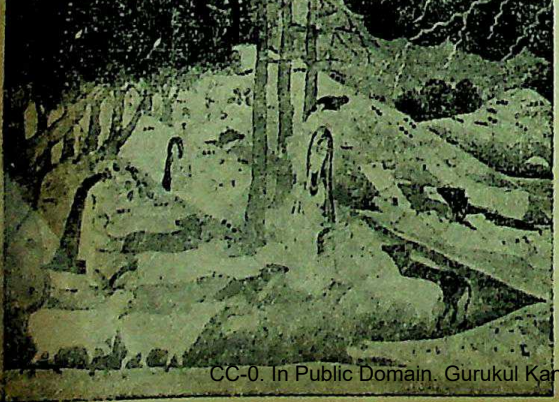

··· अब न बनैं
मुँह ढाँके-ढाँके ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चित्र विशेषत: बहुत नहीं बनाये, पर बसौलीके चित्रकारोंको तो राजस्थानी चित्रकारोंकी भाँति रागमालाओंके चित्र बनानेमें विशेष अभिरुचि थी और इसीलिए उन्होंने सहस्रोंकी संख्यामें रागमालाके चित्र उसी भाँति बना डाले, जिस प्रकार दतियाके महाराजा शत्रुजित (१७६२–१८०१) के समयमें बुन्देलखण्डी शैलीके अन्तर्गत रागमालाओंके सहस्रों चित्र बनाये गये। इस शैलीके चित्रकारोंको रागमालाओंका इतना गहन अध्ययन था कि उन्होंने 'श्रीरागचम्पक', 'श्रीराग कमल', 'श्री रागाणि', 'श्री राग कुकणि', 'श्रीराग हर्ष' और 'श्रीराग पोषर'-जैसे कई रागोंपर आधारित चित्र बना डाले जिनका उल्लेख तक संगीत-पुस्तिकाओंमें अप्राप्य है। इन रागमालाओंके अतिरिक्त बसौलीके चित्रोंमें धार्मिक एवं सामाजिक स्थलोंपर आधारित अनेक चित्र आकर्षक और मनमोहक दिखाई देते हैं, जिनमें-से किन्हींपर तो मुग़ल-शैलीकी छाप स्पष्टत: दिखाई पड़ती है।

पहाड़ी चित्रोंकी अपेक्षा बसौली-शैलीके चित्र अधिक ग्रामीण हैं और इनमें बल एवं ओजका प्रदर्शन अधिक है। इस चित्र-शैलीमें कोमलता उतनी अधिक नहीं है, जितना कि तेज। लेकिन इस शैलीके चित्र बाह्य-आडम्बर और बाह्य-लावण्यतासे अधिक दूर रहे हैं। इन चित्रोंकी अन्तरात्मा बोलती हुई दिखाई पड़ती है। सीधी-सादी, फड़कती हुई रेखाओंमें सीधे-सादे रंगों-द्वारा ही चित्रोंमें सजीवता लानेमें चित्रकार अधिक सफल रहे हैं। इनकी सीधी-सादी रेखाओंमें जीवनकी गति एवं प्रवाह बहुत है।

बसौलीके चित्रोंकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। इसमें स्त्रियोंके चित्रणमें चित्रकार अधिक सराहनीय हैं। नीचेकी ओर झुकी हुई लम्बी नासिका, बड़ी-बड़ी आँखें, छोटी मुखाकृति, गोल कपोल, झुकी हुई चिबुकके चित्रणमें चित्रकारोंने बड़ी ही सजीवता दिखलायी है। वेष-भूषाको अंकित करनेमें राजपूत-शैलियोंके रागमालाकी चित्रोंकी भाँति चित्रकारवर्ग अधिक सफल रहा है।

बसौली-चित्रोंकी दूसरी विशेषता चक्षु-चित्रणकी है। इस शैलीके बने नेत्र जैन-शैली, राजपूत-शैली, बंगाल-शैली एवं मुग़ल-शैलीसे अधिक प्रभावोत्पादक हैं।

बसौली-चित्रोंमें सम्पूर्ण चित्रका केन्द्र-बिन्दु उसके पद्माकार, कर्णस्पर्शी एवं रसभावपूरित नेत्रोंकी रचनामें निहित है। श्वेत, श्याम, रतनार, हलाहलसे पूर्ण मदभरे नयनोंको देखकर कोई भी कलारसिक इन नेत्रोंमें अपनेको डुबो सकता है, इनपर अपनेको न्योछावर कर सकता है। यही नेत्र ही बसौली-चित्रोंकी क़लमके परखनेकी एक कसौटी एवं माध्यम है।

तीसरी विशेषता उसकी हस्त-मुद्राएँ हैं। ये हस्त-मुद्राएँ कौशलमें अजन्ताके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रोंकी हस्त-मुद्राओंसे किसी अर्थमें कम नहीं हैं। इन चित्रोंमें उँगलियों एवं हथेलियोंकी कोमलता, लावण्यता एवं सुकुमारता देखते ही बनती है।

इन चित्रोंमें विशेष, विचित्र बात यह पायी जाती है, कि स्त्रियों एवं पुरुषोंके आभूषणार्थ तितलीके पंखोंके चमकीले हरे रंगके टुकड़ोंका प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग भारतीय चित्रकलाके क्षेत्रमें अपना अलग ही विशिष्ट स्थान रखे हुए है और जो अन्य किसी प्रकारकी शैलियोंमें सम्भवतः देखनेको नहीं मिलता।

इनकी रंगसज्जामें चित्रकारोंने बुन्देलखण्डी-शैलीकी भाँति लाल, पीले, नीले और सादे रंगोंका प्रयोग अधिक किया है। १७वीं शताब्दीके चित्रोंमें रंग-विधान अधिक फड़कता हुआ नहीं है।

इस शैलीमें अंग-प्रत्यंगोंको बारीक वस्त्रोंके आवरणमें अतिपारदर्शक नहीं बनाया गया है। केवल लँहगेकी चूनरीको साधारण तौरपर पारदर्शक बनाया गया है। इसके अलावा फूल-पत्तियाँ या आलेखन केवल लाक्षणिक और आभरण रूपमें दिखलाये गये हैं।

इस शैलीका उत्कर्ष काल (१८वीं सदीका मध्यार्ध) माना जाता है। बसौलीके चित्रोंमें 'रसिक-प्रिया' के आधारपर 'राधा-कृष्ण' का चित्र और 'गीत-गोविन्द'के आधारपर बनाये गये अनेक चित्र कलाकी दृष्टिसे अच्छे उदाहरण हैं। इसी 'गीत-गोविन्द'पर आधारित चित्र ही बसौली-शैलीके सर्वाधिक प्राचीन चित्र समझे जाते हैं, जिनका काल १७वीं शताब्दी ही आँका जाता है। वैसे इस १७वीं शताब्दीमें सहस्रोंकी संख्यामें 'श्रीमद्भागवत', 'रामायण', 'महाभारत' के आख्यानोंसे सम्बन्धित चित्र बने, पर इन चित्रोंको श्री नानामल-चमनलाल मेहताने पुराने भित्ति-चित्रोंका ही सूक्ष्म रूप माना है और इनका सम्बन्ध उन्होंने राजपूतानेके और मध्यकालीन गुजराती चित्रोंसे माना है।

इस शैलीका एवं १८वीं शताब्दीके कालका प्रमुख चित्रकार माणकू है। १६३०में इस चित्रकारकी बनायी 'गीत-गोविन्द' चित्रावली है जो लाहौर संग्रहालयमें मौजूद है।

यह बसौली चित्र-शैलीकी परम्परा १९वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक लगभग रही। जम्मूके राजा गुलाबसिंह-द्वारा सन् १८४९ में बसौलीके अन्तिम राजा कल्याणपालको विजित करने और बसौली राज्यको जम्मू राज्यमें विलय करनेके साथ ही इस बसौली-शैलीकी उस क़लमका अन्त हो गया, जो कभी अपनी सजीवता, मौलिकता, भावव्यंजनाके लिए दूर-दूर तक अपना प्रभाव रखे हुए थी। ■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

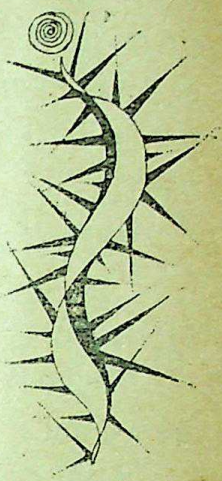

शरीरके भीतर

शक्ति चट्टोपाध्याय

अरूपरतनको कम्पार्टमेण्ट मन-मुताबिक ही मिल गया था। ठीक दरवाज़ेके पास दायीं तरफ़ कोनेवाली सीट उसे मिली थी। कम्पार्टमेण्टके अन्दर भीड़ भी उतनी नहीं थी। बंकवाली दोनों सीटोंपर बिछावन बिछा था। कोई बात नहीं। अरूपको वैसे ट्रेनमें सोनेकी आदत भी नहीं है। अगर दो रात उसे बैठा भी रहना पड़े तो रह सकता है। उसकी आकांक्षा-उच्चाकाक्षाएँ भी तो हैं, जो उसे सोने नहीं देतीं।

जीवनमें विपत्ति आती है तो उच्चता और त्वराके कारण—इस बातपर विश्वास है अरूपको। अपने मित्रोंके अनुसार अरूप एक प्रकारके 'कैलकुलेटिव' टाइपका युवक है। उसके मित्र यह भी कहते हैं कि उसका 'कैलकुलेशन' भी एकान्तिक और व्यक्तिगत है। इसके द्वारा दूसरेके बारेमें कभी सोचता भी नहीं वह। प्रत्येक व्यक्तिके बारेमें उसकी दो धारणाएँ रहती हैं—एक उसकी व्यक्तिगत, दूसरी सामाजिक। विद्यार्थी जीवनमें अरूप असाधारण नहीं था, बल्कि साधारण लोगोंकी तरह ही था एवं उसी साधारणत्वसे वह अपनेको हटा ले गया। पानीमें-से हाथसे खींचकर पार किया है नौकाको, नौकामें बैठे-बैठे अनायास ही डुबकी मारकर पार करना उन दिनों दुस्साध्य था उसके लिए। कॉलेजमें अध्यापन-कार्य पाकर भी छोड़ दिया है, स्कूलमें इससे अधिक वेतन मिलता है, इसीलिए!

कॉलेजमें अध्यापनको कल्पना अथवा उसकी मर्यादाका अनुभव उसने नहीं किया कभी। अनुभव नहीं ही किया, ऐसी बात नहीं भी हो सकती; किन्तु ऐसे अनुभवका जान-बूझकर उसने दमन अवश्य किया है, दमन करनेमें भी उसे किसी प्रकार द्विधा नहीं हुई। सीमा कहती—"इस प्रकार तो डूब ही रहे हो अरूप बाबू,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धावस्थामें क्या देखूँगी, यह भगवान् ही जाने। कॉलेजकी नौकरी तुमने ली नहीं, भले ही वेतन थोड़ा था तो क्या हुआ। इतने ही वेतनमें हमेशा बैठे तो रहते नहीं, किन्तु हुआ यह कि किसी गँवई-गाँवमें बड़े स्कूल-मास्टर....''

अरूप कहता, ''तुम समझती नहीं सीमा!''

''तुम समझा भी तो नहीं पाते हो, इसे स्वीकार क्यों नहीं करते?''

''असमझको समझाना बड़ा मुश्किल है।'' अरूप बोलता।

उसकी बातोंकी उष्णता सीमाको स्पर्श कर जाती। वह बोलती—''सब तुम्हारे स्कूलके विद्यार्थी नहीं हैं अरूप, बीच-बीचमें यह भूल जाते हो तुम....''

सीमाको गुस्सा होते देख अरूप हँस पड़ता।

''गुस्सा होनेपर तुम बड़ी सुन्दर लगती हो—आज भी उतनी ही सुन्दर लग रही हो।''

''रहने दो, व्यंग्य मत कसो।'' सीमा बिगड़ उठती। अतः वह अरूपको बैठकखानेमें अकेला छोड़कर भीतर चली जाती। मानो अरूपको भीतर जानेसे एकदम मनाही है!''

■

सीमा नहीं थी और अरूप खिड़कीसे बाहर एकटक देख रहा था। अभी पौष महीनेका अन्तिम दिन था। गाछके नीचे पीले सूखे झड़े पत्ते बिखरे पड़े थे। जगह-जगह काला दाग़। रातमें उसीसे मानो आग फूट निकली थी कल। कल शामसे बीते रात तक इसी घरके इसी कुरसीपर बैठा था अरूप, सीमा भी तब पास ही थी। कल ऐसी-वैसी बातें नहीं हुई थीं। इस बार यात्राकी पहली शाम थी उसकी। सीमा भी यह सोचकर बड़ा ही नरम व्यवहार कर रही थी। एक बार अरूपके हाथको अपने हाथमें लेकर इसी तरह घण्टे भर बैठी रही। उस समय बिजलीका-सा स्पन्दन हो रहा था दोनोंके शरीरके भीतर, प्राणोंमें! दोनोंको बहुत बातें करनी थीं।

सीमा बोली, ''आगामी महीनेसे कॉलेज-वाली मेरी नौकरी लग जायेगी। लगता है तब...''

''तब क्या?'' अरूपने टोका।

''तब हम दोनों, दोनों एक साथ—नहीं तो, दोनों दो जगह रहेंगे।''

''वह तो अब भी हैं।''

''हैं, किन्तु उस तरह थोड़े ही हैं?''

''उस तरहसे क्या मतलब है तुम्हारा—दोनोंकी एक फ्रेममें बँधे ग्रूप फ़ोटोके अलावा और कोई परिवर्तन तो देख नहीं पा रहा हूँ—तुम देख पा रही हो?''

''हुँ, देख पा रही हूँ।'' निःश्वास छोड़कर बोली सीमा।

''तुम भाग्यवती हो!''

उस समय सामने रास्तेसे फेरीवाला हाँक लगाते हुए जा रहा था। घासका बोझा कन्धेसे लटकाये हुए घसियारा मैदानसे होते हुए धीरे-धीरे 'निमडि' की ओर बढ़ रहा था। 'लूपंगुटू' फ़ॉल (झरना) जानेके लिए अरूप भी इसी मैदानसे 'निमडि'के बीचसे होते हुए गया था, याद पड़ता है।

'लूपंगुटू फ़ॉल' के निकट सीमा बैठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गा रही थी—"बेला बोहे जाय काननें....." वह सब गाना उस दिन उसपर हावी हो उठा था। 'अर्जुन गाछ घेरा' झरनेमें उन दोनोंने स्नान किया था उस दिन—हाथसे छाता उड़ जानेपर अरूपको हँसकर सीमाने कहा था—"तुम्हारे कारण ही यह शेष चिह्न भी हाथसे निकल गया, क्यों ?"

अरूप तब भी छाताको बचा रखनेमें लगा था। पीछेसे सीमाने हाथ खींचकर कहा था—"जाने दीजिए, अच्छा ही हुआ, छाता-फ़ाता रखना ऐसी उम्रमें अच्छा भी नहीं लगता।"

अरूपने तेज़ दृष्टिसे सीमाकी ओर ताका था, इसीलिए हठात् सीमाके मनमें उठनेवाले झरनेकी उच्छ्वलता मर गयी थी और वह 'मोनोटोनस्' लग रही थी। घर लौटने तक सीमाके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। अरूपको लगा, यही ठीक है ! इस तरह जुड़-कर भी न जुड़ा रहना, इस तरह रास्तेसे चलते हुए भी मनुष्यका आहत न होना, सम्भव नहीं है। उसे बीच-बीचमें लगता, रास्तेपर लोग इतनी बातें करते हुए कैसे चलते हैं ? रास्तेपर चलती हुई सीमा कितनी करुण हो उठी थी। सीमाके माथेपर केश बिखर पड़ा था। हवा पाकर केश आँखोंपर झूल रहा था। अरूपने रुककर क्षणांशमें ही इन सब केशोंको सिरपर पुनः गूँथ दिया था—'केश पड़नेसे आँखें ख़राब हो जाती हैं !"

■

एक दिन नदीके किनारे बने कोठेवाले कमरेको छोड़ दिया सीमाने। कॉलेजकी नौकरी पानेके साथ-ही-साथ स्टॉफ़-क्वार्टर उसे मिला। परिवारके सभी लोग पहलेवाले मकानमें ही रह गये। वह अकेली क्वार्टरमें आकर रहने लगी। यहाँसे कॉलेज जानेमें भी सुविधा थी। इसके अलावा रातके समय भी क्लास लेना शुरू कर दिया, अतः दोनों समय चार बार मकानसे आना-जाना असम्भव था। कॉलेज और पहलेवाले मकानकी दूरी लगभग चार मील थी। बससे जा सकती थी, पर बचपनसे घरसे बाहर कभी निकली तो थी नहीं, सिवा पढ़ाई छोड़के, यही कारण था कि भविष्यमें इस बार-बार आने-जानेके व्यवधानको लेकर, ज़िद करके, कॉलेजवाले क्वार्टरमें वह आ गयी।

घरपर माँ बोली, "कभी भी तो अकेली रही नहीं, सीमा, अब रह पायेगी ?"

"न रह सकूँगी तो चली आऊँगी। एक दिन तो रहना ही होगा, तब ?"

"तब तो कोई-न-कोई रहेगा ही साथ-में। शादीके बादकी ही बात तू कहना चाहती है न ?"

किन्तु एकदम अलग ही रहने लगी सीमा उस दिनसे ! अलग भी क्या, सीमा माँकी कही गयी सारी बातें एक फूँकमें ही उड़ा देना चाहती थी। माँकी बातोंमें अरूपके प्रति किसी प्रकारका निर्देश उसे अच्छा नहीं लगा। यह भी तो माँ बोल सकती थी—"तुम दोनों-की जब शादी होगी, उसके बाद....." यह न बोलकर 'कोई-न-कोई'का संकेत सीमाको एक-दम अच्छा नहीं लगा। परिवारके किसी व्यक्ति-ने भी अरूपके साथ उसके सम्पर्कको अच्छी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नज़रोंसे नहीं देखा। वे लोग नहीं चाहते कि स्कूल-मास्टरके साथ उसके जीवनका आरम्भ और अन्त हो। अरूप, उसके घरमें दामादकी तरह नहीं, बल्कि वैसे ही आदरणीय है। अरूप-में अनेक गुण हैं। यही सब गुण उसके परि-वारकी नज़रमें दूर होनेके नाते अच्छे लगते, किन्तु सीमाके साथ इस प्रकारका उसका सम्पर्क किसीको पसन्द नहीं है। वैसे सीमाको स्पष्ट-तया प्रत्यक्ष रूपमें कुछ कहनेका किसीको भी साहस नहीं है। क्योंकि सीमाके ऊपर ही उसके परिवारका भविष्य बहुत हद तक निर्भर करता है। सीमाके पिताकी काफ़ी उम्र हुई। लड़के-बच्चे भी बहुत सारे—ये सभी दूसरेके मुखा-पेक्षी।

अरूप सोचता है, सीमा अपने परिवारकी देख-भाल करे, यही अच्छा है; क्योंकि उनको देखनेवाला कोई भी तो नहीं। अरूपपर, कहने-के लिए ऐसा कोई दायित्व नहीं है। वह अपना भार स्वयं सँभाल लेगा!

■

साधारणतया सीमाके पास अरूप जाता है रात-की ट्रेनसे। सम्बलपुर पैसेन्जरसे। उसी सम्बल-पुर पैसेन्जरका नाम बदल गया है आजकल। कितना कुछ बदल जाता है, इधर-उधरका! अरूप, स्वभावतया सभीको अपनी तरह ही साधारण रूपसे ग्रहण करता है—इस ट्रेनके बदल जानेको उसने ग़लत ढंगसे नहीं लिया। स्टेशनके 'मर्करी लैम्प' के प्रकाशमें उसे अपना हाथ, पैर, मुँह, आँखें मानो मरणासन्न और निष्प्राण लगने लगा। अरूप हाथमें बैग लिये पत्थरकी भाँति काउण्टरपर खड़ा रहा। पीछे खड़े लोग हल्ला मचा रहे हैं—"ओ महाशय, मनीबैग कहीं खो आये क्या? आप घर कीजिए, कल जाइएगा।"

अरूपके मनमें यह बात बैठ गयी। कल जानेसे कैसा रहेगा? राँची एक्सप्रेससे? टाटा उतरकर, शामको, ठीक दिया-बत्तीके समय? सीमा तब बरामदेमें बैठी होगी अथवा कॉलेजसे लौटकर बिछावनपर आराम कर रही होगी। सीमा कहाँ है—घरपर या क्वार्टर में? शनिवार होनेपर ही घर जाती है। रवि-वारको भी घरपर ही रहती है। सोमवारको घरसे ही सीधे कॉलेज चली जाती है। उसके बाद सारा सप्ताह कहीं नहीं आती-जाती क्वार्टर छोड़कर। वहाँका उसने कई एक चित्र में वर्णन किया है। अरूपके लिए यह सब बातें कितनी विगत हो आयी हैं, देखे हुए परिचित मित्रकी भाँति नाच रहा है सारा दृश्य। कॉलेज के सीमानेपर कृष्णचूड़ा, पीछे विस्तृत मैदान, जानेके रास्तेपर गोशाला।

अरुण सोचता है, वह सीधा कॉलेज ही चला जायेगा। खोजनेमें दिक़्क़त नहीं होगी—यहाँतक कि इन क्वार्टरोंकी भीड़में कौन-सा सीमाका क्वार्टर है, एक बारमें ही पहचान लेगा। सीमाने पोर्टिकोकी छतसे 'बोगेन-मिलियाँ' की लता लगायी है। उन सब फूलों-का रंग 'क्रिमसम' है। सीमाको रंगीनी अच्छी लगती है। अरूप सोचता है कि सीमा-को चूँकि रंगीनी अच्छी लगती है, इसलिए उसे भी लगना चाहिए!

ट्रेन-यात्रामें अरूप 'ट्राउज़र' के नीचे पैजामा भी पहने रहता है। ट्रेन छूटते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ट्राउज़र' खोलकर 'हुक' में टाँग देता है। बूट जूता खोलता है, बाँथरूम-स्लीपर पहनकर निश्चिन्ततासे बैठता है। हाथमें एक हलके क़िस्मका उपन्यास लिये रहता है। ग्राहाम ग्रीन, नहीं तो लॉरेन्स डूरेल—इसी प्रकारका कोई उपन्यास। एक ही बैठकमें पढ़नेमें तल्लीन रहता है। स्टेशनपर आनेके बाद भाँड़में चाय पीता है। सिंघाड़ा खाता है। 'बागनान' से तीती घुघनी शालपत्तेमें ठण्ढी हो जानेके बाद भी लेता है। इसके झोलकी कोई तुलना ही नहीं है। 'फूलेश्वर' में पानका एक दोना लेकर अपने बग़लमें रख लेता है। खड़गपुरमें दोपहरका भोजन करनेके बाद वह पान मुँहमें लिये-लिये ही 'चार मीनार' सिगरेट क्रमशः फूंकता रहता है। मनसे मास्टरका भाव धीरे-धीरे मिटने लगता है। सीमाके लिए इस बार एंग्लो-बंगाली 'डिक्शनरी' खरीदकर ले जा रहा है। प्रायः एक वर्षसे खरीदनेके लिए कह रही थी। हर बार भूल जानेके बाद इस बार याद करके उसने खरीदकर अपने साथ ले लिया है।

खड़गपुर कबका पीछे छूट गया। मेदनीपुरकी सीमा भी ट्रेन छोड़ चुकी है। पास ही सामने टीला दिखाई पड़ रहा है। दिखाई पड़ रही है शाल, सेगूनकी मंजरी। मंजरियोंकी मादक गन्ध उसकी नाकसे टकरा रही है। इस विस्तृत हरियाले वन-प्रान्तरमें इधर-उधर सन्थालोंकी बस्ती दिखाई पड़ जाती है। उनके नंग-धड़ंग बच्चे ट्रेन देखनेके लिए दौड़ आये हैं और खड़े हैं ऊँचे टीलोंके ऊपर।

आकाशमें शीतके हलके बादल तैर रहे हैं। मैदानके बीच कुत्ता मुँह ऊपरकी ओर करके रोनेकी आवाज़में भूँकता चल रहा है इधर-उधर, आकुल होकर। शीतमें उनका विरह-बोध द्विगुणित हो उठा है—यही शोभा-सौन्दर्यकी प्रेषणीयता है। अरूपके मुँह पर एक तीक्ष्ण रोशनी पड़नेके कारण उसने खिड़कीका आधा हिस्सा शीशेसे ढँक दिया है, जिससे कि उसके मुँहपर धूप आकर न पड़े। तेज़ धूप उसके सिरपर पड़ते ही उसके माथेमें दर्द होने लगता है। इसके अलावा भी ट्रेनका कोयला तो सिरपर आकर जमता ही है। दर्द होने ही लगेगा—टाटानगर स्टेशनपर उतरकर दो 'ऐस्पिरिन' (लॉजेन्स) की टिकिया मुँहमें लेगा पहले तभी ठीक होगा। किन्तु इसके बाद भी दो घण्टे तक बस-यात्रामें धूल मुँह और माथेपर आकर बैठेगी, सो ? इसका क्या इलाज है ? दोनों हाथसे पूरी खिड़की बन्द कर उपन्यासकी ओर मन लगाने लगा अरूप। इन सब अंचलोंमें बाहरकी ओर ही अधिक ध्यान बँट जाता है—जीवनमें काफ़ी वर्षों तक इन सब अंचलोंमें ही पागलकी भाँति घूमता-फिरता रहा है वह। इसी आदिम प्रकृतिके बीच, इन्हीं आदिम मनुष्योंके साथ वह उठता-बैठता रहा है बहुत दिनों तक।

प्याससे गला सूखने लगा है सहसा। वह उपन्याससे नज़र हटा लेता है। सेगूनकी मंजरी मदिर गन्ध लिये खिड़कीके शीशेपर-से टकराती हुई पीछेकी ओर भागी जा रही है। अरूपकी दृष्टि अब बँट गयी है। वह सामने बैठे यात्रियोंकी ओर देखता है—उसके सामने

[शेष पृष्ठ ५६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

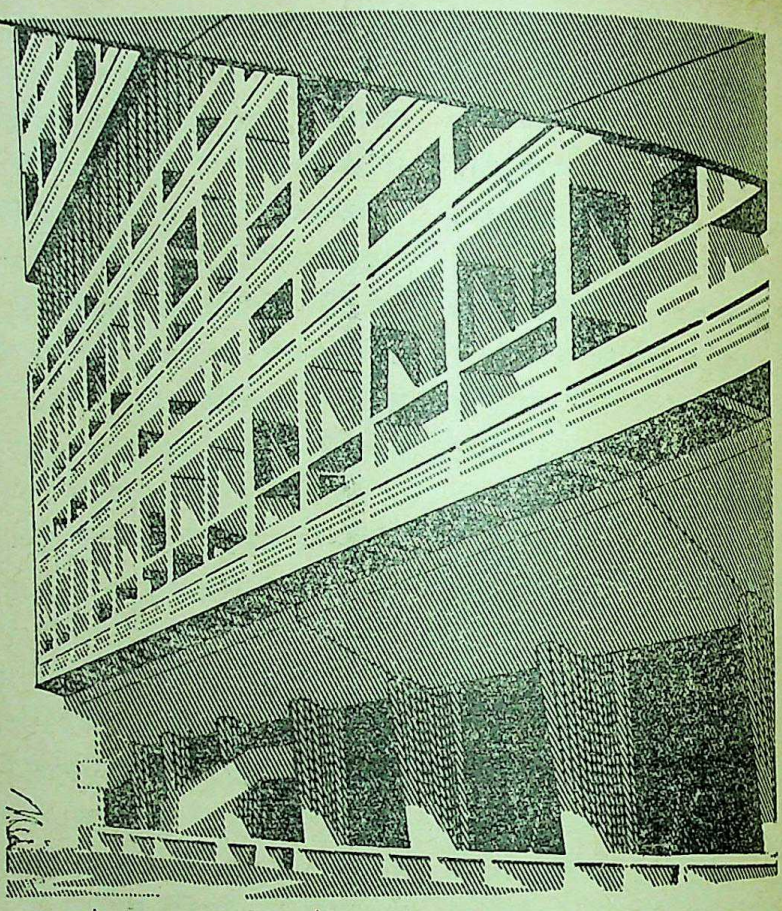

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

अशोका सीमेन्ट लिमिटेड

सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटेड

IPC-90:198 HIN(A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ फ़रवरी १९६४

प्रिय रेवा,

तेरा पत्र आज ही रिडायरेक्ट होकर मुझे यहाँ मिला है। मन-प्राण प्रसन्नतासे आपूर भर उठा है, तेरे इस नन्हें पत्रको कभी आँखोंसे छुलाती हूँ, कभी हृदयसे लगाती हूँ, तूने मुझे इतने दिन बाद याद किया, किया तो सही रानी! लग रहा है, तपती धूपमें जैसे मैं घनी अमराईके नीचे आ बैठी हूँ। कल ही मैंने बेटीको बिदा किया है। तुझे आश्चर्य होगा, यह सब क्या, मेरी बेटी क्या इतनी बड़ी हो गयी? हाँ रेवा, मेरी और तेरी बेटीका आज घर बस गया है, जैसे एक दिन मेरा बसा था, तेरा बसा था। तू तो अपने घर जाकर इतना उलझ गयी, कि शुरू-शुरूमें कुछ पत्र भेजकर तूने तो फिर संन्यास ही ले लिया। फिर बता, मैं भी तुझे क्या लिखती और आज इतने दिन बाद जब तूने मुझे याद किया है तो मैं अपने उस घरमें नहीं जहाँ माता-पिता और तुम सब सखी-सहेलियोंने मुझे भेजकर सन्तोषकी साँस ली थी।

इस मध्यान्तरमें कितना कुछ घट गया, इसकी तू कल्पना भी कर सकेगी क्या? इस अपनी बड़ी बेटी इन्द्राके जन्मकी सूचना तो मैंने तुझे दी ही थी। तूने तब न जाने कितने झबले, फ्रॉकें, खिलौने और न जाने क्या-क्या अटरम-सटरम भेजा था। तेरी भेजी नन्हीं गिलासी और तुतई तो उस घरके सन्दूक़में अब भी रखी होगी, पर आज वह घर मेरे लिए बेगाना बन चुका है। ओह, उन दिनोंकी याद करती हूँ तो कलेजा काँप उठता है, प्राण मुँहको आने लगते हैं। सोचती हूँ, विवाहित जीवन अगर इतना बीहड़, दुःखदायी और रूखा होता है तो लोग क्यों इसके लिए इतने लालायित रहते हैं, पर मुझे आज यह सब कुछ नहीं सोचना चाहिए। बेटीको इसी बन्धनमें ज़बरदस्ती बाँध चुकी हूँ। चारा भी तो नहीं है।

गड़गड़ाते बादलोंमें मिटते-बनते पुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बेटीके जन्मोत्सवपर मेरे यहाँ बन्दनवारें बँधी थीं, कड़ाही चढ़ी थी, पूजा हुई थी। सासने कहा था, हमारे यहाँ तो पहलौटीकी लड़की भी बेटेके समान मानी जाती है। अविनाशने भी सौरमें ज़बरदस्ती घुसकर मेरा चुम्बन लेकर मुझे आश्वस्त कर दिया था, पर यह आश्वासन दूसरे बच्चेके जन्मके साथ ही समाप्त हो गया। हाँ, लड़केके जन्मपर भी (पहला ही था यह लड़का) तब न हमारे यहाँ बन्दनवारें बँधीं, न ढोल-तासे पिटे, न कड़ाही चढ़ी। सास तो महाप्रयाण कर ही चुकी थीं तब, और पहले बेटेके बाप इतनी जल्दी घर-गिरस्तीसे विरक्त रहने लगे थे। क्यों विरक्त रहने लगे थे, यह मैंने सौरीगृहसे बाहर आकर ही जाना। जिस व्यापारमें अविनाशने पैसा लगाया था, वह व्यापार ठप्प हो गया था। विकट घाटा पड़ा था इन्हें उस वर्ष, पर तू ही बता, इसमें बच्चेका क्या दोष? शुभ-अशुभके विचारनेका काम तो बड़ी-बूढ़ियोंका होता है, पर ये तो बाप थे, फिर लड़के-जैसी चीज़ घरमें आयी थी। नफ़ा-नुक़सान तो ज़िन्दगीमें लगा ही रहता है, पर अविनाशको यह सब सोचनेकी मानो फ़ुरसत ही नहीं थी, लड़केके जन्मसे ज़्यादा उन्हें तब अपनी खोयी हुई रक़मकी चिन्ता थी। मैंने मजबूरी मान ली थी और परिस्थितिसे समझौता कर आगे बढ़ चली थी। क्या रखा है, इन सब व्यर्थके प्रदर्शनके पंचड़ोंमें! मैंने ख़ुद कह दिया था, पर तीसरे साल ही देवकी और उसके अगले साल ही वन्दना आ पहुँचो थीं और रही-सही क़सर पूरी हो गयी थी। हर बच्चेके जन्मके साथ मैं अधिकाधिक अनाथ होती गयी थी, क्योंकि अविनाश बच्चोंके जन्मके सम्बन्ध में तो कोताही नहीं करते थे, पर पैसेको दाँतोंसे पकड़ने लगे थे। तू ही बता, गृहिणीके ऊपर गृहस्थीका पूरा उत्तरदायित्व हो, फूटी कौड़ी उसके हाथमें न हो, तो घर भाड़ भला वह कैसे झोंके! आटे-दालके लिए रोज़ पैसे माँगते-माँगते, सच कहती हूँ रेवा, रुँआसी हो उठती थी। अविनाशके मनमें हमेशा यह सन्देह बना रहता था कि मैं पैसा लेकर पूरा नहीं खरचती, छिपाकर रख लेती हूँ। जब मैं पाई-पाईका हिसाब उनके सामने रखती तो झल्लाकर कहते, "जब तुम्हारे हाथमें बरकत नहीं है, तो अपने पास पैसा रखनेकी हौंस क्यों करती हो!"

"नहीं, मुझे पैसा रखनेकी कोई हौंस नहीं है, तुम्हारा पैसा तुम्हीं खरचो। हाँ, बच्चोंके पेट ज़रूर भरने चाहिए। यह न हो कि वे ऐरे-ग़ैरेके सामने खड़े रिरियाते फिरें।"

सच कहती हूँ रेवा, जिस महीने अविनाश खर्च करते, उस महीने बच्चे आधे पेट रहते, रोते-रिरियाते और तेरे-मेरे खानेपर नज़र डालते फिरते। उसके बाद तो सचमुच इन्होंने मुझे पैसा देनेसे हाथ पूरी तरह खींच लिया। कहते, "घाड़की घाड़ बच्चे पैदा करोगी तो इनका ठेका मैंने लिया है!"

मुझे हँसी भी आती, झल्लाहट भी। इतना बड़ा समझदार आदमी होकर क्या कह रहा है यह? नारीको दिन-रात उजाड़ते रहनेका दायित्व तो तुम लूटो और फिर भी बच्चे सही-सलामत रहे, कहींसे फूटे-टूटे नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे सम्भव हो सकता है ! क्या बताऊँ रेवा, कहते भी लाज लगती है पर जब तू मेरी राई-रत्ती बात जानती ही रही है तो तुझसे फिर यह भी क्या छिपाऊँ, कई बार अविनाश के कमरेसे उठकर मैं बाहरसे कुण्डी चढ़ा आती थी, पर खिड़कीके सरिए तोड़कर मुझे वे बच्चोंके बीचसे उठा-उठाकर ले जाते थे। आर्थिक रूपसे सुरक्षित न होनेपर भी रूपकी यह कैसी हविस थी। यौन-बन्धनकी कैसी ललक थी, मैं समझ नहीं पाती थी। कई बार बिजलाकर मैं खुद ही समर्पण कर देती थी, बेहवास-सी होकर कहती थी, "लो मुझे बरबाद कर डालो न ! आओ, बैठे-बैठे क्या देख रहे हो ? तुम्हारा खेत है, इसे समूचा चर डालो न !"

सचमुच अविनाशने अपना खेत समूचा चर डाला, पर कभी स्नेहकी एक स्निग्ध दृष्टि डालकर मुड़कर नहीं देखा। सबेरा होते ही लगता था, इस व्यक्तिका मुझसे कभी किसी युगमें किसी प्रकारका कोई परिचय नहीं रहा है, न जाने यह किसकी प्रेत-छाया है जो घरके आँगनको उजाड़कर यहाँ डोलती फिर रही है। मुझे सब-कुछ तब उजाड़ ही तो लगने लगा था रेवा ! प्रणयकी वे भावभीनी मुसकानें कभी हम दोनोंके ओठोंपर आकर नहीं खेलती थीं। आँखोंके कटीलेपनमें कभी लजीलेपनकी झलक नहीं दीख पड़ती थी। गालोंपर मधुर चुम्बनोंकी भीड़ कभी अंकुरित नहीं हो पाती थी। पतिके स्नेहसद्भावकी पायल पहन, मुझे याद नहीं पड़ता, मैं कभी थिरकी होऊँ। हरदम खाऊँ-फाड़ा वातावरण बना रहता, मेरे अधभूखे बच्चे चीख-चीखकर घर सिरपर उठाये रहते, मेरा आँगन प्रायः बेझड़ा और उदास पड़ा रहता। कमरे सिसियाद-भरे, कपड़े अपर्याप्त और फटे, बरतन गिनतीके टूटे-फूटे—यह हो चली थी हमारी गृहस्थी। अविनाशके पास रुपये होते भी, तो हमें देनेके लिए उनका हाथ कभी न बढ़ता। नाप-जोख कर इतना आटा, तेल, नमक, शक्कर घरमें लाकर पटकते, जिसमें न तो कुत्ते-बिल्लीका हिस्सा बच पाता, न कभी-कभार आ पहुँचे मेहमानका जुगाड़ हो पाता। परेशान होकर कई बार पड़ोससे चीज-बस्त माँगी तो अविनाशने खुद जा-जाकर हम सबकी सौ-सौ बुराई कर उनके सामने हमें नंगा करके छोड़ दिया। अब उनके सामने जाने तकमें झिझक लगने लगी। तीनों लड़कियाँ, लड़का सभी आकाश-बेलकी तरह तेज़ीसे बढ़ रहे थे।

उनकी शिक्षाके लिए मैंने कहा तो अविनाश बोले, "लड़कियोंके विवाहके लिए भी तो रुपया चाहिए, पढ़ाईमें खर्च मैं नहीं कर सकता।" सुनकर मैं धक्क रह गयी। आजकल बिना पढ़ाई-लिखाईके लड़कीको पूछता कौन है और अगर लड़कीको अपढ़-गँवार छोड़ दो, काने-कुब्जेको ब्याह भी दो; तो लड़केको तो रोज़ी कमानेके लिए कुछ पढ़ना ही चाहिए—लड़-झगड़कर मैंने लड़केको गुरुकुलमें दाखिल कर दिया। पहुँच जायेगा तो खर्च कहींसे जुटता ही रहेगा। यही मैंने अविनाशसे भी कहा—अविनाशने खौंखियाकर मेरा विरोध किया, पर इतना कुछ सहकर मैं पक्की बन गयी थी। "मेरा प्रकाश घरमें नहीं पढ़ेगा !" मैंने अविनाशको सुना दिया था, सिर पड़ी अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या करते वे, विद्यालयका शुल्क निपटाते रहे, पर अपनी ज़िन्दगीका मैं क्या कर लूँ, जिसमें एक भी पत्ता हरा नहीं दीखता था। जानती है रेवा, तब मैंने क्या किया, धीरे-धीरे पढ़ना शुरू कर दिया। आठवीं तक मैंने पढ़ा ही था, हाई स्कूल पास करके ट्रेनिंग कर डाली। ट्रेनिंगमें खर्चा सरकारका पड़ता था। बहुत थोड़ा-सा अपने पल्लेसे खरचना था, इसका पूरा मैंने अपना ज़ेवर बेचकर किया, क्योंकि देहातका मकान था, टूटा कच्चा मटैला, कई चीज़ें तो स्वयं अविनाशने ले-ले जाकर बेच डालीं। उन दिनों वे थोड़ा-सा कमीशनका काम करते थे। औने-पौने जो रुपये मिलते, वे घर-वालोंको रुला-रुलाकर खर्च किये जाते थे।

ऊब उठी थी रेवा मैं—'पढ़-लिखकर अपना कमाऊँगी, खाऊँगी और बच्चोंको खिलाऊँगी। बड़ी न सही, छोटी नौकरी सही। इस हृदयहीन काहिल-जाहिल आदमी-से तो मुक्ति मिलेगी'—मैंने सोचा था, पर उसने मुझे यों ही मुक्ति दे दी। बदचलनीका इलज़ाम लगाकर मुझसे छुट्टी पानेकी जुगत निकाल ली। मैं बहुत रोयी-गिड़गिड़ायी, ऊँच-नीच समझाया तो बोले, "तू मेरे कामोंमें बहुत अड़ंगा डालती है! तुझे मुझसे और बच्चोंसे कोई प्रेम नहीं है, निकल जा मेरे घरसे और जबतक मेरा गुस्सा ठण्डा न हो जाये तबतक शक्ल न दिखाना।"

अविनाशका गुस्सा कभी ठण्डा हुआ या नहीं, मैंने जाननेका कोई प्रयत्न नहीं किया। आखिर नारीका भी कुछ स्वाभिमान होता है! बस, उसीके बलपर मैं तनकर खड़ी हो गयी और अपनी माँके पास आकर रहने लगी। आजकल मेरी नौकरी यहींपर है, शायद इस वर्ष और ट्रान्सफ़र न हो, मैं अब सुखी हूँ, शान्त हूँ। बड़ी बेटीको अपने साथ लायी थी, सो पढ़ा-लिखाकर उसे ग्रेजुएट बना दिया। आज उसे सुयोग्य वरके हाथ सौंप, मैं निश्चिन्त हूँ। मेरी बेटी राज करे, पति-प्रिया हो—बस मेरी यही कामना है।

तू पत्र लिखेगी न अब तो? जीजाजीके बारेमें तूने कुछ भी नहीं लिखा। भला क्यों? अगली चिट्ठीमें उनकी चर्चा ज़रूर हो। बच्चोंको प्यार।

अति स्नेहके साथ
तेरी सखी सुमित्रा

५ फ़रवरी १९६...

मेरी प्यारी सखी सुमित्रा,

लौटती डाक तेरा पत्र पाकर मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ। आश्चर्य और आल्हादमें दो क्षण खोयी खड़ी रही। पत्र खोला और एक साँसमें सब-कुछ पढ़ गयी। भाग्यकी कैसी विडम्बना रही सखि, जिसे हीरा समझकर थामा था, वह कंकड़ निकला और जिसके साथ पक्का सौदा किया था वह एकदम बेबुनियाद रहा। तेरी स्थितिपर मुझे दुःख है और सहानुभूति भी, पर इस समय मैं अधिक बात न बनाकर, अपना अधिकार मानकर सीधी-सच्ची बात यह कहना चाहती हूँ कि जो कुछ तूने किया, उसमें तू इतनी जल्दी न बरतती तो तेरे हक़में अधिक अच्छा रहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषकी प्रकृति तो सौ मोड़ लेती ही है, पर यह नारीका कर्त्तव्य-कर्म है, कि मैदानी धारा-की तरह सीधी-सीधी बहकर अपनी मंज़िलको पा ले। पुरुष लाख बुरा हो, पर नारीकी गति उससे विलग नहीं हो सकती। तुझे मैं इतने दूर बैठी भी साफ़-साफ़ देख रही हूँ—उजड़े रूखे बाल, चेहरेपर सिकुड़ी सिमटी रेखाएँ, एकदम एकाकी, पचास रुपल्लीमें अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग पकाती हुई। उधर जीजाजी भी भला कहाँ सुखी होंगे? दो बच्चियाँ, तूने लिखा है, उन्हींके पास हैं। भला नौकर अभाव कहीं पिता पूर सकता है। फिर लड़की जात, सैकड़ों बातें सिखानी-बतानी पड़ती हैं, सत्तर काम समझाने-कराने होते हैं। बाप भला बच्चोंके साथ कहाँतक बँधा रहेगा? नहीं-नहीं, जूते-लात खाकर भी तुझे वहीं रहना चाहिए था। एक लड़कीको तूने पार लगा दिया, पर अभी तो गृहस्थीका सब-कुछ झेलना पड़ा है। जीजाजी तुझे गृहस्थीके लिए कैसा भले नहीं देते, पर तुझे भूखी भी नहीं मार सकते थे। सुन, अपने घरमें क़िल्लत उठाना ठीक है, पर बाहर जाकर ज़िल्लत उठाना ठीक नहीं।

जीजाजीकी सरासर ज़्यादती है, इसे मैं मानती हूँ, पर अपनी सखीका पक्ष भी मैं इस समय नहीं ले पाऊँगी। तुझसे केवल इतना ही कहूँगी, कि तेरा कल्याण इसीमें है, कि तू बिना कुछ सोचे समझे अपने घर लौट जा! मुझे विश्वास है, तू अपनी इसमें हेठी नहीं मानेगी। तूने अपने जीजाजीके समाचार पूछे हैं, निश्चित ही तुझे मेरे पिछले पत्र नहीं मिले हैं, जिनमें-से सबसे पहले पत्रमें मैंने उनकी दुःखद मृत्युका विवरण लिखा था। उन्हें तो इस संसारसे गये पूरे छह वर्ष हो चुके हैं, उनके बारेमें अब लिखनेको शेष ही क्या रह गया है! बीरेन्द्र (बड़ा मुन्ना) सर्विसमें है और बेटीको तो तेरे सामने ही मौसीने गोद ले लिया था।

तेरे निर्णयके सम्बन्धमें प्रतीक्षातुर

तेरी अपनी ही रेवा

■

२० अप्रैल १९६४

प्रिय रेवा,

पूरे ढाई महीने बाद आज तुझे पत्र लिखने बैठी हूँ। तू भी क्या कहेगी, जिस अपने पत्रका उत्तर लौटती डाक पानेके लिए तू उत्कण्ठित थी, उसका उत्तर मैं तुझे आज ढाई महीने बाद दे पा रही हूँ। अबतक तो तू निराश भी हो चुकी होगी। तूने सोचा होगा, मैंने तेरी बातोंसे रूठकर ही तुझे पत्र नहीं दिया। इस सबके लिए पहले तू मुझे क्षमा कर दे, तब मैं तुझसे कुछ कहूँ। रूठने-मानने-के दिन तो सखि, अब बहुत पीछे छूट चुके हैं! मैं सचमुच वैसी ही हो गयी हूँ, जैसी तूने कल्पना की है—रूखे-उलझे बाल, चेहरेपर सिकुड़ी सिमटी रेखाएँ! और बताऊँ, रूखे-उलझे बालोंने अपनी स्याही खो दी है। चेहरेकी रेखाएँ गढ़े बन गयी हैं। तेरा पत्र पढ़कर तब मैं हिचकियाँ भरकर रोयी थी, विशेषतः यह जानकर, कि जीजाजी अब नहीं रहे और यह मानकर, कि मेरी सखीको अब भी मेरी उतनी ही चिन्ता है। तूने ठीक कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहन, कि मुझे सौ जूते खाकर भी अपने घर-की देहलीज़पर पड़े रहना चाहिए था, क्योंकि लड़कियोंका उत्तरदायित्व मेरे सिरपर है। मानती हूँ और तुझे यह बता देना चाहती हूँ (मालूम नहीं, अपने पिछले पत्रमें मैंने लिखा था कि नहीं) कि चार बार मैं अपनी नौकरी छोड़-छोड़कर अपने उस घरमें खपनेकी कोशिश करती रही हूँ, जहाँ मेरा उत्तर-दायित्व मुझे बुला रहा है, पर चारों बार ही मैं बड़े नारकीय ढंगसे भगायी गयी। मैंने वहीं रहकर भी नौकरी करके अपना और अपने बच्चोंका पेट पालना चाहा था, पर सब व्यर्थ! मेरी अपनी आमदनी भी नोच-खसोट ली गयी और मैं ज्योंकी त्यों बेवा-रांडकी तरह पड़ी सिसकती रही।

ख़ैर, यह पुरानी कहानी हो चुकी है अब। उस राह अब मुझे नहीं जाना और जिस राह जाना नहीं, उसके कोस क्या गिनना। वह ज़िक्र अब मैं तुझसे कभी नहीं करूँगी। मैं तुझे तुरन्त प्रत्युत्तर नहीं दे सकी—इसकी भी एक कहानी बन गयी है।

तेरे पत्र आनेके तीसरे ही दिन बेटीको जमाई राजा मेरे पास यह कहकर छोड़ गये कि इसका मन नहीं लगता था, थोड़े दिन परिवर्तन हो जायेगा तो ले जायेंगे। मुझे ख़ुशी भी हुई और दुःख भी, क्योंकि मालूम हुआ, कि बेटी पाँवसे भारी है और जमाई बाबू कुछ मिज़ाजके तेज़ हैं। पूरे डेढ़-दो महीने मैंने बेटीको अपने पास रखा, उसे उसकी मनकी चीज़ें बना-बनाकर खिलायीं, इधर-उधर घुमाया-फिराया भी, और साथ-साथ उसके मनकी बातें भी निकाल लीं।

जमाई बाबूके पास खाने-पहननेको भरपूर है, पर आने-जानेवालोंका ताँता इस क़दर लगा रहता है कि 'तीन बुलाये तेरह आये, घरके गावें गीत'वाली कहावत रहती है। बेटी कभी मन भरके खा-पहन नहीं सकती, तिसपर तुर्रा यह कि काम करनेको एक नौकर-चाकर नहीं रहता। सारा काम बेटी ही को निबटाना पड़ता है। किसीकी खातिर-तवाज़ेमें कमी रह जाये, या कोई काम समय-पर न हो तो जमाई राजा छत सिरपर उठा लेते हैं। डरसे सहमी-सहमी जान लिये बेटी चौबीसों घण्टे कोल्हूके बैलकी तरह गिरस्तीके कामोंमें जुटी रहती है, फिर भी स्नेह या श्रेयका स्वर वह कहींसे नहीं सुन पाती। हाँ, जमाई बाबूकी ओरसे यह आदेश और आक्षेप ज़रूर रहता है, कि तुम्हें रात-दिन हँसते-मुसकराते रहना चाहिए, गृहिणीका तो यही सबसे बड़ा गुण है। बेटी चाहती है कभी वह स्वयं हँसे, कभी उसे हँसाया-बहलाया गुदाया भी जाये! सत्तर बातें वह सुने, तो चार बात इठलाकर वह भी कह सके, पर नहीं, जमाई बाबू बैठकमें बैठकर अपने यार-दोस्तोंके साथ घण्टों हँस सकते हैं, पर बेटीके सामने आते ही उनके मुँहमें दही जम जाता है, केवल चीख-पुकार मचानेके लिए ही उनकी ज़बान खुलती है। नयी ब्याहता पत्नीके साथ ऐसी बेरुखी क्यों—यह जाननेका मैंने प्रयत्न किया तो पता चला जमाईजीके लिए औरत कोई नयी चीज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। दो-चार रखैल अब भी यहाँ-वहाँ उनका इन्तजार करती रहती हैं! सुनकर मेरा तो जी बैठ गया, रेवा! समझ नहीं पा रही हूँ क्या करूँ? अपनी ज़िन्दगी तो जैसी-तैसी गुज़ार ली, पर बेटीके ऊपर यह ज़ोरो-ज़ुल्म! सोचते ही फुरहरी आती है। क्या हम माँ-बेटियोंके भाग्यका निर्माण विधाताने एक ही लीकपर बैठकर किया था। हाँ, एक बात तो मैं तुम्हें लिखना ही भूल गयी, बेटी अगर कुछ कहती है तो उसे यही सुननेको मिलता है—'भई, अपनी माँके चरण-चिह्नोंपर ही तो चलोगी न!' ओह रेवा, माँके कलंककी भागीदार हतभागिनी बेटी बने—यह तो असह्य है! पर सब-कुछ सुन-जानकर भी मैंने बेटीसे यही कहा, कि उसे अपने घरकी देहलीज़ नहीं छोड़नी है। अपनी माँका हाल वह देख ही रही है, उसे बेहद सतर्क रहना चाहिए! इतना ही नहीं, तुम्हारा पत्र भी मैंने उसे पढ़वा दिया, कलको ग़लती करके वह लोक-हँसाईकी पात्र न बन सके, इसीलिए।

इन्हीं झंझटों और दुश्चिन्ताओंमें पड़ी मैं तुम्हें पत्र नहीं लिख सकी। उधरसे पत्र आया था, बेटीको यहाँ पहुँचा जाओ—मेरा आना नहीं हो सकेगा! तो मैं क्या करती, खुद पहुँचाकर आ रही हूँ इस समय।

आज मैं एकदम अकेली हूँ। जीवनके खोखले और अधूरेपनके प्रतीक पत्ते बाहर खड़र-खड़र बज रहे हैं। बस इस अँधियाली रातमें खिड़कीके पार टिमटिमाते जुगनू ही आशाके धुँधले दीप बनकर मुझे जिला रहे हैं। आज इतना ही—

तेरी हतभागिनी सखी
सुमित्रा

■

१४ अक्तूबर १९६४

प्यारी सखी सुमित्रा,

तू भी कहेगी, मैंने समयपर पत्र न लिख-कर तुझसे बदला लिया है, पर क्या सुनाऊँ, तुझे यहाँकी रामकहानी—वीरेन्द्रकी बदली पिछले दिनों चण्डीगढ़ हो गयी, तो मैंने शुक्र मनाया। वहाँ बिजनौरमें उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, शायद चण्डीगढ़का पानी रास आये। तू कहेगी, चण्डीगढ़ तो बेटीकी ससुराल है। यही तो मैं कहने जा रही हूँ, अकस्मात् मकान भी मुझे बिलकुल अपनी बेटी इन्द्राके घरके पास ही मिला। मैंने अपना परिचय दिया, कहा, मैं तेरी रेवा मौसी हूँ, तो बेचारी बेहद ख़ुश हुई, हर्ष-विह्वल हो कई क्षण मेरे कलेजेसे चिपटी रही। इतने दिनसे तुझे पत्र नहीं लिखा, सोचा तुझे कितना लिखूँ, क्या लिखूँ, नहीं ही लिखूँ तो कैसा रहे, पर कल तो पानी सिरसे ही उतर गया समझो—जितना हाल तूने मुझे लिखा था, उसका सौ गुना अधिक बढ़ा-चढ़ा देखनेको मुझे यहाँ मिला।

मैं जो कुछ तुझे लिखूँगी उसपर शायद तू भी विश्वास न करे, पर बात सचमुच ऐसी ही है—आँगनसे पानी भरकर ले जाते हुए इन्द्रा बेटीका पैर खटपटियोंके कारण फिसल गया, गिरते ही जो होना था वही हुआ। दर्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असह्य हो जानेपर मैंने दामादको अस्पताल लेजानेकी सलाह दी, पर सब-कुछ देख-सुनकर वे बोले, "ऐसा तो होता ही रहता है, मामूली बात है, क्या फ़ायदा रुपयेका चूरा करनेसे !" पर आधी रातको मछलीकी तरह तड़पती बेटीको मुझसे नहीं देखा गया। बीरूके साथ खुद अस्पताल ले जाने लगी, तो बोले, "आपको क्या हक़ है, मेरी पत्नीको यों ले जायें। मेरी तबीयत होगी, उसका इलाज करवाऊँगा, नहीं तबीयत होगी, मार डालूँगा। आप कौन होती हैं बीचमें पड़नेवाली ?"

"मैं कोई नहीं होती, पर मरते हुए पराये आदमीकी पुकार भी सुनी जाती है, फिर यह तो मेरी बेटी है, तुम्हारे घरकी रोशनी है, इसकी रक्षाकी कोशिश होनी ही चाहिए।" मैंने शान्त स्वरमें कहा।

सुनते ही जमाई बाबूका ग़ुस्सा १०७ डिग्रीपर पहुँच गया और मेरे सामने ही उन्होंने अपनी भारी लात और फिर भारी-भारी घूंसे, बेटीकी पीठपर दे मारे ! अस्पताल ले जानेकी नौबत ही नहीं आयी। सवेरेकी रही-सही कसर इस समय पूरी हो गयी।

मैं नहीं जानती, तू मेरी जगह होती तो क्या करती। मैं तो बेटीको अपने घर ले आयी हूँ, उस कसाईके घर उसे न भेजनेकी मैंने क़सम खा ली है। ऐसे राक्षस आदमियोंको राह पढ़ानेके लिए, स्त्रियोंका स्वयंको आत्मनिर्भर बनाना, बहुत-बहुत ज़रूरी है। आखिर स्त्रियों का भी कोई हक़ होता है।

बेटीकी ओरसे तू एकदम निश्चिन्त रह, वह यहाँ बिलकुल ठीक है। दुनियामें जीने तरीक़ा उसे अब मैं सिखाऊँगी। बीसवें शादीकी बात एक जगह चल रही थी, वहाँ उसने अब जबरदस्ती इनकार लिख दिया है। हाँ, एक बात और, तुझे मैंने पत्र इससे पूर्व लिखा था उसे तू जरूर फाड़ डालना।

तेरे विश्वासकी

[पृष्ठ ४७ का शेष : शरीरके भीतर]

बैठे चार यात्री उसीकी ओर अपलक ताक रहे हैं। भीतर-ही-भीतर कैसा विचित्र भय लग रहा है अरूप को। बरतन गिरनेकी-सी ध्वनिकी तरह ही उसके रग-रगमें भी गुनगुनाहट पैदा हो गयी है। उठकर दरवाज़ेके पास आ खड़ा हुआ है वह। साँस लेनेमें तकलीफ़ हो रही है उसे, एक प्रकारसे शरीरके भीतरके अंगोंमें भी स्पन्दन शुरू हो गया है उसी क्षण। हठात् कमरेके बाहर उसकी दृष्टि जाती है। देखता है, वह जितना ही नज़दीकसे उन अंचलोंको देखने से छूना चाहता है, उतनी ही तेजीसे वह पीछेकी ओर भागा जा रहा है।

कहीं अपनेमें ही रिक्तता रह गयी सोचते ही वह ट्रेनसे कूद पड़ा है। रेलगाड़ी उसे ग़लत दिशाकी ओर रही थी—अब लौटती ट्रेनसे सीमाका स्टेशन—कोर्टरूम पहुँचा जा सकेगा !

(अनुवाद : सिद्धेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

एक सुबह का सफ़र

अमरेन्द्र 'अमर'

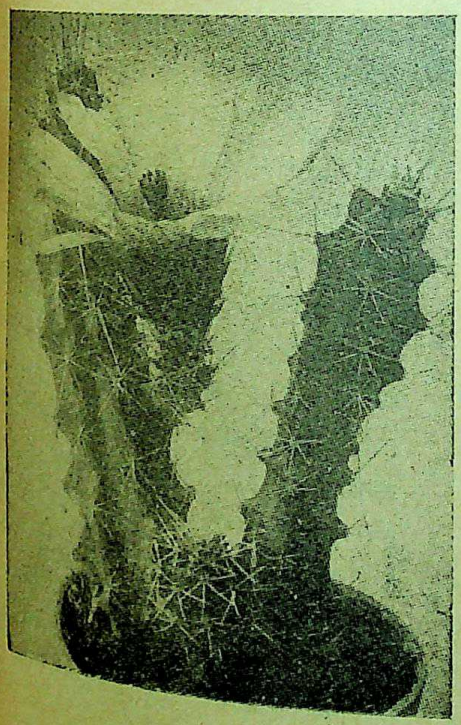

आधी रातका चाँद चोर होता है—खिड़कियाँ बन्द भी हों तो पतली दरार काफ़ी है उसके गुमसुम क़दमोंके लिए, बे-बुलाया मेहमान मगर काफ़ी परिचित। लेखाको चाँदनी अच्छी नहीं लगती—एक तरहसे चिढ़ है। सुधाकर अजगर है, उसे आहिस्ता-आहिस्ता निगल रहा है और वह बेसुध, दर्दकी भयानक गहराइयोंमें सिमटती जा रही है। पहले आधी रात गये कोई सपना अचानक टूट जाता और वह उनींदी आँखोंसे एकबारगी आसमानपर टँगे चाँदको देख लेती। फिर नींद काफ़ूर—और सामने चाँदनीका सम्मोहक शृंगार। वह बिना फूलोंवाली मालाएँ गूँथती। कैसे-कैसे अद्भुत बन्दनवार सजते सामने। वह दुलहन बनती····टप्-टप् आँसू चू पड़ते हैं उन दिनोंकी याद आते ही। अतीत कभी चुकता नहीं। दरवाज़ेपर हठी पागलकी तरह खड़ा रहता है—जाने कब-न-कब भीतर आकर उथल-पुथल मचा जाये।·····

उसकी बड़ी बहन खुदको एमिली ब्रोण्टेसे कम नहीं समझती थीं। कहतीं—"एक वूदरिंग हाईट्स लिखनेसे क्या होता है—खामखाह रहस्यका जामा मत पहिनाओ—मुझसे तो नहीं होगा। मैं जो लिखना चाहती हूँ, वह शायद ही समझा जा सके।" और कहते-कहते चेहरेपर ऐसा गाम्भीर्य झलकता कि लेखा अपनी सारी सामर्थ्य, शोख हँसीको बाँध सकने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लगाये रहती। जीजी पढ़ती बहुत थीं—इसमें शक नहीं। हाँ, डॉक्टरेटकी थीसिस अस्वीकृत हो गयी थी। इस ख़ुशीकी क़ीमत उन्होंने पूरी आलमारी तोड़-फोड़कर चुकायी। सारी किताबें छिन्न-भिन्न हो गयीं—लेखा पूरी तत्परतासे उन्हें सहेज-सहेजकर अलग रखती। बात एकदम मामूली थी; चूँकि यह अप्रिय घटना बिलकुल ताज़ा थी इसीसे पारा चढ़ा हुआ था कि बारूदमें चिनगारी आ पड़ी।

कुछ दिन बाद जीजी उस दुःखको भूल गयीं, जैसे कोई बुरा सपना हो, जिसे बिसार दिया। तपती जेठकी दुपहरी, अँधेरा कमरा, बाहर खसकी टट्टियाँ, पानीके निरन्तर छिड़कावसे भींगी। जीजी चटाईपर लेटी कोई फ़िल्मी पत्रिका देख रही थीं। चेहरेपर मुस्कराहट होठोंसे बाहर अनेक बहुरंगी किरणोंमें छिटकती। और उस मोहक ज्योतिमें सम्पूर्ण मुखाकृति आरक्त हो जाती। लेखा पास सरक आयी। कहा, "जीजी, एक बात पूछूँ?"

"पूछ।"

"तुम्हें 'किरणमयी' पसन्द है क्योंकि वह आश्वस्त भावसे सोती रही जब कि अरथी निकल रही थी घरसे—"

"हाँ, हाँ, उससे क्या होता है—किरणमयी फिर भी पसन्दके लायक़ है।"

"वह मुझे भी है...." (कहना चाहती थी—मैं वही बनना चाहती हूँ!)

जीजीकी निगाह अबतक किसी रंगीन तसवीरपर गड़ी थी—होठ उत्तर-स्वरूप हिलते और नपे-तुले शब्द अर्थ कह जाते। 'उहुँक'! यह कौन उसके भीतर चिहुँकता है? सामनेका सब कुछ धुल जाता है और उस खिड़कि पानीमें जो नज़र आता है—उसे वह बेबस भावसे ग्रहण करती है। आह! भी काश इसी तरह धुल-बह जाती। कहाँसे धुआँ उठ रहा है....लकीरें आपसे खिचती चली जा रही हैं।.....जबसे खुली हैं—खिड़कीसे लगी पड़ोसकी दीवार भींगती नज़र आयी। रातसे बरसा हुआ मेह रुकनेका नाम नहीं लेता था। अजीब-सी नमी पगी ठण्डी खुशबू पानीके छींटोंके साथ उड़ती और उसका अन्तर भींग जाता। एक अनाम प्यार मनमें उमड़ता। बारह बजे पानी हलका-हलका अब भी बरस रहा था। खुश इसलिए नहीं हुई, मुमकिन है, डाकिया पानीकी वजहसे बहुत-बहुत देर कर दे—उफ़्! अभी यह बारिश मनभावनी थी। अभी इसकी सूरत कितनी मनहूस लगने लगी। डाकिया आया। पत्र फेंककर चला भी गया और वह अपने कमरेमें उदास बैठी रही—आँखें भर-भर आती हैं तो बरसता हुआ पानी धुँधला लगने लगता है। यह कैसी छटपटाहट है—बहुत बार अपनेसे पूछती है—भीतर जोरोंसे हँसी फूटती है और उसके छींटे उसे भिगो शरमा जाते हैं—वह इतनी ख़ामोश जो है—हँसी किस उमंगसे भीतर आयी थी किन्तु ख़ामोशीकी सर्द छाया तले देखकर ठिठक गयी। उसे बचपनकी एक बात याद आती है... पैरमें अँगूठेके पास एक तेज़ खराश लगी थी—बराबर ख़ून रिसता था और दो दिनों तक वैसा ही रहा। बार-बार छलछलायी आँखोंसे घावको देखती और उसे वह ज़्यादा गहरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता। लोग उसे शक्की कहकर हँसी उड़ाते—ज़ख्म मिट गया, निशान भी। किन्तु हँसी-हँसीमें भुलावा देते हुए वक़्त जो निशान छोड़ जाता है, वे बजाय मिटनेके सब मनके भीतर धँसते चले जाते हैं।

रात कितनी सर्द है····ख़ामोश है, पत्तेकी तरह। यह ख़ामोशी सदियोंसे इसी तरह अपने कटघरेमें क़ैद है। इस वक़्त लेखा भूल गयी कि वह अपने घरमें है जिसका कण-कण उसकी ज़िन्दगीसे जुड़ा है। जाने क्यों ख़यालोंके क़दम कुछ बहक गये और बात कहाँसे कहाँ पहुँच गयी—वह भी अनजानेमें ही। हठात् यह क्या हो गया! कारवाँके सामने जैसे यकायक कोई राह खुल गयी! वह जिन बेनज़ीर पगडण्डियोंसे गुज़र रही थी—गुज़र न सकी। कोई कहने लगा—कभी-कभी बहुत पासकी चीज़ आकाश-कुसुम बन जाती है। इसलिए भी कि उसे एक हद तक हमारा निजी निर्णय मान्य समझता है। वो अपने कमरेमें—निश्चिन्त—करवट भी नहीं बदलती। दिन-भर उसे दुलारोंके सायेमें लिये चलती—इतना अकथ स्नेह पहले कम था? नहीं—रत्ती-भर नहीं। आज दिखावेका रत्न-जटित पहाड़ बनकर उसे छाये हुए है चारों ओरसे—प्यारकी इस पावन नदीमें नहाकर उसका मन हरा ज़रूर हो उठता है मगर कहींसे एक आवाज़ अपनी गति बढ़ाती है और उसे विवश करती है।····

पिछले चार महीने हुए, एक वारदात उसकी ज़िन्दगीमें हुई—कहते हैं, इसका ज़िक्र ही क्यों, साँस लेनेकी तरह इसका भी होना निहायत ज़रूरी था। यों तो छोटी-मोटी लहरें आती-जाती रहती हैं और इनके आने-जानेमें इतनी मधुर एकरसता होती है कि कुछ पता ही नहीं चलता, कभी भूले-से बाढ़ आ जाये तो उस कायाकल्पमें पहलेकी कोई बात कहाँ साबित बच पाती है! न वह रंग, न वह रोशनी। धरती बदली हुई—आसमान, अनदेखा। घरसे वह बाहर जानेके लिए सैकड़ों बार निकली होगी, अपनी लम्बी सफ़ेद गाड़ीमें। उस दिन निकली तो हज़ार मनका बोझ उसके आहत प्राण-पंखोंपर बैठ गया। वह फूट-फूटकर चीख न सकी। हतप्रभ-सी धुँधली आँखोंसे सजी मोटरको देखती हुई सामने बढ़ने लगी। लगा, कुछ भी करे, औपचारिकता ही होगी—वह भी अपने साथ। छिः, कोई उसकी बग़लमें आकर बैठा—और गाड़ी चली। एक साथ बिदाईसे बोझिल वातावरण और भी घनीभूत हो गया—किन्तु गाड़ी बेदर्द हवाकी तरह उस कोहरेको चीरती हुई आगे बढ़ी। साधिकार किसीने उसे अपने क़रीब खींचा। बस एक माथेपर ताज़ा खिंच आयी लाल लकीर कह रही थी कि यह कमज़ोर होकर भी उसके लिए ज़ंजीरसे कम नहीं। वह इसीसे बँधी है····और यह क़ीमती कपड़ोंमें सजा बाबू उसका हमसफ़र है। ज़ान-पहचान, साथी चुननेके लिए ज़रूरी नहीं। चलती गाड़ीमें कई बार हवाके तेज़ झोंकेकी तरह बवण्डर-सा उठता—दरवाज़ा खोल दे और कूद पड़े। कभी लगता, कोई विराट् शक्ति उसे थोड़ी देरके लिए अपनी शरणमें बुला लेती।····किन्तु वह कोरा बवण्डर बस ठगनेका एक कोरा उपक्रम था। जटायुके प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ रावणकी तीखी तलवारका सामना कर सके—राजरानीका हरण होना था, हुआ ! कटे पंखों और आँखोंमें बेबस आँसू लिये मरते जटायुके मनमें ज़ख्मोंकी नहीं, अपनी असमर्थताकी करुण कसक थी और यह उसके लिए कितना असह्य था।....

....समुद्रकी लहरोंमें घिरे रहना उसे बड़ा प्रिय था—जाने कैसे यह ख़याल ज़िद्दी कीड़ेकी तरह बेवजह चिपक गया था मनकी भित्तिसे। अब ग़ौर करती है तो उसे यह एहसास होता है कि तमाम ज़िन्दगी ही हलचलोंसे बुरी तरह आक्रान्त गुज़रती है। विराम एक छलावा है—एक मनगढ़न्त प्रकाश-स्तम्भ जिसे किसीने देखा नहीं। तूफ़ान न हो तो सभी आलोकके ख़्वाबमें ग़र्क़ रहते हैं। अँधेरेकी सघन परछाइयाँ उभरते ही ख़्वाब कबके दफ़न हो चुकते हैं। दसेक दिनोंमें वह वापस चली आयी। माँने ऐसे कलेजेसे सटा लिया जैसे किसी अजनबी देशसे भटकती हुई, दिनों बाद बेटी घर लौटी है। न माँके आँसू रुकते थे—न बेटीके। मगर फ़र्क़ था उन दो उन्मुक्त धाराओंमें। एकमें गहरी आत्मीयता तो थी ही : लड़की दूसरेकी हो गयी—इसका बोध ज़्यादा था। अतः व्याकुलता स्वाभाविक थी। दूसरी तरफ़ गहरी अन्तर्वेदना उफन रही थी जिसमें जीवनका सेतुबन्ध ही आमूल उखड़ चुका था। कुचली हुई हसरतोंकी मिट्टी थी। जिसकी साँसोंमें विषाक्त जलन उबलती। अपने कमरेमें पहुँची तो हर चीज़ वैसी ही थी—कहीं रद्दो-बदल नहीं, दीवारपर कॉलेजकी शोख किन्तु अत्यन्त ही बुत-सरीखी ख़ामोश रहनेवाली लेखाकी तसवीर है—जिसकी आँखोंमें बड़ी गहरी झीलें समायी हुई थीं। वह सुदूर आँख न मिला सकी। 'मैं वह लेखा कहाँ हूँ जो थी !' जाने कैसे किसीने भीतर-ही-भीतर शूल चुभोते हुए उससे यह उगलवा दिया। वह उन दस दिनोंमें कितने रंगोंमें नहायी। ख़ुद शराबोर हुई और अब भयानक खालीपन। पथरा देनेवाली घुटनका आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ते जाना। दो मिनिट मौन पलंग पर बैठी रही तो लगा, युग तेज़ीसे बीत रहे हैं—वह ऐसी मोमबत्ती है कि चुकती ही नहीं। बस जल रही है सो जल रही है। सुबहके दस बजेसे आकाश मेघाच्छन्न। हवाओंका हेपनाह घेरा आकाशको ऊपरसे नीचे तक ढके था। दूर-दूरसे दिखाई देनेवाले ताड़ होममें थे। यह कैसी मस्ती है हवाकी ! एक शोर था जिसे सुनकर वह आपेमें न रहती। सहसा उसे लगा—रातकी गाड़ीसे वापस लौट जाये, कोई कुछ भी कहे, यहाँ तो आते ही राक्षसी रिक्ततासे साक्षात्कार हुआ। दूसरे ही मिनिट भीतरकी यह क्षणिक गुमराह आँधी रुक चुक गयी। उसे लगा—ऐसा भी कोई सोचता है। यह क्या हो गया है उसे ?

माँने अचानक आकर पूछा—"क्यों बेटा, जी कैसा है ? बहुत थक गयी हो सफ़रसे ?" वात्सल्यकी पीयूष वाणी सारी तपन सोख गयी जैसे। वह भीतरसे हरी हुई। उठ बैठी। बोली, "नहीं माँ, बस ऐसे ही लेट गयी थी। तुम भी सोचती होगी—मैं कुछ परायी हो गयी हूँ !" और अपने ही कहे शब्दोंपर उसका गला रुँध गया और आगे कुछ बोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाती कि आँसुओंने अपनी भाषामें कुछ कहनेका दायित्व ले लिया। माँ भीतरसे उमड़कर रह गयी। छलछला आयी आँखोंसे कहा, "पगली, तू गुड़िया ही बनी रहेगी क्या?" और फ़ौरन कमरेसे बाहर हो गयी जैसे कोई काम याद आ गया हो। घरमें उस वक़्त बाहरसे आये मेहमानोंकी कमी न थी। माँ चली गयी तो लगा, किसीने जादूई छड़ी छुला दी। सारा दर्द ही एक झटकेसे सिमट गया एक ओर। अरे, यह क्या? उसे ख़ुद ही आश्चर्य हुआ। शेल्फ़पर रखी किताबें उलटने लगी--अकसर रत्नाकी चिट्ठियाँ माँ किसी किताबमें दबाकर रख देती थी। रत्ना बचपनकी दोस्त है। पिछले वर्ष वह भी दुल्हन बनकर देहरादून गयी, मगर हाँ, जाते वक़्त उसके आँसुओंमें भी हँसीकी मनोहर स्निग्धता थी। चहेता ही जीवन-साथी बन गया था। एक लिफ़ाफ़ा मिला मगर उससे खोला नहीं गया। जाने क्यों? उसने लिफ़ाफ़ेको वहीं दबा दिया।

सूरजका आधा सफ़र समाप्त होता है—मगर किसीको पता नहीं चलता। लेखा दोका वक़्त देखकर रेडियोपर नज़र दौड़ाती है कि एक खिलखिलाहट, पहचाने हुए क़दमोंकी आहट कानोंमें पहुँचती है। आते ही शोभना उससे लिपट जाती है--उसकी सबसे बेतकल्लुफ़, मुँहफट दोस्त। और फिर तेज़-तर्रार बातोंकी ऐसी बौछार कि लेखा बारबार शरमा ही नहीं जाती, गुस्सेकी आँचमें भुलाकर ख़ामोश रह जाना पड़ता था उसे।

शोभना पूछती--"सुना, इस्तीफ़ा देनेका इरादा है?"

"हाँ, कहते हैं, नौकरी सिर्फ़ तबीयत बहलानेको की थी और फिर कारोबार कम बड़ा नहीं।"

शोभना सुनकर अन्दरसे जल गयी—किसी प्रोफ़ेसरसे शादीकी बात चल रही थी उसकी। लेखा जानती थी, पैसेपर कितना जान देनेवाली लड़की है! रात आठ बजे तक हँसती-हँसाती रही। बातोंका जाल इतना घना कर दिया कि लेखाका दिमाग़ उसमें उलझता गया। पोर्टिकोसे उसे लेकर मोटर आगे बढ़ी तो हठात् लेखाको लगा, क्या था, आज शोभनाको रोक लेती। जाने कैसी रिक्तता है कि उधर गाड़ी खिसकी इधर मन फिर बवण्डरकी पकड़में आ गया। "मेरा सुधाकर कैसा होगा?" बस इसी बातपर, लगा, किसीने कलेजा ही मथ डाला हो! वह भीतरसे शिथिल पड़ने लगी और आँसू लोकलाजकी तनिक परवाह किये बिना बहने लगे। वह तो किसीकी नज़र नहीं पड़ी--वरना अचानक लेखाका इस तरह फफक उठना जाने क्या तूल खड़ा कर देता! कमरेमें आकर वह ग़ौर भी न कर सकी कि आख़िर यह बाँध टूटा कैसे? हर बार जवाबमें बस एक ही नाम उठता—'सुधाकर'। तकियेमें मुँह गड़ाकर रोये जा रही थी। हर चीज़से बेख़बर। यह सुधि भी जाती रही कि कोई आ जाये ऐसेमें तो? जाने कब आँसू चुक गये, बस यही याद है। बेइख़्तियार बोझिल पलकें उसे बार-बार छूतीं। तुरतके गये हुए ज्वारकी याद दिलातीं। यूँ भी एक साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुज़र गया था उसे देखे हुए और यह भयानक बाढ़ तो बहुत हालमें उसे कच्चा लील गयी थी। पिछले कुछ महीनेसे वह थी ही कहाँ जो सुधाकरको याद करती। जिस लेखामें वह अन्तर्हित था, उसे नियतिने किसी अदृश्य कारागारमें बन्द कर रखा था। आज वही लेखा एक अलंघ्य चहारदीवारी पार करके आ गयी है। अभी माँसे बुलाकर सुधाकरके बारेमें सैकड़ों प्रश्न कर डाले तो कैसा हो ?

लेटे-ही-लेटे एक वाक़या सामने आया :

अनायास--अपने घरसे बहुत दूर। शादीमें आये हुए एक परिवारमें। चारों तरफ़ अथाह सोल्लासपूर्ण वातावरण। कॉलेजका पहला ही साल था लेखाका। टैक्सीपर रातका शो देखकर लौट रही थी। माँ बग़लमें ऐसे उदास थी मानो हॉस्पिटलसे किसी रिश्तेदारकी मौत देखकर लौट रही हो। बहुत ग़मगीन चेहरा था। लेखाने उस वक़्त भी छेड़ा—"माँ चुप क्यों हो ?"

"चुप न रहूँ, ऐसी भी फ़िल्म होती है भला—रोना-ही-रोना, शुरूसे आख़िर तक। मेरा तो मन अभीतक जाने कैसा कर रहा है !"

लेखा इतनी ज़ोरसे खिलखिला उठी कि माँको बरबस थोड़ा ग़ुस्सा हो जाना पड़ा था। कुछ मिनिट गाड़ी चलती रही। कोई कुछ नहीं बोला। माँकी आंखें खिड़कीसे बहुत पार जा रही थीं। वह सोचती जा रही थी कि हीर-राँझाकी कहानी माँको इतना भा गयी। लगता था, थोड़ी चेष्टा भी दुखती रग-पर होती तो माँ सचमुच रो पड़ती।"...

माँने कमरेमें प्रवेश किया तो देखा—बेटी रेडियो सुन रही है। चेहरेपर कोई चिह्न था भी नहीं कि व्यस्ततामें डूबी माँ परख सकती कुछ।

"चल, चल, खायेगी यहीं—बाहर किसी लोगोंने तेरे इन्तज़ारमें खाया नहीं है।"

लेखा मुसकराती उठी। वह किसी बदली हुई थी। दुःखीसे दुःखी व्यक्ति अपना पार्ट अदा करते वक़्त उसीके अनुरूप अपनेको ढाल लेता है। थोड़ी देरके लिए सब कुछ मसोसकर, अपना काम अनासक्त भाव करता है। बाहर आयीं तो जाने कितनी जानी-पहचानी नज़रोंने बींध कर रख दिया उसे। वह तो लज्जावनत-सी एक ओर सिमटती चल रही थी। कभी कानोंमें हलकी-हलकी हँसीकी खनक पड़ती। कभी किसीकी चुहल-भरी बातें। लोग आहिस्ता आहिस्ता अपने दायरेमें खिचते चले गये। माँ देर तक लेखासे बातें करती रही। रात तो नहीं फिर भी एकका वक़्त हो रहा था।

"अब सो रहो माँ ! बहुत सुबह ही उठने की आदत है तुम्हें--" बेटीके स्वरमें भीगी करुणा माँको अपूर्व सन्तोष आह्लादित कर गयी। माँने रोशनी मद्धिम दी। और जानेसे पहले बड़े ही प्यारसे माथेको छुआ। रह गयी फिर अकेली और उसका एकान्त कमरा। उफ़, यह घुटन है—वह यहाँ कितनी विवश है फूल टहनीसे पत्थरोंके बीच आ गिरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी कमनीय कान्तिपर मात्र क्रूर अट्टहास ही हो।

....वे दिन कितने सुकुमार थे। तभी तो प्रखर धूपकी एक ही परीक्षाने उसकी सारी हरीतिमा सोख ली। उन्हें जर्जर, पिंजर कर दिया। भटकती हुई रूहोंकी तरह जो महज़ शारीरिक आकृतियोंका अक्स लिये फिरती है। समन्दरमें बड़ासे बड़ा तैराक हर-हमेशे पार नहीं हो सकता। समन्दरकी मुश्किलें आसान करनेके लिए जहाज़का सहारा अत्यावश्यक है। सुधाकर उसके बेहद क़रीब था, इतना कि एहसास होता, वह लेखा रही ही नहीं। बस केवल सुधाकर ही है जो आसमानकी तरह दिन-रात छाये हुए है। दुनियामें सूरज और चाँदकी तरह एक चीज़ और नहीं रहती—पैसेकी माया। इसके रूप-गुणोंकी प्रकृति शाश्वत है। सुधाकर और उसकी बहुत दूरकी सह-यात्राका लम्बा चित्र बेकार है—सिर्फ एक बात इस वक़्त और कौंध गयी है। कृष्णाष्टमीका दिन था। सुबह अलकाके साथ कालेजमें गयी—सुधाकरसे भेंट हुई। ऐसी मनोहर भेंट कि लेखा खिल गयी। अलकाने अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे साश्चर्य अपनी बड़ी बहनको देखा था। क्या मुहब्बत इतनी बेपर्द मगर गंगाकी तरह पाक होती है? किसीकी भी परवाह नहीं करती? माँ बहुत खुश थी—बहुत—बहुत—लेखाको लगा। माँसे आज कुछ माँग ले? नहीं कहना आज उसके वशकी बात नहीं होगी। कमरेमें कोई नहीं था। सजा हुआ शान्त कमरा। दोपहरकी ठण्ढी खामोशी। माँ फूलोंकी अनेक क़िस्में काटकर अलग-अलग बरतनोंमें सहेजती जाती। होठ पानसे रंगे थे। और पास ही पानका डिब्बा भी था। होठोंपर मन्द मुसकान थी जो बच्चोंको ढीठ बना देती है।

"माँ!" जाने आपसे-आप लेखाके होठोंसे निकल गया।

"बोल बेटा, कुछ चाहिए?" माँने कितनी निश्छल आँखोंसे देखा था उसे। लगा, सारा प्यार ही उड़ेल देगी आँखोंसे। भीतर भँवर उठ रहा था—एक अव्यक्त हलचल थी मगर आश्वासनकी चिड़िया मनको बार-बार उकसाती। सुधाकरका चेहरा उसकी आँखोंके आगे खिंच जाता। माँने फिर उसे देखा। कैसी मुग्ध छवि है माँकी। कह दे लेखा—माँ सब कुछ वर देगी। और माँकी गोदमें सिर छुपाकर लेखाने कह ही तो दिया। कई मिनिट बीते....उसे लगता, हर क्षण माँके निर्णयका अनन्त स्वरूप बनकर आता है। डर भी लग रहा था, कहीं माँकी वह मनोनुकूल कृपा उससे छिन न जाये। एक चेहरा ऐसा भी सिर छुपाये हुए उसकी बन्द आँखोंके बीच आ गया, जो बिलकुल कठोर हो गया था सहसा। कोई हरी घाससे पगी जगह अचानक चट्टानमें पलक मारते परिणत हो जाये। ऐसा ही था माँका बदलना। ग़ुस्सा हाथ जोड़े बराबर खड़ा रहता था उसके आगे। वह जब चाहे उसका उपयोग करती। माँने उसका सिर उठाया नहीं, न ही ऐसा कुछ प्रकट होने दिया कि वह क्या सोच रही हैं और सिरपर बड़े ही प्यारसे हाथ फेरा। उसे सहलाते हुए उसकी पीठपर हलकी-हलकी थपकियाँ देनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू कीं। जब उसने सिर उठाया तो माँसे नज़रें मिलानेमें जाने कैसा संकोच जकड़े हुए था। फिर भी उसे क्यों लगता था, मुसकान माँके होठोंसे वापस नहीं गयी है, अगर वही है तो माँ बोलती क्यों नहीं। और उसने सहसा पाया, उसकी और माँकी निगाहें एक झटकेसे मिल गयी हैं—उसने नज़रें सहसा झुका लीं किन्तु माँकी नज़रें सर्राहट लिये गोलियों-सी थीं। अन्तरतमतक वह काँप गयी। यह कैसा ग़ुस्सा है माँका? मुसकराहट भी है और आँखोंमें एक पलमें ज्वाला बनकर प्रज्वलित होनेवाली आग भी। आँसुओंके भारीपनसे लगा, सचमुच चू ही पड़ेंगे किन्तु ख़ुश्क पत्थरकी तरह आप-ही-आप पुतलियोंमें जम गये। जाने कितने मिनिट इस तरह बीते होंगें कि माँ अपनी दहकती हुई आँखोंसे रोष प्रकट करती रही और····वह उसी तरह निर्वाक् फटी-फटी आँखोंसे सोचती—हाय, ऐसा क्या मुँहसे निकल गया—माँ इस तरह कभी नहीं करती थी। जन्माष्टमीका उत्सव बीत गया। रात-भर लोग जगे ही रहे। शोर-गुल व हँसीके दौर चलते किन्तु लेखा बुझ गयी थी। एक सूखी सरिता, जिसमें एक लहर ज़ोरोंसे उठी थी कि पानी सहसा सूख गया। कैसा जादूई आतंक था। जबसे ज़िन्दगी-को समझने लगी थी—आदर्श नामक बलाका दम स्वयम् उसने अपने हाथों घोंट दिया था। जाने कैसी अनामा रिक्तता थी उसके भीतर जो पोर-पोरमें बसकर, अब उसे अपने ज़ह-रीले करामातोंका एहसास करा रही थी।····

दोपहरको ही बारिशके रंग-ढंग दिखाई देने लगे। अभी जन्माष्टमीके दिनका घाव ही हरा-भरा था। लेखा कमरेमें उदास सुबह ही एक मनहूस खबर अपने सुनकर वह ज़्यादा ग़मगीन बनना नहीं थी। जानी हुई बात अपनेमें एक खबर है। उसे ज्ञान था, शादी पक्की करनेकी बल दिया जा रहा है। और अपने बन्द उसे रह-रहकर लगता, आखिर सारे नयके बावजूद उसका भी वही हश्र हुआ कहानियोंमें उसकी परिस्थितिमें आयी कियोंका होता है। और क्या, यही घटनाएँ लोग लेते हैं। बार-बार मौतका ख़याल में लाती। इससे उसको दुखती हुई अनुभूति को सुकून मिलता। अपनी सहेलियोंमें ठहाके लगाते हुए उसका दिल कभी-क काँप भी उठता था। किन्तु वह स्वभाव शिकन तक उभरनेसे रोक देती। शारदा एक दोस्त थी। नाम ही भर सुन्दर देखनेमें साधारण, स्वभावकी ज़िद्दी, मनवानेका ख़याल ज़्यादा उसमें था। "ये सब फ़िज़ूलकी बातें हैं महारानीजी, ही झटकेमें यह दिमाग़ी सपना छू-मन्तर जाता है। किसी-किसीका हो जाये—एक बात है। और आप अपने बारेमें सोचें—कैसी कड़ी पहरेदारी है माँ-बापकी। और खिलखिलाती कि रुकनेका नाम फिर कई सहेलियाँ शरीक होकर सचमुच पानी-पानी कर देतीं। घटाएँ उमड़ी हुई आतीं और अपनी पंक्तिबद्ध से आकाशपर एक अनन्त चादर खींच उसने खिड़कीके परदे सरका दिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर देखनेपर अन्दाज़ यही मिला। घण्टे-भरमें बारिश शुरू हो सकती है—तैयारी ज़ोरोंकी है। ठगनेवाली झींसियाँ नहीं होंगी इस बार, इसे हवाकी बोझिल होती तेज़ साँसें कह रही थीं। वह डबडबायी आँखोंसे निरुपाय ऊपर देख रही थी—जैसे कोई रहमदिल मददगार ऊपरसे उतरकर उसे सुधाकर तक पहुँचा देगा। झोंके लगातार आते ही रहे हवाओंके। बेरहम मनने चैन देनेसे इनकार कर दिया था।

बस उसी दिनसे माँने उसे एक घेरेमें क़ैद-कर लिया। मनका सपना भीतर ही तड़फड़ा-कर चूर-चूर हो गया। एक बार सुधाकर उसे रेस्तराँमें ज़िद करके ले गया कि बहुत ही ज़रूरी बात करनी है—कभी उसके परीशान चेहरे और साथ उभरती परिचित मुसकराहट-पर नज़रें गड़ाती वह समझ नहीं पा रही थी कि यकायक क्या ज़रूरी बात पैदा हो गयी कहनेको—वह खिंची हुई चली आयी। दोनों आमने-सामने हुए और लड़केने नाश्तेका सामान रखा और लम्बी बिदाई ली। फिर भी मुसकराता रहा तो लेखा चिढ़ गयी। रंज तो खैर क्या होती! इस चिढ़नेमें भी कितनी गहरी आत्मीयता थी इसे वही बखूबी समझती थी। दोनोंने खाना भी शुरू कर दिया—बीच-बीचमें नज़रें मिलतीं। "बस यही कहना था कि ज़हर भी क्या चीज़ है!" और उसने साहस करके देख ही लिया लेखाके चेहरेको। कैसी तमतमाहट उभरी थी उसके होठोंपर कि बार-बार काँप उठते थे। हाथमें पकड़े चम्मचको इधर-उधर कुरेदती रही वह। और इस कृत्रिम तनावकी डरावनी खामोशी फ़ौरन टूट गयी जब एक खिलखिलाहटके साथ सुधाकर बोला, "इसमें नाराज़ होनेकी क्या बात है। मैंने तो ज़िक्र ही किया था खानेका....."। "बस-बस" कहती हुई लेखा गुस्सेसे झल्लायी—अपनी इस उधार माँगकर लायी हुई झल्लाहटपर वह खुद ही शरमा भी गयी—यह 'ज़हर' कहाँसे आ गया बीच-में? छिः, कुछ भी बात करनेको न मिला! फिर बिजलीकी तेज़ीसे उसकी आँखें छलछला आयीं—नस-नसमें एक ठण्ढी राखकी सिहरन दौड़ गयी—वह भीतरसे बुझ गयी।

"बड़ी पागल हो तुम—अभीतक बात-बातपर रोनेकी आदत तुम्हारी गयी नहीं! मैं मज़ाक़ भी करनेसे रहा? बस यूँही ज़हर-का नाम ले लिया था। ज़िन्दगी किसे प्यारी नहीं और फिर मुझे क्यों न हो।"

मगर दो-एक बूँदें चू ही पड़ीं। राई-रत्ती इनका खयाल किये बिना कि जगह सर्वथा अनु-पयुक्त है। जल्दीसे लेखाने आँखें पोंछ लीं किन्तु लालिमाका बहुत हलका अंश दोनों कोरोंमें अपना स्थान बनाये था! सुधाकर भी उदास हो गया। मज़ाक़ भी सचमुच क्या बुरी चीज़ है! ज़िन्दगी मज़ाक़ करती है तब रोना—आदमी मज़ाक़ करे तब भी वही हाल। वापसीके समय मोड़ आया तो सुधाकर चलते-चलते रुक गया। लेखाको तो जैसे सुध ही न रही हो कि घर भी उसे जाना है। अचानक रुक जानेसे वह फिर पुरानी पगडण्डीपर पहुँच गयी। जिसकी दोनों ओर विवशताकी खाइयाँ खुदी हैं। यहीं वह बहुत कमज़ोर हो जाती—किताबोंमें जाने कितनी ही बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कृष्ट नाटक साहित्य

जिन्हें पढ़ें तो अच्छा लगे और स्टेजपर देखें तो प्रेरणा पायें

नाटक बहुरंगी
लक्ष्मीनारायण लाल
(४.५०)

नाटक बहुरूपी
लक्ष्मीनारायण लाल
(३.५०)

रजत रश्मि
रामकुमार वर्मा
(२.५०)

घाटियाँ गूँजती हैं
शिवप्रसाद सिंह
(२.५०)

बारह एकांकी
विष्णु प्रभाकर
(४.००)

आदमी का ज़हर
लक्ष्मीकान्त वर्मा
(३.००)

कहानी कैसे बनी
कर्तारसिंह दुग्गल
(२.५०)

चेखॅव के तीन नाटक
राजेन्द्र यादव
(४.००)

तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ
परिपूर्णानन्द वर्मा
(४.००)

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलतो हैं मगर उनका सही अनुकरण जीवनमें कितनी मर्मान्तिक पीड़ाको जन्म देता है—इसे स्वीकारते ही एकबारगी भय उसे छा लेता है। रास्ते-भर सुधाकर जाने क्या सोचता रहा, किन्तु वह अपने बारेमें यही जानती है कि एक घुटन है जो उसे असह्य यन्त्रणा दे रही है भीतर-ही-भीतर। कैसा अजीबो-ग़रीब धुआँ है जिसकी घनी धुन्ध न तो विस्फोटमें परिणत होती है न ही अपना विशाल घेरा कम करती है। वह सोचती, यह बौपचारिक सभ्यता दिन-ब-दिन हमें खोखला करती जा रही है। ऐसी वर्जनाओंका प्रयोजन ही क्या जिसकी नींव बहुत ही कमज़ोर हो।....

बस! ज़िन्दगीका एक छोटा-सा पड़ाव और। यहींसे जाने कहाँ खो गया उसका सुधाकर। बिना कुछ बताये ही। अचानक। दूसरा दिन बीता, फिर तीसरा और वह एक किरकिरीकी तरह आँखोंमें कसकता रहा। वह आया ही नहीं। सारे प्रयत्न निष्फल हुए तो एक अनुमान घूम-फिरके निकला कि उसने बिलकुल ही नाउम्मीदीका एहसास पा लिया होगा। कितना विचित्र, मगर बहुत ही प्यारा था सुधाकर। ऐसा रहस्य जो जल्दी सुलझे भी नहीं और अपने नशीले तनाव-केन्द्रसे हटने भी न दे...

हलकी-हलकी फुहार थी और धुँधला आसमान ऊपरसे झाँक रहा था। बस कई दिनोंसे बदलियोंकी दुनिया इस छोरसे उस छोर तक बस गयी थी सो रत्ती-भर टसकनेका नाम नहीं लेती थी। सुधाकरसे उसकी खास जगहपर भेंट हुई। लेखा रास्तेमें उदास थी—उसे देखते ही आँखोंकी नमी जाने कहाँ ग़ायब हो गयी। भीतरका कोहरा ऐसे छँट गया जैसे रहा ही न हो कभी। सुधाकर भी मुसकराया था। कैसा छलावा था उस मुसकानमें जैसे कि यही मिलना-भर है। इसी मुसकराहटसे जो कहानी शुरू हुई थी—यहीं अन्त पा रही है, किन्तु कितने अजीब ढंगसे! शाम गहरी हो रही थी मगर इस धुन्धमें कुछ भी पता नहीं चलता था। जिस रेस्तराँमें दोनों बैठे थे वहाँ उनके गिर्द शीशोंकी ख़ूबसूरत दीवारें थीं। सड़क और उसपर तेज़ीसे बदलती दुनिया बड़ी ख़ुशरंग लग रही थी।

"तुम चुप क्यों हो जाती हो?"

"नहीं तो!" लेखा सिहर उठती है।

और फिर बातचीतकी धारा इस तेज़ीसे बह चली कि कॉफ़ी ठण्ढी हो गयी। हारकर पुनः ऑर्डर देना पड़ा। ऐसे बातें किये जा रहा था सुधाकर कि लेखा एक पलको भी उसके भयानक निर्णयकी हलकी भी पहचान न पा सकी। घण्टा-भर बीत गया। बातोंकी फुलझड़ी रुकनेका नाम नहीं ले रही थी। दोनों बाहर आये तो एकदम खिले गुलाबकी तरह थे। सुधाकरने कहा भी लौटनेको—किन्तु लेखा अभी जाना नहीं चाहती थी। सड़क अपने-आप ख़ामोशी इख़्तियार करती जा रही थी। दोनों ओरकी बत्तियोंके साथ-साथ चलनेवाला भी कोई न था। लोग-बाग इक्के-दुक्के नज़र आते थे, वह भी काफ़ी दूर-दूरपर। एक बहुत ही घना पेड़ आ गया, दोनों उसकी छाँहतले ठिठक गये थे। सिरपर मर्करीकी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमकती उजली रेखा। घने पत्तोंका कोहरा और आस-पास ख़ूबसूरत सन्नाटा। अचानक सुधाकरने लेखाको बाँहोंमें लेकर अपने होठ उसकी कनपटीपर रख दिये। वह मोमकी पुतली-सरीखी बिना हिले-डुले उससे लगकर खड़ी थी। बस यही मूक बिदाईका आख़िरी मोहर था····।

थकी हुई आँखोंमें चाँदनीका रंग अब भी गाढ़ा लग रहा था। लेखाने करवट बदली तो आँखोंने और साफ़ देखा--आधी रात ज़िद्दी लड़कीकी तरह ठहर गयी थी। मन-ही-मन बुदबुदायी—'तीनसे भी ज़्यादाका वक़्त गुज़र गया होगा।' यह ख़याल भीतर धँसता हुआ गुम हो गया। कुछ क़तरे चाँदनीके उसके बिस्तरेपर फैले हुए थे। उसे लगा, तेज़ छुरियाँ रख दी हैं किसीने। जिस्मका तेज़से तेज़ उभरता हुआ दर्द कराहकर प्रकट किया जा सकता है किन्तु आत्मा दुखती हो तो शब्द, स्वर, अभिव्यक्ति सभी साथ छोड़ देते हैं। सिर्फ़ बेज़ुबान घुटन, बन्दिनी-सी छटपटाती रहती है। लेखाकी आँखें अपने-आप मुँदने लगीं—यह नींद थी या कोई नशा जो उसके दिमाग़की परतोंको चीरकर उतरता जा रहा था उसे बेसुध करनेको। पहली बार उसे इस बात का एहसास हुआ कि आँखें शुष्क निस्तेज हो रही हैं। लगता है, इन्हीं कुछ घण्टोंमें उसने कितना कुछ सह लिया।····

नींदके नशीले सायेमें दो क़दम चलते ही तूफ़ान आ गया। यह बवण्डर था अजीब-अजीब मुड़े-तुड़े ख़यालोंका। राक्षसी चीख़···· फिर जाने क्या-क्या—वह देखती····बस पानी-ही-पानी बिखरा है चारों तरफ़···और उसे ख़तरा महसूस होता····मुड़कर देखती अरे····वह भी पानीपर ही····हाय!··· चीख़ निकलती है····सुधाकर कई बार दिखे हैं····कहाँ—जगह पहचानी नहीं लगती।··· बिस्तरेपर बैठी है ···हँस रही है····कमरा पहचाना नहीं लगता। वह बड़े आहिस्ते तकियेके नीचे हाथ ले जाती है····एक सफ़ेद डिबिया और जिसका ढक्कन उँगलि के सहारे खोला जाता है····एक गोली तेज़ीसे उसके मुँह तक पहुँच जाती है और पागलोंकी भाँति ज़ोरोंसे पीछे घूम जाती है बस!····ज़िद्दी लड़की बात मानकर गयी····रात अपने समयपर ही कटी। माँको इतने सबेरे बेटीको उठाना, जगाना अच्छा नहीं लगा, फिर भी कमरेमें आयी चादरसे मुँह ढँके लेखा सोयी हुई थी। खिड़की खोल दी। ख़ुशबूओंमें नहायी, ताज़ा भीतर दाख़िल हुई, फिर बेटीके पास गयी····"लेखा, बेटा उठो। सुबह हो गयी और चादर मुलायमियतसे खींची। सूरत देखी तो पल-भरमें हाथ-पाँव फूल लगा, साँस ही रुक गयी। लेखाका बिलकुल राख-जैसा सफ़ेद था। आँखोंके गिर्द एक विचित्र गहरा नीला पन। मुँहके पास झागकी सूखी दो लकीरें ख़ुदी जान पड़ती थीं। चीख़ सुनते ही लोग दौड़ते हुए कमरेमें तो सबसे पहलो आवाज़ कानोंमें 'ज़हर'! 'ज़हर'! फिर वहीं माँका तरह सिर धुनना लोगोंने देखा।···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

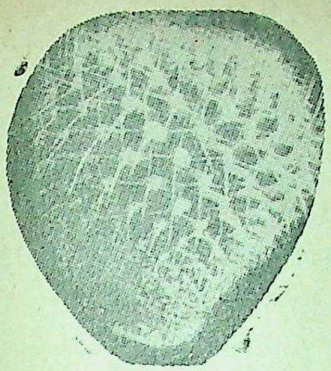

चू।।।है

शशिबन्धुभ

मैं अपने चहुँओर छाये हुए अन्धकारको सघनताके बावजूद उनके भटकते हुए क़दमों-की आवाज़ें सुन सकता हूँ। वे लोग हमें ढूँढ़ रहे हैं। मेरे बायीं ओर कुछ दूरीपर, अचानक, उनमें-से कोई एक चिल्ला उठता है। शायद वह अपने किसी साथीपर झल्ला उठा है। उनकी विचित्र भाषाके कारण, ऐसे लगता है, जैसे ज़रूरतसे ज़्यादा खा लेनेके बाद कोई लगातार डकार भर रहा हो।

लेफ़्टीनेण्ट उप्पल खिसककर मेरी बग़लमें आ जाता है और फुसफुसाता है—"अब हमें अपनी 'लाइन्ज़' की ओर निकल चलना चाहिए। उधरकी तरफ़ ही खिसको।...."

मैं खामोश रहता हूँ। मैं जानता हूँ कि अगर मैंने लेफ़्टीनेण्टकी बातका जवाब देनेकी कोशिश की तो वे लोग मेरी आवाज़ सुन लेंगे—और फिर इस अँधेरेके बावजूद उनके लिए हमें ढूँढ़ निकालना और हमारी बोटी-बोटी उड़ा देना कुछ कठिन नहीं होगा। हमारे पैट्रोलके बाक़ी आदमियोंके साथ वे यही कर चुके हैं।

"कुछ ही गज़ पीछे एक दरार है," लेफ़्टीनेण्ट उप्पल कह उठता है, "हमें उधर ही खिसकना चाहिए। वहींसे हम काँटेदार तारको काटकर पार निकल चलेंगे। आओ, इधर चलो!"

मैं हिलता तक नहीं हूँ। लेफ़्टीनेण्ट कुछ उलझनमें पड़ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर अँधेरेमें दुश्मनके चूहानुमा आदमियों-में भगदड़ मची हुई है—हाँ, वे 'चूहे' ही तो हैं ! और वे एक-दो नहीं दस-बीस नहीं, लाखों-करोड़ों हैं । मोटे-मोटे, भद्दे और भारी-भरकम, नाटे क़दके, भूरे-भूरे । कम्बख़्तोंकी आँखें सुर्ख़ ख़ूनी हैं । साले रातको आँखें ढँक लेते हैं ताकि उनके झपट्टा मारनेसे पहले कोई उन्हें देख न ले । मुझे लग रहा है कि वे लोग हमें जल्दी ही ढूँढ़ निकालेंगे और अपने पैने नख-दाँतोंसे हमारे चेहरोंको नोंच लेंगे । इसके बाद वे आगे बढ़ जायेंगे–एक भूरे और पीले सैलाबकी तरह—और पूरी धरतीपर, क्षितिज-पार तक छा जायेंगे ।

लेफ़्टीनेण्ट मुझे कुछ आश्वस्त-सा करनेकी कोशिश करता है—"आओ, भई, डरने-वरने-की ज़रूरत नहीं, यार ! हम आसानीसे उधर पहुँच सकते हैं और मैं जानता हूँ कि हम पहुँचकर ही रहेंगे ।"

वह 'जानता है' कि हम पहुँचकर ही रहेंगे, क्योंकि उसे मेरी तरह डर नहीं लगता, क्योंकि उसका ख़ून मेरी तरह बर्फ़ नहीं बना है । मैं जानता हूँ कि मिलिट्री एकेडमीमें ट्रेनिंग देते समय उसका दिल निकाल लिया गया था और उसकी जगह फ़ौजी अनुशासन और व्यवहार 'कोड' की एक पुस्तक या 'मैन्युअल' रख दिया गया था--जिससे कि उसमें अनुभूति नाममात्रको भी नहीं रह गयी है । यहाँ-तक कि वह सोच भी नहीं सकता । वह सिर्फ़ यही कर सकता है कि किसी भी परिस्थिति-का यान्त्रिक मूल्यांकन कर ले और उसके अनुसार 'मैन्युअल' में कही गयी बातको दुहरा दे । इस वक़्त हम दुश्मनके कैम्पमें हैं, निकल भागनेकी कोशिशमें हमारे पैट्रोलके कुछ आदमी मारे जा चुके हैं, हम बचे हुए लोग अदद अँधेरेमें भटक रहे हैं—ऐसी परिस्थितिमें 'मैन्युअल' कहता है कि हम पहुँचकर ही रहेंगे, और लेफ़्टीनेण्ट भी यही कहता है । 'मैन्युअल' न सोच सकता है, न समझ सकता है—अन्धकार और आतंकका अनुभव तो 'मैन्युअल' नहीं कर सकता; इन चूहोंको तो वह बिलकुल ही नहीं देख सकता । काश कोई इस 'मैन्युअल' को—दुनियाके सभी बड़े सरोंके दिल-दिमाग़ोंकी जगह रखे गये 'मैन्युअल्ज़' को—समझा सके, अनुभव करवा सके, दिखा सके । तब शायद वे हमें इस प्रकार आत्महन्ता गश्ती-दलोंमें नहीं भेजा करेंगे ।

लेफ़्टीनेण्ट मुझे समझाते-समझाते थक चुका है । एक बार फिर वह मुझे कुहनी मार कर अपनी बात समझानेकी कोशिश करता है और आगे, अँधेरेमें ही खिसकना शुरू कर देता है । मैं जहाँ हूँ, क्षण-भरके लिए वहीं रुक रहता हूँ, फिर उसीका पीछा करने लगता हूँ । मैं इन चूहोंके बीच अकेले घिरा रहना नहीं चाहता ।....

मैं पेटके बल रेंगकर दरारको ओर बढ़ने की कोशिश करता हूँ, बढ़ने लगता हूँ । मेरी राइफ़िलका कुन्दा पथरीली ज़मीनसे टकराकर बज उठता है—बड़ी कर्कश आवाज़ में । मेरा ख़ून मेरी नसोंमें ही जम जाता है । मैं रुक जाता हूँ, राइफ़िलको अपने जिस्मसे अलग भी सटा लेता हूँ और फिर आगे खिसकना शुरू कर देता हूँ । राइफ़िल फिर उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाजमें पत्थरसे रगड़ खा जाती है—अबकी बार उसकी आवाज़ पहलेसे भी ज़्यादा ऊँची है। यह कम्बख्त राइफ़िल मुझे मरवाकर रहेगी, सोचने लगता हूँ। यह मुझे सही-सलामत नहीं लौटने देगी। मैं उसे बहुत धीरेसे अपने जिस्मसे दूर करता हूँ, बड़ी ख़ामोशीसे ज़मीनपर टिका देता हूँ और, उसे वहीं छोड़कर आगे खिसक चलता हूँ। मुझे इस साली राइफ़िलसे क्या लेना-देना है?

लेफ़्टीनेण्ट दरारके पास पहले पहुँचता है और रुक जाता है, वह मेरी प्रतीक्षामें है। मैं अपनी गति कुछ बढ़ा देता हूँ; जितनी तेज़ीसे हो सकता है, उतनी तेज़ीसे उसके पास पहुँचनेकी कोशिश करता हूँ। फिर भी मुझे लगता है कि मैं चल नहीं पा रहा हूँ। पेटके बल पड़ा-पड़ा मैं सिर उठाता हूँ--हर बार मैं अपने और लेफ़्टीनेण्टके बीचकी दूरीको नापनेकी कोशिश करता हूँ, मगर दूरी कम नहीं होती। वह ज्योंकी त्यों बनी रहती है।

अचानक मेरी चेतनापर मेरे चहुँओर छाया हुआ सन्नाटा व्याप्त हो जाता है। मेरी अपनी बोझिल साँसोंके अतिरिक्त कोई आवाज़ मुझे सुनाई नहीं देती। मेरी आँखें अपने सामनेकी धरतीमें गड़ी हुई हैं, लेकिन मैं आतंकित हो उठा हूँ और मुझसे कुछ भी देखा नहीं जाता। किसी भी चीज़पर नज़रें गड़ा देनेका साहस अब मुझमें नहीं रहा। मुझे लगता है कि जैसे ही मैं ऊपर देखूँगा, मुझे अपने चहुँओर असंख्य 'चूहे' खड़े नज़र आयेंगे—वे मुझे डरा हुआ देखकर ठहाके लगायेंगे; और जबतक मैं ऊपर नहीं देखता हूँ, तबतक उनका होना न होना मेरे लिए बराबर है।....

तभी, मैं दरारके सिरेपर पहुँच जाता हूँ। मैं पलटकर पीछेकी ओर देखता हूँ। चूहे वहाँ नहीं हैं, कहीं भी नहीं हैं। घिरे हुए अँधेरेने उन्हें निगल लिया है।

लेफ़्टीनेण्ट मेरी आस्तीनको पकड़ मेरे कन्धोंको झिंझोड़ देता है और क्रोधमें फुफकार उठता है—"तुम्हारी राइफ़िल कहाँ है?"

मेरी साँस भारी हो उठती है। मैं कुछ आवाज़ नहीं देता—और वहीं दरारके अँधेरेमें पड़ा रहता हूँ।

"उसे फेंक दिया क्या तुमने?" वह क्रोधसे पूछता है। मेरी ख़ामोशीने उसे जवाब भी दे दिया है उसके सवालका। "तुम्हें इसकी क़ीमत चुकानी पड़ेगी, तुम्हारी एक 'स्ट्रिप' छीन ली जायेगी। अपनी 'लाइन्ज़' में पहुँचकर मुझे सी० ओ०से तुम्हारी रिपोर्ट करनी पड़ेगी।"

"स्साला!" मैं मन-ही-मन उसे कोसता हूँ। हम इस जानलेवा अँधेरेमें 'चूहों' के बीच घिरे हुए हैं और यह ऑफ़िसरका अण्डा मेरी रिपोर्ट करेगा कि मैंने राइफ़िल फेंक दी थी। मैं बड़बड़ाने लगता हूँ। इतना मूर्खतापूर्ण लगता है यह सब कि मैं अपने-आपको रोक नहीं पाता।

"चुप!" लेफ़्टीनेण्ट फुसफुसाते हुए मुझे डाँटता है। वह मुझे चाँटा मारनेके लिए हाथ उठाता है। शायद उसने किसी फ़िल्ममें किसी ऑफ़िसरको ऐसा करते हुए देखा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं फ़ुर्तीसे उसकी कलाई पकड़ लेता हूँ—वह मुझे चाँटा नहीं मारने पाता। वह पहलू बदलता है कि मुझे दूसरे हाथसे मार सके—पता नहीं क्यों? मैं तो अब ख़ामोश हो चुका हूँ।

तभी अचानक हम लोग पत्थर हो जाते हैं। वे 'चूहे' फिर हरकतमें आ गये हैं—अबकी बार भी वे हमारी ही ओर बढ़ रहे हैं। उन्होंने मेरी बड़बड़ानेकी आवाज़ सुन ली थी शायद, और अब वे जानते हैं कि हम लोग यहाँ हैं। मैं सोच रहा हूँ कि हमें पकड़ लेनेके बाद वे हमारा क्या करेंगे—हो सकता है कि वे महज़ हमें मार डालें और हमारी खोपड़ियोंको काटकर 'ट्राफ़ियों' की तरह ले जायें—हमारे देशकी पुरातन बर्बर जातियों-में कई लोग अपने शत्रुओंके साथ यही किया करते थे। हमारे लेफ़्टीनेण्टका सिर तो गंजा है, मगर मेरी खोपड़ीपर उगी हुई 'खेती' काफ़ी ख़ूबसूरत है। (कमसे कम, कॉलेजमें मेरे साथ पढ़नेवाली लड़कियाँ तो यही कहती थीं।) हो सकता है, वे लोग लेफ़्टीनेण्टकी खोपड़ी न ले जायें, हो सकता है उसे काट लेनेके बाद भी वे किसी बेकार चीज़की तरह फेंक दें।....

मेरा मन फिर बड़बड़ानेको हो आता है; लेकिन बड़बड़ाहट मेरे कण्ठकी कारामें ही बन्द होकर रह जाती है। क्योंकि तभी मुझे उनमें-से एक मनहूस, दरारके ऊपर, निश्चल-सा खड़ा नज़र आ जाता है। मैं लेफ़्टीनेण्ट-की कलाई छोड़ देता हूँ और उस मनहूस 'चूहे'की ओर देखने लगता हूँ। वह नाटा है और भारी-भरकम है, और ऐसा निश्चल हुआ खड़ा है कि अगर कोई उसे इतने क़रीब-से न देखे तो वह उस पृष्ठभूमिका ही एक नज़र आये। लेकिन मैं जानता हूँ कि वह सचमुच वहाँ खड़ा है—लेफ़्टीनेण्ट भी इस बातको जानता है, क्योंकि उसका हाथ धीरे धीरे अपनी पेटीमें बँधे हुए छुरेकी ओर बढ़ रहा है। उसका हाथ छुरेकी मूठपर पहुँचता है, उसे मज़बूतीसे पकड़ लेता है और फिर म्यानसे बाहर आ जाता है।

लेफ़्टीनेण्ट बिलकुल शान्त है और नितान्त उत्तेजनाहीन। उसे डरनेकी कोई ज़रूरत भी नहीं है; कमसे कम तबतक नहीं ही, जबतक कि उसके हाथमें छुरा है। अगले ही क्षण वह उछलकर उस 'चूहे' के गरदनपर सवार हो जायेगा, उसका मुँह ढाँपकर उसकी चीख़को क़ैद कर लेगा और बड़ी ख़ामोशीसे उसकी जान ले लेगा, (क्योंकि 'मैन्युअल'में ऐसा ही करनेका निर्देश दिया गया है।) तभी आसपासकी चट्टानों और झाड़ियोंमें छिपे हुए असंख्य 'चूहे' निकल आयेंगे—और उसकी इस हरकतके जवाबमें उसकी आँखें निकाल लेंगे। फिर वे मुझे ढूँढ़ लेंगे। और मुझे भी चीर डालेंगे।

मैं अपने आसपासकी ज़मीनको हौले-हौले टटोलता हूँ और एक छोटा-सा अंगूरके बराबर का कंकड़ हाथमें उठा लेता हूँ। मन-ही-मन मैं निश्चय कर लेता हूँ कि यदि लेफ़्टीनेण्टने छलाँग लगायी तो मैं 'चूहे'के सिरका निशाना बनाकर यह कंकड़ मार दूँगा। इससे कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ेगा—दरारके सिरेपर खड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चूहा' इससे घायल नहीं होगा; बल्कि उलटे 'चूहों' को हमारी उपस्थितिका ज्ञान ही हो जायेगा। मगर मुझे इतनी तो सन्तुष्टि होगी कि मेरे किये हुए 'हमले'से वे सब चौंक उठे; कि लेफ़्टीनेण्टकी नहीं, मेरी हरकतसे यह इनक़लाब (!) खड़ा हुआ था। इनक़लाब····? यही तो उनका नारा है।

लेफ़्टीनेण्ट अपने हाथों और घुटनोंके बल ऊपर उठता है और छलाँग लगानेके लिए तैयार हो जाता है--अब मुझे अपना 'हथियार' चलाना होगा, अब मुझे दरारके किनारेपर खड़े उस 'चूहे'की खोपड़ी उलटनी होगी। लेकिन लेफ़्टीनेण्ट छलाँग नहीं लगाता। वह जहाँका तहाँ बना रहता है, और मैं देख रहा हूँ कि उसका छुरा भी वापस म्यानमें चला जा रहा है। मैं दरारके किनारेपर दृष्टि-पात करता हूँ। वह चूहा वहाँ नज़र नहीं आता। लगता है, वह वहाँ कभी था ही नहीं। लेकिन यह कैसे हो सकता है? मैंने ख़ुद उसे देखा था, लेकिन अगर वह वहीं था तो उसने हमें कैसे नहीं देखा? हो सकता है, उसने देखा भी हो। हो सकता है कि वह अपने बाक़ी साथियोंको हमारा अता-पता देने गया हो। हो सकता····

लेफ़्टीनेण्ट मेरी बाँहको छूकर कहता है--"आओ, भले आदमी, निकल चलें।" वह अब भी फुसफुसा रहा है--"मैन्युअलका आदेश शत्रु-प्रदेशमें फँसे हुए सैनिकोंके लिए यही है।"

अपनी राइफ़िलको जर्मनसे ऊपर झुलाते हुए, वह आगेकी ओर रेंगना शुरू करता है। मैं कंकड़को वापस ज़मीनपर रख देता हूँ और उसके पीछे-पीछे रेंगना शुरू कर देता हूँ। रेंगते-रेंगते मुझे महसूस होता है कि 'चूहे' भी हमारी ही तरह, हमारे साथ-साथ रेंग रहे हैं, कि वे लोग, हमारी दृष्टिसे परे दरारके दोनों किनारोंके साथ-साथ समानान्तर रेखाओंमें बिछे हुए हैं, और जैसे ही हम काँटेदार तार-को पार करना चाहेंगे, वैसे ही हमपर झपट पड़ेंगे, क्योंकि अन्धकारके वे अभ्यस्त हो चुके हैं और जानते हैं कि उस अन्धकारसे कहाँ, क्या फ़ायदा उठाया जाये।

लेकिन लेफ़्टीनेण्ट यह सब नहीं सोचता। वह समझता है कि अन्धकार हमारा मित्र है, हितैषी है--उसके दिमाग़में खुले हुए 'मैन्यु-अल' के पृष्ठोंमें यही लिखा है। कल जब वह मेरे पास यह बताने आया था कि मुझे आजकी गश्तपर जाना है, तो मैंने उसे अन्धकार और चूहोंसे संयुक्त ख़तरेको समझानेकी कोशिश की थी। लेकिन वह महज़ सिर हिलाकर और बत्तीसी फाड़कर रह गया था—जैसे कि मैं उसे कुछ धोखा देनेकी कोशिश कर रहा होऊँ।

मैंने उससे साफ़ कह दिया था कि मैं इस गश्तपर नहीं जाऊँगा, कि मैं पहले ही बहुत-सी गश्तोंपर जा चुका हूँ, कि मैं 'चूहों' और अन्धकारसे काफ़ी परेशानी उठा चुका हूँ। वह पागल हो उठा था और बरस पड़ा था मुझपर—"तो तुम्हें अपने देशसे कोई लगाव नहीं?"

जब भी आपकी गरदन रेतनेकी ज़रूरत होगी, ये अफ़सर लोग कोई-न-कोई ऐसा ही सवाल आपसे पूछने लगेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इससे देशका क्या सम्बन्ध है ? मैं····मैं एक अकेला आदमी हूँ और मेरी एक ही जान है। मैं इधर-उधर अँधेरेमें रेंगकर उस एक अकेली जानको खतरेमें डालनेको तैयार नहीं हूँ।" मैंने उसे समझाया था। मेरे इतना कहते ही वह पागल हो उठा था और मेरा कोर्ट-मार्शल करानेकी धमकी देने लगा था।

मुझे झुकना पड़ा था····और कोई तरीक़ा ही नहीं था। क्योंकि, हमारे यहाँ इन 'चूहों' और इस निगल जानेवाले अन्धकारकी अपेक्षा कोर्ट-मार्शल ज़्यादा खतरनाक समझा जाता है। लेकिन ऐसा सिर्फ़ हमारे यहाँ, काँटेदार तारके उस तरफ़ ही था। यहाँ इस दरारमें तो सबसे बड़ा खतरा इन 'चूहों' से और इस अन्धकारसे ही है।····

आखिर हम लोग इस गश्तपर क्यों आये ? लेफ़्टीनेण्टका कहना है कि हम जासूसी करने आये हैं। मुझे नहीं समझमें आता कि इस अन्धकारमें हम क्या देख सकते हैं और क्या जासूसी कर सकते हैं। अन्धकारकी काली और अनिश्चित छायाओंके अतिरिक्त यहाँ क्या दिखाई दे सकता है ? मैं हैरान हूँ कि इन गश्तोंसे लौटकर लेफ़्टीनेण्ट सी० ओ० को क्या बताता होगा !—"जो कुछ मैं देख सका हूँ, सर, उससे तो यही लगता है कि दुश्मनका कुछ करने-करानेका इरादा नहीं है। और, एक बात और, सर, हमारे छह आदमी मारे गये !····" और सी० ओ० कह देता होगा—"खैर, कोई बात नहीं। यह तो भरोसा हो गया कि दुश्मन कुछ करनेवाला नहीं है।" लेकिन, इन कम्बख्तोंसे पूछे कोई, तुम भी इसी गश्ती टुकड़ीमें होते तो ? [illegible] भी क्या यही कहा जाता—"खैर, कोई [illegible] नहीं ?"

मैंने सामनेकी ओर देखा—लेफ़्टीनेण्ट दरारके आखिरी सिरेपर जा पहुँचा था। [illegible] से दरारकी सतह बाक़ी ज़मीनके बराबर [illegible] चली थी। उससे पच्चीस-तीस गज़ दूर [illegible] दार तारका घेरा था। मुझे भटकते हुए 'चूहों' की आहट अब कहीं सुनाई नहीं देती। [illegible] लोग खामोश हो चुके हैं और शायद [illegible] प्रतीक्षा कर रहे हैं। जैसे ही हम लोग [illegible] उठायेंगे, वे····

लेफ़्टीनेण्ट दरारके किनारेसे सिर [illegible] है। मैं एक गोलीकी आवाज़का इन्तज़ार [illegible] हूँ—वह गोली, जो अभी-अभी किसी 'चूहे' [illegible] राइफ़िलसे छूटकर आयेगी और उसके [illegible] छेदती हुई चली जायेगी, और जिसके [illegible] लेफ़्टीनेण्ट कभी सिर नहीं उठा [illegible] लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। सन्नाटा [illegible] गहरा है कि लेफ़्टीनेण्टके साँस तक [illegible] आवाज़ सुनाई देती है—ऐसा लगता है [illegible] उसे दमेकी खाँसी हो गयी हो [illegible] बलग़मके बोझ तले दबी उसकी छाती [illegible] रही हो। मैं हैरान हूँ—क्या उसे भी [illegible] लगने लगा है ? वह शान्तिसे दरारके [illegible] हो जाता है और मुझे भी ऐसा करनेका [illegible] करता है।

मगर मैं इस दरारकी सुरक्षाका [illegible] नहीं करना चाहता। दूसरे, मैं यहाँ भी [illegible] नहीं रहना चाहता ! इसलिए मजबूरी है [illegible] लेफ़्टीनेण्टके पीछे-पीछे चल पड़ता हूँ। [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मैं दरारके ऊपर सतहपर आकर नज़र उठाता हूँ, मुझे दूरसे आती हुई सुबहकी झलक मिल जाती है। हमें अब जल्दी करनी पड़ेगी। सुबह हो जानेपर हमारा पकड़ा जाना निश्चित है—और यही वह खतरा है, जो हम नहीं ले सकते। उस समय तो 'चूहे' हमें नोच डालेंगे तथा रेंगकर फिर अपनी-अपनी बिलोंमें घुस जायेंगे, अगले दिन शामको ढलनेवाले अन्धकारकी प्रतीक्षामें।...

हमारे और काँटेदार तारके बीच पच्चीस-तीस गज़का फ़ासला है। हम लोग पेटके बल रेंगकर यह फ़ासला तय करनेकी कोशिश कर रहे हैं। हमारे पीछे 'चूहे' बैठे हैं—खामोश और घात लगाये हुए। मैं सोचने लगा हूँ कि शायद लेफ़्टीनेण्ट ठीक ही कह रहा था—शायद हम पहुँचकर ही रहेंगे। लेकिन, नहीं, 'चूहे' जाल बिछाये, घात लगाये बैठे हैं। वे शायद हमारे काँटेदार तारतक पहुँच जानेकी प्रतीक्षा करेंगे—और उस समय, जब सफलता हमारे सामने होगी, जब हम उसका अनुभव कर रहे होंगे, वे हमपर गोलियोंकी बौछार करेंगे।...

काँटेदार तारसे हमारा फ़ासला कुल दस गज रह गया है। रेंगते-रेंगते भी मैं उस मैदानकी सख्त और खुरदरी सतहको, जो कि मेरे शरीरको खरोंच-खरोंचकर लहू-लुहान किये दे रही है महसूस कर रहा हूँ। मगर मैं उसके बारेमें और...

तभी हमारे और काँटेदार तारके बीचका फ़ासला पाँच गज़का रह जाता है। हम लोग ऐन तारके पास जा पहुँचते हैं।

मेरी पीठ तन जाती है—अजाने, अनचाहे, शायद पीछेसे आकर उसमें प्रविष्ट हो जानेवाली सम्भावित गोलियोंकी प्रतीक्षामें। लेकिन कोई गोलियाँ नहीं आतीं। लगता है, 'चूहे' अपना वक़्त पहचानते हैं—उन्हें कोई जल्दी नहीं है। वे जानते हैं कि वे जब चाहेंगे, हमें छेंक लेंगे।

लेफ़्टीनेण्ट क्षण-भरके लिए काँटेदार तारकी परीक्षा करता है, फिर आसमानकी ओर देखता है और कह उठता है—"हमें यहींसे इसे पार करना होगा। जहाँसे हम प्रविष्ट हुए थे, वहाँ पहुँचनेके लिए हमारे पास समय नहीं है। सुबह होनेवाली है। अगर मुझे ठीक-ठीक याद है तो उन्होंने इस जगहको 'बूबी-ट्रैप' नहीं किया है। इसलिए उम्मीद करनी चाहिए कि हम सही-सलामत उधर पहुँच जायेंगे।

'बूबी-ट्रैप'! मैंने तो इस बारेमें सोचा ही नहीं था। मेरे सारे अस्तित्वपर एक तनाव छा जाता है। तभी तो 'चूहों'ने अबतक हमारी बोटियाँ नहीं उड़ायी हैं। मैं सोचता हूँ और सोचकर सिहर उठता हूँ। वे जानते हैं कि सीमाके इस भागको 'बूबी-ट्रैप' कर दिया गया है, कि यहाँ मानव-भेदी सुरंगें (एण्टी-पर्सोनेल माइन्ज़) सतहके कुछ ही इंच नीचे बिछी हुई हैं। जिस क्षण हमारे क़दम उनपर पड़ेंगे, वे सुरंगें फटेंगी और हमारी अतड़ियाँ आसपास बिखर जायेंगी।

"पहले तुम चलो!" लेफ़्टीनेण्ट हुक्म देता है—"मैं तुम्हें अपनी राइफ़िलसे कवर दे दूँगा।"

तो यह बात थी! क्षण-भरमें मेरे मानस-पटलपर सारी तसवीर स्पष्ट हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप अपने माल को जल्दी बेचने की सोचते हैं तो...बस उनकी बाहरी सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि उसको **रोहतास** पैकिंग पेपर में लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा **रोहतास** पेपर और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता।

रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक ठोस बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

मैनेजिंग एजेंट्स : **साहू जैन लिमिटेड** ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं लेफ़्टीनेण्टकी ओर देखता हूँ—मेरी नज़रें उससे पूछती हैं—"तो तुम मुझे बलिका बकरा बनाना चाहते हो ? मानवभेदी सुरंगों-की मौजूदगीकी परीक्षा मैं अपनी जानको खतरेमें डालकर करूंगा !"

लेफ़्टीनेण्टकी त्योरियाँ चढ़ जाती हैं—"चलो, भाई, देरी करनेका वक़्त कहाँ है ? सुबह होनेको है !"

और मेरी ज़िन्दगीकी शाम भी यहीं होने-को है !—मैं सोचता हूँ। सुरंगें फटकर मेरे शरीरके चिथड़े उड़ा देंगी और मेरा अस्तित्व आसपासकी घाटियोंपर बिखरकर रह जायेगा !....

मैं क्षण-भरके लिए लेफ़्टीनेण्टकी ओर देखता हूँ और फिर उछलकर खड़ा हो जाता हूँ। मैं तार परसे कूदकर पार नहीं होता हूँ, बल्कि उसे हाथोंसे पकड़-कर उसपर चढ़ने लगता हूँ। तारका एक तेज़-सा काँटा मेरी जाँघमें घुसकर एक लम्बा घाव बनाता हुआ, माँसको चीरता हुआ चला जाता है। मेरे हाथ तारके जाल-को पार करते हुए आगे बढ़ते चले जाते हैं और काँटोंकी मारसे लहू-लुहान हो जाते हैं। फिर भी मैं निकल जाता हूँ—किसी तरह मैं उस तारके दूसरी ओर, अपने पक्षकी ओर, अपनी सरहदमें आ जाता हूँ। तारको सचमुच 'बूबी-ट्रैप' नहीं किया गया था। 'चूहों'से भी आखिर एक ग़लती हो ही गयी, और इसीलिए मैं भी उनके बिलमें-से निकलनेमें सफल हो सका हूँ।....

मैं तारके इस तरफ़, अपनी तरफ़, तारके पास ही पड़ रहता हूँ। मैं कराह रहा हूँ, घायल हूँ। मेरे ज़ख्मोंसे काफ़ी ख़ून बह रहा है। लेफ़्टीनेण्ट मुसकराकर मेरी ओर देखता है, फिर तारोंके बीचमें-से अपनी राइफ़िल मेरी ओर बढ़ा देता है।

"मुझे कवर दो !"—वह कहता है।

लेकिन मैं उसकी बात नहीं सुन रहा हूँ। राइफ़िल मेरे पास ज़मीनपर पड़ी रहती है—पड़ी रहे। लेफ़्टीनेण्ट तारके नीचेसे रेंगना शुरू कर देता है।

लेफ़्टीनेण्टने रेंजर-'स्कूलमें 'क्रॉलिंग' (रेंगना) सीखी थी, मगर लगता है, उसकी ट्रेनिंग यहाँ काम नहीं आ रही है। उसके कपड़े तारके काँटोंमें अटक जाते हैं और वह उन्हें छुड़ाते-छुड़ाते हाँफने लगता है। मैं उसके चेहरेपर उभरती हुई चिन्ताकी रेखाओंको देखता हूँ—कल्पनाकी आँखोंसे मुझे नज़र आता है, उसका पसीनेमें नहाया हुआ, भयसे सफ़ेद पड़ता हुआ चेहरा, आतंकके मारे उबली पड़ती हुई आँखें।....वह और भी ज़्यादा कोशिश करता है उन काँटोंकी उलझनमें-से निकलनेकी, मगर उसकी हर कोशिश बेकार जाती है। तभी मैं देखता हूँ—जालमें फँसी हुई मछलीकी तरह वह बुरी तरह तारोंमें उलझ गया है। ज्यों-ज्यों वह निकलनेकी कोशिश करता है, त्यों-त्यों वह और उलझता जाता है !...

अब उसपर आतंक छा रहा है—वह तारमें उलझा हुआ है और सुबहकी रोशनी बढ़ती जा रही है। थोड़ी ही देरमें इतना उजाला हो जायेगा कि दुश्मनकी बॉरडर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा और यात्रा !!
हिन्दीमें लिखे यात्रा-विवरण कम हैं, और जितने हैं उनमें ये कृतियाँ अद्वितीय हैं। सर्वथा पठनीय एवं संग्रहणीय

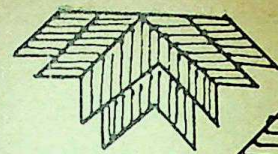

यात्रा
साहित्य

- एक बूँद सहसा उछली
  'अज्ञेय'
- चीड़ों पर चाँदनी
  निर्मल वर्मा
- हरी घाटी
  डॉ० रघुवंश
- सागर की लहरों पर
  डॉ० भगवतशरण उपाध्याय
- पार उतरि कहँ जइहौ
  प्रभाकर द्विवेदी

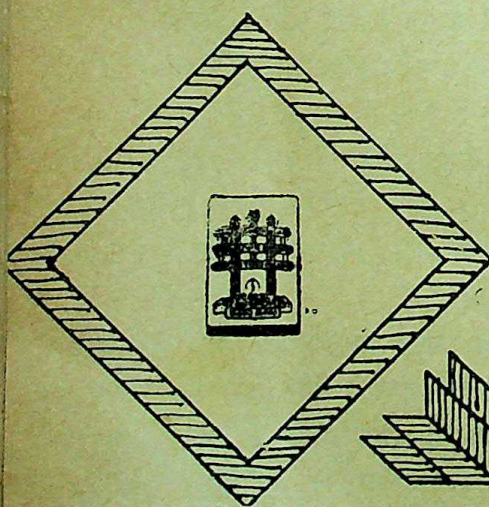

भारतीय ज्ञानपी
प्रकाशन
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग,

ज्ञानोदय : मई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गारदका कोई सिपाही उसे देख लेगा, और तब—? लेफ़्टीनेण्टका खेल हमेशा-हमेशाके लिए खत्म हो जायेगा !

वह बुरी तरहसे झल्ला उठा है और छूट भागनेकी धुनमें पूरी सीमाकी तारको ही हिलाये दे रहा है, लेकिन इससे कोई लाभ होनेवाला नहीं है। काँटोंसे घायल हुए एक हाथको हिलाकर मुझे इशारा करता है और घुटी हुई-सी, डरी-हुई-सी आवाज़में कहता है—"अबे साले, मदद करना ज़रा ! देखता क्या है !"

अब उसे पता चल रहा है कि वहाँ, दरारके बीच अँधेरेमें पड़े-पड़े मुझे कैसा लग रहा था। हाँ, उसके लिए परिस्थितियाँ ज़रूर उलटी हो चुकी हैं। मुझे अन्धकारसे डर लग रहा था, वह उजालेसे डर रहा है !

"अबे, मैंने कहा है, ज़रा मदद कर !" —वह अब भी अफ़सर है और हुक्म दे रहा है लेकिन मैं जानता हूँ कि यदि मैं यहाँ तमाशा देखनेके लिए खड़ा रहूँ तो मौतका डर उसकी सारी अफ़सरी-हैकड़ी भुला देगा और वह हमेशा-हमेशाके लिए 'मैन्युअल' और 'अथॉरिटी' भूल जायेगा।....

"ज़रा मदद करो न।"—आवाज़में काफ़ी कमज़ोरी आ चुकी है। सुनो, मैं तुम्हारी राइफ़िल खो देनेकी बातको बिलकुल भूल जाऊँगा। मैं सी० ओ० से तुम्हारी शिकायत भी नहीं करूँगा। लेकिन तुम्हें मेरी मदद करनी ही होगी। समझे !" उसका लहजा अब नम्रतापूर्ण है। अगले ही क्षण उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे होंगे और उसका चेहरा गीला हो जायेगा।

मुझे उसपर दया हो आती है। मैं लगभग उसके पास ही पहुँच चुका हूँ और उलझे हुए तारोंको छुड़ाने ही वाला हूँ लेकिन अचानक मैं रुक जाता हूँ। कुछ ऐसा हो जाता है, जो मुझे आगे बढ़नेसे रोक लेता है। मेरे पेटमें कुछ उमड़ने-घुमड़ने लगता है, जिसकी संवेदना इतनी अच्छी लगती है मुझे कि मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। परिणाम-स्वरूप मैं निश्चेष्ट जहाँ था, वहीं पड़ा रहता हूँ—हाथोंसे पेटको दबाये हुए। लेफ़्टीनेण्ट-को भयके कारण पीले पड़ते हुए चेहरेके साथ, निराशाके क्रूर हाथोंमें तड़पते हुए देखता हूँ।

वह भयके कारण काँप रहा है। वह जानता है कि मैं उसे वहीं काँटेदार तारमें उलझा हुआ छोड़ जाऊँगा—वह शुरूसे ही यह जानता था, मेरे निश्चय करनेसे पहले ही वह जान गया था; फिर भी वह इस तथ्य-को स्वीकार नहीं करना चाहता था।

मैं उसे कुछ देर और देखता रहता हूँ और फिर पलटकर अपनी लाइन्जकी ओर ऊँचाईपर चढ़ने लगता हूँ। और मेरे पाँव और टाँगें इतनी घायल हो चुकी हैं कि मुझे भी रेंगना पड़ रहा है।

मेरे पीछे लेफ़्टीनेण्ट चीख उठता है। मैं सोचता हूँ, पहरेकी मीनारोंमें और 'फ़ॉक्स होल्ज़' में खड़े हुए पहरेवाले इस चीखका क्या अर्थ लगायेंगे ? क्या वे जानते हैं कि यह लेफ़्टीनेण्टकी चीख है ? नहीं—शायद नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ देर बाद वह चीखना बन्द कर देता है और मैं जानता हूँ कि उन तारोंके जालसे निकल भागनेके लिए वह बुरी तरह झुँझला-कर कोशिश कर रहा होगा; लेकिन मैं यह भी जानता हूँ, आतंकके मारे वह कुछ भी नहीं कर सकेगा।

उधर, सामने ऊँचाईपर मैं अपनी खाइयों और उनके आस-पास बनी मिट्टीकी ढेरियोंको पहचान लेता हूँ। फ़ासला बहुत थोड़ा-सा है, लेकिन मुझे लगता है, मैं इसे भी पार नहीं कर सकूँगा। मैं काफ़ी थक चुका हूँ और क्षितिजपर, पर्वतोंके पार उठते हुए सूरजकी बढ़ती हुई रोशनी मेरी बची-खुची शक्तिको भी सोखती जा रही है।

मेरे बायीं ओर दो-तीन गज़की दूरी-पर गोला गिरनेसे बना हुआ गड्ढा है। काफ़ी तकलीफ़ होनेके बावजूद मैं रेंग-रेंगकर उसके सिरेपर पहुँच जाता हूँ और स्वयंको उसमें गिरा देता हूँ। बर्फ़से ठण्डे पानीकी एक उथली-सी तह मेरे तन-बदनको झेलती है और मेरे शरीरकी बची-खुची गरमीको भी सोखने लगती है।

ऊपर आसमानपर उजाला बढ़ता जा रहा है--हर बीतता हुआ क्षण जैसे ज्योतिका भण्डार भरता जा रहा है। जल्दी ही 'चूहे' तारमें फँसे हुए लेफ़्टीनेण्टको देख लेंगे।

मैं काफ़ी देर तक वहीं पड़ा-पड़ा सोचता रहता हूँ। तदनन्तर कुछ दूरीपर एक राइफ़िलकी गोली छूटनेकी आवाज़ आती है। कुछ क्षण सन्नाटा छा जाता है, जैसे कि राइफ़िलधारी सावधानीसे निशाना साध रहा हो--एक बार फिर गोलीकी आवाज़ होती है और फिर सन्नाटा छा जाता है। चारों सीमान्त जड़ और शान्त नज़र आता है।

मेरे गड्ढेसे बीस-पचीस गज़की दूरीपर लेफ़्टीनेण्टकी लाश काँटेदार तारोंमें झूल रही है--उसके नीचे सुर्ख ख़ूनी रंगका क़ालीन-सा बिछता जा रहा है। जहाँ मैं लेटा हूँ, वहाँसे वह दिखाई तो नहीं दे सकता, तो भी मैं उसके अस्तित्वको जानता हूँ--यहाँतक कि मैं तो उसके घावोंसे टपकते हुए ख़ूनके क़तरोंकी आवाज़ भी सुन सकता हूँ।

अचानक मेरा मन चाहता है--काश लेफ़्टीनेण्टकी जगह मैं उन तारोंमें उलझा होता! तब तो इस निरन्तर यातनासे छुटकारा मिल जाता और मुझे इन गश्तोंपर न जाना पड़ता। मैं इस निगल जानेवाले अन्धकार और इन 'चूहों' का सामना नहीं करना चाहता, नहीं करना चाहता, कभी नहीं, कभी नहीं।....

अब भी प्राप्य :

ज्ञानोदय : दाम्पत्य विशेषांक--२

--एक रुपया भेजकर यह अंक प्राप्त करें--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

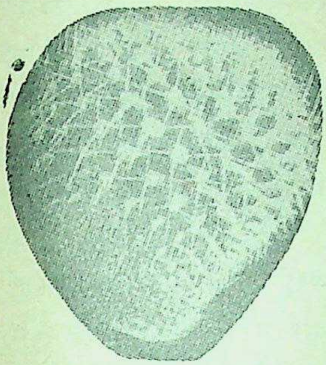

चू।।।है

गिरिराज किशोर

अम्मा जीनेमें थीं। सविता कमरेके दरवाज़ेसे हटकर कुरसीपर जा बैठी। घुटने मोड़कर मेज़से सटा लिये। हिल-हिलकर बुलन्द आवाज़से पढ़ने लगी, "गिन्सबर्गका मत है कि समाज यानी सोसायटी····" सामनेवाली खिड़कीका दरवाज़ा थोड़ा-सा तिरछा करके, बाहर झाँका। अम्मा उसीके कमरेकी ओर आ रही थीं। उसने आवाज़ और तेज़ कर दी "····सामाजिक आचारका सम्मिश्रण एवं पारस्परिक सम्बन्धोंका ताना-बाना है····" वही परिभाषा उसने दो तीन बार दोहरायी। बार-बार वह बाहर झाँक लेती थी।

अम्मा आँगनमें थीं। चीज़ोंको धर-पटक रही थीं। अपने-आप ही बड़बड़ाती भी जा रही थीं—"मेरे तो हुए न हुए बराबर हैं, इतना भी नहीं कटेपर मूत दें···· दुनियाको तो आठ-आठ चलते-फिरते नज़र आते हैं। सबको पलंगपर ही बैठे-बैठे पानीका गिलास चाहिए, मैं ही नौकरानीकी तरह घूमती रहती हूँ····" उन्होंने ज़ोर-से रानीको पुकारा—"ऐ रानीऽऽ, तू ही मर जा आकर····" कमरेकी ओर तिरछी नज़रोंसे देखकर कहा, "तुझे तो इसी समय एम्म-ए० पास नहीं करना—जब एम्म-ए० करेगी तभी इतने नखरे दिखाइयो।"

सविता दाँत भींचकर हलके-से मुसकरा दी।

पन्ना पलटकर उसने 'ग्रुप्स' पढ़ने शुरू किये—"ग्रुप्स या समूह दो तरहके होते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वे जो सीधे सम्बन्ध यानी डाइरेक्टर कॉण्टेक्टके आधारपर बनते हैं जैसे परिवार, पड़ोसी····।" पढ़कर उसने फिर बाहरकी ओर झाँका, अम्मा शायद उसके कमरेसे बिलकुल सटी खड़ी थीं। किसीसे बात करनेका प्रभाव उत्पन्न करते हुए धीमेसे कहा, "जैसे प्रेमी-प्रेमिका अम्मा-बाबूजी।" होठ जरूरतसे ज़्यादा फैल गये।

आगे पढ़ना शुरू किया—"दूसरी तरहका ग्रुप वह होता है जिसका आधार परोक्ष-सम्बन्ध या इन-डाइरेक्ट कॉण्टेक्ट होता है। जैसे नगर, राष्ट्र आदि।" अन्तिम वाक्य कहते-कहते वह फुसफुसाने लगी थी।

अम्माने ढुके हुए दरवाज़ेको ढकेलते हुए पूछा, "ए सविता, कौन है? रंजी?" सविताने झुँझलानेके स्वरमें कहा, "यहाँ कहाँ है रंजी, हर वक़्त मेरे ही पास बैठा रहता है न।"

"नाकपर मक्खी नहीं बैठने देती, पूछा ही तो था। माँ-बाप हैं तो पूछेंगे ही, हमारा भी तो फरज है बेटा-बेटीको ऊँच-नीचसे रोकें····"

सविताने अपनी गम्भीरता बनाये रखते हुए कहा, "अच्छा, मुझे लेक्चर न पिलाइए, पढ़ने दीजिए।"

"ऐ बेटी, पढ़ना ही पढ़ना तो है नहीं। घरका काम-काज भी देखना है····तू कमबख्तोंके घरमें पैदा नहीं हुई, छोटे बहन-भाई भी तुझे ही देखकर रंग बदलेंगे। शामका समय हो गया, चलकर ऊपर बैठ। तू अकेली होती तो कुछ करती-घूमती, मैं रोकती तो कहती।"

सविताके चेहरेसे लगा, चिल्ला[illegible] कहेगी—"आपको यहाँ आनेके लिए कि[illegible] कहा, जाइए यहाँसे।" लेकिन उसने [illegible] धीमी आवाज़में कहा, "किसने कहा था [illegible] पैदा करनेके लिए?"

अम्मा उसकी बातका जवाब [illegible] बजाय सविताकी कुरसीके पास आ खड़ी हुई। क्षण-भरके लिए सविताका चेहरा हिले [illegible] पानीकी सतह-सा हो गया। अम्माने [illegible] ओर एक नज़र देखा और फिर बोली, "[illegible] ऊपर, चल! पढ़ना ही है तो उपर [illegible] पढ़ना। इस समय यहाँ नहीं बैठने दूँगी। [illegible] अकेली····" बोलती-बोलती वे रुक गयीं।

उसकी नाककी टुस्सी सुर्ख हो गयी [illegible] ठुड्डीके नीचेका भाग काँप रहा था। [illegible] बोली, "अम्मा, जिस तरहकी बातें आप [illegible] रही हैं, इस सबका क्या उन छोटों-छोटों [illegible] अच्छा असर पड़ेगा? पूरे साल तो [illegible] ही काम किया है, फ़रवरीका महीना [illegible] गया····पढ़ूँ या न पढ़ूँ! कहिए किताबोंमें [illegible] लगा दूँ····" अम्माका पारा चढ़ता जा [illegible] था। सविता बिना रुके बोलती रही, "[illegible] बुरी हूँ ही, इन छोटियोंको देखिएगा, [illegible] आसमानके तारे तोड़-तोड़कर लाती हैं। [illegible] बेचारा रंजी नोट्स-वोट्स लाकर दे देता [illegible] वही आँखोंमें खटकता है!"

"अच्छा, ज़्यादा चबड़-चबड़ मत [illegible] बड़ा आया बेचारा! शुरूमें सब बेचारे [illegible] होते हैं। मैं सब जानती हूँ, तुम दोनों [illegible] बेचारे हो! हमने भी दुनिया देखी है।"

सविता ज़ोरसे हँस दी। हँसते हुए [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली, "अच्छा बाबा, हम सबसे बुरे हैं, अब तो पीछा छोड़िए।"

अम्माके चेहरेपर कुछ ऐसा भाव आ गया था, सविताके गालपर बिना चपत जड़े नहीं मानेंगी। बड़ी ज़ोरसे दाँत किचकिचाये। सविताने तुरन्त गम्भीर होकर कहा, "मैंने कब कहा था, मुझे कॉलेजमें पढ़ने भेजिए, अपने-आप ही तो पढ़ने भेजा। मुझे कुछ करना होगा तो कॉलेजमें नहीं कर सकती, पता भी नहीं चलेगा।"

"वहाँ चाहे जो करती धूम, यहाँ नहीं हो सकता। यहाँ मैं जैसा चाहूँगी वैसा ही होगा, यह बतलाये देती हूँ। अपनी और बच्चोंकी ज़िन्दगी खराब नहीं होने दूँगी।" सविता फिर हँसनेको हुई लेकिन अपने-आपको गम्भीर बनाये रखते हुए कहा, "आपके बच्चों-को क्या हुआ जा रहा है, मुझसे ऐसा ही कहना है तो मेरा गला घोंट दीजिए।" उसने अपनी गरदन अम्माके सामने झुका दी। कन-खियोंसे उनकी ओर देखती रही।

अम्मा स्तब्ध-सी खड़ी रह गयी थीं। फिर रोनी आवाज़में बोलीं, "तू क्या कहती है बेटी, मेरा भाग ही खराब है। मुझे गला ही घोंटना होता तो पैदा करते ही अँगूठा रख देती। पैदा किया है तो घर-बाहर सबकी सुनूँगी। मैं तेरे बीचमें बोलूँ तो सौ जूते मारना....." वे बड़बड़ाती हुई बाहर निकल गयीं।

सविता फिर अपनी कुरसीपर जा बैठी। पलकें बन्द करके दिमाग़को आराम देनेका प्रयत्न किया। आँखें बन्द किये-ही-किये, उसके चेहरेपर उलझनका-सा भाव आ गया। अम्मा बाहर सहनमें ही मौजूद थीं। इधरसे उधर चक्कर काट रही थीं। सविता चुपचाप बैठी रही, खुली किताब बन्द कर दी। कुछ देर बाद अम्माने पुकारकर कहा, "मैं चल रही हूँ, कुछ शर्म-लिहाज़ हो तो ऊपर आ जाना।" ज़ीने तक जाकर वे लौट आयीं और कमरेकी खिड़कीके सामने खड़े होकर बोलीं, "किसी दिन तेरे उस चहेतेको घरसे बाहर न कर दिया तो मेरा भी नाम नहीं....फिर कहती फिरेगी, मेरी बेइज़्ज़ती कर दी।" अम्मा फिर धम्म-धम्म करतीं ज़ीनेपर चढ़ गयीं।

सविताने खिड़कीका दरवाज़ा और खोल दिया। अपने तनावको कुछ कम करनेके लिए वह बार-बार आँखें बन्द कर लेती थी। कभी-कभी पलकोंके कस जानेपर, छोटी-छोटी सलवटें उभर आती थीं। थोड़ी देर बाद पुस्तक पढ़नेका प्रयत्न किया। उसका वह प्रयत्न बनावट-सा लगा। लाचार होकर किताब एक ओर रख दी। दोनों हाथ खड़े करके, हथेलियोंपर ठुड्डी रख ली और दर-वाज़ेकी ओर देखने लगी। उसके चेहरेकी ऊब और अन्दरका तनाव, काफ़ी स्पष्ट थे।

दस पन्द्रह मिनिट तक उसी तरह बैठे रहनेके बाद वह उठ खड़ी हुई। दरवाज़ा खोलकर ऊपर-नीचे, इधर-उधर झाँका, और बाहरवाले दरवाज़ेपर जा खड़ी हुई। सड़क-पर काफ़ी लोग आ-जा रहे थे। हर राहगीर-की नज़र उसपर पड़ती थी। कुछ लोग उसे दूर ही से देखते हुए आते थे, कुछकी नज़र सामने गुज़रते समय पड़ती थी और कुछ लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ़ी आगे तक जाकर भी मुड़-मुड़कर देखते रहते थे। वह ढीठ बनी खड़ी रही। दो-तीन छोकरोंने दूरसे ही देखकर सीटी बजायी। सीटीकी आवाज़से उसका तनाव कुछ कम हुआ-सा लगा। वह होठों ही होठोंमें मुसकरा दी। लड़के उसके सामनेसे गुज़रे तो वह बड़े ग़ौरसे उनकी ओर देखती रही। पहले तो उनमें-से एक लड़का भोंडी तरहसे मुसकराया फिर अपने आप ही गम्भीर होकर तेज़ीसे चलने लगा। दोनों साथियोंने भी अपनी चाल तेज़ कर दी। थोड़ी दूर तक जानेके बाद उन्होंने मुड़कर देखा, वह बराबर उनकी ओर देख रही थी। तीनों लड़कोंके आँखोंसे ओझल हो जानेपर वह हलका-सा मुसकरायी। धीरेसे कहा—"बेचारे!"

अम्माने उसे कमरेसे निकलते हुए देख लिया था। छज्जेपर खड़ी कुछ देर तक इन्तज़ार करती रही। शायद ऊपर ही आ रही हो। वे नीचे उतर आयीं। पहले तो आहट सुनकर सविता मुड़ी, लेकिन तुरन्त ही अपनी जगहपर जा खड़ी हुई। उसके कान अम्माकी ओर लगे थे। वह कनखियों-से पीठ-पीछेकी हर हरकतके साथ जुड़ी हुईथी। नीचे आकर अम्माने ज़ोरसे पुकारा, "ऐ सविताऽऽ, सविताऽऽ...! वहाँ खड़ी क्या रही है? क्यों मेरा जनम खराब करने-पर लगी है, चल इधर।"

सविता हलका-सा मुसकरायी। उसी मुसकराहटको चेहरेपर और अधिक फैलाकर अम्माकी ओर देखा। क्षण-भरके लिए अम्माको समझ नहीं आया, वे क्या करें। सविता धीमे-धीमे उनकी ओर बढ़ती रही। अम्माकी साँस फूलती-सी लगी। चिल्लाकर बोलीं, वहाँ खड़ी क्या कर रही थी? सविता ख़ामोश रही। अम्माके क्रोधका ठिकाना न रहा, उनके चेहरेसे लग रहा था वे उसका चेहरा नोच लेंगी।

"पता है, इस तरह शामको दरवाज़ेपर खड़ी होती हैं, तूने मेरी कुली उजाल दी। मुहल्लेवाले कहेंगे...." अम्माकी बातका तुरन्त जवाब न देकर सविताने सहज भावसे उनकी ओर देखा। आवाज़को भी सहज बनाये रखते हुए कहा, "मैं कहीं भाग थोड़े ही गयी थी?"

"भागनेका मन है तो भाग जा, हमें क्या दिखलायी दे रहा है, तू भागे बिना थोड़े ही मानेगी। सबके चेहरोंपर कालिख पोतकर जायेगी।"

सविताका चेहरा तमतमा आया। लेकिन अपने-आपको शान्त बनाये रखनेका प्रयत्न करते हुए कहा "रंजीका इन्तज़ार ही तो कर रही थी...." अम्माके चेहरेपर एक नज़र डालकर फिर कहा, "उससे नोट्स दे जानेके लिए कहा था, अभीतक नहीं लाया। वह ही लापरवाह लड़का है...!" उसके चेहरेको लगा, 'लापरवाह' कहते समय सविताकी आँख का भाव बदल गया है।

अम्मा बदहवास-सी हो रही थीं—"किसी औरको चलाना, मैं सब जानती हूँ, नोट्सके वोट्सके बहाने क्या होता है...सही सलामत नीचे आ-आकर बैठ जाती है। ऊपर बैठकर नहीं पढ़ा जाता, आने दे आज उसे।"

"क्या करेंगो आप उसका! आप हर्ज़ यही समझतीं हैं, लड़का-लड़की मिलते ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब-कुछ करने लगते हैं। आवाज़को थोड़ा और धीमा करते हुए कहा, "लड़के-लड़कियों-के पास सिवाय उस सबके कुछ और होता ही नहीं।"

अम्माने सुन लिया था। दाँत भींचकर चिल्लायीं "अरी बेशर्म, कुछ तो जबानको लगाम लगा। कैंची-सी चलाये जा रही है। तुझे इसीलिए पढ़ाया था, माँसे ऐसी-वैसी बातें करे····"

"आपने भी तो मुझे सब कुछ कह लिया····" दूसरी ओर मुँह करके कहा, "रण्डी-वण्डी····!" उसके होठ फैल गये थे।

अम्मा शायद थक गयी थीं। दुहाई-सी देती हुई बोलीं "हाय राम, मेरी जबान कट कर गिर जाय, जो मैंने ऐसी बात कही हो। मगर ऐसे-ऐसे लांछन लगायेगी ? आने दे अपने बाबूजीको, आज साफ़-साफ़ कह दूँगी। घरमें रहा तो आपकी बेटी रहेगी या····। अपने आप तो साहबबहादुर दफ़्तरमें जाकर बैठ जाते हैं। मुझे इन कमबखतोंके जूते खानेको छोड़ जाते हैं।"

सविताने अपने कमरेमें घुसते हुए कहा, "तो साथ ही चली जाया करिए।"

उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। अम्मा दरवाज़ेको घूरती रहीं। कमरेकी खिड़कीके पास जाकर बोलीं, "हाँ, हाँ, मैं भी चली जाया करूँगी। ये सब बातें उनसे ही कहूँगी ····आज फ़ैसला होकर रहेगा, तेरी जबान ना कतरवायी। इस घरमें रहेगी तो मेरी मर्जीसे रहना पड़ेगा, नहीं तो चली जा अपने रंजी-मंजीके पास।"

सविता अन्दर जाकर अम्माकी बातोंके प्रति एकदम ठण्डी हो गयी थी।

■

अम्मा ऊपर नहीं गयी थीं। वहीं सहनमें खटर-पटर करती घूम रही थीं। रंजी आ गया।

"नमस्कार माताजी !"

अम्माने रंजीकी ओर देखनेके लिए गरदन और आँखें दोनों एक साथ घुमायीं। खींचकर कहा, "नमस्कार !" तुरन्त ही उसकी तरफ़से गरदन घुमाकर दूसरी ओर देखने लगीं। रंजी एक क़दम पीछे हट गया था। लड़का, लड़कीके घरमें वैसे ही सहमा रहता है। 'माताजी'का मूड देखकर वह और अधिक सहम गया।

अम्माने ज़ोरसे कहा, "अब तो दरवाज़ा खोलो····" दरवाज़ा खोलनेकी बात कहनेके साथ ही उन्होंने रंजीपर भी नज़र डाली। रंजीके माथेपर पसीनेकी बूँदें थीं। वह अपनी टाईकी नॉट हिला रहा था। अपनी तरफ़ देखनेपर उसने खँखारते हुए अम्मासे पूछा, "क्या बात है माताजी ?"

"उसीसे पूछना····" सरसरी तौरपर जवाब देकर, दरवाज़ा खटखटाती रहीं।

सविताने झटकेके साथ दरवाज़ा खोला। बिना अम्माकी ओर देखे मुसकराते हुए रंजी-से कहा, "आओ····"

"आप शायद सो गयी थीं, माताजी काफ़ी देरसे खटखटा रही हैं।" रंजी कन-खियोंसे अम्माकी ओर देख रहा था।

अम्मा बीच ही में बोलीं, "बस, माता-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाताजीको रहने दो, अपना काम करो।"

सविताका चेहरा तन आया। लेकिन तुरन्त ही रंजीसे हँसकर कहा, "अन्दर तो आओ, मैं तो बहुत देरसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, ज़रा जल्दी आना चाहिए था।"

अम्मा खड़ी-खड़ी घूम गयीं। ज़ीनेके पास जाकर ज़ोरसे कहा, "जल्दीसे ऊपर आ जाना। काम पड़ा है। कभी दरवाज़ा बन्द करके...." कुछ रुककर बोलीं, "बातें मिलाने लगे।"

सविताने रंजीका हाथ पकड़कर अन्दर खींच लिया। अम्मा पाँव पटकती हुई ज़ीनेपर चढ़ गयीं।

सविताके एकाएक हाथ पकड़कर खींच लेनेके कारण मिनिट-भर तो रंजीके मुँहसे एक शब्द नहीं निकला, फिर कहा, "लीजिए नोट्स...."

सविताने मुसकराते हुए माफ़ी माँगनेकी मुद्रामें कहा, "मैंने आपका हाथ पकड़कर अन्दर खींच लिया था, आपने बुरा तो नहीं माना?"

"अरे नहीं, नहीं कोई बात नहीं।" रंजीका चेहरा थोड़ा फैल गया।

छोटा मुन्ना हाथमें प्लेट लिये उसके कमरेमें आ गया था। सविताने उसकी ओर देखकर पूछा, "कहिए?" ग़ुस्सेसे आँखें ऊपर चढ़ गयीं।

"जीज्जी, हम तो तुम्हारे कमरेमें बैठकर पढ़ेंगे।"

सविताने अपना चेहरा और सख्त बनाते हुए कहा "क्यों....ऊपर जगह नहीं है?"

वह बेचारा सहम-सा गया।

छोटा मुन्ना वहीं खड़ा रहा। सवि[illegible] बाहर झाँककर देखा, अम्मा छज्जेपर [illegible] हुई थीं।

रंजीने फिर कहा, "अच्छा मैं अब [illegible] नोट्स कॉलेजमें लेती आइए, वहीं ले लूँगा।"

अम्मा घूमकर उस कमरेके सामने[illegible] कटहरेपर आ गयी थीं। सविताने ज़ोरसे [illegible] "कुछ देर तो बैठो, कॉलेजमें तो बात ही [illegible] होती...." इस बार रंजीने भी गरदन [illegible] कर छज्जेकी ओर देखा। अम्मा पीछेकी [illegible] हट गयीं।

"मुझे भी जाकर पढ़ना है," रंजी[illegible] गला खरखरा आया था। उसने धीमेसे [illegible] 'आपकी माताजी बुला रही हैं।" [illegible] आँखें गोल किये अपनी जीज्जीकी ओर [illegible] रहा था।

शायद अम्मा छज्जेपर-से चली गयी [illegible] सविताने हाथ जोड़कर रंजीसे क्षमा-याचना[illegible] मुद्रामें कहा, "थैंक्यू, आपको बहुत [illegible] हुई। बट यू डोण्ट माइण्ड ऑल दैट...."

रंजीने जाते-जाते रुककर कहा, "[illegible] कॉलेजमें ही नोट्स ले लिया करें।"

सविताने थोड़ा मुँह बनाया, "नहीं, [illegible] बड़े बदतमीज़ होते हैं।" 'बदतमीज़' [illegible] हुए वह उसकी तरफ़ देखकर मुसकरा [illegible] बन्द होठोंके कारण रंजीके गाल फूल [illegible] आँखोंमें हलका-सा शैतानीका भाव आ [illegible] सविता उसके चेहरेको उत्सुकतासे देखने [illegible]

वह बिना कुछ कहे जाने लगा तो [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आखिरसे पूछा, "आप कुछ कह रहे थे ?" उसने टालना चाहा। लेकिन सविताके बार-बार कहनेपर उसने धीमेसे कहा, "जो बात आप लड़कोंके बारेमें कह रही थीं····मैं लड़कियों-के घरवालोंके बारेमें सोच रहा था।" सविताको एकाएक झटका-सा लगा। फिर जोरसे हँस दी। रंजी क्षमा माँगकर चला गया। अम्मा जीनेसे उतर रही थीं। सविता-ने जोरसे पुकारकर कहा, "कल आना····"

वह दरवाज़ेसे बाहर निकल गया था।

अम्मा नीचे आकर बोलीं, "जाने ही क्यों दिया····?"

सविताने तुरन्त जवाब दिया, "इतनेपर तो यह हाल है, रख लेती तो···"

अम्मा बीचमें ही बोलीं, "ओफ़्फ़ो, ज्वान है या हनुमानकी पूँछ···मैं हारी, तुम जीतीं! अब तो चलो ऊपर या अभी····कोई क्या मेरे जनम-करममें थूकेगा। पढ़ाई हमारे जमानेमें भी होती थी, लौण्डे-लपाड़ोंको बुला-बुलाकर कोई घरोंमें नहीं बैठाता था····इन ज्वलतोंको भी तो शरम नहीं आती, ऊँट-की तरह मुँह उठाये लड़कियोंके घरमें घुसे चले आते हैं। बदतमीज कहींके।"

सविताकी आँखें फैल गयीं। उसने अपनी मुसकराहट दबाकर कहा, "लड़कियोंके घर वाले भी तो····।"

अम्माकी दोनों मुट्ठियाँ भिंच गयीं। उनकी समझमें नहीं आया, क्या जवाब दे। कुछ देर बाद बोलीं, "खड़ी क्या मुसकरा रही हो देवी, अब तो छाती जुड़ा गयी····भेंट-मुलाकात हो गयी····" अम्मा बुरी तरहसे बौखला गयी थीं।

"चलो, ऊपर चलकर मेरा अचार डालना!" मुड़कर सविताने छोटे मुन्नेसे कहा, "चलिए दूत महाराज, अब तो ड्यूटी खतम हो गयी।" अम्माने आँखें तरेरकर उसकी ओर देखा। सविता दूसरी ओर देखने लगी।

कमरेके बाहरवाली छतपर रानी, मुन्नी, राजू, बड़ा मुन्ना, और नीता सहमे-से खड़े थे। बबलू पलंगपर लेटा था। अम्माको देखकर राजू, बड़ा मुन्ना, और नीता सहमे-से पीछेको हट गये। रानी, मुन्नी ढीठ बनी खड़ी रहीं। अम्माने तुरन्त ललकारा—"यहाँ क्या तमाशा हो रहा है, गोल बाँधकर खड़ी हो गयीं····जाओ काम करो।"

सविता बबलूके गालपर उँगली लगाकर उसे खिलाने लगी—"मेरा राजा बेटा कैसे-कैसे हँसता है····दुद्दु-दुद्दु, मीना-मीना किया।" बबलू मुँहसे गूँ-गूँ करने लगा। सविता दबी नज़रोंसे अम्माकी तरफ़ देख रही थी। अम्मा-के चेहरेका भाव कुछ हलका होता-सा नज़र आया। सविताने बबलूको गोदमें उठा लिया और 'मेरा राजा बेटा, मेरा राजा बेटा!' कहकर चूमने लगी। अम्मा हलके मूडमें बोलीं, "कैसा जमाना आ गया, भाईको बेटा कहती है। हमारे जमानेमें माँ-बापके सामने अपने बेटेको भी बेटा नहीं कहते थे।"

सविता थोड़ा-सा मुसकरायी और पूरी तरहसे अम्माकी तरफ़ देखकर कहा, "इससे तेईस साल बड़ी हूँ, इतना छोटा भाई बेटेके बराबर ही होता है।"

अम्माके चेहरेसे लगा, हर बातकी तरतीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलट-पुलट हो गयी है। सविताकी बातका जवाब उनकी समझमें नहीं आया। क्षण-भर रुककर उनके मुँहसे निकला—"हे राम, ऐसी बेशर्मी!"

सविताने देखा, अम्मा गम्भीर हो गयी हैं। खुशामदाना ढंगसे बोली, "आप तो ज़रा-सा मज़ाक़ भी नहीं समझतीं, नाराज़ हो जाती हैं।"

"मुझे नहीं पसन्द मजाक-वजाक····" अम्माने बबलूको सविताकी गोदसे ले लिया और बड़बड़ाती हुई चली गयीं, "उन्हीं अपने लगते-सगतोंसे मजाक किया कर।"

बबलू सविताकी तरफ़ देखकर हँस रहा था। उसने जीभ निकाल दी। बाबूजी ज़ीने-पर चढ़ रहे थे। अम्मा बबलूको कपड़ेसे ढँक-कर दूध पिला रही थी। सविता कमरेमें चली गयी।

■

रातको सविता बराबरवाले कमरेमें पढ़ रही थी। मेज़पर टाँगें फैलाकर घुटनोंपर पुस्तक रखी हुई थी, कान बातोंकी तरफ़ थे।

बाबूजी समझानेके अन्दाज़में कह रहे थे, "यह तुम्हारी कैसी आदत होती जा रही है, हर वक़्त सवितासे नाराज़ रहती हो! बराबर-की लड़की है। कॉलेजमें पढ़ती है। यह कैसे हो सकता है, मैं लोगोंके कहनेसे उसका गला घोंट दूँ। बिना ख़ुद देखे मैं कुछ नहीं कह सकता।"

अम्माकी आवाज़ तेज़ हो गयी, "तुम तो तभी विश्वास करोगे, जब गली-मोहल्लेमें कपड़े सूखेंगे····तब डुगडुगी बजाते घूमना।"

"ठीक है, मुझे डुगडुगी बजानी पड़ेगी तो बजा लूँगा।"

"मैं कहती हूँ, अगर अपनी इस लाड़ली को नहीं रोका तो सिरपर चढ़कर नाचेगी।"

सविताका चेहरा तमतमा आया। उसने पुस्तक उठाकर मेज़पर रख दी। पाँव नीचे उतार लिये, कुरसीके हत्थोंपर हाथ टिकाकर उठनेकी मुद्रामें बैठ गयी थी।

बाबूजीको ग़ुस्सा आ गया था, "क्यों बक-बक कर रही हो, जो मुँहमें आता है बकती जा रही हो।" उसने पुनः अपनी पीठ कुरसीसे टिका ली।

बाबूजीने बड़बड़ानेके स्वरमें कहा, "कुछ कुछ करना होगा तो न मैं रोक सकता न तुम।"

अम्मानें कुछ देर तक जवाब नहीं दिया। फिर बोलीं, "देखिए जी, मैं कहे देती हूँ तो इसके हाथ पीले करके घरसे बाहर दीजिए, नहीं तो मैं कुँएमें कूदकर प्राण दूँगी। कच्ची पाल है, इसकी मौजके कारण मैं उनका गला नहीं घोट सकती····मैं पूछती हूँ, कमरा बन्द कर-करके उस रंजीतसे क्या बात होती है, जो हमारे सामने नहीं हो सकती? भले घरोंकी लड़कियाँ लड़कोंका हाथ पकड़ती हैं? कुछ कह देता तो क्या होता····?"

सविता फिर सीधी हो गयी। उसकी पाँवकी उँगलियाँ ऊपर-नीचे होने लगीं। आँखोंसे लगा, वह बाबूजीकी प्रतिक्रिया जाननेके लिए उत्सुक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबूजी उठते हुए बोले, "नहीं समझमें आता तो दे दो कुँएमें कूदकर प्राण, मैं क्या कर सकता हूँ।"

अम्मा बड़बड़ाने लगीं, "मैं मर जाऊँगी, तुम बाप-बेटीका तो पाप कटेगा। ये कमबखत बच्चे ही धक्के खाते फिरेंगे।"

सविताको लगा, अम्मा सिसकने लगी है। बाबूजी उठकर सोनेवाले कमरेमें चले गये। सविता आँखें बन्द करके पुनः कुरसी-पर लेट-सी गयी। कुछ देर तक तो अम्मा बड़बड़ाती रहीं। फिर घर सधवानेमें लग गयीं। दो-तीन बार सविताके कमरेमें भी आयीं। सविताकी ओर बड़ी नाराज़गीके साथ देखती हुई गुज़र गयीं। बाबूजीके सोनेवाले कमरेमें गयीं। दराज़ खोलकर बिस्तरकी चादर निकाली। ज़ोरसे दराज़ बन्द किया। नौकरको पुकारा। नौकर नहीं था। बाबूजीसे ख़फ़ा बनाये रखनेका प्रयत्न करते हुए कहा, "शाम कोई आया था!"

"कौन?"

"उसीसे पूछ लो, बिना पूछे थोड़े ही बतायेगी।"

सविता उठकर बाबूजीके कमरेमें चली गयी। बाबूजी पीठके नीचे चार तकिये लगा-कर अख़बार पढ़ रहे थे। मुँहमें बुझा हुआ सिगार था। उन्होंने सविताकी तरफ़ देखकर पूछा, "कौन आया था बेटी?"

सविताके चेहरेका भाव बदल गया। उसने दबी नज़र अम्माकी तरफ़ देखा। उन्होंने पीठ घुमा ली।

"वही अंकल आये थे, उस दिन रामा साहबके यहाँ पार्टीमें मिले थे न,....आपके क्लास-फ़ेलो....!"

"अच्छा, वोऽऽ, तुमने रोका नहीं?"

"कल सुबह आयेंगे...."

बाबूजी पुनः अख़बार पढ़ने लगे। सविता कुछ देरतक खड़ी रहकर चलने लगी। अम्मा-ने उसकी ओर पीठ किये हुए ही कहा, "उसके लिए भी इन्हींसे पूछ ले, मैं कुछ नहीं जानती।"

बाबूजीने अख़बारकी ओरसे नज़र हटा-कर सविताकी ओर देखा। सविता चुपचाप खड़ी थी।

अम्माने अपने आप ही कहना शुरू कर दिया, "इतवारको कॉलेजके लड़कोंके साथ बड़ी नहरपर....क्या कहते हैं उसको....पक-निकके लिए जानेको कह रही है, आप जानें।"

बाबूजीने पूछा, "क्या बात है सविता?"

"कुछ नहीं बाबूजी। हमारे 'सोशियो-लोजी-एसोसियेशन'की तरफ़से दो दिनका टूर जा रहा है, मैं उसकी सोसल सेक्रेटरी हूँ।"

बाबूजीने क्षण-भर रुककर कहा, "तुम्हारी अम्मा तो पिकनिक कह रही थी।"

"वो तो मैंने 'जस्ट टु मेक हर अण्डर स्टेण्ड' कह दिया था।"

बाबूजीने अम्माकी तरफ़ देखते हुए कहा, "तुम्हारी अम्माने क्या कहा?"

"मैं हूँ ही कौन, कहनेवाली!" अम्माने बड़ी नाराज़गीके साथ उत्तर दिया। बाबूजी पुनः अख़बार पढ़ने लगे। सविता अपने कमरेमें जानेके लिए घूम गयी। अख़बारकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर मुँह किये बाबूजीने धीमेसे कहा, "चली जाना।"

सविताने घूमकर बाबूजीकी ओर देखा। अख़बार बाबूजीके चेहरेके काफ़ी पास आ गया था। अम्माकी ओर देखनेकी हिम्मत नहीं हुई। झपटकर दूसरे कमरेमें चली गयी।

अपने कमरेमें जाकर काफ़ी देर तक सविताके कान उधर ही लगे रहे। उसे बार-बार लगता रहा, अम्मा बाबूजीसे कुछ कह रही हैं।

थोड़ी देर बाद अम्माने बाबूजीसे पूछा, "बत्ती बन्द कर दूँ?" बाबूजीने 'हूँ' कर दिया।

बत्ती बन्द हो गयी। सविताने भी अपने कमरेकी बत्ती बन्द कर दी और सोनेके कमरेमें जाने लगी। उसका सोनेवाला कमरा अम्मा-बाबूजीके कमरेकी दूसरी तरफ़ था। उसे उनके कमरेके बीचसे गुज़रना पड़ा। नीता अम्माके बराबरमें बिछे खटोलेपर सो रही थी। बबलू अम्माके बिस्तरपर ही था। उन दोनोंके बीचमें छोटा-सा गोल तकिया लगा था, बबलू अम्माकी पीठके नीचे न लुढ़क जाये। अम्माने अपना पलंग बाबूजीके पास खिसका लिया था। बाबूजीका मुँह दूसरी ओर था। वह तेज़ीसे निकल गयी।

उसके कमरेमें रानी, मुन्नी, राजू, बड़ा मुन्ना, छोटा मुन्ना सबके बिस्तर लगे हुए थे। मुन्नीने अपने दोनों पाँव रानीके ऊपर रख दिये थे। राजू 'सिंगल' था। बड़ा और छोटा मुन्ना एक बिस्तरपर थे। उनकी मुद्रा कुछ ऐसी थी, दोनों बॉक्सिंग कर रहे हैं। सविता मुसकरायी। मुन्नीके पाँव रानीके ऊपरसे हटा दिये। डाँटते हुए कहा, "क[illegible] पिल्लोंकी तरह लिपटे पड़ी हो—" वे दोनों कुनमुनाकर फिर सट गयीं। दोनों मुन्नीको सीधा किया। वे भी ऊँ-ऊँ करके फिर एक-दूसरेके पास आ गये। सविताने सबको कपड़ा उढ़ाकर बत्ती बुझा दी और ज़ीरो बल्ब जला दिया। बीचका दरवाज़ा बन्द करने गयी। बिना चटखनी लगाये, केवल उढ़काकर चली आयी। वह हलका-सा मुसकरा रही थी। पलंगपर बैठकर उसने अपनेको थोड़ा 'लूज़' किया। छातीसे नीचे तक रज़ाई ओढ़कर लेट गयी। उसका मुँह दीवारकी तरफ़ था। ज़ीरो बल्बका हलका-हलका प्रकाश दीवारपर ठहरा हुआ था। उसने अपनी उँगलीसे एक खड़ी रेखा खींच दी। दीवारपर धूल होनेके कारण उँगली फिसलनेका हलका-सा निशान बन गया। वह उसे देखती रही। पहले निशानके बराबरमें ही उसने एक घेरा और बना दिया। वे दोनों निशान बहुत हलके थे। उन निशानोंको मिटानेके लिए उसने हथेली उठायी, बिना मिटाये ही करवट बदल ली और आँखें बन्द करके लेट गयी। आँखें बन्द कर लेनेवाले [illegible] भावमें भी उसकी व्यस्तता नज़र आ रही थी।

■

अम्मा कह रही थीं, "चूहे दौड़ रहे हैं। सविताने आज बीचका दरवाज़ा बन्द नहीं किया।"

"आपकी नींद भी खूब है, चूहोंकी सटपटरमें भी सोये जा रहे हैं।"

बाबूजीने शायद करवट बदलते हुए [illegible]

[शेष पृष्ठ १०१ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

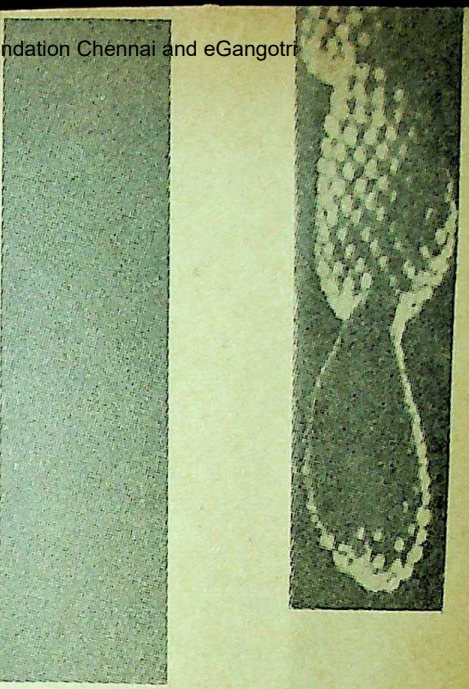

दो कविताएँ

• अद्वितीया

क़लम पर आकर मेरे भाव रुक जाते हैं
लगता है
पहले भी यह गीत कहीं पढ़ा है !
ओठों पर आकर सब शब्द ठिठक जाते हैं
लगता है
यह किसी फ़िल्म का डायलॉग है !
संगीत मुझे नहीं आता
पर अगर चित्र बनाने बैठूँ
तो वह भी शायद
किसी ठाकुर या कुमार की अनुकृति मालूम दे !

तुम अद्वितीया हो,
तुम्हारा यह प्यार जैसा निश्छल है
वैसा नया भी है !
फिर क्यों मेरी हर अभिव्यक्ति
बासी हुई जाती है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों मुझे लगता है
कि मैं किसी के जिये गये क्षणों को
मात्र दुहराता हूँ ?
तुमने जो दिया है
मैंने जो पाया है
क्या वह पहले कभी भी
किसी अन्य युगल-द्वारा यों ही विनिमयित हुआ ?
फिर क्यों मुझे लगता है
कि मेरे हाथों में यह निर्माल्य की थाली नहीं
कोई जूठा दोना है !

मैं बखूबी जानता हूँ
कि तुम्हारी प्रतीक्षा में
मैं जैसे छटपटाता हूँ
पहले नहीं हुआ,
तुम्हारे स्मरण से जैसा झुक जाता हूँ
पहले नहीं झुका,
तुम्हें छूकर मैं जैसा पवित्र लग आता हूँ
पहले नहीं लगा,
जानता हूँ क्योंकि मैं भोक्ता हूँ
मैंने तुम्हें प्यार में, सुधि में, विकलता में
बूँद-बूँद भोगा है !

किन्तु हाय, जब-जब मैं
अपने उस प्यार को, सुधि को, विकलता को
अपने से मुक्त कर मूर्त करने चलता हूँ
तो लगता है कि मैं छल लिया गया हूँ
जहाँ से चला था जैसे वहीं पहुँच गया हूँ
और इस लम्बे रास्ते का हर मोड़, हर ढाल, हर गर्त
मुझ पर हँस रहा है !
और मेरे पैर चाहे चलते चले जायें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा मन बढ़ने से इनकार करता है ।
नहीं, मैं फिर नहीं खाऊँगा पछाड़, जो खा चुका
जो काँटा चुभ चुका वह क्या फिर चुभेगा ?
ठीक वही घाव उसी मर्म पर मैं कैसे सहूँगा ?
अपने इस अभूतपूर्व टटके मनोभाव को
अजायबघर में रखी कोई प्रतिमा
या कारख़ाने से निकला कोई सीलबन्द डिब्बा
कैसे बना दूँ ?

अरी ओरी अद्वितीया,
मेरी प्रिया !
क्या यह सच नहीं है कि मेरे मन का यह अटकाव
तेरी ही लीला है ?
मेरे उद्‌गार की यह घिसी-पिटी परिचित सामान्यता
तेरी ही माया का एक आवरण है
जिससे छनकर आता वह तेरा स्फटिक रूप
मुझे निरन्तर बुलाता है
पर हाथ नहीं आता है ?

तो फिर अभी कुछ देर और मुझे प्यार दो
हँसी का उजाला दो, अतृप्ति का नीहार दो
डूबने दो मुझे अभी गहरे, और गहरे
इस भाव के समुन्दर में
जाने दो मुझे सब परिचय के पार
इस अपार में
उद्‌घाटित कर दो अपनी तेज-तीक्ष्ण निर्मम अनन्यता,
अपना यह मायावी लीला-पट बिदार दो !
भर दो इन प्राणों में धधकता ताप और
रोमों में स्फुरन और
छूटने दो मुझे अन्-इतिहास की अ-रूँधी नयी राह पर
पैठने दो नीचे, और नीचे इस अतल में
जहाँ इस आसक्ति का स्रोत है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ मेरी अभिव्यक्ति का
अ-भूत चिरवांछित अपरूप मोती है !

—भारतभूषण अग्रवाल

• अधूरापन

धूप के फूल
अचानक ही
छूट जाते हैं हाथों से
और हम रह जाते हैं मौन !

सभी धुँधले पड़ जाते हैं
पेड़-छत-चेहरे-मीनारें
हमारे औ' दृश्योंके बीच
खिंची होती हैं दीवारें ।
खिंची होती हैं दीवारें
अडिग-इस्पाती दीवारें....

मेरी लिखी
हर गन्ध-पत्ती मिट गयी
उफ़ ! हवा कितनी तेज़ है ?....
अचानक ही
कैसी हो गयी ये हवाएँ !
कि इन्हें मुट्ठियों में भर सकते हो तुम
लपेट कर जेबों में रख सकते हो तुम
कागज़ों की तरह ।
धूप में इतनी नरम झिलमिली कहाँ से
—कैसे आ गयी
कि तुम्हारी हँसी मेरी आँखों पर छा गयी ।....
चलो, अब बीन लें किरनें
लिखें परछाइयाँ ।

जहाँ तुम हो वहाँ—कोमलता
जहाँ मैं हूँ वहाँ—असफलता

ज्ञानोदय । मई १९५१ दो कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ हम दोनों वहाँ पर—मौन
लिख कर

बीन लें बातें
रचें तनहाइयाँ···।

लाख कोशिशों पर भी
भूल नहीं पाता वह शाम !
सूने छज्जे हम-तुम
ऐसी बातें करते
जिनके अक्षर गुमसुम ।
और तुम्हारे अधरों
मेरा भर-भर आता नाम !

औंधा पड़ा है दिन
हमसे अलग होकर ।
बातों के स्वर और चीज़ों के कौने
दबकर, मुड़कर हैं मृतप्राय
एक स्लेटी धुन है, एक कत्थई गाना
जिसका अभिप्राय-अनभिप्राय ।
किरनें करवट लेकर मौन
मौन ले रहा अन्तिम साँस····
हवाएँ हुई धार दाऽर
मितवा, ये कैसे दिन आये
रे मीता, ये कैसे दिन आये ?
देह आपनी लगे बिरानी
बजती रहे चतुर्दिक कोई
भूली-बिसरी प्रेम-कहानी ।
गूँजे बारम्बाऽऽर ।
मितवा, ये कैसे दिन आये
रे मीता····
धूप-छाँह-सी शीत····

—ओम प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

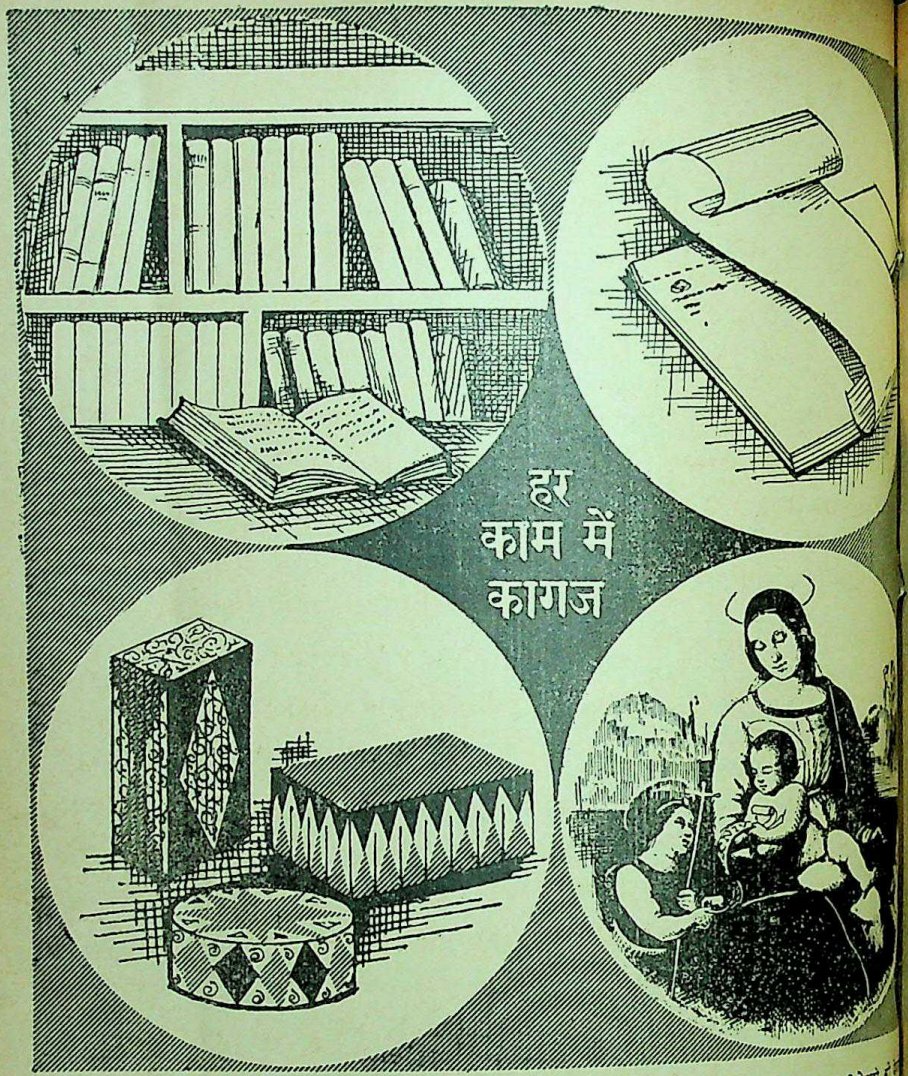
हर
काम में
कागज

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज...

ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों [illegible] बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के [illegible] पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही [illegible] आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, [illegible]

IPC-RI-383 HIN.(A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

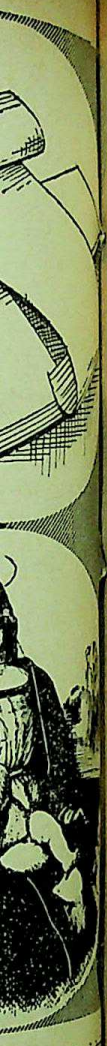

ध।र्म।स्म।र।ण

तथागतकी यादमें : २९वाँ वसन्त

कृष्णशंकर व्यास

अतीतकी स्मृतियाँ एकाएक मेरे मनमें जाग्रत हुईं—तथागतके जन्म-स्थान, बोधि-प्राप्ति स्थल और तथागतके धर्मचक्र-प्रवर्तन तथा उनके महापरिनिर्वाणके स्थलोंके चित्र एक-एक कर मेरे कल्पनाचक्षुके सम्मुख आये और मैं सोचने लगा, क्या ही अच्छा होता यदि बुद्ध-पूर्णिमाको, जब विश्वमें सर्वत्र उनके परिनिर्वाणकी चर्चा होती है, वे भी हमारे सम्मुख होते और अपने जीवन-दर्शन और नैतिक आदर्श-के सम्बन्धमें स्वयं कुछ कहते।

स्मृतियोंने सजीव हो चलचित्रकी भाँति एक-एक कर उन ऐतिहासिक घटनाओं-को साकार कर दिया, जिन्हें हम आज बौद्ध-साहित्य और दर्शनके इतिहासके सुनहले पृष्ठकी संज्ञा देते हैं। आजसे २५०० वर्ष पूर्व भारतमें ही नहीं अपितु मध्य एशिया, चीन, जापान, बर्मा, नेपाल, लंका, कोरिया, जावा द्वीप, पूर्वी द्वीपसमूह और कम्बोडियामें फैले बौद्ध-धर्मके रहस्यको जाननेकी इच्छा बलवती हुई। समझमें नहीं आ रहा था, आखिर वह कौन-सा रहस्यमय जादू था जिसने सारे एशियाको बौद्ध-धर्म माननेके लिए प्रेरित किया और किया हम-आपको विस्मय और आश्चर्यकी कहानीको जानने-सुननेके लिए बाध्य। कल्पनाके सहारे न जाने कबतक मैं भगवान् बुद्धके जीवन-दर्शन और नैतिक आदर्शके बारेमें सोचता रहता यदि देवत्वकी दिव्यता लिये बोधिसत्वकी प्रतिमा मेरे सम्मुख न आ जाती।

ऐसा लगा जैसे मेरे अन्तर्मनकी बात भगवान् बुद्धसे छिपी न रह सकी। उनकी मुसकान-भरी मुद्रा देखकर मेरे हृदयमें प्रसन्नताकी एक लहर दौड़ गयी। दूसरे ही क्षणोंमें धीमे-धीमे मेघ गर्जनकी-सी एक ध्वनि कानोंमें गुंजरित हुई : "वत्स, तुम्हारे अन्तर्मनकी पुकार ही मुझे तुम्हारे सम्मुख खींच लायी है। तुम अपनी जिज्ञासाओंको शान्त कर सकते हो। धर्ममें तुम्हारी बुद्धि स्थिर हो।"

बोधिसत्वके अलौकिक भौतिक वैभवके अवलोकनमें अभी कुछ ही क्षण व्यतीत हुए थे कि भगवान् बुद्धकी आज्ञाका स्मरण आया और मैंने उनके सान्निध्यका अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अधिक लाभ उठाना चाहा। सर्वप्रथम मैंने पूछा—"देव, आप अपने जीवनकी किस घटनाको सबसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं ?"

भगवान् बुद्ध कुछ गम्भीर मुद्रामें बोले—"जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना तो उसे कहते हैं जो मनुष्यके जीवनको एक नयी दिशाकी ओर प्रेरित करे और उसे एक नया स्वरूप प्रदान करे। तो ऐसी घटना मेरे जीवनके उन्तीसवें वसन्तमें घटी। उसी वर्ष मैं संसारकी मोहमायाको त्यागकर दुःखके कारणोंकी खोजके लिए निकल पड़ा। सर्वप्रथम मैंने कालाम नामक योगिराजकी आज्ञानुसार समाधिमार्ग-द्वारा दुःखके कारणोंकी जानकारी करनी चाही। जब मैं तप कर रहा था तो मेरे साथ अन्य पाँच साधक भी थे। मैं शान्तिकी खोजमें तप-द्वारा अपना शरीर घुला रहा था। पर जब मैंने अनुभव किया कि तपके द्वारा शरीरको सुखा देना ज्ञानार्जनका मार्ग नहीं है तो मैंने कठोर तपस्या छोड़ दी और समाधिके मार्गका अनुसरण करने लगा। यह परिवर्तन देखकर मेरे पाँच साथियोंने सोचा कि मैं पथ-विमुख हो गया हूँ और वे मेरा साथ छोड़कर सारनाथ-वनमें तपस्या करने लगे। परन्तु मैंने चिन्ता और मननके मार्गका ही अनुसरण किया और अन्तमें मुझे सफलता भी मिली।" इतना कहकर बोधिसत्व कुछ क्षणोंके लिए रुके।

"ज्ञानके अन्वेषणसे आपका क्या उद्देश्य था ?" जिज्ञासाने वाणीका रूप लिया।

"वत्स ! धर्ममें तुम्हारी बुद्धि स्थिर हो। मैंने ज्ञानका अन्वेषण केवल आत्मशान्तिके लिए नहीं वरन् विश्व-कल्याणके लिए किया था। अतः मैंने अपने अनुभवोंको दूसरोंके सम्मुख रखनेका प्रयत्न किया और इसी उद्देश्यसे मैं सर्वप्रथय सारनाथ गया। संयोगसे वहाँ मेरी भेंट मेरे प्राचीन मित्रोंसे हुई जो कठोर तपस्या कर रहे थे। मैंने उन्हें अपने शान्ति-प्राप्तिके सम्बन्धमें किये गये अन्वेषणके सम्बन्धमें विस्तारसे बताया। वे बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने मेरे धर्मकी शरणमें आनेकी जिज्ञासा प्रकट की। मैंने उन्हें बौद्ध-धर्ममें दीक्षित किया। मैंने उन्हें सलाह दी—"भिक्षुओ, संन्यासीको दो अन्तोंका सेवन नहीं करना चाहिए। वे दो अन्त हैं—एक तो काम और विषयके सुखमें फँसना जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य, अनार्य और अनर्थकर है, और दूसरा शरीरको व्यर्थ अति कष्ट देना जिसे भी अनार्य और अनर्थकर कहना अनुपयुक्त न होगा। इस दोनों अन्तोंको त्यागकर मैंने मध्यम प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को ग्रहण किया जो आँख खोलनेवाली और ज्ञान देनेवाली है।"

इतना कहकर भगवान् बुद्ध कुछ क्षणके लिए रुके। फिर बोले—"यहीं पर सर्वप्रथम मैंने धर्मका चक्र चलाया था। जहाँतक मुझे याद है, यह घटना लगभग ५२० ई० की है। उस समय मेरी आयु लगभग ३५ वर्षकी थी। वैसे मेरा रंग तो उतना साफ़ न था पर हाँ, मेरे मुखपर पर्याप्त तेज और ज्योतिके चिह्न स्पष्ट अंकित थे। जहाँतक स्मरण आता है, वह आषाढ़ पूर्णिमाका दिन था।

"भगवन् ! बौद्ध-धर्मके विश्वव्यापी प्रचारका क्या रहस्य है ?" विनीत स्वरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे अन्तर्मनका दूसरा प्रश्न था।

भगवान् बुद्धके तेजोमय मुखमण्डलपर स्मृतिकी रेखाएँ दौड़ गयीं। बोले—"जब मैंने बोधि प्राप्त की तब मुझे ही लोग इस दुनियामें एकमात्र अर्हत मानते थे क्योंकि मैंने अपने मनके राग-द्वेष आदि क्लेश-बैरियोंका हनन किया था। ऋषिपत्तनमें जब मैंने कौण्डिन, वाष्प, भद्रिय, महानाम तथा अश्वजित् नामक पाँच शिष्योंको उपदेश देकर बोधि प्राप्त करायी तो संसारमें छह अर्हत हो गये। संसारके कोने-कोनेसे घबराये लोग ऋषिपत्तनकी ओर दौड़ने लगे और वहाँ उन्हें भी शीघ्र शान्ति-प्राप्तिकी अनुभूति हुई। धीरे-धीरे मेरे साथियोंकी संख्या बढ़ने लगी। मैंने विश्व-कल्याणके उद्देश्यसे इन साथियोंको धर्मदूत बनाकर चारों ओर धर्म-सन्देश देनेके लिए भेजा।

"सच पूछो तो मेरा उद्देश्य था कि वे विश्वमें शान्ति और सुखकी प्राप्तिके हेतु मेरे अनुभवोंको प्रसारित करें। मैंने उनसे कहा, भिक्षुओ, बहुजनके हितके लिए, लोकपर दया करनेके लिए, और सुखके लिए विचरण करो। अब तुम स्वयं सोच करते हो, जिस धर्मका उद्देश्य बहुजनका हित, लोकपर दया तथा उनके सुखकी और समृद्धिकी व्यवस्था करना हो वह विश्वव्यापी क्यों न बनेगा?

"जबतक मैं जीवित था, बौद्ध-धर्म संसार-भरमें एक यशस्वी और कल्याणकारी मार्गका जनक माना जाता था। युरॅप, एशिया, जावा, सुमात्रा, जापान और मिस्र तकने मेरी विचारधाराका अनुकरण किया। प्रेम, सत्य, सहानुभूति और अहिंसाके मार्गके उज्ज्वल आलोकसे प्रियदर्शी अशोक भी प्रभावित हुआ और उसने मेरी विचार-धाराओं-के प्रचार-प्रसारसे संसारका हृदय जीतकर सर्वकालके लिए मानव-जातिके सम्मुख शान्ति और धर्म-द्वारा विश्वबन्धुत्वका आदर्श उपस्थित कर दिया। ढाई हज़ार वर्ष बाद भी बौद्ध-धर्मके माननेवालोंने जिस उत्साहसे मेरे परिनिर्वाणका उत्सव मनाया, वह इस बातका प्रतीक है कि बीसवीं सदीमें भी मेरी विचार-धाराओंको यथेष्ट सम्मान प्राप्त है जो मानव मात्रके लिए सुख और शान्तिका एक ही मार्ग है।"

"देव! सम्यक् विचार और सम्यक् चिन्तनसे आपका क्या अभिप्राय है?"

"सच पूछो तो विचारोंकी शक्ति अदम्य है। मनुष्य मात्र विचारोंकी अदृश्य रज्जुसे बँधा हुआ है। तुम्हारे मनका प्रत्येक विचार सारे मानव-समुद्रको तरंगित करता है। कोई भी व्यक्ति अलग कटा हुआ अपने ही में पूर्ण नहीं है। अतः मनुष्यको सम्यक् विचार और सम्यक् चिन्तन करना चाहिए।" उत्तर मिला।

"दुःखका क्या मूल कारण है? आपके इस सम्बन्धमें क्या विचार हैं?"

तुरत ही उत्तर मिला—"दुःखका कारण पुनर्जन्म और मृत्यु है। इसीका विकसित दार्शनिक अभिव्यंजन प्रेतीत्य समुत्पाद अथवा मध्यमार्ग है। एक ओर जीवकी नित्यता, दूसरी ओर मृत्युके पश्चात् उच्छेद—ये दोनों ही असत्य हैं। मनुष्य कारणों और उनसे उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कार्योंका जीता-जागता एक लगातार तांता है। इसको सन्तान कहते हैं। जड़ और चेतन सभी पदार्थ क्षणिक अस्तित्वकी सन्तान हैं। और सच पूछिए तो दुःखके कारणोंका इतिहास इसीमें है।"

"कुमार सिद्धार्थके लुम्बनी बाग़के शाल-वृक्षके नीचे जन्म होनेकी कहानी सुननेकी तीव्र अभिलाषा है।"

"पालि ग्रन्थोंके अनुसार मेरी माताको पहलेसे ही मालूम था कि उनकी जीवित रहने-की अवधि मेरे जन्मके बाद केवल कुछ दिनों-की है। अतः उन्होंने पिताजीकी आज्ञा लेकर अपने निकट सम्बन्धियोंसे मिलने जानेकी तैयारी की। शीघ्र ही कपिलवस्तुसे देवदाहा तक एक सड़क बनायी गयी और उसके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगाये गये। मेरी माताने प्रस्थान किया। दोनों नगरोंके बीचमें लुम्बिनी-का एक सुन्दर बगीचा पड़ता था। उसमें शालवृक्षोंका एक बड़ा झुण्ड था। जिस समय मेरी माता उस राहसे गुज़र रही थीं, जड़से लेकर ऊपर तक वृक्ष फूलोंसे लदे थे। मेरी माँ प्राकृतिक सौन्दर्यकी इस शोभाको देखकर स्तब्ध रह गयीं। उन्होंने पालकीसे नीचे उतर-कर शालवृक्षके निकट जाकर स्वयं ही फूलों-का एक गुच्छा तोड़ना चाहा। उसी समय मेरा जन्म हुआ था।

"आज लुम्बिनीमें शालके वृक्षोंकी शृंखला नहीं है। जहाँ मेरा जन्म हुआ था वहाँ एक पीपल और एक नीमका वृक्ष है और उसीकी छायामें एक मन्दिर भी है। वहीं निकट ही एक अँधेरी गुफ़ा है जिसके ऊपर पत्थरकी कलामें अंकित है मेरे जन्मकी कहानी—जिसमें मेरी माँने शालवृक्षकी एक डाल पकड़ रखी है और मुझे हटाते हुए कतिपय महिलाओंका चित्र है, और बादमें मैं 'खड़ा' चित्रित किया गया हूँ। यह चित्र उस घटनाकी स्मृति सजीव करता है, जब मैं जन्मके तुरत बाद ही चलने लगा था।"

"विज्ञानके इस युगमें जब परमाणुबम और उद्जनबम प्रलयंकारी शस्त्रास्त्रोंसे मान-वता त्रस्त है क्या शान्ति और अहिंसाके मार्ग-से मानवताके त्राणका पथ प्रशस्त हो सकेगा?" अन्तर्मनने तर्क प्रस्तुत किया।

"वत्स! विज्ञान बीसवीं सदीकी कोई नयी देन नहीं है। मेरे युगमें भी विज्ञानवाद कई नामोंसे प्रसिद्ध था। उसका पूरा नाम विज्ञान मात्रवाद, विज्ञप्ति मात्रवाद, चित्र मात्र-वाद है अर्थात् विज्ञान और चित्रके अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु विद्यमान ही नहीं। अन्य कई नाम भी हैं—स्वसंवेदनवाद, अथवा स्वसं-वित्तिवाद अर्थात् अपने-आपको समझनेका वाद। सच पूछो तो उस समयका विज्ञानवाद आजसे भी अधिक सूक्ष्म और जटिल था। विज्ञानवादके कतिपय ग्रन्थोंके नाम हैं—लंका-वतार सूत्र, बोधिसत्वभूमि, सूत्रालंकार वृत्ति, बन्धुकृत विशंककारिका, असंगकृत महा-यान श्रद्धोत्पाद, दिमांगकृत न्यायविन्दु उपरि धर्मोत्तरकी टीका इत्यादि। इन ग्रन्थोंके अव-लोकनसे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि मानवता के विनाशके लिए विज्ञान नहीं है अपितु उसकी भलाईके लिए ही है। आज हाइड्रोजन और एटमबम जनसाधारणको आतंकित कर रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन कल यही मानवताके विकासका अद्वितीय साधनमात्र बनेगा। इसलिए अन्तमें पंचशीलके सिद्धान्त, जो मेरी विचारधाराओंसे मिलते हैं, मानवताकी रक्षामें सहयोग प्रदान करेंगे।"

जिज्ञासाओंका क्रम पर्याप्त दीर्घ हो चला था। उस विराट् व्यक्तित्वके दो सहस्र पाँच सौ वर्ष पूर्वके प्राचीन-सुवर्ण कालके जीवनकी जो अपूर्व झलक और झाँकी मिली, जिस शाश्वत सत्यका साक्षात्कार हुआ और जिन अमर नैतिक तत्वोंकी प्रतीति हुई उनसे मनमें हर्षोल्लासकी सीमा न थी। अनुज्ञा प्राप्त कर विदा लेनेसे पूर्व अन्तिम रूपसे केवल एक ही बात पूछी।

"भगवन्! आपने मृत्युसे पूर्व भी मृत्युका आलिंगन जान-बूझकर क्यों करना चाहा था?"

भगवान् बुद्ध कुछ मुसकराये। बोले—"देवदत्तका नाम तो तुमने सुना ही होगा। वह मेरे प्रति ईर्ष्याका भाव रखता था। अनेकों बार अनेकों षड्यन्त्रकी योजनाएँ उसने बनायीं, मैं हर बार जान-बूझकर आगे रहा फिर भी उसे सफलता न मिली। एक दिनकी बात है; देवदत्तने सब तरफ़से निराश होकर मेरे भिक्षा लेने जानेके समय मुझपर आक्रमणके लिए एक मत्त हाथीको छोड़ दिया। सभी लोग भाग खड़े हुए पर मैं ज्योंका-त्यों खड़ा रहा। जैसे ही हाथी मेरे निकट आया, मैंने प्यारकी दृष्टि उसपर डाली। वह चुपचाप खड़ा हो गया। वत्स! अब क्षमा करना, विलम्ब हो रहा है।"

बात पूरी न हो पायी कि एक दिव्य-ज्योति अलौकिक आभा विकीर्ण करती हुई द्रुत गतिसे आरोहण कर गयी। ■ ■

[पृष्ठ ९० का शेष : चूहे]

आगे आवाज़में कहा, "हाँऽऽ, चूहे मुझे परेशान नहीं करते।"

अम्मा चुप हो गयीं। थोड़ी देर बाद बोलीं, "कहें तो बीचका दरवाज़ा बन्द कर दूँ?"

"कर भी दो, भई··· बाबूजीकी आवाज़ फिर डूब गयी। सविताके होठोंपर हँसी फैल गयी। अम्माने दरवाज़ा बन्द करके चटखनी लगा ली। सविता पलंगपर उठकर बैठ गयी। वह आप-ही-आप मुसकराती रही।

थोड़ी देर बाद वह फिर लेट गयी। दीवारपर उसके बनाये हुए दोनों निशान थे। हथेलीसे साफ़ कर दिये। उन निशानोंके स्थानपर हथेलीके घस्सेका निशान बाक़ी रह गया। उधर कुछ बातें हो रही थीं। वह कोहनियोंके बल अधउठी-सी हो गयी। बाबूजी कुछ कह रहे थे, "हाथ तो मत हटाओ।"

सविताने कसकर आँखें बन्द कर लीं।

थोड़ी देर बाद अम्माने घुलती-सी आवाज़ में फिर कहा, "यह ठीक नहीं है, जवान लड़कीको इस तरह भेजना····" 'भेजना'के बाद शब्द सुनाई नहीं पड़े। सविताने उचककर बत्ती जला दी।

वह बत्ती जलते ही चिल्लायी—"उईऽऽ, चूहे····!" चिल्लाकर दो-चार क्षण टोह लेती रही। दूसरे कमरेमें, एकदम सन्नाटा था। उसने फिर हलके-से मुसकराकर बत्ती बन्द कर दी और लेट गयी। बत्ती बन्द हो जानेपर भी उसके दाँत काफ़ी देर तक खुले रहे। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीढ़ियों पर धूप में

रघुवीर सहाय

१० कहानियाँ, ८० कविताएँ और ११ लेख जो विषय-वस्तु और शिल्पमें अन्यतम हैं। ४.००

काठ की घण्टियाँ

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

एक समूचा उपन्यास, २० कहानियाँ तथा ७१ कविताएँ : आधुनिक लेखनमें अप्रतिम। ७.००

अंकित होने दो

अजित कुमार

कहानियाँ, रेखाचित्र, कविताएँ और अंकन। ४.००

खुला आकाश मेरे पंख

शान्ति मेहरोत्रा

कहानियाँ, व्यंग्य, एकालाप, लघु-कथाएँ, गीत और कविताएँ – सब एक साथ। ४.५०

'अज्ञेय'-द्वारा सम्पादित 'नये साहित्य स्रष्टा' ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्रकाशित कृतियाँ हिन्दी नवलेखनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। एक पुस्तक एक ही एक लेखकका पूरा प्रतिनिधित्व करे, और नाना रस-व्यंजनोंसे पाठक रसनाको लुभाये और तृप्त भी करे — यह सम्भावना न केवल अपने ढंग एकमात्र प्रयास है वरन् आजकी स्थितिमें एक मूल्यवान् प्रयोग

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

ज्ञानोदय, मई

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

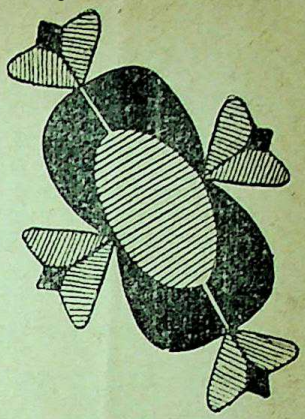

प्र । श्ना । न्त । क

गीता ?—क्या सचमुच उस बड़े युद्धसे पहले युद्ध-भूमिमें अर्जुन और श्रीकृष्णके लिए इस प्रकारकी लम्बी धर्मचर्चा करना सम्भव था··· ?

गीता साधारणतः एक अत्यन्त प्रामाणिक धर्मशास्त्रके रूपमें पढ़ी जाती है, परन्तु धर्मशास्त्रसे पहले वह एक काव्य-रचना है। लोग समझते हैं कि वह भगवान्‌के मुख-पद्मसे निःसृत हुई है, परन्तु श्रीकृष्ण तो उसके अन्तर्गत केवल एक पात्र हैं। उन्होंने वही कहा है जो कविने उनसे कहलाया है। हाँ, उनके-द्वारा जो कहलाया गया है वह हिन्दू धर्म-चिन्तनका सरल, संक्षिप्त व समन्वित रूप है, उसमें उपनिषदोंके सार-तत्त्व, सांख्ययोग व वेदान्त दर्शनोंके लघु रूप व अवतारवादी मान्यताओंकी सम्मिलित झाँकी है। उसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग व राजयोग—इन चारोंका भी सामंजस्य है; अतः हिन्दुओंके द्वैत, अद्वैत, सगुण, निर्गुण आदि माननेवाले सभी सम्प्रदाय उसमें अपनी रुचिकी चीज़ पा सकते हैं। भाषा भी उसकी अत्यन्त सरल व प्रसादगुणयुक्त है। इन कारणोंसे प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें वह सहज ही सर्वाधिक लोकप्रिय हो गयी।

गीता महाभारतका एक ऐसा अंश है जो अपने-आपमें एक स्वतन्त्र खण्ड-काव्य-जैसा है। कुरुक्षेत्रमें जब कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ अस्त्र-शस्त्रोंसे सज्जित होकर आमने-सामने खड़ी होती हैं, तब इसका प्रारम्भ होता है। धृतराष्ट्रको स्वभावतः यह जाननेकी उत्सुकता है कि युद्ध-भूमिमें उसके और पाण्डुके पुत्र क्या कर रहे हैं। वह संजयसे पूछता है और संजय उसको युद्ध-भूमिकी हलचलोंका 'आँखों देखा' हाल सुनाता है। पहले दुर्योधन आचार्य द्रोणको दिखाकर अपनी और पाण्डवोंकी सेनाकी तुलना करता है। फिर भीष्म सबसे पहले अपना शंख बजाते हैं। उसके पश्चात् पाण्डव-पक्षके सभी महारथी अपने-अपने शंख फूँकते हैं जिनके घोषसे संजयके कथनानुसार 'धार्तराष्ट्रों' के हृदय विदीर्ण हो गये। "स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्" यहाँ पाण्डवोंके साथ अपनी सहानुभूतिके कारण कवि यह भूल जाता है कि उसका संजय अपने राजा धृतराष्ट्रसे उसके पुत्रोंकी ही नमक-मिर्च लगाकर निन्दा कर रहा है।

कौरवोंको व्यवस्थित देखकर अर्जुन अपने सारथी श्रीकृष्णसे कहता है कि दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरा रथ खड़ा कर दीजिए जिससे मैं अच्छी तरह देख सकूँ कि किन-किनके साथ मुझे युद्ध करना है। श्रीकृष्णके वैसा कर देने-पर अर्जुनकी जिधर दृष्टि जाती है उधर ही उसे अपने विपक्षमें अपने स्वजन खड़े दिखाई देते हैं। उन सबके रक्तसे उसे अपने हाथ रँगने पड़ेंगे—इस बातकी कल्पनासे ही उसका अन्तर काँप उठता है, यों तो यह बात उसे पहले ही सोच लेनी चाहिए थी, परन्तु जीवन-में प्रायः किसी स्थितिके साक्षात् सामने आनेसे पहले उसकी भयंकरताका स्पष्ट आभास नहीं होता। दूसरे, भाई-भाईके बीचमें महाविनाश-कारी युद्ध होने जा रहा हो और उसके विषय-में धर्मपक्षकी ओरसे कवि कोई सफ़ाई न दे—यह कैसे सम्भव है? कौरव तो रणपर तुले हुए हैं ही। वे तो बिना युद्धके एक सुईकी नोंक-जितनी भी भूमि पाण्डवोंको देनेको उद्यत नहीं। वे तो लोभसे अन्धे हो गये हैं। तो क्या पाण्डवोंको भी वैसा ही हो जाना चाहिए?

फिर इतने बड़े युद्धके परिणाम देशव्यापी होते हैं। उससे राष्ट्रके पौरुषका ह्रास होता है, कुलके कुल नष्ट हो जाते हैं और स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होकर अधर्मकी वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न करती हैं। इन सब सम्भावनाओंको सामने देखते हुए भी क्या अर्जुन और उ धर्मप्राण भाई अपने व्यक्तिगत लाभके लि राज्यके लोभसे प्रेरित होकर युद्धरूपी 'पाप' में प्रवृत्त हों? अर्जुनसे यह जीती म नहीं निगली जाती। उसका युद्धोत्साह ठ पड़ जाता है और हाथ-पैर ढीले हो जाते अर्जुनके इस विषाद और अन्तर्द्वन्द्वका क बड़ा ही स्वाभाविक, सजीव और हृदय चित्रण किया है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि क अर्जुनको ही इस द्विविधाकी स्थितिमें डाला? पाण्डव-पक्षमें-से अन्य किसीक नहीं चुना? इसका कारण यह है कि पाण्डव-पक्षका सर्वश्रेष्ठ महारथी है। बलपर युद्ध लड़ा जा रहा है। यों सेनापति धृष्टद्युम्न है, परन्तु अर्जुनके पत्ता भी नहीं हिल सकता। अतः प्रधान उत्तरदायित्व अर्जुनके ऊपर आ उसके पाप-पुण्यका भागी भी अधिकांशतः है। दूसरे तो, युद्धकी दृष्टिसे, उसके अ अथवा पृष्ठपोषक मात्र हैं। इसलिए मनमें ही यह धर्मसंकट सबसे अधिक हो सकता था। फिर, उसके पास श्री जैसे समर्थ महापुरुष हैं। उनसे 'धर्म चेता' अर्जुन हतबुद्धि होकर उचित दर्शनकी प्रार्थना कर सकता है। पाण्डव अन्य किसीको भी यह सुभीता नहीं है कविने अर्जुनको ही चुना।

अर्जुनको हतोत्साह देखकर श्रीकृष्ण झिड़कियों-द्वारा उसे उत्तेजित करनेका करते हैं। तुम वीर हो, यह कापुरुषता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभा नहीं देती ? नपुंसक मत बनो, इस क्षुद्र दुर्बलताको परे फेंककर खड़े हो जाओ ! आदि। परन्तु अर्जुनका विषाद सैद्धान्तिक है। भीष्म व द्रोण-सरीखे पूजनीय गुरुजनों तथा अन्य बान्धवोंके साथ रक्तकी होली खेलनेमें, और अपने स्वार्थके लिए इतने विशाल मानव-समुदायको युद्धकी आगमें झोंक देनेमें कौन-सी अच्छाई है ? क्या इस नर-संहारके स्थानपर यह उचित नहीं होगा कि पाण्डव लोग भिक्षा-वृत्ति ग्रहण कर लें ?

कहा जा सकता है कि इन सब गुरुजनों और बान्धवोंके साथ अर्जुनने विराटनगरमें पहले भी युद्ध किया था—फिर अब ही क्या हो गया ? परन्तु उस युद्ध और इस युद्धमें जमीन-आसमानका अन्तर है। वह युद्ध केवल एक खेल था। उसमें अपने हस्तलाघवसे अर्जुनने कौरव-महारथियोंको नीचा दिखाकर छोड़ दिया था। परन्तु इस युद्धमें उनके प्राण लेने पड़ेंगे, उनका रक्त बहाना पड़ेगा ! इसमें खेलकी गुंजाइश नहीं है। या तो मारो या मरो। इसी कारण अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर श्रीकृष्णसे पथ-प्रदर्शनकी याचना करता है।

श्रीकृष्ण उसे समझाते हैं कि संसारमें मरना-जीना तो चलता ही रहता है। कालकी क्रियामें असंख्य शरीर बनते और मिटते रहते हैं। मृत्यु भी कौमार्य, यौवन और जरा-की भाँति देहकी एक अनिवार्य अवस्था है। परन्तु तत्त्वरूपमें सभी कुछ अविनाशी है। देह नश्वर भले ही हो, देही अजर-अमर है। इस बातको भलीभाँति समझकर मनुष्यको अपने अथवा अन्य किसीके मरने-जीनेकी विशेष चिन्ता न करते हुए धर्मानुकूल कर्त्तव्य-कर्म करते रहना चाहिए। न्यायके लिए युद्ध करना क्षत्रियका प्रधान कर्त्तव्य है। अन्यायी आततायी स्वजन भी हो, तो भी उसके विरुद्ध खड़े होनेमें संकोच करना उचित नहीं। हाँ, स्वार्थकी भावनासे युद्ध करना कोई ऊँची चीज़ नहीं है। तुम्हारे मनमें जो दुर्बलता उत्पन्न हुई है वह इसी कारण है कि तुम यह समझ रहे हो कि तुम इन स्वजनोंको मारकर राज्य पानेके लिए लड़ रहे हो, परन्तु तुम्हारे हाथमें केवल युद्ध करना है, उसका परिणाम क्या होगा, यह तुम्हारे हाथमें नहीं है। अतः सुख-दुःख, हानि-लाभ और जय-पराजयकी चिन्ता छोड़कर कर्त्तव्य-भावसे युद्ध करो। ऐसा करनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा। विजयी हुए तो पृथ्वीका राज्य भोगोगे और मर गये तो स्वर्ग तुम्हारा स्वागत करेगा। इसके विपरीत, यदि तुम इस धर्मयुद्धसे मुँह मोड़ोगे, तो कायर कहलाओगे और अपनी अबतककी समस्त कीर्तिको खोकर पापके भागी होगे !

श्रीकृष्णके उपदेशका सार यह है कि अर्जुनको स्वार्थ-बुद्धिसे नहीं, बल्कि स्थितप्रज्ञ होकर युद्ध करना चाहिए। इसी सन्दर्भमें अर्जुन उनसे स्थितप्रज्ञके लक्षण पूछता है और श्रीकृष्ण उसके सामने स्थितप्रज्ञके रूपमें गीता-के आदर्श-पुरुषकी कल्पना प्रस्तुत करते हैं। वह आदर्श-पुरुष न दुःखमें दीन होता है, न न सुखमें गर्वित। वह संसारमें रहता हुआ भी उससे मानो पृथक् आत्मलीन रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह किसी कामनाके वशीभूत होकर कर्म नहीं करता, अतः उसके कर्म उसके लिए बन्धनका कारण नहीं बनते। वह राग-द्वेषरहित, आत्म-तृप्त, प्रशान्त, संयमी, धीर और पूर्ण स्वतन्त्र होता है। सार यह है कि वह अपनी देह, मन, प्राण और इन्द्रियोंके साथ-साथ भागा नहीं फिरता, बल्कि उन्हें पूर्ण रूपसे अपने नियन्त्रणमें रखकर उनसे यथेष्ट काम लेता है।

स्थितप्रज्ञके वर्णनमें उसके वीतराग, निश्चल और शान्तस्वरूप या ब्राह्मी स्थिति-को प्रधानता दी गयी है। इससे अर्जुन समझता है कि यह स्थिति आत्मज्ञानमय निष्क्रियताकी है। अतः वह श्रीकृष्णसे पूछता है कि यदि यही श्रेष्ठ है तो युद्ध-जैसे घोर कर्ममें आप मुझे क्यों फँसाते हैं? इसके उत्तर-में श्रीकृष्ण उसे कर्मयोगकी महत्ता बतलाते हैं। सम्पूर्ण जगत् कर्ममय है, किसीके लिए पूर्णरूपसे अकर्मण्य अथवा निष्क्रिय होना सम्भव नहीं। लोकसंग्रह भी बिना कर्म किये नहीं हो सकता। अतः अनासक्त भावसे, कर्तृत्वके अभिमानसे रहित होकर कर्म करते रहना चाहिए। जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण कर्म भगवान्‌को समर्पण करके यज्ञमय जीवन व्यतीत करता है, वह पाप-पुण्यसे ऊपर उठ जाता है। अर्जुनको भी इसी निर्लिप्त भावसे युद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनकी युद्धविषयक मोहजनित शंकाका समाधान कर देते हैं। अब उसे युद्धके लिए तैयार हो जाना चाहिए। इस बीच दोनों ओरकी सेनाएँ युद्ध प्रारम्भ होनेकी प्रतीक्षा कर रही होंगी। उन्हें अधिक देर तक यों ही खड़े रखना अनुचित है। परन्तु गीताका कवि यहाँ यह भूल जाता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों युद्धक्षेत्रमें खड़े हैं और उन्हें इतनी वार्तालापके लिए अवकाश नहीं है। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवाद संजय-द्वारा धृतराष्ट्रसे कहा जा रहा है। वह संवादके बीचका संवाद है, संजय उसे अपनी ओरसे न कहकर पात्रोंके मुखसे ही कहला रहा है। अतः काव्यकी दृष्टिसे संजयको अधिक देर तक पर्दे के पीछे नहीं रखा जा सकता। फलतः गीताकारको हिन्दुओंके लिए एक सार्व समन्वयात्मक धर्मग्रन्थ प्रस्तुत करना है अतः वह काव्यके औचित्यको एक ओर रख अर्जुन व श्रीकृष्णके संवादको लम्बा खींच चला जाता है और गीताके दूसरे अध्याय पश्चात् संजयका अपना बोल ग्यारहवें अध्याय जाकर फूटता है। धृतराष्ट्र तो गीताके प्रारम्भमें केवल एक श्लोक बोलकर मौन धारण कर लेते हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें नींद आ गयी हो। गीताके अन्तमें इस समस्त धर्म-चर्चाके विषयमें वे कोई सम्मति नहीं देते। श्रीकृष्णका विराट् रूप और अर्जुन द्वारा उसकी स्तुति भी उनमें कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं करते।

तीसरे अध्यायके अन्तसे ही श्रीकृष्ण और अर्जुन धर्म-चर्चामें लीन हो जाते हैं। बीच दोनों ओरकी सेनाएँ मानो मक्खी मारती रहती हैं। यथार्थमें, पाठकके सम्मुख इस समय न संजय है, न धृतराष्ट्र, न युद्धक्षेत्र, न सेना, वह अपने सामने अर्जुन और श्रीकृष्णको उपनिषत्कालीन गुरु-शिष्यकी भाँति प्रश्नोत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते देखता है। अर्जुन एक ऐसा विद्यार्थी है जिसका ज्ञान नहींके बराबर है। श्रीकृष्ण गुरु-रूपमें साक्षात् भगवान् हैं।

सबसे पहले अर्जुन पूछता है कि मनुष्य न चाहता हुआ भी पापमें क्यों प्रवृत्त होता है? इसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि कामके वशीभूत होकर वह ऐसा करता है। यह काम बड़ा प्रबल शत्रु है। यह मन, बुद्धि और इन्द्रियोंपर छा जाता है। इससे बचनेका उपाय है योगयुक्त संयम जिसके द्वारा मनुष्य अपनी सत्ताका यथार्थ स्वामी बनता है।

चौथे अध्यायमें श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह योग-रहस्य मैंने पहले विवस्वान्‌को बताया था। उसने मनुको सिखाया। फिर परम्परासे वह अन्य राजर्षियोंको मिला। इसपर अर्जुन पूछता है कि आपका जन्म तो अब हुआ है और विवस्वान् बहुत पहले हो चुके हैं, फिर आपने उन्हें कैसे बताया होगा? श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि मेरे-तुम्हारे दोनोंके अनेक जन्म हो चुके हैं। तुम्हें उनका स्मरण नहीं है, परन्तु मुझे है। यों तो मैं अजन्मा ईश्वर हूँ, परन्तु जब-जब धर्मका ह्रास और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं दुष्टोंके नाश और सज्जनोंकी रक्षाके लिए अपनी मायासे अवतार लेता हूँ। साथ ही कर्मयोगके सम्बन्धमें पहली कही हुई बातोंको पुष्ट करते हुए वे भिन्न-भिन्न प्रकारके यज्ञोंका विवरण देते हैं और अपना निश्चित मत व्यक्त करते हैं कि द्रव्यमय यज्ञों-से ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है।

इसके अनन्तर दूसरे अध्यायमें भी श्री-कृष्ण कर्मयोगको कर्मसंन्याससे श्रेष्ठ बताते हैं। संन्यास कर्मका नहीं, कामना व कर्तृत्वका करना चाहिए। कर्तव्य-कर्म करते हुए भग-वान्‌को वास्तविक कर्त्ता और अपने-आपको निमित्तमात्र समझना ही कर्मयोग है। राज-योगका साधन भी पूरकरूपसे पाँचवें और स्वतन्त्र रूपसे छठे अध्यायमें बताया गया है। युक्ताहारविहार करते हुए, आसनपर स्थिर बैठकर चित्तवृत्तियोंका विरोध करके शनैः-शनैः मनको आत्मलीन करनेसे मनुष्यको परम आनन्द और परमशान्ति प्राप्त होती है। वह ब्रह्मरूप होकर अपनेमें सबकी और सबमें अपनेको देखने लग जाता है। यद्यपि मन अत्यन्त चंचल है, तथापि अभ्यास व वैराग्यसे क़ाबूमें आ जाता है। यदि कोई व्यक्ति इस जन्ममें योगभ्रष्ट भी हो जाये, तो भी उसकी प्रगति रुकती नहीं, अगले जन्ममें पिछली साधनाका बीज उसके अन्तरमें सुरक्षित रहता है।

सातवें अध्यायसे दसवें तक ज्ञान व भक्तिका विवेचन चलता है। अन्तिम तत्त्व एक परमेश्वर है। उसकी परा और अपरा दो प्रकृतियाँ हैं। परा जीवरूप है और अपरा पंच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार, रूप अष्टधा। जीव और जगत् सब उस एकमें गुँथे हुए हैं। वही सबका उद्भव व प्रलयस्थान है। उसकी अनन्य भक्तिसे मनुष्य भवसागरसे तर जाता है। मरते समय जैसी मनुष्यकी वृत्ति होती है वैसी ही उसकी गति होती है। सृष्टि और प्रलय क्रमसे होते हैं। परमेश्वरमें उनसे कोई तदनुरूप परिवर्तन नहीं होता। वह सदा एकरस आनन्दमय रहता है। सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूजा परमेश्वरको ही जाती है। जगत्में जो कुछ श्रेष्ठ और श्रीसम्पन्न है, उसमें भगवान्‌की विभूतिकी मानो विशिष्ट अभिव्यक्ति है।

सच्चे जिज्ञासुकी तृप्ति तत्त्वज्ञानकी बातोंसे नहीं होती। वह प्रत्यक्ष अनुभव चाहता है। अर्जुन भी ग्यारहवें अध्यायमें श्रीकृष्णसे अपना ईश्वरीय रूप दिखानेकी प्रार्थना करता है। श्रीकृष्ण उसे अपना विराट् रूप दिखाते हैं। यहाँ अर्जुन-द्वारा पहले उस विराट्के वर्णन और पीछे उसकी स्तुतिमें कविने अपने कौशलका अच्छा परिचय दिया है। परम्पराके अनुसार होते हुए भी उनमें ताज़गी और तन्मयता है। छन्द भी विषयानुरूप बदल दिया गया है।

परमेश्वरका स्वरूप आकर्षक और भयानक दोनों है। वह स्रष्टा और पालक है तो संहारकर्त्ता भी है। अर्जुनको उस विराट्के प्रति भयमिश्रित श्रद्धा उत्पन्न होती है। उसके सामने अपनी अत्यन्त लघुताका अनुभव होता है। उसके दर्शनसे तथा उसके मुखसे सुनकर उसे निश्चय हो जाता है कि कौरव-पक्षके सभी महारथी मृत्युके ग्रास हैं। उसे तो केवल मरोंको मारना है। अतः युद्ध करनेमें उसकी रही-सही झिझक भी अब दूर हो जानी चाहिए। वैसे भी, प्रत्यक्ष दर्शनके पश्चात् जाननेको क्या रह जाता है? वह ज्ञान, भक्ति, कर्मयोग, राजयोग सभीकी चरम परिणति है। अतः इस चरमबिन्दुपर आकर इस धर्म-चर्चाकी समाप्ति कर दी जाती तो अच्छा रहता। वैसे भी ग्यारहवें अध्यायके प्रारम्भमें ही अर्जुन कहता है कि आपकी कृपासे मेरा मोह दूर हो गया है। परन्तु गीताकारको अभी बारहवें अध्यायमें यह बताना है कि भगवान्‌को कैसी भक्ति और कैसे साधक विशेष प्रिय हैं, तेरहवेंमें सांख्यकी दृष्टिसे क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति-पुरुषका भेद बताकर परमेश्वरको दोनोंमें स्थित, उनका मूल और उनसे भिन्न बताना है। चौदहवेंमें प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंको व्याख्या करके उनके अनुरूप स्वभाववाले मनुष्योंका वर्णन करना है और उन तीनोंसे अतीत, साक्षीभावसे रहनेवाले आत्मस्थ पुरुषोंकी महिमा गानी है। पन्द्रहवेंमें अश्वत्थ वृक्षसे संसारकी उपमा देकर उसके ऊर्ध्वमूल परमेश्वरके धाम और उसे पहुँचनेके साधनका आभास देना है। सोलहवें दैवी और आसुरी सम्पत्ति अर्थात् गुणसमूहोंका वर्णन करके उनके संचयके शुभ और अशुभ फल बताने हैं। सत्रहवें और अठारहवेंमें सत्त्व, रज और तमके गुणभेदसे तीन प्रकारके आहार, यज्ञ, तप, दान, ज्ञान, कर्म, कर्ता, सुख आदिका निरूपण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके गुणकर्म, स्वभाव बताने हैं। अतः प्रत्यक्ष दर्शनके पश्चात् भी अर्जुनकी जिज्ञासा और श्रीकृष्णकी वाणीको विराम नहीं मिलता।

अठारहवें अध्यायके अन्तमें एक बार फिर योगयुक्त कर्मकी महत्ता दोहरायी गयी है। अन्तमें समस्त उपदेशका उपसंहार यह करते हुए किया गया है कि सब धर्मोंको छोड़कर तू अर्थात् परमात्माकी शरण आ जाओ। मेरा भजो, मुझे नमस्कार करो, सम्पूर्ण मनसे मेरे हो जाओ। मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूँगा। यही नहीं, लगे हाथ गीताके अध्ययन और श्रवणका महान् फल भी कविने श्रीकृष्ण-के मुखसे ही कहलवा दिया है। अपनी कृतिके विषयमें उस कृतिके पात्रसे ही प्रमाण-पत्र प्राप्त करना हास्यास्पद है। यदि कोई कहे कि श्रीकृष्ण अपने और अर्जुनके बीच हुए संवादका माहात्म्य बता रहे हैं, तो वह भी अनुपयुक्त जँचता है। यदि रामलीलामें स्वयं राम दर्शकोंको रामलीला देखनेका माहात्म्य बताने लगें तो कितना भोंड़ा लगेगा?

वास्तवमें गीताकी रचना धर्मग्रन्थके रूप-में हुई है। धर्मग्रन्थोंको लोग प्रायः आँख बन्द करके पढ़ते हैं। उनमें काव्यकी दृष्टिसे उचित-अनुचित सब चलता है। उनमें कवि परमेश्वर अथवा किसी बड़े देवताके मुखसे अपने विचार कहलवाकर उनके माहात्म्यका किसी भी प्रकार विज्ञापन करनेको स्वतन्त्र है। गीताकी महत्ता स्थापित करनेके लिए श्रीकृष्ण-द्वारा कथित माहात्म्यसे ही सन्तोष नहीं किया गया। उसके तुरन्त पश्चात् वैशम्पायनजीके मुखसे भी कहलाया गया है कि गीता स्वयं भगवान् कमलनाभके मुखसे निकली है। इसलिए इसीका अच्छी तरह स्वाध्याय करना चाहिए। अन्य बहुत-से शास्त्रोंका संग्रह करनेसे क्या लाभ है?

परन्तु यदि सम्पूर्ण गीता श्रीकृष्णके मुखसे निकली है, तो क्या उसमें धृतराष्ट्र, संजय और अर्जुन-द्वारा कहे हुए श्लोक भी उन्हींके मुखसे निकले हैं? यदि केवल उनका उपदेश ही निकला हो, तो क्या वह इस छन्द-बद्ध रूपमें निकला था? और क्या धृतराष्ट्र, अर्जुन और संजय भी आशुकवि थे? फिर कृष्णार्जुन संवादको वहाँ कौन बैठा लिख रहा था? और क्या सचमुच उस बड़े युद्धसे पहले युद्धभूमिमें अर्जुन और श्रीकृष्णके लिए इस प्रकारकी लम्बी धर्म-चर्चा करना सम्भव था? यथार्थमें अर्जुन-जैसे बुद्धिमान् योद्धाका क्षणिक मोह दूर करनेके लिए श्रीकृष्ण-जैसे समर्थ महापुरुषको इतना लम्बा व अप्रासंगिक प्रवचन करनेकी आवश्यकता नहीं थी। उसके लिए तो गीताके पहले तीन अध्याय ही काफ़ी थे। उनके पश्चात् ही अर्जुनका उस विषयमें समाधान हो जाता है। श्रीकृष्ण ही चौथे अध्यायमें आगेसे कहते हैं कि यह योग मैंने पहले विवस्वान्को बताया था, आदि। यदि वे यह बात न कहते तो आगेकी चर्चा चल ही नहीं सकती थी। चर्चाके बीचमें भी ऐसा लगता है जैसे उन्हें व्याख्यान देनेका शौक है। कभी वे अर्जुनके बिना पूछे ही कोई प्रसंग छेड़ देते हैं, कभी उसके छोटे-से प्रश्नका लम्बा-चौड़ा उत्तर देते हैं, और कभी उससे कहते हैं कि मैं तेरे हितके लिए फिर यह कहता हूँ और प्रवचन जारी रखते हैं। यथार्थमें अधिकांश कृष्णार्जुन-संवाद कविके धर्मोपदेशका केवल एक चौखटा या बहाना प्रतीत होता है।

गीता महाभारतके भीष्म-पर्वके अन्तर्गत है। उसके प्रारम्भ होनेसे पहले ही वैशम्पायनजीने कुरुक्षेत्रमें शंख और रणभेरियाँ बजवा दी हैं और श्रीकृष्ण और अर्जुनके पांचजन्य और देवदत्त शंखोंके भयंकर नादसे कौरव-योद्धाओंके दिल दहला दिये हैं। यही नहीं, संजयने आकर धृतराष्ट्रको भीष्मजीके धरा-शायी हो जानेका समाचार दे दिया है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनुप्रिया

जिसमें राधाके प्रणयके विविध आयाम प्राणोंकी धाराओंसे टित होकर प्रकृतिके प्रतीकोंमें सार्थक तादात्म्य प्राप्त कर दूसरा संस्करण ।

• सात गीत वर्ष

भारतीकी चुनी-चुनी ५१ कविताओंका संकलन, जिसमें रचना-प्रक्रियापर एक दस्तावेज़ी गद्य-खण्ड भी सम्मिलि दूसरा संस्करण ।

हिन्दीकी
नयी पीढ़ीके
अग्रणी
साहित्यकार

धर्मवीर भारती

की
बहु-प्रशंसित
विशिष्ट
कृतियाँ

• •

• सूरजका सातवाँ घोड़ा

हिन्दीमें शिल्प और कथ्यकी दृष्टिसे अपनी तरहका उपन्यास---जितना महत्त्वपूर्ण है, आकर्षक भी चौथा संस्करण ।

• गुनाहोंका देवता

एक बहुपठित उपन्यास । मध्यमवर्गीय जीवनकी अत्यन्त प्रेम-कथा । जीवन, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास आदिको मौलिक प्रयास । सातवाँ संस्करण ।

• मानव मूल्य और साहित्य

मानव-मूल्यके सन्दर्भमें साहित्यका विश्लेषण, परीक्षण आकलन । प्रत्येक साहित्य-अध्येताके लिए भारतीकी रूपसे पठनीय कृति ।

• देशान्तर

२१ पाश्चात्त्य देशोंकी १६१ आधुनिक कविताओंका छायाएँ । हिन्दीमें अपने प्रकारकी सर्वप्रथम कृति । दूसरा संस्करण ।

• आस्करवाइल्डकी कहानियाँ

अँगरेज़ी गद्य अनुपम शैलीकारकी अनूठी कहानियोंका रूपान्तर ।

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली–६।

ज्ञानोदय : मई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृतराष्ट्र उसे तबतकके युद्धका विस्तारसे वर्णन करनेका आदेश दे चुके हैं। परन्तु गीतामें नये सिरेसे धृतराष्ट्र संजयसे अपने और पाण्डुके पुत्रोंके युद्धका वर्णन करनेको कहते हैं। बजे-बजाये बाजे और शंख भी दुबारा बजवाये जाते हैं। इससे लगता है कि गीता पहलेसे चल रहे कथासूत्रको अलग छोड़कर एक स्वतन्त्र रचनाके रूपमें महाभारतमें फ़िट की गयी है। मूलकथामें वह पूरी तरह घुलती नहीं। केवल अर्जुनका तीव्र अन्तर्द्वन्द्व और श्रीकृष्ण-द्वारा उसका समाधान ही मूलकथाकी रसवृद्धि-में सहायक हो सकते थे। परन्तु गीतामें इतना अधिक धर्मोपदेश है कि उसके मध्य तक पहुँचते-पहुँचते अर्जुनका अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त गौण बनकर आँखोंसे ओझल हो जाता है और मूलकथा वहींकी वहीं ठहर जाती है। अन्तमें जब अर्जुन युद्धके लिए तैयार हो जाता है, तब कथा आगे बढ़ती है। इस स्थलपर पहुँचकर प्रतीक्षा लगता है जैसे कविके उपदेशका कोष समाप्त हो गया है और अब उसके पास श्रीकृष्ण और अर्जुनको युद्धमें भेजनेके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

गीताकी वास्तविक महत्ता उसके विचारों-में है। उसकी धार्मिक व दार्शनिक दृष्टि उदार व समन्वयात्मक है और उससे उच्चतम आदर्शोंके अनुरूप कर्ममय जीवन जीनेकी प्रेरणा मिलती है। गूढ़से गूढ़ बातोंको सरल ढंगसे कह देना गीताकी विशेषता है। उसके निरन्तर अध्ययनसे मनकी गाँठें खुलती हैं और जीवनको दिशा व गति मिलती है। काव्यकी दृष्टिसे अर्जुनके अन्तर्द्वन्द्वका चित्रण, स्थितप्रज्ञ-का वर्णन तथा विराट् रूप-कथन अच्छे बन पड़े हैं। अनेक स्थलोंपर उसकी वाणी चमत्कारी है और उसमें मनको छूने तथा स्फूर्ति देनेकी अद्भुत क्षमता है। जैसे—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

परन्तु साथ ही, गीतामें कुछ कमियाँ भी हैं, उसमें धृतराष्ट्रकी भूमिका नगण्य है और बहुत-सा उपदेश पुनरुक्तिपूर्ण व अप्रासंगिक है। दसवें अध्यायमें भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन 'मैं आदित्योंमें विष्णु, नक्षत्रोंमें शशि हूँ इत्यादि' भी अनावश्यक रूपसे लम्बा व उथला प्रतीत होता है। परमेश्वरका इतना अधिक बोलना भी संगत नहीं लगता। माहात्म्य-कथन तो काव्यकी दृष्टिसे एक भारी दोष है ही। हो सकता है कि इस प्रकारके अनेक श्लोक गीतामें पीछेसे बढ़ाये गये हों और मूल रूपमें वह अर्जुनके विषाद तथा उसके तात्कालिक निराकरणसे सम्बन्धित काव्यांश ही रहा हो।

—किशोरीलाल गुप्त

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

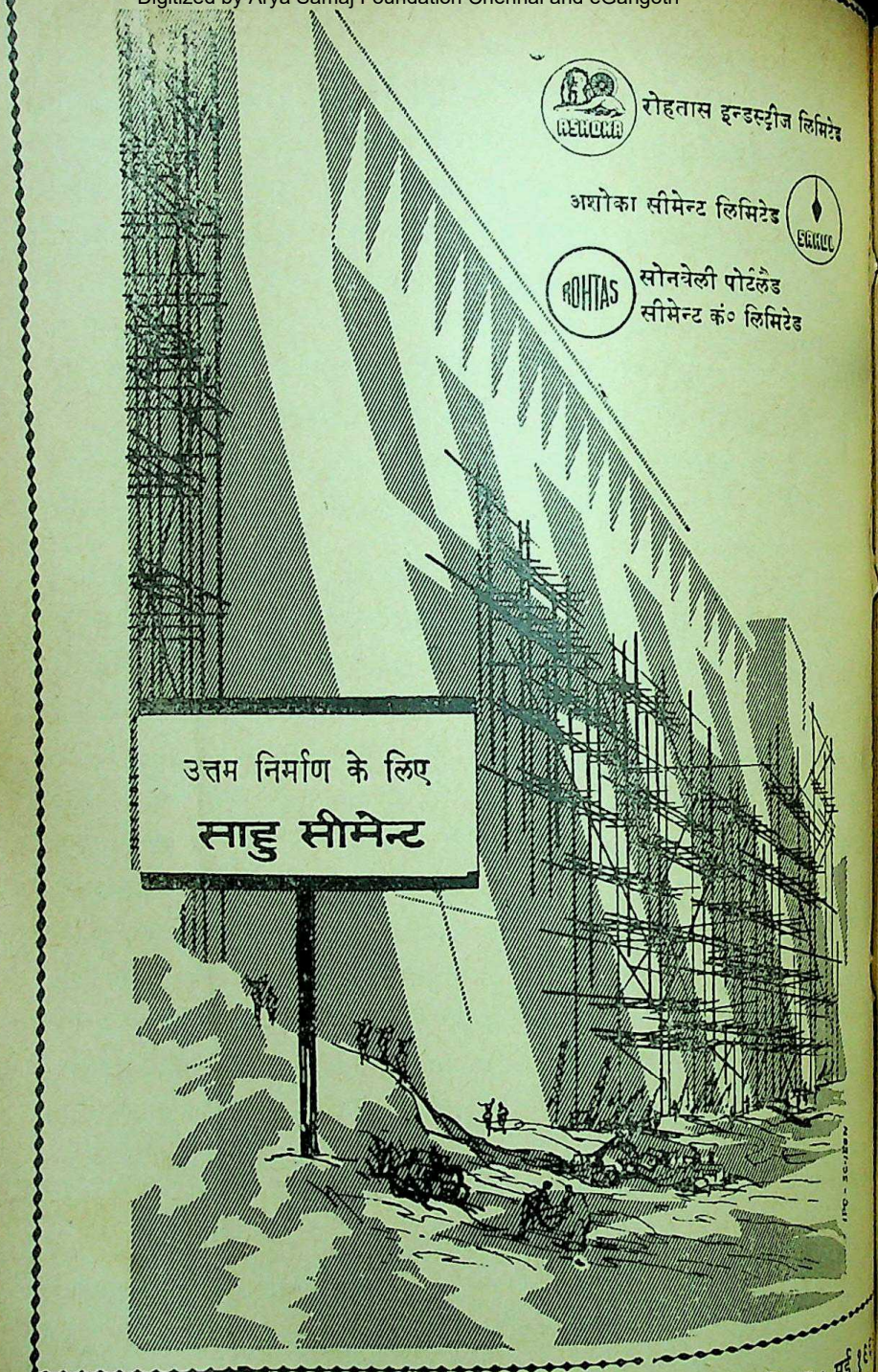

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९६५ के

आठ कथा संग्रह

१. चित्रफलक
—अमृत राय
२. एक बूँद जल
—लक्ष्मीनारायण लाल
३. एक और कहानी
—लक्ष्मीनारायण लाल
४. जलती झाड़ी
—निर्मल वर्मा
५. झाड़ी
—श्रीकान्त वर्मा
६. लाल हवेली
—शिवानी
७. हल्दीके दाग़
—सुदर्शन चोपड़ा
८. अन्ततः
—हिमांशु जोशी

सरहदों पर लड़ाई या बोध-दृष्टि

धनंजय वर्मा

कहानी समाजकी सरहदोंपर लड़ी जानेवाली गुरिल्ला लड़ाई हो या न हो, हिन्दीमें कहानी-चर्चा ज़रूर, सरहदोंपर लड़ी जानेवाली गुरिल्ला लड़ाई है। कभी सामाजिकता और यथार्थ बनाम वैयक्तिकता और अनुभूति, कभी गाँव बनाम शहर, और कभी लोकप्रियता बनाम साहित्यिक कहानी''''कहानीके बाहरी छोरोंपर बैठे हुए ही व्यक्ति अपने शब्दास्त्र आज़माते रहे; जब कि सच यह है कि ये सारे विभाजन न केवल कृत्रिम वरन् बेमानी भी हैं। सामाजिक और यथार्थके पक्षधर वैयक्तिकता और अनुभूतिको 'मिनिमाइज़' करते हैं तो वे उत्तरमें उन्हें सस्ती लोकप्रियतासे जोड़ देते हैं। सच यह है कि सामाजिक होकर ही आदमी वैयक्तिक हो सकता है और बिना अनुभूतिके यथार्थका कोई अर्थ नहीं है। यह समन्वयवाद नहीं, एक नया सन्तुलन है, और बोध-दृष्टिकी 'शिफ़्ट' और 'एम्फ़ेसिस' की समझ इसका आधार है।''''नवीनता केवल परिस्थितिगत नहीं होती, उन परिस्थितियों (में)-से उद्भूत, प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को गयी, भोगी और भोगी जाती हुई जीवन-दृष्टि और बोधकी होती है। जब इनमें परिवर्तन होता है तभी रूप-शिल्पमें भी परिवर्तन होता है। नया रूपाकार, नये यथार्थके उद्घाटन और उसे एक अलग नज़रियेसे देखनेकी अकुलाहटके बिना निरर्थक है। बोध और दृष्टिकी यात्रासे ही इनका सम्बन्ध है और मैं समझता हूँ यही वह धरातल है जिसपर चर्चा केन्द्रित होनी चाहिए। इसके बिना बातोंका सारा तिलस्म बेमानी होता है।....मगर हर ओर इनकार करनेवाले, इनकार करते-करते ख़ुदको ही इनकार करने लगते हैं और प्रश्न-चिह्न लगाते-लगाते, ख़ुद भी एक प्रश्न-चिह्न बन जाते हैं।....नये और पुराने ही नहीं, सार्थक और निरर्थककी पहचान भी बोध और दृष्टिसे ही हो सकती है। नयी कहानीकी शुरूआत इसी बिन्दुसे हुई थी मगर वह 'एक शुरूआत' नहीं, एक साथ कई शुरूआतें थीं और लोग अलग-अलग रास्तोंपर चलकर भी एक समान भाव-बोध और ऐतिहासिक आवश्यकताके एहसाससे जुड़े हुए थे।.... लेकिन जुड़ जानेका भी अपना एक फ़ैशन होता है; इस यात्रासे भी कई लोग अपने-आपको फ़ैशनवश ही जोड़नेकी कोशिश करने लगे और उत्साहमें आकर उन्होंने ख़ुदको ही प्रवर्तक क़रार देना शुरू कर दिया।....बहर-हाल नयेका प्रतिमान बोध और दृष्टि ही है और ठोस, सप्रभाव और सार्थक चर्चा इसी बिन्दुपर हो सकती है।

■

मसलन्, अमृत रायकी कहानियाँ, उस तात्कालिक परम्पराकी बोध-दृष्टिसे सम्बद्ध जिनका विकास और जिनसे पृथक् कहानी है।

अपने नये और ताज़े संग्रह 'चित्रकार' अमृतका आग्रह 'नयेपन'के प्रति है, स्वाभाविक है। इस नयेपनको वे कथावस्तु नयेपन और शिल्पके नयेपनमें विभाजित देखते हैं। पहलेको वे कथादृष्टि या अन्तर्वस्तु और दूसरेको बात कहनेका अन्दाज़ मानते हैं मगर यह विभाजन भी कृत्रिम है। सापेक्ष्य ही नहीं अन्तरंग भी है। यह है कि नया क्रमिक विकास है और कहानीकी स्वस्थ परम्परासे किसीको इनकार नहीं होना चाहिए लेकिन एक यह भी होता है जो 'स्वतन्त्र उद्भव' होता है और आकस्मिक लगता है स्थापित और स्वीकृतसे वह संघर्ष और करता है। यह नया, परम्परासे सम्बद्ध होता है लेकिन यह सम्बन्ध नैरन्तर्यहीन होकर, पृथक्ता और विद्रोहका होता अमृत, क्रमिक विकासको तो तरजीह लेकिन परम्परागत बोध-दृष्टिसे अलग अकुलाहटको भूल जाते है—जो 'नये'की वार्य शर्त है। इसीलिए उनकी क्रमिक विकास तो है, विद्रोह नहीं। सामाजिक जागरूकताकी विरासतमें इज़ाफ़ा तो किया है उसका अन्त:संस्कार बदला है। इसलिए कुछ रूपात्मक परिवर्तन बावजूद उनकी कहानियोंकी प्रकृति ही लगती है।

मृत्यु-भय, निराश-प्रेम, बदलते

। मई १९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरणके तनाव, सम्बन्धोंकी निष्प्राणता, दाम्पत्यका सन्त्रास और सामाजिक भ्रष्टाचार आदिकी अन्तर्बाह्य स्थितियोंको अमृतने इन कहानियोंके माध्यमसे देखा ज़रूर है लेकिन इनके प्रति उनका दृष्टिकोण या तो 'पार्टीज़न' रहा है या तटस्थ रिपोर्टरका। इसीलिए या तो इनमें जोश-आवेशका फूटता हुआ लावा भाषणोंके रूपमें बहता है :

'लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि कठकलेजी कौन है--वह माँ जिसने अपने जिगरका खून पिलाकर इस बच्चेको जन्म दिया, जिसकी मुहब्बतका यह फूल है; जिसका प्रेम इस बच्चेके अंग-अंगपर अंकित है, जो इस पलककी घड़ीमें भी कहींसे एक काला गण्डा लाकर अपने बच्चेके गलेमें बाँधना नहीं भूली, कठकलेजी वह है, या वह समाज जिसके डरसे वह बेचारी अपने बच्चेको अपना नहीं कह सकती और मजबूर है उसे राह चलतोंकी दया-मायापर छोड़नेके लिए ?' ('एक नंगी तसवीर' पृ० ७०-७१)

या फिर यथार्थका सीधा सपाट वर्णन :

'आगका धुएँसे कुछ वास्ता नहीं। एक हाथसे ताली ज़्यादा अच्छी बजती है। जिसे देखनी हो, हमारे मुहल्लेमें आकर देख ले....' ('मिट्टी, पृ० ५४)

या तो ये कहानियाँ किसी कटे-छँटे विचार-सत्य-आइडियाको तार्किक रूपसे प्रमाणित करनेके लिए घटनाओं और पात्रोंको तलाश लेती हैं या घटनाओं और पात्रोंसे कोई निष्कर्ष निकालकर प्रस्तुत कर देती हैं। कथाकारकी अन्तर्दृष्टिसे इनका सम्बन्ध केवल इतना है कि 'जहाँ कहानी नहीं दिखाई देती वहाँ, कहानी दिख जाती है।' कहानीका नयापन केवल इतना ही नहीं है, उस कहानीको एक व्यापक, समानान्तर और आधारगत अन्तःकथासे जोड़कर, उसके अन्तःसम्बन्धोंको उद्घाटित करनेसे भी है। यह सच है कि अमृतने मनुष्य और उसके परिवेशको विस्तार और सहानुभूतिसे समझा है, लेकिन उनका परिवेश मनुष्यको 'इकाई' न मानकर एक 'वर्ग' बना देता है और फिर वह परिवेश, परिवेश न रहकर परिस्थितियों-घटनाओं-संयोगों-प्रसंगोंका सपाट वर्णन हो जाता है। व्यक्ति यहाँ प्रतिनिधि होकर आता है, प्रतीक नहीं; इसीलिए चाहे व्यक्तिकी आन्तरिक स्थितियाँ हों या बाह्य परिस्थितियाँ--सबका यथार्थ एक रिपोर्टिंगका-सा प्रभाव डालता है। इस क्षेत्रमें प्रयुक्त प्रतीक भी वांछित प्रभाव नहीं दे पाते क्योंकि वे आरोपित अधिक लगते हैं, कथा-अर्थ-सन्दर्भसे समन्वित और अनुस्यूत नहीं, जैसे 'अमलतास'। ....यथार्थके ऐसे तटस्थ और वस्तुवादी चित्रण, कहानीको 'जीवन' नहीं दे पाते। उन्हें पढ़ते हुए हम सह-अनुभूतिके धरातलपर संवेदित नहीं हो पाते--उसे खुद सह-भोगके स्तरपर जी नहीं पाते। 'चित्रफलक'की स्थितियाँ, अनुभव या उसका वर्ण्य तो नया और समकालीन है, मगर बोध और दृष्टि नहीं। इसकी सामाजिक जागरूकता और यथार्थका आग्रह, नयी कहानीकी तात्कालिक परम्परा है जिसका उसने विकास किया है लेकिन साथ ही उसकी सपाटता और वर्गीय आग्रहोंसे भी वह मुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई है। मेरे विचारसे 'नयी कहानीने उसे अधिक गहराईमें जाकर, अधिक व्यापकता और विस्तारसे, स्वस्थ और तटस्थ दृष्टिसे देखा और उसकी प्रक्रिया दी है कि उससे होते हुए हम भी उस तक अनुभूतिके धरातल पर पहुँच सकें।....अब वह एक व्यक्तिकी सम्पृक्त चेतना और निरन्तर भोगते हुए 'सेल्फ़' का परिणाम और प्रक्रिया है, इसलिए जहाँ पहले वह आरोपित लगती थीं वहाँ अब वह हमारी चेतना, संवेदनशीलता और अनुभूतिका अविभाज्य अंग है।'

यही परम्पराके प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण है। उसे विकसित करना ही अलम् नहीं है, उसका अन्तःसंस्कार और परिष्कार भी आवश्यक है।

लेकिन कुछ लोग परम्पराको स्वीकार तो करते हैं मगर रूढ़िके अर्थोंमें--चाहे वह पूर्ण परम्परा हो या वर्तमान। ग्रामीण यथार्थ और ग्रामांचलोंके प्रति आकर्षण लेकर जब नयी कहानीकी यात्रा ग्राम-कथानकों और आंचलिकताकी ओर हुई थी तो उसका मौलिक प्रस्थान बक़ौल मार्कण्डेय 'नयी ग्रहणशीलता' को लेकर था, जिसके माध्यमसे ग्रामांचलोंके बदलते यथार्थ और मूल्योंको आत्मसात् किया जाता था लेकिन गाँवोंकी ओर दौड़नेवाले अन्य कहानीकारोंने उसकी रूढ़ियोंको फ़ॉर्मूला बनाकर उस स्वस्थ परम्पराको फ़ैशनमें परिणत कर दिया है और देखते-ही-देखते, हिन्दी कहानीमें एक विशाल 'कॉटेज इण्डस्ट्री एम्पोरियम' खुल गया। शहरी रुचिको 'कैटर' करते हुए लोकनृत्य-गीतोंकी धुनोंपर लोक-कथाओं और लोक-भाषाका रंगरोगन [illegible] ये लोग ग्रामीण कहानियोंका उत्पादन [illegible] लगे। लक्ष्मीनारायण लालके दोनों संग्रह [illegible] और कहानी' और 'एक बूँद जल' इसके [illegible] प्रमाण हैं।

'मूल्योंके परिप्रेक्ष्य', 'जीवनधर्मि [illegible] 'रचनाकारकी ईमानदारी', 'मानवीय संवेद [illegible] और 'ग्रामीण सामाजिकता (?)'—कहनेको [illegible] क़िस्मकी आधुनिक शब्दावली है जिसे [illegible] आकर्षक 'लेबल'के रूपमें इस्तेमाल [illegible] हैं। दावा भी ये 'सहज और प्रकृत' [illegible] हैं और 'अज्ञात जीवनकी ओर अग्रसर' [illegible] का भी हौसला रखते हैं, मगर रचनाके [illegible] रूपमें इनकी दृष्टि, बम्बइया फ़िल्मके प्रोड्यूसर [illegible] की-सी होती है। लोक-कथाओंकी [illegible] भावुक प्रेमकी आहें, त्याग और बलिदा [illegible] नुस्खे और लोकगीतोंकी जुड़ती-टूटती सं [illegible] लगभग हर कहानी न केवल पैटर्न [illegible] रूपबन्धमें, बल्कि संवेदनात्मक धरातलपर [illegible] 'एक ही' है। इनकी संवेदनाएँ इनके पात्रों [illegible] तरह होती हैं--गाँवमें ये शहरी हैं [illegible] शहरमें ग्रामीण--आकर्षण दोनों ओर [illegible] आधुनिकीकरणकी प्रक्रियासे गुज़रते हुए [illegible] भी यहाँ कम ही देखनेको मिलते हैं और [illegible] प्रक्रियामें भी इनकी सहानुभूति, व्यतीत [illegible] मूल्योंसे है—'सुन रे महाजन! कैसा [illegible] जब यहाँसे गया था। कितना दयालु, [illegible] ईमानदार और कितना अच्छा'''। पर [illegible] पन्द्रह वर्षोंमें तुझे क्या हो गया रे।'''[illegible] 'क्या हो गया रे!'की यह पीड़ा इसके [illegible] पात्रकी है। प्रगतिकी 'रेलगाड़ी'की [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछेकी ओर ले जाना चाहते हैं और इस न ले जा पानेकी पीड़ा ही इनकी सबसे बड़ी पीड़ा है। यहाँ दोष पात्रोंका नहीं है। लेखक-के जीवन-बोध और दृष्टिका यही तो प्रमाण है कि वह किस स्थिति, किस पात्र और किस यथार्थसे जुड़ता है या सम्प्रेषित करता है या पात्रों, स्थितियों और यथार्थके प्रति उसका 'एटीच्यूड' क्या है ?····बड़ी-बड़ी डबडबायी आँखें लिये शरतसे होड़ करती त्यागमूर्तियों या जैनेन्द्रकी मृणाल बुआओंकी यहाँ क़तारकी क़तार है—मोहना, बिन्दो भाभी, और कोइली दोनों—सब 'दा' और 'दी'····आँचलमें दूध और आँखोंमें पानी लिये हैं। संयोग और घटनाओंके घटाटोपका दुर्निवार प्रवाह और लोक-भाषाके नामपर विकृत किये हुए हिन्दी रूप, 'टियर-जर्कर' स्थितियाँ—इन कहानियोंका कथ्य यही है।····ग्राम-कथाएँ, सबल और सप्राण चरित्रोंके लिए भी उल्लेखनीय रही गयी थीं और इनके माध्यमसे एक नये मनुष्यकी तलाश और व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाका उद्योग हुआ था। लेकिन जब चरित्र अनुभवके प्रतीक होकर नहीं आते तो वैशिष्ट्यके आग्रह-में फ़ॉर्मूलोंमें ढल जाते हैं या ढाल लिये जाते हैं। विशिष्ट चरित्रोंकी ऐसी ही तलाशमें शिवप्रसाद सिंहकी तरह लक्ष्मीनारायण लाल भी न केवल 'अज्ञात जगतकी ओर अग्रसर' हुए हैं वरन् पशुपक्षी-जगत तक इन्होंने यात्राएँ की हैं, जैसे—बलदाऊ। माघमेलाके 'ठाकुर' हों या लोहराबीरकी नौटंकीके 'मास्टर' या थाना बेलूरगंजके 'थानेदार'—विविध पात्र होते हुए भी इनका चरित्र एक ही है। दरअसल यह चरित्र भी नहीं है, एक पैटर्न एक साँचा है।····पात्रोंकी परिकल्पना और कथ्यकी प्रकृतिकी दृष्टिसे मुझे तो लगता है कि लालकी कहानियोंका पूरा संस्कार आज भी सामन्तवादी युगका है। जब कहानियाँ 'पास्टाइम' हुआ करती थीं और उनका मूल आकर्षण साहसिकता, आश्चर्य और चमत्कार हुआ करता था। थोड़ा रंगरोगन, आधुनिकता का इन्होंने ज़रूर ले लिया है—मगर वैसे ही जैसे गाँवोंमें विकास-क्षेत्र खुल गये हैं और कुछ लोग टेरेलीनके कपड़े पहने घूम रहे हैं। वरना आज भी ये उन्हीं पुराने अन्धविश्वासोंकी कहानियाँ हैं या हिन्दी भाषामें लिखी पुरानी लोक-कथाएँ—(सोन मछली)। परिवेशसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं, बदलते हुए ग्रामीण यथार्थका इन्हें कोई बोध नहीं। इनके लिए परि-वेशका अर्थ या तो भूगोल-वर्णन है या प्रसंग-निर्देश, यथार्थसे इनका तात्पर्य सतहपर होने वाली बाहरी रद्दोबदलसे है और आधुनिकताका तो खैर सीधा अर्थ ही भ्रष्टाचार और अनैतिकता है। फलतः ये कहानियाँ चारों ओरसे अपने सामन्तवादी संस्कारोंकी रक्षा करती हुई उसी पुरानी खोलमें दुबकी रहना चाहती हैं।···· ऐसा नहीं कि ग्रामीण जीवन और अंचल, कथा-सम्भावनाओंसे शून्य था (या है), बल्कि नये और पुरानेका संघर्ष और संक्रान्तिकालीन अनिश्चयकी स्थितियोंकी दृष्टिसे वह अधिक उर्वर क्षेत्र है मगर जिसके लिए कहानीका एकमात्र गन्तव्य उसका 'स्मरणीय' होना या 'बार-बार पढ़ा जाना' ही हो उससे रोचक-मनोरंजन-तुष्टिकी कहानियोंसे अधिक क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षाकी जा सकती है ?····इनकी सीमाएँ बोध और दृष्टिकी सीमाएँ हैं, इसीलिए 'सहज और प्रकृत' का आग्रह भी यहाँ, तात्कालिक सफलताका कवच बनकर सतहीपन हो गया है और जनरुचिकी आड़, यथार्थ और उसकी आन्तरिक चुनौतियोंसे पलायन ।

सहजता और जनरुचिके आकर्षणका रास्ता बड़ा आसान है पर साथ ही बिछलता हुआ भी । 'प्रियता' उससे सिद्ध हो जाती है लेकिन एक जिम्मेदार लेखककी पहचान यही है कि वह 'सहज' और 'सतही'में अन्तर करे या सहज कब सतही हो जाता है, इस खतरेके प्रति 'कांशस' रहे ।

शिवानीका नाम हिन्दी कहानीमें चर्चाका विषय भले न हो, पाठकोंमें यह प्रिय है । उनके पहले संग्रह 'लाल हवेली'की भूमिका-स्वरूप आचार्य डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीकी सम्मति पढ़कर आशा बँधी थी कि इन कहानियोंमें सहज और स्वच्छन्द प्रकाशनके साथ सूक्ष्मदृष्टि और अनुभूत बातको साहसके साथ कहनेकी क्षमताके दर्शन होंगे, भले इनकी दुनिया बड़ी न हो ।

मैं समझता हूँ, 'आधुनिक सामाजिक जागृति और नये नैतिक बोधके कारण आज नारी-समस्याका एम्फ़ेसिस बदल गया है । हार्दिक करुणा और गौरवान्वित करनेवाला दृष्टिकोण अब नाकाफ़ी ही नहीं, अनावश्यक भी है । नये मन और पुरानी रूढ़ियोंके संघर्षके धरातलपर नारीका घर-बाहर, पारिवारिक और सामाजिक समस्याका रूप भी बदल गया है और उसके प्रति एक सन्तुलित, तटस्थ और निर्भीक दृष्टिकी ज़रूरत है ।'····एकाध वादको छोड़कर 'लाल हवेली'की सारी कहानियाँ नारी या नारी-मनपर केन्द्रित हैं और जहाँ यह नहीं है वहाँ भी नारी सक्रिय तत्त्वके रूपमें मौजूद है, लेकिन नारी बाहर आकर भी उन्हीं पुरातन मूल्यों रक्षामें अपनी बलि चढ़ा देती है या करुणा और भावुकताका आँचल थाम, शहीदाना भंगिमामें गौरवान्वित होती जहाँ वह संघर्षरत है, वहाँ भी 'अतीत प्रति एक मोह उसमें है और उसकी विवश असहायता और सहजता-दुर्बलताके शिवानीकी दृष्टि 'इन्वाल्ण्ड' और 'इन्व व्यक्तिकी ही है····उन स्थितियोंको 'जस्टीफ़ करती हुई-सी ।

यह सच है कि शिवानीकी कहानियों दुनिया बड़ी नहीं है····परित्यक्ता पत्नी, फल प्रेमिका, अभिशप्त माता, और एक सेविका—सारी स्थितियोंमें पुरुष-केन्द्रित आस्था और उसके अभावमें करुणार्द्र स्थि ····घटनाओं और परिस्थितियोंके विन्य सहानुभूति जागृत करती और प्रेमके चित्रपटीय तरीक़ोंका इस्तेमाल करती सीधी-सादी निष्कर्षवादी कहानियाँ हैं····में पुरुषकी बेवफ़ाई और नारीका समर्पण त्याग है या क्रूर नियति और समाज (रूपमे) खलनायककी तरह विद्यमान है। सन्तान और अनाथ आश्रम और अत्याचारके आगे नतशिर नारियाँ या वारिक असन्तोष और दाम्पत्य कलहमें पतिकी मुसकानके मधुर संयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताकती पत्नियाँ—सारी थीमेटिक परम्पराओंके पीछे कथ्य एक ही है····इनकी पृष्ठभूमिमें उच्च और निम्नवर्गका सीधा विभाजन है जिसमें पहला आलोच्य और दूसरा दयाका पात्र है और प्रच्छन्न व्यंग्य। चारित्रिक असामान्यता और विशिष्टताका आग्रह हर कहानीमें है और रोचकताकी दृष्टिसे शायद यह काम्य भी है। इसकी परिणति भाग्य और संयोगसे बनी 'बिलीव इट ऑर नाट'-सरीखी कहानी 'ठाकुरका बेटा'में होती है।···· इसीलिए इन कहानियोंका सारा रूपबन्ध कौतूहल और औत्सुक्य-वर्धनके लिए 'सस्पेन्स' और 'क्लाइमेक्स' की विधि अपनाता चलता है।···मगर फिर भी कहानी कहनेकी सहज-भंगिमा और बेलाग, निर्व्याज अभिव्यक्ति, अनूभूत न सही, परिचित ही सही, अपनी सचको पूरे आत्मविश्वास और डीटेल्ससे कहनेकी क्षमता इन कहानियोंको सुपाठ्य और रोचक तो बना ही देती है।

बावजूद इसके कि अमृत राय, लक्ष्मी-नारायण लाल और शिवानीकी बोध-दृष्टि परम्परित ही है, ये कहानियाँ समाज, जीवन और यथार्थसे जुड़े रहनेका प्रयत्न लेकर तो चली हैं। अपने सारे फ़ॉर्मूलावाद, वर्गीय-सपाटता और कथानक-रूढ़ियोंके ये हिन्दी कहानीकी मूलजातीय धारासे जुड़नेका आग्रह लिये हैं। नयी ज़मीन तोड़ने और नये क्षितिज खोलनेकी अकुलाहट इनमें भले न हो, अपने मूलसे भी इनका सम्बन्ध छूटा नहीं है और वह मूल है—समाज, जीवन और यथार्थ।····

मगर समाज, जीवन और यथार्थका एक ही अर्थ-सन्दर्भ भी तो नहीं है। वह स्थूल, बाह्य प्रतिक्रियाओं और व्यवहारों तक ही सीमित नहीं है। ऊपरी सतहसे अधिक गहरे और आधारगत अर्थसे भी वे जुड़े हैं और मानव नियतिके सन्दर्भमें इनका मूल्य वैयक्तिक भी है। स्थूल सामाजिकताकी दृष्टिसे अधिक वे अस्तित्वकी समस्यासे सम्बद्ध हैं—जहाँ सामाजिकसे अधिक कुछ बुनियादी प्रश्नोंसे जूझना कलाकारका धर्म है। हमें इस दृष्टिकोणको भी समझना चाहिए और इस सन्दर्भमें निर्मल-वर्माका नाम उल्लेखनीय कहा गया है।

मैंने कहा है कि 'निर्मल वर्मा नयी कहानी-के एक विशिष्ट कथाकार हैं, जिन्होंने नये वस्तुक्षेत्र ही नहीं, निर्वाहकी एक विशिष्ट भंगिमा और कहानीको एक कलात्मक सार्थ-कता प्रदान की है।' मगर यह विडम्बना ही है कि काफ़ी चर्चित होनेके बावजूद निर्मल वर्माको लेकर केवल 'सरहदोंपर ही लड़ाई' हुई। लगता है, उनके समर्थक और उनके विरोधी, दोनों उनसे आक्रान्त रहे हैं। एक उनके महत्त्वको 'एग्जरेट' करता है, दूसरा 'मिनि-माइज़'।····मैं समन्वयवादी नहीं हूँ लेकिन सन्तुलनको महत्त्व देता हूँ। आजसे पाँच-छह वर्ष पूर्व ही निर्मलके विषयमें विस्तारसे लिखते हुए मैंने इस आवश्यकताकी ओर संकेत किया था। मैं फिर दुहराता हूँ (क्योंकि दुहरानेको विवश हूँ) कि 'निर्मल वर्माकी कहानियाँ जीवनकी वे अनुभूतियाँ हैं जिन्हें हम एकान्तिक अनुभूतियाँ कहते हैं। ये अन्तर्मुखी और व्यक्तिपरक होती हैं। उनका प्रकाश बाह्य नहीं, आन्तरिक होता है। समाजके स्थूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और बहिर्मुख यथार्थकी ठोस वास्तविकताओंके चित्रणके विपरीत निर्मल वर्माकी चेतना आधुनिक सन्दर्भोंमें निरन्तर अकेले होते जा रहे व्यक्तिके अन्तर्मनकी अनुभूतियोंकी ओर मुड़ी है और सामाजिक जागरूकता या यथार्थके अस्त्रसे ही उनकी सार्थकतापर चोट नहीं की जा सकती। स्थूल यथार्थको अतिक्रमित करता हुआ, वहाँ यथार्थका एक दूसरा ही स्तर मिलता है। वह अदृश्य यथार्थ है जिसे कुछ विशेष क्षणोंमें भोगा-परखा जा सकता है। वह होता यद्यपि क्षणोंका ही है लेकिन सम्भवतः अपेक्षाकृत अधिक शक्तिवान भी, क्योंकि व्यक्तिकी इकाई और अस्तित्वसे वह सम्बद्ध होता है। उसे बहुत बारीक विश्लेषण और अभिव्यक्तिके सूक्ष्म स्तरकी अपेक्षा होती है। इसे आन्तरिक और सूक्ष्म यथार्थ कहा जाये।' निर्मल वर्माकी भूमि यही है।

और 'जलती झाड़ी' की सारी कहानियाँ इसी भूमि की हैं। ये कहानियाँ बड़े आत्मीय और व्यक्तिगत क्षणोंकी हैं और 'पर्सनल डाक्यूमेण्ट' या डायरीकी ही तरह इनके नेपथ्यमें झाँकनेकी मनाही-सी है। हैं भी तो ये अधिकांशतः प्रेमके आत्मीय सम्बन्धोंकी कहानियाँ···· ('लवर्स' 'अन्तर' आदि)। इनके और पाठकके बीच एक मोटा परदा पड़ा है। वह कभी-कभी हिलकर सरकता है और उन क्षणोंमें जो कुछ भी उस 'डार्क एण्ड डीप' लोकसे दिखता है, उसे पूरे जीवन और कथ्यका प्रतीक मानना चाहिए। ये आत्मीय और व्यक्तिगत क्षण लगभग सदैव ही अतीतसे जुड़े होते हैं····"व्यतीतके धूमिल परदेपर दीयेकी लौ-सी झिलमिला जाती है।' कुछ शब्दों, कुछ मनःस्थितियाँ, कुछ प्रसंग और कुछ घटनाएँ। अतीतसे जुड़नेकी यह वृत्ति, अतीत यात्राके बाद ठहरावकी-सी है, किसी पुरातन प्रियतासे उसका सम्बन्ध नहीं; क्योंकि यह अतीत वर्तमानका भी स्थिरीकरण करता है और उसे भी क्रियात्मक नहीं मानसिक और संवेदनात्मक बना देता है। अकसर ही इसीलिए यह अतीत-राग, पात्रोंके लिए ही नहीं पाठकके लिए भी मोहक होता है—कुछ रहस्यमय, कुछ अपरिचित, अनिर्वचनीय और अस्पष्ट धुन्धमय-सा—जैसे कि चीजोंपर एक हल्का परदा पड़ा हो या वे तरल हो गयी हों। अनायास आकर्षक भी। इस आकर्षणको प्रगाढ़ करती है—पात्रोंकी अपरिचित (विदेशी) भँगिमा, उनकी भावुकता और रागात्मक तल्लीनता। अतीत-रागकी इस प्रतिकृति स्वरूप वर्तमानके प्रति भी परिचितिका भाव विरल पड़ जाता है और उसमें पात्र 'अपने' और 'अजनबी' बन जाते हैं। यह अपनापन और अजनबीपन होता यद्यपि पात्रोंका है लेकिन उससे होता हुआ पाठकों तक भी संवेदना जगाता है। इस अजनबीपन और अकेलेपनकी (स्थितियाँ नहीं) मनःस्थिति स्वच्छन्दतावादी 'एकाकीपन' और उर्दू शायरी के 'बेगानापन'के अधिक निकट है। लेकिन यह निकटता प्रकृति और प्रक्रियाकी है। रागात्मक और भावुक एकाकीपनको निर्मल वर्माने अस्तित्ववादके 'आउटसाइडर'के साथ की कोशिश की है—ठीक वैसे ही जैसे अस्तित्ववाद और भारतीय दर्शनको जोड़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशिश की है। वह महज पलायन नहीं है, जैसा कि अकसर समझा जाता है। एक अन्त-र्ज्ञान उसको पृष्ठभूमिमें है—"क्या यूरोप मेरे लिए महज अपनेसे बचावका साधन रहा है; उन सब विवशताओंसे पलायन जो सोते-जागते भुतैली छाया-सी मुझपर मँडराती रहती थी या उससे कुछ अधिक ? एक शब्द बार-बार ध्यानमें आता है—अन्तर्ज्ञान !" (जलती झाड़ी : एक शुरूआत पृ० ५१)। इस अन्त-र्ज्ञानका ही परिणाम है—वह भय-डर-आतंक-आशंका-सन्देह। निर्मल वर्माके सन्दर्भमें ('अस्तित्ववादी सन्दर्भमें नहीं') इसे समझनेके लिए आप एक ऐसे व्यक्तिकी कल्पना कीजिए जो गाँवसे बाहर निकलकर पहली बार महा-नगर आया है, एक 'स्मैशिंग'-सा प्रभाव लिये वह स्वभाविक रूपसे अकेला है, फिर विदेशोंमें जाकर तो यह और भी प्रगाढ़ और तीव्र हो सकता है।....उसका सारा जीवन, मानव-स्थिति, नैतिक बोध एकदमसे टूट गया है।.... यह सच है कि यह भय और आतंक मानसिक ही है लेकिन अन्ततः यह टेरर ऑफ़ एन्लाइ-टमेण्ट' से भी जुड़ा है। अपने स्वभाव और रूपमें वह रूमानी लगता है, क्योंकि बौद्धिकसे अधिक वह भावनागत है, मगर युद्धोत्तर युरॅप की अभिशप्त पीढ़ीसे जुड़कर वह मानवीय स्थितिका सन्दर्भ भी प्राप्त करता है। 'जलती झाड़ी', 'लन्दनकी एक रात' और 'एक शुरू-आत'में इन्हीं सन्दर्भोंकी खोज है—खासकर 'लन्दनकी एक रात'में। यह खोज यदि निर्मल ने विदेशोंमें की है और यह बोध यदि भारतीय सन्दर्भोंमें अविश्वसनीय लगता है तो इसकी 'वेलेडिटी' पर शंका करना फिर साहित्य और बोधको अक्षांश-देशांशमें बाँधना होगा। यह बोध या दृष्टि, ये सन्दर्भ और परिवेश हमारे लिए अपरिचित (इसलिए विदेशी) भले लगें लेकिन हिन्दी कहानीमें यह एक नयी दिशा है, इससे कौन इनकार कर सकता है ? इनकी मूल्यगत उपलब्धि और लेखकीय प्रतिबद्धतापर विवाद हो सकते हैं लेकिन यह लेखकका 'अपना संसार' है, जिसे सबसे पहले समझने की आवश्यकता है, न कि अपनी दृष्टिसे उसकी प्रामाणिकतापर निर्णय देनेकी।....अपनी इसी भूमि और संवेदना, कथ्य और बोधके कारण निर्मलका अधिकांश लेख पर्सनल डाक्यूमेण्टकी तरह आत्मान्वेषण, मुखर चिन्तन, और आत्मा-लापकी कोटिका है। आत्मीय क्षणोंकी अभि-व्यक्तिके लिए यदि निर्मलने रागात्मक और सरल भाषाका सहारा लिया है जो सल्वाडार डालोके चित्र 'स्मृतिका आग्रह'की तरह, चीज़ोंको पिघले और तरल रूपमें प्रस्तुत करती है तो वह उनके कथ्यकी अनिवार्य परिणति है। उनकी भाषा-संवेदना, स्वीकृत कथात्मक गद्यकी नहीं है, जहाँ चीज़ोंको उनके सही और ठोस नामसे पुकारा और सम्प्रेषित किया जाता है—वह कविताकी तरह अनुभव-बिम्बों को सम्प्रेषित करनेवाली भाषा है। उनकी कहानियाँ रूपबन्ध और भाषा संवेदनाकी दृष्टिसे रूढ़ अर्थोंमें कहानियाँ नहीं हैं।....यों निर्मलकी बोध-दृष्टि और उनकी कहानियोंके रूपबन्ध और भाषाको लेकर काफ़ी शंकाएँ और प्रश्न उठाये जा सकते हैं, लेकिन इतने विस्तृत विवेचनका यह अवसर नहीं है (वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर कभी,) मैं तो फ़िलहाल उन्हें एक आस्वादका धरातल देकर उनके स्वभाव और प्रकृतिको स्पष्ट करना चाहता हूँ। इतना मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि निर्मलकी जो भी बोध-दृष्टि है, वह 'अपने' सन्दर्भोंकी उपज है और उनकी भाषा और रूपबन्ध, उनके कथ्य-की विवश परिणति। कलात्मक दृष्टिसे दोनोंमें कोई पार्थक्य नहीं है यही उनकी सार्थकता भी है।

निर्मल वर्माकी जो बातें, उनके अपने सन्दर्भ और बोध-दृष्टिके कारण स्वीकार्य हो सकता हैं, वही सन्दर्भोंसे हीन, व्यक्तिगत अनुभूतिकी आड़ लेकर बोधदृष्टि-हीन विशिष्ट 'बनने'का माध्यम हों तो वे न केवल अप्रती-तव्य बल्कि आरोपित-सी लगेंगी! अजब नहीं कि इसीलिए श्रीकान्त वर्माकी 'झाड़ी' में, 'जलती झाड़ी' का अकेलापन ओढ़ा गया और स्थितियाँ आरोपित लगें। निर्मलमें वैशिष्ट्य है--स्वभावगत और प्रकृत, जबकि श्रीकान्तमें उसका आग्रह! दोनोंकी कहानियोंको समा-नान्तर रखकर देखनेसे यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा।

'झाड़ी' की दुनिया 'हर कुछ न कर सकनेके पश्चात् अपनी असहायतापर क्षोभ, ग्लानि और तनाव', झाड़ी न पारकर सकनेकी नियति, सम्बन्धोंकी कोल्डनेस, धुन्धकी प्रतीक्षा करते हुए अपने ही अन्दर रहनेकी वृत्ति, निष्क्रियताके दर्शन, चुनावकी स्वतन्त्रता होते हुए भी न चुननेको गौरवान्वित करने और घुटन, खीझ, जलन और अन्दर-ही-अन्दर 'सफ़र' करते आत्मपीड़नमें रत पात्रों की है। वहाँ 'पति-पत्नीके बीच बिस्तरकी खाली जगहपर लेटा हुआ अँधेरा है', ठण्डे निर्जी हाथ हैं, पश्चात्ताप है और विशालकाय अकेलापन है। यह अकेलापन सम्बन्धोंके कोल्डनेसका है और सबके बीच रहते हुए सक्रिय न होनेके बादके पश्चात्तापसे ग्रस्त हुआ है!....निर्मलके पात्र अपनी 'सफ़रिंग' युरॅपकी युद्धोत्तर अभिशप्त पीढ़ीसे जोड़ते लेकिन श्रीकान्तके नामहीन-अनिर्णीत इस सफ़रिंगको अपने अन्दर समेटकर गौरवान्वित होना चाहते हैं। अधिकतर उनकी सफ़रिंग 'सेक्स'को लेकर है खीझ या जलन नारीको न ले पानेकी और जलन है। निर्मलके पात्र अपने किसी सन्दर्भसे जोड़कर भी अकेलापन करते हैं लेकिन श्रीकान्तके पात्र सारे से ज़बरन कटकर अकेला होना चाहते वे मूलतः सामाजिक हैं लेकिन सायास कटना और उसे नकारना चाहते हैं विशिष्ट 'बनना' चाहते हैं। वे प्रेमकी कताको प्रेम करनेके बाद नहीं, प्रेम पहले ही पा लेते हैं; वे उस स्थाणुकी जो सृष्टि प्रारम्भ करनेके पहले ही निरर्थक मान समाधिस्थ हो गया था फिर आत्मघातके रास्ते चला गया था। लिए वे प्रेम-कहानियाँ या प्रेमकी कहानियाँ नहीं, प्रेमकी मानसिक कल्पना स्वैर कल्पनाओं—की कहानियाँ हैं सेक्स शरीरसे उठकर मस्तिष्कमें पहुँच है।....वे प्रेम करते नहीं, सोचते हैं। (जिसका सन्दर्भ केवल सेक्स ही नहीं है क्षणोंमें वे भागते हैं और फिर खीझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरर्थकताका दर्शन उच्चारते हैं। परिणामतः सन्दर्भोंसे कटी उनकी 'व्यक्तिगत' दुनिया, आरोपित प्रतीक और पैराडाक्सेज़की दर्शना-भासी शब्दावली भी निरर्थकतामें तिरोहित हो जाती है। यहाँ जो "विचित्र मनोदशा है, उसको अगर आप अपने सारे सन्दर्भोंसे काट-कर, उसके सारे बाह्य सामाजिक-पारिवारिक इत्यादि सम्बन्धोंसे काटकर, इस मनोदशाको शून्यो अधरमें लटकाकर चित्रित करेंगे तो मनोदशाके नामपर (कहानीमें) एक धुन्ध पैदा जायेगा : कहानीमें अगर सिर्फ़ भीतरी शून्य हो और सिर्फ़ वही वह रहे और उसीकी इतनी प्रधानता हो कि वस्तु-सत्योंके संवेदना-लक चित्रोंका प्रायः लोप हो जाये तो आप वही ग़लती करेंगे जो (मेरे खयालसे) नयी कविताने की····" (मुक्तिबोध : एक साहित्यिक-की डायरी)।····'झाड़ी'की कहानियोंमें भी श्रीकान्त वर्माने अपनी नयी कविताकी वही ग़लती दुहरायी है। इसलिए जहाँ निर्मल वर्मा-में ऐसी मनोदशाएँ अपने स्वभाव और प्रकृति-के कारण प्रामाणिकताका एहसास जगाती हैं वहाँ श्रीकान्त वर्मामें अनुकरणात्मक और असम्बद्ध लगती हैं। लेकिन जहाँ यह विचित्र मनोदशा भी सन्दर्भों और सामाजिक सम्बन्धों-से जुड़ती है (जैसे 'शवयात्रा' में), वहाँ वह शॉकिंग ही नहीं अपने साथ एक बोध-दृष्टि भी सांकेतिक करती है।····भाषा-संवेदनाकी दृष्टि-से भी जहाँ निर्मलमें एक प्रवाह और अना-यासता है, वहाँ श्रीकान्तमें एक सायासता। निर्मलकी अनायासता, जहाँ अनुभव-बिम्बोंको तरल और पारदर्शी बनाती है; वहाँ श्रीकान्तकी सायास भाषा, एक धुन्धमें लिपटी, सतही और गोल-मोल बातोंका तिलस्म होकर ही चुक जाती है !····इन कहानियोंको तथाकथित साहित्यिक कहानीके एक अलग वर्गमें रखनेका आग्रह फिर विशिष्ट 'बनने' का छल है, क्योंकि यदि वे "एक स्तरपर कथा, दूसरेपर वैचारिक निबन्ध और तीसरेपर भाषा-सांकेतिकता और प्रतीकोंकी आनन्दानुभूति हैं" (यही सही), तो यह तो कहानीका केवल रूपात्मक-संस्कार हुआ न कि संवेदनात्मक ! यह सच है कि इन 'कवि-कथाकारों'ने कहानीको एक नया रूपा-त्मक संस्कार अवश्य दिया है।

इनसे भिन्न और एक हद तक आग्रहमुक्त कहानीकारोंकी वे कहानियाँ हैं जो न केवल नयी समर्थ सम्भावनाओंकी ओर संकेत करती है, बल्कि उन सीमाओंका भी अतिक्रमण करती हैं जो इन कहानीकारोंने जाने-अनजाने स्वीकार कर ली थीं।

'हल्दीके दाग' सुदर्शन चोपड़ाकी बीस कहानियोंका पहला संग्रह है। रूपात्मक संस्कारके पहले इनमें संवेदनात्मक, नयी ज़मीन तोड़नेकी ललक है। ये पारस्परिक रिश्तों और सम्बन्धोंके परिवर्तनकी नहीं टूटनेकी कहानियाँ हैं, जो व्यक्तित्वोंकी नक़ली नक़ाबोंको उघाड़नेमें एक परितृप्तिका अनुभव करती हैं, इसीलिए उनमें एक द्रोह, आक्रोश और वितृष्णा है। ये करुणा नहीं, तल्खी-भरी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं और स्थितियोंके विरोधाभाससे आजकी वास्तविकता और यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। इनमें प्रतिक्रियाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रभावोंकी व्यक्तिपरकता—सब्जेक्टिविटी—तो है मगर वह 'मैं' का डायरी-लेखन नहीं है। यह 'मैं' भी पात्रोंके रूपमें उपस्थित होकर अनुभवोंको प्रामाणिकता देता है। अकसर ही इन कहानियोंमें पात्रोंके नाम घुल-मिल जाते हैं या पात्रोंके नाम लगातार कई कहानियोंमें एक ही होते हैं.... मगर स्थितियाँ पृथक् : इस माध्यमसे इनमें व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सीमाओंका अतिक्रमण कर, व्यापक सन्दर्भोंसे जुड़कर सारे मानवीय यथार्थ-स्थिति या नियतिका अंग बनता है। यों वे परस्परापेक्षता और वैयक्तिकताको समान महत्त्व देती हैं। उनकी समस्याएँ और सफ़रिंग निजी समस्याएँ और सफ़रिंग ही नहीं रहतीं, सामान्य और सबकी समस्या और सफ़रिंग हो जाती हैं।....अतीत इनके लिए ऑब्सेशन नहीं है, वह इनपर लदा ज़रूर है लेकिन वे उसे अपने चारों ओर लपेटकर बैठते नहीं, उसे फेंक-उठाकर नये रास्तोंकी तलाशके लिए भी व्यग्र हैं। इसीलिए प्रगाढ़ उदासीनताके मटमैले धूमिल रंगोंके बीच प्रकाशयुक्त तीखे और चटख रंगोंकी भी इनमें कमी नहीं है। प्रेम इनके लिए लग्ज़री नहीं है कि उसके फ़लसफ़ेपर सोचें, क्योंकि 'प्यारको आत्माओंका आकर्षण माननेकी लग्ज़री हम एफ़ोर्ड नहीं कर सकते। हमारे आपके लिए तो प्यार आपसी ज़रूरतोंका आकर्षण है, आत्माओंका नहीं। क्योंकि हमारी ज़िन्दगियोंमें ज़रूरतें आत्माओंसे ज्यादा मँहगी हैं" (पृ० १२३) ....आतंक, मानसिक ग्रन्थियाँ, टूटन, पराजय, अकेलापन या अजनबीपन, यहाँ भी है। आतंक और अकेलापन या अजनबी अनजान रहस्यवादी या अनाम नहीं रहते उनके वास्तविक और यथार्थ परिचिति भी होती है। अकसर ही पात्र मनोविज्ञानके प्रोफ़ेसर होते हैं। इन स्थितियोंको गौरवान्वित करके ओढ़े रहना नहीं चाहते, उनसे मुक्त भी चाहते हैं।....ये कहानियाँ कँटीली और अश्ककी शब्दावलीमें 'नखसे दुरुस्त' नहीं हैं। इनके सम्बन्धमें एक और अनायासता है जो सीधे वास्तविकता यथार्थसे उठकर चली आयी है।....उपमाएँ और 'शॉकिंग इमेजेस', भाषामें हद तक अनगढ़पन और आक्रोशकी प्रहार करते हुए तेज़ नेज़ेकी धार-से शब्द और पूरी बुनावटमें एक शार्पनेस इनका प्रयोग महज़ शिल्प और है, अपने कथ्यको उसकी पूरी प्रस्तुत करनेके लिए है।....यह सच इनमें-से कई कहानियोंमें फ़ॉर्मूला, 'ट्रिक' किसी आइडियाको तार्किक परिणति सपाटता भी है—'ज़िन्दगीका सर्कारा' गुरुकुलका कांगड़ी आदि—लेकिन यह संग्रहको चुनकर प्रस्तुत न करनेको अधिक है। इस पहले संग्रहमें ही जो विकसित और विकासशील है वह उसकी सम्भावनाशील यात्राका णिक संकेत है।....

'अन्ततः'....हिमांशु जोशी की कहानियोंका पहला संग्रह भी अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समकालीन जीवनसे सम्पृक्तिके लिए उल्लेखनीय है। यहाँ आधुनिकीकरण और नवीनीकरणकी प्रक्रियामें टूटती हुई आस्थाएँ, संस्कार और मूल्य: पुरातन बोधसे नये बोध-की ओर संक्रमण—जो एक वातावरणसे उठकर दूसरे वातावरणमें आनेतक ही सीमित नहीं है बल्कि अपने परिवेश में ही आन्तरिक रूपसे घटित हो रहा है—पारस्परिक सम्बन्धों-में सन्देह, निरन्तर अकेले हो रहे व्यक्तिके खोखलेपन आदिकी वैयक्तिक स्थितियोंका अधिक यथार्थपरक और बाह्य प्रकाश है—जो कार्यकारण सम्बन्धमें बँधा है, स्वयम्भू और अधरमें लटका नहीं। इनमें रोज़मर्रेकी ज़िन्दगीमें पिसता हुआ आदमी और हर ओर एडजस्टमेण्टके लिए अभिशप्त लेकिन समर्पित व्यक्ति है। ज़िन्दगीके लिए सब कुछ दाँवपर लगा देनेवाले इन पात्रोंकी भंगिमा बेसाख्ता अमरकान्तकी कहानियोंकी याद दिला देती है और इसके साथ ही अकेले और अजनबी, जला सलीब अपनी ही पीठपर ढोनेकी विवशता और नियति लिये वे पात्र भी हैं जो उपकथित साहित्यिक कहानियोंके (-से लगते) हैं मगर जो अधिक मूर्त और ठोस हैं। 'पराये शहरमें' का अजनबीपन और अकेला-पन इनमें भी है लेकिन उससे कोई रूमानी आसक्ति इनकी नहीं, वे आस-पासके धुन्ध और जालेको हाथ उठाकर फेंकना और उससे मुक्त होना चाहते हैं। इनके 'लवर्स' एक दूसरेसे असम्पृक्त नहीं हैं, कभी जुड़े होने या कभी जुड़ जानेकी अपनी नियतिको भी पहचानते हैं। यह जुड़ना केवल व्यक्तिगत घरातलपर नहीं, परिवेश और व्यापक मानवीय धरातलसे भी जुड़ना है। निष्क्रियता और 'पेसिविटी' को ये दर्शनका स्तर नहीं देते। सक्रियता, 'पाज़िटिविटी' और जीवनकी 'एक्टिविटी' को अपना आधार मानते हैं। इसीलिए इन कहानियोंकी भाषामें भी इन स्थितियोंकी निष्प्राणता नहीं है, वह अधिक प्रैगमैटिक और जीवनसे निकट आसंगवाली भाषा है। ....प्रारम्भिक कुछ कहानियोंमें ज़रूर चरित्र-गत असामान्यता, ढूँढ़नेकी कोशिश की गयी है ('बिरजू' या 'घुग्घू') मगर कुलमिलाकर इनमें समकालीन जीवन-बोध और दृष्टिसे भोग और प्रतीतिके स्तरपर जुड़नेकी व्यग्रता और रूपात्मक और संवेदनात्मक नयी दिशाओंकी ओर बढ़नेकी अकुलाहट है।....

■

इधरकी कहानियाँ स्वभावत: एक नये सन्तुलन को लेकर चली हैं क्योंकि उनके पीछे वे कहानीकार हैं जिन्होंने कहानीकी सरहदोंपर शाब्दिक लड़ाई लड़ी थी। न तो ये सामा-जिकता यथार्थ और जीवनको नकारती हैं न वैयक्तिक अनुभूति-'वाद' को। इनमें न तो विशिष्ट 'बनने' का आग्रह है, न साँचोंमें सपाट हो जानेकी विवशता। वे वांछाके सत्यसे अधिक यथार्थको महत्त्व देते हैं। परिस्थिति और व्यक्ति-की सम्पृक्ति इनका परिवेश है और इनकी पूँजी आजकी वास्तविकतासे जुड़े हुए, स्थितियोंमें अपनी प्रतीति करते हुए, प्रामाणिक अनुभूति और उत्तप्त संवेदनाके क्षण हैं।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट। मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

उन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाट्य-समारोह : ४ दिन

• उद्घाटन :

'प्रयाग रंगमंच' के तत्त्वावधानमें एक नाट्य-समारोहका आयोजन हुआ। यह आयोजन २६ फ़रवरीसे लेकर १ मार्च तक सुबह-शाम क्रमशः विचार-गोष्ठियों तथा नाट्य-प्रस्तुतियोंके रूपमें चला। २६ फ़रवरीको सायंकाल ४ बजे 'पैलेस थियेटर'में श्री-अमृतलाल नागरकी अध्यक्षतामें उद्घाटनके माध्यमसे समारोहका शुभारम्भ हुआ। उपस्थित लोगोंमें प्राध्यापक, कृतिकार, रंगकर्मी तथा नागरिक थे। राजनीतिसे सर्वथा पृथक् केवल स्वतन्त्रचेताओंके बीच उद्घाटन-प्रतीकके रूपमें अध्यक्ष-द्वारा वैजयन्तीके फूलोंकी तरह ज्योति जलाना अद्वितीय घटना थी। श्रीगजानन पित्रे-द्वारा संस्कृत भाषामें नान्दी-पाठ भी इस समारोहको कलामय परिवेश दे सका। उनकी वेश-सज्जा, उनका स्वर, उनकी आंशिक चेष्टाएँ सभी नाट्य समारोहको अतीत और वर्तमानके काल-बोधको समाप्त करते हुए एक नवोन्मेष, राजनयिक क्षेत्रसे नितान्त स्वतन्त्र एक निरन्तर वर्द्धमान मौनके अन्वेषित आकाशमें ले जानेमें समर्थ थीं।

'प्रयाग रंगमंच' : नाट्य समारोह

संयोजक-मण्डलकी तरफ़से श्रीमती रावने इस बातपर खुशी ज़ाहिर की कि देशके दो मूर्धन्य कलाकार (श्रीशम्भु मित्र और श्रीअल्काजी) इलाहाबादमें ही नहीं, बल्कि उत्तरप्रदेशमें पहली बार पधार सके हैं। उन्होंने नितान्त साधनहीनताका हवाला भी दिया जिसके कारण यह समारोह दुस्साहसपूर्ण प्रतीत होता है। लेकिन उनकी दृष्टिमें यह साधनहीनता इसलिए अधिक गौरवास्पद है क्योंकि वह कला-रुचिको व्यावसायिक मोड़ देनेसे बचाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने रुचिसम्पन्न प्रेक्षकोंकी आवश्यकतापर बल दिया। उन्होंने दोनों सरकारोंके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की, यद्यपि सरकारोंने आंशिक आर्थिक सहायता दी थी।

इब्राहीम अल्काज़ी, जिन्हें इलाहाबादके नागरिकोंने बड़ी जिज्ञासासे पहली बार देखा, गौरवर्ण, औसत क़दके, प्रसन्न मुद्रामें विकीर्ण-मान वैदुषिक प्रतिभासे ओतप्रोत लगे। खेद है कि उन्होंने अपनी बात अच्छी अँगरेज़ीमें कहना पसन्द किया। यह उनकी परतन्त्रताका लक्षण उनके प्रभावको इस नगरमें कम कर सका होगा, इसका हमें खेद है। उन्होंने कहा, हमारा उद्देश्य अपने सम्पूर्ण देशके नाट्य-जीवनको जाग्रत, परिष्कृत एवं अग्रसर करना है। रंगकर्ममें हमें आस्थाकी आवश्यकता है। हमें महान् विद्वानोंकी नहीं, लगनवाले, आस्था-शील रंगकर्मियोंकी आवश्यकता है। अर्थ, व्यक्तित्वकी खोज, दृष्टि, परिवेश-ज्ञानकी आवश्यकता हमें एक बृहत्तर उत्तरदायित्वसे बाँधती है। इसीलिए कृतिकारको राजनीतिक-से सर्वथा पृथक् और महत्त्वपूर्ण मानकर चलना होगा। यह समारोह इसका ज्वलन्त प्रमाण है, इसकी हमें खुशी है। कृतिकार-द्वारा अपनी सांस्कृतिक सीमाका अतिक्रमण अनुचित है। रंगकर्ममें कुछ निर्णय लेना अनिवार्य है। स्व-तन्त्रता उनमें-से एक है। मिथ्या और जन-रोधी सत्योंसे दूर केवल सत्यसे हमारा सम्बन्ध है। रंगकर्म और स्वतन्त्रता हमारा निजी उभयतोपाश है। वह मिरगीका संस्पर्श नहीं है। रंगकर्म और उसके परिप्रेक्ष्यमें समग्र जीवन है। इसके लिए गुणात्मक साहस और मुक्ति तथा व्यक्तित्वके महान् क्षण चाहिए। नाटक की प्रस्तुतिमें लोकप्रियता-दोष एक कठिनाई है। सन्दर्भ और परम्पराको प्रमुखता देना होगा साथ ही निजी अनुभवको भी। कालिदास भवभूति, भासके बाद पुनर्जागरण नहीं हुआ— यह मानवताकी परिपूर्णताको अस्वीकार करना है। नाटक सभी कलाओंका संस्पर्श करता है, इसलिए वह जटिल है। नाट्य-लेखन स्वतन्त्र प्रक्रिया नहीं है: उसके पीछे रंगमंच रहता है।

तर्काश्रित, स्पष्ट एवं स्वतन्त्र चिन्तनसे उत्पन्न इस भाषणके बाद डॉ० रामकुमार वर्मा अनुभूति-गर्भित छायावादी शैलीका मधुर भाषण हुआ। उन्होंने पहले प्रयागके नाट्येतिहासकी चर्चा करते हुए पुराने रंगकर्मी माधव शुक्लका उल्लेख किया। फिर पारसी थियेटरके विरोधमें साहित्यिक रंगमंचके उन्नयनके सन्दर्भमें इस समारोहकी प्रशंसा की। उन्होंने आगे कहा हमारे नाटककी भरतसे पृथ्वीराज तककी एक लम्बी परम्परा है। नाटक मानवताका उत्थान करता है। हम नाटककी दिशामें मानवताके मूल सिद्धान्तों और तत्त्वोंकी खोज कर सकते हैं। अभिनेताको साहित्यकार और साहित्यकारको अभिनेता होना चाहिए। (यह वाक्य कितना व्यंजनात्मक है, यह भी द्रष्टव्य है।) जब मैं रूसमें था, (यह कथन विदेशसे लौटे हिन्दी लेखकोंका अब तकियाकलाम बनता जा रहा है) तो मैंने देखा कि एक समय नाटकमें उसी मंचपर सबकी समस्याएँ एक साथ प्रस्तुत थीं और समग्र रूपसे व्यक्तिवादको निकालकर मानवताका आकलन किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। (गोया व्यष्टिकी निजी अनुभव-सम्पदा इतनी बेमानी है कि वह समष्टिका सत्य बन ही नहीं सकती!) उन्होंने भी अल्काज़ोकी तरह राजनीतिज्ञोंसे जीवनका समाधान नहीं हो पानेका संकेत दिया। समष्टिपर बल देनेके बावजूद रामकुमारजीने नाटकको व्यक्तिकी खोज बताया। फिर अपनी बातको उभयतः-पाशसे बचाने लिए व्यक्ति-द्वारा समष्टिके प्रक्षेपणपर बल दे दिया। उन्होंने आजके व्यक्तिके प्रति पुरानी पीढ़ीका होनेके नाते बड़ी शिकायतें पेश कीं। उनकी दृष्टिमें आजका बेचारा आदमी कुण्ठित, लुंज-पुंज, खण्डित और असावधान है। इसलिए आजके नाटकका काम अन्तर्जगत्का उद्घाटन होना चाहिए।

उपमा कालिदासस्य प्रसिद्ध है। अब देखिए उपमा-रूपक रामकुमाररस्य : एक किरण समस्त ब्रह्माण्डों, भूपिण्डोंको आलोकित करती है, उसी प्रकार हमें सत्यकी किरण चाहिए। प्रयागमें तो वटवृक्षने स्वयं सूत्रधार बनकर त्रिवेणीका रंगमंच बना दिया है। आज उसके पुंजीभूत समीकरणकी आवश्यकता है।

इस 'मंगल-पाठ'के बाद श्री शम्भु मित्रने बहुत संक्षेपमें अपनी मातृभाषा बंगलामें बहुत सुन्दर भाषण दिया : रंगमंच हमारे लिए नितान्त व्यक्तिगत वस्तु है। हम नूतन थियेटरकी खोज कर रहे हैं। २२ वर्षोंसे हम इस कार्यमें लगे हैं। पहले हम परतन्त्र थे। आज यह कार्य स्वतन्त्रताके युगमें कर रहे हैं। अब नाना-स्थानोंपर थियेटरकी स्थापना हो गयी है। नाटक डुगडुगीसे भिन्न दर्शकमुखापेक्षी कला है। हम नूतन भारतके नूतन थियेटरकी नूतन परिकल्पना करते हैं।

एक साँसमें पढ़े जानेवाले छन्दकी तरहके सुन्दर, व्यंजनापूर्ण भाषणके बाद तालियोंकी बेतरह गड़गड़ाहटके बाद अध्यक्षने (इसके पूर्व किसी भाषणके बाद इस प्रकार तालियाँ नहीं बजी थीं) आजके आयोजनको नयी मंज़िलकी सूचनाके रूपमें ग्रहण किया। उन्होंने पहलेके हुए नाटकों और नाट्य-सम्बन्धी विचारोंसे सम्बद्ध कुछ पत्रकोंके अंश भी सुनाये। उन्होंने माधव शुक्लको उत्तरप्रदेशके नाट्यान्दोलनका प्रारम्भिक प्रतिनिधि बताया। उन्होंने कहा, अभिनेता जब सिनेमाई अभिनेतासे प्रभावित होता है, तब रंगमंचपर व्यवसाय हावी होने लगता है। बम्बईमें जगह न पानेवाले निर्देशक शौक़िया रंगमंचपर झुँझलाहट व्यक्त करते हैं। यहाँ एक 'ड्रामा-स्कूल' खुलना चाहिए। सरकारने तो राजधानियोंमें रंगमंच खोल दिये। पु० ल० देशपाण्डेके अनुसार शौक़िया रंगमंचसे काम चलनेका नहीं, पेशेवर रंगमंच ज़रूरी है। पर उत्तरप्रदेशमें यह होनेका नहीं, क्योंकि थैलियाँ गड़बड़ करती हैं। शौक़िया रंगमंचपर शोध भी ज़रूरी है। रंगमंच-आन्दोलन बिखरा है, उसका इतिहास नहीं।

● परम्परा और प्रयोग : नाटक

उसी दिन (२७ फ़रवरी) २ बजे एनी-बेसेण्ट हॉलमें उपर्युक्त विचार-गोष्ठीका (पहला) दौर शुरू हुआ। श्री जगदीशचन्द्र माथुरकी अनुपस्थितिमें डॉ० एहतेशाम हुसेन-की अध्यक्षतामें डॉ० सुरेश अवस्थीने उपर्युक्त शीर्षकसे अपना प्रवर्तन-लेख पढ़ा। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधानमूलक कलाओंमें परम्पराके प्रश्नको कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण ठहराया। उनकी दृष्टिमें परम्पराका निर्वाह और उसके साथ नये प्रयोग और खोजकी आवश्यकता है। यह ध्यातव्य है कि उन्होंने परम्पराको व्याख्यायित करनेका कष्ट नहीं उठाया और नये प्रयोगोंके साथ परम्परा-निर्वाह क्यों आवश्यक है, इस प्रश्नपर भी कोई प्रकाश नहीं डाला। मेरी दृष्टिमें किसी भी विधामें परम्परा-ज्ञान एक बार ज़रूरी भले हो, पर वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व नहीं है। अवस्थीजी मानते हैं कि नाटककी लोकसम्मत रूढ़ियाँ हैं और रूढ़ियोंके अभावमें यह कला सम्भव नहीं है। क्योंकि नयेको परम्परा अनुशासित करती है। अवस्थीजी-की यह दृष्टि कृतिकारके स्वतन्त्र व्यक्तित्वको एक ओर क्षरित करती है, दूसरी ओर बनाये हुए नाट्यशास्त्रकी ओर उदग्र बनाती है। वे प्रायः सही कहते हैं कि खण्डित परम्परा होनेके कारण आधुनिक नाटक पश्चिमको देन है। हमारे नाटककार पश्चिमको अंगीकृत या अंगीभूत नहीं कर सके हैं। पर सवाल यह है कि हम बिना पश्चिमको अंगीकृत किये स्वयं-को अपने तनावसे, अपनी प्रतिभासे उन्हें गुनते हुए पर उनसे पृथक् अपना विकास स्वयं नहीं कर सकते? जब कि वे स्वयं नाटकके 'मौलिक रूपकी खोजको आवश्यक मानते हैं। इस 'मौलिक रूप'का अर्थ क्या 'पश्चिमी रूप' है?—शायद नहीं। यह अवस्थीजीकी दृष्टिका विरोधाभास है। उनकी एक स्थापना यह भी थी कि नया काव्य जैसे नाटकीय हो गया है, नाटक काव्यात्मक हो जायेगा। यह भविष्य-वाणी कुछ सारगर्भित नहीं लगती। [illegible] काव्य नाटकीय यदि कहीं-कहीं हो गया है तो केवल इसलिए कि उसका कथ्य वैसा है या कथ्यको उस रूपमें पेश करना काव्यकी संगति है। जब कि नाटकका प्रभाव काव्या-त्मक होना कभी-कभी केवल नाटकीयताकी संगतिके लिए आवश्यक है। यदि नाटक-जैसे विविध कला-संश्लिष्ट विधामें काव्यात्मकता आ गयी, तो नाटकके क्षरित होनेकी अधिक सम्भावना है। नाटकका प्रभाव काव्यात्मक हो, तो वह रुचिकर तथा संगत हो सकता है किन्तु नाटककी काव्यात्मकता एक प्रकारका आरोप है, ओढ़ना है, अलंकरण है और कभी-कभी तो नाटक इससे नाटक न रहकर काव्य हो सकता है। (जैसा 'अन्धायुग'के साथ हो गया है।)

डॉ० लक्ष्मीनारायण-जैसे व्यक्तिसे [illegible] सहमत हुआ जा सकता है कि जैसे युगों अवस्थोंके लिए परम्परा और प्रयोग जरूरी हैं—वे सिद्धान्त या पद्धति न होकर जीवन्त प्रश्न हैं। डॉ० लालने कहा कि जब वर्तमान बेकार साबित हो जाता है तब अतीतका महत्त्व होता है। यह तथ्य ग़लत है। वर्तमान बेकार साबित होनेपर अतीत भी बेकार साबित होता है। यह कहना अधिक संगत होगा कि शून्यमें हम अतीतके बीजसे कुछ रचते हैं और वर्तमान हो जाता है—यह कहकर उनके कथन को—इस कथनको कि परम्परामें रहकर ही वर्तमानमें रहा जा सकता है—हम सर्वथा [illegible] देते हैं। यह कथन एक बकवासके सिवा कुछ नहीं है। वर्तमानमें रहनेका अर्थ है—परम्परा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को तोड़ देना। हम यदि परम्परामें हैं तो हम अतीत हैं। डॉ० लाल स्वयं मानते हैं कि नाटक अन्वेषण है। अन्वेषण अतीतको विच्छिन्न करता है। आत्मोपलब्धि समग्रतया विच्छिन्न होनेके बादकी एक गतिशील स्थिति है। इसी सन्दर्भमें उन्होंने समन्वयको किसी भी कला और किसी भी संस्कृतिके लिए विनाशकारी बताया। पर वे पुराने प्रतीकों-द्वारा आजके खण्डित मनुष्यके अंकनपर बल भी देते रहे। जब कि पुराने प्रतीकोंके सम्बन्ध-में यह ज्यादा सम्भावना रहती है कि कहीं उनके हावी हो जानेके कारण नया अर्थ खो न जाये। परम्पराकी रक्षा और नयेका दम्भ हो इससे सुरक्षित रखा जा सकता है और कुछ नहीं किया जा सकता। यह अलग बात है कि उन्हें नकार कर उनके अर्थको विरोधित करके एक विद्रूप, एक व्यंग्य उत्पन्न कर लिया जाये।

डॉ० रघुवंशने परम्परा और प्रयोगकी व्यापक चर्चाका उल्लेख करते हुए आधुनिक ढंगसे विचार करनेकी आवश्यकतापर बल दिया। परम्पराकी प्रयोगके लिए आवश्यकता हर क्षेत्रमें है। इस चिन्तनको उन्होंने इलियट-के चिन्तनका मूल बताया, जो सहज सत्य है। उन्होंने यह स्वाभाविक प्रश्न उठाया कि परम्पराको किस अर्थमें लिया जाये। पर-म्पराका अर्थ निरन्तरता माना जाये या पुनर-न्वेषण या दृष्टिकी भिन्नता। वस्तुतः परम्परा-का महत्त्व उसकी दुहाईमें न होकर उसकी सर्जनात्मकतामें है। परम्परा जो नहीं जाती, उपयोग की जा सकती है। जीनेपर वह जीने-वालेको नष्ट कर देती है। इसीलिए नाटककी मूल समस्या उसके श्रेष्ठ रचना बन पानेकी है। निर्देशक, अभिनेता, लेखक तीनोंके स्तर-पर श्रेष्ठता तक पहुँचना प्रायः कठिन होता है। डॉ० रघुवंशने भारतीय परम्पराको खण्डित बताते हुए कहा : उसे अधीतिसे जोड़ना सम्भव है।

आगे उन्होंने यथार्थ-अयथार्थ, नाटक-अनाटकको महत्त्व न देते हुए रचनामें प्रवृत्त होनेकी अनिवार्यता पर बल दिया। क्योंकि रचनाकी खोज ही मूल वस्तु है।

उन्होंने जहाँ अपनी अनाविल दृष्टिका विचारोंके माध्यमसे परिचय दिया, वहीं कुछ व्यावहारिक हल भी पेश किये। उनके अनुसार अमेचर और पेशेवर रंगमंचकी भिन्न स्थिति होते हुए भी दोनोंमें सम्बन्ध है। पेशेवर रंग-मंच बड़े नगरोंसे शुरू किया जा सकता है। सारे आन्दोलनको आगे बढ़ानेके लिए यह तरीक़ा उचित है।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदीने रघुवंशजीके पूर्व कथनका समर्थन करते हुए अपनी शैली-समर्थ शब्दावलीमें कहा कि परम्परा और प्रयोग किसी भी सर्जनात्मक संचरणकी प्रक्रिया कहे जा सकते हैं। उन्होंने परम्परा और प्रयोगके बीच 'साहित्यिक रंगमंच' को व्यव-धान बताया। व्यावसायिक रंगमंचसे कतराना उचित नहीं है एवं तब तो और, जब कथामें इतनी अधिक व्यावसायिकता है। नाटककार-को रंगमंचकी ज़रूरतोंपर ध्यान देना और तदनुसार आलेखमें परिवर्तन करना ज़रूरी है। उन्होंने मौलिक ढंग अपनाते हुए रंगकर्मके प्रति उपेक्षा-भावकी इंगिति की : हम यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नट' शब्दके अर्थ-विकासको देखें, तो पायेंगे कि वह अभिनेतासे मदारी, बाजीगर हो गया है। नाटक एक संश्लिष्ट, सामूहिक प्रक्रिया है। यह सम्प्रेषण है, प्रसार नहीं। अभिनेता और नाटककारको बराबरका दरजा मिलना चाहिए। शुरूमें शौक़िया रंगमंचका महत्त्व है, बादमें व्यावसायिक रंगमंच बहुत ज़रूरी है।

चतुर्वेदीजीने परम्परा और प्रयोगको शायद अधिक स्पष्ट इसलिए नहीं किया कि उनका मत प्रायः जाना-पहचाना है, पर वे भी परम्पराको 'ऐतिहासिक चक्र' मानकर महत्त्व तो दे ही देते हैं, पर मेरी दृष्टिमें परम्परा इससे महत्त्वपूर्ण सिद्ध नहीं होती। प्रयोग ज़रूर सम्मुखीन हो जाता है। 'ऐतिहासिक चक्र' शब्दमें दोनों तरहके लोगोंको ख़ुश कर पाना आसान है। पर व्यंजनामें उस चक्रमें परम्परा पार्श्ववर्ती या महत्त्वहीन ही होती है 'यह मैं उनके पूर्व प्रकाशित विचारके आधारपर कह रहा हूँ।

अल्काज़ी, जो पहले प्रेरित नहीं थे, अब 'अज्ञेय' की-सी निर्णयात्मक अदा अपनाते हुए आये और शालीन मज़ाक़का रुख अपनाते हुए बोले : परम्परा और प्रयोगके अर्थ व्यक्ति-व्यक्तिके अनुसार भिन्न हो गये हैं। पूरे देशमें परम्पराका रूप रवि वर्माके चित्रोंसे सँजोयी परम्परा-जैसा ही है। पर वे अमूर्त नहीं हैं। संस्कृत और हिन्दीकी परम्परामें नैरन्तर्य नहीं है। बड़े अभिनेता बड़े निर्देशकोंने बनाये हैं। रंगमंच हृदयका दृश्य-चित्र है; वह यथार्थ-वाद या अयथार्थवादसे भिन्न नहीं हो जाता। उन्होंने पूर्व वक्ताओंके विचारोंका इस प्रकार आकलन करते हुए एक निर्णयात्मक स्वर अपनाया। और फिर रामस्वरूपजीके आलेख-परिवर्तनवाले मतकी ओर संकेत करते हुए कहा कि निर्देशककी सहायता कभी-कभी घातक भी हो सकती है। प्रयोग प्रत्येक विचारकी अद्वितीय अभिव्यक्तिके अर्जनकी प्रक्रिया है। परम्परा केवल प्रथात्मक सुविधा-द्वारा अनुशासित होती है। इसलिए उसके नामपर मिथ्या या बनावटको ढोते रहनेके कोई माने नहीं हैं। नाटक एक ऐसा माध्यम है जिसमें हम व्यक्तित्वकी खोज करते हैं, यही प्रयोग है। अल्काज़ीके इस महत्त्वपूर्ण मतसे सहमति ज़रूरी है, क्योंकि परम्परा और प्रयोगका यही अर्थ हो सकता है; उसका विस्तार हमने बहुत पहले आधुनिकताके सन्दर्भ में किया था। (द्रष्टव्य : 'लहर' में बहुत पहले प्रकाशित आधुनिकतापर मेरेद्वारा लिखित एक लम्बा प्रतिवेदन) उन्होंने परि-वर्तनकी चुनौतीको स्वीकार करनेपर बल देते हुए अन्तमें कहा : पश्चिमके रंगमंचीय अनु-भवोंसे लाभ उठाना होगा। हमारे पास पुराण और मिथकका प्राचुर्य है। हम कल्पनासे उन्हें पुनः सिरज सकते हैं। यह तो ठीक है, पर अल्काज़ीने इस पुनःसृष्टिका स्वरूप नहीं बताया। यदि वह रूप 'अन्धा युग'-जैसा है तो वह मात्र सरलीकरण है। उससे नाटकर काव्यके हावी होनेका भी खतरा है। शायद अल्काज़ीपर वह सरल रूप हावी भी हो गया है, अन्यथा वे इस विषयमें कुछ और कह पाते।

इस विचार-विनिमयमें श्री रिचर्ड [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा एस० सी० देवने भी भाग लिया। ये दोनों सज्जन तो अँगरेज़ी प्राध्यापक होनेके नाते अँगरेज़ीमें बोले ही, अल्काज़ी महोदयने भी वही पहले दिनवाला रुख अपनाया। रिचर्ड दत्तके अनुसार परम्परा और आधुनिक सन्दर्भ बेमानी हैं, क्योंकि नाटक खेलते समय इन बातोंकी परीक्षा नहीं की जाती। (क्या सम्मेदारी है!) एस० सी० देव साहबने उदारतापूर्वक परम्परा और प्रयोगको शब्द-युद्ध कहकर टाल दिया और परम्परा, उसकी शैलियाँ, उसके रूढार्थसे भिन्न अर्थ, इनपर इतिहासको दृष्टिमें रखते हुए वे वैचारिक उड़ान भरते रहे।

जगदीशचन्द्र माथुरने लेख भेजा था; केशवचन्द्र वर्माने उसे पढ़ा। माथुर साहबके अनुसार प्रयोगको परम्परामें परिवर्तित होते देर नहीं लगती। इसलिए वे अन्योऽन्याश्रित हैं।

सुरेश अवस्थीने स्वयंको वक्ताओंके सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुए भरसक वही कहा, जो पहले विस्तारसे पढ़ा था।

अध्यक्षने उर्दू-अध्यापक होते हुए भी इतनी बढ़िया हिन्दी बोलनी शुरू की कि उसकी रवानी और ताज़गीसे थकान दूर हो गयी। उनकी दृष्टिमें प्रयोगके लिए प्रयोगके कोई माने नहीं होते। हाँ, प्रयोगोंके निकम्मे पड़ जानेपर प्रयोगका रास्ता खुलता है। किताबी, नक़ली, पद्धतीय प्रयोग बेकार होंगे। उन्होंने पुरानेसे एकदम अलगावको बड़ा मुश्किल बताया।

• परम्परा और प्रयोग : रंगमंच

२८ फ़रवरीको ९ बजे सबेरे एनीबेसेण्ट हॉलमें श्री शम्भु मित्रकी अध्यक्षतामें श्री नेमिचन्द्र जैनने उपर्युक्त विषयका प्रवर्तन-लेख पढ़ा। आज अल्काज़ी और उनके विद्यार्थी एक प्रदर्शनके सिलसिलेमें कानपुर चले गये थे इसलिए उनकी अनुपस्थिति १ मार्च तकके लिए खल रही थी। नेमिचन्द्र जैनने कुछ लोगोंको 'नटरंग'की प्रतियाँ भेंट तो कीं, पर अपना लेख साइक्लोस्टाइल न करवा सकनेके कारण किसीको दे नहीं पाये। उन्होंने अपने लेखमें ऐतिहासिक उल्लेखके बाद मुख्यतः निम्न बातें कही थीं :

हिन्दीमें व्यवसायी रंगमंच हो सकता है। यद्यपि अभी भी कोई गहरी कार्यचेतना नहींके बराबर है। (उन्होंने यहाँ व्यवसायी रंगमंचकी रचनात्मक रंगकर्मके सन्दर्भमें खूब खिल्ली उड़ायी थी।) मनोरंजन और लोकप्रियता आज ज़्यादा है। कुछ घुसपैठिये भी रंगमंचमें चले आते हैं। आज आत्मान्वेषण और कलात्मक दायित्वकी बेहद आवश्यकता है। रंगमंच जीवनको नये ढंगसे साक्षात् करने-करानेका कार्यक्षेत्र है। नयी सार्थकता अव्यवसायी रंगमंचसे ही सम्भव है। व्यवसायी अर्थकरी वृत्तिसे चिपका हुआ है। इन दोनोंमें प्रतिद्वन्द्वितासे आशा की जा सकती है। हिन्दीमें निश्चित निजस्व दृष्टि नहीं है, व्यक्तित्व नहीं है। अभिव्यंजनापूर्ण महत्त्ववान् शैलियोंका हमारे यहाँ अभाव है। फलतः आत्मस्थ सीमित होनेकी बजाय परिधि-विस्तार आवश्यक है। अन्वितिकी खोज भी आवश्यक है। लोक-कलाओंसे रचनात्मक स्तरपर कुछ लिया जा सकता है। लेकिन यान्त्रिक स्थापनासे दूर होकर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा किया जाये, तो अच्छा होगा। भाषा रंगमंचकी बुनियादी समस्या है। केवल सुबोधता मानदण्ड नहीं है। फलतः एक प्रकारकी अराजकता घर कर गयी है। रंगमंच अपना रूप ग्रहण कर रहा है।

नेमिजीने ऐतिहासिक दृष्टिसे सर्वेक्षण करते हुए कुछ संगत मान्यताएँ प्रस्तुत की थीं। विजयदेवनारायण साहीने परम्पराके असंग्रहीत रूपपर विचार करते हुए कहा कि ऐसी स्थितिमें तो परम्परा भी प्रयोग लग सकती है। उन्होंने इस बातपर बहुत सही और उचित आपत्ति की कि नाटकके इर्द-गिर्द हमेशा एक व्याख्याता रहा है, जो अपनी बनायी हुई परम्पराको नाटकपर थोपता रहा है। कृतिकारसे इसका कोई वास्ता नहीं। क्योंकि व्याख्याकार और निर्देशककी परम्परामें बहुत बड़ा अन्तर है। उन्होंने नाटकके क्षेत्रमें ९९% व्याख्याकारोंके होनेपर खेद व्यक्त किया। उन्होंने कृतिकार तक पहुँचनेका रास्ता बिना रेखाकी पट्टी (क्लीन स्लेट) को बताया : उन्होंने आगे बिलकुल मेरे मनकी (लेकिन यह नहीं कि मिथ्या) बात कह दी : हम परम्पराको छोड़ ही नहीं सकते, यह हताशा है। ('हताशा'के तुकपर डॉ० लालने खोजकर एक भदेस शब्द 'बताशा' कहकर अपनी चिन्तनहीनता तथा गँवारूपनका पूर्ण परिचय दे दिया।) नया प्रयोग परम्परावादी भी करेगा, क्रान्तिकारी भी। पर दोनोंके प्रयोगमें अन्तर होगा।

डॉ० सुरेश अवस्थीको साहीके व्याख्याकारवाले अंशपर बेहद आपत्ति थी। उनकी दृष्टिमें समीक्षक नाट्य-लेखन और प्रस्तुतिके बीच एक कड़ी है। वह परम्पराको थोपता नहीं, खोजकर सामने लाता है। यह बहस गोष्ठीके बाद भी चलती रही। मगर केवल अवस्थी और साहीमें ही। मेरी दृष्टिमें साहीके कथनको अवस्थी या तो पकड़ नहीं पाये या भिन्न दृष्टिसे सोचनेके कारण वेल्स तकका उदाहरण देनेपर तुल गये। और साहीको व्याख्याकारके लिए स्वार्थी अथवा राजनीतिक आश्रयके प्रति अवसरवादी-जैसे (शब्द चाहे जो भी रहे हों) विशेषण जोड़ने पड़े।

लक्ष्मीकान्त वर्माने संस्कृत, नवाबी और लोक-परम्पराका उल्लेख करते हुए हिन्दीकी परम्पराको अस्वीकार किया। और कहा, प्रयोग परम्पराके विरोधमें न होकर अनिवार्यता है। वह सनक नहीं है। संस्कृत परम्पराकी ओर मुड़ना अनावश्यक है। माध्यमके अभिव्यक्तिमें विसर्जन आवश्यक है। वस्तुतः आलेख रंगमंचके लिए लिखना चाहिए। रंगमंचकी रूढ़ियाँ जटिल आधुनिक संवेदनाओंके संवहनमें असमर्थ हैं। इस दृष्टिसे परम्परागत प्रयोगसे उतनी बात नहीं बनती, जितनी माध्यममें तरमीम कर देनेसे।

इसके बाद पहली बार रंगकर्मियोंने विचार-विनिमयमें हिस्सा लिया। बालकृष्ण मालवीयको यह सब कोरा उपदेश लगा। सरनामश्रीवास्तवने समझौतावादका विरोध किया। वे परम्पराके पुनरुज्जीवनके पक्षमें नहीं, खपानेके पक्षमें थे। डॉ० मसीहुज्जमाने परम्पराकी उपयुक्तिके सन्दर्भमें उसे आवश्यक बताया और पूरब-पच्छिमके भेदको गलत मानते सार्वभौमके महत्त्वपर बल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमा रावने कहा कि जब कोई परम्परा नहीं है तो गम्भीर रंगकर्मीके लिए ज़रूरी है कि वह शौक़िया रंगकर्मी बना रहे। (उनका प्रश्न स्वयं उत्तर भी था।) डॉ० सत्यव्रत सिन्हाकी दृष्टिमें नाटकमें भाषाका बहुत बड़ा महत्त्व था। उसपर विचार ही नहीं हुआ। उनकी दृष्टिमें नाट्यान्दोलन 'कैरियर' तो नहीं है, 'मिशन' अवश्य है। भारतीय होनेकी ओर, शौक़से सार्थकतापर बल आदि उनके आनुभूतिक विचार द्रष्टव्य थे। हीरा चड्ढाको नाटक पक्ष तथा संघर्ष विवशताके बावजूद अस्तित्वायी प्रतीत हुए। प्रयोगके लिए प्रयोग-की वह भी विरोधिनी थीं। रंगकर्मियोंके प्रयोग काफ़ी जीवन्त थे, यद्यपि उनमें उलझाव और स्पष्टता अवश्य थी।

बालकृष्ण राव (रंगकर्मी लोग अब खत्म हो गये) ने फिर विद्वानोंकी परम्परामें एक नाटक जोड़ते हुए नाटक, रंगमंच, परम्परा, उनकी दृष्टिसे भाषापर बल दिया। दूसरी बातोंमें उनकी दृष्टिसे न समझ पाना अधिकारके लिए गर्वका विषय हो सकता है, किन्तु नाटकमें नहीं। उन्होंने आगे कहा : अच्छे नाटकोंके अभावका कारण बुद्धिजीवियों-का जनसे कट जाना है। (मेरा खयाल है, केवल एक कारण है, जो सर्वत्र सही नहीं है। बुद्धिजीवीको जनके निकट आना होगा। मगर किस रूपमें ? क्योंकि नेता भी जनके निकट आता है !) रंगमंच बुद्धिजीवी और जनके बीच सेतु है। (क्या बुद्धिजीवी इतना आत्म-समृद्ध नहीं हो सकता कि वह अपनी शिक्षाशीलताके माध्यमसे स्वयं जन हो जाये ?) हमें वहाँतक पहुँचना चाहिए कि शौक़िया रंगमंच व्यावसायिक रंगमंचको उर्वर बनाये। नाटकमें बन्धन अप्रीतिकर है। घटिया रंग-मंचसे नाटकको क्षति नहीं होती। (पर वह प्रभावित तो अवश्य ही होता है !)

नेमिचन्द्र जैनने वक्ताओंका उत्तर देते हुए नाटक और रंगमंचको बाँधकर देखनेको संगत नहीं बताया। पर यह स्वाभाविक एवं संगत तो था ही, इसमें असंगत क्या था। उचित तो यह होता कि दोनोंको मिलाकर एक ही लेख पढ़ा जाता। शेष बातें उन्होंने वही कहीं जो लेखमें थीं। प्रवर्तकके साथ ऐसा होना स्वा-भाविक होता है।

अध्यक्षने बंगलामें अनुभूतिगर्भित सारवान् भाषण दिया। अनुवाद प्रस्तुत किया नेमिचन्द्र जैनने। उन्होंने कहा, अच्छा होता कि रंगकर्म-का अनुभव-विनिमय हुआ होता। हमारा देश अन्तर्विरोधोंका देश है। यहाँ जेट भी है, बैलगाड़ी भी। क्योंकि हमारा देश पुराना है। एक हद तक १९४७ से वह नया भी है। क्योंकि उसका नवनिर्माण हो रहा है। कोरी पटियासे शुरू तो करें किन्तु संसारके सामने हमारी 'आइडेण्टिटी' समाप्त हो जायेगी। यह सही है कि थियेटर हमारा होना चाहिए। (हमारा'का अर्थ ही है मौलिक यानी परम्पराको छोड़ देनेके बादका, क्या यह एक देशके नाग-रिकको, उसकी संस्कृतिकी स्वयंसिद्ध आइडेण्टिटी नहीं होगी ?) नक़लची नहीं होना चाहिए। आत्मानुसन्धान ही वरेण्य है। (आत्मानु-सन्धान क्या स्वयं 'आइडेण्टिटी' नहीं है ?) व्यावसायिक रंगमंच आवश्यक है। प्रेम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगन आवश्यक है; पैसा भी । योगके लिए प्रयोग नहीं होना चाहिए । विदेशी 'अब्सर्ड' थियेटरका प्रयोग नक़ल है । यह कहते हुए उन्होंने 'विनम्रतापूर्वक' जोड़कर अपनी अनुभव-सम्पन्नताकी ओर इशारा किया, विचार-दारिद्र्यकी ओर नहीं। एक दिन पूर्व शम्भु मित्रने बोलनेके लिए 'भारी दिमाग़'की ज़रूरतपर सहास्य बल दिया था। आज उन्हें अध्यक्षकी हैसियतसे जब बोलना पड़ा, तो वे आनुभूतिक विचार पेश करके अपने पूर्ववाक्यमें छिपे मज़ाक़को सार्थकता प्रदान करते हुए श्रोताको अधिक श्रद्धालु बना गये ।

उसी दिन प्रयाग विश्वविद्यालयके म्योर कॉलेज (विज्ञान संकाय) के मैदानमें वहाँके ड्रामेटिक एसोसियेशन-द्वारा एक छोटी-सी गोष्ठी हुई । उपकुलपति, श्रीमती उपकुलपति, उमाराव, नेमिचन्द्र जैन, डॉ० सुरेश अवस्थी, रवीन्द्रनाथ देव; डॉ० मसीहुज़्ज़मा आदिकी उपस्थितिके अतिरिक्त विद्यार्थी और अध्यापकोंके बीच नाट्य-पाठके प्रश्नपर अचानक विचार हुआ, जिसका श्रेय नेमिजी और अवस्थीजीको है। नेमिजीके अनुसार एक नाटकको रंगमंचपर देखनेकी दृष्टिसे रंगमंचीय रूप प्रस्तुत करना आवश्यक होता है । प्रदर्शन तथा अन्य चीज़ोंके लिए किसी व्यवस्थाकी ज़रूरत तो है नहीं । क्रान्तिकारी परिवर्तनके बिना यह सम्भव है । डॉ० अवस्थीने तीन विश्वविद्यालयोंमें नाटकके विशेष अध्ययनका उल्लेख करते हुए कहा : अमरीकामें 'ड्रामा-थियेटर' है; 'कमेण्ट्री थियेटर' है। हमारे यहाँ 'सिविक थियेटर' है । फ़िलहाल विश्वविद्यालयोंमें नाटककी प्रस्तुतिके सन्दर्भमें छोटे-छोटे पाठ्य-क्रम होने चाहिए। नाटकके अध्ययनको रंगमंचीय आधार दिया जाये ।

श्री शम्भु मित्रने भी अमरीकी थियेटरके सन्दर्भमें कहा कि वहाँ दो तरहके थियेटर हैं। एक तो यूनियन है । कुछ पैसा थियेटर स्वयं अर्जित करते हैं, कुछ यूनियन देती है। वहाँ प्रकाशकी प्रचुर जानकारी और व्यवस्था तथा प्रचुर शिल्पी हैं । यहाँ हमें अभावोंके बीचसे उन ऊँचाइयोंका स्पर्श करना है।

रवीन्द्रनाथ देवने सरकारके सन्दर्भमें एक नाटकसम्बन्धी डिप्लोमाकी चर्चा करते हुए खेद व्यक्त किया था कि यह कार्य हम अभी तक कर पानेमें असमर्थ रहे। इसीलिए यह उपयोगी चर्चा सम्भव हो सकी।

आजका सामाजिक परिवेश और नाटककी सम्भावनाएँ :

१ मार्चको डॉ० रामकुमार वर्माकी अध्यक्षतामें उसी समयसे उसी स्थान पर उपर्युक्त विषयपर गोष्ठी हुई । डॉ० विपिनकुमार अग्रवालने अपना प्रवर्तन-लेख पढ़ा, जिसका शीर्षक उन्होंने अपनी भाषा और शैलीके अनुसार रखा था : 'नाटक कैसा और क्यों और किसके लिए ?' उन्होंने अपने लेखकी शुरूआत भाषाकी जटिल समस्यासे उठाई थी । हो सकता है, डॉ० लालके अतिरिक्त किसी और या कई लोगोंको यह शुरूआत अखरी हो । यद्यपि नाटकके सन्दर्भमें यही शुरूआत आवश्यक थी। यह पहला ऐसा लेख था, जिसमें एकेडेमिक शैलीकी गन्ध नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की और हर बात इतनी तर्कपरिपुष्ट और स्पष्ट थी कि समझनेमें आसानी होनेके कारण एकाध सज्जनोंको उसमें कोई खास बात नज़र नहीं आयी, यद्यपि यह उन्हींका विघ्न था क्योंकि वे संस्कृतनिष्ठताके कारण कम पल्ले पड़नेवाली शैलीके प्रति नतमस्तक थे। विपिनने पुरानी बातको भी नये ढंगसे प्रस्तुत किया : भाषा साइकिल, इंजन या बे-तारके तारकी तरह किसी एक व्यक्तिने ईजाद नहीं की। भाषा मनुष्यका निजी गुण है। वह सामूहिक क्रिया है। आगे उन्होंने कहा : शब्दके प्रतीक और अभिव्यक्ति तथा वस्तु और स्थितिमें तार्किक सम्बन्ध नहीं है। शब्दका अर्थ एक सन्दर्भमें, एक स्थितिमें लक्षा प्रयोग है। स्थिति-परिवर्तनसे भाषा भी बदलती है, चिन्तनकी सामग्री भी। आजकी स्थितिमें भाषाकी खोज अनिवार्य है। यहाँ तक स्पष्ट हो गया होगा कि सामाजिक परिवेश-के आयामोंके परिवर्तन भाषाको भी बदलते हैं। इसलिए उस परिवेशके सच्चे और कला-त्मक अंकनके लिए भाषाको बदलना ज़रूरी है। यहींपर विपिनके अनुसार सीखी हुई भाषा और अभिव्यक्त होती भाषामें ज़मीन-आसमानका अन्तर है। भाषा बाग़में फूल, सड़कपर मोटर, कमरेमें कुरसीकी तरह सजा-वटकी चीज नहीं है। सीखी हुई भाषा मरोड़ पैदा करती है। मंचपर याद की हुई भाषा हास्यास्पद हो जायेगी। ऐसी स्थितिमें सही, ठेठ, छोटी इकाईसे शुरू करना उचित होगा। विविधव्यापकता इसी प्रकार आती है। नाटकमें विपिनके अनुसार यह स्वाभाविक है। यहींपर विपिनका भाषासम्बन्धी विवेचन तक पहुँचा हुआ अतिवाद प्रारम्भ होता है। दरअसल स्थिति यह है कि प्रेक्षकके कान, उसकी रुचि जहाँ इतनी अनभ्यस्त है ऐसे शब्दों और इकाई घटनाओंके लिए, वहीं नाटक-कारके सामने अनभ्यस्तिके कारण यह काम अत्यन्त मौलिक होनेके कारण अत्यन्त कठिन भी है। यह स्थिति नाटकमें ही नहीं, कवितामें, कथामें, सर्वत्र सही है। पर विपिन दूसरी विधाओंमें ऐसा नहीं देख पाते और फलतः उन दूसरी विधाओंको इस दृष्टिसे महत्त्व नहीं दे पाते। रचनात्मक स्तरपर किसी भी विधाके कृतिकारके लिए इस/इन स्थितियोंसे गुज़रना स्वाभाविक भी है, ज़रूरी भी।

नाटकमें वे हरकत और भाषा यानी आंगिक चेष्टाको दो भाषाओंके रूपमें देखते हैं और दोनोंको अद्वितीय मानते हैं। हरकतके सम्बन्धके कारण उनकी दृष्टिमें नाटक परम्परासे जुड़ता है। यह एक मौलिक और सही रुख है क्योंकि यहाँ परम्परा रक्तकी तरह एक अनिवार्य चीज़ बन जाती है, जो इतनी जीवन्त है कि उसे परम्परा कहना भी ठीक नहीं लगता, वह शुद्ध वर्तमान है यानी ऐसा अतीत जो हरबार वर्तमान होता जाता है। यानी उसे काल नहीं कहा जा सकता, बल्कि गति कहना अधिक संगत होगा। वे मानते हैं कि हरकत और भाषाके आमने-सामने कई अर्थ खुलते हैं।

उनके अनुसार नाटकमें दर्शकका सहयोग आवश्यक है। नाटक अन्य कला-माध्यमोंसे भिन्न कला-माध्यम है। फिर उनकी अति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादिता यह कहनेकी बाध्य करती है कि प्रजा-तन्त्र, औद्योगिक, सामूहिक साधनोंसे युक्त युगमें नाटकका विशेष महत्त्व है। कलाकी आधुनिक दिशा वही तय करेगा। मैं महत्त्व मान सकता हूँ, पर कलाकी आधुनिक दिशा केवल नाटक तय करेगा, अन्य कलाएँ विपिनकी जेबमें पड़ी रहेंगी, यह सोचना असम्भव है। विपिनजीकी यह नाटकीय निष्ठा तर्कसे आगे प्रातिभ ज्ञानसे युक्त लगती है। अन्ततः उनके अनुसार नाटककार, रंगकर्मी, दर्शक आदिका कई दृष्टियोंसे पारस्परिक महत्त्व है। और यह भी कि हिन्दीमें नाटकने इस समय तक बहुत कम हासिल किया है।

अतियाँ मौलिकताका पता देती हैं और विपिनमें मौलिकता पुष्कल रूपमें थी, अतः अतियाँ थीं।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदीने नाटकको फिर संश्लिष्ट प्रक्रिया बताते हुए इस बातको प्रस्तुतियों-के सन्दर्भमें देखनेकी आवश्यकतापर बल दिया। यह अजब है कि कई प्रस्तुतियाँ (नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा और बहुरूपीकी प्रस्तुतियाँ) दो-दो बार हुईं, पर उनके लिए कोई विचार नहीं हुआ। उन्होंने आगे कहा कि नया और पुराना नाटक हम आज भी देख रहे हैं। इसमें भी समझौते हो रहे हैं। (जैसे 'सुनो जनमेजय' में।)

इसके बाद डॉ० लक्ष्मीनारायण आये। आये और बोले। बोले और बोलते चले गये। उनकी आवाज़ बहुत साफ़ थी यानी कण्ठावरोध क़तई नहीं था और दुःखी थे। दुःखी थे और 'प्रयाग रंगमंच'रूपी अंगीका स्वयंको अंग मान रहे थे। बहती हुई सरजूका अंग जैसे घण्टबँधा पीपल होता है। अथ डॉ० लाल मन्दोदरी-रुदन शैलीमें कथ्यते : इलाहाबादसे मैं नैतिक रूपसे सम्बद्ध हूँ। किन्तु 'प्रयाग रंगमंच'-द्वारा खेले गये नाटकको देखकर बहुत खिन्न हूँ। (डॉ० लालके 'खिन्न' का उच्चारण कुछ भिन्न था।) जीवनलाल गुप्त एक अच्छे अभिनेता हैं। पर उनकी एक ही मुद्रा देखकर मैं चकित रह गया। इसपर डॉ० रामकुमार वर्माने आपत्ति की। लेकिन श्रोताओंकी अन्यमनस्कताके बावजूद, उन्होंने खोटे सिक्के-की तरह अपनेको चालू रखा। वे बोले : (हे अर्जुन, सुनो !) 'प्रयाग रंगमंच' के महत्त्व व्यक्तित्वपर कुछ लोगोंका व्यक्तित्व आरोपित हो गया है। (अच्छा होता, डॉ० लालका व्यक्तित्व काईकी तरह आरोपित हो गया होता, ठीक है न !) मैं देख रहा हूँ (मतलब सुन रहा हूँ) कि यहाँ नाटककी जगह भाषा-विज्ञान-की बात हो रही है। (तो क्या डॉ० लालकी महिमा गायी जाती—हाय, विपिनजी, आपने यह क्या किया ?)

डॉ० लालकी सत्यनारायण-व्रत-कथा यहाँ समाप्त होती है। अब वे थोड़ी दार्शनिक मुद्रामें आ गये। (जिघांसाकी परिसमाप्तिके बाद ऐसा होनेमें भी एक अलग सुख है।) बोले : नाटकका सामाजिक दायित्व होता है। उसका सामाजिक रंगमंच होता है। सवाल यह कि किसको लिखना चाहिए। (पहले दिन उनके भाषणका अन्त इस महान् वाक्यसे हुआ था : जो हमें लिखना है, समझमें नहीं आता।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री विनेन्द्रसिंहने इलाहाबाद और पटना-की अनुकृतियोंका हवाला पेश करते हुए कहा कि मात्र प्रयोगके लिए प्रयोग नहीं होता। रंगमंच एक संस्कार या संस्कारगत परम्परा होती है। उसके युग-बोधके साथ विपिनने यह नयी हो सकती है। उन्होंने डॉ० लालका उत्तर देते हुए कहा : 'खाली जगह' में सम्भावनाएँ नज़र आयीं, कमियाँ भी नज़र आयीं और गुण भी, यह नाटक एक कृतिकी है। जीवनलाल गुप्तकी एक मुद्रा इसमें क्या कोई गुणात्मक कारण नहीं हो सकता? और अपाहिज लड़कीका अभिनय तो सशक्त था।

इसके बाद उन्होंने विपिनजीके लेखका अभिनन्दन किया। उन्होंने कृतिकारकी निजी रुचि को अधिक महत्त्व दिया। प्रचार और रुचि उनकी रायमें एक प्रकारके ग़लत तत्त्व हैं। आरोप कृतिकारकी स्वतन्त्रताको छीन कर देते हैं।

जब श्री नरेश मेहतासे बहुत कहा गया तो उन्होंने, तो उन्होंने केवल इतना (कुछ दबी ज़ुबान लिये) कहा कि अच्छा हो कि विषय-को छोटा जाये।

श्री बालकृष्ण रावने इसके बाद बहुत सरल ढंगसे डॉ० लालका उत्तर देते हुए कहा, डॉ० लालको ग्लानि हुई, पर मुझे नहीं हुई। वे नैतिक दृष्टिसे इलाहाबादके हैं। मैं सम्पूर्णतः प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट नहीं थीं। बाहर आनेपर विस्मय, जड़ता, आतंक, धोखा-जैसी प्रति-क्रियाएँ मुखर थीं। आगे उन्होंने कहा : आतंक प्रयोगकी दृष्टिसे आज है। पर यह सब क्षणिक है। नाटककी भाषा मंचकी सज्जा भी होती है। हम अपने देशकी तुलना काफ़ी देर गये उठनेवाले आदमीसे करें, तो उसे जल्द-बाज़ीका अनुभव होगा ही। विपिनने भाषा-विज्ञानकी बात नहीं की है, बल्कि परिवेशके सन्दर्भमें भाषाके प्रश्नको उठाकर ज़्यादा सही सटीक बात कही है।

श्री विजयदेवनारायण साहीको भी लगा कि विपिनजीने सामाजिक परिवेशको नहीं उठाया है। उन्होंने स्वयं उसकी चर्चा करनेकी कृपा नहीं की और भाषाके ही प्रश्नको अपनी शब्दा-वलीमें रखते हुए कहा : बोलचालकी भाषा नाटकमें लगभग क्रान्तिकारी शर्त है। (मेरा खयाल है कि 'बोलचाल' का अर्थ उनके सामने केवल इतना ही था कि जो भाषा हम आम लोग बोलते हैं, उसका बिना चयन किये बिना कला-रुचिसे संपृक्त किये ज्योंका त्यों रख देना ही पर्याप्त है।) ठेठ बोलचालकी भाषा और रक्तमें बसी हुई हिन्दीमें बहुत अन्तर है। वर्ग-वर्गकी भाषा अलग है। उनकी दृष्टिसे बोलचालकी दो भाषाएँ हैं : एक रेलवे लाइनके उस पारकी भाषा; दूसरी यूनिवर्सिटीके इर्द-गिर्दकी अँगरेज़ीबहुल भाषा। दोनों ही अस्वाभाविक हैं। अतः हम प्रयोग नहीं कर सकते, निर्माण कर सकते हैं। वस्तुतः एक कल्पित भाषा होती है, जो सर्ज-नात्मक स्तरपर उभरती है। (यह कल्पित भाषा अस्वीकरणीय नहीं है, बल्कि इस शब्द-का बिना प्रयोग किये विपिनजीने स्वयं अपने लेखमें प्रेषणीयताके सन्दर्भमें सहज ढंगसे संवे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दना, मुद्राकी चर्चा करते हुए सूक्ष्म ढंगसे समझाया भी था।) 'कंजूस' की भाषा स्थिर समाजको बाँधती है जब कि उसमें परी-कथाका आनन्द ज़रूरी है। स्थिर भाषासे आजके सघन और जटिलको व्यक्त नहीं कर सकते। मुहावरेवाली भाषा दूरी पैदा करती है। सिनेमाई भाषा चापलूस होती है। 'ख़ाली जगह' की भाषा कोई दिशा दे सकती है। (मेरा ख़याल है, इससे सहमत होना तभी स्वाभाविक है जब वह भाषा किताबी न लगे।) उस भाषाको प्रस्तुतिमें समझा ही नहीं गया। (यह मत कम क्रान्तिकारी नहीं है!)

डॉ० जगदीश गुप्तने परिवेश और प्रयोगकी समस्याओंको एक-दूसरेसे संग्रथित बताते हुए कहा : 'प्रयोग' और 'सामाजिक' के कभी विशिष्ट अर्थ थे। आज उनका अर्थ-विकास हो चुका है। मैं दृश्यकाव्यके भविष्यको श्रव्यकाव्यसे भिन्न करके नहीं देखता। 'नकेन' के प्रयोगको मैंने कभी महत्त्व नहीं दिया। क्योंकि वह प्रयोगको साध्य मानता है। भाषा माध्यमसे जुड़ी हुई है। कलाओंके परिप्रेक्ष्यमें नाटककी स्थिति मध्यवर्ती है। चित्रादि अनुवाद-सापेक्ष नहीं होते। नाटकमें दृश्य ऐसे ही होते हैं। लेकिन शब्द अनुवाद-सापेक्ष होते हैं। हरकत और भाषा दोनों भाषाके अंग हैं। नाटक एक जटिल प्रक्रिया है। हरकत और भाषाका अन्तःसंगठन ज़रूरी है। लेकिन नाटककी समस्या मात्र भाषासे हल नहीं हो सकती बल्कि नाटककी समस्या उससे बड़ी समस्या है।

साहीजीने प्रायः विपनका विरोध करते हुए गहराईमें उन्हींका समर्थन किया, जब कि जगदीशजीने उनकी अतिवादी दृष्टिकी सीमा निर्धारित करते हुए विषयको आगे बढ़ाया।

अन्तमें अध्यक्षने (उसी) अलंकरणप्रधान-शैलीमें कहा : नवनिर्माणकी आज आवश्यकता है। नाटककार प्रयोग और परम्पराकी खिचड़ी नहीं पकाता। मैं तो 'चक्रारपंक्तिरिव भाग्यपंक्तिः' के स्थानपर 'चक्रारपंक्तिरिव काव्य/नाट्य पंक्तिः' लिखा देखना चाहता हूँ। नाटककार अपनी साँससे भाषाको जानना चाहता है। (इस वाक्यका अर्थ क्या है?) हरकत मंचकी भाषा है। नाटककार नर्तकीके कण्ठमें बैठकर घुँघुरुओंकी रुनझुनमें अपनेको भुला दे, यही श्रेय है। (मतलब?) समाज कई तरहके कपड़े पहने विदूषककी तरह है। कलाकार उसे अँगुली पकड़कर (भिन्न-भिन्न रुचिवाला होनेके कारण) कैसे ले चले। फिर भी उसके व्यक्तित्वका समूहमें घुलना ज़रूरी है। मूर्ख कभी-कभी नाटक समुद्रकी तरह लगता है जिसमें अन्य कलाएँ तरंगोंकी तरह हैं। तत्-लब्धियोंका प्रयोग राष्ट्रीय विधि है। हम किस रंगके फूलसे गुलदस्ता बनायें, यह जानना कहाँ ज़िम्मेदारी है।

बादवाली गोष्ठीमें इसी समारोहसे प्रेरित होकर वि० दे० ना० साहीने इलाहाबादमें एक स्वतन्त्र क़िस्मकी 'नाटक अकादमी' बनानेकी सलाह दी, जो उपकरण जुटाकर नाट्य संस्थाओंकी मदद करे। वर्षमें एक ऐसा समारोह हो, जिसमें एक या दो उत्कृष्ट प्रस्तुतियाँ तत्त्वोंके निर्णयसे पेश की जायें।

—श्रीराम वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-मंच

• गंगाप्रसाद विमल
• प्रभातकुमार त्रिपाठी

॥

गंगाप्रसाद विमल : इतिहास-धाराके विशेष क्रममें सातवें दशकका जीवन, दृश्य यथार्थके ये परिप्रेक्ष्यमें, चाहे अत्यन्त साधारण लगता हो किन्तु इतिहासके परिणामोंको भयावह परिकल्पनाओंने मनुष्यके अनुभव-जगत्को वर्तमान-क्षण और भविष्यके प्रति निराश बना डाला है। वस्तुतः अनुभव-जगत्की यही पीड़ा स्थितियों, कारणों, क्रियाकलापों और प्रभावोंके क्षेत्रमें मानव-पीड़न (ह्यूमेन सफ़रिंग) के नये स्पर्श देती है। बाहरी संसार बाहरके कारणोंसे उतना त्रस्त नहीं है जितना अन्दरके संसारकी भयावह कल्पनाओंसे त्रस्त है परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि बाहरी संसार उस भयावह परिकल्पनाकी पोठिका नहीं है। दृश्य-संसार विसंगतियों, विरूपताओंके अनेकानेक प्रतिपातों-द्वारा मनुष्यके भीतरी संसारमें अपने यथार्थ रूपोंमें रूपायित होता है। इस रूपायनका कोई क्रम नहीं है किन्तु इसके संग्रथित रूप कला या साहित्यके प्रयोगोंमें निरन्तर उपलब्ध होते हैं। शास्त्रीय अनुक्रमकी साहित्य रचनाओंमें आदर्श या नैतिकता जिस प्रकारका एक आरक्ष-कवच था ठीक उसी तरहका आरक्ष-कवच यथार्थ-वादियोंने विशेष संयोजनाओंमें प्रस्तुत किया है, इसके उदाहरण हमें द्वितीय-युद्ध-पूर्वकी अधिकांश रचनाओंमें मिलते हैं। यहाँ हम 'कहानी' से सम्बद्ध होकर कहानी-रचनाओंको इस सीमामें रखें तो बातें और भी स्पष्ट हो जाती हैं क्योंकि 'कहानी' में व्यक्तिके (या किसी सामाजिक इकाईके) तात्कालिक अनुभवोंसे लेकर वे अनुभव तक व्यक्त हो जाते हैं जिनका परिवेश अत्यधिक सीमित होता है। उदाहरणके लिए, अनेक युवा-कथाकारोंकी कहानियाँ ली जा सकती हैं जिनमें अनुभवोंके वे रूप या प्रतीक या बिम्ब हैं जिनकी सार्थकता कवितामें अधिक जानी जाती है। पुरानी कहानियाँ अपने इस सीमित परिवेशके कारण बृहत्तर जीवनानुभवसे कटकर केवल मनुष्यके अपने निर्माण (व्यक्तिके आरोप) को व्यक्त करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं तथा उसे विशेष प्रयोजनपरकतासे सम्बद्ध करती थीं। कुछ कहानियोंमें, जिन्हें उनके प्रयोगोंके कारण महत्त्वपूर्ण मान लिया गया था, अपने-आपमें 'मुक्त-आसंग' की कहानियाँ थीं जो कहीं-कहीं विचारोंका प्रलाप-सी बनकर रह जाती हैं। धीरे-धीरे कहानियोंमें कथा और शिल्पकी या इन्हीं धुरियोंके बीच पनपने-वाली प्रवृत्तियोंके चमत्कारकी असाधारणता धारणाके रूपमें रूपान्तरित होकर रचनाका मानक बनती जाती हैं यद्यपि यह क्रम या प्रक्रिया एकदम अवैज्ञानिक है किन्तु कथाकारों या कथा समीक्षकोंने इन्हीं धारणाओंको रचना-की अनिवार्य शर्त, किन्हीं रूपोंमें, स्वीकार भी किया है। यही कारण है कि एक कथा-रचनाके सम्बन्धमें सीधी प्रतिक्रिया गुणदोषा-त्मक होती है या उसका सामान्य विवेचन किया जाता है। वस्तुतः सबसे पहले धारणा-ओंकी ऐतिहासिक परिणतिका विवेचन होना चाहिए क्योंकि हम यह मानकर चलते हैं कि कोई भी रचना किसी धारणासे रचना नहीं कहलाती अपितु वह अपनी पूर्ववर्ती धारणाओं-से अलग किसी और धारणाकी प्रतीति देती है। इन वर्षोंकी कथा-रचनाओंके अनेक उदा-हरण इस सन्दर्भमें सटीक बैठते हैं, उनमें धारणाओंके प्रति घोर विरक्ति है क्योंकि उन कथाओंमें वर्णित सामाजिक-संरचना उस दृश्य सामाजिक-विधानसे नितान्त अलग है, यदि कहीं ऐसी स्थिति आयी भी है तो वह किसी कथाकारने केवल इसलिए प्रस्तुत की है ताकि उसकी अर्थहीनताको पूरी तरह व्यक्त किया जा सके। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि १९५५ के लगभगकी कथा-रचनाओंमें जो 'कथातत्त्व' धारणागत प्रतीतिका भ्रम लगता है वह पाँच वर्ष बाद एकदम समाप्त हो जाता है। कथा-धारणाएँ जिन रूपोंमें प्रस्तुत की जाती हैं उनकी दो दिशाएँ हैं, एक तो आलोचनाका वह वर्ग है जो सीमित (पुराने) मानकोंके आधारपर मूल्यांकन करता है तथा दूसरा वर्ग कथामें कथापन, सांकेतिकता, प्रतीक-पद्धति आदिकी चर्चा करता है। गहराईसे देखा जाये तो दोनोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों विशेष और स्वीकृत धारणाओं-की तलाश करते हैं। वे कथामें किसी अभाव-का अन्वेषण करते हुए 'रूप'की दृष्टिसे उसे ठीक मानते हुए भी धारणागत आधारोंपर इसलिए अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि वह पूरी तरह धारणाओंकी प्रतीतिके अनुकूल नहीं है। शिल्प, भाषा, अभिव्यक्ति, यथार्थांकन, सांके-तिकता आदि पारिभाषिक शब्द धारणाओंकी प्रतीतिको मानकके रूपमें प्रस्तुत करते हैं जब कि यह बात नहीं भूली जानी चाहिए कि धारणाओंका सीधा सम्बन्ध व्यक्तिके वैचारिक, जीवनदृष्टिगत आग्रहोंसे अधिक है। इसलिए इन वर्षोंकी कथाको जब हम स्वीकृत धार-णाओंसे जुड़ी मानते हैं तो उन्हें दो रूपोंमें स्वीकार करते हैं—एक तो कथा-रचनाकी धारणाएँ और दूसरे जीवनकी धारणाएँ। कथा-रचनाकी धारणाएँ कहानीके लिए एक ढाँचा प्रस्तुत करती हैं तथा जीवनकी धारणाएँ उस ढाँचेको अनुभव या विचार या जीवनके अनेक स्वीकारोंके आग्रहोंसे परिपूरित करती हैं। युद्धोत्तर जीवनकी जब-जब चर्चा होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो हम स्वयं उसके निर्णय निकाल लेते हैं तथा उसे उसी रूपमें अपने भूगोलमें मान बैठते हैं जैसा कि वह घटित-प्रदेशोंमें है। अन्तरकी कोई रेखा यद्यपि नहीं खींची जा सकती तथापि यह मान लेना चाहिए कि युद्धोत्तर (द्वितीय विश्वयुद्ध) जीवनका भोग हमारे देशीय भूगोलपर अन्तर्राष्ट्रीय नैकट्यके कारण अवश्य प्रभाव-रूपमें आया है किन्तु उसके प्रभाव-क्षेत्रोंमें हमारे यहाँ अन्तर है। परन्तु जब अन्तर न मानकर हम उसे वैसा ही स्वीकार लेते हैं तो वह जीवनकी एक धारणा बनकर हमारी रचनाकी धारणा बनती जाती है। इस सन्दर्भमें आरम्भकी कहानियोंमें व्यक्ति-जीवनकी औदास्य या अवसादकी भावकथाएँ आधुनिकताकी धारणाकी कहानियाँ हैं। निर्मल वर्माकी बहुचर्चित कहानी 'परिन्दे' इसका प्रमुख साक्ष्य है क्योंकि वह भावकथा मानव विश्वासके टूटनकी कथा कम है, वह भावनाकी दृष्टिसे अवसादके वातावरणकी कथा है। इसकी तुलनामें इस धारणासे अलग कथाएँ हमें बहुत बादके वर्षोंमें मिलती हैं जब सम्बन्धोंका परिवर्तन कोई भावात्मक परिणति या घटना नहीं रह जाती अपितु वह स्वाभाविक प्रक्रिया बनकर सामने आती है। उसीका दूसरा रूप जो हमें जीवनमें मिलता है वह संयुक्त परिवारोंके विघटनके रूपमें नहीं, क्योंकि संयुक्त परिवारोंका विधान, सम्बन्धोंमें नयापन—ये बहुत पुरानी घटनाएँ हैं, बल्कि वियुक्त परिवारोंमें मनुष्यका अपने-आपको और अधिक विस्थापित महसूस करनेका अनुभव है। ऐसे अनुभव किसी तरहके अभियोजन (एडजस्टमेण्ट) के अनुभव नहीं हैं, न वे किसी तरहके अबोध जिज्ञासाओंके रूप हैं बल्कि वह एक अलग तरहसे मानव-यातनाका नया परिच्छेद सामने रखते हैं। ऐसे अनुभव मनुष्यके अस्तित्व-संकट या त्रासके तीव्र अनुभवोंकी कोटिके न होते हुए भी सामान्य अनुभवोंकी पीड़ाओंको 'निरन्तर प्राप्त हो रही यातना'के रूपमें प्रस्तुत करनेमें सक्षम होते हैं। एक-दूसरे परिप्रेक्ष्यमें हम यह जान सकते हैं कि मानव-मस्तिष्कके लिए जो संकट विश्वके अन्य क्षितिजोंपर अवतरित होते हैं वे संक्रामक रूपसे एक-दूसरे क्षितिजके जीवन-विधानको प्रभावित नहीं कर देते बल्कि उन्हीं स्थितियों, समस्याओं, सामाजिक प्रारूपोंमें अनुकूलताका आकार ग्रहण कर लेते हैं तथा अनुभवके नये स्पर्शोंमें संचारित होते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धतासे अनुप्रेरित कथाकारोंने जहाँ विशुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है वहाँ वे उस दृष्टिकोणको कथा-रूपोंमें व्यक्त करते हुए एक तरहसे रूढ़ हो गये हैं, 'नयी कहानी'की चर्चाओंमें इन 'रूढ़ कथारूपों' की विस्तृत चर्चाएँ हुई हैं, जहाँ उनके समर्थनके आभास मिलते हैं वहाँ हमें धारणाओंका आग्रह मिलता है तथा जहाँ वे विकसनशील कथारूपोंकी संगतिमें सार्थकताको संरक्षित करते हैं वहाँ हमें धारणाओंकी प्रतीति या भ्रमके रूपमें मिलते हैं। इसलिए एक कथा-आन्दोलनने पिछली स्वीकृत धारणाओंके अस्वीकारके साथ ही उस धरातलपर दूसरी धारणाओंका स्थापन किया है चाहे वे धारणाएँ निपट व्यक्तिके स्थापनकी हों या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Roller Chains AND Spockets

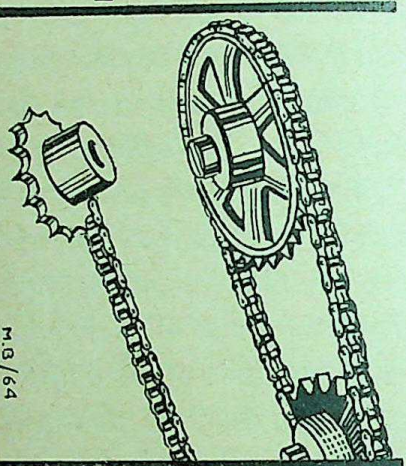

JAGATNARAYAN BHAGAWANDASS
71/A, NETAJI SUBHAS RD. CAL-1
ROOM No. D/S 12.

PHONE { 22-4704
22-0795

Importers & Stockists of :

Steel Roller Chains, Sprockets of "Renold" Kabo Diamond, Anchor Morse & General Order Suppliers.

चाहे वे प्रतिबद्धताके नामपर मानववादी रूढ़ि-का प्रक्षेपण हो। हमें दोनों रूपोंमें यह नयी धारणाओंकी स्वीकृति ही लगती है। यह जानना आवश्यक नहीं है कि किसी रचना-द्वारा कोई मानव स्थापित होता है परन्तु यहां-पर यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि एक विशेष कथाधाराकी प्रतिनिधि रचना स्वीकृत धारणाको किस रूपमें संरक्षित रखती है। कथा-शिल्प या कथाकी बुनावटमें भी एक सामाजिक धारणा संरक्षित की जा सकती है तथा वह है एक सामाजिक भाषाकी रूढ़ि, जिसे हम सम्प्रेषणके तर्कपर स्वीकार भी कर सकते हैं परन्तु यह सामाजिक भाषा लोक-भाषा या बोलचालकी भाषा बनकर जब वातावरणकी सर्जना करती है तब सामान्य पाठकको भी लग सकता है कि एक अलग तरहके भाव या भावनाको प्रक्षेपित कर रचनाकार लेखककी आत्मीयताका शोषण करने लगता है। वस्तुतः शिल्पकी धारणा एक सामाजिक धारणाके अनुरूप आ खड़ी होती है। कथामें वर्णित जीवन या जीवनका अनुभव प्रामाणिक हो, इसके लिए कथाकार जीवनकी स्वीकृत धाराणाओंका चुनाव करता है तथा जीवन-क्षेत्रसे एक ऐसा चुनाव करता है जो विश्वसनीयताका युग बनाये रख सके। असल-में धारणाओंका संरक्षण और स्वीकार, जैसा पुरानी कहानीमें हुआ है, दो-एक अपवादों-को छोड़कर नयी कहानीमें भी उसका संरक्षण और स्वीकार रहा है। और यह 'रचना-पीढ़ियों'के एक झगड़ेके रूपमें अनेक मंचोंसे सामने भी आया है। 'धारणाओं'के इस संघर्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने एकदम एक नयी पीढ़ीको धारणाओंकी मृत्यु घोषणाके लिए विवश किया है। यद्यपि हम सातवें दशक या इस तरहकी किसी धारणाका समर्थन नहीं करते तथापि हम यह मानते हैं कि इन कुछ वर्षोंकी रचनाओंमें धारणाओंकी स्वीकृति और अस्वीकृतिका दबाव पूरी तरहसे स्पष्ट हुआ है।

कथामें 'कथाधारणा' की मृत्यु-घोषणा किसी आन्दोलनका कोई नारा नहीं है अपितु इस स्वीकारसे अस्वीकार और फिर एक नये अस्वीकारकी ओर जानेकी प्रक्रिया है जिसे इस स्वीकृत धारणाकी मृत्यु मानते हैं। परन्तु इसे कदापि यह भ्रम नहीं लिया जाना चाहिए कि इस अस्वीकारमें कहीं कोई अराजकतावादी दृष्टिकोण काम करता है। यह स्पष्टीकरण इसलिए अनिवार्य है कि इस तरहका अराजकतावादी दृष्टिकोण हमारी दृष्टिमें अपने-आपमें एक धारणा है। अपनी बातोंको स्पष्ट करनेके लिए हम अनेक कथाओंका उल्लेख कर सकते थे किन्तु वह अपने-आपमें एक धारणाकी प्रतीति देती है इसलिए उस प्रकारके परिगणनकी अपेक्षा हम विविध स्थितियोंका उल्लेख ही करेंगे। डॉ० अवस्थीने 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' सम्बन्धी प्रकाशित पुस्तकमें नवलेखन-आन्दोलन-द्वारा अकर्मकतासे साहित्यशास्त्रके बने-बनाये एकेडेमिक तन्त्रके प्रति अवज्ञा तथा विरोधकी बातें जिस प्रसंगमें की है वह असलमें विरोध या अस्वीकारकी शुरूआत थी क्योंकि तबतक धारणाओंका जाल शास्त्रीय या एकेडेमिक तन्त्रसे ही सम्बद्ध था। १९६० या ६१ में 'लहर' के एक अंकमें कथानकके शिकंजेसे मुक्ति कहकर रमेश बक्षीने भी धारणाके विरोधके दूसरे पक्षकी चर्चा की थी परन्तु दोनों शुरूआत अपनी स्थितियोंकी संगति सातवें दशकके कुछ वर्षोंकी रचनाओंमें पाती हैं। कथाकारोंने अनुभवोंके विविध प्रसंगोंमें 'धारणाकी मृत्यु' के सन्दर्भ दिये हैं, इसीलिए पात्र या चरित्र-निर्माणकी अपेक्षा अनुभवकी प्रामाणिकता और अनुभवकी जीवनगत संगतिकी ओर उनका अवधान गया है। चरित्र या पात्र या सुरुचि या महत्तम जीवन-प्रसंग सबके सब मनुष्यके उस यथार्थ अनुभवसे परे हैं जो निश्चित धारणाओंका अनुकरण न करके एक और तरहकी रचनाशीलतामें क्रियारत रहता है। सातवें दशककी प्रतिनिधि कथाएँ इसीलिए भावकथाएँ नहीं हैं किन्तु वह दूसरे तरहकी रोमाण्टिक कथाएँ भी नहीं हैं जो एण्टी रोमाण्टिक-आग्रहके कारण रोमाण्टिक बन जाती हैं। हमने यह बात अन्यत्र भी कही है कि सातवें दशककी कहानी अपने मानकोंका एक नया सौन्दर्यशास्त्र स्वयं बनाती है किन्तु उसे रूढ़िक्रममें मानकर नहीं चलती। कहानियाँ चाहे पिताकी हों या चारों ओरसे घिरे मनुष्यकी या मृत्यु-कामनाओंसे भरे हुए नैराश्यके वातावरणकी—यदि वे प्रयोजनपरकतासे अलग हैं, यदि उनमें मनुष्यकी समकालीन पीड़ाओंका धारणाहीन प्रयोग है, यदि उनमें अनुभवोंकी आन्तरिक अनुकूलता है तो वे सीधे शब्दोंमें मनुष्य मनके गोपनीय विरोधकी कहानियाँ हैं जो स्थापनकी अपेक्षा विस्थापित होनेका सुख, सुरक्षाकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा असुरक्षाके अनुभवका भोग, जीवनकी गरिमामय स्थितिकी अपेक्षा घिसटते हुए जीनेकी अभिलाषाहीन गतिका मोहभंग और अस्तित्वके संकटको विवशताके दायरेमें झेलते जानेकी प्रक्रियासे जुड़ी हुई हैं। इसीलिए सातवें दशकमें रूढ़ प्रतिबद्धता, रूढ़ आग्रह, वैचारिक परिवेशकी दासता, कथा-निर्माणके आग्रह और इसीके समान धारणाओंकी प्रतीतिके भ्रम अपनी समग्र अर्थहीनताके कारण त्रासदायक होते हुए भी उस संगतिकी कथाएँ नहीं मिलतीं जो आरोपित बोध-द्वारा जानती हैं।

प्रभातकुमार त्रिपाठी : आधुनिक लेखन चाहे वह कहानी हो या कविता, व्यक्तिकी भीतरी बदली हुई--बदलती हुई दुनिया, उस दुनियाकी यन्त्रणा और उस दुनियाके सन्त्रासके लिए भाषाकी तलाश है और इसलिए प्रथमतः वह व्यक्तिके निहायत निजी आत्मसंघर्षसे प्रसूत है; और आधुनिक लेखन ही क्यों, किसी भी युगका कोई भी सच्चा लेखन, रचनाकार-व्यक्तिके नितान्त व्यक्तिगत आत्मसंघर्षसे जनमता है। अतः साहित्यकी किसी भी विधाको लेकर, सामाजिकता-असामाजिकता, दायित्वबोध-दायित्वहीनता या आस्था-अनास्थाका प्रश्न, असाहित्यिक प्रश्न है। साहित्य या कलाको लेकर साहित्य अथवा असाहित्य और कला अथवा अ-कलाकी बात उठायी जा सकती है, किसी दूसरी प्रतिबद्धता या प्रतिमानकी बात इस सन्दर्भमें अनुचित है लेकिन यह भी सही है कि साहित्यकार (बक़ौल परसाईजी) गल्ले-बाज़ारका साँड नहीं है, उसका रचनाकार, उसके व्यावहारिक सामाजिक व्यक्तिसे इतना तटस्थ और उदासीन नहीं रह सकता--(और नहीं भी रहा) जितना कि कुछ लोग अपने भाषणोंमें बताते हैं। ऐसा कहना आधुनिक व्यक्तिके भीतरी कांप्लिकेशन्सको सपाट और सहज बनाना है। यही कारण है कि श्रीकान्तजी-जैसे व्यक्तियोंके लेखनमें भी कई--उद्घोषणाओंके बावजूद--परिवेश और समाजके प्रति जुड़ान साफ़-साफ़ नज़र आता है। श्रीकान्तजी भले ही मानते हों (और एक हद तक वे ठीक भी मानते हैं) कि व्यक्तिका बड़ी तेज़ीसे अन्तर्राष्ट्रीयकरण हो रहा है और इसीलिए वह रीजनल प्रभावोंसे मुक्त होता जा रहा है लेकिन साथ ही उन्हें यह भी मानना होगा कि अन्तर्राष्ट्रीयकरण, अराष्ट्रीयकरण नहीं है। स्वयं उनके ख़ुदके लेखनमें भाषाके रचाव और जीवन्तताकी वजह यही है कि उन्होंने आस-पासको बड़ी ही सतर्कतासे ग्रहण किया है। उनकी 'शवयात्रा' या 'झाड़ी'-जैसी कहानियोंमें आन्तरिक संवेदना केवल इसीलिए ही प्रभविष्णु रह सकी है क्योंकि परिवेशकी ऊष्मासे वह जीवित है। सामाजिक जुड़ाव कोई प्रतिबद्धता नहीं, रचनात्मक-लेखनके लिए अनिवार्यता है--एक ऐसी अनिवार्यता जो रचनाकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकताका निर्णय करती है।

श्रीकान्तजीने अपने भाषणमें एक विचित्र बात यह भी कही है कि जैनेन्द्रजी पहले आधुनिक लेखक हैं क्योंकि उन्होंने व्यक्तिके मनमें उठनेवाले संशयको लिखा है, प्रेमचन्द आधुनिक नहीं हैं। ताज्जुब होता है जब श्रीकान्तजी-जैसे व्यक्ति ऐसी बात कहते हैं क्योंकि उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुद कई बार स्वीकार किया है कि रचना आन्तरिक संघर्ष और भीतरी दबावके कारण जन्मती है और जैनेन्द्रजी प्रश्न और संशयको केवल बौद्धिक धरातलपर ही स्वीकार कर पाये हैं। रचनामें—खासकर साहित्यिक रचनामें—तभी महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है जब वह रचनाकारकी भीतरी सफ़र-तिसे प्राणवत्ता ग्रहण करे—जैनेन्द्रजीने उसीपर सोचा है, उनके बारेमें मनन किया है उनके तनाव और व्यक्तिकी भीतरी दुनिया-पर उनके प्रभावोंको सर्जककी आत्मीयताके साथ महसूसा नहीं है, यही कारण है कि उनके 'सूनसान-प्रश्न' भी प्रभावशाली नहीं बन सके हैं जबकि प्रेमचन्दके संवेदनशील लेखकने, बाहरी दुनियाकी स्थूलताको, रोज़मर्राकी समस्याओंको साधारणताको—लेखकीय-सफ़र-तिसके कारण कलात्मक दीप्ति प्रदान की है। प्रश्न या संशयकी बात उठानेवाला व्यक्ति बौद्धिक हो सकता है, लेखक या कवि होनेके लिए, प्रश्न और संकटको बेहद सच्चाईके साथ भीतर महसूसना बहुत ज़रूरी है, और जब कोई व्यक्ति भीतर महसूसने—आन्तरिक दबावसे लिखनेकी इस शर्तको, सच्चाईसे स्वीकार करता है, तो उसके प्रश्न ही नहीं उसके समाधान और नितान्त आदर्शवादी समाधान भी आपको प्रभावित करते हैं। 'मुक्तिबोध'की 'अँधेरेमें' या 'चम्बलकी घाटियाँ'-जैसी कविताएँ, मेरी बातको प्रमाणित करती हैं।

पत्र मैंने आधुनिक कहानीको लेकर शुरू किया था लेकिन प्रारम्भमें ही कुछ प्रसंगान्तर हो गया क्योंकि मुझे अकसर लगा है कि आधुनिक-लेखनको सही ढंगसे समझनेके लिए इस भीतरी दुनियाकी सच्चाईके प्रति, प्रतिबद्धताकी बातका समझना आवश्यक है।

नयी कहानी, यानी कि वह कहानी जो जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, अश्कके बाद लिखी गयी, अधिकतर प्रेमचन्दकी परम्पराका फैलाव है, उसके नयेपनके मूलमें बाहरकी बदलती हुई परिस्थितियाँ और समस्याएँ तथा उससे प्रभावित-प्रताड़ित व्यक्तिकी भीतरी दुनिया है, जो परिस्थितियों, समस्याओं, चरित्रों, घटनाओंकी सापेक्षतामें अपना आकार ग्रहण करती है और इसीलिए उसमें घरेलू गन्धकी काफ़ी गुंजाइश है। मेरे कहनेका आशय यह क़तई नहीं है, कि बाहरकी बदलती हुई दुनिया या परिस्थितियाँ, व्यक्तिकी भीतरी दुनियाके लिए अमहत्त्वपूर्ण या अ-प्रभावशाली हैं या कि कहानीमें घरेलू गन्ध और नयी समस्याओं या परिस्थितियोंके आत्मीय और यथार्थ साक्षात्कारकी कोशिश-कशिश व्यर्थ है। मैं बाहरकी समस्याओं-परिस्थितियों—यहाँतक कि स्थूल सामाजिक-समस्याओंकी ओर भी, लेखक या रचनाकारकी भावनात्मक उन्मुखताको साहित्यके लिए एक शुभ लक्षण मानता हूँ, लेकिन मुझे निराशा तब होती है, जब कि ये समस्याएँ, परिस्थितियाँ, घटनाएँ—पात्रोंकी स्वाभाविकताकी रक्षाके रूढ़िगत प्रयत्न—कार्य-कारण-सम्बन्ध स्थापित करनेकी कोशिश—भीतरी अनुभवको उसकी तात्कालिकताकी तीव्रताके साथ सम्प्रेषित होनेसे रोकती हैं। अकसर यह होता है कि घटनाएँ या परिस्थितियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या परिवेश-चित्रण, अथवा ये सबके सब, संवेदनाके अलगपनको, भीतरी दुनियाके गाढ़े होते जाते सन्त्रासको कथा-रूढ़ियोंमें जकड़ लेते हैं और रचनाकारकी भीतरी दुनिया, उसका अन्तःसंघर्ष छोटा लगने लगता है। कहानी-जैसी नाजुक विधामें संवेदना किसी भी क्षण मात्र विवरण बन जा सकती है—इस तथ्य-को ईमानदार नये कहानीकार नहीं समझ पाये थे क्योंकि तब वे भाषाकी तलाश कर रहे थे, वे कथा-रूढ़ियोंको झकझोरकर तोड़ नहीं सके थे। भीतरी दुनियाकी सच्ची भयावहताको सूचित कर सकनेवाली भाषा उनके पास नहीं थी और इसलिए मुझे यह भी लगता है कि इन रचनाकारोंके घरू-मोहका कारण, इनकी रचनात्मक समझका पिछड़ापन नहीं वरन् भाषाके स्तरपर इनकी संक्रमणकालीन विवशता है, क्योंकि बादको राकेश और बदी-जी-जैसे लोगोंने भी 'ज़ख्म' और 'मातम'-जैसी कहानियाँ लिखी हैं, और इसलिए मैं समझता हूँ कि 'पिता', 'नौ साल छोटी पत्नी' 'एक प्रामाणिक झूठ', 'एक पतिके नोट्स'-जैसी कहानियोंको पानेके लिए 'जहाँ लक्ष्मी क़ैद है', 'आर्द्रा' और 'राजा निरबंसिया' के ज़मानेसे गुज़रना ज़रूरी था। ■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एक था राजा":

एक दिन सवेरे जगकर अखबारमें बस्तरके तथाकथित महाराजा प्रवीरचन्द्र भंजदेवकी मृत्युकी ख़बर देखी तो अपने ही राजमहलमें मृत पाये गये इस ज़िद्दी व्यक्तिकी मृत्युपर दुःख हुआ। जिसने भी लम्बे बालोंवाले हिन्दू महाराजाको देखा है उसे विश्वास नहीं होता था कि यही है बस्तरके भूतपूर्व क्षेत्रका स्वनिर्मित राजा····यही वह व्यक्ति है जो मुड़िया और माड़िया आदिवासी-जनका देवता बन गया है और जिसने भारत-गणतन्त्रमें बस्तरके विलयनको भी चुनौती दे दी थी····। राजकुमारोंका एक क्लब जो खोलना चाहता था, बस्तरमें भारत-सरकारके विरुद्ध क्रान्ति जो करवा देना चाहता था हिन्दू-राज्यकी कल्पना जिसके नक़्शेमें कल्पित थे···? मध्यप्रदेशका यह वही बस्तर है जिसने १९१० में अँगरेज़ोंके नाकों चने चबवा दिये थे। धनुष-बाण, तलवार, बल्लम लिये सशस्त्र आदिवासी तब तैयार थे कि दांतेवाड़ा जाकर माँ दन्तेश्वरीके सामने चाहे जिसका सिर काट-कर उसकी बलि दे दें····। माँके आँचलपर रहनेवाले लोगोंके लिए राजा और राजगुरु ही सब कुछ थे।····किसीको राजवंशमें माँने वरदान दिया था कि जहाँतक वस्त्र (बस्तर) फैलेगा वहाँतक राज्यकी सीमा होगी—लेकिन वह सीमावाला वस्त्र द्रौपदीके चीर-सा फैला नहीं, उल्टे सिकुड़ गया—इतना अधिक श्रिंक कर गया यह वस्त्र कि जगदलपुरमें राजमहल-की सीमाको भी नहीं ढँक सका।····क्यों ? क्या मध्यप्रदेशकी पुलिसने इतना ज़ुल्म ढाया

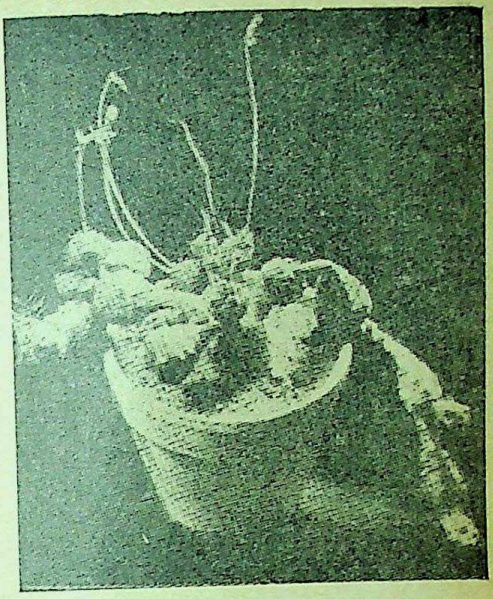

ता ता री खें खें

सुधीर मौलिक

कि वे अपने 'तथाकथित महाराजात्व' की रक्षा करते खेत रहे ? क्या प्रवीरचन्द्र स्वयंसे ऐसे त्रस्त और अपनी मानसिक संकीर्णतामें ऐसे क़ैद हो गये थे कि उन्होंने 'आत्महत्या' कर ली ? या उनमें ज़िद करते-करते इतनी समझ आ गयी थी कि उनके साथियोंने मरनेसे पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजा' की हत्या कर दी····? क्या विरोधी पक्षकी यह बात सही है कि सरकारने आदिवासियोंके विकासके लिए कुछ नहीं किया और जो कुछ किया वह पुलिसकी ज़्यादती है तथा मध्यप्रदेशकी सरकारने जैसे डण्डेके ज़ोरपर डाकू-समस्याका हल ढूँढ़ा वैसे ही यह 'राजा'-समस्या भी हल कर दी ? या यह दलील सही है कि बस्तरमें सरासर अराजकता फैल गयी थी और जन-सुरक्षा और प्रजातन्त्रकी रक्षाके लिए मध्यप्रदेश सरकारको पुलिसकी गोलीका अगर सहारा लेना पड़ा तो वह उचित क़दम था और मिश्रजीकी प्रशंसा की जानी चाहिए कि बस्तर-जैसी दुस्तर समस्याका हल निकल आया है ?····

प्रश्नोंका उत्तर वक़्त देगा लेकिन एक बात सही है कि प्रजातन्त्र दुहरी धारवाला चाक़ू है—विशेषकर आदिवासियोंके लिए। उन्हें केवल प्यार और समानताके जादूसे ही समझाया जा सकता है····। प्रवीरचन्द्र अपने आपको 'राजा' घोषित कर इतने लोगोंको कैसे मोहते रहे जब कि इतना बड़ा 'राज' उनका भाई बनकर भी उन्हें जीत नहीं सका। यदि डाकू-समस्या सुलझानेके लिए विनोबाका आत्म-समर्पणवाला दया-नियम ग़लत था तो बस्तर-की समस्या सुलझानेके लिए सरकारका दमन-चक्रवाला पुलिस-काण्ड भी शायद ग़लत है।····

मेरी मेज़पर प्रवीरचन्द्र भंजदेवकी मृत्यु-वाले अखबारके साथ ही तरुण भादुड़ीकी एक बँगला पुस्तक भी रखी हुई है—'हिज़ हाई-नेस'। पुस्तकमें बस्तर है, बस्तरके आन्दोलन हैं, प्रवीरचन्द्रकी जन्मकुण्डली है; जिसके दूसरे कोष्ठमें वृहस्पति और बुध दोनों हैं, तीसरेमें राहु और शुक्र····। पुस्तक शुरू होती है :

"एक जे छिलो राजा,
शे खेते खाजा,
एक जे छिलो रानी
शे खेते पानी
एक जे छिलो ठाकर,
शे खेते पापड़····

और अन्तिम पंक्ति है, पूरी एंक्ज़ायटी सहित—"घन कालो मेघ पुंजीभूत होबे एशेछि बस्तरेर उपर। कोथाय बा कि ऐ परिणति के जाने ?" हाँ, किसीको नहीं पता था कि बस्तरकी यह परिणति होगी····। १२ मार्च १९६१को प्रवीरचन्द्र भंजदेवको अपनी गद्दीको वापिस हथियानेके आरोपमें राष्ट्रपतिने अपदस्थ किया था और उनकी जगह युवराज विजयचन्द्र भंजदेवको दी गयी थी। क्या १९६१में ही क़िस्सा खत्म नहीं हो गया था ?....क़िस्सा तो खत्म हो गया था लेकिन ज़िद खत्म नहीं हुई थी। वह ज़िद इस महीने अपने ही राज-महलमें मृत पाई गयी है। कहते हैं न कि राजहठ मौतके साथ जाती है····। लेकिन अब अगर आदिवासियोंको 'राजा' का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझाया गया तो 'धर्मग्लानि' उत्पन्न करके वे किसी और 'राजा'को जन्म लेनेके लिए मजबूर करेंगे। रायपुरसे एक किंवदन्ती चली है कि प्रवीर-चन्द्रको गोली लगी लेकिन खूनका एक बूँद नहीं निकला क्योंकि रक्त तो मनुष्य-शरीरमें होता है, दैवीय शरीरमें नहीं। बड़ा खुशनसीब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था वह बग़ैर ताजका भंजदेव जो जीते 'हिज़ हाइनेस' कहलाता रहा, मरनेपर 'देवता' बन गया। पता नहीं, अब पुनर्जन्मके बाद वह क्या कहलायेगा ?

फिर बन्द :

इस मार्चको फिर बंगाल 'बन्द' हुआ लेकिन इस बारके 'बन्द'से अधिकांश लोग बोर हो गये। 'बन्द' के विरोधमें खुले जुलूस भी निकले। 'बन्द' के समय कुछ होता रहता है तो लोग उस सस्पेन्सको एन्ज्वॉय करते हैं और इस बार सब कुछ शान्तिपूर्ण रहा। इन छिटपुट घटनाओंको छोड़कर, जो बग़ैर बन्द दिन भी होती ही हैं। पुलिस-लारीसे एक बच्चेके कुचल जानेसे रोषपूर्ण तनाव आकर रहा और बड़ी मुश्किलसे उसपर क़ाबू पाया जा सका। जितने इश्तिहार 'बन्द करो' के थे उतने ही थे 'मत बन्द करो'के भी। सर-जोड़ने दीवार-दीवार जनतासे पूछा—'क्षतिग्रस्त कौन?' विरोधियोंने अपनी क़लमसे काट-पीटकर इसका रूप बदल दिया था—'क्षुधा-ग्रस्त कौन ?'

फिर ११ मार्चको सारे स्कूल-कालेज खुले तो लड़के-लड़की प्लान बनानेमें लग गये कि कि अब नये सिरेसे इन्हीं दरवाज़ोंको फिर बन्द करवाया जा सकता है। लेकिन इस बीच सबसे दिलचस्प हड़ताल लन्दनकी रही, जिसमें २५० फीट ऊपर एक क्रेनपर तीन मज़दूरोंने धरना दिया। दोने धोखा दे दिया—एकने किसी फ़िल्म-की एडवान्स बुकिंग करवा रखी थी, दूसरेको शायद कहीं 'डेट' पर जाना था····। तीसरेको एक दिन नीचे उतार दिया गया। रूस इससे चिन्तित हुआ है कि किसी दिन रॉकेटसे उड़े उपग्रहमें बैठे किसी आदमीने ऊपर-ऊपर ही कोई हड़ताल कर दी, तो····?

गाइड :

रविवारको चर्चित-बहुचर्चित फ़िल्म 'गाइड' देखकर लौटी लड़कीने कहा—'उसमें सबकुछ है : आत्मा-परमात्मा, राजा-महाराजा, अमेरिकन-नॉनअमेरिकन, सचेतन-नवचेतन। यहाँतक कि आनन्द-देवआनन्द-विजय-आनन्द और परमानन्द भी हैं····।'

स्वयंवर : क़ानूनन जायज़····

खबर है किसी मुँगेरके पास एक चर्मकार महोदय अपनी रूपवान बेटीका स्वयंवर करवा रहे हैं। एक विशाल पण्डाल बनवाया जायेगा, उसमें एक मंच भी होगा। सामने स्वयंवरार्थ पधारे उम्मीदवार होंगे और आस-पास दर्शनार्थियोंके बैठनेकी व्यवस्था भी होगी। लॉबीके लिए भी जगह निकल ही आयेगी। सुनते हैं १५०० दूल्हे (बननेके लिए उत्सुक) उसमें भाग लेंगे। स्थानीय पुलिससे सुरक्षाकी व्यवस्थाके लिए कहा गया है लेकिन कौन जाने २-४ पुलिसवाले भी 'उम्मीद' में हों। प्रश्न यह है कि तलाक़-क़ानूनन जायज़ नहीं है स्वयंवर तो है····?

अपने-अपने पर्सनल :

कलकत्ताका एक बड़ा युवक वर्ग सबेरे उठते ही स्टेट्स्मैनका 'पर्सनल' कॉलम देखता है। कौन जाने, कब कौन किसको क्या किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भमें सूचना दे दे। कुछ नमूने देखिए :

●

एस। मीट मी अपोज़िट डी० सी० एम० न्यूओन साईन एट शार्प सेवन। एक्स-वाई-जेड।

●

डियर, हाऊ आर यू ? विल यू लाइक टु टेस्ट दहीबड़ा एट बंगाल रेस्तराँ टु डे इवनिंग। यू रिमेम्बर आयेम इन कुरता एण्ड चुड़ीदार। टा-टा।

●

आर। डोंट मिस मी। एस।

●

कम बैक लिटिल डार्लिंग। योर मम हैज़ नॉट टेक्न टोमाटो सूप सिन्स सटरडे मार्निंग। —योर पा।

●

प्लीज़ मेक ए नोट ऑफ़ दिस इन योर डायरी दैट एप्रिल विल नो मोर बी क्रूएलेस्ट टु ऑवर लव। सिंग्युलरली योर्स : टी० ह्वी। एन-एफ़-टी-आई।

मौसमी लतीफ़े :

● प्रेमिका बोली : 'मैं तो अब परेशान हो गयी हूँ ज़िद करते-करते। बाऊजी मानते ही नहीं कि आपसे शादी कर दें....। अब मैं कब तक ज़िद करूँ ?'

प्रेमीने उत्तर दिया : 'हारो मत। ज़िद किये जाओ। अगर मास्टरजीकी ज़िदसे 'पंजाबी सूबा' बन सकता है तो क्या हमारा 'मनसूबा' अधूरा रह जायेगा।'

...और मोहब्बत :

१२ मार्च कलकत्ताका गर्मतर दिन था और वह गरमी अब स... दिनोंको गर्मतम बनाये जा रही है। दुपहर सिनेमा-हॉल, शाम कॉफी-हाउस और रात मैदान शरणगाह है कलकतियोंके लिए लेकिन भीड़में जो जगहें सूनी हैं वहाँ कलकत्ताके प्रेमी अपनी मोहब्बत-को आँचमें तपाते जा रहे हैं। जू, सूना है, और उसके अन्दरवाला ह्वाइट टाइगर चार आनेमें लीलाधाम बन जाता है। दर्शक सफ़ेद शेर होते हैं जो मनुष्य-जातिकी हरकतोंको माइण्ड नहीं करते।

कॉफ़ी-हाउस :

किसी एकने कहा : 'अब फिर विरोध करने-का मौसम आ गया है।....'

किसी दूसरेने उत्तर दिया : 'लेकिन उनका विरोध कैसा, वह तो हमारी ही पार्टीका है....।'

'तो क्या पार्टीमें लेफ़्टिस्ट और राइटि-स्ट दो ग्रुप नहीं होते हैं....?'

'लेकिन वह तो हमारी ही तरह लेफ़्टि-स्ट है।,

'तो क्या हुआ ? लेफ़्टिस्ट और लेफ़्टिएस्ट भी दो विभाग हैं।'

'लेकिन वह तो लेफ़्टिएस्ट भी है, उसका विरोध कैसा ?'

'तुम मुझे कम समझते हो क्या ? घरमें बापसे झगड़ा करता हूँ तो बाहर अपने भाईसे नहीं झगड़ सकता क्या ?'

सामनेवाला चुप हो गया क्योंकि वह उसका बाप था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

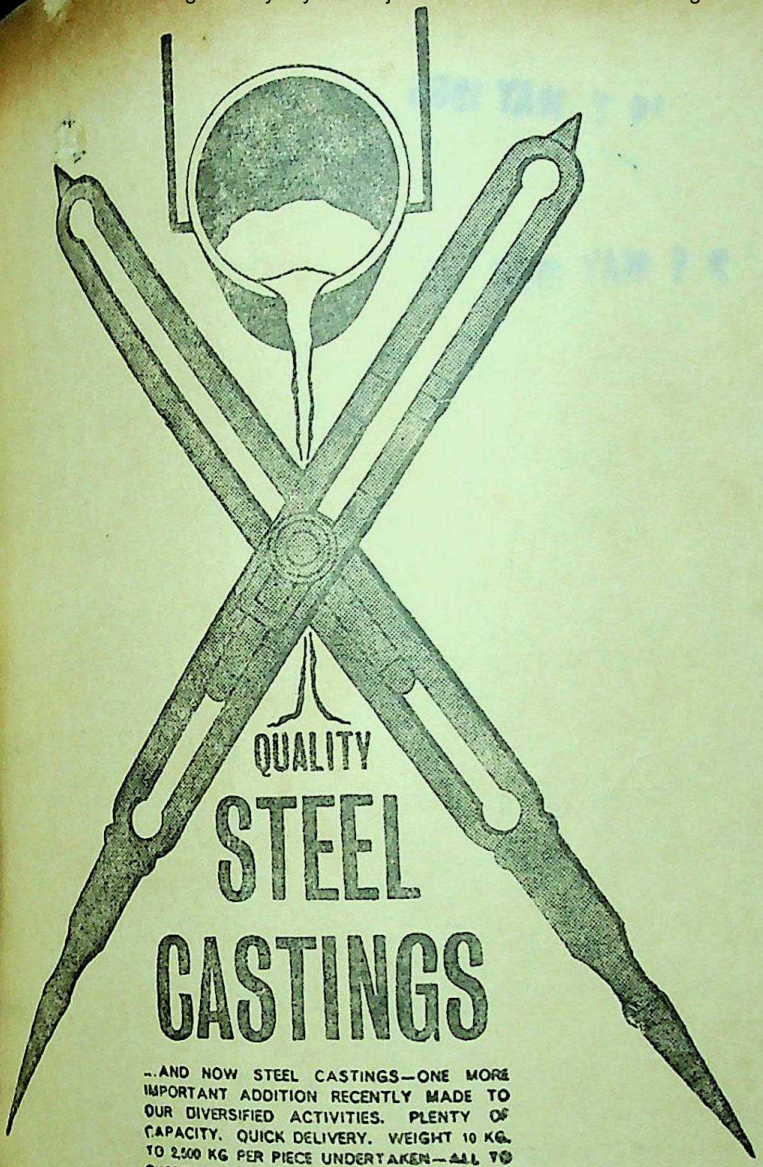

...AND NOW STEEL CASTINGS—ONE MORE IMPORTANT ADDITION RECENTLY MADE TO OUR DIVERSIFIED ACTIVITIES. PLENTY OF CAPACITY. QUICK DELIVERY. WEIGHT 10 KG. TO 2,500 KG PER PIECE UNDERTAKEN—ALL TO CUSTOMERS' SPECIFICATIONS.

THE BRITANNIA ENGINEERING COMPANY LIMITED

(Mg. Agents : McLEOD & CO. LIMITED) 3, Netaji Subhas Road, Calcutta 1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

12 MAY 1966
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re. 1

17 MAY 1966
21 MAY 1966

License No 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्टस :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

जून १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय
चन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन
अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

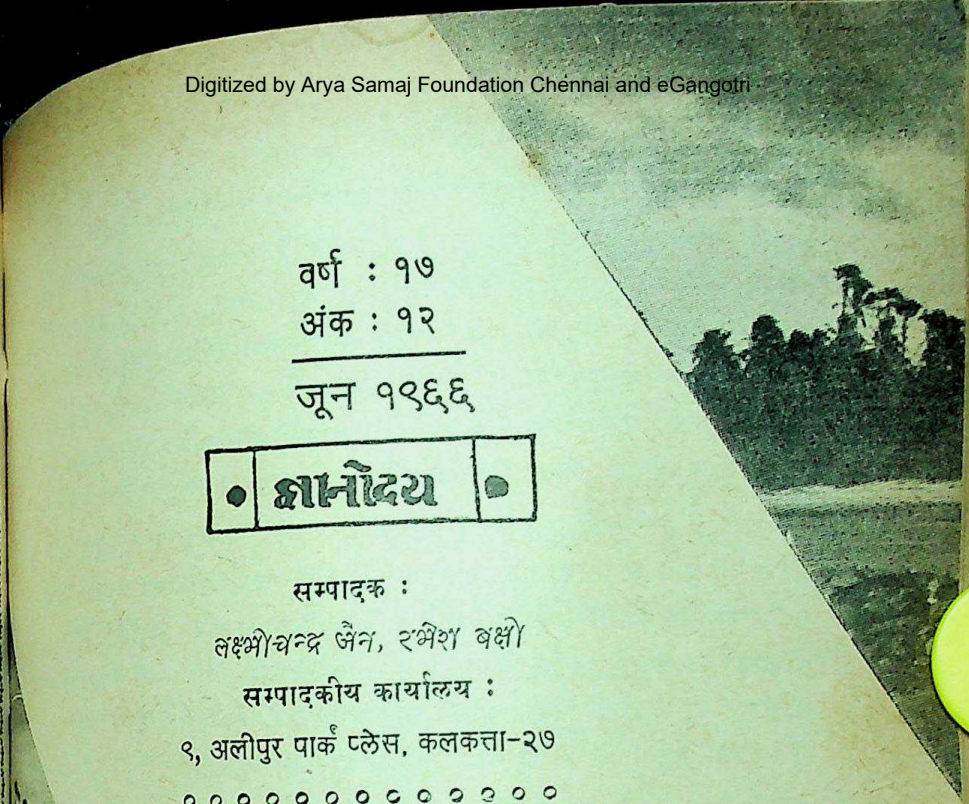

वर्ष : १७
अंक : १२

जून १९६६

ज्ञानोदय

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी
सम्पादकीय कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

इस अंकमें :

नीत्शे, विनायक दामोदर सावरकर, कुबेरनाथ राय, हीरा कोयला, विष्णु प्रभाकर, परमानन्द श्रीवास्तव, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, हरिकृष्ण देवसरे, जगमोहन राव भट्ट, शान्ति मेहरोत्रा, सोमा वीरा, चन्द्रकान्त बक्षी, हृदयेश, इन्दु जैन, आशा-रानी वोरा, ममता कालिया, प्रेमकपूर, जगदीश चतुर्वेदी महेन्द्र भटनागर, राजेन्द्र अनुरागी, परदेशी, नि० छु० जमींदार, रमेश उपाध्याय, सोमदत्त शर्मा, सोमदत्त मालवीय, मधुरेश, पद्मधर त्रिपाठी, सुमेश भौतिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्र आपके

गीताके सम्बन्धमें उठायी गयी चर्चा महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि इस सम्बन्धमें कई बातें प्रकाशमें आ चुकी हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों ही महाकाव्यके रूपमें विख्यात हैं, अतः गीताको अलगसे धर्मशास्त्र माननेका प्रश्न नहीं उठता, वैसे ही जैसे तुलसी-कृत 'मानस' धर्मग्रन्थ ही नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ कवि पहले भक्त होते थे, फिर कवि। अतः धर्म व काव्य सदा एक-दूसरेके पूरक रहे हैं। गीता भी इसी दृष्टिसे धर्मग्रन्थ व काव्यग्रन्थ दोनों है।

काव्यमें कल्पनाको पूरा प्रश्रय मिलता है, अतः 'धर्मयुद्ध' से पूर्वकी 'लम्बी धर्म-चर्चा' कवि-कल्पनाका ही उदाहरण है। इसी प्रकार श्रीकृष्णके मुखसे गीताके उपदेशकी बात कहलाना कविकी श्रद्धा-भक्तिका प्रमाण है। ऐसा नहीं कि स्वयं श्रीकृष्णने इस रूपमें, इतने विस्तारसे कोई बात कही होगी। हो सकता है कि श्रीकृष्णने जो 'उपदेश' दिये, कविने उन्हें सविस्तार काव्यात्मक ढंगसे रख दिया हो। अतः अर्जुनादिके 'आशु कवि' होनेका प्रश्न ही नहीं है।

साहित्यदर्पणकारने "खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्येकदेशानुसारि च" कहकर खण्डकाव्यकी जो परिभाषा निर्धारित की थी, उस कसौटीपर 'महाभारत' की अनेक उपकथाएँ—जैसे शकुन्तला-प्रसंग, भीम-हिडिम्बा-प्रसंग, देवयानी-कथा इत्यादि अनेक कथाएँ—स्वतन्त्र खण्डकाव्यका रूप धारण करती हैं, जिन्हें मैंने अपने 'खण्ड-काव्य' शोधप्रबन्धमें विस्तारपूर्वक वर्णित किया है। 'गीता' भी ऐसा अंश है, किन्तु कथा गौण व धर्मचर्चा प्रमुख होनेके कारण इसमें खण्डकाव्यके कथानक-जैसा कसाव नहीं आ पाया।

हम तो यही समझते हैं कि कविने अपनी श्रद्धा-भक्ति और आस्थाको श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित कर 'गीता' की रचना की है और उसका सारा श्रेय उन्हींको दिया है, जिसके कारण गीताकी रचना या प्रबन्धत्वको थोड़ी क्षति पहुँची है, पर वह उसके सामान्य महत्त्वके सामने नगण्य है।

अस्पष्टता आजकी कविताकी विशेषता बन गयी है। कविताएँ बोधगम्य नहीं रहीं, जिसका उदाहरण प्रेमलता वर्मा व निदा फाजलीकी कविताएँ हैं। वे क्या कहना चाहते हैं, वे ही जानें। क्या कवितासे यह धूमिलता नहीं हटायी जा सकती? गिरिराज किशोरको 'चूहे' कहानीपर मेरी हार्दिक बधाई प्रेषित करें।

—मदन केवलिया
बीकानेर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदयका मई '६६ अंक दिखलाया के० बी० ने। निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

समयबोधके अन्तर्गत सीमन-द-ब्याउआ-द्वारा नारी-भविष्यको लेकर उठाया गया एक नारी-प्रश्न चिन्तन-प्रेरक है। आज नारी अपनी ही विनिर्मित कल्पनाओंमें घिरी है। पुरुष-वर्गके प्रति विद्रोही भावनाएँ सँजोकर ही वह अपने अस्तित्वके निर्माणमें लग्नरत है जिससे वह अनुचित साधनोंको बेसमझीसे प्रयोगमें लाने लगी है क्योंकि बदलेकी भावना-से प्रेरित होकर कभी भी कोई शाश्वतत्वकी रक्षा नहीं कर पाता। बदलेकी भावनाने नारीको (संकेत उन्हींके लिए है जो प्रगति-शीलताकी मरीचिकामें ग्रस्त हैं) कामुक और प्रदर्शनीय बना दिया है, जिससे मनोबल कम-जोरियोंमें जकड़कर रह गया है। भविष्यकी सुरक्षा रति-कामनाओंका फन्दा काट डालनेमें ही है। रति-भावनाका सीमाबद्ध होना अनि-वार्य है। उच्छृंखलता इसके लिए अभिशाप है। निस्सन्देह इस विषयपर खुलकर चर्चा होनी ही चाहिए।

धूपके पहले दो बाणोंमें भटकाव है। तीसरा बाण पत्थरोंको भेदनेके व्यर्थ प्रयासमें है क्योंकि इन्तज़ार बाणको आगे नहीं बढ़ने देता। हिमालयकी धूपमें हिम-सौन्दर्य है। और गरमफ़हमी खुशफ़हमी बन गयी, सम्भवतः यही ग़लतफ़हमी है।

दो कविताएँ अधूरेपनमें अद्वितीय हैं जो मनकी चंचलताका बोध हैं।

डुग्गरके लोक-गीतोंमें डॉ० कर्णसिंहने

पत्र आपके

ज्ञानोदय लेखकों से विशेष निवेदन

सम्पादकीय योजनानुसार हमारा जुलाई अंक होगा : **'नयी क़लम अंक'**। सम्भवतः अक्टूबरमें हम प्रकाशित करेंगे: **ज्ञानपीठ पुरस्कार : साहित्य परिशिष्ट** और प्रतिवर्षानुसार नवम्बर अंक होगा **वार्षिक विशेषांक**, साथ ही दिसम्बर अंक **पूरक विशेषांक**। अगस्त तथा सितम्बर अंक की सामग्री हम तैयार कर चुके हैं अतः अब ज्ञानोदयके लिए प्राप्त रचनाएँ १९६७ में ही प्रकाशित हो सकेंगी। लेखकोंसे विनम्र निवेदन है कि वे अपनी रचनाएँ अब **अक्टूबरके पहले सप्ताहमें** ही भेजें, इससे उन्हें निर्णयके विलम्बकी असुविधा नहीं होगी।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस यौवन-झलता रोमान्सका दर्शन कराया है वह मनोहर है और हृदय-स्पर्शी भी। वास्तवमें लोक-गीतोंका अपना अन्दाज है जो हृदयसे निकलते हैं और हृदयमें समा जाते हैं।

दिगम्बर कवि
देखता चल रहा उस ओर भी
कि दिन भर के
हड्डतोड़ श्रम से थक कर भी
रात्रि की कालिमा
या चाँदनी में
नर हो या नारी
कल हो या आज
या आनेवाला कल भी
अधमरा-सा जीव वह
नहीं रह पाता बँधे बिन
नग्नता के पाश में
तोड़ कर सभी बन्धनों को—
सच्चरित्रता के
कुलीन हो
या निम्न हो
अपराजेय बनने को
रति की क्रीड़ा में
घूमती रहे दुनिया
और उसकी मान्यता
चेतन के अचेतन में
होश के बेहोश में
प्राण के स्पन्दन में
शिथिल होने के लिए।

—रामअवतार अभिलाषी

जीन्द]

●

'मई अंक' में धनंजय वर्माकी समीक्षा देखी। हमारा साधुवाद उन्हें। निर्भीकताके नामपर छपनेवाली 'कल्पना' की पूर्वाग्रहयुक्त 'कृति' की कभी-कभी बिना पढ़े की गयी आलोचनाओंकी अपेक्षा, ये काफ़ी जानदार हैं। सच पूछिए तो समीक्षाकी ठोस विवृतिकी हिन्दी और पाठकको अपेक्षा है। हम प्राध्यापक पढ़ते बहुत हैं, लिखते और बोलते थोड़ा कम हैं। किन्तु ऐसा नहीं कि प्रतिक्रिया नहीं होती। वे प्रतिक्रियाएँ डायरीके पन्नोंमें घनीभूत जमी रह जाती हैं। कमसे कम 'ज्ञानोदय' को 'अन्ध' समीक्षा, 'बकवास' समीक्षासे बचाते रहें यही हमारी कामना है।

—कपिल

आरा]

●

ज्ञानोदयका मार्च-अंक कल सवेरे ही मिला, नये स्तम्भ बहुत अच्छे लगे, किन्तु विशेष रूपसे पसन्द आया, 'ताज़े सन्दर्भ : पुराने परिप्रेक्ष्य'। मनोरंजनकी दृष्टिसे नहीं, नयी ज़िन्दगीकी सदियों पुरानी नींवमें नया सीमेण्ट लगानेके कठिन प्रयत्नकी दृष्टिसे।

[शेष पृष्ठ १३७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

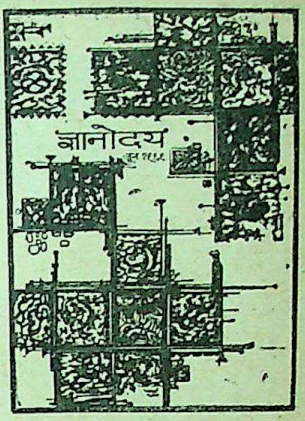

अ नु क्र म

वर्ष १७ : अंक १२

■ मुखपृष्ठ :
सन्तुदास गुप्त

■ अंक-सज्जाके छाया चित्र :
जितेन्द्र अग्रवाल

■ कविताएँ :

◒ नारी-स्वर : हीरा कोयला, शान्ति मेहरोत्रा, इन्दु जैन, ममता कालिया, प्रतिभा सक्सेना ४१

◒ पुरुष-स्वर : परमानन्द श्रीवास्तव, जगदीश चतुर्वेदी, महेन्द्र भटनागर, राजेन्द्र अनुरागी, सोमदत्त गर्ग ७९

■ पत्र आपके :
मदन केवलिया, रामअवतार अभिलाषी, कपिल, सोमा वीरा, विश्वभावन

■ नये स्तम्भ :

◒ समयबोध : ज़रथुस्त्रने यूँ कहा : नीत्शे (अनुवाद० शिवानन्द शर्मा) ७

◒ मुक्तचिन्तन : आत्महत्याके २ पहलू : विनायक दामोदर सावरकर (अनुवाद : जगमोहनराव भट्ट) ९

◒ साहित्यभूमि : घनीभूत ब्राज़ील : पाँच कविताएँ : प्रस्तोता—महेन्द्र कुलश्रेष्ठ १५

◒ ताज़े सन्दर्भ : निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया : कुबेरनाथ राय १९

◒ विविधा : भूख × भूख : एकके लिए दूसरीका नियन्त्रण : आशारानी बोरा २५

◒ नयी कला : रंग-रेखाके वाद : रंगनाथ राकेश ३५

◒ ललित रचना : अर्थ और उत्तरोंसे परे : रमेश उपाध्याय ९५

◒ प्रश्नान्तक : क्या बाल-साहित्य एक फ़ैशन है ? : हरिकृष्ण देवसरे १०१

◒ परिचय : कलाकार कुमारिल स्वामी : सोमदत्त गालवीय १०५

◒ गोष्ठी : रचना, सेतु और नवगीत १०९

◒ समीक्षा : विवेकके रंग, जमना-गंगाके नैहरमें : मधुरेश; बीस सुबहोंके बाद : विष्णु प्रभाकर १२५

◒ नारीखें : सुमेश भौतिक १३३

■ कहानियाँ :

◒ मैं, तुम और : चन्द्रकान्त बक्षी ४५

◒ गर्दाके परदे : सोमा वीरा ५१

◒ ढँका-ढँका रंग : प्रेमकपूर ६३

◒ वह और जगह : हृदयेश ७१

■ व्यंग्य :

◒ आकाशवाणी की नारी : परदेशी ८५

◒ यमराजका मृत्यु-कर : नि० छ० जमीदार ९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

वर्ष : १८ :: अंक : १

न । यी । क़ । ल । म । अं । क

पृष्ठ : डेढ़ सौसे अधिक : : मूल्य : १.००

•

२५ जून को प्रकाश्य

■

- कहानियाँ
- कविताएँ
- लेख
- ललित गद्य
- एकांकी

हिन्दीकी नयी सम्भावनाओंका झरोखा

•

अठारहवें वर्षका पहला अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

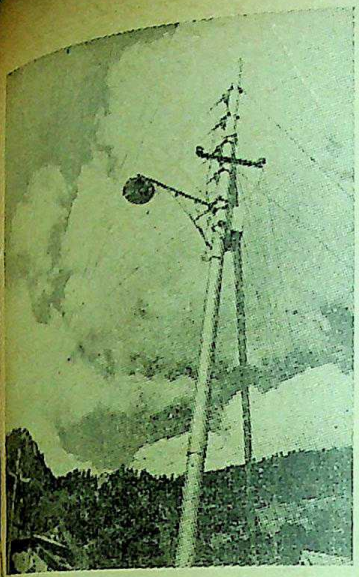

स।म।य।बो।ध

ज़रथुस्त्रने यूँ कहा···

नीत्शे

मैं बैठा इन्तज़ार कर रहा हूँ, मेरे चारों ओर पुरानी टूटी हुई मेज़ें हैं और कुछ अध-जली सूचियाँ भी। मेरा वक़्त कब आयेगा ?

—मेरे उतरनेका वक़्त, मेरे नीचे जाने-का : क्योंकि एक बार फिर मैं मनुष्योंके पास जाऊँगा।

उसी वक़्तके लिए अब मैं इन्तज़ार कर रहा हूँ : क्योंकि पहले मेरे सामने संकेत आने चाहिए कि यह मेरा वक़्त है, यानी हँसता हुआ शेर पैंड़कुलोंके झुण्डके साथ।

इस बीच मैं अपने-आपसे बातचीत करता हूँ। गोया कि मेरे पास वक़्त है। मुझे कोई नयी बात नहीं बताता, इसलिए मैं अपने-आपको अपनी ही कहानी सुनाता हूँ।

देखो, यहाँ एक नयी मेज़ है; लेकिन मेरे बिरादर कहाँ हैं, जो इसे मेरे साथ घाटी तक और गोश्तके दिलोंमें पहुँचायें ?

यह माँग है, अतिदूरवालेके लिए मेरे महान् प्रेमकी : अपने पड़ोसीका ध्यान न रख ! मनुष्य कुछ वह है जिसे दरगुज़र करना है।

दरगुज़र करनेके भी अलग-अलग बहुत-से रास्ते और ढंग हैं : तू इसे भी देख ! केवल एक विदूषक ही यह सोचता है : 'मनुष्यके ऊपरसे कूदा भी जा सकता है।'

अपने पड़ोसीमें भी अपने-आपको दर-गुज़र कर : और वह हक़ जिसे तू पा नहीं सकता; क्या तू उसे अपने-आपको देने नहीं देगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो तू करता है, उसे कोई तेरे लिए फिर नहीं करेगा। अरे, कहीं कोई बदला नहीं चुकाया जाता!

वह जो स्वयंको आदेश नहीं दे सकता, आज्ञा-पालन करता है। और बहुत-से लोगोंमें, जो अपनेको आदेश दे सकते हैं, अपने प्रति आज्ञाकारिताकी खेदजनक कमी है!

फिर—

ऐ मेरे भाइयो, यहाँ कुछ मेज़ें हैं, जिन्हें ऊबने गढ़ा है, और कुछ मेज़ें, जिन्हें आलसने गढ़ा है, बिगड़ा हुआ आलस : गोकि वे बोलते एक ही तरह हैं, जुदा-जुदा सुने जाना चाहते हैं—

इस तुझते हुए (इनसान) को देखो! अपनी मंज़िलसे वह बस एक बालिश्त दूर है; लेकिन थकानके सबब वह ज़िदसे धूलमें लेट गया है—यह बहादुर इनसान!

अब सूरज उसके ऊपर चमकता है, और कुत्ते उसका पसीना चाटते हैं : लेकिन अपनी ज़िदमें, वह वहीं लेटा रहता है और बुझना ही पसन्द करता है।

—अपनी मंज़िलसे एक बालिश्त दूर, बुझनेके लिए! सचमुच, तुम्हें उसके बाल पकड़कर उसके स्वर्गमें खींच देना होगा—यह सिपाही!

ज़्यादा अच्छा होगा कि तुम उसे वहीं पड़ा रहने दो, जहाँ उसने अपने-आपको लिटा दिया है, जिससे नींद उस तक आ सके, आरामदेह नींद—टपटप बरसातके साथ!

उसे पड़ा रहने दो, जबतक वह खुद ही न जगे—जबतक अपने-आप वह ऊबको दुत्कार न दे। और उसे भी जो ऊबने उसे सिखाया है!

बस, मेरे भाइयो, देखो, तुम कुत्तोंको उसके पाससे भगाते रहो, निकम्मे चोट्टों और भिनभिनाते हुए कीड़ोंको।

—'सभ्य' लोगोंके भिनभिनाते हुए कीड़ोंको, जो हर सिपाहीके पसीनेपर जीते हैं।

■

और एक बार फिर ज़रथुस्त्र अपने-आपमें खो गया, और फिर उठकर एक बड़े-से पत्थरपर बैठ गया और सोचने लगा। वह चौंककर ऊ खड़ा हुआ—

'साथी-मुसीबत! साथी-मुसीबत! ऊँचे लोगोंके साथ', वह चिल्लाया, और उसका चेहरा पीतलका हो गया। खैर! वह—अपना वक़्त पा गया!

मेरी मुसीबत और मेरी साथी-मुसीबत—उनसे क्या लेना-देना! तो क्या फिर मैं सुखके पीछे पड़ा हूँ? मैं अपने कामके पीछे पड़ा हूँ!

अच्छा! शेर आ गया, मेरे बच्चे नज़दीक हैं, ज़रथुस्त्र पक चुका है, मेरा वक़्त आ गया है—

यह मेरी सुबह है, मेरा दिन शुरू होता है : 'उठो अब, उठो! तुम दोपहरकी ऊँची ज्वार'—

(अनुवाद : शिवानन्द शर्मा)

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

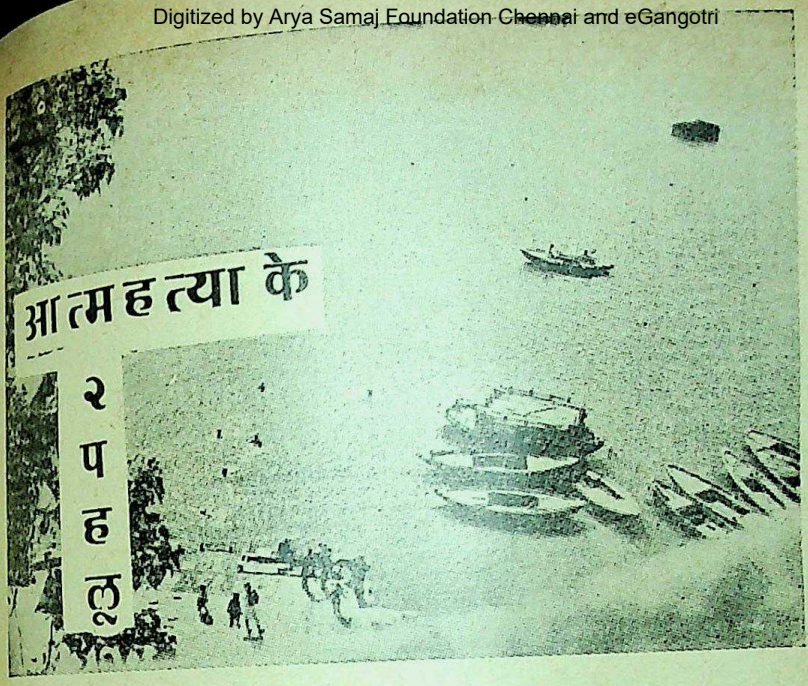

मु। क्त। चि। न्त। न।

—विनायक दामोदर सावरकर

जब कोई मनुष्य जीवनसे तंग आकर, जीवनको समाप्त करनेवाले रोग, दुर्घटना अथवा ऐसे ही अवश्यम्भावी कारणोंकी अपेक्षा स्वयं ही अपने जीवनको समाप्त कर बैठता है, तो कहा जाता है कि उसने आत्महत्या की है। अनेक समाज ऐसे आत्म-बलिदानको दण्डनीय अपराध मानते हैं। 'आत्मन्' (अशरीर आत्मा) और 'जीव' (सशरीर आत्मा) इन दो शब्दोंके अर्थोंमें पारिभाषिक अन्तरकी व्याख्या करनेकी आज आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

सहज बुद्धिके अनुसार ही मैं 'आत्मन्'शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। जब मैं कहता हूँ कि अपने जीवनको समाप्तिका इच्छुक व्यक्ति स्वयंको विनष्ट कर देता है। किन्तु, ऐसे भी अवसर आये हैं जब मनुष्यने 'स्व'का बलिदान किया है, और ऐसे लोगोंको अनन्त कालसे आत्मोत्सर्ग करनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तियोंके रूपमें पूजा जाता रहा है यद्यपि सहज रूपमें उनको भी 'आत्महत्या' ही कहा जायेगा। यह अन्तर क्यों है ? कुछ आत्महत्याएँ दण्डनीय अपराध न होकर यशस्वी कार्य क्यों समझी जाती हैं— यह तो उन उदाहरणोंसे स्पष्ट होगा जो मैं यहाँ प्रस्तुत करूँगा। जो विवरण मैं दूँगा, वे कदाचित् कम ही हों क्योंकि मैं वृद्धावस्था एवं रोगके कारण शय्याग्रस्त हूँ। अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भोंको पुनः पढ़नेका मुझमें सामर्थ्य ही है और न ही उसकी आवश्यकता है। उदाहरणोंके विवरण प्रस्तुत करनेमें मैं मुख्यतः अपनी स्मरण-शक्तिका ही सहारा ले रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मुझे जो निष्कर्ष निकालना अभीष्ट है, उसको मेरे-द्वारा दिये गये विवरणका कोई अभाव प्रभावित नहीं कर सकेगा।

मैं, सर्वप्रथम, कर्मकाण्डके महान् मीमांसाकार कुमारिल भट्टका उदाहरण लूँगा। वैदिक धर्मको निर्मूल करनेमें सचेष्ट बौद्ध सिद्धान्तोंका युक्तियुक्त तर्कपूर्ण खण्डन करनेके लिए उन्होंने 'त्रिपिटक'-जैसे बौद्धग्रन्थोंका सांगोपांग अध्ययन-मनन करनेके पश्चात् उनकी परम्पराओंका अनुसरण किया और स्वयं बौद्धका ही जीवन-यापन किया। फिर, बुद्धवादी सिद्धान्तोंकी निरर्थकताका दिग्दर्शन करानेके महान् कार्यका उन्होंने प्रारम्भ किया। सम्पूर्ण भारतमें, उन्होंने व्यक्तिशः तथा सामूहिक रूपमें प्रचार कर मीमांसा-सिद्धान्तोंकी स्थापना की। और, यह विश्वास हो जानेपर कि अपना जीवनोद्देश्य सफल हो गया, अपने शरीरको भस्मीभूत करनेका निश्चय कर लिया--क्योंकि पाखण्डी बौद्ध शिक्षाओं और उनके अनुसार जीवन व्यतीत करनेमें भ्रष्टताका संसर्ग हुआ था, यद्यपि वह हुआ था वैदिक सिद्धान्तोंकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिए ही। अतः अपनी चिता अपने ही हाथोंसे प्रज्वलित कर वे उसमें प्रविष्ट हो गये, और शीघ्र ही उनका शरीर प्रचण्ड ज्वालाओंमें स्वाहा हो गया। इतिहास इस घटनाका उल्लेख आत्महत्याके रूपमें नहीं करता--अपितु 'स्व' का समर्पण घोषित कर पुण्यवाचन करता है।

अन्य उदाहरण शंकराचार्यका है। अद्वैतवादके प्रचार-प्रसारके लिए जब वे सम्पूर्ण भारतका प्रवास कर रहे थे, तब वे असम (उस समय कामरूप नामसे पुकारे जानेवाले) में पधारे और वहाँ शाक्त लोगोंसे वाद-विवादमें लग गये। उनकी विजयको सहन न कर सकनेवाले अधिक खूँखार शाक्त लोगोंने उनको विष दे दिया, जिससे उनके शरीरको अत्यन्त हानि हुई। तब भी शंकर कश्मीर गये, और अपनी विजयकी निष्पत्ति सम्मुख देखकर चौथा मठ स्थापित किया--इस प्रकार भारतकी चारों दिशाओंमें चार धाम या मठ स्थापित करनेका—शृंगेरी, द्वारका, पुरी और कश्मीरमें--कार्य सम्पन्न किया। यह सर्वज्ञात है कि उस समय शंकरका पूर्ण युवा-प्रस्फुटन काल था। किन्तु उनका शरीर साथ नहीं दे रहा था। इससे भी बढ़कर बात यह है कि वेदोंके भाष्य लिखने और चारों मठोंकी स्थापना कर लेनेके उपरान्त उनमें अपने जीवनोद्देश्यकी पूर्ति कर चुकनेकी सन्तोष-भावनाका आभास होने लगा था। अग्रतः, अपनी शैशवावस्थासे ही उनमें पार्थक्यकी भावना अत्यन्त उग्ररूपमें थी। जैसा कि उनके प्रसिद्ध उपदेश-सूत्रमें भी कहा है : चाहे घरमें हो अथवा वनमें, जब संसार-त्यागकी भावनाका उदय हो, उसी क्षण मनुष्यको यहाँसे छुट्टी कर देनी चाहिए। उपर्युक्त कारणोंसे उनके हृदयमें परमसत्तामें समाविष्ट हो जानेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकांक्षा उदित हुई--अपना भौतिक जीवन समाप्त करनेकी प्रेरणा हुई, क्योंकि इसका उद्देश्य तो पूर्ण हो ही चुका था। इसलिए, उन्होंने अपना पंचभूत मानव योगियोंकी भाँति उत्सर्ग करनेका निश्चय कर डाला। वे एक कन्दरामें प्रविष्ट हुए, और उनकी ही आज्ञापर, उनके प्रिय शिष्योंमें-से एकने, गिरि-कन्दराके द्वार सदाके लिए बन्द कर दिये। शरीरको यौगिक रूपमें त्याग देने तथा आत्महत्यासे बहुत अधिक मात्रामें मिलते हुए अपने जीवन-को अप्राकृतिक रूपमें समाप्त करनेका तत्त्व विद्यमान होते हुए भी शंकरका कन्दरा-प्रवेश आत्महत्याका कार्य नहीं माना गया, अपितु 'स्व'का समर्पण ही कहा गया। हमारा प्राचीन इतिहास ऐसे ज्वलन्त उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। हमारे यहाँ ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि जहाँ जीवनका त्याग इस भावना-से किया जाता है कि हमने अपना परमोद्देश्य सम्पन्न कर दिया है।

गौरांग प्रभुके सर्वप्रिय एवं श्रद्धेय नामसे पुकारे जानेवाले महान् भक्त चैतन्य महाप्रभु-की मृत्युके सम्बन्धमें एक छोटी-सी घटनाका उल्लेख है। वे भक्तिका दिव्य सन्देश प्रसारण-हेतु जब कभी नगरोंमें प्रवास करते समय सामूहिक भजनमण्डलीमें निकलते थे, तब ईश्वर-नाम संकीर्तन करते हुए सहस्रों नर-नारी उनके पीछे चल पड़ते थे। ईश-प्रेमसे भावविभूत हो चैतन्य नृत्य करते और उनका नेतृत्व करते। दीर्घायु प्राप्त होने तक उन्होंने बंगालमें भक्ति-सम्प्रदायका प्रसार किया और उसके पश्चात् जगन्नाथपुरीके लिए प्रस्थान किया। एक बार समुद्र-तटपर बैठे वे जब प्रभु-गुणगान-संकीर्तनकी असीम अनुकम्पामें रस-मग्न थे, तब यह विचार, कि समुद्रका नीलाम्बु तो स्वयं प्रभु श्रीकृष्णका मूर्तरूप है, उनके हृदयमें इतने वेगसे उद्भासित हुआ कि उनको अनुभव हुआ जैसे स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण उनके सम्मुख प्रत्यक्ष उपस्थित हुए, और ईश्वरके उस महारूपका आलिंगन करनेको वे 'कृष्ण' 'श्याम' उच्चारण करते हुए दौड़ पड़े। इस प्रकार इस भौतिक शरीरकी सुध-बुध खोते हुए उस अनन्त सागरमें छलाँग मारकर स्वयं महामृत्युमें लीन हो गये। यह भी आत्मसमर्पणका एक अन्य ज्वलन्त उदाहरण है--आत्महत्याका नहीं।

शरीरको यौगिक रूपमें त्याग देने तथा आत्महत्यासे बहुत अधिक मात्रामें मिलते हुए अपने जीवनको अप्राकृतिक रूपमें समाप्त करनेका तत्त्व विद्यमान होते हुए भी शंकरका कन्दरा-प्रवेश आत्महत्याका कार्य नहीं माना गया अपितु 'स्व'का समर्पण कहा गया। हमारा प्राचीन इतिहास ऐसे ज्वलन्त उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। हमारे यहाँ ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि जहाँ जीवनका त्याग इस भावनासे किया जाता है कि हमने अपना परमोद्देश्य सम्पन्न कर दिया है।

महाराष्ट्रमें सन्त ज्ञानेश्वरकी कथा सुविख्यात है। यशस्वी सन्तने अपनी अल्पायुमें ही दर्शन-शास्त्रके परम जाज्वल्यमान श्रेष्ठ ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' एवं 'अमृतानुभव' रच डाले थे। यह अनुभव कर कि उनके जीवनका उद्देश्य पूर्ण हो चुका था, एवं यदि संसार उनका अनुसरण नहीं कर रहा था तो इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका कोई दोष नहीं था, ज्ञानेश्वरजीने तीस वर्षायुके कालखण्डमें ही समाधिमें लीन हो जानेका संकल्प कर लिया था। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि समाधिकी स्थिति सदैव अन्तिम नहीं होती। योगी लोग समाधि-की अवस्थामें भी अपनी इच्छा मात्रसे ही सांसारिक क्षेत्रमें पुनः पदार्पण कर सकते हैं। ज्ञानेश्वरजीने ऐसी अल्पकालीन समाधिकी आकांक्षा न की, अपितु परमेश्वरमें लीन होने-की उस स्थितिकी कामना की जहाँसे पुनरा-गमन होता ही नहीं। उनके ज्येष्ठ भ्राता एवं गुरु निवृत्तिनाथने अपनी सहमति प्रदान कर दी। भगवद्-भजन करते हुए आत्मनिर्मित समाधि-कन्दरामें वे नीचे आकर योग-मुद्रामें बैठ गये। समाधि-कन्दराका अन्तिम पत्थर निवृत्तिनाथने लगाया; और इस प्रकार ज्ञाने-श्वर संसारको छोड़ गये। ज्ञानेश्वरजीका इस प्रकार संसार-त्याग भी आत्मसमर्पण, आत्मबलिदानके नामसे प्रशंसित होता है, आत्महत्याका कलंक कहकर निन्दित नहीं है।

समर्थ रामदासजीके साथ भी ऐसा ही हुआ। यह अनुभव कर कि अब ऐसा कुसमय आ गया है जब यवन लोग तो सर्वशक्तिसम्पन्न हो गये थे और हिन्दुओंका कोई संरक्षक न रहा था, उन्होंने इस स्थितिको ठीक करना ही अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित कर लिया। अपनी तपश्चर्याके बलपर समर्थ रामदासजीने हिन्दुओंमें धार्मिक अनुभूतिकी अग्नि प्रज्वलित करनेके लिए उनका एक विशाल संगठन प्रारम्भ किया। उसी समय शस्त्रास्त्र-सुसज्जित शिवाजीने भी मुसलिम राजाओं और बाद-शाहोंके राजसिंहासनोंकी जड़ोंपर ही भीषण प्रहार किया, और औरंगजेबकी नाकके नीचे ही हिन्दू-लक्षणोंसे युक्त एक स्वतन्त्र हिन्दू-राज्यकी स्थापना की। हिन्दुत्वकी विजयसे उत्तेजित हो रामदासने मेघ-गर्जना की: "मेरी समस्त कल्पनाएँ साकार हो गयी हैं। औरंगजेब पद-दलित है। म्लेच्छोंको कुचल दिया गया है; हिन्दू धर्म-विरोधी दुष्टात्माओं-द्वारा भ्रष्ट किये गये देवालयोंको पुनः पावन किया गया है।"

रामदासको अनुभूति होने लगी कि उनके जीवनका उद्देश्य पूर्ण हो चुका था, और उनकी सांसारिक यात्रा समाप्तिपर आ रही थी। जब उन्होंने शिवाजीकी मृत्युका शोक-समाचार सुना, तब वे दुःख-विभोर हो उठे।

"अन्तमें महान् सम्राट् भी हमको छोड़ गया....।"

इसी बीच सम्भाजी असंयमित हो उठे और शिवाजीके कुछ श्रेष्ठ साथियोंको बन्दी बना बैठे तथा कुछको फाँसीपर चढ़ा दिया। गृहयुद्ध भड़क उठा। सम्भाजी सज्जनगढ़ पहाड़ीकी तराईमें आ पहुँचे, और रामदाससे मिलनेका हठ करने लगे। यह तो स्पष्ट ही था कि सम्भाजीने जब स्वयं अपने पिता शिवाजीके स्वामिभक्त मन्त्रियोंको मौतके घाट उतार दिया था तब उनको शिवाजीके गुरु रामदासको पीड़ा पहुँचानेमें भी कोई संकोच न होता। रामदासने चतुराईपूर्वक सम्भाजी-को लिख भेजा कि वृद्धावस्थाके कारण मैं पहाड़ीसे नीचे न उतर पाऊँगा। उन्होंने सम्भाजीको परामर्श देते हुए एक पत्र लिख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना। यह वही प्रबल पत्र है जिसमें रामदास कहते हैं :

"शिवरायके रूपको स्मरण करो। उनकी वीरता एवं विवेकको स्मरण करो। जीवन तो एक तिनकेके समान नश्वर है। पूर्ण शक्तिसे यवनोंपर आक्रमण करो। जो कुछ अपने अधीन है, उसे संरक्षित रखो और संवर्धित करो। सब स्थानोंपर मराठा-साम्राज्य स्थापित होना चाहिए....।"

स्वतन्त्र मराठा-साम्राज्यके उदयके समाचारसे आगबबूला होकर, सम्पूर्ण मुसलिम-शक्तियोंको एकत्र कर औरंगज़ेबने स्वयं ही मराठोंपर आक्रमण करनेका विचार किया। रामदास उस समय लगभग ८० वर्षकी आयु प्राप्त कर चुके थे, और इस संकटका सामना करनेकी शक्ति अब उनमें न रही थी। शिवाजीके साथ ही उनकी वह पीढ़ी भी समाप्त हो चुकी थी। यदि सांसारिक गतिविधियोंकी उपलब्धियोंमें-से केवल कुछ ही फलदायिनी रही हैं, शेष निष्फल जाती हैं, तो परमेश्वरकी यही इच्छा रही होगी कि केवल स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्यकी स्थापना ही रामदासके जीवनका मुख्य उद्देश्य रहा हो। नयी पीढ़ीके सम्मुख प्रस्तुत नयी समस्याएँ इसकी अपनी योग्यताओंके लिए, तथा शेष सृष्टिकर्त्ताके लिए छोड़ दी जानी चाहिए; इन विचारोंको अपने मनमें संजोये रामदासजीने आमरण अनशनका संकल्प किया। अपने शिष्योंसे महाप्रयाणकी अनुमति लेनेके लिए उन सबको उन्होंने एकत्र किया। अपना शरीर-त्याग करनेके निश्चयसे उनको अवगत किया। गम्भीर शोक-सागरमें निमग्न अपने शिष्योंको उनने सान्त्वना दी : "यद्यपि मेरी वाणी लुप्त हो जायेगी, तथापि मैं सदैव तुम्हारे साथ रहूँगा। मार्ग-दर्शनके लिए मैं 'दासबोध' छोड़ जा रहा हूँ।"

अचल योगावस्थामें बैठ, सर्व खाद्यका परित्याग कर, रामदासने राम-नामोच्चारण प्रारम्भ कर दिया। निरन्तर, एकाग्र-ध्यानावस्थाके उपरान्त रामदासजीको रामकी झाँकी दृश्यमान हुई। रामके चरणोंमें उन्होंने अपने दुर्बल-जीर्ण-शीर्ण शरीरको अर्पित कर दिया। यह एक और उदाहरण है जहाँ इस भूमिको छोड़ना आत्महत्या न मानी जाकर आत्म-समर्पणका कार्य माना जाता है।

एकनाथ और तुकारामकी मृत्युकी कहानियाँ भी इसी श्रेणीसे सम्बन्ध रखती हैं। एकनाथने दर्शन और धर्मपर अनुपम ग्रन्थोंकी रचनाएँ कीं और सम्पूर्ण देशमें ईश्वर-भक्तिका प्रचार किया। उनका स्वास्थ्य आयुके कारण ढल गया। उनको लगा कि चूँकि अब उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट न रहा था, उस परमेश्वरकी यही इच्छा थी कि उनका जीवनोद्देश्य प्राप्त हो चुका था, और अन्य किसी लक्ष्यकी प्राप्ति शेष रही न थी। एक बार तो मृत्युने अपने विकराल पंजे एकनाथपर रख दिये। किन्तु कुछ समय पश्चात् उनको चेतना आ गयी। सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न कर लेनेके पश्चात् इस मर्त्य-पिण्डसे चिपके रहनेका कोई अर्थ न था, इसीलिए जहाँ प्रतिदिन प्रार्थना करते थे, एकनाथजी वहीं गोदावरी नदीमें प्रविष्ट हुए। एकनाथजीका यह कार्य न केवल निष्कलंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो समझा गया, अपितु जिस स्थानपर एकनाथजी गोदावरीमें लीन हुए थे, वह स्थान भी महान् पुण्यकेन्द्र बन गया।

तुकाराम पैठनमें एकनाथजीके समाधि-स्थलकी यात्रा करने गये थे। गोदावरी नदीके पुण्यजलमें एकनाथजीके आत्मसमर्पणका उनको ज्ञान था। जब तुकारामने अनुभव कर लिया कि भक्तिके प्रसारका उद्देश्य सम्पन्न हो चुका था, और उनमें ईश्वरका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करनेकी अदम्य आकांक्षा थी, तब उन्होंने अपना शरीर त्याग देनेका निश्चय किया। 'देहु' नामक स्थानमें 'प्रस्थानकी अनुमति' का यह प्रसिद्ध अभंग गाते हुए वे घर-घर फिरते रहे।

"हम अपने मूल स्थानको प्रस्थान कर रहे हैं, हमको बिदा करो। अब कोई आवागमन नहीं होगा। वाणी स्वयं लुप्त हो चुकी है।" फिर वे इन्द्रयाणीकी ओर चले गये। अपनी अविचलित अनन्य भक्तिके कारण उनको अनुभव हुआ कि ईश्वरने अपना दिव्य यान उनको लेनेके लिए भेजा था। अमर्यादित हर्षसहित वे इन्द्रयाणीमें प्रविष्ट हुए। एक मतके अनुसार वे नदीमें प्रविष्ट हुए; दूसरे मतानुसार वे दिव्य यानारूढ़ होकर स्वर्ग पहुँच गये। दोनों मतोंका सारांश एक ही है कि परम अनुकम्पामय जीवनोपरान्त तुकाराम ईश्वरके रूपमें समाविष्ट हो गये, और उनका इस प्रकार महाप्रयाण आत्मसमर्पणका पुण्य कार्य समझा गया।

इन उदाहरणोंसे एक ही निष्कर्ष निकलता है और वह यह है—सहज मृत्युकी घड़ी उपस्थित हो जानेसे पूर्व अपने जीवनको सप्रयास समाप्त कर देनेके सभी मामले आत्महत्याके मामले नहीं हैं। 'उन लोगोंने आत्महत्या कर ली है' यह उन लोगोंके विषयमें कहा जाता है जो जीवित रहनेकी इच्छा रहते हुए भी शोचनीय अवस्थाओंसे परेशान होकर, अपने आपको समाप्त कर बैठते हैं। किन्तु 'उन लोगोंने ईश्वरके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया' ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें कहा जाता है जो प्राप्यकी पूर्ण उपलब्धिसे उत्पन्न सन्तोष एवं परिपूर्णताकी भावनासे प्रेरित हो सहर्ष प्रसन्नतापूर्वक इस भौतिक शरीरको त्याग देते हैं। वे विश्वात्मामें अपनी आत्माओंका समीकरण कर देते हैं।

जीवनका उद्देश्य समुपयुक्त रूपमें परिपूर्ण हो जाने और अनुकम्पाकी अनुमति हो जानेके बाद भी यह शरीर ठहरा रहता है, और दूसरोंके लिए वृद्धावस्था तथा रोगके कारण अभिशाप बन जाता है; ऐसे अवसरोंपर जो लोग कन्दराओंमें प्रविष्ट हो अथवा आमरण अनशन कर, अथवा प्रज्वलित अग्निमें समाविष्ट हो, अथवा अनन्त-सागरमें लीन होकर अथवा योग-समाधि-द्वारा अपना जीवन समाप्त कर देते हैं, उनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उन सबने ईश्वरके समक्ष स्वेच्छासे आत्मार्पण कर दिया है :—

"मैं सौभाग्यशाली हूँ, मैं सौभाग्यशाली हूँ; कोई कार्य-भार निभाना अवशेष नहीं मेरे लिए, मैं सौभाग्यशाली हूँ; मैं सौभाग्यशाली हूँ, सभी प्राप्य प्राप्त हो चुका यहाँ और अभी"

(अनुवाद : जगमोहन राव भट्ट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घनीभूत ब्राज़ील : पाँच कविताएँ

• सेसीलिया मीरले / परिचय

यह मेरी ज़िन्दगी है :
उजली रेत
बहती आकृतियों से अंकित
पवन को समर्पित ....

यह मेरी आवाज़ है :
ख़ाली घोंघा
ध्वनि की प्रतिध्वनि
अपने ही रुदन से पूर्ण ....

यह मेरी वेदना है :
टूटा हुआ सीपी
अपनी व्यथा के क्षण पार करता ....

यह मेरी परम्परा है :
एकाकी सागर
जिसके एक ओर था प्रेम
दूसरी ओर है विस्मृति ।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• कासेयानो रिकार्डो / दूसरा जीवन

मुझे इसके बाद
किसी दूसरे जीवन की आशा नहीं है ।
यदि यह जीवन बुरा है
तो मैंने इसमें जो-जो कष्ट भोगे हैं
उसे देखकर देवता खुश ही होंगे ।
यदि यह जीवन अच्छा है
तो उसे दुहराने से
इसका सुख खत्म नहीं हो जायेगा ?
■

• पावलो बौमफिम् / छुम्या

हमारी योजना हुई
नकारने को ।
हमारी रचना हुई
अस्तित्व देने को—
सितारे से पहली वाली रात ।
हम काले देवदूत हैं
जो शरीरों पर उतरते हैं :
हमारे रंग हैं खुशबुएँ,
सूर्य की बूँदें
जो मृतकों के चेहरे छूकर,
उन्हें गीला कर
धीरे से खुश्क हो जाती हैं ।
हम रहते हैं आकृतियों के भीतर,
व्यवहारों की रिक्तता में,
जीवन के सूनेपन में ।
युगों की रात में हमने सोने की मशाल जलायी
कि लोग उसमें अपने प्रतिबिम्ब देख सकें ।
नकारते हुए हम स्वीकृति पाते हैं ।
युगों की दोपहरी में
हम आत्माएँ हैं ।
■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• आगस्टो फ़ेडरिको श्मिट / समुद्र

मैंने समुद्र देखा है ! पर यह नहीं, दूसरा !
मैंने समुद्र देखा है ! अँधेरा, मुक्तिहीन एक समुद्र !
मैंने समुद्र देखा है ! निरर्थक शब्दों के समान
जिसकी लहरें हैं, उठता, गरजती !
मैंने समुद्र देखा है !
विशाल समुद्र आकाशों से हीन ।
नितान्त नग्न समुद्र, लम्बी भुजाओं से युक्त ।
निराशा का समुद्र, कभी चुप, कभी बहता,
खुली हुई कब्र की शान्ति में ।
मैंने समुद्र देखा है, महासमुद्र !
उसके विस्तृत जल पर मेरी दृष्टि ने यात्रा की है !
मैंने समुद्र देखा है !
क्षमाहीन प्रेम की भाँति भयंकर समुद्र देखा है !
मैंने समुद्र देखा है !
उसका रूप मृत्यु से मिलता-जुलता है ।
वह उस शय्या की भाँति है
जिस पर मृत्यु रातों को विश्राम करती है
मैंने समुद्र देखा है !
मानो मृत्यु का साक्षात्कार हो ।
मेरा दिल धड़कते हुए रुक गया ।
आँखें आँसू बरसाने लगीं ।
मैंने स्वर्गहीन समुद्र देखा है !

■

• मूरिलो मारटीरो मेरडेस / यू० एस० एस० आर

यू एस एस आर
यू एस एस आर····यू एस एस आर
कुमारी कन्या और मूर्ख
तुमने अपने दीपक के लिए तेल क्यों नहीं खरीदा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सामयिक और नाशवान
वस्तुओं के ही विषय में क्यों सोचती रहीं ?
यू एस एस आर····यू एस एस आर
एक दिन तुम्हारा दूल्हा आयेगा
पर तब देर हो चुकेगी और वह रोयेगा।
तुम अपने ट्रैक्टरों का ही हिसाब करती रहीं
अपने सामूहिक खेतों का उत्पादन बढ़ाती रहीं
पर तुमने नहीं देखा कि दूल्हा आ रहा है :
वह लाल कमरे में तुम्हारी बहनों को लेकर घुस गया।
यू एस एस आर
यू एस एस आर····यू एस एस आर
अपने घरों और संस्कृति के उद्यानों को बुहारो,
आकाश में रॉकेट भेजो, रोशनियाँ जलाओ,
पड़ोसियों को दावत दो क्योंकि रूबल बहुत हो गये हैं,
चिरन्तन शब्द तुम्हारे जाने बिना ही तुम्हारा पोषण करता रहा।
यू एस एस आर
यू एस एस आर
जो तुम्हारे पास पहले से ही है,
उसे पाने को तुमने अपनी सब चीज़ें बिखेर दी हैं।
अपने पिता के घर लौटो जो बड़ा ही विशाल है।
ईश्वर के पुत्रों की संगति में
ओ उदार, ओ महान्,
तुम वापस लौट आओ !

ओ भूली भटकी बहन
यहाँ तुम्हारे वाद्यों और घण्टियों की ध्वनियों
जहाज़ों के सायरनों की सीटियों
और फ़ैक्टरियों के भोंपुओं
का समवेत स्वर सुनाई देगा।

(प्रस्तोता : महेन्द्र कुलश्रेष्ठ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

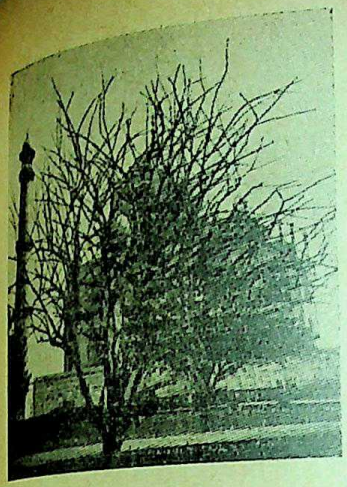

ता । ज़े । सं । द । र्भ

निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया

कुबेरनाथ राय

इस बार भी वसन्त वैसे ही आया है, मदपायी धुरन्धर बलरामकी तरह। हिन्दुस्तानकी धरती अपनी सारी दरिद्रताको भूलकर एक महाराग-में लीन हो गयी है। मैं इस समय जिस देशमें हूँ वह कामरूप है, नाम और स्वभाव दोनों-से। यह महागौरीका 'योनिमण्डल' है। यहीं-पर भस्मीभूत 'काम' को पुनः 'रूप' मिला था। अतः इस कजरी वनमें यदि हरित कचनार फूटे, यदि वायु यहाँकी कच्ची उमर-की हरियालीका मर्दन कर नशीली रति-गन्धसे भर उठे, सेमल और पलाशपर कामनाका चटक लाल नशा छा जाये, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर मैं सोचता हूँ कि अपनी प्यासी पर दर्पोन्नत शीश राजस्थानकी मरु-भूमिमें भी मोर्चा-दर-मोर्चा कँटीली नागफनी अपनी शोभाका फण काढ़कर गर्वसे खड़ी हो गयी होगी कि खबरदार, पद्मिनी है, आगे मत हाथ बढ़ाना! सर्पमणि है। दर्पणमें छाया देखकर सन्तोष कर लो। तुम मायाकी सन्तान हो अतः छविको उसकी सारी असलियतके साथ तुम्हारी आँखें बरदाश्त नहीं कर पायेंगी। असली छवि तो वही बरदाश्त करता है जो योगी हो, अवधूत हो, कबीर हो, 'निराला' हो!

वसन्त आया है पर ग्रीष्मसे मिला-जुला। एक ओर आमके टिकोरे लगते हैं; शीशमके नरम टूसे उगते हैं फिर डाल-डालपर निर्मल हरियालीकी झालर लग जाती है। दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर फ़सल कटती है, खलिहानका वैधव्य समाप्त होता है, पछुआ हवा झझकोर कर बहती है, भूसा एक ओर उड़ता है, दानोंकी खर-खर वर्षा होती है। लगता है, ईश्वरका जन्म हो रहा है। सारी धूल और गर्द-गुब्बार मंगलमय लगती है। प्रकृतिमें कहीं वयः-सन्धि, पूर्वराग, राग और नोंक-झोंक है, तो कहीं गर्भाधान और नया जन्म है और कहीं-कहीं पाण्डुरवर्णी निर्वाण है, वह मुक्ति है जिसको साधनाके लिए डालपातवाला शरीर मिलता है। यह हिन्दुस्तानकी धरती ही ऐसी है कि इसमें शृंगार, करुण, वीर, रौद्र आदि विभक्त-अलग-अलग नहीं आते। एकके भीतर दूसरेकी परत समायी है। सब मिल-जुलकर महाबोध या महारस व्यक्त करते हैं। हिन्दुस्तानका वसन्त भी बेवक़ूफ़ आशिक़ नहीं। वह भी दार्शनिक है। मदोन्मत्त बलरामकी तरह नशा पीकर विचरण करते हुए भी उसके एक हाथमें हल है दूसरेमें कमण्डल! रसपायी होते हुए भी भीतर-भीतरसे वैरागी और फक्कड़ है।

धरती महासागरमें लीन है! मैं सब-कुछ देख रहा हूँ। किसी उजड़े दरिद्र वृन्दावनसे वंशीकी आवाज़ आ रही है। मैं सुन रहा हूँ। पर आज इस वंशी-स्वरका बोध बड़ा ही खण्डित है, गाँठ-गाँठ टूटा हुआ है। मैं इसके समग्र रूपका बोध नहीं पा रहा हूँ। मैं क़रीब छह दिनोंसे इस महारागके गड्डुलिका-प्रवाहसे निर्वासित कर दिया गया हूँ। आज सातवाँ दिन है। मुझे बुखार है।

विराम नहीं। क्षमा नहीं। मुक्ति नहीं। कभी-कभी तो लगता है कि मस्तककी नाड़ियाँ मारे व्यथाके फट जायेंगी। सदैव न सही, पर कभी-कभी लगता है कपालमें, ललाटके नीचे पीड़ाकी हज़ार-हज़ार गाँठें हैं। एक-एक गाँठमें अपार वेदना वक्राकार ऐंठन दे रही है। उस समय विराम नहीं, मुक्ति नहीं, क्षमा नहीं। उन क्षणोंमें लगता है कि यह वसन्तकी महाराग लीला नहीं बल्कि दिशाओंमें सतीदाह हो रहा है; दोपहरकी कठोर, स्पात-सी निर्मम भावहीन वेलामें दशों दिशाओंमें त्रिपुरसुन्दरीकी चिता जल रही है। मैं तप्त आकाशके नीचे अपने अगल-बग़ल जलती हज़ार-हज़ार चिताओंके बीच लेटा हूँ उनके तापसे झुलस रहा हूँ। माना कि ये अनुभव सदैव नहीं, चरम स्थितियोंके हैं। यह चरमस्थिति अविराम नहीं। पर छह दिनोंसे निर्वासन तो अविराम है। मैं मृत्युसे नहीं डरता। मैंने जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन उसके दस्तावेज़पर हस्ताक्षर कर दिया था। जो मेरी प्रतिबद्धता है उसका क्या मलाल और क्या पछतावा! पर इस निर्वासनके लिए मैं प्रतिबद्ध नहीं हुआ था। यह निर्वासन मेरे लिए अति दुर्वह स्थिति है।

रवीन्द्रनाथने सोना पैदा करनेवाली एक यक्षपुरीकी कल्पना की है। उस यक्षपुरीका एक एकाकी राजा है जिसका असंग एकाकी जीवन मेरे इस निर्वासनकी तरह ही दुःसह्य है। बाहर-बाहर भीड़ फाग खेलती है। बाहर-बाहर गड्डुलिका-प्रवाहका स्रोत अपनी नित्य गतिसे चालू है। बाहर-बाहर श्रेणी-संग्राम चल रहा है। सिंहद्वार भूत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्वका, व्यक्ति और समाजका घनघोर युद्ध चल रहा है। पर यह बेचारा यक्षपुरीका राजा?

"रोदन रोदन केवलइ रोदन,
केवलि विषाद श्वास
लुकाए, शुकाए, शरीर गुटाए,
केवलि कोटर वास
नाहिं कोनों काज
माझे-माझे चास, मलिन आपना पाने
आपनार स्नेह कातर वचन,
कहिस आपन काने।"

—यह कोटर-वासी राजा और मेरा निर्वासित मन दोनों एक ही नियतिके शिकार हैं। फ़र्क़ यही है कि मैं सोना बनानेवाली यक्षपुरीका प्रभु नहीं, दरिद्र हिन्दुस्तानकी मामूली इन्सान हूँ।

रवीन्द्रनाथ 'निर्वासन'-रस के कवि नहीं हैं। साहित्यमें 'निर्वासन'को स्वतन्त्र रसके रूपमें नवलेखनके अन्दर देखा जाने लगा है। रवीन्द्रनाथ 'अकेलापन' के कवि हैं। 'नित्य अकेलापन'में कवि अपने एकान्तमें,अपने चरम-क्षणमें अकेले जीता है। पर उन्होंने यक्षपुरीका राजा बनना इसलिए हेय और विकृत माना है कि वह अकेला ही नहीं 'निर्वासित', कोटरबद्ध जीव है। अकेलापनमें आवश्यक नहीं कि 'निर्वासन' ही हो। कवि अपने एकान्तमें सदैव जीवन-देवताके साथ-साथ अकेले हैं—राग-रोष, लोभ-मोह, काम-क्रोध-के षड्रिपुओंसे दूर, भीड़में हर गड्डलिका-प्रवाहसे दूर। यह चरम एकान्त है :

"यह तन तांत रबाब है विरह बजावै नित्त
और न कोई सुन सके, कै साईं कै चित्त।"

चीर-वासा भैरवकी याद आते ही पार्वतीकी याद आ गयी। लगा कि मुक्तिका द्वार धीरे-धीरे खुल रहा है। मनमें वीतराग संन्यासी आदि शंकराचार्यके द्वारा अनुभूत ज्वर-की दवा याद आ गयी : हे देवी, वसन्तमें खिली लताओंसे मण्डित नाना कमलोंसे शोभित, हंसोंकी मण्डलीसे अलंकृत, मलय पवनसे आन्दोलित सरोवरमें सखियोंके मध्य क्रीडा करती हुई तुम्हारा ध्यान करनेसे ज्वरजनित पीड़ा दूर होती है।

इसमें शापग्रस्तताका भाव नहीं, इसमें ज्वर नहीं, इसमें प्रायश्चित्त नहीं। टैगोर एक ओर अपनेको यक्षपुरीका एकाकी राजा नहीं बनाना चाहते तो, दूसरी ओर नाज़िम हिकमत-की 'व्यक्ति-वर्जित भीड़'का अनाम जीव बनकर जीना भी उन्हें मंजूर नहीं। यह जीवनकी दूसरी हेय स्थितिका प्रतीक है। यह शीर्ष-हीनोंकी कबन्धपुरी है, उसमें नामहीन, चेहरा-हीन, व्यक्तित्वहीन केतु रूपमें जीना पड़ता है। टैगोर इन दोनोंको छोड़कर अपने चरम एकान्तका वरण करते हैं जहाँ—"और न कोई सुन सके कै साँई कै चित्त।"

पर टैगोरके पास पाँच हज़ार वर्ष पुरानी सीढ़ी थी। अतः वे सुदूर नील-गर्भके एकान्त बिन्दुपर चढ़ गये। पर आज वह सीढ़ी नहीं। नये कविका वरण अधिक दुस्तर है। उसके पास कोई जीवन-देवता नहीं जो हाथ पकड़ वैतरणी पार करा दे। उसका अकेलापन दूसरे क़िस्मका है। वह सम्पाती हैं उसे अकेले-अकेले नील-गर्भमें अपने पंखोंपर उड़ना है। यह उसकी नियति है। उसके पंख जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेंगे। यह भी उसकी नियति है। उसे पंखहीन हो निर्वासन भोगना है, यह भी उसकी नियति है। दरअसल टैगोरने साहित्य-में न तो जिज्ञासा उठायी और न उन्हें नया उत्तर खोजना पड़ा। पर नये कविका वरण अधिक दुस्तर इसलिए हो उठा है कि 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'के आरामदेह परिवेशको वह अस्वीकार कर नयी जिज्ञासाका जनक बना है। यह उसकी महिमा है। पर जिज्ञासाका उत्तर पानेके पूर्व, सत्यके सूर्यके साक्षात्कार होनेके पूर्व उसके पंख गल गये, वह निर्वासित हो गया, यह उसकी ट्रैजेडी है। इस ट्रैजेडी-की महिमा स्वीकार करते हुए भी लोभी-लालची भीड़ उसे पत्थर मारती है। उसने वादा किया था : "तुम इस सीढ़ीको जला दो, यह पुरानी हो गयी है। बदलेमें मैं तुम्हें सत्यको स्वर्णमंजूषामें बन्द कर ला दूँगा— तुम सत्यको मुट्ठी-मुट्ठी बाँट लेना और धरती-पर ही अमृत होकर विचरण करना।" सम्पातीने अपना वादा नहीं पूरा किया। फलतः लोभी-लालची भीड़ उसपर पत्थर मारती है।

पर सम्पातीका यह 'निर्वासन' उसकी नियति होनेपर भी नित्य नहीं है। यह स्थायी स्थिति नहीं। उसके पंख आज नहीं तो कल उगेंगे ही। साहित्यके अन्दर 'निर्वासन' स्थायीभाव नहीं है। स्थायीभाव है 'नित्य अकेलापन' और निर्वासन उसकी एक स्थितिविशेष मात्र है। यह महज एक संचारीभाव है। रतिके संचारीभाव, हर्ष, राग आदि ही नहीं शोक और रोष भी हैं जो विरोधी स्वभावके हैं। इसी भाँति स्वभावविरोधी लगनेपर भी 'निर्वासन' उस नित्य अकेलापनकी पूरक अवस्था है। वर्त्तमान युगबोधमें निर्वासनका संचारीभाव प्रधान बोध-सा लग रहा है। यह दुःखमय अवस्था है। पर आनेवाले अनाहूत अनागतके लिए दिशा-निर्देश इसी निर्वासनसे मिलेगा—एक ऐसा दिशानिर्देश जो समुद्रसन्तरण करवाये गा, जो प्रत्यभिज्ञान प्राप्त करवायेगा, स्वर्णपुरीमें क़ैद व्यथापीड़ित सत्योंसे साक्षात्कार करवायेगा; और जिससे साहस और वीरताके विकासके लिए अवसर मिलेगा।

हिन्दीकी नयी कवितामें 'निर्वासन' और 'नित्य अकेलापन' दोनों मनःस्थितियाँ कभी-कभी तो एक ही साथ और कभी-कभी एकके बाद एकके क्रमसे आयी हैं। एक ही संग्रहमें एक ओर ऊब, विडम्बना विसंगति और निर्वासनका भाव है तो दूसरी ओर दुःख, समर्पण, करुणा, उल्लास, जैविक रसबोध, साहस और विद्रोहकी स्वीकारात्मक स्थितियाँ हैं। इससे पता चलता है कि हिन्दी कवियोंने आत्मविस्तारपणके सहायक संचारीके रूपमें ही 'निर्वासन'-का प्रयोग किया है। उदाहरणके लिए 'सात गीत वर्ष'में 'नया रस' 'फागुनके दिनकी अनुभूति' पहली स्थितिको व्यक्त करती है, तो 'प्रमथ्यु', 'अंजुरी भर धूप', 'घाटीका बादल' दूसरी स्थितिको। यही बात प्रायः प्रत्येक नये कविपर लागू होती है। यह 'नित्य अकेलापन' रचना-प्रक्रियाकी अनिवार्य आवश्यकता है। सृजनके चरम क्षणके अवसरपर नारी कवि और पैग़म्बर बिलकुल अकेले होते हैं। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखन-पीड़ाका साझा कोई नहीं करता, यहाँ-तक कि टैगोरका जीवन-देवता भी नहीं। वह तो महज उपस्थित-भर रहता है। उसकी उपस्थितिसे बल भले ही मिलता है—पर भोगना तो अकेले-अकेले है। पर यह अकेला-पन अभिशप्त स्थिति नहीं। वह अकेलापन जो अभिशप्त है, जो सृजनके हेतु नहीं, किसी शापके कारण वरण किया है, जो वन्ध्या दुःख-भोग मात्र है, जिससे किसी अजन्मे 'नये'के जन्मकी सम्भावना नहीं, वह है 'निर्वासन'। वह एक हेय स्थिति है।

मैं 'निर्वासन' बरदाश्त नहीं कर पाता हूँ। अवश्य, मुझे अकेलापन चाहिए जहाँ मैं अपने 'स्व'के साथ रह सकूँ। पर मुझे यह पसन्द नहीं कि इस निर्वासनकी पीड़ाको रस लूँ, अपनेको यक्षपुरीका राजा मानूँ जो अपनी व्यथा अपनेसे कहता है, जो अपना रुदन अपने ही कानसे सुन सकता है जब कि बाहर-बाहर सारे महारागमें लीन है और एकान्तके चरम क्षणोंका जो जन्म, प्रणय और मृत्युके अवसरों-पर अनुभूत होते हैं, भोग कर रही है। इसी-लिए इस ज्वरसे, इस निर्वासनसे मैं मुक्ति चाहता हूँ, विराम चाहता हूँ, क्षमा चाहता हूँ। लगता है कि यह ज्वर, यह निर्वासन मेरे 'स्व'की कोखमें पेर रहा है—मेरी गाँठ-गाँठ टूट रही है। मुझे अपने 'स्व'के साथ प्रगाढ़ रूपसे जीना है। मुझे इसे गाँठ-गाँठ तोड़ना, विखण्डित नहीं करना है।

कमरेकी खिड़कीसे बाहर पीपलकी हवामें झूमती शाखा दिखाई पड़ रही है। कोमल लाल पत्तियोंका रंग हरिताभ हो चला है। मैं हफ़्तोंसे रंगोंको वयःसन्धि-लीला देख रहा हूँ। दो हफ़्ते पूर्व पीपल नंगी शाखावाला दिगम्बर अवधूत था। आकाशसे हवा और पानीकी भीख माँगकर खानेवाला नग्न दिग्वासा भैरव! फिर नरम भूरे अंकुरोंसे सारी शाखाएँ भर आयीं। बैंगनी आभा लिये ताम्रवर्णी टूसे निकले। धीरे-धीरे ताम्रवर्णी पत्तियोंसे सारी शाखाएँ भर गयीं। इतनी नरम और पतली पत्तियाँ कि रोशनीके सामने पारदर्शक हो उठती थीं। उनमें धीरे-धीरे हरीतिमा नशेकी तरह प्रवेश करने लगी। पहले नसें हरी हुईं, फिर पत्तियोंके रेशेमें हरियाली घुलने लगी। पेड़ अभी ताम्रवर्णी था, पर हरिताभा ताँबेके रंगको छेदकर झलक उठती थी। यह हरी-तिमा नरम कच्ची कुँआरी देहकी तरह थी। श्यामली देहमें उम्र फूटनेके प्रथम चरणमें ऐसी ही कच्ची हरीतिमा फूटती है। फिर इन पत्तियोंके रेशे मज़बूत होते गये, हरीतिमा सघन गाढ़ी होती गयी, ताम्रवर्ण कटता गया और हरे रंगकी ताज़ी किशोर और दृढ़पत्तियों-से सूरजकी रोशनीपर सारा पेड़ झलमला उठा। चीरवासा योगीका भरा-पूरा परिवार फिरसे बस गया। अब उसे ठौर-ठौर निर्वासितकी तरह भीख माँगने, आकाशके सामने हाथ फैलानेकी ज़रूरत नहीं रही।

चीर-वासा भैरवकी याद आते ही पार्वती-की याद आ गयी। लगा कि मुक्तिका द्वार धीरे-धीरे खुल रहा है। मनमें वीतराग संन्यासी आदि शंकराचार्यके द्वारा अनुभूत ज्वरकी दवा याद आ गयी :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृत्ते
स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसानि सुभगे।
सखीभि : खेलन्ती मलयपवनान्दोलितजले
स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीड़ापसरयति।"

—('आनन्दलहरी')

"हे देवी, वसन्तमें खिली लताओंसे मण्डित नाना कमलोंसे शोभित, हंसोंकी मण्डलीसे अलंकृत, मलय पवनसे आन्दोलित सरोवरमें सखियोंके मध्य क्रीड़ा करती हुई तुम्हारा ध्यान करनेसे ज्वरजनित पीड़ा दूर होती है।"

'चञ्चलं हि मनः कृष्ण····।' मुझे बुखार है। पर वायुके समान यह चंचल मन व्यथाकी एक गाँठ ढीली होते ही सप्तावरण भेदकर कौएकी तरह उड़ता-उड़ता पहुँच गया तपोरता अपर्णा उमाके पास। जब-जब मैं बूढ़े विधाताके बारेमें सोचता हूँ तो लगता है उसकी शक्ल-सूरत प्राइमरी स्कूलके मेरे वृद्ध शिक्षक श्री यदुनाथ सिंह-जैसी अवश्य होगी। यह बूढ़ा विधाता मेरे इस नटखट मनसे परेशान है। उसने इस मनको जीवनकी इस कक्षामें किसी अपराधके कारण ज्वरदंशकी सजा दी थी, मुर्गा बनाया था,[1]—पर इधर जरा उनकी आँख मँजी और इसे जरा-सी फाँक मिली कि निकल भागा और दौड़ता-दौड़ता पहुँच गया काल-प्रवाहके आदि छोरपर। उमा तप कर रही है। जटामण्डित शीश, कमलमुख, विलास-चेष्टाहीन पर खिंची हुई कमान-सी ऊर्ध्वबंक भौंह-रेखाएँ, अधखुली आँख, शान्त सौन्दर्य-'उदकवास व्रत'में लीन, आकण्ठ जलमें डूबी पार्वती। शीतकालकी रात्रि है। उसके अधर पल्लव काँप रहे हैं। शान्त जलमें उसके मुख-छविकी परछाईं उभर आयी है, जो उसकी ही साँसोंसे थोड़ा-थोड़ा हिल रही है। लगता है दूसरा कमल पानीमें प्रस्फुटित हो गया है। तट-के आर-पार चक्रवाक करुण स्वरमें परस्पर 'मेघदूत' बोल रहे हैं। देवीके शान्त मुखमण्डल-पर धनुपाकृति भौंहोंके ठीक ऊपर पवित्रता, शृंगार और करुणाका त्रिकोण युद्ध चल रहा है। मेरा नटखट मन चोरकी तरह तटपर छिपा बैठा है और 'कुमारसम्भवम्' का पाँचवाँ सर्ग लिख रहा है।

मुझे धीरे-धीरे नींद आ रही है। लगता है कि भगवान् शंकराचार्यकी दवा काम कर गयी।

■ ।

---

१. एक सजा देनेका तरीका। कान पकड़कर धड़को झुकाकर घुटने तक ले आना और उसी हालतमें आधा घण्टा धूपमें खड़े रहना। मेरे ज़मानेमें इस सजाका उपयोग पुलिस-विभाग और शिक्षा-विभाग दोनोंमें होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

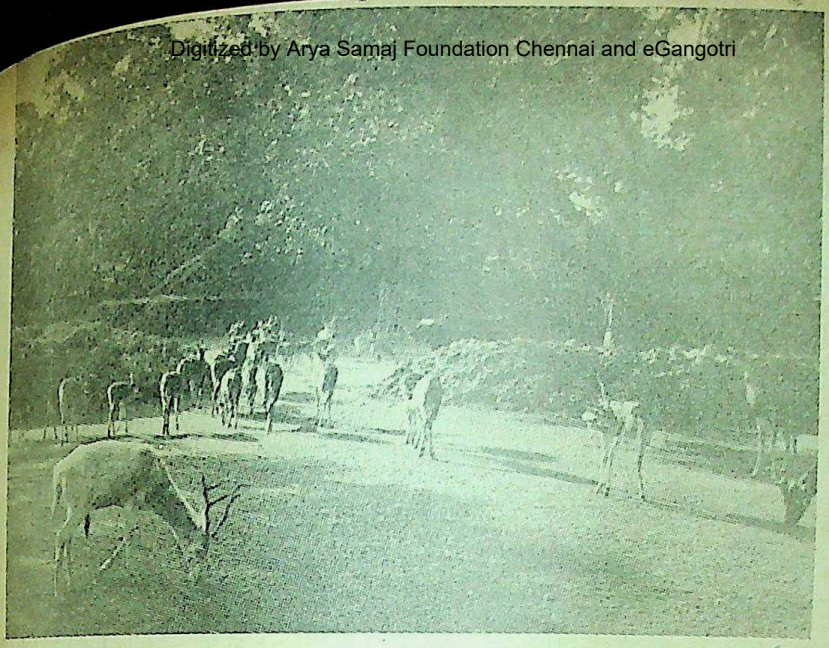

भूख × भूख
एकके लिए दूसरीका नियन्त्रण

आशारानी वोरा

सुना आपने, संसारमें प्रति मिनिट १२५ नये आदमी आ जाते हैं। भारतमें प्रतिदिन २५,०० की आबादीका एक शहर नया बस जाता है। जमीन उतनी ही है, फ़सलें अपने ही हिसाबसे उगती हैं, दूध देनेवाले पशु अपने ही हिसाबसे दूध देते हैं, फलदार वृक्ष अपने ही हिसाबसे फल देते हैं लेकिन खानेवाले मुँह उनके हिसाबसे नहीं खुलते। वे तो बस खुलते ही चले जाते हैं और चारों ओर प्रतिक्षण एक शोर बढ़ता आ रहा है—भूख—भूख—!

लगता है, सारी दुनिया भूख-भूख चिल्ला रही है। सारी दुनिया भोजन माँग रही है और भोजन कम है इसलिए छीना-झपटी बढ़ रही है। हर आदमी अपना हिस्सा पानेके लिए बुरी तरह लड़ रहा है और क्योंकि ईमानदारीसे जितना उसके हिस्सेमें आता है, उससे भूख नहीं मिटती, इसलिए वह दूसरोंका हिस्सा भी छीन रहा है या छीनकर हड़प जानेकी कोशिशमें है! जो छीन पानेमें समर्थ हैं वे खा रहे हैं और जो नहीं छीन पाते, भूखसे कुलबुला रहे हैं; लेकिन चिल्लाते दोनों ही हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समर्थ भी, असमर्थ भी। और शोर बढ़ रहा है—भूख—भोजन—भूख।

मानवताके भविष्यकी सुरक्षाके लिए चिन्तित वैज्ञानिक नित्य नये उपाय सोच रहे हैं। फ़सलोंकी संख्यामें वृद्धि, उत्पादनमें वृद्धि, नयी उत्पादन विधियाँ, नये औज़ार, नित्य नये प्रयोग और परीक्षण। जो कुछ अबतक नहीं खाया गया, उसे भी खाद्य बनानेके प्रयत्न। भूखपर विजय पानेकी अनवरत चेष्टाएँ, जिनमें एक यह भी कि सागरीय खाद्योंका उपयोग मानवीय क्षुधा-शान्तिके लिए किया जाये। इसके लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय हिन्द महासागर अभियान'-द्वारा निकाले निष्कर्षोंपर वैज्ञानिक माथापच्ची कर रहे हैं। समुद्री खेती करनेकी सम्भावनाएँ खोजी जा रही हैं, यानी धरतीकी वनस्पतिसे काम नहीं चलेगा—आदमीको सागरीय वनस्पतियाँ खानी होंगी।

यह सब क्यों? इसीलिए तो कि आदमी एक भूखपर तो विजय पानेकी चेष्टा कर रहा है, दूसरी भूखपर नियन्त्रण नहीं कर रहा। क्या है यह दूसरी भूख? स्त्री-पुरुषकी यौन-क्षुधा! वह मैथुनी वृत्ति जिसके परिणामस्वरूप संसारमें प्रति मिनिट १२५ मुँह खुल जाते हैं और पहली भूख मिनिट-मिनिट विकराल होकर बढ़ती जाती है।

परिवार-नियोजन!

भारत विश्वमें पहला देश है जहाँ योजनाबद्ध रूपसे परिवार-नियोजनका कार्य चल रहा है....

"चल रहा है? क्या चल रहा है, साहब?" बसकी लाइनमें खड़े एक क्षुब्ध अधेड़ व्यक्ति बोल पड़ते हैं, "परिवार-नियोजनसे हमें तो कुछ होता-जाता दिखाई नहीं देता। सरकार बड़ी उम्मीदें लेकर इस-पर पैसा फूँक रही है लेकिन आप ही बताइए, क्या वास्तवमें कोई खास असर हो रहा है? माना कि सन् '५६ से अबतक आठ-दस लाख लोग नसबन्दी करा चुके हैं और कन्ट्रासेप्टिव-की मददसे कुछ लोग सन्तान पैदा होनेपर रोक लगाने लगे हैं लेकिन इस सबसे कितना फ़ायदा हुआ है? साहब, समन्दरमें-से दो-चार चम्मच पानी—दो-चार सौ चम्मच कह लीजिए—इतना पानी निकाल देनेसे क्या फ़र्क़ पड़ता है। हम तो यह जानते हैं कि जबतक सेक्सकी भूख यूँ ही बढ़ने दो जायेगी तब-तक कुछ नहीं होनेका।"

इन अधेड़ सज्जनसे सेक्सकी भूखपर नियन्त्रण लगानेका उपाय पूछा गया तो आशा थी कि वे कहेंगे—संयम बरतो। लेकिन नहीं। अप्रत्याशित रूपसे उन्होंने कहा, "इस वैज्ञानिक युगमें संयमसे रहनेकी सलाह देना फ़िज़ूल है। सन्तति-निरोध ही होना चाहिए, इसके लिए वैज्ञानिक विधि और उपकरण भी काममें लेने चाहिए लेकिन परिवार-नियोजनका अभियान वैज्ञानिक स्तर-पर ही नहीं, सामाजिक स्तरपर भी चलना चाहिए।"

बात समझमें ठीकसे आयी नहीं। पूछने-पर वे बोले, "लोगोंमें समझदारी पैदा किये बिना आपका कोई तरीक़ा काम नहीं देगा। आप चीखते रहिए विज्ञान-विज्ञान और लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai,and eGangotri

कहूँगी, बकवास है। ठीक उसी तरह जैसे संयमके उपदेश सुनकर कह देते हैं।"

उनकी बात सुनकर योजना आयोगके सदस्य डॉ० वी० के० आर० वी० रावकी बातें याद आ जाती हैं जो उन्होंने दिल्लीमें हुए सन्तति-निरोध-कार्यकर्त्ताओंके सम्मेलनमें कही थीं—"बन्ध्याकरणको महत्त्व देनेवाले लोगोंको लाखों-करोड़ोंपर पड़नेवाले इसके मनोवैज्ञानिक प्रभावके विषयमें भी सोचना चाहिए। परिवार-नियोजन एक सामाजिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और मानवीय समस्या है।"

और इसीके साथ याद आती हैं कुछ घटनाएँ जिन्हें याद करके हँसी भी आती है और दुःख भी होता है। एक बार एक परिवारमें छह लड़कियाँ देखकर आश्चर्य हुआ था लेकिन यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ था कि सातवीं सन्तान होनेवाली है और माता-पिता तबतक सन्तानोंका पैदा होना कैसे रोक दें जबतक बेटेका मुँह नहीं देख लेते? यानी सातवीं, आठवीं लड़कीके बाद भी लड़का न हुआ तो नवीं, दसवीं सन्तान होती रहेगी। और इतनी लड़कियोंका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, विवाह—हे भगवान्!

और एक गाँवके एक घरमें जलते हुए पाँच चूल्हे। हर चूल्हेके सामने ठण्डसे ठिठुरे हुए हाथ सेंकते और तवोंपर-से उतरती रोटीके कौर-कौरकी लालसामें बैठे चार-चार पाँच-पाँच बच्चे। आश्चर्यजनक लगता है न? लेकिन है बिलकुल सच। पच्चीस-छब्बीस बीघेके मालिक ठाकुरसाहब चल बसे। उनके पाँचों बेटे जवान थे। पाँचों शादीशुदा। खून गरम। आपसमें बनी नहीं तो खेत बाँट लिये। रहे एक ही घरमें लेकिन चूल्हे अलग कर लिये। तीन कोठोंके घरमें कच्ची दीवारें लगाकर छह कोठे बना लिये और एक कोठा (?) माँको देकर पाँचों भाई एक-एकमें रहने लगे और अब सब बाल-बच्चोंवाले हैं। बाल-बच्चे बढ़ रहे हैं और ज़मीन बँटकर थोड़ी हो गयी है। नतीजा—उत्पादन कम, खानेवाले अधिक। उस घरकी कलह, शोर और भूख एक बार देख लीजिए तो भुलाये नहीं भूलेगी।

एक बार दिल्लीकी मॉडल बस्ती (जो निरी मॉडल है) में एक महिलासे बातचीत हुई। जल्दी-जल्दी पाँच-छह बच्चे होनेके आवश्यक है कि एक भूखको मिटानेके लिए दूसरीपर कुछ नियन्त्रण किया जाये—फिर वह प्राकृतिक या कृत्रिम किसी भी तरीक़ेसे क्यों न हो। इस दिशामें मनुष्यकी तीसरी भूख भी बहुत सहायक हो सकती है। पेट और सेक्सकी भूखसे इतर अहम्‌की भूख। अपने अहम्‌की परितुष्टिके लिए आदमी कुछ भी करे—पढ़े—लिखे, चित्रकारी करे, दस्तकारी करे, नाचे-गाये, अपने ग्राम या समाजकी सेवा करे, कोई भी शौक़ पाल ले—यानी कोई भी ऐसा काम अपना ले जिससे उसके अहम्‌की तुष्टि हो। वह लोगोंकी नज़रमें ऊँचा उठे। इससे पहली दोनों क्षुधाओंपर क़ाबू ही नहीं होगा, बल्कि व्यक्तिका जीवन-स्तर भी उठेगा और समस्याको एक समाधान मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण महिला रोगिणी और बेहद कमज़ोर दिखाई दे रही थी। उससे पूछा, "बहन, तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

"तुमसे मतलब ?"

"इसलिए पूछा कि····आपके पड़ोसियोंसे सुना है कि लगातार पाँच-छह बच्चे होनेसे आपका स्वास्थ्य इतना गिर गया है···मैं कहना चाहती थी कि अबकी आप ऑपरेशन क्यों नहीं करवा लेतीं ? इस तरह जल्दी-जल्दी बच्चे होनेसे न माँका स्वास्थ्य ठीक रह पाता है, न बच्चोंका। फिर, इस ग़रीबी और मँहगाईमें सबका पालन-पोषण····"

'बस-बस रहने दीजिए। हमें यह सीख नहीं चाहिए। बच्चे तो भगवान्‌की देन हैं। जिसने मुँह दिया है, खानेको भी देगा। इन्हें खिलानेके लिए हम आपसे या आपकी सरकारसे माँगने नहीं आयेंगे। आप जाइए, हमारे बच्चोंको गिनती मत कीजिए। ये बेचारे तो पहलेसे ही बीमार रहते हैं····"

परिवार-नियोजन और सन्तति-निरोधकी बातें करते-सुनते ऐसी अनेक घटनाएँ याद आती रहती हैं और लगता है कि उस दिन बसकी क़तारमें खड़े उन सज्जनकी बातें किसी हद तक सही थीं। विज्ञानकी जानकारी अकेले कुछ नहीं कर सकती। जनतामें समझदारी चाहिए।

सबसे बड़ी मुश्किल तो यह है कि लोग सन्तानोत्पत्तिको नितान्त व्यक्तिगत बात समझते हैं। देशकी बढ़ती हुई जनसंख्या, निरन्तर विकट खाद्य-समस्यासे इस व्यक्तिगत बातको जोड़कर सोचनेवाले लोग कितने हैं ? किसीको धर्मका डर है कि बिना पुत्रका मुँह देखे स्वर्ग नहीं मिलेगा, भले ही दस लड़कियाँ हो जायें, तो कोई यह समझकर बच्चे पैदा करता जा रहा है कि जितने बच्चे पैदा होंगे, उतने ही कमानेवाले हाथ बढ़ेंगे, खानेवाला मुँह बढ़ता है तो क्या। इन्हें अब भी यह समझानेकी ज़रूरत है कि कमानेवाला हाथ उतना नहीं कमाते जितना खानेवाले मुँह खाते हैं। फिर आजका रहन-सहन केवल पेट भरने तक ही तो सीमित नहीं है ! और जब यही कमानेवाले हाथ और खानेवाले मुँह बड़े हो जाते हैं तो वह दूसरी भूख भी इन्हें लगने लगती है जिससे और-और नये मुँह खानेके लिए खुलने लगते हैं।

परिवार-नियोजन और सन्तति-निरोधके उपायोंको अपनानेके लिए न तो वे छह लड़कियोंके (पुत्राकांक्षी) माता-पिता तैयार हैं, न पाँच चूल्होंवाले पाँच ठाकुर साहब और न वह मज़दूर-परिवारकी मॉडल बस्तीय महिला जो हमसे या हमारी सरकारसे माँगने नहीं आती।

तैयार होते हैं वे लोग जो शिक्षित हैं समझदार हैं और जो बढ़ती हुई आबादीके ख़तरोंको तथा बच्चोंको 'इनसान' बनानेमें आनेवाली कठिनाइयोंको समझते हैं। ऐसे लोग प्रायः उच्च या उच्चतर मध्यम वर्गमें मिलेंगे। वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, सेनाधिकारी, दार्शनिक, साहित्यकार, इंजीनियर, डॉक्टर, प्रशासक तथा अन्य योग्य लोगोंकी सन्तानें भी ही कम होती हैं क्योंकि अपने-अपने क्षेत्रमें निरन्तर आगे बढ़नेकी होड़में उनका मस्तिष्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशकी भूखसे इतना ग्रस्त नहीं रह पाता। दूसरे इनके बच्चे उनके काममें बचपनसे ही सहायक नहीं हो पाते। उन्हें अपने बच्चोंको अपने स्तरके अनुसार शिक्षित करना होता है, अच्छे ढंगसे उनका भरण-पोषण करना होता है, इसमें उन्हें अपनी कितनी सुख-सुविधाओंका त्याग करना पड़ता है, कितनी मेहनत करनी होती है, यह वे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए स्वयं ही बच्चे कम पैदा करते हैं।

ऊपरसे यह परिवार-नियोजन! अपनी असुविधाओंसे भी मुक्ति और देश तथा विश्वकी बढ़ती जनसंख्या और खाद्य-समस्याके समाधानमें अपना किंचित् योगदान करनेकी तृप्ति भी। परिणाम उच्चवर्गके उपयोगी व्यक्तियोंकी सन्तानोंमें और कमी। और इसका परिणाम देशमें स्वस्थ, सुशिक्षित और संस्कृत अधिक उपयोगी व्यक्तियोंकी संख्या-उत्तरोत्तर कमी। और दूसरी ओर निर्धन, अस्वस्थ और अशिक्षित या अपेक्षाकृत कम उपयोगी व्यक्तियोंकी बढ़ती हुई भीड़। ठीक इसी तरह जैसे किसी बागमें फलदार वृक्ष कम होते जायें और झाड़-झंखाड़ बेहिसाब बढ़ते जायें।

केवल परिवार-नियोजन और सन्तति-निरोधके कृत्रिम उपायोंकी ओर ही ध्यान केन्द्रित करनेवाले इस तथ्यसे आँखें मूँदे हुए हैं लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो समझते हैं। हमारे पड़ोसी कोई बड़े दार्शनिक या विचारक नहीं हैं लेकिन इस बातकी तह तक पहुँचकर वे कहते हैं—"भला बताइए, जब आप लोग पशु-पक्षियोंकी नस्ल सुधारना ठीक समझते हैं तो आदमीकी नस्ल क्यों नहीं सुधारते? अच्छे-भले, स्वस्थ, सुशिक्षित और बुद्धिजीवियोंकी सन्तान-संख्या परिवार-नियोजनसे घट रही है, यह आप क्यों नहीं देखते? रोकना है तो उस आबादीको रोकिए जो बेकार है, जो बेकारी, रोग और भुखमरी बढ़ाती है। देशकी कार्य-क्षमता जिसकी वजहसे दिनपर दिन कम होती जा रही है।"

यह बात सुनकर हमारी मेहमान श्रीमती····तपाकसे बोलीं, "भाई साहब, आप इण्डियामें फ़ासिज़्म, नहीं-नहीं, नाज़ीज़्म लाना चाहते हैं? यहाँ डेमोक्रेसी है जनाब, और डेमोक्रेसीमें सभीको उन्नति करनेके समान अधिकार होते हैं। सब लोगोंको समान माना जाता है····"

"माना जाता है।" पड़ोसी कड़ुएपनसे बोले, "लिखा भी यही जाता है लेकिन जो दिखाई देता है, उससे आप कबतक आँखें चुरायेंगी? निम्न और निम्न-मध्य वर्गके कितने लड़के-लड़कियाँ ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं? कितनोंको अच्छा भोजन और अच्छा वातावरण मिल पाता है? कितने आगे चलकर स्वयंको प्रतिभाशाली सिद्ध कर पाते हैं? प्रतिभाके विकासके लिए उच्च रहन-सहनका वातावरण भी चाहिए।"

श्रीमती····हमारे पड़ोसीके लाल हो आये चेहरेको ताकती रहीं। कोई उत्तर न सूझा। आखिर बात सँभालनी पड़ी, "तो इसका मतलब यह है कि रहन-सहनका स्तर उठाया जाये। परिवार-नियोजनका प्रचार निम्न वर्गों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अधिक किया जाये। उनमें सामाजिक समझदारी पैदा की जाये कि कम बच्चे पैदा करनेमें उनका ही लाभ है। और सौ बातोंकी एक बात—जीवन-स्तरमें सुधार होगा तो समस्या स्वयं ही हल हो जायेगी। लेकिन जीवन-स्तर सुधारनेके लिए साधन....''

''साधनोंकी कमी नहीं है। देशमें साधन तो बहुत हैं लेकिन उनका ढंगसे उपयोग नहीं हो पा रहा। इतनी ज़मीन है कि वैज्ञानिक ढंगसे सारी ज़मीन जोती-बोयी जाये तो हमें बाहरसे अनाज मँगानेकी जरूरत न पड़े। लेकिन कहीं तो खेत पानीके अभावमें सूखे पड़े रहते हैं, कहीं अच्छे बीजके अभावमें फ़सल अच्छी नहीं होती, कहीं किसान अपने अज्ञान और आर्थिक कठिनाइयोंके कारण वैज्ञानिक उपकरणोंका प्रयोग नहीं कर पाते, कहीं खाद नहीं मिल पाती—दरअसल बहन-जी, यह हमारी विकास-योजनाओंका दोष है। विकास-योजनाएँ ठीकसे चलें तो साधन बढ़ाये भी जा सकते हैं। साधन बढ़ाये जायें और जनसहयोग प्राप्त किया जाये तो समस्या आधी भी न रहे।''

पड़ोसीका यह उत्तर सुनकर ठकसे एक प्रश्नका हथौड़ा दिमाग़पर बजता है—जन-सहयोग कैसे प्राप्त किया जाये? वह तो तभी मिलेगा जब लोग शिक्षित होंगे और समस्या-को सही रूपमें समझेंगे। लोग शिक्षित हों तो विकास-योजनाएँ भी ढंगसे चलें, रहन-सहनका स्तर भी उठे और लोगोंका ध्यान पेट और सेक्सकी भूखपर ही केन्द्रित न रहकर इधर-उधर भी लगे। अनिवार्य शिक्षाकी योजना-को पूरी तरह अमलमें लाया जाये और छोटे बच्चोंके काम करनेपर रोक लगे तो अशिक्षित लोगोंकी समझमें भी आये कि बच्चे पैदा होने-से एकदम कमानेवाले दो हाथ पैदा नहीं हो जाते। उन्हें पढ़ाने-लिखानेके समय तक उनका बोझ ढोना पड़ता है। अपने-आप लोग अधिक बच्चे पैदा करनेमें निरुत्साहित होंगे।

लेकिन यह तो लम्बा सिलसिला है। शिक्षाका प्रचार और प्रसार मिनिटों, घण्टों, दिनों और सप्ताहोंकी नहीं, वर्षोंकी चीज़ है। और तबतक यहाँ जो ये पचीस हज़ार पाँच सौ नये आदमी प्रतिदिन आ रहे हैं, इनका क्या किया जाये? इनका आना शिक्षाका प्रसार होने तक चलने दें तब तो हो चुका। जब खाना ही इतनोंको नहीं दे पायेंगे तो शिक्षा कहाँसे देंगे?

तो फिर?

''तो फिर क़ानूनका ही सहारा है।'' सामनेकी दूकानपर काम करनेवाले सरदारजी-का वाक्य है। जब कोई बात उनके बसमें नहीं रहती तो वे सरकार या क़ानूनका सहारा ले लेते हैं।

परिवार-नियोजन अभी क़ानूनी रूप नहीं ले पाया है। गर्भपातको क़ानूनी क़रार देनेमें कशमकश चल रही है। पाप-पुण्यकी भावना-को सिर-माथे उठाकर चलनेवाले देशके धर्म-भीरु लोग तो इसका विरोध कर ही रहे हैं, अनेक नेता भी उदाहरण देते हैं जापानका ''देखिए साहब, जापानकी सरकारने गर्भपात-को क़ानूनी क़रार दिया। नतीजा क्या हुआ? व्यभिचार बढ़ गया। यहाँ भी यही होगा।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन वह नहीं सोचते कि गैरक़ानूनी रूपसे जो अब भी हो ही रहा है। गर्भपात अवैध होनेसे कितनी अकुशल दाइयाँ अवैज्ञानिक तरीक़ोंसे गर्भपात कराकर कितनी स्त्रियोंकी ज़िन्दगी बरबाद कर रही हैं, यह देखकर भी लोग अनदेखा करते हैं। और फिर उद्देश्य ? इस तरह गर्भपात करानेका उद्देश्य जनसंख्या-की वृद्धि रोकना नहीं; समाजके सामने अपना चेहरा उजला रखनेके लिए होता है। यदि गर्भपातको क़ानूनी मान्यता मिले तो यह क़ानून भी बनाया जा सकता है कि एक निश्चित संख्याके बाद (उसके पहले नहीं) यदि नया बच्चा आनेकी सम्भावना हो तो क़ानूनन उस सम्भावनाको समाप्त कर दिया जाये। तब व्यभिचारगर भी साथ ही रोक ली जायेगी।

"निश्चित संख्या कितने बच्चोंकी होनी चाहिए आपके विचारसे"—श्री···एक दिन इसी बात चलनेपर पूछ बैठे।

एक हज़ार रुपयेका 'न्यू जर्सी फाउण्डेशन' पुरस्कार प्राप्त करनेवाली कुमारी सरोजा नारायणनाथन जनसंख्या सम्बन्धी अपने पुरस्कृत लेखमें लिखती हैं कि एक माता-पिताको दो बच्चोंसे अधिक पैदा करनेकी छूट नहीं दी जानी चाहिए, चाहे वे बच्चे दोनों लड़के हों या दोनों लड़कियाँ। यदि तीसरा बच्चा पैदा हो तो सरकारको उन बच्चोंके माता-पिताकी आयका दस प्रतिशत जन्म-करके रूपमें वसूल करना चाहिए ताकि लोग अधिक बच्चे न पैदा करें। दो बच्चे होनेके बाद या तो माता-पिता ऑपरेशन करा लें या गर्भनिरोध-का प्रयोग करें। (या गर्भपात क़ानूनी हो जाये तो गर्भपात करा दें।)

टैक्सकी बात छोड़कर कुमारी सरोजा स्वामीनाथनका यह सुझाव परिस्थितिको देखते हुए उचित लगता है लेकिन इसमें थोड़े सुधार-की गुंजाइश है। एक तो यह कि शुरूमें दो-के बजाय तीनकी छूट दी जाये। दूसरे पागल, कोढ़ी, तपेदिकके मरीज़ और दूसरे असाध्य रोगियोंको एक भी बच्चा पैदा न करने दिया जाये। उन्हें तो सीधे-सीधे क़ानूनी रूपसे, पुरुष हो तो नपुंसक और स्त्री हो तो वन्ध्या बना देना चाहिए। तीसरे योग्य और तकनी-की कुशलतावाले व्यक्तियोंको निःसन्तान रहने देने या एक-दो बच्चोंके बाद ऑपरेशन करवा लेनेकी ओरसे निरुत्साहित किया जाये, अन्यथा श्रेष्ठ नागरिकताका ह्रास होता जायेगा। संख्याकी दृष्टिसे ऐसे लोगोंका अनुपात दिनोंदिन कम होते जानेसे सन्तति-निरोध देशकी कार्यक्षमता और जीवन-स्तरकी दृष्टिसे लाभके बजाय हानि भी पहुँचा सकता है। आगे चलकर इसके घातक परिणाम सामने आ सकते हैं।

"तो आपका खयाल है कि सिर्फ़ निम्न और अशिक्षित वर्गोंमें ही परिवार-नियोजन····" श्री····बड़ी बेचैनीसे पूंछते हैं।

नहीं—नहीं, हमारा मतलब सिर्फ़ इतना है कि शिक्षित, सम्पन्न और समर्थ लोगों-को दो-तीन सन्तानोंके लिए प्रोत्साहन दिया जाये, जल्दी ही ऑपरेशन आदि न करानेके लिए समझाया जाये और निम्न व अशिक्षित वर्गोंमें प्रचार ढंगसे हो। इनमें हर हालतमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनसे अधिक सन्तानें न होने दी जायें। इसके लिए परिवार-नियोजन-केन्द्रों और अस्पतालों-द्वारा उचित सलाह दी जा सकती है, पत्र-पत्रिकाएँ और कार्यकर्ता इसमें सहायक हो सकते हैं। मुख्य बात तो नीति-निर्धारण-की है। प्रचार और समझाने-बुझानेसे काम चले तो ठीक, नहीं तो क़ानून बनाया जाये। सन्तति-निरोधकी सुविधाएँ बढ़ायी जायें, निःशुल्क ऑपरेशन, गोलियों, लूप आदि साधनोंकी उपलब्धि सुगम की जाये। पुरस्कार सरकार अब भी देती है लेकिन ये पुरस्कार इतने आकर्षक हों कि—

बात काटकर श्री·····बोल पड़ते हैं, "लेकिन बहनजी, प्रचार ढंगसे होता कहाँ है? परिवार-नियोजनके कार्यकर्ता अपने कामको सिर्फ़ नौकरी भर करना समझते हैं। लोगोंको समझाने, समाजका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करनेकी फ़ुरसत किसे है? अधिकारी भी न जाने कैसे हैं कि अनाड़ी कार्यकर्त्ताओंको जनतामें भेज देते हैं। वे क्या खाक प्रचार करेंगे?"

उनकी बात सुनकर एक घटना याद आ गयी। परिवार-नियोजनका प्रचार करने-के लिए गयी एक लड़की जब एक ग्रामीण महिलाको कुछ समझाने लगी तो ग्रामीण महिला बोली, "भैनजी, जे तो बताओ, तुमारी सादी हुई गयी?"

"अभी नहीं, क्यों?" प्रचारिकाने सकपकाकर उत्तर दिया।

"तो फिर तुमें का मालुम। हमें गुन ज्ञान देवे आई हो, पहले खुद तो एकाद जनके देखि लेऊ।"

और उस प्रचारिका कुमारीको उल्टे चले आनेके सिवा और कुछ न सूझा।

यही हाल अस्पतालों और परिवार-नियो-जन-केन्द्रोंके कर्मचारियोंका भी है। उनका आतंकपूर्ण और उपेक्षा, अपमानसे भरा व्यव-हार कभी भी इस योजनाको सफल नहीं बना सकता। ग्रामीण और अशिक्षित लोगोंको सलाह देनेवाले कार्यकर्ता ऐसे होने चाहिए जिनका लोगोंपर उचित प्रभाव पड़े, जो उनकी समस्याएँ आत्मीयतासे सुन सकें और प्रभावपूर्ण ढंगसे उन्हें समझा सकें।

घूम-फिरकर बात फिर शिक्षा और उचित ट्रेनिंगकी कमीपर आ गयी। शिक्षा-का स्तर तो बढ़ाया ही जाना चाहिए पर इस बीच भी प्रचार-कार्य ठीक ढंगसे हो तो लोगोंमें सामाजिक समझ पैदा की जा सकती है। इस कमीके कारण बढ़ती हुई जनसंख्या, बढ़ती हुई भूख और गिरता हुआ जीवन-स्तर। गिरे हुए जीवन-स्तरमें जीते हुए लोगों-का तनाव कहाँ जाकर ढीला हो? एक ही साधन है कि आदमी पेटकी भूख भुलानेके लिए, सहज सुलभ आनन्दमें अपने विभ्रान्त मस्तिष्कका तनाव ढिलानेके लिए, दूसरी भूख मिटाने बिस्तरपर चला जाये। और परिणामस्वरूप पेटकी भूखकी मात्रा और बढ़ा दें।

इसलिए आवश्यक है कि एक भूखको मिटानेके लिए दूसरीपर कुछ नियन्त्रण किया जाये—फिर वह प्राकृतिक या कृत्रिम किसी भी तरीक़ेसे क्यों न हो। इस दिशामें मनुष्य-की तीसरी भूख भी बहुत सहायक हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पेट और सेक्सकी भूखसे इतर अहम्की भूख। अपने अहम्की परितुष्टिके लिए आदमी कुछ भी करे—पढ़े-लिखे, चित्रकारी करे, हस्तकारी करे, नाचे-गाये, अपने ग्राम या राष्ट्रकी सेवा करे, कोई भी शौक़ पाल ले या वही कोई भी ऐसा काम अपना ले जिससे उसके अहम्की तुष्टि हो। वह लोगोंकी नज़रमें ऊँचा उठे। इससे पहली दोनों क्षुधाओंपर क़ाबू ही नहीं होगा, बल्कि व्यक्तिका जीवनस्तर भी ऊँचा और समस्याको एक समाधान मिलेगा। आवश्यकता है इस भूखको बढ़ानेकी—जीवनके हर क्षेत्रमें, पर निम्न वर्गोंमें तो अवश्य ही।

रहा क़ानून-द्वारा स्थितिपर क़ाबू पानेका प्रश्न। जब दूसरे प्रयत्न कारगर सिद्ध न हों तो क़ानूनकी शरण भी लेनी ही पड़ेगी। पर वहाँ फिर वही प्रचारके ढंग और सामाजिक रुख पैदा करनेका प्रश्न उठ खड़ा हुआ। वे बोले, "क़ानून-निर्माण आसान है, उसका सफल क्रियान्वयन कठिन। 'शारदा एक्ट' को बने कितने साल हुए? आज भी राजस्थानमें बच्चोंको गोदमें लेकर भाँवरें डलवा दी जाती हैं। जानती हैं, हमारे देशकी कुल विवाहित महिला-संख्यामें ७५ प्रतिशत उनकी है जिनकी आयु १५ से २० वर्षके बीच है और यह आयु-काल सन्तान-उत्पादन-क्षमताकी दृष्टि-से सर्वाधिक उर्वर है। फिर हमारे यहाँ हर लड़कीका विवाह होना भी अनिवार्य है, नहीं तो वह समाजमें अच्छी नज़रोंसे नहीं देखी जायेगी। और भी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें सुधारनेके उचित प्रयत्न किये बिना योजना ही नहीं, क़ानून भी व्यर्थ सिद्ध हो सकता है।"

मुझे लगा, श्री····ठीक कहते हैं। जड़में कुछ परिवर्तन किये बिना पत्तोंको ऊपर-ऊपर-से छाँट देनेसे कोई लाभ न होगा। जितने कटेंगे, उतने फिर नये निकल आयेंगे। अभी-तक यही तो होता रहा है।

■ ■

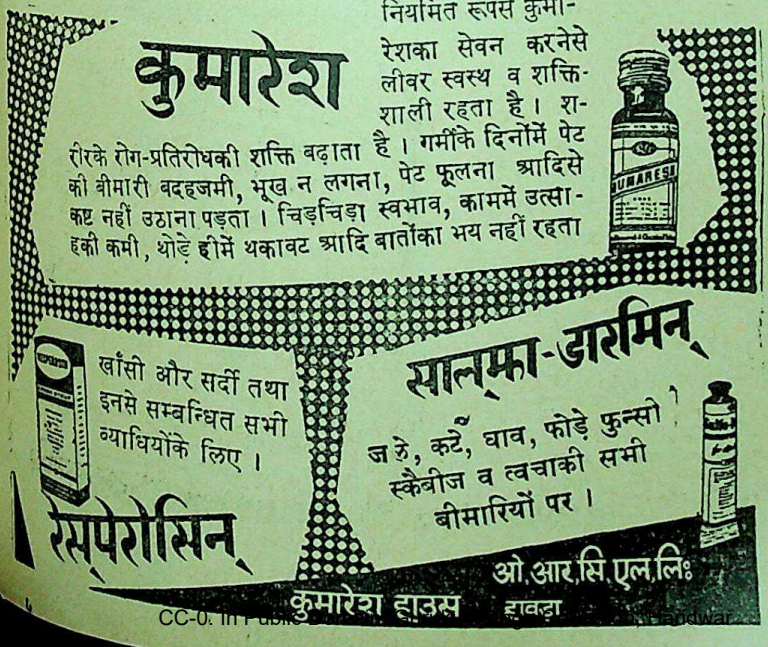

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ। अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट। मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये। जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियाँ, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए। फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये। उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए।

उन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए। उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए। फिर पानी डाल दें। इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें।

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग-रेखा के बाद

रंगनाथ राकेश

आँख-देखे जगत्का अंकन जहाँ प्रधान था: वह चित्रकला आधुनिक नहीं होकर पारम्परिक या अलंकृत शैलीकी कही जा सकती है। अवचेतन और मानस-प्रत्यक्षके अंकनसे आधुनिक कलाकी प्रारम्भिक 'अतिरेकी स्थिति'—'बाउण्डरी सिचुएशॅन' शुरू होती है। काल-प्रवाहके साथ-साथ रंग-रेखाओंकी भाषामें स्वाश्रयी (इण्टिन्सिक) परिवर्तन होते ही रहते हैं—वस्तुके रूपकी हूबहू नक़ल उतारना तो अनुकृति (इमिटेशॅन) है। आजकी कला पुनरुत्थापन (रिप्रज़ेन्टेशन) करती है सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-जगत्का, घृणाका, कुण्ठाका, आशाका, मानवताका, वंचनाका, टूटनका, झुँझलाहटका। आज 'कम्पोज़ीशन', 'टेक्स्चर', 'टोन' 'कण्ट्रास्ट', 'कलॅर', 'रिद्म', 'फ़ॉर्म', और 'परस्पेक्टिव' गतानुगतिक—पिटेपिटाये ढर्रेसे खिसककर वैयक्तिक चेतनाके अमूर्त रूप हो उठे हैं। आधुनिक चित्रकलाको 'फ़ॉर्मलिस्ट' (आकारवादी), 'आब्सक्योर' (दुरूह), 'डिजेनरेटेड' (पतित-भ्रंशमान) या 'इस्केपिस्ट' (पलायनवादी) ठहराकर उसके अस्तित्वसे आज मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। एमर्सनकी एक पंक्ति आधुनिक कलाके सन्दर्भमें कैसी सटीक है: "बिकाज़ दॅ सोल इज़ प्रोग्रेसिव, इट नेवर क्वाइट रिपीट्स इटसेल्फ़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बट इन एब्री एक्टिव्हेस्ट द प्रोडक्शन ऑव ए न्यूँ एण्ड फ़ेयरर होल। दस, इन आवर फ़ाइन आर्ट्स, नॉट इमिटेशॅन बट क्रिएशन इज़ द एम।'' 'साम्प्रतिक भव्यतर और नवीनताकी अहरह सृष्टि आत्माका गुण है। सृष्टिका क्षण-क्षण परिवर्तमान रूप हमें अरूपवादी कला या सूक्ष्म कला (एब्सट्रैक्ट आर्ट्) में प्राप्त हो रहा है। इस सूक्ष्म कलाकी विभिन्न प्रमुख शैलियोंके उद्भव-विकास और सामर्थ्यका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

अति यथार्थवाद—मूलतः यह कला अयत्नज प्रतिभा अथवा स्वस्फुरण (इन्ट्विशन) की चेतनासे प्रभावित है। इन्हें अवचेतन प्रतीकवादके सहारे समझा जा सकता है। अति यथार्थवादी चित्रोंके कथ्य, रूपशिल्प, सम्पुंजन, वैरूप्य (डिस्टार्शन) आदि प्राकृतिक सिद्धान्तोंसे चालित नहीं होते। पेड़का आसमानसे लटकना, पनीरके टुकड़ेकी तरह चिपटी घड़ीका डालपर लटकना, पानीकी तरह बहती हुई आग, मेज़पर दावातकी जगह मरी हुई चिड़ियाके लहूलुहान शरीरमें खुँसी हुई क़लम, आनग्न रमणियोंके कन्धोंपर चढ़े हुए पुरुष आदिका चित्रण अतियथार्थवादी कलाके आयाम हैं। ''१९२२ में 'दादा' की मृत्यु पेरिसमें हुई, उसीकी राखसे, अतियथार्थवाद फ्रेंच कवि आन्द्रे ब्रेताँके अधिनायकत्वमें उभरा।''[1] अबौद्धिक चरित्र (एण्टी रेशनल कैरेक्टर) गम्भीर प्रयोगवादी दृष्टिकोण (सीरियस एक्सपेरीमेण्टल एटीट्यूँड), अवचेतन मनके भावोंका प्रक्षेपण, बिम्बोंकी रंगीन कविता, स्वप्निल चित्रण इसकी विशेषताएँ हैं। नक़ाबोंके पीछे छिपी शक्लका उद्घाटन इस कलाका प्राण है। अरागों, ब्रेताँ, इलुआर्द, पैरेत, आन्द्रे मैसॅन, अर्नस्ट आर्प, मनरे, जान मिरो, गियाकोमेत्तीने १९३० के आसपास 'सुर-रियलिज़्म' को स्वीकारा। साल्वेदॅर डाली इस कलाका प्रमुखतम और विश्वप्रसिद्ध चित्रकार है। डालीके चित्रकल्पके रूप जाने पहचाने-से लगते हैं पर उनकी प्रेष्य शक्ति और संयोजन अस्वाभाविक प्रतीकोंकी गुहामें निहित है। 'पर्सिस्टेन्स ऑव मेमॅरी' 'सिटी ऑव डाअर्स', 'इल्यूमिंड प्लेज़र्स' डालीके विश्व-प्रख्यात चित्र हैं।

'पर्सिस्टेन्स ऑव मेमॅरी' की अभिव्यंजना स्मृति तथा काल-प्रवाहकी परिवर्तनशीलतापर निर्भर है। समुद्रके किनारे सीमेण्टेड चौतरे (चत्वर), उन चबूतरोंमें-से एकपर वृक्ष-ठूँठ, पेड़की एक ही डाल, डालपर पनीरके टुकड़े-सी चिपटी घड़ी, दूसरी घड़ी मोमकी तरह पिघली हुई, पासमें घड़ीका ढक्कन : कल-पुर्ज़ोंकी जगह कीड़ों-मकोड़ोंसे भरा हुआ। भू-पृष्ठपर एक मानवीय हाथ : जो मुखाकृति और हाथ दोनों ही लगता है, इसी मुखाकृतिपर चिपकी चिपटी-सी चौथी घड़ी। 'स्मृतिका लगाव' बड़ा ही तीक्ष्ण विद्रूप है आजकी 'समयबद्धता' या 'पंक्चुएलिटी' पर— समयकी पाबन्दी स्मृतिपर नहीं है, स्मृति तथा समय दोनों ही परिवर्तनशील हैं, जो कल था, वह आज नहीं

1. Fantastic Art, Dada, Sur-realism : Acfred H. Barr George Hunget, Museum of Modern Art, New York, 1944, P. 11.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा। परम्परागत मानव-मूल्यों, रूढ़ियों, तथाकथित आदर्शोंसे चिपकना ठीक वैसा ही है जैसे 'थ्री डाइमेंशनल सीमेण्ट-चत्वर'पर उसकी प्रतीक घड़ीमें कीड़े-मकोड़े चिपटे हैं। (चित्र १) पार्श्वभूमिमें प्रकृतिके विराट उपकरण पर्वतखण्ड, समुद्र, आकाश आदि अपने दृश्यरूपमें आज भी विद्यमान हैं—मानव-निर्मित रूढ़ियोंका प्रभाव प्रकृतिपर नहीं है।

अभिव्यंजनावाद (एक्सप्रेशिनज़्म) : संवेगात्मक अनुभूतिके चित्रणकी शैली अभिव्यंजनावादी कहलायी। व्यक्तिगत रूपसे वॉन गॉघके चित्रोंका प्रभाव आधुनिक अभिव्यंजनावादी चित्रशैलीपर सबसे ज़्यादा पड़ा। वान डाइक, वूख, रेम्ब्रां, मार्क शैगेल, एमिल नोल्डे, लोविस जेस्पर्स, मैक्सवेकमन आदि इस शैलीके प्रमुख कलाकार हैं। क्रोचेने जिस 'अभिव्यक्ति' की चर्चा की है और इ० एफ़० कैरिट ('ह्वाट इज़ आर्ट' : ऑक्सफ़ोर्ड, १९३२) ने जिसकी व्याख्या की है उसी अभिव्यक्तिको अभिव्यंजनावादी कलाकारोंने चित्रित किया है। 'एक्सप्रेशॅन इज़ ए सेन्सुअस आर इमैजिण्ड कॅन्सेप्ट इन ह्विच वी पर्सीव (नॉट इन्फर) इमोशन्स'। सेकॅण्डली, एक्सप्रेशॅन इज़ नॉट रिप्रोडक्शन। एक्सप्रेशन मे बी कॉनफाइण्ड टु अवरसेल्व्ज़....' संवेगात्मक आत्माभिव्यक्ति इस शैलीकी सबसे बड़ी विशेषता है। मकबूल फ़िदा हुसैन, हेब्बर, यामिनी राय आदिपर इस शैलीका प्रभाव पड़ा है, सतीश गुजरालने एक्सप्रेशनिस्टिक आर्ट और स्पैनिश कलाकार पिकासोकी शैलियोंको पचाकर तीव्रतम तथा उत्तेजनात्मक आत्माभिव्यक्ति दी है—गगनेन्द्र नाथ ठाकुर और अमृता शेरगिलका नाम भी इस परिप्रेक्ष्यमें लिया जा सकता है। क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार लयात्मकता (रिद्म) के साथ इस शैलीको स्वीय बनाकर प्रस्तुत करनेमें समर्थ हुए हैं। सूक्ष्म कला अथवा विमूर्त रूपकल्प (एब्सट्रैक्ट आर्ट) में अभिव्यंजनावादी शैलीका स्थान प्रमुख रहा है। आधुनिक भास्कर्य (स्कल्पचर) नृत्य और साहित्य पर भी इस शैलीकी गहरी छाप पड़ी। जहाँ प्रभाववाद (इम्प्रेशिनज़्म) और घनवाद (क्यूबिज़्म) क्रमशः विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक हैं वहीं अभिव्यंजनावाद आत्मानुभूतिपरक है, अभिव्यंजनावादी चित्रकार प्रकाश-छायाका प्रयोग रूपकल्प (फ़ॉर्म) की नाटकीय व्याख्याके लिए प्रयुक्त करता है और गतिका प्रयोग संवेगात्मक प्रक्षेपणके लिए। पालक्ली और वैस्सिली कैण्डिस्कीने इसी शैलीमें अध्यात्मपरक सम्पुंजन भी किये हैं। केशसज्जा-रत रमणीके मुखड़ेपर जो तन्मयता है, दर्पणमें देखे गये अपने रूपके प्रति जो ललक है : उसकी अभिव्यंजना कितनी सशक्त रेखाओंमें काढ़ी गयी है ? प्रखरतर प्रकाश-छाया-सम्पुंजन काव्यात्मक बिम्बको उभारनेमें सक्षम है (चित्र २)।

घनवाद (क्यूबिज़्म) : दृश्यमान प्रत्यय (विज़नॅरी कॅनसेप्ट) को कैनवासपर ज्योंका त्यों उतारना असम्भवप्राय-सा होता है। व्यक्तिगत रूपोंके धरातलकी पृष्ठभूमि और अग्रभूमिको ज्यामितिक आकारोंकी लय-भंगीमें घनवादी चित्रकलाने प्रस्तुत किया। प्रभाववादो या आभासवादी (इम्प्रेशिनस्टिक) कला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सामर्थ्यका एक ठोस पहलू, सेज़ाँके घनवादी चित्रोंके माध्यमसे कला-जगत्में उभरा। 'ओवरलैपिंग ट्रान्सपेरेण्ट प्लेन्स' की व्यवस्था इस कलाकी दूसरी विशेषता थी। पिकासोने भी प्रारम्भमें घनवादी चित्रोंका निर्माण किया—जहाँ 'फ़ॉर्म' और 'स्पेस' को सीधी या वक्र रेखाओं द्वारा विरूपीकृत (डिस्टार्टेड) रूपमें 'ब्रह्माण्ड-निहित लयके साथ आत्मीय साक्षात्कार-संग' (पर्सनल आइडेण्टिफ़िकेशन विद द रिद्म ऐट द हार्ट ऑव द यूनिवर्स) उपस्थित किया गया। 'त्रि आयाममयी' (थ्री डाइमेन्शनल) स्वरूपको रंगों-रेखाओं-आकारोंके लयात्मक संयोजन-द्वारा घनत्व प्रदान करना घनवादी शैलीका उद्देश्य था। जुआन ग्रिस समन्वयवादी घनवादका प्रवर्तक है और सेज़ाँ व्याख्यात्मक घनवादका। वस्तु या प्रकृतिका बाह्य क्षण-क्षण परिवर्तनशीलरूप उसके 'स्थायी सूक्ष्मरूप' से भिन्न होता है—सेज़ाँने उसी शुद्धतम, यथार्थतम ठोस रूपको स्पन्दनात्मक अनुभूतिके आधारपर चित्रित किया। जॉसेफ़ स्टेला, मॉर्टन शैम्बर्ग, एडवर्ड ओ' कीफ़, एल्सी ड्रिग्ज, पीटर ब्लूम, जॉर्ज एडल्ट आदिने 'घनवादी यथार्थवाद' (क्यूँबिस्ट रियलिज़्म) में सशक्ततम प्रयोग किये हैं।

प्रभाववाद (इम्प्रेश्निज़्म) : दर-असल प्रभाववादी शैलीसे किसी ख़ास शैलीका बोध नहीं होता—आभास (इम्प्रेशन) होने और वस्तुतः सत्तामें पार्थक्य होता है। प्रतीयमान सत्ताके आभासको प्रभाववादी शैलीमें बिन्दुवाद (प्वॉइण्टिलिज़्म), वानस्पत्य शैली (फॉविज़्म), निर्माणवाद (कॅनस्ट्रक्टिविज़्म) आदिमें वैज्ञानिक पकड़के साथ प्रस्तुत किया गया। वॉन गॉग इस शैलीका प्रवर्तक समझा जाता है। माने, रेनुए, पिज़ारो, लात्रेक तोलूज़, बैज़िले आदि कलाकारोंने इन्द्रधनुषके रंगको आदर्श मानकर रंगोंके प्रयोगों-द्वारा 'ओल्ड-मास्टर्ज़' की 'मॉडेलिंग' को फीका और निरर्थक-सा सिद्ध कर दिया। सेज़ाँ, स्यूरा (Seurat) और माने आदिने रंगों-रेखाओं, आकारों आदिका संयोजन-सम्पुंजन वैज्ञानिक सूक्ष्मतासे किया। रंगकी क्षमताका चरमोत्कर्ष इसी शैलीमें देखा गया। रेनुएने फलकपर असाधारण दक्षतासे 'सेन्सिबिलिटी ऑव सरफ़ेस' को पेण्ट किया। फूलोंकी पाँखुरी-जैसी वर्तुलवक्रिमा और भंगीमें उसने नारी-देह-सौन्दर्यका उदात्ततर चित्रण किया है। आकारगत तत्व (फार्मल एलिमेण्ट) की तुलनामें जीवनके प्रखर संवेगात्मक सुखकी छाया उसके चित्रोंमें मुखरित होती है (चित्र ३)।

बिन्दुवाद (प्वॉइण्टलिज़्म): दर-असल यह शैली नव-प्रभाववादी (निओ-इम्प्रेश्निस्ट) आन्दोलनसे प्रादुर्भूत हुई। थोड़े-से विरोधात्मक बिन्दुओं-द्वारा घरातलको जीवन्त बनाकर चित्रकलामें एक नयी अर्थवत्ता देनेका प्रयास इसी शैलीमें प्रारम्भ हुआ था। इसके पहले रंगोंको झिल्लीदार आवरणके रूपमें पोत-भर दिया जाता था। जार्ज स्यूराने मिले-जुले रंगोंके बजाय शुद्ध रंगोंके अलग-अलग महीन बिन्दुओंके चकत्तोंका प्रयोग किया—इस शैलीका जन्मदाता स्यूरा ही है। शेव्रूलकी वैज्ञानिक व्याख्याका असर उसपर काफ़ी हद तक था (शेव्रूलकी रंगोंपर लिखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी पुस्तक 'दला कान्त्रास्ते सिमुल्ताने दे कुलुअर्स') पाल सिनॉक, गोगाँ, देगा, वॉन गॉग आदिने इस शैलीमें चित्र बनाये हैं। लाल, नीले और पीले केवल तीन 'शुद्ध रंगों' के ही द्वारा अन्य रंगोंका आभास स्यूराके चित्रोंमें प्रकट हुआ, स्यूराने नीले और पीले रंगके बिन्दुओंको इस तरह बिठाया कि ये दोनों रंग हरे रंगकी आभा छोड़ने लगे। जैसे संगीतकार किसी पंक्तिमें नया स्वर भरता है वैसे ही स्यूराने चित्रोंमें लयात्मक ढंगसे रंग भरे। 'ब्रशस्ट्रोक्स, का उबलता हुआ उभार—शुद्ध रंगोंके अलग-अलग वृत्तोंमें एक वैज्ञानिक सम्पूंजनके साथ इस शैलीमें उभरे। 'ला ग्रान्दे जाते', 'फिशिंग फ़्लीट', 'परेड' आदि विश्व-प्रख्यात हैं।

एब्सट्रैक्ट आर्ट : इसे विमूर्तकला, सूक्ष्म-कला या अमूर्तवादके नामसे अभिहित किया जा सकता है। वृक्षका साधारण बाह्यरूप प्लेटोके 'आभ्यन्तरिक प्रत्यय' में जाकर कैसे अन्तर्हित होता है उसका प्रकट उदाहरण (चित्र ४) यहाँ प्रस्तुत है। वस्तुगत आकार-को 'नॉन फ़ोटोग्राफ़िक' शक्लोंमें 'रंगों या रेखाओं-द्वारा चित्रित करना सूक्ष्म कलाकी विशेषता है। दर्शक और चित्रकारके बीच आकारकी प्रेषणीयता समाप्त होती गयी और यह शैली व्यक्तिवादी प्रतीकों और अमूर्त, भावात्मक बिम्बोंमें नयी सिम्तों, सरहदोंको छू रही है। सेजाँ, माने, मातिस, ब्राक, पालक्लो आदिने अलग-अलग वैयक्तिक 'पैटर्न' लेकर सूक्ष्म चित्रांकन किये हैं। वायुका रूप हम देख नहीं पाते। पर सरसराहटका तो अनुभव करते हैं। वायु अरूप है—अथच सूक्ष्म कलाने वायुके स्पन्दनको, आँधी - तूफ़ान, बयार, पश्चिमी प्रभंजन, नानारूपोंमें बाँधा है। प्रभाववादी अथवा घनवादी शैलियाँ सूक्ष्मकला-की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि थीं। सूक्ष्मकला सापेक्ष अधिक है और प्रतिरूपात्मक बहुत कम। जहाँ प्राचीन कलाकार आमको ऐसा चित्रित करना चाह रहा था कि देखनेवालेके मुँहमें पानी भर आये, वहाँ आधुनिक कलाकार आमके विश्ले-षणात्मक विशुद्ध रूपको ही उरेहता है। प्रकृति के प्रकृत रूपकी प्रतिकृति नहीं 'स्वीयकृति' इस कलाकी विशेषता है (विस्तृत व्याख्याके लिए देखिए 'एब्सट्रैक्शन इन आर्ट': फ्रेडरिक गोर)। यह 'सूक्ष्म चित्रकला' सारी चित्र शैलियोंकी आशुलिपि (शार्ट हैण्ड) है—भले ही एक-एक व्यक्तिके शार्टहैण्डको दूसरा न पढ़ पाये पर लिपिके सूक्ष्म विकास उसकी त्वरा और तुर्शीसे क्या इनकार किया जा सकता है ? सूक्ष्मकला आजके जीवनकी माँग है, उसका समाधान है।

निस्पन्द-जीवन चित्रण : 'स्टिल लाइफ़ : चार्डिन इस शैलीका प्रवर्तक है। हालैण्ड और स्पेनमें प्राणहीन वस्तुओंका चित्रण एक विशिष्ट पृष्ठभूमिमें किया जाता रहा है। रोज़मर्रा या दैनन्दिन जीवनकी वस्तुओंका सौन्दर्यबोधात्मक आकार, टेक्स्चर इस शैलीमें उभरा। फूलदान, पौदे, तरकारियाँ आदि इसके उपादान रहे हैं—भावात्मक संवेगका स्पन्दन यहाँ प्रमुख नहीं बल्कि एक खास प्ररूढ़ि (मोटिफ़) ही नज़र आती है। सेज़ाँ-द्वारा इस शैलीमें बड़े ही प्रभावपूर्ण चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये गये हैं। बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भसे इस सातवें दशक तक सभी आधुनिक कलाकारोंने अपनी कूँची इस शैलीपर माँजी।

निर्माणवाद (कॉन्स्ट्रक्टिविज़्म): पिकासोके त्रि-आयामवादी चित्रोंका असर इस शैलीपर पड़ा है। गैब्रो और पेव्ज़नरने रूसी परम्पराके सार्थक प्रयोग अपने अरूपात्मक त्रि-आयामवादी चित्रोंमें किये हैं। मूलतः भास्कर्य (स्कल्पचर) में इस शैलीका ज़्यादा प्रभाव रहा है।

प्रतीकवाद (सिम्बॅलिज़्म): यह उत्तर प्रभाववादी कलाशैली (पोस्ट इम्प्रेशिनस्टिक) है। चिह्न और प्रतीक दो चीज़ें हैं। चिह्नका जब 'विशेष अर्थ' होता है तब वह प्रतीक बन जाता है। हंस जहाँ ज्ञानका प्रतीक है वहाँ वह विशिष्ट सन्दर्भमें प्रयुक्त होता है नहीं तो हंस-छाप डालडा या स्वान-मार्का रोशनाई भी प्रतीक बन जाती, पर ये दोनों चिह्नमात्रके सन्दर्भमें हैं: केवल अलगावके लिए प्रयुक्त। किसी गत्यात्मक बिम्ब (डाइनेमिक इमेज) को भी एक-एक ख़ास 'कॅन्सेप्ट' का प्रतीक बनाया जा सकता है। जैसे एक ख़ास क़िस्मकी 'सिम्फ़ॅनी' या 'कन्सर्ट' करुण अथवा आनन्ददायक प्रभाव मनपर छोड़ देते हैं वैसा ही प्रभाव प्रतीकोंद्वारा चित्रित कलामें भी है। किसी विचारको ऐन्द्रिक चेतनाके ग्रहण योग्य बना सकना प्रतीकोंकी सार्वदेशीय प्रकृति और चयनपर निर्भर करता है। गोगाँ इस शैलीका प्रवर्तक है। इलुआर्द, लात्रेक, देनिस, ज़ुलोग, हॉडलर, मुंख आदि इस शैलीके प्रमुख चित्रकार हैं।

प्रेम, घृणा, ईश्वर, भय आदि विचार-प्रत्ययों और भावनाओंको प्रतीकात्मक लयात्मकतामें इस शैलीने उपस्थित किया।

पॉप आर्ट: आधुनिक कलाकी अद्यतन रोमांचकारी शैली है यह। जॉस्पर जान्स इस कला-शैलीका प्रवर्तक माना जाता है। वैयक्तिक कल्पना और अभिव्यंजनाका नाटकीय वैविध्य, दैनिक जीवनकी त्वरा और सार्वजनिक सम्प्रेषण (पब्लिक कम्युनिकेबिलिटी) के आधारपर यह कलाशैली जन्मी है। कोकाकोला और ह्विश्कीकी बोतलें, टूथपेस्टके पिचके ट्यूब, पाउडर और स्नो तथा सूपके डिब्बे, रंग-बिरंगी कन्दर्पोत्तेजक तसवीरें—इन सभी आकारोंका एक मिला-जुला रूप जब हमारे दिमाग़पर 'हाण्ट' करता है तो एक विचित्र-सा प्रभाव पड़ता है, पॉप आर्ट इसी प्रभावका चित्रण करता है। ललित कला और व्यावसायिक कला (फ़ाइन आर्ट एण्ड कॅमर्शियल आर्ट) की सिम्तें घिसकर पास आ गयी हैं—पॉप आर्टके कारण। 'यान्त्रिक पुनर्रचना (मेकेनिकल रिकॅन्स्ट्रक्शन) की 'इम्पर्सनल तकनीक'—यथार्थ और रोमान्सका नवयथार्थवादी संयोजन पॉप आर्टकी विशेषता है।'

यह ज़रूरी नहीं है कि जो चीज़ समझमें आये वही चीज़ प्रभावित भी करे, प्रभावित करना और समझमें आना दो अलग-अलग चीज़ें हैं। नृसिंहावतार, रावणके दस मुँह—क्या सभी भारतीयोंकी समझमें आते हैं? परन्तु इनका प्रभाव ?? बहुत ज़्यादा !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

··· यथार्थ
मैक्स वेकमैन

··· अति य
रेनॉय

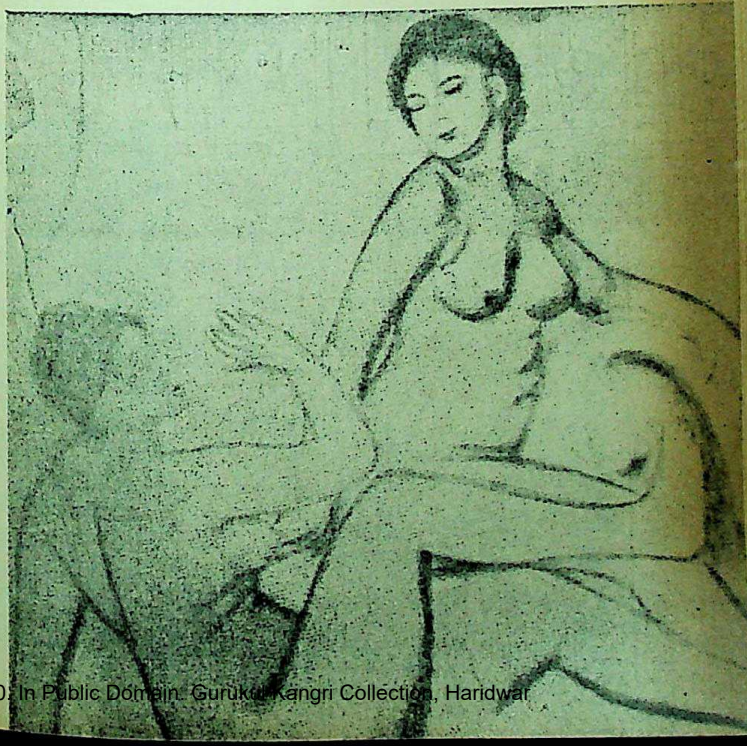

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

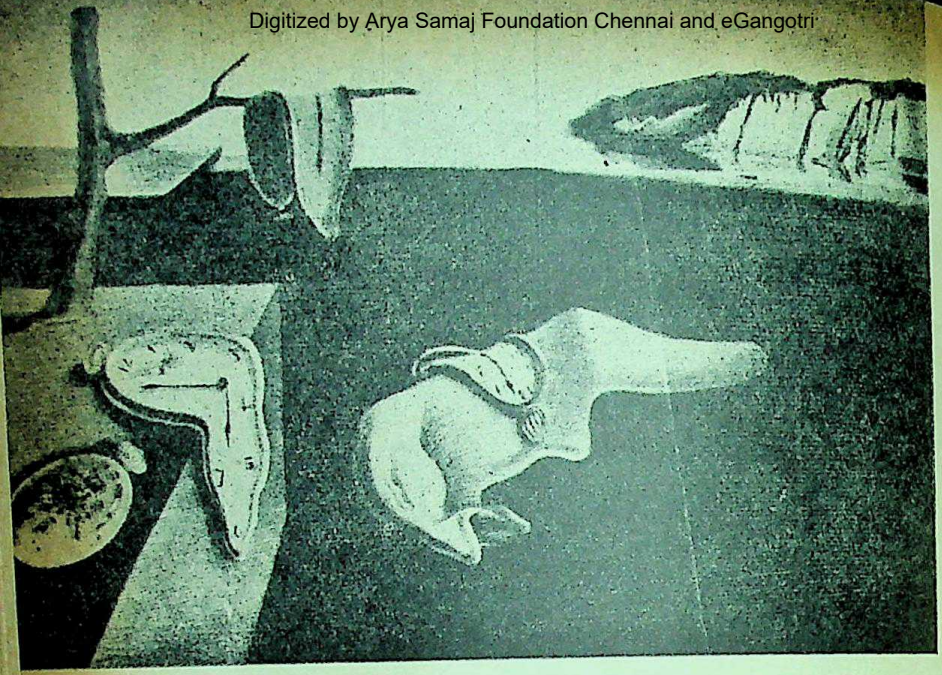

सूक्ष्म ...
सल्वादॉर डाली

अति सूक्ष्म ...
लारेन्स हॉज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• आदमी का बीज

फूलों के संसार में
जैसा बीज बोओ
वैसा ही फल आता है,
फूल बोओ तो फूल खिलता है
काँटा बोओ तो काँटा सताता है ।
गुलाब की पौध में
गुलाब ही फलता है
गुलाब ही फूलता है,
उसी की सुवास और
उसी के सुरंग से
उपवन महकता है ।

भगवान के पूजन को कल मैं
पिटूनिया की टहनी ले आयी,
पौधे से अलग कई दिन बाद भी
उनमें से कलियाँ निकल आयीं
और मेरा मन्दिर इन्द्रधनुषी
स्तुतियों से भर गया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल से फूल और
काँटे से काँटा जनमता है,
यह तथ्य केवल
वनस्पति-जगत में ही पनपता है
आदमी का बीज ऐसा है
कि जो भी उसे बोता है
सदा अँधेरे में ही रहता है,
कोई आश्चर्य नहीं यदि
आदमी के बीज से
भेड़िया या श्वान
चमगीदड़ या गीदड़
साँप अथवा सूअर
अथवा इनसे भी अधिक बर्बर
कोई जन्तु जन्म ले ले,
और विज्ञान के सारे नियमों को
तोड़ दे,
सारे अनुभवों को ग़लत सिद्ध कर दे।

—हीरा कोयला

• अत्र कुशलम्

एक रेडीमेड-ज्योति
मनचाहे चेहरे पर
फ़िट करने के लिए,
एक शीशी केमिकल
हर व्यंग्य को प्रशंसा में
बदल देने के लिए,
होठों पर चिपकाने के लिए
एक शेड मुस्कान,
मन पर चढ़ाने के लिए
पौलीथीन की परतें;
जीवन में संघर्षों की अफ़वाह
न जाने किस मनचले ने उड़ा दी है!

—शान्ति मेहरोत्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• नाकाम पानी

बड़े प्यार से सींचे अंकुर के फूट आने पर
उसमें से
यहाँ वहाँ सभी कहाँ उठ आने वाला
पौदा उगते देख
सोचती हूँ—
कभी-कभी उम्मीद की गहगहाती नदी
बँधी ही भली है।
किनारे टूट जाने पर
मिट्टी निकल आती है,
छोटे-बड़े घर भहराते
मवेशी बह जाते हैं—

दूर-दूर तक नाकाम
पानी ही पानी
न
पीने का
न
माथा भिगोने का—।

—इन्दु जैन

• चलो···

चलो
साथ-साथ
इमारतें तोड़ें।
हर एक चीज़
एक और अजीब चीज़ से जोड़ें।
प्यार करते समय
एक दूसरे से लिपटें नहीं,
(एक) दूरी तय कर
देह को
बिजली के बुझे तार-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छुएं, मूर्खों से डर जायँ ।
शब्दों से अर्थ
संकेतों से आशय
उखाड़ फेंक
समुद्र को ब्लेड से चीरते चले जायँ ।

—ममता कालिया

• तीन प्रश्न

सब पी लिया है—
अपमान का विष !
अभिमान का दंशन !
और विषमताका दारुण मन्थन !

उस ज़हर की कण्ठ में घुली कड़ुआहट
कभी वाणी में उतर आये
तो दोष मेरा है ?

जिसे पाने को मन मचला
हठीले अभिमान ने झटका दे
दूर हटा दिया !
रिक्तता को भरने के लिए
जो एक कँटीली झाड़ी उग आयी है,
अगर कभी उस चुभन का दंशन
तुम तक पहुँच जाये
तो ग़लती सिर्फ़ मेरी है ?

दो विषमताएँ जिनमें कहीं सामंजस्य नहीं,
(उन दो समानान्तर रेखाओं को)
एक करने का प्रयत्न करते रहना,
यह जानते हुए भी एक दूसरे की पूरक ही नहीं !
यदि संघर्ष मन की सीमाओं से
बाहर निकल आये,
और तुम्हारे आदर्शों से मेल न खाये
तो भी क्या दोष मेरा है ?

—प्रतिभा सक्सेना

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ना।यी।क।हा।नी : गुजराती

चन्द्रकान्त बक्षी

●

तरफ़ शहरोंके जंगलोंमें, काँच और कंक्रीटकी वीरानियोंमें, सालमें एक दफ़ा बहार आती है, एकाएक, पिछली फ़रवरीमें, आकाशमें झरनोंका नीलापन छा जाता है, दक्षिणकी हवाएँ एक नया माहौल पैदा करती हैं, सवेरे-सवेरे शहरी दुनियापर सर्दियोंका कोहरा नहीं छाता और स्टेट-बसें जब दौड़ती-घूमती हैं तब अक्तूबरसे चिपकी हुई गर्द गरमाती हवामें फैल जाती है, पहला पसीना नयेकी खुशबूवाला होता है, पतझरके बचे हुए पत्ते गिरते हैं, नयी कोंपलें बहारकी धूपमें चमकती-पसराती हैं, धूमिल धुन्ध सतहको तीन महीनोंसे देखनेकी आदी आँखें नये रंगों-को मचलते हुए देखती हैं और····

····बहार आती है, तीन लड़कोंके बाद जन्मी हुई लड़कीकी तरह।

"तुम पहचानती हो, मेरे शहरको ?"

"ना····"

"बताऊँ ?"

"हाँ।"

"चलो—"

आखिरी ट्राम पौने ग्यारहके क़रीब एस्प्लेनेडसे वापस जाती है, डाउन ट्राम, खटखटाती हुई चौरंगीसे, नये जवाहरलाल नेहरू रोडसे····और देर रात तक लोग टहलते हैं। शाल और काडीजिन लपेटे हुए घूमती थीं वे लड़कियाँ, फ़रवरीकी पहली सफ़ेद हवामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्लीवलेस ब्लाउज़ और नाभिके नीचे उतरी हुई साड़ियोंमें, फिसल-फिसल पड़ते शरीर सजाकर औरतें बाज़ारोंसे बाहर निकल पड़ती हैं, थर्र-थर्र फिरते पंखोंकी हवामें सूखे पेटवाले आदमी चूसी हुई मछलियोंके काँटे खाली प्लेटोंमें रखते हैं, दस बजनेमें पाँच मिनिट बाक़ी हो तब बारका मैनेजर आकर पूछता है, "एनी मोर ड्रिंक्स, सर ?" नाईट-शोवाले इण्टरवलके जवान प्रेमी हॉलके बाहर निकलकर चॉकलेट खोजते हैं, प्रातःकालीन स्कूलोंमें जानेवाले बच्चोंके डैडी मम्मियोंके फैले हुए शरीरोंमें दिन-भर जोड़-बाक़ीके हिसाब पानेकी कोशिश कर रहे हैं, और····

"नदी पसन्द है, तुम्हें ?"

"हाँ। गति पसन्द है, उसका।"

"मुझे ख़ास पसन्द नहीं है—"

"आखिर तो उसे समुद्रमें ही डूब जाना है। स्त्रीकी तरह। या रेगिस्तानमें सूख जाना है। अपरिणीताकी तरह—"

"सारे शहरकी गन्दगी नदीमें उँडेली जाती है—"

"और समुद्र पूरी नदीको पी जाता है।"

"एक ही नहीं, बहुत सारी नदियाँ।"

और नदियाँ पी जानेवाला समुद्र नहीं है लेकिन समुद्रकी छातीकी तरफ़ दौड़ती नदी है, एक चमकते एल्युमुनियम रंगवाला, शहरकी रीढ़की हड्डी-जैसा, बहते हुए मटियाले पानीपर घन, ज्योमेट्रिकल प्रतिच्छायाएँ फेंकता हुआ पुल है, बार्जें और डोंगियाँ, दस पैसेमें नदीके पार ले जानेवाली बोटें और यात्रियोंकी हँसीसे बाझिल लाचें पटसनके खाली बोरोंसे लदी नौकाएँ फ़ौजी दस्तेकी क़तारकी तरह साथ-साथ 'स्लो मार्च' में बहती हुई, और ताज़ा रँगी हुई फ़्लनलोंसे अदृश्य भाप उगलती हुई, समन्दरोंके उस पारसे आयी हुई स्टीमरें और रात्रि, किनारोंके झूलते प्रकाशसे घबरायी हुई, नदीके मध्यके अन्धकारमें सिमटकर साँस लेती हुई····

"थक गयी ?"

"ना। नदी देख ली।"

"यह मैदान है। उसके पेटमें एक क़िला है उसमें इतिहासको छुपाकर भर रखा है।"

"चलो, देखें।"

"इजाजत नहीं है।"

"तुम्हें क़िला देखनेका शौक़ है ?"

"पता नहीं। छिपी चीज़ें देखनेका शौक़ मर जाता है। मैं मानता हूँ। खुली हुई चीज़ोंमें····खैर, अब ऐसी जगह चलेंगे, जहाँ दुनिया बन्द है और खुली है।"

"कहाँ ?"

रेसकोर्सकी हरी शान्तिके आगे, सेण्ट्रल जेलकी तरफ़ जाती हुई बसकी दिशामें, पीछे-पीछे, सड़कके दोनों किनारोंपर लगभग आमने-सामने, एक तरफ़ नेशनल लाइब्रेरीके विद्वान् अभ्यासी और दूसरी तरफ़ दोषी-गुनहगार बाहरी दुनियासे बन्द पड़े हैं और चिड़ियाखानेका दरवाजा आता है, डेहलियाके नग्न फूलोंपर रविवारकी धूप अलसायी-सी पड़ी है, कृत्रिम झाड़ियोंमें-से सुस्ताती बाघिन जम्हाइयाँ लेती है, दुम लम्बी करती है, फिर आँखें मूँदकर पंजोंपर सिर रखकर सो जाती है, ज़ू के प्राणी मनुष्योंको देखते हैं, देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं, बाघ-जैसे पुरुष, हायेना-जैसे, बबूले-जैसे, ओरांगउटांग-जैसे, और आँखें बिल्ली-जैसी, गोल्डफिश-जैसी, छिपकली-जैसी, हल्ली-जैसी और छुट्टियोंके दिन जूके प्राणी छुप-छुपकर काँपते हैं क्योंकि मनुष्योंके ज्वार और जत्थे और टोले उमड़ पड़ते हैं, आदमी आदमीको देखने आते हैं, चिड़ियाखानोंमें····

····चिड़ियाखानोंमें, जहाँकी दुनिया बन्द है और खुली है।

"और क्या है देखने लायक़ ?"

"आदमी और पत्थर—"

"प्राणियोंको और नदीको देख लिया हम लोगोंने, अब पत्थरोंको देख लिया जाये।"

"यहाँके पत्थर मुलायम हो गये हैं, उनमें खोखला नहीं है, और नोकें नहीं है।"

"पालतू कुत्तेके भौंकनेकी आवाज़की तरह ?"

"नहीं। विधवाकी बारम्बार घरपर धुली हुई सफ़ेद साड़ीकी गन्धकी तरह····"

मृतप्राय, घिस गये खानदानोंकी स्मृतिके स्मारकघरों—जैसे 'बारीक' चेहरेवाले मकान खड़े हैं, बाहर नोंकदार लेन्स लिये खड़ा सन्तरी टूटे हुए फ़व्वारेके गर्दके ढेरके क़रीबसे जानेके रास्तेको बता रहा है, झड़े हुए रोंगटेवाले, स्टेनलेस स्टीलकी चेनोंसे बँधे पैरवाले सत्तर-अस्सी सालके दो बासी काकातुए बचपनमें सुनी हुई चीखें सुनाते हैं, एक मोर पिंजड़ेकी सलाखें झाड़कर सौन्दर्य फैलाकर समेट लेता है, गनमेटलमें ढाले हुए युरॅपीय हवा और अग्नि और युद्धके देवी-देवता चौड़ी

"यहाँ आदमी दौड़ता नहीं है, ग्रहकी तरह एक प्रदक्षिणा करती है। इस प्रदक्षिणाके, एक-दूसरेसे सबसे दूसरेसे सबसे दूर दो विन्दु होते हैं, डबल बेडमें लेटी हुई पत्नी और मालिककी टेबुलकी दूरकी किनारी। हरेक आदमी अपनी-अपनी धुरीके गिर्द ही घूमता रहता है—"

"सब शहरोंमें यही हालत है।"

"फ़र्क़ है थोड़ा-सा। यहाँके आदमीकी जीभ लटकती नहीं है और उसका दुःख उसका व्यक्तिगत प्रामाणिक, ताज़ा भाप निकलता हुआ दुःख है। बहारके मुलायम तड़केमें, मेरे शहरके आदमीका दुःख एक लहूलुहान लाल-लाल साया फेंकता है···"

सीढ़ियोंके तारीक एकान्तमें और हिन्दुस्तानके फ़रवरीकी कुनमुनी गरमीमें खड़े हैं, अन्दर काँचके साफ़ बक्सोंमें, इतालवी संगमरमरके बिना पुतलियोंकी आँखोंवाले इरोस और डायाना और सायके, ढाई सौ सालसे एक गुमनाम तारीखी सिलसिलेमें फँसे हुए नज़रक़ैद हैं, ऊपर चित्र हैं, रंगोंका रोना है, खुले बिना; दो दिन और एक रातकी बारिशके बाद पेड़-पौधोंमें होनेवाली उमस है, दीवारोंपर वेदनाके धब्बे पड़ गये हैं, हवासे ऑक्सीजन उड़ गया है, एक अनन्त कसमसाती चकराती, घुमड़ती, सिसकती····

"यहाँ लोग दौड़ते नहीं हैं ?"

"मेरे शहरमें लोग साँझकी दिशामें नहीं दौड़ते, क्योंकि चढ़ते सवेरे ही साँझकी शुरूआत हो जाती है और रात्रिके प्रथम प्रहर तक चलती है।"

"मुझे लटकती जीभवाले, दौड़े हुए, दौड़ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए लोग सफ़लताके प्रतीक बन रहे हैं।"

"यहाँ आदमी दौड़ता नहीं है, ग्रहकी तरह एक प्रदक्षिणा करता है। इस प्रदक्षिणाके, एक-दूसरेसे सबसे दूर दो बिन्दु होते हैं, डबल बेडमें लेटी हुई पत्नी और मालिकके टेबुलकी दूरकी किनारी। हरेक आदमी अपनी-अपनी धुरीके गिर्द ही घूमता रहता है—"

"सब शहरोंमें यही हालत है।"

"फ़र्क़ है थोड़ा-सा। यहाँके आदमीकी जीभ लटकती नहीं है और उसका दुःख उसका व्यक्तिगत प्रामाणिक, ताज़ा, भाप निकलता हुआ दुःख है। बहारके मुलायम तड़केमें, मेरे शहरके आदमीका दुःख एक लहूलुहान लाल-लाल साया फेंकता है....."

"अदृश्य, स्वप्निल, स्वर्ण क्षितिजोंवाला एक लाल-लाल-लाल साया ?"

कॉफ़ी-हाउसोंकी काली कॉफ़ी पी-पीकर जलद हो चुके बुद्धिवाले आदमी वितर्कोंके भूलभूलैयोंमें खोये हुए हैं, बिना मैला किये हुए स्कूल युनिफ़ॉर्मवाले बच्चे हड़तालकी सुबह घर लौटते हैं, बहारकी ढलती दोपहरकी गरमी-में गिरजेकी पीछेवाली डबल रोटीकी बेकरी-वाला मुसलमान मज़दूर पहली शिफ़्ट शेष करके बाहर निकलता है और जवानी क़ायम रखनेवाली दवाईके इश्तहारके तले, फ़ुटपाथसे गुज़रते सूखे ड्रेनके सामने पेशाब करने बैठ जाता है, सन ग्लासेज़ पहना हुआ मुज़फ़्फ़रपुर-की तरफ़का ट्राफ़िक कान्स्टेबल क्रासिंगपर खड़ी हुई ओवरलोड ट्रकके ड्राइवरको, नुक्कड़-के पानवालेकी दूकानपर अठन्नी रिश्वत रख देनेका उँगलियोंसे इशारा समझा रहा है, नौ सालका मद्रासी बूटपॉलिशवाला लड़का चुप-चाप रो रहा है, आधा मीटर नेटके ब्लाउज़के स्त्रीत्व ढँकी हुई मूँछवाली दो सिन्धी औरतें मेढकोंकी तरह गले फुलाकर आनेवाले टैक्सियोंका इन्तज़ार कर रही हैं, रात्रि तीन बजे उठकर पेट्रोल स्टेशनकी गाड़ियाँ धोनेवाले, गलोंमें पीतलकी तावीज़ पहने हुए मज़दूर स्टेशनके कोनोंमें सो रहे हैं, टोकरोंमें लेडीज़ लेस और जेस्मीन और रजनीगन्धा सजाये हुए उड़िया माली लोग हिन्दुस्तानी मेम साहबोंके ड्रॉईंग और डाईनिंग हॉलोंके एस्ट्रेक्ट डिज़ाइनोंवाले फ़्लॉवरवाज़ोंकी ओर नंगे पाँव दौड़ रहे हैं, रमेश लॉ-कॉलेजके प्रोफ़ेसर ग्लूकोज़के बिस्किटपर गुज़ारा कर रहे हैं, सुटरकेन स्ट्रीटकी लेबोरेटरीमें डॉ० वर्माका असिस्टेंट काले-सफ़ेद गीनीपीगोंके पिंजड़ोंके पासले गुज़रता हुआ, मार्निंग स्कूलसे लौटती लड़कियों के बारेमें सोचता है, चौरस्तेके बीचोबीच खड़े मन्दिरका मोटा-सा पुजारी शामकी पूजाके बादकी भाँगका सामान जुटा रहा है....

"और क्या है देखनेका ?"

"रातका शहर। रातको शहर पंख समेट लेता है, नाख़ून भीतरकी ओर खींच लेता है और केंचुल पहन लेता है—"

"फिर ?"

"फिर वह केंचुल न्युऑन लाइटोंके नीचे चकमती है, होटलोंके टेबुलोंके आसपासके मद्धिम अर्ध-प्रकाश और 'आफ़्टर शेव लोशन'-वाली खुशबूमें खुशीसे फड़फड़ाती है—"

"....."

"और आधी रातको, जब कामकाजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकीरें साफ़ हो जाती हैं और वेटर एश-ट्रेओं-को खाली करके टेबुलोंपर रख जाते हैं तब केंचुल गिर पड़ती है।"

"इण्टरेस्टिंग !"

और फिर रात पड़ती है और बहारकी दूसरी सुबह होती है, टूटे हुए रास्तेवाली मसजिदके नीचे पहली धूपमें, एक ठण्डा बुलडोज़र निवृत्त अर्ध-छाया डालता हुआ खड़ा है, घोड़ागाड़ीका घोड़ा पिछली दो टाँगें फैला-कर, झुककर, पिघले हुए तड़केके रंगवाला पेशाब करता है, बदलती ड्यूटीवाले पुलिस स्याह वॉनके टेड्रलबोर्डसे सड़कपर कूद पड़ते हैं, छह वर्षकी टूटे-मुड़े पैरवाली भिखारिन बच्चोंको उसका बाप अँगरेज़ी अखबारके ऑफ़िसके सामनेवाले फ़ुटपाथपर एक चादरके टुकड़ेके सामने बैठाकर, कुछ सिक्के बिछानेमें लग जाता है, खिड़कीमें कबूतरोंके लिए फेंके गये चावलके कणोंपर का-का-का करके झपटते हुए कौवोंको देखकर डरती बेबी दिलचस्पीसे तक रही है, खाली दूधकी बोतलोंसे लदी हुई सरकारी दूधकी लारियाँ खटखटाती हुई डेरी-के ऑफ़िसकी तरफ़ वापस जा रही है, शंटिंग यार्डका पहला धुआँ ओवरब्रिजोंपर सोयी हुई सुबहको गरमाते हुए सारे आकाशमें फैल जाता है, नदी किनारेवाले श्मशानपर रात-रात-भर जली हुई चिताओंके रंग सबेरेके प्रकाशमें बुझ रहे हैं, औरत-बाज़ारकी वेश्याएँ सुबहकी पहली नींदमें मधुर सपने देखती सोयी पड़ी हैं....।

"देख लिया ?"

"हाँ।"

"एक दिन और एक रात और एक दिन। जहाँ सुबहको हमने शुरू किया था वहीं सुबह-को वापस आ गये हैं। गोल, गोल—चकराती आवाज़ोंकी ढलवाँ तहोंमें फिसलते—फिसलते मैंने अपना शहर तुम्हें बना दिया—"

"....."

"चुप हो गयीं ? बोलो न कुछ...."

"....."

"तुम्हें भी चुप हो जानेकी....एक अदम्य, तीव्र इच्छा हो जाती है, कभी-कभी ?"

"....."

"? ? ? ? ?"

"....."

"....."

इस तरफ़ शहरोंके जंगलोंमें, काँच और कांक्रीटकी वीरानियोंमें, सालमें एक दफ़ा बहार आती है, एकाएक, पिछली फ़रवरीमें....

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

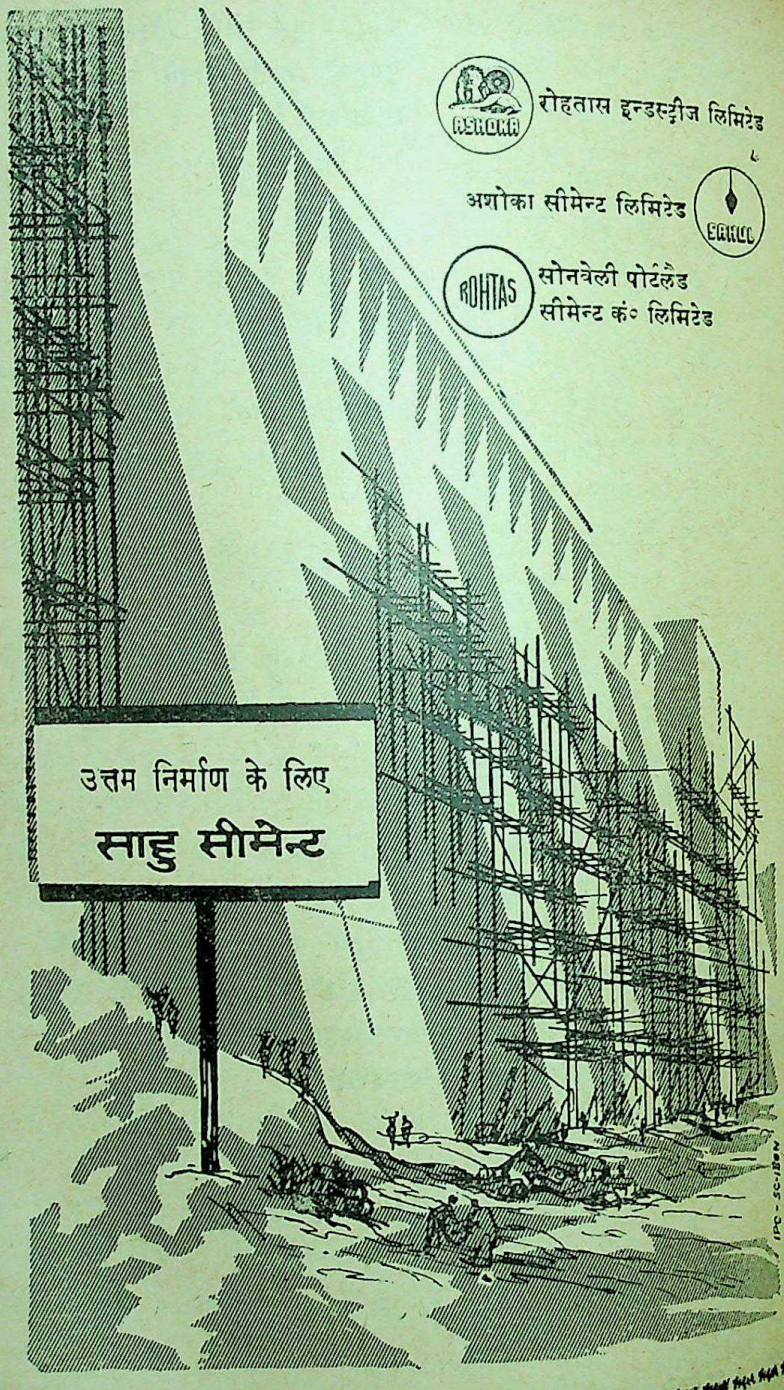

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Delhi. Digitized by eGangotri. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

पानी के परदे

सोमा वीरा

• लेक मैनदोताके किनारे

झीलका रंग नीला है। गहरा नीला। मानो आसमान कभी झुक आया था। नीचे। बहुत नीचे····परिचय पा लेनेको····खूब गहरा परिचय। ऐसा, जो याद रह सके——धरतीका घूमना रुकने तक। सूर्यके शीतल होने तक। और वह झुकना झीलको भा गया था। इतना····कि उसके अन्तरमें आलोड़ित होती लहरोंने, कसमसाकर, आसमानको बाँध लिया था। और, तब ?····तब, सूर्य खिलखिलाकर हँस पड़ा था। क्यों ? इसलिए कि····

सहसा दो उँगलियाँ मेरी क़लमके ऊपरी सिरेको पकड़कर खिसका देती हैं। 'इ' की छोटी मात्रा, क्रुद्ध होकर सर्प बन जाती है। किन्तु सर्पके ज़हरसे बेख़बर, बीस वर्षकी वह बालिका——सवा छह फ़ीट लम्बी सिलविया——खिलखिलाकर हँस पड़ती है।

वह किसीकी मँगेतर है। न होती तो····

"तुम कैसी डायरी लिखते हो, चारी ?"

"क्यों ?"

सिलविया देखती है मेरी ओर। एकटक——न जाने कितनी देर शीशेके सामने बैठ, न जाने कितने यत्न-प्रयत्नसे, उसने अपनी भौंहोंको धनुषाकार बनाया है। पलकोंपर नीला लेक-अप लगाया है और अब उसकी आँखोंके परदोंपर, लेक मैनदोताकी गहरी परछाईं है, और स्वरमें····उगते सूर्यकी गरमाहट—"और नहीं तो क्या ! मैंने क्या कभी देखी-पढ़ी नहीं दूसरे लोगोंकी डायरी? उसमें तारीख डाली जाती है। घटनाएँ, उलझनें लिखी जाती हैं। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम तारीखके बदले लिखते हो, 'पर्वतपर', 'सड़कके किनारे' और घटनाओंके बदले···"

उसकी बात पूरी नहीं हो पाती। मछली पकड़नेकी डोरपर नज़र गड़ाये-गड़ाये ही फ़ान्सिस बोल उठता है, "तू जानती नहीं, सिलविया ? एक वर्ष नागपुर रहकर तू इतना भी नहीं सीखी ?"

बादलके हटते ही, सूर्यकी गरमाहट तीखी हो जाती है, "क्या नहीं सीखा ?"

उस स्वरको सुन फ़ान्सिस चौंक जाता है। चौंककर सिलवियाकी ओर देखता है। फिर मेरी ओर, और मुझे दो-तीन दिन पुरानी एक बात याद आ जाती है—अपनी कमीज़में बटन टाँकते-टाँकते, उसने अचानक मेरी ओर देखा था, और कहा था, "चारी, कभी-कभी मुझे वश्वास नहीं होता। नागपुरमें जिस सिलवियासे मैं मिला था, क्या वह यही थी ?"

सिलविया फिर पूछती है, और अधिक तीखे स्वरमें, "मैंने क्या नहीं सीखा, फ़ान्सिस ?"

"कुछ नहीं," वह सहजभावसे कहता है—इतने सहजभावसे कि उसका वह स्वर सिलवियाकी भौंहोंकी तरह ही बनावटी लगता है, "आई वाज़ ओनली किडिंग। (मैं तो केवल परिहास कर रहा था।)"

और वह मुड़ जाता है अपनी मछली पकड़नेकी डोरकी ओर। उसकी पलकें झुक जाती हैं। आँखें झीलके गहरे तलमें झाँकने लगती हैं मानो पानीके परदोंको चीरकर, वे वहाँ छिपी किसी मछलीको पा लेंगी।

सुबहकी सुनहली धूप मानो मैली पड़ जाती है।

सिलविया अनमनी-सी हो, मुझसे ज़रा दूर हटकर बैठ जाती है। फिर अपने पर्समें-से सिगरेटकी डिब्बी निकाल, दियासलाईकी खोज करने लगती है। दियासलाई मिल जाती है तो वह सिगरेटकी डिब्बी और दियासलाई मेरी ओर बढ़ाती है। मेरे सिर हिलाकर मना करनेपर, वह अपने लिए एक सिगरेट निकाल लेती है।

कुछ लिखनेका उत्साह बुझ चुका है। मैं डायरी बन्द कर देता हूँ। उसे अपने घुटनेपर-से हटाने लगता हूँ तो उसमें-से एक पत्र निकल, मेरे पैरोंके पास गिर पड़ता है।

घोषालका पत्र।

मन कुछ सकुच जाता है। जैसे घोषाल सामने खड़ा हो। कह रहा हो—मान गये, बन्धु ! हम तो अपनी बाईसाइकलके तेलका खर्चा बचाकर, तुम्हें डेढ़ रुपयेका पत्र लिखते हैं, और तुमसे इतना भी नहीं होता कि अपने दो मिनिट खर्च कर, तुम उसे पढ़ लो ?

—मेरा क़सूर नहीं है, घोषाल भाई। उस दिन सबेरे बड़ी जल्दीमें था। क्लासमें पहुँचनेमें देर हो जाती तो लड़के कहते, प्रोफ़ेसर चारी हमें तो कहते हैं, खुद दस मिनिट 'लेट' आते हैं। इसीलिए पत्र डायरीमें रख लिया था, कि कॉलेजसे लौटकर डायरी खोलूँगा ही। किन्तु····

पत्र उठा, झटपट लिफ़ाफ़ेका किनारा चीरता हूँ। देख रही है सिलविया, दूर लटकते काँटेको देखती मछलीकी आँखोंमें क्या ऐसी ही चमक होती है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बन्धु," घोषालके माथेपर उसके बालों-की एक लट आ पड़ी है। उसे दो उँगलियोंसे हटाते हुए ही शायद उसने लिखा है, "तुम्हारे लिए 'आकाश-पथ'की एक प्रति भेज रहा हूँ। क्यों? इसलिए कि उसमें लवलीनकी कहानी छपी है।···कौन लवलीन? वही, जिसके विषय-में, अपने पिछले पत्रोंमें मैं तुम्हें लिखता आ रहा हूँ···"

सहसा नौका हिल उठती है। फ्रान्सिस डोरी समेट रहा है, "चारी, लौट चलें?"

मैं उसके खाली काँटेकी ओर देखता हूँ, "जैसा चाहो।"

वह बिना कुछ कहे नौकाका इंजन चालू कर देता है।

सिलविया क्रोध-भरी नज़रोंसे उसकी ओर देखती है, मानो कह रही हो—मुझसे इजाज़त क्यों नहीं ली, हज़रत? कोई हिन्दुस्तानी औरत पसन्द किया है!

किन्तु वह कुछ न कह, हाथकी सिगरेट झड़कर बुझा देती है, और दूसरी सुलगाने लगती है।

रमोलाके जन्मदिनकी पार्टीके बाद खाना-पीना लगभग समाप्त हो गया है। खाने-की मेज़के पास जमी भीड़, दो-दो तीन-तीनकी टोलियोंमें बिखरने लगी है। उनकी नज़र बचा-कर, मैं रौबर्टके कमरेमें खिसक आया हूँ। यहाँ केवल उसकी पुस्तकें हैं। ड्रैसिंग-टेबिल-पर रखा शीशा है, और मैं हूँ।

आज सवेरेसे ही मन उदास है।

शीशेमें खड़ा कृष्णामाचारी पूछता है—क्यों?

निश्चय ही वह बड़े खुले विचारोंवाली है—वैसी, जिसे 'ब्रॉड माइण्डेड' कहते हैं। किन्तु उसके परिवारके अन्य सदस्य शायद पुरा-तन, संकीर्ण विचारधाराके पूजक हैं, अपने घरकी चहारदीवारीके भीतर उसे अपने विचारोंको व्यक्त करनेकी आज़ादी नहीं है। और उसकी वह बेबसी ही, उसकी इस कहानीकी दीवारोंसे टकराती है···

और लगता है, जैसे परिवारकी इस कटु संकीर्णता, और विचारोंकी इस बँधी आज़ादी-के कँटीले दायरोंसे टकराते, वह कभी कोई गहरी चोट खा गयी है—क्योंकि बिना प्रत्यक्ष अनुभव हुए, वह कहानीकी नायिका रत्नाकी टूटी अनुभूतियोंका ऐसा सजीव वर्णन-विश्ले-षण नहीं कर सकती थी।

मैं कहता हूँ—पता नहीं।

—पता तो है। याद आ रही है। लव-लीनकी।

—यह एक ही रही! लवलीनकी याद भला मुझे क्यों आयेगी? जिसे कभी देखा नहीं। जिससे ज़रा भी परिचय नहीं····

—वाह! परिचय कैसे नहीं? अपने कितने पत्रोंमें घोषालने उसके विषयमें लिखा है।

—किसीके लिखनेसे क्या होता है?

—क्यूँ नहीं होता? यह भी तो परिचय-का एक साधन है।

—अच्छा, क्या लिखा है घोषालने? यही तो कि····

पीठ पीछे ऊँची एड़ियाँ खटक उठती हैं। मैं मुड़कर देखता हूँ। सिलविया है। उसके साथ कोई और है। "तुम यहाँ छिपे हो," सिलविया मुसकराती है, "मैं उधर खोज रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, इनसे तुम्हारा परिचय करानेके लिए।"

मैं देखता हूँ—वह अपरिचिता शायद हिमांचल प्रदेशकी बेटी है। शायद वह अभी-अभी भारतसे आयी है। लगता है—उसके शरीरपर लिपटी हलके नीले रंगकी साड़ी यदि कुछ और भी सिमट सके, तो शायद उसे कुछ राहत मिल सके।

"आप, कुमारी शकुन्तला बजाज। आप डॉ० वी० कृष्णामाचारी," काँटेके चारों ओर चक्कर काटती मछली मुसकराती है, "इनका इतना बड़ा नाम, केवल मैं ही ठीकसे प्रोना-उन्स कर पाती हूँ, शकुन! इसलिए, यहाँ इनका नाम चारी है। और असली परिचय यह है कि हज़ारोंकी भीड़में भी ये····"

····ऐसी कौन-सी बड़ी बात लिखी है घोषालने! बस, यही तो लिखा है न कि लवलीन विनोदप्रिय है। मुसकराती है तो उसके उजले दाँतोंकी पंक्ति मनके कोने-कोने-को गुदगुदा जाती है। उस दिन पिकनिकपर····

"मैं झूठ नहीं कहती," सिलविया कह रही है, "तू ही देख ले, क्या भले-भोले इनसान बन, चुप-चुप खड़े हैं!"

मैं चौंककर देखता हूँ। फिर झटपट दोनों हथेलियाँ जोड़ देता हूँ, "नमस्ते। आप····आप सिलवियाकी बातोंमें न आइएगा। आप अभी इसे पहचानती नहीं।"

"जी, मैं इन्हें खूब पहचानती हूँ, जब ये चण्डीगढ़ आयी थीं, तो हमारे घर ही ठहरी थीं।"

"तो आप अभी हालमें ही आयी हैं?"

"जी, हाँ और आप?"

मुझे उत्तर नहीं देना पड़ता। बगलके कमरेमें तानपुरा बजने लगा है, और रोजेली-का स्वर हवामें तैरने लगा है:

पानी के परदों के पीछे
इठलाती तेरी मुसकान
लंगर टूटी नैय्या को
ओ····ओ····ओ····
लंगर टूटी नैय्या को····
वो भा जाती यूँ
ज्यों तट पर बजती
वीणा की तान····

'पीस कोर' की सदस्या बन, जब वह रामनगर गयी थी, किसीने उसे यह गीत सिखा दिया था। और अब प्रत्येक छोटे-बड़े अव-सरपर, अमरीकी उच्चारणकी पुट लिये, वे हिन्दी शब्द गूँज उठते हैं—ओ, लंगर टूटी नैयाको, वो भा जाती यूँ····

"सिलविया, तुमने भी तो सीखा था एक गीत," शकुन पूछती है, "तुम्हें याद है?"

"अरे! यहाँ मत कह देना किसीसे।"

"क्यों नहीं कहूँगी? गीत क्या छिपाकर रखनेके लिए सीखा जाता है? इसके बाद तुम्हें गाना होगा।"

"गाऊँगी। आज नहीं। फिर कभी। चल, आज तुझे····"

····उस दिन पिकनिकमें, एक तितलीके पीछे दौड़ते, उसकी घनी वेणी खुल गयी। उन लम्बे-लम्बे बालोंको अपनी उँगलियोंपर लपेटते वह बोली, "देखो, घोषाल दा, जरा देखो, मेरे ये बाल मेरा जरा भी हुक्म नहीं मानते हैं। किसी दिन वाक़ई गुस्सा आ गया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं इन्हें कटा दूँगी। कटाकर, एकदम किसी यूरोपियन पत्रिकाके मुखपृष्ठका मॉडल बन जाऊँगी। तब तुम भी मुझे नहीं पहचान पाओगे।" यह कहते-कहते, वह एक हाथसे अपने सारे बालोंको सिरपर उठाते, दूसरे हाथसे अपनी साड़ी सँभालते, एड़ियाँ उठाकर, अपने पैरोंपर उचक-उचककर चलने लगी, मानो ऊँची एड़ीके जूते पहनकर....

"चारी, हम लोग घूमने जा रहे हैं। आओ, चलो तुम भी।"

"अच्छा, चलो।"

"....और सुनो, यह मत समझना कि केवल तुम ही उसके विषयमें जानते हो, वह तुम्हें नहीं जानती। ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे विषयमें, मैंने उसे सब कुछ बताया है। सुनकर, वह जंगलकी हिरणी-सी, चौंक-चौंक उठी है। फिर अपनी दोनों आँखोंमें, चाँदकी सारी रोशनी भर-भरकर पूछती है—अच्छा, घोषाल दा, यह तो बताओ, वे कब आ रहे हैं। तुम कब उनसे मेरा परिचय कराओगे....?

नौका-दौड़के समय

छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं, और सब कापियाँ जाँचनी थीं। ज़रा भी समय नहीं था। किन्तु फ्रान्सिसने हठ किया, तो यहाँ आना ही पड़ा।

लेक विनेबागोंमें प्रतिवर्ष, सेल-बोट, पावर-बोट, आइस-बोट, सभी तरहकी नौकाओंकी दौड़ होती है। और अन्य सौ काम छोड़कर भी, फ्रान्सिस उन प्रतियोगिताओंमें भाग लेता है। मैं नहीं जा सकूँगा, मेरे यह कहनेपर वह चुप हो गया था। किन्तु उसके मुखकी ओर देखते, मेरी आँखोंके आगे प्रतियोगिताका चित्र-सा घूम गया था। लगा था, प्रतियोगितामें भाग लेनेवालेके लिए केवल जीत जाना ही यथेष्ट नहीं है। जिस समय वह विजयी बन, अन्तिम रेखाको छूनेके लिए दौड़ रहा हो, उस समय, सामने किनारेपर, दूरबीन लगाये दर्शकोंका बैठा होना, उतना ही अधिक आवश्यक है।

अतः मैंने केवल यहाँ आना ही स्वीकार नहीं किया था, अपितु रोज़ेली, सिलविया, शकुन्तला, रौबर्ट और जौनको भी लिवा लाया था।

और अब प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गयी है। झीलके शान्त जलको चीरती, वेगगामी नौकाएँ, तीर-सी आगे बढ़ रही हैं। और हम सब मन्त्र-मुग्ध-से देख रहे हैं।

किन्तु इधर बहुत दिनसे घोषालका पत्र क्यों नहीं आया है?

क्या लवलीनके कारण, उसे पत्र लिखनेका समय नहीं मिल पाता है?

उसके नये पत्र नहीं आते, तो उन पिछले पत्रोंको ही बार-बार पढ़ता हूँ। और उन्हें पढ़-पढ़कर, अब यहाँ रहना असम्भव हो गया है। लगता है—कुछ दिनकी छुट्टी लेकर एक बार घर जाना ही होगा। उस लवलीनको देखना ही होगा।

छुट्टीके लिए आवेदन-पत्र दे दिया है। मिल जायेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

किन्तु....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे वहाँ पहुँचनेसे पहले ही, क्या लवलीन श्रीमती घोषाल बन जायेगी ?

नौका-दौड़ समाप्त होनेको है। दो नौकाएँ, सबसे आगे-आगे, समानान्तर रूपसे आगे बढ़ रही हैं। क्या उनमें-से एकमें फ्रान्सिस है ? ठीकसे समझ नहीं पड़ता। आँखें धुँधला जो गयी हैं।

शकुन्तलाका हाथ आगे बढ़ता है—छोटा-सा रूमाल। कोनेपर एक रेशमी गुलाबका फूल, "आपकी आँखोंमें शायद बालू पड़ गयी है। मैं निकाल दूँ।"

"नहीं, नहीं," उस छोटे-से हाथकी उपेक्षा कर, मैं झटपट अपनी जेबसे रूमाल निकालने लगता हूँ, "आप तकलीफ़ न करें।"

● वसन्त पंचमीके दिन

बहुत दिनसे प्रतीक्षित, 'आकाश-पथ'की वह प्रति आज सवेरेकी डाकमें मिल गयी। न जाने कितना अच्छा लगा। मनके कोनेमें कोई बोला—आज शुभ दिन है। आजके दिन इस प्रतिका मिलना शुभ होगा।

'रैपर' फाड़कर देखा—पत्रिका सुन्दर है। और उसमें लवलीनकी कहानी है। 'नागफनीकी बाँहोंमें'। तुरन्त ही पृष्ठ पलटे। पहली कहानी उसीकी है।

पढ़ते-पढ़ते ही चाय पी। पढ़ते-पढ़ते ही वस्त्र बदले।

और अब सोच रहा हूँ—घोषाल वास्तवमें ही एकदम भोला शंकर है। इतने निकट रहकर भी, वह इस लड़कीका असली परिचय नहीं पा सका है।

जिस हँसमुख, अल्हड़, विनोदप्रिय किशोरीका चित्र उसने अपने पत्रोंमें खींचा है, उसका इस कहानी-लेखिकामें कहीं पता नहीं है।

वह लवलीन, जिसने यह कहानी लिखी है, अल्हड़-चंचल नहीं, बड़े गम्भीर और संजीदा विचारोंवाली है। उसे बात-बातपर हँसना नहीं, बातका सूक्ष्म विवेचन करना अच्छा लगता है।

यह कहानी उसके गम्भीर व्यक्तित्वका ठोस परिचय दे रही है।

लगता है—वह बातें करना शुरू करती होगी तो सामने बैठे व्यक्ति, उसकी गम्भीर, पाण्डित्य-भरी बातोंको सुन अवाक् रह जाते होंगे।

निश्चय ही वह बड़े खुले विचारोंवाली है—वैसी, जिसे 'ब्रॉड माइण्डेड' कहते हैं। किन्तु उसके परिवारके अन्य सदस्य शायद पुरातन, संकीर्ण विचारधाराके पूजक हैं, अपने घरकी चहारदीवारीके भीतर उसे अपने विचारोंको व्यक्त करनेकी आज़ादी नहीं है। और उसकी वह बेबसी ही, उसकी इस कहानीकी दीवारोंसे टकराती है....

और लगता है, जैसे परिवारकी इस कटु संकीर्णता, और विचारोंकी इस बँधी आज़ादीके कँटीले दायरोंसे टकराते, वह कभी कोई गहरी चोट खा गयी है—क्योंकि बिना प्रत्यक्ष अनुभव हुए, वह कहानीकी नायिका रत्नाकी टूटी अनुभूतियोंका ऐसा सजीव वर्णन-विश्लेषण नहीं कर सकती थी।

किन्तु वह दाग़ डाल जानेवाली चोट, उसे निराशाके कुएँमें नहीं धकेल सकी है। वह उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक भावुक, और अधिक दार्शनिक, बना गयी है। तभी तो रत्ना, ऊँची एड़ीके जूते पहन, लाल बजरीकी सड़कपर चलते, एक जूतेकी एड़ी टूट जानेपर, उसे अपनी दो उंगलियोंपर लटकाकर कह सकती है, "यह आधुनिक सभ्यताका असली परिचय है। यूँ यह हमें चमकाती-दमकाती दिखाई देती है किन्तु एक ज़रा-सी ठोकर लगते ही, यह हमें लँगड़ा बनाकर छोड़ देती है।"

और उस दाग़ डाल जानेवाली चोटके कारण ही, उसने इस बाइस-तेइस वर्षकी आयु-में ही अनेक प्रकारके इनसानोंको बारीकीसे देखना सीख लिया है। तभी तो अजन्ताकी गुफाओंमें भटकते अपने विचारोंको ज़बरन शक-बँगलेमें खींचकर, रत्ना देखती है विजय-को—शीशेमें अपना चेहरा निहार-निहार बाल सँवारते विजयको—और धीरेसे कहती है, "शीशेमें अपना चेहरा देखना तुम्हें अच्छा लगता है"···सभीको अच्छा लगता है। क्योंकि सभी शीशे जादूके होते हैं। किसी भी शीशेमें, किसी इनसानको, अपना असली चेहरा दिखाई नहीं देता।"

इस कहानीको लिखनेवाली लवलीनसे मिलना ही होगा। परिचय पाकर····

बाहर बरामदेमें रोज़ेलीका गुनगुनाना सुन पड़ता है—पानीके परदोंके पीछे इठलाती तेरी मुसकान···ओ, ओ, पानीके परदोंके पीछे···

गुनगुनाते-गुनगुनाते वह कमरेमें प्रवेश करती है, "चारी, तुमने सुना?"

"क्या?"

"फ्रान्सिस और सिलवियामें झगड़ा हो गया। सिलवियाने उसको अँगूठी वापस कर दी है।"

● ईस्टरकी शाम

तीसरे पहर सिलविया आयी। आते ही गरम पटाख़े-सी छूट पड़ी, "चारी, क्या तुम्हें शकुन ज़रा भी पसन्द नहीं?"

यह कैसा प्रश्न! अचकचाकर, मैं उसकी ओर देखता ही रह गया।

वह बोली, "किसलिए? क्या इसलिए कि तुम साउथ इण्डियन हो, और वह नोर्थ इण्डियन? या इसलिए कि उसके माता-पिताने जात-पाँतके बन्धन तोड़कर, अन्तर्जातीय विवाह किया था?"

—क्यों पूछ रही है वह यह सब?

—विसकौन्सिनकी इस विशाल युनिव-सिटीमें अनेक भारतीय छात्राएँ हैं। शकुन्तला बजाज भी उनमें-से एक है। वह सिलविया-की सहेली है, और प्रायः उसके साथ रहती है। इसी कारण जब-तब दिखाई पड़ जाती है। कभी भूले-से मेरी दृष्टि उसके चेहरेपर पड़ जाती है, तो उसके गालोंपर सिन्दूरी रंग चढ़ जाता है, और वह लाजसे सिकुड़कर दोहरी हो जाती है। और मेरी आँखोंके सामने घोषाल आ खड़ा होता है—क्या देख रहे हो, बन्धु! यह 'टिपिकल' हिन्दुस्तानी लड़की है।

उस अनुभवहीन, संकोची-शर्मीली, 'टिपिकल' भारतीय छात्राको मैं क्यों विशेष रूपसे पसन्द या नापसन्द करने लगा! ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई प्रश्न उठे ही क्यों ?

किन्तु सिलविया तो मानो युद्धके लिए तैयार होकर आयी थी—अपने भूरे बाल उसने अत्यधिक यत्नसे सँवारे थे, अधरोंपर गहरी लिपस्टिक थी। और खुले गलेकी लाल पोशाकमें-से छिप-छिपकर झाँकते, उसके उन्नत उरोजोंपर, सफ़ेद मोतियोंकी माला हिल-हिल जा रही थी।

"वह बेचारी तुम्हारे आगे-पीछे घूमती रहती है। और तुम दृष्टि उठा उसकी ओर देखते तक नहीं।"

"सिलविया, यह तुम्हारा भ्रम है। मेरे आगे-पीछे वह भला क्यों घूमेगी ? तुम तो फ़ुलब्राइट स्कॉलर हो। पूरे एक वर्ष भारत रह आयी हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि भारतीय लड़कियोंका विवाह कैसे होता है ?"

"खूब मालूम है," वह चिटख गयी, "इसीलिए कह रही हूँ। तुम्हारा आजका हिन्दुस्तान—वह दस वर्ष पहलेका हिन्दुस्तान नहीं है। इसके अतिरिक्त, शकुन्तलाके माता-पिताने तो, आजसे पच्चीस वर्ष पूर्व अपने-अपने परिवारोंका विरोध कर, अन्तर्जातीय विवाह किया था। वे अवश्य ही यह चाहेंगे कि उनकी बेटी स्वयं ही अपना पति चुने।"

"तुम जानतीं नहीं, सिलविया, स्वयं बन्धन तोड़नेवाले, अपनी सन्तानके विषयमें और भी अधिक कठोर, और····"

किन्तु सिलविया अपने आगे किसीकी सुनना नहीं जानती। इसी कारण फ्रान्सिससे उसकी सगाई टूट गयी है। उसने अपना हाथ मेरे होठोंपर रख दिया, और बोली, "यह अमरीका है, भारत नहीं। यहाँ तुम्हारा पुराण-पन्थी दर्शन-ज्ञान नहीं चलेगा। आज सन्ध्याको तुम डिनरके लिए हमारे घर आ रहे हो। शकुन भी आयेगी। जरा आँखें खोलकर बैठोगे तो तुम्हें पता चल जायेगा कि मेरी बातमें कितनी सचाई है।"

भोजनके समय, मैं वास्तवमें ही आँखें खोलकर बैठा। कितनी ही बार शकुन्तलाकी ओर देखा। किन्तु उसे एक बार भी अपनी ओर देखते नहीं पाया। भोजनके बाद, हम ड्राइंग रूममें आये, तब भी वह मेरे निकट आकर नहीं बैठी। सिलवियाके माता-पिता और रोज़ेलीसे ही बातें करती रही।

किन्तु सिलविया किसी बातको हठ पकड़ ले, तो अपनी बात सच होते देखना ही चाहती है। अपनी कलाईमें बँधी घड़ीपर दृष्टि डालते, शकुन्तलाने विदा माँगी, तो सिलविया बोली, "मेरी मोटर खराब हो गयी है, शकुन, इसलिए तुम्हें पहुँचाने न जा सकूँगी। लेकिन डॉ० चारी तुम्हें पहुँचा देंगे। क्यों चारी ?"

ऐसी स्थितिमें स्वीकृति देनेके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है !

मैंने दरवाज़ा खोलकर शकुनको बैठाया। फिर घूमकर अपनी सीटपर आ बैठा, और एंजिन स्टार्ट किया। साथ ही पूछा, "थोड़ा घूमने चलें ? अभी तो दस ही बजे हैं।"

वह कुछ सिकुड़कर, अपनी ओरके दरवाज़ेसे सट-सी गयी, "घर ही पहुँचा दीजिए। पढ़ना है।"

मौन, छोटी-सी दूरीको भी लम्बा सफ़र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना देता है। किन्तु पासमें वह जो संकोच-सोता बैठी है, उससे क्या बातें करूँ, यह जरा भी समझमें नहीं आया।

कुछ देर बाद, वह स्वयं ही बोली, "सुना है, आपको डायरी लिखनेका शौक़ है।"

वास्तवमें उसने क्या सुना है, यह मैं समझ गया। कहा, "सिलवियाने कहा होगा। उसके अलावा और किसीको तो मालूम नहीं। और जबसे उसकी निगाह मेरी डायरीपर पड़ी है, तभीसे वह मेरी हँसी उड़ाती रहती है कि अन्य भले लोगोंकी तरह, मैं डायरीमें तारीखें क्यों नहीं डालता। क्या तुम भी यही पूछना चाहती हो?"

"नहीं, मुझे मालूम है।"

कुछ विस्मित हो मैंने उसकी ओर देखा, किन्तु हलके अन्धकारमें उसका चेहरा अच्छी तरह दिखाई नहीं दिया। इसके अतिरिक्त वह मेरी ओर देख भी नहीं रही थी। सीधी सड़कपर आंखें गड़ाये बैठी थी। न जाने क्यों मेरा मन हुआ कि उसके कानसे लटकते कर्णफूलको एक बार हलकेसे छू लूँ।

किन्तु मैंने अपनी दृष्टि घुमा ली—सड़ककी ओर देखते हुए ही पूछा, "तुम्हें क्या मालूम है, शकुन?"

वह चुप बैठी सड़ककी ओर ताकती रही।

मैंने पूछा, "बताओगी नहीं?

उसकी अपार्टमेण्ट-बिल्डिंग निकट आ गयी थी। मैंने मोटर रोक दी। मैं उतरकर उसकी ओरका दरवाज़ा खोल सकूँ, इससे पहले ही वह दरवाजा खोलकर उतर पड़ी। मेरी आँखें पुनः उसके कर्णफूलपर अटक गयीं, अतः अपने दोनों हाथ अपनी कमरके पीछे बाँधते हुए मैंने कहा, "बता देंगी तो हमें भी कारणका पता लग जायेगा। नहीं तो हम यूँ ही, मूर्ख ही बने रह जायेंगे।

इस शरारत-भरी बातको सुन, उसके लिपस्टिक-हीन गुलाबी अधरोंपर हलकी-सी मुसकान खिच आयी, "मैंने तो यूँ ही कह दिया था।"

"पहले कभी तो आपको 'यूँ ही' कोई बात कहते नहीं देखा।"

वह लजा गयी। "मैं सोचती हूँ, आप महीना-तारीख़ लिखना इसलिए पसन्द नहीं करते, क्योंकि आपकी दृष्टिमें महत्त्व तारीखों-का नहीं, किसी विशेष समय या परिस्थितिका है, और आप प्राणहीन तारीखोंको नहीं, उन सस्वर, जीवन्त क्षणोंको जीवित रखना चाहते हैं।"

मैं एकदम ही चौंक गया—मुझसे इतनी दूर रहकर, मेरे मनकी इतनी निकट बात, यह भोली-भाली, अनुभवहीन लड़की कैसे पा गयी है?

पूछा, "क्या आप भी डायरी लिखती हैं?"

"जी, नहीं। इतना समय ही कहाँ मिलता है, अच्छा····धन्यवाद।" और मैं कुछ कह सकूँ, इससे पहले ही वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

वह दरवाज़ा खोलकर, इमारतके अन्दर घुस गयी, और उसकी पीठ पीछे दरवाजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्द हो गया। किन्तु कुछ देर तक, वहीं खड़े उस बन्द दरवाज़ेकी ओर देखता रहा, मन पूछता रहा—कौन-सी बात सच है ? तुम्हारी ? या सिलवियाकी ?

• पूर्णिमाकी रात

शकुनकी याद आती रहती है। न जाने क्यों ? उसके गालपर लटकता वह कर्णफूल याद आ जाता है और लगता है, यदि उस दिन उँगली बढ़ाकर उसे दिला दिया होता तो ?

अपनेपर हँसी भी आती है—क्या होगा उस 'टिपिकल' हिन्दुस्तानी लड़कीकी याद करके। शीघ्र ही परीक्षाएँ समाप्त हो जायेंगी। उसे एम० ए० की डिग्री मिल जायेगी और वह चण्डीगढ़ लौट जायेगी। कोई योग्य वर खोजकर उसके माता-पिता उसका विवाह कर देंगे। गृहस्थी और सन्तानके बीच वह यह भी भूल जायेगी कि कभी किसी कृष्णमाचारीसे उसकी भेंट हुई थी।

– और वह लवलीन ?

घोषालका विनोदी स्वभाव है, इसलिए वह प्रत्येकको वैसा ही समझता है। लवलीनके द्वारा लिखी गयी कोई कहानी उसने पढ़ी नहीं है—क्योंकि किसी पुस्तकके दोसे अधिक पृष्ठ पढ़ना, उसके लिए आँखोंपर अँगारे रखनेके समान है। और इसीलिए वह लवलीनका असली परिचय नहीं पा सका है, उसे समझ नहीं सका है।

लगता है, मैं लवलीनको समझ सकूँगा। और····और वह मुझे।

• म्यूज़ियममें

सिलविया मेरे निकट खड़ी है, इतने निकट कि तनिक-सा हिलते ही, मेरी कमीज़ उसकी नंगी बाँहोंको छू सकती है।

हमारे सामने एक प्रस्तर-मूर्ति है। मॉडर्न आर्टका एक सजीव नमूना। कभी लगता है कि सामने एक चीता है, जो किसी वृक्षकी शाखाओंसे बदन रगड़ रहा है। कभी लगता है कि वे दो बालक हैं, जो किसी अद्भुत 'स्पेस-शिप' की रचना कर रहे हैं, और कभी लगता है कि वे दो नर-नारी हैं, जो दौड़ते-दौड़ते थक गये हैं, किन्तु रुकना नहीं चाहते हैं।

और लगता है जैसे सिलवियाके वक्षकी धड़कन बढ़ती जा रही है। उसका कण्ठ भरा-सा आया है, "समझे ?"

"क्या ?"

"देखो," उसकी उँगलियाँ आगे बढ़ती हैं, "यह—ये दोनों सेव हैं। और, यह सर्प। सर्पकी ज़बानने 'ईव'को भ्रमित-मुग्ध कर डाला है, और सेवका गदराया मीठापन 'आदम'के होठोंको ज़िन्दगी दे रहा है।"

उसकी उँगलियाँ, मेरी उँगलियोंमें फँस जाती हैं।

निकट ही दूसरी मूर्ति है। किसी भूचाल-ने उस मूर्तिके दोनों हाथोंको तोड़ दिया है। अब वह धीर-गम्भीर दार्शनिक, सर्पको आगे बढ़नेसे, आदमको सेव खानेसे रोक नहीं सकता है।

मूर्तिका वह चेहरा, फ्रान्सिसके चेहरेसे मिलता-जुलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• विसकौन्सिन रिवरके तटपर

परीक्षाएँ समाप्त हो गयी हैं। आज हम नदी-तटपर पिकनिक मनाने आये हैं।

किन्तु आज शकुन हमारे साथ नहीं है। कल शाम हम लोग उसे एरोड्रोम ले गये थे। उसे लेकर, हवाई जहाज़ आकाशमें चढ़ गया था, तो हम बड़ी देर तक खड़े-खड़े उसकी लाल रोशनीको अदृश्य होते देखते रहे थे।

आज सवेरे घरसे निकलते समय घोषाल-का पत्र मिला था। उस समय हाथमें चाय-का थरमस और बरतनोंकी डोली थी, इसलिए उसे बिना खोले ही जेबमें डाल लिया था। सब सिलविया, रोज़ेली और रॉबर्ट फ़ुटबॉल खेलमें व्यस्त हैं, अतः मुझे पत्र पढ़नेकी पूरी सुविधा है।

लगभग सात-आठ महीने बाद पत्र आया है। अतः पृष्ठोंकी संख्या अधिक है। उसने शिकायतसे लिखा है कि क्यों वह इतने दिन तक पत्र नहीं लिख सका—माँकी बीमारी। उसकी मौत। नौकरीकी खोज। बड़े भाईका मोटर-साइकिल-दुर्घटनामें दोनों पैर खो देना। बहनका विवाह····फिर इधर-उधरकी बातें, मुहल्लेकी दास्तानें, अफ़वाहें, राजनैतिक उथल-पुथलें, कवि-सम्मेलन, अनाजकी कमी और मँहगाई····

और अन्तिम पृष्ठपर, उसने लवलीनके विषयमें दो शब्द लिखे हैं। नहीं, वास्तवमें उसने लवलीनके विषयमें लिखा नहीं है, बल्कि शिकायत की है—कि पिछले नौ महीनेसे वह विसकौन्सिनमें है। मैं लगभग नित्य ही उससे मिलता रहता हूँगा। किन्तु उसके विषयमें कभी दो शब्द भी नहीं लिखे। ऐसा दोस्त हूँ मैं!

यह अभियोग पढ़कर एकदम ही चौंक जाता हूँ—लवलीन यहाँ है? विसकौन्सिनमें? और इतने निकट कि उससे लगभग नित्य ही मिलनेकी सम्भावनाका अनुमान लगाया जा सकता है? और मुझे उसका पता तक नहीं है?

यह कैसे सम्भव है?

यह सच है कि यहाँ अनेक भारतीय छात्राएँ हैं, किन्तु····लवलीन-जैसी लड़की तो उनमें छिपाये जानेपर भी नहीं छिप सकती।

और क्रोध चढ़ आता है घोषालपर—इसे मालूम था कि वह यहाँ है, तो उसका पता मुझे लिखा क्यों नहीं? क्या एक पोस्ट-कार्ड तक नहीं डाल सकता था? बड़ा मित्र बनता है। रोब गाँठता है। बस, यही है उसकी मैत्री!

सोचता हूँ—घर लौटते ही उसे पत्र लिखूँगा। लवलीनका पता पूछूँगा।

और पत्रकी अन्तिम पंक्तियोंपर दृष्टि डालता हूँ—"चण्डीगढ़ यहाँसे पास ही है। पिछले हफ़्ते मैं सरकारी कामसे वहाँ गया था। उन्होंने बड़े ज़ोरसे खातिरदारी की। और, बन्धु, उनसे एक मज़ेदार बात पता लगी। पूछो, किसके बारेमें? किसके बारेमें हो सकती है····"

सहसा लगता है, मेरी आँखोंके आगे कुछ तैर गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रके अक्षर हैं मेरी आँखोंमें, या नदी-की पर्तोंपर उछलता पानी है।

और नीले काग़ज़पर घोषालकी आँखें मुसकरा रही हैं– समझ रहे हो, बन्धु? छोटी-सी तो बात है। प्रकाशनके लिए किसी पत्रिकामें अपनी रचनाएँ भेजते उसे लज्जा आती थी। इसलिए वह 'लवलीन' नामसे भेजन लगी, किन्तु बनारस विश्वविद्यालयमें ऐसी कोई बात भला क्या छिप सकती है। शीघ्र ही, अध्यापक और विद्यार्थी, मित्र और अपरिचित सभी उसे लवलीन नामसे पुकारने लगे। यूँ उसका नाम शकुन्तला है। शकुन्तला बजाज 'लवलीन'।

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देहलीपर पैर रखते ही खिलखिलाती हुई सन्तो अन्दर बढ़ी और भाभीसे लिपट गयी। भाभीने उसे गोदमें भरते हुए कहा, "कैसी रही मेरी बच्ची ?" और फिर दोनोंकी आँखें छलछला आयीं।

केशव एक पैर देहलीके अन्दर और दूसरा देहलीके बाहर रखे-रखे ही खड़ा रह गया था। इस व्यस्त उपनगरमें वे लोग कभी इस तरह मिलेंगे—मदनने सोचा नहीं था। हाथ बढ़ाकर उसने केशवको अन्दर बुलाकर खाट-पर बैठा लिया। केशव उस ऊँची-सी खाटके नीचे दो और खाटोंको घुसी देख रहा था। मदनने कहा, "बम्बईकी ज़िन्दगी है भाई, इस दस बाई दसके कमरेमें कटती है।"

आज रविवार था और मदन अपनी बहन सन्तोको थानाकी इण्डस्ट्रियल कॉलोनीसे लेकर घर आया था। भाभीने पहलेसे ही इन्तज़ाम कर रखा था और सन्तो इस तरह खड़ी देख रही थी जैसे कह रही हो: "अब देखो भैया, कहाँ ये काले दिखते हैं ? कहाँ रंग है ढँका छुपा ?"

और मदन कभी सन्तोको देखता, कभी केशवको और बेअख़्तियार उसकी आँखोंमें गाँव-की हरियाली छा गयी। पतली-पतली पग-डण्डियोंको याद करते ही उसके तलुओंमें सर-सराहट होने लगी। उफ़क़ तक खुला आस-मान आज उसने कितने दिनोंसे नहीं देखा था, ऊँची-ऊँची इमारतों-तले उसकी निगाहें फँस-कर रह गयी थीं। भरीकर सड़कपर-से बस गुज़री और सन्तो भाभीसे बात करते हुए खिलखिलाकर हँसी, जिसे मदन नहीं सुन सका, वह केशवसे ही बात करता रहा। सन्तो कह रही थी, "कितने साल हुए आप लोगोंको देखे, भाभी ! भैया कितने बदल गये हैं यहाँ ! आप लोग तो कभी गाँव आते ही नहीं।" और उसने एक चोर-नज़र अपने उन-पर डाल ली थी। शायद देख रही थी—उनका

क। हा। नी

ढँका-ढँका रंग

•

प्रेमकपूर

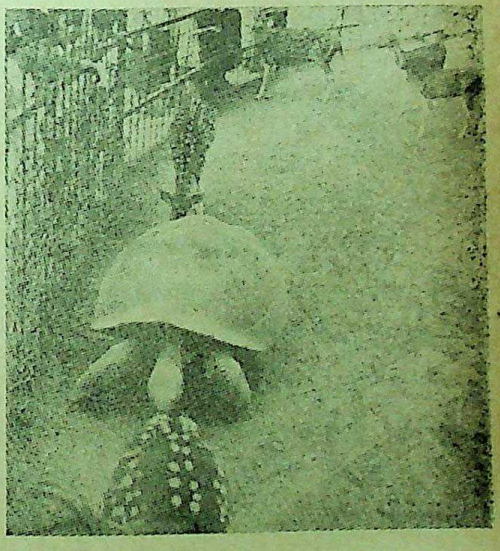

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग इस समय कैसा लग रहा है ?

"भैया बैदल गये हैं....." मदनका हाथ सीनेपर उठ आया और उसने उठती हुई जलनको गदेलोकी रगड़से दबाना चाहा फिर केशवसे उसकी मिलकी बात करते हुए बालों-पर हाथ फेरता रहा। केशव उससे उसके ऑफ़िसके बारेमें बात कर रहा था, जिससे मदनकी आँखों-तले सतमंज़िली इमारतका आखरी फ़्लोर दूर तक खिचता चला गया जहाँ वह नौसे पाँच तक बैठा नक़ली छतकी चिकनी सफ़ेदी ताकता रहता है और बन्द खिड़कियोंके भीतरकी एयर कण्डीशन हवा उसे पिघलाया करती है। मुजायककी चिकनी सपाट फ़र्शको देखते हुए कभी-कभी उसका जी उनपर लोट-पोट करनेके लिए मचल उठता है। वह काम करते-करते हथेली फैलाकर टेबुलपर लगे शीशेकी सतहपर रख लेता है, जिसकी चिकनी ठण्डाहटसे उसकी गदेलियाँ देर तक चुनचुनाया करती हैं—इस तरह छूना अच्छा लगता है। कामकी धुनमें वह क्या-क्या नहीं भूल जाता। सामने केरिडोरसे गुज़रता हुआ लड़कियोंका ठट्ठ देखता है और उसकी नसें सनसना आती हैं—लड़कियाँ गिरोह-मे ही क्यों चलती हैं ?

गाँवकी मेंड़पर बैठे हुए भी तो वह इसी तरह सोचा करता था : खेतोंसे लौटती हुई लाइन डोरी बाँधे औरतें--सिरपर घास-चारेके गट्ठर, अपने ही बोझसे दबी खमखम आती हुई और दूर कहीं कोई कोई कानपर हाथ रख अलाप ले रहा होता था : 'ओ नदियाँ तीरे बालूके टीले—'। कचनार खेतोंमें भुट्टे, खीरे और बालियाँ। आसमानपर ऊदे बादल, हरे धानके खेत और लाल रंगकी चुंदरियाँ —यानी ढेर-सी वीर बहुरियोंकी लाइन-डोरी! —कितनी-कितनी चीज़ोंसे मायूस रह गया है वह !

और सन्तो कह रही थी, "यह सब तो कभी मैं सोच ही नहीं सकती थी, भाभी, कि बम्बईमें यह सब इस तरह देखनेको मिलेगा। तुम्हें कैसा लगता है इस छोटे-से घरमें? और भैयाको देखो, यहाँ कितने दुबले हो गये हैं !"

"चल ! मोटे ही कब रहे ?" भाभीने मीठी झिड़की दी।

मदनको सन्तो अगर केशवके साथ नहीं, कहीं अकेली दिख जाती, तो वह क्या उसे पहचान सकता था। पाँच बरससे पहले देखी हुई सन्तोमें और आजकी सन्तोमें कितना फ़र्क़ आ गया है। बड़ी मुन्नी देर तक सन्तोके पास नहीं गयी थी, फिर वह जल्दी ही उससे पच गयी, क्योंकि सन्तो काफ़ी मिठाइयाँ लादे थी। वह छह बरसकी लड़की सन्तोके गले-में अपनी मुलायम-मुलायम बाँहें डाले झूल रही थी। मदन केशवसे गाँवकी बात कर रहा था, शादीके बाद वह फिर घर गया था और रज्जन चाचा सन्तोके बाबूकी बात आते ही उसके सामने एक चेहरा नक्श हो आया। कन्धेपर चारखानेवाला लाल रंगका गमछा डाले, सिरपर खिचड़ीवाले बाल और बड़ी झाड़ूदार मूछोंवाले चाचा हमेशा सिगरेटकी पैरवाली सिलाई मशीनपर झुके हुए ही तो दिखते हैं। अभी भी उकड़ूँ बैठे चाचा उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिख गये थे: ठीक कहता होगा लाला तू, अपने बहनों तो किसीने पढ़ा नहीं, तू समझदार है, पढ़ा-लिखा है, पर मैं इत्ता जानता हूँ मेरे एक नहीं तीन-तीन हैं लाला !''

वह चाचाकी बात सुनी-अधसुनी करके धप्-धप् भीतर चला गया था। पीली मिट्टीसे लिपा-पुता पुराना कच्चा मकान, जिसमें कई अँधेरी कोठरियाँ थीं। एक छोटा-सा आँगन था, जिसके एक कोनेमें पूरबकी ओर तुलसी-का थाला था। सन्तो वहीं खड़ी थी।

जब भी उसके बाद सन्तोकी बात चली है, उसे अनायास वह क़स्बेका घर और आँगन याद आ जाता है; जिसके एक कोनेमें तुलसी-के थालेके आगे अधटँगी धोतीमें सन्तो खड़ी दिख जाती है। उसे याद नहीं, उसने सन्तोसे किस तरह बात की थी, पर बात उसकी पढ़ाई और फ़ीससे सम्बन्धित थी और सन्तोका कुम्हलाया चेहरा खिल उठा था। वह खिला हुआ चेहरा और हँसती हुई आँखें उसे कहीं भी इस ब्याही सन्तोमें खोजनेपर भी न मिलीं।

सन्तोने इण्टर पास कर लिया। क़स्बा छोड़े हुए उसे कई बरस हो गये। चाचाके ख़त कम-कम आते रहे। केशव कह रहा था, "चाचा अब बहुत लट गये हैं" मदन जानता है ज़माना कहाँसे कहाँ चला गया है। मिर्ज़ई और फतुई सीधा कुर्ता सीनेवाले चाचाकी आमदनी और घट गयी होगी। अब गाँवमें भी तो चलन बदला है। उसने बरबस केशव-से वह सब बातें कीं, जो वह नहीं करना चाहता था।

सन्तो नहीं बता सकी कि किस अधीरतासे उसने पहली बार आँख फाड़कर देखा था, जैसे वह उनका समूचा रंग एक बारमें ही देख लेना चाहती थी। ढँके हुए रंगकी जो कल्पना उसने की, कहीं केशव उसके सदृश होता तो! उसका सारा शरीर झरझरा आया था और वह पसीने-पसीने हो उठी थी।

शादीसे पहले भी उसने केशवको देखा है। चाचाने लिखा था: "लाला तुम हम सबको छोड़कर इत्ती दूर चले गये। मैं कहता था न, लड़कीको इत्ता पढ़ाना ठीक नहीं। अब उसकी शादीके लिए पढ़ा-लिखा लड़का कहाँसे लाऊँ। और अगर लड़का मिल भी जाये तो दहेज ?"

मदन हँसकर इसे तो नहीं टाल सकता था। उसने सोचा था सन्तो पढ़कर मास्टरी कर लेगी, तो उसकी छोटी बहनें भी पढ़ जायेंगी। घर बदल जायेगा। पर इसी बीच आनन-फानन वह इतनी दूर बम्बई चला आया और सब तार बिगड़ गया। फिर एक ख़तमें चाचाने केशवका पता भेजा था—लड़का इसी शहरका है, वहाँ बम्बईमें इंजीनियर है। तुम बात करो, शायद राज़ी हो जायें। देखना कैसा है लड़का तुझे पसन्द है ?

फिर कई रविवार वह उस लड़केका पता लिये भटकता रहा। लड़का उसे पसन्द आया। वह इंजीनियर नहीं ओवरसियर है—उसने चाचाको लिखा, नौकरी अच्छी है, तरक़्क़ी करेगा, पर एक ऐब है। लड़केका रंग काफ़ी ढँका है।

और इस बीच सन्तोको भाभीने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास चौकेमें पीढ़ेपर बैठा लिया था। "देख ये मैंने अचार बनाये हैं बम्बईमें मसाले भी ढंगके नहीं मिलते!" वह जानती है सन्तोको खटाई कितनी पसन्द है।

"यहाँ नीबू दो-दो आनेका मिलता है, भाभी, वह भी सड़ा पीला!"

और भाभीने बात काटकर पूछ लिया था: "इन्होंने लिखा था, लड़केका रंग ढँका है। तेरा तो जी कैसा-कैसा हो गया होगा!"

"भाभी!" मीठे लहजेमें मठराकर लहरा आयी सन्तो और जलाकर रह गयी। जैसे वह खुद ही भरी बैठी थी पूछनेको बहुत कुछ। वह बार-बार एकके नीचे एक ठूँसी तीन खाटोंको देख रही थी। कैसे सोती होगी भाभी इत्ती-सी जगहमें चार बच्चोंके साथ। और जब भाभीने बहुत कुरेदा तो वह पटसे कह गयी थी, "क्यों पूछती हो भाभी, क्या तुम जानती नहीं हो, अपना बस होता है कहीं ऐसी बातोंमें।"

"यूँ तो तेरे इत्ती पढ़ो-लिखी नहीं मैं। फिर भी मैं हमेशा कहती थी, क्यों लिख दिया ऐसे, कहीं इन्हींसे शादी हो गयी, तो सन्तो क्या कहेगी। पर ये तेरे भैया हैं ही ऐसे, कहने लगे मैं यह नहीं चाहता कि जब बारात दुआरे पहुँचे, तो लोग अँगुली उठायें, कहें रज्जन चाचाकी मति सठिया गयी है।"

मदन बात केशवसे कर रहा था, पर उसका कान अन्दर ही लगा था और सन्तो थोड़ी देरमें काफ़ी खुल गयी थी, वह घुलघुल-कर भाभीको शादीके क़िस्से सुना रही थी। उलाहने दे रही थी—"आप लोग शादीमें नहीं आयीं, चाचा कितना अकेला महसूस कर रहे थे।"

"यहाँसे हज़ार खर्च करके आती और इतमीनानसे रहनेको भी न मिलता, तो क्या फ़ायदा था। सोचा, पैसे रेलवालेको देनेसे अच्छा है काम आयें। छोटी तो इस साल दसवेंमें होगी?"

"हाँ! मैं तो कुछ नहीं कर सकी भाभी, घरके लिए। चाचाको न जाने क्यों भार-सी लगती थी, पर छोटीको मैं पढ़ाऊँगी अब, भैयाको तकलीफ़ नहीं होगी। और यह गुड्डी भी तो स्कूल जाती होगी। बम्बईका खर्च भी कितना है।"

सन्तोकी बातोंकी भनक मदनको बराबर मिलती रही। कई बार वह इस बातको सोचते-सोचते रात कोरी आँखोंमें काट देता था। "क्या क़स्बेसे इत्ती दूर आकर उसने बुरा किया? क्या हाथ लगा? ऐसे ही तो ज़िन्दगी वहाँ भी चलती थी।"

सन्तोने बम्बईके सपने जो कुछ बनाये थे, उससे यह बम्बई कितनी अलग थी। वह थानाके जिस इण्डस्ट्रियल क्वार्टरमें रहती थी, उसकी ज़िन्दगीमें क़स्बेकी ज़िन्दगीमें कोई फ़र्क़ था तो इतना, कि यहाँ लोग ढेर-से थे, वे तरह-तरहके थे और चीज़ें मँहगी थीं। नहीं तो क्या, यहाँ भी लड़के-लड़कियाँ सड़क-के किनारे लाइन डोरी बाँधकर टट्टीके लिए जहाँ-तहाँ बैठ जाते हैं और नालियाँ काई और गन्दे पानीसे बजबजाया करती हैं। लोगोंकी बोलीमें फ़र्क़ था, पर उनकी आदतों-में नहीं। भैयाके इस मकानमें उसने ठाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी लगे देखे थे और आले भी। पीली मिट्टीसे लिपी दीवार और गोबरसे लिपी कोठरियोंकी खुशबूसे वह अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकी थी। उसने कहा कि, "यहाँ थानाके मकानके फ़र्शपर लाल रंगकी मुजायक लगी है, पर मकान इतने ऊँचे-ऊँचे हैं कि धूप नहीं आती, दीवालोंकी हर सूराखमें खटमल हैं। और कहीं भी कुछ हटाओ तो तिलचट्टे—।" कहते हुए वह हँस पड़ी। भाभी आटा गूँथती रही और वह भाभीके चलते हुए हाथको देखती, अचार चाटती हुई बोली, "कभी-कभी मुझे सपना आता है : जैसे खड़ी दोपहर मैं अपनी कोठरीमें बैठी हूँ। छप्परके सूराखोंसे धूपके गोल-गोल घब्बे नाच रहे हैं। कैसा अच्छा उजाला लगता है!"

"और इनके मकानमें ?"

जैसे ढेर-सी तिनगियाँ उसके बदनमें लग गयी थीं। फिर वह अपनेको बचाते हुए बोली, "रही कहाँ भाभी, वहाँ, मैं अच्छी तरह।"

फिर देर तक वह सामनेकी ताकपर रखे कनस्तरों-डिब्बोंको सजा हुआ देखती रही। उसके अपने मकानमें कोठरीके बाहर सहन पड़ा बरामदा था, जिसमें उसका बाप हमेशा झुककर आता था और वह सोचा करती थी कि वह कब बाप बराबर हो उठे कि उसी तरह झुककर बरामदेमें आये और घरके अन्दर ऊँचे ताक छिक्कोंपर टँगे गुड़, मक्केके भुने हुए लड्डू, बिना किसी रोकके उतार-कर खा सके। उसके घरमें टँगे छिक्के मुलायम डोरीके होते थे पर यहाँ भाभीके यहाँ सफ़ेद चमकते तारके बने छिक्केमें आलू, प्याज और तरकारी टँगी देखकर वह अपनेको न रोक सकी और खड़ी हो छिक्केको अँगुली-से देर तक नचाती रही।

उस घरमें जहाँ उसका बचपन खेला था, किस तरह उसकी आँखों-तले उतर आता था। भाभी केशवकी बात किये न अघाती थी और सन्तो उनकी बातोंका छोटा-छोटा उत्तर देकर खुद कहीं और जो रही थी। वहाँ जहाँ उसने जनम लिया था। उस घरमें जहाँ उसके लिए नाउनने छोटे-छोटे मिट्टीके चूल्हे बनाये थे। दीवालमें धानका लावा भरने और दिये जलानेके लिए घरौंदा बना था, ताके बने थे। एक ओर छोटा-सा एक और घरौंदा था जिसपर छोटे-छोटे काठके टुकड़ोंपर कतरन और कपड़े बिछे थे। वह रंगीन कपड़े जो वह चाचाकी दूकानसे उठा लाया करती थी जिसपर अच्छी और बुरी सूरतोंवाली रंगीन गुड़ियाँ बैठी रहती थीं। दरअसल उसकी माँको गुड़िया बनानेका बड़ा शौक़ था—उसने यह माँसे ही सुना था और शायद इस शौक़के ही कारण माँको पहलौठीमें लड़का नहीं लड़की हो गयी थी। उसने कभी माँको गुड़िया बनाते खुद नहीं देखा। उन गुड़ियोंके आगे पीतलके छोटे-छोटे बरतन धरे रहते थे। गुड्डोंकी एक अलग टोली थी। उसी एक कोनेमें तिनकों और मिट्टीसे बनी सिंगर मशीन रखी थी और एक ओर बापकी सूरत-वाला एक गुड्डा घरौंदेके पीठ लगाये बैठा रहता था।

उसे पता नहीं, उसने कब गुड्डा खेला और कब बड़ी हो गयी। उसने हाई स्कूलसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संस्कृत पढ़ी थी इसलिए अकसर जब वह खाली रहती, तो उसका दिमाग़ अपने-आप ही एकवचन और बहुवचन रहने लगता था। उसने और बड़े होकर मज़ेसे कालिदासके नाटक पढ़े थे और उनके रंगमें हमेशा-हमेशाके लिए डूब गयी थी।

पहले वह मदन दादाको अपने कितना निकट पाती थी। सूरदासके कितने भजनोंके अर्थ दादा उसे पढ़ाया करते थे। कालिदास पढ़ते-पढ़ते जब वह किसी बातपर अटक जाती थी तो हफ़्तों अटकी रह जाती थी, वहाँ दादा तो थे नहीं, जो वह उनसे उन कठिन शब्दोंको हल करा लेती। अटकलसे ही उसने उनके माने लगा रखे थे।

और जब दादाने लिखा था, उनका रंग ढँका-ढँका है, तो वह समझ गयी थी, यह बात दादाने किसी औरके लिए नहीं लिखी सीधे उसके लिए लिखी है वह जो किसी यक्ष-की विरही प्रिया है जो अन्तःपुरीकी वाटिकामें बैठी है, जिसमें उसने एक छोटे-से मन्दार वृक्ष-को, जिसके पुष्प-स्तवक हाथ-पहुँचके भीतर थे, पुत्रवत् पाल रखा था। इस उद्यानमें माणिक-मणियोंकी सीढ़ीवाली एक वापी थी, जिसमें वैदूर्यमणिके नालोंपर स्वर्णकमल खिले हुए थे और हंस-गण विचरण कर रहे थे और वह क्रीड़ा-पर्वत या जिनपर रहनेवाले मयूर मेघ-दर्शनसे, प्रसन्न हो नाच उठते थे····

सन्तोने न जाने कौन-कौन-से वृक्ष इस वाटिकामें लगा रखे थे। माधवी लताका मण्डप कहाँ था, फूलोंवाले अशोक और बकुल-के वृक्ष कहाँ थे, यह तो वही जान सकती है। कितना अनुराग था शिवके लिए उसके मन-में। तपस्या-निरत पार्वती। क्यों लिखा था दादाने कि उनका रंग ढँका-ढँका है?

और भाभी आँटा गूथकर हाथ धो रही थी और वह पूछ बैठी थी—"क्या भाभी, तुमको भी इनका रंग ढँका-ढँका लगता है?"

भाभी एकबारगीके इस प्रश्नसे चकरा उठी और हँसकर देखती हुई झटकेसे बोली, "शादीके बाद बहुतोंके रंग बदल जाते है।"

सन्तो नहीं बता सकी कि किस अधीरता-से उसने पहली बार आँख फाड़कर देखा था, जैसे वह उनका समूचा रंग एक बारमें ही देख लेना चाहती थी। ढँके हुए रंगकी जो कल्पना उसने की, कहीं केशव उसके सदृश होता तो! उसका सारा शरीर झरझरा आया था और वह पसीने-पसीने हो उठी थी।

शादीका धमाल और स्वसुरका घर! ढोलक, गीत और लोगोंके क़हक़हे, इतने तीखे और पैने, जिन्हें वह कभी नहीं समझ पायेगी। एक दिन, दो दिन, तीन दिन। वह केशवको कहीं किसी भीड़में खड़ा देख लेती और बस! पहला दिन शनिश्चरका था और फिर खड़ा बार, सोमको गंगापूजन नहीं हो सका था। उसने केशवको परेशान देखा था। आज वह उसका मुँह देखनेको तरस गयी थी कि साँझ ढलने-ढलने-को हो आयी। दो दिनमें उसने बहुत-कुछ अन्दाज़ लिया था। यह घर उसके घरसे बड़ा है। भैंस है, जो पिछवाड़े बँधी रहती है, उसके एक छोटी-सी पड़िया है। दूरपर चौका है। कई कोठरियाँ हैं, जिनमें बाहरसे आकी चाचो-भाभी टिकी हैं। और सास, अधेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमरकी सास, ज़्यादा चटकन-भटकनवाली है। वे उसे बहुत अच्छी लगीं।

झुटपुटा होते-होते उसे फिर वह सूरत दिख गयी। केशवकी आँखें जैसे कुछ कह रही थीं। मन्त्रमुग्ध-सी वह उनकी कशिशपर खिंचती चली आयी। हलके झुटपुटेमें वह चेहरा और भी दिलकश हो उठा था। शीत-की साँझका रंग भी कैसा होता है, जिसमें एक भटकी हुई रूहकी तरह वह उसके इशारे-पर बढ़ चली थी। फूल, पौधे, लतर जो मकानके उस भागमें लगे थे, तीखी हवाओंमें झूम रहे थे। एक गहन सन्नाटा उधर व्याप्त था। सन्तोकी सासजी ठाकुरजीकी पूजामें लीन थीं। श्लोक और घण्टीकी आवाज़ने सब कुछको एक अनन्त संगीतमें ढाल दिया था। चौकेमें किसीने तरकारीमें छौंक डाली थी।

उसके साथ सन्तो आगे बढ़ी और आगे····और आगे····। फिर उसने आहिस्तासे हाथ बढ़ाकर सन्तोको छू लिया और अनवरत कशिश, खींच कि सन्तोके गाल उसकी नाकसे जा टकराये। उफ़्! उनकी नाक किस क़दर ठण्डी हो रही थी! खिंचा हुआ हाथ उसने बेताबीसे अपने मुँहपर रख लिया। तेज हवाओंकी धारने उसके माथे, चेहरे, नाक और गालोंको बर्फ़ बना दिया था। लेकिन हाथोंको गरमी लग आयी थी। वह अपनेको न रोक सकी और अपने छोटे-छोटे गरम-गरम हाथ उसके गालोंपर रख दिये। यह एहसास उसे जीवन दे रहा था।

वह अपनेमें एक लम्हेके लिए उस क्षण लौटी, जब वह केशवके साथ भैंसके पास पड़ी झिंगना खाटपर गिर चुकी थी। दोपहरको वह अपने छोटे-छोटे हाथोंसे भैंसके बच्चेको सहला रही थी तब यह जगह उसे कितनी गन्दी लगी थी। दो क्षणमें ही खराइँदसे उसका सिर फटने लगा था। तब यहाँ धूप थी और वह इस झिंगना-सी खाटपर बैठते हुए झिझक रही थी, कहीं वह गिरते ही ज़मीनमें जा पड़ी, तब! शायद यह झिंगना-से बाध उसका बोझ नहीं सँभाल सकेंगे। लेकिन वहाँ वह सब-कुछ नहीं था। हो आये झुटपुटेका संगीत था। सरसुर करती हवाओंमें संगीत था। फूलोंकी खुशबू उसे केशवके बालोंसे उठती लग रही थी और पत्तोंकी सरसराहटमें एक गति बन उठी थी।

वह वहाँ केशवके साथ उस तरह थी, जैसे जान ही न हो। केशवने उसके बहुत पास आ उसका चेहरा अपने दोनों हाथोंमें आहिस्तासे यों थामा, जैसे वह हलके धक्केसे चटक जानेवाला काँच हो। एक क्षणके लिए सन्तो पतझड़के पत्तेकी तरह सिहर उठी। उसका चेहरा केशवके हाथोंमें था। उसकी आँखें केशवकी आँखोंके कितने निकट थीं—उसका चेहरा उनके चेहरेके कितने पास था। उसके होठ केशवके होठमें थे। केशवके चेहरे-की चमक जो उसने अपनी आँखोंमें समेट ली थी और उसकी आँखोंकी चमकीली रोशनी निकल-निकलकर केशवके चेहरेको आलोकित कर रही थी। केशवके बारीक फूलों-से होठ और उसका गरम तपता हुआ चेहरा····।

यह लम्हा किस क़दर जानलेवा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर धड़-धड़, जैसे कहीं आग लग गयी और शोले भड़कने लगे। लजाता, झिझकता, काँपता यह लम्हा उसके पास आया और पास···और पास ! सब कुछ उससे छूट गया था, वह केशवकी थी, अपने केशवकी, और इसमें भी जैसे वह पूछ रही थी : क्यों लिखा दादाने उनका रंग ढँका-ढँका है, कोई रंग, कोई फ़र्क़, कोई दुःख, कोई मजबूरी उसके केशवसे दूर नहीं कर सकती—वह इनके बग़ैर कैसे जियेगी ! अभी वह पूरी तरह जी भी न पायी थी और वह रूह बन गयी थी कि किसीने उसका नाम लेकर पुकारा—कि केशवने सन्तोका चेहरा अपने हाथोंसे छोड़ दिया। वे आँखें जो अभी-अभी उसमें डूबी हुई थीं, लम्हेके एक हज़ारवें हिस्सेमें उससे ज़बरन एकदम दूर हो गयीं। केशव लपककर उठा और तीरकी तरह हवा हो गया। उसकी साँस यों चल रही थी, यों चल रही थी कि··· और तबतक सासूजीने अपने बेटेको भागते हुए देख लिया था। और वे उस झिंगने-सी खाटके पास आ खड़ी हुई थीं, जहाँसे लाख कोशिशके बाद भी सन्तो जल्दीसे निकल नहीं पायी थी। वह उठकर बैठ गयी थी, लेकिन खड़े होनेकी हिम्मत नहीं थी, नहीं खड़े हो सकनेसे वह कैसी मजबूर थी। ऐसी गँदली, जैसी किसीने कीचड़के चभच्चेमें उसे बैठा दिया हो। और सास बकती जा रही थी, "एक दिनका सबुर नहीं हुआ निगोड़ीसे, बिना गंगा, देबिन पूजे घर धाल दिया इसने।"

"मैं कैसे उन्हें चुप कराती," सन्तो खाने के बाद अपना दुःख पहली बार किसीके साथ बाँटकर हलका कर रही थी, 'भाभी, तुम नहीं जानती, कैसी सड़ाँध थी वहाँ, भैंसके गोबर की और वह झिंगना-सी खाट और मरी मैं। सारे दिन मैं चोरकी तरह सबसे मुँह छिपाये फिरती रही। फिर वहाँ जितने दिन रही, तुम अन्दाज़ लगा सकती हो भाभी, मेरे ऊपर कैसी बीती होगी। मेरा जी धकधक-धकधक अभी भी करने लगता है।"

मुँहमें सुपाड़ी रखकर भाभी सन्तोको देखतीकी देखती रह गयी थी और सन्तो नत आँखें नीची किये खड़ी अँगूठेसे चिकनी फ़र्श कुरेद रही थी। भाभीने उसे गोदमें भर लिया था। बाहर केशव और मदन किसी बातपर ज़ोरोंसे हँस रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह और जगह

हृदयेश

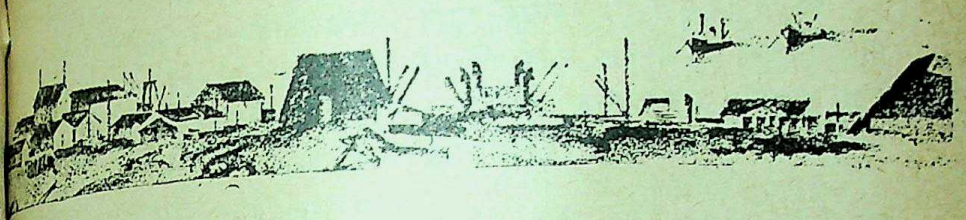

मुरारी कुसदन देरसे लौटा।

वह समस्या, जो किसी भारी और भद्दी शिला-जैसी थी, यों जिस-तिस प्रकार ठेल दी गयी थी, पर वह नहीं चाहता था कि उसके बाद जो किया जाना था, उसे अन्तिम रूप उसकी उपस्थितिमें ही दिया जाये। दूसरोंके लिए स्थिति उसके कारण असुविधाजनक हो रही है, यह अनुभूति उसे कुछ इस प्रकार कोंच रही थी जैसे वह दावतकी सजी-सुधरी मेज़पर बैठा है और उसके सामने अति स्वादिष्ट और मूल्यवान् भोज्य पदार्थ परोसे गये हैं और एकाएक उसे पता लग गया है कि मेज़बानने वह सब उधार लेकर विवशतावश उसके लिए जुटाया है; और फिर वह दावतकी मेज़से न उठ सकता है और न उत्साह और रुचिके साथ खा ही पाता है। ····बीचमें जो रिश्ता है उसकी वजहसे उन्हें असुविधाके लिए शायद दुःख नहीं होगा, वे उसे सन्तोष या कुछ ऐसा ही मानेंगे, पर उसके अपने अन्दर जो किसकिसैला गरमबगूला घुमड़ रहा है वह····?

छोटी और सामान्य बातें भी क्यों किसीको इतना अधिक मथती हैं?

नवम्बरके आखिरी दिन थे और सर्दी होना ही चाहिए। इन दिनों रात होते ही अँधेरा जैसे ख़ूनके स्याह मायल चकत्तों-जैसा जम जाता हो। दफ़्तरका सतीश मिल गया था और वह उससे ढेर सारी बेकारकी बातें करता रहा था। फिर वह देर तक बिलावजह सड़कसे लगी एक टाकीज़के कॉरोडारमें घुसकर बाहर जालीदार खिड़कियोंमें चिपकी तसवीरें देखता रहा। इसके बाद एक सिगरेट सुलगाकर उस ओर निकल गया जिधर पाँच-मंज़िला एक नयी इमारत बन रही थी। यों वह उसे पहले भी देख चुका था। जब वह लौटकर अपनी गलीमें आया तब वकील साहबकी बैठककी बत्ती बुझ चुकी थी; बदरी दूधवाला अपनी दूकानपर कूँड़ेमें दही जमानेके लिए दूध उड़ेल रहा था; खण्डहरकी ओर मुँह किये एक कुत्ता रुक-रुककर गुर्रा रहा था····।

अपने घरके मोहरेमें घुसनेसे पहले उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बग़लके दरवाज़ेवाले मकानकी ओर देखा। मालिक-मकानका लड़का आकर अब उसमें ख़ुद रहने लगा था। दो महीने पहले वहाँ रुक्मो भाभी रहती थीं। एक नाज़ुक-सी सरसराहटकी लहर उसकी रगोंमें दौड़ गयी।

सिदरीमें एक मुड़ी हुई सलाख़के सहारे लालटेन लटकी हुई थी और उसका झिल्ली जैसा धुँधलाया प्रकाश फैला हुआ था। उसके अन्दर प्रवेशते ही दो जोड़ी आँखें उसके चेहरेपर जड़ गयीं।

"कहीं कुछ काम था?" अम्माने अपनेको फैलाना चाहा। या शायद अपनेको समेटा ही हो।

खाँसीके ठाँसोंसे बाबू खाटपर बैठे-बैठे हिलने लगे जैसे किसी काग़ज़के पुतलेको हवा छेड़ गयी हो।

उसने बाबूकी ओर देखा। गाढ़ेकी गंजीके ऊपर वह तम्बाकू रंगका स्वेटर पहने थे, जगह-जगह जिसमें तार निकले थे। किसी टूटती लहरकी तरह उनका सीना उठ और गिर रहा था।

अम्माकी आँखें उसके चेहरेपर अब भी जमी हैं, उसने महसूस किया।—यों ही—दफ़्तरका सतीश मिल गया था।—वह बोल गया।

अम्माके पूछनेमें क्या विह्वलताके साथ-साथ एक हलका-सा भयका भाव नहीं था? बाबू और अम्माको सन्देह है कि वह सन्तुष्ट है। उसके आनेसे पहले शायद वे उसीके बारेमें बातचीत कर रहे थे और उसके लौटनेमें देर हो जानेसे चिन्तित थे।

उसे सतीशकी कही गयी बात याद आ गयी। बातचीत ख़त्म करते हुए उसने पूछा था—"बिदा करा लाये? दोपहरकी गाड़ीसे आये होंगे?—" फिर ओठोंकी कोरें फैलाता हुआ मुसकरा दिया—"यार, जाओ घरपर। बीवी इन्तज़ार कर रही होगी!...."

दूसरी ओर छोटे-से आँगनके सिरेपर जो कोठा था, उसकी देहलीज़पर निकलकर कन्तो खड़ी हो गयी थी। वह फिर आँगन पार कर मुसकराती हुई वहाँ आ गयी जहाँ अम्मा थी।

"भाभीके साथ ख़ूब बातें छन रही हैं, क्यों न? जबसे आयी है, मुँहसे मुँह जोड़े है।"—अम्मा बिहँस दी और उसकी ओर देखने लगी।

पर वह कन्तोकी ओर देखता रहा जो अब भी मुसकरा रही थी। कन्तो उससे तीन वर्ष ही छोटी है। उसकी शादी उससे पहले होनेको थी, किन्तु जुड़ी बात टूट गयी। कई बार टूट गयी। बाबू और अम्मा फिर कोशिशमें हैं कि कहीं बात जुड़े। सिरसे ऊपर होता पानी नीचे उतरे।

उसे लगा कि सामने कोठेमें साड़ीकी हलकी-सी सरसराहट हुई है। वहाँ बाब शायद लैम्प जल रहा था। झिल्ली-जैसी रोशनी वहाँ भी फैली थी।

कुछ देर ऐसा लगा कि किसी मूक चलचित्रके वे पात्र हैं।

वह अब कोठेके अन्दर था। शादीके बाद जब पत्नी आयी थी तो सात दिन रही थी और सात दिनोंमें शायद सारा संकोच, झिझक और अजनबीपन दूर हो चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी खाटपर दोनों पैर लटकाये बैठी थी। दोनोंमें चाँदीकी पतली पाज़ेब थी। तलुवे और एड़ी महावरसे गुलाबी थे। खाटपर सफ़ेद चादर बिछी थी। पत्नीके दाँतोंकी लजीली मुसकराहट भी शायद इतनी ही धवल थी। कोठरीकी इस बीच सफ़ाई हो गयी थी। जाला वग़ैरह पोंछ दिया गया था। पर सफ़ाई और पोंछे जानेका भाव वहाँ छूट गया था।

सिदरीमें बाबूको खाँसी फिर उठी थी और वह फिर खाँसने लगे थे। बाबूको खाँसीकी शिकायत है। खाँसी सर्दियोंमें और ज़ोर हो जाती है।

बाबू अब सिदरीमें सोया करेंगे और वह कोठेमें। एक लम्बे समयसे, शायद अपने होश-हवास से, वह बाबूको इसी कोठेमें सोते देख रही थी। गरमियोंमें वह कोठेके आगेके किवाड़ और पीछे गलीमें खुलनेवाली खिड़की खोलकर सोते थे और बरसात और सर्दियोंमें दरवाज़ा भेड़कर। वह अबतक दूसरोंके साथ सिदरी-में सोता था।

शादीके बाद यह समस्या उठ खड़ी हुई थी कि बहू कहाँ सोयेगी? बहू-बेटीके लेटने-बैठनेके लिए आड़-ओट चाहिए ही। घरमें केवल वही एक पटा कोठा था। दो सिदरियाँ थीं, जिनमें एकमें चौका था, पूजाके लिए उठा हुआ एक घेरा और उसके पीछे ईंधन, भर-भावन वग़ैरह रखनेकी दबी-दबी-सी पट्टीनुमा जगह। दूसरी सिदरीमें सोना-लेटना होता था। बायीं तरफ़ बाहरकी ओर टट्टी थी और उससे चिपका अन्दरकी जानिब

शादीमें उसकी सुहाग-सेज पड़ोसकी रुक्मो भाभीके घरमें बिछायी गयी थी। रुक्मो भाभीके पति ताला और नेम-प्लेट बनानेवाली एक कम्पनीमें नौकर थे और उन दिनों माल लेकर दौरेपर गये थे। रुक्मो भाभीके कोई सन्तान नहीं थी। मोहल्लेकी औरतों और युवकोंकी ऐसी धारणा थी कि उनके सन्तान होगी भी नहीं। रुक्मो भाभीके पतिकी उम्र काफ़ी थी। सगे-सम्बन्धियोंसे उन दिनों उसका छोटा-सा घर किसी रेलके डिब्बे-जैसा भरा हुआ था। रुक्मो भाभीने ख़ुद ही सुहाग-सेज वहाँ डालनेका प्रस्ताव रखा था।

शादीके बादकी मधु-रातें दूसरेके घरमें गुज़ारते हुए उसे कुछ भारी-भारी-सा लगा था। उसकी पत्नी क्या महसूस करेगी? सलोने-सुन्दर अंगपर जैसे एक गन्दा ज़ख्म दीख गया हो।

टीनकी चादरोंसे ग़ुसलख़ानेकी ज़रूरतको पूरा करनेवाला उठा हुआ एक घेरा। बहुत पहले छतपर एक बरसाती थी जो बरसाती पानीमें गिर गयी और अब ऊपर बस खुली नंगी छत थी, आकांक्षाहीन ज़िन्दगी-जैसी।

शादीमें उसकी सुहाग-सेज पड़ोसकी रुक्मो भाभीके घरमें बिछायी गयी थी। रुक्मो भाभीके पति ताला और नेम-प्लेट बनानेवाली एक कम्पनीमें नौकर थे और उन दिनों माल लेकर दौरेपर गये थे। रुक्मो भाभीके कोई सन्तान नहीं थी। मोहल्लेकी औरतों और युवकोंकी ऐसी धारणा थी कि उनके सन्तान होगी भी नहीं। रुक्मो भाभीके पतिकी उम्र काफ़ी थी। सगे-सम्बन्धियोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दिनों उसका छोटा-सा घर किसी रेलके डिब्बे-जैसा भरा हुआ था। रुक्मो भाभीने .खुद ही सुहाग-सेज वहाँ डालनेका प्रस्ताव रखा था।

शादीके बादकी मधु-रातें दूसरेके घरमें गुज़ारते हुए उसे कुछ भारी-भारी-सा लगा था। उसकी पत्नी क्या महसूस करेगी? सलोने-सुन्दर अंगपर जैसे एक गन्दा ज़ख्म दीख गया हो।

एक रात पत्नीने पूछा भी—"मैं दोबारा जब लौटकर आऊँगी तब क्या इन्तज़ाम होगा जी?"

उसने अम्माके मुँहसे इन दिनों जो बात सुनी थी उसको दोहरा दिया—"हम लोग दूसरे बड़े मकानकी खोजमें हैं। तबतक क्या कोई मिल नहीं जायेगा?"

पत्नी इसके बाद रुक्मो भाभीके पतिको लेकर पूछने लगी थी—जिसके बारेमें इतने दिनोंमें उसने अपनी हमजोलियोंके मुँहसे कुछ जान लिया था—कि क्या वह बहुत ज़्यादा बदसूरत भी है और ग़ुस्सैल भी; कि पहले क्या उसकी आदतें बहुत ख़राब थीं···। उसी रातको उसने सपना देखा कि रुक्मो भाभीका पति गजाधरप्रसाद दौरेसे लौट आया है और रुक्मो भाभीपर बिगड़ रहा है कि उसने किसी दूसरेको वहाँ सोने क्यों दिया और उसकी सेजके निकट आकर वह ग़ुस्साया हुआ उसे झिंझोड़ रहा है। उसकी जब आँख खुली तो उसने पाया कि उसकी गरदन पसीजी हुई है। पत्नी उससे सटकर सो रही थी और उसको लम्बी-लम्बी बरौनियोंदार बुन्दी पलकोंपर निश्चिन्तता लिये स्निग्धता थी।—उसे फिर दोबारा बहुत देर तक नींद न आयी और बरसातके दिनों-जैसी एक अजीब-सी घुटन और अकुलाहट आभासती रही।

ऐसी बात नहीं कि उसके बाद उसने किसी दूसरे मकानकी तलाश न की हो। अपनी ओरसे उसने कोई कसर न उठा रखी। कुछ ही ऐसे काम थे जिनमें उसने इतनी अधिक चिन्ता और उत्साह दिखाया हो। किन्तु भारतकी राजधानी दिल्ली-जैसे महानगरमें इच्छानुकूल मकान मिलना शायद एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। एक तो पगड़ीका सवाल था और दूसरा किरायेकी दरका। जिस मकानमें रहा जा रहा था वह केवल बारह रुपयेपर था। दूसरा जो उससे कुछ ही बड़ा होता उसके पचास-साठ रुपये माँगे जाते। वह सब क्या चाहनेपर भी वह दे सकता?

घरपर सुबह-शाम मकानकी चर्चा होती। उसका छोटा भाई राधे या बाबू धीमी-धुधी आवाज़में बताते कि उनको किसी लड़के या दफ़्तरके साथीसे पता लगा है कि अमुक बस्ती में अमुक मकान ख़ाली हुआ है। पर वहाँ जानेपर वही हश्र होता। या तो किराया बहुत ज़्यादा होता या मोटी पगड़ीका सवाल। अम्मा बुदबुदातीं कि वह किसी दूसरेकी जगह-पर हज़ार-बारह सौ रुपया उधार लेकर कैसे नयी तामीर करवा सकती है। मकान-मालिक किराया तो ले जाता है, पर यह नहीं होता कि ऊपर एक कमरा और बनवा दे, वह आठ-दस रुपये किराया और बढ़ानेको तैयार है। पर मकान-मालिक क्या इसके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजी होता ? उनके मकान छोड़नेमें ही उसे लाभ था।

स्थितिसे सहजतासे समझौता बस एक ही तरह सम्भव था और वह यों कि बाबू वह कोठा खाली कर दें। पर झिझक यह थी कि बाबूको काफ़ी असुविधा और परेशानी थी, विशेषकर सर्दीके दिनोंमें। सिदरीमें सीधी हवा जाती थी। उनकी एकान्तमें सोनेकी भी आदत थी।

पीछे गलीके स्कूलके अहातेका हरसिंगार फूल चुका था और रातमें हवामें एक मीठी गमक बसी होती थी, कुएँके शीतल जलमें जैसे हलकी-सी मिठास घुली हो।

बहूके बिदा करानेकी बात उठती थी।

"उसके लिए किसी जगहका इन्तज़ाम तो हुआ है कि बुलानेको ही सोचा जा रहा है?"

जैसे एक कमरा हो और उसके अनबुहरे फ़र्शपर मुड़े-तुड़े कुछ काग़ज़ बिखरे हों और हवाका एक झोंका आया हो और वे सब काग़ज़ फड़फड़ा उठे हों। सुबहका समय था और घरपर सब ही मौजूद थे। बाबू पूजाके लिए उठे हुए घेरेमें आसनी बिछाकर जाप कर रहे थे और उसका खिंचा स्वर शायद वहाँ भी पहुँच गया था। कुछ क्षणोंके लिए लगा कि जाप रुक गया है और फिर जब शुरू हुआ तब स्वर सहज न था।

कहकर जब उसने अनुभव किया तो बरसातकी सीलन-जैसी चिपचिपाहट उसके मनपर छाने लगी। इतना निर्लज्ज वह कैसे हो गया। कौन-सी मनःस्थिति थी जिसमें वह अपने आवेगको सम्हाल न सका। राधे उसकी ओर किताबके पीछेसे ताक रहा था। बरतन मलती कन्तोकी पलकें नलके नीचेसे बार-बार उसकी ओर उठ जाती थीं। अँगीठी-के पास बैठी हुई अम्माके चेहरेकी सिकुड़ी हुई जिल्दके नीचे कोई साया थरथरा रहा था।

"जगहकी तंगीके पीछे क्या बहू आयेगी नहीं ? कैसो-न-कैसे बेटे, वक़्त काटा ही जाता है।" अम्माके स्वरमें भीगा कम्पन था। उसने लक्ष्य किया कि अम्माकी आँखोंमें भी आर्द्रता उतर आयी है।

एक ऐसा अदृश्य दबाव था जो असह्य होता जा रहा था। नहीं, जैसे प्रतिपल उसे कोई नंगा कर रहा था।

वह वहाँसे जल्द उठ आया था। फिर जब-जब इस सम्बन्धमें कोई बात उठी वह अपनेको बचाता रहा, छिपाता रहा। उसकी कोई भी इच्छा-अनिच्छा, सहमति-असहमति नहीं। समस्याका एक ही हल था जिसे वही नहीं सब जानते थे और अन्तमें उसीपर आया गया था। बाबू सिदरीमें आ जायेंगे। सर्दी जब ज़्यादा पड़ेगी, न होगा टाटका मोटा परदा डलवा लिया जायेगा या लकड़ीके तख़्ते वग़ैरह ठुकवा दिये जायेंगे।

उसने अपनेमें एक बुझापन-सा महसूस किया। स्नायुओंमें जैसी ऊष्मता होनी चाहिए, वैसी न थी। उत्साहको जैसे किसीने मसल दिया हो। उसने इस मनःस्थितिसे छुटकारा पानेकी कोशिश की, पर कुछ ही देर बाद वह अपनेको फिर उसी दबावके नीचे अनुभवने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता। बाबूको खाँसी क्या आज ज़्यादा आ रही है? बाबूके लिए सिदरी नयी जगह है। ज़रूर वह एक अटपटापन-सा महसूस कर रहे होंगे।

उसने पीछे गलीमें खुलनेवाली खिड़की खोल दी। खसती हुई रातमें हवा तीखी हो गयी थी और उसमें स्कूलके अहातेके हरसिंगार-की महक घुली थी। चाँद आसमानमें दूधमें भीगी रोटी-जैसा दिखाई दे रहा था। सर्दियों-की चाँदनी ज़्यादा साफ़ और चमकदार होती है। चाँदनीका एक बड़ा टुकड़ा अन्दर भी रेंग आया था। कोठेका फ़र्श काफ़ी ख़ुरदरा था। चूनेका गट्टा पड़ा था और जगह-ब-जगह चूना उतर गया था और गट्टा नंगा रह गया था। बाबूने पिछली बरसातमें कहा था कि एक बोरी सीमेण्टका प्रबन्ध हो जाये तो छतकी दराज़ें भी चिकना करवा लें। पर फिर उन्होंने वह इच्छा दबा ली और छतकी दराज़ोंमें कहीं-से लाकर पिघला कोलतार गिरा दिया। एक चूहा पीछे छिपा हुआ काठके सन्दूक़को किट्-कित्-किट्-कित् कर कुतर रहा था। आहट पाकर ज़रा देरके लिए चुप हो जाता था और फिर कुतरने लगता था।

बाबू फिर खाँसने लगे थे। सूखी खाँसी-के ठाँसोंकी आवाज़ यों उठती थी जैसे कोई कड़ी चीज़ छीली जा रही हो।

कुछ देर बाद जब उसे पेशाबख़ानेमें जाने-की ज़रूरत हुई और वह बाहर आँगनमें आया, बाबू तब भी खाँस रहे थे। उसे लगा, कन्तो भी सोयी नहीं है और जाग रही है। उसकी आहट पाकर उसने अभी-अभी करवट बदली है और लोई सिर तक खींची है।—उसका बिछावन माँसे इधर ही हटकर था। चार फ़िटका आँगन कोठे और सिदरीमें कितना अलगाव रख सकता है।

कुछ देर पहले पत्नी कोठेमें किसी बातपर खुलकर हँसी थी, पर तुरन्त बाद ही सहम गयी—उइ राम!—बाहर आवाज़ सुनकर कोई सोचेगा कि बहू कितनी निर्लज्ज है!...

न जाने क्यों उसे इन्हीं क्षणों दस-बारह दिन पहलेकी वह स्थिति भी याद हो आयी। सुबह आठ या नौका समय होगा। धूप ऊनी कालीन-जैसी बिछल रही थी और वह ऊपर छतपर चला गया था। दूसरे मकानकी मुँडेर-पर कबूतरका एक जोड़ा बैठा हुआ था। कबू-तर-कबूतरीके आगे-पीछे गरदन फुलाता और गुटरगूँकी आवाज़ करता चक्कर काट रहा था। एकाएक कबूतर कबूतरीपर बैठ गया। उसने तभी पाया कि पीछे कन्तो भी आ गयी है। दो क्षणके लिए दोनोंकी आँखें मिलीं और हट गयीं। उनमें एक ऐसा भाव जल उठा था जो ओट चाह रहा था। कन्तो नीचे वापस लौट गयी। वह दूसरी ओर हटकर खड़ा हो गया।

उसे लगा कि कन्तो वहाँ उसकी उपस्थिति अनुभव कर रही है। वह ग़ुसलख़ानेको पार करता हुआ पेशाबख़ानेमें चला गया।

लौटते हुए सिदरीमें उसकी नज़र चली गयी। खाँसनेके बाद घरघराहटके साथ बाबू साँस ले रहे थे जैसे किसी बरतनके सूराखसे भाप सूँ-सूँ कर गुज़र रही हो। अम्मा गठरी डाले ज़मीनपर सो रही थीं। थोड़ा हटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े बदल रही थी। उसने अभी-अभी करवट फिर बदली थी।....और राधे....ऐं....राधे कहां सो रहा है!....जब वह वापस लौटकर आया था, राधे शायद नहीं था। शायद वह रजनीकान्तकी बैठकमें सो रहा होगा। रजनीकान्तके छोटे भाईके साथ उसकी पढ़ाई चलती है। इस साल वे दसवें दर्जेमें हैं। उसे याद आ गया कि तीसरे पहर ऐसी चर्चा उठी थी कि परीक्षा तक राधे वहां सोनेको कहता है।

चौदह सालका राधे भी क्या स्थितिसे परिचित है और समझौता करना जानता है?

उसे लगा कि हवामें बढ़ी हुई सिहरन उसे तेज़ीसे छू रही है। वह अन्दर चला गया।

सुबह चायके समय उसने पाया कि वह अपनेको सबकी निगाहोंसे बचाना चाह रहा है। वह उस मनःस्थितिसे उबरनेके लिए अपनेसे जूझता रहा, पर बार-बार उसीके बीच अपनेको पाता।

■ ■

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ■ सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएं तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जालंधर

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी–५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• विघटन । समाचार । वह जो साथ है···

१—कितना मुश्किल है उन्हें उनके नामसे
पुकारना—
जो अमूर्त इशारों में
बच गये
लैण्डस्केपों के हिस्से हैं !

२—अख़बारों में तमाम दिनों के लिए
सुविधाजनक समाचार
क्रूर चेहरे
विकृत दबाव से
फटे हुए
तार-तार !

पुरुष स्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—शहर के घण्टाघर तक जो साथ है, मेरे लिए
गाइड नहीं हो सकता ; क्षोभ !
उसे भी भाषा की तलाश है
पत्रों के बीच
या अपराधियों के हुजूम में
और व्यथा !
वह कहीं नहीं है !!

—परमानन्द श्रीवास्तव

● व्यतिक्रम

हिलते हैं दरख्तों के तने और शहर में भूचाल आ जाता है
कोई रात भर जागकर लिखता है किसी का नाम
और सुबह भूल जाता है !

एक अकेली उदास लड़की पीली पत्तियों में-से गुज़र जाती है
धूप अकेली लेटी रहती है चुपचाप
और लावारिस कुत्ते छत को ताकते सड़कों को गालियाँ देते हैं।

मैं एक बुझे सिगार को रास्ते से उठा लाता हूँ
और अपने फटे घुटनों पर सिर टिकाकर सुलगाता हूँ
एक गर्म साँस छत से उतरती है
और जिस ओर मैं मुँह उठाता हूँ बेहया की तरह पसर जाती है
रात लोमड़ियों की तरह चुपचाप जंगल में भाग जाती है
और मेरे कलेजे में चुभने लगती हैं सुइयाँ
किसी बियाबान में घूमती एक आवारा गाय
गिरफ़्त में आने को बेचैन नज़र आती है !

फट जाता है आसमान
और उगल देता है उल्का-पिण्ड-सा सूर्य
मैं अपने फटे हुए जूतों में उँगलियाँ फँसाता हूँ
और उन गलियों की ओर निकल जाता हूँ
जहाँ रात में घूमते हुए मुझे शर्म आती थी।

—जगदीश चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• तिघिरा* की एक शाम : २ चित्र

—एक—

तिघिरा के शान्त जल में
तुम्हारा गोरा मुखड़ा
रहस्य भरे
निर्निमेष मुझे देखता
तैर रहा है !

सुडौल मांसल गोरी बाँह उठा
अरुणिम करतल पर हिलती
चक्रोंवाली अँगुलियाँ

दूर
तिघिरा के वक्षस्थल से
मुझे बुलातीं !

मैं
जो तट पर।
देख रहा छबि
बाइनाक्युलर लगाये
वासना बोझिल आँखों पर !

—दो—

तिघिरा के सँकरे पुल पर
नमित नयन
सहमो-सहमो
तुम !
तेज़ हवा में लहराते केश
सुगठित अंगों को
अंकित करता
फर-फर उड़ता

* ग्वालियरस्थित प्रसिद्ध बाँध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांजीवरम् की साड़ी का फैलाव
दो फुर्तीले हाथों का
कितना असफल दुराव!
हौले-हौले
चलते
नंगे गदराये गोरे पैर,
सपने-जैसी
अद्भुत रँगरेली रोमांचक सैर!

—महेन्द्र भटनागर

• तीन युगबोध-छन्द

(१)

आओ, हम खोखले जीवन को
झूठे क़हक़हों से भरें
और एक नया क्षण
बिना जिये ही मरें।
इस तरह मृत्यु की एक मुखर शृंखला
उस क्षण तक जीवित रखें
जब तक हम सचमुच में पूरे नहीं मर जायें,
दृश्य से गुज़र जायें
और हमारे चित्र के नीचे नये अक्षर उभर आयें,....
मृत्यु-सन.....

(२)

आओ, हम परस्पर झूठ बोलें
और एकमेक को अहसास न होने देने की शिष्टता बरतें
इस तरह हम एक युग बनें
और फिर यह भविष्य के इतिहासकार पर छोड़ें
कि वह हमें क्या कहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

आओ, हम शून्यों का शून्यों से गुणा करें
और इस तरह उम्र के वर्ष बढ़ायें ।
जनम-बाँझ साँसों को
नपुंसक सपनों से शादी करें
दोनों को सँवारें सजायें
और सुहागरातें मनायें ।

—राजेन्द्र अनुरागी

• स्वर्गीय ईश्वर

लोग हर देश में इकट्ठे हो रहे हैं
श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए
वह बहुत महान था—महान शासक
व्यक्तिवादी सत्ता का प्रथम उद्घोषक
उसीने शुरू की शून्य में
अनन्त दर्शन की परम्परा
(गो कि हर अनन्त में था उसका कटघरा)
उसीसे प्रारम्भ हुई नैवेद्य-भूसी समर्पण की
संस्कृति ।
कमाल है उसकी दूर दृष्टि कूटनीति का
अब तक न कुछ में हर कुछ की उपस्थिति का भास
जो होता है जनता को
उसीकी योजना है : उसके योजना-मन्त्रालय की
ख़रीदारी में उसका मुक़ाबला नहीं
चप्पा-चप्पा छानकर ख़रीदा गया आदमी
ज्ञान, विज्ञान, राजनीति और शक्ति सामन्तों के क्षेत्र से
सैकड़ों-हज़ारों सालों लगातार ब्रेनवाशिंग का कार्यक्रम
चलता रहा—ग्रन्थ तक बोलने लगे उसकी बोलियाँ
लेकिन अफ़सोस, सद अफ़सोस !
तमाम हर तरफ़ से सचेत
दीवारों पर दीवारें, खाइयाँ
समुद्रों और आकाश पर आकाश के बराबर अफ़वाहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरत्व की घोषणाओं के बावजूद
ठोस धरती पर पैदा हर चीज़ की तरह
उसे मरना पड़ा !
तमाम धन्वन्तरियों की शुश्रूषा
कुबेरों की पूँजी
हवाओं की भागदौड़
भूत-प्रेतों के मन्त्रों-षड्यन्त्रों के बावजूद
प्रचारोत्पन्न
रूप-शक्ति-शौर्य-प्रेम-स्वर्ग अधिष्ठाता के
भ्रम सपूत
प्रजा, प्रजापतियों के सच्चे अश्रुपातों, प्रार्थनाओं
की लाख-लाख चीखों के गूँजते
उसे मरना पड़ा—
आम लोगों की तरह
वह महान् शासक-फ़ाड़पोषक-सूर्यस्वपनचारी जीव
आख़िर प्राप्त हुआ सत्य को
लोग हर देश में इकट्ठे हो रहे हैं।

—सोमदत्त गर्ग

वा ता य न —मार्च १९६६ से दिसम्बर १९६६ तक

- **आजका पाठक**—अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक ! लेखक, पाठक और दो विशिष्ट कृतियाँ ! पाठक, लेखक और युगबोध !
- **गीत**—मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गीत हस्ताक्षर !
- **विश्वभारती**—पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण !
- **अन्तर्भारती**—भारतीय भाषाओंका कथा-संगम !
- **भारती**—हिन्दी कथा साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें !
- **कविता**—जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजकी कविता-पीढ़ी !
- **साक्षात्कार**—रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार !
- **आलोचन**—नयी ! पुरानी ! युगीन विचार-मान !

• सृजन मूल्यांकन •

वार्षिक शुल्क १०.०० सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
एक प्रति—१.०० ५ डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राज.)
शाखा—२९, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यह एक नाराज़ निबन्ध है, ज़रूरी नहीं कि सम्पादक इससे सहमत हों…)

'सौंरियाकी बाँसुरिया', 'परदेसियाकी नज़रिया' और 'कुहुनियाँकी चुनरिया'के युग समाज और साहित्यके रणांगणोंसे पलायन कर गये हों, लेकिन फ़िल्मी रंगभूमिमें पैर जमाकर बैठ गये हैं। और आकाशवाणीके आदर्श फ़िल्मी संस्कार हैं, अतः आकाशवाणीकी नारी फ़िल्मी अप्सराओंके चरण-चिह्नोंपर चल रही है!

आकाशवाणीकी नारी आधुनिका है। उसकी प्रकृति वर्तमानमें विकसित हुई है। उसका मानस आजकी तलाशमें है। लेकिन उसकी प्रवृत्ति उसकी प्रकृतिके प्रतिकूल है। वह अपने संस्कारोंमें नहीं जी रही है: अपने संस्कारोंको विदेशी संस्कृतिके ऑक्सीजनसे जिला रही है!

इस आधुनिकाने सामन्तकालीन-रीतिकालीन परिवेश पाया है, यह इसकी यान्त्रिक जड़-प्रकृतिका परिचायक है। इसका स्वर, भाव और अभिनय या कहिए इसका 'नखरा' तब और भी भद्दा लगता है, जब यह मुग़लकालीन नायिकाओंके हावभावों और रीतिकालीन दूतियोंकी काम-कला-शब्दावलीका प्रयोग करती है। आश्चर्य तो यह है कि इस समस्त आयोजनाके पीछे उन कवि-प्रोड्यूसरोंकी शक्तियाँ संलग्न हैं, जिन्होंने चिरनवीन भाव, उन्मेष और आनन्दसे अपने अनेक गीतोंका शृंगार किया है।

रोटीकी मजबूरी, ऊँचे स्टैण्डर्डकी मजबूरी और नायलोन-टेरिलिनकी मजबूरी आदमीको खामोश रखती है और औरतको चुप। यह मजबूरी, यह समझौतावादिता वह सब

आकाशवाणीकी नारी

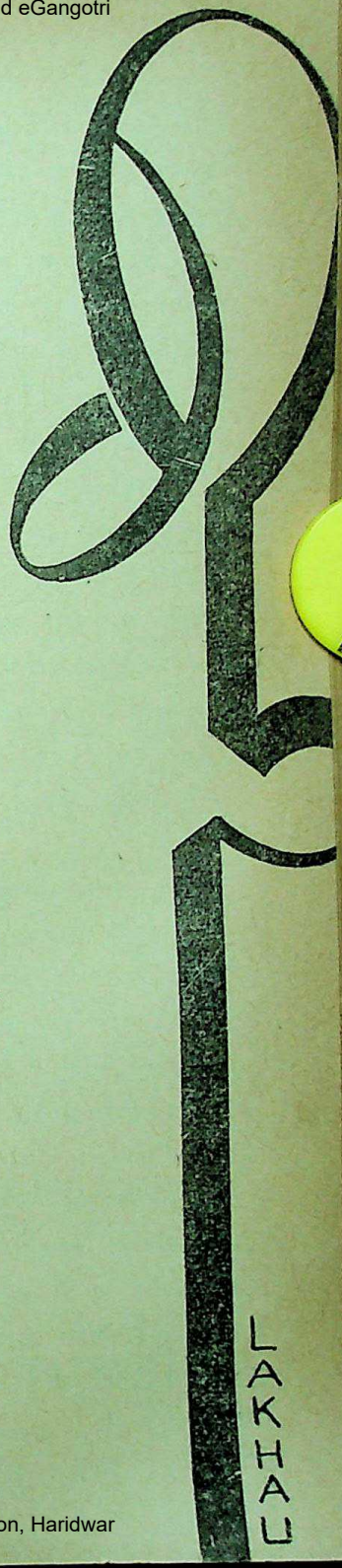

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराती है जो अकरणीय एवं अवरणीय है। जूथिकारायको छोड़ दीजिए, फ़िल्मोंकी कई प्लेबेक सिंगर्स और आकाशवाणीकी गायिकाओंकी कण्ठ-स्वर-परम्परा हा ऐसी है कि श्रोता उनके कण्ठसे मीराबाईके भजन सुननेकी कल्पना भी नहीं कर सकता! सम्भव है, वे भी सुनाना न चाहती हों, किन्तु प्राचीन और अर्वाचीनमें विभक्त अपने मजबूर व्यक्तित्वकी चुनौतीवश बाध्य हों! और इसीलिए 'चन्दा-की नाव खेनेकी' बात करती हैं, हालाँकि नये मॉडलकी कार हविस बन गयी है। नलसे शीशेका गिलास भरकर, मेज़ तक आये मेहमानके सामने पेश करनेमें पटु आकाशवाणीकी यह नारी मगरके आँसू बहाती है कि "साँवरिया तेरी कँकरियासे मेरी गगरिया फूटती है और चुनरिया भोगती है!" दरअसल, स्कर्ट पहननेवाली इस नारीको चूनरसे जितनी नफ़रत है, उतनी किसीसे नहीं!

यदि अनाउन्सरके रूपमें इसे कभी उद्घोषणाका अवसर मिलता है तो बहुत ही बनावटी तरीक़ेसे शब्दोंका तोड़-मरोड़-जोड़ बैठाती है, हिन्दी शब्द इस अन्दाज़से बोलती है, मानो अँगरेज़की बेटी है और उसका अँगरेज़ी उच्चारण कोई अँगरेज़ सुन ले तो सिर झुका ले!

खेत-खलिहानों और फ़सलोंके इसके गीत काँचकी नक़ली आँखकी तरह हैं, संगमरमरकी नक़ली औरतके नंगे जिस्मकी तरह हैं। फ़सलोंके इसके गीतोंमें उल्लास और आनन्द नहीं; बाँध और योजनाके इसके गीतोंमें उत्साह और आवेग नहीं, असलमें यह तो नक़लमें गाती है। इसे तो, जैसे-तैसे गीत समाप्त कर किसी रेस्त्राँ या लोकल स्टेशन-पर अपाइण्टमेण्ट निभाना है! यह दशा है कि कहीं, किसी (हिन्दी) स्टेशनसे आकाशवाणी-की नारीका एक भी राग, रस, स्वर, शब्द ऐसा नहीं सुनाई देता, जो मानव-मन-प्राणकी रिक्तताओंको, अपूर्णताओंको, भाव-अभावोंको किसी अमर आलोकवन्ती चिरन्तन चेतनाके अनहद नादसे भर दे!

इसके विपरीत, मॉडर्न मीराकी ये बेटियाँ बहनोंके प्रोग्राममें भरी दोपहरीमें ऐसे अद्भुत और अस्वाभाविक वार्तालापमें विलीन हो जाती हैं कि सुनकर मन मर जाता है। प्रतीत होता है मानो अदा और अभिनयके नोटेशन-सहित काग़ज़पर लिखे नुस्ख़ोंको बड़े झटके और छोटे झटकेसे पढ़ती हैं और प्रयत्न रहता है नाकसे बोलनेका और अकारण हँसनेका, जिसे ये नज़ाकत और सफलताकी सर्वोच्च सीढ़ी मानती हैं! बँगाली और गुजराती स्टेशनोंकी तुलनामें हिन्दी स्टेशनोंके गीत-संगीत कोरे और कर्कश हैं। दूर दक्षिणसे आनेवाली संगीतलहरीका मर्मर स्वर समझनेमें भले हम असमर्थ हों, परन्तु उसका देय—उल्लास तो सर्वसुलभ है।

देशमें जन अनेक (आर्म्डचेयर पॉलिटिशियन्स) जिस तरह भोजनके बाद राजनीतिका पान चबा लेते हैं, उस तरह एक ओर हम धर्मनिरपेक्षताके वार्ता-वारि-विलासमें सराबोर रहते हैं, दूसरी ओर धर्मके नामपर प्रत्येक प्रकारके अन्धविश्वासोंको आकाशवाणी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर अपस्थान देते हैं और उस क्रमायोजनको आकाशवाणीकी वाक्-कन्याएँ इस प्रकार प्रसारित करती हैं कि यह अप्रकट नहीं रहता कि इनकी चाल और तालमें अन्तर है। ये मात्र साधन हैं—इन्स्ट्रूमेण्ट हैं और यान्त्रिक मानसकी जड़ताकी शिकार हैं।

क्या प्राचीन अज्ञान, अन्धविश्वास और कुसंस्कारसे परिपूर्ण असद्भावनाओंका प्रसार जरूरी है? तब हम देशको किस ओर ले जा रहे हैं? कौन-सी दिशा दे रहे हैं? समाजवादका हमारा नारा ढोंग नहीं है क्या? क्योंकि जहाँ भेद है, वहाँ समाजवाद नहीं है: समाजवाद भेदोंकी रचना नहीं करता। वह मूर्तिपूजकोंके आस्थागीतोंकी गुरुतर गुंजारसे सुधारवादियोंके मानसको चोट पहुँचाती है। वह एकही साँसमें मूर्तिके चरणोंकी मतवाली मीरा बन जाती है और अपनी प्लास्टिकी भक्तिकी दिव्यप्रभासे श्रोता-मनुष्यके मस्तिष्कपर कुहरा छा देती है तो दूसरी ही साँसमें कबीरदासके मूर्तिपूजाविरोधी दोहे इस अदासे गाती है, मानो कबीर महाकवि न होकर सड़कपर गाता-जाता भीख माँगनेवाला अन्धा है और वह है उसकी जायज बेटी जो अपने कन्धेपर उसका हाथ रखाये चल रही है। मतलब यह कि आकाशवाणीकी बिसातिनकी दूकानपर 'मोहनकी मूरतके चरण-कमलमें मतवाली मीरा'का रिकार्ड भी सुलभ है और 'पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़'का कबीरी रिकार्ड भी।

विचित्रा है यह! कहती है—'सोलह सिंगार किनो तोरे करनवा, डर मोहे लागे! साजनके पास जाते डरती है, हालाँकि दिन-भर दफ़्तरमें काम करती है और दो सौ टेलीफ़ोन करती है। 'तोरे पैयाँ पड़ूँ, बालमा' गीत इसे पसन्द है, जैसे तलाक़-क़ानून पास हो जानेकी इसे ख़बर ही नहीं है (?) लाख-लाख पुरुषोंकी भीड़में खुले मुँह जाती है मगर पछताती है—'जो मैं जानती बिछुरत हैं सैयाँ, घूँघटामें आग लगा देती।' कैसी विडम्बना है इस देशके भाग्यमें या इसकी सृष्टिके स्वप्नद्रष्टा, नवसमाजके योजनाकारोंमें? एक ओर तो वे राजकीय प्रकाशन-विभागसे घूँघट-बुर्के और परदा-प्रथाके विरुद्ध और स्त्री-स्वातन्त्र्यके समर्थनमें पुस्तकें छापते हैं और दूसरी ओर राजकीय प्रसारण-विभागसे इस तथ्यका प्रचार करते हैं कि 'घूँघटमें छिपे कजरारे नैनोंकी चोट' वोटवादी सरकारके कोटवादी अफ़सरोंको लुभाती है। एक ओर विरोध करते हैं—दो-दो हाथ लेकर आनेवाले प्रत्येक भावी कर्मयोगी शिशुका, डंका बजाते हैं फ़ैमिली-प्लानिंगका और दूसरी ओर गीत गाते हैं—अधिक बच्चोंवाली पौराणिक जननीका! मुहर लगाते हैं उन अन्धविश्वासोंपर, जो औरतको एक मन्त्र न न मानकर यानी मात्र एक यन्त्र बनाकर, अपनी कामेच्छातृप्तिका तुच्छ साधन घोषित करते हैं।

जिस समाज और जिस शासन-व्यवस्थाके खिलाफ़ हिन्दुस्तानके महापुरुषों—१८५७ से लेकर आज तकके समाज-विधाताओंने—संघर्ष किया, क्या उसी समाज-व्यवस्था और शासन-व्यवस्थाको चुपके-चुपके जीवित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखनेके देश-द्रोहका बोड़ा तो हमारे आजके समाजपर छाये स्वार्थसाधुओंने नहीं उठा लिया है ? झाँसीकी रानी लक्ष्मीसे लेकर दिल्लीकी देवी इन्दिरा प्रियदर्शिनी तक—भारतीय क्रान्तिकारियोंने जिस समाजको बदल डालनेके लिए अपना खून-पसीना बहाया, वह क्या बदला ? क्या कभी नहीं बदलेगा ? फिर नये समाज, नयी व्यवस्था, विज्ञान, यन्त्र, साधन और योजनाका तात्पर्य क्या ? ऐसी दशामें पारम्परिक उत्पीड़नसे परेशान प्राणी पूछता है—तब, मुझे बताइए विज्ञानने नयी चीज़ क्या दी ? यन्त्रने नयी दिशा कहाँ दी ? मेरे पैरोंमें तो आज भी युगोंकी बेड़ियाँ हैं । मेरी मजबूर बेटीके अधर आज भी सामन्तोंकी हविसके शिकार हैं । मेरी रोटीपर मेरी कुलवधूकी नीलाम होती अस्मतके धब्बे हैं । तब, तुमने मुझे कौन-सा सन्देश दिया ? नव-समाज-रचनाकी कौन-सी ऋचा तुमने रची ?

कोई पूछे—क्या यन्त्रने हमारे गीतकी भावनाको बदला ? वस्तु, कथन, कथ्य; तान, स्वर, बोलको आमूल परिवर्तन दिया ? क्या हमारे गीतकी संवेदना शाश्वत है कि युगकी पगधूल उसपर छा नहीं सकती ? तब, फिर परिवर्तन कहाँ आया ? यहाँ तो परम्पराका नग्न नृत्य है । परिपाटी-के कीचड़के धब्बे आकाशवाणीकी सनातन नारीकी कचुंकी और अधोवस्त्रपर आच्छादित हैं । यक़ीनन, अपनी ढीली चूनर और घेरदार लहँगेके शताब्दियोंके बोझको लिये वह तेज़ दौड़ती वक़्तकी ट्राम या ट्रेनको नहीं पकड़ सकती । आकाशवाणीके साधकोंने इस नारीके बोझको बढ़ाया है—उसे अधिक अन्ध-विश्वासिनी, विपथगामिनी और विलासवाहिनी बनाया है । उन्होंने प्रयत्नतया उसे नवयुगके नवप्रकाशसे वंचित रखा है । वह परित्यक्ता, तिरस्कृता, अपमानिता, शापहता, शोषिता नारी है और बाध्य है बिसूर-बिसूरकर रोनेके लिए कि उसका पुरुष मध्य सामन्त-कालीन लम्पट है, और स्वयं वह 'अबला नार बिचारी' है, हालाँकि नेहरूकालीन नवविधानने उसे अपने पुरुषके बराबर समानताके सिंहासन-पर प्रतिष्ठित किया है ।

आकाशवाणीकी नारी—कालिदास और रवीन्द्रनाथकी, शरद् और अज्ञेयकी, यशपाल, जैनेन्द्र और धर्मवीर भारतीकी नारी है अथवा फ़िल्मी फ़ाइनेन्सके चक्करमें कॉफ़ी-हाउसके बाहर भटकनेवाले मेरे मित्रोंकी, जिनका एकमात्र कथ्य यह है कि "अगर, प्रदेसी साहब, आप दस-बारह हज़ारका बन्दोबस्त करा दें, तो फिलिम पूरी करानेका जिम्मा हमारा। नीता मेरी नातिन है'''उसे आज सेठजीने चायपर बुलाया है।"

यह नारी गाना पसन्द करती है—"जा भी जा रसिया, मन मोरा प्यास ! आ जा आ आ आ ! आ आ आ आ आ!" (इस गीत-में सिर्फ़ ३८ बार 'आ-आ' आया है) और "परदेसिया, तेरे नैनोंने चोरी किया !" ('परदेसी' शब्दच्छापके बिना कोई गीत पूरा नहीं होता ?) इसके सामने है रवीन्द्रका यह गीत—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जानि तुमि फिरे आसिके आबार, जानि ।
तबु मने मने प्रबोध नाहि जे मानि ॥"

अब उसके कण्ठसे जो गीत लहकेगा और जो स्वर महकेगा, उससे हम कह देंगे कि वह किसकी नारी है ?

और प्रश्न यह भी है कि वह 'नार है या नारी ?' सोलहवीं या किसी अन्य सदीके सामन्त पुरुषकी अप्राकृतिक वासनाकी वस्तु है—'रतनार अनार-सी नार खड़ी'—किसी काले कोठेकी टूटी सारंगीकी फटी खोल है अथवा अपने 'कंकनके नगकी परछाईमें, राम-सा रूप निहारनेवाली' जानकी ? विश्वमातृत्व और विश्वबन्धुत्वकी राजतरंगिणी जनक-नन्दिनी ! अतएव, आकाशवाणीकी नारीकी भाषा भले आधुनिका हो, किन्तु अपने अन्तिम गन्तव्यके लिए उसे 'गीत गोविन्द' के कवीन्द्र और फ़िल्मी जगमोहनमें-से एकको चुनना पड़ेगा अन्यथा अपने काले चरणचिह्नों-से वह भारत-भरको भूत बना भटका देगी !

आकाशवाणी, जहाँ भजन भी 'रॉक् एण्ड रॉल्' की तर्ज़पर गाये जाते हैं, क्या अपने शुद्ध आत्मरूपको पहचानेगी ? सत्, चित् और आनन्दकी ओर बढ़नेवाले गीत सुनायेगी ? वह गान्धीकी बात मानेगी या इटलीके उस भगोड़े फ़िल्मी डायरेक्टरकी जो एक भारतीय कुलवधूको बहला-बहका कर ले गया ? वह सुधा मल्होत्राके समर्पित स्वरमें कनुप्रिया राधाके राजकवि रसखानकी वाणीका अभिनन्दन करेगी अथवा किसी क़स्बेके उस असंस्कृत कूँजड़ेका जो बाल बढ़ाकर और पैग चढ़ाकर गीतकार बन गया है ?

हम इस नारीके सुगौर, चन्दनवर्ण भाल-पर पूजाका केसर-कुंकुमका तिलक लगानेको तैयार हैं, पर पहले यह जाननेको बेचैन हैं कि उसका प्राण-प्रगीत कौन-सा है ? अगर वह भगवान् कालिदासके अमृत श्लोकोंको क़व्वाली-की तर्ज़पर गाना चाहती है तो, हमें कुछ नहीं कहना है उसे ! वह भले गाती रहे—
"जा-रे-जा.....। ल-ल-ला ! ल-ल-ला !....."

Gram : 'BHAINPULLY' Phone : 22-5247

B. P. TRADING COMPANY

Importers, Stockists & Govt. Order Suppliers of :—

Power Transmission Steel Roller Chains Sprockets of 'RENOLD' KOBO, DIAMOND, ANCHOR, MORSE, WIPPER MANN, CHAIN PULLY BLOCKS & GENERAL ORDER SUPPLIERS.

*

71/A, Netaji Subhas Road, (Room No. D/S-8D)
Post-Box No. 809, CALCUTTA-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा हिन्दीके
समीक्षा-साहित्यमें अद्वितीय और
महत्त्वपूर्ण नयी प्रस्तुति

विवेक के रंग

स्व० डॉ० देवीशंकर अवस्थी
द्वारा
संकलित-सम्पादित

• •

'विवेकके रंग' अर्थात् महत्त्वपूर्ण समकालीन कृति साहित्यपर प्रकाशित गणनीय समीक्षाओंका संकलन। हिन्दीमें अपने प्रकारकी पहली कृति: प्रौढ़ और प्रभावपूर्ण। इसमें जिन हिन्दी पुस्तकोंकी समीक्षाएँ संकलित की गयी हैं वे गत १५ वर्षोंके लेखनका प्रतिनिधित्व करती हैं, और समीक्षाएँ तो, एक पुस्तकपर एक, चुनी वही गयी हैं जो पुस्तककी आन्तरिक सत्ताका उद्घाटन करती हों या फिर समीक्षा-सिद्धान्त या पद्धतिकी दृष्टिसे कोई नयी बात प्रस्तुत करें। प्रारम्भमें देवीशंकरजीकी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी सम्मलित है। साहित्यके अध्येताओं और प्रत्येक पुस्तकालयके लिए अनिवार्य सन्दर्भ-ग्रन्थ।

मूल्य सात रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमराज का मृत्यु-कर

नि० छ० जमीदार

हा । स्य । क । था

यमराजका वाहन भैंसा ज़ोरोंसे दौड़ा जा रहा था। यमराजके गदा और पाश उनके हाथोंसे छूटे जा रहे थे। मुँहपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। अब क्या होगा? यह प्रश्न उनके दिमाग़में खलबली मचा रहा था। हुआ यह था कि स्वर्गमें मृत्यु-कर लगनेवाला था और देवतागण अमृत-प्राप्तिके लिए क्यू लगाये बैठे थे और यमराज भी मृत्युकी चिन्तासे ग्रस्त हो अमृत-के लिए क्यूमें खड़ा होने जा रहे थे।

वे इस अजीब स्थितिमें जा ही रहे थे कि रास्तेमें भगवान् शंकर हिमधवल नन्दीपर बैठे हुए मिले। यमराज सुध खोये हुए भैंसेको दौड़ाये जा रहे थे। भोले बाबाने हँसकर त्रिशूलसे भैंसेको रोक दिया। यमराज औंधे मुँह गिर पड़े। यमराज चिल्लाये, "त्राहि माम्! भगवन्, बचाइए! बचाइए!"

शिवशंकर नन्दीसे उतरे और यमराजको उठाकर बोले, "यमराज! यह, इस हालतमें कहाँ भागे जा रहे हो?"

यमराजकी वाणी कुण्ठित हो गयी थी। किसी तरह बोले, "भगवन्! मृत्यु-कर लग रहा है!"

भगवान् शंकरने विस्मित हो पूछा, "मृत्यु-कर? यह तो तुम ही वसूल करते हो?"

यमराजकी घिग्घी बँध गयी थी—"मुझे हरानेके लिए मानवने यह नया शोध कर डाला है।"

भगवान् शंकरने फिर पूछा, "तुम्हें हरानेके लिए? क्या मृत्युपर विजय मिल गयी है उन्हें?"

यमराजने उत्तर दिया, "नहीं, मृत्युपर विजय प्राप्त करनेके स्थान मृत्युकी ही महा विजय हुई है। मनुष्य जीवनके रसमें विश्वास रखना भूल गया है।"

भगवान् शंकर बोले, "ओह, तो तुम्हारा काम बढ़ गया है इसलिए तुम घबरा रहे हो?"

यमराजने कहा, "त्राहि माम् भगवन्! मुझे भी मृत्युका भय लग गया है।"

भोले शम्भु ठहाका मारकर हँसे। तीनों लोक आशुतोषकी हँसीसे गूँज उठे। वे बोले, "यमराज, तुम निश्चय ही मरोगे!" यमराज अध-मरे हो गये। बोले, "भगवन्! मैं मरूँगा तो फिर क्या होगा? मेरा मृत्यु-कर?" भगवान् शंकर-की हँसीसे साँस भर रही थी—"यमराजकी मृत्यु! ओफ़ क्या चमत्कार किया है मर्त्य मानवने!" यमराजको लक्ष्य कर वे फिर बोले, "यमराज, तुम मरोगे। मेरा भाँग छाननेका समय हो रहा है, मैं जाता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमराज और उसका भैंसा वहीं अधमरे-जैसे हो गये। आखिर भगवान् शंकरकी वाणी कभी झूठी हो सकती थी! यमराजको उनकी मृत्यु दिखने लगी। भैंसा और भी ज़्यादा शिथिल होकर गिरा हुआ था। वह रँभाने लगा। यमराजकी आँखोंमें आँसू छलक उठे। नगर-निगमों और नगर-सेविकाओंके अधमरे महिषोंका सारा दुःख यमराजके महिषमें मूर्त रूप ले उठा। संसारके प्रारम्भसे यह महिष करोड़ों रूपोंमें यमराजको ले जाता रहा था। भगवान्‌के अवतारोंको भी यह महामहिष लेने गया था। आज यही महामहिष दयाकी दृष्टिसे अपने शिथिलगात्र स्वामीको देख रहा था कि कमसे कम उसे मृत्युके साक्षात्कारसे बचा लिया जाये।

यमराज अपने सारे जीवन-दर्शनको भूल चुके थे। वे सोच रहे थे कि मृत्युका अस्तित्व नहीं होना चाहिए। मृत्यु ग़लत है। पर फिर उन्हें मृत्युसे भयानक मृत्यु-करका स्वरूप दिखा। मृत्यु तो एक क्षणमें अपना कार्य समाप्त कर यमराजको अपना दायित्व सौंप देती है, पर मृत्यु-कर! यह भीषण वस्तु है। सारा जीवन मृत्यु-भय करनेवाली मानव-बुद्धिका यह चमत्कार अद्‌भुत है। अन्तिम क्षणमें पाप-पुण्य-स्मरणके स्थानपर मृत्यु-कर चुकानेके दर्शन होते हैं। महामृत्युंजय और भगवद्-गीताके स्थानपर मृत्यु-करकी चर्चा होती है। गरुड़-पुराण अब कोई नहीं बाँचता, अब तो मृत्यु-करकी चर्चाएँ चलती हैं।

यमराजका चिन्तन चल रहा था। भैंसा फिर रँभाया। यमराज द्रवित हो उठे, उन्होंने विचार किया—भोले बाबा अभी जो कुछ कह गये क्या वह सत्य होगा? आशाकी किरण दिखलाई दी। जगन्माता पार्वतीसे प्रार्थना कर शिवशम्भुसे मृत्युंजय-वर क्यों न प्राप्त किया जाये। यमराज उठे। भैंसेको दुलारा और कहा, "बेटा उठो! जगन्माताके दर्शन करने चलें। माता प्रसन्न हो गयीं तो भगवान् आशुतोषसे वरदान मिल जायेगा।"

महिष मार्कण्डेयकी रक्षा होते देख चुका था। यमपाश और सारे अस्त्र-आयुध वहाँ व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे। भगवान् शिवने स्वयं मार्कण्डेयकी मृत्यु और यमराजसे रक्षा की थी। मार्कण्डेय चिरंजीवी हो गये थे। भैंसा साहसमें उठा। यमराज उसपर बैठ गये और वे कैलास-यात्राको चल पड़े।

उधर भगवान् शंकर नन्दीपर बैठ तेजीसे कैलाशपर भाँग छानने पहुँच गये थे। वे वहाँ ज़ोरोंसे अट्टहास कर रहे थे। त्र्यम्बकका अट्टहास हिमालयकी श्रेणियोंमें गुंजरित हो रहा था। भगवती पार्वती विस्मित थीं। शिवके गण चकित थे।

भगवतीने पूछा, "क्या हुआ है?"

भगवान् शंकरने उत्तर दिया, "यमराज मर रहा है! हा-हा-हा!"

भगवतीको लगा कि आज कहीं अधिक नशा कर लिया है और भगवान् शंकर उसीमें बकवास कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "आज भाँग बन्द। यह क्या हो रहा है!"

भगवान् शंकरने कहा, "अरे देवी! यह क्या कह रही हो। मैं नशेमें नहीं हूँ। यमराज मर रहा है। उसका भैंसा तो क़रीब-क़रीब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर चुका था "हा-हा !"

उनकी हँसी रुक नहीं पा रही थी। भगवतीने पूछा, "भगवन्, क्या यमराज मर सकता है ?"

इतनेमें भगवतीने देखा कि जर्जर-मनवाले भैंसेपर गलितगात्र यमराज धीरे-धीरे चले आ रहे हैं। भगवती भी इस दृश्यको देख विस्मित हो गयीं। जो यमराज कालके प्रारम्भसे दृढ़ बलिष्ठ देह लिये संसारको त्रस्त कर रहे थे, वे आज दीन वृत्तिसे चले आ रहे थे। भगवान् शंकर बूटी छाननेमें व्यस्त थे। उन्होंने यमराजको देख भगवतीसे कहा, "देखो देवी, मैंने कहा था न कि यमराज मर रहा है ! वह देखो, यहीं मरने आ रहा है।" और फिर शम्भुने अट्टहास किया।

यमराज भैंसेसे उतरे और "त्राहि माम् !" कहते हुए भगवतीके चरणोंमें जा गिरे। महिष ने गीली वाणीसे माताके चरणोंमें प्रार्थना करने लगा।

भगवतीने द्रवित होते हुए कहा, "यमराज ! तुम्हें हुआ क्या है ? ऐसी दीन अवस्था तो मनुष्योंको भी नहीं होती ?"

यमराज फफक-फफककर रोने लगे। बोले, "देवी ! मैं मर रहा हूँ। मेरा बेचारा महिष भी मरने जा रहा है। रक्षा करो माता !"

भगवान् आशुतोषने फिर ठहाका लगाया। वे बोले, "देवी ! इस मूर्खसे मैंने मार्कण्डेयको बचाया था पर इसको कैसे बचाऊँ ? यह मर रहा है !" और वे फिर हँस दिये।

भगवतीकी आँखोंमें करुणा छायी हुई थी। वे बोलीं, "यमराज ! दुःख तुम्हें शोभा नहीं देता। उठो और शान्तिसे कहो, क्या हुआ है।"

यमराजको धीरज बँधा। उन्हें लगा कि भगवतीकी कृपा वे प्राप्त कर सकेंगे। वे उठे और मनको शान्त कर कहने लगे, "देवी ! मानवोंने मृत्यु-कर नामक भयंकर विधानका निर्माण किया है। यह विधान स्वर्गमें लागू किया जा रहा है। सभी देवतागण अमृत-पान करने दौड़े जा रहे हैं। मुझे भी मृत्यु दिखलाई पड़ी और मैं भी अमृत-पान करने जा रहा था कि भगवान् मृत्युंजयने मेरे मरणकी घोषणा कर दी ! मैं मृत्यु-करसे डर गया हूँ। मृत्यु-लोककी सारी सम्पत्ति मृत्यु-करवाले खा जायेंगे और फिर भी वे भूखे ही रहेंगे।"

भगवती हँस दीं और बोलीं, "यमराज ! तुम भोले हो ! अरे, भगवान्की वाणीका परिहास तुम नहीं समझ सके ? मृत्यु-कर भ्रम है। जीवनमें अमरत्व है। तुम अभीतक संसारको आतंकित कर रहे थे। मानवने बुद्धिसे तुम्हारा वृहद् संस्करण बना लिया। जो तुम्हारे पाशसे बन्दी होते वे अब अपने पाशसे ही पकड़े जा चुके हैं। उठो ! तुम और तुम्हारा यह भैंसा वैसे ही रहेंगे।"

भगवान् आशुतोषने कहा—"तथाऽस्तु।"

यमराज और उनका भैंसा दोनों प्रसन्न हो गये।

जो मानव इस कथाको पढ़ेंगे उन्हें मृत्यु-कर-अधिकारी कभी त्रस्त नहीं करेंगे।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

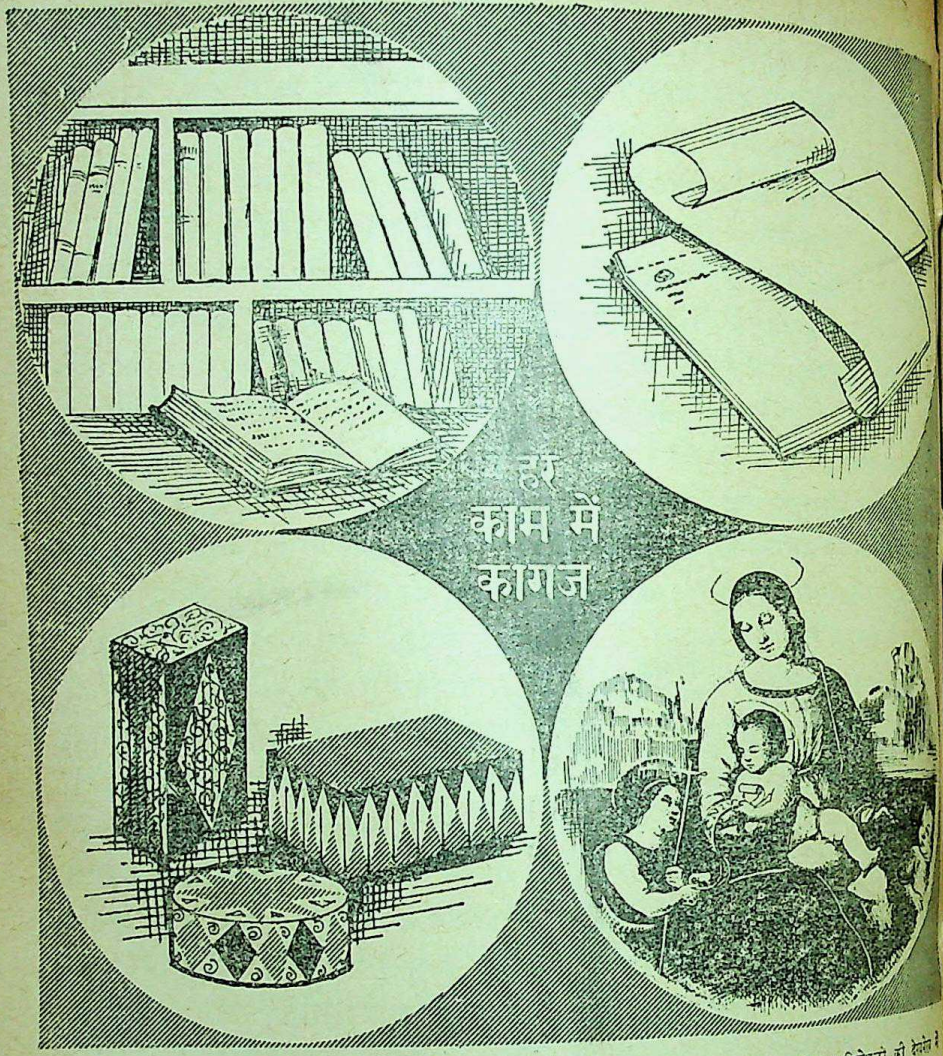

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले याद आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

IPC-RL: 383 HIN-CC0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ नोट्स । रमेश उपाध्याय । ऐसी कई घटनाएँ हो जाती हैं जिनका सचमुच कोई अर्थ नहीं होता, यदि अर्थका दुराग्रह उनके लिए न करें। ऐसे कई प्रश्न होते हैं जिनका सचमुच कोई उत्तर नहीं होता, यदि उत्तरकी अनिवार्यता उनके लिए पैदा न करें।

बस-स्टैण्डपर खड़ी किसी अधेड़ औरतका किसी कमउम्र नौजवानकी ओर घूरना, बसके नीचे आकर कुत्तेका बीच सड़कपर मर जाना, प्रेमिका या पैसेके अभावमें किसीका पागल हो जाना या किसी सुन्दर, जवान और देवकुफ़ लड़कीका मुझे प्यार करने लगना—इन सब बातोंमें मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है जैसे इस बातका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है कि मेरे एक नौजवान दोस्तकी मृत्यु क्यों हो गयी ?

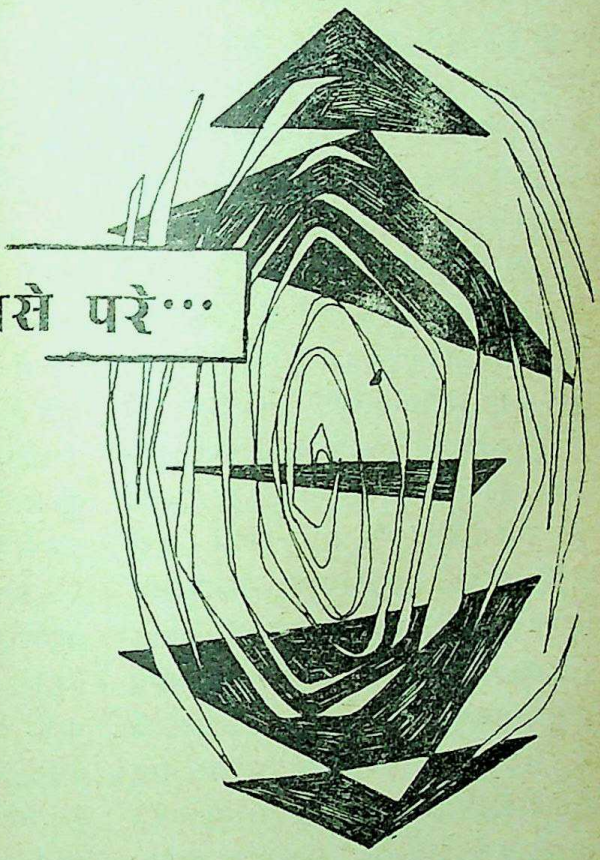

अर्थ और उत्तरोंसे परे···

काली नदीके पुलपर शामके समय सूरजका डूबना देखते हुए रोमा दी बहुत भावुक हो आयी थीं। देखो, न जाने कबसे इतना पानी बहता जा रहा है, आखिर क्या मतलब है इसका ? क्यों बह रहा है, क्या जवाब है तुम्हारे पास ?

बात आधुनिकताकी हो रही थी और ऐसी जगह हो रही थी जहाँके लोगोंके पैमाने बहुत पुराने हैं। रोमा दी के साथ घूमते हुए देखकर जहाँके लोग मेरे चरित्रपर सीधा आक्षेप कर सकते हैं। हमारे पीछे पुलपर धीमी चालसे सवारियाँ गुज़र रही थीं। कासगंजसे और कासगंजको लोग आ-जा रहे थे। तब, कोई हमें देख लेगा, यह डर हमें महसूस नहीं हो रहा था और हम अपने-अपने ढंगसे बोल-बोलकर सोच रहे थे।

आज उस शामका अर्थ मेरे लिए क्या है ? रोमा दी के प्रश्नोंके उत्तर क्या हैं ? मैं अर्थ नहीं चाहता, उत्तर नहीं माँगता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबीस अक्टूबरकी शाम। लिंक रोडसे विनय-नगर तकका सफ़र। बसमें खड़े हुए लोगोंकी संख्या बढ़ गयी है और मोटी-मोटी किताबें सीनेसे चिपकाये खड़ी वह लड़की आगे बढ़ती हुई मेरे बिलकुल पास आ गयी है। जगह खाली होनेपर हम दोनों बैठ जाते हैं। वह सिमटकर बैठी है और तीन-चार अंगुल जगह खाली रहकर हम दोनोंको अलग कर रही है। यह हमारे लिए देखकर भी अनदेखा कर जानेकी बात है।

वह ऐसी क्यों है? हम दोनों पढ़े-लिखे हैं। दिल्ली-जैसे शहरमें रहते हैं। आधुनिक ढंगके कपड़े पहने हुए हैं। देशी-विदेशी विचारों और फ़ैशनोंकी जानकारीपर कोई रोक नहीं है लेकिन हम इस तरह चुपचाप, सिमटे हुए-से क्यों बैठे है? चाह कर भी एक-दूसरेसे क्यों नहीं बोल पाते? तीन-चार अंगुलकी खाली जगह हमारी आधुनिकताका मज़ाक़ क्यों उड़ाती रहती है?

लड़की एक अठारह-उन्नीस सालके अन्धे लड़केको जगह देनेके लिए उठ खड़ी होती है और खड़े हुए लोगोंके बीच पहलेकी तरह किताबें सीनेसे चिपकाये खड़ी हो जाती है। लड़केके कपड़े बहुत मैले हैं। जाँघोंपर कपड़ेका एक थैला है जिसमें शायद कुछ किताबें और कपड़े हैं। वह बहुत धीमी आवाज़में कह रहा है, "हैस्टिंग रोड, छै नम्बर कोठी आये तो बताना भाई!"

"कहाँ जाना है?"

"हैस्टिंग रोड, छै नम्बर कोठी, नन्दाजी-के पास जाना है।"

लड़की झुककर पूछती है, "नन्दाजीके पास क्यों जा रहे हो?"

अन्धा लड़का होठोंमें ही बुदबुदाता है, कारण नहीं बताता। मैं पूछता हूँ, "कहाँसे आये हो?"

"बलिया ज़िलेसे।"

"अकेले?"

"हाँ।"

"क्या काम है नन्दाजीसे?"

काम वह फिर भी नहीं बताता। शायद अपनी 'फ़रियाद' नन्दाजीके 'दरबार' में ही जाकर सुनायेगा। एक अन्धा लड़का बलियासे दिल्ली आया है। क्या उसकी समस्या इतनी बड़ी है कि बलियासे दिल्लीके बीच रहनेवाले लाखोंलाख लोगोंमें-से कोई और उसे नहीं सुलझा सकता? हम लोकतन्त्रवादी हैं और बीसवीं शतीमें जी रहे हैं!

बस चली जा रही है। आकाशवाणी-भवनसे सचिवालय तक महँगाईके विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालोंकी भीड़ पसरी हुई है। बसके अन्दरके लोग भी स्वयंको प्रदर्शनकारियोंकी भीड़में शामिल महसूस करने लगे हैं। पीछे कई पुलिसके सिपाही बसमें चढ़ गये हैं। खड़े हुए लोगोंमें घिचपिच हो गयी है और एक आदमी मोटी-मोटी किताबोंवाली लड़कीको दबाये जा रहा है।

तभी कण्डक्टर मेरे पास बैठे अन्धे लड़केसे टिकिटके पैसे माँगता है। लड़का पच्चीसकी जगह पन्द्रह पैसे जेबसे निकालकर हथेलीपर रख लेता है, "यही बचे हैं भाई!"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर मेरा हाथ जेबमें जाता है, उधर लड़कीका पर्स चट्की आवाजसे खुला है। दोनों-के हाथमें दस पैसेका सिक्का मचलने लगता है कि कण्डक्टर पचीसकी जगह पन्द्रहका टिकिट देकर आगे बढ़ जाता है, हम दोनोंको दयापूर्वक भीख देनेका अवसर दिये बिना।

रेसकोर्सपर अन्धा लड़का उतर जाता है। लड़की फिर मेरे पास आ बैठती है। मैं उससे कुछ बात करना चाहता हूँ। बात करनेका 'टॉपिक' मुझे मिल गया है लेकिन मुँह खोलनेमें झिझक होती है। अपना प्रश्न मनमें दो-एक बार दोहराकर एक और प्रश्न पूछता हूँ, "आप कहाँ जा रही हैं?"

"यूसुफ़ सराय।"

"एक बात बतायेंगी?"

"क्या?"

"आपको उस लड़केसे नफ़रत हो रही थी, या उसपर दया आ रही थी?"

"नफ़रतका तो सवाल ही नहीं उठता। मैं तो चाहती थी कि उसे कोआपरेट किया जाये।"

अपने मूर्खतापूर्ण प्रश्नों और उसके उत्तरोंके सिलसिलेको मैं आगे नहीं बढ़ाता। बात वहीं खत्म हो जाती है। विनय नगरके स्टॉपपर उतरकर यह सोचकर खुश होता हूँ कि मुझे एक कहानी मिल गयी है लेकिन मैं इन बातोंको लेकर कहानी लिख नहीं पाता—कभी लिख भी नहीं पाऊँगा किन्तु इन पृष्ठोंको पढ़कर एक कहानीकार मित्र कह गये हैं, "तुम देखना, मैं कितनी अच्छी कहानी लिखता हूँ इन बातोंपर!"

■

मोना भाभीने एक बार लिखा था, "सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए आवश्यक है एक सीमा तक अपनेको भुला देना, तुम वह कर नहीं पाते हो। इस विषयमें अधिक कुछ नहीं कहना, कहना इतना ही है कि कहीं भी रहो, टिककर रहो। जीवनमें स्थायित्व आना आवश्यक है। दिल्लीमें अच्छा लगता है तो वहीं कोई काम खोजकर जम जाओ।"

यह पत्र भी मुझसे एक बार कहानी लिखवानेकी पूरी कोशिश कर चुका है। मैं इसपर भी कहानी नहीं लिख सका। यह नहीं कि मैंने इन बातोंसे सम्बद्ध यथार्थको जिया नहीं, या थोड़ी-सी कल्पना जुटाकर मैं एक अच्छी कहानी नहीं लिख सकता किन्तु इस सबमें कहीं कुछ ऐसा है जो आवश्यक न होनेपर भी अर्थ माँगता है, प्रश्न पूछता है!

■

एब्सर्डिटीकी सीमा तक पहुँच पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मेरी एक बड़ी कमज़ोरी यह है कि मुझे गाली देना नहीं आता। कभी जान-बूझकर किसीको गाली दी भी है तो लगा है जैसे चोरी कर ली हो। लेकिन आज-कल एब्सर्डिटी फ़ैशन बनती जा रही है। इस बार मेरे न चाहते हुए भी दर्ज़ीने पैण्टकी मोहरी पहलेसे छोटी कर दी किन्तु अभी ऐसा कोई आदमी मुझे नहीं मिला जो मेरे मुँहसे बतौर फ़ैशन गालियाँ निकलवा सके।

इधर-उधर भटकनेकी बात शुरू-शुरूमें मेरी मजबूरी थी, अब हॉबी हो गयी है। पीड़ा सहना पहले मुझे फ़ैशन लगता था, अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी विवशता बन गया है।

आदमी तमाम मजबूरियोंके फ़ैशन और फ़ैशनकी मजबूरियोंमें ज़िन्दा रहता है—रहना चाहता है और स्थायित्व चाहता है। यह बात मुझे नहीं जँचती। अपने उदास और मरते हुए शहरमें कोई छोटी-सी नौकरी करते हुए भी मुझे सुख मिलता है, माँकी आज्ञापर एक लड़कीसे शादी करनेपर भी सुख मिलता है और भीड़के शोरोगुलमें इस बड़े शहरमें भटककर भी सुख मिलता है। तब क्या चयन ही सुख है? या परम्पराओंको ढोना ही सुख है?

■

उत्तरदायित्वहीन हो रहना भी अच्छा ही है। परिणामस्वरूप जो पीड़ा मिलती है, उससे बचनेकी सुविधाके लिए उत्तरदायी बनना क्या आवश्यक है? हम मान क्यों नहीं लेते कि कुछ प्रश्न महज़ पूछनेके लिए पूछे जाते हैं, उनका उत्तर कुछ नहीं होता और कुछ उत्तर महज़ देनेके लिए दिये जाते हैं, उनका अर्थ कुछ नहीं होता?

■

आधुनिकता हमारे ऊपर किस क़दर हावी है कि हम कोई पुरानी बात सोचना ही नहीं चाहते। नया। हर काम नया। हर काम-पर पचीस-पचास क़दम आगेकी बात। लेकिन नयेको सहने-स्वीकारनेके समय हमारा साहस कहाँ चला जाता है?

मेरा एक दोस्त है। मेरी छोटी बहनसे प्यार करता है। घरमें मेरे सिवा इस बातको कोई नहीं जानता। जब भी वह मुझसे मिलने आता है, उसकी आँखें कमरेके दरवाज़ेपर लगी रहती हैं। अपनी बहनके नाम लिखे गये उसके दो-चार पत्र भी मैंने पढ़े हैं। कितना व्याकुल है वह, मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

एक दिन जब वह आता है, मैं अपनी बहनको बुलाकर अपने कमरेमें बिठा लेता हूँ और बातें करने लगता हूँ। मेरे दोस्तका मुँह सूख जाता है। कुरसीसे उठकर जब वह बड़ी मेज़-पर रखी हुई एश-ट्रे उठाने जाता है तो उसके पैरोंका थरथराना मुझे साफ़ दिखाई देता है। जबतक मेरी बहन बैठी रहती है वह ढंगसे कोई बात नहीं कर पाता लेकिन घर जाकर एक कहानी लिख देता है।

कहानी छपकर आती है तो मैं देखता हूँ कि वह मेज़पर आगेको झुका हुआ बैठा है, रमाकी गरम साँसें उसे अपने चेहरे तक आती हुई महसूस हो रही हैं और वह चाय पीते हुए रमाके साथ सेक्स-साइकोलॉजीपर अँगरेज़ीमें बात कर रहा है। मेज़पर एक कोनेमें मैं भी बैठा हूँ लेकिन मैं दक़ियानूसी विचारोंका भार बनाकर सुलगता हुआ बताया गया हूँ—सिगरेटकी तरह।

एक और दोस्त है। उसे सपने बहुत आते हैं। उसका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। कभी-कभी वह कहता है, "यार कोई भी हो, कैसी भी हो, एक लड़की चाहिए जो मुझे प्यार करने लगे।"

मैं एक तरहसे चिढ़ानेके लिए ही कहता हूँ, "दिल्लीमें रहकर डेढ़ सौ रुपयोंमें तुम अपना और उसका गुज़ारा कैसे करोगे, जब कि ख़ुद हमेशा क़र्ज़दार रहते हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मेरी ओर उपेक्षासे देखकर कहता है, "प्यारको पैसेसे क्या ताल्लुक ?"

मैं केवल हँसकर रह जाता हूँ।

■

मेरा एक पड़ोसी अकसर सलीबोंका सपना देखता है। उसे लगता है कि दुनियाने बहुत-से सलीब चारों ओर गाड़ रखे हैं और उस-जैसे लोगोंको जबरदस्ती उन सलीबोंपर लटकाया जा रहा है। वह अपने सपनोंकी बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ करता है और बादमें कहता है, "दरअसल बात यह है कि मैंने एक हिन्दुस्तानी एक्टरको फ़िल्ममें ईसा बनते हुए देख लिया था, तबसे मुझे ऐसे सपने आने लगे हैं।"

वह अकसर मौतके बारेमें सोचता और ज़िन्दगीके बारेमें बोलता रहता है और यदि लोगोंको मौतके बारेमें बोलते सुनता है तो घबराकर या तो बातका रुख मोड़ देता है या प्रतिवाद करने लगता है।

मुझे नहीं मालूम कि विदेशी फ़िल्मोंमें अपने देशके हास्य-अभिनेताको देखकर उसे हँसीके सपने क्यों नहीं आते और मैं नहीं जानता कि उसके सलीबोंके सपनोंवाली कहानीका क्या अर्थ है।

■ ■

Roller Chains AND Spockets

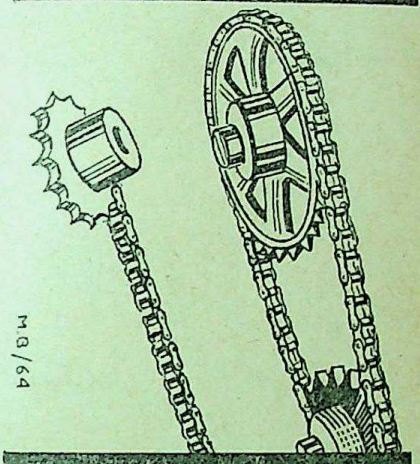

JAGATNARAYAN BHAGAWANDASS
71/A, NETAJI SUBHAS RD. CAL-1
ROOM NO. D/S 12.

PHONE { 22-4704 / 22-0795

Importers & Stockists of :

Steel Roller Chains, Sprockets of "Renold" Kabo Diamond, Anchor Morse & General Order Suppliers.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

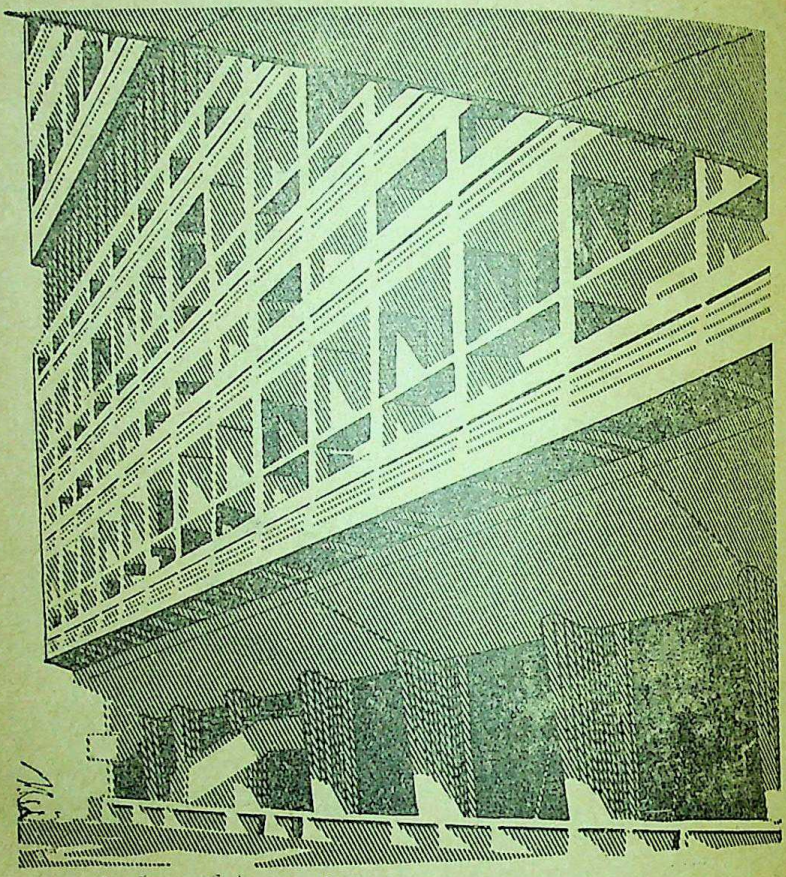

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

अशोका सीमेन्ट लिमिटेड

सोनवेली पोर्टलैंड सीमेन्ट कं० लिमिटेड

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

LPC 49C 150 HIN(A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या बाल-साहित्य एक फ़ैशन है ?

हरिकृष्ण देवसरे

कुछ ही दिनों पूर्व ब्रिटिश कौन्सिलके मुख्य पुस्तकालयाध्यक्ष श्री फ़ार्ग्युसनका साहस यह कहनेके लिए हो गया कि भारत-जैसे देशमें, जहाँ बच्चोंके लिए पुस्तकें चुननेमें चुनाव-क्षेत्र बहुत सीमित है, पुस्तकोंके विवेकपूर्ण चुनावकी समस्या वास्तविक व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है। पुस्तकें कहाँ हैं जिनमें-से चुना जाये।....और इस तरह उन्होंने भारतीय बाल-साहित्यको एक चुनौती दी, क्योंकि उस समय वह त्रिवेणी कला संगम, दिल्लीके खुले सभागारमें ब्रिटिश कौन्सिल-द्वारा आयोजित 'बच्चोंकी पुस्तकें और पुस्तकालय' शीर्षक पुस्तक-प्रदर्शनीमें आयोजित एक परिचर्चामें बोल रहे थे। उस सभामें उपस्थित किसी भी व्यक्तिने फ़ार्ग्युसन महोदयको यह बतानेका साहस नहीं किया कि पुस्तकें यहाँ हैं जो भारतीय बच्चे पढ़ते हैं। वह उन्हें बताता कि बँगला, गुजराती, मराठी, तमिल और मलयालमका बाल-साहित्य कितना समर्थ है। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, शायद इसलिए कि वहाँ उपस्थित लोग या तो भारतीय बाल-साहित्यसे परिचित न थे या उन्हें उसके बारेमें कुछ भी कहनेका साहस नहीं हो रहा था क्योंकि उन्होंने सदैव बाल-साहित्यकी उपेक्षा की है और इस कारण भला किन आधारोंके आधारपर वे कोई दावा पेश करते।

बड़ी समस्या है कि हमारे यहाँ लोग बाल-साहित्यको अभीतक उपेक्षित बनाये हुए हैं। यदि इस समस्याका गम्भीरतासे अध्ययन करें तो लगता है कि आजकल बच्चोंके लिए छपने-वाला साहित्य खरीदना एक फ़ैशन बनता जा रहा है। यह फ़ैशन उनके दो काम एक साथ करता है—एक तो यह कि वे उस ज़िम्मेदारीसे मुक्त हो जाते हैं जिसे बच्चों-द्वारा उनपर लादा जाता है, दूसरे उन्हें अधिक सुसंस्कृत तथा सभ्य और आधुनिक कहलानेका अवसर प्राप्त होता है। लेकिन यह भी वे उन रंग-बिरंगी पुस्तकोंको खरीदकर गर्व अनुभव करते हैं जो विदेशी भाषामें विदेशोंसे ही छपकर आती हैं। इनमें अँगरेज़ीकी बहुलता है। इस तरहकी शिक्षा या केवल दायित्व-निर्वाहकी बातसे ही प्रेरित होकर आजके युगमें कुछ विचारकोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मत बनता जा रहा है कि अब बच्चोंको अपनी मदद आप करनी पड़ती है यानी पुस्तकोंसे अपनी रुचिके अनुकूल कहानियाँ ढूँढ़कर पढ़ना, दादी-नानीके बजाय रेडियोसे कहानी सुनना और जो उपलब्ध न हो उसे मित्रोंसे प्राप्त कर काम चलाना। ऐसा सब केवल इसलिए होता है कि बच्चोंको अपने बड़ोंपर इनके लिए निर्भर रहना पड़ता है।

लेकिन बाल-साहित्यकी उपेक्षाके कारण केवल अभिभावक और माता-माता ही नहीं हैं। इसकी उतनी ही जिम्मेदारी उन लेखकों और प्रकाशकोंकी भी है जो बच्चेके साहित्य-का प्रणयन करते हैं। यहाँ मैं हिन्दीके बाल-साहित्यको विशेष सन्दर्भके साथ रखूँगा, यों ये बातें समस्त भारतीय बाल-साहित्यपर लागू होती हैं। जब बाल-साहित्य कम था तो उसके न होनेकी बात बहुत कही जाती थी। जब लिखा जाने लगा तो उसके बारमें कई भ्रान्त धारणा बन गयी। उस समय बाल-साहित्यके उद्देश्यके बारेमें लोगोंका विचार था कि उसका उद्देश्य कुछ नहीं है, सिवाय इसके कि वह बच्चोंका मनोरंजन करे और अपने रंग-बिरंगे स्वरूपसे उन्हें आकर्षित किये रहे। इसी उद्देश्यको लेकर पुस्तकोंका लेखन-प्रकाशन हुआ। दूसरी ओर प्रकाशकोंने इस अवसरका पूरा फ़ायदा उठाया। उन्होंने अनेक ऐसे लेखक पकड़े जिनमें बाल-साहित्य लिखनेकी क्षमता तो न थी पर वे थोड़े-से पैसोंमें काम चलाऊ बाल-साहित्य लिख सकते थे। ये पुस्तकें जब छपकर बाज़ारमें आयीं और धीरे-धीरे लोगोंको इनकी असलियतका पता लगा तो अभिभावक, अध्यापक, माता-पिता---सभी सावधान हो गये। उनके मनमें इस कारण बाल-साहित्यके बारेमें जो धारणा बन गयी है वह आज भी उन्हें प्रभावित किये है। इसीके परिणामस्वरूप अच्छा बाल-साहित्य भी उपेक्षित बना हुआ है। यही कारण है कि आज बाल-साहित्यको बाज़ारमें बेचना एक कठिन समस्या है। इसलिए प्रकाशक बाल-साहित्य-लेखकको उचित पारिश्रमिक देनेसे कतराता है। कम पारिश्रमिक मिलनेसे लेखक भी अच्छी पुस्तकें नहीं लिखते। लिखते केवल वे हैं जिन्हें पैसोंकी अति आवश्यकता होती है या जिन्होंने लेखन ही अपना जीवन बना लिया है। यह समस्या यहीं नहीं समाप्त होती। कुछ प्रकाशकोंने लेखकोंको रजिस्टर्ड-सा कर लिया है। उनकी लिखी हर विषयपर पुस्तकोंका सेट वे प्रकाशित करके बेचनेमें व्यस्त हैं। जिन विषयोंपर पुस्तकें नहीं होतीं उन्हें भी वे उन्हींसे लिखवाकर कमी पूरी करनेका दावा करते फिरते हैं, जब कि उस पूरे साहित्यमें-से कुछ ही ऐसा होता है जो सही अर्थोंमें उपयोगी सिद्ध हो सकता है। दूसरी ओर, कुछ लेखकोंने भी अपनी रोजीके लिए ऐसे प्रकाशकोंका पल्लू पकड़ रखा है जो उनके प्रभावमें आकर सस्ते दामपर किताबें लिखवाते हैं और अपना काम चलाते हैं। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि एक ही विषय-पर कई प्रकाशकोंके कई सेट प्रकाशित हुए हैं। उनमें सामग्रीकी दृष्टिसे भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं मिलता और न ही प्रस्तुति-करणकी विधामें कोई अन्तर होता है। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान बात जो स्पष्ट रूपसे उभरकर आती है वह है प्रकाशकोंका व्यावसायिक दृष्टिकोण। इस सभी बातोंका यदि विश्लेषण करके हम गम्भीरतापूर्वक सोचें तो वे सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं जो बाल-साहित्यके अस्तित्व-को स्थायी तथा महत्त्वपूर्ण नहीं बनने दे रही हैं। यही वे कारण हैं कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके बाल-साहित्यकी इतनी साख नहीं बन पायी है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय मंचपर पहुँचकर—जिसे शायद कसौटी मान-कर फ़र्युसन महोदयने भारतीय बाल-साहित्य-के सामने वह प्रश्नचिह्न लगा दिया है—अपना प्रतिनिधित्व कर सकें।

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतीय बाल-साहित्यकी कोई ऐसी पुस्तक या पात्र ऐसा नहीं है जो गुलीवर, टॉम या लिज़्ज़ेलाकी तरह लोकप्रिय हुआ हो। न हों, तो बात नहीं है। आवश्यकता है उसके मूल्यांकन और उस स्तर तक पहुँचानेकी। हमें लोग अपने देशके बाल-साहित्यपर लगाये विदेशी आक्षेपोंको चुपचाप सुनकर चले आते हैं वहाँ भला कैसे उम्मीद की जा सकती है कि बाल-साहित्यको बढ़ावा मिलेगा या वह भी अपना अस्तित्व किसीके समक्ष रखनेका अवसर प्राप्त कर सकेगा। आज तक ऐसा कोई प्रयास नहीं हुआ जो सभी भारतीय भाषाओंके बाल-साहित्यको एक स्थानपर इकट्ठा करके उसमें-से उस सर्वश्रेष्ठ-का चुनाव करे जिसे भारतका प्रतिनिधि बाल-साहित्य कहा जा सके।

बाल-साहित्यके होनेवाले अनुवाद भी यह कार्य कर सकते हैं। लेकिन अनुवादके लिए नब्बे प्रतिशत अँगरेज़ीकी ही पुस्तकोंको लोग चुनते हैं। यहाँ अँगरेज़ीके बाल-साहित्य-को बुरा कहनेका उद्देश्य नहीं है बल्कि उस मूल बातकी ओर ध्यान दिलाना है जो भार-तीय बाल-साहित्यकी कमीका एक कारण है। यदि भारतीय भाषाओंके बाल-साहित्यकी ओर लोग ध्यान दें और उसमें आदान-प्रदान आरम्भ करके अनुवादको महत्त्व दें तो वह सर्वश्रेष्ठ चुननेमें विशेष कठिनाई न होगी जिसकी आज हम आवश्यकता महसूस कर रहे हैं।

लेकिन इस सबके बाद मूल दृष्टिकोण-परिवर्तन उन्हें करना होगा जो बच्चों तक बाल-साहित्य पहुँचाते हैं। बाल-साहित्यको फ़ैशन समझकर आज अनेक लोग पुस्तकें खरीदते हैं और वे भी अँगरेज़ीकी। वैसी पुस्तकें वे इसलिए भी खरीदते हैं कि उसमें-से उनका बच्चा कुछ याद कर लेगा और जब वे उसे घर आये किसी आगन्तुकके सामने सुनवायेंगे तो उनके आधुनिक होनेका प्रमाण स्वयं ही सामने आ जायेगा। लेकिन वे भूल जाते हैं कि इस तरह बच्चे दुहरे संस्कारोंके बीच पलकर न तो यहाँका रह पाता है और न वहाँका।

बाल-साहित्यकी समस्याको सुलझाना बहुत आवश्यक है क्योंकि यह उस पीढ़ीका निर्माण करता है जिसके हाथोंमें कभी राष्ट्र सौंपा जायेगा।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

की

मई १९६६ को प्रकाशित हो रहा है

गौरवपूर्ण परम्परामें नयी कड़ी

अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करा लें

केरल विशेषांक

उत्तरापथ और दक्षिणापथका सांस्कृतिक सेतु : भावात्मक एकताका प्रतीक

केरलकी समसामयिक काव्यधारा, कथा-साहित्य, नाटच-विधा, लोक-संस्कृति, शिल्प और कला, केरलीय समाज-परम्परा और प्रचलन; केरलकी सन्तधारा; केरलीय संस्कृत साहित्यकारोंकी देन; केरलमें इस्लाम तथा यहूदी धर्म; केरलीय दर्शन, ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र तथा मलयालम भाषा और लिपिके परिचयके साथ मलयालम कविताओं, कहानियों तथा अन्य विधाओंसे सुसज्जित।

इस **केरल विशेषांक** के कुछ प्रमुख लेखक

सर्वश्री ए० चन्द्रहासन, पी० नारायण, अब्राहम जेकब एस० वेंकटसुब्रह्मण्य अय्यर, विश्वनाथ अय्यर, किलिमानूर एन० विश्वम्भरन्, टी० भास्करन्, ए० श्रीधर मेनन, के० नारायणन्, एम० चन्द्रशेखरन नायर, वी० ए० केशवन नंपूतिरि, आर० रामन नंपूतिरि, एन० पुरुषोत्तम मल्सय्या, रवि वर्मा, रामचन्द्र देव, जी० शंकर कुरुप, पी० कुंजुरामन नायर, वेलोप्पिल्लि श्रीधर मेनोन, अक्कित्तम् अच्युतन नंपूतिरि, तकाषी शिवशंकर पिल्ला और श्रीमती बालामणि अम्मा तथा सुगत कुमारी।

केरलीय साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शनका यह सन्दर्भ-ग्रन्थ अवश्य पठनीय और संग्रहणीय है

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक १०.००; इस विशेषांकका २.५०

पो० बा० नं० ६० इलाहाबाद	सम्पादकीय	माध्यम सम्पर्क-सूत्र	व्यवस्थापकीय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाकार कुमारिल स्वामी

भारतके शिक्षामन्त्री श्री छागलाने कलाकार कुमारिल स्वामीके चित्रोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए कहा कि कलाकारको वर्तमान एवं अतीतके अन्तरको निलय करना है। इसीमें उसकी सफलता एवं कार्य-क्षमता निहित है। इस कसौटीपर यदि कलाकार खरा उतरता है, तो निःसन्देह वह एक उच्च कोटिका कलाकार है। कुमारिल स्वामी वर्तमान शैलीकी उपेक्षा करनेका साहस कभी नहीं करते बल्कि उनका आग्रह रहता है कि अन्ध-अनुकरणसे कलाकारकी मौलिक-शक्तिका ह्रास होता है। अतः उससे बचना चाहिए। आप एक ओर परम्परावादी शैलीके प्रतिपादक हैं और दूसरी ओर आधुनिकताके प्रति भी सद्भाव एवं सद्विचार रखते हैं।

कला एवं कलाकारमें साध्य एवं साधकका-सा सम्बन्ध होता है। कला कलाकारसे सार्थक होती है और कलाकार अपनी कलासे। यह अन्योन्याश्रित सम्बन्ध जीव एवं ब्रह्म-जैसा है। कुमारिल स्वामीकी कलाकृतियाँ आजके युगमें अपना अलग स्थान रखती दिखाई देती हैं।

आधुनिक वादोंकी आँधियोंसे शायद ही कोई कलाकार ऐसा हो, जो किसी-न-किसी ढंगसे प्रभावित न हुआ हो। 'वाद'की लहरोंमें अच्छे-अच्छे साधकका मन भी डोल जाता है और बहुत-से कलाकार तो पथभ्रष्ट एवं दिग्भ्रमित पाये गये हैं। पश्चिमी वादोंको ज्यों-का-त्यों अपनाया जा रहा है और कलाकारोंकी कृतियोंका अन्ध-अनुकरण करनेमें ही कलाकार अपनेको धन्य मानने लगा है। यह दृष्टिकोण बड़ा हानिप्रद है। नवीनताके चक्करमें ऐसा न हो कि कलाकार अपनी शैलीसे भी हाथ धो बैठे। मेरा तात्पर्य कभी भी आधुनिक कलाकी उपेक्षा करना नहीं है, वरन् उसके गूढ़ रहस्यसे समाजको क्या लाभ हो सकते हैं, यही बताना रहा है। सूक्ष्म कला कला-कारके स्थूल शरीरसे अधिक सम्बन्ध न रखकर सूक्ष्म शरीरका प्रतिबिम्ब मात्र है। यह एक प्रकारका दृष्टिकोण है जिसके आधार-पर कलाकार अपनी कृतियाँ प्रस्तुत करता है।

गाँव : कुमारिल स्वामी

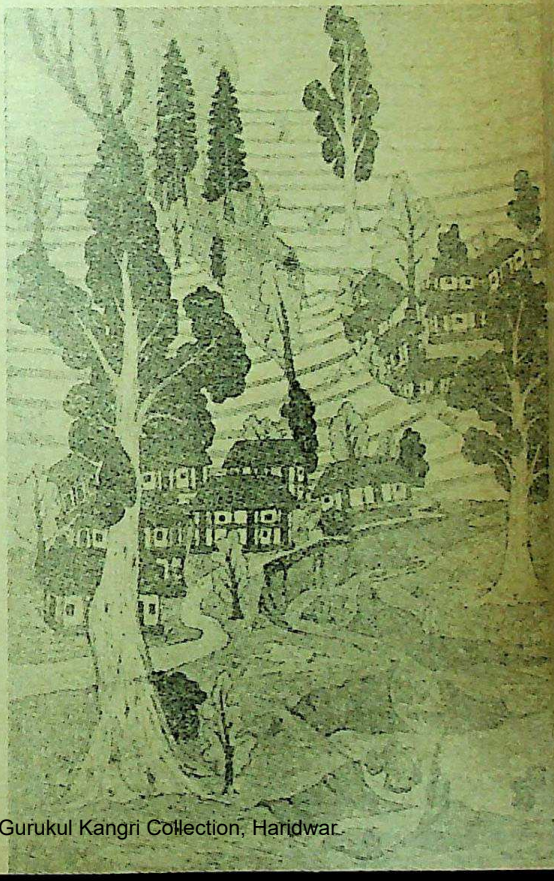

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्त परिचय : कुमारिलजीका जन्म करीमनगर, आन्ध्र प्रदेशमें १९२४ में हुआ। पिताके देहान्त हो जानेसे शिक्षाका क्रम छिन्न-भिन्न हो गया। हैदराबादके मिशन स्कूलमें थोड़ी शिक्षा पाकर आपकी भेंट प्रसिद्ध समाज-सुधारक ठक्कर बाप्पासे हुई और उन्होंने कुमारिलकी रुचि कलाकी ओर देखकर उन्हें शान्तिनिकेतनमें विशेष अध्ययनके लिए भिजवा दिया, जहाँ कलाकारका व्यक्तित्व निखर उठा। कला-गुरु नन्दलाल बोसके चरणोंमें बैठकर आपने कला-शिक्षा पूर्ण की और फिर दिल्ली चले आये। आज-कल आप स्कूल ऑफ़ आर्ट्स, दिल्लीके एक वरिष्ठ अध्यापक हैं। कलाकी सेवा करना आपका ध्येय है।

मुझे कलाकार कुमारिलको निकटसे देखनेका सौभाग्य १९४८ से रहा है। आप जीवनकी अनेकानेक परिस्थितियोंसे संघर्ष करते रहे हैं और दूसरोंको भी संघर्षमें सहा-यता देते रहे हैं। साँवला चेहरा, सरल मुसकान, सुनहरा चश्मा, बिखरे बाल, और मोटे खद्दरके कपड़े, विशेषकर कुरता-पाजामा पहननेमें आप गौरव एवं सुख अनुभव करते हैं। बाह्य रूप जितना सरल है उससे कहीं अधिक आपका मृदुल स्वभाव है। कलाकार-का जगत् एक साधारण मनुष्यके जगत्से कहीं विस्तृत एवं सुनहला होता है। दया तो मानो आपमें कूट-कूटकर भरी है। पशु-पक्षी तकका कष्ट सहन करनेमें आप असमर्थ हैं। स्नेह एवं सद्भावनाका जीता-जागता रूप आप अपने आँचलमें सँजोये रहते हैं। कलाकारकी दृष्टि पैनी होती है उससे कोई भी रूप बचकर निकल भागनेकी चेष्टा नहीं कर सकता। भले ही वे नाम भूल गये हों किन्तु रूप अपना स्थायी प्रभाव कलाकारके मस्तिष्कपर छोड़े बिना नहीं रहता। निःस्वार्थता आजके युगमें बड़ी अनमोल वस्तु है, ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलती किन्तु इस व्यक्तिके सम्पर्कमें आइए, देखिए कितनी मात्रामें बिखरी पड़ी है। मुझे ठीक तरह स्मरण है कि कितने ही व्यक्तियों-की आपने सहायता की है और उन्हें अग्रसर होनेके लिए उत्साहित किया है। हाँ, एक अवगुण मुझे दीख पड़ा है कुमारिलजीमें कि आप विज्ञापनसे सैकड़ों मील दूर रहते हैं। वर्तमान युग विज्ञापन एवं दिखावेका है। साधक एवं साधनावाले व्यक्ति पृष्ठभूमिमें पड़े रहते हैं। यदि किसीकी दृष्टि पड़ी तो वे ही थोड़ा आदर प्रदान कर देते हैं अन्यथा यह कहकर टाल देते हैं कि पुराने कलाकार होनेके नाते प्रगतिवाद एवं गतिशीलता तो छू ही नहीं पायी है। लोगोंके आग्रह करनेपर तथा डॉ० संजीवैयाके विशेष अनुरोधपर आप अपनी इस प्रदर्शनीका संयोजन करनेपर राजी हुए।

कलाशैली : कुमारिलजीने लगभग १५० चित्र बनाये हैं। तैलचित्र, वाश, तथा टैम्परा पद्धति आपको अधिक प्रिय है। कुछ कलाकृतियाँ राजस्थान, संगरिया, हैदराबाद एवं शान्तिनिकेतनमें अपनी सुषमा बिखेर रही हैं, शेष कशमीरी गेटके एक मकानमें बन्द। मास्टर मोशायका कथन सही प्रतीत होता है कि भारतकी चित्रकला टैम्परा शैलीमें ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षित है। इतिहास इसका साक्षी है। भड़कते रंग, बिखरे विचार, असंख्य रेखाएँ, असन्तुलित संयोजन भारतीय शैली कदापि नहीं कही जा सकती। मिट्टीके रंगोंका प्रयोग, हाथके बने काग़ज़पर चित्र, भारतीय दर्शनकी भावभूमि, भारतीय कलाकारकी अपनी विशेषता है। इस दृष्टिसे मैं कलाकार स्वामी-को एक सच्चा भारतीय कहूँ तो असंगति एवं अत्युक्ति नहीं होगी। आपके चित्रोंमें प्राचीन भारतकी आत्मा मुखरित हो उठी है। उनका विषय अधिकतर धार्मिक एवं सामाजिक है। हिन्दू, बौद्ध-धर्मपर कुछ चित्र तो निःसन्देह उत्तम कोटिके हैं। इधर जब आपने हिमालयका दर्शन किया तो चित्र लाना स्वाभाविक ही था। सीढ़ियोंदार खेत, खपरैलके मकान, टेढ़ा-मेढ़ा पथ, बल खाती हुई नदी, गगनचुम्बी वृक्ष, तथा सरल जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियोंके चित्र आप बना रहे हैं—यह आपकी शैलीमें नया मोड़ है। परम्पराका पालन करना कलाके क्षेत्रमें बुरा नहीं है, किन्तु आधुनिकताके गुणोंके प्रति श्रद्धा न होना भी मैं कमी ही मानता हूँ। कलाकी व्यापकता, एवं सूक्ष्म भावोंके सूक्ष्म चित्रणसे आपको चिढ़-जैसी है। आधुनिक कला वर्तमान युगकी कला है जिसमें कलाकारके मानसिक दृश्यके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। आप 'कला कलाके लिए है' वाले सिद्धान्तसे दूर भागते नज़र आते हैं। आप 'कला जीवनके लिए है' सिद्धान्तके पक्षपाती हैं। अनेकानेक कलाके स्वरूप हो सकते हैं, उनमें हमें जो अच्छा लगे अपनाते चलें—इस व्यापक दृष्टिकोणको कलाकारको अपनाना चाहिए।

—सोमदत्त गालवीय

जुलूस

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

'रेणु' का नवीनतम उपन्यास
रोचक और संग्रहणीय

मूल्य ३.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ लगा हुआ
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक स्निग्ध
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को मैल,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
मैनेजिंग एजेंट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोष्ठी

(रचना, सेतु और नवगीत)

रचना : 'प्रेम चुनरिया बहुरंगी' और 'अठारह सूरजके पौधे'.....

कलकत्ताकी एक नयी विचार-गोष्ठीका नाम है 'रचना'। नगरकी प्रबुद्ध तथा साहित्यप्रेमी महिलाओंने मिलकर साहित्य-चर्चा, जिज्ञासा-समाधान तथा विचार-विमर्शके लिए इस गोष्ठी-को स्वरूप दिया है। श्रीमती कुन्था जैन तथा ज्ञानवती लाठ-द्वारा संचालित और शीला झुनझुनवाला तथा रेणु केजड़ीवाल-द्वारा संयोजित रचनाकी अबतक दो गोष्ठियाँ हो चुकी हैं।

'प्रेम चुनरिया बहुरंगी' : ३१ मार्चको श्रीमती ज्ञानवती लाठके निवासस्थानपर आयोजित महिला-गोष्ठीमें श्रीमती रजनी पनिकरके कहानी-संग्रह 'प्रेम चुनरिया बहुरंगी'-पर विचार-विमर्श हुआ। इसमें निम्नलिखित महिलाओंने भाग लिया :

श्रीमती रजनी पनिकर, कुन्था जैन, निर्मला डालमिया, ज्ञानवती लाठ, सुशीला रामपुरिया, सरोज गोयनका, प्रेमलता बाल्का, पद्मा बिन्नानी, आशमा लाखोटिया, नीलू करनानी, गिरिजा शुक्ल, मालती कुलश्रेष्ठ, किरण जैन, इन्दुमती गोयनका, सुनीता कुलश्रेष्ठ, अनुसूया कानोडिया, पद्मावती झुनझुनवाला, सुशीला सिंघी, सुलभा सिंघी, भारती कुँवरनारायण, रेणु केजड़ीवाल, भारती जालान, शान्ति खेतान.....।

श्रीमती कुन्था जैनने कहा कि यह बड़े हर्षका विषय है कि हम रचनाकी प्रथम गोष्ठीमें महिला-लेखिकाकी रचनापर विचार विनिमय कर रहे हैं और आज हम जिनकी पुस्तकपर चर्चा करने जा रहे हैं वे, यानी श्रीमती रजनी पनिकर हमारे बीच उपस्थित हैं। उनकी उपस्थितिसे हमें उपयोगी प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त होगा। पुस्तकका परिचय देते हुए उन्होंने कहा कि पुस्तक कहानी-संग्रह है। इसमें २९ कहानियोंका संकलन स्वयं लेखिका-ने नहीं किया है, बल्कि प्रकाशकने चुना है। कहानियोंमें स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी तथा उनसे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियोंके रागात्मक सम्बन्धों-का चित्रण है। लेखिकाका मत उन रागात्मक सम्बन्धोंके विषयमें क्या है, यह हमें वैसे कुछ मालूम नहीं होता क्योंकि उसमें उचित या अनुचितका कोई संकेत नहीं है केवल चित्रण मात्र है। ये रागात्मक सम्बन्धोंकी कहानियाँ हमें समाज और व्यक्ति तथा मानव-मानवके प्रति संवेदित करती हैं और उनके मनकी झाँकी देती हैं। कहानियोंको पढ़नेके पश्चात् पाठक अधिक सहानुभूतिमय, अधिक उदार हृदय और अधिक व्यापक दृष्टिवाला अवश्य होता है। इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियोंमें दैनिक जीवनकी घटनाएं जिस प्रकारसे घरों और परिवारोंमें घटित होती हैं उसी तरह सामने आती हैं । यह लेखिका-की अपनी विशेषता है कि वह भावनाओंके सूक्ष्म स्तरोंपर पाठकको ले जाती है और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंसे परिचय कराती है।

इसके बाद श्रीमती ज्ञानवतीजीने पुस्तकके विषयमें प्रश्नोत्तरके रूपमें चर्चा प्रारम्भ की । उन्होंने कहा कि पहली मुश्किल तो यह रही कि पुस्तक मिली ही नहीं, अतः यह अच्छा रहेगा कि जिस कहानीपर इस पुस्तकका शीर्षक रखा गया है, उसको हम एक बार पढ़ लें और उसके बाद उसपर चर्चा की जाये । अतः श्रीमती ज्ञानवतीजीने पूरी कहानी गोष्ठीमें पढ़-कर सुनायी जिससे चर्चा करनेमें बहुत सुविधा हो गयी । उस कहानीपर अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए श्रीमती ज्ञानवतीने कहा : सरकार हर वस्तुपर कमीशन बैठाती थी । यह कहानी उसीपर व्यंग्य लेख है । लेखिकाने इसमें यह दिखाया है कि प्रेममें होनेवाले अना-चारको हटाया जाये और स्वच्छ वातावरणकी सृष्टि की जाये । कथानकके बारेमें उन्होंने कहा कि अगर प्रेमके देवताको बुलाकर लेखिकाको उसे प्रेमके नाना रूपोंसे परिचित कराना ही था तो फिर प्रेमके सच्चे रूपका दर्शन भी तो कराना था ।

श्रीमती भारतीने पूछा : कहानीमें वर्णित प्रेमको क्या हम वास्तविक प्रेम कहेंगे ?

रजनी पनिकर : कहानीमें मात्र प्रेमको कई रूपोंमें दिखाया गया है । प्रेमकी परिभाषा नहीं की गयी है और न ही प्रेमकी तुलनात्मक व्याख्या ।

प्रश्न : पैसेके सन्दर्भमें जो प्रेमका वर्णन है क्या उसे हम किसी भी रूपमें प्रेमकी परि-भाषाके अन्दर ला सकते हैं ?

उत्तर : प्रेमका दुरुपयोग पैसेसे ही होता है । इसलिए मैंने अलग-अलग वर्गों और अलग-अलग रूपोंमें इसे प्रस्तुत किया है । यह प्रेम वास्तविक है या नहीं यह मेरा कहनेका मत-लब नहीं है । मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि पैसेको लेकर भी प्रेमका स्वांग खेला जाता है, उसका नाटक रचा जाता है।

प्रश्न : कहानी पढ़नेके बाद कुछ अट-पटापन-सा महसूस होता है । हर चित्रकी घटनाएँ भी अलग-अलग हैं । कहानीकी पृष्ठ-भूमि यथार्थको छूती-सी नज़र आती हो, ऐसा नहीं लगता । ऐसा लगता है जैसे ये काल्प-निक व्यंग्यचित्र हों ।

उत्तर : लेखक जो कुछ अपने जीवनमें देखता है उसीको वह अपने साहित्यमें चित्रित करता है और यह मैं अवश्य कह सकती हूँ कि इन कहानियोंमें जीवनका यथार्थ है, वह प्रेम यथार्थ है या नहीं यह कहनेका मेरा उद्देश्य नहीं है । प्रेमका देवता पृथ्वीपर आकर प्रेमके रूपमें देखे गये या बरते गये जिन विभिन्न रूपोंकी झाँकियाँ पाता है, उसका वर्णन मात्र मैंने किया है ।

श्रीमती शान्ति खेतानकी जिज्ञासा थी— इस कहानीमें प्रेमका जो रूप दिया गया है वैसा समाजमें होता तो है पर इस कहानीमें प्रेमकी जो परिभाषा दी गयी है वह प्रेमके नामपर ढोंग मात्र लगता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजनी पनिकर : आप ठीक कहती हैं कि कहानीमें अपनत्वपनका अभाव है। इसीलिए यह कहानी है।

कुन्था जैनने लेखिकाका समर्थन करते हुए कहा: असली प्रेमकी परिभाषा तो कोई दे ही नहीं सकता। इस कहानीमें व्यंग्य है। प्रेम असली नहीं है किन्तु प्रेमकी जो झाँकियाँ हैं, वे प्रभावशाली अवश्य हैं और कहीं हृदयको छूती हैं, वे मनको झकझोरती हैं कि प्रेमके नामपर क्या-क्या नहीं होता।

श्रीमती किरण जैन : कहानीका मूल स्वर है प्रेमकी चोरबाज़ारी। प्रेमके नौ रूप इसमें हमारे सामने रखे गये हैं, सभी एक-दूसरेसे बँधे हुए हैं परन्तु प्रसंग भिन्न हैं। लेखकको लेकर प्रेमका क्या दृष्टिकोण होता है, यह इसमें अच्छी तरह दिखाया गया है। कहानीका शिल्प बहुत सुन्दर है, प्रेममें प्रसंग खंडित होते हैं, उसमें वार्तालापकी प्रधानता रहती है। वार्तालापकी दृष्टिसे कहानी सार्थक बन गयी है। विषय अपनेमें गम्भीर हो सकता था परन्तु लेखिकाने सरस ढंगसे इसका प्रस्तुतीकरण किया है। कहानी बहुत अच्छी है।

सुश्री निर्मला तालवार : मूल समस्या यह है कि लेखिकाकी पुस्तकमें बहुरंग हैं और उस रंगमें रँगी एक कहानी यह भी है। प्रेमके बाह्य आवरण यानी चुनरियाको लेखिका दिखाना चाहती है।

श्रीमती भारती : प्रेम, बनावटी ही इस कहानीमें नज़र आता है, यथार्थका नहीं।

श्रीमती रजनी पनिकर : घटना यथार्थ है; प्रेम यथार्थ नहीं।

सुश्री आशिम : कहानी यथार्थपर आधारित है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि लेखक जीवनके आदर्श पक्षको लेकर ही अपनी रचनाका निर्माण करे। वह स्वतन्त्र है। किसी भी पक्षको लेकर वह लिखता रहता है। प्रेम यथार्थ है या नहीं, घटना यथार्थ है या नहीं, आदर्श कहानीमें आता है या नहीं, इन सब बातोंसे उसका कोई वास्ता नहीं। वह समाजके किसी भी पक्षका चित्रण कर सकता है। रजनीजीकी कहानी 'प्रेम चुनरिया बहुरंगी' का अपनेमें एक अलग स्थान है।

लेखिका : रजनी पनिकर : आपको इस सही मूल्यांकनके लिए धन्यवाद।

श्रीमती भारती : मैं यह नहीं कहती कि इस कहानीमें आदर्श या यथार्थ प्रेम क्यों नहीं दिखलाया गया। प्रेमका कोई भी रूप हमें हृदयस्पर्शी मालूम नहीं होता—प्रेमके नामपर एक धुँधली रेखा मात्र-सी उभरती नज़र आती है।

श्रीमती कुन्था जैन : हो सकता है कि कहानीमें वर्णित प्रेम हृदयको स्पर्श न करे किन्तु यह कहानी हमें सोचनेको मजबूर करती है कि ऐसा क्यों होता है। इनसान किस-किस रंगकी चुनरी ओढ़कर प्रेम करता है, इसका ज्ञान हमें होता है।

●

रचनाकी दूसरी गोष्ठी २८ अप्रैलकी दुपहर श्रीमती किरण जैनके निवास-स्थानपर सम्पन्न हुई। चर्चाका विषय था—श्री रमेश बक्षीका नया और चर्चित उपन्यास 'अठारह सूरजके पौधे' जो भारतीय ज्ञानपीठसे पिछले दिसम्बरमें प्रकाशित हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'रचना'ने अपनी नियमित सदस्याओंकी ओरसे लेखकको भी निमन्त्रित किया था। औपचारिक रूपसे गोष्ठी प्रारम्भ हो इससे पहले ही ऐसा लग रहा था कि इस उपन्यास-पर इतने अधिक सवाल रचनाके पास हैं कि शायद लेखक ठीक-ठीक उत्तर न दे पाये। सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि इस उपन्यासको पढ़ना या पढ़ लेना आसान काम नहीं है। श्रीमती कुन्था जैनने लेखकका परिचय देते कहा कि रमेश बक्षी चूँकि नयी पीढ़ी और नवलेखनके प्रमुख लेखकोंमें-से हैं और उनकी पुस्तकोंमें हिन्दीके वास्तविक नये लेखनकी तसवीर मिलती है, रचनाकी सदस्याओंको उनके सामने प्रश्न रखनेसे बहुत-से समाधान मिल सकते हैं। उन्होंने यह बात भी कही कि 'रचना'का उद्देश्य किसी विवादग्रस्त चर्चामें उलझना नहीं है वरन् साहित्यको अपनी स्वाभाविक जिज्ञासाओंके माध्यमसे समझना है। लेखककी अन्य पुस्तकोंके प्रति अनुशंसाके साथ कुन्थाजीने कहा कि प्रस्तुत उपन्यास, ऐसा लगता कि, लेखककी आगेकी कृति है और उनके विचारोंको समझनेमें इससे मदद मिलती है।

उपस्थितिमें प्रश्नों और विचार-विनिमयकी दृष्टिसे प्रमुख नाम ये थे : श्रीमती रजनी पनिकर, कुन्था जैन, ज्ञानवती लाठ, किरण जैन, शीला भुवालका, प्रेम भुवालका, सुशीला सिंघी, मालती कुलश्रेष्ठ, अनुसूया कानोड़िया, पद्मा बिनानी, मदालसा सवायका, सुशीला हिम्मतसिंघका, सविता बनर्जी, सुधा अरोड़ा, प्रभा भौतिका, फुलवन्त कौर, इन्दु अरोड़ा आदि।

पहला प्रश्न इन्दु अरोड़ाका था : पुस्तकके समर्पणसे आपका क्या आशय है? उपन्यास 'परम्पराके प्रति संचित घृणासहित दादा और जीजीको' समर्पित किया गया है, यह तो ऐसा ही है जैसे कोई कहे—परम्पराके प्रति घृणासहित परम्पराके नाम....

रमेश बक्षीका कहना था कि मेरे लेखनको मेरे प्रति प्रिज्यूडिस होकर अगर पढ़ा जाये तो उसे समझा ही नहीं जा सकता। मैंने परम्पराके प्रति घृणा संचित की है और फिर परम्पराके प्रतीक माँ-बापको आदर भावसे नहीं, उसी संचित घृणाभावसे उसे भेंट किया है। पारिवारिक दुर्भाग्यके बीच मैंने वह सब नहीं पाया जिसके बलपर पैरेण्ट्सके प्रति विशेष आदर अपनेसे जन्म लेता है....शायद यही कारण है, मेरा वह समर्पण एक तीखा व्यंग्य बन गया है। वह तीखापन न होता तो ज़रूर इसे परम्परागत कहा जा सकता था। वह समर्पण एक ही वाक्य है, बग़ैर कॉमाके।...इस उत्तरमें-से ही एक प्रमुख प्रश्न सामने आया—सारा उपन्यास उसकी अच्छाइयोंके बावजूद पलायनसे भरा हुआ है। नायक रेलके चक्रव्यूहमें फँसा है और उसके लिए वह कभी अपने अण्णा, कभी अपनी अक्का, कभी अपनी कुरलावाली प्रेमिकाको ज़िम्मेदार ठहराता है। पत्नीके पाससे भागना भी उसी चक्रव्यूहमें फँसना है। सारा उपन्यास उस एक व्यक्तिके फँसने और फँसे रहनेकी ट्रैजेडी है। वह आदमी अपनी स्थितियोंमें-से क़तई आउटको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करता। साध्य अगर पलायन है तो यात्रा साधन हुई फिर आप यह दावा कैसे कर सकते हैं कि पलायन ऋण हो जाता है और केवल यात्रा बाक़ी रह जाती है ?

रमेश बक्षी : जो पलायन दिख रहा है वह बाक़ई पलायन नहीं है। कई बार हमारे भीगे जा रहे यथार्थमें यह होता है कि कहींसे उठकर चल देना प्रोग्रेस होता है और वहीं न चाहते भी खड़े रह जाना पलायन हो जाता है। यह तो स्थिति है उसके लिए कोई क्या करे। उस नायकका यह भागना लगातार एक ज़मीनको तोड़नेकी कोशिश करते हुए आगे बढ़ना है। उसके सामने कोई ऐसा बन्तिम बिन्दु तो है नहीं कि उस तक उसे पहुँचना है। अगर उस यथार्थको मोल्ड करके लिखा जाये कि इस जगह यह नहीं यह एक्शन होना था तो फिर वह उस जीवन-सत्यका सही चित्र नहीं हो पाता। उसका प्रेम कर लेना जितना स्वाभाविक था, उतना ही स्वाभाविक था शादी करवा लेना और उतना ही स्वाभाविक है वहांसे भाग खड़ा होना। नायक 'बेचारा' लगता है लेकिन पस्त नहीं है। उसे जोड़-बाक़ी नहीं आती है इसीलिए फँसता रहता है वह।

प्रेम भुवालकाका एक प्रश्न था—विज्ञानके इस युगमें जहाँपर केलक्यूलेसन इतनी आगे बढ़ी हुई है वह नायक ऐसा भावुक और विदाउट केलक्यूलेशन कैसे रह जाता है ?

लेखकने कहा : हाँ, विज्ञापन बहुत आगे बढ़ गया है, अब तो ऐसे भी केलक्यूशन सामने आये हैं कि उनके हल नहीं निकलते। रिलेटिविटी और डायमेन्शन्सको अन्त तक सॉल्व कर लेना असम्भव हो गया है। वैसे मेरा पूरा उपन्यास विज्ञानके वर्तमान चरण-पर आधारित है। उसमें एक इक्वेशन भी है—स्पेसके तीन और टाइमके चौथे आयामवाली। और कोई उसे हल कर ले तो मेरी स्थितिको ठीक-ठीक समझ सकता है। उसकी चार भैंसें भी चार आयामोंपर व्यंग्य है। मेरी ट्रैजेडीमें समीकरण बिलकुल ठीक है उसका केलक्यू-लेशन ही ग़लत हो जाता रहा है....

किरण जैनको ऐसा लगा कि इसमें आयी हुई छक्-छक् बहुत ज़्यादा है, यह भी कि वह आनुपातिक हो गया है। लेखकका उत्तर था—वह जो रेल है उसमें वह तो है, वह अगर पाठकको बोर कर सकती है तो उस नायकको भी शायद बोर किया हो और इस कारण उसका शिल्प नायकके नज़दीककी एक स्थिति तक पाठकको ले जाकर छोड़ देता है।

श्रीमती ज्ञानवती लाठने इस उपन्यास-को पढ़नेको कठिनाई बतलायी कि इसे पढ़ते परिश्रम पड़ता है। टूटे हुए दाम्पत्यका एक उदाहरण देते उन्होंने कहा कि पहले ही समझ-बूझकर सब क्यों नहीं किया जाता कि बादको पत्नीको छोड़ने या नये सिरेसे जुड़नेकी जरूरत पड़े।....

लेखकने ऐसी स्थितियोंको बहुत स्वा-भाविक और आजके भारतीय परिवेशमें सहज बतलाया। यह भी कहा कि ऐसी ट्रैजेडीसे मुक्त होना ज़रूरी है, ऐसी ट्रैजेडी-पर प्रश्न करना ज़रूरी नहीं है। लेखकका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना था कि मेरे उपन्यासको वाक़ई वैसी ही भागतो-दौड़तो परिस्थितियोंके बीच रखकर यदि देखा जाये तो यह साफ़ लगेगा कि उसमें आजके चक्रव्यूहमें-से बाहर निकलनेकी कोशिश है।

श्रीमती सुशीलासिंधीने कहा—उपन्यासके माध्यमसे नयी पीढ़ीको समझा जा सकता है और नये लेखनमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसे समझनेसे इनकार किया जाये लेकिन नये लेखकोंके लिए यह ज़रूरी है कि वे अपने लेखनको इतना सहज ज़रूर बनायें कि सभी पाठक उसे समझ सकें। रेलकी छक्छक्वाला शिल्प उपन्यासको थोड़ा दुरूह ज़रूर बनाता है।

रमेश बक्षीका कहना था कि वह शिल्प भोगा गया शिल्प है, कहीं गुज़रनेकी स्थिति उसमें है, उस एक्चुअल गुज़रनेमें किसी तरहकी कतरब्यौंत मुश्किल होती है। वह पढ़नेमें मुश्किल भले लगे लेकिन मेरे संस्कारज शब्द और सन्दर्भ उसमें दिये हुए हैं उससे उसे समझनेमें आसानी हो सकती है।

शीला भुवालकाने पलायनवाला प्रश्न फिर लौटा दिया—नायक लगातार पलायन करता लगता है। वह पिताका विरोध करके अपनी प्रेमिकासे शादी क्यों नहीं कर लेता और पिताका ऐसा डर क्यों है उसमें ?

रमेश बक्षी—पिता उसके लिए दहशत है, वे प्रेतकी तरह उसके साथ लगे रहते हैं। उसकी सारी ज़िन्दगीको रेल और भैंस-मय बना देनेका आक्षेप उनपर ही लगना चाहिए। उसने एण्टी पैरेण्ट्स प्रवृत्ति अपनेमें पनपा ली है। वह आब्सेस्ड है और इसीसे वह स्थिति उसके मनमें बौद्धिक क्लान्ति को जन्म देती है। वह फ़ीजिकल पलायन न दिखाई दे लेकिन वह एक टाइम डिलिमेण्ट्रेसे गुज़र रहा है। जैसे सरकसमें मूल एरिना तक आनेके लिए एक सुरंग होती है।''' नाराज़ शेर अपने पिंजरेमें-से निकलकर तबतक बड़ा बेचारा लगता है जबतक उस गलियारेमें-से गुज़रता है। जीवनके यथार्थमें भी ऐसी ही सुरंगें हैं और मेरा नायक इस सुरंगमें-से गुज़र रहा है। उसका एक्शन तो तब दिखाई देगा जब वह एरिनामें पहुँच जायेगा। अन्तमें जब वह जान लेता है कि उसकी प्रेमिका सूट शर्टवालेके साथ है तो वह ज़ंजीर नहीं खींचता और बग़ैर किसी भावुकताके उस टूटनेको भी स्वीकार कर लेता है। किसी ट्रैजेडीके सामने हाथ ऊँचे कर देना इतना सरल नहीं है, उसके लिए एक अतिरिक्त बौद्धिक सायासताकी ज़रूरत हुआ करती है। मेरा नायक दुःखान्तमें फँसा है लेकिन अपनी बुद्धिको बेंचकर नहीं।

कुन्थाजीने इस संघर्षपर संकेत दिये जो इस पूरे उपन्यासकी यात्रामें प्रतीक बनकर सामने आये हैं। उन्होंने सुरंगमें-से गुज़रनेवाली बातसे प्रति सहमति ज़ाहिर करते कहा कि ज़िम्मेदार स्थितियाँ ही नहीं होती हैं हमारे निर्णय भी होते हैं। उपन्यासका ताज़ा शिल्प समाजके एक रूपको सामने रखता है।''''लेखकका कहना था कि जैसे राशनके लिए लाइनमें लगकर राशन ख़रीदने और किसीके द्वारा लाकर लगनेके दुःख उठाये बग़ैर राशन खरीद लेनेमें अन्तर है वैसा ही अन्तर-भोगी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूतिसे के शिल्प को दिखलाने और ओढ़ी हुई अनुभूतिसे लिखनेमें है। अठारह सूरज-भर जो लड़ाई महाभारतमें हुई वह अब एक-एक व्यक्ति-मनमें है। वे सूरज इकाईकी कोटिके हैं उनसे ही मैंने अपनी मनःस्थितिको नापा है।

श्रीमती पनिकरने शिल्पके बारेमें संकेत उठाये और इस बातपर बल दिया कि पारिवा- कि स्थितिका यथार्थ अलग होता है और उसपर प्रश्न नहीं किये जा सकते। रमेश बक्षीके उत्तरोंसे कईके मनमें यह बात आयी कि उप- न्यास एक बार और पढ़ा जाना चाहिए।

औपचारिकताके समाप्त होते ही कई और प्रश्न सामने आ गये—उपन्यासकी नवीनताके बारेमें कि इतनी जानी-पहचानी प्राब्लम सामने आयी है जिसके लिए दाम्पत्य सरासर ज़िम्मे- दार है। एक व्यंग्य चलते-चलते लेखकसे किया गया था कि आप इतने अच्छे बुश्शर्ट पहनते हैं फिर उदास और परेशान क्यों दिखाई देते हैं और अपनी बातपर वज़न डाल- डालकर अपने-आपको क्यों जस्टीफ़ाई करते रहते हैं ?....

लेखकने उत्तर नहीं दिया, चुप रहकर अपने-आपको शायद जस्टीफ़ाई कर लिया।

('रचना'से प्राप्त विवरणपर आधारित)

• सेतु : नवलेखन : परिशेश और प्रक्रियाके बीच...

ल वर्षकी भाँति इस वर्ष भी २७-२८ मार्चको काशीकी साहित्यिक संस्था 'सेतु'-द्वारा आयोजित दो विचार-गोष्ठियोंमें 'नवलेखन और सामयिक परिवेश' तथा 'नव-लेखन और रचना-प्रक्रिया' विषयोंपर बहसें हुईं। गोष्ठीमें उपस्थित साहित्यकारों-द्वारा बातें की गयीं और खूब की गयीं।

'सेतु'की पहली गोष्ठीमें डॉ० बच्चन सिंह- ने अपने संयोजकीय वक्तव्यके प्रारम्भमें ही सवाल उठाया था कि 'किस लेखनको नव- लेखन नाम दिया जाये ? क्या नयी कविता और नयी कहानी नवलेखन हैं ? या नवलेखन इन दोनोंसे भिन्न है—संवेदना और शिल्प दोनोंमें ही ?' कहना न होगा कि ये सवाल महत्त्वपूर्ण हैं पर उतने नहीं जितना उन्हें गोष्ठी- में बनानेकी संयोजकीय वक्तव्य-द्वारा कोशिश की गयी। यह बात तो अब काफ़ी साफ़ भी हो चुकी है कि नवलेखनका सवाल उम्रमें बँटी हुई पीढ़ियोंका नहीं बल्कि चिन्तनके धरातल- पर यह दो तरहसे सोचने (या जीने) वाली पीढ़ियोंका है। यह सवाल या तो उनके लिए अतिरिक्त महत्त्वका हो सकता है जो 'नये'के नामपर मुँह बिदकाते हैं या फिर उन 'नयों'के लिए जो एक-ब-एक 'थिर' हो जानेके लिए परेशान हैं। लगता है, शायद अभी भी बहुत लोग हैं जिन्हें यह बताना या जिनके लिए यह स्पष्ट करना होगा कि साहित्यमें काल-विभाजन सन्-संवत् नहीं भावबोधके आधारपर होता है। और इसके बाद डॉ० रघुवंशने विषयकी स्थापना करते हुए अपने अलिखित-लिखित निबन्धसे यह समझानेकी कोशिश की कि 'सामयिक परिवेश निजी सन्दर्भमें महत्त्वपूर्ण होता है' और साथ ही यह कि 'व्यापक सन्दर्भमें आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृजनशीलता सम्पूर्णरूपसे अपने सामयिक परिवेशसे सम्पृक्त है।' सम-सामयिक परिवेश-के 'सन्दर्भ'में आधुनिकताको स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि 'वर्तमान सांस्कृतिक सृजनशीलताके सन्दर्भमें युरॅपके सांस्कृतिक गतिबोधको आत्मसात् करनेकी चेष्टा आधुनिकता है।' रघुवंशजीसे सहमत होते हुए यह कहा जा सकता है कि युरॅप मूल्य-चेतना-को निरन्तर समृद्ध और गतिमान् करनेकी चेष्टा कर रहा है, लेकिन पश्चिमकी मूल्य उपलब्धियों—मानववादी दृष्टिके विकास तथा यथार्थको अधिकतम ग्रहण करनेके उपक्रमको ही हम आधुनिकता नहीं मान सकते। अतः जैसा कि उन्होंने कहा था—'समसामयिकताकी गत्यात्मकताका बोध ही आधुनिकता है।'

विचार-विमर्शके लिए रघुवंशजीके निबन्धने 'आधुनिकता' पर बहस करनेकी एक दिशा अवश्य दी थी। और शायद इसी दिशाकी यात्रा करते हुए पण्डित विद्यानिवास मिश्रको यह कहना पड़ा कि 'अतिरिक्तताओंसे मुक्ति ही आधुनिकता है।' क्या 'आत्मीय' है क्या 'अनात्मीय' और सही-ग़लत नवलेखनका भेद बताते हुए विद्यानिवासजीने कहा था कि 'जो कुछ मानवीयता-को नहीं ग्रहण कर पाता वह इतर है और विवेककी अनिवार्यताको नकारनेकी निर्ममता ही विवेककी पहली शर्त है।' उन्होंने एक सूत्र यह भी बताया कि 'आधुनिकीकरण एक विवशता है और आधुनिकता एक वरण। नवलेखनकी विशेषता उसके सामयिक परिवेशसे नहीं उसकी सामयिक दृष्टिसे है।' विद्यानिवास-जीने महत्त्वपूर्ण बात नवलेखनकी भाषाके माध्यमकी अवश्य उठायी थी। इसी सन्दर्भमें डॉ० शिवप्रसाद सिंहके वक्तव्यका यह अंश याद आता है जहाँ उन्होंने यह कहा था कि भाषा सम्बन्धी कठिनाई हर युगके रचनाकार-के साथ रही है। वह जितना कुछ व्यक्त करना चाहता है, उतना कह नहीं पाता और वहाँ माध्यम सदैव कमज़ोर पड़ जाता है।'

वास्तवमें नवलेखनकी समस्या परिवेशमें जीनेकी है या परिवेशको बदलनेकी। और इसी समस्याके सन्दर्भमें डॉ० विजयशंकर मल्लने कहा था कि 'आजका युग संक्रान्ति और परिवर्तनोंका युग है, इसीलिए आज परम्पराकी खोज नये रूपसे करना आव-श्यक है।'

विचार-चर्चाके क्रममें डॉ० जगदीश गुप्तने यह कहते हुए कि 'आधुनिकता और नवलेखन एक-दूसरेसे जुड़े हुए हैं'—कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल उठाये थे, मसलन्: सम-सामयिकतासे आधुनिकताको व्याख्यायित करें या नहीं? और कि मूल्यबोधको उसके साथ कैसे सम्पृक्त किया जाये? उन्हींके शब्दोंमें कहें तो 'आधुनिक परिवेश एक प्रवाहसे सम्बद्ध है जो कभी उससे विच्छिन्न नहीं हो सकता।' 'नये मानव'के सन्दर्भमें जगदीशजीने कहा कि 'मनुष्यको उसके सामयिक परिवेशसे अलग नहीं किया जा सकता लेकिन हमें 'आधुनिकता'की कोई शाश्वत परिभाषा बनानी होगी।' जगदीशजी-द्वारा आधुनिकता-को 'शाश्वत परिभाषाकी माँग' कुछ समझमें नहीं आयी। इसी परिप्रेक्ष्यमें यह प्रश्न भी तो उठ सकता है कि हम 'आधुनिकता' को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल आजकी ही चीज क्यों मानें ? जब कि हर युगके रचनाकारकी अपनी एक आधुनिकता रही है, रहेगी। बावजूद इसके कि हर 'पुराने' के सामने जब 'नया' 'एन्काउण्टर' बनकर आता है और मूल्य बदलते हैं, हमें यह भी सोचना पड़ता है कि आधुनिकता रचना-प्रक्रियाका अंग नहीं, वह इस प्रक्रियाके सिर्फ़ 'अन्तर्गत' है। और शायद इसीलिए लक्ष्मीकान्त वर्माने यह कहा था कि 'आधुनिकताको वस्तुतः 'समसामयिकता' के साथ जाना ही उचित नहीं है। समसामयिकताकी चर्चा 'काल' के आधारपर नहीं 'बोध'के स्तरपर करनी चाहिए। इस 'बोध' का सम्बन्ध रचनाकारके परिवेशसे है और इस परिवेशके साथ ही व्यक्तित्वकी पहचान भी जुड़ी है।'

गोष्ठीमें एक ओर जहाँ काशीनाथ सिंह और धूमिलने '६० के बादके लेखनकी प्रतीक-भाषामें वकालत करते हुए उसे श्रेष्ठतम साबित करनेकी कोशिश की वहीं उसी पीढ़ीके कवि-आलोचक जितेन्द्रनाथ पाठकका यह कहना सही लगा कि '६० के बादके नवलेखनमें कोई विशेष क़रिश्मा हुआ है—यह नहीं माना जा सकता।' परम्परा और आधुनिकताके सन्दर्भमें जितेन्द्रनाथ पाठकका यह कहना भी ठीक था कि 'हम आज एक खण्ड दृष्टिसे ग्रस्त हैं जो कि निहायत बेमानी है। वास्तवमें ६० के बादके रचनाकारके लिए अपेक्षित है समग्र और व्यापक दृष्टि।'

डॉ० शिवप्रसाद सिंहने पूरे सन्दर्भमें बड़ी महत्त्वपूर्ण बात स्पष्टतासे कही थी कि "जब '६० के बादके लेखक बराबर 'बिखराव' की बात करते हैं तो उन्हें उस 'बिखराव' को स्पष्ट भी करना चाहिए। वास्तवमें '६० के बादकी कविता या कहानीमें इस बिखरावके बाहरी रूपकी ही अभिव्यक्ति हुई है, उसकी भीतरी चेतनाको नहीं पकड़ा जा सका है। बिखरावके भीतरकी चेतनाको पकड़ना ही आधुनिकताकी पहली शर्त है।" रघुवंशजीकी इस बातसे कि मूल्य भी निरन्तर विकासशील है—असहमति ज़ाहिर करते हुए शिवप्रसादजीका यह कहना अधिक सही लगा कि उपलब्ध मूल्य जड़ हो जाते हैं जिनका सम्बन्ध समसामयिकतासे है परन्तु आधुनिकता गतिशील मूल्योंसे सम्बन्धित है। और इसी सन्दर्भमें उन्होंने 'यथार्थ' और 'यथार्थ-बोध' का अन्तर स्पष्ट करते हुए यह बताया कि 'यथार्थ'का बाह्य रूप समसामयिकतासे जुड़ा हुआ है और यथार्थके आन्तरिक रूपको पकड़ पाना ही 'यथार्थ-बोध' है। नवलेखनमें सिर्फ़ 'यथार्थ' की खोज ही काफ़ी नहीं है।

विचार-चर्चामें पं० करुणापति त्रिपाठी, डॉ० युगेश्वर और रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तवने भी भाग लिया था।

और अन्तमें अध्यक्ष-पदसे बालकृष्ण रावने समूची चर्चापर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा था कि 'गोष्ठीमें अन्ततः नवलेखनकी परिभाषा स्पष्ट नहीं हो पायी। आजका साहित्य आक्रोशका साहित्य है जिसे लोग पश्चिमका प्रभाव मानते हैं। पर ध्यानसे देखा जाये तो यह सारी तिक्तता, कटुता और कुण्ठा हमारे जाने-सुने नित्यके परिवेशसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपजी है। यह विवक्षता कोई हितकर वस्तु है—यह नहीं कहा जा सकता, तथापि इसकी सरलतापूर्वक उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।' नवलेखनकी भाषाके सन्दर्भमें राव साहबने भी कहा कि तात्त्विक दृष्टिसे यह सत्य है कि 'साहित्यकी भाषा अतिसाधारण वर्गकी भाषा नहीं हो सकती।'

दूसरी गोष्ठी २८ मार्चको सुबह शुरू हुई डॉ० जगदीश गुप्तकी अध्यक्षतामें। इसमें बहसका विषय था: 'नवलेखन और रचना-प्रक्रिया।' इस गोष्ठीकी शुरूआत भी डॉ० बच्चन सिंहके संयोजकीय वक्तव्यसे हुई। वास्तवमें बच्चन सिंहजीकी इस बातसे सहमति, नवलेखनके सन्दर्भमें, आवश्यक है कि 'रचना-प्रक्रियाका सम्बन्ध मनोविज्ञानसे नहीं है।' नवलेखन रचयिताके व्यक्तित्वसे अनिवार्य रूपसे सम्बद्ध है और रचना-प्रक्रिया उसके अन्तर्मनमें उठनेवाले अक्रम, अव्यवस्था-को क्रम देनेका आंशिक चेतन, आंशिक ही अचेतन व्यापार है। और इस परिप्रेक्ष्यमें बच्चन सिंहजीका यह प्रश्न मौजूँ है कि 'क्या यह व्यापार अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है या रचयिताकी निर्मिति और पाठकसे भी इसका कोई रिश्ता है?' उनका मत यह भी था कि 'इस प्रश्नके उत्तरमें कुछ कहनेके पूर्व कवि-व्यापार या कवि-कर्मकी व्याख्या ज़रूरी है।' बच्चन सिंहजीकी यह बात भी सही लगी कि 'रचना-प्रक्रियाका सूत्रारम्भ मूल्यगत बेचैनीसे होता है। यह बेचैनी रचयितामें जो अन्तर्मन्थन और अक्रम उत्पन्न करती है वह जीवनके बाह्याचारोंको भी बदलती है या बदलनेकी कोशिश करती है। यह क्रमागत मूल्योंके स्थानपर बदलती हुई मानवीय प्रकृति-के अनुरूप मूल्यानुसन्धान करती है।'

डॉ० शिवप्रसाद सिंहने कहा: 'नव-लेखन चूँकि आधुनिक जीवनकी समूची कशमकश, अलगाव, बिखरावको संयोजित और अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न करता है तथा उसके भीतरसे जीवनके आधुनिक गत्यात्मक मूल्योंको अन्वेषित भी करना चाहता है इसलिए सृजनशीलता और माध्यमका प्रश्न वहाँ अनिवार्य रूपसे उठता है।' शिवप्रसाद-जीने अपने निबन्धमें यह भी कहा था कि 'अनुभूति और अभिव्यक्तिके बीच कई स्तर और रुकावटें होती हैं—रचना-प्रक्रियाका प्रश्न इसी कारण रचयिताके साथ ही मुख्य-तया सम्बन्धित है। पश्चिममें लेखकोंकी रचना-प्रक्रियाको समझने-समझानेका काफ़ी प्रयत्न हुआ है, हिन्दीमें अभी यह विषय अछूता है। १९५० के आस-पासकी रचना-प्रक्रिया व्यक्तिके माध्यमसे अपनी खोजका प्रयत्न है—राहकी खोज नहीं, अपनी खोज। रचना-प्रक्रियाका यह रूप भारतीय परिवेशके सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनोंके साथ जुड़ा हुआ था। १९५५ के आस-पासके जीवनके भीतर ज्यों-ज्यों उलझाव और संकट बढ़ने लगे—सर्वत्र निराशा और तज्जन्य तोड़-फोड़की प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। नवलेखनके क्षेत्रकी यह नयी प्रवृत्ति रचना-प्रक्रिया नहीं—वि-रचना-प्रक्रिया (डिस्ट्रक्टिव प्रॉसेस) कही जा सकती है। बिखराव और व्यवस्था—भंगके भीतर ही आधुनिक जीवनकी अभिव्यक्ति सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी नवलेखनकी सामयिक जड़ताका मूल कारण यह है कि वि-रचना यानी तोड़-फोड़ पूर्णमात्रामें घटित नहीं हो रहा है।' कृष्णनाथजीने थोड़ा ही आगे बढ़कर सृजनात्मक ध्वंसकी प्रक्रिया (क्रिएटिव डिस्ट्रक्टिव प्रॉसेस) की आवश्यकतापर ज़ोर दिया। शिवप्रसादजीने नयी कहानीके आधार-पर बातको थोड़ा और साफ़ समझानेकी कोशिश करते हुए कहा था कि यह सही है कि नया कथाकार निरन्तर अपनी निजताकी खोजमें प्रयत्नशील रहा है और इन्द्रियबोध तथा अभिव्यक्तिको संस्कारित करता रहा है। पर, बाज़ारके लोभने उसकी रचना-प्रक्रियाको सतही, फ़ैशनपरस्त और कृत्रिम भी बनाया है। कृष्णनाथजीने जहाँ यह राय दी कि रचना-प्रक्रियाको बहुत उघाड़कर देखनेपर एक अरुचिका खतरा है, इसपर बहस बिल्कुल नहीं होनी चाहिए, इसको बतानेका भी एक समय होता है। वहीं उन्होंने यह भी सुझाया कि 'आजके नवलेखनकी रचना-प्रक्रिया क्या होनी चाहिए या वह है क्या——इसकी व्याख्या आवश्यक है।'

गिरिराज किशोरने कृष्णनाथजीसे सह-मति प्रकट करते हुए सीधे-सीधे यह स्वीकार कर लिया कि 'नये लेखकके लिए आवश्यक नहीं कि वह अपने रचना-कार्यको छोड़कर किसी सिद्धान्तके पीछे पड़े।' और फिर कृष्णनाथजीकी चुनौती झेलते हुए राजेन्द्र-प्रसाद सिंहको यह कहना पड़ा कि 'साहित्यके किसी वादके साथ रचना-प्रक्रियाका प्रश्न बहुत हलका है। नवलेखनका यह मौलिक श्रेय है कि वह वादमुक्त है। रचनाका क्षण रचनाकी अनिवार्यता है। कोई भी रचनाकार उतने ही बोधकी अनिवार्यता महसूस करता है जितनी उसके लिए आवश्यक है।'

लक्ष्मीकान्त वर्माने 'रचना-प्रक्रिया'से सीधी असहमति प्रकट की। उन्होंने 'रस-सिद्धान्त' की 'स्वादवादी' व्याख्या करते हुए यह बताया कि 'रचना-प्रक्रिया रचनाको समझाने और उसके आस्वादनमें बाधा पहुँचाती है। रचना-स्थिति (प्रक्रिया) जाननेकी आवश्यकता नहीं है। प्रक्रियाकी अपेक्षा रचना अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है। वास्तवमें रचना (साहित्य) को वस्तुपरक दृष्टिसे देखनेकी आवश्यकता है।'

रघुवंशजीने भी रचना-प्रक्रियाकी अपेक्षा सृजनशीलताकी उपयोगिताको स्वीकारते हुए कहा कि 'मूल बात रचनाकी स्थिति या रचनाशीलता है। क्योंकि पाठक रचनाका ही साझीदार होता है रचना-प्रक्रियाका नहीं। हर रचनाकार लगातार अपनी सही बात कहनेकी कोशिश करता है किन्तु सही कह नहीं पाता।' रघुवंशजीकी यह बात अधिक महत्त्वपूर्ण थी कि 'शुद्ध रचनाके क्षेत्रमें सम-सामयिकताकी प्रतीति आजकी रचनाशीलताके सन्दर्भमें महत्त्वपूर्ण है। मूल्योंसे सम्पृक्त होकर जब हम सृजनशीलताको अनुभव करते हैं तो वह एक भिन्न प्रकारकी चीज़ होती है।'

और अन्तमें साहित्यमें रचना-प्रक्रियाकी चर्चाको 'मुक्तिकी प्रक्रिया' मानते हुए जगदीश गुप्तने कहा कि "रचना-प्रक्रियाके प्रति सजग होना आजके युगकी एक निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषता है। रचना स्वयमें मूल्यवत्ताका एक अंश अवश्य है पर रचना-प्रक्रियाकी बात रचनामें शक्ति लानेके लिए जरूरी है। रचना-प्रक्रियाका महत्त्व रचनाके लिए नहीं है, यह कहना असंगत है। रचना और रचना-प्रक्रिया दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। विश्लेषणके बाद संश्लेषणकी स्थिति आवश्यक है। वास्तवमें रचना-प्रक्रिया मूल्यके अन्तरंग स्वरूपकी खोज है। इस प्रक्रियाकी सर्वांशतः व्याख्या नहीं हो सकती। रचना-प्रक्रियामें 'डिस्टेन्स' नहीं 'डिस्टर्शन'की बात महत्त्वपूर्ण है। यह 'आत्मबोध' और 'आत्मज्ञान'का भी एक रूप है। रचनात्मकता (मूल्यवत्ता) निर्मित वस्तुकी अन्तःप्रकृतिसे सम्बद्ध है, अतः रचना-प्रक्रियाका बोध प्रभुत्वको प्राप्ति है।"

—पद्मधर त्रिपाठी

• नवगीत : क्या, कैसा और क्यों ?

समारोहके नगर कलकत्तामें ७-८ मईको 'नवगीत : विचारगोष्ठी और काव्य-समारोह'का आयोजन किया गया था। इसके प्रस्तावक और संयोजक थे चन्द्रदेव सिंह जिन्होंने अपने मित्रों तथा भारतीय ज्ञानपीठ और भारतीय संस्कृति संसद्के स्नेह-सहयोगसे 'नवगीत : क्या, कैसा और क्यों'-जैसे प्रश्नोंके सन्दर्भमें इस समारोहकी आयोजना की थी। संयोजकने यह आशा भी की थी कि 'विचारोंका पारस्परिक आदान-प्रदान नये गीत-कवियों और विवेचकों दोनोंके लिए दिशा-निर्देशका पर्याय बनेगा।' समारोहमें भाग लिया—सर्वश्री बच्चन, विद्यानिवास मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, ओम प्रभाकर, रामविनायक सिंह, बालकृष्ण उपाध्याय तथा सर्वश्री सीताराम सेकसरिया, भँवरमल सिंघी, लक्ष्मीचन्द्र जैन, कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, शलभ, रामसेवक पाण्डेय आदिने।

पहली गोष्ठीका विषय था: 'आधुनिक

नवगीतके चर्चाकार :

चन्द्रदेव सिंह, कल्याणमल लोढ़ा, बच्चन, सीताराम सेक्सरिया, रवीन्द्र भ्रमर, रामविनायक सिंह, शलभ, ओम प्रभाकर, बालकृष्ण उपाध्याय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध और नवगीत।' बच्चनजीने समारोहके उद्घाटन भाषणमें कहा : वर्तमान युग भावुकताका युग नहीं है, बौद्धिकता और विज्ञानका युग है। अतः समयके साथ साहित्यिक विधाओंमें परिवर्तन भी अनिवार्य है—कहानी, कविता और पाठक बदलेंगे ही किन्तु कृतिकारको यह अवश्य सोचना चाहिए कि जिस शैलीका वह प्रयोग कर रहा है उससे समाज कहाँतक प्रभावित है और उसे कितना स्वीकार किया जा रहा है। कविताको गद्यके समीप लानेकी चेष्टा ज़रूर चल रही है, छन्द और लयको छोड़नेकी भावना है लेकिन हमारी भाषाके भीतर जो संगीत और ध्वनि है उससे बग़ैर संगीतके भी गीत जीवित रहेगा। अभिव्यक्तियोंके नये रूप भले ही हों, उनमें कुछ पुरानापन ज़रूर रहेगा। आजकी नयी कविता भी रूढ़ियोंमें बँध गयी है क्योंकि इसका उद्देश्य उपदेश या मनोरंजन नहीं केवल समाजको 'चौंकाना' है। सुषुप्त समाजको जगाना है। लेकिन इसके अधिक चौंकनेसे पीड़ा होगी, इसका भी ध्यान रखना होगा। सन् १९३० के आसपास राजनीति और साहित्यका सीधा सम्पर्क नहीं था। परन्तु आज़ादीके बाद नयी पीढ़ीके सामने एक परिवर्तन हुआ, बहुत-से बन्धन खुल गये हैं। उस समय विदेशी साहित्यसे हमारा परिचय कम था। परन्तु नयी पीढ़ीके लोग उससे अधिक पढ़ रहे हैं। अब हमारी दृष्टि चारों ओर फैल रही है। हमारे कवि और लेखकोंकी तीव्र इच्छा है कि दुनियाकी धारासे मिलें। यह कोई अस्वस्थ बात नहीं है। अन्दरकी जिज्ञासा स्वाभाविक है। संसारके साहित्य इस समय समाजको प्रभावित कर रहे हैं। इसलिए हमारे युवक भी उधर आकर्षित हैं क्योंकि हमारे यहाँ भी बहुत-सी रूढ़ियाँ हैं। पर असन्तोष इस बातसे है कि आजके युवक अपनेको इतना दुर्बल क्यों समझते हैं, अपनेको सीमित क्यों कर रहे हैं। विद्रोहके पहले नवयुवकोंको समाजकी स्थिति भी समझ लेनी चाहिए तभी उनकी कृतिको समाज ग्रहण करेगा और अनुकूल प्रतिक्रिया होगी। एकाकी होनेकी प्रवृत्ति स्वस्थ नहीं है।"

शलभ श्रीराम सिंहने अपना निबन्ध पढ़ा 'नवगीत : आधुनिक बोध, विवेचन और उपलब्धियाँ।' शलभने एक वास्तविक रचनाकारकी दृष्टिसे नवगीतके सन्दर्भमें आधुनिक बोधकी निहायत सहज और स्पष्ट व्याख्या की। उनकी दृष्टिमें आधुनिक बोध 'आजवाद' या 'क्षणवाद' न होकर पारस्परिक मूल्योंका नया संस्कार ग्रहण करना है। शलभने अपने निबन्धमें नवगीतके सन्दर्भमें बड़े दृढ़ शब्दोंमें यह कहा कि सार्वभौमिक होते हुए भी हर जातिका अपना आधुनिक बोध होता है। उन्होंने बताया कि नवगीत सार्वभौमिक आधुनिक बोधको अभिव्यक्ति देनेके साथ-साथ जातीय (भारतीय) आधुनिक वृत्तिको भी एक सहज और कलात्मक प्रेषणीयता प्रदान कर रहा है। नरेश सक्सेना, ओम प्रभाकर और अपने कतिपय नवगीतोंसे उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रमाणित किया कि नवगीतमें वह सामर्थ्य है जो आजके जीवनको कलात्मक स्तरपर वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिव्यक्ति [illegible] यक सिंहने भी एक लेख पढ़ा। उनके लेखमें नवगीतके सन्दर्भमें आधुनिक बोधकी चर्चा उतनी नहीं थी जितनी नवगीतके एक शुभेच्छु-की स्वस्थ आशंकाएँ और हितैषी प्रश्न थे। रामविनायक सिंहको एक अकारण आपत्ति यह भी रही कि नवगीतको केवल 'गीत' ही क्यों नहीं कहा जाता? डॉ० रवीन्द्र भ्रमरने नवगीत-की पृष्ठभूमि बतलायी। सांस्कृतिक, राज-नीतिक परिवेश और परम्पराके विकासपर उन्होंने ज़ोर दिया। प्रो० कल्याणमल लोढ़ाने यह बताया कि नवगीत नयी कविताका एक अधुनातन और पूर्ण रूप है। उन्होंने ओम प्रभाकरके एक नवगीतसे उद्धरण देते हुए प्रमा-णित किया कि नवगीत आजके जीवनके विघ-टन, उसके आन्तरिक क्षय, उसकी व्यर्थता और उसकी अरक्षाको वाणी देनेका कार्य अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक रूपसे कर रहा है। इनके अलावा श्री विष्णुकान्त शास्त्री, रामसेवक पाण्डेय, सिंघीजी आदिने भी नव-गीतपर अपने विचार प्रकट किये।

दूसरी गोष्ठीके प्रारम्भसे पहले एक छोटा-सा प्रीतिकर कार्यक्रम और हुआ। चन्द्रदेव सिंह-द्वारा सम्पादित निरालासे लगा नरेश सक्सेना तककी पीढ़ियोंके नवगीतोंका संकलन, जिसका नाम ठाकुरप्रसाद सिंहकी एक कविता-पंक्ति 'पाँच जोड़ बाँसुरी' है, का प्रकाशनार्थ समर्पण बच्चनजीके द्वारा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनको किया गया।

वस्तुतः पूरे आयोजनका प्रारम्भ (और अन्त भी) इस गोष्ठीसे ही हुआ कि उपस्थिति और अतिथि यकायक ही विचार-विमर्शको लेकर एकाग्र होते पाये गये। गोष्ठीका उद्घाट-न लक्ष्मीचन्द्र जैनके अभिभाषणसे हुआ। उन्होंने कविता और गीतका व्यतीत-क्रम प्रस्तुत करते हुए उन बिन्दुओंको बड़े ढंगसे स्पष्ट किया जहाँ कविता और गीतके इतिहाससे परिवर्तन-चिह्न साकार हुए हैं। नयी कविताका आद्यो-पान्त विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लक्ष्मीचन्द्र जैनने स्पष्ट किया कि नवगीत कहाँ से कैसे उससे पृथक् होता है कि उसका एक और रूप बनता है। पिछले दशककी वास्तविक नवगीत रचनाओंके प्रति अपनी आस्थाको प्रकट करते हुए, उन्होंने दुरूहता, जटिलता, अतिरिक्त बौद्धिकता और आरोपित आधुनिकता आदि उन खतरोंकी ओर इशारा भी किया जिनके चलते पिछले कुछ वर्षोंसे नयी कविताके प्रायः समस्त अंग शिथिल हो गये हैं। उन्होंने कहा कि नवगीत-कवियोंके सामने यह एक चुनौती है कि वे किस प्रकार स्वयंको इन खतरोंसे बचाते हुए युग-जीवनको वाणी देते हैं। रवीन्द्र भ्रमरने इस बार भी कमोवेश पिछली गोष्ठीकी बातें ही दोहरायीं। 'कम्पेक्टनेस' को उन्होंने नवगीतकी एक अनिवार्य शर्त माना। उन्होंने कहा कि नवगीत-कवि तुकके मोहमें रचनाको व्यर्थका विस्तार नहीं देता बल्कि वह संक्षिप्तको धारण कर भावकी गहराईको उद्घाटित करता है। ओम प्रभाकर, नीरज आदि व्यावसायिक तथाकथित गीतकारों की रचनाओं और नवगीत कवियोंके उदाहरण देते हुए द्वीपके परम्परागत शिल्प और नये प्रयोगोंको स्पष्ट किया। उन्होंने अतिथि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वक्ताओंके समक्ष इधर कुछ दिनोंसे उठ रहे उस आग्रहके पीछे छिपे व्यावसायिक और स्वार्थ-सिद्ध-रहस्यका उद्घाटन किया, जिसके चलते नवगीतको केवल 'गीत' कहे जानेपर जोर दिया जा रहा है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार शब्द 'गीत'को स्वीकृत करानेपर वे ही लोग बल दे रहे हैं जो अपने लगभग सम्पूर्ण जीवन भेड़नुमा जनताके मनोरंजनके लिए गीत-रचना करके सिनेमाई ख्याति और धन प्राप्त करके अपनी प्रतिभाको धन्य करते रहे हैं। और उन्हींकी यह अपेक्षा है कि तब की कविताके सामने न टिक पाकर नेपथ्यमें गया गया गीत शायद आज नवगीतके कन्धों-का कहारा लेकर फिर मंचपर आ सके। उन्होंने नितान्त स्पष्ट और दृढ़ शब्दोंमें कहा कि नवगीत न तो केवल लोकगीतात्मक लता है और न केवल नगर-बोधकी कविता, बल्कि वह, वह कविता है जो आजका सम्पूर्ण जीवन है। उसके शिल्प और कथ्यकी अनुभूति एक कठोर और खुरदरे हाथके स्नेहमय स्पर्श-की अनुभूति है। नवगीत आजके सम्पूर्ण जीवनके लघु लक्ष्योंकी कविता है। वह संगीत, छन्द, लय, तुक और तालके समस्त पारम्परिक बन्धनोंसे मुक्त होता हुआ, एक ऐसा अनुनातम काव्य रूप है जो वास्तविक रचना-के आन्तरिक अनुशासनसे अनुशासित है। इस गोष्ठीका समापन भँवरमल सिंघीने अपने अध्यक्षीय भाषणके साथ किया, इनके भाषण-ने भी उपस्थितिको वही सुखद आश्चर्य प्रदान किया, जो किसी नये साहित्य-रूपपर सही और सच्ची बातें कहकर कर सकता है। उन्होंने नवगीतके प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हुए कहा कि उन्हें नयी कविताके इस विकसित रूपपर पूरा-पूरा विश्वास है और यह भी कि नवगीतकी सम्भावनाएँ अमित हैं।

दोनों गोष्ठियोंमें बच्चनजीके विश्लेषक विचार तथा नवगीतकारोंके स्थापना-स्वरोंमें-से 'नवगीत' का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया लेकिन नवगीतपर यह पहली चर्चा होनेके कारण अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण थी। वीरेन्द्र मिश्र और ठाकुरप्रसाद सिंहकी अनुपस्थिति लोगोंको खलती रही।

८ मईकी रात भारतीय संस्कृति संसद्-द्वारा बच्चनजीके राज्यसभाके सदस्य नियुक्त हो जानेके उपलक्ष्यमें उनका अभिनन्दन किया गया। बादमें यही कार्यक्रम कवि-सम्मेलनके रूपमें परिवर्तित हो गया। इसके अध्यक्ष थे विद्यानिवास मिश्र।

(ओम प्रभाकर लिखित विवरणके आधारपर)

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन नये
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

•• मुरदा सराय
शिवप्रसाद सिंह

शिवप्रसाद सिंहकी चुनी हुई बारह नयी कहानियोंका संग्रह। शिल्प और कथ्य दोनों ही दृष्टियोंसे अप्रतिम ये कहानियाँ पढ़नेके बाद मनपर एक सार्थक प्रभाव भी छोड़ेंगी।

मूल्य ४.००

•• कुछ निबन्ध
अक्षयकुमार जैन

अक्षयकुमार जैनके लघु-ललित निबन्धोंका संग्रह। इन निबन्धोंका उद्देश्य केवल मनोरंजन देना नहीं, विचारोंके आलोक प्रस्तुत करना भी है।

मूल्य २.५०

•• नये प्रतिमान : पुराने निकष
लक्ष्मीकान्त वर्मा

लेखकके चिन्तन-प्रधान साहित्यिक एवं समीक्षात्मक लेख : जिनका विषय है नवलेखन—आजका साहित्य। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी और पुस्तकालयके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय कृति।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• विवेकके रंग

'विवेकके रंग' में स्व० डॉ० देवीशंकर अवस्थीने स्वातन्त्र्योत्तर कालकी महत्त्वपूर्ण कृतियोंपर गणमान्य पुस्तक-समीक्षाएँ संकलित की हैं। यह सिर्फ़ एक प्रकाशकीय सूचना या सम्पादकीय दावा मात्र नहीं है बल्कि संकलनके महत्त्व प्रतिपादनकी दिशामें एक वास्तविकताका यथार्थ उद्घाटन है, फिर भले ही किंचित् गर्वकी गन्ध भी उसमें बसी हो।

इधर हालमें ही समकालीन लेखनके मूल्यांकनके प्रति आग्रह बढ़ा है। बहुत-सी नयी पत्रिकाएँ आयी हैं, कुछ पूर्व प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओंने भी इस ओर प्रयास किये हैं। यूँ त्रैमासिक 'आलोचना' का चार खण्डीय विशेषांक 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' भी ऐसा ही आग्रह लिये है परन्तु चूँकि उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और विस्तृत है इसलिए उसमें उन सारी कृतियोंका पुनर्मूल्यांकन सम्भव भी नहीं था जो 'विवेकके रंग'में स्थान पा सकी हैं।

पुस्तक चार खण्डोंमें विभाजित है। पहले खण्ड (एक प्रामाणिक अनुभूति और बृहत्तर माध्यमकी खोज) में अठारह काव्यपुस्तकोंपर समीक्षाएँ हैं। खण्डका उपशीर्षक स० ही० वात्स्यायनके दो काव्य-संग्रहों 'हरी घासपर क्षण-भर' और 'आँगनके पार द्वार' पर क्रमशः डॉ० प्रभाकर माचवे और कुवरनारायणकी समीक्षाओंके आधारपर रखा गया है। डॉ० देवीशंकर अवस्थीका मत है कि स्वातन्त्र्योत्तर कालमें, काव्यके क्षेत्रमें, 'अज्ञेय' ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं—नये काव्य प्रवादोंकी दृष्टिसे ही नहीं, अनुभूतिकी सहजता, सृजन-स्तर और कलात्मक संस्कारकी दृष्टिसे भी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी अच्छी समीक्षाएँ इस खण्डमें हैं—निरालाकी 'अर्चना' से लेकर दिनकरकी 'उर्वशी' तक लगभग सभी महत्त्वपूर्ण कवियों और काव्यप्रवृत्तियोंकी प्रतिनिधि कृतियोंपर। दूसरा खण्ड (यथार्थकी पहचान) दस उपन्यासोंकी समीक्षाओंका संकलन है। पुस्तककी भूमिकामें सम्पादकने दो तथ्योंकी ओर संकेत किया है। एक तो यह कि इस पुस्तकमें जो भी समीक्षा संकलित की गयी है वह उस कृतिपर सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध समीक्षा हो इस बातका ध्यान रखा गया है

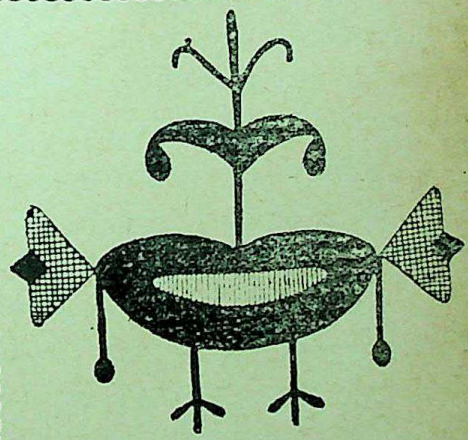

स । मी । क्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दूसरी बात यह कि कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियोंपर चूँकि अच्छी समीक्षाएँ उपलब्ध नहीं थीं इसलिए कालकी कुछ महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ कृतियोंपर समीक्षाएँ नहीं दी जा सकी हैं। लेकिन ऐसी पुस्तकोंकी जो सूची उसने पेश की है वह वाक़ई बहुत छोटी है। 'भूले विसरे चित्र'पर डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयकी 'माध्यम' वाली समीक्षा स्पष्ट ही इसलिए नहीं दी जा सकी है क्योंकि अपनी सुविधाके लिए कालकी जो सीमा-रेखा सम्पादकने खींची है उसके अनुसार अन्तिम समीक्षा उसने सितम्बर सन् '६३ में प्रकाशित ली है। परन्तु इस खण्डकी समीक्षाओंको लेकर कदाचित् यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें भी सारे लेखकों और प्रवृत्तियोंकी महत्त्वपूर्ण कृतियोंपर समीक्षाएँ दी गयी हैं। 'कबतक पुकारूँ', 'बाँधों न नाव इस ठाँव', 'सत्ती मैयाका चौरा' और 'बलचनमा' आदि ऐसी ही कुछ कृतियाँ हैं जिनपर किसी समीक्षाका न होना इस खण्ड-विशेषके प्रति वाक़ई अपूर्णताका बोध पैदा करता है।

पुस्तकमें संकलित लगभग सारी समीक्षाएँ सम्पादकके इस दावेको पूरा करती हैं कि वे कृतिकी आत्माको उजागर कर सकी हैं। लेकिन जो कुछेक समीक्षाएँ एकांगी और एकपक्षीय हैं उनसे क्या इस बातकी आशा की जा सकती है, उनकी सारी अच्छाइयों और विशेषताओंके बावजूद, कि वे कृतिकी वास्तविक सत्ता और सार्थकताको उद्घाटित कर सकेंगी? 'जयवर्धन' पर यशपालका मूल्यांकन एक बहुत अच्छी समीक्षाका उदाहरण होनेपर भी एकांगी है और लगभग यही स्थिति 'उखड़े हुए लोग' पर ओमप्रकाश दीपककी समीक्षाको लेकर है। 'उखड़े हुए लोग' पर तो यूँ भी भानुदेव शुक्लकी एक अच्छी समीक्षा 'आलोचना' के किसी अंकमें आयी थी। 'बूँद और समुद्र' पर सम्पादकने स्वयं स्वीकार किया है कि डॉ० रामविलास शर्मावाली समीक्षा, 'बूँद और समुद्र: आस्थाकी समस्या' न दे सकनेका उसे दुःख है। 'बूँद और समुद्र' पर वह निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ समीक्षा है।

तीसरा खण्ड (अनुभवका अपनापन) नौ कथा-संग्रहोंपर समीक्षाएँ प्रस्तुत करता है। खण्डके उपशीर्षकका नामकरण दूधनाथ सिंहकी समीक्षाके आधारपर हुआ है जो उन्होंने मोहन राकेशके संग्रह 'एक ज़िन्दगी और' पर की है। इस खण्डकी सर्वश्रेष्ठ समीक्षाएँ हैं कुँवरनारायणकी 'ज़िन्दगी और गुलाबके फूल' पर और डॉ० नामवर सिंहकी 'परिन्दे' पर। दोनों ही समीक्षाएँ नयी कहानीके दो बहुचर्चित हस्ताक्षरोंसे सम्बन्धित हैं और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे दोनों क्रमशः उषा प्रियंवदा और निर्मल वर्माकी उन विशेषताओं और उपलब्धियोंका विश्लेषण करती हैं जिनके बारेमें चर्चा तो बहुत हुई है, पक्ष-विपक्षमें कहा-सुना भी बहुत गया है लेकिन फिर भी या तो वह सब कुछ अनिर्णीत ही रहा आया है या फिर उसपर मनचाहे फ़तवे दिये गये हैं। अच्छा होता 'रेणु' के संग्रह 'ठुमरी' और विष्णु प्रभाकरके संग्रह 'धरती अब भी घूम रही है' पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षाएँ इस खण्डमें संकलित की गयी हैं। 'ठुमरी' पर तो, मुझे ख़याल पड़ता है, दो अच्छी समीक्षाएँ एक साथ कभी 'कहानी' के किसी अंकमें आयी भी थीं।

पुस्तकका चौथा और अन्तिम खण्ड (रंग और व्यक्ति) में तीन नाटकों और एक जीवनी प्रेमचन्द : 'क़लमका सिपाही' पर समीक्षाएँ हैं। कुल मिलाकर ये सब समीक्षाएँ बहुत-से नये क्षितिजोंका उद्घाटन कर सकनेमें सक्षम और समर्थ हैं।

'विवेकके रंग' में, जहाँतक मुझे मालूम है, सारी समीक्षाएँ वे ही ली गयी हैं जो पहले कभी प्रकाशित हो चुकी हैं—यानी इस समीक्षा-संकलनके लिए कोई नयी समीक्षा विशेष रूपसे नहीं लिखवायी गयी है नहीं तो सम्पादकको इस शिकायतका कोई मौक़ा नहीं था कि बहुत-सी महत्त्वपूर्ण कृतियोंपर अच्छी समीक्षाएँ उसके देखनेमें नहीं आयीं। ऐसी स्थितिमें संकलनके सम्पूर्ण प्रभावके लिए बहुत-कुछ श्रेय अकेले उसके सम्पादकको जाता है जिसने इस ढंगसे उन समीक्षाओंका नियोजन किया है कि उसका संकलन किसी महत्त्वपूर्ण सृजनात्मक कृतिके मौलिक धर्म और अपेक्षाओंसे पूर्ण हो सका है। भूमिकामें उसने समीक्षकके दायित्व और विवेककी अतिरिक्त चर्चा की है।

कुल मिलाकर पुस्तकका मूल्य एकसे अधिक कारणोंसे है। पहली बात तो यह कि इस समीक्षा-संकलनसे ही हिन्दीमें पुस्तक-समीक्षा-जैसी चीज़को सम्भवतः पहली बार ऐसे महत्त्वपूर्ण धरातलपर खड़ा किया गया है। दूसरी बात यह कि स्वातन्त्र्योत्तर कालकी महत्त्वपूर्ण कृतियोंसे सम्बन्धित वह एक ऐसा सन्दर्भ-ग्रन्थ बन सका है जिसमें इस कालकी सृजनात्मक प्रगतिको सारी बारीकियों और पूरी सफ़ाईके साथ देखा जा सकता है। तीसरी और शायद सबसे बड़ी बात यह है कि नवलेखनके मूल्यांकनके लिए वह एक महत्त्वपूर्ण चेतना और दायित्वके निर्माणके उद्देश्यको लेकर चली है और इसमें बहुत दूर तक सफल हुई है।

—मधुरेश

• जमना-गंगाके नैहरमें

'जमना-गंगाके नैहरमें' हिन्दीके सुप्रसिद्ध नाट्यकार और कथालेखक विष्णु प्रभाकरके यात्रा-संस्मरणोंका संग्रह है—जैसा कि बहुत कुछ पुस्तकके नामसे ही स्पष्ट है जमना और गंगाके उद्गम स्थानों, उनके नैहर अर्थात् जमनोत्री और गंगोत्रीकी यात्राके संस्मरण। जिस यात्राका यह साहित्यिक रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत है उस यात्राका महत्त्व विशेष रूपसे धार्मिक ही रहा है लेकिन लेखक उन स्थानों और वहाँके व्यक्तियोंसे सम्बन्धित किंवदन्तियों और प्रचलित कथाओंको सुनकर भी बहुत सीधे-सादे ढंगसे आगे बढ़ जाता है। कोई धार्मिक आस्था लेखकमें है ही नहीं, ऐसा नहीं है परन्तु उसका ध्यान हमेशा ही प्रकृतिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुषमा, सम्पर्कमें आये हुए मनुष्योंकी अनुभूतियों और वैज्ञानिक सभ्यताके चरम विकासकी अवस्थामें भी प्राकृतिक सौन्दर्यके उस सुविस्तृत प्रांगणमें व्याप्त निर्धनता, प्रभाव और पीड़ाकी ओर ही अधिक पहुँचता है। और इस सबके साथ ही जगह-जगहपर उसके अपने विचारों-की आलोक रश्मियाँ भी हम तक पहुँचती रहती हैं जिससे सम्पूर्ण यात्रामें एक सुचिन्तित व्यक्तित्वके सान्निध्यकी चेतना बनी रहती है।

पुस्तककी भूमिका 'हिमालयकी पुकार' में लेखकने बहुत भाव-विभोर होकर उस मूक और प्रभविष्णु आमन्त्रणकी बात कही है जिसके कारण कितने ही देशी-विदेशी पर्य-टक हिमालयके दर्शनार्थ आते रहे हैं। उस भूमिका-भागको पढ़नेके बाद लेखककी अपनी यात्राका प्रयोजन ही स्पष्ट नहीं होता है बल्कि हर पढ़नेवालेके हृदयमें वैसी ही यात्राके लिए एक बलवती इच्छा भी पैदा होती है और, मैं समझता हूँ कि वही इस भूमिका और सम्पूर्ण कृतिका प्रयोजन है। लेकिन ऐसी यात्राके संस्मरणोंमें लेखकके आगे एक अति-रिक्त खतरा बना रहता है जो प्रायः उन यात्रा-संस्मरणोंके लेखकोंके साथ नहीं होता है जिनकी यात्राका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण होता है। युरॅपीय यात्रा-संस्मरणोंको लिखनेवाले लेखकके आगे क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृत होता है कि चुनावकी बहुत कुछ गुंजायश उसके आगे होती है, और फिर क्षेत्रका विस्तार और व्यापकता एक ऐसे वैविध्यको बनाये रखता है कि यदि ज़रा-सी भी सावधानी और कला-त्मक संस्कार लेखकमें है तो उसकी सम्पूर्ण कृति नीरस, सपाट और बोझिल होनेसे बची रहती है। 'जमना-गंगाके नैहरमें'—जैसे यात्रा-संस्मरणोंके साथ सबसे बड़ी दिक़्क़त यही होती है कि उनमें वर्णनोंका क्षेत्र एक-सा ही सीधा-सरल और सपाट होता है कि पग-पग-पर नीरसता और एकरसताका भय बना रहता है। एकसे ही संकटपूर्ण मार्ग, लम्बी यात्राकी सम्पूर्ण उपलब्धि-रूपमें दूर-दूर तक विस्तृत पर्वतश्रेणियाँ, एक-सी ही वनस्पति, यहाँतक कि यहाँ-वहाँ मार्गमें मिलते पहाड़ी गाँव और उनके निवासी भी बहुत-कुछ एकसे ही होते हैं। ऐसी स्थितिमें यह भय अकारण नहीं है कि संस्मरण अवैविध्यपूर्ण, नीरस और परिणामस्वरूप बोझिल हों। लेकिन चूँकि 'जमना-गंगाके नैहरमें' का लेखक एक उप-न्यासकार भी है अतः यह मनोवैज्ञानिक सत्य उससे अनदेखा नहीं रहा है और बचावका मार्ग भी वह स्वयं बनाता चलता है। प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति किसी हद तक मोहाविष्ट उद्गारोंके अतिरिक्त यात्राके बीच सम्पर्कमें आनेवाले और मिलनेवाले व्यक्तियोंको भी वह उसी परिवेशसे जोड़ता चलता है। ये व्यक्ति भी दो तरहके हैं—एक तो वे लोग हैं जो वहींके वातावरणके भाग हैं जैसे प्रसन्नमुद्रा और मुक्त हास्यका धनी पार्सिंह या पारि-वारिक कलहका शिकार खेदनसिंह आदि। दूसरी प्रकारके लोग वे हैं जो खुद यात्री हैं और कुछेक क्षणोंका उनका जीवन्त सम्पर्क ही उनके व्यक्तित्वको निजता देता चलता है। सम्पर्कमें आये हुए इन व्यक्तियोंको लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक अपनी राय प्रकट करनेमें कोई परहेज़ नहीं करता है और वे सामान्य धारणाएँ ही बहुत कुछ उनके चिन्तनका रूप ले लेती हैं। कबड़ साधु रघुनाथ पद्मनाथ किणीसे मिलनेके बाद वह टिप्पणी करता है: "मनको कुछ अच्छा नहीं लगा (उनकी वैराग्य-कथासे मतलब है) शायद मैं नैतिक स्तरका व्यक्ति हूँ। जो दायित्व मैंने ओढ़ा है उसे पूरा करनेमें मेरी सार्थकता है, शेष पलायन है। योगमें मेरी गति नहीं है। वहाँ तो नैतिकता रूपहीन हो रहती है। और दायित्व बन्धन नहीं रहता। इसीलिए घर छोड़कर साधु हो जानेमें कभी मेरा विश्वास नहीं है।" (पृ० सं० ७२-७३)। ऐसा नहीं है कि साधुओंके प्रति लेखक अश्रद्धालु है लेकिन अधिकांशमें जो साधु वहाँ मिलते हैं उनके बारेमें उसीकी राय यह है: "साधु इधर बहुत मिलते हैं। भांग पीते-पीते साधु हो जाते हैं, भीख माँगते हैं। यह राष्ट्र, मनुष्य और बुद्धि सभीका अपमान है। आलस्य और अज्ञान कभी साधनाका आधार नहीं रहे हैं। रह भी नहीं सकते। यह तो पलायनसे भी अधिक घृणित पाप है।" (७६) इतना सब कुछके बावजूद जो वाक़ई साधु हैं, उनके प्रति लेखककी श्रद्धाकी कोई सीमा नहीं है, और वे भी वहाँ मिल ही जाते हैं। प्रमाणस्वरूप स्वामी सुन्दरानन्दकी ओर संकेत करना चाहूँगा। वह कहते हैं: "मुझे जीवनसे भागनेमें विश्वास नहीं है। आनन्दकी खोजमें संसारमें ही रहना चाहता हूँ"। (पृ० सं० १४३)। साधु-जीवनके इस चरम आदर्शके सम्मुख ही लेखक नतशिर है।

चिन्तनका बहुत कुछ यही रूप सम्पूर्ण कृतिमें व्याप्त है। भावुकतापूर्ण उद्गार वहाँ भले ही हों (पहाड़ोंपर पायी जानेवाली निर्धनता और अभावको लेकर या फिर अशिक्षा या कुसंस्कारोंको लेकर) लेकिन दार्शनिक बोझिलतासे उसे कुछ लेना-देना नहीं है। सामान्यतः सीधे और सपाट वर्णनोंके बीच भी लेखक अपने पैर कुशलतासे जमाता चलता है लेकिन जहाँ कहीं विस्तारके ढालकी चेतना उसे नहीं रहती, और ऐसा अकसर होता है, तो फिर लुढ़कते चले जानेके अतिरिक्त उसकी ओर कोई नियति नहीं होती। ऐसे स्थलोंपर वह यह बिलकुल भूल जाता है कि वह यह साहित्यिक संस्मरण लिख रहा है या घर और मोहल्लेके लोगोंको रोज़मर्राकी आवश्यकताओंकी साधारण जानकारी दे रहा है। फिर वह पूड़ियों और दूसरी चीज़ोंका भाव बतायेगा (पृ० सं० ६५) और परचूनियेके हिसाबकी तफ़सील भी पेश करेगा जिसने दूधका भाव दो पैसे सेर अधिक लिख दिया है। ऐसे वर्णनोंका उद्देश्य कहीं-कहीं पर्वतीय जीवनकी सरलताकी ओर संकेत करना भी हो सकता है लेकिन वह उद्देश्य भी क्या लेखक जानबूझकर चौपट नहीं कर लेता है जब पाठकके आगे और कुछ न रहके वर्णनका नीरस विस्तार मात्र रह जाता है?

पुस्तकके अन्तमें, परिशिष्टके रूपमें तीन अध्याय और हैं: गंगा-जमनाकी संस्कृति, यात्रामार्ग और यात्राकी तैयारी। पहले अध्यायमें भारतीय जन-जीवनमें गंगा-जमनाके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक और सामाजिक प्रमाण और महत्वकी मीमांसा है। इस अध्यायकी शैली विशेषरूपसे बहुत आवेशपूर्ण और भव्य है और उसे पढ़कर स्वतः ही पण्डित नेहरूकी 'डिस्कवरी ऑव इण्डिया'के सम्बन्धित अंशोंकी शैलीकी याद आती है। दूसरे और तीसरे अध्यायोंका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। वे मात्र यात्रियोंकी सुविधाके खयालसे जोड़ दिये गये हैं और वैसा करनेमें लेखकका आदर्श निश्चय ही 'अज्ञेय'-के यात्रा-संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' वाले आदर्श और आग्रहसे भिन्न है, किसी हद तक विरोधी भी।

'जमना-गंगाके नैहरमें'की सबसे बड़ी सफलता इसमें है, और मैं समझता हूँ लेखकके सन्तोषके लिए यह साधारण आधार नहीं है, कि उस यात्राके बीच जो उसका अपना देखा और अनुभूत है वह काफ़ी-कुछ उसके भावक वर्गका भी बन सका है। नितान्त व्यक्तिगत स्तरपर एक बात कहनेकी अनुमति यदि मुझे हो तो यह भी कि अब पर्वतोंपर होनेवाली मेरी पहली यात्रा इसी क्षेत्रकी यात्रा होगी।

—अधुरेश

• बीस सुबहोंके बाद

मनहर चौहान प्रतिभाशाली कथाकार हैं। जीवन-शक्तिसे भरपूर, इतने भरपूर कि वह उन्हें उद्वेलित किये रहती है। इस उद्वेग-आवेगका परिचय इस कथा-संग्रहकी रूपसज्जा-से भी लग सकता है। आकर्षक और सौन्दर्यानुभूतिसे पूर्ण यह संग्रह विश्वास और सम्भावनाओंका दावा लेकर आया है। इसकी कहानियाँ विषयकी विविधता, एक निश्चित नारेबाज़ीके अभावके कारण तो उल्लेखनीय हैं ही मानवीय संवेदनशीलतासे भी वे एक समान अनुप्राणित हैं। इन कहानियोंमें न एकरूपता है न एकरसता। संकीर्णता भी नहीं है। पूर्वाग्रहसे यह मुक्त हैं। सूक्ष्म दृष्टिका अभाव भी नहीं है। कुछ स्थलोंको छोड़कर सहज भाषा, इन कहानियोंकी बड़ी उपलब्धि है। 'घर-घुसरा' कहानी, सारिका-द्वारा संचालित प्रतियोगितामें प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है। अपने-आपमें किसीके लिए यह एक बड़ी उपलब्धि है, किसीके लिए नहीं भी है। मेरे लिए भी नहीं है परन्तु अपनी कुछ दुर्बलताओंके बावजूद जिनमें भाषा भी एक है वह एक सशक्त मनोवैज्ञानिक कहानी है जो यथार्थके धरातलपर मानवमनके अन्दर उठते हुए उद्वेगोंको प्रस्तुत करती है। मैं नहीं समझता कि घर-घुसराका प्रतीक बिम्ब इसके लिए अनिवार्य था। उसके बिना ही कहानी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है। 'उड़नेवाली लाशें' देखनेमें तो मुर्गियोंकी कहानी है लेकिन उनके माध्यमसे सहज मानवीय संवेदना ही उसमें मुखर हुई है। अपनी इस सहजताके कारण यह कहानी मनको छूती है। 'बीस सुबहोंके बाद' भीड़में अकेलेपनके जीवन-पर एक करारा व्यंग्य है। परन्तु उसकी छिपी हुई अन्तर्धारा भी मानवीय संवेदनाको है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उजागर करती है। अकेलेपनके सात परतोंके नीचे छिपा हुआ संगोपन सहसा उभर आता है। 'हवामहल' बेकार युवकके शेखचिल्लीपन और उससे उत्पन्न दूषित मानसका एक प्रभावशाली चित्रण है। 'विपरीतीकरण' पीढ़ियोंके संघर्ष और द्वन्द्वको लेकर चलती है। लेकिन उसमें सिद्धान्तका प्रतिपादन इतना मुखर हो उठा है कि सहजता, जो मनहरका एक विशेष गुण है, नष्ट हो गयी है। मनहरमें भाषाके चित्र बनानेका एक विचित्र मोह दिखाई देता है। वह पाठकको मानो आकर्षित करनेका एक सस्ता चुटकला है। 'एक सफ़ेद मज़ाक़' और 'घर-घुसरा' में भी यह दुर्बलता मनहरको महँगी पड़ी है। 'मृत्यु गणित' एक ऐसी नारीके मानसिक आघातका चित्रण है जो पतिकी मृत्युसे स्तब्ध रह गयी है। वस्तुतः पतिकी मृत्यु जिस समय हुई है उस समय वह सो गयी थी। अस्वाभाविक उसमें कुछ नहीं है लेकिन अपराधकी वह भावना उसको त्रस्त कर देती है। वही त्रस्तता गणितके रूपमें उभरकर आयी है। एक और सुन्दर कहानी है 'टोकरीमें बैठी उदासी' एक आधुनिक युवकके अन्तर्मनमें मचनेवाले अन्तर्द्वन्द्वकी यह कहानी मर्मको छूती है। एक लड़की जिसको उसने बचपनमें देखा है, बीमार होकर अस्पतालमें आयी है। उससे मिलने जानेके लिए वह कितना सजता-सँवरता है लेकिन उस युवतीके सामने पहुँचकर पाता है एक विकृत बीभत्स नारी कंकालको। कथाकारने बड़ी सहजतासे उस दम्भसे उत्पन्न मार्मिक वातावरणको जैसे पाठकके सामने मूर्त कर दिया है। मन न जाने कैसा-कैसा हो उठता है। जैसे पाठक अपने अन्तर्मनके चित्रको ही देख रहा हो। और चौंक उठा हो।

एक कहानी 'नाम' है। साधारण कहानी है लेकिन दुर्बल मनुष्यके अन्तर्मनकी वह भी एक सबल झाँकी है। उसी तरह सारी दुर्बलताओंके बावजूद मनहरकी क़लममें प्रतिभा है, शक्ति है, सहजता है लेकिन इसका पूर्ण उपयोग तभी हो सकता है जब उसकी गतिपर कुछ अंकुश रहे। राजीव सक्सेनाने इस संग्रहका सम्पादन करके वह अंकुश रखनेका प्रयत्न किया है। विश्वास करना चाहिए कि यह संकेत रचनाकारके लिए यथेष्ट होगा। अपनी भूमिकामें राजीव भाईने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। कुल मिलाकर यह संग्रह मनहरकी उपलब्धियों और कुछ सीमा तक दुर्बलताओंका सही प्रतिनिधित्व करता है।

—विष्णु प्रभाकर

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत

एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन-आयोजन

राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

के अन्तर्गत प्रकाशित आठ कृतियाँ

• •

प्रतिनिधि संकलन : कविता-मराठी

संकलन एवं रूपान्तरकर्ता : दिनकर सोनवलकर : ४.००

प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी-२

नानक सिंह : ४.००

प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी-२

प्रो० ना० सी० फड़के : ४.५०

प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी-१

कर्तारसिंह दुग्गल : ३.५०

प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी

संकलन एवं रूपान्तरकर्ता : अनिल कुमार : ४.००

प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु

नार्ल वेंकटेश्वर राव : ३.५०

प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला

परशुराम : ३.००

प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी-१

व्यंकटेश दि० माडगूलकर ४.००

• •

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता • दिल्ली • वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

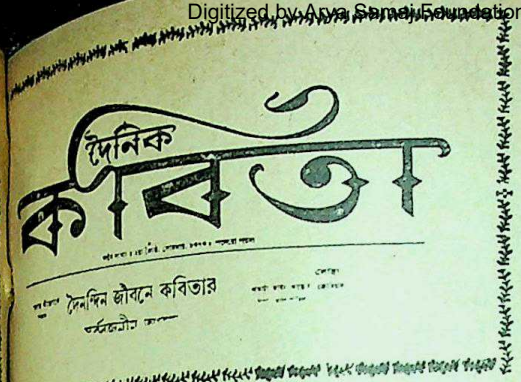

ता । री । खें

सुमेश भौतिक

• कविता दैनिक । कविता घण्टेकी । कविता मुहूर्त्तकी...

मई कलकत्तामें खासा गरम रहता है लेकिन एक दिन बादल घिरे, खूब पानी बरसा और मौसम फ़ेवरेबल हो गया । जिन दिनों यहाँ 'गीत-समारोह' हो रहा था और नवगीतकार लयमें लय ढूँढ़ रहे थे उन्हीं दिनों सारे बंगालमें कविता बैडली लौट आयी। सात मईको सवेरे नौ बजकर पचास मिनिटपर 'कविता घण्टकी' बाज़ारमें बिकने आयी । अखबारके नामसे स्पष्ट है कि वह घण्टे-घण्टेमें प्रकाशित होगी । और सच, क़रीब ग्यारह बजे 'कविता घण्टकी' की दूसरी संख्या भी उपलब्ध थी । सुनते हैं उसके कुछ देर बाद ही 'कविता मुहूर्तकी' भी निकली लेकिन सुमेश भौतिकको वह अंक नहीं मिल पाया । समझना मुश्किल है कि हर क्षण अगर एक कविता मशीनसे उतरे तो उसका मार्केट कैसा होगा । उसी समय सुननेमें आया कि सवेरे ब्रेडकी तरहसे खरीदी जा सके ऐसी कविता ९ मईसे प्रकाशित हो रही है । बुद्धदेव वसुने कविताको मासिक बनाया था, अब वह दैनिक बन गयी । चार पृष्ठोंका 'कविता दैनिक' कवितासे अधिक कवितागत पत्र है । इसमें तीन पन्ने बँगलामें हैं और अन्तिम पन्ना अँगरेज़ीमें जब कि तुर्रा यह है कि तिथि बँगला संवत्में दी गयी है, अँगरेज़ी-तारीखका पता नहीं है । उस दिन रवीन्द्रनाथकी जन्मतिथि थी और बहुप्रतीक्षित रवीन्द्र-स्मरणीका उद्घाटन होनेवाला था । जिन कलाकारोंको उस भवनके निर्माणमें उनका दाय नहीं मिला था वे विरोधके झण्डे लेकर समारोहके सामने खडे हुए थे । उन्हें एतराज़ था कि जिनके लिए यह भवन बनाया जा रहा है उनको पूछा भी नहीं गया । सत्यजित रे भी उन्हींमें-से हैं जिन्हें आनेको भी नहीं कहा गया । उदयशंकरके बारेमें भी वही चर्चा है । दोस्तोंने अब उसका नाम 'रवीन्द्र-विस्मरणी' रख दिया है । ....यह सब जिस सुबह चल रहा था उसी सुबह हॉट केककी तरह 'कविता दैनिक' बिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी। सम्पादक—बिमल रॉयचौधरी, शान्ति लाहिड़ी। इसकी सम्पादक मण्डली है—आलोक सरकार, प्रणवेन्दु दासगुप्त, तारापद रॉय, शक्ति चट्टोपाध्याय, शरत्कुमार मुखोपाध्याय, कविता सिंह, स्वदेशरंजन देव, समरेन्द्र सेनगुप्त, तरुण सान्याल। इसमें ताज़ीसे ताज़ी कविताएँ हैं, कवि परिचय हैं, कार्टून हैं, समाचार हैं—ऑल अबाउट पोएट्री। इसे विश्वका पहला कविता दैनिक कहा गया है। मूल्य है पन्द्रह पैसा। इस प्रकाशनकी प्रतिक्रिया यह हुई कि बेतारमन्त्री राजबहादुर अंक देखकर बोले—'फ़ैण्टास्टिक····।' और बँगलाके पुराने कवि इस बातको असम्भव कहते हुए भी आशीर्वाद देने लगे। एक वार्तालाप सुनना आप पसन्द करेंगे—

कविता शाश्वत है, वह जीवनका निचोड़ है। सारे जीवनका फ़ल-सफ़ा है····

—होगी।

—जीवनमें रोज़-रोज़ कविता नहीं लिखी जा सकती है। कविता एकाध ही लिखी जाती है····

—हम उसके शाश्वतपनको दैनिक बनाकर छोड़ेंगे कि वह हर शाम अखबारकी तरह बासी हो जाये।

—तुम दैनिककी बात करते हो, मैं उसे घण्टेको बना दूँगा कि वह चायकी तरह ज़रा देरमें ठण्डी हो जाये।····

—मैं उसे मुहूर्त्तकी (क्षणिक) बना दूँगा कि माचिसकी तीलीकी तरह ज़रामें वह बुझ जाये।····

जी; इस वार्तालापके परिणामस्वरूप कविताकी यह दशा बन गयी है। और लोग विमल रॉयचौधरी तथा कविता सिंहको जानते हैं कि पति-पत्नी हैं वे कॉफ़ी-हाउसमें यह भी कहते हैं कि 'यार पत्नीके नामसे अबतक तो मासिक ही निकलते थे और इनकी यादमें सिनेमाघर ही चलते थे अब दैनिक भी निकलने लगे····!' सुना है उसी तर्ज़पर हिन्दीमें कलकत्तासे 'दैनिक कहानी' भी निकलनेवाली है लेकिन कहानी किसीकी पत्नी या प्रेमिका का नाम नहीं है····।

(कविता दैनिकके ताज़े अंकमें खबर आयी है कि शक्तिके सम्पादनमें 'कविता साप्ताहिक' भी प्रकाशित होने लगी है।)

■ अश्लील पंछी····

बंगलाकी भूखी पीढ़ीपर अश्लीलताका मुक़दमा चल रहा था और यह पाया गया था कि उनमें श्लीलकी कमी थी। अभी १३ मईको यूसिसके सामनेवाले फ़ुटपाथपर चार लड़के और दो लड़कियोंने एक अद्भुत नाटक खेला। वे सहसा रुके और एक अद्भुत खेलने लगे। पुलिस उसे अश्लील आचरण समझ उन्हें जब घेरने आयी तो पता चला कि वियतनाममें अमेरिकी अत्याचारके खिलाफ़ नाटक खेल रहे थे। यह भी सही है कि वे सताये हुए थे लेकिन भूखे नहीं थे। कलकत्ता के चिड़ियाघरमें दो-चार लड़के इस बातके लिए तैनात हैं कि कहीं कोई अश्लील आचरण न हो लेकिन वाशिंग्टन-जूमें एक बंदरपर सन्देह किया गया। वह ऐंग्लो-सैक्सन अश्लीलताके कुछ शब्द बोलती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन-पिंजरेसे एकदम हटा दिया गया और बुरी तरहके पक्षियोंके बीच रखा गया कि उसकी भाषासे अश्लीलता चली जाये। अधिकारी डर गये कि अगर उसे उसकी जातिके अन्य पक्षियोंके बीच रखा गया तो वे भी अश्लीलता सीख लेंगे। शब्द इतने गन्दे हैं कि यहाँ उद्धृत नहीं किये जा सकते।

• हिन्दीके लिए···

ख़बर जमशेदपुरकी है कि धलभूमके अवर डण्डाधिकारीने टेल्को कम्पनीको हिन्दी-का अपमान करनेपर पाँच सौ रुपयेका दण्ड दिया है। सुनते हैं पिछले साल ८ मार्चको टेल्को कम्पनीने ऑटोमेशीन मेण्टेनेन्स विभाग-के एक कर्मचारी श्यामबिहारी सिंहको हिन्दी-में हस्ताक्षर करनेके कारण वेतन नहीं दिया था। २६ मार्चको उस कम्पनीपर हिन्दीके अपमानके विरुद्ध मुक़दमा दायर किया गया, परिणामस्वरूप उक्त कम्पनीपर हिन्दीका अपमान करनेपर पाँच सौका जुर्माना किया गया है। इस बीच हिन्दीपर प्रधानमन्त्री और शिक्षामन्त्रीका ध्यान भी गया है। २४ अप्रैलकी रात श्रीमती इन्दिराजीने रेडियोसे पहले हिन्दीमें भाषण दिया, बादमें अँगरेज़ीमें; यही नहीं, रवीन्द्र-स्मरणीके उद्घाटन-दिन जो भाषण सुनाया गया वह बंगालीमें था। साथ ही अब श्री छागलाने हिन्दीमें बोलना शुरू कर दिया है। यह ज़रूरी है कि आप ऐसी कोई बात इनसे न पूछ बैठें कि वे नाराज़ होकर अँगरेज़ीमें आपको झिड़क दें।

• एव्तुशेंको दिल्लीमें···

एअर इण्डियाकी हड़तालने सोवियत रूसके नाराज़तम कवि एव्तुशेंको दिल्लीमें घेर लिया था। लेकिन कवि इस घिर जानेसे नाराज़ नहीं था, उसने तो कवि बनने तक हर बातके सही अनुभव प्राप्त किये हैं। वह स्कूलमें पढ़ता था और माँसे यह सुना था कि हर कवि शराबख़ोर होता है, तो वह दो-चार दोस्तोंके साथ लड़कियोंके सत्संगमें बुरी तरह शराब पीने लगा था। तब वह स्कूलमें पढ़ता था लेकिन स्तेव्त्स्कीके शब्द जैसे ही उसने सुने कि हमारे युगमें कवि होनेके लिए आदमीको कविसे भी अधिक कुछ होना पड़ता है····वह घर लौट गया था। उसने जेबका पैसा फेंक दिया था और कई दिनों तक बिना कुछ खाये-पीये बैठा रहा था। उसकी नाराज़ी एक देशके लिए अर्थवान् है और दूसरेके लिए अर्थहीन। रूसमें जिन साहित्यकारोंपर मुक़दमे चले हैं अपने देशके ख़िलाफ़ लिखनेके आरोपमें, वे भी नाराज़ हैं। वहाँ इसकी सज़ा सात सालकी क़ैद है। कठघरेमें खड़े होकर वे बहुत कुछ बोले हैं और दुनिया-भरमें इसकी प्रति-क्रिया हुई है। कोई नहीं चाहेगा कि वे बोरिस पास्तरनेककी मौत क्षमा माँगते हुए मरें।

• नाक और ज़बान :

ये दो ख़बरें एक साथ पढ़िए :

§ रोम में ७२ वर्षीय पत्नीकी ज़बान उसके ७५ वर्षीय पतिने काट डाली। पतिका कहना था—'यह बहुत बोलती है और इसका बोलना सुनते-सुनते मैं बूढ़ा हो गया, अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे बर्दाश्त नहीं होता।'

§ बेंगर गाँवमें सत्ताइस वर्षकी एक पत्नीने अपने तीस वर्षीय पतिकी नाक अपने दाँतसे काट ली। उसने अपने नाक कटे पतिके बारेमें कहा—'यह किसी औरसे मोहब्बत करता है और मैं चाहती हूँ कि अब यह अपनी कटी हुई नाक लेकर जाये अपनी प्रेमिकाके पास।'

• मन्त्रविभागका मन्त्री :

मध्य प्रदेश (जिसे अब लोग मद्यप्रदेश कहने लगे हैं) की राजधानी भोपालसे समाचार आया है कि इन्दौरके पास पण्डित वीरसेन दैवज्ञने यज्ञ और मन्त्रके बलसे पानी बरसानेका दावा किया है। स्मरण होगा सूखेकी हालतसे परेशान होकर काँग्रेसाध्यक्ष कामराजने कहा था एक बार कि जो मन्त्र-बलसे पानी बरसा देगा उसे वे मन्त्री बना देंगे। यह तो पता नहीं कि पण्डित वीरसेन जी मन्त्री बनना चाहते हैं या नहीं लेकिन उन्होंने कामराजको एक पत्र लिखकर यह ज़रूर कहा है कि उनकी योजनाके अनुसार अगर कार्य किया गया तो मात्र दस दिनमें जलाभावकी समस्या हल हो जायेगी। सारे मन्त्री इस बातसे चाहे तो चिन्तित हो सकते हैं कि जो मन्त्रसे पानी बरसा सकता है वह मन्त्र पढ़कर वोट भी बटोर सकता है।....

• हिन्दीके साहित्यिक मासिकों से परहेज़ :

दिल्लीके एक रंगीन साप्ताहिकमें आप विज्ञापन प्रति सप्ताह पढ़ते होंगे—'....आँवला केशतैल, ...बालसफ़ा, भीमसेनी काजल, चर्मरोग, रक्तविकार, दमे फेफड़ोंकी सूजन, जुकाम, नींदमें पेशाब आना, पेटकी गड़बड़, सपट मलम, एन फ्रेंच....।' लेकिन अगर इनके पास किसी साहित्यिक मासिक-पत्रका विज्ञापन पहुँचे, जो नये साहित्यकारोंकी सूचनाके लिए हो तो वे उसे प्रकाशित नहीं कर सकते, क्योंकि उनके द्वारा प्रकाशित हो रही किसी मासिक पत्रिकाके होते हुए किसी अन्य साहित्यिक मासिकका अस्तित्ववोध पाठकोंको क्यों हो ? लेकिन हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि किसीके लिए किसी भी साहित्यिक विज्ञापनसे नींदमें पेशाब आनेका इलाज करनेवाला विज्ञापन अधिक रोचक और जन-कल्याणकारी अथवा अवश्यक हो सकता है। अपनी रुचिके लिए सभी स्वतन्त्र हैं। हम भी स्वतन्त्र हैं साहित्यके नामपर ऐसी असाहित्यिक नीतिका विरोध करनेके लिए।

• कॉफ़ी-हाउस :

तारघरके सामने क़तार लगी थी। खिड़की-पर जाकर एक बाबूने तार दिया—'तत्काल लौट आओ।' वह तार उसने अपनी पत्नीके नाम किया था जो मायके चली गयी थी। तार बाबूने पूछा—

—'इज़ इट अर्जेण्ट ?'

—'येस। इट इज़ मोस्ट अर्जेण्ट।'

उसके बाद एक दूसरे बाबूने अपने भाईको पिताकी मृत्युकी खबर देते यह कहा था कि वह यहाँ आ जाये। तार बाबूने पूछा—'इज़ इट ऑर्डिनरी ?'

तार देनेवालेने जमुहाई लेते हुए जवाब दिया—'इट इज़ मोस्ट ऑर्डिनरी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ ४ का शेष : आपके पत्र]

पिछले दो वर्ष जब मैं अपनी पी-एच० डी० की थीसिसके लिए रिसर्च कर रही थी, मुझे एक बात बार-बार खटक जाती थी कि भारतीय जब भारतके विषयमें लिखते हैं—तीन हज़ार वर्ष पुराने भारत नहीं, केवल पचास वर्ष पुराने भारतके विषयमें—तो यूरोपियन साहित्यकारोंकी पुस्तकोंमें-से उद्धरण देते हैं। पुस्तक चाहे इतिहासकी हो, समाज-शास्त्रकी, या मनोविज्ञानकी, यदि वह किसी यूरोपियन-द्वारा लिखी गयी है, तो वह यूरोपियन दृष्टिकोणसे लिखी गयी है भारतीय दृष्टिकोणसे नहीं, इन पुस्तकोंसे उद्धरण लेनेका परिणाम यह होता है कि भारतीयोंकी क़लम-द्वारा ही भारतीय समाजके विषयमें ग़लत बातें लिख दी जाती हैं। उसका दूसरा परिणाम यह होता है कि यदि कोई विद्यार्थी खोज-ढूँढ़कर, किसी भारतीय दर्शनकार या साहित्यकारकी पुस्तकमें-से उद्धरण देना चाहता है, तो वह उद्धरण ग़लत या अप्रामाणिक मान लिया जाता है—"तुम्हारे देशके ही इन दस साहित्यकारोंने यह लिखा है। उनके स्थानपर इस एककी बात कैसे मान ली जाये? क्या यह अधिक सम्भव नहीं कि यह 'शॉवनिस्टिक' या 'ड्रीमर' रहा हो, या इसने मनगढ़न्त बातें लिख डाली हों?" ऐसे तर्कोंका प्रोफ़ेसरको भला क्या उत्तर दिया जा सकता है।

श्री विद्यालंकारजीने इस लेखमें लिखा है कि "ईसासे तीन हज़ार साल पहले भी भारत और ग्रीसके बीच व्यापार होता था, यह बात सुनकर यहाँके विद्वान् हँसी उड़ायेंगे। कहेंगे—"तुम भारतवासी! तुमने तो सभी वस्तुओंका आविष्कार ईसासे तीन हज़ार वर्ष पूर्व कर लिया था।" किसी भारतीय इतिहास-कार-द्वारा लिखी हुई पुस्तकमें पढ़कर, मैंने एक प्रोफ़ेसरसे कहा कि, चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें हमारी नगरपालिकाएँ नगर-निवासियोंकी जन-गणना करती थीं, तो वे मुसकरा दिये, बोले, 'तुम्हारी इस बातपर कौन विश्वास करेगा? जब हमारे प्रोग्रेसिव देशोंमें ही जन-संख्याकी गणना १९वीं शताब्दी तक प्रारम्भ नहीं हुई, तो तुम्हारे यहाँ उतनी जल्दी कैसे प्रारम्भ हो सकती थी?'

सुन लीजिए!

अतः ऐसे लेखोंकी हमारे देशमें बहुत आवश्यकता है, जिनमें दूसरोंके द्वारा लिखी गयी पुस्तकोंसे नहीं, अपितु पुराने ग्रन्थों, शिला-लेखों आदिसे सामग्री लेकर, देशके अति-प्राचीन, प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास, संस्कृत और साहित्यके विषयमें लिखा जाये। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो हमारे देशके बालकोंको यह कैसे पता लगेगा कि सन् १८५७ का आन्दोलन 'सिपाही ग़दर' नहीं, पूर्व-निश्चित व्यापक विद्रोह था, कि सती-प्रथा लॉर्ड बैण्टिकने नहीं राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीकी
नयी पीढ़ीके
अग्रणी
साहित्यकार

धर्मवीर भारती

की
बहु-प्रशंसित
विशिष्ट
कृतियाँ

• कनुप्रिया

जिसमें राधाके प्रणयके विविध आयाम प्राणोंकी धारामें घु
टित होकर प्रकृतिके प्रतीकोंमें सार्थक तादात्म्य प्राप्त करते
दूसरा संस्करण ।

• सात गीत वर्ष

भारतीकी चुनी-चुनी ५१ कविताओंका संकलन, जिसमें कवि
रचना-प्रक्रियापर एक दस्तावेज़ी गद्य-खण्ड भी सम्मिलित
दूसरा संस्करण ।

• सूरजका सातवाँ घोड़ा

हिन्दीमें शिल्प और कथ्यकी दृष्टिसे अपनी तरहका अकेल
उपन्यास—जितना महत्त्वपूर्ण है, आकर्षक भी उतना ही
चौथा संस्करण ।

• गुनाहोंका देवता

एक बहुपठित उपन्यास । मध्यमवर्गीय जीवनकी अत्यन्त सफ
प्रेम-कथा । जीवन, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास आदिको समर्पित
मौलिक प्रयास । सातवाँ संस्करण ।

• मानव मूल्य और साहित्य

मानव-मूल्यके सन्दर्भमें साहित्यका विश्लेषण, परीक्षण और
आकलन । प्रत्येक साहित्य-अध्येताके लिए भारतीकी अनिवार्य
रूपसे पठनीय कृति ।

• देशान्तर

२१ पाश्चात्य देशोंकी १६१ आधुनिक कविताओंकी हिन्दी
छायाएँ । हिन्दीमें अपने प्रकारकी सर्वप्रथम कृति ।
दूसरा संस्करण ।

• आस्कर वाइल्डकी कहानियाँ

अँगरेज़ी गद्यके अनुपम शैलीकारकी अनूठी कहानियोंका हिन्दी
रूपान्तर ।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम मोहन रॉयने बन्द करायी थी। लॉर्ड बैण्टिकका उसमें केवल उतना ही हाथ था, जितना कि क्वीन एलिज़ाबेथका किसी रॉएल पॉलिसीमें होता है, कि कांग्रेस पार्टीका जन्म 'सर सैमुएल ह्यूम'-द्वारा नहीं, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे देशभक्तों-द्वारा किया गया था। सर ह्यूमका नाम आगे केवल इसलिए रखा गया था कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट काँग्रेस पार्टीको ध्वंस न कर दे····इस दृष्टिसे आपका यह प्रयत्न सराहनीय है····

—सोमा वीरा

न्युयॉर्क]

फ़रवरी अंक स्व० मुक्तिबोधकी कहानी 'जंकशन' तथा मार्च एवं अप्रैलमें उन्हींकी लम्बी कहानी 'विपात्र' बहुत भायी। यूँ 'कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट' के साथ फ़रवरी अंकसे आनेवाले प्रत्येक अंकके प्रति आतुरता रहती है। हिन्दी-साहित्य संसारका अपने ढंगका अभूतपूर्व ऐतिहासिक कथा-समारोह : क्रिया-प्रक्रिया-प्रतिक्रियाके साथ अन्तर्भूत होता जाता है। इस कथा-समारोहके बाद कथाका प्रत्येक वर्तमान पाठक एक ऐसे समतलपर स्वयंको पाता है हृदयाभिराम संगति है जहाँ। कहानीका काफ़ी खुलासा मौसम हो गया-सा जान पड़ता है; कई बादल हट गये—कुछ टूट गये—कुछ बरसे हैं।

'विपात्र'के प्रति अप्रैल अंकमें प्रकाशित श्री वीरेन्द्र मिश्रके विचारोंसे मेरी असहमति है। मेरा सुझाव है उन्हें कि एक बार 'विपात्र'को तटस्थ रहकर पुनः सम्पूर्ण पढ़ें। 'विपात्र'में निर्देशन तत्त्व हैं जिनकी आण्विक शक्ति चर्चासे परे है। 'विपात्र' पर बहस स्व० मुक्तिबोधके प्रति अन्याय होगा।

—विश्वभावन्

कटंगी]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

समकालीन भारतीय कहानी विशेषांक | नवम्बर १९६४ : दो रुपया
दिसम्बर १९६४ : एक रुपया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ **कहानियाँ :** फणीश्वरनाथ रेणु। राजेन्द्र यादव। कमलेश्वर। कुंकुम जोशी। जनेन्द्रकुमार। शंकर। विभूति पटनायक। नवतेज। अनवर अज़ीम। गुलो सामताणी। चन्द्रकान्त बक्षी। विजया राजाध्यक्ष। पालगुम्मि पद्मराजु। भीष्मन्। एम० टी० वासुदेवन नायर। भीमसेन राव 'वीचि'। मोहनदेव पन्त। भवानी भिक्षु। अमीन कामिल। मोहन राकेश। शैलेश मटियानी। शिवानी। बलराज मैनरा। अजीत कौर। लाल 'पुष्प'। अरविन्द गोखले। सन्दीपन चट्टोपाध्याय। आदि।

■ **कथा-विश्लेषण :** जैनेन्द्रकुमार। चन्द्रकान्त विद्यालंकार। देवीशंकर अवस्थी। गुलाबदास ब्रोकर। कर्तारसिंह दुग्गल। मासूम रज़ा राही। अजीत कौर। इक़बाल मजीद। विनयन्। मधु रॉय। श्रवनकुमार वर्मा। प्रभाकर माचवे। शिवप्रसाद सिंह। सोमा वीरा। रवीन्द्र कालिया। शैलेश मटियानी। प्रयाग शुक्ल। शेखर जोशी। आनन्दप्रकाश जैन। सुद्राराक्षस। श्याम परमार। लक्ष्मीनारायण लाल। मधुकर गंगाधर। परेश। ज्ञानरंजन। प्रेमकुमार। कंचनकुमार। मन्मथनाथ गुप्त। केशवचन्द्र वर्मा। रमेश बक्षी। कृष्णचन्द्र। चन्द्रकान्त देवताले। शिवकुमार जोशी। वासुदेवन नायर। इन्द्रनाथ मदान। इलाचन्द्र जोशी। आदि।

■ **साथ ही :** कथा-अलबम।

ज्ञानोदय : सारे कथाकार एक साथ

कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट | फ़रवरी १९६६ : एक रुपया

■ **कहानियाँ :** वृन्दावनलाल वर्मा। गजानन माधव मुक्तिबोध। मोहन राकेश। शैलेश मटियानी। शरद जोशी। ज्ञानरंजन। ममता कालिया। गंगाप्रसाद विमल। सुधा अरोड़ा।

■ **कथा-समारोह : कथा-चर्चा :** वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, विमल मित्र, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन राकेश, देवीशंकर अवस्थी, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, कृष्णबलदेव वैद, हरिशंकर परसाई, रजनी पनिकर, मन्नू भण्डारी, शरद जोशी, धनंजय वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, श्रीकान्त वर्मा, शैलेश मटियानी, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, सुदर्शन चोपड़ा, गंगाप्रसाद विमल, लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा रमेश बक्षी आदि।

■ **साथ ही :** कथा-(संग्रह, समीक्षा, सम्पादन) अनुक्रमणिका और सारे कथाकारोंके चित्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रकाशित

दो नयी कृतियाँ

• अठारह सूरज के पौधे

रमेश बक्षी

एक यात्रा-उपन्यास। शैली-शिल्प इसका बिलकुल नया—मनको बहुत भीतरसे बाँधता हुआ; और आदिसे अन्त तक एक आत्मीय संगीतमें डूबा हुआ कथानक। अजीब-से नशेमें ढुलकती हुई चाल है इस यात्रा-उपन्यासकी, बहुत रोचक और प्रभावपूर्ण। ३.००

• प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी

संकलन एवं रूपान्तरकर्ता : दिनकर सोनवलकर

हिन्दीकी एक सहोदरी भाषाके आधुनिक काव्यको इस प्रकार हिन्दीमें एक संकलनमें समेटनेका यह पहला प्रयास है। सब १८ समकालीन कविताओंकी चुनी-चुनी ९० कविताओंका हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत है। साथमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका भी डॉ० प्रभाकर माचवेकी है। ४.००

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad Extra postage 18nP. This Copy Re. 1/-
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

License No 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली ज़िला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9 JUL 1966
जुलाई १९६६

'नयी कलम अंक'
वर्ष १८ : अंक १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for Annual
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण—लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय चन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना
और
नवीनताका
प्रतिनिधि मासिक

अठारहवें वर्षका
पहला चरण

नयी । क़लम । अंक

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता-२७

फ़ोन : ४५-४४३२, ४५-६६२०
तार : ज्ञानोदय

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन,
रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अठारहवें वर्षकी पहली सीढ़ी

•

'ज्ञानोदय' अपने जीवनके सत्रह वर्ष पूरे कर अठारहवेंमें प्रवेश कर रहा है यह हिन्दी भाषा और साहित्यके प्रत्येक प्रेमीके लिए प्रसन्नताकी बात है। एक विशेष अर्थमें ज्ञानोदय शिक्षित प्रबुद्ध मध्यवर्गका पत्र है, वह नये लेखकोंका निजी पत्र भी है। 'नयी क़लम विशेषांक' उसकी निरन्तर प्रयोगशीलताके अनुरूप ही होगा। फिर भी मैं चाहूँगा कि वह साहित्यके प्रौढ़ता-पक्षपर उतना ही गौरव दे जितना कि उसके नये या युगानुरूप होनेपर। हिन्दी साहित्य और साहित्यकारोंके लिए प्रौढ़ता या परिपक्वता (मैच्योरिटी) का नारा कमसे कम उतना ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए जितना कि नयेपनका।

मसूरी] —देवराज

•

'नयी क़लम अंक' की योजना मौलिक और उपयोगी है। अंककी सफलताके लिए मेरी शुभकामनाएँ। देखनेको उत्सुक रहूँगा।

नयी दिल्ली] —बच्चन

•

१७वें वर्षके सभी अंक अच्छे लगे। वयका व्यतिक्रम जैसा ज्ञानोदयने दिखाया किसी दूसरे पत्रने नहीं दिखाया। बुढ़ापा, बचपन और जवानी यह क्रम रहा उसके इन १८ वर्षोंके जीवनका और अब मैं चाहता हूँ उसकी यह जवानी बनी रहे। इस दृष्टिसे मैंने 'नयी क़लम' अंककी कल्पनाको अपने नये रचनाकार मित्रों तक हरकारेकी तरह पहुँचानेका कर्त्तव्य माना है। यह बड़ी सही दिशामें साहसी क़दम है।

नयी दिल्ली] —भवानीप्रसाद मिश्र

•

आपने लिखा है कि मैं 'नयी क़लम अंक' के लिए अपने अजीज़ोंसे कहूँ। एक-दोको कह भी रहा हूँ ताकि आपके आदेशका पालन हो सके, लेकिन मेरा जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

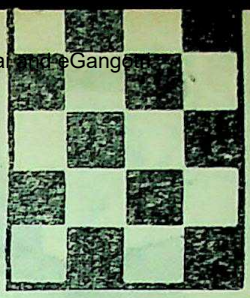

शु।भ।का।म।ना।एँ

भी चाह रहा है कि मैं अपने ललित निबन्ध इस प्रतियोगितामें भेज दूँ। मेरी आयु १५ सालसे अधिक और शैक्षणिक योग्यता भी हायर सेकेण्डरीसे अधिक है। पैसे भी मुझे कभी-कभार मिलते हैं।

—इन्द्रनाथ मदान

चण्डीगढ़]

•

'ज्ञानोदय' का प्रस्तुतीकरण पिछले दिनोंसे काफ़ी कलात्मक और सुरुचिपूर्ण चल रहा है। कभी-कभी लगता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ ज़रूरतसे कुछ अधिक हैं। इस प्रसंगमें कुछ सोचा जा सकता है। 'नयी क़लम अंक' का आयोजन अच्छा है। आशा है आयोजन सफल होगा।

इलाहाबाद]

—रामस्वरूप चतुर्वेदी

•

सवा वर्ष पार कर लेने वाले 'ज्ञानोदय' को आरम्भिक रूपमें भी मैंने देखा था""आपने इसको एक फ़ोरम रूप देनेकी कोशिश की है जहाँ खूब चर्चा छिड़े जिसमें लेखक-पाठक सीधे सम्प्रेषण करें। मुझे यही खास बात नज़र आयी है आपके प्रयासमें। आपने विशेषांकोंकी कड़ीको काफ़ी सूझ-बूझ और ऐतिहासिक नज़रका ध्यान रखते हुए निकाला है। मैं जो सुझाव देना चाहता हूँ उनमें—हो सकता है कि अकादमीय गूदा ज़्यादा हो और ज्ञानोदयकी लोकप्रियतामें इज़ाफ़ा नहीं कर सके,—फिर भी कमसे कम एक लेख यूरोपीय साहित्य और संस्कृति-पर, एक लेख भारतीय इतिहासके किसी पटलपर हो तो पाठकोंके ज्ञान तथा शिक्षणकी 'रेटिंग' सुधर सकेगी। एकाध विवाद तो हर अंकमें उठाया करें ताकि लेखकोंकी कलंगी गिरे और पाठकोंकी केंचुल उतरे। वैसे मुझे ज्ञानोदयसे सन्तोष है। अतिशयोक्ति या विशेषोक्तिमें नहीं बात करूँगा।

चण्डीगढ़]

—रमेश कुन्तल मेघ

[शेष पृष्ठ १६१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

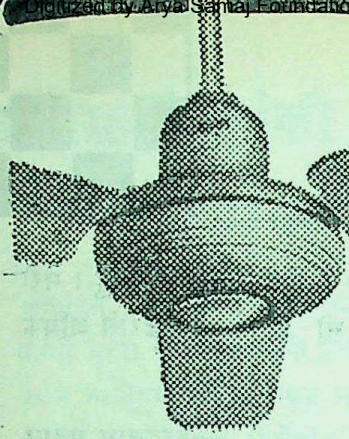

लाखों की पसन्द

ऊषा पंखे अपनी सुन्दर बनावट, उत्तम कार्य और दक्ष कारीगरी के कारण दुनिया के चालीस से अधिक देशों में लोकप्रिय हैं।

JAY
उत्पादन

सभी उषा सीलिंग पंखों में अधिक समय तक चलने के लिए दो बाल बियरिंग लगे हैं।

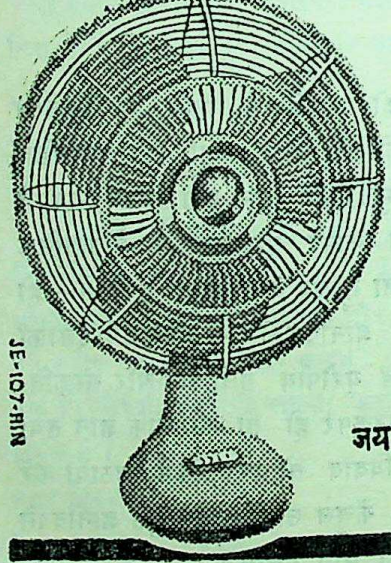

JE-107-HIN

ऊषा

देश में बिकनेवाला प्रत्येक दूसरा पंखा ऊषा है।

जय इंजिनीयरिंग वर्क्स लिमिटेड,
कलकत्ता-३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- सम्पादकीय पृष्ठ :
- सम्पादककी ओरसे अभिवादन और शुभकामनाओं सहित नयी क़लमका स्वागत ७

- कविताएँ :
- समय : तेरी कविताएँ : नीलाभ, सुनीता श्रीवास्तव, प्रभातकुमार त्रिपाठी, प्रमोद त्रिवेदी, रचना, श्रीपति उपाध्याय, विनय दुबे, मोहन निराश, इन्दु शेरगिल ९
- छोटी और बहुत छोटी कविताएँ : प्रेमपाल शर्मा, राधा, मलय, सुकृता अजमानी, बलराज जोशी, किरन राज, शिवप्रतापसिंह, रामनारायण नायक, सन्तोष बोथरा, प्राणेशकुमार अग्रवाल, जसबीर कोहली, शंकरराव नायडू, उषा खुराना, शैलेन्द्र 'शैल' ५७
- कविता-अकविता-सकविता : यज्ञ शर्मा, सतीशकुमार वशिष्ठ, बजरंग बिश्नोई, श्यामगोविन्द राजहंस, स्वदेश भारती, वनिता सोनवलकर, कमलेश शर्मा, बलदेव वंशी, विजयराय, केवल गोस्वामी ८९
- गीत, अगीत और नवगीत : विनोद निगम, शिव मधुकर, छन्दराज, गोरखप्रसाद पाण्डेय, सरल, राधेश्याम मुक्त, माधव मधुकर, माहेश्वर तिवारी ११३
- व्यंग चक्र : तीखे-तुर्श-वक्र : शीलूसिंह वर्मा, विष्णु बक्षी, श्यामकिशोर सिंह, शरदिन्दु भूषण कुमार, वीरेन्द्र दीपक, इन्दु व्यास, रमेश साही, फुलवन्त कौर, पवनकुमार जैन, मैकलियॉड १३५

- कहानियाँ :
- पाँच कहानियाँ : बीना माथुर, श्रीनाथ पाण्डेय, अन्विता अग्रवाल, प्रेमनन्दन सिन्हा, इन्दु अरोड़ा २५
- पाँच और कहानियाँ : शुभू पटवा, चित्रा गोयल, लक्ष्मी-शंकर प्रसाद, अनिल प्रभा, नफ़ीस आफ़रीदी ६३
- और पाँच कहानियाँ : अशोक आत्रेय, उर्मिला जैन, सुकुमार, कृष्णा दीक्षित, सतीशकुमार मोदी ९५

- लेख और टिप्पणियाँ :
- विज्ञानयुगीन सभ्यता और अस्तित्वहीन मानव : प्रकाशचन्द्र जैन ११९, मनोरंजन बनाम विघटन : वीरेन्द्र शर्मा १२३, अखिल भारतीय सम्पर्क-भाषा : हिन्दी : नीलिमा सहाय १२७
- नये विचार : राष्ट्रोत्थानमें नारियोंका उत्तरदायित्व : कुसुम शुक्ल १८१, राजा राममोहन रायको भूलती हुई नयी पीढ़ी : मधुछन्दा १८३, पश्चिमी सभ्यताकी विकृति एवं समाधान : [illegible] १८९, [illegible] संक्रांति एवं प्रश्न अस्वीकृतिका : श्याम विमल १८८

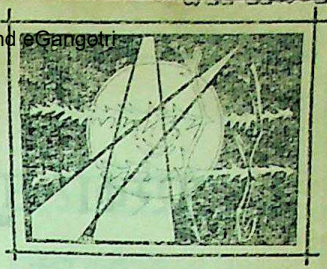

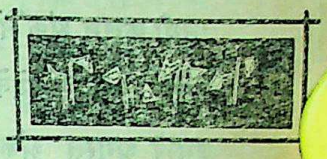

अनुक्रम

न।यी।क।ल।म।अं।व

वर्ष १८ : : अंक

जुलाई १९९

मुखपृष्ठ : चम्पक जैन

सज्जा : पॉप आ

ललित रचनाएँ

- निबन्ध : कैक्टस : द्वारकेश १४१, [illegible] हुआ सूरज, बर्फ़के गोले और बहूटियाँ : नूरजहाँ १४९, यात्रा ग्रामांचलकी : प्रफुल्ल कुमार १५२, डायरीके पाँच पृष्ठ : विश्व प्रसाद तिवारी १५७
- व्यंग : सिद्धान्तराय : अपनी ढ वाचस्पति उपाध्याय १६१, आप हैं : जगदीशकुमार १६४

दो एकां

- कुहनीकी हड्डी : कुँवर अजय सिंह
- प्रेमी और प्रेमी : सुरेशकुमार वर्मा

अठारहवें वर्षकी पहली सं

शुभकामन

देवराज, बच्चन, भवानीप्रसाद इन्द्रनाथ मदान, रामस्वरूप चतुर्वेदी, कुन्तल मेघ, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मटियानी, विष्णुकान्त शास्त्री, कल्[illegible] तोदा, [illegible] वाजपेयी, चन्द्रकान्त दे गंगाप्रसाद विमल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरस्कार-सूचना :

'नयी क़लम अंक'में प्रकाशित रचनाओंपर पारिश्रमिकके अतिरिक्त ५०० रुपयेके जो पुरस्कार दिये जायेंगे उनकी घोषणा हमारे अगस्त अंकमें प्रकाशित होगी। ये पुरस्कार सम्मान्य साहित्यकारोंके मन्तव्य, पाठकोंकी पसन्द तथा सम्पादकीय निर्णयके अनुसार दिये जायेंगे। पुरस्कार-सूचनावाला ज्ञानोदयका अंक २५ जुलाईको उपलब्ध होगा।

— सम्पादक

यहाँ से काटिये

नाम .....

पता .....

.....

'नयी क़लम अंक'में प्रकाशित रचनाओंमें-से मेरी पसन्दका चुनाव :

(क) कविता—१ .....२.....

(ख) कहानी—१ .....२.....

(ग) लेख तथा टिप्पणियाँ १ .....२.....

(घ) ललित रचनाएँ—१ .....२.....

(ङ) एकांकी—१ .....

कृपया इसे भरकर निम्नांकित पते १२ जुलाईसे पहले भेज दें :

सम्पादक—ज्ञानोदय
'नयी क़लम अंक'
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता—२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

१, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता—२७

शुभकामनाओं सहित

सम्पादक की ओर से अभिवादन और ~~खेद सहित~~ !

नयी कलम का स्वागत .... +

+

अठारह वर्षके जीवनमें विविध तरहसे अंक संयोजन करते ज्ञानोदयने यह अनुभव किया है कि किसी भी पत्रिकाके लिए समयसे कटकर चलना सम्भव नहीं हो सकता और इसीलिए वर्ष-प्रारम्भके समय पहला अंक रेखांकित करनेकी परम्परा शुरू की गयी है। पिछले वर्ष ज्ञानोदयने आपके सामने 'नयी पीढ़ीका प्रतिनिधि अंक' रखा था, उसी समय यह लगा था, प्रत्येक अंकमें नये रचनाकारोंको अधिकसे अधिक स्थान दिया जाना चाहिए लेकिन वह अगर एकाध रचनाके छप जाने तक ही सीमित रह जाये तो उससे साहित्यका कोई हित नहीं होता—वह तो कभी लेखककी ओरसे शगल हो जाता है और कभी सम्पादककी ओरसे गैरजिम्मेदार प्रोत्साहन। हम तो यह अनुभव करते हैं कि ज्ञानोदयके माध्यमसे नये लेखक, लेखकोंकी एक बड़ी बिरादरीमें शामिल हो जाते हैं, फिर वे उस वातावरणसे कुछ पाते चलते हैं और अपना रास्ता आप बना लेते हैं। तटस्थ सम्पादन भूमि देता चलता है और दिशाएँ तो सूरजकी उपस्थितिसे भी निश्चित की जा सकती हैं। किसीकी भाषा सुधारना या उसकी व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ ठीक करना, उसे कुछ पुस्तकें पढ़नेकी सलाह देना अध्यापकका काम होता है सम्पादकका नहीं और कोई भी व्यक्ति जब एक लेखकके रूपमें सामने आता है तो उसे सम्पादकीय औपचारिकता तो दिखाई जा सकती है, उसकी रचनाओंका औपचारिक सम्पादन नहीं किया जा सकता। नये रचनाकारोंके प्रति स्नेहमें उनकी सम्भावना और उनकी गरमी दोनोंके लिए आदर होता है और कई बार लगा है कि कच्चे ढंगसे भी जो लिखना शुरू होता है, उसमें दृष्टि है अगर, और अगर वह मौसमका समानधर्मा है, तो ताक़तके साथ उभरकर सामने आ जाता है। इस वर्ष जब पिछले वर्षपर नज़र गयी तो यह लगा कि कमसे कम एक हज़ार नये लेखकों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नाम किसी-न-किसी रूपमें सामने आये हैं और किसी-न-किसी कारणसे उनपर अलगसे ध्यान नहीं दिया जा सका है···यही सब सोचते ज्ञानोदयके सम्पादकोंने सर्वेक्षण या तफ़रीह-की दृष्टिसे नहीं नयी पीढ़ीके प्रतिभाशाली लेखक-लेखिकाओंके अन्वेषणके साथ ही, नयी क़लमको प्रतिष्ठा, दिशा, सहयोग और सम्पर्क देनेकी ग़रज़से 'नयी क़लम अंक' प्रकाशनकी योजना बनायी। हमारा प्रयास यह रहा कि महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयके छात्रों तक यह निमन्त्रण पहुँच जाये। केवल एक मासमें ही नयी क़लमकी कोई ३००० रचनाएँ हमें प्राप्त हुईं—कविताएँ कोई १५०० थीं और कहानियाँ १००० से अधिक, बाक़ी अन्य विधाकी रचनाएँ थीं। इतनी रचनाओंमें-से एक अंकके लिए रचनाएँ खोज लेना बड़ा मुश्किल काम लगा। कविताओंमें शिल्पका कमाल देखते आश्चर्य हुआ कि अच्छी कविता कोई भी लिख सकता है और कैसे भी लिख सकता है। विशेष बात यह कि कविता जिस रूमान और वायवीपनके लिए बदनाम हो गयी थी वह कहीं देखनेको नहीं मिला—प्रेमपर किसीने अगर नज़र डाली भी तो उड़ती हुई। नाराज़ी, घृणा, घुटन, विक्षिप्तता, आत्महन्ता मनोवृत्ति और परम्पराको तोड़ डालनेके स्वर साधारणतः ख़ूब अच्छेसे अभिव्यक्त हुए हैं। ऐसा लगा कि कविता सहसा जंगलमें लगी आग या फूट पड़ते ज्वालामुखीकी आकृति ग्रहण करती जा रही है। दूसरी ओर कहानियोंमें उमस और मानसूनसे पहलेकी आँधी दिखाई दी। पैंचदार शिल्प अपदस्थ हुआ है और कथानकके वे विषय तिरस्कृत दिखे हैं जो एक ज़मानेमें एकमात्र विषय थे। लेकिन हर चीज़ समस्यामूलक दिखाई देने लगी है, शायद दिन-ब-दिन आदमी जो घिरता जा रहा है, उसीसे मुक्ति पानेकी छटपटाहट अभिव्यक्त हुए बिना नहीं रहती। यह तो है ही कि व्यक्ति कवि हो या कथाकार नया-नया ही है अगर तो कम ज़मीन नापनेकी उम्र उसके साथ जुड़ी रहती है और कह नहीं सकते कि उसके चरण कहाँ और कैसे पड़ेंगे। लेकिन यह तो निश्चित है ही कि वह उम्र और समयके प्रति अगर ईमानदार है तो आकाशका रंग ज़रूर बदलता है। कथनमें वक्रोक्ति इस रूपमें आ गयी है कि जो कहना है उसके लिए कहनेवाला चिन्ता नहीं करता कह चुकता है और कह देनेके बाद प्रायश्चित्त भी नहीं करता कि उसने ऐसा क्यों कहा। एकांकी, ललित रचनाएँ और विचारात्मक लेखोंमें विषय-चयनकी प्रक्रियामें अन्तर आया है और सभी रचनाकारोंके मनमें सूक्ष्म और एब्सर्ड हो जानेकी ललक स्पष्ट दिखाई दी है। हमने कोशिश की है कि हर तरहकी रचनाओंका प्रतिनिधित्व हो जाये—इसलिए नहीं कि वह किसी समाजशास्त्रीका दस्तावेज़ बने लेकिन इसलिए कि इस अंकको देखकर उभरती हुई सम्भावनाओंकी कल्पना की जा सके। कुछ सम्मान्य साहित्यकारोंने इस अंककी परिकल्पना-को आजके लिए महत्त्वपूर्ण बतलाते यह अपेक्षा की है कि ऐसे अंक प्रति वर्ष निकलने चाहिए भले ही यह काम अन्य पत्रिकाएँ ही क्यों न करें। सम्भव है, ज्ञानोदयके द्वारा शुरू किया गया यह काम दूसरे मित्र भी हाथमें लेना चाहें।·····

इस अंकमें अधिकसे अधिक रचनाएँ देनेका प्रयत्न हमने किया है लेकिन एक निवेदन अवश्य है कि इस अंकको नयी क़लम और आजकी सम्भावनाका भविष्यफल या राशिफल न समझा जाये, यह केवल फल है नये दोस्तोंके सहयोगका।·····

—रमेश बक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामायिक

तेरी कविताएँ

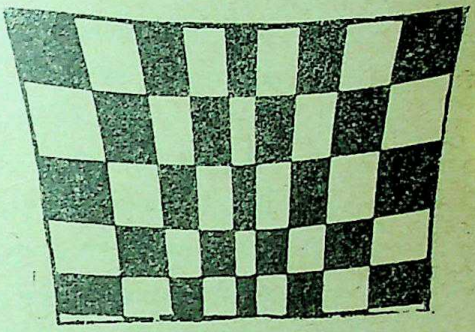

नीलाभ, सुनीता श्रीवास्तव,
प्रभातकुमार त्रिपाठी, प्रमोद त्रिवेदी, रचना,
श्रीपति उपाध्याय, विनय दुबे,
मोहन निराश, इन्दु शेरगिल

●

• आँधी, रेत और शहर

वे शहर की दूसरी तरफ़ से आँधी को पार करते हुए
आये थे। उनकी धूल से भरी आँखों में बिखरा हुआ
क्षितिज दिखता था। और गर्द-सने चेहरों में
विभाजित आकाश।

तुम कुछ नहीं कर सकते, उन्होंने कहा था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे शान्त लेट गये थे। तुम कुछ नहीं कर सकते।
रेत लगातार—लगातार शहर पर छन रही है। कँटीली
झाड़ियाँ और रेत।

तुम कुछ नहीं कर सकते, उन्होंने कहा था;

वे आँधी को पार करते हुए शहर की दूसरी तरफ़
से आये थे। तुम अपने-आप को अपने निजी
कमरे में बन्द कर उस पाशविक, अनाहूत, दुर्दम से
लड़ते रहे थे।

सारी रोशनी धुँधली पड़ गयी है और शहर रेत से
भरा पड़ा है, दब गया है, उन्होंने कहा था।

पर तुमने नहीं सुना। तुम बिखरे हुए क्षितिज और
विभाजित आकाश को देखते रहे थे।
कितना सुन्दर दृश्य है, तुमने कहा था, हम इस
पर विश्वास नहीं करते।

परन्तु दूसरे ही दिन जब सूर्य सूत पैदा हुआ
था, तुमने शहर को देखा था।
वे ठीक कहते थे।

तुम कुछ नहीं कर सकते····शहर पर रेत छन रही है····

उनके चेहरे की धूल और रेत और गर्द कड़ी
पड़ गयी थी। वे आँधी को पार करते शहर की दूसरी
ओर से आये थे।
और तुम बिखरे क्षितिज और विभाजित आकाश
को देखते रहे थे।

—नीलाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• दिन के बाद

(जो सोचती हूँ उसे डायरीमें नोट करती हूँ—कभी-कभी उन्हें मिला देती हूँ—डायरीके टुकड़ोंको—उनसे कविताएँ बन जाती हैं। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि कविताएँ इतनी आसानीसे बनती हैं।....)

सूरज जब मछली-सा डूब जाता है
मैं देखती हूँ आसपास
सब रंग उदास।
भूल जाती हूँ दिन की तमाम बातें
कि मेरी किस सहेली ने
आँखों में उड़ेल दिया था प्यार।
किसने छिपा ली थी ईर्ष्या!
किसकी आँखों में कौन-सा रंग
बाहर आने के लिए
छटपटा रहा था।
हवा की छेड़छाड़ और
फूलों की शरारत के लिए मुझे क्यों
बेंच पर खड़ा कर दिया गया।
भूल जाती हूँ
कि आज का दिन
कैसे जिया गया।

—सुनीता श्रीवास्तव

• एक कविता

जब भी बाहर निकलता हूँ,
मेरा कमरा—
लाद देता है मेरी पीठ पर,
एक भारी गट्ठर;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे झुके हुए चेहरे के ऊपर—ऐन ऊपर
फैला होता है नीला आकाश
उसकी ओर बिना देखे
मैं याचता हूँ—
थोड़ा हाँफने का अवकाश
पर तभी घेर लिया जाता हूँ—
"कहिए सब ठीक-ठीक ?"
फिर एक पान की पीक
और फिर सचमुच—सचमुच हँसता हूँ,
बातों की भुरभुरी दीवाल पर
बोझ-लदी पीठ घिसता हूँ
अजीब बात है
न दीवार दरकती है, न बोझ कम होता है
और फिर शुरू हो जाती है बेमतलब की दौड़
कई सड़कें, कई मोड़, पार करने के बाद
मुझे लगता है—
क्या मैं ख़ुद एक चक्करदार गली तो नहीं हो गया हूँ ?
वे सब कॉफ़ी-हाऊस में सिप कर रहे होते हैं
उनके ओठों पर ख़रीदे क़हक़हे होते हैं;
और मैं सोचता हूँ—
कमरे की टेबिल पर मुक्के मारने में
या इस तरह मुसकराहटें हारने में,
क्या है—जो श्रेयस्कर है ?
पर ठहाकों में घुल जाते हैं सभी विकल्प
वे सब लौट जाते हैं अपने-अपने 'घर'—
मेरी पीठ पर अभी है एक भारी गट्ठर,
क्या मैं सचमुच कमरे के बाहर हूँ ?
क्या मैं हर किसी का घर हूँ ?

—प्रभात कुमार त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• 'ब्लैक आउट' एक मनःस्थिति

अन्धेरे में आज मेरा शहर डूब गया
और अजगरी गुहा में
हुजूम भागता गया
आज मेरा शहर
अन्धेरे में डूब गया है
सारे रास्ते अन्धेरे हो गये
और रास्ते, 'रास्ते' नहीं रहे
सीटियाँ बजती रहीं रात-भर
और हवा के लिए
खिड़कियाँ खोलने से, मैं रोक दिया गया
शायद रोज़-रोज़ ऐसा ही होगा
रोशनी शायद नहीं मिलेगी।
मेरे देश ने
मेरी सरकार ने
अन्धेरा ही दिया है सबको
हम कृतज्ञ हैं
हमारे मुँह पर ताले जड़कर
नींद हराम करने के लिए
कुत्तों को भौंकने की आज़ादी दे दी है
हम धन्य हैं।
मेरी चिड़िया-सी
मेरी देश-भक्ति को
कोई चील उठाकर ले गयी है
और
एक और मुखौटा उतर गया है।
सबकी नाक लम्बी हो गयी है
और आँखों के अँधेरे गड्ढे
रह गये हैं चेहरों पर
सबके हाथ में एक तेज़ छुरा है
और आँखों के गड्ढों में
उफनता ख़ून है
ज़बान पर गालियाँ हैं
एक दूसरे को देने के लिए
और मुँह में थूक है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरी के मुँह पर थूकने के लिए
छुरे के प्रहार से
नाक किसी की नहीं कटती
लहू लुहान होती है
पर
मेरे पास
न थूक है
और न छुरा
एक कुल्ला है मेरे पास तो तेज़ाब का
युद्धरत दोनों देशों के नाम पर
युद्धरत दोनों देशों की नाक पर।

—प्रमोद त्रिवेदी

• सठियाई हुई सदी

तितलियों के
जालीदार पंख
नोंचकर
मैंने फूलों और
पत्तियों
और ओस-कणों पर
ढेरों उबासियाँ छोड़ दीं
वह एक
ऊब-भरी
यन्त्रणा थी
जिसने धीरे-धीरे
मेरे सन्दिग्ध सत्यों को
पी लिया
ब्लाटिंग-पेपर से मढ़ी हुई
काठ की
एक ख़ूबसूरत चिड़िया
उसकी पीठ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याही के बेडौल दाग़,
धुँधले पड़े हुए हस्ताक्षर,
असंख्य संख्याएँ....
परिचितों-अपरिचितों के नाम
—सबके
चेहरे
उलटे हुए !
यों
काफ़ी फ़र्क़ आ गया है
दृष्टियों और कोणों में
मौसम का चल देना
या खड़ा हो जाना
अब विशेष महत्त्व नहीं रखता
क्योंकि
सूरज ने
जान-बूझ कर
दोस्ती गाँठ ली है
उल्लुओं से
(कितनी अजीब बात है !)

चाँद
कई बार
आकाश-गंगा में कूद कर
आत्महत्या की
असफल चेष्टाएँ
कर
चुका
है

और तारे
बेचारे
अँधेरे के
घुन्ने और चिड़चिड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वादियों के समंदर
पाप-स्वीकृतियों के साथ
दम तोड़ते
जा रहे
हैं

गन्दगी के
पीपों में
दुबक कर बैठी हुई हवा
दे रही है
गन्दे लोगों को
बे-मालूम दुआएँ
(वे उसके
षड्यन्त्र में
शामिल हैं
उन्मुक्त भाव से)

फाँसी पाये सन्तों
और उपदेशकों की भाँति
कन्धे लटका कर
सिर धुनते हुए पेड़
रात-दिन खाँसती हुई सड़कें—
दुष्ट, दुराचारी, टी० बी० के मरीज़—
शहर से
चिपक कर सोने का
और क्या परिणाम हो सकता है !
अच्छा ही है कि
मेरी सठियाई हुई सदी
इस दलदल में
फँस गयी है

तेज़ाब में नहाकर
उबलते हुए ज़हर को
आत्मा की अन्तिम सच्चाई तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतार कर भी यह ज़िन्दा है
किसी तर्क के प्रति
इसने न कभी सन्तोष प्रकट किया
न समर्थन

मैं रोज़
सुबह से शाम तक
इसके लिए
व्यंग्य और असंगतियाँ
ढूँढ़ती हूँ

हर स्थिति में
इसे समीप रखने की चाह में
महानता के तमाम रहस्यों से
घृणा करती हूँ
डरती हूँ
बेबुनियाद राज़ोनामों से
और जब-तब
मंच पर
उतरती हूँ
खलनायिका बनकर !

—रचना

• अपठित !

हम सबने आज तक
बहुत कुछ पढ़ने की—समझने की—
कोशिशें की हैं;
—और बहुत-कुछ
पढ़ा है, समझा है ।
पर,
दाहिनी ओर
आलमारी में सजी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह किताब
पढ़ी है क्या—
जिसमें
मानव का आत्मबोध
जन्म-मरण
पूर्वगत संस्कार
और सभ्यता का आदि स्रोत
प्रदर्शित है ?

वह किताब पढ़ी है क्या—
जिसमें आदमी का आदमी से
आँके गये 'वैधानिक' सम्बन्धों का
इतिहास सुरक्षित है,
जीवन का पूरा मनोदर्शन
आत्मरूप
चिन्तन निहित है ?

और वह किताब
जिसमें—
क्या, क्यों और कैसे का
अन्वय है,
भूत, वर्तमान और
भविष्य का
तिलिस्मी समन्वय है ?

—श्रीपति उपाध्याय

• एक लम्बी कविता

एक रोती हुई ज़िन्दगी
एक मुँह लटकाये शाम
और एक चुप सुबह को
जब-जब मैं अपने आसपास पाता हूँ
मेरी आँखों में तैर जाते हैं आँसू।

मैं नहीं कहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि फूलों की खिलन मेरी जेबोंमें भर जाये
क्षितिज के फ़ासले मेरे पास सिमट आयें
बे-मौसम गुलाब की कलियाँ चटख़ाकर बहारें अहसान करें,
मगर आसमान को ख़ूबसूरत मैं भी देखना चाहता हूँ
कलियों के चटख़ने के शब्द मैं भी गुनगुनाना चाहता हूँ
फ़ासलों को तय करके
हिक़ारत-भरी नज़र डालना चाहता हूँ मैं भी क्षितिजों पर।
किन्तु आजकल जहाँ बसन्त होना चाहिए
पतझड़ नोंच रहे हैं वहाँ आदमी का जिस्म
और शाम को सैर के लिए निकले आदमी फेंकते हैं सड़ाँध,
दैनन्दिनियाँ गन्दी होती जा रही हैं
लिखावटों में बिखरा पड़ता है सेक्स।
जहाँ आकाश शून्य होना चाहिए
भर गया है अश्लील अफ़वाहों से
और मुझे मजबूर किया जा रहा है जीने के लिए
क्योंकि देश की आज़ादी के लिए लड़ने वाली जानों में
एक असन्तोष व्याप्त है,
सरहदों पर फूल उगाने वाली नदियों में लाशें बह रही हैं।
और अब तितलियों ने छोड़ दिये हैं रंग
क्योंकि सूरज की रोशनी उन्हीं मकानों में जाती है
जहाँ शराब पीते हुए चार आदमी
ईश्वर से ख़रीद रहे हैं दो गज़ ज़मीन।
भीड़ में-से विद्रोह बोलता कोई व्यक्ति
अब नहीं निकल पड़ता है
और चुपचाप चलती रहती है सड़क।
साँसों और सभ्यताओं को रेहन रखकर
जी रहा है आदमी
पैण्ट की एक जेब में पत्नी को ख़ुश करने की कोशिशें
और दूसरी में बीमार बच्चों के लिए दवाएँ रखे
ऑफ़िस से लौटते बाबुओं को
अब नहीं लगती हैं ठोकरें।

मैं हैरान हूँ
हवाओं के उदास रुख़
और बसन्त का अन्यत्र चले जाना
यहाँ तो सुबह उदास हो गयी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक काले धुएँ के पीछे-पीछे चल रहा है सूरज
नीचा सिर किये मुरझायी खड़ी है सूरजमुखी
मगर कोई शिकायत नहीं करता है
हर आदमी ख़ामोश है
कोई नहीं कहता है
कि पर्वत जो बर्फ़ीले थे
अब सूखे पड़े हैं
सड़कें जिनपर से बसन्त गुज़रते थे हर रोज़
अब प्रतिक्षण उनपर से ले जाये जा रहे हैं मुर्द ।
यहाँ सुबह उदास हो गयी है
क्योंकि कैक्टसों के प्रदेश आदमी खड़ा हो गया है जाकर
रोटी का एक टुकड़ा भरा हुआ है उसके मुँह में
और दोनों हाथों में एक-एक सिक्का
अब जिन्दगी उसकी इतना ही बोलती है
आदमी जो अब उजाले के लिए रो तो सकता है
मगर सूरज से छीनकर ला नहीं सकता है उजाला
प्यार न मिलने पर आँसू तो बहाता है
मगर औरतों के बीच नहीं ऐंठता है उसका जिस्म ।
अब नहीं जिया जाता है ख़ामोश रहकर
मगर मैं हैरान हूँ
कि चाँद उगी रातें और फ़सलों के दिन
कमरों की दीवालों पर उभर नहीं सकते
क्योंकि कैक्टसों के प्रदेश जाकर खड़ा हो गया है आदमी
मरुथल प्रदेश में मुसकराने की कोशिश करती हैं बहारें,
और वह कैक्टसी बसन्त
यादें नहीं लाता है लड़कियों की ।
यहाँ सुबह उदास हो गयी है
क्योंकि आदमी अब आदमी नहीं रहा
और सिगरेटके लिए मिल गये पैसों-सा
अब नहीं आता है एक भी दिन !

—विनय दुबे

• स्थितियाँ

मानस के आस-पास
कहीं इर्द - गिर्द
सेवार है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं काई
पहलुओं में घूम फिर रहा है
छोटी बड़ी मीन—गतियाँ हुआ चाँद,
और उनसे उलझती
ऑक्टोपसों की टाँगें।
किसीकी फेंकी बन्सी की डोर के
काँटे में, मछली के बदले,
फँसा हुआ कछुआ ;
जो पिछले जन्म में ख़रगोश से
दौड़ जीत गया था।
तैरते खेत पर उगे हुए चिनार से
लिपटी हुई कद्दू की बेल।
ग्राह की प्रसूता मादा
अपने नवजात बच्चों को सिखाती है
शिकार पकड़ना,
कभी कहीं किसी खुश्की पर आकर
धूप सेंकना।
एक जापानी लोक-कहानी के मेंढ़क।
लहराती लहरों को काटती
नयी लहरें उठाती हुई मोटर-बोट
और किनारों तक फैला हुआ एक बड़ा
बहुत बड़ा भँवर
जिसके गहराने के साथ-साथ
किनारों का घेरा
धीरे-धीरे तंग होता जाता है
और एक क्षण जैसे
समाप्त हो जाता है बीच में किसी बिन्दु पर आकर
इतना फैला हुआ मानस।
सूरज मौसम का जादू-टोना तोड़ करके
उतार देता है धूप
पानी की जमी हुई इंचों मोटी तह पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टूट जाता है जमाव का तिलिस्म
और पुनः होता है मानस।
जिसके किनारे के साथ-साथ जाती है
रिंगरोड,
ब्यूलवार्ड,
कहीं-कहीं पर हाथ हिलाते हुए कैक्टस के पौधे,
और सिर्फ़ कुछेक फ़ुट ऊपर उठी हुई रोशनियाँ....

—मोहन निराश

• सूरज के नाम—आगे की गिनती

(चूँकि)
हम दो सूर्यों की तरह हैं
तुम्हारे सिर पर टँगे आकाश के नीचे।
हम दो बेशर्म सूर्य हैं
तुम्हारी नाटकीय लज्जाओं के ऊपर चमकना
हम अपना धर्म समझते हैं।
हम दो बदतमीज़ सूर्य हैं
तुम्हारी तरतीबदार सामाजिकता पर तप कर
हम तुम्हें परेशान-पस्त कर देंगे।
हम दो अश्लील सूर्य हैं,
हमारी चमक धर्मनिरपेक्ष है।
हम दो समर्थ सूर्य हैं,
हम अपने जायज़ अग्रजों के ग़लत तरीक़ों का विरोध करते हैं,
आई० पी० सी० का क़ानून हाथ ऊँचे कर दे।

न हमें कोई क़ैद कर सकता है और न हथकड़ियाँ पहना सकता है,
न हमें नैतिकता स्वीकार है, न ही हम भावुकता के मारे हैं।
जिसके आधार पर तुमने शाश्वत साहित्य रचा है
वह सब हमारे लिए खेल-खिलौने की क़ीमत का है
तुम्हारा फ़लसफ़ा हमारे लिए एक कॉफ़ी का प्याला है
तुम्हारा इतिहास पॉपकॉर्न,
तुम्हारा अध्यात्म चॉकबार,
तुम्हारा सारा धर्म कोकाकोला
उसे बग़ैर स्ट्रॉ पी जायेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सारथी—जो बुद्धि की लगाम खींचे, तर्क हैं,
बार-बार कहता है कि गुज़रे हुए रास्ते सब व्यर्थ है !

हम दो दोस्तों की तरह चलते दो सूर्यों को देख,
परेशान हो उठे हो तुम कि अब क्या होगा ?
शायद तुम समझे हो कि हम एक दूसरे के पूरक हैं,
शायद तुम सोचे हो हम चाँद की तरह आधे हैं, अधूरे हैं,
शायद तुम्हें ग़लतफ़हमी है कि हम अर्धनारीश्वर ही हैं
लेकिन
हम दो सूर्य हैं— सम्पूर्ण दो।
हम तुम्हारे आकाश की अनिवार्यता हैं, अपने स्वयं आविष्कार हैं।
हम उत्तरायण, दक्षिणायन दोनों को सँभाले हैं
हम दोनों गोलार्द्धों को एक-साथ प्रकाश बाँट रहे हैं
अब सारी दुनिया की घड़ियाँ एक साथ चलेंगी।
अँधेरा ख़ुशनुमा कार्डिगन-सा होगा
शाम हवाई स्लीपर-सी मौंजूँ !
हम तो परस्पर सूर्य हैं। जिसकी आँख में हो ताब, देखे हमें।
नहीं हम शतरंज के शाह-वज़ीर नहीं हैं
हम लोक-कथाओं के राजा-रानी नहीं हैं
हम प्रेम कथाओं के नायक-नायिका भी नहीं
हम तो महज़ सूर्य हैं—शुद्ध, पवित्र और हक़ीक़त में सूर्य
हमारी हथेली में जो क़द हैं—सूर्य
वही हमारे माथे पर; वही माँग पर,
वही हमारे क़िस्सों में, कर्मों में, नालायक़ियों में भी है।...
जब जी चाहता है
सारे-आकाश चूम लेते हैं एक-दूसरे को
तुम भी चाहो तो हमारी नक़ल कर सकते हो।
हमारे चुम्बन रजिस्टर्ड नहीं हैं
हम रोज़ कलकत्ता और सारी दुनिया के आकाश की
सैर को एक-दूसरे से सटे गुज़रते हैं
तुम हमें सलाम कर सकते हो, हमारा सम्मान कर सकते हो
हमें देखकर खिल सकते हो, मुसकरा सकते हो,
सूर्यमुखी कहला सकते हो।
हम तो सूर्य हैं। तुम हमारे ख़िलाफ़ षड्यन्त्र रचो
या नमस्कार करो...
हमें क्या ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम तो सूर्य हैं—दो, सम्पूर्ण, समर्थ, युवा !
(इसलिए)
मुझे ख़ुशी है कि
सलाखों में बँटा मेरा शरीर,
अलग-अलग हो गया है···
मेरी पलकें—जिनपर
समर्थ स्पर्श हैं,
मेरी हथेलियाँ—जिनपर,
सही रेखाएँ आ रही हैं,
मेरी कलाइयाँ—जो
तुम्हारी कलाइयों में उलझी हैं,
मैं ख़ुद—जो आज़ाद खड़ा हूँ,
मेरी क़लम—जो अपनी ही
तसवीर पर लिख रही है,
मेरा शरीर—जो किसी भी शहर को
काट देने के लिए सलाख है
इ
स
लि
ए···
एक—
(मेरा होना अर्थात् मेरा अस्तित्व)
दो—
(हर बिन्दु को आँकना,
हर संघर्ष को झेलना)
तीन—
(नक़्शे फैलाना : भविष्य,
नक़्शे में लकीरें खींचना : सामर्थ्य,
नक़्शों में पैर जमाना : स्थिति ।)
चार—
(विवशताएँ, संघर्ष, आस्था और आशा की उजली निश्चित लहर)
इसके आगे की गिनती मुझे नहीं आती ।

—इन्दु शेरगिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- बीना माथुर
- श्रीनाथ पाण्डेय
- अन्विता अग्रवाल
- प्रेमनन्दन सिन्हा
- इन्दु अरोड़ा

पाँच कहानियाँ

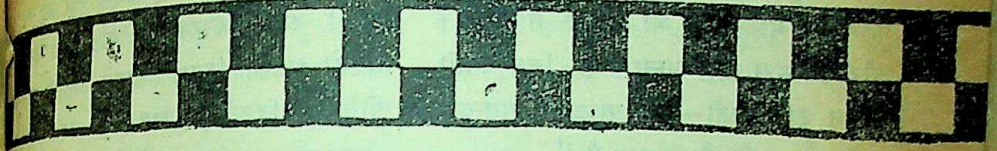

रात : जो कभी नहीं बीती थी / बीना माथुर

वह सुन रही है। बिलकुल नीचे सड़कके नुक्कड़-पर कुछ पहाड़ी नौकर कोई लोकगीत गा रहे हैं। 'अजीब-सी लोकधुन है !—वह सोचती है, 'शायद मेसके नौकर हैं।'—शब्द उसकी समझमें नहीं आते, वे रात गये देरसे लौटनेवाले क्लब, डिनर, पार्टियोंके लोगोंकी बड़ी और लम्बी कारोंके शोर मचाते 'हार्नों' में कहीं खो जाते हैं। यों उसे पहाड़ी नहीं आती पर वह उनकी अबूटी कड़ियोंको जोड़कर अपना मनपसन्द अर्थ निकालनेकी कोशिश करती है। प्रयत्न व्यर्थ जाता है क्योंकि बादमें केवल उस लोकगीतकी धुन और लय ही शेष रह जाती है—सारा अर्थ जैसे गाड़ियोंके तेज़ीसे जाते शोरके साथ ही चला जाता है।

वह परेशान है—उसका मन करता है कि या तो वह इन पहाड़ी नौकरोंपर इतना नाराज़ हो कि वे गाना बन्द कर दें या फिर इन खूबसूरत काली, क्रीमकलरकी गाड़ियोंमें-से हॉर्न निकालकर अलग कर दे जिससे वह इतनी रात गये शोर तो न मचा सकें—परन्तु उसे पता है कि वह इन दोनों कामोंमें-से कोई भी काम नहीं कर सकती, बस चुप बैठी रह-कर सामने रखी मेज़पर पैर फैला-भर सकती है। उसकी नज़र मेज़पर कोनेमें लगे कॉपियों-के ढेरपर जाकर टिक गयी है—वह चाहती है कि इनके विषयमें अभी कुछ न सोचे और खुली खिड़कीपर पड़े हवासे उड़ते लहरियेदार परदेको देखती रहे पर उसके दिमाग़में कॉपियोंका ढेर और ऊँचा-ऊँचा ही होता जाता है। 'वह आज इन सबको जाँच कर काम ज़रूर ख़त्म कर देगी चाहे आज सारी रात ही उसे क्यों न जागना पड़े'—मनमें निश्चय आते ही वह झटकेसे उठकर बैठ जाती है जैसे सारा काम अभी ही खत्म कर देगी—लेकिन यदि वह ऐसे ही देर तक सर टिकाये इस आराम-कुरसीपर पड़ी रहे तो उसे कोई क्या कह सकता है, कोई कुछ नहीं—एक निखिल था जो हर समय, हर वक़्त उसे 'क्रिटिसाइज़' किया करता था और वह बड़ी 'अनॉयड' होती। वह उसपर तरह-तरहसे 'रेस्ट्रिक्शन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाता—'कल रात पार्टीमें जो तुमने जूड़ा बनाया था वही बनाओ—ब्रिकॉज़ आई लाइक ओन्ली दैट वन।'

उसके हर काममें नुक्ताचीनी निकालता—'तुमने जो यह पीले फूल लगाये हैं, फूलदानमें मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं हैं।' और उसे बुरा लग जाता, वह चिढ़ जाती, लेकिन टाल जाती—'तो तुम्हारी पसन्दकी यहाँ परवाह ही कौन करता है!'

'परवाह?' वह कहता—'यू मीन बॉंदर, वह तो तुम्हें करना ही होगा—नहीं करोगी तो पछताओगी!' यह कहकर वह ज़ोरसे हँसता।

'मैं क्यों पछताऊँगी—तुम पछताओगे!'—और यह झड़प कभी-कभी लड़ाई बन जाती। उसके मनमें यह बात बैठती जा रही थी कि वह निखिल-जैसे आदमीसे कभी शादी नहीं कर सकती—उसे लगता, जो व्यक्ति विवाहसे पहले इतना 'कोल्ड' है वह विवाहके बाद····और फिर एक शाम जब निखिल उसे यहीं सीढ़ियोंपर मिला—'सु मी, तुम यह क्यों भूल जाती हो कि मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम्हें अपने साथ ले चलनेके लिए ही आया हूँ।'····

और निखिलकी पकड़ उसे मज़बूत जान पड़ी थी—लेकिन उसके भीतरने 'हाँ' नहीं की। कोई उत्तर न देते हुए निखिलकी आँखोंमें उसने एकटक देखा और सर हिलाकर वह सीढ़ियाँ चढ़ती चली गयी थी—सीढ़ियोंके मोड़से उसे निखिल वैसेका वैसा ही खड़ा दिखाई दिया—उस रात वह बहुत रोयी थी।

हर सुबह जब वह अपनी छतपर खड़ी होकर नीचे जाते पुरुषोंको, बेतरह खरीदारी करती स्त्रियोंको देखती है तो उसका मन होता है कि वह सब पुरुषोंको मिलाकर एक पुरुष बना दे और सब स्त्रियोंको एक स्त्री··· एक पुरुष, एक स्त्री—निखिल और वह—ऊँह! क्या बेकारकी-सी बात है। उसने सरको झटका दिया, सामने ग्लासमें लगे पीले फूल हिलते हुए जान पड़े—उन फूलोंके हिलनेको बहुत देर तक देखनेका मन होता है परन्तु मेज़पर रखी घड़ीकी सुइयाँ एकाएक एक ही जगह खड़ी हो जाती हैं और वह झल्लाकर उसकी चाभीको छू देती है। इस घड़ीको देखकर उसे याद आया है कि उसकी रिस्टवॉच कबसे खराब पड़ी है—अभी पिछले दिनों जब वह 'इन्विजिलेशन' के लिए जाती थी तब उसे बड़ी ही कठिनाई होती थी। उसको ठीक करानेकी नौबत ही नहीं आती, जब नौबत आती है तब पैसे नहीं होते—क्या करे वह! इतना तो कमाती है, सारा पैसा न जाने कहाँ चला जाता है! अभी इस महीनेके मेसके खानेके पैसे भी देने हैं। कल मिसेज़ झा पूछ रही थीं—'सुमन, शादी क्या कर रही हो—अबतक तो····'

वह उनके इस आधे वाक्यका अर्थ खूब अच्छी तरहसे समझती है, पर वह इन्हें कैसे बतलाये कि वह अभीतक एक भी पैसा जमा नहीं कर पायी है, बचता ही नहीं है जमा कैसे हो—लेकिन यह सब एक्सप्लेनेशन वह इनको क्यों दे भला? इन्हें क्या, मैं जो चाहे तब शादी करूँ! वह उनके इस प्रश्नका कुछ नहीं कहती, बस उन्हें गौरसे देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुरझुरा भर देती है। उसे अब महसूस हो रहा है कि वह निखिलसे विवाह कर लेती तो अच्छा करती पर वह यही सोचती रही थी कि यदि निखिलसे नहीं तो सूरजसे तो वह अवश्य ही विवाह कर लेगी। सूरज उसे झाफ़ी पसन्द था। निखिलके बाद शायद वही ऐसा व्यक्ति था जो उसे मनमें भीतर तक कहीं भा पाया था लेकिन उसकी कुछ आदतें—रात-रात तक नयी चमकदार, खूबसूरत गाड़ियोंमें घूम वह लौटकर जब उसे बाँहोंमें बाँधता तो ह्विस्कीकी तेज़ गन्ध उसके दिमाग़-को कहीं छू जाती और उसके जानेके बहुत देर बाद तक उसे अपनी एक-एक चीज़को पार करनेको जी चाहता।

पर सुबह उठती तो लगता कि सूरजकी लाइफ़में वह कभी 'ऐडजस्ट' नहीं हो पायेगी। वह बहुत पैसेवाला व्यापारी आदमी—उसे लगा कि उसका शरीर जलने लगा है, बाहर-की सारी गरमी उसके भीतर तक फैलती जा रही है—उसे उठना ही पड़ता है—बरामदेमें रखी आधी रातकी ठण्डी सुराहीको वह देर तक हाथोंमें पकड़े रहती है।

सहसा किसी कारके नीचे रुकनेकी आवाज़ उसे आयी है—वह झाँकना नहीं चाहती—वैसे ही उसे दिखाई पड़ रहा है, किसीने कारका दरवाज़ा हलकेसे खोला है, चमेलीकी इन बड़ी-बड़ी झाड़ियोंके कारण वह पहचान नहीं पा रही है कि कौन है—कोई भी हो सकता है, मिस भटनागर—मिस मल-होत्रा—मिसेज़ झा—मिस मलिक। शायद वही है—फाटक अभी भी बन्द है और मिस मलिक अब धीरे-से सरककर चौकीदारके निकट पहुँच चुकी है—फाटक धीमी आवाज़-से खुला है। सुराहीकी ठण्डक खत्म हो गयी है—क्योंकि उसके हाथ फिर गरम हो गये हैं। इधर यह सब—उधर घरसे, हर तीसरे हफ़्ते, उसे माँका पत्र कमरेके दरवाज़ेकी दरारके पास मिल जाता है :

"सुमन, अब तुम भी शादी कर लो—ऐसे कब तक चलेगा। आखिर हम भी बे-फ़िक्र हों तो कैसे हों—कानपुरमें तेरे भाई साहबने एक ओवरसियर लड़का देखा है, अच्छा कमा रहा है, घरके लोग भी बड़े खुशमिज़ाज हैं, तुझे तो वह दोनों हाथोंसे लेंगे...."

और भी न जाने क्या-क्या! उसे पता है कि कैसा कमा रहा होगा—तीन सौ—सवा तीन सौ। साढ़े चार सौसे ज़्यादा तो वह स्वयं कमा रही है, माँ उत्तर हमेशा लौटती डाकसे माँगती है। उसे लगा कि अब वह अधिक देर तक बरामदेमें खड़ी न रह सकेगी, इस बीच चाँदनीमें हॉस्टलके बाग़की एक-एक पत्ती चाँदीकी हो गयी है—सामने लगे नीमके पेड़की पत्तियों व डालियोंने उसके बरामदेकी सफ़ेद फैली दीवारपर बहुत-से छाया-चित्र बना दिये हैं, चमेलीकी गन्ध सारे वातावरणमें समा गयी है, उसकी एक साँसके साथ चमेली-की झाड़ी वहाँसे फाटकके पाससे उठकर यहाँ उसके बरामदेमें कमरेके निकट आ गयी है।

उसे बराबरके कमरेसे गुनगुनानेकी हलकी आवाज़ सुनाई दी है—'शायद मिस मलिक आज काफ़ी खुश हैं—जब वह खुश होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी ऐसे गुनगुनाती है और दूसरी ही सुबह इसे एक और 'इन्क्रीमेण्ट' मिल जाता है—उसे ऐसा आभास हुआ है कि उसके कमरेकी लाइट बुझ गयी है क्योंकि सामने लगे पेड़का एक भाग जो रोशनीमें चमक रहा था, अब काला पड़ गया है।

'सो गयी क्या ?' जैसे सुमनको विश्वास ही न हो पा रहा हो कि मिस मलिकको इतनी जल्दी, इतनी आरामकी नींद कैसे आ सकती है—उसे झुँझलाहट होने लगी है कि उसे आज तक ऐसी नींद क्यों नहीं आयी। जब पहली बार उसे सूरज यहाँ छोड़ने आया था, तब वह चोरोंकी तरह हॉस्टलमें घुसी थी—एक अजीब भयके कारण उसने कमरेकी बत्ती भी उस रात नहीं जलायी थी, कपड़े भी उसने अँधेरेमें ही चेंज कर लिये थे—दरवाज़ा हलके-से बन्द करके वह रात गये तक बिस्तर-पर पड़ी करवटें लेती रही थी—सुबह उसने 'ब्रेकफ़ास्ट' कमरेमें ही मँगवा लिया था। 'लंच टाइम'में भी वह मेजसे जल्दी ही उठ-कर आ गयी थी। उसे लगता कि किसीने उससे कुछ अब पूछा तब पूछा—'कल रात बड़ी देरसे लौटीं सुमन ?' 'हाँ !' हो सकता है उसे कोई उत्तर न सूझ पड़े—हो सकता है कि कोई बहाना ही बनाना पड़े, झूठ ही बोलना पड़े, लेकिन 'थैंक गॉड,' उससे किसी-ने कुछ नहीं पूछा था और फिर वह रातको देर-देरसे ऐसे ही लौटने लगी थी—उसे सब अच्छा लगता। नया-नया साथ, घूमना-फिरना, एक मिनिट भी कमरेमें टिककर न बैठना—'अब वह सब कुछ, अच्छा जाने क्यों नहीं लगता ? मन करता है कि कहीं ऐसी जगह टिककर बैठ जाये कि बैठी ही रहे—उसका मन हो आया है कि निखिल उसी तरह सीढ़ियोंमें आकर उससे कहे—'सुमी, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलनेके लिए आया हूँ' और तब वह खूब ज़ोर-ज़ोरसे रो देगी—उसके चौड़े, भरे सीनेपर सर रखकर—

वह कुछ क्षण वहीं बरामदेमें खड़ी रही। सामनेकी सड़क अब सुनसान थी। गाड़ियों-का शोर समाप्त हो चुका था। पहाड़ी नौकर भी गा-गाकर थक गये थे। उनमेंसे कुछ वहीं बैठे बीड़ियाँ पी रहे थे, कुछ वहीं फुटपाथपर ऊँघ गये थे। उसने एक गहरी साँस ली है और सोच लिया है कि वह अभी, इसी वक़्त माँको उसके लौटती डाकसे माँगनेवाले पत्रका उत्तर दे देगी—

और उसे लगा है कि उसकी रात बीत गयी है।

■

तार। श्रीनाथ पाण्डेय

दफ़्तरसे आते ही जयन्त बिस्तरपर पड़ रहा। आजका दिन उसका बिलकुल बेकार गया। चाहकर भी कोई काम नहीं कर सका। आज उसे पूरे दिन रह-रहकर बात-बातमें गुस्सा आ जाता और बेमतलब ही वह लोगोंसे झगड़ पड़ता। उसे लगा जैसे उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिरमें अब एक फोड़ा-सा हो गया है जो रह-रहकर टीस रहा है। उसने सोचा, अब वह बिलकुल कुछ भी नहीं सोचेगा। वह अपनेको बहुत सँभालनेकी कोशिश करता रहा किन्तु मन बार-बार उसी दिशामें भटकता जा रहा था।

दफ़्तर जाते समय गाड़ीमें वह बग़लकी दीवालसे सटकर गुम-सुम खड़ा रहा। ज़रा-सी धक्का-मुक्की होनेपर वह कई लोगोंसे झगड़ पड़ा। सुरेश मेडिकल स्टोर्समें दवा लेने गया, वहाँ भी पैसेके लेन-देनमें गरमा-गरमी हो गयी। स्टेशनसे बाहर शर्मा मिल गया तो उसे भी न जाने आज क्या सूझी कि वह हेमाके हाल-चाल पूछने लगा। उसे और भी खीझ आ गयी थी और उसे बेमतलब ही उसने डाँट दिया। उसने सोचा, इस तरह-की परेशानियाँ और बातें तो लोगोंसे रोज़ ही हुआ करती हैं पर आज उसे इतना ग़ुस्सा क्यों आया? उसने पाया, सचमें आज उसका मूड ही खराब रहा।

वह रोज़ दफ़्तरसे आते ही सबसे पहले पारोको बुलाकर उससे जूते उतरवाता था। अगर वह कभी किसी काममें लगे रहने का बहाना करती तो भी वह बच्चोंकी तरह ज़िद करने लगता और पारोके काम समाप्त होने की प्रतीक्षा करता लेकिन अन्तमें जूते उसीसे उतरवाता। उसकी यह रोज़की आदत-सी बन गयी थी। पर आज···? आज वह कुछ नहीं बोल सका। आकर धीरेसे उसने चुप-चाप जूते उतारे और बिस्तरपर पड़ रहा। यहाँतक कि पारोको आनेकी खबर तक नहीं लगी। वह लेटे-लेटे ऊपर छतकी तरफ़ चल रहे पंखेको देखने लगा। उसे लगा, जैसे हेमा-का पत्र और तार छतमें चिपके हुए हैं और वह उसकी एक-एक लाइन बड़े ही ग़ौरसे पढ़ रहा है। वह उस पत्रकी कुछ लाइनें बार-बार दोहराने लगा है। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि वह उसके इस पत्र और तारका क्या जवाब दे। जवाब देनेके लिए अब उसके पास रहा ही क्या? उसने लेटे-ही-लेटे जेबमें हाथ डाला तो वाउचर निकल आया और फिर उसे अपने-आपपर ग़ुस्सा आया। आज उसे पैसोंकी कितनी सख्त ज़रू-रत थी। सुबह ही पारोने कहा था कि आज ध्यानसे ओवर टाइमके पैसे ले लेना। प्रीतिके लिए अभी और दवाइयाँ लेनी हैं। राशन खतम हो गया है। जल्दी चले आना, घासलेट भी लेना है। और फिर उसने वाउचरको एक बार पढ़ा। वाउचर तैयार होनेके बावजूद भी वह सिर्फ़ दस्तखत कर पैसे तक नहीं ले सका। उसे ध्यान ही नहीं रहा कि आज पैसोंकी घरपर कितनी अधिक ज़रूरत है। चपरासी-ने वाउचर लाकर दिया तो उसने बेरुखीसे उसे जेबमें ठूँस लिया और फिर उसने उस वाउचरको उसी तरह तोड़-मरोड़कर रख दिया।

दूसरी जेबसे उसने तार निकाला और सोचा कि वह कितना लापरवाह है। उसने देखा, तारको उसने अपने हाथोंमें लिये-लिये मसल डाला है। अब उसपर लिखे अक्षर खराब-से हो गये हैं और तार गन्दा हो गया है। उस मसले हुए लाल रंगके तारको उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार पढ़ा और पढ़ता रहा पर कुछ समझमें नहीं आ रहा था। फिर वह पत्र निकालकर उसकी कुछ लाइनें पढ़ने लगा तो लगा जैसे हेमाका पत्र नहीं मिला है बल्कि वह स्वयं आकर उसके पास खड़ी है और बार-बार पूछ रही है—क्या तुम्हें यह सब स्वीकार है ? अगर स्वीकार है तो पहले ही क्यों नहीं कहा ? अगर पहले ही कहा होता तो····? तो····इसके आगे वह क्या कह रही है या कह सकती है, उसे नहीं मालूम। वह सिर्फ़ इतना ही जानता है कि वह उससे कुछ लगातार पूछ रही है लेकिन वह उसका कुछ भी उत्तर दे पानेमें अपनेको असमर्थ पा रहा है।

रिश्ता ? यह रिश्ता उसने थोड़े ही जोड़ा था। वह तो एक संयोग था जो अपने-आप जुड़ा और टूट गया। इसके लिए वह क्या कर सकता है। वैसे उसने तो बहुत कोशिश की थी कि उसका यह रिश्ता और जुड़ जाये पर एक ऐसा बन्धन था जिसने सदा दोनोंको दबाये रखा।

कोई किसीका नहीं होता। सिन्दूरी···? यह घुटन उसीकी तो देन है। क्या ज़रूरत थी उसे इतना लाड़-प्यार करनेकी ? क्या ज़रूरत थी उसे उसके प्रति इतनी सहानुभूति दिखानेकी। यह एक दिखावा नहीं तो और क्या था ? उसके साथ उसने कुछ नहीं किया। जब वह उसके पास था तो वह दुनियाकी बड़ी-बड़ी बातें उसके विषयमें किया करती थी। आज वह उसे अपनी सारी जायदाद लिख देगी, तो कल शादी कर देगी। वह जहाँतक और जितना पढ़ेगा, पढ़ायेगी। और अन्तमें जब कुछ नहीं कर सकी तो एक घुटन दे दी जिससे वह सदा उसकी याद किया करे। उसके दिमाग़में एक अजीब तरहकी बेचैनी फिर आती रही। उसके मनमें आया यदि सिन्दूरी उसे इस समय मिल जाये तो वह ज़रूर उसका गला दबा देगा और तब उसे सन्तोष हो जायेगा। उसने सोचा, वह यह सब क्या सोचता जा रहा है ? यह भी कोई सोचनेकी बात है। सिन्दूरीने तो उसे अपने बेटेसे भी अधिक प्यार किया है। तो क्या वह अपनी माँका गला दबा सकता है ? वह माँ जिसने सिर्फ़ उसे पैदा ही नहीं किया बल्कि और सारी देखरेख माँकी ही तरह की है। और फिर उसके मनमें सिन्दूरी-के प्रति सहानुभूति-सी उमड़ आयी।

सिन्दूरीने हेमाको कभी स्कूल नहीं जाने दिया। उसने कई बार कहा था कि हेमाको पढ़ाना ज़रूरी है लेकिन वह सदा यह कह-कर टालती रही कि लड़की ज़ातको पढ़कर क्या करना ! नौकरी थोड़ी करनी है ! पर हेमाको पढ़ाईमें बड़ी ही रुचि थी। जब वह पढ़ता था तो वह बिना कुछ जाने-समझे ही उसकी किताबें उठाकर न-जाने क्या उनमें निहारा करती थी और लगता था, जैसे वह बहुत कुछ पढ़ती है। उसकी इस लगनको देखकर जयन्तने हेमाको पढ़ाना शुरू किया। पढ़नेमें वह बहुत अच्छी थी। जो पाठ वह उसे एक बार पढ़ा देता था उसे दोबारा वह कभी नहीं पूछती थी और उससे जब कभी वह कोई प्रश्न पूछता तो वह फ़ौरन बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कुशलतासे उत्तर देती थी। उसकी इस कुशाग्र बुद्धिसे वह बेहद खुश था और मन-ही-मन उसे विश्वास था कि वह ज़रूर पढ़ेगी।

जब वह शामको स्कूलसे आता था तो हेमा रोज उसे अपना पाठ सुना देती थी। और फिर उसे दोबारा लिखनेका अभ्यास करती थी। पर एक बात उसमें कितनी ख़राब थी कि वह उसका नाम ज़रूर बिगाड़कर लिखती थी। न-जाने क्यों! इसके लिए उसने उसे बहुत बार पीटा भी था फिर भी वह अपनी आदतसे बाज़ नहीं आती थी। जब वह उसे कभी ग़लत नाम लिखनेपर डाँटता था तो वह उसके नामका ग़लत उच्चारण करके उसे चिढ़ाती थी और फिर वह उसे पीट दिया करता था।

उसने उसके पत्रको एक बार पुनः पढ़ा और फिर उसे उलट-पुलटकर देखने लगा। उसे आश्चर्य हुआ। तो क्या आज भी वह ऐसे ही टेढ़े-मेढ़े अक्षर लिखती है? क्या वह अब भी बीच-बीचमें कहीं-कहीं विभक्तियाँ छोड़ दिया करती है? उसी क्षण उसकी नज़र अपने नाम और पतेपर गयी तो देखा, सचमें उसने पहलेकी ही तरह इस पत्रपर भी उसका नाम बिगाड़कर ही लिखा है। तो क्या वह दरअसल उसका नाम लिखना नहीं जानती? या ग़लत लिखते-लिखते उसे आदत पड़ गयी है! नहीं, उसने जान-बूझकर ग़लत लिखा है? उसने सोचा, उसके वहाँसे चले जानेके बादसे तो उसकी पढ़ाई भी रुक गयी थी। और उसे लगा जैसे हेमा उससे जहाँ-पर छूटी थी, वहाँसे बिलकुल आगे नहीं बढ़ गयी है और वह वहीं-की-वहीं उसके साथ आगे बढ़नेका इन्तज़ार कर रही है।

उसे याद है। एक बार वह स्कूलकी तरफ़से पिकनिकपर चला गया था तो दो दिन बाद आया था। जब वह घर आया तो तुरन्त हेमासे नहीं मिल पाया था। वह खुद चुपकेसे कमरेमें चली आयी और बोली कि दीदीने बुलाया है लेकिन वह कुछ नहीं बोला था। हेमाको समझते देर न लगी। उसने सोचा, उस दिन उसने उसे बहुत परेशान कर दिया था। लगता है, उस दिनका उसका ग़ुस्सा अभी तक शान्त नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद वह फिर आयी और डरती हुई बोली, "चिट्ठी लिखनी है, दीदीने बुलाया है।" उसने एक बार इधर-उधर देखा और मुँह चिढ़ाकर भाग निकली।

जब वह सिन्दूरीके पास पहुँचा तो पता चला कि उन्हें कोई चिट्ठी नहीं लिखनी है। उसने हेमाको ग़ुस्सेसे देखा तो वह मुसकराती हुई अपना निचला होठ दाँतोंमें दबाकर घूरने लगी, मानो कह रही हो—"चुप! यह भी कोई पूछनेकी बात है। नहीं बुलाया तो क्या हुआ। जब चिट्ठी लिखनी होगी तभी आओगे?" और वह चुप हो गया था। थोड़ी देरमें उसने उसके पसन्दकी तमाम खानेकी चीज़ें लाकर रख दीं तो सिन्दूरी बोलीं, "आज सुबहसे ही यही सब बनानेमें लगी हुई थी। अभी-अभी छुट्टी पायी है।" कहकर वह पड़ोसमें चली गयीं। वह चुपचाप बैठा उसे घूरता रहा था। उसे नाराज़ देख हेमा रोने लगी थी और उस दिनकी अपनी शरारतके लिए क्षमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगने लगी।

"मैंने नहीं समझा था कि तुम इतने नाराज़ हो जाओगे।"

"नाराज़ कहाँ हूँ।" उसने अनमने मनसे कहा।"

"तो फिर खाते क्यों नहीं ?"

"भूख नहीं है।"

उसने उसके मुँहको कसकर पकड़ा और ज़बरन चम्मच-भर हलवा उसके मुँहमें ठूँस दिया था। उसे लगा, जैसे वह आज भी उसे मना रही है। और जब वह ज़रा प्रेमसे बातें करने लगा तो वह फिर अपनी आदतसे बाज़ नहीं आयी और उसने उसके निचले होठको पकड़कर ज़ोरसे मसल दिया था। उसके मनमें आया, खींचकर एक तमाचा लगा दे पर उसके चेहरेकी तरफ़ देखकर उसके हाथ आगे नहीं बढ़ पाये थे। न जाने क्यों उसके निचले होठसे इतनी दुश्मनी थी कि वह जब कहीं मौक़ा पाती, उसपर हावी हो जाया करती थी।

....बरसातके दिन। हेमाकी तबीयत कुछ खराब थी। गाँवकी दवाएँ हुईं पर कुछ फ़ायदा नहीं हुआ तो वह उसे डॉक्टरके यहाँ ले गया था। उस दिन सुबहसे लगातार दोपहर तक बारिश होती रही थी। दोपहरके बाद जब बारिश रुकी तो आकाश बिलकुल साफ़ हो गया था और एकाएक कड़ी धूप चारों तरफ़ फैल आयी थी। बारिश होनेकी उम्मीद नहीं लगी इसलिए उसने छतरी नहीं ली। लेकिन डॉक्टरके यहाँ पहुँचनेके कुछ ही देर बाद एकाएक बादल गरजे और बारिश शुरू हो गयी। काफ़ी देर तक दोनों बारिश रुकनेका इन्तज़ार करते रहे। घण्टे बाद जब बारिश कुछ धीमी हुई तो दोनों चल पड़े थे और कुछ ही दूर आनेके बाद फिर एक-बार बादलोंकी गड़गड़ाहट हुई और बिजली चमकी तो दोनोंकी आँखें चौंधिया गयी थीं। वह बच्चोंकी तरह उससे लिपट गयी थी और वह इतनी डरी कि अलग-अलग चलनेके लिए तैयार नहीं हुई। थोड़ा आगे जानेपर हेमाने जब उसे अपनी ओढ़नी ओढ़ानी चाही और उसने झटके-से अपना सिर हटा लिया था तो वह ज़बरन ओढ़ाती हुई बोली, "सुबह माताजी बता रही थीं कि रात तुम्हें भी बुखार हो आया था और अगर आज सिर भीग जायेगा तो...." और मुसकराती हुई खुद भी ओढ़नीके नीचे आ गयी थी। दोनों एक-दूसरेसे सटकर चलने लगे थे।

जब बारिश बन्द हुई तो हेमाने अपने सिरसे ओढ़नी उतार ली थी और उसके मुँहको लपेटती हुई और अपनी दोनों हथेलियोंके बीच लेती हुई बोली, "तुम्हें यह ओढ़नी कितनी अच्छी लग रही है! सिर्फ़ शरीरमें उभरावकी ही कमी है।" कहकर उसने उसके गाल ऐंठ दिये थे तो वह अपने-आपको सँभाल नहीं पाया था और खींचकर एक तमाचा लगा दिया था। उसने उससे कितनी बार कहा है कि उसको उसकी यह आदत बिलकुल अच्छी नहीं लगती पर वह अपनी आदतसे बाज़ नहीं आती। उसने देखा, उसके चेहरेपर उसकी अँगुलियोंके दाग़ पड़ गये हैं और चेहरा लाल हो गया है मानो ख़ून चू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगा। और वह रास्ते-भर रोती गयी थी लेकिन घरके क़रीब आते ही उसने चेहरेपर ऐसा भाव बनाया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

इतनेमें ही प्रीति दौड़ती हुई आयी और उसके कानमें 'हू' की आवाज़ करती हुई भाग निकली। इस 'हू' की आवाज़से उसे लगा जैसे उसके कानके परदे फट गये हैं और अभी-तक उसके कान और दिमाग़में 'हू' की मनहूस आवाज़ गूंज रही है। उसे बड़ा ग़ुस्सा आया प्रीतिपर। मनमें आया, उठकर उसे खूब पीटे पर उसे लगा, जैसे उससे उठा ही नहीं जा रहा है। वह फिर खीझता हुआ बोला, "मूर्ख! रोज़ छिपकलीका खेल खेला करती थी, आज 'हू' करना कहाँसे सीखा?"

वह एक क्षण हाथमें छोटा-सा मोटर लिये उसे देखती रही पर उसके घूरनेपर भाग निकली। थोड़ी देर बाद प्रीति फिर आयी और गन्दे पैरों ही बिस्तरपर बैठती हुई बोली, "ताता! देको मेली मोतल कितनी अच्यो है! आद ही खलीदा है। बहुत तेद भागती है।"

प्रीतिकी इस बेमतलबकी बातोंमें उसे ज़रा भी रुचि नहीं थी। वह चाह रहा था कि वह उसके पाससे चली जाये लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे वह वहीं बैठनेका हठ कर चुकी है और वह तमाम इधर-उधरकी बेकार बातें करने लगी। वह चुपचाप सोचता रहा।

कुछ देर तो वह अपनी मोटर चारपायी-पर दौड़ाती रही फिर उसके पेटपर चढ़ाती हुई बोली, "ताता, लाछतेमें छे हत दाओ चलना दद दाओगे और तुम्हें तोत आ दायेगी तो हमाला दोछ मत देना।"

वह चुप रहा। लग रहा था जैसे उसे मालूम ही नहीं कि उसके पेटपर मोटर दौड़ रही है। उसने सोचा, वह अपने-आप ही थोड़ी देरमें चली जायेगी। वह अच्छी तरह जानता है कि अगर वह उसे डाँट देगा तो फिर वह उसके सिर हो जायेगी और उससे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जायेगा।

कुछ देर वह उसी तरह उसके पेटपर मोटर दौड़ाती रही और फिर अपनी आवाज़ तेज़ करती हुई बोली, "एक बाल कह दिया हत दाओ। छुनते नहीं?" कहती हुई उसने अपनी मोटर उसकी नाकपर चढ़ा दी और उसकी नाकमें चोट आ गयी। वह ग़ुस्सेसे लाल हो गया और तड़ातड़ उसे दो-तीन तमाचे जड़ दिये। वह रोती हुई अन्दर चली गयी।

उसका ग़ुस्सा अब और भी बढ़ गया। उसे प्रीतिको, घरमें रखे सामानको देखने तक-से नफ़रत-सी हो रही थी। वह चाहता था, उसे इस समय कोई न बुलाये। और, फिर उसने महसूस किया जैसे वह हमेशासे गूँगा रहा है। वह बोलनेका बार-बार प्रयास करने-पर भी नहीं बोल पा रहा है। उसे लगा, जैसे घरमें रखे सामान, ऊपर चल रहा पंखा और पंखेसे आती हवा सभी उसका उपहास कर रहे हैं। उसने उठकर पंखा बन्द कर दिया और फिर लेट गया। पंखा धीरे-धीरे बन्द होने लगा तो उसे लगा जैसे आज तक वह भी इसी पंखेकी तरह अपनी पूरी रफ़्तार-में चल रहा था लेकिन आज उसकी भी गति धीरे-धीरे स्थिर होती जा रही है। वह उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह काफ़ी देर तक पसीने देखता रहा और फिर वैसे ही लेटा पड़ा रहा।

उससे न रहा गया तो उठ बैठा। बनियान पसीनेसे भीग गयी थी। तौलियेसे उसने पसीना पोंछा और खिड़कीका परदा सरकाते ही समुद्रकी ओरसे आते हवाके झोंकोंने शरीर ठण्डा कर दिया।

खिड़कीसे सामने देखा, काफ़ी दूर तक मैदान फैला हुआ है। उसके बाद समुद्र। शाम घिर आयी है। हरी घासपर सूर्यकी हलकी रोशनी चमक रही है। कुछ लोग टहल रहे हैं। समुद्रका पानी हवाके साथ उड़-उड़कर काफ़ी दूरीपर गिर रहा है। उसी क्षण उसने देखा, पहाड़ोंकी दिशासे दो चिड़ियाँ अपनी तेज़ रफ़्तारसे उसकी तरफ़ चली आ रही हैं। उसे लगा, जैसे वहाँसे उन्हें किसीने भगा दिया है और वे किसी दूसरी जगहकी तलाशमें निकल पड़ी हैं। वह उन्हें एकटक देखता रहा। रास्तेमें वे कहीं-कहीं एक-दूसरेसे कुछ दूर भी होतीं तो फिर एक झटकेके साथ एक-दूसरेके पास भी आ जाती हैं। लग रहा था जैसे वे आपसमें छेड़खानी करती आ रही हैं। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रही थीं त्यों-त्यों उसके दृष्टिकी दूरी भी कम होती जा रही थी। लग रहा था, जैसे ये किसी लम्बी यात्राकी तैयारी करके चली हैं। उनकी इस यात्रासे उसे अपने पिछले जीवनके क्षण याद आने लगे। और फिर उसे बदलते समयपर तरस आने लगा। वह भी कभी किसीके साथ एक लम्बी यात्रा करनेके स्वप्न देखा करता था। उसे उम्मीद थी कि उसकी यात्रा सफल होगी क्योंकि यात्रा करनेके सारे साधन उसके पास थे पर····पर उसकी यात्रा पूरी नहीं हो सकी। उसने सोचा, काश, दिन रुक जाते।

सामने रोडकी बग़लमें फ़िल्मके एक छोटे-से पोस्टरपर उसकी नज़र पड़ी तो उसे लगा जैसे उस पोस्टरपर फ़िल्मकी फ़ोटो न चिपक कर हेमाका पत्र चिपका हुआ है और वह उसे पढ़ रहा है। और बार-बार पत्रकी कुछ लाइनें दोहरा रहा है·····"मेरी शादी एक चालीस वर्षके बूढ़ेके साथ तय हो गयी है, जो रेलवेमें सिगनल-मैन है। उसकी पत्नीका देहान्त हो चुका है और सुना है, उसके दस और बारह वर्षके दो लड़के भी हैं। उसने मेरे घरवालोंको यह बताकर काफ़ी प्रभावित कर लिया है कि उसे सालमें दो-तीन बार घर आनेके मुफ़्त रेलवे पास मिलते हैं। वहाँ वह चुपचाप सिर्फ़ कुरसीपर बैठा रहता है और लोगोंको काम करना बताता रहता है। लेकिन वह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं। मैं उसे हरगिज अपनी माँगमें सिन्दूर नहीं डालने दूँगी। अगर मेरी माँगमें सिन्दूर पड़ेगा तो सिर्फ़ तुम्हारे ही हाथों, वरना····मुझे तो सिर्फ़ तुम्हारा इन्तज़ार है। और अगर तुम न आये तो मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इस अन्याय-भरे संसारमें नहीं जी सकती। ····मैंने उसे देखा है। काला भद्दा चेहरा, खिचड़ी बाल, नाटा क़द। वृद्धावस्थाकी मनहूस झुर्रियाँ चेहरेपर उभर आयी हैं। मान रही, मेरे घरकी स्थिति ठीक नहीं और घरवाले दहेज़ नहीं दे सकते तो क्या इसका यही मतलब होता है कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पिताकी उम्रके पुरुषकी पत्नी और अपने हमउम्रकी माँ बनूँ? क्या तुम यही सब देखना चाहते हो?

एक सिगनल-मैनका पूरा चित्र उसकी आँखोंके सामने एक बार घूम गया। काली-काली वर्दीमें। और उसे लगा जैसे उसपर पहाड़ गिर गया है और वह बुरी तरह दब गया है और हेमा···? हेमा एक बहुत बड़े खूँखार जानवरके पंजेमें फँस गयी है जो उसके लिए प्यासा है। वह अपने दबावसे छुटकारा पाकर हेमाको छुड़ाना चाहता है लेकिन वह जितना अपनेको छुड़ानेकी कोशिश कर रहा उतना ही ऊपरका दबाव सख्त होता जा रहा है।

एकाएक रेडियोके घड़घड़ानेकी आवाजने उसका ध्यान भंग कर दिया। उसने रेडियोकी तरफ़ देखा, प्रीति स्टूल रखकर रेडियो तक पहुँच गयी है और बार-बार स्विच घुमा रही है लेकिन कोई गाना नहीं लग रहा है।

उसी क्षण पारो उसपर बरस पड़ी—"तुमसे तो मैं हैरान हो गयी हूँ। समझमें नहीं आता कि तुम रात-दिन क्या सोचा करते हो! घरमें एक छटाँक राशन नहीं है और तुम चुपचाप सूँस-जैसी साँसें भर रहे हो! यह भी कोई लेटनेका समय है।" वह बड़बड़ाती हुई रसोई-घरमें चली गयी।

वह सोच रहा था कि वह हेमाके पास अवश्य जायेगा पर उसे लगा जैसे वह एक ऐसे तारसे चिपका हुआ है जिससे चाहकर भी छुटकारा नहीं पा सकता। और उसने जेबसे लाल रंगका तुड़ा-मुड़ा अनपेड वाउचर निकाल लिया।

दर्द और इन्तज़ार / अन्विता अग्रवाल

मदन सी० एच० एस० डिस्पेन्सरीमें घुसा तो लाइनमें मुश्किलसे बीस लोग होंगे। उसने सोचा: चलो, आज ज्यादा देर इन्तज़ार नहीं करना पड़ेगा। वह काउण्टरपर जाकर अपना नम्बर ले आया। पैंतीसवाँ नम्बर देखकर सोचा: क्या सुबहसे इस डॉक्टरके पास चौंतीस मरीज़ आ चुके हैं? खैर, मदन लाइनमें जाकर खड़ा हो गया।

मदन एक हफ़्तेसे अपने दर्दके कारण परेशान था। ऐसा दर्द जो सिरमें भी होता था और बदनमें भी! सारा शरीर भारी-भारी लगता परन्तु बुखार नहीं चढ़ता था। पहले तो माँ और चाचीकी बतायी हुई घरेलू दवाइयाँ कीं, पर कोई फ़ायदा न जानकर आज शीलाके कहनेसे वह चला ही आया। सिरमें तो नहीं, पर हाँ इस समय उसके बदनमें हलका-हलका दर्द हो रहा था। खड़े-खड़े और कुछ करनेके बजाय वह अपनी दोनों शीशियाँ ही बजाने लगा। पर थोड़ी देर बाद यह भी बन्द कर दिया। मदनने अपना सी० एच० एस० कार्ड निकालकर पढ़ना शुरू कर दिया। कितनी बार पढ़ चुका है यह कार्ड पर फिर भी ऐसे पढ़ने लगा मानो पहली बार देखा हो। कार्डमें केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन जनोंके हो नाम थे—मिस्टर मदन गुप्ता ३० वर्ष, रामेश्वरी देवी (माँ) ६२ वर्ष, शीला (पत्नी) २६ वर्ष।

वह अपनी उम्रका हिसाब लगाने लगा। माँसे कितने वर्ष छोटा है—शीलासे कितने वर्ष बड़ा है। यदि मैं इस सन्में पैदा हुआ था तो शीला किस सन्में ? पर मदनका मन उसमें भी नहीं लगा। उसने सिर उठाकर देखा, जो आदमी लाइनमें सबसे आगे खड़ा था, वह अभीतक वहीं खड़ा हुआ था। लाइन ज़रा भी नहीं हिली थी। मदन आगे बढ़ गया—"सुनिए, आपका नम्बर क्या है ?"

"बाई।"

"बाईस ?"

"जी !"

मदन अपने स्थानपर लौट आया। अभी बाईस नम्बर चल रहा है। उसका नम्बर पैंतीस है। इसका मतलब, उसके पहले अभी तेरह व्यक्ति और हैं। उसका नम्बर चौदहवाँ है। चलो खैर, कोई खास दूर तो नहीं है। और वह फिर अपनी बोतलें बजाने लगा।

तो यह आदमी पंजाबी है ! लगता तो बिहारी है। कुरतेके ऊपर धोती—पर बाईसको बाई कहता है, ज़रूर पंजाबी होगा। सहसा मदनका ध्यान उस व्यक्तिके बाँये हाथपर गया। आधी बाँह सफ़ेद पट्टियोंसे भरी हुई थी। पट्टीके ऊपर आँइण्टमेण्टका पीलापन साफ़ उभर आया था। मदनने मन-ही-मन अन्दाज़ा लगाया : ज़रूर इसका ऐक्सीडेण्ट हो गया होगा। नहीं-नहीं, ऐक्सीडेण्ट होता तो प्लास्टर चढ़ा होता—ज़रूर इसका हाथ जल गया होगा। पर भला इसका हाथ क्यों जलने लगा ? औरत तो है नहीं कि खाना बनाते समय कुछ गिरा लिया हो। क्या पता, किसी लेबोरेटरीमें काम करता हो। कोई एसिड-वेसिड गिर गया हो। मदनने लाइनसे थोड़ा परे हटकर दोबारा उसका हुलिया देखा। नहीं, लेबोरेटरीमें काम करनेवाला तो नहीं दिखता। उसे कुछ समझ नहीं आया कि वह व्यक्ति क्या हो सकता है। उसके चेहरेपर कोई भाव नहीं था। एकदम निश्चल एवं शान्त चेहरा था। देह, होगा कोई भगवान्का सताया हुआ !—और मदन अपनी चप्पलोंकी तरफ़ देखने लगा।

जल्दी-जल्दीमें वह बाथरूम-स्लीपर्स ही पहन आया था। शीला भी ऐसी ज़िद्दी है—बोली, "तुम सीधे इसी समय डॉक्टरके पास जाओ नहीं तो सारी दोपहर चीखोगे। मदनको बाथरूम-स्लीपर्समें आना क़तई पसन्द नहीं आया। डॉक्टर भी क्या कहेगा—पैण्टके ऊपर स्लीपर्स। पर डॉक्टरके पास इतना समय कहाँ कि वह रोगियोंकी वेश-भूषा देखे।

मदन फिर सामने देखने लगा। वह व्यक्ति अब अन्दर चला गया था। क्या बात है, आज लाइन चींटीकी चाल चल रही है। शनिवारको डॉक्टर लोग भी मौज उड़ाते हैं। ऐसे धीमे-धीमे काम करते हैं मानो बाहर कोई और है ही नहीं। उसने पीछे देखा। उसके पीछे दो पुरुष और तीन महिलाएँ खड़ी हुई थीं। लाइनके सबसे पीछे एक बच्ची थी।

मदनने काउण्टरपर देखा तो एकाउण्टेण्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिड़कीके पास खड़ा था और धीरे-धीरे मुसकरा रहा था। खिड़की मेन रोडपर खुलती थी। यह डिस्पेन्सरी भी मेन रोडपर ही है। मदन कुछ समझ नहीं पाया कि एकाउण्टेण्ट अकेला खड़ा-खड़ा क्यों मुसकरा रहा है। उसने बाहरकी ओर देखा, दो लड़कियाँ आपसमें बातें कर रही थीं। दोनों ही इस बातसे अनभिज्ञ थीं कि कोई उनको बड़े ध्यानसे देख रहा है। सहसा दोनोंने हाथ उठाया और 'बाय' कहकर विदा ली। वह गुलाबी चुन्नीवाली खिड़कीके पाससे निकली तो एकाउण्टेण्ट धीरेसे गुनगुनाया—"हो सनम तेरे हो गये हम, प्यार में तेरे खो....." लड़कीने पलटकर गुस्सेमें देखा और ज़ोरसे बोली—"शट-अप्!" एकाउण्टेण्टने बदलेमें दायीं आँख थोड़ी-सी दबा दी।

मदनने देखा तो गुस्सेके बदले उसे हँसी आ गयी। एकाउण्टेण्ट फिर कोई गीत गुनगुनाने लगा। पर इस समय सड़कपर कोई नहीं था। सामने लगे नीमके पेड़से उलझी हुई पतंगको देख-देखकर वह गाये जा रहा था।

—भला यह क्या सोच रहा होगा? मदनने अन्दाज़ा लगाया। ज़रूर सोच रहा होगा कि घरका खर्च कैसे चलाया जाये! क्योंकि पन्द्रह मिनिट पहले वह किसी बाबूसे ज़िक्र कर रहा था कि गवर्नमेण्ट इतनी कम तनख्वाह देती है कि दो आदमियोंका पेट भरना भी मुश्किल है। पर नहीं, वह यह नहीं सोच सकता क्योंकि वह अब धीरे-धीरे मुसकराने लगा था। ज़रूर इसे किसीकी याद हो आयी होगी!

मदनका समय काटे नहीं कट रहा था। अभीतक केवल दो ही व्यक्ति अन्दर गये थे। ऐसा ही हाल रहा तो शाम तक भी उसकी बारी नहीं आयेगी। पीठमें दर्द बढ़ गया था, उससे अब खड़ा नहीं रहा गया। वह दायीं ओरकी बेंचपर जाकर बैठ गया।

उसकी बग़लमें दो व्यक्ति बैठे हुए थे। दोनों ही पचीस-तीसकी उम्रके मालूम होते थे। एककी कमीज़पर डी० टी० यू० बसका बिल्ला लगा हुआ था। मदनने सोचा, कण्डक्टर या ड्राइवर होगा। वे आपसमें किसी साहबकी बुराई कर रहे थे। एक बोला, "अरे सब ठीक है। जब पेटीकोट गवर्नमेण्ट आ ही गयी है तो जो रंग दिखायेगी वो देखेंगे"। दूसरा बोला, "हाँ यार, औरतोंका राज हो गया है। हम मरद काहेके हैं। देखते नहीं, जहाँ देखो वहाँ औरतें। इनको ज़ुबान भी इतनी चल गयी है। कल बसमें टिकट देने लगा तो एक बोली, तुम घूरते क्यों हो? और सुनो, मैं उसका चश्मा देख रहा था तो कहती है, घूरते क्यों हो? वो ज़माने गये जब औरत चुप बैठी रहती थीं।" पहलेवाला हाँमें हाँ मिलाकर बोला, "हाँ-हाँ भैया, अब तो औरतके चंगुलमें हैं हम लोग। इसी डिस्पेन्सरीमें तीन लेडी डॉक्टर हैं।" और फिर वे दोनों आजकलकी गवर्नमेण्टकी कड़ी आलोचना करने लगे।

मदनने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया। काउण्टरसे हटकर एक न्यूज़-पेपर-स्टैण्ड था। मदन अख़बार पढ़नेके लिए उठा। पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठपर इन्दिरा गांधीकी तसवीर—प्रेसीडेन्ट जॉनसनसे हाथ मिलाते हुए। और पता नहीं क्यों, मदनको ग़ुस्सा आ गया। अरे, विदेशों-में घूमनेसे ग़रीब भारतवासियोंका कैसे कल्याण होगा? उसने अखबारपर जल्दी-जल्दी नज़र दौड़ायी—कोई भी खबर कामकी नहीं लगी। हर खबरको पढ़कर उसे लगता मानो उसे पहलेसे ही ज्ञात था कि ऐसा ही होगा। दूसरा पृष्ठ—गेहूँके भाव बढ़ गये हैं। उसने मन-ही-मन सोचा, आखिर मन्दे कब थे! और कुछ नहीं तो फ़िल्मोंवाला पृष्ठ निकाल लिया। कोई भी पिक्चर कामकी नहीं थी। परसों शीला कह रही थी कोई पिक्चर चलनेको, पर यह सिर-दर्द कहीं जाने दे तब न! और उसने झटसे अखबार बन्द कर दिया। लाइनकी तरफ़ नज़र फेरी, एक महिलाका नम्बर चल रहा था। उससे रहा नहीं गया। वह आगे बढ़ गया—"आप-का नम्बर?"

"ट्वेन्टी सेविन!"

"थैन्कयू।"

और वह अपनी जगहपर चला आया। अभी कितनी देर और इन्तज़ार करना होगा? उसने कलाईकी तरफ़ नज़र डाली, पर घड़ी तो वह घरपर ही भूल आया था। उसने पीछे खड़े व्यक्तिसे टाइम पूछा।

"साढ़े दस।"

मदनको लगा मानो उसके गलेको कोई भींच रहा हो। मानो उसकी आवाज़ कहीं दूरसे आ रही हो। मदनने उसका चेहरा ध्यानसे देखा। बहुत पीला नज़र आ रहा था। शायद कैन्सरका रोगी हो।

बाँयी तरफ़की बेंचपर एक बुड्ढा बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। उसका सारा चेहरा पतली-पतली झुर्रियोंसे इस क़दर भरा हुआ था कि मदनका मन हुआ, उसके चेहरेपर प्रेस करके सारी सिकुड़नें निकाल दे। उसकी मटमैली सलवार और बण्डीसे मालूम होता था कि वह मुल्तानी है। उसके हाथ बहुत पतले-पतले और सूखे हुए थे। पैरों तकमें झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। क्या उम्र होगी उसकी? पर वह जान न पाया क्योंकि उसके सिरपर सफ़ेद पग्गड़ बँधा हुआ था। इतनेमें ही उसके साथ बैठी एक छोटी-सी लड़कीके हाथसे दवाईकी बोतल गिर पड़ी। "झन्न-न्नन्न!" बुड्ढेने चौंककर आँखें खोल दीं। उसने लाइनकी तरफ़ नज़र फेरी, फिर हाथका कार्ड देखा जो पसीनेसे तर हो गया था। न जाने क्या सोचकर उसने कार्ड अपनी जेबमें रख लिया। उसने अपनी टाँगें नीचे रख लीं और सामने देखने लगा। उसकी आँखोंके कोनोंमें कीचड़ जमा था। वह शून्यमें एकटक न जाने क्या ताके जा रहा था। मदनको उसकी कीचड़-भरी आँख देखकर बड़ी घृणा हुई, पर उसे देखनेमें मदनको अच्छा भी लग रहा था। उसका चेहरा न जाने कौन-सी मायूसी-से भरा हुआ था। उसकी पीठ झुकी जा रही थी। इतना दुबला-पतला व्यक्ति था कि मदनको लगा, यदि वह उसके एक थप्पड़ जमा दे तो शायद वह इस दुनियासे ही कूच कर जाये। उसकी टाँगें काँप रही थीं। थोड़ी देर तक वह एकटक देखता रहा फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाँगें ऊपर करके उकड़ूँ होकर उसने आँखें मूँद लीं और फिरसे ऊँघने लगा।

अन्दरके कमरेसे ज़ोर-ज़ोरसे रोनेकी आवाज़ आ रही थी। शायद डॉक्टरने किसी बच्चेके इन्जेक्शन लगाया था। बच्चा ज़ोर-ज़ोरसे रोये जा रहा था। मदनने पीछे देखा, एक छोटी-सी बच्ची अपनी माँका पल्ला पकड़कर रोये जा रही थी।

"नहीं, हमें भूख लगी है।"

"अरे ठैर, पहले डाँगडर साब तो देख लें।"

"नहीं भूख लगी है।" और वह रिरियाने लगी। वह बड़ी देरसे रो रही थी। यह सो, उसकी माँने एक थप्पड़ जमा दिया उसकी पीठपर—"मर भी तो नहीं जाती तू! चूप हो, एकदम चुप!" और वह लड़की, जिसके बाल बिखरे हुए थे, फ्रॉकका कोना फट गया था, जो नंगे पैर थी, चुप होनेके बजाय और ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी।

मदनको लगा, देशका हर बच्चा रो रहा है। इस भूखने हर बच्चेको सताया है। और उसे याद आ गया, गेहूँके भाव आज और भी चढ़ गये हैं।

उसके आगे खड़ी दो कालेज-गर्ल्स किसी आर्ट एक्जिबीशनकी बात कर रही थीं। मदन उन्हींकी बात सुनने लगा।

"कल कैसी रही एक्जिबीशन?"

"बोर!"

"क्यों?"

"यह मॉडर्न आर्ट क्या बला है! एकदम पल्ले नहीं पड़ती। यह क्या मतलब हुआ कि किसी लकड़ीपर छह कीलें बेतरतीब ढंगसे ठोक दीं और हो गयी डूबती साँझ। कुछ सिर-पैर होता है इनका? ऐसी मालूम देती है मानो किसी बच्चेने रंग फैला दिये हों। इनमें क्या धरा है, यह तो कोई भी बना ले।"

"न मालूम यह प्राइज़के बारेमें कैसे जज करते हैं!"

"अरे जज करनेमें क्या है, जो ज़रा अच्छे रंगोंवाली देखी उसको फ़र्स्ट प्राइज़ दे दिया। और तो और, वहाँ इतनी गन्दी मूर्तियाँ थीं कि क्या बताऊँ? नारीको इतना उघाड़कर क्यों दिखाते हैं? कितना अश्लील बना देते हैं!"

"मुझे भी क़तई पसन्द नहीं यह मॉडर्न आर्ट। पता नहीं, दीदी क्यों जान देती हैं इस कलापर। जिस कलामें सौन्दर्य नहीं वह कला किस कामकी?"

पहलीवाली बात पलटकर बोली, "तू यहाँ कैसे आयी?"

"दीदीको मलेरिया हो गया। और तुम?"

"वही अपना पुराना रोग। रोज़ नकसीर फूटती है।"

टन्-टन्!

"ले तेरी बारी आ गयी।" और पहली वाली लड़की मुसकराती हुई अन्दर चली गयी।

मदन सोचने लगा, अभी तो डॉक्टर देखेगा, फिर काउण्टरपर जाकर परचोपर साइन करवाने होंगे, फिर दवाईवाली लाइनमें खड़े होकर दवाई लेनी होगी। उसने दवाई लेनेवाली लाइनकी ओर नज़र फेरी—वह भी कम लम्बी नहीं थी। पर लेडीज़ और जेन्ट्सकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग-अलग लाइनोंके कारण सुविधा हो जाती है। वह उस लाइनमें खड़े लोगोंकी चप्पलें देखने लगा। एकने पैबन्द लगा जूता पहन रखा था, उसके पीछेवालेने रबरकी चप्पलें—उसके पीछेवाला फटे और भारी जूते पहने हुए था। जूतोंसे दूधवाला नज़र आता था। उसके पीछे कोई कैनवासके जूते पहने खड़ा था। टेनिस खेलकर आया लगता था। मदनने उसकी तरफ़ देखा तो मिस्टर मेहता देखते ही बोले, "हलो मिस्टर मदन, यहाँ कैसे ?"

"ऐसे ही कुछ दर्द-वर्द था।"

"कल पार्टीमें नहीं आये ?"

"हाँ, मन नहीं था। क्यों, कैसी रही ?"

"क्यों, क्या तुम सोच रहे हो तुम्हारे बिना पार्टी जमेगी ही नहीं ?" और वह हो-होकर हँस पड़ा।

"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं।" पर मदनका वाक्य उसकी हँसीमें डूब गया।

मदनने सोचा, कैसा मक्कार आदमी है। कल फ़ोन करनेपर नौकरसे कहला दिया, साहब घरपर नहीं है जब कि मदन जानता है कि मेहता छह बजे सदा घरपर रहता है। और आज यहाँ कैसी हँसी कर रहा है। मदनने मुँह फेर लिया और सामनेवाली लड़की-की ओर देखने लगा। पहलीवाली लड़की अभीतक अन्दरसे नहीं आयी थी। 'क्या नकसीरका रोग जाँचनेमें इतनी देर लगती है ?' उसने अपने सामने खड़ी लड़कीके पैरों-की तरफ़ देखा—वह बिछुए पहने हुए थी।—'तो क्या इसकी शादी हो गयी ? लगता तो नहीं !' फिर उसे याद आया कि बिछुए तो आजकल फ़ैशनमें आ गये हैं। और वह पीछले तेज़ दर्दमें भी मुसकरा पड़ा। वह लड़की बड़ी देरसे नाखून चबा रही थी।

'टन् !'

और पहलीवाली लड़की बाहर निकली और दूसरी नाखून चबाना छोड़, अपनी चुन्नी सँभालती हुई अन्दर घुस गयी। अब मदन लाइनमें सबसे आगे था। उसे बड़ी रिलीफ़ मिल रही थी कि आखिर इतने इन्तज़ारके बाद उसका नम्बर आ ही गया। फिर सोचने लगा—यह लड़की नाखून क्यों चबा रही थी ? कहते हैं, जब मनुष्यको कोई मानसिक दुःख होता है तब असहाय स्थितिमें वह अक्सर अपने नाखून चबाता है। भला इसे कौन-सा दुःख होगा ? इसकी दीदी बीमार है, ज़रूर इसी बातसे दुःखी होगी या फिर फ़ेल हो गयी होगी। पर नहीं, हो सकता है, दोनों-में-से कुछ भी न हो। कइयोंको नाखून चबाने-की आदत होती है। और मदनने इस बारेमें सोचना बन्द कर दिया।

अभीतक लड़की बाहर नहीं आयी थी। शायद दीदीका हाल बड़े विस्तारसे बताया जा रहा था। मदन सोचने लगा कि वह डॉक्टरके पूछनेपर क्या बतायेगा—कि उसके एक हफ़्तेसे बदनमें दर्द है और तशरीफ़ आ-ला रहा है ! नहीं यह नहीं कहेगा। वह कहेगा, कल ही दर्द शुरू हुआ है। पर यह भी ठीक नहीं। बीमारीके बारेमें झूठ बोलना ठीक नहीं है। तो वह साफ़-साफ़ कह देगा कि हफ़्ते भर वह घरेलू दवाइयाँ करता रहा और कोई फ़ायदा न देखकर वह आ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया है। पर यह उत्तर भी उसे ठीक नहीं जँचा। फिर वह क्या कहे? इतनेमें ही 'टन्' घण्टी बोली। लड़की उदास चेहरा

एक रूपक। प्रेमनन्दन सिन्हा

१—ज्वार

अदालती पृथक्करणके दो वर्ष हो चले और अब मैं समझती हूँ कि बहुत हद तक अपने-आपमें एक ताक़त-सी महसूस करने लगी हूँ। ऐसा खुला स्वास्थ्य मैं स्थायी रूपसे प्राप्त कर लूँ और स्वतन्त्रताके हर एक क्षण-को जीती रहूँ इसके लिए यह आवश्यक है कि मैं अब तलाक़की अर्ज़ी पेश कर दूँ। लेकिन सोचनेकी इस हद तक आकर अन्दर-ही-अन्दर मैं बिलकुल खामोश हो जाती हूँ और एक जानी-अजानी लाचारीका अहसास मनको भारी बना जाता है।····लेकिन, मैं जान-बूझकर एक उत्तरदायित्व क्यों ढोती चलूँ। यह जाहिर है कि उस बोझको अब इतने दिनों बाद फिरसे उठाया न जायेगा। जीवन-के जिन भोगे हुए दिनोंकी यादसे ही कुरूप साये मेरी चारों ओर घिरने लगते हैं, उन्हें ही फिरसे दोहरानेकी ग़लती मैं क्यों करूँ। और, फिर मेरी जवाबदेही ही क्या है—मेरे होने न होनेसे उनकी सुविधाओंमें कोई फ़र्क़ नहीं आता होगा। कोठी है, मोटर है, अनेकों नौकर-चाकर हैं और····तो इसमें हर्ज़ ही क्या है जो मैं ऐसा सोचती हूँ—ज़रूर उनकी रातें ऐशमें कटती होंगी। वह चम्पाकली-

लेकर बाहर निकल आयी। मदन बिना कुछ तय किये कि डॉक्टरसे क्या कहेगा अन्दर घुस गया।

अनारकली दफ़्तरवाली कैसे हँस-हँसकर बातें करती थी। बेहयाको यह कभी नहीं लगता था कि मैं, जो उनकी पत्नी थी, वहाँपर मौजूद रहती थी। और वे भी कैसे उसके अधकटे बालोंको चेहरेकी ओर लाकर गालोंपर हलके-से चिकोटी काट लेते थे। मैं शर्मसे गड़ जाती थी, मेरा अपना अस्तित्व कुछ हलका लगने लगता था। मैं क्रोधमें फुँफकार छोड़ती अपने कमरेमें आकर बिस्तरेपर कटे वृक्षकी तरह गिर पड़ती थी। वे तत्काल मेरा पल्लू पकड़े आ धमकते और मैं फिर····। कितनी चापलूसीसे बातें करते थे वे! लेकिन अब मैं समझ रही हूँ, शहदमें घोलकर मुझे जहर ही देते रहे वे बराबर।

अब मैं तलाक़ देकर एकदम स्वतन्त्र बन जाऊँगी। अपनी मर्ज़ीसे जहाँ जीमें आयेगा, जाऊँगी और आऊँगी। अभी तो मैं उनका ही उत्तरदायित्व ढोये जा रही हूँ। सारी दुनिया यही कहती है कि मैं उनकी पत्नी हूँ। इस बातपर मेरा ध्यान बहुत पहले जाना चाहिए था कि उनसे इतनी दूर रहकर भी उनकी ही दी हुई सारी चीजें व्यवहारमें ला रही हूँ। अब ये सबकी सब सर्पिणीकी तरह मेरी चारों ओर रेंग रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अगर मैं चाहती तो उनकी एक-एक चीज़ लिये बग़ैर अलग हो सकती थी, लेकिन अदालतकी निगाहोंको मैं झटक नहीं सकी थी। उन्होंने बड़ी कातर दृष्टिसे हाकिमकी ओर देखा था और तब हाकिमने मेरी ओर—"आप वैवाहिक सम्बन्ध तोड़ नहीं रही हैं, अलग रहने जा रही हैं। आपके पति अगर चाहते हैं तो उस दूसरे शहरमें आप अपने ही मकानमें रह सकती हैं। किसी भी तरहका दबाव पड़नेपर अदालतको आप फ़ौरन इत्तला कर सकती हैं।" हाकिमके उस कहनेमें अनुनय था या आदेश, मैं नहीं समझ सकी थी, लेकिन तबसे परोक्षरूपसे मैं उनका ही अनुग्रह-दान लिये जा रही हूँ। इतनी-सी बात मैंने अबतक क्यों नहीं समझी थी। खैर, अब तो सब-कुछ तोड़कर फेंक ही दूँगी। तलाक़ दे दूँगी।

उस जीवनका, जिससे मैं कटकर अलग आ गयी हूँ, त्याग कर दूँगी तो एक आत्मिक शान्ति मिल जायेगी। मैं उनका साथ अब गवारा नहीं कर सकूँगी। तिल-तिलकर अब नहीं जलूँगी। घुट-घुटकर नहीं मरूँगी। उनके साथ रहकर भी मैं हमेशा परित्यक्ता-सी बनी रही। अदालतको साफ़-साफ़ कहवा दूँगी कि उन्होंने ही मेरा परित्याग किया है। फिरसे उपेक्षित बनकर रहना अब मुझे सह्य नहीं। उन्होंने जैसे अपने आराम और मनोरंजनके लिए अपना कमरा वातानुकूलित करवा लिया था और 'जाज़' संगीतके अनेकों रेकर्ड बाज़ार-से उठा लाये थे वैसे ही मुझे समझ लिया था। मैं लाख अवरोध करती, लेकिन भीतर-ही-भीतर गलती भी जाती····और जैसे एक जादूगरके सम्मोहनमें एकदम उनकी गोदमें सिमट जाती।····छिः····छिः····कितनी ग्लानि होती है, मैं इतनी कमज़ोर क्यों थी! पुरुष···· पुरुष···· ! लानत है प्रकृतिपर। क्यों समर्पिता रही है वह हमेशा ?

गहरी उलझन-भरी अँधेरी घाटियोंसे होकर गुज़र रही हूँ मैं और ऐसा लगता है कि राक्षसी अन्धकार मुझे लील जानेके लिए चारों ओरसे बढ़ा चला आ रहा हो। दो वर्षों में सिवा अप्रत्यक्ष सुविधाएँ देनेके कभी कुछ दूसरी बात पूछी भी नहीं उन्होंने। मुझे जहाज़का पंछी समझ लिया है। समझते होंगे—मैं वापस आ जाऊँगी। समझते हैं तो समझा करें।

मेरे आगे ख़यालोंकी परछाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। सुबहसे ही मैं बहुत चुप-चुप हूँ। कल ही माधोको रुपये देकर उसके गाँव भेज दिया है। घरके छोटे-मोटे सब काम अब मैं ख़ुद ही कर लूँगी। वह जाना भी चाहता था। कई दिनोंसे उसकी घबरायी-घबरायी आकृति मेरे आगे घूम जा रही थी। तब मुझे हँसी आ जाया करती थी। मैंने जो छुट्टी दे दी तो वह भी समझ रहा होगा, कहींसे फँसकर निकल रहा हो। दूधवाले, फलवाले, अण्डेवाले सबको साफ़-साफ़ मना कर दिया है। अब इन सबोंकी आवश्यकता मेरे लिए नहीं रही। महरी आयी तो मुख्तसर बातें हुईं और वह भी जल्दी काम करके वापस चली गयी। और इस प्रकार आजसे मैं इस घरमें नितान्त अकेली हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परछाइयाँ रबरके डोरेकी तरह फैलती जा रही हैं....

उन्होंने फ़ैसलेके-से स्वरमें कह दिया है—"तुम इस घरमें रहती हो, मेरी पत्नी हो, ठीक है। खाती-पीती हो, सब-कुछ पर अपना अधिकार समझो और बनी रहो एक पत्नी।"

"मैं उसी पत्नीके अधिकारसे तो कहती हूँ—कितनी कम देर घरमें रहते हो तुम। उसपर भी साथ किसी-न-किसीको लिये ही आते हो! कभी औरत-दोस्त तो कभी मर्द-दोस्त।"

"तुम नहीं समझतीं शीलू। व्यापारकी बात तुम नहीं समझोगी।"

"मैं तो कभी साथ कहीं आने-जानेसे रही।"

वे एकाएक अपनी सख्ती छोड़कर नरम हो आये। अपनी जगहसे उठकर मेरी बग़लमें आ बैठे और दोनों हथेलियोंसे मेरे दोनों कन्धे पकड़कर अपनी ओर घुमा लिया—"ऐ लो, तुम गुस्सा करती हो तो मैं घरमें बैठ गया। कहाँ कहोगी चलूँगा।"

उन्होंने हवाका रुख देख लिया था। मैं अपनी दोनों हथेलियाँ पैरोंके बीच रख लेती हूँ। फ़र्शपर पैरके नाखून गड़ाती जाती हूँ। मैं उनकी तेज़ निगाहें झेल जानेमें सर्वथा अशक्त हो गयी थी। मेरी जीभ जैसे कट गयी थी और ऐसा भी कि जैसे हज़ारों तीर निगरके आर-पार हो गये हों।

उन्होंने अपनी निगाहें मेरी निगाहोंमें डाल दी थीं। मैं टूटते हुए पत्तेकी तरह थर-थर काँप रही थी। उन्होंने अपनी बाँहोंमें कसकर मुझे अपनी ओर खींच लिया—"शीलू, शीलू।"....और मैं उनकी छातीमें सिर गड़ाकर फफककर रो उठी थी।

दर्दका एक कोहरा छँट गया तो वे बग़ैर कुछ बोले कमरेसे बाहर चले गये। मैं निश्चेष्ट देर तक सोफ़ेपर पड़ी रही।

दीवारपर 'मरफ़ी' का ख़ुशनुमा कैलेण्डर टँगा हुआ था।

■

ऐसे कितने चित्र आते और जाते रहते हैं। मैं ऐसा करके न्याय कर सकूँगी या नहीं—मैं नहीं जानती। ऐसी मनःस्थितिमें उनकी आकृति भी धुँधली नज़र आने लगती है। फिर याद रह जाती हैं—उनकी निगाहें, विभिन्न भावोंमें—कभी तेज़, कभी कठोर, कभी विकल और कभी भावहीन।

कुछ दिन हो रहे हैं, रमाका चौथा या पाँचवाँ पत्र मिला है। पढ़कर और खोंझकर रख दिया है और सोच लिया है—इसका भी जवाब नहीं दूँगी। ऐसी नसीहतोंकी मुझे ज़रूरत नहीं। कमसे कम रमापर, जो मेरे हृदय-की धड़कनें बिलकुल क़रीबसे सुन चुकी है, पूरा विश्वास था। लेकिन उसने भी बौद्धिक स्तरपर मेरा उपहास किया। तीन साल पहले वह मिली थी तो कितनी भरी-पूरी और कैसे अपने बच्चों-समेत ख़ुश थी। उसने मेरे हाल-पर एक-दो बार अफ़सोस ज़ाहिर किया था तो मैं भीतर-ही-भीतर बेहद जल उठी थी।

इस वक़्त रमाके बारेमें जितनी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्रतासे मैं सोचती हूँ, उसके प्रति तिरस्कार और ईर्ष्याके भाव मेरे अन्दर और भी ज़्यादा बढ़ते जाते हैं। अन्यमनस्क स्थितिमें अनायास ही उसका पत्र निकालकर देखती हूँ। पैगम्बरिन लिखती है :

"प्रिय शिल्लू,

रानी, क्या हो गया तुझे ? ऐसा भी क्या रूठना ! मेरे पत्रका जवाब क्यों नहीं देती। तो क्या आना ही होगा मुझे ?....देख, कोई ग़लत क़दम न उठाना।...फिर भी, एक पुरुषकी ज़रूरत होगी, हर स्त्रीको होती है। देख रानी, इसे बुरा न लेना, कहती हूँ—मैं तुझे बहुत क़रीबसे जानती हूँ—तू पुरुषके बग़ैर नहीं रह सकती।....

—तुम्हारी रमा"

क्रोधकी अतिशयतामें काग़ज़का वह एक टुकड़ा कई टुकड़ोंमें बँट गया और मुट्ठी कसती गयी, कसती गयी। रमा, तू अगर मेरे आगे होती इस समय तो यह मुट्ठी तेरी गरदनपर भी इसी तरह कसती जाती। तू मेरी तरह भोग ले तो ऐसी गोल-गोल बात तेरे मुँहसे न निकल सकेगी।

....चिन्दियाँ बाहरकी ओर उछाल देती हूँ।

■

कबसे 'लाउंज' में पड़ी-पड़ी मैं खुद-बखुद 'कोफ़्त' महसूस कर रही हूँ। इस तरह 'लाउंज' में पड़े रहनेकी और भीतर-ही-भीतर हमेशा सुलगते रहनेकी मेरी आदत-सी हो गयी है। मैंने अपनी सामाजिक गतिविधि भी तो बिलकुल कम कर ली है। मुझसे मिलने भी कौन आयेगा, और न मैं किसीका अपने इस हालमें खुलकर स्वागत ही कर सकती हूँ। मुझे अब इतना बड़ा मकान भी काटने दौड़ता है। यहाँ रहना भी अब मुझे नहीं चाहिए। हँसते होंगे लोग। हुः हुः,.... बलासे हँसते होंगे,.... हँसें,.... मुझे इसकी परवाह नहीं।

परिन्देका एक पाँख कट गया हो जैसे और उड़ते रहनेकी चाह लेकर भी कैसी बेबस स्थितिमें वह गिरता आ रहा है। आकाशमें स्वच्छन्द उड़ते रहना, ऊँचाइयोंको चूम लेना उसके लिए स्वप्न हो गया अब तो।

रमा, तू कितनी बार पहाड़ोंकी सैर कर आयी और मैं हूँ कि दस वर्षों तक पापड़ ही बेलती रही।....रमाके बारेमें अब नहीं सोचूँगी ! एक आक्रोश अपने आप मेरे भीतर आकर चूहे-सा कुरेदने लगता है। अकिंचनताके चूहे कितनी बेरहमीसे धीरे-धीरे सब-कुछ कुतरते जाते हैं। मैं कुरेद-कुरेदकर अपने ही ज़ख्म क्यों हरा करती जाती हूँ। मेरा व्यतीत वर्तमानको इस तरह झकझोर जाता है कि मैं कभी-कभी बिलकुल संज्ञाहीन बन जाती हूँ। मैं अपने स्वनिर्मित परिवेशमें इस तरह क़ैद हो जाती हूँ कि सिर दीवारपर दे मारनेकी इच्छा हो आती है।

आत्महत्या ? प्रतिशोधकी एक प्रक्रिया अपने-आपपर ही लाकर अन्त कर दूँ। मुझे क्या मिलेगा ? और तब अनेकों प्रश्नसूचक वाक्य सामनेसे सरकने लगते हैं—तुम्हें छुट्टी मिल जायेगी (?)....रहोगी नहीं तो दुख कैसा (?)....रमा फिर नहीं चिढ़ायेगी (?)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि। और मैं दुनियाकी हर वस्तुपर एक आग्नेय दृष्टि फेरकर द्वैध अवस्था पार कर लेती हूँ।''''आत्महत्या भी तो जीनेके लिए ही की जाती है। लेकिन, नहीं मैं जीऊँगी अपने सम्पूर्ण अस्तित्वके साथ। सारी भौतिकताको एक वैज्ञानिक रीतिपर लूँगी। मर जानेपर, मैं नहीं जानती, क्या होता है और मैं दकियानूसी विचारोंकी एकदम क़ायल नहीं। मैं मर भी गयी तो रूह नहीं बनूँगी। मैं ज़िन्दा रहूँ या मर जाऊँ, दोनों ही स्थितियोंमें उनके जीवनमें कोई फ़र्क़ नहीं आता। कैसे वे सारी स्थितियोंको सामान्य बना लेते हैं और इसके ठीक विपरीत मैं अपने असन्तोषको कभी भर नहीं पाती। पति-पत्नीमें इतना अन्तर कैसे सह्य हो सकता है। लेकिन एकबारगी वे मेरे रू-बरू ऐसे क्षणोंमें आकर खड़े हो जाते हैं कि उनकी छवि मुझे बड़ी प्यारी लगने लगती है। उनकी मुसकराहटपर मैं न्योछावर-सी होने लगती हूँ। और जब वे आगे बढ़ने लगते हैं—शीलू,''''शीलू,—तो मैं घबराकर बजाय उनमें समा जानेके पीछे हट जाती हूँ और विचार रूईके गालेकी तरह हवामें बिखर जाते हैं। फिर आँखोंके आगे एक अनवरत कालिमा और तब चारों ओर अपनी ही परछाइयाँ, छोटी-बड़ी होकर फैलने लगती हैं। कभी कोई परछाईं इतनी छोटी हो जाती है कि उसे एक सुईकी नोकपर ले लेती हूँ। सुई छातीमें गड़ाती जाती हूँ और एक चीख़ निकलने-निकलनेको हो आती है। मैं भी कितनी छोटी हो जाती हूँ।

अदालतसे पृथक्करणकी सारी कारर-वाई हो गयी तो कैसे शान्त और गम्भीर भाव लिये वे मिले थे और भर्रायी आवाज़में कहा था—''शीलू, तुम कुछ दिनों, न हो, किसी पहाड़ी जगह ही जाकर रहो। तुम्हें मुझसे कभी कोई शिकायत नहीं होगी।'' मैं कुछ भी न बोली थी। मैंने यह स्पष्ट अनुभव किया था कि मुझसे अलग होनेका दुःख उन्हें हज़ार बिच्छुओंके दंशका कष्ट दे रहा था। मैंने उस वक़्त इसकी क़तई परवाह नहीं की थी, लेकिन आज जब मैं किसी एक निर्णयपर पहुँच जाना चाहती हूँ तो एक 'हाँ' और 'ना' के कितने विचार गडमड होकर मुझे विवेकहीन बना जा रहे हैं। उनके बारेमें विचार एकबारगी अपनी स्थिति बदलता जा रहा है। मुझे उनपर अब तरस आ रही है।

हृदयकी जितनी गहराइयोंमें मैं उतरती जा रही हूँ, मेरी कमज़ोरियाँ भी उसी गतिसे समानान्तर ऊपर उठती आ रही हैं। मैं इसे स्वीकार करती हूँ कि पिछले दो वर्षोंमें मैं ईमानदारीसे पृथक् नहीं रही हूँ और शायद ही कोई ऐसा दिन रहा हो जब उसका कोई मिनिट बग़ैर उनके ख़यालके गुज़र गया हो। हर दिन, चाहे चन्द मिनिटके लिए ही, उनका ख़याल कहीं-न-कहींपर आता ही रहा है। अकसर सुनती रही हूँ—गाड़ी बड़ी तेज़ हाँकने लगे हैं, महीनों कोठीसे ग़ायब रहने लगे हैं, दीवानगीमें हज़ारों-हज़ार डूब गये। यह सब सुनकर भी मैं अपनेको पीती ही रही हूँ अबतक। और ज़्यादा सच कहूँ तो, जब कभी ऐसी ख़बर मिलती, दौड़कर अपने घर और अपनी गृहस्थीमें वापस चले जानेको भीतर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही-भीतर कुछ मचल जाया करता। हाय, मैंने भी कितना कष्ट दिया उन्हें !

इतने दिन अलग रहकर मैंने अपने-आप से ही विद्रोह किया है। जिस शान्तिकी बात मैं सोचती हूँ, वह बाहर भी मुझे नहीं मिलेगी। रमा, तुम्हारा यह पत्र क्या असर कर गया ? ....नहीं....नहीं....कभी नहीं, मैंने उसे फाड़कर फेंक दिया है, उसके हर भावको मैंने ठुकराया है। तो फिर मैं बार-बार क्यों विचलित हो जा रही हूँ ?...मैं एक धरातलपर कभी नहीं सोच पाती।

पुरुषने प्रकृतिपर विजय पायी है। अतः नारी समर्पिता रही है। मैं किसी मर्यादाकी बात नहीं सोचती और न किसी आधुनिकतासे ही पीड़ित हूँ। ऐसा बोध होता आ रहा है कि यह एक अनिवार्यता है।

मैं अब सम्पूर्ण मन और शक्तिसे अपने विचार उनपर केन्द्रीभूत कर चुकी हूँ—वे मेरे और सिर्फ़ मेरे ही हैं।

■

२—सीमाएँ

उसके इस प्रकार अदालती काररवाई करके जानेसे मेरी सामाजिक प्रतिष्ठापर एक धक्का लगा है। वह बग़ैर किसी हंगामेके भी जा सकती थी। मैंने हमेशा चाहा कि वह स्वस्थ और प्रसन्न रहे। कौन नहीं अपनी पत्नीको खुश रखना चाहता।....लेकिन मैं सिर्फ़ पत्नीके लिए ही कैसे बनकर रह जा सकता हूँ। मैं भावुक नहीं हूँ, हमेशा व्यावहारिक रहा हूँ। फिर भी उसका इस प्रकारसे छोड़कर चला जाना मुझे बेहद दुःखी बनाये रहा है। और तबसे ऐसा लगता आ रहा है कि मेरे जीवनका एक हिस्सा आरेसे काटकर अलग कर दिया गया हो। हर कामके लिए जो सहजता मुझमें थी, वह अब जैसे मिट गयी हो। एक अभाव और रिक्तताका वातावरण मेरे चारों ओर फैला रहता है। अलग हो जानेके बाद भी मैंने हर सम्भव साधन उसके निर्वाहके लिए उपलब्ध करवा दिया है। मैं अपनी मर्यादासे कभी नीचे नहीं उतरा। उसकी मानसिक शान्तिमें मैंने कभी कोई बाधा नहीं देनी चाही। उसके सामने पड़ना मैंने कभी ठीक नहीं समझा। मुझे उम्मीद है--वह आयेगी, सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करेगी। वह खुद-ब-खुद अपने मानसिक धरातलपर सामान्य स्थितिमें आयेगी और उसे मेरी आवश्यकता महसूस होगी। मैं नहीं समझता--वह मेरे बग़ैर कैसे रह लेगी ?

उसने सारी परिस्थितियोंको स्वाभाविक मान लेनेके लिए एक समझौता कर लिया था, लेकिन वह अपने वादेपर टिक न सकी।.... आखिर औरतकी ज़ात—उसे हर प्रकारसे मनके मुताबिक सन्तोष चाहिए। अपनी विवशताका मैं क्या कर सकता था।

मैं सब-कुछ जानता हुआ भी, समझता हुआ भी, अपनेको बहुत ज्यादा झुका न सका। अगर मेरा दोष कुछ हो सकता है तो वह यही कि मैंने अपने व्यापार, समाज, राजनीति और दोस्तोंको जिस रूपमें लिया, उसी रूपमें पत्नीको भी। मैंने हर जगह एक सन्तुलित नागरिक दायित्व निभाया है। मेरी इस विवशताको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपनी उपेक्षा कैसे समझ लिया !....

शीलू, तुम आवश्यकतासे अधिक सूक्ष्मग्राही बनी रही अथवा आँकनेकी ग़लती बराबर करती ही रही। मैंने तुम्हें सब कुछ दिया, और अगर नहीं दे सका तो सिर्फ़ एक वस्तु—समय। ....हाँ, कुछ और भी—एक पूर्णता। पूर्णता-के बिना तुम हमेशा उदास-उदास बनी रही। सिर्फ़ इसीके लिए छोड़कर चले जानेकी आवश्यकता भी क्या थी।....इनके अलावा दुनिया-की तमाम उपलब्धियाँ तुम्हारे आगे-पीछे फैली रही हैं। मुझे दुःख है कि इस अलगावको मैं गम्भीरतासे नहीं ले सका। मैं अपने स्वभावसे लाचार बना रहा।

तुम्हारे शक्की और क्रोधी स्वभावने भी मुझे हमेशा एक रिक्तताका ही भाव दिया है। मैंने कभी अगर फ़ुरसत निकालकर कहीं चलने-का प्रस्ताव भी किया तो तुमने एक अप्रियता-से निषेधात्मक संकेत-भर कर दिया....

मैंने अपने एक मित्रसे शामको पिक्चर देखनेकी बात पक्की कर ली है। सुबह तुमने अपने चलनेकी अनुमति दे दी है। शामको मैं ज़रा पहले घर आ जाता हूँ। पीठ-पीछे मेरी 'स्टेनो' भी कुछ आवश्यक काग़ज़ात लिये आ जाती है। उसके कटे बालोंसे तुम्हें कितनी नाराज़गी रही है। तुम एक कड़ुवाहटसे भर उठती हो और झूठा सिर-दर्द लिये पड़ी ही रह जाती हो। तुम्हारे टिकिटपर 'स्टेनो' ने उस दिन पिक्चर देख ली। तुम जितने दिनों खिंची-खिंची रही उतने ही दिन मुझे यह लगता रहा कि महीनों बाद तो पिक्चर देखने-का मौक़ा मिला था।

एक खाईके हदसे ज़्यादा गहरी होनेके पहले ही हम लोग पृथक् होकर थोड़ा समझ तो सके। तुम्हारे जानेके बारेमें बहुत सोच-सोचकर मैं परीशान नहीं हो सकूँगा, लेकिन इतना तो होगा कि जब कभी यह ख़याल मुझमें आयेगा कि इतनी उपलब्धियोंके बाद भी तुम मेरे साथ नहीं रह सकी तो एक अव-साद हलके-से मेरी मुसकराहटोंको काट जाया करेगा।

अगर तुम तलाक़ देना ही चाहोगी तो मेरी ओरसे कोई विरोध न होगा। इन दो वर्षोंमें मैंने बहुत सारी विरोधी स्थितियोंका सामना कर लिया है। कितने हास्यास्पद वातावरणको गम्भीरतासे काट गया हूँ। लेकिन तुम तलाक़के लिए तैयार न हो सकोगी। तुमने सिर्फ़ मुझे एक भावात्मक स्तरपर दुःखी करनेके लिए ही यह सब रूपक रचा।....हम-दोनों अपने-अपने कोणोंपर पहलेसे ही क्या कम दुःखी थे।

मैं अब इसे स्वीकार करता हूँ कि पति-पत्नीके रिश्तेमें एक रागात्मकता अनिवार्य है।

शीलू, तुम वापस आ जाओ....।

तुम मुझे एक दूसरे रूपमें पाओगी....।

मैं कितने दिनों बाद तो घरपर आया हूँ। बरामदेमें बैठकर अपनी पत्नीके बारेमें ही सोच रहा हूँ—ऐसा लगता है मानो इस कोठीके हर कमरेमें मेरे सामने उसका ही रूप तैर रहा हो।

....और, ऐसा लगता है जैसे वह चली आ रही हो अपने घर।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उठकर अन्दर जानेको होता हूँ—"अरे माधो, तुम !"

मैं अकचकाकर देखता हूँ। एक भय और आशंकाने एकबारगी मुझे आक्रान्त बना दिया है। माधोका चेहरा सुर्ख है और धूलसे भरा हुआ है—वह अवश्य ही दूसरे शहरसे आ रहा है।

मैं बौखलाया हुआ जल्दीसे पूछता हूँ—"बीबीजी ठीक तो हैं ?"

वह आश्वस्त होता हुआ बोलता है, "बीबीजीने मुझे छुट्टी दे दी है।"

इतनी जल्दी घबरा उठनेपर मैं अब थोड़ा शर्मिन्दा हूँ।

उसने फिर कहा, "बीबीजीने मुझे रुपये दिये और कहा कि मैं सीधा गाँव जाऊँ, इधर-उधर कहीं नहीं। लेकिन आपसे बग़ैर पूछे मैं दूसरा काम नहीं कर सकता।"

अबतक मैं बहुत संयत हो चुका था। बोला, "तू यहीं रहेगा माधो, कहीं जाना नहीं है तुझे ?....अच्छा और बता।"

"बीबीजीने सब किसीको निकाल दिया। एक महरी है, उसे भी हटानेके लिए कहती थीं। अब वे बीमार नहीं हैं, लेकिन हमेशा चुप रहती हैं और एक जगह बैठती हैं तो सुबहसे शाम तक बैठी ही रहती हैं। आपके बारेमें कभी-कभी मुझे बुलाकर लगनसे बात भी करती रही हैं। इधर-उधरसे भी आपके बारेमें जानकारी लेते उन्हें मैंने देखा है।...."

मैं एक पुलक-सा अनुभव करता हूँ।

".....लेकिन एक बहुत बड़े क्लेशकी छाया उनके मुखपर-से हटते हुए कभी नहीं देखा। एक बात कहूँ मालिक !...." वह थोड़ा झुक आता है। मैं उत्सुक हो उठता हूँ।

".....मुझे तो ऐसा लगता रहा है कि वे आपके पास वापस आना चाहती हैं। मुझसे उन्होंने कितनी बार कहना चाहा, लेकिन संकोचसे नहीं कहा।"

"सच, माधो ?"

"एक बार आप जाइए मालिक ! जानेके बहाने बहुत मिल जायेंगे।"

मैं थोड़ा मुसकरा पड़ता हूँ। माधोको देखता हूँ—जाऊँ ?....नहीं, नहीं, अब कुछ नहीं सोचूँगा, और बोल पड़ता हूँ—"हम लोग सुबह चलेंगे।"

मैं फ़ोनपर 'स्टेनो' को कलके कामोंके लिए आवश्यक निर्देश दे देता हूँ। ड्राइवरको गाड़ीमें तेल भरवा लानेके लिए कह देता हूँ। फिर कलके लिए योजनाएँ बनाता हुआ थोड़ा घूम लेनेके खयालसे पोर्टिको पार करके बाहरकी ओर बढ़ता हूँ।

■

मुझे देखकर दरबान हड़बड़ाकर उठ खड़ा होता है। वह जैसे खुशीसे चिल्ला पड़नेको हो आया। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। कृतज्ञताके बोझसे अस्फुट स्वरमें बुदबुदाकर रह गया—"बीबीजी....।"

मैं धीरेसे फाटकके अन्दर हो लिया।

■

मैं जो देख रहा हूँ, वह स्वप्न नहीं। शीशे ही है। धीरे-धीरे आ रही है। मैं अवाक् स्थितिमें ठिठका खड़ा ही रहा। वह मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे थोड़ी देर रुकती है और फिर सुबकती हुई दौड़कर अन्दर चली जाती है। ऐसी पड़ीमें मुझे स्वागत करना चाहिए या क्या, कुछ भी नहीं दिमाग़में अँट पाया।

झुकी हुई शाम ठहर-सी गयी है। ऐसा लग रहा है, जैसे कोठीमें चमक आ गयी। मैं मुड़कर अन्दरकी ओर बढ़ जाता हूँ।

बीती सो बीती—सुबहके भूले शाम घर तो आये। मुझे देखकर वह नजरें झुका लेती है और सुबकती हो जाती है।

मैं ख़ुशीसे भरकर कहता हूँ—"शीलू, तुम्हारे आनेसे पुरानी रौनक़ वापस आ गयी है।"

वह मेरी बाँहोंके घेरेमें आ जाती है और फूटकर रो पड़ती है।

■

हम दोनों फिर एक नये सिरेसे सामान्य गतिमें एक दूसरेको समझते हैं।

■

ऐश-ट्रे / इन्दु झरोड़ा

उसके पासवाली ज़मीनपर सिगरेटके छोटे-छोटे टुकड़े और राख जमा हो गयी है। कमरेमें हवा आनेकी कोई गुंजाइश भी नहीं थी कि राख बिखरती। उसने इस बार ख़ुद महसूस किया कि वह ज़रूरतसे ज़्यादा सिगरेट पी चुका है। अमूमन होता यह है कि वह एक विशेष मनःस्थितिमें ही इस तरह एकसे एक लगी सिगरेट पीता है और पीनेका एह-साम तक नहीं होता···और आज वह तटस्थ होकर धुएँके गुबारको देखता-निहारता हुआ यह सोच रहा है कि आज वह इस धुएँपर एक कहानी लिखेगा। उसका हाथ पनामाके डिब्बेपर जाता है जो लगभग आधा ख़ाली हो चुका है। उसे कोफ़्त होती है कि और सिग-रेट ख़रीदनेके लिए पैसे कहाँसे आयेंगे और अगर यही रफ़्तार रही तो थोड़ी देरमें बची हुई भी ख़त्म हो जायेंगी। यह महज़ इत्तिफ़ाक़ था कि उसके सामने टेबिलपर पड़ी पत्रिकाकी पीठपर पनामाका विज्ञापन था और उसपर लिखा था—"पनामा पीना और पिलाना उम्दा बात है।" उसे विज्ञापन देनेवालेकी बुद्धिपर तरस आ रहा था और वह सोच रहा था कि जिस व्यक्तिने वह विज्ञापन छपवाया होगा, या तो वह बहुत रईस होगा या बहुत आत्म-सीमित। शायद इसलिए ही उसके दिमाग़में यह बात आयी ही नहीं कि कुछ लोगोंके पास अपने पीनेके लिए ही मर-खपकर पैसे जमा हो पाते हैं, दूसरोंको पिलानेका तो सवाल ही नहीं उठता। उसे यह भी याद आया कि ज़्यादा सिगरेट पीनेसे टी० बी० या कैन्सर दोनोंका अन्देशा रहता है। इसीलिए स्त्रियोंके अनुपातमें पुरुषोंको ये रोग अधिक होते हैं। पर यह जानते हुए भी वह उसका इस क़दर आदी हो गया था कि सिगरेट न पीना उसके लिए नामुमकिन था। अकेलेपनमें यही तो एकमात्र संगिनी होती है पुरुषोंकी। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खयाल आते ही उसने सोचा कि वह उसपर पर कहानी लिखेगा और उसका शीर्षक रखेगा —'एकान्त संगिनी'। पर यह विचार उसे स्वयं ही बड़ा बेतुका और बचकाना-सा लगा और वह फिर इस दुश्चिन्तामें डूब गया कि वह आखिर लिखे तो किसपर कहानी लिखे। कहानी उसे लिखनी ही थी क्योंकि घरमें कई दिनोंसे चूल्हा ठण्डा पड़ा था। जितने पैसे बचे थे, वे सब उसकी सिगरेट और चाय-में खत्म होनेको आ रहे थे। उसे सिगरेटसे लगी एक प्रिय कविता याद आयी :

"ज़िन्दगी—
दो उँगलियों में दबी,
जलती सिगरेट के टुकड़े की तरह,
जिसे पी कर—
चन्द लमहोंमें गलीमें फेंक दूँगा....."

कविता उसे निहायत पसन्द आयी थी और कविका नाम उसे बार-बार दिमाग़पर ज़ोर डालनेके बावजूद याद नहीं आ रहा था। पर न जाने क्यों उसे लग आया था कि ज़िन्दगी एक सिगरेटकी तरह नहीं, बल्कि एक 'ऐश-ट्रे'की तरह है जिसमें सिर्फ़ राख-ही-राख भरी है। इसके आगे वह कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। उसे लग रहा था कि उसके अन्दरकी विचार-शक्ति मर चुकी है। उसका दिमाग़ एकबारगी स्थिर हो गया था....और फिर इस स्थिरताने बढ़ते-बढ़ते जड़ताका रूप ले लिया था।

उसे लगा था कि वह आज कुछ भी नहीं लिख सकेगा क्योंकि उसका दिमाग़ एकदम ख़ाली था....वहाँ कोई भाव, कोई विचार न था। पर उसने सोचा कि आज वह बिना भावोंके कुछ लिखेगा। एकाएक वह उत्तेजित हो उठा था और मेज़पर मुट्ठियाँ पटकने लगा, पर फिर उसने सोचा कि इतनी उत्तेजना ठीक नहीं। उसे संयत होकर कुछ लिखना ही चाहिए—शौक़िया नहीं तो मजबूरीके कारण उसे लग आया था कि उसकी जीभपर कुनैनकी गोली रखी हुई है क्योंकि उसे अपना शरीर मलेरियासे तपता हुआ लग रहा था। उस गोलीको न निगलते बनता था और न उगलते पर उसे निगलना उसके लिए बेहद ज़रूरी था। उसने मुँहमें जमा हुई किसी चीज़को निगल लिया, सिगरेट उसने हाथमें ले ली थी।....और निगलनेके साथ ही उसे लगा जैसे उसने सचमुच कोई बड़ा काम कर लिया है। एक बोझ जैसे उसने सिरसे उतारकर नीचे रख दिया हो। उसके मनके अन्दर-ही-अन्दर कुछ घुमड़ रहा था और उसकी कुछ-न-कुछ लिखनेकी बहुत इच्छा हो रही थी। पर क्या? यह उसे स्वयं ही मालूम न था। उसने सिगरेट फिर ओठोंमें लगा ली और एकाएक उसके धुएँको देखने लगा। उसे लग आया कि उसके दिमाग़में भी इसी तरह धुआँ भरा है और वहाँ सब कुछ उस धुएँके पार छिपा है, इसीलिए उसे ख़ुद ही अपना कोई विचार समझमें नहीं आ रहा था।

उसने पत्नीको आवाज़ देकर कहा कि एक गिलास पानी ले आये। एक मिनिट बाद ही बरतनोंके खड़कनेकी आवाज़ हुई और उसकी पत्नी हाथमें काँचका गिलास लिये आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ी हुई। उसकी मैली साड़ी, रूखे बाल, सूनी कलाइयोंको देखते ही उसके मनमें पत्नी-के प्रति करुणा उमड़ आयी। वह चाहने लगा कि अपनी दोनों बाँहोंमें उसे भरकर सीनेसे लगा ले और बेइन्तिहा प्यार करे, पर उसकी बुझी हुई आँखोंको देखकर यह ख़याल किसी जलती हुई चीज़की तरह भभककर बुझ गया। उसने चुपचाप पानीका गिलास उसके हाथसे ले लिया था। एक ही साँसमें वह पूराका पूरा पानी गलेमें उँड़ेल गया था। पानी पीते ही उसे लगा कि जैसे उसके दिमाग़का धुआँ उस पानीसे बुझ गया था और अब उसे कुछ-कुछ साफ़ दिखाई पड़ रहा था। लेकिन थोड़ी देर बाद ही उसे अपनी धारणाकी सच्चाईपर सन्देह होने लगा था और उसने पाया कि उसके दिमाग़में पानी-से कीचड़-ही-कीचड़ हो गया था तथा उसके विचार उस कीचड़में गड्डमड्ड होकर और भी अस्पष्ट हो गये। पत्नी अबतक खड़ी थी। उसने खाली गिलास उसके हाथमें थमा दिया और वह यन्त्रचालितकी तरह गिलास लेकर चली गयी। वह उसकी पीठकी ओर देख रहा था। उसकी साड़ीमें जगह-जगह लगे पैवन्द देखकर उसका मन भर आया। उसकी साड़ी उसे अपने विवाहित जीवनकी चिथड़े-चिथड़े हुई कहानी-सी लग रही थी जिसपर उसकी ग़रीबीके पैवन्द लगे हुए थे। उसे अपनी पत्नीका विवाहके समयका चेहरा याद आ रहा था जब वह सजी-धजी गुड़ियाकी तरह लाल साड़ीमें लिपटी उस घरमें आयी थी। उस समय उसके चेहरेपर रौनक़ थी, पर आज उसे देखनेपर कोई अन्दाज़ भी नहीं लगा सकता था कि अपनी युवावस्थामें वह सुन्दर रही होगी और उसकी आँखोंमें सबको बरबस अपनी ओर खींच लेनेकी अतिरिक्त चमक रही होगी। यह बात उसे रह-रहकर कचोट रही थी। वह विचारोंकी दुनियासे असली दुनियामें आ गया था और उसने अपनी ग़रीबीका अनुमान लगानेके लिए चारों ओर एक उचटती हुई निगाह फेंकी।

सामनेकी दीवारसे लगे रैक खाली पड़े थे। उनमें कभी उसकी प्रिय किताबें पड़ी रहती थीं और वह घर आये किसी भी मेहमानको इस कमरेमें ज़रूर लाता था अपने ख़ूबसूरत चुनावका परिचय देनेके लिए। जब मेहमान उसके चुनावकी दाद देते तो उसका चेहरा विचित्र आत्मसन्तोषसे खिल उठता। उसकी पत्नी उसकी ख़ुशीको देख-कर किवाड़की ओटमें खड़ी हो कनखियोंसे उसकी ओर देखकर मुसकराती रहती थी। आज भी वही पत्नी है, वही रैक हैं, वह भी वही है, लेकिन जैसे एक मनुष्यका बाहरी ढाँचा वही रहे, पर उसके अन्दरका सब कुछ चरमराकर टूटता जाये, जैसे दीमक लगनेपर लकड़ी चरमराकर टूटती जाती है, वैसी ही हालत उसकी हो गयी थी। उसके रैक-में केवल नामके लिए दो-चार किताबें पड़ी थीं। बाक़ी सारी किताबें उसे एक-एक करके बेच देनी पड़ी थीं। उसे पहली दो-चार किताबें बेचते समय क्लेश भी हुआ था पर धीरे-धीरे किताबोंसे उसका मोह कम होता गया और उसे किताबें बेचते समय वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूति होती थी जो ट्रामसे उतरकर टिकिट फेंकते समय होती थी। टिकिटका वह पूरा उपयोग कर चुका होता था इसीलिए उसे फेंकनेमें किसी प्रकारकी कोई तकलीफ़ नहीं होती थी। इतना ही नहीं, बादमें तो यह अनुभूति इस क़दर बढ़ गयी थी कि जबतक वह किताबको बेच नहीं देता था, उसे लगता था कि उसके पास कोई फ़िज़ूल-सी चीज़ पड़ी है, जिसका कोई उपयोग नहीं है। इस तरह या तो कंजूस हो गया था कि एक-एक चीज़को उपयोगिताके मापदण्डसे देखने लगा था, या पहले दर्जेका उदार और दिलेर आदमी हो गया था कि उन्हीं किताबोंको वह इतनी आसानीसे बेचने लगा था जिनको किसीके छू देनेसे वह ग़ुस्सेसे लाल-पीला हो जाता था। पर अब बची हुई तीन-चार किताबोंको बेचनेकी उसकी बिलकुल इच्छा न थी। हालाँ कि मोह तो उसे बिलकुल न था, पर उन्हें बेचनेके खयालसे ही वह काँप उठता था क्योंकि वे ही तो उसके लेखक होनेका प्रमाण थीं। कुल यह वस्तुएँ—एक लँगड़ी टेबिल, उसकी आराम-कुरसी, स्याही-की दावात, क़लम और चार किताबें, उसे इस बातका एहसास नहीं भूलने देती थीं कि वह लेखक है। और अगर इनमें-से एक भी चीज़ कम हो गयी तो····

इतनी देरसे बैठे-बैठे उसे पहली बार कमरेमें ख़ूब अँधेरा महसूस हुआ। वह उठा। खिड़की खोली और फिर अपनी जगह-पर आकर बैठ गया। उसे लगा कि अगर वह खिड़की खोलनेके लिए न उठता तो उसका सारा बदन कुरसीसे चिपक जाता और उसके लिए उठ पाना भी मुश्किल हो गया होता। खिड़की खोलनेके साथ ही डूबते सूर्य-की रोशनी अन्दर आने लगी और कमरेमें थोड़ा उजेला फैल गया। उसने देखा कि ढलती साँझकी रोशनीकी एक चौकोर लम्बी पट्टी उसकी टेबिल तक आ रही है। जितनी जगह रोशनीने घेरी थी वहाँ उसे तैरते हुए कई छोटे-छोटे कीड़े दिखाई पड़ रहे थे। उसने सोचा, अँधेरेमें हरेक चीज़ अच्छी लगती है ···और उजेलेमें देखनेसे उसीमें कुलबुलाते हुए कीड़े····और उसका मुँह कड़वाहटसे भर गया। अन्दरसे माँके खाँसनेकी आवाज़ आ रही थी। उसने देखा कि अभीतक उसका काग़ज़ किसी कुँआरी लड़कीकी तरह अछूता ही पड़ा है····उसपर एक भी अक्षर नहीं लिखा गया है। पर यदि वह लिख भी ले तो दूसरी समस्या थी प्रकाशनकी। परसों वह दुपहरी-भर भटकता रहा था और कई सम्पादकोंके पास चक्कर काट आया था। भीड़से भरी ट्राममें बैठनेकी तो क्या, खड़े होनेकी भी जगह नहीं थी। लोगोंके बोझसे वह एक तरफ़को झुकी हुई थी। फिर भी वह दौड़ती हुई ट्राममें चढ़ गया था और एक हाथसे लपककर उसने ट्रामकी खिड़कीको पकड़ा था व किसी तरह एक पैरको ट्राममें अटकाकर चढ़ गया था। बार-बार वह सिहर जाता था कि अगर पैर अपने स्थानसे ज़रा भी हिला तो राम-नाम सत्य····! अपनी काल्पनिक मौतपर उसे खुद ही दुःख हो रहा था, अपने बाल खोलकर रोती हुई विधवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी दिखाई पड़ रही थी और बूढ़ी माँका झुर्रियोंसे भरा बिलखता हुआ चेहरा। पर अपनी पत्नी और माँके सौभाग्यसे वह सकुशल ·····' के सम्पादकके कार्यालय तक पहुँच गया था। सम्पादकने उसके फटे हालसे ही उसकी स्थितिका अनुमान लगा लिया इसलिए उसे बैठनेके लिए एक कुरसी तक न दी। मन मसोसकर उसे वहाँ भी खड़े रहना पड़ा। बड़ी मुश्किलसे किसी तरह वह एक गिलास पानी माँगनेका साहस कर पाया और सम्पादकने त्योरियाँ चढ़ाकर उसकी ओर देखा था कि मूत भी है पानी माँगने लायक़ ? यह एहसास होते ही उसका हाथ अपने चेहरेपर जा पहुँचा। उसने पाया कि कई दिनोंसे उसने शेव भी नहीं की है। तब आज वह पहले शेव करेगा, पड़ोसीसे कपड़े उधार लेकर पहनेगा तब कहीं जायेगा, यद्यपि अपने पड़ोसीकी उदारतामें भी उसे सन्देह था। तब उसे एक गिलास पानीके लिए किसीकी ख़ुशामद नहीं करनी पड़ेगी बल्कि किसीके स्वयं ही पानी देनेपर वह बड़े शिष्टाचारसे कहेगा—"जी, रहने दीजिए, मैं तो अभी-अभी घरसे पीकर चला हूँ।" पानीकी यादसे उसे फिर परसोंका दुर्व्यवहार याद आ गया। उसे एक गिलास पानी देते समय सम्पादकने ऐसी एहसान-भरी निगाहसे देखा था जैसे कोई भिखारीको एक पैसा देते समय उसको तरफ़ देखता है। उसने देहर रुखाईसे पूछा था—"क्या चाहिए आपको ?"

जब उसने बताया कि वह लेखक है और अपनी रचना लेकर आया है तो उसने एक बार सिरसे पैर तक उसका मुआयना किया और उस समय उसे लगा था जैसे वह हाड़-मांस-का इनसान न होकर किसी 'एक्जीबिशन' के 'शो-केस' में रखा हुआ कोई दर्शनीय पुतला हो। उसकी इच्छा हुई थी कि वह भी अपने सामने बैठे व्यक्तिकी ओर इसी तरह देखे पर उसे अपनी अवस्था याद हो आयी थी इसलिए उसने उसकी प्रत्येक बातका बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया था। पर जैसा कि उसे पहलेसे ज्ञात था सम्पादकने एक ही वाक्यमें अपना निर्णय सुना दिया था—"देखिए, हम केवल प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी ही रचनाएँ छापते हैं।"

यह उत्तर उसके लिए क़तई नया नहीं था बल्कि वह पहले भी दो-चार बार इसी बातको इन्हीं शब्दोंमें दूसरे कार्यालयोंमें सुन चुका था। उसकी इच्छा हो रही थी कि कहे, कि मैं उसी समय तुम्हारा निर्णय समझ गया था जब तुम मेरा मुआयना कर रहे थे। मेरी तरह फटेहाल व्यक्तिकी जगह कोई 'सूटेड-बूटेड' लेखक तुम्हारे सामने खड़ा होता तो तुम्हारी घिग्घी बँध जाती।

····और एक गन्दी-सी गाली उसके ओठों तक आते-आते रुक गयी थी। उसने मुँहमें जमा हो रही लारकी तरह उस गालीको भी निगल लिया था। उसने अजीब वहशी निगाहोंसे सम्पादककी ओर देखा था। उसने जवाबमें उसकी ओर तेज़ निगाहोंसे देखा था। उसकी निगाहें कह रही थीं—"तुम्हारी बातका उत्तर तुम्हें मिल गया। अब क्यों खड़े हो ? जाओ, अपना रास्ता नापो।"

वह चुपचाप सिर झुकाये निकल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको सन्तोष हुआ था यह देखकर कि सम्पादककी आँखें उसपर लगी हुई थीं। शायद उसी नमस्कार—अपनी चिरकालीन जन्मजात अधिकारको पानेके लिए। पर उसने भी बाहर निकलते-निकलते एक बार पलटकर सम्पादककी ओर देखा था और फिर ढिठाईसे बाहर हो गया।

इस बातकी याद आते ही वह जोरसे हँस पड़ा। उसकी पत्नी शायद उसकी हँसीकी आवाज़से सोते-सोते चौंककर उठ पड़ी थी। तभी जब वह उसके सामने आयी तो उसकी आँखोंमें नींदकी खुमारी छायी हुई थी। उसे उसकी आँखोंका वह अलसाया हुआ भाव बहुत अच्छा लगा। पर वह रुकी नहीं, दरवाज़ेकी चौखट तक आयी, देखा कि वह अकेला है तो बिना कुछ कहे-सुने लौट गयी।

उसका ध्यान सिगरेटकी ओर गया। उसके कोनेपर बहुत-सी राख जमा हो चुकी थी। यदि और थोड़ी देर तक उसका ध्यान न जाता तो वह उसके कपड़ोंपर गिर गयी होती। उसने सिगरेट मुँहसे निकाल ली। राखको ज़मीनपर गिरा दिया।

उसने सामने दीवारपर टँगे कैलेण्डरकी ओर देखा। मर्फ़ी रेडियोका विज्ञापन था। कैलेण्डर भी जैसे बूढ़ा हो गया था उसकी माँकी तरह। उसपर जगह-जगह सलवटें पड़ी हुई थीं। एक कोना काफ़ी अंशों तक फट गया था। किन्तु उसे इस कैलेण्डरकी ओर देखना अच्छा लगता है क्योंकि उसपर बच्चेकी तसवीर है। वह मौतका नहीं, ज़िन्दगीका पैग़ाम है। उसकी हँसी देखकर उसे अनजानी खुशी होती है कि संसारमें उसकी तरह सबके चेहरे निराश नहीं होते और उसे वह बच्चा सजीव लगने लगा। कभी-कभी उसकी इच्छा होती है कि उसका भी एक ऐसा ही प्यारा-सा बच्चा होता, जो अपनी तोतली बोलीसे अपनी नन्हीं-नन्हीं बाँहें उसके गलेमें डालकर उसकी सारी उदासी दूर करता। पर तभी वह सोचता है—तीन प्राणियोंका बोझ ढोना ही मुश्किल है, कहीं एक और आ जाये तो····

खिड़कीसे बहुत धूल अन्दर आ रही थी। वह उठा। धूप भी अब जा चुकी थी। खिड़की बन्द करते समय उसकी निगाह नीचे गयी और उसने देखा कि कई बच्चे गन्ना लेकर चूस रहे हैं। यह देखते ही उसे याद आया कि उसने सुबहसे कुछ नहीं खाया। भूखकी याद आते ही उसे बेतरह भूख लग आयी और वह कुरसीपर बैठकर दार्शनिकोंकी तरह सोच रहा था कि क्यों दुनियामें कुछ व्यक्ति इतने धनी होते हैं कि ज़रूरतसे ज़्यादा खाकर बीमार पड़ते हैं और क्यों कुछ व्यक्तियोंके पास पेट भरने लायक़ भी पैसे नहीं होते। आख़िर लोग पैसेकी इतनी क़द्र क्यों करते हैं? छातीपर लादकर तो ले नहीं जायेंगे।

उसे कलकी बात याद आ रही थी जब उसकी रचना स्वीकृत हो गयी थी, पर उसने ही उसने कहा कि मुझे कुछ रुपयोंकी सख़्त ज़रूरत है, अगर आप पेशगी दे दें तो बड़ी कृपा होगी तो उसकी रचना टेबिलपर पटक दी गयी थी। कुछ शब्द उसके कानोंमें टकराये थे कि "हमें ऐसे लोगोंकी रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं चाहिए।"

उसने यह अपमान भी कड़वी दवाकी तरह निगल लिया था और थके क़दमोंसे घरकी ओर चल पड़ा था।

उसकी आँखोंमें उन्माद छा गया था और उसने एक टाईवाले साहबको ज़ोरसे धक्का देकर गिरा दिया था। वे साहबज़ादे सड़कपर पड़े-पड़े चीखते रह गये थे और वह तेज़-तेज़ क़दमोंसे घरकी ओर चल पड़ा। ट्रामें भीड़को धक्का देकर घुस गया, किसीके पैरका अँगूठा कुचला पर उसकी ओर देखकर किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ।

घर आया तो पत्नी भी उसकी ओर देखकर सहम गयी। उसने पागलोंकी तरह उसे दोनों बाँहोंमें भर लिया था और इतनी ज़ोरसे भींचा था कि उसे लगा कि उसकी हड्डियाँ चटक जायेंगी। वह उसे न जाने किस नशेमें कन्धेसे झकझोरता जा रहा था—"तू भी मुझसे डरती है? तुझसे तो मैं कुछ नहीं माँगता।"

उसने उसे एकबारगी ही ज़ोरसे धक्का दे दिया था। वह ज़ोरसे दरवाज़ेसे जा टकरायी थी और वह उन्मादमें हँसता जा रहा था।

थोड़ी देर बाद जब उसका पागलपन उतरा तो उसने जाकर देखा कि पत्नीने माथेपर पट्टी बाँध रखी है। शायद उसके माथेपर चोट ज़्यादा आयी थी। उसने उसके पास जाकर कन्धेपर हाथ रख प्यारसे पूछा था—"चोट ज़्यादा आयी है?"

वह डरी-डरी, भयभीत आँखोंसे उसकी ओर देखती रह गयी थी। उसे डर था कहीं एक और धक्का न सहना पड़े। वह शायद सोच रही थी कि थोड़ी देर पहले जो आदमी ऐसा दुर्व्यवहार कर सकता है, वह इतनी जल्दी कैसे बदल गया? उसे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा था और उसने सिर्फ़ इतना ही कहा—"नहीं तो।"

इस बातकी यादसे उसके मनमें फिर पत्नीके प्रति सहानुभूति उपजने लगी। उसने जाकर देखा, वह बरामदेमें ज़मीनपर सो रही है। उसके माथेपर कलवाली पट्टी बँधी हुई थी। उसकी माँ भी खाँसते-खाँसते जाने कब सो गयी थी। वह पत्नीका मुरझाया हुआ चेहरा देखता रह गया। वह उसपर झुका और दो गुलाबी रंग कुछ देरके लिए एक हो गये थे। उसने सोचा कि वह जैसे भी हो, उसे खुश रखेगा।

वह फिर अपनी जगहपर बैठ गया। सिगरेटकी ओर देखा। वह पूरी जल चुकी थी। वह अन्दर जाकर टूटी हुई प्लेट ले आया। ज़मीनसे उठाकर राख और सिगरेटके टुकड़े प्लेटमें रखे।

खिड़कीके पास जाकर प्लेटको उलट दिया। सारी राख हवामें तैरती हुई नीचे गिरने लगी। कुछ उड़कर उसकी आँखोंमें पड़ रही थी। वह वापस आया। खाली प्लेटको दोनों हाथोंसे साफ़ कर उसने टेबिलपर रख दिया।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत चार वर्षोंसे प्रकाशित
हिन्दीमें, और कदाचित् अन्य भारतीय
भाषाओंमें भी, अपने प्रकारका प्रथम,
महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी प्रयास

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित

ज्ञानपीठ पत्रिका

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन
दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि-
परिचायिनी मासिकी

• •

जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो समस्त भारतीय भाषाओंके लेखक-प्रकाशक-पाठक-विक्रेता--चारोंकी गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, तथा विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिकाका सम्यक् परिचय दे, और परस्त विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके। प्रत्येक लेखक, पाठक, प्रकाशक और विक्रेताके लिए एक अनिवार्य पत्रिका।

• •

मूल्य : वार्षिक ६.००, एक प्रति ००.५५ पैसे
द्विवार्षिक ११.००

कार्यालय सम्पादकीय :
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२०

कार्यालय वितरण :
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

ज्ञानोदय : जुलाई १९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी और बहुत छोटी कविताएँ

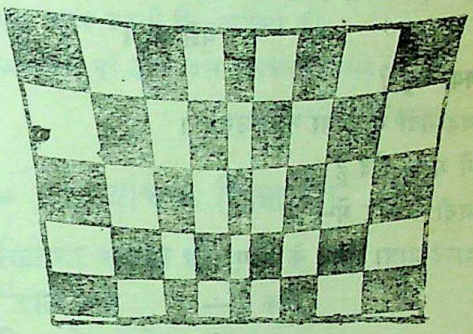

प्रेमपाल शर्मा, राधा, मलय, सुकृता अजमानी, बलराज जोशी, किरन राज, शिवप्रतापसिंह, रामनारायण नायक, सन्तोष बोथरा, प्राणेशकुमार अग्रवाल, जसवीर कोहली, शंकरराव नायडू, उषा खुराना, शैलेन्द्र 'शैल'

•

• अस्तित्व-बोध

बन्धु !
नगर को रेशम का मत कहो ।
क्योंकि नगर की सम्भ्रान्त साँसें-
कुण्ठा से विष-भरी होती हैं ।
किन्हीं उमसीले क्षणों का
फुंकारना
सिर्फ़ दर्पा-सर्पिणी के
ऊँचुल का उठना-गिरना है ।
यहाँ परिचय के कुहरिल वितान में
हमारी भुक्तभोगी व्यस्तताएँ
काली, मोटी छिपकलियों-सी
पंजे फैला रही हैं ।
ऐसे में अस्तित्व-बोध
रेशम को नहीं
रेशमी कीड़े को होता है ।
बन्धु !
नगर को रेशम का मत कहो ।

—प्रेमपाल शर्मा

• हानि-लाभ और बनियेकी दूकान

मोल-तोल, हानि-लाभ क्या है;
मैं क्या जानूँ ?
तराज़ू की डण्डी मैं क्या मारूँगी ?
जब एक ही पलड़े में रख दी सारी
सम्पदा बिना बाँट के ।
क्या कहा—नुक़सान उठाओगी;
तो ये फ़ायदा-नुक़सान मुबारक़ तुम्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने भावों की दूकान खोली है, बनिये की नहीं।

—राधा

• मैं और आकाश

एक खुले मैदान में
मैंने—
घूमते हुए आकाश को पकड़ा
और पास बहती नदी में ढकेल दिया
नदी खड़ी हो गयी और
क़ैद कर लिया उसने—
मुझे भी।
क्या कहूँ ?
वह नदी में है या नदी उसमें।
मैं मात्र क़ैद हूँ
नदी के घेरे में—
शब्द-यात्रा सुनने के लिए।
ठीक है—
आकाश ने मुझे भी पकड़ा
और यात्रा में क़ैद करने
के लिए
नदी की गोद में ठेल दिया।
मैं और आकाश : नदी के दो
बहते हुए रचे प्रकाश।

—मलय

• सेमल

पत्र-हीन डालों पर
हरी-पेंदी वाले सुर्ख़ आग्नेय कटोरों में
सफ़ेद परियाँ क़ैद हैं !

—सुकृता अजमानी

• खोये हुए के लौटने पर

दिग्भ्रान्त मित्र
बहुत दिनों बाद लौटे हो
क्या दूँ तुम्हें
मेरे पास उधारे की एक चादर है
जिसे कई क़िस्तों में ओढ़कर पड़ा रहता हूँ
चाहो तो
एक छोर ले लो
नहीं तो
लाचारी है—लाचारी है।

—बलराज जोशी

• मजबूरी

आँखें
उनमें झाँकते अनगिनत सवाल,
हिलते होंठ—
निकलते फ़िक़रे,
ज़िन्दगी इक आत्मा—
मजबूरी उसका जिस्म,
झूठ और ख्वाब उसके वस्त्र
ये सवाल—ये फ़िक़रे
झूठ और ख्वाब का परदा चीर कर
जिस्म को नंगा किये देते हैं
कि मजबूरी अपने आगे खुद मजबूर
हो जाती है।

—किरन राज

• अनूठा सच

कहा मन ने
न बनो बुद्धू
रहो गुल खिलाते
[कुछ न कुछ]
ये साहित्यिक जगत् है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ जाओगे यों ही
चिल्लाते-चिल्लाते
[हंगरी, बीटनिक, दिगम्बर की तरह]
और
रहे अगर चुप
रह जाओगे जहाँ हो
वहीं गिड़गिड़ाते,
यहाँ लिखने-लिखाने की
कोई क़ीमत नहीं होती।

—शिवप्रताप सिंह

• खण्डित विश्वास

हथेली में फैला
गरजता समुद्र
टकराती हुई किनारे पर
लहरें
बेतहाशा चीख़
एक कम्पन
कौंध
इधर-उधर खोजता
बवण्डर
हताश हाथ
उलट जाता है
स्वच्छन्द समुद्र
फैल जाता है।

—रामनारायण नायक

• एक भाव-बोध

एड़ीली पगडण्डियों में
कोई बिजलिजी चीज़ का स्पर्श
(एक अव्यक्त घृणा-बोध)
मैं
ठोकर से उसे
दूर अँधेरे में ठेल देता हूँ
सहसा
संवेदना में रँग की अनुभूति होती है
मेरी टार्च
लापरवाही से उसकी दिशा में घूम जाती है
अदम्य जिजीविषा से आपूरित दो आँखें
रिसते घाव
पीड़ा की छटपटाहट
मेरी चेतना सहसा सहम जाती है
मन के किसी सुदूर कोने से
एक लहर उठती है—करुणा की
अनजाने ही हाथ उसे सहलाने लगते हैं

—सन्तोष बोथरा

• प्रश्नवाचक जिज्ञासा

कितना अच्छा हो!
"रात जगे
दिन सो जाये
निचिड़ अँधियारी बाँहों में।
सूरज दे चाँदनी
चाँद छिटकाये गरमाई।
पतझरमें पात खिले
बालू में प्यार पले।
रुक जाये
दौड़ती हुई सरिता की धार।
सर पंक उछालता भागने लगे।"
.....
....
ऐसा लगा
शून्य में कोई टूटन टूट गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नवाचक जिज्ञासा,
बिजली के तारों पर
उलटी चिपक कर
चमगीदड़-सी टँग गयी।

—प्राणेशकुमार अग्रवाल

• शा-म

अकेली शाम
अब मेरी तरह उदास हो गयी है
यह शाम
अपनी उदासी
सुबह होने पर फेंक देगी
और मैं उसे भी
अपने भीतर जज़्ब कर लूँगी
ए उदास शाम,
तू मेरी सुबह भी ला दे
मेरा अन्तराल
जो गहरी उदासी से भर चुका है
उसे अपने साथ ले जा
ताकि मैं एक ज़िन्दा साँस ले सकूँ
मुरदा अनगिनत साँसों का यह बोझ
मुझसे उठाया नहीं जाता—
नहीं तो ए शाम,
मेरी मदद यूँ कर
कि मुझे घसीट कर
ज़िन्दगी की परछाइयों के
ढेर पर फेंक दे।

—जसवीर कोहली

• छाप

दूरी का यह छल है।
कि नदी के प्रवाह में
निकल आये मकान
स्थिर है,
सरक नहीं रहे हैं।

यह एक झूठा दावा है
कि घनत्व की प्रतिक्रिया
स्वेद गन्ध के प्रवाह में
हम बहते हुए भी
असम्पृक्त हैं।

स्थान की छाती
पैरों की रगड़ से
शक्तिशाली होती जा रही है।
बावजूद युग-शाप झेलने के
क्या हमारे पैरों की छाप रहेगी?

—शंकरराव नायडू

• पार...

यादों की जाली के पार झाँकती हूँ,
कटे हुए खेतों की मिट्टी में
धँस-धँस जाते हैं पाँव
और मैं खिलखिलाती हूँ
झील की लहरों पर चाँदी की जाजम
जिसपर सपनों की परियाँ
नृत्य करती हैं।
इंजन के धुएँ संग उड़ते आकाश में दिन,
और सब पर एक जाली
धीरे-से वर्तमान का पंजा
मुझे जगाता है,
मैं सिहरती हूँ,
सड़कें—भावहीन काली नदियाँ
और बस बहना है।

—उषा खुराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी !

दूर के दरीचों से
रोशनी की एक उँगली
आहिस्ता-से तैर गयी—
मेरे निश्चेष्ट
मन-शरीर पर···
कलर-बॉक्स के सभी रंग
एक साथ बिखर गये
चेतना की गदीली हथेलियों पर
शरीर···
रन्ध्र कूप खुल गये
मन·····
·····?
आह !
आज भी
रोशनी की कोशिश
बेकार गयी !

—शैलेन्द्र 'शैल'

The Bengal Paper Mill Co. Ltd.

Regd. Office : 14, Netaji Subhas Road,
Mill : Raniganj, West Bengal

MAKERS OF FINE QUALITY
"TIGER" BRAND
PAPER.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

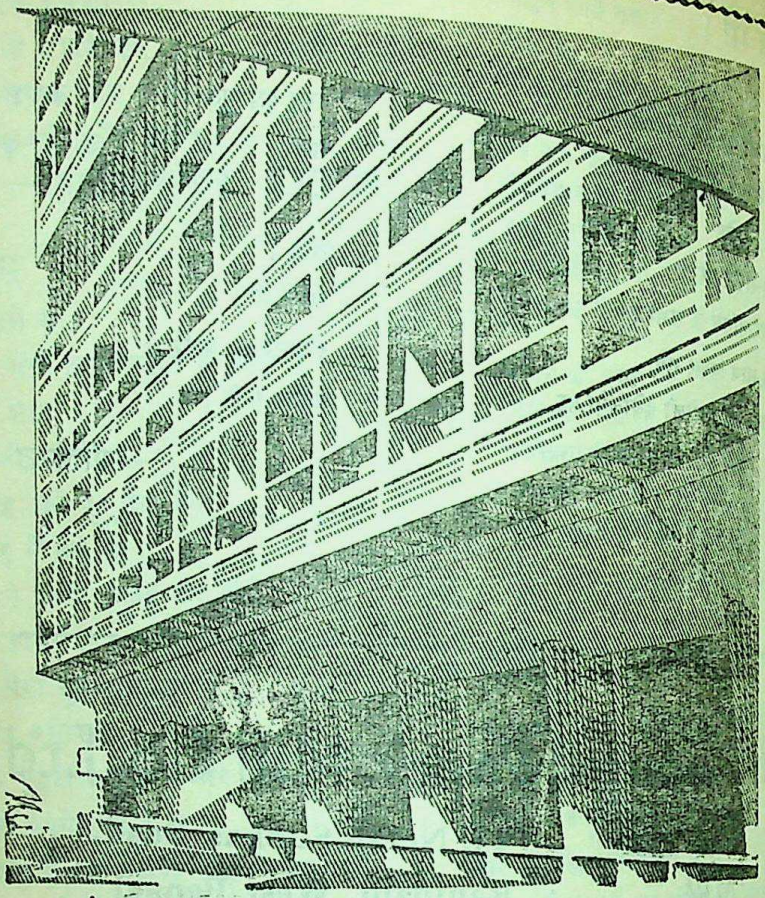

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• शुभू पटवा
• चित्रा गोयल
• लक्ष्मीशंकर प्रसाद
• अनिल प्रभा
• नफ़ीस आफ़रीदी

पाँच और कहानियाँ

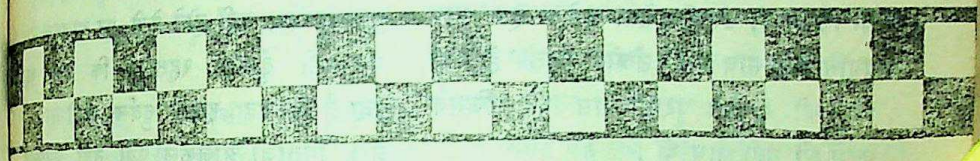

बीती बातोंके ताबूत । शुभू पटवा

मैं सोच रहा हूँ, जो कुछ है वह पूर्ववत् क्यों नहीं हो जाता। निरुपमा भाभीके आनेके बाद घरमें सबका व्यवहार बदल क्यों गया है? क्यों माँ उदास विवश-सी रहती है? क्यों पिताजी अपने कमरेमें गुमसुम-से बैठे, पता नहीं क्या सोचते रहते हैं?

रज्जू भैयाकी शादीसे पूर्व पिताजी रोज़ आपको घूमने जाया करते थे, अब क्यों नहीं जाते? मैं जब स्कूल जानेकी तैयारी करता तो माँ मुझमें कितनी दिलचस्पी दिखाया करती थी—"छोटे टिफ़िनमें एक गोल टिकिया डाल दिया है, टॉफ़ी ले लेना बेटे, छुट्टी होते ही सीधे घर आना, नहीं तो चिन्ता हो जायेगी।" इस तरहकी कितनी बातें माँ मुझे कहा करती, लेकिन अब न तो मेरे स्कूल जानेकी प्रसन्नता ही उन्हें होती है और न ही स्कूलसे घर लौटनेमें देर होनेपर खिन्नता।

थोड़े-से अन्तरालमें इतना परिवर्तन घरमें हो गया है। मुझे लगता है इस परिवर्तनकी सारी प्रतिक्रिया मुझपर इस तरह हो रही है जैसे घावको कुरेदनेके लिए डॉक्टरने नशेका इंजेक्शन लगाया हो और वह जगह संज्ञाहीन हो गयी हो।

आजकल मैं भी घरसे कटता हूँ। इसीलिए स्कूलसे आनेमें देर कर देता हूँ। माँको दोपहरका टिफ़िन न देनेको कह रखा है। मैं स्कूलमें साथियोंको दोपहरमें कुछ खाते देख-भर लेता हूँ और जब वे खा चुकते हैं तो उनके साथ पानी पी लेता हूँ। मुझे लगता है, मेरा पेट भर गया है, पर भरा हुआ पेट थोड़ी ही देरमें खाली हो जाता है और फिर क्लासमें या तो मुझे नींदकी झपकी आती है या अध्यापकको इस तरह ताकता हूँ कि वह मेरे साथ घोर अन्याय करता जा रहा है और मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश सह रहा हूँ।

रज्जू भैया क्लेक्टर हैं। निरुपमा भाभी उन्हींके पास रहती हैं। शादीके बाद भाभी व भैया दोनों माँके पास दो माह रहे थे। ये दो माह मुझे अच्छी प्रकार याद आ रहे हैं। भाभीका स्वभाव माँके स्वभावसे कम मेल इसलिए खाता था कि माँ भाभीको अपनी बहू समझती थी। इसीलिए माँ यह भी चाहती थी कि भाभी उसकी सेवा करे। हर सास युगोंसे यही साध मनमें सँजोये रखती है, माँ भी उन्हीं युगोंकी पुरानी सास थी, जिसके मनमें भी यही साध थी।

भैया माँको बड़ी मीठी बातोंसे फुसलाये रखते। यह बात मैं अब सोच रहा हूँ जब कि भैयाको गये दो साल हो गये हैं और दो सालोंमें खर्चके रूपमें मासिक औसतसे साठ रुपये माहवार भी नहीं भेजा है। जानेसे पहले भैयाने मुझे एक घड़ी और साइकिल भेजनेको कहा था, मगर वे अभीतक नहीं आयी हैं। मैं सोचता हूँ, भैयाके उन शब्दोंका अर्थ है या मेरा सोचना ही नाहक़ है।

लेकिन यह सब क्यों हुआ? क्या रज्जू भैयाका इस तरहसे बिलकुल तटस्थ रहना ठीक है? कल मैंने पिताजीके मुँहसे सुना था—"रज्जूकी माँ, रज्जूको मैंने पढ़ाना अधिक आवश्यक समझा था, न कि बैंक बैलेन्स बढ़ाना। मैंने रज्जूको अपना बैंक समझा था, मगर मैं देख रहा हूँ, मेरे ही बैंकने मेरे हस्ताक्षरोंका चेक लौटा दिया है, मेरे हस्ताक्षर पहचाननेसे इनकार कर दिया है।" और मैं सोच लेता हूँ, क्या पिताजीने मुझे भी अपना बैंक समझ रखा है या रज्जू भैयाके व्यवहारसे उन्होंने मेरे बारेमें कुछ और सोच लिया है।

एक रातको मैं पूरी रात नहीं सो पाया था। उस दिन पिताजीके लिए दोपहरको चाय नहीं बनी थी। शामका खाना इतना थोड़ा था कि माँको आधा भूखा ही सोना पड़ा। मैं देखता हूँ, माँ मेरे सामने ऐसा ज़ाहिर नहीं होने देती, पर आजकल मेरा मन यही ढूँढ़नेमें रहता है कि माँको क्या कष्ट है कि वह इतनी दुर्बल होती जा रही है। पिताजी आजकल क्यों नहीं प्रवचनोंके घूमने जाते।

उस रात शायद माँ पूरी रात नहीं सो पायी थी। इधर-उधर करवटें लेनेसे उसके शरीरकी थकी-सूखी हड्डियाँ इस तरह खिंच-किटा जातीं जैसे नीमकी फलियाँ तेज़ धूपमें सूखकर पृथ्वीपर गिर रही हों और आपसमें टकराहटसे खरखराहट पैदा होती हो।

खाटकी चरमराहटके साथ माँका थका बदन भी चरमरा जाता और मुझे रह-रहकर लगता कि कोई बेचैन है। मैं भयभीत हो जाता यह सोचकर कि माँको पता न चल जाये कि मैं जग रहा हूँ।

करवटें लेनेके साथ माँकी नाककी घुड़-सुड़ाहट इस तरह होती कि वह रो रही है और मैं सोचता, माँके आसुओंका समर्पण उनके गन्दे मैले ग़िलाफ़को मिल रहा है।

मुझे लगा कि पिताजी जग गये हैं और उसी क्षण मैंने इस तरह करवट बदल ली है कि उन्हें लगे मैं नींदमें हूँ—मुझे कुछ पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। मैंने सुना, पिताजी कह रहे थे, "बिनु-की माँ, तुम्हारे एक बेटा है रज्जू कलेक्टर, बहू है निरुपमा, लेकिन वे सब कुछ नहीं। तुम्हारी वृद्धावस्थाका उन्हें ध्यान नहीं।"

और मुझे ध्यान आया जिस दिन रज्जू भैया गये थे, माँने कहा था, "बेटा, बहूको शीघ्र ही भेज देना, मेरी उम्रका ध्यान .....।" लेकिन रज्जू भैयाकी आँखें माँके खिचड़ी बालों और झुर्रियों पड़े चेहरेपर टिक गयी थीं, जैसे माँकी बातके प्रत्युत्तरके लिए वे अवश थे।

माँने कहा, "रज्जूकी उस दिनकी चुप्पीका मतलब मैं यह ले रही थी कि वह बहूको शीघ्र ही भेज देगा, मगर मेरा वैसा सोचना अब कितना ग़लत साबित हो गया है।" वह हैरानीमें कहती और फिर नाककी सुड़सुड़ाहट बढ़ जाती।

माँकी बढ़ती सुड़सुड़ाहटको सुन मैं एक बार निश्चय करता कि माँके पास जा उसे सान्त्वना दूँ, पर फिर मेरा निश्चय बदल जाता कि अबतक जगे रहनेका पता लगनेसे माँको दुःख होगा। मैं सोया रहता बिना हिले-डुले।

मुझे फिर निरुपमा भाभीके वे शब्द याद हो आते जो जानेसे कुछ दिन पूर्व रज्जू भैया-को कहे थे—"मैं यहाँ नहीं रह सकती। यहाँ रहकर मैं अपनी उम्रको बुढ़वाना नहीं चाहती। शादीकी बन्दिशको स्वीकारा है आपके लिए। मैं मनोरंजन चाहती हूँ, गम्भीरता नहीं। मेरे लिए आप हैं मनोरंजन। मैं आपके साथ रहूँगी।"

तब मैं सोचता, सबका अपना अलग अस्तित्व है, अलग-अलग विचार-धाराएँ। भाभीका सोचना भी ग़लत नहीं है। मैं सोचता, भाभीके लिए भैया ही अधिक हैं, माँसे पिताजीसे। मगर फिर ऐसा सोचना मुझे ही निरर्थक-सा लगता और मुझे याद आ जाता कि माँने पूरी रोटी नहीं खायी थी।

मैं सोचता, क्या रज्जू भैयाको इन सब बातोंका पता है? क्या वे जानते हैं कि माँका बदन रातमें दर्दकी कीलोंसे शूलता है? क्या उन्हें महसूस होता है कि माँ आजकल आधा खाना खाकर दिन गुज़ार रही है?

मगर यह सब उन्हें कैसे ज्ञात हो सकता है। रज्जू भैयाके यहाँ सुबह-शाम दो नौकर आकर घरका कार्य कर जाते होंगे। भैया जब दफ़्तर चले जाते हैं तब पीछेसे भाभी या तो पिक्चर चली जाती होंगी या क्लब। उनका समय जिस सहजतासे कट जाता होगा उसमें वे कैसे सोच सकते हैं कि कलेक्टरकी माँ आधी भूखी ही सो जाती है।

बहुत दिनोंपर रज्जू भैयाका पत्र आया है। भैयाकी लिखावटका नहीं, भाभीका लिखा हुआ। पिताजीके नाम पत्र, सम्बोधनकी दृष्टिसे अजीब-सी संज्ञा, कण्टेण्ट इस प्रकार :—

"ज़िम्मेदारियोंके बोझसे दबकर चलना हमने नहीं सीखा। बोझसे विकास रुकता है, हम विकासकी अवरुद्धताको नहीं स्वीकार सकते। आपने जो कुछ किया उसकी ज़िम्मे-दारी हमारी नहीं है। अपनी प्राचीनताको त्याग कर आप विदेशोंकी ओर आँख उठाकर देखें, वहाँ माँ-बाप अपनी सन्तानको सुख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधाके लिए सब कुछ जुटाकर उसे अलग कर देते हैं। वे अपनी सन्तानसे कुछ अपेक्षा नहीं रखते। आपने यदि पढ़ाकर यह अपेक्षा की हो कि हम आपकी वृद्धावस्थामें सहायक बनें, तो भूल की थी। हमारी आवश्यकताएँ अपूर्ण हैं, उन्हें पूरा करना आवश्यक है। हम लोग आपको किस तरह मदद करें यह सोचा नहीं जा सकता।"

इस पत्रको पानेके बाद पिताजीका व्यवहार माँके प्रति भी क्रूर हो गया है। कल चायमें चीनी थोड़ी कम थी, लेकिन इसमें माँका क्या दोष। मुझे मालूम है, चीनी घरमें नहीं थी, माँकी चाय बिना चीनीकी थी, मगर पिताजी नाहक़ ही माँपर बिगड़ पड़े।

मैं सोच रहा हूँ, ऐसा क्यों हुआ। पिताजी मुझपर क्यों नहीं बिगड़ते। मुझे लगता है कि पिताजीको इस बातका भान ही नहीं है कि मैं भी हूँ। उस पत्रके बाद ठीकसे शक्ल भी नहीं देखी है मेरी। हाँ, मैं अवश्य उस खिड़कीके पार पिताजीको सहमा-डरता देखने-की हिम्मत कर चुका हूँ।

मुझे यह भी ज्ञात है कि पिताजीने उस पत्रका कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया है, क्योंकि माँने मुझे इन दिनों कोई पत्र नहीं पढ़ाया जो पिता-जीने कहीं लिखा हो। आजकल वे बहुत कम पत्र लिखते हैं। कहाँसे लिखें, डाक-टिकिट कहाँसे आये, जब चीनी नहीं, रोटी नहीं।

इन दिनों बाद मैंने तेज़ आवाज़में उन्हें बोलते सुना है। मैं बाहरके कमरेमें बैठा हूँ, लेकिन माँ-पिताजीको कुछ पता नहीं है। पिताजी बोल रहे हैं और उनकी आवाज़में मुझे महसूस हो रहा है—"किसीकी ज़िम्मे-दारी नहीं। कलेक्टरका बाप होते हुए भी यह दिन देखने पड़ेंगे मैंने यह नहीं सोचा था। उसने अपनी ज़िम्मेदारी नहीं समझी तो मैं ही अपना कर्त्तव्य क्यों समझने लगूँ। विनूको पढ़ानेकी ज़िम्मेदारी मुझपर ही क्यों है। वह भी जो मनमें आये करे। मैं नहीं पढ़ाऊँगा उसे।"

मुझे यह सब स्पष्ट सुनाई दे गया और मेरा चित्त डोलने-सा लगा। मुझे लगा, मेरी आँखें गीली हो गयी हैं। मैंने इससे यह निकाल लिया है कि पिताजी अब मुझे नहीं पढ़ायेंगे और घरसे कान पकड़ निकाल बाहर करेंगे, यह ख़याल करके कि मैं भी कुपुत्र हूँ। तब मैं अपने भाग्यपर रो उठूँगा।

लेकिन तुरन्त मुझे फिर शब्द सुनाई देते हैं—"रज्जूकी माँ, विनूको पढ़ाना मेरा कर्त्तव्य है। रज्जूने अपना कर्त्तव्य नहीं समझा तो मैं अपना कर्त्तव्य क्यों भूल जाऊँ। मैं नहीं पढ़ा सका तो विनू सोचेगा, मेरे माँ थी, पिता थे, कलेक्टर भाई था, मगर.....।"

और इसके बाद मुझे कुछ सुनाई नहीं दिया। लगा कि बादके शब्द गलेमें अटक गये हैं और मैं इस तरहके पितृ-स्नेहसे गद्गद वहीं बैठा रोता रहा, न मालूम कब तक।

उस दिनके बाद मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं भी कहीं काम करने लग जाऊँगा। अब मैं कालेजमें आ गया हूँ। कालेज-से छूटनेके बाद दो घण्टे कहीं भी काम कर सकता हूँ। लेकिन मैं सोचता हूँ, मुझे काम कहाँ मिलेगा, मैं किसे जानता हूँ जिससे जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहूँ। मेरा यह सोचना मुझे हताश कर देता है और मैं फिर विचलित हो उठता हूँ।

मैं देख रहा हूँ, शहरमें एक बहुत सुन्दर होटल खुला है। मैं वहाँ चला जाता हूँ, बैरोंके लिए सनदकी आवश्यकता नहीं है। मैं वहाँ रह जाता हूँ। दो घण्टे काम करता हूँ और चालीस रुपये मिल जाते हैं। सब मिलाकर मुझे पचास-पचपनकी आमदनी हो जाती है। मैं वहाँ दो सप्ताहसे काम करने लगा हूँ।

प्रारम्भमें मुझे यह काम हेय भी लगा और पहिचाननेवालोंके देख लेनेका भय भी। मगर मेरा मन अब निर्भय हो गया है।

मेरे इस कार्यका पिताजीको पता नहीं है। मैं रात गये लौटता हूँ, तबतक माँको नींद आ जाती है। पिताजी भी शायद कहीं घण्टे-दो घण्टे काम करने लग गये हैं। मैं देख रहा हूँ, उनके चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ी हैं। पहले इनका यही चेहरा ओजस्वितासे दमकता रहता था।

मुझे यह सब अत्यन्त पीड़ित किये हुए है। मैं चाहता हूँ, पिताजी कहीं काम न करें। मुझे उस होटलमें दो माह हो गये हैं। मैनेजरने केवल टेबिल-आर्डर लाकर बैरेको रिक्वायरमेण्ट्स पूरी करनेके आदेश देनेका कार्य सौंप दिया है, यानी मेरी पद-वृद्धि हो गयी है। मैं पढ़ा-लिखा हूँ अतः यह काम मुझे सौंपा है। तनख्वाह भी सौ रुपये कर दी है। अब मैं पिताजीके दिमाग़में भरी ग़लत-फ़हमी दूर कर देना चाहता हूँ।

मैं अबतक पढ़ता हूँ—पिताजीको सिर्फ़ इतना ही मालूम है। हाँ, मैंने कालेजके लिए फ़ीस नहीं माँगी है, पुस्तकोंके लिए पैसे भी नहीं लिये। इससे पिताजीको मुझपर शक हो सकता है, मगर यह ज़ाहिर नहीं किया है। कारण इससे मैं यही ले सकता हूँ कि उन्होंने सोचा होगा, पूछनेसे मैं पैसे माँग लेता तो वे कैसे दे पाते। जो हो, पिताजी आजकल मुझसे कटते रहते हैं। मुझे भी उनके सामने होनेमें थोड़ा भय महसूस होता है, मगर इसका कारण मैं किस बातसे जोड़ूँ, कुछ पता नहीं।

इस बीच रज्जू भैयाका एक मनीआर्डर आया था सौ रुपयेका। उसे पिताजीने वापस भिजवा दिया है, यह कहकर कि 'उनकी आवश्यकताएँ अपूर्ण न रह जायें, उनका अस्तित्व किसी चोटसे खण्डित न हो जाये।'

पिताजी अगर वे सौ रुपये रख लेते तो माँके पहननेकी साड़ी आ सकती थी। मैं देख रहा हूँ, माँ अभीतक उसी साड़ीसे काम चला रही है जिसपर कितने ही टाँके लग गये हैं।

कल मैं यूँ ही स्टोर-घरमें चला गया, जहाँ माँ खानेकी चीजें जमा करती है। मैंने देखा, सब बरतन खाली पड़े हैं और एकमें पाव-आध सेर गेहूँ पड़ा है। मुझे लगा कि गेहूँके दाने मेरी आँखोंमें गड़ रहे हैं और मैं विवश अपनी आँखें ज़ोरसे मसल देता हूँ। मैं सोच रहा हूँ, गेहूँ इतने ही क्यों हैं, गेहूँकी कोठी भरी हुई क्यों नहीं है और मैं पिताजीके मनीआर्डर वापस भेजनेपर झुँझला उठता हूँ, पर मुझे भाभीके वे शब्द याद आ जाते हैं जो पत्रमें लिखे थे।

मुझे महसूस हो रहा है, मेरे गालोंपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानीकी दो धाराएँ अपना स्थान बना चुकी हैं और मेरे हाथ उन धाराओंके अस्तित्वको समाप्त करनेको गालोंपर रगड़ खाने लगते हैं।

मुझे तीन महीने हो गये हैं उस होटलमें काम करते हुए। मेरे पास एक सौ पचास रुपये जमा हो गये हैं। मैं सोच रहा हूँ कि ये रुपये पिताजीको दे दूँ और यह ज़ाहिर कर दूँ कि मैं कहीं काम करने लगा हूँ।

पर मुझे फिर भय दबा देता है कि मेरे बैरेका कार्य करनेकी बातसे पिताजीको चोट लगेगी। मगर मैं फिर सोचता हूँ कि इसका प्रतिकार भी तो है मेरे पास। रज्जू भैयाको उन्होंने छूट दे दी है और कह दिया है कि वह अपनी सुख-सुविधाके लिए सब कुछ करे तो फिर मैं क्यों वंचित रहूँ, अपनी स्वेच्छाएँ भी क्यों न अपने अनुकूल बनाऊँ।

मैं पिताजीके समक्ष हो जाता हूँ। डेढ़ सौ रुपये उनकी हथेलीपर रख देता हूँ। वे मेरी ओर अजनबीकी-सी निगाहोंसे देख रहे हैं। मैं कह रहा हूँ, "मैंने चोरी नहीं की है। नौकरी की है, यह मेरी तनख्वाह।"

पिताजी कुछ बोलना चाहते हैं, मगर मुँह खुल नहीं रहा है। मैं सामनेसे हट जाता हूँ।

■

धुँधले परदे / *चित्रा गोयल*

यूँ तो बैठे-बैठे कल्पना बना-बनाकर हँसना पागलपनका चिह्न है, परन्तु अब जब मैं अतीतकी स्मृतियाँ समेट रहा हूँ, ऐसा करने-पर विवश हूँ। इतना अधिक हँस रहा हूँ कि दोपहरका सन्नाटा टूट गया है। दुःखी भी हो रहा हूँ, आवेगमें रोना चाहता हूँ किन्तु अपने आँसू यह सोचकर रोक लेता हूँ कि पुरुष रोता नहीं, पौरुषका प्रयोग करता है। मैं इन सबसे परे कुछ भी नहीं कर पाता। मुझे लगता है, मेरे अन्तरका सारा रक्त ठण्डा होकर जमता जा रहा है।

पिताजीने बचपनसे ही मुझे सिखाया है कि मैं अपने साथी और पड़ोसी धनंजयसे न लड़ूँ, जब कि इसके विपरीत धनंजयने अपने पितासे केवल लड़नेकी शिक्षा पायी है। बहुत ही विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती थी जब मैं धनंजयके हाथों चुपचाप पिटकर सन्तोषपूर्वक कहता, "मैंने लड़ाई नहीं की। पिताजीका आज्ञापालन किया है।" मेरे इस कृत्यपर भी मेरी भर्त्सना होती थी और फिर पिताजीसे डाँट खाकर मैं लड़ाई, शान्ति और कायरता-की बातें सोचता।

मेरे पिता और धनंजयके पिता सिंह साहब दोनों ही शिकारके शौक़ीन थे। उनके पास भी हमारी ही तरह कई अँगरेज़ी व शिकारी कुत्ते थे। 'ऊपरसे अच्छे दिखनेवाले सिंह साहब अन्दरसे बहुत बुरे हैं। जब-तब मुझे बेमतलब डाँट दिया करते हैं।'—मेरा बाल-मस्तिष्क सोचता। कभी अच्छा और कभी बुरा बननेका दिखावा मुझे गोरखधन्धा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा लगता था, मैं कुछ भी समझ नहीं पाता था, परन्तु अब, जब कि मैं वयस्क हो चला हूँ, सब कुछ सोचने-समझनेकी स्थितिमें हूँ। बचपनसे ही उनकी अपने परिवारके प्रति दुर्भावना मुझे अच्छी न लगती थी और जिस दिन मुझपर यह रहस्योद्घाटन हुआ कि सिंह साहबपर पिताजीके बहुत उपकार व ऋण हैं तो मेरा चित्त खिन्न हो गया। पराये तक अपने हो जाते हैं, यहाँ अपने पराये हुए जा रहे हैं। हाई स्कूलमें पढ़े विरोधाभास अलंकार-की याद हो आयी मुझे और बरबस हँसी निकल गयी मुखसे।

एक दिन एकाएक ही सिंह साहबके कुत्ते महोदय 'वुल्फ़' मेरे कुत्ते 'शेरा'से लड़ पड़े। उसके तुरन्त बाद मैंने देखा कि दादीजी खड़बड़ाती घूम रही थीं—"लहू बहा-बहाकर खोंचा तैयार किया था मैंने। सत्यानाश हो इस कुत्तेका, मरा घमाचौकड़ीमें सारा बाग़ नाश कर गया"

दादीकी बड़बड़ाहटका मैं पूरा मज़ा भी न ले पाया था कि सिंह साहब भौंहोंपर बल डाले, खँखारते, हमारे अहातेमें प्रविष्ट हुए। आते ही गर्जनाके स्वरमें आरोप लगाया, "देखिए मिस्टर, अपने कुत्तेको रोकिए वरना गोली मार दूँगा उसे। वुल्फ़को तो काटा ही है, हमारा बाग़ भी उजाड़ दिया।"

पिताजी शान्तिसे बात सुनते रहे, फिर उनका स्वर बुलन्द हुआ, "मगर मिस्टर सिंह, आपका वुल्फ़ खुद यहाँ आया, माताजीका बाग़ खराब किया और फिर शेरासे लड़ा। मैं तो स्वयं आपके पास शिकायत लेकर आ रहा था, भला आपने क्यों कष्ट किया?"

सिंह साहबके तेवर और भी चढ़ गये। बकके-झकते वे चले गये। मैं बाल-सुलभ चंचलतासे चिल्लाकर बोला—"अभी तो वुल्फ़को ही काटा है, एक दिन आपको भी काट खायेगा!" और फिर तुरन्त अपनी तुकबन्दी पेश कर दी :

"आया था एक बक्की।
चल दिया पीस के चक्की॥"

लगभग एक महीने तक यही अवस्था रही तो एक दिन मेरे चिढ़ानेपर उन्होंने मेरे कान उमेठकर थप्पड़ लगाया और गरजे, "ख़बरदार, जो अब मुँह खोला तो ज़बान खींच लूँगा। वही हाल बनाऊँगा जो वुल्फ़ने शेराका किया है।"

मैं कब रुकनेवाला था, चटसे बोल पड़ा, "लेकिन वुल्फ़ तो शेरासे हारकर गया था।"

उनकी झुँझलाहट बढ़ गयी, तड़ाकसे एक और थप्पड़ लगा। मौलवी साहब, जो ऊपरसे यह तमाशा देख रहे थे, बोले, "ठीक है मियाँ! बेहद बदतमीज़ लड़का है, ठुकाई हो जाये तभी ठीक होगा।"

मौलवीजीकी आवाज़ सुनकर सोचा था कि डूबतेको तिनकेका सहारा मिला लेकिन यहाँ तो भँवर सामने आ गयी। असहाय हो मैंने ज़ोर-ज़ोरसे रोना शुरू कर दिया। सिंह साहब ज़्यादा खीज गये। शायद मुझे कुछ और इनाम मिलता तभी पिछली गलीमें रहने-वाले मेहरा दादा, बन्सल भाई साहब और जोसेफ़ अंकल उधर आ निकले। बन्सल भाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तमाशा देख रहे थे। सिंह साहब के जिगरी दोस्त होते हुए भी विरोध कर बैठे, "सिंह साहब, यह ग़लत है, ऐसा मत करिए।"

मेहरा दादा, जो सिंह साहबको बुरा आदमी मानते हैं, बोले, "मि० सिंह, अगर आप ऐसे ही बेक़सूर बालकोंको मारते रहे तो शायद मेरी फ़ैमिली आपके घर आना-जाना बन्द कर दे।"

सिंह साहब इस तीव्र आक्षेपसे तिलमिलाकर बोले, "वाह साहब, आप भी क्या ख़ूब हैं? आव देखा न ताव, कुछ भी कह दिया मुँह उठाके। देखिए तो सही, यह ज़रा-सा कीड़ा मुझे गाली देकर कहता है 'चल दिया पीसके चक्की'। हम क्यों जेल जाकर चक्की पीसें? ये जाये और इसका……।"

"…बाप जाये! क्यों सिंह साहब, रुक क्यों गये?" कहते हुए पिताजी एकाएक ही आ गये। मैं दौड़कर उनकी टाँगोंसे लिपट गया। जोसेफ़ अंकल, जो सिंह साहबसे अधिक मतलब नहीं रखते, उनकी इस अन्तिम बातको इस कानसे उस कान न कर पाये। झटसे उबल पड़े—"क्या कहते हाँय! आप लोग छोटा-छोटा बातपर ऐसे लड़ता है जैसे लेडिज़ लड़ा करता है। लेंग्वेज! ओह इतना वल्गर कि हम नहीं सहने सकता।"

झगड़ा आगे भी बढ़ेगा, ऐसा उन चारों महानुभावोंकी मुखाकृतिसे स्पष्ट था, परन्तु यह सब पिताजीको मंजूर न था, तुरन्त मामला रफ़ा-दफ़ा किया, "छोड़िए भी। ठीक ही तो है, एक छोटे-से बच्चेके ऊपर लड़ना ठीक नहीं। चलिए, एक-एक कप चाय हो जाये।"

मजमा बिखर गया। मैंने कनखियोंसे ताका—मौलवीजीके पट पहले ही बन्द हो चुके थे। मैं बाग़में आकर बैठ गया और सोचने लगा—"क्या चक्की केवल जेलमें पीसी जाती है, और अगर हाँ, तो इस बातसे सिंह साहब इतना क्यों चिढ़ते हैं?" मैं और अधिक नहीं सोच सकता था क्योंकि इन समस्याओंके सुलझाना मेरी सामर्थ्यके परे था।

यही सब देखते-समझते मैं युवा होता गया और पिताजी वृद्ध। यह सब झगड़े कभी बढ़ते, कभी धीरे चलते, लेकिन खत्म न हुए। इतना सब होनेपर भी पिताजीकी तटस्थता मुझे हैरान किये थी। दबे शब्दोंमें कभी-कभी मैं विरोध प्रकट करता और उत्तेजित भी हो जाता। एक बार ऐसा ही हुआ। मैंने कहा, "पिताजी, अब आप ही बताइए, मैं क्या करूँ? अब नहीं सह सकता यह अत्याचार। सिंह साहब बेमतलब हमसे लड़ाई ठानते हैं। सोचते हैं। आखिर क्यों वह 'शेरा' और 'बिजली'से लड़नेके लिए 'बुल्फ़'को उकसाते हैं? जब शेरा हार जाता है, चोट खाता है तो घनंजयको ले लड़ने आ बैठते हैं। यह सब देख-देखकर मेरा रक्त खौल उठता है। यह सरासर कायरता है, पिताजी! वो हमें कुछ कहें, हमारी हानि करें और हम शान्तिके मौन-व्रतका पालन करते रहें!"…अच्छा अब रहने दीजिए, मैं अभी उनका बँगला तहस-नहस करे देता हूँ। नहीं तो"…तो"…" इतने जनासे मेरा दम फूल गया और शब्द खो गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताजीने मेरे कन्धे थपथपाते हुए कहा, "मेरे अच्छे बेटे! तुम निश्चय ही अपनी रक्षा कर सकते हो, परन्तु याद रखो, अकारण ही किसीसे लड़ना ठीक नहीं। वो हमारा क्या बिगाड़ रहे हैं। ऐसा करके और देखो, हम नहीं लड़े तभी तो मेहरा, बन्सल, जोसेफ़ और मौलवीजीसे हमारी मित्रता है, अन्यथा···· ।"

मैं अपनेपर नियंत्रण न रख सका और बात काटकर बोला, "बस करिए पिताजी, मौलवी साहबकी आपने एक ही कही। इनका बस चले तो हमें कच्चा ही चबा जायें। जायदाद-पर हक़ तो इनका ही है। विजातीय विवाह करके अलग हो गये तो क्या, हैं तो आपके ही भाई। देख लीजिएगा, उनकी नज़र आपकी जायदादपर है।"

"परन्तु प्यारे बेटे, जायदाद क़ानूनन तुम्हारी होगी। मैं देखता हूँ, जबसे तुम्हें पता चला है, मौलवी मेरा भाई है, तुम बात-बातमें उनके प्रति उत्तेजित हो बैठते हो। यह ठीक नहीं। मैंने तुम्हारा नाम विनीत इसलिए रखा है कि तुम विनीत रहो। समझे।" और पिताजी टहलते हुए बाहर चले गये।

मैं शान्त न हो सका। जानता था, पिता-जीकी सम्पत्तिका एकमात्र उत्तराधिकारी मैं हूँ। मुझे हटाकर सम्पत्ति हड़पना मौलवी चाचाके लिए कठिन नहीं। सिंह साहब हमारे वैभवसे जलते हैं। लोभवश मौलवी चाचाकी पीठ बने हुए हैं। ओह, कितनी भयानक बात है! मित्रता और प्रेमका नाश हो गया है। मौलवी साहबका असली रूप भी प्रकट हो जायेगा, सब जान जायेंगे—ऐसा मैं सोचता।

मैं अनुभव तो सब करता था, परन्तु उत्तरदायित्वका अहसास मुझे कभी न हुआ था। उस दिन समस्त दैवी विपत्तियाँ घहरा-कर मुझपर गिर पड़ीं, जब मैंने अपने ऊपरसे पिताजीका साया उठते देखा। दारुण दुःखने मेरे हृदयको निचोड़कर रख दिया था। मुझे लगा कि एकाएक मैं बड़ा हो गया हूँ, बहुत बड़ा। मुझपर बहुत सारी जिम्मेदारियाँ आ पड़ी हैं जिनके नीचे मैं दबा जा रहा हूँ।

पिताजीके देहावसानके पश्चात् सब कुछ ऐसे शान्त हो गया जैसे किसी इमारतके ढहनेके भयंकर कोलाहलके बाद मातमकी निस्तब्धता छा जाती है। यह निस्तब्धता मुझे स्तब्ध कर गयी जब इसने अपना मौन तोड़ा। पिताजीकी वसीयत उनके उत्तराधिकारीके, यानी मेरे नाम थी, परन्तु मैं नाबालिग़ था अतः मौलवी चाचा-द्वारा सम्पत्तिपर अपने अधिकारका मुक़दमा अदालतमें दायर किया जा चुका था।

यद्यपि मौलवी चाचाका अधिकार था उस सम्पत्तिपर क्योंकि अन्तर्जातीय विवाह करनेसे उन्हें वैधानिक रूपसे इस अधिकारसे च्युत नहीं किया गया था, तथापि वसीयतमें उनका नाम न था। मैं उनकी हर चालके प्रति सतर्क था। अतः मैं भी मुक़दमा लड़नेके लिए अब तैयार था। मेरे उबलते ख़ूनको शान्त वचनोंसे ठण्डा करनेवाला अब न रहा, मैं स्वतन्त्र था। अतः वो जो भी हानि करना चाहते, मैं करने नहीं देता था और बदलेमें जवाब ज़रूर दे देता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे प्रत्याघातोंसे मौलवी तंग आ गये। पर सिंह साहब तो बौरा गये। उनका उन्मत्त व्यवहार देख मैं कहता, "बुड्ढा सठिया गया है!" और फिर अपने व्यंग्यपर ही हँस पड़ता।

नीचेकी अदालतोंपर मौलवी चाचा-द्वारा इतने नोटोंकी वर्षा हुई कि फ़ैसला मेरे विरुद्ध रहा। मैंने भी कमर कस ली कि चाचाको सबक़ सिखाकर रहूँगा। मैं अपील करता गया। पड़ोसियोंने, विशेषकर मेहरा दादा, बन्सल भाई, जोसेफ़ अंकलने थोड़ा-बहुत समझाया, परन्तु न मैं माना, न चाचा माने। सिंह साहब मेरा साहस और पड़ोसियोंका अपने प्रति रुख देख-कर चुप्पी लगा गये। धनंजयने सोचा, क्यों न निःसन्तान मौलवीपर मक्खन पोतकर उसकी जायदाद हथिया ली जाये? रहा मैं, मैं अपनी ज़िदपर अड़ा रहा।

अब, मैं वयस्क हो गया हूँ। अन्यायके विरुद्ध मेरा यह संघर्ष समाप्त होनेवाला है क्योंकि उच्चतम न्यायालय कल अपना निर्णय सुना देगा। निर्णय मेरे पक्षमें होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं वरन् विश्वास है, परन्तु मानवके प्रति मेरा विश्वास समाप्तप्राय है। मैंने देख लिया कि यदि मैं पिताजीकी नीति-नीतिपर चलकर अब मुझे रोनेकी आवश्यक-कता नहीं, मैंने पौरुष-बलको अपना लिया है।

इसी कारण आज न जाने क्यों, अपना सम्पूर्ण इतिहास दोहरानेके बाद मेरे मस्तिष्क-में विचित्र रूपक, उपमाएँ, कल्पनाएँ आ रही हैं। मैं मुसकरा रहा हूँ। सुबहका समाचार-पत्र पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखोंके सम्मुख चित्र-सा खिचता जा रहा है जिसमें अपनेको मैं भारत-की स्थितिमें देखता हूँ, पिताजीको नेहरूजी मानकर दादीजीको भारतमाता मान लेता हूँ। मौलवीजीकी स्थिति ठीक पाकिस्तानकी भाँति है और सिंह साहब चीनका पार्ट अदा कर रहे हैं। मेहरा दादा अपने विचारोंसे अमरीका लगते हैं। बन्सल भाईकी सदैवकी बातोंने उन्हें रूस माननेपर बाध्य कर दिया है और जोसेफ़ अंकलकी स्थिति ठीक ब्रिटेनकी भाँति मालूम होती है। अरे! मेरी कल्पना आजके भारतकी स्थितिका कितना स्पष्ट चित्रण है और इन्हीं उपमाओं व रूपकों को लेकर मैं फिर अपना इतिहास दोहरा रहा हूँ और मेरे मुखसे बेसाख्ता हँसी निकल पड़ी है कि प्रकृतिका लहलहाता मौन टूट गया है। भविष्यपर छाये परदे धुँधले होते जा रहे हैं।

■

अलग-अलग चेहरे / *लक्ष्मीशंकर प्रसाद*

अनिल बाबूकी समझमें नहीं आ रहा था कि बेलाका कौन-सा चेहरा असली है।

निरीह-आश्रयहीन बेला! विवशताके मोती लुटाती बेला!

दुर्गापूजाके अवसरपर हँसती हुई, हथेली फैलाकर इनाम माँगनेवाली बेला! रिक्शेसे उतरती, तो चवन्नी-अठन्नीकी रेजगारी बिखेर-वाली बेला! किसी कैलेण्डरमें नृत्यकी मुद्रामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूमती हुई मुखर आँखोंवाली। देखते ही ऐसा लगे मानो आँखें हृदयपर ठहर गयी हों।

ओह! अनिल बाबू इस बेलाके लिए पागल हो उठे थे। दहलीजसे बाहर निकलते-निकलते वह घबरा उठे। उनके क़दम बेलाके आत्मविश्वाससे लड़खड़ा गये थे। उन्होंने उसे पूछा था, "क्या तुम सच कह रही हो?"

"हाँ, मैं सच कह रही हूँ। क्यों, मुझे तुम्हारा क्या डर है? तुम्हारी ब्याहता हूँ? क्यों?"

अनिल बाबूके मुखपर मानो किसीने चपत मार दी हो—"जानती हो, मैंने अपना तुमपर सब कुछ लुटा दिया है।"

उसने बड़ी ऐंठसे उत्तर दिया था—"हाँ, जानती हूँ। तुम बेवकूफ़ थे। मैंने तुम्हारी बेवकूफ़ीसे लाभ उठाया है। आजकी दुनियामें जो यह नहीं करना जानता, उसे जीनेका कोई अधिकार नहीं।"

अनिल बाबूके क्रोधकी सीमा नहीं रही। उन्होंने कसके एक थप्पड़ उसे रसीद कर दिया—"तुम वेश्या हो!"

बेला इस अपमानसे तिलमिला गयी—"हाँ मैं वेश्या हूँ! तुम मेरी बेइज़्ज़ती नहीं कर सकते। ज़ुबान खिंचवा लूँगी। निकलो मेरे घरसे।"

इसके साथ ही बेलाने उन्हें एक हलका-सा धक्का देकर घरसे बाहर कर दिया। अनिल बाबू दाँत पीसते रहे।

बेला भीतरसे ही चिल्लायी—"बदमाश कहींका। ज़रा-सी लिफ़्ट क्या दे दी, अपनेको पति समझने लगा है। यह आँखें अपने बच्चों-की माँको दिखला।"

अनिल बाबूके शरीरसे पसीना छूटने लगा था। उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह क़दम उठा सकें। वह वहीं दरवाज़ेके सामने बैठ गये।

तभी भीतरसे क़हक़होंकी आवाज़ आने लगी। वे क़हक़हे उनके शरीरपर पत्थरोंकी बौछार करने लगे। ओह! कितना बड़ा धोखा हुआ अनिल बाबूके साथ।

नुक्कड़वाले निमाई बाबूने मना किया था। तब अनिलको यह अपना अपमान लगा था। और अब अनिल बाबूकी समझमें नहीं आ रहा था कि बेलाका कौन-सा चेहरा असली है और कौन-सा नक़ली—वही बेला जो एक दिन उनसे आश्रय माँगने आयी थी, सुन्दर-सी सलोनी-सी बेला, जिसका अवयव निरन्तर नृत्य करनेके कारण सुडौल, साँचेमें गढ़े हुए लगते थे, बात करती तो साथमें उसकी आँखें भी बोलती थीं, हँसती तो उसके गालोंमें गड्ढे पड़ जाते थे, रूप और यौवनके प्रशंसकोंकी एक भीड़ उसके इर्द-गिर्द जमा रहती थी, वह सबके बीच रहकर भी कुछ इस तरह रहती मानो कीचड़में कमल खिला हुआ हो....

बेलाको आभूषणों और साड़ियोंका बहुत शौक़ था। अनिल उसकी कलात्मक रुचिकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके थे।

अपने मुहल्लेमें हो रहे दुर्गापूजा-महोत्सव-में उन्होंने एक बार बेलाको कीर्त्तनके लिए बुलवाया था। बेलाका नाम किसी बड़े आदमीने बतलाया था। उसने बेलासे गाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुना था।

बेलाके साथ उसकी बहनें भी थीं और माँ भी। माँ करताल बजाती और बेला नाचती। बहनें समूहगानमें उसका साथ देतीं। पूरी मण्डली खूब रंग जमाती। बेला-की माँ अपनी कीर्त्तन करनेवाली बेटीसे अन्य सम्भावनाओंकी अपेक्षा रखतीं। वह सोचतीं, उनकी बेटी रूप और यौवनके बाजारमें खूब चल सकती है। बस कोई ग्राहक होना चाहिए। और बेटीके प्रशंसकोंको इस बातसे अवगत करवा देतीं कि उनकी बेटी मंजीरे और घुँघरूकी तालपर राधा बनकर नाच ही नहीं सकती, कुछ भी कर सकती है। उसमें मीराकी लगन है तो राधा-जैसी चपलता भी। सबसे बढ़कर उसमें भारतीय सौन्दर्य-भावना मुखरित है। वह अजन्ता और एलोराकी प्रस्तर मूर्त्तियों-जैसी लगती है।

बेचारी बेलाका परिवेश ऐसा था कि वहाँ भजनोंके बोलके भी अश्लील अर्थ लगाये जाते थे।

जिस गलीमें वह रहती थी, वहाँके लोग अकसर, एक वक़्त खाकर चुप रहते थे। वह बात-बातपर एक दूसरेसे लड़ पड़ते थे। गलीमें ही एक निमाई बाबू हैं, जिन्होंने देशी शराब-की एक ग़ैर-क़ानूनी दूकान खोल रखी है। उसी दूकानपर जमघट लगता है। मिट्टीके कुल्हड़में शराब मिलती है। कुछ लोग पीकर एक-दूसरेपर छींटाकशी करते हैं। अकसर इसी दूकानपर बेबात झगड़ा हो जाया करता है। दूकानके सामने चार घर छोड़कर बेलाका घर है।

बेलाकी माँ पहले तो घरका किराया दिया करती थी, पर अब कई महीनोंसे उसने किराया देना बन्द कर दिया है। मकान-मालिककी लड़कियाँ बेलासे गाना सीखती हैं और बेलाकी माँ बड़ी चालाकीसे मकानके किरायेको गानेकी फ़ीसमें बराबर काट लेती हैं।

....अनिल बाबू झुँझला रहे थे। उन्होंने बेलाके लिए क्या नहीं किया। वह सोच रहे थे कि उनकी पत्नी सच ही कहती है। यह जीवनका कितना बड़ा सत्य है कि सात भाँवरें ली नहीं कि स्त्री पुरुषकी ग़ुलाम बन जाती है और यदि सात भाँवरें नहीं ली जायें तो पुरुष स्त्रीके प्रेमका ग़ुलाम बना रहता है।

अनिल बाबू भी तो बेलाके ग़ुलाम बने रहे थे। ससुरकी बीमारीकी ख़बर पाकर उन्होंने पत्नीको भेज दिया था, स्वयं नहीं गये थे। सालेका पत्र आया था कि वह यदि उनकी थोड़ी-सी सहायता कर दें तो वह उनका आभार मानेंगे। पर बेलाका जादू ऐसा था कि वह सिवाय बेलाके और कुछ सोच ही नहीं पाते थे। ससुरकी बीमारीमें रुपया न भेजकर उन्होंने बेलापर खर्च किया था। लड़कीके लिए सोनेके टाप्स बनाकर लाये थे। रास्तेमें बेलाके घरसे होकर गुज़रे तो बेलाने वह टाप्स हथिया लिया था। उसका अनिल बाबूको उस समय भी बहुत दुःख हुआ था और आज भी हो रहा था।

बेलाकी माँ भी चुप रहीं। वह दिन भूल गयी थीं, जब वह अनिल बाबूका मुँह जोहती थीं। बेलाकी माँको इसी बातका दुःख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि सब लोग उसकी सुन्दरी नवेली लड़कीको केवल कीर्त्तन करनेवाली समझते थे। किसी गुणग्राहीकी दृष्टि उसकी अन्य सम्भावनाओंपर न पड़ती थी। जब कि वह कीर्त्तन भी कुछ ऐसा करती, मानो मुजरा कर रही हो। उसके हाव-भावमें शृंगार-रस प्रचुर मात्रामें रहता, भक्ति-भावनाका कहीं भी पता नहीं रहता था।

अनिल बाबू बेलाके घरके मोड़पर पहुँच चुके थे। यहीं तो दुर्गापूजाका पण्डाल लगा था। पूजा समाप्त होनेपर उन्होंने बेला और उसकी मण्डलीको जलपान करवाया था।

बेलाको एक प्रकारके 'सन्देश' बहुत पसन्द आये थे। वह वही खाती चली गयी। अपने हिस्सेसे उसने कहीं अधिक खा लिया था, फिर मुसकराकर अनिल बाबूसे बोली थी—"अनिल बाबू, मैं शायद अपने हिस्सेके साथ-साथ कई औरोंके हिस्सेकी भी खा गयी हूँ। आपको असुविधा तो नहीं होगी।"

अनिल बाबू उसकी इस सादगीपर मुग्ध हो गये थे।

जब उन्होंने मण्डलीकी फ़ीस दी तो बेलाने ओठोंसे तथा आँखोंसे मुसकराते हुए कहा, "मेरी फ़ीस क्या हुई बाबू ?"

अनिल बाबूके हृदयमें बात कहीं चुभ गयी। वह घरके भीतर जाकर एक जरीदार साड़ी उठाकर ले आये। यह साड़ी उन्होंने बेलाको दे दी।

केवल बेलाकी माँकी अनुभवी आँखोंने जान लिया कि अनिल दिलका कच्चा है और किसी भी कुशल लड़कीके हाथका खिलौना बन सकता है। फिर क्या था, आये दिन अनिल बाबूका खाना-पीना वहीं होता। साथ ही थोड़ा नाच-गाना भी होता। बेलाकी माँ चुपकेसे, तरीक़ेसे कोई-न-कोई माँग भी पेश कर देतीं। अनिल बाबू दूसरे दिन वह माँग पूरी कर देते।

अब अनिल बाबूको और कुछ नहीं भाता था। वह जाते तो उन्हें अपनी पत्नी सीधी-सादी, सूती धोतीमें काम करती हुई नज़र आती। यह दृश्य आँखोंको अधिक प्रिय नहीं लगता था। वह कामसे लौटते तो सीधे बेला-के यहाँ जाते, वहीं उनका भोजन आदि होता, फिर रात्रिके ग्यारह-बारह बजे घर लौटते थे।

पत्नीने कई बार पूछना चाहा, परन्तु उन्होंने कभी उत्तर ही नहीं दिया। वे पत्नी और बच्चोंसे दूर होते गये। उधर बेला और उसकी माँ ढेर-सारा रुपया इनसे वसूल करती रहीं।

बेलाने अपना स्तर बहुत ऊँचे दर्जेका कर लिया था। हैण्डलूमके परदे उसकी खिड़कियों और दरवाज़ोंपर लग गये थे। उसकी अपनी वेश-भूषामें भी परिवर्तन आ गया था। वह कम भड़कीले परन्तु अधिक क़ीमती वस्त्र पहनती।

अनिल बाबू फ़ीस देते थे, इसलिए वह एक अच्छे उस्तादसे संगीत सीखने लगी थी। अब वह गाती तो भजन या कीर्त्तनसे मुजरेका-सा रस नहीं आता था। गानेके लिए आज-कल उसे बड़े-बड़े और ऊँचे घरोंसे निमन्त्रण मिलता। वह अच्छे-अच्छे संगीत-समारोहोंमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाने लगी थी। उसे शोहरत और रुपया दोनों मिल रहे थे।

अब बेला अनिल बाबूके आनेके बाद उनके पास कम ही बैठती थी। उसके मिलने-वालोंका ताँता बँधा रहता था। कोई किसी कालेजका प्रतिनिधि होता, कोई किसी थिएटर-कम्पनीका। आने-जानेवाले उच्च स्तर-के होते। उनके लिए कुरसियाँ भी मँगवानी पड़ीं। अब बेलाके घरमें एक ड्राइंग-रूम सज गया था। जिस कमरेमें वह गाना सीखती थी, वहाँ भी एक तख्तपोश आ गया था। उसपर गद्दा बिछा दिया गया था और सफ़ेद चादर। अनिलको इस घरकी सुव्यवस्था और सफ़ाई देखकर अपना घर और भी बुरा लगता।

पत्नी का फूहड़पन उन्हें सालता। यहाँ भी तो मुख्य रूपमें उनका ही पैसा लगा था। घरपर तो जैसे उनके पैसेका दुरुपयोग होता था।

बेलाके साँवले-सलोने मुखपर एक निखार आ गया था। पहले उसे देखकर अश्लीलताका आभास होता था। अब वह किसी बड़े घरकी भद्र लड़की लगती थी। उसके नखरे भी बढ़ गये थे। अनिलको देखते ही बेला कहती, "यह क्या पहने हो तुम! आजकल लोग टैरीलीन पहनते हैं।"

अनिल हँसकर कहता, "धोतीपर टेरीलीनकी कमीज़ अच्छी नहीं लगती।"

"तो पैण्ट क्यों नहीं पहनते?"

"अब अपना पहनावा छोड़कर पैण्ट क्या पहनूँगा।"

"मुझे तो तुम्हारे साथ बाहर जाते हुए शरम आती है।"

बात अनिलके हृदयमें विंध जाती। अनिलके सम्पर्कमें आकर बेला इतनी बदल गयी थी, परन्तु अनिल वैसेके वैसे ही रहे थे। बेलाका मेल-जोल बड़े आदमियोंसे होने लगा था। वह संस्कृति और संगीत-पारखियोंसे मिलती थी।

अनिल बाबू अब आते तो घर-भरको कुशल-क्षेम पूछकर चले जाते। बेला उनके लिए दूरकी वस्तु हो गयी थी। वह चीनीकी श्वेत गुड़िया-सी हो गयी थी, जिसे छुआ तो उसके टूटनेका डर रहता है। अनिल बाबू अपने रुपयेका चमत्कार देख रहे थे। रुपया किसी उचित व्यक्तिके हाथों चला जाये तो क्या नहीं कर सकता।

अब अनिल बाबूके सामने ही दूसरे लोग बेलाके घरमें आने लगे थे। जमी हुई महफ़िल-में अनिल बाबू चले जाते तो मानो सभीको साँप सूँघ जाता।

एक दिन दूरसे ही अनिल बाबूको आते देख बेलाने माँसे कहा, "कोई ज़रूरी बात हो रही है। उन्हें भीतर मत भेज देना।"

भीतर एक फ़िल्म-प्रोड्यूसर बैठे थे। बेला नहीं चाहती थी कि अनिल भीतर आयें और वह फ़िल्म-प्रोड्यूसर देखे। अनिल रसोईघरके सामने सारी शाम बैठे रहे थे। उस प्रोड्यूसरने भोजन भी वहीं किया। जब वह बहाँसे चला गया तो बेला बाहर निकली।

बेलाका वह चेहरा भी आज अनिलको याद है। उसी दिनसे वह बेलासे अलग हो जाते तो अच्छा था। बेला और अपने बीचका एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चा धागा ही तो था, उसको तोड़ देते। पर वह ऐसा नहीं कर सके थे। अपने आत्म-सम्मानको हथेलीपर रखकर भी नहीं कर सके थे। उस दिन बेलाने कहा था—"तुम घर नहीं गये। माला बाट जोह रही होगी।"

"नहीं गया! माला बेचारीका ख़याल कैसे आया?"

"क्यों नहीं आयेगा। तुम्हारे मुझपर कितने एहसान हैं।"

अनिलको क्रोध आ गया था। वह चिल्लाकर बोले थे, "मैं कोई कुबेर तो था नहीं जो तुमपर एहसान करता। मैं मनुष्य हूँ—वह भी पूँजीपति नहीं हूँ, औसत दर्जेका आदमी हूँ।"

"तो मैं क्या कर सकती हूँ?"

"यह ठाट-बाट मेरे पैसेसे हैं।"

"तुम्हारे पास है ही क्या?"

"ज़ुबान सँभालकर बोलो बेला?"

बेलाकी मुखर आँखें घृणा तथा उपेक्षासे भर गयीं।

"तुमने मुझसे प्रेमका ढोंग किया था।"

"जब तुम्हें पता था कि वह ढोंग था तो क्यों लपकते हुए आ जाते थे?"

तभी बेलाकी माँ भीतर आ गयी थीं—उन्हें लगा कि कहीं बात बढ़ न जाये?

"अनिल बाबू आप भोजन कीजिए।"

"जूठा कुछ बच गया हो तो परस दो, क्यों?"

तभी बेलाने जमुहाई लेते हुए कहा था कि वह थक गयी है, वह सोना चाहती है। अनिल बाबूको बेलाको छुए जाने कितने महीने हो चुके थे। क्रोधके साथ-साथ उनकी वासना भी भड़क उठी। बेलाका हाथ पकड़ वह भीतर खींचने लगे तो उसने उनपर थूक दिया था।

"छी:—तुम मुझे छूते हो, गन्दे कहींके। ख़बरदार, मेरे घर फिर पाँव रखा तो।"

"इस घरकी एक-एक चीज़ मेरे पैसेसे ख़रीदी हुई है।"

"ले जाओ उठाकर, बेच डालो इन्हें।"

"और तुम!"

"ख़बरदार जो मेरी बात की।"

तभी निमाई बाबू आये। साथमें कोई पैसे-वाला सेठ था।

उनको देखते ही बेला मुसकराकर बोली, "निमाई काका, अपनी दूकानपर पिला-पिलाकर तुम इन पागलोंको यहाँ भेज देते हो! अब इन्हें बाहर करो, इन्होंने मोहल्ला सिरपर उठा रखा है।"

यह चेहरा बिलकुल नया था। अनिलका मुख अपमानसे काला पड़ गया।

निमाई अनिलका हाथ पकड़कर अपनी दूकानपर ले आया। एक भद्दी-सी गाली बेलाको देता हुआ बोला, "चलो दादा, मधु पियो और अपना ग़म भुला दो। ये औरतें भी कभी अपनी बनी हैं।"

उस रात अनिलने निश्चय कर लिया था कि वह कभी बेलाके घर नहीं जायेगा। परन्तु वह निश्चय दिन निकलते ही बदल गया था। शाम पड़ते-पड़ते तो उनके क़दम अपने-आप बेलाके घरकी ओर उठ गये थे। बेला उनकी आदत बन चुकी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब बेलासे जान छुड़ाना उनके वशकी बात नहीं थी। बेला थी कि दूर होती जा रही थी। उस दिन और उसके बाद कई दिन अनिल बाबू बेलाके घरका रुख करते परन्तु बाहरसे ही लौट जाते। और आज लगभग एक महीनेके बाद साहस बटोरकर गये थे कि बेलाने दरवाज़ेपर ही उन्हें कह दिया था—"भीतर मत आओ।"

"क्यों ?"

"घरके मालिकका हुक्म है कि कोई दूसरा पुरुष मुझसे मिलने भीतर नहीं आ पाये।"

"घरका मालिक तो मैं हूँ।"

बेला खिलखिलोकर हँस पड़ी—"कौड़ी इनकी जेबमें नहीं। बड़े मालिक बनते हैं।"

"कोई समय था कि मैंने पूरा खर्च दिया था।"

"अब जितना खर्च है अनिल बाबू, वह तुम्हारे वशकी बात नहीं। यों दीवारसे सिर मारनेकी क्या आवश्यकता ?"

"मैं अब तुम्हारे लिए कुछ नहीं हूँ ?"

"नहीं !"

"क्या तुम भूल गयीं कि एक दिन तुम यहाँ आश्रय माँगने आयी थीं ?"

"कौन-सा आश्रय तुमने दे दिया था ?"

"मैं विवाहित था।"

"तो जाओ पत्नीके पास। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी।"

"भीतर आने दो।"

"नहीं।"

"सच कह रही हो।"

फिर तड़ाक थप्पड़ और धक्का दे दिया गया था। अनिल बाबू चलते-चलते सीधे गंगा-तटपर निकल आये। बच्चोंका पेट काट कर वह इस मायावतीको पैसे देते आये हैं। थके-हारे वे एक बेंचपर आकर बैठ गये। मन ही-मन बेलाके कई चेहरे देखने लगे।

ख़ाली दायरे / अनिल प्रभा

लेटे-लेटे ही वह करवट बदलकर दीवारको छूती है। उँगलियोंके पोरोंका दबाव इतने धीमेसे डालती है जैसे वह दीवार ईंट-पत्थर-की न होकर गत्तेकी बनी हो और छूने मात्रसे ही ढह जायेगी। वह आँखें फाड़-फाड़कर देखती है, शायद हर चीज़को घूर-घूरकर देखना, उसके अन्तर तक प्रवेश करनेकी कोशिश करना उसकी आदत बन चुकी है। उसे लगता है, ये दीवारें भीतरसे खोखली और उखड़ी हुई हैं, जैसे यूँ ही फ़र्शके ऊपर बिछा दी गयी हों। अभी कोई 'सिम-सिम' बोलेगा जादू होगा और ये ज़मीनसे पूरी तरह उठ जायेंगी, तब ये रीतापन न रहेगा।

वर्षोंसे उसे ऐसा ही महसूस होता आ रहा है, वह उस दिनका इन्तज़ार करती है जब ज़मीनके अन्दरसे एक तार-सा उठेगा और इन खोखली दीवारोंको मज़बूत कर देगा। इस घरमें कभी किसी मर्दकी आवाज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं गूंजी। अगर एक बार भी पापा इस घर-में आ जायें और उसी ज़ोरदार आवाज़में बोलें, तो ज़रूर इन दीवारोंके नीचे पड़े हुए ईंट-पत्थर खाते हुए उठ जायेंगे। फिर शायद वह हर चीज़को इस तरह छू-छू कर न देखे, फिर शायद यह खालीपन न रहे, फिर शायद""। उसे हंसी आ जाती है, कितनी पागल है! वह अभी भी पापाके आनेका इन्तज़ार करती है!

कल रात ही तो माँ भोपालसे आयी थी, डरी-सी आशंकासे उसने माँके चेहरेको देखा था, माँकी आँखोंका खालीपन उसके अन्दर उबले उठे हुए धुएँकी तरह जाकर जम-सा गया। न उसने ही कुछ पूछा और न ही माँने कुछ बताया। उसे उस वक़्त माँ बहुत निरीह और कातर लगी। लेकिन व्यर्थ ही माँ अपनेको व्यस्त करने का ढोंग-सा कर रही थी, वास्तवमें व्यस्त होनेके लिए कुछ भी नहीं था। वह चुपचाप बैठी अन्दाज़ा लगाती रही कि अब माँ आकर उससे क्या कहेगी।

उसे रातको लगा कि माँ शायद ठीकसे सो नहीं पा रही है। तब उसका जी चाहा था कि वह माँके पास जाकर लेट जाये और धीरेसे उसकी पलकोंको छू ले, परन्तु वह निश्चेष्ट-सी पड़ी रही। शायद वह ख़ुद भी स्थितिका सामना करनेसे कतरा रही थी।

रातनोंकी खटर-पटरसे उसे लगा कि माँ रसोईसे आकर शायद खाना बनाने लगी है। खिड़कीकी राहसे होकर सारा रसोईका धुआँ कमरेमें भरता गया। काला, पीलापन लिये गाढ़ा सुमई-सा धुआँ! उसके अन्दर भी एक ऐसा ही धुआँ उठता है, जिसके गाढ़ेपनका तो उसे पता है मगर उसके रंगके बारेमें वह अनभिज्ञ है।

उसने दुपट्टेको नाकपर रख लिया और आँखें बन्द कर लीं। इस प्रकारका धुआँ और कड़ुवाहट सहनेकी वह आदी हो चुकी है। पापाकी लगायी आगमें माँ सुलग रही है। मगर वह आग और धुआँ उसे लील रहा है और अब गौतमके इर्द-गिर्द भी यह धुआँ दायरे बना रहा है। वह खीझ गयी, क्यूँ वह सब कुछ सहती जाये, आखिर उसका क्या क़सूर है? उसे माँपर भी गुस्सा आया। जब वह जानती है कि उसके बार-बार पापाके पास जानेसे भी कुछ नहीं होगा, वह सिर्फ़ दो सुलगी लकड़ियोंको अलग-अलग कर अपने हक़की दुहाई माँगती है या झपटनेकी कोशिश करती है तो निरा धुआँ ही पल्ले पड़ता है।

माँ ब्याहता है और वह स्त्री ब्याहता नहीं—यही दर्प माँको चैनसे बैठने नहीं देता। छुट्टियोंमें वह कोई-न-कोई बहाना खोजकर उनके पास जाती है और इसी प्रकार पराजित-सी खाली आँखें लिये लौट आती है। उसे मालूम है, माँ वहाँ कभी भी शान्त नहीं बैठती है। उस दूसरीको देखते ही माँ चोट खायी शेरनीकी तरह तड़प उठती है और उसे कुछ नहीं पता चलता कि वह क्या-क्या कहती जाती है।

क्यों जाती है माँ बार-बार?—इस प्रश्नका उत्तर उसे केवल खीझमें ही मिलता है। शायद माँको अपने झूठको ढकनेके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ जाना पड़ता है।

"ज्योतिके पापा बिजनेसके लिए बाहर गये हैं, उन्हें वक़्त नहीं मिलता, इसीलिए मैं ही उनसे जाकर मिल आती हूँ।" ऊँह, छलावे! इस प्रकार सत्यको नकारने या स्वयं-को धोखा देनेकी स्थिति उसकी समझमें नहीं आती। उसे कुछ भी तो समझ नहीं आता, केवल अनुभूति होती है, खोखले वृत्तोंमें घुटे जानेकी। उसके पास एक वसीयत है खाली-खाली, गोल-गोल दायरोंकी, जिसके बीच वह केन्द्र-बिन्दु है। शायद खाली दायरोंमें रहते-रहते वह भी एक खाली दायरा बन जायेगी। जबतक गौतम था, उसके पास सपने थे, भविष्य था, तब ऐसी अनुभूति नहीं होती थी। तब एक भरापन-सा महसूस होता था।

पर उस दिन जब गौतम सिर झुकाये उसकी उँगलियोंसे खेलता रहा और फिर बहुत झिझक-झिझककर बोला था कि "क्या करूँ ज्योति, माँ नहीं मानती। कहती है, लड़की-के बापका कुछ पता नहीं।" तभी उसने कहना चाहा था, "ठीक ही तो कहती हैं, इसमें तुम्हारी माँका क्या क़सूर, और मेरी माँका भी क्या क़सूर है? नियतिको मैं मानती नहीं, नहीं तो शायद उसीको दोष देती।" परन्तु वह चुप रही थी। उससे कहा कुछ भी नहीं गया था। तब उसकी वाणी मूक हो गयी थी और आँखें रिक्त, या शायद सभी कुछ रिक्त। लेकिन इस रिक्तताका बोझ भी उससे सहा नहीं जाता, उससे कुछ नहीं किया जाता, कुछ नहीं कहा जाता।

बाहरसे माँके बुड़बुड़ानेकी कभी धीमी और कभी तेज आवाज़ काफ़ी देरसे अन्दर आ रही है, जिसने इस वक़्त उसे अपने निकम्मेपनके प्रति और अधिक क्षोभ और ग्लानिसे भर दिया।

माँ अब ज़ोर-ज़ोरसे बोल रही थी—"ऐसी भी क्या कमर टूटी है कि जब देखो चारपायी-पर आँखें मूँदे पड़ी रहती है। हाँ, बाप कोई लाट साहब नहीं है कि चार-चार नौकर खाना लिये बैठे रहेंगे।"

जाने कबसे वह ऐसी बातें सुनती आ रही है। शायद इतनी देरसे कि अब वह सब अर्थहीन-सी अपना प्रभाव खो चुकी है। वह करवट बदलकर मुँह दरवाज़ेकी ओर कर लेती है। चारपायीके चरमरानेसे माँको ज्योतिके जागते होनेका पता चल जाता है।

"ज्योति! मदद कराना तो दूर, तू आकर खा भी नहीं सकती?"

माँने आज गुड्डोकी जगह ज्योति कह-कर पुकारा था। उसका उठनेको मन नहीं हुआ, परन्तु और कोई चारा न देखकर वह चुपचाप खाना खानेके लिए चौकीपर आकर बैठ जाती है। शायद यही एक वक़्त ऐसा होता है जब माँ उससे घर-बाहरकी बातें करती और सुनती है। पहले वह बोला करती थी और माँ सुनती थी, अब कहनेके लिए कुछ भी नहीं है उसके पास।

"जादू-टोना कर रखा है उसने तेरे बाप पर। मैंने लाख कहा कि और कुछ नहीं चाहिए बस एक बार ज्योतिके बापकी हैसियतसे हो जाओ। मैं तो कभी न बुलाऊँ उसे, न

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी जिन्दगी उसकी मदद नहीं माँगी तो अब क्या देगा वह मुझे। पर क्या करूँ गुड्डो, तू मुसीबत बन गयी है। जहाँ भी तेरे रिश्ते-की बात चलाती हूँ, लोग पूछते हैं कि लड़केके बापने क्या दूसरी शादी कर रखी है? यह मुझसे नहीं सहा जाता। कह देती हूँ, हाँ, कर रखी है, मर्द बच्चा है, उसे जोरूकी भी जरूरत है, तुम.....।"

"माँ, पानी दे न!" ज्योति उसकी बातोंका क्रम तोड़ देती है। उसे इस तरहसे बेढंगा संवारू ढंगसे लड़नेकी घटिया बातें सुनकर शर्म लगती है।

माँ पानीका गिलास भरकर उसे देती है और फिर बोलती जाती है, "सुन, तुझे सारी बातमसे ही करनी है।"

ज्योतिसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता। वह रोटीके कौरको दो-तीन बार मोड़कर उसमें भिगोनेमें व्यस्त होनेका प्रयत्न करती है।

"उसकी माँको कुछ बताना ही नहीं चाहिए था, पर बताती नहीं तो फिर क्या करती? बता भला, वह कभी थे ऐसे?"

ज्योति नकारात्मक ढंगसे माँको आश्वासन देनेके लिए सिर हिलाती है। उसे भला क्या पता कि वह कैसे थे? उसने सिर्फ़ एक बार ही उन्हें देखा है। वह पापाकी आकृति अपनी आँखोंके सामने लानेका प्रयत्न करती है, परन्तु चित्र स्पष्ट नहीं उभरता। माँ भी शायद कुछ सोचती है क्योंकि उसके हाथ बहुत धीमे-धीमे रोटी बेल रहे हैं।

माँकी माथेकी रेखाएँ गहरी होती जाती हैं।

"माँ! एक बात कहूँ?" वह माँकी ओर एक बार देखकर दृष्टि झुका लेती है।

वह एक बात जो बहुत दिनोंसे उसके अन्दर घुमड़ रही है, आज माँसे कह देनेका वह साहस जुटा रही है।

माँ हामी भरकर उसकी तरफ़ देखती है तो उसे माँपर और भी तरस आने लगता है। क्या सुख मिलता है इस नारीको उससे, जिसके पीछे वह इतना मरती है, झगड़ती है। जिसके कारण उसका दिन-रातका चैन उड़ गया है!

"माँ! तुम समझ लो कि पापा हैं ही नहीं।" वह बहुत रुक-रुककर कहती है।

"नहीं—ई—ऽ—ई। खबरदार, तूने....।" बेलन छूटकर नीचे आ पड़ता है, दूसरे ही क्षण माँ छतकी ओर भाग जाती है।

ज्योतिको कुछ नहीं समझ आता कि यह सब क्या हो गया है? उसकी आँखोंके आगे माँकी भाग्य-रेखाओंमें गढ़ी हुई रोली-की, पसीनेसे भीगी बिन्दी घूमने लगती है। वह मतिभ्रष्ट, विमूढ़-सी धुएँके पार ताकती रहती है।

रोटी जलनेकी तेज़ गन्धसे पलटकर वह तवेकी ओर देखती है। रोटीका एक तरफ़ पूरी तरह जल चुका है, वह झटसे उसे पलटती है। रोटी ठीक क्यों नहीं बनती? शायद अब बनेगी भी नहीं। वह तवा उतारकर ज़मीनपर रख देती है।

लाल-लाल तेज़ आगकी लपटोंमें उसे पापाका चेहरा साफ़ नज़र आने लगता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा पहले कभी नहीं आया था, जैसे वह चेहरा फ़रियाद कर रहा हो—ज्योति, तूने मुझे क्यों यहाँ डाल दिया? उसके माथेपर पसीनेकी बूँदें छलछला आती हैं। उसे लगता है, चेहरा घूम रहा है, दूसरी ओर कोई और झुलसता नज़र आता है—गौतमका चेहरा। नहीं-नहीं, गौतम नहीं, मैंने तुम्हारे लिए, अपने स्वार्थके लिए पापाको, माँकी बिन्दी.... नहीं!

दोनों चेहरे गड्डमड्ड हो जाते हैं। क्या दोनोंमें-से एकका जलना ज़रूरी है? वह क्या करे कि दोनोंको बचा ले। वह जलती लकड़ी खींचकर ज़मीनसे रगड़-रगड़कर बुझा देती है। ज़मीनपर वैसी ही लकीरें बन जाती हैं जैसी माँके माथेपर, जिनपर वह बिन्दी लगाती है।

उसके चारों ओर फिर लकीरें और गोल-गोल बिन्दियाँ घूमने लगती हैं, उसे लगता है कि वह उनमें घिर गयी है, उसका दम घुट जायेगा। वह ऐसे ही मर जायेगी, और वह अभी मरना नहीं चाहती। माँके परित्यक्ता होनेसे ही क्यों दुनिया उसे भी, ज़बरदस्ती परित्यागका पात्र बनाकर, अवहेलना और तिरस्कारकी चितामें जला-जलाकर मार डालना चाहती है? वह जीना चाहती है, रिश्ते और कुण्ठाओंके दायरोंसे बाहर निकलना चाहती है। ये दायरे इतने कठोर, इतने तंग होंगे—वह कभी सोचती भी नहीं थी।

उसने एक बार कुछ नटोंको तंग लोहेके गोलोंसे बाहर निकलते देखा था और फिर जलते हुए गोलोंमें-से भी। पर वह तो एक साधारण और कमज़ोर-सी लड़की है। अपनेको आख़िर कहाँ तक झुकाये, कितना लचकीला बना ले, कि वह इन दायरोंसे बाहर निकल सके, जी सके।

अपनी विवशतापर उसे रोना आ गया। जाने कबतक वह हिचकियाँ भर-भर कर रोती रही। उसे ध्यान आया, शायद माँ भी रो रही होगी। वह भी तो जीती है, लेकिन अगर वह भी हार गयी तो....? इस प्रश्नको उसने अपने मस्तिष्कमें अधिक देर तक टिकने नहीं दिया। उसे कुछ डर-सा लगने लगा और साथ ही इतनी देरसे अपने यहाँ अकेले होनेका अहसास भी हुआ। उसकी तरह माँ भी पता नहीं क्या-क्या सोच रही होगी, जाने क्या-क्या तूफ़ान उठ रहे होंगे उसके अन्तर्मनमें, और कारण?

उसके अन्दर कड़ुवाहट-सी भर गयी। पर वह इससे भी ज़्यादा कड़ुवाहट सहनेको तैयार थी, अगर माँकी मधुरता वह किसी भी तरह फिरसे लौटा सके....और वह उसे लौटानी ही होगी।

"माँ!" बहुत भर्राया हुआ उसके कण्ठसे स्वर निकलता है।

दीवारकी ओर मुँह किये खड़ी माँ धीरे-धीरे पलटती है और उसका मुँह ज्योति के सामने हो जाता है। माँकी आँखोंका खालीपन कहीं बहुत गहरे तक चला गया है—शायद वहाँ आक्रोश है, विवशता है, कातरता या करुणा बहुत भरा हुआ है, शायद कुछ भी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका जी चाहता है कि माँको छूकर देखे। शायद माँ भरी हुई है, छूनेसे सब कुछ बाँध तोड़कर वह निकलेगा या शायद ऐसा कुछ नहीं होगा। माँ भी दीवारोंकी तरह खाली और खोखली है, पापाकी आवाज़ने जिसे भरा नहीं। हो सकता है, छूनेसे खोखली नीवोंसे उखड़ी माँ भरभराकर गिर पड़ेगी और बिखर जायेगी।

आवाज़ें / नफ़ीस आफ़रीदी

उसने सोचा भी न था कि ऐसा-कुछ हो जायेगा। उसके विश्वासको ठेस पहुँची थी। वह सपनेको डालसे टूटे पत्तेकी तरह विवश पा रही थी। उसे लगा कि वह जीतकर भी हार गयी है। उसने सपने सँजोये थे जो एक झोंकेमें बिखरकर छितरा गये और वह भटकनेके लिए निःसहाय, अकेली रह गयी है।

उसे लगा कि मीनाकी सिसकियाँ अब भी कमरेमें तैर-घूम रही हैं, एक भटकी हुई आत्माकी तरह और उसका ब्लाउज़ आँसुओंसे भीग गया है। यह भीगन शरीरपर चिपचिपाहट उगा रही है। ब्लाउज़ आँसुओंसे भीग गया है, मीनाके आँसुओंसे, जो देर तक उसके वक्षमें मुँह छिपाये सिसकती रही थी, सिसकती रही थी!....

उसने निश्चय किया कि वह ब्लाउज़ बदल डालेगी, ताकि कुछ क्षण पूर्वकी बोझिल उदासीका आभास भी न रह पाये। पर उन आँसुओं और सिसकियोंका क्या करेगी, जो अब उस कमरेके कोने-कोनेमें रस-बस गयी थीं, और दीवारोंसे टकरा-टकराकर लौट रही थीं, उसके अन्तर्मनको व्याकुल कर रही थीं, बढ़ रही थीं। उसके अन्दर शिथिलता घुलती जा रही थी, वह टूटती जा रही थी।

उठी वह। खिड़कीके पट खोल दिये। सर्द और रेशमी हवाका एक आवारा झोंका अन्दर घुस आया। उसके शरीरमें सिहरन-सी दौड़ गयी। कल तक इस प्रकार खिड़कीके पट खोलनेमें और सिहरन छोड़ते हुए हवाके झोंकेके स्पर्शसे उसे बड़ा आनन्द मिलता था, उसमें स्फूर्ति और ताज़गी भर जाती थी। वह रोज-रोज़ ऐसे मस्त हवाके झोंकोंकी कामना करती थी। पर आज उसे वैसा-कुछ नहीं लगा। सिहरन जैसे सारा बदन तोड़-तोड़ गयी।

खिड़कीके बाहर अँधेरा बिछ गया था। दूर नुक्कड़वाले 'लैम्प-पोस्ट'का बल्ब अँधेरेसे जूझा हुआ था। उसने देखा, बल्बकी पीली रोशनीमें मीनाका चेहरा और पीला पड़ गया है। एकदम पीला, सूखा-सूखा और बीमार-सा चेहरा! दूसरे ही क्षण वह सँकरी गलीके अँधेरेमें खोती चली गयी।

उसने अनुमान लगाया, यदि मीना इस अँधेरेके बाहरकी रोशनीमें नहीं आ पाती, तो उसका अस्तित्व स्वीकारा नहीं जाता और वह सड़कके पत्थरकी तरह ठुकरायी जाती।

मीना क्षण-भर उसके पास बैठकर चली गयी है; पर उसे कितना-कुछ बोखला गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जैसे सारी निराशा, तड़प और बेचैनी आँचलमें बाँधकर लायी थी और सब यहीं छोड़कर चली गयी। यदि वह न आती···न आती तो उसके स्वप्न बिखरनेकी सम्भावना न रह जाती। यह पीड़ा, दुःख कुछ भी उसे सहना नहीं पड़ता।

उसे महसूस हुआ जैसे पीछे कोई खड़ा गहरी-गहरी साँसें ले रहा है। गरम और शरीरपर चिपकती-सी साँसें! वह चौंककर पलटी; पर कहीं कोई नहीं था। उसे भय लगने लगा। स्वयं अपनेसे और अँधेरेसे भी। अँधेरेने हर वस्तुका अस्तित्व भयानक और काला बना दिया है।

उसे लगा, अँधेरेके बीच अस्पष्ट-सा एक चेहरा उभर रहा है। चेहरा स्पष्ट होकर एक ओर टँग गया है। उसके पति नरेनका चेहरा! मासूम और भोला-भाला मुखड़ा! पर सिर्फ़ देखनेमें! उसे क्या पता था—चेहरे बाहरसे जितने उजले होते हैं, अन्दरसे उतने ही काले! उसने तो उस चेहरेको, जो सभ्य, सुसंस्कृत और शिक्षित था, मनकी अथाह गहराइयोंसे पूजा था। तो इसका अर्थ है—वह अभीतक भ्रममें पड़ी थी या उसे धोखा दिया गया है।

सहसा उसके होंठ घृणासे टेढ़े पड़ गये। नरेन इतना नीच कर्म करेगा, उसकी कल्पनामें भी नहीं आयी थी यह बात। उसे लगा, नरेनने अन्धकारसे निकलकर उसे दबोच लिया है। पाशविक वृत्तिके साथ वह उसपर हावी होना चाहता है, उसमें सहज और स्वाभाविक जैसी कोई बात नहीं।

"दुष्ट! नीच! पापी!"—क्रोधसे चीख पड़ी वह।

उसने झपटकर बिजलीका स्विच ऑन कर दिया। कमरेके अन्धकारको मरहरी लाइटकी दूधिया रोशनीने अपने आवरणसे ढँक लिया। सफ़ेदीकी चादर छितरा गयी, कालिमाके धब्बोंसे रिक्त! रोशनी उसे अच्छी लगी। कुछ राहत मिली। धड़कता हुआ दिल ठिकानेपर आने लगा।

उसे याद आ रहा था कि कभी वह अनजानेमें ही अन्धकारके भयानक जबड़ोंमें कूद गयी थी, तब उसे मालूम नहीं था कि वह वास्तवमें कहाँ कूदी थी। और अब! अब तो सँभल पानेका प्रश्न ही नहीं उठता। सँभल पाना या जबड़ोंसे निकल पाना असम्भव-सा प्रतीत होता है। मकड़ीके जालेमें इस बुरी तरह फँस चुकी है वह, कि अपने शरीरके किसी भी हिस्सेको सुरक्षित निकाल नहीं पा सकती, खँरोच तो अवश्य आनी थी।

यादोंकी कतरनें एकके बाद एक उभरती जा रही थीं और काग़ज़के व्यर्थ हिस्सेकी भाँति मानव-मनपर कोई प्रभाव, प्रतिक्रिया नहीं छोड़ रही थी। एक स्थानपर 'कतरनें' ठिठक गयीं। इधर-उधरसे सिमट-जुड़कर सुन्दर काग़ज़का रूप ग्रहण कर लिया और वह उन यादोंके सफ़ेद काग़ज़पर बनते-बिगड़ते चित्रोंको फटी-फटी आँखोंसे देखने लगी।

"निम्मो! नृत्यके इस गुलाबी परिधानमें तुम सचमुच गुलाबका एक सुन्दर-सा फूल लगती हो!"—कोई उसके कानके पास फुसफुसाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हूँऽऽ," शीशेमें झाँककर मुसकायी वह, "जानते हो, फूलकी प्रशंसा करना, दूरसे, कितना अच्छा लगता है!"

"लेकिन माली उसे तोड़कर मालामें गूँथ लेता है।"

"देवके चरणोंमें भेंट करनेके लिए, दानवके पैरोंतले रुँदवानेके लिए नहीं।"

"तुम नहीं समझ पाओगी? मैं इस फूलको तोड़कर सदैवके लिए अपने जीवनकी मालामें गूँथ लेना चाहता हूँ।"

"यह मालीकी योग्यतापर निर्भर करता है।"

"तो इसका अर्थ है, मैं अयोग्य हूँ।"

"आपके भीतर क्या है, यह मैं नहीं जानती; पर बाहरसे मैंने आपको काफ़ी देखा-परखा है। विवाहके बाद शायद आप खरे उतरें। तब इस गुलाबपर आपका पूरा अधिकार होगा, चाहे तोड़ें, चाहे मसलें।"—वह हँस दी। उसमें हठ था, आत्मविश्वास था, अपने उसूलोंकी रक्षा करना वह खूब जानती थी।

हताश होकर नरेनने कह दिया, "ठीक है, हम जल्द ही एक सूत्रमें बँध जायेंगे।"

विवाह भी हो गया; पर वह हार गयी। कोई विवाह करके जीतता है; पर वह ऐसी हारी कि अस्त-व्यस्त होकर रह गयी।

विवाहको तीन महीने भी नहीं बीते थे कि अकस्मात् मीनाने आकर उसके सुखद भविष्यके सपनोंको क्षण-भरमें छिन्न-भिन्न कर दिया। विवाहके बाद ही नरेन उसे छू पाया था। और उसके आलिंगनके स्पर्शमें उसे अपनी कल्पनाका प्रतिबिम्ब साकार होता दीख पड़ा था कि किनारेकी लहरने उसे ठेलकर फिरसे बीच मझधारमें ला छोड़ा था। पतवार टूट गयी थी और जीवन-नैया विशाल थपेड़ोंके बीच असहाय डोल रही थी। उसे लग रहा था कि अबतक वह ग़लत धारणाओंमें पलती रही है और भ्रम-जालने उसे अपने पाशोंमें बुरी तरह जकड़ लिया है। उसने जो जीवन जिया था, वह उसके ग़लत चुनावका परिणाम था। नरेनकी वासनायुक्त दृष्टि पहचानकर भी वह अनजान बन गयी थी। विवाह तक उसने स्वयंको बचाये रखा, परन्तु····

"काश! मैंने यह चुनाव न किया होता।"—वह बड़बड़ायी।

"निम्मो!·····निम्मो!!"

उसे लगा कि यह स्वर उसके कानोंमें पिघलता हुआ सीसा छोड़ रहा है। तड़पकर उसने कानोंमें उँगलियाँ ठूँस लीं।

"निम्मो!·····निम्मो!!"

स्वर फिर भी उसका पीछा करता है, कानके परदेसे टकरा-टकराकर प्रतिध्वनित होता है। वह घबरा जाती है, पर वह स्वर तो उसके पेटमें पल रहा है और कुछ महीनों बाद उसकी कोखसे जन्म लेकर प्रत्यक्ष रूपमें सामने आ जायेगा। एक प्रश्न-चिह्नके समान उठ खड़ा होगा यह स्वर!

नरेनका बच्चा : पेटमें पलता स्वर!

सहसा उसे अपनी बेबसीपर रोना-सा आता है। वह होठ काट लेती है। अभी वह रोना नहीं चाहती, सोचना चाहती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई निर्णय करना चाहती है। अपने भविष्य-के लिए, अपने सुखद सपनोंके लिए और पेटमें पलते स्वरके लिए सोचकर, वह कोई-न-कोई निर्णय करना चाहती है, जिससे उसका सारा जीवन आनन्द व उल्लाससे परिपूर्ण हो जाये।

पर नहीं, वह स्वार्थी नहीं है। अपने जीवनके क्षणिक सुखोंके लिए वह दो अन्य जीवनको नष्ट नहीं होने देगी। आवेशमें आ-कर वह ग़लत निर्णय नहीं लेगी। वह सोचेगी, निःस्वार्थ भावसे मीनाके लिए सोचेगी।

वह धैर्यसे सोच सके, इसलिए अच्छे ढंग-से सोफ़ेपर बैठ गयी। बहुत शीघ्र भावुक भी तो हो उठती है वह। थोड़ी देर पहलेके सारे चित्र ज्योंके त्यों उसके मानस-पटलपर अंकित हैं। उन चित्रोंको स्मरण कर वह सिहर उठती है।

मीना! उसकी मौसीकी लड़की, प्राणोंसे भी अधिक चाहती है वह उसे। सीढ़ी चढ़कर उसके सामने आ खड़ी होती है। एक प्रश्न-चिह्नकी तरह! एकदम शान्त, गम्भीर और अपनेमें खोयी-खोयी-सी। उसे आश्चर्य होता है। कुछ मास पूर्व अचानक गुप्त रूपसे ग़ायब होनेवाली मीना, इस रूपमें उसके सामने प्रकट होगी—उसे विश्वास नहीं हुआ था।

"दीदी····दीदी···· ! मैं बरबाद हो गयी····बताओ अब मैं क्या करूँ? बताओ दीदी!" मीना उसे झँझोड़ देती है।

"धैर्यसे काम ले मिन्नी! और मुझे बता कि किसके हाथों लुट गयी तू!"—वह गम्भीर हो उठती है। प्यारसे उसके बालोंमें हाथ फेरती है। मीनाके प्रति उसकी ममता जाग्रत हो उठती है।

····वह शहरके एक स्कूलमें अध्यापिका थी। तब मीना गाँवमें रहती थी। अकस्मात् उसके पिताका देहान्त हो जानेसे, वह असहाय हो गयी। संसारमें उसके सिवा मीनाका कोई सगा न था। वह उसे अपने साथ लिवा लायी। वह मीनासे पाँच वर्ष बड़ी है और मीनाको उसने बड़ी बहन-जैसा प्यार दिया है। उसका प्यार पाकर वह अपने पिताकी मृत्युका दुःख भूल गयी है। मीना उसके साथ रहती रही, एक दिन अकस्मात् कहीं ग़ायब हो गयी।

"मुझे नरेनने बाहर भेजा था। चार मास बाद लौटी हूँ और वह भी नरेनके साथ आपके विवाहका समाचार पाकर।" मीना कहते-कहते रुक जाती है।

"ओह! नरेनने मुझे नहीं बताया····!" वह चौंक पड़ती है।

"उफ़! देखो····दीदी···· ! यह, यहाँ! नरेनका बच्चा!"—मीना उसका हाथ पकड़-कर अपने पेटपर लगा लेती है।

मीनाके छोड़नेपर उसका हाथ एक ओर लुढ़क जाता है। उसे लगता है—वह डूबती जा रही है, उसके शरीरमें शीतलता और कँपकँपाहट व्याप्त होती जा रही है। उसे डर लगा कि एक स्वर उसके आस-पास मँडरा रहा है, चीख और भटक रहा है। वह जकड़ने लगा है। वह पिसती जा रही है, उसकी हड्डियाँ कड़कड़ाने लगी हैं और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनाशून्य होती जा रही है। वह इस भयानक जकड़नसे छुटकारा पाना चाहती है; पर प्रयत्न व्यर्थ जाता है। हारकर वह गहरी-गहरी साँसें भरने लगती है और शिथिल होकर सोफ़ेपर लुढ़क जाती है। उसकी पलकें भीगने लगती हैं और सहसा वह फफक पड़ती है।

"मिन्नी····! मिन्नी!" स्वर फिर सुनाई पड़ता है। वह संभलकर बैठ जाती है। आँचलके छोरसे आँखें पोंछ डालती है। व्यर्थ ही वह कमज़ोर पड़ गयी थी। उसे तो निर्णय करना है, अन्तिम निर्णय!

नरेनने एक अबोध गुलाबको तोड़कर अपनी अयोग्यता और वासनाकी भेंट चढ़ा दिया था। यदि उसे तनिक भी भान हो जाता कि नरेन एक और स्वरको एक और पेटमें जन्म दे चुका है, तो वह स्वयं अपना प्यार हार जाती और मीनाके लिए रास्ता छोड़कर अलग हट जाती।

मीनाके शब्द अब उसके कलेजेमें बर्छियों-की तरह चुभ-छिद रहे हैं, "दीदी! तुम चाहो तो सब ठीक हो सकता है। मैं भी तुम्हारे साथ ही रह लूँगी। तुम्हारे और नरेनके सम्बन्धोंमें बाधा बननेके लिए नहीं कह रही। केवल लोक-लाजका डर है। चाहो तो चरणोंकी दासी बना लो दीदी! वरना दो निर्दोष जीवोंकी हत्या हो जायेगी।"

"धत् पगली! भला हम दो बहनोंमें अन्तर ही क्या है? तू ही नरेनके पास रह लेगी तो समझूँगी, मैं ही हूँ। अच्छा अब रोना-धोना छोड़! थक गयी होगी, नहा ले तो राहत मिल जायेगी। जितनेमें तेरे लिए कुछ बना लाती हूँ। भूख भी लगी होगी तुझे।" वह बड़े प्रेमसे कहती है।

"नहीं दीदी! इस समय तो आज्ञा दीजिए, जबतक तुम्हारी ओरसे पूर्ण स्वीकृति नहीं पा लेती इस घरमें टिकूँगी नहीं। कल सुबह फिर आऊँगी, तबतक सोच रखना, सब कुछ।"

और वह सिसकियाँ और एक पुकारता स्वर छोड़कर रोकते-रोकते भी चली गयी थी। एक हवाके झोंकेकी तरह आयी और उसके प्यारसे सींचे पौधेको उखाड़कर चली गयी। जहाँ उसने ख़ुशियोंके दीप जलाये थे, अब वहाँ कुछ टूटे तिनकोंके सिवा कुछ नहीं। बड़े जतनसे खड़े किये भवनका अवशेष मात्र रह गया था, एक टूटा खण्डहर।

अब उसे दो स्वरोंके लिए सोचना पड़ेगा। एक वह जो उसके पेटमें पल रहा है और दूसरा वह जो मीनाके····और उसे कोई-न-कोई निर्णय अवश्य करना पड़ेगा, स्वरोंका निर्णय!

नरेन आख़िरी शो देखकर लौटता हो होगा। उसके लौटनेसे पूर्व ही उसे वह कर डालना चाहिए जो वह चाहती है। वह उठती है। दूसरे कमरेमें आकर टेबिल-लैम्प-का स्विच ऑन कर देती है। प्रकाशका सीमित दायरा राइटिंग टेबिलपर छितरा गया है। वह कुरसीपर बैठ जाती है। एक क्षणके लिए सोचती है कि जो करने जा रही है वह अनुचित तो नहीं है। गरदनको झटका देती है और बवण्डर-से उठते विचार एक क्षणमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर हो जाते हैं। वह क़लम उठाकर नरेनको पत्र लिखने लगती है :

"मैं मीनाके अन्दर पुरुष-जातिके प्रति घृणा और अविश्वास पनपने नहीं दूँगी। इसी कारण तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ। ताकि तुम उसके विश्वासको निभा पाओ। मुझे ढूँढ़नेका प्रयत्न मत करना! मिल भी गयी तो लौटूँगी नहीं। मीना तुमसे प्यार करती है। मेरे अभावमें वह तुम्हें प्यार और सुख सब देगी। यह मेरा विश्वास है। मीनाको किसी प्रकार ठेस मत पहुँचाना, उसे अपना लेना। यदि तुमने कोई और ग़लत क़दम उठाया या मीनाको अपनानेसे इनकार किया, तो जानते हो, यदि नारी त्याग करती है और अपने आराध्य देवकी श्रद्धामें शीश नवाती है तो उससे बदला भी लेना जानती है।"

पत्रको पेपरवेटके नीचे दबाकर उसने टेबिल-लैम्पका स्विच ऑफ़ कर दिया और बिना कुछ सामान लिये सीढ़ियाँ उतरने लगी। उतरते-उतरते वह सड़कपर आ गयी और तेज़ीसे एक ओर बढ़ने लगी। फिर दूर इमारतों के काँपते धब्बोंमें खो गयी।

■■

वातायन --मार्च १९६६ से दिसम्बर १९६६ तक

- आजका पाठक—अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक! लेखक, पाठक और दो विशिष्ट कृतियाँ! पाठक, लेखक और युगबोध!
- गीत—मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गत हस्ताक्षर!
- विश्वभारती—पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण!
- अन्तर्भारती—भारतीय भाषाओंका कथा-संगम
- भारती—हिन्दी कथा साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें!
- कविता—जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजका कविता-पीढ़ी।
- साक्षात्कार—रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार!
- आलोचना—नयी! पुरानी! युगीन विचार-मान!

● सृजन मूल्यांकन ●

वार्षिक शुल्क १०.०० सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
एक प्रति—१.०० ५ डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राज.)
शाखा—२२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• एक

एक बैठा है
मुँह बन्द किये
दूसरे ने अपने कान बन्द कर रखे हैं
और तीसरा क़सम खाये बैठा है—
बुरा नहीं देखेगा।
ये तीन साधु-बन्दर हैं।

पर,
मैंने देखा है
एक अकेला बन्दर—
वह सब सुनता है
सब देखता है
सब कह सकता है
इसीलिए
बड़ी मुश्किल में फँसा है;
सोचता है—
कान बन्द करूँ
कि मुँह बन्द करूँ
कि आँख बन्द करूँ
हाय केवल दो हैं मेरे!

—यज्ञ शर्मा

• चार अनसमझी कविताएँ

चार
अनसमझी कविताएँ
शीशे के ख़ूबसूरत फ्रेम में जड़ीं
मेरी ऑफ़िस-टेबुल पर रखी हैं
मुझे उनसे
प्रेरणा मिलती है।

कविता-अकविता-सकविता

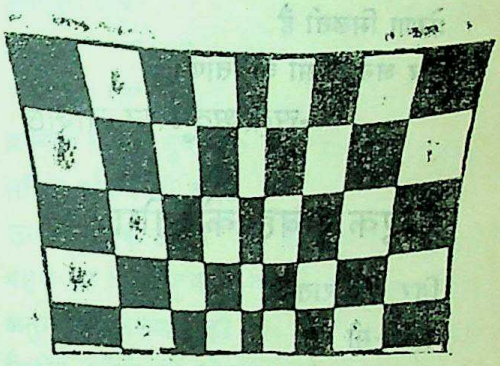

यज्ञ शर्मा, सतीशकुमार वशिष्ठ, बजरंग बिश्नोई,
श्यामगोविन्द राजहंस, स्वदेश भारती,
वनिता सोनवलकर, कमलेश शर्मा,
बलदेव वंशी, विजयराय,
केवल गोस्वामी

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार
अनसमझी कविताएँ
जिन्हें मैं जीता हूँ
पी नहीं सकता
संसार का सबसे महान् कवि
बना देती हैं मुझे—
मगर मुझे ज्ञात नहीं
अभी तक
रहस्य
उन कविताओं का,
मुझे उनसे
प्रेरणा मिलती है
चार अनसमझी कविताएँ।

—सतीशकुमार वशिष्ठ

• एक सुबह के लोग

गिर पड़ी रात
बेहोश-सी
किसने उसे उठाया ?
रंजीदा थे लोग
सब कुछ था
सब कुछ था मुमूर्ष का परिवेश
यहाँ तक कि माहौल ख़ुद पड़ा था
चुप-चाप सिर झुकाये
मुझे आश्चर्य हुआ
जब सूरज उठा
और लोग जोड़ने लगे उसे
हाथ

लोगों के उठ रहे हाथों में
एक क्षणिक जादू होता होगा
ज़रूर होता होगा
जो उठ कर व्यापता होगा—
किसी यौवनाकांक्षा में
छूता होगा अपनी चाह
चूमा जाता होगा प्रिया के होठों से
वह सजीला जादू
लोग ले आते हैं काम
सूरज के हाथ जोड़ने के
जो मुझ तक आया
और, और, उठे मेरे भी हाथ—
औरों की तरह
लेकिन वह जुड़े नहीं—
फैले और कस लिया
उन्होंने किसी प्यारी मूर्ति को
रात्रि-जागरण के बाद आये स्वप्न में
बड़ी मासूम थी बात
कि उनमें समा गया था शून्य
लेकिन लोगों ने देखा कुछ इस तरह
गोया''''गोया मेरे हाथ हों लुंज
और मैं क़ाबिल नहीं—
सूरज के राज में रहने के''''

—बजरंग बिश्नोई

• एक अ-कविता

तुमने मुझे कवि कह कर पुकारा
तो जी में आया
कि जीभ निकाल कर
तुम्हें मुँह बिरा दूँ
तुम कहो कि ये कैसा कवि है
तो हँस दूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कड़वी हँसी
यह सम्पूर्ण व्यवस्था
एक गैस-चैम्बर है

झूठ का
जिसे जीने के लिए
मैं अभिशप्त हूँ मृत्युपर्यन्त,
और तुम भी,
अर्थ-अनर्थ गडमड हो गये हैं
शब्द जैसे काग़ज़ के फूल
गन्धहीन, अर्थहीन

शब्द
चन्द कुत्ते
बदमाशों के इर्द-गिर्द
दुम हिलाते हुए
मानवता, न्याय, नैतिकता,
संस्कृति, ईमानदारी
बदतमीज़ शब्द
जीभों पर सवार हो
मेरा गला दबोचने लपकते हैं
आत्मरक्षा के नाम पर
मुँह से निकलती है सिर्फ़
एक गाली—
वैसे तुम चाहो तो कविता कह लो।

—श्यामगोविन्द राजहंस

झुके कन्धोंवाला नगर

शाम से विदा लेता सूर्य
दूर-दूर फैली नगर की ऊँचाई
कुछ चौ मीनारों पर
ठहर रही सांझवत्ती परछाँई

और एक याद :
सिवानों से दूर
गोधूलि में लिपटी खड़ी धानी फ़सल
खपरैलों-छप्परों से उठता हुआ धुआँ
दीवटों पर टिमटिमाते दिये—
....

होठों के बन्द दरवाज़े पर
दस्तक देते शब्द—
आँसुओं के बीच डूबा मौन-
असमर्थ।
खोजता अर्थ
....
....

प्रस्थान वाली सुबह—
माँ के पाँव-स्पर्श करते
उनका सुबक उठना
बहन का झुका हुआ कन्धा,
अनुज की अलख खड़ी
निरीह आँखों का कोना
और लम्बी चीख के बाद
स्टेशन पर सरक रही रेल
आशीर्वाद देते हुए
बाबूजी की गीली पलकों का खुलना-
बन्द होना
सभी यादें—
आकृतियाँ
इस महानगर की सान्ध्य-धूम्र-कालिमा में
उभर-उभर कर डूब जाती हैं।
अब मील का भोंपा बज उठा है।
और सड़क पर मैले-उदास
झुके हुए कन्धों वाली भीड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गमछों से धूल झाड़ती
हाथों में खाली टिफ़िनबक्स लिये
चल पड़ी हैं।
मैं उन सभी चेहरों को देखता हूँ
और अपने भाग्य को उनके साथ प्रतिबद्ध
करता हूँ।
सतमंज़िल खिड़की से खड़ा देख रहा—
मकड़ीजाल सड़कें
खिलौनों की तरह
दौड़ती हुई बसें-ट्रामें····
नंगे पाँव
सड़े-गले फेफड़ों में साँसें भरते
भागते हुए इनसानी-घोड़े-'मैनपुलर'-रिक्शेवाले।
जिनपर बैठी हुई बन्द बाँहें।
नियॉन—
विविधवर्णी आलोक
जगमग-जगमग
सड़कों के घर दीवाली
बौनी भीड़····बेशुमार लोग
लगता है :
यहाँ कहाँ
अनजान भीड़ में
छोड़ दिया गया हूँ। अकेला।
और इस···
नगरवास—
वनवास की अवधि में
कितनी ही बार सोचा हूँ :
दोषी कैकेयी नहीं
दशरथ नहीं
अयोध्या नहीं
बल्कि पूरा का पूरा काल-सन्दर्भ रहा—
जिसके कारण
राम वनवासी बने
सीता अनाश्रिता हुईं
(धोबी ने गालियाँ दीं)
और मैं—
आश्रय के लिए
कहाँ से खोज लूँ
एक वाल्मीकि-आश्रम
और जनूँ
लव-कुश
जो रामायण का अन्तिम अध्याय बन सकें
और मैं
पिछली प्रताड़नाओं के मस्तक पर
विजय का तिलक लगा कर
अपना वक्ष ऊँचा करूँ।

—स्वदेश भारत

• बग़ैर शीर्षक

ज़िन्दगी सभी जगे
हम भी एक उनमें-से
जो तुच्छ बन
केवल कल्पना के परों पर
उड़ते रहे!
सोचते रहे :
सृजन की बातें
पर निष्क्रिय औ' नीरस;
कृतिहीन बने
डींग हाँकने में,
खाने और सोने में,
एनर्जी गँवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञापन देखते रहे
एनर्जी-फुड-बिस्कुट का !
बार जनों में बैठ
निन्दा-कुचर्चा में समय बीत गया
फिर भी बुद्धिमान औ' अनुभवी
हैं हम !
नयी पीढ़ी को
नासमझ बना
उपदेशामृत पिलाते रहे ।

—वनिता सोनवलकर

• स्वानुभूति 'स'

एक दिन
फड़फड़ाकर
एक चिड़िया
साइकिल से टकरा गयी;
उस दिन,
चौराहे पर
एक लड़की (न जाने क्यों)
मुझसे कतरा गयी;
तब से
सूनी हर राहों पर
छोटे-बड़े कई साँप
और मछलियाँ
मेरे जूते से
चरमरा गयीं ।
और—
और आकाश से गिरती बूँदें,
सागर पर उतर-उतर कर
उसे सुखा गयीं,
स्वप्नों की लौ
बिन फूँके लहरा गयीं ।
अब वही लिखता
यह सब
जो—निरर्थक है—
क्योंकि—उस दिन से
रोज़
कोई-न-कोई
चिड़िया,
या लड़की,
या साँप या मछली
मेरे जीवन की लौ को
बुझाती है;
और सुलगाती है;
अपना सर्वस्व लुटाती है
मेरे जीवन की—
मृत्यु को
चिता पर लिटाने हेतु
साधन जुटाती है ।

—कमलेश शर्मा

• मरा हुआ शहर

दिन-भर :
भीड़ चलती रहती है बे-काम, बे-अर्थ
तमाशबीनों की, वाहियातों की····
रोशनी की आग में धुली हुई
क्षयी क़हक़हों को बीमार गन्ध····
असमय ही मरते हुए सम्भावित दुर्घटनामय क्षण
गर्भस्थ शिशु-से····। भय और यन्त्रणा की
गहरी होती हुई परतें····
भीतर लगातार फैलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिलचिलाती धूप वाले तपते-पिघलते
रेगिस्तान ।....

रात-भर :
मातमी वस्त्रों में लिपटे शहर की
सूनी सड़कों पर भूँकते हैं आवारा कुत्ते
गौएँ कूड़े के ड्रम उलटती रहती हैं....
नगराकाश की रक्तिम सीमाओं पर
मृत्यु पहरा देती रहती है और
मरा हुआ शहर गुमसुम पड़ा रहता है ।

—बलदेव वंशी

• अनुभूतियाँ

...और तुम
आये,
रुके जब
झील की
पहली सतह
खाली पड़ी थी;
दूसरी भी
रीतने की
प्रक्रिया में,
दे रही थी
कीच-काई,
सत्य की
कैसी घड़ी थी !
• •
जमी पड़ी थी जो
झील की सतह
वर्षों से,
एका-एक
दरक गयी
और
झाँकने लगा
उस दरार से
एक गुलाबी
कमल-पुष्प
रक्त-भींगी
हँसी लिये
होठों पर !

—विजयराय

• याद

सारी रात
उनींदी
करवटें बदलते
पसलियाँ तोड़ते
गुज़रती गयी,
सर-सर, साँय-साँय
शूऊँ शूऊँऽऽ शूऊँऽऽऽ
तेज़ और तेज़ हवाएँ,
अपने भयानक इरादों से
भेदती उस दर्दनाक सन्नाटे को
बढ़ती रही अन्धकार के पीछे
और शंकित मन से
डरा-डरा मैं
करवटें बदलता रहा
यूँ ही बीत गयी
बीत गयी पूरी की पूरी रात
खो गयी अँधेरे के साथ-साथ
वह गर्वीली हवाएँ
कचनार के उस फूले वृक्ष को
धराशायी करती हुई,
सेनीटोरियम में पड़े तुम
मुझे बहुत याद आये ।

—केवल गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पाँच कहानियाँ

- अशोक आत्रेय
- उर्मिला जैन
- सु० कुमार
- कृष्णा दीक्षित
- सतीशकुमार मोदी

भावना-सोपान / अशोक आत्रेय

नंगी और खुरदरी छतकी पीठ। हर घर एक चौपाये जानवरकी तरह खड़ा होता है। शहरमें ऐसे कई चौपाये जानवरोंकी भीड़ होती है, छोटे-बड़े हर क़िस्मके जानवर इस भीड़में, इधर-उधर बिखरावमें पड़े रहते हैं।

ऊँची-नीची मुँडेरोंकी आयताकार, गोल या 'कोनोकल' हौदें इन जानवरोंकी पीठों-पर पड़ी होती हैं। हौदोंके गोल-चौकोर छेदोंसे फेंकी गयीं धूपकी तश्तरियाँ हौदकी छायामें इधर-उधर फिरकनियोंकी तरह नाचती रहती हैं। ऐसी सभी हौदोंका एक ही सूरज होता है जो इनकी आड़से खड़ा-खड़ा 'डिस्कस थ्रो' करता है—हर आनेवाली सुबहके वक़्त-भर और दोपहरमें जो अपनी तमाम तश्तरियाँ एक-एक कर बीनता हुआ दूर निकल जाता है।

पर ऐसेमें भी आज जानवरकी हौदमें एक ओर बैठे दशरथको अपनी पीठ हौदकी एक पट्टीको दे देते हुए आसमानमें अपनी आँखोंकी मछलियाँ टाँगनेकी इच्छा नहीं हो रही। सिगरेटके धुएँसे गहरी राखके रंगोंके छल्ले बनाकर अपना सिर पीछे फेंकनेको भी उसका जी नहीं चाह रहा है।

वह महज़ अस्वाभाविक तौरपर हौदके एक कोनेमें गुमसुम और उदास बैठा है। अब उसने अपनी आँखोंके सामने देखते-देखते हौदकी दूसरी तरफ़ खड़े सूरजको भी दबे-दबे क़दमों अपने ऊपरसे गुज़र जाने दिया है। उसे उसकी तमाम तश्तरियाँ भी एक-एक-कर बीनकर ले जानेकी अनुमति दे दी है जैसे! अब उसके जानवरकी एक ओरकी पसलीका रंग हलके छायादारसे पीली धूपके रंगका हो गया है, दूसरी ओरका इससे रिवर्स, (सूरजके खड़े होनेकी दिशा जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदली है)।

दशरथके सम्पूर्ण जाँघ तकके हिस्सेमें धूपकी पतली पारदर्शक झिल्ली-सी चढ़ आयी है। उसे अपने अन्दर एक चीख व्याप्त हो आयी-सी लगती है। घुटनसे जनमी गहरे विद्रोहकी एक टीस उसे कुरेदती-सी लगती है। एक जुलूस जैसे उसमें गहराता जा रहा है।

····काले झण्डे लिये ढेर सारे लम्बे-छोटे आदमी····घिघौनी, छोटी, तितलीकट मूँछों वाले छोटे-छोटे क़दमों और बोझिल कन्धोंसे चलनेवाले आदमी····उनकी खोखली देहोंको परकोटेकी तरह घेरते उनके खुले गलेके भूरे और मैले रंगके कोट····परकोटेके खुले दरवाज़ेके अन्दर धँसी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती चौकोर बंजर ज़मीनकी पट्टी-से, उनके चौकोर चपटे चेहरे, सबके एक जैसे। और हर आदमीके गालोंपर हावी हुए काले नुकीले भाले लिये एक चक्रव्यूह-सा रचकर खड़े हो आये दाढ़ीके बालोंके सिपाही।

सबके खोखले गलोंसे बिना निकली अव्यक्त शोरकी आवाज़ें। विद्रोह, हाहाकारकी दिन-प्रतिदिन बलवती होती भावनाएँ, पर लम्बी और फैली सड़कोंमें आनेसे डरे-सहमे हुए अपने-आपको अन्दर-ही-अन्दर धू-धू करके जला देनेवाले कुण्ठित लोग।

दशरथको छींक-सी महसूस होती है। पर आज वह विद्रोह करके रहेगा।

और इसीलिए वह वैसे ही पड़ा है। धूपने उसके कमर तकके हिस्सेको अब काट दिया है। वह चाहता है, कोई-न-कोई प्रतिक्रिया इसका ज़रूर हो।

परन्तु दशरथ सोचता है, ऐसा क्या है जो उसे बार-बार सोचने या किसी चीज़को अस्वीकारनेको प्रेरित करता रहता है? विवशताओंके प्रत्यक्ष दर्शनके बाद भी! वह ज़िन्दा है क्या यह इस बातको पुष्ट नहीं करता कि उसने सब कुछ, जैसा जो है, स्वीकार कर लिया है। फिर यह बार-बार विरोध करनेकी स्थिति क्या उसे स्वयं ही को नहीं कुरेद देती?···वह स्वयं अपने मानसिक विकारों, तनावके असंगत क्षणोंको साधे रखनेको ज़िन्दा जड़ है।

····पर यह सब एकपक्षीय बात भी तो है। इसीलिए अपने-आपमें अपूर्ण। इसीकी पूर्णताकी खोजमें, इच्छामें उसमें विरोधकी भावनाएँ पनपती हैं। वह जानता है, किसी भी बातको जन्म-जन्मान्तरके लिए स्वीकार लेनेसे वह एक बड़े सत्यसे वंचित भी रह सकता है। अधिकारोंसे वंचित रह जानेके पीछे इतनी ही बात तो निहित है कि हम घुट-घुटकर अन्दर-ही-अन्दर जलते रहते हैं, अपनेसे बाहर आने में एक अज्ञात भय-आशंकासे हम जकड़े हुए अपने-आपको महसूस करते रहते हैं।

दशरथ फिर तनाव-सा महसूस करता है अपने-आपमें। असंगत क्षणोंको साधे रखनेका तनाव····'धूप उसे गरदन तक काट रही है····वह स्पष्ट रूपसे कुछ भी तोड़-फोड़ सकनेकी स्थितिमें है, नीचेसे खाट ऊपर लाकर अपने ऊपर तान लेनेकी स्थितिमें।'

किसीके कुछ कहनेपर या विरोध करनेपर उसे लकड़ीसे धक्के देकर नीचे पटक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने···फिर बिना किसी चिन्ताके पड़े रहने···· किसी भी चेहरे तकको नफ़रतसे देखने, सभीको गधों और निकम्मोंकी श्रेणीमें सोचने, अपनेआपको पूरी धूपमें लम्बा लिटा देने, पैर फैलाने या सिकोड़ लेने, सबपर गुस्सा करने, और अपना वश चलनेपर किसीकी भी गरदन तक काट देने, फिर आँखें मूँदकर पड़े रहने, अपने अन्दर आग-सी महसूस करने, घरकी सारी सन्दूकें तोड़कर फेंक देने, कपड़ोंमें आग लगा देने, अपने चेहरेको बार-बार विकृत महसूस करने, फिर थोड़ी देर बाद धूप उसके सिर तक चढ़ आयेगी—यह सोचने, अपने प्रति कभी-कभी खीझ भी व्यक्त करने, अपनी आँखोंके भारी होनेकी सोचने, नीचे कूदकर आत्महत्या भी कर सकने, चार मंज़िलसे कूदकर पड़ी अपनी मृतदेहपर क्यों-कैसे आदि बातोंको सोचनेका अधिकार रखने, अपने किसी भी पहचानके आदमीपर थूक देने, नीचे सीढ़ियोंसे दोबारा खाट अपनी हौद तक ले आनेकी बातको जँचा लेने, इसी बातको गहराईसे सोचनेपर कई दौरोंसे गुज़रने, पहले और दूसरे दौरमें अपनी और घरके लोगोंको नयी बननेवाली स्थितियोंको भोगने या अचानक उसके किसी मित्रके आगमनपर मित्र-द्वारा उसे इस 'नये घर' की नयी एवं 'जर्जरपूर्ण' स्थितिमें देखकर उससे शीघ्र यह कहे जाने पर कि 'यार तुम पूरे धाघ हो, इस भरी दोपहरीमें भी आँखें चार करते रहनेकी तरकीब आखिर तुमने सोच ही निकाली-यानी कि तब अपने-आपको आँखें चार करनेवाले नये 'इन्वेण्टर'के रूपमें भी पाकर गर्व करने और मित्रके लिए व्यर्थमें दाढ़ी बढ़ाये अपने आपको विषम परिस्थितियोंसे ग्रसित नहीं दर्शानेका पूरा प्रयास करने आदिके सभी तनावके क्षणोंको साधे रखनेवाली स्थितियोंमें दशरथ जीता है।

किन्तु फिर अचानक एक नयी बात ध्यान आनेपर वह कहीं भूलेसे यकायक जाग-सा पड़ता है। वह कुछ आड़े होकर साइडमें खड़े अपनी एक अच्छी पहचानके 'जानवर' की तरफ़ अपनी नज़रें फेंकता है और उसे बड़ा अजीब-सा लगने लगता है।

उसे जाने क्यों यह अलग-सी स्थिति लगती है। कोई अदृश्य आकृति (उसकी पहचानकी ही) उसे अपलक देख रही-सी प्रतीत होती है। दशरथके होठोंमें हँसी-सी फूट पड़ती है, वह बदलकर कुछ और अस्वाभाविक रूपमें अपने-आपको ताज़ा महसूस करता है।

दशरथको जाने क्या जल्दी लगती है कि वह इन्हीं क्षणोंमें इस आकृतिका नामकरण भी कर देता है—दिव्या! एक विराट् रूप!!

उसे फिर लगता है—जैसे उसकी और दिव्याकी नज़रोंकी मछलियाँ अब ठीक एक-दूसरेकी ओर तैरकर कहीं बीचमें टकरा गयी हैं, एक-दूसरेसे गुँथ गयी हैं। फिर दिव्याने जैसे कोई नया मोड़-सा अपने एक हाथके इशारेसे उसकी ओर फेंका है। उत्ताल तरंगोंमें बहती उसकी किश्तीको अब एक ओर खेवनहारकी जैसे आवश्यकता महसूस हो रही है।

और तब दशरथका 'मछियारा' गात जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झनझना उठा है, इतनी खुली चुनौती ? इतना खुला निमन्त्रण ?

....उसे फिर लगता है जैसे वह जल्दी-जल्दीमें सभी सीढ़ियाँ उतर गया है—दिव्या-की खिड़की भी साइडमें बन्द हो गयी है।

....अब जैसे वह जल्दीसे अपने कपड़ोंमें इधर-उधरकी साधारण तब्दीली कर बाहर सड़कमें आ गया है। चौराहेसे मुड़कर वह पिछली सड़ककी दिशामें मुड़ गया है।

....उसके दोनों तरफ़ छोटे-बड़े 'जानवरों' की एक पंक्ति-सी खड़ी हुई है, और सामने पड़नेवाले चौराहेसे दिव्या भी उसे साफ़ दिखलाई पड़कर, बड़े बाज़ारकी तरफ़ मुड़ गयी है।

—पर यथार्थके दशरथकी अब जैसे नींद टूटती है....दिव्याके सामनेवाली खिड़की बन्द पड़ी है, फिर भी वह अपनी हौदके नीचे उतर आया है। अब काँचके सामने खड़ा हो अपने गालोंमें हाथ फेर रहा है—मेरे प्यारे सिपाही! चक्रव्यूह रचकर खड़े हो आये मेरे प्यारे सिपाही! मैं एक-एककर तुम्हें अपनी हजामत-की कटोरीमें अभी तैराये देता हूँ।

■

गुलमोहर झरता ही गया / उर्मिला जैन

प्लेनकी घरघराट अभी भी सुनाई दे रही थी। उसके एयरपोर्टसे बाहर चले आनेके बाद भी। लाउन्जसे बाहर आकर रोज़की तरह ही उसने 'ओपल'का दरवाज़ा खोला। आज बग़लकी सीट खाली थी। यदि वह होती तो शायद कहती, "लाइए, हम ड्राइव करें!"....या शायद वह ख़ामोश किसी चीज़को या फिर काजूके पीले बड़े-बड़े फलोंको ही आश्चर्यसे देखती होती और वही कहता, "बस शुरू! चलना नहीं है क्या?" और जब वह बायीं ओरके दरवाज़ेकी तरफ़ बढ़ती होती, तबतक वह खुद बायीं ओर बैठ जाता। वह समझ लेती कि ड्राइव करनेको उसे कहा जा रहा है। वह चुपकेसे ड्राइवरकी सीटपर जा बैठती, साड़ीका आँचल सँभालती, पैरोंकी तरफ़का चून ठीक करती, पर्स सामने रख देती, गॉगल्स निकाल धीरे-धीरे पोंछती, फिर आँखों-पर फ़िट करती। यह सब यन्त्रवत् होता। गोया इनमें-से कोई एक भी क्रिया न होनेपर वह नयी 'ओपल'स्टार्ट ही नहीं होगी। इतनेमें आँचल फिर खिसक जाता, वह फिर ठीक करती। बायें पैरसे क्लच दबाती और तभी सीटके कुछ पीछे होनेकी शिकायत करती।

वह खीझकर कहता, "पहले नहीं कहना था? हटो। ठीक कर दूँ।"

पर वह ज्योंकी त्यों बैठी रहती और कहती, "अब इस समय रहने दीजिए, काम चल जायेगा।"

पर आज यह सब कुछ नहीं हुआ। दर-वाज़ा खोल, चुपके-से सीटपर बैठकर उसने स्टीयरिंग सँभाली। गीयरको रिभर्समें डाल-कर ओपलको थोड़ा पीछे हटाया और फिर फ़ारवर्डमें डालकर लम्बी-सूनी सड़ककी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ी बढ़ायी। अनिलको हाथ बाहर निकालकर बिदा दी, जो उसके साथ ही उसे सी-ऑफ़ करने आया था।

गाड़ी आगे बढ़ी। पर आज तेज़ हवाकी वजहसे बालोंके ख़राब होनेकी शिकायत किसीने नहीं की। यदि वह होती तो कहती, "बहुत तेज़ हवा है। सारे बाल बिखर जाते हैं।"

आधा रास्ता बीत गया। बायीं ओर जर्मनकालकी बनी हुई म्यूज़ियमकी बड़ी-सी पुरानी इमारत पीछे छूट गयी। वह रहती तो अवश्य पूछती, "यह क्या है?"

और वह कहता, "क्या छोटी-छोटी बातें पूछती रहती हो, बच्चोंकी तरह। पहली बार हिलपर जाते वक़्त मैं बता नहीं चुका था कि क्या है। म्यूज़ियम है, और क्या?" और फिर वह ख़ामोश गम्भीर-सी बनी ड्राइव करती होती। बग़लसे कोई गाड़ी तेज़ सर्राटेसे निकल जाती। वह कहता, "और किनारे करते नहीं बनता। किसी दिन एक्सीडेण्ट ज़रूर करोगी तुम।"

वह कहती, "किया तो।" या "कर तो रहे थे।"

सड़कके दोनों ओर लगे नारियल और ताड़के बड़े-बड़े वृक्ष गुज़रते जाते। कहीं गुलमोहरके क़तारके क़तार दिखते। वह उन्हें देखने लगती। वह फिर टोकता, "कितनी बार कहा, ड्राइविंग करते हुए इधर-उधर मत देखा करो, पर मानतीं ही नहीं।" वह झट सिर सामने कर लेती और स्टीयरिंग कुछ कसकर पकड़ती।

छोटे-से ख़ामोश शहरको पार कर सी-शोरको पीछे छोड़ वह हिलपर बने अपने छह-मंज़िले ब्लाकपर आ गया था। उसका फ़्लैट सबसे ऊपरकी मंज़िलपर था।

बारह बजनेवाले थे। हवा तेज़ थी। नीचेके हातेका गुलमोहर झूम रहा था। वह धीमे-धीमे पाँव रखता हुआ ऊपर चला। हर दिनकी तरह आज भी नीचेवाली मंज़िलकी मिसेज़ करुमुनाका तीन वर्षीय बच्चा पीटर 'हलो' करता हुआ आया। वह होती तो उसे अपने साथ ले आती। पर वह ख़ामोश चढ़ता ही गया। बच्चा आँखोंमें प्रश्न-चिह्न-भरे खड़ाका खड़ा रहा, सिर उठाये उसे देखता।

दरवाज़ेमें लगे हुए लॉकमें चाबी डालते ही उसे याद आया—आज तो ब्रेड ले आना था। अब खाना बनानेकी झंझट करनी होगी। पर अब क्या।

आकर चुपचाप सोफ़ेमें धँस गया। सामने जापानी गुलदस्तेमें लगा मनीप्लाण्ट धीरेसे हिला। 'लाइफ़', 'टाइम', 'न्यूज़वीक', 'गार्जियन' आदिके पन्ने फड़फड़ाये। उसने देखा—चारों तरफ़की खिड़कियाँ तो बन्द हैं, फिर भी न जाने कहाँसे इतनी हवा आती रहती है। खीझकर वहीं पड़ी हुई स्ट्रेपिल मशीन उसने पत्रिकाओंपर डाल दी। घड़ीकी ओर नज़र गयी। बारह बज चुके थे।

सोचा, प्लेन गये एक घण्टा बीता। अब एक घण्टेमें वह नैरोबी पहुँच जायेगी और कल सुबह बम्बई।

कुछ देर बैठा नाखूनोंको काटता रहा। सोचा, चलो कुछ बना ही डालूँ। खिचड़ी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही। किचनमें जाकर हॉट प्लेटको गरम करनेके लिए स्विच ऑन किया। ओवनका दरवाज़ा खोला। देखा कि पूरियाँ और उसके मन-पसन्दकी गोभी-मटरकी साग रखी है। वह समझ गया कि यह उसीका काम है। पर उसने यह किया कब ? स्विच ऑफ़ कर बाहर आ गया। बाथरूममें जानेके लिए बेडरूममें आया तो देखा कि बुक-रैकके ऊपर रखे गुलाबी काग़ज़पर हरी स्याहीसे—जो उसकी मन-पसन्द स्याही थी—इलियटकी ये पंक्तियाँ लिखी थीं—

आई सेड टू माई सोल,
बी स्टिल एण्ड वेट विदआउट होप,
फ़ॉर होप वुड बी होप ऑफ़ दी रौंग थिंग,
वेट विदआउट लव्,
फ़ॉर लव् वुड बी लव् ऑफ़ दी रौंग थिंग,
देयर इज़ येट फ़ेथ,
बट दी फ़ेथ एण्ड दी होप एण्ड दी लव्
आर ऑल इन दी वेटिंग।

वह आश्चर्यमें पड़ गया। क्या वह अँगरेज़ी जानती थी ? पर उसने तो बार-बार कहनेके बावजूद भी कभी अँगरेज़ीमें बातें नहीं कीं। वह अवाक्-सा, काग़ज़ लिये खिड़कीके पास आ खड़ा हुआ। नीचे नज़र गयी। देखा, हवा धीमी है, फिर भी गुलमोहर रह-रहकर झर जाते हैं। अब उसे याद आया कि कभी-कभी बाहरसे लौटनेपर उसने पाया था कि वह सामनेवाले फ़्लैटकी मिसेज़ थॉम्पसनके यहाँसे या तीसरी मंज़िलकी मिसेज़ विंगफ़ील्डके यहाँसे वापस आ रही है। एक दिन उसने कहा भी था कि आज मिसेज़ विंगफ़ील्डने उसे कॉफ़ीपर बुलाया है। पर तब उसने ध्यान नहीं दिया था। यदि अँगरेज़ीमें बातें नहीं कर पाती तो उनसे बात-चीत करती कैसे ? तो वह उससे अपना अँगरेज़ीका ज्ञान छिपाये ही रही। अजीब लड़की निकली! चार महीने बीत गये। कहनेके बावजूद भी उसने नहीं बताया। गुलाबी पेपरपर नज़र फिर पहुँची।

'बट दी फ़ेथ एण्ड दी होप एण्ड दी लव् आर ऑल इन वेटिंग—'

क्या अभी भी वह वेट कर रही है। पर वह····उसने तो ख़ुद कहा था, उस दिन बाग-मोयोकी पिकनिकसे लौटनेके बाद कि लोगोंके सामने आदतसे लाचार होकर कुछ भी कह देती हूँ, पर सबसे ज़्यादा चाहती भी तो तुम्हें ही हूँ। और फिर जब बाबूजीका ख़त परसों आया था, जिसमें राजूके विवाहकी बात थी, तब उसने उससे कहा था, "हम लोग उसे शादीमें ऑटोमेटिक हेयर-ड्रायर दे देंगे।" और तभी लेने-देनेवाली बातोंके सिलसिलेमें उसने कहा था कि हमें तो किसीने कुछ नहीं दिया। और तब उसके पूछनेपर कि तुम्हें क्या नहीं मिला, वह कह रही थी, "हाँ यह तो ठीक है कि तुम मिले तो सब कुछ मिला।"

तब गयी ही क्यों ? उसने ख़ुद तो जानेको नहीं कहा था। पर फिर नज़र पड़ी—'बाज इन वेटिंग····'

तो क्या ? अभी भी····।

नहीं।

पर जबसे उसने मारियाका ख़त पढ़ लिया था, कभी कहती अब हम यहाँ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेंगे, कभी कहती हम यहीं रहेंगे। वह तंग आ गया था उसके रोज़-रोज़के बदलते विचारों से। कभी लगता, जैसे अपनी या अपनी बातोंकी सुरक्षा कर रही है।

"नहीं। यहाँ रहनेसे थीसिस पूरी कैसे होगी।"

वह भी कहता, "हाँ चली जाओ। जब मन हो, चली आना।" पर वह अपनी ज़िद-पर रहती ही गयी। चार महीने बीत गये, वह नहीं ही गयी।

पिछले सोमवारको उसने एकाएक कहा, "कल हम चले जायेंगे।" हालाँ कि कहते वक़्त उसकी काली आँखोंके गुलाबी डोरोंमें कई प्रश्न-चिह्न उभरे थे। पर उसने एक बार भी नहीं कहा कि रुक जाओ। बस—"अच्छा लगा है तो अगले प्लेनसे चली जाना।"

और वह चली गयी।

हवाका एक तेज़ झोंका आया। उसकी नज़र फिर नीचे गयी। देखा, इस बार गुलमोहर बेतहाशा झर रहे हैं। दीवाल-घड़ीकी ओर नज़र गयी। अबतक नैरोबी पहुँच गयी होगी।

"आल आर इन वेटिंग..."

स्थान-पूर्ति / सु० कुमार

वह दृश्य सामान्य हो चुका है, अब आँखोंको चुभता नहीं महसूस होता। जब यहाँ नया-नया आया था तो घरका पिछला दरवाज़ा खोलनेकी बड़ी उत्सुकता रहती थी।

वह प्रतीक्षा कर रही है। एक निश्चयके साथ वह आगे बढ़ा कि ट्रंककाल कर उसे नैरोबीसे ही वापस बुला ले। बेड-रूमसे सिटिंग रूममें आ गया। फिर कुछ सोचा। गरदन हिली। हाथकी उँगलियोंको मसला। एक निश्चयका भाव लिये खिड़कीके पास आ खड़ा हुआ। नीचे गुलमोहर धीरे-धीरे चू रहे थे। हथेलियोंपर गालको टिकाये कुछ देर खड़ा रहा। आँखें मुँदती-सी गयीं। पाँच, मिनिट, छह मिनिट, सात मिनिट बीते। एका-एक झटकेके साथ वह मुड़ा। मुड़ते वक़्त नज़र नीचे गयी। देखा, गुलमोहर शान्त है।

फ़ोनके पास पहुँचकर रिसीवर उठाया। डायल घुमाया। पर, एक, दो····और फिर रिसीवर रखकर सोफ़ेमें धँस गया। उसने सोचा—नहीं! क्यों गयी वह! जाये! पर वह भी तो जानता था कि एक बार भी रुकने-को कहनेपर वह रुक जाती। अभी भी····· उहूँ·····।

फिर उसी खिड़कीके पास चला आया। हवा तेज़ हो गयी थी। बहुत तेज़। नीचे गुलमोहर बहुत तेज़·····बहुत तेज़ झर रहा था—झरता ही चला जा रहा था।

तब वह दृश्य, जो अब सामान्य हो चुका है, सामने आता था। घरके पिछवाड़ेमें मैं सब्ज़ी उगाता हूँ। मैं वहीं बराबर डटा रहता, जब भी फ़ुरसत होती। मेरा सब्ज़ीसे वैसा प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी रहा नहीं कि हरदम वहाँ घूमनेकी नौबत आती। फिर भी मैं वहाँ घूमता। क्यों? इसका कारण बतानेके लिए इतना पर्याप्त होगा कि मैं अपने कुँवारेपनको, जिसे आम-तौरपर प्रेम-सम्बन्धोंके सिलसिलेमें कमज़ोरी समझा जाता है, ज़ाहिर कर दूँ। मेरे घरके पिछवाड़ेमें एक फूसका घर था। उसमें एक परिवार रहता था, जिसके सभी सदस्य लड़कियाँ और औरतें थीं। मैं यहाँ नया-नया आया था, फिर भी मैंने उन लोगोंके प्रति अपनी राय क़ायम कर ली थी। उनमें-से एक नीली साड़ीवाली लड़की, जो सबसे बड़ी थी, मुझे पिछले कई दिनोंसे घूरती थी। मैं औरतों और खासकर जवान औरतोंके प्रति हृदयमें एक उदार भाव रखता हूँ। शायद इसीलिए मुझे वह दृश्य मेरी आँखोंको चुभता हुआ महसूस होता था, (और मुझे बड़ी कोफ़्त होती थी,) जब कुछ आवारा छोकरे उस घरकी दहलीज़पर और कमरेमें जमा होते और देर तक वहाँ बने रहते। अब भी वे बने रहते हैं, पर अब न वह दृश्य चुभता है, न मुझे कोफ़्त ही होती है।

बात यह हुई है कि मैं यहाँ जम गया हूँ, और मेरे यहाँपर बहुत-से दोस्त बन गये हैं, जो लड़कियोंके मामलेमें इतने ही साफ़ और खुले हैं कि अपने साथीके किसी लड़कीके साथ काल्पनिक और वास्तविक प्रेम-व्यवहार-को भोंड़े मज़ाक़का विषय बनाते हैं और उसके प्रत्येक पहलूका स्पष्टीकरण करते हुए देर तक जायज़ा लेते हैं। ये वही मित्र थे जो मेरे पिछवाड़ेके उस फूसके घरमें उपस्थित होते थे और जिनकी उपस्थितिसे मुझे बड़ी कोफ़्त होती थी। ये सारे मित्र आपसमें और अपने प्रेम-सम्बन्धोंमें भी मित्र थे। सबके सब लड़कियोंके चाहनेवाले थे और एक ही लड़की-को कई-कई मित्र समभावसे चाहते थे। उन लोगोंका प्रेम शरीर-सम्बन्धों तक ही सीमित या इसी सीमामें एक हद तक विस्तृत (?) था—ऐसा उनकी बातोंसे ज़ाहिर होता। उन सबोंमें तत्सम्बन्धी कोई दुराव या छिपाव नहीं था। वे सारे मित्र, जिन्हें मैं अपने घरमें लानेका कभी साहस न कर पाया, उन लड़कियोंके प्रति मेरी एषणा जानना चाहते थे। मैंने एक बार सिर्फ़ इतना कहा था, "नीली साड़ीवाली लड़की बड़ी सुन्दर है।" उन लोगोंने मजनूकी मुद्रामें 'हाय'की-सी अदाके साथ एक साथ कहा—"नीलिमा!"

नीलिमा उस लड़कीका नाम था जो मुझे पिछले कई दिनोंसे घूरती थी। वे मित्र मुझे कभी उसके यहाँ ले चलनेकी बात चलाते। मैं बड़ी सफ़ाईसे ऐसे मौक़ोंको टाल जाता। मुझे प्यारसे भय है, फिर भी उसे झेला जा सकता है, बदनामीको झेलना बुरा है। मैं अपनी सब्ज़ीकी क्यारियोंमें खड़ा होकर उन्हें निहारता। मैं कभी उनके यहाँ नहीं गया। मेरी परिचिति जितनी लम्बी होती गयी, मैं अपने कुँवारेपनके उदार भावोंको सँजोये उन लड़कियोंसे घृणा करने लगा।

■

उनके प्रति किसीका अच्छा खयाल नहीं हो सकता था। वे छह बहनें थीं जिनमें पाँचकी मैं जानता था। बड़ी बहन कुएँमें डूबकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर गयी थी। वह, कहते हैं, बदचलन थी और उसने आत्महत्या की थी। इसके काफ़ी 'डिटेल्स' मुझे तथाकथित मित्रों और रिश्तेदारोंसे मिले, जो आप यदि जानना चाहें तो काफ़ी समय और एकान्तकी अपेक्षा होगी। अब जो सबसे बड़ी बहन थी, वह नीलिमा थी। वह नीली साड़ीवाली लड़की जो मुझे घूरा करती। वह बराबर नीली साड़ी पहनती! या तो उसके पास एक ही साड़ी थी, या एक ही डिज़ाइनकी दो साड़ियाँ थीं। उसके पास इससे ज़्यादा साड़ियाँ होंगी—ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता था, क्योंकि वह एक प्राइमरी स्कूलमें मिस्ट्रेस थी। परिवारमें उसकी चार बहनें और माँ थीं और आयका सिवा नीलिमाके वेतनके कोई दूसरा ज़रिया नहीं नज़र आता था। बड़ी लड़कीकी आत्महत्या करनेके कुछ साल पहले तक उन लड़कियोंका पिता था और कोई साधारण-सा काम करता था, किन्तु अब वह उनका पिता न था। अब वह दूरके किसी अनजान स्थानमें था, (या नहीं था,) और इन लोगोंसे सर्वथा निरपेक्ष था। मैं समझता हूँ, वह केवल इतना कमा पाता होगा कि अपने पारिवारिक दायित्वोंसे मुख मोड़नेको मजबूर हो जाये। उन लड़कियोंकी माँ काफ़ी सहिष्णु थी, वह अपने पतिकी भाँति अपनी सन्तानसे पराङ्मुख नहीं हुई।

कहते हैं, आत्महत्या करनेवाली लड़की हूबहू नीलिमाकी तरह थी। मेरे दोस्तोंका कहना है कि जब वह नीलिमाकी साड़ी पहन लेती थी तो उसे नीलिमासे अलग पहचान पाना मुश्किल हो जाता। दोस्त इस सम्बन्धमें कई संस्मरण सुनाते कि किस तरह उसीको नीलिमा समझकर उसकी बड़ी बहनके बारेमें वे पूछ बैठनेकी ग़लती कर बैठते। वे काफ़ी नज़दीक आकर ही उसे पहचाननेमें सफल होते। मैंने नीलिमाको नज़दीकसे देखा है, उससे बातें भी की हैं, इसके आधारपर नीलिमाकी बड़ी बहनके स्वरूपका अनुमान करनेकी कोशिश की है। रात्रिके एकान्तपूर्ण क्षणोंमें मैंने नीलिमाकी बेबसीपर सोचते हुए नींदका इन्तज़ार किया है। कभी-कभी मैंने पिछवाड़ेकी क्यारियोंमें खड़े होकर एक पिताकी लाचारगीपर विचार किया है, और नीलिमाके बादकी चार लड़कियोंकी नियतिपर भी, जिनके वक्षोंमें असमय ही उभार आने लगा है। कच्ची उम्रकी वे लड़कियाँ अश्लील गालियोंके बेतहाशा प्रयोग करनेमें ज़रा भी हिचकती न थीं।

सबसे बड़ी लज्जा और दुःखकी बात यह थी कि वे वेश्या नहीं थीं। वे कुण्ठाग्रस्त शरीफ़ोंका-सा जीवन बिता रही थीं। नीलिमाका वेतन जितना स्पष्ट था, खर्चे उससे ज़्यादा स्पष्ट थे। उसकी छोटी बहनें उससे और उसकी माँसे हमेशा झगड़ा करती थीं। ये झगड़े किसी सिद्धान्तके सन्दर्भमें नहीं होते थे, न उन झगड़ोंमें अपेक्षाकृत मानसिक तर्कोंका सहारा ही लिया जाता था। गाली-गलौज और निरर्थक ऊँची आवाज़ें ही इन झगड़ोंमें व्यवहृत होती थीं। ये झगड़े रोटी या चावल-जैसी खानेकी चीज़ोंसे सम्बन्धित होते थे जो उन लोगोंके लिए सिद्धान्तसे ज़्यादा महत्त्वकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं। अतएव उन लड़कियोंके पास तकोंका कोई गुंजाइश नहीं थी। वे, यदि आमका मौसम होता तो, कहींसे टिकोले तोड़ लातीं, या मौसम होनेपर किसी खेतसे मटर या भुट्टे तोड़ लातीं। रोज़ कोई-न-कोई वाक़या होता और पेड़ या खेतवाला झगड़ता हुआ घुमा-फिराकर इतनी ही बात कहता—"शर्म-हया घोलकर पी गयी हैं सब—बेहया कहीं की!"

मैं समझता था कि नीलिमाके वे बहुत सारे मित्र उसे आर्थिक सहायता देते होंगे। किन्तु वे मित्र, जिन्हें पहली ही नज़रमें कोई भी आवारा कह सकता था, स्वयं अपने घरमें आर्थिक तौरपर अभिभावकोंकी दया-दृष्टिसे वंचित थे। बहुत दिनों तक वे अपनी तथा-कथित स्थितिसे नीलिमाको फुसलाये रखनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु आख़िरकार उनके लम्बे साहचर्यने नीलिमाको उनकी सचमुचकी स्थितिका भान करा ही दिया था। मित्रों और नीलिमा दोनोंकी हालतसे मैं परिचित था। नीलिमा मित्रोंको टाल नहीं सकती थी, किन्तु उनसे अब कुछ आशा भी नहीं करती थी। अब मित्रोंकी स्थिति दलालोंकी-सी थी। यह वही समय था जब नीलिमाके बराबर नये-नये मित्र हुआ करते। वस्तुतः ये ग्राहक थे जो मित्र दीखते। मैंने जाने क्यों अनुमान किया कि नीलिमा मुझे भी अपना मित्र (या ग्राहक?) बनाना चाहती है। शायद मेरा अनुमान सही था।····एक दिन, जब मैं बाज़ारसे आ रहा था, वह अपने स्कूलसे लौटती हुई मिली। उसने मुझसे दस रुपयोंकी माँग की, बड़े ही अनौपचारिक तौरपर। मैंने उस अनौपचारिकताको बर-क़रार रखते हुए जेबसे रुपये निकालकर उसे थमा दिये। उसने ठण्डे मनसे मुझे अपने घर आनेका निमन्त्रण दिया, जिसे मैंने बड़ी शालीनतासे अस्वीकार कर दिया। तब उसने गिड़गिड़ाकर मुझसे प्रार्थना की कि मैं उसके घर कमसे कम चाय पीलूँ। मैंने कहा कि मैं चायसे घृणा करता हूँ और उन घरोंमें अकेले जानेसे भी जिनमें मर्द नहीं। तब वह रुआँसी आवाज़में बोली, "आपके ये रुपये मैं कैसे अदा कर पाऊँगी?"

मेरी इच्छा उसे रुलानेकी नहीं थी। वह मेरे विषयमें मित्रोंके द्वारा जानती थी पर वह इस लहजेमें बोली थी कि मानो मैं उसका पूर्व-परिचित हूँ। मैंने उससे कहा कि वह मुझे मित्रवत् समझे किन्तु अन्य मित्रोंकी भाँति नहीं। मैं उसकी हर सम्भव सहायता करनेमें प्रसन्नता अनुभव करूँगा, किन्तु मैं सामाजिकतासे परे नहीं हूँ। मेरे व्यक्तित्वके गिर्द अब भी सामाजिक सम्बन्धोंसे उत्पन्न भय लिपटा रहता है बराबर। मैंने उसे यह भी कहा कि यों तो आम मुझसे सहायता माँगकर वह अन्य लोगोंको हम दोनोंके बीच नये और किंचित् दुःसम्बन्धोंकी सृष्टि करनेका अवसर न दे।

उसकी आँखोंमें जैसे कोई बादल घुस आया था। आँसू बरसाते हुई उसने स्वीकार किया कि वह चरित्रहीना थी और उसने बहनोंके चरित्रकी रक्षाके लिए अपनी यह नियति अंगीकार की थी। उसने बताया कि जब उसकी बड़ी बहन जीवित थी, तो उसका (नीलिमाका) चरित्र परमोज्ज्वल था। उसकी बड़ी बहन ही घरका सारा खर्चा चलाती थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूलसे मिलनेवाला नीलिमाका अपना वेतन तो दिखावा मात्र था। जबसे उसकी बड़ी बहनने आत्महत्या की थी, तबसे नीलिमा चरित्र-भ्रष्ट हो गयी थी। "फिर भी सच तो यह है कि मैंने कभी काम-क्षुधा महसूस नहीं की और बराबर थोड़े-से रुपयोंमें ही अपनी रातें बेच दीं!" उसने कहा।

उसकी इस स्पष्टोक्तिसे मुझे ज़रा भी सुख नहीं पहुँचा, बल्कि उसके प्रति तीव्रतम घृणा ही जागी और मैंने कुढ़कर कहा—"अब तो कुछ दिन भी बेचने लगी?"

यह उस सन्दर्भमें बहुत बड़ा अपमान-जनक वाक्य था, ऐसा मैंने सोचा। मैंने आशा की कि यह वाक्य उसे काफ़ी चुभेगा और वह शायद मेरे रुपये लौटा दे या फेंक दे। किन्तु वह मुट्ठीको और अधिक सख्त करती चली गयी। वह अपने घर पहुँचने तक चुप रही थी।

तबसे मैं जब भी सब्ज़ीकी क्यारियोंमें जाता, उसे उसके दरवाज़ेके आगे खड़ी देखता। वह बन-ठनी (मानो अपनी ड्यूटीपर खड़ी हो) राहगीरों और मित्रोंकी प्रतीक्षा करती। ऐसे ही एक दिन वह खड़ी थी और जब मैं बाज़ारकी तरफ़ चला तो वह मेरे पीछे हो ली। उसने बिना मुझे सम्बोधित किये बोलना आरम्भ कर दिया था। वह कह रही थी कि जिन बहनोंके चरित्रको बनाये रखनेके लिए उसने अपने जिस्मपर असमय बुढ़ापा लाद लिया है वे आवारा हो रही हैं और उलटे उसे ही ताना देती हैं। वह बुदबुदा रही थी कि इन लड़कियोंके लिए उसने अपनी अस्मतकी बलि दी है। केवल कुछ 'सेण्टी-मेण्टस'के लिए कोई कहाँतक अपना जीवन चौपट करता फिरे। उसने मुझे एक विशेष खबर दी कि उसका एक मित्र उससे सिविल मैरिज करनेको तैयार है और वह कुछ ही दिनोंमें अपना परिवार छोड़नेवाली है। उसने उत्फुल्ल स्वरमें कहा, "लड़केकी उमर कोई ज़्यादा नहीं है; आप जानते हैं उसे।",

"बेहतर होता कि तुम भी आत्महत्या कर लेती!" मैंने कहा और अपने कथनका प्रभाव उसके चेहरेपर देखने लगा। उसे काफ़ी चोट पहुँची हो—ऐसा भाव मैं नहीं पढ़ पाया।

किन्तु शादी करने और परिवार छोड़नेके पहले ही वह बीमार पड़ गयी। उसकी दूसरी बहन मेरे पास डॉक्टरकी फ़ीस और दवाईके लिए कुछ रुपये माँगने आयी थी। उसका भी चेहरा नीलिमासे बहुत कुछ मिलता था, यद्यपि यह मुटापेकी ओर अग्रसर थी। जवान होनेपर भी उसमें किशोर-सुलभ चापल्यका अभाव न था। उसके अत्यधिक उभरे हुए वक्षोंपर उसका फ्रॉक छोटा आता था। वह फ्रॉकमें उतनी अच्छी नहीं लग रही थी, हालाँकि वह जिस्मानी तौरपर काफ़ी सुन्दर कही जा सकती थी। मैं उसे रोज़ इसी फ्रॉकमें, लेकिन ज़रा दूरसे देखता था। मैंने कुछ नोट उसे देकर उसके गन्दे फ्रॉकके बारेमें टोका। उखड़े हुए स्वरमें वह बोली कि नये फ्रॉक या साड़ियोंके लिए उसके पास पैसे नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीलिमाकी शादी होनेवाली थी, इस बातको मैं लगभग विस्मृत कर चुका था। मित्रोंने (तथाकथित) किसी होटलमें छोटी-सी पार्टीका आयोजन किया था जिसमें आमन्त्रित होनेपर भी मैं न गया, न मैं कोर्ट ही गया। कोई ज़रूरत भी तो नहीं थी। उस रोज़ भी मैं अपनी सब्ज़ीकी क्यारियोंमें ही खड़ा था जिस रोज़ नीलिमा घरसे जा रही थी। उसका मित्र-पति हाथमें एक छोटा-सा सूटकेस रखे था और नीलिमा, मेरे जानते प्रथम बार, नॉयलनकी सफ़ेद साड़ी पहने थी। उन दोनों ने बरामदेमें नीलिमाकी माँके पैर छुए। फिर वे दोनों रिक्शेमें बैठ गये। नीलिमाका समूचा परिवार रिक्शेके गिर्द इकट्ठा हो गया था। यद्यपि दूरीके कारण मैं उनके चेहरे अच्छी तरह नहीं देख सकता था, फिर भी मैं अनुमानसे सबके मनोभावोंको, जो उनके चेहरोंपर अंकित थे, पढ़ सकता था। वे सभी रुआँसी और काफ़ी भयभीत थीं।

रिक्शा चल दिया और चलता रहा··· नीलिमाने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा, गो वह अपनी पीठमें कई नज़रें गड़ती हुई महसूस कर रही होगी—यह तय है।

रिक्शा चला गया और सड़क सपाट दिखाई देने लगी तो परिवारके लोग अपने घर की ओर मुड़े—बड़े ही धीमे क़दमोंसे सबको उस घरके उदास परिवेशमें लौटता हुआ मैं देखता रहा। फिर मैंने एक उचाट निगाह गर्द-भरी जनहीन सड़कपर डाली। विधवाकी माँगकी तरह सूनी सड़कपर मेरी नज़रें टिक गयीं। मैंने हवाके थपेड़ोंसे सड़क की धूलको झगड़ते देखा। अन्तहीन सड़क और अनिर्दिष्ट उड़ती हुई धूलमें मैंने नीलिमा-हीन परिवारका भविष्य ढूँढ़नेकी चेष्टा की। ····किन्तु यह सब नीरस था।

मैं सब्ज़ीकी क्यारियोंसे निकलकर अपने घरमें घुसनेको मुड़ा। ज्योंही मेरी नज़रें फूस के घरपर पड़ीं, मैं अवाक् रह गया। अपने मकानके बरामदेमें अपनी पहलीवाली गोटे साड़ी पहने नीलिमा खड़ी थी। मैंने ठोस देखनेकी कोशिश की····नहीं, यह मेरा भ्र था—वह नीलिमा नहीं, उसकी दूसरी बह थी जो मेरे पास नीलिमाकी बीमारीके सिलेमें आयी थी। आज तो वह बिल्कुल नीलिमा-सी दीखती थी, उसके खड़े होने और देखनेका ढंग बिलकुल नीलिमाका 'स्टाइल' का था। मैं कुछ देर तक और सब्ज़ीकी क्यारियोंमें खड़ा रहा।

वह मुझे ही देख रही थी····।

एक पुरानी कहानी / *कृष्णा दीक्षित*

अभी मुश्किलसे सवा आठ बजे थे और इसी बीच नईम दो बार रसोईमें झाँककर लौट चुका था। कलछीसे जल्दी-जल्दी सालन भुनती साबिराकी आँखें अनायास ही रोये जा रही थीं। कुल डेढ़ ही साल पहलेकी तो बात है, नईमके लिए सबसे तकलीफ़देह बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबद आफ़िस ही जाना था, साबिराके बार-बार टोकनेपर भी उसकी साइकिल सवा बीके पहले घरकी देहली न लाँघती।

पतिकी मनचीती दुलहन थी साबिरा और थी भी वह कुछ ऐसी ही कि सभीके मन भा जाती। ऐसी कोई ख़ूबसूरत न थी वह, खुलती हुई हलकी साँवली रंगत, मझोला क़द, कसा इकहरा शरीर, ख़ूब खुली हुई बड़ी-बड़ी पनियाली आँखें और घने-घुँघराले बालोंसे घिरा कुछ लम्बोतरा चेहरा। सबसे लुभावनी होती थी उसके भरे-भरे होठों-पर हर समय लुकाछिपी खेलती बच्चों-जैसी निश्छल मुसकान। हर सुबह उसका मुसकानसे दमका चेहरा नईमको अनचीन्हा-सा लगता, बक़ायदा वह सब्बोको दर्जा दसमें पढ़े बिहारी-के उस दोहेका अर्थ समझाता जिसमें नायिकाकी क्षण-क्षण बदलती छविको उकेरने-में असफल होकर न जाने कितने चतुर चितेरों-ने हार मान ली थी।

सालन पक गया था, चूल्हेसे लकड़ियाँ खींच उनपर पानी छिड़कती साबिराने खिड़की भीतरसे ही आँखें आँगनके पार दरवाज़ेपर दौड़ायीं। लगता है, लड़कर नईम सड़कपर निकल गया है। बिना किसी कामके साबिराके पास खड़ा नहीं रह पाता वह।

चार साल पहले बहू बनकर इस घरमें आयी थी साबिरा। दूसरे ही दिन ससुर रुई-के गाले-जैसा कबूतर और कबूतरीका जोड़ा लेकर घरमें घुसे और हँसते हुए बोले, "सब्बो बेटी, तुम्हारे फ़ुरसतके समयके लिए मसाला लाया हूँ।" साबिराके मनमें हलकी-सी गुदगुदी हुई, उस तोहफ़ेके पीछे छिपे अर्थको सोचकर और उसने मुसकराकर आँखें नीची कर लीं। धीरे-धीरे बड़ा लगाव हो गया उसे पंछियोंके इस जोड़ेसे, दोनोंको साथ-साथ आकाशमें उड़ते देख उसका मन ख़ुशीसे भर उठता।

बुझी लकड़ीको पैरके अँगूठेसे कुरेदती साबिराका मन डेढ़ साल पहलेकी घटनाओं-में भटक गया था।

नईम आफ़िस चला जाता, ससुर दूकान-पर और चच्ची, यानी नईमकी माँ, पनडब्बा उठा किसी अड़ोसी-पड़ोसीके यहाँ जा बैठतीं। पीछे रह जाती घरमें अकेली साबिरा और पंछियोंका वह जोड़ा। जब कभी पड़ोसके मुन्शीजीके पाँच छोटे-बड़े बच्चे आ जमते, ख़ूब मज़ेमें समय कट जाता उसका। लेकिन चच्चीको उसका बच्चोंके साथ बच्चा बनना कम ही सुहाता और बच्चे भी उनको देख सहमते-सिमटते खिसक जाते। बस एक रशीद ही ढीठ था। आठ सालके इस शान्त स्वभाव-के बच्चेसे साबिराकी ख़ूब पटती थी, वह भी स्कूलसे लौटते ही चच्चीकी कड़ी निगाहोंकी परवाह किये बिना दिन-भरकी घटनाएँ सुनाने आ जाता—'आज अहमदने बस्तेमें-से मेरी तीन कौड़ियाँ चुरा लीं', 'पुलिसवाले दो चोर पकड़कर ले जा रहे थे', 'चोर भी बिलकुल आदमियों ही जैसे होते हैं', 'आज आर्टवाले मास्टर साहबने सलीमको मुर्ग़ा बनाया था, उसने आम नीले रंगसे रंग दिया था।' और साथ ही वह स्कूलके रास्तेमें बीनी हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमलियाँ भी छिपाकर लाता। यही रशीद एक दिन स्कूलसे लौटा तो बुखारमें तपता हुआ—और पूरे चार दिन बुखारमें भुननेके बाद चेचकके बड़े-बड़े दाने उसके सारे शरीर-पर उछल आये। चच्चीने सुनते ही कड़ी हिदायत दी साबिराको कि उस घरकी ओर रुख न करे और न ही उन बच्चोंसे मिले। साबिरा तड़पकर रह गयी, भीतर-ही-भीतर। सुन रखा था कि बच्चे अकसर नहीं ही उठ पाते इस बीमारीके बाद। तीसरे ही दिन एक मौक़ा मिल गया उसे। अन्दरकी कोठरीमें लेटी चच्चीकी आँखें झपक रही थीं, दबे पैरों वह मुन्शीजीके घर निकल गयी। मुन्शिआइनकी आँखें उसको देखते ही हैरतसे फैल गयीं, चुपचाप रशीदकी खाट-की ओर इशारा कर दिया उन्होंने। चेचक-के दाने रशीदके गलेके भीतर भी निकल आये थे, बस न जाने कैसे छौने-जैसी आँखें ही बच गयी थीं। साबिरासे रहा नहीं गया, झुककर उनसे रशीदकी आँखें चूम लीं और उलटे पैरों लौट आयी। चच्ची सो गयी थीं, बिना आहट किये हाथ-पैर धो फ़ुर्तीसे सब कपड़े बदल डाले उसने, पर वह धोना-पोंछना धोखा दे गया था और सप्ताहके भीतर ही तेज़ बुखारसे झुलसनेके बाद चेचक-के मटर बराबर दाने साबिराके सारे बदन-पर बिछ गये थे। चेहरेपर हारे हुएका-सा भाव लिये नईम उसके सिरहाने बैठा रहता और साबिराके पपड़ियाये स्याह होठों-पर मुसकान खोजनेकी कोशिश करता।

रोग घरमें आया देख चच्ची कमरेकी डयोढ़ीके बाहरसे ही बात करतीं। नईमको हर समय साबिराके पास बैठे देख उनका जी कुढ़ जाता। उनके इकलौते बेटेको पालतू बना लिया था सब्बोने, मन-ही-मन वह उससे चिढ़तीं। रशीदके भाई-बहनोंसे भेद खुला कि रोग उड़कर नहीं आया था, साबिरा जाकर लायी थी उसे। चच्ची एकदम गुस्सेसे भभक उठीं उसकी हिमाक़त पर। बातोंको खूब बढ़ा-चढ़ाकर बेटेको बहुत ऊँच-नीच समझाया उन्होंने....तो सब्बोने जान-बूझकर ही यह ख़तरनाक नादानी की है? और नईम-का हृदय कठोर विरक्तिसे भर उठा।

क़रीब एक माह बाद वह चारपाईसे खड़ी होने लायक़ हुई। धीरे-धीरे काले पड़े हुए शरीरका रंग फिर उजला साँवला हो गया, होठोंकी लाली लौट आयी किन्तु चेहरे-पर मटरकी दाल बराबर पड़े दाग़ोंकी गहराई किसी उबटन, क्रीमसे कम न हुई। ओठोंकी हँसी उन गढ़ों ही में भरकर रह जाती, चेहरेपर फैल न पाती और विरक्त नईम उसकी परछाँई भी बराने लगा था। कभी-कभी वह रो पड़ती तो कहता, "यह ख़तरनाक खेल तो तुमने अपनी मर्ज़ीसे खेला है!"

आठ बज चुके थे और अभी साबिराने आटा भी न गूँधा था। नईम अपनी आदतके मुताबिक़ बस खानेके इन्तज़ारमें तैयार बैठा रहा था। जल्दी-जल्दी न जाने क्या लेने आ रही थी साबिरा आँगनके पार कि पैरके नीचे कोई नरम-सी चीज़ दबी। चीखी, वह उछलकर परे हट गयी। कबूतरीका एक पंख और एक पैर कुचलकर खूनसे लथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठा था।

उस दिन खाना नहीं खाया साबिराने और दिन-भर कबूतरीको लिये बैठी रही। घाव चूसनेके साथ कबूतरी आँगनमें ही लँगड़ा-लँगड़ाकर चलने और दाना बीनने लगी थी, परेशान कबूतर उसके आगे-पीछे घूमता, थोड़ी दूर ऊपर उड़कर जाता और फिर कबूतरीको पीछे आती न देख लौट आता। अब कबूतरी आकाशमें उसका साथ देनेमें असमर्थ हो चुकी थी। धीरे-धीरे कबूतरने भी उड़ना छोड़-सा दिया तो चच्चा एक नयी कबूतरी लाकर कबूतरके पास छोड़ गये। इतवार था उस दिन, नईम खा पी, कपड़ा पहन मैटिनी शोमें जानेकी तैयारीमें था और जल्दी-जल्दीसे कोई अधूरा खत पूरा कर रहा था। हाजी साहबकी पोती सलमासे उसका रिश्ता करनेकी सोच रही थीं चच्ची। ऑफ़िस जाते समय रास्तेमें पड़ता हाजी साहबका घर और खिड़कीपर खड़ी सलमा और नईमकी आँखें कई बार मिल चुकी थीं। कुछ सलमा-की ही चर्चा चल रही थी खतमें। साबिरा आज भी रसोई ही में थी, चच्चीने कोई ख़ास फ़रमाइश की थी शामके नाश्तेके लिए और वह उसीके लिए चूल्हेपर आलू उबालनेमें लगी थी। इतनेमें कबूतरोंकी मिली-जुली तेज़-तेज़ चीखें और परोंकी फड़फड़ाहट सुन नईम अधूरा पत्र हाथमें लिये ही आँगनमें आ खड़ा हुआ। भागकर साबिरा भी कबूतरोंके दरबेके पास पहुँच चुकी थी। लहूलुहान नयी कबूतरी दरबेसे दूर सहमी बैठी थी, कबूतरकी चोंच ख़ूनसे सनी थी और वह अपनी पुरानी साथिन-से सटा बैठा था। नईमके पैर आँगनमें जम-से गये। साबिरा रसोईमें लौट गयी थी।

देर तक नईम उसी जगह खड़ा रहा और फिर चुपचाप रसोईमें आ खड़ा हुआ। चूल्हेमें लकड़ियाँ ख़ूब तेज़ीसे जल रही थीं और लाल-पीली लपटोंकी आँचने साबिराका चेहरा सिन्दूरी रंगमें रंग दिया था, चेचकके निशान न जाने किस जादूसे ग़ायब हो चुके थे।

पड़ोसमें बातोंका मज़ा लेनेके बाद चच्ची पनडब्बा लिये घरमें घुसीं, रसोईके दरवाज़े तक आयीं और फिर बिना आहट किये घरसे बाहर निकल गयीं।

मित्र / सतीश कुमार मोद

वह रेलकी पटरीके साथ चला जा रहा था। जिन तेज़ क़दमोंके साथ वह आया था, उसकी आधी गति भी चालमें नहीं रह गयी थी। आते वक़्त एक आशा थी, ट्रेन मिल जानेकी। उसी विश्वासके साथ उसके क़दम बढ़ रहे थे, चेहरेपर पसीनेकी बूँदें चुहचुहा आयी थीं, दिमाग़में अनेकों भाव आ-जा रहे थे—शायद १३ अप अभी न खुली हो, मिल जाये, सुरेशसे भेंट कर लेना आवश्यक है।.... लेकिन नहीं, जब वह थोड़ी दूर इधर ही था तभी ट्रेन सरकने लगी थी। अपनी आँखोंके सामने ही वह सरककर जाती ट्रेनको देखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। चाहता तो दौड़कर ट्रेन पकड़ सकता था, लेकिन नहीं दौड़ा। चलती ट्रेनमें चढ़ना वह अच्छा नहीं समझता। वह रुक गया था। उसने जेबसे रूमाल निकालकर चेहरेपर झिल-मिलाते पसीनेको पोंछा, चेहरेको बार-बार रगड़ा, गले और गरदनको साफ़ किया और उदास क़दमोंसे लौट चला।....

....अब तो एक ही उपाय है। पत्र लिख-कर अपनी आवश्यकता उसे बताये—वह आज ही पत्र लिख देगा ताकि समयपर रुपये भेज दे।....पता नहीं क्यों, आज तक पत्रोंमें उसने रुपये-पैसेकी बात क्यों नहीं लिखी—न जाने वह क्या सोचे—मित्र ही तो है। पत्रमें न लिखे, घर आनेपर, भेंट होनेपर तो कह ही सकता है। कितने दिन हुए! पूरे दो वर्ष। बी० एस-सी० की परीक्षा-फ़ी देनेमें उसकी सहायता की थी, इसलिए नहीं कि ज़रूरत पड़नेपर उसे वापस ही न करे। वह भी तो पढ़ता है। इसी फ़रवरीमें बी० ए० की परीक्षा-फ़ी देनी थी। रुपये पूरे नहीं हो रहे थे तो दीदीके यहाँसे लाकर जमा किया था।

अब कैसे कोई किसीकी सहायता करे। उसने मन-ही-मन सोचा—उसके पिताकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं कि वह मित्रोंकी सहायता करता फिरे और मित्र जब चाहे—तीन-चार वर्षोंमें दे या न दे। वे लोग बिना माँगे क्यों नहीं रुपये वापस कर देते हैं? न दो तो कहता फिरेगा, मित्र होकर थोड़ी सहायता नहीं की।....उसे अपने रुपये माँगनेमें भी लाज लगती है और ये लोग हैं कि देनेका नाम ही नहीं लेते।

....पीछेसे इंजनकी तेज़ सीटी सुनाई दी। वह लाइन पार कर एक किनारेसे चलने लगा। पीछे उलटकर देखा, बरौनीवाली ट्रेन अभीतक नहीं आयी थी।....चप्पलके नीचे एक कंकड़ आ गया। उसने चप्पल खोलकर कंकड़ निकाला, फिर चप्पल पहना। आकाशकी ओर ताका। सूरज ऊपर उठता जा रहा था, लेकिन धूप खुली न थी। पूरे आकाशमें बदली छायी थी, फिर भी काफ़ी गरमी महसूस हो रही थी।

....पिछली बार बड़े दिनोंकी छुट्टीमें सुरेश घर आया था। सोचा था—आज वह सुरेशसे कहेगा कि 'भाई, तुम तो मेरी स्थिति जानते हो, मुझे भी रुपयोंकी आवश्यकता है, कितने दिन हो गये। ऐसे कबतक चलेगा? इससे विश्वास खण्डित होता है।'....लेकिन यह सब कहनेकी ज़रूरत ही नहीं हुई, कहना ही नहीं पड़ा। कहता कैसे? जाते ही पुकारा था—

"सुरेश।"

"कौन?" फिर देखकर—"अरे तुम! आओ-आओ, भीतर आओ!"—कुरसी पर बैठते ही पूछा था—"कहो, कैसे हो?"

"ठीक हूँ।" उसने छोटा-सा उत्तर दिया—"तुम अपनी कहो। मस्ती काट रहे होगे!"

"क्या मस्ती काटूँगा...." उदासीके स्वर थे—"बड़ा शहर है, बड़े-बड़े लोग हैं। मस्ती तो वही काटता है जिसे महीनेमें दो-दो सौ रुपयेका मनीआर्डर घरसे आ जाता है। मुझे तो तीन-चार जगहसे मनीआर्डर आते हैं फिर भी कभी सत्तरसे ऊपर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ूँगा। किफ़ायतसे खर्च चलाता हूँ, चलाना पड़ता है। अब तुम्हीं बताओ, एम० ए० या एम० एस-सी०में पढ़ने आये हो, ज़रा सलीक़े-से नहीं रहोगे? साफ़ कपड़ा तो पहनोगे ही—कभी मित्रोंके साथ होटल-रेस्ट्राँमें जाना पड़ेगा ही, सिनेमा देखोगे ही, फिर अधिक खर्च तो होगा ही।"

"तब कैसे निभाते हो?"

"भाई, मैं तो एकदम अलग ही रहता हूँ। साफ़ कह देता हूँ, मैं होटल-रेस्ट्राँ नहीं जाता, न जाऊँगा, सिनेमा देखता नहीं। एक दिन देखो, फिर दूसरे दिन दिखाओ—यही रवैया है। कहाँसे चलेगा?" कुछ रुक-कर कहने लगा—"यहाँ तो हर समय घरकी चिन्ता लगी रहती है। इस बार कहाँसे प्रबन्ध किया गया होगा, कितने रुपये आयेंगे, कोई पुस्तक तक तो ख़रीद नहीं पाया। वह मैं हीं हूँ कि निभाये जाता हूँ। कभी सोचता हूँ, एम० एस-सी० ज्वाइन न करता तो अच्छा होता, सेक्रेटेरियटमें डेढ़-दो सौ की नौकरी मिल ही जाती...."

"नहीं यार, अब तो एम० एस-सी० कर ही डालो!" उसने कहा था, "लेक्चररशिप तो मिल ही जायेगी।"

"यही तो एक उम्मीद है, जिसके सहारे निबाह किये जा रहा हूँ।" सुरेशने कहा, "अकेला रहता तो किसी तरह चला लेता—मेडिकल कालेज अवश्य ज्वाइन करता, लेकिन यहाँ एक पत्नी है, बच्ची है, उन दोनोंका खर्च कहाँसे चले? और अब सब दिन मैकेमें छोड़ी नहीं जा सकती न! यहाँ नहीं रहनेसे माँको खाना पकाना पड़े। यह भी ठीक नहीं। रहनेसे अधिक खर्च। किसी तरह चलाना ही पड़ेगा। बाबूजी कुछ बोलते नहीं, चुपचाप जहाँ तक हो सकता है जुटाये जाते हैं। यहाँ आया कि टूरमें जानेके लिए रुपये-का प्रबन्ध करना था—यहाँ बच्चोकी तबीयत ख़राब है, काफ़ी रुपये खर्च हो गये, पत्नीको मासिककी शिकायत है। कहाँ-कहाँतक सोचूँ, जानेके समय रुपये मिलेंगे भी—शक है। टूरमें तो नहीं ही जा सकूँगा। स्थितिमें तुम्हीं अच्छे हो जो अभीतक इस झंझटमें नहीं फँसे। पढ़ाई समाप्त करनेके बाद ही शादी करना।"

"बच्चू, सारा आनन्द तुम लूटो और मुझे उपदेश दो कि अभी शादी मत करना...." उसने हँसते हुए कहा था।

"हँस लो, जब पड़ेगा न तब मेरी बात याद आयेगी—अभी उड़ा लो मज़ाक़।"

सच ही सुरेश उदास हो गया था। तब वह कुछ देर तक इधर-उधरकी हाँककर चला आया था। इस स्थितिमें रुपयेके बारेमें कैसे कहता। किसीके लिए भी कुछ कहना सम्भव नहीं था। स्थिति स्पष्ट थी।....

....सुरेशको डी० पी० आई० ग्राण्ट मिला है। इस बार तो दे ही देगा।

"भई, रुपये तो बहुत मिले। नौ महीनेके चार सौ पचास रुपये थे लेकिन सब खर्च हो गये। पिछले दो महीनेका मेस-चार्ज बक़ाया था, होस्टल-रेण्ट, मित्रोंके लिये उधार—सभी चुकता कर दिये। कुछ सामान ख़रीद लिये—एक हॉल्डाल ख़रीदा, तोशक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजाई डोरीमें बाँधकर ले जानेमें कैसा लगता था। देखो न, पत्नीके लिए पर्स लिया है। बारह रुपयेका है, पटना-मार्केटसे। बच्चीके लिये फ्रॉक-पैण्ट, पत्नीके लिए साड़ी-ब्लाउज आदि, अपने लिए एक नया सूट बनवाया है।

वह ब्योरा देता गया था, वह सुनता रहा, रुपयेकी बात आयी ही नहीं। पिछली बारकी तरह इस बार भी उससे कुछ कहते नहीं बना।...

गुमटी पास आ गयी। वह नीचे उतरने लगा।...अब किसी मित्रकी सहायता नहीं करेगा, रुपये रहते हुए भी।...हर बार वह प्रतिज्ञा करता फिर भूल जाता; लेकिन नहीं, अब अधिक उदारता ठीक नहीं। आज ही वह सुरेशको लम्बा-सा पत्र लिखेगा, खूब खरी-खोटी सुनायेगा, कड़वी भाषामें, जिसे पढ़कर सुरेश शीघ्र ही रुपये भेज देगा। आजसे किसीकी सहायता नहीं करेगा।...

...शाममें आर० एम० एस० में पत्र गिराकर लौटा तो उसके चेहरेपर अपूर्व शान्ति थी। उसने सुरेशको लम्बा-सा पत्र लिखा था। लेकिन इस पत्रमें भी रुपयेके बारेमें कुछ न लिख सका, लिखा ही नहीं गया उससे।

■■

हम "नयी क़लम अंक"के प्रकाशनके ज्ञानोदयके इस स्तुत्य प्रयास और इस अंकके लिए अपनी रचनाएँ भेजनेवाली सभी नयी प्रतिभाओंका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

नयी प्रतिभाओंको खोज निकालना, उन्हें प्रोत्साहन देना तथा प्रकाशमें लाना एक पुनीत कार्य है, और कहानी-लेखन महाविद्यालय केवल इसी उद्देश्यकी पूर्तिमें संलग्न है। अपने इस अभियानमें हमें सभी पत्र-पत्रिकाओं, साहित्यकारों तथा प्रकाशकोंका सहयोग मिलता रहा है। हम उनके प्रति आभारी हैं और भविष्यमें भी उनके सहयोगकी कामना करते हैं।

हमने जिन नवीन कहानी-लेखकोंको प्रशिक्षण दिया है उनकी रचनाएँ मध्यम श्रेणीकी पत्रिकाओंमें ही नहीं, वरन् नई कहानियाँ, सरिता, मुक्ता, नवनीत, ज्योत्सना, नई धारा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, कहानी आदि शीर्षस्थ पत्रिकाओंमें भी छप रही हैं। विद्यालय-द्वारा प्रशिक्षित कुछ लेखकोंकी कहानियोंका एक संकलन प्रेसमें है।

यदि आप कहानी लिखनेमें रुचि रखते हैं तो शीघ्र सफलताके लिए पत्राचार-द्वारा कहानी-लेखनका विस्तृत और व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त कीजिए। निःशुल्क पूर्ण विवरणके लिए लिखें :

कहानी-लेखन महाविद्यालय, श्रीनिवासपुरी, नयी दिल्ली-१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे शहरका गीत

खुल कर चलते डर लगता है
बातें करते डर लगता है
क्योंकि शहर छोटा है।

बहुत लोग हैं, बहुत जबानें,
जो कि बिना जाने-पहचाने,
सिर पर रख लगा देते हैं,
तिरछी आँख लगा देते हैं,

यहाँ आँख से कहीं अधिक
विश्वास कान की क्षमता पर है
यहाँ देखते डर लगता है
दृष्टि फेंकते डर लगता है
क्योंकि शहर छोटा है।

ऊँचे हैं, लेकिन खजूर से,
मुँह है इसीलिए कहते हैं,
यहाँ बुराई फूले-पनपे—
वहाँ तटस्थ बने रहते हैं,
नियम और सिद्धान्त बहुत ढंगों से
परिभाषित होते हैं—
यहाँ बोलना ठीक नहीं है
कान खोलना ठीक नहीं है
क्योंकि शहर छोटा है।

जो कहने की बात नहीं है,
वही यहाँ दुहरायी जाती,
जिनके उजले हाथ नहीं हैं,
उनकी महिमा गायी जाती,
यहाँ ज्ञान पर, प्रतिभा पर,
अवसर का अंकुश बहुत कड़ा है—
सब अपने धन्धे में रत हैं
यहाँ न्याय की बात गलत है
क्योंकि शहर छोटा है।

बुद्धि यहाँ पानी भरती है,
सीधापन भूखों मरता है—
उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है,
जो सारे काम गलत करता है।

यहाँ मान के नाप तौल की ईकाई,
कंचन है, धन है—
कोई सच के नहीं साथ है
यहाँ भलाई बुरी बात है
क्योंकि शहर छोटा है।

—विनोद निगम

गीत-अगीत और नवगीत

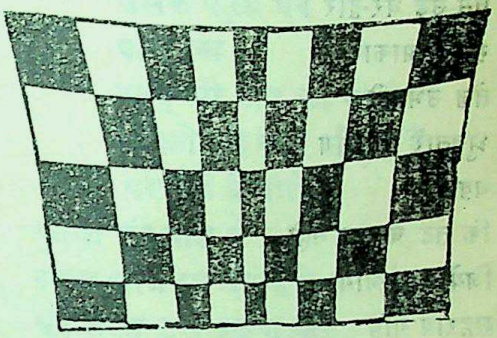

विनोद निगम, शिव मधुकर, छन्दराज,
गोरखप्रसाद पाण्डेय, सरल,
राधेश्याम मुक्त, माधव मधुकर,
माहेश्वर तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• उलझ गये पाँव

उलझ गये पांव
सारे विकल्पों के पार !
ठोंकता कील
कलेजे में एहसास
कमज़ोरी का
पंजों में
ले जा ओ ! चील
इतिहास चोरी का
झाड़ी में अटके हैं ठाँव
ऐसे उड़े घर-द्वार !
ग़ायब आकाश में
तेज़ उभरती
ध्रुवतारे की माँग
वक़्त है
कि तट चाहता नहीं
जिये लहर-भाँग
शहराये गाँव
चांदनी गयी तार-तार ।
उलझ गये पाँव
सारे विकल्पों के पार ।

—शिव मधुकर

• एक आभास

पात वनज कंकोल के,
स्तब्ध हो गये
डोल के ।
हवा हो गयी हवा कि जैसे
हाँक लगा छुप जाये कोई;
नाम किसी का बोल के ।

—छन्दराज

• साँझ : थका हुआ सूरज

आँगन में ठहरा आकाश
धीरे-धीरे धुँधला हो गया
पानी हर घाट पर तलाश
थक कर सूरज प्यासे सो गया।
चौराहे पड़ी रह गयी
भीड़-बीच कुचली पहचान
बन-बन कर मिटते जाते
पल-पल के संक्रमित निशान
छू-छू जाने का अहसास
धक्कों के जमघट में खो गया।
आँगन में ठहरा आकाश
धीरे-धीरे धुँधला हो गया।
खींच रहे दीवारों पर
बरबस रंगीन इश्तिहार
पाँवों में उलझ गये हैं
शंकित अवरोधों के तार
हँसी की फुहारों के पास
बैठ कर अकेलापन रो गया।
आँगन में ठहरा आकाश
धीरे-धीरे धुँधला हो गया।
बाहर दरवाज़े पर की
घण्टी से टकराते हाथ
अन्दर सुन-सुन आवाज़ें
ख़ामोशी पटक रही माथ
टूटा जो फ़र्श पर गिलास
घर-भर चुभते टुकड़े बो गया।
आँगन में ठहरा आकाश
धीरे-धीरे धुँधला हो गया।

—गोरखप्रसाद पाराशर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• न...

न अपनी धरती
न अपना आकाश
क्यों करें
अस्तित्व का विश्वास ?

न अपना अन्न
न अपना मन
क्यों करें
मुक्ति का अहसास ?

न अपना आँगन
न अपनी धूप
क्यों लगे
सार्थक, हँसी-उल्लास ?

विष डूबा शहर
अँधेरा-क़हर पर क़हर
क्यों न छोड़े
रोशनी उच्छ्वास ?

—सरल

• एक निश्चय

फिर चलने लगीं
कुआर की समर्पिता हवाएँ
अब की बार मैंने
अपनी आत्मा को अच्छी
तरह भोगने की बात
सोची है।
कनेर पर हज़ारों फूल
एकटक, बैठे मेरे कार्यक्रम
को निहार लिया
सुन लिया आँखों से है।
हर सिंगार कुलवधू-
सा, लाजवन्ती-सा;
मायके की याद में
आनन्द अश्रुपात
कर चुका है।
फिर कहने लगी
कुआर की रूपगर्विता हवाएँ
मैंने अख़बार लगे
गुलाबचीन के तले
उसके फूलों पर
पाँव रख
शरद्-सी रात की नीवी
खोलने की बात सोची है
खजूर पर बैठे वैरागी
कौवों की पाँत ने
स्कूल-छात्र-सा दोपहरी की लंच
की तरह उसे ग्रहण कर
लिया है
फिर छलने लगी
कुआर की मनचीता हवाएँ
अब की बार मैंने
अपनी आत्मा को अच्छी
तरह भोगने की
बात सोची है।

—राधेश्याम मुक्त

• एक सांघातिक तनाव

साँय-साँय काना-फूसी-भरी हवाएँ
नाम भूल बैठी हैं दिग्भ्रमित दिशाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Phone : 252227

TRANSACTS :

FIRE, MOTOR, MARINE, PERSONAL ACCIDENT, FIDELITY GUARANTEE, BURGLARY AND ALL OTHER FORMS OF MISCELLANEOUS INSURANCE BUSINESS

UNIVERSAL INSURANCE BUILDING

SIR P. M. ROAD, BOMBAY-1.

Chairman & Managing Director :

P. U. PATEL, B.A., B. COM. (Lond.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़कों के उलझे हैं पाँव ।
सूर्य दिये बैठा है घुटनों में माथ
गिरवी है रोशनी अँधेरे के हाथ,
घटना-दुर्घटना हर ठाँव ।

अनजानी गलियों के अनसुने तक़ाज़े
किसको पड़ी है कि खोले दरवाज़े,
खाली घर खोखले-दबाव ।

अनमनी उदास पड़ी मौसम की कोठरी
एक-एक कर जिसमें सारी यादें भरीं,
गाछों के हरे-हरे घाव ।

कमरे के सीलन में दीमक का डेरा
जंगले पर पड़ा हुआ परदे का घेरा
बाहर और भीतर अलगाव ।

—'माधव मधुकर'

मेघ-फूल

मेघ-फूल फूल गये आँगने मुडेरे,
टूट रहे धूप-भरी टहनी के घेरे ।
हल्दी के रंग पोंछती हुई
हवाएँ,
दालानों में हलकी छाप
छोड़ जायें ।
सन्नाटा टूट रहा है बड़े सवेरे,
मेघ-फूल फूल गये आँगने मुडेरे ।
खण्डित आकृतियों में दोपहरी
टूटी,
कोई गोरी, कोई कलमुँही
कलूटी,
मन पर छाये कितने रंग के अँधेरे,
मेघ-फूल फूल गये आँगने मुडेरे ।

—महेश्वर तिवारी

ओ० आर० सि० एल० लि०,
कुमारेश
लिवर और पेट की बीमारियों में
सालफा-ऑरिमन
जले, कटे, घाव एवं यावतीय चर्म-रोगों में
पेनरसिल्
दर्द और कष्ट में मालिश के लिये
अशोक कलियल
महिलाओं की महोपकारी महौषध
कुमारेश हाउस, हावड़ा-६

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

लक्ष्मीचन्द्र जैन

की

हिन्दी गद्य शैलीकी सर्वथा नयी और अनूठी रचनाएँ

नये रंग नये ढंग

एक अद्वितीय निबन्ध-संग्रह : जिसके हर पृष्ठपर युगकी छाप और प्रतिभाकी चमक अंकित है। सम्भव नहीं कि पुस्तक हाथमें लें और पढ़कर समाप्त किये बिना रख दें।

मूल्य २.००

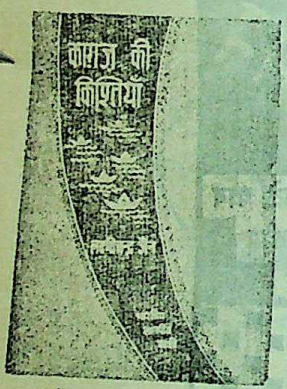

काग़ज़ की किश्तियाँ

प्राचीन और अर्वाचीन साहित्यके अनेक पक्षों तथा आधुनिक जीवनकी रंग-बिरंगी विविधताओंका अपूर्व चित्रण। कथ्यमें पैनी दृष्टि और शैलीमें मोहकताके साथ-साथ प्रयोग-वैचित्र्य भी।

मूल्य २.५०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

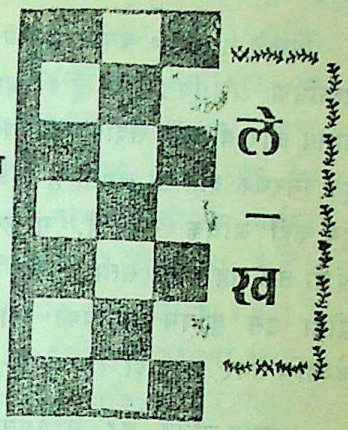

• प्रकाशचन्द्र जैन
• वीरेन्द्र शर्मा
• नीलिमा सहाय

विज्ञानयुगीन सभ्यता और अस्तित्वहीन मानव / *प्रकाशचन्द्र जैन*

'क्या-क्या न किया खुदा ने जन्नत में जतन
आदम ने मगर गुनाह करके छोड़ा।'

फलतः आदमको जन्नत-निकाला हो गया और कालान्तरमें पृथ्वी कर्मभूमि बन गयी। मनुष्यमें कुछ अद्भुत प्रकारकी शक्तियोंका प्रादुर्भाव जहाँ स्वयंमें महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी वहाँ जिज्ञासाने उत्प्रेरकका काम करके उन्हें और सार्थकता प्रदान की।

वर्तमान युगमें भौतिक-जिज्ञासाओंके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण दिन वह था जब 'पेड़से सेब टपका'। 'सेब गिरनेकी कहानी सही हो या न हो, लेकिन इनमें सन्देह नहीं कि गुरुत्वाकर्षणकी खोजने आधुनिक भौतिक विज्ञानकी शुरूआत की (नालिकर)। हम न्यूटनके ऋणी हैं, भले ही आज उसकी मान्यताओंका स्वरूप बदल गया हो। कमसे कम रहस्यपर-से एक आवरण तो हटा। फिर आज तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं और भोग रहे हैं उस दिनकी जिज्ञासाकी उपलब्धियाँ! विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है। यथार्थको पा लेनेके बाद आज विज्ञान उसे नंगा करने पर तुला है, इसमें सन्देह नहीं। कदाचित् आधुनिक विज्ञानकी यही दार्शनिक परिभाषा है।

विज्ञानने हमें बहुत-कुछ दिया है। आवास-प्रवास, भोजन, कपड़ा, सुख-साधन वग़ैरह-वग़ैरहकी विशेष सुविधाएँ। हम विज्ञानके ऋणी हैं, कृतज्ञ हैं, लेकिन····आज शैतान और विज्ञानने मिलकर मानवको एक भयंकर खाईमें गिरा दिया है और अब काफ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुश्किल है उस खाईसे निकलना।

पिछले ५०–६० वर्षोंसे मनुष्य विज्ञानसे अत्यधिक प्रभावित हुआ है। आदमकालीन मानव और बीसवीं सदीके मानवकी तुलना एक निरर्थक बात-सी लगती है। अपने दावेमें हम कहीं अधिक सभ्य हैं, संस्कृत हैं। कुछ अंशों तक यह बात सत्य भी है लेकिन क्या होगा इस कृत्रिम मानवका जो विज्ञानकी बैशाखियोंपर लड़खड़ा रहा है?

विज्ञान-जनित यह कृत्रिमता न केवल हम सबने अपने चारों ओर ओढ़ रखी है, बल्कि हमारे अन्तरमें भी यह जमकर बैठ गयी है। और सापेक्षताकी आड़में हम सब एक-दूसरेको देखकर खुश अधिक हैं दुःखी कम। इस ब्रह्माण्डमें निरपेक्ष कुछ भी नहीं, सब सापेक्ष है—इस 'थ्योरी' को आजका मानव अपने जीवन-व्यवहारमें 'नियम' मानकर चल रहा है। हम दुनियाकी नज़रोंमें सभ्य हैं, क्योंकि हम कृत्रिम हैं। कृत्रिम हैं क्योंकि हमें सभ्य होनेका दम्भ भरना है, अन्यथा मानव स्वयंमें और विचारोंमें कितना नंगा होता है।

औद्योगिक पुनर्जागरणके साथ ही जैसे हम दूसरी दुनियामें फेंक दिये गये। आज मशीन हमारी सभ्यता है। हम जितने मशीन हैं उतने ही सभ्य हैं। यन्त्रीकरण नागरिक जीवनका सबसे बड़ा अभिशाप है। यन्त्रीकरणने महानगरोंको जन्म दिया है, जहाँ गन्दगी, शोर, चकाचौंध, आश्रयहीनता, समयकी कमी और तेज़ गतिके बीच मानव जी रहा है। संसारकी तीन अरब जनसंख्याकी एक तिहाई आज नगरोंमें रह रही है। इन महानगरोंमें मानवका अस्तित्व लघुसे नगण्य होता जा रहा है और इस तरह एक बौनी संस्कृतिका निर्माण हो रहा है। मानवके अस्तित्वको एक ठेस उस दिन भी लगी थी जिस दिन उसकी ब्रह्माण्डके केन्द्रमें अवस्थित होनेकी धारणा ग़लत निकली और उस दिन भी जिस दिन डार्विनने उसे 'बन्दरका बच्चा' घोषित किया। असलमें यह वस्तुस्थिति थी, पर इसके बादकी कहानी हमारी अपनी ही करनीका फल है।

यन्त्रीकरणने मानवको अपंग बना दिया है। हम सब बराबर जर्जर होते जा रहे हैं। यह प्रक्रिया वास्तवमें बड़ी धीमी है। विमुक्त-शतीके नहीं तो उसके बादकी शतीके लोग इसे प्रत्यक्षतः महसूस करेंगे। इसपर वे हमें कोसें, हमपर थूकें (कैलाश बाजपेयी) तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मानव अपनी कमज़ोरियोंको आखिर कबतक पुजवाता थोपेगा? एक-न-एक दिन यह भण्डाफोड़ होगा ही और उस दिन कोई हमारे पड़ोसी ही (?) अट्टहास कर उठेगा।

औद्योगीकरणके जिस अभिशापसे हम प्रत्यक्षतः ग्रसित हैं, वह है समयके प्रति सजगता—'अवेयरनेस ऑफ़ टाइम'। "समय जैसा कि हम जानते हैं, बहुत अधिक (रिसेण्ट) आविष्कार है। आधुनिक 'टाइम सेन्स' मुश्किलसे इतना पुराना (ओल्ड) है जितना कि एक 'बाइ-प्लेनबंद' है"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(टाइम एण्ड मशीन—ए० हक्सले)। आज हम एक भी क्षण व्यर्थ नहीं खोना चाहते हैं। पूर्व पश्चिमकी अपेक्षा इस समस्यासे कम आक्रान्त है, क्योंकि कम औद्योगीकृत है। वेगवान वाहनोंपर लदा जर्जर मानव किसी ढलानपर लुढ़कते गोल पत्थरकी तरह ही है। सब भागे जा रहे हैं, पर हैं अभागे! समयकी कमी और युगकी गतिशीलताके बीच आजका मानव एक अजीब तरहकी मानसिक उलझनमें फँस गया है और एक प्रकारकी घुटन महसूस कर रहा है। औद्योगिक प्रगतिके साथ यह घुटन और बढ़ेगी ही। यदि इस ओर समुचित ध्यान न दिया गया तो मानव सचमुच घुट-घुटकर दम तोड़ देगा।

उपर्युक्त कतिपय सूक्ष्म एवं मानसिक बीमारियोंके बावजूद आजका मानव जिस भौतिक समस्यासे आक्रान्त है, वह है युद्ध! युद्ध जो विज्ञान-जनित अवश्य है (वर्तमान युद्ध-प्रणालीके सन्दर्भमें) पर इसका प्रमुख कारण है राजनीति—गन्दी राजनीति और राजनीतिज्ञोंके खूखार पंजे! रसेलके अनुसार युद्ध संगठनोंकी प्रतिद्वन्द्वताका परिणाम है। संगठन विज्ञानका परिणाम है जिनकी अन्तिम परिणति है—राष्ट्रवादी प्रवृत्ति। युद्ध इतने भयानक न होते, यदि सचमुच युद्धके संचालकों अर्थात् राष्ट्रके संचालकोंको सद्बुद्धि मिली होती। 'युद्ध बुद्धिकी पराजयका द्योतक है'—(वोलर ला), इसमें कोई सन्देह नहीं। एटम और हाइड्रोजन बम, राडार, लड़ाकू हवाईजहाज, क्षेपास्त्र एवं अन्यान्य भयंकर अस्त्र-शस्त्र विज्ञानके ग़लत उपयोगके परिणाम हैं। असलमें मानव विचारोंका पुतला है। और इन सबका मूल कारण है वही गन्दी राजनीति। राजनीतिज्ञोंकी अमानवीयता, अज्ञानता, एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियोंके कारण ही आजका मानव विध्वंसके झूलेपर झूल रहा है। हिरोशिमा और नागासाकीकी वे भयंकर घटनाएँ हम कितनी जल्दी भूलते जा रहे हैं। निदानके तौरपर आज यही कहा जा सकता है कि हमें राजनीतिक ढाचोंको बदलना होगा। ऐसा कुछ करना होगा ताकि शक्ति (पावर) व्यक्ति-विशेषके हाथोंका खिलौना न रहे। शक्तिका विभाजन होना चाहिए, केन्द्रीकरण नहीं।

मानव-इतिहासमें ईश्वरकी मृत्युकी घोषणा एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना है। मध्य-युगीन मनुष्य कमसे कम अपनी कम-ज़ोरियोंको ईश्वरपर तो थोप सकता था! लेकिन अब हमें आत्म-व्यवस्थाकी खोज करनी ही होगी। कॉलिन विल्सनका कहना है—"व्यवस्था अपने-आपमें ढूँढ़नी है।.... इसमें नये मानवको रूप देनेकी अनेक सम्भावनाएँ हैं।" धर्मकी व्यवस्थामें आज हमारा विश्वास नहीं। विज्ञानकी वर्तमान व्यवस्थाको हम भोग ही रहे हैं। अतः स्पष्ट है कि किसी नवीन मानवीय व्यवस्थाकी अत्यन्त आवश्यकता है। कदाचित् विज्ञान और मानवतावादी विचारोंका मिला-जुला रूप किसी नयी व्यवस्थाको जन्म दे सकेगा। हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए।

■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

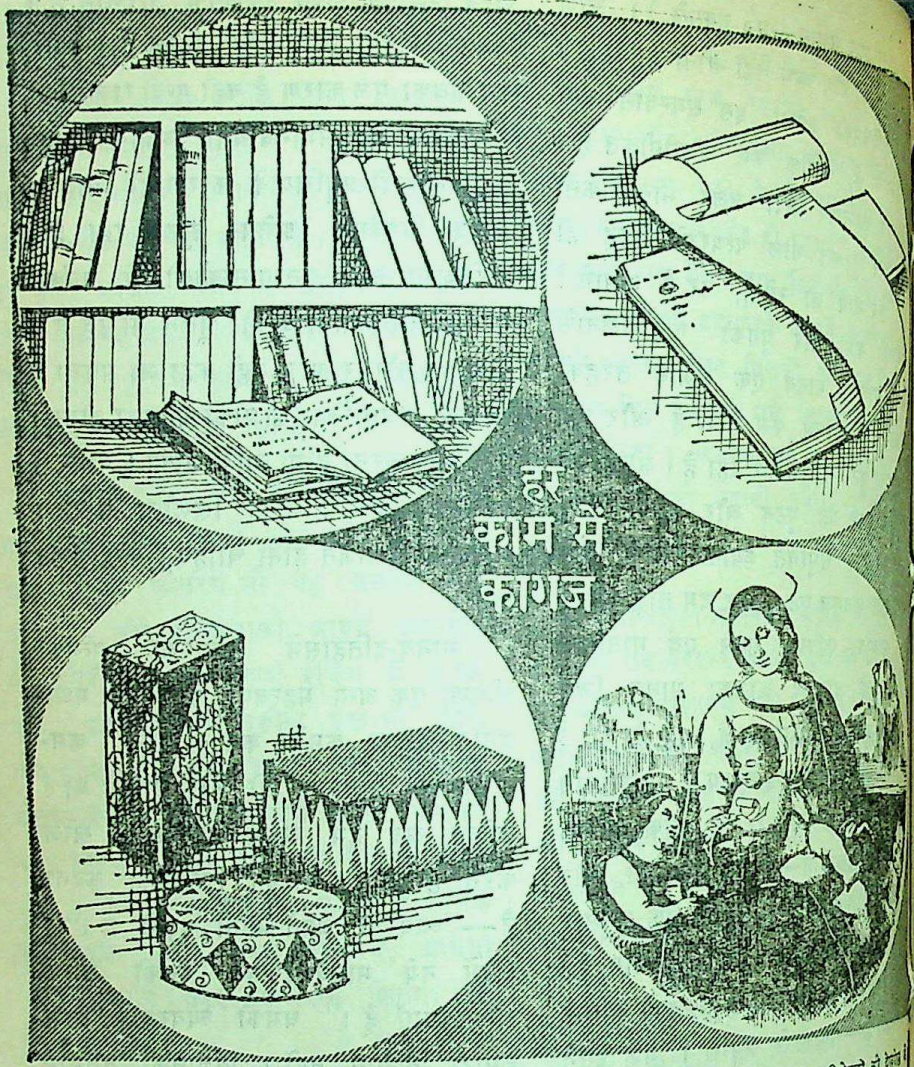
हर
काम में
कागज

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनके अलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज...

ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये आप पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, कलाइव रो, कलकत्ता

PC-RI. 303 HIN. (A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन बनाम विघटन / वीरेन्द्र शर्मा

वैज्ञानिक अनुसन्धानों एवं औद्योगिक प्रगतिके पूर्वके मनोरंजन व आजके युगमें उपलब्ध मनोरंजनमें व हमारी सम्बन्धित आवश्यकताओं, एवं अभिरुचिमें बहुत अधिक अन्तर आ गया है। पहले, मनोरंजनका उद्देश्य मात्र मनोरंजन था और यह प्रक्रिया सामाजिक एवं धार्मिक भावोंसे संलग्न थी। ऐसा मनोरंजन व्यक्तित्वके गठन एवं स्वस्थ दृष्टिकोणके उन्नयनमें सहायक होता था किन्तु आज इसका एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है—अर्थप्राप्ति। सम्भवतः इसी उद्देश्यने मनोरंजनके स्वरूपको पूर्णतया बदल दिया है, क्योंकि मनोरंजनका उद्देश्य प्रथमतः अर्थप्राप्ति है और फिर मनोरंजन।

आजके औद्योगिक एवं शहरी परिवेशमें जो चीज भी मनोरंजनके नामपर उपलब्ध है वह हमारे व्यक्तित्वके गठनपर कुठाराघात करती है, आदर्शोंको झुठलाती है, अस्वस्थ अभिरुचि एवं दृष्टिकोणको प्रोत्साहन देती है या उस जीवनके सब्ज़ बाग़ दिखाती है जो जीने योग्य नहीं। यह व्यक्ति, समाज और विशेषकर हमारी भावी पीढ़ीको विघटित कर रही है। औद्योगिक क्रान्तिने हमारे अवकाशके समयको लम्बा कर दिया है—शायद इसीसे विकृत मनोरंजनको हमारे मनपर कुप्रभाव छोड़नेका अधिक अवसर मिला। चूंकि हमें अपने अवकाशके क्षणोंमें मनोरंजन उपलब्ध होना चाहिए इसलिए इस बातको भुला दिया जाता है कि प्राप्य मनोरंजन स्वस्थ है अथवा नहीं।

मनोरंजनसे सम्बद्ध विभिन्न संस्थाएँ हैं जैसे, चलचित्र, नृत्यशालाएँ, होटल, वेश्यावृत्ति, मनोरंजन-उद्यान, शराब और जुआ-घर आदि। इन सब संस्थाओंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अनैतिकता, अपराध व सामाजिक विघटनसे है। ये निरन्तर, व्यक्ति एवं समाजके जीवनको विकृत कर रही हैं।

बड़े-बड़े नगरोंमें नृत्यशालाओं व नाइट-क्लबोंकी भरमार है जहाँ न सिर्फ़ नृत्य एवं संगीतका आनन्द लिया जा सकता है वरन् मद्यपान किया जा सकता है, जुआ खेला जा सकता है, प्रतिबन्धित चलचित्र देखा जा सकता है और इन सबसे एक क़दम बढ़कर 'सुसंस्कृत' रूपजीवाओंसे मनोवांछित सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कुलीन घरोंकी पत्नियों एवं अविवाहित कन्याओंके लिए, इन स्थानोंमें जाना और अपना समय अच्छी तरहसे गुज़ारना, आम फ़ैशन हो गया है। वहाँ वे अनेक अच्छे-बुरे व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आती हैं, उनके साथ उठती-बैठती हैं, शराब पीती हैं, सहनृत्य करती हैं और थोड़ी-सी निकटता हो जानेपर शारीरिक-सम्बन्ध स्थापित करती हैं। कुलीन स्त्रियोंके वेषमें रूपजीवाएँ मिलती हैं जो ग्राहकोंको प्रसन्न करनेके लिए, हमेशा तत्पर रहती हैं। ऐसे अनेक होटल एवं नाइटक्लब हैं जहाँ, हर सेवा वेट्रेसोंके द्वारा की जाती है। इन्हें, इन स्थानोंमें रखनेका शायद एक मात्र उद्देश्य ग्राहकोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर्षित करना है--और ये उनके लिए 'सब कुछ' करनेको तैयार रहती हैं।

होटलों व क्लबोंमें ऐसे नृत्योंका आयोजन होता है जिनमें अंग-प्रदर्शनकी अन्तिम सीमा होती है और इसीसे इन स्थानोंमें जिप्सी-नृत्य, कैबरे, बिटल व स्ट्रिप्टीज़—ज़रूरतसे ज़्यादा पसन्द किये जाते हैं। आधुनिकता व प्रगतिशीलताके नामपर पश्चिमी देशोंकी अन्धी नक़ल, हमें निरन्तर चारित्रिक पतनकी ओर उन्मुख कर रही है और ऐसा करते हुए हम यह भूल जाते हैं कि हमारा मानसिक गठन, संस्कार व रीति-रिवाज और यहाँतक कि जीवनका तौर-तरीक़ा भी पश्चिमी देशोंसे एकदम भिन्न है। वे ग्राहक जो इन छद्म-वेशी महिलाओंको व्यक्तिगत रूपसे बेहद पसन्द करते है—सामाजिक रूपसे उनका तिरस्कार करते देखे जाते हैं।

जुआ या मद्यपान आरम्भमें मनोरंजन या दिलबहलावके लिए शुरू किया जाता है किन्तु वह वक़्त बहुत जल्द आता है जब ये अपनी जड़ें जमा चुके होते हैं—और फिर जुआ खेलना व शराब पीना व्यक्तिका स्वभाव बन जाता है—एवं वह ग़लत या सही रूपसे सोचने लगता है कि शराबके बिना उसका जीवन निस्सार है या बिना जुआ खेले वह रह नहीं सकता। मद्यपान तो अन्यान्य विकारोंकी जननी है जो व्यक्तिको हर तरहसे विघटित करती है। नगरोंमें होनेवाले अनेक यौन-अपराधोंके मूलमें मद्य-प्रयोग ही होता है। शराबके प्रभावमें जैसे ही व्यक्ति आता है—अपना विवेक खो बैठता है, पश्चात् इसके बहुत जल्द उस सीमाको लाँघ जाता है जहाँपर भले-बुरेकी पहचान होती है। इस स्थितिमें वह क़ानूनको अपने हाथमें ले सकता है, (भले ही क़ानूनकी आँखसे बच जाये) अपराध कर सकता है और अन्ततः अपने व अपने परिवार के जीवनको नरक बना सकता है।

मद्यपानकी ही भाँति जुआ भी एक लत है जो व्यक्तिको बातकी बातमें राजासे रंक या रंकसे राजा बना देता है। यह आर्थिक उतार-चढ़ावका स्रोत है। अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब व्यक्ति अपना सब कुछ दाँवपर लगा देता है—यहाँतक कि जुएकी हारसे वह कभी-कभी अपना जीवन भी हार बैठता है। ऐसे सुगठित व्यक्तित्व कम ही होते हैं जो हार और जीतको बराबरीका दर्जा दे सकें। जो कलतक महलोंमें रहते थे वे झोपड़ियोंमें रहनेकी अपेक्षा आत्महत्या करना पसन्द करते हैं—क्योंकि उनके लिए जीवनका मूल्य अर्थ ही है।

अपनी समस्त बुराइयोंके साथ वेश्यावृत्ति, मनोरंजनका साधन भी है। यह वृत्ति, पारिवारिक जीवनको चुनौती देती है, दाम्पत्य-स्नेह को समाप्त करती है, यौन-सम्बन्धोंमें उच्छृंखलता एवं उच्छृंखलताको प्रश्रय देती है, यौन-रोगोंको फैलाती है एवं वैधानिक अलगाव, सम्बन्ध-विच्छेद और तलाक़के मार्गको प्रशस्त करती है।

हॉलीडे-रिसार्ट, पिकनिक-स्थल और मनोरंजन-उद्यान ऐसी स्थितियोंका निर्माण करती हैं जिनमें व्यक्ति 'फ़ास्ट और ढीले' हो जाता है। परिचितोंसे दूर, अजनबियोंके बीच समाजिकतासे मुक्त व्यक्ति वास्तवमें बहुधा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, आदिम सभ्यताको स्वीकारता है एवं शारीरिक सुखको ही जीवनका लक्ष्य समझने लगता है।

आधुनिक एवं भावी पीढ़ीको विकृत मनोरंजन-द्वारा विघटित करनेमें सबसे बड़ा हाथ सिनेमाका है। यह निरन्तर हमारे विश्वास, मान्यता एवं सामाजिक रीति-रिवाजोंका अवमूल्यन कर रहा है। जिस वैभव एवं विलासके साथ अभिनेता दिखाये जाते हैं वह साधारण व्यक्तिके लिए ईर्ष्याका विषय है। यह ईर्ष्या अप्रत्यक्ष रूपसे अपराधका कारण बनती है या अपराधके लिए पृष्ठभूमि तैयार करती है क्योंकि ऐसे विलासके साधनोंको प्राप्त कर सकना, हज़ारोंमें शायद एकके लिए ही सम्भव हो सकता है। महत्त्वाकांक्षी व्यक्तिके लिए अवैधानिक तौर-तरीक़े ही हैं जिनसे वह इन विलासके साधनोंको जुटा सकता है। सिनेमामें, जाली नोटोंका कारबार, स्त्रियोंका अवैध व्यापार, वेश्यावृत्ति, जुआ, होटलोंका सुखमय जीवन, सफ़ाईसे हत्या करनेके तरीक़े और क़ानूनसे बचनेके उपाय, अपराध करनेके अधुनातन ढंग व न्यायकी आँखमें धूल झोंकने और आत्महत्याके दृश्य अकसर उपस्थित किये जाते हैं। लोग कहते हैं कि हमारे जीवनमें जो कुछ भी होता है उन्हीं सबको चलचित्रमें दिखाया जाता है। यह बात आंशिक रूपसे सत्य है। किन्तु ऐसे लोग जिनकी कहानीको लेकर अधिकांश चित्रपट तैयार किये जाते हैं—उनकी संख्या शायद एक प्रतिशत भी न होगी। सिर्फ़ बँगलाको छोड़कर, भारतकी सब भाषाओंसे बननेवाले सिनेमाओंका यही हाल है। सिनेमा-उद्योग, परदेपर जीवनको तो दिखा ही नहीं पाता। जो भी सफलता उसे मिली है उससे तो यही कहा जा सकता है कि यह सिर्फ़ हमें मरीचिकाके दर्शन कराता है—जो जीवनमें अप्राप्य है, या विकार एवं क्षयग्रस्त है। विश्वके अधिकांश चलचित्रोंकी कहानी पूर्व-वैवाहिक प्रेम, विवाहेतर प्रेम, तलाक़, प्रेममें असफल रहनेपर बुरेसे बुरे जीवनको अपनानेकी समस्याओंके इर्दगिर्द ही घूमती हैं। प्रेम-सम्बन्धों की अतिशयोक्तिका चित्रण किया जाता है, नाटकीय दृश्य उपस्थित किये जाते हैं, ग्लिसरीनके आँसू बहाये जाते हैं और चाँद-तारोंको तोड़ने, एवं साथ जीने-मरनेके वादे किये जाते हैं।

ब्लूमर एवं हासरके शोधसे ज्ञात होता है कि चलचित्रोंने अपराधको गति प्रदान की है। निःसन्देह यह बात सच है कि चलचित्र, अपराधके अन्यान्य कारणोंमें एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कई ऐसे मामले दर्ज हैं जिन्हें अपराधीने सिनेमा देखनेके बाद किया, जैसे तिजोरी या ताला तोड़नेके तरीक़े, सफ़ाईके साथ जेब काटना, ग्लोव्हका उपयोग (जिससे फ़िंगरप्रिण्ट न लिये जा सकें) एवं नक़ाब आदि का प्रयोग। यौन-अपराधको भी सिनेमाने बढ़ावा दिया है। मध्यम या निम्नश्रेणी (आर्थिक) की महिलाएँ, जीवनकी ज़रूरतोंकी पूर्तिके लिए या परिस्थितिकी मजबूरीके कारण बहुत जल्द हथियार डाल देती हैं और पूर्व वैवाहिक, विवाहेतर एवं अवैध सम्बन्धोंका सहारा लेती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लीवलैण्ड-रिक्रिएशन-सर्वेने इस बातकी पुष्टि की कि ७५ प्रतिशत बाल-अपराध, अवकाशके समयके दुरुपयोगके कारण होते हैं, खेल-कूदके स्थानोंके अभावमें बच्चे सड़कों व गलियोंमें खेलते हैं जहाँ हर पगपर उनके जीवनको खतरा रहता है—शारीरिक रूपसे और मानसिक रूपसे। भारतके नगरोंमें बहुत ही कम क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ बच्चोंको मनोरंजन एवं खेल-कूदकी पर्याप्त खेल-कूद प्राप्त हो। बच्चोंके पार्क, खेल-कूदके मैदान, बाल-वाचनालय आदिकी नितान्त कमी है। बच्चेको अवकाशमें मनोरंजन तो चाहिए ही, वह भले या बुरेका फ़र्क़ समझे बिना इसे, किसी भी तरहसे, प्राप्त कर लेता है।

इस दिशामें हमारे बच्चों व किशोरोंको कुमार्गपर अग्रसारित करनेमें चलचित्रोंका बड़ा हाथ है। परदेपर दिखनेवाले पात्र, संवाद, जीवन, रहन-सहन, उनके वस्त्र आदि हमारे किशोरों व नवयुवक-नवयुवतियोंके मनपर इस क़दर छा गये हैं कि वे, इन्हें अपना आदर्श मान बैठे हैं। वे उन्हींकी तरह चलते हैं, बातें करते हैं, गाने गाते हैं, लड़कियोंको छेड़ते हैं या मतलब न सधनेपर अश्लीलतम मज़ाक़ और व्यवहारपर उतर जाते हैं। सिनेमामें दिखाये जानेवाले, सामाजिक या धार्मिक मान्यता-विरोधी दृश्य, बाल एवं किशोर-मनको उलझनमें डाल देते हैं, और इस अवस्थामें उनसे अच्छे व्यवहारकी अपेक्षा कम ही की जा सकती है। बावजूद सेन्सरशिपके १८ प्रतिशत चलचित्र बच्चों व किशोरोंके देखने लायक़ नहीं होते। 'सिर्फ़ वयस्कोंके लिए' दिखाये जानेवाले चलचित्रोंमें भी बच्चोंके प्रवेशपर कोई पाबन्दी नहीं रहती। और 'ए' सर्टिफ़िकेटका लेबल किशोरों व नवयुवकोंको बहुत अधिक आकर्षित करता है।

यदि कोई व्यक्ति यथार्थता एवं सत्यका पारखी है तो वह यह जानता है कि इन चलचित्रोंने, शारीरिक-मानसिक उम्रके पूर्वसे, बाल-मनमें 'प्रेमके अंकुर' बो दिये हैं जिसका ज़हर निरन्तर ही फैलता जा रहा है। बच्चा तो इन बातोंको डरके कारण नहीं कर पाता किन्तु स्कूलकी ऊँची कक्षाओंमें पढ़नेवाले किशोरों एवं कॉलेज व विश्वविद्यालयोंके छात्र-छात्राओंका जीवन इस रोगसे ग्रस्त है। अनुमान है कि और कारण जो भी हो पर एक प्रभावशाली कारण यह है कि प्रेमका रोग हमारे दिमाग़में ठूँस-ठूँसकर भरा जा रहा है—सिनेमाओंके द्वारा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होनेवाली प्रेम-कहानियों व कविताओंके द्वारा, अश्लील गानोंके द्वारा। सिनेमा बेनेवाश कर यह बात दिमाग़में बैठा देना चाहता है कि जैसे जीवन, प्रेमके बिना नरकसे भी बदतर है।

अतः मनोरंजनके नामपर जो भी उपलब्ध है—वह विघटनका स्रोत है, विकारोंकी जननी है, एवं क्षयग्रस्त जीवनका पर्याय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्षमें बोली जानेवाली अनेक भाषाओंको मुख्यतः चार परिवारोंमें विभाजित किया जा सकता है। ये हैं—१. भारोपीय या आर्य-परिवार, २. द्रविड़-परिवार, ३. आस्ट्री-एशियाई-परिवार, ४. तिब्बती-चीनी परिवार।

भारोपीय-परिवारकी आर्य-शाखाकी जो भाषाएँ इसी महाद्वीपमें विकसित हुईं, उन्हें भारतीय-आर्य-भाषाके नामसे अभिहित किया जाता है। इस वर्गकी आधुनिक मुख्य भाषाएँ हैं—असमी, बँगला, उड़िया, हिन्दी, पंजाबी, मराठी, राजस्थानी, गुजराती आदि। ये भाषाएँ मुख्यतः उत्तर-भारतकी हैं। द्रविड़-भाषा-परिवारकी भाषाएँ हैं—तेलुगु, तमिल, मलयालम और कन्नड़, जो दक्षिणकी भाषाएँ हैं। वस्तुतः आर्य और द्रविड़-परिवारकी भाषाओंका क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसमें आस्ट्री-एशियाई परिवारकी भाषाएँ—खासी, मुण्डा, कोल, सन्थाल आदि—भी समाहित हैं। बोलनेवालोंकी संख्या और क्षेत्र-विस्तार-की दृष्टिसे आर्य-परिवारकी भाषाओंका प्रथम और द्रविड़-परिवारकी भाषाओंका द्वितीय स्थान है। शेष परिवारकी भाषाओंका महत्त्व गौण है।

भारतके इस भाषा-वैभिन्न्यका मूल कारण भाषा-वैज्ञानिकोंने यहाँकी भौगोलिक स्थितिको बताया है। उनका मत है कि उत्तरी भारतके सपाट मैदानके कारण आवा-गमनकी सुविधाओंने ऐसी भाषाओंके विकासमें योग दिया जो आंचलिक विभिन्नताओंसे सम्पृक्त होते हुए भी बोधगम्यताकी दृष्टिसे एक दूसरेसे अत्यन्त निकट हैं। इसके विपरीत दक्षिणी भाषाओंमें पारस्परिक बोधगम्यताका अभाव है। इसी प्रकार उत्तरसे दक्षिण तक फैली पश्चिमी घाटीकी पहाड़ियोंने आवागमनकी असुविधा उत्पन्न कर मलयालमको तमिलसे और तेलुगुको कन्नड़से विभक्त कर दिया। सौभाग्यवश आधुनिक युगमें विज्ञानके चमत्कारोंने आवागमनके साधन सुगम कर भाषा-भेदके भौगोलिक कारणोंको पंगु बना दिया और भाषाओंकी आपसमें टूटती हुई शृंखलाको जोड़ दिया है, फलतः भारतीय भाषाएँ आज एक दूसरेके निकटसे निकटतम होती जा रही हैं।

उपर्युक्त विवरणोंपर दृष्टि-निक्षेप करते ही जो पहली प्रतिक्रिया किसीपर भी पड़ सकती है वह यह है कि सचमुच भारतकी भाषा-सम्बन्धी समस्या ऐसी जटिल और गुरुगम्भीर है जिसका समाधान निकट भविष्यमें सम्भव नहीं, किन्तु सचाई तो यह है कि एक ही समस्याको देखनेके कई अन्दाज़ होते हैं, आवश्यक नहीं कि उन सभीके विचार-बिन्दु ठीक ही हों। सम्भव है, भाषा-सम्बन्धी समस्यापर विचार करते समय हमने भी कोई ऐसा ही अधूरा दृष्टिकोण अपना लिया हो जिसने हमें समाधान तक पहुँचने नहीं दिया। अतः हमें ऐसे प्रत्येक व्यवधानपर-से अज्ञानका परदा हटाकर समस्याके मूल तक पहुँचना होगा।

सम्पर्क-भाषा वह त्रिकोण है जो एक राज्यको दूसरे राज्यसे, राज्यको केन्द्रसे और राष्ट्रको अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रोंसे जोड़ती है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

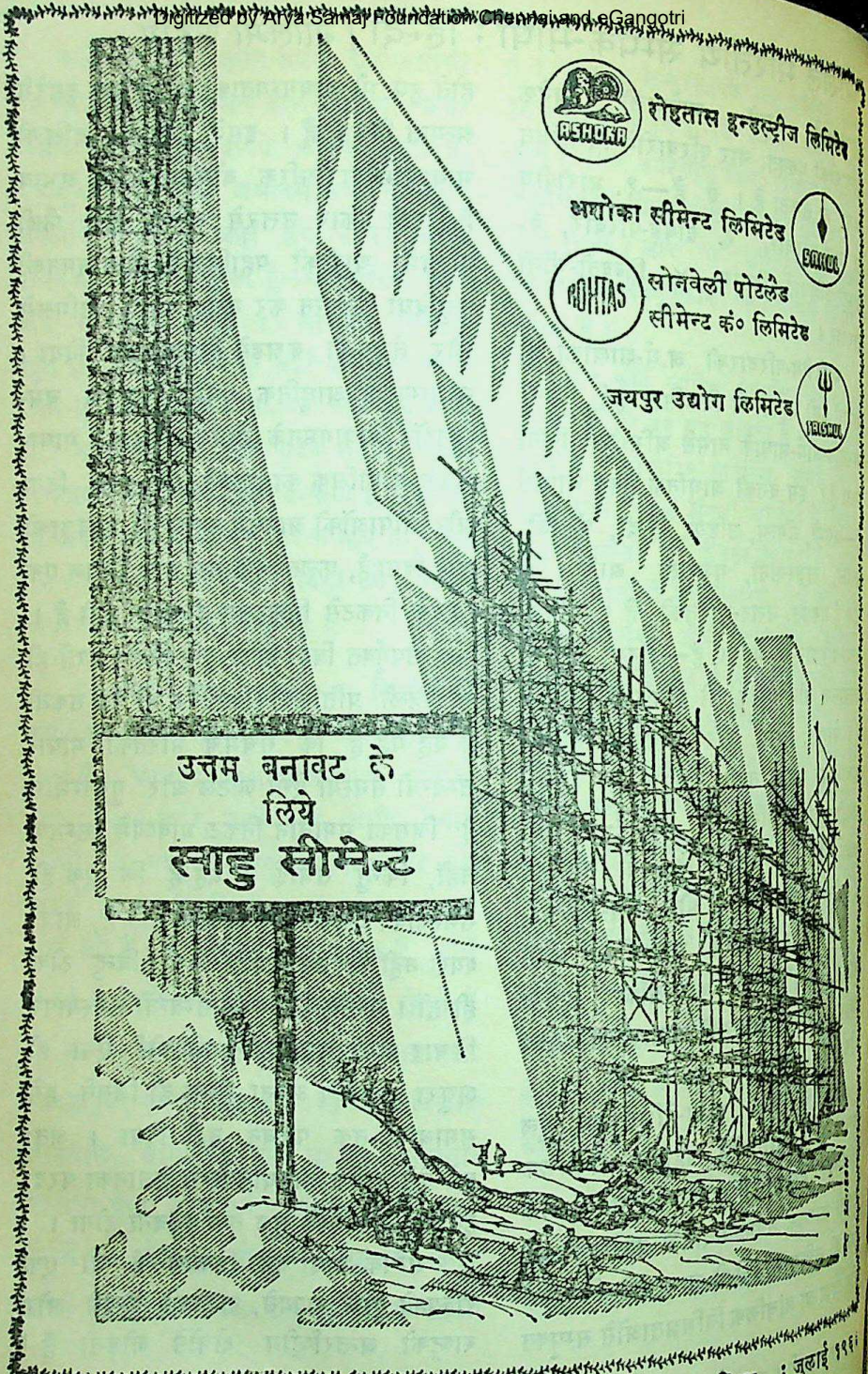

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संविधानमें स्पष्टतया इस बातकी चर्चा कर दी गयी है कि कोई भी प्रादेशिक भाषाधार राज्य अपने स्थानीय शासन-कार्य उस क्षेत्र-विशेषकी भाषामें कर सकता है, हिन्दी उसमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करेगी। लेकिन जब एक राज्य अन्य राज्योंसे सम्पर्क स्थापित करना चाहेगा तब उसके समक्ष कठिनाई उपस्थित होगी। आवश्यक नहीं कि सभी राज्य एक-दूसरेकी भाषाओंसे परिचित हों।

इतना ही नहीं, कुछ और आगे बढ़ें तो उसमें भी राज्यको सम्पर्क स्थापित करनेकी आवश्यकता पड़ती ही है। तब संघ और राज्यके मध्य संचारकी भाषा कौन-सी हो? क्या चौदहों संविधान-स्वीकृत भाषाएँ इस कार्यको करें? यह सम्भव ही नहीं क्योंकि न तो संघको ही इतना अवकाश है कि प्रत्येक राज्यके चौदह रूपान्तर करे और न ही राज्यों को इतनी कड़ी मेहनत करनेका चाव। अतः यहाँ भी सम्पर्क-भाषाकी आवश्यकता बहुत बड़ी है। इसके अतिरिक्त सम्पर्क-भाषाकी जरूरत अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर आर्थिक, राजनीतिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक वार्ताओंके लिए भी होती है।

किसी भी विशाल देशके लिए जहाँ अनेक भाषाएँ प्रचलित हों, सम्पर्कके लिए किसी एक भाषाका चुनाव कर लेना बड़ा ही कठिन तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। फिर भी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद जब अखिल भारतीय सम्पर्क-भाषाका प्रश्न उठा तब इसके समाधानमें तीन भाषाएँ मनोनीत हुईं—अँगरेज़ी, संस्कृत और हिन्दी।

जहाँतक अँगरेज़ीको सम्पर्ककी भाषा बनानेका तर्क उसे ज्ञान-विज्ञानकी खिड़की बताकर दिया जाता रहा है, अब वह थोथी दलीलके अतिरिक्त और कुछ सिद्ध नहीं होता। आजका विश्व इतना संकीर्ण नहीं कि मात्र अँगरेज़ी ही किसी राष्ट्रकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त कर सके, वरन् आज तो सभी भाषाधार राष्ट्रोंको समान सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है।

राष्ट्रीय सम्मानकी दृष्टिसे भी हम अँगरेज़ीको अपने देशकी सम्पर्क-भाषा बनाये रखनेमें असमर्थ हैं। एक ही देशके दो निवासी अपनी भाषामें संलाप न कर विदेशी भाषा अँगरेज़ीमें अपनी भावनाओंको अभिव्यक्त करें—उस स्थितिकी कल्पनामात्र ही लज्जाजनक और हास्यास्पद है। साथ ही यह हमारे भाषा-दारिद्र्य और हमारी हीनभावनाका भी द्योतक है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि यदि किसी भारतीय भाषाको ही सम्पर्क-भाषाके रूपमें प्रतिष्ठित करना है तो क्यों नहीं संस्कृतको यह गौरव प्रदान किया जाये जो समस्त भारतीय वाङ्मयका मूल है? एक समय वह भी था जब समस्त भारतवर्षकी भाषा संस्कृत ही थी। पर यह दलील भी आजके भाषा-विकासको देखते हुए उचित नहीं जँचती क्योंकि संस्कृत आज अन्य दूसरी भाषाओंकी तुलनामें प्रचार एवं बोलनेवालोंकी संख्याके आधारपर पिछड़ी हुई भाषा हो गयी है। यह दूसरी बात है कि उसमें दूसरी भाषाओंके भण्डारको अर्थगौरव एवं भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरवसे परिपूर्ण करनेकी सामर्थ्य आज भी है, यद्यपि अपने अनुरूप कुछ परिवर्त्तनोंके साथ ही कोई भाषा इसके शब्दोंको स्वीकार करती है। और फिर यह भी तो आवश्यक है कि योग्य माँकी योग्य पुत्रियोंको भी आगे बढ़नेका अवसर मिलना ही चाहिए, नहीं तो उन्नतिका उत्साह समाप्त हो जानेका भय होता है। जो प्रचलनकी दृष्टिसे पीछे छूट चुका है उसे पुनः द्वन्द्व-क्षेत्रमें अवतरित होनेको बाध्य करना समस्याका सर्वथा अवैज्ञानिक हल है। अतः समाधानका एक ही पहलू शेष रह जाता है कि संस्कृतकी उत्तराधिकारिणीके रूपमें विकसित होनेवाली भाषाओंमें-से ही कोई एक भाषा अखिल भारतीय भाषा बन सकती है।

स्वभावतः यह प्रश्न यहाँ उद्भूत होता है कि भारतमें वह कौन-सी सर्वप्रचलित और सम्मानित भाषा है जिसे एकमात्र अखिल भारतीय सम्पर्क-भाषाके रूपमें स्वीकृत किया जाये? यूँ भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे सभी भाषाएँ मूल रूपमें समान हुआ करती हैं, उसी प्रकार जैसे जन्मके आधारपर सभी मनुष्य समान हुआ करते हैं। फिर भी कुछ ऐसे कारण विशेष हैं जिनसे भाषाओंके महत्त्व-में अन्तर आ ही जाता है जैसे मनुष्य वंश, परम्परा, परिवेश, संस्कृति और विभिन्न परिस्थितियोंके आधारपर विशिष्टताको प्राप्त करता है। इन कारणोंमें मुख्य हैं—बोलने-वालोंकी संख्या, प्रचार, वाणिज्य-व्यवसाय और आर्थिक पैमानेपर विचारोंका आदान-प्रदान। बोलनेवालोंकी संख्याके आधारपर हिन्दीका स्थान विश्वकी समस्त भाषाओंके मध्य तृतीय है। चीनी भाषाका स्थान प्रथम है और अँगरेज़ीका द्वितीय। फिर भी विज्ञान चीनमें भाषाकी वह एकरूपता नहीं जो भारतमें हिन्दीकी है। अँगरेज़ीकी तुलनामें ही यदि देखें तो जिस औपनिवेशिक प्रवृत्तिके फलस्वरूप अँगरेज़ीका इतना विस्तार हुआ हिन्दी उस सुविधासे सर्वथा वंचित रही। उसकी सुरभि तो अपने गुणोंसे फैली। जो भाषा अधिक प्रचलित या फैली होती है उसका प्रभुत्व शीघ्र जन-मानसपर स्थापित हो जाता है। इसमें वक्ताकी संख्या नहीं अपितु क्षेत्र-विस्तार परिगणित होता है। उदाहरणार्थ पुनः चीनी और अँगरेज़ी भाषाओंको ही हम लें, यद्यपि चीनी भाषाके वक्ताओंकी संख्या अँगरेज़ीसे इकतालिस लग-भग सात प्रतिशत (४१.७) अधिक है तथापि अँगरेज़ीका प्रभुत्व समस्त विश्वमें है। उसी प्रकार आज समस्त भारतमें एकमात्र हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसके द्वारा देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक आसानीसे काम चलाया जा सकता है। क्या बंगाली, क्या मराठी, क्या गुजराती और क्या पंजाबी—सभी यद्यपि एक-दूसरेकी भाषासे अपरिचित हों तब भी वे पारस्परिक विचारोंसे सहज ही जिस भाषाके द्वारा अवगत हो सकते हैं वह भाषा हिन्दी ही है। यहाँ यह स्वीकार करनेमें संकोच नहीं होना चाहिए कि इसकी हिन्दी टूटी-फूटी काम चलाऊ होती है। इसी प्रकार आर्थिक या वाणिज्य-व्यवसायकी दृष्टिसे भी हिन्दी ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषा है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य भाषा-भाषी तो कम हैं ही, हमारे देशमें अँगरेज़ोंकी संख्या भी बहुत ही अल्प है।

हिन्दीको हतोत्साहित करनेके लिए अँगरेज़ोंके समर्थक बहुधा अँगरेज़ीकी समृद्धिकी दुहाई देते हैं। इस तर्कको देते समय यह सत्य भुला दिया जाता है कि भाषा प्रयोगसे ही निखरती है। किसी भी भाषाको महज़ दफ़्तरोंमें बैठकर समृद्ध नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए हमें प्रयत्न करना चाहिए कि हस्ताक्षर, विवाह तथा अन्य सांस्कारिक निमन्त्रण-पत्रों, भाषणों, भारतकी सीमाके भीतर लिखे जानेवाले पत्रों, तार, दूरभाषकी संख्या, दूकानोंके नामपट आदि सभीमें हिन्दीका प्रयोग करें। शिखरपर पहुँचनेकी धुनमें धरातलको भुला देना बुद्धिमानी नहीं।

रही बात हिन्दीकी व्याकरण-सम्बन्धी कठिनाइयोंकी जो सत्यसे अधिक सत्याभास है। समृद्धिमें आज हिन्दी विश्वकी किसी भी भाषासे पीछे नहीं, भारतीय भाषाओंकी तो बात ही जाने दें। हिन्दीकी सरलताके प्रमाणके लिए क्या इतना ही कहना पर्याप्त नहीं कि अन्य भारतीय तेरह भाषाओंको बोलना और सीखना ही सरल होता तो समस्त भारतमें हिन्दीका ही प्रचलन अधिक क्यों होता? पर नहीं, इसके लिए कुछ और भी प्रमाण देने होंगे। हिन्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है उसका लेखनानुकूल उच्चारण, जो वैज्ञानिक दृष्टिसे विश्वकी अन्य किसी भाषामें नहीं। इसमें जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा भी जाता है। यद्यपि वाणीकी विविध सूक्ष्मताओंको भाषाके बन्धनमें बाँधना सम्भव नहीं पर बाँध जितनी सफ़ाईसे बाँधा जा सके निपुणता और श्रेष्ठता इसीमें है। निश्चय ही हिन्दीमें यह गुण वर्तमान है। बँगला अथवा अँगरेज़ी भाषाको बोलनेमें जो मौखिक व्यायाम करना पड़ता है हिन्दी उससे हमें छुटकारा दिला देती है। हिन्दीका 'भव्य' पढ़नेमें भी भव्य ही उच्चरित होगा, बँगलाकी भाँति 'भोव्य' नहीं। 'महाराज' हिन्दी और बँगला दोनोंमें महाराज ही लिखा जायेगा, सौभाग्यसे हिन्दीमें उच्चरित भी यही होगा पर बँगलामें नियमित व्यायामके कारण 'मोहाराज' बन जायेगा। हिन्दीकी दूसरी विशेषता यह है कि इसकी ध्वनियाँ स्पष्ट और निश्चित हैं अर्थात् परिस्थितियोंके रंगमें रँगकर यह अपने उच्चारणका ढंग और निश्चित सांकेतिक वर्णका त्याग नहीं करती। अँगरेज़ी या अन्य भाषाओंमें यह गुण नहीं।

हिन्दीने अपनी उदारतासे कुछ अरबी, फ़ारसी और अँगरेज़ी ध्वनियोंको भी ग्रहणकर अपने-आपको तो व्यापक बनाया ही, इन भाषाओंको भी निकटतम कर लिया। हिन्दीके वाक्य-विन्यास भी अन्य भारतीय भाषाओंके अनुरूप हैं, पर अँगरेज़ीके वाक्य-विन्याससे पर्याप्त भिन्न। हिन्दीके वाक्य-विन्यासका नियम—कर्ता, कर्म और क्रिया—लगभग सभी भारतीय भाषाओंमें लागू होता है पर अँगरेज़ीमें कर्ता, क्रिया और कर्मकी उलटी गंगा शोचनीय स्थिति उत्पन्न कर देती है। फिर लगभग सभी भारतीय भाषाओंके शब्दोंका भण्डार संस्कृत भाषा है अतः हिन्दीसे इनकी समानता स्वयंसिद्ध है। हिन्दीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियाएँ, सर्वनाम, वचन आदि सीमित हैं पर अँगरेज़ीकी क्रियाओंका तो कहीं अन्त ही नहीं। हिन्दीमें आकारान्त शब्दोंमें 'ई' जोड़कर स्त्रीलिंग बनानेका बड़ा ही सरल नियम है जैसे नाना-नानी, लड़का-लड़की आदि, पर अँगरेज़ीमें लिंग-परिवर्तन करनेपर दोनों शब्दोंका रूप सर्वथा भिन्न हो जाता है।

यह सत्य है कि हिन्दी भी कुछ समस्याओंसे अछूती नहीं यथा वर्त्तनीकी समस्या, विदेशी शब्दोंके ग्रहणकी समस्या, विभक्ति-प्रयोगकी समस्या, अनुस्वार, चन्द्रबिन्दु और परसवर्णकी समस्या। फिर भी ये ऐसी समस्याएँ नहीं जिनका निदान निकट भविष्यमें मननोपरान्त भी ढूँढ़ पाना सम्भव नहीं।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् सन् १९४७ में जब भारतीय संविधानका निर्माण किया गया तब हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन होनेका गौरव मिला। यह और भी गौरवकी बात रही कि उसे इस पदपर आरूढ़ करनेमें हिन्दी-भाषियोंकी अपेक्षा अहिन्दी भाषियोंका ही आग्रह विशेष रहा जिनमें राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, विवेकानन्द, दयानन्द, सुब्रह्मण्यम्, राणाडे, सरोजनी नायडू, तिलक और गान्धीजीका नाम श्रद्धाके साथ लिया जाता है। अतः हिन्दी-भाषियोंपर जो यह दोषारोपण करते हैं कि अपने लाभके लिए ही उन्होंने भारतीय संघकी भाषाके पदपर हिन्दीको प्रतिष्ठित करनेकी उत्सुकता दिखायी वे अन्याय करते हैं।

पिछले दिनों विभिन्न प्रान्तोंमें हिन्दीके विरोधमें उलटे-सीधे तथ्योंका प्रचार किया जाने लगा था। हिन्दी-विरोधी आन्दोलनका सर्वाधिक भयंकर और कट्टर रूप उस दक्षिण भारतमें फैला जहाँ 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'की स्थापना बहुत पहले हो चुकी थी। मद्रास इस हिन्दी-आन्दोलनका मुख्य केन्द्र रहा। इसमें तनिक भी सन्देहकी गुंजाइश नहीं कि इस आन्दोलनके पीछे राजनैतिक दलोंका हाथ अधिक रहा है और भाषा-विवादको राजनैतिक हथकण्डा बनाकर भोली-भाली जनताको रक्तपातके लिए उभारा गया है। हिन्दी-विरोधी विक्षोभके फलस्वरूप राजनैतिक बलि-वेदीपर पचासों निरीह व्यक्तियोंने प्राण गँवाये, करोड़ोंकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, देशमें भयंकर अराजकता और अव्यवस्था फैली और दक्षिण भारतके दो केन्द्रीय मन्त्रियोंने त्यागपत्र भी दिया। यदि हिन्दी-विरोधी आन्दोलनका उक्त रूप ही सत्य है तो असमके ही 'जन्मभूमि' नामक समाचार-पत्रमें अँगरेज़ी साहित्यके प्राध्यापक श्री हेम-बरुआके इस मन्तव्यका क्या अर्थ लिया जाना चाहिए कि जितना समय उन्होंने अँगरेज़ी सीखनेमें गँवाया अगर उतना हिन्दी सीखनेमें बिताते तो शायद आज वे जितनी अँगरेज़ी सीख सके हैं उससे कहीं ज्यादा अधिकार हिन्दी-भाषापर सहज ही पा चुके होते। असम-साहित्य-सभाके भूतपूर्व सभापति, अँगरेज़ी साहित्यके प्राध्यापक तथा असमके सशक्त कथाकार तथा आलोचक श्री त्रैलोक्य-नाथ गोस्वामीका स्पष्ट कथन है: "दक्षिण भारतमें व्यवहृत चार भाषाओंको छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारतमें प्रचलित सभी भाषाओंके बीच एक निकटका नाता है। उत्तर भारतके अधिक संख्यक लोग ही हिन्दी भाषा-भाषी हैं। इसके अलावा अन्य भाषा-भाषी लोगोंके बीच भी हिन्दी समझनेवालोंकी संख्या थोड़ी नहीं है।" यही तो हिन्दीको सम्पर्क-भाषा बनानेकी प्रबल युक्ति है। शास्त्रीजीको सम्बोधित कर एक सिंहली-भाषी हिन्दी-प्रेमी पोतुविलने धर्मयुग १९ अगस्त १९६५ में यह विचार प्रकट किया था : "मैं विदेशी होकर भी उनसे प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें हिन्दीको शीघ्र ही उचित स्थान दिलानेका प्रयत्न करना चाहिए अन्यथा स्वतन्त्र भारत-रूपी कलिका न तो पुष्पित ही होगी और न ही उसमें सुगन्धि और सौन्दर्य आ पायेगा।···· ऐसा लगता है कि भारतरूपी बच्चेका जन्म तो अच्छी तरह हुआ, किन्तु जब भारत-शिशुकी उम्र सत्रह सालकी हो गयी, तब भी उसे अपने माँ-बापकी बोली पसन्द नहीं आती। इसलिए वह बाचालकी जगह गूँगा ही दिखाई पड़ता है।" बड़ी मार्मिक चोट है लेकिन एक शुभचिन्तकका मार्ग-दर्शन भी।

अतः आज हिन्दीके आन्तरिक गुणोंके आधारपर यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो चुका है कि सम्पूर्ण राष्ट्रमें संचारकी भाषा यदि कोई हो सकती है तो हिन्दी ही। इसलिए हमें हिन्दी और अहिन्दी-भाषियोंका प्रश्न भूल-कर, जातीयता, साम्प्रदायिकता और राजनैतिक विद्वेषोंको भूलकर राष्ट्रीय सम्मान और प्रगतिको अपना एकमात्र लक्ष्य बनाकर हिन्दी-की उन्नतिमें सहयोग देना चाहिए। इसीमें हमारा और हमारे राष्ट्र दोनोंकी भलाई है। ■ ■

With the Compliments of

The Eyre Smelting Private Limited

Calcutta – Madras – New Delhi

●

Manufacturers of Non–Ferrous Alloys & Fluxes

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ लगा हुआ
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक स्निग्ध
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गन्दगी,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
मैनेजिंग एजेंट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• मॉचवेजी की एक कविता के आधार पर

कमरे में कुर्सी है, किताब हैं, कलैण्डर है
कोट है, कमीज़ हैं, कम्बल एक काला है,
पतंग है, पैण्ट है पजामा पुलोवर है
जूते हैं, प्लेट हैं प्रेस बिजली वाला है;
पेन है, बोरी है, बाल्टी औ' बाट की है,
छत है, बेंच पर बिस्तरबन्द ताला है,
साबुन है, 'सर्फ़' है, शेविंग की सज्जा है
लेखित एक शीशा जो कि बेल्जियम वाला है।

चाय है, चम्मच है, चूरन है चीनी है
चर्चा है च्यवनप्राश वैद्यनाथ वाला है,
नासिक का लोटा और लैम्प बड़ा छोटा यहाँ
लुंगी है लाल लंगोट लिलन वाला है
खिड़की है, खटोला है, खुल्लखुल्ल खाँसी है
खुदा करे खैर, पड़ा कैसा ये कसाला है,
काव्य की कसौटी पर कंचन-सा उतरेगा
लिखने को लल्लू पर ऐसा ही मसाला है।

• तुक्तक

सारे विरोधों को कानों पे झेल
ऊंच और नीच में करवाया मेल
साथ बैठ खिलवाया
और खूब मलवाया
बछून्दर के सिर में चमेली का तेल,

तुम भी ठीक कहते हो पण्डित जी
तुम भी ठीक कहते हो लाला जी
पंचो की बातें
मेरे सिर-माँथे
लेकिन यही गिरेगा परनाला जी

—शीलूसिंह वर्मा

व्यंग-चक्र
तीखे-तुर्श-वक्र

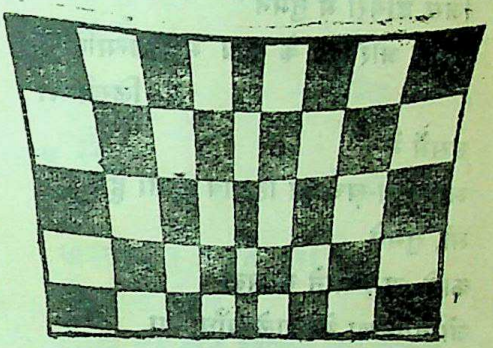

शीलूसिंह वर्मा, विष्णु बक्षी,
श्यामकिशोर सिंह, शरदिन्दु भूषण कुमार,
वीरेन्द्र दीपक, इन्दु व्यास, रमेश साही,
फूलवन्त कौर, पवनकुमार जैन,
मैकलियॉड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• जापानी तनका शैली

प्रश्न : वाचक=प्रश्नवाचक

है यह पृथ्वी
सड़ी सकरकन्दी ?
राख में ज्यादा
भुन गयी होगी—
छील डालो तुरन्त !!!

—विष्णु बक्षी

• ऋण-स्वीकार

पिता,
जिस डायरी में तुमने
समय और दिन के साथ मेरी जन्मतिथि
लिखी थी
उसमें मैं
आमदनी-ख़र्च का हिसाब करता हूँ !
माँ, तुमने
काले धागे सोने से मढ़ा
जो बघनखा मेरे गले बाँधा था
उसका सोना
ख़ाली जेब में रखता हूँ—
बघनखा नंगे हाथ में !
सुनो !
तुम दोनों ने मिलकर
जो संगीत मुझे दिया था
उसके स्वर
भीड़ जमा करने
किराये पर लगाता हूँ !
सूखे कुएँ के पाट पर खड़ा हूँ
और उऋण होना चाहता हूँ !

—श्यामकिशोर सिंह

• एक टटकी कविता

टहटह टहके
टटकमोचार
फूल—
गुलमुहर के !
महमह महके
लाल-लाल
फूल—
कृष्णचूर के !
आँगन में
तुलसी के
पास—
तोड़ता
बासी रोटी
एक काला काग
सबेरे-सबेरे
मन मेरा
मिचली से
असन्तुलित सुनता
कुछ मन्द्रख में—
झन्-झन्-झन्-झन्
झनन्-झनन्,
ताक्-धिन्, ताक्-धिन,
धिन्न्-धिन्न्-ता....
औ'
तत्-थई—ताथई—थई !
मेरा सोया
सार्त्र सजग,
कामू ने कोसा
और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सोचा—
चल चलूँ
रेल तले,
अमलताश की पीली
पंखुरियों से खेलूँ
और''''और''''',
एक ग्लास
नीरा को उलट कर
पीलूँ
जी भर !''''

—शरदिन्दु भूषण कुमार

• मासूम कविता

मैं तुम्हें कहूँ
चन्दा की नाव
तारों की झील में डोलती-सी,
तुम बोलोगे फेण्टेस्टिक थॉट,
मैं कहूँ
कचनारी छाँह
दिशा-दिशा डोलती-सी,
तुम हँसी में उड़ा दोगे बात
मैं कहूँ
जीवन की राह
धरती के द्वार खोलती-सी,
तुम नहीं मानोगे स्यात्,
अच्छा
और अगर मैं तुम्हें
मार्च की एक शाम कहूँ तो ?

—वीरेन्द्र दीपक

• शहर और आदमी

भव्य और विशाल
इमारतों वाले शहर में;
सिक्कों की चमक से
चमकने वाले—
नगर में;
देखती हूँ—अब
कुत्ते कम,
(जिनको आदमी से प्यार होता है)
तथा—
आदमी ज़्यादा
(जिनको कुत्तों से प्यार होता है)
पैदा होते हैं ।

—इन्दु व्यास

• मैं

मैं,
अस्वीकृत रचना-सा
डिस्पैच हुआ
जिस पर खेद सहित की मोहर
कि,
सम्पादक को डर है
कहीं मैं क्रान्ति न ला दूँ ।

—रमेश साहो

• लाजवाब साहित्य-गोष्ठी

मौन, फुसफुसाहटें,
तूफ़ान के पहले का-सा माहौल ।
किसी रोबीली आवाज़ ने ध्यान खींचा—
बात छिड़ी
बात थी गम्भीर
सुनी और कुछ गुनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नयी कविता और भावबोध'
नयी कविता के शब्दों में अर्थ की खोज को
तमाम चेहरे
आँख-कान बन्द किये,
जीभ की बैटरी से कोना-कोना छानते फिरे।
हर तर्क था सशक्त,
हर आवाज़ थी बुलन्द
आधुनिकता, नवीनता
युग-जीवन की विषमता
भाव और अर्थ-बोध
आर्ट और मैटर जैसे
कई शब्द जाने-सीखे।
कुछ चेहरे रोबदार थे;
'प्लीज़ ध्यान दें !'
'आज्ञा दें तो कहूँ' – जैसे विनम्र मुहावरे।
मैं अभिभूत
स्वयं 'अन्कल्चर्ड' इन 'कल्चर्ड्स' में
धन्य मान
गोष्ठी की समाप्ति पर
(मैं) धरती का जीव
इन आकाश की ऊँचाइयों को छूते
व्यक्तियों में
वामनावतार के प्रतीक-सी सिमटी
आत्म-विस्मृत मौन थी।
सहसा पाया—
कुछ हलचल बढ़ी है
उत्सुक मैं सजग हुई,
रोम-रोम प्रतिकर्ण-सी एकाग्र
सुना—
प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व वह
झुका-झुका कह रहा था—
"यार ! अमुक जी की गोष्ठी भी क्या खूब
रंग लाती है—
इनके बनारसी पान तो सच लाजवाब हैं !"

—फुलवन्त कौर

• गधा

अरब के रेगिस्तान की
सफ़ेद रेत पर गिरी हुई रक्त की बूँदें
दो बूँदें···सफ़ेद खरगोश की
लाल आँखों-जैसी।
एक में-से रात के
काले बाँस के झुरमुट-जैसा भयावना,
फूट पड़ता है ईंट का बादशाह
उसके पीछे आते हैं—
ईंट की बेगम, और ईंट का गुलाम भी,
(सिपह-सालार सब युद्ध में मारे गये हैं···!)
दूसरी बूँद में-से निकल आता है—
चिथड़ों की गठरी-सा
हाँफता बेहाल प्राणी···
···गधा···!
हो सकता है वह सुमेर की
सँकरी सड़कों में-से भागकर आया हो।
कोई नहीं जानता,
वह कहाँ से आया है, और क्यों···?
कच्ची और पक्की ईंटें :
काले, लाल, सफ़ेद चित्रित घड़े
और हण्डियाँ : मिट्टी के दिये और गुलदस्ते।
मिट्टी के सकोरे और खिलौने :
मिट्टी का बादशाह घोड़े पर :
मिट्टी का शेर और मिट्टी का ही कुम्हार।
गीली मिट्टी, ठण्डी मिट्टी,
गर्म मिट्टी, गहरी मिट्टी,
उससे जनमते शहर,
ज्वालामुखी और सूर्यमुखी···!
पर उसी से ऊब कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल भागा है यह गधा····
सूखी मिट्टी सूखी रेत, सूखापन····
यहाँ सब सूख जाता है····साँस भी····
गधा भी और उसका गधापन भी····
अति परिश्रम भी····
जीवन और मरण
यहाँ बेमानी हो जाते हैं····
सिर्फ़ सफ़ेद उड़ती रेत के
मैदान····मैदान····अपरम्पार मैदान।

—पवनकुमार जैन

हाँ-नहीं···

अपनी
(शादी के बारे में)
∴ स्थिति है
मेरी √ [तुम्हारे बाप × {तुम्हारी माँ × (तुम $\frac{\surd}{\times}$) तुम्हारे पड़ोसी × } तुम्हारा ख़ानदान ×]
∴ मैं × तुम = स्वर्ग
असम्भव है
सम्भव है मैं—तुम =
(तुम्हारे घर के नीचे)
मैं आऊँ
सीटी बजाऊँ
ऊपर से तुम्हारी माँ
मेरे सिर पर कतवार फेंक दें
आँख गुरेरें
तुम, उनकी दुलारी, शर्म की मारी
न आओ, न बताओ।
मैं 'मेकअप' साफ़ करता चला जाऊँ
विरह के गीत गाऊँ।

—मैकलियॉड

POPULAR PLAYING CARDS
ARE MORE POPULAR
AMONG ALL SECTIONS

* ATTRACTIVE DESIGNS
* REASONABLE PRICES
* SHUFFLE-EASY FINISH

AVAILABLE EVERYWHERE

BUY A PACK TODAY AND ENJOY THE PLAY.

Manufactured by :

Popular Fine Art Litho Works Pvt. Ltd.,

133-C, Vakola,
Santacruz East,
Bombay-55.

Phones : 538234-35.

Gram : Goolnar.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सुप्रसिद्ध साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

भावात्मक एकताका प्रतिनिधि, सांस्कृतिक वैभवका सेतु, देश और कालके समग्र आयामोंमें पल्लवित या सम्भाव्य तत्त्वों तथा वस्तुओंका वाहक।

दो वर्षोंके सीमित समयमें

माध्यमने

अपनी गौरवपूर्ण परम्पराकी नयी कड़ीके रूपमें

केरल विशेषांक

के अद्वितीय प्रकाशन-द्वारा अपनी प्रतिष्ठाको भारतीयताके समग्र बोधसे संपृक्त कर लिया है।

सद्यः (जूनमें)

'केरल विशेषांक परिशिष्ट' सहित अन्य

महत्त्वपूर्ण सामग्रीसे अलंकृत अंक यंत्रस्थ

विशेषांकोंकी भावी योजनासे सम्पन्न

माध्यम

विक्रयकी दृष्टिसे सक्षम, पाठकोंके लिए आतुर प्रतीक्षा तथा बौद्धिककी दृष्टिमें उपजीव्य है।

कृपया विज्ञापनोंसे, ग्राहकोंसे तथा अन्य उपायोंसे माध्यमको सम्पन्नतर बनायें।

माध्यम

आपकी

केवल आपकी पत्रिका है।

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक: १०.००; 'केरल विशेषांक'का २·५०

पो० बा० नं० ६० इलाहाबाद | सम्पादकीय | माध्यम सम्पर्क-सूत्र | व्यवस्थापकीय | हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कै। क्ट। स / द्वारकेश

ललितरचनाएँ

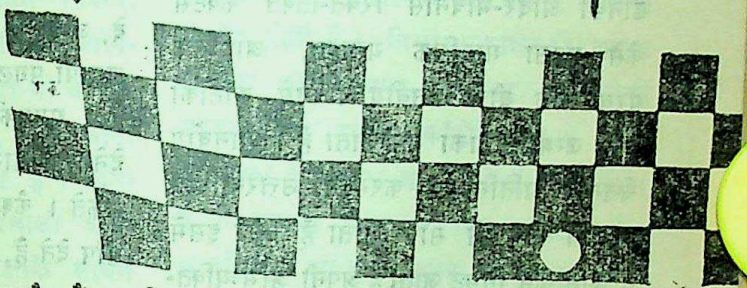

कमरा और उसमें घिरा हुआ बन्द बिजलीका पीला प्रकाश दोनों ही अपने अस्तित्वकी सार्थकताके लिए रेक, टेबल और पलंगपर तितरी-बितरी पुस्तकों और पत्रिकाओंपर आश्रित हैं। उनका महत्त्व इन्हींपर आ टिका हुआ है। कमरेके अन्दर और बाहर अकेलेपनका इकोटता आभास कहीं खो जाता है,—अन्दरकी चीत्कारती पगलायी आवाज़को पकड़े भटकता हुआ प्रकाश छटपटाकर कहीं दुबक-सा जाता है, तो वह कहीं नहीं इन्हीं किताबोंके पृष्ठोंमें। इन सबकी सृष्टिमें जीवन जीनेका थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे मरने नहीं देगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए मैं अपने कमरेकी चाभी कभी किसीको देता नहीं हूँ।

एक दिन मेरा दोस्त आता है। बहुत दिनोंसे वह मुझसे क्षुब्ध-सा है। मैं उनकी बात कभी मानता नहीं हूँ; यही उसका रोना है। उस दिन भी आक्रोशात्मक ढंगसे वह मेरी कॉलर पकड़कर बोलता है, "चाभी दे साले—कमरेकी।" मैं सचमुच घबरा जाता हूँ। उसे चाभी थमा देनेके अलावा और कुछ नहीं सूझता। छुट्टी न होनेके कारण क्षमा-याचना कर नौकरी पर चला जाता हूँ।

शामको घर आता हूँ। देखता हूँ, मित्र महोदय कमरेका दरवाज़ा खुला छोड़कर कहीं चले गये हैं। अन्दर जाकर देखता हूँ, सारी किताबें क़रीनेसे सजा दी गयी हैं। रेडियोके ऊपर, दीवालपर पिकासोका गुएर्निका और पास ही पॉप-कलाके चित्र चिपके हुए हैं। टेबलपर एक छोटी शीशीमें ऊँघता हुआ कैक्टस लगा हुआ रखा है। ठीक सामने खिड़कीके पास फ़्यूज़ बल्बमें एक मनीप्लाण्टकी बेल लटक रही है। मैं हँसता हूँ। फिर महसूस-सा होता है कि कहीं कुछ कमी-सी रह गयी है। हिम्मतशाहके भयानक आकृतिवाले चित्र मेरी आँखोंमें कौंधते हैं और कविताकक्षमें गजानन मुक्तिबोधकी 'ब्रह्मराक्षस'से लेकर 'चम्बल' और 'अँधेरेमें' तककी सारी कविताएँ एक ही स्वर-ध्वनि-प्रतिध्वनिमें टकराकर ठहर जाती हैं। इन सबके बीच दीवालपर मैं उन्हें उकेर देना चाहता हूँ। इनके बग़ैर कमरा और अधूरा-सा भासता है।

सामने कैक्टस है। एक प्रतीक है। और मुझे सुनील गंगोपाध्यायका 'नागफ़नीके रेगिस्तानमें' कथा-वृत्तान्त स्मरण हो आता है। अमेरिकाका तरुण कवि ड्रुमण्ड हाउलीने रेगिस्तानमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुसते ही गंगोपाध्यायकी इलियटके 'वेस्टलैण्ड' की आवृत्ति करनेसे एकदम सावधान कर दिया है। उसका कहना है, रेगिस्तान देखकर कवित्व नहीं चलेगा। और फिर वह मरुभूमि जीवन्त है। अचानक देखनेपर लगता है; सारी भूमि घेरकर अनगिनत सिपाही खड़े हैं। वे सब नागफनी—कैक्टस हैं। मेरी सारी पुस्तकें एक साथ खुल जाती हैं।

आश्चर्य होता है—सदासे कभी न महत्त्व ढोनेकी आदर-भावनासे रिक्त-तिक्त कैक्टस कैसे सहसा मानसिक यन्त्रणा, आधुनिक परवशताके बीच मानवीय जीवनमें काँटोंकी तरह जन्मी पीड़ाका बन जाता है। मानवीय चेतनाका प्रतिनिधित्व करनेका उत्तरदायित्व न जाने कौन इसे सौंप जाता है और इसमें न जाने कैसे सिमट जाता है अपनी अभिव्यक्ति-की सम्पूर्णताके लिए एक पूरा युग—खामोश-सा। आधुनिकताके अनेकों प्रतीक एक ही अर्थ, एक ही सम्बन्ध-बोध लेकर अनेकान्तर प्रकार-से इसके टेढ़े-मेढ़े अंग-प्रत्यंगोंसे अपनी प्रतिमाएँ गढ़ने लगते हैं। अस्तित्वकी समस्त सम्भा-वनाएँ, विडम्बनाएँ और विसंगतियाँ इसके माध्यमसे साकार हो उठती हैं।

आज जीवन जितना वाद-प्रमादोंसे उलझा हुआ भटक रहा है उतना पहले कभी नहीं भटका। आधुनिकताको पकड़नेके प्रयत्न होते हैं और अन्तमें हम पाते हैं कि कहीं हम कुछ चूक गये हैं, जिसे समस्याके रूपमें हमें भोगना पड़ेगा। इसके लिए हम विवश हो जाते हैं। इसलिए आशंका और भय मस्तिष्कमें कोई विश्वास कहीं बैठने ही नहीं देते। हम दौड़नेवाली उत्तेजनाको कहीं ढूँढ़ते हैं। कहीं भी; किसी भी रूपमें वह जब मिलती है, हमारे सौभाग्यका वह परम क्षण होता है। सैकड़ों रास्ते खुल पड़ते हैं।—कहाँ जाना है, कहाँ नहीं, ठीक समझमें नहीं आता है। यन्त्र-व्यस्त-सी भागदौड़, जो कभी समाप्त नहीं होती है, एक पहेली-सी लगने लगती है। न जाने फिर कितने प्रश्न अनुत्तरित ही प्रतीक्षामें जड़ीभूत होते चले जाते हैं। ऐसा कहीं कोई नहीं दिखाई देता जो आवाज दे, जड़ीभूत स्थितिकी खामोशीको तोड़ दे, अनापी पगलायी तेज गतिकी स्थिरताको टोक दे। समयकी पुकारपर कोई महापुरुष उत्तर देने नहीं आयेगा, हम प्रतीक्षा भी नहीं कर सकते। कैक्टसको ही हम अपना सब-कुछ सौंप देते हैं, दायित्व-भारसे मुक्त हो लेते हैं।

प्रतीकके माध्यमसे युग अभिव्यक्त होता है। कबीर और तुलसीके राम मिलकर एक युगको व्यापक गहराईसे पकड़ते हैं। कैक्टस भी आज कुछ ऐसा ही आधुनिक युगका भार-गहराई वहन करता है। मुझे वह आधुनिक मानवीय जीवनमें काँटोंकी तरह जन्मी पीड़ाका प्रतीक मात्र नहीं लगता। मुझे इससे भी आगे कुछ और लगता है। क्या? यह मैं ठीक-ठीकसे नहीं कह पाता हूँ। किन्तु अनुभूति खरोंच-सी बराबर टीसती चली जाती है, जिसे मैं शब्दोंमें बाँधनेकी चेष्टा लगातार अनथक-सा करता चला आ रहा हूँ, फिर भी कुछ-न-कुछ रह जाने—छूट जानेका ज्ञान आँतरा रहता है। मुक्तिबोधकी फ़ैण्टैसी सतत रचना-प्रक्रियाके प्रवेगी प्रवाहमें जीती है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता हूँ, वह 'कुछ' के छूट जाने या रह जानेके ज्ञानके कारण ही जीती है। क्षण अपनी वास्तविक अवधिसे अधिक सहज आयु पा जाता है, साथ ही विशिष्ट हो जाता है। ऐसा ही कैक्टस मेरे अन्दर क्षण होकर जीता है और मैं उसे लगातार अपनी आत्मा होनेकी यातना-सा भोगता हूँ। पाता हूँ, सब कहीं परवशतामें जीवनके प्रति एक असहाय विवश-सा दृष्टिकोण, आँख खोल अजगर-सा आलस लिये भूखा पड़ा रहता है जिसमें विरोध, विद्रोह और संघर्षकी एक तरंगविहीन ध्वनि-पर शान्त-सी ठहरी रहती है। जो भी जीवन-का रूप धर आता है, स्वीकार लिया जाता है। प्राण जीवनमूल्य हो जाता है। जन्म और मृत्युके बीच समझौता दलाली करने लगता है। बचाव, कटाव, सुरक्षाके साधन बन जाते हैं। यही बादमें जीवनके अर्थ और मूल्यबोध हो जाते हैं। ड्रुमण्ड सच कहता है—"हम सभी गहरे अन्धकारमें टटोलते हुए चल रहे हैं। हर क़दमपर अपने-आप आविष्कार करना पड़ रहा है। हम सभी निर्जन आधुनिक आदमी हैं·····"किन्तु तुम लोग अकेले नहीं हो पाते, तुम लोगोंकी परम्परा, तुम लोगोंका धर्म तुम लोगोंके कन्धेपर बैठा हुआ है।" हम भारतीय लोग आविष्कारके झमेले-में नहीं पड़ते हैं। यान्त्रिक व्यस्तताको हम स्वीकार लेते हैं और भूले-से रहते हैं कि आविष्कारोंके साथ भाव-विस्तारकी भी परम आवश्यकता है। जिसे ड्रुमण्ड भी नहीं सम-झता है और आविष्कारोंसे सटे हुए हम भी नहीं। परिणाम होता है—एक भीड़ हममें प्रवेश करती है और हम भीड़में प्रवेश करते परस्पर रूपायित हो जाते हैं। हमारे बीच भाव-विनिमयके माध्यम टूट जाते हैं। विसं-गतियाँ क्षुब्ध-क्रुद्ध आक्रोशित बिल्लीकी तरह बन्द कमरेमें चुप-चुप चक्कर काटती हैं, अभिव्यक्तिके किसी भी रूपके लिए छटपटाती हैं जिससे बन्द द्वार खुलें।

कैक्टसकी सब गाँठें भावोंकी मुझे प्रतीक लगती हैं, जिनकी जीवनके व्यापक क्षेत्रमें उचित रूपसे भोगात्मक उर्वरता न होनेकी स्थिति होती है। विचार-प्रकाशनकी अदम्य लालसा और उनका दूसरोंपर थोप देनेकी महत्त्वाकांक्षा नुकीले काँटोंसे होकर बाहर आ जाती है। सारा शरीर गूदे-जैसा हो जाता है। काठका कड़ापन मिट जाता है। अन्तर्निहित रस इतना-इतना गाढ़ा हो रहता है कि कटने या टूटनेपर भी वह बाहर नहीं आता, आभास मात्र देता है। आश्चर्य होता है कि ये मरुभूमियोंमें न जाने कितने गहरे नीचे जड़ें डाल जी लेता है।

रेतका ढेर मरुभूमि—बोरियोंमें जब भर दी जाती है, बन्दूक़की गोली भी फ़िसलकर फँस जाती है। उसे कोई रास्ता नहीं मिलता है। ऐसे मरुस्थलमें पानी, रसकी बूँदकी सम्भावना मृगतृषा-सी मायाकी लपेटमें घिरी रहती है। फिर कैक्टसको मैं देखता हूँ और शीशीमें पानी खूब भर देता हूँ।

कुछ दिनोंमें यह सिगरेट पीने-जैसी आदत हो जाती है। किन्तु हर बार पानी भरनेके बाद मुझे कुछ चुभता है—लगता है, जैसे मैं अपनी आत्माके हिसाबसे तो चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा हूँ, किन्तु कैक्टसकी आत्माके हिसाब-से नहीं। तब भी आत्माको मैं थोड़ी दूरसे अधिक नहीं दौड़ाता हूँ, क्योंकि मुझे यह चुभता है कि वह जीवन जी नहीं ओढ़ रहा है। रोबोटकी यान्त्रिक विवशता पूरीकी पूरी उसके व्यक्तित्वमें घुस-पैठ करती हुई-सी लगती है। रोबोटका बटन दबानेसे जो विद्युत् प्रवाहवाही गति-उत्तेजना आती है वह वर्तमान का अर्थ ढोती जीवन बन जाती है। उत्तेजना-के बग़ैर वह कहीं कुछ नहीं रह जाता है। ड्रुमण्ड इसीलिए गहरे अन्धकारमें टटोलता हुआ चलता है। हर क़दमपर अपने-आप आविष्कार करता है, भाव-विहीन अकेला आदमी बनकर, क्योंकि हर आविष्कारमें उत्तेजनाका आवेश रहता है, जिससे आत्मा-का मेल कहीं भी ठीक तरहसे नहीं हो पाता।

कमरेका मेरा कैक्टस सम्भवतः इसीलिए पानीकी भरपूर पूर्तिके पश्चात् भी कुम्हलाने लगता है। शरीरसे लिजलिजा-सा कुछ झुकने भी लगता है। मैं एक काँटेको नाखूनसे कुतरकर देखता हूँ। धर्मवीर भारतीके कैक्टस-सरीखा दूध नहीं झिरता है। गिलगिला-सा गूदा, रस सूखा-सा भरा हुआ लगता है। उपेक्षासे शीशीसहित मैं उसे बाहर निकाल देता हूँ। आश्चर्यका प्रश्न खींचता हुआ वह दूसरे ही दिन चेतन-सा होने लगता है। मुझे क्षणानु-भूति होती है—'सूर्य अन्तरात्माका प्रतीक है। सार्थक जीवन-शक्तिका स्रोत है।' तभी लगता है, आधुनिक यान्त्रिक युगकी भयान्त बिभीषिकामें भी मरा हुआ ईश्वर जीता है। उसके अस्तित्वको परख-नलीमें किसी भी रासायनिक क्रिया-द्वारा अभीतक कोई नहीं पा सका है। प्रकृतिको नियामक सत्ता स्वीकार करनेके पश्चात् भी उसे अन्तरात्माके अन्दर आकृति-भाव देना पड़ता है, क्योंकि अपारदर्शी ईश्वर शब्दका जीवनमें जैसे-जैसे जीनेके लिए अपना एक सम्बन्ध-बोध है। एक आवश्यक भावात्मक शक्ति है जो आस्था-की अपेक्षा विश्वासपर अधिक टिकी हुई है। सारे कर्म-परिणामों, दुःख और पराजयको उसके नामपर मढ़कर मुक्ति पा जाना जीने जीनेका आदर्श दर्शन है। वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ—पूर्ण सन्तोषके साथ परिलक्षित होता है।

और ऐसे ईश्वरकी स्थिति कैक्टसवाले उन कमरोंमें, जिनमें भारतपर शासन करनेवाले बड़े-बड़े उद्योगपति, मन्त्री, पदाधिकारी और सर-कारी कलाकार चर्चाएँ छेड़ते रहते हैं, संस्कृति की सुरक्षाके लिए दिन-रात व्यस्त रिसर्च जीवन-पद्धतियोंके उद्धरण देते रहते हैं, वहाँ संकोचमय हो जाती है। एरिजोनाके मरुस्थल-वाला बेवक़ूफ़ोंके सोनेका प्रकाश सोचने चमकसे वहाँ बैठा रहता है। उसे डर लगता है। कब प्रवेश करे और कब नमस्कार कर बाहर निकल जाये, वह नहीं समझ पाता है। इसलिए वह जाता ही नहीं है। अपने बदलेमें दूसरे ईश्वरको, जो किताबों या साधुओंका होता है, अपना प्रतिनिधि बनाकर भेज देता है। यह ईश्वर सिक्केकी तरह खूब चलता है। अनुभवोंके अभ्यास खो हो जाते हैं। जो वास्तवमें और कुछ नहीं बौद्धिक जागरूकताका फ़ैशनेबल प्रदर्शन मात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। बग़ैर प्रदर्शनके (प्रदर्शन वास्तवमें स्वयंको अभिव्यक्त करनेकी या वर्गमें विशिष्ट घोषित होनेकी तीव्र लालसाका एक रूप होता है,) जीवनकी सार्थकता दृष्टिगोचर नहीं होती है। जब रेफ्रीज़रेटर और कार न होनेसे समूह-आत्महत्याका निर्णय लिया-दिया जाता है, तब मुझे लगता है हमारे जीवन-दर्शनमें अध्यात्मकी स्थिति बातों तक ही सीमित है और अर्थकी मोक्ष तक बढ़ी हुई है। धन जीवनके अर्थमें प्रयुक्त होता है। सार्थकता कहीं मिलती है तो सोनेके प्रकाशमें। शक्ति-ही उपयोगिता भी इन्हीं कमरोंमें निवास करती है। दिशा-निर्देशन भी उसे यहींसे मिलता है। खूबी यह होती है कि शक्ति-उपलब्धिकी मूल्यवान् स्थितिको भोगनेकी समस्या भी यहीं सिर-दर्द बनकर चक्कर खाती रहती है। संक्षिप्तमें जीवनमें दार्शनिक सन्तोष और आदर्शों तथा आचरणका विरोधाभास; दोनों मिलकर गहरी खाई खोदकर तैयार रहते हैं—अवसरके लिए। परिणामतः कभी आदर्श और आचरण, सन्तोष और विद्रोहमें सामंजस्य नहीं हो पाता है। अन्तर ज्योंका त्यों वर्तमान रहता है। जीवन-पद्धति, जीवन-दर्शन जैसे-तैसे जीने य. ओढ़नेवाला हो जाता है, जिसके पक्षमें आक्रमक आलोचनाका प्रतिकार करनेके लिए तर्कोंका विवश हो आश्रय लिया जाता है। सन्तोष, परम सुख—एक तर्कीला नारा जन्म लेता है। ब्रह्म और आत्माका अद्वैत विरोधियोंके विरुद्ध ऐसा तीखा काँटा होता है, जो उन्हें चुभने और खामोश करनेके लिए निमित्त मात्र होता है।

किन्तु बौद्धिक लोग जिन्होंने नीत्सेकी लालटेनके उजालेसे दिनमें ही 'ईश्वर मर गया' सुन लिया है, डार्विन, फ्रॉयड और मार्क्सकी पुस्तकें उलटा चुके हैं; उनके लिए ब्रह्म और आत्माका अद्वैत काम नहीं करता। उन्हें एक रिक्तान्तरका आभास होता है, अकेलेपनकी अनुभूति टीसती है। बग़ैर अन्तरको पूरा पाटे सार्थक यात्राका अन्त दृष्टिगोचर नहीं होता। आत्मा अजर-अमर है—इसका विश्वास साथ देता है। आत्म-साक्षात्कार साहित्यकारोंके लिए प्रिय हो जाता है और अन्तश्चेतना मनो-वैज्ञानिकोंके लिए। थोड़े-से अन्तरसे मुझे दोनों एक-से लगते हैं। दोनोंमें निर्णय-संकल्पको भोगनेकी स्थिति वर्तमान है। अपना या पराया निर्णय भोगना आधुनिक जीवनकी एक और असहाय विवशता-परवशता है। इसलिए उस क्षण-विशेषका महत्त्व कितना है जिसकी संवेदनानुभूतिसे हम इसे पकड़ लेते हैं, साथ ही अपनी सुरक्षाका दायित्व भी सौंप देते हैं और आश्वस्त हो जाते हैं—ठीक कैक्टसकी तरह। वास्तवमें कैक्टसको जो काँटे घेरते हैं उसकी सुरक्षाके लिए उत्तरदायी युक्तियुक्त तर्क ही तो होते हैं। बिना युक्ति-युक्त तर्कके आत्म-साक्षात्कार और अन्तश्चेतनाकी कहीं सम्भावना है ?

इसलिए लगता है कि चरित्र और आचरणमें तर्ककी महत्ता उस सूक्ष्म पकड़-दृष्टिकी ही होती है जिसमें सार्थक निर्णय-शक्ति होती है। बग़ैर इसके अँधेरी घाटियों-दिशाओंमें भटकता हुआ जीवन ही हमें प्राप्त होता है। क्षण-विशेषकी अनुभूति यदि अन्तरात्माका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये छह अन्यतम

पठनीय

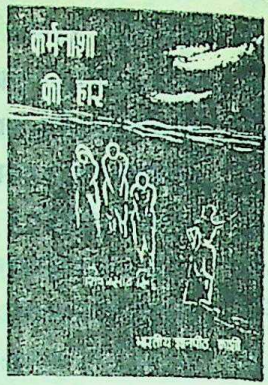

• कर्मनाशाकी हार

शिवप्रसाद सिंह

नयी हिन्दी कहानीके विशिष्ट शिल्पी कथाकारकी सोलह कहानियोंका संग्रह : जो समाजके ऐसे अंगों और जीवनके उन पहलुओंसे साक्षात्कार कराता है जिन्हें लोग भूले-से रहे।

३.००

• सूने अँगन रस बरसै

लक्ष्मीनारायण लाल

डॉ० लक्ष्मीनारायण लालकी श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी कहानियोंका संग्रह, जो अपनी विशेषताओंके कारण सुधी पाठकों और समीक्षकोंके बीच बहुप्रशंसित और बहुचर्चित हुआ है।

३.००

• खोयी हुई दिशाएँ

कमलेश्वर

कमलेश्वरकी चुनी-चुनी ग्यारह नयी कहानियाँ जो समूचे समाजकी एक बदली हुई मनोभूमि प्रस्तुत करती हैं। कहानियोंमें जीवनका अध्ययन है, मात्र सर्वेक्षण नहीं।

३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी-संग्रह

जयदोल •

अज्ञेय

नयी हिन्दी कविताके अग्रणी कवि 'अज्ञेय'की कहानियोंका संग्रह। जीवनकी कतिपय समस्याओंके प्रति पाठकोंका ध्यान आकर्षित करती ये कहानियाँ शिल्पमें भी अन्यतम हैं।

३.००

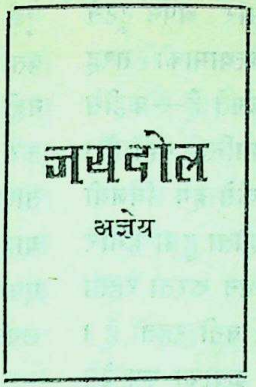

संग्रहणीय •

संघर्षके बाद •

विष्णु प्रभाकर

संग्रहकी सभी कहानियोंमें मानव-मनकी गहराईमें पैठने और उसे अभिव्यक्ति देनेका सफल प्रयत्न किया गया है। सरल भाषामें लिखी प्रत्येक कहानीका अपना एक अद्वितीय महत्त्व है। ३.००

प्यारके बन्धन •

रावी

संग्रह रोचक और नशीली पत्र-कथाएँ, जो प्रेम, मर्यादा एवं मानवीय अनुरागकी माँगों और समस्याओंको अभिव्यक्त करती हैं। तरुण वर्गके लिए पुस्तक विशेष महत्त्वकी है।

३.२५

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • वाराणसी

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप ले बैठती है, तब भटकावकी स्थितिमें हम अपनी अन्धी नीतिका भार अपने टूटते कन्धोंपर विवश उठाये अश्वत्थामाकी तरह अशान्त, निर्वासित-से घूमने लगते हैं—कहींसे कहीं। कोई विश्राम और शान्ति नहीं है। "कैसे हम छुटकारा पायें, कैसे हम विजयी हों ?" का प्रश्न महाकाय-सा होता हुआ हमारे मस्तिष्कमें विचारका अग्नि-मन्थन करता रहता है। निर्णय-शक्ति रहस्य-सी बनी रहती है। सूक्ष्म पकड़-दृष्टिको हम दैवी कृपाका रूप देने लगते हैं।

किन्तु वास्तवमें परिस्थितियाँ ही ऐसी महाशक्ति होती हैं जिनके भोगमें सब छुपा हुआ है। समय परिस्थितियोंसे अलग कोई एक इकाई नहीं है। न ही उसका बोध उनकी अभावात्मक स्थितिमें सम्भव ही है। परिस्थितियोंको भोगना और समझना जीवनकी एक महत्तम उपलब्धि है। अकेली साँसें जीने मात्रमें समयका अनुमाप और बोध दोनों नहीं किये जा सकते हैं। समय एक यान्त्रिक क्रिया है। परिस्थितियाँ काँटे हैं, यातना और गति भी है। इन यातना और गतिके संयोग-भोगमें ही प्रकाश है। तभी संसारमें युगों-युगों तक व्यक्ति नहीं, यातना और गति-से जन्मे व्यक्तिके वे मूल्यदेयी निर्णय, जो परिस्थितियोंको सन्दर्भ देते हैं, व्यवहारमें प्रयोगशील होते हैं और उत्तरदायित्वको वहन करते हैं, जीते हैं। आचरण और चरित्रनिर्णयके प्रमाणरूप परिणाम होते हैं।

अपना कैक्टस परिस्थितियोंको भोगता है, समझता नहीं है। काँटे तो उगा लेता है; किन्तु निर्णय लेने-देनेकी क्षमता नहीं रखता। मुझे उसके काँटे मुखौटे-जैसे लगते हैं। सम्भवतः इसीलिए मैं उसे अपने कमरेके अन्दर सह नहीं पाता हूँ। उसके एक-एक काँटेको तोड़कर फेंक देता हूँ। बाहर मैदानमें शीशी तोड़कर उसे रोप देता हूँ और अपने कमरेसे बाहर झाँकता हुआ मैं अपनी स्वप्निल आँखोंमें एक फूलते दृश्यके उतरनेकी प्रतीक्षा करने लगता हूँ।

कमरेके अन्दर खोखले हुए कई-कई ईश्वर शोर मचाकर चाय पीने लगते हैं। उनको घेरकर गुनगुनाता हुआ उजियाला-अँधेरा घूमने-फिरने लगता है। पद-चापें ठहर-ठहरकर षड्यन्त्र-सी करने लगती हैं। तर्क ज़रा समझदार हो, पुस्तकोंके अक्षरोंपर रेंगने लगता है। कैक्टसकी मरुस्थलवाली ऊँचाई उसकी गाँठोंमें आशा-सरीखी बँधी रहती है। सम्मोहक फूल कहीं फूटनेके लिए उठता हुआ दिखता नहीं है। मैं एकान्तको पकड़े प्रतीक्षामें बैठा रहता हूँ।

एक दिन न जाने मुझे क्या होता है, प्रतीक्षाकी मैं ठहराववाली तटस्थ-सी स्वीकारी हुई स्थितिको अपनी आत्माके ऊपर झेल नहीं पाता हूँ। एक अनावश्यक समयका बोध भोगनेकी अनिच्छा माथेसे बाँधकर चलनेकी शक्ति मैं अपनेमें ढूँढ़ नहीं पाता हूँ। परिस्थितिमें परिवर्तन देनेकी अभिलाषासे मैं 'हर एक' की जगह उस 'कुछ' का, जो आवश्यक है, अन्वेषण और आविष्कार करनेके लिए कमरेके बाहर निकल पड़ता हूँ।

कैक्टस पीछे छूट जाता है। ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर कई दिनोंसे यह मुझसे शिकायत कर रहे थे कि आजकल नाश्तेपर जो अण्डा मिलता है वह इतना अधिक उबला हुआ क्यों होता है। मैं इनकी इस बातका कोई नोटिस नहीं लेती थी। आज जब यही बात इन्होंने कुछ तेज होकर कही तो मेरा पारा एकदम चढ़ गया और मैंने झल्लाते हुए उत्तर दिया—"मैं क्या करूँ जी, गरमी ही ऐसी पड़ रही है।"

मेरा यह उत्तर सुनकर इन्होंने यही उचित जाना कि अपने दिमाग़के बढ़े हुए पारेको नीचे उतार लें और बड़े मद्धिम स्वरमें पूछें कि भलीमानस, इसमें भला गरमीका क्या दोष?

"दोष क्यों नहीं जी।" मैंने बताया—"पहले चूल्हेपर पकाती थी तो अन्दाज़ था कि चार-पाँच मिनिटमें हाफ़ ब्वाइल्ड हो जाता है।"

"और अब?"

"और अब होता यह है," मेरा जवाब था, "बाज़ारसे जो अण्डे आते हैं उनमें-से नाश्तेपर दिये जानेवाले अण्डेको यों ही किसी बरतनमें निकालकर रसोईघरमें किसी जगह रख दिया जाता है और वह कमरेके टम्प्रेचरसे ही थोड़ी देरमें पककर तैयार हो जाता है।"

मेरी बात सुनकर ये लाजवाब हो गये। और मुझे महसूस हुआ जैसे अण्डेकी तरह यह भी अपने खोलमें फ़ुल ब्वाइल्ड होकर जमे जा रहे हों। फिर मुझे ऐसा लगा जैसे यह अपनी जगह बैठे सोच रहे हों कि जब अपने कमरेके टम्प्रेचरका यह हाल है तो कहीं ऐसा न हो कि दोपहरमें जो बर्फ़ आती है वह पानीमें डालते ही किसी दिन चूनेकी तरह खद-खद, खद-खद—पकने लग जाये, कौन जाने!

तपते हुए सूरजका तोड़ बर्फ़के गोले हैं लेकिन बर्फ़के गोले भी जब सूरजके आगे पिघलनेके बजाय खदकने लग जायें तो फिर औरतोंका, जो मोमकी मरियम कहलाती हैं, बस भगवान् ही रक्षक है।

अपनी बड़ी-बूढ़ियोंसे तो मैंने यही सुन रखा है कि यह गरमी भी भगवान्‌की देन है। और आप जानें कि भगवान् जब देनेपर आता है तो बेहिसाब ही देता है। गरमीकी मारी माएँ उफ़-उफ़ करती हैं और अपना सारा गुस्सा एँ—आँ करते बच्चोंपर 'धपाधप' करके निकालती हैं। मलेरिया और कॉलरा गरमीके फल हैं। और कभी-कभी यह फल उलटा आदमीको ही खा लेते हैं। मच्छर, चीटे, कीड़े-मकोड़े और इसी तरहके दूसरे मेहमान बिन बुलाये हाज़िर हो जाते हैं। दिनको मक्खियाँ मधुर स्वरमें गरमीके गीत गाती हैं। और रातके अकेले माहौलमें मच्छर आदमीका दोस्त होता है। एक ऐसा दोस्त जिससे जुदा होनेका नाम न ले और जुदाईकी चिन्तामें ही रात-भर विरहके गीत गाता रहे।

गरमीपर 'नज़ीर' अकबराबादीकी कविताका वह बन्द तो आपको भी याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा :

जिस वक़्त हवा बन्द हो और आके
घटा छाये
फिर कहिए दिल उस गरमी में किस
तरह न घबराये
ओढ़ो तो पसीना जो न ओढ़ो तो
ग़ज़ब आये
पिस्सू कभी मच्छर कभी खटमल
ही लिपट जाये

दूसरे शब्दोंमें मैं यह भी कह सकती हूँ कि जब पिस्सू, मच्छर और खटमल आपके जीका रोग बन जायें तो हम समझ लें कि गरमी आ गयी। लेकिन इसको क्या कहूँ कि मेरी पड़ोसिनका दस बरसका आनन्द, जो स्कूलका टास्क भी रेडियोके पास बैठकर करता है, उसका कहना है कि जब रेडियोमें एक साथ कई-कई घोड़ोंके सरपट दौड़नेकी आवाज़ें आने लगें तो हमें समझ लेना चाहिए कि गरमी आ गयी है और अब महबूबके आनेपर बहारें फूल न बरसा पायेंगी। इसलिए कि सरपट दौड़ते हुए घोड़ोंके बीच रफ़ीकी आवाज़ बहारोंके कानों तक पहुँचेगी कहाँ!

बात कानों तक पहुँचनेकी आ गयी है तो लगे हाथों एक लतीफ़ा सुनिए : हुआ यों कि कल दोपहरको यह घरसे निकले तो सामने सड़कपर वर्माजी आते दिखाई दिये। इन्होंने दूरसे ही उन्हें नमस्ते कहा, तो बोले, "उफ़ कैसी गरमी पड़ रही है और लोग हैं कि नमस्ते कहे बिना रहते नहीं। जैसे यह नमस्ते नहीं करेंगे तो इनको कॉलरा हो जायेगा।"—इनके नमस्तेके जवाबमें यह वर्माजीका लम्बा-चौड़ा उत्तर था। यह भौंचक्का होकर उन्हें देखने लगे। वर्माजी सड़क पार कर रहे थे कि तारकोलकी चमकती-पिघलती सड़कपर उनकी कोल्हापुरी चप्पल चिपककर रह गयी थी और वह उसे छुड़ानेकी चेष्टामें लाल हो रहे थे।

बात इनकी समझमें आ गयी और यह वर्माजीको उनके हालपर छोड़कर खिसक गये। घर आये तो इस बातपर बड़े ज़ोरका ठहाका पड़ा। लेकिन हम लोगोंका क़हक़हा एक-दूसरे लतीफ़ेमें दबकर रह गया। और वह दूसरा लतीफ़ा यह था कि लालाजी बाज़ार गये तो एक तरकारी बेचनेवालीसे परवलके भाव पूछ लिये। उस औरतने, जो बार-बार नाकपर बैठती हुई मक्खीसे खेल रही थी, सिरसे पाँव तक लालाजीको देखा और फिर क्रोधमें डूबी हुई उसकी आवाज़ गूँजी—"बड़ा आया भाव पूछनेवाला! अपनी मैया बहिनियाके भाव क्यों नहीं पूछता जाकर!"

लालाजीको जैसे साँप सूँघ गया था और वह बेचारे उसे मुँह उठाये तके जा रहे थे कि किसीने उन्हें समझाया—"छोड़ो भैया, औरत ज़ात है, यहाँ तो इस गरमीमें मरदोंके होश ठिकाने नहीं!" साथ ही उसने लालाजीको बताया कि दो दिन पहले किसीको बर्दवान रोड, अलीपुर, कलकत्ताके पतेपर दिल्लीसे एक टेलीग्राम आया तो पोस्ट ऑफ़िसका हरकारा अपनी लाल सायकिल उठाये सीधा बर्दवान भागा!

यह बात तो काफ़ी पुरानी हो चुकी कि सप्ताह-भर पहले बस-स्टैण्डपर खड़ी एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़की अपनी सहेलीसे कह रही थी—"नहीं भई नीना, यह तो वही जम्पर है जिसका प्रिण्ट आँखोंमें खुबकर रह गया था। पर यह निगोड़ी मारी गरमी क्या आयी थी कि एक दिन इसके सारे रंग पिघल गये और सारे छाप मेरे बदनपर आ रहे और अब यह जम्पर उजला-सफ़ेद निकल आया।"

और तब नीनाने अपनी सहेलीको भी बताया था कि कल उसने कितने शौक़से अण्डेकी पुडिंग बनायी थी और जब वह पुडिंग खानेकी टेबुलपर आयी तब भी वह पुडिंग ही थी लेकिन इस गरमीमें किस बात-को रोया जाये कि वह पुडिंग थोड़ी ही देरमें देखते-देखते करारे करकरे बिस्कुटोंमें बदल चुकी थी।

यों सच्ची कहूँ, जब दोपहरका सूरज सिरोंपर आकर गरम किरनोंके भाले मार रहा हो, तपती हुई हवाएँ शरीरको छेद रही हों, पसीना चोटीसे एँड़ी तक बह रहा हो, होश और हवास लगभग जवाब दे चुके हों और हलक सूखकर काँटा बन चुका हो तो जी यही चाहता है कि ठण्ढे पानीका गिलास मुँहमें उड़ेलकर सीधा पातालकी ओर भाग जायें। लेकिन यह तो क़यामतकी बात होगी। और चर्चा जहाँ क़यामतकी चल पड़े वहाँ बात जवानी तक तो पहुँचती ही है। अब यह बात दूसरी है कि इस झुलसते मौसममें जवानी सड़कोंपर तो दिखाई नहीं देती। यह कहना जो ग़लत होगा कि इस गरमीमें औरतोंने घरसे निकलना छोड़ दिया है। हाँ, इतना ज़रूर है कि कल तक जो बहू-बेटियाँ सभाओंमें बीर-बहूटियाँ बनकर जाती थीं वह आज या तो मेकप उतर जानेकी डरसे जाती नहीं या जाती भी हैं तो बहुत सारे कपड़े उतारकर ही। और फिर भी उनके मुँहपर काजलके रेले तो बहते ही हैं।

बच्चे जो कल तक खिलौनोंके लिए मचलते थे आज आइसक्रीमपर जान छिड़कते हैं। हर गली-कूचेमें बर्फ़के गोले हैं, क्वालिटीके बनेले हैं और स्टिकके केले हैं। हम आप जुसलाको तकती हैं कोकाकोलाको मुँह लगाती हैं और फिर भी प्यास है जो बुझनेका नाम नहीं लेती।

सुनती हूँ, कभी बड़े शहरोंमें बर्फ़के पानीकी जलशाला हुआ करती थी। लोग ठण्ढे पानीकी सबीलें लगवाते थे। आप वहाँ बैठकर पानी पीते और लोगोंको पिलाते थे। यह बड़ा दान और पुण्य समझा जाता था। लेकिन आज वे लोग बाक़ी न रहे और वह जलशाला भी अब न जाने कहाँ लगती है। अब तो बड़ी कोठियोंपर कुत्तोंका पहरा होता है और कॉरपोरेशनके नलोंपर घड़े और बालटियोंकी लम्बी लाइनें जहाँ बात 'पहले मैं' से शुरू होती है और तू-तकारसे होती जूतम-जूती तक जा पहुँचती है। या फिर वे नल सारा दिन धूपमें तपते रहते हैं, कोई राही सूखे हुए कण्ठ लिये ठण्ढे पानीको पूछता है तो जवाब मिलता है—"ठण्ढा पानी नहीं है भाई।"

"ठण्ढा पानी कहाँ गया?"

हम ठण्ढे दिलसे सोचें तो शायद ठण्ढे पानीकी जलशाला भी खुल जाये। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालोंपर बहते हुए काजलकी धारको कैसे रोका जाये ! और एक औरतकी इससे बड़ी परीक्षा और क्या होगी कि वह इस मौसमको हंसते-खेलते सहन कर ले और उसके मनमें यह इच्छा न हो कि अब वह अपनी बाकी जिन्दगी पहाड़ोंमें ही गुज़ार देगी।

■

यात्रा थारू ग्रामांचलकी / *प्रफुल्ल कुमार मौन*

"लोकगीत नारी-कण्ठोंका शृंगार है, सुगन्ध है, सौन्दर्य है,...."

"लेकिन मोरंगकी थारुनियाँ नहीं गातीं।"

मीलरका मुँह खुलाका खुला रह गया। उसकी श्वेतांगना पत्नीकी भूरी-भूरी आँखें झिलमिलाकर मुझपर टँग गयीं।

चायकी अन्तिम घूँट लेकर मैंने प्याली नीचे रख दी। मीलरकी अँगुलियोंमें फँसी सिगरेट जलती रही। मैं चकित था कि इन दोनोंको आखिर छू क्या गया है ? अमरीकासे नेपाल-की राजधानी काठमाण्डौं,...काठमाण्डौंसे विराटनगर,....विराटनगरसे मोरंगिया थारू ग्रामांचलकी यात्रा।....लोककलाओंका अध्ययन ....फुलब्राइट स्कॉलरशिप,....और मीलर-दम्पतिका बुझा-बुझा मन।

"हाँ,....मोरंगिया थारुओंमें आप एक सबसे बड़ी विशेषता पायेंगे। और सम्भवतः यह कलात्मक विशेषता अन्य थारुओंमें नहीं पायी जाती...." मैंने थारुओंके भित्तिचित्रोंकी अनुकृतियोंकी पुस्तिका पलटते हुए चुप्पी तोड़नेकी सफल चेष्टा की।

मीलर सावधान हो उठा– "कौन-सी ?"

"भित्तिचित्रोंकी।"

"क्या सच ?"

"जी हाँ।"

मैंने अनुकृतियाँ सामने रख दीं। मीलर उछल पड़ा। जैसे बहुत बड़ा रहस्य मिल गया हो उसे। श्वेतांगनाकी आँखें चित्रानुकृतियों-पर जम गयीं। वह मुसकुराती रही।.... थारुनियोंके रंग और रेखाओंके आखरोंको पढ़ती रही जिसकी लोकशैलीने शास्त्रीय शैली-को एक चुनौती दे दी हो।

वह कभी मेरी अँगुलियोंको तो कभी मेरी आँखोंको देखती रही। शायद उसे चित्रानुकृतियोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन वह कोणकी पकड़को झुठला नहीं पा रही थी—यह उसकी आकृति साफ़-साफ़ बता रही थी।

मैंने जाना, श्वेतांगना हंगरीके बुडा-विद्यालयकी छात्रा रह चुकी है और उसने अपना जीवन-साथी भी चुना तो एक अमे-रीकी कला-साधकको। अमरीकी कलालोचक एवं हंगरीकी कला-साधिकाका मोरंग (नेपाल) की सिद्धभूमिमें एक भारतीय कला-अध्येताका संग ?....एक रोचक अध्याय। एक अद्भुत संयोगकी बात।

दोनोंने हाथ जोड़े और कल सुबह तकके लिए बिदा ली।

■

मैं लिख रहा हूँ—'थारुओंके भित्तिचित्र'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"...वर्षमें एकबार सुखराती (दिवाली) के दिन थारू-युवतियोंकी कोमल एवं सुकुमार अंगुलियोंमें कलात्मक अँगड़ाई होती है; परिणाम-स्वरूप मृत्तिका-भित्तियोंपर परम्परित रूपाकृतियाँ उभर जाती हैं, जिसे सुख एवं समृद्धिकी देवी लक्ष्मी दीपोंके प्रकाशमें और रातकी नीरवतामें निहारने घर-घर जाती हैं...."

जीपका हॉर्न सुनकर क़लम रुक गयी। जबतक मैं कमरेसे बाहर पहुँचूँ, मीलर अपनी स्वेतांगनाके साथ कमरेमें पहुँच गया।

"गुड मॉर्निंग मिस्टर...."

"नमस्ते।"

"नोमस्टेय।"

जीपपर हम तीनों सवार हुए। गाड़ी धरान रोडपर दौड़ने लगी।...."दुबी! छोटा-सा सुन्दर बाज़ार। काठके तल्ले-दो तल्ले मकान। टीनकी छतें....। दुबी! थरुहटके माथेपर हरी-हरी दूब। मैथिलीमें दूबको दुबी या दुभी कहते हैं। थरुहटकी भाषा अंग-मैथिली है। मैं मैथिली जानता हूँ, थारुओंकी भाषा अंग-मैथिली भी। मीलर नहीं जानता। मीलर मात्र इतना जानता है—'नोमस्टेय'। और एक शब्द नेपालीका 'राम्रो' अर्थात् अच्छा, सुन्दरके अर्थमें....।

दुबीसे गाड़ी सीधे पश्चिमकी ओर बढ़ी। कहीं-कहीं सड़कपर बरसातका पानी अभी-तक जमा है। धनकटनीके बाद खेतोंकी आरीको काट-छाँटकर गाँववालोंने अपनी मोटर-गाड़ियोंके लिए रास्ता बना लिया है। उसी लीकपर मीलरकी जीप कट-छँटकर बढ़ती जा रही है। मेरे गाइड झाजीने कहा: 'डरेबर बहुत होसियार है हाकिम!....'ग्रामेतर लोगोंके लिए 'हाकिम' सम्बोधित करना झाजीकी आदत-सी बन गयी है।

"गाँवके पास तो रास्ता ठीक है?...."

"जी हाँ।"

भलुआ आ पुगे। थारुओंकी बस्ती। खर और बाँसके बने घरोंकी बस्ती। मोटरकी आवाज़ सुनते ही गाँव-भरके लोगोंके कान खड़े हो गये। उनकी आँखें सड़कपर टँग गयीं।...."हाकिम आया है। औलो वाला...."

"औलो नहीं मलेरियावाला हाकिम आया है।"

"नहीं जी, जीपपर तो गोरा-गोरा रंगरेज बैठा है...."साहेब।"

"...."ओहो, मेम भी संगमें है।"

दस मुँह, दस तरहकी बातें। लेकिन सीरी परकासने ठीक कहा कि अमरीकन है। अमरीकन माने अमरीकावाला साहब और उसकी जोरू मेम। जोरू नहीं कहेगा तो उसका रंगरेजी 'वाइफ़' गाँवमें कौन बूझता है? सीरी परकासने कॉलेजका मुँह देखा है। विराटनगर कॉलेजमें दुइ बरीस पढ़ा है। तभी तो चीन्हता है अमरीकावालाको। बहुतोंने तो आज ही अमरीकाका नाम सुना है। यहाँके थारुओंके भूगोलमें अमरीका नाम ही नहीं है।....थारुओंको अमरीका-विलैतसे क्या लेना-देना? मोरंगकी धरती,....धान-पाट-तोरीकी खेती,....विदापत - रबण खेलिया हरिलताका नाँच,....हाँस-परेवा-कुखराका मासु, डिमा,... घरमें बनी रक्सी....अपना देस-कोस,....बस।

जीप मोतीराम विस्वासके दलान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रुकी।

सीरी परकासने मुझे देखते ही चीन्ह लिया। क्यों नहीं चीन्हेगा? विराटनगर कॉलेजमें उसने हिन्दी, रंगरेजी, नेपाली सब पढ़ी है। अमरीका-बिलैत सब पढ़ा है। चटसे चीन्ह लिया। पटसे परनाम कर दिया। मुँडरूको अचरज हुआ और गाँववालोंको सन्तोख कि हाकिम साहेब, मेमसाहेब, पोरफेसर साहेब सबका सुआगत-सतकार वही ठीकसे करेगा। हम मुरुख लोग कहीं लटर-पटर-कम्पोटर···· बोल दिया तो क्यासे क्या हो जायेगा?

मीलरने मुझसे पूछा, "परहेप्स दीज़ पिपुल्स नो यू।"

"येस।" मैंने स्वीकार कर लिया कि सीरी परकास मुझे पहचानता है। सीरी परकास मुसकराने लगा तो मुँडरू चिढ़ गया—हाकिमके मुँह लगा हँसता है। लेहाज़ भी नहीं करता।····

भलुआके थारू रह-रहकर कभी श्वेतांगना-की ओर कभी मेरी ओर कभी मीलरकी ओर तो कभी सीरी परकासकी ओर देख लिया करते हैं। नयी-नयी किताब, नये-नये आखर, ····गाँववालोंको आज अपने सीरी परकासपर गुमान हुआ। बूढ़-पुरनियाके शब्दकोषका 'कौलेजिया छौंरा' ने आज कमाल कर दिया। मुँडरू आज सीरी परकासकी खुटुर-पुटुर भाखा नहीं समझ पा रहा है।····

"सर! ये लोग····?"

"इ सभ अमरीकन छथि। थारू सभक भित्तिचित्रक अध्ययन करअ अएल छथि।" मेरी 'भाखा' सुनकर तो भलुआके थारू दंग रह गये। उनके अचरजका ठिकाना नहीं।

····अरे, साहेब तो थारू भाखा बोलता है!

वे अपनी भाखाके शब्दोंको चुन-चुनकर अपनी खल्तीमें रखते जा रहे थे।····ग्रामांचलोंमें काम करना हो तो उसकी भाखा-पोसाकको धारण करना ही चाहिए। आज मैं अपने प्रयोगपर ख़ुश हूँ और मीलर चकित। मीलरकी श्वेतांगना भी।

"डू यो नो देअर लेंग्वेज?" अर्थात् क्या आप इन सबोंकी 'भाखा' जानते हैं?

"ह्वाय नॉट?"—क्यों नहीं?

सीरी परकास मेरे बराबरमें चल रहा था, पीछे-पीछे मीलर-दम्पति। मेरे हाथमें स्केच बुक, डायरी,····। उनके कन्धोंसे लटके कैमरे एवं उपकरणोंके थैले। मुँडरू साहेबके जन्तर-मन्तरको देखनेके लिए पीछा करने लगा।····

सुनसरीका आँगन! अन्दर जानेकी गलीमें सुनसरी एवं उसकी भाउजू चावल कूटनेकी ढेकीपर लगी थी। पुष्ट साँवली देह। गाढ़े रंगकी खोरकी एवं श्वेतधवल अँचरा, जो सामने उभरे वक्षदेशको छोपते हुए बायें कन्धेसे पीठपर उतरकर दाहिनी कमर तक आ गया है। और कमरके पीछे एक पुच्छर। आगे फैला हुआ, पसरा हुआ, अँचरा बेल-बूटोंकी परम्परित डिजाइनोंसे अलंकृत।····

एक साथ कई विषय! लोक कलाओंका अध्ययन एवं एन्थ्रोपोलॉजीका पाथेय!

सुनसरी चौंकी। ये लोग इधर कहाँ आ रहे हैं?

मैं और सीरी परकास आगे थे। पीछेसे मीलरने कैमरेका कोन साध लिया।····

"अगे माइ····" सुनसरी भागी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"फोटू खैंच्चै छै...." उसकी भाउज भी भागी।

मुंडरूने साहेबका जन्तर देख लिया। फोटू खैंच्चनेका जन्तर। जन्तर नहीं यन्त्र। अब उसे कौन समझाये?

कुछ भी समझाओ-बुझाओ, वह रंगरेजके आगू नहीं जायगी।

आखिर यह भय क्यों? मीलर चकित।

मैंने समझाया—"ये अँगरेज़ तो नहीं.... अमरीकन हैं।"

"नहीं हाकिम! इन सबोंके लिए सब बराबर।" झाजी पीछेसे आ जुमे।

और दोनों घर-पछुआरके खेतोंमें भाग गयीं।

मीलरकी श्वेतांगना खिलखिला पड़ी। मीलर कुछ बोलनेको हुआ।

...लेकिन, कुछ भी नहीं सुना जायेगा। समझाना-बुझाना तो महामुश्किल।

गांवोंके मनोविज्ञानको समझो। मैंने मनमें सोचा।

तबतक मीलर भित्तियोंकी ओर मुड़ चुका था। पाछे-पाछे-मुंडरू।

झक्क्....बिजली तड़पी। फ़ोटोका फ़्लैश।

मांटीकी भित्तिपर-के उरेहे चित्र क्षण-भरको जगमगा गये।....जगमगाते गये।

मजूरके जोड़े, ... पक्की, ... दुआर चक्कर,....द्वार-अलंकरण,....

मेरी नज़र फूसके छप्परमें खोंसे कोइढ़ला-पर टँगी थी। मैंने उतारकर अपने हाथमें लेकर उसे देखा—कोइढ़लाका घोड़ा, गुलाबी रंगकी धारियां, सीधी-तिरछी काट-छांट....

यह क्या है? तबतक मीलर भी जाननेको उत्सुक हुआ—"ह्वाट्स दिस?"

"सलहेसका घोड़ा।" झाजी तपाकसे बोल उठा।

"नो नो....। इनसे पूछिए," मतलब घर-मालिकसे पूछिए, "अपनी भाषामें क्या कहते हैं इसे?"

"फुलघोड़ा।" मुँडरूने कहा। उसको भी चान्स मिला साहेबसे बोलनेका। बड़ा खुश।

"फुलगोड़ा?"

"नहीं, फुलघोड़ा!" मैंने उच्चारण शुद्ध कर बताया।

मीलरने अपनी डायरीमें नोट किया—एफ़० यू० एल० एल० जी० ओ० आर० ए०। फुलगोरा।

सुनसरीकी छोटकी बहिन खिलखिला पड़ी—"साहेब नैं बुझै छे।...."

और मीलरने फुलघोड़ाका फोटू खैंच लिया।

बच्चे खिलखिला पड़े।...."फुलघोड़ाका फोटू?"

वाहजी वाह!

जीओ राजा सलहेसका फुलघोड़ा!

राजा धनपालका फुलघोड़ा!

जलकुमारीका फुलघोड़ा!

सुरुज देउताका फुलघोड़ा....। जय....जै।

कुछ दिन पूर्व जब मैं लोहान्द्रा पार कर रहा था तो नदी-तीरपर कई घोड़े खड़े मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलकुमारीको समर्पित फुलघोड़े,....पूर्वाभिमुख खड़े,....एक संकेतपर उड़ जानेको तत्पर।

....लछनू धामीने बताया था—रातको जलकुमारी अपनी सखी-सहेलियोंके साथ सैर-को जाती है।....

"और राजा धनपाल ?...."

"ड़ाजा ढोंनपॉल ?"

"राजा धनपालको नहीं जानते सर ? मोरंगका जनदेवता।....घोड़ेकी सवारी करते हैं। एक बार अपनी लिलित बछेरीपर असवार होकर छन-पलकमें मोगलान पहुँच गये थे।"....मोगलान माने मुग़लोंका भारत।

मीलर अपनी श्वेतांगनाके साथ जोप-की ओर चला गया।

मुंडरू सहमते हुए मेरे पास आया—"हजूर ! आप लोग रंगरेजी केना बोलता है ? ह्वान टू मैन, जैंटुल मैन,....।"

सभी हँसने लगे। मुझे भी हँसी आ गयी। अंगरेज़ीकी नक़ल रंगरेजी, और जेण्टलमैनका जैंटुलमैन....

"सर। मुंडरू विपटा है।" विपटा अर्थात् थारुओंके लोकनृत्य नाटच विदापतका हास्य-अभिनेता।....उसकी बातोंका खयाल न करें।"

"नहीं हजूर। आज जोन-जोन रंगरेजी सबद हाकिम-साहेब-मेमसे सुना है, सब यादी हो गिया। ओकरा सभके 'विदापत' में सुनावेगा—'लाजा ढोनपॉल....होइ....होइ....'"

फिर हँसीकी एक लहर सुनसरीकी देहरीमें तैर गयी।

मुंडरू मेरे पास नीचे बैठकर 'विनती पत्र' चढ़ाने लगा—"सौरी परकासका अँगना देखा हजूर, सुनसरीका भित्ति देखा, तो विपटा-का भी अँगना देखनै पड़ेगा।

....हजूर ! हांजीके भितियामें बढ़ियाँ-बढ़ियाँ लेखा है।...."

"सचमुच बढ़िया अंकन है।"

"गुड,....राम्रो,....।" मीलरने कहा।

"ह्वाट्स फ़ॉर 'राम्रो' इन योर डाइलेक्ट ?"

"नीक,....बढ़ियाँ,...."

"निक ? बॉड़िया ?" मीलरकी श्वेतांगना नोट करने लगी।

....इसी बीच मीलरने विपटाका फोटू खैंच लिया। विपटा बड़ा खुश।

"गाँववालोंको डाह होता है तो होने दो। हजूर सबको थोड़ा-बहुत हँसाया है तो एकना भी नहीं होगा ?" विपटा जिद् करने लगा—"हजूर, फोटू देखाय दीजिए।"....

मीलरने कहा "विपटा बड़ा बाचाल है।"

जीप भलुआसे निकली। उसके पीछे छोटे-छोटे बच्चे दौड़ने लगे।....जीपके पीछे उड़ती धूलमें डेजल-पेटरोलकी गन्ध इन्हें बड़ी अच्छी लगती है।

पीं-पीं,....। सभी बच्चे डरकर भाग गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायरीके पाँच पृष्ठ / विश्वनाथप्रसाद तिवारी

एक—

हर क्षण मेरी खिड़कीपर दस्तक देता है। एक चौराहेपर ढकेल देता है मुझे—दिशाकी तलाशके लिए। मुझे अनजान दिशाओंको जाती हुई हजार-हजार राहोंमें किसीको चुनना है। सहयात्री बना लेना है किसी भी रास्तेको। अच्छे थे वे दिन जिन्हें लोग बचपन कहते हैं। तब कोई मेरी खिड़कीपर दस्तक नहीं देता था। कोई मुझे ऐसे चौराहेपर नहीं छोड़ता था। लेकिन आजका संघर्ष! संघर्ष कहाँ, भटकन! संघर्ष तो आगे है। जो पीछे छूट गया वह 'मृत्यु' था। जीवन तो आगे है—मृत्युकी टूटी डण्ठलसे निकला हुआ बारीक रेशा। और उसके आगे है पुनः मृत्यु—फड़फड़ाते हुए पक्षीकी निष्पन्दता। मृत्यु दोनों छोरोंपर है। गोया कि यह बाती दोनों सिरोंपर जल रही है। मैंने देखा है जीवनको दोनों सिरोंपर जलते। नारायणीका किनारा याद आता है। मीलों लम्बी रेतकी परती। जेठकी दुपहरी। एक बुढ़िया पागलकी तरह दौड़ती हुई चली आ रही है। जब उसके पैर रेतमें जलने लगते हैं तो वह अपनी गठरीपर पैर रखकर बैठ जाती है और जब ऊपरसे शरीर जलने लगता है तो गठरी उठाकर दौड़ने लगती है। यदि वह कवि होती तो कहती—'माइ कैण्डल बर्नस् ऐट बोथ एण्ड्स्'।

दो—

आज अपनी व्यक्तिगत चिट्ठियोंको टटोल रहा था। जिन चिट्ठियोंमें मेरा आधा जीवन दुबका पड़ा है। हर कार्डपर, हर लिफ़ाफ़ेपर मेरा पता लिखा है। इस नीले लिफ़ाफ़ेमें उमाका अन्तिम पत्र है। इसका मज़मून हमें मालूम है। उसने मुझे याद दिलाया है बँगलेके सामनेवाले उस कटहल वृक्षका जो अब ठूँठ हो गया है और जिसे कल मुहल्लेवालोंने काटकर बाँट लिया। जिसपर दिनमें कितनी गिलहरियाँ चढ़ती-उतरती थीं। रातमें कितनी चाँदनी सहारा पाती थी। अब वह सारेका सारा जल जायेगा। उसके दोनों सिरोंपर अग्नि धधकेगी। मैंने इस पत्रका उत्तर नहीं दिया था।....उस समय मैं दिल्ली गया था जब उमा बीमार पड़ी थी।....मैं समयसे एक दिन पूर्व पहुँच गया।....जब अग्नि-दान देकर लौटा तो गाँवकी स्त्रियोंमें घुसर-फुसर हो रही थी—'उमा बड़ी भाग्यवान् थी जिसे पतिने अग्नि दिया।' मैं कहींसे टूट गया। ढुलक गया। रिक्त हो गया। आईनेमें खण्डित-सा लगता हूँ आज। यह उदासी! यह रिक्तता! यह एकान्त!

आत्महत्या?

नहीं। कभी नहीं। हत्या और आत्महत्यामें कोई अन्तर नहीं है। जो दूसरेका सामना नहीं कर सकता वह हत्या करता है और जो स्वयंसे जूझ नहीं सकता वह आत्महत्या करता है। कायर दोनों ही हैं। अभी मैं मरूँगा नहीं। कहा जाता है, अतृप्त इच्छाएँ पुनर्जन्मका कारण बनती हैं। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीनेकी साध लेकर मरनेसे क्या लाभ ? मैं जीना चाहता हूँ। आखिरी यातना तक जीना चाहता हूँ।

तीन—

हम फिर मिलेंगे ओ सहयात्री ! यही हमारे पथका अन्त नहीं है, यह तो एक क्षणिक विराम है—एक पटाक्षेप। रास्तेके इस मोड़-पर हम अलग जरूर हो रहे हैं लेकिन यह मत भूलना कि हमारा पथ अनन्त है और हम राही भी शाश्वत हैं। हम कालातीत हैं। फिर जन्मेंगे। मरेंगे नहीं। कभी नहीं। ऐसा लगता है, कालकी गति रेखात्मक नहीं वृत्तात्मक है। इसीलिए मुझे उनकी बात झूठी लगती है जो कहते हैं कि यह रात शाश्वत है। मैं निश्चित जानता हूँ, सुबह बार-बार आयेगी—एक मुसकुराती हुई सुबह जिसमें मेरे आँगनकी सूखी डालियाँ रंगीन फूलोंसे भर जायेंगी। हम साथ-साथ चढ़ते रहे हैं सूखी चट्टानोंपर। बढ़ते रहे हैं समतल मैदानोंमें। भटकते रहे हैं खाइयों, घाटियों, जंगलोंमें। निर्जन, वीरान, बालुकामय प्रान्तरोंमें। हम भोगते रहे हैं साथ-साथ-साथ हर कसक, हर चिल्ह-कन। मायूसी, खुशी। सहते रहे हैं समय-परिवेशके हर दबाव। क्षणोंके घात-प्रतिघात। अब रास्ते अलग हो रहे हैं ओ सहयात्री ! लेकिन हम फिर मिलेंगे—यहीं, इसी बिन्दु-पर। हमारा भविष्य यहींसे प्रारम्भ होगा। एक नयी राह होगी, एक नया लक्ष्य होगा। हम-तुम नये होंगे। कोई बात नहीं यदि हम जीवन-भर दुःखी रहे। मैं निश्चित जानता हूँ, मेरे सपने पूरे होंगे। हम जिन सूनी सड़कों-पर चलते रहे हैं उनपर हँसते हुए चेहरे होंगे। हम जिन सुनसान जंगलोंमें भटकते रहे हैं उनमें रंग-विरंगे फूल लगे होंगे। हम जिन उदास बस्तियोंसे होकर गुजरे हैं उनमें नयी रौनक होगी। कितनी अच्छी होगी वह तारों-भरी रात जब हम थककर सो जायेंगे किसी देवदारुके नीचे।

चार—

आज सवेरे-सवेरे दो-मंजिलेकी खुली छतसे पश्चिमकी ओर निहारा। दिखाई पड़ीं पर्वत-राजकी हिमाच्छादित चोटियाँ। यह हिमालय-की श्रेणियाँ हैं। पश्चिम और पूर्वके निचले हिस्सेमें जंगलोंका अन्धकार। डरावनी हरि-याली। नीचे बाँसों गहरी गण्डक। आस-पास छोटे-छोटे ऊँचे-नीचे खेत। नन्हे-नन्हें पौधे। हरा-हरा सौन्दर्य। मैंने महसूस किया है एक खुरदुरे शिलाखण्डपर बैठकर विशाल प्रान्तरका एकान्त। मृगोंका निर्बाध विचरण। सैकड़ों फुट खाइयोंका अन्धकार। कभी-कभी सोचता हूँ प्रिये, क्या मेरी सारी भाग-दौड़ निरर्थक है ? क्या मेरा समूचा संघर्ष मिथ्या है ? लोग कहते हैं, यह नश्वर है। मृग-मरीचिका है। लेकिन जाने क्यों यक़ीन नहीं होता मुझे। ये साधनाएँ जिनमें मेरे प्राणकी हर धड़कन और चेतनाकी हर साँस जीवित है, क्या बिलकुल नगण्य हैं ? मेरा विश्वास है, जैसे चेतना अनन्त है वैसे ही साधना भी अनन्त है, शाश्वत है। मृत्यु मेरे जड़-शरीरकी सीमा है जिसे राख होना है, मेरी साधनाओंकी नहीं जिन्हें प्रकाशित रहना है। जैसे एक लौसे दूसरी लौ मिलकर प्रकाश बन जाती है, एक धड़कते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा क्षण जुड़कर अनन्त काल-प्रवाह बन जाता है, मेरी साधना भी ठीक वैसे ही अमर है—मेरी मृत्युके बाद किसी दूसरी जगह जुड़कर, किसी उच्चतर साधनाकी पूर्व कड़ी बनकर। इस अर्थमें मैं विकासवादका समर्थक हूँ प्रिये, कि मैं चेतनाकी निरन्तर विकास-शील प्रकृतिमें विश्वास करता हूँ। अन्ततः यह क्रमिक विकास उसी केन्द्रकी ओर उन्मुख है जहाँ पहुँचकर वह पूर्ण है। शान्त और मुक्त। इसीलिए मेरी साधनाका भी नाश नहीं है। वह तो अनन्त विकासका क्रम है जो मेरे 'व्यक्ति'के बाद भी जीवित है। जिसे मेरे नाम और रूपकी सीमाओंमें बँधना नहीं है। कौन जाने, मेरा भविष्यका 'व्यक्ति' वहीं जन्मे जहाँ वर्तमानका 'व्यक्ति' मरा है। कौन जाने मेरा जन्म उन्हीं साधनाओंसे शुरू हो जिनसे मेरी मृत्यु हुई है। लेकिन मैं निश्चित जानता हूँ कि मेरी वे साधनाएँ नष्ट नहीं हुई हैं जिन्हें मेरी चेतनाने महसूस किया है, जिन्हें हमने अपने प्राणोंका रस देकर उजागर किया है, जिन्हें हमने कण-कणमें ढाला है।

पाँच—

उमा, मैं फिर भी जी रहा हूँ, यह मेरी सबसे बड़ी मजबूरी है। मैं समझ नहीं पाता, संसारके किन कणोंसे अपनेको अलग करके देखूँ। हर कणमें तुम्हारी ही तो रंगीनी है। प्रिये, तुम्हारा ही तो प्राण हैं। मुझमें जो कुछ भी 'है' वह तुम्हारा है। जो नहीं है वह भी तुम्हारा है। जब तुमसे पृथक् मेरा अस्तित्व ही नहीं है तो फिर पृथक् कुछ भी नहीं है—जीना भी नहीं, भोगना भी नहीं, सोचना भी नहीं। जैसे भोग अनन्त है, संघर्ष अनन्त है, वैसे हम भी तो अनन्त हैं।

■ ■

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ■ सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएँ तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएँ, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली—७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

इन गोलियों को बेसन, नमक' लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

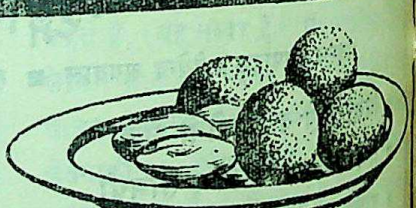

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तराय : अपनी दृष्टिमें /

वाक्पति उपाध्याय

लेखककी ओरसे : हिन्दीकी अधिकांश प्रतिष्ठित पत्रिकाओंमें समय-समयपर 'अमुकजी : अपनी दृष्टिमें', 'अमुकजी : अमुककी निगाहमें', 'अमुकको अमुकसे शिकायत है' और 'कुछ आपबीती : कुछ जगबीती' आदि-आदि शीर्षकोंके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। इन लेखोंके प्रकाशनका उद्देश्य चाहे जो हो पर इनमें आत्मप्रचारकी भावना मूलरूपसे समाविष्ट रहती है और इन सुनियोजित प्रयासोंसे लेखकके नामपर 'लाइट' भी जल्दी पड़ जाती है। 'पुरानी पीढ़ी' के स्वनामधन्य साहित्यकार श्रीसिद्धान्तरायने भी जो, जन्मान्ध हैं, मेरे विशेष आग्रहपर अपने विषयमें कुछ कहा है। विचार उनके ही हैं, क़लम मेरी, लीजिए पढ़िए :

प्रिय पाठक ! आपने यदि पैसे खर्च करके 'ज्ञानोदय' लिया है तो आप मेरा संक्षिप्त परिचय अवश्य ही जानना चाहेंगे। वैसे जो माँगकर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं (पढ़ते क्या, केवल उलटी निगाहसे देखते-भर हैं) उनके लिए इसकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं। हाँ, तो मेरा पूरा नाम है पण्डित सिद्धान्तराय, साहित्याचार्य (गोल्ड-मेडलिस्ट) चौंकिएगा नहीं, आपने साहित्य-जगत्में यह नाम पहली बार ही सुना होगा क्योंकि अबसे कुछ दिनों पहले तक मैं आलू बेचता था। आजकल तो मैं लिखता हूँ, केवल लिखता हूँ, वैसे मुझे यह पता नहीं कि मैं क्यों लिखता हूँ ? खैर, इस समय 'गर्म-मार्केट' में मेरी आठ कम नौ दर्जन कृतियाँ अर्थात् गद्य-पद्यकी कुल मिलाकर सौ पुस्तकें चल रही हैं। मेरी तीस वर्षकी अवस्था और इस 'मास-प्रोडक्शन' के युगमें आज जब कि घास-कूड़ा सभी कुछ छप जाता है, यह संख्या वास्तवमें बहुत ही न्यून है। मैं 'डाइरेक्ट-रायटर' हूँ। पत्र-पत्रिकाओंमें मेरी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हुई और न निकट भविष्यमें प्रकाशित होनेकी सम्भावना है।

मैं 'पुरानी पीढ़ी' का प्रतिभाशाली 'नया' साहित्यकार हूँ, जिसके समक्ष साहित्य, आलोचना भी है और पेट पालनेका धन्धा भी। आपको यह बात कुछ अद्भुत लगेगी, पर क्या करूँ, मेरे पास इसका कोई इलाज नहीं। मैंने सिद्धान्तोंका जीवन अपनाया है। प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातपर सिद्धान्तकी मुहर लगा देना मेरे बायें हाथका खेल है। इसी कारण तो मेरे एक मित्रने एक बार कहा था—"सिद्धान्तराय, यथा नाम तथा गुणकी प्रतिमूर्ति हैं।"

मेरा जन्म उत्तर-प्रदेशके एक छोटे-से क़स्बेमें एक अति सम्पन्न परिवारमें हुआ। मैं स्वयम्भू लेखक हूँ, इस कारण कह नहीं सकता कि मेरे माता-पिता थे भी या नहीं। जिस समय मेरा जन्म हुआ था उस समय भारतमें अँगरेज़ोंका राज्य था इसलिए माँके उदरसे निकलते ही मैंने अँगरेज़ीमें रोना शुरू किया। रोना क्या, वह अँगरेज़ीकी कविता ही थी जो आज भी 'टेप-रिकार्डर' में क़ैद है। हिन्दीसे मुझे प्रारम्भसे ही सख्त नफ़रत रही है। आज भी मैं अपना सभी साहित्यिक कार्य अँगरेज़ीमें करता हूँ फिर भी मेरी गिनती हिन्दीके शीर्षस्थ साहित्यकारोंमें है। इसे आप रहस्य-की बात न समझिए। हिन्दी भाषाकी अपनी प्रत्येक रचनामें मैंने अँगरेज़ीके ही शब्दोंका अधिकाधिक प्रयोग किया है और आज भी करता हूँ। हिन्दीके इने-गिने शब्द तो मेरी रच-नाओंमें बिना आज्ञा लिये हुए इस कारण प्रवेश कर गये हैं कि भारत अठारह वर्षोंसे आज़ाद है और हिन्दीको गत वर्षसे 'नेशनल लैंग्वेज' घोषित कर दिया गया है। इन सब बातोंका एक 'प्योर इण्डियन' होनेके नाते कुछ ध्यान रखना भी तो आवश्यक हो जाता है।

मेरी रचनाएँ आदर्शवादसे ओत-प्रोत हैं। आदर्शकी इतनी ऊँची उड़ान है कि 'ल्यूना-९' और 'ल्यूना-१०' पीछे रह जायेंगे। एक बार उस 'परलोकवासी' से भी मेरे सिद्धान्तों-की टक्कर न हो जाये तो मेरा खूबसूरत नाम सिद्धान्तराय बदलकर और कोई बद-सूरत-सा नाम रख देना।

यथार्थ है किस चिड़ियाका नाम? 'पुरानी पीढ़ी' का प्रतिभाशाली साहित्यकार मैं केवल मैं (क्षमा करें, बकरेकी तरह मिमियानेकी आदत है) यह कह सकता हूँ कि यथार्थ नामकी कोई चीज़ नहीं। आदर्श ग्रैण्ड चीज़ है। आ-दरश अर्थात् आओ मुझे देखो (कि मैं कितना अहंकारी हूँ।) मैं अपने अनुयायियोंसे हाथ जोड़कर व नाक रगड़कर (क्योंकि 'पुरानी पीढ़ी', अभिवादन-को बहुत अधिक महत्त्व देती है) यह अर्ज़ करूँगा कि वे मेरी रचनाएँ पढ़कर उनकी प्रशंसा अवश्य करें जिससे 'पद्मश्री' आदिका तमग़ा मुझ-जैसे सरस्वतीके वरद पुत्रको मिल सके। 'पद्मश्री' या 'पद्मभूषण' आदि-में-से मुझे एक भी अलंकरण न मिल सका तो मेरी आत्मा भटकती रहेगी और मैं 'श्योरली' प्रेत बन जाऊँगा। मात्र प्रेत ही नहीं 'कठिन काव्यका प्रेत।'

'नयी पीढ़ी' के उभरते हुए साहित्यकारों-से मेरी झड़प अकसर होती रहती है। मैं उन्हें एक ही लाठीसे हाँकना चाहता हूँ पर वे मेरी लाठी ले भागते हैं। अन्धेको लाठीका सहारा होता है और मुझ-जैसे जन्मान्ध साहित्यकारके लिए तो यह और भी आवश्यक है। 'नयी पीढ़ी' के साहित्यकारोंमें-से बहुतोंने यह सुझाव दिया कि मैं 'ब्रेल पद्धति' सीखूँ पर यह बात मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध है कि लाठी होते हुए भी मैं 'ब्रेल पद्धति' सीखूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा बरबाद करूँ। मेरी पुरानी लाठी क़लम, हथियार और मार्गदर्शक सभीका काम देती है।

साहित्यकारोंमें अपनी प्रशंसा सुनने अथवा स्वयं करनेका एक सामान्य अवगुण होता है, जिससे अपनी दृष्टिमें मैं तो सर्वथा बचता रह गया हूँ। वैसे मुझे सैकड़ों अभिनन्दन-पत्र, पुस्तकें और उपहार आदि मिल चुके हैं। इनकी संख्या इतनी है कि इन्हें नीलाम करके मैं सारी उम्र खाली बैठे रहकर ही जीवन-यापन कर सकता हूँ। साहित्यकी हर विधा पढ़कर मुझे आनन्द आता है पर 'हास्य-व्यंग्य' साहित्यका मैं विशेष रूपसे अभ्यास करता हूँ। इसका एक कारण है कि आजकल हर पत्रिकामें 'हास्य-व्यंग्य' का कालम रहता है। सोचता हूँ, शायद अन्धेके हाथ बटेर लग जाये। जिस-किसी पत्रिकामें रचना भेजता हूँ वहाँ मेरी रचना छपनेके स्थानपर विज्ञापन छप जाता है कि अगले अंकमें 'सिद्धान्तरायजीकी नयी रचना'। इस अगले अंककी प्रतीक्षामें मैं बगलें ही झाँकता रहता हूँ पर अगला अंक हाथ ही नहीं लगता। इसीसे यही बात इस टूटे दिलसे निकलती है :

रफ़्ता रफ़्ता हो गयीं,
आँखें भी अब मेरी सफ़ेद।
बस कि नामे का किया
यारों के मैंने इन्तज़ार॥

अब अन्तमें मैं अपनी असलियतपर आता हूँ। मैं उम्रसे नया हूँ। केवल तीस वर्षकी अवस्था है। विचार मेरे बहुत पुराने हैं—एकदम पाषाण युगके। मेरे साथी घोड़े बन गये पर मैं गधा ही रहा। घोड़े और गधेकी तुलना कहाँ? अपने विचारोंपर विचार करता हूँ तो जीमें आता है—आत्महत्या कर लूँ। लेकिन आँखोंके अन्दर अपनी 'सती सावित्री' की तसवीर घूम जाती है और ध्यान आ जाता है उन अपने तीन कम एक दर्जन बच्चोंका जिनमें-से आधा दर्जन 'नयी पीढ़ी' के नवोदित साहित्यकार हैं। वे मेरे साहित्यकार बच्चे भी मेरा उपहास करेंगे कि "हमारे पापा बुज़ुर्गाना अन्दाज़में हमें जीवनसे न भागनेकी घुट्टी पिलाते रहे पर स्वयं भाग छूटे। सच है—'परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम।"

बुद्धिकी परतें उधेड़नेसे निष्कर्ष यही निकलता है कि 'पुरानी पीढ़ी' छोड़कर मुझे 'नयी पीढ़ी' में आना ही होगा क्योंकि 'अभी तो मैं जवान हूँ।' पर मेरे आनेका दरवाज़ा भी कौन-सा हो सकता है? इस विषयमें 'नयी पीढ़ी' के समर्थ साहित्यकार अपने बच्चोंसे ही पूछूँगा। फिर भी कोई नवमतवादी साहित्यकार मेरा मार्ग-दर्शन कर सकें तो मैं उनका पट्टशिष्य बन जाऊँगा और वे इन पंक्तियोंके लेखकके माध्यमसे मुझे सहर्ष सूचित कर सकते हैं।

अब मेरा मूड ऑफ़ हो गया है, जिन सज्जनसे यह वक्तव्य मैं लिखा रहा हूँ वे बड़े उत्साही युवक हैं फिर भी बोर हो रहे हैं (और बोर होनेकी भी एक हद होती है) और मेरी क़लमकी स्याही भी खत्म होनेको है ('पुरानी क़लम' है) इसलिए अब मैं क्षमा चाहूँगा, ('पुरानीपीढ़ी' की क़ाबिले-ग़ौर विशेषता) जय हिन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप बहरे हैं / जगदीशकुमार

भए मनुज विधि हत गत-चेता।
सुनैं न यद्यपि कान समेता॥

कहते हैं कानेको काना कहना अप्रिय होता है। मैं ऐसा ही अप्रिय आज कहने जा रहा हूँ, यह जानते हुए भी कि 'मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।' साहस केवल यही सोचकर किया है कि डॉक्टरको अपना निदान तो बताना ही चाहिए। परन्तु आपके तो कान भी खड़े हो गये हैं। शायद जताना चाहते हैं कि आप बहरे होते तो सरकारी नौकरी कैसे मिल जाती। हम आपके सवालका जवाब दे सकते हैं कि आपके चाचा···पर छोड़िए उन बातोंको। सभी तो जानते हैं। हम तो केवल यही विस्तारसे बतायेंगे कि आप बहरे हैं या कमसे कम सुश्रवा नहीं हैं।

डॉ० * तुलसीदासने सुश्रवाकी परिभाषा इस प्रकार दी है :

पद बिनु चलै, सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै विधि नाना॥

आप कह सकते हैं कि भगवान्का यह अद्वितीय गुण मनुष्यमें और कलियुगके मनुष्यमें किस प्रकार आ सकता है। तो सुनिए कि आप ही के इस मर्त्यलोकमें, एक प्राणीके पास यह गुण आज भी सुरक्षित है। वह प्राणी मनुष्य तो है ही नहीं, संसारके प्राणियोंमें कुटिलतम भी है। जब उस भूमि-लुण्ठित जीवमें यही नहीं, भगवान्के उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं तो आपमें क्यों नहीं हो सकते। आपकी जातिमें भी यह गुण कुछ समय पहले तक किंचित् मात्रामें (सुनै सह काना) विद्यमान था। आप लोग 'अलर्जी'के शिकार होनेसे यह गुण पूर्णतया खो बैठे हैं। हम इस निबन्धमें बहरोंकी कोटियों और 'अलर्जी'के कारणोंपर प्रकाश डाल रहे हैं। आपको भी अपनी 'अलर्जी'का कारण मिल जाये तो अपने-आपको विश्वासपूर्वक बहरा मान लीजिए और उसे दूर करके सुश्रवा होनेका प्रयत्न कीजिए।

बहरोंकी अनेक कोटियाँ हैं। जिन लोगोंको सुनना बिलकुल बन्द हो जाता है, उन्हें अश्रवा कहते हैं। इन्द्रके घोड़ेकी तरह दोनों कान खड़े करके ऊँची आवाज सुन पानेवालोंको हमने उच्चैःश्रवा कहा है। कुछ सुननेवाले और कुछ न सुननेवाले लोग नियतश्रवा कहलाते हैं। कुछ-कुछ सुननेवालोंको मितश्रवा कहा जाता है। बहुत कुछ न सुननेवाले अल्पश्रवाकी कोटिमें रखे जाते हैं। इसी प्रकार दृगश्रवा (दृगोंसे सुननेवाले), दण्डश्रवा (दण्डसे सुननेवाले) आदि कितने ही भेद हैं, जिनमें-से केवल उपर्युक्तके लक्षणोंका ही संक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जायेगा।

अश्रवा: अधिकांश अफ़सरों और छात्रोंका बहरापन इस कोटि तक पहुँच चुका है। एकके

---

* आजकलके कवियों और नेताओंमें इस सम्मानोपाधिको प्राप्त करनेकी भूख देखकर प्राचीन कवियोंकी दिवंगत आत्माओंको तुष्ट करनेके लिए हमने यह मरणोत्तर उपाधि प्रदान करनेकी अनधिकार चेष्टा की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने लाख सिड़गिड़ाइए तो कानपर जूँ तक नहीं रेंगेगी और दूसरेको हज़ार समझाइए तो चिकने घड़ेपर बूँद तक नहीं ठहरेगी। एकके आगे रोना अरण्यरोदन है और दूसरेको समझाना भैंसके आगे बीन बजाना। एकको जनताकी शक्लसे अलर्जी है और दूसरेको अध्यापककी अक्लसे। इस 'अलर्जी'का सीधा उपचार तो यही है कि एक तो घोतीवालोंका दूसरा ऐनकवालोंका दर्शन न करे। यह उपचार कुछ कठिन है और बहुत पहुँचे हुए अफ़सरों या बहुत बिगड़े हुए छात्रों-द्वारा ही अपनाया जा सकता है। दूसरा उपचार सम्पर्काभ्यासका है। आपने सुना होगा कि साँप जानेसे भूत भागता है। इस तरह धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ानेसे अलर्जी दूर हो सकती है। सुना गया है कि अभ्याससे तो ज़हर भी पचाया जा सकता है। फिर बेचारे साधारण जनोंकी शक्लें और अध्यापकोंकी अक्लें किस खेतकी मूली हैं।

उच्चैःश्रवा : उच्चैःश्रवण बहुत व्यापक हो गया है। समस्त जनता इसकी शिकार है। इसीलिए ध्वनिविस्तारकोंका व्यवहार और व्यापार बहुत बढ़ गया, है। अब तो ध्वनि-विस्तारककी सहायताके बिना सभाका आयोजन प्रायः असम्भव हो गया है, चाहे श्रोता दो-चार ही हों! आजके श्रोताओंको प्राकृतिक स्वरसे अलर्जी है। सभीको माइक, रिकार्ड या रेडियोका अभ्यास हो गया है। आवाज़ सीधी मुँहसे कान तक तो मित्र-गोष्ठियोंमें या परिवारमें ही पहुँच सकती है, सार्वजनिक सभाओंमें नहीं। इस अलर्जीका मुख्य कारण विरोधी दलोंके नेता या अधिकारहीन नागरिक हैं, जिनको अधिकांशतः अपनी असफलताको छिपानेके लिए निष्फल बातें चिल्ला-चिल्लाकर सुनानी पड़ती हैं। इस अलर्जीका उपचार रोगियोंके हाथमें नहीं है। जबतक सार्वजनिक वक्ता अपनी बातोंको सारगर्भित बनानेका अभ्यास नहीं करेंगे, तबतक बेचारे श्रोताओंको इस रोगसे पीड़ित रहना पड़ेगा।

नियतश्रवा : नियतश्रवणके दायरेमें प्राचीनकालके संस्कृत नाटकोंके कुछ पात्र और इने-गिने भक्त या सन्त ही आते हैं परन्तु आधुनिक कालके सभी विकसित लोग आ जाते हैं। कुशल-क्षेम पूछना विकसितोंका दैनन्दिन व्यापार हो गया है। वर्द्धमान व्यस्तताके कारण 'ठीक-ठाक' तो सभी सुन लेते हैं परन्तु सर्द आहोंकी लम्बी दास्तान सुननेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। बहुत पहले पढ़ा था कि चेखॅवके एक ताँगेवालेको अन्ततः अपनी रामकहानी सुनानेके लिए अपने घोड़ेको (शुक्र है कि वह उच्चैःश्रवा नहीं था) विश्वास-पात्र बनाना पड़ा। इस युगमें यह रोग लगभग असाध्य हो गया है। इसका कारण व्यावसायिकताका अनियन्त्रित प्रसाद है, जिसका उपचार कोई बुद्ध-जैसा महात्मा ही अपने करुणा-मन्त्रकी फूँकसे कर सकता है।

मितश्रवा : वैसे तो सभी प्रकारके ग्राहक मितश्रवणसे ग्रस्त हैं परन्तु गुण-ग्राहक विशेष

* "भक्तोंने स्पष्ट कहा है कि वे निर्गुणकी कथा नहीं सुनते—"सुनिहै कथा कौन निर्गुन की।" इसलिए वे हरि-कथा सुननेका आग्रह करते हैं—"हम को हरि की कथा सुनाव।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपसे पीड़ित हैं। इसलिए स्वगुणाख्यान सहस्र-मुखसे सुनाइए, तब थोड़ा-बहुत सुना जायेगा। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बननेमें लज्जा अनुभव करने लगे तो कौड़ीके मोल बिकेंगे। डॉ० जायसीने भी कहा है—

"गुनी न कोई आपु सराहा।
जौं सो बिकाइ कहा पै चाहा॥"

—पद्मावत ७।८।६

सम्भवतः इस अनुभवसे सम्पन्न होकर ही आधुनिक-कालके कुशल काव्य-विक्रेता लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखते हैं। अस्तु, इस अलर्जीका मुख्य कारण आजकलके शत-प्रतिशत झूठे विज्ञापन हैं, जिनका प्रचार बन्द हुए बिना इसका उपचार सम्भव नहीं है।

यही रोग बुनाई और बातोंमें लगी स्त्रियोंमें भी पाया जाता है। वे करती या कहती अधिक हैं, फलतः सुनती कम हैं। उनकी जीभ गज-भरकी होती है, सलाई फुट-भरकी और कन-पुटी इंच-भरसे भी कम! इनकी अलर्जीका कारण सृष्टिके आरम्भसे अब-तक खोजमें लगे रहनेपर भी कोई माईका लाल प्राप्त नहीं कर सका है।

डॉ० तुलसीदास भगवान्‌को सुश्रवा मानते थे। डॉ० बिहारीलालकी खोज इसके विरुद्ध है। उनके अनुसार भगवान् मित-श्रवा हैं।

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।

भगवान् इतना कम सुनते हैं कि पुकार भी फीकी पड़ जाती है।

भगवान्‌की अलर्जीका कारण भी बड़ा स्पष्ट है कि पुकारनेवालोंमें अधिकांश गड़ेरिया-बालककी भाँति झूठे हो गये हैं। भगवान्‌को उपचारकी सलाह हम नहीं देंगे, अन्यथा बेचारेको कलियुगमें प्रार्थनाके स्थानपर कदर्थना ही अधिक सुननी पड़ेगी।

अल्पश्रवा : आधुनिक वक्ता अल्पश्रवणसे सर्वाधिक ग्रस्त हैं। कहीं बोलने जायेंगे तो स्वागतकर्ताके अतिरिक्त किसी औरका भाषण भूलकर भी नहीं सुनेंगे। परिणामतः अपनी-अपनी फूटी डफलियोंसे अपना-अपना राग अलाप तो सभी रहे हैं, परन्तु सुनता कोई नहीं। कवि आलोचकोंसे प्रति अल्पश्रवा है, नेता जनताके प्रति, युवक वृद्धोंके प्रति, पत्नियाँ पतियोंके प्रति, आदि-आदि!

अल्पश्रवणके सभी रोगियोंकी अलर्जीका मुख्य कारण है—उनका परिवृद्ध अहंकार। इन सबका एकमात्र उपचार है—आवश्यकता-नुसार कुछ चुने हुए मन्त्रोंका जाप। उदाहरण-के लिए कविगण डॉ० तुलसीदासके इस मन्त्र-का सहस्र-पाठ नित्यप्रति करके अहंकार-मुक्त हो सकते हैं—'हौं पण्डितन केरि पछिलगा।' इसी प्रकार अन्य रोगियोंके लिए भी मन्त्रोंकी खोज की जा सकती है।

दृगश्रवा : इस कोटिके रोगियोंके विषय-में कुछ कहनेसे पहले यह बता देना आवश्यक है कि सर्पको दृगश्रवा मानना केवल अन्ध-विश्वास है। विज्ञानके अनुसार वह अपनी त्वचापर ध्वनि-तरंगोंका स्पर्श पाकर श्रवणानु-भूति करता है। अतः इस कोटिके रोगियोंको प्रकारान्तरसे सर्प कहना हमारा उद्देश्य स्पष्टतः नहीं है।

डॉ० बिहारीलालने सम्भवतः इस कोटिके

[शेष पृष्ठ १७९ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• कुँवर अजय सिंह
• सुरेशकुमार वर्मा

दो एकांकी

एक ऊलजलूल एकांकी : कुहनीकी हड्डी / कुँवर अजय सिंह

पात्र : युवक-१, युवक-२, युवती-१ तथा एक सूत्रधार।

(इलाहाबाद। कोई एक कमरा। ख़ाली-ख़ाली-सा; छतसे टपकता सूनापन। तीन कुरसियाँ और उनके मध्य विवश-सा पड़ा एक टेबुल, टेबुलपर एक ऐश-ट्रे। छह-सात बजे सायंकाल, गरमियोंके दिन, २५ वॉटका एक बल्ब रोशनी कम कर रहा है, या अधिक रहा है।··· युवक–१ का प्रवेश। दाढ़ी बढ़ी हुई, कसे जूते। कई दिनोंकी पहनी पतलून, घायल क्रीज़, लोफ़र टाईपकी बुश-शर्ट। अन्यमनस्क-सा कुरसीपर बैठ जाता है। दोनों पैरोंको, बायें पैरको दाहिने पैरपर चढ़ाकर, टेबुलपर रख देता है। चमचमाते जूते। जेबसे 'स्टेट एक्सप्रेस–५५५' का पैकेट निकालकर एक सिगरेट निकालता है, दूसरी जेबसे दियासलाई निकालकर सुलगाता है। एक कश लेकर वह धुआँ ऊपर छतकी ओर फेंक देता है। वर्तुलाकार धुआँ कुछ क्षणों तक तो घनीभूत रहता है, फिर धीरे-धीरे कहीं खो जाता है। वह बड़े इतमीनानसे सिगरेट पीता है, वर्तुलाकार धुआँ छतकी ओर फेंकता रहता है, दृष्टि निरन्तर छतकी ओर ही जमी हुई है। एक सिगरेट ख़त्म हो जाती है। सहसा उसे अनुभव होता है, जूतेके फ़ीते आज अधिक कस गये हैं, कुछ ही अधिक। वह उन्हें ढीला करता है। दूसरी सिगरेट निकालकर पूर्ववत् पीता है। सन्नाटा और मौन। युवती–१ आती है। चुस्त-मुस्त कपड़ोंमें वह 'न्यूड फ़ोटोग्राफ़' लगती है। दूसरी कुरसीपर बैठ जाती है। दोनों एक-दूसरेकी ओरसे उदासीन हैं, बोलते नहीं। अपने साथ ले आयी पुस्तकको वह युवती पढ़ती है। युवक-१ सिगरेट पीता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छतकी ओर देखता रहता है। युवती-१ पुस्तक पढ़ती रहती है। उन दोनोंके मध्य केवल सिगरेटका धुआँ है।....कुछ क्षणोंके उपरान्त युवक-२ का प्रवेश।)

युवक–२ : कितनी सिगरेटें पी चुके ?

युवक–१ : केवल एक। दूसरी पी रहा हूँ। फिर तीसरी पीऊँगा।

युवक–२ : किसी भी चीज़की हद होती है।

युवक–१ : हद ? सीमा ? किसकी ? कैसी ? आकाशकी सीमा हो सकती है, सिगरेटकी नहीं।

युवक–२ : आख़िर तुम्हें सिगरेट पीनेमें मिलता क्या है ?

युवक–१ : कुछ भी न मिल पानेकी स्थिति सदैव वर्तमान रहती है। इस दमघोटूं मनोरंजनमें जो एक असहाय स्थिति है, उसे तुम नहीं समझ सकते।

युवक–२ : फिर भी, कुछ तो अवश्य ही तुम्हें मिलता होगा।

युवक–१ : हाँ। बहुत कुछ। एक सिगरेट पीता हूँ और डबल यौन-सुख लेता हूँ मैं।

युवक–२ : अयँ ! यह क्या ?

युवक–१ : यही तो वस्तुस्थिति है और हमारे जीवनकी 'ट्रेजेडी' भी। कुछ भी न मिल पानेकी स्थिति वस्तुतः एक व्यापक अर्थ रखती है, जिसके इर्द-गिर्द हम चक्कर काटते रहते हैं। यौन-सुख मिलनेका यह मतलब क़तई नहीं होता, कि बहुत-कुछ हम पा रहे हैं। यही तो विडम्बना है, जिसे बड़ी सावधानी और यत्नसे हम-सब ओढ़े हुए हैं।

युवक–२ : सब खोखली बातें हैं। तुम भीतरसे एकदम खोखले हो।

युवक–१ : तुम पूँजीवादी हो।

युवक–२ : शट-अप, रैस्कल !

(युवक–१ : आइ से गो यू आउट, ब्लडी-फूल ! (युवती–१ : पुस्तकसे अपनी दृष्टि उठाकर उन दोनोंको देखती रहती है, फिर पढ़ने लगती है। युवक–१. छतकी ओर अपना मुँह किये सिगरेट पी रहा है। युवक–२ यूँही, बेमतलब, ऐश-ट्रेको टेबुलपर घुमाता है।)

युवक–२ : सुनो, जब मैं तुम्हारे यहाँ आ रहा था, उस समय आकाश बहुत नीला था।

युवक–१ : मुझे मालूम है। और यह भी कि जब आकाश बहुत अधिक नीला हो जाता है, तो शीघ्र ही पानी भी बरसता है।

युवक–२ : यह तो मात्र सम्भावना है। ग़लत भी हो सकती है।

युवक–१ : हम अपनी-अपनी वर्जनाओंमें इतने क़ैद हो चुके हैं, कि आज सम्भावना रह ही नहीं गयी है। सत्य-असत्य सींग उठाकर घूमते रहते हैं। जब भी मनमें आता है, किसीको पटककर पेटसे फाड़ डालते हैं। उस समय केवल एक ही सत्य, सत्य रहता है। पेटसे निकली अँतड़ियाँ और बहता ख़ून। यही सम्भावना है, जो असत्यसे परे है।

युवक–२ : परन्तु, तुम यह क्यों भूलते हो, कि हमारे पास एक ऐसा धरातल है, जिसका पुंसत्व अभी समाप्त नहीं हुआ है। वह धरातल है—हमारा 'अपनापन'।

युवक–१ : पुंसत्व ! आजका पुंसत्व,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपुंसकताका ही दूसरा नाम है। पुंसत्वपर आज वे ही बातें करते हैं, जो सर्वाधिक नपुंसक हैं और जिनकी नीली नसोंमें पानी भरा हुआ है। अनास्था ही आजकी सबसे बड़ी आस्था है। क्षण-प्रतिक्षण मृत्युकी प्रतीक्षा करना ही आजके सफल जीवनका श्लोक है। हमारा 'अपनापन' तो कभीका दम तोड़ चुका है। उसकी लाशपर अन्तर्ग्रस्तता और घुटनके गिद्ध मँड़राते हैं। आँखोंमें रंगीन तितलियाँ उड़ती हैं और कमरके नीचेके सारे अंगको लकवा मार गया है। यही तो विरोधाभास है।

युवक-२ : फिर भी हम जीवित हैं न। यही क्या कम है।

युवक-१ : ट्रेनके पावदानसे लटके हुए लोग भी सफ़र कर लेते हैं। गन्तव्य स्थलपर पहुँचकर इस शान और अकड़के साथ खड़े होते हैं जैसे उनकी यात्राका कोई खास महत्व ही नहीं। नहीं देखते, इतनी ढेर-सारी झंझटोंमें, हज़ारोंकी संख्यामें, शहरमें मर जाते हैं और हमारे-तुम्हारे कान किसी विघटनामी मौतकी खबर सुननेके लिए फड़फड़ाया करते हैं।

युवक-२ : ठीक है, पर जीवन केवल इसीका तो नाम नहीं। इसीलिए मैं ठहरावको नहीं पसन्द करता। मैं नदीको पसन्द करता हूँ—बहती, अप्रतिहत। मैं कहीं बँधना नहीं चाहता।

युवक-१ : माइण्ड इट प्लीज़। कमल तालाबमें खिलते हैं, जिसका पानी चारों ओरके पक्के घाटसे बँधा होता है। नदीमें कमल नहीं खिलते। जीवनके लिए एक ठहराव, एक बँधा-बँधापन कुछ जरूरी है। सतत गतिशील नदी तो वर्णसंकरताके इतने मोड़ोंसे होकर गुज़रती है कि उसका निजी स्वरूप नष्ट हो जाता है। वह ठीक उस औरतके समान है, जो घाट-घाटका पानी पी चुकी है और जिसकी बहती गंगामें न जाने कितने लोगोंने अपने गन्दे हाथ धोये हैं। अपनी कुछ कमियोंके बावजूद तालाब मुझे सदैव अच्छा लगा है।

युवक-२ : यह बदबू कैसी है?

युवक-१ : बदबू····ओह मेरे शरीरसे निकल रही है। साबुन लगाकर नहाने और डेयोडेरेण्टका प्रयोग करनेके बाद भी यह दुर्गन्ध नहीं जाती। जाये भी तो कैसे? हमारे आस-पास जो इतना कूड़ा-कर्कट सड़ रहा है, उसकी दुर्गन्ध हमारे नथुनेके भीतर जायेगी ही। सच कहूँ, अब तो मुझे इस बदबूसे प्यार हो गया है, इससे एक लगाव पैदा हो गया है। यही तो एक हमारी अपनी चीज़ है, जिसे कोई भी नहीं छीन सकता। यह दुर्गन्ध न रहे, तो मैं एक क्षण-भरभी जीवित न रहूँ। आह, ऐसी सुखद दुर्गन्ध तो मैंने औरतोंमें नहीं पायी।

युवक-२ : न जाने क्यों, मैं इसे सह नहीं पाता।

युवक-१ : अभी अधकचरे हो। अपने आसपासकी लड़कियोंको सूँघनेकी आदत डालो।

युवक-२ : लड़कियोंको? पर उनकी देहसे बदबू तो नहीं निकलती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक–१ : लगता है, तुम्हें इसका कुछ अनुभव है। गुड। हाँ, उनकी देहसे बदबू नहीं एक तीव्र मांसल गन्ध निकला करती है। उस गन्धका तुम आनन्द लो। वही तुम्हें इस बदबूकी अभ्यस्त बना देगी।

युवक–२ : (सहसा युवती–१ की ओर देखकर) यह कौन है ?

युवक–१ : मुझे नहीं मालूम (युवती–१ की ओर मुड़कर) आप कौन हैं ?

युवती–१ : (पुस्तकसे अपनी दृष्टि उठाकर, मुसकराती है) मैं ?····कोई विशेष परिचय नहीं। आपको सिगरेट पीते हुए देखा, तो भीतर चली आयी। दरअसल मुझे एक ऐसी जगहकी तलाश थी, कुछ देर तक जहाँ मैं बैठ सकूँ।

युवक–१ : आइए, बाहर चलें।

युवती–१ : चलिए बहुत बैठ चुकी मैं।

युवक–२ : चलिए।

(तीनों बाहर चले जाते हैं। युवक–१ अपनी अधजली सिगरेट ऐश-ट्रेपर ही छोड़ जाता है। कमरा ख़ाली हो जाता है। अधजली सिगरेटसे धुआँ निकल रहा है। कुछ क्षण। कुछ क्षण और। सूत्रधार प्रवेश करता है।)

सूत्रधार : खाली-खाली-सा कमरा, खोखले लोग, छतसे लटकता सूनापन, और इन तमाम असंगतियोंके बीच उभरी हुई कुहनीकी हड्डी। एक प्रतीक। आजका जीवन-दर्शन। ·····आप सभी लोगोंको बहुत-बहुत धन्यवाद।

(तेज़ीसे भीतर चला जाता है। कमरा फिर ख़ाली हो जाता है। अधजली सिगरेटसे धुआँ अभी भी निकल रहा है, स्थितप्रज्ञ और वीतराग-सा।)

■

प्रेमी और प्रेमी / *सुरेशकुमार वर्मा*

स्थान : ड्राइंग रूम।

समय : रात्रि सवा आठ बजे।

स्त्री (करुणस्वरमें) : मैं प्रार्थना करती हूँ····।

पुरुष : मैं नहीं जाऊँगा।

स्त्री : (पिघलानेके स्वरमें) नहीं आपको जाना ही होगा।

पुरुष : नहीं मैं नहीं जाऊँगा। (सोफ़ेपर लेटनेकी मुद्रामें बैठ जाता है। स्त्री ठीक उसके सामने बैठ जाती है।)

स्त्री : आप कुछ मेरा खयाल कीजिए।

पुरुष : तुम्हारा खयाल करके ही तो ज़िन्दगी बिगाड़ चुका हूँ।

(स्त्रीका अधर-दंशन। प्रखर नेत्रोंसे पुरुषकी ओर देखती है।)

पुरुष : अनू, मैं····।

स्त्री : अनू नहीं, अनिता। अनू तो कबकी मर चुकी है।

पुरुष : तुमने ही उसकी हत्या की है। (ठीक-से बैठता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिता : (विस्फीत नेत्रोंसे) मैंने ?

पुरुष : हाँ तुमने ! हजार बार तुमने ! लाख बार तुमने ! वह तड़प रही थी, चीख रही थी, चिल्ला रही थी और तुम उसका गला घोंटती रहीं। वह छूटनेके लिए छटपटा रही थी, मचल रही थी और सारी ताक़त खत्म कर चुकी थी, पर तुम्हारे निर्दयी हाथोंने उसका गला न छोड़ा। (आवेशमें हाँफने लगता है) तुमने उसके चारों ओर कटघरा खड़ा कर दिया और दो सलाखोंकी असह्य दूरीको कम करनेके लिए और सलाखें भरती रहीं।

अनिता : यह सब झूठ है।

पुरुष : सच है। मैंने कई लोगोंको मरते हुए देखा है, पर ऐसा मरना नहीं देखा जहाँ आदमी मरकर भी जी रहा हो और जिसका मरकर जीना जीकर मरनेसे अधिक भयानक हो।

अनिता : धीरे बोलो। मेरी बच्ची सो रही है।

पुरुष : तुम्हारी बच्ची····। मैं कहता हूँ कि वह सफ़ेद मौत है।

(टेबलपर हाथ पटकता है। ऐश-ट्रेकी जलती सिगरेट लुढ़ककर टेबलपर आ गिरती है।) अनिता सहमकर सिगरेट नीचे फेंक देती है।)

अनिता : अभी टेबल-क्लॉथ जल जाता ! मैंने बड़ी मेहनतसे उसे काढ़ा था। क्रुशियासे मेरे हुए····। (उँगलियोंको छूकर देखती है।)

पुरुष : शायद तुम्हें मेरी बातोंसे यह बात बुरी लगी। स्त्रियाँ ज़बरदस्त धोखेबाज होती हैं। जिसे दिलसे स्वीकार करती हैं, उसे मुँह-पर लाना नहीं जानतीं। (उठकर खिड़कीके पास पहुँचता है) मैं ऐसे कई अवसर गिना सकता हूँ, जब तुमने चाहा कुछ, और किया कुछ। (पुरुष खिड़कीका परदा हटाता है और स्थिर नेत्रोंसे बाहर देखने लगता है। अनिता झटकेसे खिड़की तक पहुँचती है और परदा फिर खींच देती है।)

अनिता : (क्रोधसे) बहुत हो चुका। अब तुम परदा भी खोलने लगे। (समझ न पानेकी मुद्रामें पुरुष उसे देखता है।)

अनिता : आज सड़ककी बत्तियाँ नहीं जली हैं। अँधेरेके लोग रोशनीको आँख फाड़कर देखते और उसमें तैरती हुई चीज़ोंको रुक-झुककर। मेरे परदे हमेशा तने रहते हैं। (पुरुष मुँह बिचकाता है।)

पुरुष : और इनका तनाव बाहरके लोगोंमें तनाव पैदा करता है। बन्द और अधखुली चीज़ोंकी ओर लोग अधिक खिंचते हैं। और इसीलिए कई बार आप समझती हैं कि आप बन्द हैं और आपको किसीने देखा नहीं है जब कि बहुत लोग आपको देख चुके होते हैं। (अनिता सिहर जाती है।)

पुरुष : तब ये परदे मुझे बेकार लगते हैं। (अनिता परदा खोलती है, फिर झटकेसे बन्द कर देती है।)

अनिता : नहीं-नहीं। रात अधिक हो गयी है और यह उठती ठण्डका आठ, लगता है बारह बज गये हैं। नहीं, आप जाइए। (झल्लाकर) मैं कहती हूँ, आप चले जाइए।

(पुरुष जैसे विरोध करनेके लिए ही सोफ़ेपर पसर जाता है। अनिता झपाटेसे उसके पास आकर बैठ जाती है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिता : पराये घर में तुम्हारा ऐसे जमना···· ओफ् हद दरजेकी बेशरमी है !

पुरुष : पराया घर ?

अनिता : तब ?

(पुरुष केससे सिगरेट निकालता है ।)

पुरुष : यह मेरा अपना घर है ।

अनिता : (हैरतसे) तुम्हारा घर । हाय, आज तुम्हें क्या हो गया है ! राजा, आज कैसे बहक····

पुरुष : राजा नहीं, एम० के० माहिवाल ।

अनिता : क्या तुम राजा नहीं ?

पुरुष : क्या तुम अनू नहीं ?

अनिता : उफ् !

माहिवाल : अनू जिस दिन मरी, राजा उसी दिन मर गया और उसकी मौतकी ज़िम्मेदारी भी तुम्हारे सिर है । एक हत्या वह होती है जिसमें अपराधीको खुले आम अपराध क़ुबूल कराकर सज़ा दी जाती है और एक हत्या यह है जब हत्यारा खुद खुले आम हत्याका इज़हार कर आनन्द लूट रहा है ।

(अनिता सोफ़ेकी पीठपर हाथ और हाथपर मुँह रख सुबकने लगती है । पुरुष थोड़ी देर तक स्थितप्रज्ञ-सा इधर-उधर देखता है, फिर उठकर कमरेमें भारी क़दमोंसे टहलने लगता है—जैसे क़दमोंके द्वारा कमरेका क्षेत्रफल नापना चाहता हो । कुछ देर गहरा सन्नाटा ।)

माहिवाल : (इस्पाती दृढ़तासे) मैं इसके लिए भी तैयार होकर आया था कि शायद तुम रो पड़ी । (अनिता सिसकती रहती हैं ।) मैंने बहुत कोशिश की कि स्त्रियोंके रोनेके पहले खुद रो पड़ूँ, पर नाकाम रहा ।

(अनिताकी सिसकी पूर्ववत् ।)

माहिवाल : (दार्शनिक मुद्रामें) स्त्री जब रोती है, तो पुरुष सहम जाता है । पुरुष जब रोता है, तो स्त्री हँसने लगती है ।

(बाहर दरवाज़ेपर दस्तक होती है । अनिता घबड़ाकर उठती है ।)

अनिता : कोई आया क्या ? (आँचलसे आँख पोंछती है) शकुन आनेवाली थी ।

माहिवाल : मेरी समझमें दस्तक सामनेके मकानपर है ।

(अनिता दरवाज़े तक जाती है और खोलकर बाहर झाँकती है । दरवाज़ा बन्द कर लौटती है ।)

अनिता : नहीं, कोई नहीं । पर यदि वह आ गयी होती तो !

माहिवाल : कौन ?

अनिता : शकुन ।

माहिवाल : शकुन कौन ?

अनिता : हमारी नौकरानी । आ जाती तो··· ग़ज़ब हो जाता ! (दीवालकी आलमारीतक पहुँचकर खड़ी हो जाती है) जब तुम आये थे, तब मैंने कह रखा था कि तुम उनके देर हो और शीघ्र ही चले जाओगे । (टाइमपीस उठाकर चाभी भरने लगती है ।)

माहिवाल : शीघ्र जानेकी बात तुमने कही । तुम अकसर ज़रूरतसे ज़्यादा देर जाती हो ।

अनिता चाभी ऐंठना शीघ्र समाप्त कर टाइम-पीस आलमारीपर पटक देती है ।)

अनिता : (उत्तेजनामें) तो क्या तुम सदाके लिए रहने आये हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहिवाल : शायद ।

अनिता : यह उनका अपमान है । यह उनका घर है, सिर्फ़ उनका । इस घरके साथ न जाने हमारी कितनी स्मृतियाँ जुड़ी हैं । हम दोनोंके साथ यह घर परिवारके सदस्यकी भाँति रहा—सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी ।

माहिवाल : हुँह ।

अनिता : जब वे नहीं रहे····। (आँसू उँगलीसे गिराती है ।)

माहिवाल : (बेहद ठण्डे स्वरमें) तुम्हारा पति जीवित है ।

(अनिता प्रचण्ड अविश्वासकी दृष्टिसे उसकी तरफ़ देखती है ।)

माहिवाल : तुम्हारा पति तुम्हारे सामने है ।

अनिता : क्या !

माहिवाल : (उसी ठण्डे स्वरमें) मैं तुम्हारा पति हूँ ।

अनिता : (दाँत पीसती हुई) नीच, कितने नीच हो तुम !

(क्रोध और उन्मादमें एक-एक करके सोफ़ेकी सारी गद्दियाँ उसपर फेंकती है । वह निश्चल खड़ा हुआ उनकी मार सहता है । इस प्रयत्नमें अनिताके बाल बिखर जाते हैं । आँचल वक्षसे नीचे गिर पड़ता है और चेहरा काफ़ी विकृत हो जाता है । माहिवाल सौम्य मुद्रामें है ।)

अनिता : तुम्हें इस तरह मेरा मज़ाक़ करनेका क्या हक़ है ? नहीं, यह मज़ाक़ नहीं, षड्यन्त्र है, या कोई····(जैसे उपयुक्त शब्द ढूँढ़नेके लिए रुकी हो) कोई और गिरी हुई चीज़ । (माहिवाल आलमारी तक पहुँचता है, जो ठीक उसीके क़दकी है । आलमारी घुमाता है । अनिता झटकेसे उसके सामने पहुँचती है और आलमारीके दूसरी तरफ़ आकर घुमावको रोकती है ।)

अनिता : मुझसे परिचयका, मेरे पिछले जीवनके सम्बन्धोंका फ़ायदा उठाकर तुम मुझे बहकाने आये हो । मैंने काँचको हीरा समझा था और आज मुझे अपनी समझपर हँसी आ रही है ।

(माहिवाल व्यंग्यसे क्षीण हँसी हँसकर, खिड़की तक पहुँचता है और परदेके ऊपरसे बाहर झाँकने लगता है । अनिता क्रुद्ध होकर आलमारीको ज़ोरसे घुमाकर उस तक आ जाती है । आलमारी घूमती रहती है और पुस्तकें गिरती रहती हैं ।)

अनिता : (तीखे स्वरमें) बाहर कितना अँधेरा है और यह अँधेरा तुम्हारे-जैसे आदमियोंके दिलसे निकला है । तुम लोग अपने साथ अमावस्या लेकर उतरे हो !

माहिवाल : (दबे स्वरमें) धीरे बोलो । हमारी बच्ची सो रही है ।

अनिता : हमारी बच्ची····! हुँह । मैंने प्रेम किया था पर अपनी स्वतन्त्रता नहीं बेची थी । इसलिए तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि तुम मेरे व्यवहारके लिए सफ़ाई माँगो । मैंने तुमसे विवाह नहीं किया, नहीं किया । मैं तुमसे घृणा करती हूँ, घृणा !

माहिवाल : यही तो मैं जानना चाहता हूँ कि आखिर क्या करिश्मा हुआ कि तुम्हारा निर्णय बदल गया ।

(अनिता दीवारकी आलमारी तक जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कैबिनेट साइज़का फ्रेममें जड़ा चित्र उठाकर गम्भीरतासे देखती है। चित्रका व्यक्ति मिलिटरी पोशाकमें है।)

अनिता : (चित्र उसकी तरफ़ करती हुई) सौभाग्यसे मुझे ऐसा आदमी मिला, जिसे मैं पूज सकूँ, जो इतना अच्छा था कि अच्छेसे अच्छे फ़ोटोग्राफर उसके वास्तविक व्यक्तित्व-को उतार नहीं सके। वह फ़ोटोसे कहीं ज़्यादा अच्छा था।

(माहिवाल जैसे ऊबकर बाहर देखता है, फिर खिड़की छोड़कर दीवालपर लगे दूसरे चित्रोंको देखने लगता है।)

अनिता : (माहिवालके पीछे-पीछे चलते हुए) तुम ईर्ष्यालु हो, दूसरेकी प्रशंसा कैसे सुन सकते हो ! फिर मैं उस पुरुषके बारेमें कह रही हूँ, जिसका व्यक्तित्व इतना प्रखर था···· इतना कि····उसने मेरा कभी कोई कहना नहीं माना, जिस प्रकार सर्विसेसमें आज्ञा देता था वैसे ही घरमें। वह सिर्फ़ कहना जानता था, सुनना नहीं।

(अचानक घड़ीका अलार्म बज उठता है। अनिता घबड़ा जाती है। चित्र गिरते-गिरते बचता है। माहिवाल कभी अनिताकी ओर और कभी घड़ीकी ओर देखता है।)

अनिता : ओफ़्। (दौड़कर अलार्म बन्द करती है और चित्र आलमारीपर रखकर माहिवाल तक लौटती है।)

अनिता : कोई आनेवाला है। आप जाइए, शीघ्र जाइए यहाँसे ?

माहिवाल : किसे आना है ?

अनिता : (घबड़ाहटमें) किसीको भी नहीं,····लेकिन आप जाइए।

माहिवाल : (ठण्डे स्वरमें) अलार्म क्या तुमने भरा था ?

अनिता : उनकी आदत थी कि जिसके आने-का समय नियत होता था, उस समयके लिए अलार्म भरते थे।

माहिवाल : और तुमने भी···क्या शकुन आनेवाली है ?

अनिता : हाँ-हाँ ! शकुन ! शकुन ही आ रही है।

माहिवाल ((ठण्डे स्वरमें) उसे आने दो। सारी बात खुल जाये।

(माहिवाल सोफ़ेपर बैठनेका उपक्रम करता है। अनिता उसका हाथ पकड़ खींचती है।)

अनिता : (लगभग चीख़कर) नहीं। मैं अपनी पिछली ज़िन्दगी····आजकी ज़िन्दगी···· किसीपर बहस नहीं करना चाहती।

(दरवाज़ेकी कॉलबेल बजती है। वह दर-वाज़ेकी ओर दयनीय दृष्टिसे देखती है।)

अनिता : (तीव्रतम आवाज़में) जाओ! (आँखसे आँसू निकल जाते हैं। माहिवाल हतबुद्धि-सा दरवाज़ेकी ओर बढ़ता है पर अनिता उसे भीतरके कमरेकी ओर घसीटती है।)

अनिता : भीतरके कमरेसे बाहर चलो। (अनिता घसीटती हुई उसे भीतर ले जाती है। थोड़ी देर तक स्टेज ख़ाली। ख़ालीपन-को चीरती हुई रह-रहकर कॉलबेलकी घन-घनाहट। थोड़ी देरमें अनिता हाँफती हुई वापस आती है। आँचल वक्षपर डालती है। बालोंपर हाथ फेरती है और सँभलनेकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस्तकोंके बाद दरवाज़ा खोलती है। मिलिटरी पोशाकमें एक भरा-पूरा व्यक्ति प्रवेश करता है। फ्रेंचकट मूँछोंसे बना असामान्य चेहरा। हाथमें मिलिटरी केन। कन्धेके सितारे उसके कैप्टेन होनेका संकेत देते हैं। कुछ उत्तेजित अवस्थामें है।)

कैप्टेन : कितनी देरसे घण्टी बजा रहा हूँ···· क्या कोई अन्दर था ?

अनिता : (सकपकाकर) नहीं तो, नहीं तो। आप बैठिए न। आपकी तो बैठनेकी आदत ही नहीं। लगता है, आप खड़े-ही-खड़े शादी करेंगे।

कैप्टेन : तुम किसपर बरस रही थीं—"जाओ""जाओ।"

अनिता : वो सो मैं बच्चीसे कह रही थी—सो जाओ""सो जाओ।

कैप्टेन : और वह सो गयी ?

अनिता : सो गयी।

कैप्टेन : (तीखे स्वरमें) तुम्हें यह नहीं मालूम कि सुलानेके लिए थपकियोंकी ज़रूरत होती है, धमाकोंकी नहीं। अनिता, कितनी फूहड़ हो तुम !

(कैप्टेन सिगरेट-केस मेज़पर फेंकता है। आलमारीके पास पहुँचकर ट्रांसिस्टरका स्विच ऑन करता है और सुई खिसकाने लगता है।)

अनिता : (पास पहुँचकर) मैं आपका कितना इन्तज़ार करती रही।

कैप्टेन : (अभी भी बिगड़ा चेहरा लेकर) पर मैंने तो साढ़े आठ बजे ही आनेको कहा था।

अनिता : सो तो है। पर यह मालूम होनेपर कि कोई आनेवाला है, प्रतीक्षा तो रहती ही है। फिर आपके आनेकी···

(ख़ास अन्दाज़से मुसकराती है। कैप्टेन ट्रांसिस्टर बन्द कर देता है और खिड़की तक पहुँचता है और फिर टहलने लगता है।)

अनिता : बैठिए, मैं चाय बनाकर लाती हूँ।

कैप्टेन : नहीं, शीघ्र जा रहा हूँ। मुझे एप्वाइण्टमेण्ट रखना था, इसलिए आ गया। नहीं तो अचानक हेडक्वार्टर्ससे कॉल आ गया था। अब सीधे वहीं जाना है।

अनिता : (रूठती-सी) आपको तो हमेशा ही काम लगा रहता है। आपने शायद दो बार ही यहाँ चाय पी है।

कैप्टेन : नहीं, तीन बार।

अनिता : (अपने बालोंसे खेलती हुई) आप जिस क्षण यहाँसे जाते हैं, आपके आनेकी प्रतीक्षा शुरू हो जाती है।

कैप्टेन : क्या कनी सो गयी है ?

अनिता : हाँ। अब यह दूरी असह्य हो रही है। मुझे तो ऐसा लगता है कि ये रात-दिनकी धाराएँ मुझे डुबाकर ही रहेंगी।

(कैप्टेन किताबोंकी आलमारी पास जाकर, झुककर किताबें उठाता है।)

कैप्टेन : यह क्या ? अनिता डियर, तुम कबसे इतनी असावधान हो गयी !

अनिता : इन्हीं किताबोंकी तरह मेरी ज़िन्दगी भी बिखरकर रह जायेगी।

कैप्टेन : उफ़्।

(किताबें आलमारीपर जमाता है और उसे घुमाकर दीवालकी आलमारी तक पहुँचता है। अनिता आलमारीको रोककर उलटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशामें घुमाती है।)

अनिता : मेरी ज़िन्दगी जिस ओर बह रही है, उससे उलटी दिशामें मैं बहा देना चाहती हूँ। कैप्टेन, तुम नहीं जानते कि मैं अपनेसे कितना लड़ रही हूँ।

(कैप्टेन आलमारीसे चित्र उठाकर उसे घूर-घूरकर देखता है।)

कैप्टेन : मैं कहीं ज़्यादा लड़ रहा हूँ अपनेसे। (सोफ़ेकी पीठपर बैठनेकी मुद्रामें खड़ा हो जाता है) एक वे लोग होते हैं जो मरते समय अपनी पत्नी और बच्चोंको अपने मित्र-के हाथ सौंप जाते हैं, और एक वे लोग होते हैं जो पत्नीको हड़पनेके लिए मित्रकी मौतकी प्रतीक्षा करते हैं। नहीं। अनिता, नहीं। यह नाटक बन्द होना चाहिए। यह विवाह नहीं हो सकता।

अनिता (पास आकर) : क्यों नहीं हो सकता ?

कैप्टेन : मुझे अब बार-बार एहसास होने लगा है कि मैं सिनहाको जैसे धोखा दे रहा हूँ। यदि वह जीवित होता, तो मैं उससे लड़कर तुम्हें ले लेता, लेकिन, उसके मरने-पर मुझे ही उसे देना चाहिए।

(अनिता दूसरे सोफ़ेकी पीठसे सट जाती है। अन्यमनस्क-सी मालेके मोतियोंको दाँतोंसे चरमरा देना चाहती है।)

कैप्टेन : सिनहाकी खातिर ही मुझे यह···· लोग कहेंगे कि मैंने ही सिनहाको··· हम दोनों फ़्रण्टपर साथ-साथ थे, जब उसकी मृत्यु हुई! नहीं-नहीं····

(फ़ोटोसे मुँहको छिपा लेता है। अनिता गहरे विस्मयमें डूब जाती है।)

अनिता : जब मैं ही तैयार हूँ, जब मैं ही आगे बढ़कर आपकी उँगली पकड़ रही हूँ तब·····

कैप्टेन : तभी तो सावधानीकी आवश्यकता है, कि जो तुम्हें आगे ले जाना चाहता है वह पूरी तरह आगेका रास्ता जानता हो।

(तेज़ीसे आलमारी तक जाता है। फ़ोटो रखता है और बाहरके दरवाज़ेकी ओर बढ़ता है।)

अनिता : (करुणार्द्र स्वरमें) रुकिए, रुकिए तो। (हाथ पकड़ लेती है।)

कैप्टेन : अब रुकूँगा तो···। नहीं, अनिता।

(अनिता खींचनेका प्रयास करती है।)

कैप्टेन : (रोषदीप्त प्रखर स्वरमें) अनिता ऽ ऽ ऽ !!

(अनिता सहमकर हाथ छोड़ देती है। कैप्टेन दरवाज़ा खोलकर बाहर चला जाता है और अनिता सोफ़ेपर गिरकर ज़ोर-ज़ोरसे सिसकने लगती है। माहिवाल भीतर आकर अनिताके पास खड़ा हो जाता है।)

माहिवाल : तो शकुन आकर चली गयी!

(अनिता चौंक जाती है।)

अनिता : (विस्मयसे) तुम ?

माहिवाल : मैं खिड़कीके परदेके उस पार था, जहाँसे कमरेका कुछ भी नहीं दिखाई देता।

अनिता : उफ़्! (सोफ़ेपर गिरकर सिसकने लगती है।)

माहिवाल : तुम कितनी ख़ूबसूरत लग रही हो। रोते समय भी तुम इसका ख़याल रखती हो कि ख़ूबसूरत लगो।

(अनिता उठकर बैठ जाती है। आँखें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखोंपर है।)

माहिवाल : जिस ढंगसे तुमने सिनहाके प्रति वफ़ादारी दिखायी, उससे मुझे लगा कि इस घर-में इस समय केवल शकुन ही आ सकती थी·····किन्तु यह सिगरेट-केस·····शकुन तो सिगरेट नहीं पीती न ?

(अनिता उत्तेजित होकर तीखी दृष्टिसे उसकी ओर देखती है।)

माहिवाल : यह नये अध्यायका मंगलाचरण है या भरतवाक्य ? (हँसकर) मैंने अकसर स्त्रियोंको भीतर तक खोखली पाया है·····। ये दूसरे बच्चेको आसानीसे पतिका बच्चा बता सकती हैं। मैंने उसके इस रूपको भीतरसे देखा है, तभी तो मैं कहता हूँ कि वे भीतरसे खोखली होती हैं। कर्नीके बारेमें·····मैं समझता हूँ।

(अनिता सोफ़ेपर अकड़-सी जाती है। मुट्ठियाँ भिंच जाती हैं।)

अनिता : क्या समझते हो ?

माहिवाल : यही कि हमारे प्रेमने जिस फूल-को जन्म दिया, उसे तुमने कर्नी नाम दिया।

अनिता : (चीख़कर) झूठ है यह ! कर्नी हमारी बच्ची है। मेरी और सिनहाकी।

माहिवाल : यह तुमने सिनहाको समझा दिया था और उसके बाद दुनियाको कि कर्नीकी फ़ि-मेच्योर·····पतिका विश्वास जीतकर तुमने सारी दुनियाका विश्वास जीत लिया। अनिता, अब शायद मेरा फिर यहाँ आना तुम्हें अच्छा लगा हो। (कुटिलतासे मुस-कराता है।)

अनिता : तुम ग़लतीपर हो। तुम मेरे कुछ भी नहीं। मैं तुम्हें देखना भी पसन्द नहीं करती। चले जाओ यहाँसे।

माहिवाल : अनू, न जाने तुम कैसे इतनी बदल गयी हो। मैं अपने कानोंपर विश्वास खो बैठा, जब मैंने पहली बार सुना कि तुमने सिनहासे विवाह कर लिया, और तब भी मैं चुप रहा।

अनिता : और तुम कर ही क्या सकते थे ?

(अनिता तनकर खड़ी हो जाती है।)

माहिवाल : हाँ, जब 'यी टू ब्रूटस' का सवाल हो, तब किया ही क्या जा सकता है !

अनिता : माहिवाल, तुमने कभी अपनेको भीतर झाँककर नहीं देखा। तुमने यह नहीं जाना कि स्त्री क्या चाहती है। तुम्हारी सदा-शयताने ही मेरे हृदयमें तुम्हारे प्रति घृणा उत्पन्न की है। कई बार मुझे ऐसा लगा कि तुममें पुरुषत्व कम, स्त्रीत्व ज़्यादा है।

(माहिवाल बदहवास-सा हो जाता है।)

अनिता : कई बार मुझे ऐसा लगा कि तुम मुझसे भी बहुत ज़्यादा कमज़ोर हो। कई बार ऐसा हुआ कि तुम्हारे एप्वाइण्टमेण्ट्सपर मैं नहीं पहुँची, किन्तु हर बार ऐसा हुआ कि तुम मेरे एप्वाइण्टमेण्ट्सपर आये, जैसे मुझे नकारनेका तुममें साहस ही नहीं था।

माहिवाल : मेरी ईमानदारीको····।

(अनिता उन्मुक्त रूपसे हँसती है, जैसे उन्मादग्रस्त हो।)

अनिता : कमज़ोर आदमीकी ईमानदारी···· (हँसती है) माहिवाल, कमज़ोर भी कभी ईमानदार हो सकता है ! (हँसकर एकाएक गम्भीर हो जाती है) तुम्हारी तुलनामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिनहा पौरुषसे ठसा हुआ था। वह किसीसे लेना चाहता तो बलपूर्वक लेता था, तुम्हारी तरह भीख माँगकर नहीं। रास्तेके पत्थरको वह ठोकर मारकर अलग करता था, तुम्हारी तरह बचकर नहीं निकल जाता था।

माहिवाल : जिसने शादीके तुरन्त बाद दूसरेसे प्रेमका ढोंग किया, उसके मुँहसे यह बात बहुत अच्छी लग रही है!

अनिता : (अनसुना कर) कैप्टेन सिंहमें मैंने अपने पतिकी छाया देखी—वैसे ही रोबदार, अपनी बातपर अड़नेका हठ, चलते समय मुझसे रास्ता न पूछनेकी बात और प्रचण्ड आत्मविश्वास! (उत्तेजित होकर) तुम जितनी बार मेरे घर आये, जैसे चोरीसे। मेरे माता-पितासे डरते थे, जैसे किसीने ज्वेलरीकी दूकानमें नज़र बचाकर नेकलेस जेबमें रख लिया हो। तुमने कैप्टेन सिंहको नहीं देखा, माहिवाल, वह आते तो मैं खुद नेकलेस-चोरके समान दुबक जाती, जैसे उनका ही घर हो और उनके माता-पिताके मना करनेपर भी मैं उनसे मिलने आयी हूँ।

माहिवाल : (मुँह बनाकर, जैसे कुनैनकी गोली खायी हो) हुँह!

अनिता : एक तुम हो। मेरे घरके सामनेसे निकलते समय काँप जाते थे, इसीलिए अँधेरेमें घरके चक्कर लगाते थे, लोगोंके बीच मुझे लेकर चलनेमें तुम्हें दहशत होती थी। ऐसा पुरुष जो कहीं भी झुक सकता हो, कभी भी टूट सकता हो, उसे मैं····उसे मैं ही क्यों, कोई भी स्त्री···

(अनिता हँसती है। माहिवाल खड़ा हो जाता है। हाथोंमें तनाव है। चेहरेपर असाधारण खिंचाव है। अन्तरका द्वन्द्व बाहर आना चाहता है।)

अनिता : उस दिनकी बात तो····(हँसती है) जब तुमसे सारे सम्बन्ध तोड़नेकी बात चली थी, जब सिनहासे विवाहकी बात कही थी···· तुम ऐसे पीले हो गये, जैसे तुम्हारा सारा खून स्क्वीज़ कर दिया गया हो, जैसे तुम वर्षोंके बीमार व्यक्ति और बीमार हो गये हो···तुम बहुत बोलना चाहते थे और यहाँ तक कि तुम्हारी हथेली मेरे पैरकी उँगलियों तक पहुँच गयी थी। तुम इतने नीचे गिर सकोगे····

(व्यंगसे हँसती है। माहिवाल अत्यन्त उत्तेजित अवस्थामें पुस्तकोंकी आलमारीको पकड़कर झझकोरने लगता है।)

अनिता : मैं सोच भी नहीं सकती थी कि जिसे मैं प्रेम करती थी, वह ऐसा होगा। स्त्रियाँ भी····जिससे ग़लतियाँ होती हैं, उसे क्षमा नहीं करतीं, किन्तु तुमने बार-बार सज्जनताका स्वाँग रचा। जिसमें लड़कर लेने-की आदत नहीं, जिसमें अपनेको असर्ट करने-की आदत नहीं, माहिवाल, मैं उसे कायर और नपुंसक कहती हूँ!

(माहिवाल आलमारीको तेज़ीसे घुमाकर खिड़की तक पहुँच जाता है। परदा खींच देता है और आलमारीकी फ़ोटो बाहर फेंक देता है। फिर कैप्टेनका सिगरेट-केस दीवार-पर दे मारता है और बिखरी हुई सिगरेटोंको कुचल देता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिता : हाय- हाय ! यह क्या कर रहे हो। (माहिवाल अनिताको थप्पड़ और घूँसे मारना शुरू करता है, .खूब मारता है, बेरहमीसे मारता रहता है। अनिता चीख़ती-चिल्लाती है।)

अनिता : ओफ़् राजा, तुम····तुम····तुमने मुझपर····!

(अनिता ज़ोरसे रोने लगती है। अन्दर बच्ची चीख़ती हुई सुनाई पड़ती है। माहिवाल हाँफकर बैठ जाता है और अनिता भागती हुई अन्दर चली जाती है। माहिवाल टेबलपर पैर रखता है। जेबसे सिगरेट निकालकर सुलगाता है।)

■ ■

[पृष्ठ १६६ का शेष : आप बहरे हैं]

रोगियोंका पता सबसे पहले दिया है। उन्होंने लिखा है :

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत,
खिलत, लजियात।

भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात॥

प्रेमी और प्रेमिका मुँहसे कहकर कानसे नहीं सुनते, आँखोंसे कहकर आँखोंसे ही सुनते हैं ! कानोंसे न सुननेका कारण भी उन्होंने बता दिया है :

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह-निकसे बैन।
याही तैं मानहु किये बातनु कौं विधि नैन॥

प्रेमी-जनोंका विश्वास है कि कानों सुना झूठ होता है और आँखों सुना सच। स्पष्टतः इस अलर्जीका कारण पूर्णतया मानसिक है और उसका उपचार चरित्रोत्थान और हृदय-परिवर्तनसे ही किया जा सकता है जिसकी सद्भावना कमसे कम हमारे युगमें तो दिखाई नहीं देती।

दण्डश्रद्धा : संसारके अधिकांश लोग (पशुओंका तो कहना ही क्या) केवल दण्डकी भाषा समझते और दण्डका स्वर सुनते हैं। ज्यों-ज्यों दण्डका लोप होता जा रहा है त्यों-त्यों उनका रोग बढ़ता जा रहा है। दार्शनिकता और दया तो उनके नक्कारखानेकी तूतियाँ बन गयी हैं। स्पष्टतः इनका उपचार तभी हो सकता है जब शासक सामके साथ-साथ दण्डका महत्त्व भी फिरसे पहचान लेंगे। यह पहचान उत्पन्न करनेके लिए इस मन्त्रका नित्य-पाठ करवाया जा सकता है—'शठे शाठ्यं समाचरेत्।'

बहरोंकी इतनी कोटियाँ देखकर तो आपको विश्वास हो गया होगा कि आप बहरे हैं। आपको यह दुःखद अनुभूति करवाते हुए हम भी सुखी नहीं हैं क्योंकि पर-छिद्रान्वेषणकी चूक हमसे हो गयी है। यदि आप अपने छिद्रोंके प्रति सजग होकर उन्हें सफल बनानेके लिए सचेष्ट हो गये तो हमें क्षमा माँगनेकी आवश्यकता नहीं होगी।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

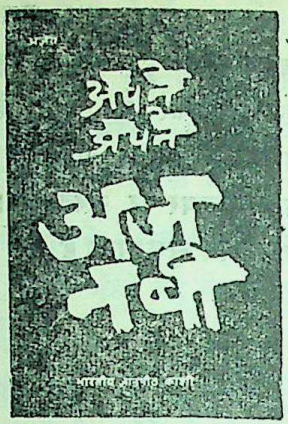

अपने अपने अजनबी

•

'शेखर' और 'नदीके द्वीप'के बाद

अज्ञेय द्वारा लिखित

एक और अद्वितीय उपन्यास

•

मूल्य ३.००

मृत्युसे साक्षात्कारको विषय बनाकर जीवन और नियतिका सरल मार्मिक विवेचन। मृत्यु-विषयक पूर्व और पश्चिमकी दृष्टियोंकी टकराहट, दोनोंके मिलन-द्वारा मानव-जीवनके एक नये आयामका उन्मेष।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये-वे विचार

टिप्पणियाँ

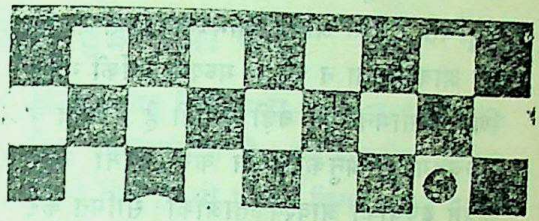

• राष्ट्रोत्थानमें नारियोंका उत्तरदायित्व

भारतमें नारी-शिक्षाके प्रसारके साथ ही नारियोंमें अपने अधिकारोंके प्रति जागरूकता उत्पन्न होती जा रही है। राजनीतिके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमें भी नारियाँ प्रगति-पथपर अग्रसर हैं, किन्तु यदि समग्र रूपसे भारतीय नारियोंकी स्थितिपर विचार किया जाये तो परिणाम विशेष सुखद एवं आशाप्रद नहीं दिखाई पड़ते, अशिक्षित नारियोंकी बात छोड़ भी दी जाये और शिक्षिता नारियोंके सम्बन्धमें विचार किया जाये तो देखा जायेगा कि उन्होंने फ़ैशन एवं जीवन-स्तरको ऊँचा उठानेमें भले ही योग दिया हो, राष्ट्रके नैतिक एवं आर्थिक उत्कर्षकी दिशामें उनके योगको प्रशंसनीय नहीं कहा जायेगा।

आधुनिक नारी अपने 'रमणी' रूपको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देती है और अपने 'माँ' रूपको उतना गौरव नहीं देती। देशके लिए स्वस्थ, बुद्धिमान् और कर्त्तव्य-परायण नागरिकोंका निर्माण वस्तुतः स्त्रियोंके हाथमें ही है। कहा जाता है कि माँके रहन-सहन एवं उसकी मनोवृत्तियोंका प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर भी पड़ता है। बचपनके तीन-चार वर्षोंमें बालकपर सर्वाधिक प्रभाव उसकी माँका ही रहता है। इस कालमें यदि नारी अपने कर्त्तव्यको अच्छी तरह समझ लेती है तो वह समुचित आहार-विहारके द्वारा अपने बच्चेके स्वास्थ्य और चरित्रके विकासकी दिशामें विशेष योग दे सकती है। माताएँ चाहें तो प्रारम्भसे ही अपने बच्चोंमें शुभ संस्कार डाल सकती हैं। मौखिक शिक्षाके साथ ही उन्हें अपने आदर्श व्यवहार-द्वारा भी उनपर प्रभाव डालना चाहिए। यदि माँका व्यवहार परिवारके सदस्यों एवं सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंके साथ विनम्र, सहिष्णु एवं उदार है तो निश्चयतः उसके बालकपर वांछित प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। यदि माँ चाहे तो बच्चेमें क्षुद्र स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तियोंके स्थानपर समाजहितकारी तथा राष्ट्रीय भावनाओंके बीजोंका वपन कर सकती है।

आज राष्ट्रके विविध क्षेत्रोंमें भ्रष्टाचार और अनैतिकताकी प्रचुरता देखनेमें आ रही है। क्या इस भ्रष्टाचार एवं अनैतिकताके उन्मूलनमें स्त्रियाँ कुछ योग दे सकती हैं? अवश्य! यदि स्त्रियाँ कटिबद्ध हो जायें तो वे इस दिशामें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभूतपूर्व सफलता पा सकती हैं। यदि गृहिणी घरमें आनेवाली नियमित आयके अनुसार गृहस्थीका संचालन करनेमें समर्थ हो जाती है तो घरके मुखिया अथवा अन्य सदस्योंको अनुचित रीतिसे अधिक आमदनी प्राप्त करनेकी आवश्यकता न पड़े। मध्यम वर्गकी गृहिणियोंके सामने एक बड़ी चुनौती है। यदि वे उच्चवर्गका अनुकरण न कर अपनी और अपने बच्चोंकी आवश्यकताओंको सीमित कर लें, मितव्ययिताको अपना लें और घर-गृहस्थीके कार्योंको अपने हाथोंसे ही करनेमें गौरवका अनुभव करें तो वे अल्प आयमें भी अपने कुटुम्बको सन्तुष्ट और सुखी रख सकती हैं। वे चाहें तो अपने बच्चोंका सहयोग लेकर, छोटे-मोटे गृह-उद्योगोंका सहारा लेकर कुटुम्बकी आयमें भी वृद्धि कर सकती हैं।

स्त्रियोंकी दृष्टिसे यह तथ्य छिपा नहीं रहता कि उनके पति अथवा कमानेवाले सदस्य भ्रष्टाचार अथवा अनैतिक कार्योंके द्वारा अपनी आय बढ़ाते हैं। यदि स्त्रियाँ चाहें तो पुरुषोंको उनके इन अराष्ट्रीय-अनैतिक कार्योंसे उपरत करा सकती हैं। उनके संयमपूर्ण सात्त्विक जीवनका प्रभाव पुरुषोंपर पड़े बिना नहीं रह सकता। स्त्रियोंको इस तथ्यपर जोर देना चाहिए कि परिश्रम एवं ईमानदारीसे अर्जित अल्प आय भी परिवारमें सुख और सन्तोषका उद्भव करा सकती है। आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न परिवारोंमें भी सुख और सन्तोष कहाँ रहता है? भले ही ऊपरी तौरसे वे समृद्ध दिखाई देते हैं किन्तु वैभवकी लालसा उन्हें निन्यानबेके फेरमें फँसाये रखती है और उनका चित्त सदा अशान्त ही रहता है। अर्थ भौतिक समृद्धि ही सुखकी जननी है—यह कथन सर्वथा भ्रामक है। वैभव अथवा सम्पन्नता अपने-आपमें कोई बुरी चीज नहीं है किन्तु जो समृद्धि दूसरोंका शोषण करके, अपने देशवासियोंके अधिकारोंका अपहरण करके प्राप्त की जाती है उसे विषतुल्य समझा जाना चाहिए।

परिवारोंकी समष्टि ही तो राष्ट्रकी संज्ञा प्राप्त करती है। यदि भारतके परिवारोंमें सुख-सन्तोष, सदाचार और नैतिकताका बहुत हो जाता है तो समग्र रूपसे राष्ट्र भी सर्वांगीण उन्नतिके पथपर अग्रसर हो सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि शिक्षित महिलाएँ भी अपना अधिकांश समय व्यर्थकी गप्पों तथा निन्दा-चुगली आदिमें व्यतीत करती हैं। यदि वे अपने अवकाशको निर्माणकारी कार्योंमें व्यतीत करें तो कितना अच्छा हो! पास-पड़ोसकी स्त्रियोंके साथ यदि कला, शिल्प, पाकशास्त्र, बच्चोंकी शिक्षा आदि विषयोंपर बातचीत की जाये तो व्यर्थकी कलहके स्थानपर कुछ व्यावहारिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

सिनेमा एवं पाश्चात्य संस्कृतिसे प्रभावित हो भारतकी आधुनिक नारियाँ भी अधिक फ़ैशनपरस्त होती जा रही हैं। नारीसुलभ लज्जा, शील, विनय, सहिष्णुता आदि गुणोंकी गरिमा उनके सामने महत्त्व खो रही है। फ़ैशनकी गंगामें नहाकर वे अपने रूप और अंगोंके अधिकाधिक प्रदर्शनमें ही अपने नारीत्वकी सार्थकता समझने लगती हैं। इसका परिणाम यही होता है कि पुरुष उन्हें अपनी वासना और उपभोगकी सामग्री मात्र समझने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हगता है। अतः श्रेयस्कर यही है कि नारियाँ अपने दृष्टिकोणको बदलें ताकि वे पुरुषोंको भोग्या नहीं सच्चे अर्थमें उनकी सहधर्मिणी बन सकें, पुरुषोंको सही दिशामें अग्रसर करानेकी सत्प्रेरणा दे सकें।

—कुसुम शुक्ल

• राजा राममोहन रायको भूलती हुई नयी पीढ़ी

श्री सी० एफ० एण्ड्रूज़ने १९३८ में कहा था: "यह सत्यता-सहित कहा जा सकता है कि उनके चरित्र (राममोहन) और व्यक्तित्वने एशियाका मुखड़ा ही बदल डाला और गहराईसे यूरॅप और उसकी चिन्ताधाराको प्रभावित किया।" अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार राममोहन रायने एशियाका मुखड़ा ही बदल डाला? उत्तर केवल इतना ही है—आधुनिक चिन्ताधारासे। परन्तु आजकी नयी पढ़ी, जो आधुनिक होनेका दावा करती है, उसी व्यक्तिको भूलने लगी है जिसने एशिया तकका मुखड़ा बदल दिया।

यह कैसी विडम्बना है कि वर्तमान पीढ़ी राजा राममोहन रायको भूलती जा रही है; जब कि राजा राममोहन राय ही पुरानी रूढ़ियोंको तोड़नेका साहस करनेवाले प्रथम व्यक्ति हैं, और आधुनिकताकी ओर बढ़नेवाले प्रथम भारतीय विद्वान्! वे केवल भारतीय ही नहीं वरन् विश्वके भी युग-प्रवर्तक कहे जा सकते हैं—यह श्री एण्ड्रूज़के उपर्युक्त वक्तव्यसे ज्ञात हो जाता है। जहाँतक एशियाके उन्नतिकी बात उठती है; राममोहन राय ही भारतमें आधुनिक युगकी आधारशिला रखनेवाले प्रथम व्यक्ति थे, जिसके द्वारा एशियाके पूरे दायरेमें ही उन्होंने अपना भवन तैयार किया। यह चिन्ताधारा, मेरा तात्पर्य आधुनिक चिन्ताधारासे है; क़रीब-क़रीब प्रत्येक क्षेत्रके लिए ही थी। इसी चिन्ताधाराने मध्ययुगीन एशियाके लिए एक उदाहरण रखा; इसीने एशियाको बदला और एक नवीन एशियाको जन्म दिया। राजा राममोहन राय हिन्दुओंके बीच हिन्दू थे, मुसलमानोंके बीच मुसलमान, ईसाइयोंके बीच ईसाई और बौद्धोंके बीच बौद्ध, क्या यह उनकी आधुनिक चिन्ताधाराका प्रथम सोपान नहीं है? गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोरने तो यहाँतक कह डाला: "राजा राममोहन राय अपने समयके, विश्वमें अकेले ही व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिक युगकी महत्ताको सम्पूर्ण रूपसे समझा।"— यह विचार गुरुदेवने १९३३ में राजा राममोहन रायकी मृत्यु-शतवार्षिकीके उपलक्षमें आयोजित सभाके सभापति पदसे व्यक्त दिया था।

आज जब आधुनिक भारतीय पीढ़ी, आधुनिक युगसे गुज़र रही है सभी यह भूलने लगे हैं कि राजा राममोहन रायने क्या-क्या किया। आज जब कोई युवती संस्कृतसे एम० ए० करके गायत्रीमन्त्र पाठ करती है तब उसका ध्यान उस ओर नहीं जाता कि यह अधिकार उसे किसने दिलवाया। आज जब विधवाएँ अपने बलबूतेपर अपनी जीविका उपार्जन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामाजिक अधिकार पा चुकी हैं तब किसीका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि सती-प्रथाकी धधकती आगसे बचाकर ले आनेवाला कौन था। आज जब स्त्री-शिक्षाका इतना प्रसार हो चुका है सब यह भूलने लगे हैं कि यह वरदान किसके वरद हस्तसे प्राप्त हुआ है। आज जब भारतमें स्वतन्त्र प्रेस अपना कार्य शिखर तक पहुँचा चुकी है तब कितनोंका ध्यान उस ओर जाता है कि अँगरेज़ोंसे भारतमें स्वतन्त्र प्रेसकी माँगपर किसने आजीवन संघर्ष किया और देश-प्रेमकी भावनाको पुस्तकों-द्वारा भारतके कोने-कोनेमें पहुँचानेमें सहयोग दिया। आज जब मैं अपनी सहेली फरज़ानाके साथ एक थालीमें खाना खाती हूँ तो भूलने लगती हूँ कि वह प्रथम व्यक्ति कौन था जो मुसलमानोंको भाई माननेकी शिक्षा देकर क़ुर्बान हो गया। इस्लाम धर्मकी भक्ति-मूलक पुस्तकें उन्हींकी भाषामें पढ़कर उन्होंने देखा कि धर्म सब एक हैं, सभी अच्छे हैं। आज जब अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्जातीय विवाह होते हैं तो सभी भूलते हैं कि राजा राममोहन राय ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों और उपनिषदोंको अन्धकारके गर्तसे निकालकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की लौको समाजमें खुले आम प्रज्वलित किया। गोत्रका पार्थक्य विवाहमें रखना ही अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्जातीय विवाहका छोटा रूप था, शास्त्रोंको निर्देशित कर उन्होंने कहा। जब जनसंख्या लघु थी तब गोत्रका पार्थक्य रखा गया, अब अन्य भाषा-भाषियोंसे विवाह होना चाहिए—ऐसा मत था उनका। कारण यह कि बँधा पानी गँदला हो जाता है, बहता पानी स्वच्छ रहता है; जाति-पाँतिके बन्धनसे सन्तानोंमें वही अवगुण वंशानुक्रमसे आते रहते हैं परन्तु अन्तर्जातीय विवाहसे उत्पन्न सन्तान बुद्धिमान् होते हैं।

आज जब राजा राममोहन रायके 'ब्रह्म-समाज'की नीतियोंका सम्पूर्ण देशमें प्रचार जाने-अनजाने हो चुका है हम उनका एवं उनके समाजका ही नाम भूल गये हैं। यह क़िस्सा तो ठीक वैसा ही है जैसे कि हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेके बाद स्वतन्त्रता-संग्रामके सेनानियोंको भूलने लगे हैं। आज जब हम अँगरेज़ीमें ही अँगरेज़ोंको दोषारोपण करना सीख गये हैं और ऐसे ही हमने स्वतन्त्रता भी प्राप्त की, भूलते हैं कि अँगरेज़ी सीखनेकी बुद्धि किसने दी और किसने इसी अँगरेज़ीके ज़रिये आधुनिक विश्वके निकट हमें पहुँचा दिया। आज जब बँगला साहित्य इतनी उच्चकोटिका बन चुका है हम भूलते हैं कि आधुनिक बँगला गद्यको साहित्यिक स्तर पर लानेवाला वह प्रथम व्यक्ति कौन था!

नयी पीढ़ी सोचती है कि राजा राममोहन रायने ऐसा क्या किया जिसके लिए उन्हें भूलना हमारे लिए कमज़ोरी होगी? भारतमें जहाँ जाति-पाँति सब कुछ मानी जाती है वहाँपर राममोहन रायने उच्च ब्राह्मण परिवारमें जन्म लेकर, सम्मान पाकर, समाजमें पूजनीय बनकर भी, अपनेको जाति-पाँतिका विरोधी घोषित करके, समाजकी भर्त्सनाके कारण जातिसे बाहर हो गये। क्यों? केवल समाजके लिए। कोई यह कहे कि, 'तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खीर पसन्द नहीं' आप फिर उससे पूछें, 'भई तुमने कितनी बार खीर खायी?' बिचारा हड़बड़ा-सा मुँह बनाकर कहे, 'एक बार भी नहीं।' तो आपके मनमें यह बात उठेगी ही कि भई जब तुमने खीर ही नहीं चखी तो उसके बुरेका प्रश्न ही क्या? राजा राममोहन-के समाजमें सम्मानका स्वाद बिना चखे ही यह कहना नहीं शुरू किया कि ब्राह्मण क्या आस-मानसे उतरकर आये हैं? या कोई व्यक्ति ब्राह्मण कर्मसे ही बनता है। परन्तु आज जब हम हमारे पूज्य महात्मा गान्धीजीको उनके मुखके लिए, हृदयके लिए, महत्ताके लिए पूजते हैं तो हमारी नयी पीढ़ी भूलती है कि राजा राममोहनने क्या किया। राममोहनकी कृतियोंको जाने-अनजाने हमने अपनाया लेकिन यह नहीं जानते कि राजा राममोहन थे कौन? राजा राममोहन रायने एक कुलीन जातिके धनी परिवारमें जन्म लिया, १७७२ में और इसी समाजके लिए संघर्ष करते हुए वे १८३३ में स्वर्गवासी हुए।

नयी पीढ़ी बड़ी ही रुचिसे 'रेनेसान्स' यानी युरॅपकी 'पुनर्जागरण' की व्याख्या करती है परन्तु क्या किसीने यह भी ध्यानसे देखा कि एशियाका मुखड़ा बदलनेवाला इस एशियामें 'रेनेसान्स' का जन्मदाता नहीं था? 'रिवाइवल ऑफ़ लर्निंग' युरॅपमें 'ग्रीक' और 'इटालियन' ज्ञानको पुनः जगानेसे हुआ परन्तु क्या एशियाका 'रिवाइवल ऑफ़ लर्निंग' वेद, उपनिषदोंका उद्धार करके नहीं हुआ? इस अलख जगानेवाला था कौन? वही राम-मोहन जो अपने पैसेसे वेद और उपनिषद् छपवाकर लोगोंमें बाँटता था।

'मिस कौलेट' की पुस्तक 'राजा राम-मोहन राय' पढ़कर हम अनुभव कर सकते हैं कि विदेशोंमें अभी भी उनका कितना सम्मान है। राजा राममोहन रायके गुणका पता उनके चलाये हुए 'ब्रह्मसमाज' से ही चलता है जिसमें उन्होंने निराकार, एक अद्वितीय परमेश्वरकी उपासनाकी पद्धति पुनः जागृत की। वेद-उपनिषद्का उदाहरण सामने रखकर उन्होंने तपोवनके तपस्वियोंको उदाहरण माना और अनुसरणकी ओर अग्र-सर हुए। उन्होंने भारतके पुराने ढाँचेमें भारतीय गुणोंको पुनः प्रवाहित कर नवजीवन-का संचार किया।

भारतके कितने ही रत्न 'ब्रह्मसमाजी' थे। क्या यह राजा राममोहन रायके गुणकी अभिव्यक्ति नहीं है? श्रीमती सरोजिनी नायडू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विपिनचन्द्र पाल, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, अरविन्द घोष, जगदीश-चन्द्र बोस, स्वामी विवेकानन्द, (रामकृष्ण परमहंसके सम्पर्कमें वे बादमें आये) और आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील। इतना ही नहीं केशवचन्द्र सेन, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी एवं बंगालके भू० पू० मुख्य मन्त्री स्व० विधानचन्द्र राय भी 'ब्रह्मसमाजी' ही थे।

राजा राममोहन रायकी महत्ताका पता हमें 'मैक्समूलर' के इन शब्दोंसे ही लग सकता है: 'मेरे समक्ष राजा राममोहन राय एक यथार्थ महापुरुष हैं, सत्य ही वे महत्कार्यसाधन कर गये हैं एवं यदि भविष्यवाणी करना अन्याय नहीं तब यह कहा जा सकता है कि चिरकाल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए उनका नाम रोशन रहेगा।"

एक विदेशी मैक्समूलर ही नहीं वरन् कितने ही विदेशी जैसे मादाम एल० मरिन्, सिस्टर निवेदिता, डैनियल कॉनवे आदिने, एवं अन्य अनेकोंने राजा राममोहनका लोहा माना था। और हम ? हम आज न राजा राममोहन-

को तरह देश-प्रेम रख सकते हैं, न गु
कारण ? कारण केवल एक है—गुणको पहच
कर गुणकी प्रशंसा करते हुए उसको ब
की शक्तिका अभाव। क्या यही अवगुण
अवगुण हमारी वर्तमान पीढ़ीको दूसरे ले
भी ऐसा ही करनेके लिए नहीं ढकेल रहा

—अधुरू

• पश्चिमी सभ्यताकी विकृति एवं एक समाधान

आदिकालसे आज तक सभ्यताने बहुत-से रूप बदले किन्तु मोटे तौरपर आज सभ्यताके दो ही रूप हैं—पश्चिमी एवं पूर्वी। यदि पश्चिमी सभ्यताका अधिनायकत्व युरॅपीय देशोंको प्राप्त है तो पूर्वीका मुख्यरूपसे भारतको। इसके पहले कि और कुछ कहा जाये यह स्पष्ट कर लेना उचित होगा कि सभ्यताका मूलमन्त्र क्या है ? यदि एक वाक्यमें इस प्रश्नका उत्तर दिया जाये तो यही कहा जा सकता है कि मनुष्यके अन्दर-के 'पशु' को दबाकर, बौद्धिक प्राणी होनेके नाते, प्रकृति एवं अन्य जीवोंसे अधिकाधिक लाभ उठाकर सम्पूर्ण मानव-समाजमें शान्ति-पूर्ण जीवनको गति देना। इसी एक वाक्यको आधार बनाकर पश्चिमी एवं पूर्वी सभ्यताका भेद स्पष्ट किया जा सकता है।

दोनों सभ्यताओंमें मूल भेद यह है कि मनुष्यके अन्दरके 'पशु' को दबानेके लिए यदि पूर्वी सभ्यताने मुख्य रूपसे आत्माको आधार बनाया है तो दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यताने बुद्धिको। यही कारण है कि दोनोंके विकास-क्षेत्रमें भिन्नता आ गयी। पश्चिमने बौद्धिक विकासकी परिणति विज्ञानके रूपमें की तो पूर्वने आत्मिक बलसे धर्मका विकास किय
पश्चिममें ईसाई धर्मका प्रचार है किन्तु
धर्म एवं जीवनके बीच विज्ञानकी इतनी
दीवार है कि उनका एक-दूसरेसे कोई
है भी, स्पष्ट रूपसे दिखाई नहीं पड़ता, व
पूर्वमें धर्म एवं जीवनके बीच कोई रेखा
नहीं है। दोनों एक-दूसरेके आधार हो
पर्याय भी कहे जायें तो अतिशयोक्ति
होगी।

धर्म, जीवनका आधार होनेके
मनुष्यके 'पशुत्व' को उभरने ही नहीं
इसके विपरीत, विज्ञान स्वार्थको प्रो
देता है एवं अन्ततः 'पशुत्व' ही उभर
हो जाता है। इससे यह तात्पर्य कदापि
है कि विज्ञान सर्वथा अनुपयोगी है या
विकास ही सभ्यताका चरम विकास
किन्तु विज्ञानकी वास्तविक उपयोगिता
उसके साधन बने रहने तक ही है,
उस सीमा तक, जिस सीमा तक वह
मूल्यों' का सहायक है। अतः आवश्यक
समन्वयकी। समन्वयकी कमीके कार
विज्ञानने विध्वंसक रूपका चरम लक्ष्य

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया, जिसकी शुरूआत पश्चिमसे हुई एवं पूर्व तक आ पहुँची है।

पश्चिमी सभ्यताको ही यदि वैज्ञानिक सभ्यता कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उक्त सभ्यतामें उच्च स्थान तर्क एवं बुद्धिको ही प्राप्त है, जब कि इसके विपरीत, पूर्वी सभ्यतामें आत्माको। यही कारण है कि विज्ञान भौतिक उपयोगिताके साधन बिना इस बातकी ओर ध्यान दिये ही विकसित करता जाता है कि अन्ततः यह साधन 'मानवीय मूल्यों' पर कितना आघात करते हैं। पश्चिमी सभ्यतामें हर बातका यन्त्रीकरण ही मुख्य ध्येय हुआ जा रहा है।

यहाँपर एक प्रश्न उठ सकता है कि आखिर पूर्वभी क्यों अपनी सभ्यताका परित्याग करता हुआ पश्चिमी सभ्यताकी ओर अधिक झुक रहा है? इसका उत्तर सहज है, वह यह कि आत्मिकताकी अपेक्षा भौतिकता सहज है। भौतिकताकी प्राप्तिके लिए किसी साधनाकी आवश्यकता नहीं होती। पूर्वमें एवं विशेषकर भारतमें पश्चिमी सभ्यताके विकासका कारण यही है कि अंग्रेज शासनने यहाँपर केवल आर्थिक शोषण ही नहीं किया, बल्कि जैसा सर्वविदित है, यहाँके 'मानवीय मूल्यों'पर गहरा आघात भी किया है। आघात इतना प्रभावशील हुआ कि 'नैतिकता', जो यहाँके जन-जीवनमें प्राप्य 'मानवीय मूल्य' रहा है, वह केवल एक 'अप्राप्य आदर्श' के रूपमें परिणत हो गया है।

अँगरेजोंके पहले भारतमें मुसलमान शासक रहे, एक लम्बे अरसेसे, किन्तु धर्मपन्थी होनेके नाते, उन्होंने 'मानवीय मूल्यों' पर कभी चोट की हो—ऐसा नहीं लगता। पश्चिमी 'जीवन मूल्यों' ने जीवनको विकृत कर दिया एवं व्यक्तिको समाजमें 'एकाकी' कर दिया है। क्योंकि 'सहज शंका' का प्राधान्य है। अपवादोंको छोड़ दिया जाये तो भाई भाईसे शंकित है, पुत्र पितासे शंकित है यहाँ तक कि पति-पत्नीके सम्बन्धोंमें भी शंका का आधिक्य होता जा रहा है। यह शंका वहीं तक सीमित न रहकर हमारे राष्ट्रीय जीवनपर छा गयी है एवं समाजमें 'निरन्तर अशान्ति' व्याप्त है। फलतः विभिन्न प्रकारकी शासन-पद्धतियोंका विकास हुआ है। भिन्न-भिन्न प्रकारसे शासित राष्ट्र एक-दूसरेकी शासन-पद्धतिको 'छूतकी बीमारी' समझते हैं। अतः एक-दूसरेपर हावी रहना चाहते हैं। इसी हावी रहनेकी आकांक्षाने विज्ञानके विध्वंसक रूपको बढ़ावा दिया है एवं उसका चरम विकास एटम एवं हाइड्रोजन बमोंके रूपमें हुआ है।

'वैज्ञानिक मूल्यों' की अपनी अलग उपयोगिता कभी नहीं हो सकती। उनका 'मानवीय मूल्यों' का सहायक बनना ही एकमात्र कल्याणकारी उद्देश्य हो सकता है। इस दृष्टिकोणसे भी विज्ञान बहुत विकसित हुआ है किन्तु विध्वंसक रूपकी तुलनामें यह विकास बहुत अधिक अर्थ नहीं रखता।

अब प्रश्न उठता है कि अन्ततः आवश्यकता किस बातकी है? इसका उत्तर सहज भले हो किन्तु सहज-प्राप्य हो ऐसा नहीं लगता। क्योंकि एक ओर जहाँ आवश्यकता है विज्ञानके विध्वंसक रूपको नष्ट करनेकी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहीं दूसरी ओर उसका चरम विकास इस ओर भी करनेकी, कि वह केवल 'मानवीय मूल्यों' को बढ़ावा ही दे, उनको विकृत न कर सके।

इन दोनों लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए आज आवश्यकता है पूर्वी सभ्यताके 'पुनरुत्थान' की, यहांके 'जीवन मूल्यों'के आधारपर सारे समाजको विकसित करनेकी। दूसरे शब्दोंमें आवश्यकता है आत्मिक विकास एवं वैज्ञानिक प्रगतिमें समन्वयकी। एक ओर जहाँ विकसित व्यक्तियोंको अपने दृष्टिकोणमें परिवर्तन करना है, दूसरी ओर नयी पीढ़ीको आत्मिक विकासका प्रशिक्षण देना है। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए शिक्षाके क्षेत्रमें परिवर्तन तो आवश्यक है ही साथ ही दैनिक जीवन एवं आचार-व्यवहारमें भी परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि आत्मबल व्यक्तिको निर्भय बनाता है एवं उसकी निर्भयता संसारकी किसी भी शक्तिसे टक्कर लेनेमें समर्थ है। अतः इसका विकास व्यक्ति-स्तरसे उठकर राष्ट्रीय स्तरपर एवं वहांसे उठकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर होना चाहिए। इसके लिए धार्मिक मान्यताओंकी आवश्यकता है। किसी-न-किसी रूपमें धर्म संसारके हर कोनेमें विद्यमान है। भारतमें धर्मको जीवनसे अलग हटकर नहीं देखा जा सकता, अपितु धार्मिक मान्यताएँ एवं 'जीवन मूल्य' एक दूसरेके पूरक बन आयी हैं एवं यही दृष्टिकोण सर्वसहायक हो सकता है। आज धार्मिक 'कट्टर पन्थ' की आवश्यकता न होकर धर्मनिरपेक्षताकी ही आवश्यकता है। किन्तु सभी धर्म केवल 'मानवीय मूल्यों' को ही प्रधानता दें, इसकी नितान्त आवश्यकता है।

आज संसारके अग्रगण्य एवं उत्तरदायी व्यक्तियोंके लिए 'सामाजिक अशान्ति' एक चुनौतीके रूपमें है जो कि पश्चिमी सभ्यताकी देन है, यह दृढ़तासे कहा जा सकता है। इसे के समक्ष 'सामाजिक विकृति' को 'सुकृति' में परिणत करनेका उत्तरदायित्व है। अब तक दृष्टिकोणमें परिवर्तन एक साथ सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रमें नहीं होगा, सफलता दूर खड़ी मुसकाती दिखेगी पड़ेगी।

—राधेश्याम शर्मा

• निषेधोंकी संस्कृति और पूरन अस्वीकृतिका

आज ऐसे अविश्वास-पूर्ण वातावरणमें हम जी रहे हैं जिसकी मिसाल इतिहासमें शायद नहीं मिलेगी, किन्तु हमें इतिहाससे क्या लेना-देना? आजकी बात बेमिसाल है।

इस ल्यूना और लूप-युगकी आत्यन्तिकतामें मानव-सभ्यताके चरण बढ़े तो हैं—सब मानते हैं—किन्तु किस दिशाकी ओर? इस बारेमें आप सतही तौरपर विभिन्न देशों वैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक वर्तनों या विकासोंके उदाहरण देकर पहाड़ मान और मनवा लें सो अलग बात किन्तु वास्तविकता कुछ भिन्न ही है। से और गहराईसे विचारें तो नजर यह है कि मानव अभी संस्कृत नहीं हुआ है।

: जुलाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव अभी संस्कृत नहीं हुआ—इस उक्तिके प्रमाणमें जो उदाहरण यहाँ देना चाहता हूँ वे शहरी सभ्यतामें-से ही लिये हैं, क्योंकि शहर आजके युगकी आत्यन्तिक स्थिति है।

आप देखते-पढ़ते होंगे ट्रेनमें, बसोंमें, अस्पतालोंमें या किसी भव्य इमारतमें दीवार-पर लिखे इस वाक्यको—'थूकना मना है' या 'कृपया फ़र्श या दीवारपर मत थूकें'। अब होता यह है कि पानचाभी लोग और कफ़के रोगी थूके बिना रह नहीं सकते और आदेश लिखे रह जाते हैं। 'यहाँ पेशाब करना मना है'—लिखा देखकर भी आप कैसे रुक सकते हैं? हाँ, तब शायद आपमें आत्म-सम्मान जगे और अपने व्यक्तित्वको अतुल्य रखना चाहकर आप कहना मान लें जब पढ़नेको मिले—'देखो, गधा पेशाब कर रहा है' या 'यहाँ गधे पेशाब करते हैं'।....लेकिन फिर भी कुछ 'गधे' अपनी दुर्गन्ध छोड़ ही जाते हैं।

लघु मानवसे लेकर नगरके उच्चतम समाजमें भी धूम्रपान इतनी आम बात हो गयी है कि प्रायः वह आधुनिकताका शिष्ट आचरण बन गया है। किन्तु बहुत जगह आप लिखा पायेंगे—'धूम्रपान निषिद्ध' या 'नो स्मोकिंग' या 'यहाँ बीड़ी-सिगरेट पीना सख्त मना है।'.... इन वर्जनाओंके पीछे क्या मानवकी अस्वीकृति-भावना नहीं व्यक्त होती? यानी आप जो भी लिखते जायें, धूम्रपान तो होगा ही, तलब उठती है तो क्या किया जाये?

'अन्दर आना मना है'—लीजिए, एक और निषेध! डाकखानेके भीतरी कक्ष-द्वारपर लाल पृष्ठभूमिपर सफ़ेद अक्षरोंमें अंकित मिलेगा। अँगरेज़ी पढ़े-लिखोंको अँगरेज़ी भाषा-में लिखा दिखता होगा—'नो एडमिशन'.... आप बतायें—क्या आप सभीके आत्म-सम्मान-पर चोट नहीं लगती?

कैसी विडम्बना है कि आदमीको निषे-धाज्ञा देनेवाला भी आदमी और उल्लंघन करनेवाला भी उसी जूनका!

'कृपया यहाँ इश्तहार न लगायें' या 'इस दीवारपर इश्तहार लगाना मना है।' लेकिन हर राजनीतिक पार्टीके इश्तहार, धार्मिक जल्सों-संस्थाओंके, जुलूसोंकी सूचनाएँ, शिक्षा-संस्थाओं तकके पोस्टर, सिनेमा और विभिन्न कम्पनियोंके विज्ञापन—यानी सारे शहरकी गतिविधिका ब्यौरा रातो-रात चिपक जाता है।....इश्तहार-बाज़ीके इस युगमें कैसे उल्लंघन न हो।

'इस नलपर कपड़े धोना और नहाना मना है।'... लेकिन सब काम निधड़क होता है, जैसे मोटे अक्षरोंमें लिखा यह निषेध-वाक्य उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर हो।

'फूल तोड़ना मना है'—वाटिकाओं-उद्यानोंमें लिखी प्लेट लगी होती है, जो इस बातकी याद दिलाती है कि नगर-जनमें फूल तोड़नेकी प्रवृत्ति पायी जाती है।

'यह आम रास्ता नहीं है'....किन विशेषोंके लिए है? 'आम' आदमीकी स्वच्छ-न्दताको ठेस लगती है इसे पढ़कर।

'चलती बससे उतरना या उसपर चढ़ना क़ानूनी अपराध' होते हुए भी लोग मानते हैं? भाग-दौड़ और जल्दीके युगमें किसे आज्ञा-पालनकी फ़ुरसत है?....'बयू' या 'कृपया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाइनमें ठहरें' के आदेशोंकी क्या जरूरत है ? क्या पढ़ा-लिखा नगरका आदमी बेवक़ूफ़ है जो इतना नहीं समझता कि उसे स्वार्थ छोड़ दूसरोंकी भावनाओंका ध्यान रखना है ?

'जेब-कतरोंसे सावधान !'····लीजिए, एक और नमूना हमारे सभ्य समाजका। हर कोई अपनेको छोड़ हर किसीको जेबकतरा मान बैठता है और उससे सावधान रहनेकी चेष्टा करता है। जेब काटनेवालोंका क्या कोई शौक़ है कि वे रिस्क लें ? रोटीकी खातिर उन्हें करना पड़ता है। उन्हें रोटी क्यों नहीं मिलती ? कौन छीनता है उनकी रोटी ? मूल कारण अविचारणीय हो गया है, उपेक्षणीय हो गया है।

बिजलीके किन्हीं विशेष खम्भोंपर लाल अक्षरोंमें दो हड्डियों और खोपड़ीके साथ 'खतरा' लिखा होता है।····क्या नगर-जन पागल हो गया है, जो खम्भेपर चढ़नेका उपक्रम रचेगा ? ये खतरे हमने क्यों सरजे ?

'शत-प्रतिशत प्योर घीकी दूकान : मिलावट साबित करनेवालेको सौ रुपये नक़द इनाम।' कौन-सी 'इम्प्योर' घीकी दूकान है ? मैंने सारा शहर छान मारा; कहीं भी यह नहीं लिखा मिला—'मिलावटी घीकी दूकान।'····यह 'मिलावट' शब्द शब्दकोशमें कबसे आया ?

दूधवालेकी दूकानपर लिखा देखा होगा—'असली गायका दूध।'····कोई उनसे पूछे, नक़ली माय कौन-सी होती है ?

अब तो कार्यालयोंमें रिश्वत लेने-देनेकी मनाही लिखी होती है। क्या रिश्वतपर ही सब काम होते रहे हैं ? रिश्वत शब्दका ईजाद कब और क्यों हुआ ?

भाग-दौड़के ज़मानेमें (क्यों ऐसी व्यस्तताएँ सर्जित की गयीं कि आदमीको भागना पड़ रहा है ?) क्यों ये टटके-से आदेश लिखे मिलते हैं—'बायें चलो' या 'कीप लैफ़्ट' और 'गाड़ी धीरे चलाइए', 'स्पीड लिमिट १५ पी० एच०।'

लेकिन कहाँ फ़ुरसत इन सब बकवासोंपर अमल करनेकी ? स्कूल जाते बच्चे मरते हैं तो मरें ! उन्हें स्कूल पहुँचनेकी जल्दी है तो गाड़ीवालोंको भी तो है। आखिर उन्हें मँहगी मोटर खरीदनेसे क्या लाभ कि कछुओंकी तरह या 'डेड स्लो' चलनेको वेसमय आदेश मिलें !

हम नाराज़ पीढ़ीके लोग पूछते हैं : बीड़ी-सिगरेट बनाये किसलिए जा रहे हैं जो पीनेको मना ही करना है ? पेशाब आया है तो यह 'नेचुरल' है, करेंगे—गधे-जैसा और जितना तो वह नहीं होता न ! थूक आयी है तो यहाँ नहीं, कहाँ जाकर थूकें ? कपड़े कहाँ धोयें, नहायें कहाँ ? क्या हमारे पास घर हैं ?

हमें ये आदेश-निषेध पसन्द नहीं, हम विद्रोही पीढ़ीके हैं, हम स्वच्छन्दताका जीवन जीना चाहते हैं। हमें प्राकृतिक रहने दिया जाये, हमपर आदेश लागू करनेवाले खुद दूधके धुले हैं क्या ? उपदेशों-आदेशोंका ज़माना बूर्जुवापनका, परम्पराका, तानाशाहीका द्योतक है ! हम नये ज़मानेके हैं। साइन्सका युग है यह !

हमारा निर्णय है कि हम नगर-जन सभी बूर्जुवा आदेशों-निषेधों-नियमोंको अस्वीकार करते हैं····और कर रहे हैं !

—श्याम विमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ ३ का शेष : शुभ कामनाएँ]

•

आपके अंककी सफलता चाहता हूँ। हिन्दीके नये साहित्यके निर्माणमें 'ज्ञानोदय'-का योग निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

नैनीताल]

•

ज्ञानोदय, इधर, विशेष रूपसे इस वर्ष, काफ़ी अच्छा निकल रहा है, इसमें सन्देह नहीं। नवलेखनमें कितना सार्थक, कितना निरर्थक है, यह समय छाँटता चलेगा, मगर 'ज्ञानोदय' अतिरिक्त वैशिष्ट्यके साथ 'नवलेखन' का प्रतिनिधित्व कर रहा है, यह साफ़ है। यहाँ नवलेखनसे मेरा तात्पर्य निश्चित ही नये लेखकोंके लेखनसे नहीं, बल्कि उस नवलेखनसे है, जो परम्परागत लेखनके ठहरावको रेखांकित करता है, यानी पिछली साहित्यिक उपलब्धियोंके मानदण्डोंसे ही नहीं, बल्कि 'मेरुदण्डों' से भी हटकर लिखे जा रहे को।

इलाहाबाद]

—शैलेश मटियानी

•

ज्ञानोदयके पिछले वर्षके अंक साहित्यके स्थायी अंग हैं। आपके सम्पादनकी मैं सराहना करता हूँ। 'नयी क़लम अंक' की मैंने अपनी कक्षामें चर्चा की थी और अपने विद्यार्थियोंको उसके लिए रचनाएँ भेजनेको कहा था। इस सूझकी मैं हृदय-से प्रशंसा करता हूँ। उक्त विशेषांक अपने ढंगका अकेला होगा। नयी प्रतिभाओं-को विकसित करनेकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी कार्य।

कलकत्ता]

—विष्णुकान्त शास्त्री

•

ज्ञानोदयका 'नयी क़लम विशेषांक' एक नया उपयोगी प्रयोग ही नहीं, प्रयो-जनीय प्रयास भी है। इससे नये और उदीयमान रचनाकारोंको बल और समर्थन मिलेगा।

कलकत्ता]

—कल्याणमल लोढ़ा

शुभ कामनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिछले एक वर्षसे मैं ज्ञानोदयके व्यक्तित्वका मोड़ ग़ौरसे देख रहा हूँ। पत्र-कारिताकी कलामें जिन पत्रोंने पिछले दिनों नया (सुरुचिपूर्ण) अध्याय जोड़ा है ज्ञानोदय भी उनमें-से एक है। मेरी बधाई लें।

नयी दिल्ली] —कैलाश वाजपेयी

१७ वर्ष 'ज्ञानोदय' ने जैसे जीये हैं, उसके साक्षी हैं पाठक, फिर ज्ञानोदयके लेखक, और फिर ज्ञानोदय लेखक-परिवारके अभिन्न सदस्य और अब फिर ज्ञानोदयके सम्पादक इन विविध रूपोंमें रहे हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ज्ञानोदय हिन्दी नवलेखनसे कितना अधिक जुड़ा है। मेरी बधाई और शुभ कामनाएँ ज्ञानोदयके भविष्यके लिए। आपने इस वर्षके अंकोंके सम्बन्धमें भी राय जाननी चाही है, समग्र प्रभावकी व्यंजना इसी उत्कण्ठासे हो सकती है कि ज्ञानोदयकी प्रतीक्षा मासान्तके पूर्व ही तीव्र हो उठती है। मुखपृष्ठसे लेकर अनुक्रम तक अंक आते ही दृष्टि दौड़ना चाहती है। स्तम्भोंकी विविधता और आपका चयन-सम्पादन, विषयोंकी अनेकता ज्ञानोदयमें एकरूपता बनाये रखकर भी एकरसता नहीं आने देती, यह महत्त्वपूर्ण है किसी पत्रिकाके नित नये परिवेशके लिए।

इन्दौर] —चन्द्रकान्त देवताले

आपका यह अंक-नियोजन मुझे बेहद पसन्द आया। इन दिनों नयी प्रतिभाओंकी जो कमी है, एक तो वह इससे दूर होगी, तथा अनेक लोग जो प्रकाशनके अभावमें कुण्ठित होकर रचनाशील नहीं रहते उन्हें अवसर मिलेगा। इससे भी अधिक इसका एक और ऐतिहासिक महत्त्व होगा—वह यह कि नयी रुचि और नये आयामोंको समझने और आत्मसात् करनेवाले नये लोगोंका भी पता चल जायेगा। मुझे उम्मीद है, आपके द्वारा यह अंक सफलता प्राप्त करेगा।

शिमला] —गंगाप्रसाद विमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Britannia Engineering Company Ltd.

Manufacturers of :

1. Tea Processing Machinery.
2. Jute Mill Machinery.
3. Road Rollers.
4. Printing Machinery.
5. Machine Tools.
6. Railway Wagons.
7. Steel Castings.
8. Grey Iron Castings.
9. Steel forgings for Railways & others.
10. Railway Signalling & Interlocking Equipment.

My. Mfrg. Div. TITAGARH : *Steel Fdy. Div.* : TITAGARH
Wagon Div. : MOKAMEH

o

Head Office :
Mcleod House, Calcutta-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re. 1

GYANODAY July 1968

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 JUL 1968

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
ध्रांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

License No. 51. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय
चन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बेनेट कोलमैन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंकमें : युजिन इयोनेस्को, अरविंद, लाल पुष्प, अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, भारतभूषण अग्रवाल, कैलाश वाजपेयी, श्याम-सुन्दर मिश्र, श्याम परमार, आचार्य रजनीश, सुनीता, सुधा अरोड़ा, दुष्यन्त कुमार, केशव कालीधर, वीरेन्द्रकुमार जैन, गंगाप्रसाद विमल, प्रयाग शुक्ल, वाफ़ा यूनियल, अतुल भारद्वाज, ओंकार ठाकुर, चित्रा मुद्गल, पानू खोलिया, सुरेश सेठ, शलभ,

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश वक्षी

ज्ञानोदय

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र नयी क़लमके...

'नयी क़लम अंक' ९ जुलाईको मेरे पास पहुँचा : सन् ६५ के बादकी पीढ़ीका सशक्त प्रतिबिम्ब। एक बात मैं ज़रा खुलकर कहना चाहता हूँ—पिछले कुछ दिनोंसे सन् १९६० के बादके कहानीकारों और कवियोंकी चर्चा प्रायः बड़े ज़ोर-शोरसे होती रही है और अभी भी होती है। जितनी खोखली बातें इस शोर-शराबेके दौरान की गयीं, उतनी पहले शायद ही कभी हुई हो। 'भेड़िया आया, भेड़िया आया' कहना और चिल्लाना तो बड़ा आसान है, लेकिन जब भेड़िया नहीं आता, तो बड़ी कोफ़्त होती है। यही हश्र हुआ सन् '६० की दुहाईका। क्या लिखनेकी अपेक्षा अपनी पीठपर सन्-संवत्की गठरी लादना अधिक ज़रूरी है? यदि यह बात है और 'साठवादी' भाई-लोगोंको सन्-संवत्की भाषामें बात करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है, तो मैं कहूँगा, अब सन् साठवाद समाप्त हो गया है तथा उसकी चर्चा बन्द होनी चाहिए। हमारे सामने एक नयी पीढ़ी आयी है, सन् '६५ के बादकी पीढ़ी, जो 'ज्ञानोदय' के इसी जुलाई अंकमें द्रष्टव्य है और कुल मिलाकर सब हैं ८०–८२। मात्र इस आधारपर इसके अस्तित्वको नहीं नकारा जा सकता कि यह बिलकुल नयी है और इसे पाँव जमानेमें वक़्त लगेगा। उगते सूर्यके समक्ष ऐसी कोई समस्या नहीं होती। सन् साठके बादकी पीढ़ीकी तलाश यथार्थकी थी (बक़ौल देवीशंकर अवस्थी), अब यह तलाश बेमानी और अर्थहीन है, क्योंकि यथार्थ नामकी कोई चीज़ कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। अब तो सिर्फ़ भटकाव है। यन्त्रणा, आत्महत्या, सन्त्रास आज भी हैं, लेकिन उनके परिप्रेक्ष्य बदल गये हैं। अब उनकी अनुभूति व्यर्थता और बिखरावमें होती है तथा उसकी वेदना ऐकान्तिक समष्टिमूलक है। '६५ के बादकी यह पीढ़ी उमस, जुगुप्सा, घृणा, युयुत्सा और 'एब्सर्डिटी' तथा व्यर्थताके अतिरेक और बहुत कुछ 'करप्ट निम्फ़ोमेनिया' के 'फ़ोबिया'से अन्तर्क्रान्त है, अन्तर्ग्रस्त भी। सम्भव है, 'भटकाव' कल तलाशका पर्याय बन जाये।

—कुँवर अजयसिंह

प्रयाग]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

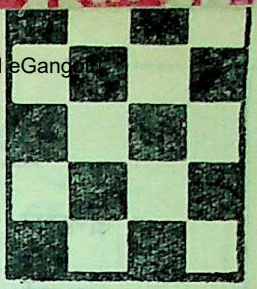

'नयी क़लम अंक' शहरमें आज ही आया है। इतने नये कलाकारोंके साथ एक ही मंचपर अपनेको भी खड़ा पाकर बहुत प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। आपके प्रोत्साहन और शुभकामनाओंसे जो मुझे मिला है उसे अब निभा ले चलनेका बहुत बड़ा दायित्व मुझपर आ गया है।

गया] —प्रेमनन्दन सिन्हा

अठारहवें वर्षकी पहली सीढ़ी—यानी ज्ञानोदयका 'नयी क़लम अंक' प्राप्त हुआ। ज्ञानोदयकी परम्पराके अनुसार यह अंक भी अपने आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। रचनाओंका चयन सुन्दर हुआ है—इन नये लोगोंमें निःसन्देह प्रतिभा है। इन्हें सामने लानेके लिए आप ढेरों बधाईके पात्र हैं।

लखनऊ] —ओम तिवारी अरुण

अंक देखकर आशासे अधिक गद्‌गद हो उठा। कुछ क्षण तो मुख-पृष्ठ और साज-सज्जा ही एकटक निहारता रहा। सामग्री और तटस्थ विषय-चयनकी दृष्टिसे निश्चित रूपसे यह विशेषांक सम्पादककी विशिष्ट अद्वितीय प्रतिभाका द्योतक है। आपकी इस ईमानदारीको क्या बधाई दूँ। सब कुछको देखकर यही कहनेको जी चाहा कि 'ज्ञानोदय' अपनी विविधताके कारण नवलेखनका एकमात्र प्रतिनिधित्व कर रहा है।

मुज़फ़्फ़रपुर] —दीनेन्दु भारती

ज्ञानोदयका 'नयी क़लम अंक' प्राप्त हुआ। वैविध्यसे भरा हुआ नयापन, अर्थवान् प्रयोगशीलता, स्नेहसे पगा हुआ सम्पादकीय, और इतने वृहद् रूपसे नयी उभरती हुई प्रश्नवाचक जिज्ञासाओंको नयी दिशा देनेके प्रयासके लिए कृपया आप मेरी ओर से हार्दिक बधाइयाँ स्वीकार करेंगे।

हरदा] —प्राणेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय, १९६६ और ६ विशेषांक :

- जनवरी — दाम्पत्य विशेषांक
- फरवरी — कथा-मंच : विशेष परिशिष्ट
- जुलाई — नयी क़लम अंक
- अक्तूबर — ज्ञानपीठ-पुरस्कार : साहित्य परिशिष्ट
- नवम्बर —
- दिसम्बर —

पृष्ठ ६ पर देखिए

'नयी क़लम अंक' : पुरस्कार-सूचना :

- जुलाई अंकके प्रकाशनमें विलम्बके कारण हम पूर्व-घोषणानुसार इस अंकमें पुरस्कार-निर्णयकी सूचना नहीं दे पाये हैं। अब यह निर्णय ज्ञानोदयके सितम्बर अंकमें प्रकाशित होगा।
- 'नयी क़लम अंक' के लिए प्राप्त वे रचनाएं लौटायी जा रही हैं जिनके साथ पर्याप्त डाक-टिकट प्राप्त हुआ था। अन्य अप्रकाशनीय रचनाएँ लौटानेमें हम असमर्थ हैं।
- जुलाई अंकसे ग्राहक बननेवाले पाठकोंको मात्र दस रुपयोंमें १८ रुपयोंकी सामग्री प्राप्त करनेकी सुविधा अब भी उपलब्ध है।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

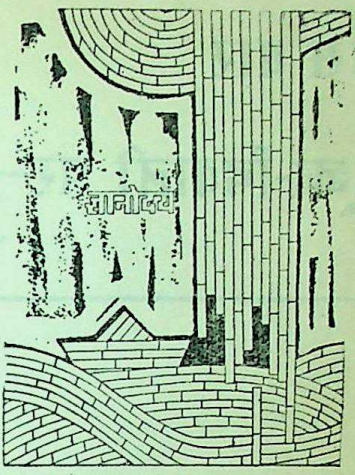

अ । नु । क्र । म

वर्ष : १८

अंक : २

अगस्त १९९९

मुखपृष्ठ

मदन सरकार

सज्जा

डेविड पेकार्ड, भाऊ समर्थ
हरिपाल त्यागी

पत्र नयी क़लमके

कुँवर अजयसिंह, प्रेमनन्दन
सिन्हा, ओम तिवारी अरुण,
दीनेन्दु भारती, प्राणेश

नये स्तम्भ :

- समयबोध : हो लो नाराज़ लेकिन : यूजिन इयोनेस्को ७
- मुक्तचिन्तन : अस्तित्ववाद : कुछ नयी स्थापनाएँ : श्यामसुन्दर मिश्र ९
- साहित्यभूमि : इतालवी पोएती दि आगी : बाफ़ा यूनियल १९
- ताज़े सन्दर्भ : भूमण्डलीय युद्धपटमें भारतका स्थान : अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार २५
- नयी कला : एक बीट शिल्पी : डेविड पेकार्ड : श्याम परमार ३७
- प्रश्नान्तक : अज्ञेयके प्रति जिज्ञासा : उर्मिला १०७

अन्य स्तम्भ :

- गोष्ठी : पी० ई० एन० का नगर : आधुनिक अमरीकी कविता : जैक लडविगसे बातें : सुनीता १११
- समीक्षा : कथा-संचेतनाका बदलता फ़ोकस : 'पैंसठके उपन्यास : दुष्यन्त कुमार ११५

कहानियाँ :

- देर : विष्णु प्रभाकर ५०
- फ़ासला : पानू खोलिया ५८
- निर्मम : सुधा अरोड़ा ७६
- एक-से हस्ताक्षर : सुरेश सेठ ९१
- बोरियतका अहसास : लाल पुष्प (अनु० विष्णु भाटिया) ९६

एकांकी :

- प्रार्थना : एक रहस्यवादी नाटक : अरबिल (अनु० कृष्ण द्विवेदी) ४१

कविताएँ :

- तीन कवियोंका सप्तक : भारतभूषण अग्रवाल, केशव कालीधर, वीरेन्द्रकुमार जैन २१
- सात कवियोंकी इकाई : कैलाश वाजपेयी, गंगाप्रसाद, विमल, शलभ, प्रयाग शुक्ल, अतुल भारद्वाज, ओंकार ठाकुर, चित्रा मुद्गल १००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बार

पूजा-दिवाली पर—↓

१९६६
का
वार्षिक
विशेषांक

•

नवम्बरमें प्रकाश्य

मूल्य : ३ रुपये

• • • •

महानगर विशेषांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

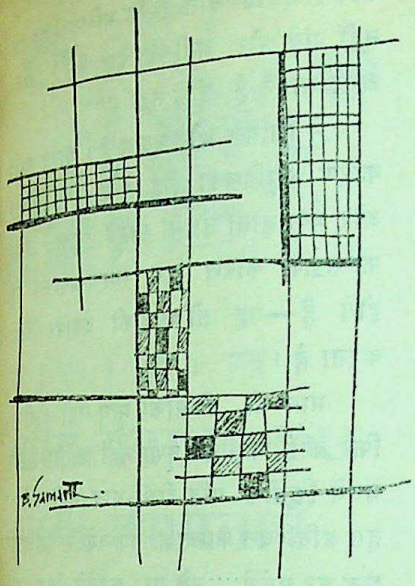

स । म । य । बो । ध

होली नाराज़ लेकिन ?

०

मैं अपने स्वप्नोंमें हमेशा युवा ही रहता हूँ—सोलह और बाईस-तेईसके बीच । क्यों ?···· शायद दो कारणोंसे—क्योंकि मैं न वृद्ध होना चाहता हूँ और न ही वृद्ध होकर मरना चाहता हूँ···क्योंकि सत्रहकी उम्रमें ही मेरे अस्तित्व और ज्ञानकी सारी समस्याएँ रूप पाकर सामने आयी थीं ।

डर और दहशत ! रात आते-न-आते मैं इनकी जकड़नमें आ जाता हूँ । मुझे अकेलेपन-की ज़रूरत होती है लेकिन मैं अकेलापन झेल नहीं सकता । शायद आदत ऐसी है····मैं दोनोंके बारेमें (शायद पत्नी और बच्ची) सोचने लगता हूँ । रात मुझे निगल जाती है,····अन्तहीन रातें मुझे घेर लेती हैं, एक काले महासागरमें मैं डूबने लगता हूँ····

हाँ, निश्चित ही मैं घरमें बोर हो जाता हूँ, किन्तु पत्नीके पास रहनेसे मैं सुरक्षित अनुभव करता हूँ लेकिन जिस बिन्दुपर मेरा श्रम समाप्त होता है, उसी बिन्दुपर मैं बोर हो जाता हूँ । यह भी कि बोर होता हूँ तो बेहतर अनुभव करता हूँ····

चूँकि मृत्यु-कामना हर आदमीके अन्तर्मन-में है, चूँकि इसे दबानेसे सब कष्ट पाते हैं··· हर आदमी शान्ति और पूर्ण शान्तिकी ओर दौड़ता है····यह मृत्यु-कामना जितनी फलवती होती है अच्छी होती है, यह न हो तो हम एक भयसे सन्त्रस्त रहते हैं····

नहीं । मैं जीवित रहना चाहता हूँ, जीवित रहते रहना चाहता हूँ । मुझे परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। संक्षिप्तमें मुझे दोनों चाहिए—मौत भी और जीवन भी। मृत्यु आये भले, लेकिन मैं जीवित तो रहूँ।....

मैं मृत्यु चाहता हूँ लेकिन ग्रन्थियोंसे मुक्त होना तो सिखाओ मुझे। यह मैं जानता हूँ कि यह अपना काम मुझे खुद-ब-खुद ही करना है, इसका भागी कोई नहीं; लेकिन वह दिशा तो मुझे दो कि ये जो बन्धन हैं, जिनको मैं खोल नहीं पा रहा हूँ, ये क्योंकर बँधे है ?

मेरे सपनोंमें एक दीवार होती है—ऊँची, मुझे घेरे हुए—मैं यह कैसे करूँ कि यह दीवार ढह जाये, यह अलगाव कैसे नष्ट हो सकता है ? देखो तो—कभी वे जीवित रहना चाहते हैं, कभी मर जाना चाहते हैं, कभी एक दूसरेकी परिचर्या करते हैं, कभी एक दूसरेका ख़ून कर देते हैं....कोई नहीं जानता कि वे क्या कर रहे हैं....मैं इस पिंजरेमें गोलमगोल घूम रहा हूँ—सींखचोंके पीछे जंगली जानवरकी तरह।

मुझे फ्रॉयडकी तुलनामें युंग पसन्द है। युंग धर्मपर प्रतिबन्ध नहीं लगाता, वह उसे एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताका नाम देता है और वह आवश्यकता है इसलिए उसका सत्य-से भी रिश्ता है।....यदि आप संन्यासके स्वरूपका विश्लेषण करें तो संन्यास गोल हो जायेगा, उसे कम या खतम करनेका एक ही तरीक़ा है कि उसको टुकड़ोंमें बाँट दो। इच्छा-को ही लीजिए, कीजिए उसका विश्लेषण और देखेंगे कि 'इच्छा' ग़ायब हो गयी....

हमारे पीछे अतीत है, सामने भविष्य लेकिन अजीब बात है कि भविष्यको हम देख नहीं पाते और अतीतको देख लेते हैं जबकि आँखें सामने हैं, पीछे नहीं।....

मैं शिथिल और उदास हूँ। शायद इसका कारण ज्यूरिखकी यह गन्दी हवा है, कोई और हवा होती तो मैं स्वस्थ रहता। किसी फ़लसफ़ेके कारण हम स्वस्थ-अस्वस्थ नहीं होते हैं—यह तो हवाकी दयापर निर्भर करता है।

मान लो, किसीकी मृत्यु नहीं होगी....। फिर कोई किसीसे घृणा नहीं करेगा-किसीके मनमें किसीके प्रति ईर्ष्या-भाव नहीं जगेगा। हम अनिश्चित कालतक नये-नये सिरोंसे जीवन शुरू कर सकेंगे....उसे पूरा करनेके लिए हाथमें हाथ डाले चलना और आगे बढ़ना अनिवार्य है। प्रेम तो आसपासके वातावरण और रोटी-की तरह है लेकिन वातावरण दूषित हो जाये या रोटी ज़हरीली निकल जाये तो कोई किसीकी सहायता नहीं कर सकता।....

हो लो नाराज़....लेकिन दुनियाको नज़रा नहीं जा सकता, साथ ही हर बातको गम्भीर होकर सोचना भी एब्सर्ड है। गम्भीर होनेसे कुछ नहीं होता। इसलिए जैसा कुछ है जीवन उसे वैसाका वैसा ही स्वीकार लेना चाहिए, लेकिन इसकी भी आज्ञा नहीं मिलती। आत्म-हत्या तो असहनीय पराजय है और यह ज़रूरी है कि हम विजयी बनें। यह मज़ाक़िया लगता है कि दुनिया एब्सर्ड है....हाँ, यह कहना ज़रूर एब्सर्ड है।

('जर्नल' में यूजिन इयोनेस्को)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

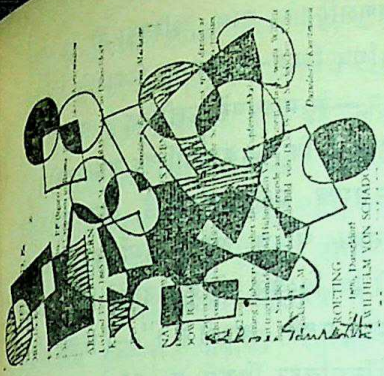

मु । क्त । चि । न्त । न

अस्तित्ववादः कुछ नयी स्थापनाएँ

•

श्यामसुन्दर मिश्र

अस्तित्ववाद, अधुनातन जीवनके विभिन्न विषयों (सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक) और वैज्ञानिक उपलब्धियोंकी यान्त्रिकताके बीच आबद्ध-व्यक्ति-इकाईकी आकुल चिन्ताका वैज्ञानिक और समीचीन विश्लेषण है। अस्तित्ववादी चिन्तन जीवनकी संकुलताके मध्य व्यक्तिकी स्वातन्त्र्य-चेतना और आन्तरिक गरिमाको पुनः अर्जित करनेकी सम्भावनाको आधार मानता है। वैयक्तिक अस्तित्वका प्रश्न केवल दार्शनिक समस्या नहीं है, अपितु वह वैयक्तिकताकी निर्मिति और जकड़नकी विडम्बनाके कारण वस्तुतः अधुनातन व्यक्तित्वके स्खलनका प्रश्न है, अतः अस्तित्ववादी विचारकोंने इस समस्याको नवीन स्थापित सन्दर्भोंमें विश्लेषित करनेका प्रयत्न किया है। विज्ञान विनिर्मित विश्वमें सब कुछ वस्तु पदार्थके रूपमें जाना जाता है और पार्थिव तथा बाह्य है। विश्वके सम्बन्धमें जो कुछ राय हैं, वह समूचे विश्वमें बोधगम्य और स्वीकृत तथ्य है। अतः विज्ञान बोधगम्य विश्व और मानवीय ज्ञान-चेतनाके मध्य एक सम्बन्ध है, और सम्पूर्ण ज्ञान और विश्वके प्रत्येक वस्तु-पदार्थ सामान्यतः इसी चेतनाके लिए हैं।

कीर्केगार्डने परम्परागत दार्शनिक निर्णयों और निरूपणोंके प्रति नवीन आसन्नताको जन्म दिया है। वह युरॅपीय औद्योगीकरणसे निर्मित नवीन बुद्धिजीवी वर्गकी आकुलताका प्रतिनिधि चिन्तक है। तत्कालीन युरॅपमें ईसाई धर्ममें चर्चके अनावश्यक महत्त्व, और परम्परागत रूढ़ियोंसे आक्रान्त व्यक्ति-आस्थाके आन्तरिक संघर्षने विवेकशील व्यक्तिको सोचने और समझनेके लिए विवश किया था, और यही कारण है कि कीर्केगार्डके दर्शनने पुनः एक बार समूचे युरॅपको सोचने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझनेके लिए चिन्तनका नवीन धरातल दिया। अस्तित्ववादके प्रसिद्ध विद्वान् श्री एच० जे० ब्लेकहमके अनुसार : "जिस तरह ह्यूमने हमें अपने ज्ञानकी स्थितिके प्रति सजग कर परम्परागत दर्शनकी दिशामें नवीन परिवर्तनको जन्म दिया उसी तरह कीर्केगॉर्ड और नीत्शेने हमें अपनी मानवीय स्थितियोंके प्रति सजग किया। कीर्केगार्डके अनुसार ऐतिहासिक तथ्य भी सम्भावनाएँ हैं, और चरित्रपर उनके नैतिक प्रभाव स्वतन्त्र रूपसे सत्य सम्बन्धी नये प्रश्नोंकी अपेक्षाको जन्म देते हैं।...."

व्यक्ति-अस्तित्व कार्यकारी क्षणोंमें रूपायित होता है, अतः—"अस्तित्वकी सतता बनाये रखनेके लिए अस्तित्वगत इकाईके कार्यकलापोंका प्रमुख उद्देश्य निर्णयपर पहुँचना है, और निर्णयको पुनः दुहरानेके लिए विचारक स्वयंको संकटपूर्ण निर्णयोंमें ढालता है और दुहराता है, जो कि पूर्ण रूपसे आन्तरिक वचन-बाध्यता है।"

इस प्रकार उपलब्ध उत्तरदायित्व-बोध एक मात्र नैतिक सत्य है, जो कि मात्र सम्भावना नहीं है, अपितु यह प्रत्येक व्यक्ति-इकाईका अपना तथ्य है। आन्तरिक वैयक्तिकताकी निर्मिति और सफलता बाह्य कार्यों-द्वारा रूपायित होती है। "प्राण-शक्तिका सारांश कार्यकलापोंमें निहित रहता है; वह अपनी गरिमा महसूस करती है, और स्वयंको अपने कृतित्व और कार्यके माध्यमसे संयोजित करती है, और इस प्रकार वह स्वयंके लिए विधायिका बन जाती है। उस प्राणशक्तिके साथ व्यक्तिका जो कि स्वयं पार्थिव विश्व—विभिन्न संस्थानोंके पूंजीभूत रूप—के माध्यमसे उत्तोलित है, सम्बन्ध यह होता है कि वह इस तात्त्विक अस्तित्वको स्वयं के समक्ष प्रस्तुत करता है, तथा प्राणशक्ति उसका चरित्र और सामर्थ्य बन जाती है, जो कि विश्वमें उसे कुछ बननेके लिए निश्चित स्थान प्रदान करती है।"—(सिक्स एक्जिस्टैंसियलिस्ट थिंकर्स, पृ० १९)।

अस्तित्ववाद अपने प्राथमिक स्वरूपमें व्यक्तिकी जकड़नको सामाजिक और धार्मिक सम्बन्धोंकी वर्जना और सराहनाके बीचके क्रमगत आन्तरिक संघर्षके रूपमें चित्रित करता है। इस संघर्षका आध्यात्मिक स्वरूप कीर्केगार्डका प्रधान विषय है। कीर्केगार्ड आस्थावान् ईसाई विचारक है, जो धर्मके बाह्य आडम्बरोंका विरोधी है। नीत्शेके दर्शनका स्वर प्रतिक्रियात्मक है। वह महा-मानवकी सम्भावनाको जन्म देता है, और व्यक्ति-सामर्थ्य एवं शक्तिको अतिरेककी सीमातक पहुँचा देता है। नीत्शेके मनमें सम्पूर्ण रूपसे और सही अर्थोंमें अपने अस्तित्वको सार्थक करनेवाले व्यक्ति-मानवको ढूँढनेकी आकांक्षा है। उसके अनुसार सामाजिक आदर्श और परम्पराएँ बुर्जुआ संस्कृतिकी देन हैं, और समाज जैसे-जैसे समृद्ध और आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न होता जाता है, इन नियमोंके प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाना प्रारम्भ कर देता है। नीत्शे व्यक्तिकी आन्तरिक वैयक्तिकताको सामाजिक और राजनैतिक शक्तिके केन्द्रीकरणसे समन्वित कर परम्परागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शको मानवकी प्रतिद्वन्द्वितामें खड़ा करता है। अपराध या पाप-भावनाके सन्दर्भमें वेदना-स्थितिका विश्लेषण करता हुआ वह कहता है—"क्लेश या पीड़ाके विरुद्ध व्यक्तिकी अकर्मण्यता वस्तुतः पीड़ाके विरुद्ध नहीं, अपितु पीड़ाकी परिज्ञानहीनताके विरुद्ध होती है, इस तरहकी ज्ञानहीनताका अस्तित्व न तो ईसाइयतमें है—जो पीड़ाको रहस्यात्मक समाधान-तन्त्रके रूपमें परिवर्तित कर देती है, और न ही आदिमकालीन मानवकी आस्था और विश्वासमें है जो पीड़ामें दर्शक या दण्ड देनेवालेकी हैसियतसे अधिक कष्ट देनेकी सम्भावनाको खोजता है। अतः विश्वमें इस गोपनीयताको अन-अन्वेषित और अनदेखी रहने देनेके लिए ईश्वर और अन्य बीचके अस्तित्वमय माध्यमोंको खोज अनिवार्य हो गयी। सारांशमें वह कुछ जो गोपनीय स्थलोंमें भी घूमता है, अँधेरेमें भी देखता है, और जो कभी न गुमनेवाला मज़ेदार और कष्टपूर्ण ऐनक है।"—(गिल्ट : बेड कान्सेन्स—द फ़िलासफ़ी ऑफ़ नीत्शे, पृ० ६८२)। नीत्शे इस स्तरपर मानवीय अस्तित्वको अच्छे और बुरेकी सीमासे मुक्त कर देनेका समर्थक है।

यास्पर्स विज्ञानकी अनिवार्यता और उसकी स्वीकृतिसे उत्पन्न विवशता, चिन्तनगत आकुलताकी अपरिहार्य स्थिति मानता है। दर्शन वस्तुतः दार्शनिकके अस्तित्वके साथ प्रारम्भ होता है कि वह क्या है—इससे प्रारम्भ नहीं होता है कि वह क्या जानता है। दार्शनिक ज्ञान नहीं स्वयंको उपलब्ध और सम्प्रेषित करता है। उसके अनुसार—"निर्णयके बिना चुनाव सम्भव नहीं है, निर्णय बिना आकांक्षाके सम्भव नहीं है, बिना कर्तव्यके आकांक्षा सम्भव नहीं है, और बिना अस्तित्वमयके कर्तव्य सम्भव नहीं है।"—यह सिद्धान्त प्रमाणित करता है कि चुनाव स्वयंसे अनुस्यूत होता है, एवं मुझे जो कुछ मैं हूँ बनानेकी प्रक्रियामें पुनः वहीं वापस आ जाता है। इस तरहका चुनाव विभिन्न स्थानापन्नोंके समक्ष अनिश्चयकी सम्भावनाका अवसर नहीं देता, यह मेरे भीतरसे अनुस्यूत होकर सीधे अपने उद्देश्यकी ओर अनुगत होता है। वैयक्तिक अस्तित्वके स्तरपर जाग्रत स्वातन्त्र्य-चेतना ही व्यक्तिके कर्तव्यकी विधायिका शक्ति है, और स्वातन्त्र्य-चेतना स्वयंको वैयक्तिक अस्तित्वके रूपमें स्व-इकाईके स्तरपर जाग्रत करती है, और अनिवार्यतः उसी ओर उन्मुख है। स्व, विश्वमें परिस्थितियोंद्वारा सीमित है, और जो केवल परिस्थितियोंके भीतरसे अनुभवित किया जा सकता है, किन्तु उसे विश्वमें और संकीर्ण परिस्थितियोंके सिवाय कुछ और में परिणत नहीं किया जा सकता।

कार्ल यास्पर्सके अनुसार—"जहाँतक मेरी स्वतन्त्रता यथार्थको अस्वीकार करती है और सम्भावनाके स्तरपर स्व-अस्तित्वमयके रूपमें रहती है, किसी सीमाका सामना नहीं करती, किन्तु तब मैं 'कुछ नहीं' हो जाता हूँ, और 'कुछ नहीं' हूँ, जब वह रूपाकार व्यक्तिके रूपमें प्रस्तुत होती है, तो मैं अपनी परिस्थितियोंसे आबद्ध विश्वके भीतर हूँ, और वैसी स्थितिमें मुझे सीमाओंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामना करना पड़ता है, तथा किसी भी तरह सीमाओंको भुलावेमें नहीं रखा जा सकता और न कम या व्याख्यायित ही किया जा सकता है, केवल सीमाएँ वहाँ होती हैं, और विस्तार तथा स्वामित्व दोनोंकी अवहेलना करती हैं।"—(सिक्स एक्सिसटैंसियलिस्ट थिंकर्स, पृ० ५२)। सृष्टिके बीच रहनेवाले व्यक्तिकी नियति इसीमें है कि वह उन स्थितियोंसे घिरा है, जिनमें-से अधिकांशके लिए वह उत्तरदायी नहीं है, और उसके निर्णय इन्हींके द्वारा नियन्त्रित और बाध्य होते हैं। स्व-एक अस्तित्वमय स्वतन्त्रताकी चरमस्थितिके सम्भावित स्वरूपकी कामना करता है, और परिस्थितिगत स्वरूपमें स्वयं अपनी परिस्थितियों-द्वारा गहन आकुलतापूर्ण जकड़नका अनुभव करता है। आन्तरिक और बाह्य रूपसे इस दुहरी संघर्षात्मक स्थितिके कारण उसके आन्तरिक और बाह्य जीवन-क्रमोंमें परस्पर विरोधकी स्थिति निर्मित हो जाती है। इस स्थितिसे बचनेके शाश्वत आकर्षणमें—"रहस्यवाद या सकारवाद या बौद्धिकतावादकी ओर उन्मुख होना वस्तुतः स्व-एक अस्तित्वमय (बीइंग-वन-सेल्फ़) और परिस्थितिगत अस्तित्वमयके दुहरावसे अस्वीकार करना है, यह कि आन्तरिक स्व, जो स्वामित्वलब्ध विश्वको सर्वातिशायी स्वातन्त्र्यमें परिवर्तित करता है—को कुण्ठित करना है, जब कि वह (आन्तरिक स्व) गम्भीर रूपसे उन कार्यों, उद्देश्यों और आदर्शोंमें स्व-एक अस्तित्वमयके लिए नियत एकमेव तरीक़ेसे व्यस्त है, और स्व-अस्तित्वमयके स्तरपर पहुँचनेके लिए प्रयत्नशील है।"—(वही, पृ० ५२)। कार्ल यास्पर्स आस्थाको एक सार्वजनीन विश्व मानवीयताके सन्दर्भमें व्याख्यायित करता है। विश्वसे पूर्ण विलगता और ईश्वरसे सम्प्रेषण सम्भव नहीं है। विश्वसे अलग कोई ईश्वर नहीं है, और न ही विश्व ईश्वर है। ईश्वर विश्वमें प्रकट और छिपा दोनों है, और उसका रूप देखनेके कोई भी प्रयत्न न तो सफल हो सकते हैं और न हमेशाके लिए समाप्त हो सकते हैं। विश्व मानवीयता और उसके सतत संघर्ष-द्वारा प्राप्त उपलब्धियों तथा संघर्षजनित असफलताओंके प्रति उसकी आसक्तता संवेदनात्मक है, और इसी कारण अक्रमशीलता और अन्तःक्रियाशीलताका तनाव उसके दर्शनका प्रधान स्वर है।

मार्शल मानवका सारतत्त्व परिस्थितियोंके भीतर रहनेमें मानता है। वह मानवको विश्वके भीतर पुख्ता परिस्थितियोंमें खोजता है—उन क्षणोंमें नहीं जब स्वातन्त्र्य-चेतनाके स्तरपर उसका स्वयंसे अलगाव रहता है। वह चरम स्वतन्त्रता और अस्तित्वमयकी विश्वगत स्थितिका विश्लेषण करते हुए कहता है—"मैं इसी ढंगसे रह सकता हूँ कि मैं अनुभव करूँ—मैं अपने शरीरका हूँ, उसके साथ स्वयंको पहचानूँ, या कि मैं अपने शरीरको उपकरणके रूपमें इस ढंगसे मानूँ कि मैं उसके द्वारा दास बना लिया गया हूँ। उदाहरणके रूपमें आत्महत्याके मामलेमें मैं स्वतन्त्रतापूर्वक अपने शरीरको समाप्त करता हुआ देखा जा सकता हूँ; किन्तु इस स्थितिमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं दुःखात्मक भ्रमका शिकार बनता हूँ और अपनी स्वतन्त्रताके सकारात्मक अर्थमें इस बुलावेको स्वीकारात्मक प्रतिवचन देनेकी सम्भावना है।"—(सिक्स एक्जिसटैंसियलिस्ट-थिंकर्स, पृ० ६९)। मार्शलमें अस्तित्वमयके प्रति झुकाव समस्याके रूपमें नहीं, अपितु रहस्य रूपमें मूलतत्व है। आत्म और बाह्य अविता परस्पर समाभूत हैं, और अलग नहीं किये जा सकते। मुझे प्रभावित करने और छूनेके लिए पार्थिव विश्वमें बुराई और मृत्यु ततत हैं, मैं उसमें गुँथा हूँ, और मेरे लिए 'वैसा वह है' के सिवाय और कुछमें कम नहीं हो सकता। विश्व अन्तिम है और समस्या-लक नहीं है।

सम्बद्ध व्यक्तिके लिए प्रेमका स्वरूप विश्लेषणात्मक नहीं संवेगात्मक है। यह उसकी सम्पूर्णतम उपलब्ध सम्भावना है। विश्वगत सम्भावनाओंका प्रारूप व्यक्तिमें मानसिक उद्वेलनको जन्म देता है—"वृद्धिधर्मा प्रत्यर्थोंका अधिकार 'मैं' को व्यग्रतामें फँसा लेता है। यहाँतक कि जहाँ अधीन करनेका कार्य केवल इच्छा है, सामग्रीका रूप है और अधिकार-प्राप्तिकी इस इच्छाका आनन्द भी उपलब्ध अधिकार खो देनेकी व्यग्रता उत्पन्न करता है।"—(वही, पृ० ७१)। मार्शलको किसी धर्मविचारकोंमें सम्माननीय स्थान प्राप्त है। ईसाइयतके सन्दर्भमें वे अस्तित्ववादके रूपतम व्याख्याता हैं। परम्परागत धार्मिक साहित्यमें ईश्वरके सकारात्मक रूपको वर्जना-त्मक आदर्शोंसे आरोपित कर भिन्नरूपमें प्रस्तुत किया गया है। मार्शल पुराणपन्थियोंके इस परम्परागत ईश्वरत्वका विरोध करते हैं, और ईश्वर सम्बन्धी नयी व्यवस्थाके अन्वेषी हैं। आस्थाके प्रश्नसे अलग अस्तित्व आधिभौतिक रहस्य है, जिसका उत्खनन पार्थिव विश्वके बाहर नहीं होना चाहिए। जीवन उत्तरदायी भावनाओं और सृजनात्मक कार्यकलापोंमें तनावको हल करते समय उपलब्ध होता है, जहाँ उपलब्ध सामग्री अलग नहीं होती, बल्कि अस्तित्वमय-में मिल जाती है, जिसमें एक और दूसरा 'मैं' और 'तू' बन जाता है। इस स्तरपर विज्ञान आधिभौतिकतामें सम्मिलित है, तथा जिसमें स्वचालन-तन्त्र स्वतन्त्रतामें परिवर्धित है, जो कि भाग लेना है। इसमें मेरा शरीर और विश्व—जिसके साथ वह सारयोग्य है, और जो प्रसारित है, तथा अपनी शक्तियोंको द्विगुणित करता है—वह स्थल है जहाँ मैं अस्तित्वमय-को देखता हूँ, जहाँ मैं अपनी उत्पादन-क्षमता और अपनी आकांक्षाका कार्यरूप निर्धारित करता हूँ, और स्वयंको खर्च करनेके लिए खुला अनुसृत और तैयार रखता हूँ।

वैज्ञानिक उपलब्धियों और बौद्धिक सम्भावनाओं द्वारा निर्मित समसामयिक विश्व-में व्यक्तिका स्वयंके भविष्यके प्रति आदर, जिसमें उसकी कोई स्थायी पात्रता नहीं है मनमौजी और अन्ध-विश्वासपूर्ण है। इस दृष्टि-बिन्दुपर व्यक्तिका अपने सफलतापरक रूपसे कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि व्यक्तिका इन सफलतापरक रूपोंकी चित्रपटलात्मक दौड़में कोई अस्तित्व नहीं बचा, क्योंकि इस स्तरपर उसके पास स्व-स्मृति सम्बन्धी अस्तित्व नहीं है, और न स्व-कटिबद्धताको शक्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्धियों और सम्भावनाओंको रूपायित करनेवाले तत्त्वोंपर पूर्णतः व्यक्तिका अधिकार नहीं रह गया है। मार्शलके अनुसार कोई भी विचार बिम्बके माध्यमसे दिखाई देता है, वह आवश्यक रूपसे सम्पूर्ण परिस्थितिमें सही नहीं उतरता, और इस प्रकार प्रत्येक व्यवस्था केवल अन्वेषण है।

अधुनातन जीवन दुरूह वैज्ञानिक उपलब्धियों और जटिल सामाजिक स्थितियोंके सन्दर्भमें उपकरण-मात्र बनकर रह गया है। व्यक्ति-अस्तित्वकी इस संकटापन्न स्थितिका विश्लेषण हीगरके दर्शनका प्रधान स्वर है। विश्वगत व्यक्तिकी स्थिति और व्यक्तिगत अस्तित्व-चेतनाका परस्पर संघर्ष व्यक्तिके समक्ष दो निर्णयात्मक विरोधी अस्तित्वमय रूपोंको प्रस्तुत करते हैं। सच्चे अस्तित्वमयका मूल व्यक्तिकी परिस्थितिके बोधमें निहित है, और अप्रामाणिक अस्तित्वमयका मूल स्वचालित रूपमें संयोजित विश्वकी सड़ी-गली परम्पराओंसे होकर चलता है। वस्तुपरक सभ्यताने व्यक्तिके समक्ष जटिल स्थितियाँ निर्मित कर दी हैं। पदार्थोंपर स्वामित्व-कामनासे परिचालित व्यक्ति उन पदार्थोंमें निहित भीति और त्रासका सामना करता है। "त्रास संसारमें मुझे अपने जीवनके लगावों और अर्थोंसे अलग करता है। वह मेरे सम्बन्धों और पूर्वाधिकारोंमें अन्तर्निहित होकर मुझे इस मान्यतामें अलग कर देता है कि मैं इस निर्वैयक्तिकतात्मक, दृढ़-निश्चय, अप्रामाणिक अस्तित्वको जारी रख सकता हूँ, या महान् प्रयत्नोंसे 'मेरे-स्वयं' अस्तित्वका वैयक्तिक भार ले सकता हूँ, और वह (मेरा स्वयं) मैं किसी भी रूपमें नहीं हूँ, किन्तु हमेशा 'होऊँगा' हूँ, क्योंकि मैं बननेको आगे करता हूँ।"

चिन्ता विश्वमें विशिष्ट सम्बन्धों और पूर्वाधिकारोंकी पकड़में स्व-अस्तित्वमयको व्यक्त करती है। इस स्तरपर चिन्ता उस एकके अस्तित्वका प्रारूप है, जो गुणात्मक रूपमें भाग लेता हुआ रहता है, और विश्वमें 'वह क्या बनेगा' का गठन है। ऊपरकी प्रकृतिसे स्पष्ट है कि वैयक्तिक-अस्तित्व सम्भावना-परक है। उसे कभी उपलब्ध नहीं किया जा सकता। उसकी दिशामें यह यात्रा सतत और अनन्त है। यही मानवीय प्रयासों और गतिशीलताको चिरन्तनता प्रदान करती है। वैयक्तिक अस्तित्व 'निरर्थकता' और 'निरर्थकता' के बीच रूपायित है। मृत्यु शाश्वत सम्भावना है, जो अस्तित्व-कल्पकी अन्य सम्भावनाओंको जकड़ लेती है। उस मृत्यु प्रामाणिक रूपमें रहनेके लिए संकल्पित है। हीगरके अनुसार—"मैं अपनी सारी सम्भावनाओंको मृत्युमें नष्ट होते देखता हूँ, जैसी कि दूसरोंकी सम्भावनाएँ उनकी बारीमें नष्ट हुई थीं। इस प्रमुख सम्भावनाके समक्ष केवल दो रास्ते हैं: स्वीकृति या विभ्रान्ति। अपने अस्तित्वकी सामान्य और प्रमुख सम्भावनाके रूपमें मृत्युकी स्वीकृतिका चुनाव विश्वकी अस्वीकृति नहीं है, और न ही विश्वकी दैनिक पूर्वधारणाओंमें भाग लेने भागना है, अपितु यह स्वयंको धोखा देने अस्वीकार करना है, और पूर्वधारणाओं विरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं व्यस्त हूँ के रूपमें अभिशापित होनेसे अस्वीकार करना है—यह उन्हें जितनी उनकी मान्यता है के निरर्थक रूपमें ग्रहण करना है। इस अलगाव (निरपेक्षता) से प्रामाणिक वैयक्तिक-अस्तित्वकी शक्ति, गरिमा और सहिष्णुता आगे बढ़ती है।"

प्रामाणिक वैयक्तिक अस्तित्व स्थापित और आकांक्षितका संश्लेषण है, और यह संश्लेषण स्थापितको आकांक्षित रूपमें ग्रहण करनेसे उपलब्ध होता है। मानव प्रकृति नहीं अर्थ निर्मित करता है। अतः क्यों है ? क्या है ? जैसे प्रश्नोंके उत्तर देनेकी सम्भावना नहीं है। वर्तमान युग धर्मशास्त्रोत्तर और आध्यात्मिकोत्तर है; यह इस बातकी स्वीकृतिके साथ है कि ईश्वर (परम्परागत) मृत है, और मानवके पास पार्थिव वस्तुओंकी समष्टिके बाहर कहीं खड़े होनेका आधार नहीं है।

जाँ पॉल सार्त्र बीसवीं सदीके सर्वाधिक विवादास्पद किन्तु बौद्धिक लेखक और दार्शनिक हैं, जो फ़्रान्स और बाहर बुद्धिजीवियोंके मध्य अपनी चौंका देनेवाली स्थापनाओंके कारण अत्यधिक चर्चित हैं। द्वितीय विश्वयुद्धकालीन जीवनका आवेगपूर्ण स्पन्दन और वैज्ञानिक उपलब्धियोंकी यान्त्रिक जकड़नके सन्दर्भमें विकसित नवीन संकटापन्न स्थितियोंका निरूपण सार्त्रके दर्शनका प्रधान स्वर है। समसामयिक उपकरणपरकता मानवीय इकाईको दूसरोंके समक्ष एक उपकरणके रूपमें प्रस्तुत करती है—"अतः यह स्पष्ट दिखता है कि हम स्वयंको दुहरी और परस्पर-विरोधी आवश्यकताके समक्ष पाते हैं : कि प्रत्येक उपकरण उपयोग योग्य होता है, और दूसरे उपकरणके सम्पर्कसे ही सुबोधगम्य होता है। एक औज़ारसे दूसरे औज़ारके पार्थिव सम्बन्धमें विश्व अनिश्चित है। संसारकी बनावटके इस आशयमें हम स्वयं इस उपकरणपरकतामें अपने-आपको एक उपकरणके रूपमें ही सम्बद्ध कर सकते हैं।"—(बीइंग एण्ड नथिंगनेस, पृ० ३२४)। सार्त्रके अनुसार शरीर वस्तुओं और हमारे बीचका चित्रपटल नहीं है, यह केवल व्यक्तित्व और उपकरणपरक वस्तुओंके आदिम सम्बन्धोंकी सम्भावनाकी प्रव्यंजना करता है।

इस विश्वगत उपकरणपरकताके प्रति—"शर्म, भय और घमण्ड मेरी मूल प्रतिक्रियाएँ हैं, वे विविध रास्ते हैं, जिनके द्वारा मैं दूसरेकी अपनी पहुँचके बाहर विषयके रूपमें मान्यता देता हूँ, और वे अपने-आपमें मेरी वृहत् स्वत्ता हैं, जो कि मेरी दूसरोंको पार्थिव पदार्थ बनानेकी प्रवर्तनाके रूपमें कार्य करते हैं।"—(वही, पृ० २९१)। सामाजिक संश्लेषके रूपमें प्रत्येक व्यक्तिका व्यवहार और कार्य वस्तुतः उसका चरित्र नहीं है। जिसे हम दूसरेका चरित्र मानकर चलते हैं परिस्थितिगत अस्तित्वमय है। हम उसका उपकरणों और अवरोधोंकी पार्थिव एकताके रूपमें अनुभव करते हैं। सार्त्रके अनुसार एक दृष्टिकोणके रूपमें शरीर और वस्तुओंके बीच पार्थिव सम्बन्ध हैं, और शरीरके प्रति चेतनाका सम्बन्ध आस्तित्विक सम्बन्ध है।

व्यक्तिकी आन्तरिकता शरीरमें अन्तर्भूत है। सार्त्र अस्तित्वके तीन आयाम मानता है—"मैं शरीरमें हूँ : यह मेरे शरीरका पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयाम है। मेरा शरीर दूसरों द्वारा उपयोगित और ज्ञेय है : यह दूसरा आयाम है। जहाँतक मैं दूसरेके लिए हूँ, दूसरा मेरे समक्ष विषयके रूपमें स्पष्ट है, जिसके लिए मैं पार्थिव वस्तु हूँ। यहाँ भी जैसा कि हमने देखा, प्रश्न मेरे दूसरेसे बुनायादी सम्बन्धका है।....मैं स्वयं अपने लिए हूँ, किन्तु दूसरेके द्वारा शरीरके रूपमें जाना जाता हूँ : यह मेरे शरीरका तीसरा तात्त्विक आयाम है।" —(वही, पृ० २५१)। स्वतन्त्रताकी प्रवृत्ति व्यक्ति-मानसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। मेरी सीमा मेरी स्वतन्त्रताको नियन्त्रित करती है, क्योंकि बिना चुनावके स्वतन्त्रता नहीं है, और इसी रूपमें शरीर चेतनाको संसारकी विशुद्ध चेतनाके रूपमें नियन्त्रित करता है। यहाँतक कि वह अपनी स्वतन्त्रतामें भी चेतनाको सम्भावित करता है।

अपने तथ्यात्मक अस्तित्वमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरोंके द्वारा छुआ जाता अनुभव करता है, यह उसका दूसरोंके लिए वहाँ होना है, जिसके लिए वह उत्तरदायी है। यह वहाँ होना शरीर है। शरीर रूपमें विश्वगत अस्तित्वमय वस्तुतः अपने लिए नहीं बल्कि दूसरोंके लिए जीवन्त रूपमें लगातार अपने शरीरके प्रति चेतन रहता है। सार्त्रकी स्थापना है कि—"जब कोई व्यक्ति मेरे पार्थिक अस्तित्वमयका बोध करता है—यह मेरे लिए असहनीय आनुषंगिकता है, और दूसरे द्वारा 'मेरे स्वयं' का विशुद्ध स्वामित्व है। दूसरे आशयमें यह अस्तित्वमय एक क्रममें 'मेरे-स्वयं' की नींव खोजता है और पाता है। यह गर्भितयोग्य तभी है जब मैं दूसरेके स्वातन्त्र्यको अन्तर्भूत कर लूँ। अतः 'मेरे-स्वयं' को खोजनेकी मेरी योजना बुनियादी रूपमें दूसरेको आत्मसात् करनेकी योजना है।"—(वही, पृ० ३६४)।

घृणाके माध्यमसे व्यक्ति दूसरेकी स्वतन्त्रताका अनुभव करता है। नैतिक प्रतिबन्ध और सामाजिक वर्जनाओंके पीछे उनका मूलभूत गठन कष्टके उसी रूपमें रहता है, जिसे ऐन्द्रिक अरुचि कहते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेकी अत्युत्कृष्टताको घृणा करता है। घृणा परस्पर सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहार-क्रममें घृणित होनेकी माँग करती है, क्योंकि घृणा एक जो घृणा करता है की आकुल स्वीकृति है। स्वतन्त्रता सर्वप्रथम 'दिये गये' के नकारके रूपमें उत्पन्न होती है, एक सीमातक यह आन्तरिक नकार है और चेतना है। यह उस अनिवार्यतामें भाग लेती है, जो चेतना कुछ होनेकी चेतनाको प्रक्षिप्त करती है। स्वतन्त्रता चयन करनेकी स्वतन्त्रता है, किन्तु चयन न करनेकी स्वतन्त्रता नहीं है। चयन न करना वास्तवमें चयन न करनेको चुनना है। परिणाम यह होता है कि चयन 'चरित-अस्तित्वमय' की नींव होता है किन्तु चयन करनेकी नींव नहीं होता, अतः चयन इस स्तरपर स्वतन्त्रताकी असंगति है।" विश्वमें मेरा स्थान क्रूरात्मक क्रम और इयत्ताओंके विशिष्ट स्वभाव-द्वारा परिभाषित है, स्वभावतः वह स्थान जहाँ मैं रहता हूँ। (अपने सूर्य, अपनी जलवायु, अपने सापेक्ष जलवर्णनात्मक और शैलकारिक सौन्दर्य सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ मेरा देश) यह पार्थिवताओंकी व्यवस्था और क्रम है, जो इस समय मेरे सामने हैं, जो अपने क्रमके कारणका मुझे संकेत देते हैं। यह तथ्यात्मकता है, जो स्वतन्त्रताको निर्मित और व्याख्यापित करती है। स्वतन्त्रता तथ्यात्मकता-द्वारा नियन्त्रित और परिचालित होती है। स्वयं सार्त्रके अनुसार :

१—"मैं दूसरे अस्तित्वोंके बीच एक अस्तित्वमय हूँ। मैं इस अस्तित्वका अनुभव दूसरोंके बीच नहीं करता। मैं उन अस्तित्वों-को पदार्थके रूपमें नहीं मान सकता, जो मुझे घेरे हुए हैं, और न स्वयंको घिरा हुआ अस्तित्व मानता हूँ।···· मैं स्वयंको स्वयंके अस्तित्वमय रूपमें नहीं अपितु अस्तित्वमयके रूपमें व्यवहारके रूपमें चुनता हूँ।"—(वही, पृ० ५४८)।

२—"परिस्थिति केवल अन्तकी ओर क्रियागतके अतिक्रमणकारी रूपमें साथ रहती है। यह वह तरीक़ा है, जिसके द्वारा क्रियागत जो मैं हूँ और क्रियागत या दिया हुआ जो मैं नहीं हूँ, स्व-अस्तित्वमयके समक्ष स्पष्ट होते हैं जो कि मैं 'वह अस्तित्वमय नहीं' के रूपमें हूँ। जब हम परिस्थितिके बारेमें कहते हैं, तब हम उस स्थिति जो 'स्व-अस्तित्वमय' द्वारा जानी गयी है, के बारेमें कह रहे होते हैं।"—(वही, पृ० ५४८)।

३—"यदि स्व-अस्तित्वमयके लिए परि-स्थितिके सिवाय कुछ नहीं है, तब वह परि-स्थितिगत अस्तित्वमय लेखा-जोखा-द्वारा परि-स्थितिगत अस्तित्वमय और परिस्थितिसे परे अस्तित्व दोनोंका अनुसरण करता है। अत: वहाँ कोई सुविधाप्राप्त स्थिति नहीं है।"

४—"परिस्थिति अन्तों (परिणामों)-द्वारा ढँक दी जाती है, जो कि वहाँ केवल होनेके रूपमें प्रारूपायित होते हैं, वे आत्य-न्तिक रूपसे पुख़्ता रूपसे पुख़्ता रूपमें प्रस्तुत होते हैं। हाँ, वे अमूर्त्त और विश्वजनीन गठनके रूपमें हैं और उसे बनाये रखते हैं। यह समझ लेना चाहिए कि एक आकारमें उन्हें संसार हमारे समक्ष हमारे विशिष्ट और वैयक्तिक अवसरके रूपमें मोड़ता है।"—(वही, पृ० ५८०)।

५—"परिस्थिति पार्थिव या निजात्मक नहीं होती, अत: उसे स्वतन्त्रताका स्वतन्त्र परिणाम नहीं माना जा सकता, जिनके प्रति मैं कर्त्ता (विषय) हूँ, यह निर्मितिके प्रभासनसे स्वतन्त्रता द्वारा स्फूत होती है, जो कि उसे निर्मितिका अर्थ प्रदान करता है।····स्व-अस्तित्वमय एक अवसरानुकूल आचरण है, इसका अर्थ है कि वह नहीं है, किन्तु वह स्वयंको बनाता है। इस मूल्यवान स्थायित्वके लिए परिस्थितिकी गणना की जानी चाहिए, जिसे कि तैयार रूपमें मनुष्यमें मान्य किया जाता है, ('वह नहीं बदला', 'वह हमेशा वैसा ही है') और जिसे कि मनुष्य अपने साम्राज्यके रूपमें अनुभव करता है।"

सार्त्र आधुनिक युगके संकटकी बौद्धिक और तथ्यपरक व्याख्या प्रस्तुत करता है। व्यक्ति-अस्तित्व समष्टिके समक्ष 'न कुछ'के रूपमें तुच्छ हो जाता है, किन्तु अस्तित्वका

[शेष पृष्ठ २४ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ । अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

उन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

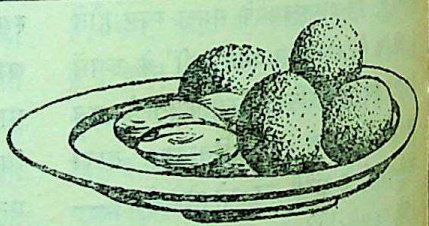

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतालवी 'पोएती दि आगी'

—बाफ़ा यूनियल

समकालीन इतालवी कविता-धाराको नये कवियों और आलोचकोंने 'पोएती दि आगी' (आजकी कविता) नाम दिया है। आजकी कवितासे उनका तात्पर्य है : द्वितीय महायुद्धके पश्चात् प्रकाशमें आनेवाले कवियोंकी रचनाएं। इन कवियोंमें-से प्रमुख हैं—पिये पाओलो पैसोलिनी, सान्द्रो पैना, वित्तोरियो भेरेती, लियोनेती, मारियो लुज़ी, ल्यूसिआनो अरबा और पैनाती। ये कवि एक प्रकारसे तीसरे दशकके कवियों साबा, मॉंतेल, उन्गेरती, क्वासीमोदो तथा उनकी परम्पराके अन्य कवियोंके विरोधमें प्रकट हुए थे। सन् १९५६ में इतालवी आलोचक एनरिको फ़ाल्कीने रोमके 'यूनादी' किताबघरकी ओरसे इनकी कविताओंका एक संग्रहीत संकलन प्रकाशित किया था। इस संग्रहकी भूमिकामें फ़ाल्कीने इनकी कविताओंका गम्भीर विवेचन और विश्लेषण प्रस्तुत किया तथा तीसरे दशकके कवियोंकी रचनाओंके साथ इनकी कविताओके तुलनात्मक अध्ययनके आधारपर इन्हें उनसे भिन्न सिद्ध किया। उसके अनुसार ये 'नवीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियोंमें अनुभूत सत्योंके कवि' हैं।

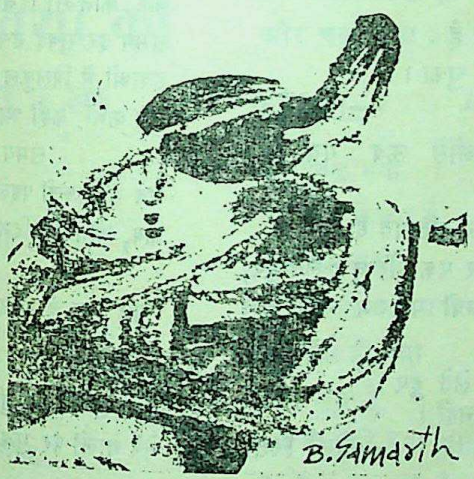

यद्यपि समकालीन इतालवी कवितामें किसी एक स्वरको प्रतिनिधि निश्चित करना कठिन है, किन्तु अनुभवकी एक विशेष अन्तर्धारा है जो प्रायः सभीकी रचनाओंमें एक समान रूपसे प्रवाहित होती दीखती है :

यह बहुत कम है
और इससे अधिक होनेका कहीं कोई संकेत नहीं।
—मारियो लुज़ी

तथा :

मैं इस लूट-खसोटको
देख भर सकता हूँ,
—व्यथित मैं नहीं
हो पाऊँगा।
—ल्यूसिआनो अरबा

इनसे पहली पीढ़ीके कवियोंकी रचनाओंमें सामाजिक-नैतिक अवमूल्यन, विश्रृंखलन, आस्थाके अभाव और दैनिक जीवनकी एकरसतामें उत्पन्न ऊब और अनीहासे पीड़ित-प्रताड़ित संवेदनशील युवककी अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति थी। यह बहुत कुछ इनकी कविताओंमें भी है, किन्तु उस रूपमें नहीं। अनास्था इनके लिए स्वयं एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधिभौतिक मूल्य बन गयी है। ईश्वरके न होनेका इन्हें दुख नहीं; उसकी सत्तापर-से विश्वास हट जाना इनके लिए बहुत सहज है :

मेरा अपना ईश्वर
साइकिल पर बैठकर चला गया।
—पैसोलिनी

ऊब और अनीहाके स्थानपर इनमें तटस्थता और निष्क्रियताका भाव है :

न मैं उद्विग्न हूँ, और न मुझे शान्ति है।
—मारियो लुज़ी

क्यों अन्दर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती ?
क्यों हर्ष से उल्लसित नहीं हो पाता मन ?
क्यों नहीं भोग पाता मैं इस सघन वेदना को ?
—पैसोलिनी

अपने चारों ओरके जन-समूहसे इस कविका सम्बन्ध टूट-सा गया है। उसके लिए लोग भीड़ मात्र हैं। वह अपनेको बराबर उनसे दूर अनुभव करता है :

तुम जो हो, मैं जो हो चुका।
—लियोनेती

वह दुखकी कथाओंसे ऊब गया है, और लोग :

शराबखानों में बैठे लोग बतियाते हैं :
'बहुत दिन पहले' और एक और घूँट लेते हुए,
'तुम्हें पता है ?' कन्धों पर जम गयी धूल झाड़ते हैं,
धुएँ की घुटन में साँस लेते हुए।
उनका इलाज सम्भव नहीं।
—नेलो रिसी

अपने विषयमें उसे यही कहना है कि 'हम लोग कमीने नहीं, थके हुए हैं'—सान्द्रो पैना। आनेवाली पीढ़ीकी ओरसे वह कहता है :

हम लोग
—जो कल जन्म लेंगे।
हमारे पास न उत्सवों के लिए फूल हैं,
न नुकीली चट्टानों को कोमल बनाने के लिए हरीतिमा।
हमारे पास न मछलियाँ हैं, न पंछी।
—नेलो रिसी

यह है बुद्धि-जीवी कविकी यन्त्रणाका एक रूप। लेकिन 'जैसे-जैसे दिनोंका दर्द वयस्क होता जाता है....' वह (पैनाती) अपनेको अपने चारों ओरके वातावरणके साथ बाँधनेका प्रयत्न करता है। इस रूपमें उसके अनुभव एक साधारण व्यक्तिके दैनिक अनुभवोंसे भिन्न नहीं। प्रतिदिनके जीवनकी वही नीरसता, सहज-प्रत्याशित घटनाएँ और पहले ही दिवा-स्वप्नोंमें जी लिया गया बासी भविष्य :

हफ़्तों पहले मैं जान लेता हूँ
कब, कौन-सा दिन आयेगा।
समय हर सुबह उसी तरह शुरू होता है,
हवाओं में बिलकुल वही गन्ध चाहे न हो...
जब कभी, कहीं आकाश नहीं होता कि हमें
समय का ज्ञान हो सके,
तब भी हफ़्तों पहले मैं जान लेता हूँ :
कब, कौन-सा दिन आयेगा।
—पैनाती

यह सब है और बीत गये कुछ दिनोंकी मधुर स्मृतियाँ भी :

द्वार खोलते हुए तुम
मेरे गालों पर झुक आयी थी।

तुम अब भी।
कि जैसे तुम एक ऊर्ध्व चट्टान हो,
जिस पर छायाएँ जल जाती हैं।
—सान्द्रो पैना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

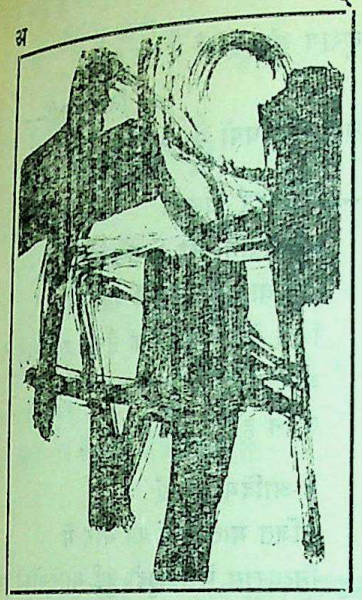

तीन कवियों का साप्ताहिक

•

• दो पल बेकली के :

—१—

मैं इस क्षण को धर कर
तुम्हें सौंपना चाहता हूँ
—सुनार की तरह
चिमटी से
रतन-सा उठाकर नहीं
माली की तरह
डाली से
फूल-सा चुन कर

भारतभूषण अग्रवाल •
केशव कालीधर •
वीरेन्द्रकुमार जैन •

इन्तज़ार का यह नन्हा क्षण
इन्तज़ार का
और बेकली का
कि पोस्टमैन आया
और चला गया

—२—

जो लिख गया
वह सब मिथ्या है
उसे मत गहो !
जो लिखा नहीं गया
घुमड़ता ही रहा
वही सच है
जो मैं तुम्हें देना चाहता हूँ !
....लो, यह दे दिया
सूनी हवा की लहरों पर
दिये-सा सिराकर
तुम्हारा नाम !

—भारतभूषण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• लीला होड़ और अर्थहीन सन्दर्भ :

आतुर कन्धों पर चढ़कर दौड़नेवाली
पालकियों की परिकल्पना
मेरी ही पुतलियों में नाची थी
जब तुम्हारी जड़ता को लय देकर
मैंने इस लीला को जन्म दिया था !

ये छोटी-छोटी जय-यात्राओं की पालकियाँ
मुझे अनुभूति की खिड़कियों पर
खींच ले जाती हैं :

इस जय-यात्रा को सजाकर
मैंने उस लहर को एक बार छू लिया था
जो चन्द्रमा के लिए
ज्वार-सी गाती हुई उठती है
और बूंदों में बिखर जाती है ।
शेष को मैंने
आरोपित बनवास की तरह झेल लिया ।

पहिले ही से सब कुछ जान कर
जिन्होंने दार्शनिक मुकुटों को
अपने शीश पर धारण किया--
वे शोभायात्राएँ निकल जाने पर
उसकी निरर्थकता घोषित करते रहे
अनुराग और ईर्ष्या में तप कर
निखरे नहीं--
केवल समाधियों में थम गये !

--और हर पालकी
शोभायात्रा पर निकल कर
एक वातायन बनती रही
जिस में अनेक लोक तैरते हुए आते हैं
और सृष्टि के साथ-साथ
दफ़न होते रहते हैं !

वे आदिम कथाएँ
अर्जित यातनाओं की भोर में
नित्यरास से बिछुड़ी हुई गोपियों की तरह
द्वार-द्वार साँकल बजाती भटकती हैं !
मैं
इन्हें अपनी उस लीला से सन्दर्भयुक्त
करूंगा
जो होड़ की वीथियों से निस्संग होकर
अर्थवत्ता केवल लय के
समर्पण के पाती हैं ।

—केशव कालीधर

• अनामा गोपिकाकी कथा : दो कविताएँ :

—१—

अपने भुजपाश में
बाँध कर रखने की असाहसी
वह अनामा गोपिका
अन्ततः राधा के समर्पण की कथा बनी ।

—किन्तु वे जीवित एकान्त
मर्यादाओं को चुनौती देती
बार-बार घण्टियों की टेर
सीमाओं की टकराहट
हथेलियों का गुलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अंक में समर्पित वह सृजनशक्ति
अपने ही दाँतों से काटी हुई
जीभ को

वेदना से छटपटाते हैं !
मेले में बजती हुई
बाँसुरी-सी

निरर्थकता
अंगीकृत होती रहती है !

—?—
एक असन्तुलन
और वृत्तों की बार-बार पुनरावृत्ति

—मथुरा नगरी को फिर-फिर
जन्माती है !

अपने निर्वासन से आँजी हुई यातना
नीली जमुना को पार करने पर भी
अब क्यों एक अजनबी से
मिलाती है ?

वह
जो स्थितियाँ बनाता है
समाधान में क्यों खो जाता है ?

—केशव कालीधर

•चिड़िया का गान : आइन्स्टीन और मैं :

बादाम वृक्ष की
टहनियों में बैठ
गा रही है चिड़िया :
हवा के छोर,
समुद्र तरंग पर
बादल-लड़का बन
खेल रहा उसका गान :

पास ही लेटी है
नीलिमा की लड़की
आकाश को जघनों में सिकोड़ती-सी :
उसके शून्य गर्भ में
नीरव शिशु बन
ढल गया उसका गान···

और देखते-देखते···
टहनियाँ चिड़िया हो गयीं
चिड़िया हवा हो गयी
हवा समुद्र हो गयी
समुद्र बादल हो गया····

बादल, नीलिमा के गर्भ में
शून्य हो गया :
शून्य में तैरते आ रहे
दो पीताभ चरण····

कहीं दिगन्तों के पार,
ईथर के भी पार
आसमानी काँच की
खिड़की खोल
झाँक रहा था आइन्स्टीन···

····और मैं
ईथर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये वर्तुल,
नये त्रिकोण,
नये चौखाने बन
तरंगायित हो रहा था····

—वीरेन्द्रकुमार जैन

• छिपकली और नारंगी खिड़कियाँ :

झाड़ के तने पर
बड़ी सारी छिपकली रेंग रही :
लो, झाड़ की जड़ीभूत छाल
संसरित हो रही :
और छिपकली की खुरदरी त्वचा में
विचित्र अंजनी-हरी आकृतियाँ :
चट्टानें····अन्तहीन चट्टानों के प्रान्तर :
अचीन्ही अतलान्त वापियों में
काई-जमे घने काले जल अचल :
जंगल····जंगलों के पार जंगल····
घनी हरीतिमा के अपने ही में
लयलीन प्रसार :
····उसके भी पार
धुन्ध में तैरते शृंगों के 'कपूर' :
पर्वत-साँकलों का रेंगता भुजंगम क्षितिजाकार :
····लो, भू-गर्भ में काँपी
चिर निश्चल अँधियारियाँ :
झाड़ के तने पर
सरसराती छिपकली
मेरी शिराओं की
आज तक अवरुद्ध
आदिम ग्रन्थियों को बींध रही :
मेरे रक्ताणुओं में
अपूर्व चेतना-प्रदेशों की
नारंगी खिड़कियाँ खुल रहीं····

—वीरेन्द्रकुमार जैन

[पृष्ठ १७ का शेष : अस्तित्ववाद : कुछ नयी स्थापनाएँ]

स्वभाव इस 'निरर्थकता'से निरन्तर जूझना है। इसी संघर्षके द्वारा व्यक्ति-अस्तित्व यानी परिस्थितिगत अस्तित्वमय स्व-अस्तित्वमय स्तरकी दिशामें ऊर्ध्वगामी वृत्तियाँ अर्जित करता हुआ अपनी आन्तरिक गरिमा उपलब्ध करता है। अस्तित्ववाद समूची समष्टिगत जटिलता और तथ्यात्मकताके सन्दर्भमें दृढ़-निश्चयात्मक आन्तरिकताका विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अस्तित्ववादी स्थापनाएँ आधुनिक व्यक्तिको मानवीय यथार्थके प्रति जागरूक बनाती हैं, और परम्परा-मोहसे मुक्त करती हैं। अस्तित्ववादकी उपलब्धि मानवीय जीवन-की तथ्यात्मकताके उद्घाटनमें है। आधुनिक व्यक्ति स्वयंके समक्ष मानव-समाज, जलवायु, पृथ्वी, वर्ग और भाषा, संचयनका इतिहास जिसका कि वह अंग है, पैतृकता, व्यक्तिगत वातावरण, अर्जित आदतें, जीवनकी छोटी-बड़ी घटनाओं आदिको पाता है, और इस जटिलताके मध्य स्वयंको आबद्ध अनुभव करता है। अस्तित्ववाद इस जटिलता और उससे ग्रस्त समसामयिक मनीषाकी अनुभूति स्वीकृतिको व्यक्त करता है।

(ज्ञानोदय : अगस्त १९६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता। ज़े। स। न्द। र्भ

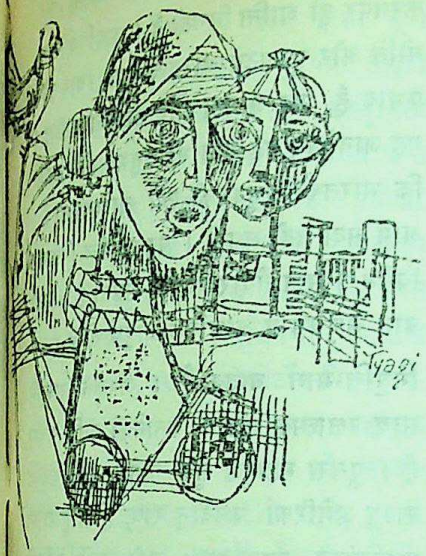

भूमण्डलीय युद्धपटमें भारतका स्थान

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

शक्ति-सन्तुलन सिद्धान्तका जागतिक राजनीतिमें सदा विशेष महत्त्व रहा है। इस अणु-युगमें भी इसका महत्त्व कम नहीं हुआ। तीसरे महायुद्धके बादल गरज रहे हैं। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री हैरोल्ड विल्सनने कामन्स-सभामें उत्तरी वियतनामपर पुनः बम-वर्षा शुरू करनेका समर्थन इसी कारणसे किया है कि वियतनाम युद्ध महायुद्धमें ही नहीं, विश्व-युद्धमें परिणत हो सकता है। उत्तरी वियतनामको सरल व साधु राष्ट्रनेता डॉ० हो० ची० मिन्हने राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णनसे अपील की है कि भारत वियतनाममें शान्ति स्थापित करनेका प्रयत्न करनेमें उपक्रम करे। यह इस बातका एक प्रमाण है कि आग्नेय एशियाके देश भारतसे नेतृत्व पानेकी आशा करते हैं। भूमण्डलमें दक्षिण-पूर्व एशियाका जो महत्त्व है, विश्वकी राजनीतिमें इसका जो स्थान है, विश्वके तीन बड़े राष्ट्र अमेरिका, सोवियत रूस और चीन—जिस प्रकार इसको अपना-अपना प्रभाव-क्षेत्र बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं वह इस भू-भागका और उसमें भारतका महत्त्व प्रमाणित करता है। यहाँ कम्युनिज्म और लोकतन्त्र संघर्ष कर रहे हैं, या केवल राष्ट्रोंका पारस्परिक स्वार्थ टकरा रहा है, राष्ट्रोंकी महत्त्वाकांक्षाएँ छीना-झपटी कर रही हैं, यह सत्य तो बादमें प्रकट होगा। अदितिके नेतृत्वमें नवम्बर १९६५में हिन्देशियामें जो राज्य-विप्लव वियतनामसे कम महत्त्वका नहीं। वियतनाम-युद्धका हिन्देशिया-विप्लव एक भाग था। सूक्ष्म रीतिसे विचार करनेपर यह दिखाई देगा। मलयेशियापर हिन्देशियाका आक्रमण और मलयेशियासे सिंगापुरका अलग होना इसी घटनाचक्रका भाग है। अदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़नेकी अवस्थामें [illegible] में एंग्लो-अमेरिकाका समुद्री अड्डा बनानेकी इच्छा इस बातके प्रमाण हैं कि आग्नेय एशिया विश्वको तेज़ीसे तृतीय विश्वयुद्धकी ओर ले जा रहा है। विश्वयुद्धकी गतिको भारत अनेक बार मन्द कर सका है। लेकिन क्या वह इसका होना भी असम्भव कर सकता है? भारतको अणुबमसे एड़ीसे चोटी तक सशस्त्र करनेका जो लोग आग्रह करते हैं वह भी शान्तिप्रेमी हैं। वह भी तीसरा विश्वयुद्ध नहीं चाहते, नर-संहार और विनाशकी लीला नहीं देखना चाहते। शान्तिका हल्ला करनेवालोंसे कम वह मानव-प्रेमी नहीं हैं। परन्तु वह जानते हैं कि पद्मासन लगाये जबतक श्रीराम बैठे रहे, समुद्रने उनको मार्ग नहीं दिया। पर जब श्रीराम बोले :

"विनय न मानत जलधि जड़
गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब
भय बिनु होई न प्रीति॥
लछिमन बान सरासन आन
सोषौं वारिधि विसिख कृसान।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा
यह मत लछिमन के मन भाया।
संधानेउ प्रभु विसिख कराला
उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।
कनक थार भरि मनि गन नाना
विप्र रूप आयउ तजि माना॥"

चापधारी श्रीरामको समुद्रने मार्ग दे दिया। इसी कारणसे भारतीय सेनाको शक्तिमान् व बलाढ्य बनानेका आग्रह करते हैं। शान्तिका पथ शस्त्रीकरणके मध्यसे गया है। उसका पथ रक्तरंजित है। रक्त-गंगा पार करनेपर ही शान्ति मिलती है। जागतिक राजनीति और युद्धपटमें भारतका क्या स्थान और प्रभाव है, यह जानना और समझना चाहिए। यह जाननेपर यह बात भी अनुभव होने लगेगी कि भारतको अणुबमकी क्यों आवश्यकता है। आग सदा नहीं लगती। पर दमकल (फ़ायर ब्रिगेड) सदा तैयार रखना पड़ता है। यही बात अणुबम व आणविक आयुधोंकी है।

निवृत्ति-मार्ग घातक है : जगत्के राष्ट्रोंके साथ रक्षात्मक संघ न बनानेकी नीति सदोष है। दूसरा महायुद्ध शुरू होनेसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका बलवान् राष्ट्र होता हुआ भी राष्ट्रसंघसे पृथक् था। यही नहीं युरॅपकी राजनीतिसे भी अलग था, तटस्थ दर्शकमात्र था। अतिपूर्वमें जापानके साथ उसका मैत्री सम्बन्ध था। अन्यथा मनरो-सिद्धान्तमें बँधा हुआ पश्चिमी गोलार्धसे दूर-ही-दूर रहता था। पूर्वी गोलार्धमें फ़िलीपीनपर उसका प्रभुत्व था। जापानकी नौ-शक्ति बढ़ रही थी। इसको देखकर फ़िलीपीनको स्वतन्त्रता देकर भी उसके अनेक द्वीपोंमें अमेरिकाने अपना सैनिक अड्डा क़ायम कर रखा था।

विश्व-राजनीति साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके चारों ओर घूमती है। इसके सब सूत्र उनके हाथमें रहते हैं। राजनीतिक व सैनिक गतिविधिका सामान्यतः लक्ष्य इनका संरक्षण करना होता है। इन प्रदेशोंको जोड़नेवाले यातायातके मार्गोंके संरक्षणको दृढ़ करनेके लिए होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक उत्पादन बढ़ानेके लिए कच्चे माल, ईंधन-तेलका सतत अव्याहत प्रवाह जारी रखनेके लिए होता था और होता है। हिटलर और मुसोलिनीकी युरॅपमें ताक़त बढ़ती गयी, परन्तु विश्व-भरको कम्युनिस्ट बनानेकी घोषणा करनेवाला सोवियत रूस उस समय तक अनुकूल समयकी प्रतीक्षा करता रहा जबतक उसके हित सम्बन्धको धक्का नहीं पहुँचा। इससे पहले हिटलरसे दोस्ती करनेमें भी स्तालिनको आपत्ति नहीं हुई। १९३९ में मोलोटोव-रिबनट्राप-की भेंटके तुरन्त बाद ही दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ। परन्तु रूसने फ़ैसिज़्म और नाजी-वादसे लड़नेके लिए, १९४१ से पहले, दूसरी 'मोलोटोव-रिबनट्राप वार्त्ता' विफल होनेके बाद ही रूसने तलवार उठायी—इस सत्यको ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है। कोई देश सिद्धान्त-रक्षाके लिए शस्त्र नहीं उठाता। अपने हितोंका घात होनेकी आशंका होनेपर वह युद्ध पुकारता है। उस समय वह लोकमत-की भी परवाह नहीं करता। पराजयके किनारे पहुँचे जापानके विरुद्ध रूसने युद्ध-घोषणा की पूर्णतः स्वार्थ-रक्षार्थ।

भारतका भौगोलिक महत्त्व : ब्रिटिश साम्राज्य समाप्तिपर है। परन्तु इस सत्यको तिरोहित नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश साम्राज्यका आधार भारत था। भारत ब्रिटिश साम्राज्यका एक सामान्य घटक नहीं था। क्योंकि भारतका भौगोलिक महत्त्व विशेष है। इसको प्राकृतिक सम्पत्ति और इसका प्राकृतिक शक्ति-विभव भी इसको एक विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। इसकी जन-शक्ति भी उपेक्षणीय नहीं है। इस कारणसे मिस्र और पूर्वी अफ़्रीकासे लेकर हांगकांग तक और तिब्बत-अफ़ग़ानिस्तानसे लेकर दक्षिण हिन्दमहासागर व आस्ट्रेलिया पर्यन्तका विशाल भू व जल-विस्तार भारतके महत्त्वसे व्याप्त था और है। भारतके इस महत्त्वको कोई शक्ति छीन नहीं सकती, हाँ, खण्डित कर सकती है। ब्रिटेनने यही किया भारतको खण्डित कर दिया। रूसने ताशकन्द-क़रार-द्वारा खण्डित भारतकी खण्डता दृढ़ की और संयुक्त भारतके प्रयत्नोंको नष्ट किया है। ताशकन्द-क़रारका समर्थन संयुक्त भारत-के विरोधी और ब्रिटिश साम्राज्यवादके समर्थक ही कर रहे हैं। दूसरे महायुद्धसे पहले साम्राज्यवादी देशोंका क्लब था। जैसे आजकल 'न्यूक्लियर क्लब' है। अविकसित और अप्रगत भूभाग परस्पर बाँटना और जिस-पर जिसका स्वामित्व है, उसमें बाधा न आने देना—यह देखना उसका काम था।

आधार-स्थान : इस विस्तृत भू-भागमें भारतका स्थान मध्यमें है। मध्यवर्ती होनेसे ही भारतको ब्रिटेनने चारों दिशाओंमें फैले ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिए भारतको आधार-स्थल (बेस) बनाया। यही क्यों ब्रिटेन यहाँ रहकर आस-पासके इतर युरॅ-पियन साम्राज्योंको दिलासा देता रहा, बल देता रहा, मदद देता रहा। चीनमें बाक्सर-विद्रोह, तिब्बत-मुहीम, मिस्र और स्वेज नहरका संरक्षण पहले और दूसरे महायुद्धमें पश्चिम एशिया व मलाया-बर्मा-संग्राम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलाया, वियतनाम और हिन्देशियामें साम्राज्य-शाही टिकाये रखनेके प्रयत्न भारतीय सेनाकी मददसे हुए, यह अविस्मरणीय है। पहले व दूसरे महायुद्धमें युद्ध-सामग्रीके उत्पादनके लिए आवश्यक बहुत-सा माल भारतसे गया। कुछ शस्त्रोत्पादन इस सुरक्षित क्षेत्रमें हुए। दूसरे महायुद्धमें कांग्रेसका विरोध होनेपर भी, भारतकी सैन्य-संख्या २५ लाखपर पहुँची थी। हालाँकि इस देशमें बाधित सैनिक भरती जारी नहीं की गयी थी। भारतके इस शक्ति-विभवको स्मरण रखना चाहिए। इसका विचार करके ब्रिटिश साम्राज्यवादने भारतको खण्डित करनेसे पहले भारत खाली नहीं किया। इस ऐतिहासिक तथ्यको क्या कभी भुलाया जा सकता है? इस तथ्यको स्थायी बनाना क्या भारतको निर्बल बनाना नहीं है?

संगम-स्थल : यातायातकी दृष्टिसे भी भारतका महत्त्व था और वह आज भी है। ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत बर्मा, मलाया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड पहुँचनेवाले और उससे परे अतिपूर्वके व्यापार-मार्ग हिन्द महासागरसे जाते थे और आज भी जाते हैं चाहे वह स्वेजनहरके मार्गसे हो या अफ्रीकाका चक्कर लगाकर उत्तमाशा (गुडहोप) अन्तरीपसे हो। युरॅपको इन देशोंसे जोड़नेवाला हवाई मार्ग भी भारत-भूपर-से होनेके बाद इतरत्र फैलता है।

अतः भारतकी सुरक्षापर ब्रिटेनका वर्चस्व और उसपर ब्रिटिश साम्राज्य ही नहीं, अन्य युरॅपियन राष्ट्रोंके साम्राज्योंका भविष्य अवलंबित था। इस कारणसे ब्रिटिश और युरॅपियन राष्ट्रोंकी राजनीतिमें भारतका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। एक्सलाशापेल-सन्धिके बादसे युरॅपमें हुई सन्धियोंको देखिए। यह आज भी गया नहीं है। कांग्रेस पार्लमेंट्री पार्टीके नेताके चुनावमें अन्य देशोंके रस लेनेका यही कारण है। भारतके प्रधान मन्त्रीको अनायास महत्त्व इस कारणसे प्राप्त हो जाता है। अँगरेज़ इस सत्यको समझते थे। इस वास्ते भारतकी सुरक्षाके लिए उन्होंने योजना बनायी थी।

ब्रिटिश संरक्षण-योजना : ब्रिटिश साम्राज्यवादके समय चीन एक प्रबल राष्ट्र नहीं था। अँगरेज़ोंको १९१७ से पहले जारशासित रूससे और बादमें कम्युनिस्ट-रूससे केवल भीति थी। प्रथम महायुद्ध छिड़नेसे पहले अँगरेज़ोंको जर्मनीकी प्रचण्ड शक्तिकी और दूसरा महायुद्ध छिड़नेसे पहले जापानी बलकी कल्पना नहीं थी। इन दोनोंको ब्रिटेनने कभी अपने समकक्ष नहीं माना था। इनको वह अपना कृपापात्र मानता था। इनसे भय उत्पन्न होनेकी उसको कल्पना नहीं थी। वर्साई-सन्धि-द्वारा जर्मनीके सब उपनिवेश छीन लिये गये थे। उसकी शक्तिको नष्ट करनेमें कुछ उठा नहीं रखा गया था। अतः दूसरे महायुद्धसे पहले जर्मनीकी यथार्थ शक्तिका ज्ञान इंग्लैण्डको नहीं था। डंकर्क-निष्क्रमण सदृश अपमानजनक पराजयकी कल्पना उसको नहीं थी। इस वास्ते ब्रिटिश-संरक्षण-योजनाका आधार मेजर-जनरल श्री परांजपे (निवृत्त) के अनुसार इस प्रकार था:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) हिन्द महासागरके मध्य ब्रिटिश नौ-दल सर्वाधिक प्रबल रहना चाहिए। यहाँ उसका अबाधित प्रभुत्व रहना चाहिए।

(२) सम्भावित शत्रु रूस या जर्मनी हो सकते हैं। अतः पश्चिमोत्तर सीमाकी सुरक्षा दृढ़ करनी चाहिए।

(३) आक्रमणका मुक़ाबला करनेके लिए भारतमें बलवान् सेना तैयार करनी चाहिए।

(४) पूर्वसे आक्रमण होनेकी सम्भावना नहीं, फिर भी सावधानी बरतनेके लिए बर्मा और तिब्बतपर अपना प्रभुत्व रहना चाहिए।

बर्मासे आगे अँगरेज़ोंका मित्र स्याम था। उससे आगे फ्रेंच-साम्राज्य था। दूसरा महायुद्ध छिड़ने तक यही स्थिति थी। पहला महायुद्ध समाप्त होनेके बाद ही अँगरेज़ोंने भारतमें विशाखापत्तनमका बन्दरगाह बनाया था। विशाखापत्तनमका सम्बन्ध यदि एक ओर सिंगापुरसे जोड़ा गया था, तो दूसरी ओर दिल्लीकी राह खैबर दर्रेसे उसका सम्बन्ध था। कलकत्तासे दिल्ली राजधानी लाने-का मुख्य कारण सैनिक था, क्रान्तिकारियोंका डर नहीं। ब्रिटिश नौ-शक्ति अति प्रबल थी। स्वयं जापानी युवाने 'प्रिन्स ऑफ़ वेल्स' (१९४१) को नहीं डुबोया था, तबतक ब्रिटिश नौ-सेनाकी अजेयतामें किसको सन्देह था। यद्यपि वाशिंगटन-सन्धि (१९२१)-द्वारा ब्रिटेनने अमेरिकाकी नौ-शक्तिको अपने समान माना था परन्तु जापानको अपने बराबर नहीं होने दिया था। इन तीनों राष्ट्रों-की नौ-शक्तिका अनुपात इस प्रकार रखा गया था ५ : ५ : ३। इस कारण अँगरेज़ोंको जापानी नौ के बलवान् होनेका भय न था।

अति विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्यकी कल्पना कीजिए : स्वेज अदनसे लेकर १९३९ से पहले साम्राज्यके अन्तर्गत दक्षिण अफ़्रीका, आस्ट्रे-लिया, सिंगापुर, भारतीय बन्दरगाह और फिर अदन, स्वेज-अलेक्जेण्ड्रिया—यह चौखट बनती थी। भारतकी ब्रिटिश संरक्षण-योजना-का आधार इसमें-से बना त्रिभुज था। इसका आधार था—सिंगापुर अलेक्जेण्ड्रिया। इसकी एक भुजा थी खैबर-दिल्ली-विशाखापत्तनम। दूसरी भुजा थी अलेक्जेण्ड्रिया-खैबर। पश्चिम एशिया ब्रिटिश प्रभुत्वको मानता था। अँगरेज़ोंने जापानकी प्रबल हो रही नौ-शक्ति-के जवाबमें सिंगापुरका बन्दरगाह चुना था। इसको वह अपना नौ और हवाई सेनाका अजेय अड्डा बना रहे थे। योजना पूरी होनेसे पहले ही जापानने हमला कर दिया। अंगरेज़ोंने भारतीय नौ-सेनाका निर्माण जान-बूझकर नहीं किया था, इसीलिए 'प्रिंस ऑफ़ वेल्स' के डूबनेके साथ उनका साम्राज्य भी डूब गया। यदि कहीं वे भारतीय स्थल-सेनाके समान नौ-सेनाका भी निर्माण करते, तो जापान अँगरेज़ोंको दक्षिण-पूर्व एशियासे न निकाल सकता। जापानकी शक्ति सीमित थी। त्रनकोमल्ली (सीलोन) वह नहीं ले सका। इसलिए यदि भारतीय नौदल विशाल और सुसज्ज होता तो जापान हिन्दमहासागरमें दाखिल होनेका भी साहस न करता। अँग-रेज़ोंने भारतीय नौ-सेनाका निर्माण नहीं किया, फलतः उनको मुग़लोंके समान अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्यसे हाथ धोना पड़ा।

भारतके पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तकी रक्षा-पर अँगरेज़ोंका सदा ध्यान रहा। तीन अफ़-ग़ान-युद्ध इसी खातिर लड़े गये। सीमाप्रान्त पंजाबसे इसी उद्देश्यसे अलग एक प्रान्त बनाया गया। दिल्ली-द्वारा सीधा उसपर शासन होता था। कलकत्ता इसके लिए दूर पड़ता था। लार्ड कर्जनने सीमाप्रान्त तो अलग किया, पर राजधानी कलकत्तेमें ही रहने दी। छह मास शिमला रहना काफ़ी माना। कलकत्ताके राज-धानी होते हुए भी लिटनने दरबार दिल्लीमें ही किया था। ब्रिटिश-दरबार सदा दिल्लीमें ही वायसरायोंने किया। क्योंकि दिल्लीमें दर-बार करनेसे ब्रिटिश शक्तिका सीमाप्रान्त और अफ़ग़ानिस्तानपर प्रभाव पड़ता था। पश्चि-मोत्तर सीमाप्रान्तकी रक्षाके लिए खैबर तक रेल ले जायी गयी। अटकसे परे फ़ौजी चौकियों-का जाल बिछाया गया। कबायलियोंकी सेना तैयार की गयी। उनके सरदारोंको मुँहमाँगा पैसा दिया गया। जिरगोंको अपने साथ मिलाया गया।

सीमा-रक्षाका उपाय सम्भाव्य आक्रमणका विचार करके सीमा-पार सेना रखना है। शान्तिके समय यह सम्भव नहीं है, परन्तु दूर-दर्शिता अपेक्षा करती है कि इसकी तैयारी पहलेसे पूरी रखी जाये। अन्दर और बाहर दोनों ओरसे सीमाकी रक्षा करनी पड़ती है। यदि इस मूल सिद्धान्तको हमने अपनाया होता तो क्या अक्साईचिन चीनके हाथमें आज रहता? पाकिस्तान काश्मीरका एक तिहाई भाग दबाये रखता। सीमाके पारके देशोंसे मैत्री करके अपना वर्चस्व सीमा पार बिठाना होता है। सीमावर्ती देशोंके मतमें राजनीतिक दृष्टिसे यह बिठा देना होता है कि उनका हित और हमारा हित एक है। अपनी सीमा और सम्भाव्य शत्रुके बीच आघात-शोषक (बफ़र) राष्ट्र पैदा किये जाते हैं। राजनीतिक और सैनिक दृष्टिसे ये राष्ट्र प्रबल न होने चाहिए। अपने प्रभावमें रहें, तो बहुत ठीक। इन राष्ट्रोंको ज़रूरतके समय सैनिक मदद देनेकी तैयारी अपनी सदा रहनी चाहिए। चुनावमें जैसे प्रबल प्रतिद्वन्द्वीको हरानेके लिए अनेक अप्रभावशाली उम्मीदवार खड़े किये जाते हैं, उसी प्रकार आघातशोषक (बफ़र) राज्य भी पैदा किये जाते हैं।

भारतीय सीमा: ब्रिटिश शासनके समय भारतकी राजनीतिक सीमा पश्चिम-उत्तरमें हिन्दुकुश-कारकोरम पर्वत, पूर्वमें नागा और चिन पर्वत थी। परन्तु संरक्षण-सीमा पश्चिममें ईरान-अफ़ग़ानिस्तानकी पहली सीमा थी और पश्चिम एशियामें 'दजला-फ़रात नदी थी। इराक़में राज्य-क्रान्ति होनेपर अँगरेज़ और अमेरिकी विमानोंसे लेबनान और जॉर्डन को अपनी सेना ले गये थे, इसका रहस्य यही निहित है। यह तो १९५७-५८ की ही बात है। पूर्वमें सीमा सालविन नदी थी। दोनों महायुद्धोंमें इस संरक्षण सीमापर और इससे परे भारतकी सेनाको लड़ना पड़ा। भारत यदि युद्धकी लपटें नहीं पहुँचीं, भारत भूमिपर लड़ाई नहीं हुई तो इसी दूरदर्शिताके कारण। पूर्वमें जापानी आक्रमण होनेपर ब्रिटिश-भारतीय सेनाको पीछे हटना पड़ा। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेड कल्पनाशून्य थे। जापानको उन्होंने अपना शत्रु नहीं माना था। जापानकी शक्ति-को तुच्छ मानते थे। फलतः सॉलबिनसे परे भारतीय सेना पिट गयी और बुरी तरह पिट गयी।

भारतपर सीधा आक्रमण न हो, और यदि हो तो उसका पहला आघात सहनेके लिए पश्चिममें अफ़ग़ानिस्तान और ईरानके राष्ट्र थे, पूर्वमें थाईलैण्ड (स्याम) था, उत्तरमें तिब्बत था। तिब्बतपर चीनका प्रभुत्व स्वीकार करके हमने ग़लती की, यह मत भारतके वर्त-मान प्रधानमन्त्रीका भी है। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद और राजर्षि टण्डनने इसका उस समय भी विरोध किया था। अनुभवने बताया कि यह भारी भूल हुई है। इसका परिमार्जन लाई लामाको भारतमें बसाना नहीं है, प्रत्युत तिब्बतमें पुनः लामाईकी स्थापना होनी चाहिए। यह भारतकी राजनीतिक सीमाकी रक्षाके लिए आवश्यक है। अँगरेज़ोंने आघात-रोधक (बफ़र) राज्योंकी सहायताके लिए स्थल फ़ील्ड आर्मी (संग्राम-सैन्य) रखी थी। उसमें चार डिवीज़न पैदल, एक अश्वारोही ब्रिगेड (ब्रिगेड) था। इस सेनाको बढ़ानेकी भी योजना थी।

हिन्द महासागरके किनारे किसी भी जगह अंग्रेज़ी भारतीय सेना उतरे, उसका रसद-पानी ब्रिटिश नौ-शक्तिके कारण सुरक्षित था। हिन्द महासागरको अँगरेज़ोंने घेरकर अपना तालाब बना रखा था। ब्रिटिश योजनाका आधार यह कल्पना थी कि रूस और जर्मनीसे ही भारतको ख़तरा है। इस वास्ते उन्होंने नैऋत्य एशिया और ईशान अफ़्रीकापर ही ध्यान केन्द्रित रखा। आग्नेय एशियाकी सर्वथा उपेक्षा की या फ्रेंचों और डचोंकी शक्तिपर भरोसा किया। दूसरे महायुद्धमें नाज़ी-जापानकी प्रगति होनेपर सिंगापुरपर जापानी अधिकार हो जाने और ब्रिटिश नौ-शक्तिके जल-समाधि लेनेके साथ ही भारतको दो दिशाओंसे होने-वाले आक्रमणका सामना करना पड़ा। हिन्द-महासागरका मार्ग इससे पहले ही कट गया था, रुक गया था। बर्मा और भारतके मध्य एक भी रेल-मार्ग और मोटर-मार्ग नहीं था। फलतः बर्मामें गयी भारतीय सेनाका रसद-मार्ग टूट गया। इस संकटसे भारत जैसे-तैसे बचा। नेफ़ामें जो हालत १९६२ में हुई, वही १९४२ में बर्मामें हुई। १९४२ के अनुभवसे भारतने कुछ भी नहीं सीखा।

भौगोलिक स्थिति बदली नहीं : भारत खण्डित हुआ और स्वाधीन हुआ। परन्तु भारतकी भौगोलिक स्थिति बदली नहीं है। अफ़्रीकी-एशियाई खण्ड और हिन्द महासागर-सन्दर्भमें भारतकी विशेष स्थितिको जाननेके लिए इनका पिछले १५०–२०० सालोंके इति-हासका प्रत्येक भारतीयको विस्तृत अध्ययन करना चाहिए। इसके अभावमें भारतकी पर-राष्ट्र और संरक्षण नीति त्रुटिपूर्ण रहेगी और शासकपार्टी यह कहती ही रहेगी कि युद्ध-विराम-रेखाको काश्मीरमें अन्तरराष्ट्रीय सीमा मान लेना चाहिए। हाजी पीर, तिथवल; छोटे-छोटे भूखण्ड देना पाकिस्तानकी मैत्री पानेके लिए कोई बड़ी क़ीमत देना नहीं है।

यह नहीं कहा जाता, यदि इस बातकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूति होती कि ब्रिटिश साम्राज्यका अन्त होने, नये राज्योंके उदय होने, राजनीतिक रंगमंचपर नये खिलाड़ियोंके आनेसे भूगोल नहीं बदला है। पर्वत और नदियाँ पहलेके समान पुराने स्थानपर ही हैं। राजनीतिक परिवर्तन भूगोलको नहीं बदल देता। मरुभूमि, सागर, खनिज पदार्थ और जनसंख्याके बारेमें कोई अन्तर नहीं आया। अन्तर इतना आया है कि इनकी उपासना और इनका उपयोग ब्रिटिश-साम्राज्यको दृढ़ करनेके लिए नहीं वरन् भारतकी स्वाधीनताकी रक्षा करने और भारतको शक्तिमान् बनानेके लिए होगा। निस्सन्देह बीस वर्षोंमें हुए परिवर्तनोंका प्रभाव, शीत-युद्धका असर और नये उत्पन्न राष्ट्रोंके साथ हमारा सम्बन्ध इन सब बातोंका विचार करके जागतिक युद्धपट (स्ट्रेटेजी) में भारतके स्थानका विचार करना चाहिए।

अफ्रीका-एशियाई खण्डमें इस समय क्या स्थिति है ? दो-तीन सौ साल पहले युरॅपके राष्ट्र-जैसे पहले परस्पर लड़ते रहते थे, वैसे ही ये भी आपसमें लड़ रहे हैं। ये राज्य केवल अशान्त ही नहीं हैं, उद्विग्न ही नहीं है, वरन् अस्थिर भी हैं। इनमें-से अनेक स्वजीवी भी नहीं है। दूसरी बात यह है कि इन नवोदित राष्ट्रोंकी सीमा कृत्रिम है, जैसे भारतकी सीमा कृत्रिम है। गान्धीजीके अनुसार पाकिस्तान सर्वथा अस्वाभाविक और कृत्रिम रचना है। शैक्षणिक, आर्थिक, औद्योगिक विकासके लिए उनके पास आवश्यक साधन नहीं है। घाटियों, दर्रोंमें नया रास्ता बनानेपर जैसे कुछ वर्ष तक रास्ता ठीक-ठीक नजरमें नहीं आता, उसी प्रकार यहाँ भी होना सम्भव है। स्थिरता और दृढ़ता आनेमें समय लगता है। इनमें-से अनेक राष्ट्र एकवंशीय, एक धर्मीय नहीं हैं। ऐतिहासिक कालमें कभी एक सत्ताके आधीन थे, पुनः उनको एक सत्ताके नीचे लानेका प्रयत्न किया जा रहा है। साम्राज्य-विस्तारकी पुरानी रीति थी—चढ़ाई करके देश विजय करनेकी। यह रीति अब रूढ़ नहीं रही। नया तरीका है, जिस प्रदेशको जीतना हो, वहाँ उस राज्यके विरोधी पक्षको गुप्त या प्रकट रूपसे सहायता देना, जैसे कम्युनिस्ट सरकारें करती हैं। इस प्रकार सहायता करके वह राष्ट्र उदरस्थ किया जाता है। संयुक्त होनेपर प्रबल राष्ट्रका अधिकार और वर्चस्व रहता है। पश्चिम एशियामें संयुक्त अरब गणराज्य बनानेका प्रेजीडेण्ट नासरका महाप्रयत्न, हिन्देशियाका साम्राज्य-विस्तारका प्रयत्न इसी प्रकारके हैं। पाश्चात्त्य साम्राज्यके ये उत्पीड़ित और दलित राष्ट्र छोटे और असमर्थ होनेपर भी स्थानीय व स्वदेशीय मित्रोंका भी प्रभुत्व माननेको तैयार नहीं हैं। सीरिया मिस्रसे कटकर अलग हो गया। यमन मिस्रके साथ रहेगा यह निश्चय नहीं। मिस्री सेना वहाँसे वापस लौट गयी है। बोर्नियो और डच न्यूगिनीपर हिन्देशियाका स्वामित्व वांशिक किंवा धार्मिक एकताका प्रतीक नहीं कहा जा सकता। जावासे अंग्रेज और डच साम्राज्यवादी चले गये, परंतु उनकी जगह लेनेवाले भी साम्राज्यवादी हैं। उनकी साम्राज्यवादी प्रवृत्तिका प्रभाव भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बही है कि डॉ० सुकर्णने हिन्दमहासागरका नाम बदलकर हिन्देशिया सागर रखनेकी घृष्टता की है। चीन विस्तारवादी देश है, यह अब निःसंशय रूपसे उनके मित्रोंको भी ज्ञात हो गया है और वे उससे भयभीत हैं। १९६७ के अन्त तक चीनके पास १५०-२०० अणुबमोंका भण्डार होगा, इस संवादसे वे प्रसन्न नहीं, अपितु चिन्तित हैं।

साम्राज्य-लालसा : इससे एक बात स्पष्ट है। साम्राज्यवादका अन्त नहीं हुआ। उलटे नवोदित राष्ट्रोंमें भी साम्राज्यवादकी लालसा उत्पन्न हो गयी है। इसके अनेक कारण हैं। आत्मप्रतिष्ठा बढ़ानेकी महत्त्वाकांक्षा, आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी और राजनीतिक दृष्टिसे बलवान् होनेकी उत्कट इच्छा अथवा सांस्कृतिक और धार्मिक एकता स्थापित करनेकी चाह। पश्चिम एशियामें मुसलिम राष्ट्रोंका शिखर-सम्मेलन बुलानेका आयोजन इसी प्रकारका है। मिस्रने पहलेके समान इसका विरोध नहीं किया है, यह ध्यान देनेकी बात है। ये सब प्रवृत्तियाँ, इनका मूल कुछ भी हो, संघर्ष उत्पन्न करनेवाली हैं। क्योंकि अन्ततोगत्वा नेतृत्व बलवान्‌के पास रहेगा। वह अन्योंको सहन न होगा।

शक्तिसन्तुलन : साम्राज्य - लालसाके रहने, राज्य-विस्तारकी इच्छाके बलवती होनेके साथ-साथ युरॅपमें शक्ति-सन्तुलनका तत्त्व पुनः विकसित होने लगा है। शक्ति-सन्तुलन हमको पसन्द हो या न हो, किन्तु यह सिद्धान्त पुनः फैल रहा है और युरॅपके राष्ट्रोंके समान एशिया-अफ्रीकाके राष्ट्र भी इस तत्त्वको दृढ़तासे ग्रहण कर रहे हैं। मनुष्य-स्वभाव नीति-बन्धनोंका आदर नहीं करता, परन्तु धक्कम-धक्कासे पड़े दबावके आगे झुक जाता है। लोभी महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रोंपर भी इसका प्रभाव पड़ता है। शक्ति-सन्तुलन तत्त्वके जीवित रहनेका यही कारण है। शीत-युद्धने इस तत्त्वके महत्त्वको बढ़ाया ही है। अब अणवस्त्रोंका भय भी इस तत्त्वका आश्रय लेनेके लिए राष्ट्रोंको बाध्य कर रहा है। 'सैंटो व सियाटो' की स्थापना इसी दिशामें की गयी थी। मध्यवर्ती कम्युनिस्ट राष्ट्रोंके विरोधमें पश्चिम राष्ट्रोंने शक्ति-समतोल उत्पन्न करनेकी कोशिश की है। इसी प्रकार दक्षिण-एशियामें कोई राष्ट्र अति प्रबल न हो, इसका उन्होंने प्रयत्न किया है। भारत-विभाजन उनकी इसी नीतिका परिणाम है। ताशकन्द-घोषणा भी इसी शक्ति सन्तुलन-नीतिके अनुसरणमें ही है। नवोदित राष्ट्र शस्त्रास्त्रोंके लिए अमेरिका, रूस और युरॅप-के प्रगतिशील राष्ट्रोंपर निर्भर हैं। किस राष्ट्रको किस मात्रामें शस्त्रास्त्रकी सहायता दी जाये, इसका निश्चय इसी शक्ति-समतोल सिद्धान्तके आधारपर किया जाता है। भारत-पाक-युद्धके सिलसिलेमें भारतको युरॅपियन राष्ट्रों और अमेरिकाने पैसा लेकर भी हथियार देनेसे इनकार कर दिया। १९४८ में ब्रिटेनने तेल और जीप देना बन्द कर दिया था। कारण यही शक्ति-समतोलका सिद्धान्त वह लागू करते हैं। भारत अति बलवान् और प्रबल हो, यह वह नहीं चाहते। पाकिस्तान-का अस्तित्व खतरेमें पड़े इसकी वह कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा भी नहीं कर सकते यही कारण है कि जब-जब भारतकी रणवाहिनीने पाकिस्तान-की ओर कूच किया, इंग्लैण्डमें गुहार उठा। मास्कोने पत्र भेजे और अमेरिकाकी भृकुटी तन गयी। भारत-विभाजनको अमिट बनाने-का अन्तरराष्ट्रीय प्रयत्न इसी सिद्धान्तकी स्थापनाके कारण है। ताशकन्द-घोषणा और रूसी प्रधान मन्त्री म० कोसिजिनका इसके लिए महत् प्रयत्न इसी पार्श्व-भूमिमें देखना चाहिए।

शीत-युद्धने विश्वके राष्ट्रोंको दो पक्षोंमें विभक्त कर दिया है। प्रत्येक पक्ष और गुट समतोल बनाये रखनेको उत्सुक है। कोई अपना बल घटाना नहीं चाहता। ये राष्ट्र अपने पक्ष व गुटके राष्ट्रकी शक्ति युद्ध करके नष्ट होते देखना नहीं चाहते। पाक-भारत-संघर्षको इसी कारण इन राष्ट्रोंने गृह-युद्ध नहीं माना। सुरक्षा-परिषद्में अमेरिकाके साथ सोवियत रूसने मत दिया। क्योंकि दोनों राष्ट्र भारत-पाक-युद्धके परिणामको पसन्द नहीं करते। भारत-संयुक्त हो यह उनकी अभि-लाषा नहीं। इसके साथ ही कोई राष्ट्र किसी अलिप्त राष्ट्रका भी बल बढ़ता हुआ नहीं देखना चाहता। समतोल बिगड़नेपर मनुष्य बलात्कार करनेको उद्यत होता है। विवेक नष्ट हो जाता है। शान्ति समझौतेके बदले डरा-धमकाकर लक्ष्य सिद्ध करनेका प्रयत्न करता है।

समतोल बिगड़े नहीं : विश्वके उभय पक्ष जहाँ यह चाहते हैं कि भारत-पाक-संघर्ष न हो, वहाँ यह भी चाहते हैं कि समतोल बिगड़े नहीं। इसके वास्ते उनका प्रयत्न अह-निश जारी है। प्रेजीडेण्ट जानसनकी नवीन नीति-घोषणा इसी सन्दर्भमें देखनी चाहिए। अमेरिका निष्काम भावसे अनाज भी देनेको तैयार नहीं है। जो उसकी बात मानेगा, उसका मित्र होकर रहेगा, उसका पक्ष लेगा, उसको ही वह अनाजकी सहायता देगा। यह नीति-घोषणा समतोलको क़ायम रखनेकी प्रवृत्तिका ही परिणाम है।

त्रिगुट : १९१४से पहले युरॅपमें इंग्लैण्ड, रूस और फ्रॉन्स राष्ट्र एक ओर थे और ये परस्पर सहायताकी सैनिक सन्धिसे बँधे हुए थे। इसके मुक़ाबले जर्मनी, आस्ट्रिया और इटलीका दूसरा गुट था। दूसरे महायुद्धसे पहले मित्रराष्ट्रोंके मुक़ाबले जर्मनी-जापान-इटलीकी युति थी। ब्रिटेन, फ्रॉन्स और बेनेलक्स परस्पर सम्बद्ध थे, मित्र थे। यह प्रक्रिया आज एशिया-में भी चालू है।

चीन एशियामें एक प्रबल राष्ट्र है। उसके मुक़ाबलेका इस समय कोई दूसरा राष्ट्र नहीं है। लेकिन यदि भारत अपने शक्ति-विभवका विकास कर ले, तो भारत चीन ही नहीं, विश्वकी किसी भी शक्तिके मुक़ाबले हो सकता है। विभाजनके बाद भी उसका शक्ति-विभव इतना शेष है, कि वह प्रयत्न करके विश्वकी एक महान् शक्ति हो सकता है। उसकी खनिज सम्पत्ति, प्राकृतिक सम्पत्ति, और उसकी भौगोलिक केन्द्रीय शक्ति, यह सब उसको यह गौरव प्रदान करते हैं। बस आवश्यकता है भारतमें महत्त्वाकांक्षाके जागृत होनेकी। आज यह उत्कट इच्छा नहीं है, इसका यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि इस देशके लोगोंको भविष्यमें भी नहीं होगी, यह देश ध्यानस्थ ही रहेगा, पारलौकिक ध्यान-धर्म-चिन्तनमें ही समय व्यतीत करता रहेगा। भारत भी कभी अनुभव कर सकता है कि विजय-रथके पीछे ही साहित्य, कला चलते हैं। राम लंका यदि विजय न करते, दण्डकारण्यमें आर्य राज्य स्थापित न करते, तो क्या वाल्मीकिरामायण लिखा जाता? पाण्डव यदि दिग्विजय न करते, तो क्या जय-भारतकी रचना होती? मीनान्दर यदि अयोध्या-से पीछे न धकेला जाता तो क्या कालिदासका 'रघुवंश' लिखा जाता? यह अनुभूति उत्पन्न होनेपर भारतका विजय-रथ आगे बढ़ेगा, यह बात आजके बड़े राष्ट्र अनुभव करते हैं। चीनकी बढ़ती शक्तिका जवाब एशियामें भारतके सिवाय और कोई नहीं दे सकता। अतः वह लोग भारतको कुछ-न-कुछ मदद देनेको बाध्य हैं। अमेरिका और सोवियत रूस दोनों चीनकी बढ़ती शक्तिसे भयभीत हैं। एकको भय है कि पूर्वीय और दक्षिणी एशिया-से उसका जमा पाँव उखड़ जायेगा। दूसरेका विस्तृत साइबेरियाई साम्राज्य भय-ग्रस्त है। परन्तु भारत अति बलवान् हो जाये, यह भी उनको पसन्द नहीं। उनके तुल्यबल हो जाये यह वह नहीं चाहते। अतः उन्होंने भारतके चारों ओरके छोटे-छोटे राष्ट्रोंका गुट बनाने और उनको समर्थ बनानेकी नीति ग्रहण की है।

रूस और अमेरिकाकी इस नीतिसे चीन भलीभाँति परिचित है। उसने इस दिशामें उपक्रमण किया है। चीन, पाकिस्तान और हिन्देशियाका त्रिगुट—पीकिंग-रावलपिण्डी-जकार्ता—अति विषमकोण इसका ही फल है। नेपालको इसमें सम्मिलित करनेका प्रयत्न जारी है। भुट्टोकी काठमाण्डू-यात्रा इसी उद्देश्यसे है। भारतके चारों ओर भारतकी शक्तिके समान या उससे अधिक प्रबल शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यह प्रयत्न चालू है। भारत-विभाजनको दृढ़ करने और स्थायी करनेमें मदद देनेका प्रयत्न भारतके लिए कितना भयावह है, अनिष्टकारी है, यह यहाँ देखा जा सकता है।

इस्लामी राष्ट्र: पीकिंग-रावलपिण्डी-जकार्ता त्रिगुट दृढ़ नहीं है। चीन हिन्देशियाके सम्बन्ध प्रेमपूर्ण नहीं रहे हैं। पाकिस्तान अब अपने अस्तित्वकी रक्षाकी गारण्टी मास्को-से पा गया है। अपनी रक्षाके लिए एकमात्र वह चीनपर अवलम्बित नहीं है। इसके अति-रिक्त वह इस्लाम मज़हबकी ढाल भी रखता है। इस्लाम राजनीतिक और भौगोलिक सीमाको नहीं मानता और न उसका आदर करता है। भारतके काँग्रेसी मुसलमान अपने-को मुस्लिम काँग्रेसी कहते हैं। देशसे पहले मज़हबके प्रति भक्ति रखते हैं। पाकिस्तानकी सीमा इस प्रकार भारतकी सीमा तक पहुँचती है। इस भावनाको दृढ़ करनेके लिए पाकि-स्तान, सऊदी अरेबिया और जोर्डन एवं ईरान और तुर्कीसे मिलकर इस्लामी राष्ट्रोंका एक गुट बनानेका प्रयत्न कर रहा है। यह साम्राज्य-वादी राष्ट्रोंका प्रयत्न है, या पश्चिमी एशियाके कुछ राजवंशोंका जीवित रहनेके लिए प्रयत्न है, या इसका प्रेरक कारण कुछ और है, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना सत्य है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पाकिस्तानने ताशकन्द-घोषणाके बाद इसकी स्थापनाका प्रयत्न जारी रखा है। मार्शल अयूब खाँ ताशकन्द जाते हुए क़ाबुल ठहरे थे और इस गुटमें अफ़ग़ानिस्तानको मिलानेका प्रयत्न किया था। राष्ट्रवादसे इस्लाम शक्तिशाली तत्त्व है, यह अनेक बार देखा गया है। राष्ट्रवाद इस्लामको अपने पक्षमें अभीतक नहीं कर सका। साम्यवाद और इस्लाम दोनों राष्ट्रवादको और राष्ट्रीय सीमाको स्वीकार नहीं करते। राष्ट्रवाद देशके प्रति, राष्ट्रके प्रति अनन्य भक्तिकी अपेक्षा करता है। इस्लाम और मार्क्सवाद सिद्धान्ततः इसको नहीं मान सकते और न मानते हैं। दोनों प्रकृतिसे साम्राज्यवादी हैं। यही बात कैथोलिक धर्मके बारेमें कही जा सकती है। मार्टिन लूथरके कारण पश्चिमी और उत्तरी युरॅप पोपके साम्राज्यसे निकल गया। इसको देखते हुए इस्लामी राष्ट्रोंका एक पक्ष संगठित करना, एक गुट बनाना राजनीतिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे उपेक्षणीय नहीं है। पश्चिमी एशियामें एक प्रबल गुट होगा, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु शक्ति-सन्तुलनकी एक नई समस्या उत्पन्न करेगा। सऊदी अरेबिया और पाकिस्तानके मध्य नेतृत्वके लिए प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है। परन्तु यह गुट भारतको गच्चा देनेके लिए बनाया जा रहा है, यह एक ध्रुव सत्य है।

इस जागतिक युद्ध-पट (स्ट्रेटेजी) का विचार करके हम भारतीयोंको सोचना है, क्या भारत भी अपनी रक्षाके लिए शक्ति-सन्तुलनके सिद्धान्तको स्वीकार करे या नहीं? क्या भारत भी अपनेको जीवित रखनेके लिए गुट बनावे? भारतके पड़ोसी देश भारत-विरोधी पक्ष-उपपक्षमें सम्मिलित हों, क्या उससे पहले ही भारतको अपना एक पक्ष न बनाना चाहिए?

Phone : 25-8227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न। यी। क। ला

एक बीट शिल्पी : डेविड पेकार्ड

श्याम परमार

""कई उपकरण। अनेक असम्बद्ध वस्तुओंका सम्पुजन। उलझनोंसे भरी हुई रचनात्मक शिल्प-विधा। टूटे रस्से, ध्वस्त मशीनोंके अनुपयोगी पुर्ज़े, ढेबरियाँ, कीलें, नटबोल्ट, टिनकी चादरोंके कटे हुए टुकड़े, लकड़ीके गट्ठे, लोहेकी पत्तियाँ, कँटीले तार""ये सब उपकरण हैं शिल्पी डेविड पेकार्डके, जिनके द्वारा वह अपनी कृतियोंकी रचना करता है।

आकृष्ट करती हुई सुघड़ताके विरुद्ध, अनास्थाओंसे उत्पन्न उसका विरूप और अनलंकृत कृतित्व सौन्दर्यकी धज्जियाँ उड़ाता है। निरर्थकताके बीच ग़ैर-रोमैण्टिक मनःस्थितियोंमें डेविड अपने कृतित्वकी तमाम अमूर्तताओंको लयहीन विसंगतियोंमें देखता है।

डेविडकी कृतियाँ यन्त्रस्थ मानवकी विकृतियोंसे सम्बद्ध हैं। इनसान उसके लिए जैसे इस्पाती आकार हो। और उसका मस्तिष्क 'साइबरनेटिक्स' की जीवन्त प्रक्रियासे बद्ध होकर भी जैसे जड़ हो। लगता है, निरर्थक चीज़ोंसे उसका समूचा आकार घिरा हुआ है। हृदयकी जगह लोहेके टुकड़े और आँखोंमें खोखले सुराख हैं। छातीपर टूटे हुए बक्सोंसे उखाड़ी गयी लकड़ीकी चौड़ी खपच्चियाँ इस बातको प्रकट करती हैं कि आदमीके शरीरमें अब वह गोश्त नहीं रहा जिसकी गन्ध नसोंमें आग भर सके। इस सन्दर्भमें डेविडकी एक प्रसिद्ध कृति 'मान्सट्रन्स' (दैत्याकार) का ज़िक्र किया जा सकता है। अमेरिकाके उत्तर समुद्र किनारेकी एक कला-संस्था हर वर्ष 'न्यू होराइज़न्स' (नये क्षितिज) नामसे एक शिल्प-प्रतियोगिता आयोजित करती है। सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'६२ में इसी प्रतियोगितामें 'मान्सट्रन्स' को प्रथम पुरस्कृत किया गया। 'मान्सट्रन्स' सामनेसे ऐसे आकारकी अभिव्यक्ति है जिसमें किसी मध्ययुगीन योद्धाके दर्पका आभास होता है, लेकिन उसकी पीठ एक बिलबोर्डकी तरह सपाट और विद्रूप है। उसमें कई खाने बने हैं। समूचा आकार इस बातका अहसास देता हुआ लगता है मानो मशीनी यन्त्रणाओंके बीच आदमी एकदम नंगा है और यह जानना कठिन है कि वह सामनेसे दुरुस्त है या पीछेसे।

डेविड पेकार्ड एक अस्तव्यस्त आदमी है। ४१४, नार्थ स्ट्रीट चिकागोमें उसका अपना स्टूडियो है। अधिक समय वह इसी तरहकी ऊलजलूल जोड़-तोड़में लगा रहता है। उसकी आकारविहीन कलाभिरुचिकी गति ऐसी है कि अपनी कृतियोंमें वह समय-समयपर कुछ-न-कुछ जोड़ता रहता है।

दो वर्ष पूर्व डेविडसे मेरा पत्र-व्यवहार हुआ। एक पत्रमें उसने लिखा : "मैं छोटी-से-छोटी वस्तुसे आरम्भ करता हूँ। कुछ समयके बाद बृहत् डिज़ाइनके रूपमें मेरा काम कृतित्वका रूप ले लेता है। यह प्रक्रिया मेरे लिए जितनी सरल है उतनी ही सन्तोष देनेवाली है। कृतित्व जो मुझमें है इसी प्रक्रियाके द्वारा अस्तित्व ग्रहण करता है। (मैं अपनी कृतियोंको बौद्धिकतासे ग्रस्त कहना पसन्द नहीं करता। यह ऐसा आरोप है जो मेरी समझमें नहीं आता। उसे मैं एक भ्रान्ति मानता हूँ।)

यह कहना कि मुझमें कुछ अलग है, व्यर्थ लगता है। ज्यों-ज्यों मेरी आयु बढ़ती है (इस समय मैं ३४ का हूँ) त्यों-त्यों निश्चय ही भिन्न होता जा रहा हूँ। क्योंकि उम्रके साथ मुझमें आत्मविश्वास आता जा रहा है। फिर भी भय एक बड़ी चीज़ है, बहुत बड़ी। उसे मैं अपने कामसे नष्ट करता हूँ।

मैं यह भी कहना चाहूँगा कि मैं बहुत क्षुधित हूँ। हर अतिवादी क्षुधित होता है। ऐसे बहुत लोग हैं जो मेरी इज्ज़त करते हैं और चाहते हैं कि मेरे कृतित्वके अनुरूप रचना करें। यह अच्छी बात है, लेकिन मैं नहीं चाहता कि वे ऐसा करें।"

डेविड पेकार्डकी रचना-प्रक्रिया जीवनकी अतकर्य वास्तविकताओंकी असंगतियोंमें जीनेका प्रयास है। इसलिए वह अनगढ़ और जीवनकी तरह ही विकृतियोंसे आहत है। उसने लिखा था : "मेरे कृतित्वमें क्रमशः एक ऐसा बिम्ब उभर रहा है जो मुझे भयाक्रान्त करता है—जिससे लगता है या तो उसको स्वीकार कर मैं कष्ट उठाता हूँ, अथवा हो सकता है मैंने उसकी अभिलाषा की हो। मनःस्थितियोंके विभिन्न प्रवाह मेरे भीतर एक दूसरेमें आवर्तित होते हैं। वे जितना अधिक आपसमें विघटित होकर उलझाव और विक्रान्तकी स्थिति उत्पन्न करते हैं उतना ही मुझे मेरा कृतित्व प्रिय लगता है। सच है कि ये सारी बातें स्पष्ट करना कठिन है।"

प्रायः लकड़ी और प्लास्टिक-जैसे उपकरणोंका सहारा डेविड अधिक लेता है। विविध वस्तुओंके प्रयोगके पीछे उसका हेतु स्पष्ट है : क्योंकि व्यर्थकी वस्तुओंसे वह ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेविड पेकार्ड का
शिल्प :

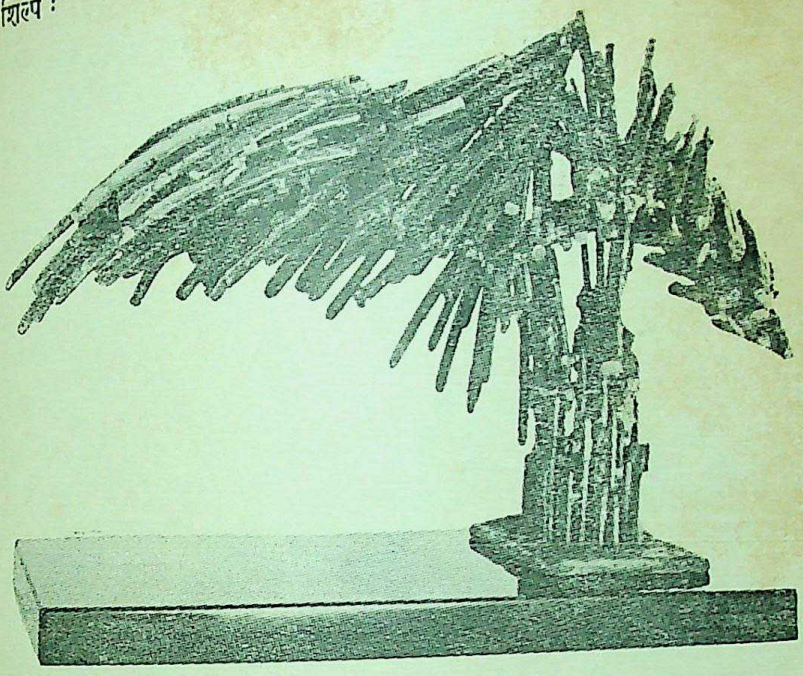

फ़ोनिक्स : वही ग्रीक पक्षी जो राखमें-से जन्म लेता है…

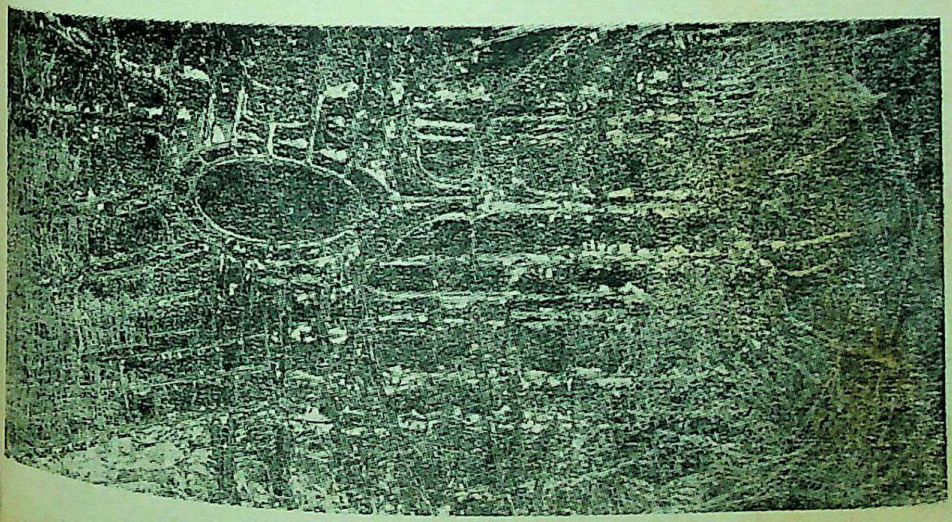

खिड़कियाँ और खिड़कियाँ : लेकिन रोशनी नहीं…

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

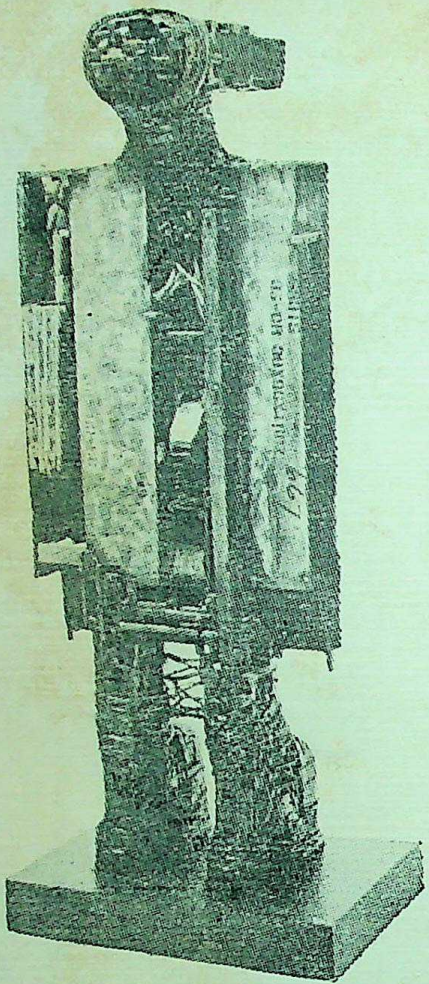

दैत्याकार : एक दिलहीन
कलाकृति···

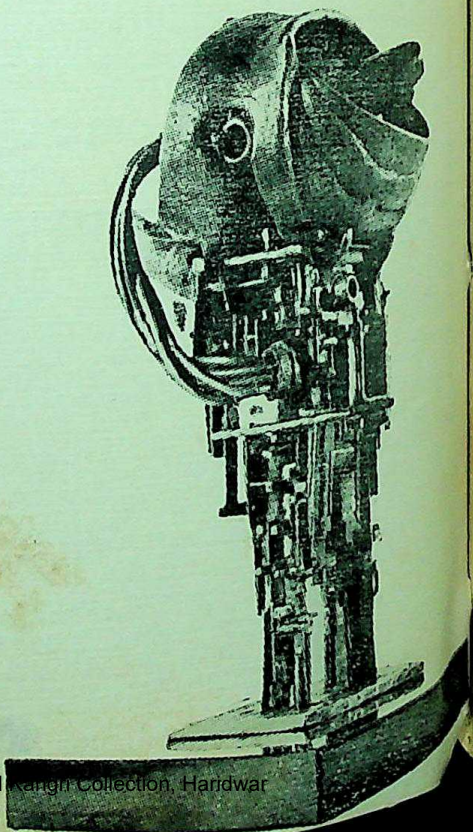

घुसपैठिया : मशीनी सभ्यता
के हाथकी सफाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगति पैदा करना चाहता है जो वर्तमान मनश्चेतनाकी विसंगतिको साहचर्यका सुख देती है। वह ऐसा क्यों करता है इसका तर्क-संगत कारण स्वयं डेविड भी नहीं जानता, लेकिन इतना स्पष्ट है कि वह चौकाना नहीं चाहता। वह उस वास्तविकताको अवश्य सामने लाना चाहता है जिसे शिल्पकी मान्यताओंने कभी अपना विषय नहीं बनाया। डेविडका यह शिल्प अकविताका शिल्प है। उपकरणोंसे परे जिस अपरूप व्यंजनाको वह पकड़ना चाहता है, वह मात्र देखनेका विषय नहीं—देखनेसे परे देखनेका कृतित्व है। 'दी इन्ट्रूडर' (घुसपैठिया) डेविडकी शायद एक ऐसी कृति है जिसका विशाल जबड़ा इनसान-को खा जाना चाहता है। उसका मशीनी शिकंजा सब कुछ भस्म करनेका संकेत देता है। 'फ़ोनिक्स' (ग्रीक पुराकथाओंका पक्षी) शीर्षक विविध कृतियाँ, 'जानवर', 'चारकोणों-की आकृति' आदि उसकी व्यक्तिपरक शैलीको ही व्यक्त नहीं करतीं, बल्कि उसकी ग़ैर-समझौतावादी प्रवृत्तिको भी सामने लाती हैं।

उपकरणोंका वैविध्य और वैचित्र्यपूर्ण संयोजन उसमें विरोधोंकी भूमिका निभाता है। यह भूमिका वस्तुतः गहरी दरारों और टूटनकी वाहक है। डेविड संघर्षके इस रुखमें कोई निदान नहीं ढूँढ़ता बल्कि संघर्षको ही कृतियोंमें झेलता है। उसका कहना है : "मेरा बाह्य मेरी कृतियोंमें पूर्ण सघनतासे प्रकट होता है और उसकी शक्ति, जिसमें मेरी आस्था है, आवश्यक नहीं कि वह पवित्र हो।"

■ ■

वा ता य न —मार्च १९६६ से दिसम्बर १९६६ तक

- आजका पाठक—अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक ! लेखक, पाठक और दो विशिष्ट कृतियाँ ! पाठक, लेखक और युगबोध !
- गीत—मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गत हस्ताक्षर
- विश्वभारती—पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण !
- अन्तर्भारती—भारतीय भाषाओंका कथा-संगम
- भारती—हिन्दी कथा साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें !
- कविता—जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजका कविता-पीढ़ी।
- साक्षात्कार—रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार !
- आलोचना—नयी ! पुरानी ! युगीन विचार-मान !

● सृजन मूल्यांकन ●

वार्षिक शुल्क १०.०० सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
एक प्रति—१.००
५ डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राज.)
शाखा—२२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता—७

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• मंचपर

दो पात्र : फ़ीदियो और लिलबी (पुरुष और स्त्री)
बच्चेका एक काला ताबूत
चार मोमबत्तियाँ
लोहेकी एक सलीब
एक काला परदा (मंचकी पिछली ओर)

केवल एक ही दृश्य

[दूरसे लुई आर्मस्ट्रांगके 'ब्लैक ऐण्ड ब्लयू' संगीतकी एक उदास धुन उभर रही है । ख़ामोशी]

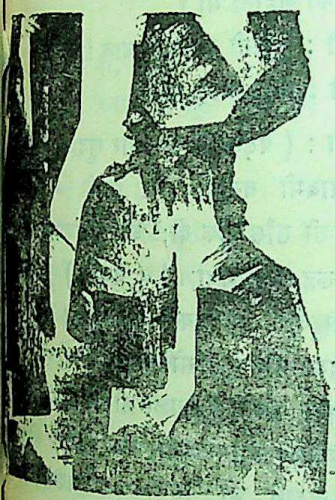

ए । व्स । र्ड । थि । ए । ट । र

प्रार्थना : एक रहस्यवादी नाटक

मूल : अरबिल

अनु० : कृष्ण द्विवेदी

फ़ीदियो : आजसे हम नेक और पाक इनसान बनने जा रहे हैं ।

लिलबी : क्या हो गया है तुम्हें ?

फ़ीदियो : मैंने कहा कि आजसे हम नेक और पाक इनसान बनने जा रहे हैं । फ़रिश्तों-जैसे नेक और पाक ।

लिलबी : हम ?

फ़ीदियो : हाँ ।

लिलबी : हम नहीं बन सकते ।

फ़ीदियो : तुम ठीक कहती हो । (वक़्फ़ा) यह बहुत मुश्किल होगा । (वक़्फ़ा) हम कोशिश करेंगे ।

लिलबी : कैसे ?

फ़ीदियो : ख़ुदाके असूलोंको ध्यानमें रखकर ।

लिलबी : मैं उन्हें भूल चुकी हूँ ।

फ़ीदियो : और मैं भी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिलबी : तब हम कैसे पता चलेगा ?

फ़ीदियो : कि क्या अच्छा और क्या बुरा है ?

लिलबी : हाँ।

फ़ीदियो : मैंने एक बाइबिल जो खरीद ली है।

लिलबी : बस इसीकी ही जरूरत है हमें ?

फ़ीदियो : हाँ, इसके इलावा और कुछ नहीं चाहिए।

लिलबी : हम महात्मा बन जायेंगे।

फ़िदियो : इतना ऊँचा मत सोचो (वक्फ़ा) लेकिन हम कोशिश कर सकते हैं।

लिलबी : सब कुछ एकदम बदल-सा जायेगा।

फ़ीदियो : हाँ, बहुत कुछ।

लिलजी : लेकिन तब हम ऊबेंगे नहीं जिस तरह कि अब ऊबे हुए हैं।

फ़ीदियो : और सब कुछ ही बहुत अच्छा-अच्छा-सा लगेगा।

लिलबी : क्या तुम्हें यक़ीन है ?

फ़ीदियो : हाँ, ज़रूर।

लिलबी : ज़रा-सा पढ़के सुनाओ तो।

फ़ीदियो : बाइबिल ?

लिलबी : हाँ।

फ़ीदियो : (पढ़ता है) "पहले-पहल खुदाने धरती और जन्नत बनायीं।" (उत्साहपूर्वक) कितनी बढ़िया बात है, है न ?

लिलबी : हाँ, बहुत बढ़िया।

फ़ीदियो : (पढ़ता है) "और खुदाने कहा— उजाला हो जाये : और उजाला हो गया। और खुदाने महसूस किया कि उजाला अच्छा लगता है, तब उसने उजालेको दिनका नाम दे दिया और अँधेरेको रातका। इस तरह पहले दिनकी शाम और सुबह हुई।"

लिलबी : क्या इसी तरह ही सब कुछ शुरू हुआ ?

फ़ीदियो : हाँ ! देखो, कितनी आसान और कितनी प्यारी बात है !

लिलबी : है। लेकिन जब मैंने शुरूमें यह बात सुनी थी तो बहुत पेचीदा लगी थी।

फ़ीदियो : क्या ? दुनियाकी कहानी ?

लिलबी : (मुसकराते हुए) हाँ।

फ़ीदियो : (मुसकराते हुए) मुझे भी ऐसी ही लगी थी।

लिलबी : (मुसकराते हुए) और इनसानी तरक़्क़ीकी कहानी भी।

फ़ीदियो : कितनी शानदार बात !

लिलबी : थोड़ा आगे पढ़ो।

फ़ीदियो : (पढ़ता है) "और खुदाने मिट्टीसे एक आदमी बनाया और उसके नथुनोंमें ज़िन्दगीकी साँस फूँक दी; और आदमी एक ज़िन्दा रूह बन गया।" (वक्फ़ा) "और अज़ीम खुदाने आदमको एक गहरी नींदमें सुला दिया और वह सो गया; और खुदाने उसकी एक पसली निकाली और उसके बदले उस जगहको मांससे पूरा कर दिया; और अज़ीम खुदाने जो पसली उस आदमीमेंसे निकाली थी उसे औरत बना दिया।

(फ़ीदियो और लिलबी एक दूसरेको चूमते हैं।)

लिलबी : (चिन्तापूर्वक) और क्या हम पहले की तरह इकट्ठे सो सकेंगे ?

फ़ीदियो : नहीं।

लिलबी : तो क्या तब मुझे हमेशा अकेले सोना होगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ीदियो : हाँ ।

लिलबी : लेकिन मैं इतनी सर्दी कैसे बर्दाश्त कर सकूँगी ?

फ़ीदियो : तुम आदी हो जाओगी ।

लिलबी : तो क्या तुम्हें सर्दी नहीं लगेगी ?

फ़ीदियो : मैं भी आदी हो जाऊँगा ।

लिलबी : तब क्या हम झगड़ेंगे नहीं जैसा कि अब तुम सारा कम्बल ओढ़ लिया करते थे, तो होता था ?

फ़ीदियो : यक़ीनन नहीं ।

लिलबी : नेक बनना ज़रा चालाकीका काम है ।

फ़ीदियो : हाँ, बहुत ।

लिलबी : क्या मुझे झूठ बोलनेकी इजाज़त होगी ?

फ़ीदियो : नहीं ।

लिलबी : छोटे-मोटे झूठ भी नहीं ?

फ़ीदियो : नहीं, वह भी नहीं ।

लिलबी : दूकानसे संगतरे चुरानेकी भी नहीं ?

फ़ीदियो : अब आगेके लिए नहीं ।

लिलबी : क्या हम आपसमें कोई मज़ा नहीं कर सकेंगे जैसा कि हम क़ब्रिस्तानमें किया करते थे ?

फ़ीदियो : हाँ, क्यों नहीं करेंगे ।

लिलबी : और वह पहलेवाला मुरदोंकी आँखें निकालनेका काम ?

फ़ीदियो : नहीं, वह नहीं ।

लिलबी : और लोगोंको मारनेका काम ?

फ़ीदियो : नहीं ।

लिलबी : तो क्या अब हम लोगोंको जिये ही जाने देंगे ?

फ़ीदियो : ज़ाहिर है ।

लिलबी : ठीक है, उन्हें यह मज़ा देखना ही चाहिए ।

फ़ीदियो : क्या तुम ख़ुद नहीं समझती हो कि नेक बननेके लिए क्या-क्या करना होता है ?

लिलबी : नहीं । (वक़्फ़ा) क्या तुम समझते हो ?

फ़ीदियो : ठीक तरहसे नहीं (वक़्फ़ा) लेकिन मेरे पास किताब जो है, इसमें-से पता चल जायेगा ।

लिलबी : अब भी किताबकी ज़रूरत है ?

फ़ीदियो : हाँ, है ।

लिलबी : और उसके बाद क्या होगा ?

फ़ीदियो : जन्नतमें जायेंगे ।

लिलबी : हम दोनों ही ?

फ़ीदियो : हाँ, अगर ठीक तरहसे चलते रहे तो दोनों ही ।

लिलबी : और जन्नतमें हम क्या करेंगे ?

फ़ीदियो : हम आपसमें मज़े करेंगे ।

लिलबी : सारे वक़्त ?

फ़ीदियो : हाँ, सारे वक़्त ।

लिलबी : (अविश्वासके साथ) यह मुमकिन नहीं ।

फ़ीदियो : है; यह मुमकिन है ।

लिलबी : क्यों ?

फ़ीदियो : क्योंकि ख़ुदा सबसे ज़्यादा ताक़तवर है । वह नामुमकिन बातें ही करता है । चमत्कार ।....

लिलबी : लेकिन मैंने तो चमत्कार कभी नहीं किये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ीदियो : और बहुत ही आसानीसे।

लिलबी : अगर मैं ख़ुदा होती तो मैं भी वही करती।

फ़िदियो : सुनो, बाइबिलमें आगे क्या लिखा है : "और वह एक अन्धे आदमीको ख़ुदाके पास लाये और उसे उसको छूनेके लिए कहा। और ख़ुदाने अन्धे आदमीका हाथ पकड़ा और उसे शहरसे बाहर ले गया; और तब उसने अन्धे आदमी की आँखोंमें थूका और अपने हाथ उनपर रखे और पूछा कि क्या कुछ नज़र आ रहा है; तो अन्धे आदमीने ऊपर देखा और कहा : आदमी मुझे चलते-फिरते पेड़ नज़र आ रहे हैं। इसके बाद फिर उसकी आँखोंपर ख़ुदाने अपने हाथ रखे, और उसे ऊपरको देखनेको कहा; अन्धेको बीनाई मिल चुकी थी और अब उसे हर आदमी साफ़ नज़र आया।"

लिलबी : यह तो कमालकी बातें हैं।

फ़ीदियो : ख़ुदाने कहा है कि हमें अच्छे इन-सान बनना चाहिए।

लिलबी : तब हम ज़रूर बनेंगे।

फ़ीदियो : और यह भी कि हमें छोटे बच्चों-जैसा होना चाहिए।

लिलबी : बच्चों-जैसा ?

फ़ीदियो : हाँ, बच्चों-जैसा मासूम और पाक।

लिलबी : यह मुश्किल है।

फ़ीदियो : हम कोशिश करेंगे।

लिलबी : तुमपर अचानक यह भूत क्यों सवार हो गया है ?

फ़ीदियो : मैंने बहुत दुनिया देख ली है।

लिलबी : क्या यही एक वजह है ?

फ़ीदियो : और फिर जो कुछ हम अब तक करते रहे हैं, बहुत भयानक था। यह बातें बहुत उमदा लग रही हैं।

लिलबी : और वह जन्नत क्या चीज़ है ?

फ़ीदियो : यह वह जगह है जहाँ हम मरनेके बाद जाते हैं।

लिलबी : मरनेसे पहले नहीं ?

फ़ीदियो : नहीं।

लिलबी : क्या वहाँ हम उससे पहले नहीं जा सकते ?

फ़ीदियो : नहीं।

लिलबी : यह बात कोई इतनी मज़ेदार नहीं।

फ़ीदियो : हाँ, यही तो बुरी बात है।

लिलबी : और जन्नतमें हम करेंगे क्या ?

फ़ीदियो : मैंने पहले तुम्हें बताया है : हम आपसमें मज़े करेंगे।

लिलबी : यह बात एक बार फिर कहो।

(वक़्फ़ा) यह मुमकिन नहीं लगता।

फ़ीदियो : हम फ़रिश्तोंकी तरह रहेंगे।

लिलबी : नेक फ़रिश्तोंकी तरह या बद-फ़रिश्तोंकी तरह ?

फ़ीदियो : बदफ़रिश्ते जन्नतमें नहीं होते; वह शैतान होते हैं और दोज़खमें रहते हैं।

लिलबी : और वह वहाँ क्या करते हैं ?

फ़ीदियो : बहुत तक़लीफ़ सहते हैं : उन्हें आग-में जलना पड़ता है।

लिलबी : चलो, इससे कुछ तबदीली तो महसूस होती होगी न।

फ़ीदियो : वे फ़रिश्ते बहुत बदकार हैं और उन्होंने ख़ुदाके ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी है।

लिलबी : क्यों ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ीदियो : ग़रूर। वह ख़ुदासे ऊँचा रुतबा हासिल करना चाहते हैं।

लिलबी : यह ज़्यादती है।

फ़ीदियो : हाँ, बहुत ज़्यादती है।

लिलबी : लेकिन हम उससे कममें ही ख़ुश रहेंगे।

फ़ीदियो : हाँ, बहुत कममें ही।

लिलबी : सुनो, मैं अभी से नेक बनना शुरू करना चाहती हूँ।

फ़ीदियो : हम इसी लमहेसे शुरू कर देंगे।

लिलबी : बग़ैर लोगोंसे कहे ही ?

फ़ीदियो : हाँ।

लिलबी : इस तरह तो उन्हें पता ही नहीं चलेगा। वह ग़ौर ही नहीं करेंगे।

फ़ीदियो : करेंगे। ख़ुदा ग़ौर करेगा।

लिलबी : क्या तुम्हें यक़ीन है ?

फ़ीदियो : हाँ, ख़ुदा सब कुछ देखता है।

लिलबी : क्या वह उस वक़्त भी देखता है जब मैं ग़ुस्लख़ानेमें होती हूँ ?

फ़ीदियो : हाँ, उस वक़्त भी।

लिलबी : तो, अब तो मुझे शर्म आ जाया करेगी।

फ़ीदियो : ख़ुदा सब नेकियोंको एक ख़ूबसूरत किताबके अन्दर सुनहरी हरफ़ोंमें लिखता जाता है और तुम्हारे सब गुनाहोंको एक भद्दी किताबके अन्दर भद्दे हरफ़ों में।

लिलबी : मैं नेक बनूँगी। मैं चाहती हूँ कि वह मेरी हर बात हमेशा सुनहरी हरफ़ोंमें लिखे।

फ़ीदियो : लेकिन तुम्हारे नेक बननेके लिए सिर्फ़ यही एक वजह काफ़ी नहीं।

लिलबी : और मुझे क्या करना चाहिए ?

फ़ीदियो : नेमतोंको देखना।

लिलबी : नेमतोंको देखना ? इसका क्या मतलब ?

फ़ीदियो : ख़ुश रहना।

लिलबी : तो क्या नेक बन जानेके बाद मैं ख़ुश भी रह सकूँगी ?

फ़ीदियो : हाँ, ज़रूर रह सकोगी।

लिलबी : क्या ख़ुशीका कोई वजूद है ?

फ़ीदियो : हाँ, (वक़्फ़ा) ऐसा कहते हैं।

लिलबी : (उदास होकर) और उन बातों-का क्या होगा जो कि हम किया करते थे ?

फ़ीदियो : तुम्हारा मतलब बुरी बातोंसे है ?

लिलबी : हाँ।

फ़ीदियो : हमें उन बातोंको मानना ही होगा।

लिलबी : सबकी सब ?

फ़ीदियो : हाँ, सबकी सब।

लिलबी : क्या वह भी कि तुम किस तरह मेरे कपड़े उतार दिया करते थे ताकि तुम्हारे दोस्त साथ सो सकें ?

फ़ीदियो : हाँ, वह भी।

लिलबी : और यह भी कि हम क़ातिल हैं ? (वह ताबूतकी ओर इशारा करती है।)

फ़ीदियो : हाँ, यह भी। (वक़्फ़ा। उदास होकर) हमें इसको नहीं मारना चाहिए था। (वक़्फ़ा) हम निहायत बुरे लोग हैं। हमें नेक बननेके लिए ज़रूर कुछ-न-कुछ करना चाहिए।

लिलबी : (उदास होकर) हमने इसको उसीके लिए ही तो मारा।

फ़ीदियो : उसीके लिए ही ?

लिलबी : हाँ, हमने इसको मारा क्योंकि हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सुप्रसिद्ध साहित्यिक (मासिक) प्रकाशन

माध्यम

भावात्मक एकताका प्रतिनिधि, सांस्कृतिक वैभवका सेतु, देश और कालके समग्र आयामोंमें पल्लवित या सम्भाव्य तत्त्वों तथा वस्तुओंका वाहक।

दो वर्षोंके सीमित समयमें

माध्यमने

अपनी गौरवपूर्ण परम्पराकी नयी कड़ीके रूपमें

केरल विशेषांक

के अद्वितीय प्रकाशन-द्वारा अपनी प्रतिष्ठाको भारतीयताके समग्र बोधसे संपृक्त कर लिया है।

सद्यः (जूनमें)

'केरल विशेषांक परिशिष्ट' सहित अन्य

महत्त्वपूर्ण सामग्रीसे अलंकृत अंक यंत्रस्थ

विशेषांकोंकी भावी योजनासे सम्पन्न

माध्यम

विक्रयकी दृष्टिसे सक्षम, पाठकोंके लिए आतुर प्रतीक्षा तथा बौद्धिककी दृष्टिमें उपजीव्य है।

कृपया विज्ञापनोंसे, ग्राहकोंसे तथा अन्य उपायोंसे माध्यमको सम्पन्नतर बनायें।

माध्यम

आपकी

केवल आपकी पत्रिका है।

सम्पादक : बालकृष्ण राव

मूल्य : एक अंकका १.००; वार्षिक: १०.००; 'केरल विशेषांक'का २'५०

पो० बा० नं० ६० इलाहाबाद	सम्पादकीय	माध्यम / सम्पर्क-सूत्र व्यवस्थापकीय	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसमें मज़ा करना चाहते थे।

फ़ीदियो : हाँ।

लिलबी : और हमने सिर्फ़ एक लमहेके लिए ही तो वह मज़ा लिया।

फ़ीदियो : हाँ।

लिलबी : अगर हम नेक बननेकी कोशिश करें तो हालात पहलेकी तरह तो बिलकुल नहीं होंगे। होंगे क्या ?

फ़ीदियो : नहीं, पहलेसे कहीं ज़्यादा बेहतर।

लिलबी : कहीं ज़्यादा बेहतर ?

फ़ीदियो : और उमदा।

लिलबी : और उमदा ?

फ़ीदियो : हूँ। क्या तुम्हें मालूम है कि ख़ुदाके बेटेने कैसे जनम लिया था। (वक़्फ़ा) बहुत पुरानी बात है। वह बेथलहमकी एक बहुत घटिया खुरलीमें पैदा हुआ था और क्योंकि उसके पास अपने आपको गरम जगहमें रखनेके लिए पैसे नहीं थे, एक बैल और एक गधेने अपनी साँसोंसे उसे हरारत पहुँचायी। और चूँकि बैल ख़ुदाकी ख़िदमत बजा लानेसे इन्तहाई ख़ुश हुआ था, उसने मियांकना शुरू कर दिया। और गधेने रेंकना। और बच्चेकी माँ जो कि ख़ुदाकी माँ थी, ज़ोरसे चिल्लायी और उसके खाविन्दने उसका मन बहलाया।

लिलबी : यह बात बहुत ज़्यादा पसन्द आयी है।

फ़ीदियो : मुझे भी।

लिलबी : और फिर बच्चेका क्या हुआ ?

फ़ीदियो : वह एक लफ़्ज़ भी नहीं बोला, चाहे वह ख़ुदा ही था। और क्योंकि लोग निहायत बेरहम थे, उन्होंने उसे कुछ भी खानेको नहीं दिया।

लिलबी : कितने ज़ालिम होंगे वह लोग।

फ़ीदियो : लेकिन एक दिन बहुत दूर किसी दूसरे शहरमें कुछ राजाओंने एक चलनेवाले तारेको आसमानमें अटका हुआ देखा। वह उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

लिलबी : वे राजे कौन थे ?

फ़ीदियो : मेलछियर, गैस्पर और बेलथज़ार थे।

लिलबी : वही न, जो क्रिसमसके दिन तुम्हारी ज़ुराबोंमें खिलौने रख जाते हैं।

फ़ीदियो : हाँ, वही। (वक़्फ़ा) और वे उस तारेके पीछे-पीछे ही चलते रहे, और आख़िरकार वह बेथलहमकी खुरली तक पहुँच गये। इस तरह सब कुछ उन्होंने उस बच्चेको दे दिया जो कि वह अपने ऊँटोंपर लादकर लाये थे : बहुत-से खिलौने, मिठाइयाँ और कुछ चॉकलेट भी। (वक़्फ़ा—वे उत्साहपूर्ण मुद्रामें मुसकराते हैं) अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया, उन्होंने उसे कुछ सोना और गन्धरस और गूगल-धूप वग़ैरह भी दिये।

लिलबी : कितनी ढेर-सी चीज़ें होंगी !

फ़ीदियो : और इसपर बच्चा बहुत ख़ुश हुआ। उसके माँ-बाप भी, बैल भी, और गधा भी बहुत ख़ुश हुए।

लिलबी : और तब क्या हुआ ?

फ़ीदियो : तब बच्चेने कुरसियाँ और मेज़ बनानेमें अपने बापका, जो कि बढ़ई था, हाथ बँटाया। क्योंकि वह बहुत अच्छा लड़का था, इसलिए उसकी माँ अकसर उसे चूमा करती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिलबी : वह अन्य बच्चोंसे अलग ही था।

फ़ीदियो : वह खुदा था।

लिलबी : अरे, हाँ, वह....

फ़ीदियो : उसके बारेमें एक अच्छी बात यह थी कि उसने खानेके लिए लज़ीज़ चीज़ें हासिल करने या क़ीमती कपड़े खरीदनेके लिए चमत्कार नहीं किये।

लिलबी : और फिर क्या हुआ ?

फ़ीदियो : जब वह बड़ा हुआ तो यहूदियोंने उसे मार दिया क्योंकि वह उससे ख़ौफ़ खाते थे; उन्होंने उसे सलीबपर लटकाकर उसके हाथों और पाँवोंमें कीलें गाड़ दीं। क्या तुम इसका तसव्वुर कर सकती हो ?

लिलबी : (ख़ुश होकर) उसे बहुत तकलीफ़ हुई होगी।

फ़ीदियो : हाँ, बहुत।

लिलबी : वह बहुत चिल्लाया होगा।

फ़ीदियो : नहीं, हरगिज़ नहीं। उसने अपने आपपर क़ाबू रखा। और दूसरी बात यह कि उसकी और ज़्यादा हँसी उड़ानेके लिए उन्होंने उसे दो चोरोंके दरम्यानमें लटका दिया।

लिलबी : बुरे चोरोंके दरम्यान या अच्छे चोरों के ?

फ़ीदियो : बुरे, बहुत बुरे, जितने बुरेसे बुरे उन्हें मिल सकते थे।

लिलबी : ओह, यह तो बहुत बुरी बात है।

फ़ीदियो : और इससे भी बड़ी बात जो बादमें पता चली, यह थी, कि उनमें-से एक निहायत अय्यार और मक्कार आदमी था। ऐसा आदमी जिसने अपने ही आदमियोंको धोखा दिया।

लिलबी : किसने अपने ही आदमियोंको धोखा दिया ?

फ़ीदियो : उसने लोगोंको यक़ीन दिला दिया था कि वह बुरा आदमी था और तब अचानक उन्होंने महसूस किया कि वह तो बहुत ही नेक इनसान था।

लिलबी : और फिर क्या हुआ ?

फ़ीदियो : होना क्या था, खुदा सलीबके ऊपर ही मर गया।

लिलबी : सचमुच ?

फ़ीदियो : हाँ। लेकिन तीसरे दिन वह फिर उठ खड़ा हुआ।

लिलबी : (ख़ुश होकर) या खुदा!

फ़ीदियो : और उस वक़्त हर आदमीको एहसास हुआ कि वह हक़का रास्ता बता रहा था।

लिलबी : (उत्साहपूर्वक) मैं नेक बनना चाहती हूँ।

फ़ीदियो : मैं भी।

लिलबी : अभीसे ही ?

फ़ीदियो : हाँ अभीसे ही।

लिलबी : मैं उस बच्चेकी तरह मासूम बन जाना चाहती हूँ जो खुरलीमें पैदा हुआ था।

फ़ीदियो : मैं भी।

(फ़ीदियो लिलबीके हाथोंको अपने हाथोंमें लेता है।)

लिलबी : (चिन्ताभरे स्वरमें) और हम पूरा दिन-भर क्या किया करेंगे ?

फ़ीदियो : नेक काम।

लिलबी : सारे वक़्त ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ीदियो : हाँ, तक़रीबन सारे वक़्त ही।

लिलबी : और बाक़ीका वक़्त ?

फ़ीदियो : हम चिड़ियाघर जा सकते हैं।

लिलबी : बन्दरोंको देखनेके लिए ?

फ़ीदियो : नहीं। (वक़्फ़ा) मुर्ग़ियों और कबूतरोंको देखनेके लिए।

लिलबी : और इसके इलावा और क्या कर सकते हैं ?

फ़ीदियो : हम ओकारिना बजा सकते हैं।

लिलबी : ओकारिना ?

फ़ीदियो : हाँ।

लिलबी : ठीक है। (वक़्फ़ा) क्या यह चालाकी नहीं ?

फ़ीदियो : (सोचते हुए) नहीं, मैं तो ऐसा नहीं समझता।

लिलबी : और हमें सचमुच ही नेक बननेके लिए क्या करना होगा ?

फ़ीदियो : मैं बताता हूँ तुम्हें। अगर हमें लगे कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह किसीको परेशान करता है तो हम नहीं करेंगे। अगर हमें लगे कि कुछ किसीको अच्छा लगता है, उसे हम करेंगे। अगर हमें लगे कि कोई आदमी ग़रीब है, बूढ़ा है, कोढ़ी है और उसका कोई नहीं है तो हम उसकी ख़बरगीरीके लिए जायेंगे।

लिलबी : हम उसे मार नहीं डालेंगे ?

फ़ीदियो : नहीं।

लिलबी : बेचारा बूढ़ा !

फ़ीदियो : लगता है तुम यह समझनेकी कोशिश नहीं कर रही हो कि अब हम लोगों को मार नहीं सकते।

लिलबी : अच्छा आगे कहो।

फ़ीदियो : अगर हम देखें कि कोई औरत भारी बोझ उठाये जा रही है तो हम उसकी मदद करेंगे। (एक न्यायाधीशकी-सी आवाज़में) अगर हम देखते हैं कि कोई आदमी नाइन्साफ़ीके रास्तेपर चल रहा है तो हम उसे ठीक कर देंगे।

लिलबी : नाइन्साफ़ी भी ?

फ़ीदियो : हाँ, वह भी।

लिलबी : (सन्तुष्ट होकर) हम बहुत बड़े आदमी बनने जा रहे हैं ?

फ़ीदियो : हाँ, बहुत बड़े।

लिलबी : (चिन्तित होकर) और हम यह कैसे जान पायेंगे कि यह नाइन्साफ़ी है ?

फ़ीदियो : हम झटपट अन्दाज़ा लगा लेंगे। (ख़ामोशी)

लिलबी : फिर वही पहले-सी ऊब। यह तो बकवास लगता है। (ख़ामोशी। फ़ीदियो निरुत्साहित हो जाता है) यह तो बिलकुल हर दूसरी बातकी तरह की ही बातें हैं। कोई भी फ़र्क़ नहीं। (ख़ामोशी) हम नेक बनकर भी ऊब जायँगे लेकिन हम कोशिश ज़रूर करेंगे।

(दूरसे लुई आर्मस्ट्रांगके 'ब्लैक एण्ड ब्ल्यू' संगीतकी एक उदास धुन उभर रही है।)

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण-भरमें क्यासे क्या हो गया। अघटितकी कल्पना अक्सर की जाती है। अकेले सफ़र करते हुए सम्भावित दुर्घटनाओंकी कल्पना मन्दाने भी की थी। उन कल्पनाओंका गणित नितान्त व्यक्तिगत था। लेकिन उस दिन जो घट गया वह व्यक्तिगत होकर भी नहीं था। मन्दा तीन बच्चोंकी माँ है। विशेष सुन्दर भी वह नहीं है। लेकिन मुक्त है। आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति उसकी प्रत्येक गतिविधिसे उजागर रहती है। पत्नी है, उतना प्रेम करना भी जानती है। उसका अर्थ भी जानती है। फिर भी किवाड़ोंके पीछे खड़े होकर पतिकी आज्ञाकी राह देखना उसे अच्छा नहीं लगता। हरमकी देहरी लाँघकर उसे वहाँ आनेमें हिचक नहीं है जहाँ उसके पति अपने मित्रोंके साथ बैठकर क़हक़हे लगाते हैं। मुक्त मनसे वह उसमें भाग लेती है। कहीं कोई बाधा नहीं है, न पतिकी ओरसे न परिवारकी ओर से। फिर भी मन्दा जब-जब बाहर जाती है, उसे लगता है जैसे असंख्य दृष्टियाँ उसे आवृत्त करती आ रही हैं। आवृत्त होना बुरा नहीं है लेकिन उन दृष्टियोंमें ऐसा कुछ है जो मुक्त नहीं है। जहाँ मुक्ति नहीं है वहाँ भय है। मन्दा सोचती है, ये दृष्टियाँ मुक्त होकर मनकी बात क्यों नहीं कहतीं, क्यों नहीं निवेदन करतीं ?....

वह काँपती है। इस प्रकार सब निवेदन करने लगें तो वह क्या करेगी ? क्या वह उस निवेदनका बोझ सह सकेगी? नहीं-नहीं, यह सब वह नहीं सोचेगी। क्योंकि वे दृष्टियाँ चारों ओरसे आकर उसीपर केन्द्रित होती हैं।....

होती हैं तो होने दो। अपराध तो मेरा है, दुर्बलता तो मेरे भीतर है। उन दृष्टियोंको अर्थ तो मैं देती हूँ।....

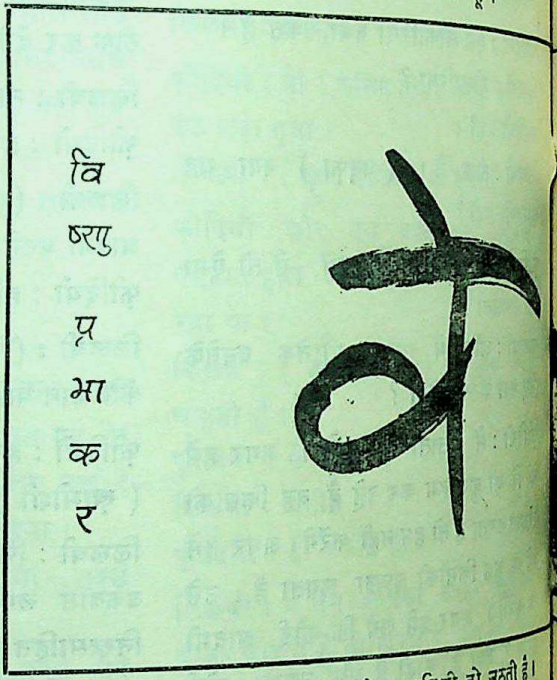

और मन्दा जैसे मुक्त होती है, स्वामिनी हो उठती है। उस समूचे वातावरणकी स्वामिनी जो उसके चारों ओर उमड़ता-घुमड़ता रहता है।

बसमें सफ़र करते हुए एक दिन पाया कि पाँच-सात मनचले युवक, जिनमें-से कुछ तो शायद आयुमें उससे छोटे भी हों, उसे अपने वासनामय परिहासका केन्द्र बनानेपर कटिबद्ध हैं। दृष्टि चुरा-चुराकर देखते हैं, मुसकराते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर प्रलाप कर उठते हैं। धीरे-धीरे वह प्रलाप स्वर पाता है, अर्थ पाता है। यही अर्थ उसे चारों ओरसे आवृत्त करता हुआ बाँधने लगता है। वह तिलमिलाती है। उसके माथे-पर केश बिखर आते हैं। हाथसे उन्हें पीछे करती है। पाती है कि माथेपर कुछ तरल-तरल उमड़ आया है। वह और भी तीव्रतासे काँपती है। चाहती है वह उन उद्धत युवकोंसे दृष्टि मिलाये, लेकिन सफल नहीं हो पाती। कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश करता हुआ उथला गन्दा स्वर-जाल उसके अन्तरको कचोटता है। तिलमिलाकर वह उठनेकी चेष्टा करती है।

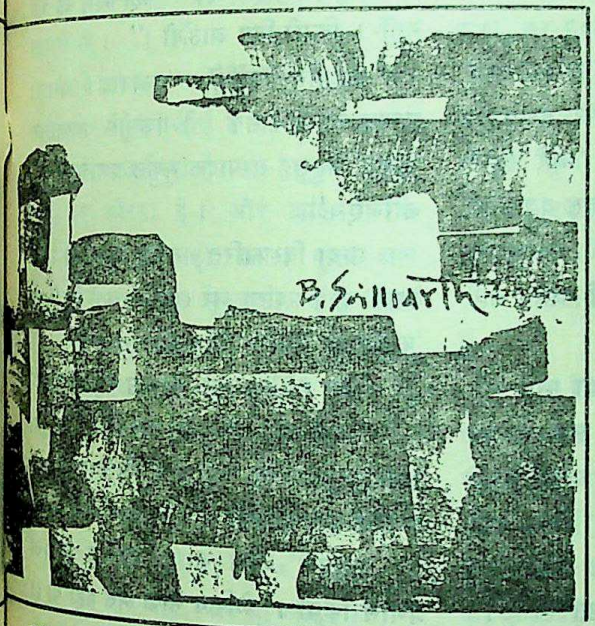

लेकिन जैसे किसीने उसे सीटसे जकड़ दिया हो।

उद्धतता और मुखर होती है। वह और तिलमिलाती है, जैसे और सहना असह्य हो उठा हो। लेकिन उसी क्षण एक गहन-गम्भीर स्वर उसके सिरपर-से होता हुआ बसको कँपा देता है। स्तम्भित-सी वह मुड़ती है। पाती है कि पीछे-की सीटपर बैठा हुआ एक सौम्य प्रौढ़ पुरुष अत्यन्त क्रुद्ध होकर कह रहा है, "हरामज़ादो, तुमने समझ क्या रखा है। तुममें साहस होना चाहिए। चोरोंकी तरह क्या बकवास कर रहे हो····।"

वह और नहीं सुन पाती, एकाएक उठ खड़ी होती है और पैरसे सैण्डिल निकालकर ताबड़तोड़ उन युवकोंपर बरसाने लगती है। वह उस समय जैसे है ही नहीं। उसे जहाँ उतरना था वह स्थान कबका पीछे छूट गया है और बसका वातावरण एकाएक स्तब्ध होकर रह गया है। कई क्षण बाद उसकी संज्ञा लौटती है। एक शोर उसके चारों ओर उठ आया है। यात्री उन युवकोंको पुलिस-स्टेशन ले जानेकी धमकी दे रहे हैं लेकिन वे सौम्य प्रौढ़ सज्जन कहते हैं, "जाने दीजिए, यह नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं। ये लोग···।"

वे युवक पूरी बात नहीं सुनते। तुरन्त उतरकर भीड़-में मिल जाते हैं। कुछ यात्री उतरते हैं, कुछ चढ़ते हैं। उसे लगता है जैसे वह नदीके द्वीप-की तरह हर किसीका केन्द्र बन गयी है। वह वहाँसे भाग जाना चाहती है। लेकिन जबतक वह निर्णय करती है तबतक बस चल पड़ती है। उसे लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे प्याससे उसका गला सूख रहा है। उसके सारे बदनमें काँटे उग आये हैं। लेकिन सौम्य पुरुष मुसकराकर कहते हैं, "आपका स्टेशन शायद पीछे रह गया है।"

"जी हाँ।"

"अगले स्टेशनपर मैं भी उतरूँगा। वहाँसे आप दूसरी बस ले सकती हैं।"

मन्दा इन क्षणोंमें अपनेको पा लेनेका जी-तोड़ प्रयत्न करती है। फिर मुक्त मनसे कहती है, "जी हाँ, मैं जानती हूँ। कृतज्ञ हूँ, आपने आज....।"

सौम्य पुरुषकी मुसकान और भी गहराती है। वह एक बार यात्रियोंकी ओर देखते हैं, फिर मन्दाकी ओर। कहते हैं, "अरे इसमें कृतज्ञताकी क्या बात है। इन उद्धत युवकोंको शिक्षा मिलनी ही चाहिए। मैं मुक्तताका समर्थक हूँ, चोरीका नहीं। जहाँ साहस नहीं है, वहीं ग़लती है ....।"

जबतक वह बोलते रहे, मन्दा मुग्ध मन सुनती रही। उसके रग-रगमें स्वर कम्पन जागता रहा। वक्षमें स्पन्दन होता रहा। उसने उनकी पूरी बात नहीं सुनी। वह जैसे कहीं दूर चली गयी थी। उसी क्षण जागी जब उन्होंने कहा, "आइए, यहीं हमें उतरना है।"

और वह यन्त्रवत् उनके पीछे-पीछे उतर जाती है। वे कहते हैं, "वह देखिए, सामने आपका बस-स्टैण्ड है।"

मन्दा सहसा पूछ बैठती है, "आप यहीं रहते हैं?"

"जी हाँ, वह सामने ही मेरा मकान है, ५।८, आइएगा।"

मन्दा इतनी दुर्बल तो कभी नहीं हुई। कहना चाहती है, 'चलिये', पर कह नहीं पाती। साँस लेनेमें जैसे कष्ट हो रहा हो। दो क्षण बाद इतना ही कहती है, "क्षमा कीजिए, मुझे देर हो गयी है।"

सौम्य पुरुष कहते हैं, "जी हाँ, और हमारा परिचय भी तो नहीं है। एक नारी किसी अपरिचित पुरुषके साथ...."

मन्दा जैसे उस चुनौतीसे तिलमिलाती है, पर एकाएक कहती है, "नहीं-नहीं, यह बात नहीं। किसी दिन आऊँगी।"

वह हँस पड़ते हैं, "धन्यवाद। आइए। मकान न खोज सकें तो किसीसे साप्ताहिक 'कुमुद' के सह-सम्पादक मुकुल प्रभाकरको पूछ लीजिए।"

मन्दा विस्फारित नयन मुकुलकी ओर देखती है। प्रशंसा भरे स्वरमें पूछती है, "आप 'कुमुद' के सह-सम्पादक हैं?"

"जी हाँ, आपको विश्वास नहीं होता?"

"नहीं-नहीं, मैं तो अपनेको और भी कृतज्ञ अनुभव कर रही हूँ। मैं अवश्य उनको साथ लेकर आऊँगी।"

मुकुलने दोनों हाथ उठाकर मन्दाको प्रणाम किया। लेकिन मन्दा जैसे वहाँ थी ही नहीं। यह उसने क्या कह दिया, "उनके साथ आऊँगी।" उनके बिना क्या उसका कोई अस्तित्व नहीं है। उनके बिना क्या वह यहाँ नहीं आ सकती? मुकुलसे मित्रता नहीं कर सकती। उसे लगा जैसे उसकी आँखोंके आगे घोर अन्धकार है। और वह उस अन्धकारमें टटोल रही है। उसे पता नहीं, कब वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी, कब वह घर पहुँची।

तबसे उसके अन्तरमें वही मन्थन चलता रहा है। मन्दा है, मुकुल है और महेन्द्र है जो उसका पति है, जिसे वह सचमुच प्यार करती है। जिसके तीन बच्चोंकी वह माँ है। उसे लगता है, महेन्द्र एक मृदुल बन्धन है लेकिन मुकुल एक मोहक मुक्ति है। अभी उन दोनों-का कोई आन्तरिक परिचय नहीं है। पर लगता है जैसे युग-युगसे वह उसे पहचानती है। जैसे अबतक वह इसी मोहक मुक्तिकी तलाशमें थी।

तीसरे दिन वह पाती है कि वह उसी बस-स्टैण्डपर पहुँच गयी है। गणितका सहारा लेकर उसने जान लिया है कि मुकुल किस समय घर लौटता है। और आश्चर्य कि गणित उसे धोखा नहीं देता। कुछ क्षण राह देखनेके बाद वह मुकुलको खोज लेती है। मुकुल मुसकराते हैं, "अरे आप हैं? बिना सूचना दिये ही आ गयीं? और वे कहाँ हैं?"

मन्दा स्पष्ट झूठ बोलती है, "जी, मैं एक कामसे इधर आयी थी! उनको अभी समय नहीं है, इसीलिए नहीं आ सके।"

"कोई बात नहीं, आप ही आइए।"

"जी।"

"आइए न।"

और मन्दा पाती है कि किसी अनचीन्हे आकर्षणसे खिंची-खिंची वह मुकुलके पीछे-पीछे चली जा रही है। स्पन्दित होती, सोचती कि भय भी कितना प्रिय होता है। घरमें केवल बूढ़ा माँ है। उन्हींसे मालूम होता है कि मुकुलने विवाह नहीं किया। शायद कोई थी, शायद कहीं चली गयी। माँ निश्चयसे कुछ नहीं जानती। पहली मुलाक़ातमें वह कुछ पूछ भी तो नहीं सकती। एक रोमानी सहानुभूति उसे बस विभोर कर देती है। माँ रुँधे कण्ठसे कहती है, "मैं नदीका रूख हूँ। कल रहूँ न रहूँ, चिन्ता मुझे इसीकी है। पर यह है कि ऐसा लड़का मैंने कभी नहीं देखा। मेरा जाया है, फिर भी मैं इसे नहीं पहचानती।"

माँकी बातोंका कोई अन्त नहीं है। सुख-दुःख, घर-गृहस्थीकी बातें। लेकिन मुकुल बस 'कुमुद' की ही चर्चा करता है। अपनी ओरसे आग्रह-आसक्तिका कोई अवसर नहीं देता। मन्दाने हिन्दीमें एम० ए० किया है यह जान-कर वह एकाएक पूछ बैठता है, "कुछ लिखती-लिखाती भी हैं?"

"लिखती तो नहीं पर चाहती अवश्य हूँ।"

और फिर अपनेको धोखा देती हुई वह सब कुछ कह देती है। वह लिखना चाहती है, नौकरी करना चाहती है। अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहती है। लेकिन वे हैं कि....।"

मुकुल कह उठते हैं, 'कि वे हैं कि प्यार-की गुँजलकसे मुक्ति देते ही नहीं। ये 'वे' नाम-के प्राणी ऐसे ही होते हैं। प्यारका बहाना करके पत्नीको पंगु बनाये रहते हैं।"

"नहीं नहीं, यह बात नहीं।"

"बहुत प्यार करते हैं?"

"जी, पतिके बारेमें ऐसा सोचनेका अवसर ही नहीं आया।"

"पति ऐसा सोचने देते ही नहीं। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप यदि कुछ करना चाहती हैं, तो अवसर है। थोड़े समयके लिए भी काम कर सकती हैं। और यह भी आवश्यक नहीं कि आप दफ़्तरमें आयें ही। नगरमें घूमने-फिरनेका काम हो सकता है। नियमित कालम लिख सकती हैं।"

मुग्ध-सी मन्दा सुनती रही। रसके सरोवरमें डूबती रही। जीवन-भर वह यही तो चाहती रही है। कितनी बार उसने महेन्द्रसे कहा है और महेन्द्र है कि हर बार सर्वजयी प्यारका आसरा देकर उसे निरस्त्र कर देता रहा है और वह है कि गुंजलकमें बँधकर रह जाती है। आज अनायास ही उसका चाहा पूरा होनेवाला है। लेकिन वह मुक्त कहाँ है? एकाएक स्वीकृति नहीं दे पाती। पूछती है, "सच, क्या ऐसा हो सकता है?"

"हाँ-हाँ, अवश्य हो सकता है।"

"तो उनसे पूछूँगी।"

फिर वही—'उनसे'! यह 'उनसे' उसकी मुक्ति है या बन्धन। नहीं नहीं, वह उनसे नहीं पूछेगी। उनको चकित कर देगी। आखिर उसका भी तो व्यक्तित्व है। उसे इस तरह दबाये रखनेका उन्हें क्या अधिकार है? क्यों वह बिना किसी पारिवारिक कारणके मुकुलसे सम्पर्क नहीं जोड़ सकती। क्यों वह बिना दीवार खड़ी किये उनसे नहीं मिल सकती? ये सामाजिक, पारिवारिक बन्धन, ये दीवारें, क्या ये अनावश्यक व्यवधान नहीं हैं? क्या ये अश्लील नहीं हैं?....

यह तर्क ही मन्दाकी शक्ति है। वह मुकुलसे दूसरी बार मिलती है, तीसरी बार मिलती है। हर बार वह जैसे सकपकाती है, झिझकती है। मुक्त वह नहीं हो पाती। कहीं-न-कहीं असहज हो रहती है। 'वे' और 'उनकी' बात बार-बार सहज भावसे उभर आती है। लेकिन इनके पीछे वह अपनेको छिपा नहीं पाती। बार-बार आती है और आनेका यह गणित उलझता रहता है। निरन्तर गुणा होता रहता है।....

पाती है, मुकुलमें एक आकर्षण है। एक ऐसा आकर्षण जो आग्रहके अभावमें उसे अपनी ओर खींचता है। बार-बार उसे मुकुलके समीप लाता है। लेकिन जैसे वह किसी स्प्रिंगसे बँधी हुई है, जैसे वह उस साँपके खिलौने-जैसी है जो हाथसे झटका देनेपर बहुत दूर चला जाता है लेकिन दूसरे ही क्षण लौट भी आता है। मन्दा बार-बार लौटती है। वह महेन्द्रके पास आकर अनुभव करती है कि वह उससे ज्यादा किसी औरको प्यार नहीं करती। उसके रोम-रोमको प्यार करती है। उसकी हँसीको प्यार करती है। उसके क्रोधको प्यार करती है। उसकी समर्थ बाँहोंकी गुंजलकमें अपनेको कृतार्थ अनुभव करती है। उसके बच्चोंके बीच वह महिमामयी होती है। उसके पास होती है तो भूल जाती है कि मुकुलका कोई अस्तित्व है, कि मुकुल उसकी मनकी इच्छा पूरी करनेका कारण हो सकता है। वह दो किनारोंके बीचकी नदी हो सकती है। दोनोंसे घिरी-आवेष्टित, फिर भी नदीकी नदी। न संकोच, न द्विधा, न आपत्ति....।

बार-बार आनेपर वह जान गयी है कि मुकुलकी अनेक नारी-मित्र हैं। उसके अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने किस कोनेसे ईर्ष्याकी चिनगारियाँ भी उभरती हैं। वह प्रतिज्ञा करती है कि वह यहाँ नहीं आयेगी। लेकिन ठीक समयपर पाती है कि उसका गन्तव्य पथ उसके मकानके आगे आकर समाप्त हो गया है।

एक दिन वह पाती है कि माँ घरपर नहीं है। केवल मुकुल लेटा है। एक क्षण वह ठिठकती है। मन होता है, उलटे पैर लौट जाये। लेकिन दूसरा क्षण आता है। वह मुकुलसे पूछती है, "कैसे लेटे हैं ? माँ कहाँ हैं ?"

मुकुल चकित-सा दृष्टि उठाकर मन्दाकी ओर देखता है। एक क्षणमें वह थकी हुई दृष्टि नाना रूप ग्रहण करती है। अभी-अभी वह मन्दाके बारेमें ही तो सोच रहा था। यह अवचेतन क्या टेलीपैथीका ऐसा सुन्दर उपकरण है। कह उठता है, "माँ आज देरसे लौटेंगी....।"

फिर कई क्षण अनमना अर्थ-भरा मौन गहराता है। मुकुल फिर साहस बटोरकर कहता है, "तुम्हारा वह लेख अगले अंकमें छप रहा है। प्रूफ़ मेरे पास हैं, देखना चाहो तो....।"

वह उठनेकी चेष्टा करता है, लेकिन समर्थ नहीं हो पाता। अनजाने ही एक हलकी-सी कराह उसके मुखसे निकल जाती है। मन्दा लेखकी बात सुनकर हर्षसे काँपती है, लेकिन मुकुलपर दृष्टि जाते ही जैसे वह चौंक पड़ती है, "अरे आप तो पीले पड़ गये हैं, क्या बात है ?"

मुकुल आँखें मीचे-मीचे ही कहता है, "ऐसे ही सिरमें दर्द है। अक्सर हो जाता है।"

अनचाहे ही मन्दा अपना हाथ उसके माथेपर रख देती है। जैसे जलता तवा हो। वह हाथ खींचना चाहती है पर पाती है कि उसपर एक बोझ-सा पड़ रहा है। उसके नीचे एक तीव्र उत्तेजना उमड़ रही है। सब कुछ अस्त-व्यस्त, सब कुछ डोलायमान। जलते हुए स्फुलिंग जैसे वातावरणमें तीव्र गतिसे दौड़ रहे हैं। फिर जैसे कुछ गीला-गीला, वह तीव्रतासे अपना हाथ खींचती है। लेकिन अशक्त हो रहती है। मुकुल-जैसे अवश शिशुकी तरह रुँधे कण्ठसे बोलता है, "नहीं-नहीं, रहने दो, ऐसे ही रहने दो।"

फिर घन-घन घहराता मौन। फिर मुकुल फुसफुसाता है, "कितनी शान्ति है, कितनी....."

मन्दाको लगता है जैसे सब कुछ अस्तित्वहीन है, तरल, मुक्त। लेकिन उसका हाथ उसके मस्तिष्कपर गति कर रहा है। वह गति धीरे-धीरे तीव्र होती है। तीव्रतरसे तीव्रतम होती है। ऐसा लगता है जैसे वह मस्तकको कुचल देगी। लेकिन कुचलनेकी यह भावना ही मुकुलको शक्ति देती है। तनाव कुछ ढीला पड़ने लगता है। वह विह्वल-सा कहता है, "मन्दा, इस पवित्र स्पर्शका अनुभव मैंने जीवनमें पहली बार किया है। यह अनुभूति मेरे जीवनकी अनमोल उपलब्धि है।...."

वह न जाने क्या-क्या फुसफुसाता रहता है। इसी बीच अनबूझ-सी मन्दाकी दृष्टि उसके चेहरेपर गड़ी रहती है। देखती है कि सचमुच उसके मुखपर एक तरल आभा लौट रही है। अपरिसीम सुखसे उत्पन्न आलस्यकी अनोखी अनुभूति उसे शक्तिसे भर देती है। वह पलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं झपकाना चाहती। लगता है, पलक झपकने-जितने समयमें जैसे सब कुछ मिट जायेगा और उधर मुकुलमें बढ़ती हुई शक्ति उसे अनुप्रेरित करती है कि वह मन्दाके हाथको अपने दोनों हाथोंमें ले-ले और तबतक चूमता रहे जबतक अस्तित्वहीन न हो जाये। उसी क्षण मन्दाके मस्तिष्कसे होती हुई एक विद्युत्-धारा हृदयको झनझनाती हुई निकल जाती है। और वह अनुभव करती है कि वह अपने दोनों हाथोंमें मुकुलका मुँह लेकर चूमने लगे। लेकिन उसीके साथ-साथ घृणाकी एक अव्यक्त भावना उसे आलोडित कर देती है। ईर्ष्याका एक अनचीन्हा भाव उसे जकड़ लेता है। विद्युत्की तरंगों-से उठते ये भाव एकके बाद एक उसे मथ देते हैं। वह थक जाती है। जैसे सहस्रों वर्षोंसे निरन्तर कार्यरत हो। इच्छाएँ अलसाने लगती हैं। वह बैठना चाहती है, लेकिन दूसरे ही क्षण पाती है कि वह एक मांसल गुंजलकमें फँस गयी है। वही परिचित-सी गुंजलक। महेन्द्र और मुकुलसे परे पुरुष-की गुंजलक। जकड़ तीव्रसे तीव्रतर हो रही है। और जैसे एक ज्वाला उसके रोम-रोमको झुलस रही है। जैसे तनाव चरम सीमापर पहुँच रहा है····।

फिर युगों जितनी वह क्षणिक रात्रि बीत जाती है। वह फिर शान्त भावसे खड़ी हो जाती है। क्षण-भर भोरका आलस्य उसे व्यथित करता है। फिर वह पाती है कि मुकुल उसे एकटक देख रहा है और वह मुसकरा रही है। मुकुल कहता है, "वह कार्निसपर नये अंकके प्रूफ़ रखे हैं, उठाओ तो।"

मन्दा यन्त्रवत् उन्हें उठाती है, खोलती है। पाती है कि सामनेके पन्नेपर केवल बड़ी रोम। वह दोनों हाथोंमें उस अंकको लेकर छातीमें भींच लेती है। क्षण-भरके लिए नेत्र मुँद जाते हैं। उनसे होती हुई पवित्र जलकी कुछ बूँदें वक्षसे सटे अंकको भिगो देती है। और दूसरे ही क्षण वह फिर झुककर मुकुलके मस्तिष्कको चूम लेती है।····"

अब दोनों मुक्त हैं। सब कुछ भूल चुके हैं। जैसे केवल वे दोनों ही दुनियामें रह गये हों। सहसा मुकुल कहता है, "अब तुम जाओ मन्दा!"

हठात् अपनेको ही हतप्रभ करती हुई मन्दा कह उठती है, "नहीं, नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

और दूसरे ही क्षण उसे लगता है जैसे वह मुकुलके ऊपर गिर पड़े, दोनों हाथोंसे उसका गला दबोच दे और फिर वह भी····।

वह तीव्रतासे उठ खड़ी होती है। अनुभव करती है कि वह अब उसे अधिक बरदाश्त नहीं कर सकेगी। उसका ख़ून कर देगी। वह तेज़ीसे द्वारकी ओर बढ़ती है। कहती है, "मैं जा रही हूँ।"

"ठहरो!"

मन्दा एकाएक मुड़कर उसे देखती है। मुसकरा आती है पर रुकती नहीं। बाहर निकली चली जाती है। फिर उसे नहीं मालूम कि कैसे वह घर पहुँचती है। जैसे हा घर दृष्टिपथमें आता है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतंकभूत उसे जकड़ लेता है। वे सारी बातें कैसी अजीब-अजीब-सी लगती हैं। क्या वह सच था? क्या वह प्यार था? क्या वह अच्छा था?

पूरे सात दिन इसी मन्थनमें बीत जाते हैं। वह मुकुलसे बिलकुल नहीं मिलती। विष और अमृतके बीच छटपटाती रहती है। लेकिन आठवें दिन वह अपनेको रोक नहीं पाती। मुकुलको पुकारती है। पर उस दिन घरपर केवल माँ है। वह स्नेहसे उसका स्वागत करती है। कहती है, "अरे बेटी, तू तो लेखिका बन गयी। मुकुल तेरे लिए यह अंक रख गया है। उसे अचानक बाहर चले जाना पड़ा। तीन दिनमें लौटेगा।"

"तीन दिन?"

"हाँ, बेटी! अखबारका काम है।"

मन्दाको अच्छा नहीं लगता। अनमनी-सी माँसे बातें करती है। फिर लौट पड़ती है। घृणा और क्रोधसे भरा उसका मन करता है कि वह थूक दे। उस सारे भूतसे मुक्ति पा ले। लेकिन इससे पहले कि वह कुछ कर सके, उसकी दृष्टि महेन्द्रपर जाती है। वह शान्त भावसे अपना काम कर रहा है। उसका वह चिर-परिचित चेहरा, वह चिर-परिचित आकर्षण, वह शरारत-भरी मुसकान, सब कुछ जैसे उसके रोम-रोममें बसा हो। वह मुग्ध मन उसे देखती है। मुसकराती है। वह भूत, वह घृणा जैसे उसके शरीरसे मुक्त होकर कहीं चले गये हों। पास आकर कहती है, "आज आप जल्दी आ गये?"

महेन्द्र दृष्टि उठाकर उसे देखता है। उसके हाथमें कुमुदके अंकको देखता है। मुसकराता है। कहता है, "मैं तुम्हें चकित कर देना चाहता था, लेकिन तुम हो कि हार मानना ही नहीं चाहतीं।"

मन्दा सकपकाती है। फिर देखती है कि मेज़पर कुमुदके पाँच अंक रखे हैं। और है कि उसके हाथके अंकको देखे जा रहा है। कहता है, तो तुम लेखिका बन ही गयी। मैं यही चाहता था कि तुम स्वयं ही कुछ बनो। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। मैं सचमुच बहुत खुश हूँ, बहुत खुश।'

और दूसरे ही क्षण मन्दा पाती है, कि महेन्द्रकी चिरपरिचित गन्ध उसे घेर लेती है। उसके प्रेमकी गुंजलकमें वह फँस जाती है। अपने चेहरेपर ताबड़तोड़ चुम्बनोंको अनुभव करती है। एक क्षण उसे ऐसा लगता है कि वह सब कुछको तोड़-फोड़ दे। लेकिन दूसरे ही क्षण वह सहज भावसे समर्पित हो जाती है। कैसा है यह तनाव, कैसी है यह मुक्ति। सहज, स्वाभाविक, फिर भी पाप-पुण्यकी परिधिसे घिरी हुई। कहाँ है पापकी सीमा? कौन-सा है पुण्यका परिवेश? अच्छा और बुरा, इनकी अन्तर-रेखा कौन-सी है?....

नहीं-नहीं, वह कुछ नहीं सोचेगी। वह उलझेगी नहीं। वह मुक्त है, मुक्त ही रहेगी। वह एकाएक उसी आवेशमें बोल उठती है, "तुम जानते हो महेन्द्र, यह सब कैसे हुआ?"

महेन्द्र तृप्तिके भावसे कहता है, "कभी-कभी अनजान बने रहना भी अच्छा होता है।"

"नहीं-नहीं तुम्हें जानना चाहिए। कई

[शेष पृष्ठ ७५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ासला

/ पाबू खोलिया

कितने ऊँचे-ऊँचे ठाठ रखे, मगर सुनीलको कभी आजकी—जितनी झिझक महसूस नहीं हुई, अपनी नज़रोंमें इतना ओछा नहीं उतरा कभी वह। इस फाटकपर बीसियों बार टैक्सी-का दरवाज़ा खोलकर उतरा है वह, बढ़ियासे बढ़िया सूटमें। पर्स निकालकर, उसमें-से एक शाहज़ादेके-से लापरवाह अन्दाज़में पाँच-पाँचके नोट खींचकर टैक्सी-ड्राइवरकी ओर फेंके हैं उसने और टैक्सी-ड्राइवरके आठ-बारह आने लौटानेपर बेहिचक उसी अन्दाज़में कहा है, 'रखे रहो, चाय पी लेना।'....और उधर बरामदेमें खड़ी माँने, भाभीमे देखा है उसे.... बीसियों बार। मगर झिझकके नामपर, ओछा उतरनेके नामपर, गॉगल उतारते हुए धड़ाकसे फाटक खोलकर भीतर आया है वह और बरामदेमें खड़ी उस माँसे, भाभीसे बेहिचक कहा है उसने, "फुरतीसे चाय बनाओ तो एक प्याली। अभी एक जगह एप्वॉइण्टमेण्ट है.... ज़रा जल्दी करो।" और चट-चट-चट सीढ़ियाँ चढ़ अपने कमरेमें आते-आते—'मेरी जाँ, मेरी जाँ....'।

"बड़े साहब आ गये, माँजी! फुरतीसे एक प्याली चाय बनानेका हुक्म हुआ है।" भाभीने कहा है, और "इसके नौकर नहीं हैं। आरामसे बनेगी चाय। सबके लिए साथ बनेगी। जा कह दे। हुक्म चलायेगा, लाट साबकी तरह....दिन-भर आवारा बना फिरता है...." माँने कहा है।....तब भी नहीं सकुचाया है सुनील। टाईकी गाँठ खोलते-खोलते ऊँची आवाज़में बोल दिया है, "भाभी!....इनमें मत बनवाना मेरी चाय, तुम खुद बनाना। दे 'लाट साब' के लिए बना सकती होंगी चाय, 'लार्ड साहेब' के लिए नहीं....।"

मगर आजकी यह बरसों पुरानी सूट, और उसके साथ पहनी यह पुरानी टाई, मुझे चेहरेपर चढ़ा यह पुराना-सा गॉगल सुनीलको इस क़दर झिझक दे गया है, अपनी नज़रोंमें उसे इस क़दर ओछा क़रार गया है कि फाटक खोलनेसे पहले उसने गॉगल उतारकर जेबमें रख लिया। मगर टाई कैसे उतारे वह यहाँ सड़कपर। सूट कैसे उतारे। इस ओछेपनके अहसासको, इस झिझकको दबा देनेके लिए, रुककर सिगरेटकी आखिरी कश ज़रा लम्बी खींची उसने। सिगरेट नालीके बहावमें छोड़ दी। पचकर लौट रहे हलके धुएँको फुफकुमाते हुए उसकी आँखें अचानक सामनेवाले हरे फ़्लैटपर जा पहुँचीं। अगले क्षण माथेपर बल पड़ गये और चेहरा एकदम सख्त हो गया। और फाटक खोलनेके लिए उसने झटककर हाथ बढ़ा दिया।

फाटक उढ़काकर सुनील सीधे अपने कमरेकी ओर आ गया, कुछ ऐसे, गोया वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत शीघ्रतामें हो और किसी गहरे खयालमें होनेके कारण, उधर बरामदेके किनारे काम कर रही माँ और भाभीको उसने देखा ही न हो।....

"अंकऽल !"

बरामदेकी सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते पलटकर देखा सुनीलने : आँगनके उस कोनेमें पड़ोसके धरनी बाबूकी 'आध दर्जन प्लाटून' घोड़-सवार खेल रही थी और नीलू कुछ हटकर दाँतोंसे फ़ाकका किनारा नोंचती-सी खड़ी थी।....धरनी बाबूकी यह आध दर्जन प्लाटून अकसर यहाँ खेलनेको आ जाती है। सुनीलको कुछ भी बुरा नहीं लगता....बच्चे हुए, खेलते रहते हैं। बल्कि कभी-कभार वह उन्हें माँ-भाभीसे कहकर, बिस्कुट-टॉफ़ी दिला देता है एक-एक। पर आज उन्हें देखकर वह एकदम कुढ़ गया—माँ-भाभी लोग इतना लिफ़्ट क्यों देती हैं इन्हें। एक डाँट मारकर भगा नहीं सकतीं। भिखमंगोंके जैसे बच्चे....। उसने सड़ककी ओर और सामनेकी फ़्लैट-कोठियोंकी ओर देख लिया। कुछ तो अपनी इज़्ज़त-बेइज़्ज़तीका खयाल हो इन्हें।....या फिर इस बदतमीज़को (अर्थात् नीलूको) ही बुलाकर अपने पास बैठा लेतीं....बस, उल्लूकी तरह खड़ी हैं उनके साथ।....

नीलूकी आवाज़में उल्लास था और चेहरेमें खिलाव आ गया था एकदम। तो भी सुनीलको लग उठा कि कुछ ही देर पहले वह रोयी है। और रोज़की बात होती, तो ज़रूर सुनील उसी लयपूर्ण लहजेमें बोल उठता, "बिटिया आ....।" और लपककर एक ही झपट्टेमें उसे आसमानमें उछाल देता और फिर बाँहोंमें खिलाता हुआ कमरेमें ले आता। मगर, आज वह ज़रा-सा मुसकरा दिया, बस। शायद वह मुसकराता भी नहीं, अगर बरामदेमें माँ न होतीं और माँके साथ भाभी न होतीं।

"अरे ! सुनील आ गये !" भाभीने झटपट आँचल सम्हाल लिया। सुनीलने देखा, वे लोग सूखनेको डाली कुछ चीज़ टीनके डिब्बेमें भर रही थीं....शायद बड़ियाँ।

"आ गया....तो चायका पानी चढ़ा तू। मैं रख लूँगी इन्हें। जा देर न कर।" सुनीलने कमरेमें आते-आते सुना। माँ कह रही थीं।

सुनीलको पहुँचते ही चाय मिल जानी चाहिए—इस वक़्त वह चायके लिए देर तक रुका नहीं रह सकता।....मगर आज उसे उन लोगोंकी यह शीघ्रता-तत्परता अच्छी न लगी। चाहिए तो यह था कि उसे देखकर भी वे लोग अनदेखा कर देतीं, पूर्ववत् अपने

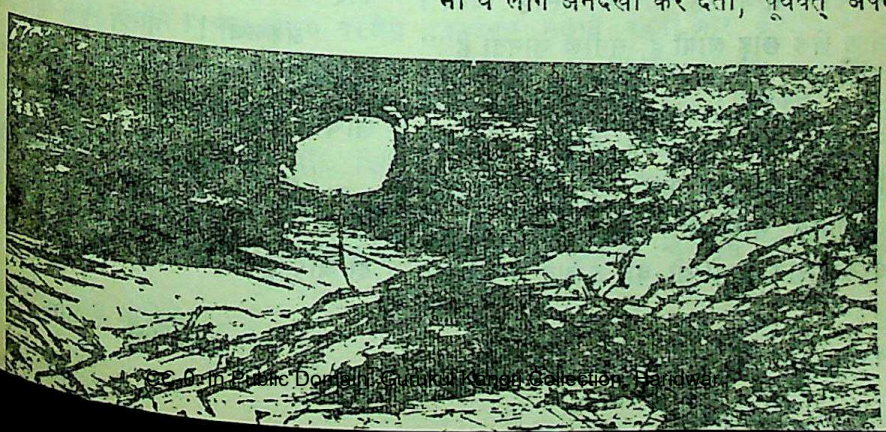

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काममें लगी रहतीं और वह देर तक उपेक्षित-सा बैठा रह जाता; उसके दो-तीन बार कहने-के बाद पहुँचती चाय। शायद उसे ख़ुशी होती तब।····कमसे कम उनका वह रुख़ उसकी मनःस्थितिके अधिक अनुकूल पड़ता।

कमरेकी खिड़की खोलना भी झंझट लगा, कुछ इतना बेताब हो रहा था सुनील, टाई-सूट उतार फेंकनेको। गला जैसे लगातार कसा जा रहा था। पता नहीं, ऐसा, टाई बाँध ले जानेका, सूट पहन ले जानेका क्या खब्त सवार हुआ उसे सुबह····। खीझ, अपनेपर, टाई-पर, सूटपर, घरवालोंपर····तमाम दुनियापर।

"अंकलजी····ई···!"

सुनील अभी कोट उतारकर टाईकी गाँठ ढीली-भर कर पाया था, नीलू आ गयी बाहरसे। उसकी आवाज़में पहली बारका, बाहर आँगनपर-का जितना उल्लास और लय तो न था अब, फिर भी थोड़ा-बहुत उछाह और लय था अवश्य।—सुनीलने यह महसूस किया। उसे ख़ास अच्छा न लगा। उसने नीलूकी ओर देखा, पर मुसकुराया नहीं इस बार। और वह देखना भी कितना अजब, कितना रूखा! कितना उड़ता!····खिड़की। उसके सामने हरी-भरी ऊँची फ़ेन्स। उस पार सड़क। सड़कपर आ-जा रहे लोगोंके अस्पष्ट बिम्ब। नीलू खेल छोड़ आयी है, सुनील जानता है····

"अंकलजी!" जवाबमें उसके अंकलजीने उसे एक उड़ती नज़रसे देखकर मुँह फेर लिया—कहा कुछ नहीं, तो जिस उछाह-उल्लासके साथ नीलू खेल छोड़कर यहाँ दरवाज़े तक आयी थी वह उछाह एकबारगी रीत गया, वह उल्लास एकाएक बुझ गया। और वहीं दरवाज़ेके पास ठिठकी, वह खड़ी रह गयी। बुझेपनसे अपने अंकलजीकी ओर देखती

"हलो शोनील!"

सड़कसे आयी उस आवाज़ने, टाई खोलते हुए, सामने स्टॉपपर घूपके तीखेपनसे बचनेके लिए फ़ाइल माथेसे लगाये खड़ी लड़कीको जाँचती नज़रोंसे देख रहे सुनीलकी टकटकी तोड़ दी। "हेलो····अरे। हेलो चटर्जी! जर्स्ट रीचिंग····? अच्छा तो बॉसको लाने-ले जाने-का धन्धा शुरू कर दिया। शाबाश बन्धु! अगर डिब्बा खाली हो जाये, तो बता देना; उसी वक़्त भिजवा देंगे····अबे, पोल्सनका डिब्बा। घटिया क्वालिटीका लगायेगा, तो उलटा रिबर्सन हो जायेगा, समझ ले।" वह ज़रा-सा हँस दिया। "·····बा'-बाई।····बरे सुनना! चटर्जी!····क्यों, उस प्रोजेक्टका क्या हुआ?····सिक्स-थर्टीवालेका?····बज़। हमसे बोल देता, तो दिनसे ही लेते टिकेट····तो फिर कलका रहा? स्योर?····ओके····बा'-बाई।" उसने हाथ हिला दिया। "सा-ला चमगादड़!" वह बुदबुदाया और खिड़कीसे हट गया। बस-स्टॉपपर अब कोई भी न था।

"अंकलजी!" नीलूने कुछ साहस कर एक बार फिर अपनी ओर उसका ध्यान खींचना चाहा जैसे।

"हूँ?" उसने इस बार बिना नीलूकी तरफ़ देखे चारपाईपर बैठते हुए हुँकार तो दी और जूते खोलने झुक गया। वह आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीरियस हो चला था।

फिर उसने दीवारकी तरफ़ मुँहकर कपड़े बदले। नीलू अब भी वैसे ही खड़ी थी, खुले मुँहमें तर्जनी डाले। और अपने अंकल-जीकी ओर नहीं, जैसे किसी अजनबीकी ओर ताक रही थी।

कपड़े भी बदल लिये। अब सुनील क्या करे?····नीलूकी उपस्थिति उसे 'अनईजी' बना रही थी। शीशेके सामने चल आया और कन्घा उठाते हुए बोल दिया, "नीलू, बाहर खेलो····जाओ।" उसका चेहरा कड़वा गया था, शीशेमें दिखाई दिया उसे।

पूर्णतः बुझ गयी, हतोत्साहित नीलू चुपचाप चली गयी थी, बरामदेकी सीढ़ियाँ उतर रही थी। उसके उतरनेमें उछाह न था, थकान थी····सुनीलको शीशेमें दिखाई दे रहा था। हलकी कचोट महसूस हुई। उसने अपनेको सख्त बना लिया—आदत बिगाड़ रही है! आते-ही-आते पीछे लग जाती है····क्या बदतमीज़ी है····!

भाई साहब कलेक्टरके ओ० एस० थे। जबतक वे थे, सुनीलकी ज़िन्दगी भी तभी-तक थी। अलमस्त ज़िन्दगी। ज़िम्मेदारी नामकी कोई चीज़ नहीं। पढ़ता था, तब भी। कॉलेजके दिनोंमें। पास होकर दरजेसे निकल गये, ज़िम्मेदारी ख़त्म। नौकरी लग जानेपर सौ-सवा सौ, जितनी इच्छा हो, महीनेके शुरूमें भाई साहबको सौंप दिये, ज़िम्मेदारी ख़त्म। और फिर मस्ती-ही-मस्ती। और घरसे इतना ही रिश्ता, जितना सुबह-शाम खाने और रातको सोनेके लिए सरायसे हो सकता है। बाक़ी न माँसे कोई लगाव, न भाभीसे। लगाव तो माँके रुपये, दो रुपये, पाँच रुपयेके नोटोंसे (जो काफ़ी सिर खुजला चुकनेके बाद प्राप्त होते थे) था, या फिर भाभीकी कॉफ़ी, कॉफ़ी नहीं तो फिर चायकी प्यालियोंसे था। इसके बाद घरमें कब कौन-सी चीज़ निबटी पड़ी है, किसे ज्वर-ज़ुकाम है, किसकी पट या खटक रही है, कौन आ या जा रहा है····कुछ भी वास्ता नहीं, कुछ भी पता नहीं। पता बस यह कि कपड़ेवालेके पास अबके कौन-सा नया और बढ़िया कपड़ा आया है···· कौन सा टेलर पैण्ट बढ़िया तैयार करता है, कौन-सी कमीज़ ····किस रेस्तराँकी क्या स्पेशलिटी है····किस म्यूज़िक-प्रोग्राममें कौन-कौन मशहूर गवैये और उस्ताद आ रहे हैं····किस 'हॉल'में कौन-सी पिक्चर चल रही है और उसका कौन-सा गाना मास्टरपीस है····और कब-कहाँ कवि-सम्मेलन आयोजित हो रहा है और उसमें कौन-कौन-से बड़े कवि-शायर लोग आ रहे हैं····। फ़ैज़की, जिगरकी, ज़फ़रकी नज़में या अपना लिखा कोई गीत (जिसमें बेकरारी-ही-बेकरारी ठुँसी होती थी) गुनगुनाते रहना। अपनी तरह-तरहकी पोज़ोंके शॉट लेकर अलबम सजाते रहना और कैण्टीनोंमें, टी-हाउसोंमें, रेस्तराँओंमें बैठे-बैठे यार-दोस्तोंके शायराना ख़्वाब देखते रहना और सिगरेटें फूँकते रहना····

माँ अकसर झींकती रहती थीं, "दुनियामें आदमी ही रहते हैं, पर इस लाट साब-जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ालतू आदमी को, भइया, कोई भी नहीं मिलेगा''''भगवान् जाने, कैसे निबाह पायेगा यह अपनी ज़िन्दगी !'' माँ घरकी टूटी-फूटी, फटी-पुरानी—बेकामकी, फ़ालतू पड़ी चीज़ें ढूँढ़-ढूँढ़कर भंगिन-भिखारिनोंको दे रही होतीं, 'बेकार कबाड़ बढ़ जाता है घरमें। ले, उठा ले जा।' तो भाभी चटसे ख़ुद भी बाहर बरामदेमें आ जातीं, 'अम्माजी, एक फ़ालतू चीज़ और भी तो पड़ी है वह, घरमें'''वह भी दे दो इसे।' 'अरे तो ले आ फिर उसे भी !' फ़ालतू-पुरानी चीज़ें माँकी दुश्मन। परेशान-सी हो उठतीं, 'अरे ओ ! रुक ज़रा। इसे भी उठा ले जा''''अरे तो ले जा न ! क्या पड़ा रह गया और ?' माँ भाभीसे कहने-को पलटतीं। और भाभी जूतोंमें पॉलिश कर रहे, नाख़ून काट रहे, गीत लिख या गुनगुना रहे, शेव कर रहे या चुपचाप लेटे कड़ियाँ ही गिन रहे सुनीलकी ओर देखकर ठठाकर हँस पड़ती थीं''''

वह ज़िन्दगी थी। सिरपर भाई साहबका साया था। नेकी-बदीकी अपनेको क्या चिन्ता, जबतक ठेलनेवाले भाई साहब हैं। उनसे घर सनाथ था तब।''''

और आज''''? उस ज़िन्दगीके खण्डहर शेष रह गये हैं अब तो ! विषादका साया घरपर, परिवारपर फिर-फिर उतर आता है''''दिन उदास और रातें अनाथ हो रहती हैं।

और सुनील है कि विषादके उस सायेको थोड़ा भी गिरने नहीं देता। उदासी और अनाथ हो जानेके अहसासको यथाशक्ति भर-साये ही रखना चाहता है, पास फटकने नहीं देना चाहता।

माँको चिन्ता लगी रहती थी कि वह अपनी ज़िन्दगी कैसे निबाह पायेगा।''''मगर सुनील उनके जीते-जी निबाह रहा है, बखूबी निबाह रहा है''''अपनी ही ज़िन्दगी नहीं, पूरे परिवारकी ज़िन्दगी। माँ बिन पूछे रहीं होंगी पहले कभी महीनों तक रतौंधीकी शिकायतमें। अब देखनेमें ज़रा भी धुँधलापन बताती हैं वह, तो सुनील 'कैजुएल' लेकर बड़ेसे बड़े आई-स्पेशलिस्टके पास ले चलता है उन्हें, बढ़ियासे बढ़िया जाँच करवाता है और अच्छेसे अच्छा चश्मा ला देता है।''''भाभीने धोये होंगे घर-भरके कपड़े कभी, माँजे होंगे बर्तनोंके ढेर। पर अब सुनील कैसे उन्हें गट्ठर कपड़े और ढेरों जूठे बरतन धोते-माँजते देख सकता है। धोबी-कहार और किसलिए होते हैं ! वह तो मिसरानी भी रख लेना चाह रहा था, पर माँ-भाभीने एक स्वरमें 'ना' कर दिया।''''और नीलू ? हर हफ़्ते उसे टॉफ़ी-बिस्कुटके डिब्बे, नये-नये खिलौने, बढ़िसे बढ़िया फ़्राक''''कुछ-न-कुछ ज़रूर लाते रहना। उसीके कपड़ोंसे छोटीवाली अटैची भर गयी है। जूते-चप्पलों, पाउडर-क्रीमसे आलमारीका एक कोठा भरा रहता है, दूसरा खिलौनोंसे और तीसरा खानेकी चीज़ोंसे।''''नीलूकी आलमारी'। आमने-सामनेके कोठी-फ़्लैटके बच्चोंके पास कोई बढ़िया चीज़ दीख जाये और वह नीलूके पास न हो''''या नीलू उनमें किसी मानेमें ग़रीब दीख जाये''''सुनील सह नहीं सकता। चाहे कैसे भी, यह नीलूको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोठी-बँगलेवाले बच्चोंसे एक क़दम आगे ही रहेगा। इसके अलावा अब और रह भी क्या गया है सुनीलके पास। पहले तो अलबम सजानेको नये-नये पोज़ोंवाले अपने 'शॉट' थे, गुनगुनानेको चुनी हुई नज़्में या अपने लिखे हुए गीत थे, संगीत कार्यक्रम थे, कवि-सम्मेलन थे, मुशायरे थे और टी-हाउसों-रेस्तराँओंमें बैठकर ज़िन्दा होनेका अहसास करानेवाले शायराना ख़्वाब थे।....आज तो बस एक भतीजी रह गयी है, और वही सुनीलको उसके ज़िन्दा होनेका अहसास कराती है, जब-जब वह उसके लिए खाने, खेलने और पहननेकी चीज़ें लाता है ख़ुद अपने हाथसे उसे खिलाता है, खेलाता है, पहनाता है, तब-तब।

बख़ूबी निबाह रहा है सुनील। भले ही इस सारे निबाहनेके पीछे उसे अपने जेब-ख़र्चके लिए पाँच रुपये बचा लेना भी मुश्किल हो जाता है किसी-किसी महीने। 'पियर्स' से तो अब नीलू नहाती है, सुनीलने अपने लिए वह सात आनेवाली टिकिया रख छोड़ी है। नहाना-धोना भी उसीसे, शेव-हजामत भी उसीसे। इन गरमियोंमें पाजामा फट चुका था, तबसे बिना पजामेके चल रहा है। जूतों-चप्पलोंके नामपर बस एक जोड़ा जूता रह गया है, जिसका नाम उसने 'अब गया, तब गया' रख छोड़ा है। लैट्रिन-बाथरूमसे लेटर-ऑफ़िस तक उसका वही 'अब गया, तब गया' ब्राण्ड चलता है। पहले हेयर-क्रीम इस्तेमाल करता था। तेलसे बाल चिपचिपे हो जाते हैं न। और उसे चिपचिपे बाल पसन्द नहीं। चिपचिपे तो अब भी नहीं होते उसके बाल। बस फ़र्क़ इतना ही है कि पहले हेयर-क्रीम चलता था, अब कड़ू तेल—उसकी भी गिनतीकी चार बूदें और ढेर-सा पानी। बाल बैठ जाये, बस इतना-सा ही। ....तब भी चेहरेपर असन्तोष या 'किस झंझट-में डूब गये!' की एक भी शिकन नहीं....ये शिकनें थोड़े ही हैं, ये तो झुर्रियाँ हैं चार-छह। इन झुर्रियोंपर उसका क्या बस! चेहरे-पर पहलेकी वह टमाटरी रंगत अब रही नहीं, गालोंमें गड्ढे पड़ने शुरू हो गये, या गलेका टटुवा निकल आया, तो सुनील क्या करे इन सबके लिए....कोई उसके बसका है यह सब! उसके बसका जो है वह सुनील करता तो है! शामको अकसर घूमनेको जाता ही है वह, पिक्चरें भी गैलरीसे ही देखता है, स्तरीय रेस्तराँओंमें बैठकर चटनी-समोसे लस्सी-रस-गुल्लेका ऑर्डर भी देता ही है। हाँ, इन सारी जगहोंमें उसके साथ अब नीलू ज़रूर होती है, घरसे चलते वक़्त जिसे सुनीलने अपने हाथों वह आज ही ख़रीदी नये पैटर्नकी बढ़िया फ़्राक पहनायी थी, नयेवाले जूते-मोजे भी ख़ुद ही पहनाये थे और फिर बड़ी सावधानीसे उसके ताज़े कटे बॉब्ड केश सँवारे थे....भाभी तो चोटी गूँथना जानती हैं, बॉब्ड केश सँवारना उनके बसका नहीं, वह तो सुनील ही सँवा-रता है, ख़ासतौरपर।

माँ अस्पताल या घाट-मन्दिर रिक्शे-ताँगे-में बैठकर भी तो जा सकती हैं। भाभी नाते-रिश्तेदारोंके यहाँ बससे भी तो जा सकती हैं। पर नहीं! टैक्सी ले जायेगी, टैक्सी ही वापस भी पहुँचायेगी। आख़िर एक सुनीलकी माँ है और दूसरी सुनीलकी भाभी है। सुनील, आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अकेला भी पड़ गया है, तो क्या हुआ। पूरे परिवारके बोझसे बुरी तरह लद भी गया है, तो भी क्या हुआ! लंच-टाइममें एक प्याली चायके अलावा अगर कभी कैण्टीनकी किसी दूसरी ताज़ी 'प्रिपेरेशन' को मन बुरी तरह ललच उठता है और सुनीलको एक चवन्नीके ऑर्डरके लिए पहले चार बार, मन-ही-मन, पूरे महीने दिनके बजटका सर्वे कर लेना पड़ता है, तो भी क्या हुआ! कई-कई बार दिनों तक एक-डेढ़ रुपयेकी रिपेयरिंगके बग़ैर साइकिल घरमें बेकार पड़ी रह जाती है, और सुनीलको नित दो मील जाते वक़्त और दो मील आते वक़्त पैदल नापना पड़ता है, तो भी क्या हुआ। है तो यह वही सुनील न! जिसने कभी जो ठाठ किये हैं, जो आन-शान रखी है, जो गर्व-गुमान भोगा है, वह क्या इन कोठी-बँगलेवालोंको नसीब होगा! उन दिनोंकी लाज तो रखनी ही है, वरना लोग क्या कहेंगे···लोगोंसे पहले, भीतरका वह उजड़ा हुआ शाहाना अहम् क्या कहेगा! बाहर-से न सही, भीतर तो वह अहम् अब भी बर-क़रार है।····ये फ़्लैट-बँगलेवाले भी गाड़ी-टैक्सीमें ही आते-जाते हैं, कोई हेलीकोप्टरमें नहीं।

इस 'बखूबी निबाहने' के फलस्वरूप ज़्यादासे ज़्यादा यही तो होगा कि सिरपर क़र्ज़का पहाड़ चढ़ जायेगा और वह ताबे-ज़िन्दगी उस पहाड़को ही घटाता रह जायेगा, आप कुछ भी इंज्वॉय नहीं कर सकेगा कभी। बस इतना ही तो! यह सह्य है, सम्भव है; मगर अपने परिवारके, विशेषतः भतीजोके माध्यमसे स्वयंको इन आमने-सामनेके कोठी-बँगलेवालोंसे दीन-हीन अनुभव करना किसी भी सूरत सह्य नहीं!

हाँ, माँ-भाभीकी बात छोड़ दीजिए, मगर नीलू····

जब भाई साहब ज़िन्दा थे, सुनील तब भी नीलूको कोई कम चाहता था! अपने लिए तो बीस-पचीसका जेब-खर्च काफ़ी था, बाक़ी पचीस-तीस रुपये हर महीने नीलूके टॉफ़ी, खिलौने, फ़्राक, पुलओवर, जूते-मोज़ों, क्रीम-पाउडरमें ही तो खर्च होते थे। हर चीज़ उसकी 'दि बेस्ट' होनी चाहिए।····यह एक हॉबी थी उसकी। ऐसे ठाठ उस्तावाला सुनील! मगर जो सन्तोष, जो ख़ुशी उसे नीलूके खेलने-पहननेकी चीज़ें ख़रीदते वक़्त होती थी, वह अपने खाने-पहननेकी चीज़ें ख़रीदते वक़्त भी नहीं। भाभी-माँ चाहे जितना झिड़कती-डाँटती रहें कि बच्चों और कुत्तोंको इतना सिर चढ़ाये रखना ठीक नहीं होता····आदत बिगड़ जाती है उनकी····सुनीलपर उसका कुछ भी असर नहीं होता। 'लड़की तो कुलका नाम उजागर करती है, माँ! नाम डुबाता है, तो हरामी एक लड़का। मुझे देखो। लड़का न होकर लड़की होता तो इस तरह फ़ालतू-फ़ण्डमें पड़ा होता? इस वक़्त तो तुम्हारी पद-चम्पी कर रहा होता मैं····साँरी, कर रही होती मैं!' नीलूको लेकर अकसर माँसे शास्त्रार्थ छिड़ जाता था सुनीलका।

शामको ऑफ़िससे लौटकर फाटक खोला नहीं कि 'अंकल!' 'बिटिया!' ····और फिर कहाँका कपड़े बदलना, कहाँका हाथ-मुँह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोना, कहाँका सुस्ताना····बिटिया फाटकसे ही अंकलकी पीठपर सवार····!

"ए ! तमीज़से बैठ, एक तरफ़ ! बहुत बदतमीज़ी सीख गयी है !" चायके वक़्त ज़बरदस्ती सुनीलकी गोदमें चढ़ी जा रही नीलूको भाभीने घुड़का और नीलूका सुनीलकी गरदनमें बाँहोंका झूला पड़ा। रहता होगा उसे ममीका डर दिनमें—अंकलकी ग़ैर-मौजूदगीमें। अब तो अंकल मौजूद हैं, अब किस बातका डर ?

"नीऽलूऽ !" कुछ देर बाद सुनील बेल्ट कसता-कसता, तरमे बाँधता-बाँधता पुकार दिया होता, "हरी अप !" और भागती आयी नीलू एक ही उछालमें सुनीलकी गोदमें। और लो ज़ोरसे खिलखिला पड़ी। सुनीलने उसे पेटमें गुदगुदा दिया होता।

"लदो खूब !····तुम्हारा जन्म तो कहीं कुली-कबाड़ियोंके घरमें होना था, जाने यहाँ कैसे हो पड़ा।" सुनील फाटक खोल रहा होता, भाभी बरामदेसे कह रही होतीं। सुनील नीलूके कानमें कुछ कहता और गोदमें चढ़ी नीलू ममीको, जीभसे 'थपड़-थपड़'कर, अँगूठा दिखा देती।····

जिस रोज़ उसे नीलूके लिए कोई नयी चीज़ खरीदनेका शौक़ चर्राया होता था, ऑफ़िससे लौटते वक़्त ही वह कोई बढ़िया रेडीमेड कपड़ा या जूता-चप्पल खरीद लाया होता, उस रोज ज़रूर नीलूको घुमाने ले जाता था सुनील····तबका उसका यह 'रिवाज' आज तक चलता चला आ रहा है।

····और हवाखोरीको निकले उन दोनोंके, वहाँ किसी बढ़िया रेस्तराँमें बैठकर लो चॉप्स, लो आईसक्रीम, लो रसगुल्ले, गपागप। घूमना तो कहने-भरका होता था, न !

और अब लौट आये हैं सुनील महाराज 'हवाखोरी' से, और फाटककी कुण्डी खोलते-खोलते वहींसे आवाज़ दे दे रहे हैं, "भाभी ! ज़रा चादर ठीक कर देना। एक गिलास पानी भी !" ····और सो गयी नीलूको चारपाईमें उतार पानीका गिलास ख़ाली कर पसीना पोंछ ले रहे हैं, "बाप रे ! सो जाती है चुड़ैल, तो पूरा क्विण्टल बन जाती है, पता नहीं कैसे। मील-भरसे लादे ला रहा हूँ इस क्विण्टलको ! ····चलो, इस बहाने मसल्स (माँस-पेशियाँ) बन जायेंगी।" कहकर बाँहोंको दो-तीन बार झटक-झटककर मोड़-तान ले रहे हैं सुनील।

····वही सुनील आज नीलूके इतने उछाह-उल्लाससे 'अंकऽल !' पुकारनेपर, उसे लपककर हवामें उछाल देना तो दूर, 'बिटिया !' तक नहीं कह सका। जाने कितने उछाहसे खेल छोड़कर भागती आ रही, और कितने प्यारसे दूसरी बार 'अंकल !' पुकार रही नीलूको अपने कमरेमें बुलाना भी न हो सका सुनीलसे। कुछ भी नहीं बोला वह। कुछ बोला भी, तो पीठ फेरे, एकदम रूखे ढंगसे यह, "नीलू, बाहर खेलो। जाओ"····नीलूका सामने खड़ा होना-भर आज सुनीलको इतना 'अन-ईज़ी' बना गया !

हाथ-मुँह धोकर कंघा कर लेने तक चाय आ गयी। भाभी रख गयी थीं। भाभीके चाय लानेसे एक बार सुनील और 'अज-ईज़ी' हो उठा। क्योंकि जिस वक़्त भाभी आयीं, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल सँवार रहा था। जाने क्यों बाल सँवारना छोड़ वह आलमारीमें यों ही कुछ ढूँढ़नेमें व्यस्त हो गया। और भाभीके लौट जाने तक व्यस्त ही रहा। ....आज भी उसकी चाय रोज़की तरह टी-सेटकी फूलदार प्यालीमें ही आयी थी, (गिलासमें चाय पीना उसे पसन्द नहीं, प्यालीकी चायमें एक और ही तृप्ति मिलती है उसे)। और, रोज़की तरह भाभीने पहले कोनेसे छोटी टेबल उठाकर चारपाईके सामने लगा दी थी, तब उसपर प्याली रखी थी, प्लेटसे ढककर (चायमें मक्खी गिर जाये, तो फिर सुनील उसे पी नहीं सकता और खास-कर इस शामके वक़्त वह दूसरी बारकी चाय तैयार होने तक रुका नहीं रह सकता)। और 'सुनील, चाय पी लो' कहकर चली गयी थीं भाभी। ....तब जाकर सुनीलकी व्यस्तता टूटी थी और उसने यह सब देखा था। और उसे यह सब एक बार फिर 'अन-ईज़ी' बना गया था। गोया भाभी अभी कमरेमें ही हों, फूलदार प्यालीके रूपमें, कोनेसे उठाकर चारपाईके सामने लगायी टेबलके रूपमें, प्लेटसे ढकी प्यालीके रूपमें। प्याली उठाते-उठाते एक बार फिर परेशान हो उठा सुनील। जेबसे निकालकर उसने कैप्स्टनकी डिबिया कब चारपाईपर रखी।....उसका दिमाग़ आजकल इतना खराब क्यों हो गया! भाभीने देखा होगा....डिबिया सिरहाने तकियाके नीचे दबाकर चायकी तीन-चार सुड़कियाँ एक साथ जल्दी-जल्दी खींच लीं उसने। जैसे इस सारी परेशानीसे मुक्त होनेका यही एक उपाय हो। मगर चायके साथ उसे सिगरेट ज़रूर चाहिए....उठा। धीरेसे दरवाज़े उढ़काकर कोटकी जेबसे पेन और माचिस और आल-मारीसे राइटिंग पैड निकाल लाया। बेड शीट-की उलटी तरफ़से पैडपर छायी गर्द पोंछकर वापस चारपाईपर आ गया। डिबिया। मगर उसमें सिगरेट एक ही थी, कावराने कैप्टीनमें ज़बरदस्ती दिला दी थी। माचिसकी झारिहट उसे आज ऊँची लगी। खाली डिबिया मुट्ठीमें कुचलकर खिड़कीसे बाहर झटक दी ज़ोरसे। अब वह धीरे-धीरे आरामसे चाय और सिगरेट पी रहा था, सामने दीवार और छतकी सन्धिपर दृष्टि गड़ाये। राइटिंग पैड और पेन गोदमें पड़े थे।....

जमुनाजी की धारा देखो,
आगरे का ताज देखो,
ताज की मुमताज देखो। देखो जी....

आज भी सामनेके फ़्लैटपर यह 'देखो' की मनहूस एकतानता शुरू हो गयी थी, मुद्दत सुबह। पर और रोज़ हर 'देखो' से जो कीलसी जैसी खरोंच सुनीलके दिमाग़पर लगती थी और वह कुछ इतना एलर्जिक हो गया था कि पहले 'देखो' से ही उसका सिरदर्द शुरू हो जाता था, वह आज खास नहीं हुआ था। आरामसे शेव की थी उसने (यों तो अब हर तीसरे दिन शेव करने लगा था वह, पर आज चौथे या पाँचवें दिन की थी)। जूतोंपर पॉलिश की थी। पावोंके नाखून काटे थे। और नीलूको गोदमें बैठाकर खाना खाया-खिलाया था। आज उसने टेरीउलकी वह सूट पहनी, जो कभी किसी उपलक्षमें एक महीनेकी पूरी तनख़ाहसे तैयार हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर उसने एक टाई भी छाँटकर पहन ली थी।

"अरे नीलू! सुनो!" टाई पहनते-पहनते उसने आवाज़ दी। भाभी बरामदेमें चादर बिछा रही थी। बोला, बिलकुल दो बरस पुराने लहजे में, "भाभी, ज़रा-सा क्रीम आज हमें भी दे दो न! नीलूवाली!" और मुसकरा दिया था, "ज़रा तबीयत हो गयी है आज।"

"नीलूकी क्रीम तो कबकी खतम हो गयी थी, सुनील!"

"ओ सॉरी!" याद आ गया कि उसकी क्रीमकी शीशीमें तो उस रोज़ माँ अपना दन्त-मंजन भर रही थी। 'नो मैटर....' उसने जेबसे दो अंगुल चौड़ी नोटबुक निकाल ली और पन्नेपर बारीक अक्षरोंमें एकके नीचे दूसरी, कविता-सी बना रखी थी—जनता स्टोर ३५, मल्होत्रा २४, बनिया ५५, सिगरेट १०, रेडीमेड २५, फ्रॉक फ्रॉम 'रेडीमेड', हेयर कटिंग, साइकिल रिपेयरिंग, टॉफ़ी-पाउडर फ्रॉम 'जनता', ब्यूमास्टर (बेस्ट क्वालिटी) और पिक्चर कार्ड १ दर्जन (इस मदको दो बार रेखांकित किया गया था), उसके नीचे उसने जोड़ दिया था—'पीयर्स एण्ड क्रीम फ्रॉम जनता।'

"तो ज़रा इलायची-सुपारी ला दो न भाभी!"

"इलायची तो शायद नहीं है, सौंफ ला दूँ?"

"ओ सॉरी। खैर कोई बात नहीं,.... अच्छा सौंफ ही ले आओ।"

भाभी अन्दर चली गयीं तो उसने नीलू-को बताया था, कि जो बच्चे नंगे पाँव घूमते हैं, वे गन्दे होते हैं। और एक 'पप्पी' उसे देकर एक 'पप्पी' उससे माँगी थी। सौंफका फंका मारकर भाभीसे उसकी फ्राक बदल लेनेके लिए कहा था और कई रोज़ बाद माँको ज़ोरसे पुकार-कर सूचित भी किया था, कि वह ऑफ़िस जा रहा है।

■

तनख़ाह तो पिछले महीने दिसम्बरमें भी काफ़ी देरसे ले पाया था सुनील। कारण : कैजुअल और अर्न्ड लीव भाई साहबकी बीमारी वग़ैरह-में ही खत्म हो गयी थीं न, शुरूमें ही। इस-लिए जब उस बार अचानक नाफ़ चढ़ गयी तो एक हफ़्तेकी 'मेडिकल' लेनी पड़ी थी। और नयी पे-स्लिप तब पहुँची जब कई दिन तक इन्तज़ार कर लेनेके बाद रिमाइण्डर दिया ए० जी० ऑफ़िसको। फिर बिल तैयार कर ट्रेजरी भेजना, तीन-तीन चार-चार दिन तक फिर ट्रेजरीवाले दबाये रखे बिलको....अठारह या बीसको तनख़ाह मिल पायी थी। मगर उस महीने इस क़दर परेशानी नहीं हुई थी। परेशानी तो खैर इस महीने खास नहीं होती। बस ज़रा इन दो-तीन जनोंका पिछला एकाउण्ट जल्दी साफ़ हो जाता, तो ठीक रहता। वैसे किसीने तक़ाज़ा थोड़ा ही किया था; बस एक जनता स्टोरवालेने टूथपेस्ट देते वक़्त 'गर्ग साहिब' की जगह सिर्फ़ 'आप' कहा था और खास बात नहीं को थी। मल्होत्रा मेडिकल स्टोरवालेने तो खूब बातें की थीं और कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि आजकल तो गर्ग साहबके दर्शन ही दुर्लभ हो गये। और बातों-ही-बातोंमें बताया था कि ग्यारह-बारह सौ की एक बिल्टी आ गयी है अभी सुबह····वैसे इस दवाओंके धन्धेमें कुछ मिलता थोड़ा ही है, फ़क़त एक रुपया सैकड़ा! तक़ाज़ा कह लो जो या कुछ कह लो, बस इतना ही। मगर पिछले शुक्रके दिन वह ऑफ़िससे लौटा, तो सामनेके हर फ़्लैटमें बच्चोंका 'दिल्लीका लाल क़िला देखो, और तिरंगा झण्डा देखो····' का शोर हो रहा था ज़ोर-ज़ोरसे। अच्छा, तो ब्यू मास्टर आ पहुँचा आज! और एक ही दिनमें ट्रेनिंग भी मिल गयी पूरी! सुनील मुसकरा गया था इस खयालसे कि कहा जाये, 'बस बेटो, पूरे ट्रेण्ड हो गये हो! अब उधर चौराहेपर पहुँच जाओ फ़ौरन····!' मगर ज्यों ही नीलूपर नज़र पड़ी, ख़याल ग़ायब हो गया। खुले मुँहमें तर्जनी दिये उल्लू-सी खड़ी वह उस ओर टकटकी बाँधे देख रही थी।

जब नीलू न खिलौनोंसे बहली, न अपनी साइकिलपर चढ़कर ही ज़्यादा खुश हुई, तो सुनीलने माँसे कहा था, "अच्छा, इसे ढेर-सारी टॉफ़ी दे देना आलमारीसे।"····तब उसे मालूम हुआ कि उसके टॉफ़ी-बिस्कुट तो कबके खत्म हो गये। तेल भी, साबुन भी, पाउडर भी····आजकल कुछ भी नहीं है।

"अच्छा····" उसने कहा था और सामनेके फ़्लैटमें 'देखो-देखो'का शोर हो रहा था। "अच्छा बेटे! कोई बात नहीं। आज हम दोनों घूमने जायेंगे।····जाओ तुम कपड़े पहनो।" अपने बुझते हुए मनको गोया उसने कुरेद लिया हो।

उस रोज़ सुनीलने नीलूको और अपनेको घूमनेके लिए ख़ूब बन-ठनकर तैयार किया, फाटक खोलते वक़्त भाभीकी ओर उसे थपड़, थपड़ जीभ चलानेका इशारा किया, रेस्तराँमें पूरे दो रुपये खरच दिये····(नीलू तो बहल गयी) मगर फिर भी वह अपनेको न बहला सका। वह सारा-कुछ····गोया वह बेगार दे रहा हो। थकान····थकान।

■

···ऑफ़िस पहुँचते ही सुनीलने चपरासीसे पता करवाया कि डाक आयी या नहीं। यद्यपि उसे मालूम था कि आज सोमवार है और सोमवारको डाक देरसे पहुँचती है। उसकी मेज़पर 'टॉप प्रायरिटी' का लेबल लगी फ़ाइल पड़ी हुई थी। पलटकर देखा: सेक्रेटरीके पाससे आयी हुई थी और बॉसने नोट दिया था उसपर आज चार बजे शाम तक हर हालतमें पूरी कार्रवाही कर वापस हो जानी चाहिए।····उसने फ़ाइल एक किनारे कर दी और डाकका पता करनेको भेजे चपरासीका इन्तज़ार करता रहा। चपरासी पता कर आया। डाक अभी नहीं पहुँची थी।

डाक बाँटनेवाला चपरासी जिस वक़्त सुनीलका सैलरी-बिल लाकर उसके सामने रख गया, वह 'टॉप प्रायरिटी' वाली फ़ाइलको 'डील' कर रहा था। लिखे जा रहे शब्दको भी अधूरा ही जहाँका तहाँ छोड़ दिया उसने। बिल उठाते हुए सामने दीवार-घड़ीकी ओर देखा और उसका हाथ कॉल-बेलपर चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। बैंकका अभी एक घण्टा है, चपरासी 'ड्रा' कर लायेगा झटपट।

मगर बिल खोलते ही उसकी नज़र जो उसपर ऊपरसे लगी, लाल स्याहीसे लिखी गयी चिटपर पड़ी, तो सनाका खा गया सुनील। उसने हाथ वापस खींच लेना चाहा, मगर बेल बज चुकी थी··· इस तीसरी बार भी ऑब्जेक्शन!

चपरासी सामने खड़ा था चुपचाप और सुनील ट्रेजरी-आब्जेक्शनवाली उस चिटको पढ़कर अब जाने कौन-सा गूढ़ अर्थ खोज निकालना चाह रहा था उसमें-से!

"पानी पिलाओ।" चपरासीको खड़ा पाकर उसके मुँहसे अनायास निकल गया और बिल उसने ड्रायरमें ठूँस दिया, यद्यपि खयाल 'वेस्ट पेपर बास्केट' का पहले आया था, ड्रायरका बादमें।

'लंच टाइम' के लिए रखी हुई, पैकेटकी आखिरी सिगरेट निकालकर जला ली उसने। जीमें आ रहा था कि बिल लेकर अभी तावड़तोड़ पहुँच जाये और पहुँचते-पहुँचते टी० बो० का टेंटुवा पकड़ ले····एक-एकका गला घोंट डाले। अच्छा मज़ाक़ है! कभी 'रांग-कल्क्युलेशन' का ऑब्जेक्शन लगाकर वापस कर देते हैं····वह ठीक कर भेजो तो अगली दफ़ा इन्कमटैक्सकी ग़लत कटौतीका ऑब्जेक्शन····वह ठीक कर भेजो तो वापस ऑब्जेक्शन, कि इस साल कैजुएल और अण्डलींबके अलावा और कोई छुट्टी नहीं ली है, यह प्रमाणित नहीं किया गया है!····अभी तो सालका पहला महीना खत्म हुआ है, कैजुएल लीव भी ले चुके, अर्न्डलीव भी ले चुके और उसके अलावा और लीव भी ले चुके····? एक ही महीनेमें? बेकार परेशान करनेके सिवा और क्या अर्थ है इसका····। और फिर सारी ग़लतियाँ एक बार ही क्यों नहीं बतला दी जातीं···। सुनील कोई शतरंजका मुहरा है! ····कमीने!

उससे स्थिर होकर नहीं बैठा जा रहा था। और सामने 'टॉप-प्रायरिटी' वाली फ़ाइल खुली पड़ी थी। यह 'टॉप-प्रायरिटी' की झंझट नहीं होती, तो वह अभी, इसी झोंकमें उठकर जा पहुँचता ट्रेजरी-ऑफ़िस···! उसने अपनेको बहकाना-झुठलाना चाहा। दरअसल वह जो ट्रेजरी नहीं जा सकता, वह इस फ़ाइलके कारण नहीं, ट्रेजरीके दूर होनेके कारण, और जेबमें पैसे न होनेके कारण। वह बाहरसे किसीकी साइकिल उठाकर भी तो जा सकता है····मगर नहीं, आज वह साइकिलपर नहीं जा सकता। एक-दो मील घरसे ऑफ़िस तक जब वह पैदल नहीं आया आज, रिक्शेमें या बसमें भी नहीं आया, टैक्सीमें आया, तो अब कैसे आता-जाता पूरे आठ मील साइकिल खड़खड़ाता हुआ···! लेकिन ढाई-सौकी सूट पहने वह अपने सामने भी क़बूल करनेमें हिचक रहा था कि उसकी जेबमें सिर्फ़ पाँच नये पैसेका सिक्का पड़ा है एक।···यह साली 'टॉप प्रायरिटी' की झंझट न होती तो इसी वक़्त वह····

उसने सिगरेट जूठे गिलासमें डाल दी और झुँझलाहटसे भरा फ़ौरन फ़ाइलपर झुक गया। ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"गर्ग साहब बाहर नहीं चल रहे ?" सामनेसे काबराने अँगड़ाई तोड़ते हुए पूछा, तो सुनील कुछ और भी व्यस्त हो चला, "यार, ये साली फ़ाइल कैसी आन गिरी है खोपड़ेपर ! आजकी आज वापस भेज देनी है।"....टेरीऊलकी सूट और जेबमें दुश्मनकी तरह पड़े पाँच पैसे.... सिगरेट भी पहले पी डाली साली !

"काम तो अपना भी आज बहुत पड़ा है।" काबरा कह रहा था, "चलिए चाय तो पी आयें पहले। यह भी होता रहेगा।....लंच अँवर तो अपना है !" कहता हुआ कुरसी पीछे खिसका, वह उठ गया और पैण्टकी जेबमें हाथ डाल उसने एक नोट और कुछ रेज़गारी निकाली। सुनीलने फ़ाइलपर झुकी दृष्टिसे उस ओर देख लिया। हाँ, नोट और रेज़गारी ही होगी। क्योंकि काबराने पर्स भी निकाल लिया था अब। उसके दूसरी बारके कहनेपर सुनील उठ गया। वह काबराकी ओरसे आश्वस्त हो चुका था कि चाय पीकर पोजीशन अकवर्ड नहीं होगी।

चायके साथ सिगरेट पीनेकी बुरी लत पड़ गयी यह।....सुनील अभी आधी चाय भी नहीं पी सका था। वह जानबूझकर भी कुछ धीरे-धीरे ही पी रहा था। काबरा चाय पी चुका और पर्स निकालकर पेमेण्ट करने लगा। "अरे रुको यार !" पर्स अपना सुनीलने भी निकाल लिया, पर काबराने तबतक बैराको पैसे चुका दिये थे—"कोई बात नहीं।"

"अरे सुनो। एक सिगरेट तो लाना।" बैरा लौटने लगा, तो सुनीलने फिरसे जेबमें हाथ डालकर पर्स निकालना चाहा।

"ओ सॉरी !" काबरा बोला, "खुद सिगरेट नहीं पीता, इसलिए ध्यान नहीं रहता कभी बार...आप रहने दीजिए, मेरे पास बेकारकी चेंज पड़ी है, भारी लग रही है...गोल्ड फ़्लेक ही पीते होंगे न ?"

आमने-सामने तो बैठना होता है। सुनीलमें ट्रेज़रीवालोंका टेंटुवा पकड़ लेनेकी झोंक उठ-उठ रही थी और सामने बैठे काबराने पर्स बुश्शर्टकी जेबमें डाल रखा था, और बुश्शर्ट सफ़ेद टेरेलीनकी थी—और पर्स काले चमड़ेका था। काबरा अपने काममें जुट रहा होता। सुनील फिर-फिर अँगड़ाई ले लेता, फिर-फिर मेज़पर अँगुलियाँ तोड़ लेता, शब्द जीभकी नोंक तक आ-आकर वापस हो जाते और जीभ होठ चाटकर रह जाती। वह काबराके अपनेसे पाँच साल जूनियर होनेकी बात भूल नहीं पा रहा था। वह अपने टेरीऊलकी सूट पहने होनेकी बात भी नहीं भूल पा रहा था, काबराके फ़क़त एक बुश्शर्ट पहने होनेकी बात भी नहीं भूल पा रहा था, ब्वर हरे फ़्लैटमें आये व्यू मास्टर और चौबीस घण्टे मचे रहनेवाले 'देखो-देखो' के शोरकी बात भी नहीं भूल पा रहा था, ट्रेज़रीवालोंका टेंटुवा पकड़ लेनेकी बात भी नहीं भूल पा रहा था और काबराकी, कैण्टीनमें कही, 'मेरे पास बेकारकी चेंज पड़ी है, भारी लग रही है...' वाली बात भी नहीं भूल पा रहा था।" काबरा, प्लीज़ ! यू गेट आउट...! काबराने खरीदी, आधी बुझाकर बचायी हुई सिगरेट सुलगा ली उसने और आश्वस्त हो गया, कि काबराने निश्चित ही इस ओर नहीं देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"काबरा ! यार, एक बात तो सुनो।" शामको ऑफ़िससे निकलकर काबराने जब सुनीलसे एक-एक चाय और पीते चलनेकी बात कही और दोनों कैण्टीनकी ओर बढ़े तो संकोचको एकबारगी झटकार कर सुनीलने काबराके कन्धेपर हाथ रखते हुए कह ही दिया।

"कहिए।" काबरा उसके क़रीब आ गया।

"यार, बन्धु, टु बी फ्रैंक····" पल-भरके लिए वह क्या कहूँ, क्या न कहूँ की स्थितिमें पड़ गया और फिर बिलकुल पास जाकर बोला, "आज एक दोस्तको रीगलमें एप्वाइण्टमेण्ट दिया है, अभी छह-दस पर। टु बी फ्रैंक, फ़ॉरमली वी हैव हैड सम स्वीट रिलेशन्स····" वह यहाँपर थोड़ा लाज-डूबा-सा हो गया—"लेकिन सुबह जल्दबाज़ीमें साला···· आई फ़ॉरगॉट टु ब्रिंग माई बैंक-पासबुक। यों दिनमें जाकर ला तो सकता था घरसे, मगर सेक्रेटरीके यहाँसे वो साली फ़ाइल जो आ पहुँची सुबह-ही-सुबह। और एकके बाद लंच आँवरमें जाना तो बेकार ही था फिर। बैंक टोके बाद पेमेण्ट नहीं करता····बड़ी अकवर्ड पोज़ीशनमें पड़ गया हूँ यार।" वह इस विषम स्थितिकी कल्पना कर क्षण-भरको एकदम बेचैन हो उठा जैसे, फिर बड़ी शर्मिन्दगीसे बोला, "कल तो पैसे ड्रा करने ही हैं, इफ़ यू प्लीज़ हेल्प मी एट दिस टाइम—आई नीड फ़िफ़्टीन एट लोस्ट (बढ़ियासे बढ़िया ब्यूमास्टर चौदह-पन्द्रह तकमें आ जायेगा, उसने सोच रखा था), तो कल दिनमें बारह बजे तक लौटा दूँगा····कैन यू ?"

लेकिन काबराके पास कुल नौ-दस रुपये हैं, और अभी एक पीपा केरासिनका ले चलना है उसे।

"आ' एम रियली सो सॉरी, गर्ग साहब····"

"अरे नहीं यार, इसमें सॉरीकी क्या बात है ?····चलो देखा जायेगा, वहीं रीगलमें।" अब सुनील इस विषयको एक शब्द भी और आगे नहीं खींचना चाहता, इतनी खिसियाहट।

दोसे, चाय, सुलगी हुई सिगरेट।····कई रोज़से टॉफ़ी-बिस्कुटका एक टुकड़ा भी नहीं है नीलूके लिए। सामने हरे फ़्लैटमें मचे हुए 'देखो-देखो' के शोरकी ओर टकटकी बाँधे ललचायी और उत्सुक आँखोंसे देख रही नीलू····। सुनीलके ना-ना करनेपर भी काबराने दो प्लेट चॉप्स मँगवा ही लिये। एक टुकड़ा काटकर मुँहमें डाला। अच्छे बने थे····! नीलूको चॉप्स बहुत पसन्द हैं—पसन्द थे।

चलते वक़्त काबराने दो पान बनवाये। "एक गोल्ड फ़्लैक भी देना भई!" काबराने कहा, तो पानवाला बोला, "दो ही रह गयी हैं डिबियामें, कहें तो डिबिया ही दे दूँ, साहब ?" "लाओ।" काबराने लापरवाह ढंगसे डिबिया लेकर सुनीलकी ओर बढ़ा दी।

"ओके····बा'-बाई !····बा'बाई।"

अपनी जान काबराने सुनीलके मनमें अपने लिए ज़रा भी गिला बच रहनेकी गुंजायश नहीं रख छोड़ी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमुनाकी धारा देखो,
आगरेका ताज देखो,
ताजकी मुमताज देखो···

उढ़काये हुए दरवाज़े। गोदमें पड़े हुए राइटिंग पैड और पेन। धीरे-धीरे आरामसे पी जा रही चाय और सिगरेट। और सामने फ़र्शकी सन्धिपर गड़ी हुई दृष्टि।····

'देखो···देखो' की मनहूस एकतानता जब माथेमें कील-जैसी खरोंच मारने लगी, तो अपनेमें ही बड़बड़ाकर लम्बी घूँट खींच प्याली एक तरफ़ रख दी और पैड खोलकर सुनील फ़ाइनेंस-मिनिस्टरके नाम ट्रेजरीवालोंकी इस धाँधलीके खिलाफ़ शिकायती चिट्ठी लिखने जुट गया।

"नीलू! चलो भीतर जाओ।" उढ़काये किवाड़के सन्धसे नीलू बरामदेमें खड़ी दिखाई दी, तो डपटकर बोला वह। एक मनहूस यह लड़की मिली है, जब देखो, तब उधर ही ताकती रहती है। घरमें कुछ खाने-खेलनेको मिलता थोड़ा ही है इसे। पता नहीं, भाभी भी कैसी हैं जो····

सुनीलने अपना ध्यान अधूरे लिखे शिकायती पत्रपर केन्द्रित कर लिया और पूरे मनोयोगसे पत्र पूरा करना शुरू कर दिया।···· फ़ाइनेंस-मिनिस्टरको लिखे इस पत्रकी एक कॉपी वह चीफ़ मिनिस्टरके पास भेजेगा, दूसरी पे-कमीशनको, तीसरी ए०जी०को और चौथी ट्रेजरी-ऑफ़िसरको। हिलाकर रख देगा इन ट्रेजरीवालोंको वह····

सोचकर उसे कुछ खुशी हुई और उसका अभ्यस्त हाथ, फ़ौरन टेबिलपर चला गया। सिगरेटका पैकेट वह टेबिलपर ही रखता था अकसर····"ओ साँरी!" जैसे किसी औरके साथ कोई ग़लती कर बैठा हो, उसने हाथ खींच लिया।

भीतर नीलू बुरी तरह मचल रही थी··· टॉफ़ीके लिए मचल रही होगी।

उसे नीलूका मचलना खास 'फ़ील' नहीं हुआ। वह उस वक़्त सोच रहा था कि कल सुबह ही वह इस पत्रकी सारी कापियाँ अलग-अलग पोस्ट कर देगा, सबकी सब रजिस्टर्ड ए० डी० से। और परसों सुबह चीफ़ मिनिस्टरके फ़ाइनेंस-मिनिस्टरको, फ़ाइनेंस-मिनिस्टरको पे-कमीशनको, ए० जी० को, कलेक्टरको और उन सबसे टी० ओ० को फ़ोनपर फ़ोन खड़क रहे होंगे और टी० ओ० के यहाँ तहलका मच गया होगा कि इस बार वह किस हस्तीसे टकरा गये!···और उसका सैलरी बिल (जो उसने आज ठीकर वापस भेज दिया है), मंज़ूर होकर दोपहर तक हाथोंहाथ उसके पास आ पहुँचा होगा—साले अपने ऑफ़िसवाले भी चकरा जायेंगे··· हाथोंहाथ! इस वक़्त तो सिगरेट ज़रूर होनी चाहिए थी एक, सस्तीवाली ही सही।

'····कुल्फ़ी, आएसक्रेम!···ठण्डा, मीठा, त्रावटवाला! दस पैसा, बीस पैसा, तीस पैसा! कुल्फ़ी, आएसक्रेएएम!···"

कल सुबह उसे सबसे पहले यही काम करना है, चारों-पाँचों जगहोंको रजिस्टर्ड ए० डी० तान देने···रजिस्टर्ड ए० डी०?···?

लगा, उसके चारों ओर कुछ जकड़ सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और वह जकड़न झुर्रीदार है····और वे झुर्रियाँ सड़कमें-से अविराम चिल्लाये जा रहे आइसक्रीमवालेकी आवाज़ की हैं—ठण्डा, मीठा, ज़ायकेदार ! दस पैसा, बीस पैसा, तीस पैसा····दस झुर्रियाँ, बीस झुर्रियाँ, तीस झुर्रियाँ····

सिगरेट होनी ही चाहिए थी इस वक़्त । आधा टुकड़ा ही सही····

शायद भाभीने नीलूको चाँटा मार दिया है। नीलू चीखकर रो उठी है····जकड़न । हाँ झुर्रियाँ अब एकदम सख़्त हो गयी हैं ।

माँ नीलूको चीनी देकर चुप करा रही है ।

नीलू चुप हो गयी है, सिसक-सिसककर ।

"···· बीस पैसा, तीस पैसा····कुल्फी आइस····क्रेएएम !····"

"ए कुल्फीवाले ! इधर आओ !"

उठकर सुनीलने खिड़की भड़ाकसे बन्द कर दी। साले आवाज़ देंगे, तो वह भी दस कोस तक सुन पड़ेगा····कमीने !

'कितना-कितना खाती-खेलती थी छोकरी ····अब खाक-पत्थर भी नहीं मिल रहा । हाय····!" माँ बग़लके कमरेमें बड़बड़ाती हुई आयी है और बड़बड़ाती हुई चली गयी हैं ।

झटककर सुनीलने हैंगरमें-से पैण्ट निकाली । कपड़े पहन लिये । और बाहर निकल आया ।

नीलू बरामदेकी सीढ़ियोंपर बैठी हथेली में रखी चीनी चाट रही थी, सामने लाल रंगकी कोठीके फाटकको ओर देखती हुई । वहाँ कुल्फ़ीवाला कुल्फ़ी-आईसक्रीम निकाल-निकालकर बच्चोंको थमा रहा था । सुनील उसे अनदेखाकर चट-चट-चट सीढ़ियाँ उतर गया । इसे लगा कि नीलू एकाएक खड़ी होनेको हुई, फिर बैठी रह गयी । चीनी चाटना भूल कुल्फ़ीवालेकी ओर देखना भूल अंकलको फाटक खोलते, फाटक बन्द करते और सड़क पार करते देखती रह गयी !

■

रात लौटा । माँ-भाभी लोग सो चुके थे तब तक । चलो यह अच्छा रहा । पंजोंके बल बरामदा चढ़ा । सिटकिनी खोलनेमें पूरा एक मिनिट लगाया और बिना बत्ती जलाये कपड़े बदलकर चुपचाप लेट गया । मगर भूख ज़ोरों-से महसूस हो रही थी । और इधर माँ-भाभी लोगोंके कमरेमें बत्ती भी जल गयी थी । दरवाज़ेके टूटे हुए काँचसे दिखाई दिया । खाना माँगनेको उठना चाह रहा था, कि उधर माँ खाँसी ।

"अरे नीलूको बुख़ार है ।····देख तो, बुख़ार ही है ?"

"हाँ ! इसे आज दिनमें भी था हलका-हलका बुख़ार ।"

नीलू जग गयी थी । उसके रोनेमें भारी-पन था । पानी पीकर वह चुप पड़ गयी । और खामोशी····

सुनील चुप सो रहा । अब उसे खाना नहीं माँगना । वैसे वह बाथरूममें जाकर पानी पी सकता है, नल चल रहा होगा । मगर नल गिरनेकी आवाज़ होगी । और माँ-भाभीको उसके आ पहुँचनेका पता चल जायेगा !····वह सिगरेट भी नहीं पी सकता । बीचके दरवाज़ेका काँच टूटा हुआ है ।

सब-कुछ भूलकर वह अब सोनेकी जुगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगा, मगर वह 'सब-कुछ' भीड़ लगाये याद आता रहा। रात गहराती चली गयी और बग़लके कमरेमें नीलूकी कराह उभरती चली गयी····जैसे इस पूरे अन्धकार-डूबे मकानकी कमज़ोर कराह होगी वह।

करवट बदलकर मन-ही-मन सुनीलने उस दो अंगुल चौड़ी नोट-बुकमें कविता-सी बनायी हुई लिस्टके नीचे एक चरण और जोड़ दिया—'ग्लास-पेन एक (बीचके दरवाज़े के लिए)'।

सुबह आँख तब खुली, जब भाभी छोटी टेबल लगाकर उसपर कुल्ला करनेको पानी और चायकी प्याली रख गयी, आवाज़ देते हुए। हड़बड़ाकर उठा सुनील। नहीं, सिगरेट का पैकेट नहीं दीख रहा था!

वह अपने इस डरपोकपनपर ख़ुद ही झुँझला उठा। उसने तकियेके नीचेसे पैकेट निकाला, सिगरेट सुलगाकर पैकेट टेबलपर रख दिया, जान-बूझकर और आरामसे चायके साथ सिगरेट पीता रहा।

सारी सुबह वह शिकायती पत्रकी प्रतियाँ तैयार करता रहा, छापेके जैसे अक्षरोंमें, यह जानते हुए कि पाँच-पाँच रजिस्ट्रियाँ करना तो क्या, वह पन्द्रह पैसेका एक लिफ़ाफ़ा भी नहीं ख़रीद सकता आज।····और सारी सुबह उसे कचोटता रहा। उसे माँ-भाभीसे पूछना तो चाहिए था कि नीलू क्यों नहीं दीख रही आज! माँ क्या सोच रही होंगी, भाभी क्या सोच रही होंगी, (उनके बुझे-बुझे चेहरों और मरियल-मरियल बातोंसे साफ़ मालूम होता है) कि सुनीलके मनमें नीलूके लिए मोह रहा नहीं अब····। सुनीलको यह क़बूल है यह, डंकेकी चोट····वह और क्या कहे फिर? उसके पास कोई तर्क नहीं। उसे क़बूल है कि उसके मनमें सचमुच ममता नहीं रह गयी, नीलूके लिए भी नहीं, माँके लिए भी नही, भाभीके लिए भी नहीं। सुनील निर्मोही हो गया है, एकदम। एक यही तर्क उसके पास है अब।····हाँ, यदि कोई देखना चाहे, देखकर समझना चाहे, तो एक तो आँखें हैं उसके पास, लाल-लाल अंगार-सी फूल रही आँखें, चरचरेपनमें खिंची जा रही आँखें। और एक बदन है उसके पास, अकड़ाहटमें बसा हुआ।—बस इतना ही। ····बेकारकी बात। और प्रतियाँ तैयार करते हुए सारी सुबह वह अपनेको जस्टीफ़ाई कर सहज बनानेकी चेष्टा भी करता रहा कि जब उसे मालूम है, नीलूको बुखार है, तो फिर पूछनेसे क्या फ़ायदा····। ही डजण्ट रियली अपॉन सच नॉनसेन्स फ़ॉर्मेलिटीज़।

यद्यपि आज मकर-संक्रान्तिकी छुट्टी थी, पर नौ बजते-बजते सुनील जानेको तैयार हो गया। आज भी उसने शेव किया था, जूतोंपर पॉलिश की थी, टेरीऊलकी सूट और टाई पहनी थी।

"सुनील! जा रहे? इतनी जल्दी?"

"हाँ, आज ज़रा जल्दी जाना है, साहबने बुलाया है।"

"तो खाना?"

"अब खानेका देख लूँगा आज वहीं।" सुनील बरामदेकी सीढ़ियाँ उतरने लगा।

"अरे, सुनील!" माँ नीलूको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोड़ाकर कन्धेसे लगाये बाहर आ गयी।

"बेटे, तू जाने लगा दफ़्तरको? मैं कह रही थी आज ज़रा छुट्टी ले लेता। इस छोकरीको तो ज्वर है कल रातसे····मैंसिया ज्वर है। पता नहीं, रात कब आया तू हमें तो रात काटनी मुश्किल हो गयी इसका ज्वर देखकर····कैसी तपी भट्टी बनी हुई है, देख तो···" माँने शालसे नीलूका हाथ बाहर निकाल दिया, "कह रही थी, तू आज छुट्टी ले लेता····"

सुनीलने जाने कितना बड़ा दम बाँध नीलूकी नब्ज़ देखी और ज़रा-सा छूकर छोड़ दी, ····"हाँ बुखार तो इसे काफ़ी है।····आजकल सारे घरोंमें बच्चोंके ये ही हाल हो रहे हैं···· जाने कैसा मौसम है।····मियादी है, दो-एक दिनमें छूट जायेगा। घबरानेकी कोई बात नहीं है।" वह कुछ ऐसे प्रभावरहित ढंगसे बोल रहा था, जैसे कोई बाहरका आदमी हो, "ऐसे गोदमें लेकर फिराओ मत, लिटाये रखो। पानी पिलाते रहना। छुट्टी ले लेता मगर आज सेक्रेटरीने बुला रखा है सबको।"

और माँ-भाभीके खाना खाकर जानेका आग्रह करने पर भी, देर हो जानेकी बात कहकर सुनील चला गया।

दिन भर चटर्जीके यहाँ कोटपीस चलते रहे। खाना भी वहीं खाया, दो-एक घण्टे सो भी लिया वहीं।

रातमें लौटा, तो उसके हाथमें जूते-मोज़ों का एक डिब्बा था। मगर उसमें जो जूते-मोज़े थे, वे नीलूके लिए नहीं उसके खुदके लिए थे।····

[शेष पृष्ठ ५७ का शेषांश : वे—'विष्णु प्रभाकर']

महीने पहलेकी बात है। एक दिन मैं बसमें जा रही थी····"

सहज भावसे वह कहानीका आरम्भ करती है पर अन्त कुछका कुछ हो जाता है। अपनी बात वह महेन्द्रसे क्यों कहे? क्यों उसके सामने वह अपनेको निरावरण करे? न-न, वह कुछ न कहेगी।·····

मुसकराकर इतना ही कहती है, "डरती हूँ, मुकुल मुझे ले न भागे।"

फिर दृष्टि चुराकर महेन्द्रको देखती है। शरारतसे मुसकराती है। पूछती है, "तुम्हें इस कहानीपर विश्वास होता है?"

महेन्द्र प्रतिप्रश्न करता है, "तुम्हें है?"

"मैं तुम्हारी बात पूछती हूँ?"

"वह व्यर्थ है। इस क्षण हम दोनों एक दूसरेके पास हैं। इतना ही मेरे लिए यथेष्ट है। नहीं है?"

जितनी देरमें महेन्द्रने ये शब्द कहे उतनी देरमें मन्दाके अनन्त प्रकाश-वर्ष बीत गये। उसका रोम-रोम अपरिसीम अनुभूतियोंसे पवित्र हो गया। उसने पागलकी भाँति महेन्द्रको अपनी भुजाओंमें बाँध लिया। इस तरह चूमने लगी मानो वह व्यक्ति न हो, कोई भावना हो। और उस भावनाको वह अपने रोम-रोममें समा लेना चाहती हो। वह क्षण, उस क्षणका कोई आकार नहीं है, रूप नहीं है। वह बस एक अनुभूति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

●····फिर सारी छत जैसे आईना हो गयी है। यह छतकी ओर देखती है तो इसके अपने चेहरे इस पर झुक आते हैं। उन चेहरोंको देखते समय यह बड़ी तटस्थ हो जाती है और महसूस करती है कि छतपर टँगे उन हज़ार-हज़ार चेहरोंकी आँखें भोगी हुई हैं, उन आँखोंमें एक अजीब-सी करुणा है जो इसकी आँखोंमें नहीं है। इसकी आँखोंमें कभी वह करुणा नहीं आती क्योंकि यह अपनेको ख़ुदमें होकर नहीं देख पाती···। जब यह बीमार होती है और अकेली होती है तो यह ख़ुद अपने सिरहाने बैठकर अपने बीमार शरीरको देखती है, उस कराहको महसूस करती है जिसे और कोई महसूस नहीं करता····

इसकी आँखोंमें कभी कोई तीसरा भाव नहीं आता। जब यह उसके साथ होती है तो इसकी आँखें इस बेतरह चमकती हैं कि वह अपनी उँगलियोंसे इसकी पलकें बन्द कर देता है और जब यह बीमार होती है तो वह चमक कहीं गहरेमें डूब जाती है और आँखें पथरा जाती हैं, इतनी खोखली हो जाती हैं कि उनमें कहीं कोई चेहरा दिखाई नहीं देता····। तब इसे लगता है कि इसकी आँखोंमें [illegible] जानेके एहसासवाला खोखलापन घर कर [illegible] जा रहा है।····

छतकी ओरसे नज़रें हटानेमें इसे कोशिश करनी पड़ती है। आँखें खिड़कीपर स्थिर हो जाती हैं।····ऐसे समय इसकी आँखें ऐसी हो जाती हैं कि आँखोंके आगे कोई भी दृश्य हो, वह धीरे-धीरे धुँधली होती है और फिर वहाँ कुछ नहीं रह जाता है, तब इसकी विक्षिप्त सोचना उस जगहपर लिखने लगती है और यह एकाएक बड़ी असहाय हो उठती है।····सारा सोचना आँखोंमें डबडबा आता है कि यह लिख नहीं पायेगी। फिर यह अपनी बायीं हथेलीको, उँगलियोंको चूमने लगती है। ···बाहर केलेके पत्तोंकी परछाईं दीवारों पर कटे हुए हाथ बनाने लगती है। हर परछाईं इसे एक कटा हुआ हाथ लगती है। यह उन कटे हुए हाथोंको देखकर जड़ हो जाती है। जब इसकी चेतना लौटती है और यह परछाईं का अर्थ समझ पानेमें समर्थ हो पाती है तो इसे लगता है—यह बड़ी ज़ोरसे चीख पड़ेगी····और अगर नहीं चीखेगी तो

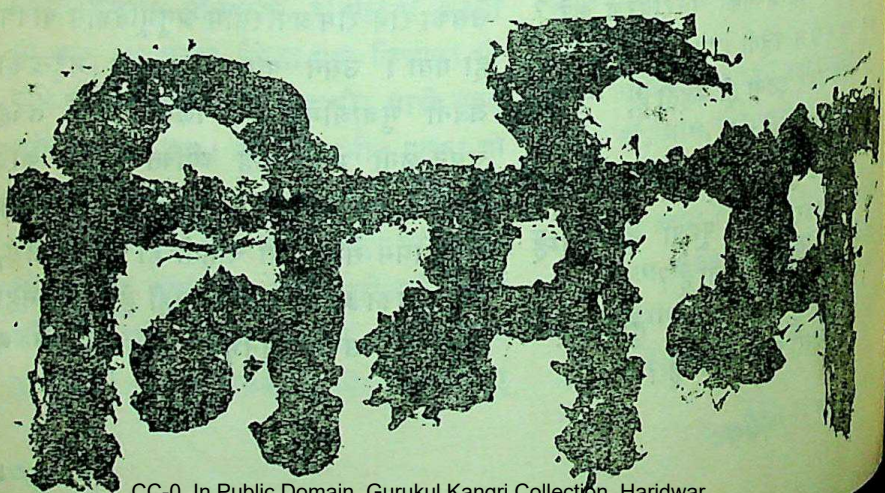

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

सुधा अरोड़ा

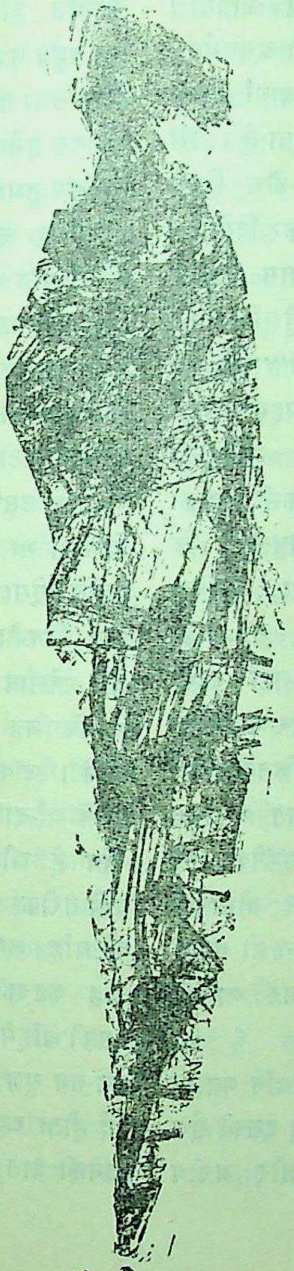

पागल हो जायेगी और बड़बड़ाने लगेगी····।

यह अपने दायें हाथकी ओर देखती है। इसे लगता है, वह हाथ अभी मरा पड़ा है। यह उस हाथके अन्दर-की हरकतको महसूस करना चाहती है तो पाती है कि वही फैलनेवाला दर्द कहीं दबा हुआ काँप रहा है जिसके ऊपर एक पतली-सी चादर पड़ी है, जिसके हटते ही वह दर्द फिर हर ओरसे रिसने लगेगा। यह अपने दायें हाथको, कुहनीको छूती है पर वह स्पर्श इसे महसूस नहीं होता क्योंकि वह पतली-सी चादर जिसने बाँह को सुन्न कर दिया है, अभी है। उसके हटते ही कोई हलका-सा स्पर्श भी यह सह नहीं पायेगी····और सब कुछ कराहोंमें और आँखोंको कोरोंसे बहकर बाहर आ जायेगा।····

बहुत पहले इसने कहीं दो पंक्तियाँ पढ़ी थीं। वे पंक्तियाँ इसके चारों ओर हर समय बहती रहती हैं : "कितना ठण्डा अँधेरा होता है उसके मनमें जिसे मरना है और मरनेके सिवाय और कुछ नहीं करना है।" ····और यह बाहर फैले अँधेरेको मनके अन्दर भी देखना चाहती है और इसे लगता है कि इसके मनमें कहीं कुछ नहीं है; एक खालीपन, एक खोखलापन है जिसमें एक साँस खिंचती-सी अन्दर आती है, बस। इसे लगता है—इसके अन्दर जो रिक्तता है वह मर जानेका एहसास है और उस रिक्ततामें जो एक रेंगता-सा, खिंचता-सा तार है—वह किसी भी क्षण टूट जा सकता है····और यह बड़ी खाली आँखोंसे नीचे दबी हथेली खोलकर उसपर मुसकराती छोटी लकीर देखती है। इसे लगता है—वह छोटी लकीर इसकी प्रतिद्वन्द्वी है और यह उस छोटी लकीरसे हार जायेगी···।

यह अँधेरेको गहराते देखती रहती है। यह उस अँधेरेमें सो भी नहीं पाती। इसे लगता है, वह बाँहका दर्द अभी उछलकर ऊपर आ जायेगा और धीरे-धीरे कमर तक पहुँच जायेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब इसकी उनींदी आँखोंसे नींद बेतरह उखड़ जायेगी और फिर सारी-सारी रात इसी एक करवट सोते, दर्दको, अकेले कमरेको और अपने अन्दरके खालीपनमें खिंचती साँसको महसूस करते कट जायेगी। यह अपनी करवट न बदल पानेकी असमर्थता-पर भीग जाती है।....शरीरका बायाँ हिस्सा जैसे दायीं ओरके बोझसे टूटने लगता है। इसे साफ़-साफ़ लगता है कि बीचो-बीच किसी एक लकीरने शरीरके दो हिस्से कर दिये हैं। दो हिस्सोंमें दो अलग-अलग अहसास होते हैं और यह शिद्दतसे चाहने लगती है कि इसके दायें हिस्सेको फ़ालिज मार जाये....तब इसे बाँहका तीखा-फैलता दर्द तो महसूस नहीं होगा, वहाँ हमेशा सुन्न हो जानेवाली पतली चादर बिछी रहेगी और किसी स्पर्शका एहसास तो नहीं होगा। यह सोचती है कि इसे टी० बी० होती, कैंसर होता, अपेण्डि-साइटिस होता, पैरालिसेज़ होता, तो अच्छा रहता....तब ऐसी बीमारी तो नहीं रहती जिसका कोई नाम नहीं। इस बग़ैर नामवाली बीमारीने इसके मरनेके कितने-कितने कारण पैदा कर दिये हैं। बीमारीके वक़्त यह कुछ भी सोचती है तो वह इसके मरनेका एक कारण बन जाता है। उसकी इस बीमारीसे घरके लोग भी अब इतने परेशान हो गये हैं कि उनकी आँखोंमें हमेशा इसके मर जानेकी प्रतीक्षा चलती रहती है।...

इसे याद आता है कि इसकी माँने बताया था कि जब यह पैदा हुई थी तभी इसकी एक बाँह दूसरी बाँहसे थोड़ी मोटी और अजीब शक़्लकी थी। तब इसकी बाँह हमेशा ढीली पड़ी रहती थी। धीरे-धीरे बाँहमें हरकत होने लगी और वह ठीक हो गयी।....अचानक एक दिन इसकी बाँहमें बहुत दर्द हुआ और कुहनीसे बाँह सूजकर पारदर्शी हो गयी। यह तब बहुत घबरायी थी। बाँह इतनी सूज गयी थी कि उसका दर्द कमर तक होता था और दिमाग़ की नस हमेशा खिंची रहती। जब इन्जेक्शनसे दर्द कम हुआ तो इसने छूकर देखा—वह सूजी हुई जगह बड़ी नरम और गुदगुदी हो गयी थी। बाँह पारदर्शी लगने लगी थी जैसे कोई ख़ूब बड़ा फफोला उभर आया हो। जब भी बाँह उस तरह सूज जाती इसके छोटे भाई कहते—"दीदी, हमें बाँह दिखाओ, हम देखें कितनी मोटी हो गयी है।" और यह बिखर जाती। उसके माँ-बापने पहले कई डॉक्टरोंको दिखाया भी था पर कुछ नहीं हुआ। हर महीने ऐसा ही होता और यह तीन-चार दिन दिन-रात रोती-कराहती रहती। एक बार परेशान होकर इसने डॉक्टरसे कह दिया था कि वह चाहती है यह बाँह ही कटवा दी जाये। डॉक्टरने इसकी पीठ थपथपायी और इसके माँ-बापसे कहा था कि यह लड़की बड़ी 'ब्रेव' है और बाँह ठीक करनेका केवल एक यही तरीक़ा हो सकता है कि या तो प्लास्टिक-की बाँह लगवा दी जाये या कुहनीसे ऊपर बाँह कटवा दी जाये क्योंकि बचपनसे ही इसकी बाँहमें एक ग़लत हड्डी हो गयी है जो जब-तब सूज जाती है और चार दिन बेतरह दर्द होता रहता है, लेकिन माँ-बाप बाँह क-वानेकी बात बर्दाश्त नहीं कर पाये थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें पहली इस चिन्ताने घेरा था कि बाँह कट जानेपर इसकी शादी कैसे होगी ? ····उसके बाद जब भी इसे दर्द होता, माँ रात इसके पास सोती और दिन-भर इसे सान्त्वना देती रहती कि तीन-चार दिनकी ही तो बात है, 'स्पैसमिण्डन' खा-खाकर काट लो, फिर एक महीने दर्दसे मुक्ति। पर यह, जो उन क्षणों-को ही नहीं सह पाती थी, आनेवाले दिनोंकी बात ही कैसे सोचती ? धीरे-धीरे यह रोज़की बीमारी हो गयी और माँ-बाप बड़ी तटस्थतासे इसकी ओर देखते और उपेक्षा कर जाते। वे खुद भी सोच लेते कि चार दिन कराहना तो इसकी नियति है, इसके लिए वे क्या कर सकते हैं ? और यह भी उनकी तटस्थताको स्वीकार कर लेती। तब यह खुद अपने सिर-हाने बैठकर खुदको सान्त्वना देती, अपने साथ रात-भर जागती और अपनी कराहको करुणा-भरी आँखोंसे देखती रहती और इसे लगता जैसे कोई दूसरा इसके सिरहाने बैठा है, इसे सहला रहा है, इसे करुणा-भरी आँखोंसे देख रहा है।····इस तरह इसकी न-बीतनेवाली रातें कट जातीं। कई बार यह बड़ी निराश हो जाती और 'स्पैसमिण्डन'की बारह गोलियों-वाले पैकेटको अजीब निगाहोंसे देखने लगती। हर एक गोलीके बाद एक घण्टेका आराम और फिर कहीं आँखोंसे रिस-रिसकर बहता दर्द····इसने निर्णय कर लिया कि यह बारह गोलियाँ एक साथ खा जायेगी और बारह घण्टोंका आराम एक साथ हासिल कर लेगी पर जब यह खाने बैठी तो इससे पाँचवीं गोली ही नहीं खायी गयी····और यह अपनी अस-मर्थतापर रोने लगी।····यह इतनी बातें सोचती कि इसके दिमाग़की नसें फटने लगतीं, यह सोचती कि वह अगर लिख पाती तो लिखकर हलकी हो लेती और यह न-लिख पानेवाले दायें हाथको बड़ी निरीहतासे देखने लगती।····

यह कमरेकी ओर देखती है तो इसे एका-एक खयाल आता है कि वह निपट अकेली है। इसे याद आता है कि रात इसका छोटा भाई इसके पासवाले पलंगसे तकिया लेकर दादीजीके कमरेमें जाने लगा था तो इसने उसे रोक लिया था, कहा था कि वह इस कमरेमें ही सो जाये, तो भाईने कहा था—"नहीं, दीदी, हमें तुम्हारे पास नींद नहीं आती। कल रात सोये थे—सारी रात तुम्हारी आह-ऊह सुनते रहे। ऐसे नींद नहीं आती।" सुनकर यह एकदम चुप हो गयी थी और इसे लगा था कि वह ठीक ही तो कहता है—कोई अपनी नींद इसके कारण क्यों खराब करे ? इसका दर्द कोई शेयर भी क्यों करे ? वह अकेली ही अच्छी है····और इसने अपने मनको समझाया था कि वह अकेली सोयेगी तो कमसे कम कराहनेपर तो प्रति-बन्ध नहीं रहेगा।····पर अब इसे अकेला कमरा जैसे खा रहा था। गरमीके कारण माँ-बाप भी छतपर जाकर सो गये थे। इसे लगा था कि इसके माँ-बाप अब इसकी बीमारीके प्रति, इसके प्रति बड़े निर्मम हो गये हैं, नहीं तो एक बीमार लड़की, जिसके पास 'स्पैसमिण्डन'की मर-जाने लायक़ पर्याप्त गोलियाँ हों, उसके सिरहाने टेबलपर एक गिलास पानी ढककर रख जानेका और क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतलब हो सकता है ? क्या वे यह नहीं सोच सकते कि अपने ऐसे दर्दसे घबराकर यह उन गोलियों और पानीका उपयोग कर सकती है ? या वे यही चाहते हैं ? क्या यह सब जान-बूझकर चाहते हुए किया गया है ? अकेले कमरेमें इसे ख़ुदसे डर लगने लगता है कि कहीं वह ख़ुद भी अपने जीनेके प्रति इतनी निर्मम न हो उठे कि····। यह इस सोचनेको खत्म करनेके लिए दीवारोंकी ओर देखने लगती है····फिर वही परछाईं—एक कटा हुआ हाथ, उँगलियाँ, कुहनी। यह अपनी बायीं हथेली देखने लगती है—इसकी आयु-रेखा बहुत छोटी है। एक बार एक ज्योतिषी-ने बड़े धीमेसे कहा था कि यह लड़की बीस-इक्कीसकी उम्रमें मर जायेगी, तबसे इसे अपनी हथेलीकी छोटी लकीरसे डर लगने लगा है। यह जितनी बार उस छोटी लकीरको देखती है इसे डर लगता है। वह लम्बी होनेके बजाय और-और छोटी होती जा रही है और यह अपने मर जानेके बादकी बातें सोचती रहती है कि किस व्यक्तिपर कैसी प्रतिक्रिया होगी। मरनेकी बातसे इसे सबसे अधिक डर इस बातसे लगता है कि इसके नामके आगे स्वर्गीय जुड़ने लगेगा और तब यह इस दुनियासे दूर-की कोई चीज़ हो जायेगी, तब उसके बारेमें जो कहा जायेगा वह 'थी' में कहा जायेगा ····यह 'स्वर्गीय' और 'थी'वाली बातसे बहुत घबराती है। यह सचमुच मरना नहीं चाहती। इसके जीनेके बहुत सारे आकर्षण हैं पर उन क्षणोंमें, जब इसे ऐसा तीखा दर्द होता है, इसके सामने कोई चेहरा नहीं आता, मरनेके सिवाय यह और कुछ नहीं सोच पाती और मरकर ऐसे दर्दसे मुक्ति पानेके ख़यालमें जीनेके सारे आकर्षण डूब जाते हैं। जिन बीस-पच्चीस दिनों यह ठीक रहती है तो भी कई बार यह केवल इस बातको सोचकर उदास होती रहती है कि यह पहले बीमार थी और आगे भी बीमार ही रहेगी और यह ख़याल इसे ख़ुश भी नहीं रहने देता। जब यह दूसरी बार फिर ऐसी सूजी हुई बाँहको देखती है तो यह सोचती है कि यह भूल भी कैसे पाती है कि इसे यह बीमारी है और ख़ुश भी कैसे रह पाती है। इसके सारे कार्यक्रम तबीयतके आस-पास घूमते हैं। यह छुट्टियोंमें कहीं जा भी नहीं पाती, इसी एक पलंगपर पड़े दीवार-पर बनी परछाइयाँ देखती है और सोचती है कि नैनीताल, दार्जिलिंग, शिमला, मसूरी, श्रीनगर, पुरी-जैसे शहर होते हैं जहाँ खिड़की-से कुहरा कमरेमें भर आता है, जहाँ बर्फ़की चादरें दिखाई पड़ती हैं, जहाँ झील और झरने-का पानी छिटककर बिखर जाता है, या जहाँ समुद्रकी लहरें नियॉन लाइट्सकी तरह लगती हैं, या जहाँ इतनी सर्दी होती है कि····, इसने केवल केलेके पत्तोंकी परछाइयाँ देखी हैं, रात-रातभर ख़ुद अपना कराहना सुना है, आँसुओंमें डूबे अपने ही कितने-कितने चेहरे देखे हैं····· ····पर इन सबके बावजूद जब यह ठीक होती है और उसका चेहरा इसके सामने आता है तो इसका बड़ी लम्बी उम्र जीनेको मन होने लगता है। वह कई बार इसे कहा करता है कि तुम अगर आत्महत्या करो तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखकर मरना कि इसकी ज़िम्मेदार केवल तुम हो। उसके सामने यह बड़ी ज़ोरसे हँस पड़ती है पर बादमें यह सोचकर उदास हो जाती है कि क्या उसने इसकी मृत्युको सत्य मान लिया है और यह अपने हाथकी ओर देखती है कि यह कैसे लिख पायेगी अपने असमर्थ हाथसे। यह इस वाक्यको पहले ही लिख देना चाहती है पर तब यह अपने मरनेके खयालसे काँप जाती है और इसे लगता है कि यह लिखेगी तो यही लिखेगी कि आत्महत्या मेरी मजबूरी है और मैं भी इसके लिए ज़िम्मेदार नहीं हूँ।....यह अपनी राइटिंगको घण्टों देखती रहती है।.... जब पहली बार इसकी बाँह ऐसी हो गयी थी तो इसकी दादी जी रोते-रोते बोली थीं कि हाय, मेरी बेटीके मोतियों-जैसे अक्षरोंको नज़र लग गयी, अब यह लिखेगी कैसे? यह हर बीमारीके दौरान सोचती है कि अगली बार यह बायें हाथसे लिखना सीख लेगी, तब दायाँ हाथ कटवा देनेपर भी लिखनेमें दिक़्क़त नहीं पड़ेगी पर यह बायें हाथसे नहीं लिख पाती, इसके सामने बायीं हथेलीकी छोटी लकीर आ जाती है और भविष्य प्रश्नचिह्न बन जाता है। तब इसे लगता है कि यह व्यर्थ ही बायें हाथको इस क़ाबिल बनानेमें समय बेकार करेगी और तबतक यह रहेगी भी नहीं। इसे अपने 'न होने' पर गहरा विश्वास है और यह हर बार ख़ुदको आईनेमें ऐसे देखती है जैसे किसी ऐसे व्यक्तिको देख रही हो जिसे कुछ दिनों या घण्टों बाद फाँसीकी सज़ा मिलनी हो ...और यह जानती है कि इसी कारण इसकी आँखोंमें हमेशा मर जानेका अहसास बना रहता है और आँखें बेहद ख़ाली और खोखली लगने लगती हैं।....लेकिन वे ख़ाली और खोखली आँखोंकी पुतलियाँ ही हिलती रहती हैं और आईनेमें देखते समय इसे लगता है कि इसका चेहरा पत्थरका हो गया है। यह अपने उठने, बैठने, चलने, लेटनेको भी अजीब निगाहोंसे देखती है जैसे यह सब कुछ देरका ही हो और इनकी परिणति मृत्युमें ही है। यह मरनेके बारे-में इतना अधिक सोचती है कि इसे लगता है, यह ख़ुद इस दुनियासे दूरकी चीज़ है, पर कई बार यह यहाँकी रंगीनियोंमें बहकर यह भी सोचने लगती है कि यह मरकर पता नहीं क्या हो जायेगी और तब इसे मरनेसे डर लगने लगता है। इसके सामने अपना एक ही चेहरा आता है—जो पत्थर हो गया है, एक निर्जीव शरीर जो मातमी चेहरोंके बीच पड़ा है। यह चाहती है कि यह ख़ुद देखे कि कैसे इसका शरीर निर्जीव हो जाता है—उसपर फूल, मालाएँ चढ़ायी जाती हैं, उस शरीरको बड़ी निर्ममतासे जला दिया जाता है और फिर राख-भर रह जाती है। यह सब सोचकर यह काँप जाती है और यह सोचती है कि इसे मरनेके बाद सब लोगोंके बीचमें न रखा जाये, केवल इसकी एक मात्र सहेली, और वह आकर इसकी पलकों, ओंठोंको एक बार छू ले, बस! इसे याद आता है कि आज सुबह जब 'बेलेडोना' खानेके बाद यह निष्क्रिय, स्थिर-सी पलंगपर बायीं करवट लेटी थी और लगातार सोचना इसकी आँखोंसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना किसी हरकतके बह-बहकर निकली जा रहा था, तो इसकी बहन, जिसे 'स्केच' बनाने-का शौक़ है, इसके पास आ बैठी थी, ड्राइंग-बुक और पेन्सिल लेकर—"तुम तो हमेशा हिलती-डुलती रहती हो, पहली बार तुम्हें इतना स्थिर लेटे देखा है, इसी तरह लेटी रहो, तुम्हारी तसवीर बनायें।"....और यह अतिरिक्त जड़ हो गयी थी, उधर बहनने आउट-लाइन्स खींचनी शुरू की थी और इसका मन तूफ़ानमें घिर गया था। यह बोलना चाहती थी कि जब यह मर जाये, तब चित्र बनाना, तब तो यह और स्थिर रहेगी न, कोई हरकत नहीं होगी इसके शरीरमें....पर इसके ओंठ काँप गये थे और तेज़ साँसोंसे काँपकर यह इतना ही बोल पायी थी—"चली जाओ यहाँ-से...." इसकी बहनने वैसी ही तीखी निगाहोंसे इसे देखा था और उठ गयी थी झटकेसे।... तब इसके कानोंमें उसके कहे वाक्य पड़े थे—"बीमारीमें भी चिड़चिड़ापन जाता नहीं है इसका।"....और यह अपने-आपमें बड़ी निरीह हो गयी थी। उसी निरीहतामें इसके आँसू बेतरह बहते जा रहे थे और इसे लगने लगा था कि इसका रोना अब बेहद साधारण बात है, रोते समय अब इसका चेहरा नहीं बनता, ओंठ नहीं काँपते, नाक लाल नहीं होती—बस, जो कुछ आँखोंमें होता है वह निरीहता ही या दर्द, इस तरह बहने लगता है कि इसे कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती।.... ऐसेमें ही एक बार उसकी सहेली आयी थी और माथेपर हथेली रख इसका चेहरा अपनी ओर कर लिया था, फिर उसने इसकी आँखों-को बड़ी तृप्तिसे चूमा था और बोली थी—"रोनेसे, बेहद रोनेके कारण तुम्हारी आँखें बड़ी सुन्दर लगने लगती हैं—भूरी, मोटी-मोटी...." और यह मोटी और भूरी आँखोंके कारण उदास हो गयी थी, फिर इसने उसके उस दिन बात भी नहीं की थी, इसी तरह शिथिल पड़ी रही थी।....शाम होते-होते इसकी दादीजीने जब इसकी सूजी हुई आँखें देखी थीं तो वे इसकी बहनको रोककर बोली थीं—"अच्छी बहन हो तुम! बहन रो-रो-कर पागल हो रही है, ज़रा उसका हाल तो पूछ!" और बहनने बड़ी निर्मम हँसी हँसकर उत्तर दिया था—"हुँह, जिसके प्रति मनमें कभी सहानुभूति नहीं रही, उससे बीमारीमें ही क्या हाल पूछेंगे।".....और वह बड़ी उपेक्षासे इसकी ओर देखकर चली गयी थी। यह तब सोचने लगी थी कि एक यह भी चेहरा है जिसे इसके मर जानेसे बेहद ख़ुशी होगी और जो एक बूँद आँसू भी नहीं बहायेगी। इस वक़्त भी वह कितनी उपेक्षापर कितनी दृढ़तासे यह वाक्य कहकर गयी है। वह जानती है कि इसकी बहन की दृढ़ता ही उसका गुण है और वह कई बार झूठ भी इतनी दृढ़तासे बोलती है कि इसका सच भी गूँगा हो जाता है और यह चुप रह जाती है। और यह सोचकर इसके आँसू भी एक बार थम गये थे।....

एक तेज लकीर कुहनीपर होकर जाती है तो यह घड़ीकी ओर देखने लगती है। घड़ीकी रेडियमकी सुई तेज़ीसे चमक रही है पर इसे नहीं दिखाई देता कि क्या समय हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह दायें हाथको ज़रा-सा हिलाती है तो काँप जाती है, इसे पसीना आ जाता है। दो दिनसे यह हाथ इसी कोणपर पड़ा है और यह सोचती है कि चौबीस घण्टे और यह हाथ ऐसे ही रहेगा। हाथ हिलानेकी ज़रा-सी कोशिश करते ही वह चीज़ जैसे टुकड़ोंमें टूटने लगती है, वह चीज़ जो अटक गयी है.... एक साल पहले जब पहली बार इसने उसे फ़ोनपर बताया था....उसने पूछा था—"बाँह-में दर्द? कैसे होता है यह? कैसा लगता है....?" ....और उसकी आवाज़का उत्साह देख, जिज्ञासा देख, इसकी आवाज़ बिखर गयी थी—"लगता है, जैसे कुहनीमें पत्थर-सा कुछ अटक गया है...." और यह नहीं चाहती थी कि फ़ोनपर ही रो पड़े। रुलाई रोकनेकी भर-सक कोशिशमें इसे लगा था जैसे रोना रोकनेमें कोई चीज़ उसी पत्थरकी तरह ठोस होकर गलेमें अटक गयी है। यह देर तक बोल नहीं पायी थी, आवाज़ जैसे जम गयी थी, तभी उसकी आवाज आयी थी—"बस इतनेसे-में रोने लगीं!" यह तब भी नहीं बोल पायी थी। देर बाद संयत होकर जब यह ठीक आवाज़में बोली तो वह हँस पड़ा था— "मैंने तो समझा, तुम रोने लगी...." उसे लगा था कि यह इतनी देर चुप रहकर और न बोलकर यह दिखाना-भर चाहती थी कि वह रो रही है।....इसने जब यह बात सोची कि उसे ऐसा लगा था तो इसे लग आया था कि निकटतम मित्रोंकी भी ऐसी ग़लतफ़हमियों और उसके बारेमें ग़लत सोचनेके कारण यह पागल हो जायेगी।....यह चाहती है कि कोई तो ऐसा हो जो इसे, इसकी बीमारीमें इसके जानलेवा दर्दको, इसके सोचनेको बेहद ठीक-ठीक समझे और इसका ठीक-ठीक मूल्यांकन करे।....

एक बार इसने आत्महत्याकी कोशिश की थी और जब यह बच गयी थी तो इसे अपने-होनेपर कई-कई दिनों तक विश्वास नहीं हुआ था। जब उसे इसके बारेमें पता चला था तो वह बेहद उदास हो गया था, उसे लगा था कि इसने उसे अपनेसे बहुत दूर कर दिया है। उसने इसे कहा था कि इस तरहकी कोशिश करनेमें क्या इसे उसका हलका-सा भी ख़याल नहीं आया क्योंकि अगर उसके इतने-इतने प्यारका इसे ख़याल-भर आ जाता तो यह कभी वैसा नहीं करती....वह इससे नाराज़ हो गया था क्योंकि यह अपनी सफ़ाईमें कुछ नहीं बोली थी....और यह सोचती है कि यह कैसे कहती कि उस समय वह वातावरण, वे घर-परिवारके लोग, वह भयानक दर्द—सब इतने निर्मम हो गये कि इसे किसीका भी ख़याल नहीं आया, यह कैसे कहती कि उसके 'इतने-इतने' प्यारका ख़याल आ भी जाता, तो भी यही वह करती क्योंकि वह दर्दवाला क्षण इससे ज़रा-ज़रा-सा भी नहीं खिच पा रहा था और यह उन आँसुओंको, उस दर्दको, घरके लोगोंकी आँखोंमें चलती इसके मर जानेकी प्रतीक्षाको हमेशा-हमेशाके लिए ख़त्म कर देना चाहती थी।....उसने कहा था कि वह जानता है कि अब इसे उससे प्यार नहीं रहा है, अब कहानी ख़त्म हो चुकी है, अब वह इससे बहुत दूर हो चुका है।....तब इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था कि वह जो इसके बेहद निकट था—सचमुच इतनी दूर है कि इसकी भावनाओंको ठीक-ठीक समझ नहीं पाता।....इसे लगता है, जब यह मर जायेगी तो इसे केवल एक शिकायत रह जायेगी कि इसे किसीने भी ठीक-ठीक नहीं समझा! यह तब भी, कभी नहीं चाह पायी कि सब चीज़ोंको ठीक कर यह नये सिरेसे ज़िन्दगी शुरू करे, इसे हमेशा यही लगता है कि सब चीज़ें बुरी तरह ढह गयी हैं और अब बनना सम्भव नहीं है।....

'स्पैसमिण्डन'का असर धीरे-धीरे हटता है और बाँहके अन्दरकी चीज़ें जब वापस लौटती हैं तो खिड़कीसे आती हवा कुहनीपर चुभने लगती है। यह जानती है कि यह हवा जो अभी केवल चुभ ही रही है, धीरे-धीरे टीसने लगेगी और सिरहाने बैठा इसका चेहरा देखता है कि कैसे बायीं करवट सोये एक मरे हुए शरीरपर-से हवा गुज़रती है।....इसे फिर-फिर वही पंक्तियाँ याद आती हैं—"कितना ठण्डा अँधेरा होता है उसके मनमें...." और उस अँधेरेके कारण, ठीक होनेके बाद भी, इसकी आवाज़में कितना रूखापन आ जाता है ....चार दिन बाद जब यह उससे बात करती है तो वह बिखर जाता है—"तुम क्या जानो, हमने तीन दिन कैसे काटे हैं, हम कितने-कितने परेशान रहे हैं....हम तो मर गये होते ...." और यह उसी आवाज़में बोलती है जैसे बहनको 'चली जाओ, यहाँसे....' कहती है.... यह ज़रा भी पिघलती नहीं और जम जाती है—"किसीको किसीके न रहनेसे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। सब झूठ कहते हैं। तुम भी झूठ कहते हो....!" किसीकी करुणा-सहानुभूति इसे अच्छी नहीं लगती। इसकी तबियतके बारेमें पूछनेके लिए किसीका फ़ोन आता है तो इसे लगता है—सब दिखावा है, आडम्बर है, जैसे किसीके मर जानेपर मातमपुरसीके लिए लोग जाते हैं, वैसे ही फ़ोन होते हैं....

....और इसकी नाराज़ आवाज़ सुनकर वह चिढ़ जाता है। एक बार उसके यह कहने-पर कि "हम तो मर गये होते...." इसने कहा था—"लेकिन हम तो मर गये थे...।" उसमें नाराज़ आवाज़ झेलनेकी सामर्थ्य नहीं है। वह उस चीज़को सँभाल नहीं पाता जिसके तरेड़ पड़ी है, ऐसी टूटनेवाली चीज़को वह हाथ-से छोड़ देता है....उसने कहा था—"तुम अगर इतना ही मरने और आत्महत्या करनेके बारेमें सोचती हो और यही तुम्हारी नियति है, तो तुम्हें जीनेकी कोई ज़रूरत भी नहीं है, तुम्हें मर जाना चाहिए...." वह फ़ोन रख देता है और इसे खुशी होती है कि वह इतना निर्मम पर सहज होकर बोला।....यह फिर फ़ोन करती है और कहती है—"देखो, मेरा मूड बेहद ऑफ़ है, तुम ठीकसे बात करो।" "यानी यूँ ठीकसे बात नहीं करता हूँ" "नहीं, मेरे रोनेसे तुम्हें चिढ़ है और कोई ऐसी बात मत कहना कि मैं...." "तो फ़ार्मल होकर, विनम्रतासे बात करूँ? औपचारिकतासे पेश आऊँ?...." और इसकी आवाज़ गीली हो जाती है—"नहीं, मेरा यह मतलब नहीं था...." "फिर...?" उसकी आवाज़में वही क्रुकेडनेश जो इससे झेली नहीं जाती....।

यह अपने हाथकी ओर देखती है—वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारदर्शी जगह धीरे-धीरे लाल हो उठी है। यह आनेवाले क्षणोंकी कल्पना करती है जब वह असहाय हो उठेगी, फिर वही आँसू, फिर वही दर्द। सच, ऐसे जीनेकी क्या सार्थकता है?—यह सोचती है ····और जब जीनेके साधन ही होते हैं तो उनका उपयोग क्यों नही किया जाता? वह अपना दायाँ हाथ कटवा देना चाहती है ताकि वह जी सके····ऐसे रोज़-रोज़के दर्दको लेकर इससे नहीं जीया जाता···· पर माँ-बापके सामने शादीकी समस्या आ जाती है कि ऐसी लड़कीसे, कटे हुए हाथोंवाली लड़कीसे शादी कौन करेगा? माँ-बाप अपना स्वार्थ देखते हैं, कहते हैं, जब शादी हो जाये तब ऑपरेशन करवाया जा सकता है, शादीके बाद हाथ कटवाया जा सकता है····यानी उस एक व्यक्तिको ऐसे हाथोंवाली लड़की सौंपना जिसके हाथ उससे सम्बन्ध हो जानेके बाद नहीं रहेंगे····यह जिसे बेहद चाहती है, यह जानती है कि वह इसके हाथ न रहनेपर भी इसके साथ ही रहेगा, वह इससे शादी कर सकता है····पर माँ-बाप यह भी नहीं कर सकते।····और तब यह सोचती है कि यह ऐसा देश है जहाँ महत्त्वपूर्ण लड़कीके हाथ-पैर है, शादी है, उसका जीना नहीं; जहाँ महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा, इज़्ज़त और परिवारकी नाक है, लड़कीके अपने हाथोंसे बनाया उसका भविष्य नहीं; जहाँ महत्त्वपूर्ण स्वार्थ है, किसी भी तरहका न-जीने-देनेवाला दर्द नहीं····और यह अमहत्त्वपूर्ण दर्द झेलती है।····पर····पर ऐसा दर्द झेलनेकी भी क्या विवशता है? माँ-बाप हाथ कट जानेके बाद इसकी असहायता सोचकर परेशान होते हैं कि यह लिखेगी कैसे? सब काम कैसे करेगी? यह सोचकर परेशान नहीं होते कि हर बीस दिन बाद चार दिन ऐसे बेतरह दर्दको झेलकर यह जियेगी भी कैसे? शायद जीनेसे हाथ-पैरोंका होना अधिक महत्त्वपूर्ण है····और यह ऐसे दर्द सहनेसे बेहतर समझती है कि हाथ न रहे, एक हाथ तो क्या, यह अपने दोनों हाथ कटवा सकती है पर····यह सोचती है कि इसे दायें हिस्सेमें फ़ालिज मार जाये, पर इच्छाएँ केवल करने-भरसे तो पूरी नहीं हो जातीं····पूरी ही होतीं तो यह या तो अपने स्वस्थ रहनेकी इच्छा करती या ऐसे दर्दको लेकर मर जानेकी इच्छा···· और वह! उसे इसके हाथोंकी ज़रूरत नहीं है; दूसरी ज़रूरत है।····पर तभी इसे याद आता है कि एक बार यह उसके साथ स्लीवलेस कमीज़में थी। यह स्लीवलेस कमीज़ कभी नहीं पहन पाती क्योंकि इसका एक हाथ दूसरेसे बड़ा दिखने लगता है; उसके बेहद कहनेपर इसने स्लीवलेस कमीज़ पहन ली थी····तब इसके गोरे-गोरे हाथोंको देखकर वह झूम गया था। गोरी बाँहोंपर निशान बनाते हुए उसने कहा था, "बता, तुझे कैसे-कैसे प्यार करें····तेरा क्या कर डालें?"····और उसने बेतरह इसकी बाँहोंको चूमा था; तब यह अपनी दायीं कुहनी देखते ही चीख उठी थी—"ओह नहीं, प्लीज़।" यह नहीं चाहती कि वह इसकी बाँहोंसे प्यार करे! वे बाँहें, जो नहीं रहेंगी···और वह इसकी हथेलियाँ देखता रहा था, बड़े मुग्ध भावसे····फिर उसने पूछा था—"तुम्हारी उम्र कितनी है?" उसने कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था—"उन्नीस साल !" "नहीं, तुम्हारी उम्र नौ साल है !, देखो !" और उसने इसकी हथेलियाँ इसके सामने फैला दी थीं—"इतनी छोटी-छोटी हथेलियाँ देखी हैं कभी तुमने ? नौ सालके बच्चोंकी ऐसी हथेलियाँ होती हैं, उन्नीस सालकी लड़कियोंकी नहीं, समझीं ?" यह चुप रही थी। कहती भी क्या ? तबसे उसने कभी स्लीवलेस कमीज़ नहीं पहनी, किसीको स्लीवलेस पहने देखकर इसे कुछ होने लगता है। यह जब कभी बाहर घूमने जाती है तो लड़कियोंकी सुडौल बाँहें देखती रहती है। इसे आश्चर्य होता है कि इतनी-इतनी बाँहोंको अभी कुछ नहीं होता, फिर उसकी ही बाँहोंको क्या हुआ है ? यह हमेशा होमियोपैथिक किताबें खोलकर बैठी रहती है और कई बार खुद ही दवाइयाँ खाती है, कितने आयुर्वेदिक इलाज किये हैं इसने, पर कहीं कुछ फ़र्क़ नहीं। वही बीस दिन ठीक और चार दिन ऐसे कि यह आत्महत्या कर लेनेके बिन्दुओंमें-से गुज़रती रहती है।···और यह बीमारी भी कैसी है जिसके बारेमें यह किसीसे कहती ! जब ऐसे दिनोंमें कोई घर आ जाता है तो लोग इसे लेटे देखकर पूछते हैं कि इसे क्या हुआ है ? तब उसकी माँ झेंपकर कहती हैं—"यूँही ज़रा-सा सिरदर्द है····" और मेहमानोंको दूसरे कमरेमें ले जाती हैं ताकि उन्हें यह पता न चले कि यह बीमार रहती है···और यह पता चल जाये तो इसकी शादी कैसे होगी ?··· कई बार इसे मेहमानोंके आनेके पहले ही स्पैसमिण्डन खाकर ठीक होना पड़ता है। कपड़े बदलने होते हैं, सीधे लेटना पड़ता है, ज़बरदस्ती मुसकराना पड़ता है।···हर बार जब एक हफ़्ते कॉलेजमें अनुपस्थित रहती है तो सब लड़कियोंके पूछनेपर यह बताती है कि उसकी बाँहमें दर्द होता है। लड़कियाँ बड़े आश्चर्यसे उसकी ओर देखती हैं कि बाँहमें कैसे और क्यों दर्द ? और फिर इतना भी क्या दर्द कि कॉलेजसे अनुपस्थित रहे।··· लड़कियाँ समझ लेती हैं कि यह बीमारीका बहाना करती है और या तो घरमें मौज करती है या अपने प्रेमीके साथ विक्टोरियामें घूमती है···अगली बार फिर जब यह अनुपस्थित रहती है तो लड़कियाँ चटखारे ले-लेकर पूछती हैं—"क्यों, फिर दर्द होने लगा था बाँहमें ?" यह तब बुरी तरह उदास हो जाती है और इसका चेहरा जम जाता है···वैसा ही पत्थर चेहरा लिये यह बिना मनके कॉलेज जाती है, बैठती है और आ जाती है और इसका पढ़नेमें क़तई-क़तई मन नहीं लगता।··· क्योंकि न इससे लड़कियोंका वैसा सोचना सहा जाता है, न प्रोफ़ेसरोंकी रहस्यमयी मुसकान और निगाहें बरदाश्त होती हैं। यह पढ़ना नहीं चाहती, तीन-चार साल बाद किसी डिग्रीके प्राप्त होनेकी कल्पना नहीं कर सकती। न ही यह और लड़कियोंकी तरह सुनहले भविष्यके, अपनी रंगीन शादीके सपने देखती है···और यह सोचती है कि इसके लिए तो हर अगला दिन ही प्रश्नचिह्न बनकर आता है। फिर यह तीन-चार साल बादकी कल्पना भी कैसे करे ? उसे याद आता है कि एक बार उसने इसे सलाह दी थी कि कॉलेजमें जो बाटिक क्लासेज़ शुरू होनेवाली हैं वे क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वॉयन कर ले तब इसका मन बहल जायेगा और उदासी दूर होगी। इसने कहा था कि वे क्लासेज तो हर शनि-रविको होती है और अधिकतर यह शनि-रविको बीमार रहती है। तब उसने भी व्यंग्य किया था—"तुम्हें कुछ नहीं है। सब वहम है। तुम अपनी बीमारी-को माइक्रोस्कोपसे क्यों देखती हो? तुम केवल ऑबसेस्ड हो इस बीमारीसे। ज़रा-सी दो दिनकी तकलीफ़में तुम इतनी परेशान हो जाती हो?"···इसे लगता है कि यह बीमारी, जिससे यह ऑब्सेस्ड है, इसकी आत्महत्याका केवल मात्र कारण है। इसे नहीं लगता कि बीमारीके अतिरिक्त और किसी परेशानीसे भागकर आत्महत्या की जा सकती है।···यह मनसे कभी हारी नहीं है, सारे संघर्ष झेलने-की ताक़त है इसमें···पर शरीरसे कोई इतना कमज़ोर हो सकता है?—यह सोचती है।

बाँहका दर्द फिर कन्धे तक फैल आता है। यह उस दर्दको महसूस करते सोचती है कि क्या यह सब वहम है? और यह ज़रा-सी तकलीफ़ है? और ऐसी बीमारीसे आब्सेस्ड नहीं होना चाहिए? इसने एक बार आत्महत्या-की असफल कोशिश की थी ना—तबसे घरके सब लोग जैसे निश्चिन्त हो गये हैं कि इसे चाहे जितना दर्द हो ले—अब यह मर नहीं पायेगी। वह भी बेफ़िक्र है क्योंकि उसने इसे आत्महत्या न करनेके बारेमें कितना-कितना समझाया था और इसी निश्चिन्तताके कारण माँ-बाप छतपर जाकर सो गये हैं क्योंकि इसकी कराहें उन्हें सोने नहीं देतीं। वह दार्जिलिंग चला गया है। चार दिन पहले जब इसने उसे कहा था कि मेरी बाँहमें फिर हलका-हलका दर्द होने लगा है, और यह बहुत डूब गयी थी यह कहते कि अब यह फ़ोन-में बात नहीं कर पायेगी तो वह खीझ उठा था कि इसकी बाँहका तो रोज़ यही हाल है और यह केवल न मिलनेका बहाना है। उसने कहा था कि जब यह मिल ही नहीं सकती तो उसके यहाँ रहनेका कोई फ़ायदा नहीं है, वह तीन-चार दिनमें दार्जिलिंग घूम आयेगा।···और वह चला गया था। पहले जिस फ़ोनकी घण्टीको यह बरदाश्त नहीं कर पाती, उसी फ़ोनकी प्रतीक्षामें इसकी साँसें थम गयी थीं। यह बात नहीं कर पाती थी पर एक सहारा तो था कि उसकी उँगलियों-ने यह नम्बर घुमाया है, यहाँ वह आवाज़ आयी है, जैसे उसने इसे याद किया है।···· और वे उँगलियाँ इसके माथेपर आकर ठहर जाती थीं। तब यह उस दर्दमें भी यह सोचती थी कि यह अगर इस समय मर भी जाये तो कमसे कम उसकी उँगलियाँ तो उसपर हैं····

···और आपका सहारा भी नहीं है। यह सोचती है कि यह कितनी कमज़ोर है—काश, कि उस दिन यह मर जाती। वह घटना इसे बहुत अच्छी तरह याद है। ऐसी ही सूनी रात थी, ऐसे ही अकेले पलंगपर वह····दीवारोंपर बनी परछाइयोंमें कटे हुए हाथ देखते एकाएक वही तीखा दर्द हुआ था कि सारे शरीरमें फैल गया था····यह काँप गयी थी उस दर्दसे··· वही बायीं करवट सोये-सोये अपनी अस-हायतामें यह सिसकियाँ भर रही थी और कराह रही थी। यह जानती थी कि ऐसा दर्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो घण्टे होता है और यह हमेशाकी तरह उन दो घण्टों बादकी प्रतीक्षामें कि वह ठीक हो जायेगी, उन क्षणोंको सह रही थी।....एक बार यह बड़े ज़ोरसे 'आह' कर बैठी थी तो दूसरे कमरेमें सोये भाईका एक बड़ा खीझ-भरा करवट बदलता 'ऊ-हुँ' आया था। उसे इसकी सिसकियोंमें नींद नहीं आ रही थी। इसने कोशिश की थी कि न कराहे। इसने कितनी सिसकियोंको ओंठ काटकर रोका था पर वह दर्द बेअख्तियार कराहोंसे बह निकलता था और इसने कितने दिनसे जमे निर्णयको पक्का कर लिया था।....बायीं करवटसे ब-मुश्किल यह उठी थी और कराहती हुई रसोईघरकी दवा-इयोंवाली आलमारीकी ओर गयी थी। इसके हाथमें 'डॉरीडिन' की शीशी आ गयी थी जिसकी एक गोलीसे पापा रात-भर सोते थे। गोलियाँ उलटनेके बाद भी यह दर्दसे काँप रही थी पर इसकी हिम्मत नहीं हुई थी कि गोलियाँ खा ले।....यह दूसरे कमरेकी ओर बढ़ी थी कि माँको उठाकर कहे कि इसके पास वे सो जायें जिससे इसका आत्महत्या करनेका यह निर्णय कमज़ोर हो जाये पर यह दर-वाज़ेसे ही माँ-बापको लिपटकर सोते देख लौट आयी थी और एक साथमें ही इसने सोच लिया था कि दिन-भरके काम-काजसे थके माँ-बाप-भाईकी नींद खराब करनेका क्या हक़ है उसे ? क्यों वह अपने बदनसीब सायेसे सबको परेशान करती है ?....और इसने सारी गोलियाँ बड़ी निर्ममतासे चबा-चबाकर खा ली थीं। इतनी कड़वाहट ! पर खानेके बाद इसे लगा था कि यह स्वस्थ हो गयी है। इसकी आँखोंकी चमक क्षण-भरके लिए लौट आयी है। यह प्रतीक्षा करती रही थी कि किन प्रक्रियाओंमें-से गुज़रकर यह मरती है। इसकी एक-मात्र इच्छा बच गयी थी कि यह मरते समय कुछ लिख पाये पर यह नहीं लिख पायी थी। एक घण्टे बाद ही बाँहका दर्द एक-दम ठीक हो गया था और इसे अपने मरनेसे डर लगने लगा था। इसे डर लगा था कि यह कैसे मर जायेगी, इन सब दृश्य चीज़ोंको छोड़-कर यह क्या हो जायेगी, इसके शरीरको कैसे जला दिया जायेगा और एक दहशतने इसकी आँखोंकी चमकको घेर लिया था। इसने साफ़-साफ़ महसूस किया था कि इसके हाथ-पैर बेहद ढीले और निर्जीव हो गये हैं, कमर तक का हिस्सा एकदम सुन्न हो गया है।

इसने आँखें मूँद ली थीं और इसे महसूस हुआ था कोई बेहद भारी चीज़ सिलकी तरह दिमाग़में जम गयी है। बाक़ी सारा शरीर फूल-जैसा हलका हो गया था जैसे यह कहीं ऊपर-ऊपर उठी जा रही हो। थोड़ी देर बाद धड़कन हिल गयी थी और गलेसे कुछ नीचे कोई चीज़ धड़क रही थी। साँसें गले तक पहुँचकर खाली हो जाती थीं। लगता था, किसी रास्ते होकर भी नीचे नहीं पहुँच रही हैं। इसने नब्ज़ देखी थी—नब्ज़ डूब रही थी या इसके सुन्न हुए हाथकी नब्ज़ मिली ही नहीं थी। एकाएक यह अपने न होनेके डरसे चीख पड़ी थी। इसे लगा था, इसके पास कोई आयेगा पर कोई नहीं आया था। माँ-बाप अलग हो गये थे, इसे लगा था। एकाएक इसे इतनी ज़ोरसे चक्कर आया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सब कुछ घूमने लगा था, सारी परछाइयां हिल गयी थीं और यह बड़ी तेज़ सिसकियोंमें रोने लगी थी। तब माँ उठकर इसके पास आ गयी थीं और बोली थीं—"पागल हुई हो क्या! यह सब क्या तमाशा है?" माँ उसके पास सो गयी थीं और यह माँके पैरोंको सीनेसे लगाकर धड़कन समेटने लगी थी। इसे लगा था—अब यह चैनसे मर पायेगी। यह सोच रही थी कि कल दस-ग्यारह बजे जब नौकर बिस्तर झाड़ने आयेगा तब इसके न होनेका पता घरवालोंको लगेगा, उसके पहले सब यही समझेंगे कि रात भी दर्दसे कराहती रही, सो अब सो रही है। तब माँको याद आयेगा कि यह क्यों चीखी थी। तब माँ पछतायेगी कि उन्होंने क्यों कहा था कि पागलोंकी तरह क्यों चिल्लाकर पास-पड़ोसको जगा रही हो।····और इसके दिमाग़में एक बड़ी वज़नी चीज़ बैठी जा रही थी····यह बेहद डर गयी थी और उस डरमें इसे लगा था कि अन्दरका सब कुछ बाहर निकला जा रहा है। इसे बेतरह नींद आ रही थी और इसे एक बड़ी-सी हिचकी आयी थी कि बग़ैर कोशिश क़ै हो गयी थी। इसने बिस्तरपर ही क़ै कर दी थी तो माँ उठकर बोली थीं—"तुम तो बच्चोंसे भी बढ़कर हो। बिस्तरपर ही क़ै कर दी····!" यह उस वाक्यसे ख़ुश हुई थी कि अब यह इन वाक्योंको कभी नहीं सुनेगी ····पर तभी इसे लगा था कि क़ै हो जानेके कारण साँसें रास आ गयी हैं। धड़कन नीचे-की ओर जाकर ठीक हो गयी है····और धड़कनका बिखरना, साँसोंका टूटना, नब्ज़का डूबना जितना कष्टकर नहीं लगा था उतना कष्टकर था साँसोंका ठीक हो जाना। रात-भर दिमाग़में वही वज़नी चीज़ थी। दूसरे दिन सुबहसे दोपहर तक इसे लगता रहा था कि यह पागल हो जायेगी।···पर कुछ नहीं हुआ और यह ठीक हो गयी।···तबसे इसे उठते-बैठते चलते-फिरते यही एहसास होता कि यह बड़ी दूर जाकर लौट आयी है।

····पर अब यह दूर जाकर नहीं लौट आयेगी, अब यह उसी कुहरेमें खो जायेगी, अब इसे जीनेका मोह नहीं रहा है····यह अपनी सुर्ख़ हुई बाँहको देखती है और सोचती है। ठीक होनेपर भी यह अपनी बाँहको हर कोणसे देखा करती है। बाँहको देखते समय हमेशा इसकी आँखोंमें खोखलापन घिरने लगता है। यह 'स्पैसमिण्डन' की बारह गोलियोंकी ओर देखती है, टेबलपर ढके गिलास-भर पानीको देखती है और सोचती है, अब यह अपने निर्णयमें कमज़ोर नहीं होगी। अब यह घबराकर अपने अन्दरके ज़हरको क़ै करके नहीं उगल देगी कि साँसें रास आ जायें, अब यह उस ज़हरको अन्दर पी-पीकर साँसोंका एकपर एक बिखरना-टूटना देखती रहेगी। इसका चेहरा उस व्यक्ति-सा हो जाता है जिसके आगेका कुहरा कट चुका है, जिसके सामनेका रास्ता बहुत साफ़ होता है, जिसकी आँखोंमें दृढ़ता होती है, और यह अपनी अन्तिम रातको देखती है, उस पीड़ाको महसूस करती है जो पल-पल बढ़ती जा रही है। इसके सामने कई-कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे आते हैं।....अब किसीको इसकी कराहों-से घबराकर छतपर सोने नहीं जाना होगा, अब कोई इसके मरनेकी प्रतीक्षा आँखोंमें लिये इसके स्केच नहीं बनायेगा, अब कोई इसके झूठपर व्यंग्य नहीं करेगा, अब कोई इसकी बीमारीको बहाना समझकर अविश्वसनीय या रहस्यमयी निगाहोंसे इसकी ओर नहीं देखेगा, अब कोई इसके रोनेके कारण भूरी हुई आँखोंको नहीं चूमेगा, अब कोई मिल न पानेके कारण दार्जिलिंग नहीं जायेगा, अब कोई इसकी उदासियोंके कारण अपनी चरम प्रसन्नतापर नहीं होगा, अब कोई खुद अपनी बायीं हथेली भी नहीं चूमेगा ...यह रो भी नहीं पाती है, बायें हाथसे अपना कन्धा सहलाते हुए उठ जाती है और एक-एक गोलियाँ काग़ज़ फाड़कर निकालती है।....उन्हें देखते यह न जाने क्या-क्या सोचती है। वही एक इच्छा फिर इसके मनमें जगती है कि यह अपना सोचना लिख नहीं पायेगी और सारा सोचना दिमाग़में वज़न बनकर जमा रह जायेगा। सच, कितना अच्छा होता अगर सोचनेको अंकित करनेवाला कोई यन्त्र होता! तब इसे शिकायत न रहती कि इसे किसीने समझा नहीं।...

एक बड़ी तीखी लहर जब कमर तक रेंग जाती है तो इसका बायाँ हाथ कसमसाने लगता है। ऐसे ही एक बार इसने खुला चाक़ू दायीं हथेलीपर मारा था और सूजी हुई जगहको चीर डाला था। उस दिन यह बेहोश हो गयी थी और इसे सेप्टिक हो गया था। पर अब यह वैसी मूर्खताएँ नहीं करेगी। यह पाँच गोलियाँ पानीके साथ खा जाती है, पर पानी खत्म हो जाता है, बाक़ी हाथमें लेकर यह उठती है और बाथरूम चली जाती है। एक और गोली खाकर इसकी निगाह बेसिनके ऊपर लगे आईनेकी ओर जाती है। इसे अपनी आँखोंमें वही दृढ़ता दिखाई देती है।....यह सोचती है कि यह वही आईना है जिसमें, उससे मिलकर आनेके बाद, उसने अपने ओठ, अपनी आँखोंकी चमक देखी है। यह बायीं हथेलीसे, उँगलियोंसे अपना चेहरा छूती है।....अब वह चेहरा नहीं रहेगा जो आईनेमें घण्टों अपनी मुसकान, अपने ओठ, अपनी आँखें देखा करता है। यह अपना चेहरा महसूस करती है यह चेहरा नहीं रहेगा! "नहीं!" यह चीखती है और बची हुई गोलियाँ कमोडमें डाल देती है। गोलियाँ बहती हुई नीचे चली जाती हैं और यह फ़्लश खींच देती है। फ़्लशकी तीखी आवाज़, पासके बहनेकी आवाज़ सुनते हुए यह उसी बहते पलंगपर लेट जाती है और दीवारपर टँगे हुए हाथोंवाली परछाइयोंपर, अपने ऊपर करते चेहरोंपर ज़बरदस्ती दृष्टि जमा देती है।....और फ़्लश निर्ममतासे वही आवाज़ कर रहा होता है....गोलियाँ बह जानेकी...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए। क। से। ह। स्ता। क्ष। र

सुरेश सेठ

•

वह किसी उबले हुए आलूकी तरह चारपाईपर औंधा पड़ा हुआ था। उसका बाप सारी सुबह जमादारके साथ गन्दी नालियोंमें फ़िनायल डलवाता रहा था। धूप घुटने-घुटनेको होने आयी, तो वह काम छोड़कर भुनभुनाता हुआ बेटेकी चारपाईकी ओर बढ़ा। चारपाईपर अपने बेटेके ढेढोल शरीरको अस्त-व्यस्त पड़े देखकर उसे बेतरह खीझ हुई। फ़िनायल-से गँधाये हुए हाथोंके साथ उसने अपने बेटे, जो उसे आजकल किसी अजनबी किरायेदार-सा लगता था, के कालरको झकझोरकर कहा—"उठो लाट साहिब! घुटने-घुटने धूप होनेको आयी है। आजकल नौजवानोंको न तो शर्म है, न हया। जिनके खुद ऐसे चलन हों, वह स्कूलमें क्या सिखाते होंगे?"

फ़िनायलकी गन्ध बेटेके नासापुटोंके साथ चिपक गयी, तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। आँखें खोलते हुए उसे लगा, जैसे वह सारी रात किसी सण्डासमें बन्द रहा हो। उसका बाप वापिस जाकर फिर नालियोंमें फ़िनायल डलवाने लगा था। वह दार्शनिक भावसे कुछ क्षण चारपाईपर बैठा अपने बापकी घरकी बनी बनियानसे लिपटी पीठको देखता रहा।

रसोईघरसे उसकी माँने झाँककर उसकी ओर देखा, और उसे जाग गया देखकर और भी ऊँचे स्वरमें गाया—'भक्त जनोंके संकट क्षण-में दूर करें'।

वह चारपाईसे उठकर रसोईके पाससे गुज़रा, तो बरतन धोते-धोते उसकी माँने एक गहरी साँस ली, और उसे सुनाकर कहा, "हे राम, क्या सोचा था, क्या हो गया!"

बाहर ओसारेमें दिनका समाचार-पत्र पड़ा हुआ था। बेटा उसे उठाकर अन्दर ले गया, और कमरेमें बिछी दरीपर अधलेटा होकर पढ़ने लगा।

"क्या कोई नयी नौकरी निकली है?" तभी उसकी माँने उसके पास आकर उम्मीदके साथ पूछा। स्पोर्टस-पेजसे नज़रें हटाकर उसने दहलीज़के पास खड़ी अपनी माँको ओर देखा। उसकी माँने मैला ब्लाऊज और पुराना पेटीकोट पहन रखा था, उसके हाथोंमें कड़छुल था। उसके

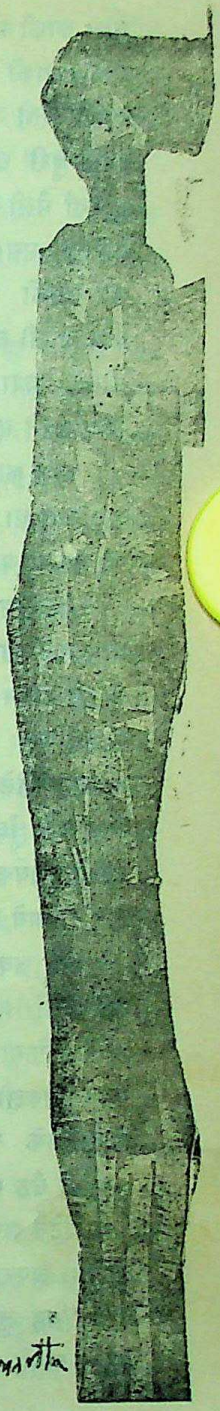

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल काफ़ी सफ़ेद हो गये थे, और माँगके साथ-साथकी जगह बालोंके गिरनेकी वजहसे खाली होती जा रही थी। उसकी आँखोंके पपोटे बुरी तरह सूजे हुए थे, और चेहरेकी झुर्रियाँ मैली पड़ती जा रही थीं। माँको खड़ा देखकर उसका बाप भी हाथका काम छोड़कर उसकी माँके पास आकर खड़ा हो गया, और अपनी बनियानसे हाथोंको रगड़ता हुआ बोला, "क्या कहता है यह ? क्या नौकरीके लिए इसने एप्लाई किया है ?"

बात कहते हुए उसके बापका स्वर बेतरह ऊब गया था, और उसका चेहरा माँके चेहरेसे भी ज़्यादा थका हुआ लग रहा था।

बेटेमें उनके चेहरोंसे नज़र मिलानेकी ताब नहीं थी। वह नज़र झुकाकर अखबारमें छपे रोहन कन्हाईके चित्रको देखने लगा, जिसने कल शतक बनाया था और अबतक लगातार खेले जा रहा था। परन्तु कन्हाईका चित्र उसे धुँधला लगने लगा और वह समाचारके शीर्षकका एक शब्द भी पढ़ न सका।

"तुमने फिर एप्लाई नहीं किया न ?"

उसे जवाब न देता देखकर उसके बापने उसे दोनों हाथोंसे झकझोर दिया। उसके हाथोंमें फ़िनायलकी गन्ध अभी भी विद्यमान थी। झकझोरनेकी वजहसे उसके हाथोंसे फ़िनायलके दो छींटे बेटेके होठोंपर थूकके कणों-से बैठ गये।

बेटेने अपने आपको अपराधी न समझते हुए भी अपराधी भावसे सिर झुका लिया।

"यह तुम्हारा सातवाँ चान्स है न ?" उसके बापने चीखकर पूछा, तो उसे उच्छू हो गया। वह कई क्षण खाँसता रहा, और खाँसते-खाँसते उसका चेहरा आँखोंके पानीसे तर हो गया।

"तुम हमें एक बार बता दो, आखिर तुम करना क्या चाहते हो !"—उसकी माँने दहलीज़के दूसरे कोनेसे आर्तनाद किया।

"करेगा क्या खाक ! उस फटीचर स्कूलमें जूते खाने चला जाता है, जहाँ न तनख्वाहका भरोसा है, न पक्की नौकरी है। सरकारी नौकरीमें पेन्शनका भरोसा तो होता है, जान हर वक़्त सूलीपर तो नहीं टँगी रहती।" उसका बाप, जिसने स्वयं सारी उम्र प्राइवेट नौकरी की थी, माथेपर हाथ मारकर टूटे हुए दर्द-भरे स्वरमें बोला।

"तू जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन मैंने सोचा था, रामने हमें दौलत नहीं दी परन्तु बेटा तो दिया है। अब हमारे दुःख कट जायेंगे। हे भगवान्, यह किस जन्मका बदला तूने लिया है।" उसकी माँने कड़छुलको उसकी आँखोंके आगे लहराते हुए कहा। बेटा कुछ क्षण तक कड़छुलको देखता रहा, जिसपर सब्ज़ीके दाग़ अभी भी विद्यमान थे।

"आपकी कड़छुल ठीक तरहसे नहीं धुली है।" उसने चिन्तित होकर कहा।

"तू मुझे पागल समझता है क्या ? क्या मैं इतनी देरसे भौंक रही हूँ।" उसकी माँ ग़ुस्सेसे चीखी, और फिर उसने ज़ोरसे हिलाकर कड़छुलको बेटेके कन्धेपर मारा। कड़छुलका वार सहते हुए बेटेने दुःखके साथ सोचा, माँकी कुहनी और गट्टोंकी हड्डियाँ कितनी नुकीली हो गयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंगामा होता देखकर जमादारने भी काम रोक दिया, और बात जाननेके लिए झाड़ू उठाकर उनके पास आकर खड़ा हो गया। वह इस घरमें बहुत दिनोंसे आता था, इसलिए घरके सदस्य-सा था, और हर बातमें सुझाव देनेका अपना पूरा अधिकार समझता था।

कड़छुलका वार सहनेके बाद बेटा भी भावुक हो गया। वह उन लोगोंकी ओर पीठ मोड़कर खड़ा हो गया, और भीगे स्वरमें कहने लगा, "आप मुझे कभी नहीं समझ सकते। मेरी बातें नयी हैं, जो पुराने लोगोंको समझ नहीं आयेंगी।"

पीठ मोड़कर बात कहते हुए उसे बेहद अच्छा लगा। बहुत रोज़से वह इस तरहके वातावरणमें ऐसी भाव-भंगिमाके साथ बात करना चाहता था, जिससे बादमें किसीको उसकी आत्मकथा लिखते हुए इस दृश्यका पुनः सृजन करते हुए आसानी हो।

उसकी बातका स्वागत एक हुँह और एक चीत्कारके साथ किया गया।

"तो तुम्हारा आखिरी फ़ैसला क्या है?" उसके बापने गुस्सेकी असीम ज्वालामें जलकर कहा। वह पायजामा और बनियानमें अपने ढलके हुए शरीरको लेकर खड़ा था, और इस गुस्सेके बावजूद ऐसा मल्ल लग रहा था, जिसने हर दंगलमें मात खायी हो।

"बिलकुल वही बात! मेरा बेटा भी बाम्बे भागते हुए मुझसे बिलकुल यही कह गया था।" इधर जमादारने क्षोभके साथ जीभको होठोंपर चटचटाकर बताया।

वह मूक वितृष्णाके साथ उन लोगोंके झुंझलाये हुए चेहरोंको देखता रहा, और उस पैराग्राफ़के बारेमें सोचता रहा, जिसे कोई पचीस बरस बाद उसके बारेमें लिखेगा।

पचीस बरस पहलेसे ही किसी पैराग्राफ़को सोच सकनेकी अपनी क्षमतापर उसे बेहद गर्व हुआ।

उसकी माँ दुःखके असह्य बोझसे लड़खड़ाती हुई दहलीज़पर धम्मसे बैठ गयी, और वैण करने लगी—"उफ़ जैसा बाप, वैसा बेटा! बाप सारी उम्र हाड़तोड़ मेहनत करनेके बाद भी एक कुल्ली सिर छिपानेके लिए खड़ी नहीं कर सका और बेटा है कि हाथ-पाँव होते हुए अपंग। भगवान् ऐसी सन्तान तो किसीको न दे। हाय, न जाने कब मेरे पास अपना मकान होगा! न जाने कब मैं पलंगपर बैठकर सारे घरपर राज करूँगी।"

वह बात कहते हुए फफककर रोने लगी, तो उसका बाप छत फाड़ देनेवाली आवाज़में चीखा—"तो सुन लो नवाब साहिब! या तो कोई ढबकी नौकरी ढूँढ़कर काम-धन्धेमें लगो, क्लर्क ग्रेडका इम्तहान दो, कोई और इम्तहान दो। नहीं तो यहाँसे किनारा करो। हमने तुम्हें पढ़ा-लिखा दिया है, हमारा फ़र्ज़ पूरा हुआ। अब और कितने दिन छातीपर मूँग दलोगे?"

"हाँ-हाँ, साहिब, मेहनत करे इनसान तो क्या हो नहीं सकता।" जमादारने भी सिर हिलाकर उसे सहानुभूतिके साथ समझाया।

बेटेने हवामें गाली लहरायी—"तेरी माँको!" और जमादारकी ओर झपटा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तू कौन होता है बीचमें बोलनेवाला !"

परन्तु उसका बाप उछलकर बीचमें आ गया। बेटा बापकी बनियानसे टकराया, और फिर सदाकी तरह वापस जाकर बैठ गया।

"उसपर गुस्सा निकालनेकी ज़रूरत नहीं है। हमें जवाब दो।"

बेटेके पास कोई जवाब देनेके लिए नहीं था। वह पिछले कुछ मिनिटोंसे कोई ऐसी बात ढूँढ़ रहा था, जो कहते और सुनते हुए प्रभावशाली लगे। परन्तु असफल रहनेकी वजहसे उसने अमर शब्द प्रयोग करके कहा, "आखिर आप मुझे मेरे हालपर क्यों नहीं छोड़ देते हैं! आप मेरी चिन्ता छोड़ दीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, आप घाटेमें नहीं रहेंगे। मैं इस परिवारका नाम अमर कर दूँगा।"

परन्तु इतने निश्चय-भरे स्वरसे यह उद्घोषणा कर देनेके बाद वह स्वयं भौंचक्का रह गया। उसे लगा कि उसकी बात किसी पारसी थियेटरके रंगमंचपर कही गयी बातसे अधिक महत्त्व नहीं रखती है, और इस बातसे उसे बड़ी लज्जा हुई।

उधर जमादार अब उनसे कुछ दूर हटकर फ़र्शपर बैठ गया था, और झाड़ूकी तीलियाँ गिन रहा था। बेटेकी बात सुनकर वह बीभत्सताके साथ हँसा, और कहने लगा, "मेरा बेटा भी यही कहा करता था!"

"तुम्हारी इन बातोंमें कोई दम नहीं है। किस बातसे करोगे अमर हमारा नाम? न गाँठमें कौड़ी, न दिमाग़मे अकल।"

बेटेने चाहा कि वह उन्हें बताये कि वह किस बातसे नाम अमर करेगा, परन्तु तभी उसे लगा कि वह अब इसे और अधिक देर तक शुरू नहीं रख सकता है। उसे फिर लगा जैसे वह किसी अजनबी शहरमें रास्ता भूल-भटक रहा है, और उसके पास कहनेके लिए कुछ भी नहीं है।

"कान खोलकर सुन लो। अगर इस घरमें रहना है तो हमारे कहनेमें रहना होगा। नहीं तो यहाँ पड़े-पड़े रोटियाँ तोड़नेका कोई मतलब नहीं है।" उसके बापने किसी देशी फ़िल्मके खल-नायक-बापकी तरह सिर हिलाकर कहा, और हुँकारके लिए जमादारकी ओर देखा, जो सिर हिलाते हुए दार्शनिक भावसे कह रहा था, "कौन रहता है साहिब, कौन रहता है।"

बेटेने जमादारकी ओर आग्नेय नेत्रोंसे देखा, और फिर विरक्त स्वरमें कहनेकी चेष्टा करने लगा—"मैं तो खुद यहाँ दो घड़ी ठीकसे साँस भी नहीं ले पाता। आप कहें तो अभी इस घरको छोड़कर चला जाऊँ, और फिर कभी यहाँ लौटकर आनेकी चेष्टा तक न करूँ।"

बात कहते हुए बेटेका स्वर भावातिरेकसे काँप रहा था, और उसे बार-बार लग रहा था, यह बात उसने किसी महान् आदमीकी जीवनीमें ज़रूर पढ़ी है।

बापने गुस्सेमें आगबबूला होकर एक ओर पड़े हुए बेटेके स्लीपरोंपर एक ठोकर मारी, और कहा, "जानेकी धमकी देता है, तो जा। तुझे रोका किसने!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्लीपर बेटेके पास आकर गिरे, तो उसके पास उन्हें पहननेके सिवाय और कोई चारा नहीं था। वह स्लीपर पहनकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा कुछ क्षण आँगनमें खड़ा रहा, तो बाप उपेक्षाका अभिनय करते हुए उससे आँखें चुराता हुआ फिर नालियोंमें फ़िनायल डलवाने लगा।

हारकर उसने बाहर जानेके लिए क़दम बढ़ाया, तो उसकी माँने, जो रसोईघरकी ओर वापस लौट गयी थी, पुकारकर उससे कहा, "अब कहाँ निकल चला है मटरगश्तीपर। नहाकर तो आ। बाहर एक बजे तक तो नलमें भी पानी नहीं रहेगा। फिर वापस लौटकर सारा दिन बिना नहाये-धोये चारपाईपर औंधे मुँह पड़ा रहेगा क्या? हे राम!"

बेटा बात सुनकर ऐसे ठिठक गया, जैसे कोई बहुत गम्भीर विचार कर रहा हो, और अभी दो टूक निर्णय देगा। परन्तु उसका दिमाग़ बिलकुल ख़ाली था, और उसके किसी कोनेमें कोई विचार कुलबुला नहीं रहा था।

वह कुछ क्षण ख़ाली-ख़ाली नेत्रोंसे इधर-उधर देखता रहा। बाप अब बिलकुल चुप हो गया था, और वितृष्णा दिखानेके बावजूद चोर निगाहोंसे उसे बार-बार देख लेता था। एक ठण्डी साँस भरकर उसने खूँटीके साथ लटकते हुए तौलियेको उतारकर कन्धेपर रख लिया तो बापने एकाएक उसकी ओर मुड़कर सन्तोषके साथ कहा, "ग़ुसलखानेमें साबुन नहीं है। साबुनकी नयी बट्टी अन्दर अलमारीमें पड़ी है। लेते जाना!"

■ ■

एक-से हस्ताक्षर : सुरेश सेठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

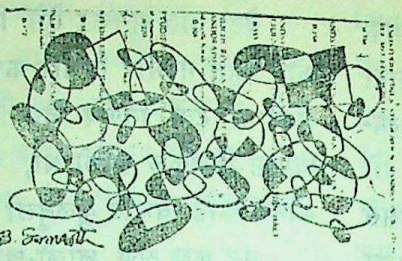

न । यी । क । हा । नी : सिन्धी

बोरियतका अहसास

मूल : लाल 'पुष्प'

अनु० : विष्णु भाटिया

लोकल गाड़ीके पहिये पानीमें थे। पूरी रातसे वर्षा हो रही थी और इतने वेगसे बरस रही थी कि बाढ़-सी आ गयी थी। लोकल गाड़ी नम्बर एस० १३२०, अन्धेरी लोकल, सुबह अन्धेरीसे नौ बजे छूटनेके बजाय दस बजे छूटी, खार पर सवा नौके बजाय सवा दस बजे पहुँची थी। किसीको भी अपनी निर्धारित मंज़िलपर पहुँचनेका कोई भी भरोसा न था। और अब, एस-१३२० बान्दरा स्टेशनसे बाहर निकलकर, थोड़ा आगे बढ़कर, ब्रिजके ऊपर खड़ी हो गयी थी। दूर तक रेलवे-पटरियोंका निशान तक न था, पटरियाँ पानीके भीतर थीं। रह-रह कर तेज़ वर्षाके साथ तेज़ हवाका झोंका आता और एक क्षणके लिए पटरियोंके ऊपर फैले पानीको हटा देता था—और उस क्षणके लिए पानीके भीतर दो लम्बी लम्बी पटरियाँ, दो लम्बे-लम्बे साँपों-जैसी दीख जाती थीं।....काले, काले, लम्बे-लम्बे, कहीं बीचमें जुड़ते हुए साँप।

एक घण्टा बीत चुका था। गाड़ी आगे नहीं बढ़ी थी। लोगोंका धीरज टूट चुका था। गाड़ीकी खिड़कियाँ और दरवाज़े भी बन्द कर लिये गये थे। एक क्षणके लिए किसी भी दरवाज़ाके खुलते पानीके फुहार भीतर घुस आते थे। सिगरेटोंका धुआँ एकत्रित हो चुका था। और उस धुएँमें केवल धुँधले, थके हुए, खीझे हुए, बोर हुए, मजबूरी दर्शाते, क्रोध भरे चेहरे नज़र आ रहे थे। गाड़ी कब चलेगी—कोई भी नहीं बता सकता था। क्योंकि इस प्रश्नके पीछे यह प्रश्न था कि वर्षा कब बन्द होगी और क्योंकि दूसरे प्रश्नका कोई जवाब नहीं इसलिए पहले सवालका भी कोई जवाब नहीं था। खुशनसीब वे थे, जिनके हाथोंमें पुस्तक थी और अधिक खुशनसीब वे थे, जिनकी पुस्तक दिलचस्प थी (अर्थात् जिन्हें अपनी पुस्तक दिलचस्प लग रही थी।) लग रहा था, लोगोंने अपने अखबार चाट लिये थे और अब धुँआ हटाकर, समय काटनेके लिए, विज्ञापन पढ़ रहे थे। गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे क्यों नहीं लौटायी जाती ? विशेषकर जब पीछे बान्दरा इतना दूर न था, इतना नज़दीक था कि नज़र आ रहा था। (धुँधली ज़ोरदार वर्षाके कारण) इससे भी अधिक विशेषकर जब गाड़ीको ऊपर ब्रिजपर खड़ा कर दिया गया है। हज़ारों लोगोंकी ज़िन्दगियों-से खेलनेका खतरा मोल ले लिया गया है। बारिशके कारण नहीं, बल्कि गाड़ी ख़राब हो चुकी है। यह तो इनको बारिशका बहाना मिल गया है, उस दिन माहीम और माटूँगाके मध्य पूरा एक घण्टा गाड़ी खड़ी हो गयी। तेज़ धूप थी। शायद जिस तरह अब तेज़ बारिश कारण बन गयी है, उस दिन तेज़ धूप ही वजह बनी होगी ! हा, हा, हा, ही-ही-ही''''कुछ लोग ज़ोरसे हँसते है। जो नहीं हँसते, उन्हें उन लोगोंपर क्रोध आ रहा है जो हँसते है। चीप और बलगर—हलके और वाहियात।

•

यह तेज़ बारिश १२ अगस्त १९६४ के दिन पड़ी थी। उस दिन यातायातके सब वाहन टूट चुके थे। (उस दिनका अख़बार खोलकर आप आश्वस्त हो सकते हैं) एक लेखक-द्वारा बतायी गयी हक़ीक़तोंपर आप विश्वास नहीं करेंगे, मैं जानता हूँ, विश्वास बिलकुल नहीं करेंगे, आप जिस युगमें रहते हैं उसमें आपका कोई दोष नहीं। आप भले ही कहानी-उपन्यासको ओर शर्मकी नज़रोंसे देखें और अख़बारको गले लगायें। इसीलिए तो कहता हूँ, भले आप उस दिनका अख़बार खोलकर देखें। १२ अगस्त १९६४।

•

बारिश बन्द नहीं होती, दरवाज़ें बन्द हैं, खिड़कियाँ बन्द हैं, धुँआ दम घोंट रहा है। समय नहीं गुज़रता। कैसे कालका बुलावा आया, जो घरसे निकले, तीन जनोंने एक साथ सोचा। उनमें-से दोने यह भी सोचा, घरमें क्या रखा है, वहाँ दूसरी मुसीबतें हैं, मुसीबतोंके प्रकार अलग-अलग हैं। घरमें औरतोंके लम्बे भाषण, लगातार, न ख़त्म होने-वाले, हमेशा, हर बातपर बोरिंग नसीहतें। कमसे कम बाहर तो''''

अच्छी औरतें हमेशा भाषण करती हैं और आजकल सब औरतें भाषण देती हैं, बुरी औरतें अच्छी हैं लेकिन आजकल बुरी औरतें मिलती कहाँ हैं, ख़ुशनसीबोंको मिलती हैं, लेकिन आजकल ऐसा भाग्य किसे नसीब है ?

आदि-आदि।

खड़ा रह-रहकर टाँगोंमें दर्द होने लगा है।

टाँगोंमें दर्द हो सकता है, लेकिन खड़े रहकर ही दर्द हुआ है इस बातपर मैं विश्वास नहीं करूँगा। कोई भी नहीं करेगा। झूठ मत बको, ज़बानका इलाज कराओ, फिर टाँगोंका, फिर दिमाग़का। बैठे-बैठे टाँगोमें दर्द होता हो, तो मुझे सुनाओ, मैं कुछ भी नहीं कर सकूँगा, पर विश्वास कर सकूँगा, क्योंकि बैठ-बैठकर सबकी टाँगोंमें दर्द होता है। बैठ-बैठकर और सो-सोकर''''हम सब बैठे हुए होते हैं या सोये हुए होते हैं तब भी हम यह महसूस करते हैं कि हम खड़े हैं या चल रहे हैं''''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज किसका श्राप लगा कि यह मुसीबत····

तुम्हारी पत्नीका।

आज सुबह-सुबह किस मनहूसकी शक्ल····

तुम्हारे बच्चोंकी !

दो बजे हैं, गाड़ीको ब्रिजपर खड़े-खड़े लगभग दो घण्टे हो चुके हैं। एक सूटेड-बूटेड यहाँ-वहाँ देखता हुआ, भिखारीकी आवाज़में, लगभग भिखारी-जैसे लगनेवाले आदमीसे कह रहा है, 'एक सिगरेट दोगे, मेरे एक घण्टेसे खत्म हो चुके हैं। 'ओह, ज़रूर-ज़रूर' वह भिखारी-जैसा आदमी अपना चारमिनार-पैकेट बढ़ाकर बोला। वह सूटेड-बूटेड चारमिनार नहीं पीता, कैप्सटेन पीता है, वह भी आधा पीता है और आधा फेंक देता है। और दस मिनिटोंके बाद दूसरा कैप्सटेन निकालकर जलाता है। उसके सम्बन्धमें इस हक़ीक़तकी सबको खबर है, इसलिए आपको सुनानेका साहस किया है। लेकिन अब, अब इस भयसे कि चारमिनार जल्द पूरा न हो (शायद उसे भय होगा, कि फिर न भीख माँगनी पड़े, इस बातसे उसने बचना चाहा होगा) वह डर-डरकर कश खींच रहा है और जलते हुए सिगरेटकी ओर ऐसे देख रहा है, जैसे सिगरेट छोटा नहीं हो रहा, उसकी उमर छोटी होती जा रही है। धुँएमें उसकी उँगलीमें पड़ी अँगूठीका हीरा चमक रहा है, जैसे राखमें बचा हुआ कोयला।

आज बम्बई डूब जायेगी····

डूब नहीं गयी है ?···

डूब जायेंगी।····

कब ?

गाड़ीसे क्या नीचे नहीं उतर सकते ?

पुलके नीचे पानी है, पैर खिसका तो चले जाओगे।

फिर क्या ?

अगर ऐसा है तो डूब मरनेके लिए नीचे जानेकी तकलीफ़ क्यों उठाते हो, पानी ऊपर चढ़कर तुम्हें डुबो देगा।—

केवल इन्तज़ारकी बात है····

आदि, आदि।

डूब मरना बेहतर है, तकलीफ़से या तकलीफ़के सिवाय, मेरे लिए, सबके लिए, ज़िन्दगी नहीं मिलती, तो गुम हो जाना चाहिए। वग़ैरह, वग़ैरह।

सोमवारके दिन राशन-आफ़िसके सामने क्यू, मंगलवारको इलेक्ट्रिक आफ़िसके बाहर क्यू। बुधवारको सिनेमाघरके सामने क्यू, श्रीमतीने टिकिटें बुक करा आनेकी आज्ञा दी थी। गुरुवारको इन्कमटैक्सके बाहर क्यू, इन्कमटैक्स आफ़िसरने नोटिस निकाला था। शुक्रवारको दूधका कार्ड बदलवानेके लिए सेण्टरके बाहर क्यू। क्यू ही क्यू है। बम्बईका नाम क्यू रखना चाहिए। और जहाँ क्यू नहीं, वहाँ भीड़ है। क्यू और भीड़। क्यू-भीड़। बम्बईका नाम क्यू-भीड़ रखना चाहिए। लेकिन शायद यह सम्भव नहीं। क्योंकि उस दिन कलकत्तेसे एक आदमी आया, उसने बताया कि वहाँ भी यही मुसीबत है। जहाँ-तहाँ क्यू-भीड़। ठीक है, सभी बड़े-बड़े शहरोंका नाम क्यू-भीड़ रखना चाहिए। लेकिन गाँव छोटे शहर बनते जा रहे हैं, छोटे शहर, बड़े शहर बनते जा रहे हैं। तो आगे चलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तानका नाम बयू-भीड़ रखना चाहिए—लेकिन यह मुसीबत अन्य देशोंमें भी है—आगे चलकर दुनियाका नाम ही बयू-भीड़ रखा जाये। दुनियाका कोई नाम नहीं और 'दुनिया' कोई दुनियाका पूरा नाम नहीं, अर्थात् यह अन्तर आगे चलकर मिट सकेगा।

यह ट्रांजिस्टर नया लिया है ?

बिलुकल नया है, लिया नहीं है····

लाट्रीमें मिला होगा···

मेरी वाइफ़को उसकी सहेलीने उपहार दिया है···

(अन्धा-अन्धा नहीं झूठा ! उसकी वाइफ़की सहेलीने नहीं, सहेलीके पतिने यह उपहार दिया होगा और इसकी वाइफ़की सहेलीका पति कलाईमें पड़ी घड़ी किसीको दिखाता हुआ कहता होगा, यह मुझे दोस्तने उपहारमें दी है, दी उसके दोस्तके वाइफ़ने होगी।)

टाइम पास नहीं होता, ट्रांजिस्टर चलाओ न—"

·····

कोई प्रोग्राम नहीं ?

नहीं····

मिनिस्टरकी तक़दीरका····

है ?

है ! कल अख़बारमें अनाऊंस किया गया था····

(अब तो ट्रांजिस्टर ज़रूर चलाओगे—दूसरोंकी पत्नियोंके साथ व्यभिचार करते हो, और अपनी पत्नीको अन्य पुरुषोंके साथ व्यभिचार करनेकी स्वीकृति देकर, और राजनीतिमें दिलचस्पी नहीं रखता, यह तो हो ही नहीं सकता)।

तुम्हारी बड़ी मेहरबानी···

···· ···· ···· ···· ····

तुम्हारी बड़ी मेहरबानी जो ट्रांसिस्टर···

···· ···· ···· ···· ····

हाय, यह मनहूस दिन····

पूरा आधा घण्टा उस शरीफ़ व्यक्तिने ट्रांजिस्टर चालू रखा।

मेहरबानी कर यह ट्रांजिस्टर बन्द करेंगे ?····

!

कान खाता है····

!

मेहरबानी करके बन्द कीजिए !····

—और फिर सब लोगोंने ग़ुस्सेसे लाल होते हुए और मुक्का दिखाते हुए आदमीको देखा, जो चिल्ला रहा था कमबख़्त, सिर खाते हो बन्द करो यह बकवास !

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

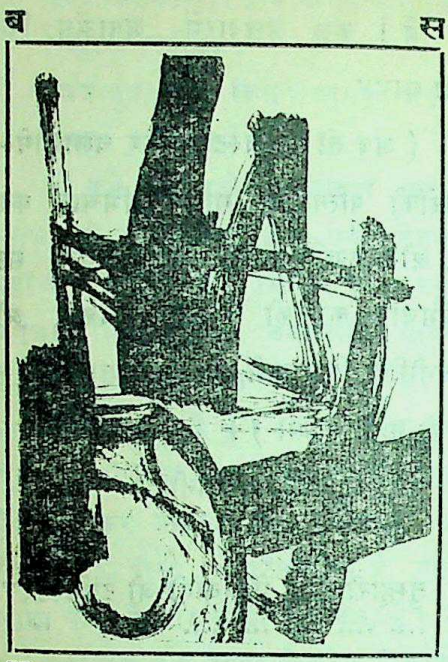

- कैलाश वाजपेयी
- गंगाप्रसाद विमल
- शलभ श्रीरामसिंह
- प्रयाग शुक्ल
- अतुल भारद्वाज
- ओंकार ठाकुर
- चित्रा मुद्गल

सात कवियों की इ। का। ई

• गर्हित गाथा

सारी कड़ुवाहट चुक गयी
नफ़रत भी बासी हो चली
क्या करें ? क्या करें अब हम इस निचुड़े
दिमाग़ का !

'हाँ-ना' के बीच कई सदियों की यन्त्रणा
झेली हममें से हर एक ने
फोकल कहकर फेंक दी
दुनिया रंगों भरी
कोई नहीं आया पर देखने
छिला-जला बदन प्रायद्वीप-सा—
(हम अग्निनाभों का)
कैसा प्रतीप था ?
कि मर-मर कर हमने जो अमूर्तियाँ गढ़ीं
वे ही चिल्ला पड़ीं
हम सबके हाथ काट दो !

बदला कुछ भी नहीं
व्यर्थ गया सोचना
क्या करें ? क्या करें अब हम पुर चले
जख्मों के दाग़ का !
इतनी कम जगह घेर कर कि
जैसे अजात तंग गर्भ में
पेट और पीठ एक करके पड़े रहे
कविता के काले खर्ग में
कोई 'सारमेय' तक न आया पर रोकने
(कि हम अब आज़ाद हैं)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूई की तरह रेशा-रेशा जला दिया—
शीशे के सामने आँखें भर लीं सीमेण्ट से
छुटकारा नहीं मिला, नहीं मिला, नहीं मिला—
(विष्ठा-समुद्र में छुटकारा कैसा दुर्गन्ध से)
बदला कुछ भी नहीं
कूड़ा उसी तरह फलता-झरता रहा
उसी तरह कुचला जाता रहा आदमी
कायम से या फिर टैंक से !

कड़ुआहट चुक गयी
तापमान गिर गया
इतना साधारण अन्त नहीं देखा हमने किसी
आग का !
क्या करें !
क्या करें अब हम इस निचुड़े दिमाग का .

—कैलाश वाजपेयी

• आकाश

खुल जाता है आकाश
ठिठक कर
नील वर्षा करता हुआ ।
सीढ़ियों से उतरती है जैसे एक कँपकँपाहट
और
मुट्ठियों में मुचड़े हुए फूल बिखरते हैं
खुली हथेली पर नीली नदियाँ
दौड़ती हैं : सीमाएँ तोड़ती हुई

सन्धि करती हैं खुलेपन से ।
आकाश में
वह उदार आकार
बहुत दूर तक खींच लेता है आँखें
नये-नये दृश्यों में
जोड़ देता है भविष्य
खुलता है आकाश
शरद-दिनों का आश्रय बनाने ।

—गंगाप्रसाद विमल

• एक अहम सवाल

क्या किसीके मन में
कभी भी यह विचार नहीं आता :
इस सड़क को एक सिरे से पकड़ कर
हवा में फटक दें ।
ताकि
भीड़ गर्द की तरह झड़ जाये ।

नये सिरे से बिछायें कुछ लोग
फिर इसे !
हम इतना सघन सन्तुलन बनाये रखने में
असमर्थ हैं !
हमारी ही तरह बहुत सारे लोग
प्रतीक्षा कर रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी सामूहिक मृत्यु अथवा सर्वनाश की !
बहुत बुरा है पानी के लिए आकाश की
ओर निहारना !
पेट भरने के लिए ग़ैर-ज़रूरी ढंग से
हाथ-पाँव मारना !
सचमुच बहुत ही बुरा है !

बीमार चेहरों की भीड़ में
ख़ुद को ज़िन्दा रख पाना : एक अहम
सवाल (?)
कहाँ तक दुःसाहसी बने कोई ?
आख़िर सबका एक भविष्य भी तो है !
नहीं आता होगा इस तरह का कोई विचार !
कोई भी विचार नहीं आता होगा !
क्यों कि–
आजकल हम सबके सब
आइनों के सामने जाने से घबराते हैं !
ऐसे में अकसर
हमारे सामने होता है एक आदमी
जिसके जबड़े शेर की तरह भयानक
और आँखें जंगली भैंसों (उनकी आँखों
की तरह)
की तरह होती हैं !
एकदम सुर्ख़—जलती–आग-सी आँखें !
उसके मुँह से टपकती
लहू–जैसी राल से–
छनकर आती आवाज़
ज्वालामुखी की गड़गड़ाहट की तरह
कानों में पहुँच कर
हमें भीतर तक शून्य कर देती है !
रग-रग में उतर जाती है पिघले हुए शीशे
की तरह !

लगता है :
हमारी धमनियों में
गन्दी नालियों का सड़ा हुआ पानी बह
रहा है !
जिसमें -
गली के आवारा कुत्तों
और
नाजायज़ बच्चों की लाशों के साथ
पुष्पवतियों-द्वारा फेंके गये
रक्तसने कपड़ों की सड़ान्ध
और ऐसा ही बहुत कुछ है
जिसे गन्दगी के नाम से पुकारा जाता है !

वह आदमी
हम सबों से हाथ हिलाकर कहता है :
मैंने तुम्हारे देश की धरती को
हरे-भरे खेतों समेत उखाड़ कर
इस्पात के खम्भों पर टाँग दिया है !
क्या तुम लोगों ने नहीं देखा ?
हरियाली वहाँ धुएँ और राख की शक्ल में
उड़ रही है !
अबतक वह इतनी धनी हो चुकी है
कि लोग एक-दूसरे को–
कोशिश के बावजूद नहीं पहचान पाते !
कभी-कभी तो खीझ कर
अपने ही मुँह पर थप्पड़ मार लेते हैं !
मक्खियों की तरह भिनभिनाते
और
पागलों की तरह चिल्लाते हैं !

एक सीमित अँधेरे के बाद
होने के नाम पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों को सिर्फ़ सुबह का अहसास होता है !
बड़े से बड़ा चक्कर लगाने के बाद भी
हर आदमी अपने ही पास होता है !
जैसे सब कुछ—सब कुछ वृत्ताकार हो !
कुछ भी नहीं रह गया है कहीं
सृष्टि की नींद पर उड़ती त्रिकोण पंखुड़ी
और नपुंसकों की जमात के सिवा !
इतिहास बने लोगों की दुहाई देकर
नये राष्ट्र—नयी चेतना और नये समाज का
नारा लगाने वालो !
सिर्फ़ बातों तक महदूद हो तुम !
तुम्हारी इस कमज़ोरी से फ़ायदा उठाकर
आईने वाला वह इनसान
एक दिन ऐलानिया कहता फिरेगा :
दुनिया में था एक देश
जिसने पहले इतिहास
पीछे क्लीव पैदा किये !
अन्ततः
स्वयं भी इतिहास बन कर रह गया !
शायद पृथ्वी तब भी सूर्य की परिक्रमा
करेगी !
सूर्य में तब भी विस्फोट होंगे !
ग्रहों का सन्तुलन पूर्ववत् रहेगा !

—शलभ

...और अचानक

और अचानक मैं पाता हूँ
कि वस्तुओं को छूने का मन नहीं करता
मानो उनमें लिपटी हुई एक धूल है
एक ऊबड़-खाबड़ रुखाई ।
जो भीतर तक उतर गयी है ।
दूर से ही हवा में उन्हें पीछे
ठेलने का उपक्रम
करते हुए हाथ थक गये हैं ।
और दृष्टि कहीं न देखने का बहाना करती हुई
हर जगह जाकर ठहर गयी है ।
कितने दिनों तक उन्हें ठेलता रहूँगा पीछे मैं
इसी तरह
कितने दिनों तक उन्हें देखता रहूँगा
न देखने वाले रूप में—
कितने दिनों तक !
थकता रहूँगा उस सबसे जो न मुझे प्रिय है
और न दूसरों को प्रिय होता,
पर है,
एक पूरे अस्त-व्यस्त फैलाव में
जो एक सिलसिला बन गया है ।
एक खुरदुराहट बच रहती है अंगुलियों में
मन में, शरीर में
एक थकान
और एक छीनी हुई गति
जो यहाँ से होकर न जाने किधर गयी है ।

—प्रयाग शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• पहचान

जब हम एक-दूसरे को पहचान नहीं पायेंगे
कैसा लगेगा मौन प्रिया
अनजानी जगहों पर मिलते हुए
अन्धे भविष्य में ।
तुम्हारी शारदीय उजास-भरी आँखें
तपती दोपहरों में भटकते हुए
नहीं भूल जाऊँगा
कौन जानता है ?
मछुओं के जाल भीगी रेतियों पर
कितने बेल-बूटे बुन देते हैं
और तुम्हारे जिस्म की हरी समुद्री गन्ध
मुझे मूँगों के द्वीप पर अकेला छोड़ आती है ।
अनगिनत सर्वाकार गन्धों और अपरिचित
रंगों की
इस दुनिया में वह गन्ध
नहीं भूल जाऊँगा
कौन जानता है
कितना अच्छा हो कि पास-पास बैठे
हम एक-दूसरे को सिर्फ़ देखते ही न रहें।
तुम्हारे शरीर के अयात्रित और रहस्यमय
प्रदेशों की यात्राएँ
ओह ! ठण्डी रोशनी और जलते अँधेरे को
एक साथ चूमने का सुख
वापस लौटते हुए एक गूँज छोड़ आऊँगा
जिसे सदियों तक अकेले में होकर सुनती
रहोगी।
तब क्या गुलाबी चट्टान से बँधे हमारे जिस्म
भारहीन होकर बरसों तक नहीं तिरते रहेंगे।

—अतुल भारद्वाज

• न आओ इस तरह

इस तरह न जाओ मेरी कविताओं में
तुम
परछाइयाँ तुम्हारे स्वप्नों की इतनी लम्बी हो गयी हैं
कि चाहूँ भी तो उनके छोर तक जा नहीं सकता
इस तरह मेरे पास बैठो न अब तुम
तुम्हारी आँखों के द्वार तक मेरे इशारे
जा ही नहीं पायेंगे,
तुम्हारी तलाश के काँटे उन्हें चुभ गये हैं
इस तरह न देखो मेरे मातमी शरीर को
तुम्हारी देह की यह गन्ध मेरी नसों में
कैसा भी स्वाद भरती नहीं
मेरा शरीर सपाट और उथला-सा
हो गया है
जितनी कविताएँ लिखीं मैंने तुम्हें सुनाने को
तुम्हें छोड़कर और दूसरों को सुना गया
तुमने मेरी कविताओं में कोई रुचि ली ही नहीं
तुम्हारे लिए जितने शब्द तराशे
वे दूसरे अपनाते रहे
मेरा कोई गुनाह रहा होगा जिससे मुझे
समझौता करना पड़ा अपने-आप से
तितलियों के टूटे पंखों और नागफनी के काँटों से
इस तरह मेरे दरवाज़े तक आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार मिले अब लौटो नहीं तुम
सुनो तो यह कविता
कल रात लिखी थी कि कहीं छपा लूँगा
तुम्हें सुनाऊँगा नहीं
इस तरह मेरा निर्णय बदलो नहीं तुम
तुम मेरे बीमार सन्त्रास को छुओ नहीं
इस तरह मेरी किताब उठाओ नहीं
कल रात मैंने नीग्रो कविताएँ पढ़ी थीं
नहीं
इस तरह अपने ओठों पर मेरा नाम न लाओ तुम
एक गलत आदत का शिकार हो जाओगी तुम
न आओ मेरी कविताओं में तुम···

—ओंकार ठाकुर

• जब भी तुम्हें !

जब भी तुम्हें
महसूस हों
फर्श पर रेंगते अँधेरे
खिड़की पर बैठी
आगामी की हवाएँ
चारों ओर उगो
घुटन की दुर्वह प्राचीरें
सच,
मुझे कहना
तुम्हारे मौनवाही कक्ष की छत से
टाँक दूँगी—
एक बादल,
एक बिजली
एक सूरज की किरण सतरंगिनी !

जब भी तुम्हें
छल जाये
एकाकी क्षणों का प्रेत
डराने लग जाये
अपना अनमना अस्तित्व
भाल को छू जाये
काँटों की विषैली बेल
सच,
मुझे कहना
तुम्हारी अश्रु भीगी पलक के ऊपर
रख दूँगी—
एक गुलाब
एक आइस-बैग
एक जलती अगरबत्ती की गन्ध !

—चित्रा मुद्गल

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

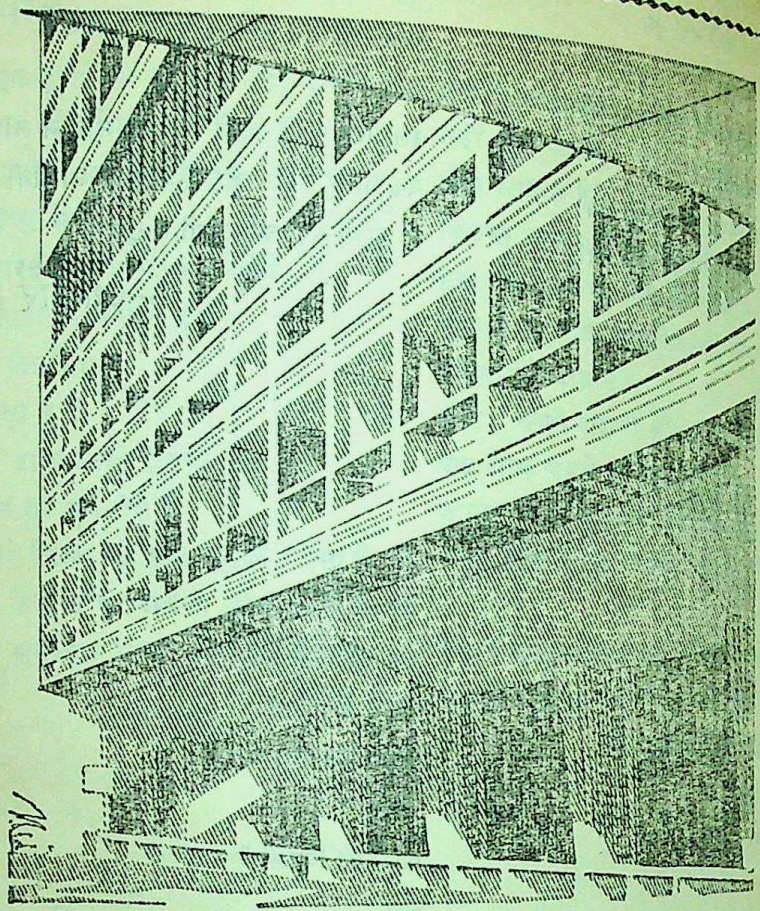

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

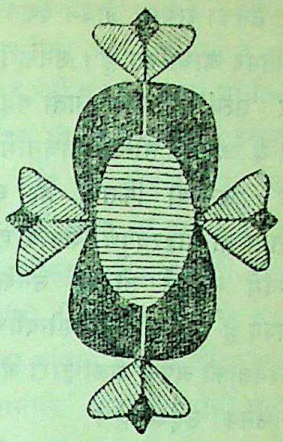

प्र। श्ना। -न्त। क

अज्ञेयके प्रति जिज्ञासा ?

•

अज्ञेयके प्रति मनुष्यकी जिज्ञासा अनादि एवं अनन्त है। विश्वके नियन्ताके प्रति कौतूहलका जो भाव अविकसित मानव-मनमें था वही आज भी विकसित बुद्धिवाले सभ्य मनुष्यमें भी है। जैसे-जैसे मनुष्य विकासके सोपानपर चढ़ता है, वैसे-वैसे भगवान्-विषयक उसकी धारणा भी परिवर्तित होती है। अविकसित बुद्धिवाला मनुष्य जब प्रकृतिकी भयंकरतासे अभिभूत होता है तो उस परम शक्तिके रौद्ररूपकी कल्पना करता है किन्तु जब उसके हृदयमें सौन्दर्यकी उद्भावना होती है तो वह अनुमान करता है कि इस विश्वका स्रष्टा विशेषरूप और आकारवाला परम सुन्दर होगा, अतः उस अवैयक्तिकको वह वैयक्तिक मान लेता है। परन्तु बौद्धिक और आध्यात्मिक दिशाओं-में क्रियाशील मनोषियोंका तो यही निष्कर्ष है कि सृष्टिकी आधारभूत सत्ता एक ही है और उसका कोई रूप या आकार नहीं है।

विकसित मनुष्यके मनके तीन अंग माने जाते हैं: बुद्धि, अन्तःकरण और हृदय। अर्थात् इन तीनोंका जोड़ ही मन है। किन्तु व्यक्तिमें प्रायः इन तीनोंका सन्तुलन न होकर एक ही की प्रधानता होती है और उसीके आधारपर उसके व्यक्तित्वका निर्माण होता है। हर व्यक्तित्वका केन्द्र इनमें-से कोई एक होता है। और उसी विशेष कोणसे वह उस परमसत्ताकी अनुभूति करता है। जीवनके प्रति उसका दृष्टिकोण भी उसी कोणपर आधारित होता है, शेष दोका उपयोग वह उसी एकके समर्थनके लिए करता है, अतः वे दोनों उसके लिए गौण हो जाते हैं।

अबतकका समस्त चिन्तन, विचार और अनुभव इन तीन दृष्टियोंमें ही विभाजित रहे हैं। क्योंकि मनुष्यने अपनी प्रवृत्तिके अनुसार उस विराट्को तीन विभिन्न कोणोंसे देखनेका प्रयत्न किया है।

हृदयकी अनुभूतिको सर्वोपरि महत्त्व देने-वाले हैं : कवि और कलाकार; जिनके जीवन-का लक्ष्य है सौन्दर्यकी उपासना। वे इस सौन्दर्य-उपासना-द्वारा ही भगवान्को प्राप्त करना चाहते हैं। रवीन्द्रनाथ-जैसे महान् कलाकारोंके लिए तो सौन्दर्य ही भगवान् है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उनका समस्त जीवन-दर्शन इसी सौन्दर्यानुभूतिपर आधारित है। उनके लिए तो 'शिवं' और 'सत्यं'की उपयोगिता वहींतक है जहाँतक ये दोनों सौन्दर्य-साधनामें सहायक हो सकें। अन्यथा कितना ही बड़ा सत्य हो, कितना ही महत्त्वपूर्ण शिवत्व हो, यदि उसमें सौन्दर्य नहीं है तो वह उनके लिए सर्वथा त्याज्य है। उस परम सौन्दर्यकी अनुभूतिकी पावनताको अपनी कला-द्वारा अभिव्यक्त करना ही उनका उद्देश्य है।

बुद्धिके सहारे चलनेवाले हैं : ऋषि, दार्शनिक और वैज्ञानिक। सत्य और असत्यका अन्वेषण ही उनके जीवनका लक्ष्य है। वे अपनी तर्क-निष्पत्ति-द्वारा इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि सत्य ही भगवान् है। बुद्ध, सुकरात, डार्विन और फ्रॉयड सत्यके ही निपट खोजी थे। सुन्दर और शिवत्वको वे उसी सीमा तक महत्त्वपूर्ण मानते हैं जिस सीमा तक उनके द्वारा सत्यकी पुष्टि हो सकती है। सत्यसे विहीन सौन्दर्य व शिवका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं है, वह उनके लिए निरर्थक है। उनके लिए तो समस्त सृष्टि सत्य और असत्यमें ही विभाजित है।

अपने अन्तःकरणकी आवाज़को अत्यधिक महत्त्व देनेवाले हैं : साधु-सन्त और समाज-सुधारक; जिनके जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—जनकल्याण। शिवत्वके ये आराधक मनुष्यके उदात्तीकरणके लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। गान्धीजी-जैसे नैतिक पुरुषोंके लिए शिवत्व ही भगवान् है। कितना ही महत्त्वपूर्ण जीवनका सत्य क्यों न हो, यदि वह शिवका विरोधी है तो उनके लिए अग्राह्य है। 'जो है' से उनका कोई सरोकार नहीं, 'जो होना चाहिए' उसीमें उनका विश्वास है। समस्त कलाओंका मूल्यांकन वे इसी दृष्टिसे करते हैं कि इनका प्रभाव मानव-हृदयपर शुभ होगा या अशुभ। सुन्दरतम कलाकृति-द्वारा यदि लोक-मंगलकी सम्भावना नहीं है तो वह उनकी दृष्टिमें अश्लील है, अतः त्याज्य है। ऐसे नैतिक व्यक्ति खजुराहो, कोणार्क और पुरीकी मैथुन-प्रतिमाओंको नष्ट कर देनेके पक्षपाती हैं। उनका अप्रतिम सौन्दर्य न तो उन्हें दृष्टिगोचर होता है और न वे उसमें मानव-हितके लिए कोई मंगल देखते हैं। उनकी शुभकी भावना इतनी कठोर है कि उनके लिए सौन्दर्य, मात्र सौन्दर्य होनेके कारण वांछनीय नहीं हो सकता। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकी खोज करनेवाली इन तीनों दृष्टियोंमें विरोध है। इन तीनों क्षेत्रोंके अधिकारी अपने-अपने आंशिक अनुभवको पूर्ण अनुभव सिद्ध करनेमें व्यस्त हैं।

यदि मनुष्य न हो तो जगत्की सत्ता तो होगी किन्तु उसमें न सत्य होगा न असत्य, न शिव होगा न अशिव, न सुन्दर होगा न असुन्दर, कुछ न होगा, केवल शुद्ध सत्ता होगी। मनुष्यकी अनुपस्थितिके कारण सौन्दर्य, शिवत्व या सत्यकी भाषामें उसकी व्याख्या नहीं हो सकेगी। जो है वह अव्याख्येय है, उसमें कोई व्याख्या नहीं है, व्याख्याएँ तो उसके ऊपर हमारे आरोहण हैं। सत्तामें कोई व्याख्या नहीं, सभी व्याख्याएँ मनुष्यके मनमें हैं।

जिस भाँति शुद्ध सत्ता अविभाज्य और

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्ड है उसी भाँति मनुष्यकी शुद्ध चेतना भी अखण्ड और एक है। बुद्धि, अन्त-करण और हृदय, इन खण्डोंमें स्वयंकी चेतनाको बाँटनेसे ही विश्वसत्ताके भी खण्डित दर्शन होते हैं। अखण्ड अनुभूतिके लिए स्वयंकी सत्ताका भी अखण्ड होना आवश्यक है। अखण्ड चेतना ही अखण्ड सत्यको जान और अनुभव कर सकती है। निश्चय ही अखण्ड चेतनामें न तो बुद्धि होगी, न अन्तःकरण और न हृदय। यद्यपि जो होगा उसमें ये तीनों समाविष्ट होंगे। वह अखण्ड चेतना इन खण्डोंके मात्र जोड़से कहीं अधिक होगी। किसी एक खण्डमें तो वह समाप्त है ही नहीं, सभी ज्ञात खण्डोंके जोड़पर भी उसकी समाप्ति नहीं है। खण्डके माध्यमसे जो जाना जाता है वह अधूरा तो होता ही है साथ-ही-साथ असत्य भी क्योंकि वह न केवल स्वयंके सत्य होनेकी घोषणा करता है वरन् अन्य खण्डोंसे ज्ञात तथ्योंके असत्य होनेका दावा भी उसमें निहित होता है। प्रत्येक खण्डकी घोषणा है कि 'यही सत्य है', 'वह भी सत्य हो सकता है', इसका निषेध उसमें निहित है।

'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' के साथ भी यही हुआ है। किसी भी दृष्टि-बिन्दुसे देखनेपर, किसी भी कोणपर खड़े होकर देखनेपर समग्र-को कभी नहीं जाना जा सकता। दृष्टिकी सीमा दृश्यको भी सीमित कर देती है। असीमको जाननेके लिए समस्त दृष्टि-बिन्दुओंको छोड़कर देखना आवश्यक है। घरके झरोखोंसे भी आकाश देखा जा सकता है लेकिन आकाश-की समग्रताको देखनेके लिए तो सभी दीवारों-को गिरा देना जरूरी है। बुद्धि, अन्तःकरण और हृदय सभीकी अपनी सीमाएँ हैं। बुद्धि विचारसे ऊपर नहीं उठती, हृदय भावोंसे घिरा है, अन्तःकरण भी शुभ-अशुभके द्वन्द्वसे परि-सीमित है। यदि इन तीनोंके ऊपर उठा जा सके तो ही उसे जाना जा सकता है जो 'है' स्वयंकी सीमाओंका यह अतिक्रमण सम्भव है, क्योंकि स्वयंकी ही सत्ताके केन्द्रपर असीमका और अमितका आवास है। ऐसे अतिक्रमणको ही पतंजलिने 'समाधि' कहा है। ऐसी अनुभूतिमें ही सत्य, शिव और सुन्दर अपना विरोध खो देते हैं। विरोध तो उनमें था ही नहीं, वह तो था दृष्टिकी सीमाओंमें। दृष्टिकी सीमाएँ गिरीं तो वहीं असीमका प्रवेश हो जाता है। तब जो जाना जाता है वह न तो अकेला सत्य है, न अकेला शिव, न अकेला सुन्दर, वह तो तीनों है। 'तीन' भी वस्तुतः हमारी भाषाका भेद है, वह तो एक ही है। जो एक है वह जबतक हमारा चित्त अनेक है तबतक अपरिचित रहता है। चित्तकी एकता समाधिमें फलित होती है। समाधि समग्रकी अनुभूतिका द्वार है। समाधिकी उपलब्धिका मार्ग है : योग। योगका अर्थ ही है जोड़ना, स्वयंके चित्त खण्डोंको जो जोड़ देता है वही योग है। इसलिए न तो कवियोंने, न नैतिक पुरुषोंने और न दार्शनिकों-ने ही जिस सत्यको जान पाया है—वही सत्य योगसे अखण्ड हुए चित्तके समक्ष अपने सब रहस्योंका उद्घाटन कर देता है।

(रजनीशजीके विचारोंपर आधारित—

द्वारा : उर्मिला)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

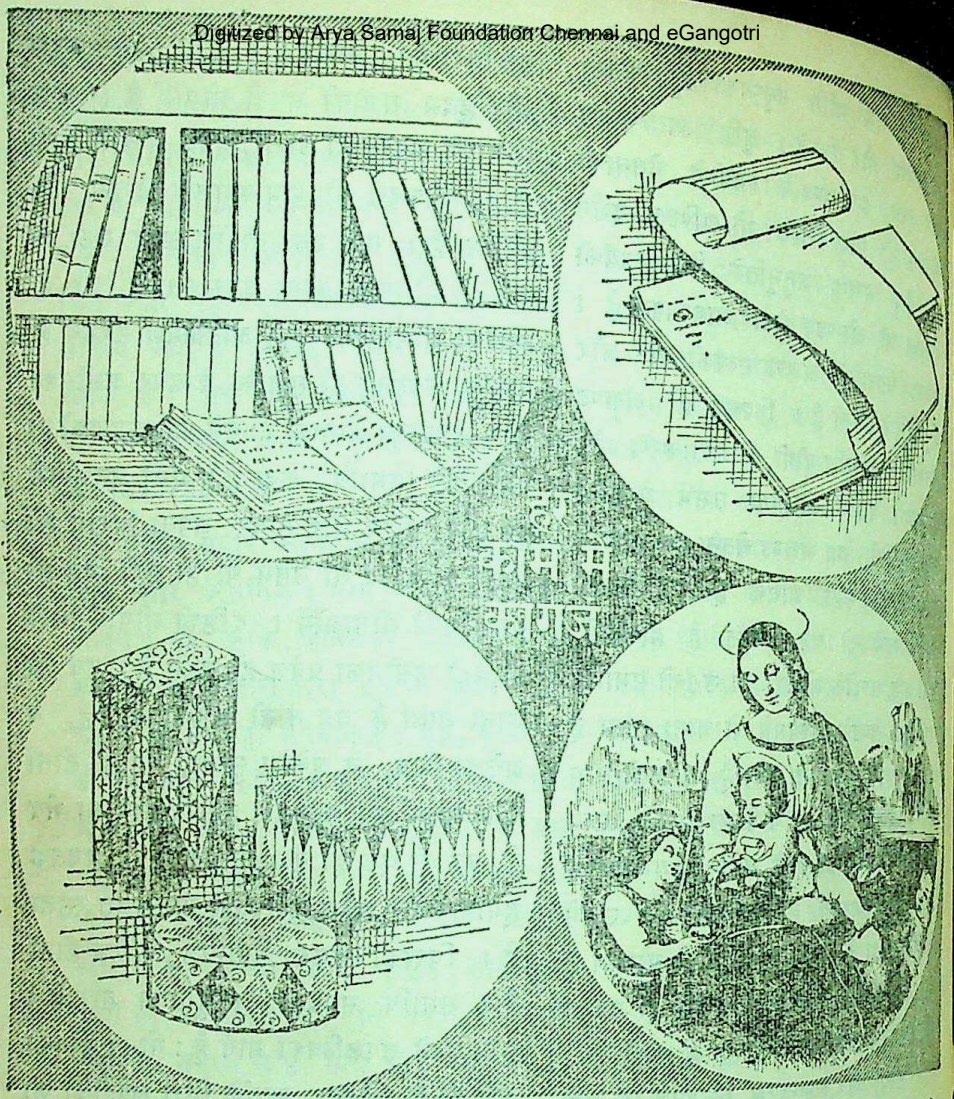

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेनल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनकेअलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये आज पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही हमसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोष्ठी

पी० ई० एन० नगर : आधुनिक अमरीकी कविता : जैक लडविगसे बातें...

प्रश्न : प्रो० लडविग, आपके विचारमें अमरीकन कवितामें आधुनिक युग कबसे, अथवा, किन कवियोंसे आरम्भ हुआ ?

उत्तर : आधुनिक कविताका उद्भव अमरीकामें टी० एस० इलियट व एजरा पाउण्डसे हुआ। उन दोनों कवियोंने वर्तमानके साथ-साथ व्यतीतपर भी दृष्टिपात कर यह खोजनेका प्रयत्न किया कि वास्तवमें ही अमरीकी सभ्यताकी अपनी यदि कोई विशेषता है तो क्या। सभ्यता-संस्कृतिकी खोज उन्होंने युरोपियन कविताकी पृष्ठभूमिपर की। कवितामें उन्होंने वर्तमानको निर्धारित करनेमें कविताको मापदण्ड माना।

प्रश्न : इलियट और पाउण्डका प्रभाव आप अब कितना मानते हैं ?

उत्तर : हमारी पीढ़ीसे दोनों ही कवियोंका प्रभाव अब उठ रहा है। जो महत्ता उनकी थी वह अब नहीं है।

प्रश्न : विशेष कारण ?

उत्तर : उस स्कूलके कवियोंकी कविता उसी दोषसे ग्रस्त हो गयी जिससे बचनेके लिए युवावस्थामें उन्होंने 'नयी कविता' को जन्म दिया था। दूसरे शब्दोंमें, उनकी कविता भी 'स्टाइलाइज्ड' होकर रह गयी। हमारी पीढ़ीको अब इलियट व पाउण्डकी कविता 'बूढ़ों' की कविता लगती है। नयी पीढ़ी

जैक लडविग : स्टेट युनीवर्सिटी ऑव न्युयॉर्क, स्टोनी ब्रुकमें अँगरेज़ीके प्राध्यापक

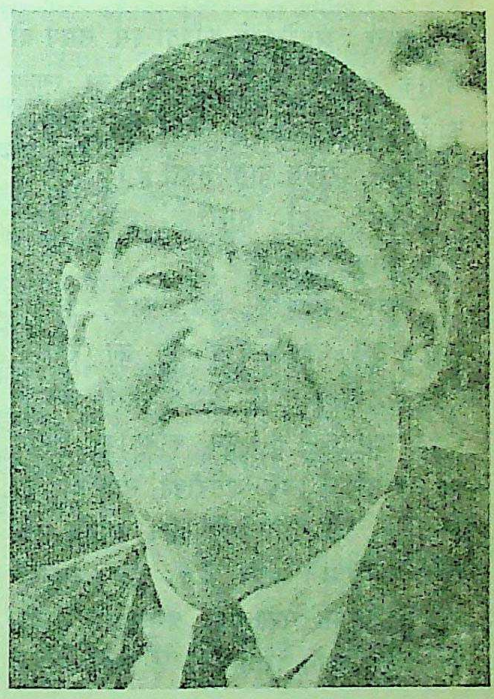

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानती है कि संसार बहुत अधिक उलझा है और इलियट-पाउण्डकी कविता उन सब उलझनोंको स्थान नहीं दे पायी है। हमारा अब उनमें विश्वास नहीं रहा है। इलियट-पाउण्डसे अधिक प्रभाव अभी विलियम बटलर येटसका है।

प्रश्न : किन विशेषताओंके कारण ?

उत्तर : येटस उतना 'सनकी' नहीं था। अपनी कवितामें येटसने उस वास्तविकताको सम्बोधित किया है जिसे पहचाननेमें हमें कोई कठिनाई नहीं होती। इलियट और पाउण्डका संसार, इसके विपरीत, बहुत अवास्तविक, बहुत 'पोज़्ड' है, और हम उस संसारको पथ-प्रदर्शकके रूपमें नहीं अपना सकते।

प्रश्न : आजकल कविताकी क्या स्थिति है ?

उत्तर : अमरीकामें कविता इस समय दो श्रेणीके कवियोंमें बँटी है। पहला स्कूल लावॅल-जैसे कवियोंका है कि जो ठेठ अमरीकी सभ्यताको धरातल मान चलते हैं।

प्रश्न : यहाँ 'अमरीकी' शब्दसे किस विशेष भावका बोध है ?

उत्तर : इतिहास, देश, काल, इत्यादि सभी। इस स्कूलके कवि जॉन क्रो रैनसम, एलन टेट, जॉन पील बिशॅप, हार्ट क्रेन व राबर्ट फ़्रास्ट-जैसे हैं। इन कवियोंका विषय वह सब कुछ है जिसे 'अमरीकी' संज्ञा दी जा सकती है, जो 'अमरीकी' है। लावॅल इस स्कूलके प्रधान कवि हैं। इस स्कूलके कवि युरॅपियन सभ्यताके प्रभुत्वको अस्वीकारते हैं। अपने देशमें जो है वही उनके लिए महत्त्वपूर्ण है। इसका एक कारण यह भी है कि अमरीका बहुत शक्तिशाली देश हो गया है, जब कि इलियट व पाउण्डके समय यह अभी उन्नतिके पथपर ही था।

प्रश्न : दूसरा स्कूल आपके विचारमें कौन-सा है ?

उत्तर—'बीट' कवियोंका। ये कवि गिन्सबर्गके इर्द-गिर्द रहनेवाले कवि जार्ज कारसो, फरलीन गेटी, क्रीली इत्यादि-जैसे कवियोंका है। ये कवि हर प्रकारकी रूढ़ियों, विचारों इत्यादिमें दोष-ही-दोष देखते हैं। वे लोग अपनेको 'प्रयोगवादी' से भी अधिक आगे पूँजीवादी सभ्यताकी हर मान्यताकी जड़ खोदनेमें लगे हैं। यहाँ तक कि विश्वविद्यालय, सरकार, गीत, छन्द-बद्ध कविताका ये लोग विशेष रूपसे बहिष्कार करते हैं। पहले स्कूलके कवि, इन बीट कवियोंको 'अल्पजीवी' मानते हैं। बीट कविता, (यदि वह लोग उसे कविताकी संज्ञा देनेको तैयार हों तो) उनके विचारमें कोरा 'फ़ैड' या फ़ैशन' है। दूसरी तरफ़ बीट कवि, इन कवियोंको 'बाबू लोग' 'पूँजीपति' इत्यादि कहते हैं, उन्हें थका, बूढ़ा व वास्तविकतासे दूर मानते हैं।

प्रश्न : आलोचक वर्गका 'बीट-साहित्य' के प्रति क्या दृष्टिकोण है आपके विचारमें ?

उत्तर : बहुत कम आलोचक बीट-साहित्यको गम्भीरतासे अपना पाये हैं, इसीलिए बीट साहित्यके, बीट ही आलोचक हैं। केवल एम० एल० रोज़नथाल, अभीतक ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने बीट-साहित्यको साहित्य स्वीकारा है। अन्यथा 'आधुनिक कविता-संग्रहों'में प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीट-कवियोंको अभीतक स्थान नहीं मिल पाया है। उनके कविता-संग्रह अलग निकलते हैं। लुई सिम्पसनने जिन्होंने प्रतिनिधि, आधुनिक कविताका संग्रह हालमें निकाला है, एक भी बीट कविको शामिल नहीं किया।

प्रश्न : आप एक लेखक, आलोचक व अंगरेज़ीके प्राध्यापकके नाते इस दृष्टिकोणसे, जो कि 'आलोचक वर्ग' ने बीट-साहित्यके प्रति अपनाया है, कहाँतक सहमत हैं ?

उत्तर : नहीं, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। निष्करणको मैं लाभदायक नहीं मानता। इससे जो विचारोंका मतभेद उपजता है वह हमारी पश्चिमी सभ्यताके प्रतिकूल है।

प्रश्न : भविष्यमें किसी समझौतेकी आशा की जा सकती है ?

उत्तर : अवश्य। श्री रोजनथालने बीट-साहित्यको स्वीकारा है। यह एक अगला चरण है।

प्रश्न : बीट-साहित्यमें वह सब क्या विशेष अवगुण या गुण है जो उनके बहिष्कृत किये जानेका कारण है ?

उत्तर : बीट-साहित्य मात्र 'प्रतिवाद' साहित्य है। शिकायत उनका मुख्य विषय है, कलामें जो कलापक्षके प्रति धैर्य-बोध होना चाहिए वह उनमें नहीं है। बीट-गद्य और पद्यमें विशेष कोई रेखा नहीं रह गयी है। इन्हीं कारणोंसे उनके प्रति साधारणतः 'अविश्वास' का भाव आलोचकोंमें है। आलोचक उन्हें 'ज़िम्मेदार' लेखक माननेको तैयार नहीं हैं।

प्रश्न : इसका अर्थ क्या यह लें कि आलोचकोंके विचारमें बीट-साहित्य टिकनेको नहीं है ?

उत्तर : कुछ ऐसा ही। पर युवा पीढ़ीका तरुण विद्यार्थी-वर्ग इस समय बीट-साहित्यमें अधिक रुचि ले रहा है। आजका युवक बीट-साहित्यको अपनी आवाज़का प्रतिनिधित्व करता पा रहा है, उसमें अधिक वास्तविकता व निकटता पाता है। बीट-साहित्य समाजकी रूढ़िको व्यक्तिगत अनुभवके बलपर चुनौती देता है, इस चुनौतीमें युवक-वर्ग आकर्षण पाता है।

प्रश्न : आपके विचारमें अगले कुछ वर्षोंमें अमरीकी कविता क्या रूप ले पायेगी ?

उत्तर : दोनों वर्गोंकी कवितामें किसी-न-किसी प्रकारका समझौता अवश्यम्भावी है। दोनों अलग-अलग एक-दूसरेसे बिना प्रभावित हुए नहीं चल सकते। बीट-साहित्यने 'इच्छा' 'आवश्यकता' व 'व्यक्ति' को महत्ता दी है। वास्तविकताको उन्होंने अनुभवके धरातलपर तोला है, विचारोंके नहीं। पर अनुभव और विचारका समन्वय जब होगा, दोनों स्कूल एकका रूप तब लेंगे ही। यही समन्वय, मिश्रण, आनेवाले सालोंकी कविताका रूप, मैं देखता हूँ।

—सुनीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

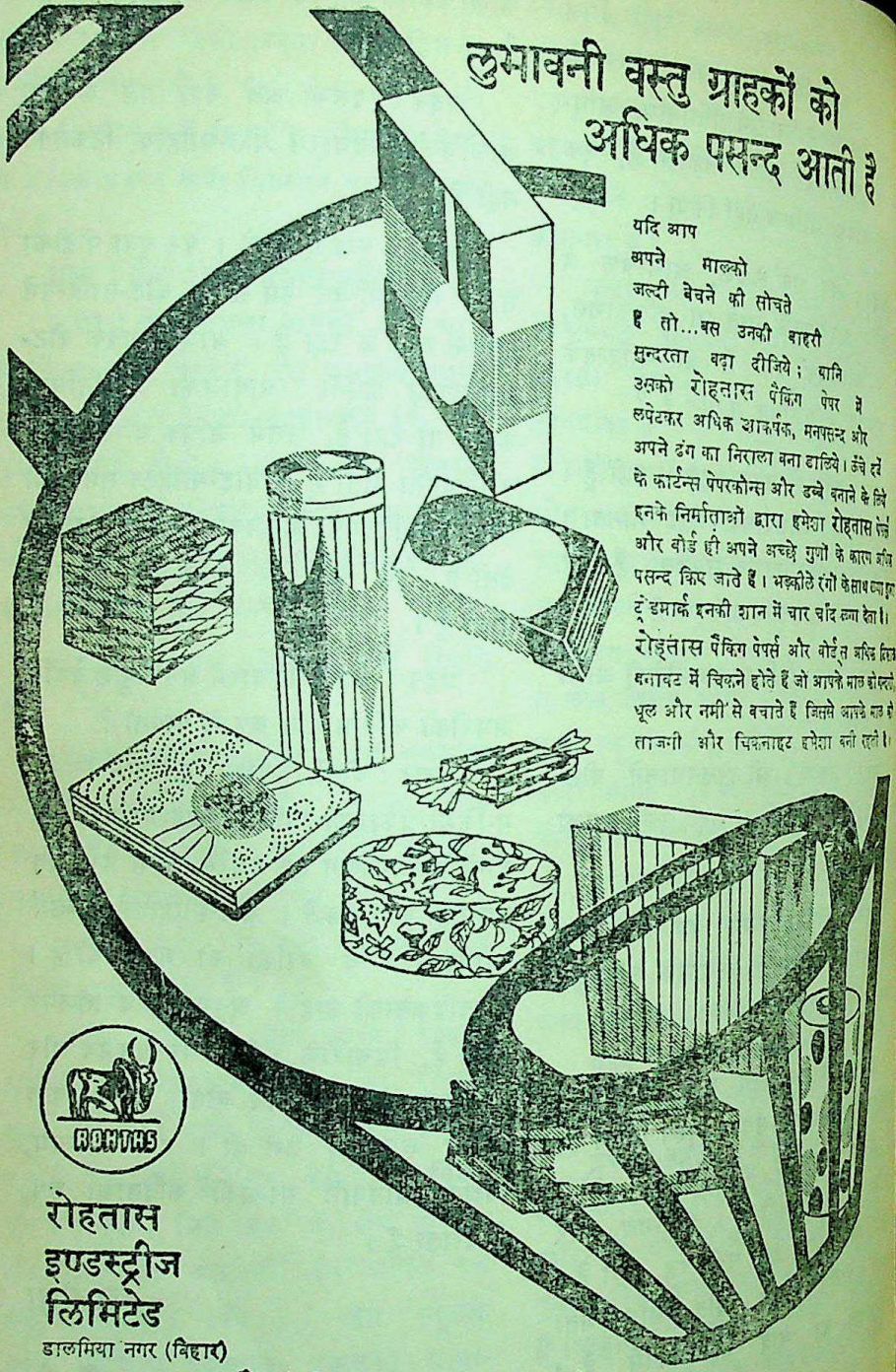

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकौन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास बोर्ड
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण ज़्यादा
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ व्यापार
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक खिंचाव
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को धूल
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)
मैनेजिंग एजेंट्स : साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-संचेतनाका बदलता फ़ोकस

—दुष्यन्त कुमार

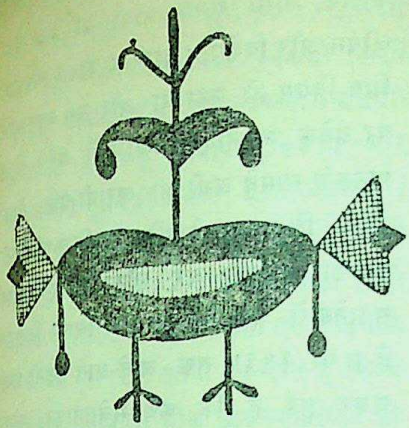

'पैंसठके उपन्यास

१-मुक्तिबोध
—जैनेन्द्र कुमार

२-टूटा टी सेट
—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

३-जुलूस
—रेणु

४-चौदह फेरे
—शिवानी

५-एक और सब
—प्रेम कपूर

६-ओस और माटी
—डॉ० रमानाथ त्रिपाठी

७-प्यासा पानी
—विमला रैना

८-सफ़रके साथी
—सुनीता

९-अठारह सूरजके पौधे
—रमेश बक्षी

अगर यह सच है कि किसी वर्ष-विशेषमें प्रकाशित उपन्यास उस कालावधिकी रचना-प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व कर सकते हैं तो मैं कहना चाहूँगा कि सन् '६५ हिन्दी उपन्यासके लिए बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष रहा। 'ज्ञानोदय' से प्राप्त नौ उपन्यासोंमें-से एक भी उपन्यास हिन्दी उपन्यासकी प्रगति या सम्भावनाओंके प्रति आश्वस्त नहीं करता। एक छोटा-सा बिम्ब जरूर उभरता है जैसे किसी मध्यवर्गीय परिवारने अपने घरकी दीवारोंसे '६४ के कलेण्डर उतारकर '६५ के लगा लिये हैं। नयी तसवीरोंके कुछ रंग अपनी ओर खींचते भी हैं पर अधिकांशसे विकर्षण पैदा होता है तथा बासीपनके अलावा और कोई अनुभूति नहीं जागती।

इन प्रकाशित उपन्यासोंके रचनाकारोंमें कुछ अच्छे और सुपरिचित नाम भी हैं जैसे जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रेणु, रमेश बक्षी, शिवानी और प्रेम कपूर तथा कुछ अल्प परिचित और अपरिचित भी जैसे विमला रैना, सुनीता और डॉ० रमानाथ त्रिपाठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन आश्चर्य होता है यह देखकर कि अपनी बात कहनेके लिए सबने नारी-पुरुष और दाम्पत्य जीवनके बदलते सम्बन्धोंको ही अपना आधार बनाया है। इसीलिए विवाहकी संस्थाकी रूढ़ियोंके प्रति असन्तोष और सामाजिक तथा नैतिक वर्जनाओंके द्वन्द्व इन उपन्यासोंमें अनेक रूपोंमें उभरे हैं। अधिकांश रचनाओंमें कहीं पति किसी दूसरी स्त्रीके कारण तो कहीं पत्नी किसी दूसरे पुरुषके कारण उस मानसिक ऊहापोह और संकटको झेलते हैं जो पारस्परिक मर्यादा और नैतिकताके लिए 'खतरा' बन गया है।

प्रस्तुत उपन्यासकारोंमें-से अपनी-अपनी समझ और सामर्थ्यके अनुसार किसीने इस खतरेका स्वागत किया है तो किसीने तिरस्कार। किसीने विवाहकी पारम्परिक संस्थाकी अनिवार्यताके प्रति कड़ुवी प्रतिक्रिया व्यक्त की है तो किसीने उससे चिपटे रहनेकी बेबसी। और इस तरह पात्रोंकी आधुनिकता और परम्परासक्तिके सन्दर्भोंमें आधुनिक दाम्पत्य जीवनके ऐसे पक्षोंका उद्घाटन हुआ है जिनसे यह बात एकदम साफ़ होकर उभरती है कि विवाहके भारतीय आदर्शकी इमारतमें दरारें पड़ गयी हैं। पति-पत्नीके बीच परम्परा और विश्वासका सेतु टूट गया है या टूटनेवाला है और अधिकांश कथाकार इस सेतुके टूटने या टूटते जानेकी पीड़ा या परिणामोंके प्रति जागरूक और सचेत होकर अपनी-अपनी दृष्टिसे इतिहासको देख रहे हैं।

हिन्दी कथा-साहित्यमें, प्रेमचन्दोत्तर कालमें, ऐसा समय आया था जब घरेलू जीवन और विशेषतः दाम्पत्य जीवन लेखकोंका प्रिय विषय हो उठा था और उस भाव-भूमि पर अनेक रचनाएँ लिखी गयी थीं। हिन्दी पाठकके सामने अभी भी शराबी पति, वेश्यागामी-पति, जुआरी पति, ज़ालिम-पति और रातको देर-देरसे घर लौटने और पत्नीको सतानेवाले पतियोंके अनेक चित्र विद्यमान हैं। पर १९६५ तक आते-आते इतनी प्रगति ज़रूर हुई है कि कथा-संचेतनाका फ़ोकस दाम्पत्य-जीवनके पारस्परिक समायोजन (एडजस्टमेण्ट) की समस्यासे हटकर इस प्रश्नपर आ टिका कि आधुनिक युगकी नैतिकतामें पारम्परिक आदर्शों और मर्यादाओंका मूल्य क्या है और क्या अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कोंकी संस्कृतिमें पारम्परिक विवाहकी संस्था अपनी सार्थकता बनाये रख सकी है?

प्रस्तुत उपन्यासोंमें रेणुको छोड़कर शेष सभी लेखकोंने जाने-अनजाने इन प्रश्नोंको छुआ है क्योंकि इसी भावभूमिपर इन प्रश्नोंकी एकदम उपेक्षा कर जाना हद दरजेका पिछड़ापन होता। इसलिए कहीं अनायास और कहीं सायास भावसे इस समस्याने लेखकोंका ध्यान आकृष्ट किया है।

इस प्रसंगमें यह सोचना कि महिला-उपन्यासकारोंने समस्यापर अधिक सही और सार्थक ढंगसे विचार किया होगा, स्वाभाविक था। किन्तु यह भी अस्वाभाविक नहीं लगता कि उन्होंने समस्याको निहायत सतही तरीक़ेसे बँधे-बँधाये रूपोंमें देखा है, सही परिप्रेक्ष्यमें नहीं। शिवानीका 'चौदह फेरे', जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का 'प्यासा पानी' और सुनीताका 'सफ़रके साथी' तीनों उपन्यास किसी-न-किसी रूपमें विवाहित नारीकी तीन विभिन्न मनःस्थितियों-को उठाते हैं किन्तु तीनोंके दृष्टिकोण और समस्याओंसे जूझनेकी क्षमता अलग-अलग है। शिवानी यदि क़िस्सागोईके शौक़में समस्याको काफ़ी हद तक नज़र-अन्दाज़ कर जाती हैं तो विमला रैना पारम्परिक नैतिकता एवं रूढ़ियोंके सांस्कारिक अंकुशसे इतनी सन्त्रस्त हैं कि वे तथाकथित मर्यादाकी लीक छोड़नेको तैयार ही नहीं। अलबत्ता एकदम नयी लेखिका सुनीता बुहर अपने उपन्यासमें प्रत्यक्ष या परोक्ष, नैतिक या सामाजिक कैसी भी वर्जनाओंसे प्रभावित हुए बिना, किसी हद तक सीधे समस्यासे जूझी हैं। 'सफ़रके साथी' की कहानी बड़ी सीधी-सी है—एक पत्नी है नीरजा। विदेशमें अपने पतिके साथ सुखी और सम्पन्न जीवन बिताती है। होनेवाले बच्चेको लेकर दोनों तरह-तरहकी कल्पनाएँ करते हैं। मगर अन्ततः होता यह है कि एक साधारण दुर्घटनावश गर्भपात हो जानेसे उनके सारे स्वप्न बिखर जाते हैं। काफ़ी समय तक अस्पतालमें रहनेके बाद जब नीरजा लौटती है तो एक ऐसी रिक्तता और उदासी उसमें घर कर जाती है कि उसका सारा व्यवहार और आचरण यन्त्रवत् और निर्जीव-सा हो जाता है। वह जीवनकी ऊष्मा खो बैठती है। प्यार और आवेशके प्रति सहज प्रतिक्रिया बन्द कर देती है और उसकी इस जड़तासे परेशान होकर, सुकान्त, उसका पति, उसे जहाज़से स्वदेश भेज देता है, इस आशामें कि शायद घर जाकर वह अपने ग़मको भूल सके। वस्तुतः प्रारम्भिक अंशोंकी यह कहानी न केवल छिछली भावुकतासे भरी हुई है, बल्कि पूरे उपन्यासमें एक चिप्पीकी तरह लगती है—आरोपित और गढ़ी हुई। शायद लेखिकाने इसको गढ़ना इसलिए ज़रूरी समझा कि वह नीरजाको जहाज़पर चढ़ानेसे पहले ज़रूरी तौरपर मानसिक रूपसे जड़ और प्रतिक्रियाहीन सिद्ध कर देना चाहती थी, ताकि जहाज़पर धीरजसे परिचय हो जानेके बाद, धीरे-धीरे उसमें लौट आनेवाली ज़िन्दगी अपने पुन-र्जागरणका औचित्य सिद्ध कर सके।

कहा जा सकता है कि मोटे तौरपर लेखिकाको अपने मन्तव्यमें सफलता मिली है और धीरजके सम्पर्कमें आनेके बादसे नीरजाके चरित्रका रेखांकन अपेक्षाकृत सधी हुई क़लमसे हुआ है। जहाज़के सफ़रमें धीरज और नीरजा-की मैत्रीका विकास, सहजता, निश्छलता और आत्मीयताके साथ जितनी वस्तुपरक दृष्टि और जितना कलात्मक संयम माँगता था उतना लेखिकाने उसे दिया है। और किसी नयी क़लमके लिए यह मामूली उपलब्धि नहीं कि एक बहा ले जानेवाले प्रसंगको वह संयम और सावधानीसे चित्रित कर पायी है। धीरज तथा नीरजाके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंमें सहज मानवीय उद्वेगोंके अलावा उसने किसी भी नैतिक या सामाजिक वर्जनाको हावी नहीं होने दिया है और ये सम्बन्ध अनायास ही एक सहज स्वीकार्य स्थितिके रूपमें नयी पीढ़ीकी नैतिक मान्यताओंके विकासपर भी रोशनी डालते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि अधिकसे अधिक चालीस-पचास पृष्ठोंकी एक लम्बी कहानीको उपन्यासका रूप देकर लेखिकाने अपने शिल्प-सामर्थ्यका अच्छा परिचय नहीं दिया और न ही वह सुकान्तके दाम्पत्य-जीवनके प्रारम्भिक अंशोंको प्रामाणिकता दे पायी है; तथापि उसकी भाषा और उसके चिन्तनकी दिशा साफ़ है। उसमें परम्पराकी धुन्ध और कुहासा उतना नहीं है जितना क़लमका अधकचरापन। इसलिए सुकान्तकी पत्नी नीरजाके चरित्रांकन-द्वारा, बिना किसी नैतिक संकटके वह यह कहनेका साहस कर सकी है कि रुद्ध और बुझे हुए जीवनको जागृत और जीवित करनेमें प्रेम या मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंकी एक विशिष्ट भूमिका हो सकती है।

अपनी साधारण क़लमसे उसने एक जीवित और ज्वलन्त प्रश्नको उठानेकी कोशिश की है लेकिन इसके विपरीत शिवानीने किसी प्रश्नको छुआ ही नहीं। उसके सामने समस्या किसी समस्यासे निपटनेको नहीं बल्कि अपने अनुभवोंको लिख डालने-भरकी है। उन अनुभवोंमें आत्मानुभूत आँखों देखी घटनाओंसे लेकर कल्पना-प्रसूत और सुनी-सुनायी लोक-कथाओं तक कुछ भी हो सकता है। उन्हें आधुनिकताका कोई कष्ट नहीं है, रोचकताकी फ़िक्र है। इसलिए लगता ऐसा है कि 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित अपने इस 'लोकप्रिय' उपन्यास 'चौदह फेरे' को उठाते हुए उनके सामने दो उद्देश्य थे—एक मध्यवर्गीय पहाड़ी-जीवनकी गार्हस्थिक रूढ़ियों, रीति-रिवाजो और शैलियोंका सजीव चित्रण और दूसरा उच्चवर्गकी तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगीके सद्-असद् पक्षोंका निरूपण। इसके लिए उन्होंने कथावस्तुको सुविधानुसार ढाला है और पूरी कहानीको संयोगों और भाग्यके चमत्कारोंसे रंग दिया है। एक पहाड़ी लड़का (कर्नल) पटसनके एक लखपति अँगरेज़ व्यवसायीकी सारी सम्पत्तिका स्वामी बन बैठता है और राजाओं-महाराजाओं-जैसी शानदार और वैभवशाली ज़िन्दगी गुज़ारनेवाले उस कर्नलकी पत्नी पतिके साथ तालमेल न बैठा पानेके कारण संन्यासिनी हो जाती है और वह भी ऐसी सिद्ध कि चेहरेपर "विकार, हर्ष, विषाद, चिन्ता, आवेगकी रेखा तक नहीं" रहती। मल्लिका-जैसी समाजकी परवाह न करनेवाली सहृदया और ममत्वपूर्ण नारी कलकत्तेसे दिल्ली पहुँचकर संयोगसे आधुनिक क़िस्मके वेश्यागृहकी स्वामिनी बन बैठती है और फिर संयोग कि भाग्य अहल्याको भी वहीं ले आता है।

अहल्या यानी कर्नलकी बेटी, जिसके चारों ओर उपन्यासका कथानक बुना गया है, भाग्य और संयोगके सैकड़ों करिश्मे देखती है। ललिताका सम्मोहित होकर एक प्रौढ़ पुरुषसे प्रेम करनेके लिए विवश होना और आत्मघात करना या मल्लिकाका रोगसे पीड़ित होना और कीड़ों-सी ज़िन्दगी बसर करना कम चमत्कारिक घटनाएँ नहीं हैं। यही नहीं, वह जिस व्यक्तिसे प्रेम करती है वह एक फ़ौजी अफ़सर है, जिसकी मृत्युकी सूचना भी आ चुकी है; सबने तेरहवीं भी मना ली है, पर एकाएक तार आता है कि चीनियोंने जो क़ैदी छोड़े हैं उनमें राजू भी है। उधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी औरसे अहल्याके विवाहकी तैयारियाँ पूरी हो जाती हैं और बारात आनेवाली होती है मगर ऐन वक़्तपर उसकी एक दक़ियानूसी ताई सहसा आधुनिका बन जाती है और उसे सारी सुविधाएँ देकर राजूके पास भाग जानेकी प्रेरणा देती है। और अन्तमें जैसा कि ऐसे उपन्यासमें होना ही था, बड़े नाटकीय ढंगसे अहल्याका विवाह राजूसे हो जाता है।

कहना न होगा कि उपन्यासमें ग़रीब, अमीर, पागल, सनकी, देशी, विदेशी, रुढ़िग्रस्त, आधुनिक, पतित और कर्त्तव्यनिष्ठ हर प्रकारके पात्र हैं। घटनाओंका ताना-बाना ऐसा ज़बरदस्त है कि सामान्य पाठक बोर हो ही नहीं सकता। क़िस्सागोईके अन्दाज़में थोड़ी-सी साहित्यिकताका पुट, उपन्यासको लज़ीज़ बना देता है। पाठक उस जीवनके सारे बाह्य उपादानोंको सामने रखा पाता है जिनके बारेमें उसकी उत्सुकता जाग्रत हो सकती है। दूसरे शब्दोंमें लेखिका घटनाओंके चित्रणमें बाह्य परिवेशको समग्रतामें उठाती है किन्तु स्थितियोंकी भीतरी तहों तक पहुँचनेवाली दृष्टि और सूझ-बूझसे काम नहीं लेती। शायद वह दृष्टि उसके पास है ही नहीं। उसकी मनोवैज्ञानिक पकड़ इतनी कमज़ोर है कि वह किसी भी पात्रके अन्तर्द्वन्द्वको पकड़नेका साहस नहीं जुटा पायी है। परिणामस्वरूप एक भी पात्र सही सन्दर्भोंमें अपना आकार ग्रहण करता प्रतीत नहीं होता और न कोई ऐसा चरित्र उभरता है जो देर तक स्मृतिमें पड़ा रहे।

अहल्या, जिसके कारण लेखिकाने अनेक पात्रोंको नष्ट कर दिया और जिसे वह उच्च वर्गकी एक आदर्श लड़कीके रूपमें चित्रित करना चाहती थी एक नक़ली, आदर्शवादी और गढ़ी-गढ़ाई मूर्ति बनकर रह गयी है। उसकी मनःस्थितिकी रेखाओंको ज़्यादा वस्तुवादी और यथार्थ धरातलपर उभारनेकी ज़रूरत थी। मल्लिकाके चरित्रका उठान देखकर लगा था कि लेखिकाके पास यथार्थ-वादी दृष्टि है। एक पत्नीके रूपमें मल्लिका एक ओर अपने रुग्ण पति और उसके परिवार-के भाग्य-पोषणके लिए ईमानदारीसे पैसा कमाती है तो दूसरी ओर कर्नलकी प्राइवेट सेक्रेटरीके रूपमें उसकी रखैलकी भूमिका अदा करते हुए न केवल कर्नलके प्रति बल्कि उसकी लड़कीके प्रति भी निश्छल प्रेम रखते हुए दुहरी ज़िन्दगीका अभिशाप झेलती है। लेकिन लेखिकाने उसके संकट और उसकी परिस्थितियोंके दर्दको तो समझा नहीं उलटे उसे संयोगोंके प्रवाहमें डालकर वेश्यागृह और गुप्त रोगोंमें फँसा दिया और इस प्रकार पाठिकाओंको चेतावनी दी कि बहनों सावधान! ऐसे कर्मोंका फल ऐसा होता है।

शिवानी लोकप्रियताकी लीकपर हैं। उनकी ट्रेजेडी यह है कि उनके पास सम्पन्न अनुभव है, चीज़ोंको बाहरसे देखनेवाली साफ़ दृष्टि है किन्तु यथार्थकी भूमिपर प्रयोग करने और 'रिस्क' उठानेकी सामर्थ्य उनमें नहीं है। लिहाज़ा जहाँ कथामें आधुनिकताका कोई संकटबिन्दु आया भी है वहाँ उन्होंने पार-म्परिक लटकों-खटकोंकी ओटमें ही उसे झेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उपन्याससे ऐसा नहीं लगता कि आधुनिकता या सम्बद्ध प्रश्नोंका ज़रा-सा भी दबाव वे महसूस करती हैं। इसलिए ये आशा भी नहीं बँधती कि उपन्यासके कच्चे मालके रूपमें इतनी काफ़ी सामग्री होते हुए भी वे कभी कोई अच्छा उपन्यास दे सकेंगी।

इसी दृष्टिका दूसरा छोर है विमला रैनाका 'प्यासा पानी' जो प्रकाशकीय वक्तव्यके अनुसार "आधुनिक युगकी पाश्चात्त्य-संस्कृति और भारतीय परम्पराओंके संघर्षमें उलझी एक नारीकी कहानी है।....मालतीके पतिका प्यार कुछ ऐसा है जो उसकी सर्व-शारीरिक और मानसिक शक्तिको पीकर ऐसा सन्तुष्ट हो जाता है कि उसकी तृप्ति यह देख भी नहीं पाती कि पिलानेवाले पात्रके भी प्राण हैं—इच्छाएँ हैं, प्यास है। मालतीकी कुण्ठा चीख उठती है, यह पानी प्यासा है। पर इस चीत्कारकी प्रतिध्वनि उसके अन्तस्तलमें ही रह-रहकर घुमड़ती है।" सीधे-सादे शब्दोंमें समस्या यह है कि पति पत्नीसे अपनी आवश्यकताएँ तो पूरी कर लेता है पर इस बातकी ओर ध्यान नहीं देता कि पत्नीकी भी कुछ अपेक्षाएँ हैं। मालती अपने पति प्रभाकरकी उच्छृंखलता और उसकी नारी-सम्बन्धी कमज़ोरीसे क्षुब्ध और आहत है और मनमें कहीं बहुत गहराईमें प्रभाकरके मित्र आनन्दकी ओर आकृष्ट है। लेकिन वह एक पतिव्रता पत्नी है, इसलिए आनन्दसे प्रेम करते हुए भी उसे मर्यादित रखती है। उसकी बीमारीमें संयोगवश जब आनन्द उसकी कापी देखता है तो उसे उसके प्रेमकी गहराईका अनुभव होता है। आनन्द मालतीको मर्यादाकी रक्षाका वचन देता है। उधर मालती लेखिकाके भारतीय आदर्शका बराबर पालन करती है और प्रभाकरकी चरित्रहीनतासे कुढ़ती हुई कई बार टूटनेको होती है किन्तु आनन्दका प्रेम आदर्शकी मशाल लिये खड़ा मिलता है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अनेक हिन्दी उपन्यासोंकी भाँति इस उपन्यासका गला भी आदर्शवादने ही दबा रखा है। हलाँ कि समस्याकी जितनी सतही पकड़ और उसका भारतीय आदर्श नामक जितना सस्ता समाधान लेखिकाने दिया है, उसे देखते, लेखिकासे किसी श्रेष्ठ कृतिकी आशा करना निरर्थक प्रतीत होता है, फिर भी यह उपन्यास पठनीय बन सकता था—क्योंकि शिवानीकी अपेक्षा रैनाकी दृष्टि ज़्यादा वस्तुपरक है और शायद नाटककार होनेके कारण उनके पात्रोंकी रूप-रेखाएँ भी अपेक्षाकृत ज़्यादा साफ़ हैं। दरअसल इस उपन्यासके सबसे प्राणवान् और जीवन्त चित्र वे हैं जो आदर्शके फ्रेममें फ़िट नहीं हो पाये—यानी वे फूटकर उस ज़ो मूलकथासे छिटककर उभर आये हैं। वैसे रीता और नन्दिताके चरित्र शिवानीके आदित्य-चरित्रोंकी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक और जीवन्त हैं। शेष पात्र भी अपनी जगहों पर खड़े हुए नज़र आते हैं। अभिशप्त भारतीय नारीके रूपमें, नयापन न होते हुए भी, मालती पहचानी हुई और वास्तविक-सी लगती है और यदि उसके जीवनको एक सुखान्त मोड़ देनेकी कोशिश न की गयी होती तो शायद वह और भी वास्तविक बन पाती।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमला रैनाके उपन्यासके सन्दर्भमें चरित्रोंकी बात मैंने जान-बूझकर इसलिए उठायी है कि अन्य दोनों महिला-उपन्यासकारों-के उपन्यासोंमें हाड़-माँसका कोई दीर्घजीवी इनसान नज़र नहीं आता। हाँ, शिवानीके कर्नलका रोबदाब ज़रूर पाठकको आतंकित करता है पर वह रूप इतना घिसा-पिटा है कि उसकी प्रभविष्णुता कभीकी खत्म हो चुकी है। विमला रैनाके पास चरित्रोंको पकड़ने और समझनेवाली दृष्टि ज़रूर है पर वह सांस्कारिक त्रास और तथाकथित भारतीय आदर्शके कुहासेमें बुरी तरह उलझी है।

श्रीमती रैनाके पास काफ़ी कमज़ोर भाषा है और कथ्य उससे भी कमज़ोर। समस्याको समझनेके नामपर उपन्यासके कथ्यका लुब्बे-लुबाब यह है कि विवाहित भारतीय नारी बदर्जे-मजबूरी किसी पर-पुरुषके प्रेममें फँस जाये, तो भी, उसे चाहिए कि वह पातिव्रत्यका आदर्श न छोड़े। अपने पतिकी उच्छृंखलताओंको वह आंख मींचकर सह ले और उसके अत्याचारोंकी वेदीपर हँसते-हँसते ज़हरकी शीशी गटक जाये। मगर अफ़सोस कि लेखिकाके अनुभव इस कथ्यसे मेल नहीं खाते और उनके चरित्रोंकी वृत्ति इस आरोपित आदर्शके अनुकूल नहीं पड़ती बल्कि यथार्थवादी दिशा चाहती है। इसलिए लगता ऐसा है जिन पात्रोंके साथ लेखिकाने हठधर्मी की है, (नन्दिता, रीता) वे ही पात्र किसी दिन उसे पकड़कर झकझोर देंगे और पूछेंगे, "क्या आप समझती हैं कि इस तरह मालतीके ज़हर पी लेने और बादमें संयोगवश जीवित बच रहनेमें समस्याका हल निहित है ? क्या आनन्दके साथ मालती एक ज़्यादा सुखी सार्थक जीवन न बिताती ? और इस बातकी क्या गारण्टी है कि इस बार माफ़ी माँग लेनेके बाद प्रभाकर अपने-आपको बदल ही लेगा ? यह माफ़ी भावुकताका अस्थायी उच्छ्वास भी तो हो सकती है। फिर इस बातकी भी क्या गारण्टी है कि एक प्रभाकरके बदल जानेसे सारे भारतीय प्रभाकर बदल जायेंगे।"

मैं समझता हूँ समस्याको सही सन्दर्भोंमें देखना ही उसके समाधानकी दिशा खोजना है। पर जहाँ समाधान देना ही आवश्यक हो वहाँ लेखकको कमसे कम अपने प्रति ईमानदार होना चाहिए। मुझे लगता है मालती और आनन्दके सम्बन्धोंको लेखिकाने जिस एकान्त तल्लीनता और मनोयोगसे चित्रित किया है उसमें ईमानदारी है मगर उपन्यासके अन्तको जिस तरह मरोड़ा गया है वह भावुकता और घातक आदर्शवादिताके अलावा पुराने क़िस्से-कहानियोंका सस्ता नाटकीय प्रभाव है।

नया लेखक इन सस्ते प्रभावोंसे मुक्त है—यह एक अत्यन्त शुभ लक्षण है। इस लिहाज़से रमेश बक्षीका 'अठारह सूरजके पौधे' खास अहमियत रखता है। उसमें ऐसे पारम्परिक प्रभावोंका एक छींटा तक नहीं है और लेखकने हर जगह परम्परासे छिटकने और टूटनेकी सायास चेष्टा की है।

यद्यपि वक्तव्यके अनुसार लेखकने उपन्यासमें चार आयामोंकी एक तसवीर देनेकी कोशिश की है, परन्तु बहुत कोशिश करनेपर भी मुझे उसकी वह तसवीर नज़र नहीं आयी;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलबत्ता, एक चीज़ ज़रूर हार्दिकता और सच्चाईके साथ साफ़ तौरपर उभरी है और वह है सामाजिक और ख़ास तौरसे वैवाहिक मान्यताओंके प्रति गहरी घृणा और विवाह-की संस्थाके प्रति गहरी हिक़ारत ! और मैं कहना चाहता हूँ कि यह सच्चापन बक्षीके लेखनमें पहली बार प्रतिबिम्बित हुआ है ।

सामान्यत: उपन्यासकी कहानी एक रेलवे कर्मचारीके पठानकोटसे बम्बई तककी यात्रामें सोचे हुए अतीतकी कहानी है । यह यात्रा भी वस्तुत: बाह्य कम और भीतरी अधिक है, जो खुद एक दूसरी यात्राकी प्रतीक है । नायक फ़्लैश बैकमें अपने अतीतको कुरेदता है—अपने इंजिन ड्राइवर पिताका रोबीला व्यक्तित्व, अपना रेल-यात्रामें हुआ जन्म, रेल-पटरियोंके किनारे, रेलवे बस्तियोंमें, रेल गाड़ियोंके साथ बिताया हुआ बचपन, फिर रेलवेमें माल बाबू-की नौकरी, फिर एक रेलमें ही एक लड़कीसे प्रेम, फिर रेलमें ही टिकिट-चेकरकी नौकरी और रेलमें ही नाश्ता, खाना और सोना और पिताके आदेशसे शादीके फेरमें फँसकर उस खोलीमें रहना जहाँ जलगाँववाली उसकी पत्नी सरसोंके तेलकी बू (?) और सरल कटू-क्तियोंसे उसे तिलमिला देती है और वह घरसे किसी गाड़ीमें बैठकर भाग जानेके लिए बाध्य होता है । गाड़ी यानी रेलगाड़ी उसके पूरे व्यक्तित्वसे जुड़ी है । एक ग़लत गाड़ीमें बैठकर वह उस लड़कीसे भी छूट जाता है जिससे वह प्रेम करता है । इस प्रकार बारीकीसे ग़ौर किया जाये तो एक शादीको छोड़कर उसके सारे कार्य-व्यापार गाड़ीमें ही सम्पन्न होते हैं और उसका जीवन एक तरहसे रेलवेका अंग है । वही रेल-जैसी अनवरत एकरस ज़िन्दगी, रेल-पटरियों-जैसी पूर्व निर्धारित नियति, सिगनलवत् आदेश ! "कहीं कोई झगड़ा नहीं, सबके डिब्बे निश्चित, सबकी जगहें निश्चित, सब कुछ इतना तय, इतना अधिक निश्चित, इतना अधिक पटरीपर कि दूरसे देखनेपर आदमी आदमी नहीं मशीन लगता था ।" और इस रेलकी मशीन-सरीखी ज़िन्दगीको और अधिक यथार्थ बनानेके लिए बक्षीने उपन्यासको इस तरह कन्सीव किया है कि यात्रा करता हुआ नायक अतीतसे ज्यों ही वर्तमानमें आता है, उसे पता चलता है कि यह अमुक स्टेशन है और फिर रेलकी छक-छकके साथ वह अतीतमें खो जाता है। पूरे उपन्यासमें रेलकी आवाज़ इस तरह छायी है कि पाठक अपने-आपको रेलवे-स्टेशनपर खड़ा हुआ पाता है और जैसा कि होता है रेलवे-स्टेशनका वातावरण या रेल-यात्राकी स्थिति कोई बहुत सुखद नहीं होती वैसी ही इस उप-न्यासकी स्थिति भी है ।

उपन्यासका नायक वर्तमानसे बचनेके लिए अतीतमें जाता है और अतीतसे फिर वर्तमानमें आ जाता है । बक्षीने एक बुनियादी सवाल यात्राके महत्त्वका उठाया है कि हम अतीतमें जोनेके लिए विवश हैं क्योंकि वर्तमान इतना सँकरा और छोटा है कि उसमें मुक्त होकर जी नहीं सकते । अतीतके अनुभवोंसे हम वर्तमानको जीने योग्य बनाते हैं और उसकी निरर्थक यात्राओंको भी एक सार्थकता दे पाते हैं । अत: बक्षीने सूत्र दिया है कि 'यात्रा करो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्फल नहीं होती।'

लेखकके यात्रा-सम्बन्धी इस सूत्रके बाद यह कहना कि वक्षीका यह उपन्यास पढ़नेमें बहुत श्रम माँगता है, कोई माने नहीं रखता। शुष्क और भारी होनेके बावजूद उपन्यास लेखककी वैचारिक उपलब्धि है (हालाँकि उसका उपन्यास होना ज्यादा जरूरी था।) फिर भी मुझे लगता है कि ऐसी भी क्या यात्रा कि आपको पठानकोटसे बम्बई तक अपने और अपने भीतरी हिस्सोंके सिवाय बाहरका कुछ दिखाई ही न दे; कि आप हर चीजको प्रतीककी शक्ल दे दें और काल, गति और ध्वनिको पकड़नेकी आधुनिकतासे उपन्यासको इतना बोझिल बना दें कि उसकी औपचारिकता खतरेमें पड़ जाये।

यों वैचारिक स्तरपर आधुनिक पीढ़ीकी जिस नियतिका संकेत उपन्यासमें किया गया है वह अपने-आपमें सार्थकताका आभास लिये है और प्रयोग-कौतुक प्रवृत्तिके बावजूद वक्षीके सही चिन्तनकी ओर इशारा करती है। यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सही चिन्तन और स्वस्थ चिन्तन दो अलग बातें हैं और साहित्य-रचनाके सन्दर्भमें दूसरी बात दकियानूसी लगती है। इसी तथाकथित स्वस्थ चिन्तनने पूर्वोक्त लेखिकाओंको समस्याकी वास्तविकतासे विमुख किया और यही स्वस्थ चिन्तन डॉ० रमानाथ त्रिपाठीके 'ओस और माटी' तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयीके 'हृदय टी सेट' में मिलता है। खुशी इस बातकी है कि वक्षीने समस्याको खुली और साफ़ दृष्टिसे देखा है और रूढ़ियोंके खिलाफ़ सीधे आवाज़ उठायी है।

वाजपेयीजी और डॉ० त्रिपाठी दोनोंके उपन्यासोंकी ज़मीन काफ़ी मिलती-जुलती है। फ़र्क़ इतना है कि 'ओस और माटी'के लेखकने अपने नायक सत्तनको दूसरी स्त्रीसे प्रेम करनेके लिए कई नैतिक सुविधाएँ दे दी हैं—जैसे उसकी पत्नीकी दीर्घकालिक बीमारी और उसका स्वयंका आदर्श नायकके रूपमें ऐसा असाधारण चित्रण कि अपनी प्रेमिकाके प्रति भी माँ-जैसा प्यार। उपन्यासका एक दृश्य देखिए—सत्तन अपनी प्रेमिकाके घर जाता है, "कदम अकेली सो रही थी। विचित्र दृश्य था वह। अत्यधिक गरमीके कारण ब्लाउज और कंचुकी खोल डाले थे और ऐसे ही साड़ी पहने सो गयी थी। सुप्तावस्थामें ही साड़ी हट गयी थी और दोनों ही तने हुए कुच-युग्म (शब्द-प्रयोगपर ग़ौर करें) स्पष्ट थे। दोनोंके मध्य एक चोटी काली नागिन-सी लहर लिये पड़ी थी। ब्लाउज़में कसा हुआ उसका कुचमण्डल (लेखक महोदय यहाँ ये भूल गये कि ब्लाउज और कंचुकी वे पहले ही खोल चुके हैं) युवक-हृदयमें लोभ-लालसाकी सृष्टि करता था, किन्तु उसी उरोज-मण्डलका नग्न-सौन्दर्य उसे विकारहीन और अत्यन्त पवित्र लगा। बस कमी थी एक नन्हा-नन्हा शिशु होता जो अपने नन्हें होठोंसे चूस रहा होता एक कुचाग्र और कबूतर-जैसी आँखें भटका-भटकाकर नन्हीं-मुन्नी हथेलीमें दबाये होता दूसरा। नारी तू रमणी होकर कितनी प्रलोभनीय हो जाती है, किन्तु सचमें तू माँ है। मैं तेरे मातृत्वके आगे सादर नमन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हूँ।"

और आप जानते हैं सत्तनके मनमें इतने ऊँचे आदर्श कहाँसे आये—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघसे। लेखक और सत्तन दोनोंकी संघमें आस्था है। इसीलिए सत्तन अँगरेज़ीमें एम० ए० होनेके बावजूद हिन्दीमें उच्चकोटिके दोहे कहता है। एक दोहेका मुलाहिज़ा हो—

काजर रेख पिये प्रिये चपल नुकीले नैन।
उर में पैने तीर से चुभे रहत दिन-रैन॥

ज़ाहिर है कि आप इन उच्चकोटिके भावोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। डॉ० त्रिपाठीकी भाषाका नमूना आप पहले देख ही चुके हैं। उनके उच्चादर्शके बारेमें भी आपको कुछ अनुमान हो गया होगा। अब आप प्रस्तुत उपन्यासमें लेखककी स्थापनाओंसे परिचित होना चाहेंगे। तो होता यह है कि जब सत्तनका प्रेम कदमके प्रेमके साथ पेंगे बढ़ाने लगता है और सत्तनकी पत्नी भी कदमको सौत बनाकर लानेके लिए सहमत हो जाती है तो अचानक सत्तनके आदर्श ज़ोर मारते हैं और वह प्रेमिकासे कहता है, "तुम्हें मालूम है कि एक ट्रांज़िस्टर पानेके लिए मैं कितना बेचैन था····किन्तु अब—जब ट्रांज़िस्टर मिल गया, तो उसके प्रति मोह नहीं रह गया।" मैं समझता हूँ अब आप सत्तनके विरागका कारण समझ गये होंगे। दूसरा कारण, "यदि हम केवल अपना ही सुख ढूँढ़ें और अपने ही आश्रित, अपने ही सहारे पलनेवाले किसी व्यक्तिको दुःखी करनेके बाद, तो ऐसे सुखका महत्त्व क्या?" और तीसरा कारण, प्रेमिकाके हाथोंमें वंशी देकर उसने कहा, "एक बार वही गीत बजा दो—पलकों को छाँवमें रहने दो," यानी तीसरा कारण हुआ नायककी, विछोहके बावजूद, पलकोंकी छाँवमें रहनेकी आकांक्षा।

त्रिपाठीजी डॉक्टर हैं। उन्होंने और भी कई उपन्यास लिखे हैं, कुछ लिखे भी रहे होंगे, वरना हम उन्हें सलाह देते कि वे वह का और हिन्दी-प्रचारका कार्य करें, साहित्यका नहीं। उनके आदर्शोंसे साहित्यका भला होनेवाला नहीं।

मुझे आश्चर्य हुआ कि जिस बातको नौजवान डॉक्टर त्रिपाठी नहीं समझ पाये उसे हमारे वयोवृद्ध उपन्यासकार श्री भगवती प्रसाद वाजपेयीने अपेक्षाकृत अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोणसे चित्रित किया है। नीलकमल यानी नीलू पति-द्वारा उपेक्षित और परित्यक्त एक ऐसी युवती है जो अपने सम्मानको बनाये रखकर अपने माँ-बाप और परिवारका बोझा भी ढोती है और अपनी चिन्ताओं और कुण्ठाओंका भार भी। जबतक बनता है वह कोशिश करती है और जब नहीं बनता तो अपने आपको अपनी पसन्दके व्यक्ति अरुण बाबूको समर्पित करके उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त करनेमें हिचकिचाती नहीं। अरुण विवाहित युवक है किन्तु शुद्ध शारीरिक स्तरपर दोनोंके सम्बन्ध तबतक बने रहते हैं जबतक कि नीलूके पतिकी ओरसे पुनः उसको आनेका निमन्त्रण नहीं मिलता। नीलू खुशी-खुशी पतिके पास जाती है तो वह मनमें न कहीं अरुणके कारण लज्जित है और न कुण्ठित बल्कि अरुण तो खुद छोड़ते जाता है, रुपये-पैसेसे उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्कालिक आवश्यकताएँ पूरी करता है और सब तरहसे पूरी व्यवस्था करके लौटता है।

यद्यपि वाजपेयीजी विषम परिस्थितियोंकी सृष्टि करके यह व्यंग्य उभारना चाहते थे कि जब नीलू निर्दोष, निष्कलंक थी तब उसके पतिने कलंकिनी होनेके सन्देहमें उसे त्याग दिया और जब वह कलंकित हो चुकी थी तो उसे पतिकी ओरसे निमन्त्रण, प्रेम और सम्मान मिला। मगर वाजपेयीजीके प्रयत्नोंके बावजूद स्थितियोंका यथार्थवादी स्वरूप नीलूको कलंकित सिद्ध नहीं होने देता। नीलूके घरकी परिस्थितियोंने उसके चरित्रको अनायास ही आधुनिक जीवनकी विडम्बनाएँ ढोनेके लिए अभिशप्त कर दिया है और उसका 'सहज स्वीकार' उसपर नहीं बल्कि उन परिस्थितियोंपर कलंक लगाता है जिनके कारण उसे रास्ता बदलनेके लिए मजबूर होना पड़ा।

मैं सिर्फ़ इस दृष्टिके लिए वाजपेयीजीकी सराहना करूँगा (अगर यह अनायास या धोखेसे यथार्थवादी नहीं बन गयी हो तो) जो उन्हें अपनी पीढ़ीसे आगे ले आयी है। वरना शिल्प और भाषा हर दृष्टिसे उपन्यास वाजपेयीजीके अनुरूप वहीं है, जहाँ उसे होना चाहिए था। मैंने सिर्फ़ उस बातका उल्लेख किया है जो उनमें मुझे नयी लगी। बाक़ी वाजपेयीजीकी सामर्थ्य और सीमाओंसे कौन परिचित नहीं? आकस्मिकताएँ, संयोग, मदिरापानका कुप्रभाव और फ़िल्मी-जीवनकी कुरीतियाँ इसमें देखी जा सकती हैं और एक भूतपूर्व युवक-प्रेमीका प्रमिकाके प्रति सगे भाईसरीखा परिवर्तन भी इसमें है। वह सब न होता तो इस कथानकके साथ यह विश्वास करना कठिन होता कि यह उपन्यास वाजपेयीजीका होगा।

वाजपेयीजी साधारण चलताऊ भाषाका प्रयोग करते हैं और वे जैनेन्द्रजीकी भाँति अलगसे पहचाने नहीं जाते। और जैनेन्द्रकी स्थिति यह है कि भाषाशैली, पात्र और वार्तालाप तकसे आप पहचान सकते हैं कि यहाँ जैनेन्द्र होने चाहिए। नयी पीढ़ीमें जैनेन्द्रका बहुत विरोध हुआ है मगर नयी पीढ़ीका एक भी लेखक जैनेन्द्रकी उपलब्धियों तक नहीं पहुँच पाया। और यह सोचते हुए भी कि 'मुक्तिबोध' एक अत्यन्त साधारण उपन्यास है मैं यह सोचनेको बाध्य हूँ कि जैनेन्द्रने अपनी कलाको निरन्तर माँजा और सँवारा है। उन्होंने अपनी ज़मीन बदली नहीं और न शिल्पमें ही नये-नये प्रयोग किये परन्तु वैचारिक स्तरपर ज़्यादा जोखिम-भरी कथावस्तुसे निपटनेका ख़तरा उन्होंने अवश्य उठाया है।

'मुक्तिबोध'का कथानक वस्तुतः एक ऐसा ही कथानक है जिसमें सम-सामयिकताके सारे ख़तरे विद्यमान हैं। उसकी कहानी राजनीतिके उतार-चढ़ावमें 'फँसे एक ऐसे राजनीतिज्ञकी कहानी है जो प्रकटतः सत्ता और राजनीतिके दाँव-पेचोंसे ऊबकर मुक्ति चाहता है किन्तु अन्तर्मनमें सत्ताके लिए आसक्ति लिये है। उसकी विरक्ति वस्तुतः कुछ तो अत्यधिक सुविधाओंके योग और कुछ ढलती उम्रके तक़ाज़ेकी सहज अभिव्यक्ति है। चूँकि अब वह उतनी भागदौड़ और जोड़-तोड़ करनेमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनेको असमर्थ पाता है, इसलिए सोचता है कि सत्ताकी राजनीतिसे संन्यास लेकर सेवा और कर्मके क्षेत्रमें उतरूँ। वह मन्त्री रह चुका है इसलिए साधारण संसद्-सदस्यके रूपमें वह निरन्तर एक थकान और पराजयका अनुभव करता है। उसकी विडम्बना यह है कि वह नहीं जानता कि राजनीतिसे संन्यासकी यह इच्छा वस्तुतः उसकी आन्तरिक सेवा-भावनाके कारण है या गुटोंकी राजनीतिमें असफलताके कारण। उसकी निष्क्रियता और पराजय एक ऐसा कवच चाहती है जहाँ वह हीनताभावका अनुभव न करे और उसके लिए फलसफ़ा तैयार करनेमें जैनेन्द्रजीने उसकी पूरी मदद की है। दूसरे शब्दोंमें दुविधाको उभारने और ढँकनेमें लेखक सफल हुआ है।

मगर इस दुविधाकी उससे भी ज़्यादा सार्थक चोट नीला और सहायके सम्बन्धोंमें प्रकट होती है जो पूरे उपन्यासकी आत्मा है। नीला उस ज़मानेमें सहायके निकट आयी थी जब वे मन्त्री थे और जब उन्होंने उसके पति मि० दरको काफ़ी फ़ायदे भी पहुँचाये थे। परन्तु वे ऐसे व्यक्तिगत सम्बन्धोंमें भी अबतक इस ग्रन्थिसे मुक्त नहीं हो पाते कि वे कभी मन्त्री रहे हैं। चुनांचे सहाय जहाँ सम्बन्धोंके स्तरपर जम जाते हैं वहाँ नीला विकसित होती जाती है। उसका दर्शन उपभोगवादी है। उसे "आकाश पसन्द है जो खुला है, दिशाएँ पसन्द हैं जो बुलाती हैं—चारों तरफ़से, किसी तरफ़से, रोकती नहीं।" उसे आदर्शोंके दड़बे पसन्द नहीं। वह आपा भूलकर मनकी बात करना चाहती है। तर्कके खोल उतारकर सहज होना चाहती है। जीने और जिलानेसे आगे उसका कोई आदर्श नहीं, इसलिए किसी क़िस्मके नैतिक संकटका सवाल ही वहाँ नहीं उठता। लेकिन सहाय—यानी राजनीतिज्ञ बिना किसी आड़े आड़े —चाहे वह आड़ आदर्शोंकी हो या नैतिकता की, सेवाकी हो या स्वार्थकी, चीज़ोंको देख ही नहीं पाते। अतः नीलिमाके प्रसंगमें सहाय (और प्रकारान्तरसे राजनीतिज्ञों)के दुविधा-ग्रस्त मन और उनके अननुमुक्त 'स्व' को जो अपने पुत्र, मित्र और अपनी पत्नीके सामने भी लबादा नहीं उतारता, काफ़ी उभारा गया है।

श्री सहायका सारा आदर्श लिजलिजा और उनकी सारी महत्ता कायरोंकी महत्ता है। उनका पुत्र, उनकी पत्नी और ठाकुर-जैसा मित्र था उनका दामाद, पुत्री या छोटी लड़की सब सहायके व्यक्तित्वके इर्द-गिर्द चक्कर काटकर गिर जानेवाले ऐसे निरीह पात्र हैं जो एक ओर सहायके तो दूसरी ओर स्वयं अपने भी पतनके कारण हैं। यद्यपि उपन्यासमें वैयक्तिक रूपसे एक राजनीतिज्ञकी दुविधा और अन्तर्द्वन्द्व कुछ हद तक उभर सका है, लेकिन उपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें नीलिमा-जैसी एक नितान्त मुक्त नारीको बिना किसी पूर्वाग्रहके चित्रित किया गया है और विवाहित व्यक्तियोंके प्रेम-प्रसंगको उठाते हुए संकोच, आदर्श या नैतिकताकी बैसाखियोंका सहारा नहीं लिया गया। और इस बातके लिए पुराने कहे जानेवाले जैनेन्द्रजीकी जितनी तारीफ़ की जाये कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, औपन्यासिक अर्थोंमें यह रचना अधूरी और सतही है। वर्तमान राजनेताओंकी ज़िन्दगीमें गहरी पैठ, शासनमें देशी-विदेशी हस्तक्षेप या राजनैतिक दाँव-पेंच और उठा-पटककी कोई मुकम्मल तसवीर इसमें नहीं मिलती (हालाँ कि उनके संकेत इसमें हैं) शायद रेडियोपर प्रसारित होनेके कारण ये सीमाएँ रही हों। परन्तु इस कथ्य और सम-सामयिक राजनीतिकी भावभूमिके लिए उपन्यासको बहुत कम विस्तार दिया गया है। और चूँकि उसकी परिधि बहुत छोटी है इसलिए उसकी चोट समसामयिक-सन्दर्भोंमें दूर तक नहीं उतरती। सच तो यह है कि ऐसे प्रसंगोंमें जैनेन्द्रजीकी खूबसूरत सूत्रों-वाली भाषा भी कृत्रिम और निर्जीव लगने लगती है।

अपनी रचनाओंके सन्दर्भमें विशिष्ट कृतियाँ देते जाना, मेरे खयालसे नयेपनकी अनिवार्य शर्त है। वह विशिष्टता चाहे दृष्टिमें हो चाहे कथानकमें, चाहे लेखनमें हो या अभि व्यक्तिमें, कहीं होनी चाहिए। जैनेन्द्रजीमें वह नहीं है। हाँ, रेणुके उपन्यास 'जुलूस' की भूमिकामें उसके संकेत ज़रूर हैं, "पिछले कुछ वर्षोंसे मैं अद्भुत भ्रममें पड़ा हुआ हूँ। दिन-रात, सोते-बैठते, खाते-पीते मुझे लगता है कि एक विशाल जुलूसके साथ चल रहा हूँ। अविराम। यह जुलूस कहाँ जा रहा है, ये लोग कौन हैं....कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं—मैं कुछ नहीं जानता। इस महा-कोलाहलमें अपने मुँहसे निकला हुआ नारा मुझे सुनाई नहीं पड़ता।....किन्तु इस भीड़से अलग होनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं।" इस भाषा और इन विचारोंसे आभास मिला कि रेणु अभी लेखनकी कई मंज़िलें तय करेंगे। किन्तु उपन्यास पढ़कर न कहीं कोई जुलूस दिखा और न वह भावना जिसका भूमिकामें ज़िक्र किया गया है।

लगता है अपने पहले उपन्यासोंकी सफलतासे रेणुने एक सूत्र बनाया है जो उपन्यास-लेखनको सरल व्यावसायिक आधार प्रदान करता है—एक अंचल लीजिए। वहाँके पाँच-सात प्रमुख पात्र छाँट लीजिए। उनमें-से एकको कंजूस, एकको बदमाश, एकको शोषक, एकको प्रेमी और एकको लठैत बनाइए। फिर एक अच्छी-सी लड़की ले आइए (अगर वह लड़की बंगालकी हो, जैसी कि इस उपन्यासमें है, तो क्या कहने) और ज़रा सावधानीसे आंचलिक भाषाका पुट देते हुए सबको उस लड़कीकी तरफ़ आकृष्ट करा दीजिए। इस बातका खयाल रखिए कि लड़की आदर्शवादी हो। फिर दो-एक ऐसे शहरी चरित्रोंको लेकर चाशनी बनाइए जो या तो आदर्शकी मशाल दिखायें या कोई और राजनैतिक रोल अदा करें। वार्तालापपर विशेष ध्यान दीजिए और अँगरेज़ी शब्दोंको तोड़कर ग्रामीण हिन्दीमें ढाल लीजिए। आप पायेंगे कि एक कहानी बन गयी है और उपन्यासकी शक्ल लेती हुई आगे बढ़ रही है।

ख़ुद जुलूस 'रेणु'के पिछले उपन्यासोंकी जूठन-भर है। अन्तर केवल यह है कि 'मैला-आँचल' और 'परती परिकथा'के बड़े कलेवरमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दोष दिखाई नहीं देते थे, वे यहाँ खूब उजागर हैं।

'जुलूस'में, पूर्वी बंगालके विस्थापितोंकी बिहारके एक अंचलमें बसने और वहाँके वातावरणमें रम जानेकी कहानी वर्णित है। इस कहानीको हस्बमामूल रेणुने अपनी खूबसूरत भाषामें कई चरित्रों-द्वारा खड़ा करनेकी कोशिश की है। लेकिन कोई भी चरित्र इतना दमदार नहीं है कि वह इस मामूली-सी कहानीका भी वजन उठा सके। यहाँतक कि पवित्रा, यानी उपन्यासकी नायिका भी एक नक़ली और गढ़ी हुई नारी लगती है जो क्षणभरके लिए भी कन्विंस नहीं करती। नवीनगर बस्तीमें उसे प्रधान मन्त्री-जैसा दरजा देकर लेखकने उसकी रही-सही वास्तव-स्थिति भी खत्म कर दी।

आश्चर्य होता है कि इतना ठहरा हुआ उपन्यास 'रेणु'ने लिखा है। फ़िल्मोंवाली भावुकता, जिसमें रुदनकी विशेष भूमिका होती है रेणुको शायद बहुत पसन्द है। उनके पात्र सार्वजनिक रूपसे होकर पाठकको मानवीय रिश्तोंकी अनिवार्यताके प्रति आश्वस्त करना चाहते हैं। मगर रेणु भूल जाते हैं कि हिन्दीके आधुनिक साहित्यका पाठक मानवीय रिश्तोंकी संवेदना खोता जा रहा है इसलिए इस सिलसिलेमें कोई भी भावुक एप्रोच उसे विगलित नहीं करती। यह नुस्खा बंगलामें कारगर होता होगा!

रेणु न बदलते हुए रिश्तोंको पकड़ पाये हैं और न उस खोखलेपनको जो ऐसी बस्तियोंमें सरकारी कृपाका फल होता है। महज ऊपरी तामझाम उपन्यासको अर्थवत्ता नहीं दे पाता।

लेकिन प्रेम कपूर-जैसे कुछ लोग, जरूरत ध्यान अर्थवत्तापर देते हैं। अपने उपन्यास 'एक और सब'में उन्होंने पहले आठ पृष्ठोंमें तीन उद्धरण दिये हैं, दो अँगरेजी और एक हिन्दीका। शायद वे उपन्यासकी मूल आत्माके निकट पड़ते हों और उनसे उपन्यासको समझनेमें मदद मिलती हो। परन्तु मैं सारी कोशिशोंके बावजूद, उपन्यासको ५९ पृष्ठसे आगे नहीं पढ़ पाया। शायद कुछ तो अधूरी डायरी और संस्करणात्मक शैलीके कारण और कुछ बेमानी और नीरस डिटेल्सके कारण उपन्यास इतना बोझिल हो गया है। जिन्हें पढ़नेको दिया, वे भी कामयाब नहीं हो सके।

उपन्यासके परिच्छेद पात्रोंके नामोंपर हैं राजू, निर्मल, रऊफ़ आदि-आदि, और हर पात्र अपने-अपने अध्यायमें जो कुछ कहता है वह असम्बद्धताके कारण मात्र प्रलाप लगता है। शायद उपन्यास आगे बहुत ऊँचा उठ गया हो या बहुत रोचक हो गया हो। पर इससे ज्यादा बोर उपन्यास आज तक मेरी नजरोंसे नहीं गुजरा।

वैसे रोचकताके लिहाजसे शिवानीको छोड़ और सब लेखकोंके उपन्यासोंकी स्थिति कमोबेश ऐसी ही है और यदि सम्पादकसे 'कमिटमेण्ट' न होता तो मैं इनमें-से आधे उपन्यासोंको निश्चय ही बिना पढ़े छोड़ देता।

(मूल लेख एक बार डाकमें खो गया था लेकिन दुष्यन्तजीने कृपापूर्वक उसे हमारे आग्रहपर दोबारा भी लिख दिया। आभार।—सं०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ उपयोगी एवं संग्रहणीय

जो लोक-जीवनको स्वस्थ, समुन्नत, और सजग बनायें तथा युगकी अधुनातन विकास-चेतनाओंका भी परिचय दे सकें।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

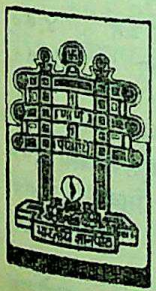

प्रधान कार्यालय :
भारतीय ज्ञानपीठ, ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय :
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५
विक्रय-केन्द्र :
भारतीय ज्ञानपीठ, ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

०

लोकोदय ग्रन्थमाला

• राष्ट्रभारती

२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर	४.००
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह	४.००
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के	४.५०
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल	३.५०
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार	४.००
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव	३.५०
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम'	३.००
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर	४.००

• उपन्यास

२२५	अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी	३.००
१६४	सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	२.००
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	३.५०
१५४	पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव'	४.००
७९	गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	५.००
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस०	३.००
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	२.५०
१९९	जो	डॉ० प्रभाकर माचवे	३.००
१६९	महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु'	२.२५
१३७	पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	३.५०
१४३	अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय	३.००
८०	शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर	६.००
९५	शह और मात	राजेन्द्र यादव	४.००
११३	राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस०	२.५०
६२	संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद	२.५०
१२६	ग्यारह सपनोंका देश	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन	४.००
१	मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन	५.००

• कहानी

२२९	सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	७.००
२२७	मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
१७३	खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर	२.५०

ज्ञानोदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२	दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि, सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५	झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६	मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६०	कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३०	खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९	बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख सादी	२.५०
६३	जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२	ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९	अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५	कर्मनाशाका हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१	सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१	प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२	मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९	हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५	मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४	मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५	पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४	संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८	नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७	अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२०	आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५०	नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४	कुछ मोती कुछ सीप [द्वि०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ऑस्कर वाइल्डकी कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९	लो कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

• कविता

२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६	कनुप्रिया [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४	हम विषपायी जनम के [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल ऑज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	३.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	२.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
१४६	आँगनके पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.५०
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२	रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	३.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	१२.००
८१	तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	३.००
९०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	५.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	४.००
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.५०
९	पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	३.००
८	मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.००
३९	धूपके धान [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
१३	वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	३.००

• शाइरी

१५८	गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	६.००
७६	शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६	शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५	शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१३८	नग़मए-हरम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
७२	शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३	शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४	शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११०	शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१	शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
१४	शेर-ओ-सुख़न : भाग—१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२६	शेर-ओ-सुख़न : भाग २		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७	शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८	शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
५	शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
११९	ग़ालिब	श्रीरामनाथ 'सुमन'	८.००
९२	मीर	श्रीरामनाथ 'सुमन'	६.००

• नाटक

९८	जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९	प्रेत	इब्सेन,अनु०नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	पचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

• विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

• रुचिर-कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित-निबन्धादि

२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.५०
२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	४.००
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.५०
१८१	हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८०	बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	२.००
१६५	महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६३	शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	४.००
५७	बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.५०
१४८	फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	४.००
१४७	आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.५०
१२८	नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	३.००
७१	बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.००
१२३	काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११	सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.५०
९६	वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	३.००
१०३	ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.५०
२९	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	२.००
७०	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	१.००
५६	माटी हो गयी सोना [द्वि० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.५०
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००

यात्रा-विवरण

१८७	चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९	सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२	समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

• आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ०देवीशंकर अवस्थी	७.००
२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	८.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ०रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२	शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
४४	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

• इतिहास-राजनीति

१४५	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८	भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१	समाजवाद	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६	कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४०	कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२	चौलुक्य कुमारपाल [द्वि०सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२	एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७	इतिहास साक्षी है	डॉ०भगवतशरण उपाध्याय	३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३	खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	४.००
२२	खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	६.००

• दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७	तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	
२१२	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	२.००
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	४.५०
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	३.००
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	१.५०
७	वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	२.००
			६.००

• सूक्तियाँ

१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१	शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३	कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.००
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० – केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल,	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' – १६४' मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Britannia Engineering Company Ltd.

Manufacturers of :

1. **Tea Processing Machinery.**
2. **Jute Mill Machinery.**
3. **Road Rollers.**
4. **Printing Machinery.**
5. **Machine Tools.**
6. **Railway Wagons.**
7. **Steel Castings.**
8. **Grey Iron Castings.**
9. **Steel forgings for Railways & others.**
10. **Railway Signalling & Interlocking Equipment.**

My. Mfrg. Div. TITAGARH : *Steel Fdy. Div* : TITAGARH

Wagon Div. : MOKAMEH

o

Head Office :

Mcleod House, Calcutta-1.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- per Postage 18nP. This Copy Re. 1/-
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
23 AUG 1966

License No. 61. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
धांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई-१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

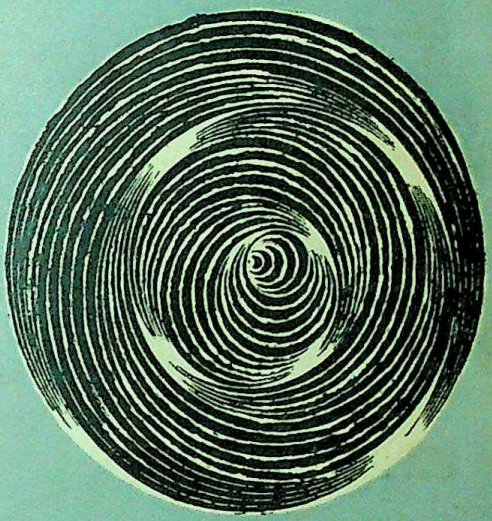

सितम्बर १९६६

मूल्य : एक रुपया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिका
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय चन्द्र ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अंकमें : ज्याँ पाल सार्त्र, अब्दुल्ला हुसैन, कुबेरनाथ राय, रमेशकुन्तल मेघ, कर्त्तारसिंह दुग्गल, शकुन्त माथुर, अजित कुमार, अमृता भारती, रमेशदत्त शर्मा, कुमार काश्यप, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नीलम सिंह, पद्मधर त्रिपाठी, माया गुप्त, कपिल मल्होत्रा, ममता कालिया, लीलाधर जगूड़ी, सतीशकुमार, विजयकुमार ।

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन,
रमेश बक्षी

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन
९, अलीपुर पार्क प्लेस
कलकत्ता-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र आपके

अंककी उद्भावना मौलिक थी, पर ज्ञानोदयकी परम्पराके अनुरूप ही। पहले भी ज्ञानोदयके कितने ऐसे अंक निकल चुके हैं जिनकी कल्पना किसी और पत्रिकाने कभी नहीं की थी। यह अंक भी रोचक है। सामग्रीको छाँटने और सजानेमें श्रम और सुरुचिसे काम लिया गया है। बहुत-से चीकने पातोंपर दृष्टि गयी है। साहित्यके क्षेत्रमें सभी चीकने पात होनहार बिरवोंके पूर्वसंकेत नहीं होते। खुरदुरे पातोंके लिए भी सम्भावनाएँ हैं, अवसर हैं। फिर भी अंकसे नयी क़लमको निश्चय ही प्रोत्साहन मिला होगा। आपको बधाई।

नयी दिल्ली] —बच्चन

'ज्ञानोदय' नयी पौध अंक पढ़कर लगा
मुखौटे पहन आयीं पुरानी कई क़लमें
आये मानो बच्चा बन याकि कई लोग ऐसे
जो नहीं हैं किसी गुटमें या किसी दलमें
पढ़नेका चाव बढ़ा लेखनका भाव चढ़ा,
कलियाँ ये कई प्रौढ़ होंगी फलमें
हमें तो सबसे भली लगी निज पैरोडी
जो कि मूलतः थी पदमाकरकी नक़लमें।

नयी दिल्ली] —प्रभाकर माचवे

यों ज्ञानोदयके विशेषांक विशेष साहित्यिक महत्त्वके रहे हैं—दाम्पत्य-परिवार विशेषांक आदि लेकिन इधर साहित्यिक विषयोंपर ऐतिहासिक महत्त्वके विशेषांकों की नयी परम्परा भी ज्ञानोदयने ही प्रारम्भ की है। इधरके विशेषांकों और साधारण अंकोंके नियोजन-संयोजनसे भी यह बात उत्तरोत्तर स्पष्ट होती चली है कि ज्ञानोदय समकालीनता और आधुनिकताके प्रति अपेक्षाकृत अधिक समर्पित है। आधुनिकता 'वर्तमान' का बोध है और 'ज्ञानोदय' ने इसे रेखांकित किया है। नयी प्रतिभाओंको अकेले ज्ञानोदयने जितना प्रश्रय दिया है उतना किसी भी एक पत्रिकाने नहीं। नये रचनाकारोंकी एक विशाल संख्या और पीढ़ी है जो ज्ञानोदयके माध्यमसे ही आयी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

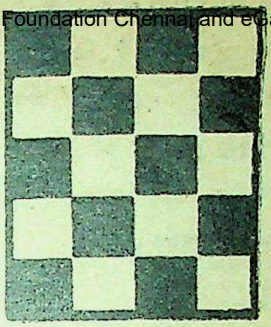

है और यह 'ज्ञानोदय पीढ़ी' नये साहित्यमें एक समर्थ हस्ताक्षरके रूपमें उभरी है। समकालीन भारतीय कहानी 'कथा अंक' आदि विशेषांक न केवल समसामयिक साहित्यिक चेतनाके मंच हैं वरन् 'ज्ञानोदय' उसका पर्यायवाची भी हो चुका है। 'नयी क़लम अंक' सम्भावनाओंके अन्वेषणका ऐसा ही जागरूक, साहसिक क़दम है। जिस साहित्यमें इतनी नयी समर्थ और सम्भावनाशील प्रतिभाएँ एक साथ हों उसके भविष्यका क्या कहना ! पुनः बधाई।

नयी क़लम अंक पढ़ते हुए मुझे लगा कि कविताएँ अधिक सशक्त, विद्रोही और सम्भावनागर्भा हैं—निस्बतन् कहानियोंके। 'आकाशके बदलते हुए रंग' और 'सूक्ष्म और एब्सर्ड हो जानेकी ललक' जितनी अधिक कविताओंमें है कहानियोंमें नहीं। यह बात क्या इस आशंकाको कहीं हलकेसे रेखांकित तो नहीं करती कि आधुनिक भावबोधके वहन करनेमें कहानी कुछ अक्षम होती जा रही है। मैं जानता हूँ, यह केवल आशंका ही है और सम्भावनाकी समर्थ यात्रा किस मोड़पर सहसा अपना मार्ग बदलेकर नये क्षितिज छू लेगी, कौन इस आशंसाको भुठला सकता है।

नरसिंहपुर]

—धनंजय वर्मा

'नयी क़लम अंक' पर आप लोगोने बहुत परिश्रम किया है, यह स्पष्ट दिखा। कुछ ऐसी व्यवस्था भी कीजिए कि इनमें-से प्रतिभाशाली लेखकोंकी रचनाएँ 'ज्ञानोदय' के माध्यमसे पाठकोंके सम्मुख निरन्तर आती रहें। तभी ऐसे अंककी योजना सार्थक हो सकेगी।

दिल्ली]

—अजित कुमार

'नयी क़लम अंक' निकालकर आपने हिन्दीके अगले दशकमें उभरनेवाली दिशाकी ओर संकेत कर दिया है—कमसे कम कविता और कहानीमें। यह एक बहुत बड़ा काम हुआ। 'ज्ञानोदय'के इस क़दमका अनुकरण होना चाहिए। इस अंकसे पता चला कि कविता मरी नहीं है। बड़े जबरदस्त ढंगसे जी रही है—पर इसके जीवनकी शैली 'एक रस' और एक ही मानसिक सम्मानसे सम्पृक्त है। पर इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे नये कवियोंकी रचनाओंको किसी एक कविका घोषित कर दें तो किसीको शंका नहीं होगी। प्रायः लगता है कि एक क़लमसे निकली है। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है 'व्यक्तित्व' मर रहा है और धीरे-धीरे (लोकतन्त्रके व्यक्ति-स्वातन्त्र्यपूर्ण ढाँचेके बावजूद भी) वह 'cog in the machine', मशीनका पुर्जा— कम-से-कम आत्मिक (spiritual) क्षेत्रमें बनता जा रहा है। बिना 'व्यक्ति'के क्या साहित्य चुक नहीं जायगा।

नालबारी]

—कुबेरनाथ राय

'नयी क़लम अंक' का निकालना एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है। यह बहुत महत्त्व-पूर्ण काम तुम्हारे हाथों हो गया। सभी इसकी तारीफ़ कर रहे हैं।

जबलपुर]

—हरिशंकर परसाई

'ज्ञानोदय'का 'नन्दन' अंक मिला और पढ़कर खुशी हुई। तुमने बहुत-से नये लेखकों-को समय दिया है। इनमें कितने उभर पायेंगे, समय ही बता सकेगा। बहरहाल, 'ज्ञानोदय'का यह क़दम निस्सन्देह मौलिक और दृढ़ है और इसका श्रेय तुम्हें है।

नयी दिल्ली]

—राजेन्द्र अवस्थी

मेरा मतलब, ऐसा प्रयास सिर्फ़ ज्ञानोदय-जैसी सामर्थ्यवाले ही कर सकते हैं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण काम हुआ है। मैं नहीं कह सकता ज्ञानोदयके लिए नयी क़लमें कुछ खास ढर्रेपर चलीं या क्या बात हुई। अधिकतर रचनाएँ जैसे सिर्फ़ इस खयालसे लिखी गयी हैं कि उन्हें ज्ञानोदयमें छपना है। इस हिसाबसे देखा जाये तो आपका यह अंक और तमाम अंकोंकी तरह लैण्डमार्क बनाता है। हाँ, अगर हम इन रच-नाओंसे आनेवाले कलकी एक तसवीर बनाना चाहें तो लगता है, हिन्दी साहित्यमें बड़ी मोनोटनी रहेगी। हो सकता है, मेरे विचार सिर्फ़ मेरे हों और उन्हें होना भी चाहिए। मगर मैं इसे अच्छा समझता हूँ कि जो कुछ 'फ़ील' किया जाये उसे कह देनेमें हिचक कैसी! बहरहाल आपने जो कुछ किया वह तो स्तुत्य है ही। नयी क़लमको ज्ञानोदयके प्रति आभार व्यक्त करना चाहिए।

बहराइच]

—शत्रुघ्नलाल

'नयी क़लम अंक' का ऐतिहासिक महत्त्व है, यह तो नहीं कहूँगा। हाँ, यह अंक बड़ी सम्भावनाओंसे हाथ मिलाये है और आजके युवककी मनःस्थितिका क़रीब-क़रीब पूरा चित्रण कर देता है। आपकी बातसे पूर्णतः सहमत हूँ कि समयके प्रति हमारी ईमानदारी आकाश ही केवल नहीं बदलती, उसे हमारी धरती तक झुका

[शेष पृष्ठ १०७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी क़लम अंक : पुरस्कार-घोषणा

९ रचनाकारोंको ५०० रुपयेके पुरस्कार

ज्ञानोदयके 'नयी क़लम अंक'में प्रकाशित रचनाओंपर विधानुसार घोषित पुरस्कारका निर्णय करनेमें कुछ कारणसे विलम्ब हो गया। एक कारण यह भी रहा कि अंक ही कुछ विलम्बसे प्रकाशित हुआ। घोषित पुरस्कारको रचनाओंके महत्त्वके अनुसार हमें अलग-अलग बाँटना पड़ा है। पाठकोंके मतोंसे भी निर्णयमें हमने आंशिक सहयोग लिया है लेकिन अधिकांश निर्णय प्रमुख साहित्यकारोंकी रुचिपर ही आधारित हैं। कमलेश्वर, धनंजय वर्मा, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, डॉ० बच्चन, डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल, कुबेरनाथ राय, हरिशंकर परसाईने विविध विधाओंके निर्णयसे सम्पादकोंको सहयोग दिया है, हम उनके आभारी हैं।

पुरस्कार निर्णय इस प्रकार है :—

- **कहानी :**
  - स्थान-पूर्ति : सु० कुमार — ७५ रु०
  - खाली दायरे : अनिल प्रभा — ७५ रु०
  - दर्द और इन्तज़ार : अन्विता अग्रवाल — ५० रु०
- **कविताएँ :**
  - आँधी, रेत और शहर : नीलाभ — ५० रु०
  - सठियायी हुई सदी : रचना — ५० रु०
- **एकांकी :**
  - प्रेमी और प्रेमी : सुरेश कुमार वर्मा — ५० रु०
- **लेख :**
  - विज्ञानयुगीन सभ्यता और अस्तित्वहीन मानव : प्रकाशचन्द्र जैन : ५० रु०
- **ललित रचनाए :**
  - कैक्टस : द्वारकेश — ५० रु०
  - आप बहरे हैं : जगदीश कुमार — ५० रु०

पुरस्कृत लेखकोंके चित्र ज्ञानोदयकी ओरसे स्वागत सहित अगले पृष्ठपर दिये जा रहे हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिल प्रभा

सु० कुमार

अन्विता अग्रवाल

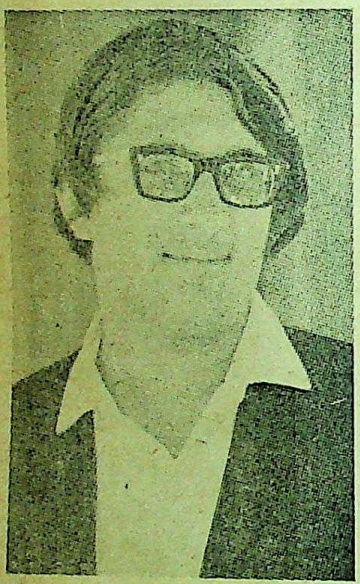

नीलाभ

रचना

प्रकाशचन्द्र जैन

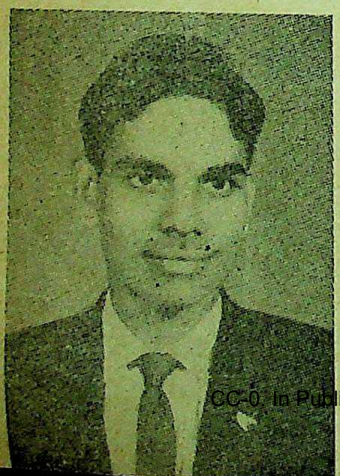

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

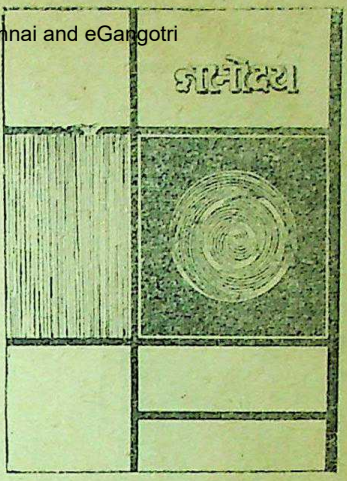

अ । नु । क्र । म

वर्ष : १८

अंक : ३

सितम्बर १९९६

मुखपृष्ठ ■
सन्तुदास गुप्त

सज्जा ■
सिकलुकी, भाऊ समर्थ, अमृत शेरगिल

छाया चित्र ■
जितेन्द्र अग्रवाल

पत्र आपके ■
बच्चन, प्रभाकर माचवे, धनंजय वर्मा, अजित कुमार, कुबेरनाथ राय, हरिशंकर परसाई, राजेन्द्र अवस्थी, शरद लाल, ओंकार ठाकुर, प्रियदर्शी प्रकाश

■ नये स्तम्भ :

• समयबोध : मैं सोचता था···· : ज्याँ पाल सार्त्र ९
• साहित्यभूमि : एक कथा ३ व्यास : कुबेरनाथ राय १७
• मुक्तचिन्तन : आधुनिकताके परिप्रेक्ष्य, कालिदास और सौन्दर्य-दर्शन : अमृता भारती २७
• नयी कला : कीलोंपर टँगी ज़िन्दगी और सिकलुकी : रमेशदत्त शर्मा ३७
• विज्ञान : सतत सृष्टि-सिद्धान्त : कुमार काश्यप ७७
• विविध : निमन्त्रण विवाहका : सतीशकुमार ८३
• व्यंग्य : क्षमा : एक अर्थपूर्ण व्यर्थ शब्द : रमेश कुन्तल मेघ ८९
• प्रश्नान्तक : आपका चेहरा आपका दर्पण : विजय कुमार ९५
• समीक्षा : मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन : भीमसेन त्यागी, आनन्दनारायण शर्मा १०१

■ कविताए :

• पंचतन्त्र : सात कविताएँ : अजितकुमार, शकुन्त माथुर, लीलाधर जगूड़ी, नीलम सिंह, पद्मधर त्रिपाठी ११
• हितोपदेश : चार पात्र : लक्ष्मीकान्त वर्मा ७३

■ कहानियाँ :

• वायदा : कर्त्तारसिंह दुग्गल ४१
• शिकायतनामा : माया गुप्त ४७
• कोई खेद नहीं : कपिल मल्होत्रा ५३
• व्यस्तजीवियोंका प्यार : ममता कालिया ५९
• फूलका बदन : अब्दुल्ला हुसैन (अनु० अहमद सलीम) ६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय

महानगर विशेषांक

नवम्बर १९६६

प्रगतिशील सभ्यता आज नगरोंमें केन्द्रित हो गयी है या दूसरे शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि किसी भी देशकी सभ्यताको जाननेके लिए उसके नगरोंको एक बार देखना होगा। किसी भी देशका बड़ा शहर उस देशके बारेमें सारी सूचनाएँ दे सकता है। यह भी सही है कि किसी भी देशकी अधिकांश शिक्षित जनता शहरोंमें ही रहती है। साहित्य, कला, संस्कृति और आधुनिक विचारबोधके सारे आयाम नगरोंमें ही हैं। बीसवीं सदी की यथार्थ तसवीर भी नगर-जीवनमें ही पायी जाती है। महानगरको यदि बिन्दु बना लें तो आजकी विकसित सभ्यताके सारे परिवेशपर विचार किया जा सकता है। जिस नगर-बोधकी बात आज कहानी, कविता और दर्शनमें की जाती है उसी बोधकी सारी सामग्री पहली बार एकजुट इस विशेषांकमें आप पायेंगे। हिन्दीके सभी तथा भारतीय भाषाओंके अलावा अन्य भाषाओंके लेखकोंका भी पूरा सहयोग लेकर इसके लिए रचनाएँ जुटायी जा रही हैं। महानगरोंके अर्वाचीन-प्राचीन रूप, देश-विदेशमें उनके स्वरूप और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समीकी रंगीन तसवीर इसमें आप देख सकेंगे। महानगर शब्द और नागरिक परिवेश तो एक माध्यमका काम करेगा जिसको आधार मानकर सारे आधुनिक चिन्तनका एक विधा-विविध पठनीय और संग्रहणीय विशेषांक इस बार पूजा-दीवालीपर आपके हाथों होगा।

पृष्ठ ३५० से अधिक : मूल्य : ३ रुपये

वार्षिक ग्राहकोंके लिए निःशुल्क

विज्ञापनके लिए अनूठा अवसर

९ अलीपुर पार्क लेन, कलकत्ता-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

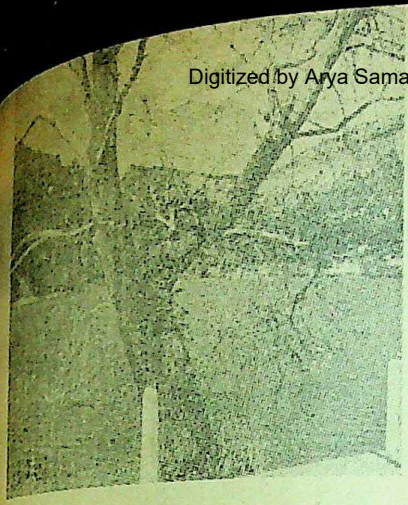

स।म।य! बो।ध

मैं सोचता था...

ज्याँ पाल सार्त्र

मैं सोचता था कि, सन् १९५५ के आस-पास एक 'लारवा' फूटेगा और उसमें-से फड़क निकलेंगी, पचीस तितलियाँ जो अपने पंख फड़फड़ाती हुई जा बैठेंगी राष्ट्रीय पुस्तकालयके एक शेल्फ़में। ये तितलियाँ मेरे बलावा और कोई नहीं। मैं : मेरी पचीस पुस्तकें, अठारह हज़ार पन्ने, तीन सौ चित्र, एक चित्र मेरा भी, चमड़ा और गत्ता, मेरी हड्डियाँ, मेरे माँससे गोंदकी गन्ध आती होगी, और एक सौ बारह पौण्ड काग़ज़ जितना मेरा वजन होगा। और मैं कहूँगा, मेरा पुनर्जन्म हुआ है। आख़िर मैं एक परिपूर्ण मानव हो गया हूँ—सोचता हुआ, बोलता हुआ, गाता हुआ, गरजता हुआ, तथा पदार्थकी अन्तिम अन्तरसत्ता तक आग्रहशील। मुझे शेल्फ़में-से निकालकर खोला जाता है, खोलकर मेज़पर फैलाया जाता है, और हाथसे सहलाया जाता है। मैं यह सब होने देता हूँ, और सहसा चमक उठता हूँ, चौंधिया देता हूँ और एक अन्तरालसे अपने-आपको सबपर थोपने लगता हूँ। मेरी शक्तियाँ अन्तरिक्ष और कालको बींध जाती हैं, दुष्टोंपर प्रहार करती हैं, अच्छे लोगोंकी हिफ़ाज़त करती हैं। किसीमें इतना दम नहीं कि मुझे भूल जाये या मुझे अवहेल कर निकल जाये। हर कोई मेरी ही बातें करता है। लाखों निगाहें मुझपर टँगी रहती हैं। जो मुझे पसन्द करना जानते हैं, मैं उनका अन्तरंग हूँ, लेकिन जो मुझे छूना चाहता है, मैं उसके सामनेसे अन्तर्धान हो जाता हूँ। मैं कहीं भी नहीं हूँ, और हर कहीं हूँ। मैंने मृत्युको अपनी महत्तामें समाधिस्थ कर डाला है।....मैं अमर हूँ, मेरे और मौतके बीच एक समझौता हो चुका है। अगर मैं कभी निर्धारित समयसे पहले पहुँचूँ तो वह मुझे वहाँ नहीं मिलेगी। मेरे मित्र शायद मुझे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातके लिए फटकारेंगी कि मैंने मौतके बारेमें कभी नहीं सोचा। मगर वे शायद यह नहीं जानते कि मैंने हर क्षण मृत्युको ही जिया है।

आज मैं देख रहा हूँ कि वे सही थे: उन्होंने हर चीज़ स्वीकारी, मैंने सिर्फ़ आश्वस्ति ही चुनी, और भीतर गहरेमें कहीं अपनेको अमर भी माना, और इस प्रकार निजको अग्रिम ही मार डाला, क्योंकि अमरत्व तो केवल मृत ही प्राप्त कर सकते हैं।

मैं धीरे-धीरे अपने अन्तकी ओर सरक रहा था, आस और इच्छा यदि कोई थी तो केवल उतनी ही, जितनी मेरी पुस्तकें भरनेके लिए पर्याप्त हों। आश्वस्त था कि अपने हृदयके अन्तिम स्पन्दनको अपनी अन्तिम पुस्तकके अन्तिम पन्नेपर दर्ज कर लूँगा, और फिर मृत्यु केवल एक शवको ही ले जा सकेगी।

मैंने अनिष्टको भी सदा ही इष्टकी शर्तके रूपमें स्वीकारा है। जानता हूँ कि छोटी-छोटी लड़ाइयाँ हारकर ही महायुद्ध जीतूँगा। मैंने संसारको दोषी ठहरानेकी अपेक्षा सदा निजको ही अभियुक्त किया है—इसलिए नहीं कि मैं अच्छी प्रकृतिका हूँ, बल्कि इसलिए कि अपना स्वामी मैं स्वयं ही रह सकूँ।

मैं नहीं मान सका कि व्यक्ति अपनी अस्मिताको कहीं बाहरसे ग्रहण करता है। कुछ वर्ष पूर्व मुझे बताया गया कि मेरे उपन्यासों और नाटकोंके पात्र सदा ही तुरत निर्णय लेते हैं तथा हमेशा क्राइसिसमें ही लेते हैं। कारण यही है कि वे मेरे ही प्रतिरूप हैं; मेरेसे अभिप्राय 'मैं जो हूँ' नहीं, बल्कि 'मैं जो होना चाहता हूँ'।

मेरी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक वह है जो लिख रहा हूँ। इसके ठीक बाद उसका नम्बर है जो अभी-अभी छपकर आयी है। आलोचकोंको यदि इस समय यह बुरी लगे तो मुझे कष्ट होगा, परन्तु आजसे छह महीने बाद मैं बड़ी आसानीके साथ उनसे सहमत हो जाऊँगा।

एक लम्बी अवधि तक मैं अपनी क़लमको तलवार समझता रहा; अब जान चुका हूँ कि हम किस क़दर असहाय हैं! सभ्यता किसीकी रक्षा नहीं कर सकती, कभी भी नहीं, और न ही इसका कोई औचित्य है, किन्तु यह मानवकी कृति है: वह निजको इसमें ढालकर अभिव्यक्त करता है और स्वयंको चीन्हता है!

एक मनसरोगीसे छुटकारा पाया जा सकता है, लेकिन अपने-आपेका कोई इलाज नहीं, पचास बरसका आदमी टूटा, थका, हताश और विकृत आकृति लिए एक कोने दुबका हुआ है, और लोग चुपचाप उसके पाससे गुज़रे जा रहे हैं। मैंने अजाना ही मर जानेका तो अवसर खो दिया है, पर कभी-कभी यह सोचकर खुश हो लेता हूँ कि किसीने मुझे समझा नहीं और मैं जी रहा हूँ। मैं उनपर निर्भर हूँ जिन्हें भगवानपर भरोसा है, और मुझे ईश्वरमें विश्वास नहीं।

अपनी विक्षिप्तता सदा ही मेरा रक्षा कवच रही है, जिसने हमेशा ही मुझे चाटुकार भद्रसमाजसे बचाये रखा है। मैंने कभी भी अपने-आपको प्रतिभाशाली नहीं माना। मैंने अपनी सम्पूर्ण अस्मिताको खो डाला—अपना समस्त स्व बचाए रखनेके लिए।....

(सार्त्रकी आत्मकथा 'लेस मॉट्स'से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- अजितकुमार
- शकुन्त माथुर
- लीलाधर जगूड़ी
- नीलम सिंह
- पद्मधर त्रिपाठी

पंचतन्त्र : सात कविताएँ

•

• प्रेम

-१-

मैंने किसे ध्यान में रखकर
ये कविताएँ लिखीं
–पूछते हैं सब।
क्या
तू
बता
सकेगी ?

नहीं जानती।

ले
मैं
ही
घोषित
करता
हूँ :

कुछ कविताओं में तो
तू है,
कुछ में तू,
जो शेष बचीं,
उनमें-से प्रायः सबमें
तू है।

अन्तिम एक रही जो,
उसमें ?–
वह तो अभी अधूरी ही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर उसम
तेरी छाया
सबसे गहरी है ।

आ ! मेरे जीवन की एक, अकेली आदिम,
अन्तिम
कविता ।

—२—

अब से मैं तेरा केवल परिचित हूँ ।
कहीं दिखूँ तो
नमस्कार होगा, बस ।
कटुता नहीं—हँसे-बोलेंगे ।
उदासीनता नहीं—मिलेंगे, हाल-चाल
पूछेंगे ।
पर अब से
न मैं ही तुझे अर्पित हूँ
और न तू ही
मुझको ।

फीकी हँसी
और
केवल
वह
एक शब्द
—'अच्छा' !
फिर विदा ।

अन्तिम बार प्यार कर लूँ, बस :
माथे पर हलका चुम्बन,
थोड़ी देर हाथ में हाथ दिये
बैठें
थम जायेगा धीरे-धीरे
गीली हथेलियोंका हलका-हलका कम्पन····

तुझे क्या याद रहेगा ?
कुछ दिन मैं उस एक शब्द के
अपनेपन से
पूरित था,
अब वंचित हूँ ।

अब से मैं तेरा केवल परिचित हूँ ।

—३—

तू जिसकी भी हो,
रहे,
मुझे तेरे ऊपर विश्वास है ।

वह भी तो
तेरे पास है ।
मुझे विश्वास है तेरे ऊपर ।

कुछ भी तो नहीं
जिसे अपना कह सकूँ,
सिर्फ़ अपनापन था····

सोचता हूँ, क्या हूँ ?
एक नन्हा बच्चा !
या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन जैसे बालोंवाला बूढ़ा कुबड़ा !
दोनों में एक यही समता :
रुकते-रुकते भी
आती-जाती साँस है।
वह तू है :
और मुझे तेरे ऊपर
कितना
विश्वास है।

समर्पण की वेला में
समझा था, तू खुश है,
लिपटी सीने से
खिलखिला रही है।
किन्तु अचानक पाया
तेरा विलख रहा
उच्छ्वास है।
वह मैं था :
और मुझे तुझपर पूरा-पूरा विश्वास है।
तू जिसकी भी हो,
रहे।

—अजितकुमार

• नींद में भी

बादलों से भरा आसमान
एक गेंद बहुत ऊँचे उछला
और फिर वहीं लौट कर आ गिरा
आकर्षक गहरे रंग
हलके होते रहे
हलका मौसम और हलका हो गया
अछोर आकाश की गोदी से अलग
अतल नीली झील के ऊपर
मोहक पक्षी उड़ता गया

ठण्डे सूरज की आँख
स्थिर देखती रही
ठहर न पाया स्वप्न
नागफनी के काँटों-सा
सलता रहा नभ
अन्त तक बेगानी रही झील
नींद में भी
भटकती रही थकान।

शकुन्त माथुर

• बीमारी

होठों के कितने नजदीक जल रही है यह सिगरेट
कितने नजदीक से सुलग रहा है मेरा दिन
दाँतों की नोक के नीचे मसल दी शेष आग
अधजली
तीलियो !
एक और अधजली तीली के साथ

तुम
जल
उठो
मेरे आस-पास
मैं पिघलना चाहता हूँ शेष न रहने के लिए
इन हाथों को किस सम्बोधन से लौटाऊँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पिछले सालों के फटे हुए कपड़े लाये हैं ?

इस फ़सल को नमरते : कटने की
(जो बच्चों के अनुपात में कम पैदा हुई)
आज की रात भी किसी साल की आख़िरी रात थी
बीत गयी

बाहर कहीं कोई खाई नहीं पड़ी
सूर्योदय लेकिन नहीं टूटा
मुझ पर खुद रही हैं तमाम आख़िरी दिनों की
खाइयाँ

यहाँ कौन-से पेड़ लगाऊँ
ताकि मर सकें मेरी दोगली परछाइयाँ ?

उनकी छाती पर : नया साल बेज़रूरत उग रहा है
और मैं बे-शर्त ज़िन्दा रहना चाहता हूँ
लेकिन घड़ी देखता हूँ—मुझे जाना है
ऑफ़िस-कुर्सी से ढकेल रहा है
ख़ुद से क्यों लगायी, क्यों लगायी मैंने यह शर्त ?
दो दिन तमाम शर्तों को तोड़ना उबलता है
मुझ में जीना, इतनी बुरी तरह उछलता है
पर मैं नाड़ा बाँधता हूँ
और शर्त की कहीं कोई गिरह पड़ जाती है
मुझे जन्म नहीं नौकरी बदलेगी
इस अँधेरे में कहीं कोई लालटेन हिलेगी भी कि
नहीं हिलेगी ?

अनुपातहीन
कहीं से भी नहीं खींच रहा है कोई इस धँसते
हुए दिन को
जिसकी जड़ मुझे कुछ और उगल कर मुड़ गयी है
एक और जड़ फूटेगी
अँधेरे से अँधेरे तक धँसकर मुड़ जाने के लिए
तरकीब भिड़ाता हूँ
और जो दरवाज़ा नहीं है; खुलता है
किन्तु वहाँ कुछ भी अपरिचित क्यों नहीं होता ?
वह ज़िक्र जो बालों की प्रशंसा से
आँखों की बरौनियों तक आकर
बेचाल होकर किसी की चाल से लिपट जाता है
एक उत्तेजना को भुनाने के अलावा
कुछ और भी क्यों नहीं होता ?
खाने की ही थाली पूरी आवश्यकता
क्यों नहीं होती ?

कुछ और भी क्यों है
जो मकानों के नीचे जड़ें फैलाकर-
कहीं और ढूँढ़ रहा है फूटने की दिशा

वह कोई पेड़ होगा
जिससे लोग मेरा सम्बन्ध जोड़ेंगे
यह और बात है कि उसकी टहनियाँ
हर मौसम में दोगली हो जाया करेंगी

क्योंकि दूसरी मंज़िल के कमरों को
पहली मंज़िल से
आँगन तक समझौता करना पड़ता है
कितनी ग़लत बात है किसी का आकाश मारना
किसी की देह सूँघने का मुक़दमा चलाना

एक बीमारी
जो परहेज़ के नाम पर फैली है
आदमी की ख़ाल से बहुत ज़्यादा मैली है।

—लीलाधर जगूड़ी

• दण्ड

यह कोई उत्तर नहीं है
कि प्रस्तुत नहीं थे तुम—
क्या कहा ? निहत्थे थे ?
तुमने उठाया क्यों ?
ज़ंग लगे अपने हथियारों को ?

नहीं-नहीं-नहीं
कोई इच्छा नहीं
कोई भी शर्त नहीं होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी पराजित की

लो! ये हैं मुक्ति की कँटीली हथकड़ियाँ
झेलो इन्हें—
ग्लानि और लज्जा की कीचड़ से भरा
हुआ यह लम्बा-चौड़ा तालाब,
दीवारों-से खड़े
घृणित अभिमान के कसैले फल से झुके
ये ऊँचे वृक्ष
यह कच्चा वृत्तनुमा रास्ता
छल को गुनाह की तरह ढोने से बरी
यह कमरा
ये सब तुम्हारे हैं—
केवल तुम्हारे।
खुली हुई जगह में
जीवन भर का कारावास
अब तुम स्वतन्त्र हो।
प्रस्तुत होने के संकल्प में
बीत गया समय—
खिसक गया चाँद
बारजे से दिखते आकाश के नीचे
ओह! सूरज निकल आया।

—नीलम सिंह

वह तथागत नहीं हुआ!

वह तथागत नहीं हुआ—
यशोधरा की नींद
उसे तोड़ने को नहीं मिली!····
क्योंकि उसके पीछे
एक लम्बी क़तार थी—
बुझी हुई स्मृतियों,
कुछ बदरंग तसवीरों,
और बिना शोर मचाये चलते
भयभीत पुतलों की।

उसकी आवाज़ों के फूल—
ताबूत में बन्द
मौसम की आत्मा को
उत्तेजित और ख़ुश नहीं कर सकते थे!

दहकती आग थी—
उसके भीतर····

मगर उसकी आँखोंका पीला आकाश
टूट कर बिखर गया था,
—और वहाँ कभी-कभी उगने वाला
नीला सूरज—
ख़ामोश जंगल के
सन्निपाती अँधेरे में भटक कर
खो गया था!

वह विकृत हो गया था—
दयनीय मुद्राओं,
जीवित एकान्तों पर लगातार
पड़नेवाली चोटों,
संक्रामक चीख़ों, और—
कलंकित पगध्वनियों से।

वह तथागत नहीं हुआ—
—हो नहीं सकता था!····

—पद्मधर त्रिपाठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी खबर लाया हूँ। अब हमें फेरीवालों से आलू बड़े खरीदने की कोई आवश्यकता नहीं ! माँ उन्हें घर पर ही बना लेती है और वह भी अत्यन्त स्वादिष्ट। मैं नीचे वह तरीका बताता हूँ जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये। जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए। फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये। उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए।

उन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए। उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए। फिर पानी डाल दें। इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें।

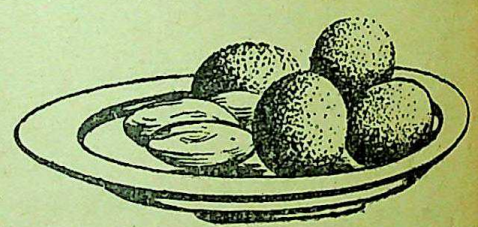

निश्चय रहे कि आप ने

हनुमान वनस्पति प्रयोग किया।

निर्माता :—

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड

डालमिया नगर (बिहार)

IPC/RJ : 407 H/74

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कथा ३ व्यास

कुबेरनाथ राय

मनुष्यकी आत्मामें एक निरन्तर क्रुद्ध सर्प बैठा है। चोट खाकर क्षण भरके लिए यह भले ही बिकुड़ जाये परन्तु दूसरे ही क्षण यह वार कर ही बैठता है सामने चाहे सर्वशक्तिमान इन्द्र हो या औरंगजेब-हिटलर। यह मनुष्यकी गरिमाकी रक्षा अपने प्रति-प्रहार-द्वारा करता है, यद्यपि प्रति-प्रहारकी व्यर्थताका भी उसे ज्ञान है। जिन्हें इस क्रुद्ध सर्पसे प्यार है उन्हें समाजवीनोंकी दुनिया 'क्रुद्ध तरुण', ऐंग्री यंग मैन, कहती है। कभी निन्दाके तौर पर, तो कभी स्तुतिके तौर पर। मनुष्यके इतिहासमें इन क्रुद्ध तरुणोंका आदि पुरुष है : प्रमथ्यु। मनुष्योंका सखा और निरंकुश देवयानका विरोधी और विद्रोह-दर्शनका आदि गुरु प्रमथ्यु।

ग्रीक मिथकोंमें प्रथम देवतन्त्र आदिम असुरोंके हाथमें बताया गया है। इनके ज्येष्ठ पुरुष क्रोनस इन्द्र-पदपर अभिषिक्त थे। प्रमथ्यु भी एक आदिम असुर था। ये प्रथम देवगण, बर्बरता, मत्स्य न्याय, और प्रकृतिकी अन्धी अनगढ़ क्रूर शक्तियोंके प्रतीक थे। दूसरी ओर क्रोनस-पुत्र जेउस द्वितीय देव-मण्डलका नेता था। ये नये देवता प्रकृतिकी रम्य स्थितियोंके प्रतीक थे। ये ऊषा, चन्द्रमा, सूर्य, नीलसमुद्र, आकाश, लहरें, नदी, लताएँ आदिके प्रतिनिधि थे। रम्यताका आधार सामंजस्य होता है। प्रथम और द्वितीय देव-दलोंमें घोर संघर्ष हुआ। यह संघर्ष सामंजस्य-हीनता-अनगढ़ताके साथ सामंजस्य और सौन्दर्यका संघर्ष था—'केआस'के साथ रम्यता

सामान्य जीवन : चित्र : अमृता शेरगिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का संघर्ष था। सामंजस्य और रम्यताकी विजय हुई।* इस विजयका बहुत कुछ श्रेय प्रमथ्युको है जो आदिम असुरोंके गोत्रका होते हुए भी नये देवयानका सहायक था। पर इस रम्यताके प्रथम चरणमें नये देवयानमें भी बर्बरता और निरंकुशता थी, अभी इनका 'सुन्दरम्' 'शिव' नहीं बन पाया था। फलतः प्रमथ्युको इनके इन्द्रके प्रति भी दुबारा विद्रोह करना पड़ा। ग्रीक मिथकोंके अनुसार दोनोंमें सन्धि तब हुई जब नये इन्द्रके स्वभावमें शिवत्व आ गया, और जब न्याय-तन्त्रमें व्यवस्था और सौम्यताका समर्थन नया देवतन्त्र करने लगा।

मनुष्यकी स्थिति द्वितीय देवयानके प्रारम्भमें अत्यन्त दयनीय थी। उसका जन्म-मरण, यौवन-जरा, सभी कुछ अन्धकार-ग्रस्त था। वह निरन्तर नियति-भयसे त्रस्त, चूहेकी तरह दुबका हुआ, गरिमाहीन जीवन बिता रहा था। प्रमथ्यु मनुष्योंका सखा था। उसने करुणापूर्वक सूर्यके रथसे अग्नि चुराकर मनुष्यको सौंप दी। इस प्रकार तेज और गरिमाकी प्रथम स्थापना हुई। मनुष्य इस तेजको पाकर धन्य हो गया और प्रकृतिके ऊपर इसकी जय-यात्रा आरम्भ हुई। मन मुक्त होने लगा। बुद्धि मुक्त होने लगी। ज़ेउसको यह सब बरदाश्त नहीं हुआ। वह तेजकी आराधनाका अन्तिम फल देख रहा था—शायद बुद्ध, नीत्से, मार्क्स और सार्त्र तथा २०वीं शतीका अस्तोन्मुख देवयान उसकी सार्वकालिक सनातन प्रज्ञामें संकेत रूपसे झलक गये थे। मारे क्रोधके देवराज ज़ेउसने प्रमथ्युको बन्दी कर लिया और क्रूर यातनाएँ देनी प्रारम्भ कीं। मानव-सखा, देवविरोधी प्रमथ्युकी आत्मा इस यातनाके बावजूद भी अपराजेय रही। ज़ेउसके द्वारा भेजा हुआ गृद्ध रोज़ उसके दिलको काट-काटकर खाता था और प्रतिदिन रात-भरमें घाव भर जाता था जिससे वही यातना दूसरे दिन भी वह मांसभक्षी गृद्ध दे सके। परन्तु प्रमथ्युके पास भी एक ताक़त थी। वह थी 'ज़ेउस' की नियतिका ज्ञान जिसे आदि माता धरित्रीने उसे बताया था। यह नियति कब और कैसे तथा किसके निमित्तसे प्रहार करेगी इसका रहस्य ज़ेउस जानना चाहता था। (ग्रीक धर्ममें इन्द्रसे भी बड़ी शक्ति है 'नियति')।

फिर क्या हुआ? ग्रीक धर्मका श्रेष्ठतम देवता था ज़ेउस। अतः देवभयसे इस कथाका क्लासिकल निष्कर्ष है: विद्रोही और निरंकुशके बीचमें समझौता। ज़ेउसके स्वभावमें शिवत्व आ गया और उसने अपने पुत्र हेराक्लीज़ द्वारा उसे मुक्त करवा दिया। बदलेमें ज़ेउसको भी ज्ञात हो गया कि उसका अपना पुत्र जो समुद्र-कन्या थेटिससे उत्पन्न होगा उसको सिंहासनच्युत करके बन्दी बनायेगा। थेटिसके रजतवर्ण लावण्यपर मुग्ध होते हुए भी ज़ेउसने उसका ब्याह छलपूर्वक एक मानवसे करा दिया। उससे प्रसिद्ध ग्रीक योद्धा एकिलीज़ (एखिल्लेस) पैदा हुआ जो होमर-

* कीट्सके अधूरे महाकाव्य 'हाइपीरियन'की विषय-वस्तु यही है। हाइपीरियन (शनि) और अपोलो (आदित्य) दोनोंमें सूर्य-पदके लिए प्रतिद्वन्द्विता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के महाकाव्य 'इलियड' का नायक है। परन्तु अर्धपुत्र होनेके कारण उसकी 'नियति' अर्थ-पूर्ण हो गयी। पर इस कथाका रूमानी निष्कर्ष देवराज जेउस और उसकी निरंकुशता-की पराजयके तौरपर शेली और स्पिटलर ने दिखाया है। इसके अतिरिक्त इस मिथक-की एक आधुनिकतावादी व्याख्याका भी सार्त्र-कामू आदिने विविध सन्दर्भोंमें संकेत किया है। आधुनिकतापरक संवेदनोंके सन्दर्भमें इस 'थीम' का उपयोग हिन्दीमें नयी कविताके प्रमुख कवि धर्मवीर भारती-द्वारा 'प्रमथ्युगाथा' नामक एक लम्बी कवितामें हुआ है। दरअसल यह मिथक इतना सप्राण है कि प्रत्येक युगकी रचनात्मक कल्पना इसमें संवेदन ढूँढ़ लेती है।

•

इस मिथकका प्रथम साहित्यिक प्रयोग ग्रीक ट्रेजडीके वास्तविक जनक ऐस्किलस (ज० ५-२५—ई० पू०) द्वारा हुआ है। प्रमथ्यु-त्रयी (त्रियोलोजी) के तीनों नाटक नहीं मिलते। केवल मध्यका नाटक 'बन्दी प्रमथ्यु' ही प्राप्य है और अन्तिम नाटककी कुछ पंक्तियाँ। द्वितीय नाटकका प्रारम्भ होता है बन्दी होनेके दृश्यसे और देवदूत हर्मीसको धमकीपर इसका अन्त होता है। ग्रीक साहित्यके विशेषज्ञोंकी कल्पना है कि प्रथम नाटक रहा होगा: 'विद्रोही प्रमथ्यु' और अन्तिम 'मित्र प्रमथ्यु'। यह कल्पना भर ही है। ऐस्किलसके सारे त्रयी-नाट्य समूहोंका अन्त है सामंजस्य और मैत्री तथा 'शिवत्व'का उद्घोष। अतः गिलबर्ट मरेने कल्पना की है कि इस त्रयीका निष्कर्ष भी यही होगा। यों ग्रीक सन्दर्भमें जब पेगन धर्मका आधार ही जेउस और नियतिका 'भय' था तो और दूसरा निष्कर्ष ग्रीक ट्रेजडीकार दे ही क्या सकता है? सलामीके युद्धमें जब मुट्ठी-भर ग्रीकोंने फ़ारसके जेरेक्सीज़की विराट वाहिनी और जल-सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला तो ग्रीक सेनानायकने आकाशकी ओर हाथ उठाकर आर्त्त स्वरमें पुकारा था—"सैनिको, हमने कुछ नहीं किया है, हम क्या थे? युद्ध देवताओंने किया है। विजय देव-ताओंकी है!" ऐस्किलस अपनी युवावस्थामें इन युद्धोंमें लड़ चुका था। तात्पर्य यह कि ऐसे 'देवभय' के युगमें ज़ेउसकी पराजय ग्रीक लेखक सोच ही नहीं सकता था। और तिस पर भी, ये नाटक तो धार्मिक उत्सवोंके लिए लिखे जाते थे।

नाटकका प्रारम्भ होता है पीलीयाके भयंकर सुनसान उजाड़ खण्ड पीले मैदानके दृश्यसे। प्रमथ्यु एक ऊँचो चट्टानके सहारे खड़ा है। 'शक्ति' और 'बल' दो असुर पहरा दे रहे हैं। हेफ़ायस्तस (विश्वकर्मा) अपने सखा भावको भूलकर लोहेके बड़े-बड़े कीलों और पीतलको शृंखला-द्वारा प्रमथ्युको चट्टान-से मसीहाकी तरह बाँहोंके बलपर लटका देता है। विश्वकर्माके हृदयमें प्रमथ्युके लिए दर्द और समवेदना है, परन्तु ज़ेउसकी आज्ञा! शक्ति झिड़ककर कहता है: "पड़ा रह घमण्डी! देखें, तेरा प्रिय पात्र मनुष्य देव-भयसे तुझे कैसे छुड़ाता है!" और वे सभी चले जाते हैं। प्रमथ्यु पीड़ासे विलाप करता है: "ओ पवित्र आकाश, ओ वेगवान पंखोंवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुद् गण, ओ नदीके स्रोत, ओ समुद्रके असंख्य हास, ओ सर्व साक्षी सूर्य, ओ धरती, तुम सब देखो ! देवताओंने मेरी क्या हालत कर दी है ! मैंने मनुष्यको तेजका बीज प्रदान किया जिससे सारी कलाओंका जन्म होगा। और इसी पापके लिए मुझे खुले आकाशके बीच लटका दिया गया !"

व्यथाके स्वरपर स्वर उठते हैं और छूछे आकाशमें विलीन हो जाते हैं। पर कुछ देर बाद अचानक हवामें सुगन्ध फैलती ज्ञात होती है और पंखोंकी फड़फड़ाहट सुन पड़ती है। आकाशचारी रथोंपर समुद्र-कन्याएँ उतरती हैं और अपनी समवेदना व्यक्त करती हैं :

प्रमथ्यु—"यह मेरी ही नीतिका फल है कि इस ज़ेउसको सिंहासन मिला। उसने मुझे प्रतिष्ठा भी दी। पर उसने मनुष्योंके संहार-का निश्चय कर लिया था।···मैंने मनुष्य-की रक्षा की और मुझे सलीबपर लटकना पड़ा····"

सागरिकाएँ—"कैसे ? क्या अमृत पिला-कर ?"

प्रमथ्यु—"नहीं। मैंने उनके हृदयमें 'अन्धी आशा' रख दी। यह सदैव झूठे स्वप्न दिया करती है फलतः वे आत्मघात नहीं करते हैं। फिर मैंने अग्नि प्रदान की जिसके द्वारा मनुष्य सारी कल्पनाएँ और सारी महिमाका वरण करेगा।"

समुद्र देवता आते हैं, पर इन्द्र भयसे मात्र सहानुभूति दिखाकर लौट जाते हैं। उनकी पुत्रियाँ डटी रहती हैं।

सागरिकाएँ : (वृन्दगान) :

"अफ़सोस, अफ़सोस
तेरे लिए नदियों में आँसू हैं
वे जो कोमल-कोमल झरने हैं
ज़ेउस के इस विधानसे दुःखी हैं
कातर हो-होकर तुम्हें अर्घ्य देते हैं
पवित्र एशिया, मणि प्रदेश योद्धा नारियोंके,
काकेशस के पार पुष्पित अरब और शकस्तान
सभी का हृदय दग्ध है—उनके भाले
चमकते हैं पर उनके हृदय दग्ध है।
यम के अन्धलोक में गरजती लहरों में,
सर्वत्र व्यथा व्याप्त है।"

तब प्रमथ्यु ज़ेउसकी 'नियति'की ओर संकेत मात्र करता है। इसी बीचमें 'इयो' आती है। प्रमथ्यु ज़ेउसकी घृणाका शिकार है और इयो ज़ेउसके प्रणयका। इयो मानव-पुत्री है जिसपर ज़ेउस आसक्त है और इन्द्राणी-की ईर्ष्या तथा देवताका क्रूर 'प्यार' दोनों उसका पीछा कर रहे हैं। वह सरित-सर-गिरि-कानन-धरती-समुद्रको लाँघती देश-देश घूम रही है, इस प्रेमका प्रतिकार करती है। पर इन्द्राणीकी क्रूर ईर्ष्या और इन्द्रका क्रूर प्यार उसे चैन नहीं लेने देते। विराम नहीं। मुक्ति नहीं। क्षमा नहीं। यह क्रूर प्यार आत्म-समर्पण लेकर रहेगा। इयो भागती-भागती गायके वेशमें प्रमथ्युके सामने आती है। प्रमथ्यु उसे नील-प्रदेश (मिस्र)में जानेको कहता है जहाँ ज़ेउसके हस्त-स्पर्श मात्रसे वह महावृषभ-को जन्म देगी जिसके वंशमें एक दिन हेरा-क्लीज़ पैदा होगा और प्रमथ्युको मुक्त करेगा। 'इयो'की 'नियति' यही है कि वह देवताके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रूर प्रेमको स्वीकार करे और एक महान् वंश-परम्पराकी नींव डाले। यह टल नहीं सकता। तभी उसे शान्ति मिलेगी। 'इयो' चली जाती है। फिर देवदूत हर्मीस आकर नयी धमकी देता है और आते हुए तूफ़ान तथा वज्रकी कड़कके साथ नाटक समाप्त हो जाता है। इयोकी कथामें 'नियति-रहस्य'की वैधानिक अटलताकी ओर संकेत है। यहाँ ज़ेउस निरंकुश रूपमें चित्रित है।

सम्भवतः तीसरे नाटकमें ज़ेउसका सौम्य और क्षमाशील रूप प्रस्तुत रहा होगा। ऐस्किलसके अन्य नाटकोंसे पता चलता है कि ज़ेउसकी मिथकीय कल्पनाके चारों ओर कालान्तरमें रहस्यवादी रंग चढ़ता गया। उसका क्षमाशील रूप इतना विकसित हुआ कि 'शरणागत' और 'ज़ेउस' में अभेद मान लिया गया। ऐस्किलसकी प्रथम ट्रेजडी, 'दनुपुत्रियाँ'-में यह क्षमाशील रूप बार-बार गाया जाता है। बार-बार संकेत है : 'शरणागत और ज़ेउस एक हैं। शरणागतका अपमान ज़ेउसका अपमान है।' परन्तु 'बन्दी प्रमथ्यु'में चित्रित ज़ेउसकी सुन्दरतामें शिवका प्रवेश होना बाक़ी है, जो सम्भवतः तीसरे नाटकमें व्यक्त रहा होगा जिसकी केवल कुछ पंक्तियाँ ही प्राप्य हैं।

••

इस मिथककी रूमानी व्याख्या ('रूमानी' शब्द-से हमारा तात्पर्य '१९वीं शतीके उर्दू काव्यकी गलित भावुकता जैसा' नहीं बल्कि 'स्वच्छन्दतावादी'से है) में प्रमथ्युको निरंकुशता और उत्पीड़नके प्रति मानव-मनके विद्रोहके रूपमें देखा गया। स्विस महाकाव्यकार स्पिटलरने 'प्रमथ्यु और एपीमथ्यु' नामक गद्य महाकाव्य लिखा जो विश्वमें व्यक्ति-उत्पीड़न और करुणा तथा आक्रोशकी महाकाव्यीय स्तर-पर श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति माना गया है। स्पिटलरकी प्रतिभा निराला-जैसी दुर्दान्त और ज़बरजंग थी। उसके गद्य महाकाव्यकी अभिव्यक्ति ऐसी है कि उसी शक्तिसे उसे अन्य-भाषामें उतारना मुश्किल है। इससे स्पिटलरकी चर्चा-भर ही सुनी जाती है। परन्तु स्पिटलरको यह प्रतीक मिला है शेलीके 'प्रमथ्युः बन्धनहीन' या 'मुक्त प्रमथ्यु' गीतनाट्यसे। मिथककी इस रूमानी सज्जाका मूल उत्स शेली ही है। उन दिनों शेली गॉडविनकी 'पोलिटिकल जस्टिस'से प्रभावित था और अन्यायको ललकारनेवाला उपयुक्त प्रतीक ढूँढ़ रहा था। प्रमथ्युगाथामें उसे यह प्राप्त हो गया। निरंकुश शासन और शोषण-उत्पीड़नका प्रतीक है : ज़ेउस (ज्यूपीटर) और उसके प्रति क्रान्तिकी ललकारका प्रतीक है : प्रमथ्यु।

पर ऐसे सशक्त प्रतीकको पाकर मिथकका उपसंहार मैत्रीपरक बनाना उसे जँचा नहीं। यदि क्रान्ति निरंकुशतासे सौदा कर लेती है तो न्यायकी पूरी क़ीमत कहाँ चुकी। नहीं, यह सौदा नहीं होगा। एक-एक बूँद, एक-एक दाने-का हिसाब चुकाना होगा। इसीसे प्रारम्भ तो कवि क्लासिकल ढर्रेपर ही करता है, परन्तु बन्दी हो जानेके बाद उसका उपसंहार ग्रीक निष्कर्षका ठीक उलटा है। वाल्तेयर और फ़्रान्सीसी राजक्रान्तिके बाद मनुष्यका हौसला कुछ दूसरे ही क़िस्मका हो गया था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी कल्पना एस्किलस-सोफ़ोक्लीज नहीं कर सकते थे। फिर अब वह पेगनधर्म भी न रहा जिसके मुख्य देवता ज्यूपीटर (ज़ेउस) थे। इसीसे शेलीका क्रान्ति-पोषित कवि-मन ज्यूपीटर (ज़ेउस)को यों ही छोड़ देनेको तैयार नहीं हुआ। उन दिनों क्रान्तिका आधार राजनीति थी अर्थशास्त्र नहीं। अर्थशास्त्रीय मान्यताओंपर आधारित क्रान्तिका दर्शन मार्क्स-द्वारा प्रसूत होता है। परन्तु शेलीने मार्क्ससे पहले ही एक गीत लिखा था—'मास्क ऑफ़ अनार्की' जिसमें आक्रोशका आधार राजनीतिके साथ आर्थिक भी है।

शेलीने 'ज्यूपीटर'का आयाम बहुत विस्तृत-कर दिया है। वह न केवल निरंकुशताका प्रतीक है बल्कि समस्त अशिव और सारे अमंगलोंका मूल उत्स है। उसका विनाश भविष्यके महान् युगके लिए अपेक्षित है। इस ज्यूपीटरके सिंहासनको चूर्ण कर उसे पाताल गर्तमें ढकेलनेका काम करता है : 'डेमोगोरगन'। डेमोगोरगन संसृतिकी मूल आत्मशक्ति है—यह आत्मशक्ति तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी तीनों है। यह 'केआस' सामंजस्य-हीनता (बदअमली)का प्रतीक है, क्योंकि विश्वका मूल रूप है सामंजस्यहीन भूत (केआटिक मैटर)। यह इतिहासकी सारी असामान्य स्थितियों एवं असामान्य घटनाओं-का कारक है जिससे इतिहासचक्रको धक्का लगता है और वह दिशा-परिवर्त्तन कर लेता है। अतः अशिव और अमंगलके मूल उत्स ज्यूपीटरके दमनके लिए इसी महाभयंकरका अवतार चाहिए। वह स्वयं ज्यूपीटरको अपना परिचय देता है—"मैं हूँ सनातन कालपुरुष! क्या इससे भी भयंकर नाम चाहते हो?"

परन्तु शेलीने उसे सर्वभक्षी कालका प्रतीक न मानकर 'जीवन-शक्ति'का प्रतीक माना है। 'जीवन शक्ति'के अन्दर ही सामर्थ्य है कि वह अशिवको पराजित कर सके। इसी 'जीवन-शक्ति'से सत्य प्रेम, आनन्द, पुण्यका जन्म होता है। पैन्थिया कहती है :

"डेमोगोरगनके देशमें—जिसके विशाल सिंहद्वारसे ज्वालामुखीकी मुख-गुहाकी भांति वह शुभ्र धूम्र निकलता है जिसे मनुष्यगण पीते हैं और वे इसे 'जीवन-मदिरा' कहकर पुकारते हैं····कभी-कभी वे इसे प्यार, पुण्य, सत्य पुलक, आनन्द आदि नाम भी देते हैं।"

इस क्रान्ति-तत्त्वके अतिरिक्त नाटकका एक अन्य पहलू भी है। डेमोगोरगन तो प्रमथ्युको मुक्ति देता है पर उसे आस्था और कविको भावीका स्वप्न 'एशिया'के चरित्रमें मिलता है। यह एशिया प्रमथ्युकी प्रेमिका है और 'प्यार' का प्रतीक है। और दूसरा चरित्र है एशियाकी सखी 'पैन्थिया'। यह 'आस्था' का प्रतीक है। एशिया और पैन्थिया, प्यार और आस्था, के द्वारा जीवन-शक्तिका रहस्य हम देख सकते हैं। ये ही दोनों डेमोगोरगन, सृष्टि-की आत्मशक्ति (वर्ल्ड सोल) को देख-सुन पाती हैं।

शेलीका यह क्रान्ति-दर्शन युटोपियन था। रूमानी दृष्टिका चरम विकास ही है युटोपिया। प्रमथ्यु और एशियाके परिणय-द्वारा वह विद्रोह और प्यारका सम्मिलन व्यक्त करता है। शेली प्यारको एक शक्तिके रूपमें देखता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि माँ या पत्नी प्यारके द्वारा परिवारमें जो चाहे करा लेती हैं, तो यही पैटर्न पूरे स्टेटपर क्यों न लागू कर दिया जाये। स्टेटको सदैव पुलिस-स्टेटके रूपमें क्यों रखा जाये। जो काम बल और पुलिससे होता है वही प्यार और बुद्धि (रीजन) से भी हो सकता है। २०वीं शतीका चिन्तन वास्तविकताके भोगपर आश्रित है। उसके अनुसार यह सब ऊल-जलूल है। पर शेलीके चिन्तनकी कसौटी रूमानी थी और उस कसौटीपर उसके चिन्तनकी युक्ति-युक्तता सार्थक है।

पर युटोपियावादी होनेपर भी शेलीने—नाटकके अन्तिम अंशमें डेमोगोरगनके मुँहसे कहवा दिया है कि यह संघर्ष अन्तिम नहीं था। शिव और अशिव शक्तियोंका संघर्ष सनातन है। अशिव कभी पूर्णतः मरता नहीं। (वैष्णव अवतार-सिद्धान्त भी ऐसा ही कुछ कहता है।) पर शिव शक्तियाँ भी हारती नहीं और प्रत्येक संघर्षमें विजय उन्हींकी होती है। शिव शक्तियोंका गौरव अशिवके पूर्ण विनाश करनेमें नहीं (जो असम्भव है) बल्कि अशिवकी प्रचण्ड महिमाको ललकारनेमें है। डेमोगोरगन ऐसा संकेत करता है। (संकेत-भर—स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं।)

• • •

कामूने प्रमथ्युके मिथकपर अस्तित्ववादी दृष्टिसे विचार किया है। वह मिथकको उसके मूल 'क्लासिकल' रूपमें देखता है। प्रमथ्यु यह जानता है कि ज्यूपीटरको वह स्वयं पराजित नहीं कर सकता और अपने विद्रोहके 'चरम मूल्य' की निरर्थकताके बारेमें भी उसे कोई भ्रान्ति नहीं। फिर भी वह आत्मसमर्पण और स्वतन्त्र वरणके बीच स्वतन्त्र वरणको ही चुनता है। यह वरण-स्वातन्त्र्य ही विद्रोह है। दूसरी बात यह है कि यह विद्रोह सगुण और सापेक्ष है। वह अग्नि-जैसी प्रतिदिनकी व्यवहारकी चीज़के लिए है। उसका उद्देश्य सम्पूर्ण देवसत्ताको उलट देना नहीं है। कामूने भी विद्रोहको 'सगुण' और 'सीमित'से परिभाषित किया है—चरम मूल्योंपर आश्रित 'विश्व-जनक्रान्ति' की युटोपिया विद्रोह नहीं है 'क्रान्ति' है। ऐसी 'क्रान्ति'का प्रतीक है मिल्टनका 'शैतान'। शैतान सम्पूर्ण देवसत्ताको उलटकर एक नयी व्यवस्थामें विश्वास करता है। यह निर्गुण, थ्योरेटिकल, चरम मूल्य-आश्रित विश्वास है जिसका अस्तित्वमें अपने 'चरम मूल्यों' की सार्थकताके साथ आना असम्भव है। (क्योंकि अस्तित्ववादके अनुसार 'चरम मूल्य'-जैसी कोई चीज़ ही नहीं)। अतः प्रमथ्यु दार्शनिक और व्यावहारिक 'विद्रोह'का प्रतीक है जब कि सिस्युफ़स केवल दार्शनिक विद्रोहका, जो 'वरण-स्वातन्त्र्य' तक ही सीमित है। पर कामूने इस थीमपर कोई रचना नहीं की।

हिन्दीमें इस मिथकपर डॉ० धर्मवीर भारतीने एक रचनात्मक प्रयास किया है 'सात गीत वर्ष' की प्रथम लम्बी कविता 'प्रमथ्यु-गाथा' के तौरपर। मिथकका क्लासिकल रूप ही रखा गया है और कविता विविध चरित्रोंके लम्बे वक्तव्यों-द्वारा आधुनिक संवेदनाओंका बोध प्रस्तुत करती है। प्रमथ्युके प्रार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्भिक वक्तव्यपर शैलीके बन्दी प्रमथ्युकी छाप है : "अन्धो घाटीमें भयभीत भेंड़की तरह यह धरती दुबकी हुई थी। इसमें साहसका संचार करनेके लिए मैंने ज्योति लायी। फलतः मैं भोग रहा हूँ 'टूटी पसलियाँ और मनका घाव' 'अन्दरका सारा नग्न अनावृत दर्द' तथा 'नरभक्षी बूढ़े गृद्धका उत्पीड़न' जो मेरा हृदय-पिण्ड दिन-भर नोच-नोचकर खाता है।" ज्यूपीटर (द्युपितर)* का तर्क है—"ज्योति वर्जित थी। साहस तो मैंने इन मनुष्योंके लिए बनाया ही नहीं था। पर ज्योति पाकर उनमें साहस आ जायेगा—प्रमथ्युका यह कार्य मेरी सत्ताका प्रथम अनादर है अतः अक्षम्य है।"

यहाँतक तो कविता रूमानी संवेदना (प्रेरणा और चैलेंज-जैसे 'बादलराग' या 'ओड टुवेस्ट विण्ड') को लेकर चलती है। इसके बाद भारतीका स्वर एक-ब-एक पलट जाता है। बिलकुल महायुद्धके बादका प्रति-रूमानी ('ऐण्टी-रोमाण्टिक') स्वर। उदास वास्तविकता और भ्रान्ति-मुक्त स्वर! 'सैड डिसइल्यूजनमेण्ट' का स्वर! आदर्श, क्रान्ति, मुक्तिका रूमानी बादल फट जाता है।

जनसाधारण:

"मूरख नहीं हैं जो हम क्यों उठाते सिर
हम क्यों ये सब साहस करते व्यर्थ
अग्नि जिसे लाना था ले आया!
यह जो हम अब भी खड़े हैं
प्रमथ्यु के आस-पास
इसलिए नहीं कि हम कुछ
उसके अनुगामी हैं
× × ×
चाहता अगर हममें-से हरेक व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमथ्यु हो सकता था
लेकिन हम डरते थे
ज्योति चाहते थे
पर दण्ड भोगने से डरते थे
हम खुद क्यों लें कोई निर्णय?
हम खुद क्यों भोगें कोई दण्ड?"

—यह उदास वास्तविकता और उदास हो उठती है ज्योति (अग्नि) की आत्मव्यथा-द्वारा। अग्निको व्यथा है कि उसे विलासी कायर देवताओंके महलोंसे मुक्त करके, अपने मस्तकपर लगाकर उस वीर पुरुषने फिर दूसरे प्रकारके कायरोंके बीच क्यों फेंक दिया। यह सम्पूर्ण आत्मदान, सारा प्रकाश व्यर्थ गया।

कविने यहाँ एक सार्वभौम ऐतिहासिक ट्रेजडीकी ओर संकेत किया है। वह ट्रेजडी जो फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति, रूसी राज्यक्रान्ति और आंशिक रूपसे १९४७ के बाद भारतीय राज्य-क्रान्तिकी विजयोंके बाद घटित हुई। विद्रोह-के मसीहाने अपनेको बिलकुल 'अकेले' पाया और उसके आत्मदान-द्वारा लायी गयी ज्योति-के साथ मनमाना कमीना व्यवहार किया गया और उसी जनसाधारणकी स्वीकृतिके साथ जिसकी गरिमाके लिए उक्त मसीहाने आत्म-दान किया था।

भारतीकी इस कवितामें गृद्ध एक मुश्किल और उलझा हुआ प्रतीक है। प्रमथ्युके कन्धे पर बैठा मांसभक्षी गृद्ध जो उसका हृदय नोच-

* ग्रीक भाषामें 'ज़ेउस' तथा लैटिनमें 'ज़व' और 'ज्यूपीटर' देवराज इन्द्रके ही नाम हैं। इसका हिन्दीकरण है 'द्युपितर'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोचकर खा रहा है, प्रमथ्युका गुरु भी है! (क्लासिकल मिथकमें यह प्रति-रूमानी संशोधन है):

"गिद्ध यह बैठा है जो मेरे कन्धों पर
ऊपर उड़ते-उड़ते पहली बार इसमें देखी
थी झलक अग्नि की!

साहस था मेरा
किन्तु द्युपितर के महलों की गुप्त राह
इसने बतायी मुझे—
गुरुजन है!"

और यही कारण है इस 'बूढ़े, गुणी ज्ञाता' गुरुके प्रति उसके मनमें कोई कटुता नहीं है। वह नतमस्तक बरदाश्त कर रहा है। वह नतमस्तक इसलिए नहीं है कि पराजित है, बन्दी है, बल्कि इसलिए कि जिनके लिए वह अग्नि जीतकर लाया है उनमें :

"नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का
उनको बिना पीड़ा मिल जानेवाली अग्नि
माँजती नहीं है
और पशु ही बनाती है।"

गृद्ध कहता है—वत्स, कटु मत बनो। कटुताका ज़हर तुम्हारे हृदयमें आनेपर तुम्हारा रक्त दूषित हो जायेगा—जो मुझे ही आखिरमें पीना है।

"तुम हो मेरे प्रियजन
मेरा यह आहत अहम्
अगर तुम्हारे मांसपिण्ड से बुझाता है
अपनी भूख
तो क्या तुम इतना भी नहीं
सहोगे मेरे लिए।"

अतः बूढ़ा-गुणी-ज्ञाता गिद्ध (१) गुरु है जो प्रथम अग्निका साक्षात्कार करता है, (२) उसका 'अहम् आहत' है क्योंकि साहसके बग़ैर वह मसीहा बननेकी गरिमा न पा सका जो शिष्य प्रमथ्युको प्राप्त है, (३) इसीसे और साथ ही राजाज्ञा द्वारा नियुक्त होनेके कारण शिष्यका रक्तपान करता है, और कहता है : 'कटु मत बनो। रक्त पीने दो।'

यह तथ्य भी दूसरी सार्वभौम ट्रेजडीकी ओर संकेत करता है जिसके शिकार द्रोणाचार्य बने थे। प्रत्येक क्रान्ति या विद्रोहका मूल उत्स किसी दार्शनिककी जिज्ञासामें, किसी गुरुके उपदेशमें रहता है, पर साहसके अभावमें 'पुरानी पीढ़ी' वह 'गुरुपीढ़ी' क्रान्तिके बाद उस 'नये अभिजात' का अंग बन जाती है जो 'पुराने अभिजात' को संहार करनेके बाद गढ़ा जाता है। और यह रक्तपायी बुद्धिजीवी दार्शनिकोंका काम करती है जिनको आवश्यकता 'नये अभिजात' को सदैव पड़ती है। नया 'मैनेजर'-वर्ग पुराने वादोंकी नयी व्याख्या इन्हीं 'गुरुओं'-द्वारा प्रस्तुत करवाके नयी बेड़ियोंको मज़बूत करता है। यों गृद्धका प्रतीक कवितामें बड़ा उलझा हुआ है और इसकी अन्य व्याख्याएँ भी हो सकती हैं।

परन्तु इस कविताका निष्कर्ष वादों और मूल्योंमें अविश्वास और 'विघटनकी फ़िलॉसफ़ी' नहीं है। प्रमथ्युका दुःख क्षण-भोगपर आधारित दुःख नहीं है। वह दार्शनिक धरातलपर अपनी पीड़ा-भोगको एक विराट् पीड़ा-भोगसे जोड़ता है। यह बड़ा दुःख है और इसका निष्कर्ष भी अस्तित्ववादके व्यक्तिगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरण-स्वातन्त्र्यसे बहुत आगे जाता है तथा विद्रोहके आस्थापरक स्वरके साथ यह कविता समाप्त होती है। यह किसी अनगढ़ स्वर्ण-युगके आशावादसे अधिक सार्थक है।

"ये जो साधारण जन हैं
उनमें एक-एक के अन्दर
मूर्च्छित प्रमथ्यु कहीं बन्दी है!
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ासिक्त स्वर
उसके मन को वेधकर
मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे।
उस दिन
हाँ, उस दिन
अकेला मैं रहूँगा नहीं
सबके हृदय में जागूँगा
मैं--प्रमथ्यु :
कटु मैं नहीं हूँ
घृणा किससे करूँगा।"

प्रस्तुत लेखमें आये नामोंके उच्चारणके बारेमें :

ग्रीक-लैटिन	अँगरेज़ी	भारतीय
प्रोमेथेउस	प्रोमेथियस	प्रमथ्यु
ज्यूपीतर	ज्यूपीटर	द्युपितर
एस्ख्युलस	ऐस्किलस / ईस्किलस	ऐस्किलस
ज़ेउस	ज़्यूस, ज़ीयस	जेउस

Phone : 25-8227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :
Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,
Sir P.M. Road, Bombay-1.
Chairman & Managing Director :
P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

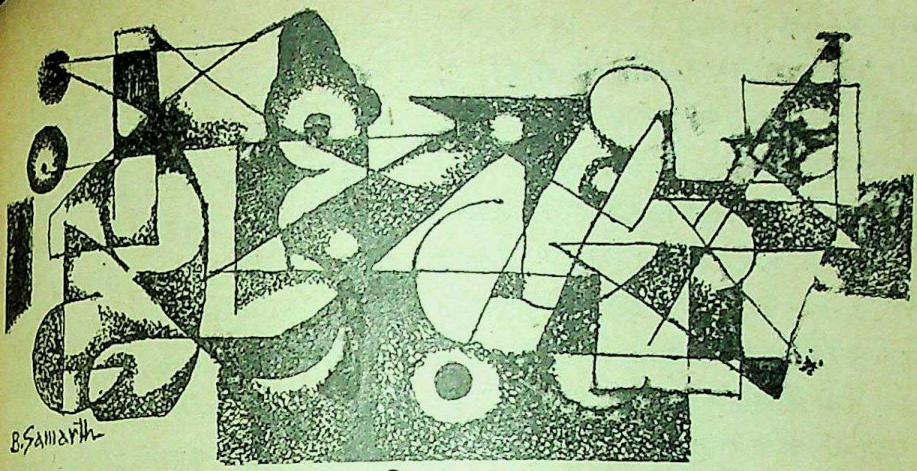

मु । क्त । चि । न्त । न

आधुनिकताके परिप्रेक्ष्य, कालिदास और सौन्दर्य दर्शन

अमृता भारती

'जो सौन्दर्य अनुपल नवीनताको प्राप्त करता है, वही सच्चा रूप अथवा सौन्दर्य है।' सौन्दर्य, वह चाहे मनका हो, प्रकृतिका हो अथवा देहका हो—यदि उसमें हर अगले क्षण नावीन्यका बोध नहीं होता, तो वह वास्तविक सौन्दर्य नहीं है। महान् सौन्दर्यशास्त्री फिसिनो-ने कहा—"सौन्दर्य शक्ति अथवा प्रकाश है जो ईश्वरसे निःसृत होकर हर वस्तुमें प्रकाशित होता है। सूर्यकी अकेली ज्योति जैसे अग्नि, वायु, जल और पृथिवीको प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार यह दिव्य सौन्दर्य मन, आत्मा, प्रकृति और भौतिक पदार्थोंको भास्वर कर देता है। जो इस 'अन्वारीरी' सौन्दर्यको प्रेम करता है वह स्वयं भगवान्‌को प्रेम करता है।"

कालिदासने निश्चय ही इन तत्त्वों (मन, आत्मा, प्रकृति और भौतिक पदार्थ) में भगवदीय सौन्दर्यके दर्शन किये थे इसीलिए उनकी कलाका सौन्दर्य आज भी उसी प्रगाढ़ नावीन्यबोधको प्रतीति कराता है, जिसने शताब्दियोंके आर-पार कालिदासको असीमित रूपमें जीवित रखा है।

अब यह आधुनिकता क्या है जिसके परिप्रेक्ष्यमें मुझे कालिदासके सौन्दर्य-दर्शनका विचार करना है। आधुनिकताकी कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती, क्योंकि आधुनिकताका अर्थ और आधुनिक-बोधका अर्थ आज इतना परिमित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संकीर्ण हो गया है कि उसमें किसीके भी सौन्दर्यको देखना असम्भव लगता है; इसपर कालिदास—जैसे ऊर्ध्वगामी और एक ही वस्तुमें हर अगले क्षण नये सौन्दर्यका बोध करनेवाले कविको सीमित कर उसकी एक भी झलक प्राप्त कर लेना सहज काम नहीं।—इसीलिए मैं उस आधुनिकतासे अपनेको सहज ही अलग कर लेना चाहती हूँ जिसमें अपनेसे पहले जन्म लेनेवाले और सृजन करनेवाले कविको पुरातन कहकर अपनेको मुक्त कर लिया जाता है।

आधुनिकता अथवा आधुनिक-बोध मेरे निकट वह चेतना है जिसके दर्पणमें विगत और आगतकी अनेक सृष्टियाँ एकसाथ खुलती हैं; जो वह वर्तमान-क्षण है जिसमें तीनों काल एक साथ प्रतिभाषित होते हैं। आधुनिक-बोध पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा। उसे किसी एक काल अथवा देशसे नहीं बाँधा जा सकता। इसलिए आधुनिक-बोधको कुछ बरसों या एक शताब्दी-में समाप्त हो जानेवाले 'वर्तमान' में सीमित नहीं किया जा सकता—उसे उस वर्तमानमें देखना होगा जो सृष्टिका चिरस्थायी क्षण है।

कालिदासकी कलाके सौन्दर्यको हम इसी चिरस्थायी क्षणमें देखेंगे, जो आधुनिक-बोधका क्षण है, जिसकी तरलतामें, जिसके जल-दर्पणमें हर पल नावीन्यका बोध होता है, जो कभी जराजीर्ण नहीं होता, पुरातन या मलिन नहीं होता।

कालिदासके वर्णनोंमें विराट् सौन्दर्यका स्फुरण सब कहीं प्राप्त है। वर्णन चाहे हृदयगत भावनाओंका हो, प्रकृतिका हो या किसी पात्रके दैहिक सौन्दर्यका हो, यह दिव्य स्फुरणा सब जगह मिलेगी। नारी और पुरुष-पात्रोंके नख-शिख वर्णनमें भी वह अन्तस्तेज सदा उनके अंगोंको व्याप्त किये रहता है जहाँसे सौन्दर्यकी ज्योतिका आवि-र्भाव होता है। कालिदासने हर वस्तुको उसकी समग्रतामें ग्रहण किया था, इसलिए सृजन करते समय उनका ग्रहीत विषय अपनेको सम्पूर्ण अनावरित कर देता था। उनकी लेखनी जिस बिन्दुको स्पर्श करती थी, उसके चारों ओर वृत्त बनते चले जाते थे—अपने अन्तिम रहस्यकी परतें खोलते हुए, अपने-आपको सम्पूर्ण प्रकट करते हुए; और उन वृत्तोंके अवकाशमें रहते थे अनेकानेक जगत्, विविध रंग, ध्वनि, रस और सौन्दर्य-की बहुविधात्मक फेनाविल-ऊर्मिल संवेदनाएँ और विनिमय-विकल सृष्टियाँ।

कालिदासने पारस—दृष्टि पायी थी। उनकी अन्तश्चेतना सामान्यसे सामान्य दृश्यके भीतर भी जाकर उसकी संवेदनाको ऊपर खींच लेती थी और लेखनी उस भाव-गर्भित दृश्यको सशक्त भाषामें अभिव्यक्त कर देती थी।

महाराज दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा-के साथ महर्षि वशिष्ठके आश्रममें जाते हैं। मार्गमें सुन्दर दृश्योंको देखते हुए, रथ-वीथिके किनारे खड़े मृगोंके जोड़ोंमें एक-दूसरेकी आँखों-का सादृश्य पाते हुए और आकाशमें उड़ती हुई सारस-पंक्तियोंको बिना स्तम्भोंकी लटकी तोरणमाला समझते हुए वे आश्रममें पहुँचते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। महर्षि वशिष्ठ दिलीपके निःसन्तान होनेका कारण जाननेके लिए पल-भरको ध्यानस्थ हो जाते हैं, उस पल उनकी स्थिति 'सुप्तमीन इव ह्रदः' की है—उस सरोवरकी, जिसकी मछलियाँ सो गयी हैं। सरोवरमें मछलियोंका अभाव नहीं है, पर वे सुप्त हैं। वशिष्ठकी निर्विकार शान्त आध्यात्मिक स्थितिके लिए यह उपमा केवल कालिदास ही दे सकते हैं, जो इन्द्रियोंका बहिष्कार नहीं करते, योगीमें उनकी सुप्तस्थिति स्वीकार करते हैं।

राजा दिलीपका हाथ तरकश तक पहुँचकर वहीं जड़ीभूत हो गया है और वे नन्दिनी गौकी प्राणरक्षाके हेतु सिंहको अपनी देह अर्पण करना चाहते हैं, उस समय अपनी दन्त-किरणोंसे गुफाके अन्धकारको खण्ड-खण्ड करता हुआ सिंह बोलता है। यहाँ कालिदास अन्धकारके दूर होनेको 'दूरी कुर्वन्' बात नहीं लिखते, उसके खण्ड-खण्ड होनेकी 'शकलानि कुर्वन्' बात कहते हैं। दन्त-किरणें स्वयं प्रकाशका खण्ड रूप हैं—सम्पूर्ण प्रकाश नहीं, इसलिए वे अन्धकारको सम्पूर्णतया नष्ट नहीं कर सकतीं, उसे केवल टुकड़े-टुकड़े कर सकती हैं। कालिदासका यह कथन सदा आधुनिक रहेगा।

कविके कथनों, वर्णनों, उपमाओं आदिको केवल एक ही शब्दसे अभिनन्दित किया जा सकता है कि कालिदासने सौन्दर्यका साक्षात्कार किया था। यह श्लोक—

अतिप्रबन्धप्रहितास्त्वदृष्टिभि
स्तमाश्रयं दुष्प्रसहस्य तेजसः।
शशाक निर्वापयितुं न वासवः
स्वतश्च्युतं वह्निमिवाम्बुदोदरम्॥

जिस प्रकार बादल घोर वर्षा करके भी अपने हृदयमें उत्पन्न अग्नि (बिजली) को बुझानेमें समर्थ नहीं है, वैसे ही इन्द्र भी अपने अंशसे जन्मे रघुको बाणोंकी वर्षासे पराजित नहीं कर पा रहे हैं। शतक्रतु इन्द्र दिलीपको सौ यज्ञोंका अधिकारी बनने देना नहीं चाहता और वह रघुके सेनापतित्वमें आये यज्ञाश्वका हरण कर लेता है, इसी हेतु यह युद्ध है। घनघोर वर्षामें विद्युत्का स्फुरण जाने कितने हृदयोंमें अग्निको पुनरुज्जीवित कर देता है। मेघ अपनी आगको अपने अपरिमित जलभण्डारसे भी नहीं बुझा सकता, क्योंकि यह हृदयकी आग है, हृदयसे जन्मी है, और सदा-सर्वदा संलग्न रहनेवाली है। अनेक कवियोंने हृदयकी अग्निको अपने मार्मिक शब्दोंमें गाया होगा, अनुभूत किया होगा और उसकी दुस्सह तपनको सहन भी किया होगा, पर परम प्रेमके बीच उद्भूत इस अग्निका दर्शन अथवा साक्षात्कार कालिदासने किया था, जो अग्नि असीम जल अर्थात् नेहके बीच जन्मी है और जिसे स्वयं नेही भी नहीं मिटा सकता, जिसे वह अक्षुण्ण रखना चाहता है।

इन्दुमतीका स्वयंवर है। देश-देशान्तरोंसे राजा-महाराजा आये हुए हैं। परम सौन्दर्य और शूरताके अधिकारी कुमार अज भी एक ओर सिंहासनपर बैठे हुए हैं। उस समय अन्य राजाओंकी प्रशंसा इन्दुमतीके हृदयमें वैसे ही प्रवेश नहीं कर पाती, जैसे सूर्यके न होनेपर मुकुलित कमलके भीतर चन्द्र-किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं, और वह हर भूपालके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामनेसे गुज़रती चली जाती है और कवि कालिदास उस दृश्य और उस स्थितिका साक्षात् कर कहते हैं—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

संचरण करती दीपशिखाके समान इन्दुमती राजाओंके सामनेसे निकल रही है। अपने पीछे जिन राजाओंको छोड़ वह आगे बढ़ जाती है, वे विवर्णभाव अर्थात् अन्धकारको प्राप्त हो जाते हैं। संचारिणी दीपशिखा और पीछे छूटे हुए अन्धकारकी कल्पना आज सैकड़ों वर्ष बाद भी किसीके भी कल्पना-बोध और नावीन्य-बोधको ताज़गी प्रदान कर सकती है।....अन्ततः इन्दुमती अजके सम्मुख पहुँचती है और युवराजको ऊपरसे नीचे तक निहारकर दृष्टिकी वरमाला पहना देती है: नारीकी स्वच्छ, कोमल, प्रीतिपूर्ण दृष्टि ही संवरण माला है जो किसी भी पुष्पहारसे अधिक सुन्दर और सारपूर्ण है। इसके पश्चात् इन्दुमतीको साथ लेकर अज अपने राज्यमें पहुँचते हैं। सुहागरातकी वेलामें रनिवासके विनम्र परिजनोंने चन्द्र किरणोंका काम किया जो शुभ्रा लहरोंवाले समुद्रको वेलावर्ती बना देती हैं: वे शुक्लवेषी अजको इन्दुमतीके पास छोड़ गये।

अतिकोमला इन्दुमतीके प्राण चुरा लेती है एक दिव्य पुष्पमालाकी सौरभ। नन्दन-वनके फूल देखते ही इन्दुमती अपने अप्सरा-लोकमें पहुँच जाती है, उसमें पूर्व स्मृतिका बोध होता है, और वह देह त्याग देती है। अज इस आघातको सह नहीं पाते और इन्दु-मतीकी निष्प्राण देहको अपनी गोदमें रख लेते हैं, तार मिलानेके लिए रखी गयी वीणाके समान। प्रेमका सुर भंग हो गया है, जो तार अभीतक अपनी लयमें समस्ततासे झंकृत हो रहे थे, अचानक टूट जाते हैं और अज इन्दु-मतीके प्राणोंका टूटा हुआ तन्तु पुनः जोड़नेका विवश प्रयास करने लगते हैं। अज अपनी प्रियाकी मृत देह अपने अंकमें लिये बैठे हैं:

पतिरङ्कनिषण्णया तया
करुणापायविभिन्नवर्णया।
समलक्ष्यत बिभ्रदाविलां
मृगलेखामुपसीव चन्द्रमाः॥

प्राण निकल जानेसे इन्दुमतीके शरीरका वर्ण धुँधला हो गया है। राजा इस समय भोरके उस चन्द्रमाके समान दिखाई दे रहे हैं जिसके अंकमें मलिन मृग-छाया हो।

मिलन हो, विरह हो, करुणा हो अथवा उत्सवका प्रसंग हो, कालिदासकी लेखनी परम अनुरागी और परम वैरागी कविकी लेखनी है। जो एकबारगी ही भोक्ता भी है और द्रष्टा भी। कोई भी कवि जबतक इन दोनों स्थितियोंको एक साथ ग्रहण नहीं कर लेता, महाकवि नहीं हो सकता, और उसकी कविताका आधुनिक-बोध भी चिरकालिक नहीं हो सकता। सौन्दर्यका साक्षात्कारी कवि ही चिरन्तन नावीन्यकी प्रतीति करा सकता है। जिस कृतिको पढ़कर उस विशेष सौन्दर्य-क्षणका पूरा साक्षात्कार न हो सका, वह कृति आधुनिक नहीं है, अतीत है। सौन्दर्य-बोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आधुनिक बोध अपनी असीमामें एक ही है, क्योंकि सौन्दर्य सदा नवीन रहता है। 'आधुनिक' शब्द आज बहुत सीमित हो गया है, वह अपना पूरा अर्थ नहीं देता; लेकिन इस लेखमें इस शब्दका प्रयोग इसकी सम्पूर्णता और निस्सीमतामें ही किया गया है। आधुनिकता किसी काल-विशेषका बोध न कराकर उस क्षणका बोध कराती है जो निपट वर्तमान है—जो सम्मुख है और जिसकी प्रतीति अपनी अखण्डतामें हो रही होती है। कालिदासकी कविता हमें ऐसे ही आधुनिक बोधकी स्थितिमें ले जाती है। प्रतीतिका क्षण सदा वर्तमान होता है—वह अतीत नहीं होता, न भविष्य ही होता है, यह बात अलग है कि उसमें ये दोनों काल स्वतः स्फूर्त रहते हैं। कालिदासने इस क्षणका दर्शन किया था, उसे भोगा था और अपनी सम्पूर्ण कवित्वशक्तिसे उसे पुनःसृजित किया था।

आखेटव्यसनी महाराजा दशरथ हिरनोंका पीछा कर रहे हैं। शीर्ण-विशीर्ण हुए मृगोंकी आकुल आँखोंसे भरा हुआ वह वन श्यामल हो उठता है: वायु-विकीरित नील कमलोंकी पंखुरियोंसे भरा हुआ। कालिदास जिस इन्द्रिय-विशेषके भावका वर्णन करते हैं, उसपर उनकी चेतना इतनी केन्द्रित हो जाती है कि शेष अंग-प्रत्यंग, विषय सब ओझल हो जाते हैं—अर्जुनके बाणकी उस नोककी तरह जिसने लक्ष्यभेद करते समय चिड़ियाकी केवल आँखको ही देखा था, चिड़िया, डाल, वृक्ष, द्रोणाचार्य तथा बन्धु-बान्धवोंको नहीं।

विषयको अधिक घनीभूत, प्रगाढ़ और शक्तिशाली बनानेके लिए कवि केवल बिन्दुको पकड़ता है और छोड़ देता है, उसके बाद वृत्त बनते चले जाते हैं—प्रकाश और अन्धकारके वृत्त, अनेक सूक्ष्म भाव संवेदनाओंके वृत्त, क्रियाओं, प्रक्रियाओं और प्रतिक्रियाओंके वृत्त।...राम और लक्ष्मण गुरु विश्वामित्रके साथ जा रहे हैं। जाते हुए उन दोनों धनुर्धारी भाइयोंके पीछे पुरवासी टकटकी बाँधकर देखते हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो मार्गके दोनों ओर नेत्रोंकी बन्दनवार बँधी हो:

"धन्विनौ तमृषिमन्वगच्छतां
पौरदृष्टिकृतमार्गतोरणौ।"

कवि कालिदासके इस लक्ष्य-भेदके मूलमें है विषयमें चेतनाका केन्द्रीकरण, अर्थात् अन्य इन्द्रियोंके विषयोंका भी उसी इन्द्रियके विषयमें प्रविष्ट हो जाना। कालिदासने एक स्थलपर लिखा भी है:

ता राघवं दृष्टिभिरापिबन्त्यो
नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि।
तथाहि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां
सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा॥

'स्त्रियाँ एकाग्रचित हो दृष्टियोंसे अजका रूप पी रही थीं, अन्य विषयकी ओर उनका ध्यान नहीं था, मानो उनकी शेष सब इन्द्रियोंकी वृत्ति नेत्रोंमें ही प्रविष्ट हो गयी हो।' एक इन्द्रियमें अन्य सब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके समागमन-द्वारा ही कविने कथ्यको इतना शक्तिशाली रूप प्रदान किया है। कालिदासमें ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे, जब बिन्दुभूत चेतना भी एक इन्द्रियगत विषयको अधिक प्रगाढ़ बनानेके लिए अन्य सब इन्द्रिय-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयोंको आत्मसात् करके उस विशिष्ट इन्द्रिय-में समाविष्ट हो जाती है। एक और उदाहरण बहुत सुन्दर है जब नवोढ़ा सीताको देखनेके लिए अयोध्या नगरीके गवाक्ष स्त्रियोंको आँखों-से कुवलयित हो गये थे, 'पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शिनीनां कुवलयितगवाक्षां लोचनै-रञ्जनानाम्।' गवाक्षोंसे झाँकते नीलकमल-सरीखे सहस्रों नेत्रोंने खिड़कियोंकी जालियोंको कुवलयित कर दिया: दर्शनके विषयीभूत नेत्रोंकी सर्वोपरिता ही यहाँ अभीष्ट है।

कवि कालिदासने जीवनको उसकी सर्वांगीणतामें देखा था। जीवनका ऐन्द्रिक विलास और उस विलासमें अविचल खड़ी आत्माका सौन्दर्य कविके भोक्ता-द्रष्टा मनका सृजन है।

कवि चन्द्रमाकी परछाँई पड़ी मदिरा 'शशिप्रतिमाभरणं मधु' को देखता है, सूर्यपर पड़ी धूलको दैत्योंके रक्तसे सींचते परा-क्रमी दशरथको देखता है, कुरबकके पेड़ोंसे सजी वनश्रीको देखता है जो उसे पत्रलेखा विरचित रमणी-सी जान पड़ती है। कवि उस रजनीवधूका दर्शन करता है जो वसन्त-आगमनके साथ क्रमशः क्षीण होती जा रही है और प्रियसे समागम न होनेके कारण जिसका चन्द्रमुख भी पाण्डुर पड़ गया है। तिलकफूलों-के श्वेत गुच्छोंपर भ्रमरोंकी पंक्तियोंको कवि जालियाँ बुनते देखता है, वह धनुर्धारी दशरथको भादोंके उस महीनेकी तरह देखता है जिसमें इन्द्र-धनुष निकला हुआ हो और विद्युत्की डोर बँधी हो।

कवि विष्णुके वक्षस्थलकी उस कौस्तुभ-मणिका वर्णन करता है जो लक्ष्मीके लिए दर्पणका काम करती है। विशाल वक्षस्थल-पर सजी कौस्तुभमणिमें लक्ष्मी अपने विलास-को देखती है। उत्कट शृंगारका यह उदाहरण अनेक लीलाओंका संकेत करता है।

विष्णु देवोंकी कार्य-सिद्धिके लिए प्रस्थान करते हैं, उस समय सब देवता अपने अंशोंसे उनका अनुगमन करते हैं, उन वृक्षोंके समान जो अपने फूलोंके द्वारा पवनका अनुगमन करते हैं, स्वयं पवनके साथ नहीं जाते।....दशरथका पुत्रेष्टियज्ञ समाप्त हुआ और उन्होंने विष्णुके तेजसे सम्पन्न दिव्य खीरको अपनी दोनों रानियोंमें बाँट दिया जैसे सूर्य अपनी नवीना धूपको द्यावा और पृथिवीमें समान रूपसे बाँट देता है।

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्॥

कालिदासकी दृष्टि विद्युत्स्फुरणकी तरह पल-भरमें सौन्दर्यका साक्षात्कार कर लेती है। सौन्दर्य अपने अल्पसे अल्प क्षणमें, अपने लघुसे लघु उपकरणमें भी विराट् होता है यही कारण है कि कवि इस विराट्ताको अपने थोड़े-से ही शब्दोंमें अवतरित कर लेता है घटाकाशकी तरह। कालिदासकी शब्द-देहके पार जानेके बाद यही घटाकाश विराट् आकाशकी भाँति अपना रूप प्रकट करता है और तब शब्द भी अपने परम रूपको अनावरित कर देते हैं।

दशरथकी रानियाँ दिव्य तेजको धारण करती हैं और तब आरम्भ होती है दिव्य स्वप्नोंकी परम्परा। वे देखती हैं कि सोनेके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंखोंसे प्रकाश फैलाता हुआ, अपने वेगके कारण अपने साथ मेघोंको भी खींचकर ले जाता हुआ गरुड़ उन्हें आकाशमें उड़ाकर ले जा रहा है :

हेयपक्षप्रभाजालं गगने च वितन्वता ।
उह्यन्ते स्म सुपर्णेन वेगाकृष्टपयोमुचा ।।

यह वह 'अनल पंछी' है जो दिशाओं तक मुक्तिका सन्देश लेकर दौड़ रहा है। दिव्यका अवतरण ही मुक्ति है, और इसके वेगमें इतनी शक्ति आकर्षणपरता है कि वस्तु-का ठहरना असम्भव है। वेगका यह आकर्षण और पक्षीका मेघोंको भी उड़ाकर ले जाना (मेघ, यहाँ जो अज्ञान, मोह और अन्धकारके प्रतीक हैं) अत्यन्त आधुनिक कथन है। यह वह आधुनिक-बोध है जो बरसों, सदियों और युगोंकी परिधिमें नहीं बँधा है : यह सनातन क्षणमें बँधा आधुनिक-बोध है जो कभी पुरातन नहीं होता और जिसकी सीमा अगर होती है तो युगोंसे बड़ी होती है, अन्यथा जो निस्सीम होता है।

और तब तन्वंगी कौशल्याके पास लेटे रामको कवि देखता है : शरत्कालीन गंगाके सीण तटपर चढ़ाये गये नील कमलकी तरह। निर्मल्य पुष्पसे अधिक पावन और क्या हो सकता है, वह भी नील कमल : आध्यात्मिक चेतनाका प्रतीक वर्ण और फूल।

राम लक्ष्मण विश्वामित्रके आश्रमकी बाधाएँ दूर करनेमें लग जाते हैं जैसे सूर्य और चन्द्र अपनी किरणोंसे क्रमशः पृथिवीका अन्धकार दूर करते हैं। सीता-स्वयंवरका आयोजन होता है और जनक अपने सेवकोंको शिव-धनुष लानेका आदेश देते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे इन्द्र बादलोंको अपना धनुष प्रकट करनेका आदेश देता है।

....कवि लक्ष्य करता है वायुके द्वारा बनाये गये सूर्यके मण्डलको :

लक्ष्यते स्म तदनन्तरं रवि
र्वद्धभीमपरिवेषमण्डलः ।
वैनतेयशमितस्य भोगिनो
भोगवेष्टित इव च्युतो मणिः ।।

जो ऐसा जान पड़ता है मानो गरुणसे आहत सर्प अपनी मणिके चारों ओर कुण्डली मारे पड़ा हो।

कालिदासके इन प्रयोगोंसे चमत्कृत होकर उपमाकी यह विलक्षण सृष्टि देखकर काव्य-शास्त्रियोंने कहा : 'उपमा कालिदासस्य।' यह ठीक है कि कालिदासने अपनी कवितामें जिस सौन्दर्यको प्रस्तुत किया वह विशेषतया उपमा-अलंकारके माध्यमसे ही प्रकट हुआ है, किन्तु यह केवल उपमा-अलंकार नहीं है। यह सौन्दर्यका साक्षात्कार है, उस सौन्दर्यका साक्षात्कार, जिसके दर्शनके लिए दृष्टिका अव्याबाध होना अनिवार्य है। कालिदासकी दृष्टि 'हेमपर्णा' पक्षीकी तरह अदम्य वेगशीला और क्रान्तदर्शी थी। उनकी अन्तश्चेतनाकी पारदर्शी किरणें स्थूल तत्त्वोंके भीतरकी प्रकृतिको भी देख लेती थीं और उनकी कवित्वशक्ति उतनी ही सशक्त भाषामें उस प्रकृतिको आकार देती थी। साक्षात्कार यों 'क्षण' की अनुभूति-प्रतीति है, किन्तु उस चिरस्थायी क्षणकी, जो सदा वर्तमान रहता है और जिसकी अनुभूति युगोंको छा लेती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैकेयीने दशरथसे दो वर माँग लिये ऐसा प्रतीत हुआ मानो भींगी हुई पृथिवीके विवरोंमें-से दो सर्प निकल आये हों। रामने लक्ष्मण और सीताके साथ वन-गमन किया! एक दिन राम थकित भावसे सीताकी गोदमें सिर रख ऐसे वृक्षके नीचे लेटे हुए थे जिसकी छाया उन्होंने अपने प्रभावसे स्तम्भित कर दी थी: 'प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः···'। वृक्षकी छायाको स्तम्भित कर देनेका प्रभाव रामका है, भाव कालिदासका।···विराध राम और लक्ष्मणके बीचसे सीताको हर लेता है जैसे कोई दुष्ट ग्रह सावन और भादोंके बीचसे वर्षाका हरण कर ले:

स जहार तयोर्मध्ये मैथिलीं लोकशोषणः।
नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे॥

कालिदासकी हर उक्ति अ-सामान्य और विलक्षण है, बहुत मौलिक और सर्वथा अपनी है। कालिदासने काव्यशास्त्रोंको देखकर काव्य-रचना नहीं की, काव्यशास्त्रियोंने उनके काव्योंसे काव्यके स्वरूपकी सम्भावना ग्रहण की।

लंकामें राक्षसियोंसे घिरी हुई सीता विष-वल्लरियोंके बीच संजीवन-औषधि-सी जान पड़ती हैं। संजीवनौषधि प्रकाशवन्त होती है, अन्धकारके आते ही वह ज्योतित हो उठती है। तमसा राक्षसियाँ मानो उसी रात्रिगत अन्धकारकी प्रतीक हैं, उनका प्रभाव भी विषाक्त करता है, जब कि सीताका दर्शन भी संजीवनी बूटीकी तरह रोग-शोक हर लेता है।····सीता हनुमान्को रामकी प्रत्यभिज्ञाके लिए मणि देती हैं—और रामको वह मणि 'हृदयं स्वयमायातं वैदेह्या इव मूर्तिमत्'।··· आगत हृदय-सी जान पड़ती है: अन्ततः रावणकी मृत्यु होती है, ब्रह्मास्त्र आकाशमें जाकर शत भागोंमें फट जाता है और उसमें-से निकलनेवाली अग्नि शिखाएँ शेषनागके दीप्तिमान् फण-मण्डलके समान जान पड़ती हैं। मन्त्रपूत ब्रह्मास्त्रने रावणके दसों सिरोंको पल-भरमें काटकर गिरा दिया। कालिदास कहते हैं कि रावणकी देहसे विच्छिन्न हुए उन शिरोंकी परम्परा ऐसी शोभित हुई जैसे जलमें चंचल लहरोंसे भिन्न हुए बाल सूर्यके अनेक प्रतिबिम्ब पड़ रहे हों।

कालिदासने प्रकृतिकी गहरी निस्तब्धताओं, चंचलताओं और परिवर्तनोंका सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने पौराणिक सन्दर्भोंकी पृष्ठभूमि लेकर उसे नया कलेवर और नया रूप प्रदान किया है। राम सीताको विमानसे उस समुद्रका दर्शन करनेको कहते हैं जिसमें अनेक पंखहीन पर्वतोंने इन्द्रके भयसे शरण ली थी। राम कहते हैं: सृष्टिके आरम्भमें जब वराह भगवान् पृथिवीको रसातलसे ऊपर ले जा रहे थे, उस समय प्रलयसे बढ़ा हुआ इस समुद्रका स्वच्छ जल पल-भरके लिए पृथिवीका अवगुण्ठन बन गया था। समुद्रकी लहरोंका तरल, फेनिल अवगुण्ठन पृथिवी और वराहके विराट् सन्दर्भमें कविकी समान रूपसे विराट् कल्पना है।····समुद्र-प्रदेशके बाद दिखाई देनेवाली पृथिवी रामको ऐसी जान पड़ती है जैसे वह अचानक ही अभी समुद्रमें-से निकल पड़ी हो। आगे चलकर ऊपरसे गंगा और यमुनाकी उजली और साँवली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहरोंका मिलन उन्हें ऐसा प्रतीत होता है जैसे वृक्षके नीचेकी वह चाँदनी जिसके बीच-बीचमें पत्तोंकी छाया पड़ रही हो, या शरद-ऋतुके वे उजले बादल जिनके बीच-बीचमें नीला आकाश झांक रहा हो। इसी प्रकार सीताके उद्धारके प्रसंगमें शरद-ऋतु-द्वारा बादलोंसे चाँदनी छीन लेनेकी कल्पना भी इतनी ही मधुर है।

सीता-सम्बन्धी लोकापवाद रामको असह्य प्रतीत होता है, उन्हें ऐसा जान पड़ता है कि स्वच्छ दर्पणपर भापके कारण मलिनता आ गयी है। उन्हें घर-घर फैलती अपनी निन्दा पानीमें फैलती तेलकी बूँद-सी प्रतीत होती है। रामको सीताकी पवित्रतामें सम्पूर्ण विश्वास है, फिर भी अपवित्रताका आरोप तक उन्हें सत्यसे ज्यादा बलशाली प्रतीत होता है। राम कहते हैं : निर्मल चन्द्रबिम्बके ऊपर पड़ी हुई पृथिवी-की छायाको मनुष्य चन्द्रमाका कलंक कहते हैं और इस कलंककी सत्ता न होनेपर भी वे इसे ही सत्य मानते हैं। यहाँ कवि सत्य और तथ्य-का भेद स्पष्ट करता है। सत्यका स्पर्श बहुत कम लोग कर पाते हैं, वे जो सामने दिखता है, उसीमें विश्वास करते हैं, तथ्य (फ़ैक्ट) ही उनके निकट सर्वोपरि है। सत्य स्वयं प्रकाशवान् होनेपर भी अपनेको अनेक आस्त-रणोंमें प्रच्छन्न रखता है, उसे देखनेके लिए तथ्यके पार जानेवाली दृष्टि चाहिए। कालिदास-ने सत्य, शिव और सुन्दरके आन्तर स्वरूपका दर्शन किया था। इनकी परतोंमें जो गुह्यतम सत्य, शिव और सुन्दर है, उसका साक्षात्कार किया था।

कालिदास शब्दकवि हैं : शब्द जो स्वयं ब्रह्म है। वे शब्द कहते हैं और शब्द आकाश-में घुलने लगता है, गूँजने लगता है अपने अन्तर-अर्थों और अन्तर-ध्वनियोंको प्रकट करता हुआ। लक्ष्मण सीताको वाल्मीकि-आश्रमके समीप छोड़कर चले जाते हैं, उनके ओझल होते ही वे कुररीके समान क्रन्दन कर उठती हैं, और तब—निषादके हाथसे मारे हुए क्रौंच-पक्षीको देखकर जिनका शोक श्लोक रूपमें फूट निकला था—वे कवि सीताके रुदन-का अनुसरण करते हुए आते हैं :

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी
कविः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥

यहाँ कालिदास वाल्मीकि मुनिका नामो-ल्लेख नहीं करते हैं, 'कवि' शब्द ही उनके निकट पर्याप्त है। कविकी द्रवणशीलता, सह-अनुभूतिमें कालिदासका विश्वास है, इसलिए वे भावको अधिक तीव्र बनानेके लिए एक ऐसे कविका अन्तर्जगत् प्रस्तुत करते हैं, क्रौंच-युगलमें-से एकको आहत देखकर जिसके भीतर कविताका जन्म हो गया था। पंछी-युगलका वियोग जिसके लिए इतना तीव्र और पीड़क प्रमाणित हुआ, प्रेमी मानव-युगलके विरहका यह दृश्य उसे कितना कष्टकारी लगा होगा।.... कालिदास रामविरहित सीताकी उपमा देते हैं चन्द्रमाकी उस अन्तिम कलासे, जिसका सारा अमृत पितरोंने शोष लिया है : 'निर्विष्टसारां हिमांशोरन्त्यां कलाम्' उक्ति इस महाकविकी दृष्टिसीमामें ही उन्मुक्त हो सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा कुशको मध्यरात्रिके समय अपने कक्षमें एक स्त्री दिखाई देती है। जैसे दर्पणमें मुँहका प्रतिबिम्ब प्रविष्ट हो जाता है, वैसा ही था बन्द द्वारोंके कक्षमें उस स्त्रीका पदार्पण। दर्पणके द्वार नहीं होते, फिर भी उसमें बिम्बका प्रवेश होता है। कालिदासकी इस उपमाका सौन्दर्य उनके अति नावीन्य-बोधका परिचायक है। सौन्दर्य कभी पुरातन नहीं होता, फिर सौन्दर्यके साक्षात्कारी कविकी उक्ति भी कैसे पुरानी हो सकती है! उन्हें सूर्यके बादकी वह सन्ध्या उदास लगती है जिसमें वायुने मेघोंको छितरा दिया है। पवनसे बिखरे हुए मेघवाली सन्ध्या उन्मना स्थितिको पैदा करती है—ऐसी अन्यमनस्क स्थितिको जन्म देती है जिसमें अन्धड़ है, बिखराव है।....स्वामीविहीन घरोंके स्तम्भोंपर सर्प अपनी केंचुल छोड़ देते हैं और वे खम्भोंपर खुदी मूर्तियोंके लिए वसनका काम करती हैं।

युवराज अतिथिका अभिषेकोत्सव है। पुरोहित उन्हें मन्त्रपूत जलसे स्नान कराते हैं जिससे उनके शरीरका तेज बढ़ जाता है जैसे वर्षाके जलसे बिजलीकी चमक बढ़ जाती है। जल और विद्युत् अभिन्न हैं। जलविहीन मेघोंमें बिजली स्फुरण नहीं करती, लेकिन जल उसके सौन्दर्य और उसकी चमकको तराशता है—मन्त्रोंसे पवित्र जलका स्नान भी युवराजमें अतिरिक्त तेजका संचार करता है।....कवि वर्णन करता है समुद्रके ज्वारका—जो नदियोंके मार्गोंसे ही बढ़ता है, दूसरे मार्गोंसे नहीं। समुद्र घटने-बढ़नेकी विकृतिसे परे है, इसलिए ज्वारके समय भी वह अपनी अन्तःप्रकृतिमें रहता है, बढ़ता है तो भी नदीके मार्गोंद्वारा ही।

कालिदासकी हर बात कालिदासकी है। कालिदासने अपनी पृथिवी, अपना वायुमण्डल, आकाश और अन्तरिक्ष स्वयं रचा और उसमें वास करनेवाले हर अणु-परमाणुकी पुनर्रचना भी स्वयं की।....आधुनिकताका परिप्रेक्ष्य इस कविकी विराट् परिसीमाकी व्याप्तिके लिए लघुकाय पड़ता है, लेकिन जैसे आकाश और उसके स्वरूपकी प्रतीतिको प्रस्तुत करनेके लिए घटकी रचना करनी पड़ती है, वैसे ही कालिदासके कवित्वकी एकपक्षीय प्रतीति करनेके लिए 'आधुनिकताका परिप्रेक्ष्य' रचना पड़ा। कालिदासको किसी भी शीर्षकमें नहीं बाँधा जा सकता, लेकिन जैसे विद्युत्को भी बल्बमें ले आनेका वैज्ञानिक प्रयास किया जा चुका है (यों विद्युत् अब भी अपने विराट् स्वरूपमें स्वयं स्थित है), वैसे ही मैंने भी इस लेखमें कालिदासके रसको ले आनेका प्रयास किया है।....कालिदासके बारेमें लिखना स्वयंको कृतार्थ करना है।

(इस लेखके समस्त उद्धरण 'रघुवंश' महाकाव्यसे लिये गये हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न। यी। क। ला

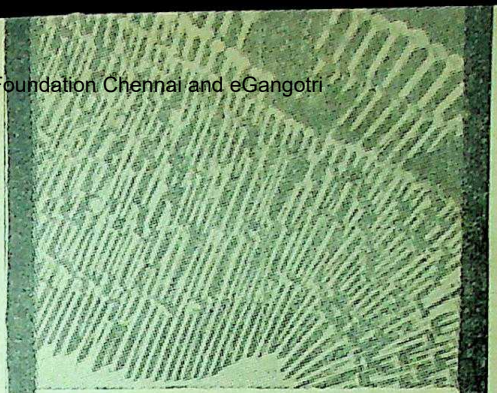

कीलों पर टँगी ज़िन्दगी और सिकलुकी

रमेशचन्द्र शर्मा

विश्वकी नस-नसमें व्यापी हुई उदासी, ऊब, उत्पीड़न और यातनाकी अभिव्यक्तिके लिए आजका कवि, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार, कलाकार, मूर्तिकार और एक शब्दमें कहें तो सर्जक-मात्र बेचैन है। परम्परागत बिम्ब और प्रतीक फीके पड़ गये हैं, रंग उड़ गये हैं, पत्थरोंकी काट-छाँट भावहीन हो गयी है और अकविता, अकहानी और अनाटक-जैसी अनेक अविधाएँ पनप रही हैं, जिनके कारण कुछ लोग बड़ी दुविधामें पड़ गये हैं। कलाकार और शिल्पी भी नये-नये माध्यम खोज रहे हैं। पिछले दिनों उकठे काठ-से अभिनव युवाबोधको सशक्त अभिव्यक्ति देनेवाले भारतीय कलाकार मंसारामकी बड़ी चर्चा रही है। मूर्तिकलाके क्षेत्रमें भी प्रयोगशील शिल्पियोंने अभिव्यक्तिके एकदम अपरिचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अचीन्हे धरातल खोज निकाले हैं।

पोलैण्डके वारसा नगरकी एक भीड़-भरी गलीमें स्थित स्टूडियोमें आप जायें तो आप सोचने लगेंगे कि यह कहाँ आ गये। कुछ बेडौल शक्लके तख्ते पड़े हैं, और उनपर कीलें, कीलें, और कीलें ठुकी हुई हैं!

फिर ठक-ठककी एक लयहीन आवाज़ आपका ध्यान खींच लेगी, और आप देखेंगे कि कील-सी ही नुकीली नाकवाला एक आदमी लगातार कीलें ठोंके जा रहा है। उन्तालीस वर्षीय 'सिकलुकी' देखनेमें भी बीमार-सा लगेगा; पिछले आठ सालसे वह आजके मानव-के संघर्ष और संकटको काठमें धँसी कीलों-द्वारा व्यक्त करता रहा है। विज्ञापन और प्रचार-से दूर रहनेवाले इस एकान्तप्रेमी शिल्पीने इतने सशक्त माध्यमका आविष्कार किया है, लेकिन जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियोंमें उसकी नक़ल करनेवाले कुछ छुटभइये इस शिल्पविधि-पर अपना ठप्पा लगाना चाहते हैं, तो आज-तक कभी भी सिकलुकीने अपने अगुआ होनेका दावा नहीं किया।

पोलैण्डके प्रख्यात शिल्पी दुनीकाव्स्कीके शिष्योंमें शायद सिकलुकी ही है, जो अपने प्रभावशाली गुरुकी छत्र-छायामें-से 'दामन बनाकर' निकल आया है। यही नहीं, महान् मूर्तिकार मूर और शेडविक-की परछाईंसे भी सिकलुकी दूर रहा है। नितान्त मौलिक ढंगसे, नितान्त मौलिक माध्यमका उपयोग करते हुए नितान्त मौलिक शिल्पी सिकलुकीकी अधिकांश रचनाएँ अभी स्कैचबुकमें ही छिपी हुई हैं। इनको देखनेसे प्रतीत होता है कि सिकलुकीकी दृष्टिमें वस्तु और तथ्योंकी आत्मामें प्रवेश करनेकी अभूत-पूर्व क्षमता है और उसने अनेक अछूते विषयों-को नये कोणोंसे देखा-परखा है। उसकी कृतियोंमें-से 'सन्धि-विराम' और 'मस्तूल' की अधिक चर्चा रही है।

सिकलुकी कीलोंको 'माइक्रोस्क्रीन' कहता है। यों पिछले कुछ वर्षोंमें 'इलैक्ट्रोनिक्स'के वैज्ञानिक नियमोंका उपयोग करते हुए कुछ शिल्पियोंने ऐसी भी 'मूर्तियाँ' रची हैं जिनके साथ '४४० वोल्ट; सावधान! दूरसे दर्शन करें!' की सूचना टाँगनी पड़ती है, पॉप-कला, और ऑप-कलाके नक्कारोंके बीच मुझे तो लगता है कि सिकलुकी-जैसा चुभता हुआ माध्यम कोई नहीं खोज पाया और अगर उसकी कीलोंका दूसरा सिरा भी नुकीला रहा होता तो अभिव्यक्ति और भी पैनी हुई होती!

सिकलुकीकी कील-मूर्तियाँ देखनेके बाद :

लगता है
मैं भीष्म हूँ;
मेरी देह में छिदे हुए हैं बाण,
मेरे आस-पास मेरे सगे-सम्बन्धी खड़े हैं:
'कब मिलेगा इस कम्बख्त से त्राण!'
अभी मैंने आह भरी है
(मेरे होठ सूख गये हैं)
मेरे माथे को चीरता हुआ एक तीर
धरती में धँस गया है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिकलुकी और उसका
कील-घर :

सामने कीलों पर टँगी सिकलुकीकी कृतियाँ : 'तीन दुनिया', 'परीक्षा', 'सन्धि-विराम'·····कैसे खूबसूरत प्रतीक हैं निर्मम ज़िन्दगी के···

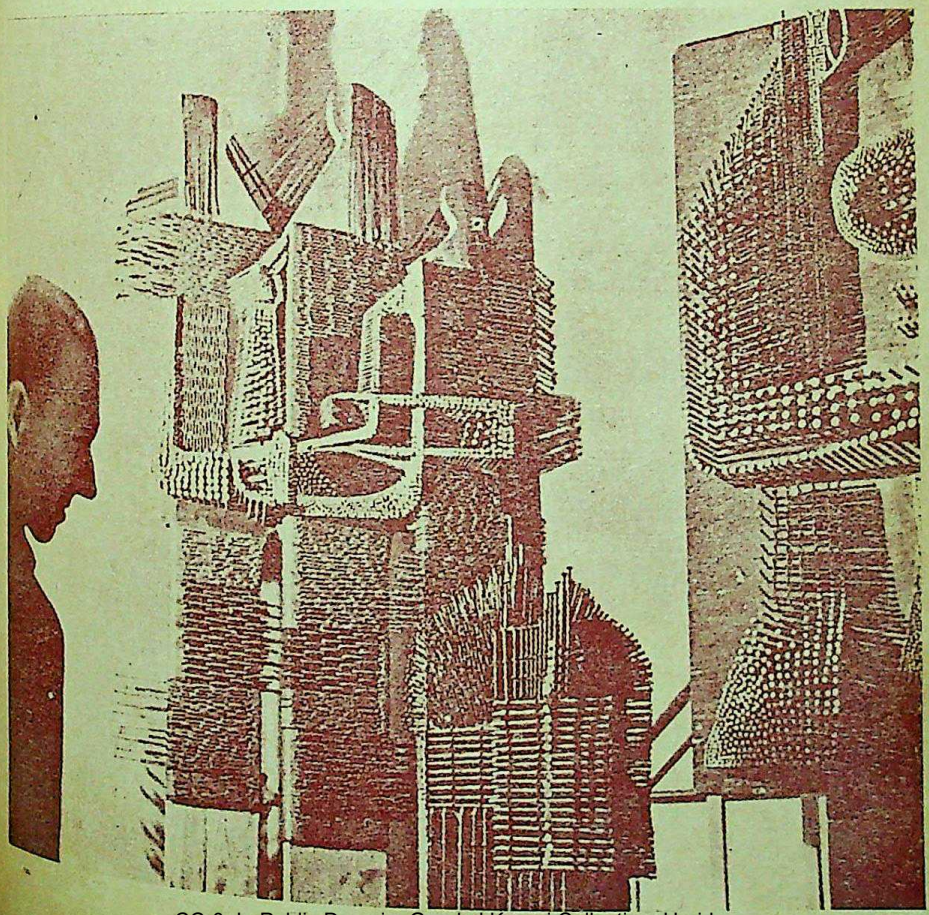

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक कील-शिल्प
'मस्तूल'–डूबता
हुआ मस्तूल ··

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिल्लीमें भूचालके हलके धक्के लगे हैं)
पानी की धार फूट पड़ी है;
पास खड़े हुए लोग अपने-अपने घरों से
बाल्टियाँ ले आये हैं
(दिल्लीमें पानीकी बड़ी कमी है)
और मेरे होठ रेगिस्तान की तरह विकृत
हो गये हैं।
हताश मेरा सिर नीचे की ओर लटक
गया है,
पास खड़े दो लड़कों को दया आती है
और वे भागकर क्रिकेट खेलने के खूँटे ले
आये हैं;
मेरा सिर उन पर टिक गया है।

फिर वे मेरा बुरा करते हैं—
खिलाड़ी तब आउट होगा
जब गेंद मेरे सिर को उछालकर
फिर नीचे लटका देगी।
—नुकीली कीलों वाले दो बूटों से दबे हुए
हाथ—
छटपटाते हैं
—बाण-गिरी देह का मस्तूल काँपता है
आँधियाँ आरपार गुज़र जाती हैं
और फिर
सब कुछ शान्त हो जाता है
मृत्यु—जैसा शान्त!

वातायन

- आजका पाठक : अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक! लेखक और दो विशिष्ट कृतियाँ! पाठक लेखक और युगबोध!
- गीत : मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गीत हस्ताक्षर!
- विश्वभारती : पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण!
- अन्तर्भारती : भारतीय भाषाओंका कथा-संगम!
- भारती : हिन्दी कथा-साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें!
- कविता : जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजकी कविता पीढ़ी।
- साक्षात्कार : रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार!
- आलोचना : नयी! पुरानी! युगीन विचार-मन!

वार्षिक मूल्य १०.००, एक प्रति १.००

सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ

५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राजस्थान)।

शाखा : २२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय होनेके अनुभव और तनावोंको
आत्मीय स्तरपर परिभाषित, तथा
दुनियाके सारे विनाशके विरुद्ध
कुछ गहरे मानव-सम्बन्धोंमें
अर्थ और सम्भावनाकी
लगातार खोज करती
मर्मस्पर्शी कविताएँ

नयी पीढ़ीके
सशक्त कवि
अशोक वाजपेयी
की
कविताओंका
पहला संग्रह

शहर अब भी सम्भावना है

मूल्य ३.००

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

वा | य | दा

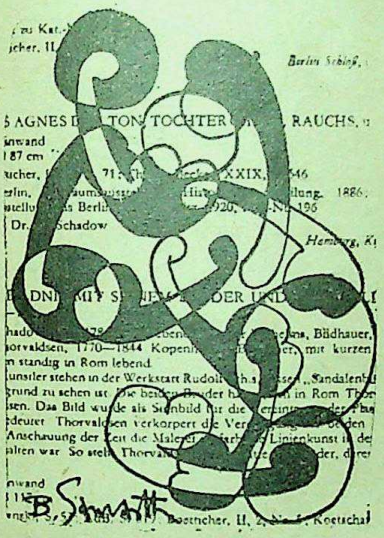

कर्तारसिंह दुग्गल

उसको मरे हुए आज कई बरस हो गये हैं। मिसेज मलिकको लगता है, जैसे कलकी बात हो। कोई यूँ भी मरा करता है! उसने उसके लिए सरसोंकी साग पकायी। मक्कीकी रोटी बनायी। खास तौरपर दही जमाकर पेड़ा-भर मक्खन निकाला। उसने कहा था, मैं दस बजे पहुँच जाऊंगा। ग्यारह बज गये, बारह बज गये, एक बज गया, दो बज गये, उसकी कहीं कोई आहट तक नहीं थी। बार-बार उसका पति कहता: 'कौशल-ने ऐसा तो कभी नहीं किया'। बार-बार मिसेज मलिक कहती, 'टेलीफ़ोन तो कर दिया होता!'

और फिर किसीने आकर कहा, वह तो मर गया है। रातको भला-चंगा सोया। सोये-सोये चल दिया। सवेरे बैरा चाय लेकर उसके कमरेमें गया, वह ठण्डा पड़ा था।

कोई यूँ भी मरा करता है! न कोई दवा-दारू, न कोई सी-सी, न कोई हाय-हाय! चार दोस्तोंने मिलकर उसे नहलाया, कन्धा देकर श्मशान-भूमि पहुँचाया और उसका अन्तिम संस्कार कर दिया। अकेला-कुवाँरा! इधर उसे निकाल ले गये, उधर होस्टलके उसके कमरेमें ताला लगा दिया गया। खेल खत्म हो गया।

"ज़रा नहीं लगता कि वह मर गया है।"

"ऐसे लगता है, अभी गलीका मोड़ घूम कर आता हुआ दिखाई देगा।"

"सिर नीचे झुकाये, सिगरेटका धुआँ छोड़ता, खयालोंमें खोया हुआ।"

"एक हाथमें सिग-रेट, दूसरेमें किताब।"

"हर वक़्त किताबों-की बातें।"

"फूलोंकी तरह जिया, फूलोंकी तरह चला गया।"

"अच्छा हुआ, उसने ब्याह नहीं किया, आज किसी का सुहाग लुट गया होता।"

"कोई रोनेवाली तो होती। कोई आँसू तक न गिरा, और एक क़हर-भरी जवानी मिट गयी।"

कितनी-कितनी देर पति-पत्नी उसकी बातें करते रहते। उन्हें लगता जैसे उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनमें कोई खला-सा आ गया हो, खास तौर-से मिसेज़ मलिक जब भी सरसोंका साग बनाती, जब भी मक्कीका आटा मँगवाती, जब कभी दही बिलोकर मक्खन निकालती, तो उसे वह बार-बार याद आता। उसने उसके लिए खास तौरपर खाना बनाया था और वह बिना खाये चला गया। 'टेलीफ़ोन तो कर दिया होता'—जब भी इस बातकी मिसेज़ मलिकको याद आती, हमेशा उसके होठोंसे यह शिकायत निकलती।

"उसे क्या पता था—यूँ सोते-सोते वह चल देगा!" उसका पति अपनी पत्नीको याद दिलाता। फिर भी, फिर भी मिसेज़ मलिकका मन कहता, उसे टेलीफ़ोन कर देना चाहिए था कि वह नहीं आ सकेगा। इतना इन्तज़ार तो वह न करती। इन्तज़ार तो वह अब भी कर रही थी। अब भी, चाहे उसे मरे हुए कई बरस हो गये थे।

अपने सोनेके कमरेके बाहर, ताज़ा कटे घासके लॉनपर बैठे हुए उसे कई बार लगता, जैसे पिछली ओर गलीमें-से वह उनके यहाँ आ गया हो और वह खुले बाल, वैसीकी वैसी, खड़ी हो जाती।

उसका पति घण्टों-घण्टों उसकी कहानियाँ कहता रहता, कहता रहा। उस-जैसा उसका दोस्त कोई और नहीं बन सका। और मिसेज़ मलिककी अजीब ज़िद्द थी। हमेशा जब उसकी याद आती, बस यही कहती, 'टेलीफ़ोन तो कर दिया होता'। कई बार अकेली बैठी जब वह यूँ सोचती, उसकी आँखें सजल हो जातीं।

कितना प्यारा दोस्त था उनका, जैसे लबालब भरे दूधके कटोरेपर चम्पाकी कली तैर रही हो। कभी उसने इन्हें शर्मिन्दा नहीं होने दिया। माँस नहीं खाता था पर यदि मिसेज़ मलिकने माँस-वाला पुलाव बनाया होता, और अचानक वह आ जाता, तो माँस-की बोटियाँ अलग करके चावल-चावल खा लेता। माँसमें शलजम पड़े होते, तो मिसेज़ मलिक शलजम और शोरबा उसके आगे रख देती। एक अर्थ-भरी मुसकानके साथ वह माँसमें पकी सब्ज़ीको स्वीकार कर लेता। घण्टों-घण्टों बैठा किताबोंकी बातें करता रहता। अगर वे घरपर न होते, घण्टों-घण्टों वह इन्तज़ार कर लेता। सिगरेट पीता रहता, कोई किताब या पत्रिका पढ़ता रहता।

उस रात तो हद हो गयी। खानेके बाद वह उनके यहाँ आया। मिसेज़ मलिक और उसका पति, खाना खाकर, बाहर बरामदेमें बैठे थे। प्रायः ऐसे ही वह आ जाया करता था और कितनी-कितनी देर बैठे वे गप्पें हाँकते रहते थे। कुछ देर, और उनका एक बच्चा आया, उसे नींद आ रही थी। मिसेज़ मलिक उसे सुलाने गयी। कुछ देर बाद दूसरा बच्चा आया, उसको भी नींद आ रही थी। मिस्टर मलिक उसको सुलानेके लिए उठा। बच्चोंकी आदत थी, जब तक माँ या बापमें-से कोई उनके साथ न लेटे, वे सो नहीं सकते थे। मिसेज़ मलिक अभी लौटी नहीं थी, इसलिए मिस्टर मलिक उससे माफ़ी माँग रहा था। "इसमें माफ़ीकी क्या बात है।" वह सिगरेट पी रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। सिगरेट पीते-पीते, सामने पड़ी किताब उठाकर पढ़ने लग गया। एक घण्टा बीत गया, दो घण्टे बीत गये। नौकर रसोईमें अपना काम खत्म करके कबका इन्तज़ार कर रहा था। इन्तज़ार करते-करते उसने भी ऊँघना शुरू कर दिया। फिर वह सो गया। कोई डेढ़-दो बजे उसकी आँख खुली। मेहमान तो बाहर बरामदेमें बैठा सिगरेट पी रहा था। और नौकर शर्मिन्दा-शर्मिन्दा-सा उसके पास आया—"साहिब, आपके लिए बिस्तर बिछा दूँ?" उसने उससे पूछा।

"क्यों ये लोग कहाँ गये?" उसने हैरान होकर नौकरसे सवाल किया।

"वे तो कबके सो चुके हैं।"

पति-पत्नी अपने बच्चोंको सुलाते-सुलाते खुद भी सो गये थे। अगली सुबह जब वे जागे, अपनी इस हरकतपर वे बड़े लज्जित थे। पर नहीं, उससे जब मुलाक़ात हुई, कौशलने उन्हें एक बार भी शर्मिन्दा नहीं होने दिया। बार-बार कहता, "मैं भूल ही गया। किताब पढ़नेमें कुछ इस तरह खो गया कि मुझे खयाल ही नही रहा।" जैसे क़सूर उसका हो, मिस्टर और मिसेज़ मलिकका नहीं।

इस तरहका प्यारा दोस्त था वह। इस तरहके दोस्त हर रोज़ थोड़े ही किसीको मिलते हैं। हर रोज़ थोड़े ही बनते हैं। और मिस्टर तथा मिसेज़ मलिककी ज़िन्दगीमें एक जगह खाली हो गयी। खास तौरसे मिसेज़ मलिकके जीवनमें, एक व्यक्ति जो दोस्त भी था, देवर भी था, भाई भी था, उस्ताद भी था, उसके बच्चोंका 'अंकिल' भी था।

हमेशा जब उसकी याद आती, अपने आप ही उसके होठोंसे शिकायत फूटती, "उसने टेलीफ़ोन नहीं किया। टेलीफ़ोन तो कर दिया होता....।"

और फिर एक दिन जब सैर करके लौटी, उनके नौकरने मिसेज़ मलिकको बताया, "मेम साहिब, कुसल साहिबका टेलीफ़ोन आया था।"

"कुसल साहिब कौन?"

"कोई होगा।" उनका नौकर जरा हकलाता था।

"कोई होगा, फिर टेलीफ़ोन कर लेगा।" मिसेज़ मलिकने कोई खास ध्यान नहीं दिया। अपने कामोंमें लग गयी।

पर नहीं, कुछ देर बाद अपने आप ही, काम करते हुए, उसके दिलने कहा—कहीं कौशल न हो, और सुई उसके पोरमें चुभ गयी।

"अरे भई, टेलीफ़ोन आये तो नम्बर नोट कर लिया कर।" उसने नौकरको बुलाकर समझाया, "कुमल साहिब तो कोई नाम नहीं।"

"नहीं हजूर को...." और हकला रहे नौकरका मुँह खुलाका खुला रह गया। उसकी जीभ तालूमे चिपक गयी। प्राय: ऐसा हो जाता था और तब मिसेज़ मलिकको एक अजीब तरहकी खीझ होती और वह उसे इशारा करके रसोईकी तरफ़ भेज देती। आज भी उसने ऐसा ही किया।

बहुत दिन नहीं बीते थे कि एक शाम जब वह बाजारसे लौटी, नौकरने उसको एक चिट दी। फिर किसी कुसल साहिबका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीफ़ोन था। इस बार नौकरने टेलीफ़ोन-नम्बर नोट कर लिया था।

मिसेज़ मलिकने जल्दी-जल्दी उठकर नम्बर मिलाया, नहीं, उस नम्बरपर कोई 'कुसल साहिब' नहीं रहते थे। न कुसल साहिब, न कौशल साहिब। उधरसे किसीने मिसेज़ मलिकको टेलीफ़ोन नहीं किया था। न मिसेज़ मलिकको, न मिस्टर मलिकको।

टेलीफ़ोनका चोंगा वापस रखते हुए मिसेज़ मलिकके माथेपर त्योरी थी। नालायक़ नौकर! कई बार उसने कहा था कि इस अनपढ, हकलानेवाले नौकरसे जान छुड़ाये, पर मिस्टर मलिक एक बार जिसको रख लेते उसे जवाब देना उनके लिए मुश्किल हो जाता था।

खिड़कीमें बैठी मिसेज़ मलिक अखबार पढ़ने लग गयी। बाहर गलीमें कोई राह-गुजर किसीसे शिकायत कर रहा था, "तुमने अपना वायदा नहीं पूरा किया। अगर तुम्हें आना नहीं था तो टेलीफ़ोन कर दिया होता।"

और टप-टप मिसेज़ मलिकके आँसू बहने लगे····यह क्यों? मिसेज़ मलिकने सोचा, शायद उसे नौकरपर अभी तक गुस्सा आ रहा था। पर इसमें नौकरका क्या क़सूर था। उस बेचारेने तो इस बार टेलीफ़ोनका नम्बर भी नोट कर लिया था।

कुछ दिन बाद बाहर धूपमें बैठी मिसेज़ मलिक केश सुखा रही थी कि अन्दर टेलीफ़ोन बजना शुरू हुआ। नौकरने टेलीफ़ोन सुना। 'मेम साहब हैं' नौकर कह रहा था।

"तू नम्बर ले-ले।" मिसेज मलिकने बाहरसे आवाज़ दी, "मैं अभी आकर टेलीफ़ोन कर लूँगी।" आज कितने दिनों बाद इतनी प्यारी धूप निकली थी और बालोंसे पानी छितरा रही मिसेज़ मलिकका अभी उठनेको जी नहीं चाह रहा था।

नौकरने एक चिट पर लिखा हुआ नम्बर उसके हवाले कर दिया।

"कौन था?"

नौकरने यह तो पूछा ही नहीं था।

"कुसल साहिब?" सामने बैठे उपन्यास पढ़ रहे मिस्टर मलिकने, सिर उठाकर नौकर को छेड़ा और फिर पति-पत्नी दोनों हँस पड़े।

हँसती-हँसती मिसेज मलिक अन्दर गोल कमरेमें गयी। चिटपर लिखे नम्बरको उसने मिलाया। नहीं, वहाँसे तो किसीने टेलीफ़ोन नहीं किया था। न मिसेज मलिकको, न मिस्टर मलिकको, और झुँझलाती-खीझती मिसेज मलिक बाहर लॉनपर आ बैठी।

"पर सवाल यह है''अगर तुम्हें इतनी जल्दी थी इस टेलीफ़ोनको सुननेकी तो तुम तभी क्यों नहीं चली गयी जब टेलीफ़ोन आया था।" मिस्टर मलिकने मिसेज़ मलिकसे कहा और फिर अपनी किताब पढ़ने लग गया।

मिसेज़ मलिक अनमनी-सी हो गयी। क्यों इतनी जल्दी वह टेलीफ़ोन मिलाने चल दी थी, उसे समझमें नहीं आ रहा था।

और फिर बाहर लॉनमें नौकर खाना लगाने लगा। सरसोंका साग, मक्कीकी रोटी और मक्खन। छुट्टीके दिन, दोपहरका खाना वे हमेशा लॉनमें ही खाया करते थे। जाड़ेकी हलकी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलकी धूप मिसेज़ मलिकको बहुत भाती थी। प्रायः छुट्टीके दिन वह खाना खाकर बाहर धूपमें लेट जाती। उस दिन सोये-सोये मिसेज़ मलिकको लगा जैसे टेलीफ़ोन बज रहा हो। वह चौंककर उठ बैठी।

"टेलीफ़ोन था?" उसने सामने बैठे, उपन्यास पढ़ रहे मिस्टर मलिकसे पूछा।

"नहीं तो!" उसने हैरान होकर कहा।

शायद वह सपना देख रही थी। मिसेज़ मलिक सोचती-सोचती फिर सो गयी। मक्की की रोटी, सरसोंका साग और मक्खन खाकर नींद भी कैसी आती है।

परछाइयाँ ढल रही थीं जब मिसेज़ मलिककी आँख खुली। मिस्टर मलिक ऊपर 'स्टडी' में था। जाड़ेकी तीसरे पहरकी नींदके बाद एक नशे-नशेमें खोयी-सी मिसेज़ मलिक अन्दर कमरेमें गयी। और नौकरने एक चिट उसे लाकर दी। किसीने टेलीफ़ोन किया था। "अभी-अभी कोई पाँच मिनिट हुए हैं।" नौकर कह रहा था।

मिसेज़ मलिकने टेलीफ़ोन मिलाया—"मैं मिसेज़ मलिक बोल रही हूँ।"

"फ़रमाइए।" उधरसे आवाज़ आयी।

"किसीने मुझे इस नम्बरसे अभी-अभी टेलीफ़ोन किया था।"

"नहीं तो।"

"लेकिन हमारे नौकर...."

"नहीं तो, आपको ग़लतफ़हमी हुई है। पहले भी आपने टेलीफ़ोन किया था?"

और मिसेज़ मलिकको याद आया, पहले भी उसी नम्बरसे टेलीफ़ोन आया करते थे।

"अच्छा यह बताइए कि पाँच मिनिट पहले आपके टेलीफ़ोनके पास कौन था?" वह मामलेकी तहमें पहुँचना चाहती थी।

"पाँच मिनिट पहले?" पाँच मिनिट पहले तो यहाँ बच्चे खेल रहे थे। हमारा टेलीफ़ोन गोल कमरेमें है। यहीं बच्चे खेल रहे थे। मैं आया और वे बाहर भाग गये।"

"क्या बच्चे इस घरके ही थे?"

"नहीं, पड़ोसी-बच्चे भी थे।"

"अच्छा, यहाँ कोई कुसलसाहब रहते हैं।"

"कुसलसाहब तो नहीं, लेकिन हमारे पड़ोसमें एक मिस्टर कौशल रहते हैं। कुछ दिन हुए उनका यहाँ तबादला हुआ है।

"उनका बच्चा भी खेल रहा था?"

"शायद। हाँ, अभी-अभी गया है।"

"ज़रा उसे बुलवाइए तो....अगर आपको तकलीफ़ न हो।" मिसेज़ मलिकका दिल धक-धक कर रहा था।

बच्चेको बुलवाया गया। वह कहता, मैंने टेलीफ़ोन नहीं किया। बाक़ी बच्चे बार-बार उसे झुठला रहे थे। हमेशा वह टेलीफ़ोन-को छेड़ता रहता था। लेकिन मासूम-सी जान, बच्चेको बिलकुल याद नहीं था कि उसने किसीको टेलीफ़ोन किया है।

और फिर टप-टप मिसेज़ मलिककी आँखोंसे आँसू बहने लगे। टेलीफ़ोनका चोंगा कानसे लगाये वह सारा क़िस्सा सुन रही थी। और मिसेज़ मलिक को जैसे अपने आप ठण्डा-ठण्डा महसूस हो रहा हो। कोई बरसों-का बुख़ार जैसे उतर गया हो। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

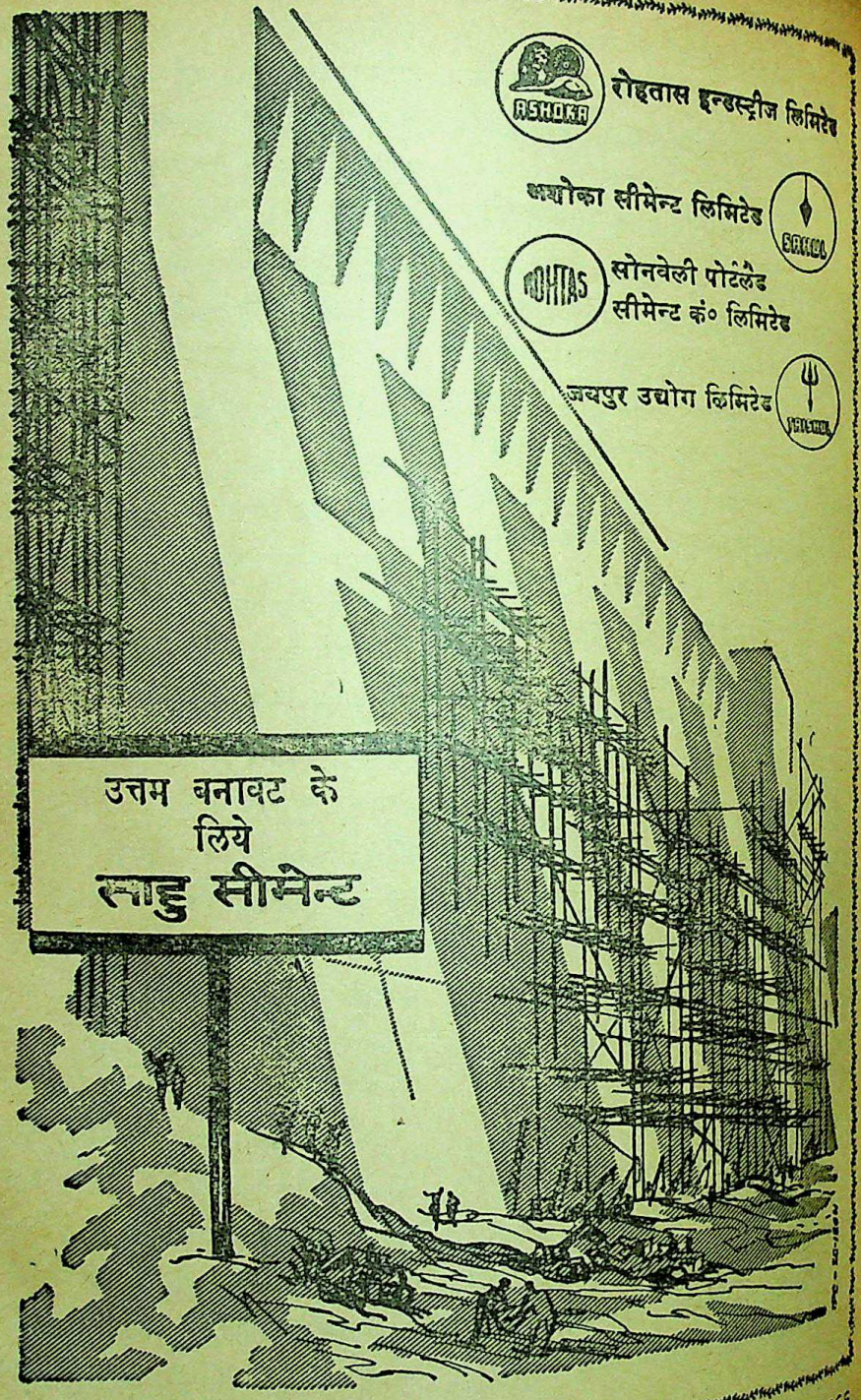

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

शिकायतनामा

माधा मुप्त

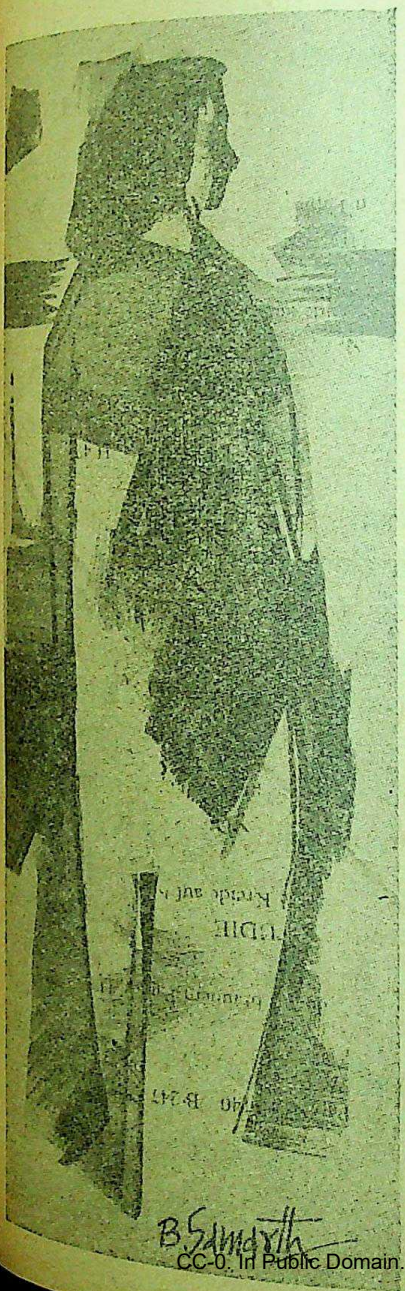

कल मेरा जन्म दिन था, आज मैं अपने कमरे-में खिड़कीके पास अपनी खास आराम कुरसी-पर बैठी हूँ। कई घण्टेसे। कल रविवार था और मेरी छुट्टी थी। कल भी दिन-भर वही तारीख मेरे मनके अन्दर क्रोशिएसे पुराने धागोंकी जाली बुन रही थी, कई बार उसका नुकीला टेढ़ा मुंह चुभता रहा और मैंने जब-जब उसे निकाला, वह अपने साथ और भी कई धागे खींच लाता रहा।

अब कुछ भी मुझे ज़्यादा नहीं चुभा पाता है। पहले ऐसा नहीं होता था। उन दिनों कुछ और ही बात थी। मैं तब बहुत बेवक़ूफ़ थी, एक पशु-जैसी बेवक़ूफ़, जैव कामनाएँ उन दिनों मेरे लिए ज़िन्दगीका कुछ खास हिस्सा ही न थीं, वे मानो मेरी ज़िन्दगी थीं। उन दिनों मैं सोचा करती थी, बहिरंगका कोई खास महत्त्व नहीं है। प्रकृतिने रूप-रंगको सृष्टिकी कामनाके साथ जोड़ नहीं रखा है···· मैं उन दिनों सामान्य पशु थी····

मुझे आज माँकी याद बहुत आ रही है। मेरी माँ सुन्दर थीं। दुबली-पतली, श्यामवर्ण, चेहरा बड़ा सुन्दर। माँकी आँखें मुझे याद आ जाती हैं, वह मेरी ओर चुपचाप देखती रहती थीं। फिर एक गहरी साँस भर-कर आँखें फेर लेती थीं। मुझे दादी याद नहीं आतीं, माँ अफ़सोससे कभी-कभी कहा करती थीं कि मुझे दादीकी शक्ल-सूरत मिली है। पिताजी भी देखनेमें अच्छे हैं, मेरी बहन और तीनों भाई अच्छे हैं, बस एक मैं जो कि घर-भरमें बदसूरत। काली, भोंड़ी, चेहरेपर एक भी ऐसा कुछ नहीं है, जो कि सराहा जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके। कुछ मोटी होनेके कारण मेरी चाल भद्दी थी। मेरी नाकके दोनों छोर कुछ फैले हुए हैं, इससे चेहरेपर मनहूसियत-सी दिखती। मुसकरानेसे सभी लड़कियाँ कुछ अच्छी दिखती हैं, तो मैं भी थोड़ा मुसकराती। माँ कहा करती थीं—खीस मत फैलाओ, दाँत और भी लम्बे लगते हैं।

फिर भी मैं मुसकुराती थी। सोचते-सोचते अनमनी होकर मैंने बायीं तर्जनीमें लपेटकर एक बाल खींच डाला, उसे आँखोंके आगे लायी, देखा तो वह एकदम सफ़ेद। सामनेके बहुत बाल सफ़ेद हो गये हैं। कल मेरा अड़तीसवाँ साल पूरा हो गया, पर बाल कुछ जल्दी ही पकने लगे। नमिता मेरे साथ पढ़ती थी। उसका एक भी बाल नहीं पका है। पच्चीस साल की ही थी, तभी मैं पैंतीस सालकी दिखती थी और नमिता अट्ठारहकी।

नमिता इन दिनों अमरीकामें है। पिछली सर्दीमें भारत आयी थी। उसके पति वहाँ कुछ अच्छी ही नौकरी करते हैं, नमिता भी कुछ काम करती है, उनके बच्चे अब बड़े हो गये····

नहीं, नमितासे मैं ईर्ष्या नहीं करती हूँ, आज और क्या बच गया, बीस साल पहले भी मैंने उससे ईर्ष्या नहीं की थी। उस दिन भी नहीं, जिस दिन····

उस दिनकी बात याद आती है, तो अब भी ग्लानिसे मेरा मन भर जाता है। युनिवर्सिटी-लाइब्रेरीमें बैठकर हम पढ़ रहे थे। उस दिन वहाँपर ज्यादा छात्र-छात्राएँ नहीं थीं, कुल मिलाकर दस-बारह होंगे। मुझे यकाएक ऐसा लगा था कि सुखेन मेरी ओर देख रहा है, उसकी आँखोंमें कुछ ऐसी चीज़ थी कि मेरे शरीर और मनके अन्दर एक आनन्दगीत छन्दबद्ध सुरमें झूम बजता रहा। मैं किताबपर आँखें झुकाये बैठी रही। सुखेन युनिवर्सिटीका प्रसिद्ध छात्र था। उसके फ़र्स्ट होनेका रिकार्ड कोई तोड़ न सका था। देखनेमें भी सुखेन बहुत अच्छा था। लम्बा, दोहरा क़द, गोरा-खूबसूरत चेहरा। बातचीत, चाल-चलनमें उम्रसे दस क़दम आगे उभरा हुआ व्यक्तित्व। ऐसी सहज भद्रता उसकी बातचीतके ढंगमें रहती थी कि, मैं तो एक तुच्छ लड़की थी, कोई अच्छीसे अच्छी लड़की-को उसकी कामना करना स्वाभाविक था··· वही सुखेन मुझे देख रहा है····मैंने अनुभव किया कि उस क्षणमें मैं खूबसूरत हो गयी हूँ। मैं लज्जासे मँजराई लताकी तरह फूलोंसे लद गयी हूँ, मेरे शरीरपर हरा और केसरिया रंग और सुगन्ध भर गयी है, मैंने अपने हरेक रक्त-बिन्दुमें एक महान् उल्लासका अनुभव किया था····और तभी न जाने किस कारणसे मैंने आँखें ऊपर उठायी थीं। सुखेन आँखोंके इशारेसे कुछ कह रहा था। मैं आँखें हटाना भूल गयी थी। मेरे कानोंमें एक अजीब-सी जलन होने लगी, मेरे अन्दर सब कुछ सुन्न हो गया। हँसना चाहिए था, पर मैं हँस न पायी। नमिता मेरी पिछली सीटपर बैठी थी, वह सुखेनका इशारा पाकर दरवाजेके पास गयी और दोनों साथ-साथ चले गये। मैं उठ-कर खिड़कीके सामने हवा लेने गयी। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों लाँनसे गुज़र रहे थे, बहुत सुन्दर लग रहे थे····अजीब ग़लतियाँ कर बैठते हैं लोग, ख़ास करके कम उम्रकी लड़कियाँ।

उसी सुखेनने दो-चार दिनके बाद मुझसे बात की थी—"मन्दिरा दी, मैं आपको रॉमेण्टिसिज़्मपर अच्छा नोट दूँगा, आपको मुझे बार्क वाला नोट देना पड़ेगा।"

मुझे कृतार्थ हो जाना चाहिए था, पर मेरा मन दुखने लगा। मैं सुखेनसे कम-से-कम चार साल छोटी थी····उसे और किसीको कभी दीदी कहते नहीं सुना था····फिर भी मुझे हँसना पड़ा और कहना पड़ा—"धन्यवाद, आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही होगा।"

केवल सुखेन नहीं यतीनने भी मुझे दीदी सम्बोधित किया था। वह नेशनल लाइब्रेरीमें रिसर्च करता था। मैं जब भी वहाँ जाती, देखती कि वह अपना काम कर रहा है। उसने खुद आकर मुझसे परिचय किया था। उसके बात करनेका ढंग बहुत अच्छा था किसी भी भाषाका ख़ूब शुद्ध ढंगसे उच्चारण करता था। हँसानेमें भी बहुत कामयाब रहता था। खुद वह कवि था और रवीन्द्रनाथ, ब्राउनिंग, शैले, कीट्ससे लगातार उद्धरण दिया करता था। जैसा उच्चारण वैसी ही गम्भीर और मीठी आवाज़। मेरा मन फिर कमज़ोर होने लगा, यानी जैव प्रकृति फिरसे बहिरंगका महत्त्व भूल बैठी। साथीके लिए मेरे अन्दर व्याकुलता आ गयी। उसे देखनेके लिए, उससे बात करनेके लिए मैं पढ़नेके बहाने बार-बार लाइब्रेरी जाने लगी थी, मित्रता गहरी हो रही थी।

एक दिन यतीनने कहा, "मन्दिरा 'दी, आप मेरी बड़ी बहिन हैं, मेरी मित्र हैं, मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।"

अनोखा डर-सा मेरे अन्दर भर गया। तनावके कारण मेरी साँस कुछ रुक-सी गयी।

यतीन कह रहा था, "आप ही सोचिए, मन्दिरा 'दी, सभ्यता इतनी आगे बढ़ गयी है, पर अब भी नर-नारीके प्रेममें अर्थ और वर्णकी कुलीनताको लेकर लोग कितना शोर मचाते रहते हैं····"

मैं जड़की तरह खड़ी-खड़ी सुनती रही, और यतीन कहता रहा, "घरमें भारी शोर मच गया है, मेरा क़सूर यह है कि मैंने एक नेपाली लड़कीसे प्यार किया है, उसकी मोनर्स है।"

मेरा सारा शरीर सुन्न हो गया। मैंने ख़ूब धीरे-धीरे साँस खींचकर अपनेको सँभाला। ओठोंको जीभसे चाटकर गीला किया, फिर मुझे बरबस मुसकराना पड़ा और मैंने कहा, 'घरमें शोर मचा तो हो क्या गया? आपने जब वादा किया है, तो उसे छोड़कर अपने पौरुषकी मर्यादा कैसे लुटा देंगे? सब ठीक हो जायेगा, शादीके बाद धीरे-धीरे सभी उसे मान लेंगे और उसे चाहने भी लगेंगे।"

एहसानका ताना काफ़ी लम्बा खींचना पड़ा था। यतीनकी शादीमें मुझे उसकी बड़ी दीदी बनकर मार्केटिंग करनी पड़ी थी और उसके बहुत व्यक्तिगत प्रसंगमें हिस्सा लेना पड़ा था। मैंने एक सुन्दर अँगूठी उसकी बीवी को दी, तो वह बहुत खुश हुई थी। उसके कोमल गोरे चेहरेपर काली चमकीली छोटी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी आँखोंसे ख़ुशी छलक रही थी····

"···ओफ़, न जाने कितनी बातें याद आती रहती हैं। आज मैं छुट्टी न लेती तो अच्छा रहता। कामके बीच समय आसानीसे कट जाता है। कॉलेजमें लड़कियाँ मुझे पसन्द करती हैं, केवल ज़्यादा ख़ूबसूरत लड़कियाँ मेरी पीठ पीछे मुझे सूर्पनखा, हथिनी और न जाने क्या-क्या कहती हैं। वे यह भी कहती हैं कि मैं उनसे जलती हूँ, उन्हें ट्यूटोरियलमें कम नम्बर देती हूँ। उनके लिए मैं परवाह नहीं करती क्योंकि यह सच बात नहीं है। मैंने देखा है कि ख़ूबसूरत लड़कियाँ मुझे हीन भावसे देखती हैं। उनमें-से जो सचमुच मेरे पास आनेकी कोशिश करती हैं, वे भी केवल स्वार्थके लिए ही ऐसा करती हैं, चाहती हैं कि मैं ख़ूब अच्छी तरहसे ख़ुद ही उन्हें पढ़ा दूँ ताकि उन्हें मेहनत करके पढ़ाई करनी न पड़े और वे तितलियाँ बनकर मौज करती रहें···नहीं, मैं अब इतनी बेवक़ूफ़ नहीं रही हूँ। मैं ऐसोंकी तो मदद करती हूँ, जो सच-मुच पढ़नेके लिए आती हैं, भले ही उनमें-से एक भी लड़की ख़ूबसूरत न हो। मैं अच्छा पढ़ाती हूँ, यह कॉलेजवाले जान गये हैं। दो-चार ख़ूबसूरत तितलियाँ क्या कहती हैं इसे लेकर मैं सिर क्यों खपाऊँ और अपने मनकी शान्ति क्यों नष्ट करूँ?

दो साल पहले इसी जनवरी महीनेमें माँकी मृत्युकी ख़बर मुझे मिली थी, पर मैं उनके काम-क्रियामें घर नहीं गयी थी। अभी भी कई बार उनकी आँखें मुझे याद आती हैं, शुक्रतारेकी तरह मुझे देख रही हैं। सब दिन माँ कम बोलती थीं, इतना कम बोलती थीं कि मैं जब उनकी कही हुई बातें याद करना चाहती हूँ, तो मुझे शायद ही कुछ याद आती हैं। कल्पनामें मैं कल रात माँसे बात कर रही थी, पर उनकी शब्दावलीको कल्पना नहीं कर पायी। अब क्या घर जाऊँ? भाई की बीवियाँ मुझे देखकर कभी भी ख़ुश नहीं हुई थीं। शादीके बाद वे हमारे यहाँ आकर मेरी हँसी उड़ाती थीं, मेरी चालकी नक़ल उतारती थीं। दो मुझसे उम्रमें बड़ी थीं और तीनों भावजें पदके लिहाज़से बड़ी थीं, फिर भी वे सभी मुझे 'दीदी' कहके पुकारती थीं। मुझे लाल रंग बड़ा पसन्द था, वे काले शरीर-पर लाल साड़ीके पहननेको मेरा निहायत निर्बुद्धिजात अहंकार समझती थीं। कहती थीं—"दीदी, आज यह सिन्दूरी साड़ी तुम्हें बहुत जँच रही है। ऐसी साड़ियाँ और भी मँगवा लेना····" और भी कितना हँसी-मज़ाक़ करती थीं। अपने पतियोंके प्यारकी कथाएँ आपसमें कह-सुनकर फूली नहीं समाती थीं और जब कभी मैं उनके सामने पड़ जाती तो वे आँखें मटकाकर मेरी हँसी उड़ातीं। कहतीं —"दीदीकी शादीके बाद नन्दोई दीदीको कितना-कितना प्यार करेंगे····"

मुझे लगता कि वे मेरी हँसी उड़ाती हैं क्योंकि मेरी शादी कभी होगी ही नहीं। वर-पक्षवाले मुझे कभी पसन्द करेंगे ही नहीं, इस बातका उन्हें यक़ीन हो गया था। यह यक़ीन कुछ हद तक सही भी था।

धीरे-धीरे मैंने घर जाना कम कर दिया था। माँके चले जानेके बाद तो गयी ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिताजी हैं···पिताजी मुझे प्यार करते थे, पर उन्होंने मेरी आवश्यकता नहीं समझी। जब मैं सबके पाससे हृदयहीन व्यंग्य-अवहेलना की जलनमें भुनकर उनकी बैठकमें जा बैठती, तो वह मेरे मनको कुछ भी समझ न पाते। मैं जब कभी गुस्सेमें आकर उनके पास शिकायत करती, तो वह मुझे ही डाँटते थे, कहते, "मन्दिरा, तुम दिनोदिन गुस्सैल होती जा रही हो, अपनी पढ़ाई करो, कौन क्या कह रहा है, इसकी परवाह करनेकी जरूरत क्या है ?"

फिर भी उनका कमरा ही मेरा आश्रय था। उनकी खिड़कीकी ड्योढ़ीपर चुपचाप बैठकर रास्तेमें आने-जानेवाले लोगोंको देखा करती थी। जब उनका कोई मित्र या सहकारी मिलने आता, तो वे कहते, "मन्दिरा, अन्दर जाओ।"

मुझे ऐसा लगता, मैं बदसूरत हूँ तभी पिताजी मुझे छिपा देना चाहते हैं। दुःख और गुस्सेके मारे मैं परेशान रहती थी। मेरी बदसूरतीकी दिन-रात याद दिला-दिलाकर मुझे और भी बदसूरत बना दिया था। भाइयोंने कभी मुझे अपने मित्रोंके सामने आने नहीं दिया। मैं फिर कभी घर नहीं जाऊँगी···

आज छुट्टीका दिन मैं खाली पुरानी यादोंमें बिताऊँगी···अभी ठीक तीन बजा है, काफ़ी पीनेको मन कर रहा है। मैं चार बजे कॉफ़ी-हाउस जाऊँगी। पिछले हफ़्ते मैंने मटमैले रंगकी बहुत अच्छी रेशमी साड़ी ख़रीदी थी, उसे मैं आज पहनूँगी और उसी रंगके नाइलोनका कार्डिगन। आज शाल नहीं। कार्डिगनमें मेरी उभरी हुई मोटाई कुछ ज़्यादा दिखती है, फिर मैं उसके साथ सफ़ेद हैण्डबैग और सफ़ेद ज़रीदार नागौरी जूता ठीक रहेगा।···

मेरे अड़तीस साल पार हो गये। अब खूबसूरतीकी परवाह मैं नहीं करती।····अरे, मैंने इतना कुछ सोच डाला, पर वह एक बात तो सोचना भूल ही गयी थी···वह भी जनवरीका महीना था। बड़ी प्यारी याद, वह सच हो या झूठ मैं उसे कभी नहीं भूलूँगी।

सात साल बीत गये, वह पुरुष मेरे जीवनमें आया था, बहुत थोड़े दिनके लिए। खूब साधारण चेहरा, साधारण व्यक्तित्व। हमारे बग़लमें फ़्लैटमें रहते थे। मुझसे कुछ बड़े थे। मैं मेल-जोलमें काफ़ी होशियारी बरतती थी, यानी मैं पहले-जैसी बेवक़ूफ़ नहीं रह गयी थी। हँसती मैं तब भी थी, पर वह एक निर्वैयक्तिक मुसकान होती थी, जिसका कुछ भी अर्थ नहीं होता।

एक दिन उन्होंने कहा था, "आपकी मुसकान देखकर दिन शुरू हो तो दिन अच्छा गुज़रता है, मिस बैनर्जी !"

जवाबमें मैं केवल मुसकरायी थी। मुझे उनकी बातका यक़ीन नहीं था।

शामको चाय बिना पिये वह बरामदेमें खड़े-खड़े दरवाज़ेकी ओर देखते रहते थे। मेरे कॉलेजसे लौटते ही मुझे बुलाते—"आइए, चाय तैयार है।"

शायद मेरे ही लिए वह इन्तज़ार करते, पर मैं ठीकसे नहीं बता सकती। विद्वान् व्यक्ति थे। बातचीतका ढंग बड़ा शान्त और सरस था। खुद कम बोलते, मेरी ज़्यादा सुनते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दिन उन्होंने मुझे कहा, "मन्दिरा, इतने अरसेके बाद मुझे घर बसानेकी बड़ी इच्छा हो रही है। तुम राज़ी हो जाओ मन्दिरा, हम दोनों बड़ी ख़ुशीसे दिन बितायेंगे।"

ऐसी बातोंकी उम्मीद मैं कर तो रही थी, पर मुझे उनकी बातोंका विश्वास नहीं आया। मैंने अपने अन्दर सिहरन अनुभव नहीं की, मेरे ओठ सूखे नहीं····दुनियामें इतनी ख़ूबसूरत लड़कियोंके होते हुए वे मुझे क्यों चाहने लगे? मेरी चाह किसीको कैसे हो सकती है? तीस साल तक बहुत क़ीमत देकर मुझे यह बात सीखनी पड़ी थी····मैंने कोई जवाब नहीं दिया। खूब शान्त ढंगसे उठकर अपने कमरेमें चली आयी। रातको सूखा हुआ फूल फूलदानसे फेंकनेके लिए जब बाहर निकली, तो वह सिर झुकाये बरामदेमें बैठे थे। मैंने कमरेमें आकर दरवाज़ा बन्द कर लिया।

दो दिनके बाद वह वहाँसे चले गये। शायद मैंने उनपर एहसान किया कि मैं राज़ी नहीं हुई····ऐसी बदसूरत लड़कीसे बच गये····

■ ■

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ■ सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएं तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएं, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली–७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

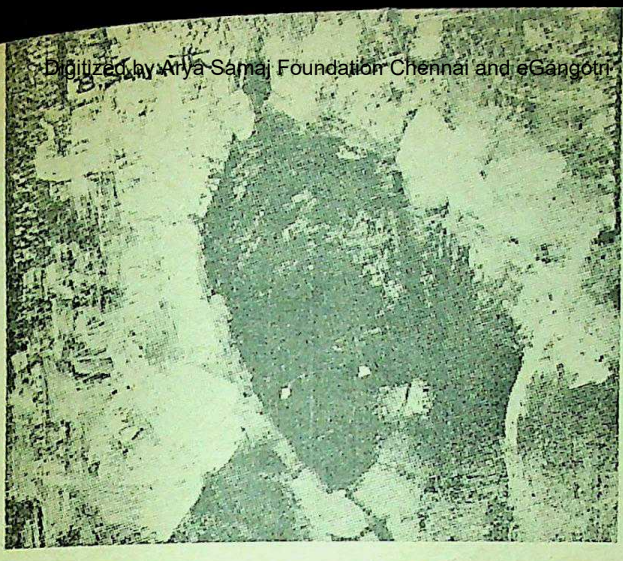

कोई खेद नहीं !

कपिल मल्होत्रा

मैं इन सबको जानता हूँ। ये एक खास माहौल-में वही बात कहते हैं। इनका अन्त, तो खैर, एक-सा ही होता है। यह तीसरा व्यक्ति है जो इस समय मुझसे बातें कर रहा है।

यह आदमी भी वैसी ही बातें कर रहा है। मैं नहीं चाहता कि इसको सुनते हुए मेरी पेशानीपर पसीना चमक उठे। लेकिन मैं क्या करूँ? यह कमज़ोरी है—आप भी मानेंगे। यदि मैं शुरूमें ही सँभल जाता तो शायद इतना असहाय होकर इसकी बातें न सुनता। मुझे लगता है, इसने मेरे इस कमज़ोर क्षणका फ़ायदा उठाया है। इसने मेरा हाथ थाम रखा है। मुझे नहीं मालूम कि हम दोनोंमें-से किसका हाथ काँप रहा है। मुझे खुशी होगी यदि यह मेरा नहीं।

अबतक आप जान गये होंगे। ये लोग आपके निकटतम मित्र होते हैं। किसी ठिठुरती और सीलन-भरी रातमें ये सड़ककी दायीं ओर खड़े होकर आपका हाथ अचानक ही थाम लेंगे। अपनी सूनी आँखोंसे आपकी सूनी आँखोंमें विवशतापूर्वक झाँकेंगे। आप कभी तय नहीं कर पाते कि आपकी आँखोंमें आये आँसू इनकी 'इटर्नल फ्रेण्डशिप' कहनेका परिणाम हैं अथवा सर्दीके चुभ जानेका। बहरहाल, जल्दीसे इन्हें पोंछ देना ठीक रहता है क्योंकि भींगा चेहरा अच्छा नहीं लगता।

मैं भी इसी बातको तय नहीं कर पाया हूँ। मेरी आँखमें आँसू हैं। अफ़सोस मैं, इन्हें रोक नहीं सका। वैसे देखा जाये तो मैं और आप कितने कमज़ोर हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम स्टेशन मिलने कब तक पहुँच जाओगे ?'' मैं इससे पूछता हूँ और भली-भाँति जानता हूँ कि यह झूठ बोलेगा। मुझे यह सोचकर कष्ट होता है कि यह अपनी ईमानदारी (?) और वफ़ादारी (?) की बातें इतनी जल्दी भूल सकता है। अन्तिम समय ये सब झूठ बोलते हैं। यह मेरा अनुभव है। इससे पहले दो बार मेरे साथ हो चुका है।

आपको मालूम है न कि ये लोग स्टेशन कभी नहीं जाते !

इसने मेरे प्रश्नका उत्तर एक क्रूर मुसकराहटके रूपमें दिया है। यह एक तंग और सूने बाज़ारकी ओर चल देता है। ऐसे बाज़ारमें कई तरहकी सम्भावनाएँ इतनी तेज़ीसे पूरी होती हैं कि आप डर भी सकते हैं।

''तुम आज मत जाओ।'' मेरे कहनेके ढंगमें एक छिपा विश्वास है कि यह अवश्य जायेगा। मैं इसे कई ऐसी बातें कि 'इसका यहाँ कोई नहीं फिर भी मेरा घर तो है' कहकर भावुक बनाना चाहता हूँ। लेकिन यह सब व्यर्थ है। मैं गाड़ीकी टक्करकी सम्भावना तककी बात भी कहता हूँ परन्तु यह दृढ़ स्वरमें 'न' कहता है। यदि आप इसे ध्यानसे सुनें तो इसकी 'भोगी' आवाज़ आपको छू जायेगी। दरअसल ये इस समय अजनबी बन जाते हैं—लेकिन जाने-पहचाने। इसलिए स्थिति कुछ कठिन हो जाती है।

इसका रंग एकदम ज़र्द है—जैसा मौतसे पहले होना चाहिए। चूँकि आज इसने और दिनोंसे अधिक पी रखी है इसलिए यह लगभग 'शराबी' लग रहा है। मैं अन्तिम प्रयत्नके रूपमें उस आदमीसे सहायताके लिए निवेदन करता हूँ जो अभी पाससे गुज़रा है। मैं चाहता हूँ कि इसे बलपूर्वक घर ले जाऊँ। परन्तु पाससे गुज़रनेवाले व्यक्तिने मेरा निवेदन ठुकरा दिया है। ''खामखाह !''—वह मुझे झिड़कता-सा कुछ कहता है। मुझे अफ़सोस है कि वह आदमी बड़े तर्क-संगत लहजेमें यह कहता हुआ कि 'चूँकि तुम्हारे मित्रने पी रखी है इसलिए यह सब कुछ ठीक कह रहा है और दुआ करो, कि ठीक ही करेगा'—वहाँसे चला जाता है। उस आदमीके क़दमोंकी रफ़्तार शराबखानेकी ओर जानेवाले व्यक्तिकी-सी है।

अभी-अभी मेरी गीली आँखोंको लक्षितकर इसने अपना हाथ मेरे कन्धेपर रखा है—''मैं जल्दी ही गाँवसे लौट आऊँगा।'' यह सरासर झूठ है। यह कभी नहीं लौटेगा। ऐसा मेरा अनुभव है। मेरी तीव्र इच्छा है कि यह और झूठ न बोले और किसी तरह जान जाये कि मैंने इसके झूठको अच्छी तरह समझ लिया है।

आज सुबह जब यह मेरे पास आया तो काफ़ी जल्दीमें था। ''मैं तुम्हें मिलने नहीं, तुम्हारे साथ बस चाय पीने आया हूँ।''—इसने स्पष्ट किया था। हम दोनों मार्केटमें चले आये थे। वहाँ मेरे मना करनेपर भी इसने आमलेटकी बजाय रातके बासी पकोड़े गरम करवाकर खाये। यह खाता रहा और कहता रहा—''अभी, बस अभी, पेटमें लाठी-चार्ज होगा।'' मैं हँसा तो यह गम्भीर हो गया और इसी मूडमें आमलेट खाने और न खाने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खा सकने और न खा सकनेके सम्बन्धमें बातें करता रहा। यहाँतक कि आमलेटमें डाले जानेवाले टमाटरको इसने दार्शनिक स्तरपर गालियाँ दीं। काफ़ी देरसे इसने अपने हाथ सूटकी जेबोंमें डाल रखे थे। यह बेहद सुन्दर लग रहा था। मैंने ऐसा कहा तो इसे विश्वास नहीं हुआ। तभी इसने पाससे गुज़रनेवाली उस लड़कीको रुकनेका संकेत किया।

"तुम समझती हो, मैं बहुत बदसूरत हूँ?" लड़की मुसकरायी। वह इसकी परिचित थी। जब उस लड़कीने इसे बहुत प्यारसे देखा तो इसने उसी साँझ उससे मिलनेका वादा कर लिया। कुछ समय यह उसे प्यार-भरे घरेलू नामोंसे पुकारकर छेड़ता रहा, फिर जैसे अचानक याद आनेपर इसने अपने दोनों हाथ तेज़ीसे जेबमें कर लिये। आज ठण्ड बहुत थी। मेरे साथ चलते हुए इसने बतलाया कि कैसे अब आख़िर इसे एक ऐसे ऑफ़िसमें नौकरी मिल रही है जहाँकी स्टेनो इसकी भूतपूर्व प्रेमिका है। मेरे अविश्वास प्रकट करनेसे पहले ही इसे बेहद शर्म हो आयी। अपनी बेकारीको एक खास रंगमें प्रस्तुत करनेकी इसकी आदत है।

हम काफ़ी देर तक चलते रहे। अबतक इसकी शर्म एक तरहकी नाराज़गीमें बदल गयी थी। यह सारी दुनियासे नाराज़ लगता था और बार-बार थूक रहा था। मैंने ऐसा करनेसे मना किया तो यह एकदम मुझसे झगड़नेको हुआ—"तुम्हारा साया कहाँ है!" इसने हाथ झटककर जेबसे निकाल लिये। मैं इसके प्रश्नपर हैरान हुआ तो यह जैसे बेहद लाचार स्वरमें बोला, "मेरा साया खो गया है।"

साया गुम हो जाना कोई दार्शनिक बात नहीं थी। सुबहसे आकाशपर घने बादल छाये हुए थे। जब इसने बड़े ज़ोर-ज़ोरसे हाथ हिलाये तो मुझे अनायास ही लगा कि इसके कोटकी जेबें भी नहीं हैं। ज़ाहिर था कि मैंने देखनेमें ग़लती की थी। लेकिन इसकी परेशानी ऐसी थी कि मुझे लगा, मैंने इसके चेहरेको पिछले कई दिनोंसे नहीं देखा।

पिछले कुछ दिनोंसे मौसम तंग कर रहा है। जैसे कि बारिशका ठीक उस समय बरसना जब आप कहीं बाहर जा रहे हों और ऊपरसे चिढ़ानेके लिए घरमें पैर रखते ही इसका थम जाना। मौसमकी यह शरारत बदतमीज़ीकी हदको छूती है। आज दोपहर जो लगातार बारिश होती रही है, वह असमर्थ होनेके बावजूद नसोंको पीड़ित करनेवाली थी। आप पूरा ज़ोर लगाकर घरसे बाहर आनेकी बात कर सकते हैं फिर भी इस बारिशमें बाहर आना एक समस्या बन जाती है। "परहैप्स रेन"—मैंने सोचा था और कमरेसे उस किताबको उठाया जो इसने अच्छी तरह अध्ययन करनेके बाद एक दिन दीवारकी ओर फेंक दी थी। यह किसी भी अच्छी किताबका अध्ययन करनेके बाद उसे अपूर्ण मानते हुए उसके विचारोंको और आगे ले जानेका दावा करता था—"कुछ है जिसका प्रकाशन अभी होना है।" इसमें अहम् है, लेकिन यह आदत दिलचस्प थी। यह कई चीज़ें उठाकर फेंक देता था जैसे किताब,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार, कोट। इसने गेबरडीनका सूट पहनने से पहले अपने पुराने कोटको बड़ी बेरहमीसे फेंका था—"अब और काम्प्रोमाइज़ नहीं हो सकता!" इसका इशारा कोटमें लगे पैबन्दोंकी बढ़ती हुई संख्याकी ओर था। इसके चमकदार सूटको देख मैंने एक असफल-सा मज़ाक़ किया—"आज दूल्हा बनने जा रहे हो!"

एक अरसेसे तलाक़-शुदा व्यक्तिकी मुसकराहटमें इसने होठ फैलाये।

मुझे लगता है, मैं आज दोपहर काफ़ी समय इसके बारेमें सोचता रहा हूँ। मुझे याद नहीं कि अनजानेमें मैंने इसके बारेमें कोई निर्णय लिया हो। परन्तु अब जब कि यह स्टेशन जानेके लिए कह रहा है तो लगता है कि आज दोपहर, जबकि लड़खड़ाती हुई बारिश बाहर हो रही थी, मैंने इसके और न जी पानेकी घोषणा मन-ही-मन कर दी थी।

हम धीरे-धीरे फिर मेन रोडकी ओर आ रहे हैं। यह स्टेशन जानेके लिए किसी रिक्शाकी तलाशमें है। मैं जानता हूँ, मुझे क्या करना है। दो बार पहलेका अनुभव मुझे बतलाता है कि मैं भी इसका पीछा करते स्टेशन जाऊँगा। यह तीसरी बार है। मुझे तीनके अंकमें विशेष विश्वास है। तीसरी बार किये गये 'प्रयत्न'में सफल होना निश्चित है। मैं इस बातको शिद्दतसे मानता हूँ।

हाँ, वही—"अवर फ्रेण्डशिप इज़ इटर्नल, परपेचुअल····"—और न जाने क्या-क्या यह कह रहा है। कुछ देर बाद यह मुझे कोई हिदायत भी करेगा। अचानक इसने एक माँग की है कि इसकी याद बनाये रखूँ, परपेच्युएट करूँ। मेरे लिए ऐसा करना कितना कठिन है, यह जानता है। आप मानेंगे, यह क्रूरता है। अन्तिम समय ये सब परले दरजेके 'साडिस्ट' हो जाते हैं।

मुझे अपने आनेवाले दिनोंसे डर लग रहा है। मुझे फिर अस्पतालमें दाखिल होना होगा। पहली बार मैं एक महीना वहाँ रहा। दूसरी बार कुछ कम। वहाँपर एक खूबसूरत नर्सका आकर्षण भी तो है। पहली बार अस्पताल छोड़ते समय मैंने डॉक्टरसे अनुमति लेकर उस नर्ससे बातें की थीं। वह बेझिझक थी। उसने साफ़-साफ़ शब्दोंमें मुझे बतलाया था कि मेरा अस्पतालमें रहना स्वाभाविक ही है। वह समझती है, मैं एक 'अच्छा' मरीज़ हूँ। वह मुझे शायद चाहती है। मुझे डर है, अस्पतालमें मेरे रहनेकी अवधि कम होनेकी बजाय अधिक न हो जाये।

इस समय बहुत ठण्ड हो गयी है। रात ज़्यादा वीरान है। स्टेशन जाकर मुझे एक-दो खिड़कियोंसे अपने खूबसूरत मित्रके बारेमें पता करना है। एक खिड़कीसे कि इसने अपने गाँवकी टिकिट खरीद ली है या नहीं। एक औरसे गाड़ीके आनेका समय पूछना है। शायद यह भी पूछूँ कि गेबरडीनका सूट पहने कोई यहाँ देखा तो नहीं गया। मैं रातकी ड्यूटीपर तैनात दो-तीन सिपाहियोंको भी सतर्क कर दूँगा। उनसे कहूँगा कि यह मेरा छोटा भाई है। घरसे भाग रहा है। न जाने क्यों मैं चाय नहीं पीऊँगा।

मेरा कुछ फ़र्ज़ है। इसलिए मैं ठण्डके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बावजूद प्लैटफ़ॉर्मकी बेंचपर बैठा रहता हूँ ! गाड़ी लेट आयी है। लेकिन इसका कुछ पता नहीं। मैंने आपसे कहा न कि यह स्टेशन नहीं जायेगा। मुझे कोई उत्सुकता भी नहीं है। वहाँ मेन रोडपर जुदा होनेसे पहले इसने धीरे-से हाथ हिलाया था—कमिंग्ज़के 'परहैप्स हैण्ड' की तरह। इससे पहले जब इसने मेरी सिग-रेट सुलगायी तो इसके हाथोंमें काफ़ी मज़बूती थी, स्नेह था। इसने जलती दियासलाईको काँपते हाथसे पकड़ रखा था और अपनत्वसे मुसकराया भी था। लेकिन विदाके वक़्त हाथ हिलाते समय मुझे लगा था कि यह किसीका भी हाथ हो सकता है और इसका तो बिल-कुल नहीं। शायद मैं विदाके क्षणके लिए पूरी तरह तैयार न था ? यह शायद बहुत देर पहले विदा ले चुका था।

मैं यहीं बेंचपर बैठा रहूँगा। मुझे अब इसका और इन्तज़ार नहीं है। गाड़ी जा चुकी है। विश्वास करें, एक गाड़ी मुझे भी पकड़नी है। आपको याद होगा अब मुझे दूसरे शहरके अस्पतालमें दाखिल होना है। यह तीसरी बार है। तीन नम्बरको मैं 'लकी' मानता हूँ। मेरा खुदा भी जानता है।

■

रात काफ़ी बीत चुकी है। महोदय ! आप अब कल सुबह उठेंगे। आप अपने मकानकी बग़लमें बने पार्कमें सुबह टहलने जाते हैं। रात आपका मित्र स्टेशन गया था। नहीं। ये लोग स्टेशन कभी नहीं जाते। उसने इसी पार्ककी एक बेंचपर बैठकर आत्म-हत्या कर ली थी। कहीं यह वह बेंच तो नहीं जहाँ आप सैर करनेके बाद कुछ देर सुस्तानेके लिए बैठते हैं। आपको असुविधा होगी। फिर भी आप ध्यान रखें कि आपके मित्रका शरीर बेंचसे लुढ़ककर ज़मीनपर न गिर गया हो। ऐसा आपको अच्छा नहीं लगेगा। उसमें और कुछ न सही स्वाभिमान तो था। आपको उसकी जेबमें एक पत्र अवश्य मिलेगा जिसमें 'मेरी आत्महत्याके लिए कोई उत्तर-दायी नहीं' लिखकर उसने बहुत बड़ा झूठ बोला है। आप उसे क्षमा कर देंगे। वैसे आप जानते ही हैं कि यह पत्र उसने आपके सामने बैठकर हँसी-हँसीमें लिखा था। यहाँतक कि कुछ चुस्त फ़िकरोंकी उसने आपसे सहायता भी ली थी। लेकिन यह बात आप किसी से न कहिए। यह आपके हितमें रहेगा और आपके मित्रने आपका सदा हित ही चाहा था। पत्रका वह अंश जहाँ उसने 'सायेका गुम हो जाना', 'इस देशमें कोटकी जेबोंकी अस-मर्थता और व्यर्थता' तथा 'बिना किसी खेद-के' आत्महत्याका रास्ता अपनानेकी बातें दार्शनिक लहजेमें की हैं—आपको कष्ट देगा। लेकिन इससे भयभीत होनेकी कोई बात नहीं। वैसे आपको आश्चर्य हो सकता है कि यह वही आदमी था जिसे जीवनकी छोटीसे छोटी घटनापर खेद होता रहा है और वह मौतसे सदा डरता रहा है। फिर भी !

महोदय ! व्यर्थ है यह सोचना कि कल एक ठिठुरती और सीलन-भरी रात थी और आपकी आँखें (क्या) अकारण ही नम थीं !

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आतुर प्रतीक्षाके बाद
नया परिवर्द्धित संस्करण
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत

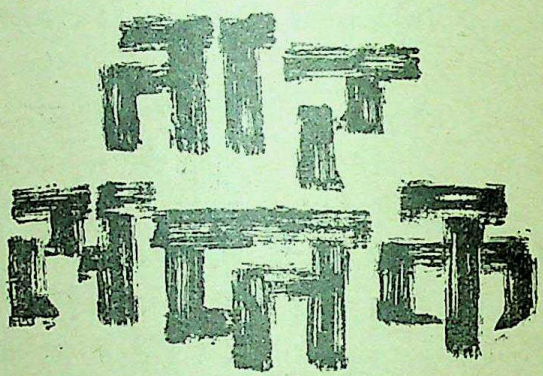

सांकलनकर्त्ता एवं सम्पादक
'अज्ञेय'

इस नये संस्करणमें पहलेकी सब सामग्री तो अविकल दी ही गयी है, अतिरिक्त रूपसे सातों कवियोंके 'वक्तव्य' पर 'पुनश्च' और प्रत्येककी कुछ नयी प्रतिनिधि कविताएँ भी सम्मिलित हुई हैं! समकालीन हिन्दी काव्यके प्रत्येक अध्येता एवं जिज्ञासुके लिए अनिवार्य रूपसे पठनीय एवं संग्रहणीय।

मूल्य ८.००

प्राप्ति-स्थान
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क। हा। नी

व्यस्तजीवियोंका डर

ममता कालिया

वह उससे लिपटी हुई थी और उसकी बुश्शर्ट-में, कॉलरके नीचे, उलटी तरफ़, लिखा था—'ड्रेलॉन ड्रिप-ड्राइ, डोण्ट यूज़ हॉट आयरन, गैरण्टीड फ़ास्ट कलर'। पहले वह प्यारके समय आँखें मूँद लेती थी क्योंकि इससे कसाव-के झेलनेमें सहारा मिलता था। पहली बार, सुवनकी बाँहोंमें उसे ऐसा महसूस हुआ था जैसा तब हुआ था जब पहले-पहल तैरनेके लिए वह 'पूल'में उतर गयी थी। 'इन्स्ट्रक्टर' थोड़ी दूर था और उसे पानीमें जानेकी जल्दी थी। उसे यह नहीं पता था कि 'लाइफ़बेल्ट' बाँध लेनी चाहिए। वह सोचती थी, उसकी ज़रूरत सिर्फ़ समुद्रमें जहाज़ डूबनेके समय, पड़ती है। पानीमें गिरते ही वह नीचे-नीचे धँसती चली गयी, उसके पैरोंके तीन फ़ुट नीचे ज़मीन नहीं थी और साँसके साथ वह हवाकी जगह पानी ले रही थी। उसे बाहर निकाला गया और इन्स्ट्रक्टरने उसे कॉफ़ी पिलायी थी।

सुवनकी पहली जकड़में उसे यक़ीन हो गया कि आज वह ज़िन्दा नहीं बचेगी, अगले क्षण उसका शरीर वैसा हो जायेगा जैसे रस निकालनेकी मशीनसे निकला छिलका। पर उसने पाया, इस दुर्घटनासे वह हरबार बेदाग़ निकल आती थी और बादमें कुछ मिनिटोंकी नींदके अलावा अन्य किसी फ़र्स्ट-एडकी ज़रूरत उसे नहीं होती थी। आँखें मूँदकर उसे ज़्यादा सुख मिलता था क्योंकि फिर उसे सुवनकी फटी बनियान और ज़रूरतसे ज़्यादा लगा टैल्कम पाउडर डिस्टर्ब नहीं करता था। पर जबसे उसने देखा कि खिड़कीके ऊपर रोशन-दानसे पड़ोसके बच्चोंने झाँकनेकी जगह निकाल ली है, वह सँभल गयी थी। अब उसे फटी बनियान या ज़रूरतसे ज़्यादा लगा टैल्कम पाउडर नज़र नहीं आता था, वह रोशनदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती रहती थी, लगातार। पहले उन्होंने उसे बन्द करनेकी सोची थी। बल्कि इस चक्करमें चित्राने पलंगसे ही उचकनेमें, पाँवमें मोच खा ली थी, पर रौशनदानके पल्लेमें दोनों काँच टूटे हुए थे और उसका बन्द होना न होना बराबर था। फिर घरमें हवा और रौशनी-का यही एकमात्र रास्ता था क्योंकि उनके कमरेका दरवाज़ा उनकी मकान-मालकिनके कमरेमें खुलता था। बाहर निकलनेके पहले, वे धीरेसे पूछते थे—'निकल जायें?' मकान-मालकिन मोटी आवाज़में कहती थी—'निकल जाओ, निकल जाओ!' वैसे दूरसे कोई सुनता तो सोचता, थोड़ी ही देरमें वे मय सामान, बाहर नज़र आयेंगे।

रविवारके अतिरिक्त उन्हें कभी समय नहीं मिला। सुबन छह बजे जब लौटता था, उसे मेज़पर, थर्मसमें चाय, दो मठरी और एक बिस्किट रखी मिलती थी। कुरसीपर वह साड़ी पड़ी होती थी जो चित्रा बदलकर जल्दी-में फेंक जाती थी। वह उन साढ़े तीन घण्टोंमें अकसर सो जाता था और अगर नींद न आती तो जूतोंपर पॉलिश किया करता था। कभी-कभी वह चित्राके ख़त पढ़ा करता था जिसका पुलन्दा, जगहकी कमीकी वजहसे, पलंगके नीचे पड़ा था और जिसमें एक सहेली 'संध्या'-के खतोंकी बहुतायत थी। भूख लगनेपर वह प्रेशर-कुकरसे सब्ज़ी नहीं निकालता था बल्कि 'साँस'के साथ एक या डेढ़ रोटी खा जाता था।

शामके समय पढ़ने आनेवाले छात्र खुद इतने थके होते थे कि चित्राको क्लास क़ाबू करनेमें दिक़्क़त नहीं होती थी। दिनके दो कॉलेजोंसे वह इस्तीफ़ा दे चुकी थी क्योंकि क्लासें बहुत बड़ी थीं, शोर करती थीं, कई बार तालियाँ बज चुकी थीं और वहाँ लड़के उसे अजीब-अजीब आँखोंसे देखते थे। शामके कॉलेजमें प्रिंसिपल और हेड, दोनों अकसर नरम होते थे और हेड, रातके समय, कई बार, उसे अपनी मोटरमें घर 'ड्रॉप' भी कर चुका था।

खाना खाते समय उनके पास बहुत बातें होती थीं और दोनोंको इसीलिए जल्दी-जल्दी बोलनेकी आदत पड़ चुकी थी। जब भी वे घड़ी देखते थे, उन्हें अफ़सोस होता। आँखोंमें नींद और थकान लिये-लिये वे अपनी-अपनी प्यास और ज़रूरत टटोलते थे। कई बार वे इतनी जल्दी सन्तुष्ट होकर सो जाते थे कि उन्हें बादमें याद करना पड़ता था कि रातको वे पलंगपर लेटनेके बाद जगे भी रहे या एक-दम सो गये!

चित्राने कहा, इस इतवारको वे हैंगिंग गार्डन ज़रूर जायेंगे। उसकी सब सहेलियाँ बीसियों बार हैंगिंग गार्डन और विहार-लेक जा चुकी हैं और उसे यह कहते शर्म आती है कि उसने दोनोंमें-से एक भी नहीं देखा।

सुबन चुप रहा।

चुप्पी उसकी सबसे स्पष्ट असहमति होती थी। चित्राने एक बार फिर दोहराया, कि वे जायेंगे और अटैचीमें-से स्टोवका पिन उठाकर कमरेके दक्षिणी कोने, यानी रसोईमें वह चली गयी।

"तुम सब्ज़ी गरम कर सकती हो पर रोटी एक भी नहीं है।" सुबनने बताया।

[शेष पृष्ठ ७२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

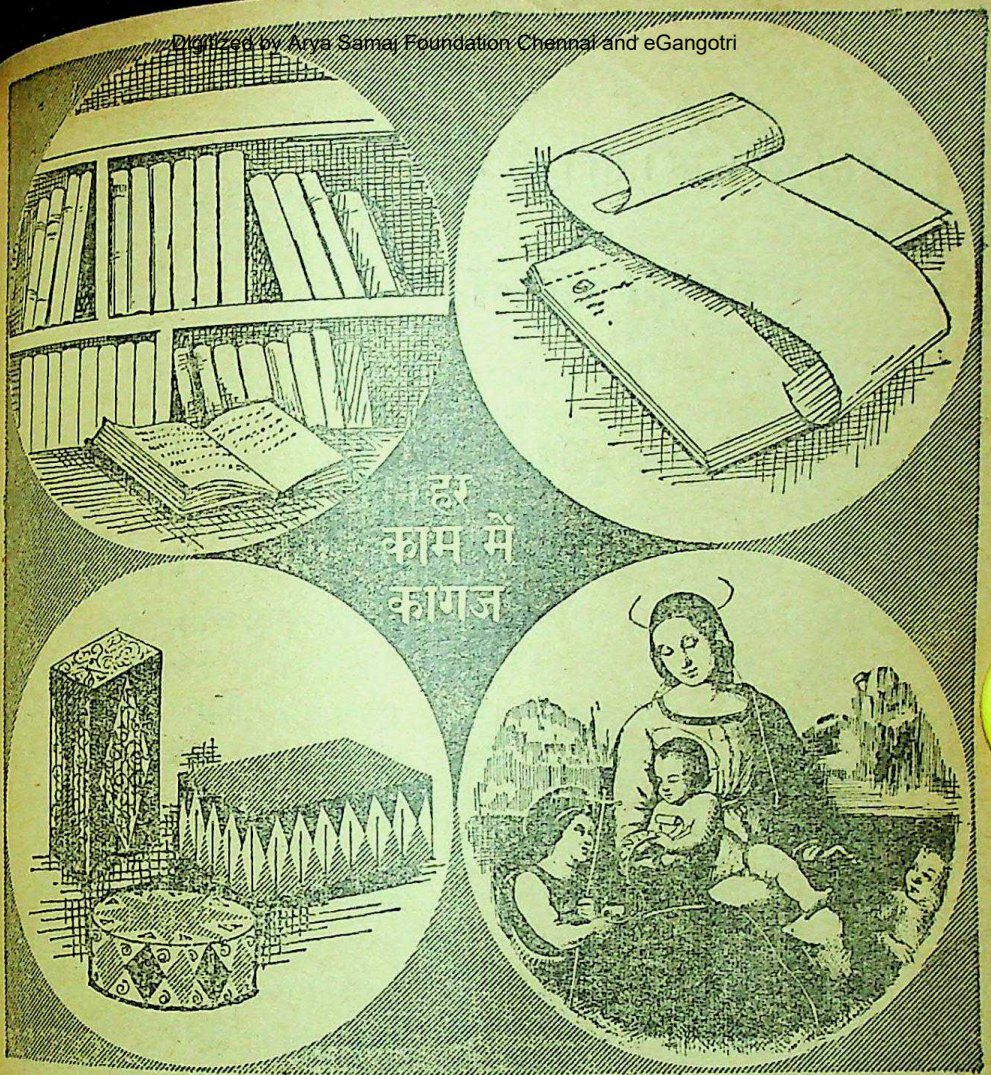

इनको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेबल छपाई के लिये कोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनकेअलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

PC AL. 383 HIN. (A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न। यी। क। हा। नी : उर्दू

फूल का बदन

•

अब्दुल्ला हुसैन

"और ?" लड़कीने पूछा।

"ऊँहूँ !"

"एक प्याली और !"

"नहीं, धन्यवाद !"

"एक तो और !"

"अरे नहीं भई !" उसने तंग आकर कहा, "तुम जानती हो मैं चाय नहीं पीता।"

"नहीं।"

"नहीं क्या ?"

"मैं नहीं जानती।"

"क्या ?"

"मैं आपके बारेमें कुछ नहीं जानती।"

"ऐं ?" वह आश्चर्यचकित रह गया। इसलिए कि वह इस लड़कीको एक ज़मानेसे जानता था। और उसके घरवालोंको और उसके पतिको और सबको, इतनी अच्छी-तरहसे कि वह उनके घरानेका ही एक व्यक्ति समझा जाता था, इतने दिनोंसे कि उसे ठीक-से याद भी न रहा था ! शायद तबसे जबसे वह और उस घरका बड़ा लड़का स्कूलमें पढ़ते थे और वह एक बरस आगे था और फिर वह फ़ेल हो गया था और दोनों साथ-साथ पढ़ने लगे थे और दोनोंकी किसी बातपर लड़ाई हो गयी थी और दोनोंको सज़ा मिली थी, जब छुट्टीके बाद तक एक तख़्ती लिखता और दूसरा स्कूलके पौधोंको पानी देता रहा था और बादमें गलेमें बस्ते लटकाये एक दूसरेसे अनजान आगे-पीछे चलते घरोंको लौटे थे और शामको किसी बातपर दोनोंका मेल भी हो गया था, आपसे आप, और फिर बड़ी पक्की दोस्ती भी हो गयी थी, जो बढ़ती ही गयी थी, इसलिए कि दोनों साथ-साथ रहते थे और अभी बहुत छोटे थे, इतने कि अभी दूसरे क्लासमें पढ़ते थे या शायद उससे भी पहले-से। जब साथवाले घरमें नये लोग आये थे और उसने अभी स्कूल जाना भी आरम्भ नहीं किया था और वह दिन-भर उनके दरवाज़ेपर खड़ा मरदों, औरतों और बच्चोंको अन्दर-बाहर आते-जाते और सामानको यहांसे वहाँ होते और दरवाज़े-खिड़कियाँ चटाख़-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलाश खुलते-बन्द होते और धूलके बादलोंको उड़ते हुए देखता रहा था और केवल दोपहर-का खाना खानेके लिए घर गया था और फिर लौटकर वहाँ आ खड़ा हुआ था और देखने लगा था और बच्चोंकी माँने उससे पूछा था कि वह कहाँ रहता है और वह चुपचाप खड़ा देखता रहा था और फिर औरतने उसे अन्दर आ जानेके लिए कहा था और वह उसपर टससे मस न हुआ था और न बोला था और औरत उससे उकताकर अन्दर चली गयी थी और उसके बाद वह कई दिनों तक दूर-दूरसे बच्चोंको देखता रहा था। उसे अच्छी तरहसे याद भी न रहा था कि कबसे।

"तुम जानती हो।" उसने कहा, "तुम मुझे अच्छी तरहसे जानती हो।"

"नहीं।"

और पहली बार, लगभग पहली बार उसे इतनी ज़िद्दी, अहंकारी और विद्रोही लहजेमें बात करते हुए देखकर उसने कई बार आँखोंको झपकाकर और फिर आँखें फैलाकर सामने बैठी हुई उस लड़कीको पहचाननेकी चेष्टा की। क्योंकि शाम हो रही थी और किसीने उठकर बत्ती न जलायी थी और धुंधलकेके नर्म और लुप्त उजालेमें सफ़ेद चीनीके चायके बर्तन झलमला रहे थे और वह उनपर झुकी हुई बैठी थी, उसके सामने इस तरह कि उसका एक हाथ खाली प्यालीमें चमचा घुमा रहा था और दूसरा गोदमें पड़ा था और उसका सिर काला और घने बालोंवाला उसकी आँखोंके सामने था और चेहरा झुका हुआ था और उसको पता था कि उसकी आँखोंमें काजल और होठों पर लाली नहीं थी। कुछ देर पहले जब अभी उजाला था और वह बैठे चाय पी रहे थे और घुले-मिले दोस्तोंकी तरह बीच-बीचमें कोई-कोई बात किये जा रहे थे तो उसने ये सब देखा था।

वह इस लड़कीको इतने दिनोंसे जानता है, यह सोचकर उसके दिलमें दुःख हुआ।

"मेरा नाम नईम है," उसने कहा।

"अच्···छा?" लड़कीने चेहरा उठाया जो व्यंगात्मक था।

"तुम्हारा नाम सलमा है।"

"ठीक।"

"फिर?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं कुछ नहीं जानती।"

और उसने कुछ इस तरहसे 'कुछ' कहा कि वह जैसे बिजलीका झटका लगनेसे उठकर बैठ गया। अब एक अनजाना और बेबस क्रोध उसके दिमाग़को चढ़ने लगा। कमरेमें अँधेरा तेज़ीसे बढ़ता जा रहा था। खिड़कीके रास्ते एक गुज़रती हुई मोटरकी रोशनी एक पलके लिए उनके चेहरेपर पड़ी और ग़ायब हो गयी।

"उठकर बत्ती जलाओ।" उसने कहा।

"नहीं।"

"बत्ती जलाओ।" वह चीख़ा।

"अँधेरा अच्छा लगता है।" लड़कीकी गहरी संक्षिप्त हँसीकी आवाज़ आयी, "अँधेरेमें चीज़ें अच्छी लगती हैं।"

वह इस लहज़ेकी, इस अन्दाज़की उससे ज़रा-भर भी आशा रखता तो शायद अपना दिमाग़ न खोता, क्योंकि बहुत-सी बातें जो हम करते हैं, जिनपर हम पीछे पछताते हैं, इसलिए करते हैं, कि पहले उन स्थितियोंका जिनके कारण वह होती हैं, हमें पहलेसे कोई अनुमान नहीं होता। और वह बत्ती जलानेके लिए उठा तो घुटनेकी ठोकरसे चायकी टेबल-को उलट गया। बादमें वह इसी एक घटना-से—या किसी एक बातसे—यानी एक टूटी हुई प्याली और थोड़े-से दूध और थोड़ी-सी चाय और थोड़ी-सी चीनीको फ़र्शपर बिखरे हुए देखकर या शायद लड़कीको इसी तरह चमचा हाथमें लिये चुपचाप और एक दूसरेसे अलग और उन्मुक्त बैठे हुए पाकर या शायद उससे भी पहले अँधेरेमें गिरते और टूटते हुए बरतनोंके शोरको सुनकर ही ठण्डा पड़ गया।

"यह तुम्हारी ग़लतीसे हुआ।" उसने थके हुए लहज़ेमें कहा।

"अँधेरेमें," वह बोली, "चीज़की शक्ल बदल जाती है, सुन्दरता बढ़ जाती है।"

"कैसे?"

"ऐसे कि नज़रका रास्ता रुक जाता है," वह बोली, "फिर विचार तेज़ हो सकते हैं, विचारोंको तेज़ किया जा सकता है।"

"तुम्हारे सिरमें क्या समा गया है?"

"एक लाभ..." वह बोली, "और होता है, आँखोंको आराम मिलता है।"

"तुम्हारा दिमाग़ चल गया है शायद!"

वह आकर कुरसीपर ढेर हो गया। बातके अचानकपनने उसे बहुत थका दिया था। इसलिए कि इतना दिन हो गया था और इस लड़कीकी उपस्थितिमें या केवल उसके कहीं आस-पास उपस्थित होनेके ख़यालसे ही सदा इसको बड़ी शान्ति और इतमीनानका अनुभव हुआ था, यों कि जैसे बड़े ज़ोरकी तूफ़ानी रातमें आप किसी ख़ूब गरम और उजाले कमरेमें सन्तोषके साथ बैठे हों और बन्द खिड़कियोंके बाहर तूफ़ानकी आवाज़ोंको दिलचस्पीसे सुन रहे हों और आनन्दित हो रहे हों। कुछ इस तरहका अनुभव इसको सदा हुआ था, इसलिए कि इस लड़कीमें इसके लिए कोई आकर्षण नहीं था, वह आक-र्षण जो दुनियाकी सारी और लड़कियोंमें—दूर, नज़दीक, जाने-अनजाने और नाम-के नामकी एक-एक लड़कीमें—था। जिसके होनेसे उसने एक उम्र तक काफ़ी दुःख उठाये थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक समय आया था कि वह कहींकी भी हो, किसी नामकी और किसी कामकी हो पर लड़की हो तो वह उसकी महफ़िलमें, केवल उसकी उपस्थितिमें, एक हँसमुख ला-उबाली नौजवानसे पलक झपकते ही एक डरा हुआ, सहमा हुआ बच्चा बन जाया करता था। और एक समय आया था कि उसे अपने व्यक्तित्वको बचाये रखना असम्भव हो गया और वह ईश्वरकी बनायी हुई सारी मानव-जातिमें सबसे सुन्दर और गहरी और पूरी जान-दार जवान औरतसे भागा-भागा फिरता रहा। इसको वह सारा वक़्त याद था। जबतक उसका ब्याह न हो गया तबतक इसको यह भी याद था कि घूम-फिरकर वह जगह जहाँ शान्ति और दयाका अनुभव होता था और जहाँ वह अपनी दृष्टिका फैलाव और खोया हुआ विश्वास फिरसे प्राप्त कर सकता था और अपने तौरपर रह सकता था—उसी लड़कीके आस-पास थी और उसमें ऐसा कोई आकर्षण न था। वह उसको इतनी अच्छी तरहसे जानता था।

"आज तुम हर एकसे लड़नेपर तुली हुई हो।" उसने कहा।

"नहीं, केवल आपसे।"

"तुम महमूदसे भी लड़कर आयी हो।"

"महमूद मेरा पति है।"

"फ़िर ?"

"वह मेरा निजी मामला है।"

"मैं तुम्हारी निजी बातोंमें सम्मिलित नहीं हूँ ?"

"नहीं।"

"क्या ?"

"आप मेरी निजी बातोंमें सम्मिलित नहीं हैं।"

"ऐं !"

"हाँ।"

"ओह !" वह क्रोध दबाते हुए बोला, क्या ही अच्छा था जो ये सच होता।"

"आप मेरी किसी चीज़में सम्मिलित नहीं हैं।"

"तो फिर मुझपर एक दया करो। इस बातको सब लोगोंमें घोषित कर दो।"

"क्यों ?"

"मैं तुम्हारा रोज़का झगड़ा चुकाते-चुकाते तंग आ गया हूँ।"

"झगड़ेमें आप स्वयं पड़ते हैं।"

"कैसे ?"

"आपने मेरी शादी करायी है।"

"तो मैं····तो मैं····इस बातका दोषी हूँ ?"

"मैं स्वीकार करूँ-न-करूँ, आप इसमें सम्मिलित हैं हर हालतमें।"

"तो मैं दोषी हूँ ?"

"मैं कुछ नहीं जानती।"

जब थोड़े-से समयमें बहुत-सी ऐसी बातें, जिनका पहलेसे कोई गुमान न हो, एक साथ हो जायें तो ज़ेहनका चमचमाता हुआ तेज़ भाग जो उसकी चोटको दर्ज करता है, कुछ देरके लिए ही सही, एकदम कुन्द हो जाता है। और ठीक यही उस समय इसके साथ हुआ, जब इसने सारी बातोंको छोड़कर अचा-नक फ़र्शपर फैले हुए दूध और चाय और चीनीके बारेमें गम्भीरतासे सोचना शुरू कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। बड़ी आसानीसे उठकर चायके बरतन इकट्ठा करते और उन्हें तश्तरीमें रखते और आँधी मेज़को खड़ा करते हुए उसके ऊपर गीले क़ालीन और टूटी हुई प्यालीकी पूरी ट्रेजेडी अपनी सारी तीव्रता और अपने सारे व्यंग्यात्मक रूपके साथ स्पष्ट हो गयी, इसलिए कि यह लड़की, जो उसके सामने ऐसी ठोस, मुक्त होकर बैठी थी और जो चाहती थी कर रही थी, जो चाहती थी कह रही थी, सदासे—और इस 'सदा'में लगभग पचीस वर्ष आता था—उसे खाली चीनीकी प्यालीकी तरह नाज़ुक और बेज़ुबान और अधूरी और असुरक्षित मालूम हुई थी और वास्तवमें थी भी ऐसी क्योंकि वह इसको एक ज़मानेसे जानता था और एक ज़मानेमें वह सब कुछ आ जाता है जो किसी एक व्यक्तिको जाननेके लिए ज़रूरी होता है। और वह उसको एक ज़मानेसे जानता था।

"मैं तंग आ चुका हूँ।" उसने कहा।

"किस बातसे ?"

"तुम्हारे झगड़ोंसे।"

"आपसे किसने कहा था ?"

"क्या ?"

"कि झगड़ेमें पड़िए।"

"यह मेरे लिए ज़रूरी था।"

"कैसे ?"

"ऐसे कि मैं····कि मैं तुम्हारा····हुँह····!"

"कहिए, कहिए, आप मेरे क्या ?"

"कि मैं तुम्हारे घरका एक व्यक्ति हूँ। लगभग।"

"मेरे घरके व्यक्ति और भी हैं।"

"और इसलिए भी कि मैं तुम्हारी शादी करानेका ज़िम्मेदार हूँ।"

"आपसे किसने कहा था ?"

"हुँह····लाहौल वला क़ूवत···तुम्हारे घरवालोंने कहा था, बीबी !"

"मैंने तो नहीं कहा था ना ?"

"तुमने····अरर····तुम्हें तो पता ही था।"

"और न मुझसे आपने पूछा ही था।"

"इससे भला····।"

"क्या अन्तर पड़ता है ? ठीक है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। ठीक है।"

"फिर ?" वह मरी हुई आवाज़में बोला।

"फिर आप मेरे किसी झगड़ेसे किसी तरहका कोई वास्ता नहीं रखते। ठीक है।"

और जीवन-भरके ज्ञानके कारण वह कह सकता था कि इस लड़कीने आजतक किसी अवसरपर, कभी व्यक्तिगत रूपसे, निजी स्तर-पर बाततक न की थी। यह और भी आश्चर्य-की बात थी।

"आप-आप-आप—" उसने कहा, "यह क्या रट लगा रखी है तुमने ! सीधी तरहसे बात करो।"

"आप-आप-आप। हाँ, आप।"

"ओव।" उसने अपने गलेसे गहरी बेचैनी-भरी आवाज़ निकाली।

"अच्छा, 'तुम' वह मुसकरायी—'तुम' ठीक है ?"

"ओव।"

यह आश्चर्यकी बात थी इसलिए कि इसको वह समय याद था जब यह उस दौरसे गुज़र रहा था कि सारी दिशाओंका एहसास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो चुका था और शामोंको वीरान सड़कोंपर अकेला-अकेला फिरते रहनेके बाद उनके घर आकर कुरसीपर ढेर हो जाया करता था और कभी-कभी जब हमसायगीकी—दिलोंकी हमसायगीकी—इच्छा तीव्र हो जाती थी और वह घरमें अकेली हुआ करती थी तो वह सिर उठाकर कोई-न-कोई बात किया करता था : "सलमा, तुमको पता है, मैं कहाँ-कहाँसे फिरकर आया हूँ," या "बीबी, यहाँ आकर मुझसे बातें करो, मैं थक गया हूँ।" या "तुम हर वक़्त काममें क्यों लगी रहती हो, बावली-सी।" और वह अपनी धीमी व्यस्ततामें लगी, अपने रूखे-सूखे लहजेमें अपनी किसी बातसे इसको उसी अव्यक्तिगत स्तरपर वापस ले आती थी जिसपर उनके सम्बन्ध स्थापित थे। फिर उसके बाद वह समय जब इसकी शादी हुई थी और इसने आकर पूछा था—"सलमा, बिल्क़ीस तुमकी कैसी लगी ?" तो उत्तरमें वह बोली थी—"बड़ी अच्छी लगीं, भाभी बहुत अच्छी लगीं।" पर ऐसे लहजेमें बोली थी जो इसको आज तक याद था और जिसे महसूस करके इसका ख़ून ठण्डा पड़ गया था। इस-लिए नहीं कि उसमें कोई ईर्ष्या या कोई दुःख था बल्कि इसलिए कि उसमें मशीनकी-सी एकरूपता थी।

फिर उसके बाद उस समय जब इसकी पत्नी मरी थी और यह, जिसके लिए अपनी माँके बाद दुनिया-भरमें केवल पत्नी ही ऐसी थी जिसके वह निकट आ सका था, इस घटनामें एकदम खोकर रह गया था और एक दिन उसके पास बैठा-बैठा बोल उठा था, "बीबी, कुछ तुमही बताओ।" और उसने जवाबमें कहा था, "धीरज धरो। सब्र करो।" और वह इन दो शब्दोंको, जो सारी दुनियाने इसके सामने दोहराये थे और जिसमें सारी दुनियाकी निःशीलता और रुखाई भरी हुई थी, उसकी ज़ुबानसे भी निकलते सुनकर बहुत दुःखी हो गया था।

यह समय और इससे पहले और इसके बादके बहुत-से समय। वास्तवमें इसको बहुत-से समय याद थे जिनमें वह बराबरकी साथी थी पर व्यक्तिगत रूपसे किसी एकमें भी ठीक न बैठती थी, पास न आती थी।

"तुमसे ऐसी बातोंकी आशा नहीं थी, बीबी !" इसने कहा।

"बीबी, बीबी !" वह फट पड़ी—"बीबी !"

"एं ?"

"जैसे मैं भेड़ हूँ, बकरी हूँ या क्या हूँ। जिसका कोई नाम नहीं, कोई काम नहीं, जिसका·····।"

"सलमा !"

"हाँ, यह ठीक है—'सलमा'। यह मेरा नाम है।"

"सलमा !"

"तुमने ज़िन्दगी भर मुझको कोई नाम नहीं दिया। कभी भी मेरे व्यक्तित्वको, मेरे अस्तित्वको स्वीकार नहीं किया। मुझे कुछ भी नहीं समझा।"

"कुछ भी नहीं ?" इसने दोहराया।

"मेरे नामको तुम जानते रहे हो, पुकारते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी रहे हो, और बराबर बेख़बर रहे हो, बराबर।"

"किससे बेख़बर रहा हूँ?"

"मुझसे...."वह चीखी, "मुझसे!"

"मैं कुछ नहीं समझा, सलमा!"

"तुमने कभी नहीं जाना कि मैं भी कोई हूँ, तुम्हारी तरह, दूसरोंकी तरह, एक आदमी। और देखती-भालती हूँ, सोचती हूँ, महसूस करती हूँ, कुछ चाहती हूँ, कोई अस्तित्व रखती हूँ, कोई व्यक्तित्व, अलग, विशेष। जैसे हर कोई रखता है, जैसे तुम रखते हो। और तुमने कभी नहीं जाना।"

"मगर, सलमा, मैं सदा तुम्हारा...."

"तुम सदा मेरा ख़याल रखते हो? ठीक है, सदा मेरे आस-पास रहे हो, ठीक है, मुझसे-इतने परिचित और मेरे इतना निकट रहे हो यह भी ठीक है....पर कितना अलग रहे हो मुझसे?"

"सरासर ग़लत है! बिलकुल ग़लत! इसके उलटे तुम ही मुझसे अलग रही हो।"

"मेरा दुर्भाग्य यह है नईम, कि तुम मुझे उस समयसे जानते हो जब मैं एक कुरता पहनकर नंगे पाँव गलियोंमें भागा करती थी और तुम मुझे बालोंसे पकड़कर घसीटा करते थे और मुझसे इतने हिले-मिले, इतने बेख़बर थे और हमेशा रहे हो, और मैं इसका बदला लेनेके लिए जीवन-भर अलग रही हूँ पर एक दिन....वह रुक गयी।

"एक दिन?"

"एक-न-एक दिन पता चलता है कि हम किसीसे बदला नहीं लेते केवल अपने-आप-से लेते हैं।"

"तुम्हारी अपनी ग़लती थी।"

"ग़लती नहीं थी, मजबूरी थी। औरत-का अहम् उसके सिरसे कहीं ऊँचा होता है।"

"यह बात मेरी समझमें नहीं आयी।" इसने कहा, "बचपनकी बातोंका, बचपनकी दुश्मनीका बदला लेनेके लिए तुम...."

"बचपनकी दुश्मनीका हम कभी बदला नहीं लेते, पागल आदमी!" मुसकराहट जो उसके होठोंपर आयी वह कड़वी थी—"दुश्मनी तो बेवक़ूफ़ी होती है। दोस्ती अत्याचार होता है। बदला हम केवल बचपनकी दोस्ती-का लेते हैं, मेरी ओर देखो। ऊपरसे नीचे तक देखो। तुमने आज तक नज़र-भरके मेरी ओर नहीं देखा। मैं एक पूरी औरत हूँ, एक अकेली इकाई हूँ, एक अलग व्यक्तित्व है मेरा। आजसे पहले तुम्हें कभी इसका ख़याल आया था?"

"मैं कभी तुमसे बेख़बर नहीं।"

"ठीक है, तुम सदा मेरे बारेमें बड़े ख़बर-दार रहे हो। इसी तरह जैसे इस कुरसी या इस मेज़ या इस खजूरके पेड़ या मिथाऊँ बिल्लीके बारेमें रहे हो। कभी तुमने आज तक मुझको वह कुछ समझा है जो कि मैं असलमें हूँ?"

"मैंने सदा तुमको सलमा समझा है और जावेदकी बहन और एक बहुत पुरानी दोस्त और एक शरीफ़ लड़की समझा है। इससे अधिक कुछ समझनेकी, मैं जानता हूँ कि, कोई ज़रूरत भी न थी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शरीफ़ लड़की, शरीफ़ लड़की !" वह हवामें हाथ फेंककर बोली, "तुम्हें पता है इसका अर्थ ? जहाँ हम रहते हैं वहाँ शरीफ़ लड़की अल्लाह मियाँकी गाय होती है जिसकी कोई हैसियत नहीं होती, जिसके कोई खयालात नहीं होते, जिससे किसी नयी दृष्टिकी आशा नहीं की जा सकती ! जो बस यों ही समझ ली जाती है, स्वीकार कर ली जाती है और फिर जिसे भुला दिया जाता है, जो भुलायी जाती रही है लगातार''''सदा''''"

"तुम झूठमूठ ही बात बढ़ा रही हो। ज़रा ठण्डे दिलसे सोचो।"

"जब जीवन-भरके संकोचके बाद निर्णयकी शक्ति मिलती है तो दिल ठण्डा नहीं रहता और न सोच-समझ रहती है। तुम लोग हमारे साथ ऐसा खराब व्यवहार करते हो।"

"हम लोग ?"

"हम औरतें।" वह बोली, "हम औरतें !"

"ओह सलमा," इसने थके हुए लहजेमें कहा, "इसमें मेरा क्या दोष ?"

"तुम्हारा दोष ? तुम्हारा दोष ?" वह बोली, "महमूद तुम्हारा दोस्त था और तुमने मेरी शादी ठहरायी थी। तुम मुझसे पूछ नहीं सकते थे ?"

"पूछनेके लिए तुम्हारे घरवाले जो थे।"

"घरवाले ?" वह बोली, "घरवाले क्या हैं ? केवल घरवाले हैं।"

"क्या मतलब ?"

"घरवाले महत्त्वपूर्ण नहीं थे। तुम थे।"

"कैसे ?"

"मेरे लिए।"

"सलमा !" यों जैसे वह ज़िन्दगीमें पहली बार चौंका हो—"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

फिर वह उसकी खामोश, बेबाक नज़रोंसे अपना जवाब पाकर कुरसीसे टेक लगाकर बैठ गया और इधर-उधर देखने लगा।

वह उठकर कमरेमें फिरने लगी।

"नईम, औरतोंमें बड़ा धैर्य होता है और बड़ी लाज होती है। इतनी कि मैं अभीतक आँख मिलाकर तुमसे बात नहीं कर सकती। हाँ, अब वह समय आया है, वह समय कि जब आदमी औरत हो या मर्द इतना कुछ भुगत चुका होता है कि न लाज रहती है न धैर्य। मैं तीस वर्षकी हो चुकी हूँ और मैंने जीवनके सारे ढके-छुपे रूप देख लिये हैं और अब खुलकर बात कर सकती हूँ।" वह पलटी —"मुझपर दया करो।"

"सलमा !"

"मैंने समझा था कि मैं भूल जाऊँगी कि दुनिया बहुत बड़ी है और इसमें शरीरकी समस्या है और पेटकी और दिनपर दिनके जीवनकी, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है और अन्तमें हम विजय पा जायेंगे। औरत अपना सिर ऊँचा रखनेके लिए अन्तिम क्षण तक अपने-आपको धोखा दे सकती है। यह अभागा बेसमझ सिर''''यह गला-सड़ा, फ़िज़ूल, निकम्मा''''व्यर्थ !"

"सलमा !" इसने कहा, "महमूद''''"

"खुदाके लिए यह मत समझो नईम, कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने पतिके साथ नहीं रहना चाहती। वह बहुत महान् है। नहीं, उसने मुझे कभी दुःख नहीं दिया और मैं उसके साथ रहना चाहती हूँ, उसको खुश रखना चाहती हूँ और उसकी खातिर···अपनी ख़ातिर नहीं और न तुम्हारी खातिर, केवल उसकी खातिर, मैंने अपना सिर तुम्हारे आगे झुकाया है।"

वह कुरसी छोड़कर उठ खड़ा हुआ, फिर बैठ गया।

वह कमरेमें फिरती रही—"पाँच बरस-का ज़माना बीत गया है और मैं आज तक उससे खुलकर बात नहीं कर सकी हूँ। नईम, विश्वास करो, मैंने बहुत चेष्टा की है, हर दिन, हर रातमें, पूरी निश्छलता और अच्छे संकल्पके साथ।"

"खुदाके लिए चुप रहो।"

"लेकिन अकेली रही हूँ। हर दिन, हर रात, हर पल मुझको एहसास रहा है कि कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी समय, कोई-न-कोई चीज़ हर हालमें खोयी गयी है, छूट गयी है, बरबाद हो गयी है और उसकी खटक मेरे दिलमें बाक़ी रही है, सदा—सदाके लिए। वह कुछ जिसके बिना एक पत्नी भी अपने-आपको पूरी तरह सौंपकर अपने पतिसे सम्बद्ध नहीं हो सकती, वह जिसके छूट जानेसे आदमीके बीच ईमानदारी खत्म हो जाती है, फिर एक दिन जब साँस भी सीनेमें रुकने लगती है तो दिलमें खयाल आता है कि यह सब इतना फ़िज़ूल है, फ़िज़ूल, फ़िज़ूल, व्यर्थ!"

"मुझे दुःख है सलमा, लेकिन···"

"मेरा दिल तो क्या," वह बोली, "आज तक उसके साथ मेरा बदन भी नहीं जुड़ सका।"

"सलमा बेगम!" उसने कहा, "जीवन-की गाड़ीको अब मोड़ा तो नहीं जा सकता।"

"पर इस दुःखको तो खत्म किया जा सकता है!" वह बोली। "इस अकेलेपन-को!"

"कैसे?"

"नईम!" वह बोली, "मैं उसको छोड़ नहीं सकती। मैं सच्चाईसे उसके साथ रहना चाहती हूँ, साँस लेना चाहती हूँ और सहायता-के लिए तुम्हारे पास आयी हूँ।"

"पर मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मुझे आज़ाद कर दो इस एहसाससे, इस बेकारके एहसाससे, इस अधूरेपनके एहसाससे जो मेरे और उसके बीच है, मुझे छुटकारा दिला दो।"

"मगर कैसे?" वह चीखा, "कैसे?"

फिर उसकी खामोश बेबाक नज़रों और हवामें फैले हुए, बोलते हुए, फ़रियाद करते हुए निराश, निर्लज्ज हाथोंसे अपना उत्तर पाकर वह सन्न रह गया।

"तुमने उम्र-भर मुझपर अत्याचार किया है!" वह बोली, "अब तुम मेरे लिए, मेरे पतिके लिए, मेरे घरकी शान्तिके लिए कुछ नहीं कर सकते?"

"सलमा!"

"मैं खत्म हो रही हूँ, नईम, दया करो।"

"सलमा!"

"दया करो, दया करो नईम, भगवान्के लिए!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह फटी-फटी आँखोंसे बैठा उसको हाथ फैलाये फ़रियाद करते तकता रहा।

फिर जब रात आधीसे अधिक बीत चुकी तो उसने सोचा कि प्यारके भी कितने रूप हैं···एक वह भी जो हमें दरिद्र और कंगाल कर देता है।

पर प्यार प्यार है जो कुछ भी और कैसा भी हो आदमीको अपने-आपसे अलग करने, ऊपर उठाने, कहीं-न-कहीं पहुँचानेपर तुला है, हर हालमें। यों कि जब रात अभी शुरू ही हुई थी तो उसने केवल एक प्रश्न किया था :

"तुम सदा नंगे बदन सोती हो ? और उत्तरमें उसने धीरेसे कहा था : "शी !" इस तरह जैसे सोग-सभाओं और पवित्र स्थानोंपर हरदम प्रश्न करनेवाले बच्चोंको चुप कराया जाता है। और उसने सोचा था कि औरत भी कितने प्रकारकी होती है। एक यह थी जो आज तक इसके लिए लगभग बेकार थी और जिसमें कोई भी आकर्षण न था पर वास्तवमें इतनी जानदार और रोशन थी, कि पलके-पलमें इसको कहाँसे कहाँ ले गयी थी।

और यों तीस बरसकी उम्र पाने और उसके सर्द और गर्ममें-से गुज़रनेके बाद उसको—वह जो दीवारकी ओर मुँह किये लेटी थी—इस बातका ज्ञान हुआ कि दुनियामें आदमी अपने भाग्यका लिखा या अपने कर्मोंका फल नहीं भोगता, केवल अपनी इच्छाओंकी सज़ा पाता है। जो पूरी हो जाती हैं वह भी और जो पश्चात्ताप बन जाती हैं वह भी हमें कुछ नहीं देतीं, कभी भी, केवल कंगाल बना जाती हैं कि अच्छी और बुरी दोनों स्थितियों-को हम एक साथ भोगते हैं, कि एक बार दिलोंकी हमसायगी टूट जाती है तो फिर शरीरके भेंट चढ़ानेसे नहीं जुड़ती। और इसीलिए पुरानी किताबोंमें लिखा है कि आदमी जब भी, जहाँ भी और जैसे भी चाहे अपने दुःखका अन्त कर सकता है कि यह इसके बसमें है !···शायद वह रो रही थी।

सुबह यह नाश्तेकी मेज़पर बैठा रहा जबतक उसकी माँने आकर बरतन न उठा लिये।

"सलमा !" फिर इसने कहा।

"चलो चलें।" वह उठ खड़ी हुई।

उसकी माँको सलाम करके और उसे साथ लेकर यह बाहर निकल आया।

"जावेदका ख़त आया है।" वह उसे बताने लगी, "अगले सप्ताह आ रहा है। इस बार वह अम्माँको साथ ले जायेगा, फिर घर अकेला रह जायेगा।"

"सलमा !"

"वह देखो, दो लड़कियाँ गिर पड़ीं, न जाने दो-दो करके सायकिलपर क्यों चढ़ती हैं !"

"सलमा !"

"शी !"

"सलमा !"

"नहीं नईम," वह बड़े ही थके हुए स्वरमें बोली, "भगवान्‌के लिए चुप रहो।"

वह चुप रहा पर बराबर उसको देखे गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पैदल चलते हैं। दूरी ही कितनी है।"

"हाँ, दूरी कितनी है!"

"बेकार! सब फ़िज़ूल था, व्यर्थ!!"

"एं?"

"व्यर्थ, फ़िज़ूल!!"

"नहीं।"

"मुझे पता था।"

"सलमा, मैं अब तुम्हारे बिना.....।"

"तुम लोग मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हो।" वह बड़ी ही रुखाईसे बोली, "मेरा घर आ गया है।"

वह ठिठककर रुक गया, "चलो।"

"नहीं। तुम अब जाओ।"

"कहाँ?"

"जाओ।"

"लेकिन।"

"अब कभी यहाँ मत आना।"

"क्यों?"

"मैं तुमसे अब कभी मिलना नहीं चाहती।"

"सलमा!"

अन्दर उसका पति सोफ़ेपर बैठा अखबार पढ़ रहा था, उसे देखकर उठ खड़ा हुआ। वह बेदिलीसे मुसकराकर घरके अन्दर चली गयी। कुछ देर बाद जब वह दोपहरके खानेकी तैयारी कर रही थी और उसका पति पास बैठा अखबार पढ़ रहा था तो वह बड़ी चेष्टा करके मुसकरायी और बोली, "आज दफ़्तर नहीं गये?"

(अनु० : अहमद सलीम)

■ ■

(पृष्ठ ६० का शेष : व्यस्तजीवियोंका प्यार)

"क्यों?"

"मेरा मन नहीं लग रहा था और साँस इस बार बहुत अच्छी आयी है।"

"तुमने सब्ज़ी क्यों नहीं ले ली थी?"

"नहीं, फिर मुझे लगने लगता है, मैं अकेले खाना खा रहा हूँ।"

चित्रा ब्रिटानिया डबलरोटीके स्लाइसेज़ सब्ज़ीके साथ खाती रही।

सुबन लेटा हुआ था, सीनेपर अखबार और अखबारपर चश्मा रखे। चित्राके जाते ही उसने दोनों चीज़ें मेज़पर सरका दीं।

उसे समेटते हुए उसने कहा, "हम इतवारको हैंगिंग गार्डन नहीं जायेंगे। हम किसी इतवारको कहीं नहीं जायेंगे।"

"मैं भी तो यही कहती हूँ," चित्राने ज़िदसे समर्थन किया। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितोपदेश : चार पात्र

(कुत्ते, बिल्लियाँ, चूहे, साँप)

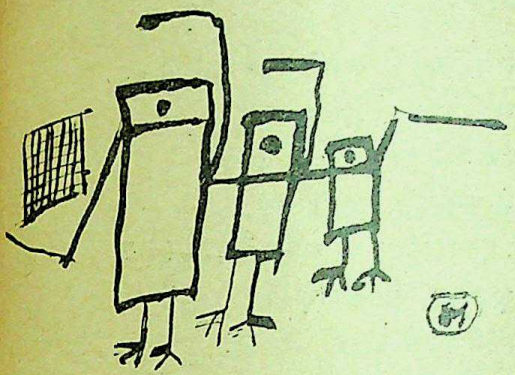

लक्ष्मीकान्त वर्मा

• कुत्ते

काले, आईवरी ब्लैक, भभरे; ब्लैक,
आस पास ऊँघते, भूँकते ऑफ़ द ट्रैक।
देशी-विदेशी जैण्ट के साथ जैक।

एक बताशे की सूराख़ में जैसे पानी रिस जाय
जैसे पानी की हर बूँद एक सैलाब पी जाय
जैसे हर सैलाब एक धधकती सलाख़ बन जाय

आम रास्ते पर चलने के पहले
मैंने जो दो-चार ढेले अपनी जेब में रख लिये हैं,
वह किसी क्रान्तिकारी की जेब में बन्द बम नहीं हैं,
वे महज़ मिट्टी के बने कुछ टुकड़े हैं
जिन्हें मैं उस घड़ी के लिए रखता हूँ
जब पहचानी शकलें अनचीन्ही-सी
एक साथ चारों ओर से हर अकेले को
आतंकित करने लगती हैं।

मैं महज़ जाति से नहीं
कर्म से भी जानता हूँ
पहचानता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• बिल्लियाँ

हर रास्ते को काट जानेवाली
गद्दीदार पंजों में ज़हरीले नाख़ून छिपाये
हर अँधेरे में ख़ामोश
लेकिन हर उजाले से परीशान ।

मैंने देखा है उसको बहुत धीमे बोलते
आहिस्ता-आहिस्ता चलते,
हर गति से लक्ष्य को बेधते
लेकिन मैंने देखा है उसे,
महत्त्वाकांक्षा की सीढ़ियों पर अँधेरे में
ख़ामोश, रोंगटे खड़े किये
शान्तिपूर्ण बढ़ते
रास्ते काटते
गद्दीदार पंजे से मुँह धोते
फिर उसमें से नाख़ून तेज़ करते
मैंने देखे हैं, देखे हैं

और तब,
मैंने सुनी है एक आवाज़
एक फड़फड़ाहट,
छटपटाहट,
मौन, अकुलाहट
....फिर एक लम्बी चीख़
और सन्नाटा
सन्नाटा—
गलता ।
ख़ामोश बेजान झिल्लियाँ हैं चारों ओर
और सीढ़ियों पर चढ़ती बिल्लियाँ हर ओर
और सब का अन्त
मौत
सिर्फ़ मौत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• चूहे

कल तक ये सफ़ेद थे,
आज इनका साथ कालों का हो गया है
कल तक ये महज़ लैबर्ट्री में पालतू थे
लेकिन आज से ये महज़ फ़ालतू हो गये हैं।

हर प्लेग में इनकी मौत की क़ीमत बढ़ जाती है
एक एक पिरामिड की तरह, साँची और सारनाथ
के स्तूप की तरह
गली-गली, इधर-उधर, अँधेरी बस्तियों में ढूँढ़े
जाते हैं

कितनी क़ीमत है इनकी
कितना महत्व है इनका
क्योंकि ये हर अँधेरे में
सील भरी ज़मीन के नीचे अपनी बिरादरी में
एक ऐसा विष बोते हैं
जिसकी क़ीमत 'आदमी' मर कर चुकाता है।

कल तक ये एक प्रयोगशाला में थे
आज वहाँ से खुले आसमान के नीचे,
लेकिन ज़मीन के नीचे लाये गये हैं,
क्योंकि इन्हें हर ताज़ी हवा और हर 'नयी रोशनी'
बुरी लगती है
अपने चारों ओर इसीलिए ये एक ऐसी खोल
ओढ़ लेते हैं
जिसे बेध कर कोई भी शंका पार नहीं जा सकती।

मैंने आदमी और चूहे के रिश्तों पर बहुत सोचा,
चाहा कहीं कुछ ऐसा मिल जाय
जिससे यह सिद्ध हो सके—
कि आदमी जो जर्म्स पालता है
उससे चूहे ही मरते हैं
आदमी नहीं,
आदमी महज़ जीता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• साँप

अजीब यह बस्ती है
हर रस्सी यहाँ साँप हो जाती है
और हर साँप एक उलझी रस्सी-सा
मुरदा, महज़ मुरदा हो जाता है !

बाँबियों में क़ैद,
जाने कितने इन्सानों की यह पंक्ति
जो चिमनियों के धुएँ में लिपटी
आगे की ओर बढ़ती जाती है,
महज़ एक उलझी हुई रस्सी है
जो बार-बार
साँप होने से रह जाती है।

अजीब यह बस्ती है,
जहाँ हर उलझन धुएँ की लकीर,
हर फूल एक वासुकी के फन पर चरण-चिन्ह,
हर चरण एक सरकती-रेंगती गति,
हर साँस एक विषैली संक्रामक छूत
हर छूत आदमी की पहचान है।

मैंने देखा है,
आदमी में कहीं एक करवट है,
काट कर चित हो जाने की इच्छा है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि । ज्ञा । न

सतत सृष्टि-सिद्धान्त

कुमार काश्यप

साधारण सापेक्षवादके बाद ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी जिस सिद्धान्त-को सबसे ज़्यादा प्रसिद्धि मिली, वह है हरमन् बोण्डी, थामस् गोल्ड, फ्रेड हायल और नारलिकरका 'सतत सृष्टि सिद्धान्त' जिसका सार यह है कि ब्रह्माण्डमें नवीन पदार्थकी रचना निरन्तर एवं अविराम गतिसे जारी रहती है।

इस सिद्धान्तसे वैज्ञानिक एवं पाश्चात्य धार्मिक जगत्में काफ़ी हलचल मची। कुछ वैज्ञानिकोंने इसपर ध्यान देनेसे इनकार कर दिया; कुछने इसपर घोर अविश्वास प्रकट किया, और कुछ दूसरोंने इसे एक साहसपूर्ण तथा आश्चर्य-जनक आविष्कार घोषित करके इसका सहर्ष स्वागत किया।

अविश्वासका मूलाधार यह रहा है कि इस सिद्धान्तसे भौतिकीके एक आधारभूत नियमका खण्डन होता है। वह नियम है, 'शक्तिकी अविनाशिता' का। यह नियम हमें यह बताता है कि शक्तिका न तो निर्माण किया जा सकता है, और न नाश; शक्ति केवल अपना रूप ही बदलती है। अतः यदि ब्रह्माण्डमें नये पदार्थके रूपमें नयी शक्ति अस्तित्वमें आ रही है, तो इससे, मानो, भौतिकीका सिंहासन ही डोल गया!

इस सन्दर्भमें यह बात कहने की है कि पदार्थकी निरन्तर सृष्टिकी यह धारणा उपर्युक्त तीन या चार वैज्ञानिकोंकी कोई अपनी मौलिक धारणा नहीं है। यह विचार उनसे बहुत पहले, १५२८ में ही, प्रसिद्ध ब्रिटिश खगोलशास्त्री सर जेम्स् जीन्स प्रस्तुत कर चुके थे। लेकिन जहाँ सर जेम्स्ने इस धारणाको नक्षत्र-समूहोंकी कुछ दुर्बोध विशेषताओंकी एक सम्भाव्य व्याख्याके रूपमें प्रस्तुत किया था, वहाँ बोण्डी, गोल्ड और हायल आदिने इसके आधार-पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका एक नया रूपांकन ही कर डाला। उनके अनुसार पदार्थका निरन्तर निर्माण ही वह एक मात्र कारक शक्ति है, जिससे न केवल ब्रह्माण्डका नियन्त्रण होता है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूपसे उसकी सभी व्यापक विशेषताओंका निर्धारण भी होता है।

सिद्धान्तके रचयिताओंके पास इसमें अपनी आस्थाके लिए एक दार्शनिक आधार भी है। उनका कहना है कि चूँकि आधुनिकतम अनुसन्धानोंके अनु-सार ब्रह्माण्डका विस्तार सतत वृद्धि पा रहा है, तथा जो नक्षत्र-समूह हमसे जितनी ज़्यादा दूरी-पर है, वह हमसे सापेक्षतः उतना ही ज़्यादा तेज़ीसे दूर हटता जा रहा है, अतः हम अन्ततः ऐसे नक्षत्र-समूहोंकी कल्पना कर सकते हैं, जिनकी हमसे दूर हटनेकी सापेक्ष गति प्रकाश-गतिके लगभग समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती जा रही है। अब ज्यों ही ये 'अन्तिम छोर'वाले नक्षत्र-समूह प्रकाश-गतिको छू लेंगे, त्यों ही वे हमेशाके लिए अदृश्य हो जायेंगे, क्योंकि सापेक्षवादके अनुसार कोई भी भौतिक वस्तु प्रकाश-गतिको पहुँचकर अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सकती।

इस बीच निकटके दूसरे नक्षत्र-समूह भी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गतिसे हमसे दूर हटते जायेंगे, और अन्ततः वे भी छोरके समीप पहुँचकर अदृश्य हो जायेंगे, इस प्रकार एक दीर्घ पर निश्चित अवधिमें ब्रह्माण्डके सभी नक्षत्र-समूह एक-एक करके समाप्त हो जायेंगे, और अन्तमें ब्रह्माण्डमें कुछ भी नहीं बचेगा। खुद हमारे नक्षत्र-समूह—आकाश-गंगा—के तारोंकी विकिरण ऊर्जा भी अनन्त शून्यमें वितरित हो-होकर नष्ट होती रहेगी, और अन्ततः खुद हमारा नक्षत्र-समूह भी दम तोड़ देगा! (अवश्य इससे अरबों वर्ष पहले ही हमारा सूर्य बुझ चुका होगा और उससे पृथ्वीपर हर तरह-के जीवनका अन्त हो चुका होगा।)

तो, ब्रह्माण्डका ऐसा व्यर्थतापूर्ण अन्त बहुत-से विचारकों-को कुछ रुचिकर नहीं लगता। इसीसे निरन्तर सृष्टिके इस सिद्धान्तके पक्षमें कुछ नैतिक बल उपलब्ध होता है, क्योंकि जो स्थिति है, उसमें केवल ऐसा ही एक सिद्धान्त ब्रह्माण्डको उसके अनिवार्य व निराशाजनक अन्तसे बचानेकी कुछ आशा दिला सकता है।

सिद्धान्तका सार, जैसा कि प्रारम्भमें ही संकेत किया गया, यह है कि अनन्त शून्यमें पदार्थका निर्माण सतत जारी रहता है। यह पदार्थ उद्जन (हायड्रोजन)-परमाणुओंके रूपमें होता है। यह किसी अन्य वस्तुसे नहीं, बल्कि निपट शून्यमें-से उद्भूत होता है। और जिस गति-दरसे यह उद्भूत होता है, वह बस इतना ही होता है कि इससे उस पदार्थमात्राकी पूर्त्ति हो जाये जो ब्रह्माण्डीय प्रसारणके कारण

अन्तरिक्षमें पहला क़दम : जेमिनी-९ के यूजिन सर्नन

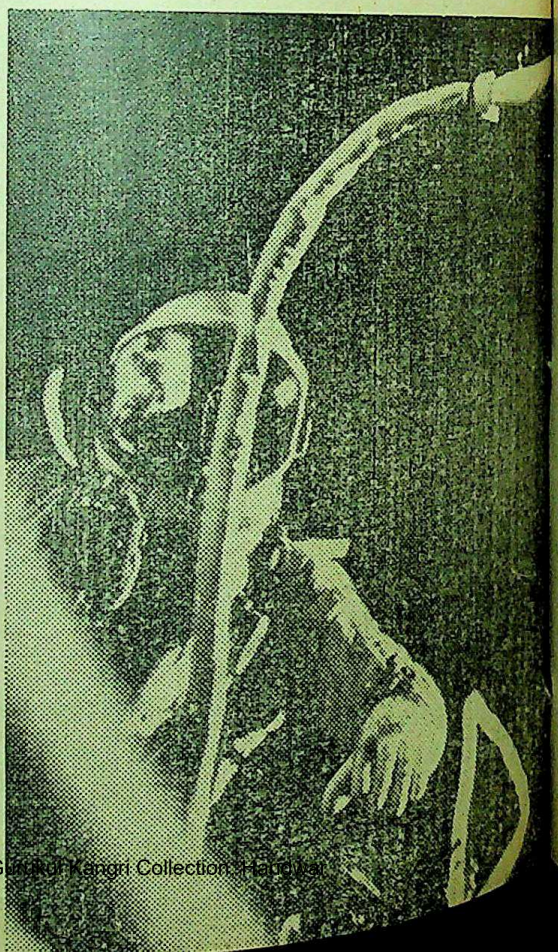

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छोर परसे' अदृश्य होती रहती है।

जो नये परमाणु अस्तित्वमें आते हैं, वे आपसी गुरुत्वाकर्षणके कारण अलग-अलग समूहोंमें एकत्र होते जाते हैं फिर अरबों-खरबों वर्षोंकी अवधिमें वे अधिकाधिक गहनता ग्रहण करते हुए नये नक्षत्रों व नक्षत्र-समूहोंके जन्मदाता बनते हैं। अवश्य इन नये नक्षत्र-समूहोंका भी वही अन्त होता है जो इनसे पहले जन्म लेनेवाले समूहोंका हो चुका होता है।

'सतत सृष्टि-सिद्धान्त' के अनुसार ब्रह्माण्डमें ये प्रक्रियाएँ निरन्तर जारी रहती हैं। ये अनादिकालसे इसी तरह चलती आ रही हैं और अनन्त काल तक इसी तरह चलती रहेंगी। दूसरे शब्दोंमें, ब्रह्माण्डका न कोई आदि है, न अन्त। यह हमेशा ऐसा ही रहा है, और हमेशा ऐसा ही रहेगा। इसके प्रकट स्वरूपमें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसे कभी भी कहींसे भी, देखा जाये, यह हर अवस्थामें ऐसा ही दिखाई देगा, जैसा कि है, अर्थात् एक-सा। ब्रह्माण्डके इस रूपांकनको 'स्थिर-स्थिति-प्रतिरूप' कहा जाता है।

लेकिन इस प्रकट 'स्थिरता' के परदेमें ब्रह्माण्डके विभिन्न भाग अर्थात् उसके नक्षत्र-समूह विकासके उन सभी चरणोंमें-से गुजरते हैं जो स्वयं जीवनकी एक विशेषता है। निरन्तर निर्मित होनेवाले सरलतम पदार्थ (हायड्रोजन गैसके परमाणु) से नक्षत्रों व नक्षत्र-समूहोंकी रचना होती है, जो अपने जीवनकालके विभिन्न स्थलोंमें-से गुजरते हुए अन्ततः समाप्त हो जाते हैं, और इस बीच उनका स्थान लेनेके लिए नये नक्षत्र-समूह अस्तित्वमें आते रहते हैं।

समूहोंके अलग-अलग नक्षत्रोंके लिए मृत्यु वास्तविक होती है, जैसी कि हमारे सूर्यके लिए होगी, क्योंकि इनके पास जो उद्जन-रूपी ईंधन है, वह उपयोगमें आते-आते एक-न-एक दिन समाप्त होगा ही; जब कि पूरे समूहोंकी मृत्युमें एक साथ दो प्रक्रियाएँ घटती हैं : एक तो उनके भीतरके नक्षत्रोंके मन्द पड़ने तथा मृत होनेसे उनके कुल विकिरण-भण्डारका कम होना, और दूसरे खुद उनके उत्तरोत्तर तीव्र गतिसे दूर हटनेके कारण उनका अन्ततः प्रकाश-गतिको पहुँचकर अदृश्य हो जाना।

सिद्धान्तके रचयिता इस सम्भावनाको स्वीकार करते हैं कि अनन्त शून्यमें पदार्थकी रचना उद्जन परमाणुओंके अलावा किसी दूसरे रूपमें भी हो सकती है—किसी मूल, प्रारम्भिक, अधिक सूक्ष्म रूपमें। लेकिन इस समय हमें आणविक भौतिकीका जितना ज्ञान है, उसके आधारपर हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हम इस पदार्थसे तभी परिचित होते हैं जब यह उद्जन परमाणुओंका रूप धारण कर लेता है, उससे पूर्व वह जिन अलग-अलग आणविक अंशोंके रूपमें रहता है, जैसे न्यूट्रान आदि, उन्हें हम 'पदार्थ' नहीं कह सकते। कुछ हो, बाह्य अन्तरिक्षमें उन्मुक्त उद्जन परमाणुओंके जो अपरिचित भण्डार मिलते हैं, उनसे इस धारणाकी पुष्टि ही होती है कि पदार्थकी रचना मूलसे उद्जन परमाणुओंके रूपमें होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, उनसे आगे अन्य सभी तत्त्वोंकी रचना अवश्य नक्षत्रोंके गर्भमें होती है !

अब जैसा कि पीछे संकेत किया गया, इस सिद्धान्तपर सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि क्या इससे आधुनिक विज्ञानका वह आधार-स्तम्भ ही ध्वस्त नहीं हो जाता, जिसे शक्तिकी अविनाशिताका नियम कहा जाता है ? क्या नये पदार्थके रूपमें नयी शक्तिके अस्तित्वमें आनेसे भौतिकीका आधार ही डाँवाडोल नहीं हो जाता ?

सिद्धान्तके रचयिताओंका दावा है कि ऐसा कुछ भी नहीं होता ! उनका कहना है कि ब्रह्माण्ड एक पूर्ण इकाईके रूपमें एक 'आत्मोन्मुखी प्रक्रिया' है, उसकी जितनी शक्ति छोरपर-से अदृश्य होनेवाले पदार्थके रूपमें कम होती है, उतनी ही शक्ति नवनिर्मित पदार्थके रूपमें पुनः उसमें आ मिलती है । इस प्रकार ब्रह्माण्डमें शक्तिका कुल भण्डार हमेशा एक-सा रहता है, अथवा भौतिकीकी भाषामें ब्रह्माण्डमें शक्ति 'अविनाशी' बनी रहती है ।

इन वैज्ञानिकोंमें-से बोण्डीने एक और तथ्य-की ओर भी ध्यान दिलाया है । उसका कहना है कि शक्तिके अविनाशी होनेका जो नियम है, वह नापतोलके परिणामोंपर आधारित है । और नापतोल कहाँतक की जा सकती है, इसकी भी एक सीमा है । हो सकता है कि हमने शक्ति-सम्बन्धी इस नियमका निर्धारण करते समय शक्तिकी उस नगण्य मात्राको भी शामिल कर लिया हो, जो शक्ति-रूपान्तरणकी किसी भी प्रक्रियामें वस्तुतः नष्ट हो जाती है, पर नापतोलमें नहीं आ पाती !

आखिर शक्ति-सम्बन्धी इस नियमसे पहले यही नियम स्वयं पदार्थपर भी तो लागू किया जाता था, और इसे 'शक्तिकी अविनाशिताके नियम' के स्थानपर 'पदार्थकी अविनाशिताका नियम' कहा जाता था। लेकिन बादमें नापतोलके अधिक सूक्ष्म उपकरण बन जानेपर यह देखा गया कि पदार्थके किसी भी रूपान्तरणमें कुछ पदार्थ-मात्रा (शक्तिमें परिणत होकर) पदार्थ रूपमें नष्ट हो जाती है । अतः क्या यह सम्भव नहीं कि शक्तिके हर रूपान्तरणमें भी कुछ-न-कुछ शक्ति-अंश नष्ट हो जाता हो ? पर हमारे उपकरण अभी इतने सूक्ष्म नहीं बन पाये कि उस अंशके अभावको सूचित कर सकें ।

बोण्डीका कहना है कि चूँकि ब्रह्माण्डमें स्थित कुल शक्तिकी तुलनामें नवीन शक्ति (पदार्थ) की रचना-दर प्रायः नगण्य ही है, इसलिए शायद सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर शक्ति-सम्बन्धी इस नियमका आरोप ही नहीं होता ! दूसरे शब्दोंमें, पदार्थकी अविनाशिताके पुराने नियमकी तरह शक्तिकी अविनाशिताका नियम भी वास्तवमें कोई नियम नहीं है, केवल हमारा एक सीमित पर्यवेक्षण है ! कुछ हो उसका कहना है कि ब्रह्माण्डमें जो नवीन पदार्थ (शक्ति) अस्तित्वमें आता है, उसे कोई नाप-तोलकर प्रयोगात्मक ढंगसे यह सिद्ध नहीं कर सकता कि उससे ब्रह्माण्डके कुल शक्ति-भण्डारमें कुछ अन्तर पड़ा, अतः शक्ति-सम्बन्धी नियमका उल्लंघन हुआ। सिद्धान्तका सबसे रोचक एवं सूक्ष्म अंग इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नको लेकर निर्मित है कि जो नया पदार्थ अस्तित्वमें आता है, वह 'वास्तवमें' आता कहाँसे है ? उसकी निर्माण-प्रणाली क्या है ? सिद्धान्तके रचयिता इन प्रश्नोंका कोई सीधा-स्पष्ट उत्तर नहीं देते। वे केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि अनन्त शून्यमें पदार्थ-रचनाकी यह प्रक्रिया एक सामान्य, नित्यप्रति तथा स्वाभाविक प्रक्रियाके रूपमें निरन्तर घटित होती रहती है। अतः इसे स्वयं ब्रह्माण्डकी ही एक अन्तर्निर्मित विशेषता कहना चाहिए।

फिर भी, कमसे कम हायल और उनके भारतीय सहयोगी नारलिकरने यह विचार प्रकट किया है कि नये पदार्थका निर्माण शायद एक ऐसे 'क्षेत्र' (फ़ील्ड) में होता हो, जिसे 'सृष्टि-क्षेत्र' का नाम दिया जाना चाहिए। उनका कहना है कि परमाणुसे लेकर ब्रह्माण्ड तक समस्त सृष्टि 'क्षेत्रों'में व्यवस्थित प्रतीत होती है। परमाणुके भीतर हम एक आणविक क्षेत्र देखते हैं, जो उसके विभिन्न अंशों (प्रोटान, न्यूट्रान, इलेक्ट्रान आदि) को नियन्त्रित करता है। उससे ऊपर, विद्युत् भारों तथा चुम्बकीय ध्रुवोंके बीच हम एक और तरहका क्षेत्र पाते हैं, जिसे हम 'विद्युत्चुम्बकीय क्षेत्र' कहते हैं। फिर उससे भी कुछ आगे बढ़कर हम एक और क्षेत्र देखते हैं, जो ग्रहों-नक्षत्रों व नक्षत्र-समूहोंकी गतिविधियोंको नियन्त्रित करता है, इसे हम 'गुरुत्व क्षेत्र' कहते हैं। इस क्रमसे हम अन्ततः एक ऐसे क्षेत्रकी कल्पना कर सकते हैं, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको ही नियन्त्रित करता हो, और जिसके अन्तर्गत स्वयं पदार्थकी रचना अर्थात् सृष्टि-कार्य होता रहता है।

ब्रह्माण्डके प्रसारणको भी, इस सिद्धान्त-के अनुसार स्वयं पदार्थका हर एक अन्तर्निहित गुण माना जाता है। हायल व नारलिकरकी स्थापना है कि नवनिर्मित पदार्थके कारण ब्रह्माण्डके सन्तुलनमें एक तरहका दबाव पड़ता है, जिससे वह फैलनेको बाध्य हो जाता है। इसके उलटे, स्वयं ब्रह्माण्डका प्रसारण भी पदार्थ-सृष्टिका कारण बन सकता है। वह इस तरह कि जब नक्षत्र-समूह एक दूसरेसे दूर हटते हैं तो उनके बीचके सामान्य गुरुत्वा-कर्षणको नकारनेके लिए कुछ 'कार्य' अर्थात् शक्ति-व्यय होना जरूरी हो जाता है। यही शक्ति-व्यय आइन्स्टाइनके प्रसिद्ध शक्ति-संहति समीकरण $E = mc^2$ के अनुसार उस पदार्थ-के रूपमें प्रकट होता है, जिसे इस सिद्धान्तके अन्तर्गत 'नवनिर्मित पदार्थ' की संज्ञा दी जाती है।

अब आगे यों कहा जा सकता है कि अनन्त शून्यमें प्रत्येक नवनिर्मित उद्जन परमाणुके साथ उसका कुछ अपना भीतरी देश (स्पेस्) भी जन्म लेता है, अर्थात् उसकी रचनासे पहले कोई 'देश' नहीं था, वह बना तो उसका देश भी अस्तित्वमें आया ! अब इन दो वस्तुओं—नये परमाणु और उसके देश—के उद्भवसे ब्रह्माण्डका पुराना सन्तुलन बिगड़ जाता है; उसमें सर्वत्र दबावके स्थानीय बिन्दु पैदा हो जाते हैं, जो पुराने अतिरिक्त पदार्थको ब्रह्माण्डके छोरपर-से परे धकेल देते

[शेष पृष्ठ ९३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वारा

प्रकाशित

नवीन और असामान्य कहानियोंका

संग्रह

सवेरा
संघर्ष
गर्जन

सर्वथा पठनीय

संग्रहणीय

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

● ●

हिन्दीमें अपने प्रकारकी अनूठी ऐतिहासिक तीस कहानियाँ, जिनका आधार है मानव-जातिका प्राथमिक इतिहास—विशेषकर सामाजिक; और उद्देश्य है : भारतीय संस्कृतिका मर्मस्पर्शी जीवन्त अंकन । प्रस्तुत है यह नया संस्करण ।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ

कलकत्ता ● वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजो सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

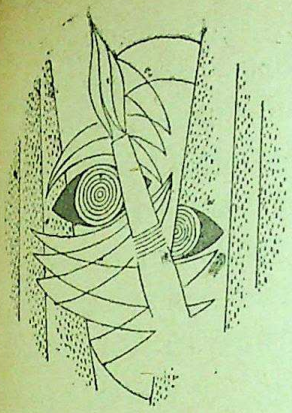

निमन्त्रण : विवाहका···

सतीश कुमार

तारीख ११-३-६३

"सतीश, तुम कितने अच्छे हो ! मुझसे शादी करोगे ?" नताशाने मुझसे बड़े भोलेपनके साथ पूछा। शान्ति-यात्रामें विवाह ? यह पहला ही अवसर था जब यों किसी सुन्दर तरुणीने मुझसे पूछा हो।

तीन-चार दिन पहले ही गास्पादीन स्तावा लुकियानोवमे मुझे मॉस्कोका अन्तर्राष्ट्रीय भाषा-संस्थान दिखाया था और वहाँ हिन्दी पढ़ने-लिखनेवाले पचासों छात्र-छात्राओंसे परिचय कराया था। उनमें-से एक थी—नताशा। रूसमें नताशा नाम बहुत प्रचलित है। मुझसे मिलनेवाली पाँच-सात महिलाओंमें एक नाम नताशा अवश्य होता है। टॉल्स्टॉयके विश्व-विश्रुत उपन्यास 'युद्ध और शान्ति'की नायिकाका नाम भी नताशा ही है। इसलिए नताशा नाम मेरे लिए पहलेसे ही परिचित था। रूसकी यात्रामें तो इस नामको सुनने-पुकारनेका पचासों बार अवसर आ रहा है। हिन्दी पढ़नेवाली यह नताशा भी टॉल्स्टॉयकी नताशासे किसी क़दर कम नहीं है।

छात्र-छात्राओंके उस बड़े समूहमें नताशा ही एक ऐसी थी जो कुछ ज़्यादा चपल, चतुर और उत्सुक जान पड़ती थी। अबतक उसका दो-तीन बार टेलीफ़ोन आ चुका था। हालाँकि मैंने उसकी तरफ़ उतना ध्यान नहीं दिया था, पर आज उसने फ़ोनपर बड़े आग्रहके साथ मुझे मिलनेके लिए बुलाया—"आज सवेरेके बाद मेरी कोई क्लास नहीं है, इसलिए चाहती हूँ कि दोपहरके बादका समय तुम्हारे साथ ही बीते।" बिना किसी तकल्लुफ़के नताशाने कहा। मेरे लिए तो यह बात बड़ी अप्रत्याशित-सी थी। इतनी बेतकल्लुफ़ बात थी कि बिना हिचकके ही मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया—"पर तुम तो विश्वविद्यालयमें हो। कहाँ मिलेंगे हम ?" मैंने पूछा तो नताशाने कहा, "तुम्हारे 'होटल बुदापेस्ट'के बहुत निकट ही बोल्शोई थियेटर है। मैं वहीं पहुँच जाती हूँ। थियेटरके बरामदेमें मैं तुम्हारी ठीक एक बजे प्रतीक्षा करूँगी। ओके ?" 'ओके' मैंने स्वीकार कर लिया। स्वीकार तो कर लिया पर यह कैसा निमन्त्रण है ? मुझसे नताशाको क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम होगा ? वह सुन्दर है। बड़ी बुद्धिमान् है। उससे मित्रता बढ़ाने और उसका सान्निध्य पानेमें बड़ा अच्छा भी लगता है। खैर।

"तुम दस मिनट लेट हो !" नताशाने बोल्शोई थियेटरकी सीढ़ियोंपर क़दम रखते ही कहा।

"लेकिन मेरी घड़ीमें तो एक बजकर दो मिनट हुआ है !" मैंने प्रतिवाद किया।

"ओह, तो मेरी घड़ी आगे है, 'नताशा-ने हँसकर कहा, "आगे होनेमें कोई आपत्ति नहीं। पीछे नहीं होनी चाहिए। हम रूसी लोग ऐसा मानते हैं कि हम स्वयं कष्ट उठा लें पर हमारे लिए किसी दूसरेको कष्ट न होने पाये।" फिर हम दोनों क्रेमलिनकी ओर बढ़े। मास्कवा नदीमें झाँकता हुआ हलके लाल रंगका यह क़िला देखकर मैंने नताशाको बताया, "हमारे यहाँ दिल्लीमें भी एक लाल क़िला है। उसकी भी इसी तरह ऊँची-ऊँची दीवारें हैं। केवल द्वारोंपर बने हुए गहरे हरे रंगके टाइल्सवाले पाँच गुम्बद तथा उनपर चमकते हुए तारे क्रेमलिनकी अपनी विशेषता है।" हमें क्रेमलिनके अन्दर तो जाना नहीं था इसलिए हम रेड स्क्वायरका एक चक्कर लगाकर 'होटल-मास्कवा'में आ गये। विदेशी टूरिस्टोंसे यह होटल प्रायः भरा था।

"अमेरिकन और यूरोपियन लोगोंको यहाँ ठहराया जाता है। क्योंकि यह होटल न केवल मास्कोके खूबसूरत होटलोंमें-से एक है बल्कि शहरके मध्यमें होनेसे काफ़ी सुविधाजनक भी है। मास्कोका मुख्य बाज़ार गोर्की स्ट्रीट यहाँ-से पाँच मिनिटमें पहुँचा जा सकता है। क्रेमलिन, बोल्शोई थियेटर और लेनिन-पुस्तकालय भी आसानीसे पैदल चलकर पहुँचा जा सकता है।" नताशाने बताया।

हम 'होटल मास्कवा'में बैठ गये। "बताओ क्या पीओगे ?" नताशाने कहा, "हमारे यहाँ कोकाकोला नहीं मिलेगा। हम अपने खाने-पीनेकी चीज़ें यथासम्भव अपने ही देशमें बना लेना पसन्द करते हैं।"

मैंने कहा, "यह तो अच्छी ही बात है। हमारे यहाँ गान्धीजीने भी स्वावलम्बनकी बात कही थी। जीवनकी अनिवार्य चीज़ोंके लिए यथासम्भव दूसरे देशोंपर निर्भर न करना ही श्रेयस्कर है।"

"सन्तरेका रस या कॉफ़ी ?" नताशाने पूछा।

"सन्तरेका रस।"

अच्छा स्वादिष्ट रस आ गया। जॉर्जिया प्रान्तके मन्दारीन जातिके सन्तरोंका रस था। हम दोनों धीरे-धीरे चुस्की लेते हुए पीते रहे। नताशा चुप थी। एकदम मौन। मुझे भी कोई बात नहीं सूझ रही थी। नताशा कुछ गम्भीर-सी थी। कुछ सोच रही थी। उसके ललाटपर कुछ बाल लटक रहे थे। उसके गलेमें मोटे-मोटे मनकोंकी एक माला लटक रही थी। सादी वेष-भूषा थी। न लिपस्टिक, न पाऊडर। दो-तीन मिनिटको यह चुप्पी बड़ी 'बोरिंग' लगने लगी तो मैंने खिड़कीसे बाहर देखा। एक बड़ा-सा चौराहा था। एक तरफ़ पत्थरके स्वाभाविक रंगमें मार्क्सका स्टेच्यू बड़ी कलात्मक छविके साथ दिखाई पड़ रहा था। उसके पास ही बेंचपर एक प्रेमी-युगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानोंतक ओवरकोट पहने हुए कड़कड़ाती बर्फ़ीली सर्दीके बावजूद, बैठा था। वे कुछ गहरी बातचीत कर रहे हैं, ऐसा उनके हाथ व मुँहके हाव-भाव देखकर लग रहा था। मैंने नताशासे कहा, "क्या उन्हें सर्दी नहीं लग रही है?" नताशाने हँसते हुए चुटकी ली और बोली, "प्रेमकी गरमी है।" एक तरफ़ नताशाने और मैंने यों अपना मौन-भंग किया और दूसरी तरफ़ उन दोनोंने एक दूसरे-का चुम्बन किया। इसपर मैंने नताशासे कहा, "हमारे देशमें तो इस तरह नहीं हो सकता। पहले तो विवाहके पूर्व चुम्बन लिया ही नहीं जा सकता और कोई ऐसा दुस्साहस करे भी तो सार्वजनिक स्थानमें तो यह सम्भव ही नहीं है।" नताशाने मेरी बातपर टिप्पणी करते हुए कहा, "हमारे यहाँ भी क्रान्तिके पहले तक ऐसा नहीं होता था पर आजकल ये पुरानी मान्यताएँ धीरे-धीरे टूट रही हैं। नर और नारीके बीच प्रेम और समर्पण जहाँ हो वहाँ मन, आत्मा और शरीरका भेद मिट जाता है। ऐसे अभेद प्रेममें मन, बुद्धि और आत्माका प्रेम शारीरिकताकी मर्यादाओंको भी तोड़ देता है। हालाँ कि हमारे कुछ बुजुर्ग इस स्वतन्त्रताको आज भी पसन्द नहीं करते।"

सत्तरेका रस समाप्त हुए काफ़ी वक़्त हो गया था। एक-एक कप कॉफ़ी भी पी ली जाये, ऐसा हमने तय किया। नताशा सिगरेट पीती है। वह धुएँके गुब्बारे छोड़ती रही। उसके गोरे चेहरेके ऊपरसे उड़ते हुए धुएँके छल्लोंमें तरह-तरहके चित्र उभरते रहे। नताशाने क्रान्तिके बादकी नैतिकताके नये मूल्योंपर अपने विचार प्रकट किये—"हमारी आजकी पीढ़ी नयी नैतिकताको जन्म दे रही है। यह 'टीन एजर' अर्थात् उन्नीस वर्ष तक की किशोर-किशोरियोंकी नैतिकता है। हम-लोग एक ख़ास तरहकी कसमकशमें-से गुज़र रहे हैं।" नताशाने पहले मेरे कपमें कॉफ़ी ढाली और फिर अपनेमें। मेरी कॉफ़ीमें उसी-ने चीनी भी मिलाकर दी।

"पजालस्ता!"—यानी शौक़ फ़रमाइए!

इस तरह चार बज गया। हमलोग होटल मास्कवासे बाहर निकले। नताशाने कहा, "हाल ही में एक सुन्दर सिनेमा-हॉल बना है 'रसिया-सिनेमा'। चलो, वहीं कोई फ़िल्म देखेंगे।"

हमारे क़दम बढ़ गये उसी तरफ़। महान् साहित्यकार पुश्किनके भव्य स्टेच्यूके पीछे ही यह सिनेमा-घर था। मास्कोका सबसे बड़ा सिनेमा-हॉल। सुप्रसिद्ध सरकारी दैनिक इजवे-स्तीयाके कार्यालयके सामनेसे हम गुज़रे। लाखोंकी संख्यामें छपनेवाले इस अखबारका दफ़्तर भी मैंने सहज देख लिया। 'रसिया-सिनेमा'में जो फ़िल्म चल रही थी वह दूसरे महायुद्धसे सम्बन्धित थी। मैं उसका नाम तो भूल रहा हूँ लेकिन फ़िल्म बड़ी कलात्मक थी। कलाकारोंने अपना काम बड़ी ख़ूबीके साथ निभाया था। सिनेमाकी कहानी जितनी सशक्त थी उतनी ही उसकी फ़ोटोग्राफ़ी भी कलापूर्ण थी। मुझे तो कई बार ऐसा भ्रम होने लगता था मानो यह परदेपर चलनेवाला कोई चलचित्र नहीं, बल्कि कलाकार स्वयं स्टेजपर अभिनय कर रहे हैं। प्रकाश और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उनको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ लगा हुआ
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।

रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक विशेष
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गन्दगी,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

सेल्स एजेंट्स : साहू जैन लिमिटेड १६, क्लाइव रो कलकत्ता-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्यका सन्तुलन अत्यन्त कलात्मक एवं अभिव्यक्तिपूर्ण था। ऐसा सुन्दर रूसी फ़िल्म नताशाने मुझे दिखाया, इसके लिए मैंने बार-बार उसे धन्यवाद दिया।

'रसिया-सिनेमा'के निकट ही 'न्यू मिस्क होटल' की खूबसूरत इमारत है। सिनेमा देखनेके बाद इसी होटलमें डिनर खानेके लिए हम दोनों घुसे। यह होटल रूसी स्थापत्य कलाकी एक नयी उपलब्धि है। होटलका रेस्तरां भी बेहतरीन क़िस्मका है। वैसे हमारे होटल बुदापेस्टका रेस्तरां भी कोई कम नहीं, पर इस होटलका रेस्तरां कुछ नये ढंगका होनेसे अधिक आकर्षक लगता है।

रेस्तरांमें आरकेस्ट्रा बज रहा था। 'रॉक एण्ड रॉल' तथा 'ट्विस्ट' नृत्य चल रहे थे। इन नृत्योंने निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय लोकप्रियता प्राप्त की है। खास तौरसे ट्विस्टने। यह नृत्य शरीरको खूब कसरत करनेवाला तो है ही, कामुक भी है, टीन एजर्समें तो यह नृत्य खूब ही चलता है। यह नृत्य असलमें तो अमरीकी खोज है पर रूसवालोंने भी इसे अपनाया है। यह इस बातका प्रमाण है कि रूसी लोग अमेरिकाकी हर चीजसे नफ़रत नहीं करते। मैंने और नताशाने भी नृत्य किया। मैं तो ट्विस्टमें बहुत ही अधकचरा ही हूँ लेकिन नताशा बहुत प्रवीण है।

खाना खाते-खाते नताशाने पूछा, "क्या तुम मुझसे प्यार करते हो सतीश?" यह सवाल क्या था मानो मुझे किसीने जोरोंसे झकझोर डाला हो।

"तुम यह क्यों पूछती हो?" मैंने बातको टालनेके मूडमें कहा।

लेकिन नताशा एकदम सीरियस थी। वह बोली 'क्योंकि मैं तुमसे प्यार करती हूँ। क्या तुम मुझसे शादी करोगे?"

यह सवाल तो पहले सवालसे भी अधिक कठिन था। पर मैं ऐसा कोई उत्तर देना भी नहीं चाहता था जो उसके कोमल मनको आघात पहुँचाता। यह टीन एजका काल बहुत नाजुक होता है। मनपर इस उम्रमें बहुत जल्दी असर हो जाता है। कुछ ग्रन्थियाँ भी बन जाती हैं इसलिए मैंने इस सवालको दूसरे ढंगसे 'टैकल' करना ही श्रेष्ठ समझा।

"क्या प्यार करनेके लिए विवाह करना भी जरूरी है?"

"नहीं तो फिर यह प्यार निभेगा कैसे?" नताशाने पूछा।

"तुम्हें मुझ-जैसे सैलानीपर इतना भावुक होकर भरोसा नहीं करना चाहिए। अभी तुमने मुझे पहचाना ही कहाँ है? मेरे गुण-दोष कहाँ देखे हैं? फिर अभी तो मैं मास्कोमें हूँ। कुछ दिन बाद मैं यहाँसे चला जाऊँगा। मैं तो यात्री हूँ। मात्र एक प्रवासी। रमता जोगी। मुझसे तुम अपने मनको यों न बाँधो। हम दो मित्रोंकी तरह अपना स्नेह सदैव जीवित रखेंगे।

मेरी इस बातपर गम्भीरतासे सोचनेके लिए नताशा तैयार हो गयी। हालाँ कि यह बात उसके गले नहीं उतरती थी। उसने अपना सिर मेरे कन्धेपर रखकर बड़ी मासूम निगाहोंसे अपना प्यार जताया।

[शेष पृष्ठ ९३ पर]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थ

कृष्णाचार्य

इस ग्रन्थका प्रकाशन एक ऐसे अभावकी पूर्ति करता है जो हिन्दी साहित्य सम्बन्धी शोध-अनुसन्धानके क्षेत्रोंमें बराबर खटका है। इतना ही नहीं, इसमें अब उन क्षेत्रोंको नयी कार्यदिशाएँ भी इंगित होती मिलेंगी।

यह कृति एक ग्रन्थपुटी है : हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी बिब्लियोग्रैफ़ी। इसमें उन ग्रन्थोंकी विवरणी दी गयी है जो ईसवी सन् १८१० से १८७० के बीच, अर्थात् लल्लूजी लाल कविसे शिवप्रसाद सितारेहिन्द तककी कालावधिमें मुद्रित और प्रकाशित हुए। जितना ज्ञान इस युगकी कृतियोंके बारेमें था वह भी सीमित था और बिखरा हुआ, विशृंखल। यह ग्रन्थ-पुटी उपलब्ध और ज्ञात कृतियोंका प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत कर देती है और अपेक्षित सन्दर्भों सहित, व्यवस्थित रूपमें।

हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी इस विवरणीको पूर्णता देनेके उद्देश्यसे प्रास्ताविकीमें हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक कालका एक सुसंहत विहगावलोकन भी दिया गया है। भारतमें मुद्रण-कलाका प्रवेश, हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक प्रयत्न, नागरी टाइपोंका आविष्करण और निर्माण, उस युगके मुद्रणालय और राजकीय विधि-नियम आदि विषयोंकी प्रामाणिक जानकारी यहाँ दी गयी है, जो अन्यत्र सुलभ न होगी। प्रत्येक ग्रन्थागारके लिए अनिवार्य और तत्कालीन हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए नितान्त आवश्यक।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी—५
विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
ज्ञानोदय : सितम्बर १९६६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यर्थ शब्द

एक अर्थपूर्ण

क्षमा

एक अर्थपूर्ण

व्यर्थ शब्द

रमेश कुन्तल मेघ

कहा जाता है कि
छोटोंको तो अपराध करना
चाहिए, तथा बड़ोंको क्षमा। यह क्यों?
अपराधका सम्बन्ध तो दण्डसे है। क्षमादान तो केवल
प्राचीन सम्राट् या आधुनिक ज्येष्ठ तभी कर सकता है जब अपराधी निरपराध हो अथवा एक उदात्त चरित्रको प्रज्वलित कर दे। यहाँ बात उलटी यूँ हो गयी है कि अपराधको दण्डके द्वारा समाप्त न कराके मानवीय सौजन्यके द्वारा भुलाया गया है। इसके अलावा आज अपराध छोटे नहीं करते, छोटे अपराध सहते हैं। बड़ी-बड़ी पुलिसकी टुकड़ियाँ, सटोरियोंके दाँव, बड़ी-बड़ी चिटफण्ड कम्पनियोंके जंजाल और धनवानोंके ताक़तवर सम्बन्ध अपराधको सानते हैं। किन्तु क्या हम अपराध सहकर, अन्याय झेलकर क्षमा करते चलें? अतः अपराध और दण्ड, उत्पात और क्षमाके बीचके रिश्ते आज उलट-पुलट चुके हैं। इसीलिए क्षमा एक अर्थपूर्ण किन्तु निरर्थक शब्द बन गया है।

बातको थोड़ा आगे खींचिए। छोटे चाहे जिस उम्र, पद, वर्ग और सामाजिक स्थितिके हों, वे बालक अथवा बुद्धू माने जाते हैं। अतः वात्सल्य रससे उद्रिक्त परमपितावत् बड़े लोगोंको केवल क्षमाका मूर्तिमान् आश्रय होना पड़ जाता है। यही नहीं, तुलसीदासने बालकों अर्थात् छोटों एवं बन्दरोंको 'एक सुभाऊ' बना डाला। काश, हम और हमारा आजका समाज इतना सरल-चपल होता! बस, इस समीकरणके कारण जो रही-सही साख थी, वह भी चली गयी। अब कोई छोटा, या बन्दर-जैसा नारद, या वसंतक-जैसा विदूषक आपकी किताब खो दे, कोई साइकिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवार फुटपाथपर चढ़कर आपको हैण्डिलके सींगोंसे धूल चटा दे, कोई दूकानदार आपको खोटा सिक्का थमा दे, कोई हलवाई आपको सड़े रसगुल्ले अर्पित कर दे या कोई ग़रीबपरवर लिखनेके बहाने आपका फ़ाउण्टेन-पेन अपनी जेबमें दूल्हे-सा खोंस ले, तब आपको केवल एक बात सुननी और करनी है—'क्षमा!' वह अपराध करते पाया जाये अथवा पकड़ा जाये, उसका कुछ नहीं होगा, किन्तु अगर आप अपराध पकड़ते हुए या दूर करते हुए यदि शहरके अन्देशेवाले बनेंगे, अथवा अपने घरमें दीये जलानेवाले काज़ी बनेंगे तो आपको केवल मात्र क्षमा करना है। केवल क्षमा!! जेबकतरा भी आपसे क्षमा माँगकर आपका पर्स हथिया सकता है, और आपको एक बड़े बिगड़ेदिल ताल्लुक़ेदारका पोज़ बनाते हुए, अथवा गोसाईं तुलसीदासकी तरह एक सन्तकी उदारताकी भंगिमा दर्शाते हुए केवल क्षमा करना है!

ओरी, क्षमा! तेरा कैसा चरित्तर है? हर अन्याय, हर अपराध, हर अनौचित्यको तू सहन करवाती है! धैर्यकी इतनी कठिन परीक्षा तो शायद लक्ष्मण और नेपोलियन भी नहीं दे सकते हैं। ज़रा देखिए, धनुष-यज्ञके मौक़ेपर लक्ष्मण परशुरामकी सब गत बनाकर साफ़ बच निकलते हैं, और श्रीरामचन्द्र परशुरामसे लक्ष्मणको क्षमा कर देनेका शिष्टाचार माँगते हैं, यह जानकर भी कि लक्ष्मणका बाल भी बाँका नहीं हो सकता। 'क्षमा' शब्द समर्थ लोगोंके लिए है; असमर्थ और दब्बुओंके लिए क्षमा कायरता हो जाती है। इसीलिए अपराध और दण्डके बजाय अपराध और क्षमाका नदी-नाव-संयोग हुआ था। जब अपराध सच्चे दिलसे मंज़ूर कर लिया जाये, तब क्षमा कर देना गौरव और बड़प्पन है। लेकिन आज तो 'क्षमा' का इस्तेमाल उल्लू बनाने, उल्लू सीधा करने, तथा काठका उल्लू खोजनेके लिए होता है। अगर किसीको तरक़्क़ी पाना हो तो वह पहले क्षमा माँगकर अफ़सरकी चापलूसी करते चला जाये; यदि किसीको वायदा करके मुकर जाना हो तो वह क्षमा माँग ले, यदि तुम्हारी तिकड़म-बाज़ी और घोखेधड़ीका भण्डाफोड़ हो जाये तो क्षमा माँग लो—बात ढँक जायेगी। कई लखपती इनकमटैक्सके दफ़्तरोंमें फटे कपड़ों तथा भिखमंगोंके बहुरूपोंमें काला धन सफ़ेद करते हुए नज़र आयेंगे; और पकड़े जानेपर बाइज़्ज़त क्षमा माँग लेंगे; और क्षमा पा भी जायेंगे। सौजन्यके नामपर क्षमा एक भुलावा और लाचारी और छद्म हो चुकी है।

हिन्दीके मनीषी आचार्य शुक्लने क्रोधको बैरका मुरब्बा कहा है। हम क्षमाको क्रोध रूपी गुब्बारेकी पिन कहना चाहेंगे जो उसे फोड़ देती है।

एक दिलचस्प घटनाका उदाहरण देता हूँ: मेरे एक पड़ोसी केवल तीन दिनके लिए बाहर गये और अपने घरकी रखवाली, बागीचेकी बाग़बानी, तथा कुत्तेकी सेवा करानेका आग्रह कर गये। चौथे दिन अलस्सुबह आनेका वायदा कर गये। दस दिन बीतने-पर भी जब वे नहीं आये तब हमारा क्रोध बैर-का अचार तैयार करने लगा। आखिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शराफ़त, तहज़ीब और तमीज़की कोई कमीज़ होती ही है ! इस बीच गरमीकी भीषणतासे उनका बागीचा सूखने लगा क्योंकि मालीने फगुआ मनाना शुरू कर दिया, घरमें धूलकी पर्त्त जम गयी क्योंकि घर भूतका डेरा हो गया, तथा कुत्तेको खुजली हो गयी क्योंकि किसीने उसे थपथपाया नहीं। हमने तय कर लिया कि जब वे आयेंगे तब हम उनके इस अपराध तथा अन्यायके प्रति एक कड़ा विरोध-पत्र पेश करेंगे। आखिर वे बारहवें दिन पधारे और टके-सा एक भावहीन, अर्थहीन शब्द कह दिया—"सॉरी !" बस, हमें काठ मार गया, और हमारे हाथके तोते उड़ गये। हमें गम्भीर होकर सारा जुलुम सहना पड़ा क्योंकि गुब्बारा फट चुका था। हमें यह भी अभिनय करना पड़ा कि 'क्षमा' शब्दसे चुभकर हम बहुत महान् हो गये हैं। हम अन्दर-ही-अन्दर खीझसे हाथ मलते रहे क्योंकि क्षमाने हमारे सारे मन्सूबोंका युद्धविराम ही नहीं किया, बल्कि हमारी आक्रोश-सेनाका शस्त्र-समर्पण भी करा दिया। यह है क्षमाकी इजलास ! 'हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम, वो क़त्ल भी करते हैं तो चरचा नहीं होती' !

एक दूसरी बात भी याद हो आयी। याद हो आयी इसलिए कि सभ्य और सुसंस्कृत समाजमें गोलमालका पता लगनेपर भूल जानेके बहानेकी एक अनूठी तिलिस्मी अँगूठी है—क्षमा ! पन्द्रह दिन तक मेरा क़ीमती फ़ाउण्टेनपेन अपना बनाकर एयरइण्टरनेशनलका 'राजा' अथवा 'फ़िलट सोल्जर,' अथवा मोदी सूटिंगका छैला बननेवाला एकमात्र परिचित जब रँगे हाथों पकड़ा गया तब उसने भाईचारा दर्शाते हुए शानसे कहा—"क्षमा करें, भूल गया था।" मानो फ़ाउण्टेनपेन-जैसी हाथोंमें रहनेवाली चीज़की मिल्कियत, शख़्सियत और वल्दियत भुलायी जा सकती है ! अतएव 'क्षमा' शब्द आज तो बहानेबाज़ी तथा धोखेबाज़ीको भी अभिजात संस्कृतिकी तमीज़ देनेवाला एक तकियाक़लाम और कवच-कुण्डल हो गया है जो हम सबको निन्दित, लांछित, छद्मव्रती तथा खोखला बनाता जा रहा है। पुराने गौरवको दुहराते-दुहराते 'क्षमा' भी अब अपराधकी चोरी बन गया है जिस तरहसे पदातिक शब्द 'पाजी' हो गया है, लुंचित–'लुच्चा', ज्योतिषी-'जुत्शी,' और हूण—'हान' ! सामन्तीय तहज़ीबने इस संन्यासधर्मा तपोपूत शब्दमें केवल 'गरजना' बाक़ी छोड़ दिया है; और 'बरसना' सुखा दिया है। नीतिशास्त्रका इतना गम्भीर शब्द आधुनिक समाजमें तिकड़म, छद्म, छल, चाल, कातरता और कायरतासे भी जुड़ गया है। ईमानदारीके मूल्यसे कटनेपर ही 'क्षमा' की वैसी ही गात बनी है जिस तरह आज देशके नेताओंका हाल हो गया है। सच्चाईसे माँगी गयी क्षमा और निर्भयतासे की गयी क्षमाकी कसौटी तो अभी भी, आज भी खरी है। खोटी है हमारी नीयत ! जब हम अपने क्रोधको दृढ़निश्चय और सामाजिक जागरूकतामें अर्थवाही नहीं कर पाते तब क्षमाके बबूली काँटे हमारे सामाजिक कदलीपत्रको तार-तार कर डालते हैं। क्षमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश भाषा और साहित्य

[शोध-प्रबन्ध]

● ●

डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

अपभ्रंश साहित्यके विशाल भण्डारका अभी कुछ ही अंश प्रकाशमें आ पाया है। विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया है तो अब इस साहित्यकी गरिमा और महनीयता भी धीरे-धीरे सामने आ रही है। प्रस्तुत कृति अपभ्रंश भाषा, उसका युग और स्रोत, अपभ्रंश काव्योंका तो परिचय कराती ही है, अपभ्रंश काव्योंके वस्तु-वर्णन, रससिद्धि, अलंकार-योजना और वृत्त-विधानकी जानकारी देकर इस साहित्यमें प्रकृति-चित्रण, समाज और संस्कृतिके तात्कालिक परिवेश तथा दार्शनिक मतमान्यता आदिकी भी जानकारी देती है। परिशिष्टमें लेखकने तेरह ऐसे विषयोंपर टिप्पणियां दी हैं जो साहित्यके परिप्रेक्ष्यको उजागर करती हैं।

सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य हर कोई भले ही न देख पाये पर उसका परिचय पाना और रसास्वाद प्राप्त करना हो तो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य' पढ़ना अनिवार्य है।

मूल्य १०००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता • वाराणसी
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समरांगण तथा सामाजिक संघर्षके क्षेत्रका शब्द है। आज यह बाज़ारोंमें, रेस्तराँओंमें और दफ़्तरोंमें चल पड़ा है। अतः 'क्षमा' एक बेहद चालू, चालाक और व्यर्थ शब्द हो चुका है। इस साफ़गोईके लिए क्या आप मुझे क्षमा करेंगे ? यदि नहीं करेंगे, तो भी मुझपर कोई असर नहीं होगा क्योंकि यह शब्द तो एक टट्टीकी ओटके तौरपर मैं, वह, आप, हम सब इस्तेमाल कर रहे हैं।

■ ■

[पृष्ठ ८१ का शेष : सतत सृष्टि-सिद्धान्त]

है। कहना न होगा कि ब्रह्माण्डके सन्दर्भमें 'छोर' का अर्थ सर्वत्र 'अस्तित्वकी सीमा' है, और 'परे' से अभिप्राय है अनस्तित्व जो कल्पनातीत है !

इस प्रकार इस सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्माण्डमें सारी प्रक्रिया सिर्फ़ इतनी है कि इसके भीतर सर्वदा नया पदार्थ अस्तित्वमें आता रहता है, जो अपनी संहति व अतिरिक्त देशके दबावसे पुराने पदार्थको अनस्तित्वमें धकेल देता है। इससे ब्रह्माण्ड प्रकटमें स्थायी व स्थिर रहते हुए भी सर्वदा परिवर्तनशील रहता है; उसके भीतरकी सारी सामग्रीका निरन्तर नवीकरण होता रहता है।

नये पदार्थकी यह निरन्तर रचना तथा देशके व्यापक प्रसारणसे उसका सहज अन्त, ये केवल दो बिन्दु हैं। अस्तित्व व जीवनके उस आदि व अन्तविहीन घटनावृत्तपर, जिसे हम 'ब्रह्माण्ड कहते हैं;

■ ■

[पृष्ठ ८७ का शेष : निमन्त्रण विवाहका]

मैंने उसे समझाया, "एक इनसानके नाते, एक मित्रके नाते मैं तुमसे प्यार करता हूँ। पर विवाहके लिए तुम्हें अभी काफ़ी सोचना चाहिए। जब तुम मुझे गहराईसे समझोगी तो स्वयं महसूस करोगी कि मैं इस योग्य नहीं हूँ।"

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रवर्तित

अपने प्रकार की अकेली
और महत्त्वपूर्ण
लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि-परिचायिनी
मासिकी

सम्पादक
लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

गत तीन वर्षोंसे प्रकाशित हो रही 'ज्ञानपीठ पत्रिका' हिन्दीमें अपने प्रकारका प्रथम प्रयास है, और कदाचित् अन्य भारतीय भाषाओंको देखते हुए भी; जिसका प्रयत्न एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करनेका है जो लेखक-प्रकाशक-विक्रेता-पाठक चारोंके 'अक्षर-जगत्'की गतिविधि, नयी प्रवृत्तियों, समस्याओं एवं समाधान, और विकास-उन्नतिकी दिशा-भूमिका सम्यक् परिचय दे, तथा परस्पर विचारोंके आदान-प्रदानका पथ प्रशस्त कर सके।

मूल्य : वार्षिक ६.००, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

[एजेण्ट सम्पर्क स्थापित करें]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

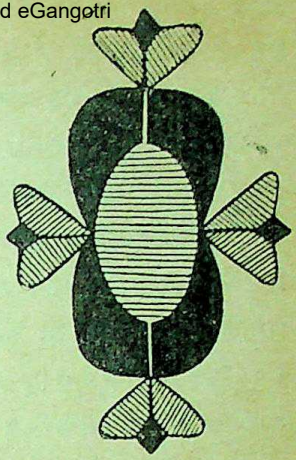

प्र । श्ना । न्त । क

आपका चेहरा : आपका दर्पण

विजय कुमार

'मनुष्यका मुखमण्डल आत्माका प्रतिबिम्ब है, और नेत्र मनुष्यके व्यक्तित्वकी गहराइयोंको प्रकट करते हैं।' यह कथन सत्य है। इस विश्वासका आधार निजी परीक्षण है। मैंने गत पांच वर्षोंसे आकृति-विज्ञानको सीखनेका प्रयत्न किया है, और इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि यदि मनुष्य चाहे तो ऐसी शक्ति अवश्य ही हस्तगत कर सकता है, जिससे वह किसीका मुखमण्डल देखकर, उसके चारित्रिक विकास-पतन, एवं व्यक्तित्वसे सम्बन्धित अन्य गुणों और दोषोंके बारेमें बता सके। मैंने इस विद्याका परीक्षण किया है, और कमसे कम एक हजार नर-नारीके मुखमण्डलका अध्ययन किया है। यह अध्ययन मुझे विश्वास दिलाता है कि मुखमण्डल हमारे जीवनका यथार्थ दर्पण है, जिसमें झाँककर हम जीवनकी अनन्य गहराइयोंको नाप सकते हैं।

मुखमण्डलमें माथा, नेत्र और मुख विशेष रूपसे गुण-दोषोंके विज्ञापक हैं। ललाट-लेखा तो हस्त-रेखाकी तरह जन्मकुण्डली है। इससे विद्या, बुद्धि, ऐश्वर्य, मर्यादा, प्रियता, धार्मिकता, भावुकता और कार्य-पटुता तथा नेत्रोंसे बुद्धि-विलक्षणता, मेधा-शक्ति, दृढ़-संकल्प, अध्यवसाय और मुखसे मानसिक गुण-दोष, दया, प्रेम, शील, सौजन्य, दाम्पत्य, प्रेम, ईर्ष्या और द्वेषादि प्रकट होते हैं। अन्तस्तलके भावका उद्रेक होते ही, वह अपने अनुकूल ढंगसे मुख और नेत्रों-द्वारा झलकने लगता है।

मानव-लक्षणोंका वर्णन केवल पुरुष या स्त्री-आकृति, चालढाल और व्यवहार देखकर करना और उनके मानसिक विकास एवं ह्रास-का कारण बताना 'मुखाकृति-विज्ञान' कहलाता है। इस विद्याके आदि आचार्य पण्डित 'राज समुद्र' माने जाते हैं। यह कला प्राचीन है, और इसके ज्ञाता भारत, रोम, ग्रीस और मिश्र आदि देशोंमें पाये जाते थे। भारतमें समुद्रके अतिरिक्त नारद, माण्डव्य, कार्तिकेय-ने भी इस सम्बन्धमें शास्त्र रचे हैं। राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोज, सुमन्त और वात्स्यायन (कौटिल्य) भी इस विद्याके अच्छे ज्ञाता माने जाते थे। पश्चिममें अरस्तू भी इस विद्याके आचार्य थे। आजकल यूरोप और अमेरिकामें तो इस कलाका वैज्ञानिक दृष्टिसे विकास हो रहा है। वहाँ पुलिसके खुफ़िया विभागवाले इस कला या विद्याके ज्ञाताओंसे जटिल समस्याओंको सुलझानेके लिए परामर्श भी करते हैं। आजकल इस विद्याका खूनी-डाकुओं और अन्य बदमाशोंका पता लगानेके लिए भी अच्छा उपयोग हो रहा है। पुलिसको आकृति-विज्ञानके जाननेवालोंसे, फ़रार क़ैदियोंको पकड़नेमें काफ़ी मदद मिलती है। भारतके पुलिस विभागका भी ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है।

इस विद्याका जानकार बननेके लिए बहुत ही गम्भीर चिन्तन, अवलोकन और अनुभवकी आवश्यकता है। इसके लिए सतत प्रयत्न और सूक्ष्म दृष्टिका होना अनिवार्य है। विशेषतया जब हम इस कलाका अध्ययन आरम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम हमें उन मित्रों या परिचितोंकी आकृतिको जिनके स्वभाव, चरित्र, शील आदिके विषयमें हमें कुछ ज्ञान है, सूक्ष्मतासे अध्ययन करना चाहिए। उनमें क्या विशेषताएँ हैं, उसको मनमें बैठा लेना चाहिए। इसके पश्चात् जहाँ हमें उन आकृतियोंसे मेल खाते मनुष्य मिलें उनपर अपने अर्जित ज्ञानका उपयोग करना चाहिए। ध्यानसे देखनेपर हमें यह मालूम पड़ेगा कि यद्यपि आकृतियाँ विभिन्न-विभिन्न प्रकारकी हैं, तथापि कहीं-न-कहीं उनमें अद्भुत समानता है। इसी समानता और तुलनाको ध्यानमें रखते हुए हम अभ्यास-द्वारा इस कलाका निखार कर सकते हैं। पर कभी-कभी आकृति बड़ा धोखा दे जाती है। इसका कारण होता है नारियों-द्वारा प्रसाधन-सामग्रीका उपयोग और मनुष्यों-द्वारा गान्धी टोपी या अन्य साज-सजावटवाले वस्त्रों या उपकरणोंका उपयोग। कई व्यक्तियोंका व्यक्तित्व बड़ा ही रहस्यमय (कम्प्लेक्स) होता है। ऐसे अवसरपर अपने मनोविज्ञानका लाभ उठाना चाहिए।

प्रस्तुत लेखमें मैं मुखाकृतिके एक अंश केवल कर्ण (कान) के बारेमें आपको अपने अध्ययनसे अवगत कर पाऊँगा। 'कान' का आकृति ज्ञानमें बड़ा ही विशिष्ट स्थान है। कर्ण खासकर मनुष्यके जीवनकी अवधि, बुद्धिमत्ता, स्मृति-शक्ति और उसकी धूर्तता और सोधापनका परिचय देते हैं। वह बड़ी ही मशहूर कहावत है कि "कान बड़े सरदारोंके और पाँव बड़े गँवारोंके।" यह बहुत अंशमें सही है। बड़े कानोंवाले मनुष्यमें कुछ-न-कुछ विशेष गुण अवश्य रहता है। वे ज्यादातर सुखी रहते हैं। लेकिन वे गुण आकृतिके अन्य स्थलोंकी शुभ-अशुभ बनावटपर ही निर्भर करते हैं। कानके लम्बे-चौड़े होनेसे ही योग्यता, विद्वत्ता और सुख नहीं मिलता, यह सब कुछ कानोंकी सुन्दरता और सुडौलता-पर ज्यादा निर्भर करता है।

चौड़ाईमें छोटे और लम्बाईमें लम्बे कान भीरुताका चिह्न है, खासकर यदि मनुष्य साधारणसे अधिक लम्बा हो। ऐसे कानोंको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरगोशी कान कहते हैं। खरगोश और हिरण दोनों ही डरपोक जानवर हैं। उनमें अन्य गुण और दोष क्रमशः यह हैं—नटखटपन, सुन्दरता, प्रेम और प्रीति, संगीत-प्रियता, सुगन्ध-प्रेम, भोग-विलास आदि। वही गुण और दोष हम ऐसे कानोंवाले मनुष्योंमें पायेंगे। यदि कानोंका निचला सिरा मोटा है, तो वह व्यक्ति भावुक अधिक होता है। ऐसे कान अधिकतर कलाकारोंके होते हैं।

कानकी स्थिति, अर्थात् वह किस ढंगसे लगा हुआ है—ध्यान देनेका विषय है। बगलोंसे चिपके हुए और ऊपरसे नुकीले (त्रिभुजाकार) कानोंवाले मनुष्य कोमल और शान्तचित्त प्रकृतिके होते हैं। ऐसे कान-वालोंमें विचित्र शक्ति होती है। वे जिस कार्यमें लग जायेंगे उसे समाप्त करके ही छोड़ेंगे। ऐसे मनुष्य अच्छे विद्वान् और राज-नीतिज्ञ होते हैं। ऐसे कान जवाहरलाल और अमेरिकन राष्ट्रपति श्री केनेडीके थे।

यदि लम्बे और सुन्दर कानोंकी पनपनी या (लोर) नीचेकी ओर आकर कोमल, लाल रंगकी तरह चमकती हुई और गोल हो और कर्णमूलसे पृथक् हो तो ऐसा पुरुष परोपकारी और सर्वसाधारणकी सम्पत्ति होता है। इस प्रकारके कान प्रायः महा-पियों और धर्माचार्योंके होते हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेका-नन्द और भगवान् बुद्धके चित्रोंमें ऐसे ही कान देखनेको मिलते हैं। यदि यह बात एक ही कानमें हो तो उसका प्रभाव बहुत ही कम हो जाता है। यदि लोरकी गोलाईमें चिपटा-पन हो तो उस व्यक्तिका व्यापार एवं कार्य-कुशलता होगी और यदि रुक्षता है तो स्वार्थपरता एवं चालाकी रहेगी। चपटी-मोटी, खुरदरी, बनावट शारीरिक बल और पाशविकताकी द्योतक है, नुकीली, गोल बनावट लम्बे कानोंमें मिलती है, जिससे अदम्य उत्साह प्रकट होता है।

यदि बड़े, मोटे और बगलीसे अलग कान नीचेकी ओर आकर ऊपरकी ओर मुड़ जाये तो समझिए कि वह मनुष्य बड़ा ही अच्छा आलोचक और शासक हो सकता है। ऐसे कानवालोंमें सृजनात्मक शक्ति इतनी नहीं होती, पर वे दूसरेके कार्योंकी बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण आलोचना कर सकते हैं। छोटे कान सुन्दर हों और साथ ही नीचेकी ओर आकर चूहेकी पूँछकी तरह ऊपर घूम जायें तो वे कान मनुष्यमें परस्परविरोधी गुणोंके समावेशके द्योतक हैं। ऐसे कानवाले मनुष्य बुद्धिमान्, चालाक, परिश्रमी, और अपने जीवनका स्वयं निर्माणकर्त्ता होते हैं। ऐसे मनुष्य कभी बड़े संवेदनशील और कभी बड़े नीच प्रकृतिके कार्य करेंगे। वे कई औरतोंसे यौन-सम्बन्ध रखते हैं। लेकिन चूँकि वे बड़े प्रभावशाली होते हैं, अतएव उनके दुर्गुण काफ़ी अरसे तक छिपे रहते हैं। अगर कान पीछेकी तरफ़ टेढ़े-से हों तो यह डरपोकपन और अस्थिरता एवं मूर्खताके चिह्न हैं। सीधे खड़े कान हिम्मत, स्वतन्त्रता और साहसके चिह्न हैं। सैनिकोंके कान ऐसे ही होते हैं। यदि ऐसे खड़े कान सुडौल भी हों, मोटे और नीचे आकर कनपटीसे जुड़े हों और उनकी त्वचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलायम हो और कानकी झालर भी दोनों ओर निकली हो और दोनों कानोंमें यह चिह्न स्पष्ट और सादृश्य हो तो समझिए, उस मनुष्य-में नेता, योद्धा और लेखकके गुण मौजूद हैं। ऐसे कानवाले मनुष्योंमें अद्भुत कार्य-शक्ति होती है। ऐसे कानवाले जनसमूह-नायक भी होते हैं और अपने देशके लिए अदम्य साहस और सदा स्मरण रखनेवाले कार्य करते हैं। ऐसे कान चर्चिल, बिस्मार्क और सरदार बल्लभ-भाई पटेल (उनके कान नीचेकी ओर नुकीले नहीं थे अतएव लेखक नहीं हो सके) के थे। बिस्मार्कने जर्मनीको एक सूत्रमें बाँधा, फ्रान्सको पछाड़ा और जर्मनीको उन्नत दशामें पहुँचाया था। चर्चिलने तो दो बार शक्तिशाली जर्मनीके हाथों पराधीन होते इंगलैण्डको बचाया। पटेलने आधुनिक भारतको एक सूत्रमें बाँधा। यदि कान लम्बे और मोटे हों पर सुडौल और सुन्दर नहीं तो वह मनुष्य राजनायक-के सभी गुण होते हुए भी कोई महान् कार्य नहीं कर पाता। सुडौल नहीं होनेके कारण मानसिक सन्तुलन नहीं रहता। ऐसे कान जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया आदिके हैं। ऐसे कानोंका फल बताते समय आकृतिके अन्य अंगोंका भी अच्छी तरहसे अध्ययन कर लेना चाहिए।

कुछ कान आप ऐसे पायेंगे जो एक अजीब ढंगसे टेढ़े होकर सिरसे अलग हटे रहते हैं, (और उनकी त्वचा रूखी रहती है) मानों भेड़ियेके कान हों। ऐसे कान अच्छे नहीं। ये क्रूरताके चिह्न हैं।

जिस पुरुषके कर्णपुट खूब भरे हों, कानकी फाँक (पिपलिका) सुडौल, बड़ी और एक-सी विस्तीर्ण, तथा कर्ण-विवर छोटे हों, वह राजाओंके समान सौभाग्यशाली होता है। जिसके कान जन्मतः लम्बे और सुडौल हों उसकी स्मृति बड़ी तेज़ होती है। जिसके कान गायके समान लम्बे हों और सुन्दर हों उसकी आयु बड़ी लम्बी होती है। ऐसे कानके चिह्न गान्धीजीके कानोंमें मिलते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे कानवालोंमें सज्जनता और धर्मपरायणता कूट-कूटकर भरी होती है। उनमें सहनशीलता अधिक होती है। यदि ऐसे कानवालेकी नाक और आँखें बड़ी हों तो वह विद्वान्, कवि, और योगी भी बन सकता है। अरविन्द घोषके कानोंमें यह सभी गुण मिलते हैं। शंखके समान कानवाला मनुष्य सेनापति या राजा होता है और अनन्य राज्योंपर विजय प्राप्त करता है। ऐसे कान नेपोलियन और सिकन्दरके थे। यदि यह कान थोड़े चिपटे हों तो वह राजनायक, भोगी होता है—जैसे जहाँगीर और चन्द्रगुप्त।

यदि कान लम्बा और चौड़ा हो, और साथ ही उसमें समुद्र-तटकी तरह जगह-जगह पर कटाव हो, तो यह व्यावहारिक चातुर्य, अच्छे स्वास्थ्य और बड़े ही व्यावहारिक मस्तिष्कका परिचायक है। ऐसे कान अर्थ-शास्त्री, गणितज्ञ, और इंजिनियरोंके पाये जाते हैं। यदि यह चिह्न दोनों कानोंमें समान-रूपसे स्पष्ट न हो तो सफलता अधूरी रहती है। यदि ऐसे कानोंकी झालर (किनारी) कुछ मोटी हो और सुन्दर हो तो वह मनुष्य स्वार्थ-सिद्धिमें अधिक लगा रहता है। वह परोप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारका कार्य नहीं करता। यदि झालर पतली और मुलायम हो तो वह मनुष्य परोपकार करता है और कई मनुष्योंका जीवन बनाता है। यदि किसीके कानोंमें बड़े-बड़े रोएँ हों तो यह दीर्घायुका सूचक है।

छोटे कानोंवाला मनुष्य कंजूस होता है। जिसके कान छोटे और मांसरहित हों, वह गरीब और पापी होता है। ऐसे मनुष्य बुद्धि-हीन और स्मृतिहीन देखे गये हैं। जिसके कान लम्बे हों और उनमें शिराएँ उभरी हों वह क्रूर और कुटिल होता है। चौड़े कानोंवाला मनुष्य क्षुद्र प्रकृतिका होता है। कर्ण शठकुली (कानका बाहरी हिस्सा) रहित मनुष्य कुरूप और दरिद्र होता है।

जिस मनुष्यके शंखदेश (कनपटी) में स्निग्धता न हो, वह निस्सत्त्व होता है। दोनों कानोंके ऊपरी भागपर भौंरी (बालोंका चक्र हो) तो यह शुभ है। मनुष्यके दाहिने कानपर लाल तिल हो तो वह कानके गुणोंको बढ़ा देता है। यदि तिल बायीं ओर हो तो अशुभ होता है। इसके विपरीत नारीके बायें कानमें तिल शुभ और दायें कानपर अशुभ होता है। अतएव इन बातोंका कर्णका परी-क्षण करते हुए ध्यान रखना चाहिए।

स्त्रियोंके कान लम्बे, बड़े और एक-से मिले और चक्रयुक्त हों, तो शुभ है। इससे स्त्री चरित्रवाली और सच्ची प्रेमिका होती है। स्त्रियोंके कानोंपर केश होना अति अशुभ है। ऐसी औरतें घातिका होती हैं। जिस स्त्रीके कान चूहेकी पूँछकी तरह मुड़े हुए हों, वह स्त्री चरित्रहीन, कुलटा, चालाक, और मनुष्योंको अपने इशारोंपर नचानेवाली होती है। जिस स्त्रीके कानकी बनावट परस्पर भिन्न हो वह बड़ी पाखण्डी होती है। जिस स्त्रीका कर्ण-छिद्र बड़ा हो वह नारदमुनिवाली स्वभावकी होती है। जिसका कर्ण-छिद्र छोटा हो, वह कम बातूनी और बुद्धिमान् होती है। स्त्रीके लटकते और पतले कान उसकी मूर्खता-के परिचायक हैं। खरगोशके समान कानोंवाली नारी बुद्धिमान्, सुन्दर, नटखट और शृंगार-प्रिय होती है। दियेके समान कानवाली स्त्री कला (नृत्य, संगीत, चित्रकारी) की उपा-सिका होती है। पर ऐसी स्त्रीके कान नीचे आकर नुकीले हो जायें तो वे चरित्रहीन होती हैं।

अन्तमें इस बातको याद रखना चाहिए कि केवल कानोंको देखनेसे ही आकृतिका गुण-दोष स्पष्ट नहीं होता। निर्णय देते समय आकृति-ज्ञाताको मुख-मण्डलके अन्य अंशोंका भी ध्यानसे अध्ययन करना चाहिए। केवल कानोंके आधारपर निर्णय देना उचित नहीं। कानोंका शुभ और अशुभ फल हमारी नासिका, ललाट, ओष्ठ, ठोड़ी एवं बहुत-कुछ कान्तिपर भी निर्भर करता है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

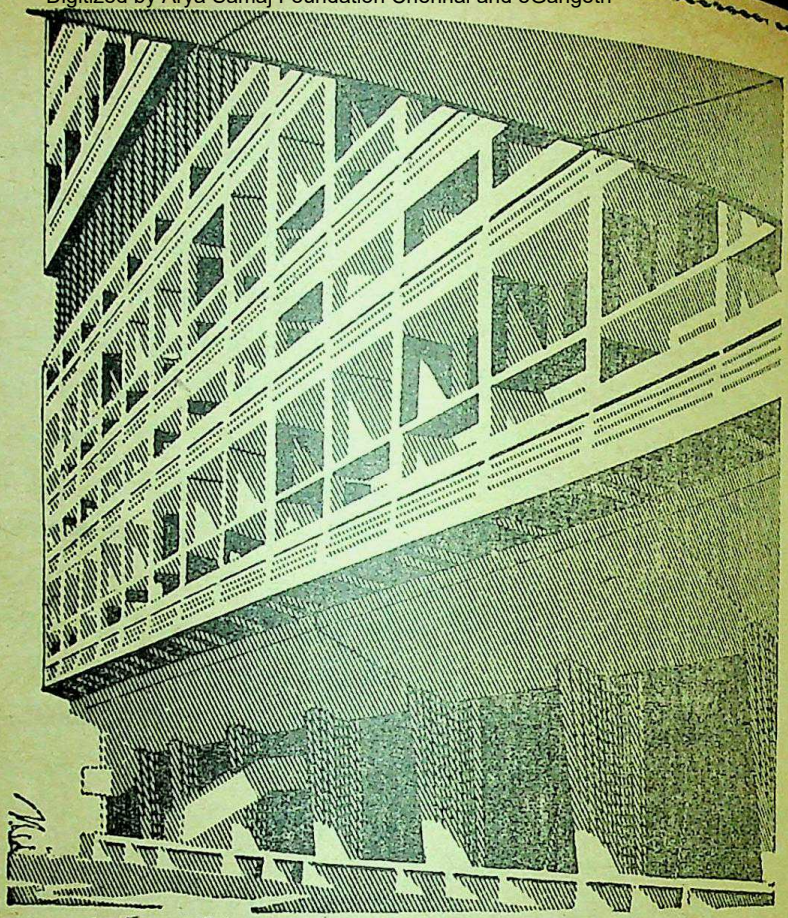

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

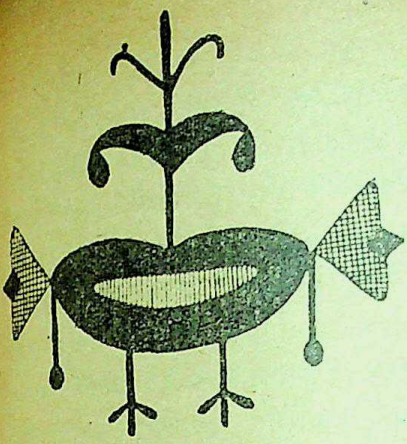

मूल्याँकन और पुनर्मूल्याकन

परतों के आर पार*

उपेन्द्रनाथ अश्क हिन्दीके उन अभागे रचनाकारोंमें-से हैं, जिनके ऊपर 'बहुमुखी प्रतिभाके धनी' होनेका लेबल चिपका दिया जाता है और उनकी प्रतिभा (यदि इस नामकी कोई चीज उनके पास होती है तो) कोई भी दिशा नहीं ले पाती। अश्कको पुस्तकोंके आगे-पीछे विज्ञापन प्रकाशित किये जाते हैं : "अश्क'जी' हिन्दीके श्रेष्ठतम उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, कवि, आलोचक, निबन्धकार और संस्मरण-लेखक हैं।" इन सब विधाओंमें निरन्तर लिखते रहनेके बावजूद वे संस्मरणके क्षेत्रको छोड़कर असाधारण कृति किसी भी विधामें नहीं दे सके हैं। जहाँतक संस्मरण-लेखनका सवाल है, इस दिशामें अश्ककी उपलब्धि निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। 'मण्टो : मेरा दुश्मन' ऐसी अकेली रचना है, जो उन्हें हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ संस्मरण-लेखकका स्थान दिला देती है।

'परतोंके आर-पार'में अश्कके समकालीन सहयोगियोंके संस्मरण संकलित हैं। सहयोगियोंका क्रम निरालासे आरम्भ होकर यशपाल, होमवती देवी, राजेन्द्रसिंह बेदी, इन्द्रनाथ मदान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और राजेन्द्र यादव तक आता है। इन संस्मरणोंकी संवेदनशीलता, तीखापन और सम्पूर्ण प्रभावको 'मण्टो : मेरा दुश्मन'की तुलनामें आँकना, इन संस्मरणों और स्वयं संस्मरणकारके साथ ज्यादती होगी, लेकिन अश्कके संस्मरण-लेखककी प्रमुख विशेषताएँ पात्रोंके साथ व्यक्तिगत निकट सम्पर्क होने या न होनेकी स्थितिमें भी उनके साथ गहरा जुड़ाव, तथ्योंकी बेबाकी और नश्तरदिलीसे उद्घाटित करनेका साहस, छोटी-से छोटी घटनाओं और भाव-भंगिमाओंके माध्यमसे पात्रोंकी मनःस्थिति और क्रिया-कलापोंका विश्लेषण करनेकी अद्भुत क्षमता और शैलीका चुटीलापन इन संस्मरणोंमें भी पूर्ण रूपसे विकसित हुआ है।

सबसे अधिक प्रभावपूर्ण 'क्या इमारत गमोंने ढायी है'—अर्थात् निरालाका संस्मरण

* लेखक : उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १६८, मूल्य : ४.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जीवन-भर निरालासे कटे-कटे रहनेपर भी अश्क मानसिक रूपसे उनसे सदा जुड़े रहे और इस जुड़ावको उन्होंने बहुत सन्तुलित शब्दोंमें अभिव्यक्ति दी। निरालाके चारों ओर बदनामी और नेकनामीका जो मिला-जुला प्रभामण्डल रहा है, उसके शेड्सको अलग-अलग पहचाननेमें भी अश्कने भरपूर सफलता पायी है। उस महामानवकी कुण्ठा, पीड़ा और अहम् तथा उदारतामें कहाँ सामंजस्य था, अश्कने यह भी बहुत ख़ूबीके साथ परखा है। यह संस्मरण निरालाको समझनेके लिए एक नयी दृष्टि देता है, जो न उन्हें अतिमानव स्वीकार करती है और न ही आवारा-तबीयत फक्कड़। इन दोनोंके बीच असाधारणता जनित अहम्की अतिसे पीड़ित जो सृजनशील रचनाकार है, यह दृष्टि पाठकको उस तक ले जाती है।

यशपालका संस्मरण और भी तीखेपनसे लिखा गया है लेकिन पात्रकी ख़ूबियों और ख़राबियोंके प्रति रचनाकारकी तटस्थता कहीं भी हाथसे नहीं छूट पायी। यशपालके बारेमें लिखते समय इस तीखेपनका न होना अस्वाभाविक होता; क्योंकि निरालाकी तरह यशपाल भी अपने अहम्के लिए 'कुख्यात' हैं। प्रायः कहा जाता है कि वे 'स्नाब' हैं लेकिन अश्कको नज़रमें 'स्नाबके लिए वे स्नाब अवश्य हैं, पर अपने साधारण पाठक तथा साधारण लेखकके लिए सरल हैं। उनका अहम् अपनी कलाके प्रति उनके विश्वासका प्रतीक है और उनका अक्खड़पन दूसरोंके अहम्से अपनी रक्षा करनेका साधन'।

यशपालके अहम्को प्रकट करनेवाले कई छोटे-छोटे संस्मरण अश्कने प्रस्तुत किये हैं, जो हाज़िरजवाबी और रोचकताके अच्छे उदाहरण होनेके साथ-साथ यह भी सिद्ध करते हैं कि उनका अहम् तभी आँखें खोलता है, जबकि किसी दूसरेका अहम् उसपर चोट करता है।

यायावरी वृत्तिके साथ-साथ अटूट कर्मशीलता, जीवनको भरपूर जीनेमें विश्वास होनेके साथ-साथ कड़ुवेसे कड़ुवे समयको हिम्मतके साथ झेलनेकी क्षमता, विचारोंमें यथार्थवादी होनेके साथ-साथ रचनाओंमें अतिकल्पनाशील हो जानेकी विवशता आदि कई विरोधी कोण हैं जिनसे अश्कने यशपालको देखा है और इस गुम्फित व्यक्तित्वको परतोंके आर-पार आँकनेकी चेष्टा की है।

संग्रहके संस्मरण-पात्रोंमें सम्भवतः राजेन्द्र सिंह बेदी संस्मरण-लेखकके सबसे अधिक निकटके व्यक्ति हैं और यह विचित्र संयोग है कि संग्रहके अच्छे संस्मरणोंमें बेदीका संस्मरण ही सबसे कमज़ोर है। सम्भवतः यह बेदीके निर्दोष व्यक्तित्वकी विशेषता है कि अश्कका स्वर शुरूसे आख़िरतक प्रशंसात्मक बना रहा और रचना संस्मरण-लेखककी विशेषताओं—बेबाकी और तीखेपनसे वंचित रह गयी। यों बेदीकी ज़िन्दादिली और विनोदप्रियताको अश्कने सहज ढंगसे उकेरा है, जिससे संस्मरणकी रोचकतामें वृद्धि हुई है।

होमवती देवीका संस्मरण भी प्रायः प्रशंसात्मक ही है और इससे उनके व्यक्तित्वकी हलकी-सी झाँकी मिल पाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉक्टर इन्द्रनाथ मदानका संस्मरण उनके साहबी व्यक्तित्वके पीछे छिपे सहज मानव तक ले जाता है। उनके एकाकीपन और दूसरोंकी कोमल भावनाओंको ग्राह्य करनेकी असाधारण संवेदनाको अश्कने बहुत सूक्ष्मतासे परखा और अंकित किया है। इस संस्मरणका अन्त बहुत ही कलात्मक ढंगसे हुआ है और मनपर अमिट छाप छोड़ता है।

स्व० नवीनजीका संस्मरण उनके देहावसानके दुःखद अवसरपर, सम्भवतः बहुत जल्दीमें, लिखा गया है और उनके व्यक्तित्वकी एक हलकी-सी झलक भर-दे पाता है।

अन्तिम संस्मरण है—परतोंके आर-पार यानी राजेन्द्र यादवका संस्मरण। राजेन्द्रकी तुनकमिजाजी, महान् बननेकी हीनताजनित कुण्ठा, ज्ञान-प्रदर्शनकी प्यास और साथ-ही-साथ निरन्तर प्रयोग करते रहनेकी ललक, अपने लक्ष्यके प्रति एकान्त समर्पण और अबाध श्रमशीलता आदि विभिन्न पक्षोंको अश्कने ऐसे कैमरेकी आँखसे देखा है कि ऑब्जेक्टका हर रोंगटेतक अपनी डिटेलके साथ उभर आता है। संस्मरण-लेखक छोटी-छोटी पुरमज़ाक़ घटनाओंसे कितना काम ले सकता है, यह राजेन्द्र यादवके संस्मरणसे बख़ूबी ज़ाहिर है। इस रचनामें अश्कने राजेन्द्रके व्यक्तित्वपर लिखनेके साथ-साथ उसकी सब महत्त्वपूर्ण रचनाओंके बारेमें भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस तरह यह रचना संस्मरण न रहकर 'बाँय-ग्राफ़िकल क्रिटिसिज़्म' के निकट जा पहुँची है। राजेन्द्रके व्यक्तित्वको परखनेमें अश्कको जितनी सफलता मिली है, कृतित्वकी समालोचनामें वे उतना ही पिछड़ गये हैं। यह कोई नयी बात नहीं। अश्कने जब-जब आलोचक बननेकी कोशिश की, तभी ऐसा हुआ है।

बहरहाल, ये संस्मरण एक बार फिर अश्कके संस्मरण-लेखककी क्षमताओंका स्मरण कराते हैं और 'अहो रूपम् अहो ध्वनिः' की शैलीमें लिखे जानेवाले परम्परागत हिन्दी संस्मरण और वास्तविक संस्मरणका भेद स्पष्ट करते हैं।

—भीमसेन त्यागी

दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन*

जबसे विश्वविद्यालयोंकी चहारदीवारीमें दिनकर-साहित्यका प्रवेश हुआ है, तबसे उनपर आलोचनात्मक पुस्तकों (मौलिक और सम्पादित) की बाढ़-सी आ गयी है। पर इनमें अधिकांश कृतियाँ ऐसी हैं, जिनमें कुछ घिसी-पिटी स्थापनाओंके साथ बहुधा उद्धरण-वादी पद्धतिका सहारा लिया गया है। ये कवि अथवा उसके काव्यके सम्बन्धमें तो कोई नवीन और विचारोत्तेजक सामग्री नहीं ही देतीं, अकसर ऐसे तथ्यको उजागर करती हैं कि इन छात्र-हितैषी समालोचकोंके हाथोंमें पड़कर हिन्दी-आलोचना कितनी श्रीहीन और

* लेखक : प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह, प्रकाशक : परिमल प्रकाशन, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद, पृ० सं० : १२३, मूल्य : चार रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी पीढ़ी
के
सशक्त कथाकार
शिवप्रसाद सिंह
की
नयी कहानियोंका
नवीनतम संग्रह

•

मुरदा सराय

• •

इन कहानियोंमें ज़िन्दगी पुनःकथित नहीं हुई
है—पुनरुज्जीवित है, पुनर्भुक्त है। और
यही कारण है कि संग्रहकी प्रत्येक
कहानी मनपर एक सार्थक
प्रभाव छोड़ती है।

मूल्य : ४.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता • वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

ज्ञानोदय : सितम्बर १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊबाऊ हो गयी है। प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंहकी प्रस्तुत पुस्तक इस गतानुगतिकताका एक श्लाघनीय अपवाद है।

जैसा पुस्तकके नामसे ही स्पष्ट है, प्रो० विजेन्द्रने दिनकर-काव्यका मूल्यांकन एक नवीन दृष्टिसे किया है। दिनकरके सम्बन्धमें प्रचलित उद्घोषणाओंके प्रतिकूल उनकी मान्यता है—'दिनकर वस्तुतः कोमलता और सुकुमारताके कवि हैं।' (पृ० ९) और 'दिनकरकी राष्ट्रीय चेतना वस्तुतः ऊपरसे आरोपित थी। वे सामाजिक परिवेशके साथ समझौता करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं।' (पृ० १६) लेखकने अपनी इस स्थापनाको दिनकरकी काव्यभाषा और विशेष रूपसे उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्बोंके विश्लेषणसे पुष्ट तथा प्रमाणित किया है। उसने दिखाया है कि दिनकरकी क्रान्ति और विद्रोह-सम्बन्धिनी कविताओंमें भी नारी-बिम्बोंकी प्रधानता है। आधुनिक हिन्दी साहित्यमें शायद दिनकर ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने सबसे अधिक सर्जक बिम्बोंका प्रयोग किया है। यह कविकी शृंगारिक मनोदशा और रोमाण्टिक रुझानका परिचायक है। इस दृष्टिसे दिनकरकी अधिकांश राष्ट्रीय कविताएँ उतनी सफल और प्रभविष्णु नहीं हो सकी हैं, जितना उन्हें होना चाहिए था।

इसमें सन्देह नहीं कि आलोचककी उपर्युक्त स्थापना अत्यन्त मौलिक और विचारोत्तेजक है और यह भी सही है कि दिनकरके ओजस्वी व्यक्तित्वके भीतर आरम्भसे ही एक सुकुमार कल्पक रहा है, जिसका प्रमाण एकुंकी और 'रसवन्ती' की अनेक कविताओंसे लेकर 'उर्वशी' तक है, फिर भी दिनकरको आपाततः 'सुकुमार कल्पनाका कवि' मानना एक प्रकारका अतिवाद जान पड़ता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि 'बिम्ब' केवल प्रेषणके माध्यम ('सबसे प्रतिपन्न माध्यम') हैं या उनके द्वारा स्रष्टाके व्यक्तित्व और उसके मानसिक संगठनको भी समझा जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें, क्या अभिव्यंजना-शिल्पके किसी एक अंगको पकड़कर कवि या लेखकके मूल भावजगत्को सही-सही जाना जा सकता है? मेरी धारणा है कि अगर दिनकरकी राष्ट्रीयता केवल ऊपरसे आरोपित होती, उसका जन्म किसी भीतरी मरोड़ या प्रेरणासे न हुआ होता तो 'हुंकार' की बहुतेरी कविताएँ तथा 'परशुरामकी प्रतीक्षा'-जैसी आवेश-दीप्त कृति उनसे सम्भव न हो पाती।

हर युग श्रेष्ठ कलाकृतियोंको अपनी आवश्यकताके अनुसार परिभाषित-परिमापित करता है। श्री विजेन्द्रकी इस पुस्तककी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि उन्होंने इसमें दिनकरके काव्यके एक अद्यावधि अविचारित पक्षपर बल देकर उनके कृतित्वके नये आयामोंका उद्घाटन किया है। विजेन्द्रजीने एक ओर 'हुंकार' और 'कुरुक्षेत्र' के दिनकरके आस्फालित महत्त्वको कम किया है तो दूसरी ओर 'कोयला और कवित्व' तथा 'आत्माकी आँखें'-की कतिपय कविताओंके मार्मिक विश्लेषण-द्वारा उन्हें हिन्दीकी अधुनातन सृजनशीलतासे जोड़ भी दिया है।

—आनन्दनारायण शर्मा

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियोंकी बिभीषिकामें तपता और तपकर निरन्तर निखरता एक निश्चल-अपराजेय व्यक्तित्व जिसने हिन्दीमें सर्वप्रथम अपनी कथा लिखकर 'आत्मकथा' लेखकोंके लिए मीलका एक पत्थर स्थापित किया। उसी कर्मयोगीके व्यक्तित्व और कृतित्वका शोधक तथा समीक्षक दृष्टिसे किया गया प्रस्तुत है यह एक

समग्र अध्ययन

कविवर बनारसीदास

(जीवनी और कृतित्व)

शोध-प्रबन्ध

●●

डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

साहित्यके प्रत्येक अध्येता पाठक और पुस्तकालयोंके
लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय कृति
सितम्बर १९६६ में प्रकाश्य
मूल्य १०.००

●

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
[पृष्ठ ४ का शेष : पत्र आपके]

देती है। यह भी सच है कि कुछेक रचनाओंको छोड़कर सारी रचनाएँ कवि-कथाकारके उजले भविष्यकी ओर संकेत करती हैं और पाजिटिव तौरपर करती हैं। लेकिन इन नयी क़लमोंको यह भी ध्यान रखना है कि यह व्यक्त छटपटाहट केवल काग़जी न रह जाये। आज माँग इस बातकी है कि हमारा अनुभव गहरा और विविध हो। ख्यातिके लिए चार रचनाओंकी तर्जपर पाँचवीं न बने। इधर कुछेक कहानीकार (?) यह कर रहे हैं। वे अभी भी अनुवादककी जगह अपना नाम डालनेमें गौरवका अनुभव कर रहे हैं और दूसरीकी लकड़ी तोड़कर अपनी लकड़ी बड़ी सिद्ध करनेके लिए नीचतापर उतर आये हैं। यह कोई उपदेश नहीं है, मेरा विश्वास है। भाई रमेश बक्षीने सम्पादकीयमें यह संकेत दिया है। हमें मौसम-धर्मा होना है···हम उभरेंगे ही।

जबलपुर] —ओंकार ठाकुर

'६५ की पीढ़ीके प्रथम प्रवक्ता श्री कुँवर अजयसिंहका पत्र। उन्हें 'नयी क़लम अंक' तथाकथित '६५ की पीढ़ीका 'सशक्त प्रतिबिम्ब' लगा, जानकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने जिस भटकाव, यन्त्रणा, आत्महत्या, सन्त्रासके बदलते परिप्रेक्ष्यके साथ-ही-साथ, उमस, जुगुप्सा, घृणा, युयुत्सा, एब्सर्डिटी तथा व्यर्थताके अतिरेकको बात कही है, वे सब प्रवृत्तियाँ साठोत्तरी कथा-प्रवृत्तिकी ही हैं और ये प्रवृत्तियाँ कहीं भी 'नयी क़लम अंक'के रचनाकारोंमें नहीं पायी जा सकी हैं : कुछ कविताओंको छोड़कर। स्व० देवीशंकर अवस्थीने 'कथा-समारोह' के अवसरपर मुझे बताया था कि साठोत्तरी कथा-प्रवृत्ति कतिपय लेखकोंका आन्दोलन नहीं है, यह प्रवृत्ति '६० के बादके अधिकांश उन नये कथाकारोंमें कमोबेश रूपमें पायी जाती है, जो जागरूक होकर वर्त्तमान संत्रासको भोगते हैं। और यह भी कहा कि, 'ऐसा भी नहीं है कि साठोत्तरी कथा-प्रवृत्ति अमुक सन्से आरम्भ होकर अमुक सन् तक जाकर दम तोड़ देगी। कुछ लेखक भले ही आगे-पीछे हो सकते हैं, लेकिन यह प्रवृत्ति अपना स्वरूप शार्प करती रहेगी। इस बीच कोई भावी जीनियस पीढ़ी अपनी स्वरचनाओंके माध्यम-से इस प्रवृत्तिको एकदम बदल देना चाहे, तो इसमें बदलाव आ सकता है।' लेकिन 'नया क़लम अंक' में प्रकाशित रचनाओंके माध्यमसे जिस तथाकथित '६५ की पीढ़ी-की बात उठायी गयी है, उसका कहीं भी अस्तित्व नहीं है। अगर उनमें उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ हैं तो ये भी '६० के बादकी प्रवृत्तियोंके अन्तर्गत ही मानी जानी चाहिए।

कलकत्ता] —प्रियदर्शी प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीके संस्मरण-साहित्यकी नयी और अनुपम उपलब्धि

वह नन्हा-सा आदमी ?

स्व० लालबहादुर शास्त्री

के अन्तरंग और बहिरंग जीवनके रोचक और महत्त्वपूर्ण संस्मरण : जो उनके असाधारण व्यक्तित्वको आत्मीयतासे उजागर करते हैं। अपने प्रकारकी प्रथम कृति।

लेखक : सुमंगल प्रकाश

भारतीय ज्ञानपीठ

द्वारा

स्व० लालबहादुरजीके आगामी जन्म-दिवसपर प्रकाश्य

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषांकोंका विशेषज्ञ :

ज्ञा नो द य

वार्षिक विशेषांक,
पूजा–दीपावलीके अवसरपर
नवम्बर १९६६ में प्रकाश्य
'महानगर विशेषांक'

०
०

पृष्ठ लगभग साढ़े तीन सौ
मूल्य : तीन रुपया
प्रकाशन तिथि: २५ अक्तूबर '६६

०
०

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन : रमेश बक्षी

नये ग्राहकोंको विशेष उपहार :
१८ रुपयेकी सामग्री मात्र
१० रुपयेमें, नवम्बर १९६६ से
ग्राहक बननेवालोंके लिए

०
०

सम्पादकीय कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

रंगीन सज्जा सहित पत्रकारिता
का नया मानक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञा
नो
द
य

: वार्षिक विशेषांक :

नवम्बर १९६६

प्रगतिशील सभ्यता आज नगरोंमें केन्द्रित हो गयी है या दूसरे शब्दोंमें यह कह सकते हैं कि किसी भी देशकी सभ्यताको जाननेके लिए उसके नगरोंको एक बार देखना होगा। किसी भी देशका बड़ा शहर उस देशके बारेमें सारी सूचनाएँ दे सकता है। यह भी सही है कि किसी भी देशकी अधिकांश शिक्षित जनता शहरोंमें ही रहती है। साहित्य, कला, संस्कृति और आधुनिक विचार-बोधके सारे आयाम नगरोंमें ही हैं। बीसवीं सदीकी यथार्थ तस्वीर भी नगर-जीवनमें ही पायी जाती है। महानगरको यदि बिन्दु बना लें तो आजकी विकसित सभ्यताके सारे परिवेशोंपर विचार किया जा सकता है। जिस नगरकी बात आज कहानी, कविता और दर्शनमें की जाती है उसी बोधकी सारी सामग्री पहली बार एकजुट इस विशेषांकमें आप पायेंगे। हिन्दीके सभी तथा भारतीय भाषाओंके अलावा अन्य भाषाओंके लेखकों-का भी पूरा सहयोग लेकर इसके लिए रचनाएँ जुटायी जा रही हैं। महानगरोंके अर्वाचीन-प्राचीन रूप, देश-विदेशमें उनके स्वरूप और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समीकी रंगीन तसवीर इसमें आप देख सकेंगे। महानगर शब्द और नागरिक परिवेश तो एक माध्यमका काम करेगा जिसको आधार मानकर सारे आधुनिक चिन्तनका एक विधा-विविध पठनीय और संग्रहणीय विशेषांक इस बार पूजा-दिवालीपर आपके हाथों होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

— प्रमुख शीर्षक —

०० पत्र-परिचर्चा :

० नगर-बोधके चौराहेपर : अलग-अलग जीवनके विविध क्षेत्रोंके अधिकारी व्यक्तियोंसे प्राप्त हमारे प्रश्नोंके उत्तरोंके आधारपर एक परिचर्चा। महानगरके व्यस्त जीवनमें-से उभरते दर्शन और व्यावसायिकताके बीच त्रस्त सहजतापर एक रोशनी····।

०० चित्र-कथा :

० आकाशहीन शताब्दी और अनिद्राग्रस्त महानगर : चित्रों तथा छायाचित्रोंके आधारपर एक मुँह-बोलती डाक्यूमेण्टरी।

०० सन्दर्भोंकी परिधियाँ :

० एक सुबह मृत महानगरमें : पुरातत्त्वपर आधारित लेख····कि पुराने महानगरोंकी झाँकी सामने आ जाये।

० तलाश शहरकी : जब ये नगर नहीं थे····· : ऐतिहासिक भूमिकापर आधारित लेख कि दिल्ली-कलकत्ता आदि महानगर कैसे बने ?

० महाभारतके पृष्ठोंपर सोयी हुई समी : रामायण महाभारतकालीन संस्कृतिमें महानगरका स्वरूप।

० वेदोंमें नगर-संस्कृति : वेदोंके आधारपर उस समयकी संस्कृतिपर लेख।

०० फन्तासी :

यदि न्यूयार्क मोहनजोदाड़ो हो जाये०, अन्तरिक्षमें तैरते हुए महानगर० एक ज़मींदस्त यूटोपिया।

०० नगरचक्र :

रहनेको जगह नहीं० लाल-हरी बत्तीवाली मोहब्बत० पापा अगर रोबोट हों।

०० कविताएँ :

नगर-सप्तक : सात कविताएँ० म ग र स····बदले हुए पाँच गीत० खजूरमें लटका शहर : कुछ व्यंग्य कविताएँ० महानगर : अष्टयाम-कुछ और कविताएँ० दूर····बहुत दूर·····महानगर से····अ-नगर कविताएँ।

०० डायरियाँ :

जुलूसोंका शहर : कलकत्ता० शाम और उसके आसपास घूमती राजधानी : दिल्ली० फुरसतहीन द्वीपपर : बम्बई० एक हज़रत, गंज, महानगर : लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

०० यात्राएँ :

नगर जो ख़ुद कलाकार है–पेरिस ० लन्दन : जिससे हमारा रिश्ता था ० स्लीपिंग पिल्सकी तलाशवाला शहर : न्यूयार्क ० हवा नहीं राजनीति : मास्को ।

०० नयी नगर सभ्यता :

बीट, बीटल और नाराज़ तथा भूखे-प्यासे ० खुली हुई आँखें और 'तंग' संस्कृति····निषेधोंपर टिप्पणी ० हर बातमें 'अ' यानी····? नयी पीढ़ीका दर्शन

०० व्यंग्य :

सँकरापन उर्फ़ संकीर्णता : एक दर्ज़ीकी मनस्थिति ० पहलेके शहर ऐसे थे ० देखी तेरी बम्बई ० चलती चाकी देखिकै हँसे कबीरा जोय····

०० नगरके इर्द-गिर्द : १० कहानियाँ

०० कुछ स्थितियाँ :

मृत्यु और आत्महत्या ० भुखमरी और आधा पेट भोजन ० एक कमरा और फुटपाथ ० अकेले और अनियोजित परिवारके बीच

०० अँधेरे कोने :

निषिद्ध मोहल्ला : जहाँ दिनमें ब्लैक-आऊट होता है ० हुगलीके किनारे : जहाँ ब्लैकमनी पसीनेकी कमाई है····

०० कुछ व्यक्तिगत रचनाएँ :

झुलसे हुए शहर ० एक महानगर कन्धेपर ० अपने-अपने शहर ० पर्सनल सी० आई० टी० ० फँसा हुआ नगर

०० नगर-निर्माण :

हस्तिनापुर : पुनर्जन्म ० चण्डीगढ़ : तीन-तेरह ० भोपाल : बसते-बसते ० इलाहाबाद : प्रयागसे आगे

०० अनुवाद :

घूमती हुई दुनियाके बीच : महानगरोंके बारेमें जानकारी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ
उपयोगी
एवं
संग्रहणीय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

विक्रय-केन्द्र :
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• राष्ट्रभारती

२२४	प्रतिनिधि संकलन : कविता : मराठी	सं०—दिनकर सोनवलकर ४.००
२०७	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी दो	नानक सिंह ४.००
२०४	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी दो	प्रो० ना० सी० फड़के ४.५०
१९०	प्रतिनिधि रचनाएँ : पंजाबी एक	कर्तारसिंह दुग्गल ३.५०
१९१	प्रतिनिधि संकलन : आन्तरभारती एकांकी	सं०—अनिलकुमार ४.००
१६८	प्रतिनिधि रचनाएँ : तेलुगु	नार्ल वेंकटेश्वर राव ३.५०
१७०	प्रतिनिधि रचनाएँ : बंगला	'परशुराम' ३.००
१७१	प्रतिनिधि रचनाएँ : मराठी एक	व्यंकटेश दि० माडगूलकर ४.००

• उपन्यास

२१३	अस्तंगता	भिक्खु ६.००
२२५	अठारह सूरजके पौधे	रमेश बक्षी ३.००
१६४	सूरजका सातवाँ घोड़ा [च० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती २.००
२१५	जुलूस	फणीश्वरनाथ 'रेणु' ३.५०
१५४	पीले गुलाबकी आत्मा [द्वि० सं०]	विश्वम्भर 'मानव' ४.००
७९	गुनाहोंका देवता [आठवाँ सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती ५.००
५५	रक्त-राग [द्वि० सं०]	देवेशदास आइ०सी०एस्० ३.००
५१	तीसरा नेत्र [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन २.५०
१९९	जो	डॉ० प्रभाकर माचवे ३.००
१६९	महाश्रमण सुनें ! उनकी परम्पराएँ सुनें !!	'भिक्खु' २.२५
१३७	पलासीका युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय ३.५०
१४३	अपने-अपने अजनबी	अज्ञेय ३.००
८०	शतरंजके मोहरे [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अमृतलाल नागर ६.००
९५	शह और मात	राजेन्द्र यादव ४.००
११३	राजसी	देवेशदास आइ०सी०एस्० २.५०
६२	संस्कारोंकी राह [पुरस्कृत]	राधाकृष्ण प्रसाद २.५०
१२६	ग्यारह सपनोंका देश [द्वि० सं०]	सं०—लक्ष्मीचन्द्र जैन ५.००
१	मुक्तिदूत [द्वि० सं०]	वीरेन्द्रकुमार जैन ५.००

• कहानी

२३१	राजा निरबंसिया	कमलेश्वर ५.००
२२९	सवेरा संघर्ष गर्जन	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ७.००
२२७	मुरदा सराय	डॉ० शिवप्रसाद सिंह ४.००
१७३	खोयी हुई दिशाएँ [द्वि० सं०]	कमलेश्वर २.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२	दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियाँ [द्वि. सं.]	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन	३.००
१९५	झाड़ी [द्वि० सं०]	श्रीकान्त वर्मा	३.००
१६६	मेज़पर टिकी हुई कुहनियाँ	रमेश बक्षी	३.५०
६०	कालके पंख [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
३०	खेल खिलौने [द्वि० सं०]	राजेन्द्र यादव	२.००
१५९	बोस्ताँ [द्वि० सं०]	शेख़ सादी	२.५०
६३	जय-दोल [तृ० सं०]	अज्ञेय	३.००
१४२	ज़िन्दगी और गुलाबके फूल	उषा प्रियंवदा	२.५०
८९	अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२.५०
८५	कर्मनाशाका हार	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.००
१३१	सूने अँगन रस बरसै	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.००
१५१	प्यारके बन्धन	रावी	३.२५
८२	मोतियोंवाले [पुरस्कृत]	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
६९	हरियाणा लोकमंचकी कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	२.५०
६५	मेरे कथागुरुका कहना है : १	रावी	३.००
१४४	मेरे कथा गुरुका कहना है : २	रावी	३.००
३५	पहला कहानीकार [पुरस्कृत]	रावी	२.५०
२४	संघर्षके बाद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विष्णु प्रभाकर	३.००
५८	नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३.००
३७	अतीतके कम्पन [द्वि० सं०]	आनन्दप्रकाश जैन	३.००
२०	आकाशके तारे : धरतीके फूल [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२.००
५०	नये बादल	मोहन राकेश	२.५०
५४	कुछ मोती कुछ सीप [तृ०सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
४३	जिन खोजा तिन पाइयाँ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
१२	गहरे पानी पैठ [तृ० सं०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.५०
९४	एक परछाईं : दो दायरे	गुलाबदास ब्रोकर	३.००
११५	ओस्कर वाइल्डका कहानियाँ	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
१३९	को कहानी सुनो	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२.००

• कविता

२२६	तार सप्तक [द्वि० परिवर्धित संस्करण]	सम्पादक अज्ञेय	८.०*
२२८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी	३.००
६४	लेखनी-बेला [द्वि० सं०]	वीरेन्द्र मिश्र	३.००
२२०	इतिहास-पुरुष	डॉ० देवराज	३.५०
१२०	देशान्तर [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	१२.००
२१८	अन्धा चाँद	मुनि रूपचन्द	३.००
२०१	चाँदका मुँह टेढ़ा है [द्वि० सं०]	मुक्तिबोध	८.००
२०८	आत्मजयी	कुँवरनारायण	३.५०
८६	कनुप्रिया [तृ० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४	गुलमोहर के साये में [द्वि० सं०]	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१६.००
११८	वेणु लो गूँजे धरा [द्वि० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२०३	चौंसठ कविताएँ	इन्दु जैन	३.००
२०२	संक्रान्त	डॉ० कैलाश वाजपेयी	३.००
१९६	हिम-विद्ध	डॉ० जगदीश गुप्त	३.००
१८६	बीजुरी काजल आँज रही	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
१८५	अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	३.००
१७८	रत्नावली	हरिप्रसाद 'हरि'	३.००
६८	वाणी [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	२.००
६६	सौवर्ण [द्वि० सं० परिवर्द्धित]	सुमित्रानन्दन पन्त	४.००
१४६	आँगन के पार द्वार [अकादेमी-द्वारा पुरस्कृत]	अज्ञेय	३.५०
१३४	वीणापाणिके कम्पाउण्डमें	केशवचन्द्र वर्मा	३.००
१२२	रूपाम्बरा	सं०—अज्ञेय	३.००
८८	अनुक्षण	डॉ० प्रभाकर माचवे	१२.००
८१	तीसरा सप्तक [द्वि० सं०]	सं०—अज्ञेय	३.००
९०	अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	५.००
९१	सात गीत-वर्ष [द्वि० सं०]	डॉ० धर्मवीर भारती	४.००
१२७	आवाज़ तेरी है	राजेन्द्र यादव	३.५०
९	पंच-प्रदीप	शान्ति मेहरोत्रा	३.००
८	मेरे बापू	तन्मय बुखारिया	२.००
३९	धूपके धान [नृ० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	२.५०
१३	वर्द्धमान [महाकाव्य पुरस्कृत]	अनूप शर्मा	३.५०
			६.००

• शाइरी

१५८	गंगोजमन [द्वि० सं०]	'नज़ीर' बनारसी	३.००
७६	शाइरीके नये मोड़ : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१५६	शाइरीके नये मोड़ : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७५	शाइरीके नये मोड़ : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१७७	शाइरीके नये मोड़ : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	४.००
१३८	नमकहराम	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७२	शाइरीके नये दौर : भाग १	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
७३	शाइरीके नये दौर : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१०४	शाइरीके नये दौर : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
११०	शाइरीके नये दौर : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
१४१	शाइरीके नये दौर : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
१४	शेर-ओ-सुख़न : भाग—१ [द्वि०सं०पु०]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२६	शेर-ओ-सुख़न : भाग २	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	शेर-ओ-सुख़न : भाग ३	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२७	शेर-ओ-सुख़न : भाग ४	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
२८	शेर-ओ-सुख़न : भाग ५	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३.००
३१	शेर-ओ-सुख़न [भाग २-३-४-५]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११.००
	शेर-ओ-शाइरी [द्वि० सं० पुरस्कृत]	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८.००
५	ग़ालिब	श्रीरामनाथ 'सुमन'	८.००
११९	मीर	श्रीरामनाथ 'सुमन'	६.००
९२			

• नाटक

९८	जनम क़ैद [द्वि० सं० पुरस्कृत]	गिरिजाकुमार माथुर	३.००
२१९	प्रेत	इब्सेन,अनु०नेमिचन्द्र जैन	२.२५
७५	बारह एकांकी [द्वि० सं०]	विष्णु प्रभाकर	४.००
१६७	घाटियाँ गूँजती हैं [तृ० सं०]	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	२.५०
२०५	नाटक बहुरूपी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	३.५०
१७२	आदमीका ज़हर	लक्ष्मीकान्त वर्मा	३.००
१७	रजत रश्मि [द्वि० सं० पुरस्कृत]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२.५०
१५५	तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ	परिपूर्णानन्द वर्मा	४.००
१००	सुन्दर रस [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	१.५०
१३२	नाटक बहुरंगी [द्वि० सं०]	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	४.५०
७८	कहानी कैसे बनी ?	कर्तारसिंह दुग्गल	२.५०
५३	बचपनका फेर [द्वि० सं० पुरस्कृत]	विमला लूथरा	३.००
५९	तरकशके तीर	श्रीकृष्ण	३.००
४७	और खाई बढ़ती गयी [पुरस्कृत]	भारतभूषण अग्रवाल	२.५०
६७	चेखॅवके तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४.००
१०१	कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी	डॉ० भगवतशरण उपा०	३.५०
१०६	सूखा सरोवर	डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल	२.००
१०८	भूमिजा	सर्वदानन्द	१.५०

• विधा-विविधा

१५०	खुला आकाश : मेरे पंख	शान्ति मेहरोत्रा	४.५०
१४९	अंकित होने दो	अजित कुमार	४.००
८७	काठकी घण्टियाँ	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	७.००
१०२	सीढ़ियोंपर धूपमें	रघुवीर सहाय	४.००
१२५	पत्थरका लैम्प-पोस्ट	शरद देवड़ा	३.००

• रुचिर-कलात्मक

१९२	शैशवांकन		१२.००
१६१	परिणय गीतिका	सं०—रमा जैन, कुन्था जैन	५.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• ललित-निबन्धादि

२१६	कुछ निबन्ध	अक्षयकुमार जैन	२.५०
१८३	क्षण बोले कण मुसकाये [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
२११	चिन्तककी लाचारी	माखनलाल चतुर्वेदी	४.००
१९७	एक साहित्यिककी डायरी [द्वि० सं०]	गजानन माधव मुक्तिबोध	२.५०
११७	अमीर इरादे ग़रीब इरादे [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	२.००
१८१	हम सब और वह	दयानन्द वर्मा	२.००
१८०	बातें, जिनमें सुगन्ध फूलोंकी	अहमद सलीम	३.००
१६५	महके आँगन चहके द्वार	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१६३	शिखरोंका सेतु	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	३.५०
५७	बाजे पायलियाके घुँघरू [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००
१४८	फिर बैतलवा डालपर	विवेकी राय	३.५०
१४७	आँगनका पंछी और बनजारा मन	डॉ० विद्यानिवास मिश्र	३.००
१२८	नये रंग नये ढंग	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.००
७१	बना रहे बनारस	विश्वनाथ मुखर्जी	२.५०
१२३	काग़ज़की किश्तियाँ	लक्ष्मीचन्द्र जैन	२.५०
१११	सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००
९६	वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२.५०
१०३	ठूँठा आम	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	२.००
२९	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान [द्वि.सं.]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	१.००
७०	ग़रीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१.००
४६	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२.५०
५६	माटी हो गयी सोना [तृ० सं०]	कन्हैयालालमिश्र 'प्रभाकर'	२.५०
२५	ज़िन्दगी मुसकरायी [तृ० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४.००

• यात्रा-विवरण

१८७	चीड़ोंपर चाँदनी	निर्मल वर्मा	३.००
१३०	एक बूँद सहसा उछली	अज्ञेय	७.००
८४	पार उतरि कहँ जइहौ	प्रभाकर द्विवेदी	३.००
९९	सागरकी लहरोंपर	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
१३६	हरी घाटी	डॉ० रघुवंश	४.५०

• संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी

७४	दीप जले शंख बजे [द्वि० सं०]	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	३.००
१६२	समयके पाँव [तृ० सं०]	माखनलाल चतुर्वेदी	३.००
२१	रेखाचित्र [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	४.००
१२४	पराड़करजी और पत्रकारिता [पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	५.५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०९	आत्मनेपद	अज्ञेय	४.००
११४	माखनलाल चतुर्वेदी	'बरुआ'	६.००
१५	जैन-जागरणके अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५.००
१९	संस्मरण [द्वि० सं० पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००
१६	हमारे आराध्य [पुरस्कृत]	बनारसीदास चतुर्वेदी	३.००

• अध्ययन, आलोचना, अनुसन्धान, रचना-शिल्प

२३०	कविवर बनारसीदास	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन	१०.००
२१०	हिन्दीके आदि मुद्रित ग्रन्थ	कृष्णाचार्य	७.००
२१४	नये प्रतिमान : पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	७.००
१५२	अपभ्रंश भाषा और साहित्य	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन	१०.००
२२१	विवेकके रंग	सं०-डॉ० देवीशंकर अवस्थी	७.००
१८९	हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि	डॉ० प्रेमसागर जैन	१२.००
१९३	भाषा और संवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	२.५०
१८८	हिन्दी गीतिनाट्य	कृष्ण सिंहल	४.००
१७४	साहित्यका नया परिप्रेक्ष्य	डॉ० रघुवंश	५.००
१५७	जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमसागर जैन	६.००
१३५	रेडियो वार्ता-शिल्प	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	२.००
४१	रेडियो नाट्य-शिल्प [द्वि० सं०]	डॉ० सिद्धनाथ कुमार	३.००
३८	ध्वनि और संगीत [द्वि० सं०]	ललितकिशोर सिंह	४.५०
१८	भारतीय ज्योतिष [च० सं०]	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	८.००
८३	प्राचीन भारतके प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.५०
४५	संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३.००
४८	संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन [द्वि.सं.]	डॉ० भोलाशंकर व्यास	५.००
१२९	हिन्दी नवलेखन	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.००
११२	मानव मूल्य और साहित्य	डॉ० धर्मवीर भारती	२.५०
४२	शरत्के नारी-पात्र	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४.५०
४४	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : १	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०
४९	हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन : २	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री	२.५०

• इतिहास-राजनीति

१४५	भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [द्वि० सं०]	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन	१०.००
१९८	भारतीय संस्कृतिका विकास : वैदिक धारा	डॉ० मंगलदेव शास्त्री	७.००
१२१	समाजवाद [छठा सं०]	डॉ० सम्पूर्णानन्द	५.००
३६	कालिदासका भारत : भाग १ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००
४०	कालिदासका भारत : भाग २ [द्वि० सं०]	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	४.००
३२	चौलुक्य कुमारपाल [द्वि० सं० पुरस्कृत]	लक्ष्मीशंकर व्यास	४.५०
५२	एशियाकी राजनीति	परदेशी	६.००
१०७	इतिहास साक्षी है	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	३.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३	खोजकी पगडण्डियाँ [द्वि० सं० पुरस्कृत]	मुनि कान्तिसागर	
२२	खण्डहरोंका वैभव [द्वि० सं०]	मुनि कान्तिसागर	४.००
			६.००

• दार्शनिक-आध्यात्मिक

२१७	तुम अनन्त शक्तिके स्रोत हो	मुनि नथमल	
२१२	क्या धर्म बुद्धिगम्य है ?	आचार्य तुलसी	२.००
३३	अध्यात्म-पदावली [तृ० सं०]	डॉ० राजकुमार जैन	२.००
२०६	दर्शन अनुचिन्तन	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	४.५०
२००	तान्त्रिक साधना	माधव पुण्डलीक पण्डित	३.००
१०	भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	१.५०
			२.००

• सूक्तियाँ

१४०	सन्त-विनोद [द्वि० सं०]	नारायणप्रसाद जैन	२.५०
१८२	भाव और अनुभाव [द्वि० सं०]	मुनि नथमल	२.००
११	ज्ञानगंगा : भाग १ [द्वि०सं०]	नारायणप्रसाद जैन	६.००
११६	ज्ञानगंगा : भाग २	नारायणप्रसाद जैन	६.००
६१	शरतकी सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२.००
९३	कालिदासके सुभाषित	डॉ० भगवतशरण उपाध्याय	५.००

• हास्य-व्यंग्य

२२२	बक रहा हूँ जुनूनमें	प्रकाश पण्डित	३.००
२०९	सिकन्दरनामा	सलमा सिद्दीक़ी	२.०
१३३	आधुनिक हिन्दी हास्य-व्यंग्य [द्वि० सं०]	सं० — केशवचन्द्र वर्मा	४.००
१६०	तेलकी पकौड़ियाँ [द्वि० सं०]	डॉ० प्रभाकर माचवे	२.००
१७६	जैसे उनके दिन फिरे [द्वि० सं०]	हरिशंकर परसाई	२.५०
१८४	काग़ज़के फूल शब्द : भारतभूषण अग्रवाल	चित्र : प्रभाकर माचवे	३.००
१७९	चाय पार्टियाँ	सन्तोषनारायण नौटियाल	२.००
१५३	हास्य मन्दाकिनी	नारायणप्रसाद जैन	६.००
१०५	मुर्ग़-छाप हीरो	केशवचन्द्र वर्मा	२.००
९७	अंगदका पाँव	श्रीलाल शुक्ल	२.५०

• चिकित्सा

२२३	घरेलू इलाज	वैद्यरत्न च० गो० ठक्कुर	२.००

विशेष : तार-द्वारा अपनी माँग भेजें तो पुस्तकका पूरा नाम आदि न देकर केवल ग्रन्थमालाके नामका प्रथमाक्षर और साथमें दिया ग्रन्थांक लिखना पर्याप्त होगा। जैसे : 'सूरजका सातवाँ घोड़ा' के लिए 'लो' — १६४' मात्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Britannia Engineering Company Ltd.

Manufacturers of :

1. **Tea Processing Machinery.**
2. **Jute Mill Machinery.**
3. **Road Rollers.**
4. **Printing Machinery.**
5. **Machine Tools.**
6. **Railway Wagons.**
7. **Steel Castings.**
8. **Grey Iron Castings.**
9. **Steel forgings for Railways & others.**
10. **Railway Signalling & Interlocking Equipment.**

My. Mfrg. Div. TITAGARH : *Steel Fdy. Div.* : TITAGARH

Wagon Div. : MOKAMEH

o

Head Office :

Mcleod House, Calcutta-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re. 1/-

धांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर
साहूपुरम् में
डाकखाना : अरुमुगनेरी
(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक
धांगध्रा में
(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल
फोर्ट, बम्बई-१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

License No. 61. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar.

भारतीय ज्ञानपीठ काशी की ओर से जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और
सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4-10-66

ज्ञानोदय

अक्तूबर १९६६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक जागरण, साहित्यिक विकास-उन्नयन
और राष्ट्रीय ऐक्य एवं राष्ट्र-प्रतिष्ठाकी साधिका
तथा भारतीय भाषाओंकी
सर्वोत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर
प्रतिवर्ष एक लाख रुपये
पुरस्कार - योजना - प्रवर्तिक
विशिष्ट संस्था

भारतीय ज्ञानपीठ

BHARATIYA JNANPITH

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना और
नवीनताका प्रतिनिधि
मासिक

ज्ञानोदय

लेखन - प्रकाशनकी
अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति
और उपलब्धि
परिचायिनी मासिकी

ज्ञानपीठ पत्रिका

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्रीका अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोकहितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण—
लोकोदय, मूर्तिदेवी एवं भारतीय
ज्ञानपीठ ग्रन्थमाला के अन्तर्गत

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सम्पादकीय एवं प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
विक्रय केन्द्र : ३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
प्रमुख वितरक : बैनेट कोलमन ऐण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक भावबोध,
कला-संचेतना
और
नवीनता का
प्रतिनिधि मासिक

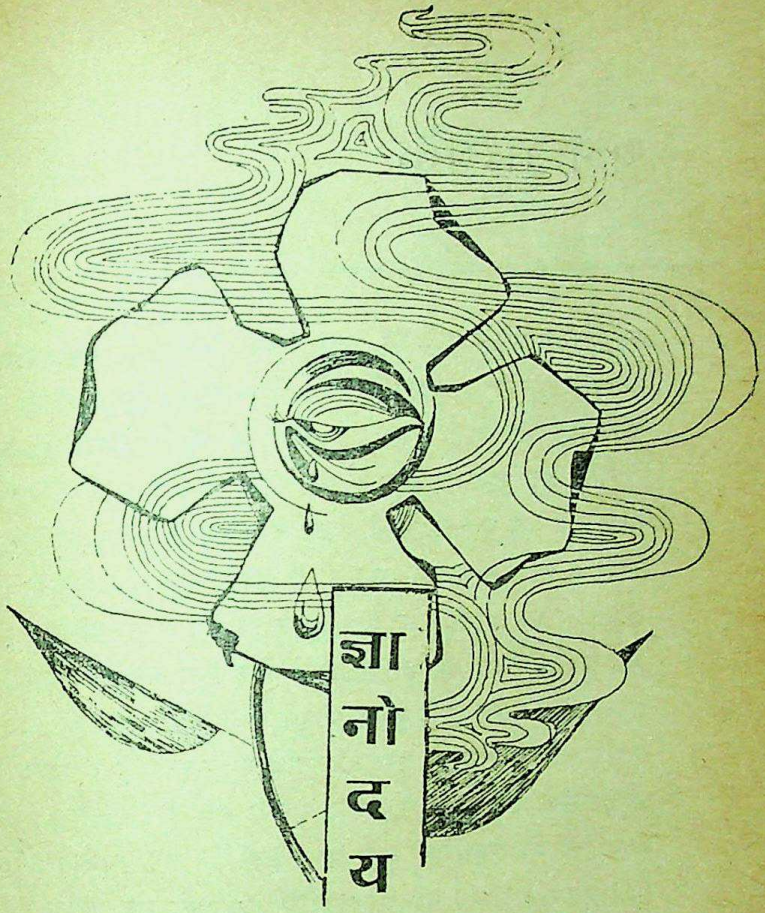

सम्पादक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन, रमेश बक्षी
सम्पादकीय कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी
प्रमुख वितरक :
बैनेट कोलमैन एण्ड कं० लि०, बम्बई-१

महानगर विशेषांक : अगला अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र आपके

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'नयी क़लम विशेषांक' नये प्रतिभाशाली कलाकारोंकी खोजका एक नूतन प्रयत्न है। जैसा कि आपके सम्पादकीयसे स्पष्ट है क़रीब १००० कहानियाँ विचारार्थ प्राप्त हुईं, इनमें-से १५ कहानियोंके चुननेका प्रयत्न कितना जोखिम और खतरेसे भरा है, यह भी साफ़ है। कोई भी सम्पादक शायद यह दावेके साथ नहीं कह सकता कि ये पन्द्रह कहानियाँ उस पूरी राशिमें सर्वोत्तम थीं। क्योंकि सर्वोत्तम भी एक सापेक्ष शब्द ही है और वहाँ सम्पादककी व्यक्तिगत रुचि बहुत बचानेपर भी अपनी छाप छोड़ ही जाती है। मैं तो समझता हूँ कि इस खतरेको कुछ कम करनेके लिए अवशिष्ट कहानियोंमें-से कुछ अच्छी आप प्रत्येक आगामी अंकमें छापते चलें। यह सही है कि प्रस्तुत कहानियाँ आजकी प्रचलित प्रवृत्तियों, नयी कहानीकी प्रवृत्तियोंका पूरा प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु आगामी कहानी इन्हीं प्रवृत्तियोंकी देन होगी, यह कोई ज़रूरी नहीं है। इसलिए शैली, वस्तु आदिकी दृष्टिसे कुछ ऐसी भी कहानियाँ चुनी जा सकती थीं, जो प्रचलित प्रवृत्तियोंसे हटकर लिखी गयी हों, तब शायद नये कथाकारोंके चुनावका यह प्रयत्न कुछ और फलवान हो गया होता। बहरहाल, जो स्थिति है, उसमें भी मैं ज्ञानोदयके इस प्रयत्नकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

वाराणसी] —शिवप्रसाद सिंह

●

इस विशेषांक-द्वारा इतनी नयी प्रतिभाओंको प्रकाशमें लानेका कार्य सराहनीय रहा। लेकिन समग्र दृष्टिसे देखनेपर मुझे लगा कि कविताका अंश गद्यके अंशसे कमज़ोर है। इससे यही कहा जा सकता है कि गद्य और कथाके क्षेत्रमें विकास अधिक और क्षिप्रतर हो रहा है।

जालन्धर] —गिरिजाकुमार माथुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

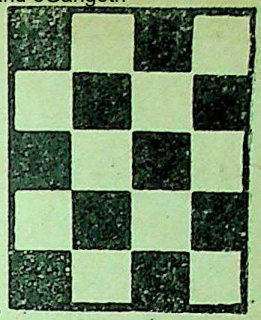

ज्ञानोदय इधर नियमित रूपसे देख रहा हूँ, पा रहा हूँ कि कुछ बदली हुई प्रवृत्तियोंके विकासमें इसका योगदान उल्लेखनीय है और होता जा रहा है लेकिन कुछ कमज़ोर रचनाएँ भी देखनेको मिलीं। अगस्त अंकमें मुक्त चिन्तनके अन्तर्गत 'अस्तित्ववाद : कुछ नयी स्थापनाएँ' ऐसी ही एक है। इसमें मैं नयी स्थापनाएँ नहीं खोज सका। सार्त्रके दर्शनकी प्रस्तुति उसकी एक पुस्तकके कुछ उद्धरणों तक ही नहीं सीमित है। उसके अस्तित्ववादको समझनेके लिए उसकी अन्य पुस्तकोंकी स्थापनाओंको जानना ज़रूरी है। 'समयबोध' शीर्षकसे उच्चकोटिकी सामग्री जा रही है। कुछ कहानियाँ विशेष रूपसे डिस्क्रीमिनेटिंग टेस्टकी होती हैं। दो-तीन लोगोंने मुझसे कहा है कि आप तक यह बात पहुँचाऊँ कि इससे अधिक आधुनिकताको आप प्रश्रय नहीं दीजिएगा।

आगरा] —सूर्यदेव पाण्डेय

•

'कथा संचेतनाका बदलता फ़ोकस' पढ़ा। समीक्षाके अन्त तक आते-आते दुष्यन्तकुमार लिखते हैं : "रोचकताके लिहाज़से शिवानीको छोड़ और सब लेखकोंके उपन्यासोंकी स्थिति कमोबेश ऐसी है" और "सम्पादकसे कमिटमेण्ट न होता तो मैं इनमें-से आधे उपन्यासोंको निश्चय ही बिना पढ़े छोड़ देता।" इससे निष्कर्ष निकलता है कि रोचकताका एक अपना महत्त्व होता है क्योंकि उसके अभावमें दुष्यन्तकुमार जैसे बुद्धिजीवी भी किसी कृतिको पढ़नेका धीरज खो बैठते हैं। मेरे विचारसे रोचकताको हम भले ही अधिक महत्त्व न दें किन्तु उतना तो देना ही होगा कि एक बुद्धि-कृतिको अन्त तक पढ़ा जा सके।

बम्बई] —कुन्तलकुमार जैन

•

ज्ञानोदय अगस्त अंकमें श्री दुष्यन्तकुमारने मेरे उपन्यासकी अन्धाधुन्ध आलोचना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मैं अपनेको कभी महान् लेखक समझनेकी भूल कदापि नहीं रखता, किन्तु समीक्षकको स्तरसे गिरकर तथ्योंको तोड़-मरोड़कर ऐसी समीक्षा नहीं करनी चाहिए। दिल्ली]

—रमानाथ त्रिपाठी

●

श्री रमेशकुन्तल मेघके लेख 'क्षमा : एक अर्थपूर्ण व्यर्थ शब्द' में एक भूल हुई है। पृष्ठ ९० पर लेखकने कहा है कि "आचार्य शुक्लने क्रोधको बैरका मुरब्बा कहा है।" पर शुक्लजीने बैरको क्रोधका अचार या मुरब्बा कहा है जो ठीक भी है। इसी पृष्ठपर 'हमारा क्रोध बैरका अचार तैयार करने लगा'—अभिव्यक्ति भी कुछ इसी प्रकारकी है।
शहडोल]

—गोपालजी भटनागर

●

पी० ई० एन० की मीटिंग्स वास्तवमें मनोरंजक रहीं, आयोजन-कर्ताओंने समारोहको सफल बनानेके लिए काफ़ी प्रयास किया था और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली। लगभग सात सौ लेखकों और उनके मित्रों या पत्नियोंके स्वागत-मनोरंजनका प्रबन्ध करना वास्तवमें कठिन रहा होगा किन्तु कहीं किसी बातमें कोई त्रुटि नहीं हुई। कई देशबन्धुओंका, जिनका केवल नाम सुना-पढ़ा था परिचय मिला, राइटर्स वर्कशापके पी० लाल, अमृत बाजार पत्रिकाके ज्योतिर्मय दत्ता और उनकी पत्नी, श्री के० वी० वेद, श्री बलवन्त गार्गी। श्री वेदकी कहानियाँ पढ़कर उनके व्यक्तित्वके विषयमें कुछ अनुमान लगाया था, देखकर लगा, वह अनुमान ग़लत नहीं था···। श्री गार्गीने हफ़्ते-भर पहले ही एक अमरीकी लड़कीसे विवाह किया था, वह उनके साथ थी··· एक दिन उन दोनोंको साथ देख, मेरी एक अमरीकी सहेली बोली, 'यह शायद उनके किसी नाटकमें नायिका बन जानेके सपने देख रही है।' दूसरे देशोंके भी कुछ लेखकोंका परिचय मिला। लैटिन, अमेरिकन, येगोस्लावियन, ब्रिटिश, आइरिश, कैनेडियन, जर्मन, फ्रेंच आदि। रूसके एक प्रवास लेखक श्री तार्सिसका इण्टरव्यू भी लिया। कवियों और लेखकोंने अपनी पुस्तकोंकी प्रतियाँ भेंट कीं, उन्हींमें-से एक थे वियतनामके कवि—सुएन-वियेतनियेम। कहने लगे—"मेरी बड़ी अभिलाषा है कि मेरी कोई कविता हिन्दीमें छपे।" मैंने कहा, "अच्छा, मैं आपकी कविताका अनुवाद करूँगी।" किन्तु अनुवाद करने बैठी तो आँखोंमें आँसू आ गये। उन गीले अक्षरोंको न भेजकर कविता ही भेज रही हूँ। यदि आप चाहें तो अनुवाद प्रकाशित कर दीजिएगा। और क्या लिखूँ, आपने कानफ़रेन्समें भाग लिया होता, तो···। जो सात

[शेष पृष्ठ ११९ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

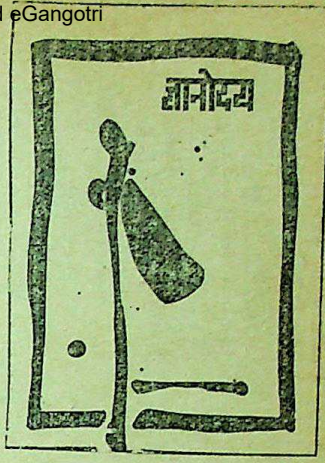

अ । नु । क्र । म

वर्ष : १८

अंक : ४

अक्तूबर १९९९

मुखपृष्ठ ■
मदन सरकार

सज्जा ■
भाऊ समर्थ

■ नये स्तम्भ :

- समयबोध : ज्योतिकी तरह प्रकाशित, खंजरकी तरह चमकदार : शापेन हॉवर ७
- मुक्त चिन्तन : भारतीयता और आधुनिक भाव-बोध (उमाशंकर जोशीसे एक भेंट) : विलास गुप्त ९
- नयी कला : धरतीकी बेटी : देहाती रंगमंच : किशोरीलाल वैद्य १३
- साहित्य-भूमि : ज्ञानाश्रयी सन्त और अक्षर अनन्य : अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव १९
- ललित : सुबह-सुबह : रमेशचन्द्र शाह २५
- विज्ञान (फ़न्तासी) अन्तरिक्षमें युद्ध : ब्रह्मस्वरूप वर्मा ३१
- प्रश्नान्तक : मुक्तिबोधकी काव्य-प्रक्रिया और नवलेखन : सकलदीप सिंह ९३
- विविध : अनाजका स्वावलम्बन : परीक्षाका समय : वीरेन्द्र अग्रवाल १०१

■ अन्य स्तम्भ :

- गोष्ठी : लहरोंके राजहंस : रमेश बक्षी १०७
- पत्र : स्वतन्त्रता और सत्य ? : आचार्य रजनीश (अनु० : सोहन बाफना) ११३

■ कविताएँ :

- समीकरण । ललक । दूर : श्रीराम वर्मा, किरण जैन, प्रयाग शुक्ल ३७
- तीन, चार और सात कविताएँ : अनामिका, ऋतुराज, अनन्तकुमार पाषाण ८३

■ कहानियाँ :

- मेरा हमसफ़र : एस० एम० शाहनवाज़ (अनु० : वीना सोंधी) ४१
- संस्कार : गिरीश अस्थाना ४७
- छोटी-छोटी ख़ुशियाँ : हरवंश कश्यप ५७
- अस्तित्व-बोध : रामकुमार भ्रमर ६३
- निर्णय : कान्ता सिन्हा ७१
- बहुत निकट—बहुत दूर : कुलवन्तसिंह विर्क ७७

■ व्यंग्य :

- मजबूरीका नाम जी-हुज़ूरी : दामोदर सदन ८७

पत्र आपके ■

शिवप्रसाद सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, सूर्यदेव पाण्डेय, कुन्तलकुमार जैन, रमानाथ त्रिपाठी, गोपालजी भटनागर, सोमा वीरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना बड़ा
संसार है
महानगर....

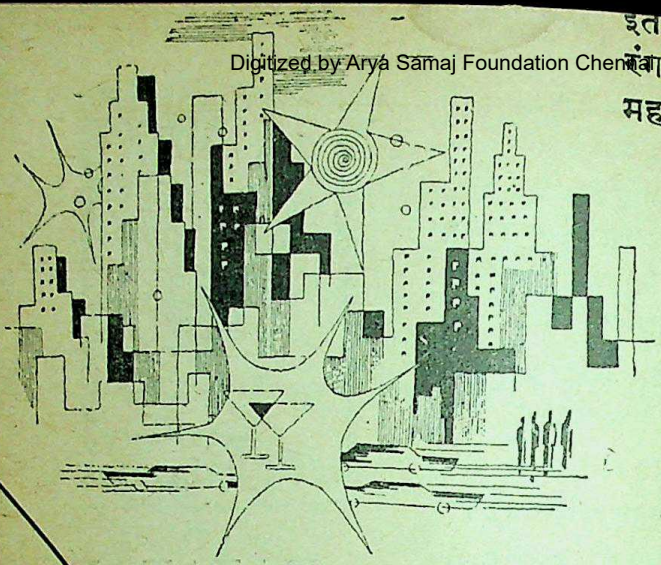

....और आप
ऐसे उदास!

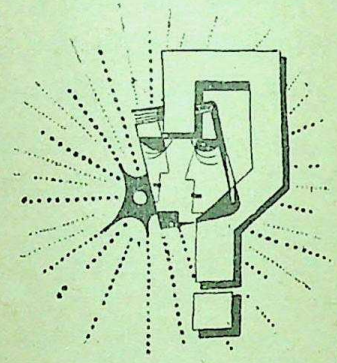

हमारा उत्तर
महानगर विशेषांक
देखिए
पृष्ठ ११०-१११

....आप
बेमतलब व्यस्त!

....आप
दोनों ऐसे
समस्या-
ग्रस्त ?

....आप
ज़बरदस्ती
अकेली ?

....आप अपने-अपने जुलूसों से त्रस्त....?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

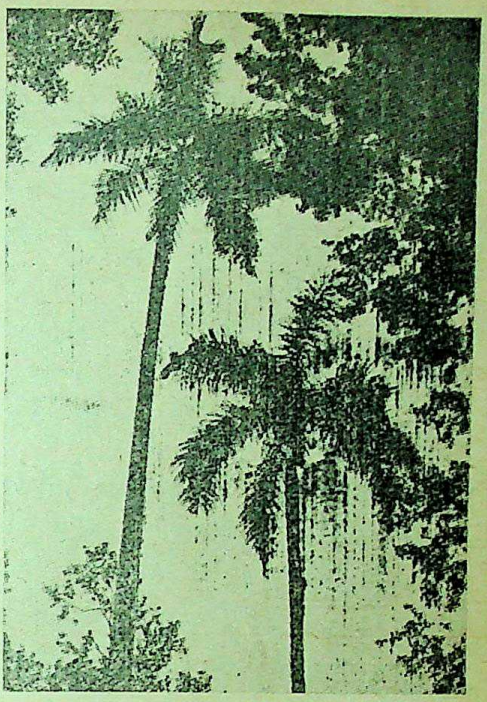

स । म । य । बो । ध

ज्योतिकी तरह प्रकाशित खंजरकी तरह चमकदार

यह इति किसी नीच प्रतिद्वन्द्वीके कारण सामने आये ना मृत्युके कारण या विश्वास-घातके कारण—कोई भी व्यक्ति, जो शिद्दतसे प्यार करता है, आत्यन्तिक पीड़ा अनुभव करता है, क्योंकि वह व्यक्तिकी हार नहीं होती, पूरे वर्ग, पीढ़ी और योग्यताकी हार होती है। कोई भी नायक प्रेमके अलावा किसी अन्य तरहसे लुट जानेपर आँसू नहीं बहाना चाहता क्योंकि वे आँसू उसके पूरे वर्गको कलंकित करते हैं। प्रतिष्ठा, कर्त्तव्य, ईमानदारी सब कुछ वह हवन कर देता है, यहाँतक कि मृत्यु-की धौंसको भी सह जाता है। ऐसा प्रेम कहीं इतने गहरे जड़ पकड़े होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भयंकरसे भयंकर स्थितिका सामना भी किया जा सकता है। नाटकों और उपन्यासों-में उदाहरण मिलते हैं कि तरुण-तरुणी अपने अग्रजोंको भी परास्त कर देते हैं अपने इस युद्धमें, क्योंकि वे माता-पिताकी तरह व्यक्तिको नहीं, अपने पूरे वर्गको देखते हैं। अपनी खुशियोंकी नींव जो लोग खुद रखते हैं और अपनी प्रतिबद्धताके लिए जो मर मिटते हैं उनके साथ ही सारे श्रोता तथा दर्शक सुखी-दुःखी होते हैं। 'रोमियो जूलि-एट,' 'टेंक्रेड', 'डॉन कॉर्लोज़', 'वेलेन्स्टीन,' 'द ब्राइड ऑफ़ मेसिना'—सभीमें यह सामर्थ्य दिखाई देती है—विजय अथवा सर्वनाश। व्यक्ति कई बार बेहद कमज़ोर हो जाता है और उसे आत्महत्या सूझने लगती है, यहाँतक कि दुहरी आत्महत्या भी इस इतिका परिणाम बन जाती है। पागलपन एक बीचका रास्ता होता है जहाँ निराशाकी स्थिति फैलकर प्रकट हो जाती है।

लेकिन प्रेमका असन्तुष्ट उन्माद ऐसी ट्रेजेडीको भी जन्म देता है कि अगले जीवनकी सारी योजनाएँ ढेर हो जाती हैं। अपने योग्य पात्रके दुर्गुणों, बीमारियों और फूहड़पन-के प्रति समर्पित व्यक्ति अन्धा तक हो जाता है। ऐसे अन्धेपनके कारण कई बार आश्चर्य होता है कि घटियासे घटिया व्यक्तिको प्रेममें महत्त्व मिल जाता है। वह जब टूटता है तो जिस अनुपातमें प्रेम पनपता है उसी अनुपातमें अन्यतम घृणा और क्रोधका कारण भी बन जाता है। जिन लोगोंमें जितनी अधिक शारीरिक निकटता होती है वे लोग उतनी ही अधिक घृणा भी कर सकते हैं। इसी कारणसे प्लेटोने इसे 'भेड़के प्रति भेड़ियेके प्यार'-जैसा खतरनाक कहा है। यह तब होता है जब संचित समर्पण और ईमानदारीके बाद भी व्यक्तिको ज़लील कर दिया जाये" 'शेक्सपीयरके अनुसार 'आई लव एण्ड हेट हर'....

वही प्यार, जो कभी ज्योतिकी तरह प्रकाशित था, स्वाभाविक रूपसे खंजरकी तरह चमकदार घृणामें बदल जाता है और यह घृणा किसी तारीखको उस व्यक्तिकी हत्या तक करवा सकती है। ऐसी घटनाएँ हर साल होती रहती हैं—अखबार भरे पड़े हैं इन सबसे। ऐसे समय गेटे सही लगता है: "मैं आज यह कह सकता हूँ कि किसी भी बेग़ैरत प्रेमसे अधिक नारकीय कोई वस्तु मैंने नहीं देखी।"

शोपेनहॉवर
('मेटाफ़ीजिक्स ऑव लव ऑव सेक्सेस' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीयता और आधुनिक भावबोध

(उमाशंकर जोशीसे एक भेंट)

विलास मुप्ते

बाधु और भारतीयताका कोई आपसी सम्बन्ध है क्या ? फिर ऐसा क्यों होता है कि जो साहित्यकार या कलाकार अपनी ऐन जवानीमें नवीनताको पूरे रोमान्सके साथ भोगता है, मूर्तिभंजनको अनिवार्य धर्म समझता है और प्रयोगोंको अपनी शक्तिका वाहक समझता है वही उतरती उम्रमें नवीनतासे खिंच-सा जाता है, बनी-बनायी मूर्तियोंमें ज़बरदस्त आस्था रखने लगता है और एक लोकको ही अपनी सिद्धि-का चरम रूप समझने लगता है ?

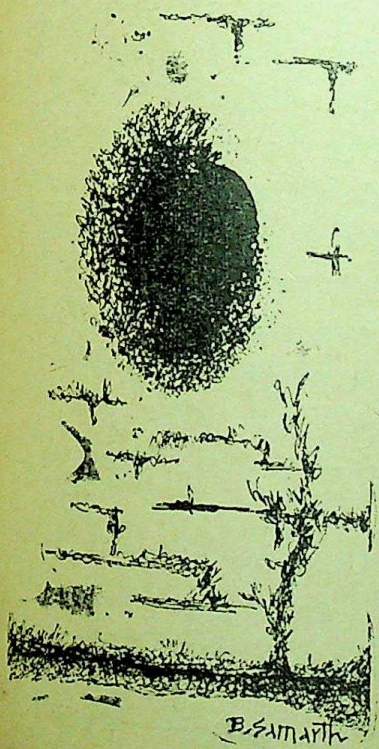

यही सवाल कुछ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपमें मेरे मनमें था, जब कि मैं गुजरातीके सुप्रसिद्ध कवि उमाशंकरजी जोशीसे मिलने पहुँचा। उनकी कविताओंके अनुवाद मैंने कई पढ़े थे, किन्तु यह मंज़ूर कर लेता हूँ कि उनके एप्रोच और विचारधारा (राजनीतिक नहीं) के सम्बन्धमें मुझे कोई जानकारी नहीं थी।

मेरे मनमें यह सवाल उठना स्वाभाविक था, क्योंकि एक ५५ वर्षीय कवि (जन्म सन् १९११) के सम्बन्धमें ऐसा सोचना अस्वा-भाविक भी तो नहीं। मेरा ख़याल था कि वे साहित्यमें भारतीय तत्त्वोंके अवश्य ही क़ायल होंगे। इसीलिए बातोंका सिलसिला शुरू होनेके बाद मैंने पूछ ही लिया था, "इधर नया साहित्य पढ़कर क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि वह पश्चिमी साहित्यकी नक़ल मात्र होता जा रहा है ?"

तभी अन्दरसे फ़ोनकी घण्टी घनघना उठी। उठते-उठते उमाशंकरजीने पूछा, "कैसे ? मैं आपका मतलब समझा नहीं।"

मैंने कहा, "मेरा मतलब है, इधर साहित्यमें भारतीय समाजका जो प्रतिबिम्ब आ रहा है, वह वास्तविक नहीं। हमारे यहाँ जो होता भी नहीं, हमारे यहाँ जितनी फ़ारवर्ड-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेस भी नहीं, उसका तकात चित्रण किया जाता है ।"

फ़ोन बुरी तरह घनघना रहा था, वे बोले, "अभी आया", और अन्दर चले गये ।

हमारी अबतककी बातचीतमें फ़ोन, मेहमान, आगन्तुक और इस तरहके कितने ही व्यवधान आते रहे थे । किसी और साहित्यकारके यहाँ, परिचितों, साहित्यकारों, नये लेखकों, पत्रकारों आदिकी ऐसी आमद-रफ़्त और फ़ोनकी यों समय-असमय घनघनाहट यदि मैंने कहीं देखी है तो वह प्रभाकर माचवेके यहाँ ।

यहाँ मैं, गुजरातीके युवक साहित्यकार रघुवीर चौधरी और गुजरातीके समीक्षक व हिन्दीके मर्मज्ञ भोलाभाई पटेल इसी अन्दाज़से आये थे कि आधा-पौन घण्टा बातचीत कर बिदा लेंगे । मैंने रातको बड़ौदा जानेकी ट्रेन भी तय कर ली थी । पर यहाँ तो बातचीत विभिन्न दिशाओंमें कुछ ऐसी दौड़ रही थी कि एक घण्टेमें हम थोड़ी-बहुत ही बातें कर सके थे, वह भी मेरे शोध-प्रबन्ध (आधुनिक हिन्दी साहित्यको अहिन्दी लेखकोंका योगदान) के बारेमें । साहित्यके शुद्ध स्तरपर तो अभी बात ठीकसे शुरू भी नहीं हुई थी ।

फ़ोन सुनकर आनेके बाद कुरसीपर बैठते हुए उमाशंकरजी बोले, "याने आपका कहना है कि हमारा नया साहित्य पश्चिमी भूमिपर चलता है ?" फिर रुककर बोले, "पर ऐसी बात नहीं है । आज तो पूर्व और पश्चिमका फ़ासला बहुत कम हो गया है । फिर खास बात यह है कि साहित्यकार और कलाकार हमेशा समयसे आगे होते हैं, उनकी दृष्टि दूरवर्ती होती है । जैसे बर्नाड शॉका नाटक 'कैंडिडे' ही लीजिए, उसमें जिस आधुनिक स्त्रीका चित्र उन्होंने उस समय प्रस्तुत किया, वह आज सत्य है ।"

मैंने कहा, "फिर भी देखिए ना कि अन्ध अनुकरणकी मात्रा कितनी बढ़ गयी है ! उदाहरणके लिए निराशावादी दर्शनकी बात लीजिए, जीवनके प्रति जिस ढंगसे उसका प्रचार किया जा रहा है वह कहाँतक ठीक है ? पाश्चात्योंकी बात जाने दीजिए, मैं भारतके सन्दर्भमें कह रहा हूँ ।"

"पाश्चात्योंकी बात क्यों जाने दें ?" मेरी पूरी बात सुनकर कुछ मुसकराते हुए वे बोले, "जीवन तो पश्चिमके ही लोग जीते हैं । जो जिजीविषा उनमें है, वह हममें कहाँ ? सार्त्र, कामू, आन्द्रे जीद, बर्नाड शॉको अगर हम ठीकसे समझनेकी कोशिश करें तो हम पायेंगे कि वे जीवन जीते थे । और जीवनकी रफ़्तारके साथ चलना ही जीवन जीना है । युरॅपके लोग घायल होते हैं, पिछड़ जाते हैं, फिर भी वे जीवनकी लयको पकड़नेको आतुर रहते हैं । यह एक विचित्र बात हो सकती है कि पाश्चात्य साहित्यमें जीवनका निराशापूर्ण चित्रण होते हुए भी उनके मूलमें जीवनकी आशा है ।"

रघुवीर चौधरी : "इसका क्या कारण हो सकता है ?"

उमाशंकरजी : "वास्तविक बात यह है कि वे जाग्रत हैं । हमें भी जीवनकी लय पकड़ना है, हमारी जागृतिको विस्तृत करना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जागृति आज भारतीय समाजके किसी भी वर्गमें नहीं है—न अध्यापकमें, न पत्रकारमें, न राजनेता या खिलाड़ीमें और न बीमा एजेण्ट या कलाकार आदिमें।"

मैं : "आपका तात्पर्य है भारतीयोंका जीवन....."

उमाशंकरजी : "हाँ, युरॅपवाले, पश्चिमवाले जीवनके क्रीडांगणमें खेलते हैं। हम तो सिर्फ़ तालियाँ बजाते हैं! दो-दो विश्वयुद्धोंके संहार सीनेपर झेलने और शीतयुद्धके आतंकमें रहनेके बाद भी वे जीना चाहते हैं। हम तो निठल्ले हैं—मेरा यह मतलब नहीं कि सबके सब। गान्धीने जीवन जिया, रवीन्द्रने जीवन जिया और भी कई लेखक, कलाकार, विचारक, नेता जीवन जी रहे हैं। लेकिन सामान्य लोगोंमें जीवनके प्रति आकर्षण नहीं है।"

भोलाभाई पटेल : "अब तो हमारा देश स्वतन्त्र है। जीवनके प्रति आस्था न होनेकी बात ही नहीं उठनी चाहिए।"

उमाशंकरजी : "नहीं, उसके पीछे कारण है। हम अभी 'टेक-ऑफ़ पीरियड' से गुज़र रहे हैं।"

फिर कुछ लोग आ गये। उनमें एक सज्जन उर्दूके महाकवि इक़बालके कविता-संग्रहका गुजराती रूपान्तर लेकर आये थे। वह संग्रह करांचीकी इक़बाल अकादमी-द्वारा प्रकाशित हुआ था। इस तरहकी महत्त्वपूर्ण कृतियोंकी भारतीय भाषाओंमें अप्राप्यताकी बात चली। किसीने कहा कि आजकल तो पाश्चात्त्य साहित्य ही बहुत अधिक पढ़ा जा रहा है और उसीका बोलबाला है।

उमाशंकरजी बोले, "बात पाश्चात्त्य या पौर्वात्यकी नहीं है, बात है प्रतिभाकी। किसी भी देशका साहित्य किसी वर्चस्वसे नहीं पढ़ा जाता। आज नॉरवे, ग्रीनलैण्ड या ऐसे ही छोटे-छोटे देशोंका साहित्य पढ़ा जानेका क्या कारण है? असल बात है प्रतिभा, अगर वह है तो पाश्चात्त्य और पौर्वात्यका कोई भेद नहीं है।"

रघुवीर पटेल : बात कुछ रुची नहीं। इसका मतलब तो यह हुआ कि पश्चिममें प्रतिभाका आधिक्य है या कहें कि पाश्चात्त्य प्रभाव ज़रूरी है, फिर वह किसी भी रूपमें हो। हालाँ कि भारतीय भाषाओंमें ऐसी रचनाओंकी सृष्टि हुई है, जो आधुनिक होनेपर भी मूलतः भारतीय हैं, इतर प्रभावसे मुक्त।"

मैं : "और आजकल यह कहा जाता है कि पश्चिमका वैचारिक दीवाला निकल गया है और हमें पुनः भारतीय प्रतिमानोंकी ओर मुड़ जाना चाहिए। ऐसी स्थितिमें....."

उमाशंकरजी हँसते हुए बोले, "दीवाला भी तो सेठका ही निकलता है। जिसके पास मौलिक विचार देनेकी पूँजी ही न बची हो, उसका क्या दीवाला निकलेगा? भारतके सम्बन्धमें (अब) यही कटु तथ्य लागू है। हम हमारे प्राचीन प्रतिमानोंके चरुवर साँप बनकर डोल रहे हैं। एक थातीकी कल्पना कर ली है; उसकी मूर्ति बना ली है और उसे पूज रहे हैं। नयी परिस्थितियों, नये परिवर्तनोंसे हम ग़ाफ़िल हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं : "आपका मतलब आधुनिक भाव बोधसे है ?"

उमाशंकरजी : "हाँ, बात आधुनिक भावबोधकी ही है। क्योंकि आज पाश्चात्त्य या पौर्वात्यका भेद न होकर बातें विश्वजनीन हैं। आजके कलाकार-साहित्यकारके लिए अगर सबसे बड़ी कोई ज़रूरत है तो यह है आधुनिक भावबोधकी और भारतीयता आधुनिक भावबोधके आड़े नहीं आती। यदि हम यह चाहते हैं कि पश्चिमके लोग भी हमारे साहित्यको पढ़ें, तो हमें इसी लीकपर चलना होगा।"

फिर कोई मेहमान आ गये और उमाशंकरजी अन्दर चले गये। अबकी वे आये तो बात पौराणिक कथाओंके नव्य रूपपर चली। भोलाभाईने अपने पासकी पुस्तक 'एक कण्ठ विषपायी' (दुष्यन्तकुमारका पौराणिक काव्य-नाटक) दिखाते हुए कहा, "यह पुस्तक मैं पढ़ रहा हूँ। आजकल इसे 'अन्धा युग' (धर्मवीर भारतीका पौराणिक काव्य-नाटक) की कड़ीकी एक चीज़ कहा गया है। आजकल यह ट्रेंड ही चल रहा है।"

उमाशंकरजी : "हाँ, मुझे मालूम है। 'अन्धा युग' में मैं इण्टरेस्टेड रहा हूँ। नरेश मेहताके 'संशयकी एक रात', दुष्यन्तकुमारके 'एक कण्ठ विषपायी' और बालकृष्ण रावके विभीषणपर लिखे पौराणिक काव्य-नाटककी आपने चर्चा की, नाम उनके मैंने भी सुने हैं। उन्हें पढ़नेको भी इच्छुक हूँ। बात यह है कि पौराणिक कथाओंके नये रूपको पढ़नेसे हमें दोहरा आनन्द मिलता है" (पुरानी कथा पढ़नेका और नये सन्दर्भमें उसकी नयी परिभाषाका)।

समय काफ़ी बीत चुका था, और भी शायद बीतता रहता। मेरी ट्रेन भी मुझे छोड़ रवाना हो चुकी थी इसलिए जल्दीका अब कोई सवाल ही नहीं था। फिर भी हमने अन्य आगन्तुकोंको संकोचमें डालना उचित नहीं समझा। हम तीनों उनसे बिदा होकर बाहर निकले तो अहमदाबादके आकाशपर रात अँगड़ाइयाँ लेने लगी थी और गरबेकी धुनें आस-पास उभर रही थीं।

■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

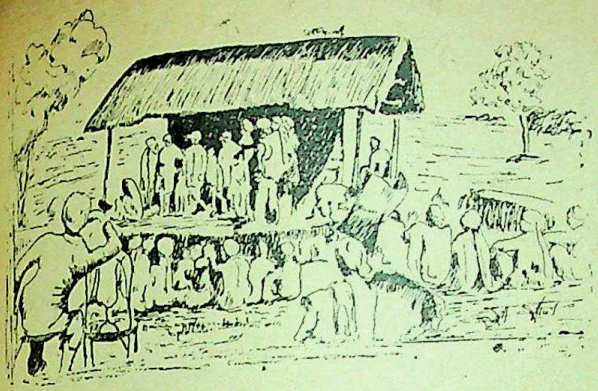

न । यी । क । ला

धरतीकी बेटी : देहाती रंगमंच

•

किशोरीलाल वैद्य

कुछ वर्षोंमें वह हक़ीक़त एक कहानी बननेवाली है। उसका प्यार उस गाँवकी मिट्टीमें मिल चुका है और जब भी कोई वहाँ क़दम रखेगा तो वह मिट्टी अपनी कहानी खुद कहेगी—यहाँ एक मेम साहब रहती थी—। 'मेम साहब'! वह अपने देहातियोंमें इसी नामसे जानी जाती है। इस धरतीकी बात यूँ है—इसे उसने बेहद प्यार किया। अपने जीवनका एक-एक क्षण उसने सचेतन रूपसे इस धरतीके लिए जीया और आज भी नवासी वर्षकी उमरमें वह कुछ भी गँवाना पसन्द नहीं करती—न समयका एक पल और न पानीकी एक बूँद! किसीसे मिलना-जुलना तक़रीबन 'नहीं' के बराबर हो गया है। ज़िन्दगीकी इस ढलती साँझमें, जिसके प्रति वह पूर्णतः सचेत है, अब ऐसे भी वक़्तकी गुंजाइश कहाँ जो बातचीतमें लगाया जाये। दुनियासे लगभग हट चुकी है—पूरी तरह सक्रिय जीवन जोनेके लिए। इसीलिए उसकी एस्टेटके बाहर एक तख्ती लटकी रहती है जिसपर लिखा है—'स्ट्रिक्टली प्राइवेट, नो विज़िटर्स।'

अन्द्रेटामें उसकी कहानी तीस वर्ष पूर्वसे शुरू होती है। १९३५ में श्रीमती ई० डब्ल्यू० पार्करने १५ एकड़ भूमि उसे भेंट स्वरूप दी। इसी पार्कर एस्टेटमें वह तबसे आज तक रह रही है।

१९२० में जब नौराके पति प्रो० फ़िलिप रिचर्ड्सका देहान्त हो गया तो वह भारत छोड़ इंग्लैण्ड चली गयी। चैलसामें फ़िलहारमौनिक नामक हॉलमें 'थ्रू रोमाण्टिक इण्डिया' एक फ़िल्म चल रही थी। नौरा रिचर्ड्सने यह महसूस किया कि उक्त फ़िल्ममें भारतके साथ अन्याय हुआ है। इसके विरुद्ध उसने ज़ोरसे आवाज उठायी और फ़िल्मको बन्द करवाना चाहा। वह इतनी क्रोधित हुई कि उन्होंने शो-केसको तोड़कर उस फ़िल्मका इश्तहार फाड़ दिया। हिन्दुस्तानकी इस मिट्टीसे अपने लगावके कारण वह यह सब कुछ करनेपर मजबूर थी और अपने इस 'दीवानेपन' के लिए हौलोवे जेलमें एक महीनेकी क़ैद भुगती। नौराका दिल इंग्लैण्डसे उखड़ चुका था। भारत लौटना चाहती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैम्पस्टीड गार्डनमें स्थित अपने सासके घरपर घरेलू काम-काज करती रही ताकि भारत लौटनेके लिए यात्राका किराया जुटाया जा सके। सितम्बर, १९२४ में वह वापस चली आयी। मई, १९२५ में पालमपुरके पास मण्डी पठानकोट सड़कपर बनूरी—(एक छोटे-से गाँव)में रहने लगी।

ग्रामीण जीवनको निखारनेके लिए नाटक-को उसने एक माध्यमके रूपमें चुना क्योंकि रंगमंच अनेक कलाओंमें जीवनकी अभिव्यक्ति-का सबसे अधिक सार्थक, सशक्त और महत्त्व-पूर्ण माध्यम है। इसकी पहुँच शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही प्रकारके लोगों तक है। कई वर्षों तक ग्रामीण रंगमंचके साथ उसका सक्रिय सम्बन्ध रहा। नाटक-लेखन व अभि-नयसे नियमित रूपसे प्रशिक्षण चर्याका आयो-जन होता रहा। वुडलैण्ड्सको ग्रामीण रंगमंच और सांस्कृतिक अनुसन्धानका केन्द्र बनाना उसका ध्येय रहा है। एल० पी० जैक्सकी तरह उसका विश्वास है कि सत्ताके स्थानपर केवल संस्कृतिको ही आसीन किया जा सकता है। कलाके द्वारा ही मनुष्यका आत्मिक विकास सम्भव है और कलामें साहित्य व नाटक सबसे अधिक सूक्ष्म है।

गाँवोंसे गन्दगी दूर कर लो जाये, लोग सादगी व साफ़-सुथरे ढंगसे रहें—उसने अपने इस ध्येयकी प्राप्तिके लिए नाटकको अपना माध्यम चुना है। नाटकको जन-जीवनमें उतारनेका सबसे अधिक श्रेय नौरा रिचर्ड्सको है क्योंकि ग्रामीण जनताके लिए उसने नाटक लिखे हैं और उन्हें अभिनीत कर ग्राम्य समस्याओंके प्रति उन्हें उद्बोधित व सचेत किया है। इसके विपरीत आजका नाटककार तो शहरी जीवनसे बाहर ही नहीं आता। हिमाचल व काँगड़ामें करियाला व बाँठड़ा 'लोक नाट्य'के रूपमें प्रचलित रहे हैं जिनका ध्येय अधिकांशतः मनोरंजन रहा है। नाटकोंमें पहाड़ी जनताकी रुचि परम्परागत है और उसको नौराने उद्देश्यपूर्ण नाटक लिखकर परिष्कृत किया है।

रंगमंचके सम्बन्धमें नौराका मत है "रंग-मंच हमें सच्चे अर्थोंमें मानव बनाता है। भारतको आज इसकी आवश्यकता है, सारा संसार इसे चाहता है।" नौरा रिचर्ड्सका अपना जीवन रंगमंचकी तरह खुला है। वह जीवन-भर ग्रामीण जन-जीवनके उन्नयन हेतु कार्यरत रही है। एक आम ग्रामीणका जीवन किस प्रकार सोद्देश्य व अर्थपूर्ण बन सकता है, उस तरहका जीवन ही वह स्वयं व्यतीत कर रही है। मिट्टी व बाँस (घास-फूस) उसकी जीवन पद्धति है। ग्राम्य जन-जीवनको सफ़ाईके प्रति सचेत बनानेके लिए रंगमंच एक माध्यम है, जो उसके पास है। रंगमंचके माध्यमसे वह उसे लुटाती है। वाल्ट व्हिटमैनकी एक उक्तिको उद्धृत करते हुए वह एक जगह लिखती है—"धन-सम्पत्तिको समेटना तुम्हारा काम नहीं। तुमने जो कुछ भी कमाया है या प्राप्त किया है उसे मुक्त हाथोंसे लुटाओ" सम्भवतः यही उसके जीवनका भी सार है।

भारतीय रंगमंचके विकासमें नौराकी बहुत बड़ी देन है। देहाती मंच (रस्टिक थियेटर) तो एक मात्र उसीकी देन कही जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

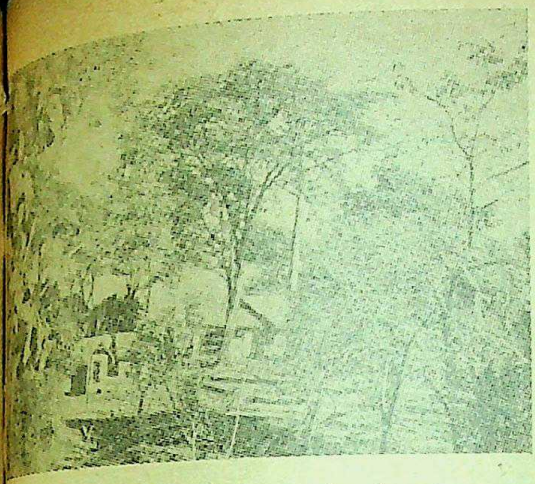

पार्कर एस्टेट : उन्मुक्त सौन्दर्य

सकती है। रंगमंचको अपने-आपमें वह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानती। उसके रंगमंचीय क्रिया-कलापका सीधा सम्बन्ध देहात-सुधारसे रहा है। आरम्भमें रंगमंचमें एक अमेच्योरकी हैसियतसे उसकी रुचि रही और फिर बैन ग्रोट, एफ० आर० बेनसन आदिके साथ रंग-मंचके साथ व्यावसायिक सम्बन्ध रहा। भारतमें १९११ से ही रंगमंचके साथ उसका सम्बन्ध बन गया था।

१९१५ तक रंगमंच सम्बन्धी उसका क्रिया-कलाप दयाल सिंह कॉलेज तक सीमित रहा जहाँ 'ए मिड समर नाइट्स ड्रीम' 'स्प्रैडिंग द न्यूज़' (लेडी ग्रेगरी लिखित), 'एज यू लाइक इट', 'मर्चेण्ट ऑव वैनिस' के कुछ एक दृश्य, 'कोरियालैनस', 'दुल्हन', 'कीचन', 'ट्वैल्फ्थ नाइट' खेले गये।

१९१५ ई० में दयाल सिंह कॉलेज छोड़नेपर एक अन्तर-कॉलेज स्तरपर सरस्वती स्टेज सोसाइटीका निर्माण किया। एस० पी० एस० के० हॉलके निर्माणके लिए फण्ड एक एकत्रित करनेके लिए तीन नाटक खेले—'स्प्रैडिंग द न्यूज़', 'दुल्हन' और 'दीनाकी बारात'। १९१६ में यूनिवर्सिटी और सरस्वती स्टेज सोसाइटीके संयुक्त तत्त्वावधानमें शेक्सपियरकी ३०० वीं वर्षगाँठके उपलक्ष्यमें 'ए मिड समर' 'नाइट्स ड्रीम' खेला गया। इसी वर्ष 'सती' अभिनीत हुआ। १९१८ में कसोलीमें बितायी गयी ग्रीष्मकालीन छुट्टियोंमें 'भारत वर्ष' और 'बाल्मिकी' दो अन्य नाटक लिखे। इसी वर्ष बाबा बूध सिंह-द्वारा लिखित 'दलेर कौर' की रिहर्सल हुई लेकिन नाटक फ़्लूके फैलनेके कारण अभिनीत न हो सका। १९१९ में

देहाती रंगमंच : रस्टिक ओपन एअर थियेटर

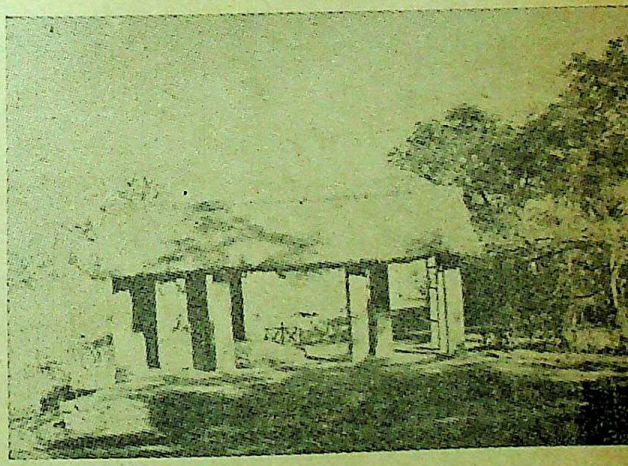

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती एनुअल स्थापित किया जिसके क्रमशः तीन वर्षमें तीन अंक प्रकाशित हुए।

१९२० में नौराके पति प्रो० फ़िलिप अरनैस्ट रिचर्ड्सका देहान्त हुआ तो वह भारत छोड़कर चली गयी। १९२३ में लन्दन-में साउथ कैंसिंगटनके स्थानपर बने अलबर्ट म्यूज़ियममें एक अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच प्रदर्शनी हुई जिसके आयोजनमें एडवर्ड गौरडन क्रेगकी सहयोगी रही।

नौराके लिए हिन्दुस्तानी मिट्टीका ऐसा आकर्षण रहा कि १९२४ सितम्बरमें वह फिर लौट आयी। इसी वर्ष नवम्बरमें दयाल सिंह कॉलेज लाहौरके ओपन एयर थियेटरमें 'द मर्चेण्ट ऑव वैनिस' और दिसम्बरमें क्रिसमस-के अवसरपर फ़ारमन कॉलेज, लाहौरमें 'इगर हार्ट' प्रस्तुत किये। इन दोनों ही नाटकोंमें 'गोर्डन क्रेग लाईटिंग इफ़ेक्ट' दिये गये।

रंगमंचसे नौरा रिचर्ड्सका सम्बन्ध नाटक लिखनेसे लेकर अभिनय निर्देशन और प्रस्तुती-करण तक है। उसने अनेकों नाटक लिखे, अभिनीत तथा प्रस्तुत किये हैं जिनमें 'पुत्र घर आया' और 'भूमि माता' हिन्दुस्तानीमें अनूदित व रोमन लिपिमें प्रकाशित उपलब्ध हैं। प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं : द फलावर मेकर (एकांकी १९१० ई० में प्रकाशित), सती (१९१४), मैजिक बूम्स (हिन्दी, उर्दू और पंजाबीमें), हमारा गाँव (१९३३), ड्रामा इन एड्यूकेशन (१९४५), हिस्टॉरीकल प्लेलैट्स (१९४६), ए डे इन द लाइफ़ ऑव अकबर (१९४६), होमलैस (१९४८)। बॉय-ग्राफ़ी ऑव एस० एस० भटनागर (१९४९), द विलेज प्ले (१९५५), प्ले राईटिंग एण्ड प्ले मेकिंग (१९५६), द सन कम्स होम (अनुवाद) पुत्र घर आया, (१९५६)। मुद्रित पुस्तकें इस प्रकार हैं—मदर अर्थ (अनुवाद), भूमि माता (१९५६), कोअल (१९१३), सती (१९१४), भारत वर्ष (१९१८) और बालिमकी (१९२०)।

वुडलैण्डमें ड्रामा सम्बन्धी कोर्स आयोजित किये जाते रहे हैं। नाट्य-विद्यार्थियों व अतिथियोंके लिए वहाँ आवासकी सुविधाएँ हैं। रंगमंच सम्बन्धी व्यवस्थामें रस्टिक ओपन एयर थियेटर व ग्रीन रूम हैं।

श्रीमती रिचर्ड्सके नज़दीक ही पार्कर एस्टेटमें प्रो० जयदयाल रहते हैं। नौराको अपने रंगमंच सम्बन्धी क्रिया-कलापमें प्रो० जयदयालसे सबसे बड़ा सहयोग प्राप्त है। इस शताब्दीके आरम्भमें जब नौराके पति दयाल सिंह कॉलेजमें अँगरेज़ीके प्राध्यापक थे तो जयदयाल नौराके सम्पर्कमें आये और नौरासे ही उन्होंने अभिनय सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त की। कॉलेजसे निकलनेपर जयदयाल पेशावरके एड-वर्ड कॉलेजमें अँगरेज़ीके प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहीं पृथ्वीराज कपूर पढ़ रहे थे। कॉलेज-में रंगमंच सम्बन्धी गतिविधिसे जयदयालका निकटका सम्पर्क रहा। पृथ्वीमें अभिनय-सम्बन्धी जन्मजात प्रतिभाको देखकर दोनोंका सम्पर्क गहराना स्वाभाविक था। रंगमंचपर गुरु और शिष्यका सम्बन्ध मैत्रीके रूपमें विकसित हुआ। आज भी कई बार पृथ्वी पार्कर एस्टेट पहुँचते हैं। वहाँ उन्होंने मकानके लिए जगह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले रखी है। पृथ्वीकी सुपुत्री प्रत्विके लिए ... लिखनेके लिए खाकी चटाइयाँ, सोनेके लिए बाँसकी चारपाइयाँ, चीजें रखनेके लिए आलमारी, किताबोंके लिए रैक और अन्य सुविधाओंसे युक्त ये झोंपड़ियाँ अपनी सादगीके साथ निखर आयी हैं। किचनमें धुएँके लिए चिमनी है और बाथ व किचनके केवल उस भागमें सीमेण्ट लगा है जहाँ पानी फेंकनेके लिए जगह बनी है। पार्कर एस्टेटकी घासनीपर रैण्डम हारवेस्टका अपना निजी सौन्दर्य है। हर पेड़, पौदा व पत्ती नौरा रिचर्ड्सके जीवनका अंग है और उसमें मिट्टीसे बनी, मिट्टीसे लिपी-पुती झोंपड़ी ऐसी लगती है मानो मनुष्यके हाथोंका निर्माण न होकर धरतीके पेटसे निकल आयी हो। इस स्थानका नाम उसने उडलैण्ड्स रखा है। कितना सार्थक नाम है। यूँ नौराके लिए इसका एक और अर्थ भी है। दक्षिणी इंग्लैण्डके डौरसैटमें एक गाँवका नाम उडलैण्ड्स है। यहीं अपने रंगमंचीय जीवनके बाद वह अत्यन्त सादगीके साथ रहने लगी थी। कैसी ज़िन्दगी है। जो भी सार्थक नजर आया है उसे आजीवन समेट लिया है। छोटी-छोटी बातें ज़िन्दगीको कितना आयाम दे गयी हैं। प्रकृतिसे इतना लगाव कि उडलैण्ड्स स्थित उसके बगीचेमें उस मौसममें भी कोई-न-कोई फूल उसके लिए खिल उठता है, हँस देता है, जब अन्यत्र कहीं कुछ देखनेको नहीं मिलेगा।

नौराके मस्तिष्कपर डॉ० एल० पी० जैक्स-द्वारा लिखित 'द लिजेण्ड्स ऑव स्मोकोवर' की पकड़ रही है। उक्त पुस्तकमें 'संस्कृति बनाम सत्ता' विषयक उसके विचार

नौरा सोचती है कि वह अपने जीवन-कालमें उन्हें वहाँ निवास करते शायद ही देख सके।

प्रो० जयदयाल तपिशसे ज़िन्दगी व्यतीत कर रहे हैं। जब पृथ्वी राजकपूर रंगमंचके क्षेत्रमें चोटीके कलाकार थे तो उन्होंने चाहा था कि प्रो० जयदयाल उनकी इस कलाको देखें जिसका सूत्रपात इन्हींकी प्रेरणा व सम्पर्कमें हुआ था। जयदयालको पृथ्वी थियेटर्सकी ओरसे पृथ्वीराजका निमन्त्रण मिला। दक्षिणी भारतमें पृथ्वी थियेटर्सके साथीके रूपमें जयदयाल साथ थे। उनके इस भ्रमणके 'इम्प्रेशन्स' उनकी डायरीके रूपमें संकलित हुए जो एक पुस्तक 'आई गो साउथ विथ पृथ्वीराज ऐण्ड हिज़ पृथ्वी थियेटर्स'के रूपमें नालन्दा पब्लिकेशन्सने प्रकाशित किया। रंगमंच सम्बन्धी छिटपुट भावनाओंकी सुन्दर अभिव्यक्तिके लिए यह पुस्तक रंगमंचको ही समर्पित है।

नौरा रिचर्ड्सका एक अलग-सा अन्दाज़ है जिसे उसके जीवनके हर पहलू, उसके हर क्रिया-कलाप और उसकी छोटीसे छोटी हरक़तमें देखा जा सकता है। व्यस्तता और सादगी उसके जीवनके आभूषण हैं। हिन्दुस्तानके ग्रामीणोंकी बात उसकी नस-नसमें चली गयी है, उसकी हर धड़कनमें एक शब्द व्याप्त है—स्वच्छता। जिस तरहकी ज़िन्दगी वह व्यतीत करती है वह ऐसी है जो हर ग्रामीणके लिए सम्भव है। उसके जीवनके तीन उपकरण हैं—खद्दर, बाँस और मिट्टी। मिट्टीसे सीधा सम्पर्क। मिट्टीकी दीवारोंपर कहीं भी सफ़ेदीकी लीप-पोत नहीं। हर झोपड़ीमें हर सुविधा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण थे। नौरा समझने लगी थी कि भारतके लिए यह अनिवार्य है कि यहाँ एक सांस्कृतिक सभ्यताका उदय हो और फिर अन्द्रेटामें उसने अपने विचारोंके अनुकूल अपना संसार बनाया जिसे 'उडलैण्ड्स रिट्रीट' के नामसे जाना जाता है, जहाँ सफ़ाई है, खुशबू है, सादगी है, सुन्दरता है, व्यस्तता है, आराम है।

पिछले वर्ष हुई एक भेंटमें मैंने उससे पूछा कि वे कौन-से व्यक्ति हैं जिनके विचारोंने उसके जीवनको प्रभावित किया है। उसका उत्तर था, "बहुत-से हैं। डॉ० एल० पी० जैक्सके अतिरिक्त वाल्ट व्हिटमैन, हैनरी डेविड थोरियो, एडवर्ड कारपैण्टर और लियो टालस्टायके नाम गण्य हैं।" यह सुरक्षित रूपसे कहा जा सकता है कि अब नौरा इसी श्रेणीका एक उल्लेखनीय नाम है—लेकिन उस श्रेणीकी इकाइयोंकी तरह ही उसका अपना अलग-अलग अस्तित्व है।

अपने ८९वें वर्षमें नौरा जिस ढंगसे रह रही है वह समयके लिए एक चुनौती है। नौराके जीवनपर दृष्टि डालनेसे दो बातें एक साथ उभर आती हैं—देहात-सुधार और रंगमंच सम्बन्धी उसका सृजनात्मक क्रिया-कलाप। उसकी हर साँस अन्द्रेटाकी इस मिट्टीपर आज भी पूर्ववत् अपने निशान बना रही है। आयर लैण्डकी यह बेटी धौलाधारकी छाँवमें रह रही अपने-आपमें अनुपम है। उसकी ज़िन्दगी एक हक़ीक़त है, जाने यह कब कहानी कहलाने लग जायेगी!

(इस लेखके चित्र श्री भीमचन्द्र हाण्डा)

महिलोपयोगी एकमात्र उत्कृष्ट मासिक

'शृङ्गार'

प्रबन्ध सम्पादक : देवेन्द्र अग्रवाल ■ सम्पादिका : लावण्यप्रभा

- विचारपूर्ण व उपयोगी लेख
- स्त्रियोपयोगी रुचिकर सामग्री
- रोचक मनोवैज्ञानिक कहानियाँ
- कविताएं तथा सुन्दर गीत
- महिलाओंके इण्टरव्यू
- गृह-सज्जा, प्रसाधन समस्याएं, विचार-मंच आदि अनेक रोचक स्थायी स्तम्भ।

मूल्य : वार्षिक : ५ रुपये, मासिक : ५० पैसे

१३।३७, शक्तिनगर, दिल्ली-७

फ़ोन नं० : २२७३००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

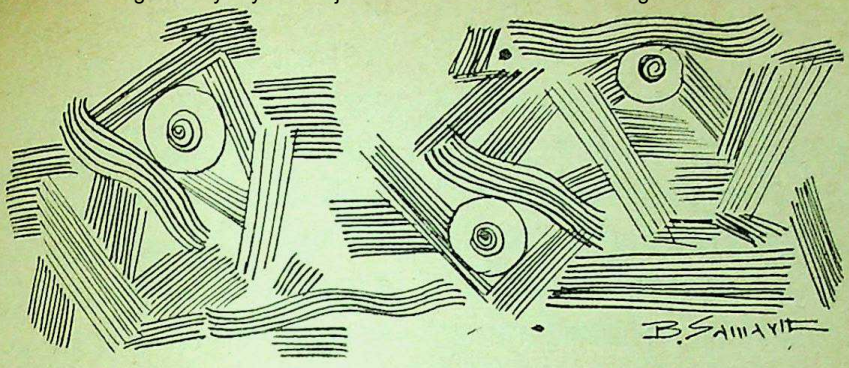

सा । हि । त्य । भू । मि

ज्ञानाश्रयी सन्त और अक्षर अनन्य

अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव

अठारहवीं शताब्दीका प्रारम्भ होते-होते भारतमें धार्मिक पन्थोंकी संख्या यद्यपि अनेक हो चुकी थी किन्तु सूक्ष्म तत्त्ववादपर आधारित न होनेके कारण वे पन्थ किसी ऐसी सैद्धान्तिक विचारधाराको प्रवाहित न कर सके जो स्वयंमें पूर्ण हो। मध्ययुगमें भक्ति-आन्दोलनने साधनाप्रणालीका सम्बन्ध भी कायासे स्थापित कर दिया था। इन दोनों-का परिणाम यह हुआ कि वैचारिक गहराई समाप्त हो गयी और जाति-पांतिके खण्डन करने, मूर्ति-पूजाका विरोध कर ईश्वरको सर्वव्यापक बतलाने, साधनाकी बाह्य क्रियाओं यथा तिलक-केश-माला आदिकी निन्दा करना ही वैचारिकताकी सीमा बन गयी थी। ईश्वरको घट-घट व्यापक कह देने तथा मृग और कस्तूरीका उपमान लेकर उसे अपने ही भीतर खोजनेकी बात कह देनेको ही सूक्ष्म तत्त्ववादका मूल कहा जाना समझा जाने लगा। पण्डितों और मौलवियोंको गाली देने तथा वेद-पुराणोंकी निन्दा करनेका भी तात्पर्य यही समझा जाता था कि गालियाँ देनेवाला पण्डितों और मौलवियोंके प्रत्येक रहस्यका मर्मज्ञ है तथा वेदोंसे भी परे है। ज्ञानाश्रयी परम्पराके दो-चार कवियोंको छोड़कर शेष सन्तोंने ज्ञानकी बड़ी ही ऊपरी और उथली बातें कही हैं। ज्ञानश्रयी परम्पराके मूर्धन्य कवि माने जानेवाले कबीरके सम्बन्धमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है: "कबीरदासने पौराणिक हिन्दू धर्मके आचार बाहुल्य-को ही अधिक लक्ष्य किया था। कोई पूजा या उत्सव उनको दृष्टिमें ज्यादा खटकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था पर उस पूजा या उत्सवके पीछे छिपा हुआ तत्त्ववाद प्रायः ही उनकी दृष्टिमें उपस्थित नहीं होता था। मूर्तिकी उपासना उनको बुरी लगती थी पर ऐसा जान पड़ता है कि मूर्तिवाला तत्त्ववाद उन्हें मालूम ही न था। शायद ही किसी दार्शनिक तत्त्ववाद या पौराणिक रहस्य व्याख्याका उल्लेख उनके ग्रन्थोंमें पाया जाय। वेद-पाठ, तीर्थ-स्नान, व्रतोद्यापन, छुआछूत, अवतारोपासना, कर्मकाण्ड इत्यादि सबके विरुद्ध कबीरदासने लिखा है, पर कहीं भी इनकी गूढ़ व्याख्याओंको या इनकी पृष्ठभूमिके तत्त्ववादको उल्लेख योग्य नहीं समझा।" केवल कबीर ही नहीं प्रत्युत ज्ञानाश्रयी परम्पराके अधिकांश कवियोंकी वैचारिकताकी यही सीमा रही है। इस परम्पराके साहित्यको देखकर यह कहा जा सकता है कि दो-चारको छोड़कर शेष सन्तोंके साहित्यमें काव्य-कला और दार्शनिक विचार-धाराकी घोर विडम्बना हुई है। ज्ञानाश्रयी साहित्यमें ज्ञानका अत्यन्त सामान्य स्तर ही देखनेको मिलता है।

इस परम्परामें अक्षर अनन्यको ज्ञान तथा वैचारिकताकी यह विडम्बना बुरी प्रकारसे खटकी थी और इस प्रकारके साहित्यको उन्होंने 'मिथ्या बकवाद' से अधिक कुछ नहीं माना। ज्ञानके क्षेत्रमें व्याप्त आडम्बर और मिथ्याचारपर भी अक्षर अनन्यकी सूक्ष्म दृष्टि पड़ी थी अतएव तत्त्ववादसे दूर थोथे ज्ञान-कथनकी उन्होंने घोर भर्त्सना की है। अविद्याके बकवाद बढ़ने और अविद्याकी चर्चाओंके कारण विद्याकी हानि होते हुए देख उनके हृदयको गहरा आघात पहुँचता था। इस कालमें कला और शास्त्र दोनोंकी ही उपेक्षा की जा रही थी। ब्राह्मण, वेद, शास्त्र एवं पुराणादिका अध्ययन ज्ञानार्जनके उद्देश्यसे नहीं प्रत्युत कथा-वाचनादिके द्वारा अर्थार्जनके उद्देश्यसे ही किया करते थे। अर्थ-लोभमें कवि छन्द-कवित्तोंका और गुरु-ब्राह्मण मन्त्रोंका व्यापार किया करते थे। इस कालकी एक विचित्र स्थिति यह भी थी कि एक ओर तुलसी शूद्र जातिके व्यक्तियोंको तिलक लगाते और भजन-पूजन करते देख जल जाते और उसे कलियुगका प्रत्यक्ष अवतरण मानते थे तो दूसरी ओर कबीर तथा रैदास-जैसे सन्त ब्राह्मणोंके तिलक, छापा, माला आदिको निरा पाखण्ड मानकर उनकी खिल्ली उड़ाते थे इन सबके बीच सूक्ष्म तत्त्ववादपर विचार करनेका श्रम बहुत ही कम कवियोंने किया।

साधनाका सम्बन्ध जब काया और मात्र बाह्य क्रियाओंसे जुड़ गया तो उसमें अनेक आडम्बरों और पाखण्डोंकी वृद्धि हो जाना स्वाभाविक ही था। इसके पूर्व दर्शनाचार्योंने ब्रह्म जीव और जगत्—तीनोंकी बारीकियोंको इस प्रकार उधेड़ा था कि इन तीनोंका वास्तविक रूप जिज्ञासुओंके समक्ष उतर आया था। भेदकी जो किंचित् भूमि अवशिष्ट छोड़ी गयी थी वह भी चिन्तन और विवेककी नींवपर ही आधारित थी। चित-अचितको भली-भाँति अथवा पूर्णरीत्या समझे बिना इस सम्बन्धमें बोलनेका उस युगमें किसीको अधिकार ही न था। यदि कोई अधकचरा पाण्डित्याभिमानी बोलनेका साहस भी करता था तो उसे चारों ओरसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाद अथवा शास्त्रार्थके लिए ललकारा जाता था। अपनी मान्यताओंको सिद्ध न करने अथवा किसी प्रकारकी नयी मान्यता न दे सकनेकी स्थितिमें उसे मात्र शिष्य बननेका अधिकार प्राप्त होता था, गुरु बननेका नहीं। इस स्थितिमें प्रत्येक साधक कहे जानेवाले व्यक्तिके द्वारा नया पन्थ चलाये जानेका प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था। धीरे-धीरे यह परम्परा समाप्त हो गयी और चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दीमें तो नया पन्थ चलानेका मानो प्रत्येक किसीको अधिकार मिल गया था। ज्ञानकी मूल भूमिकाओं और उसके सूक्ष्म तत्त्वोंके सम्बन्धमें सोचने-विचारनेकी आवश्यकता ही नहीं रही थी। इस प्रकार ज्ञानके क्षेत्रमें भी आडम्बर उतरने लगा था। अपने मतको स्पष्ट किये बिना ही पण्डितों मौलवियोंको पचास गालियाँ दे देने मात्रसे पाण्डित्यकी धाक जम जाती थी। जिस प्रकार तिलक, माला, केश आदि धारण करनेसे कोई भी व्यक्ति भक्त होनेका दावा कर सकता था उसी प्रकार अब ज्ञानकी दो-चार ऊपरी और उथली बातें करने तथा सभी साधना पद्धतियोंको एक-दम पाखण्ड घोषित कर देने मात्रसे कोई भी सन्तोंकी श्रेणीमें जा बैठता था। इन कारणोंने ज्ञानके क्षेत्रमें आडम्बरके प्रसारका मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया था। अक्षर अनन्यने इस सबके प्रति लोगोंको सचेत करते हुए लिखा है कि इस प्रकारकी व्यर्थ चर्चाओंमें न पड़कर आत्मतत्त्वपर विचार करना चाहिए। अनेक प्रकारकी थोथी ज्ञान-चर्चाएँ करनेवालेको उन्होंने बकवादी तथा चबाई कहा है: 'लोकम अविद्याके अनेक बकवाद बढ़े।'

"चित्त ठहराय मन लाय तत्त्व मूरत में,
सुरति न भूले गुण दोषन के गथ में।
नाना रसवादी ज्ञानवादी बकवादी नर,
परिये न चरचा चबाइन के पथ में।
गुरु को सबद ज्ञान रूप है सबद ब्रह्म,
सकल सिद्धान्त वेद वाही के अरथ में।
'अक्षर अनन्य' ज्ञान योग सो अराध सदा,
राखो समरथ को मनोरथ के रथ में।"

इसका तात्पर्य यह न समझ लेना चाहिए कि 'अक्षर अनन्य' और कबीरके स्वर समान थे। 'अक्षर अनन्य' ने इसके विपरीत न तो गाली-गलौजमें ही अपना समय नष्ट किया और न किसी तत्त्ववादको समझे बिना उसकी आलोचना ही की। उनकी दृष्टि सबसे अधिक उस युगमें व्याप्त आडम्बरपूर्ण ज्ञानाचारपर ही टिकी थी। तान्त्रिक साधनाको अपनानेवाले लोगोंने मन्त्रादि चेटकोंमें और उनके चमत्कारोंमें सामान्य जनताको भुला दिया था। सिद्धि-प्राप्तिका प्रलोभन देकर सर्व-साधारणको अपनी ओर आकृष्ट कर स्वार्थ-सिद्धि ही इनका लक्ष्य था। इन झमेलोंमें फँस जानेपर लोग ज्ञान-आनकी सब बातें भूलने लगे थे। राजाओंको हँसी-मज़ाक़के द्वारा रिझाना राज-दरबारमें रहनेवालोंका तथा कपट वेष धारण कर भिक्षुककी भाँति घूमते फिरना साधकोंका काम रह गया था। अक्षर अनन्यके ही शब्दोंमें—

"आज कलि काल में कुचाल देखी जहाँ-तहाँ,
उद्यम की धुनि प्राणी ज्ञान बिसराये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँसी ठगसार [illegible] को रिझावौ नृप,
कपट पाखण्ड भेष भिक्षुक बढ़ाये हैं।"

"एकै छन्द बद्ध कविता रच ग्रन्थ कवित्त
बखाने
नाना उक्ति जुक्ति को बरनन यहै
ज्ञान करि माने"

"एकै लोग प्रयोग साधिकै कहत सिद्धि कर देने
क्यों न सिद्ध कर लेत आयु को
मिस कर धन ठग लेने
क्रिया सिद्धि क्यों होत भक्ति बिनु
बेचत इष्ट भिखारी"

"सु अबके गुरु कहत और हैं करत और हैं। परबोधि कर शिष्य साखा करि धन लीबे पै नज़र राखत हैं। शिष्य साखा करि रुजिगार चलावत हैं। दो बातनकी हानि अर्थ हानि और परलोक विगरै।"

इस युगका सबसे बड़ा दोष यह था कि मन-वचन-कर्ममें एकरूपता शेष नहीं रह गयी थी। 'अक्षर अनन्य' ने इसे लोक और परलोक दोनोंके लिए हानिकर कहा है। वह इस प्रकारके प्रचारको व्यवसायसे अधिक कुछ भी माननेको तैयार नहीं।

यह पाखण्ड गुरु-शिष्य दोनोंमें ही व्याप्त हो गया था। गुरु-शिष्य दोनोंके ही इतने निचले स्तरपर आ जानेके कारण भक्ति अथवा ज्ञानकी सभी सत्यता असत्य और आडम्बरसे आवृत्त हो गयी थी और मात्र नक़लें शेष रही थीं। इनके मूल तत्त्वोंको ही लोग भूल चुके थे। नाक-कान बन्दकर साँस खींचना ही योग तथा साखी सबदी बनाना अथवा पढ़ना ही भक्ति था। इन सबके सम्बन्धमें 'अक्षर अनन्य' ने लिखा है :

"चाहिए गुरु होके अपुन सिद्धान्तको राह चलै अरु साँचों उपदेश कर। अरु शिष्य ऐसी चाहिए जु गुरुकी आग्या होई सोई करै अरु माथो दीबेलों त्रिसुद्ध रहै। ऐसे दोई होय तब जु क्रिया साधै सु सिद्ध होय। सुया युगमें दो मन एकसे जुरिबो कठिन है। न एकसे गुरु शिष्य न एकसे अस्त्री पुरुष। ईश्वरकी कृपाते विरली जांगां होत हैं। ताते अब या जुगमें पंचांग भक्ति वा अष्टांग जोग नहीं सधत। नकलें होय रहीं हैं। भक्ति तो यह रही है टीकौ माला आरती जाइबो साखी सब दी सीखिबो, बनाइबौ चरचा बाद कीबौ। अरु जोग इतनौ जु सुर परिछा आसने साधी। ऐसे-ऐसे भरमनाके पंथ अग्याननि चलाये हैं। तिनकी बातनिमें बहुतेरे भूलि रहे हैं। ये पाखण्ड कहावत हैं जिनके करे को अरु कहे सुनेको फल कछू नाहीं।"

विविध पन्थोंकी स्थापना भी मिथ्याचरण व्याप्तिका ही परिणाम था। ज्ञान-भक्ति तथा शास्त्रादि-पठन प्रत्येक क्रियामें मिथ्याचार प्रविष्ट हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है मानो इस युगमें बिना किसी विशिष्ट तत्त्ववाद अथवा सिद्धान्तका अनुसरण किये ही अपनी शिष्य-मण्डलीको लेकर अलग हो जाने मात्रसे नये पन्थकी नींव पड़ जाती थी। कबीर-पन्थ, नानक-पन्थ, दादू-पन्थ, भीखा-पन्थ, मलूक-पन्थ, रैदासी-पन्थ, कमाल-पन्थ आदिके सिद्धान्तोंमें कोई तात्त्विक भेद दिखाई नहीं देता। इसपर भी मध्यकालमें पन्थोंकी कुछ ऐसी बाढ़-सी आ गयी थी कि अधिकांशतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक साधक अपनी शिष्य-मण्डली बनाकर एक नया पन्थ चला देता था। रैदासी सम्प्रदायके सम्बन्धमें श्री परशुराम चतुर्वेदीने लिखा है, "रैदासी या रविदासी सम्प्रदाय शब्द अधिकतर चमार जातिके उन व्यक्तियोंके समूहका द्योतक है जो किसी-न-किसी प्रकारका धार्मिक जीवन व्यतीत करते और इसी कारण साधु या सन्त कोटिके पुरुष माने जाते हैं।" इससे स्पष्ट है कि रैदासी सम्प्रदायके कोई विशिष्ट सिद्धान्त नहीं रहे जिनके आधारपर उसे नया पन्थ स्वीकार किया जा सके। 'अक्षर अनन्य' ने इस सम्बन्धमें लिखा है···

"सु पाखण्डी सब जुगनिमें चलि आये, हैं। जैसे अबै कबीर पन्थी, नानिक पन्थी, दादू पन्थी, कमाल पन्थी, मोहन पन्थी, ऐसे ऐसे कै पन्थ चलाये हैं ते अपने अपने ज्ञान सब कथत हैं। वेद सास्त्रनिकी निन्दा करत हैं। सु इनके पन्थ गई गवांमे अरु गँवारनमें बहुत चलत हैं। जे वेद पुरान नाहीं सुनत जानत ते इनकी चरचामें आउत हैं। एकैतो ऐ पाखण्डी कहावत हैं अरु एके पाखण्डी वेद सास्त्रनिके पढ़ैया होति हैं जे औरनिको ज्ञान चरचाकरि परमोधत हैं अपुन कुछू साधन नाहीं करत। रुजिगारके लअै कथा सुनावत हैं ते पाखण्डी हैं। सु पाखण्डीकी चरचा यह है जु मुँह और पेट और। औरनिके परमोधिवेको चरचा पूजा जायकै दिखावै अन्तहकरन्त भक्ति न होय। ताकी संगत भली नाहीं।"

वैदिक धर्म और वेदोंके प्रति 'अक्षर अनन्य' के हृदयमें अपार श्रद्धा थी किन्तु साधनाकी दृष्टिसे ज्ञान-योगका चरम लक्ष्य उन्होंने शंकित-तन्त्र प्रतिपादित परम तत्त्वको ही स्वीकार किया था। अन्य दर्शनोंको भी वे स्वीकार करते थे और किसी भी सुप्रतिष्ठित विचार-धाराका विरोध करनेको वे पाखण्ड मानते थे। अन्य धर्मोंके खण्डन करनेको भी उन्होंने पाखण्ड ही माना है—

अरु उयानी तासौं कहै बिना पढ़ें आपुतें सब जाने। जोई वेद सोई ग्यानीकी जुबान एकसी विधि मिलै। अरु जो वेद पुरान सौं विदी न मिलै अटकर ग्यानको ऊ कहै सु पाखण्ड है। 'कलिजुग'में पाखण्डी बहुत हैं। पाखण्डी अपनो पन्थ चलावै विरानो धर्म खण्डै। ते कलियुगके दूत हैं। ऐसो हाल भयो है भेष धारिनमें कोउ वीर विद्या साधत हैं कोउ सुरमें हो सगुनौतीसी विदी मिलावत हैं कोउ चित्त भर्मकी बातें कहि औरनि भरमाउत हैं। सैकरनि सिष्य करत हैं। वेद पुरानंनिके धर्म छुटाये हैं अपने अपने पन्थ चलाये हैं। संसार उन्हें पूजत है। ऐसो हाल था जुगमें भयो है।"

स्पष्ट ही पूर्व प्रतिष्ठित साधना-पद्धतियों एवं विचार-दर्शनोंकी निन्दा कर अपने नये पन्थोंकी स्थापनाके प्रति 'अक्षर अनन्य' के हृदयमें सद्भावना न थी। अन्य धर्मों एवं देवताओं आराध्योंके निन्दकोंके हृदयमें स्वयं अपने उपास्यके प्रति अनन्यताका भाव रह सकता है इसपर भी 'अक्षर अनन्य'को विश्वास न था। इस प्रकारके नये पन्थों एवं उनके प्रवर्तकोंको पाखण्ड मानते हुए उन्होंने कहा है कि मूर्ख यह भी जानते कि इसी प्रकार वे और उनके भी पन्थ समाप्त कर दिये जायेंगे। विकृत तान्त्रिक साधना-पद्धतियोंके प्रभावमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर लोग भूत-प्रेतोंको सिद्ध करने जैसे चेटकोंमें उलझ गये थे। ऐसे लोग भी अपनी शिष्य-मण्डली बनाकर नया पन्थ चला दिया करते थे, उनको भी 'अक्षर अनन्य'ने अल्प-बुद्धि माना है :

"जौन पक्षधारी आन देवन की निन्दा करें,
तिनको अनन्य भाव कैसे ठहरात है।"
"आपने आपने पन्थ चलाइबो,
आपनी आपनी माई को कीबौं,
नीको लगे सबको अप स्वारथ
जाने न मूढ किते दिन जीबो।"
"कह अनन्य संसार की अलप बुद्धि अनरीति
ईश्वर को धोखो करै भूनन की परतीति।"

भक्तिके क्षेत्रमें व्याप्त आडम्बरकी ओर भी 'अक्षर अनन्य'की दृष्टि गयी थी किन्तु अपने सिद्धान्तोंके अनुसार वे आलोचना करने और किसीका खण्डन करनेमें विश्वास नहीं करते थे। मनुष्य मात्रको ईश्वरकी सन्तान मानते हुए उन्होंने सखा भाव दासभाव आदि भक्ति-भावनाओंसे अधिक पुत्र-भावपर ज़ोर दिया है। सखी-सम्प्रदायको तो आपने कलि-युगका एक विचित्र तमाशा कहा है :

"ध्रुव प्रहलाद दत्त नारद सनक व्यास
ऊधौ अरजुन जौन निकट सखा से हैं
और ऊ अनेक भक्त राज रिषी योगी सुने
सखी न कहाये कोऊ जगत प्रकासे हैं
पुरुष तो साथ महापुरुषई कहावै फेर
पुरुष से सखी नाम कौन मत भासे हैं
अक्षर अनन्य राह पाछिली सु पूछे नहीं
अब कलजुग माँह अजब तमासे हैं।"

संक्षेपतः ज्ञानाश्रयी कालमें धर्म और ज्ञानकी बड़ी बुरी गति हो रही थी। कबीर आदि सन्तोंने नये पन्थ भले ही चला दिये हों किन्तु ज्ञानके प्रसारमें उन्होंने अधिक योग नहीं दिया। नये पन्थोंके प्रवर्तनसे पाखण्ड तथा आडम्बरके प्रसारमें ही वृद्धि हुई थी एवं धर्म, भक्ति, ज्ञान तथा साधनाको व्यापारका माध्यम बना लिया गया था। धर्म-प्रवर्तनके नामपर गुरु केवल व्यापारके ही उद्देश्यसे शिष्य-मण्डली बनाते थे। धर्मके मूलभूत सूक्ष्म तत्त्वोंका ज्ञान उन्हें नहीं था। नये पन्थोंका अनुसरण भी केवल गाँवोंके बिना पढ़े-लिखे लोग ही किया करते थे। 'अक्षर अनन्य'को युगकी यह विडम्बना बुरी प्रकारसे खटकती थी। अतएव उन्होंने आलोचना-पद्धतिको त्यागकर मूल तत्त्वों और सिद्धान्तोंके विवेचन एवं उनको सामान्य व्यक्ति तक पहुँचानेका ही प्रयास किया था। उनका पूरा साहित्य इसी उपलब्धिकी दिशामें लिखा गया है। वस्तुतः कबीरने हिन्दी साहित्यमें जिस पर-म्पराका प्रारम्भ किया था और जो कार्य वह करना चाहते थे उसकी पूर्ति 'अक्षर अनन्य'के साहित्यसे हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ल । लि । त

सुबह-सुबह

रमेशचन्द्र शाह

अभी आठ बजे नहीं और सुबह जैसे पक गयी। मेरे अन्दरकी ताज़गी फिर कुम्हलाने लगी। बहुत अपार्थिव चीज़की तुलना बहुत पार्थिव चीज़से करनेमें मुझे हमेशा एक हिचक होती है। पर जाने क्यों इधर कुछ दिनोंसे सुबह मुझे अपने ग्वालेके उस बासी दूधकी तरह लगने लगी है जिसे फटनेसे बचानेके लिए फ़ौरन उबालना ज़रूरी हो जाता है।··· नहीं! अब वह कच्ची मिठास, वह स्निग्ध धारोष्णता मेरे लिए नहीं है। तो फिर किसके लिए है? अपने इस सवालपर मुझे ख़ुद ही हंसी आ जाती है। सुबह जैसी है, सबके लिए है; सबके लिए एक-जैसी है···फिर मुझे ही उससे शिकायत क्यों?

क्या पहले जो सुबहें थीं, वे बदल गयी हैं? मैं जानता हूँ कि यह एक वाहियात सवाल है। हालाँ कि यह सवाल उभरता है—इस ज्ञानके बावजूद, और मैं उसे उभरनेसे नहीं रोक सकता। सुबह आख़िर सुबह ही है। मुझमें सुबहका अहसास अभी मरा नहीं: सुबह और शामके फ़र्क़-को मैं आज भी अपनी घड़ीसे ज़्यादा अपनी नाड़ीमें महसूस कर सकता हूँ। फिर भी लगता है, कुछ बदल अवश्य गया है। कुछ था जो अब नहीं है।

वह क्या है? मुझे याद आ रहा है पन्द्रह साल पहलेका एक बच्चा जो अपनी रग-रगमें धूपको घुलता महसूस करता था। सुबह उसके लिए एक जीती-जागती चिड़िया थी जिसके साथ वह जब चाहे, जितनी देर चाहे, खेल सकता था। जब समय नहीं था—सिर्फ़ सुबह थी, सिर्फ़ सुबह! उछलती-कूदती, चह-चहाती, खिलखिलाती सुबह!···वह कहाँसे

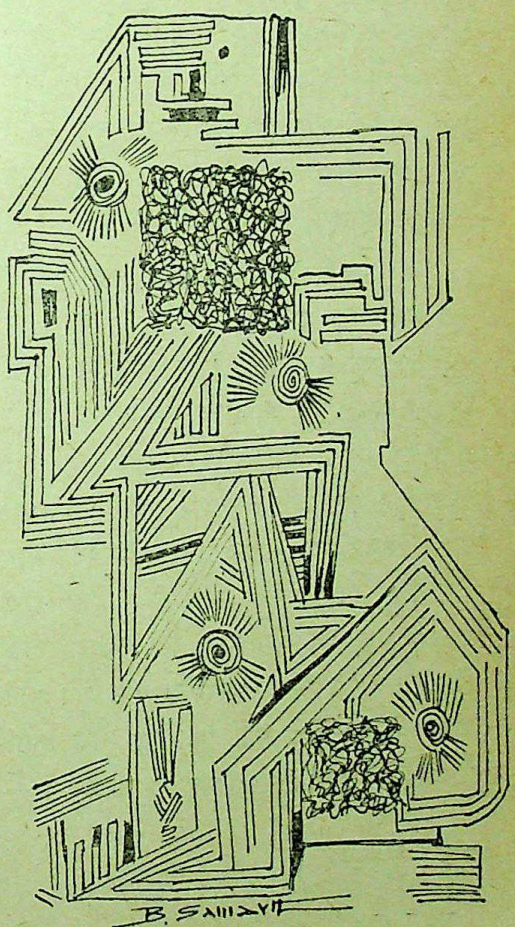

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी ? कब आयेगी ? कब चली जायेगी ? पेड़ोंपर, चेहरोंपर !

यह सब उसके मनमें नहीं उठता था ।

वह उस क्षणके अनुभवमें जीता था। उसके उजले, अनलिखे, अनभ्यस्त मनके परदेपर इन्द्रियोंकी सन्धियोंसे बाहरका संसार अपनी अनगिनत छवियाँ बनाता-बिगाड़ता रहता। यों भी बाहर-बाहर रह ही कहाँ पाता था।····भीतर, बाहरमें और बाहर, भीतरमें क्षण-क्षण रूपान्तरित होता था··· दोनोंको एकतान किये रहता था उसकी चेतनाका कीमियागर····। और धरती-आकाश, घर-पाठशाला, गली-बाज़ार, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, दिन-रात, सूरज-सितारोंका वह संसार उसके लिए एक छोटा-सा छविगृह ही तो था, जिसका कभी वह मुग्ध दर्शक था तो कभी संगी, सह-अभिनेता। जहाँ इतनी सारी तसवीरों, इतने सारे चेहरों, दृश्योंका तांता लगा रहता था, वहाँ किसी एक चीज़के शुरू और खत्म होनेका अहसास हो भी तो कैसे ?

अभी-अभी देखी वह छवि कहाँ गयी ? अब कब वह देखनेको मिलेगी ? यह सब सोचनेकी फ़ुरसत वहाँ नहीं है। परदा अभी बहुत उज्ज्वल है; आँखोंपर अभ्यासके जाले नहीं लगे। इन्द्रियाँ जैसे थकना ही नहीं जानतीं। उत्सुकता अनन्त है और जिज्ञासा और जिजीविषा एक-दूसरेसे सम्पृक्त और अविच्छेद्य···। हर चीज़ नयी है। हर चीज़ एक विस्मय, एक चमत्कार है। सुबह रोज़ आती है पर उसमें रोज़मर्रापन नहीं है। क्या यही एक चमत्कार नहीं कि वह रोज़ आती है और रोज़ एक नयी रौनक़ ले आती है—

नये फूल, नयी चिड़िया, नयी-नयी आवाज़ें !···क्या है जो पुराना है ? सड़क ? नहीं, वह सड़क तो बहुत पुरानी है, जानी-पहचानी है, इसीलिए नयी है। जैसे वह बब्बू है जो बहुत पुराना दोस्त है और जिस रोज़ उसके साथ खेलनेको न मिले, बहुत उदास लगता है। अवश्य ही यह सड़क उसे आवाज़ देकर नहीं बुलाती। पर उसका संकेत वह खूब पहचानता है। कभी घरसे बाहर निकलना बन्द हो जाये, ज़बरदस्ती भीतर ही क़ैद रह जाना पड़े तो यही सड़क किस क़दर उसकी आँखोंके आगे खड़ी हो जाती है। घरकी तमाम दीवालोंको भेद कर झलक आता है वह धूप-भरा फैलाव, दोनों ओर झूमते, सिर हिला-हिलाकर उसे आमन्त्रित करते पेड़ और उस धूप-छाँहमें खुश-खुश तैरते लोग····। उन फैली बाँहोंमें खो जानेको अधीर हो उठता है उसका मन···उसे लगता है सड़क उसकी प्रतीक्षा कर रही है।····ये सारी आहटें जो उसके कानोंपर दस्तक दे रही हैं, ये सबकी सब उसे पुकार रही हैं; उसे, मात्र उसे बुला रही हैं। पेड़ोंपर काँपती पत्तियाँ उसीके लिए चंचल हैं, उसीका आह्वान कर रही हैं। सबको उसीकी प्रतीक्षा है। सब जगह उसीकी बुलाहट है। वही इन सबका केन्द्र है। ये सब उसीके लिए बने हैं।

सड़क, धूप, वृक्ष, पक्षी, मोटर, सुबह, साँझ, सूरज, चाँद, सितारे—सबके सब उसके लिए चिर परिचित और चिर नवीन हैं। अभी उसे पता नहीं है कि सूरज अमुक-अमुक गैसों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पिण्ड है। अभी वह सूरज और चाँदके वैज्ञानिक रिश्तेको नहीं जानता, न अपने इस 'न जानने' का ही कोई भान उसे है। शायद इसीलिए वह सूरजको जानता है, चन्द्रमाको पहचानता है—उसी तरह, जिस तरह वह अपने घरके लोगोंको जानता और पहचानता है।

वह उन्हें जानता है—अपने रक्तमें, अपनी ऐन्द्रिक अनुभूतिमें, अपने चिरादिम संवेगोंमें। वह उन्हें अपनी अबोझिल जिज्ञासासे पहचानता है। अपने-आपमें स्थिर-निर्वात किसी पहाड़ी, झील-सी उसकी चेतना है और उसके आस-पासकी सारी वस्तुएँ उसमें अपनी सम्पूर्ण निर्मलता और तद्वत्तासे प्रतिबिम्बित होती हैं। दूर-दूरान्त भी उसकी कल्पनाके टेलिस्कोपमें सिमट-सिमट आते हैं। 'आकाश' वास्तवमें 'शैशवके एकदम पास रहता है।'

अभी उसकी टेलिस्कोपिक कल्पनाकी आँखोंमें खुर्दबीन नहीं लगा है। वर्गीकरण, विश्लेषण अभी उसने नहीं सीखे। सीखकर भी नहीं सीखे। अभी हाल ही में पढ़ा हुआ 'चाँदका ठण्डापन' उसकी दृष्टिको नहीं जमा पाया। धूप और चाँदनीका किताबी रिश्ता जाननेके बाद भी उसकी अनुभूतिमें दोनोंका स्वाद अलग-अलग और विशिष्ट ही रहता है। अति परिचयकी व्याधिसे अभी उसकी इन्द्रियाँ अनजान हैं। ज्ञान अभी विस्मयका जग झकझोर नहीं पाया। नहीं, ज्ञान अभी खुद विस्मय बना हुआ है। अभी तो ग्रहोंकी आकाश-यात्रा और चन्द्रमाके गड्ढे उतने ही रोमांचकारी हैं जितने कि धरतीके भूगोलकी, नये-नये देशोंकी कहानियाँ···। अभीतक उसकी दुनिया उसके गाँव तक ही सीमित थी। अब वह एक क्षणमें कल्पनाके पंखोंपर स्कॉट और कुकके साथ उत्तरी ध्रुव जा पहुँचता है तो दूसरे ही क्षण कोलम्बसके साथ अचीन्हे समुद्रोंकी सैर करने लगता है, नये-नये द्वीपोंकी खोजमें।

निष्प्राण तथ्योंका अम्बार अभी उसपर हावी नहीं हुआ। देखने-सुनने और समझनेके बीच कोई खाई पैदा नहीं हुई। विचार और बिम्बका साथ भी अभी नहीं टूटा। तर्ककी परोक्षताने प्रत्यक्षको आक्रान्त नहीं किया। उसकी धार कुन्द नहीं की। सूरज और चन्द्रमा अभी सूत्रों और नियमोंमें बँधकर निर्जीव नहीं हुए। वस्तु वस्तु पहले है, विषय बादमें; सगुण मूर्ति पहले है, तत्त्वचिन्ता बादमें।

है नहीं; था। वह था और मैं हूँ। उसके और मेरे बीचका अन्तराल बहुत बड़ा है; इतना बड़ा कि उसका स्मरण करते हुए मैं एक अजीब अजनबीपनके त्राससे भर जाता हूँ। क्या वह और मैं कभी एक थे? क्या समय सचमुच इतना बलवान् है कि हमारा अपना अतीत ही हमसे विच्छिन्न एक अलग अस्तित्व रखता प्रतीत हो जैसे वह हमारा बचपन न होकर पूर्वजन्मकी कोई धुँधली स्मृति-भर हो।

मगर लगता है, मैं अभी अपने बचपनसे पूरी तरह विच्छिन्न नहीं हो पाया हूँ। होता तो व्यतीतके पुनराह्वानका मोह मुझे इस क़दर नहीं घेरता। जो हो, मुझे इस बातका सन्तोष है कि मुझमें यह मोह अभी ज़िन्दा है। कुछ लोगोंका, बल्कि अधिकांश लोगोंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना है कि जीवनकी यात्रामें सिर्फ़ आगे-ही-आगेकी दृष्टि होनी चाहिए; पीछे मुड़कर देखना दुर्बलता है। ऐसे लोग शायद बहुत जल्दी सयाने हो जाते हैं। मुझे उनसे ईर्ष्या होती है। ये वर्तमानमें जीते हैं, वर्तमानपर शासन करते हैं। यों आगे-पीछेकी चिन्ता इन्हें रहती ही न हो सो बात नहीं है। वस्तुतः आगे-पीछेकी चिन्ता ही इनको वर्तमान-से बाँधे रहती है। कहा तो यह भी जा सकता है कि वर्तमानको वही सम्पूर्णतः जी सकता है जिसने अतीतको भी जिया हो। याने कि जो समयके बीतनेको नहीं, समयकी निरन्तरताको जीता हो। मगर जिन लोगोंकी बात यहाँ की जा रही है वे लोग ऐसा 'निरुद्देश्य' जीवन बितानेके लिए संसारमें नहीं आते। उनकी हर चेष्टा किसी-न-किसी प्रयोजन, किसी-न-किसी लाभ-चिन्ता, किसी-न-किसी सिद्धान्तसे अवश्य प्रेरित और संचालित होती है। भूलकर भी वे कभी समयको अनासक्त और अनाग्रह मनसे नहीं जी सकते।

मगर दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अक्सर इस कर्मचिन्तासे बहककर एक अजीबसे स्वप्न-योगमें डूब जाते हैं। समयके प्रवाहमें बहते-बहते एकाएक वे अपनेको अलग खड़ा पाते हैं। अलग वे नहीं हैं।···हैं उसीके बीच खड़े। पर बहते चले जानेकी बाध्यतासे एकबारगी मुक्त। सारा प्रवाह उनमें-से होकर गुज़र रहा है और वे स्थिर हैं। कालका एक-एक क्षण लहराता हुआ आता है और उनकी समूची सत्ताके अणु-अणुको परसता हुआ उनमें-से गुज़र जाता है। नहीं! गुज़रता नहीं; वे उसे गुज़ारते हैं—धीरे-धीरे उसका स्वाद लेते हुए—भोक्ता और द्रष्टा एक साथ बनकर। यह न तो स्थितप्रज्ञकी भाषा है; न समाधिस्थकी। यह तो संसारके कोने-कोनेमें फैले हुए, आल-सियोंके सम्प्रदायमें जन्मना दीक्षित, किसी भी व्यक्तिकी आप बीती हो सकती है।

हाँ, यह प्रक्रिया बचपनकी अपेक्षा कम सहज और अधिक आत्म-चेतन हो सकती है—होती ही है। समयको हम अनुभवके किन्हीं दीप्तचेतन क्षणोंमें थाम सकते हैं; थिरा सकते हैं; अपने चेतना-प्रवाहमें समयसे एकात्म हो सकते हैं—उसे पल-पल, छिन-छिन जी सकते हैं, पल-पल, छिन-छिन अपने होनेकी वरदान-जैसी अनुभूति पा सकते हैं। पर किन्हीं बिरल दुर्लभ क्षणोंमें ही। 'व्यतीतं न परि-वर्तते'। पन्द्रह साल पहले जो था, वह अब नहीं है। वैसा ही नहीं है। हो भी नहीं सकता।

समयके बीतनेके बोधसे शिशु स्वभावतः मुक्त है। ज्यों-ज्यों हम सयाने होते जाते हैं त्यों-त्यों यह बोध हममें उभरता चला जाता है। यहाँतक कि एक दिन वह हमें पूरी तरह आक्रान्त कर लेता है। एक अवस्था होती है जब नश्वरता भी विचारका ही विषय होती है; अनुभूतिकी नहीं। जब दिन हमें सचमुच काटने लगते हैं, तभी दिन काटने-की बात हम करते हैं। समयकी अखण्डताको शिशु भरपूर जी लेता है क्यों कि वह न तो आत्मचेतन होता है, न समय चेता। समयके जिस क्षणको भी वह जीता है, वह क्षण वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुद हो जाता है। समय और अस्तित्वके बीच एक अचेतन आत्मीयता वहाँ जैसे सहज और स्वयं सिद्ध है। बिना यह जाने-सोचे कि वह विराट् है, बच्चा एक प्रकारसे विराट्-चेतन ही होता है। यह ज्ञान, यह अहसास कि हम कालके अनन्त प्रवाहमें उठनेवाले एक क्षणिक बुद्बुदसे अधिक कुछ नहीं हैं, हमारे वयस्क होनेका दण्ड है। यह दूसरी बात है कि इस वयस्कताकी भी कई कोटियाँ हैं: कुछको इस दण्डकी प्रतीति ही नहीं होती; कुछ इस दण्डको भी सहज भावसे स्वीकार कर लेते हैं। और कुछ ऐसे भी होते हैं जो इसके प्रति विद्रोह करते हुए ही इससे उबर जाते हैं।

समयकी चेतना बच्चेको उतनी ही होती है जितनी हमको अपने श्वास-प्रश्वासकी। शायद इसीलिए वह समयकी किसी भी मुद्रा-से मसलन इस सुबहसे ही—पोर-पोर संवेदित होता है, सुबह उसमें पोर-पोर रच जाती है। पल-पल, छिन-छिन सुबह गुज़र रही है, पर वह इस अस्थिरताके अहससे मुक्त है। उसका उल्लास इसीसे अनासक्त, अना-यास और अखण्ड है। इसीलिए सुबह उसके लिए हमेशा ताज़े दुहे दूधकी तरह कच्ची मिठास और स्निग्ध धारोष्णतासे परिपूर्ण है। सुबहकी ताज़गी उसके लिए अक्षय है, अक्षुण्ण है।

और मेरे लिए ?—नहीं ! मुझमें सुबह-की चेतना अभी मरी नहीं। सुबह और शाम-के फ़र्क़को मैं आज भी अपनी घड़ीसे ज़्यादा अपने रक्तमें महसूस कर सकता हूँ। हाँ, आज भी। पर कुछ है जो बदल गया। सुबह नहीं बदली, पर सुबहको ग्रहण करने-वाली चेतना अवश्य कहींसे बदल गयी है। किन्हीं वरदायी क्षणोंमें जब कभी मनका प्रवाह और समयका प्रवाह दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तो वह अनन्त चैतन्यकी अनुभूति फिरसे लौट आती है। विगत या अनागतकी चिन्तासे परे एक अनाग्रह मौनकी परिपूर्ण लवलीनता अनायास ही सध जाती है। पर कुछ ही क्षणोंके लिए। घड़ी-भरको छँट गया वह कुहासा धीरे-धीरे फिर छाने लगता है; आत्मचेतनाके टूटे हुए दायरे फिरसे घिर आते हैं। समय फिर हाथसे छूट जाता है। चीज़ोंसे जुड़ा हुआ हमारा अस्तित्व फिरसे एकाकी, विपन्न हो जाता है। इस वियुक्त, आत्महीन स्थितिमें हम भी कविके साथ यही सोचनेको विवश हो जाते हैं कि :

"हम बार-बार गहरे उतरे
कितना गहरे !—पर
जब-जब जो कुछ भी लाये
उससे बस
और सतह पर भीड़ बढ़ गयी।"

(अज्ञेय)

आज भी मेरे लिए अपनी सुबह जीना सम्भव है। अतीतके उस शिशु और किशोरकी चेतना तो न जाने कबकी अवचेतनाकी अन्धी परतोंमें लुप्त हो चुकी : 'मैं बीत रहा हूँ' इस अहसासके प्रथम उदयके दिनसे ही मेरे और समयके बीच एक अनात्मीय सम्बन्धकी शुरूआत हो गयी होगी। फिर भी जाने क्यों मेरी सुबहें अभीतक इस अनात्मीयतासे ग्रस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हो पायीं। दिन-भर मैं चाहे जितनी सन्त्रस्त-उद्भ्रान्त रहूँ—सुबह मेरी सारी बिखरी हुई इयत्ताको बटोर लाती है, मुझे समयकी आत्मीय सनातनतासे जोड़ ही देती है—मेरे बावजूद।

क्योंकि आत्मविस्मृतिकी उन लवलीन घड़ियोंमें भी कहीं-न-कहीं एक क्षीण-सी आत्मचेतना सक्रिय रहती ही है। कहीं एक बिन्दु होता है जो इस उज्ज्वलतासे असम्पृक्त-अस्पृष्ट रहता है। धीरे-धीरे शायद यही बिन्दु एक वृत्त बनकर चेतनाको ग्रस लेता है। एक सम्मोहनकी तरह वह एकाग्रता बिखर जाती है।····

पिछले कुछ दिनोंसे मैं महसूस कर रहा हूँ कि यह एकात्म्य अधिकाधिक अस्थिर होता जा रहा है। वह कच्ची मिठास, वह घारोष्ण स्निग्धता जैसे दुर्लभ हुई जा रही है। सुबहकी मेरी संवेदना अब वैसी आश्वस्त नहीं है—रह-रहकर एक बेचैनी मनमें घिरने लगती है, एक दुर्बल भीति, एक आशंका, जैसे सुबह मुझसे छूट रही हो···· लगातार छूटी जा रही हो और मैं अवश, निरुपाय उसे अपनेसे दूर होते हुए देख रहा हूँ। इस प्रकारकी बेचैनी मैंने पहले कभी महसूस नहीं की थी। पर अब···

आह !····यह झरना
अभी कुछ देर में
बह जायगा
बनकर नदी···
·····

दूर होती जायगी यह
ज्योति की पगचाप····
आततायी एक कोई क्षण धमकता
याद उसकी जायगा फिर····
रौंद अपने आप।

आज पहली बार मेरे मनमें प्रश्न उभर रहा है : क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि सुबह हो और मैं उससे अनछुआ ही रह जाऊँ ?···क्या कभी सुबह मेरे लिए सचमुच व्यतीत हो जायेगी ?···क्या कभी ऐसा भी दिन आयेगा जब सुबह नहीं रहेगी···सिर्फ़ समय, सिर्फ़ समय ही रह जायेगा···?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

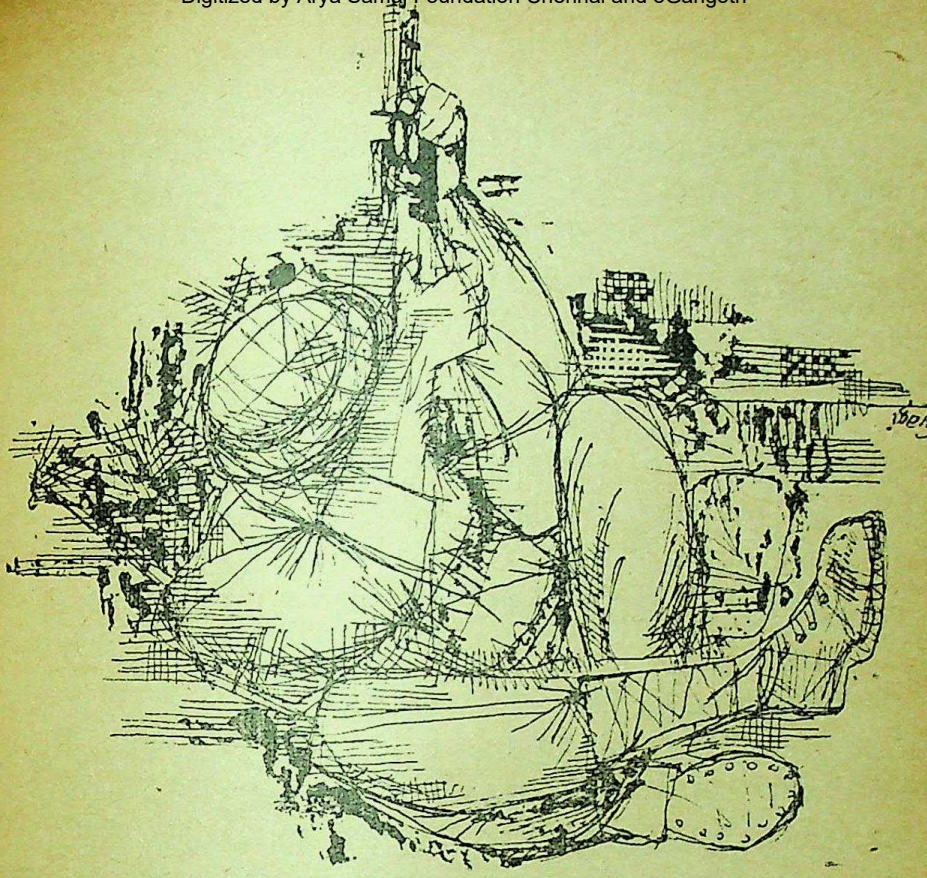

अन्तरिक्षमें युद्ध

ब्रह्मस्वरूप वर्मा

वाशिंगटनके युद्ध-कक्षमें संकटकी घण्टी बज उठी। पाँच मिनिटके अन्दर अमरीकाके राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, रक्षामन्त्री, प्रधान सेनाध्यक्ष और अन्य कई सैनिक अधिकारी वहाँ पहुँच गये। दीवारोंपर विद्युदणु-चालित विश्वके अनेक मानचित्र लगे थे और सब लोग एक मानचित्रके सामने खड़े थे।

राष्ट्रपतिने प्रधान सेनाध्यक्षकी ओर लक्ष्य करके कहा—"एक सप्ताहके अन्दर रूसकी यह पाँचवीं उत्तेजनात्मक काररवाई है। इस प्रकारकी घटनाओंकी अब उपेक्षा नहीं की जा सकती। बताओ कि जवाबी काररवाईके रूपमें तुम क्या कर सकते हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सर", सेनाध्यक्षने उत्तर दिया, "मैं तो प्रारम्भसे ही इस मतका हूँ कि शत्रुके हौसले बढ़ने नहीं देना चाहिए। रूसके, एक दो नहीं, कमसे कम ३० स्पुतनिक हमारी वायु सीमाका उल्लंघन कर चुके हैं, और हमने कभी उनपर आक्रमण नहीं किया परन्तु जब रूसियोंने हमारे 'विक्टर' उपग्रहोंको गिराना आरम्भ कर दिया है तो हमें भी शक्तिका प्रयोग करना पड़ेगा। यही सोचकर मैंने ३० संचार-उपग्रह, ५४ परमाणु बम प्रक्षेपक उपग्रह और ७०० बमवर्षकोंको रूसके चारों ओर लगा दिया है और आपका आदेश मिलते ही हम सात मिनिटके अन्दर रूसके ८० प्रतिशत सैनिक अड्डोंको नष्ट कर देंगे।"

राष्ट्रपतिने प्रधान सेनाध्यक्षकी बात काटते हुए कहा—"मैं यह नहीं चाहता। छोटी-मोटी उत्तेजनात्मक घटनाओंको लेकर विश्वयुद्ध आरम्भ कर देना और मानवजातिको निर्मूल करनेका महान् पाप करना मुझे उचित नहीं लगता।" फिर अन्य अधिकारियोंकी ओर लक्ष्य करके उन्होंने पूछा—"आप लोगोंकी क्या राय है?"

वायुसेनाध्यक्ष जाँन व्लैकने कहा, "सर, मेरे विचारसे तो रूसके इन छुट-पुट आक्रमणोंका एक ही अर्थ है कि उसकी आक्रमणकी तैयारी पूरी हो चुकी है और हमपर पूरी शक्तिसे आक्रमण करनेके लिए वह बहाना ढूँढनेका प्रयत्न कर रहा है। अतः, आज या कल, हमें महायुद्धके लिए तैयार रहना चाहिए। और परमाणु-युद्धकी निश्चित सम्भावनाको दृष्टिमें रखकर, अधिक उपयुक्त यही होगा कि प्रथम आक्रमण हम करें, पूरी शक्तिसे करें और रूसकी अधिकसे अधिक संहारक-शक्तिको नष्ट कर दें। उस स्थितिमें यह भी सम्भव है कि रूसके हौसले पस्त हो जायें और वह जवाबी आक्रमण भी न कर सके।"

इसी प्रकार थोड़ी देर तक बातचीत चलती रही। सभी अधिकारियोंका मत था कि रूसपर जब भी आक्रमण किया जाये, पूरी शक्तिसे किया जाये। राष्ट्रपति महोदयने सबकी बातें ध्यानपूर्वक सुनीं। फिर उन्होंने कहा—"मित्रो, मैं यह नहीं मानता कि रूस युद्ध चाहता है। रूसके नेतागण भी भली भाँति जानते हैं कि हमारी शक्ति कितनी अधिक है। दूसरे यह बात भी उन्हें मालूम है कि परमाणु-युद्धमें किसी भी पक्षकी विजय नहीं होगी—केवल दोनों महान् राष्ट्रोंका और संसारका विनाश ही होगा। हाँ, कम्यूनिज़्मके प्रसारके लिए इन छुट-पुट आक्रमणोंके द्वारा वे संसारकी जनताको यह दिखाना चाहते हैं कि वे हमसे अधिक शक्तिशाली हैं। अतः हमें भी केवल उतनी ही काररवाई करनी चाहिए जिससे यह प्रमाणित हो जाये कि हम संहारक शक्तिमें भी उनसे पीछे नहीं हैं।"

फिर प्रधान सेनाध्यक्षकी ओर मुड़कर उन्होंने कहा—"आशा है, आप मेरा आशय समझ गए होंगे!"

"यस सर," प्रधान सेनाध्यक्षने उत्तर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद, 'जवाबी कार्रवाई' की रूपरेखा बनाकर सभा समाप्त हो गयी।

मास्कोके केन्द्रीय प्रतिरक्षा स्टेशनमें चारों ओरसे सन्देश पहुँचने लगे—"अमरीकी विक्टर बमवर्षक उपग्रहोंने हमारे स्पुतनिकको घेर लिया है। निर्देश दें कि क्या किया जाय।"

हुआ यह कि, वाशिंगटनके युद्ध-कक्षमें लिये गये निर्णयके अनुसार, अमरीकी बमवर्षक उपग्रहोंने रूसी उपग्रहोंकी अन्तरिक्षमें नाके-बन्दी कर दी थी और आक्रमणके लिए वे अपने घेरेको धीरे-धीरे छोटा करते जा रहे थे। इस आकस्मिक आक्रमणके लिए रूस तैयार न था अतः उसके तेईस उपग्रह 'स्पुतनिक' अमरीकाकी घेराबन्दीमें अकेले-अकेले फँस गये। इन स्पुतनिकोंमें अधिकतर संचार उपग्रह थे अतः इनको नष्ट करना अमरीकाके 'विक्टर' उपग्रहोंके लिए साधारण बात थी। रूसी सैनिक अधिकारी और प्रमुख राजनैतिक नेता बड़ी चिन्तामें थे क्योंकि प्रति-क्षण उन्हें यही सूचनाएँ मिल रही थीं कि 'विक्टर' उनके समीप आते जा रहे हैं।

रूसी नेता भी युद्धके क्षेत्रको बढ़ाना नहीं चाहते थे। वे अन्तरिक्ष-युद्धको पृथ्वीपर लानेके भयानक परिणामोंको जानते थे। दूसरी समस्या यह थी कि उपग्रह अन्तरिक्षमें ९० से १५० मीलकी ऊँचाईपर थे और इतनी ऊँचाईपर बमवर्षक विमानोंको भेजना सम्भव न था। उधर अमरीकाके विक्टरोंने ऐसी व्यूह-रचना की थी कि बाहरसे कोई भी स्पुतनिक घिरे हुए स्पुतनिकोंकी सहायता-के लिए नहीं पहुँच सकता था।

हाँ, रूसियोंके पास एक ऐसा अस्त्र अवश्य था जिससे वे रेडियो-संकेत भेजनेवाली किसी भी वस्तुपर आक्रमण कर सकते थे। ये अस्त्र थे—'रेडियो-नियन्त्रित राकेट'। यद्यपि अमरीकाके पास भी ऐसे अस्त्र थे जो रेडियो-तरंगोंसे दिशा प्राप्त करके, सीधे उनके स्रोतपर आक्रमण कर सकते थे परन्तु रूसी अस्त्र उनकी तुलनामें बहुत अधिक शक्तिशाली थे। फिर भी रूस इन रेडियो-नियन्त्रित राकेटोंका इस युद्धमें उपयोग नहीं करना चाहता था। रूसी सेना इन राकेटोंको गुप्त ही रखना चाहती थी और एक बार भी इनका उपयोग करनेसे अमरीकी संचार-उपग्रहोंको उनकी स्थितिका पता लग जानेकी सम्भावना थी।

रूसी सेनाध्यक्ष, प्रधानमन्त्री और अन्य वरिष्ठ अधिकारी इसी चिन्ता और दुविधामें थे कि स्पुतनिकोंपर अमरीकी आक्रमणको कैसे रोका जाये। इतनेमें उन्हें सूचना मिली कि अमरीकाके विक्टरोंने स्पुतनिक १३२ को मार गिराया है। अपने युद्ध-कक्षमें लगे उपग्रह-टेलीविज़नका स्विच खोलते हुए प्रधान सेनाध्यक्षने कहा—"सर, आक्रमण आरम्भ हो गया है!"

सबकी दृष्टि उस टेलीविज़नकी ओर खिंच गयी। उन्होंने देखा कि आगका एक गोला पृथ्वीकी ओर तेज़ीसे गिर रहा था। दूसरी ओर तीन विक्टर एक स्पुतनिकको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घेरनेका प्रयत्न कर रहे थे। स्पुतनिक कभी ऊपर जाता, कभी नीचे आता, परन्तु विक्टर उसके निकट आते ही जा रहे थे। अचानक तीनों विक्टरोंमें-से राकेट छूटने लगे। दो मिनिटके अन्दर ही उन्होंने देखा कि उनका दूसरा स्पुतनिक आगकी लपटें देता हुआ नीचे जा रहा था। प्रधान मन्त्रीने कहा—"यह तो बड़ी भयानक बात है। इस आक्रमणका प्रतिकार तो करना ही होगा।" फिर प्रधान-सेनाध्यक्षकी ओर मुड़कर उन्होंने कहा—"हमारे रेडियो-नियन्त्रित राकेट तो तैयार हैं, न?"

"यस सर।"

"ओ० के०। अब तुम उनके कमाण्डरसे सम्पर्क स्थापित करो, तबतक मैं 'हॉट लाइन' पर अमरीकाके राष्ट्रपतिसे बातचीत कर लूँ।"

दूसरे क्षण ही, वाशिंगटनके युद्ध-कक्षमें लाल फ़ोनकी घण्टी बज उठी। अमरीकी राष्ट्रपति और प्रमुख सेनाधिकारी अपने विक्टरोंका कमाल देख रहे थे। चार मिनिटके अन्दर ही रूसका तीसरा उपग्रह गिराया जा चुका था और अब उनके विक्टर कई स्पुतनिकोंपर एक साथ आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ रहे थे। दूसरी ओर अनेक स्पुतनिक उनके घेरेको तोड़कर अन्दर आनेका प्रयत्न कर रहे थे।

राष्ट्रपति महोदयने टेलीफ़ोन उठाया और हॉट लाइनपर बातचीत आरम्भ हुई:

"आपके विक्टरोंने अचानक हमारे स्पुतनिकोंपर आक्रमण करके युद्ध आरम्भ कर दिया है। यदि आप तुरन्त ही इस आक्रमणको नहीं रोकेंगे तो हमें जवाबी कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

"आक्रमण आरम्भ करनेकी ज़िम्मेवारी आपकी है। गत तीन दिनोंमें आपने हमारे पाँच उपग्रहोंको मार गिराया। क्या यह आक्रमण नहीं था?"

"उन्होंने हमारी वायु-सीमाका उल्लंघन किया था।"

"आपके २३ स्पुतनिक हमारी वायु-सीमाका उल्लंघन कर चुके हैं और हमने उन्हें मार गिरानेकी बजाय केवल विरोध ही प्रकट किया। जो असहिष्णुता आपने प्रदर्शित की है हमारी कार्रवाई बस उसीका उत्तर है।"

"तो आप इस आक्रमणको नहीं रोकेंगे?"

"हाँ, जबतक आपके पाँच स्पुतनिक नष्ट नहीं होंगे, हमारे विक्टर अपनी कार्रवाई जारी रखेंगे।"

"अच्छा।"

रूसी प्रधानमन्त्रीने टेलीफ़ोन पटककर रख दिया। प्रधान सेनाध्यक्षने उनकी ओर देखा। वे बड़ी चिन्तापूर्ण मुद्रामें किसी गहन विचारमें खोये हुए-से दिखाई दे रहे थे। इतनेमें सबने टेलीविज़नमें देखा—अनेक विक्टरोंने मिलकर उनके एक स्पुतनिकपर आक्रमण कर दिया था और देखते-ही-देखते यह चौथा स्पुतनिक भी मार गिराया गया।

"उफ़!" कई अधिकारियोंके मुखसे एकसाथ निकल पड़ा। सब लोगोंने प्रधान मन्त्रीकी ओर देखा। और उनकी आशाके अनुरूप ही प्रधान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रीने आदेश दिया—"प्रधान सेनाध्यक्ष महोदय, अपने रेडियो-नियन्त्रित राकेटोंको आदेश दीजिए कि वे जवाबी आक्रमण करें।"

बीस सेकण्डके अन्दर ही सात रूसी अड्डोंसे छोड़े हुए सात रेडियो-राकेट आकाशको चीरते हुए उपग्रहोंकी ओर बढ़ने लगे।

उधर अमरीकी विक्टर अब एक साथ कई स्पुतनिकोंपर आक्रमण कर रहे थे। उनकी व्यूह-रचना इतनी अभेद्य थी कि रूसी स्पुतनिक उनके घेरेको तोड़नेमें पूरी तरह असफल हो रहे थे। अचानक अमरीकी संचार-उपग्रहोंने देखा कि सात रूसी राकेट तीव्रतासे उनकी ओर आ रहे हैं। उन्होंने अपनी स्थितिको बदलकर राकेटोंसे बचनेका प्रयत्न किया परन्तु राकेट भी मुड़ गये और फिर उनकी ओर बढ़ने लगे। संचार-उपग्रहोंके चालकोंने कण्ट्रोल स्टेशनको सूचना दी—"सर, इस समय जो रूसी राकेट हमारी ओर आ रहे हैं वे, सीधे जानेकी बजाय, जिधर हम मुड़ते हैं, हमारी ओर ही मुड़ जाते हैं। इनसे अपनी रक्षा कैसे की जाये?"

थोड़ी देर बाद उन्हें उत्तर मिला—"ये रेडियो चालित राकेट मालूम होते हैं। इनके स्रोतका रेडियोग्राफ़ ले लो और फिर अपना रेडियो-संचारण बन्द कर दो।"

इन उपग्रहोंने ऐसा ही किया। थोड़ी ही देर बाद उन्होंने देखा कि सातों राकेट बिना किसी उपग्रहपर आक्रमण किये पृथ्वीकी ओर लौटने लगे।

इस घटनासे रूसी रेडियो-नियन्त्रित राकेट-केन्द्रोंमें खलबली मच गयी। अभीतक ये लोग अपने इन राकेटोंको अचूक समझते थे परन्तु अब यह सिद्ध हो गया था कि रेडियो-तरंगोंसे दिशाका ज्ञान प्राप्त किये बिना ये राकेट आक्रमण नहीं कर सकते। परन्तु रूसी कमाण्डर भी हार माननेवाले न थे। उन्होंने तुरन्त सैनिक इंजीनियरोंसे परामर्श किया।

नयी मोर्चेबन्दीके अनुसार घिरे हुए रूसी उपग्रहोंने आक्रमण करनेवाले उपग्रहोंपर रेडियो-तरंगोंकी एक तीव्र शलाका डाली। ये तरंगें चारों ओर परावर्तित होने लगीं। तुरन्त रूसी कमाण्डरोंने अपने राकेटोंको आक्रमणके लिए भेजा और वे तीव्र गतिसे अमरीकाके विक्टरोंकी ओर बढ़ने लगे। विक्टरोंके चालक जिधर भी अपने उपग्रहको ले जानेका प्रयत्न करते, रेडियो-चालित राकेट उसी ओर मुड़ जाते। उन्होंने अपने कण्ट्रोल-स्टेशनसे सम्पर्क किया परन्तु वहाँके अधिकारी भी बचनेका कोई उपाय न बतला सके। इधर राकेट प्रतिक्षण उनके निकट आते जा रहे थे।

अब विक्टरोंके लिए आक्रमणसे अधिक आत्मरक्षाका प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण था। वे अपनी रक्षाके लिए इधर-उधर बचनेकी चेष्टा करने लगे। अतः स्पुतनिकोंको बच निकलने-का अवसर मिल गया।

उधर, वाशिंगटनके युद्ध-कक्षमें राष्ट्रपति महोदय और अन्य अधिकारीगण रेडियो-चालित राकेटोंके आक्रमणसे चिन्तित हो उठे थे। आपसमें विचार-विमर्शके पश्चात् उन्होंने अनुमान लगाया कि यदि प्रत्याक्रमण-द्वारा इन राकेटोंको नष्ट कर दिया जाये, तो उन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रोंसे दूसरे राकेटोंके छूटनेमें कमसे कम बीस मिनिट लग जायेंगे। अतः प्रधान सेनाध्यक्षने विक्टरोंके कमाण्डरोंको निर्देश दिया—"तुम लोग अपने शार्टरेन्ज रेडियो राकेटोंसे रूसी राकेटोंपर आक्रमण कर दो।" और एक मिनिटके अन्दर ही, युद्धकी स्थिति बदल गयी। अमरीकी उपग्रहोंसे चालित राकेट रूसके रेडियो राकेटोंकी ओर चल पड़े।

मास्कोमें बैठे रूसी अधिकारी इस नयी स्थितिसे चौंक उठे। उनके देखते-ही-देखते सातमें-से दो रेडियो-राकेट मार्गमें ही नष्ट कर दिये गये। वे जानते थे कि एक राकेट छोड़ने के बाद दूसरे पेडपर-से दूसरा राकेट छोड़नेमें कमसे कम बीस मिनिट लगते हैं अतः वे अब कुछ भी करनेमें असमर्थ थे।

अचानक हॉट लाइनके फ़ोनकी घण्टी बज उठी। रूसी प्रधानमन्त्रीने फ़ोन उठाया। अमरीकाके राष्ट्रपति महोदयने युद्ध-विरामका प्रस्ताव किया। दोनों नेताओंने अनुभव कर लिया था कि दस मिनिटका यह युद्ध यदि आगे चला तो उसके भयानक परिणाम हो सकते थे। अतः उनमें समझौता हो गया। इस प्रकार विश्वका प्रथम अन्तरिक्ष-युद्ध समाप्त हो गया।

■ ■

वा ता य न —मार्च १९६६ से दिसम्बर १९६६ तक

- आजका पाठक—अपनी-अपनी विधाओंपर बोलते हुए पाठक! लेखक, पाठक और दो विशिष्ट कृतियाँ! पाठक, लेखक और युगबोध!
- गीत—मनको नहीं, सम्पूर्ण आजको ज्ञानात्मक निकटताके साथ अभिव्यक्ति देनेवाले आजके गत हस्ताक्षर!
- विश्वभारती—पश्चिमी जगत्की कथाओंका प्रस्तुतीकरण!
- अन्तर्भारती—भारतीय भाषाओंका कथा-संगम!
- भारती—हिन्दी कथा साहित्यके अनेक क्षितिज रंग एक कलेवरमें!
- कविता—जीवनकी अनिवार्यतासे प्रतिबद्ध आजकी कविता-पीढ़ी।
- साक्षात्कार—रचनाकारोंसे विधाओंपर प्रश्नात्मक साक्षात्कार!
- आलोचना—नयी! पुरानी! युगीन विचार-मान!

● सृजन मूल्यांकन ●

वार्षिक शुल्क १०.०० सम्पादक : हरीश भादानी, पूनम दईया, विश्वनाथ
एक प्रति—१.०० ५ डागा बिल्डिंग, बीकानेर (राज.)
शाखा—२२, शिवठाकुर लेन, कलकत्ता-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

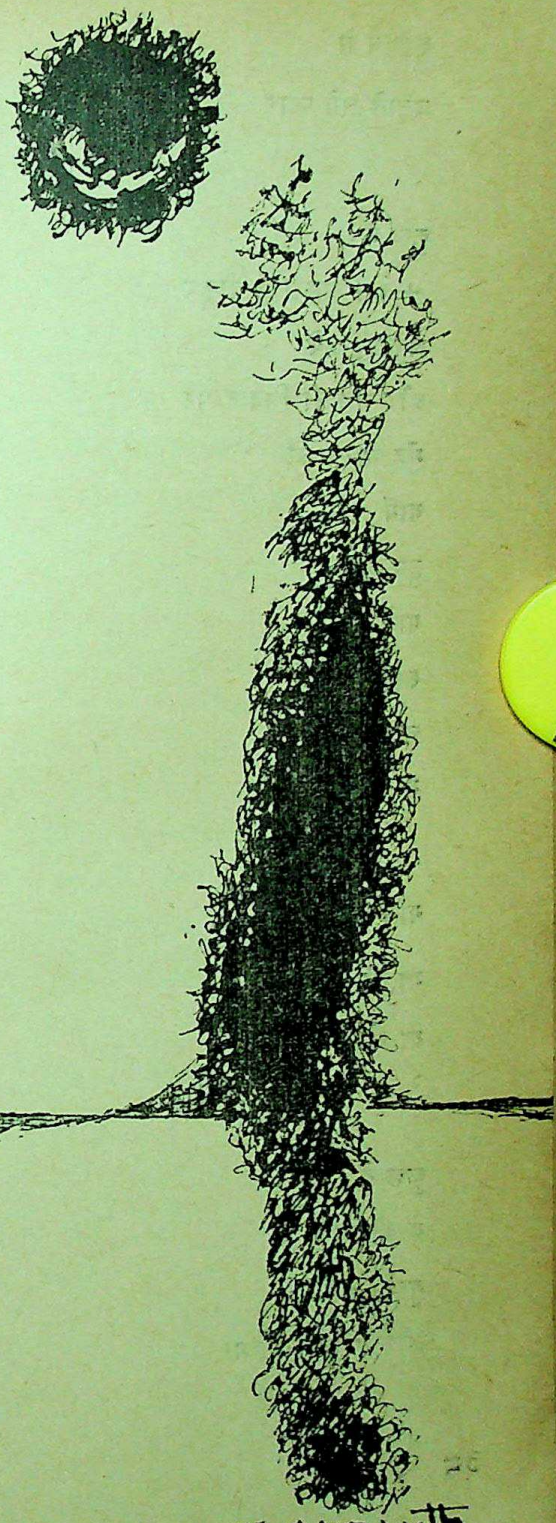

• समीकरण

कहते हैं
कभी एक ही चिड़िया के
दो डैने थे
हम और वे

तो चिड़िया कौन थी ?
एक डैना हम
एक डैना वे
चिड़िया चुग गयी खेत

∵ हमें काट दिया गया
∴ हम हुए
कुछ कम
∴ हम हुए
कुछ वे
क्योंकि होना पड़ा

सामीकरण
लालक
दूर

• श्रीराम वर्मा • किरण जैन • प्रयाग शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे
कुछ वे से
जताने लगे प्यार

कुछ वे
+ वे + अमरीका होकर
अकड़ने लगे
और भेज दीं सिवान पर
मुँह मारने को
गायें
हम जब तक
गायें
शान्ति-गीत
चलायें
योजनाएँ

गाय
या तो पकड़ ली गयी
या खेत रहीं

कुछ वे
वे की भाषा में
गुर्राने लगे
और ग़रीब चिड़िया
के पास
जाने लगे

सुरक्षा परिषद है
आजकल
ग़रीब चिड़िया

कहते हैं
कभी एक रथ के
दो पहिये थे
हम और वे

रथ है
अन्तर्राष्ट्रीय
बनियों के पास

वे पहिया हैं दमदार
हम पहिया हैं टूटे हुए
टूट पड़ने के लिए
कुछ वे भी हैं पहिया कम नहीं
दुमदार
ज़बान लिये
दुम हिलाने के लिए

—श्रीराम वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• ललक

तुम्हारे लिए दौड़ती नदी से
झील बनी
गति को
पत्थरों की खूँटियों पर लटकाया
आवेग को
मिट्टी की अलगनी पर फैलाया
उभार को तटों की सीमा में बाँधा
जब लहरों ने बेदर्दी से
मुझे बार-बार गुदगुदाया
दुष्ट बयार ने
सीने के पल्ले को फिर-फिर खिसकाया
मेरे पतवार !
तुम्हारे लिए ही
मैं उमड़-उमड़ कर लहरायी
कि एक बार
केवल एक बार
मेरी जड़ता को चीर दो
मेरे मटियाले जल पर
एक चमकती रेखा खींच दो ।

—किरण जैन

• दूर

टूटने लगती है देह,
दुपहर की उठती-गिरती परछाइयों के साथ,
अनेक दूरियाँ हैं, जिनकी ओर एक साथ
दौड़ नहीं सकती ।
शरीर और मन का सामंजस्य बिठाते हुए लोग,
घरों और दफ़्तरों में, कुछ न कुछ भूल रहे हैं;
एक साथ नदी-किनारे होने की इच्छा
और सड़क पर चलते रहना कितना मुश्किल है ।
कितनी दूर चलकर रुकूँ कि
उसकी गिरती देह को सँभाल लूँ
जो नहीं जानती विवशता इस देह की ।
कौन-सी सीमा रेखा है, जिसके आगे
लिखा है—'बस' ।
इतनी देर किसके साथ हूँ—हूँ,
एक गन्ध होती है ?
हाथों में नहीं, आँखों में
इच्छा-सा चमकता हुआ
जल है—
कब, कितनी देर, उससे कहूँ,
'आओ, मैं हूँ'
'आओ !'

—प्रयाग शुक्ल

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आतुर प्रतीक्षाके बाद
नया परिवर्द्धित संस्करण
भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रस्तुत

सात सप्तक

संकलनकर्त्ता एवं सम्पादक
'अज्ञेय'

इस नये संस्करणमें पहलेकी सब सामग्री तो अविकल दी ही गयी है, अतिरिक्त रूपसे सातों कवियोंके 'वक्तव्य' पर 'पुनश्च' और प्रत्येककी कुछ नयी प्रतिनिधि कविताएँ भी सम्मिलित हुई हैं! समकालीन हिन्दी काव्यके प्रत्येक अध्येता एवं जिज्ञासुके लिए अनिवार्य रूपसे पठनीय एवं संग्रहणीय।

मूल्य ८.००

प्राप्ति-स्थान
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा हमसफ़र

एस. एम. शाहनवाज़

पाँच वर्ष हुए मेरी माँ मर चुकी थी और अब भाभी चार सालकी शहनाज़ और दो सालके अनवारको रोता-बिलखता छोड़कर रुख़सत हो गयीं। अब्बाके दोबारा शादी करनेका सवाल ही पैदा नहीं होता था। रिश्तेकी औरतोंने भैयापर बहुत दबाव डाला कि वह दूसरी शादी कर लें, पर वह न माने। उन्होंने कई लोगोंकी दूसरी शादीके बाद उनके बच्चोंका हसरतनाक अंजाम देखा था। वह भाभीसे बहुत प्यार करते थे और अब उनकी मौतके बाद वह प्यार बच्चोंके हिस्सेमें आ गया था। वह दूसरी शादी करके बच्चोंको रास्तेकी धूल नहीं बनाना चाहते थे। हालाँ कि यह बात उन्होंने किसीसे नहीं कही थी। जब भी किसीने शादीके लिए कहा, उन्होंने हँसकर टाल दिया। लेकिन मैंने उनके मनकी भावनाओंको भाँप लिया था, और इस बातसे मेरे दिलमें उनकी इज़्ज़त और बढ़ गयी थी।

कुछ क़रीबी खालाओं और मुमानियोंने जब देखा कि ऊँट किसी करवट बैठ ही नहीं रहा है तो उन्होंने अब्बा और भैयासे कानों-ही-कानोंमें कोई दूसरी बात शुरू कर दी। उड़ती हुई यह बात मुझतक भी पहुँच गयी कि मेरी शादीकी तैयारियाँ की जा रही हैं। मैं डरता था, कहीं कोई ग़लत फ़ैसला न हो जाये। ना जाने यह कैसी लड़की मेरे पल्ले बाँध दें। हम लोग इतने आज़ाद-खयाल तो न थे कि अपनी पसन्दकी लड़कियोंके लिए अपने बड़ोंसे कहें, और न ही हममें इतनी हिम्मत थी कि उनसे अपने दिलकी बात कह सकते। उन लोगोंको हमारी रायकी ज़रूरत भी नहीं थी। बस इसी बातसे दिल घड़कता रहता था कि कैसा मिलेगा हमसफ़र! मैंने होश सँभालते ही अपने मनमें उसका एक चित्र बनाया था और वर्षोंसे उसे पूजता आया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादीका फ़ैसला हो चुका था। खाला-जानने कोई लड़की मेरे लिए देख ली थी। अब्बा यह काम जल्द-अज़-जल्द कर डालना चाहते थे, क्योंकि घर और भैयाके बच्चोंको सँभालनेका मसला दिन-ब-दिन गम्भीर बनता जा रहा था। हमारे खाने-पीनेका सारा इन्तज़ाम बिगड़ चुका था। कभी अब्बा रोटी पकाते और कभी भैया। खुद मुझे भी घरमें सफ़ाई करनी पड़ती और रोज़ दफ़्तरसे आकर बरतन माँजने पड़ते थे। रिश्तेदार औरतें कुछ दिन काम करके ही थक चुकी थीं। अपने सिरसे जिम्मेदारीका बोझ उतारनेके लिए वह किसी-न-किसीकी जल्दसे जल्द शादी करा देना चाहती थीं, और अब मैं उनकी इनायतों-का निशाना बन चुका था। खालाजान मेरी तरफ़ देखकर हँसते हुए अब्बासे कहतीं, "शाहिदकी दुल्हन तो चाँदका टुकड़ा है। सारी उम्र दुआएँ देगा मुझे यह छोकरा। ऐसी सीधी जैसे अल्ला मियाँकी गाय।"

मैं यह बातें सुनकर कभी दिल-ही-दिल-में खुश होता और कभी सहमकर रह जाता। वर्षोंसे लोगोंकी शादीसे पहले उनकी होने-वाली पत्नियोंके बारेमें यही जुमले सुनता आया था, और शादीके बाद उनके घरोंमें जो कुछ होता था, वह भी मेरे सामने था। पति-पत्नियोंमें बात-बातपर वह जंग होती कि पड़ोसी भी तंग आ जाते।

■

भाभीकी मौतके पूरे एक महीनेके बाद नसरीनसे मेरी शादी हो गयी। जब मैंने खालाजानसे उसका नाम सुना तो मुझे बहुत अच्छा लगा था। सोचा, नाम जितना हसीन है, कम-अज़-कम उससे आधी तो ज़रूर ही खूबसूरत होगी, क्योंकि लोग अपने बच्चोंका नाम रखते वक़्त ज़रा ग़लतफ़हमीका शिकार हो जाते हैं। लेकिन पहली रात जब सैकड़ों अरमान दिलमें लिये मैंने उसका घूँघट उठाया तो सहमकर रह गया। मेरे सामने बिलकुल चिट्टी चमड़ीकी लड़की, बेनूर चेहरा लिये पलकें झपका रही थी, जिसके गालोंकी हड्डियाँ उभरी हुई थीं और चेहरेपर चेचक-के छोड़े हुए नक़्श-ओ-निगार थे। मैंने बुझे हुए दिलसे घूँघट छोड़ दिया और दिलमें आया कि सब कुछ यूँ ही छोड़कर चला जाऊँ, पर रीति-रिवाज और खानदानकी झूठी इज़्ज़त पैरोंमें ज़ंजीर बनकर पड़ चुकी थी और इसने मुझे बेबस बना दिया था। वह चित्र जिससे मैंने अपने मासूम सपनोंको सजाया था, मेरे घरवालोंने मुझसे छीन लिया था।

अब्बा, भैया और बच्चोंको एक नौक-रानी मिल चुकी थी और मेरे मनमें एक मुस्तक़िल फाँस चुभ चुकी थी। नसरीनने थोड़े ही दिनोंमें अपने काम और बातोंसे अब्बाके दिलपर सिक्का जमा लिया। बच्चे भी अपनी दुल्हन चचीको पाकर खुश थे। मुहल्लेकी औरतें उसके सुघड़पनकी तारीफ़ें करते नहीं थकती थीं और मुझे यह सब कुछ सुनकर ऐसा महसूस होता जैसे मेरे सीनेमें किसीने तेजाबी लकीर-सी खींच दी हो। मुझे उसके अस्तित्वसे नफ़रत थी। जब वह मेरे पास खाना या चाय लेकर आती या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजारसे कोई चीज मँगवानेके लिए कहती, तो नफ़रतसे मैं काँपने लगता। वह जितना मेरे कामोंमें जुटी रहती और मुझसे घुल-मिल जानेकी कोशिश करती, मैं उतना ही उससे दूर होता जा रहा था—खालाजानके उस चाँदसे जो मेरे लिए दहकता हुआ सूरज बन गया था।

इन्सान जब अपने ज़हनको कोई मुस्तक़िल रोग लगा ले तो उसकी हालत बीमारोंसे बदतर हो जाती है। यही हाल मेरा था। मैं अपनी शादी और पत्नीके खयालसे इतना थक चुका था कि यह थकान और उकताहट मेरे शरीरके हर अंगमें उतर गयी थी। मुझे कभी खुदपर गुस्सा आता और कभी अपने अब्बापर। सोचता, इन्सान कितना स्वार्थी है। अपने आराम और सुखके लिए दूसरोंकी बलि चढ़ानेसे भी नहीं हिचकिचाता। नसरीनकी हर बात, हर काम मुझे ज़हर लगने लगा था। उसे डाँटकर, झिड़क और तौहीन करके मुझे कुछ सुकून मिल जाता था, लेकिन वह खामोश रहती, अपने कामोंमें उसी लगनसे जुटी रहती। शायद वह भी समझती थी कि वह इस घरमें मेरे लिए नहीं, बल्कि बच्चों और घरको सँभालनेके लिए लायी गयी थी। अब्बाने मेरे बरतावको महसूस कर लिया था, लेकिन उन्होंने इस बारेमें मुझसे एक शब्द न कहा। कभी-कभी मैंने उन्हें नसरीनको काम करते देखकर ठण्डी साँस भरते हुए ज़रूर देखा, पर उनकी यह हमदर्दी भी मेरे दिलमें नसरीनके लिए हमदर्दी पैदा न कर सकी। आजकल कोई अपने माँ-बापको भी इतना परेशान और दुःखी न करता होगा, जितनी तकलीफ़ मैं उसे पहुँचा रहा था, लेकिन वह पत्थर बनी हुई थी···· बिलकुल बेहिस।

■

एक शाम मैं दफ़्तरसे बहुत थका हुआ आया। हमारे बाँस मसूरी जा रहे थे और उनके जानेसे पहले-पहले कुछ काम खत्म करना ज़रूरी था। शारीरिक तौरपर दफ़्तरके कामकी वजहसे और मानसिक तौरपर घरके वातावरणकी वजहसे मैं चूर-चूर था। मुझमें इतनी सकत नहीं थी कि अपने जूते उतार दूँ और कपड़े बदल लूँ। मैंने अपने आपको बिस्तरपर गिरा दिया। शरीर थका हुआ था, पर ज़हन बराबर सोच रहा था। जी चाहता था इस घर, माहौल और पत्नीसे कहीं दूर चला जाऊँ, जहाँ एक पलके लिए सुख और शान्तिकी किरण दिखाई दे सके। बाहर अँधेरा फैल रहा था और मेरे चारों ओर बहुत गहरा अँधेरा था। मैंने महसूस किया, कोई मेरे जूते उतार रहा है। मैं समझ गया था यह कौन है। मैंने आँखोंपर-से हाथ उठाकर देखा, वही थी। उसने जूते उतारकर अपने गाल मेरे पैरोंपर रख दिये और सिसकने लगी। मुझे ऐसा लगा मानो सैकड़ों साँप-बिच्छू मुझसे लिपट गये हों। मैंने अपने पाँव खींच लिये और उठकर बैठ गया। चीखकर कहा, "क्या है ?····क्यों आयी हो यहाँ ?"

"फिर कहाँ जाऊँ ?" उसने आँसुओंसे भीगा हुआ चेहरा उठाकर मेरी तरफ़ देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज पहली बार उसने मेरी झिड़कीका जवाब दिया था।

"कहीं भी जाओ, मगर मेरे क़रीब न आया करो।"

"इतनी नफ़रत ?" उसके होंठ कँपकँपा रहे थे।

"मुझे तुमसे सख्त नफ़रत है। तुमसे घिन आती है, चली जाओ।"

"मुझसे ऐसी क्या खता हो गयी ? मैंने तो आपको कोई तकलीफ़ भी नहीं पहुँचायी। आपको हर तरह आराम पहुँचानेकी कोशिश करती हूँ····आजतक मैंने आपसे कुछ नहीं कहा और चुपचाप सब कुछ सहती रही हूँ। आप मुझसे इतनी नफ़रत क्यों करते हैं ? बताइए···हाँ, मैं खूबसूरत नहीं हूँ, लेकिन इसमें मेरा क्या क़सूर है ? काश, आपने मेरी सूरतकी बजाय मेरे दिलमें झाँककर देखनेकी कोशिश की होती। वहाँ आपको बहुत-कुछ दिखाई दे जाता। मैं बदनसीब····।" उसने अपना निचला होंठ दाँतोंमें दबा लिया।

"बदनसीब तो मैं हूँ····मैं कहता हूँ, चली जाओ यहाँसे। तुम्हारे यह टसवे भी मेरे दिलमें हमदर्दी पैदा नहीं कर सकते।"

"नहीं, मैं आपकी यह बेरुखी बर्दाश्त नहीं कर सकती। खुदारा, अगर मुझसे कोई ग़लती हुई हो तो माफ़ कर दीजिए। मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ। मुझे इस आगमें मत धकेलिए। मैं मिन्नत करती हूँ।"

"चली जाओ यहाँसे····जाओ।" मैं भी ग़ुस्सेसे काँप रहा था।

"कहाँ जाऊँ ? मुझ बदनसीबके लिए कहाँ ठिकाना है ? मुझसे इतनी नफ़रत थी तो शादी ही क्यों की थी ?"

"जहन्नममें जाओ। मैंने शादी नहीं की। जिन्होंने शादी की है उनसे पूछो।"

वह मेरे पैरोंपर गिरकर रोने लगी। मैंने ज़ोरसे झटका दिया और बाहर निकल गया। अब्बा सहनमें सर झुकाये टहल रहे थे और नसरीनकी सिसकियाँ चारों तरफ़ फैली हुई थीं···

■

इस मुस्तक़िल ज़हनी उलझनने मुझे बीमार डाल दिया। मेरी जगह कोई दूसरा होता तो शायद पागल हो जाता। बीमारी इतनी सख्त थी कि सब परेशान थे। बुख़ार उतरनेका नाम ही नहीं लेता था और हर वक़्त बेहोशीकी-सी हालत रहती। मेरी बीमारी चिन्ताजनक स्थिति तक पहुँच गयी थी। डॉक्टर भी परेशान था, न दवा असर कर रही थी और न घरवालोंकी तीमारदारी। पूरा एक हफ़्ता इसी हालतमें बीत गया।

एक हफ़्ते बाद जब मैंने आँखें खोलीं तो कमज़ोरीकी वजहसे मेरी आँखें नहीं खुल रही थीं। मेरे सामने अब्बा, भैया और नसरीनके कुम्हलाये हुए चेहरे थे। उनके चेहरोंपर यास थी, लेकिन साथ ही उम्मीदकी लकीर भी चमक रही थी। नसरीनको देखकर मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। अब्बाने मेरे माथेपर अपना हाथ रख दिया और पुकारने लगे, "शाहिद····बेटा शाहिद····ज़रा आँखें खोलो। देखो तुम्हारे भैया, छोटी दुल्हन, यह बच्चे···· सब तुम्हारी वजहसे कितने उदास हैं····बुख़ार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अब काफ़ी कम हो गया है ''शाहिद !''

मैंने आवाज़के साथ अपनी निगाहें उठायीं। अब्बाकी आँखें डबडबायी हुई थीं, पर वह बहुत ज़ब्त कर रहे थे। मैंने नसरीनकी तरफ़ देखा, उसकी आँखें भीगी हुई थीं। शायद अभी-अभी पोंछी हैं। मैंने सोचा, यह क्यों उदास है? यही तो सारे झगड़ेकी जड़ है। यह न होती तो मैं बीमार न पड़ता और घर वालोंको इतनी परेशानी न उठानी पड़ती।

''इस तरह क्यों देख रहे हो?''''यह छोटी दुल्हन है, नसरीन बेटी। कई रातें तुम्हारे सिरहाने बैठकर आँखोंमें गुज़ारी हैं इन्होंने। न खानेका होश है, न पीनेका। देखो, अपनी क्या हालत बना डाली। लाख समझाया कि तुम आराम करो। हम दोनों बाप-बेटे थोड़ी-थोड़ी देर जाग लेंगे, वरना तुम भी बीमार पड़ जाओगी, लेकिन इस ख़ुदाकी बन्दो ने हमारी एक न सुनी। तुम्हारी तीमारदारी इस तरह की कि हम लोग भी न कर सके।''

मैंने देखा, नसरीनने अपनी तारीफ़ सुनकर ज़बरदस्ती मुसकरानेकी कोशिश की, लेकिन मुसकराहट तो चेहरेपर न आ सकी, हाँ उसकी आँखोंमें आँसू ज़रूर तैरने लगे। मैंने नफ़रतसे मुँह फेर लिया। मुझे उससे कोई हमदर्दी न थी। ख़ुद ही आग लगायी और ख़ुद ही तमाशाई बनी हुई थी।

धीरे-धीरे मेरी तबीयत सँभलती जा रही थी। मैं उठकर बैठने लगा था और मुझे खानेको भी दिया जा रहा था। घरका हर आदमी बात-बातपर मुसकरानेकी कोशिश करता और नसरीन मेरे क़रीब आनेकी हर मुमकिन कोशिश करती थी, लेकिन मैं उसे अपने पास नहीं फटकने देता था। उसे देखकर मेरी मानसिक उलझनें बढ़ जातीं।

■

एक रात अचानक प्यासकी वजहसे मेरी आँख खुल गयी। कमरेमें रोशनी थी। ताक़में रखा हुआ टाइमपीस टिक्-टिक् कर रहा था और मेरी चारपाईके क़रीब कुरसीसे पीठ लगाये नसरीन सो रही थी। उसके बाल बिखरे हुए थे और गालोंपर आँसुओंकी लकीरें सूखी हुई थीं। घड़ीकी तरफ़ देखा, तीन बजकर चालीस मिनिट हुए थे। मैं सोचने लगा, यह लड़की जिसे इस घरमें आते ही नफ़रत मिली'''प्यार-मुहब्बतकी बजाय नफ़रत''''। इसके दिलपर क्या बीतती होगी। मैं इसे धुतकारता हूँ, इसके अस्तित्वसे कतराता हूँ और यह मेरे लिए दीवानी हुई जा रही है, मेरी बीमारीसे परेशान है। यह कैसी लड़की है''''बिलकुल अजीब। अगर इसकी जगह मैं होता तो नफ़रतका जवाब नफ़रतसे देता।''''मेरा दिल भर आया और मुझे अपने व्यवहारपर लज्जा आने लगी। कितनी अच्छी लग रही है सोतेमें, किसी मासूम बच्चेकी तरह। मैंने बढ़कर उसका हाथ उठा लिया और दोनों हाथोंमें भींचकर उसे अपनी आँखोंसे लगा लिया। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। मैं आज पहली बार उसकी तरफ़ देखकर मुसकरा रहा था। मैंने धीरेसे कहा, ''नसरीन, मेरी हमसफ़र, मुझे माफ़ कर दो।''

(अनु० वीना सोंधी)

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियोंकी बिभीषिकामें तपता और तपकर निरन्तर निखरता एक निश्चल-अपराजेय व्यक्तित्व जिसने हिन्दीमें सर्वप्रथम अपनी कथा लिखकर 'आत्मकथा' लेखकोंके लिए मीलका एक पत्थर स्थापित किया। उसी कर्मयोगीके व्यक्तित्व और कृतित्वका शोधक तथा समीक्षक दृष्टिसे किया गया प्रस्तुत है यह एक समग्र अध्ययन

कविवर बनारसीदास

(जीवनी और कृतित्व)

शोध-प्रबन्ध

●●

डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

साहित्यके प्रत्येक अध्येता पाठक और पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय कृति

सितम्बर १९६६ में प्रकाश्य

मूल्य १०.००

●

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय

९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने मेरे बारेमें जिज्ञासा की है। आभारी हूँ। लीजिए, थोड़ी-सी मूड़ी आप भी खाइए। मुझे खुशी होगी !

देखिए, हर आदमी अपने परिवेशसे 'कण्डीशण्ड' होता है। संस्कार घर-बाहरके वातावरणसे, जिसमें कि वह रहता है, निर्मित होते हैं। हम सब अपने संस्कारोंके गुलाम हैं। अपनी बात कहनेका, अपने तरीक़ेसे सोचनेका, किसीके सम्बन्धमें अपनी निश्चित धारणा बनानेका अधिकार हर किसीको है। यह बात दूसरी है कि अब यह दुनिया मुझे बहुत बदली हुई लगती है, उस दुनियासे बहुत भिन्न जिसका नक़्शा मैंने अपने दिमाग़में किताबें पढ़-पढ़ कर बनाया था। हो सकता है, आपका अनुभव दूसरा रहा हो। उस हालतमें आप मुझे क्षमा कर देंगे। और इसके लिए भी आप मुझे क्षमा करेंगे कि बात मुझे शुरूसे कहनी पड़ रही है। यानी उस समय से जबकि मैं छोटा-सा बच्चा था।

हम चार लँगोटिया यार थे। जगदीश, रामलगन, मुकुटबिहारी और मैं। मेरे माता-पिता औसत निम्न-मध्यम-वर्गीय माँ-बाप की तरह आदर्शवादी थे। हमारे घरमें रविवारके रविवार छोटे-से लोहेके हवनकुण्डमें हवन होता था। जलते हुए शुद्ध घी और हवन-सामग्रीकी महक घरमें भर जाती थी। 'ओम्' शब्दका देर तक उच्चारण करनेके बाद हम लोग खूब ज़ोर-ज़ोरसे साँस लेते थे ताकि पवित्र वायु हमारे फेफड़ोंमें भर जाये। अब तो समय बहुत बदल गया है। हवन अब बहुत कम घरोंमें होता है।

लगभग उन्नीस वर्ष पहले जब हमने कॉलेजसे विदा ली थी तो हमने दीक्षान्त भाषण

संस्कार

गिरीश अस्थाना

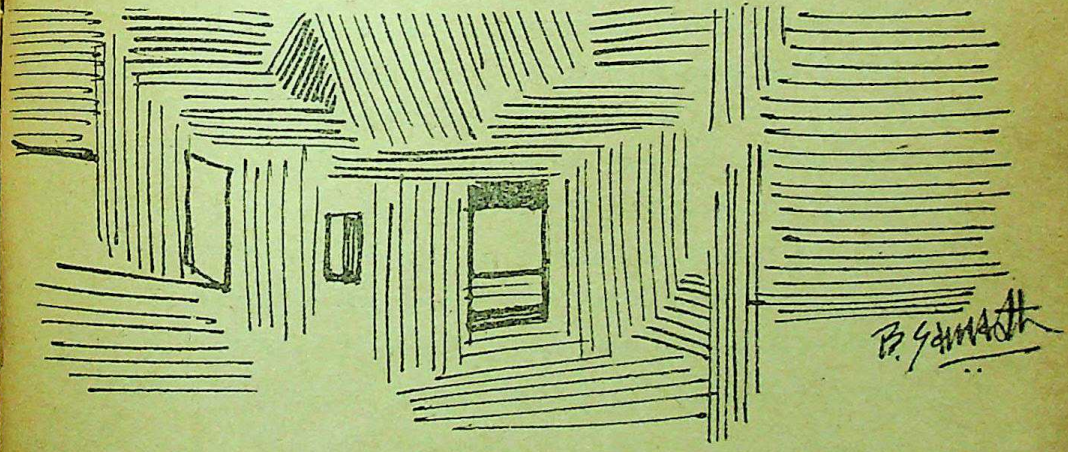

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुना था। एक बड़े प्रकाण्ड पण्डित और दार्शनिक हमारी युनिवर्सिटीमें 'कन्वोकेशन एड्रेस' पढ़ने आये थे। भाषण इतना प्रभावोत्पादक और प्रेरणादायक था कि हम लोग फूलकर कुप्पा हो गये थे और हमें लगा था कि गैस-भरे ग़ुब्बारेकी तरह हलके होकर हम ऊपर हवामें उठ गये हैं।....दीक्षान्त समारोह अब भी होते हैं। बड़े-बड़े दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, क़ानूनदाँ और विद्वान् भाषण देनेके लिए बुलाये जाते हैं, अख़बारोंमें रिपोर्टें भी छपती हैं, लेकिन मुझे ये शब्द बड़े खोखले लगते हैं मानो एक घिसा हुआ रिकार्ड बज रहा हो। क्योंकि मुझ-जैसे शुद्ध आर्ट्स-ग्रेजुएटका भविष्य, अगर वह आई० ए० एस०, आई० पी० एस०, आई० आर० एस० आदिके लिए प्रवेश-प्रतियोगितामें 'टॉप' नहीं करता तो, निश्चय ही अन्धकारमय है। फिर भी हर साल एक बी० ए० पास फ़ौज हर विश्वविद्यालयसे निकलती है।....उस समय तो कुछ बात ही और थी! स्वतन्त्र भारतका वह पहला दीक्षान्त भाषण था। विद्वान् वक्ताने कहा था कि हम लोग भाग्यशाली हैं। एक ग़ुलाम देशके स्नातकोंकी तरह हमें दर-दर भटकना नहीं पड़ेगा। हमारे लिए तरक़्क़ीकी सारी राहें खुल गयी हैं, वग़ैरह-वग़ैरह! भाषण समाप्त होनेपर हमने इतनी ज़ोरसे तालियाँ पीटी थीं कि हमारी हथेलियाँ देर तक कल्लाती रही थीं। हम काले गाउन और हुड पहने खुश-खुश पण्डालसे निकले थे और सीधे एक फ़ोटोग्राफ़रके यहाँ पहुँचकर हमने ग्रुप-फ़ोटो खिंचाया था। फिर पास ही एक रेस्तराँमें बैठकर चाय पी थी। फिर अगले चौराहे तक हमलोग साथ गये थे और वहाँ एक दूसरेको 'टा-टा' करके हमने अपने-अपने घरकी राह ली थी। घरपर माँ-बाप, भाई-बहन बड़ी बेसब्रीसे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

फ़ोटो बहुत ही बढ़िया खिंची थी। चेहरों पर खुशी झलक रही थी। आँखोंमें चमक थी, क्योंकि उनमें सपने तैर रहे थे, और हम-लोगोंके होंठ दृढ़ संकल्पसे कुछ भिंचे हुए-से थे। फ़ोटो बैठकमें टाँग दी गयी। पिताजी तो चाहते थे कि मेरी बी० ए० की डिग्री भी शीशेमें फ़्रेम करवाकर बैठकखानेमें टाँग दी जाये लेकिन मेरे कड़ा विरोध करनेपर कि यह गँवारू बात होगी, बड़ी मुश्किलसे उन्होंने अपना इरादा बदला था। बहरहाल उन्होंने पास-पड़ोसमें नुकतीके लड्डू तो बँटवाये ही, और दूर-दराज़ सम्बन्धियोंके यहाँ काग़ज़ी घोड़े दौड़ा दिये कि परमपिता परमात्माकी असीम कृपा और आप लोगोंके आशीर्वादसे लख़्ते-जिगर, नूर-चश्म, राहत-जान, अज़ीज़-ए-मन, बरखुरदार ओमप्रकाशने दोयम डिवीज़न में बी० ए० पास कर लिया है।....तो उन पत्रोंके उत्तरमें बधाइयाँ आयीं। चन्द नातेदारोंने आशीर्वाद देते हुए मुझे निजी पत्र लिखे, लिफ़ाफ़ेपर पता लिखा—'चिरंजीव ओमप्रकाश, बी० ए०'। और उन पत्रोंको देखकर मेरा मन लोटन कबूतर हो गया। जोशमें आकर मैं एकके बाद एक, कई प्रतियोगिताओंमें बैठा। दो-तीन बार सफल उम्मीदवारोंकी लिस्टमें नाम भी आया, मगर अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर आते-आते भरती समाप्त ! नशा जल्दी ही उतरने लगा। घरवालोंके मुँह लटक गये। युद्ध समाप्त होते ही आज़ादी मिली थी, फ़ौजमें छँटनी हो रही थी, बेकारी बढ़ रही थी। फिर वही हुआ जो होना था, क्लर्कीके लिए दौड़-धूप शुरू की। एम्पलॉयमेण्ट ऐक्स-चेंजमें भी नाम लिखाया। एक दफ़्तरमें कुछ जगहें निकलीं। छपे हुए फ़ॉर्मपर अर्ज़ियाँ माँगी गयी थीं। बड़े बाबूने बताया कि छपे हुए फ़ॉर्म समाप्त हो गये। बरामदेमें नोटिस-बोर्डपर उस फ़ॉर्मका नमूना टँगा है। वहाँसे कॉपी करके, टाइप कराके, दरख्वास्त दी जा सकती है। उधर आवेदन-पत्रके दाख़िलेकी आख़िरी तारीख़ सिरपर और फ़ॉर्म शैतानकी आँतकी तरह लम्बा। साथमें कई एक पुँछल्ले (प्रमाणित कराकर) नत्थी करने भी ज़रूरी !.... फ़ॉर्म पढ़कर ही झुरझुरी आ गयी। मगर आवेदन-पत्र तो देना ही था, खड़े-खड़े नक़ल करना शुरू किया। थोड़ी ही देरमें आँखोंके सामने काले-सफ़ेद धब्बे नाचने लगे, रीढ़की हड्डीसे पसीना चू-चूकर पतलूनके पिछले भागमें समाने लगा।

अभी थोड़ी ही नक़ल हो पायी थी कि एक नवयुवकने आकर टोका, "क्यों ख़ामख़ाह आँखें फोड़ रहे हो जी ? तुम्हारे लिए मैं कोशिश किये देता हूँ। साहबके पास शायद कुछ फ़ॉर्म शेष हों ?"

"तो चलो, साहबसे माँग लायें !"

"साहबसे तो बड़ेबाबू ही माँग सकते हैं।" उस लड़केने कहा था। बादमें मुझे पता चला कि वह लड़का बड़ेबाबूका एजेण्ट था। बड़े बाबू उसके द्वारा एक रुपया प्रति फ़ॉर्म प्रार्थियोंसे वसूल करते थे। संयोगकी बात थी कि उस समय मेरी जेबमें एक रुपया मौजूद था। उसके बदलेमें मुझे एक फ़ॉर्म मिल गया था। आज़ादी मिलनेके बाद वह पहला झटका था जो मुझे लगा था। और दूसरा झटका तब लगा था जब सिविल सर्जनने तो स्टेथोस्कोप लगाकर, ठोक-बजाकर मुझे डॉक्टरीमें पास कर दिया लेकिन उसके कम्पाउण्डरने टाँग अड़ा दी। पास बुलाकर धीरेसे बोला, "और सब तो ठीक है, मगर तुम्हारे पेशाबमें एल्बूमिन है !" सुनकर मैं घबरा गया। यह एल्बूमिन क्या बला होती है ? तब मैं उस शब्दके अर्थ भी नहीं जानता था। कम्पाउण्डर हमदर्दी जताता हुआ बोला था, "घबराओ मत, दो घण्टे बाद हम तुम्हें दोबारा पेशाब करवायेंगे, एक बार फिर टेस्ट कर लेंगे।"—उसने स्वीपरको बुलाकर हिदायत कर दी। और जब मैं उतरा हुआ चेहरा लिये कमरेसे बाहर निकला तो वह भंगी बीड़ी माँगनेके बहाने मेरे पास आया और दबी ज़बानमें बोला, "बाबूजी, तुमने क्या उस ख़बीसकी मुट्ठी गरम नहीं की ?" मैंने प्रश्न-सूचक दृष्टिसे उसे ताका तो कहने लगा, "अरे बाबू, दस रुपया फ़ी आदमी तो उसका बँधा हुआ है। कैसे-कैसे भोले मानुस आ जाते हैं !—अगर सचमुच कोई नुक़्स निकल आये तो यह क़साई बीस-तीस तक आसानीसे झटक लेता है। दस रुपयेका जूता इसके मुँहपर मारो नहीं तो फ़ेल कर देगा, सिविल सर्जन तुम्हें अपने आगे पेशाब थोड़े ही करायेगा !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे चेहरेका रंग उड़ गया। इस सपने मेरे पास नहीं थे। जहाँ तक मुझे मालूम था, घरपर भी नहीं थे। मैं डॉक्टरीमें फ़ेल कर दिया गया। लेकिन बजाय दुःखके मुझे ख़ुशी हुई। मुझे ऐसा लगा था कि एक रुपया घूस देकर जो प्रार्थना-पत्र प्राप्त किया था उस पापका प्रतिकार भी मैंने कर दिया। पिताजी भी सुनकर नाराज़ नहीं हुए थे। संस्कारोंकी बात है न! लेकिन मुझे ग़ुस्सा बहुत आया था। मुझ-जैसे आदर्शवादी सपने देखनेवाले, पतली खाल और मोटी अक़्लवाले आदमीके लिए, जो कविता-कहानी पढ़ना ही नहीं लिखना भी चाहता था, ज़िन्दगी दूभर होती जा रही थी।

आप जानते हैं, हर दफ़्तरमें एक बड़ा-बाबू होता है, और वह दिनभर यह स्कीम बनाया करता है कि कैसे छोटे बाबुओंको काम में जुटाये रखें ताकि उन्हें सिर उठानेकी फ़ुरसत न मिले और वह स्वयं बैठा-बैठा गम्भीर चिन्तन करता रहे। वह तो अपनी सरकार बड़ी रहम-दिल है कि जहाँ एक बाबूकी ज़रूरत होती है वहाँ उसने तीन-तीन बाबू-नौकर रख छोड़े हैं। इससे एक तो बेरोज़गारी कम होती है। दूसरे, जब बाबूलोग मौजूद हैं तो उनके लिए काम पैदा किया जाता है, ऐसे ही जैसे सरकारी फ़ार्मोंमें आलू पैदा किये जाते हैं, ताकि फ़ार्मका अमला बराबर कुछ-न-कुछ गोड़ता, बोता, काटता-छाँटता-फटकता और ढोता रहे! इसी तरह बाबूलोगोंसे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, फिर तिमाही, छमाही और सालाना ब्योरेवार विवरण बनाये जाते हैं। यह काम बड़ा दिलचस्प भी है और 'बोरिंग' भी। यह अच्छा ही है कि शैतानकी आँतकी तरह ये ब्योरे बढ़ते ही जाते हैं, वरना सब बाबूलोगोंको पक्की छुट्टी मिल जाये। लेकिन छुट्टी नहीं मिलती फिर भी चैन कहाँ मिलता है?—क्योंकि हर बाबू-के घरमें एक बीवी होती है। बीवीकी गोद में एक बच्चा होता है, और एक उसके पेटमें। बड़ी-बूढ़ियाँ जब असीसती हैं कि कोख हरी रहे, गोद भरी रहे, तो कोख और गोद दोनों ही बराबर भरी रहनी चाहिए। लेकिन बिचारे बाबूके दिलपर क्या बीतती है यह कोई नहीं सोचता! शादी होनेके पश्चात् डेढ़-दो वर्ष तक अगर गोद 'हरी' नहीं होती तो मुहल्लेवाले उस घरपर 'लाल झण्डी' टाँग देते हैं.... खतरा है! इस घरमें एक चुड़ैल रहती है। सुहागिनें अपने बच्चोंको इस घरमें न घुसने दें। उनपर जादू-टोना हो सकता है, कोई और आफ़त भी आ सकती है!—तो जहाँ संस्कार ऐसे हैं वहाँ परिवार-नियोजनकी योजनाएँ कहाँ तक सफल होंगी?

मेरे घरपर भी शादीके बाद तीन साल तक लाल झण्डी लटकी रही। बात बस इतनी-सी थी कि बढ़ती हुई महँगाईके इस ज़मानेमें हम मियाँ-बीवी कुछ दिन आराम-चैनसे रह लेना चाहते थे, थोड़ी सैर-तफ़रीह कर लेना चाहते थे। लेकिन हमारी ख़ुशी बाहरवालोंसे तो क्या, घरवालोंसे भी नहीं देखी गयी। अम्मा और पड़ोसकी सब चाचियाँ, ताइयाँ और मौसियाँ पंजे झाड़के पीछे पड़ गयीं, "बहू की डॉक्टरी क्यों नहीं कराता? किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेडी डॉक्टरको क्यों नहीं दिखाती ?' अम्मा कहतीं, "ऐसी कोख-जली औरतका घरमें होना-न-होना बराबर है, तीन सालसे मुन्नेका मुँह देखनेको तरस रही हूँ !"

पत्नी पहले तो मुँहमें कपड़ा ठूँस-ठूँसकर रोती रही, फिर वह भी मुझे ही दोष देने लगी। और जब किसी मर्दकी औरत उसे दोष देने लगती है तो बात बरदाश्तसे बाहर हो जाती है। अतः हमने घरवालोंको और मुहल्लेवालोंको खुश करनेका फ़ैसला कर लिया। अगले तीन वर्षोंमें हमारे चार सन्तानें हुईं····पहली बार दो जुड़वाँ लड़कियाँ, फिर दूसरी और तीसरी बार एक-एक लड़का। ढोल-मजीरे बजे, सोहर गाये गये, लड़कियों-के जन्मपर बताशे और लड़कोंके जन्मपर बताश-फेनियाँ और लड्डू बाँटे गये। आँगनमें हिजड़े नाचे !····अम्मा और घरकी व मुहल्ले-की भाभियाँ, चाचियाँ, ताइयाँ सब खुश। बीवी भी खुश ! अगर कोई खुश नहीं था तो वह अकेला मैं था। मेरे माथेपर चिन्ताकी लकीरें खिंचती गयीं। लगा कि मैं असमय बूढ़ा हो चला हूँ। क्योंकि सालाना तरक़्क़ीमें केवल पाँच रुपये मिलते थे। कुछ मँहगाई-भत्ता ज़रूर बढ़ जाता है, लेकिन खर्च ? खर्च तो दिन दूना, रात चौगुना बढ़ रहा था। रुपया ठीकरी हो गया था।

आप मुझे क्षमा करेंगे। शायद मैंने आपको नहीं बताया कि मैंने अपने संस्कारोंको कुचलकर दूसरी बार डॉक्टरीमें पास होनेके लिए घूस दी थी। यह मेरी खुशक़िस्मती थी कि उस विभागके बड़ेबाबू अपने मुहल्लेमें ही रहते थे। मैं उन्हें 'ताऊजी' कहता था। तो मैं सुबह-शाम ताऊजीके घर हाज़िरी बजाने लगा। उनके सबसे छोटे चिरंजीवको गोद खिलाने लगा। एक बार जब कि मैं उसे गली-में गोदी लिये टहला रहा था तो सूअरने मेरी नयी निकर-पतलून-कमीज़ ख़राब कर दी। ग़ुस्सेमें भरकर मैंने उसको चिकोटी जो काटी तो वह बिलबिलाकर रो पड़ा। घरके सब-लोग दौड़ आये। बड़ेबाबूकी पत्नीको सन्देह था कि मैंने उसे मारा है। उस दिन मुझे मिलनेवाली नौकरी सचमुच ख़तरेमें पड़ गयी थी। लेकिन मैंने किसी तरह मामला सँभाल लिया था।

उससे बड़े बच्चेको मैं 'बज्जी' घुमाने ले जाता था और उसे ग़ुब्बारे और बालूशाही दिलाकर लाता था। इसके अलावा मौसमी फल (खरबूज़े, तरबूज़, ककड़ियाँ, आम, इत्यादि) भी यह कहकर दे आता था कि ये चीज़ें हमारे गाँवसे आयी हैं, हालाँ कि वहाँ-से कुछ आनेका सवाल ही पैदा नहीं होता था। इस प्रकार बड़े जतनसे एक सौ दस रुपये महीनेकी नौकरी मुझे मिली थी।

हो सकता है, और कुछ ज़रूरी तफ़सील भी बीचमें छूट गयी हो, क्योंकि मेरा चित्त ठिकाने नहीं है। इसलिए आपसे निवेदन है कि जहाँ बात समझमें न आये, आप मुझे बीचमें टोक दें।—देखिए, रामलगनकी बात छूट गयी। दीक्षान्त समारोहके उपरान्त खिंचाई वह ग्रुप-फ़ोटो अब भी हमारे बैठकमें टँगी है। अब वह पीली पड़ चुकी है। उस फ़ोटोमें हम तीन मित्र हैं : जगदीश, मुकुटबिहारी और मैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामलगन ग़ायब है। उसके पिताजीने चौथी कक्षासे ही उसे उठाकर एक पन्सारीकी दूकान-पर पुड़िया बाँधनेपर नौकर करा दिया था। हमारी चाण्डाल-चौकड़ी टूट गयी थी। राम-लगनके पिताजीका विचार था कि स्कूलोंमें क़तार बाँधे समवेत स्वरमें 'हे प्रभो आनन्द-दाता, ज्ञान हमको दीजिए' गानेसे कहीं अच्छे संस्कार पन्सारीकी दूकानपर पुड़िया बाँधनेसे बनते हैं। स्कूलों-कॉलिजोंसे कहीं अधिक 'व्यावहारिक' शिक्षा पन्सारीकी दूकानपर मिलती है। पहली बात तो यह कि एक पन्सारीका असिस्टेण्ट हिसाब-किताबमें पक्का हो जाता है। सवाये, ड्योढ़े, ढौंचे, पौंचे और हूँठेके पहाड़े उसे ज़बानी याद रहते हैं। बाबू-लोगोंको कापी-पेन्सिल लेकर जिस हिसाबके जोड़नेमें पन्द्रह मिनिट लग सकते हैं, वह तुरन्त उसका मुँहज़बानी टोटल करके बता सकता है, और उनमें एक पाईका भी फ़र्क़ नहीं निकल सकता!....दूसरे वह पैसेके महत्त्व-को, बल्कि कहना चाहिए कौड़ी-कौड़ीके महत्त्व को, समझ जाता है। किफ़ायत-शिआरी (मितव्ययिता) उसकी नस-नसमें बस जाती है। सौंफ़, धनिया, हींग, दालचीनी, पसीने और क्योड़ेकी मिली-जुली खुशबूसे बसे, हल्दि-याये हुए, एक जोड़ा धोती-कुरतेमें वह एक महीना आसानीसे गुज़ार सकता है, बारह घण्टे कड़ा परिश्रम करनेका आदी हो जाता है, डण्डी मारना सीख लेता है, और, सबसे बड़ी बात, स्कूल-कॉलिजमें पढ़नेवाले लड़कों-की फ़िज़ूल बातों और ऊल-जलूल हरकतोंसे वह बच जाता है। मसलन वह दिवा-स्वप्न नहीं देखता, अच्छे खाने-कपड़ेका शौक़ उसे नहीं होता, कविता-कहानी पढ़नेमें वह समय बरबाद नहीं करता, राजनीतिके कीटाणु उसकी खोपड़ीमें नहीं घुसते, सह-शिक्षाके खतरनाक परिणामसे वह बच जाता है, यानी किसी पोडशीके चक्करमें फँसकर उसे कविता नहीं सूझती! ज़िन्दगीमें वह केवल महत्त्वपूर्ण चीज़को पकड़ता है—महत्त्वपूर्ण चीज़—माने पैसा। वह धन्धा करनेका गुर सीख लेता है। यह बड़ी बात है। उस समय हमलोग राम-लगनके पिताजीकी करतूत पर हँसे थे। लेकिन रामलगन अब एक सफल व्यापारी है।

बेचारे मुकुटबिहारीके साथ ट्रेजेडी हो गयी। तैराकी-प्रतियोगितामें भाग लेनेके लिए वह जमुनामें तैरनेका अभ्यास किया करता था। एक दिन तैरते-तैरते वह बीच धारमें ग़ायब हो गया। लोगोंका विचार है कि उसे कोई मगर-वगर खींच ले गया। चढ़ी हुई बरसाती नदी थी!

और जगदीश! अब वह एक प्रसिद्ध डॉक्टर है। उसके माँ-बाप साधन-सम्पन्न थे। दिल्लीमें स्वतन्त्र प्रैक्टिस करके अब वह पैसा 'मिण्ट' कर रहा है। ख़ूब बोतलोंमें पानी भर-भरके मरीज़ोंको देता है। अब वह बहुत चतुर हो गया है। उसकी खाल ख़ूब चिकनी और मोटी हो गयी है। डॉक्टरी पढ़ रहा था तो कहता था कि ग़रीबोंका मुफ़्त इलाज किया करेगा। अपने देशकी जनता बीमारीसे जो इतनी पीड़ित है, ये सब उससे नहीं देखा जाता। कहता था कि गाँव-गाँव जाकर वह लोगोंका इलाज किया करेगा। वे बेचारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्वेक्स'के चक्करमें फंसे रहते हैं। अन्धेरगर्दी इतनी बढ़ गयी है कि 'वेट्स'—आमफ़हम भाषामें जिन्हें 'घोड़ा-डॉक्टर' कहते हैं—गाय-भैंसोंका इलाज करते-करते गाँववालोंका इलाज करने लगे हैं। जो इन्जेक्शन उन्हें जानवरोंके लगानेके लिए दिये जाते हैं, वही इन्जेक्शन मात्रा घटाकर आदमियोंके लगाने लगे हैं। और उनके असली मरीज़—बकरियाँ, गायें, भैंसे, घोड़े, गधे आदि—खाँसी-बुखारसे पीड़ित बाहर धूपमें खड़े-खड़े हाँफते रहते हैं। इन पशुओंमें अगर अक़्ल होती, और वे बोल सकते, तो वे भी अपना 'डेप्यूटेशन' लेकर संसद्-भवनके सामने नारे लगाते हुए पहुँचते !.... लेकिन ये बातें जगदीश तब किया करता था जब उसकी प्रैक्टिस चलती नहीं थी। प्रैक्टिस चल निकली तो उसका आदर्शवाद काफ़ूर हो गया। वे संस्कार जो स्कूलमें समवेत स्वरमें 'हम सदाचारी बनें, वीर-व्रत-धारी बनें' इत्यादि, गाते-गाते बने थे उसके दिमाग़से ऐसे मिट गये जैसे कि पानी पड़नेसे स्लेटपर लिखे अक्षर मिट जाते हैं। गाँव जानेकी बात तो दूर, अब तो सौ-पचास ग़ज़का फ़ासला तय करनेके लिए भी उसे कार चाहिए ! अगर कोई 'रोपवे' टाइपकी चीज़ होती, जिसमें टब में बैठकर स्विच दबानेपर वह अपने घरके अन्दर ड्राइंगरूम, ड्राइंगरूम, बेडरूम, और बाथरूम तक आ-जा सकता, तो निश्चित ही वह उसे अपनी कोठीमें फ़िट करवा लेता।

अब वह बहुत व्यस्त आदमी है। संयोग-वश कहीं मिल जाता है तो 'हलो ओम !" कहकर बड़ी अजीब-सी आँखोंसे मुझे देखता है। पिछली बार मिला तो कहने लगा, "तुम्हें क्या होता जा रहा है ? तुम्हें ठीक 'नरिश्मेण्ट' नहीं मिल रहा है। तुम्हारा चेहरा तिकोना हो गया है, बस आँखें-ही-आँखें चमकती हैं। तुम्हें 'सूखा रोग' हो गया है, चलो मैं तुम्हारा इलाज करूँ !"

मैंने कहा था, "भई मेरा इलाज पीछे करना, पहले मेरी पत्नीका इलाज करो। मुझे तो बस चिन्ता खाये जा रही है। दोनों लड़कियाँ शादी लायक़ हो रही हैं, लड़कोंकी पढ़ाई अभी पूरी नहीं हुई। लेकिन तुम्हारी भाभी सचमुच बहुत बीमार है। उसे कोई अन्दरूनी बीमारी हो गयी है। मैं तो तुम्हारे पास ही जा रहा था।"

जगदीशने तीन महीने तक इलाज करके मेरी पत्नीको बचा लिया। उस समय मेरी समझमें आया कि आजकल एक डॉक्टर-दोस्तका होना कितने सौभाग्यकी बात है। लेकिन डॉक्टरने उसे अच्छी ख़ुराक खिलाने-को कहा था। मैं इसका प्रबन्ध कहाँसे करता ? इसलिए छह महीने बाद बीमारी फिर उखड़ आयी। फिर डॉक्टर जगदीशका इलाज करने लगा....!

अब आपसे क्या कहूँ, आदमीके बर-दाश्त करनेकी एक सीमा होती है। मैं भीतरसे टूटने-टूटनेको हो रहा था। पत्नी बीमार, लड़कियाँ-लड़के रूखा-सूखा खाकर पढ़ रहे थे। कच्ची हड्डियोंकी मज़बूतीके लिए घी-दूधकी ज़रूरत होती है, नहीं तो छुटपनमें ही उनमें घुन लग जाता है। मगर हम अपने घरमें क्या खाते हैं, यह कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जान सकता। लेकिन अपने लिए न सही, बच्चोंके पास पहननेको ढंगके कपड़े तो होने चाहिए। फटे-पुराने कपड़े पहनाकर उन्हें स्कूल भेजते दिल दुखता था। अपने सहपाठियोंके सामने कितना छोटा महसूस करते होंगे वे? और आजकल नायलोन, टेरेलीन, टेरीकॉट्न, टेरीवूल····कपड़े भी तो कैसे-कैसे चल गये हैं! रंग और डिज़ायन भी ग़ज़बके हैं। स्कर्टोंपर अलसी, सरसों और केशर फूलता है, ब्लाउजोंपर डाहलिया, गुलाब, बनफ़शा और सूरजमुखी खिलते हैं, और साड़ियोंपर गुलमुहर और अमलतासके अतिरिक्त अजन्ता, ऐलोरा, कोनमबक्कम और शान्तिनिकेतनकी मूर्तियाँ उतर आयी हैं। यही हाल रहा तो चन्द दिनोंमें खजुराहो भी मरदानी बुशशर्टोंपर छपने लगेगा। एक कपड़ा-मिलने नागफनीका डिज़ाइन निकाला था। लेकिन औरतों और मर्दों दोनों ने ही अपने शरीरपर काँटे उगाना गवारा नहीं किया। इसलिए वह डिज़ाइन फ़ेल हो गया, वरना और सब डिज़ाइन तो धड़ल्लेसे बिकते हैं। थोड़े ही दिनोंमें, आप देखिएगा, 'पॉप आर्ट' भी कपड़ोंपर उतर आयेगा! पॉप आर्टमें लिपटी औरतें अगर खड़ी हों तो लगेगा, हिल रही हैं, बैठी हों तो भ्रम होगा खड़ी हो रही हैं और लेटी हों तो मालूम होगा हवामें तैर रही हैं!—तो जनाब, जब रंग-ओ-बू का यह आलम है तो किसीका दिमाग़ क्या ठिकाने रह सकता है? मैंने सोचा, जबकि हर चीज़की इतनी बहुतायत है तो मेरा घर ही मक़बरेकी तरह वीरान क्यों नज़र आये? मेरे बच्चे ही जरा-जरा सी चीज़के लिए क्यों तरसते रहें? मेरी बीवी क्यों असमय मर जाये? मैं इनपर और जुल्म नहीं ढाऊँगा, और मैंने वह काम शुरू कर दिया जो मुझे नहीं करना चाहिए था।····मेरे ड्राइंगरूममें सोफ़ा-सेट सज गये, दरवाज़ोंपर ख़ूबसूरत परदे लटकने लगे, मेरे बच्चोंकी हँसी लौट आयी, बीवीके चेहरेपर एक मुद्दतके बाद फिर गुलाब खिले! मुझे आश्चर्य भी हुआ कि सूखी हुई डाल बरसों बाद फिर हरी कैसे हो सकती है?····लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था कि बड़ेबाबू भीतर-ही-भीतर मेरी जड़ काटनेपर तुल गये हैं। मुझे सोचना चाहिए था कि आख़िर बड़ेबाबू यह कैसे बरदाश्त कर लेते कि मैं उनकी आमदनीमें सेंध लगाता रहूँ!····उन्होंने 'ऐण्टी करप्शन' से मिलकर मुझे रंगे हाथों पकड़वा दिया, और ख़ुद ईमानदारीका तमग़ा ले लिया! मुझे नौकरीसे अलग कर दिया गया। छह महीनेकी सज़ा भी काटी। सरकारी नौकरी अब मुझे नहीं मिल सकती। दिल्लीमें झख मारनेके बाद अब मैं इस कलकत्ता महानगरीमें नौकरीकी तलाशमें आया हूँ। सुना है, खोजनेपर यहाँ हर आयुके आदमीको नौकरी मिल जाती है। बहुत-से छोटे-मोटे कारख़ानेदार और दूकानदार तो रिटायर्ड आदमियोंको ही नौकरी देना पसन्द करते हैं, क्योंकि बूढ़े लोग भली भाँति समझते हैं कि वे फ़ालतू क़िस्मके आदमी हैं, जिनके लिए न घरमें जगह है, न समाज में। ऐसे आदमी कम वेतनपर काम करनेके लिए राज़ी हो जाते हैं। दूसरे, ज़िन्दगी-भर खटते-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खटते उनका दिल और दिमाग़ फ़्रिजमें रखे कच्चे मीटकी तरह ठण्डा पड़ चुका होता है। इसलिए उनके द्वारा औद्योगिक शान्ति-भंग होनेका खतरा भी नहीं रहता !

तो यही सब सुनकर मैं इस महानगरीमें आया हूँ। आज मैंने कई दफ़्तरों और फ़ैक्टरियोंके चक्कर लगाये हैं। आज तो काम नहीं बना। कल फिर सुबह-सबेरे निकलूँगा। इस समय मैं बहुत थक गया हूँ। इसलिए ज़रा सुस्तानेके लिए इस फ़ुटपाथपर बैठ गया हूँ और मूड़ी खा रहा हूँ। इस चौराहेपर मैं ट्राम बदलनेके लिए उतरा था। मुझे बड़ा बाज़ारके एक धर्मशालामें जाना है। जानेकी ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है, अभी मुश्किलसे साढ़े पाँच बजा होगा। इस शहरमें बहुत जल्दी अँधेरा घिर आता है। इतनी भीड़ ज़िन्दगीमें मैंने पहले कभी नहीं देखी, न इतना कोलाहल सुना। बसें और ट्रामें कैसी खचाखच भरी बेतहाशा भागी जा रही हैं। यहाँ तो आदमी बराबर भागता हुआ ही दिखाई देता है। अब यही देखिए न कि इतने बड़े फ़ुटपाथपर एक मैं बैठा हूँ और एक आप हैं। और उस पेड़के पास वह भिखारी बैठा अपने घुटनेके घावका प्रदर्शन कर रहा है। कितना वीभत्स घाव है ? देखनेसे उबकाई आ सकती है। लेकिन मुझे उबकाई नहीं आती, न मेरे मनमें दया उमड़ती है। मैं जानता हूँ, यह घाव नक़ली है। इसमें मोम, वैसलीन, रोली और पोटाशियम परमैगनेट भरा गया है। लगता है, दर्दका एहसास अब मर गया। शायद मेरे मानसमें कोई रासायनिक परिवर्तन हो गया है, स्नायविक तन्तु और मांसपेशियाँ सुन्न पड़ चुकी हैं। मस्तिष्ककी झिल्ली सूखकर सिकुड़ गयी है, क्योंकि उसमें-से रस-स्राव अब नहीं होता, आँखोंसे आँसू नहीं टपकते ! बचपनके सब संस्कार अब धुल-पुँछ गये हैं। दुनियाने मुझे ईमानदार और सच्चा नहीं रहने दिया।

इस समय मुझे लग रहा है कि मस्तकके भीतर बहुत बड़ा गूमड़ा उभर आया है। उसमें बराबर सन्-सन् शब्द हो रहा है। जैसे ऊपर, सड़कके समानान्तर खिंचे, उन ट्रामके तारोंमें सनसनाहट भरती जा रही है। ट्रामकी घिरनी तारपर फिसल रही है और तारकी रगड़से कभी-कभी नीली चिनगारियाँ निकलकर सहसा बुझ जाती हैं। तारोंकी यह झनझनाहट और उनसे झरते अग्नि-फूल मुझे अच्छे लग रहे हैं। इस समयकी मेरी मनोदशासे ये मेल खाते हैं !

कोई मूड़ीवाला निकले तो थोड़ी-सी मूड़ी और ले ली जाये। हम दोनों मिलकर खायेंगे। अरे, आप कब मेरे बाज़ूसे उठकर चले गये ? मुझे पता ही न चला ! मैं तो समझ रहा था कि इस भीड़-भरे शहरमें मुझे एक हमदर्द मिल गया वरना मैं क्यों अपनी रामकहानी सुनाने बैठता ? कैसा अहमक़ हूँ मैं भी ? न जाने कितनी देरसे इस लैम्प-पोस्टको भाषण दिये जा रहा हूँ। अच्छा तो लैम्प-पोस्ट जी, प्रणाम ! अब मैं चलता हूँ। तुमने जब मेरी कथा सुनी है तो मेरा प्रणाम भी ले लो !

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

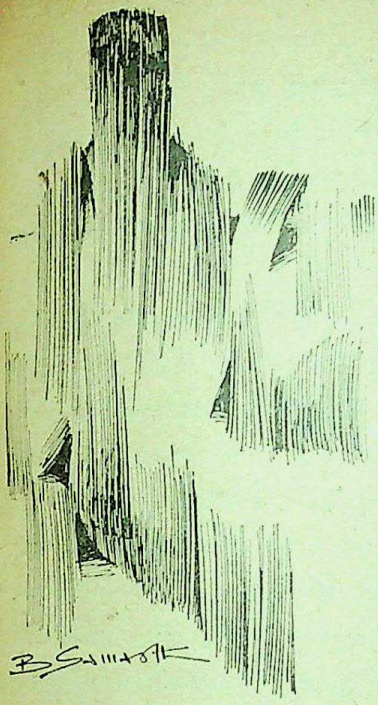

छोटी-छोटी ख़ुशियाँ

—हरवंश कश्यप

•

पार्कमें कई-एक काले दायरोंको देखकर उसके क़दम फ़ुटपाथ-को छोड़कर पार्ककी तरफ बढ़ गये। पसीनेसे बेहाल हुए उसने पसीनेके क़तरोंको रूमालसे पोंछते हुए पार्कके दरवाजे-की तरफ़ महज़ देखा पर काँटेदार तारोंको फलांगकर अन्दर जा घुसा।

पार्क बिलकुल खाली था। कहीं-कहीं वृक्षोंकी छायाओं-के घेरे-से धूपमें लेटे थे। वह धीरे-धीरे उनमें-से किसी एक-को देखता हुआ बढ़ता अपनेको काफ़ी हलका-हलका महसूस करने लगा। बल्कि उसे यों लगने लगा, जैसे इसी पार्क तक पहुँचनेके लिए वह तीन-चार मीलसे पैदल चलता आ रहा था, घर जानेके लिए नहीं।

हलका-सा हवाका एक झोंका उसने अपनी देहमें सर-सराता हुआ महसूस किया। पसीनेकी बू जो उसे निढाल किये जा रही थी, जैसे काँटेदार तारोंकी बाड़में अटक गयी। पासकी क्यारियोंके फूल उसकी आँखोंमें चटखने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह क्यारीके पास ही एक वृक्षके नीचे प्रसन्नतासे पसर गया।

दूर-दूर तक लेटकर देखते हुए लगा कि चारों तरफ़ चिलचिलाती हुई धूप-ही-धूप है। उसने अपनी आँखोंको वृक्षके छोटे-से शीतल घेरेमें सीमित कर लिया। इस छोटेसे घेरेमें उसके लिए एक सुख था। वही सुख जो उसे इस समय घरमें मिल सकता था। जिसके लिए पैसा जेबमें न होते हुए भी पैदल पहुँचनेका इच्छुक था, जिसके लिए वह दिन-भर मरता रहता।

उसने पेड़के तनेके साथ कमर टेककर सिगरेट सुलगा ली और बड़े इतमीनानसे धुआँ इधर-उधर उड़ाने लगा। इसी तरह दो-एक भरपूर कश ले चुकनेके बाद, उसे एक दुपहरीकी याद आने लगी। उस दुपहरीके कुछ लमहे उसके लिए इसी तरह सुखप्रद थे।

उसे जगदीशने कॅनाट प्लेसके किसी रेस्टोरैण्टमें मिलनेको कहा था। पहले तो दरवाज़ेपर काफ़ी देर तक वह अपनेसे लड़ता रहा और अपनेको खूब कोसा भी कि उसने क्यों आनेकी हामी भर दी थी, और झिझकते हुए जब अन्दर जानेका साहस कर ही बैठा था तो उसे यों लगा था कि वह ऐसे ही बाहर खड़ा रहा था। जगदीशके होते हुए उसे क्या डर हो सकता था। फिर उसने सहूलियतके लिए कुछ पैसे भी साथ रख लिये थे।

जगदीशके पास एक पाण्डुलिपि थी, जिसे साफ़-साफ़ लिखने और भाषा सुधारनेके लिए देनेके लिए उसने बुलाया था। सौ-एक रुपये मिल जानेकी सम्भावना थी। वरना इतनी सर्दी दुपहरीमें वह अपने घरमें ही छुट्टी बिताता। पसीनेसे तर, अपनी पत्नीके पसीनेसे नहाये हुए अंगोंके साथ। रेस्टोरैण्टमें सफ़ेदको ही देखता हुआ सामनेकी टेबुलपर बैठा था। वह भी अँधेरेमें तैरता हुआ वहाँ पहुँच गया।

कुछ देर बाद उसे लगा कि रेस्टोरैण्ट खचा-खच भरा हुआ है। उसने एक नज़रमें ही सारे वातावरणका जायज़ा-सा लिया तो उसे सारी खुशी जाती हुई-सी लगी। वह अपनेको किसी अजनबी दुनियामें पा रहा था। उसका अपना दोस्त जगदीश भी उसे कोई दूसरा लग रहा था। हर आदमी और औरतका चेहरा, टेबुलके ऊपर झूलती हुई रोशनीके दायरेमें विदेशी-सा चमचमा रहा था। अँधेरे और उजालेमें उघड़े हुए अंग और वस्त्रोंकी आभा उससे देखे न बन रही थी। वह घुटा-घुटा-सा, सिगरेट सुलगाकर टेबुलपर रोशनीके दायरेमें डूब गया।

इधर-उधरकी बातोंके बीच ही जगदीशने उसके लिए क़ाफी मँगवा ली थी। वह क़ाफीके सिप करता हुआ चुपकेसे आस-पास भी देख लेता था और उसकी बातोंमें 'हाँ' या 'न' कह देता था। वह इधर-उधर बेमनसा देख रहा था कि सहसा उसे लगा कि बहुत-से लोग उसे ही देख रहे हैं। इस अहसासके साथ उसने जगदीशकी तरफ़ भी ग़ौरसे देखा कि वह भी दूसरे लोगोंकी तरह उसे देख रहा है या नहीं। उसके इस तरहसे देखनेपर जगदीश केवल मुसकरा दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आँखें एकदम फ़र्शमें गड़ गयीं। इस अँधेरे और ठण्डक-भरे रेस्टोरैण्टमें भी लगने लगा कि वह नंगे बदन किसी तपती हुई सड़कपर खड़ा है।

रमाका कहना मान लेता तो कितना अच्छा था, उसे ऐसी दशामें बैठे-बैठे अपनी पत्नीका ध्यान आ गया। उसने काफ़ी ज़िद की थी कि आप कपड़े बदलकर ही जायें। वह एक रट लगाये जा रहा था—नहीं, नहीं, ठीक है, कल दफ़्तर जाते हुए बदलूँगा। ऐसे ही ठीक है।

जगदीश साथकी टेबुलपर बैठी एक लड़कीका ज़िक्र लेकर बैठ गया। उस लड़की-की बातोंके बीच उसने सोचा कि यह महज़ उसका अपना खयाल है। अगर ऐसा होता तो जगदीश उसे काग़ज़ोंका वह बण्डल देता और उठ बैठता। उसने फिरसे अपनी आँखें फ़र्शसे अलग कीं और उस लड़कीको देखा। उसे लगा, वह लड़की भी उसे देख भर लेती है। उसकी आँखोंमें कोई ऐसे भाव नहीं हैं, जिससे उसे शर्मसार होना चाहिए। उसने जगदीशकी बातोंमें कुछ उत्साह दिखाना शुरू किया।

दुपहर उसी रेस्टोरैण्टमें गुज़र गयी थी और जब वह जगदीशके साथ उठने लगा तो उसे अपने जिस्ममें काफ़ी हलकापन महसूस हुआ था, और अँधेरेमें चमचमाते हुए चेहरोंको देखता हुआ दरवाज़ेकी तरफ़ बढ़ रहा था तो उसने सोचा, इस अँधेरे-उजाले-में उसका चेहरा भी खूबसूरत लग रहा होगा। उसको अपना चेहरा देखनेका लोभ हो आया। दरवाज़ेपर पहुँचते-पहुँचते उसने यह भी ख़याल किया कि उसके जैसे अन-गिनत लोग होंगे जो ऐसे रेस्टोरैण्टोंके दर-वाज़ों तक न आये होंगे। यह सुख कहाँ भोगा होगा उन्होंने। क्या हुआ वह आज ही आया है, क्षणिक देरके लिए, फिर कभी आ भी न पायेगा····लेकिन····आया तो है। वह इस सुखकी अनुभूतिको काफ़ी दिनों तक अपने साथ लिये रहा था।

वह पेड़के तनेके साथ कमर टेके दो-एक सिगरेट पी गया। धूप उसी तरह, जहाँ तक भी वह देखता, फैली हुई दिखाई देती। सिर्फ़ पार्कमें वृक्षोंके नीचे छायाओंके घेरे थे, उन्हींमें-से एकमें वह बैठा हुआ था। उसने टाँगें तनिक और फैला लीं और ठीकसे सुस्ताने लगा कि देखा पास ही उसी घेरेमें एक लड़की कोई किताब लिये बैठी है। उसने करवट उस लड़कीकी तरफ़ कर ली।

वह लड़की बिना उसकी ओर आकर्षित हुए किताब लिये अधलेटी-सी बैठी थी। उसकी आँखें कभी-कभी दरवाज़ेपर भी ठहर जाती थीं और वह सड़कपर भी देख लेती थी। लड़कीकी वेशभूषासे लगता था कि वह कहीं पढ़ती-पढ़ाती नहीं। शायद कोई उपन्यास ही है जो लिये बैठी है। वह सोचने लगा, शायद किसीका इन्तज़ार कर रही होगी। फिर भी वह उसी तरफ़ करवट किये पड़ा रहा।

दो-एक बार उस लड़कीकी आँखें उसपर पड़ीं तो उसे लगा, हवाका एक और ठण्डा-सा झोंका उसकी देहको छू गया है। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन अजीब-सी ख़ुशीसे भर उठा। एक सिगरेट और निकालकर उसने इधर-उधर पार्कमें देखा।

दाहिनी ओरके पेड़के नीचे दो लड़के आ बैठे थे। जिन्हें देखते हुए उसे लगा, वे दोनों उनको ही देख रहे हैं। पहले पहल तो उसे उन दोनोंका देखना बड़ा बुरा लगा मगर जल्दी ही उसे यह अच्छा लगने लगा। वे सोचते होंगे, वह लड़की इसीके साथ है। उसके होठ फैल गये, गाल फूल गये और उसने बड़े उत्साहसे लड़कीको फिर देखा। लड़की पहलेके समान किताब पढ़नेमें व्यस्त थी। वह सोचने लगा कि वे ख़याल करते होंगे, ये दोनों पहली बार इकट्ठे मिले हैं। इसीलिए ज़रा दूर-दूर बैठे हैं, डरते हुए सहमे-से! शायद दूरसे इन्हें इस दूरीका भी आभास न होता हो। वह यों ही सोचकर ख़ुश हो रहा था कि उसने देखा, उन लड़कोंके साथ कुछ लोग और आकर जम गये हैं और सभी टकटकी बांधे उनकी तरफ़ ही देख रहे हैं। ढेर-सी ख़ुशी आँखोंमें भरकर उसने फिर लड़कीकी तरफ़ देखा। उस लड़कीकी आँखोंमें अब पहले-सा ठहराव नहीं लगा। वह अजीब-सी दृष्टिसे उन्हें देख रही थी जैसे वह भी उसकी तरह ख़याल कर रही हो—आपसी सम्बन्धकी बात!

वह लड़की अब किताब कम पढ़ रही थी, अपनी साड़ीकी सलवटोंको सुलझानेमें ज़्यादा जुटी हुई थी। चोर-आँखोंसे उसकी तरफ़ और बाहर भी देख लेती थी। वह अपने आपको बहुत ही प्रसन्न मानता, इस ख़याली सम्बन्धका सुख लेता हुआ, आँखें मूँदे पड़ गया। बार-बार इस बन्द ठहरे हुए मौसममें भी ठण्डी हवाके झोंके उसकी देहको कँपकपा जाते और दोनों हाथोंकी मुट्ठियोंमें इस असीम सुखको वह बाँधे जा रहा था। इसी असीम सुखको समेटे हुए वह सो गया।

जब उसकी आँख खुली तो देखा, सारे पार्कमें एक ही छायाका घेरा है। और उस घेरेमें अनगिनत लोग आ जमा हुए हैं। वह उन्हें देखकर एकाएक हड़बड़ा उठा। सभीके सभी उसको घूर-से रहे थे। उसे एकदम उस लड़कीका ख़याल आया। करवट बदलकर उसे देखनेको हुआ तो पाया वह लड़की बिलकुल उसके साथ सटकर बैठी हुई है। वह और भी घबरा-सा गया। और उसकी आँखें फैलीकी फैली उस लड़कीके चेहरेपर ठहर गयीं।

"आप चलिएगा नहीं···उठिए।"

वह बिना कोई उत्तर दिये उठ बैठा। जैसे इसी आदेशकी उसको प्रतीक्षा थी। लड़की अपनी साड़ीको सँभालते हुए उसके साथ चलने लगी। वह आँखोंको मसलता हुआ पार्कके लोगोंकी आँखोंसे बचता हुआ-सा दरवाज़ेकी तरफ़ बढ़ने लगा।

"हमें काफ़ी देर हो गयी है। ज़रा जल्दी कीजिए।" लड़कीने पाँच-सात आदमियोंके पाससे गुज़रते हुए, तेज़-तेज़ क़दमोंसे चलते हुए कहा।

"हाँ, देर हो ही गयी है।" उसने भी उन लोगोंकी तरफ़ देखते हुए, जल्दी-जल्दी चलते हुए, जवाब दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ पार्कके दरवाज़ेपर कुछ भूल गयी थी। दरवाज़ेसे गुज़रते हुए उसे कुछ लोगोंकी हँसी सुनाई दी। दरवाज़ेसे बाहर निकलते हुए उसने चाहा कि एक क्षण यहाँ रुक जाये। मगर लड़की उसी तेज़ीसे चलती जा रही थी। वह रुका नहीं, उसने केवल पीछे मुड़कर देखा। दो-तीन लड़के हँसोमें अजीब-से टेढ़े-मेढ़े हुए, पार्कके दरवाज़ेकी तरफ़ भागे आ रहे थे। वह लड़कीके साथ क़दम मिलाकर तेज़-तेज़ चलता रहा।

सड़कपर एक कार तेज़ीसे गुज़र रही थी। उस लड़कीने उसे वहाँ रुकनेका इशारा किया, नहीं तो शायद उसका साथ देते हुए वह कारके नीचे कुचला ही जाता। कारके गुज़र जानेके बाद लड़की तेज़ीसे सड़क पार करने लगी। वह भी उसीका अनुकरण करता हुआ सड़कको फलांग गया। दूसरी फुटपाथपर पहुँचकर उसने यों ही फिर पीछे देखा। पार्कके दरवाज़ेपर झूलते हुए कई लोग उसे दिखाई दिये। उसके जीमें आया कि वह लड़कीको भी उधर देखनेको कहे। मगर वह चुप ही रहा।

"मैं तो यहाँसे बस लूँगी।" लड़कीने रुकते हुए कहा। वह भी यन्त्र-सा रुक गया। वह लड़की बस-स्टापकी रेलिंगसे सटकर खड़ी हो गयी थी। वह बोली, "आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।"

उसने हलकी-सी मुसकराहट होठोंपर लायी और उसी तरह, जैसे लड़कीके साथ तेज़ीसे चलता आ रहा था, चल पड़ा।

कुछ दूर जाकर उसने स्टॉपपर खड़ी लड़कीको फिर देखा। लड़की उसी तरह रेलिंगपर सटी खड़ी थी, फिर किताब खोले हुए थी। उसकी देहको एक ठण्डी हवाका झोंका फिर छू गया और उसे लगा कि तीन-चार मील, जो उसे घरके लिए चलना है, बड़ी आसानीसे, और उत्साहसे जा सकेगा। ■ ■

Phone : 25-2227

Universal Fire & General Insurance Company Limited

Transact :

Fire, Motor, Marine, Personal Accident, Fidelity, Guarantee, Burglary and all other forms of Miscellaneous Insurance Business.

Universal Insurance Building,

Sir P.M. Road, Bombay-1.

Chairman & Managing Director :

P.U. PATEL, B.A., B.COM. (Lond).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !
खुशखबरी

बच्चों ! मैं बहुत अच्छी
खबर लाया हूँ । अब
हमें फेरीवालों से आलू बड़े
खरीदने की कोई आवश्यकता
नहीं ! माँ उन्हें घर पर
ही बना लेती है और वह भी
अत्यन्त स्वादिष्ट । मैं नीचे
वह तरीका बताता हूँ
जिसे वह अपनाती है :—

"आलू बड़ा"

एक किलो आलू ले लीजिये और उसे उबाल डालिये । जब वह गरम रहे, तभी उसे मसल डालिये और उसमें बारीक कटा हुआ नारियल, हरा मिर्चा बारीक कटी हुई अदरक, हल्दी धनियां, नमक, चीनी, किसमिस तथा अन्त में हरी धनियाँ की पत्तियाँ मिला दीजिए । फिर एक नेबू का रस निचोड़ दीजिये । उसकी छोटी छोटी गोलियाँ बना डालिए ।

उन गोलियों को बेसन, नमक लाल मिर्चा, धनियां व जीरा के पावडर के पतले घोल में डुबो दीजिए तथा स्वाद के लिए उसमें चीनी डाल दीजिए । उनमें चुटकी भर "सोडा बाईकार्बोनेट" मिला दीजिए । फिर पानी डाल दें । इसके बाद गर्म वनस्पति में तल दें ।

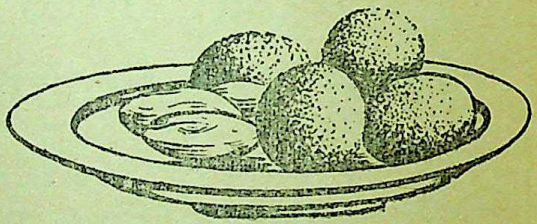

निश्चय रहे कि आप ने
हनुमान वनस्पति प्रयोग किया है

निर्माता :—
रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

IPC/RJ : 407 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क । हा । नी

अस्तित्व बोध

रामकुमार भ्रमर

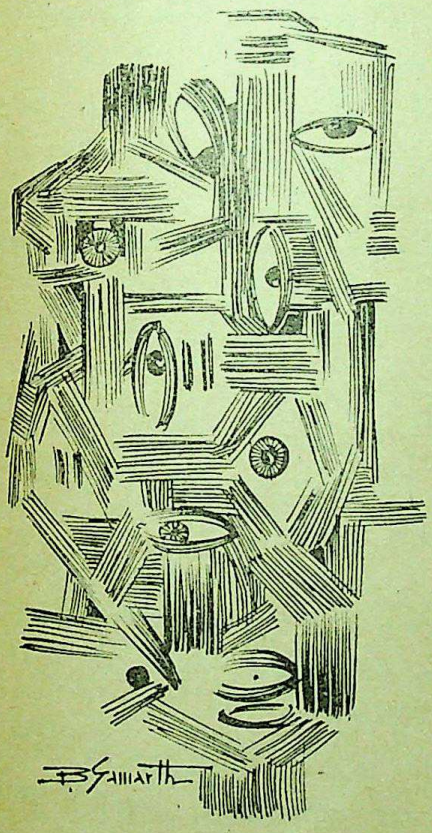

अभी-अभी उसका सबसे छोटा लड़का सामनेसे निकल गया है, इस तरह जैसे उसके सामने कुछ नहीं था। न चारपाई, न उसपर बैठा हुआ आदमी। उसने ज़रा भी गरदन नहीं मोड़ी, बिलकुल नहीं ठिठका, कमरेमें घुसा और सीधा उस दूसरे दरवाज़े तक पार कर गया। यह कल भी इसी तरह निकल गया था, रोज़ इसी तरह निकल जाता है। उसने एक गहरी, खूब गहरी, साँस खींची और इस उपेक्षाको हमेशाकी तरह घोंटकर पी गया।

उसने तमाम बदनमें टूटन महसूस की। वैसे बुढ़ापेने उसे तोड़ दिया है और यह टूटन स्थायी होकर रह गयी है फिर भी वह इसे महसूस तभी करता है जब सामने कोई ऐसी बात हो जो उसे याद दिला दे कि वह बूढ़ा हो चुका है। यह छोटा लड़का, जो किसी ऑफ़िसमें साधारण-सी क्लर्की कर रहा है, बड़ी चुस्त पैण्ट पहनकर हर रोज़ सुबह, इसी तरह उसका बग़ैर नोटिस लिये, कामपर चला जाता है। उसके क़दमोंमें ग़ज़बकी फुर्ती होती है और चालमें तेज़ी। रामजीवन चारपाईपर बैठा-बैठा टूटने लगता है। क्या वाक़ई वह सिर्फ़ इस क़ाबिल रह गया है कि चारपाईपर बैठा रहे। ख़ामोश, एक बुतकी तरह—और उसे लगता है, उसे ख़ामोश ही रहना चाहिए। वह उस चालको नहीं पकड़ सकता, उस उम्र-को नहीं ला सकता, वे उमंगें नहीं लौट सकतीं जो छोटे लड़केमें हैं और एक लम्बे अरसे पहले उसमें थीं। वह सच्चाई जानता है, फिर भी न जाने क्यों इस ख़यालसे समझौता नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर पाता। वह भीतर-ही-भीतर उबलने लगता है, क्रोधसे उसके कमज़ोर शरीरमें पीड़ा भर जाती है और एक चीख़ मुँहसे निकलते-निकलते गलेमें ही अटकी रह जाती है—"मैं ज़िन्दा हूँ!···क्या तुम नहीं देखते कि मैं ज़िन्दा हूँ!···"

पिछले कई माहोंसे यह चीख़ उसके गलेमें अटकी हुई है। एक ऐसी याददाश्तकी तरह जो याद होनेके बावजूद मुँहसे नहीं निकल पाती।

रामजीवन लगातार कुढ़नमें जलता हुआ, बे-मन चारपाईसे उठ पड़ता है। धीमे-धीमे क़दमों वह बेसिन तक पहुँचकर हाथ-मुँह साफ़ करता है। ठोढ़ी और गालोंपर उसे खुरदुरा-पन लगता है, और उसे याद आता है, पिछले दो या शायद तीन दिनोंसे उसने दाढ़ी नहीं बनायी है। पहले, एक अरसे पहले, ऐसा नहीं होता था। रामजीवन अपनी दाढ़ी और पूरे चेहरेकी साज-सँभालके प्रति बहुत ख़बर-दार रहता था। हर सुबहके साथ ही लोग उससे मिलने आने लगते थे और फिर शाम तक यह सिलसिला ख़त्म नहीं हुआ करता था। वह उन दिनोंकी यादोंसे घिर गया।

तब इस शहरमें कॉलेज अँगुलियोंपर गिने जाते थे और वह डॉक्टर-जैसी कुरसीपर बैठा हुआ रहता था। अकसर सभा-सोसायटियोंमें उसका आना जाना होता रहता था और उसे शक्ल-सूरत, कपड़े-लत्ते हर चीज़की ओरसे एक ख़ास क़िस्मकी मुस्तैदी बरतनी पड़ती थी। तब उसे गिना जाता था। उसी तरह जैसे कॉलेज अँगुलियोंपर गिने जाते थे और अब····?

रामजीवने चेहरेपर हाथ फिराते-फिराते जैसे चौंक पड़ा। अब···? कभी कोई कार्ड नहीं आता, कभी कोई मिलने नहीं आता। जो आते भी हैं, वे उसके बेटोंसे मिलने आते हैं। क्या उससे मिलने कोई नहीं आ सकता····?

वह बेसिनसे हट आया। तौलियासे मुँह पोंछता हुआ पुनः चारपाईपर आ बैठा।···अब उससे मिलने कोई नहीं आता। उसे सुबहका वक़्त काटनेके लिए अख़बारमें सिर खपा देना होता है। कई-कई बार तो यहाँतक होता है कि वह समाचार तो समाचार, विज्ञापन तक पढ़ता रहता है और वक़्त है कि फिर भी नहीं कटता। उन दिनों उसे इतने काम रहा करते थे कि अख़बारकी हेड लाइन तक पढ़नेके लिए तरस जाता था वह।

उसने तौलिया किनारे रख दी। चायका इन्तज़ार करने लगा। अब कितनी लेट बनती है चाय? उसने सोचा, उन दिनों वह नियमित कामोंसे निपट भी न पाता था कि चाय आ जाती थी। वह झुँझला उठा।

"अरे, भई चाय लाओ!" न जाने कैसे वह बोल गया।

'कुछ रुको!" भीतरसे जवाब फिंका, "बच्चे स्कूल जा रहे हैं। उन्हें तैयार हो जाने दो!"

रामजीवनका मन हुआ था, उसी तरह तीखी आवाज़में जवाब दे, "आख़िर मुझे भी तो चाय चाहिए!···बच्चे तैयार हो रहे हैं उससे क्या?···"

चीख़ फिर गलेसे बाहर आ जानेके लिए मचल उठी थी—"मैं ज़िन्दा हूँ!···क्या तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं देखते कि मैं ज़िन्दा हूँ !....' पर रामजीवन चुप ही रहा।

अब चाय आयेगी, पर तब आयेगी जब बच्चे चाय पी चुके होंगे और भगोनीमें तलहटीकी चाय बच रही होगी। रामजीवनने सोचा, कई बार तलहटीकी चायमें नीचेकी पत्ती भी चली आती है। चाय भी ढंगसे नहीं पिलायी जाती। बोझ हो गया है क्या वह ? और इस खयालके साथ ही उसे लगा, वह बोझ है। छोटे बच्चे, बहुएँ, लड़के, यहाँ तक कि शायद उसकी पत्नी भी उसे बोझ ही समझते हैं। उसकी हर ज़रूरत घरमें किसी एक्स्ट्रा कामकी तरह महसूस की जाती है। रोज़ानाके कामके बाहर ही शायद उसकी ज़रूरतें गिनी जाती हैं और जिस तरह उपेक्षाके भावसे उन्हें पूरी करनेकी कोशिश की जाती है, वह खूब समझता है।

उसे एक और दिनका खयाल आया। कैसा अजीब-सा व्यवहार किया गया था उस दिन ! दाढ़ी बनानेके लिए ब्लेड माँगा था उसने। ब्लेड नहीं था। उसने छोटे लड़केसे कहा था, "एक ब्लेड ला दो !...." और लड़केने जवाब दिया था, "एक ज़रूरी कामसे जा रहा हूँ। कल ला दूँगा।" रामजीवनने उसे बतलाया था, "मेरी पाँच रोज़की दाढ़ी बढ़ आयी है।"

"एक दिन और सही।" बड़े लापरवाह ढंगसे लड़का बोला, "कल बना लीजिएगा।"

वह खीझ उठा था। उसने कुछ ऊँचे स्वरमें कहा था, "मुझे बुरा लगता है। पाँच मिनिट लगेंगे। तुम जाते-जाते सामनेवाली किसी दूकानसे खरीदकर देते जाना !"

लड़केने उसकी झल्लाहटको तनिक भी महत्त्व नहीं दिया, "जहाँ मुझे जाना है, बहुत लेट हो रहा हूँ। कल ज़रूर ब्लेड ला दूँगा !"

"पर...." उसने फिर कुछ कहना चाहा था।

"आपको कहाँ जाना है ?" लड़केने उसकी बात अधूरी ही रहने दी थी। "सारे दिन घर ही तो रहते हैं आप !" वह चला गया था और रामजीवन देर तक पाँच दिनकी बढ़ी हुई दाढ़ीपर हथेली फिराता घुटता रहा था। क्या इसी दिनके लिए बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा किया जाता है कि वे लाचारीकी उमरको और लाचार कर दें। उस दिन उसका मन हुआ था, वह दाढ़ी बढ़ी रहने दे।.... खूब बढ़ जाने दे। इतनी कि उसके सीनेसे नीचे तक लटकने लगे। पर दूसरे दिन जब लड़का ब्लेड ले आया तो चाहकर भी वह अपना निर्णय नहीं निबाह पाया। उसने काँपते हाथों दाढ़ी बना ली थी। उसने कभी दाढ़ी नहीं बढ़ायी, कैसा अजीब-सा लगता है ! जैसे चेहरेपर कुछ चिपका रखा हो।

उस दिन शायद पहली बार उसने महसूस किया था जैसे वह अनस्तित्व है। उसे कोई नहीं गिनता और बरबस ही वह आत्माकी गहराइयों तक एक जानी-अनजानी घुटनमें घिर गया था। घर-बाहर सभी तरफ़, जैसे वह, उसकी मौजूदगी, कहीं नहीं है। अगर होती तो लोग उससे मिलने आते, वह बाहर जाता। किसी सभा-सोसायटीमें उसकी प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाती। उसे उन दिनोंकी रह-रहकर याद हो आती है। ढेरों लोग हुआ करते थे जो उससे मिलने आते थे। वह उनके साथ फ़ुर्तीली चालसे बाहर जाया करता था। कई बार यहाँ तक होता था कि अगर किसी मीटिंगमें वह नहीं जाता था तो दूसरे दिन उसे मालूम होता था कि वहाँ किस तरह उसकी ज़रूरत अनुभव की गयी थी, लोगोंमें चर्चा रही थी, डॉ० रामजीवन नहीं आये····!····तबियत तो ठीक है ?····वह आते, तो मज़ा आता !····

चाय आ गयी थी। सूखी चाय। रामजीवनने माथेपर झुर्रियाँ घनी कर उसे देखा। क्या बिस्किट या नमकीन कुछ नहीं होगा इसके साथ ? शायद वह कह भी देता, पर रुक गया। उसने कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों तक वह सूखी चायपर ऐतराज़ किया करता था। असलमें कभी उसने सूखी चाय नहीं पी, पर अब पी रहा है। उसे ख़याल है, कभी ऐतराज़ कर भी देगा तो जवाब मिलेगा, "आने-जानेवालोंके लिए थोड़ा बहुत रखा हुआ है। घरमें तो वैसे भी काम चलाया जा सकता है !"····फिर क्या कहेगा रामजीवन ? उसे सूखी चाय ही पीनी पड़ेगी। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह कुछ भी नहीं माँगना चाहता। उसने घरमें कभी कोई चीज़ नहीं माँगी। उसका अस्तित्व है, सभी लोग महसूस करते रहे थे पर शायद अब महसूस नहीं करते। क्या उसे माँगकर बतलाना चाहिए कि वह ज़िन्दा है !····उसे देखा जाये कि वह ज़िन्दा है !···

रामजीवनने प्याली उठायी। उसकी आँखें अचानक कलाईपर जा ठहरीं। गोरा तो नहीं है वह पर गेहुँआ रंग है उसका। हथेलीके आसपाससे माँस लटकने लगा है और इस माँसमें-से उसकी नसें और हड्डियोंका उतार-चढ़ाव साफ़ नज़र आने लगा है। कैसा शरीर हो गया है उसका ! बरबस ही प्याली मुँह तक ले जाते-ले जाते उसकी नज़रें दीवारपर टँगे हुए एक पुराने चित्रपर जा ठहरीं। मुश्किलसे बीस साल पुरानी तसवीर होगी उसकी। ठोढ़ीपर हाथ टिकाये वह कुछ सोचता हुआ दीखता है उसमें। कलाई कितनी सुडौल थी उन दिनों····कलाई ही क्या ? लोग कहते थे, रामजीवनका सारा व्यक्तित्व ही इतना प्रभावशाली है कि वह जहाँ हो वहाँ छाकर रह जाता है !····और अब ?···रामजीवनने जैसे चायका घूँट नहीं लिया, कोई तीखा कसैला ज़हर पी गया। अब कभी वह कहीं नहीं छाता। पहले अनजाने ही वह छा जाता था और अब चाहे भी तो नहीं छा सकता।

टिर्र् !···टिर्···! एक कर्कश ध्वनि।···

"हाँ, हाँ।····आते हैं भई ?···कौन है ?" उसने प्यालीकी चाय वैसी ही रहने दी। ब-मुश्किल उठा। दरवाज़ा खोला।

"कहिए ?" उसने सीधा और कुछ चुभने-वाला सवाल किया।

"चन्दर बाबू हैं ?" सामनेवालेने कहा।

"नहीं, वे बाहर गये हैं।"

"कब तक आयेंगे ?"

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"ख़ैर, कोई बात नहीं," सामनेवाला बोला, "जब वे आ जायें तो कह दीजिएगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार बाबू आये थे।" वह वापिस हो गया।

"ऊँह!"···· एक झटकेके साथ रामजीवनने दरवाज़ा उढ़का दिया—"चले आते हैं!" वह बुदबुदाता हुआ चारपाईपर आ बैठा। प्यालीकी चाय ठण्डी हो चुकी थी पर वह पीने लगा। उसे उस आनेवालेपर क्रोध आया। कम्बख्त!···दिनमें न जाने कितने आते हैं इस तरह और हर आदमीको जवाब देना पड़ता है उसे।····और फिर बरबस ही वह फ़िर किसी नयी उलझनमें फँस गया।

पहले भी लोग आते थे। इसी तरह। वे पूछते थे, रामजीवनजी हैं?···उसने दरवाज़ेकी ओर सूखी आँखोंसे देखा। अब उसे पूछने कोई नहीं आता। क्या इतना ग़ैर-ज़रूरी है वह?···नहीं, नहीं। ऐसा नहीं है। उसने धीरज लिया-दिया। नहीं आता है कोई उसके पास, तो न आये! इससे रामजीवनका क्या बनता-बिगड़ता है! इसका मतलब यह तो है नहीं कि रामजीवन है ही नहीं।

रामजीवनको गये दिनकी याद हो आयी। तीन आदमी थे। इसी तरह घण्टी बजायी थी उन्होंने और रामजीवनको दरवाज़ा खोलना पड़ा था।

"कहिए?" उसने हमेशाकी तरह एक रटा-रटाया-सा सवाल किया था।

"चन्दर बाबू नहीं हैं?" उनमें-से किसी एकने पूछा था।

"जी हाँ, नहीं हैं। कब तक आयेंगे, यह भी नहीं बतला गये हैं। जब आयेंगे तो कह दूँगा—आप आये थे। आपका नाम क्या है?" रामजीवनने एक साथ उन्हें सारी जानकारी दे दी थी। वह जानता है, लोग इसी क़िस्मके सवाल करते हैं। और सारे दिन उसे इसी तरह जवाब देना पड़ता है।

आनेवाले तीनों व्यक्ति रामजीवनके इस व्यवहारसे कुछ सकपका गये। एकने गलेका थूक निगला, कहा "जब चन्दर बाबू आयें तो कह दीजिएगा, अनाथालयवाले ब्रह्मचारीजी आये थे। अच्छा, नमस्कार!" वे लौट गये।

जाते-जाते उन तीनोंमें-से किसीने फुसफुसाकर रामजीवनके बारेमें पूछा था, "कौन है ये?"

"चन्दर बाबूके पिताजी!" उनमें-से किसीने जवाब दिया था।

रामजीवनने कुछ कुढ़ते हुए दरवाज़ा बन्द कर लिया था। उसने उन लोगोंकी बातचीत सुन ली थी और उस बातचीतको लेकर न जाने कबतक घुटता रहा था। अब उसे लोग इस नाते जानते हैं कि वह चन्दरका पिता है। इसके अलावा शायद कुछ नहीं है। चन्दरसे अलग उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है····। अस्तित्व····? क्या सचमुच उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है?

वे अनाथालयवाले थे। रामजीवनको याद आया और फिर हमेशाकी तरह किसी अनजानी कुण्ठामें घिर गया वह। बहुत पहले ऐसे ही अनाथालय या और-और संस्थाओंवाले उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाते थे, उसे ढूँढ़ते थे। रामजीवन उन्हें चन्दा देता था। अब वे चन्दरको खोज रहे हैं, रामजीवन नामकी किसी चीज़की उन्हें जानकारी ही नहीं है····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रामजीवनको लगा, वह कहीं है ही नहीं। होता तो क्या ज़िन्दगी इतनी ख़ामोश होती? ख़ामोशीका मतलब है—मौत। ख़ामोशी मरघटमें हुआ करती है।

उसने अपने ठीक सामने रखे चायके प्यालेकी ओर देखा। रीत गया है और अब उसे उसका सामने रखा रहना भी खलने लगा है। कहीं रामजीवन भी इसी तरह किसीको खल तो नहीं रहा?···न जाने कैसे वह उस रीते प्यालेसे ख़ुदको तौलने लगा और जैसे-जैसे उसने यह तौल की, उसे लगा, वह प्याला अपने रीतेपनके बावजूद रामजीवन-से कहीं अधिक क़ीमती है। रामजीवन दोबारा अपना विगत नहीं ला सकता पर यह प्याला चायसे दोबारा-तिबारा और कई-कई बार भरा जा सकता है।

उसने एक गहरी साँस खींची-छोड़ी। कितनी अजीब बात है। एक आदमी पत्थरसे सस्ता हो गया है और सिर्फ़ सस्ता ही क्या अस्तित्वहीन हो गया है उसके सामने।

एक बार मन हुआ था रामजीवनका, चीख़ मारा पड़े। ख़ूब ज़ोरसे···इतनी ज़ोरसे कि घर-मोहल्ला सुन ले। वह एक आदमी है, ज़िन्दा है···पर, रामजीवन ऐसे कैसे चिल्ला सकता है?

फिर लोगोंको मालूम कैसे हो कि एक आदमी है रामजीवन!···वह ज़िन्दा है···!···उसका अस्तित्व है!···

"पर, बिलावजह वह कैसे चीख सकता है?"—रामजीवन ख़ुदसे जवाब-सवाल करने लगा।

"नहीं, वह नहीं चीख सकता? वह ज़िन्दा है। और चूँकि वह ज़िन्दा है इसलिए चीखता है।"

हिश्श!···रामजीवनने सोचा, लोग कहेंगे, वह पागल है!···ये चीखना···?

नहीं-नहीं! उसे चीखना चाहिए! उसने दूसरी करवट सोचना जारी रखा, भले वह पागल ही क्यों न समझा जाये। भले कोई कहे कि वह ग़लत है। उसे चीखना चाहिए। ताकि लोगोंको मालूम हो कि एक आदमी है और उसका नाम रामजीवन है!···उसका अस्तित्व है!···लोगोंको मालूम होना चाहिए।

और इस बोधके साथ ही रामजीवन ख़ुश हुआ। उसे लगा, वह है।

■

उस तमाम दिन वह ख़ुश था। एक रास्ता मिल गया है जिसके ज़रिये वह यह जतला सकता है कि वह है। चन्दर ऑफ़िससे लौटा तो बूढ़े रामजीवनने कमरेमें पैर रखते ही जानकारी दी, "वह कुमार बाबू आये थे सुबह।"

"अच्छा!" चन्दरने व्यग्रतापूर्ण उत्साह-के साथ पूछा, "क्या कह रहे थे?"

"कुछ नहीं।" रामजीवनने जवाब दिया, "आये, तुम्हें पूछा और जैसे ही मैंने बतलाया कि तुम नहीं हो, दरवाज़ेसे ही लौट गये!"

"हैं···?" चन्दर अवाक् रह गया, "आपने उन्हें कमरेमें भी नहीं आने दिया?··· वे मेरे नये मैनेज़र होने जा रहे हैं। आपने उन्हें ज़रा भी नहीं पूछा···"

चन्दरकी बात अधूरी रह गयी। राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन चीख पड़ा, "क्या समझता है तू मुझे ?····मैं तेरा नौकर हूँ क्या ?····क्या समझता है मुझे ?" आवेशमें वह मुट्ठियाँ भींचता हुआ चारपाईसे उठ खड़ा हुआ। वह क्रोधमें काँप रहा था, "बहुत दिनोंसे बर्दाश्त कर रहा हूँ। तुम लोग कुछ गिनते ही नहीं ?····"

"पर····" चन्दर घबरा गया। रामजीवनको क्या हो गया है। वह हैरानीके साथ उसका चेहरा देखे जा रहा था।

रामजीवनने कुछ नहीं सुना—"क्या समझते हो मुझे ? यह घर मेरा है !····इसे मैंने बनवाया था। मालूम है, पूरे पचास हज़ार ख़र्च किये थे" ····अभी चाहूँ तो तीन मिनटमें तुम सबको सड़कपर खड़ा कर सकता हूँ !····" वह बोलते-बोलते हाँफने लगा। उसने होंठ चबाये। एक ही साँसमें कई गालियाँ उगल डालीं।

"पर मैंने तो अभी कुछ भी नहीं कहा···· चन्दर घिघियाने लगा था।

रामजीवनकी पत्नी, बहुएँ, नाती सभी लोग कमरेमें घिर आये और सहमे हुए एक और खड़े रह गये। रामजीवन अब भी पहलेकी ही तरह चीख रहा था, "तुम समझते हो, मैं कुछ देखता-जानता ही नहीं हूँ ?···· ऐं····? मैं सब समझता हूँ, सब देखता हूँ !···· बहुत हुआ !····"

चन्दर अब भी हैरान उसे देखे जा रहा था। रामजीवनने चीखना, गालियाँ उगलना जारी रखा तो वह सिर झुकाकर भीतरवाले कमरेमें चला गया। पीछे-पीछे घरके अन्य लोग गये।

"कुछ समझते ही नहीं है ?" रामजीवन अब भी बुदबुदा रहा था, "तीन मिनटमें घरसे निकाल बाहर करूँगा !····" वह चारपाई पर बैठ गया और देर तक बुदबुदाता रहा और जब उसने पाया कि उसे कोई उत्तर नहीं मिला है तो वह खुश हुआ। चीखते-चीखते वह थक गया था फिर भी न जाने कैसे वह अपने बूढ़े जिस्ममें एक खास क़िस्मकी फुर्ती महसूस कर रहा था। उसे लगा, उसकी हर साँसके साथ एक धीमी-सी आवाज़ आती है····वह है····! " वह है !····वह है !····

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नन्हा-सा आदमी

सुमंगल प्रकाश
द्वारा
लिखित

स्व० लालबहादुर शास्त्री
के संस्मरण

स्व० शास्त्रीजीके जीवनके अन्तरंग और बहिरंगकी मार्मिक और अनूठी रेखाछवियाँ : जो उनके व्यक्तित्व-की महानता और उनके गौरवके सारे रहस्योंको बड़ी आत्मीयता और गहराईसे उजागर करती हैं। अपने प्रकारकी अकेली कृति ! सर्वथा पठनीय एवं संग्रहणीय।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७।
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५।
विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६।

स्व० शास्त्रीजीके जन्म-दिवस (२ अक्तूबर) पर प्रकाश्य

अपनी प्रति कृपया अभी ही हमारे विक्रय-केन्द्रके पते लिखकर सुरक्षित करायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय

कान्ता सिन्हा

"सुनील, कब आये ?"

"कोई आध घण्टा हुआ है भाभी, आप कहाँ गयी थीं ?"

"यूँ ही शिवको स्कूल पहुँचाने चली गयी थी।"

सुनकर मुझे कहीं कुछ बिंध गया। कभी यही भाभी घरमें काम न रहनेसे भी काम ढूँढ़ लिया करती थी, दिन-भर व्यस्त रहा करती थी, गृहस्थीमें भरी-पूरी यह भाभी आज इतनी रीती-रीती है कि अब शिवको स्कूल तक पहुँचानेका कार्य सँभालकर भी लगता है, इनके पास समय-ही-समय है।

वह सामने खिड़कीके पास खड़ी है और सफ़ेद साड़ीके पल्लूसे पसीना पोंछकर हवा करती हुई बोल रही है, "कितनी गरमी हो गयी है। अभी तो अप्रैलका आरम्भ ही है, न जाने आगे क्या होगा !"

मैं उनकी बातें सुनकर चेहरेपर एक दृष्टि डाल लेता हूँ। सूनी-सूनी माँग और सपाट माथा। जैसे कोई वीराना देख लिया हो और दूरसे गीदड़ोंके रोने-चिल्लानेकी आवाज़ें सुनाई पड़ रही हों। जबसे भैया पाकिस्तानके साथ हुए युद्धमें अमर हुए हैं, मैं भाभीको ठीक प्रकारसे अभी ही देख रहा हूँ। जब गये थे तो दो दिनके लिए आया था। गुमसुम भाभीकी सूनी-सूनी निगाहें और माँके आँसू लेकर चला गया था। अब यह चौड़ा-सपाट माथा, सूनी-सूनी माँग !

"ओह !" मेरे मुँहसे एक आह निकल जाती है।

"क्या हुआ, सुनील ? गरमी अधिक है तो मेरे कमरेमें चले आओ, वहाँ कूलर है।"

मैं जैसे-तैसे कह देता हूँ, "नहीं, यहीं ठीक है।"

भाभी जैसे आश्वस्त हो जाती है। फिर

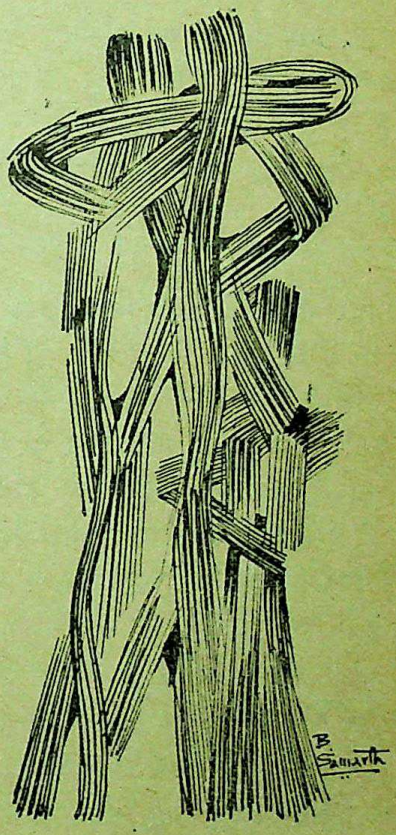

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछती है, "कुछ खाया-पिया कि नहीं ? माँ कहाँ गयीं ?"

"खाया-पिया, सब। माँ भीतर रसोईमें होंगी।" और सोचता हूँ कि भाभीके चेहरेकी रौनक़ फिर कभी लौटकर आयेगी ? क्या फिर कभी यह मुरझा गये गाल लाल हो पायेंगे ?

वह नये-नये फ़ैशनका जूड़ा बाँधना और जूड़ेमें सदैव पीले गुलाबका रहना कहाँ गया ? भाभी शिवकी बातें बता रही है और मुझे उसका आवरण और वेश भावातुर किये दे रहा है। क्या यूँ ही अब यह असामयिक प्रौढ़ता भाभीकी चिरसंगिनी बनी रहेगी ?

पता नहीं, क्या-क्या बोलनेपर भाभी कह रही हैं, "अच्छा तो चलूँ, सुनील, भीतर चलकर कोई काम हो तो देखूँ।" और वह चली गयी हैं। मैंने थूकको सूखे हो रहे कण्ठके नीचे उतारा और उमड़ते आँसुओंको रूमाल निकाल कर पोंछ दिया।

■

'साँझ घिर आयी है, क्योंकि बन्द खिड़कीके पार लगता है, सूर्यकी किरण अब नहीं हैं। बाहर शिवके चिल्लानेकी आवाज़ें आ रही हैं। शायद भाभीसे नहीं माँसे ज़िद कर रहा है"—अम्माँ, आज हम बगीचा नहीं जायेंगे, आज तो चाचाके साथ सिनेमा जायेंगे। लिबरटीमें बच्चोंके लिए 'ड्रम्स ऑफ़ डसटनी' चल रही है।"

माँकी आवाज़ आ रही है, "नहीं भैया, आज तुम चले जाओ बगीचा, चाचा थके हैं !"

किन्तु छह वर्षीय शिव ज़िद किये है। मैं पुकारता हूँ—"इधर, बेटा, इधर आओ।" मेरा कहना था कि शायद कहीं भाग गया शरमाकर। मुझे सोया जानकर ही ज़िद थी।

एक जम्हाई लेकर, आलस्यको झटक दिया और उठकर खिड़कीके परदे खींच दिये मैंने। खिड़की खोलकर देखा, बलवन्तने क्यारियोंको सींच दिया है और वातावरण गरम मिट्टी और ठण्डे पानीके मिलनसे उत्पन्न धीमी-धीमी सोंधसे महक रहा है। गीली मिट्टीकी सोंधी-सोंधी महक और गमकती हुई मोतियेकी कलियाँ और कलियोंसे सटा हरी-हरी दूब वाला लॉन जिसपर सदैवकी भाँति चार कुरसियाँ पड़ी हैं। कुछ दिन पहले इस समय तक भैया तैयार होकर शिवके साथ इन कुरसियोंपर बैठकर खेला करते थे, भाभी सामने बैठी बाप-बेटेका खेल देखकर मुसकराया करती थीं और माँ इस सुखमें भीतर-बाहर इठलाया करती थीं।

मैं खिड़कीसे अलग हट आया हूँ। लगता है, यह उदासीन साँझ मुझे कहींका न रखेगी। घर आया हूँ कि माँके आँसू पोंछ सकूँ, भाभीकी आँखोंका सूनापन धो डालूँ। किन्तु मैं तो स्वयं ही कमरेमें छिपा-छिपा बैठा हूँ....

■

कॅनाट प्लेसका जाना-माना चौराहा। मैं पूछता हूँ "कहाँ चलेंगी भाभी ?"

वह अपनी सफ़ेद नायलॉनकी साड़ीके पल्लेको सिरपर ओढ़ती हुई बोलती हैं, "जहाँ तुम ले चलोगे, सुनील।"

"आप अपनी पसन्द नहीं बतलायेंगी ?"

"न, जहाँ-जहाँ मैं जाया करती थी-वहाँ-वहाँ मैं अब जाना नहीं चाहती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है," मैंने बात काटते हुए शीघ्रतासे कहा और 'स्टैण्डर्ड' की ओर चलता हुआ सोच रहा हूँ कि मुझे स्वयं ही जानना चाहिए था कि भाभी अपने पूर्व परिचित स्थानोंपर जाकर कैसे सुखी रह पायेगी।

'स्टैण्डर्ड' में भैया नहीं आते थे, मुझे मालूम है। ऊपर हॉलमें एक-दो जोड़े बैठे हैं। मैं भाभीको एक किनारेवाले टेबुलके पास ले जाकर कहता हूँ, "बैठिए!"

वह इधर-उधर देखकर बैठ जाती है। एकाएक न जाने क्या सोचकर कहती है, "सुनील, तुम्हारी कोई मित्र नहीं है क्या?"

मैं एक क्षणके लिए इस अप्रत्याशित प्रश्न पर अवाक् उसका मुँह निहारता रह जाता हूँ। वह नीचे देखती हुई-सी बोलती है, "मेरा मतलब, मेरा कहना था कि तुम दो दिनको घर आये, अपनी किसी मित्रके संग घूमते-फिरते। यूँ साँझ व्यर्थमें खो देना तो ठीक नहीं?"

"आप इसे व्यर्थमें खो देना कहती हैं और मेरे लिए शायद यही सबसे बड़ा सुख हो।"

गम्भीरताको चीरती हुई एक हँसीकी रेखाने भाभीके बन्द होठोंको खोल दिया। वह बोली, "प्रश्नका उत्तर बातोंमें छिपा गये हो।"

"इतनी उत्सुकता क्यों है जाननेकी?"

"माँ कह रही थीं कि सुनील अबकी आयेगा तो विवाह निश्चित कर दूँगी। मैं भी समझती हूँ कि घरपर छायी यह मनहूसियत तभी हटेगी जब नयी नवेलीकी चूड़ियोंकी खनकसे यह घर गूँजेगा।"

"घाव जो मनमें हो गया है वह सौ-सौ चूड़ियोंकी खनकसे भी नहीं जायेगा भाभी!"

"वह तो ठीक है, किन्तु उसे दूर करनेका उपाय तो करना ही है, नहीं तो जीना कैसे होगा।"

मैंने देखा, भाभीकी सूनी-सूनी निगाहोंमें कैसा दुःख पी जानेका साहस है। "अभी तो भैयाकी प्रथम पुण्यतिथि भी नहीं हुई, अभी-से माँ और आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए।"

"यूँ ही जीवन चला करता है, इसमें इतना भावुक होनेकी आवश्यकता तो नहीं होनी चाहिए।"

मैं अस्थिर होकर खिड़कीमें लगे काँचके पार कुछ खोजनेका प्रयत्न करता हूँ। परन्तु देखता हूँ कि भाभीका अपार धैर्य और असीम साहस मुझे छोटा किये दे रहा है। आज परिस्थितियोंने करवट ली है, देशकी रक्षाने बलिदान लिया है तो देशकी नारियाँ कितनी सबल हो उठी हैं। मैं पुरुष होकर उस धक्के-को झेलनेका प्रयास मात्र ही कर रहा हूँ जब कि लगता है, भाभीने सब दुःख घोलकर पी डाले हैं। अपनी बातचीतमें वह एकदम स्वाभाविक है, जैसे कहीं कुछ अनहोनी घटित ही नहीं हुई। सत्य ही तो, देशकी प्रतिरक्षा-ने तो युग-युगान्तरसे बलिदान माँगा है, आज कुछ नया तो घटा नहीं।

"सुनील, तुम चाय लोगे कि एक्सप्रेसो?"

देखा बैरा पास खड़ा है और भाभी मुझ-से पूछ रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"न एक्सप्रेसो, न कॉफी। मुझे कुछ ठण्डा मँगवा दीजिए।"

भाभीने 'दो मैंगो मिल्क शेक' कहकर मेरी ओर देखा—"ठीक है," और बैरा चला गया है।

बैण्डपर बड़ी ही सुरीली, मन्द-मन्द स्वरोंमें दृश्यको आलोकित कर देनेवाली धुन बज रही है। शाम गहरी हो आयी है और भीड़ बढ़ती जा रही है। कई आसपासकी खाली मेज़ें भर गयी हैं। रोशनीमें युवतियोंके, प्रौढ़ाओंके लिपे-पुते आभाहीन चेहरे अपने घिनौनेपनके सर्वोच्च शिखरपर हैं। और वह घिनौनापन, छिछोरेपनपर उतर आता है जब वे युवतियाँ, वे प्रौढ़ाएँ अपनी खोखली और बनावटी हँसीमें अपने शरीरका आधेसे अधिक भार अपने साथीके कन्धेपर उलट देती हैं। न जाने ये लोग इतनी कोमल कैसे हो उठती हैं एक ही क्षणमें कि अपनी हँसीका भार भी इनसे सहा नहीं जाता।

"पियो सुनील, कहाँ खो गये?"

मैंने गिलास लेकर सीक मुँहमें डाल मिल्क शेकके छोटे-छोटे घूँट पीने आरम्भ कर दिये। भाभी बोली, "देखते हो, ठीक मेरे पीछेकी पंक्तिमें तीसरी मेज़पर श्रीमती वर्मा बैठी हैं। इनके पति मेजर वर्मा भी तुम्हारे भैयाके साथ ही वीरगति पा गये थे।"

मैंने देखा, श्रीमती वर्माको देखनेसे पता नहीं चलता कि इनके पति हालमें ही स्वर्ग-वासी हुए हैं। हलके गुलाबी रंगकी ज़रीदार चन्देरीकी साड़ी, गुलाबी भर-बाँह चूड़ियाँ और होठोंपर भरपूर गहरे लाल रंगकी लाली। सिरकी घुमायी तो देखा, मोतियेके फूलोंका गजरा जूड़ेके चारों ओर लिपटा हुआ है। मेरी दृष्टि अनायास ही भाभीके आवरणपर चली गयी है। सोचता हूँ, श्रीमती वर्माने ठीक ही किया है। कोई कबतक जानेवालोंके लिए शोक-चिह्न धारण किये रह सकता है। एक भाभी है कि दूसरोंकी सुविधाका खयाल करती है, किन्तु अपनेपर-का नियन्त्रण कभी तोड़ नहीं पाती।

कुछ देर मौन रहकर कह उठता हूँ, "जीवनको सहज रूपमें लेना चाहिए, यही ठीक है। दूसरे सज्जन उनके कोई आत्मीय हैं क्या?"

"न, वह दूसरी रेजीमेण्टमें हैं, मेजर खन्ना।"

"हूँ!" कहकर मैं फिर चुप रह जाना चाहता हूँ। सोचता हूँ, भाभीको भी कभी-कभी इसी प्रकार खुलकर हँसना चाहिए। यूँ ही कभी-कभी किसीके संग घूमने निकल जाना चाहिए। आखिर इतनी लम्बी ज़िन्दगी-को काटनेका कुछ साधन भी तो हो!

'शिव आज गुस्सा करेगा।" भाभी बोली।

"उसे भी ले आतीं।"

"वह घरपर ही तो नहीं था, प्रतिदिन साँझको साथवाले बगीचेमें घूमने चला जाता है। वहाँ सामने मैदानमें एन० सी० सी० के लड़के परेड करते हैं तो उसे बड़ा भला लगता है।"

"बड़ा होकर सेनामें जायेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लगता है, वीरका बेटा वीर ही बनेगा।" कहकर भाभीने ऊपर देखा। मैंने कोरोंमें आयी बूँदें देख ली हैं और इस पूरे दिनके भाभीका अपार धैर्यका बाँध हिलते हुए देख लिया है। न जाने क्यों मेरे मनमें उन कोरोंकी बूँदोंने एक अभावको पूर दिया है कि मेरी दिन-भर-की अस्थिरता एवं भाभीके समक्ष अपनेको हीन समझनेकी धारणाएँ सब लोप हो गयी हैं। तभी देखा, श्रीमती वर्मा खड़ी हैं—"हलो उर्मिला, कबसे देख रही थी तुम्हें, शायद पहचाना नहीं तुमने।"

"कैसे नहीं पहचानूँगी, किन्तु सोचा, आपको व्यर्थमें ही क्यों डिस्टर्ब करूँ, जाते समय दो बातें कर लेंगे।"

"शिव कैसा है ? कभी बाहर नहीं निकलतीं तुम ! महीनों बाद आज देखा है।" और उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टिसे मुझे देखा।

भाभी आशय समझ गयीं। इससे पहले कि वह कुछ परिचय दे पाये, श्रीमती वर्मा बोल उठीं, "अच्छा, मैं चलती हूँ, दिनमें तो स्कूल पढ़ाने जाती हूँ किन्तु साँझको कभी-कभी घरपर मिल जाती हूँ। आनेसे पहले सूचना देना। आना अवश्य और अपने इन मित्रको भी लाना।" कहकर वह मेरी ओर देखकर मुसकरा दी हैं। भाभी या मैं कुछ बोलें-कहें कि वह 'बाय-बाय' करती हुईं ऊँचे एड़ीके जूतोंको टिक्‌टिक् करती हुईं आँखोंसे ओझल हो गयी हैं।

मैंने आज भाभीके संग बाहर निकलनेसे पहले इस सन्दर्भपर ग़ौर भी नहीं किया था कि लोग यूँ अन्दाज़से ही सम्बन्ध बना लिया करते हैं। भाभी आनेके समय आनाकानी कर रही थी और उसे यूँ संकुचित होते देखकर माँने ही कहा था कि उन्हें कीर्तनमें जाना है, शिव तो बगीचे चला ही गया है, यूँ भाभी अकेले घरके एकान्तमें बैठी-बैठी क्या करेगी वह भी चली जाये। तो क्या तब भाभीने इस सन्दर्भपर सोचा होगा। मैंने देखा, भाभी अपने ग्लासका अन्तिम घूँट पी रही है और मुझे अपनी ओर देखते पाकर बोली, "चलो, अब घर चलें।"

सीढ़ियाँ उतरकर मैंने एक बार कहना चाहा कि चलो, थोड़ा खुली हवामें घूम लिया जाये किन्तु मैं कुछ चाह कर भी न कह पाया। श्रीमती वर्मा वाली बात सोचकर रह गया और कुछ-कुछ खीजकी भावनासे स्वाभाविक-से ऊँचे स्वरमें मैंने टैक्सीवालेको आवाज़ दी।

भाभी मेरे पास ही बग़लमें बैठी है, शान्त और स्थिर, जैसे कुछ घटित ही नहीं हुआ। उसने श्रीमती वर्माके सन्दर्भपर मुझे कुछ सफ़ाई भी नहीं दी जैसे उसे इस बातका आभास पहलेसे ही था। जैसे आगतको उसने देख लिया था।

उसके गम्भीर व्यक्तित्वको देखकर कोई कुछ अनुमान भी नहीं लगा सकता किन्तु सड़कपरका पड़ता हुआ झिलमिल प्रकाश उसके मुखड़ेकी श्वेत वीरानगीकी व्यथाको अनकहे ही कुछ कह जाता है। देखकर मनमें आता है, इस टैक्सीके शीशे फोड़ डालूँ, इस समाजके झूठको तोड़-मरोड़कर नोच डालूँ। इस गिरते हुए स्तरके लोगोंको, जो अपनेको बहुत ऊँचा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते है, पकड़कर एक एकको उसके द्वारा किये हुए कुकृत्योंका दृश्य दिखा दूँ। यह समाज क्या समझता है अपनेको।

अपराध तो दासताका है, उस दास-वृत्तिका जिसने हमें अँगरेज़ोंके जूते अढ़ाई सौ वर्ष तक चाटने दिये। नहीं तो क्या हमारे पूर्वज मातृभूमिके लिए बलिदान नहीं दिया करते थे। क्या हमारे समाजमें उन वीरोंकी अमानतोंको यूँ एक उपहासका उपकरण मात्र मान लिया जाता था। मैं जीवनमें फिर कभी ऐसी स्थिति नहीं आने दूँगा। इसका मैंने अभी और यहीं बैठे-बैठे प्रण कर लिया है। योद्धाओंकी विधवाएँ पूजा और प्रेमकी अधिकारिणी हैं, यूँ व्यंग्य और उपहासका केन्द्र नहीं।

■

भाभी टैक्सीवालेसे कहती है, "बस यहीं रोक दो।"

हम दोनों घरके भीतर आये है तो माँ और शिवको भीतर आँगनमें बैठे हुए पाया है। माँ उसे अपने हाथोंसे खाना खिला रही हैं। मैं भी पासमें ही बैठ गया हूँ और भाभी शिवका सिर सहलाकर भीतर चली गयी है। माँ पूछ रही हैं, "छुट्टी कितने दिनकी लेकर आये हो?"

"दस दिन की।"

"बस?"

"डॉक्टरको छुट्टी कहाँ मिलती है!"

"तो मैं कल ही उन्हें सन्देशा भेज दूँ?"

"किन्हें? मैं समझा नहीं।"

"वकील साहबके यहाँ, मैंने ताराके साथ तुम्हारी बातचीत पक्की कर दी है, लड़की तुम्हें पसन्द है न?"

"किसी की लड़कीको देखना मेरा काम नहीं। किन्तु तुम सन्देशा अभी रोक दो।"

"क्यों?"

"यूँ ही! मैं अभी विवाह नहीं करूँगा।"

कहकर मैं वहाँसे उठ आया हूँ। जानता हूँ, जो निर्णय मैंने अभी-अभी लिया है वह मैं माँको भी अभी नहीं सुना सकता। स्वयं मुझे अपनेको इसके लिए तैयार करना है और फिर उसके लिए उर्मिला (भाभी) की स्वीकृति भी बहुत आवश्यक है। मैं उर्मिलासे ही ब्याह करूँगा। सुनकर माँकी प्रतिक्रिया, नहीं जानता, क्या होगी!

मैंने अपने विचारोंमें प्रथम बार भाभीको उर्मिला कहकर पुकारा है, मुझे रोमांच हो आया है। बाहर चाँद अपनी पूर्ण रमणीयता लिये निकल आया है और कमरेकी प्रत्येक वस्तु जैसे कमनीय हो उठी है, और वह मनहूसियत जो आज दिन-भर मैं इस घरमें अनुभव करता रहा हूँ कहीं बिखर गयी लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न । यी । क । हा । नी : पंजाबी

कुलवन्तसिंह विर्क

तारा था एक मज़हबी सिख । उसका बापू गाँवके लोगोंके यहाँ सेप (सेवा-शुश्रूषा) करता और उसकी माँ लोगोंके घरोंमें गोबर थाप देती । तारा भी कभी अपने बापूके साथ और कभी अपनी माँके साथ आया-जाया करता था । उसके पिताकी सेपकी माँग काफ़ी थी क्योंकि वह दिन-रात मशीनकी भाँति काम करता था । इसमें उसे शारीरिक थकान, मिलनेवाले पैसों या अपने घरके बाक़ी काम-

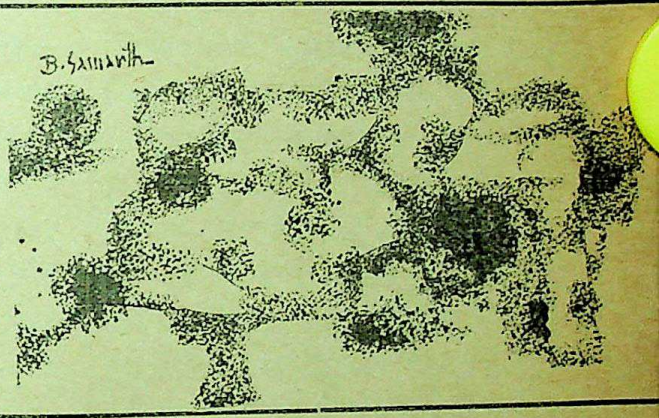

बहुत निकट बहुत दूर

काजका ध्यान बिलकुल ही नहीं रहता था । उसका मन आजतक कभी इधर-उधर नहीं भटका था । जब भी कभी उसकी वृत्तियाँ उसे काल्पनिक आकाशमें उड़नेको कहतीं, उसके हाथ अपने कामकी ओर बढ़ जाते और वह उसमें इतना तल्लीन हो जाता कि उसको फिर कहींकी खोज-खबर नहीं रहती ।

इस गुणमें तारा भी अपने पिताके समान ही था । बचपनमें भी उसे कभी शरारत नहीं सूझी थी और न ही वह अपने नटखटपनमें कभी अपने हमजोलियोंसे जूझा था । जब रातको उसकी उम्रके और लड़के गली-मुहल्लेमें इकट्ठे होकर खेला करते तो उसमें भी वह फिसड्डी ही रहता ।

जब तारा कुछ बड़ा हुआ तो उसे भी अपने गाँवके पशु चरानेकी सेप मिल गयी । लेकिन अपने इस स्वतन्त्र व्यक्तिगत जीवनमें भी उसकी साधारण सूझ-बूझ वैसी ही रही । उसके लिए बात करना मुश्किल हो जाता लेकिन हँस देना बड़ा आसान था । और जहाँ केवल दाँत निकाल देनेसे ही काम चल जाये वहाँ किसी पतेकी बातको ढूँढ़नेके लिए दिमाग़पर ज़ोर ही क्यों दिया जाये । ऐसा लगता था कि उसका शब्दकोष केवल पचास-साठ काम चला सकनेवाले शब्दों तक ही सीमित था ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार अपनी बहनके विवाहमें अपने परिवारके अन्य सदस्योंकी भाँति वह भी गाँवके दर्ज़ीकी दूकानपर कपड़े सिलवाने गया था। दूसरे दिन खेतमें पशु चराते समय जब उसके साथीने पूछा, "सुनाओ, तारे, तुम्हें कैसे कपड़े मिल रहे हैं ?" तो उसको अपने शब्द-कोषसे ढूँढ़नेपर शब्द ही नहीं मिले। बड़ी मुश्किलसे कह पाया था, "हमें तो सच्चे कपड़े सिलवाने थे पर बापूने कपड़े ही सिलवा दिये।" इतना कहकर और हँसकर उसने अपनी जान छुड़ा ली थी और इस प्रकार उसका रेशमी और दूसरे कपड़े (सूती) का अन्तर व्यक्त हो गया था। फिर एक बार वह अपनी बहनको ससुरालसे लिवाने गया। जिस स्टेशनसे भाई-बहनको गाड़ीपर चढ़ना था, वहाँ एक गोरा-दम्पति भी गाड़ीपर चढ़नेके लिए आये हुए थे। तारने प्रकृतिकी इस अनोखी कृतिको देखा और देखता ही रह गया। उसके दिलमें कौन-से भाव उठे, इसे कोई नहीं जानता। यह समझ लेना चाहिए कि उससे पहले तारने अँगरेज़को नहीं देखा था। उसकी आँखें इस अचम्भेपर विश्वास नहीं कर सकती थीं। अगले दिन उसने अपने गाँव आकर अपने एक सेपीसे अँगरेज़वाली सारी घटना सुना कर पूछा, "क्या इनके सारे अंग भी हमारी ही तरह होते हैं ?" इन अँगरेज़ोंको देखकर तारा यह कभी विश्वास नहीं कर सकता था कि इनके सभी अंग हमारी तरहके ही हैं और ये भी हमारी तरहके इनसान ही हैं।

कुछ समय बाद ताराका विवाह हो गया। उसकी बहू भी कोई चार-पाँच दिन में मेंहदी रचाये बैठी रही, फिर उसे भी उसी प्रकार गाँवके घरोंमें गोबर थापना शुरू कर देना पड़ा जैसा कि वह पीहरमें करती आयी थी या उसकी सास अपने विवाहके चार-पाँच दिन बादसे कर रही थी। लेकिन विवाह हो जानेके बाद भी ताराके ज्ञानमें कोई वृद्धि नहीं हुई। उसकी ग़लतफ़हमियाँ ज्योंकी त्यों रहीं और नारी-जातिके प्रति उसकी धारणाओंमें कोई अन्तर नहीं आया। वह पहलेकी तरह ही एक अबूझ पहेली बनी रही।

तदनन्तर उसकी पत्नीके भाईका विवाह आ गया। तारा और उसकी पत्नी गाड़ीपर चढ़कर वहाँ गये। विवाहके बाद उसकी पत्नी तो कुछ दिनोंके लिए अपने पीहरमें ही रह गयी और ताराको अकेले वापस आना पड़ा। गाड़ी रातकी थी। एक लम्बी-सी सीटके एक सिरेपर बैठा तारा अपने गाँवकी ओर जा रहा था। एक छोटे-से शहरके स्टेशनपर गाड़ी आकर रुकी। और कुछ क्षणोंमें ही एक सुन्दर जवान और एक पढ़ी-लिखी युवती उस डिब्बेमें घुस आये। जो व्यक्ति उसको गाड़ीपर चढ़ाने आया था, उसने उसे अटैची पकड़ायी और वह बड़े आरामसे अपने बैठनेके लिए स्थानका चुनाव करने लगी। उस लड़कीके रूपके सामने, ताराको ऐसा अनुभव हुआ कि उसका गाड़ीके उस डिब्बेमें बैठना कोई बुरी बात थी। मानो उसने कोई भारी ग़लती की थी। अपने इस अपराधसे डरता वह अपने स्थानपर और भी सिकुड़कर बैठ गया। वह सीटके सिरेपर बैठा हुआ था और अब उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम नहीं हो रहा था कि वह सिमट और किधरको जाये ?

वह युवती आकर उसके पासकी सीटपर बैठ गयी। इन दोनों सीटोंकी पीठ एक ही थी। इससे बढ़कर तारा क्या माँग सकता था ? परन्तु साधारणतया आदमीको अपने अच्छे भाग्यपर अचम्भा नहीं होता। ताराने चोर-नजरसे उसके मुँहको देखा। लेकिन इससे उसका अपना व्यक्तित्व ही हिल गया, मानो वह स्वयं कुछ भी नहीं, मानो उसने तीन-तीन व्यक्तियोंका बोझ अकेले कभी नहीं उठाया; मानो उसने कभी खालके तलसे फावड़े-द्वारा मिट्टी निकालकर वहीं खड़े-खड़े दूर नहीं फेंकी। उस लड़कीके रूप-यौवनके तेजके आगे ताराका स्वत्व तो बिल-कुल ही स्वाहा होता जा रहा था। उसके लिए यही काफ़ी था कि वह रूपसी बिना नाक-भौं सिकोड़े उसके निकट आकर बैठ गयी थी; उसे लग रहा था जैसे वह कोई स्वर्गकी देवी हो ! यह तो तारा भी जानता था कि कई स्त्रियाँ अन्य स्त्रियोंकी अपेक्षा सुन्दर होती हैं, ठीक वैसे ही जैसे कई बैल दूसरे बैलोंकी अपेक्षा तेज़ होते हैं। गाँवोंमें सुनारों और कुछ जाटोंकी लड़कियाँ भी सुन्दर अवश्य थीं लेकिन जिस तरह कोई तेज़ बैल भी इस गाड़ीकी गतिका मुक़ाबला नहीं कर सकता वैसे ही कोई भी सुन्दरी इस रूपसीका मुक़ाबला नहीं कर सकती थी।

गाड़ी चल पड़ी। यह डिब्बा, जिसमें वह आकर बैठ गयी थी, अब पहलेवाला डिब्बा नहीं था। इस युवतीकी उपस्थितिसे वहाँके वातावरणमें एक अननुभूत रूपान्तर हो गया था। ऐसा लगता था कि यह गाड़ी स्वप्न देशकी कोई गाड़ी हो, लेकिन ताराकी अपनी ही मान्यता उसके कल्पनाके पंखोंसे पत्थरकी भाँति बँधी हुई थी।

सीटपर खुली जगह देखकर वह लेट गयी। पहली घबराहटके बाद अब तारा कुछ अपने आपेमें आ रहा था। लड़कीके आनेसे पहले वह अपने आपको पंखा कर रहा था। हर समय कड़कती धूपमें परिश्रम करनेवालोंको भी कभी-कभी मेहमान बनकर या सफ़र करते हुए गरमी भी लगती है।

हलकी मुट्ठी दबा-दबाकर और घण्टों फावड़ा चला-चलाकर उसके कठोर और खुर-दरे हुए हाथोंमें नाज़ुक पंखेकी डण्डी घूमती हुई बड़ी अजीब मालूम होती थी। पंखा करते हुए उसने देखा कि लड़कीके माथेपर बालोंकी लट पंखेकी हवामें हिल रही थी। वह तारा मज़हबी (अछूत) इस सुन्दरीको पंखा झल रहा था। पंखेवाला हाथ बिजलीके धक्केकी तरह पीछे आकर उसके घुटनोंको लगा। इस लड़कीको पंखा करनेकी अनुमति उसे किसने दी ? यह अधिकार तो बहुत ही निकट सम्बन्धियोंको प्राप्त हो सकता है।

लड़की अभी जाग रही थी। वह कभी थोड़ी-सी आँखें खोलती और फिर बन्द कर लेती। उसने ताराके हवा करनेपर कुछ भी रोष प्रकट नहीं किया। शायद उसे यह मालूम ही न था कि उसे किसीके पंखेकी हवा पहुँच रही है।

कुछ समय बाद ही पंखा ताराके हाथको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर आगे खींचने लगा। हवा करते समय वह उस लड़कीके साथ जो तादात्म्य अनुभव कर रहा था, इससे उसे बड़ा आनन्द आ रहा था। अब उसका पंखेवाला हाथ आगेसे बहुत तेज़ गतिसे चल रहा था और हवा लड़कीके शरीरसे खेल रही थी। पहले तो उसका अपना ध्यान एक ओर था, ताकि उसके निर्लज्जतापूर्ण व्यवहारको लड़की कहीं देख न ले, पर कुछ समय बाद ही उसे इस तर्कने सान्त्वना दी कि यदि वह अपने आपको पंखा कर रहा हो तो पंखेकी हरकतसे लड़कीको हवा पहुँचनी ज़रूरी है। इसलिए किसीके लिए भी यह कहना अत्यन्त कठिन होगा कि वह अपने आपको हवा कर रहा था या कि लड़की को, यह कोई घरवाली बात थोड़े ही थी। अब कुछ देरसे उस लड़कीने अपनी आँखें नहीं खोली थीं। उसका चेहरा पहलेकी अपेक्षा ढीला पड़ चुका था। वह सोती जा रही थी। अब वह अधिक स्वतन्त्रतासे पंखा कर सकता था। ज़रा डिब्बेमें बैठे और लोगोंसे आँख बचानेकी ज़रूरत थी। लड़कीकी साँस अब अपने आप अबाध चलती जा रही थी। वह सो चुकी थी। तारा उसको पंखा करता गया।

उस लड़की और ताराके मध्य केवल लकड़ीके दो पाटोंसे बनी पीठका अन्तर था। ताराके हाथमें घूमता घूमता पंखा कभी लड़कीके और भी निकट हो जाता और उससे निकलने-वाली हवासे लड़कीके शरीरपर-के कपड़े सिहर जाते। इतना निकट होते हुए भी तारा अपने और उस लड़कीके मध्यके अन्तरको इतना अधिक महसूस कर रहा था जितना कि इस कहीं दो और वस्तुओंके मध्य हो सकता है। उनके इतने निकट होनेका भी तो कोई अर्थ नहीं था। सीटकी पीठसे सटी हुई वह लड़की उससे कोसों दूर थी और थी ताराकी शारीरिक और बौद्धिक पहुँचके बाहर।

पर तारा यह भी कभी नहीं भूल सकता था कि वह उसको चोरी-चोरी हवा कर रहा था। उसकी सारी आयुमें उसके अरमानोंका गला इस तरह कभी नहीं घुटा था। सोयी हुई वह लड़की इतनी दूर भी नहीं थी कि वह उसे भुला सके और न ही इतनी पास थी कि इसके साथ बात कर सके, उसे अपनी समझ सके। वह तो उसे किसी अन्य लोककी परी समझ रहा था। उसे विश्वास ही नहीं हो सकता था कि वह लड़की उसके मुँहसे निकली भाषा भी समझ पायेगी।

इसी तरह पिस रहे तारापर भी धीरे-धीरे नींद क़ाबू पाने लगी। वह भी अपने पैर लम्बे कर वहीं सो गया। पर उसके अन्तरका संघर्ष दूर नहीं हुआ था अपितु थोड़े कालके लिए नींदके परदेके नीचे आवृत हो गया था। उसके शरीरपर तो निद्राका पूर्ण साम्राज्य था लेकिन मन अभी उसी अग्निसे सुलग रहा था। ऐसी निद्रा कभी भी गहरी नहीं हो सकती।

सोये-सोये ताराके कानमें किसीके रोनेका स्वर पड़ा और धीरे-धीरे वह स्वर बच्चेके रुदनके स्वरमें बदल गया। डिब्बेमें किसीका बालक रो रहा था, शायद वह दूधका भूखा था। रुदनकी यह ध्वनि ताराके कानोंसे उत-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रती हुई उसके अवचेतन तक पैठती चली गयी। फिर जिस प्रकार एक स्थानका बारूद अपने आप ही फट जाता है, ताराने भी चीखें मारनी आरम्भ कर दीं और उठकर बैठ गया। डिब्बेमें खलबली मच गयी। तीन-चार व्यक्ति बड़ी शीघ्रतासे उसकी ओर मुड़े। अपनी चीखोंके डरसे तारा भयभीत था।

"क्या बात है? ठीक-ठाक तो हो?" उन्होंने उसके विशाल वृषभ-स्कन्धोंको दबाते हुए पूछा। घबराये हुए ताराने आँखें झपकाते हुए माथेसे पसीना पोंछा। ऐसी बात उससे पहले कभी नहीं हुई थी, वह भला क्या बताये कि क्या हुआ था।

शरमाये हुए ताराने अपनी दायीं ओर देखा। उसकी चीखोंसे वह लड़की भी जाग उठी थी। अब वह डिब्बेमें जल रही बत्तियोंकी ओर देख रही थी। न उसे और न ही ताराको पता था कि उसकी चीखें इसी लड़कीने निकलवायी थीं।

■ ■

अपभ्रंश भाषा और साहित्य

[शोध-प्रबन्ध]

● ●

डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

अपभ्रंश साहित्यके विशाल भण्डारका अभी कुछ ही अंश प्रकाशमें आ पाया है। विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया है तो अब इस साहित्यकी गरिमा और महनीयता भी धीरे-धीरे सामने आ रही है। प्रस्तुत कृति अपभ्रंश भाषा, उसका युग और स्रोत, अपभ्रंश काव्योंका तो परिचय कराती ही है, अपभ्रंश काव्योंके वस्तु-वर्णन, रससिद्धि, अलंकार-योजना और वृत्त-विधानकी जानकारी देकर इस साहित्यमें प्रकृति-चित्रण, समाज और संस्कृतिके तात्कालिक परिवेश तथा दार्शनिक मत-मान्यता आदिकी भी जानकारी देती है। परिशिष्टमें लेखकने तेरह ऐसे विषयोंपर टिप्पणियाँ दी हैं जो साहित्यके परिप्रेक्ष्यको उजागर करती हैं।

सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य हर कोई भले ही न देख पाये पर उसका परिचय पाना और रसास्वाद प्राप्त करना हो तो प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य' पढ़ना अनिवार्य है।

मूल्य १०.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता ● वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली–६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

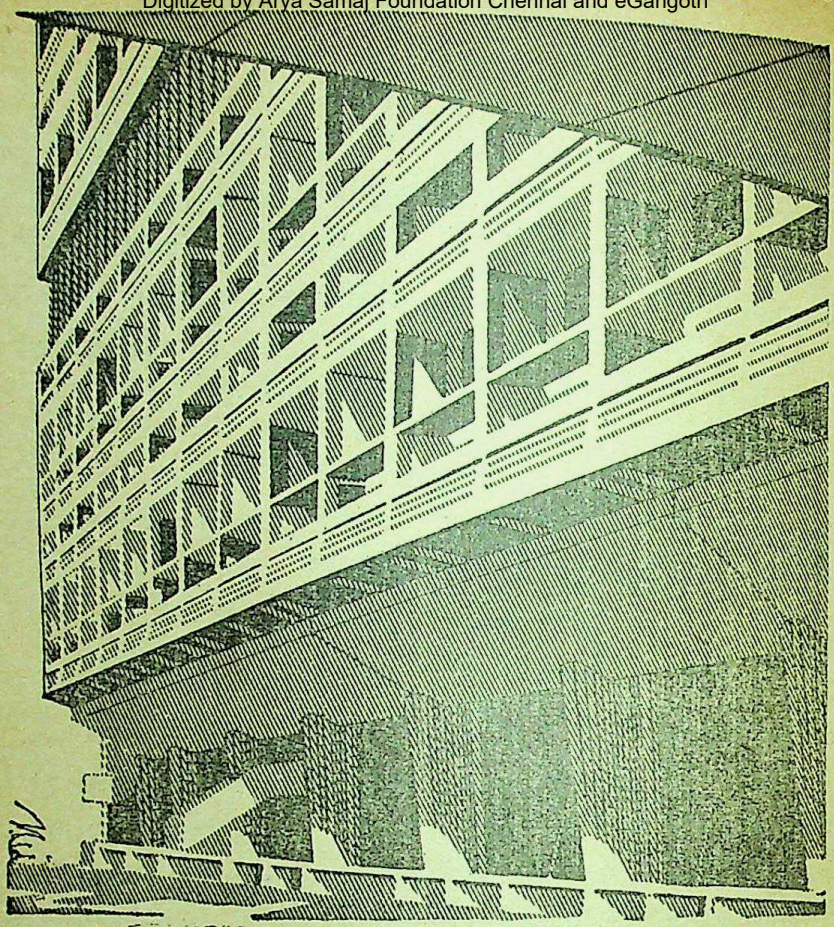

उत्तम निर्माण के लिए

साहु सीमेन्ट

जयपुर उद्योग लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन, चार और सात कविताएँ

- अनामिका
- ऋतुराज
- अनन्तकुमार पाषाण

• तीन कविताएँ

—१—

खुले मैदानों में
दिन गुज़रता
हमारे साथ चलते हुए
बन्द हो जाते हैं शाम को
उजाले के हाथ।

—२—

एक गाँव
जो अभी नज़रों में आया था
दूसरा उसी की जगह
आँखों में छप गया
उतना ही उदास और परिचित
उतना ही दूर
हमारी आँख बाँहों से
उतना ही दूर।

—३—

साँझ
कोई पोंछता है माँग
और ख़ाली जगह
काले केश—काले केश !

—अनामिका

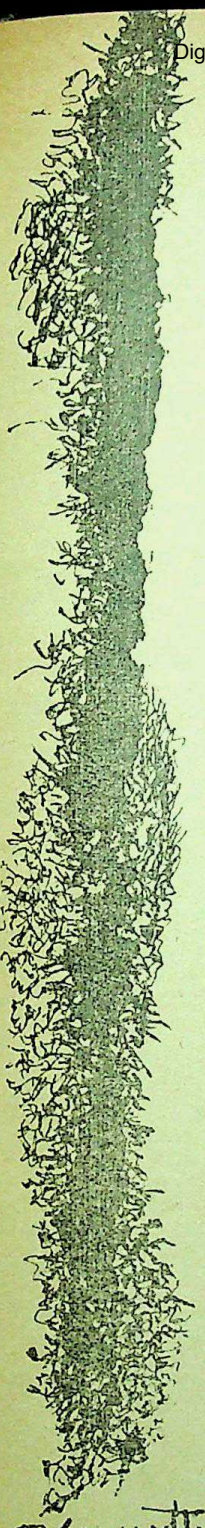

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• चार कविताएँ

–१–

इस सुबह मुक्त हैं
वे जिन्होंने दृष्टिपथ छोड़ दिया है ।

स्मृति में आये थे कालजयी
रात्रि में जो स्वप्न-से
या फिर सूक्ष्म क्षणिक स्नायविक
कसाव बनकर रह गये
निष्ठुर जड़बोध
इस सुबह मुक्त हैं

पत्थरों के नगर में
एक पैनी लेखनी लिये
घूमता हूँ निरालोक
और पत्थरों के अन्तःस्थल में
गूँज उठती है
भावहीन निर्मम जो हैं
वे अब मुक्त हैं

केवल दायित्वों में बँध
हृदयस्पर्शी केवल शब्द-चेतना
से विकल बहिर्मुखी
सन्त्रस्त हैं किन्तु
वे भी अर्ध-निर्मित
कल्पना से क्षीण होते जा रहे हैं ।

–२–

परिचय
उत्सव में अनाहूत पहुँचे हुए से
किसी ने कुछ भी नहीं पूछा केवल एक
युवती पास आयी
कितने बजे हैं
सब विदा हुए केवल वह ही एक
आगन्तुक समय लिये
उस युवती को ढूँढ़ता रहा ।

–३–

क्षीण गहराई में
एक मेरी आँख असीम गहरी
अतल
सुन्दरता की प्रतिछाया से
अभिभूत है

वह तोड़ देगी दृश्य-फलक
वह नील सागर में रह आयी है
अनित्य

अनेक बार सुन्दरियों के रथ के
लिए उसे सारथी चुना गया
पहला बाण उसके ठीक कोमल
बीच में गढ़ा

अनेक बार उसमें सीढ़ियाँ लगाये
नारी का पौरुष उतर गया
वह आँख आज बिना गहराई के
डूबी जा रही है ।

–४–

प्रेम के विराट
दृश्य में एक लघु
अनुपस्थिति
सुन्दर वेदना रचती है

विराट और लघु
इन दो पहियों के नीचे एक
सपाट हृदय, एक गोल दृष्टि
एक अँगुली सम्पुट
भी हलके रंगदार पानी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोते हैं
यह कहते भय लगता है : कोई नहीं हैं
यह कहते भय लगता है : वह यहाँ नहीं है
उस धरती की खोज में ही तो
हम जीवित हैं

एक लघु स्वीकृति
आशा में लिपटी हुई
आयी थी कभी
फिर पत्र-गन्ध-फूल
से वंचित अकेलापन ।

—ऋतुराज

• सात कविताएँ

–१–
जब ईश्वर रोया तब समुद्र बना,
जब वह हँसा तब नदियाँ,
और जब उसने स्वप्न देखा तब तुम !
मैं जग गया हूँ
इसलिए ईश्वर के स्वप्न को देख रहा हूँ ।
–२–
जैसे रास्ते एक दूसरे से मिलते हैं,
एक दूसरे को काटते हैं,
और बिना बदले आगे चले जाते हैं !
वैसा क्या न हो सकेगा ?
–३–
तुम अँधेरी रात में दूर से दिखते
भव्य शहर की-सी हो,
जिसकी पहचान सिर्फ़ दूर-दूर तक जाती
रोशनियों से होती है···
मैं अजनबी
शहर में घुसने का द्वार ढूँढ़ रहा हूँ···
कल सुबह जल्दी ही
मुझे आगे चला जाना है !
–४–
छत पर जो धूप चढ़ी थी
वह अब उतर कर
तरु के तल खड़ी है···
क्योंकि शायद किसी गिलहरी का
स्वप्न खो गया है,
शायद कोई बाग़ की
सीढ़ियों पर बैठ कर
अकेला रो गया है
–५–
समुद्र तक गयी हो तो
पाँव तो कमसे कम भिगो लो !
हाथों में क्षण भर आ
रेत निकल जाने दो !
नारियल का हरेक पेड़
एक बार छू तो लो···
मैं तुम्हें चुप बैठा
यह सब करते हुए
देखना चाहता हूँ ।
–६–
जब कोई विदेश में होता है
तब कौव्वा रोज़ नया सन्देशा लाता है···
जब कोई वापस लौट आता है
कोयल को पुराना
गीत भूल जाता है !
जब कोई दूर होता है
तो हमेशा याद आता है,
उसके पास आने पर
दूर चले जाने को जी सहसा चाहता है !
–७–
आज के लिए बस इतने ही गीत
क्योंकि और अगर लिखूँगा
लोग यह कहेंगे
इतना सारा लिख दिया एक साथ बैठ कर···
इसलिए अब कल
या फिर रात को···

— अनन्तकुमार पाषाण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा निरबंसिया

नयी कहानीके विशिष्ट कथाकार

कमलेश्वर

के दो महत्त्वपूर्ण संग्रहोंकी

सब कहानियाँ

स्वतन्त्रताके बाद हिन्दी कथा साहित्यमें 'नयी कहानी' का जो सूत्रपात हुआ था, उसमें इस संग्रह ('राजा निरबंसिया' तथा 'क़स्बेका आदमी' संग्रहोंकी सब कहानियाँ सम्मिलित) की कहानियोंका ऐतिहासिक योगदान है। कथ्य और शिल्प—दोनों ही स्तरोंपर इन कहानियोंने 'नयी कहानी'-की एक दिशा उद्घाटित की थी और पुरानी कहानीकी परम्परा-रूढ़ियोंसे अपने अलगावके लक्षण स्पष्ट किये थे !

इन कहानियोंने 'जीवनसे साहित्यकी ओर' का रास्ता चुना था, इसीलिए इनमें जीवन्त, खुरदरे और दुर्दान्त जिजीविषासे सम्पन्न जीवन-खण्डोंकी प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। अपने परिवेशमें यथार्थकी खोज करनेवाली इन कहानियोंने बड़ी सहजतासे अपने समयके दुःख-सुखको वाणी दी और नये मूल्यों तथा अर्थोंकी खोज की है।

इसीलिए ये मात्र कहानियाँ नहीं हैं—बदलते यथार्थका अर्थ पहचानने और उसे रेखांकित करनेकी कोशिशमें संलग्न नयी कहानियाँ हैं !

मूल्य ५.००

यह नया प्रकाशन

अपने नगरके पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करें

या कृपया इस पते पर लिखें—

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

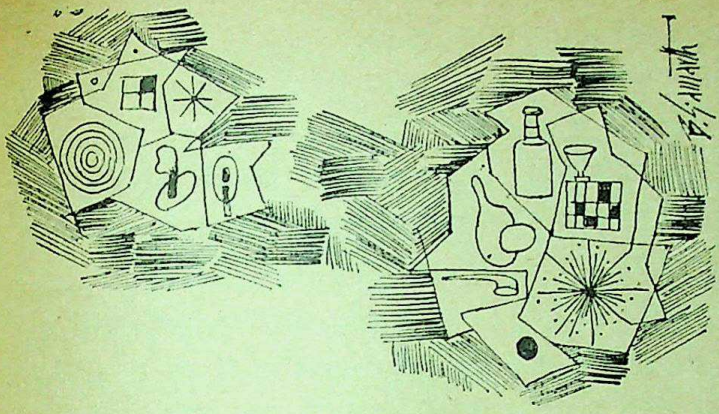

मजबूरीका नाम जी-हुज़ूरी

दामोदर सदन

इस मृत्युलोकमें मुझे नहीं मालूम कि आप क्या हैं ?···आप शेक्सपीयरके हैमलेट भी हो सकते हैं, डिकन्सके मिस्टर पिकविक भी। डॉन क्वीकजोट या गोरिएट भी। भारतीके चन्दर या रेणुके जित्तन भी। मतलब यह कि जीवनमें आपका जो भी मुक़ाम हो या जिस मंज़िलपर पहुँचनेकी आपकी आख़िरी तमन्ना हो, हालात आपको मजबूर कर देंगे और आप इस नारेको दोहरा-दोहराकर कहेंगे—पसन्द नहीं, पर मजबूरी····जी हुज़ूरी !

इस दुनियामें सिकन्दर, चंगेज़, अशोक और गान्धी-जैसे सूरमा, आइन्स्टीनसे लेकर नारलीकर-जैसे वैज्ञानिक और हेमिंग्वे, तुलसीदास, चार्ली, चैपलिन, नेहरू, फ्रॉयड और अज्ञेय-जैसे लोगोंने अपना रोल अदा किया, इनमें-से कुछ गोलोकवासी हो गये, कुछ अब भी रोल अदा कर रहे है, लेकिन सबको ऐसे-ऐसे काम करने पड़े जो उन्हें पसन्द नहीं थे। आप इनमें-से कुछ भी हो सकते हैं। महान् या साधारण, गम्भीर या हँसोड़, बीवीकी नकेल आपके हाथोंमें हो सकती है, आपकी अपनी बीवीके हाथों-में भी, आप होनहार बीरवानके होत चीकने पात भी हो सकते हैं और मोटी अक़्ल-वाले भी, लेकिन साहब, आप 'जी-हुज़ूरी'से विश्वासघात नहीं कर सकते।

विश्वासघात ? जी हाँ। आप कर ही नहीं सकते, क्योंकि 'जी-हुज़ूरी' बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोमल और मुलायम रखनेवाली है, वह गोर की तरह दिलकश और तेंदुएकी तरह चालाक है, वह जीभपर-से ऐसे फिसलती है जैसे गरम रोटीके ऊपरसे मक्खन या बर्फ़पर स्कीइंग करनेवाली जी-स्ट्रींगका परिधान पहिने औरतें फिसलती हैं। उसके हाथ-पैर सोने-चाँदीसे बने हैं और बदन रेशमका। जब वह जीभपर चढ़ जाती है तब उसमें हज़ारों सल्तनतें हासिल करने और असम्भवको सम्भव बनाने-की ताक़त पैदा हो जाती है। उसमें कालेको गोरा, अन्धेको नैनसुख और निहायत बदसूरत आदमीको भी रूपवान सिद्ध करनेकी क्षमता है। सुननेवालोंको वह अत्यन्त प्रिय है, उन्हें अपनेमें ऐसे-ऐसे गुण दिखाई देने लगते हैं जिसके वे कभी भी स्वामी नहीं रहे। 'जी-हुज़ूरी' करनेवाले और सुननेवालों दोनोंके लिए एक मुफ़ीद चीज़ है। वह अविश्वसनीय नहीं है। वह उस साबुनकी तरह है जिसके रोज़ इस्तेमाल करनेपर जिल्दमें दिन-ब-दिन निखार आता है, आत्मा शुद्ध होती है और परमात्मा नज़दीक दिखाई देता है। जो लोग परमात्माके निकट हैं उनकी बीमारीका भी कोई इलाज है तो वह है 'जी-हुज़ूरी'। जो उनसे दूर हैं उनके लिए भी यह एक आज़माया हुआ नुस्खा है। मेहरबान, आप यदि सौ पाप भी करें और जूते उतारकर भगवान्‌के चरणोंपर अपना सिर रखकर उनकी महिमा बखान दें, तो मुक्ति निश्चित है और आपको फिरसे कुछ और पाप करनेका लायसेंस भी मिल जाता है। जो भगवान्‌से दो हाथ दूर रहना चाहते हैं वे अपने पुत्रका नाम तैंतीस कोटि देवताओंके नामपर जो भी आधुनिक जँचे उस पर रख दें। बस मरते समय पुत्रका नाम भर स्मरण कर लें, काम तमाम है--सीधे स्वर्गका टिकिट और उसके मज़े यानी बढ़ियासे बढ़िया पकवान, किन्नरियोंसे निहायत ही प्लेटोनिक क़िस्मके सम्बन्ध और पैसा-कौड़ीके झंझटसे छुटकारा।

आदमीके क़िस्मका इस फ़नसे बड़ा नज़दीकी सम्बन्ध होता है। मेहरबान, उस्ताद अरस्तूकी बात अगर जाने दें तो आदमी चार क़िस्मके होते हैं। एक तो वे जो आदमी हैं, यानी जिसपर ठण्डी-गरमीके असरके साथ-साथ खुशामदका असर भी ज़रूर होता है और वह फ़ायदा भी पहुँचा देता है। दूसरा होता है पत्थर, जो यह ज़रूर चाहता है कि उसे गुणग्राहक लोग मिलें। प्रकटमें वह नाखुशी भी ज़ाहिर करता है लेकिन अन्दर-खाने वह गद्‌गद होता है और कोई फ़ायदा नहीं पहुँचाता। यह कृपण होता है। साहेबान! और तीसरा होता है हातिमताईकी तरह सखी दिलवाला जो हर किसीका काम करनेका मौक़ा ढूँढ़ता होता है। शामी मुनीर यदि भों-भों करके रो रहा है तो वह घोड़ेपर रुककर उसका दुःख-दर्द सुनता है, उसकी शहज़ादीके लिए मुर्ग़ाबीके अण्डेके बराबरका मोती खोजनेके लिए निकल पड़ता है। उसकी तक़दीरमें किसी फ़िल्मी हीरोकी तरह अनेक तकलीफ़ें बदी होती हैं। फ़र्क़ इतना ही होता है कि जहाँ हीरोको यह मालूम रहता है कि दो घण्टेके बाद तकलीफ़ें दूर होंगी और बक़ौल 'मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है'' के अनुसार हीरोइन उसको होकर रहेगी और हातिमताईके मामलेमें शहज़ादी शामी मुनीरके पास होती है, क्योंकि हातिम बच्चों-कच्चोंका झंझट नहीं पालता। तो इस तीसरी क़िस्मके आदमीकी जी-हुज़ूरी करनेकी ज़रूरत नहीं है, यह तो कामकी तलाशमें अपनी मजबूर आदतों-का भोला शिकार आदमी है। अच्छा इन्सान होनेके बावजूद यह हर जगह हर स्थितिमें घुसपैठ करता है, हर बातपर अपनी पुख्ता राय देता है।

चौथी क़िस्ममें आते हैं धार्मिक और निष्ठावान लोग, जिनके प्रतीक हैं—युधिष्ठिर, जो स्वर्गमें जानेके लिए भी एक सैद्धान्तिक शर्त लगा देता है कि उसके कुत्तेको भी वहाँ जगह दी जाये। अब आप ही सोचिए जनाब, कि स्वर्गमें जानेका पासपोर्ट आदमीके साथ कुत्तेको भी मिल जाये और वहाँ भी आदमी और कुत्तोंकी आबादी बढ़ जाये और रहनेके लिए जगहकी कमतान हो तो क्या होगा। लेकिन युधिष्ठिरको ज़िद कोई मामूली आदमीकी ज़िद नहीं है। तो जनाब, यह चौथी क़िस्मका आदमी सिद्धान्तवादी होता है। इसका काम अपने सन्तुलनको बनाये रखकर रस्सीपर चलने-जैसा होता है। ज़रा भी फ़िसला तो गया और ढोंगी, पाखण्डी, बेईमान, दोमुँहाँके विशेषणोंसे विभूषित हुआ। यह बड़ी निरीह क़िस्मका लेकिन दरअसल खतरनाक आदमी होता है। प्रकटमें इसका हर काम इस या उस सिद्धान्तसे परिचालित होता है और वह हमेशा अपने हर काममें न्यायप्रियता ढूँढ़नेमें कामयाब हो जाता है और अपने सही होनेका दावा पेश करता है। यह उस मोटरगाड़ीकी तरह होता है जिसके ब्रेक फ़ेल होनेपर वह किसी भी मकान या दूकानमें घुस जाती है।

तो मेहरबान, खानदान, पानदान, इस शीशेमें अपने यारकी तसवीर या अपना चौखटा देख लें। बाज़ारसे शीशा ख़रीदनेकी ज़रूरत नहीं है। इन चारों क़िस्मोंपर 'जी-हुज़ूरीका' अलग-अलग असर होता है। यह बात आप अपने रूमालकी गाँठमें यादोंके गुलदस्ते लगाकर ध्यानमें रखें, वरना आपकी पोल खुल सकती है, आप 'जी-हुज़ूरी' सुनते और करते पकड़े जा सकते हैं।

आप सब होशियार हैं, बड़ों-बड़ोंके कान काटते हैं। इसे आप अपनी खुशामद न माने, क्योंकि आप होशियार नहीं भी हो सकते। लेकिन एक सिद्धान्त लगे हाथ आपको बता दूँ जिससे आपको अपने पत्ते फेंकनेमें आसानी होगी और आप काजलकी कोठरीसे बत्तीसी निकालते हुए निकल आयेंगे।

यदि आप नहीं जानते कि इस दुनियामें जी-हुज़ूरीके ज़रिये कौन किसका शिकार कर रहा है तो मुझे इजाज़त दीजिए, मैं बता दूँ। यहाँपर हर बड़ा जानवर छोटे जानवरका शिकार करता है, कबूतर बाज़को पसन्द नहीं करता, छोटी मछलियाँ बड़ोंको पसन्द नहीं करतीं। लेकिन जब भी कोई नायाब मौक़ा हाथमें आ जाये, बाज़ कबूतरको खानेके लिए उसकी चिरौरी करता है और बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको अपनी गोदमें ले लेती हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी 'जी-हुज़ूरी' करती है। यह अपने-अपने सुभीतेका अनोखा तालमेल है साहेबान ! इसी तरह छोटे पदपर रहनेवाले बड़े पदकी शोभा बढ़ानेवालोंको पसन्द नहीं करते, लेकिन बुलाये जानेपर खीसें निपोरे खड़े रहते हैं और साहब-की हाँ में हाँ मिलाते हैं कि देखनेवालेके कान कटकर गिर जायें। इसी तरह बड़े पदपर रहनेवाले लोग भी छोटे पदपर काम करने-वालोंको पसन्द नहीं करते, लेकिन जब काम अटक जाये तो देखिए वह कितने लाड़-प्यारसे बोलते हैं।

मेरा एक सिद्धान्तवादी दोस्त है जिसका हर क़दम सिद्धान्त और नैतिकताके पुलपर-से होकर गुज़रता है, अपने सिद्धान्तके वशीभूत होकर कहता है कि वह साहबों-वाहबोंके यहाँ नहीं जाता, लेकिन मैंने देखा है कि उसके पैर और उसकी आँखें उसे हमेशा धोखा दे जाती हैं। लिहाज़ा बेचारा वह अपनी सीटपर बैठ ही नहीं पाता और बार-बार बाहर उठकर चीक में-से झाँकता दिखाई देता है। मैं जानता हूँ कि उसका इसमें कोई क़सूर नहीं है।

अब ज़रा मेरी दुर्गतकी कहानी भी सुन लीजिए। यह उस ज़मानेकी बात है जब शादीके बाज़ारमें मेरे दाम बहुत ऊँचे थे। बेशुमार लड़कियाँ थीं—काली, गोरी, ठिगनी, लम्बी, दुबली, मोटी। औरत ज़ात वैसे ही बड़ी अप्रत्याशित और साबुनके झागकी तरह होती है। अपने आपको ख़ूबसूरत और सर्व-गुणसम्पन्न समझता हुआ मैं एकके बाद एक लड़कियाँ देख रहा था। लड़की पसन्द भी आ जाये तो भी मैं और अच्छी लड़कीकी तलाशमें आगे निकल जाता था। पसन्द न आनेपर भी मैं काली लड़कीको काली न कहकर 'जवाब घरसे भेज दूँगा' कहकर चलता बनता था। मैंने पत्नी हासिल करने के लिए एक हज़ार मीलका सफ़र किया, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणकी सफ़रनामाओंको रौंदा, क़रीब चालीस पिताओं और उनके सौ रिश्तेदारों और पड़ोसियोंसे मुलाक़ातें कीं। आख़िर मैंने एक लखपतिकी बेटीसे ब्याह किया और हाथी-घोड़ा-पालकीके नामपर मुझे बहुत-सा फ़र्नीचर, रेडियो और लम्बरेटा हासिल हुआ। और अब मजबूरीमें मैं अपनी पत्नीको हुस्नपरी मानता हूँ और उसके एक तिलपर अपनी तीन सौ रुपयेकी नौकरी न्यौछावर करनेकी बात कहता हूँ ! मजबूरी जो है साहब !

औरत-मर्दके खेलमें कौन किसका शिकार कर रहा है कोई नहीं कह सकता, मेहरबान ! औरतकी जी-हुज़ूरी करनेका एक और नमूना पेशे-नज़र है। किसी किताबको उलटिए और नज़र तो दौड़ाइए, पहिले पन्नेपर पढ़िए—"मेरी प्रिय पत्नीको, जिसकी प्रेरणा, सोचने-विचारनेकी ताक़त और सहयोगके बिना यह किताब कभी दिनका उजाला नहीं देख पाती।"

इन शब्दोंके साथ मेरे दिमाग़में किसी ऐसी प्रतिभावानकी तसवीर उभरती है जो अभिव्यक्तिके लिए एक बहुत ख़ूँख़ार संघर्षमें जुटा हुआ है और उसकी पत्नी उसे पग-पगपर प्रेरणा दे रही है और उसकी क़लमसे एक महान् कृतिका जन्म हो गया। कल्पना तो कीजिए जनाब, कि आपकी पत्नीकी निगाहमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस तरह आप देखते-देखते अफ़लातून हो गये, वह बेचारी दिन-रात आपको कॉफ़ी पिला रही है और पैर-हाथ दाब रही है। आप जो कुछ भी लिख रहे हैं उसमें आपके वामांगका महत्त्वपूर्ण रोल है, क्योंकि आपने उसे उसका रोल अच्छी तरहसे समझा दिया है जिससे एक महत्त्वपूर्ण कृतिका सृजन हो जाये। प्रेमके नामपर इस परस्पर 'जी-हुजूरी'का यह आलम है कि आप रातको बिस्तरपर उसे अपने उपन्यासका कोई अंश पढ़कर सुना रहे हैं और वह कह रही है, "क्यों·· उसने सोनेके लिए पत्नीके कमरेसे अलग कमरा क्यों चुना ?"

"क्योंकि वह कवि है और·····"

"ना।" उसने दृढतापूर्वक कहा, "मैं इसे पसन्द नहीं करती। उन दोनोंको एक कमरेमें ले जाइए।"

इस तरह दोनोंके बौद्धिक सहयोगसे एक महान् कृतिका जन्म हो गया जिसमें नायक अपनी पत्नीसे घृणा करते हुए भी उसीके साथ एक कमरेमें सोया किया और अपने बालोंको नोचते हुए उसने तीन बार उसकी हत्या करनेको नाकामयाब कोशिश की। और जब यह नायाब कृति पूरी हो गयी, जिसमें दोनोंके सहयोगसे एकसे एक अप्रत्याशित घटनाएँ जुड़ गयीं तो पत्नीको 'जी-हुजूरी' के लिए किताबके पहिले पन्नेपर लिखा गया···

दुःख और सुखकी स्थिति भी कभी-कभी इसमें पायी जाती है। आप मरघटमें देखिएगा, जहाँ दुःखके बावजूद भी लोग अपनी उपस्थितिका भान 'राम नाम सत्य है' के नारेको ज़ोरसे दोहराकर करते हैं या किसी कोनेमें बैठे ओहदेदारको घेरकर बैठ जाते हैं। आप मरघटसे वापस आ रहे हैं, चेहरेपर मुर्दनी है और रास्तेमें कोई बड़ा आदमी मिल जाता है तो दाँत निपोर देते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि 'जी-हुजूरी' एक स्थितप्रज्ञकी स्थिति है जब आप दुःखमें भी सुखी दीखनेकी कोशिश करते हैं। इसमें हमारी दृष्टि किसी-न-किसी सम्भावित फ़ायदेपर होती है, यह दूसरी बात है।

तो साहेबान, 'जी-हुजूरी' मजबूरीका ही दूसरा नाम है। आप यदि यह भी नहीं कर सकते तो लानत है आपपर। इसमें आप किसी बेचारेको दोष नहीं दे सकते, वह तो बस परिस्थितियोंका शिकार है। इसलिए, आइए, आप भी मेरे साथ चिल्लाकर कहिए– 'जी-हुजूरी ज़िन्दाबाद !'

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुभावनी वस्तु ग्राहकों को अधिक पसन्द आती है

यदि आप
अपने माल को
जल्दी बेचने की सोचते
हैं तो...बस उनकी बाहरी
सुन्दरता बढ़ा दीजिये; यानि
उसको रोहतास पैकिंग पेपर में
लपेटकर अधिक आकर्षक, मनपसन्द और
अपने ढंग का निराला बना डालिये। ऊँचे दर्जे
के कार्टन्स पेपरकोन्स और डब्बे बनाने के लिये
इनके निर्माताओं द्वारा हमेशा रोहतास पेपर्स
और बोर्ड ही अपने अच्छे गुणों के कारण अधिक
पसन्द किए जाते हैं। भड़कीले रंगों के साथ लगा हुआ
ट्रेडमार्क इनकी शान में चार चाँद लगा देता है।
रोहतास पैकिंग पेपर्स और बोर्ड्स अधिक टिकाऊ
बनावट में चिकने होते हैं जो आपके माल को गन्दगी,
धूल और नमी से बचाते हैं जिससे आपके माल की
ताजगी और चिकनाहट हमेशा बनी रहती है।

ROHTAS

रोहतास
इण्डस्ट्रीज
लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

डिस्ट्रिब्यूटर्स : साहू जैन लिमिटेड ११, कनाट प्लेस दिल्ली-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिबोधकी काव्य-प्रक्रिया और नवलेखन

सकलदीप सिंह

जीवनके यथार्थसे उलझनेका दावा सम्भवतः हर साहित्यकार करता है। कोई जीवनसे दूर हो जानेका आरोप नहीं सह सकता, कमसे कम आज। क्योंकि आज वह दल विशेष रूपसे प्रबल है, विश्व स्तरपर, जो साहित्यको जीवनका पर्याय मानता है। साहित्यको जीवनके नज़दीक, जगत्के नज़दीक लानेका प्रयत्न होना स्वाभाविक है। हर साहित्यकार जीवनकी सच्चाइयोंको अनुकूल अभिव्यक्ति देनेका अथक प्रयास करता है। पर होता यह है, कि अधिकांश आलोचक या लेखक कुछ ग़ैर-साहित्यिक 'आदर्श या दृष्टिकोण' से प्रभावित होते हैं और अपने रूढ़ संस्कारके धुँधलकेके कारण 'जीवन' को अपने ढंगसे तोड़कर व्यक्त करते हैं, 'जीवन' के अनुसार होकर सच्चाइयोंको शब्दांकित नहीं करते।

इसीलिए 'जीवन-यथार्थ' के पक्षमें ज़ोर-ज़ोरसे बोलने या लिखनेवाले भी ग़लत अन्दाज़के शिकार हो जाते हैं और ग़लत 'टेर' की गूँज बनकर रह जाते हैं। यहीं मुक्तिबोध अन्य अपने युगधर्मी साहित्यकारसे दूर हट जाते हैं।

मुक्तिबोधको संयोगसे वह भूमि मिली जहाँसे उनका निशाना ठीक बैठा। उन्होंने साहित्यको जीवन-यथार्थका संवाहक बनाया। उनका साहित्य उनके जीवन-संघर्षकी सही गाथा है। उनके जैसा जीवन तो जीनेवाले कई साहित्यकार रहे और हैं किन्तु उस 'जीवन' की सही भाषा या अभिव्यक्ति दे देनेकी ईमानदारी मुक्ति-बोधमें ही थी। प्रसादकी परम्परामें आनेवाले कई (जिनमें अज्ञेयका नाम पहले लिया जायेगा—डॉ० शम्भुनाथ सिंह और विजयदेव नारायण साहीकी धारणाके अनुसार) कवि हुए किन्तु निरालाकी परम्परा आजकी युगीय परिस्थितियोंमें कौन-सा रूप लेगी इसे मुक्तिबोधके काव्यमें देखा जा सकता है। निरालाको भी अपनेसे या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी स्थितियोंसे लड़ना पड़ा—मुक्तिबोधको भी। झकझोरा हुआ आदमी अपनेको किस प्रकार कह सकता है इसका उदाहरण हम इन साहित्यकारोंमें पा सकते हैं।

मुक्तिबोधकी भाषाने उन्हें नग्न सच्चाईको कह सकनेमें समर्थ किया। भौगोलिक या स्थानीय प्रभावका भी उनकी काव्य-प्रक्रियामें योगदान रहा। प्रभाकर माचवेकी भाषा जिस प्रकार खुरदरी है उसी प्रकार मुक्तिबोधकी भाषा भी नंगी, खुरदरी, अनगढ़, उद्धत, रुखड़ी रही जिसका फल हुआ कि मुक्तिबोधने अपनी खुरदरी (जैसी कि ज़िन्दगी होती है या उनकी थी) ज़िन्दगीकी धड़कनोंको क़रीबसे अपनी शैलीके माध्यमसे अनुभव किया। यह सुविधा गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, भारती आदिको नहीं मिली। प्रतिकूल वातावरणमें छटपटाती हुई एक सशक्त जिजीविषा जिस तरहकी भाषामें आती है वह भाषा मुक्तिबोधको मिली थी। इसीलिए मुक्तिबोध एक बहुत बड़ी 'आइडिया' और एक अनपहचानी-उपेक्षित हस्तीकी क्रूर टकराहटको शब्दाकृति दे सकनेमें समर्थ हुए।

मुक्तिबोधने अपने विचारोंको अपनी गद्य-पुस्तकोंमें तर्कसंगत ढंगसे रखा है। 'एक साहित्यिककी डायरी', 'कामायनी—एक विश्लेषण' और 'नयी कविताका आत्मसंघर्ष' और अन्य निबन्धोंमें मुक्तिबोधने बड़े ही सहज और ईमानदारीसे अपने विचारों या विश्वासोंको सामने रखा है। इन विचारों और विश्वासोंको एक हलकी पृष्ठभूमिके रूपमें ले सकते हैं जब हम उनकी काव्य-प्रक्रियापर विचार करेंगे। किन्तु काव्य-प्रक्रिया उनकी काव्यानुभूतिको इस तरह व्यक्त करती है जहाँ उनके विश्वास और विचारोंको अलग-अलग कर दिया जा सकता है। कहीं-कहीं इन विचारोंने उन काव्य प्रक्रियाको कुण्ठित भी कर दिया है। काव्यानुभूतिमें जब कोई स्थूल आदर्श या विचार दखल देने लगता है तब काव्य अवश्य कमज़ोर पड़ जाता है। मुक्तिबोधने शायद अपनी पीढ़ीके सभी कवियोंकी अपेक्षा रूढ़ विचारोंसे अपने काव्यको दूर रखनेकी कोशिश में सफलता पायी है। 'साम्यवाद' या सामाजिक यथार्थके प्रति उनकी गहरी आस्था थी इसमें सन्देह नहीं, किन्तु काव्यके क्षेत्रमें वह कवि-जिजीविषा है जो देश-कालकी सीमासे परे जाकर एक कल्पना या फ़ैण्टासी बुनती है। यह कल्पना 'ज़िन्दगीकी पीड़ा' को ही सिद्ध करती है जो झेलती रही मुक्तिबोधको। इसी कल्पना और 'फ़ैण्टासी' का महत्त्व उनके काव्यसे जुड़ा है, न कि साम्यवाद या कम्युनिस्ट पार्टीसे। कम्युनिस्ट पार्टीका विशेष सम्बन्ध कविकी ज्वलन्त जिजीविषा या अनुभूति या पीड़ासे नहीं होता है। पार्टीके स्थूल समर्थकोंने इसीलिए मुक्तिबोधको प्रतिक्रियावादी तक कहा। मुक्तिबोध ईमानदार थे, सच्चे थे, निश्छल थे और उनका साहित्य उनका जीवन था। और यह भी सत्य है कि उनकी गद्य-कविता और जीवनके बीच स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती।

किन्तु उनकी काव्यानुभूतिकी तल्ख़ीको अलग करके देखना होगा। उनका युग अन्तर्द्वन्द्व का युग था। व्यक्ति और समाजके अन्तर्द्वन्द्वसे सदैव वे पीड़ित रहे। पर उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्द्वन्द्व एक भिन्न क़िस्मका था। छायावादियोंकी भाँति देह और आत्माका अन्तर्द्वन्द्व नहीं था। भौतिक स्तरपर ही उनके अन्तर्द्वन्द्वको परखा जा सकता है। इसी अन्तर्द्वन्द्वका नाजायज़ फ़ायदा आज भी कुछ आलोचक उठानेमें लगे हैं। वे आलोचक अपनी सुविधाके अनुसार, अपने पक्षमें मुक्तिबोधकी व्याख्या कर लेते हैं, उनके लेखोंसे उद्धरण लेते हैं, और उद्धरण मिल भी जाते हैं। तथाकथित व्यक्तिवादियोंको भी और तथाकथित साम्यवादियोंको भी अनुकूल गद्य-खण्ड मिल जाते हैं।

वस्तुतः मुक्तिबोध जब अपनी कठोर अनुभूतियोंकी पीड़ासे गुज़रते हैं और सृजनात्मक प्रवाहमें डूब जाते हैं तब वे विचार या अन्तर्द्वन्द्वके दो तट हो जाते हैं और प्रवाह उनका काव्य होता है। उनके काव्यका ही असल महत्त्व है। विचारों-भाषणोंके आधारपर उनके निश्छल काव्य-सृजनका मूल्यांकन करना उचित नहीं हो सकता। विचारोंकी आग है उनकी रचनाओंमें किन्तु किन विचारोंकी या किन 'इज़्मों' की—यह खोजना उनकी वास्तविक गरिमाको धुँधला करना होगा। यह अवश्य है कि उन्होंने अपने विचारोंको बहुत माँजा था। मार्क्स, बाल्ज़ाक, लेनिन, गोर्की, दास्तायवस्की आदि बड़े लेखकों और विचारकोंको ख़ूब पढ़ा था और उन्होंने जागरूकता पायी थी। एक कवि या रचनाकारके लिए जागरूकताकी जितनी आवश्यकता होती है, उसका जितना उपयोग होता है, उसे मुक्तिबोध जानते थे। इसीलिए उनका साहित्य प्रचार नहीं है। साहित्यको प्रचार माननेवाले आज भी कुछ लोग हैं जिनके लिए मुक्तिबोधका काव्य विशेष महत्त्व नहीं रखता।

उनकी कविताकी जिन पंक्तियोंमें अन्तर्द्वन्द्व या विचार उलझा है, उन पंक्तियोंको छोड़कर जो पंक्तियाँ स्वाभाविक रूपसे उनकी अनुभूतियोंसे छनकर आयी हैं उनमें उनके निश्छल और सही काव्यात्मक व्यक्तित्वकी झाँकी मिल सकती है। वहीं मुक्तिबोध हैं, वहीं उनकी सच्चाई है, वहीं नयी पीढ़ीको मिली विरासत है।

सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियोंसे उत्पन्न भयावहताका अनुभव मुक्तिबोधने किया था। उस भयावह सन्दर्भमें मुक्तिबोध किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक बोधसे उत्पीड़ित नहीं थे। उनका सम्बन्ध व्यावहारिक जीवन और राजनैतिक व्यवस्थासे था। उनकी काव्य-प्रक्रियाको भौतिक धरातलपर समझा जा सकता है। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका मूल्य मुक्तिबोध उस पिछले युगमें भी समझते थे। उनकी काव्यानुभूतिकी जीवन्त ईमानदारी है कि वे सन्दर्भगत या वस्तुगत मानवी सम्बन्धोंके भौतिक और वैज्ञानिक पहलू समझते थे। जिस बिन्दुसे लेखकीय स्वतन्त्रताकी आवाज़ उन्होंने लगायी उस बिन्दुसे कोई भी, चाहे अज्ञेय हों या भारती, न उठा सके। सन्दर्भगत संघर्षोंमें डूबे रहने और जूझते रहनेकी परम्परा ही आज नयी पीढ़ीको विद्रोहकी भूमिका देती है।

संवेदना कभी किसी व्यक्तित्वमें उस रेखापर पहुँच जाती है जहाँ ज़िन्दगीकी छटपटाहट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं खूँखार आतंकमें बदल जाती है। मुक्ति-बोधको जो जीवन-प्रभाव मिलते गये उनसे उनकी जिजीविषाकी पीड़ा प्रखर होती गयी और उनके काव्यको एक अपना मौलिक रूप मिलता गया।

शमशेर बहादुरने उनके बारेमें लिखते हुए 'चाँदका मुँह टेढ़ा है' की भूमिकामें कहा है कि "इनका एक सहपाठी था, शान्ताराम, जो गश्त-की ड्यूटीपर तैनात हो गया था। गजानन उसीके साथ रातको शहरकी घुमक्कड़ीको निकल जाते। बीड़ीका चस्का शायद तभीसे लगा। रातका सन्नाटा, पुलिसकी सीटियाँ, एक अछूते रहस्यका वातावरण सामन्ती और उसकी आड़में कहीं छिपा, बन्दूक सँभाले गोराशाहीका आतंक। जुर्मों, भीषण अत्या-चारों, जघन्य कृत्यों और राजाओंकी कहा-नियाँ, उसकी जिज्ञासाको प्रखर करतीं। इस तरहके प्रभावोंमें पले व्यक्तित्वके लिए मार्क्स-वाद एक तत्काल समाधान होता है।" शम-शेरने कहा है कि उनके भावोंके ज्वारके पीछे विचारोंका दीर्घ दोहन है। अतः कवि मुक्तिबोधके इस वैचारिक गठनको ध्यानमें रखते हुए भी उनके काव्यकी मौलिकतापर अलग ढंगसे सोचा जाना चाहिए। काव्यमें 'अब्सट्रेक्सन' के विरुद्ध जितना मुक्तिबोध खड़े होते हैं उतना शायद हिन्दीके कम कवि खड़े हो सकते हैं।

'संकल्प-धर्मा चेतनाका रक्त प्लावित' स्वर गुंजित करनेवाला कवि जब कविता लिखनेमें डूब जाता है तो वह एक दूसरे सागर, दूसरी धरती, दूसरे पहाड़, दूसरे खाई-खन्दकको एक सृष्टि रचता है जहाँ अन्धकारमें तैरती हुई भयभीत कर देनेवाली रक्तकी नदी होती है। वह एक 'फ़ैण्टासी' बुनता है, भयावह वर्तमान-के आतंकको वहाँ देखता है वह और तोड़ देनेवाली या वहाँसे लौटा देनेवाली परि-स्थितियोंसे लड़ता हुआ जैसे वह आहत हो गया अपनेको महसूस करता है। घुग्घुओंके घोंसलेसे वह भी देखता है उस ब्रह्मराक्षसको जो घनी गहराइयोंमें शून्य बैठा है :

पिस गया वह भीतरी
औ, बाहरी दो कठिन पाटों बीच
ऐसी ट्रेजिडी है नीच !!

और पिसा हुआ मुक्तिबोध अपने संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वोंको ब्रह्मराक्षसकी भाँति 'पागल प्रतीकों'में कह रहा है——मरे पक्षी-सा विदा ले रहा है। कवि दिमाग़ी गुहान्धकारका 'ओरांग उटांग' देखता है। स्वप्नके भीतर स्वप्न और विचार-धाराके भीतर एक और प्रच्छन्न विचार-धारा देखता है, मस्तिष्कके भीतर एक मस्तिष्क देखता है। अपने भीतर छिपे 'औरांग उटाँग'-की सच्चाईको कवि महसूस करता है। अपनी भाषामें 'ओरांग उटाँग'की गुच्छेदार मूँछ या कविता कवि देखता है। यही देखनेके कारण मुक्तिबोध अपने प्रति सच्चे हो सके तथा अपनी अभिव्यक्तियोंके प्रति सच्चे हो सके। रूढ़ विचारोंका अन्धानुकरण या आरोपणके दबावमें आकर अपनी अन्तरात्माकी आवाजको झुठला नहीं सके। सन्देह-शंकाओंके पक्षाघातसे आक्रान्त कवि अपने आस-पासके सन्दर्भोंसे अटूट रूपसे जुड़ा है। ऐसा जुड़ा हुआ है कि कहीं 'जोड़' खोजना, आग्रहवश, कविके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्याय भी कर बैठना होगा। कविकी अपनी 'निजी' ही काव्य और जीवनके बीचकी खाई पाट देती है। या खाई पैदा ही नहीं होती। इसीलिए नयी पीढ़ीके कविके समान मुक्तिबोधका कहना है :

दुःख तुम्हें भी है,
दुःख मुझे भी
हम एक ढहे हुए मकान के नीचे दबे हैं।
चीख निकलना भी मुश्किल है,
असम्भव····
हिलना भी।
भयानक है बड़े-बड़े ढेरों की
पहाड़ियों-नीचे दबे रहना और
महसूस करते जाना
पसली की टूटी हुई हड्डी।

यहीं मुक्तिबोधकी काव्यानुभूति आजकी पीढ़ीके निकट पड़ती है। कवि भोगे हुए या भुगतते हुए जीवनको ही शब्द दे सकता है और वहीं उसकी सच्चाई है या सच्चाईके प्रति प्रतिबद्धता है। कवि अपने आस-पासमें जन्मा एक भयानक छलको महसूस करता है :

विराट् झूठके अनन्त छन्द-सी
भयावनी अशान्त पीत धुन्ध-सी
सदा अगेय
गोपनीय द्वन्द्व-सी असंग जो अपूर्त स्वप्न लालसा
प्रवेगमें उड़े सुतीक्ष्ण बाण पर
अलक्ष्य भार-सी वृथा
जगा रही त्रिरूप चित्र हार का
सधे हुए निजत्व की अभद्र रौद्र हार-सी।
मैं उदास हाथ में
हार की प्रतप्त रेत मल रहा
निहारता हुआ प्रचण्ड उष्ण गोल दूरके क्षितिज।

सचमुच स्वप्नके रक्तसे गीत नहीं उगते। कवि हारकी रौद्रताको या विराट झूठसे उपजी विद्रूपताको देखता है जो 'अगेय' है जो सहा जाता है गाया नहीं जाता। जो अटपटी अनगढ़ अर्थहीन-सी लगनेवाली भाषामें ही कहा जा सकता है। इसे मुक्तिबोधकी-जैसी अ-रोमाण्टिक भाषाके माध्यमसे देखा और पहचाना जा सकता है :

जिन्दगी की कोख में जनमा
नया इस्पात
दिल के खून में रँग कर····।

संकल्पकी वज्रता भी कभी-कभी झलकती है तो इन शब्दोंमें :

हम ज्वालामुखियों के मुँह में उतर रहे थे
जीवन की सच्चाई के स्तर
सही बात के चौड़े पत्थर
तीव्र वेदना में कैसे गड़गड़ा रहे थे
इन ज्वालामुखियों के भीतर

इन चन्द पंक्तियोंके ही आधार पर कहा जाता है कि कवि मुक्तिबोधके भीतर कितनी आग, कितना विद्रोह, कितना दुःख, कितना पश्चात्ताप, कितना संकल्प, कितनी टूटन तथा कितनी अनास्था थी। जहाँ 'सुनहले क्षितिज' की कल्पनाशीलतासे कवि उलझता है वहाँ काव्य भी लड़खड़ाने लगता है। अँधेरेमें चीखता किसी भयंकर 'विराट्' की फ़ैण्टासी जहाँ उभरती है कवि एक 'फ़िट' में आ जाता है और आजकी क्षुब्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीढ़ीकी भाँति अपनेको सही-सही व्यक्त करने लगता है किन्तु जब होश आकर 'फ़ैण्टासी' की व्याख्या करने लगता है कि :

"मैं विचरण करता-सा हूँ एक फ़ैण्टासीमें
यह निश्चित है कि फैण्टासी कल वास्तव होगी।"

तब कवि पिछली पीढ़ीमें चला जाता है। उसकी भविष्यवादिता हलकी और अकाव्यात्मक होकर सामने आ जाती है। वह 'ज़िन्दगीके कचरेमें भी ज्ञानात्मक संवेदन' खोजना चाहता है। ज्ञान और संवेदनाकी टकराहट ही उनको अन्तर्द्वन्द्वमें ठेलती है और बिलकुल आधुनिक पीढ़ीसे उन्हें अलग करती है। आजकी पीढ़ी न ज्ञानके निकट जाना चाहती है न संवेदनाके संयोजनके निकट। वह अपनेको ईमानदारीसे कहती है और तभी संवेदनाका एक अगम्भीर मखौल बन जाती है उसकी रचना।

मुक्तिबोधको अपनी युगीय सीमाके प्रति क्या आदरका भाव था? परम्परा-गौरवकी ओर संकेत करते हुए कवि एक जगह कहता है :

"मैं जनमा जब से इस साले ने कष्ट दिया
उल्लू का पट्ठा कन्धे पर है खड़ा हुआ"

जब पसलियाँ पिरा रही हों, पाँवमें ख़ून जम रहा हो, मनमें द्रोह जन्मता हो वहाँ घिसी-पिटी परम्परा व्यर्थ है :

"ऐसी-तैसी उस गौरव की
जो छीन चले मेरी सुविधा"।

कविने ठीक ही कहा है कि :

'मैं परिभ्रमण करता जाऊँगा जीवन-भर
मैं जिप्सी हूँ!"

कवि खोजता है, अपनेको खोजता रहा। 'खोज' ही कविकी प्रक्रिया रही। रूढ़ि-विद्रोहने ही कविको खोजकी ओर प्रेरित किया। जब कविका आत्मविश्वास लड़खड़ाता है और पराजयकी सही स्थितिमें आता है वह, तब 'नैतिक अनुभूति उसे (मुझे) कष्ट देती है'। मानवका बोध जब टूटता है तब कवि आश्चर्यमें कहता है :

"मात्र अनस्तित्वका इतना बड़ा अस्तित्व
ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला है"

ये ही दो छोर हैं जिनसे कवि टकराता रहा। एक छोरपर जाकर कवि किसी विचार-संगठनसे प्रतिबद्ध-सा हुआ लगता है, दूसरे छोरपर कवि सन्देह और आशंकाकी सही काव्यानुभूतिको व्यक्त करता है। वह कवि, जिसकी आत्मामें ख़ूनका तालाब बहता है, देखता है भीतर एक शून्य जिसका एक जबड़ा है, जबड़ेमें माँस काट खानेके दाँत हैं। उसे देखकर भयाक्रान्त है कवि :

कमज़ोर घुटनों को बार-बार मसलता है
लड़खड़ाता हुआ वह
उठता है दरवाज़ा खोलने
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोंछता है हाथ से,
अँधेरे के ओर-छोर टटोल-टटोल कर
बढ़ता है आगे
पैरों से महसूस करता है धरती का फैलाव
हाथों से महसूस करता है दुनिया
मस्तक अनुभव करता है आकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल में तड़पता है जैसे मरा हुआ साँप,
आँखें तथ्य को सूँघती-सी लगती हैं।

वह अपनी बेचैनी तड़पड़ाहटको सही-सही कह देनेकी ईमानदारी जितना बरतता है हिन्दीका शायद ही कोई कवि बरत सका। वस्तुतः नितान्त भौतिक स्तरपर जीनेवाला कविका समाज होता है, आस-पास होता है, सम्बन्ध होता है। अपनी पीड़ाकी गहराईकी ओर इंगित करते हुए वह कहता है :

इसी से, पैर तलुओं में
नुकीला एक कील तेज़
गहरा गड़ गया औ धँस गया इतना
कि ऊपर प्राण-भीतर तक घुस आया,
लगी है झनझनाती आग
लाखों बर्र-काँटों ने अचानक काट खाया है
ब्रजाहत पैर को लेकर
भयानक नाचता हूँ, शून्य
मन के टीन-छत पर गर्म
हर पल चीख़ता हूँ, शोर करता हूँ
वैसी चीख़ती कविता बनाने में लजाता हूँ।

मुक्तिबोध 'पोजिटिव-निगेटिव'के द्वन्द्व थे। लजाये। आजकी नयी पीढ़ी लाज छोड़ चुकी है। वह कहकर रहेगी। मुक्तिबोधकी लजाने-वाली परम्पराका विरोध करती हुई वह एक ऐसी रचना-जीवन जीना चाहती है जिसका अर्थ 'विक्षोभ' 'विद्रोह' या भुक्खड़ ही होता है।

■ ■

ज्ञानपीठ पत्रिका

हिन्दीमें अपने प्रकारकी अकेली

लेखन-प्रकाशनकी अधुनातन दिशा-प्रवृत्ति और उपलब्धि-परिचायिनी मासिकी

जो प्रतिमास न केवल हिन्दी वरन समस्त भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओंके लेखन तथा प्रकाशन जगत्की प्रवृत्तियों-गतिविधियोंकी जानकारी और सम्बन्धित वैचारिक सामग्री प्रस्तुत करती है।

मूल्य : ६.०० वार्षिक, ००.५५ प्रति
द्विवार्षिक ११.००

प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन एवं वितरण कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

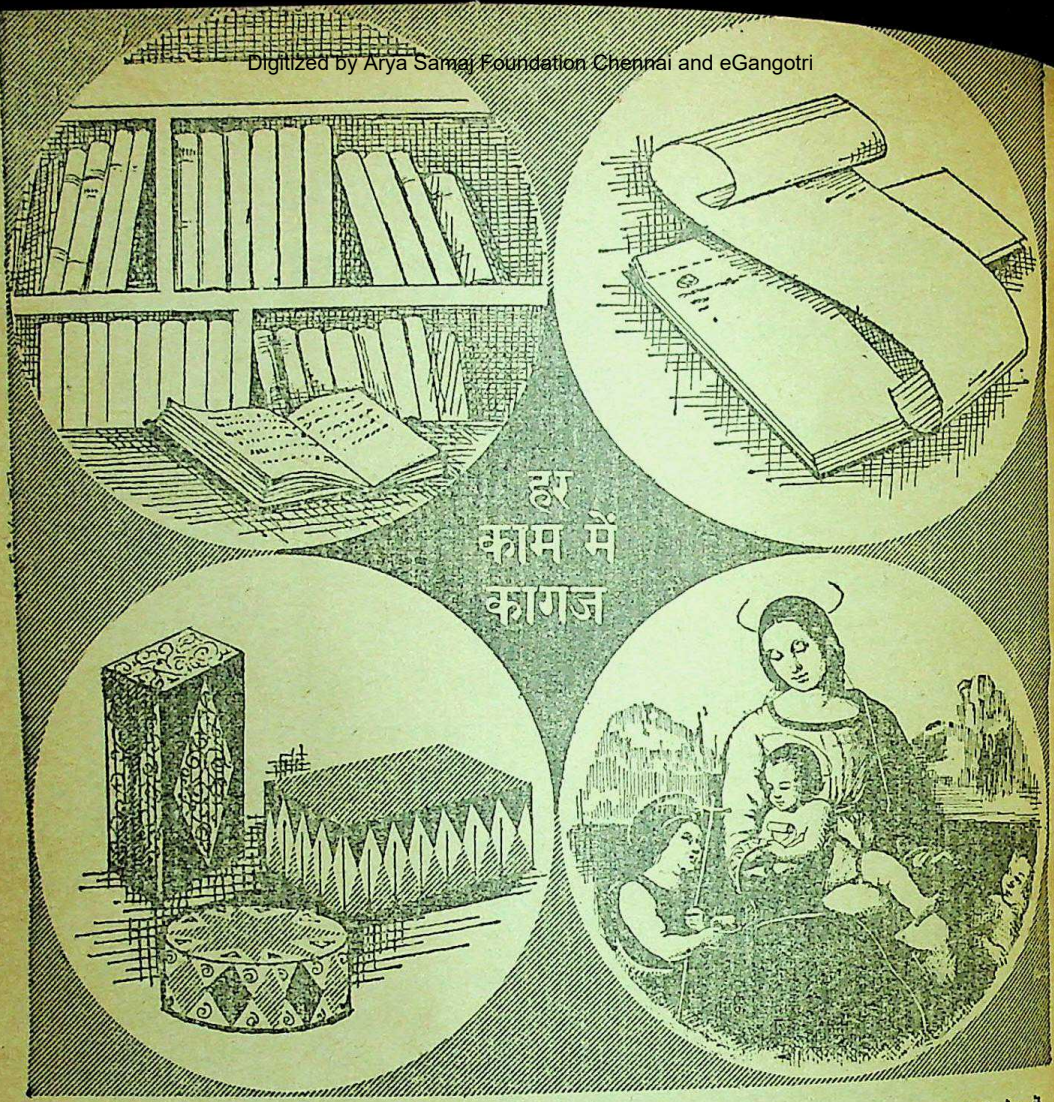

हमको हमेशा कई प्रकार के कागजों की जरूरत (आवश्यकता) होती है—कार्टन्स के लिये मोटा बोर्ड, लेवल छपाई के लिये क्रोमो पेपर्स चित्रआदि की छपाई के लिये आर्टपेपर्स। इनकेअलावा लिखने के कागज, छपाई के कागज, पतला टिस्यू कागज... ग्राहकों की पसन्द के मुताबिक निपुण विशेषज्ञों की देखरेख में बनेहुए अनेक प्रकार के कागज के अथवा बोर्ड्स के लिये जानी पहचानी रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड का नाम ही सबसे पहले आता है।

रोहतास पेपर्स अथवा बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

रोहतास इण्डस्ट्रीज लि.
डालमिया नगर (बिहार)

ROHTAS

मैनेजिंग एजेण्ट्स :
साहू जैन लिमिटेड ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

PC-RJ: 383 HIN. (A)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

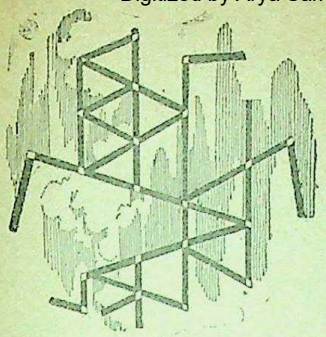

वि । वि । ध

अनाजका स्वावलम्बन परीक्षाका समय

वारेन्द्र अग्रवाल

अमरीकाके कृषि-सचिव श्री ओरविल फ्रीमैनने हाल ही में घोषणा की है कि पी० एल० ४८० की बजाय 'फ़ूड फ़ॉर फ्रीडम' कार्यक्रम अपनाया जायेगा जिसके अन्तर्गत अमरीका-द्वारा दिये जानेवाले अनाज तथा अन्य वस्तुओंका मूल्य रुपयोंमें नहीं बल्कि डॉलरोंमें चुकाना होगा। पिछले बारह महीनोंमें हमने प्रति मास १० लाख मीट्रिक टन अनाजके अतिरिक्त, रूई, तम्बाकू, तल्लो और सोया-बीन तेल भारी मात्रामें आयात किया और अगर हमें भविष्यमें भी इसी अनुपातसे आयात करना है तो अमरीकाका यह प्रस्ताव हमारे लिए घोर चिन्ताका कारण बन जायेगा। कहा जाता है कि अमरीकाको अपनी नीति इसलिए बदलनी पड़ी कि उसकी अपनी पैदावार कम होती जा रही है और अन्य देशोंकी मुद्रा काफ़ी मात्रामें जमा हो गयी है जिनकी खपत उसके लिए एक पेचीदा मसला बन गयी है। साफ़ पता चलता है कि अमरीकी प्रशासन अपने फ़ालतू सामान डॉलरोंके बदलेमें बेचना चाहता है। विशेषकर रुपयेके अवमूल्यनके पश्चात् इस घोषणाका भारतपर बड़ा गहरा असर पड़ेगा और अनाजके स्वावलम्बनका प्रश्न केवल राज-नीतिक ही नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिसे भी अनिवार्य बन जायेगा।

यह बताया गया है कि ९५० लाख मीट्रिक टनका लक्ष्य पूरा करना असम्भव न होगा और इस आधारपर १९६७–७१ के चार वर्षोंमें २०० लाख मीट्रिक टन अनाजकी कमी रहेगी और अगर बफ़र-स्टॉकका भी हिसाब लगाया जाये तो २५० लाख मीट्रिक टन अनाजका आयात करना पड़ेगा। इसपर १६० करोड़ डॉलरसे अधिक अदायगी नहीं करनी पड़ेगी लेकिन चूँकि अदायगी ५० वर्ष-में करनी है इसलिए प्रतिवर्ष ३२० लाख डॉलरसे अधिक विदेशी मुद्रा खर्च नहीं करनी पड़ेगी। यह सही है कि हमें तसवीरके दोनों पहलुओंको ध्यानमें रखना होगा क्योंकि १९६५-६६ के अनुभवसे हमने देखा कि हमें एक वर्षमें ही १३० लाख मीट्रिक टन आयात करना पड़ा। अगर हम यह धारणा रखते हैं कि हमारी आबादी और पैदावार वही रहेंगी जो इस समय है तो चौथी पंचवर्षीय योजनाके दौरान हमारी आवश्यकताएँ हमारी आशाके प्रतिकूल होंगी। अगर अमरीका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धोंके कारण हम अनाजके आयातको सीमित रखते हैं और स्वावलम्बी होनेके अधिक प्रयत्न करते हैं तो वे प्रतिबन्ध हमारे लिए अभिशाप नहीं वरदान बन जायेंगे।

योजना-आयोगने चौथी योजनाके खर्चे और आवंटनोंके बारेमें अन्तिम निर्णय कर लिये हैं। योजनापर २३,२५० करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे—१६,००० करोड़ रुपये सरकारी क्षेत्रमें और ७२५० करोड़ रुपये ग़ैर-सरकारी क्षेत्रमें। कृषिपर २४०० करोड़ रुपये कुछ अधिक खर्च किये जायेंगे जो कि कुल खर्चका लगभग १० प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि योजनाओंके निर्माता स्थितिकी गम्भीरता-को समझनेके लिए तैयार नहीं हैं। पिछले वर्षमें अनाजकी पैदावार अचानक गिरकर ७६१०० लाख मीट्रिक टन हो गयी जो कि १९६४-६५में ८८४ लाख मीट्रिक टन तक पहुँच गयी थी। सभी जानते हैं कि अनाजकी पैदावार चार वर्ष तक ८०० लाख मीट्रिक टन-के आस-पास रही। पिछले वर्ष यह गिरकर सिर्फ़ ७६० लाख मीट्रिक टन, या इससे भी कम, रह गयी। अगर आयात न किया जाता तो हालत और भी खराब हो जाती। १९६२ और १९६३में औसतन ४० लाख मीट्रिक टन प्रति वर्ष अनाजका आयात किया गया, १९६४में वह ६० लाख मीट्रिक टन हो गया, १९६५में ७५ लाख मीट्रिक टन और इस वर्ष १३० लाख मीट्रिक टन तक पहुँच गया। इसके बावजूद देशमें अनाजकी भारी कमी पैदा हो गयी। ज़िम्मेदार लोगोंका कहना है कि हर साल १२ लाखकी आबादी बढ़नेके कारण पी० एल० ४८०के अन्तर्गत अनाजका आयात वर्तमान स्तरपर जारी रखनेसे भी सूखेकी हालतमें दुर्भिक्षसे बचना असम्भव होगा। यह सोचना बुद्धिमत्ता न होगी कि खरीफ़ फ़सल इतनी अच्छी होगी कि ९७० लाख मीट्रिक टनका लक्ष्य पूरा हो जायेगा। अगर इस वर्ष ९०० लाख मीट्रिक टन पैदावार हो जाये तब यह देशका बड़ा सौभाग्य होगा।

इन बातोंको देखते हुए चौथा योजनामें कृषिको और भी अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके लिए सिर्फ़ अधिक धन उप-लब्ध करनेका ही सवाल नहीं है। इसके लिए प्रशासन-व्यवस्थाको सतर्क बनाना होगा ताकि जल-संसाधनोंका बेहतर उपयोग हो और किसानोंको खाद और बढ़िया बीज समयपर मिलें। देशमें अनाजकी, विशेषकर चावलकी कमी है। अगले दो महीने केरल और पश्चिमी बंगालकी ज़रूरतोंको देखते हुए काफ़ी संकटके हैं। अक्तूबरके बाद बर्मा, थाईलैण्ड, ब्राज़ीलसे चावल आना शुरू हो जानेसे स्थिति सँभल जायेगी। इस नाज़ुक हालतने रोषका संकेत दे दिया है जिसका इलाज करना योजना-कारोंका काम है। अगर हम एक आत्मसम्मानी क़ौम बनकर ज़िन्दा रहना चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम चौथी योजनामें सबसे अधिक महत्त्व कृषि तथा परिवार-नियो-जनको दें। विदेशी सहायता सम्बन्धी वाद-विवाद अभी समाप्त नहीं हुआ परन्तु योजना-आयोगने ४८०० करोड़ रुपयेके अंकको छोड़ दिया है और अब उसे ४०००से ४२०० करोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपयेकी आशा है। सामान्य धारणा यह है कि विकासशील देशोंकी प्रभुता तभी बनी रह सकती है जबकि विदेशी सहायता, कच्चे माल, पुर्जों और अनाज आदिके रूपमें कुल लागतके २५ प्रतिशतसे अधिक न हो। इसकी पूरी कोशिश की जानी चाहिए कि विदेशी सामान-पर निर्भर न रहना पड़े। स्वदेशी भावना सिर्फ़ एक नारा ही नहीं रहनी चाहिए बल्कि प्रत्येक स्तरपर इसे व्यवहारमें लाया जाना चाहिए।

सरकारी क्षेत्रमें १६००० करोड़ रुपयेका खर्च पूरा करनेके लिए योजना-कालके पाँच वर्षोंमें १७५० करोड़ रुपये (११०० करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार-द्वारा और ६५० करोड़ रुपये राज्यों-द्वारा) जुटाये जायगे। यह कई बार कहा जा चुका है कि अगर मूल्योंमें स्थिरता लानी है तो सरकारको यह घोषणा करनी होगी कि चौथी योजनाका खर्च पूरा करनेके लिए न तो नये टैक्स लगाये जायेंगे और न ही अधिक नोट छापे जायेंगे। अगर सरकार इस योजनाको कार्यान्वित करती है तो इसका यह अर्थ होगा कि देशके नेता मूल्य-वृद्धिको रोकनेकी कोरी बातें ही करते हैं, देशमें अमन-अमान क़ायम रखनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि चौथी योजनामें नये कर न लगाये जायें। अवमूल्यनके बुरे प्रभाव न हों इसके लिए निजी तथा कम्पनी-करोंमें रियायतें देना बहुत जरूरी है जिससे कि आर्थिक उन्नति तेज़ीके साथ हो सके। उन्नतिकी रफ़्तार सरकारी क्षेत्रके विस्तारपर नहीं बल्कि इसपर निर्भर करती है कि जनताको अपनी रचनात्मक शक्तिका उपयोग किस सीमा तक करने दिया जाता है।

प्रधान मन्त्रीने इस फ़ैसलेकी घोषणा की है कि पूँजीगत तथा राजस्व खर्चेमें २०० करोड़ रुपयेकी बचत की जायेगी। इसी प्रकार केन्द्रमें भी बचतका अभियान चलाया गया था जिससे ६० करोड़ रुपयेकी बचत हुई। आशा है कि केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारें उन परियोजनाओंपर खर्चमें कटौती करेंगी जो वर्तमान संसाधनोंसे कार्यान्वित नहीं की जा सकतीं और उन योजनाओंकी ओर ध्यान देंगी जो शीघ्र फल देनेवाली हैं। इस प्रकार वे मुद्रा-स्फीतिको बढ़ने नहीं देंगी। सवाल यह पैदा होता है कि क्या राज्य-सरकारोंके नेता सदा इस बातको ध्यानमें रख सकेंगे कि राजनीतिक लाभकी खातिर मितव्ययताका बलिदान न दिया जाये।

यह देशके नेताओंकी परीक्षाका समय है। अगर हममें कृषिके क्षेत्रमें अपनी असफलताको स्वीकार करनेका साहस है तो हम इस चुनौतीका सामना कर सकेंगे। वास्तवमें हमारी समस्त समस्याओं—जैसे कि विदेशी मुद्राका संकट, बेकार पड़ी औद्योगिक क्षमता, उद्योगोंके लिए वित्तका अभाव, अनाजकी कमी और मुद्रा-स्फीति—का मूल कारण यह है कि हमारे यहाँ कृषिका विकास नहीं हो सका। अब भी अगर हम सँभल जाते हैं और पिछले १८ वर्षकी लापरवाहीका अन्त करके सन्तुलित अर्थव्यवस्था स्थापित करते हैं तब भी सब कुछ ठीक हो सकता है।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा
पठनीय
नवीनतम
मौलिक
उपन्यास

अ स्तं ग ता ...

भारतीय ज्ञानपीठ
द्वारा प्रस्तुत
'भिक्खु'
की
एक नयी
विशिष्ट
औपन्यासिक
कृति

सालाज़ार शासनका अन्त होनेपर भी गोआकी संस्कृति, सभ्यता और सामाजिकतापर पुर्तगाली पाशविकताके धब्बे गोआनी जन-जीवनके पटपर दिखाई पड़ते हैं।···वेदनाविद्ध क्षणों समूचे गोआकी पीड़ाको 'रुथ' के माध्यमसे जिया है उपन्यासकारने! 'रुथ' जो गोआके मुक्ति-संग्रामकी अग्रदूतिका है, और उसका प्रणयी 'जोज़े' अत्याचारी सालाज़ार शासनके गुप्तचर विभागका अध्यक्ष। यही जोज़े गिरफ़्तार करता है!···· एक अद्भुत प्रणय-कथा—अत्यन्त रोचक 'फ्लैशबैक' शैलीमें।

मूल्य ६.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

कलकत्ता :: वाराणसी

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोकन नहीं...

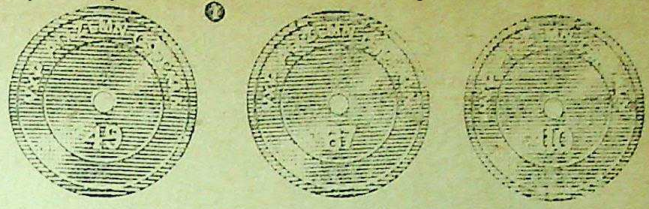

प्रतीक्षा भी नहीं..

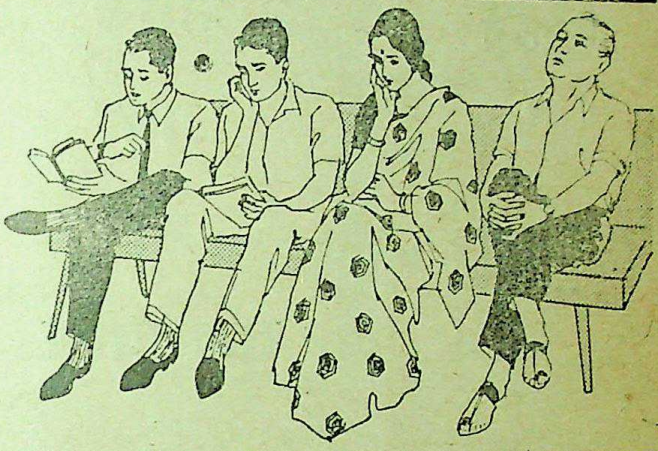

आपका चेक हमारे
टेलर सिस्टम
के अधीन तुरंत ही
कैश हो जाता है

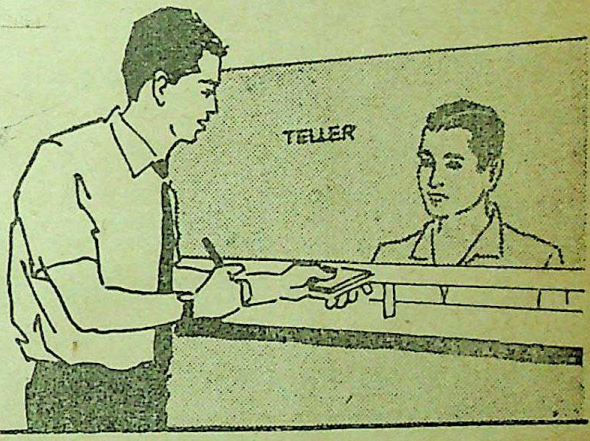

पंजाब नेशनल बैंक

आत्मनिर्भरता का एकमात्र आधार – उत्पादनवृद्धि

PR-PNB-6625-H-5

१०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

•

शहर अब भी सम्भावना है

•••

सर्वथा
पठनीय
संग्रहणीय

•

अशोक वाजपेयी
की कविताओंका पहला संग्रह

मानवीय होनेके अनुभव और तनावोंको आत्मीय स्तरपर परिभाषित, तथा दुनियाके सारे विनाशके विरुद्ध कुछ गहरे मानव-सम्बन्धोंमें अर्थ और सम्भावनाकी लगातार खोज करती, नयी पीढ़ीके सशक्त कविकी विशिष्ट, मर्मस्पर्शी कविताएँ

मूल्य तीन रुपये

•

भारतीय ज्ञानपीठ

विक्रय-केन्द्र ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

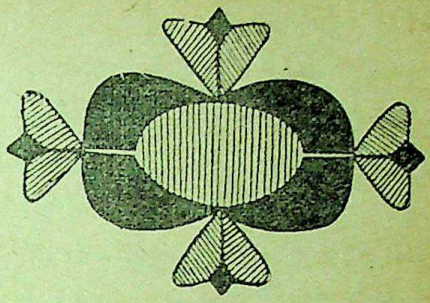

लहरोंके राजहंस

•

प्रिय भाई राकेशजी,

३१ का पत्र मिला। मैं अपनी आदतके अनुसार तत्काल उत्तर नहीं दे सका लेकिन क्षमा नहीं माँगूँगा क्योंकि जो कुछ आपको लिखना था वह नहीं लिख पाता अगर पिछले पन्द्रह दिनोंका समय मुझे नहीं मिला होता। आपको याद है, 'लहरोंके राजहंस' के आखिरी दिन या आखिरी रात मैंने दूसरा दृश्य नहीं देखा था और सारे समय कोकाकोला पीता रहा था, मुझे अब भी ऐसा लग रहा है कि मैं तीसरे दृश्यसे पहले कहीं बैठा हूँ। मुझे जो नाटक पहले दिन अच्छा लगा था वह चार दिनमें अपना अर्थ खोता गया—उसका कारण मैंने आपको बतलाया था कि नन्द मेरे सिर पर चढ़कर बोलता है। मैंने सुन्दरी को ठीकसे देखा भी नहीं, जबकि स्टेट्समैनके अलावा कई जण्टलमैनको मैंने उसके कंचुकी-विन्यासके बारेमें ब्यौरे देते हुए सुना है, ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्यौरे जो कृष्णा रैलिन और कुलराज लाठकी भी नहीं मालूम होंगे। आपने खुद सुना है कि पहले दिन सभीको नाटक बहुत ढीला लगा और पूरे नाटकके बारेमें बात करनेकी बजाय लोग उसको दृश्योंमें बाँट-बाँटकर देखने लगे। सारी कहानी सुन्दरी और नन्दकी कहानी है, इन दोनोंकी भी नहीं, दोनोंके राजहंस रूपकी है या राजहंसकी भी नहीं है, लहरों-ही-लहरोंकी है। मैं नाटकसे पहले और नाटकके बाद भी आपके साथ रहा हूँ और नाटककारको उस मनःस्थितिको जानता हूँ जो नाटकके परिचालककी दृष्टिमें मनःस्थिति नहीं परिस्थिति हो सकती है। आप जब नाटकका तीसरा दृश्य फिरसे लिख रहे थे तो मैं केवल यही समझा था कि जो स्वगत-कथन 'लहरोंके राजहंस' को एक परम्परागत नाट्यशिल्पसे अलग कर रहा है, उसकी हत्या करने पर आप तुले हुए हैं। स्वगत-कथन निषिद्ध नहीं माने गये हैं लेकिन व्यवधान तो माने गये ही गये हैं। वैसे तत्त्वों-की दृष्टिसे व्यवधान हज़ार चीज़ें हैं, उनसे क्या होता है? अब तो मैं यह कह सकता हूँ कि अगले प्रस्तुतीकरणसे पहले अगर आप तीसरे दृश्यके उस पहलेवाले रूपके नज़दीक पहुँच जाना ठीक समझने लगें तो उसमें कोई ग़लत बात नहीं होगी। मुझे तो अब भी पहलेवाला तीसरा दृश्य सारे द्वन्द्वोंको उभारनेमें इतना सक्षम लगता है कि उसे प्रस्तुत करनेके लिए केवल आवाज़ चाहिए—न रंगमंचकी भारी साजसज्जा, न ही वस्त्र-विन्यास···तेज़ प्रकाश, रंग-मरीचिका इनमें-से किसीकी ज़रूरत नहीं। मैं अपनी बातको और स्पष्ट करूँगा : मुझे अनामिकाका ग्रीनरूम भले न मालूम हो, उस लेखक और राकेशका ग्रीनरूप मालूम है जहाँ यह नाटक जनमा है। जब आप इस द्वन्द्वमें थे कि तीसरा अंक क्या हो, श्यामानन्द जब इस परेशानीमें थे कि तीसरा अंक क्या नहीं हो जाये, जान-पहचान-के लोग जिज्ञासु थे कि तीसरा अंक कैसा बन जायेगा····उस समय एक बिन्दुपर शायद आपको लगा था कि सुन्दरीको मार डालनेसे समस्या हल हो जायेगी। वैसे किसी समस्या-को ही हल करना होता या आप समस्याको हल करनेकी ताक़त बटोर पाते तो शायद सुन्दरीकी आत्महत्या करवा देते। मैंने किसीसे कहा भी था कि सुन्दरीकी आत्म-हत्या···मेरा वाक्य तोड़ दिया गया था—"आत्महत्या करें आपके नन्द, सुन्दरी क्यों आत्महत्या करे, वह ज़िन्दा रहेगी और सरासर ज़िन्दा रहेगी···।" जिस व्यक्तिने नन्दकी आत्महत्याका सुझाव दिया था वही नाटक देख लेने पर बोला था—"नन्द अगर यह कहता कि मैं तो अपने केश लेने जा रहा हूँ तो बात समझमें आती···नन्दमें यह ताब है ही नहीं कि वह 'तुम स्त्री हो'-जैसा घृणाव्यंजक वाक्य बोल भी सके। ····" याद होगा, पहले शोके बाद जब हम लोग खाना खा रहे थे किसीने आकर कहा था—"इस अन्तका क्या मतलब हुआ?" आपने उसे टालनेकी ग़रज़से कह दिया था—"वह तो डोमेस्टिक डायलॉग है।····" और उसने जब मुझसे पूछा था कि उसके बाद क्या हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहरोंके राजहंस

तुम स्त्री हो ··· तुम पुरुष हो ···

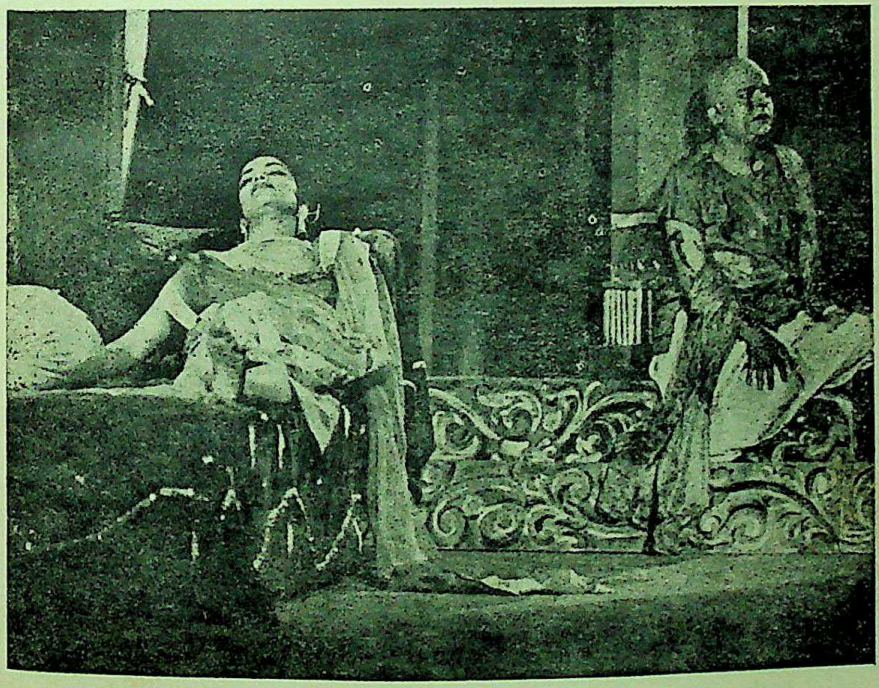

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम सुन्दरी हो ··· तुम नन्द हो ···

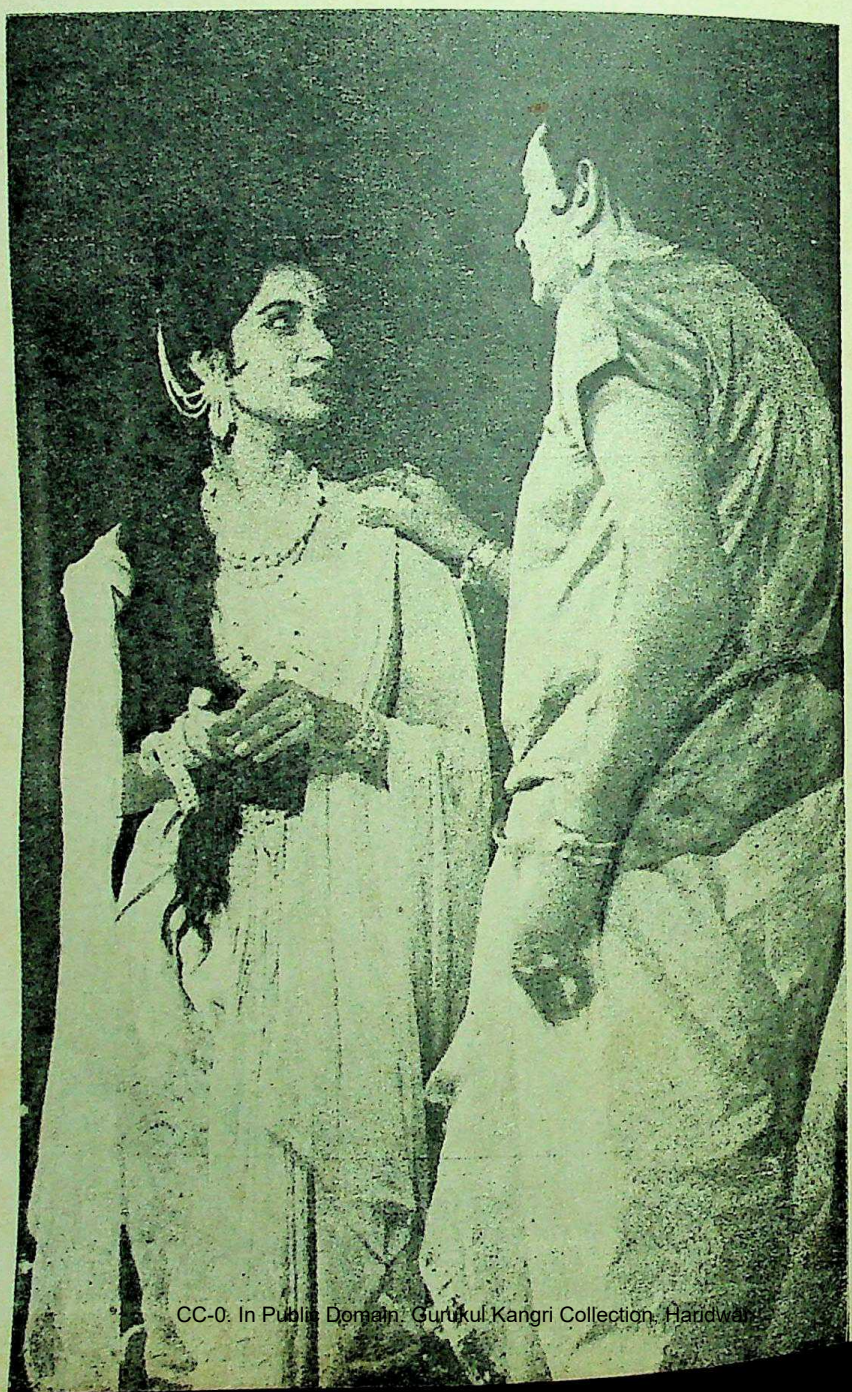

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा तो मैंने कह दिया था—"तुम स्त्री हो' और 'तुम पुरुष हो'—इस कथोपकथनको अनन्त बार दुहराते जाइए, हो सकता है मारपीट हो जाये या हो सकता है दोनों हारकर एक ही बिस्तरमें सो जायें।..."

श्यामानन्दको लिखा आपका पत्र मेरे सामने है। उनके उठाये प्रश्न परिचालकके प्रश्न हैं—अधिक शिल्पप्रधान। लेकिन आपके उत्तर बातको स्पष्ट करते हैं। उन्हें दर्शकोंकी दृष्टिसे पढ़ा जाना चाहिए :

० "श्यामांग एक प्रतीक-चरित्र है। एक तरहसे वह नन्दके मनकी संकुलताको ही रेखांकित करता है। उसका उन्माद बहुत सोचनेवाले मनका सम्भ्रम है। छाया, प्रतीक रूपसे उस परोक्षकी छाया है जिससे चेतन रूपसे वह बचना चाहता है। आरम्भमें, अलका और श्यामांगका प्रेम स्त्री और पुरुषके बीचकी भावनाके दूसरे स्तरको प्रस्तुत करता है—नन्द और सुन्दरीके आवेशपूर्ण और वासनात्मक प्रेमसे अलग। दूसरे अंकमें श्यामांगका स्वर केवल प्रतीक रह जाता है जो नन्दके अन्तर्मनके सम्भ्रमको ही व्यक्त करता है।

० "राजहंस नन्द और सुन्दरीके समानान्तर हैं—लहरें उनकी परिस्थितियाँ हैं।

० "सुन्दरी नन्दसे वास्तवमें बहुत प्रेम करती है, पर इस प्रेम में गहरा आत्मविश्वास भी है जिसका पोषण सुन्दरीके जीवन-दर्शनसे होता है। नाटकका मूल द्वन्द्व पार्थिव और अपार्थिव मूल्योंका द्वन्द्व है। सुन्दरी पृथ्वीके प्रतीकमें, पुरुष और उसकी चेतनाको अपने तक बाँधे रखना चाहती है—पुरुष बँधना चाहकर भी उससे ऊपर उठना, एक अपार्थिव जिज्ञासामें अपने लिए उपलब्धि ढूँढ़ना चाहता है। बुद्ध पार्थिवताको तिलांजलि देकर उस उपलब्धिकी ओर जाते हैं—नन्द तिलांजलि नहीं दे पाता, नहीं देना चाहता। उसकी खोज है पार्थिवताके अन्दरसे अपार्थिवको पाने-की। इसलिए वह संशयग्रस्त है, एक प्रश्न-चिह्न है। सुन्दरीके सम्बन्धमें आपने और जो कुछ लिखा है, उसपर बहुत बात हो सकती है, पर आप अपने 'इण्टरप्रिटेशन'के लिए स्वतन्त्र हैं।

० "मृगका प्रकरण एक संकेतके लिए लाया गया है। जीवित रहनेके लिए संघर्ष करता हुआ भी वह अपनी ही क्लान्तिसे मर जाता है। यह परिणति मृगकी ही नहीं किसीकी भी हो सकती है—नन्दकी दृष्टिसे उसकी भी।

० "नन्दका बुद्धके पास जाना वास्तवमें अपने ही मनकी चुनौतीके कारण है। साथ ही अन्दरके संशय और द्वन्द्वके कारण। वह भीरु बनकर बुद्धसे छिपा रहना नहीं चाहता। उसे तब तक विश्वास है कि वह बुद्धके पास जाकर भी बिना परिवर्तित हुए वापस आ सकता है। इसमें अवचेतन रूपसे बुद्धका प्रभाव भी खींचता है।

० "नन्दका केश मुँड़ा लेना, फिर व्याघ्रसे युद्ध करना, फिर लौट आना, फिर चले जाना—यह सब उसके संशय और अन्तर्द्वन्द्वको प्रकाशित करता है। उसकी स्थिति अन्त तक 'तरंगों पर तैरते राजहंस'की रहती है। सुन्दरी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

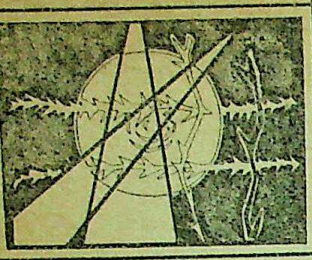

म

हा

न

ग

र

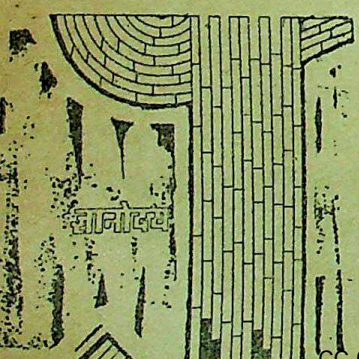

कुछ शीर्षक

० **पत्र-परिचर्चा** : नगर-बोधके चौराहेपर

० **चित्र-कथा** : आकाशहीन शताब्दी और अनिद्राग्रस्त महानगर।

० **सन्दर्भोंकी परिधियाँ** : एक सुबह मृत महानगरमें ० तलाश शहरकी : जब ये नगर नहीं थे···· ० महाभारतके पृष्ठोंपर सोयी हुई ममी ० वेदोंमें नगर-संस्कृति ० उज्जयिनीमें दो रातें।

० **फ़न्तासी** : यदि न्यूयार्क मोहनजोदाड़ो हो जाये ० अन्तरिक्षमें तैरते हुए महानगर ० एक ज़मींदस्त यूटोपिया।

० **नगरचक्र** : रहनेको जगह नहीं ० लाल-हरी बत्तीवाली मोहब्बत ० पापा अगर रोबोट हों ० महानगरका यौन जीवन।

० **कविताएँ** : नगर-सप्तक : सात कविताएँ ० म ग र स···· ० खजूरमें लटका शहर ० महानगर : अष्टयाम ० दूर····बहुत दूर ०

० **डायरियाँ** : जुलूसोंका शहर : कलकत्ता ० शाम और उसके आस-पास घूमती राजधानी : दिल्ली ० फ़ुरसतहीन द्वीपपर : बम्बई ० एक हज़रत, गंज, महानगर : लखनऊ० बना रहे बना, रस।

० **यात्राएँ** : नगर जो ख़ुद कलाकार है—पेरिस ० लन्दन : जिससे हमारा रिश्ता था ० स्लीपिंग पिल्सकी तलाशवाला शहर : न्यूयार्क ० हवा नहीं राजनीति : मास्को।

० **नयी नगर-सभ्यता** : बीट, बीटल और नाराज़ तथा भूखे-प्यासे ० खुली हुई आँखें और 'तंग' संस्कृति····निषेधोंपर टिप्पणी, हर बातमें 'अ' यानी····? ० नयी पीढ़ीका दर्शन ० उद्भ्रान्त नायकोंका नगर और बैकेट।

० **व्यंग्य** : सँकरापन उर्फ़ संकीर्णता : एक दर्ज़ीकी मनस्थिति ० पहलेके शहर ऐसे थे ० देखी तेरी बम्बई ० चलती चाकी देखिकै हँसे कबीरा जोय···· ० प्रेम : महानगरसे गाँवों तक।

० **नगरके इर्द-गिर्द** : १० कहानियाँ

० **कुछ स्थितियाँ** : मृत्यु और आत्महत्या ० भुखमरी और आधा पेट भोजन ० एक कमरा और फुटपाथ ० अकेले और अनियोजित परिवारके बीच ० महानगरमें छोटे-छोटे बच्चे।

० **अँधेरे कोने** : निषिद्ध मोहल्ला : जहाँ दिनमें ब्लैक-आऊट होता है, हुगलीके किनारे : जहाँ ब्लैकमनी पसीनेकी कमाई है····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

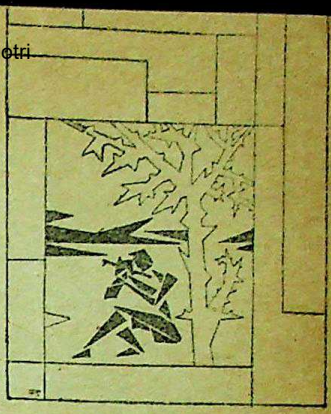

o कुछ व्यक्तिगत रचनाएँ : झुलसे हुए शहर o एक महानगर कन्धेपर o अपने-अपने शहर o पर्सनल सी० आई० टी० o फँसा हुआ नगर o महानगर-मन और कस्बा-संस्कृति।

o नगर-निर्माण : हस्तिनापुर : पुनर्जन्म o चण्डीगढ़ : तीन-तेरह o भोपाल : बसते-बसते o इलाहाबाद : प्रयागसे आगे।

o अनुवाद : घूमती हुई दुनियाके बीच : महानगरोंके बारेमें जानकारी।

कुछ लेखक

o भगवतशरण उपाध्याय o राजेन्द्रलाल हांडा o इलाचन्द्र जोशी o डॉ० सम्पूर्णानन्द o प्रभाकर माचवे o रमेशदत्त शर्मा o कुबेरनाथ राय o कैलाश वाजपेयी o उदयनारायण राय o मन्मथनाथ गुप्त o महेन्द्र कुलश्रेष्ठ o शैलेश मटियानी o हरीश o गिरिजाकुमार माथुर o दुष्यन्त कुमार o वीरेन्द्र मिश्र o ओम् प्रभाकर o शलभ o रवीन्द्र भ्रमर o काका हाथरसी o नीलाभ o बेढब बनारसी o रणजीत o अजितकुमार o जगदीश चतुर्वेदी o इन्दु जैन o रचना o चन्द्रकान्त देवताले o रामसेवक श्रीवास्तव o राजकमल चौधरी o लक्ष्मीनारायण लाल o रवीन्द्र कालिया o ममता कालिया o रामकुमार o प्रेमलता वर्मा o ब्रजकिशोर नारायण o सोमा वीरा o श्याम परमार o विद्या-निवास मिश्र o शरद जोशी o केशवचन्द्र वर्मा o हरिशंकर परसाई o रेणु o कमलेश्वर o मन्नू भण्डारी o चन्द्रकान्त बक्शी o रजनी पनिकर o भँवरमल सिंघी o धनंजय वर्मा o दूधनाथ सिंह o ज्ञानरंजन o विष्णु प्रभाकर o परेश o सुदर्शन चोपड़ा o अनन्त मिश्र o सकलदीप सिंह o अवधनारायण सिंह o कृष्णचन्द्र o करतार सिंह दुग्गल o राजनाथ पाण्डेय o विजयदेवनारायण साही o कल्याणमल लोढ़ा o हंसराज रहबर o सेठ गोविन्ददास o मिर्ज़ा इस्माइल बेग़ o गंगाप्रसाद विमल o मधुराय o अनीता औलक o कन्हैयालाल नन्दन o मनमोहन सरल o अवनीन्द्र-कुमार विद्यालंकार o इन्द्रनाथ मदान o सुनीता o हरिभाऊ उपाध्याय o प्रयाग शुक्ल आदि।

वि

शे

षां

क

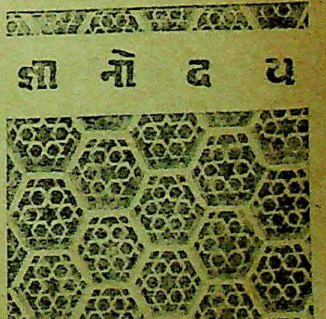

कर्षक मुखपृष्ठ और रंग-बिरंगी सज्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध दो व्यक्ति या व्यक्तित्व नहीं, दो जीवन-दृष्टियाँ या दो 'विटाल फ़ोर्सेस' हैं जिनके प्रभावमें उसका मन निरन्तर आन्दोलित है। अन्तमें उसके घरसे चले जानेका कारण उसकी वितृष्णा है जो सुन्दरीकी बात ठीकसे न समझ पानेके कारण पैदा होती है। सुन्दरीका क्षोभ उसके केशहीन रूपके कारण नहीं, इस कारणसे है कि नन्दने उस मात्रामें उसके विश्वासको खण्डित किया है—जबकि नन्द उसका अर्थ यही लेता है कि उसे मुण्डित रूपमें देखना ही सुन्दरीको सह्य नहीं हुआ। इसीलिए सुन्दरी अन्तमें कहती है: 'इतना ही तो समझ पाते हैं ये।' पार्थिव और अपार्थिवके संघर्षमें नारीकी पुरुषसे यह सामान्य शिकायत है। इसके ऊपर आते हैं श्यामांगके शब्द। इस तरह नाटकका अन्त एक द्वन्द्वकी स्थितिमें होता है—किसी परिणामपर पहुँचकर नहीं। भिक्षु आनन्दका उपयोग नन्दके साथ आये बुद्धके प्रभावके रूपमें है।"

■

अनामिकाने 'लहरोंके राजहंस'को प्रदर्शित कर बड़े साहसका काम किया है क्योंकि ग्लैमर-रोमांस और आगे चलती कथावस्तु नाटकमें हों तो दर्शकोंकी चिन्ता नहीं रहती। ····यहाँ उल्टा हुआ है—हर दर्शक सोचने पर मजबूर हुआ है कि क्या उसने कोई अच्छा नाटक देखा है या वह एक अच्छे नाटकको समझनेमें असफल हो गया है? सुना है, 'लहरोंके राजहंस' फिरसे खेला जायेगा। मेरा सुझाव है कि रंगमंच और सज्जा दोनों ही जितनी सादी होंगी, नाटकके समर्थ कथनोपकथन ऊपर उभर सकेंगे। यह भी कि तीसरे अंकका पूर्वरूप भी एक बार खेला जाये और स्वयं नाटककार भी यह देखे कि क्या उसे तीसरे अंकके किसी तीसरे रूपकी ज़रूरत तो नहीं है? इन तीन पाठान्तरोंपर चाहे जितने विवाद हों, यह निश्चित है कि नाट्यमंचकी चर्चामें ही इससे योग ही मिलेगा। अभिनयमें श्यामानन्द (नन्द)का वह स्वरूप अभिव्यक्तिमें सम्पूर्ण बन पाया है जब वे नन्दके संघर्षके साथ चलते हैं। विनीता रैलिन (सुन्दरी)ने सुन्दरीके मनके सारे उतार-चढ़ावोंको ध्वनि दी है। सुन्दरीमें कई आयामोंकी प्रतिच्छवि है। हो सकता है, अभिनेत्री बदले तो सुन्दरीका प्रस्तुतीकरण भी बदल जाये। बुद्धका गौरव और सुन्दरीका अनुराग····दोनोंके बीच नन्द फँसा है। नन्दके प्रति प्रेम और नन्दकी अपनी विरति···दोनोंके बीच सुन्दरी क़ैद है। हर पात्रके मनमें रस्साकशी चल रही है—कोई जीतता-हारता नहीं, कभी लगता है, रस्सी ही टूट गयी है और कभी लगता है, दोनों थककर एक दूसरेके सामनेसे हट गये हैं—मात्र रस्सी ही ज़िन्दा है।

मेरे सोचे तो इस नाटकके प्रस्तुतीकरणसे 'अँगरेजी पंजाबी रंगमंच'का बॉक्स-ऑफ़िस आकर्षण दर्शकोंके मनसे भी हटा है।

■

हाँ, एक बात और। अभी उस दिन दिल्लीमें आपने बतलाया था कि इसके प्रदर्शनसे यह बात मनमें आयी है कि एक और

(शेष पृष्ठ ११७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

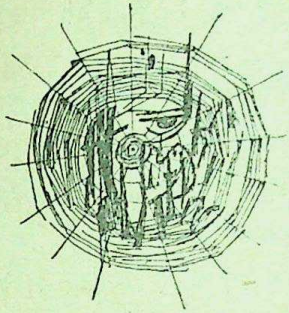

स्वतन्त्रता और सत्य ?

■

मैं किसी परिवारमें अतिथि था, जाते ही देखा कि उनके द्वारपर दो तोते पिंजड़ोंमें बन्द हैं, पिंजड़े सुन्दर-सुनहरे रंगोंमें रंगे हुए हैं। ठीक भी है, यदि परतन्त्रता ऊपरसे रंगीन और सुन्दर न हो, तो उसे पसन्द कौन करेगा? बन्धनोंको भी हम सजा लेते हैं और सुन्दर बना लेते हैं। लेकिन क्या बन्धन कितने ही सजाने और सँवारनेसे कभी सुन्दर हो सकते हैं? बन्धनसे अधिक कुरूप वस्तु और क्या है? और शायद इसीलिए बन्धनोंको हम जितना सुन्दर बनानेका प्रयास करते हैं, उतना और किसी चीज़को नहीं। जो जितना कुरूप होता है, उसे हम सुन्दरसे उतना ही थोपकर भुलानेकी चेष्टा करते हैं।

वस्तुतः, जहाँ कुरूपता नहीं है, वहाँ सुन्दर बनानेका खयाल ही पैदा नहीं होता है, सुन्दर बनाने और सुन्दर होनेका बोध ही कुरूपतासे पैदा होता है।

■

यह सोचता ही था कि वे तोते कुछ बोलने लगे। उन्हें जो सिखाया गया है, वही वे बोल रहे हैं। वे रामका नाम ले रहे हैं। उन्हें सुनकर उन सबका मुझे स्मरण आता है, जिन्हें मैंने रामका नाम लेते देखा है, या अल्लाहका या किसी और का। क्या उन सबने भी वे नाम सीख नहीं लिये हैं? और सीखे हुएका मूल्य ही क्या हो सकता है? कैसा आश्चर्य है कि परमात्माको भी सीख लिया जाता है और धर्मको भी? क्या इससे भी गहरी कोई आत्मवंचना हो सकती है?

मैं मन्दिरोंमें जाता हूँ और मस्जिदोंमें, गिरजोंमें और गुरुद्वारोंमें और वहाँ क्या पाता हूँ? पाता हूँ कि सीखी हुई और रटी हुई बातें वहाँ दुहरायी जा रही हैं। और सुना तुमने, उन्हें वे प्रार्थनाएँ कहते हैं! और मैं हैरान होकर वापस लौट आता हूँ। मैं समझ ही नहीं पाता कि यह सब क्या हो रहा है?

प्रार्थना तो प्रेम है और प्रेम क्या सीखा जा सकता है या कि दुहराया जा सकता है?

और प्रार्थना तो चित्तकी मौन दशा है, उसे भी क्या शब्द दिये जा सकते हैं? और शब्द भी दूसरोंके?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हम तो सीखे हुए लोग हैं और हमें सब कुछ सिखा दिया गया है, प्रेम और प्रार्थना—सभी कुछ हमने सीख लिया है! लेकिन मैं उसे मृत ही कहता हूँ जिसमें कि अनसीखा कुछ भी नहीं है—सहजस्फूर्त कुछ भी नहीं है—उसका स्वयंका कुछ भी नहीं है।

जीवनमें जो भी सार्थक है, वह सीखा नहीं जाता है और जीवनमें जो भी मूल्यवान् है, उसे दूसरोंसे नहीं पाया जाता है, उसे तो स्वयं ही, स्वयंमें ही और स्वयंके द्वारा ही पाना होता है, और यही उसका आनन्द और यही उसका सौन्दर्य भी है।

■

बिदा होते समय मैंने अपने आतिथेयको कहा : "इन तोतोंको मुक्त क्यों नहीं कर देते हैं?" वे बोले : "हमें इनसे बहुत प्रेम है।" मैंने यह सुना तो अवाक् होकर उनकी आँखोंमें देखता रह गया। मुझसे कुछ बोलते ही नहीं बना। वे किंचित् परेशान हुए होंगे। मेरा ऐसा उन्हें देखना निश्चय ही अबूझ मालूम हुआ होगा, फिर मैंने उनसे कहा था : "ठीक ही कहते हैं, प्रेम है इसलिए इन्हें मुक्त कैसे करें? लेकिन क्या कभी सोचा है कि प्रेम भी क्या किसीको बाँध सकता है? और क्या वह प्रेम होगा जो बाँधे? प्रेम तो मुक्त करता है, दूसरेको बाँध रखनेमें प्रेम नहीं, अप्रेम है—मूलतः घृणा है। दूसरेके मालिक होनेमें, दूसरेको अपनी वस्तु बना लेनेमें प्रेम नहीं, अधिकारका आनन्द है। और अधिकारका रस क्या घृणाका ही रस नहीं है? क्या यह दूसरेकी हत्या नहीं है? क्या स्वतन्त्रताको नष्ट करना दूसरेके स्वत्वको ही विनष्ट नहीं कर देना है?"

इस बीच उनकी पत्नी भी आ गयी थीं। उन्होंने मुझसे कहा : "आप इन तोतोंको मुक्त कर दें।"

मैंने तोतोंके पिजड़ोंके द्वार खोले, लेकिन तोतोंने अपने-अपने पिजड़ोंके सीखचोंको ज़ोर-से पकड़ लिया। वे बाहर निकलनेको तैयार न थे। उनके मालिकको उनसे प्रेम था, उन्हें अपनी क़ैदसे प्रेम था! मैं उन्हें बाहर खींचता था और वे थे कि चिल्लाते थे, फड़फड़ाते थे और भीतर चिपटते थे। मेरी कोशिश व्यर्थ हुई। वस्तुतः कोई अन्य किसी दूसरेको स्वतन्त्रता कैसे दे सकता है? स्वतन्त्रता तो पायी जाती है। वह मिलती नहीं। स्वतन्त्रता-का कोई दान नहीं होता है। और इसलिए दानमें पायी हुई स्वतन्त्रता छिपी हुई परतन्त्रता ही होती है। वैसी स्वतन्त्रता परतन्त्रतासे भी घातक है क्योंकि वह दिखाई नहीं पड़ती है।

■

फिर, मैं सोचने लगा—बहुत-सी बातें सोचने लगा। वे पक्षी आकाशकी स्वतन्त्रताके लिए राज़ी क्यों न हुए? क्या किसीको अपनी क़ैद और अपने बन्धनोंसे भी प्रेम हो सकता है? क्या दासतासे भी आसक्ति हो जाती है?

शायद, आकाशकी स्वतन्त्रता उन्हें भय-भीत कर रही थी। अपरिचित और अज्ञात भय देता है। परिचितसे परिचित होनेके कारण ही अभय मालूम होने लगता है। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अपरिचित स्व-तन्त्रताकी बजाय परिचित परतन्त्रताको ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनना ठीक समझा। फिर परिचित सुरक्षित प्रतीत होता है। आकाश असुरक्षित था। पिंजड़ा सुरक्षित। उन्होंने पिंजड़ेको नहीं, वस्तुतः सुरक्षाको ही चुना था। और तब मुझे दिखाई दिया कि उनका तर्क कितना मनुष्यों ही जैसा है? मनुष्य भी तो ऐसा ही है। कितने कम मनुष्य हैं जो कि अपने कारागृहोंको छोड़नेको राजी होंगे? ज़ंजीरोंको छोड़ना बहुत कठिन है क्योंकि ज़ंजीरें सुरक्षा देती हैं।

स्वतन्त्रता और सुरक्षाको एक ही साथ नहीं चाहा जा सकता है। वे तो विरोधी चाहें हैं। सुरक्षाको छोड़नेका साहस हो तो ही स्वतन्त्रताकी चाहका जन्म हो सकता है। असुरक्षाका साहस ही स्वतन्त्रताका अधिकार है। सुरक्षा प्रिय है तो स्वतन्त्रतासे भय होगा। यह स्वाभाविक ही है। सुरक्षाकी आकांक्षामें ही परतन्त्रताकी सम्भावना छिपी होती है। वह परतन्त्रताका ही बीज है। वह, एक अच्छे नाममें, परतन्त्रता ही है।

मित्रोंसे मैं कहता हूँ: "स्वयंसे पूछो कि क्या चाहते हो—सुरक्षा या स्वतन्त्रता?" और उनकी आँखोंमें मैं देखता हूँ तो वहाँ सुरक्षाकी अभिलाषा ही लिखी दिखाई देती है। इस अभिलाषाने ही न मालूम कितने प्रकारकी परतन्त्रताएँ पैदा कर दी हैं। जो सुरक्षित होना चाहता है, वह किसी-न-किसी रूपमें परतन्त्र हो ही जायेगा। उसको इस कमज़ोरीका शोषण हुए बिना नहीं रह सकता है। शास्त्र, सम्प्रदाय, संगठन—किसी-न-किसीकी ज़ंजीरें उसे बाँध ही लेंगी। कोई-न-कोई पिंजड़ा उसकी आत्माको क़ैद कर ही लेगा। राजनीति यही करती है। धर्म यही करते हैं। सब तरहके सिद्धान्त यही करते हैं। सुरक्षाके आश्वासनसे मनुष्यकी आत्माका शोषण होता है।

और फिर उन कारागृहोंको, उन मानसिक दासताओंको स्वयं ही छोड़नेमें भय लगने लगता है, असुरक्षा प्रतीत होने लगती है और हम अपने ही हाथों बन्धनों और चौखटोंमें जकड़ जाते हैं। सब भाँतिकी परतन्त्रताएँ मनुष्य स्वयं ही ओढ़ता है और फिर उनकी रक्षा भी करता है। यहाँ तक कि उन्हें बचाये रखनेके लिए स्वयंके प्राण भी दे सकता है। राष्ट्रोंके नामपर, धर्मोंके नामपर हुई क़ुर्बानियाँ और क्या हैं?

इस लोकमें ही नहीं, परलोकमें भी हम सुरक्षित होना चाहते हैं। जीवनमें ही नहीं, मृत्युके बाद भी हम सुरक्षा चाहते हैं। इस लोभने ही स्वर्ग और मोक्षकी कल्पनाओंको जन्म दिया है और भयके कारण हम उनपर सन्देह भी नहीं करते हैं। भयभीत मन कैसे सन्देह करेगा? वह तो सुरक्षाके निमित्त किसी भी असत्यपर विश्वास कर लेता है। भयभीत मन ही तो समस्त अन्धविश्वासोंकी पोषण-भूमि है। वही तो असत्य और मिथ्या धारणाओंका सहारा है। सुरक्षाकी वासना जहाँ है, वहाँ सन्देह नहीं हो सकता है। और जहाँ सन्देह नहीं है, वहाँ सत्यका साक्षात्कार भी नहीं हो सकता है।

ईश्वरके नामपर प्रचलित जो सारा पाखण्ड है, वह क्या है? क्या वह सब हमारे भयका ही विस्तार नहीं है—क्या हम सुरक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी आलोचनाकी महत्त्वपूर्ण नयी उपलब्धि

नये प्रतिमान :

लक्ष्मीकान्त वर्मा

पुराने निकष :

सर्जनकी नयी अभिव्यक्तिके साथ उसके मूल्यांकनकी समस्या भी उठती है, और तभी नये प्रतिमानोंको विकसित करने, पुराने और प्रतिष्ठित निकषोंकी व्याख्या तथा उनकी सीमाओंके निर्धारणकी बात भी ज़रूरी होती है। इसी सन्दर्भमें यह कृति—साहित्य, विशेषकर नवलेखनके सर्जन, आस्वादन और मूल्यांकनके विविध सन्दर्भोंको दूर तक आलोकित करनेका एक सार्थक नव-प्रयत्न है। साहित्यके प्रत्येक अध्येता एवं पुस्तकालयोंकी समृद्धिके लिए अनिवार्य रूपसे संग्रहणीय : 'नये प्रतिमान : पुराने निकष'।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र : ३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहनेके कारण ही उस सबको नहीं चलने देते हैं ?

पाप और पुण्य, प्रलोभन और दण्ड, स्वर्ग और नरककी सारी धारणाएँ क्या हैं ? क्या उन सबके पीछे हमारे भयभीत मनकी छायाका ही आधार नहीं है ?

और आत्माकी अमरताका विचार क्या है ? क्या मृत्युके भयके कारण ही हमने उसकी शरण नहीं ले ली है ?

इस भाँतिके भयों और अन्धविश्वासोंके अन्धकारसे बँधा चित्त सत्यका आलोक नहीं देख सकता है और इस भाँतिके सुरक्षाके सींकचोंको पकड़े हुए आत्मा, परमात्माके आकाशमें गति नहीं कर सकती है।

आकाशकी स्वतन्त्रताके लिए सभी भाँतिके पिंजड़ोंका मोह छोड़ देना अनिवार्य है। और स्मरण रहे कि मानसिक दासतासे मुक्ति आत्मिक मुक्तिका प्रारम्भ है। जो प्रारम्भमें ही बँधा हुआ है, वह अन्तमें मुक्त कैसे होगा ? मुक्ति चाहिए तो मुक्तिसे ही प्रारम्भ करना होगा। आरम्भमें ही तो अन्त भी होता है। दासता कहीं भी नहीं ले जाती है सिवाय और गहरी दासताके। फिर वह दासता चाहे शास्त्रोंकी हो, चाहे शास्ताओं की। दासता तो दासता है। और लोहेकी जंजीरें उतनी मजबूत नहीं होती हैं जितनी कि विचारकी जंजीरें। विचारोंसे—पराये विचारोंसे जो मुक्त नहीं है, वह कभी भी, किसी भी अर्थमें मुक्त नहीं हो सकता है।

मैं कहता हूँ : सत्यको पाना है तो शास्त्रोंसे मुक्त हो जाओ और स्वयंको पाना है तो समस्त पर-शरणताके ऊपर उठना होगा। और जो धर्मको पाना चाहता है, वह सम्प्रदायोंको छोड़ दे। वस्तुतः सुरक्षाकी दौड़से मुक्त होना आवश्यक है यदि स्वतन्त्रता पानी है। और स्मरण रहे कि जो असुरक्षामें कूद जाता है, वह सुरक्षित हो जाता है क्योंकि स्वतन्त्रतासे बड़ी और कोई सुरक्षा नहीं है। स्वतन्त्रतामें ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है।

(संकलन : सोहन बाफना)

■■

[पृष्ठ ११२ का शेषांश, लहरोंके राजहंस]

कठिन नाटक लिखा जाये····और यह आपकी जानकारीके लिए है कि कुछ दर्शकोंने भी कहा है, वे एक और कठिन नाटक देख सकते हैं ···और कठिन नाटक खेलना अनामिकाके लिए कठिन काम नहीं क्योंकि 'शेडो प्लेज़' तो हर कठपुतली खेल सकती है।····

अब मैं तीसरे दृश्यके पहलेसे उठकर, तीसरे नाटकके पहले बैठा हूँ—कोकाकोला अब भी सामने है।····लिखेंगे।

आपका—रमेश बक्षी

■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-विदेश के समाचार मालूम करने के लिए

वेस्ट बंगाल —समसामयिक घटनाओं से सम्बन्धित साप्ताहिक समाचार पत्र।

वार्षिक ६ रुपये, अर्द्धवार्षिक ३ रुपये।

श्रमिक वार्ता —हिन्दी-बंगला पाक्षिक पत्रिका।

वार्षिक १ रु० ५० न० पै०।

पश्चिम बंगाल —नेपाली भाषा में साप्ताहिक समाचार पत्र।

वार्षिक ३ रुपये, अर्द्धवार्षिक १ रु० ५० न० पै०।

मग़रबी बंगाल —सचित्र उर्दू पाक्षिक पत्रिका।

वार्षिक ३ रुपये, अर्द्धवार्षिक १ रु० ५० न० पै०।

(क) चन्दे की रकम अग्रिम भेजनी होगी।

(ख) व्ही० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी।

(ग) सेलिंग एजेण्टों की आवश्यकता है—कमीशन ३३% दी जायेगी।

(घ) डाइरेक्टर, इनफ़ारमेशनके नाम आये मनिआर्डर, क्रास चेक एवं पोस्टल आर्डर स्वीकृत होंगे।

कृपया लिखें :—

सूचना निर्देशक, पश्चिम बंगाल सरकार

राइटर्स बिल्डिंग्स, कलकत्ता-१

W. B. (I. & P. R.) 18114/66

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ ४ का शेषांश : पत्र आपके]

सौ व्यक्ति-लेखक यहाँ आये थे, उनमें-से किसीकी आँखोंमें भी तो सन्तोष नहीं था, और वे सात सौ विभिन्न प्रकारके असन्तोष मेरे मनपर वेदनाकी एक अमिट छाप छोड़कर चले गये। व्यक्तिको—लेखकको इतना बेबस मैंने पहले कभी नहीं देखा था, यह बेबसी सार्त्र और कामूकी बेबसी नहीं, हवाई जहाजके साथ उड़नेका प्रयत्न करनेवाली किसी चिड़ियाकी बेबसी ही थी।

न्यूयार्क]

—सोमा वीरा

सुएन वियेतनियेमकी दो कविताएँ :

टु बी ए मैन :

स्टैण्डिंग ऐज़ ए मैन इन दिस डस्टी वर्ल्ड
सूनर ऑर लैटर, वन मस्ट डाई…
बट डाइंग ह्वेन सपोर्टिंग द स्काई
विद वन्स शोल्डर्ज़,
वन्स बॉडी प्राटेक्टिंग द कण्ट्रीज़ बॉडी
फ़ॉर मैन, वुड बी ए रिप्रोचलेस डेथ।

सॉरो :

द बोट, आफ़्टर सेलिंग थ्रू मेनी सीज़,
ह्वेन होम अगेन, बियर नो ट्रेसेज़ अव कण्ट्रीज़
वन्स रिफ़्लेक्टेड ऑन इट्स सेल्स।
द मैन, पासिंग द ब्रिज ऑव डेथ,
शेड्ज़ ऐण्ड लीव्ज़ बिहाइण्ड पास्ट लव्ज़,
बी दे ट्रबल्ड ऑर प्योर।
ए डैगर इज़ प्लन्ज्ड इण्टु द हार्ट ऑव माई कण्ट्री
माई सोल मे पेरिश बट नेवर माई सॉरो।

[आदमी होना :

इस धूल-धक्कड़ भरी दुनिया में—
आदमी देर या सवेर से अन्ततः मर ही जाता है…
लेकिन एक मौत उसकी भी :
जो अपने कन्धों पर आकाश थाम लेता,
अपनी देह को शव बना,
देश-देह को बचाता है,
वह मौत कितनी निर्दोष—निष्कलंक।]

[दर्द :

नौका :
जो अनेक सागरों के सन्तरण बाद
अपनी माटी को वापिस आये
किन्तु जिसके पालों पर के
यात्रा-चिह्न गये हों मिट।
आदमी :
जो मौत के पुल पर से गुज़रता हुआ
अपने अतीत के मीठे या तीते–
प्रणय फेंककर चला जाये।
मेरे देश की छाती में
एक खंजर धँसा हुआ,
मेरी आत्मा हो सकती है विनष्ट
पर मेरा दर्द अमर है।]

(अनु० : रंगनाथ राकेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ

● ● कृष्णाचार्य

यह कृति एक ग्रन्थपुटी है : हिन्दीके आदि मुद्रित ग्रन्थोंकी बिब्लियोग्रैफ़ी। इसमें उन ग्रन्थोंकी विवरणी दी गयी है जो ईसवी सन् १८१० से १८७० के बीच, अर्थात् लल्लूजी लाल कविसे शिवप्रसाद सितारेहिन्द तककी कालावधिमें मुद्रित और प्रकाशित हुए। जितना ज्ञान इस युगकी कृतियोंके बारेमें था वह भी सीमित था और बिखरा हुआ, विशृंखल। यह ग्रन्थपुटी उपलब्ध और ज्ञात कृतियोंका प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत कर देती है और अपेक्षित सन्दर्भों सहित, व्यवस्थित रूपमें। हिन्दीके आदिमुद्रित ग्रन्थोंकी इस विवरणकी पूर्णता देनेके उद्देश्यसे प्रास्ताविकीमें हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक कालका एक सुसंहत विहगावलोकन भी दिया गया है। भारतमें मुद्रणकलाका प्रवेश, हिन्दी मुद्रणके प्रारम्भिक प्रयत्न, नागरी टाइपोंका आविष्करण और निर्माण उस युगके मुद्रणालय और राजकीय विधि-नियम आदि विषयोंकी प्रामाणिक जानकारी यहाँ दी गयी है, जो अन्यत्र सुलभ न होगी। प्रत्येक ग्रन्थागारके लिए अनिवार्य और तत्कालीन हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए नितान्त आवश्यक।

मूल्य ७.००

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७
प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५
विक्रय-केन्द्र :
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078058

ज्ञानोदय
ज्ञानोदय
ज्ञानोदय
ज्ञानोदय
ज्ञानोदय

नगर-बोधके चौराहे पर····

- महानगरके व्यस्त और मशीनी जीवनका साहित्यपर जो संक्रामक प्रभाव पड़ा है क्या उसीके कारण साहित्यके विविध रूप इतने अधिक बदल गये हैं कि उनके शिल्प और उनकी आधुनिकताका अलगसे मूल्यांकन आवश्यक हो गया है···· ?
- जिसे 'मैनरिज़्म' कहते हैं, वह कॉफ़ीहाउस या सम्भ्रान्त घरोंकी संस्कृति है, यदि वही महानगरकी नब्ज़ है तो क्या ऐसा समय आनेकी सम्भावना है जब थोरोकी तरह सब वाल्डेन सरोवरकी तरफ़ भागने लगें ?
- नीत्शे या काफ़्का या रिल्के या और कोई भी दार्शनिक रचनाकार महानगरकी 'वर्तमानता'को बदलनेके लिए कुछ नहीं कर सका—सब या तो चीखते रहे या नामान्तरसे किसी आत्मभोगमें डूबे रहे····क्या अब कहीं कोई आशा दिखती है ? शायद नहीं····शायद हाँ ?
- प्रेम, वासना, दाम्पत्य, परिवार और सामाजिक परिवेश महानगरमें पहुँचकर संक्षिप्त और संकुचित होते चले गये हैं।····क्या इस तरह लगातार संकुचित होते चले जाना खुले दिमाग़के लक्षण हैं या फ़ुरसत-हीनताके दुष्परिणाम ?
- ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक ज़मीनपर खड़े होकर क्या वह भविष्य भी दिखता है जहाँ पहुँचकर सारा विश्व विज्ञानकी सहायतासे एक महानगर हो जायेगा और पहाड़-समुद्र अनुपयोगी भूगोलकी तरह एक-दूसरे मोहल्लोंके बीचमें सजे हुए दिखाई देंगे ?
- किसी अंचलका शान्त सूर्यास्त या उज्ज्वल सूर्योदय शहरमें आकर व्यस्त और त्रस्त हो जाता है—यह होता रहा तो क्या किसी दिन महानगरका व्यक्ति झुलसकर किसी आस्तिककी तरह प्रार्थना नहीं करने लगेगा ? वह प्रार्थना क्या होगी ? होगी भी ?

····प्रश्न इतने ही नहीं हैं और भी हैं और इन प्रश्नोंके उलझते संकेतोंसे परिचर्चाका स्वरूप उभरता है। पचाससे अधिक लेखकोंके विचार कि 'महानगर' ने हमें क्या दिया और इसने हमसे क्या छीन लिया ?

म । हा । न । ग । र । वि । शे । षां । क

(विशेष विवरण : पृष्ठ ११०–१११ देखिए)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Price Annual Rs. 10/- per copy Re. 1/- for abroad extra postage 18nP. This Copy Re. 1/-

ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लिमिटेड

भारी रसायनों के निर्माता

कास्टिक सोडा
(रेयन ग्रेड)

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

ब्लीच लिकर

साहूपुरम् में

डाकखाना : अरुमुगनेरी

(तिन्नेवेली जिला)

सोडा ऐश

सोडा बाईकार्ब

कैल्सियम क्लोराइड

नमक

ध्रांगध्रा में

(गुजरात राज्य)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :

साहू ब्रदर्स (सौराष्ट्र) प्राइवेट लि०

१५ ए, हॉर्निमैन सर्किल

फोर्ट, बम्बई–१

टेलीफ़ोन : २५१२१८-१९-१०,

तार : सोडाकेम, बम्बई

License No. 61. Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. L-2036

भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी ओरसे जगदीश अग्रवाल-द्वारा प्रकाशित और सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी में मुद्रित ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar